स्वर्गीय-पद्मभूषण वैद्य रा. प. शिवशर्माजी के
पुण्यस्मरणार्थ उपहारस्वरूप प्राप्त

यूनानी द्रव्यगुणादर्श

यूनानी द्रव्यगुणादर्श

उद्भिज्ज औषधाहार द्रव्य—अद्विया
व अग्जिया नबातिया—विज्ञानीय

(द्वितीय खण्ड)

602190

सम्मत्यर्थ

लेखक
आयुर्वेदीय विश्वकोशकार वैद्यराज हकीम दलजीत सिंह
आयुर्वेद बृहस्पति (D. Sc., A.) भिषङ्मणि आदि

आयुर्वेदिक एवं तिब्बी अकादमी, उत्तरप्रदेश
लखनऊ

प्रकाशक
आयुर्वेदिक-तिब्बी अकादमी, उत्तर प्रदेश,
लखनऊ

Vaidyaraj Zinda Bhatji
National Ayurvedic Library
Punjabi Bagh, New Delhi
Call No. LXD N74:2
Book No.
Acc No. 000161

लेखक—
वैद्यराज हकीम दलजीत सिंह,
श्रीचुनार आयुर्वेदीय-यूनानी औषधालय,
चुनार, जिला मीरजापुर (उ० प्र०)

प्रथम संस्करण
१९७४

मूल्य : पचास रुपये

मुद्रक
जीवन शिक्षा मुद्रणालय (प्रा०) लि०
गोलघर, वाराणसी–१

प्रस्तावना

आयुर्वेद-जगत्में अनेक वर्षोंसे उपयुक्त ग्रन्थों, विशेषकर पाठ्य-पुस्तकोंका अभाव अनुभव किया जा रहा है। प्राचीन संहिताएँ तथा उनकी व्याख्याएँ और टीकाएँ भी अप्राप्य होती जा रही हैं। साथ ही आयुर्वेदिक एवं यूनानी साहित्यको समृद्ध करनेके लिये प्राचीन उपयोगी पांडुलिपियोंको भी प्रकाशमें लानेकी आवश्यकता अनुभव की जा रही है। आयुर्वेद एवं यूनानीको उपयुक्त पाठ्य-पुस्तकोंका अभाव विशेषरूपसे तबसे खटकने लगा जबसे कि विभिन्न प्रदेशोंमें आयुर्वेद और यूनानीके महाविद्यालय स्थापित किये गये और उनमें विषयानुसार पाठ्यक्रमका निर्धारण किया गया। प्राचीन उपलब्ध संहिताओंमें विभिन्न विषयोंकी सामग्री यत्र-तत्र बिखरी हुई है और उसको संकलित कर उसके आधारपर उपयुक्त पाठ्यपुस्तकोंके निर्माणकी अत्यन्त आवश्यकता है। आयुर्वेद एवं यूनानीके विकासकेलिए उपर्युक्त कार्य बहुत ही महत्वपूर्ण है।

अतः उत्तर प्रदेशीय आयुर्वेदिक एवं यूनानी पुनःसंगठन समिति (१९४७) की संस्तुतिको ध्यानमें रखते हुए उत्तर प्रदेशीय शासनने वर्ष १९४९–५० के वित्तीय वर्षमें शासनादेश संख्या ५७१८ बी०।बी-२। आर० सी०। १९४९ दिनांक २८-२-१९५० के द्वारा आयुर्वेदिक एवं तिब्बी अकादमी, उत्तर प्रदेशकी स्थापना निम्न उद्देश्योंकी पूर्तिके लिए की—

(१) प्राचीन आयुर्वेदिक एवं यूनानी साहित्यका संकलन, सम्पादन तथा प्रकाशन।

(२) प्राचीन आयुर्वेदिक एवं यूनानी पुस्तकों तथा उपादेय चिकित्सा-सम्बन्धी साहित्यका विदेशी भाषाओंसे अनुवाद कराना और उसे प्रकाशित करना।

(३) आयुर्वेद एवं यूनानी तिबके विद्यार्थियोंके लिए उपयुक्त स्तरकी पाठ्यपुस्तकोंका हिन्दीमें निर्माण।

यह भी निश्चय किया गया कि अकादमी एक परामर्शदात्री समितिके रूपमें कार्य करेगी तथा उपयुक्त विद्वानोंको पाठ्यपुस्तकोंके लेखन तथा प्राचीन एवं आधुनिक पुस्तकोंको हिन्दीमें अनुवाद करनेके लिए आमंत्रित करेगी और उपयुक्त अधिकारी विद्वानों द्वारा उनका परीक्षण कराकर यदि वे निर्धारित स्तरकी हुई तो शासनकी स्वीकृति लेकर लेखकों और सम्बन्धित विद्वानोंको उपयुक्त पुरस्कार भी प्रदान करेगी। अकादमीका एक पृथक् पुस्तकालय भी स्थापित करनेकी स्वीकृति शासन द्वारा दी गयी।

किन्तु उपर्युक्त कार्यके लिए प्रारम्भ में जो कर्मचारी-वर्ग तथा अनुदान शासन द्वारा स्वीकृति किया गया वह इतना पर्याप्त नहीं था कि उपयुक्त पाठ्यपुस्तकोंको लिखाकर या अनुवाद कराकर इनके प्रकाशनका कार्य भी अकादमी आरम्भ कर सके। इसलिए प्रारम्भमें कई वर्षों तक अकादमी केवल प्रत्येक वर्ष प्रकाशित पुस्तकोंपर ही लेखकोंको प्रोत्साहनार्थ कुछ धन-राशि पुरस्कारके रूपमें प्रदान करती रही।

वर्ष १९६८–६९ में शासनने शासनादेश संख्या ५१४९ग।५–३७९।६६ दिनांक ७–३–१९६८ के अन्तर्गत उपयुक्त पुस्तकोंके प्रणयन और उनके प्रकाशनके लिए अतिरिक्त अनुदानका प्राविधान किया तथा एक सम्पादक, एक अनुसंधान सहायक एवं एक पुस्तकाध्यक्षके पदोंका सृजन किया। अतः अकादमीने अब अधिकारी विद्वानोंसे उपयुक्त ग्रंथ लिखाकर तथा अनुवाद कराकर उन्हें प्रकाशित करानेका कार्य भी अपने हाथमें लिया है जिसके

फलस्वरूप यूनानी तिबसे सम्बन्धित यह ग्रन्थ पाठकोंकी सेवामें प्रस्तुत है। अकादमीका यह चतुर्थ प्रकाशन है। इसके पूर्व आचार्य निरंजन देव द्वारा लिखित "प्राकृत दोष विज्ञान," वैद्यराज हकीम दलजीत सिंह द्वारा लिखित "यूनानी द्रव्य गुणादर्श" प्रथम खण्ड और डा० के० एन० उडुप, निदेशक, इन्स्टीट्यूट आफ मेडिकल साइंसेज, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी द्वारा लिखित "आधुनिक शल्य चिकित्सा सिद्धान्त" नामक ग्रन्थ अकादमी द्वारा प्रकाशित हो चुके हैं।

यह बात सर्वविदित है कि अतीतमें यूनान (आधुनिक ग्रीस), मिस्र, सीरिया, ईरान आदि देशोंके साथ भारत के घनिष्ठ सांस्कृतिक सम्बन्ध स्थापित थे और पारस्परिक सम्पर्कसे भारतीय ज्ञान-विज्ञानका आलोक इन देशोंमें फैला था। सिकन्दर महानके समयमें भी आयुर्वेद एक अत्यन्त विकसित और समुन्नत चिकित्सा-शास्त्र माना जाता था और उसका प्रभाव यूनानी और उसकी चिकित्सा-पद्धति पर भी पड़ा था। यूनानके प्रभावसे अरब देशोंमें जो चिकित्सा-पद्धति विकसित हुई वह यूनानी तिब के नामसे प्रसिद्ध हुई। इस्लामके अभ्युदयकालमें (आठवीं तथा नवीं शताब्दीमें) विद्याप्रेमी बगदादके विद्वान खलीफाओं द्वारा भारतसे आयुर्वेदके अनेक प्रतिष्ठित चिकित्सकोंको सम्मान-पूर्वक आमंत्रित किया गया और उनकी सहायतासे भारतके चिकित्सा-शास्त्रके अनेक महत्वपूर्ण ग्रन्थोंको अरबी भाषामें रूपान्तरित कराया गया जिससे यूनानी चिकित्सा-पद्धतिके विकासमें पर्याप्त योगदान मिला। इस प्रकार यूनानी चिकित्सा-पद्धतिपर भारतीय आयुर्वेद शास्त्रका पर्याप्त प्रभाव रहा है। इस्लामके साथ-साथ यूनानी चिकित्सा-पद्धतिका भी इस देशमें आगमन हुआ और मुस्लिम शासकों विशेषकर मुगल शासकोंके कालमें उसका भारतीय चिकित्सा-पद्धतिके सहयोगसे और भी अधिक विकास और प्रसार हुआ। इस प्रकार यूनानी तिब भी इस देशकी ही चिकित्सा-पद्धति बन गयी और अब भारतीय उपमहाद्वीपके अतिरिक्त सम्भवतः अन्यत्र इस पद्धतिका प्रसार नहीं रहा है।

यूनानी तिबके अधिकांश ग्रन्थ अरबी, फारसी या उर्दूमें ही उपलब्ध हैं। देशके अधिकांश भागमें अब राष्ट्रभाषा हिन्दी शनैः शनैः शिक्षाका माध्यम होती जा रही है। अतः यह आवश्यक है कि यूनानी तिबके ग्रन्थोंका भी हिन्दीमें प्रकाशन किया जाय जिससे कि उसका और अधिक प्रचार और प्रसार हो। आयुर्वेद और यूनानी तिबमें भाषा तथा देशकालकी स्थितिके अनुसार भले ही भिन्नता प्रतिभासित हो, वास्तवमें इन दोनों चिकित्सा-पद्धतियोंमें बहुत कुछ समानता है और उन्होंने एक-दूसरेके विकासमें पर्याप्त योगदान दिया है। यदि यूनानी तिबके ग्रन्थ हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओंमें सुलभ हों तो आयुर्वेद और यूनानी तिबका तुलनात्मक अध्ययन और उनका समन्वय सुगम हो सकता है और ये दोनों पद्धतियाँ एक-दूसरेके और भी निकट आ सकती हैं और एक-दूसरेकी पूरक बन सकती हैं।

उपर्युक्त तथ्यको ध्यानमें रखकर वैद्यराज हकीम दलजीत सिंहने आयुर्वेद तथा यूनानी तिब दोनोंका ही गम्भीर अध्ययन किया है और अपनी साधनाके फलस्वरूप उन्होंने आयुर्वेद और यूनानी तिबके अनेक ग्रन्थोंकी रचना की है। प्रस्तुत ग्रन्थ भी उनकी विद्वत्ता, गम्भीर चिन्तन और साधनाका ही फल है। इसका प्रथम खण्ड अकादमी द्वारा पूर्वमें प्रकाशित किया गया है। इस ग्रन्थमें यूनानी तिबके औषधाहार द्रव्योंके गुणकर्म एवं उपयोगका विवेचन सरल एवं सुबोध शैलीमें किया गया है। प्रत्येक यूनानी तिबके द्रव्यके यूनानी, अरबी, फारसी, उर्दू, हिन्दी, संस्कृत और वैज्ञानिक पर्याय नाम देनेसे ग्रन्थकी उपयोगितामें वृद्धि हुई है। ग्रन्थके परिशिष्टमें रोगानुसारिणी द्रव्य-कल्प योग सूची देनेसे छात्र, विद्वान, एवं यूनानी तिबमें अभिरुचि रखनेवालोंको समान रूपसे इसकी उपयोगिता बढ़ गयी है। अपने कथन और तर्ककी पुष्टिमें लेखकने आवश्यकतानुसार संस्कृत, अरबी, फारसी तथा उर्दू ग्रन्थोंमें प्रतिपादित विभिन्न आचार्योंके मतोंके भी प्रचुर उदाहरण और प्रमाण दिये हैं, जिससे ग्रन्थकी उपादेयता और प्रामाणिकता बढ़ जाती है।

अतः इस ग्रन्थके द्वितीय खण्डको प्रकाशित करते हुए हमारा यह विश्वास है कि इस प्रकारके प्रकाशनका हिन्दी-जगतमें यथेष्ठ स्वागत होगा और इसके अध्ययनसे आयुर्वेद तथा यूनानी तिबके चिकित्सकों, छात्रों तथा अनुरागियोंको लाभ पहुँचेगा । ऐसे उपयोगी ग्रन्थके लेखनके लिए हकीम दलजीत सिंह बधाईके पात्र हैं ।

प्रस्तुत पुस्तकके मुद्रण तथा उसके कलेवरको सुन्दर एवं आकर्षक बनानेमें श्री तरुण भाई, संचालक, जीवन शिक्षा मुद्रणालय (प्रा०) लि०, वाराणसीने हमें पर्याप्त सहयोग प्रदान किया है । अतः मैं उनका भी धन्यवाद करता हूँ ।

लखनऊ
दिनांक २५ फरवरी, १९७४ ई०

अध्यक्ष
आयुर्वेदिक एवं तिब्बी अकादमी, उत्तर प्रदेश
लखनऊ—४

लेखक के दो शब्द

यूनानी द्रव्यगुणादर्शका यह उद्भिज्ज-औषधाहारद्रव्य विज्ञानीय द्वितीय खण्ड है। प्रस्तुत ग्रन्थ किसी एक अरबी, फ़ारसी या उर्दू में लिखे यूनानी ग्रन्थका अनुवाद नहीं, अपितु इस विषय के अनेक ग्रन्थों का सारांश रूप है जो लेखक के अध्ययन एवं अन्वेषणका परिणाम है। इसमें यूनानी चिकित्सा में प्रयुक्त, वर्तमान समय में प्रसिद्ध एवं प्राप्य समस्त द्रव्यों के गुणकर्म तथा उपयोग आदिका संकलन नातिसंक्षेपविस्तरेण सरल, सुबोध एवं परिष्कृत हिन्दी में किया गया है। इससे प्रत्येक द्रव्यका निर्णय (व्यक्तिविनिश्चय–Identification) कर निश्चित एवं सही वैज्ञानिक तथा अन्य भाषाके नाम और वर्णनादि देनेका यथाशक्य प्रयास किया गया है। प्रयत्न यह किया गया है कि इस ग्रन्थ में एक शब्द भी फालतू न आने पाये और न ही पुनरुक्तिदोष हो पाये। इसमें प्रत्येक द्रव्य के विभिन्न भाषाके निश्चित पर्याय नाम, उसका कुल (Family), उत्पत्तिस्थान, नामों की आवश्यकीय निर्णायक टिप्पणी, आवश्यक वानस्पतिक विवरण (वर्णन), औषधमें उपयुक्त अंग, रासायनिक संगठन, उस अंगसे बननेवाले आयुर्वेदीय-यूनानी एवं आवश्यक पाश्चात्य वैद्यकीय विविध कल्प एवं योग, द्रव्यकी प्रकृति (वीर्य), गुण–कर्म–उपयोग, अहितकर, निवारण, प्रधानकर्म और प्रचलित प्रामाणिक दवाखानोंके अनुसार सेवनीय मात्रा आदि सहित गागर में सागर भरने की भाँति विशद वर्णन किया गया है। इसमें लगभग प्रत्येक औषध द्रव्यके शुद्ध एवं सही अरबी, फारसी, उर्दू, संस्कृत, हिन्दी आदि पर्याय नाम तथा अन्य भाषा के स्थानीय एवं प्रान्तीय नाम और निर्णीत वैज्ञानिक (लेटिन) नाम भी दिये हैं, जिससे प्रत्येक के लिये उक्त द्रव्य का पहिचानना सुकर हो गया है।

पर्याय नामोंमें सर्वप्रथम प्रचलित एवं प्रसिद्ध नाम चाहे वे किसी भाषाके हों दिये गये हैं। शीर्षक में भी वे ही नाम दिये गये हैं। इसके पश्चात् यूनानी (Greek), फिर क्रमशः अरबी, फारसी एवं संस्कृत आदि नाम दिये गये हैं।

पर्याय नाम देने के बाद संज्ञानिर्णायक टिप्पणी (वक्तव्य) और उक्त औषधिका वेदकालसे तथा यूनानी कालसे लेकर अबतकका इतिहास संक्षेप में दिया है। पुनः उपयुक्त अंग, रासायनिक संगठन तथा कल्पयोग और यूनानी मत से गुण–कर्म तथा प्रयोग दिया गया है। तत्पश्चात् आयुर्वेद तथा नव्यमत गुण–कर्म से प्रयोग दिया गया है। इस ग्रन्थ में कुल मिलाकर लगभग एक सहस्र आवश्यक प्रचलित, बहुप्रयुक्त एवं कृत प्रयोग उपयोगी प्रसिद्ध द्रव्यों (औषधियों)का वर्णन नातिसंक्षेपविस्तरेण सुंदररीत्या हो पाया है।

यह ध्यान रहे कि यूनानी द्रव्यगुणविषयक हमारे ग्रंथागार में यद्यपि स्वतन्त्र द्रव्यों पर लिखे गये अनेक अरबी, फारसी, उर्दू ग्रन्थ विद्यमान हैं, तथापि उनमें से अधुना अधिकतम मख़ज़नुल्‌अद्‌विया, मुहीत आजम तथा ख़ज़ाइनुल्‌अद्‌विया ही अध्ययन में रहते हैं और यथासमय इन्हीं से काम लिया जाता है। उपर्युक्त ग्रन्थ फारसी तथा उर्दू भाषा में होने के अतिरिक्त इतने विस्तृत हैं कि हकीमों और वैद्यों का संस्कृत एवं हिन्दी पठित समाज बिल्कुल लाभान्वित नहीं हो सकता तथा कतिपय लोग विशेषकर विद्यार्थी एवं नौसिखुए तो परस्पर विरोधी मतों (वर्णनों) के चक्कर में पड़कर रह जाते हैं। इन ग्रन्थों के अतिरिक्त अन्य संक्षिप्त यूनानी निघंटुविषयक ग्रन्थ भी हैं, किन्तु उनमें प्राचीन ग्रन्थों का अनुसरण करके कतिपय द्रव्योंके ऐसे गुणकर्म लिखे हैं जो कालान्तर से लिपि-प्रतिलिपि होते आ रहे हैं और अधुना इन द्रव्यों के गुण-कर्म तो दूर रहे, इनके अस्तित्व का ही पता नहीं है। प्रस्तुत ग्रन्थ में इन सभी दोषों का परिहार किया गया है।

इस ग्रन्थ के लिखने में कतिपय द्रव्यों के गुण-कर्म तथा उपयोग आदि लिखनेमें यूनानी (ग्रीक, अरबी, फारसी तथा उर्दू), आर्य (संस्कृत) एवं पाश्चात्य वैद्यकीय तथा अन्यान्य भाषाके ग्रन्थोंसे भी सहायता ली गयी है और यथास्थान प्रमाण सहित उनके मतोंको उधृत किया गया है।

कतिपय द्रव्यों का उपयोग ऐसे रोगों में लिखा गया है जिसका उल्लेख यद्यपि यूनानी निघंटुओं में नहीं है तथापि वह सामान्यतया प्रयुक्त एवं हितकारी हैं।

संक्षेपमें यदि यह कहें कि उपर्युक्त सभी दृष्टियोंसे लिखा हुआ इस प्रकारका यूनानी निघंटुविषयक यह ग्रन्थ हिन्दी या अन्य किसी प्रान्तीय भाषामें तो क्या स्वयं यूनानी (अरबी, फ़ारसी, उर्दू) में नहीं है तथा यह कि राष्ट्र भाषा हिन्दीमें लिखी हुई यह अपने विषय की प्रथम कृति है, तो इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं है।

राष्ट्रभाषा हिन्दी के ग्रन्थागारमें इस विषयके वैज्ञानिक ग्रन्थका जो अत्यन्ताभाव रहा है, उसकी सम्यक् पूर्ति इस ग्रन्थके प्रकाशनसे हो सकेगी, ऐसी आशा है।

जैसा मैंने पहले कहा है कि इसमें यथास्थान आयुर्वेदीय (एवं नव्य) मत इस प्रयोजन से प्रमाणसहित दिये गये हैं जिसमें यूनानीसे आयुर्वेदीय गुणादिवर्णनाके साथ तुलना करनेमें सुगमता हो और यह जानना सहज हो कि यूनानी द्रव्यगुणमें आयुर्वेदका कितना अंश है तथा आयुर्वेदसे इसमें कौन-कौन गुण-कर्म एवं उपयोग अधिक हैं और किनका अभाव है तथा आयुर्वेदसे इसमें समानता कितनी है। इससे एक लाभ यह भी होना संभव है कि हकीम लोग आयुर्वेद से और वैद्य लोग यूनानीसे लाभ उठा सकेंगे। इस प्रकार दोनों एक-दूसरेके दृष्टिकोणको समझकर एक-दूसरेके सन्निकट आ सकेगें। इस प्रकार दोनों के बीच पड़ी हुई खाई भी पट सकेगी, ऐसी आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास हैं। इसी हेतु यह आयुर्वेद-यूनानी समन्वय में भी परम सहायक हो सकता है।

महाभूतादिके सम्बन्धमें यूनानी सिद्धान्त आयुर्वेदके सिद्धान्तोंके साथ बहुत कुछ मिलते-जुलते हैं तथा अधिकसंख्य आयुर्वेदकी औषधियाँ यूनानीमें व्यवहृत होती हैं, इसलिए अध्ययन-अध्यापन एवं कर्माभ्यास की दृष्टि से यह ग्रन्थ यूनानी के विद्यार्थियों और वैद्यों हकीमों के समान आयुर्वेद के विद्यार्थियों और वैद्यों के लिए भी परमोपयोगी है। अतएव इसे आयुर्वेद यूनानी विद्यालयोंके पाठ्यक्रममें रखा जा सकता है, तथा सन्दर्भग्रन्थके रूपमें इसका उपयोग किया जा सकता है।

यह ग्रन्थ परिष्कृत सरल, एवं सुबोध हिन्दी भाषामें लिखा गया है तथा आयुर्वेद की भाँति यूनानी के कल्प एवं योग भी ऐसे ही होते हैं, जिनका ज्ञान होनेपर यूनानी हकीमों के अतिरिक्त आर्य वैद्य तथा जनसाधारण भी उससे पूरा पूरा लाभ उठा सकते हैं। अतः उपयोगिता की दृष्टि से यह ग्रन्थ वैद्य-हकीमों के अतिरिक्त जनसाधारणके भी उपयोगकी वस्तु हो सकता है।

भाषा, लेखन-शैली और विषय-प्रतिपादनकी दृष्टिसे यह ग्रन्थ अति सुन्दर है तथा उपयोगितामें भी किसी प्रकार कम नहीं है। यही कारण है कि इसे प्रकाशनार्थ जब आयुर्वेद–यूनानी अकादमी, उत्तर प्रदेशके सदस्योंके समक्ष उपस्थित किया गया तब सभी सदस्य महानुभावों ने एक स्वरसे इसे सरकार द्वारा प्रकाशित किये जाने की अभ्यर्थना की। इसकी उपयोगिताके प्रमाणकेलिए यही क्या कम है?

इस ग्रन्थमें देनेके लिए संदिग्ध एवं आवश्यक वनस्पतियोंके उत्तम रंगीन एवं रेखाचित्र बनवाये गये थे। परन्तु एक तो यूँ ही ग्रंथके प्रकाशन में अप्रत्याशित विलम्ब हुआ है, दूसरे इनके ब्लाक बनवाने और छपवाने में और भी अनावश्यक विलम्ब होता, अतएव उनका इस खण्ड में देना स्थगित कर दिया गया। इन्हें आगामी तृतीय खण्ड में जान्तव-चित्रोंके साथ एकत्र दिया जायगा।

प्रस्तुत ग्रन्थको प्रकाशनार्थ स्वीकृत कराने तथा इतने उत्तम रूपमें प्रकाशित करानेका बहुत कुछ श्रेय माननीय श्री मुकुन्दी लालजी द्विवेदी, निदेशक, आयुर्वेद-यूनानी सेवाओं को है। इसके लिए वे मेरे बहुत ही धन्यवाद के पात्र हैं। अस्तु, मैं उनका बहुत ही आभारी हूँ।

प्रस्तुत ग्रन्थकी संपूर्ण पाण्डुलिपिको टंकणित कराने, उद्भिज्ज द्रव्यों की लेटिन संज्ञाओंके उच्चारणके आधुनिकीकरण तथा संपूर्ण ग्रन्थके आद्योपान्त प्रूफ-संशोधन आदिका तथा रंगीन एवं रेखाचित्रोंके प्रबन्धका जो मह-

त्तम कार्यभार मेरे अनुज आयुर्वेदाचार्य डॉ० रामसुशील सिंह, प्रोफेसर, द्रव्यगुण विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालयने अपने कंधोंपर लेकर उसे सम्पन्न किया है, उसके लिये वे मेरे बहुत-बहुत धन्यवादके पात्र हैं तथा उन्हें मेरा शुभाशीर्वाद समर्पित है । साथही मेरे सुपुत्र डा० भृगुनाथ सिंह B.A.,M.M.S., D.Ay.M.,Ph.D. ने भी कई प्रकार से इस ग्रन्थके सम्पूर्ण करानेमें मेरी सहायता की है उसके लिये वे भी मेरे शुभाशीर्वाद के पात्र हैं ।

अन्तमें मैं अनेक भाषाके एतद्विषयक उन ग्रन्थोंके लेखकोंको जिनकी सूची आगे दे दी गई है तथा जिनसे मुझे कुछ भी सहायता मिली है, धन्यवाद दिये बिना नहीं रह सकता । उनका मैं हृदयसे आभार मानता हूँ ।

इसके अतिरिक्त जीवन शिक्षा मुद्रणालय(प्रा०) लि० के संचालक माननीय श्रीतरुण भाईका भी आभार मानता हूँ, जिन्होंने इस ग्रन्थको इतना शीघ्र एवं उत्तम रीतिसे मुद्रण करा इसे पाठकोंके समक्ष उपस्थित करनेमें मेरी सहायता की हैं ।

सर्वांतमें पाठकों से यह विनयपूर्वक प्रार्थना कर देना उचित समझता हूँ कि यदि मुद्रण-सम्बन्धी या लेखक द्वारा इसमें कहीं भी हुई कोई त्रुटि दृष्टिमें आवे तो उसकी सूचना लेखक को अवश्य दें जिससे आगामी संस्करणमें उनका परिहार किया जा सके ।

—हकीम दलजीत सिंह

बीरबल साहनी विशेष पुरस्कार-स्वरूप एक सहस्र मुद्रा प्राप्त प्रथम खण्ड पर अब तक प्राप्त स्वतन्त्र सम्मतियों में से कतिपय निम्नलिखित हैं

PANDIT SHIV SHARMA
Ayurveda Chakravarti, Ratna

CCIM/181

18th January, 1973

My dear Dwivedi Ji,

Kindly refer to your letter No. 1962 dated the 5th December 1972 which I received along with a copy of ''Unani Dravyagunadarsha'' by Hakim Daljit Singh.

I have read through large portions of this book with great interest. I have been impressed by the chapter on the historical background of Unani which exhibits a wide study of the subject by the author. His treatment of the fundamental principles of Unani is excellent and his presentation of the rest of the corpus of Unani, such as materia medica, pharmacology, pharmacy, therapeutics, various apparatuses, etc. is clear and comprehensive. I congratulate Hakim Sahib on his excellent work and the academy for making this useful treatise available to the profession and the public.

With kind regards,

Yours sincerely,
Sd/–Shiv Sharma.

Shri Mukundi Lal Dwivedi,
Chairman
Ayurvedic and Tibbi Academy, of U. P.
Tulsidas Marg,
Lucknow, U. P.

अध्यक्ष
आयुर्वेदिक एवं तिब्बी अकादमी, उ० प्र०
तुलसीदास मार्ग, लखनऊ–४

प्रिय महोदय,

आपके पत्र सं० १९९५ दिनांक ५·१२-७२ के साथ प्रेषित यूनानी द्रव्यगुणादर्शकी एक प्रति प्राप्त हुई। धन्यवाद। यूनानी द्रव्यगुणके सम्बन्धमें अभीतक ऐसी प्रामाणिक जानकारीका अभाव था, जिसकी पूर्ति इस ग्रन्थद्वारा हुई है। इसके लेखक वैद्यराज हकीम दलजीत सिंहजी इस विषयके अधिकारी विद्वान हैं जो अपनी विभिन्न रचनाओं द्वारा आयुर्वेद एवं यूनानी जगतको समृद्ध करते रहे हैं। आयुर्वेद एवं तिब्बी अकादमीके द्वारा ऐसे प्रकाशन वाङ्मयकी अभिवृद्धिके लिये अत्यन्त प्रेरक सिद्ध होंगे। इस उत्कृष्ट रचना एवं प्रकाशनके लिये लेखक एवं प्रकाशक दोनों बधाईके पात्र हैं। आपके निर्देशनमें उत्तमोत्तम ग्रन्थोंका प्रकाशन भविष्य में होता रहे ऐसी मेरी कामना है।

भवदीय
ह० प्रियव्रत शर्मा
अध्यक्ष
द्रव्यगुण विभाग
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
चिकित्सा विज्ञान संस्थान
वाराणसी-५

लेखक-हकीम दलजीत सिंह
प्रकाशक-आयुर्वेदिक एवं तिब्बी अकादमी
उत्तर प्रदेश ।

प्रस्तुत ग्रन्थकी निम्न विशेषताओंसे मैं नितान्त प्रभावित हुआ ।

१-आयुर्वेद एवं यूनानीकी निकटता प्रकट करनेमें यह ग्रन्थ सफल हुआ है । दोनोंमें सामञ्जस्य तथा समन्वयका क्षेत्र कितना अधिक हैं यह इससे प्रकाशमें आता है ।

२-देह एवं द्रव्योंके मूल घटक, गुणों तथा कर्मोंका विवेचन, द्रव्योंके क्रमानुसार गण, औषध-द्रव्योंकी कल्पनाएँ तथा इन सबकी परिभाषामें केवल भाषाभेदको छोड़कर शेष बातोंसे अत्यधिक एकरूपता दिखती है । जिनमें दोनोंकी विशिष्टता है इसका भी यथार्थ दिग्दर्शन कराया है ।

३-ऐतिहासिक पृष्ठभूमिका अध्याय नितान्त विद्वत्तापूर्ण एवं समृद्ध जानकारी देनेवाला अध्याय है ।

४-पादटिप्पणियोंमें आयुर्वेदके साहित्यसे उद्धरण देकर साम्य अथवा विशेषताका निर्देश करना लेखककी तटस्थता तथा बहुश्रुतता एवं उदार समन्वयात्मक दृष्टिकोणका सूचक है ।

५-शिष्ट किन्तु सरल हिन्दी भाषामें उभय शास्त्रके सिद्धान्तोंका विवेचन करके राष्ट्रभाषाकी तथा शिक्षाप्रसारके उद्देश्यकी बहुमूल्य सेवा की है ।

६-रोगानुसार प्रयुक्त औषधद्रव्योंका निर्देश करके यूनानी द्रव्योंके जिज्ञासु और चिकित्सामें लाभ उठानेके इच्छुक वैद्य बन्धुओंके लिये उपकार किया है ।

७-हिन्दी-अंग्रेजीके शब्दोंकी सूची देकर ग्रन्थकी उपयोगिता तथा पाठकोंकी सुविधा बढ़ाई है ।

८-मुद्रण भी बहुत सुन्दर एवं आकर्षक है--तथा कागज भी ऊँची किसमके हैं ।

इस प्रकारके उच्चकोटिका यह ग्रन्थ आलोच्य ग्रन्थ रेफरन्स बुक्सकी श्रेणीमें स्थान पाने योग्य हैं । इस ग्रन्थ द्वारा अवश्य ही हिन्दी वैज्ञानिक साहित्यकी श्रीवृद्धि हुई है । गम्भीर, अध्ययनपूर्ण एवं तटस्थ विवेचनयुक्त इस ग्रंथके लेखक हकीम श्री दलजीत सिंहजीका वास्तविक वैज्ञानिक दृष्टिकोण एवं विद्वत्ताकी गरिमा स्वयं सिद्ध हो जाते हैं । वे हमारी हार्दिक बधाईके अधिकारी हैं ।

आयुर्वेदिक एवं तिब्बी अकादमी तथा उत्तर प्रदेश शासन भी धन्य हैं जिन्होंने कानूनी तथा आवश्यक धनराशिका प्रबन्ध करके विद्वानोंको निमन्त्रित करके नये ग्रन्थोंके प्रणयनका न केवल मार्ग प्रशस्त किया अपितु प्रादेशिक तथा राष्ट्रभाषामें ग्रन्थोंके निर्माणके कार्यको प्रोत्साहन देनेके लिए अन्य राज्यों को अनुकरणीय दृष्टान्त पेश किया है ।

ह० वि० ज० ठाकर
कुलपति (प्रभारी)
गुजरात आयुर्वेद यूनिवर्सिटी

KAVIRAJ ASHUTOSH MAJUMDAR
Hony. Physician to the President of India,
Hony. Director M. M. L. Centre for Rheumatic Diseases,
Chairman, Central Council of Indian Madicine.

Phones : 47366
Off : 261527
90/8, Connaught Circus,
New Delhi—1

20-3-73

समीक्ष्यग्रन्थ-यूनानी द्रव्यगुणादर्श (प्रथम खण्ड), पृष्ठ संख्या ४०७, लेखक-वैद्यराज हकीम दलजीत सिंह, प्रकाशक-आयुर्वेदिक एवं तिब्बी अकादमी, उत्तर प्रदेश, लखनऊ। मूल्य-२५ रुपये

समीक्षा

प्राचीनकालमें आर्ष पद्धति द्वारा चिकित्सा करनेवाले सद्वैद्योंकी कीर्ति-पताका भारत वसुन्धरासे परे भी फहराने लगी थी, ऐसे सफल चिकित्सकोंके निर्देशक हैं आचार्यप्रवर भेलके उत्तराधिकारी श्री सायि महोदय जिन्होंने बगदादके हारुन-अल्-रशीदके भतीजे इब्राहिमको तत्रत्य चिकित्सकों द्वारा निष्प्राणवता दिये जानेपर भी, जीवित कर दिया था। ऐसे पीयूषपाणि भिषगाचार्यके शास्त्रीय एवं क्रियात्मक ज्ञानसे कौन न प्रभावित होता ? ऐसे प्रभावके वशीभूत होकर ही यवन (यूनान) देशीय चिकित्सकोंने भारतीय भैषज्यके कतिपय अंशोंको अपनी पद्धतिमें सम्मिलित कर लिया था, इधर आर्य चिकित्सक भी उदारचित्त थे। चरकके "तदेव युक्तं भैषज्यं यदारोग्याय-कल्पते" में निहित सिद्धान्तको हृदयङ्गम करके उन्होंने सभी स्रोतोसे अपनी विचारकी वृद्धि कर ली थी, विदेशी चिकित्सकोंसे भी उन्होंने अनेक संग्रहणीय तत्व ले लिये थे। मनुने उचित ही कहा है कि "श्रद्‌धानः शुभां विद्याम-ददीतावराहयि।" इस प्रकार समय पाकर उभयदेशीय चिकित्सा-पद्धतियोंमें स्पृहणीय परिवृंहण होते रहनेपर भी बहुत कुछ सामञ्जस्य बना रहा, जो आंशिक वैषम्य दृग्गोचर होता है, वह तो देश-काल-वैविध्य-सापेक्ष होनेसे उचित ही है। इन दोनों पद्धतियोंके तुलनात्मक अध्ययनसे दोनोंमें समन्वय स्थापित किये जानेकी सम्भावनासे प्रेरित होकर वैद्यराज हकीम श्री दलजीतसिंहजीने सौसे भी अधिक प्रामाणिक ग्रन्थों तथा पत्र-पत्रिकाओंके गम्भीर अध्ययनपर आधारित करके प्रस्तुत ग्रन्थरत्नकी रचना की है।

इसमें सात अध्याय हैं जिनमेंसे पहलेमें द्रव्यगुणविज्ञानकी, दूसरेमें द्रव्य-कर्म-विज्ञानकी, तीसरेमें शरीराङ्ग प्रत्यङ्गीण-द्रव्य-कर्म-विज्ञानकी, चौथेमें गुण-कर्मानुसारिणी द्रव्यसूचीकी, पाँचवेंमें औषधप्रतिनिधि-विज्ञानकी, छठेंमें अहितकर विज्ञान की और सातवें योगौषध-विज्ञानकी सप्रमाणचर्चा की गयी है। जिस अध्यायमें वक्तव्य अधिक हैं, उसको अनेक प्रकरणोंमें विभाजित कर विषयको सुगम बनानेका प्रयत्न स्तुत्य है।

इसके अनन्तर परिभाषा और भेषजकल्पनाका निरूपण किया गया है। इसमें छः अध्याय हैं, जिनमें क्रमशः कल्प-नामरूप-विज्ञान, भेषज-प्रयोगविधि-विज्ञान, भेषज-संग्रहण-संरक्षण विज्ञान, भेपज कल्पना-विज्ञान सहायक भेषजकल्पनाविज्ञान और भेषज-कल्पना विषयक-परिभाषा-विज्ञानपर प्रचुर प्रकाश डाला गया है। इन अध्यायोंमें भी आवश्यकतानुसार प्रकरणोंका समावेश किया गया है।

अन्तिम परिशिष्ट भी बहुत उपादेय है, क्योंकि इसमें सिरसे लेकर पैरतक होनेवाले रोगोके अनुसार द्रव्य-करण-सूची भी दी गयी है।

सभी पद्धतियोंके चिकित्सकोंके लिए श्री दलजीतसिंहजीकी यह रचना संग्रहणीय है। तुलनात्मक अध्ययनमें इसका विशेष उपयोग होगा। विश्वमें मानवजाति एक-सी है, देशभेदसे होनेवाले पार्थक्यको मिटाकर देखा जाय तो अधिकांशमें साम्य मिलेगा। पाणिनीको यवन देश और यवनलिपि आदिका ज्ञान था, ऐसा उनके सूत्रसे विदित होता है, कालीदासने रघुवंशमें "यवनीमुख-पद्मानां सेहे मधुमदं न सः" कहकर यवन सौन्दर्यकी प्रशंसा की है। इसी प्रकार चिकित्सा क्षेत्रमें भी यवन-विशेषताओंकी प्रशंसा होनी ही चाहिए।

इस अभिनव कृतिके लिए वैद्यराज जी समस्त वैद्य-समाजके साधुवादके पात्र हैं। मुझे दृढ़ विश्वास है कि आयुर्वेद-जगत्में इस रचनाका सम्मानपूर्वक हार्दिक स्वागत होगा।

ऋषिकुल आयुर्वेदिक कालेज, हरिद्वार

पत्र सं० ४०२६

दि० ३-४-१९७३

उपरोक्त ग्रन्थके लेखक आयुर्वेद एवं यूनानी चिकित्सा पद्धतिके ख्यातनामा विद्वान हैं । ग्रन्थको पढ़ते समय, प्रत्येक प्रसंगमें लगभग सर्वत्र ही इनके उभय विषयक गम्भीर पाण्डित्यका परिचय प्राप्त होता है । दोनों पद्धतियोंके अनेकों स्थलोंपर की गयी विचारपूर्ण तुलना भी इसकी बोधक है । इस दृष्टिसे इस ग्रन्थके रसप्रकरण प्राकृत-देहोष्मा, द्रव्यकर्म विज्ञानीय आदि स्थलोंका अध्ययन विशेष महत्वका है । आयुर्वेद, यूनानी और ऐलोपैथी इन तीनों प्रचलित प्रमुख पद्धतियोंपर लेखकका अधिकार होनेसे ही यह सब सम्भव हो पाया कि अक्काल (क्षार) जैसे शब्दोंकी व्युत्पत्ति और उसका क्षार Corrosive जैसे शब्दोंसे सामंजस्य स्थापित किया जा सका है ।

यूनानी विषयके समर्थनमें टिप्पणीमें दिये गये आयुर्वेदिक ग्रन्थोंके उद्धरणोंसे यह ग्रन्थ आयुर्वेदज्ञोंके लिए भी उपादेय हो गया है तथा विषयबोध सरल बन गया है । वैसे भी यूनानी चिकित्सा पद्धतिकी आयुर्वेदसे भिन्न अपनी उपयोगी विशेषताएँ हैं जिनका समझना तथा उपयोगमें लाना इस ग्रन्थ निर्माणसे आसान हो गया है । मुक़ई (वामक), मुग़ज़्ज़ा (जीवनीय) आदि परिभाषाओंके ज्ञानके अतिरिक्त द्रव्य संयोग, विरुद्धद्रव्य, द्रव्योंको परस्पर मिलाना या उनकी भिन्न-भिन्न कल्पनाएँ आदिके सम्बन्धमें बड़ा गवेषणापूर्ण सुबोध वर्णन दिया हुआ है ।

वर्क, मुरब्बे, अर्क, रूह, शर्बत, सिकंजबीन, गुलकन्द, आदि यूनानी चिकित्सा पद्धतिकी अपनी विशेषताएँ समझना एवं उनका चिकित्सामें प्रयोग करना भी इस पुस्तक निर्माणसे सुगम हो गया है । शास्त्रीय अभिरुचि रखनेवाले विद्वानोंके लिए भी इसमें महत्वपूर्ण पृष्ठभूमि प्रस्तुत की गई है ।

अन्तमें परिशिष्टके रूपमें, आशिरःपाद रोगानुसारिणी द्रव्यकल्प-योग सूची देकर पुस्तककी उपयोगिता कई गुना बढ़ा दी गई है ।

इतने उपयोगी ग्रन्थके निर्माणके लिए अकादमी और लेखक दोनों ही हार्दिक धन्यवादके पात्र हैं । कागज और अशुद्धि रहित छपाई भी पुस्तकके विशेष आकर्षण हैं ।

ह० रतनप्रकाश गुप्त
प्रधानाचार्य
ऋषिकुल आयुर्वेदिक कालेज
हरिद्वार

आयुर्वेदभवन-वृन्दावन (मथुरा)

दिनांक १३-८-७३

प्रिय बन्धु श्री दलजीत सिंह जी,

सादर हरिस्मरणम्

यूनानी द्रव्यगुणादर्श मिला । पढ़कर चित्त बहुत प्रसन्न हुआ, आपका ज्ञान और परिश्रम आयुर्वेद यूनानीकी श्रीवृद्धिमें वास्तविक लाभकारी है । भगवान आपको स्वस्थ और दीर्घायुः करे ।

आपका
रामनारायण वैद्यः

Phones : Residence 524035
Dispensary 445306
Kings Circle Clinic 472397
Ayurveda-Acharya
Dr. M. K. Shastri, B. A. V.V. (Ph.), M. M. S. (Retd.)
M. A. M. S. (Cal.), D. SC. (A.)

१२ फरवरी १९७३

प्रिय महोदय,

आपका भेजा 'यूनानी द्रव्यगुणादर्श' (श्री आदरणीय हकीम दलजीत सिंहजी द्वारा लिखित) प्राप्त कर प्रसन्नता हुई। ग्रन्थका आकार-प्रकार स्वरूप (गेट-अप) छपाई, तथा विशेषकर प्रिन्टर्स डेविल्स (प्रूफ सम्बन्धी) का अभाव देखकर प्रसन्नता होती है। हिन्दीमें ऐसा प्रकाशन 'स्टैन्डर्ड' समझा जाना चाहिए। एतदर्थ सम्पादक, प्रकाशक, प्रेस और प्रूफ रीडर सभो बधाईके पात्र हैं।

आदरणीय हकीमजी तो भारतीय चिकित्सा जगतकी उन पुरानी विभूतियोंमेंसे हैं; जिन्होंने अपना जीवन उसके उत्थानमें लगा दिया। उनका द्रव्यगुण विषयक स्वाध्याय समुद्रवत् गम्भीर है। उनके सभी ग्रन्थ अत्यन्त रोचक, सारगर्भित तथा अमूल्य ज्ञानदाता सिद्ध हुए हैं। उनकी ग्रन्थ मणिमालामें यह 'यूनानी द्रव्यगुणादर्श' इस मालिकामें मेरुमणिके समान सुशोभित है। ऐतिहासिक पृष्ठभूमि द्वारा यूनानीके वास्तविक स्वरूपका दिग्दर्शन आल्हादकर है। यूनानी चिकित्सा विज्ञानके इस आकर ग्रन्थका सर्वत्र आदर होना चाहिए। ऐसे सुन्दर तथा सारगर्भित ग्रन्थ प्रकाशनार्थ आयुर्वेदिक एवं तिब्बी अकादमी, उत्तर प्रदेश तथा उसके अध्यक्ष-श्री मुकुन्दी लालजी द्विवेदी, संचालक-आयुर्वेद विभाग, उत्तर प्रदेश, दोनों ही भारतीय चिकित्सा प्रेमियोंके धन्यवादके पात्र हैं।

ऐसे सुन्दर ग्रन्थमें आयुर्वेदोक्त उद्धरणोंका संदर्भ-स्थल सर्वत्र न देना कुछ खटकता है। आशा है भविष्यमें इस साधारण-सी त्रुटिका अभाव हो जाएगा।

HAKIM ABDUL HAMEED
Mutawalli
Hamdard (Wakf) Laboratories
Delhi (India)

Feb. 8, 1973

Mr M. L. Dwivedi,

My dear Divediji,

I am extremely grateful for the book 'Unani Dravya Gunadarsh' sent by you with so much affection. Admittedly Tibbe Unani & Ayurveda have worked hand in hand in the past and they can serve the country by working with that zeal of cooperation which is the hall-mark of all arts and sciences. The Ayurvedic and Tibbi Academy, Uttar Pradesh- is to be congratulated for bringing out a voluminous work on Unani in Hindi language. The feature of the book which impressed me mort is that the terminology of Unani Tib has been adopted as the basis. This is surer way of bringing the two systems—Tibbe Unani and Ayurveda, closer to each other. Such works in Hindi shall enable the Hindi knowing physicians to acquaint themselves with the broader principles and methods of treament of Unani Tib.

I have sent the book to the Principal, Jamia Tibbia (Unani Medeal College), Delhi, for a closer study so that the students and teachers may also benefit from it.

Once again I thank you.

Yours sincerly
Sd/-Hakim Abdul Hameed

* * *

KAVIRAJ PURUSHOTTAM DEV,
Deputy Director (Ayurveda),

Indian Medicines and Homoeopathy
Department.

Indian Medicine Pharmacy Buildings,
Charminar, Hyderabad - 2
Seal.
Andhra Pradesh.

D. O. L. No. 247/1MP/A/73 dated : 22. 3. 1973

Dear Shri Dwivedi ji,

I have to thank you for sending me a copy of 'Unani Dravyagunadarsh'.

The book is printed nicely. The subject matter is of very high order. The distinguished author has made a honest and earnest attempt to compare Unani terminology with Ayurvedic terminology. It seems to be a standard book on Unani Materia Medica in Hindi. I am sure it will be very useful to Ayurvedic Practitioners, Research scholars and students of Ayurveda and Unani.

Ayurvedic and Tibbi Academy, U.P., under your dyanamic Presidentship deserves the gratitute of Ayurvedic world for taking up the work of publication of standard books on Ayurvedic and Unani systems of Medicine and encouraging the authors of good books on these subjects.

I am sure in the years to come we will have good number of such publications.

With kindest regards.

Yours sincerely
Sd/-Purushottam Deva

आधारभूत प्रधान ग्रंथ, पत्र-पत्रिकाएँ और उनका संक्षिप्त परिचय एवं संकेत-चिह्न आदि

अरबी-यूनानी

(अरबी, फारसी, उर्दू)

(१) फिरदौसुल् हिकमत فردوس الحکمت (Heaven of Wisdom)—सन् ८५० ई० में इब्न-रब्बन-अल्-तबरी द्वारा लिखित यूनानी चिकित्साविषयक अरबी ग्रंथ है जिसमें भारतीय चिकित्सा अर्थात् आयुर्वेदीय चिकित्साका भी कई प्रकरणोंमें विवरण दिया गया है। (फि० हि०; अल्तबरी)।

(२) मुफ़्रदात अल्क़ानून (مفردات القانون)—लगभग सन् १००० ई० में शैखुर्रईस बू-अलीसीना (जीवनकाल सन् ९८०–१०२७ ई०) लिखित अल्क़ानून नामक प्रसिद्ध विशाल अरबी ग्रंथका द्रव्यविज्ञानीय विभाग, जो द्रव्यगुण विषयक एक वरिष्ठ एवं प्रामाणिक ग्रंथ है। (शैख; कानून Canon)।

(३) अल्हावी (الحاوی)—अबू-बक्र मुहम्मद बिन-जकरिया राजी (जीवनकाल सन् ८५०–९३२ ई०) लिखित प्रसिद्ध महान् अरबी ग्रंथ। (राजी, अल् राजी, अर्राजी)।

(४) मुफ़्रदात इब्नुल् बैतार (مفردات ابن البیطار)—असंसृष्ट द्रव्यों पर अरबीमें लिखित सन् १२९१ हिजरीमें प्रकाशित एवं अत्यंत उपयोगी एवं प्रामाणिक और सर्वांगपूर्ण ग्रंथ है। इसमें लगभग दो सहस्र असंसृष्ट द्रव्योंका विशद वर्णन किया गया है। इसके लेखक—इब्नुल्बैतारका जीवनकाल सन् ११९७–१२४८ ई० है। यह यूनानी (Greek) भाषाके भी अच्छे ज्ञाता थे। अपने ग्रंथमें इन्होंने प्रायः प्रत्येक ओषधिके विषय में यूनानी हकीम दीसकूरीदूस (Dioscorides) के ग्रंथसे संचिका एवं अध्यायके संदर्भसहित उद्धरण दिये हैं। प्रायः असंसृष्ट द्रव्यगुण-विषयक आंग्ल ग्रंथोंमें इसका उल्लेख मिलता है। (अल्जामेअ—इ० बै०)।

(५) तज़्किरतुश्शैख दाऊद अज़्ज़रीरुल् अंताकी (تذکرۃالشیخ داود الزریرالا نطاکی)—अरबीमें लिखित अपने ढंग का एक अत्युत्तम यूनानी द्रव्यगुणविषयक ग्रंथ है। इसके आधारभूत ग्रंथ हकीम इब्नुल्बैतारकी किताबुल्-जामेअ (अल्जामेअ) और हकीम यूसुफ बग़दादीकी किताब मालायस्अ है। (तजकिरा; अंताकी)।

(६) नफ़ीसी फ़ने सानी इल्मुल् अद्विया (نفیسی فن ثانی علم الادویہ)—लगभग ८२७ हिजरी तदनुसार पंद्रहवीं शतीके मध्यमें मुल्ला नफ़ीस द्वारा लिखित यूनानी द्रव्यगुणविषयक अरबी ग्रंथ तथा विद्वद्वर मुहम्मद कबीरुद्दीन महोदय लिखित इसकी उर्दू टीका (सन् १९२९ ई०)। तर्जुमा नफ़ीसी। (नफ़ीसी)।

(७) अद्विया सदीदी (ادویہ سدیدی)—

(८) क़िताबुल् मलिकी (کتاب الملکی)—अली-बिन-अब्बास मजूसी लिखित कामिलुस्सेनाअत (अल्मलिकी) ग्रंथ। साहबे कामिल।

(९) मेअह मसीही (مئیہ مسیحی)– अबु सहल-मसीही लिखित अरबी चिकित्सा ग्रंथ है। यह अत्युच्च-कोटिकी अभूतपूर्व रचना हैं। (मे० म०)।

(१०) तोह्फ़तुल् मोमिनीन (تحفۃ المومنین)—सन् १६६९ ई० में हकीम मोहम्बद मोमिनीन द्वारा फारसीमें लिखित यूनानी द्रव्यगुणविषयक संस्तुत्य एवं प्रख्यात ग्रंथ। (नोह्फ़ा)।

(११) इख़्तियारात बदीई (اختیارات بدیعی)—सन् १३६८ ई० में हाजी जीनुल्अत्तार लिखित द्रव्यगुणविषयक प्रामाणिक फारसी ग्रंथ। (इ० ब०)।

(१२) मख़्ज़नुल् अदविया (مخزن الادویہ)—हकीम सय्यद मुहम्मद हुसेन साहब उलवी द्वारा सन् १७७० ई० में लिखित और सन् १२४८ हिजरी तदनुसार सन् १८४८ ई० में प्रकाशित यूनानी द्रव्यगुणविषयक विशाल फारसी ग्रंथ। इसमें यूनानी, भारतीय, अंग्रेजी तथा अन्यान्य देशीय असंसृष्ट द्रव्योंके परिचय एवं गुण-कर्म आदिका अकारादि क्रमसे ८५३ पृष्ठोंमें विस्तृत वर्णन किया गया है। ग्रंथके अंतमें आये सभी यूनानी, सुरयानी, अरबी, फारसी, इबरानी, रूमी, फिरंगी, तुर्की व हिंदी, बंगला तथा अन्य भाषाके पर्याय नामोंका अकारादि वर्णक्रमानुसार फारसी लिपिमें अर्थसहित ८५४ से ९७३ तकके पृष्ठोंका एक कोश—मख्जनुल्अद्विया कोश भी दिया है।

यह अपने समयका एक अत्युत्तम ग्रंथ है। इसको लिखे प्रायः डेढ़ सौ वर्षसे ऊपर हो रहे हैं, तथा इस ग्रंथमें बहुशः यूनानी आदि नाम बिगड़कर कुछके कुछ हो गये हैं। अतएव इस ग्रंथके संशोधनकी अपेक्षा है।

इसका उर्दू भाषांतर हकीम और मौलवी नूर करीमुल् अजीमने किया है, जो मुंशी नवलकिशोर लखनऊ छापाखानेमें छपकर प्रसिद्ध हुआ है। (म० अ०; मख्ज़न) या मुफ़्रदात हिंदी।

(१३) तालीफ़शरीफ़ी (تالیف شریفی)—सन् १८०२ ई० में लाहौर स्थित मुद्रणालय मोहम्मदीमें मुद्रित हुआ। हकीम मुहम्मद शरीफ खाँ द्वारा भारतीय ओधधियोंके संबंधमें फारसी अकारादि वर्णक्रमानुसार लिखित भारतीय द्रव्यगुणविषयक एक उत्तम ग्रंथ है। (ता० श०)।

श्रीमान् जॉर्ज प्लेफेयर (George Playfair Esqr.) महोदयने इसका अंग्रेजी भाषांतर किया जो बैप्टिस्ट मिशन प्रेस कलकत्तामें सन् १८८३ ई० में प्रथमतः प्रकाशित हुआ।

(१४) मुफ़्रदातनासिरीमैतक्मिला मुफ़्रदात नासिरी (مفردات ناصری معہ تکملہ مفردات ناصری)—हकीम मुहम्मद नासिर अली द्वारा फारसी में लिखित यूनानी द्रव्यगुणविषयक ग्रंथ है। यह सन् १२९९ हिजरी तदनुसार सन् १८८२ ई० में सदर महबस प्रेस लखनऊमें मुद्रित एवं प्रकाशित होकर प्रसिद्ध हुआ। (मु० ना०)।

(१५) मुफ़्रदात अज़ीजी (مفردات عزیزی)—

(१६) नासिरुल् मोआलजीन (ناصر المعالجین)—मौलवी हकीम मुहम्मद नासिर अली गियासपुरी द्वारा फ़ारसीमें लिखा यूनानी द्रव्यगुणविषयक ग्रंथ, जो छठवीं बार हिजरी सन् १३०३ तदनुसार ई० सन् १८८६ में उलवी मुहम्मद अलीबख्श खाँके छापाखानामें मुद्रित होकर प्रसिद्ध हुआ। (ना० मो०)।

(१७) मुहीत आजम (محیط اعظم)—लेखक हकीम मुहम्मद आजम खाँ अलमुख़ातिब व नाजिम जहाँ; मुद्रक—मतबा निजामी कानपुरमें हिजरी सद् १३०३ तदनुसार सन् १९०३ ई० में मुद्रित होकर प्रकाशित हुआ। इनके दो भागों और वृहद् संचिकाओं (जिल्दों)में फारसीमें अकारादि वर्णक्रमानुसार प्रायः सभी प्रचलित यूनानी, हिंदी, अंग्रेजी व अन्य देशीय असंसृष्ट औषध द्रव्योंका परिचय एवं गुण-कर्म प्रकृति आदि सहित विस्तृत विवरण दिया गया। यह अपने समयका एक अत्युत्तम ग्रंथ है। मख्जनुल् अदवियाके बाद उसकी अपेक्षा अधिक द्रव्योंका समावेश करते हुये विस्तारपूर्वक विवरण सहित यह यूनानी द्रव्यगुणविषयक फारसी ग्रंथ है। वक्तव्य—अत्यंत दुःखके साथ लिखना पड़ता है कि इसमें जो कतिपय अंग्रेजी ओषधियोंका वर्णन किया गया है, उसमेंसे कुछके नाम, उनके गुणकर्म एवं मात्रा आदि ठीक नहीं लिखे गये हैं। मख्जनुल् अदवियाकी तरह प्रायः ओषधियोंके यूनानी नाम इसमें गलत लिखे गये हैं। अस्तु, यह भी संशोधनापेक्षी है।

(१८) उम्दतुल् मोहताज (عمدة المحتاج)—सन् १८८३ ई० में विस्तृत चार खंडोंमें मिस्रमें प्रकाशित, सैय्यद अहमद आफन्दीउर्रशीदी द्वारा अरबीमें लिखित आधुनिक द्रव्यगुणशास्त्र (मेटीरिया मेडिका) विषयक विस्तृत ग्रंथ है। मू० ८०.०० रु० मात्र। (उ० मो०)।

(१९) पिज़िश्की नामा (پزشکی نامہ)—ईरानके राजाधिराज श्रीमान् हुमायूँके पूर्व चिकित्सक श्री मीरजा अली अकबर खाँ हकीम बाशी द्वारा फारसीमें लिखित, तेहरानमें प्रकाशित आधुनिक द्रव्यगुण (मेटीरिया मेडिका) एवं चिकित्सा विपयक एक परमोत्कृष्ट विस्तृत ग्रंथ है। (पि० ना०)।

(२०) गंजबादावर्द (گنج بادآورد)—खानेज़मा फ़ीरोज़ जंग द्वारा फारसीमें लिखित यूनानी द्रव्यगुणविषयक उत्तम ग्रंथ है। (गं० बा०)।

(२१) बुस्तानुल् मुफ़्रदात (بستان المفردات)—लेखक हकीम मुहम्मद अब्दुल्हकीम साहब; प्रकाशित सन् १३१८ हिजरी तदनुसार सन् १९०१ ई० में द्वितीय बार मुज्तबाई लखनवी प्रेसमें मुद्रित। यह यूनानी द्रव्यगुणविषयक उर्दू ग्रंथ है। (बु० मु०)।

(२२) मख़्जन मुफ़्रदात व मुरक्कबात अर्थात् खवासुल् अदविया (مخزن مفردات و مرکبات یعنی خواص الادویہ)—२ भाग, मुंशी गुलाम नबी साहब द्वारा उर्दूमें लिखित सन् १९०५ ई० में प्रकाशित यूनानी द्रव्यगुणविषयक उत्कृष्ट ग्रंथ है। (म० मु० व मुरक्क०)।

(२३) मख़्जन मुफ़्रदात (مخزن مفردات) (जामेउल् अदविया)—मौलवी हकीम मुहम्मद फजलुल्ला साहब द्वारा उर्दूमें लिखित, रॉयल प्रिंटिंग प्रेस, लखनऊमें मुद्रित यूनानी द्रव्यगुणविषयक ग्रंथ है। (म० मु०)।

(२४) जड़ी-बूटी मै ख़वास (جڑی بوٹی مع خواص)—हकीम मौलवी मुहम्मद अब्दुल् अजीज साहब कामिल लाहौरी द्वारा उर्दूमें संकलित, सन् १९१३ ई० में प्रकाशित यूनानी द्रव्यगुणविषयक ग्रंथ है, जिसे कामिल बुक एजेंसी लाहौरने नवलकिशोर गैस प्रिंटिंग वर्क्समें छपवाकर प्रसिद्ध किया। (ज० बू० मै० ख०)।

(२५) मख़्जनुल अद्विया डॉक्टरी (مخزن الادویہ ڈاکٹری)—हकीम व डॉक्टर गुलाम जीलानी साहब द्वारा उर्दूमें लिखित-संकलित आधुनिक पाश्चात्य द्रव्यगुण (मेटीरिया मेडिका) विषयक उत्कृष्ट ग्रंथ है, जो सन् १९१५ ई० में प्रथमतः और पाँचवीं बार सन् १९४६ ई० में तिब्बी कुतुबखाना आली जनाब शम्सुल् अतिब्बा, लाहौर द्वारा प्रकाशित। अब तकके प्रकाशित एतद्विषयक सभी ग्रन्थोंमेंसे एक श्रेष्ठ रचना है। (म० अ० डॉ०)।

(२६) मुफ़्रदात बिक्रमी (مفردات بکرمی)—हकीम मदनलाल लिखित आयुर्वेदीय निघण्टु ग्रंथका फारसी उल्था; उल्थाकार हकीम मुहम्मद अलाउद्दीन लाहौरी; गुलजार मुहम्मदी लाहौरी प्रेसमें सन् १३०७ हिजरी तदनुसार ई० सन् १८८८ (वि० सन् १९४९)में मुद्रित भारतीय द्रव्यगुणविषयक फारसी ग्रंथ है। (मु० वि०)।

(२७) खजाइनुल अदविया (خزائن الادویہ)—अल्लामा ऊमाँ मौलवी हकीम मुहम्मद नज़्मुल् ग़नी खाँ साहब रामपुरी द्वारा वृहत् आठ भागोंमें उर्दूमें लिखित, सन् १९२६ ई० में कारखाना पैसा अखबार लाहौरके खादिमुत्ता'लीम बर्की प्रेसमें मुद्रित, यूनानी द्रव्यगुणविषयक विशाल ग्रंथ है। इसके ६ जिल्दों (संचिकाओं)में तो समस्त यूनानी, हिंदी (भारतीय), अँगरेजी तथा अन्यान्य देशीय असंसृष्ट ओषधियोंका निश्चयात्मक वर्णन उनके परिचय, गुणकर्म तथा प्रकृति आदि सहित विस्तारसे किया गया है। इसके अंतिम दो संचिकाओंमें इस ग्रंथमें आये सभी पर्यायनामोंका अर्थ सहित अकरादिवर्ण क्रमानुसार एक कोष दिया है। यह एक अत्युत्तम ग्रंथ है, जिसमें इससे पूर्वके प्रायः सभी उपलब्ध ग्रंथोंका अंतिम निष्कर्षपर पहुँचनेका प्रयास करते हुए समीक्षात्मक विवरण किया गया है। (ख० अ०)।

(२८) उसूले इल्मुल् अदविया (اصول علم الادویہ)—हकीम मु० अब्दुल् हलीम साहब लिखित उर्दू ग्रन्थ है।

(२९) क़िताबुल् अद्विया (کتاب الادویہ)—विद्वद्वर हकीम मु० कबीरुद्दीन साहब द्वारा यूनानी विद्यालयोंके पाठ्यक्रमानुसार उर्दूमें लिखित, दफ्तर अल्मसीह दिल्लीसे प्रथमः सन् १९२९ ई० में, और तृतीय बार सन् १९४४ ई० में प्रकाशित यूनानी द्रव्यगुणविषयक ग्रन्थ है। यद्यपि इसमें कतिपय द्रव्योंके निर्णयमें भूलें की गयीं हैं और गलत नाम भी दिये गये हैं, तथापि यह एक अत्युत्तम एवं संग्रहणीय ग्रन्थ है। (कि० अ०)।

(३०) मुफ़्रदात अज़ीज़ी (مفردات عزیزی)—

(३१) मुअल्लिमुल् अद्विया (معلم الادویہ)—हकीम मुहम्मद मसीहुज्ज़माँ नदवी साहब, प्रधानाचार्य तक्मीलुत्तिब कॉलेज झवाई टोला लखनऊ द्वारा उर्दूमें लिखित, यूनाइटेड इंडिया प्रेस लखनऊ द्वारा सन् १९५० ई० में प्रकाशित यूनानी द्रव्यगुणविषयक संक्षिप्त, परंतु एक उत्तम ग्रन्थ है। (मु० अ०)।

(३२) यूनानी द्रव्यगुण विज्ञान—आयुर्वेदीय विश्वकोशकार, वैजराज हकीम ठा० दलजीतसिंह आयुर्वेद बृहस्पति (D. Sc., A.) द्वारा यूनानी विद्यालयोंके पाठ्यक्रमानुसार स्वतंत्ररूपसे हिंदीमें लिखित और सन् १९४१ ई० में निर्णयसागर प्रेस बम्बई द्वारा प्रकाशित यूनानी द्रव्यगुणविषयक अब तकके प्रकाशित किसी इतर भाषाके ग्रंथसे उत्कृष्टर, अभूतपूर्व एवं संग्रहणीय ग्रन्थरत्न है, जिसका संपादन एवं भूमिकालेखन कार्य स्वर्गवासी श्री यादव जी विक्रमजी आचार्य महोदयने स्वयं किया है। झाँसी आयुर्वेद विश्वविद्यालयने अपने तत्त्वावधानमें इस ग्रन्थको थिसिस मानकर लेखकको आयुर्वेद बृहस्पतिकी सम्मानित उपाधि (D. Sc., A.) और स्वर्णपदक तत्कालीन माननीया स्वास्थ्यमंत्रिणी श्रीमती अमृतकौरके करकमलों द्वारा प्रदान किया।

(३३) मादनुल् अक्सीर (معدن الاکسیر)—अर्थात् कुश्ताजात फ़ीरोज़ी—ले० हकीम मौलवी मु० फ़ीरोज़ुद्दीन साहब; स्टीम प्रेस लाहौर में सन् १९०९ ई० में प्रकाशित, उर्दूमे लिखा यूनानी रसग्रंथ है।

(३४) रिसाला कुश्ताज़ात (رسالہ کشتہ جات)—ले० शेख रहीम बख़्श—हाफ़िज़ आबारी प्रेस लाहौरमें सन् १९०३ ई० में प्रकाशित।

(३५) मिफ़्ताहुल ख़ज़ाइन (مفتاح الخزائن)—ले० जनाब हकीम करीम बख़्स व हकीम मु० शरीफ खाँ साहब; सन् १९३० ई० में रफ़ीक़ आम प्रेस लाहौरमें प्रकाशित—यह उर्दूमें लिखित एक उत्कृष्ट एवं अनुभवपूत यूनानी रसग्रन्थ है।

(३६) जामेउल् हिकमत (جامع الحکمت)—दो भागोंमें उर्दूमें लिखित चिकित्साग्रन्थ।

(३७) इलाजुल अमराज (علاج الامراض)—हकीम मुहम्मद शरीफ़ तथा हज़रत मसीहुल् मुल्क हकीम अज्मल खाँ साहबके अनुभवपूत यूनानी योगोंका फारसीमें उत्तम संग्रह, जिसका उर्दू अनुवाद हकीम कबीरुद्दीन साहबके आदेशसे मैनेजर जनाब हकीम मुहम्मद वाहिद साहबने किया। दफ़्तर अल्मसीह करोलबाग देहलीके प्रबंधसे सन् १९२७ ई० में २ भागोंमें प्रकाशित हुआ और इसे जय्यदबर्क़ी प्रेस बिल्लीमारान देहलीमें छपाया गया।

यूनानी योगसंग्रह ग्रंथ

(कराबादीनात)

(१) कराबादीन शैख़। (२) कराबादीन कबीर (मज्मउज्जव,मेअ)। (३) रुमूज़ आज़म—आज़मखाँ लिखित। (४) अक्सीर आज़म—आज़्म खाँ लिखित। (५) कराब्रादीन शिफाई। (६) कराबादीन ज़काई। (७) कराबादीन कादरी। (८) मतब हकीम उलवी खाँ। (९) मुरक्कबात अज़ीजी—खानदान अज़ीज़ो लखनऊके सिद्धयोग। (१०) बयाज मसीहा—खानदान शरीफ़ी, देहलीके सिद्धयोग। (११) बयाज कबीर (प्रथम भाग)—देहलीका मतब फ़ारसी व उर्दू—हकीम कबीरुद्दीन साहब लिखित सप्तम संस्करण सन् १९४४ ई०। प्रकाशक—दफ्तर अल्मसीह दिल्ली। (१२) बयाज कबीर (द्वितीय भाग)—देहलीके मुरक्कबात। हकीम मुहम्मद कबीरुद्दीन साहब लिखित व सम्पादित—इसलामी प्रेस, हैदराबाद, दकन—प्रकाशक एवं प्रबंधक—दफ्तर अल्मसीह, बिल्लीमारान, देहली–६। आठवाँ संस्करण—सन् १९५१ ई०। (१३) अल्कराबादीन; (१४) तिब्ब कीमिया; (१५) तिब्बी फार्माकोपिया (१-२ भाग); (१६) यूनानी सिद्धयोग संग्रह—वैद्यराज हकीम दलजीतसिंह लिखित हिंदी ग्रन्थ। (१७) आयुर्वैदिक फार्माकोपिया—श्री के० जगन्नाथप्रसाद वैद्य वाचस्पति लिखित (उर्दू) तथा उनके लिखित अन्य ग्रन्थ—(१८) रिसाला छोटी चंदन। (१९) रिसाला सिलाजीत, (२०) भारतीय जड़ी-बूटियाँ इत्यादि।

यूनानी वैद्यकीय उर्दू मासिक पत्र-पत्रिकाएँ

अल्हकीम, मशीरुल् अतिब्बा, हामिउस्सेहत, अल्मोआलिम, अल्तबीब, अश्शिफाऽ, हमदर्द सेहत, प्रभृति प्रसिद्ध यूनानी उर्दू माहाना (मासिक पत्र)।

आयुर्वेदीय

संस्कृत तथा भाषाग्रंथ

१. चरक संहिता	(च०)
२. सुश्रुत संहिता	(सु०)
३. अष्टाङ्गसंग्रह	(अ० सं०)
४. अष्टांग हृदय	(अ० हृ०)
५. काश्यप-संहिता	(का० सं०)
६. चक्रदत्त	(च० द०)
७. भावप्रकाश	(भा० प्र०–सन् १५६० ई०—१६वीं शताब्दी)
८. शार्ङ्गधर संहिता	(शा० सं० या शार्ङ्ग०)
९. वङ्गसेन	(वं० से०)
१०. कैयदेव निघण्टु	(कै० नि०) या पथ्यापथ्यविभोदक ग्रन्थ—कैयवेवकृत १२वीं या १३वीं शती।
११. धन्वन्तरि निघण्टु	(ध० नि०) ११वीं शतीका उत्तरार्ध

१२. राजनिघण्टु	(रा० नि०) ११वीं-१३वीं शताब्दी मध्य
१३. राजवल्लभ निघण्टु	(राज०)
१४. वैद्यमनोरमा	(वै० म०)
१५. मदनपाल निघण्टु	(म० पा० नि०) १२वीं शती
१६. वृहन्निघण्टुरत्नाकर	(वृ० नि० र०) सन् १८९६ ई०
१७. वैद्यजीवन	(लोलिम्बराज—वै० जी०) सन् १६०८ ई०
१८. निघण्टुसंग्रह	(नि० सं०)
१९. निघण्टुरत्नाकर	(नि० र०) सन् १८६७ ई०
२०. द्रव्यगुण संग्रह	(द्र० गु० सं०) चक्रपाणिदत्त कृत सन् १०६० ई०
२१. द्रव्यगुण संग्रह	(द्र० गु० सं०) राजबल्लभ कृत सन् १७६० ई०
२२. मदन विनोद निघण्टु	(म० वि० नि०) मदनपाल। सन् १३७५ ई०, मतांतरसे १०९८ ११०९ ई० तक धन्वन्तरि निघण्टुका समकालीन
२३. शिवदत्त निघण्टु	(शि० द० नि०) गुजराती वैद्य
२४. शोढल निघण्टु	(शो० नि०) सोढ़लकृत—१२वीं शतीके मध्यमें
२५. सन्दिग्धनिर्णय वनौषधिशास्त्र	(सं० नि० व० शा०)
२६. द्रव्यगुण विज्ञानम्	श्री यादवजी कृत (द्र० गु०)
२७. यूनानी द्रव्यगुण-विज्ञान	(यू० द्र० गु०)
२८. पाश्चात्य द्रव्यगुण विज्ञान	(पा० द्र० गु०) २ भाग—श्री डॉ० रामसुशील सिंह शास्त्री एफ० आर० ए० एस० (लन्दन) लिखित
२९. विहारकी वनस्पतियाँ	(वि० व०) ठा० बलवन्त सिंह जी
३०. वनौषधि दर्शिका	(व० द०) ,,
३१. वनौषधि निर्दशिका	आयुर्वेदीय फार्माकोपिया डॉ० रा० सु० सिंह (व० नि०)— हिंदी समिति सूचना-विभाग, उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा प्रकाशित।
३२. जन्तु जगत	(जं० ज०) हिंदुस्तानी एकेडेमी—प्रयाग द्वारा प्रकाशित
३३. शालिग्राम निघण्टु	(शा० नि०) सन् १८९६ ई०
३४. योगरत्नाकर	(यो० र०) सन् १६७६ ई०
३५. भैषज्य रत्नावली	(भै० र०, भैष०)
३६. आयुर्वेद प्रकाश	(आ० प्र०) माधव उपाध्याय, सन् १७३० ई०
३७. गदनिग्रह	(ग० नि०)
३८. क्षेमकुतूहल	(क्षे० कु०) क्षेमशर्मा कश्मीर निवासी कृत सन् १५४८ ई० सं० १६०५ वि०
३९. रासकामधेनु	(र० का० धे०)
४०. रसेन्द्र चूणामणि	
४१. रसेन्द्रसार संग्रह	
४२. रसार्णव	
४३. रसतङ्गिणी	(र० त०)
४४. रसामृत	

४५. भस्मविज्ञान	२ भाग	(भ० वि०)
४६. रसरत्नाकर		(रसायन खण्ड)
४७. आयुर्वेदीय क्रियाशरीर		(आ० क्रि० शा०) वैद्य रणजीत राय कृत
४८. आयुर्वेदीय पदार्थ विज्ञान		(आ० प० वि०)
४९ सचित्र वनस्पति गुणादर्श		वैद्य हिरामण मोतीराम जंगलेकृत

तथा

आयुर्वेद, आयुर्वेद विज्ञान, आयुर्वेद गौरव, यूनानी चिकित्सांक धन्वन्तरि, वैद्य-महासम्मेलन पत्रिका, प्राणाचार्य, सचित्र आयुर्वेद तथा उसका आयुर्वेद यूनानी समन्वयांक, आयुर्वेद विकास प्रभृति गुजराती, मराठी, हिंदी, बंगला आदि आयुर्वेदिक मासिक पत्र-पत्रिकाएँ।

अन्यान्य भाषाओंके निघण्टु (उद्भिज्ज-प्राणिज-खनिज विज्ञान) विषयक ग्रन्थ

बंगला

१. वनौषधिदर्पण	कविराज श्री विरजाचरण गुप्त काव्यतीर्थ कृत, २ भाग, कलकत्ता १९१९। इसमें औषध द्रव्यके परिचय, गुण-प्रयोग वर्णनके लिए संस्कृत (आयुर्वेद)के उद्धरण दिये गये हैं। रासायनिक संगठन एवं गुणकर्म खोरी मेटीरिया मेडिका तथा डीमक के उद्धरण बंगला अनुवाद सहित दिये गये हैं।
२. भारतीय वनौषधि	डॉ० श्री कालीपद विश्वासकृत २ भाग,
३. भारतीय भैषज्य तत्त्व	डॉ० कार्तिकचन्द वसुकृत।
४. मेटीरिया मेडिका	स्व० डॉ० राधागोविन्दकर L. R. C. P. कृत।

मराठी

१. बनौषधि गुणादर्श	श्री शंकरदा शास्त्री पदेकृत, ८ भाग
२. औषधिसंग्रह	श्री डॉ० वामन गणेश देशाईकृत
३. भारतीय रसशास्त्र	,, ,, ,,
४. उद्भिज्जशास्त्र	वै० गंगाधर शास्त्री जोशीकृत
५. वनौषधि प्रकाश	(१८८२)

गुजराती

१. निघण्टु आदर्श	श्री वापालाल गड़बड़शाह कृत
२. वनस्पतिशास्त्र	(स्व० वा० जयकृष्ण इंद्रजी ठक्करकृत) पोरबंदर निवासी प्रथम और संभवतः सूक्ष्म वानस्पतिक वर्णन तथा उनके औषधीय प्रयोगकी प्रांतीय भाषाओंमेंसे केवल पुस्तक है।
३. निघंटसंग्रह	वैद्य रघुनाथजी इंद्रजी उर्फ कत्तभट्ट कृत संस्कृत पुस्तक है।

इस ग्रंथमें आये संकेताक्षरोंका विवरण

अं०	अँगरेजी (आंग्ल)	तो०	तोला
अ०	अरबी	द०	दक्षिणी
अफ०	अफगानी	ध० नि०	धन्वन्तरी निघण्टु
आ०	आसामी (असमिया)	नि० र०	निघण्टुरत्नाकर
इ० बै०	इब्न बैतार (मुफ्‌रदात)	ने०	नेपाली
इ०	इब्रानी (Hebrew)	पं०	पंजाबी
इरा०	इरानी	पहा०	पहाड़ी
उड़ि०	उड़िया	पला०	पलामू
उ० प०	उत्तर प्रदेश	फा०	फारसी
उ०	उर्दू	फि० हि०	फिरदौसुल् हिमकत
कच्छ०	कच्छी	फ्रां०	फ्रांसीसी
कना०	कनाडी (कन्नड़)	बं०	बंगला
कर्ना०	कर्नाटक	बम्ब०	बम्बई
क० अ०	कल्पस्थान अध्याय	बि०	बिहार
क०	कश्मिरी	भा० प्र०	भावप्रकाश
काठि०	काठियावाड़	भा० बा०	भारतीय बानजार
कानून	अल्क़ानून (शैखुर्रईस बू-अलीसीना)	मद०	मदरासी
कु०	कुमाऊँ	भोटि०	भोटिया
कुरा०	कुरान	मणि०	मणिपुर
कै० नि०	कैयदेवनिघंटु	म०	मराठी
कों०	कोंकण (णी)	मल०	मलयाली
को०	कोल	मार०	मारवाड़ी
खर०	खरवार	मा०	माशा
खासि०	खासिया		
ग०	गढ़वाली	मि० ग्रा०	मिलीग्राम
गु०	गुजराती	मि० मि०	मिलीमीटर
गो०	गोवा	मी०	मिरजापुर
ग्रा०	ग्राम	मुंगे०	मुंगेर
च०	चरक		
चि०	चिकित्सास्थान	यू०	यूनानी
जर्म०	जर्मन		
ता०	तामिल (तमिल)	र०	रत्ती
तुर्क०	तुर्की	रा० नि०	राजनिघंटु
तु०	तुलु	रा०	राजपुताना
ते०	तेलुगु	ले०	लेटिन

लेप०	लेपचा
संथा०	संथाली
सं०	संस्कृत
सिंध	सिंधी
सिं०	सिंहली (सिलोनी)
सुर०	सुरयानी (Syrian) सीरिया (श्याम) की भाषा
सु०	सुश्रुत
सू०	सूत्र स्थान
सें० मी०	सेंटीमीटर
हिं०	हिंदी
D.	Dioscorides (दीसकूरीदूस)
Fam.	Family
Gr.	Greek
Syn.	Synonym

इस ग्रंथमें आये यूनानी, रूमी (लेटिन) और आयुर्वेदीय (संस्कृत) आदि ग्रंथों एवं चिकित्सकों (तज्ज्ञों)के नामोंके मूलस्वरूप और उनके अरबी रूपान्तर

मूलरूप	अरबी रूपांतरण
आयुर्वेदीय—	
सुश्रुत (सं०)	सुस्रुद या सस्रद
चरक	शरक
अष्टाङ्गसंग्रह या अष्टाङ्ग हृदय	अस्तागर, अस्तांकर
निदान (माधवकृत)	निदान, बदान ?
शालिहोत्र	सलोतरी
यूनानी—	
अस्कलीपिओस (Asclepios) यू० अस्क्लेपिउस (Aesclapius) ले०	अस्कलीबियूस
अन्ड्रोमाखुस (Andromachus) यू०	अंदरूमाखुस
प्लेटो (Plato) यू० (४२७-३४७ ई० पू०)	अफलातून, फलातून
अरिस्टॉटल (Aristtotle) यू०	अरस्तू, अरस्तातालीस
सॉक्रेटीज (Socrates) यू० (४६९ ई० पू०)	सुकरात
हिप्पोक्रेटीज (Hippocrates) यू०	अबुक्रात, बुकरात, हिब्बुकरात
पीथागोरस	फीसागोरस
थिओफ्रास्टुस Theophrastus) ई० पू० ४०० या ३०० या ३५०	सावफरिस्तुस
गालीनूस Galinus	जालीनूस
गैलेनस Galenus ईसवी पूर्व	
गैलेन Galen १३१-२००	
डीओसकोरीडीस (Dioscсrides)	द (दि) यासकूरीदि (–दु, –दू) स दैसकूरीदूस
टोलेमी (Ptolemy) (ई० सन् १२७ १५१)	बतलीमूस
रूमी—	
सल्सस, केल्सस (Celsus)	कल्सूस
प्लाइनी, प्लीनी (Pliny) सन् २३-७९ ई०	प्लाइनी, प्लीनी

अँगरेजी संदर्भ ग्रंथ

1. *Materia Indica* by W. Ainslie. 2 Vols. 1826 (is the first attempt to collect the information regarding the medicinal uses of Indian plants being mostly from Tamil and Telgu people and books.)
2. *Materia Medica of Hindustan* by Ainslie (1813).
3. *Pharmacographia Indica* by Col. Dymock, Hooper and Warden 3 parts.
4. *Pharmacographia* by Fliickigery and Hanbury 2nd. edition (1879). Is noe of the standard works giving the uses and historical information of the drugs.
5. *Materia Medica* of *Western India* by W. Dymock 1883—contains a collection of information about the history, use, chemistry and physiology of different drugs especially to be found in (the erstwhile) Bombay Presidency.
6. *Supplement to the Pharmacopoeia of India* by Moheedin Sheriff.
7. *Materia Medica* of Madras by Dr. Moheedin Sheriff 1869 (suggests drugs which were found efficacious by the author with their uses etc. The author is well-known for his intimate knowledge of Indian drugs and especially those of Madras.)
8. *Waring's Bazar Medicines* of *India* by Sir. Pardy Lukis, 6th Edition 1907 useful book giving uses of the then easily available bazar drugs.
9. *Dictionary* of *Economic Products* of *India* by George Watts. (1889-1896). This work includes all the plants of economic use known up to 1894 with authentic information from various sources.
10. *Indian Medicinal Plants.* 4 Vols. Kirtikar, K. R., Basu, B. D., 2nd Edition. L. M. Basu, Allahabad, 1933.
11. *Glossary* of *Indian Medicinal* **Plants** by R. N. Chopra, S. N. Nayar, I. C. Chopra, (1956).
12. *Supplement to Glossary* of *India Medicinal plants* by R. N. Chopra etc.
13. *Indian Matera Medica* by K. M. Nadkarni, 3rd. Edition, Vols. I and II.
14. *Vegetable gums and resins* by F. N. Howes, D. Sc.
15. *Potter's New-Cyclopaedia* of *Botanical Drugs and preparations* by R. C. Wren, F. L. S., Published 1907, 1915, 7th edition 1957.
16. *A text-book* of *Pharmacognosy* by Henry G. Creenish D. Sc.
17. *Indian Pharmacopoeia.* (I. P.)
18. *Indian Pharmacopoeial Codex.* (I. P. C.)
19. *Indigenous Drugs* of *India* by R. N. Chopra (1933).

20. *Wild flowers* of *Kashmir*.

21. *Blatter, Flora Arabica* (1919).

22. *Forsk, Flora Aeg. Arabica* (1775).

23. *Delile Flora Aegyplic* (1812).

24. *Drugs* of *Hindoostan*, Dr. S. C. Ghose.

25. *Studies in Arabic and Persian Medical Literature* by Prof. Muhammad Zubary Siddiqi H. A., M. A., B. L., Ph. D. (Cambridge), F. A. S. B. Calcutta University (1959).

26. *Dioscorides*, (German Translation by I. Berendes, Stuttgart, 1902) Consulted for Greek equiivalents.

27. *Terminologic Medico-Pharmaceutique* by Shiimmer (Tehran, 1874) Consulted for Lation and English equivalents.

28, *Btaller E. Beautiful Flowers* of *Kashmir*, Vol. 1-2, Jhon Bale, Sons and Danielssons Ltd., London, 1929.

59. *Dey, K., L.. Indigenous drugs of India* Thacker Spink and Co., Calcutta, 1896.

30. *Duthie, G. F., Flora* of *Upper Gangetic Plain*, Vols. 1-2, Botanical Survey of India Calcutta, reprint., 1960.

31. *Dutt, U. C., The Materia Medica* of the *Hindus*, M. C. Das, 146, Lower Chitpore Road, Calcutta1, 1922.

32. *Ghosh, R., Materia Medica* and *Therapeutics*, 18th. edn., Hilton and Co., Calcutta, 1949.

33. *Haines*, H. H., *Botany* of *Bihar* and *Orissa*, Botanical Survey of India, Calcutta, reprint., 1961.

34. *Hooker*, J. D., *Flora* of *British India* Vols. 1—7, L. Reeve and Co., London, 1877—1897.

35. *Kanjilal*, U. N., Kanjilal, P. C., Dass, A., *Flora* of *Assam*, Vols. 1—5, Government of Assam, 1935.

36. Mooss, N. S., *Ayurvedic Flora M. dica*, No. 1, Vaidya sarathy, Kottayam. 1953.

37. Prain, D., *Bengal Plants*, Botanical Survey of India, Calcutta, reprint.ireprint. 1963.

38. Uphof, J. C. Th., *Dictionary* of *Economic Plants*, Hafner Publishing Co., New York, 1959,

यूनानी द्रव्यगुणादर्शके खण्ड २ की विषयानुक्रमणिका

प्रस्तावनास्वरूप उद्भिज्ज औषध-आहार द्रव्योपयोग विषयक विमर्श

उद्भिज्ज औषध-आहारद्रव्य सूची (वर्णानुक्रमणिका)

विषय	पृष्ठ
१—अंगूर	१-३
—मुनक्का	२
—किसमिस	३
२—अंगूर, रीछ (रीछ दाख)	३-४
३—अंजबार	५-६
४—अंजरूत	६
५—अंजीर	७
६—अंजीर, जंगली	८
७—अंजुरा	८-९
८—अकरकरा	९-११
९—अकाशबेल	११-१२
१०—अखरोट	१२-१३
११—अगर (ऊद)	१३-१४
१२, १३—अजमोद व करफ़्स	१४-१६
१४—अजावयन (देशी व जंगली)	१६-१८
१५—अजवायन खुरासनी	१८-२०
१६—अडूसा	२१-२२
१७—अतीस	२३-२४
१८—अनन्नास	२४-२५
१९—अनार (खट्टा, मीठा, खटमिठा) एवं गुलनार	२५-२९
२०—अनीसून	२९-३०
२१—अफतीमून, कुशूस	३०-३२
२२—अफसंतीन	३२-३३
२३—अमड़ा	३३-३४
२४—अमरूद	३४-३५
२५—अमलतास	३५-३६
२६—अमलबेद	३६-३७
२७—अरंडखरबूजा	३७-३९
२८—अरवी	३९-४०
२९—अरहर	४०
३०—अर्गट	४१-४२
३१—अलसी (तीसी)	४२-४४
३२—असगंध	४४-४६
३३—असगंध देशी (पनीर)	४६
३४—असारून	४६-४७
३५—आंबाहलदी	४७-४८
३६—आक (मदार)	४८-५१
३७—आचीन (गुलचीन)	५१-५२
३८—आड़ू	५२-५३
३९—आतरीलाल	५३-५४
४०—आबनूस	५४
४१—आम	५५-५६
४२—आमपीच	५६
४३—आमला	५६-५८
४४—आयापन	५८-५९
४५—आरिया	५९
४६—आलू	६०
४७—आलूचा	६०-६१
४८—आलूबालू	६१-६२
४९—आलूबोखारा	६२-६३
५०—आस	६३-६४
५१—इंद्रायन	६४-६५
५२—इक्लीलुल् जबल	६६-६७
५३—इक्लीलुल् मलिक	६७-६९
५४—इजखिर	६९-७०
५५—इमली	७०-७२
५६—इलायची, छोटी	७२-७३
५७—इलायची, बड़ी	७३-७४
५८—इश्कपेचा	७४-७५

विषय	पृष्ठ
५९—इसबगोल	७५-७६
६०—इसरौल	७७-७८
६१—उटंगन	७८-७९
६२—उड़द	७९-८०
६३—उन्नाव	८०-८१
६४—उलटकंबल	८१-८२
६५—उशबा मग़रबी	८२-८४
६६—उशनान	८४-८६
-सज्जी	८५
६७—उष(श)क	८६-८८
६८—उसारेरेवंद	८८-८९
६९—उस्कूर्दियून (जंगली लहसुन)	८९
७०—उस्तूखूदूस (उस्तोखुर्दूस)	९०-९१
७१—ऊँटकटारा	९१-९२
७२,७३-ऊदसलीब और फावानिया	९२-९३
७४—कंकोल	९३-९४
७५—कंगनी (कंकनी, कंगुनी)	९४
७६—कंघी	९५
७७—कंतूरियून (कबीर व सगीर)	९६
७८—कंदूरी (कुनरु)	९७-९८
७९—कँवला	९८
८०—कुंदुर	९९-१००
८१—कुंदुश	१००-१०१
८२—कौंच (केवाँच)	१०१-१०२
८३—ककड़ी	१०२-१०३
८४—ककड़ी फूट	१०३-१०४
८५—ककोड़ा (खेखसा) एवं ककोड़ा बाँझ	१०४-१०५
८६—कचनाल	१०५-१०६
८७—कचरी	१०६-१०७
८८—कटहल	१०७-१०९
८९—कटाई, छोटी	१०९-११०
९०—कटाई, बड़ी	,, ,,
९१—कतरान	११०-११२
९२—कताद व कतीरा	११२-११४
९३,९४—कद्दू मीठा और तितलौकी	११४-११६

विषय	पृष्ठ
९५—कनेर पीली	११६-११८
९६—कनौचा	११८
९७—कपास (बिनौला व रुई)	११८-१२०
९८—कपूर	१२०-१२३
९९—कपूरकचरी	१२३-१२५
१००—कबर	१२५-१२६
१०१ – कबाबचीनी	१२६-१२८
१०२—कमरख	१२८-१२९
१०३, १०४—कमल और नीलूफर	१२९-१३१
१०५—कमाजरियूस	१३२
१०६—कमाफ़ीतूस	१३२-१३३
१०७—कमीला	१३३-१३४
१०८—कयपूती	१३४-१३५
१०९—करंजुवा (कंजा)	१३५-१३७
११०—करीर(ल)	१३७-१३८
१११—करेमू	१३८-१३९
११२—करेला, एवं करेला जंगली	१३९-१४०
११३—करौंदा, करौंदी	१४०-१४१
११४—कलंबा	१४२-१४३
११५—कलौंजी (मंगरैल)	१४३-१४४
११६—कलगा (जटाधारी)	१४५
११७—कलहड़पात	१४५-१४६
११८—कसेरु	१४६
११९—कसौंदी	१४७-१४८
१२०—कहरुवा	१४८-१५०
१२१—क़हवा	१५०-१५१
१२२—कहेला, कहेली	१५२
१२३—काई	१५२-१५३
१२४—काकजंघा	१५३-१५४
१२५—काकाडासींगी	१५४-१५५
१२६—काकनज	१५५-१५६
१२७—काजू	१५६-१५८
१२८—कायफल	१५८-१५९
१२९—कालमेघ	१५९-१६०
१३०—कालादाना	१६०-१६१

विषय	पृष्ठ
१३१—कालाबिच्छू (कौवा)	१६१-१६२
१३२—कालीजीरी	१६२-१६३
१३३—कालीसर	१६३-१६४
१३४—काश्मीरी पत्ता	१६४
१३५—क़ाशिम	१६५
१३६—कासनी	१६५-१६६
१३७—कासनी जंगली (दुधल)	१६७-१६९
१३८, १३९—काहू (बागी तथा जंगली)	१६९-१७२
काहूकी अफीम	१७१-१७२
१४०—किरमाला	१७२-१७४
१४१—किशमिश कावलियाँ	१७४-१७५
१४२—किसाउल्‌हिमार	१७६-१७७
१४३—कीड़ामारी	१७७-१७८
१४४—कुंद	१७८
१४५—ककुरौंधा	१७८-१७९
१४६—कुचला	१७९-१८२
१४७, १४८—कुट(ठ) कड़ुआ कुट	१८२-१८६
१४९—कुटकी	१८७-१८८
१५०, १५१—कुड़ा सफेद व काला	१८८-१९०
१५२—कुरूया (कारवी)	१९१-१९२
१५३—कुलंजन	१९२-१९४
१५४—कुलथी	१९४-१९५
१५५, १५६—कुलफा और लोनिया	१९५-१९७
१५७—कुसुम	१९७-१९९
१५८—कूजा	१९९
१५९—केला	१९९-२०१
१६०, १६१—केवड़ा और केतकी	२०१-२०२
१६२—केस(श)र	२०२-२०३
१६३—क़ैथ	२०३-२०४
१६४—क़ैसूम	२०४-२०५
१६५—कोंहड़ा विलायती (पीला)	२०५-२०६
१६६—कोका व कोकीन	२०६-२०७
१६७—कोदों	२०८
१६८खजामा	२०८-२०९
१६९—खजूर	२०९-२१०
१७०, १७१—खतमी और गुलखेरू	२११-२१२
१७२, १७३—ख़मान सग़ीर व कबीर	२१२-२१४
१७४—खरबूजा	२१४-२१५
१७५—ख़र्नूबबुस्तानी	२१५-२१६
१७६—ख़र्नूब नब्ती (वर्री)	२१७
१७७—ख़र्बक सफेद	२१७-२१८
१७८—ख़र्बक स्याह	२१८-२२०
१७९—खस	२२०-२२१
१८०—खाकसी	२२१-२२२
१८१—खिरनी	२२२-२२३
१८३—खीरा	२२३
१८५—खुन्सा व अस्राश	२२४-२२५
१८६—खुब्बाजी व खुब्बाजी बुस्तानी (मलूखिया)	२२५-२२६
१८७—खुमी	२२६,२२७
१८८—खेरी या खैरी	२२८-२२९
१८९—खेसारी	२२९
१९०—खैर (कत्था)	२२९-२३१
१९१—दुर्गंध खैर	२३१
१९२—गंगेरन, गुलशकरी	२३१-२३२
१९३—गंदना	२३२-२३३
१९४—गंधपूरो	२३३-२३४
११५—गन्ना (ईख, गुड़, खाँड, चीनी, सिरका, मद्य)	२३४-२३९
१९६—गर्जन	२४०
१९७—गर्भफूल (कफ़ेमरियम्)	२४०
१९८, १९९—गाजर, जंगली गाजर	२४१-२४२
२००, २०१, २०२—ग़ाफ़िस, ग़ाफ़िस देशी	२४२-२४३
गाफिस प्राचीन (पाश्चिमात्य–शज्रतुल्‌बराग़ीस)	२४४-२४५
२०३—ग़ार	२४५-२४७
२०४—गारीकून	२४७-२४८
२०५—गावजवान	२४८-२५०
२०६—गिलोय	२५०-२५१
२०७—गुआर, गुआलिन	२५१-२५२
२०८—गुग्गुल (गूगल)	२५२-२५४
२०९—गुड़मार (पुड़पत्रम्)	२५४-२५५

विषय	पृष्ठ
२१०—गुड़हल (जपा)	२५५-२५६
२११—गुल अब्बास	२५६-२५७
२१२—गुलचाँदनी	२५७-२५८
२१३—गुलदाउदी	२५८-२५९
२१४—गुलदुपहरिया	२५९
२१५—गुलमेंहदी	२६०
२१६—गुललाला	२६०-२६२
२१७—गुलशब्बो	२६२-२६३
२१८—गुलसेबती (सेवती)	२६३-२६४
२१९—गुलाब	२६४-२६८
२२०—गुलाब जामुन	२६८
२२१—गूमा	२६९
२२२—गूलर	२६९-२७१
२२३—गेंदा	२७१-२७२
२२४—गेहूँ	२७२-२७३
२२५—गोंदनी, गोंदी	२७४
२२६—गोखरू छोटा	२७४-२७५
२२७—गोखरू बड़ा	२७६-२७७
२२८—गोभी	२७७-२७८
२२९—गोभीजंगली, बनगोभी	२७९
२३०—घीकुआर	२७९,२८२
२३१—घुंघची	२८२-२८३
२३२—चंदन लाल	२८३-२८४
२३३—चंदन सफेद	२८४-२८६
२३४—चंपा	२८६-२८७
२३५—चकोतरा	२८७-२८८
२३६—चक्कादाना	२८८
२३७—चचीण्डा (मीठा)	२८८-२८९
२३८—चचीण्डा (कडुआ)	२८९-२९०
२३९—चना	२९०-२९१
२४०—चनार	२९१
२४१—चमेली	२९१-२९२
२४२—चाकसू	२९३
२४३—चाब और गजपीपल	२९४
२४४—चा मघास	२९२
२४५—चाय	२९५-२९६
२४६—चावल	२९६-२९७
२४७ चावलमुँगरी	२९७-२९८
२४८—चिरचिटा	२९८-३००
२४९—चिरायता	३००-३०१
२५०—चिरौंजी	३०१-३०२
२५१—चिलगोजा	३०२-३०३
२५२—चीड़ (ढ़), गंधाविरोजा, तारपीन	३०३-३०६
२५३—चीता (चित्रक)	३०६-३०८
२५४—चुकंदर	३०८-३०९
२५५-२५६—चूका (आबी व जंगली)	३०९-३१०
२५७—चूहाकानी	३११
२५८—चेना	३१२
२५९—चोबचीनी	३१२-३१४
२६०—चौबहयात	३१४
२६१—चौलाई, काँटा चौलाई	३१५
२६२—छडीला	३१५-३१६
२६३—छतिव(ब)न	३१६-३१७
२६४—छुईमुई	३१७-३१८
२६५—जंभीरी नीबू	३१९
२६६—जदवार	३१९-३२१
२६७—जमालगोटा	३२१-३२३
२६८—जयंती (जैंत-रवारुन)	३२३-३२४
२५९—जरदालू और खूबानी	३२४-३२५
जराबंद	३२६
२७०—जरावंद तवील	३२६-३२७
२७१—जरावंद मुदह्‌रज	३२७
२७२—जरीर	३२७-३२८
२७३—जर्नब	३२८-३२९
२७४—जलकुम्भी	३२९—३३०
२७५—जलनीम, ब्राह्मी (बंगीय)	३३०-३३१
२७६—जलपीपल	३३१-३३२
२७७—जलापा	३३२-३३३
२७८—जवाशीर	३३३-३३४
२७९—जवासा	३३४-३३६
२९०—जामुन	३३६-३३७
२८०—जायफल और जावित्री	३३७-३४०

विषय पृष्ठ

२८१—जितियाना ३४०-३४१
२८२—जीरा ३४१-३४२
२८३—जूफा ३४३
२८४—जूही (जुई) ३४३-३४४
२८५—जैतूनका तेल ३४४-३४५
२८६—जोंक (मुलूखिया) ३४५-३४६
२८७—जोंकमारी ३४६-३४७
२८८—जोअ्दा ३४७-३४८
२८९—जौ ३४८-३५१
२९०—जौ बिरहना (जई) ३५१-३५२
२९१—ज्वार ३५२
२९२—झाऊ ३५३-३५४
२९३—टमाटर ३५४-३५५
२९४—डिजिटेलिस (दीजताल) ३५५-३५७
२८५—तगर (सुगन्धबाला) ३५७-३५८
२९६—तज ३५८
२९७—तमाकू ३५९-३६०
२९८—तरबूज ३६०-३६१
२९९—तरामीरा ३६१
३००—ताड़ ३६२-३६३
३०१—तालमखाना ३६३
३०२—तालीसपत्र (तालीसपत्ता) ३६४-३६५
३०३—तालीसफर ३६५
३०४—तिपत्ती (चांगेरी,खटकल) ३६६
३०५—तिल ३६७-३६८
३०६—तीखुर ३६८-३६९
३०७—तुम्बरू ३६९ ३७०
३०८,३०९—तुरई (मीठी व कडुई) ३७१-३७२
३१०—तुरमुस ३७२
३११,३१२— तुलसी ३७२-३७४
३१३,३१४—तूत (स्याह व सफेद) ३७४-३७५
३१५,३१६—तेंदू(तेन)और माका तेंदू ३७५-३७६
३१७—तेजपात ३७६-३७७
३१८,३१९,३२०—तो(तु)दरी (सफेद, सुर्ख व जर्द) ३७७-३७८
३२१—थकार ३७८
३२२,३२३,३२४—थूहर ३७९-३८०
३२५—दम्मु(-मु-)ल् अख्वैन ३८०-३८१
३२६—दरूनज अकरबी ३८१-३८२
३२७—दवाए जुनून (धवलबरुआ) ३८२-३८४
३२८—दानक ३८४
३२९—दामीसा का गोंद ३८५
३३०—दारु(-रू-)हलदी ३८५-३८७
—फल (जरिश्क)
—रसक्रिया (रसवत)
३३१—दालचीनी ३८८-३९०
३३२—दिरमना तुर्की ३९०-३९१
३३३,३३४—दुद्धी (दूधी) छोटी व दुद्धी बड़ी ३९१-३९२
३३५—दुकू ३९२-३९३
३३६—दूब (हरी व सफेद) ३९३-३९४
३३७—देवदार (सनोबर), रोग़न देवदार ३९४-३९५
३३८—दौना (नागदौना) ३९५-३९६
३३९,३४०,३४१—धतूरा (सफेद, काला, राज) ३९६-३९८
३४२—धनियाँ ३९९-४००
३४३—धमासा (धमाहा) ४००-४०२
३४४—धवई ४०३
३४५—धावा (धव) ४०३-४०४
३४६—नकछिकनी ४०४-४०५
३४७—नरकचूर ४०५-४०६
३४८—नरगिस ४०६-४०७
३४९—नागकेसर (नागेसर) ४०७-४०८
३५०—नागफनी (१) ४०८
३५१—नागफनी (२) ४०९
३५२—नाना (नाऽनाऽ) ४१०-४१२
३५३—नाय (नै, नाई) ४१२
३५४—नारंगी ४१३
३५५—नारंज ४१३-४१४
३५६—नारियल ४१४-४१५
३५७—नारियल दरियाई ४१६
३५८—नारेदीन (नारदीन) ४१६-४१७

विषय	पृष्ठ
३५९—नाशपाती	४१७-४१८
३६०—निगंदबाबरी	४१८
३६१—निर्मली	४१८-४१९
३६२—निसोथ	४२०-४२१
३६३—नीबू	४२२-४२३
३६४—नीम	४२३-४२६
३६५, ३६६—नील व बननील	४२६-४२७
३६७—नीलकंठी	४२७
३६८—पँवाड़ (चकवड़)	४२८-४२९
३६९—पखानभेद	४२९-४३०
३७०—पचौली	४३०
३७१—पटेर, पटेरा	४३०-४३१
३७२—कसरानी, गोदरी, गोंद	४३२
३७३—पतंग	४३२-४३३
३७४—पथःचूर	४३३-४३४
३७५—पत्थरफोड़ी	४३४-४३५
३७६—पपीता	४३५-४३६
३७७—परवल	४३६-४३७
३७८—पलास	४३७-४४०
३७९—पाठा	४४०-४४१
३८०—पान (तंबूल)	४४१-४४२
३८१—पानड़ी	४४२
३८२—पालक	४४३
३८३—पालकजूही	४४४
पिपरमिंट	४४४-४४५
३८४—पियारांगा	४४५-४४६
३८५—पिस्ता	४४६-४४७
३८६—पीपल (वृक्ष)	४४८
३८७—पीपल व पीपलामूल	४४८-४५०
३८८, ३८९—पीलू (अराक) छोटा व बड़ा	४५०-४५१
३९०, ३९१, ३९२—पुदीना	४५२-४५३
३९३—पुनर्नवा	४५३-४५५
३९४—पु(पो)हकरमूल (पुष्करमूल)	४५५-४५८
३९५—पेठा	४५८-४५९
३९६—पोई	४५९-४६०
३९७ ३९८—पोस्ता सफेद व लाल	४६०-४६५
३९९—प्याज	४६५-४६६
४००, ४०१—प्याज जंगली और विलायती	४६७-४६८
४०२—फंजियून	४६८-४६९
४०३—फरफियून	४६९-४७०
४०४—फरासियून	४७०-४७१
४०५—फर्राश	४७१-४७२
४०६—फालसा	४७२-४७३
४०७—फाशरा	४७३-४७५
४०८—फिंदक	४७५
४०९—फितरासालियून	४७६
४१०—फिल्फिलुस्सूदान	४७६-४७७
४११—बंदा	४७७ ४७८
४१२—बंदाल	४७८-४७९
४१३—बकाइन	४७९-४८०
४१४—बकुची	४८०-४८१
४१५, ४१६—बखुरमरियम ओर अर्तनीसा	४८१-४८३
४१७—बच	४८३-४८५
४१८—बछनाग	४८५-४८७
४१९—बजरदंती (बज्रदंती)	४८७
४२०—बड़हल	४८८
४२१, ४२२—बथुआ,	४८८-४८९
सुगंध बथुआ (सुगंधवास्तुक)	४८९-४९०
४२३—बननील (वस्मा)	४९०-४९१
४२४—बनफ़्शा	४९१-४९२
४२५—बनसिटकी	४९२
४२६—बबूल	४९३-४९४
४२७—बरगद	४९५
४२८—बरञ्जासिफ़, बिरञ्जास(सि)फ	४९६
४२९—बरना	४९७
४३०—बरियारा	४९८
४३१—बलसाँ	४९९-५००
४३२—बलूत	५०१
४३३—बसफाइज (बि)	५०२
४३४—बहमन सफेद	५०२-५०३

विषय	पृष्ठ
४३५—बहमन लाल	५०३
४३६—ब्रहुफली	५०४
४३७—बहेड़ा	५०४-५०५
४३८—बाँस	५०५-५०६
४३९—बाकला	५०७
४४०—बाजरा	५०७-५०८
४४१—बादाम कड़ुआ (तिक्त)	५०८-५०९
४४२—बादाम मीठा (शीरी)	५०९-५११
४४३—बादावर्द (भूदण्डी)	५१२
४४४—बादियान खताई	५१२-५१३
४४५—बाबूना	५१३-५१४
४४६—बाबूनए गावचश्म	५१४
४४७—बाय(व)खुंबा(कुंभी)	५१५
४४८—बायबिडंग	५१६-५१७
४४९—बारतंग	५१७-५१८
४५०—बाराहीकंद	५१८
४५१—बालछड़	५१८-५२०
४५२—बालंगू	५२०-५२१
४५३—बिजयसार	५२१-५२२
४५४—बिजौरा	५२२-५२४
४५५—बिदारीकंद	५२४-५२५
४५६—बिधारा (शारफ़)	५२५-५२६
४५७—बिन्ताफलुन	५२६-५२७
४५८—बिल्लीलोटन	५२८-५२९
४५९—बिसखपरा	५२९-५३०
४६०—ब्रिही (बिहीदाना)	५३०-५३१
४६१—बीजबंद	५३१-५३२
४६२—बुत्म (बतुम)	५३२
४६३—बूजीदान (वलायती)	५३३
४६४—बूलूगाली (सनेगा)	५३३-५३४
४६५—बेंत (खेजरान)	५३४-५३५
४६६—बेदमुश्क	५३५-५३६
४६७—बेदसादा	५३७
४६८—बेर	५३८
४६९—बेल	५३९-५४०
४७०—बेला	५४०-५४१
४७१—बैंगन (भटा)	५४१-५४२
४७२—बैजन्ती (गुल तस्बीह)	५४२
४७३—बोल	५४३-५४४
४७४—ब्रह्मदण्डी	५४४-५४५
४७५—ब्रह्ममण्डूकी या मण्डूकपर्णी	५४५-५४७
४७६—भंगरा	५४७-५४८
४७७—भाँग	५४८-५५०
४७८—भारंगी	५५१-५५२
४७९—भिंडी	५५२
४८०—भिलावाँ (बलादुर)	५५३-५५५
४८१—मँडुआ	५५५
४८२—मुंडी	५५६-५५७
४८३—मकाई	५५७-५५८
४८४—मकोय (काली), मकोय जंगली	५५८-५५९
४८५—मकोय लाल	५५९-५६०
४८६—मखाना	५६१
४८७—मछेछी	५६१-५६२
४८८—मजीठ	५६२-५६३
४८९—मटर	८६३-५६४
४९०—मनसिम् (मिन्सम् या मिन्शम्)	५६४-५६५
४९१—ममीरा	५६५-५६६
४९२—मरुआ, जंगली	५६६
४९२—मरोड़फली	५६६-५६७
४९३—मर्जञ्जोश, मरुआ	५६७-५६८
४९४—मवीज़ज	५६९-५७०
४९५—मसूर	५७०
४९६—मस्तगी	५७०-५७१
४९७—महुआ	५७२-५७३
४९८—माजरियून	५७३-५७४
४९९—माजूफल	५७४-५७५
५००—मामीसा	५७५-५७६
५०१—मालकंगनी	५७६-५७७
५०२—मालती (१)	५७७
५०२—मालती (२)	५७८
५०३—माहीजहरज	५७८-५७९
५०४—मिर्च काली व सफेद	५७९-५८०

विषय पृष्ठ

५०५—मिर्च लाल (सुर्ख) ५८१-५८२
५०६—मिश्केतरामशीअ ५८२-५८३
५०६—मुचकुंद ५८३
५०७—मुलीम ५८४
५०८—मुलेठी ५८४-५८६
५०९—मुश्कदाना ५८६-५८७
५१०—मु(मौ)संबी ५८७
५११—मुसली काली (स्याह) ५८७-५८८
५१२—मुसली सफेद ५८८-५८९
५१३—मूँग ५८९-५९०
५१४—मूँगफली ५९०
५१५—मूली ५९०-५९२
५१६—मेंगोस्ती (मुंगिस्तान) ५९२
५१७—मेंहदी ५९३-५९४
५१८—मेथी ५९४-५९५
५१९—मैदा लकड़ी (मगास) ५९५-५९६
५२०—मैनफल ५९६-५९७
५२१—मोठ ५९७
५२२—मोथा ५९८
५२३—नागरमोथा ५९८
५२४—मौलसिरी ५९९
५२५—यूकेलिप्टस ६००
५२६—रतनजोत ६०१
५२७—राई ६०२-६०३
५२८—राल ६०३-६०४
५२९—रासन ६०५-६०६
५३०—रीठा ६०७-६०८
५३१—रुदंती (रुद्रवंती) ६०८-६०९
५३२—रेंड (एरंड) ६०९-६११
५३३—बघरेंड ६११
५३४—रेबंदचीनी (रेबास) ६१२-६१४
५३५—लटकू,लरवोट ६१५
५३६—लटूकरी ६१५-६१६
५३७,५३८—लटोरा (सपिस्तां) ६१६-६१७
लिटोरा (लिसोडी) ६१७
५३९—लबलाब ६१८-६१९

विषय पृष्ठ

५४०—लबलाब भेद ६१९
५४१—लहसुन ६१९-६२१
५४२—लाद (लबलाबका गोंद) ६२१-६२२
५४३—लीची ६२२
५४४—लु(लो)काट ६२३
५४५,५४६—लुफाह(बेलाडोना) ६२३-६२४
यबरूज (मेड्रागोरा) ६२५-६२६
५४७—लोध (पठानी) ६२८-६२९
५४८—लोबान ६२९-६३१
५४९—लोबिया ६३१
५५०—लौंग ६३२-६३३
५५१—वर्स ६३३-६३४
५५२—शकरकंद (कंदां) ६३४
५५३—शकाकुल ६३४-६३५
५५४—शमशाद ६३५
५५५—शरीफा ६३६
५५६—सलगम ६३७
५५७—शाहतरा ६३७-६३८
५५८—देशी शाहतरा ६३८-६३९
५५९—शापसंद ६३९-६४०
५६०—शिलारस ६४०-६४१
५६१—शीरखिश्त ६४१-६४३
५६१—शीशम ६४३-६४४
५६२—शुकाई ६४४
५६३—शूकरान (शौ) ६४५-६४६
५६४—शैलम ६४७
५६५—संखाहुली ६४७
५६६—संगतरा ६४८
५६७—संदरुस(चंद्रस) ६४८-६४९
५६८—संभालू ६५० ६५१
५६९—सकबीनज ६५१-६५२
५७०—सकमूनिया(अ) ६५२-६५३
५७१—सतवार ६५३-६५४
५७२—सत्यानासी (भँड़भाँड) ६५४-६५५
५७३—सदासुहागिन(सिंदूरिया) ६५६
५७४—सन ६५७

विषय	पृष्ठ
५७५—सन जंगली (बन सन)	६५८
५७६—सनाय	६५८-६६०
५७७—सनोबर	६६०-६६१
५७८—समुंदरफल	६६१-६६२
५७९—समुंदरसोख	६६२
५८०—सरखस	६६३
५८१—सरफोंका	६६४
५८ —सरसों	६६५
५८३—राई	६६५-६६६
५८४—सरो	६६६-६६७
५८५—सलाई और कुंदुरु	६६७-६६८
५८४—सहदेई (वी)	६६८-६६९
५८५—सहिजन	६६९-६७१
५८६—साँवा	६७१
५८७—सागूदाना	६७२
५८८—सातर	६७२-६७३
५८९—साबुनी बूटी	६७३-६७४
५९०—सारिवा	६७४-६७५
५९१,५९२—सालममिस्त्री, सालमपंजा	६७६-६७७
५९२—सासफ्रास	६७७-६७८
५९३—सिकोना (बर्क)कुनेन	६७८-६८०
५९४—सिंघाड़ा	६८१
५९५—सिरस	६८२
५९६—(सु)सिरियारी(सुरवाली)	६८३
५९७,५९८—रक्त भेद जटाधारी	६८४-६८५
५९९—सी(सि)काकाई	६८४,६८५
६००—सीसालियूस	६८५-६८६
६०१—सुम्बुल	६८६-६८७
६०२—सुदर्शन	६८८
६०३—सुदाव	६८८-६९०
६०४—सुपारी	६९०-६९१
६०५—सुमाक	६९२-६९३
६०६—सूरंजान तल्ख(कडुआ)	६९२
६०७—सूरंजान शीरी(मीठा)	६९४
६०९—सूरजमुखी	६९५-६९६
६१०—सूरन	६९६
६११—सेव	६९७
६१२—सेम	६९८
६१३—सेमल	६९८-७००
६१४—सेबार	७००
६१५—सोंठ और अदरख	७००-७०२
६१६—सोम(सोमकल्प)एफोड्रा	७०२-७०३
६१७—सोआ,सोया	७०३-७०४
६१८—सोया (आ) बीन	७०५-७०६
६१९—सौंफ	७०६-७०७
६२०, ६२१—सौसन और ईरसा	७०७-७०८
६२२—स्ट्रोफैन्थस	७०९-७१०
६२३—हंसराज	७१०-७११
६२४—हड़, हरड़ (हलीला)	७११-७१३
,, काबुली	
,, काली	
,, पीली	
६२५—हब्बुल्क़िलक़िल	७१४
६२६—हब्बुलज़(जु)लम(जलीम)	७१४-७१५
६२७—हब्बुल्मिह्लब	७१५-७१६
६२८—हमाम (हमामा)	७१६-७१७
६२९—हरमल (हर्मल)	७१७-७१८
६३०—ह (हा)रसिंघार	७१८-७१९
६३१—हर्शफ	७१९-७२०
६३२—हलदी	७२०-७२१
६३३—हलियून (नागदौन)	७२२
६३४—हशीशतुद्दीनार	७२३
६३५—हाऊबेर	७२४-७२५
६३६—हाथीशुंडी	७२५-७२६
६३७—हालिम, हालों	७२६-७२७
६३८—हाशा	७२७-७२८
६३९—हिरनखुरी	७२८-७२९
६४०—हिरबी, हिरवी (स्वर्णक्षीरी)	७२९
शीरबखशीर दे०	
(उसारेरेवंदं)	
६४१—हींग और अंजुदान	७२९-७३१
६४२—हुलहुल्	७३१-७३२
६४३—हुस्नयूसूफ	७३२-७३३
६४४—(हीहू) फारीकून	७३३-७३४

उद्भिज्ज द्रव्योपयोगविषयक विमर्श

इसके पूर्व कि मैं यूनानी निघण्टुओंमें दिये उद्भिज्ज द्रव्योंका विशद विवरण करूँ, यह उचित जान पड़ता है कि उनके उपयोगविषयक हेतुओंपर कुछ प्रकाश डाल दूँ। अस्तु, यद्यपि पशु-पक्षी आदि प्राणी मानवप्रकृतिसे अधिक सान्निध्य एवं सादृश्य रखनेके कारण मानवीय आहार एवं औषधके लिए अधिक उपयुक्त हैं, तथापि सद्यः मांसादिके लिए प्रथम तो जीवित प्राणी—पशु-पक्षी आदिकी हत्या करनी पड़ती है जिससे हिंसा होती है, द्वितीय संसारके सभी मनुष्योंके सेवनके लिए जितने पशु-पक्षी आदि प्राणियोंकी अपेक्षा हो सकती है, उतनेकी प्राप्ति दुष्कर है। इतना ही नहीं, अपितु मनुष्य यदि इन्हींका भोजन करने लगा तो एक दिन ऐसा हो सकता है कि इनका समूल-वंशोच्छेद होकर संसारसे इनका लोप हो जाय। पुनः इसका जो दुष्परिणाम हो सकता है उसकी कल्पना नहीं की जा सकती। यही कारण है कि मानवने सृष्टिके आदिसे ही आहार एवं औषधमें अधिकतया उद्भिज्जोंका ही ग्रहण किया।

सुतरां मानव आहार एवं औषधमें प्रायः उद्भिज्ज द्रव्यों (नबातात)की प्रचुरता और खाद्य एवं औषधमें इनका ही अधिकाधिक व्यवहार होनेके कारण ये मानव-शरीरको अधिक सात्म्य, उपादेय एवं प्रिय होते हैं। यही कारण है कि जाङ्गम (हैवानात) और (खाद्यके लिए उतना उपयोगी न होने पर भी) पार्थिव (मा'दनियात) द्रव्योंकी अपेक्षया चिकित्सामें औषधतया इन्हींका अधिकाधिक उपयोग किया जाता है। सुतरां साधारण उद्भिज्जोंके गुणकर्म-प्रभाव तथा उपयोगका वर्णन चिकित्साविषयक ज्ञान-विज्ञानका अभिवर्धक होता है। इतना ही नहीं, यदि गंभीर विचारणा एवं ऊहापोह किया जाय तो यह स्पष्ट हुए बिना नहीं रहेगा कि चिकित्साविज्ञान अधिकतया उद्भिज्जोंपर ही आधारित है।

इसका एक कारण यह भी है कि उद्भिज्ज अपरिसंख्येय (इनकी गणना नहीं की जा सकती) हैं। प्रत्येक ऋतु एवं देशके प्रत्येक भागमें विविध प्रकारकी अनोखी एवं चमत्कारी-ओषधियाँ विद्यमान होती हैं। इनमें आश्चर्य-चकित करनेवाले गुण-प्रभाव निहित होते हैं। चिकित्सा (औषध) एवं प्राणी और मानव आहार-औषधके अतिरिक्त ऐसी रसायन ओषधियाँ भी इस धरातलपर विद्यमान हैं जो औषध एवं रसायनके काम आती हैं। इनके सेवनसे मानवशरीरका रोगनिवारण एवं कायाकल्प हो जाता है तथा जरा और व्याधि यौवन एवं स्वास्थ्यमें परिवर्तित हो जाता है—'यज्जराव्याधिविध्वंसि तद्रसायनम्।' यदि इस जगतमें अमृत विद्यमान है तो वह इन्हीं उद्भिज्जोंके वेषमें पाया जाता है अर्थात् यही अमृत हैं।

भारतीय ऋषिगणने 'सोमलता' नामकी एक ऐसी महौषधिका पता लगाया था जो वास्तवमें शरीरका कायाकल्प करनेवाली महान रसायन थी। इसके उपयोगसे वृद्ध युवा बन जाता है, उसे नये दाँत निकल आते हैं, पुरानी त्वचा उतरकर नवीन त्वङ्मांस उत्पन्न हो जाते हैं, श्वेतबाल (पलित) के स्थानमें श्यामवर्णके बाल निकल आते हैं और अपने समस्त लक्षणों सहित वृद्धावस्थाका लोप होकर यौवनका आगम होता है।

इसी प्रकार अनेकानेक अन्यान्य महौषधियों एवं रसायन औषधियोंका पता महर्षियोंने लगाया था। तात्पर्य यह कि इन ओषधियोंकी संख्या तथा सम्यक् गुणधर्मवर्णना मानवसामर्थ्य एवं शक्तिके बाहर है। प्रत्येक व्यक्ति अपने ज्ञानसामर्थ्यके अनुसार उनका वर्णन करता है। उसीके अनुसार मैंने भी जो यहाँ वर्णन किया है वह महोदधिमें बिन्दुके समान है और अधिकांशमें अपने पूर्वके दिग्गजोंका उच्छिष्ट मात्र है। मैंने तो केवल उनका संकलन एवं संग्रह इस ग्रन्थमें अपनी विचारशैलीके अनुसार किया है।

यहाँ पर यह बतला देना उचित समझता हूँ कि प्राचीन यूनानी वैद्य-हकीम वत्सनाभ, कुचला और अन्यान्य बहुसंख्य द्रव्योंका चिकित्सार्थ औषधरूपेण आभ्यन्तर उपयोग नहीं, केवल बाह्य उपयोग करते थे और उनको प्राणसंहारक विष—खालिस जहर (सम्म मुतलक़) समझते थे। इसके विपरीत आयुर्वेद—आर्य वैद्यकमें इन विषोंका, यहाँतक कि सर्पविष तकका उपयोग औषधमें अतिप्राचीन कालसे होता आ रहा है। अस्तु, प्राचीनसे प्राचीन आयुर्वेदके ग्रन्थोंमें जांगम और स्थावर (प्राणिज,वानस्पतिक और खनिज) सभी प्रकारके विषोपविषोंका शोधनोपरांत औषधरूपेण बाह्याभ्यन्तर उपयोग और तज्जन्य विषप्रभावकी चिकित्साका सविस्तर वर्णन देखनेमें आता है। कारण उनका यह मत था कि तीव्रतम प्राणहारक विष, यहाँ तक कि सर्पविष भी योग्य मात्रामें और रोग एवं रोगोंके बलाबल तथा देश, ऋतु, काल आदिका सूक्ष्म विचार करके देने अर्थात् युक्तिपूर्वक सेवन करनेपर अमृतके समान (रसायनवत्) गुण (कार्य) करता है और अमृतसमान दूध भी ठीक योजना न करनेपर विषतुल्य हो जाता है। कहा है—'योगादपि विषं तीक्ष्णमुत्तमं भेषजं भवेत्। भेषजं चापि दुर्युक्तं तीक्ष्णं संपद्यते विषम्'। (चरक), तथा—'अन्नं हि प्राणिनां प्राणस्तद्दयुक्तया निहन्त्यसून्। विषं प्राणहरं तच्च युक्तियुक्तं रसायनम्॥ यथा विषं यथा शस्त्रं यथाऽग्निरशनिर्यथा। तथौषधम् विज्ञातं विज्ञातममृतोपमम्॥ औषध, चापि दुर्युक्तं तीक्ष्णं संपद्यते विषम्। विषं च विधिना युक्तं भेषजायोपकल्पयेत्॥' (काश्यप संहिता)। 'यान्यपि स्वभावादेव विषमन्दकादीन्यपथ्यानि, तान्यप्युपाययुक्तानि क्वचित् पथ्यानि भवन्ति; यथा उदरेतिलं दद्यात् विषस्य तु।' (च० चि० अ० १३)। सर्पविषका औषधरूपेण प्रयोग भी आयुर्वेदमें आजका नहीं, अपितु अतिप्राचीन है—'पानभोजनसंयुक्तं विषमस्मै प्रदापयेत्। यस्मिन् वा कुपितः सर्पो विसृजेद्धिफले विषम्॥' (च० चि०अ० १८)। इसके अतिरिक्त सूचिकाभरण, विसूचिकाविध्वंसन तथा अन्यान्य बहुशः योगोंमें सर्पविष पड़ता है।

तात्पर्य यह कि आयुर्वेदमतसे संसारमें कोई द्रव्य अनौषध नहीं है—'जगत्येवमनौषधम्। न किञ्चिद्विद्यते द्रव्यं वशान्नानार्थयोगयोः॥ (वाग्भट)। 'नास्तिमूलमनौषधम्। × × × योजकस्तत्र दुर्लभः॥ (सुभाषित)। क्योंकि प्रकृतिकी यह असीम कृपाकटाक्षका ही फल है कि एक ओर जहाँ उसने विषद्रव्य उत्पन्न किये हैं, वहीं दूसरी ओर उसमें विषके साथ अमृत भी उत्पन्न कर दिया है। जब किसी प्रकार हमारे ज्ञानकी सीमामें अमृतवत् गुण आ जाते हैं, तब उन्हें हम औषधरूपेण उपयोग करने लग जाते हैं, जैसा कि उपर्युक्त विषोंके सम्बन्धमें हुआ।

इन आर्यवैद्योंकी देखा-देखी अब बहुतसे यूनानी हकीम भी इन विषोपविषोंका उपयोग करने लगे हैं। यही नहीं, अपितु रसायनकलाविद् तो इन उद्भिज्जोंमेंसे केवल विषोपविषोंका ही अधिकाधिक व्यवहार करते हैं। विषौषधियाँ आशुप्रभावकर तथा मात्रालाघव होनेके कारण मानवशरीरमें शीघ्र परिवर्तन उत्पन्न करके अपना प्रभाव प्रकट करती हैं।

सृष्टिकर्त्ताने प्रत्येक विषैलीसे विषैली ओषधिमें जिस प्रकार प्रकटरूपमें विषैला प्रभाव निहित किया है उसी प्रकार उसके भीतर अप्रकटतः रसायनगुणधर्म अन्तर्भूत किया है। विष जितना ही तीक्ष्ण एवं प्राणघातक होगा; उसमें निहित गुप्त रसायन गुणधर्म भी उतनाही आशुप्रभावकारी एवं जीवनदाता होगा। रसायनविद् विविध प्रकारसे विषौषधियोंका शोधनकर उनके विषप्रभावको दूरकर देते हैं, जिससे उन ओषधियोंका हितकर रसायनप्रभाव सहजमें भली-भाँति प्रगट हो जाता है।

यही कारण है कि अधुना पाश्चात्य वैद्यकके अनुयायी डॉक्टर महोदय विषौषधियोंके विषप्रभावको स्वीकार करते हुए भी उनकी ही भाँति रोगकी चिकित्सामें विष औषधियोंका उपयोग मुक्तहस्तसे करने लगे हैं। भेद केवल यह है कि डॉक्टर लोग विष औषधियोंके कार्मुक अंश, रसक्रिया या सत्व (क्षारसमोद आदि प्रभावांश)के रूपमें पृथक् करके उक्त विष औषधियोंको अत्यधिक तीव्र एवं आशुप्रभावकारी बना लेते हैं और अत्यल्प प्रमाणमें उपयोग करते हैं। विपरीत इसके रसायनविद् वैद्य व हकीमगण इन विष ओषधियोंको शुद्ध या अन्य निवारण द्रव्योंके

साथ योग करके उनके विषमय गुण-प्रभावको इतना अल्पवीर्य कर लेते हैं कि शोधनोपरान्त मानो उनमें विषप्रभाव शेष ही नहीं रह जाता तथा अन्य निर्विषैले ओषधियोंके समान हानिरहित, किन्तु उनसे अधिक आशुप्रभावकारी हो जाती हैं। उक्त अवस्थामें रसायनविद् वैद्य-हकीमोंकी विधिको हानिरहित होनेके कारण, आधुनिक पाश्चात्यवैद्यककी विधिसे विशेषतः विषैली ओषधियोंकी शोधनविधिमें एक विशेष महत्व प्राप्त है जिसका ज्ञान भूयोदर्शन एवं प्रयोग द्वारा हो सकता है।

विषैले उद्भिज्जोंके सिवाय अन्य प्रकारके उद्भिज्ज भी जो अपने-गुणप्रभावमें रसायनके गुण रखते हैं, उनका प्रयोग भी रसायनविद् नानाप्रकारसे करते हैं। वैद्यकके शर्बत, अवलेह और अर्कोंके विरुद्ध वे उक्त ओषधियोंको सत्व, तेल या किसी ऐसे रूपमें कल्पित करते हैं, जिसके अल्पमात्रामें प्रयोग करनेसे कल्पनाकी विधिविशेषके कारण वैद्यकके अधिक मात्रासे होनेवाला लाभ अधिक शीघ्र, तीव्र एवं चिरस्थायी होता है।

प्रस्तुत ग्रन्थमें यूनानी मतके साथ मैंने इसके अतिरिक्त आयुर्वेद और पाश्चात्य वैद्यक (एलोपैथी) अर्थात् इन तीनों प्रत्यनीक चिकित्सापद्धतियोंके मतोंका समन्वयात्मक विवरण देनेका प्रयत्न किया है। इतने संक्षिप्त वक्तव्यके उपरान्त आगे अब उपयोगी, कृतप्रयोग एवं बहुप्रयुक्त प्रसिद्ध आवश्यक उद्भिज्जोंका आकारादिवर्णक्रमानुसार 'नातिसंक्षेप विस्तरेण' विवरण दिया जा रहा है।

(१) अंगूर।

फ़ैमिली : वीटासे (Family : Vitaceae).

नाम। (लता)—(अ०) क़र्न; (फा०) ताक, रज़; (ले०) वीटिस बीनिफ़ेरा (**Vitis vinifera** Linn.); (अं०) वाइन् (Vine)। **(पका ताज़ा फल—अंगूर)**—(हिं०; पं०) अंगूर, दाख; (अ०) इनब; (फा०) अंगूर, रज़, वाग़; (सं०) द्राक्षा, मृद्वीका, गोस्तनी; (क०) दच्छ; (म०) द्राक्ष; (गु०) दाघराख; (सिंध) ड्राख; (मा०) दाख, मिनका; (अं०) ग्रेप (Grape)। **(कच्चा अंगूर)**—(अ) हिस्‌रम; (फा०) ग़ोरः।

उत्पत्तिस्थान—यह पंजाब, कश्मीर, काबुल, बलूचिस्तान, अफ़गानिस्तान, कंधार, फारस तथा यूरूपके मध्यसागरीय देशोंमें बहुत लगाया जाता है। हिमालयके पश्चिमी भागोंमें यह आप-से-आपभी होता है। अब भारतवर्षमें विशेपतः उत्तरीपश्चिमी भाग (पंजाब, हरयाना, हिमांचल प्रदेश) तथा दक्षिणभारत (मैसूर स्टेट)में भी कहीं-कहीं काफ़ी परिमाणमें इसकी खेती की जाती है।

वर्णन—यह एक बहुवर्षायु सुदीर्घ लताका प्रसिद्ध फल है, जो गुच्छोंमें लगता है। इसके मुख्य दो भेद होते हैं :—(१) **दाखी** या बड़ा (लंबोतरा वा गोल) न्यूनाधिक बीजयुक्त। इसके पके सूखे फल **'मुनक्का'** वा **'दाख'** कहलाते हैं। काले अंगूरको अरबीमें "अह्‌दाक़ुल्‌ बक़र" कहते हैं। (२) **किशमिशा**—यह उसकी अपेक्षया क्षुद्र (लंबोतरा वा गोल), बीजरहित (निर्बीज वा बेदाना) होता है। किशमिशी अंगूरको अरबीमें "राज़की" कहते हैं। इसके पके सूखे फल **'किशमिश'** कहलाते हैं। जंगली, पहाड़ी और बागी आदि भेदसे, गोल, लम्बा और छोटा-बड़ा आदि आकार भेदसे तथा सफ़ेद, लाल और काला आदि रंगभेदसे (इनमें पूर्व-पूर्व अधिक श्रेष्ठ होता है) अंगूर नाना प्रकारके होते हैं। इनमें सर्वोत्तम अंगूर वह है, जो गरमीकी ऋतुका हो और जिसका दाना बड़ा एवं परिपुष्ट, छिलका पतला और बीज छोटा हो।

उपयुक्त अंग—पंचांग, पत्र-कोंपल, पुष्प, निर्यास, काटी हुई टहनियोंमेंसे रिसा हुआ मद और ताज़े या सुखाये हुए फल।

रासायनिक संगठन—फलमें ग्लूकोज़, निर्यास, टैनिन (Tannin), टार्टरिक एसिड (Tartaric acid), सिट्रिक एसिड (Citric acid), रैसीमिक एसिड (Racemic acid) और मैलिक एसिड (Malic acid), आक्सेलिक अम्ल (Oxalic acid) तथा विविध क्षारद्रव्य, यथा-क्लोराइड्स् ऑफ पौटैसियम् एवं सोडियम्, सल्फेट ऑफ पोटाश आदि तथा लोह एवं कुछ ऐल्ब्युमिन आदि पदार्थ होते हैं। टार्टरिक एसिड अंगूरोंमें पाया जानेवाला विशेष अम्ल है। **सूखे फल** (Raisins)में निर्यास एवं शर्कराके अतिरिक्त सात्म्यीकरणोपयुक्त कैल्सियम्, मैग्नीसियम्, पोटैसियम्, फॉस्फोरस तथा लोह होता है। बीजमें एक धन स्थिरतैल या वसा और ५ प्रतिशत टैनिक एसिड होता है। छिलकामें टैनिन, कोंपल और लतामें टंकणाम्ल (बोरिक एसिड) होता है।

कल्प तथा योग—स्वरस (उसारा) तथा रससे आसव, सिरका और मद्य बनाते हैं; शीरा वा रुब्ब (मैफुख़्तज), दोशाब (दिब्स), मुसल्लस, शर्बत अंगूर तुर्श व शीरीं, बरूद हिसरम, दवाए मुदिर्र, लकड़ीकी राख आदि।

प्रकृति—पका अंगूर पहली कक्षामें उष्ण एवं स्निग्ध (तर); आयुर्वेदमतसे शीतवीर्य एवं स्निग्ध (च०; सु०) और कच्चा (ग़ोरः) पहली कक्षामें शीत एवं रूक्ष है। अंगूरका छिलका और पुष्प पहली और अंगूरकी बेल दूसरी कक्षामें शीत एवं रूक्ष हैं।

गुण-कर्म—पका अंगूर दोषपाचन, सर, बल्य, शुद्धरक्तानुकारि, मूत्रल और शीघ्रपाकी आहार है। कच्चा अंगूर संग्राही है।

उपयोग—पका मीठा अंगूर मेवाकी भाँति अत्यधिक खाया जाता है। यह बहुत शीघ्र पच जाता, शरीरको पर्याप्त पुष्टि (आहार) प्रदान करता, शुद्ध रक्त उत्पन्न करता, शरीरको बलवान्, पुष्ट एवं परिबृंहित करता और कब्जको दूर करता है। इसके ऊपरका छिलका संग्राही (काबिज) है; इसलिए उसे दूर करके खाना चाहिए। मीठा अंगूर वक्षके लिए भी लाभकारी है। कच्चा अंगूर संग्राही होनेसे अतीसारमें लाभ पहुँचाता है। यह रक्त और पित्तकी तीक्ष्णताको शमन करता, यकृत्‌को शक्ति देता और प्यास बुझाता है। इसके रससे शर्बत बनाते हैं, जो सौमनस्यजनन एवं बलवर्धनके लिए उपयोग किया जाता है। अंगूरके पत्तोंकी हरी कोंपल (पत्रमुकुल) पीसकर पीनेसे मस्तिष्ककी ओर बाष्प नहीं चढ़ पाते। इसके लेपसे गरमीका सिर-दर्द, नेत्रकी सूजन एवं दाह मिटता है। जौके आटेके साथ इसका लेप करनेसे आमाशयगत दाह मिटता है। अंगूरके पत्तोंका स्वरस (पीनेसे) आमाशयको शक्ति प्रदान करता है, सादा वा रक्तवमन बंद करता और अतीसारघ्न है। इसके कोंपलोंके स्वरससे शार्कर (शर्बत) बनाकर पीनेसे पित्तज हृत्स्पंदन, मद (खुमार) और मिचली दूर होती है, तथा भूख लगती है। प्लीहशोथ और वस्त्यश्मरीमें इसका गोंद मद्यके साथ उपयोग करनेसे लाभ होता है। इसका लेप दाद और खाजको दूर करता है। सिरका और गुलरोग़नके साथ यह अर्शमें लाभकारी है। इसका फल सुगंधित, हृदयबलदायक, हिक्कानाशक और वमिहर है। ९ माशा फूल पीसकर खानेसे रक्तनिष्ठीवन आराम होता है। यह आमाशयबलदायक (दीपन), अतिसारघ्न और मूत्रल (मुदिर्र) है। इसका अर्क पुष्पकी अपेक्षया सूक्ष्मतर और बलवत्तर है। इसकी लकड़ीकी भस्म अश्मरीघ्न है तथा शिरोरुक् विशेष (बैज़ा, खौज़ा व शक़ीक़ा)में लाभकारी है। इसके पीने और लगानेसे अर्शमें उपकार होता है। इसकी काटी हुई टहनियोंमेंसे एक प्रकारका मद निकलता है, जो त्वचाके रोगोंकी चिकित्सामें काम आता है और दुखती हुई आँखोंमें भी लगाया जाता है। **अहितकर**—आनाहकारक। **निवारण**—वातानुलोमन द्रव्य। **प्रतिनिधि**—गुठली निकाला हुआ मुनक्का। **मात्रा**—पाचनानुसार सेवन करें।

आयुर्वेदीय मत—पकी हुई मीठी दाख मधुर, शीतवीर्य, स्निग्ध, रुचिकारक, संतर्पण तथा तृषा, दाह, ज्वर, श्वास, रक्तपित, उरःक्षत, क्षय, वात, पित्त, उदावर्त, स्वरभेद, मदात्यय, मुँहका कडुआपन, मुँह सूखना, खाँसी और मूत्रदोषको दूर करनेवाली है। (च०; सु०; रा० नि०)।

नव्यमत—ताजी पकी हुई दाख पाचन, स्रंसन, बल्य, रक्तपित्तप्रशमन और रक्तशोधक है। सूखी हुई दाख शीतल, स्नेहन, कफशामक और स्रंसन है।

मुनक्का—

नाम—(हिं०) मुनक्का, दाख; (अ०) ज़बीब; (फा०) मवीज़, अंगूरे खुश्क; (ले०) युवी (Uvae); (अं०) रेजिन्स (Raisins)।

वर्णन—यह पककर सूखा हुआ अंगूर है। इसके विविध भेद किये जाते हैं। बड़ा, मोटा, मीठा, कम बीजवाला और जो बहुत सूखा न हो, ऐसा मुनक्का उत्तम है। किशमिश इसका क्षुद्र भेद है। सूखी और बीज निकाली दाखको अरबीमें मवीज़ मुनक्का कहते हैं। अंगूरको चूना और सज्जीखारके साथ गरम पानीमें डुबाकर आबजोश बनाते हैं।

कल्प तथा योग—माजून जबीब (मुनक्का), शर्बत मवीज।

प्रकृति—पहली कक्षामें उष्ण एवं तर; बीज पहली कक्षामें उष्ण एवं रूक्ष।

गुण-कर्म—यह अधिक रक्त उत्पन्न करनेवाला अर्थात् जीवनीय (कसीरुल्‌गिज़ा), सांद्रदोषपाचन, प्रमाथी, कोष्ठमृदुकर (मुलय्यिन शिकम), दोषादि विलयन (मुहल्लिल), अंत्रामाशयलेखनीय (जाली), यकृद्‌बलदायक, हृदयबलदायक, वाजीकर, कामोत्तेजक और बृंहणीय है। बीज संग्राही है।

उपयोग—जिन रोगियोंको साधारण आहार (अन्नाहार)से परहेज कराया जाता है, उनको उसके स्थानमें केवल मुनक्का खिलाया जाता है। गुठली निकाले हुए मुनक्काको सांद्रदोषोंके पाचनार्थ शीतल कफज एवं सौदावी रोगोंमें दोषपाचन द्रव्योंके साथ उपयोग किया जाता है। मार्दवकरण हेतु केवल गुठलियोंसे साफ किया हुआ मुनक्का खिलाया जाता है अथवा अन्य औषधद्रव्योंके साथ फाँट वा क्वाथ कल्पना करके पिलाया जाता है। रेचन द्रव्योंके साथ योग करनेसे यह उनके कर्ममें सहायक होता है। व्रणशोथके पाचन और विलयनके लिए इसका लेप लगाया जाता है। यह व्रणलेखन भी है, इसलिए दुष्टव्रण आदिमें इसका पतला लेप लगाते हैं। इसे भूनकर गरम-गरम खानेसे कफज कास आराम होता है। बीज संग्राही होनेसे अतीसारघ्न है, तथा स्निग्ध अंत्रामाशयको बल प्रदान करता है। **अहितकर**—वृक्कके लिए। **निवारण**—सिकंजबीन और पोस्ताके दाने (खशखाश)। **प्रतिनिधि**—किशमिस। **मात्रा**—९ दानेसे ११ दाने तक।

किसमिस—

नाम—(हिं०; म०; गु०; ते०) किसमिस; (अ) मवीज़ बेदाना; (फा०) किशमिश, अंगूर बेदाना; (अरबीकृत) क़िश्मिश; (अं०) रेज़िन्स (Raisins), सुल्टानाज (Sultanas)।

वर्णन—यह पककर सूखा हुआ बीजरहित क्षुद्र अंगूर है। रंगके विचारसे यह कई प्रकारका होता है, उनमें सर्वश्रेष्ट हरा किसमिस है। यही औषधमें काम आता है।

कल्प तथा योग—अतरीफल किशमिशी।

प्रकृति—समस्निग्धोष्णता लिए हुए उष्ण एवं स्निग्ध। मतांतरसे दूसरे दर्जेमें उष्ण और पहले दर्जेमें रूक्ष।

गुण-कर्म—जीवनीय (कसीरुल्गिज़ा), सौमनस्यजनन, हृदयबलदायक, ग्रंथिविलयन, लेखनीय, वाजीकर, उर:संशोधनकर्त्ता, मार्दवकर तथा मस्तिष्कबलदायक (मेध्य) और यकृद्बलदायक।

उपयोग—किसमिस पुष्टिकर आहारद्रव्यकी भाँति प्रचुर उपयोगमें आता है। यह अत्यंत पुष्टिकर और वृंहणीय है; फिर भी मृदुसारक है। सौमनस्यजनन और हृद्य होनेके कारण हृदयदौर्बल्य तथा दिलकी धड़कनमें प्रयुक्त किया जाता है। इसके लिए ४० दाने हरे किसमिस गुलाबपुष्पार्कमें रातको भिगो दें और प्रातःकाल किसमिस खाकर ऊपरसे अर्कगुलाब पी जावें। व्रणदारण और ग्रंथिविलयनके लिए इसको केसर, अंडेकी ज़र्दी और कुसुमके साथ पीसकर लेप करते हैं। लेखनीय होनेके कारण इसको एलुआके साथ पीसकर शिरोगत गंजपर लगाते हैं। उरोविशोधक होनेके कारण स्वरशुद्धि और कासके लिए इसका उपयोग करते हैं। अहितकर—उष्ण प्रकृति और वृक्कको। **निवारण**—सिकंजबीन, खशखाश, उन्नाब और सौंफ। प्रतिनिधि—मुनक्का (बीजरहित)। **मात्रा**—(आहारार्थ) जितना पच सके; (औषधार्थ) १ तोला तक।

●

(२) रीछदाख (इनबुद्दुब)।

फ़ैमिली : एरीकासे (Family : Ericaceae).

नाम—(हिं०) रीछ दाख; (अ०) इनबुद्दुब; (फा०) अंगूरे ख़िरस; (सं०) आर्क्ष (ऋक्ष) द्राक्षा; (ले०) आर्क्टोस्टेफिलॉस ऊवी ऊर्सी (**Arctostaphylos uvae ursi** Spreng); (अं०) ऊवा अर्सी (Uva ursi), बियर्ज ग्रेप (Bear's Grape), बियर बेरी (Bear Berry)।

वक्तव्य—इसकी लेटिन संज्ञा इसके वृक्षकी है जिसे अरबीमें "आबिस" कहते हैं। आर्क्टोस्टेफिलॉस यूनानी शब्दका अर्थ (अर्क्टोस = रीछ, स्टेफिला = अंगूरका गुच्छा) 'रीछदाख' है और यही अर्थ क्रमशः इसकी लेटिन और अंग्रेजी संज्ञा 'ऊवा ऊर्सी (ऊवा = अंगूर, ऊर्सी = रीछ)' तथा अंग्रेजी 'बियर बेरी' या 'बियर्स ग्रैप' और अन्य अरबी इनबुद्दुब (इनब = अंगूर, दुब = रीछ) तथा फारसी एवं संस्कृत आदि संज्ञाओंके हैं।

जालीनूसने इस उद्भिदका उल्लेख किया है जिससे ज्ञात होता है, कि अतिप्राचीनकालसे यूनानी चिकित्सकोंको इस औषधिका ज्ञान था।

उत्पत्तिस्थान—उत्तरी अमरीका, मध्य और उत्तर यूरोप और एशिया।

वर्णन—एक सदाहरित क्षुप जो यूनानी निघंटुग्रंथोंके मतसे नर एवं मादा भेदसे दो प्रकारका होता है। पत्र चर्मवत्, हरापन लिए पीले, अभिलट्वाकार या अभिप्रासवत् (Obovate or oblanceolate) सिरेकी ओर गोल, ऊपरी पृष्ठ गहरा हरा, स्वच्छ एवं चमकीला और धँसी हुई सिराकोंके छोटे-छोटे चतुर्भुजोंसे निर्मित, अधः पृष्ठ पांडुर अर्थात् हलके रंगका, किंतु उस पर गहरे रंगकी छोटी-छोटी शिराओंका जाल बना होता है। पत्रप्रांत अखंड और पीछेकी ओर मुड़ा हुआ, लगभग ३/४ इं० लंबा और १/४ - ३/८ इं० चौड़ा; स्वाद कषाय; गंध—मंद, चायवत् होती है। सनायकी पत्तियाँ कुछ-कुछ इससे सादृश्य रखती हैं।

उपयुक्त अंग—फल और मूल; आधुनिक पाश्चात्य वैद्यकमें **पत्र**।

रासायनिक संगठन—पत्रमें आइसोक्वर्सिटिन (Iso-quercitin) जिसका १ १००,००० का घोल प्रबल मूत्रल है; एर्ब्युटिन (Arbutin) ७·५-१०·७ प्रतिशत और मीथिल-एर्ब्युटिन होता है।

प्रकृति—तर, पहले दर्जेके अंतमें शीतल एवं रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—नरका फल खानेसे रक्तष्ठीवन बंद होता है। इसको सुखा-पीसकर फाँकनेसे चिरज अतिसार आराम हो जाता है। इसकी जड़ बहुत रूक्षता उत्पन्न करती है, दोषोंका शोषण (माद्देको जज़्ज) करती और सूजन उतारती है। पशुचिकित्सक (सलोतरी) इसे पशुओंकी सूजनके ऊपर लगाते हैं, जिससे वे पककर फूट जाते और फिर अच्छे हो जाते हैं।

नव्य मत—

कल्प—हिम वा फाण्ट : १ पाइंट (लगभग १॥ पाव) उबलते पानीमें २॥ तो० पत्र। **मात्रा**—२ तो० दिनमें ३-४ बार; तरलसार : मात्रा, १/२ - १ ड्राम।

गुण-कर्म तथा उपयोग—पिच्छिल, कषाय और मूत्रल तथा कोथप्रतिबंधक। मूत्रावयवोंपर इसका अचूक प्रभाव होता है और बस्तिवृक्काश्मरि, बस्तिवृक्कस्थव्रण, प्रसेक, जीर्ण सूजाक (Gleet), श्वेत प्रदर (श्लेष्मलायोनि) और अतिरज (रक्तप्रदर) इन अवस्थाओंमें विशेषरूपसे गुणकारी है। मूत्रावयवोंकी श्लेष्मलकलापर इसका संग्राही और कोथप्रतिबंधक प्रभाव होता है तथा इसका उक्त प्रभाव इसमें पाये जानेवाले एर्ब्युटीन नामक कार्मुक वीर्यपर निर्भर करता है जो कि वृक्कपथसे उत्सर्गित होते समय हाइड्रोक्वीनोनमें, जो एक प्रबल कोथप्रतिबंधक द्रव्य है, परिणत हो जाता है। एर्ब्युटीन स्वयमेव एक वीर्यवान् मूत्रल औषधि है। इसके प्रयोगसे गंभीर हरियाली लिए भूरे रंगका मूत्र आने लगता है अर्थात् वैसाही जैसा कि कार्बोलिकाम्लजनित विषमें भी मूत्रमें हाइड्रोक्वीनोन पाई जाती है। एर्ब्युटीन का प्रमाण इतना अल्प होता है, कि इससे किंचित् लाभकी आशा नहीं हो सकती और यदि इसके फाण्टको तीव्र बनाया जाय तो इसमें उन वीर्योंकी राशि जो माजूफलमें होते हैं, अधिक हो जाती है जिससे पाचन बिगड़ने की संभावना होती है; क्योंकि ये उभय वीर्य इसमें ३३ प्रतिशत होते हैं। अस्तु, रीछदाखके पत्रकी अपेक्षया केवल अर्ब्युटीनका उपयोग उत्कृष्टतर है। सुतरां इसको २॥ से ५ रत्तीकी मात्रामें चूर्ण रूपमें या पानीमें घोलकर दिन-रातमें दो-तीन बार देवें।

(३) अंजबार।

फैमिली : पॉलीगोनासे (Family : Polygonaceae)

नाम—(अ०) अंजबार, अंजि(-जु)बार; (ले०) पालीगोनुम् बीस्टॉर्टा (**Polygonum bistorta** Linn.); (अं०) एल्पाइन नॉट-बीड (Alpine Knot-weed), बिस्टोर्ट (Bistort), इंग्लिश सर्पेण्टरी (English Serpentary), ड्रैगनवर्ट (Dragon Wort), स्नेक-वीड (Snake-weed)।

उत्पत्तिस्थान—यह तबरिस्तान और श्यामदेशमें नहरों और नदियोंके किनारे तथा झीलोमें उत्पन्न होता।

वर्णन - एक क्षुद्र वनस्पति, दो गज़ ऊँची, शाखाएँ पतली और ललाई लिए, फूलभी लाल; फूल झड़जानेके उपरांत छोटी-छोटी फलियाँ प्रगट होती हैं, जिनमें सूक्ष्मबीज भरे होते हैं। इसकी जड़ गहराईमें होती है। यह लगभग ५ सें० मी० (२ इंच) लंबी, १·५ सें० मी० ($\frac{३}{८}$ इंच) चौड़ी, अँगरेजी एस् (S) अक्षरकी भाँति दोबार मुड़ी हुई, लाल-भूरी, ऊपरी धरातल पर दबी हुई या नालीदार और आड़े रुख धारीदार, उन्नतोदर और नीचे दबे हुए मूलक्षतचिह्नयुक्त; खंड छोटा, ललाई लिए हल्का भूरा या कालाई लिए लाल; छाल मोटी, काष्ठीयवेजवलय (Ring of woody wedges) छोटा, छालके इतने मोटे मज्जा (Pith) को आवेष्ठित किए होता है। उक्त जड़ स्वादमें कसैली होती है; किंतु इसमें कोई विशिष्ट गंध नहीं पायी जाती। इसीकी एक निकटतम जाति **पॉलीगोनुम् विविपारुम् (Polygonum viviparum** Linn.) पंजाबमें इसके प्रतिनिधिस्वरूपमें व्यवहृत होती है, जिसे वहाँ मस्लून, बिल्लौरी और **मामेख** आदि नामोंसे पुकारते हैं। इसके लिए भी वही अरबी नाम व्यवहृत होते हैं, जो अंजबारके लिए हैं। बाज़ारू **अंजुबारे रूमी** का आयात यहाँ फारससे होता है।

उपयुक्त अंग—जड़, जड़की छाल, पोस्त बेख़अंजबार और जड़के रेशे (रेशे बेख़अंजबार–लहाएबेख़ अंजबार)।

वक्तव्य—मांसरोहिणीकी छाल, अंजबारकी जड़की छालका उत्तम प्रतिनिधि द्रव्य (Substitute) है।

रासायनिक संगठन—पॉलीगोनिक एसिड (Polygonic acid), टैनिक एसिड (Tannic acid), गैलिक एसिड (Gallic acid), स्टार्च और कैल्सियम् आक्ज़ेलेट।

कल्प तथा योग—शर्बत अंजबार (सादा व मुरक्कब), लऊक अंजबार और कुर्स अंजबार।

प्रकृति—प्रथम (लखनऊके हकीमोंके मतसे तृतीय) कक्षामें शीत एवं रूक्ष।

गुण-कर्म—शीतसंग्राही, रक्तस्तंभन, अंत्रामाशयबलप्रद, पित्त और रक्तप्रकोपसंशमन।

उपयोग—शीतसंग्राही होनेके कारण चिरज अतिसारों (चाहे रक्तज हों या न हों)के लिए परम गुणकारी है। इसका संग्रहण (कब्ज) कर्म किसी प्रकार अहितकर नहीं है। शीतसंग्राही होनेके साथ ही यह रक्तस्तंभन भी है, इसलिए रक्तस्राव बंद करनेके लिए यह बहुत प्रयुक्त होती है। रक्त प्रवाहिका, रक्तातिसार, रक्तमूत्र और पूयमेहमें इसका पुष्कल उपयोग होता है। यह उरःक्षतके लिए भी लाभकारी है। संग्राही होनेके कारण कंडरावितान (मोच), पेशियोंके कुचल जाने और उनके छेद-भेदमें इसका प्रलेप लाभकारी है। पित्तसंशमन होनेके कारण यह वमन और मिचलीकोभी रोकती है। क्षतोंपर इसका महीन चूर्ण बुरकनेसे उनसे रक्त बहना बंद हो जाता है और घाव शुद्ध हो जाता है। रक्तातिसार और रक्तप्रवाहिकामें यह विशेष गुणकारी है। **अहितकर**–शीतप्रकृतिके लोगोंको। **निवारण**–सोंठ और शुद्ध मधु। **प्रतिनिधि**–हब्बुल्आस। **मात्रा**–३ माशासे ५ माशा तक।

नव्यमत—**जोसेफ मिलर** मूत्रातीत रोगमें इसकी जड़-सेवनकी अभ्यर्थना करते हैं। **जिरार्डके** मतसे नासार्श में इसका स्वरस नाकमें डालनेसे उपकार होता है। **कुल्पेपर** कहते हैं कि इसकी जड़ थोड़े प्रमाणमें अकरकरा और फिटकिरीके लावाके साथ पीसकर कल्क बना और थोड़ा शहद मिलाकर इसमेंसे थोड़ा लेकर दाँतके कोटरमें और

कोटर न रहने पर दाँतोंके बीचमें रखनेसे मुखसे लार टपकना और दाँतोंका दर्द आराम होता है तथा शिरःशुद्धिमें इससे सहायता मिलती है। (पा० न्यू-सा० पृ० ३८)।

●

(४) अंजरूत।

फ़ैमिली : लेगूमिनोसे (Family : Leguminosae).

नाम—(अ०; फा०) अंज़रूत (इ० बै०); (हिं०) लाइ, लाही; (अ०) कोहल फारसी (पारस्यांजन), कोहल किरमानी (किरमाण्यंजन); (बम्ब०) गूजर (फारसी "गूज़द" का अपभ्रंश); (ले०) **आस्ट्रागलुस सार्कोकोला (Astragalus sarcocola** Dymock).

उत्पत्तिस्थान—फारस और तुर्किस्तान।

वर्णन—यह शाइका नामक कँटीले वृक्षका गोंद है। इसके संहतिभूत दाने होते हैं जो सहज़में ही खंडित एवं चूर-चूर हो जाते हैं। यह अपारदर्शक, अर्धस्वच्छ, निर्गंध और मिठास लिए अत्यन्त तिक्त होता है तथा गहरे लालसे पिलाई लिए सफेद अथवा भूरे रंगमें बदलता रहता है। गरम करनेसे यह फूलता है और जलते समय इसमें-से जली चीनीकी गंध आती है। बम्बईमें इसका आयात बुशहरके पारस्य बंदरगाहसे होता है। यह भारतवर्षमें आयात द्वारा प्राप्त औषधद्रव्योंमेंसे सर्वाधिक प्रमुख द्रव्य है; क्योंकि यह उस लेपका[1] एक प्रधान उपादान है, जिसका उपयोग रूईके साथ पारसी अस्थिस्थापनकर्त्ता (Bone-setters) अस्थिभंग वा कंडरावितान (मोच) तथा निर्बल संधियोंपर भी उनको सहारादेनेके लिये करते हैं। कतीरा इसीके एक अन्य जातीय वृक्षका गोंद है।

उपयुक्त अंग—गोंद (अंजरूत)।

रासायनिक संगठन—सार्कोकोलीन ६५·३०, निर्यास ४·६०, सरेशी पदार्थ ३·३० और काष्ठमय द्रव्य आदि २६·८०। सार्कोकोलीन ४० भाग शीतल जल और २५ भाग उबलते हुए जलमें विलेय होता है। सुरासारमें हर अनुपातमें विलेय है।

प्रकृति—(लखनऊके हकीमोंके मतसे दूसरी कक्षामें) उष्ण एवं रूक्ष।

गुण-कर्म—कफरेचन, वातानुलोमन, पिच्छिल (मुग़र्री), व्रणलेखन-रोपण और श्वयथुविलयन (मुहल्लिल)।

उपयोग—अंज़रूतको व्रणोपशोषण (व्रणको सुखानेवाले) मरहमोंमें डालते हैं। यह व्रणोंके दूषित द्रवोंको सुखाकर उन्हें शीघ्र अच्छा कर देता है। मधुसे लत की हुई कपड़े वा सूतकी बत्तीपर इसका चूर्ण बुरककर कानके भीतर रखनेसे कर्णगत व्रण अच्छा होता है। इसे प्याजके भीतर रखकर पकालेनेके बाद उस प्याजका रस निचोड़कर कानमें डालनेसे कर्णशूल आराम होता है। नेत्राभिष्यंद, नेत्रकण्डू, पक्ष्मशात और नेत्रशुक्ल (फूली) प्रभृति नेत्ररोगोंमें इसका विविध-प्रकारसे उपयोग करते हैं। संधिशूल (आमवात) और गृध्रसीमें कफको रेचन द्वारा निकालनेके लिए इसका आभ्यंतर उपयोग करते हैं। लखनऊवाले मसूढ़ोंको शक्ति देने तथा उनके द्रवशोषण के लिए भी इसका उपयोग करते हैं। अहितकर—अन्त्रको। निवारण-कतीरा और बादामका तेल। मात्रा—$\frac{१}{२}$ से १ ग्राम ($\frac{१}{२}$ माशासे १ माशा) तक।

●

---

[1] लेपका साधारण योग यह है : अंजरूत ९ भाग, जदवार १ भाग, एलुआ १६ भाग, फिटकिरी ८ भाग, मैदालकडी ४ भाग, गूगल ४ भाग, लोबान ७ भाग, आँबाहलदी ७ भाग, और डसारेरेवंद १२ भाग—इनको कूट-छानकर महीन चूर्ण बनायें। फिर सिल-बट्टापर जलके साथ पीसकर लेप प्रस्तुत करें। (डीमक भा० १ पृ० ४७६)।

(५) अंजीर ।

फ़ैमिली : मोरासे (Family : Moraceae).

नाम—(फा०; हिं०) अंजीर; (फा०) अंजीर वलायती; (अ०) तीन; (सं०) फल्गु (च०; सु०); (ले०) फ़ीकुस कारिका (**Ficus carica** Linn.); (अं०) फिग (Fig) । लेटिन नाम वृक्ष का है ।

उत्पत्तिस्थान—इसका आदि उत्पत्तिस्थान सीरिया (एशियामाइनर), फारस और फिलस्तीन है । अब यह यूरूपमें बस गया है और भारतवर्षके कश्मीर तथा बलूचिस्तान और अफ़गानिस्तान आदि देशोंमें प्रचुरतासे पाया जाता है ।

वर्णन—यह गूलरजातीय एक वृक्षका प्रसिद्ध फल है । स्वरूपमें यह गूलरके समान, मीठा और अत्यंत स्वादिष्ट होता है । मालामें गुथे हुए इसके पके-सुखाये हुए फल अफगानिस्तान आदिसे हिंदुस्तानमें बहुत आते हैं । यह हिंदुस्तानी अंजीरों (जंगली अंजीर या अंजीरी—**Ficus palmata** Forsk.)से उत्तम होते हैं । विलायती और हिन्दी, बागी, जंगली और पहाड़ी आदि स्थानभेदसे, सफेद, लाल (तीने अहमर) और काला आदि रंगभेदसे अंजीर नाना प्रकारका होता है । इनमें सफेद और लाल खानेके लिए और काला औषधके लिए ग्रहण करना चाहिए । इनमें मधुर और परिपुष्ट फल सर्वोत्तम होता है । इसका एक भेद शाह अंजीर है जो बहुत गुदार एवं मधुरस्वरससे परिपूर्ण होता है ।

उपयुक्त अंग—गुदार, मधुर, गोल कर्णिका या पुष्पाधार जिसे प्रायः फल समझा जाता है ।

रासायनिक संगठन—ताजा फलमें द्राक्षशर्करा ६२ प्रतिशत, निर्यास, वसा और लवण होता है । शुष्कफलमें शर्करा, वसा, पेक्टोज, निर्यास, ॲल्ब्युमिन और लवण होता है ।

कल्प तथा योग—शर्बत अंजीर ।

प्रकृति—प्रथम कक्षामें उष्ण और द्वितीयमें तर (लखनऊवालोंके मतसे पहले दर्जेमें गर्म व तर); आयुर्वेद-मतसे शीतवीर्य (च०; सु०) है ।

गुण-कर्म—दोषमार्दवकर, कोष्ठमृदुकर (मुलय्यिन शिकम), दोषपाचन, स्वेदन, कफोत्सारि और मूत्रल ।

उपयोग—अंजीरको मेवेकी तरह खाया जाता है और औषधकी भाँति भी उपयोग किया जाता है । अंजीर अत्यंत पुष्टिकर जीवनीय मेवा है । इसलिए यह शरीरको परिबृंहित करता और रंगको निखारता है । शारीरिक दोषोंके पाचन एवं कब्जनिवारणके लिए तथा श्वास-कासमें कफोत्सर्गके लिए इसका उपयोग करते हैं । यह स्वेदन है और शारीरिक मलोंको बाहरकी ओर उत्सर्गित करता है; इसलिए मसूरिकारोगमें इसका उपयोग होता है । यह दोषोंको बहिरोन्मुखो करके तीव्र संताप और व्यग्रताको घटाता है । यकृत्प्लीहाके अवरोधोद्घाटनार्थ एवं प्लीहाकी सूजन उतारनेके लिए भी इसका पुष्कल उपयोग करते हैं । व्रणशोथपाचनके लिए इसका लेप लगाते हैं । अखरोटके साथ खानेसे यह उत्तम वाजीकरण प्रभाव करता है । मोतीझरा (आन्त्रिक सन्निपात ज्वर) और मसूरिका आदिमें दानोंको प्रकट करनेके लिए इसका उपयोग कराते हैं । अहितकर—आमाशय और यकृत् को । निवारण—सिकंजबीन । प्रतिनिधि-गुठलीरहित मुनक्का । मात्रा—दो-तीन दाना ।

आयुर्वेदीय मत—मधुर, गुरु, तर्पण, बृंहण और विष्टंभि है (च०; सु०) ।

नव्यमत—अंजीर स्नेहन और स्रंसन है । सूखे अंजीर स्नेहन, कफघ्न और आनुलोमिक हैं । आनाह और मधुमेहमें सूखे अंजीर खानेको देते हैं ।

(६) अंजीर जंगली ।

फ़ैमिली : मोरासे (Family : Moraceae)

नाम—(हिं) कठगूलर; कठूमर (री), जंगली अंजीर; (अ०) तीन बर्री; (फा०) अंजीर दश्ती; (सं०) काकोदुम्बरिका, मलपू; (बं०) काकडुमुर; (म०) भुई उम्ब्ररा, वोरवाडा; (गु०) ढेड़ उम्बरी; (ले०) फीकुस हिस्पीडा (**Ficus hispida** Linn. f.)। (पर्याय-*F. oppositifolia* Willd.)।

उत्पत्तिस्थान—भारतवर्षमें यह चनाब नदीसे पूरबकी ओर तथा बंगाल, मध्यभारत, दक्षिण भारत, उत्तर-प्रदेश और राजपुताना आदिमें होता है।

वर्णन—इसका वृक्ष ६० फुट तक ऊँचा या झाड़ी जैसा होता है। इसके पत्र खर तथा अंजीरके पत्रके समान, किंतु उनसे छोटे होते हैं। इसके फलभी अंजीरके समान, किंतु उनसे छोटे एवं फीके होते हैं।

रासायनिक संगठन—इसमें एक साबुन जैसा पदार्थ है जिससे वमन होता है।

उपयुक्त अंग—वृक्षकी जड़की छाल, फल और दूध।

मात्रा—फल १/२ से १ नग; छाल २०—३० रत्ती।

प्रकृति—अंजीरसे अधिक उष्ण एवं रूक्ष। आयुर्वेदमतसे मलपू शीतवीर्य (भा० प्र०) है।

गुण-कर्म—रक्तशोधक, तीव्र रेचन, लेखनीय और आग्नेय।

उपयोग—रक्तशोधक एवं तीव्र विरेचन होनेके कारण इसकी जड़की छाल पीसकर खिलाने और लगानेसे किलास आराम हो जाता है। इसीलिए दवाएबर्स एवं ज़िमादेबर्स का एक उपादान यह भी है। इसका दूध दद्रु, तिल और मस्सों पर लगानेसे व्रण उत्पन्न करके उनको अच्छा कर देता है। शिरोव्रणमें कच्चे जंगलीअंजीरका चूर्ण अवचूर्णन करते और सिरकाके साथ उसका लेप लगाते हैं। पके जंगली अंजीरका लेप लगानेसे कंठमाला आराम हो जाती है। मात्रा—छाल २ माशासे ५ माशा तक।

आयुर्वेदीय मत—सुश्रुत (चि० अ० ९)में लिखा है कि श्वित्रवालेको गूलर और कठगूलरके मूलका सुखोष्ण काढ़ा पिलाकर धूपमें बैठानेसे श्वित्रमें विस्फोट (छाले) उठेंगे। उनको फोड़कर उसपर चीते या हाथीका जलाया हुआ चमड़ा तेलमें मिलाकर लेप करें। इससे श्वित्र अच्छा होता है।

नव्यमत—फल वामक और विरेचक है। छाल नियतकालिकज्वरप्रतिबंधक और स्तम्भन। अल्पमात्रामें पौष्टिक और बड़ी मात्रामें वामक और विरेचक है। मात्रा–फल १/२ से १ नग, छाल २०-३० रत्ती।

●

(७) अंजुरा ।

फ़ैमिली : ऊर्टिकासे (Family : Urticaceae).

नाम—(यू०) अकालूफी Akaluphe (D.4.92); (अ०; फा०) अंजु(ज)रः (इ० बै०); (अ०) करीज़ (स), करीजुल् कल्ब, मुर्जरिबुल् कलाब, नबातुन्नार; (ले०) ऊर्टिका पिलूलिफेरा (**Urtica pilulifera** Linn.), ऊर्टिका प्रीमा (U. prima Math.); (अं०) दी रोमन नेट्ल (The Roman Nettle).

उत्पत्तिस्थान एवं वर्णन—एक उद्भिज्ज जो प्रतिवर्ष जाड़ोंमें फूटता है और रबीमें खूब जोर पकड़ता है। यह ९० सें० मी० (एक गज) ऊँचा होता है। इसके यह दो भेद हैं—उद्यानज (बुस्तानी) और वन्य (सहराई)।

इनमें उद्यानज (बागी)का कांड चौकोर एवं पोला होता है। पत्ते पर रोआँ और नन्हें-नन्हें काँटे होते हैं। कांडपर भी काँटे होते हैं, किंतु वे तेज और उभरे होते हैं। शरीरसे स्पर्श होनेपर यह दाह, सुर्खी और खुजली उत्पन्नकर देता है। फूल पीला; बीज चौड़े और चपटे मसूरके दानोंकी तरह मसृण तथा चमकीले और श्यामता लिए (भूरे) होते हैं। अन्य मतसे इसके बीज तिलके दानोंसे बड़े और अलसीके बीजोंकी तरह होते हैं। भारी और स्याही मायल (भूरे) बीज प्रशस्ततर होते हैं। स्वरूपमें जंगली भेद भी इसीके समान होता है, किंतु उसके पत्ते इसकी अपेक्षया अधिक चौड़े होते हैं। एक **तीसरा भेद** और भी है, जिसका कांड कालाई लिए लाल होता है। इनमें दूसरे भेदके केवल बीज औषधके काममें लिए जाते हैं।

उपयुक्त अंग—बीज और पत्र।

प्रकृति—द्वितीय कक्षामें उष्ण एवं रूक्ष। बीजोत्थ तेल प्रथम कक्षामें उष्ण और द्वितीय कक्षामें तर (स्निग्ध)।

गुण-कर्म—विष, रेचन, अत्यंत आकर्षणकारी (जाज़िब), व्रणजनन, आग्नेय, प्रबल ग्रंथिविलयन, आर्तवजनन, स्तन्यजनन, मूत्रजनन और यकृत्प्लीहाके अवरोधोंका उद्घाटनकर्ता है।

उपयोग—अंजूराके पत्ते शरीरमें लगानेसे जलन, खुजली और ललाई उत्पन्न हो जाती है। सिरकेमें इसकी राख मिलाकर लगानेसे ग्रंथि और कंठमाला विलीन होती और कर्कटार्बुद (सरतान-कैंसर)भी आराम होता है। इसके बीज पीसकर मधुके साथ चाटनेसे श्वासरोगमें बहुत उपकार होता है। यह अश्मरीनाशक है। इसके बीजोंकी गिरी पीसकर फाँकनेसे हलका रेचन होता है। किंतु इसके ऊपर थोड़ासा गुलरोगनभी पीना चाहिए, जिसमें कंठमें दाह उत्पन्न न हो। बीजोंको पीसकर मधुमें मिलाकर गुदामें इसकी वर्ति धारण करनेसे मलोत्सर्ग हो जाता है। १०॥ माशासे अधिक इसका सेवन घातक हैं। इससे काँदाके समान विषलक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। बीजोत्थ तेल सभी गुणकर्मोंमें बीजोंसे बलवत्तर है, विशेषतः परम वाजीकरण है और रेचनभी बीजोंसे अधिक है। **अहितकर**—अन्त्र, आमाशय, गुदा, वृक्क एवं यकृत् को। अधिक खानेसे खाँसी पैदा करता है। **निवारण**—यकृत्, वृक्क तथा अन्त्रामाशयके लिए बबूलका गोंद और कतीरा जैसा लबाबदार द्रव्य; गुदाके लिए उन्नाब; खाँसी के लिए शर्बत बनफशा। **प्रतिनिधि**—गंदना, हालों, कालादाना, कड़। **मात्रा**—१॥ ग्रामसे २। ग्राम (१२ रतीसे २। माशा) तक गरम पानी और मधुसे।

(८) अकरकरा।

फैमिली : काम्पोज़िटी (Family : Compositae).

नाम—(हि०) अकरकरा, करकरा; (यू०) पुरेथ्रोन Purethron (D.3.178); (अ०) आक़रक़र्हा (इ० बै०), ऊदुल्क़र्ह; (फा०) बेख़तर्ख़ूनकोही; (सं०) आकारकरभ, आकल्लक; (म०) अक्कलकरा; (गु०) अक्कलकरो; (लें०) पीरेथ्रुम् रैडिक्स (Pyrethrum radix); (अं०) पेलिटरी ऑफ स्पेन (Pellitory of Spain), पेलिटरी रूट (Pellitory Root).

वक्तव्य—उपर्युक्त सभी नाम उपयुक्त अंगके हैं। ''आक़रक़र्हा'' अरबी अ़क़्र (=काटना) और तक़रीह (=ज़ख़्म डालना)से व्युत्पन्न हैं। ''ऊदुल्क़र्ह'' का अर्थ ''व्रणकारक काष्ठ'' है। ''पीरेथ्रुम्'' यूनानी पायरोस् (Pyros =अग्नि)से व्युत्पन्न है। अकरकराका स्वाद दाहकारक होता है, इसलिए इसको उक्तनामसे अभिहित किया गया है। मालायस्अ ग्रंथके रचयिता विद्वद्धर ''ज़रजानी''के मतसे यह नब्ती संज्ञा है। परन्तु कतिपय अन्य संकलनकर्ताओंके

विचारसे यह अरबी संज्ञा है और "अक़्र" व "तक़रीह"से व्युत्पन्न है तथा इसके गुणकर्मभी इसकी पुष्टि करते हैं। इसलिए इसको "ऊदुल्क़र्ह" भी कहते हैं।

इतिहास—यूनानी हकीम दीसक़ूरीदूसने "पाइरेथ्रोन"के नामसे, जिससे 'पीरेथ्रुम्' शब्द व्युत्पन्न है (तथा जिसको **मुहीतआज़ममें** "फोरियून" लिखा है) इस ओषधिका उल्लेख किया है। परन्तु **मख्ज़नुल् अद्विया**के लेखक **हकीम मुहम्मद हुसेन**के कथनानुसार इसको अरबीमें **"ऊदुलक़र्ह जबली"** कहते हैं और यह श्यामदेशमें पुष्कल उत्पन्न होता है और आकारकर्हाका स्थानापन्न है। परंतु हकीम **अंताकी**के अनुसार आकारकर्हा दो प्रकारका होता है—(१) एक दीसकूरीदूस द्वारा उल्लिखित **श्यामदेशीय** और (२) **पश्चिमीय**, जो पश्चिमी देशों तथा अफरीकामें पैदा होता है। इस उद्भिज्जकी आकृति एवं पत्र, शाखा और पुष्प (अर्थात् सर्वांग) श्वेतपुष्पीय बाबूनाकबीरके समान होते हैं। परंतु इसके फूल पीले रंगके होते हैं। इसीकी जड़को "अक़रक़र्हा मग़रबी" कहते हैं जो वस्तुतः स्पेन-देशीय बाबूनाकी जड़ है, जिसका वैज्ञानिक नाम **आन्थेमिस पीरेथ्रुम् (Anthemis pyrethrum)** अर्थात् बाबूनज नारी या स्पैनिश कैमोमाइल (Spanish Chamomile) अर्थात् स्पेनीय बाबूना है। प्राचीन भारतीय चिकित्सकोंने इस औषधिका उल्लेख नहीं किया है। कदाचित् अंतिम मध्यकालीन आयुर्वेद विशारदों, यथा—शार्ङ्गधर, भावमिश्र आदिने इस्लामी वैद्योंके आधारपरही अपनी रचनाओंमें इसका वर्णन किया है।

उत्पत्तिस्थान—भूमध्यसागरीय देश, उत्तरी अफरीका, अलजीरिया और लीवांट तथा अरब, भारतीय उद्यान और वंगदेश।

वर्णन—यह बाबूनाजातीय एक क्षुद्र वनस्पतिकी जड़ है, जिसको वैज्ञानिक परिभाषामें अनासीक्लुम पीरेथ्रुम् (**Anacyclus pyrethrum D.C.**) वा आन्थेमिस पीरेथ्रुम् (*Anthemis pyrethrum* Linn.) और अँगरेजीमें स्पैनिश कैमोमाइल (Spanish Chamomile) कहते हैं। उपर्युक्त समस्त नाम इसीकी जड़के हैं। यह जड़ ही औषधके काममें आती है और बाजारमें मिलती है। यह सीधी, तंतु (उपमूल)रहित, ७.५ सें० मी० से १० सें० मी० (३-४ इंच) लंबी; १.२५ सें० मी० से १.८७ सें० मी० (आधसे पौन इंच) मोटी, बेलनाकार गोल होती है। इसके ऊपरके किनारे पर प्रायः रंगरहित रोमोंकी एक चोटी-सी होती है। इसका बाहरी भाग मटियाले रंगका एवं झुर्रीदार होता है। इसको जहाँसे तोड़ें वहींसे टूट जाती है। गंध विशेष प्रकारकी होती है। इसे खानेसे गरमी मालूम होती है। यह चरपरी लगती है और इससे जीभ जलने लगती है। यही इसकी मुख्य पहिचान है। इसको चबानेसे मुँहमें लालास्राव होने लगता है और संपूर्ण मुख एवं कंठमें चुनचुनाहट एवं काँटेसे चुभते मालूम होते हैं। यह वजनी (भारी) और तोड़ने पर भीतरसे सफेद होती है। इसमें शीघ्र कीड़े लग जाया करते हैं। सर्वोत्तम अकरकरा वह है जो कड़ा, अत्यंत चरपरा, तोड़ने पर भीतरसे सफेद और उँगलीके बराबर मोटा हो। सात वर्ष तक इसमें औषधीय वीर्य रहता है।

रासायनिक संगठन—इसमें पायरेथ्रीन (Pyrethrine–आकरकर्भीन) नामक एक स्फटिकीय ऐल्केलॉइड, राल (Resin), दो स्थिर तेल (Fixed oils) और पीले रंग का उत्पत् तेल—ये सत्व होते हैं।

प्रकृति--तीसरे दर्जेमें उष्ण एवं रूक्ष है। आयुर्वेदके मतसे उष्णवीर्य (भा० प्र०) है।

गुण-कर्म--मस्तिष्कको मलोंसे शुद्ध करनेवाला, कफछेदनीय, क्वचित् स्वापजनन, प्रमाथी (अवरोधोद्घाटक), कफ-संशोधन, दोषोंको उत्तप्त करनेवाला, वाजीकर (भक्षण करने वा पतला लेप लगानेसे), लालाप्रसेकजनन और आर्तवजनन है।

उपयोग--मस्तिष्कको मलोंसे शुद्ध करनेवाला, कफसंशोधन और उष्णताजनन होनेके कारण अकरकरा अर्दित, पक्षवध, अंगघात, कंपवात, अपतानक (कुजाज) और मृगी प्रभृति शीतल कफजव्याधियोंमें उपयोग किया जाता है; वाजीकर माजूनों तथा गोलियोंमें डाला जाता है तथा अकेला भी मधुके साथ खिलाया जाता है। वाजीकर तिलाओं (पतले लेपों)में यह अकेला वा संमिश्ररूप (योगों)में प्रयुक्त होता है। यह कामोद्दीपन करता है और इंद्रीको पुष्ट एवं दृढ़ बनाता है। स्वापजनन होनेके कारण वीर्यस्तंभन भी करता है। लालाप्रसेकजनन और किंचित्स्वापजनन

होनेके कारण दंतशूल, गलशुंडिका (इस्तिरखाऽलहात) और कंठप्रकोप (खुनाक)में मंजनादिके रूपमें इसका उपयोग करते हैं अथवा दूषित दाँतपर अकरकराका टुकड़ा रखकर उसको दबा लेते हैं। इससे लार बहकर थोड़ी देरमें दर्द जाता रहता है। शीतल कफज जीर्णकासमें इसे मधुमें मिलाकर चटाते हैं। जिह्वास्तंभ, कफज हकलापन (लुकनत) और कफजस्वरभेदमें इसको पीसकर जिह्वा, मुख और कण्ठके भीतर मलते हैं। इससे अत्यंत लार बहकर रोग दूर हो जाते हैं। हस्त-पाद या किसी अन्य अंगमें गरमी पहुँचानेके लिए इसको सूखा बारीक पीसकर वा तेलमें मिलाकार मर्दन करते हैं।

अहितकर—फुप्फुसको। निवारण-कतीरा। प्रतिनिधि-पीपल और रास्नाके प्रतिनिधिके रूपमें इसका उपयोग कर सकते हैं। **मात्रा**—१ ग्राम (१ माशा)।

आयुर्वेदीय मत—अकरकरा कटु, उष्णवीर्य, बलकारक तथा प्रतिश्याय, शोथ और वातरोगोंका नाश करनेवाला है (भा॰ प्र॰)।

(९) अकाशबेल।

फ़ेमिली: कान्वॉल्वुलासे (Family : Convolvulaceae).

नाम—(हिं॰) अकाशबेल, अकासबँवर; (फा॰) अफ्तीमून हिन्दी; (सं॰) आकाशवल्ली; (लें॰) कुस्कूटा रेफ्लेक्सा (**Cuscuta reflexa** Roxb.); (अं॰) डॉडर (Dodder)।

वक्तव्य—उपर्युक्त सभी नाम लताके हैं। हिन्दी नाम "अकासबेल" संस्कृत संज्ञा 'आकाशवल्ली' पर आधारित है। वास्तवमें यह बीज द्वारा भूमिसे उगती अवश्य है, किन्तु पोषणतत्वके लिए भूमिपर निर्भर नहीं होती। शीघ्रही किसी वृक्ष या अन्य वनस्पतिपर फैलजाती तथा उसीसे पोषण प्राप्तकर बढ़ती एवं फैलती है। लक्षणा द्वारा इसी भावका ज्ञापन इसके संस्कृत नाम "आकाशवल्ली" द्वारा होता है। चूँकि यह लता पत्रहीन एवं प्रायः डोरेकी भाँति होती है; इसलिए हिन्दीमें कहीं-कहीं इसको "आकाशबँवर" भी कहते हैं। लेटिन नाम "कुस्कूटा" अरबी "कुसूस"से व्युत्पन्न प्रतीत होता है। यूनानी चिकित्सामें इसीकी विलायती प्रजातिका प्रयोग होता है, जिसे "अफ़्तीमून" कहते हैं। इसे अफ़्तीमूनका देशीभेद कह सकते हैं। इसी विशेषण या विभेदकी अभिव्यक्तिके लिए फारसी नाममें "हिन्दी" विशेषण लगाया गया प्रतीत होता है। "हिन्दी"का अर्थ "हिन्द या हिन्दुस्तानमें होनेवाला एवं तद्वत् व्यवहृत होनेवाला है।"

उत्पत्तिस्थान—प्रायः समस्त भारतवर्ष (८,००० फीटकी ऊँचाई तक)।

वर्णन—यह पत्ररहित पराश्रयी (परोपजीवी) लता होती है, जो हरियाली लिए पीले या लाल रंगके डोरेसी कीकर, बेर, अडूसा आदि वृक्षोंपर जालकी तरह फैली हुई होती है। फूल छोटे, घंटाकृति और सफेद रंगके होते हैं। फल छोटे-बड़े मटरके आकारके गोल होते हैं। पंचांगका स्वाद तिक्त होता है। यूनानी हकीम जिस द्रव्यको औषधके काममें लेते हैं, वह 'अफ़्तीमून' नामसे फारस आदि देशोंसे यहाँ आता है। यह आकाशबेलसे भिन्न, किन्तु इसी जातिका अन्यतम विदेशी भेद है। विशेष देखो "अफ़्तीमून"।

उपयुक्त अंग—पंचांग।

रासायनिक संगठन—इसमें क्वरसेटिन (Quercetin), राल एवं कूस्कूटेलिन तथा कुस्कूटिन (Cuscutin) नामक तत्व पाये जाते हैं। भेषजगुणकर्मकी दृष्टिसे इनमें कुस्कूटेलिन (Cuscutalin) विशेष महत्त्वका होता है। बीजोंमें अमरबेलिन (Amarbelin) नामक रंजक, कुस्कूटिन, वैक्स एवं एक अर्ध-घन तेल पाया जाता है।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें उष्ण एवं रूक्ष।

गुण-कर्म—श्वयथुविलयन, व्रणशोथपाचन, वेदनाहर और उदरकृमिनाशक।

उपयोग—इसको पकाकर और कुचलकर फोड़े-फुंसियोंपर बाँधते हैं। इसके काढ़ेसे बफारा देने और उसकी सीठीको कोष्ण तेलमें तलकर या बिना तले बाँधनेसे कई प्रकारके दर्द आराम होते हैं। इसका काढ़ा पिलानेसे उदरज कृमि मर जाते और उत्सर्गित हो जाते हैं। कोई-कोई हकीम इसका उन समस्त रोगोंमें उपयोग करते हैं जिनमें अफ़्तीमून विलायती प्रयुक्त होती है।

मात्रा—३ ग्रामसे ७ ग्राम तक (३ माशा से ७ माशा तक)।

आयुर्वेदीय मत—यह मधुर, तिक्त, कटु, पिच्छिल, शुक्रवर्धक, अग्निवर्धक, हृद्य, बल्य, रसायन, कफ-पित्तनाशक एवं नेत्ररोगनाशक है (रा०नि०; भा०प्र०)।

●

(१०) अखरोट।

फ़ैमिली : जुग्लांडासे (Family : Juglandaceae).

नाम—(हिं०; बं०) अखरोट; (अ०) अल्जौज़ (इ०बै०), जौज़; (फा०) गौज़, चारमग्ज़, गिर्दगाँ; (सं०) अक्षोट (-क); (बम्ब०; म०) अकरोड; (ता०; ते०) अकरोट्टु; (ले०) जुग्लांस रेगिआ (**Juglans regia Linn.**); (अं०) वॉलनट (Walnut)।

वक्तव्य—लेटिन नाम अखरोटके वृक्ष का है। हिन्दी एवं भारतवर्षके अन्य प्रदेशीय नाम इसके संस्कृत नाम "अक्षोट" पर आधारित प्रतीत होते हैं तथा वृक्ष एवं विशेषतः फल तथा मग्ज़ (मज्जा) दोनोंके लिए सामान्यतः व्यवहृत हैं। अरबी-फारसी तथा भारतीय नामोंको देखनेसे प्रतीत होता है, कि दोनों ही परम्पराओंमें इस द्रव्यका ज्ञान एवं व्यवहार अपनी-अपनी परम्पराओंमें स्वतन्त्र रूपसे होता आ रहा है।

उत्पत्तिस्थान—सम्भवतः फारसका आदिवासी है। हिमालय पर भूटानसे लेकर कश्मीर और अफगानिस्तान तक होता है। इसके जंगली एवं लगाये हुए दोनों ही प्रकार के वृक्ष मिलते हैं।

वर्णन—एक बहुत बड़े और ऊँचे वृक्षका फल जिसको तोड़ने पर सफेद और मस्तिष्ककी रूपरेखा का टेढ़ा-मेढ़ा २·५ सें० मी० से ४ सें० मी० लम्बा मग्ज़ (मज्जा) निकलता है। यह स्वादमें मीठा, चिकना और स्वादिष्ट होता है। यह मग्ज़ही अधिकतया औषधार्थ व्यवहृत होता है।

उपयुक्त अंग—फलका मग्ज़ (मज्जा-गिरी), फूल और पत्र।

रासायनिक संगठन—फलमें आक्ज़ैलिक एसिड होता है।

कल्प तथा योग—हब्बुल् जौज़।

प्रकृति—मग्ज़ प्रथम कक्षामें उष्ण और द्वितीयमें रूक्ष; मतांतरसे द्वितीय कक्षामें उष्ण और तृतीयमें तर है। लखनऊवालोंके मत से दूसरे दर्जेमें गर्म और पहलेमें खुश्क है। यह ताजे बादामसे अधिक गरम है। फूल और पत्र रूक्ष हैं और इनमें मोतदिल हरारत (उष्णता) होती है।

गुण-कर्म—यह (मग्ज़) उत्तमांगोंको विशेषकर मस्तिष्कको बल प्रदान करता है तथा बुद्धि एवं मन आदि अन्तर्ज्ञानेन्द्रियोंको भी पुष्ट करता एवं वाजीकर, मृदुसारक, विलयन और लेखन है। इसके शेष समस्त अंग-प्रत्यंग संग्राही हैं।

उपयोग—अखरोटको अधिकतया वाजीकरण योगोंमें समाविष्ट करके उपयोग करते हैं। मुनक्का और अंजीरके साथ इसका खाना विशेषरूपसे मस्तिष्क बलदायक (मेध्य) है, तथा कोष्ठको मृदु करता है। भुना हुआ शीतकासमें लाभकारी बतलाया जाता है। इसे निहारमुँह चबाकर दादपर लगानेसे उसको नष्ट करता है। इसे चाबकर प्रकोथजन्य शोथ (वरम गान्‌गराया) एवं सौदावी शोथपर लगानेसे उपकार होता है। ताजी गिरी (अखरोट)को पीसकर लेप करनेसे व्रणचिह्न मिट जाता है। अर्दित, पक्षवध और आमवातमें इसके वाह्यांतरिक प्रयोगसे उपकार होता है। अखरोटकी गिरीको पीसकर मुँहपर मलनेसे मुखाक्षेप दूर होता है। १०॥ माशा अखरोटकी गिरी समभाग मिश्रीके चूर्णके साथ सप्ताह पर्यंत खानेसे कूल्हेका दर्द (वज्उल्वरिक) आराम हो जाता है। उपयोगमें सदैव ताजी गिरी उसके ऊपरका महीन छिलका उतारकर लेना चाहिए। अखरोटका तेल बादामके तेलकी भाँति अत्यंत उष्ण एवं दोषादिविलयन (मुहल्लिल) है। शीतप्रकृति और शीतल व्याधियों एवं तज्जन्य वेदनाओंमें इसका उपयोग परम गुणदायक होता है। **अखरोटका छिलका** जलाकर खाना अर्शके रक्त रोकनेकी उत्तम औषध बतलाया जाता है। अखरोटके वृक्षका गोंद पीसकर उष्ण एवं दूषित व्रणोंपर अवचूर्णन करनेसे उपकार होता है। व्रणशोषण-रोपण मलहमोंमें भी इसे डालते हैं। प्रारम्भमें या मुँह करनेके बाद इसे लगानेसे नेत्रगत नाड़ीव्रण आराम होता है। **(मग्ज)अहितकर**—उष्णप्रकृतिको। निवारण—सेव और सिकंजबीन। **प्रतिनिधि**-समभाग खोपरा, हब्बतुल्खजरा और फिंदक। **मात्रा**—(मग्ज) १ तोलासे २ तोला तक।

आयुर्वेदीय मत—मधुर, स्निग्ध, गुरु, शीतल, उष्णवीर्य, बल्य, विरेचन, वात-पित्त और रक्तविकारनाशक एवं कफप्रकोपक है (रा० नि०; मद०)।

* * *

(११) अगर।

फैमिली : थीमेलासे (Family : Thymelaceae).

नाम—(हिं०; म०; गु०) अगर; (यू०) Agaceukhon (D. 1. 21); (अ०) ऊद, ऊदुल् हिंदी (इ० बै०); (सं०) अगुरु; (बं०); (ले०) आक्वील्लारिआ आगाल्लोका (**Aquilaria agallocha** Roxb.); (अं०) एलोवुड् (Aloe Wood), ईगल् वुड् (Eagle Wood)।

वक्तव्य – लैटिन नाम वृक्षका है। अगुरुका उल्लेख आयुर्वेदके प्राचीनतम संहिताओं (च०, सु० आदि में भी मिलता है। सुगंधिद्रव्य एवं औषधीय द्रव्यके रूपमें इसका ज्ञान एवं व्यवहार अतिप्राचीन कालसे होता आ रहा है। अरबी नाम 'ऊदुल् हिंदी' इसके भारतवर्षका आदिवासी होनेकी ओर संकेत करता है। भारतमें प्रचलित इसके अन्य प्रांतीय नाम संस्कृत "अगुरु" से व्युत्पन्न प्रतीत होते हैं। लैटिनके अतिरिक्त अन्य भाषीय नाम वृक्ष एवं उपयुक्त अंग दोनोंके लिए सामान्यरूपसे समझना चाहिए।

उत्पत्तिस्थान – आसाम, बंगाल, पूर्वी-पश्चिमी हिमालयपर्वत, खसिया पर्वत, भूटान, सिलहट, टिपेरा पहाड़ी, मर्तबान पहाड़ी, मलाबार, मलयाचल और मणिपुर इत्यादि तथा दक्षिण प्रायद्वीप, मलक्का और मलाया द्वीप। इनमें सिलहटका अगर सर्वोत्तम होता है।

वर्णन—एक बड़े वृक्षका काष्ठ, जो जलनेसे सुगंध देता है। अगरके बेडौल टुकड़े होते हैं, जो तत्स्थ रालके प्रमाणानुसार भूरे वा गहरे भूरे प्रभृति विविध रंगोंके होते हैं। हलके और गहरे दोनों रंगोंके टुकड़े लंबाईके रुख़ गहरे रंगकी नसोंसे चित्रित होते हैं। ये जलमें डालनेसे डूब जाते हैं; चबानेसे ये दाँतोंमें चिपट जाते हैं तथा मृदु प्रतीत होते हैं। स्वाद तिक्त एवं सुगंधयुक्त तेलिया और किंचित् कषाय होता है। जलानेसे इसमेंसे मनोहर गंध आती है। **मंदली**, हिंदी (वा पहाड़ी), **समंदूरी**, कमारी, चीनी (कश्मूर) इसके प्रसिद्ध भेद हैं। इनमें सर्वोत्तम वह है जो काला, भारी, चिकना (तेलिया) और सुगंधित होता है और जलमें डूब जाता है। इसको **ग़र्क़ी** (डूबनेवाला) कहते हैं। जो अर्धजलमग्न होता है **नीमग़र्क़ी** (आधा डूबनेवाला) या **समलए आला** और जो तैरता रहता है वह **समलः** कहलाता है। केवल ‘ऊद’’ शब्दसे भारतीय ऊद (अगर) विवक्षित होता है। व्यवहारमें कच्चा अगर (ऊद हिंदी ख़ाम) लिया जाता है। ‘चूरा अगर’’ नामसे अगरके टुकड़े भारतीय व्यापारिक द्रव्य हैं। इनमें चंदन, तगर और एक सुगंधित काष्ठके टुकड़े मिला दिये जाते हैं। गंजबादावर्द नामक फारसी ग्रंथमें शुद्ध अगरके लक्षण यह लिखे हैं—यह भारी और काला होता है। कोयलोंकी आँचपर रखनेसे जोश पैदा होकर तेल टपकता है। नकली इसके विपरीत होता है।

उपयुक्त अंग—काष्ठ और इसका बुरादा। बुरादा धूप एवं दशांग आदिमें पड़ता है। बंबईमें जलानेके लिए इसकी **अगरबत्ती** बहुत बनती है। सिलहटमें अगरका इत्र बहुत बनता है। **चोआ** नामक सुगंधद्रव्य भी इसीसे बनता है।

रासायनिक संगठन—एक उत्पत् तेल जो ईथरविलेय होता है। दूसरा राल जो सुरासारमें विलेय एवं ईथरमें अविलेय होता है।

कल्प तथा योग—जवारिश ऊदतुर्श (शीरीं व मुलय्यिन)।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें उष्ण एवं रूक्ष। आयुर्वेदके मतसे उष्णवीर्य (भा० प्र०)।

गुण-कर्म—उत्तमांगोंको बलप्रद, दीपन, दोषतारल्यजनक, प्रमाथी, मुखको सुवासित करनेवाला और वातानुलोमन है।

उपयोग—आमाशय एवं उत्तमांगोंको बल प्रदान करनेके लिए अगरका पुष्कल उपयोग करते हैं। **जुवारिश ऊद** इसका सुप्रसिद्ध योग है, जो अग्निसाद (जोफ़ेमेदा) एवं अरोचक के लिए प्रयुक्त होता है। इसे वाजीकरण योगोंमें भी सम्मिलित करते हैं। मुखकी दुर्गन्ध दूर करनेके लिए इसे मुँहमें रखकर चबाते हैं। वस्तिकी निर्बलता (जोफ़ेमसाना) दूर करने और गर्भकी रक्षाके लिए भी इसका उपयोग करते हैं।

अहितकर—उष्ण प्रकृतिको। **निवारण**- कपूर एवं गुलाबपुष्पार्क।

प्रतिनिधि—दालचीनी, लौंग, केसर आदि। **मात्रा**—३ ग्राम से ४ ग्राम (३ माशासे ४ माशा) तक।

आयुर्वेदीय मत—अगर कटु, तिक्त, उष्णवीर्य, लघु, तीक्ष्ण, पित्तकर, श्वासहर, शीतप्रशमन, शिरोविरेचन, कफप्रशमन, त्वच्य तथा कर्णरोग, नेत्ररोग, शीत, वात और कफका नाश करनेवाला है। (च०; सु०; भा० प्र०)। अगरके काष्ठका तेल (इत्र) तिक्त, कटु, कषाय, दुष्टव्रणशोधन तथा कृमि, कुष्ठ, कफ और वायुका नाश करनेवाला है (सु० सू० अ० ४५)। दमामें इस तेलको १-२ बूँद पानपर लगाकर खानेसे लाभ होता है।

●

(१२, १३) अजमोद व करफ़्स।

फैमिली : ऊम्बेल्लीफेरे (Family : Umbelliferae).

नाम। अजमोद—(हिं०; गु०; सं०) अजमोदा; (फा०) करफ़्से हिंदी; (बं०) राणधानी, बनजोयान; (म०) रानधणे (जंगली धनियाँ), अजमोदा; (गु०) अजमोद, बोडी अजमोदो; (मा०) अजमोदो; (सिंध) बनजाण; (लै०)

ट्राकीस्पेर्मुम् रॉक्सबुर्घिआनुम् **Trachyspermum roxburghianum** Craib. (**पर्याय**-*Carum roxburghianum* Benth. & Hook. f.)।

करफ़्स--(हिं०) अजमोद; (यू०) Selinon (D. 3. 67); (अ०; भारतीय बाजार) करफ़्स; (अ०) बज़्रुल्करफ़्स; (उर्दू) वलायती अजमोद; (ले०) आपिउम् ग्रावेओलेंस (**Apium graveolens** Linn.); (अं०) सेलरी (Celary), स्मालेज (Smallage)।

वक्तव्य—अरबी 'करफ़्स' फारसी 'करफ़्श' या 'कर्शफ' का अरबी रूपांतर है। परंतु वह द्रव्य जो ईरानसे बंबईमें आकर करफ़्स नामसे बिकता है, जिसको वहाँ 'बोडी अज़मूद' कहते हैं, भारतीय अजमोदके दानेसे बहुत छोटा होता है। अजमोदका दाना करफ़्सके दानेसे लगभग दुगुना होता है। रंगमें भी इन दोनोंमें स्पष्ट अंतर होता है। संभव है यह अंतर स्थान एवं जलवायुके भेदके कारण हो। भारतवर्षमें होनेवाले अजमोदको 'करफ़्से हिंदी' कहना अधिक संगत प्रतीत होता है। नीचे करफ़्सका वर्णन दिया जा रहा है।

उत्पत्तिस्थान—उत्तर-पश्चिम हिमालयांचल, पंजाबकी वाह्य पहाड़ी, पश्चिम भारतवर्ष और ईरान।

वर्णन--यह अजमोदेकी जातिकाही एक विदेशी भेद है। इसका फल उसकी अपेक्षया अत्यंत क्षुद्र होता है। दो फलोंको मिलानेपर बहुधा यह गोल होता है। स्वरूप अनीसूनके समान होता है। उक्त फल (जिनको व्यवहारमें बीज कह दिया जाता है बहुत छोटे (१ मि० मि० लंबे), लट्वाकार (Ovate), समतल-उत्तल (Plano-convex), भूरे, पाँच पांडुर उभरी हुई रेखाओंसे युक्त होते हैं। **स्वाद** पहले अनीसूनकी भाँति किंतु तत्पश्चात् कड़वा; **गंध** भी अनीसूनके समान, किंतु मंद होती है। जड़ काली होती है और उसमें बारीक तंतु लगे होते हैं। **भेद**-(१) **उद्यानज** (**बुस्तानी**) अर्थात् खेती किया जानेवाला भेद, जिसका यहाँ वर्णन हो रहा है। मात्र करफ़्स संज्ञासे यही विवक्षित होता है। (२) **पार्वती** (**कोही**) इसको 'सख़री' या 'मक़दूनी' भी कहते हैं। यूनानीमें इसको '**फितरासालियून**' कहते हैं। (३) **नब्ती**; (४) जलज (माई या नहरी) और (५) वन्य (बर्री)। इब्नुल्बैतारने सात प्रकारके करफ़्सका वर्णन किया है, जिनमें निम्न भेदोंका भी समावेश होता है—**करफ़्सजबली**, जिसे यूनानीमें 'ओरासालियून' (Gk. Oreosaelinon; D. 3. 69) और **करफ़्स सख़री** जिसे 'बितरासालियून' (Gk. Petroselinon; D. 3. 70) भी कहते हैं।

उपयुक्त अंग--फल (तुख़्मकरफ़्स) और जड़ (बेख़ करफ़्स)। इनमें जड़ अधिक वीर्यवान् है। इसमें ३ वर्ष तक और फलों (बीजों)में २ वर्ष तक वीर्य रहता है।

रासायनिक संगठन--गंधक, एक उत्पत् तेल, ऐल्ब्युमिन, लबाब और लवण। इसमें पहाड़ी करफ़्समें पाया जानेवाला **एपिओल** (Apiol) नामक एक प्रकारका कपूर पाया जाता है।

प्रकृति--**गीलानीके** अनुसार यह द्वितीय कक्षामें उष्ण एवं रूक्ष; मतांतरसे प्रथम कक्षामें उष्ण और द्वितीय कक्षामें रूक्ष है। **लखनऊवालोंका** भी ऐसा ही मत है। आयुर्वेदके मतसे अजमोदा उष्णवीर्य (ध०; रा० नि०) है।

गुण-कर्म—अवरोधोद्घाटक, स्वेदन, वातानुलोमन, क्षुधाजनन, अश्मरीनाशन, मूत्रल एवं आर्तवजनन।

उपयोग—**करफ़्सको** कासमें, कफज्वर, पार्श्वशूल, गृध्रसी, वातरक्त, पृष्ठशूल और प्रायः कफजरोगोंमें प्रयुक्त करते हैं। यकृदवरोधोद्घाटन, क्षुधाजनन और वातविलयनके लिए इसका उपयोग करते (खिलाते) हैं। जलोदरमें तथा मूत्र एवं आर्तवके अवरोधोंको दूर करने और वृक्क एवं बस्तिगत अश्मरीके उत्सर्गके लिए इसका पुष्कल उपयोग करते हैं। यह समस्त कफज एवं शीतजन्य व्याधियोंमें परम गुणकारी है। जड़ इन रोगोंके अतिरिक्त शिरके शीतल रोगों में प्रयुक्त होती है। अहितकर—सगर्भास्त्री, उष्णप्रकृति और मृगीके रोगियोंके लिए। निवारण—अनीसून और मस्तगी। प्रतिनिधि--अजवायन। मात्रा—बीज (**तुख़्म करफ़्स**) ३ ग्रामसे ५ ग्राम (३ माशासे ५ माशा); जड़ ५ ग्रामसे ७ ग्राम (५ माशा से ७ माशा) तक।

आयुर्वेदमें अजमोदाके गुण-कर्म तथा उपयोग—यह कटु, तिक्त, उष्णवीर्य, रूक्ष, रोचक, दीपन, शूल-

प्रशमन तथा कफ, वायु, हिचकी, आध्मान, कृमि, अरुचि और उदरके रोगों को दूर करनेवाली है। (च०; सु०; ध० नि०; रा० नि०)।

नव्यमत—अजमोद सुगंधि, उत्तेजक और गर्भाशयोत्तेजक है। इसका उपयोग अजवायनकी तरह होता है। उलटी, कुपचन और मूत्राशयकी पीड़ामें इसे देते हैं।

●

(१४) अजवायन (देशी)।

फैमिली : ऊम्बेल्लीफेरे (Family : Umbelliferae).

नाम—(हिं०) अजवायन, अजवाइन, जवाइन; (यू०) अम्मो, बासलीकून कमूनी; (अ०) कमूनुल् मुलूकी (कम्मून-एल्-मुलूकी); (फा०) नान्ख्वाह (इ० बै० ४।१७३), ज़िनियान; (सं०) यवानी; (पं०) जवैण; (म०) ओंवा; (गु०) अजमा; (बं०) अजोवान, जोयान्; (क०) जाविंद; (ले०) **ट्राकीस्पेर्मुम् आम्मी Trachyspermum ammi** (L.) Sprague (**पर्याय**—*Carum copticum* Benth.); (अं०) किंग्स क्युमिन (*King's Cumin*)।

वक्तव्य—(१) इसकी फारसी संज्ञा 'नानख्वाह' गुणज्ञापक संज्ञा है, जिसका अर्थ रोटी चाहनेवाली (नान = रोटी, ख्वाह = चाहनेवाली) है। क्षुधावर्धक होनेसे इसको उक्त नामसे अभिधानित किया गया। प्राचीनकालमें ईरानी लोग 'जिन्यान'को जो वस्तुतः नानख्वाह ही थी, तनूरी रोटियों पर लगाया करते थे। इसका हिंदी और उर्दू नाम अजवाइन जो वस्तुतः 'अन्नजोइन' है, वह भी मानो नानख्वाहहीका पर्याय है। संस्कृत 'यवानी' संज्ञा इस वनस्पतिके यवनदेशीय आदिवासी होने अथवा इसके फलोंके यवनोंको प्रिय अथवा उनके व्यवहारमें अधिक प्रचलित होनेके आधारकी ओर संकेत करती है। (२) यूनानी हकीम दीसक़ूरीदूसने जिस अफरीकी द्रव्य 'अम्मी (अफीलूस)'-का उल्लेख किया है, वह वास्तवमें यही द्रव्य है। सुतरां हकीम जालीनूस 'अम्मी' और 'कमूनमुलूकी'को एक ही द्रव्य मानता है; और हाजीज़ुलूअत्तार भी नानख्वाहको अम्मीका समानार्थी जानता है। इसी प्रकार तोहफ़तुल्-मोमिनीनके रचयिता तथा द्रव्यगुणके लेखक अन्य मुसलमान चिकित्सक भी 'अम्मी' या 'बासलीकूनकमूनी'को अजवायनका पर्याय मानते हैं। (३) अजवायनका सत यद्यपि हिंदुस्तानमें भी बनाया जाता है, तथापि यह अधिकतया यूरुपसे आता है। यूनानी हकीम बहुत कालसे इसका योगनिर्माणकर उपयोग करते हैं और इसे अत्यंत गुणदायक एवं आशुप्रभावकर पाते हैं। इसके भीतर अजवायनके समस्त गुणकर्म अधिक वीर्यके साथ पाये जाते हैं। इसकी मात्रा १२० मि० ग्रा० से ०·६ ग्राम ($\frac{1}{2}$ से ३ रत्ती) है।

उत्पत्तिस्थान—यह सारे भारतवर्षमें लगाई जाती है तथा अफगानिस्तान, ईरान और मिश्रमें भी होती है।

वर्णन—एक प्रसिद्ध बीज (वास्तवमें फल) जो सौंफके समान, किंतु उससे बहुत छोटे पिलाई लिये भूरे, गंध और स्वादमें तीक्ष्ण और किसी भाँति तिक्त होते हैं। इसका पौधा सोयेके पौधेके समान, किंतु उससे अधिक महीन और सफेदी लिए होता है। पुष्पव्यूह सोएके समान छत्रकोंमें होता है। इसके संपूर्ण प्रत्यंगसे तीक्ष्ण गंध आती है।

उपयुक्त अंग—बीज (वास्तवमें फल) और पत्र, तेल, सत्व और अर्क। पूर्णतया सुरक्षित रखनेपर इसमें चार वर्ष तक वीर्य रहता है।

रासायनिक संगठन—इसमें एक प्रकारका उड़नशील तेल होता है। इससे आसुत अर्कके ऊपरी धरातल पर एक प्रकारका क्रिस्टलीय द्रव्य (Stearoptin) इकट्ठा होता है, जिसे **अजवायनका फूल या सत अजवायन** (थाइमोल Thymol) कहते हैं। यह जंगली पुदीना (**Thymus vulgarils** Linn.)से प्राप्त थाइमोल नामक सतके समान होता है।

वक्तव्य—(१) थाइमोल (Thymol) को भारतमें **अजवायनका फूल** और (पंजाबमें) **अजवायनका सत** कहते हैं। मध्यभारतमें कतिपय स्थानोंमें इसे बनाते हैं। आजकल थाइमोलका निर्माण रासायनिक संश्लेषण पद्धतियों द्वारा कृत्रिमरूपसे किया जाता है। (२) पहाड़ी पुदीना जिसको अरबीमें **'हाशा'** एवं **'सातर'** और यूनानीमें 'थायमस (Thymus)' कहते हैं, जिसका उच्चारण प्रचीन अरबोंने **सूमस** (जैसा कि यूनानी वैद्यकीय ग्रंथोंमें उल्लिखित है) किया है; इसके सत्व या जौहरको अँग्रेजीमें **थायमोल** (Thymol) कहते हैं। परन्तु यह सत्व जैसा उल्लेख किया गया है, अजवायनसे भो निकलता है।

कल्प तथा योग—**अर्क अजवायन** (२॥-५ तो०); माजून नान्ख्वाह, माजून नानख़ाह हकीम अली गीलानी।

प्रकृति—तृतीय कक्षामें **उष्ण एवं रूक्ष** (ख़ुश्क)। आयुवदके मतसे भी यह उष्णवीर्य (ध०नि०) है।

गुण-कर्म—आमाशयस्थ द्रवशोषणकर्त्ता, **वातानुलोमन**, **उष्णताजनन**, विलयन, संशमन (मुसक्किन), रूक्षण (मुजफ़्फ़िफ़), अवरोधोद्घाटक, लेखन (जाली), **क्षुधाजनन** (मुश्तही), **प्रवर्त्तक** (मुदिर्र), **कृमि** तथा ब्रघ्नाकार-कृमिनाशन एवं निस्सारक, **आक्षेपहर** (विकाशी), विषप्रशमन और **कोथप्रशमन**।

उपयोग—उष्णताजनन (मुसख़्ख़िन), विलयन और अवरोधोद्घाटक होनेसे यह जीर्णज्वरोंमें विपुल प्रयोगमें आती है। (अस्तु) "**अष्टप्रहरी**" अजवायनके नामसे आठपहरमें इसका फांट प्रस्तुत करके जीर्णज्वर रोगियोंको पिलाते हैं। इन्हीं गुण-कर्मोंके कारण शीतप्रकृतिके लोगोंके आमाशय और यकृतको उष्णता प्रदान करती और यकृत्प्लीहाके काठिन्यको नष्ट करती है। लेखन होनेके कारण यह प्रायः त्वग्रोगोंमें प्रयुक्त की जाती है। अस्तु, व्यंग (बहक़), किलास, युवानपिड़का (मुँहासे) और त्वगधः रक्तसंचयजन्य नीलिमाको दूर करनेके लिए इसका पतला लेप लगाते हैं। दीपन एवं वातानुलोमन होनेके कारण आमाशयिक रोगोंमें प्रयुक्त औषधोंमें यह प्रचुरताके साथ सम्मिलित की जाती है; तथा **उदरशूल**, **अरोचक**, **हृदयोत्क्लेश** और आटोप तथा **वातिकोद्वेष्टन**को नष्ट करती है। इन कर्मोंसे तथा रूक्षण (शोषण), उष्णताजनन और प्रमाथी होनेके कारण यह आर्द्र वा स्निग्ध आमाशय एवं जलोदरमें प्रयुक्त की जाती है। रूक्षण (मुजफ़्फ़िफ़) होनेके कारण स्तन्य (दूध) और वीर्यको कम करती है। अवसादक और श्वयथुविलयन होनेके कारण इसका पतला लेप करनेसे वेदना शमन होती और सूजन उतर जाती है। प्रवर्तनकारी होनेके कारण यह मूत्र एवं आर्तवप्रवर्तनके लिए उपयोग की जाती है। इसीलिए यह वृक्क एवं वस्तिगत अश्मरी और मूत्रकृच्छ्रमें गुणकारी है। गोल और ब्रघ्नाकारकृमि (कद्दूदाना)को मारने और बाहर निकालनेके लिए यह उत्तम भेषज है। विकाशी होनेके कारण आक्षेपयुक्त रोगों, जैसे—कूकरखाँसी आदिमें इसका उपयोग करते हैं। **विषप्रशमन** होनेसे बिच्छू और भिड़के दंशपर इसका पतला लेप लगानेसे उपकार होता है। यह वेदना शमन करती है। विषघ्न और **कोथप्रतिबंधक** होनेसे मरकव्याधियोंमें इसका उपयोग करते हैं। इससे अफीमकी आदत छूट जाती है, और अफीम-सेवनसे होनेवाले विकार दूर होते हैं। सत अजवायन आशुफलदायिनी औषधि है। **अहितकर**—शिरःशूलकारक तथा शुक्र एवं स्तन्यापनयन। **निवारण**—धनिया, तुर्मुस और उन्नाब। **प्रतिनिधि**-कलौंजी और कालाजीरा। **मात्रा**—३ ग्रामसे ५ ग्राम (३ माशा से ५ माशा) तक। सतकी मात्रा १२० मि० ग्रा० (१/२ रत्ती)।

आयुर्वेदीय मत—अजवायन कटु, तिक्त, उष्णवीर्य, लघु, तीक्ष्ण, पाचन, दीपन, रोचक, हृद्य, पित्तकर तथा वायु, कफ, दाँतके रोग, गुल्म, उदर, शूल, प्लीहाकी वृद्धि और कृमिका नाश करनेवाली है (च०; ध० नि०; भा० प्र०)।

नव्यमत—थाइमोल (सत अजवायन) ३ बूँदकी मात्रामें प्रबल वातानुलोमन है। द्वादशांगुल नामक अन्त्रमें पाये जानेवाले केचुओंपर इसका प्रबल कृमिघ्न प्रभाव होता है। उक्त प्रयोजनके लिए एक फ्लुइड ड्रामसे अधिक देनेकी आवश्यकता होती है, जो इसके प्रवाहीरूपमें सात्मीकृत होनेके कारण संभवतः विषैला होगा। आभ्यंतरीय रूपसे अजवायनका अर्क उदराध्मान एवं उदरशूलमें लाभदायक है। अजवायनके बीज और उत्पत् तेल उदराध्मान, उदरशूल, अतिसार, विसूचिका, अपतन्त्रक और आन्त्राक्षेपमें उपकारक हैं। इससे ऊष्मा एवं आह्लादकी वृद्धि होती है, और आन्त्रविकारके साथ होनेवाली उदासीनता एवं निर्बलता दूर होती है। इसके तेलको १ से ३ बूँदकी मात्रामें किंचित् शर्करापर डालकर अथवा गोंदके लबाब और जलके साथ इसका इमल्शन बनाकर उपयोग करना चाहिए। वात एवं आमवातमें होनेवाली वेदना शमन करनेके लिए इसका बाह्य प्रयोग होता है। विसूचिकाकी प्रथमावस्थामें वमन और विरेक बंदकरने तथा शरीरको उत्तेजित करनेके लिए अजवायनके तेल और इसके बीजों द्वारा परिस्रुत जल (अजवायनके अर्क)को १ से २ आउंस (२।। तोलासे १ छटाँक तक) की मात्रामें उपयोग करनेसे लाभ होता है। इसे अन्य सुगंधित औषधियों, जैसे—युकेलिप्टस, पिपरमिंट और गॉलथीरिया आदिके साथ मिलानेसे यह गुणकारी वायुनिस्सारक औषधि हो जाती है। अजवायनका तेल तथा इसका फूल (सत) दोनोंको सोडाके साथ देनेसे अम्लपित्त, अजीर्ण और आध्मान आराम होते हैं। पैत्तिक वमन और शीत लगना आदिमें अजवायनके बीज तथा गुड़ मिलाकर खाया जाता है। प्रतिश्याय और उन्माद आदिमें इसके बीजके चूर्णको बारीक कपड़ेमें बाँधकर थोड़ी-थोड़ी देरमें सूँघना चाहिए अथवा उक्त चूर्णका सिगरेट बनाकर पिलाना चाहिए।

◆

(१५) अजवाय(इ)न खु(खो)रासानी

फ़ैमिली : सोलानासे (Family : Solanaceae)

नाम—(हिं०) खु(खो)रासानो अजवाय(इ)न; (अ०) बंज, सीकरान, ख़दाउर्रजाल; (फा०) बंग, बंक, बंगदीवाना; (सं०) पारसीकयवानी, यावनी, तुरुष्का, मदकारिणी; (पं०) खुरासानी अजवैन; (म०) खुरासानी ओंवा; (ग०) खुरासाणी अजमा; (ले०) हिओस्सिआमुस आल्बुस (**Hyoscyamus albus** Linn.); (अं०) हेनबेन (Henbane), हॉगबीन (Hog-bean)। (बीज)-(अ०) बज्रुल्बंज; (फा०) तुख़्म बंग; (अं०) हेनबेनसीड्स (Henbane Seeds).

वक्तव्य—(१) "बंज" फारसी "बंग"का अरबी रूपान्तर है। "हिओस्सिआमुस" यूनानी 'हुआॅस कुआमोस (Huos-kuamos)'-का लेटिन रूपान्तर है, जिसका अर्थ (हुआॅस = शूकर, कुआमॉस = बाकला, लोबिया) "शूकर-लोबिया" है। इसके पत्र लोबियापत्रके सदृश होने एवं सूअरोंको रूचिकर भक्ष्य होनेसे यूनानियोंने इसका उक्त नाम रखा। इसके बीज (तुख़्मबंग सफेद, बज्रुल्बंज अब्यज) हिन्दुस्तानमें, अधिकतया खुरासान (इरान)से आते हैं तथा बीज कुछ यवानीबीजोंके अनुरूप होने (यद्यपि गुणकर्मकी दृष्टिसे इनका कोई साद्दश्य नहीं है तथा अजवाइनमें औषधि अभिज्ञानकी दृष्टिसे तीव्र विशिष्ट सुगन्धि आदि विभेदक लक्षण भी होते हैं)-से भारतीय वैद्योंने इसका नाम **'पारसीक यमानी'** या **'खुरासानी यवानी'** रख दिया है, जो अब उर्दूभाषामें तथा व्यवहारकी प्रचलित बोलचालकी भाषामें "अजवायन खुरासानी" नामसे प्रसिद्ध है। किन्तु यहाँ यह स्मरण रखना चाहिए कि गुणकर्म तथा वानस्पतिक

फ़ैमिली आदिकी दृष्टिसे यह अजवायनसे सर्वथा भिन्न द्रव्य है। अतएव व्यावहारिक दृष्टिसे इसे कदापि अजवायनका भेद नहीं समझना चाहिए। यह सोलानासे फ़ैमिलीकी वनस्पति है, जिसमें बेलाडोना एवं धतूर आदि विषैली औषधियाँ सम्मिलित हैं। इस वनस्पतिके नामकरणमें उद्भवस्थल ज्ञापक विशेषण "पारसीक" एवं "खुरासानी" इस बातके ज्ञापक हैं, कि यह एक विदेशी औषधि है; और स्वभावतः इसके व्यवहारका प्रचार भी बाह्यागत व्यक्तियों द्वारा हुआ हो। इस तथ्यकी पुष्टि इस बातसे भी होती है, कि यद्यपि 'हिओस्सिआमुस' की कतिपय प्रजातियाँ उत्तरपश्चिम भारतवर्ष एवं हिमालयमें पायी जाती हैं, किन्तु प्राचीन आयुर्वेदीय संहिताओंमें इस औषधिका उल्लेख नहीं मिलता।

(२) मख्ज़नुल् अद्विया और मुहीत आज़ममें जो इसका यूनानी नाम "अफ़ीक़ून" लिखा है, वह वास्तवमें "अफ्यून" है। क्योंकि कतिपय पुराकालीन मुसलमान चिकित्सक इसको यूनानियोंका अफ्यून (अफीम) जानते हैं; सुतरां इसके विवरणमें लिखा है कि कभी इसके पत्र एवं शाखाओंकी रसक्रिया अफीमके प्रतिनिधिस्वरूप प्रयुक्त की जाती है। "अफ्यून" शब्द भी यूनानी संज्ञा है, जिसका अर्थ "निद्रल औषधि" है।

(३) पुरातन यूनानी वैद्योंने श्वेत, रक्त एवं कृष्ण- (काला) भेदसे तीनों प्रकारके अजवायन खुरासानी (बंज)-का उल्लेख किया है। परन्तु वे इसके सफेद भेदका औषधरूपमें प्रयोग करते थे। अस्तु, दीसक़ूरीदूसने भी इसकी संस्तुति की; और इसीके प्रयोगकी अभ्यर्थना की है। मुसलमान चिकित्सक भी इस विषयमें अद्यावधि प्राचीन यूनानी चिकित्सकोंके अनुयायी हैं।

उत्पत्तिस्थान—यूरूप, साइबेरिया, एशियामाइनर, खुरासान, उत्तर भारतवर्ष (कश्मीर-गढ़वाल), हिमालय पर्वतमालामें ८,००० से ११,००० फीटकी ऊँचाई पर यह स्वयंजात भी होती है।

वर्णन—इसका क्षुप अजवायनके क्षुपसे ऊँचाईमें कुछ बड़ा होता है। कांड मोटा और रोंईदार; पत्र गुलदाउदी या बिल्लीलोटनके समान बहुत मोटे, चौड़े, लंबोतरसे; पत्र-प्रांत कटे हुए कंगूरेदार (नियमित रूपसे दंदानेदार) होते हैं। रंगमें कालाई लिए हरे और रोंईदार होते हैं। पुष्प सफेद अनारकी कलियोंके समान, परंतु पंखड़ियोंके कंगूरे और मध्य एवं मूल भाग ललाई लिए होते हैं। इनके पकनेपर मूल भागमें फलकोष लगता है, जिसमें खुरासानी अजवायनके बीज होते हैं। ये अजवायनके बीज जितने बड़े और कभी उससे दूने बड़े, वृक्काकृति और भूरे (खाकी) होते हैं। इनका पार्श्व भाग दबा हुआ और बाह्य त्वचा भली भाँति चिपकी हुई होती है। ऐल्ब्युमीन स्नेहमय होता और वृक्षगर्भ इस प्रकार वक्र होता है, जिसका पुच्छ अंकुर बनता है। स्वाद स्नेहमय, तिक्त और चरपरा होता है।

भेद—फलोंके रंगके विचारसे इसके यह तीन भेद होते हैं—

(१) सफेद (**Hyoscyamus albus** Linn.)–जिसका ऊपर विवरण दिया गया है। यूनानी वैद्य प्रायः इसीका उपयोग करते हैं। (२) लाल—सफेदके बाद इसका उपयोग किया जाता है; और (३) काला—(**Hyoscyamus niger** Linn.)—अधिक विषैला एवं सांघातिक होनेके कारण इसका उपयोग वर्जित है। किसी-किसीने इनके अतिरिक्त इसका एक पीला भेद भी वर्णन किया है।

उपयुक्त अंग—प्रायः बीज। एक वर्ष तक इसमें वीर्य रहता है। इसके उपरांत वह निर्बल हो जाता है। पाश्चात्य वैद्यकमें पत्रका भी उपयोग होता है।

रासायनिक संगठन—इसमें हायोसायमीन (Hyoscyamine) नामक एक सत्व पाया जाता है, जिसकी रासायनिक रचना धतूरीन (ऐट्रोपीन)के समान होती है। यह विभिन्न प्रकारके खुरासानी अजवायनके बीज एवं पत्रस्वरसमें हायोसीन (Hyoscine) या विकृताकार हायोसायमीनके साथ पाया जाता है। इसके सूचिकाकार या

त्रिपार्श्वाकार रवे होते हैं। यह धतूरीनकी अपेक्षया जल एवं हलके सुरासारमें अधिकतया विलेय होता है। धतूरीनके समान यह नेत्रकनीनिका-विस्फारक है।

कल्प तथा योग—**बरशाशा**।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें **शीत एवं रूक्ष**। राजनिघंटुमें रूक्ष लिखा है।

गुण-कर्म—**अवसादक, स्वापजनन, स्वप्नजनन,** रक्तस्तंभन (हाबिस) और दोष (मवाद्द) **विलोमकर्ता** है।

उपयोग—अवसादक (मुसक्किन) और स्वापजनन होनेके कारण यह कफज कासमें गुणकारी है। इन्हीं कर्मोंके कारण हर प्रकारकी **वेदनाओं** (दर्दों)में इसका बहिःप्रयोग किया जाता है। आमवात, गृध्रसी और वातरक्त जैसे संपूर्ण प्रकारके शूलोंमें यह दर्दको शमन करती है। अग्निपर डालकर धूनी (बखुर) करनेसे दंतशूल आराम हो जाता है। इसे तिलके तेलमें पकाकर कानमें डालनेसे कर्णशूल आराम होता है। स्वप्नजनन होनेके कारण यह **उन्माद, प्रलाप** और अनिद्रामें उपकारक है। रक्तस्तंभन होनेसे यह शरीरके हर एक प्रत्यंगसे रक्तस्रावको बंद करती है, और नेत्रकी ओर पानी आने (सैलान रतूबात व नज़लात) को रोकती है। विलोमकर्ता होनेके कारण शोथके प्रारंभमें इसका लेप करनेसे उस ओर दोष (मवाद्द)का आगम रुक जाता है।

विष-लक्षण—इसका अत्यधिक प्रमाणमें उपयोग करने अथवा अधिक काल तक निरंतर सेवन करते रहनेसे भ्रम (सदर व दवार), कंठशोथ (खुनाक), उन्माद, सन्यास (सुबात), बुद्धिविभ्रम और ऊँचा सुनना (सुकल गोश)—ये उपद्रव प्रगट होते हैं। अंग-प्रत्यंग शिथिल हो जाते हैं। शरीर शीतल और उसका रंग पीला हो जाता है। रोगी भाषण (बोलने)में असमर्थ होता है। यदि शीघ्र उपाय न किया जाय, तो थोड़े समयमें वह मर जाता है। **उपचार**—ऐसी अवस्था उत्पन्न होने पर उसे उष्ण जल या घी-दूध पिलाकर बारंबार वमन करायें। जब आमाशय विषसे सम्यक् शुद्ध हो जाय, तब गाय या बकरीका ताजा दूध पिलायें।

अहितकर—मस्तिष्कको। **निवारण**—शुद्ध मधु। **प्रतिनिधि**—अफीम और पोस्तेका दाना।

मात्रा—०·५ ग्राम से १ ग्राम (१।२ माशा से १ माशा) तक।

आयुर्वेदीय मत—पारसीक यवानी कटु, रूक्ष, ग्राही और मादक है (रा० नि०)।

नव्यमत—खुरासानी अजवायन वेदनास्थापन, स्वापजनन, संकोच-विकास-प्रतिबंधक, अवसादक और मूत्रजनन है। अल्पप्रमाणमें हृदयावसादक और बल्य है; परतु बड़ी मात्रामें हृदयके लिए अहितकर है। इसकी अवसादक (शामक) क्रिया मस्तिष्क, जनन-मूत्रेन्द्रिय और आँतों पर होती है। यह निश्चित स्वापजनन है। इससे घंटों तक गाढ़ निद्रा आती है। ऐसा निद्रा लानेवाला और वेदनास्थापन औषध अफीम है। परंतु जहाँ अफीम नहीं दे सकते, वहाँ इसे दे सकते हैं। अफीमसे कब्ज होता है, परंतु इससे दस्त साफ होता है। मस्तिष्कके संतापप्रधानरोग, जैसे—नूतन उन्माद, मस्तिष्कधराकलाशोथ आदि रोगोंमें खुरासानी अजवायन देनेसे गाढ़ी निद्रा आती है। किसी भी कारणसे उत्पन्न मानसिक अवस्थता और निद्राभंगमें यह उत्तम औषध है। मूत्रेन्द्रियकी श्लेष्मलत्वचापर इसका प्रत्यक्ष अवसादक क्रिया होती है। बार-बार थोड़ा-थोड़ा पेशाब होना, बस्तिशोथ और अश्मरीसे उत्पन्न बस्तिदाहमें इससे उत्तम लाभ होता है। जननेन्द्रिय पर इसकी उत्तम अवसादक क्रिया होती है। पीडितार्तव, अत्यार्तव और अनियमितार्तवमें भी इससे अच्छा लाभ होता है। शीघ्रशुक्रस्खलन, स्वप्नदोष और अतिकामवासनामें तथा सूखी खाँसी, कफके साथ रक्तआना और दमा—इनमें भी इससे लाभ होता है। उदरशूलमें तथा किसी औषधिसे मरोड़ होनेलगे उसमें यह उपयुक्त औषधि है। शोथ और पीड़ामें इसको मधुमें पीसकर लेप करते हैं। स्तनशोथ, अंडशोथ, सिरदर्द, अर्श, दुष्टव्रण, ग्रन्थि और आमवातमें इस लेपसे लाभ होता है।

(१६) अडूसा

फैमिली : अकान्थासे (Family : Acanthaceae)

नाम—(हिं०) अडूसा, बाँसा, वसौंटा; (अ०) हशीशतुस्सुआल (खाँसीकी बूटी, कासतृण); (फा०) बाँसः, ख़्वाजा; (सं०) अटरूषक, वासक, वासा; (पं०) बाँसा, बहेंकड, बौंकड़; (कु०) वैंसिग; (म०) अडुलसा; (गु०) अरडुसो (-सी); (ले०) आढ.टोडा वासिका (**Adhatoda vasica** Nees.); (अं०) एढाटोडा (Adhatoda)।

वक्तव्य—लैटिन तथा अन्य भारतीय नाम भी पौधेके हैं। भारतीय चिकित्सामें अडूसेका व्यवहार अतिप्राचीनकालसे होता आ रहा है। आयुर्वेदीय साहित्यमें इसका प्रचुर उल्लेख मिलता है, तथा इसके स्वरूप एवं गुणज्ञापक अनेक पर्याय दिए हुए हैं। इसके लैटिन नामके दोनों अंश अर्थात् प्रजातिक नाम (Generic name) एवं जातीय नाम (Specific name) भारतीय नाम पर आधारित हैं। जेनरिक नाम 'आढाटोडा' इसके तामिल नाम "आडाटोडै"के आधार पर तथा जातीय नाम स्वयं संस्कृत नाम "वासक"के आधार पर रखा गया है। हिन्दी एवं अन्य भारतीय नाम इसके संस्कृत नाम "अटरूषक" या "आटरूषक" तथा 'वासक' या "वासा"से व्युत्पन्न हैं।

उत्पत्तिस्थान—अडूसेके पौधे सर्वत्र भारतवर्षमें तथा हिमालयांचलमें ४,००० फुटकी ऊँचाई तक स्वयंजात पाये जाते हैं। यह प्रायः कड़ी, कंकरीली पथरीली भूमिमें होता है। शहरों एवं गाँवोंमें घरोंके खण्डहरोंमें, बाग़-बगीचोंमें तथा रेलवे लाइनके किनारोंकी भूमिमें समूहबद्ध उगा हुआ मिलता है।

वर्णन—बाँसा (अडूसा) सदाहरित क्षुपजातीय बहुवर्षायु वनस्पति है। पर कहीं-कहीं इसके बहुत ऊँचे पौधे भी मिलते हैं। काण्ड सीधा; पत्र आमने-सामने १२·५ सें० मी० से १५ सें० मी० (५-६ इंच) लम्बा, ४·७५ सें० मी० (१॥ इंच) चौड़ा, रूपरेखामें प्रासवत् (Lanceolate) तथा नुकीले-अग्रयुक्त होता है। आधारकी ओर भी चौड़ाई उत्तरोत्तर कम होकर अग्रवत् नुकीला होता है। पत्रके उभयपृष्ठ मसृण होते हैं। पत्रवृन्त—२·५ सें० मी० से ४·७५ सें० मी० लम्बा, पुष्पावलिवृन्त छोटा तथा पुष्पसहपत्रों (Bracts)से ढँका होता है (जो ०·७ से ०·२ इं० होते हैं)। पुष्प-सम्मुखवर्ती, बड़े और श्वेत, जिनके भीतरी भाग पर ललाई लिए धब्बे होते हैं। पुष्पके उभय ओष्ठ सिंहमुखाकृतिके (सिंहानन) होते हैं, और उनके भीतरी पृष्ठोंपर बैगनीरंगकी धारियाँ पड़ी होती हैं; बाह्यदलपुंज (कैलिक्स) ०·७५ सें० मी० से १·२५ सें० मी० लम्बा, ५ खण्डोंवाला; खण्ड गहरे; कोरोला-टचूब ०·७५ सें० मी० से १·२५ सें० मी० चौड़ा, सफेद, जिसका अधोभाग छोटा तथा पीप कृतिका होता है। पुष्पागम शरदृतुमें होता है।

उपयुक्त अंग—पंचांग, पत्र, पुष्प, मूलत्वक्।

रासायनिक संगठन—एक सुगंधित उत्पत् सत्व, वसा, राल, एक तिक्त क्षारीय सत्व-वैसिसीन (Vasicine) जिसे (संस्कृतमें वासीन वा वासकीन कह सकते हैं), कहते हैं; एक सैन्द्रियक अम्ल वासाम्ल (ऐढाटोडिक एसिड), शर्करा, निर्यास, रंजक पदार्थ और लवण। वासकीनका अधिक परिमाण अडूसेकी मूलत्वचा और पत्रसे प्राप्त होता है। इसके स्वच्छ सफेद रवे होते हैं, जो सुरासारमें सुविलेय होते हैं। ये जलविलेय भी हैं। खनिजोंके साथ यह स्फटिकीय लवण बनाता है। इसमें किसी अंशमें अँमोनिया भी विद्यमान होती है।

कल्प तथा योग—पत्रस्वरस, पत्र वा मूलत्वक्का काढ़ा, पुष्पका शर्बत वा गुलकन्द (गुलकंद अडूसा) और पंचांगक्षार।

प्रकृति—प्रथम कक्षामें उष्ण एवं रूक्ष है। कोई उष्ण एवं तर और कोई शीत एवं तर कहते हैं। फूल को शीत बतलाया जाता है। आयुर्वेदमतेन शीतवीर्य (च०; रा० नि०) है।

गुणकर्म—श्लेष्मनिस्सारक, विकाशी, जीवाणुनाशक (कातिल जरासियम्), कृमिघ्न, रक्तशोधक, रक्तस्तंभन और ज्वरघ्न।

उपयोग—श्लेष्मनिस्सारक होनेके कारण यह कृच्छ्रश्वास और कासमें उपकारक है। इसी कारण यह स्वरशोधक (मुसफ़्फ़ी आवाज़) भी है; क्योंकि कंठनलिकाको कफसे शुद्ध करके उसके खरत्वको निवारण करता है। श्लेष्मनिस्सारक, जीवाणुनाशक और विकाशी होनेके कारण बालकोंकी कुकुरखाँसीको दूर करनेके लिए इसकी जड़की छालका काढ़ा उपयोग किया जाता है। इन्हीं गुणोंके कारण यह राजयक्ष्मा और उरःक्षतकी उत्कृष्ट औषधि मानी जाती है। उक्त रोगोंमें इसके पत्र या जड़की छालका काढ़ा अकेले या अन्य द्रव्योंके साथ प्रयुक्त होता है, तथा उनमें इसके फूलोंका शर्बत (शार्कर) या गुलकंद (पुष्पखण्ड) कल्पना करके खिलाया जाता है। यह आर्तवजनन भी है। कृमिघ्न होनेसे उदरज और ब्रघ्नाकार कृमियों (कद्दूदानों)को नष्ट करनेके लिए प्रयुक्त होता है। इसी कारण ऊनी कपड़ोंमें इसके पत्र रखनेसे उनमें कीड़े नहीं लगते। ज्वरघ्न होनेसे, ज्वरों विशेषकर कासयुक्त ज्वरोंमें जिसमें दूषित एवं दुर्गन्धित कफ निकलता है, इसका काढ़ा देते हैं। रक्तशोधक होनेसे कुष्ठ एवं शुष्क और तर खाजमें उपयोग किया जाता है। रक्तस्तंभन होनेके कारण नकसीर और रक्तनिष्ठीवनमें गुणदायक है। इसके लिए इसके ताजे पत्रके स्वरसमें मधु मिलाकर पिलाते हैं; अथवा सूखे पत्रका चूर्ण मधु मिलाकर चटाते हैं; या फूलोंका गुलकंद खिलाते हैं। इसके पंचांगका क्षार (**वासकक्षार**) श्लेष्मनिस्सारक होनेके कारण श्वास और कासमें गुणदायक है। **अहितकर**-शीत प्रकृतिको। **निवारण**-कालीमिर्च और मधु। **मात्रा**-पत्र और जड़ चूर्णमें २-३ ग्राम (२-३ माशा), और क्वाथ एवं फांटमें ५ ग्राम से १२ ग्राम (५ माशासे १ तोला) तक।

आयुर्वेदीय मत—अडूसा, तिक्त, कटु, शीतवीर्य तथा कास, रक्तपित्त, कामला, कफ, पित्त, रक्तविकार, ज्वर, श्वास और क्षयका नाश करनेवाला है। अडूसेके फूल तिक्त, शीतवीर्य, कटुविपाकी तथा कफ पित्त, क्षय और खाँसी का नाश करनेवाला है। (च०; सु०; रा० नि०)।

नव्यमत—अडूसा उत्तम उत्तेजक कफनिस्सारक और संकोचविकासप्रतिबंधक है। इसकी क्रिया इपिकाकुआनाके समान होती है। फूल तिक्त, कटु, ज्वरघ्न, मूत्रजनन, रक्तकी उष्णता कम करनेवाले और संकोचविकासप्रतिबंधक हैं। मूल ज्वरघ्न, मूत्रजनन, श्लेष्मनिःसारक, नियतकालिक ज्वर-प्रतिबंधक, कृमिघ्न और कोथ-प्रतिबंधक है। पत्र और मूलकी अपेक्षया फूलोंमें संकोचविकास प्रतिबंधक धर्म अधिक है। पत्रकी अपेक्षया मूलमें कफनिस्सारक कर्म अधिक है। पत्रमें स्वेदजनन धर्म भी है। अडूसाका स्वेदजनन और ज्वरघ्न धर्म अल्पप्रमाणमें है। कफको पतला करना और कासका वेग कम करना अडूसाके प्रधान कर्म हैं। **मात्रा** पुटपाक-विधिसे निकाला हुआ **स्वरस** १–१॥ तोला थोड़ी सैंधव, पिप्पली चूर्ण और शहद मिलाकर देते हैं। फूल ०·६ से १·३ ग्राम (५-१० रत्ती) शहदके साथ अथवा फांट करके देते हैं। **मूलत्वक्चूर्ण** २-५ रत्ती शहदके साथ देते हैं। अडूसासे छोटी रक्तवाहिनियोंका संकोचन होकर रक्तस्राव बन्द होता है। इसलिए रक्तपित्तऔर क्षयमें फुफ्फुससे रक्तस्राव होना, रक्तमिश्रित आँव, रक्तप्रवाहिका, रक्तार्श और रक्तप्रदरमें अडूसेका स्वरस पिलाते हैं। सद्योव्रण ओर शोथ पर पत्तियों का लेप करते हैं। नेत्राभिष्यंदमें आँखकी ललाई दूरकरनेके लिए ताजे फूल आँखपर बाँधते हैं। कफकास (श्वासनलिका शोथ)में अडूसा देनेसे कफ पतला होकर तुरंत गिरने लगता है, और खाँसी, दमा, ज्वर और मूत्रदाह कम होता है। अडूसाकी सूखी पत्तियोंके मोटे चूर्णमें थोड़ा धतूरेकी पत्तीका चूर्ण मिलाकर धूमपान करानेसे दमाका वेग शान्त होता है।

(१७) अतीस

फैमिली : रानुनकुलासे (Family : Ranunculaceae)

नाम—(हिं०) अतीस; (सं०) अतिविषा; (म०) अतिविष (ख); (गु०) अतिविष, अतवखनी, कली; (बं०) आतइच; (पं०) पतीस, बतास; (ता०)अतिविदयम्; (क०) पतीस, पत्रीस; (ले०) **आकोनीटुम् हेटेरोफील्लुम्** (**Aconitum heterophyllum** Wall.)।

उत्पत्तिस्थान—यह हिमालयके सिन्धु नदीसे कुमाऊँ तकके प्रदेशमें ६,००० से १५,००० फुटकी ऊँचाई पर होती है।

वर्णन—अतीसका ६० से १२० सें० मी० (२ से ४ फुट) ऊँचा क्षुप होता है। मूल द्विवर्षायु, लंबगोल जदवार जैसे शंक्वाकार होते हैं। यह ऊपर से भूरे (खाकी) रंगके, तोड़नेसे भीतर श्वेत, पिष्टमय पदार्थयुक्त और मध्यमें ४-५ बिन्दुओं (छिद्रोंवाले) होते हैं। लम्बाई २५ से ३.७५ सें० मी० (१ से १॥ इंच), क्वचित् ५ सें० मी० (दो इंच) होती है। **स्वाद** अतितिक्त (कडुआ) कोई खास गंध नहीं होती। औषधके लिए जो मूल नये, ऊपरसे कुछ भूरे, अंदर से श्वेत, मध्यमें ४-५ बिन्दुवाले और भंगुर हों वे ही लेने चाहिए।

उपयुक्त अंग—मूल या कन्द (अतीस)।

रासायनिक संगठन—बछनाग (विष)के वर्गकी होनेपर भी यह विष नहीं है। इसमें अतीसीन (Atisine) नामक एक रवारहित अत्यंत तिक्त क्षारसत्व (निर्विषैला) और ऐकोनिटिक एसिड (Aconitic acid) प्रभृति अल्पप्रमाणमें होते हैं।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम एवं खुश्क (रूक्ष)। आयुर्वेदीय मतसे उष्णवीर्य (कै० नि०)।

गुण-कर्म—वाजीकर, **पाचन**, **दीपन**, ज्वर (नियतकालिक)को रोकनेवाली, **ग्राही**, रक्तस्तंभन, कोष्ठवातहर और कफहर।

उपयोग—संग्राही एवं रक्तस्तंभन होनेके कारण अतिसार, प्रवाहिका, रक्तार्श, जलोदर, वमन और अतिरजमें अतीसका उपयोग करते हैं। समभाग अतीस और गुलनारका चूर्ण बच्चोंके दस्त वंद करनेको देते हैं। नियतकालिक ज्वरोंको रोकनेके लिए अकेला या अन्य औषधद्रव्योंके साथ इसका चूर्ण या काढ़ा पुष्कल उपयोग कराया जाता है। अतीस जलोदर और वमनको भी दूर करती है। लखनऊ निवासी स्वर्गवासी हकीम **अब्दुल मजीद** साहब राजयक्ष्मा एवं आन्त्रक्षयमें इसका उपयोग कराते थे, जिससे यथेष्ट लाभ होता था।

मात्रा—१ ग्राम (१ माशा)। क्वाथमें ३ ग्रामसे ५ ग्राम (३ माशा से ५ माशा) तक।

आयुर्वेदीय मत—अतीस रसमें तिक्त, विपाकमें लघु, उष्णवीर्य, लेखन, पाचन, दीपन, संग्राहक, सर्वदोषहर, स्तन्यशोधन, आमपाचन, दोषपाचन तथा अतिसार, ग्रहणीरोग, विष (अन्नाजीर्णोत्थ विष), कास, वमन (अन्नाजीर्णजन्य), अर्श, ज्वर, कृमि, प्रतिश्याय, अरुचि, शूल और आमातिसारका नाश करती है। (च० सू० अ० ४, २५; सु० सू० अ० ३९; कै० नि०; वंगसेन (बालरोगाधिकार)।

नव्यमत—अतीस उत्तम कटुपौष्टिक, विषमज्वरनाशक और ग्राही है। किसी भी कारणसे शरीरमें दुर्बलता आई हो और शरीर फीका पड़ गया हो, इसके सेवनसे भूख लगती है, अन्न पचता है और शरीरकी सब विनियमक्रियायें सुधरती हैं। कटुपौष्टिक और ग्राही होनेसे अतिसार और ग्रहणीमें इससे उत्तम लाभ होता है। बच्चोंके जुकाम, उलटी और ज्वरमें अतीस उत्तम औषध है। बच्चों और प्रसूता स्त्रियोंके अतिसारमें अतीस और सांबरश्रृंगभस्म मिलाकर देना चाहिए। अतीस, शुद्ध भाँग और बचका चूर्ण अतिसारमें लाभ करता है। सुगन्धि-द्रव्योंके

साथ मिलाकर देनेसे अतीस शीघ्र लाभ करता है। विषमज्वरको रोकनेके लिए अतीस बड़ी (३ माशेकी) मात्रामें देनी चाहिए। अतीस बच्चोंको विशेष अनुकूल होता है। ज्वरातिसारमें १५ गुंजा और १५ गुंजा रसौत थोड़े पानीमें मिलाकर देते हैं।

●

(१८) अनन्नास

फ़ैमिली : ब्रोमेलिआसे (Family : Bromeliaceae)

नाम—(हिं०) अनन्नास, अनानास, कटहल सफरी; (यू०; फ्रां०; पुर्त०; अम०) अनानास (Ananas); (अ०) ऐनुन्नास; (बं०) अनानाश, अनारस; (गु०) अनन्नास; (म०) अन्नास; (मल०) परंगि चक्क (यूरूपीय फणस); (ले०) **आनानास कोमोसस् Anans comosus**. Merr. (पर्याय-अनानास साटीवुस *Ananas sativus* Schult. f.); (अं०) पाइन एपल (Pine Apple)।

वक्तव्य—इसकी बहुशः देशी-विदेशी संज्ञाएँ अमरीकन "अनासो" तथा "नानस" संज्ञासे व्युत्पन्न हुई है।

उत्पत्तिस्थान—यह अमरीका (ब्रैजील)का आदिवासी है। अधुना समस्त भारतवर्षमें विशेषकर बंगाल, रूहेलखण्ड, चेरापूँजी आदि पूर्वी भारतमें यह लगाया जाता है।

वर्णन—यह केवड़े या रामबाँसकी तरहके एक ३० से ६० सें० मी० (दो फुट) ऊँचे द्विवर्षायु क्षुपका प्रसिद्ध फल है, जो मेवेके तौर पर खाया जाता है। क्षुपके मध्य भागसे निकले हुए लघु प्रकांडपर छिलकेदार गोपुच्छाकार बालियाँ लगती हैं जिस पर फल उत्पन्न होते हैं। इसके ऊपर बहुतसे छोटे-छोटे कँटीले पत्र होते हैं जिनको 'ताज़' कहते हैं। उन गोपुच्छाकार बालियोंमें बहुसंख्य क्षुद्र नीलेरंगके पुष्प आते हैं। फूलकी कटोरी (पुष्प बाह्यकोष) त्रिभागयुक्त और पुष्पाभ्यंतर कोष (पुष्पदल) तीन पँखडीयुक्त होता है। पुष्पित होनेके बाद ये क्रमशः मोटे और लम्बे होते जाते और रससे भरे होते हैं। कच्चा फल ऊपरसे हरा और पकनेपर लाल हो जाता है। अंदरसे यह पीला होता है। फलके ऊपर खाने-खाने होते हैं। उन खानोंके आस-पास थोड़ा छिलका पतला होता है। प्रत्येक खानेमें छिलकाके समीप छोटे-छोटे पीले और काले बीज होते हैं। फल सुगंधित (बिहीगंधी) और लंबगोला होता है। **मख्ज़नुल् अद्वियाके** लेखकके अनुसार यह दो प्रकारका होता है—(१) छोटा, करने नीबूके बराबर अंदरसे मधुर, सुगंधित और अत्यंत स्वादिष्ठ; (२) बड़ा (साधारण) जो खटमिट्ठा और कच्चा या थोड़ा पका हुआ खट्टा होता है। यह प्रथमसे अधिक रसपूर्ण होता है। फलके दोनों सिरों पर छोटे-छोटे पत्र होते हैं।

उपयुक्त अंग—पक्व फल। मख़्ज़न आदि **यूनानी निघंटुग्रन्थोंमें** इसके अपक्व फल और पत्रका उपयोग देखनेमें नहीं आया। भारतवर्षमें सर्वप्रथम **अबुल्फ़ज़लने आइने अकबरीमें** इसका उल्लेख किया है।

रासायनिक संगठन—अनन्नासके स्वरसमें प्रोटीन, पाचक अभिषव (एन्ज़ाइम) और एक प्रकारका दधिप्रवर्तक अभिषव होता है। भस्ममें स्फुरिकाम्ल, गंधकाम्ल, चूना, मैग्नीसियम, सिलिका, लोह, पांशुहरिद और सैंधहरिद इत्यादि द्रव्य होते हैं। ब्युटिरेट ऑफ एथिल (Butyrate of Ethyl)को ८वाँ १०वाँ भाग स्पिरिट ऑफ वाइनके साथ योजित करनेसे अनन्नासका एसेंस प्रस्तुत होता है।

कल्प तथा योग—**अर्क अनन्नास, शर्बत अनन्नास और मुरब्बा अनन्नास।**

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें शीत और तर (स्निग्ध)।

गुण-कर्म—**सौमनस्यजनन**, हृद्य, पित्तसंशमन, मूत्रल, आर्तवजनन और ऋतुनियामक।

उपयोग—इसका गूदा अम्लता लिए मधुर होता है। इसे छीलकर दूसरे मेवोंकी भाँति खाते हैं। यह उष्ण खफक़ान (दिलकी धड़कन)के लिए परम गुणकारी है। वृक्क और बस्तिगत अश्मरी एवं सिकताके उत्सर्ग हेतु इसका उपयोग करते हैं। इसका शार्कर (शर्बत) और मुरब्बा हृदयको शक्ति एवं आह्लाद (तफरीह) प्रदान करने, आर्तवजनन और सिकता एवं अश्मरीनाशनके लिए उपयोग किये जाते हैं।

अहितकर—कंठको। **निवारण**—सादे वा नमकके पानीसे धोना; नीबूका रस और शर्करा पिलाना। (**प्रतिनिधि**—बिही और सेब। **मात्रा**—२ तोलासे ५ तोला तक।

◆

(१९) अनार।

फैमिली : पूनिकासे (Family : Punicaceae)

नाम—(वृक्ष)—(हिं०) अनारका पेड़; (अ०) शज्रल्रुम्मान; (फा०) दरख्ते नार; (सं०) दाडिम, दाडिम्ब; (द०) अनारका झाड़; (बं०) दाडिम गाछ; (म०) डालिंब झाड़; (गु०) दाड़म-नु-झाड़; (ले०) **पूनिका ग्रानाटुम्** (**Punica granatum** Linn.); (अं०) पॉमेग्रेनेट ट्री (Pomegranate Tree);

फल—(हिं०) अनार; (अ०) रुम्मान्; (फा०) अनार, नार; (सं०) दाडिम फल; (म०; बम्ब०) डालिंब; (अं०) पॉमेग्रेनेट फ्रूट (Pomegranate fruit)।

उत्पत्तिस्थान—यह सम्पूर्ण भारतवर्षमें लगाया जाता है। काबुल और कंधहारका अनार सब देशोंके अनारोंसे उत्तम होता है। इसके बाद पटनेके अनारका नम्बर है।

वर्णन—यह एक प्रसिद्ध फल है, जो स्वाद के विचारसे तीन प्रकार का होता है--(१) मीठा, (२) खट्टा और (३) खटमिट्ठा। खट्टे अनारके वृक्षमें खट्टे और मीठेमें मीठे अनार लगते हैं। असाढ़से भादों तक फल पकते हैं, परन्तु यह नियम सब देशोंके लिए एक-सा लागू नहीं है। खट्टा अनार मीठेसे गुणमें बलवत्तर है। इसके अतिरिक्त अनारके ये दो भेद और हैं—(१) गुलनार और (२) जंगली अनार। आगे इनमेंसे प्रत्येकका विवरण दिया गया है। दाडिमके सुखाये हुए बीजोंको 'अनारदाना' या दाड़िमसार कहते हैं।

उपयुक्त अंग—पक्वापक्व फल, फलत्वक् (नासपाल), वृक्षकांडत्वक्, वृक्षमूलत्वक्, बीज (अनारदाना), पुष्प, कलिका और पत्र। यद्यपि इसका हर एक प्रत्यंग गुणमें समान है, फिर भी उनके वीर्यमें कुछ न्यूनाधिकता अवश्य है। जैसे—गुदामें पत्तोंकी अपेक्षया अधिक वीर्य है। इससे अधिक वीर्य नसपाल (फलत्वक्)में है। फूलमें कलीसे कम वीर्य और जड़की छालमें (विशेषकर रक्त एवं श्वेत पुष्पीय अनारकी) सबसे अधिक वीर्य होता है।

वक्तव्य—बुक़रात ने पोआसाइड नामसे अनारका और दीसक़ूरीदूसने प्राइपोआस नामसे अनारकी जड़की छालका उल्लेख किया है, जिसको वह कद्दूदानाके मारने एवं निकालनेके लिए अतीव गुणकारी जानता था। भारतीय एवं मुसलमान चिकित्सकोंने भी अनारके वृक्ष, उसके फूल, फल और छाल आदि सबका औषधोपयोग लिखा है।

रासायनिक संगठन—वृक्ष और फलके छिलकेमें २२ प्रतिशतसे २५ प्रतिशत टैनिन (Tannin) होता है। वृक्षकी जड़की छालमें २० प्रतिशतसे २५ प्रतिशत प्यूनिको टैनिक एसिड (Punico-tannic acid) और पेलीटिएरीन (Pellitierine) या प्युनीसीन (Punicine) नामक एक वीर्यवान् तरल क्षारसत्व होता है।

मीठा अनार :—

नाम—(अ०) रुम्मान हुलुव्व; (फा०) अनारशीरीं ।

वर्णन—मीठे अनारके फलके दाने लाल नोकदार और किसी-किसीके सफेद होते हैं । किसीके दाने गुठलीयुक्त और किसीके गुठलीरहित होते हैं । इनमें बड़े दानेका गुठलीरहित (बेदाना) काबुली अनार सर्वोत्तम होता है । इसका रस मीठा होता है ।

कल्प तथा योग—शर्बतअनारशीरीं, रुब्ब अनार और जवारिश अनारशीरीं ।

प्रकृति—पहले दर्जेमें शीत एवं तर (स्निग्ध) । लखनऊवालोंके मतसे अनुष्णाशीत (मोतदिल) ।

गुण-कर्म—यकृत् और हृदयबलदायक, उरःकंठमार्दवकर, संताप एवं दाहप्रशमन, किंचित् मूत्रल, लेखन (जिलाऽ), अवरोधोद्घाटन, बलवर्धन, संशोधन और संशमन इसके विशिष्ट कर्म हैं ।

उपयोग—मेवेकी भाँति अनारका पुष्कल उपयोग किया जाता है । यद्यपि इससे अत्यल्प पुष्टि (गिज़ा-इय्यत) प्राप्त होती है, तथापि इससे जितनी पुष्टि प्राप्त होती है, उससे उत्तम (लतीफ) रक्त उत्पन्न होता है । उष्ण प्रकृतिको इसका उपयोग अतीव गुणकारी है । यह उनके यकृत और हृदयको शक्ति प्रदान करता, तथा वक्ष एवं कंठकी कर्कशता और कासको तथा कामला एवं हृत्स्पंदनको लाभ पहुँचाता है । अनारका रस एक लघु (लतीफ) पथ्याहार है । मीठे अनारके रसको इतना पकायें कि वह गाढ़ा हो जाय । इसे नेत्रमें लगानेसे दृष्टि बलवान् होती है । इसका शर्बत यकृत् और हृदयको बलप्रदान करने और संतापनिवारणके लिए प्रयुक्त होता है । मात्रा—औषधार्थ अनारका रस २ तोलासे ५ तोला तक ।

खट्टा अनार :—

नाम—(अ०) रुम्मान हामिज़; (फा०) अनार तुर्श । इसका रस खट्टा होता है ।

कल्प तथा योग—शर्बत अनारतुर्शसादा, शर्बत अनार तुर्श मुरक्कब, चूक, जुवारिश अनारैन आदि ।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें शीत एवं रूक्ष । आयुर्वेदके मतसे उष्णवीर्य (च०) ।

गुण-कर्म—ग्राही, यकृत् और हृदयबलदायक, दीपन, रक्त एवं पित्तप्रकोपसंशमन और किंचित् मूत्रल हैं ।

उपयोग—पित्तज अतिसारको रोकने, आमाशय, यकृत् और हृदयको शक्ति देने और उनके संताप निवारण करने, प्यास बुझाने और वमन तथा मिचली बंद करने के लिए खट्टे अनारका पुष्कल उपयोग करते हैं । इसे दीपन-पाचन चूर्णौषधों में भी सम्मिलित करते हैं । इसका रस आँखमें लगानेसे अर्म (नाखूना) और नेत्रगत सिराजालक (सबल) आराम होता है । इसके रससे शार्कर (शर्बत) और रसक्रिया (रुब्ब) कल्पना करते हैं, जो दस्तोंको बंद करने, हृदय, और उष्ण आमाशय तथा यकृत्को शक्ति देनेके लिए प्रयुक्त होता है । **मात्रा**—औषधार्थ खट्टे अनारका रस २ तोला से ५ तोला तक ।

वक्तव्य—पहाड़ी खट्टे अनार (दाडमी)के दानोंको निचोड़नेसे जो रस प्राप्त होता है, उसे मंदाग्निपर पकाकर गाढ़ा (रुब्ब) कर लेते हैं । यही 'चूक' है जो काले रंगका एवं अत्यंत खट्टा होता है । कोई-कोई इसे नीबूके रससे भी बनाते हैं ।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें शीत एवं पहले दर्जेमें खुश्क (रूक्ष) है । वैद्य गरम बतलाते हैं ।

आयुर्वेदीय मत—दाड़िम सामान्यतः अम्ल-कषाय और मधुर रसवाला, स्निग्ध, उष्णवीर्य, छर्दिनिग्रहण, हृद्य, वातघ्न, ग्राही, दीपन तथा कफ और पित्तको न बढ़ानेवाला है । कषाय और अम्लरसवाला दाड़िम पित्त और वायुका प्रकोप करनेवाला है । मधुर दाड़िम पित्तको दूर करनेवाला और दाड़िमोंमें उत्तम है (च० सू० अ० ४, २७) । दाड़िम कषायानुरस, किंचित् पित्तकर, दीपन, रुचिकर, हृद्य और मलको बाँधनेवाला है । दाड़िम मीठा और खट्टा दो प्रकारका होता है । मीठा दाड़िम त्रिदोषनाशक, और खट्टा वात और पित्तका नाश करनेवाला है (सु०सू०-अ० ३८, ४६) । मीठा दाड़िम त्रिदोषहर, कषायानुरस, ग्राही, स्निग्ध, लघु, शुक्रल, मेधा और बल देनेवाला तथा

तृष्णा, दाह, ज्वर और हृदय, कंठ तथा मुखके रोगोंका नाश करनेवाला है। खटमिट्ठा दाड़िम दीपन, रुचिकर, लघु और कुछ पित्त करनेवाला है। खट्टा दाड़िम पित्तकर तथा आम, वात, और कफका नाश करनेवाला है। (भा०प्र०)।

नव्यमत—फलका रस रोचक, रक्तप्रसादन और मृदुस्तम्भन है। दाड़िमका फल अतिसार, संग्रहणी, आँव, आँतोंकी शिथिलता और आँतोंसे जलमिश्रित रक्त आना—इनमें छालसहित फलका पुटपाक-विधिसे रस निकालकर दिया जाता है। मूलकी छाल तीव्र क्रमिघ्न है। १-२ तोले छालका काढ़ा खाली पेट देवें। उस दिन खाना नहीं खिलावें। अगले दिन सबेरे विरेचन देवें। इससे चपटे क्रमि (Tape worm) मरकर निकल जाते हैं।

खटमिट्ठा (स्वाद्वम्ल) अनार—

नाम—(अ०) रुम्मान मुज़्ज़; (फा०) अनार मैख़ोश, अनार चाशनीदार। इसका रस खटमिट्ठा होता है।

प्रकृति – समप्रकृतिके समीप शीत एवं तर (स्निग्ध)।

गुण-कर्म—यकृत् और हृदयबलदायक, पित्तरक्तप्रकोपसंशमन और हलका मूत्रल है।

उपयोग—खटमिट्ठा अनार पित्तल प्रकृतिवालोंके लिए परम गुणकारी है। यह पित्त ज्वर, कामला, उष्ण हृत्स्पंदन (ख़फ़क़ान) और आमाशय तथा यकृत्का संताप निवारण करनेके लिए उपयोग किया जाता है। प्यास बुझाने और वमन तथा मिचलीके नष्ट करनेके लिए भी इसका उपयोग करते हैं। उक्त रोगोंमें इसका शार्कर (शर्बत) और रसक्रिया (रुब्ब) व्यवहारमें ली जाती है। अनारका रस परम लघु आहार है। अनारके रुब्बको पकाकर गाढ़ा होनेपर दृष्टिदौर्बल्य, नेत्रकच्छू (जरब), पक्ष्मशात और पपोटोंके जख्ममें लगाते हैं। मात्रा—औषधार्थ अनारका रस ४ तोलासे ५ तोला तक।

अनारका छिलका (दाडिमफलत्वक्)—

नाम—(हि०) न(ना) सपाल; (अ०) क़श्रुर्रुम्मान; (फा०) पोस्त अनार; (अं०) पॉमेग्रेनेट पील या रिंड (Pomegranate peel or rind)।

प्रकृति—शीत एवं रूक्ष (खुश्क)।

गुणकर्म—रूक्ष, ग्राही, उष्णकण्ठशोफविलयन और रक्तस्तंभन।

उपयोग—उपशोषण एवं ग्राही होनेके कारण शीताद (इस्तिरखाऽलिस्सा), दांत हिलना-चलदंत (तहर्रुक दंदाँ) और मुखपाकमें इसका गण्डूष, मंजन और अवचूर्णनकी भांति उपयोग करते हैं। इसके क ढ़ेसे गंडूष करनेसे उष्ण कंठशोथ आराम होता है। चिरज अतिसार और प्रवाहिकामें इसका चूर्ण या काढ़ा पिलाया जाता है। गुदभ्रंशमें इसका अवचूर्णन करते और इसके काढ़ेमें रोगीको बिठाते हैं। उपशोषण और रक्तस्तंभन होनेसे योनिसे विविध प्रकारके द्रव स्रवित होने (सैलानुर्रिहम), अत्यंत रजःस्राव होने और रक्तार्शको रोकनेके लिए भी इसके काढ़ेसे कटिस्नान (आबज़न) कराया जाता और आंतरिकरूपसे इसका चूर्ण खिलाया जाता है। हस्तिमेह (सलसुलबौल)में भी इसके काढ़ेसे कटिस्नान (आबज़न) कराते हैं। बच्चोंकी कालीखाँसीमें अजवायन और कालानमकके साथ इसका काढ़ा बनाकर पिलाया जाता है। अहितकर—शीत प्रकृतिको। निवारण—अदरक। प्रतिनिधि—गुलाबपुष्पकेसर (ज़रैवर्द)। मात्रा—३ ग्राम से ५ ग्राम (३ माशा से ५ माशा) तक।

अनारकी जड़की छाल (दाड़िम मूलत्वक्)—

नाम—(फा०) पोस्त बेख़अनार।

वक्तव्य—अनारके वृक्षकी छाल भी यद्यपि गुणमें इसके समान है, तथापि यह उससे अधिक वीर्यवान् है।

प्रकृति—शीत एवं रूक्ष।

गुण-कर्म—उदरक्रमिनाशन (Taenifuge), कंठशोथ एवं शूलहर। अधिक प्रमाणमें सेवन करनेसे विरेचनीय है।

उपयोग—रात्रिमें रोगीको ११.५ ग्राम (१ तोला) एरंडतेल पिलायें। प्रातःकाल अनारकी जड़की छालका काढ़ा ५-५ तोलेकी मात्रामें १-१ घंटा बाद चार-बार पिलायें। अंतिम मात्रा देनेसे दो घंटा बाद २॥-३ तोला रेंडीका तेल पिलायें। इससे उदरकृमि विशेषत: ब्रघ्नाकारकृमि (कद्दूदाना) मरकर निकल जाता है। अहितकर—शीत प्रकृतिको। **मात्रा**—५ ग्रामसे ७ ग्राम (५—७ माशा)।

अनारदाना (दाडिम बीज)—

नाम—(हिं०) अनारके बीज, दाड़मी; (अ०) हब्बुर्रुम्मान; (फा०) **अनारदाना**, तुख़्मअनार।

प्रकृति—पहले दर्जेमें शीत एवं रूक्ष।

गुण-कर्म—दीपन, पाचन, ग्राही, रोचक, क्षुधाजनक, **पित्तसंशमन** और हृद्य है।

उपयोग—आमाशयको शक्ति देने (दीपन-पाचन)के लिए खट्टे अनारके दाने समभाग मुनक्का और आधा भाग कालाजीरा इनको एकत्र पीसकर खानाके साथ खाना चाहिए। यह पैत्तिक दोषोंको आमाशयादिपर नहीं गिरने देता और पित्तज वमन तथा मिचलीको रोकता है। पहाड़ी अनारका दाना पित्तज विकारोंमें लाभकारी है, पित्तकी तीक्ष्णताको शमन करता, हृदयको शक्ति देता और रेचनौषधोंके दोषपरिहारके लिए उपयोग किया जाता है। अहितकर—शीतप्रकृतिको। **निवारण**—जीरा। **प्रतिनिधि**—सुमाक। **मात्रा**—६ ग्राम से ९ ग्राम (६ माशा से ९ माशा) तक।

अनारका फूल (दाडिमपुष्प)

नाम—(फा०) **गुलअनार**। (अ०) वर्दुर्रुम्मान। यह गुलनारसे भिन्न है।

वक्तव्य—फलनेवाले अनारकी कलीको अरबीमें अक़्माउर्रुम्मान, जुंबज़ या जुंबजुर्रुम्मान कहते हैं।

प्रकृति—**शीत एवं रूक्ष**।

गुण-कर्म—संग्राही, रक्तस्तंभन और उपशोषण है।

उपयोग—रक्तस्तंभन होनेसे यदि दाँतकी जड़ोंसे रक्त बह रहा हो तो इसके फूलोंको पीसकर मलनेसे वह बंद हो जाता है। संग्राही और उपशोषण होनेसे यह (निकलते ही हवाके झकोलेसे गिरी हुई कलियाँ) क्षतोंमें हितकारी है, विशेषकर जलाई हुई; क्योंकि जलानेसे इनका उपशोषण गुण बढ़ जाता है। शिशुके वयानुसार अनारकी तीनसे सात कलियाँ बबूलके हरे पत्र और थोड़ा जीरा मिलाकर जलमें पीस-छानकर पत्थर गरम करके उसमें बुझाकर स्तन्यपायी या उससे बड़े बालकको पिला दें। तीन या सात दिन तक इसी तरह पिलाते रहें, तो कैसे ही पुराने दस्त हों वह बन्द हो जाते हैं; चाहे वे दाँत निकलनेसे हों अथवा किसी अन्य कारणसे।

गुलनार—

नाम—(फा०) गुलनार, गुल अनार, अनारगली। वक्तव्य—'जुलनार' इसका अरबी रूपान्तर है। (यू०) Balaustion (D. 1. I54)।

वर्णन—यह साधारण अनारके पेड़का फूल नहीं, अपितु उसके नर वृक्षका फूल है जिसमें फल नहीं लगता। फूलके रंगके विचारसे यह तीन प्रकारका होता है—(१) लाल, (२) सफेद, और (३) काला। बागी अर्थात् उद्यानज (बुस्तानी) और वन्य (जंगली) भेदसे यह दो प्रकारका होता है। इसमें बागीकी अपेक्षया जंगली अधिक वीर्यवान् होता है। मात्र गुलनार शब्दसे इसीका फूल विवक्षित होता है। सबमें उत्कृष्टतर फारसी या मिश्री है।

कल्प तथा योग—**क़ुर्स गुलनार**।

प्रकृति—पहले दर्जेमें शीत और दूसरेमें रूक्ष है। लखनऊवालोंके मतसे दूसरे दर्जेमें शीत एवं रूक्ष।

गुण-कर्म—दोषविलोमकर्ता, **ग्राही**, रूक्षण और **रक्तस्तम्भन**।

उपयोग—दोषविलोमकर्ता होनेसे सूजन उत्पन्न होते ही उसपर इसका लेप करते हैं। यदि दाँत हिलते हों अथवा उनसे रक्तस्राव होता हो, तो शीतसंग्राही एवं रक्तस्तंभन होनेके कारण अकेले या अन्य द्रव्योंके साथ इसका

चूर्ण बनाकर मंजन कराते हैं। रक्तनिष्ठीवन, पित्त एवं रक्तातिसार और अतिरजमें इसका चूर्ण सेवन कराते हैं और इसके काढ़ेमें रोगीको बिठाते (कटिस्नान कराते) हैं। गुदभ्रंशमें इसके चूर्णका अवचूर्णन करते और इसके काढ़ेसे गुद-प्रक्षालन कराते हैं। यदि योनिसे विविध प्रकारका द्रव स्रावित होता (सैलानुर्रिहम) है, अर्थात् विविध प्रकारके प्रदरमें संग्राही एवं रूक्ष होनेसे इसको खिलाते और इसकी वर्ति बनाकर योनिमें स्थापन करते (रखते) हैं। उपशोषण होनेसे मुखपाक और व्रणों (जख्म)पर इसका अवचूर्णन करते हैं। अहितकर—शिरःशूलकारक और विबंधकारक (या अभिष्यंदी)। निवारण—कतीरा। प्रतिनिधि—अनारकी कली या छाल और जुफ़्तबलूत। **मात्रा**—३ ग्रामसे ५ ग्राम (३ माशासे ५ माशा) तक।

(२०) अनीसून।

फैमिली : ऊम्बेल्लीफ़ेरे (Family : Umbelliferae)

नाम—(यू०) Anison (D. 3.58); (अ०) अनीसूँ, अनीसून, बज्रराज़ियानज रूमी (शामी), हब्बुल् हुलुव्व, कमूनुल् हुलुव्व; (फा०) बादियान रूमी (शामी), ज़ीरे रूमी; (बम्ब) एर्वादोष; (ले०) **एनिसाई फ्रुक्टुस** (Anisi-Fructus); (अं०) एनिस (Anise), एनि-सीड (Ani-seed), एनिस-फ्रूट (Anise Fruit)।

वक्तव्य—(१) यहाँ दिये गए नाम सौंफजातीय एक क्षुद्र वनस्पतिके बीजके हैं। उक्त वनस्पतिको वैज्ञानिक परिभाषामें **पिम्पिनेला एनिसुम्** (**Pimpinella anisum** Linn.) कहते हैं। परन्तु **डॉक्टर मोहीउद्दीनशरीफके** अनुसार अनीसूँ इस वनस्पतिके बीज न होकर इसी जातिके एक अन्य भेदके (वनस्पतिके) बीज हैं, जिसको वैज्ञानिक परिभाषामें संभवतः **पिम्पिनेला इन्वाल्युक्रेटा** (*Pimpinella involucrata*) कहते हैं।[1] 'एर्वादोष' पुर्तगाली हर्वा डोस' (Herba doce)का अपभ्रंश है। अनीसूँ, यूनानी अनीसोन (Anison)का अरबी रूपान्तर मात्र है।

(२) अनीसून अति प्राचीन औषधियोंमेंसे है। सुतरां यूनानी हकीम **'सावफरिस्तुस'** और **'दीसकूरीदूस'** ने तथा रूमी और इदरीसी हकीम 'प्लानी' ने भी इसका उल्लेख किया है। परन्तु प्राचीन भारतीयोंको उक्त औषधि अज्ञात थी। यही कारण है, कि वैद्यकीय संस्कृत ग्रन्थोंमें उक्त ओषधिका उल्लेख नहीं किया गया मिलता और न इसका कोई संस्कृत नाम है।

उत्पत्तिस्थान—मूल उत्पत्तिस्थान अफरीका, मिश्र और लीवांट है; यूरूप और फारसमें भी होता है। फारससे बम्बईमें इसका आयात होता है। अब उत्तरी भारतवर्षमें इसकी खेती की जाती है।

वर्णन—यह सौंफकी ही जातिकी एक क्षुद्र वनस्पतिके बीज (फल) हैं जो सौंफके दानेसे छोटे होते हैं। ये उससे अधिक हरे सफेदी और पिलाई लिए अथवा कालाई लिए पीले लट्वाकार (Ovate) लगभग ५ मि०मी० ($\frac{२}{१०}$ इं०) लंबे, १० दंतुर पर्शुकायुक्त प्रायः डंडीयुक्त होते हैं। स्वाद कुछ-कुछ तिक्त और तेज तथा गंध मनोरम होती है (मतांतरसे स्वाद मधुर, गंध विशिष्ट)।

उपयुक्त अंग—अधिकतया इसके बीज (फल-अनीसूँ) औषधके काममें लिए जाते हैं। गुणकर्ममें यह सौंफके समान है।

रासायनिक संगठन—फल (बीज)में २ से ३ प्रतिशत एक उत्पत् तेल होता है, जिसको अनीसूँका तेल

---

[1] देखो Supplement to the Pharmacopoeia of India. पृ० १६६।

(Oil of Anise or Ani-seed) कहते हैं। इसमें अनीसूँ सत्व (ऐनीथोल Anethol) या एक प्रकारका कपूर (एनिस कैम्फर) ८० प्रतिशत, एनिस ऐल्डीहाइड एवं मीथिल चविकोल आदि होते हैं।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें **उष्ण** एवं **रूक्ष**। लखनऊवालोंके मतसे रूक्ष तीसरे दर्जेमें। दिल्लीवालोंके मतसे पहलेमें गर्म और दूसरेमें खुश्क है।

गुण-कर्म—प्रमाथी, वातानुलोमन, वेदनास्थापन, श्लेष्मनिस्सारक, मूत्र एवं आर्तवजनन और स्तन्यजनन। उदरशूल एवं वातिक वृक्कशूल जैसे रोगोंमें वायुके उत्सर्गके लिए इसका पुष्कल उपयोग करते हैं; तथा श्वासकासमें कफोत्सर्गके लिए इसका उपयोग होता है। मूत्र, आर्तव और स्तन्यके प्रवर्तनके लिए इसको खिलाते हैं। मरोड़ उत्पन्न करनेवाली विरेचनीय औषधियोंके साथ उक्त दोषोंके निवारणके लिए इसको सम्मिलित करते हैं। प्रवर्तनकारी (**मुदिर्र**) होनेके कारण वृक्क, वस्ति, गर्भाशय, यकृत् और प्लीहाके अवरोधोंके उद्घाटनके लिए इसका उपयोग कराया जाता हैं। गुलरोगनमें पकाकर कानमें डालनेसे कर्णशूल आराम होता है। अहितकर—शिरःशूलजनक हैं। **निवारण**—सिकंजबीन। **प्रतिनिधि**—सौंफ और सोआ। **मात्रा**—२ ग्रामसे ५ ग्राम (२ माशासे ५ माशा) तक।

कल्प या योग—क्वाथ, अर्क़, तेल, घनसत्व (रुब्ब), माजून, शर्बत, चूर्ण, अनुलेपन, योनिवर्ति (हूमल) और धूपन (धूनी) आदि।

नव्यमत—अनीसूनके फल एवं तेलकी सुगन्धि तथा दीपन, पाचन और **वायुनिस्सारक** प्रभावका बड़ा आदर किया जाता है। अनीसून अजीर्ण रोगकी एक विश्वस्त औषध हैं। अन्य समस्त उत्पत् तेलोंके समान इसका तेल उत्तेजक एवं कण्ठ्य है। आध्मानजनित उदरशूलमें उदर तथा शिरःशूलकी अवस्थामें सिरमें इसका स्थानीय प्रयोग होता है। इसके बीज सुपारीके साथ चबाये जाते हैं। इसकी चटनी भोजनके साथ खाई जाती है। अन्न विकार एवं वायु-प्रणालीय प्रतिश्यायमें भी, विशेषकर बालकोंमें जबकि उग्रावस्था बीत चुकी हो, उस समय यह उपयोगी होता है। अनीसूनके बीज १।२ ड्राम, चीनी तथा हड़ प्रत्येक १-१ ड्राम-इनका चूर्ण उत्तम मृदुरेचन है। अनीसूनके बीज और कराविया (Caraway) को समप्रमाणमें लेकर और भूनकर चायकी चम्मच भरकी मात्रामें भोजनोपरान्त सेवन करें। यह उत्तम पाचक है। **मात्रा**—चूर्ण किये हुए बीज ५-१५ रत्ती; फांट और अर्क (८० में १) १।२ से १ छटांक; तेल ४ से २० बूँद चीनीके ऊपर डालकर।

●

(२१) अफ़्तीमून।

फैमिली : कान्वॉल्वुलासे (Family : Convolvulaceae)

नाम—(लता) (हिं०) विलायती अकासबेल, विलायती अमरबेल; (यू०) Epithumon (D. 4. 176); (अ०) अफ़तीमून, सबुअश्शार; (फ़ा) अफ़तीमूने विलायती; (ले०) कुस्कुटा **एउरोपेआ (Cuscuta europea** Linn.)। (बीज) (हिं०) विलायती अकासबेलके बीज; (अ०) कुशूस, कसू (—शू) स, बज्रुल् कुशूस; (फ़ा०) तुख़्मे कसूस (कुशूस), बिर्श; (सुर०) दीनार।

वक्तव्य—अफ़तीमून यूनानी 'एपिथिमून Epithymon' संज्ञाका अरबी रूपान्तर है। प्राचीन यूनानियोंका एपिथिमून कुस्कूटा एपिथिमुम (*Cuscuta epithymum* Linn. Murr.) वा लेसर डॉडर (Lesser Dodder) अथवा डेविल्स गट (Devil's Gut) था। परन्तु भारतीय औषधिमें प्रयुक्त अफ़्तीमून, जिसका आयात यहाँ फारससे

होता है, उसकी बड़ी जाति प्रतीत होती है। उसीका वर्णन यहाँ हो रहा है। 'कुशूस' अरबीमें अकासबँवर (Dodders)को कहते हैं। इसीसे यूनानी कस्सूथा (*Kassutha*) और लैटिन कुस्कुटा (*Cuscuta*) संज्ञाएँ व्युत्पन्न हुई हैं। परन्तु भारतीय बाजारोंमें उक्त संज्ञाका व्यवहार अकासबँवर (Cuscuta) जातीय एक बेलके फलके अर्थमें होता है, जिसका आयात यहाँ फारससे होता है। इसे 'तुख़्मे कुसूस' भी कहते हैं। **मख्ज़नुल् अदवियाके लेखक मीरमुहम्मद हुसैन** इसे अकाशबेल (भारतोय) समझते हैं। परन्तु उसका फल फ़ारससे आये हुए फलकी अपेक्षया बड़ा होता है। इससे ज्ञात होता है कि यह भारतीय अकाशबेलका फल नहीं; अपितु उसीकी कोई अन्य विदेशीय जाति जैसे **कुस्कुटा हायलिना** (C. **hyalina** Roth.) या **कु० चायनेन्सिस** (C. **chinensis** Lam.) अथवा **कु० प्लेनिफ्लोरा** (C. planiflora Tenore)मेंसे किसी एकके अथवा संभवतः सभोंके मिले हुए फल हैं। अस्तु, लेखकने भी इसीके साथ उसका भी यहीं वर्णन दे दिया है।

उत्पत्तिस्थान—यूरूप, पश्चिम तथा मध्य एशिया और फारस।

वर्णन—(**अफ़्तीमून**) यह अकासबेलकी तरह, किन्तु उससे अधिक पतला धागेके समान लाल व पिलाई लिए लाल रंग का होता है। कहते हैं कि इसमें पत्र, पुष्प और बीज भी होते हैं। पत्र अत्यन्त क्षुद्र, बीज राईके दानोंसे भी बारीक, पिलाई लिए लाल रंगके होते हैं। फूलकी पंखुड़ियाँ बहुत बारीक बालकी तरह कालाई लिए लालरंगकी होती हैं। यह जितना ही बारीक और लाल हो, उतना ही उत्तम है। यह अकासबेलकी अपेक्षया अधिक वीर्यवान् और निर्गंध होती है। स्वाद नमकीन और किंचित् कटु।

कुशूस—यह अकासबेलकी तरहकी पत्रमूलरहित एक विदेशी लता है, जिसकी शाखाएँ डोरेकी तरह बारीक पिलाई या कालाई लिए होती हैं। अन्यान्य पेड़ों और झाड़ियोंपर इसकी शाखाएँ फैल जाती हैं और नीचे-ऊपर उलझी होती हैं। स्वादमें यह कड़ुई और फीकी (बिकसा) होती है। इसमें तिक्त वीर्य प्रधान होता है। इसमें (तथा बीजोंमें) तीन वर्षतक वीर्य रहता है। इसके गुण अफ़तीमूनके सदृश वर्णन किथे गये हैं। इसके सभी प्रत्यंगसे बीज अधिक वीर्यवान् है। (**तुख्म कुशूस**—फारससे प्राप्त बीजमें उस पौधेके क्षुद्र एवं आयताकर पत्र और काँटे मिले होते हैं, जिसपर इसकी बेल फैली होती है; तथा उसके कांडके कुछ अंश और पुष्प भी मिले-जुले पाये जाते हैं। प्रत्येक फलकोषमें चार बीज होते हैं जो हलके भूरे, एक ओर उन्नतोदर और दूसरे ओर नतोदर, लगभग मूलीके बीजके आकारके और लगभग गोलाकार एक फलकोषके भीतर बंद होते हैं। स्वादमें ये तिक्त होते हैं।

उपयुक्त अंग—पंचांग और बीज (**तुख्म कुसूस**)।

रासायनिक संगठन—पंचांगमें क्वरसेटिन (Quercetin), राल, एक क्षारीय सत्व और कुस्कुटीन (Cuscutine); बीजमें क्वरसेटिनके अतिरिक्त ग्लूकोसाइडल राल, एक क्षारसत्व, एक कषाय पदार्थ, मोम और तेल होते हैं।

कल्प तथा योग—जोसाँदा वा मत्बूख अफ़्तीमून, **अतरीफल अफ़्तीमून**, **शर्बत दीनार** (जदीद) और **हब्ब अफ़्तीमून**।

अफ़्तीमून

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें **उष्ण** और दूसरे (मतांतरसे तीसरे) दर्जेमें **रूक्ष** है।

गुण-कर्म—तारल्यजनन (**मुलत्तिफ़**) विलयन, प्रमाथी, वातानुलोमन, सौदा एवं श्लेष्माका रेचनकर्ता और उदरकृमिनाशन है।

उपयोग—उन्माद, मद (**मालिनख़ोलिया**), मृगी और भयानक स्वप्न (काबूस) जैसे **सौदावी रोगोंमें** इसका पुष्कल उपयोग करते हैं। कोई-कोई हकीम मंदाग्नि (जोफ़मेदा), यकृत्प्लीहदौर्बल्य, कामला और जीर्णज्वरमें भी इसका उपयोग करते हैं। इसका विशेष उपयोग सौदावी दोषोंके उत्सर्गके लिए किया जाता है। इसको पोटलीमें बाँधकर जोशाँदा, खेसाँदामें डालते हैं। अहितकर—फुप्फुसको। निवारण—कासनी और शुक्तमधु (सिकंजबीन)। प्रतिनिधि—अफसंतीन। मात्रा—३ ग्राम से ५ ग्राम (३ माशा से ५ माशा तक।

कुशूस –

प्रकृति—पहले दजमें उष्ण और दूसरेमें रूक्ष ।

गुणकर्म—तारल्यजनन (मुलत्तिफ़), प्रमाथी, आशय (अह्शा), **आमाशय** एवं यकृत्‌को बल देनेवाला, सर (प्रकृतिमार्दवकर), **श्वयथुविलयन**, वातानुलोमन, जीर्णज्वरनाशक, मूत्रल और आर्तवजनन । **उपयोग—यकृदामाशयशोथ, कामला और जीर्णकफज्वरोंमें** तुख्मकसूसका पुष्कल उपयोग कराया जाता है । यह सूजन उतारता और कब्ज एवं जीर्णज्वरोंको दूर करता है । इसके दोषतारल्यजनन (मुलत्तिफ़) और प्रमाथी कर्म उक्त रोगोंके निवारणमें सहायक होते हैं । इनका शार्कर (**शर्बत दीनार**) बनाकर भी उपयोग किया जाता है । यह यकृदामाशयको शक्ति प्रदान करता और जीर्णदोषसंयुक्त ज्वरोंमें लाभ पहुँचाता है । आर्तवजनन होनेके कारण यह आर्तवशोणित-प्रवर्तनकारी योगोंमें सम्मिलित किया जाता है । **कुशूस** (विलायती अकाशबेल)को जलमें क्वाथकरके उससे सूजनपर सेक (बफारा) करते और उसीको हाथों से कुचलकर बाँध देते हैं । इससे सूजन और कड़ाई मिट जाती है और दर्द शान्त हो जाता है । **अहितकर**—फुप्फुसको और आकुलताकारक है । **निवारण**—कतीरा और कासनी । **प्रतिनिधि**—अफसंतीन । **मात्रा**—३ ग्रामसे ५ ग्राम (३ माशासे ५ माशा) तक ।

◆

(२२) अफसंतीन ।

फ़ैमिली : काम्पोज़ीटी (Family : Compositae)

नाम—(हिं०; द०) विलायती अफसंतीन; (अ०) **अफ़संतीन**, ख़त्रक़; (फा०) **मरवा**, मूयबखुशा; (रू०) अवस्तियून; (पं०) मस्तियारा; (कु०) तीतपाती; (क०) टिटवीन, टिट्ठवन; (ले०) **आर्टेमीसिआ आब्सिन्थिउम (Artemisia absinthium** Linn.); (अं०) दी एब्सिन्थ (The Absinth), वर्म वुड (Worm-wood), मगवर्ट (Mug-wort) ।

वक्तव्य—'अफसंतीन' यूनानी '**अप्सिन्थिओन (Apsinthion)**' या लेटिन '**आब्सिन्थिउम**' का अरबी रूपान्तर है ।

उत्पत्तिस्थान—उत्तरी अफरीका, दक्षिण अमरीका, यूरोपके कतिपय पहाड़ी प्रदेश; एशियामें साइबेरिया, मंगोलिया, खुरासान (फारस); भारतवर्षके कतिपय पहाड़ी प्रदेश, **कश्मीर**, सीमाप्रांत, **नैपाल**, **कुल्लू**, **गढ़वाल** आदि । **अफसंतीन हिन्दी (Artemisia indica** Willd.) इसका भारतीय भेद है ।

वर्णन—यह 'चौहार' और 'दौना' की जातिकी एक **क्षुद्र वनस्पति** है । कांड तृणकांडवत् सरल एवं शाखामय २-२॥ फुट ऊँचा; शाखा सफेद रोईसे व्याप्त असंख्य पत्रयुक्त; **पत्र** लगभग ५ सें०मी०से ७.५ सें०मी० (दो-तीन इंच) लम्बे और ३.७५ सें० मी० (१॥ इंच) चौड़े लगभग तीन पक्षाकार-खंडयुक्त; पत्रवृंत तटपर किंचित् पक्षयुक्त, खण्ड रेखाकार और कुण्ठिताग्र, सातरके पत्रके समान, कोमल रेशमी सफेद रोइयोंसे व्याप्त होनेके कारण रजतवर्णके प्रतीत होते हैं; **पुष्प** बाबूनाके फूलके समान उससे छोटे पिलाई लिए सफेद होते हैं और उसके मध्यमें एक प्रकारका पीलापन होता है । इसमें छोटे-छोटे दाने (फल) लगते हैं, जिनके भीतर इसपंदके समान सूक्ष्म बीज भरे होते हैं । **गंध** अतितीक्ष्ण एवं अप्रिय और स्वाद अत्यंत तिक्त होता है । **नब्ती**, **रूमी** और **खुरासानी** इत्यादि इसके अनेक भेद होते हैं ।

उपयुक्त अंग—पत्र और पुष्पयुक्त कोमल शाखा ।

रासायनिक संगठन—इसमें **एब्सिन्थिन** (Absinthin) नामक एक अत्यंत कटु, सफेदी या पिलाई लिए भूरे रंगका स्फटिकीय सत्व (ग्लूकोसाइड) होता है, जो सुरासार वा क्लोरोफॉर्ममें अत्यंत विलेय, किन्तु ईथर या जलमें अल्प-विलेय है। अफसंतीनके शीतकषायको टैनिन द्वारा अधःक्षेपित करनेसे एब्सिन्थिन प्राप्त होता है।

कल्प तथा योग—**अर्क़ अफसंतीन**, मत्बूख़ अफसंतीन, शर्बत अफसंतीन, रूब्ब अफसंतीन, हब्ब **अफसंतीन** आदि।

प्रकृति—प्रथम कक्षामें **उष्ण** और द्वितीय (मतांतरसे तृतीय) कक्षामें **रूक्ष**।

गुण-कर्म—विलयन, **प्रमार्थी**, मूत्रल, **आर्तवजनन**, **उदरकृमिनाशन**, वेदनास्थापन, **दीपन**, **यकृद्बलदायक**, मेध्य (मुक़व्वी दिमाग़) और ज्वरघ्न।

उपयोग—यकृत्प्लीहाके रोगों, जैसे—**यकृच्छोथ**, **प्लीहाशोथ**, जलोदर और **जीर्णज्वरोंमें** अफसंतीन विपुल प्रयोगमें आता है। नियतकालिक (**नौबती**) ज्वरोंमें वेग (बारी) रोकनेके लिए भी इसे देते हैं। मंदाग्नि (**जोफमेदा**), कुपचन (**जोफहज़्म**) और उदरज कृमि, विशेषतः चुरु (**चुरने**) और गण्डूपदकृमि (**केंचवे**) को नष्ट करनेके लिए इसे पिलाते हैं। **अनार्तव** और कृच्छ्रार्तवमें इसका काढ़ा उपयोग करते हैं। मस्तिष्कदौर्बल्य, मृगी, शिरःशूल, कम्पवात, पक्षवध, अंगघात, अर्दित इत्यादि जैसे मस्तिष्क एवं **वातरोगोंमें** इसका उपयोग करते हैं। यह अर्शमें भी प्रयुक्त होती है। इसके काढ़ेका बफारा देनेसे कर्णशूल आराम होता है। यकृच्छोथ और प्लीहाशोथमें मुनासिब औषधद्रव्योंके साथ इसका लेप लगाते हैं। दोषयुक्त (मुरक्किब) और कफज्वरोंमें इसका विशेष उपयोग होता है। **अहितकर—शिरःशूलजनक**। **निवारण**—अनारका शर्बत और अनीसूँ। **मात्रा**—२ ग्राम से ५ ग्राम (२ माशा से ५ माशा) तक।

नव्यमत—अफसंतीनको गरम सिरकामें डुबोकर मोचखाये हुए अथवा कुचले हुए स्थानके चारों ओर बाँधते हैं। आक्षेपनिवारणके लिए भी इस पौधेको कुचलकर निकाले हुए रसको सिरमें लगाते हैं। शिरोवेदनामें सिरको तथा संधिवात और आमवातमें संधियोंको पूर्वोक्त विधि द्वारा सेंकते भी हैं। एब्सिन्थियम् तिक्त आमाशयबलप्रद है। यह क्षुधाकी वृद्धि करता और पाचनशक्तिको बढ़ाता है। अतएव अजीर्णरोगमें इसका उपयोग करते हैं। अपतन्त्रक, आक्षेप, अपस्मार, वातनाडीगत क्षोभ और वातनाडीदौर्बल्य (वातदौर्बल्य)में तथा मानसिक श्रांतिमें इसका व्यवहार होता है। कृमिघ्न प्रभावके लिए इसके शीतकषायकी बस्ति देते हैं। कृमिनिःसारकरूपसे इस पौधेका तीक्ष्णक्वाथ प्रयुक्त होता है। बालकोंकी शीतलामें इसका मंदक्वाथ देते हैं। त्वग्रोगों एवं दुष्टव्रणोंमें टकोरकी भाँति इसका बाह्य प्रयोग होता है।

सिकोनाकी दर्याफ़्तसे पूर्व, **विषमज्वरोंमें** इसका अत्यधिक उपयोग होता था। वातसंस्थानपर इसका प्रबल प्रभाव होता है। शिरःशूल और इसके अन्य वातविकारोंको उत्पन्न करनेवाली प्रवृत्तिसे कश्मीर तथा लद्दाखके यात्री भली-भाँति परिचित हैं। क्योंकि जब वे देशके इस विस्तृत भूभागसे, जो इस पौधेसे आच्छादित हैं, यात्रा करते हैं, तब उनको यह महान् कष्ट सहन करना पड़ता है।

●

(२३) अमड़ा।

फैमिली : आनाकार्डिआसे (Family : Anacardiaceae)

नाम—(हिं०) अ(आ)मड़ा (संथा०); (फा०) दरख़्ते मरियम्; (सं०) आम्रात(क); (बं०; बम्ब०) आमडा; (द०) जंगली आम, मरयमका फल; (गु०) जंगली आंबो, अमेडा; (म०) आंबाड़े; (पं०) अंबाड़ा; (था०) अमर; (लै०) **स्पाँडिआस मांगिफ़ेरा Spondias magifera** Willd. (**पर्याय-स्पाँडिआस पीन्नाटा S. pinnata** Kurz.); (अं०) हॉग प्लम् (Hog Plum)।

उत्पत्तिस्थान—इसके वृक्ष समस्त भारतवर्षमें जंगली पाये जाते, या लगाये जाते हैं।

वर्णन—अमडा नामके वृक्षका प्रसिद्ध फल है। यह छोटे आमके समान और गोपुच्छाकृतिका होता है। कच्चेपर हरा और खट्टा, तथा पकने पर पीला और खटमिट्ठा हो जाता है। देशी, विदेशी भेदसे यह दो प्रकारका होता है।

प्रकृति—पहले दर्जेमें **खुश्क** और दूसरेमें **सर्द**। आयुर्वेदके मतसे कच्चा उष्णवीर्य और पका शीतवीर्य है। **गुणकर्म**—संग्राही (काबिज) और **पित्तशामक**। **उपयोग**—कच्चे अमड़ेका अचार डालते और पकाकर सालन आदिकी भाँति काममें लेते है। उष्ण (पित्त) प्रकृति और पैत्तिक रोगोंमें लाभकारी हैं, तथा पित्तज अतिसारोंको बंद करता है। **अहितकर**—शीतप्रकृतिवालोंको। **निवारण**—कालीमिर्च। **मात्रा**—जितना पच सके।

आयुर्वेदीय मत—**अमड़ेका** फल कसैला, मीठा, शीतवीर्य, किंचित् वायुकारक, भारी, वृष्य, पित्तकारक और अग्निदीपक है (ध० नि०)। **कच्चा अमड़ा** कसैला, खट्टा, हृदय तथा कंठको हर्षकारक है। और पका खट-मिट्ठा, चिकना और कफपित्तनाशक है (रा० नि०)। **कच्चा अमड़ा** खट्टा, वातनाशक, भारी, उष्णवीर्य, रुचिकर और रेचक है। **पका अमड़ा** रसमें कसैला, पाकमें मधुर, शीतल, तृप्तिजनक, कफजनक, स्निग्ध, वृष्य, बृंहण, विष्टम्भी, भारी और बल्य है तथा वायु, पित्त, क्षत, दाह, क्षय एवं रक्तदोषनाशक है (भा० प्र०)।

नव्यमत—**कच्चे फलका** चूर्ण आमाशयबलप्रद (दीपन-पाचन) और आमाशयकी निर्बलता (अग्निमान्द्य)से हुए अजीर्णकी सामान्य दशाओंमें उपयोगी है; और उन सभी रोगोंमें जिनमें जेन्शन और कलंबा प्रयुक्त होते हैं, इसका बल्यरूपसे उपयोग होता है।

●

(२४) अमरूद।

फैमिली : मीर्टासे (Family : Myrtaceae)

नाम—(हिं०) अमरूद (-त), सफरी, सफरी आम; (फा०) अमरूद हिन्दी (तिब्बगुर्बा); (म०) पेरू; (गु०) जामफल; (बं०) पियारा; (लें०) **प्सीडिडम् गुआजावा** (**Psidium guajava** Linn.); (अं०) दी ग्वावा (The Guava), पीयर या एप्ल ग्वावा (Pear or Apple Guava)। वक्तव्य—फारसीमें अमरूद "नासपाती"को कहते हैं। अमरूद भी एक विदेशागत (Exotic) वनस्पति है, जो अब भारतवर्षमें सर्वत्र व्यापक हो गयी है। इसीलिए प्राचीन आयुर्वेद-यूनानी साहित्य में इसका उल्लेख नहीं है।

उत्पत्तिस्थान—अमेरिका। यह प्रायः सम्पूर्ण भारतवर्ष में लगाया जाता है और खूब होता है।

वर्णन और भेद—यह एक मधुर, स्वादिष्ट एवं प्रसिद्ध फल है जो दो प्रकार का होता है—(१) सफेद (**P. Pyriferum** Linn.) और (२) **लाल** (**P. Pomiferum** Linn.)।

प्रकृति—पहले दर्जेमें **गरम** और **तर**।

गुण-कर्म—**सौमनस्यजनन**, हृद्य, भोजनसे पूर्व ग्राही (काबिज) और भोजनोत्तर सर (**मुलय्यिन**)। उपयोग—अमरूद खानेसे मनः प्रसाद और हृदयको शक्ति प्राप्त होती है। यह जीवनीय (पुष्टिकर) भी है। अधिक प्रयोगसे यह आटोप (कराकिर) उत्पन्न करता है। कोई-कोई इसे कासमें लाभदायक बतलाते हैं। **अहितकर**—आनाहकारक और शूलजनक। **निवारण**—सोंठ, कालीमिर्च और सेंधानमक इत्यादि। **प्रतिनिधि**—सौमनस्यजनन-कर्ममें नासपाती और सेव। **मात्रा**—जितना पच सके।

आयुर्वेदीय मत—**अमरूद** कसैला, मधुर, तथा खट्टा है। **पका अमरूद** स्वादिष्ट होता है। यह वीर्यदायक, वात-पित्तघ्न, भारी, शीतल तथा कफका स्थान है; और भ्रम, दाह और मूर्च्छाको नष्ट करनेवाला है (अभि० नि० खं० १)।

नव्यमत—छाल संग्राही, ज्वरघ्न और आक्षेपहर तथा पत्र संग्राही और फल कोष्ठमृदुकर हैं। इसका फलत्वक्‌युक्त खाना चाहिए। **बीज** हानिकर हैं। फलकी जेली हृदयबलदायक और मलावरोध-निवारक हैं। अपक्व फल अतिसारमें प्रयुक्त हैं। **गैरड** (Garrod) ने रक्तवातमें इसकी बड़ी प्रशंसा की है। वह जल जिसमें इसके फल तर किए गये हों, बहुमूत्रजनित तृषाके लिए उत्तम है। विसूचिकाजन्य छर्दि और अतिसार बंद करनेके लिए इसकी जड़की छालका काढ़ा देते हैं। शीताद (स्कर्वी) और दूषित व्रणमें तथा सूजे हुए मूसढ़ोंमें मुखधावनरूपसे इसके काढ़ेका लाभदायक प्रयोग होता है।

●

(२५) अमलतास।

फैमिली : लेगूमिनोसे (Family : Leguminoseae)

नाम—(हिं०) अमलतास, सियरलठिया, सिगटलउरिया; (अ०) ख़ियारशंबर (इ० बै०), फ़लूस, क़िसाऽहिंदी, ख़र्नूब हिंदी; (फा०) **ख़ियारचंबर**; (सं०) आरग्वध; (बं०) सोंदाल; (म०) वाहवा; (गु०) गरमालो; (मा०) किरमाल, गिरमालो; (पं०) गिर्वनली (सिंध) छिमकणी; (ता०) कोड़े; (ते०) आरग्वध; (मल०) कणिकोन्ना; (क०) फ़लूस; (लें०) **कास्सिओ फ़ीस्टुला (Cassia fistula** Linn.); (अं०) ड्रमस्टिक (Drum Stick), पुडिंग स्टिक (Pudding Stick), पर्जिंग कास्सिया (Purging Cassia)। **फलत्वक्**—(अ०) क़श्र खियारशंबर; (फा०) पोस्त अमलतास। **फलमज्जा**—(अ०) मग्ज़ फ़ुलूस ख़ियारशंबर; (लै०) कास्सिई पल्पा (Cassiae Pulpa); (अं०) केशिया पल्पा (Cassia pulpa)।

वक्तव्य—अमलतासके वृक्षका मूल उत्पत्तिस्थान भारतवर्ष है। अतएव प्राचीन भारतीयोंको इसका ज्ञान था। परन्तु प्राचीन यूनानियोंको इसका ज्ञान नहीं था। कदाचित् उत्तरकालीन यूनानियोंको अरबोंके द्वारा और अरबोंको भारतीयोंके द्वारा इसका ज्ञान हुआ, जिसके प्रमाण **क़िसाऽहिन्दी** एवं **ख़र्नूब हिन्दी** आदि संज्ञाएँ हैं।

उत्पत्तिस्थान—प्रायः समस्त भारतवर्ष। पश्चिम और पूर्वी भारतीय द्वीपसमूह, लंका, मलाया, चीन और वर्मा इत्यादि तथा ब्राजील, मिश्र, अफरीकाके उष्ण प्रदेश।

वर्णन – यह एक बड़े वृक्ष की प्रसिद्ध **फली** है, जो एक हाथ या उससे भी अधिक लंबी, मजबूत, काष्ठीय, सवृंत, नोकदार और लगभग २·५ सें० मी० (१ इंच) व्यासकी होती है। पकने पर यह काली हो जाती है। इसके भीतर थोड़ी-थोड़ी दूरी पर आडेरुख पैसेके बराबर परत (फ़लूस) होते हैं, जिनपर अफीमके समान एक काले रंगका पदार्थ (**अस्ले ख़ियारशंबर**) लगा होता है। यह परत **मग्ज़ अमलतास** या **मग्ज़ फुलूस** ख़ियारशंबर के नामसे प्रसिद्ध है। यह चिपपिचा, मधुर एवं दुर्गंधयुक्त होता है। ज्यूँही फल पकता है, गूदा सिकुड़ता है और हिलाने पर बीजका शब्द सुनाई देता है। फलका ऊपरी भाग अर्थात् छिलका (**पोस्त अमलतास**) मसृण, पकने पर गंभीर धूसरवर्णका और कड़ा होता है। फूल पीले, सुगंधित एवं लंबे, अवनत, अशाख पुष्पदण्डपर स्थित होते हैं।

उपयुक्त अंग—फलमज्जा, फलत्वक्, मूल, पत्र और पुष्प।

रासायनिक संगठन—फलमज्जामें शर्करा ६० प्रतिशत, र्‌हीइन (Rhein), लबाब, संग्राही द्रव्य, ग्लूटीन (सरेश), रंजक द्रव्य, पेक्टिन, कैल्सियम आक्ज़ेलेट, भस्म, निर्यास और जल होता है।

कल्प तथा योग—गुलकंद खियारशंबर और **लऊक़** खियारशंबर।

फलमज्जा—

प्रकृति—पहले दर्जेमें उष्ण एवं तर (स्निग्ध)। आयुर्वेदमतसे शीतवीर्य (च०) है।

गुण-कर्म—उरःमार्दवकर (सारक), **रेचन** और श्वयथु-विलयन।

उपयोग—अन्य योग्य औषधद्रव्योंके साथ यह प्रत्येक दोष (दोषत्रय)का मरोड़रहित विरेचक है। हरएक वय एवं प्रत्येक दशामें यहाँतक कि गर्भवती स्त्रियोंको भी इसका सेवन करा सकते हैं। कास, श्वास और वक्षःस्थल (सीना)की कर्कशता (खुश्की) दूर करनेके लिए इसका अवलेह बनाकर उपयोग करते हैं। सूजन उतारने(श्वयथु-विलयन)के लिए तथा आमवात एवं वातरक्तमें भी इसका लेप लगाते हैं। यह कामला, **यकृदवरोध**, **यकृच्छोथ** और उष्ण (पित्तज)ज्वरोंमें उपयोग किया जाता है। कंठशोथ, उदाहरणतः खुनाक आदिमें काकमाची (मकोय)के स्वरस या गोदुग्धके साथ इसका काढ़ा बनाकर गंडूष किया जाता है। कुछ लोग अमलतासके फूलोंका **गुलकंद** (पुष्पखंड) और कच्ची फलीका **मुरब्बा** (फलखंड) कास और मलावरोध (कब्ज)में प्रयुक्त करते हैं। कहते हैं कि, क्वाथकरने(पकाने)से इसका वीर्य (प्रभाव) कम हो जाता है; अतएव क्वाथको आगपरसे नीचे उतारकर पीछे इसमें अमलतासका गूदा मिलाते हैं। अमलतासका गूदा देरतक आँतोंमें चिपका रहता है। इसलिए इसको थोड़ा बादामका तेल लगाकर उपयोगमें लेना चाहिए। **अहितकर**—मरोड़ और प्रवाहण(कुंथन)जनक। **निवारण**—मस्तगी, अनीसूँ और स्नेह। **प्रतिनिधि**—निशोथ और यवासशर्करा रेचनके लिए। **मात्रा**—२ तोलासे ४ तोला तक।

फलत्वक् (पोस्त अमलतास)—

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें उष्ण एवं **रूक्ष** (खुश्क)।

गुण-कर्म—अमलतासके छिलकाको अनार्तव एवं कृच्छ्रार्तवमें अकेला या यथोचित औषधद्रव्योंके साथ काढ़ा करके देते हैं। गर्भ और अपरा-निस्सारण (आविजनन) तथा प्रसवसौकर्यके लिए भी इसका क्वाथ करके पिलाते हैं। **अहितकर**—गर्भशातन। **मात्रा**—६ ग्राम से १२ ग्राम (६ माशा से १ तोला) तक।

आयुर्वेदीय मत—अमलतास मधुर, तिक्त, मृदु, शीतवीर्य, गुरु, मृदुरेचन, रुचिकारक तथा कुष्ठ, कण्डू, ज्वर, हृद्रोग, वातरक्त, उदावर्त तथा कफका नाश करनेवाला और ज्वरमें कोष्ठशुद्धिके लिए उत्तम है। यह मृदु और अनपायि (किसी प्रकारकी हानि न करनेवाला) होनेसे बालक, वृद्ध और क्षतक्षीण और सुकुमारोंके विरेचनके लिए प्रशस्त है (च०सू०अ० २,४,२५; वि०अ० ८; क०अ० ८; सु०सू० अ० ३८; ३९; भा०प्र०)।

नव्यमत—अमलतास आनुलोमिक, दाहशामक और वेदनास्थापन है। रक्तमें उष्णता बढ़ी हो और शरीरमें मलसंचय होकर वातरक्त, आमवात आदि रोग हुए हों, तब अमलतास विरेचनके लिए देते हैं। पित्तकी प्रधानता हो तो इसके साथ इमली देते हैं। शीतकी प्रधानता हो तो इसके साथ निसोथ देते हैं। यकृत्की क्रिया ठीक न होती हो, तब उसे मकोयके साथ देते हैं। व्रणशोथ, वातरक्त और आमवातके शोथमें गूदा (और पत्ती)का लेप करते हैं। गले की ग्रंथि सूजकर पानी गलेमें न उतरता हो तब १ तोला इसकी छालका काढ़ा करके थोड़ा-थोड़ा मुँहमें डालते हैं। इससे ग्रन्थिशोथ शीघ्र उतरता है।

◆

(२६) अमलबेद।

फैमिली : गुट्टीफेरी (Family : Guttiferae)

नाम—(हिं०) अमलवेद(—त); (बं०) थैकल; (सं०) अम्लवेतस; (ने०) चुकवो; (ले०) गार्सीनिया पेडुंकुलाटा (**Garcinia pedunculata** Roxb.)।

वक्तव्य—वंगीय वैद्योंका यह अमलबेत सम्भवतः यूनानी निघंटुओंका "अमलबेद" है। परन्तु आयुर्वेदोक्त "**अम्लवेतस**"से बाजारमें मिलनेवाला गुच्छाकृति पदार्थ (चोटीसी गुँथी हुई वस्तु)का ग्रहण होता है। यह रेवंदचीनी-की सुखाई हुई शाखायें होती हैं, ऐसा कतिपय विशेषज्ञोंका मत है। सम्भवतः खट्टी और बेंतकी आकृतिकी होनेसे

इसे **"अम्लवेत"** समझा जाने लगा। किंतु यहाँ ध्यानमें रखना चाहिए कि **"वेतस"** से **"बेंत"**का भ्रम नहीं होना चाहिए। वेतस वृक्ष जातीय वनस्पति है, जबकि बेंत **ग्रामीने फ़ैमिली**का तृणजातीय वनस्पति होता है।

उत्पत्तिस्थान—भारतवर्ष विशेषतः **पूर्वोत्तर बंगाल**, शाहजहाँनाबाद, सिलहट, **कोचबिहार** आदि।

वर्णन—कोकम वा बड़े नीबूकी जातिका एक रुचिदायक खट्टा फल जो गोल नासपातीके आकारका, किंतु उसकी अपेक्षया दुगुना या तिगुना बड़ा, कच्चेपर हरा और पकनेपर पीला और चिकना होता है। छिलका पतला होता है। इसके गूदेका रस अत्यंत तीक्ष्ण एवं खट्टा होता है। इसमें सूई गल जाती है। आयुर्वेदीय निघंटुओंमें भी अम्लेवतसके इस प्रकारके गुणका ("लोहसूची द्रवत्वकृत्") उल्लेख मिलता है।

उपयुक्त अंग—फल (शुष्कफल = अमलवेद)।

रासायनिक संगठन—फलमें मैलिक एसिड (Malic acid) होता है।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें शीत एवं रूक्ष।

गुणकर्म—दीपन, **पाचन** एवं **पित्तरक्तसंशमन**। उपयोग—इसका रस अधिकतया दीपन-पाचन चूर्णोंमें मिलाकर खिलाते हैं। नीबूके रसकी भाँति इसके रसके शर्बतसे पित्त और रक्तके उद्वेग (प्रकोप)का शमन होता है। **मात्रा**—स्वरस ६ ग्रामसे १२ ग्राम (६ माशासे १ तोला) तक।

आयुर्वेदीय मत—अमलबेत अत्यंत खट्टा, लघु, रूक्ष, भेदन, दीपन, अनुलोमन, वातकफहर, पित्तवर्धक, लोमहर्षण तथा हृद्रोग, शूल, गुल्म, विण्मूत्रदोष, प्लीहा, उदावर्त, हिचकी, आनाह, अरुचि, श्वास, खाँसी और अजीर्णका नाश करनेवाला है (च० सू० अ० ४, २५; भा० प्र०)।

●

(२७) अरंडखरबूजा।

फैमिली : कारीकासे (Family : Caricaceae)

नाम—(हिं०) अ(ए)रंडखरबूजा (-ककड़ी), रेंडखरबूजा, पपीता, पपैया, विलायती रेंड; (अ०) शज्रतुल् बित्तीख़; (फा०) **दरख्त खुरपज़ा** (खर्बुजा); (सं०) एरंडकर्कटी, मधुकर्कटी (नवीन); (बं०) पैंपै; (म०) पपाया; (गु०) पोपैयुं, झाडचीमडुं; (सिंध) काठगिदरो; (ते०) बोप्पयी; (ता०) पप्पलि; पचलै; (मल०) पप्पायम्, कप्पलम; (लै०) **कारिका पापाया** (**Carica papaya** Linn.); (अं०) पपाव (पपाया) ट्री (Papaw (Papaya) Tree.।

वक्तव्य—स्पेनकी भाषामें 'पपीता' शब्दका प्रयोग कुचिला (**स्ट्रिक्नोस**) प्रजातिकी एक अन्य विषैली ओषधिके अर्थमें होता है। उसका विवरण आगे 'पपीता'के शीर्षकमें किया गया है। यह दो भिन्न द्रव्यों का संयोग वशात् नामसमरूपिताका उदाहरण है। **मुहीतआज़ममें पपय्यः** और **मख्जनुल् अद्वियामें 'पफैया'**के नामसे इसका उल्लेख किया गया है। गीलानी ने **शरहमुफ़रदातक़ानूनमें** 'बित्तीख'के वर्णनमें इसका उल्लेख किया है। कतिपय ग्रन्थोंमें इसका अरबी, फारसी नाम "अंबः-हिंदी" लिखा है। परंतु प्रामाणिक यूनानी वैद्यकीय ग्रंथोंमें यह नाम नहीं मिला। पपीता एक बाह्यागत नवीन वनस्पति है। पहले यह अंग्रेजोंके बंगलोंमें लगाया हुआ मिलता था और धार्मिक भावनाओंके भारतीय इसको अपवित्रमानते थे। किंतु इसके गुणोंके कारण अब यह सर्वत्र भारतवर्षमें प्रसिद्ध एवं प्रचुरतासे व्यवहृत किया जाता है। अब इसकी व्यावसायिक दृष्टिसे खेती भी की जाती है। बाह्यगत नवीन वनस्पति होनेके कारण पपीताका उल्लेख़ प्राचीन आयुर्वेदीय साहित्यमें नहीं मिलता। अतएव यहाँ जो संस्कृत नाम दिये गये हैं, वह आधुनिक हैं, इस बातको ध्यानमें रखना चाहिए। हिंदी नाम 'एरंडखरबूज़ा' एवं फारसी नाम

“दरख़्त खुरब्जा” संस्कृत नामकी भाँति हैं; तथा शेष हिंदी नाम और अन्य भारतीय भाषाओंके नाम **‘पपाया’**से व्युत्पन्न हैं।

इतिहास—ब्राजीलनिवासी इसको प्राचीनकालसे जानते थे; किंतु इसके दूधियारसके कृमिघ्नगुणका ज्ञान ईसवी सन् की सत्रहवीं शतीमें हुआ। पश्चिमीय भारतीय द्वीपसमूहमें इसका मांसपाचक प्रभाव प्राचीनकालसे ज्ञात है। परंतु ज्ञात होता है कि पुर्तगालवासी जब इसे भारतवर्षमें लाये, तो उनसे भारतवासियोंको भी इसके मांसपाचक गुणका ज्ञान हुआ। भारतवर्षमें भी अनेक वर्षोंसे मांसको पकानेके लिए कच्चे पपीताका रस उसपर मलते हैं अथवा उसको पपीताकी पत्तीमें लपेट देते हैं। अस्तु, **“मख्जनुल् अद्विया”** और **मुहीत आज़म** प्रभृति ग्रंथोंमें भी कच्चे पपीताके दूधका गुण-धर्म लिखा है, कि वह मांसको पकाता और दूधको जमा देता है।

उत्पत्तिस्थान—पश्चिम भारतीय द्वीप, मेक्सिकोकी खाड़ीके कूल और कदाचित् ब्राजीलका आदिवासी है। अब भारतवर्षमें भी सर्वत्र, विशेषतः पश्चिमी भारतवर्षमें लगाया जाता है।

वर्णन—पपीतेके छोटे **वृक्ष** ६ से ९ मीटर या २०-३० फुट ऊँचे केवल लगाये हुए मिलते हैं। **पत्र** लंबे डंठल ९० सें० मी० या १ गज लंबे युक्त, रेंडके पत्रके समान पंजाकार होते हैं, जिनसे वृक्षके सिरेपर छतरी-सी वन जाती है। इसमें स्त्री एवं पुं-पुष्प अलग-अलग गुच्छोंमें आते हैं। पुं-पुष्प श्वेत और स्त्री पुष्प पिलाई लिए होता है। किसी-किसी वृक्षमें केवल पुष्प आते तथा फल नहीं लगते। फल लंबगोल, धारीधार, छोटे खरबूजाकी आकृतिका, कच्चा बाहरसे हरा अंदरसे सफेद और पका पिलाई लिए हरा या ललाई लिए होता है। पकाफल स्वादमें मधुर होता है। इनमें भूरे या काले मरिचके दानोंकी तरह गोल चिपचिपे बीज भरे होते हैं। उत्तमजातिके फलोंमें अपेक्षाकृत बीज कम संख्यामें होते हैं। बीजोंसे चंसुरकीसी गंध आती है। कच्चाफल एक प्रकारके गाढ़े दूधसे भरा होता है। पत्र और काण्डमें भी दूध होता है।

उपयुक्त अंग—फल (कच्चा और पका), बीज, पत्र और दुधिया रस।

रासायनिक संगठन—इसके दुधिया रसमें एक प्रकारका ऐल्ब्युमिनीय पाचक किण्व होता है, जो दूधको जमा देता है। यह एक भाग २४० गुने मांसको गलाकर नरम कर देता है। इसको **पेपेन (Papain)** या **पपायोटिन (Papyotin)** कहते हैं। यह प्राणिज **पेप्सिन** (Pepsin) नामक पाचक द्रव्यके समान, प्रत्युत अनेक विषयोंमें उससे भी उत्तम है। इसकी **प्राप्तिकी विधि**—वृक्षपर परिपूर्ण हुए कच्चे फलमें सीधे चीरे लगानेसे जो दूध जैसा निर्यास निकलता है, उसको इकट्ठाकर, धूपमें सुखा, शीशीमें भर, भलीभाँति डाट लगाकर रख लेवें और समयपर काममें लेंवे। ताजे फलमें शर्करा, पेक्टिन, निम्ब्वम्ल या सिट्रिक एसिड (Citric acid), टार्टरिक एसिड, (Tartaric acid), मैलिक एसिड (Malic acid) और द्राक्षशर्करा प्रभृति पदार्थ पाये जाते हैं। फल विटामिनका उत्तम आश्रय है। बीजोंमें एक प्रकारका कुस्वाद अप्रियगंधी तेल होता है, जिसे **पपैयाका तेल** कहते हैं।

प्रकृति—पक्व पपीता उष्ण एवं तर और अपक्व उष्ण एवं रूक्ष।

उपयोग—पपीताके खानेसे आमाशय बलवान् होता है, खूब भूख लगती और अपान वायु खुलती है। यह खूब मूत्रका प्रवर्तन करता और अश्मरीका छेदन करता है। इसके उपयोगसे उदरज कृमि विशेषकर केंचुये और कद्दूदाने मरकर निकल जाते हैं। **मख्जनुल्अद्विया** और **मुहीत आजम**में लिखा है कि इसका दूध मांसको कोमल करता और उसे गला देता (गुदाज करता) और दूधको जमा देता है। कच्चे पपीतासे जो दूध निकलता है, उसे तीन-चार बार लगानेसे दद्रु या पामा (जिसमें अत्यंत खाज उठती हो और जिससे अधिक द्रवस्रवता हो) नष्ट होती है। इसमें कपड़ा भिंगोकर योनिमें स्थापन करनेसे आर्तव जारी होता और गर्भपात हो जाता है। सर्वसाधारण लोग मांसको शीघ्र गलानेके लिए पपीताका उपयोग करते हैं। इसका विशेष कर्म आहारपाचन है। **अहितकर**—उष्ण (पित्त) प्रकृतिमें तीक्ष्णताकी वृद्धि करता है। गर्भवती स्त्रियोंको इसका उपयोग वर्जित है। **मात्रा**—५-६ तोला या जितना प्रकृतिक्षम हो।

नव्यमत—फलके दूधकी क्रिया आमाशय और आँतों, दोनोंमें बरावर होती है। यह उत्तम पाचक, कृमिघ्न, वेदनास्थापन, स्तन्यजनन, कुष्ठघ्न और उदररोगहर है। इसकी क्रिया पेप्सीनसे उच्च कक्षाकी है। इसके पत्तोंकी क्रिया हृदय पर डिजिटेलिसके समान होती है। इससे नाड़ीकी गति कम होती है, हृदयका स्पन्दन ठीक होता है, हृदयका आरामकाल बढ़ता है, पसीना आता और मूत्रकी राशि वढ़ती है। पत्ते हृदयवल्य और ज्वरघ्न हैं। इनमें थोड़ा पाचक गुण भी है। पचननलिकाके रोगोंमें इसके दूधका अत्युत्तम उपयोग होता है। जिनको मांस और शिम्बीधान्य न पचते हों, उनको इससे विशेष लाभ होता है। आमाशयका जीर्ण शोथ—व्रण और अर्बुद, अम्लपित्त तथा कुपचनरोगमें इसका दूध देते हैं। इससे आमाशयका गाढ़ा कफ द्रवीभूत होता है, और अन्य उत्तमरीतिसे पचकर शीघ्र रक्त में परिणत होता है। गोल उदरकृमिको मारनेके लिए इसका दूध १ तोला, मधु १ तोला और गरम जल २ तोला मिला, ढंठा होनेपर इसे देते हैं और दो घंटेके बाद एरंडतैल देते हैं। इससे कभी उदरमें मरोड़ हो तो नीबूके रसमें मिश्री मिलाकर देना चाहिए। यकृत् और प्लीहा बढ़कर कठिन हुए हों तो १ तोला ताजे दूधमें ३ माशा चीनी मिलाकर देते हैं। हृद्रोगमें पत्तियोंका फाँट बनाकर देते हैं। ज्वरमें हृदय अशक्त होकर नाड़ीकी गति त्वरित हो, तो इस फाँटसे नाड़ी शांत होती है, ज्वरका वेग कम होता है और मूत्र छूटता है। इस रोगमें पत्तियोंके साथ मूत्रजनन, स्वेदजनन और सारक औषध देते हैं।

(२८) अरवी।

फ़ैमिली : आरासे (Family : Araceae)

नाम—(हिं०) अरवी, अरुई, घुइयाँ; (अ०) क़लक़ास; (सं०) आलुकी (भा० प्र०); (वं०) काचू; (बम्ब०) कचुआलू; (लैं०) **कोलोकासिआ एस्कूलेंटा Colocasia esculenta**(L.)Schott. (पर्याय—*C. antiquorum* Schott. var. *esculenta Scholt.*; *C. esculenta* var. *antiquorum* Hubb. & Rehd.)

उत्पत्तिस्थान—भारतवर्षमें कुछ नम भागोंमें यह जंगली होती है। शाकके लिए प्रायः इसकी खेतीकी जाती है।

वर्णन—एक उद्भिज्जकी प्रसिद्ध जड़ (कंदमूल) है। कचालू इसीका एक भेद है। अधिकतया इसका उपयोग तरकारीकी भाँति किया जाता है। रासायनिक संगठन—कंदमें सैपोटॉक्सिन (Sapotoxin) होता है। पत्र और पत्रवृंत प्रोविटामिन 'A' और विटामिन 'C' के उत्तम प्रश्रय हैं।

प्रकृति—पहले दर्जेमें गरम और दूसरेमें तर, वस्तुतः यह सर्द एवं तर है।

गुण-कर्म—शुक्रजनन, **शुक्रसांद्रकर, बृंहणीय** और **लेसदार** वा चिपकानेवाली (मुग़र्री) है।

उपयोग—इसको अधिकतया तरकारीकी भाँति अकेला या मांसके साथ पकाकर खाते हैं। यह आध्मानकारक (विष्टंभी) एवं दीर्घपाकी होती है। किन्तु इसके समप्रमाणमें सेवन करते रहनेसे शुक्रकी वृद्धि एवं पुष्टि होती है तथा शरीर परिवृंहित (स्थूल) होता है, पुनः चाहे इसका शाक बनाकर खाया जाय अथवा इसका चूर्ण बनाकर औषधिकी भाँति सेवन किया जाय। चिकनाहट और लेसके कारण यह खाँसी और (सहज्ज अम्आऽ)में लाभ पहुँचाती है। शुक्रजनन और शुक्रसांद्रकरण इसके प्रधान गुणकर्म हैं। **अहितकर**—आध्मानकारक, दीर्घपाकी, अभिष्यंदी और वायुकारक एवं कफजनक है। **निवारण**—दालचीनी और लौंग। **प्रतिनिधि**—भिंडी। **मात्रा**—औषधरूपमें ५ से ७ ग्राम (५-७ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—आलुकी (अरुई) बलकारक, स्निग्ध, गुरु, कफनाशक, विष्टम्भजनक और तेलमें तली हुई अरुई अत्यंत रुचिकारक होती है (भा० प्र०)।

●

(२९) अरहर।

फ़ैमिली : लेगूमिनोसे (Family : Leguminosae)

नाम—(हिं०) अरहर, रहर, तुवर; (अ०) शाज़; (फा०) शाख़ु(ख़ू)ल; (सं०) आढ़की, तुवरी; (बं०; म०) अड़हर; (बम्ब०) तुवेर; (लै०) **काजानुस काजान** **Cajanus cajan** (L.) Hith. (**पर्याय**—*Cajanus indicus* Spr.); (अं०) पिजेन पी (Pigeon Pea)।

उत्पत्तिस्थान—दालके लिए समस्त भारतवर्षमें इसकी सुविस्तृत खेती होती है।

वर्णन—एक प्रसिद्ध खाद्यान्न, जिसकी दाल पकाकर खाई जाती है। इसके एक भेदका नाम तूर वा तूअर है, जिसका दाना अरहरके दानेसे छोटा होता है।

रासायनिक संगठन—बीजमें दो ग्लोब्युलिन—**कैज़ैनीन** और **कॉनकैज़ैनीन** ये तत्त्व पाये जाते हैं।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम (मतांतरसे सर्द) और खुश्क। आयुर्वेदके मतसे शीतवीर्य (ध० नि०) है।

गुण-कर्म—आध्मानकारक, आनाहकारक (**काबिज**) और वाष्पोत्पादक या वायुकारक (**मुबख़्ख़िर**)।

उपयोग—अरहर अधिकतया आहारकी भाँति प्रयुक्त होती है। इससे पोषणांश कम प्राप्त होता है। यह देरमें पचती है, और वायु एवं अफारा उत्पन्न करती है। कोई-कोई हकीम अरहरकी पत्तियोंका निचोड़ चेचकके फूलेपर लगाते हैं तथा अफीमका विष दूर करनेके लिए पिलाते हैं। कोई-कोई अरहरकी दालको पानीमें पीसकर दिनमें दो-बार बालखोरा (इन्द्रलुप्त)के ऊपर लेप करते हैं। दूसरे दिन उसे खुजलाकर सरसोंका तेल लगाकर धूपमें बैठते हैं। इस प्रकार दो-तीन बारके प्रयोगसे बालखोरा दूर हो जाता है, और बाल निकल आते हैं। अरहरकी पत्तीको नीमकी पत्तीके साथ पीस-छानकर पीनेसे **बवासीर**में आराम हो जाता है। सूजनको पकाकर फोड़नेके लिए अरहरकी पत्तीको पीसकर उसके ऊपर लेप करते हैं। स्तनोंमें दूधकी उत्पत्ति कम करनेके लिए बीज और पत्तियोंको पीसकर और गरमकर उनके ऊपर लेप करते हैं। **अहितकर**—दीर्घपाकी और वायुकारक (मुबख्खिर)। **निवारण**—घी तथा खट्टे पदार्थ। **प्रतिनिधि**—प्रायः गुणों, जैसे श्वयथुविलयन आदि में मसूर।

आयुर्वेदीय मत—आढ़की कुछ-कुछ वायुको कुपित करनेवाली, कसैली, स्वादु, संग्राही, पाकमें कटु, शीतल तथा हलकी है; और मेद, कफ तथा रक्तपित्तमें इसका लेप एवं सेक उपकारक है (ध० नि०)। **राजनिघण्टु**में इन गुणोंके अतिरिक्त यह मधुर, कफपित्तनाशक, रुचिकारक और **भावप्रकाश**के अनुसार रूक्ष, वर्णकारक, पित्त, कफ और रुधिरविकारशामक है।

नव्यमत—दाल पोषक और शीघ्रपाकी है। इसलिए रोगियोंको पथ्य है। इससे कब्ज पैदा होता है। इसलिये यह गरम और रूक्ष मानी जाती है। यह **आढकी-यूष** बनानेमें बहुत काम आती है और इसे लोग बहुत पसंद करते हैं। पत्तियाँ मुखरोगमें काम आती हैं। मसूढ़ोंके पिलपिला होने और मुखपाकमें (मुँह आनेपर) लोग इसकी कोमल पत्तियाँ चबाते हैं। इसे पीसकर फोड़े-फुंसियोंपर भी लगाते हैं। अरहरकी दाल और पत्तीको पीसकर कल्क बना, गरमकर स्तनपर प्रलेप करते हैं। इससे स्तनमें दूध बनना बंद हो जाता है। पत्तियोंको कुचलकर निकाले हुए स्वरसमें थोड़ा नमक डालकर कामला रोगमें रोगीको देते हैं। इसकी दालोंकी बनाई पुल्टिस (उपनाह) सूजनको उतारती है।

●

(३०) अर्गट।

फैमिली : हीपोक्रेआसे (Family : Hypocreaceae)

नाम—(हिं०, अर्गट; (सं०) धान्यरुक्, मसि, कज्जल (**नवीन**); (म०) तांब; (गु०) गेरवो; (लैं०) **क्लैविसेप्स पर्पूरेआ** (**Claviceps purpurea** Tul.) (सिकेले कार्न्युटम् Secale cornutum Nees.); अर्गोटा (Ergota); (अं०) अर्गट (Ergot), (अर्गट ऑफ राई, Ergot of Rye), (स्मट ऑफ राई, Smut of Rye)।

वक्तव्य—**मख़्ज़नुल् अदविया डॉक्टरी**के संकलयिता हकीम डॉक्टर गुलाम जीलानी तथा हकीम कबीरुद्दीन महोदयके कथनानुसार **'अर्गट'** और **'शैलम'** (गंदुमदीवाना) एक पदार्थके नाम हैं, जो ठीक नहीं हैं। कारण, अर्गट के लिए यह आवश्यक है, कि उसमें एक कीड़ा उत्पन्न होकर उसके दानोंकी स्वरूपाकृति बदल देवे। परन्तु शैलम एक वानस्पतिक बीज है। इसमें कीड़ा लगने और न लगनेका कोई प्रश्न ही नहीं है। इसके अतिरिक्त अर्गट फंगस अर्थात् खुमीकी तरहकी एक फफूँदी या काई है, जिसको परिभाषामें **क्लेविसेप्स पर्पूरेआ** कहते हैं। जब यह फफूँदी (छत्रकीय जीवाणु या वानस्पतिक कीट) **सिकेल सेरेआले** नामक एक प्रकारके धान्य, जिसे अँग्रेजीमें **'कॉमन राई'** कहते हैं, लग जाती है अर्थात् जब यह कीड़े उसके अर्थात् उक्त राईके दानेके भीतर प्रविष्ट होकर उसके स्वरूप एवं रचनाको परिवर्तित करदेते हैं तब उस विकृत वस्तु को जो वस्तुतः उक्त फफूँदी से परिपूर्ण होती है, **अर्गट ऑफ राई** कहते हैं। फ्रांसीसी भाषामें अर्गटका अर्थ **'कुक्कुट कण्टक'** (ख़ारे मुर्ग़) है। अर्गट स्वरूप में उसके समान होता है, इसलिए इसको उक्त नामसे अभिधानित किया गया।

उत्पत्तिस्थान—फ्रांस, स्पेन आदि। **अर्गट ऑफ राई** (**Secale cereale**)की खेती भारतके नीलगिरिपर्वत पर की जाती है। स्पेनमें होनेवाला रूसीकी अपेक्षया अधिक बड़ा होता है, तथा अधिक प्रशंसित है।

उपयुक्त अंग—अर्गट ऑफ राईपर लगी हुई फफूँदी।

वर्णन—इसके किसी प्रकार नोकीले, त्रिकोणाकार साधारणतः वक्र दाने होते हैं, जिनकी नोक पतली होती है। ये दाने ०·८२ सें० मी० (१।३ से १।२ इंच) या २·५ सें० मी० से ३·७५ सें०मी० (१ से १॥ इंच) तक लंबे, और ०·८२ सें०मी०(१।३ इंच) चौड़े, ३ मि०मी० से ४·५ मि०मी०(२।१६–३।१६ इंच व्यास में) रम्भाकार गावदुमी, वृत्ताकार नोकयुक्त, दोनों पृष्ठ पिच्चित, विशेषकर नतोदर पृष्ठ तीन परिखायुक्त तथा दाने स्फुटित (चिड़चिड़ाये या चटखे) होते हैं(बाहरसे ये बैंगनी और भीतरसे प्याजी सफेदवर्ण और भंगुर होते हैं; अर्थात् इनको जहाँसे तोड़े वहींसे टूट जाते हैं)। यह विशेष दुर्गन्धयुक्त, कडुआ और अप्रिय स्वादवाला होता है। अर्गटके समूचे दानोंको सुरक्षित रखना चाहिए। शुष्क करके (अग्नि पर नहीं, अपितु बिना बुझे चूनेके उत्तापपर शुष्क करें), सर्वथा शुष्क एवं वायुरहित शीशीमें डालकर उसमें थोड़ा कपूर डालकर रखें, जिसमें यह विकृत न हो तथा इसमें कीड़े न लग जाँय, इसका चूर्ण बहुत शीघ्र बिगड़ जाता है, एवं वर्षके उपरान्त यह वीर्यहीन हो जाता है)।

संयोग विरुद्ध—ग्राही द्रव्य और धातु लवण।

प्रतिनिधि—कपासकी जड़की छाल।

रासायनिक संगठन—अर्गोटामीन (Ergotamine) और अर्गोटॉक्सिन (Ergotoxin) प्रभृति।

कल्प—फांट, चूर्ण, प्रवाही और घन रसक्रिया, तैल, सुरासव आदि।

गुण-कर्म तथा उपयोग—**आर्तवप्रवर्तक**, रक्तस्तंभक, **गर्भाशयोत्तेजक** और **गर्भशातक**। मासिकस्राव संबंधी विकारों, जैसे—श्वेतप्रदर, कृच्छ्ररज, रजोरोधमें अपने उत्तेजक गुणोंके कारण इसका पुष्कल प्रयोग होता है। इसके ये दो प्रधान कर्म हैं—(१) छोटी रक्तवाहिनियोंको संकुचित करके रक्तस्राव बंद करना; और (२) गर्भाशयका संकोचन करना। **प्रसवोत्तर अपरा** (आँवल-खेंड़ी)**पतनके बाद अर्गट देनेसे रक्तस्राव नहीं होता**, गर्भाशय पूर्वस्थितिपर आता

है, पेट नहीं दुखता और ज्वर नहीं आता। प्रसवके अनन्तर पाँच-छः दिन तक प्रतिदिन प्रातः-सायं अर्गट देना चाहिए। गर्भपातके बाद, कभी-कभी गर्भाशय शिथिल होता है, उससे बार-बार रजःस्राव होता है। कमर तथा पेटमें पीड़ा होती है और पांडुरोग होता है। ऐसी स्थितिमें अर्गट देते हैं। रक्तमिश्रित प्रदरमें अर्गट देते हैं। प्रसवावस्थामें रक्तस्राव बंद करने, गर्भाशयका संकोचन करनेके लिए अर्गटके समान दूसरा औषध नहीं है। वैद्योंको इसका अवश्य उपयोग करना चाहिए। अर्गटका फांट बनाकर उपयोग करना चाहिए। फुप्फुस अथवा अन्य अवयवोंसे रक्तस्राव होने, अंत्रगत रक्तक्षरण आदिमें भी यह एक चमत्कारी औषध है, तथा शुक्रमेह और मूत्रग्रन्थि (Enlarged prostate)में भी उपादेय है। शिश्नोत्थान होनेके बाद तुरंत शैथिल्य मालूम होता हो, तो ऐसे नपुंसकत्वमें अर्गट खानेको देते हैं और जलमें पीसकर उसका शिश्नपर लेप करते हैं। स्वप्नमें वीर्यपात और वीर्यके शीघ्र स्खलनमें अर्गट देनेसे लाभ होता है। सूजाकमें अर्गट देनेसे पूयस्राव बंद होता है। आँतोंकी शिथिलतासे उत्पन्न कब्जमें अर्गट देनेसे आँतोंकी शक्ति-गति बढ़कर दस्त साफ होता है। बस्तिकी मांसपेशीकी शिथिलतामें पेशाब रुक-रुककर थोड़ा-थोड़ा होता हो तब अर्गट देते हैं।

यदि गर्भाशयका द्वार (मुख) कठिन और अविकसित हो, बस्तिप्रदेशकी आकृतिके विकारसे प्रसवमार्ग छोटा हो, किसी अर्बुदादि द्वारा गर्भाशयका मुख रुका हुआ हो अथवा बालकके बड़े होनेसे उसका सरलतासे बाहर आना असंभव प्रतीत होता हो तब अर्गटका प्रयोग नहीं करना चाहिए।

मात्रा—१·३ ग्राम से २·६ ग्राम (१०–२० रत्ती) अथवा २॥–१५ रत्ती। ४ ग्राम से २८ ग्राम (३० रत्ती से २॥ तोले)की मात्रामें खानेसे विषलक्षण उत्पन्न होते हैं।

●

(३१) अलसी।

फैमिली : लीनासे (Family : Linaceae)

नाम—(हिं०) अलसी, तीसी; (अ०) कत्तान; (सं०) अतसी, क्षुमा; (लै०) **लीनुम् ऊसीटाटीस्सिमुम्** (**Linum usitatissimum** Linn.)। बीज–(हिं०) अलसी, तीसी; (अ०) कत्तान, कतान, बज्रुल्कत्तान; (फा०) तुख़्मेज़ग़ीर, तुख़्मेकताँ (कत्तान); बज़्क; (बं०) तीसी, मोसिना (माशिना); (क०) अलिश; (म०) जवस; (गु०) अलसी; (लै०) **लीनी सेमीना** (**Lini semina**); (अं०) लिनसीड (Linseed), फ्लैक्ससीड (Flaxseed)। तैल—(हिं०) अलसीका तैल, तीसीका तेल; (अ०) दोह्नुल्कत्तान; (फा०) रोग़नेज़ग़ीर, रोगनेकताँ; (ले०) ओलेउम् लीनी (Oleum Lini); (अं०) लिनसीड ऑयल (Linseed Oil)।

वक्तव्य—इस पौधेकी छालसे मजबूत रेशे निकलते हैं। इन रेशोंसे बने कपड़े (क्षोमवस्त्र)को भी अरबीमें **'कत्तान'** कहते हैं।

इतिहास—यूनानी हकीम **दीसकूरीदूसने 'लाइनोन'** नामसे और रोमदेशीय हकीम **प्लाइनाने "लाइनम्"**-के नामसे इसका उल्लेख किया है। प्राचीन मुसलमान चिकित्साविदोंने भी इसका **"कतान"** नाम से उल्लेख किया है। चिकित्सामें इसका पुष्कल उपयोग होता है। परंतु प्राचीन भारतीय वैद्योंने औषधतया इसका कम उपयोग किया है, ऐसा वि० डीमक महोदयका कथन है; परंतु उनका यह कथन प्रमाणके अभावमें सत्य नहीं है। कारण आयुर्वेदके प्राचीनसे प्राचीन ग्रंथ **चरक-सुश्रुत** आदिमें अतसी, अतसीतैल और उसके पत्रका पुलटिस आदिके रूपमें नानाविध औषधतया पुष्कल प्रयोग किया मिलता है। देखें च० सू० १४ अ०, चि० १३ अ०; सु० चि० ३१ अ०, ३२ अ०)।

उत्पत्तिस्थान—यह मिश्रका आदिवासी पौधा है। परंतु अब भारतवर्ष, रूस, हॉलैंड, ब्रिटेन आदि देशोंमें इसकी विस्तृत खेती की जाती है।

वर्णन—यह एक-वर्षायु (फलपाकांत) क्षुद्र **वनस्पति** है, जो प्रायः ६०–७५ सें० मी० (दो-ढाई फुट) ऊँची होती है। इसमें नीले और बहुत सुन्दर **फूल** निकलते हैं। फूलोंके झड़नेके बाद चनेके बराबर गोलाकार और नुकीली **घुंडियाँ** बैठती हैं, जो परदों द्वारा ५ फलकोषोंमें विभक्त होती हैं। प्रत्येक कोषमें दो बीज होते हैं। बीज चिपटे, लंबोतरे और अंडाकार एवं नोकदार होते हैं। बाहरसे ये कालाई लिए भूरे (वा लाल), चमकदार और मसृण होते हैं, किंतु भीतरसे गूदेका रंग पिलाई लिए सफेद होता है। विभिन्न देशोंके बीज आकारमें ६·२५ मि० मी० से ४·१५ मि० मी० (१।४–१।६ इंच) लम्बे होते हैं। उष्णदेशोंमें होनेवाले अपेक्षाकृत बड़े होते हैं। ये निर्गंध, तैलीय और लबाबी स्वादयुक्त होते हैं। जलमें भिगोनेसे बीज एक पतले, फिसलनदार एवं वर्णरहित श्लैष्मिक कलाके आवरणसे आधारित हो जाते हैं। यह शीघ्र उदासीन (न्युट्रल) जेलीरूपमें घुल जाता है; और बीज कुछ फूल जाते और उनका पॉलिश जाता रहता है। पिलाई लिए धूमिल, ललाई लिये, कालाई लिए और सफेद इसके यह चार भेद होते हैं। ताजे, भारी और मोटे बीज उत्तम होते हैं।

रासायनिक संगठन—बीजकी गिरीमें एक स्थिर तैल (**अलसी तैल**) ३० प्रतिशतसे ४० प्रतिशत होता है। यह उबलते हुए जलमें विलेय है। बीजत्वक्‌में लबाब १५ प्रतिशत तथा शर्करा आदि पदार्थ होते हैं।

उपयुक्त अंग—**बीज** और बीजोत्थ **तेल** (तीसी का तेल)।

कल्प तथा योग—**लऊक़ कताँ** आदि।

बीज—

प्रकृति—पहले दर्जेमें उष्ण एवं रूक्ष।

गुण-कर्म—**श्वयथुविलयन**, सर, **दोषपाचन**, लेखन, आनाहकारक, वेदनास्थापन, श्लेष्मनिःसारक, वामक और हलका मूत्रल।

उपयोग—श्वयथुविलयन, मार्दवकर, दोषपाचन और वेदनास्थापन होनेके कारण समस्त प्रकारकी सूजन और फोड़े-फुंसियोंपर इसका लेप किया जाता है, या लेप और **पुलटिस** बनाकर बाँधा जाता है। इससे सूजन उतर जाती है और दर्द शांत हो जाता है। पर यदि व्रणशोथ पकने लगा हो, तो उसको बहुत शीघ्र पकाकर फोड़ डालती है। इसके उपरांत **दोषोत्सर्ग**में सहायक होती है। बाह्य शोथोंके अतिरिक्त **फुफ्फुसशोथ**, पार्श्वशूल, **श्वासप्रणालिका शोथ**, उदरावरण शोथ, और संधिशोथ प्रभृति जैसे आंतरिक शोथोंमें तीसीका लेप (वा पुल्टिस) बाँधनेसे बहुत लाभ होता है। परंतु इन दशाओंमें इसके प्रभावको तीव्रतर करनेके लिए लेपके धरातलपर बाँधते समय थोड़ी बारीक की हुई राई छिड़क ली जाती है। लेखन होनेके कारण झांई (बहक़), दद्रु और यौवनपिड़का (मुँहासे) पर सिरकाके साथ इसका पतला लेप लगानेसे उपकार होता है। इसे मद्यमें पकाकर उपयोग करनेसे व्रणविशेष (कुरूह शहदिय्या) और फुंसी विशेष (**नमला–जिसे मकड़ी मूतना** कहते हैं) आराम होते हैं। जलमें अलसीके लबाबको निकालकर आँखमें अश्च्योतन करनेसे और उसके इर्द-गिर्द लगानेसे नेत्रकी लाली दूर हो जाती है। अलसीको जलाकर और बारीक पीसकर क्षतोंपर छिड़कनेसे वे सूख जाते हैं, और उनका दाह एवं दर्द शांत होता है। श्लेष्मनिस्सारक होनेसे यह कफज कास और कृच्छ्रश्वासमें गुणकारी है। अलसीको बारीक पीसकर अथवा उसका पानीमें लबाब निकालकर मधुमें मिलाकर चटाया जाता है। इसका क्वाथ श्लेष्मनिःसारक और दोषतारल्यजनन (मुलत्तिफ़) होनेसे कंठशोथ (सोजिश हलक)में जबकि कासका वेग अत्यधिक हो लाभ पहुँचाता है। यदि अलसीको कूटकर क्वाथ करें और छानकर पिलायें, तो आसानीसे क़ै लाता और कफोत्सर्ग करता है। मूत्रल होनेके कारण यह वृक्क, बस्ति और गर्भाशयके शोथ, व्रण तथा सूजाकमें भी उपयोग कराया जाता है। कटिस्नान (आबजन) करने या बस्ति करनेसे अंत्र और गर्भाशयके शोथ और व्रण आराम होते हैं।

अहितकर—मंदाग्निकारक (मुज़्इफ हज़्म)। **निवारण**—धनिया और सिकंजबीन। **प्रतिनिधि**—मेथीके बीज। **मात्रा**—५ ग्राम से १२ ग्राम (५ माशा से १ तोला) तक।

तैल—

प्रकृति—उष्ण एवं तर (स्निग्ध)। आयुर्वेदके मतसे उष्णवीर्य एवं स्निग्ध (सु०)।

गुणकर्म—श्वयथुविलयन, वेदनास्थापन, लेखन और व्रणघ्न हैं।

उपयोग—श्वयथुविलयन और वेदनाहर होनेके कारण प्रायशः वेदनाओंमें इसका अभ्यंग करते हैं। लेखन होनेके कारण व्यंग (कल्फ) और दद्रु प्रभृति त्वग्रोगोंमें इसका मर्दन (तिला) की जाती है। अन्त्रव्रण और सरलांत्र या पक्वाशय (कोलन)के निम्न भागके अन्दर अवरोध (सुद्दा) उत्पन्न हो जानेकी दशामें अलसीके तेलकी बस्ति लाभकारी होती है। विपुल मलहरोंमें यह प्रधान उपादानकी भाँति सम्मिलित की जाती है। समभाग अलसीका तैल और सुधाजल (चूनेका पानी) मिलाकर मलहर बनाया जाता है। इसे अग्निदग्ध-स्थल पर लगानेसे तुरंत दाह एवं जलन शांत हो जाती और घाव सूख जाता है।

आयुर्वेदीय मत—**अलसी** मधुर, तिक्त, कटुविपाक, उष्णवीर्य, स्निग्ध, वातनाशक, पित्तप्रकोपक तथा दृष्टि और वीर्यको हानिकर है (च० सू० अ० २७; सु० सू० अ० ४६)। **अलसीका तैल** (क्षौमतैल) मधुर, अम्ल, कटुविपाक, स्निग्ध, गुरु, उष्णवीर्य, वातविकारमें हितकर तथा पित्त और रक्तका प्रकोप करनेवाला है (सु० सू० अ० ४६)।

नव्यमत—अलसीके बीज स्नेहन, मार्दवकर, बल्य, वेदनास्थापन, मूत्रजनन और कासहर हैं। तैल विरेचन और व्रणरोपण है। अलसीको गरम किये बिना ही निकाला हुआ तैल ४ से ८ ग्राम (४-८ माशे)की मात्रामें पिलानेसे दस्त साफ होता है। मलकी गाँठें (सुद्दे) निकलती हैं। आँतोंकी कमजोरीसे उत्पन्न कब्ज और अर्शमें तैल लाभ करता है। अलसीका तैल और चूनेके निथरे हुए जलको खूब मिलानेसे दूध जैसा मिश्रण (दुधिया घोल) तैयार होता है, उसको आगसे जले हुए भागपर लगाते हैं। कूटी हुई अलसीको पानीके साथ हलवे जैसा पकाकर व्रणशोथपर उपनाह (पुलटिस) बाँधनेसे सूजन और पीड़ा कम होती है। प्रारम्भमें ही बाँधनेसे सूजन बढ़ती नहीं और देरीसे बाँधनेसे शोथ शीघ्र पककर फूट जाता है। अलसीका उपनाह सर्वोत्तम माना जाता है। अलसीका फाण्ट खाँसीमें देनेसे गले और श्वासनलियोंके भीतरका कफ पककर शीघ्र निकलता है। अलसीके फाण्टसे मूत्रका प्रमाण बढ़ता है, परन्तु उसमें वेदनास्थापन गुण कम है।

●

(३२) असगंध।

फैमिली : सोलानासे (Family : Solanaceae)

नाम—(हिं०) असगंध, अकसन, आकसन; (फा०) बहमनेबर्री; (सं०) अश्वगंधा; (म०) ढोर(डोर)गुंज, आस्कंद (आसंध); (गु०) आसंध, घोड़ा आकुन, घोड़ाआहन; (लै०) वीदानिआ सोम्नीफ़ेरा (**Withania somnifera** Dunal.); (अं०) विंटर चेरी (Winter Cherry.)

उत्पत्तिस्थान—यह समस्त भारतवर्षमें होता है। साधारणतया उजाड़ खंडहरोंमें और कबरिस्तानोंमें समूहबद्ध उगा हुआ मिलता है।

वर्णन—इसका क्षुप १ से १·२५ मीटर (२–२॥ हाथ) ऊँचा, शाखाबहुल होता है। **पत्र**—युग्म, अंडाकार, अखंड, ५ से १० सें० मी० (२ से ४ इंच) लम्बे, लोमश; **पर्णवृन्त**, ह्रस्व; पुष्प—क्षुद्र, ह्रस्ववृन्त, कक्षान्तरीय (पत्रवृंतमूलसे होकर निकले), शाखाग्रस्थित, प्रायः ५ पुष्प एक साथ छत्रकाकार ससीमाक्षपुष्पव्यूहक्रममें; बाह्यदल-

पुंज (कैलिक्स) घंटाकार, घनतारकाकार, रोमिल, अग्रपर ५-६ दाँतोंमें खण्डित, फलोंके साथ बढ़कर कुछ गोलाकार हो जाता है; दलपुंज (कोरोला) भी घंटाकार ०·७५ सें० मी० लम्बा तथा खण्ड ३-६; **फल** सरस (Berry), छोटे, लाल, मसृण, मटराकार, व्यासमें ०·६२५ सें० मी० (०·२५ इंच), झिल्लीदारबाह्यदलपुंज आवरणसे ढके हुए और शिखर पर खुले हुए (काकनजके समान); बीज—असंख्य, अतिक्षुद्र, पिलाई लिए सफेद और वृक्काकार। सम्पूर्णपौधा सूक्ष्मरोयेंदार होता है। **मूल**—मूलीकी भाँति शंक्वाकार किन्तु अपेक्षाकृत पतला, कड़ा, मजबूत, दीर्घ, उपमूलयुक्त, ऊपरसे हल्का भूरा, किन्तु तोड़नेपर भीतरसे सफेद होता है। ताजी जड़ तथा समस्त क्षुप घोड़ीके मूत्रकी भाँति तीक्ष्ण अप्रियगंधयुक्त होते हैं। इसीसे इसको **अश्वगंधा** कहते हैं। सूखे मूलमें उक्त गंध नहीं होती और वह अपेक्षाकृत मृदु होता है। स्वाद तिक्त होता है।

वक्तव्य—असगंध स्वयंजात (**जंगली**) और खेती किया हुआ (**कृषिजन्य**) दो प्रकारका होता है। मध्यप्रदेशके मालवा, सागर आदि क्षेत्रोंमें कहीं-कहीं इसकी खेती भी की जाती है। कर्षित पौधेका मूल नागौरी असगंधके नामसे बाजारोंमें मिलता है। लगाये हुए पौधोंके मूलमें जंगली पौधोंकी अपेक्षया स्टार्च अधिक पाया जाता है। दोनोंके स्टार्च एक ही प्रकारके होते हैं। वाजीकर, बल्य एवं बृंहण गुणोंके लिए खानेके असगंधके जो योग बनते हैं, वे **नागौरी** (बाजारी) असगंधसे बनते हैं। लेप आदि बाह्य प्रयोग और तैलादिमें जंगली असगंधके मूल लिए जाते हैं।

रासायनिक संगठन—इसमें **सॉम्निफेरिन** (Somniferin) नामक एक ऐल्केलॉइड पाया जाया है, जो स्वप्नजनन है।

उपयुक्त अंग—जड़, बीज और पत्र।

कल्प तथा योग—**हब्ब असगंध**।

प्रकृति—मलभूतद्रवोंके साथ तीसरे दर्जेमें उष्ण एवं रूक्ष। लखनऊके हकीमोंके मतसे पहले दर्जेमें गर्म व खुश्क। आयुर्वेद मतानुसार उष्णवीर्य (कै० नि०) है।

गुण-कर्म—**वाजीकरण**, **बल्य**, गर्भाशय-संशोधक एवं गर्भाशयबलदायक, **श्वयथुविलयन**, **शुक्रल**, वीर्यपुष्टिकर, स्तन्यजनन और काठिन्यजनक (मुसल्लिब)।

उपयोग—वाजीकर एवं बल्य होनेसे यह वाजीकरणके लिए प्रयुक्त होता है। शुक्रल और वीर्यपुष्टिकर होनेसे शुक्रतारल्य एवं शुक्रप्रमेहमें वातनाड़ियोंके शीतके कारण होनेवाले शुक्रप्रमेहमें यह विशेष लाभकारी होनेसे प्रयोग किया जाता है। गर्भाशय संशोधक तथा बलदायक होनेसे प्रसवोत्तर उपयोग कराया जाता है। श्वयथुविलयन होनेसे इसको पीसकर लेप करनेसे सूजन उतर जाती है। अस्तु, आमवातमें इसका बहिराभ्यंतरिक उपयोग किया जाता है। इस गुणमें यह सूरंजानका प्रतिनिधि समझा जाता है। आमवात तथा अन्य प्रकारकी सूजनपर ताजे पत्तेको गरम करके बाँधते हैं। इससे सूजन उतर जाती है। काठिन्यजनन होनेके कारण इन्द्रीको दृढ़ करनेके लिए इसे शिश्नोपयोगी तिलाओं (पतले लेप वा अभ्यंग)में डाला जाता है; और ढलके हुए स्तनोंके लिए इसे स्त्रीके दूधमें पीसकर लेप किया जाता है। स्त्री-पुरुषरोगोंकी प्रधान औषधि माना गया है। **अहितकर**—उष्णप्रकृतिको। **निवारण**—कतीरा और घी। **प्रतिनिधि**—सफेद बहमन। **मात्रा**—३ ग्रामसे ५ ग्राम (३ माशासे ५ माशा) तक।

आयुर्वेदीय मत—अश्वगन्धा मधुरकषाय, तिक्त, उष्णवीर्य, बृंहण, बल्य, रसायन, वाजीकर तथा वात, कफ, शोथ, श्वित्र, क्षय, खाँसी, व्रण, कुष्ठ, कृमि और श्वासको दूर करनेवाली है (च० वि० अ० ८; भा० प्र०; कै० नि०)।

नव्यमत—बाजारी **असगंध** और विदारीकंदके गुण समान हैं। यह उत्तम पौष्टिक है। ६ से १२ ग्राम (१/२—१ तोला) असगंध चूर्णको गायके घीमें सेंककर उसमें पावभर दूध और यथारुचि मिश्री मिला, गरम करके देना चाहिए। छोटे बच्चोंके लिए यह उत्तम औषधि है। इससे बच्चोंका सूखना बंद होता है। स्त्रियोंका कमरका दर्द और श्वेतप्रदर इससे अच्छा होता है। **जंगली असगंधके मूल** अवसादक, स्वापजनन और मूत्रजनन हैं। वात-

नाड़ीपर इसकी अवसादक क्रिया होती है, परंतु हृदयपर अवसादक क्रिया नहीं होती। इसका स्वापजनन धर्म प्रसिद्ध है। बीज स्वापजनन और मूत्रजनन तथा बड़ी मात्रामें विष है। बद, ग्रंथि आदिपर मूलका लेप करते हैं।

(३३) असगंध देशी।

फैमिली : सोलानासे (Family : Solanaceae)

नाम—(हिं०) पनीर, पपोटन, देशी असगंध, देशी काकनज, अकरी; (अ०; फा०) **काकनजे हिंदी**; (सं०) **ह्रस्व अश्वगन्धा** (नवीन); (लैं०) **विदानिआ कोआगुलान्स, Withania coagulans** Dunal.; (**पर्याय–पुनीरिया कोआगुलान्स** *Puneeria coagulans* Stocks.); (अं०) वेजीटेबल् रेनेट (Vegetable Rennet)। फल वा बीज—(हिं०) पनीरके बीज; (अ०) हब्बुल्काकनजे हिंदी; (फा०) तुख़्म काकनजे हिंदी; (सं०) दधिकर फल, ह्रस्व अश्वगन्धा बीज–नवीन; (पं०) ख़मजरिया, खामजुर; (सिंध) **पनीरबंद**, पनीरजा फोटा; (म०) **पनीरबंद**, पनीर मोटा; (पश्तो) ख़मज़ोर।

उत्पत्तिस्थान—पंजाब, सिंध, सतलजकी घाटी, अफगानिस्तान और बलूचिस्तान अर्थात् पश्चिमात्य भारतीय उद्यान, वन, पर्वत तथा खेतोंकी बाड़ोंपर यह बूटी सामान्यरूपसे होती है।

वर्णन—असगंधकी जातिके एक क्षुपका प्रसिद्ध फल जो अति छोटे बेर, घुंघची वा काकनजके समान, गोल, मकोयके दानाके बराबर, प्रारंभमें हरा, पकनेपर लाल रंगका और सूखनेपर कुछ-कुछ पीला एवं छिलकावत् हो जाता है। उसके भीतर चिपटे वृक्काकार बीजोंका एक समूह होता है, जो चिपचिपे धूसर मज्जासे संश्लिष्ट होता है। यह काकनजसे भिन्न द्रव्य है।

रासायनिक संगठन—बीजोंमें विदेनिन (Withanin) नामक एक प्रभावकारी सत्त्व—एन्जाइम वा अभिषव (फर्मेन्ट) होता है, जो जंगम रेनेट (Animal rennet)से बहुत कुछ सादृश्य रखता है, और उसका एक उत्तम प्रतिनिधि है।

उपयुक्त अंग—फल, बीज, पत्र और मूल।

कल्प तथा योग—घृत एवं तेल आदि।

प्रकृति—पहले दर्जेमें गरम व खुश्क।

गुण-कर्म तथा उपयोग—इसके पत्ते गरम करके बाँधनेसे सूजन उतर जाती है। इसकी जड़ पानीसे पीसकर नासूरके भीतर भरनेसे अथवा उसमें बत्ती लतकर भीतर पहुँचानेसे थोड़े ही दिनमें नासूर और व्रण आराम हो जाते हैं। पका फल वामक, वेदनाहर, शामक, मूत्रल एवं रसायन है, तथा चिरज यकृद्रोगोंमें उपकारक है। सूखा फल आध्मान, शूल, अजीर्ण एवं अन्यान्य अन्त्रविकारोंमें तथा दूध जमानेके लिए प्रयोग किया जाता है।

(३४) असारून।

फैमिली : आरिस्टोलोकिआसे (Family : Aristolochiaceae)

नाम—(हिं०; गु०) तगर गंठौड़ा; (यू०) Asaron (D. 1.9); (अ०; सु०) **असारून** (इ० बै०); (फा०) सुंबुले बर्री, नारदीन बर्री; (सं०) पारसीक तगर (नवीन); (लैं०) **आसारूम एउरोपेउम (Asarum europaeum** Linn.); (अं०) वाइल्ड नार्ड (Wild Nard); हैजेलवर्ट (Hazel Wort) असरबक्का (Asarabacca)।

वक्तव्य—'असारून' सुरयानी (Syrian) भाषाका शब्द है। इसका शुद्ध रूप 'आसारून' (आसा = आस या विलायती मेंहदी, रून = गुण अर्थात् विलायती मेंहदीके समान गुणदायक) है।

उत्पत्तिस्थान—फ्रांस, रोम, अफरीका, श्याम देश, हमदान पर्वत, फारस और अफगानिस्तान इत्यादि तथा हिन्दुस्तानके हिमालय और कश्मीर आदि ठंडे प्रदेशोंमें होता है। भारतवर्षमें इसका आयात अफगानिस्तानसे होता है।

वर्णन—यह एक बहुवर्षायु क्षुद्र **वनस्पति** है। पत्र वृक्काकार, अखण्ड, आमने-सामने, लोमश और हरेरंगके होते हैं। पत्रवृंत तीन इंच लम्बा होता है। जड़ चौकोनी बेडौल, तंतुल, ग्रन्थिल, कुछ लम्बी और टेढ़ी-मेढ़ी, पीली, सुगंधित एवं तीक्ष्णगंधी होती है। चबानेपर कुछ-कुछ कड़वी होती है। यह अन्य सब भेदोंसे उत्तम है। इसके उत्तम होनेकी पहचान यह है, कि तेज और सुगंधित हो, जिह्वाको काटे नहीं। अन्य भेदोंमेंसे किसीका रंग पिलाई लिये और किसीका भूरा होता है। यह जड़ ही औषधके काममें आती है। इसके भारतीय भेदको **तुग्गुर या असारूने हिंदी** (आसारुम ईंडिकुम Asarum indicum) कहते हैं। यह असारूनका प्रतिनिधि है।

रासायनिक संगठन—इसमें एक उष्ण उत्पत् तैल, एक पीला पदार्थ और तिक्त दाहजनक पदार्थ होता है।

उपयुक्त अंग—मूल।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें उष्ण एवं रूक्ष।

गुण-कर्म—अवरोधोद्घाटक, श्वयथुविलयन, मेध्य (मस्तिष्कबलदायक), वातनाड़ीबलदायक, आर्तवजनन और मूत्रजनन। उपयोग—अपस्मार, अर्दित, पक्षवध, अंगघात, स्वाप और विस्मृति प्रभृति जैसे मस्तिष्क एवं वात-रोगोंमें असारूनका पुष्कल उपयोग किया जाता है। इसके अतिरिक्त यह यकृत् और आमाशयके रोगोंमें भी प्रयुक्त होता है। अवरोधजन्य कामला, जलोदर, यकृच्छोथ, प्लीहाकाठिन्य, आमवात, पार्श्वशूल, गृध्रसी, वातरक्त और कूल्हेके दर्द (वज्उल्वरिक)में इसका उपयोग करते हैं। अनार्तव, मूत्रावरोध और नपुंसकतामें भी इसे खिलाते हैं। पक्षवध और अर्दित जैसे शीतजन्य रोगोंमें इसका विशेष उपयोग होता है। **अहितकर**—फुप्फुसको। **निवारण**—गुठली निकाला हुआ मुनक्का। **प्रतिनिधि**—सोंठ। **मात्रा**—२ ग्रामसे ५ ग्राम (२ माशासे ५ माशा)तक।

(३५) आँबाहलदी।

फैमिली : जिंजीबेरासे (Family : Zingiberaceae)

नाम—(हिं०) आंबा (बी) हलदी, कपूरहलदी, बन हलदी; (फा०) दारचोबा; (सं०) वन (अरण्य) हरिद्रा, **कर्पूरहरिद्रा**; (म०) आंबेहलदी; (गु०) आंबाहलदर; (लै०) **कुर्कूमा आरोमाटिका (Curcuma aromatica,** Salisb.) (अं०) वाइल्ड टर्मेरिक (Wild Turmeric), मैंगोटर्मेरिक (Mango Turmeric)।

वक्तव्य—यद्यपि आंबाहलदीका फारसी नाम **'दारचोबा'** भी है, तथापि यह वास्तविक दारचोबा अर्थात् दारुहलदी नहीं है।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्षमें यह **जंगली** होती या **लगाई** जाती है। अलवर, कोचीन और वैनाद प्रांतमें यह पुष्कल होती है। कोचीन और बम्बईसे विदेशोंमें इसका निर्यात होता है। यह **आमाहलदी (Mango Ginger)**से भिन्न है।

वर्णन—यह हलदीकी जातिके एक **गुल्मका** प्रसिद्ध कंद है। इसके कोमल पत्रका मध्य भाग बैंगनी होता है, परन्तु पूर्णायुके पत्रसे यह रंग जाता रहता है। वर्षासे ठीक पूर्व इसके पुराने गुल्ममें नये पत्र और पुष्प आते हैं। कहीं-कहीं यह आधी बरसात बीतनेपर फूलती है। इसका केन्द्रीय (मूल) पाताली धड़ (Rhizome) लंबगोल या शंक्वाकार प्रायः दो इंचसे अधिक व्यासका, बाहरी पृष्ठ गहरा भूरा जिसपर वृत्ताकार छल्लेका चिह्न और पुष्कल

मोटे उपमूल होते हैं। इनमेंसे किसी-किसीके छोरोंपर नारंगीरंगके पीले कंद (Tubers) होते हैं, जो स्वरूप और आकारमें छिलका युक्त बादामकी तरह होते हैं। पार्श्विक पाताली धड़ प्रायः उँगली इतने मोटे और कुछ गुदार उपमूलोंसे युक्त होते हैं। केन्द्रीय और पार्श्वीय उभय प्रकारके पाताली धड़ भीतरसे हलदी सरीखे गाढ़े नारंगीरंगके होते हैं। गंध हलदीकी अपेक्षया तीक्ष्ण कपूरमिश्रित सोंठकी तरह होती है। स्वाद तिक्त और तीक्ष्ण कर्पूरवत्। यह हलदीसे बड़ी होती है। कर्पूरवत् गंधके कारण ही इसे **'कर्पूरहरिद्रा'** कहते हैं। उपयुक्त वातावरणमें रखनेसे इसका केन्द्रीय मूल छोटे शलगमके आकारका हो जाता है।

रासायनिक संगठन—कंदमें एक प्रकारका उत्पत् तेल, राल, श्वेतसार, लवण, शर्करा, निर्यास, ऐल्व्युमिनाइड्स और **कर्कुमिन** (Curcumin) नामक एक पीतरंजक द्रव्य आदि होते हैं।

उपयुक्त अंग—पातालीधड़ वा कंद।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें उष्ण एवं रूक्ष।

गुण-कर्म—श्वयथुविलयन, **रक्तप्रसादन** और संशमन (**मुसक्किन**)।

उपयोग—अधिकतया आघात-प्रत्याघात (ज़रबा व सक़ता-चोट-चपेट) और फोड़े-फुंसियोंके लिए लेप और मालिश (अभ्यंग) इत्यादिके रूपमें आंबाहलदीका बाह्य उपयोग होता है। कुछ हकीम कास, ज्वर और रक्तविकारमें इसका आभ्यंतरिक उपयोग भी करते हैं। **प्रतिनिधि**—हलदी। **मात्रा**—२ ग्राम से ३ ग्राम (२ माशा से ३ माशा) तक।

आयुर्वेदीय मत—आंबाहलदी (अरण्यरजनीकंद) कुष्ठ, वातरक्त, सर्वदोष, विष, हिक्का, श्वास और कासको दूर करनेवाली हैं (कैं० नि०)।

नव्यमत—इसके गुण-कर्म हलदीके समान हैं। कण्डू, भार, चोट, सूजन आदिमें इसका लेप करते हैं।

(३६) आक।

फैमिली : आस्क्लेपिआडासे (Family : Asclepiadaceae)

नाम—(हिं०) आक, आख, मदार, अकौआ; (अ०) उषर, उष्षर, उषार; (फा०) ख़रक, दरख़्ते ज़हरनाक, ज़हूक; (सं०) अर्क, मन्दार; (क०; सिं०; पं०) अक; (कु०) आंक; (बं०) आकंद; (म०) रुई; (गु०) आकड़ो; (ले०) **कालोट्रॉपिस जीगांटेआ (Calotropis gigantea** (L.) R. Br.)। **अर्कशर्करा** (हिं०; उर्दू) आककी शकर, आकका गोंद, शकरमदार, आककी मिश्री; (अ०) सुक्करुल् उषर, समग़े उषर; (फा०) शकरक, शकरकोही, शकर उषर।

वक्तव्य—**बुर्हानक़ातेअ** नामक प्रसिद्ध कोषके अवलोकनसे यह ज्ञात होता है कि "उषर" फारसीका शब्द है और यह आर्य भाषा संभवतः संस्कृत **'उष (जलाना)'**से व्युत्पन्न है। अधिकांश भारतीय भाषाओंके नाम इसके संस्कृत नाम "अर्क" एवं "मन्दार"से व्युत्पन्न हैं।

उत्पत्तिस्थान—सम्पूर्ण भारतवर्ष, लंका द्वीप और अफगानिस्तान तथा ईरानसे लेकर अफरीका तक।

वर्णन—यह एक बहुवर्षीय प्रसिद्ध **क्षुप** है, जो प्रायः १.२० मीटर (चार फुट)से अधिक ऊँचा नहीं होता। इसके जिस भागको तोड़ा जाय, उससे सफेद गाढ़ा दूध टपकना शुरू हो जाता है। जड़की अपेक्षया शाखाओंमें अधिक दूध निकलता है। **फूल** कटोरीनुमा गुच्छोंमें लगते हैं। यह बाहरसे सफेद और अंदरसे ललाई लिए बैंगनी होते हैं। पुष्पका आभ्यन्तरकोश सफेद होता है, परन्तु सीधे ऊपरकी ओर उठे हुए दल-खण्डोंके ऊपर जामुनी रंगके दाग़ होते हैं। फूलके मध्य भागमें लौंगके सिरके समान एक वस्तु होती है, जिसे **क़रन्फुल मदार (आककी लौंग)** कहते हैं। **फल (आकका डोडा)** साधारणतः लंबोतरा, बीचमें बल खाया हुआ होता है। सूखनेपर जब यह फटता है, तब उसके

भीतरसे सेमलकी रूईकी तरह रूई निकलती है, जो बहुत मुलायम और चिकनी होती है। किसी-किसी मदारके क्षुपपर एक प्रकारका द्रव संगृहीत हो जाता है, जिसे **अर्कशर्करा** कहते हैं। यह वर्णन **लाल मदारका** है। इसके अतिरिक्त इसके यह दो भेद और होते हैं :—(२) इसका फूल बिल्कुल सफेद होता है, और क्षुप पहलेकी अपेक्षया बड़ा होता है। इसके बड़े गुल्म या छोटे वृक्ष होते हैं। इसे अर्क, अलर्क (सं०) तथा अन्य ऊपरके नामोंसे पुकारते हैं। (३) इसका क्षुप पहले दोनोंसे छोटा ६०–९० सें० मी० (२–३ फुट) ऊँचा होता है। पत्र सवृन्त और फूल अर्क सदृश सफेदी लिए पिस्तई होता है। इसके द्वितीय भेद अर्थात् सफेद आकको लैटिन परिभाषामें **कालोट्रॉपिस आकिआ** (**Calotropis acia** Houtt.) कहते हैं।

रासायनिक संगठन—इसके मूलत्वक्में **मडार ॲल्बन** (Mudar alban) नामक एक क्रिस्टली सत्व होता है, जिसे मंदारीन' भी कहते हैं।। यह आकका एक गुणोत्पादक वीर्य है, जो ईथर एवं सुरासारविलेय और शीतल जल एवं जैतूनतेलमें अविलेय होता है। यह गरमीसे जम जाता है, और शीतमें खुला रहनेसे द्रवीभूत हो जाता है।

कल्प तथा योग—रोग़न गुलआक।

उपयुक्त अंग—दूध, पत्र, शाखा, जड़ और पुष्प।

प्रकृति—आकका **दूध** चौथे दर्जेमें उष्ण एवं रूक्ष विषके साथ है। **पत्र, शाखा, जड़ और पुष्प** तीसरे दर्जेमें उष्ण एवं रूक्ष है। आयुर्वेदिक मतसे आक उष्णवीर्य (ध० नि०) और उसका **दूध** उष्णवीर्य (भा० प्र०) है।

गुणकर्म—दूध संक्षोभक (लाज़ेअ), आग्नेय (अक्काल), व्रणकारक, स्फोटजनन, कफछेदनीय, वामक, तीव्र रेचन, ख़राशकारक (मुसह्हिज), छिक्काजनन, लोमहारक (मुहल्लिक), और प्राणिज विषापहर्ता (जाज़िब सम्मे हैवानात) है। **पत्र**—ताजे पत्र वेदनास्थापन और श्वयथुविलयन हैं। पत्रस्वरस शोणितोत्क्लेशक, छेदनीय और आग्नेय है। सूखेपत्रका अवचूर्णन लेखनीय, आग्नेय, संधानीय (मुलहिम), उपशोषण, छर्दनीय, छेदनीय और कफोत्सारि भी है। जड़की छाल—संशमन (मुअद्दिल), बल्य, छेदनीय, श्लेष्मनि:सारक, मूर्च्छाकारक, वमन, स्वेदन और अंत्रामाशय-संक्षोभकर (मुसह्हिज मेदा व अम्आऽ) है। पुष्प दीपन (थोड़ी मात्रामें), कफछेदनीय, श्वयथुविलयन और वेदनास्थापन है।

उपयोग—दूध आग्नेय और व्रणजनक होनेके कारण दद्रु, गंज (खालित्य) और अर्शांकुरोंपर लगानेसे उनको शीघ्र दूर कर देता है। हलका लगानेसे यह आमवातके लिए भी लाभदायक है; क्योंकि स्फोटजनन एवं व्रणजनन होनेके कारण यह संधिगत दूषित दोषों (मवाद्द)को उत्सर्गित कर देता है। कफछेदनीय, छर्दनीय और तीव्ररेचन होनेके कारण यह कफज रोगों विशेषकर कृच्छ्रश्वास, दमा, कास, कफज, आमवात (गठिया) और जलोदरमें उपयोग कराया जाता है। तीव्र संक्षोभजनन (लाज़ेअ) होनेके कारण गर्भशातक है। रूईको मदारके दूधमें भिगोकर योनिमें वर्तिकी भाँति स्थापन करनेसे यह गर्भपात कराता है। किन्तु यह अत्यंत तीक्ष्ण होता है, और इससे उपद्रवोंके उत्पन्न हो जानेका भय है। अस्तु, इसका प्रयोग न कराना ही श्रेयस्कर है। बालोंको उड़ानेवाला होनेके कारण कहीं-कहींके चमड़ा रंगनेवाले (दब्बाग़) चमड़ेको बालोंसे साफ करनेके लिए इसका उपयोग करते हैं। ख़राशकारक (मुसह्हिज) होनेके कारण अधिक मात्रामें उपयोग करनेसे आमाशय और अन्त्रमें तीव्र संक्षोभ (ख़राश) उत्पन्न करता है। छिक्काजनन होनेसे यह नस्य (हुलासों)में प्रयुक्त होता है। सर्प और विच्छू काटे हुए स्थानपर लगानेसे उनके विषको आकर्षित (जज़्ब) करके वेदना शमन करता है। पत्र वेदनास्थापन और श्वयथुविलयन होनेसे आमवात तथा अन्य शोथोंपर गरम करके बाँधे जाते हैं। इनको कोष्ण गरम करके हाथसे मलकर और रस निकालकर कानमें डालनेसे कर्णशूल आराम होता है। छेदनीय (क़ातेअ) होनेके कारण इसके रसको तिलके तेलके साथ पकाकर उपयोग करनेसे बाधिर्य दूर होता है। सूखे पत्रका चूर्ण लेखनीय, आग्नेय, रोपण और शोषण होनेसे परिसर्पी दुष्टव्रणों और गोश्तखोरा (आकिला)में अवचूर्णनौषधरूपसे प्रयुक्त किया जाता है। यह उनको मलोंसे शुद्ध एवं स्वच्छ करता, और दूषित मांसको दूर करके नवमांसांकुरका रोहण करता, तथा उनकी त्वचाको शुष्क कर देता है। छेदनीय और श्लेष्मनि:सारक होनेसे पत्रको यथोचित औषधद्रव्योंके साथ राख (खाकस्तर) बनाकर श्वास और कासमें उप-

योग किया जाता है। बिना राख किया हुआ खिलानेसे कै लाकर भी कृच्छ्रश्वासको लाभ पहुँचाता है। **जड़की छाल** (पोस्तबेख़) संशमन (मुअद्दिल) और छेदनीय होनेसे गठिया, द्वितीय कक्षाका फिरंग और प्रारम्भिक कुष्ठमें लाभकारी है; तथा छेदनीय, मूर्छाकारक और छर्दनीय होनेसे इसका हैज़ेमें भी उपयोग किया जाता है। विकृतदोषोंको छाँटकर यह वमनके द्वारा निकाल देती है। जड़का क्वाथ उपयोग करनेसे शीतपूर्व ज्वरों (तपे लरज़ा)में भी उपकार होता है। स्वेदन होनेसे फिरंग रोगमें इसकी धूनी (बख़ुर) दी जाती है। पुष्प दीपन और कफछेदनीय होनेके कारण आमाशयोपयोगी औषधोंमें सम्मिलित किया जाता है। कफछेदनीय होनेसे श्वासकृच्छ्रता एवं कासमें उपयोग किया जाता है। श्वयथुविलयन और अवसादक होनेसे कई एक औषधद्रव्योंके साथ तेल प्रस्तुत करके मर्दन करनेसे आमवात और कटिशूल इत्यादि आराम हो जाते हैं। अहितकर—त्वचा और श्लैष्मिक कलामें व्रण उत्पन्न करता है। **निवारण**—घी, दूध, स्नेहद्रव्य और वमन करना। प्रतिनिधि—व्रणजनन हेतु जयपाल। मात्रा—दूध १-२ रत्ती। अधिक कदापि उपयोग न करना चाहिए, क्योंकि अधिक मात्रामें उपयोग करनेसे आमाशय और अन्त्रमें यह ख़राश (सहज्ज) उत्पन्न करके उनमें ज़ख्म डाल देता है, जिससे रोगी यमलोक सिधारता है। **सूखे पत्रका चूर्ण** २ रत्तीसे १ माशा तक; **जड़की छालका चूर्ण** २ रत्तीसे ५ रत्ती तक और फूल १ रत्तीसे ३ रत्ती तक उपयोग कराना चाहिए। **क्वाथमें** पत्र या छालको ६ माशा तक उपयोग कर सकते हैं। आकके वृक्ष (पंचांग)को जलाकर विशेष विधिसे उसका **नमक (क्षार)** निकाला जाता है। यह छेदनीय एवं कफोत्सारि होनेसे कृच्छ्रश्वास (दमा) और कासमें प्रयुक्त होता है। **आककी रूई** आतशीसींगीके लिए श्रेष्टतम वस्तु है। यदि क्षतसे रक्त बहता हो, तो इस रूईके बाँधनेसे वह बंद हो जाता है। आकका **गोंद** या **अर्कशर्करा** कम मिलती है। इसको सर (प्रकृतिमार्दवकर) और श्वासोच्छ्वास-यंत्र-मार्दवकर बतलाया जाता है। इसकी मात्रा १ ग्राम (१ माशा) है।

आकका टिड्डा (मलख़मदार-मदारकाँडा)—यह एक प्रकारका विचित्र रंगका बेपरका मनोहर कीड़ा है, जो ग्रीष्मऋतुमें प्रायः मदारपर देखनेमें आता है। इसको एक शीशीमें बंद करके रखें। जब वह सूख जाय, तब समभाग वा १।२ भाग कालीमिर्चके साथ कूट-छानकर हुलास बनायें। आवश्यकता होनेपर रोगीके नथुनोंमें थोड़ा फूँके। यह नस्य मृगीके रोगीके लिए लाभदायक एवं परीक्षित है। (अल्मसीह अगस्त सन् १९२२ ई०)।

आयुर्वेदीय मत—**आक** तिक्त, कटु, उष्णवीर्य, शोधन, भेदन, स्वेदोपग, वमनोपग, दीपन तथा कण्डू, व्रण, वात, शोथ, कुष्ठ, कृमि, प्लीहारोग, गुल्म, अर्श, कफ और उदररोगका नाश करनेवाला है। अर्कके फूल वृष्य, लघु, दीपन, पाचन तथा अरुचि, प्रतिश्याय, खाँसी और श्वासका नाश करनेवाला है। आकका क्षीर तिक्त, किंचित् लवण, उष्णवीर्य, स्निग्ध, वमन और विरेचन करनेवाला तथा कुष्ठ, गुल्म और उदररोगको दूर करनेवाला है (च० सू० अ० ४, १; सु० सू० अ० ३, ३९; ध० नि०, रा० नि०; भा० प्र०)।

नव्यमत—**मूलकी छाल** कटु, तिक्त, उष्ण, दीपन, पाचन, पित्तस्रावी, स्वेदजनन, कफघ्न, वामक, संकोचविकासप्रतिबंधक, जीवनविनिमयक्रिया-रसग्रन्थि और त्वचाके लिए उत्तेजक, बल्य और रसायन है। छाल अल्पमात्रामें आमाशयका प्रत्यक्ष उत्तेजक है। इससे आमरस ठीक बहने लगता है। बड़ी मात्रासे आमाशयमें दाह होता है, तथा उससे वमन होता है। छालमें रहा उपयुक्त द्रव्य शीघ्र रक्तमें मिल जाता है। त्वचामें निकलते समय यह त्वचापर प्रत्यक्ष उत्तेजक क्रिया करता है, और त्वचाकी सूक्ष्मरक्त-वाहिकाओंका विकास होता है। यह उपयुक्त द्रव्य (वीर्य) रक्तमें बहता हुआ श्वासोच्छ्वास और वमनके केन्द्रपर प्रत्यक्ष क्रिया करता है। इस केन्द्रस्थानको उत्तेजन मिलनेसे वमन होता है। आकका वामक कार्य प्रत्यक्ष आमाशय द्वारा, और परंपरया वामक केन्द्र द्वारा होता है। इसका स्वेदजनन-धर्म उत्तम है। इससे प्रचुर स्वेद होता है। इसका संकोचविकासप्रतिबंधक धर्म साधारण है, और वह श्वासनलिकाओंपर विशेप स्पष्ट मालूम होता है। इसका रसायन धर्म पारदके समान उत्तम है। इसके भीतर स्थित वीर्यका शरीरमें संचार होते समय यकृत्की क्रिया सुधरती है, और पित्तका उत्तम स्राव होता है। शरीरान्तर्गत विभिन्न ग्रन्थियोंको उत्तेजना मिलनेसे उनके रस भली-भाँति तैयार होते हैं, और जीवनविनिमयक्रियाको उत्तेजना मिलती है। इसलिए शरीरकी पुष्टि और बल बढ़ता है। इन धर्मोंके कारण आकको "उत्तेजक बल्य" कहा गया है। अन्तस्त्वचा,

वाह्य त्वचा और त्वचाके नीचेका ढीला स्तर इनके रोगोंमें मूलकी छाल देते हैं और उससे लाभ होता है। सादे रक्तदोषके कारण हुए या उपदंशसे हुए सभी प्रकारके व्रण और श्लीपदमें आककी जड़की छालके साथ रससिन्दूर, सुरमा (स्रोतोंजन-ऐन्टिमनी सल्फाइड) और सांभरसींगभस्म देते हैं। बद और गण्डमालामें मूलकी छाल खानेको देते हैं, और दूध लगाते हैं। सभी प्रकारके जीर्णत्वचाके रोगोंमें छालका चूर्ण निमौलीके तेलमें मिलाकर लगाते हैं। यकृत तथा प्लीहाकी वृद्धि और उससे उत्पन्न उदररोगोंमें मूलकी छालसे लाभ होता है। जीर्ण और नूतन आँवमें मूलकी छाल सुगंधिद्रव्यों (सौंफ, गुलावपुष्प, दालचीनी आदि)के साथ देते हैं। जीर्णज्वर और शीतज्वरमें मूलकी छाल नागरपानके साथ देते हैं। अर्कपुष्प दीपन, कफघ्न और संकोचविकासप्रतिबंधक है। खाँसी, दमा, क्षुधानाश और कुपचनरोगमें फूलोंसे उत्तम लाभ होता है। अर्कपत्र वातहर, शोथहर, व्रणशोधन, व्रणरोपण और आनुलोमिक हैं। पत्रचूर्ण व्रणपर छिड़कनेसे व्रणका शीघ्र रोपण होता है। पत्तोंपर रेंडीका तेल लगा, उनको गरम करके सूजनपर बाँधनेसे पीड़ा कम होकर सूजन उतरती है।

(३७) आचीन।

फ़ैमिली : आपोसीनासे (Family : Apocynaceae)

नाम—(हिं०) आचीन, गुलचीन, गुलाचीन; (फा०) गुले आचीन; (सं०) क्षीरचंपक (नवीन); (लै०) प्लुमेरिआ आकूटीफोलिआ (**Plumeria acutifolia**, Poir.); (अं०) जैस्मिन ट्री (Jasmine Tree)।

उत्पत्तिस्थान—अनिश्चित। ऐसा मालूम होता है कि पुर्तगाल निवासी इसे ब्राजीलसे यहाँ ले आये। अधुना यह समस्त भारतवर्षमें विशेषकर वागोंमें लगाया जाता है।

वर्णन—यह एक बड़ा वृक्ष है। पत्र लंबे आमके पत्रकी तरह, किन्तु उससे बड़े, कम चौड़े, दलदार और हरे रंगके होते हैं। इसके सर्वांगसे दूध निकलता है। वसंतऋतुमें इसके पत्ते झड़कर फूल आते हैं। फूल नीलूफरके फूलकी तरह पाँच पंखड़ीयुक्त, ऊपरसे सफेद जिसपर कुछ लाल झाइयाँ भी होती हैं (किसी-किसीमें नहीं); भीतरसे सुन्दर पीला, किन्तु खूब खिल जानेपर यह पंखड़ियोंकी जड़से आधी दूर तक रह जाती हैं; पंखड़ियाँ गुलशब्बोकी तरह दलदार, जड़की तरफमे पतली ऊपरसे चौड़ी होती हैं। इसमें सुगन्ध कम होती है। नाकसे मिलाकर सूँघनेपर हलकी मीठी-मीठी सुगन्ध मालूम होती है। इसकी छाल मटियाला लिये भूरी होती है। पीला, सफेद और लाल तीनों प्रकारके फूलों की जातियाँ पृथक्-पृथक् होती हैं।

उपयुक्त अंग—वृक्ष (वा जड़)की छाल, दूध, पत्र और पुष्प।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें उष्ण एवं रूक्ष।

गुण-कर्म—शोथविलयन और विरेचन। बाहरी तौरपर प्रलेप करनेसे यह कठिन व्रणशोथको विलीन करता और पाचन करता (शोथविलयन, पाचन) है। यह आंतरिक उपयोगसे विरेक लाता और रक्तको शुद्ध करता है।

उपयोग—गुलाचीनके पत्रकों पीसकर कठिन व्रणशोथको विलीन करने और पकानेके लिए लेप करते हैं। रक्तविकारजन्य रोगों, फिरंगादिमें आचीन वृक्षकी छालको जलमें उबाल (क्वाथ)कर पिलाते हैं। मख़जनुल् अदवियाके लेखकके अनुसार जड़की छाल (वा वृक्षकी छाल ११.५ ग्राम या १ तोला) तीव्र रेचन है। यह सूजाक और मैथुनीय अंगोंके व्रणोंमें भी लाभकारी औषध है। यदि इसके पीनेसे अधिक विरेक आयें और गरमी मालूम हो, तो छाछ पिलाना चाहिए। ९ ग्राम (९ माशा) इसके फूल पानीमें पीसकर पीने या चूर्ण बनाकर फाँकनेसे फिरंगरोग आराम हो जाता है। अहितकर—उष्णप्रकृतिको। निवारण—छाछ और मक्खन। मात्रा—३ ग्रामसे ५ ग्राम (३ माशासे ५ माशा) तक।

नव्यमत—यह तीव्र औषधि है। बड़ी मात्राओंमें इससे विषैला एवं घातक प्रभाव होता है। छाल तीव्ररेचन, मूत्रल, शोथघ्न, कंडूघ्न, वातहर, ज्वरघ्न एवं नियतकालिकज्वरनिरोधक होती है। दूधमें तीव्रभेदन गुण होता है। सूजाकमें यह उपयोगी बतलाया जाता है।

●

(३८) आड़ू।

फ़ैमिली : रोज़ासे (Family : Rosaceae)

नाम—आड़ू (हिं०); (पं०) आड़ू; (अ०) ख़ौख़ (इ० बैं०), दराक़न; (फा०) शफ़्तालू; (सं०) आरुक; (गु०) पीच; (क०) चुनुन; (पं०; का०) अरु; (लै०) प्रूनुस पेर्सिका (**Prunus persica** (L.) Batsch.); (अं०) पीच (Peach)। **सतालू**—(हिं०) सतालू; (फा०) श(स)फ़्तालू।

उत्पत्तिस्थान—यह सम्भवतः चीनका आदिनिवासी है। अब्र साधारणतया पश्चिमी एशिया, यूरूप तथा बेलूचिस्तान एवं भारतवर्षमें हिमालय एवं कुनावरमें १०,००० फीटकी ऊँचाई तथा नीलगिरीमें ५,०००-७,००० फीटकी ऊँचाई तक और उत्तर भारतके मैदानी क्षेत्रोंमें भी लगाया जाता है। मणिपुरमें भी इसके वृक्ष लगाये जाते हैं।

वर्णन—मझोले कदके एक वृक्षका प्रसिद्ध फल है, जो स्वादमें खटमिट्ठा होता है। फूल गुलाबी होता है। इसके मुख्य यह दो भेद हैं—(१) चकइया और (२) लंबा गोल गोपुच्छाकार। इनमें चकइयाको ही **शफ़्तालू** कहते हैं। यह आड़ूका ही एक भेद है, जिसे हिन्दीमें 'सतालू' कहते हैं। इसका फल आड़ूसे बड़ा और मीठा होता है। आड़ू कुछ खट्टापन लिये और गुरु एवं चिरणकी होता है। बीज कठोर आवरण तथा गहरी नालियोंसे युक्त होता है। इसकी गुठली (बीज)की मींगसे कड़वे बादामके तेलकी तरह एक प्रकारका तेल निकलता है, और उसीकी जगह काममें भी आता है।

वक्तव्य—धन्वन्तरि निघण्टुकारने आरुककी चार जातियाँ मानी हैं—'विद्याज्जाति विशेषेण तच्चतुर्विधमारुकम्'। सम्भव है कि उनकी मानी हुई चार जातियोंमें आड़ू, आलुबोखारा, आलूबालू और आलूचा इन चारोंका समावेश होता हो।

उपयुक्त अंग—फल, पत्र, बीजमज्जा और उससे निकला हुआ तैल।

रासायनिक संगठन—पकेफलमें पुष्कल राशिमें शर्करा एवं निर्यास होता है।

प्रकृति—फल दूसरे दर्जेमें शीत एवं तर (स्निग्ध) है। पत्र और शाखा उष्ण; बीजोत्थ तेल उष्ण एवं तीक्ष्ण (हाद) है। आयुर्वेदके मतसे पका फल किंचित् उष्णवीर्य (च०) है।

गुण-कर्म—फल पित्त एवं रक्तोद्वेगसंशमन; पत्रस्वरस बाह्यांतर उभय प्रकार उदरकृमिनाशन; बीजकी गिरी कर्णशूल एवं अर्शोवेदनाहर है। **उपयोग**—आड़ूको अधिकतया फलोंके समान खाद्याहाररूपमें खाते हैं। यद्यपि यह पुष्टिदायक खाद्य है, तथापि इससे जो पुष्टि (ग़िजा) प्राप्त होती है, वह रद्दी (अप्रकृत) होती है। इसके खानेसे प्यास बुझती है, और रक्त एवं पित्तका उद्वेग (प्रकोप) कम होता है। इससे उष्ण (पित्तल) प्रकृतिवालोंकी भूख बढ़ जाती है। इसका प्रधान कर्म संतापहरण (दाहप्रशमन) है। उदरकृमिनाशनार्थ इसका पत्र-स्वरस पिलाते और उदरपर लेप करते हैं। चुरुकृमिनाशनके लिए इसे शिशुओंकी गुदामें लगाते हैं। बीजकी गिरी अर्श, कर्णशूल और बाधिर्यकी औषधियोंमें प्रयुक्त होती है। **अहितकर**—वातनाडीको। **निवारण**—मधु और अदरक। **मात्रा**—३ से ५ दाना तक।

आयुर्वेदीय मत—पका हुआ आडू (आरुक) प्रायः मधुर, स्वादिष्ट, गुरु, किंचित् उष्णवीर्य, बृंहण, हृद्य, शीघ्र पचनेवाला और किंचित् दोषकर तथा प्रमेह, अर्श, गुल्म और रक्तविकारका नाश करनेवाला है। (च० सू० अ० २७; ध० नि०; रा० नि०)।

नव्यमत—फल स्निग्ध, स्कर्वीहर और दीपन है। पंजाबनिवासी इसके फलको उदरकृमि एवं केंचुओंमें उपयोगी बतलाते हैं (बेलफोर)। फूल विरेचक हैं। पका फल सुस्वादु, कोष्ठमृदुकर (सारक) और सुपच है। पत्तियोंका काढ़ा, सारक, उदरकृमिनाशक और अवसादक है। इसके फलसे चुआई हुए शराबको आडूका शराब (Peach brandy) कहते हैं (इ० मे० प्ला०)। आडू दीपन, स्नेहन और रक्तपित्तप्रशमन है। पुष्प भेदन है। तैल बालोंमें लगाया जाता है।

(३९) आतरीलाल।

फ़ैमिली : ऊम्बेल्लीफेरे (Family : Umbelliferae)

नाम—(यू०) आतिरीलाल(-न), आतरीलाल; (फा०) तुख़्म ख़िलालेख़लील; (लै०) आन्थ्रिस्कुस सेरेफोलिउम् (**Anthriscus cerefolium**, Hoffm.); (अं०) शर्विल (Chervil)।

उत्पत्तिस्थान—यूरूप तथा मिश्र। यह अन्य देशोंमें भी लगाया जाता है।

वर्णन—मसीसे भिन्न लगाई जानेवाली एक क्षुद्र वार्षिक वनस्पति, जो सोयेके समान होती है; किन्तु इसके फूल सफेद होते हैं और सोयेके पीले। बीज अनीसूँके समान् कालाई या नीलाई लिए लाल, तिक्त एवं तीक्ष्ण होते हैं। ये बीज ही औषधके काममें आते हैं।

आन्थ्रिस्कुस सेरेफोलिउम्के बीजोंका डीमकोक्त वर्णन—बीज (फल) भालाकार, प्रायः बेलनाकार, पार्श्वमें दबे हुए, काले और मसृण होते हैं। इनका ऊपरी सिरा सूक्ष्म पंचकोणीय तुंडमें अन्त होता है, जिसके ऊपर दबा हुआ तरंगायित पुष्पाधार होता है। स्वाद सुगंधमय एवं कटुत्वरहित होता है। (फा० इं० भा० २)। भारतीय बाजारोंमें मुसलमान औषधविक्रेता आतरीलालके नामसे प्रायः कालीजीरीके बीज देते हैं। वास्तविक द्रव्य बड़ी कठिनाईसे कभी-कभी मिलता है (फा० इं० भा० २ पृ० १३४)।

रासायनिक संगठन—इसमें अनुत्पत् तेल (Essential oil), ग्लूकोसाइड और एपिईन पाया जाता है।

प्रकृति—द्वितीय कक्षामें उष्ण एवं रूक्ष।

गुण-कर्म—लेखन, श्वयथुविलयन, वातानुलोमन, दीपन, मूत्रल, अवरोधोद्धाटक है; और किलास एवं झाई (बहक) दूर करनेमें विचित्रवीर्य वर्णन किया जाता है।

उपयोग—किलास और व्यंग (बहक) दूर करनेके लिए आतरीलाल अत्यन्त प्रभावकर बतलाया जाता है। इस प्रयोजनके लिए इसका विविध प्रकारसे उपयोग करते हैं; जैसे—(१) आतरीलालके बीजोंका चूर्ण मधुमें मिलाकर प्रतिदिन ९ माशा कुनकुना पानीसे पन्द्रह दिन तक निरन्तर खायें। इससे किलास और व्यंग (बहक) दूर होते हैं। (२) आतरीलालके बीज १ भाग, अकरकरा चौथाई भाग दोनोंका चूर्ण मधुमें मिलाकर चाटें और सिरकामें पीसकर किलासपर उसका लेप करें और उस स्थानको खुला हुआ रखें। एक-दो घण्टे धूपमें बैठें, यहाँ तक कि पसीना आने लगे। इसके बाद प्रकृति ईश्वरीय आज्ञासे रोगोत्पादक दोषको शरीरके बाहरकी ओर उसी स्थानपर उत्सर्गित करेगी और वहाँ विस्फोट (आबला) या व्रण उत्पन्न हो जायगा और उससे पीला द्रव बहने लगेगा। उस समय औषधका सेवन बंद कर दें, जिसमें जख़्म भर जाय और वहाँ की त्वचाको सवर्णता प्राप्त हो जाय। (३) आतरीलालके बीज ३ माशा, छिला और अंदरकी हड्डी निकाला हुआ निसोथ, सोंठ और अकरकरा प्रत्येक १ माशा—इनको बारीक

पीसकर मधुमें मिलाकर शरीर शोधनोपरान्त खिलायें और पूर्वकी भाँति लेप लगाकर या बिना लेप किये ही धूपमें बैठें। पहले दिनसे तीसरे दिन तक रोगस्थानपर विस्फोट (आबला) उत्पन्न हो जायगा और उससे पीला पानी बहनेके बाद रोग सम्यक् दूर हो जायगा। तात्पर्य यह कि किलास नष्ट करनेके लिए इसको ईश्वरका आशीर्वाद बतलाया जाता है। **प्रतिनिधि**—हकीम उलवीखाँके अनुसार 'बकुची'। **मात्रा**—३ ग्रामसे ९ ग्राम (३ माशासे ९ माशा) तक।

●

(४०) आबनूस।

फ़ैमिली : एबेनासे (Family : Ebenaceae)

नाम—(अ०; फा०) **आबनूस**, आबेनूस; (यू०) एबेनोस (Ebenos); (इब०) हेबेनम् (लौह); (ले०) **डिओस्पिरॉस एबेनुम्** (**Diospyros ebenum**, Koenig.); (अं०) एबोनी (Ebony)।

वक्तव्य—एबेनोसका अर्थ "पाषाण" है। इसकी लकड़ी कड़ी और भारी होती हैं, इसलिए इसे आबनूस (पाषाणवत् = वजनी और कड़ी) कहते हैं।

उत्पत्तिस्थान—भारतवर्ष, फारस, जंजीबार और अफरीका।

वर्णन—यह तेंदूकी जातिका, पर उससे भिन्न एक बहुत बड़ा सदाबहार पेड़ है। पत्र सनोबरके पत्रकी तरह, किन्तु उससे कुछ बड़ा होता है। फल अंगूरकी तरह पिलाई एवं ललाई लिये, किंचिन्मधुर और बहुत कसैला होता है। यह पेड़ जब पुराना हो जाता है, तब इसके हीरकी लकड़ी बिल्कुल काली और मसृण होती है। यही काली लकड़ी **आबनूसके** नामसे बिकती है और बहुत वजनी होती है। यह स्वादमें कुछ तेजी लिये ईषत्तिक्त एवं फीकी (बदमज़ा) होती है। यह जलनेपर सुगंध देती, परन्तु बिना जलाये कुगंधी होती हैं। बहुत काली, चमकीली, मसृण, वजनी, कड़ी और समतल, जिसमें रंगीन रेखायें न हों, जो स्वादमें प्रदाहक एवं कषाय हो और जो पानीमें डालनेसे डूब जाय, ऐसी लकड़ी सर्वोत्तम समझी जाती है। **असली और नकलीकी परीक्षा**–जो स्वादमें किंचित् प्रदाहक एवं कषाय हो तथा जिसकी गीली ताजी लकड़ी जलानेसे सुगंध आये, वह असली है। इससे भिन्न होनेपर नकली समझना चाहिए। **भेद**—इसके यह दो भेद हैं—(१) हबशी और (२) हिंदी। इनमें हबशीको जो हिंदीकी अपेक्षया अधिक काली, कड़ी, चिकनी और भारी होती है, यूनानी हकीम अधिक पसंद करते हैं। इसके बाद हिंदीको।

उपयुक्त अंग—सूखी लकड़ीकी हीर (आबनूस) और उसका बुरादा तथा फल इत्यादि।

प्रकृति—संग्राहीवीर्यसंयुक्त दूसरे दर्जेमें उष्ण एवं रूक्ष (शैख़)। हकीम अताकी और इब्नेबैतारके अनुसार तीसरे दर्जेके आदिमें उष्ण और दूसरे दर्जेके अन्तमें रूक्ष है।

गुण-कर्म—दोषतारल्यजनन (मुलत्तिफ़), उपशोषण, श्वयथुविलयन, लेखन, संग्राही, रक्तस्तंभन और रक्तशोधक। **उपयोग**—रक्तशोधनके लिए तथा तरखुजलीमें इसका बुरादा पुष्कल प्रयोगमें आता है। आबनूस उपशोषण एवं लेखन है; इसलिए इसके बुरादाको बारीक करके दुष्टव्रणोंपर छिड़कते हैं। संग्राही एवं रक्तस्तंभन होनेसे चाकू, छुरी या तलवारके सद्योव्रण (क्षत)पर छिड़कनेसे यह उनसे रक्तस्राव बंद करता और क्षतका रोपण करता है। सुरमेकी भाँति इसका अंजन चक्षुष्य है, और पक्ष्मशातमें गुणकारी है। आबनूसकी लकड़ीको पत्थरपर घिसकर नेत्रमें लगानेसे सिराजाल (जाला), नेत्रशुक्ल (फूली), नेत्रस्राव, नेत्रव्रण, नेत्रकण्डू, नक्तांध्य और धुंध (जुलमते बसर)—ये नेत्ररोग आराम होते हैं। इसके सूखे फलोंका चूर्ण अतिसार, श्वेतप्रदर और स्त्री-पुरुषके शिश्नमूलग्रन्थिरसमेह (वदी), प्रोस्टेटरसमेह (मज़ी) एवं शुक्रप्रमेहकी उत्कृष्ट औषधि है। **अहितकर**—आमाशयको। **निवारण**—मधु। **प्रतिनिधि**—शीशमका बुरादा। **मात्रा**—५ ग्रामसे ७ ग्राम (५ माशासे ७ माशा) तक।

●

(४१) आम।

फ़ैमिली : आनाकार्डिआसे (Family : Anacardiaceae)

नाम—(हिं०) आम, आंब; (अ०) अंबज; (फा०) अंबः; (सं०) **आम्र**; (क०) अंब, अंभ; (ता०) **मांगामरम**; (बं०) आम; (पं०) अंब; (म०) आंबा; (गु०) आंबो; (सिं०) अम्ब; (लै०) **मांगीफ़ेरा इंडिका (Mangifera indica**, Linn.); (अं०) मैन्गो (Mango)।

वक्तव्य—फ़ारसी "अंबः", संस्कृत "आम्रः"से व्युत्पन्न है। अरबी "अंबज" फ़ारसी "अंबः"का अरबी रूपान्तर है। लैटिन प्रजातिक (Generic) नाम एवं अंग्रेजी नाम तामिल "मांगा"पर आधारित हैं। जातीय नाम "इंडिका" आमके भारतका आदिवासी होनेकी ओर संकेत करता है। लैटिन एवं तामिल नाम वृक्षके हैं। अंग्रेजी नाम फलका है। वृक्षके लिए "मैन्गो ट्री" कहते हैं। शेष नाम वृक्ष एवं फल दोनोंसे लिए सामान्य हैं।

उत्पत्तिस्थान—समग्र भारतवर्ष।

वर्णन—यह भारतवर्षका प्रसिद्ध फल है।

रासायनिक संगठन—पके फलके गूदेमें सिट्रिक एसिड, तथा अंशतः गैलिक एसिड होता है। बीजमज्जा (**गिरी**)में गैलिक एसिड, टैनिन तथा वसा, शर्करा, निर्यास एवं क्षार आदि पदार्थ होते हैं।

उपयुक्त अंग—पका या कच्चा फल, गुठलीकी गिरी (मग्ज), त्वक् एवं पत्र।

कल्प तथा योग—शर्बत केरी और मुरब्बा आम आदि।

प्रकृति—पका आम उष्ण एवं तर (स्निग्ध) है। आमकी गुठलीकी गिरी (ख़स्ता आम) शीत एवं रूक्ष है।

गुण-कर्म—पका आम बल्य, **सौमनस्यजनन**, **रक्तवर्धक**, **बृंहण**, सर (कोष्ठमार्दवकर) और बाजीकर; गुठलीकी गिरी **संग्राही** और दीपन है।

उपयोग—मीठा पका आम खानेसे पूर्वोक्त गुण-कर्म प्रकाशित होते हैं। उक्त गुणोंके लिए अधपके आमका मुरब्बा (फलखण्ड) कल्पना करके भी उपयोग किया जाता है। कच्चा आम विषैले वायु (लू)के दोष-परिहारके लिए परमगुणकारी द्रव्य है। अस्तु, इसको छीलकर कतरा-कतरा बनाकर पानीमें डाल देते हैं। जब पानीमें अम्लता आ जाती है, तब उसमें मिश्री घोलकर मीठा करके पिलाते हैं। अथवा कच्चे आमको गरम राखमें दवा देते हैं। जब वह पक जाता है, तब उसको धो-निचोड़कर उसमें अर्क बेदमुष्क (वेतस पुष्पार्क), अर्क केवड़ा (केतकार्क) और यथाप्रमाण मिश्री मिलाकर विषप्रभावसे पीड़ित रोगीको पिलाते हैं। अधिकतया यह इसी उपायसे उपयोगमें आता है। कच्चा आम दाँतोंके लिए अहितकर है। आमाशयको बल देने (दीपन)के लिए तथा मूत्रातीत (सलसुल्बोल) और अतिसारको बंद करनेके लिए आमकी **गिरी** (बीज मज्जा) उपयोग की जाती है।

मात्रा—(आम) जितना पच सके; गिरी ३ माशा।

आयुर्वेदीय मत—आम हृद्य, छर्दिनिग्रहण (कोमल पत्ती), पुरीष-संग्रहणीय और मूत्रसंग्रहणीय तथा अम्ल एवं कषाय है (च० सू० अ० ४)। कच्चा-कोमल आम पित्त, वायु और रक्तपित्त करनेवाला है (च० सू० अ० २७; सु० सू० अ० ४६)। जिसमें केशर (रसकोश) बने हों ऐसा आम पित्तको बढ़ानेवाला है। (सु० सू० अ० ४६)। पका हुआ कषायानुरस, मधुर, हृद्य, शरीरके वर्णको निखारनेवाला, रुचिकर, बृंहण, गुरु, पित्तका अविरोधि, वातघ्न तथा रक्त-मांस-बल और वीर्यको बढ़ानेवाला है (च० सू० अ० २७; सु० सू० अ० ४६)। आमके मूल, त्वचा और कोमल पत्ती कषाय, ग्राहि और कफ तथा पित्तको दूर करनेवाले हैं (ध० नि०; रा० नि०)। फूल रोचन तथा दीपन है (रा० नि०)।

नव्यमत—त्वचा उत्तम रक्तसंग्राहक है। मज्जा कृमिघ्न और रक्त-संग्राहक है। इससे गोलकृमि मरते हैं। पके फलका रस पौष्टिक स्रंसन और रक्तपित्तप्रशमन है। फुफ्फुस, आँतों और गर्भाशयसे रक्तस्राव होता हो, तो उसे

बंद करनेके लिए इसकी छालका काढ़ा देते हैं। रक्तार्श और अत्यार्तवमें मग्ज १०–१५ रत्ती प्रमाणमें देते हैं। कच्चे फलका पानक लू लगनेपर पिलाते तथा कच्चे फलको भूनकर उसका गूदा समस्त शरीरपर लेप करते हैं। गुठलीके भीतरका मग्ज़ अतिसार और पेचिशमें देते हैं।

●

(४२) आमपीच।

फ़ैमिली : रूटासे (Family : Rutaceae)

नाम—(हिं०) आमपीच; (ले०) क्लाउसेना लानसिउम् (**Clausena lancium** (Lour.) Skeels). (**पर्याय**—*Clausena wampo* Blanco.); (अं०) आमपीच (Ampeach), आंबपीच (Amba-peach)।

उत्पत्तिस्थान और वर्णन—एक फलदार वृक्ष जो अंग्रेजों द्वारा भारतवर्षमें पहुँचा है, और कहीं-कहीं बागोंमें लगाया हुआ मिलता है। ऊँचाईमें इसके वृक्ष नाशपातीके पेड़के बराबर, किन्तु उससे भी उच्चतर होते हैं। **पत्र** आमके पत्तेसे क्षुद्रतर; फल छोटे बेरके बराबर किसी भाँति दीर्घ एवं नोकदार होता है। स्वादमें कोई मीठा, कोई खट्टा और कोई बेस्वाद होता है। बाहरसे इसका रंग ललाई लिए होता है, जिसपर पोस्तेके दानेकी तरह सफेद बिंदु होते हैं। फलका छिलका पतला, गूदा सफेद जिसके भीतर घुँघचीके बराबर काले रंगका बीज होता है। **पुष्प** आमके फूलके समान होता है।

प्रकृति—सर्द एवं खुश्क।

गुण-कर्म तथा उपयोग—इसका फल खानेसे मधुमेहपिडका (कारबंकल)में अपूर्व लाभ होता है तथा यह रक्तोत्पादक है। टांकिंग (Tonking)में बीजसहित इसके सूखे फल खाँसीमें प्रयुक्त होते हैं। **अहितकर**—वृक्कको। **निवारण**—मधु। **प्रतिनिधि**—दालचीनी तथा केसरके साथ पकाया हुआ अंगूरका रस। **मात्रा**—शर्बत ५ दिरम (१ तोला ५॥ माशा)।

●

(४३) आमला

फ़ैमिली : एउफ़ार्बिआसे (Family : Euphorbiaceae)

नाम—(हिं०) आमला, आंवला, अँवरा; (अ०) आ (अ) मलज (इ० बै०); (फा०) आमलः; (सं०) आमलकम्, आमलक, आमलकी, धात्री; (बं०) आमलकी, आमला; (म०; गु०) आँवला; (लै०) एम्बलिका आफ़्फीसिनालिस (**Emblica officinalis** Gaertn.) (पर्याय *Phyllanthus emblica* Linn.); (अ०) एम्ब्लिक माइरोबेलन (Emblic Myrobalan)।

वक्तव्य—अरबी ‘आमलज’ एवं फारसी ‘आमलः’ तथा लैटिन ‘एम्बलिका’ ये सभी शब्द संस्कृत ‘आमलक’ से व्युत्पन्न हैं। लेटिन नाम वृक्षका है। अंग्रेजी नाम इसके फलका है। संस्कृतमें भाषाकी दृष्टिसे ‘आमलकम्’का फलके लिए तथा ‘आमलकः’ एवं ‘आमलकी’का वृक्षके लिए प्रयोग होता है। शेष नाम वृक्ष एवं फल दोनोंके लिए सामान्यरूपसे हैं।

उत्पत्तिस्थान—इसका आदि उत्पत्तिस्थान भारतवर्ष है। भारतवर्षके प्रायः समस्त उष्णप्रधान प्रदेश, हिमालयकी तराई, जंबूसे दक्षिणकी ओर लंका तक, विशेषतः उत्तरप्रदेश, कश्मीर और बंगप्रदेशमें आँवलेके पेड़ लगाये जाते हैं, एवं जंगली होते हैं।

वर्णन—एक बड़े वृक्षका प्रसिद्ध फल है, जो गोल कागजी नीबूके बराबर, मसृण, गुदार और खरबूजेकी तरह एक पतली रेखासे छः बराबर भागोंमें विभक्त, पिलाई लिए हरे रंगका होता है। इसके ऊपरका छिलका इतना पतला होता है, कि उसकी नसें दिखाई देती हैं। इसके भीतर एक कठोर गुठली होती है, जिसमें छः उभरी हुई फाँकें स्पष्ट दिखाई देती हैं। इनमें तीन कोष होते हैं। हर कोषमें दो त्रिकोणाकार बीज होते हैं। पुष्ट आँवलेका रंग गंधकी पीला होता है। यह स्वादमें कसैलापन लिए हुए खट्टा होता है, किन्तु पीछेसे इसमें मधुर स्वाद आता है। **सूखा आँवला** जंगली बेरके बराबर या उससे कुछ बड़ा, कुछ-कुछ षट्कोण, झुर्रीदार, अपक्वावस्थामें संग्रह किया हुआ भूरा-काला, परन्तु पक जानेपर संग्रह किया हुआ पिलाई लिए भूरा होता है, और दबाव पड़नेपर छः भागोंमें विभक्त हो जाता है। इसमेंसे हर एक भागमें गूदा एवं गुठलीका एक अंश लगा होता है और उसमें एक तिकोना भूरे रंगका बीज होता है। **भेद—उद्यानज और जंगली**, कलमी और बीजू, छोटा-बड़ा आदि प्रकारसे आँवलाके अनेक भेद होते हैं। एक प्रकारका आँवला शलजमकी शकलका, गोल और बहुत चपटा होता है। बहुत कड़आ और कसेला नहीं होता, इसको **शाह-आमला** (राय आमला-अम्लजुल्मुलूक) कहते हैं। इनमें उत्तम वह है जो बड़ा, रेशारहित, पिलाई लिए और ताजा हो। आँवला काशीका प्रसिद्ध है। यहाँके कलम द्वारा उत्पन्न आँवले अमरूदके आकारके रेशारहित और गुदार होते हैं, तथा गुठली अत्यन्त छोटी होती है। विटामिन C की मात्राकी दृष्टिसे जंगली आँवला उत्कृष्टतर होता है।

वक्तव्य—आँवलेका सूखा, गुठली निकाला हुआ छिलका 'आमला-मुनक्का' नामसे यूनानी वैद्यकमें प्रयुक्त होता है। दो-तीन बार दूधमें भिगोनेके उपरान्त जलमें धोकर सुखाये हुए आंवलाको 'शीरपरवर्दा' कहते हैं। माजूनोंमें प्रायः यही प्रयुक्त होता है। आँवलाको एक दिन-रात दूधमें तर रखकर जलमें धोयें। फिर जलमें इतना उबालें कि खिल जाय। इसके उपरान्त तारोंकी चलनी (या कपड़े)में छान लें। इस प्रकार छना हुआ आँवलेका गूदा **'शीर आमला'** कहलाता है। शीरपरवर्दाको भी कोई-कोई **आमला** (शीर आम्लज इसका अरबी रूपान्तर है) कहते हैं। ताजे आमलोंको कूटकर कपड़ेमें रखकर रस निचोड़ें। फिर इसे मिट्टीके बरतनमें डालकर अग्निपर रखकर किसी चीजसे चलाते रहें। जब वह गाढ़ा होने लगे तब उसे किसी बरतनमें रख छोड़े। इस रसको धूपमें सुखाकर रसक्रिया प्रस्तुत की जाती है। इस प्रकार कल्पना की हुई रसक्रियाको अरबीमें **सुक्क** (सत आमला या **रुब्ब आमला**) कहते हैं।

रासायनिक संगठन—इसमें गैलिक एसिड (Gallic acid), कषायाम्ल या टैनिक एसिड (Tannic acid), निर्यास, शर्करा, ऐल्ब्युमेन, काष्ठोज (Cellulose) और खनिज़ द्रव्य होते हैं। हरे ताजे आँवलेमें संतरेसे बीस गुना अधिक जीवतिक्ति (विटामिन) 'C' है। आँवला हरा वा सूखा तथा मुरब्बामें भी 'C' विटामिन सुरक्षित रखता है। आँवलेको पकानेपर इसका यह विटामिन नष्ट हो जाता है। विटामिन 'सी' की कमीसे होनेवाले रोगोंमें आँवलेका उपयोग कर लाभ उठाया जा सकता है।

कल्प तथा योग—शर्बत आमला, **मुरब्बा आमला**, रोग़न आमला, **अतरीफल** और **अनोशदारू** कल्प वा योग, नोशदारू सादा, नोशदारू लूलुई, **जवारिश** आमला (सादा, कलाँ, लूलुई, बनुस्खा खास)।

प्रकृति—पहले (मतान्तरसे दूसरे) दर्जेमें शीत और दूसरे (मतान्तरसे तीसरे) दर्जेमें रूक्ष (खुश्क)। दूधमें भिगोने (शीरपरवर्दा करने)से इसकी रूक्षता कम हो जाती है। आयुर्वेदके मतसे भी शीतवीर्य एवं रूक्षवीर्य (सु०) है।

गुण-कर्म—**उत्तमांगोंको बलप्रद**, दीपन, ग्राही, पित्तरक्तसंशमन, चक्षुष्य, बालोंकी जड़ मजबूत करनेवाला और उन्हें काला करनेवाला (**मुकव्वी व मुसव्वद शार**) है।

उपयोग—बुद्धि, स्मरणशक्ति और दृष्टिशक्तिको बल प्रदान करने तथा हृत्स्पंदन (खफकान), हृदयदौर्बल्य और अग्निमांद्य (जोफ़ मेदा)को दूर करनेके लिए, आँवलाका पुष्कल उपयोग किया जाता है। पित्त एवं रक्तका उद्वेग शमन करने, प्यास बुझाने और अतिसार (दस्त) व घुमनी बंद करनेके लिए भी इसका उपयोग करते हैं। नेत्रको

शक्ति प्रदान करने (चक्षुष्य)के लिए इसकी रसक्रिया (उसारा) तैयार करके नेत्रमें लगाते हैं। बालोंको शक्ति देने और उनका कालापन स्थिर रखने या उनको काला करनेके लिए इसके क्वाथसे बालोंको धोते हैं या खिजाबों (केशरंजन औषधों)में सम्मिलित करते हैं। इसके अतिरिक्त उपयोगसे भी उक्त लाभ होना बतलाया जाता है। शिर, आमाशय, यकृत्, त्वचा और रोमके रोगोंमें इसका अधिक उपयोग होता है। आमलेका फलखण्ड (मुरब्बा) भी बनाया जाता है। इसका हृत्स्पंदन (धड़कन), मस्तिष्कदौर्बल्य और आमाशययकृद्दौर्बल्यको दूर करने, मस्तिष्कका शोधन करने और अतिसार रोकनेके लिए उपयोग करते हैं। **जुवारिश आमला** इसका एक प्रसिद्ध योग है, जिसका आमाशयको शक्ति देने, अतिसार रोकने, हृद्द्रव एवं बाष्पारोहण दूर करनेके लिए उपयोग करते हैं। जब कब्ज अनपेक्षित हो, तब सादा आमलेकी जगह आमलकीफलखण्ड (**आमलेका मुरब्बा**) उपयोग करें। यह हृदय, मस्तिष्क और आमाशयको शक्ति देता है। बाह्य प्रयोगसे यह काले दाग (नमश) और काले विंदु (बरश)को दूर करता है। **अहितकर**—क़ब्ज और शूल (कुलंज) उत्पन्न करता है। **निवारण**—मधु और बादामका तेल। **प्रतिनिधि**—दीपनार्थ काबुली हड़। **मात्रा**—३ ग्रामसे ५ ग्राम (३ माशासे ५ माशा) तक।

आयुर्वेदीय मत—आँवलेमें लवणरसको छोड़कर अन्य सभी रस विद्यमान हैं (च० सू० अ० २७)। आँवले अपने अम्लरससे वातको, मधुररस और शीतवीर्यसे पित्तको तथा कषायरस और रूक्षवीर्यसे कफको दूर करते हैं। (सु० सू० अ० ४६)। आँवला शीतवीर्य, विरेचनोपग, श्रेष्ठ वयःस्थापन (च० सू० अ० ४), सर, चक्षुष्य, रसायन, वृष्य और सर्वदोषघ्न है। (सु० सू० अ० ४६)। आँवले दोषानुलोमन, लघु, दीपन, पाचन, आयुष्य, पौष्टिक तथा कुष्ठ, गुल्म, उदावर्त, शोथ, पाण्डुरोग, मद, अर्श, ग्रहणीरोग, पुराना विषमज्वर, हृद्रोग, शिरोरोग, अतिसार, अरुचि, कास, प्रमेह, आनाह, प्लीहाके राग, नया उदररोग, प्रतिश्याय, वैवर्ण्य, स्वरभंग, कामला, कृमि, शोथ, तमक श्वास, वमन, नपुंसकता, हृदय और छातीका लेप तथा स्मृति और बुद्धिके प्रमोहका नाश करनेवाले हैं (च० चि० अ० ३)।

नव्यमत—ताजे पके आँवले दीपन, पाचन, पित्तशामक, आनुलोमिक, रोचन, बल्य, पौष्टिक, कान्तिवर्धक, त्वग्रोगनाशक और वाजीकर हैं। सूखे आँवले स्तम्भन, श्लेष्मघ्न, शोणितस्थापन और बड़ी मात्रामें पित्तस्रावक और स्रंसन हैं।

(४४) आयापान।

फ़ैमिली : काम्पोज़ीटे (Family : Compositae)

नाम—(हिं०; बं०) आयापान; (सं०) विशल्यकरणी; (म०) अयापान, अयापानम्; (गु०) अल्लाप (पा); (पं०) अरकल; (ता०, ते०) अयापानी, अयपन्नै; (ले०) **एउपाटारिअम ट्रिप्लिनेर्वे Eupatorium triplinerve** Vahl. (पर्याय-*Eupatorium ayapana* Vent.); (अं०) थारोवर्ट (Thorough Wort), बोन-सेट (Bone Set)।

उत्पत्तिस्थान—अमेरिका, ब्राजील, मारीशस इसके मूल उत्पत्तिस्थान हैं। अब भारतवर्षमें बंगाल, बम्बई, कोंकण आदि प्रान्तोंके आर्द्र स्थानों, झील एवं नदीके तटोंपर बहुतायतसे होता है। यह बगीचोंमें भी लगाया जाता है। यह बंगदेशमें अधिक होता है।

वर्णन—इसका फैलनेवाला छोटा क्षुप १५० सें० मी० से १८० सें० मी० (५-६ फुट) ऊँचा होता है। पत्ती २·५ सें० मी० (१ इं०) लम्बी, तीन सिरायुक्त और मसृण होती है। मसलनेसे इसमें अच्छी सुगन्ध आती है। पत्र सम्मुखवर्ती युग्म, १० सें० मी० से १२·५ सें० मी० (४-५ इं०) लम्बे, १·७५ सें० मी० ($\frac{३}{४}$ इं०) चौड़े, दलदार, मसृण, भालाकार; पत्रप्रांत आरावत्; पत्रका ऊपरी पृष्ठ खुरदुरा, नीचे का पृष्ठ कुछ ल्हेसदार एवं रोओंसे

व्याप्त होता है। पत्रकी मध्यसिरा कुछ लाल या बैंगनी रंगकी तथा मोटी होती है। पत्रवृंत शाखा या टहनीके चारों ओर वेष्टित-सा होता है। पत्तोंके मलनेपर उत्तम सुगंध आती है। पुष्प तुर्रेदार, बैंगनी रंगके छोटे-छोटे मंद सुगंधयुक्त होते हैं। स्वादमें सम्पूर्ण पौधा किंचित् चरपरा और विचित्र प्रकारका कसैला होता है।

रासायनिक संगठन—इसमें एक रंगरहित उत्पत् तेल, आयापानिन (Ayapanin) नामका एक दानेदार उदासीन सत्व (जिसके नुकीले दीर्घ क्रिस्टल्स) होते हैं। यह जलमें अविलेय परन्तु ईथर या ऐल्कोहॉलमें विलेय होता है। इसमें यथेष्ट प्रमाणमें कषायद्रव्य (टैनिन) होता है।

उपयुक्त अंग—वैसे तो सम्पूर्ण पौधा—पत्र, पुष्पान्वित शाखायें, कलिकायें, कोंपल आदि औषधकार्यमें आते हैं। परन्तु इसके ताजे या सुखाये पत्ते विशेषकर औषधिप्रयोगमें लाये जाते हैं। ताजे पत्तोंकी अपेक्षया सूखे पत्तोंमें औषधीय धर्मकी मात्रा कम रहती है। **मात्रा—पत्रस्वरस**, ३ माशेसे १ तोला तक; **शुष्क पत्र**—१० से ३० रत्ती तक; **तरल सत्व**, १-२ फ्लुइड ड्राम; **घनसत्व**—५-१२ रत्ती; **शीत कषाय या फांट**—१/२–२ फ्लुइड आउंस (या आवश्यकतानुसार); **युपेटोरीन (घन)**—१/२ से १ १/२ रत्ती (६० मि॰ ग्रा॰ से १८ मि॰ ग्रा॰)।

प्रकृति--

गुण-कर्म तथा उपयोग--

नव्यमत—अजीर्ण और अन्य रोगोंमें उत्तेजक बलकरके रूपमें इसका प्रयोग होता है। रक्तकास, पित्तवमन, नकसीर फूटना, रक्तमूत्र, रक्तातिसार और अत्यार्तवमें यह अमोघ औषध है (डॉ॰ कार्तिक चन्द्र वसु)।

आयापान अल्पप्रमाणमें रोचक, उत्तेजक और चेतनाकारक; बड़ी मात्रामें गरम-गरम फांट देनेसे स्वेदजनन और पुष्कल फाट एक साथ पीनेसे वामक है। फांट थोडा-थोड़ा देते रहनेसे शरीरमें उष्णता आती है, हृदयका स्पन्दन जोरसे और स्पष्ट होता है, नाड़ी जोरसे चलती है और थोड़ा पसीना आता है। इसका लेप उत्तम व्रणशोधन और व्रणरोपण है। शारीरिक अशक्तता और तरुण शोथप्रधान रोगोंमें थकावट दूर करनेके लिए चायके बदले इसका फांट देते हैं। विषम-ज्वरमें ठंड लगनेके समय और प्रतिश्यायके प्रारम्भमें इसका गरम फांट देते हैं। फांट उत्तम उत्तेजक और बलकारक है। हैजेमें शरीरमें उष्णता लाने और रक्ताभिसरण सुधारनेके लिए फांट बहुत उपयोगी है। कुपचन रोगमें चाय बंद करके इसका फांट देते हैं। रक्तपित्तमें स्वरस गुणकारी है। (डॉ॰ वामन गणेश देसाई)।

रक्तस्राव बंद करनेके लिए यह एक अमोघ औषधि है। रक्तातिसार, रक्तप्रदर, रक्तार्श आदिके कारण शरीरके किसी भी भागसे गिरनेवाले रक्तके लिए इसके पत्तोंका रस पीनेसे बड़ा लाभ होता है। (क॰ श्री हरलालजी गुप्त)।

जिस मनुष्यको शस्त्रका गहरा घाव लगा हो उसे आयापानके पत्तोंका रस पिलानेसे तथा इसी रसको घावके स्थानपर लगानेसे रक्तस्राव बंद हो जाता है। इसी प्रकार इसका रस पीनेसे आमाशयमेंसे गिरनेवाला खून भी बंद हो जाता है। (क॰ श्री द्वारकानाथजी विद्यारत्न)।

●

(४५) आरिया।

फ़ैमिली : कूकुरबिटासे (Family : Cucurbitaceae).

वर्णन—खीराकी जातिका एक फल जो उससे बहुत समानता रखता है।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें सर्द एवं तर।

गुण-कर्म—वात एवं कफकारक। इसके अतिसेवनसे दोषदुष्ट अर्थात् दूषितज्वर उत्पन्न हो जाता है।

उपयोग—इसको अधिकतया ककड़ी या खीरेकी तरह खाते हैं। दीर्घपाकी एवं गुरु होता है तथा आध्मान एवं वायु उत्पन्न करता है। अतिसेवनसे दोषोंमें विकार उत्पन्न होता है और ज्वर आने लगता है। मात्रा—एक फल।

●

(४६) आलू।

फ़ैमिली : सोलानासे (Family : Solanaceae).

नाम—(हिं०; बं०; पं०) आलू; (अ०) तुफ़ाहुल् अर्ज़; (फा०) आलूए फ़िरंग, सैबेज़मीं; (सं०) आलु, आलुक, आरु, आरुक, आलू अभिनव; (बम्ब०; गु०) बटाटा; (लै०) **सोलानुम् टूबेरोसुम** (**Solanum tuberosum**, **Linn.**); (अं०) पोटेटो (Potato)।

वक्तव्य—संस्कृत 'आलु' आदि शब्द पहले कई प्रकारके कंदोंके लिए, विशेषतः 'अरुईके' अर्थमें व्यवहृत होते थे, जो आलूके ही भेद हैं। इनके अतिरिक्त कई अन्य पौधे जिनके मूल कंद होते हैं, आलु शब्दसे संबोधित होते थे। किन्तु सम्प्रति आलु वा आलू शब्द एक प्रसिद्ध गोल कंदशाकके अर्थमें रूढ हो गया है, जिसका वर्णन यहाँ किया जा रहा है। फ़ारसीमें कुछ गोल फलोंके लिए भी आलू शब्दका व्यवहार होता है, जैसे—आलूबोखारा, शफ्तालू, आलूचा इत्यादि। मराठी और मारवाड़ी उसे 'बटाटा' कहते हैं जो अंग्रेजी 'पोटेटो' शब्दका अपभ्रंश जान पड़ता है। जिस आलूका वर्णन इस प्रसंगमें किया जा रहा है, वह वास्तवमें विदेशागत वनस्पति है। अतएव यह ध्यानमें रखना चाहिए कि, यद्यपि आलू आदि नामोंका व्यवहार इस प्रकारके कन्दोंके लिए अतिप्राचीन कालसे होता आ रहा है, किन्तु **सोलानुम् टूबेरोसुम्** के लिए इन संज्ञाओंका प्रयोग अभिनव संस्कृत नामोंके रूपमें ही समझना चाहिए। इससे यह भ्रम नहीं होना चाहिए कि इस आलू बिशेषका वर्णन या ज्ञान हमारे यहाँ भी अतिप्राचीन कालसे है। लैटिन नाम पौधेका है। शेष नाम (विशेषतः) कन्द या पौधे दोनोंके लिए सामान्यरूपसे समझना चाहिए।

उत्पत्तिस्थान—इसका मूल उत्पत्तिस्थान अमेरिका है। परन्तु अब भारतवर्षमें आलूकी खेती चारों ओर होने लगी है। पटना, नैनीताल और चेरापूँजी इसके लिए प्रसिद्ध स्थान हैं।

वर्णन—यह प्रसिद्ध कंद शाक है। लाल-सफेद, देशी-पहाड़ी आदि इसके अनेक भेद होते हैं।

रासायनिक संगठन—इसके सर्वांगमें **ऐस्पेरागिन** (Asparagin) नामक एक सत्व होता है।

प्रकृति—पहले दर्जेमें शीत और दूसरेमें रूक्ष।

गुण-कर्म—संग्राही और दाहप्रशमन (मुबर्रिद)।

उपयोग—आलूको अधिकतया अकेला या मांसके साथ पकाकर खाद्याहारकी भाँति उपयोग करते हैं। यद्यपि यह अत्यन्त पौष्टिक (मुग़ज्जी) है, तथापि गरिष्ठ (भारी) और ग्राही है। अग्निदग्धपर इसका रस लगानेसे या इसे पीसकर लेप करनेसे तत्काल लाभ होता है। इससे व्रण शीघ्र सूख जाता है। **मात्रा**—जितना पच सके।

●

(४७) आलूचा

फ़ैमिली : रोज़ासे (Family : Rosaceae)

नाम—(हिं०) आलूचा, जर्दालू, शनालू, भोटिया बादाम; (अ०) अदरक, बर्क़ू (फ़ू)क; (फा०) आलू, आलूचः, आलूचे सुलतानी, आलूए फ़राँसीसी (-दमिश्की); (पं०) ओलची; (का०) गुर्दालु; (लै०) प्रूनुस आलूचा (**Prunus aloocha** Roxb.); (अं०) फ्रेंच प्लम् (French Plum), प्रूंज़ (Prunes)।

वक्तव्य—मुहीतआजमके मतसे इसे ही कोई-कोई 'नैशूक़' कहते हैं।

उत्पत्तिस्थान—इसका वृक्ष पश्चिमी हिमालयपर गढ़वालसे कश्मीर तक होता है। यह फारस और अफगानिस्तानमें भी होता है। समतल भूमिकी अपेक्षया पर्वतीय प्रान्त ही इसकी वृद्धिके लिए अधिकाधिक उपयुक्त हैं।

वर्णन—यह आलूबोखारेकी जातिके एक वृक्षका प्रसिद्ध फल है जो आकारमें आँवलेके बराबर पिलाई लिए लाल और अम्लतायुक्त मधुरस्वाद होता है।

रासायनिक संगठन—फलके गूदेमें किंचित् मैलिक एसिड (Malic acid), शर्करा २५ प्रतिशत, पेक्टिन, ऐल्ब्युमिन और लवण होता है। बीजमें ऐमिग्डेलिन (Amygdalin) नामक एक प्रकारका अनुत्पत् तेल और इमल्सीन होता है।

प्रकृति—पहले दर्जेमें शीत और दूसरेमें तर (स्निग्ध) है।

गुण-कर्म—**पित्तसंशमन और तृट्प्रशमन।**

उपयोग—उष्णप्रकृति विशेषतः (पित्तल) प्रकृतिके लोगोंके लिए आलूचा एक लाभकारी मेवा है। यह पित्तको शमन करता, वमन और मिचली (उत्क्लेश)को रोकता तथा प्यास बुझाता है। मात्रा—जितना पच सके।

◆

(४८) आलूबालू।

फ़ैमिली : रोज़ासे (Family : Rosaceae)

नाम—(फा०; हि०) आलूबालू; (फा०) आलूबालूए शीरीं, **कैलास (मीठा)**, **आलूबूअली (खट्टा)**; (यू०) केरासिया (Kerasia); (अ०; रू०; दश्मिक) क़रासिया; (पं०) ओलची, गिलास; (का०) औल्प; (अलमोड़ा) भोटिया बादाम, लदाखी बादाम; (लै०) **प्रूनुस सेरासुस (Prunus Cerasus** Linn.); (अं०) ड्वार्फ चेरी (Dwarf Cherry), कॉमन चेरी (Common Cherry)।

वक्तव्य—आलूबालू, आलीबाली और आलूबूली शब्द आलूबूअर्लाके अपभ्रंश हैं। अरबी वा रूमी 'क़रासिया' शब्द यूनानी केरासियाका रूपान्तर मात्र हैं। क़रासि(सि)या जिसे यूनानी वैद्यकीय ग्रन्थोंमें रूमी भाषाका शब्द लिखा है, वस्तुतः यूनानी भाषाका शब्द है। इसको यूनानी 'केरासूस (Cerasus)' भी कहते हैं। फारसीमें इसको 'आलूबालू' या 'आलूबूअली' कहते हैं। कैलास आलूबालूका ही एक भेद है। इसका फल अपेक्षाकृत अधिक बड़ा होता है और पककर मीठा पड़ जाता है। इसीको चेरी कहते हैं। यह काली, लाल और पीली अत्युत्तम होती है। एक जातिका फल बहुत छोटा होता है जो पकनेके उपरान्त बिकसा रहता है। मधुर भेदको कैलास और खट्टेको आलूबूअर्ला कहते हैं। साधारण बोल-चालकी भाषामें इसे आलूबालू कहते हैं। कोई-कोई कहते हैं कि आलूबोखारेकी एक जातिके पौधेका दूसरे पौधेमें कलम लगानेसे यह प्राप्त होता है। इसलिए इसे 'आलूबालू' कहते हैं।

उत्पत्तिस्थान—ऐसा विश्वास किया जाता है, कि यह पश्चिमी एशियाका मूल निवासी है। शीतोष्ण उत्तरपश्चिमहिमालय, पंजाब और उत्तरप्रदेशमें इसके वृक्ष जंगली होते या लगाये जाते हैं। कश्मीरमें इसकी कई जातियोके वृक्ष लगाये जाते हैं।

वर्णन—आलूचेकी तरहका एक प्रसिद्ध वृक्ष जिसकी शाखायें फैली हुई और ललाई लिए होती हैं। पत्र भी ललाई लिए और खूबानी (जर्दालू)के पत्रकी तरह होते हैं। फूल सफेद या गुलाबी लगते हैं। चैत-वैसाखमें इसमें फूल आते हैं और जेठमें फल लगते हैं। फल छोटे अंगूरकी तरह और गोल, चिकने चमकीले तथा घेरेमें १·२५ सें० मी० (१।२ इं०) तक होते हैं। प्रारम्भमें (कच्चेपर) ये हरे और कसैले, गदराये हुए लाल एवं खट्टे और पके हुए काले और खटमिट्ठे होते हैं। इसमें थोड़ी कडुआहट भी होती है, किन्तु अप्रिय नहीं मालूम होती। पूर्ण परिपक्व होनेपर ये मुश्की हो जाते हैं। बीज चनेके बराबर, छिलका कड़ा जिसके भीतर सफेद गिरी होती है। स्वादके विचारसे यह चार प्रकारका होता है—(१) कसैला, (२) खट्टा, (३) मीठा और (४) खटमिट्ठा।

गंजबादावर्दके अनुसार ताजा, पेड़का पका हुआ, ललाई लिए काला, बड़ा, किंचिन्मधुरता लिए खट्टा फल उत्तम है। इससे एक प्रकार का गोंद भी निकलता है।

रासायनिक संगठन—बीजकी गिरी कडुई एवं सुगंधित होती है। इसमें एक प्रकारका उत्पत् तेल और पद्मकाष्ठ तथा कडुये बादाममें पाया जानेवाला एक विष सत्व (हाईड्रोसायनिक अम्ल) होता है।

उपयुक्त अंग—फल और गोंद।

प्रकृति—मीठा उष्ण एवं तर; खटमिट्ठा बहुधा अनुष्णाशीत (मोतदिल); खट्टा और कसैला शीत एवं रूक्ष है।

गुण-कर्म—मीठा आलूबालू उरोमार्दवकर, प्रकृतिमार्दवकर (सर), मूत्रजनन (मुदिर्र) और बस्तिवृक्काश्मरीनिस्सारक; खटमिट्ठा पित्तरक्तसंशमन, आमाशय और उष्ण यकृद्बलदायक, खट्टा और कसैला संग्राही है।

गोंद लेखनीय और बस्तिवृक्काश्मरीछेदन है। मीठा और ताज़ा आलूबालू उरोकंठकी कर्कशता (खरत्व) और कासमें प्रयुक्त किया जाता है। यह कब्जको दूर करता और पेशाब भी लाता है। खट्टा आलूबालू पित्त और रक्तका उद्वेग (जोश) शमन करने तथा वमन और मिचली दूर करनेके लिए खिलाया जाता है। मीठा और सूखा आलूबालू आर्तवजनन एवं वस्तिवृक्काश्मरीनाशनके लिए सौंफके साथ उपयोग किया जाता है। आलूबालूका गोंद कठनलिका (कस्बारिया)के खरत्व और बृक्कबस्त्यश्मरी तोड़नेके लिए उपयोग किया जाता है। चेहरेका रंग निखारनेके लिए इसका लेप (तिला) किया जाता है। आलूबालूका शर्बत मूत्रप्रर्वतन एवं बस्तिवृक्काश्मरीके उत्सर्गके लिए गुणदायक है। मीठा और ताजा आलूबालू अजीर्ण एवं मंदाग्निजनक है। इसलिए भोजनोत्तर इसका खाना वर्जित है। इसका प्रधान कर्म अश्मरिनाशन और मूत्र एवं आर्तवप्रवर्तन है। **अहितकर**—मीठा स्निग्ध (मरतूब) आमाशयके लिए। **निवारण**—पोदकीघटित शुक्तमधु (सिकंजबीन नानाई), कालीमिर्च और सेंधानमक।

मात्रा—दो-तीन दाना तक; गोंद १-२ ग्राम (१-२ माशा)।

●

(४९) आलूबोखारा।

फ़ैमिली : रोज़ासे (Family : Rosaeeae)।

नाम—(हि०; पं०; म०; गु०) आलूबोखारा; (यू०) कोक्कुमेलिआ (Kokkumelia); (फा०) आलू, आलूबोखारा; (अ०) इज्जास, इजास; (सं०) आरुक, आलुक; (क०) अअर; (मा०) आलुवुखारो; (ले०) प्रूनुस बोकारिएन्सिस **Prunus bokariensis** (पर्याय–प्रूनुस कॉम्म्युनिस *Prunus communis* Hudson.; प्रूनुस डोमेस्टिका *P. domestica* Linn.); (अं०) दी बोखारा प्लम् (The Bokhara plum), प्रून (Prune)।

वक्तव्य—आलूबोखारासे इसका काला और बड़ा भेद अभिप्रेत होता है। आलूसे बोखाराका पीला भेद (आलूए ज़र्द बोखाराई) अभिप्रेत होता है जो ताजगीकी दशा में कहरुबाई पीला, उज्ज्वल, खटमिट्ठा एवं स्वादिष्ट होता है और सब जगहके आलूबोखारे (आलुओं)से उत्तम समझा जाता है।

उत्पत्तिस्थान—यह यूरोप और पश्चिमी एशिया (वा दमिश्क)का मूल निवासी है और मध्य एशिया, पश्चिमी शीतोष्ण हिमालयमें गढ़वालसे कश्मीर तक ५,००० से ७,००० फुटकी ऊँचाई पर जंगली होता है या लगाया जाता है। परन्तु यह बोखारा एवं समरकन्द प्रांतका उत्तम समझा जाता है। हिन्दुस्तान में आलूबोख़ारा अफ़गानिस्तान और बलख़ आदि से आता है।

वर्णन—आलूचेकी एक जातिके वृक्षका प्रसिद्ध फल है, जो आँवले वा बेरके बराबर आलूकी शकलका गोल या आयताकार और खटमिठ्ठा होता है। सूखा फल अंडाकार लगभग ३ सें० मी० (१। इंच) लम्बा, काला और झुर्रीदार होता है, भीतरका गूदा कालाई लिए भूरा वा लाल होता है। यह निर्गंध एवं खट्टा चाशनीदार होता है। **भेद**—आलूबोखारा **उद्यानज** और **पार्वती** (पहाड़ी) भेदसे दो प्रकारका होता है। उद्यानज कई प्रकारका होता है। उनमेंसे एक प्रकार बड़ा और काला है। इसीको साधारणतया 'आलूबोखारा' कहते हैं। इसके गोंदको 'फारसी गोंद' कहते हैं। यह अरबी गोंद (समग़ अरबी)का प्रतिनिधि है।

रासायनिक संगठन—फलमें मैलिक एसिड (Malic acid), निंव्वम्ल या सिट्रिक एसिड (Citric acid), शर्करा आदि होते हैं।

उपयुक्त अंग—फल (इसके सूखे फल बाजारमें सर्वत्र मिलते हैं)।

कल्प तथा योग—**शर्बत आलूबोखारा**।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें शीत एवं तर; मतांतरसे पहले दर्जेमें सर्द और दूसरेमें तर है। **गुण-कर्म**—पित्त एवं रक्तोद्वेगसंशमन, दाहप्रशमन, पित्तरेचक और मृदुरेचक (सारक) है। **उपयोग**—गरमीके (पैत्तिक) सिरदर्द, पित्तज्वर, वमन, मिचली, प्यास रोकने तथा पित्तसंशमनके लिए विशेषकर ज्वर एवं अतिसारमें तथा कामला, दाह और पित्त-प्रधान रक्तविकारमें जलमें भिगोये हुए आलूबोखारेका ऊपर निथरा हुआ पानी (आबे ज़ुलाल) उपयोग किया जाता है। तृषा एवं हृल्लासमें फलको मुँहमें रखकर चुसाते हैं और इसका शर्बत बनाकर पिलाते हैं। यह हृदयकी उष्णता एवं दाहमें लाभदायक है। मलकर पिलानेसे विरेचक द्वारा पित्तका उत्सर्ग करता है। **मात्रा**—३ दाना से ५ दाना तक। विरेचनार्थ पन्द्रह-बीस दाना तक।

नव्यमत—आलूबोखारा शीतल, पिपासाघ्न और मृदुरेचक है। पित्तज्वरमें इसका अच्छा उपयोग होता है। (औ० सं०)। यह स्निग्ध एवं पुष्टिकर है। (मे० मे० ऑफ इंडिया—आर० एन्० खोरीकृत)। धनी-मानी व्यक्ति इसका नाना भाँतिकी चटनियाँ बनानेमें उपयोग करते हैं। यह यकृत्शैथिल्य और तज्जन्य वृद्धि तथा सूजाक एवं अर्श-प्रभृतिमें लाभकारी है। इसकी भींगीका तेल खूबानीकी भींगीके तेलके समान होता है और खाद्य है। जड़ धारक है।

◆

(५०) आस।

फ़ैमिली : मीर्टासे (Family : Myrtaceae)।

नाम—(हि०; पं०) विलायती मेंहदी; (यू०) Mursine (D. I. 155); (अ०) आस; (फा०) आस, दरख़्ते हब्बुल आस, दरख्ते मूरद; (ले०) मिर्टुस काम्युनिस (**Myrtus communis** Linn.); (अं०) मिर्टिल (Myrtle)। **बीज**—(बम्ब०) हब्बुल आस; (अ०) हब्बुल् आस; (फा०) तुख़्मे मूरद, मूरददान; पिस्ते गालियः। **पत्र**—(अ०) वर्कुल् आस; (फा०) बर्गे मूरद।

उत्पत्तिस्थान—भूमध्यसागरसे उत्तरपश्चिम हिमालय पर्वत। समस्त भारतीय उद्यानोंमें यह लगाया जाता है।

वर्णन—यह एक सदाहरित छोटी झाड़ी है। **पत्र**—लट्वाकार, चिकना, चमकीला मेंहदीकी तरह, सुगंधित और गहरे हरे रंगके होते हैं।

फूल—सफेद, सुगंधित, स्वादमें किंचित् तिक्त और फीके होते हैं। पंखड़ियाँ (दल) क्षुद्र होतीं तथा शीघ्र झड़ जाती हैं और उनसे सुगंध आती है। **फल** छोटे कालीमिर्चसे कुछ बड़े, जामुनी रंगके और स्वादमें कुछ फीके होते हैं और उनके भीतर सात-आठ छोटे-छोटे चिकने बीज होते हैं। ये फल हब्बुल् आसके नामसे बिकते हैं। आस उद्यानज और वन्य भेदसे दो प्रकारका होता है। यहाँ उद्यानज आसका वर्णन किया गया है। प्राचीन यूनानी

लेखकोंका जंगली आस Oxymyrsine or Wild Myrtle (*Mursine agiria D*. 4.144) जिसको मुसलमान लेखकों ने आसु-ल्-बर्री लिखा है, डीमक महोदयके अनुसार जंगली आस नहीं, अपितु एक प्रकारका बूचर्स-ब्रूम (*Ruscus aculeatus*) है।

रासायनिक संगठन—पके फलमें एक प्रकारका उत्पत् तेल।

आस-तैल (Oil of Myrtle)में राल, टैनिन एसिड, सिट्रिक एसिड, मैलिक एसिड (Malic acid) और शर्करा आदि पदार्थ पाये जाते हैं। पत्र, पुष्प और फलसे आसवन द्वारा एक प्रकारका उत्पत् तेल प्राप्त किया जाता है। यह पिलाई या हरापन लिए पीले रंगका और जलसे हलका होता है।

उपयुक्त अंग—**फल और पत्र**।

कल्प तथा योग—**शर्बत हब्बुल् आस**।

प्रकृति—दिल्लीके हकीमोंके मतसे पहले दर्जेमें शीत और दूसरेमें रूक्ष है। लखनऊके झवाईटोलाके हकीमों के मतसे शीतवीर्यकी प्रधानतायुक्त संमिश्रवीर्य है।

गुणकर्म—**हब्बुल्आस** ग्राही (काबिज), **रक्तस्तंभन**, स्वेदापनयन, दीपन, प्रभावतः हृदयबलदायक; और बर्गमूरद (पत्र) अवसादक (मुसक्किन), केशरंजन (बाल काला करनेवाला) तथा बालोंको दृढ़ करनेवाला (मुकव्वी शार) है। उपयोग—अतिसार और प्रत्येक अंग-प्रत्यंगसे रक्तस्राव बंद करनेके लिए हब्बुल्आसका उपयोग करते हैं। पसीना रोकनेके लिए इसको बारीक पीसकर शरीर पर मलते हैं। हृदयदौर्बल्य और हृत्स्पंदन (ख़फ़कान) दूर करनेके लिए इसका उपयोग करते हैं। अग्निदग्ध, उष्णशोथ और शिरःशूलमें वेदनास्थापनार्थ इसके पत्तोंको पीसकर लेप करते हैं। कक्ष (बगल) स्वेद रोकने और उसकी दुर्गन्धनिवारणके लिए इसे कक्ष (बगल)में मलते हैं। बालोंको मजबूत करने और उनको काला रखने या काला करनेके लिए इसे खिजाबों (केशरंजन औषधों)में डालते हैं। विलायती मेंहदीघटित शार्कर (शर्बत हब्बुल् आस) इसका एक प्रसिद्ध योग है जो अतिसार एवं रक्तस्राव बंद करने और अंत्र-आमाशय तथा हृदयको शक्ति देनेके लिए विशेषरूपसे प्रयुक्त होता है।

अहितकर—शिरःशूलजनक **और** अनिद्राजनक। **निवारण**—रसवत और तूत की पत्ती। **प्रतिनिधि**—बेख़ अंजबार। **मात्रा**—३ ग्राम से ५ ग्राम (३ माशा से ५ माशा) तक।

नव्यमत—पत्रकृत फांट या सुरासवकी बस्ति देनेसे श्वेतप्रदर और योनिभ्रंश (Prolapse) में उत्तम परिणाम होता है। ०.६ ग्राम से २ ग्राम (५-१५ रत्ती)की मात्रामें पत्तियोंका चूर्ण सेवन करनेसे उरःक्षतगत रात्रिस्वेद बंद हो जाता है तथा फुफ्फुसविकारोंमें उपकार होता है।

●

(५१) इंद्रायन।

फ़ैमिली : कूकुरबिटासे (Family : Cucurbitaceae)

नाम—(हिं०) इंद्रायन, इनारुन, फरफेंदू; (यू०) कोलोकिंथिस (Kolokynthis); (अ०) हं(हिं)ज़ल, अल्क़म; (फा०) ख़र्पुज़एतल्ख़ (–रोबाह), हिंदवाने अबुजहल (–तल्ख़), कबिस्त; (सं०) इंद्रवारुणी, विशाला; (क०) हूनिहेन्द, ज़हरबागुन; (पं०) कौड़तुंबा (–तुम्मा); (मा०) तूस, तूसण बेल, तूसरगड़, तूंबा; (म०) इंद्रविण; (बं०) राखाल शशा; (सिंध) द्रूह; (ता०) पेतिकारि; (ते०) पापर बुडम्; (मल०) पेक्कुम्मट्टि; (गु०) इंद्रावणा; (ले०) सीट्रुलुस कोलोसिंथुस (**Citrullus Colocynthus** schrad); (अं०) बिटर एपुल (Bitter apple), बिटर गोर्ड, (Bitter gourd), कॉलोसिंथ (Colocynth)।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष, विशेषकर उत्तर-पश्चिम, मध्य और दक्षिण भारतवर्ष, पंजाब और सिंधके शुष्क प्रदेश, कारोमंडलके रेतीले भाग, लंका, ईरान, अरब, श्याम, मिश्र, यूनानके कतिपय द्वीप, उत्तरी अफरीकासे मराको, भूमध्यसागरतट, स्पेन, पुर्तगाल और जापान आदि स्थानोंमें इसकी बेल जंगली उपजती है।

वर्णन—यह तरबूज या टिंडेकी तरहकी एक सुदीर्घ लताका फल है। पत्र बहुत कटा हुआ, अनेक खंडयुक्त अत्यंत विषम, खंड अधिक कोणीय, पत्रोदर मसृण और लगभग समतल; पत्रपृष्ठ अनेक उभरी हुई रेखाओं एवं क्षुद्र रोमधारक अर्बुदोंसे युक्त होता है। पत्रपृष्ठ, पत्रवृंत एवं डंठलोंपर रोम होते हैं। पत्रवृंतके सन्निहित स्थान (समीप)से पुष्प निकलते हैं। पुष्पवृंत नातिदीर्घ और पुष्प पीला होता है। फल लगभग गोल, नारंगीके बराबर, समतल, ताजा हरा और पीला रंगोंसे रंजित तथा शुष्क पिलाई लिये भूरा होता है और इसमें अल्पप्रमाणमें भूरापन लिए सफेद गूदा होता है जिसके भीतर असंख्य भूरे बीज होते हैं। ताजे फलका संपूर्ण भीतरी भाग सुषिरपूर्ण (इस्पंजवत्) एवं रसपूर्ण गूदेसे भरा होता है। भारतीय बाजारोंमें छिलका उतारा हुआ इन्द्रायन देखनेमें नहीं आता। इसका आयात यहाँ यूरोपसे होता है। बीज चपटे अंडाकार ०·७५ से० मी० (३।१० इंच) लंबे और ०·५ से० मी० (१।५ इंच) चौड़े होते हैं। बीजका छिलका मोटा और कड़ा होता है। जड़ उपमूलयुक्त, चपटी, सुतारी और पिलाई लिए सफेद रंगकी होती है। पौधेके सभी अंग-प्रत्यंग अत्यंत तिक्त होते हैं। वर्षामें इसकी बेल उत्पन्न होती है, वर्षांतमें फल लगते और शरद ऋतु में पकते हैं और इसी समय इसके सूखे हुए फल बाजारमें लाये जाते हैं। छिलकायुक्त इन्द्रायनके गूदेमें चार वर्ष तक और छिलका उतारे हुएमें केवल दो वर्ष तक वीर्य शेष रहता है; बल्कि एक वर्षके भीतर ही वीर्य नष्ट हो जाता है। इसलिए उचित यह है कि आवश्यकता पड़ने पर ही गूदा निकालें। गूदाको अरबीमें **शहम-हंज़ल** कहते हैं। मात्र हंज़ल शब्दसे इसका फल विवक्षित होता है। वक्तव्य—इसकी लेटिन संज्ञा **'कालोसिंथिस'** इसकी यूनानी संज्ञा **'कालोकिन्थिस'**से जिसको कतिपय यूनानीवैद्यकीय ग्रंथोंमें प्रमादवश **'कोलोकिनीस'** आदि लिखा है, व्युत्पन्न है। प्राचीन भारतीयों, यूनानियों, रूमियों और प्राचीन अरबवासियोंको इस ओषधिका ज्ञान था।

रासायनिक संगठन—फलमें **कालोसिन्थिन** नामक एक क्षारोद या तिक्त सत्व होता है। यह कण या चूर्णरूपमें पाया जाता है और जल एवं मद्यसारमें सुविलेय होता है। यह २ प्रतिशतसे न्यून नहीं पाया जाता। इसके अतिरिक्त इसमें **कालोसिन्थेइन** (Colocynthein) नामक एक राल और **कालोसिन्थिटिन** प्रभृत्ति द्रव्य पाये जाते हैं। कालोसिन्थिटिन एक क्रिस्टली चूर्ण होता है, जो ईथरमें विलेय और जलमें अविलेय होता है। बीजमें एक प्रकारका स्थिर तेल १० प्रतिशत पाया जाता है।

कल्प तथा योग—हब्ब शहमहंज़ल, हब्ब इन्द्रायन, मत्बूख़ हफ़्तरोज़ा।

उपयुक्त अंग—फलका गूदा (शहम-हंज़ल), बीज, पत्र और मूल (बेख़)।

प्रकृति—दिल्लीके हकीमोंके मतसे फलका गूदा तीसरे दर्जेमें उष्ण और दूसरे दर्जेमें रूक्ष। लखनऊके हकीमोंके मतसे चौथे दर्जेमें उष्ण एवं रूक्ष। आयुर्वेदके मतसे भी उष्णवीर्य (भा० प्र०) है।

गुणकर्म—कफ और सौदाविरेचनीय, श्वयथुविलयन और गर्भशातक।

उपयोग—सदा बना रहनेवाला (दायमी) कब्ज (यकृज्जन्य), जलोदर, कृच्छ्रश्वास (दमा), आमवात, गृध्रसी, वातरक्त, पक्षवध, अर्दित, महाकुष्ठ और श्लीपद जैसे रोगोंमें विरेचनकी भाँति इन्द्रायनके फलके गूदेका पुष्कल उपयोग किया जाता है। गर्भाशयके रोगोंमें यह भ्रूणहत्या, द्रवापकर्षण और श्वयथुविलयन करता है। गर्भपातके लिए फलवर्ति (फिर्जजा)की भाँति इसका उपयोग करते हैं। इन्द्रायनका गूदा खिलानेसे अन्त्रमें मरोड़ होने लगती है। अतएव इसके बारीक चूर्णके साथ कतीरा और बादामका तेल सम्मिलित कर लिया जाता है। इन्द्रायनके गूदेका साधारणतः औषधद्रव्योंके साथ मिलाकर गोलियाँ बनाकर उपयोग करते हैं। प्रधानतः कफ और सौदाके

उत्सर्गके लिए इसका उपयोग करते हैं। **अहितकर**-—मरोड़ पैदा करता है। **निवारण**-कतीरा और बादामका तेल। प्रतिनिधि-एलुआ (सकोतरी) विरेचनार्थ। **मात्रा** १–ग्राम से २ ग्राम (१ माशासे २ माशा) तक।

प्रकृति—(पत्र) तीसरे दर्जेमें उष्ण एवं रूक्ष।

उपयोग—इसका विरेचन देनेसे श्वासरोग आराम होता है। इसके सूखे पत्र ७ माशा, निशास्ता (गेहूँका सत) और बबूलके गोंदके साथ सेवन करनेसे सौदावी अतिसार बन्द हो जाता है। इसे अनीसूँ, अफ़्तीमून और अयारिज फ़ैक़राके साथ उपयोग करनेसे मालिन्खोलिया (मद), मृगी, खालित्य (दाउल्हय्यः) और अन्य सौदावी रोगोंमें उपकार होता है। **अहितकर**-अंत्रको।

(जड़) उपयोग—इसकी जड़ सिरकेमें क्वाथकर कुल्ली करनेसे अन्त्रशूल और मसूढ़ोंका दर्द आराम होता हैं। इसकी जड़का क्वाथ जलोदर और श्लीपदके लिए गुणकारी है। यह गाढ़े रक्तको पतला करता है। ७ माशा इन्द्रायनकी जड़ पिलानेसे विच्छूका विष उतर जाता है। बिच्छू और सर्पके विषमें इसे खाने और लगाने (उभय प्रकार)से उपकार होता है। इसकी धूनी आर्तवप्रवर्तक है। **मात्रा**–१ माशा से २ माशा तक।

बीज—**मख्ज़नुल् अदिवया**में इसके बीजोंका प्रयोग भी दिया है।

मात्रा—१·५ ग्राम (१॥ माशा)। तीसरे दर्जेमें गर्म व खुश्क होते हैं, और वमन द्वारा श्लेष्मा एवं सांद्र दोषोंको निकालते हैं।

आयुर्वेदीय मत—**इन्द्रायन** तिक्त, कटुविपाक, लघु, उष्णवीर्य, रेचन तथा क्रमि, कफ, व्रण, उदररोग, कामला, पित्त, प्लीहोदर, श्वास, कास, कुष्ठ, गुल्म, ग्रन्थि, प्रमेह, मूढ़गर्भ, आमविकार और विषका नाश करनेवाली है।

नव्यमत—**इन्द्रायन** भेदन है। इससे पेटमें मरोड़ होकर पतले दस्त होते हैं। मात्रा अधिक दी जाय तो आँतोंमें शोथ होता है। बड़ी आँतों और यकृत्पर इसकी क्रिया एलुएके समान होती है। मूल रेचन और श्वयथुहर है। बीजोंमें रेचक गुण नहीं होता। कफप्रधान रोगोंमें **इन्द्रायन**को देते हैं। इससे स्रोतोंका अवरोध दूर होता है। आमवात, सन्धिशोथ, जलोदर, यकृद्दाल्युर, प्लीहोदर और मलावरोधमें **मूल**का चूर्ण सोंठ और गुणके साथ मिलाकर देते हैं। मूलको पानीमें घिसकर व्रणशोथके ऊपर लगाते हैं, प्रारम्भमें ही लेप किया जावे तो इससे लाभ होता है, परन्तु पकनेपर लगनेपर कोई लाभ नहीं होता। बीजोंका तेल लगाते रहनेसे बाल सफेद नहीं होते।

●

(५२) इक्लीलुल् जबल।

फ़ैमिली : लाबिआटे (Family : Labiatae)।

नाम—(हि०) रोजमरी; (अ०) इक्लीलुल् जबल, उबैसरान; (फा०) गुलेसुर्ख़ बहरी; (ले०) **रोज़मेरिनुस (रोज़मारिनुस) आफ़्फ़ीसिनालिस (Rosmarinus officinalis** L.); (अं०) रोज़मेरी (Rosemary); रोजमेरो (Rosemaro)।

वक्तव्य—यह अधिकतया पहाड़ोंपर और कड़े एवं अल्पजल सूखे जंगलोंमें होता है; इसलिए **इक्लीलुल् जबल** (**इक्लील् = मुकुट या ताज + उल्** + जबल् = पर्वत) कहलाता है। यद्यपि इसको रोजमेरी (गुलेसुर्ख़ बहरी—सामुद्र गुलाब) कहते हैं, तथापि यह न तो गुलाबका कोई भेद है और न इसका 'मेरी'से कोई सम्बन्ध है। यह लैटिन रोजमारिनुस् (Rosmarinus) अर्थात् **सामुद्र 'अवश्याय (ओस)'** से व्युत्पन्न है। जलप्रिय होनेसे इसका यह नाम पड़ा। उबैसरानके स्वरूपपरिचयके विषयमें कतिपय प्राचीन यूनानी चिकित्सा विशारदोंका मतभेद है। परन्तु **कामूस** अंग्रेजी व **अरबी ल्यूहिना अत्क़ारियून** में उबैसरानको रोजमेरीका पर्याय लिखा है। किन्तु **मुहीत आजम** प्रभृति ग्रन्थोंमें इक्लीलुल्जबल और उबैसरान दोनोंका पृथक्-पृथक् वर्णन किया गया मिलता है।

उत्पत्तिस्थान—यह दक्षिण यूरोप, एशिया माइनर और उत्तरी अफरीका का आदि निवासी हैं। अब भारतीय बगीचोंमें लगाया जाता है। यह स्पेन तथा मिश्रदेशमें भी उत्पन्न होता है और अधिकतया पहाड़ोंपर तथा कड़े एवं अल्पजल सूखे जंगलोंमें तथा नदी आदिके तटोंपर भी उत्पन्न होता है। बहुत जगह इसको बागोंमें लगाते हैं। इसका पौधा रबीकी फसलमें होता है और ग्रीष्मके अंत तक रहता है। सिकंदरियामें लोग इसकी खेती करते हैं।

वर्णन—यह एक छोटा सुगंधि-क्षुप है। क्षुप एक गजसे भी अधिक ऊँचा हो जाता है। काण्ड कुछ-कुछ काष्ठीय (कठोर), वर्गाकार (चौकोर); पत्र लम्बा, बारीक (रेखाकार) कुण्ठिताग्र (obtuse), ऊपर गहरा हरा और नीचे सफेद, सशाख, तारकाकार रोमोंसे युक्त, समूहबद्ध और कालाई लिए, पत्रप्रांत अत्यंत मुड़ा हुआ (Strongly revolute), शाखायें कड़ी; फूल सुगन्धित कुछ-कुछ आसमानी और सफेद, पत्तियोंके बीचसे निकला हुआ, द्वि-ओष्ठीय, और केवल दो पुंकेशरों (Stamens)से युक्त होता है। स्वाद सुगंधमय; गन्ध विशिष्ट; फल कड़ा और कुछ गोल होता है। इसके सूखनेपर बीज उससे झड़ जाता है। यह बीज राईके दानोंसे भी छोटा, तिक्त एवं तीक्ष्ण, कुछ-कुछ कसेला और सुगन्धित होता है।

रासायनिक संगठन—इसकी पत्र और पुष्पवान् शाखाओंसे वर्णरहित, हलका और पिलाई लिए एक प्रकारका उत्पत् तेल प्राप्त होता है। इसकी गन्ध रोज़मरीकी तरह सुगंधित उष्ण और आपेक्षिक गुरुत्व ०·९०० से ०·९१५ तक होता है। यह तेल ब्रिटिश फार्माकोपिआमें सम्मत है।

उपयुक्त अंग—पत्र (वा क्षुप)।

प्रकृति—तीसरे दर्जे (अन्ताकीके अनुसार दूसरे दर्जे)में उष्ण एवं रूक्ष है। लखनऊके हकीमोंके मतसे पहले दर्जेमें गर्म व खुश्क है।

गुण-कर्म—वातानुलोमन, श्वयथुविलयन, अवरोधोद्घाटक, अश्मरीनाशन, मूत्रजनन (वा मूत्रमार्ग विशोधन), आर्तवजनन (वा गर्भाशयशोधक) और कफोत्सारि है। **उपयोग**–इसके सेवनसे वायुका अनुलोमन होता है। यह कृच्छ्र-श्वास (रबू) और आर्द्रकासमें गुणकारी है। इनके जीर्ण होनेपर यह फुफ्फुसका शोधन करता है। यह शीतल खफ-कान (हृत्स्पंदन) और जलोदरमें जिसके साथ अधिक दाह (हरारत) और पिपासा न हो, गुणकारी है। दिल्लीके हकीम अर्धांगवात (फालिजो) में इसका आभ्यन्तरिक उपयोग भी कराते हैं। लखनऊके हकीमोंके मतानुसार यह सूजन उतारता, अंगोंको शक्ति देता और गर्मी पहुँचाता है तथा यकृत्प्लीहा, आमाशय, गर्भाशय, गुद और वृषण—इनके शोथ और दर्दको दूर करता है। यह यकृत्प्लीहाके अवरोधोंका उद्घाटन करता, यकृच्छूल, बस्ति-वृक्कअश्मरी और सौदावी कामलाको नष्ट करता, मूत्र और आर्तवका प्रवर्तन करता तथा मूत्रमार्ग एवं गर्भाशयका शोधन करता है। इसके लेपसे जीर्ण शोथ भी विलीन हो जाता है। नेत्रके चतुर्दिक् इसका लेप करनेसे शीतजनित नेत्रशूल तत्काल दूर हो नेत्र स्वाभाविक अवस्थामें आ जाता है।

अहितकर—उष्णप्रकृतिमें शिरःशूलजनक है। निवारण-सिकंजबीन।

मात्रा—१०·५ ग्राम (१०॥ माशा)।

●

(५३) इक्लीलुल्मलिक

फ़ैमिली : लेगूमिनोसे (Family : Leguminosae)

नाम—(हिं०) नाख़ूना, अस्पुर्क; (यू०) Melilotos (D. 3-417); (अ०) इक्लीलुल्मलिक, असाबउल्मलिक; (फा०) नाखूना, गियाहकैसरी, शाहअफ़्सर; (बं०) बन पिरिंग; (ले०) **ट्रीगोनेल्ला उंकाटा Trigonella uncata** Boiss. **(पर्याय-मेलीलोटुस आफ़्फ़ीसिनालिस Melilotus officinalis** Willd.); (अं०) टान्किन बीन

(Tonkin bean), मेलिलॉट (Melilot), किंग्स क्राउन (King's Crown); किंग्स क्लेवर या चाफर (Kings Claver or Chafer)।

वक्तव्य—यह नख (अज़्फ़ारुत्तीब-नाखून परियाँ)से भिन्न एक वानस्पतिक फली है। यह कटे हुए नाखून (तराशे नाखून)की तरह होती है, इसलिए इसे नाखूना कहते हैं। अरबी इक्लीलुल्मलिक शब्दका अर्थ (**इक्लील = मुकुट वा ताज, मलिक = राजा) राजमुकुट है**। पूर्व कालमें इससे राजमुकुट बनाये जाते थे, इसलिए इसका उक्त नाम पड़ गया। यह यूनानियोंका मेलिलोटोस (Melilotos) है, जिससे इसकी लेटिन और अँगरेजी संज्ञायें व्युत्पन्न हुई हैं। इस नामसे इसकी दो जातियोंकी फलियाँ बिकती हैं। दोनोंही के पत्र त्रिपत्र और फूल पीले होते हैं, किंतु **मेलिलोटस आर्वेन्सिस (Melilotus arvensis** Lamk.)की फली छोटी, चिकनी, एकसे दो बीजयुक्त और **मेलिलोटस आफ़्फ़ीसिनालिस (M. Officinalis** Willd.)की फली रोमावृत होती है। पत्र अभिहृद्वत् (Ob-cordate) प्रथमके पत्र दन्तुर (Serrate) और द्वितीयके रुण्डितलट्वाकार (Ovato-truncate) होते हैं। स्वाद और गन्ध तृणवत् (Like hay)।

उत्पत्तिस्थान—फारस। बम्बईमें इक्लीलुल्मलिकका आयात फारसकी खाड़ीसे होता है। ट्रीगोनेल्ला फारस और अफगानिस्तानमें होता है। भारतवर्षके नुब्रा और लदाखमें १०,००० से १३,००० फुटकी ऊँचाई पर होता है।

वर्णन—मेथीकी जातिकी एक क्षुद्र बनस्पतिकी फली जो छोटी, कटे हुए नख (तराशे नाखून)के बराबर और उसीके समान अर्द्धचन्द्राकार (हिलाली) या हँसियाकी शकलकी, गोल, भूरापन लिए पीले रंगकी और बाहरकी ओर. कुछ झुकी हुई चंचुयुक्त होती है। फलीके नीचेके आधारसे शीर्ष तकका माप १.२ इंच और गोलाईका माप लगभग १ इंच होता है। इसके दोनों पार्श्वपर लंबाईके रुख गहरी परिखा (नाली) होती है और फली एक माध्यमिक पर्दा द्वारा दो कोषोंमें विभक्त होती है। इनमेंसे प्रत्येक कोषमें क्षुद्र भूरापन लिए पीले रंगके अष्टपहल बीजोंकी इकहरी पंक्ति होती है, जिस (बीज)के एक पार्श्वपर गंभीर दाँता (Notch) होता है। सूक्ष्मदर्शकयंत्रके नीचे रखकर देखनेसे यह असंख्य काले धब्बोंसे चिह्नित दिखाई देता है। मुसलमान लेखकोंका दूसरा भेद, जिसकी फली अत्यन्त क्षुद्र और स्वल्प वक्राकार होती है, बाजारमें उपलब्ध नहीं होता। कड़ी, पिलाई लिए सफेद और सुगंधित फली जिसमें पीले बीज हों, औषधके लिए उत्तम समझी जाती है।

वक्तव्य—इकलीलुल्मलिकके यह दो भेद—(१) सफेद फूलवाला (**Melilotus alba** Lam.) और (२) पीले फूलवाला (**M. parviflora** Desf.) भारतवर्षमें भी होते हैं। इनमेंसे प्रथम जातिकी गंध यूरूपीय इक्लील (Melilot)कीसी होती है, और वहाँ इसका उसके प्रतिनिधि रूपमें व्यवहार होता है। **मख्जनुल् अदवियामें** इसके एक भारतीय भेदका भी उल्लेख मिलता है। उसकी फली बहुत छोटी होती है। इसको बंगवासी पिरंग कहते हैं। इसको वैज्ञानिक परिभाषामें **ट्रीगोनेल्ला कार्नीकुलाटा (Trigonella corniculata** Linn.) कहते हैं। शरद्ऋतुमें कर्नाटक एवं बंगालमें शाकार्थ इसकी खेती करते हैं। बेलगाँवमें भी इसकी खेती होती है। वहाँ इसे तिरप (फा०—तिरीर; उ०—पिरंग) कहते हैं। संस्कृत लेखकोंका यह **'माल्य'** है। भारतवर्षमें इसका माला बनाते हैं।

रासायनिक संगठन—इसके पौधे और फली (शुष्क पत्र और पुष्प)से एक प्रकारका कूमेरिन (Coumarin) नामक क्रिस्टली अति तीव्रगंधी सत्त्व प्राप्त होता है। यह जलमें अविलेय, किन्तु सुरासार एवं वसामें विलेय होता है।

उपयुक्त अंग—फली।

प्रकृति—पहले दर्जेमें उष्ण एवं रूक्ष।

गुण-कर्म—श्वयथुविलयन, **व्रणशोथपाचन**, बल्य, वेदनास्थापन, **मूत्रजनन और आर्तवजनन**। सूजन उतारने और शरीरको बल एवं उष्णता प्रदान करनेके लिए लेप और मालिश आदिकी भाँति इसका उपयोग करते हैं।

यकृत्, प्लीहा, आमाशय, गर्भाशय, गुदा और वृषण इनके शोथ एवं दर्द तथा पक्षवध दूर करनेके लिए इसका बाह्य एवं आंतरिक प्रयोग करते हैं। इस हेतु इसका क्वाथ पिलाते और बाह्य उपयोग करते हैं। अन्त्रको शक्ति प्रदान करनेके लिए इसके काढ़े की वस्ति देते हैं। आशयशोथ (औराम अह्शाऽ)को दूर करनेके लिए लेपकी भांति इसका विशेष उपयोग होता है। **अहितकर**—वृषणोंको। **निवारण**—शुद्ध मधु और अंजीर। **प्रतिनिधि**—बाबूना और फरासियून। **मात्रा**–२ ग्रामसे ४ ग्राम (२ माशासे ४ माशा) तक।

नव्यमत—कुलपेपर (Culpeper) के कथनानुसार क्षुप और इसके फूलोंसे भभके द्वारा चुआए हुए अर्क या उससे बनाए हुए क्षारजल (Lye) से प्रायः शिर धोनेसे उनको लाभ होता है जिनका अकस्मात् संज्ञानाश हो गया होता है। इससे स्मृति-शक्ति भी बलवान् होती है, शिर और मस्तिष्कको विश्राम मिलता है तथा दर्द एवं सन्यास (Apoplexy)से उनकी रक्षा होती है (पा० न्यू सा० पृ० २०४)।

●

(५४) इज़ख़िर।

फ़ैमिली : ग्रामीने (Family : Gramineae)।

नाम—(हिं०) लामजक, खवी, इन्द्रबगई (मीरजापुर जंगल); (यू०) स्कोइनोस (Schoinos)। (अ०) अज़ख़र (इ०बै०) इज़ख़ (ख़ि)र, जौरजिया, ख़िलाल–एल्–माँमू (माँमूकी दंतमार्जनी), तिब्न–एल्–मक्का (मक्कातृण), तीबुल अरब (अरबी सुगंधद्रव्य); (फा०) काह मक्की (मक्कातृण), अलफ़ गोरखर (वन्य गर्दभतृण), गोर गियाह (वन्य गर्दभतृण); (सं०) **लामज्जक**; (बं०) जरांकुस; (पं०) इभरंकुश, लामजक; (म०) पिंवला वाला; (गु०) अशखर, गंधारू घास; (ले०) **एण्ड्रोपोगोन लेनिगेर (Andropogon laniger Desf.** (पर्याय–सिम्पोपोगन ज्वारंकुसा **Cimpopogon jwarancusa** Schult या C. jwarancusa Jones); (अं०) स्क्विनैंच (Squinanch),

वक्तव्य—स्वर्गगवासी श्री यादवजी महाराजने इसे भूतृण और लामज्जक (लामजक)को उशीरका कोई भेद माना है (दे० द्रव्यगुण विज्ञानम्)।

उत्पत्तिस्थान—उत्तरी भारतवर्ष (हिमालयकी तराईमें) तिब्बतपर्यन्त, पंजाब, सिंध, अरब, फारस और उत्तरी अफरीका।

वर्णन—यह खसकी जातिका एक बहुवर्षायु सुगन्धि-तृण है जो देखनेमें सर्वथा खसके समान प्रतीत होता है। यह अपने साधारण पाताली जड़, जड़से निकली हुई पत्तियोंके क्षुद्र घने गुल्म और फूलकी सफेद लोमयुक्त तुरियों (Lanigerous calyx)के द्वारा पहिचाना जाता है। जड़ लंबी और पतली होती है। **वास** गुलाबपुष्पके इत्रकी तरह सुगन्धित; स्वाद सुगंधि, तिक्त एवं चरपरा (तीक्ष्ण) होता है। सुखाया हुआ पौधा (गुल्म) सफेद होता है। इसको **इजखिर अरबी** (या **मक्की**) कहते हैं।

उपयुक्त अंग—जड़ (**बेख़ इज़ख़िर**), पुष्प (**शिगूफा इज़ख़िर—फुक्कहुल् इजखिर**) और पंचांग। जड़ और पुष्पमें एक प्रकारकी हलकी तेज़ सुगंध होती है। इनसे एक प्रकारका उत्पत् तेल (**रोगन इज़ख़िर**) निकाला जाता हैं जो अत्यन्त सुगन्धित होता है।

तेल (रोग़न शिगूफा इज़खिर) कल्पना विधि—आवश्यकतानुसार इजखिरके फूलोंको लेकर इतने जैतूनके तेलमें भिगोयें कि दुगुना तेल ऊपर रहे। इसे शीशीमें डालकर महीना भर धूपमें रखें। इसके बाद छान लें। इस छने हुए तेलमें दोबारा इजखिरके फूल डालकर उसी प्रकार धूपमें रखें। इसी तरह तीन बार करें। बस तेल (रोग़न) तैयार है।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें उष्ण एवं रूक्ष; मतान्तरसे दूसरे दर्जेमें उष्ण और पहलेमें रूक्ष।

गुण-कर्म—सांद्रदोषपाचन, अवरोधोद्घाटक, श्वयथुविलयन, वातानुलोमन, आर्तवजनन, मूत्रल, दीपन और ग्राही । इन समस्त गुण-कर्मोंमें फूल (शिगूफा इजखिर) अधिक वीर्यवान् है ।

उपयोग—अंगघात, पक्षवध, अर्दित, आक्षेप और विस्मृति जैसी शीतल कफज व्याधियों, शिर-आमाशय और यकृत्के कफज व्याधियों और कफज्वरमें इजखिरका पुष्कल उपयोग करते हैं। जलोदर, आमाशय-यकृत्प्लीहाशोथमें दोषपाचनार्थ, आर्तवमूत्रसंग और वस्तिवृक्काश्मरीमें अकेला या अन्यान्य औषधद्रव्योंके साथ इसका क्वाथ कल्पना करके पिलाते हैं । आमाशय, वृक्क और यकृत्के कठिन शोथोंको विलीन करनेके लिए इसका लेप भी लगाते हैं । खाज (खारिश)को दूर करने और शरीरकी थकावट दूर करनेके लिए इसके फूलोंका तेल शरीरपर मर्दन करते हैं । दाँतों और मसूढ़ोंको दृढ़ (मजबूत) करनेके लिए इजखिरकी जड़के क्वाथसे गण्डूष (मजमजा) कराते हैं । इसके अतिरिक्त अग्निमांद्य (जोफ़ मेदा), उत्क्लेश (गसियान) और अतिसार बंद करनेके लिए भी इसकी जड़का उपयोग करते हैं। इसका शिगूफा जड़से अधिक बलवान् होता है । **अहितकर**–शिरःशूलकारक । **निवारण**–सफेद चंदन । **प्रतिनिधि**–अकरकरा और कालीमिर्च । मात्रा–५ ग्रामसे ७ ग्राम (५ माशासे ७ माशा) तक ।

आयुर्वेदमें लामज्जकके गुण-कर्मादि—यह शीतवीर्य, लघु, त्रिदोषहर तथा दाह, पित्त, रक्तविकार, मूत्रकृच्छ्र, स्वेद एवं त्वचाके रोगोंको दूर करनेवाला है । (च०सू०अ० २५; कै० नि०) ।

●

(५५) इमली ।

फ़ैमिली : लेगूमिनोसे (Family : Leguminosae) ।

नाम—(हिं०) इमली; (अ०) **तम्रेहिंदी**, सुबार, हौश, हुमुर, हौमर; (फा०) **तमरहिन्दी**, खुर्माए हिंदी; (सं०) अम्लिका, चिंचा; (बं०) तेतुल, तेतुली; (खर०); तेतर; (म०) चिंच; (गु०) आंबली; (ता०) आंबिलम्, शिंजम्; (ते०) चिन्त; (क०) तम्बर; (मल०) कोलपुलि; (ले०) **टामारींडुस ईंडिकुस (Tamarindus indicus** Linn.;) (अं०) टेमरिंड (Tamarind) ।

वक्तव्य—अँगरेजी 'टेमरिंड' और लैटिन 'टामारीन्डुस' दोनों अरबी 'तम्रेहिंदी' शब्दसे, जिसका अर्थ हिंदी **खजूर (खुर्माए हिंदी)** है, व्युत्पन्न हैं ।

उत्पत्तिस्थान—समग्र भारतवर्ष । यद्यपि कुछ विद्वानोंके मतसे इसका मूल उत्पत्तिस्थान मिश्र (मध्य अफरीका) है जहांसे भारतवर्ष एवं पश्चिम भारतीय द्वीपसमूहमें लाकर यह लगाई गई है, तथापि सत्य यह है कि भारतवर्षके कुछ प्रदेश भी इसके मूल उत्पत्तिस्थान हैं। प्राचीन भारतीयोंको तो इसका ज्ञान भली प्रकार था, किन्तु यूरूपमें यह मध्ययुगमें अरब निवासियोंके द्वारा पहुँची ।

इतिहास—यद्यपि कतिपय विचारकोंके मतसे इसका मूल उत्पत्ति स्थान मिश्र (अफरीका) है और भारतवर्ष एवं पूर्वी भारतीय द्वीपोंमें लाकर लगाई गई है; इसके विपरीत सत्य यह है कि भारतवर्षके कतिपय स्थान भी इसके आदि उत्पत्तिस्थान हैं । प्राचीन भारतीयोंको पूर्णतया इसका ज्ञान था । परन्तु यूरूपमें अरबों द्वारा इसका प्रवेश हुआ ।

वर्णन—यह भारतवर्षके एक प्रसिद्ध विशाल वृक्षकी फलियाँ हैं, जो १०–११ सें०मी० (आध बित्ता) या उससे न्यूनाधिक लंबी और चपटी होती हैं । इन फलियोंमें कालाई लिए लाल गूदा होता है । यह स्वादिष्ट खट्टापन लिए मीठा होता है । इन फलियोंके भीतर बहुत कड़े कालाई लिए लाल, चमकदार, चिकने, गोल और चपटे बीज होते हैं । इनको तोड़नेपर अंदरसे सफेद मग्ज निकलता है । यह मग्ज और फलीका गूदा औषधमें प्रयुक्त होते हैं ।

रासायनिक संगठन—इमलीके गूदामें चिचाम्ल (टार्टेरिक ऐसिड) ५ प्रतिशत, निम्वम्ल या जम्बीराम्ल (सिट्रिक एसिड), सेवाम्ल (मैलिक एसिड), शुक्ताम्ल (एसीटिक एसिड), यवक्षार मिश्रित चिचाम्ल, (बाइटार्ट्रेट ऑफ पोटैसियम) ८ प्रतिशत, शर्करा २५ प्रतिशत से ४० प्रतिशत आदि पदार्थ होते हैं। बीजत्वक्में टैनिक ऐसिड, एक अतुत्पत् तेल तथा अविलेय पदार्थ होते हैं। बीजमें ऐल्ब्युमिनाइड्स, वसा, कर्बोज ६३·२२ प्रतिशत, तन्तु और भस्म (जिसमें फास्फोरस एवं नाइट्रोजन होते हैं) आदि पदार्थ होते हैं।

फलीका गूदा। प्रकृति—दूसरे दर्जेमें **शीत एवं रूक्ष**। लखनऊके हकीमोंके मतसे पहले दर्जेमें शीत और दूसरेमें रूक्ष है।

गुणकर्म—**पित्तरेचन, पित्तरक्तसंशमन, सौमनस्यजनन और पैत्तिकसंतापहर।**

उपयोग—इमलीका पन्ना (प्रपानक) या शर्बत बनाकर ग्रीष्मऋतुमें और पित्तज ज्वरोंमें पित्तोत्सर्ग, दग्धदोषोत्सर्ग तथा पित्तोष्मा, तीव्रज्वर एवं तृट्प्रशमन और सौमनस्यजनन हेतु पिलाते हैं। वमन, दिलकी धड़कन और मिचली बन्द करनेके लिए भी इसी प्रकार तथा घाव एवं फुड़िया-फुंसी दूर करनेके लिए पिलाते हैं। एलुआके साथ इमलीके गूदेकी गोलियाँ बनाकर उपयोग करनेसे कण्डू, कच्छू एवं उष्ण हृत्स्पंदन (खफकान)में भी उपकार होता है। **जुवारिशे तमूरेहिंदी** (अम्लिका खाण्डव और **शर्बते तमूरेहिंदी वा शर्बत इमली** (अम्लिका शार्कर) इसके प्रसिद्ध योग हैं।

वक्तव्य—इमलीका पन्ना या शर्बत बनाते समय इस बातका ध्यान रखना चाहिए कि उसको जलमें भिगोनेके उपरान्त हाथसे न मला जाय, केवल निथरा हुआ पानी (आबे जुलाल) लेकर और शर्करा मिलाकर पिलायें; क्योंकि इमलीको मलनेसे उसका स्वाद खराब हो जाता है। प्रकृति उसको पीनेसे घृणा करती है और कभी-कभी उससे कै आ जाती है। **अहितकर**–कासजनक। **निवारण**–शर्करा और उन्नाव। प्रतिनिधि–शांत्यर्थ आलूबोखारा और ज़रिष्क।

मात्रा—२४ ग्रामसे ४८ ग्राम (२ तोला से ४ तोला) तक।

इमलीके बीज (तुख्म इमली, चींआ या चिआँ)का मग्ज

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें शीत एवं रूक्ष।

गुण-कर्म—संग्राही, वाजीकर, वीर्यस्तंभन, वीर्यपुष्टिकर और वीर्यशोषणकर्ता।

उपयोग—इमलीके बीजकी गिरीको शुक्रमेह, स्वप्नदोष और शुक्रतारल्य निवारण करनेके लिए अकेला या अन्य उपयुक्त औषद्रव्योंके साथ चूर्ण वा वटिकायें बनाकर उपयोग करते हैं। योनिसंकोचनके लिए इसके चूर्णकी फलवर्ति बनाकर योनिमें स्थापन कराते हैं। कतिपय शोथोंको पकाने और विलीन करनेके लिए इसका लेप करते हैं।

वक्तव्य—इमलीके बीजसे मग्ज निकालनेकी विधि यह है कि उसको कुछ दिन जलमें भिगोकर या भाड़में भुनवाकर छील लेते हैं। भुनवानेसे रूक्षता बढ़ जाती है। **अहितकर**–कब्ज उत्पन्न करता है। **निवारण**–शर्करा वा यवासशर्करा। मात्रा–१ ग्राम से ३ ग्राम (१ माशा से ३ माशा) तक।

आयुर्वेदीय मत—इमलीका फल कोकमके फलसे कुछ न्यून गुणवाला है (च० सू० अ० २७)। इमलीका कच्चाफल अत्यन्त खट्टा, लघु और पित्तकर है। पका हुआ फल मधुर, अम्ल, भेदन तथा विष्टम्भ और वायुको दूर करनेवाला है, इमलीकी पत्तियोंका लेप शोथ, रक्तविकार और पीड़ाको शांत करनेवाला है। इमलीके फलकी सूखी त्वचाका क्षार पेटके दर्द और मन्दाग्नि को दूर करनेवाला है (भा० प्र०)। एक तोले इमलीके बीजोंको रातभर जलमें भिगो, प्रातः उनके छिलके निकाल, दूधमें पीसकर दूधके अनुपानसे खानेसे अस्थिस्राव और सोमरोग नष्ट होता है (वै० म०)।

पत्र—इसके पत्तोंका पानी उष्ण नेत्राभिष्यंदमें गुणकारी है। व्रणों एवं स्रावयुक्त फुंसियोंमें और रक्तशोधनार्थ इसके पत्र गुणदायक हैं।

नव्यमत—इमलीका गूदा पिपासाघ्न, रोचक, दाहशामक, आनुलोमिक और रक्तपित्तप्रशमन है। फलत्वचा की राख क्षारस्वभावी, मूत्रजनन और आनुलोमिक है। **फूल** शोथघ्न और रक्तसंग्राहक हैं। पित्तविकारमें कब्ज और दाह दूर करनेके लिए **इमलीका** पानक देते हैं। इसके साथ अमलतासका गूदा मिलाया जाय तो उत्तम है। **बीज** प्रमेहवालोंको देते हैं। नेत्राभिष्यन्दमें **पुष्पकल्क** आँखपर बाँधते हैं।

●

(५६) इलायची छोटी।

फ़ैमिली : जिंजीबरासे (Family : Zingiberaceae)

नाम—(हिं०) **छोटी इलायची** (इलायची, लाची), **गुजराती इलायची**, सफेद इलायची; (यू०) कार्डेमोमोन (Cardamomon); (अ०) क़ाक़ु(कि)लज (क़ाक़ु(कि)लः) सिग़ार, शूशमीर; (फा०) हीलबवा, हील, हीलउन्सा, हाल्बवा, ख़ैरबवा, **इलायची खुर्द** (वा सफ़ेद); (सं०) एला, सूक्ष्मैला, क्षुद्रैला, द्राविडी, त्रुटि; (बम्ब०) मलाबारी इलाचयी, (बं०) एलाइच, (म०) बेलची, बेलदोड़े; (गु०) एलची, मलबारी या कागदी एलची; (पं०) एलाची; (सिं०) एलाची; (लें०) **एलेट्टारिआ कार्डामोमुम Elettaria Cardamomum** (L.), Maton. (अं०) दी लेसर या मलाबार कार्डेमोमम (The Lesser or Malabar Cardamomum); कार्डेमम (Cardamom), ।

उत्पत्तिस्थान और भेद—दक्षिण भारतवर्ष (दक्षिणमें कनाडाके उपजाऊ तर बनों, मैसूर, कुर्ग, ट्रावनकोर, कोचीन, मदुरा और मलाबार इत्यादिके पहाड़ी तर जंगलोंमें यह आपसे आप होती है। यह दक्षिण भारतमें लगाई भी जाती है। ब्रह्म देशमें भी यह जंगली पाई जाती है।

भेद—प्राचीन यूनानी वैद्योंने दो प्रकार, परन्तु किसीने तीन प्रकारकी इलायचीका विवरण किया है—(१) **छोटी** (क़ाक़ु(कि)लए सिग़ार) Cardamom; (२) **मध्यम** (क़ाक़ु(कि)लए मुत्वस्सिन) या दरमियानी, और (३) **बड़ा** (क़ाक़ु(क़ि)लए कुबार)। परन्तु उत्तरकालीन यूरूपीय डाक्टरोंने अधोलिखित पाँच प्रकारकी इलायचीका उल्लेख किया है। यथा—(१) **सीलोन वाइल्ड कार्डेमोम्ज़** अर्थात् लंकाकी जंगली इलायची जिससे **क़ाक़ुलए सिग़ार** या छोटी इलायची विवक्षित है जिसके बीज (इलायची-दाना) डाक्टरीमें औषधतया व्यवहृत किए जाते हैं। (२) राउण्ड कार्डेमोम्स (Round Cardamoms) अर्थात् **क़ाक़ुलए मुस्तदीर, हील ग़ुराब, अल्ख़ुब्ज़ुल्याबिस**, या गोल इलायची जो जावा, श्याम या चीन आदिसे आती है। (३) **बंगाल** कार्डेमोम्ज़ अर्थात् बंगीय इलायची; (४) नेपाल कार्डेमोम्ज़ अर्थात् नेपाली इलायची और (५) **विंग्डनेवा कार्डेमोम्ज** अर्थात् पक्षयुक्त इलायची। नीचे इनमेंसे छोटी और बड़ी इन दो प्रकारकी इलाचियोंका विवरण किया जा रहा है।

वर्णन—यह हलदी या अदरककी जातिके और सर्वथा उसके समान, चिरहरित, १२० सें० मी० से २४० सें० मी० (चार से आठ फुट) ऊँचे एक गुल्मका फल है जिसको "**छोटी लाची**" कहते हैं। यह १ सें० मी० से २ सें० मी० (२।५ से ४।५ इञ्च) लम्बी, अंडाकार वा (लम्बगोल) कुछ-कुछ त्रिपार्श्व ऊपरकी ओर नोकदार और नीचेकी ओर गोल रहती है। छिलका कागजकी तरह, मोटा, बादामी रंगका होता है, जिसके ऊपर लम्बाईके रुख धारियाँ पड़ी होती हैं। यह प्रायः निर्गंध और स्वादरहित होता है। बीज चौथाई सें०मी० (१।८ इञ्च) के करीब लम्बा, कुछ-कुछ त्रिकोणाकार (नोक तेज नहीं) और झुर्रीदार होता है। यह बाहरसे ललाई लिए काला और भीतर सफेद होता है। **सुगन्ध** मनोहारी; **स्वाद** कुछ-कुछ तिक्त चरपरा तथा सुरभिपूर्ण होता है। इसके खानेके बाद मुँहमें ठंढक-सी प्रतीत होती है। इसके बीज वायुमें खुला रखनेसे बिगड़ जाते हैं। अतएव बिना जरूरतके उन्हें छिलकेमें से नहीं निकालना चाहिये। **तीन वर्ष** तक इसमें वीर्य रहता है। ताजी, मोटी और तीव्र सुगन्धिमुक्त इलायची उत्तम समझी जाती है।

रासायनिक संगठन—इसमें एक अनुत्पत् तेल (स्थिर तेल) १० प्रतिशत, एक उत्पत् तेल जो इसका गुणोत्पादक वीर्य भाग है ५ प्रतिशत पाया जाता है। बीजोंसे भभके के द्वारा निकाला हुआ तेल हलका पीला होता है। इसका स्वाद और गंध इलायचीके बीजोंकी-सी होती हैं। बीस तोला बीजोंसे एक तोला यह तेल प्राप्त होता है।

उपयुक्त अंग—फल (वस्तुतः बीज)।

इतिहास—सुश्रुतने 'एला' नामसे छोटी इलायचीका उल्लेख किया है। **इब्नसीनाने** 'क़ाक़ुलए सिग़ार' व 'हीलबवा' नामसे इसका उल्लेख किया है। काकुलः शब्दमें छोटी-बड़ी दोनों प्रकारकी इलायचीका वर्णन किया है। यूनानियोंको भी भारतीय इलायचीका ज्ञान था। संभवतः सर्वप्रथम पारसियोंसे सीरिया और अरमीनियानिवासियोंके द्वारा यूनानियोंको यह प्राप्त हुई थी। सुतरां **दीसक़ूरीदूसने** "कतीदूस" नामसे इसका उल्लेख किया है। 'कतीदूस' शब्दका व्यवहार पहले एक अन्य सुगन्धित फलके लिए होता था। परन्तु अन्ततोगत्वा इलायचीके लिए इसका प्रयोग होने लगा। इसके सम्बन्धमें यह ज्ञात होता है कि यूनानी लोग इस शब्दका प्रयोग उसी प्रकार इलायचीके अर्थमें करते थे जिस प्रकार पारसी लोग "काकुलः" का करते थे।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें उष्ण एवं रूक्ष। आयुर्वेद मतसे शीतवीर्य (ध० नि०) है।

गुण-कर्म—मुखको सुगंधित करनेवाली, दीपन, **वातानुलोमन, सौमनस्यजनन** और अवसादक (**मुसक्किन**)।

उपयोग—मुखको सुवासित करनेके लिये इसे अकेले या पानीके साथ चवाते हैं। वातज उदरशूल, कुपचन (जोफ़ हज़्म) और आध्मानमें तथा हृदयको बल देने और उसे उल्लसित करनेके लिए एवं शीतल हृत्स्पंदन (ख़फ़-कान)के लिए इसका उपयोग करते हैं। उबकाई, मिचली और वमन रोकनेके लिए इसका क्वाथ पिलाते हैं। विशेषतः पाचन और उत्क्लेशनिवारणके लिए इसका उपयोग करते हैं। **अहितकर**—उरः फुफ्फुस को। निवारण—बंशलोचन और बड़ी इलायची।

प्रतिनिधि—बड़ी इलायची, कवाबचीनी और हब्ब बलसाँ।

मात्रा—इलायचीके बीज ४ रत्तीसे १ माशा तक।

आयुर्वेदीय मत—छोटी इलायची कटु, मधुर, शीतवीर्य, शिरोविरेचन, हृद्य, रोचन, दीपन तथा श्वास, अंगमर्द, मूत्रकृच्छ्र, खाँसी और क्षयको दूर करनेवाली है। (च०; सु०; ध० नि)।

मात्रा—०.६ ग्राम से १.२ ग्राम (५ से १० रत्ती)। नव्यमत पचन-नलिकाके शैथिल्यप्रधान किंवा दाह-प्रधान रोगोंमें इलायचीसे बहुत लाभ होता है। अन्त्ररस कम उत्पन्न होता हो और पित्तस्राव ठीक न होता हो तब इलायची देते हैं। नाड़ीशूलमें इलायची १५ रत्ती थोड़ा (२-३ ग्रेन) कुनैन मिलाकर देनेसे बहुत लाभ होता है।

●

(५७) इलायची बड़ी (कलाँ)।

फ़ैमिली : ज़िंजीबेरासे (Zamily : Zingiberaceae)

नाम—(हिं०) बड़ी इलायची (लाची-इलायची), लाल (सुर्ख़) इलायची, मोरंग इलायची; (अ०) क़ाक़ु(क़ि)ले कुबार, क़ाक़ुले ज़कर, क़ाक़ुले ज़ंजी, हील ज़कर; (फा०) हील कलाँ; (सं०) स्थूलैला, बृहदेला, भद्रैला (कै० नि०); (गु०) एलचा; (ले०) आमोमुम सूबूलाटुम **Amomum subulatum** Roxb· (पर्याय-A. aromaticum Roxb.); (अं०) दी ग्रेटर कार्डमम (The Greater Cardamum)।

उत्पत्तिस्थान—भारतवर्ष तथा नेपालके पर्वती भागोमें यह ज़ंगली होती है, तथा दक्षिण भारतवर्षके समुद्रतटके समीपवर्ती स्थानोंमें भी होती है।

वर्णन—यह छोटी इलायचीकी ही जातिके एक गुल्मके प्रसिद्ध फल हैं। फल अंडाकार, त्रिपार्श्व (तीन खण्डोंवाला) प्रायः २·५ सें० मी० (१ इञ्च या उँगलीके पोरके इतना) लम्बा और १·२५ सें० मी० (१.२ इञ्च) परिधिमें ललाई लिए भूरा होता है। इसके सूक्ष्मतर छोरपर तंतुओंका एक गुच्छा लगा होता है, जो प्रायः कालान्तरसे झड़ जाता है। कोई-कोई फल इससे भी छोटे होते हैं। छिलका मोटा ललाई लिये भूरा होता और उस पर लम्बाईके रूख धारियां होती हैं। पकनेके उपरांत किसीका छिलका स्वयं फट जाता है। बीज छोटी इलायचीकी तरह पर उससे बड़ा लगभग गोल वा कोणयुक्त, भूरे, स्वाद और गंधमें निर्बल सुगन्धित होते हैं। परन्तु इसकी गंध कूँचनेपर ही प्रतीत होती है। ताजा होनेपर ये बीज बीजकोषमें एक प्रकारके मधुर चेपदार गूदे द्वारा परस्पर संलग्न होते हैं। सूखनेपर वह द्रव जाता रहता है। जबतक बीज छिलकोंके भीतर रहता है, दो वर्ष तक बिगड़ता नहीं और उसका वीर्य स्थिर रहता है। छिलकारहित बीजोंमें एक वर्ष तक वीर्य शेष रहता है।

रासायनिक संगठन—बीजोंसे एक प्रकारका तेल प्राप्त होता है, जिसमें काफी **सिनिओल (Cineole)** वर्तमान होता है। यह औषधियोंको रुचिकर बनानेके काम आता है, तथा मनःप्रसादकर, उत्तेजक और पीले रंगका होता है। इसकी गंध और स्वाद बीजों की तरह होती है।

उपयुक्त-अंग—फल और बीज।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें उष्ण एवं रूक्ष। आयुर्वेदमतसे उष्णवीर्य एवं रूक्ष (कै० नि०)

गुण-कर्म—मुखको सुवासित करनेवाला, दीपन, पाचन, वातानुलोमन और मनःप्रसादकर। **उपयोग**—बड़ी इलायची गरम मसालेका एक उपादान है। यह दाल, सालन, तरकारी आदि (नानखुरश) तथा नमकीन भोजनोंके मसालोंमें डालकर पुष्कल उपयोग की जाती है। कोई-कोई छोटी इलायचीकी जगह मुखको सुवासित करनेके लिए इसको चबाते हैं। मंदाग्नि, कुपचन, आनाह और उदरशूलमें इसका उपयोग करते हैं। यह दीपन-पाचन माजूनों और चूर्णोंमें डाली जाती है। इसका प्रधान कर्म अतिसारनाशन और उत्क्लेशनिवारण है। **अहितकर**—यूनानी द्रव्यगुण विषयक ग्रंथोंमें इसे अन्त्रके लिए अहितकर लिखा है, जो एक अत्यन्त विचारणीय प्रश्न है। **निवारण**—शर्करा (कंद सफ़ेद)। **प्रतिनिधि**—छोटी इलायची। **मात्रा**—०·५ ग्राम से १ ग्राम (४ रत्तीसे १ माशा) तक।

आयुर्वेदीय मत—बड़ी इलायची रस और विपाकमें कटु, पित्त और अग्निवर्धन, लघु, रूक्ष, उष्णवीर्य तथा श्वास, खाँसी, वात, रक्तपित्त, हृल्लास, तृष्णा, कण्डू, शिरोरोग, मुखरोग और वमनको दूर करनेवाली है। (कै० नि०)।

*

(५८) इश्कपेचा।

फ़ैमिली : कॉन्वॉल्वुलासे (Family : Convolvulaceae)

नाम—(हिं०) चाँदबेल, अमरीकाकी चमेली; (अ०) अशक़ः (मख्ज़न), आशिक़ुश्शज्र, लबलाब सग़ीर; (फा०) इश्क़पेचः; (बम्ब०) कामलता; इश्कपेच; (बं०) तरुलता; (म०) सीतेचकेस, गणेशवेल; (क०) कामलते; (ले०) **ईपोमिआ क्वामोक्लिट् Ipomoea quamoclit** Linn. (पर्याय—क्वामोक्लिट वुल्गारिस Quamoclit vulgaris Chois); (अं०) क्युपिड्स फ्लावर (Cupid's flower), इन्डियन् फॉरगेट-मी-नॉट (Indian forget-me-not)।

वक्तव्य—यह लबलाबका छोटा भेद (लबलाब सग़ीर) है। इसके बड़े भेद 'लबलाब कबीर' को हिन्दीमें चाँदनी बेल कहते हैं। मात्र लबलाबसे यही अभिप्रेत होती है (दे० "लबलाब")।

उत्पत्ति-स्थान—अमरीका; अधुना भारतीय उद्यानोंमें भी बहुधा लगाई जाती है।

वर्णन—शाहपसन्दकी जातिकी एक छोटी पतली आरोही एवं आलिंगी बेल, जिसकी पत्तियाँ सूत वा सूईकी तरह बारीक होती हैं। यह समीपवर्ती वृक्षादिको आश्रय करके प्रतान-विस्तार करती हैं। पुष्पित अवस्थामें यह अत्यन्त प्रियदर्शन होती है। फूल छोटे विभिन्न वर्णके होते हैं। किसीके फूल लाल और किसीके सफेद होते हैं। कहीं-कहीं पीले और नीले फूलका इश्कपेचा भी देखनेमें आया है। बीज आवरणके भीतर ललाई लिये काले रंगका होता है। स्वाद किंचित् तिक्त एवं कुस्वाद।

उपयुक्त अंग—पंचांग और बीज।

प्रकृति—संमिश्रवीर्य, मतांतरसे पहले दर्जेमें उष्ण एवं रूक्ष। गुणकर्म—श्वयथुविलयन, संग्राही, पित्तरेचन, वेदनास्थापन, ज्वरघ्न, अवरोधोद्घाटक और वातविलयन।

उपयोग—गुणकर्ममें यह शाहपसंदके समान है तथा लब्लाबके अन्य समस्त भेदोंसे निरापद है। श्वयथुविलयन और वेदनास्थापन होनेसे आशयशोथ (वरम अहशाऽ) एवं संधिशोथमें यह अमलतासके साथ प्रयुक्त होता है। अपनी पिच्छिलता (लज़ूजत)के कारण यह पतला कफ मिला हुआ अप्रकृत पित्तका उत्सर्ग करता है और आसानीसे दस्त लाता है। इसको क्वथित न करना चाहिये। यह उदरावष्टंभयुक्त कासमें लाभकारी है। पौने नौ तोला इसका रस इससे आधी मिश्री मिलाकर पीनेसे विदग्ध पित्त और पीतद्रव निःसरित हो जाता है। यह उष्ण एवं संमिश्र शूलमें लाभ पहुँचाता है। मधुके साथ इसका नस्य लेनेसे शिरःशूल आराम होता है। इसका लेप लिंगवर्धक है। यह प्रायः ज्वरोंको नष्ट करता है। परन्तु चेचक और मसूरिकामें इसका उपयोग नहीं करना चाहिए।

अहितकर—वातनाड़ी, शिर और वस्तिको। निवारण—शर्करा। प्रतिनिधि—शाहपसंद। मात्रा—३·५ ग्राम (३॥ माशा)। स्वरस १॥-१२ ग्राम (१॥ माशासे लेकर १ तोला) तक।

(५९) इसबगोल।

फ़ैमिली : प्लांटाजिनासे (Family : Plantaginaceae)।

नाम—(हिं०) इसबगोल, इसरगोल; (अ०) बरग़ौसी, (बरग़ौस), बज्रकतूना, इस्फ़र्ज़ः; (फा०) अस्पग़ोल, शिकमदरीदः, अस्पर्ज़ः (सं०) ईषद्गोल, स्निग्धजीरक, अश्वकर्णबीज (अभिनव); (गु०) ओ (ऊ) थमीजीरूं; (ले०) **प्लांटागो ओवाटा plantago ovata** Forsk. (अं०) स्पोजेल सीड्स (Spogel Seeds), स्पोजेल (Spogel), इंडियन सीलियम् (Indian syllium), इस्पगुला (Isapghula)।

वक्तव्य—फारसी 'अस्पग़ोल' शब्दका अर्थ (अस्प = घोड़ा (अश्व), ग़ोल = गोश = कर्ण) अश्वकर्ण है। इसके बीज घोड़ेके कान जैसे होते हैं। इसलिए इसका उक्त नाम पड़ा है। अंग्रेजी, इस्पगुला और स्पोगेल इसके फारसी अस्पगोल शब्दसे व्युत्पन्न हैं। यहाँपर उल्लेखनीय है कि पहले 'इस्पागुला' शब्द इसके लैटिन नाममें भी ग्रहीत था। अधिकांश भारतीय नाम इसके फारसी 'अस्पग़ोल' शब्दके अपभ्रंश हैं। संस्कृत नाम भी इसी आधारपर बनाये 'अभिनव नाम' हैं।

इतिहास—इसबगोल भी एक विदेशागत औषधि है। मूलतः यह फारस, मिश्र आदि देशोंकी औषधि होनेसे इसका उल्लेख प्राचीन वैद्यकशास्त्र या निघण्टु, ग्रन्थोंमें नहीं पाया जाता। प्रथमतः इसका उल्लेख केवल २०० वर्ष पूर्व हुए श्री वैद्यराज **मोरेश्वरकृत** 'वैद्यामृत' नामक छोटेसे ग्रंथके ज्वरातिसार प्रकरणमें मिलता है।

१०वीं शताब्दीके पूर्वके (अरबी और फारसी) ग्रन्थोंमें राज़ी और इब्नसीना नामक हकीमोंने औषधरूपमें इसबगोलका निर्देश किया। भारतमें मुगलोंके शासनकालमें इसका प्रारम्भिक प्रचार यूनानी हकीमोंने इसे फारससे मँगाकर किया। इसबगोल आजकल एक बहुत उपयोगी द्रव्य पाया गया है और चिकित्सा व्यवहारमें इसका उपयोग तीनों चिकित्सा पद्धतियों (यूनानी, आयुर्वेद एवं एलोपैथी)में किया जाता है।

उत्पत्तिस्थान—इसका मूल उत्पत्तिस्थान फारस है तथा पाश्चात्य देशोंमें यह स्पेन तक होता है। अब उत्तर-पश्चिम भारतवर्षके स्थानोंमें तथा पंजाब, सिंध और सतलजसे पश्चिम ओरकी नीची पहाड़ियोंपर और भारतवर्षके अन्य विभिन्न प्रान्तोंमें विशेषतः गुजरातमें इसकी न्यूनाधिक खेती होती है।

वर्णन—यह एक छोटी वनस्पतिके छोटे बीज हैं। देखनेमें अर्ध अलसीके आकारके, नौकाकार, अर्धस्वच्छ और हलके गुलाबी रंगके होते हैं। इसके उन्नतोदर पृष्ठपर एक हलकी भूरी धारी होती है और इसका नतोदर भाग एक पतली सफेद झिल्लीसे आच्छादित होता है। जलमें भिगोनेपर ये फूलकर गंध एवं स्वादरहित प्रचुर चिपचिपा लबाब (पिच्छा)से आवृत्त हो जाते हैं। इन बीजोंको 'इसबगोल (अस्पग़ोल)' और इसके छिलके वा भूसीको '**सबूस अस्पग़ोल**' कहते हैं। यूनानी वैद्यकमें इन दोनोंका उपयोग औषधमें होता है। भेद–रंगके विचारसे ये कई प्रकारके होते हैं। इनमें कोई भूरे और कोई हलका गुलाबी लिये लगभग सफेद होते हैं। इनमें पिछले अधिक पसंद किये जाते तथा उत्तम समझे जाते हैं। **मख़ज़नुल् अद्विया** और **मुहीत आज़म** प्रभृति यूनानी द्रव्यगुणविषयक ग्रन्थोंमें इसे तीन प्रकारका लिखा है:—(१) सफेद, (२) लाल और (३) काला। किसीने इसके सफेद और किसीने लाल भेदको उत्तम लिखा है। परन्तु कालेको सभीने निकृष्ट कहा है। इसबगोलकी ही एक जातिके पौधेके बीज जिसका वैज्ञानिक नाम **प्लांटागो आम्प्लेक्सीकॉर्डालिस Plantago amplexicaulis Cav.** है, प्रायः भारतीय बाजारोंमें मिलते हैं। ये पंजाव, मालवा और सिंधसे लेकर मिश्र, यूनान और दक्षिण यूरुप तक होते हैं। इसके बीज भी इसबगोलके बीजकी तरह नौकाकार, किंतु उनसे अधिक बड़े एवं भूरे होते हैं। इनकी औसत लंबाई ४·१६ मि० मी० (१।६ इंच) होती है। संभवतः ये वास्तविक इसबगोल जैसे ही गुणकारक होते हैं।

रासायनिक संगठन—बीजमें एक वसामय तेल, ऐल्ब्युमिनीय पदार्थ और इतना अधिक प्रमाणमें लवाब होता है कि एक भाग बीज बीस भाग जलमें थोड़े कालमें ही स्वादरहित जेली (फालूदा) रूपमें परिणत हो जाता है। यह केवल जलमें अंशतः विलेय होता है।

उपयुक्त अंग—बीज (इसबगोल) और बीजके छिलके **इसबगोलकी भूसी** (सबूस इसबग़ोल)। फारससे बम्बईमें इसबगोलका आयात होता है। **कल्प तथा योग**–चूर्ण, पेया, शर्बत, क्षीरिका (खीर) वा लप्सी, पाक आदि।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें शीत एवं तर (स्निग्ध)। मतांतरसे तीसरे दर्जेमें शीत और दूसरेमें तर। **गुणकर्म**–उष्ण श्वयथुविलयन, संशमन, तृट्प्रशमन, तीव्रज्वरहर, सर और पिच्छिल, मुग़र्री; भृष्ट इसबगोल संग्राही है। **उपयोग**–अधिकतया अतिसार एवं प्रवाहिकामें इसबगोलका उपयोग करते हैं। अपनी पिच्छिलता (लज़ूजत) के कारण यह विबंध (सुद्दा)को फिसलाकर निकालता है जो अन्त्रमें खराश (संक्षोभ) उत्पन्न हो जाती है उसको शमन करता है। इसे गुलरोग़नमें भृष्ट करके या थोड़ासा गायका घी लगा, जरासा सेंककर खानेसे अतिसार और प्रवाहिका आराम होती है। पिच्छिलताके ही कारण यह शुष्क कास एवं जिह्वा तथा कंठनलिका (कस्बारिया)के खरत्व वा रौक्ष्यको दूर करनेके लिए तथा मुखपाकमें प्रयुक्त किया जाता है। गरम (पित्तज) ज्वरोंमें ज्वरकी तीव्रता वा दाहको कम करने और प्यास बुझानेके लिए इसबगोलका लबाब पिलाते हैं। शान्ति देनें और मूत्रप्रवर्तनके लिए सूजाकमें इसका उपयोग करते हैं। अन्त्रकी रूक्षताके कारण यदि मलावरोध (कब्ज) उत्पन्न हुआ हो, तो इसबगोलके उपयोगसे वह दूर हो जाता है। विसर्प (हुम्रा), फुंसी विशेष (नम्ला मकड़ी मूतना) और जलनदार फुन्सी विशेष (जम्रा या कालस्फोट-अन्थ्राक्स) प्रभृति जैसे उष्ण (पैत्तिक) शोथोंको विलीन और शमन करने तथा गरम सिरदर्द नष्ट करनेके लिए लेप (लतूख़ व ज़िमाद)की भाँति इसका उपयोग करते हैं। इसकी भूसी मूत्रदाह, मूत्रकृच्छ्र एवं शुक्रमेहको

दूर करती है। कामेन्द्रियोंकी बढ़ी हुई उकसाहट (स्पर्शतीव्रता-जिकावते हिस), वीर्यका पतलापन, स्वप्नदोष, स्तम्भन-शक्तिका अभाव आदि वीर्यविकारोंमें तथा स्त्रियोंके श्वेतप्रदर, पुरानी कब्जियत और अतिसारमें इसबगोल और उसकी भूसीका प्रयोग सौम्य एवं निश्चित रूपेण लाभप्रद होता है।

अहितकर—नाड़ीदौर्बल्यकारक और क्षुधानाशक। **निवारण**—मधुशुक्त (सिकंजबीन असली)। **प्रतिनिधि**—शीतजनन और मृदुकरण (तलय्यिन)के लिए बिहीदाना। **मात्रा**—३ ग्राम से ९ ग्राम (३ से ९ माशा) तक। फाण्ट या हिमके लिए ६ ग्राम से १२ ग्राम (६ माशा से १२ माशा) तक।

वक्तव्य—यूनानी वैद्यकीय ग्रन्थोंमें यह लिखा मिलता है तथा हकीम लोग भी यह कहते हैं कि कूटे हुए इसबगोलके भीतरी प्रयोगसे विष प्रभाव प्रगट होते हैं। इसी विचारसे इसे कूटकर उपयोग नहीं किया जाता, यद्यपि यह विचार अयुक्तिक है।

नव्यमत—प्रायः सर्वप्रकारके नये और पुराने संग्रहणीरोगमें इसबगोलके साथ नागरमोथा या अन्य उपयुक्त औषधिका चूर्ण मिलाकर अनुपानरूपमें देनेसे पाश्चात्यवैद्यकमें प्रयुक्त बिस्मथ नामक औषधिसे भी अधिक उत्तम होता है। यह आँतोंको बिना उत्तेजित किये उन्हें व्यवस्थित करके कब्जियतको दूर करता है। कब्जियतके साथ-साथ आँतोंकी खराबीसे होनेवाले अतिसार और दूसरे उदर रोगोंमें भी यह आश्चर्यजनक लाभ पहुँचाता है। कब्जियतको दूर करने और आँतोंको स्निग्ध बनानेमें जो कार्य लिक्विड पैरेफिन करता है वही कार्य इसबगोलके बीज भी करते हैं। परन्तु लिक्विड पैरेफिनमें जो अनेक अवगुण हैं, इसबगोल उन सबसे रहित है। इसलिए इसबगोलके बीज लिक्विड पैराफिनसे प्रत्येक दशामें श्रेष्ठ हैं। **मात्रा**—इसबगोलके बीजोंकी साधारण मात्रा १-२ तोले, भूसीकी मात्रा ७॥ माशे से १। तोले तक है। बीजोंको साफ पानीसे धोकर उनमें एक दो बड़े चम्मच भर शक्कर मिलाकर लेना चाहिये, और भूसीके समानकी और शक्कर मिलाकर पश्चात् कुछ गरम दूध भी पीना लाभदायक है।

●

(६०) इसरौल।

फ़ैमिली : आरोस्टोलोकिआसे (Family : Aristolochiaceae)।

नाम—(हिं०) इसरमूल, **इसरौल**; (अ०, फा०) ज़रावंदे हिंन्दी; **(सं०)** ईश्वरी, ईश्वरमूल, नाकुली, **सर्वगन्धा**; (बं०) ईशो (-शे,-श, श्व)रमूल; (बम्ब०; म०) सापसन(ण), सापसंद; (संथाल) गद; (ता०) इसुरमूलि; (ते०) एस्वर मूलि; (मल०) इस्वरमूलि; (ले०) **आरीस्टोलोकिआ इंडिका Aristolochia indica** Linn.; (अं०) इंडियन बर्थवर्ट (Indian birthwort)।

वक्तव्य—आधुनिक लेखकोंने **धवलबरुआ (Rauwolfia serpentina** Benth.)का संस्कृत नाम **'सर्पगन्धा'** बतलाया है और इसी नामसे इसका सर्वत्र प्रचार भी है। परन्तु सर्पगन्धा या नाकुली वस्तुतः ईश्वरमूल या ईश्वरी अर्थात् **इसरौल**को मानना चाहिए। इसलिए सर्पगन्धाके लिए इसरौल लिखनेकी कुछ युक्तियुक्तता तो प्रतीत होती है, पर **सर्पगंधाको धवलबरुआ समझना ठीक नहीं प्रतीत होता।** 'धवलबरुआ' और 'इसरौल' दोनों एक दूसरेसे सर्वथा भिन्न औषधि हैं। देखो 'दवाएजुनून' और 'धवलबरुआ'।

उत्पत्तिस्थान—भारतवर्षके अनेक स्थान–उष्णप्रधान प्रदेशोंमें विशेषकर बंगाल, बिहारमें गया, मुङ्गेर, मानभूमि आदि तथा दक्षिणमें कोंकण, तिरुवांकुर और समुद्रके पश्चिमी तटपर इसकी लतायें मिलती हैं।

वर्णन—इसकी प्रायः काष्ठीय बहुवर्षायु लताएँ होती हैं। पत्तीको मलने या यूँही सूँघनेसे उसमेंसे एक प्रकारकी विशेष तीव्र गंध आती है। क्वार कार्तिकमें एक विचित्र आकृतिके गुड़चियाए हुए गहरे बैगनी रंगके फूल आते हैं। फूलोंके झड़ जानेपर सतपुतियाकी तरहके, पर उससे कुछ छोटे लगभग गोल या चौड़ा आयताकार

षट्पहल फल लगते हैं, जो फटनेपर हवाई छतरीसदृश हो जाते हैं। बीज चिपटे त्रिकोण और सपक्ष होते हैं और सूखनेपर काले रंगके हो जाते हैं। जड़ अशाखी, बहुत लंबी, उँगलीसे लेकर अँगूठेसे भी अधिक मोटी, ऊपरसे देखनेमें बादामी रंगकी, काटनेपर मोटाईके रुख उसमें चक्राकार मंडल पाये जाते हैं। इसका प्रत्येक अंग विशेषकर बीज बहुत ही कड़ुआ एवं झालदार होता है।

उपयुक्त अंग—पत्र, फल और जड़ (तथा पचांग)। **मात्रा**—३ ग्रामसे १२ ग्राम (३ माशेसे १ तोला) तक।

रासायनिक संगठन—इसका प्रधान उपादान एक उत्पत् तेल है, जिसपर इसकी विशेष गंध एवं स्वाद निर्भर करता है। इसके अतिरिक्त इसकी जड़में **एरिस्टोलोकोन** (Aristolochine) नामक एल्केलॉइड (०–०५प्रति०) पाया जाता है।

कल्प व योग—क्वाथ, पत्रस्वरस, मूलचूर्ण आदि। प्रकृति—गरम। आयुर्वेद मतसे उष्णवीर्य (भा०प्र०)। **गुणकर्म** (जड़)—उत्तेजक, बल्य, कटुपौष्टिक, वातहर, ग्राही, आर्तवजनन, गर्भाशयोत्तेजक, वमन, अगद, ज्वरघ्न (नियतकालिकज्वर प्रतिबन्धक), स्वेदजनन, कृमिघ्न तथा किलासमें इसका चूर्ण शहदमें दिया जाता है। पत्रस्वरस सर्पविषमें प्रयुक्त होता है।

आयुर्वेदीय मत—**नाकुली** कषाय, तिक्त, कटु, उष्णवीर्य तथा सर्प–लूता–विच्छू–चूहा आदिका विष, ज्वर, कृमि और व्रणको दूर करनेवाला हैं। (भा०प्र०)।

नव्यमत—ईश्वरी कपूरके समान सुगंधित और अति गर्भाशयोत्तेजक, सन्धिशोथघ्न, नाड्युत्तेजक, स्वेदजनन, नियतकालिकज्वरप्रतिबन्धक और विषहर है। ज्वरमें ईश्वरमूल देनेसे सिरका दर्द और पेशाबकी जलन कम होती है और थकावट न आकर ज्वर उतरता है। सर्वप्रकारके ज्वरमें इसे दे सकते हैं, परन्तु विषमज्वर और सूतिका ज्वरमें यह विशेष गुणकारी है। त्रिदोष ज्वरमें इसको तगरके साथ देनेसे विशेष लाभ होता है। तरुण और जीर्ण आमवात और संधिशोथमें ईश्वरमूल खिलाते हैं और संधिपर इसका लेप करते हैं। कफज्वरमें ईशरमूलसे खाँसनेकी शक्ति बढ़कर कफ निकलने लगता है। प्रसवकालमें स्त्रीको कष्ट होता हो तो पीपलामूलके साथ ईशरमूल देते हैं। इससे गर्भाशयका संकोचन होकर शीघ्र प्रसव होता है। प्रसूतिके अनन्तर ईशरमूल देनेसे दूषित रक्त गिर जाता है। अनार्तव और पीडितार्तवमें ईश्वरमूल देते हैं। ईशरमूलसे आमाशयकी पाचनशक्ति बढ़ती है और आँतोंकी शिथिलता कम होती है। बालकोंको दन्तोद्गमके समयमें ज्वर उलटी और दस्त होते हों तो ईशरमूल देते हैं। इसरौलकी जड़का चूर्ण १ तोला पानीमें पत्थरपर घोट-छानकर ५ तोला स्वरस बना, एक मात्रा तत्काल पिला देवें और आवश्यकता हो तो अवस्थानुसार आध घंटे या एक-एक घंटे बाद जबतक सर्पदशित पूर्णसंज्ञा एवं स्वथावस्थामें न आ जावे २–३ मात्रा और पिलाते हैं। दंशित व्यक्ति अवश्य सर्पविषसे मुक्त हो जायगा। तात्पर्य यह कि इसरौलकी जड़ या पत्रका कालीमिर्च आदिके साथ पान-लेप-नस्य-परिषेक आदिके रूपमें प्रयोग करनेसे सर्प-विच्छू-पागलकुत्ता आदिके विष तथा अफीमका विष दूर होता है। ३ माशे इसका स्वरस मूर्छितको पिला देवें या नासिका द्वारा उतार देवें तो रोगी शीघ्र ही मूर्छारहित हो जाता है।

(६१) उटंगन।

फ़ैमिली : आकांथासे (Family : Acanthaceae)

नाम—(हिं०) उट्टंगन, उर्तजन; (म० बम्ब०) उटंगन; (गु०) उटींगण, उटिंगण; (बं०) शुशनी, (प०; बम्ब०) उटंगन; (ले०) ब्लेफारिस एडुलिस (**Blepharis edulis** Pers.)।

उत्पत्तिस्थान—मिश्र, फारस, बलूचिस्तान, सिंध और पंजाब।

वर्णन—बाजारमें मिलनेवाले उटंगनमें बीजोंके साथ कुछ समूचे फल और विभिन्न अनुपातमें फल (Capsule) के खंडित टुकड़े मिले होते हैं। फल पादरियोंकी दो-चोटीवाली लंबी टोपीकी आकृतिका (Mitre shaped) लगभग ०-७५ सें०मी० (३।१० इंच) लम्बा और १ से०मी० (२।१० इंच) चौड़ा, संकुचिताग्र, पार्श्व गम्भीर रेखांकित, पृष्ठतल चिकना और चमकदार तथा बादामी भूरे (Chestnut) रंगका होता है। शिम्बी द्विकोपीय एवं द्विबीजयुक्त और बीज हृदयाकार, चपटे, लम्बे और मोटे बालोंसे आच्छादित होते हैं। जलमें भिगोनेपर ये बाल जल सोखकर फूल जाते और पुष्कल चिपचिपा लबाब उत्पन्न करते हैं। अंजुरा इससे सर्वथा भिन्न द्रव्य है। **वक्तव्य**—ब्ले-फारिस बार्हर्वीफ़ोलिआ (**B. boerhaavifolia**) उटंगनकी ही एक जाति है, जो भारतवर्षमें सर्वत्र जंगली होती है। इसके बीजोंको भी कहीं-कहीं उटंगनके बदले उपयोगमें लाया जाता है। अतः यह संभवतः उटंगनके समान गुणकारी है।

रासायनिक संगठन—बीजोंमें एक सफेद क्रिस्टलीसत्व और एक अन्य सफेद क्रिस्टलीसत्त्व जो तिक्त नहीं नहीं होता–यह दो सत्त्व पाये जाते हैं। बीजोंसे प्रस्तुत प्रवाही रसक्रियामें बहुतसा लबाब और ऐल्ब्युमिन होता है। इसमें ऐल्टोइन (२.१ प्रतिशत), १.२ प्रतिशत **ब्लिफेरिन** नामक तिक्त ग्लूकोसाइड, कैटेकोल, टैनिन, सैपोनिन तथा ग्लूकोज आदि तत्त्व होते हैं।

उपयुक्त अंग—बीज (उटंगन)। बम्बईमें इसका आयात मिश्रसे होता है। सिंध और उत्तर भारतमें भी इसका संग्रह किया जाता है। उटंगन एक प्रसिद्ध एवं बहुशः प्रयुक्त देशी औषधद्रव्य है। इसलिए भारतवर्षमें सर्वत्र देशी औषधविक्रेताओंकी दुकानोंमें यह मिल जाता है। भारतीय बाजारोंमें, अंजुरा नामसे प्रायः इसी उटंगनके बीज मिलते हैं। परन्तु वास्तविक अंजुरा इससे भिन्न द्रव्य है। विशेष देखो 'अंजुरा'।

प्रकृति—दिल्लीके हकीमोंके मतसे पहले दर्जेमें (किंतु लखनऊवालोंके मतसे तीसरे दर्जेमें) उष्ण एवं रूक्ष (मतांतरसे मोतदिल)।

गुणकर्म तथा उपयोग—**बाजीकर, कामोद्दीपक, वीर्यस्तम्भन** और **वीर्यपुष्टिकर** (सांद्रकर)। उटंगनके बीज नपुंसकता (जोफ़बाह), शीघ्रपतन, **शुक्रतारल्य** और **शुक्रप्रमेह**के लिए प्रयुक्त **माजून** और **चूर्णौषधों**में डाले जाते हैं। कोई-कोई इसे कटि और वृक्कको शक्ति देनेवाला भी बताते हैं। यह मूत्रल होता तथा पेशाबकी जलनको दूर करता है। **मात्रा**–३ ग्रामसे ५ ग्राम (३ माशासे ५ माशा) तक।

●

(६२) उड़द।

फ़ेमिली : लेगूमिनोसे (Family : Leguminosae)

नाम—(हिं०) माष, उरि (-डि) द, उर्द उड़द; (अ०; फा०) माषे स्याह, माषे हिंदी; (फा०) बनोमाप; सं०) **माष**, (बं०) माप कलाय; (गु०) उड़द; (प०; बम्ब०) उड़ीद; (ले०) फासेआलुस मुंगो **Phaseolus mungo** Linn); (अं०) किडनी-बीन (Kidney bean)।

वक्तव्य—अरबीमें 'माष' शब्दका प्रयोग मूंगके अर्थमें होता है।

उत्पत्तिस्थान—भारतवर्षमें सर्वत्र इसकी खेती होती है।

वर्णन—यह, मूंगको ही जातिका एक भेद है। यह प्रसिद्ध खाद्य अन्न है जिसकी दाल पकाकर खायी जाती है। इसके मुख्य दो भेद होते हैं।

रासायनिक संगठन—इसमें जल १०.१, ऐल्ब्युमिनाइड्स २२·७, श्वेतसार ५५·८, तेल २·२, तंतु ४·८, भस्म ४·४, फॉस्फोरिक एसिड १·१ प्रतिशत होता है।

प्रकृति—मलमूत्र द्रवोंके साथ उष्ण एवं तर (स्निग्ध)।

गुण-कर्म—उड़दकी दाल आध्मानकारक (नफ़्फ़ाख), चिरपाकी और वायुकारक होती है। भली-भाँति पच जानेपर यह शुक्रल, वाजीकर, वीर्य एवं शरीर पुष्टिकर तथा स्तन्यजनन है। इसके बहिः प्रयोगसे सूजन उतरती, त्वचा स्वच्छ होती और दर्द शमन होता है।

(भेद)(१) काला और (२) हरा। इसके जंगलीभेद 'बनउड़द' का आयुर्वेदमें **माषपर्णी (Teramnus labialis** Spreng.) नामसे व्यवहार होता है। उनके मतसे यह शीतवर्य एवं स्निग्ध है।

उपयोग—उड़नकी दाल पकाकर सालनादि (नानखुरश) की भाँति बहुत खाई जाती है। यह उन लोगोंके लिए जिनका मेदा बलवान् (अग्निदीप्त) हो, उत्तम है। यह शरीरको पुष्ट एवं **बलवान्** बनाती और **वाजीकरण** करती है। औषधकी भाँति अकेले वा उपयुक्त अन्य औषधद्रव्योंके साथ उड़दका चूर्ण वा हलवा बनाकर **नपुंसकता, शुक्रप्रमेह** और **शुक्रतारल्य**में प्रयुक्त करते हैं। **दूध** अधिक उत्पन्न करनेके लिये बच्चेवाली स्त्रीको समूचे उड़दकी खीर पकाकर खिलाते हैं। नमक, हींग, सोयाके बीज और मैनफल इनको बारीक पीसकर उड़दके आटेमें मिलाकर रोटी पकाते और एक तरफसे तवेपर पकाकर कच्चे तरफ एरंडतेलसे चुपड़कर आमाशयशूल, उदरशूल (कूलंज) और वातिक वृक्कशूलमें विकारी स्थलपर सुहाता गरम बाँधते हैं। इसका प्रधान कर्म शिश्नोच्छ्रायकरण, शुक्रजनन और शरीर परिबृंहण है। **अहितकर**–आध्मानकारक एवं चिरपाकी। **निवारण**-कालीमिर्च और शर्करा। **मात्रा**–जितना पच सके। औषधकी भाँति१२ ग्राम (१ तोला)।

आयुर्वेदिक मत—उड़द भारी, मधुर (पाकमें), स्निग्ध, उष्णवीर्य, वृष्य, बल्य, परम वायुनाशक, बहुमलकारक, शीघ्र पुरुषत्वको देनेवाली (च० सू २७ अ०); मेदजनक, मांसजनक, बृंहण, अत्यन्त पुष्टिकर (ध० नि०); कफ-पित्त और मलको उत्पन्न करनेवाली, रेचक, वीर्यवर्धक, शुक्रनिःसारक (वा० सू० ६ अ०); तत्काल रक्त एवं पित्तको कुपित करनेवाली, रुचिकारक, खानेमें सुस्वादु, थके हुओंको सुख देनेके लिए नित्य सेवनीय (श० नि० व० १६), संतर्पण तथा मूत्र-मल-स्तन्य-मेद-पित्त-कफकारक है और अर्श, अर्दित, श्वास, पक्तिशूल आदिको नष्ट करती है। (भा० पू० धान्य वर्ग)।

●

(६३) उन्नाब

फ़ैमिली : र्‌हाम्नासे (Family : Rhamnaceae)

नाम– (हिं०, पं०, म०, गु०) उन्नाब, विलायती बेर, तितम बेर; (यू०) पाली ओरोस Paliouros (प्राचीन), पालीओरी Paliouri (अर्वाचीन); (अ०) उन्नाब; (फा०) सीलानः (सिंजद जीलानी), सिंजद खोरासानी; (सं०) राजबदर, राजकोल, सौवीर; (पं०) संजीत; (लै०) **जीजीफुस साटीवा Zysyphus sativa** Gaertn. (**पर्याय**–*Z. vulgaris Law.*); (अं०) जुजुब (Jujube)

उत्पत्तिस्थान–इसके वृक्ष उत्तरभारतवर्ष, पंजाब, पंजाब हिमालय (६,५०० फुट की ऊंचाई तक), कश्मीर, बलूचिस्तानमें होते हैं। यह अफगानिस्तान, फारस एवं चीनसे भी आता है।

वर्णन–बेरकी जातीके एक काँटेदार बृक्षका फल हैं। इसका बृक्ष बेरके बृक्षके बराबर, किंतु पत्र उससे कुछ मोटे (जखीम) और लंबे होते हैं और पत्रका एक पृष्ठ रोईंदार होता है। इस बृक्षकी छाल, लकड़ी और फल लाल रंगके होते है। चीनसे आनेवाला इसका सूखा फल २.५ से. मी. से ३.७५ से. मी. (१ से १।। इंच) लंबा और १.८७५ सें. मी. (३।४ इंच) चौड़ा बेरकी तरह और गोल, सूखे हुए बेरके समान; फलका छिलका

लाल अत्यंत झुर्रीदार, गूदा गुठलीसे चिपका हुआ, स्पंजकी तरह हल्का और सुषिरपूर्ण, मीठा और पीला; गुठली ३.६ मि. मी. से २.५ मि. मी. (१/७ इंच से १/१० इंच) लंबी, बहुत कड़ी और झुर्रीदार; शीर्ष तीक्ष्ण अनीदार सूक्ष्माग्र; गुठली का छिलका बहुत मोटा; बीज लंबोतरा, चिपटा, बादामी रंगका १ सें. मी. (२/५ वाँ इंच) लंबा और १/२ सें. मी. (१/५ वाँ इंच) चौड़ा होता है। फारसकी खाड़ीसे आनेवाला फल इससे कुछ छोटा होता है। उन्नाब बेरकी जातियोंमें सबसे उत्तम है।

वक्तव्य–भारतीय बाजारोंमें उन्नावका आयात बहुत बड़े परिमाणमें चीन और फारसकी खाड़ीसे होता हैं। इनमें चीनी उन्नाब अधिक उत्तम समझा जाता है; क्योंकि यह फारसवाले की अपेक्षया बड़ा और मधुर होता हैं। नेपाल और रंगूनकी ओरसे जो उन्नाब आता है वह अधिक मधुर और कम कसैला होता है। बगदादके जिलोंमें भी उन्नाब होता है। यह बड़ा और उत्तम होता है। जुरजानी और खताई भी उत्तम होते हैं। सर्वोत्तम उन्नाब वह हैं जो बड़ा और खूब पका, लाल, गुदार तथा स्वादिष्ट हो और जिसमें बिल्कुल कषाय न हो। साहबजवामाने मोटा और लाल होनेके साथ पुराना होनेकी भी कैद लगाई है। इसमें दो वर्षतक वीर्य रहता है।

रासायनिक संगठन—फलमें लवाब (पिच्छिल द्रव्य) और शर्करा होती है। छाल और पत्तियोंमें कषायद्रव्य होता है। **कल्प तथा योग**–अर्क उन्नाब, शर्बत उन्नाब।

प्रकृति—स्निग्धता लिये अनुष्णाशीत। आयुर्वेदके मतसे शीतवीर्य एवं स्निग्ध (रा० नि०)। **गुणकर्म**–यह सांद्रदोषपाचन, प्रकृतिमार्दवकर (सारक), उरोमार्दवकर, कोष्ठको नरम करनेवाला और श्लेष्मनिस्सारक है। रक्तकी तीक्ष्णता और उद्वेग (जोश)को शमन करता, ठंडक पहुँचाता, तृष्णा तथा ज्वरकी उष्णताको कम करनेवाला और रक्तप्रसादन है। **उपयोग**–प्रत्येक प्रतिश्याय, कास और वक्ष वा कंठकी कर्कशना (खुशूनत सीना)को दूर करने तथा गाढ़े-दोषोंको पकाकर उत्सर्गयोग्य बनाने (नुज़ुज देने)के लिए उन्नाबका पुष्कल उपयोग करते हैं। इसके अतिरिक्त रक्त विकारजनित व्याधियों, जैसे–फिरंग (आतशक), कण्डू और फोड़े-फुंसियोंकी औषधियोंके साथ भी इसका उपयोग करते हैं। रक्तज एवं पित्तज ज्वरों और मसूरिका–ज्वरमें प्यास बुझाने और ज्वरकी उग्रता कम करनेके लिए इसका फांट वा अर्क (**अर्क उन्नाब**) पिलाया जाता है। रक्तका उद्वेग (जोश) और उसकी उष्णता नष्ट करनेके लिए इसका शर्बत (शर्बत उन्नाब) बनाकर दिया जाता है। यह कास और वक्षतोद (दर्देसीना) निवारणके लिए पिलाया या चटाया जाता है। यह शुष्क कासमें लाभ करता है। **अहितकर**–आमाशय और कामशक्तिको तथा आनाहकारक है। **निवारण**–शर्करा, अर्क गुलाब और मधु। प्रतिनिधि–लिसोढ़ा (सपिस्ताँ) और बेर। मात्रा–५ दानासे ७ दाना तक।

आयुर्वेदीय मत—बड़े बेर (बदर-उन्नाब) मधुर, शीतवीर्य, स्निग्ध, भेदन, हृद्य, हिक्कानिग्रहण, श्रमप्रशमन, उदर्दप्रशमन, स्वेदोपग, विरेचनोपग, बाजीकर, बृंहण तदा दाह, पित्त, वात, रक्तविकार, शोथ और तृष्णाको दूर करनेवाले हैं (च० सू० अ० ४, २७; रा० नि०; भा० प्र०)।

नव्यमत—उन्नाब मधुर, स्नेहन और कफशामक है। छाल ग्राही, व्रणशोधन-रोपण है। पत्ती चबानेसे जीभकी स्वादग्रहण शक्ति नष्ट होती है। कुनैनका स्वाद मालूम नहीं होता है। छालके क्वाथसे व्रण धोते हैं। उन्नाब, कतीरा, शक्कर और गुलाबपुष्पके घनकी गोलियाँ मुँहमें रखनेसे खाँसी कम होती है। उन्नाबकी पत्तियोंका चूर्ण ३-३ ग्राम (३-३ माशा) दिनमें दो बार जलके साथ देनेसे इक्षुमेहमें लाभ होता है।

●

(६४) उलटकंबल

फैमिली : स्टेर्कूलिआसे (Family : Sterculiaceae)

नाम—(हिं०) उलटकंबल; (सं०) पिशाचकार्पास, पीवरी (रसमाधव); (बं०) ओलोटकंबल; (ले०) आब्रोमा आउगुस्टा **Abroma augusta** Linn.; (अं०) डेविल्स कॉटन (Devil's Cotton)।

वक्तव्य—आयुर्वेद तथा यूनानी ग्रंथोंमें इस औषधिका कहीं वर्णन नहीं है। इसकी खोज सर्वप्रथम सन् १८०१ ई० में डॉ० राक्सवर्गके द्वारा हुई और उन्होंने इसे कष्टार्तवके लिए उपयोगी बतलाया। तबसे यह औषधि बराबर इस रोगमें प्रयुक्त की जाती है और तदनुसार फल भी मिलता है। इसके पश्चात् **भुवनमोहन सरकारने** इसकी रजःप्रवर्तिनी शक्तिकी ओर लोगोंका ध्यान आकर्षित किया। इसके लिए उन्होंने इसके ताजे रसकी मात्रा २ ग्राम (२ माशा) निर्धारित की।

वर्णन—इसका बड़ा क्षुप या छोटा वृक्ष होता है। पत्ता चौड़ा ८·७५ सें० मी० (३॥ इंच) लम्बा ऊपर चिकना, नीचे रोमश, दंतयुक्त, पत्रनालके पास कम चौड़ा और ३–७ शिरायुक्त स्थलकमलके पत्ते जैसा होता है। फूल गहरे बैंगनी रंगके नीचेकी ओर झुके हुए; पंखड़ियाँ ५; फल पाँच स्पष्ट खण्डों अथवा कोनोंवाला होता है और ऊपरकी ओर कमलके फलकी तरह रुण्डित (Truncate) मालूम होता है। फलोंके चारों ओर छोटे-छोटे पत्ते लगे रहते हैं। बीज मूलीके जैसे तथा काले रंगके होते हैं। इसकी टहनी जमीनके अन्दर गाड़ देनेसे लग जाता है।

उपयुक्त अंग—मूलकी छाल। मूलकी छालके छोटे-छोटे टुकड़े बना-सुखाकर शीशीमें इस प्रकार बंदकर रखें जिसमें भीतर हवा न जाने पावे। इनको रजःस्राव होनेके ६–७ दिन या ४–५ दिन पहले खाना चाहिए।

कल्प तथा मात्रा—मूलकी छालका चूर्ण १०–१५ रत्ती, ताजा मूल ४–८ माशा; मूल स्वरस ३ माशा। तरलसारकी मात्रा ३·५ ग्राम (३॥ माशे) जलसे। चक्रिकाएँ आदि।

गुणकर्म तथा उपयोग—यह गर्भाशयोत्तेजक, आर्तवजनन और गर्भाशयकी पीड़ाको शान्त करनेवाला है। ऋतुस्राव अनियमित होता हो और आर्तवस्रावके समय पीड़ा होती हो तब मासिकके ३ दिन पूर्व स्रावके समयमें तथा दो दिन पीछे तक इसका प्रयोग करना चाहिये। इसकी ताजी जड़का रस और सूखी जड़, दोनोंका ही रसायनशालामें परीक्षण हो चुका है। सुरासारके साथ मिलानेसे इसका असर नष्ट हो जाता है। इसलिये इसका ताजा रस या चूर्ण ही उपयोगमें लेना चाहिए। **डॉ० कार्तिकचन्द बसु**के मतानुसार इसकी जड़का छिलका गर्भाशयको ठीक तरहसे संकोचन एवं पुष्टि प्रदान करके मासिक धर्मको नियमित कर देता है, तथा यह मासिक धर्मके समयकी पीड़ाको नष्ट करनेमें रामबाणका काम करता है। कलकत्तेके प्रसिद्ध **कविराज द्वारिकानाथ विद्यारत्न** इस औषधिके संबन्धमें लिखते हैं कि उलटकंबलकी जड़की छालका चूर्ण ३·५ ग्राम (३॥ माशे)की मात्रामें इक्कीस कालीमिर्चका चूर्ण मिलाकर मासिकधर्मके समय सात दिनतक सेवन करना चाहिए और भोजनमें केवल दूध, भात लेना चाहिए। पति समागमका सर्वथा त्यागकर पवित्र जीवन व्यतीत करना चाहिए। इस प्रकार दो-चार महीने तक प्रत्येक मासिक धर्मके समय सात दिन तक यह योग सेवन करनेसे गर्भाशयके सब दोष मिट जाते हैं। प्रदर और बन्ध्यत्वकी यह सर्वोत्कृष्ट औषधि है।"

◆

(६५) उशबा मगरबी

फ़ैमिली : लीलीआसे (Family : Liliaceae)

नाम—(हिं०) उस्बा; सालसा; (अ०) उश्वः **उश्बए मगरबी**, उश्बए मगरबिय्यः, उश्बतुन्नार; (गु०;बं०) सालसा; (लें०) सारसी राडिक्स (Sarsae Radix), (अं०) सार्सापरिल्ला (Sarsaparilla), जमैइका सार्सापरिल्ला (Jamaica Sarsaparilla)।

वक्तव्य—सारसा परीला स्पेनकी भाषामें 'सार्सीलाल' और 'पारीलिय': = 'छोटे अंगूरकी बेल'का यौगिक है। उश्बाकी जड़ अंगूरकी बेलके समान और लाल रंगकी होती है, इसलिए इसका उक्त नाम पड़ा। तीक्ष्णताके कारण

इसको **‘उश्बतुन्नार (आग्नेय उश्बा)’** भी कहते हैं। प्रायः यह **‘उश्बा मग़रबी’** नामसे प्रसिद्ध है। क्योंकि सर्वप्रथम पाश्चात्त्य देशवासी (अफरीका निवासी) इसके गुणकर्मसे परिचित हुए थे। इसके उपरांत अन्यान्य देशोंमें इसकी प्रसिद्धि हुई। इसको **‘जमेईका सार्सापरिल्ला’** इस कारण कहते हैं कि पूर्वकालमें जमेइकाकी राह अन्य देशोंमें इसका आयात होता था। उशबाके उपर्युक्त सभी नाम इसके औषध्यर्थ प्रयुक्त अंग (मूल एवं लताकाण्ड)के हैं।

उत्पत्ति-स्थान—दक्षिण और मध्य अमेरिका।

वर्णन—यह चोबचीनी या ‘रामदतुइनियाँ’की जातिकी एक बेलकी, जिसको लेटिनमें **स्मीलाक्स ऑनार्टा** (**Smilax arnata** Hook. f.) या **स्मीलॉक्स मेडिका** (**Smilax medica** Sch.) कहते हैं, लंबी, पतली, गोल प्रायः झुर्रीदार और लचीली शाखाएँ और जड़ें हैं। इसे पाँच इंच चौड़ी और १८ इंचके लगभग लंबी गड्डियोंमें बाँधकर लाते हैं। यह १८·७५ मि० मी० ($\frac{३}{४}$ इंच)के लगभग मोटी (६·२५ मि० मी० से १·२५ सें० मी० $\frac{१}{४}$-$\frac{१}{२}$ इंच व्यासमें) ललाई लिए भूरे (मुर्चई भूरे) रंगकी, निर्गन्ध होती है और इनके साथ बहुतसे मुड़े हुए तन्तु (उपमूल) लगे होते हैं। लम्बाईके रुख गम्भीर सीतायुक्त, व्यत्यस्त काटमें भूरा कठिन, नान-स्टार्ची (Non-mealy) और सच्छिद्र केन्द्रीय भाग दिखाई देता है। इनका स्वाद निर्यासवत् लबाबी और चबानेपर बहुत हलका तिक्त एवं बहुत कम खराशदार मालूम होता है। **उत्तम उशबाके लक्षण**–जिसकी शाखायें न अधिक पतली न अधिक मोटी, कुछ लाल रंगकी एवं लंबी हों, जब तोड़े तब धूलसी निकले और अंदरका गूदा सफेद हो, वह उत्तम है। इसमें बीस वर्ष तक वीर्य रहता है।

वक्तव्य—इसी फैमिलीकी एक जाति **स्मीलॉक्स आफ़्फ़ीसिनालस** (**S. officinalis** H. B.)की जड़ें भी हाण्डुरससे आती हैं, परन्तु व्यापारिक दृष्टिसे वे इससे हीन कोटिकी समझी जाती हैं। उशबाकी कई एक जातियाँ भारतवर्षमें भी होती हैं, जैसे–मीरजापुर और मुंगेरमें प्रसिद्ध **रामदतुहनिया** या **रामदाँतुन** (**S. macrophylla** Roxb.) आदि; और इनकी जंगली या देशी उशबाके नामसे उशबाके स्थानमें व्यवहार भी होता है। इसके अतिरिक्त अर्क वा सारिवा-कुल की अनन्तमूल (**Hemidesmus indicus** R. Br.) नामकी वनस्पति भारतवर्षमें होती है। गुणकर्ममें सार्सापरिल्लाके समान होनेसे ही इसको देशी व भारतीय सालसा (Indian or Country Sarsaparilla) कहते हैं। गुणकर्ममें यह उशबा मगरबी या विदेशी सालसासे किसी प्रकार हीन नहीं है। इसी कारण सन् १९६४ में यह ब्रिटिश फार्माकोपियामें सम्मानपूर्वक ग्रहण की गई।

रासायनिक संगठन—इसमें **स्मीलैक्सिन** (Smilaxin) नामक एक बीर्य जो सैपोनिन (साबुनिन)की तरह होता है, एक उत्पत् तेल, राल और पिष्ट आदि तत्त्व पाये जाते हैं।

परीक्षा—अनन्तमूलकी जड़ इसके समान होती हैं। परन्तु यह आड़े रुख चटखी हुई होती है।

कल्प तथा योग—अर्क उशबा (जदीद), माजून उशबा आदि।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें, (लखनऊ वालोंके मतसे दूसरे दर्जेमें) उष्णा एवं रुक्ष।

गुण-कर्म—श्वयथुविलयन, दोषतारल्यजनन, स्वेदन, मूत्रजनन और रक्तप्रसादन।

उपयोग—उपर्युक्त गुण-कर्मके कारण यह प्रायः स्निग्ध शीतल व्याधियोंमें प्रयोग किया जाता और लाभ पहुँचाता है। चोबचीनीकी भाँति इसका क्वाथ पक्षाघात, अर्दित, कम्पवात, जीर्णकास, कृच्छ्रश्वास, यकृदवरोध, जलोदर और आमवात आदि रोगोंमें पिलाया जाता है तथा तेलमें मिलाकर मर्दन किया जाता है। पुराने आमवातमें इसका चूर्ण मिश्रीके साथ खिलाया जाता है और पक्षबध, आमवात तथा गृध्रसीमें अर्कगुलाबमें पीसकर लेप किया जाता है। उक्त गुणोंके सिवाय रक्तप्रसादन होनेके कारण यह फिरंग, महाकुष्ठ और दूषित व्रण जैसे सौदावी रोगोंमें इसका काढ़ा और रक्तप्रसादनके लिये शर्बत पिलाया जाता है। फिरंग और कुष्ट जैसे सैदावी रोगोंमें यह विशेष गुणकारी है। **अहितकर**–यह तीव्र ज्वरोंमें अहितकर और उष्णा (पित्तल) प्रकृतिके लिए असात्म्य है। **निवारण**–बादामका तेल। **मात्रा** ५–७ ग्राम (५ माशा से ७ माशा) तक।

नव्यमत—फिरंगरोग, संधिशूल चिरकारी त्वग्रोगोंमें रसायन और रक्तप्रसादनरूपसे तथा फिरंगकी तृतीय कक्षामें विशेषकर जब रोगी निर्बल हो, इसको पोटैसियम आयोडाइडके साथ मिलाकर प्रयुक्त करनेसे अवश्य लाभ होता है। भारतीय सारसापरिल्ला या अनन्तमूलका मूल्य सारसापरिल्ला या उशबामग़रबीसे किसी प्रकार हीन नहीं है।

●

(६६) उश्नान

फ़ैमिली : केनोपोडिआसे (Family : Chenopodiaceae)।

नाम—(हिं०) कटोल, लानाबूटी, सज्जीबूटी; (अ०) ग़ा (ग़ु) सूल, हुर्ज़; (फा०) ग़ाजुरान, उष्नान; (सं०) सर्जिका, स्वर्जिका; (अं०) सोडा प्लांट्स (Soda Plants), साल्ट वर्ट्‌स (Salt worts)।

उत्पत्तिस्थान—सिन्ध, मुलतान और पंजाब आदि।

वर्णन—एक वर्षायु क्षारयुक्त क्षुप, जिसकी अनेक जातियाँ होती हैं। यथा—(१) इसमें पत्र नहीं होते। पत्रके स्थानमें पतली शाखायें होती हैं, जिनपर ग्रन्थिकी शक्लकी चीजें बन जाती हैं। इसका क्षुप सदाबहार रसपूर्ण बड़ा होता है और तना गोल होता है। इसको जलानेसे दुर्गंध आती है। यह रेहटा या क्षारीय, उजाड़ और शुष्क प्रदेशोंमें होता है। इसे जलाकर विशेष विधिसे **सज्जी** बनाते हैं। (२) इसका क्षुप १.८ मीटर (दो गज) ऊँचा, काण्ड और शाखायें कुल लाल रंगकी, पत्र छोटे दलदार, एक ओर कुछ बैंगनी और दूसरी ओर गहरे हरे रंगके होते हैं। इसके क्षुपसे एक प्रकारका कालेरंगका द्रव निकलता है। यह जिस वस्तु पर लगता है, उसे काला कर देता है। यह सिंध और मुलतानमें विपुल होता है। इन दोनों बूटियोंका स्वाद अत्यन्त क्षारीय होता है। पंजाबमें इनसे सज्जी बनायी जाती है, और इनको **लानाबूटी** कहते हैं। इनमेंसे प्रथम सम्भवतः **सालसोला कली (Salsola kali** Linn.) जिसे पंजाबमें **सज्जीबूटी** और अरबीमें 'अल्क़ली' कहते हैं अथवा **सा० फेटिडा (S.foetida** Del.) है, जिसे पंजाबमें **मोटीलाने** और बम्बईमें **लाना (लाणा)** कहते हैं; अथवा **सुएडा फ्रूटीकोसा (Sueda fruticosa** Forst.) है और द्वितीय **केनोपोडियम आट्रिप्लिसिस (Chenopodium atriplicis)** है। (३) यह हरा होता है। इसके रसमें लाख घोलकर उससे लिखते हैं और रोशनाई (मसी)के स्थानमें इसका उपयोग करते हैं। इसको **ग़ासूल फ़ारसी** और **ग़ासूल याबिस** कहते हैं। (४) यह इसका **सफेद** भेद है। यह सर्वोत्तम है। इसके पत्र सफेद होते हैं। इसको **ख़ुरूल् असाफ़ीर** (चटक-विष्टा) कहते हैं। **बुरहान कातेअ** और **फ़रहंग रशीदी** आदिके अध्ययनसे यह ज्ञात होता है, कि उश्नानको जलाकर जज्जी (स्वर्जिकाक्षार) बनाते हैं (दे० "सज्जी")।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें उष्ण एवं रुक्ष।

गुणकर्म—लेखन, मूत्रजनन, आर्तवजनन और विरेचन। **उपयोग**—उश्नानको जलाकर बनाई हुई सज्जी प्रायः व्याधियोंमें प्रयुक्त होती है। मूत्र और आर्तवप्रवर्तन यहाँ तक कि गर्भशातनके लिए भी उश्नानका उपयोग करते हैं तथा मूत्रसंग निवारणके लिए पिलाते हैं। मूत्रजनन एवं विरेचन होनेसे यह जलोदरमें भी प्रयुक्त होता है। इसके रसको मधुमें मिलाकर नेत्रमें डालते हैं। दाँतोंकी स्वच्छता (जिला)के लिए इसे मंजनकी भाँति दाँतों पर मलते हैं।

अहितकर—वस्तिको और गर्भशातक है। **निवारण**—रोग़न बनफ़शा और कद्दूके बीजकी गिरी। **मात्रा** १ ग्रामसे ३ ग्राम (१ माशासे ३ माशा तक)। **वक्तव्य**—३ तोले उश्नानको घातक विष लिखा है। सम्भवतः यह अपनी तीक्ष्णता और छेदनीय कर्मके कारण अन्त्र और आमाशयका लेखन (छील) करके मृत्युका कारण होता है।

सज्जी—

नाम—(हिं०; म०; गु०; कों०) सज्जी, सज्जीखार; (अ०) क़ली, क़लीउस्सबाग़ीन; (फा०) शिख़ार, अश्ख़ार; (अं०) स्व (स)र्जिका क्षार, सर्जिक्षार, सुवर्चिका; (बं०) साचिक्षार, साजीमाटी; (म०; गु०) साजीखार; (अं०) बरिल्ला (Barilla), सोडा (Soda), अल्कली (Alkali)।

वर्णन—यह एक क्षारद्रव्य है, जो दो प्रकारसे बनता है—(१) फूली हुई (रेहवाली जमीनकी) मिट्टीमेंसे निकाला जाता है। इसे अंगरेजीमें वाशिंग सोडा (Washing Soda), या सोडियम् कार्बोनेट (Sodium Corbonate) कहते हैं। इसका विवरण इस ग्रन्थके खनिजद्रव्य विज्ञानीय विभाग ३ के क्षारप्रकरणमें किया गया है। (२) उश्नान जातीय 'लाना' आदि कई वनस्पतियोंकी राखसे बनाते हैं। इसे अंग्रेजीमें बरिल्ला कहते हैं। इसीका वर्णन यहाँ किया जा रहा है। इसका स्वाद क्षारीय और अत्यन्त तीक्ष्ण होता है। साफ, काली और चमकीली सज्जी उत्तम समझी जाती है, यह साबुनका प्रधान उपादान है। जो ख़ाकस्तर स्याहकी तरह और छोटे-छोटे टुकड़े के रूपमें हो, वह अधम है। गुलाबीरंगकी अच्छी जातिकी सज्जीको **लोटन सज्जी** या **लौटा सज्जी** कहते हैं। सज्जीसे एक चीज उड़ाई जाती है जिसे **शिब्बे अल्क़ली** और **शिब्बल् मासफर** कहते हैं। यही सज्जीका नमक (**शख़ार अब्यज़**) है। यह सज्जीसे बहुत उत्तम और तीक्ष्ण होती है। **वक्तव्य**–सम्प्रति भारतवर्षमें कंगनखार और 'लानागोरा' नामक बूटियोंसे सज्जी बनाई जाती है। मिश्रकी भाषामें सज्जीको **नतरूम** (Natrium) और यूनानी भाषामें **नित्रून** (Nitron) कहते हैं। सज्जी अशुद्ध 'कार्बोनेट ऑफ सोडियम' है।

सज्जी बनानेकी विधि–अधुना पंजाबके मालवा, कच्छ, फंग और सिंधके इलाकेमें हजारों मन सज्जी बनाई जाती है। वहाँ इसके बनानेकी विधि निम्न है—लाना नामक समुद्री पौधेको काटकर जंगलोमें ही सूखनेके लिए छोड़ देते हैं। जब वह सूख जाता है तब उसे इकट्ठा करके एक गड्ढेमें भरकर आग लगा देते हैं। जैसे-जैसे वह जलता जाता है उसमें सूखा लाना छोड़ते जाते है। राखसे जब गड्ढा भर जाता है तब उसे मिट्टीसे बंद कर देते हैं। दस-पन्द्रह दिनमें जब वह राख ठंढी हो जाती है और जमीनका नमीसे डलोंके रूपमें आ जाती है, तब उसे खोदकर निकाल लिया जाता है और उसी रूपमें इसे बाजारमें, बिकनेके लिए भेज दिया जाता है। यह कालेरंगकी होती है। इससे कपड़े धोनेका काम लिया जाता है। यदि इस सज्जीको पानीमें घोलकर मिट्टी आदि दूर करके शेष बचे हुए साफ पानीको उष्णता पहुँचाकर शुष्क कर लिया जाय तो उत्तम सज्जीखार तैयार हो जाता है। इसका आंतरिक रूपसे उपयोग किया जा सकता है। पश्चात्य वैद्यकमें सोडियम-बाई-कार्बोनेट (Sodium-bi-carbonate) या सोडा-बाई कार्ब० (Soda Bicarb.) नामसे जिस द्रव्यका प्रयोग होता है वह विलायती सज्जीखार ही है। ज़नसाधारण इसे मीठा सोडा कहते हैं। यह उपर्युक्त लानाके पौधोंको जलाकर तैयार नहीं किया जाता, अपितु सोडियम क्लोराइड (खानेका नमक) और अमोनियम-बाई-कार्बोनेटके रासायनिक क्रिया-प्रतिक्रियासे प्रस्तुत किया जाता है। तात्पर्य यह कि विलायती जवाखारके समान ही यह विलायती सज्जीखार भी वानस्पतिक क्षार नहीं होता, अपितु खनिज क्षार होता है।

रासायनिक संगठन–इसमें कार्बोनेट्स ऑफ सोडा, सल्फेट ऑफ सोडा और कार्बनिक पदार्थ होते हैं। यह कुछ-कुछ भूरापन लिये सफेद सुषिरपूर्ण डलीके रूपमें होती है।

प्रकृति–चौथे दर्जे में उष्ण एवं रूक्ष। **गुणकर्म**—यह तीव्र लेखनीय एवं क्षारद्रव्य है। अल्पमात्रामें दीपन, पाचन, क्षुधाजनक और कफोत्सारि है तथा प्लीहाके शोथको मिटाती है। अधिक मात्रामें आमाशयान्त्रमें दाहक प्रभाव करती है। अर्थात् अन्त्र एवं अमाशयमें क्षत (जख्म) डालकर मनुष्यको मार डालती है।

उपयोग–अर्शांकुरोंको गिरानेके लिये सज्जीका लेप करते हैं। किलास, व्यंग (बहक), तर खुजली (कच्छू) और तर गंजपर इसे लगाते हैं। दीपन और आहारपाचनके लिये अकेला या चूर्णोंमें मिलाकर इसका उपयोग करते है। कास और श्वासमें कफोत्सर्ग एवं प्लीहाशोथ मिटानेके लिए इसे खिलाते हैं।

सज्जीके विषलक्षण–इसको अधिक मात्रामें खिलानेसे मुख और कंठमें दाह एवं उष्णता प्रतीत होती है। कंठकी झिल्ली शोथयुक्त होकर लाल हो जाती है। इसके बाद आमाशयमें तीव्रशूल होता है। वमन और विरेक आने लगते हैं और अत्यंत दौबल्यके कारण रोगी मर जाता है। **उपचार**—कोई वामक औषध या केवल उष्ण जल अधिक प्रमाणमें पिलाकर वमन करायें। तदुपरांत अंडेकी सफेदी जलमें फेटकर पिलायें। **अहितकर**–तीन माशासे अधिक मात्रामें इसका सेवन विषाक्त प्रभाव करनेवाला है। **निवारण**–घी, दूध और स्नेह द्रव्य।

मात्रा– ०.२५ ग्राम से ०.४० ग्राम (२ रत्ती से ३ रत्ती) तक। ३ ग्राम (३ माशा) की मात्रामें मारक हैं। **प्रतिनिधि**—जवाखार।

आयुर्वेदीय मत–सज्जीखार तीक्ष्ण, उष्णवीर्य, रूक्ष, लघु, क्लेदन करनेवाला, पाचक, ग्रन्थि और व्रण-शोथका विदारण करनेवाला, दाह करनेवाला, दीपन, छेदन और अग्नितुल्य है। (चरक)। सज्जीखार और जवाखार उष्णवीर्य तथा कफ, विबन्ध, अर्श, गुल्म और प्लीहवृद्धिका नाश करनेवाला है (सुश्रुत)।

●

(६७) उष (श) क।

फ़ैमिली : ऊम्बेल्लीफेरे (Family : Umbelliferae)।

नाम- (अ०; फा०; हिं०; भा० बाजार) उषक, उषुक; (हिं०) काँदर; (यू०) अमोनियाकोन Ammoniakon); (अ०) उशः, उष (श) क, ऊषज; बुषज; लज़ाक़–अल्–ज़हब; (फा०) उ (ऊ) ष (श):; (अफगानी) कंदल; (ले०) डोरेमा आमोनिआकुम (**Dorema ammoniacum** G. Don.)।

वक्तव्य (१) **अमन या ऐमन** (Ammons) प्राचीन रोम–मिश्र-यूनानवासियोंके एक देवता थे। मिश्र-देशके जिस प्रदेशमें इनका मंदिर था, वहाँ उषकके क्षुप प्रचुरतासे पाये जाते थे, इसलिए दीसक़ूरीदूस नामी यूनानी हकीमने, जिसने सर्वप्रथम इस ओषधिका उल्लेख किया है, इसका उक्त देवताके नामपर 'अमोनियाक़ून' नाम रख दिया। इसका वर्तमान लेटिन नाम– 'आमोनिआकुम' इसी यूनानी संज्ञाका किंचित् परिवर्तित स्वरूप है। अरबी ऊषज या उशक, फारसी उषः (शः) या ऊषः (शः)के अरबी रूपान्तर मात्र हैं। सुश्रुतके ऊषकादि-गणमें लिखा हुआ **ऊषक क्षार** विशेष है। (२) उशकके लक्षण (माहिय्यत)के संबंधमें ख्यातनामा प्राचीन यूनानी चिकित्साविदों, जैसे-शैख़ुर्रईस, इब्नबैतार, दाऊद अंताकी, मालकी और मालायसअ ग्रन्थके रचयिताओंमें परस्पर मतभिन्नता है जिसका, विवरण यहाँ अपेक्षित नहीं। परन्तु इब्नसीनाने जिस उशकवृक्षको 'तर्सूस' लिखा है और जिसका खंडन इब्नबैतारने किया है, वह वस्तुतः ईरानी (फारसी) उशकवृक्ष है जिसे शीराजवासी 'बद्‌शनी' तथा कोई–कोई 'कमाह' और बोखारावासी 'कंदल' कहते हैं।

यूनानी चिकित्साविशारदोंने जिस प्रकारके उशकका उल्लेख किया है वह श्यामदेशके विभिन्न स्थानोंसे जाती थी। परन्तु ईरानी या खुरासानी उशकसे (जोकि साम्प्रत यूरोपमें औषधरूपेण व्यवहृत हैं) उनको अभिन्नता नहीं थी।

उत्पत्तिस्थान—फारस, अफगानिस्तान और यूरूप।

वर्णन—उशक एक निर्यासोद्यास—रालदार गोंद (गमरेजिन) है, जो पुष्प एवं फलवान् उशकके क्षुपपर लगा हुआ मिलता है। इसके अश्रुवत् गोल दाने होते हैं या इन दानोंकी परस्पर मिली हुई बड़ी-बड़ी डलियाँ होती हैं। इनका आकार धनियेके बीज या चनेसे लेकर जंगली बेर तक होता है। देरतक पड़ा रहनेसे यह कालाई लिये हो जाता है, किन्तु भीतरसे यह अस्वच्छ दुग्धवत् श्वेत या हलका पिलाई लिये होता है। शीत होनेपर यह कड़ा हो

जाता है और सहजमें टूट जाता है तथा हलकी गरमीसे यह नरम हो जाता है। इसकी गन्ध हलकी और विशेष प्रकारकी होती है। स्वाद तिक्त, संक्षोभक एवं हृल्लासकारक होता है। इसको जलमें घोलनेपर क्षीरवत् (दुधिया) घोल (धौत-इमलशन) बन जाता है। यूनानी हकीमोंके मतसे जो सफेद, नरम, स्वच्छ एवं शुद्ध हो और जलमें शीघ्र घुल जाय, जिसमें नीलेपनकी झलक हो जो कंकड़ आदि मलोंसे शून्य एवं स्वादमें तिक्त हो और जिसमेंसे कुन्दुर या जुन्दबेदस्तर की-सी सुगन्ध आती हो वह उषक उत्तम है।

परीक्षा—उशक जवाशीर, लोबान और हींगके समान होता है। किन्तु इसकी गन्ध उक्त सभी द्रवोंसे सर्वथा भिन्न होती है। अस्तु, अपनी विशेष गन्धसें इसको भली-भाँति पहिचाना जा सकता है। इसमें सकबीनजके मिश्रणसे इसका रंग पीला हो जाता है।

व्यापार—बम्बई इसके व्यापारकी बड़ी मण्डी है, जहाँपर यह फारससे जाता है।

वक्तव्य—यूनानी हकीमोंने जिस प्रकारके उशकका उल्लेख किया है, वह श्यामदेशके विभिन्न प्रदेशोंसे आता था। अधुना यह निर्णीत हो चुका है कि वह फेरुला टिंञ्जीटाना (**Ferula tingitana** Linn.) नामक वृक्षका रालदार गोंद है जो मोरक्कोमें उत्पन्न होता है। सम्भवतः प्राचीनकालमें यूरूपमें यही प्रसिद्ध था। यद्यपि यह नहीं बतलाया जा सकता कि फारसी उशकके उपयोगका सूत्रपात सर्वप्रथम कबसे हुआ, तथापि यह तो निश्चित है कि यूनानी और रूसी हकीमोंने इसका उल्लेख नहीं किया है। यद्यपि उशकके स्वरूप निर्णयके सम्बन्धमें पुराकालीन प्रमुख अरबी-यूनानी हकीमों, जैसे—शैखुर्रईस, बूअर्लीसीना, दाऊद अंताकी, मालकी और मालायसअ प्रभृति विद्वानोंमें परस्पर मतभेद हैं, तथापि उनके मतोंका पर्यालोचन करनेपर यह निष्कर्ष निकलता है कि बूअलीसीनाने जिस उषक वृक्षको 'तरसूस' लिखा है और इब्नबैतारने जिसका खंडन किया है, वह निःसंदेह ईरानी (फारसी) उषक वृक्ष है जिसे शीराजवासी 'बदरान' और बोखारानिवासी 'कंदल' कहते हैं। फारसी हकीम अबूमन्सूर मौवाजिक (१०-११वीं शताब्दी) और अन्सारी (१४वीं शताब्दीका मध्य)के मतोंसे भी इस कथनकी पुष्टि होती है।

रासायनिक संगठन—इसमें निर्यास २० प्रतिशत, रेजिन (राल) ७० प्रतिशत, एक उत्पत् तेल ४ प्रतिशत और आर्द्रता एवं भस्म प्रभृति द्रव्य पाये जाते हैं।

कल्प तथा योग—जिमाद उशक, मरहम उशक। प्रकृति–दिल्लीके हकीमोंके मतसे दूसरे या तीसरे दर्जेमें उष्ण और पहलेमें रूक्ष; लखनऊवालोंके अनुसार पहले दर्जेमें उष्ण और दूसरेमें रूक्ष है।

गुण कर्म—श्वयथुविलयन, प्रमाथी, कफोत्सारि, सारक, विरेचन, लेखन, आर्तवजनन, उदर क्रिमिनाशन और रोपण है।

उपयोग—कंठमाला, संधिशोथ वा काठिन्य और बाघी (बद)को विलीन करनेके लिये उषकका लेप (जिमाद उषक) लगाते हैं। अर्शांकुरोंके मुँह खोलनेके लिये इसे मस्सोंपर लगाते हैं तथा दद्रु, नीलिका और व्यंगपर इसे सिरकामें घोलकर लगाते हैं। मरहमोंमें मिलाकर इसे (मरहम उशकको) जख्मोंपर लगाते हैं। जीर्ण कास और दमामें इसे मधुमें मिलाकर चटाते हैं। यह कफकी दुर्गन्ध दूर करता और उसका उत्सर्ग करता है। कफज कण्ठ-प्रकोप (खुनाक बलग़मी), प्लीहाकाठिन्य, मृगी, पक्षाघात, अर्दित, आक्षेप, कम्पवात, आमवात और वातरक्तमें उपयुक्त औषधियोंके साथ इसे खिलाते हैं। (दिल्लीके हकीम)। नियत मात्रासे अधिक प्रमाणमें खिलानेसे यह विरेचनीय है। आर्तवजनन और जीवित या मृत भ्रूणके निर्हरणके लिए तथा उदर कृमिनाशनार्थ भी इसका उपयोग करते हैं। प्रधानतया कठिन सूजन उतारनेके लिये इसका उपयोग करते हैं। अहितकर–रक्तमूत्र उत्पन्न करता है। निवारण–अनीसून और सिरका। प्रतिनिधि–जवाशीर।

मात्रा—०·५ ग्रामसे १·५ ग्राम (४ रत्तीसे १॥ माशा) तक।

नव्यमत—उशक श्वासनलिका, त्वचा और वृक्क द्वारा शरीरसे बाहर निकलता है और निकलते समय उन अवयवोंको उत्तेजित करता है। उशक छेदन, श्लेष्मनिस्सारक, स्वेदजनन, मूत्रजनन और शोथ विलयन है।

इससे कफका चिकनापन कम होता है, कफ शीघ्र और बिना कष्टके गिरता है, कफकी उत्पत्ति कम होती है, कफगत रोगजन्तुका नाश होता है और कफकी दुर्गन्ध कम होती है। बड़ी मात्रामें देनेसे दस्त साफ होता है। उशकका लेप श्वयथुविलयन है। जीर्ण संधि-शोथ, संधिमें जल संचित होना, गंडमाला और बदपर इसके लेपसे लाभ होता है। **मात्रा**—०·४ ग्रामसे १ ग्राम (३-७ रत्ती) गोलीके रूपमें किंवा पानी मिलाकर देना चाहिए। **कल्पमिश्रण**—उशक ३ भाग। चीनीका शर्बत ६ भाग, गरम जल १०० भाग थोड़ा-थोड़ा जल मिला, घोंटकर पिला देवें। **मात्र** १।२–१ औंस **मरहम**—उशक १२ औंस, पारा ३ औंस, गन्धक ८ ग्रेन, निमोलीका तेल २ ड्राम—प्रथम एक पात्रमें गन्धक और तेल गरम करके मिलावें। पीछे पारा और गरम किया हुआ उशक मिलावें। पारेके कण न दिखें इतना मर्दन करके मलहम तैयार करें।

●

(६८) उसारे-रेवंद

फ़ैमिलीः गुट्टीफेरे (Family: Guttiferae)

नाम—(हिं०) लालरस; (अ०) फ़र्फ़ीरान, गोतागंबा, उसारे-रेवंद, रुब्बरेवंद, (द) उसारे-रेबन; (गु०) रेवंचीनोशीरो; (ले०) गाम्बोजिआ (Gambojia), काम्बोगिआ (Cambogia); (अं०) गैं(कैं) बोज (G(C)ambose), गट्टा गम्बा (Gutta Gamba)।

वक्तव्य—यद्यपि यह द्रव्य उसारे-रेवंदके नामसे प्रसिद्ध है तथापि रेवंदका उसारा–'रेवतचीनीका सत' नहीं है, जैसा कि इसके नामसे विदित होता है। प्रत्युत फर्फारान वृक्ष–विलायती तमाल या स्वर्णक्षीरी (**Garcinia henburyi** Hook.)का रालयुक्त गोंद है, जो उस वृक्षके काण्डमें चीरा देनेसे प्राप्त होता है (इसके वृक्ष श्याम देशमें उत्पन्न होते हैं)। इसका रंग और गुण-कर्म रेवतचीनीके सतके समान होता है, इसलिए यह **उसारे-रेवंदके** नामसे प्रसिद्ध हो गया। यही कारण इसके गुजराती और दक्खिनी आदि नाम पड़नेके हैं। श्यामदेशके कैंबोजि (डि)या नामक प्रदेशमें इसके वृक्ष प्रचुरतासे होते हैं, इसलिये इस वृक्षके निर्यासका नाम भी **कैम्बोजिया** रख दिया गया।

फ्रांसीसी भाषामें इस रालदार गोंदको 'गम्मी गोटी' कहते हैं। 'गोतागंबा' इसीका अरबी रूपान्तर है। इसीकी अन्य जातिका एक वृक्ष भारतवर्षके अनेक प्रदेशोंमें होता है, जिसे संस्कृतमें **स्वर्णक्षीरी** (तापिंज या तापिच्छ), लेटिनमें **गार्सीनिआ मोरेल्ला** (**Garcinia morella** Des.), अंग्रेजीमें इण्डियन गैम्बोज (Indian Gamboge) कहते हैं। **तालीफ़शरीफ़ी और खुलासतुल् तआरुब** आदि लिखित "हिरबी" नामकी पीले रंगकी जहरीली जड़ी संभवतः इसीकी (स्वर्णक्षीरीकी) जड़ है। कश्मीरमें इसे 'हिरबी' कहते भी हैं। भाव प्रकाशोक्त '**चोक**' किसी-किसीके मतसे इसे ही कहना चाहिये (दे० "सत्यानासी")। इसके वृक्षसे भी एक प्रकारका उसारे-रेवंद की तरहका रालदार गोंद प्राप्त होता है जो स्वरूप एवं गुण-कर्म आदिमें सर्वथा इसके समान होता है। इसको कोई-कोई आयुर्वेदस कंकुष्ठ मानते हैं। परन्तु बाजारमें केवल सामान्य नलिकाकार श्यामदेशीय उसारे-रेवंद ही उपलब्ध होता है। इसीका वर्णन इस लेखका उद्देश्य है। **उत्पत्तिस्थान**—श्यामदेशके कैंबोजिया नामक प्रदेश तथा कोचीन चाइनामें इसके वृक्ष होते हैं और वहींसे इसका आयात भारतवर्षमें होता है।

वर्णन—१० सें०मी० से २० सें०मी० (४-८ इंच) लम्बे और २·५ से ३·७५ सें०मी० (१–१॥ इंच) व्यासके रम्भाकर (गोल,) लंबे, ठोस या खोखले भंगुर टुकड़ों या बत्तियोंके रूपमें इसका आयात होता है जिसके ऊपर बाँसके भीतरी धरातलके धारीदार चिह्न पड़े होते हैं, जिसमें इसका संग्रह किया जाता है। यदि यह उत्तम हो तो इसका व्यत्यस्त काट साफ, चिकना, चमकदार, ललाई लिये पीला या गंभीर नागरंग भूरा और अपारदर्शक होता है।

इसका चूर्ण हरिद्रावर्णका और सर्वथा निर्गन्ध होता है। स्वाद तीव्र चरपरा होता है। इसे जलमें रगड़नेसे पीला मिश्रण तैयार होता है। इसमें दस बर्ष तक वीर्य रहता है।

रासायनिक संगठन—इसमें जौहर **फर्फीरान (गम्बोजिक एसिड** Gambogic acid) नामका एक हल्दीके रंगका राल (उद्यास), जो इसका वीर्य है, ७५ प्रतिशत और एक गोंद १५ से २० प्रतिशत होता है।

कल्प तथा योग—हब्ब उसारारेवन्द। **प्रकृति**–दूसरे दर्जेमें गरम एवं रूक्ष (खुश्क)। आयुर्वेदमें स्वर्णक्षीरीको शीतवीर्य लिखा है (रा० नि०)।

गुण-कर्म—विरेचन, वामक, हल्का मूत्रजनन, उदरकृमिनाशक और कृमिनिस्सारक।

उपयोग—बहुधा प्रत्येक दूषित दोषके निर्हरणके लिये उसारे-रेवंदका उपयोग करते हैं। वमन, विरेक और मूत्र द्वारा यह दोषोंका निर्हरण करती और देरतक आमाशयमें नहीं रहती है। प्रायः शीतल एवं स्निग्ध मस्तिष्क और वातरोग, जैसे–पक्षाघात, अर्दित, आक्षेप और अपस्मार आदि एवं कब्ज और जलोदर आदिमें तथा उदरजकृमिको मारने और निकालनेके लिये भी इसका उपयोग करते हैं। इसे अधिक प्रमाणमें सेवन करनेसे पेचिश और मरोड़ हो जाती है। इसलिये वातानुलोमन द्रव्योंके साथ इसका उपयोग करना चाहिये। **अहितकर**–उष्ण प्रकृतिवालों और गर्भवती स्त्रियोंको इसका उपयोग वर्जित है। **निवारण**–गुलकन्द और शकर सुर्ख। **मात्रा**–०·०६ ग्रामसे ०·१३ ग्राम (॥ **रत्ती** से १ रत्तीसे) तक।

●

(६९) उस्कूर्दियून (जंगली लहसुन)

फैमिली : लेबिआटी (Family : Labiatae)

नाम—(हिं०) जंगली लहसुन; (यू०) स्कोरडिओन (Skordion); (अ०) उस्कूर्दियून (यूनानी 'स्कोरडिओन' से अरबीकृत), शकर (**कूर**) दियून, शक़ूरियून, सूम सहराई (बर्री), हाफ़िज़ुल् अज्साद, हाफ़िज़ुल् मौता; (फा०) सीरदश्ती; (शीराजी) मूसीर (पहाड़ी लहसुन); (लॅ०) **टेउक्रिउम् स्कोर्डिउम् (Teucrium scordium** Linn.) (अं०) वाटर जर्मेंडर (Water germander)।

वक्तव्य—सूमुल्हय्यः इससे सर्वथा भिन्न द्रव्य है (इ०बै० १। १५३)।

उत्पत्तिस्थान—पश्चिम हिमालय और कश्मीर, फारस तथा यूरोप आदि।

वर्णन—काण्ड मखमली; पत्र आमने-सामने अवृन्त, अण्डाकार-आयताकार, १·८७५ सें० मी० (३/४ इंच) लम्बा, ०·५ सें० मी० (१/५ इंच) चौड़ा, आधारपर संकुचित, पत्र-प्रान्त मोटा दन्तुर, उभयपृष्ठ लोमावृत; स्वाद कटु-तिक्त। ताजे पत्तोंको मलनेसे, यह चुभनेवाली लहसुनकीसी गंधसे युक्त प्रतीत होते हैं।

उपयुक्त अंग—क्षुप और पत्र।

रासायनिक संगठन—इसमें एक अक्रिस्टलीय (Amorphous) तिक्त सत्त्व पाया जाता है।

कल्प—प्रवाहीसार (मात्रा–२ मि०लि० से ४ मि०लि०); **फांट**। यह **तिरियाक फारूक और तिरियाक अंदरूमाखो** नामक प्रसिद्ध विषघ्न यूनानी योगोंका एक उपादान है।

●

(७०) उस्तोखुद्दूस

फ़ैमिली : लेबिआटी (Family : Labiatae)

नाम—(हिं०) घारू; (भा०बा०) उस्त (स्तु-तो) -खुद्‌द्दू (द्दू)-स, **उस्तूखु(खू)दूस** (इ०बै०); (यू०) स्टोइ-खडोस (Stoikhados); (अ०) आनिसुल् अरवाह, मुम्सिकुल् अरवाह, हाफ़िज़ुल् अरवाह; (**पुष्प**), ज़रम, ज़ह्‌रुल्ज़रम; (बम्ब०) अल्फाजन; (बं०) तुनतुना; (ले०) लावान्डुला स्टाकास (**Lavandula stoechas** Linn.); (अं०) अरेबियन या फ्रेंच लैवेंडर (Arabian or French Lavender)।

वक्तव्य—यूनानी हकीम दीसकूरीदूसके मतसे **स्टीकाडीस** (Stoechades) नामी द्वीपसमूहमें उपजनेके कारण इसे **स्टीकास (Stoechas)** कहते हैं। उक्त **स्टीकाडीस** यूनानी संज्ञासे ही उस्तूखुद्दूस (–स्तोख़दूस) शब्द व्युत्पन्न है, जिसका अर्थ **ओजोरक्षक (हाफ़िज़ुल् अरवाह)** है। **'अल्फाजन'** पुर्तगाली **'अल्फ़ाजेमा** (Alfazema)**'** का देशी अपभ्रंश है। इब्नसीनाने **'उस्तादूस'** और **'उस्तीकूस'** नामसे इसका उल्लेख किया है।

उत्पत्तिस्थान—यूरूप, कनारी, पुर्तगाल, एशिया माइनर, अरब तथा भारतवर्षके बिहार, बंगाल और अजीमाबादमें भी उत्पन्न होता है।

वर्णन—यह एक क्षुप जातिकी वनस्पतिके फूल हैं, जो रबीकी फ़सलमें जंगलों और पहाड़ोंपर तरभूमिमें होता है। **कांड** एक हाथ ऊँचा और खुरदरा; **पत्र** गुच्छाकार, सातर (जंगली पुदीना)के पत्तोंकी तरह, किन्तु उनसे कुछ लम्बे और पतले; **फूल** बैंगनी, क्षुद्रवृंतकी बालियोंमें प्रकट होते और लोमश, हृदयाकार सहपत्रों (Bracts)के कक्षमें स्थित होते हैं। ऊपरके पतनशील सहपत्र बालके शिखरपर एक प्रकारके बैंगनी स्तवकका निर्माण करते हैं। प्रत्येक पुष्पस्तवक (बाली)में विपुल पुष्प वर्तमान होते हैं। ये स्तवक जौ की बालकी तरह किन्तु उसकी उपेक्षया क्षुद्रतर होते हैं। फूल सफेदी लिये नीले रंगका और उसमें कुछ पिलाई और ललाईकी भी झाँई पाई जाती है। उनके ऊपर बारीक कोमल रोआँ होता है, जो छूनेसे नरम मालूम होता है। इसमें तीव्र कपूरकीसी गंध होती है। इसके सूंघनेसे छीकें आती हैं। स्वाद किंचित् तीक्ष्ण एवं तिक्त होता है। इससे एक प्रकारका ललाई लिए पीला तेल प्राप्त होता है, जिसकी गंध रोजमेरी तेलका स्मरण दिलाती है। बीज कंगनीकी तरह किन्तु उससे छोटा, महीन, किंचित् चपटा और कालाई लिये पीला होता है। इसके मलनेसे कपूरकी सुगन्ध आती है। इसका स्वाद भी तीक्ष्ण एवं तिक्त होता है। हजाज, रोम, अरब तथा अन्य स्थानोंका भारतमें होनेवालेकी अपेक्षया अधिक वीर्यवान् होता है। वह बीजयुक्त, तिक्त तथा कोमल होता और उसपर सफेद रोआँ जमा होता है। यह अजीमाबाद और बंगाल आदि स्थानोंमें भी होता है। परन्तु भूमिके कारण यहाँका उस्तूखूद्दूस विदेशीकी अपेक्षया अल्पवीर्य और खुरदरा, कोई-कई कालाई लिये पीला और कोई सफेद होता है। उसमें थोड़ा नीलापन भी होता है, परन्तु उसपर रोआँ नहीं होता। किसी-किसीमें बीज नहीं होता और किसीमें अत्यन्त सूक्ष्म पिलाई लिये सफेद रंगके बीज होते हैं। किसी-किसीकी बालके फूल फैले हुए होते हैं।

वक्तव्य—इसके यह दो भेद भारतवर्षमें भी होते हैं :—

(१) **कश्मीरी**—इसके क्षुप अनुष्णाशीत हिमालयमें कश्मीरसे लेकर भूटान तक ४,००० से ११०००फुटकी ऊँचाईपर होते हैं। फूल बनफशई बैंगनी होता है। इसका वैज्ञानिक नाम **ब्रूनेल्ला वुलगारिस Brunella vulgaris** Linn. और अंग्रेजी नाम **'हील आल** (Heal all)**'**, **'सेल्फ हील** (Self heal)**'** है। फूल नीला सफेद और अत्यन्त सुगंधित होता है।

(२) **जंगली लवंडर** (बम्ब०); सरपनो छरो (गु०)–इसे पंजाबमें **'औस्तखदूस'** और बम्बईमें **'उस्तुखुदूस'** और हिन्दीमें **'घारू'** कहते हैं। दक्षिण-पश्चिम हिन्दुस्तानमें कोंकणसे कुर्ग तक इसके क्षुप होते हैं। इसका वैज्ञानिक

नाम **लावान्डुला बर्मान्नी Lavandula burmanni** Benth. और **लावाण्डुला वीपीन्नाटे L. Vipinnate** O. Kuntz है। उत्पत्तिस्थान और वर्णन शीर्षकमें भारतवर्षके कतिपय प्रदेशोंमें जिस उस्तुखुदूसके होनेका उल्लेख किया गया है वह **लावान्डुला स्टीकास** न होकर संभवतः उसका यही भेद है।

कल्प तथा योग—**शर्बत उस्तूखुदूस, अतरी फल उस्तूखुदूस, अर्क उस्तूखुदूस, हब्ब उस्तूखुदूस और सऊत (नस्य)** उस्तूखुदूस। **उपयुक्त अंग**–पुष्प और पत्र। भारतवर्षमें यूरूपसे इसका आयात होता है। प्रकृति–पहले दर्जेमें उष्ण और दूसरेमें रूक्ष। गुणकर्म–श्वयथुविलयन, प्रमाथी (मुफ़त्तेह), वातनाड़ी और मस्तिष्क-संशोधक-बलदायक, दीपन, वातानुलोमन और श्लेष्म-सौदा विरेचनीय है।

उपयोग–उस्तूखुदूसको अधिकतया पक्षवध, अर्दित, अपस्मार, कम्पवात, शीतल प्रसेक और प्रतिश्याय तथा विस्मृति आदि जैसे कफज मस्तिष्क एवं वातरोगोंमें उपयोग करते हैं। मस्तिष्ककी नाड़ियोंको शक्ति प्रदान करने और उनको मलोंसे शुद्ध एवं निर्मल कर बुद्धिको तीव्र बनानेके लिए इसको बहुत उपादेय समझा जाता है। वातनाड़ीशूल और आमवातमें इसका काढ़ा उपकारी बताया जाता है। यह यकृतके शीतल शोफ और जलोदरमें प्रयुक्त होता है। उरो-रोगोंमें तथा पित्तज और कफज दोषोंके उत्सर्गके लिये उपकारक है। मस्तिष्कको मलोंसे शुद्ध करनेके लिए यह उत्तम औषध है।

अहितकर–यह पिपासाजनक और हृल्लासकारक है। पित्तल प्रकृतिवालोंको इसका उपयोग उचित नहीं है। **निवारण**-नीबूका शर्बत। **प्रतिनिधि**-अफ़्तीमून या संशोधनार्थ अयारिज। मात्रा–५ ग्रामसे ७ ग्राम (५ माशासे ७ माशा) तक।

नव्यमत–उस्तूखुदूस मधुर, तीक्ष्ण, उष्ण, रूक्ष, वायुनाशक, संकोचविकासप्रतिबंधक, उत्तेजक और कफघ्न है। यह कफरोग और दस्तमें गुणकारी है। सूखे दमेमें उस्तूखुदूस, जूफा, सौंफ और मुलेठीका काढ़ा देते हैं। उदरवात, उदरशूल और भूतोन्मादमें उस्तूखुदूस देते हैं।

●

(७१) ऊँटकटारा

फ़ैमिली : कॉम्पोजीटी (Family : Compositae)

नाम–(हिं०) ऊँटकटारा, ऊँटकटेरा, छोढ़ा; (यू०) मागूडारिस (D. 3.84); (अ०) शौकुल्जमाल (उष्ट्रकंटक); (फा०) उश्तर ग़ाज, उश्तुरखार (कंटक), ख़ारशुतर; (सं०) उष्ट्रकंटक, उत्कण्टक; (ले०) **एकिनॉप्स एकीनाटुस Echinops echinatus** D. C.; (अं०) केमल्स थिसल या थॉर्न (Camel's thistle or thorn)।

उत्पत्तिस्थान–भारतवर्ष और अफगानिस्तान।

वर्णन–एक कंटीली झाड़ी वा **क्षुप** जो ३०-६० सें. मी. या ०-९ मीटर (१ से २ फुट वा गज भर) ऊंचा होता है। इसकी **पत्तियाँ** पराकार पक्षवत् खण्डित (Pinnatifid), भंड़भाँड़की तरह लम्बी और काँटेदार होती है। इनका निचला पृष्ठ रोईंदार होता है। डालियोंमें गड़नेवाली रोइयाँ होती है। इसमें लगभग २.५ सें० मी० (१ इंच व्यास)का गोलाकार पुष्पगुच्छ लगता है। यह भीतरसे इस्पंजी होता है और उसपर छोटे-बड़े बहुसंख्यक तीक्ष्णाग्र कंटक होते हैं। इसके भीतर भूसीकी तरह एक सफेद चीज होता है। फूल पीले और सफेद तथा किसी-किसीके नीले भी होते हैं। जड़ गोपुच्छाकार सफेदी लिये भूरे रंगकी होती है। स्वाद कडुवा और चरपरा

तीक्ष्ण होता है। ऊंटकटारा कंकरीली और ऊसर जमीनमें होता है। ऊँटकटाराको ऊँट चावसे खाते हैं। इसी बातको दृष्टिमें रखकर इसके हिन्दी, अरबी, फारसी इत्यादि नामोंकी कल्पना की गई है।

उपयुक्त अंग–पंचांग, जड़ और जड़की छाल। प्रकृति–दूसरे या तीसरे दर्जेमें उष्ण एवं रूक्ष।

गुण-कर्म तथा प्रयोग—दीपन, मूत्रल, बल्य, वाजीकर और शीतल श्वयथुविलयन। दीपन, पाचन और रोचनके लिये इसका उपयोग करते हैं। कामला, चतुर्थक ज्वर और आमवातमें भी इसका उपयोग होता है। इसकी जड़ टुकड़े-टुकड़े कर चोआ की तरह टपकाकर रखे। इसे आधा या एक माशाकी मात्रामें पानके साथ खानेसे वाजीकरण और स्तंभन होता है। हस्तमैथुनके रोगियों के लिये इन्द्रीके ऊपर इसका पतला लेप (तिला) परम गुणकारी है। इसकी जड़ दूधमें पकाकर सेवन करनेसे भी वाजीकरण होता है। जड़को छायामें सुखाकर और पीस-छानकर एक सप्ताह तक मधुके साथ चाटनेसे बहुत पसीनाका होना बंद हो जाता है। **अहितकर**–वृक्क एवं मस्तिष्कको। **निवारण**–कच्चे अंगूरका शर्बत। **प्रतिनिधि**–अंजुदान (हिंगुबीज)। **मात्रा** — ३ ग्राम से ५ ग्राम (३ माशे से ५ माशा) तक।

आयुर्वेदीय मत—ऊँटकटारा (उष्ट्रकाण्डी) तिक्त, उष्णवीर्य, रुचिकारक और हृद्रोगनाशक है। बीज मधुर, शीतल, वृष्य और संतर्पक है (रा० नि० वर्ग १०)।

नव्यमत—पंचांग दीपन, पौष्टिक, मूत्रल और रक्तशोधक है। शुक्र पतला होनेपर बीजोंका प्रयोग होता है।

●

(७२, ७३) ऊदसलीब और फावानिया

फ़ैमिली–रानुनकुलासे (Family : Ranunculaceae)

नाम—(हिं०) ऊदसालप, ऊदसलीब; (अ०) ऊदुल्सलीब, फावानिया; (बम्ब०) ऊदेसालम; (ले०) **पेओनिआ आफ़्फ़ीसिनालिस Paeonia officinalis** Linn.; (अं०) आफिसिनल पेओनी (Officinal Peony), पिओनी (Peony)।

वक्तव्य—ऊदसालम और ऊदेसालम दोनों **ऊदुल्सलीब** (स्वस्तिक काष्ट–Wood of the Cross) के अपभ्रंश हैं। पेओनिआ यूनानी पैओनिअ, **'Paionia'** का लेटिन रूपान्तर है; और पेओन (Paeon) यूनानी **पेओन** 'Paion' से व्युत्पन्न है। पेओन यूनानियोंके देववैद्य थे। इन्होंने सर्वप्रथम इस उदभिज्जका अन्वेषण और वर्णन किया, इसलिये उन्हींके नामपर इसका पेओनिया नाम रखा गया। अंग्रेजी पेओनी, लेटिन पेओनिआसे व्युत्पन्न है।

उत्पत्तिस्थान—दक्षिण यूरोप और पश्चिमी एशिया (कृषिकृत)।

वर्णन—ऊदसलीबके मूल जो बाजारमें मिलते हैं, उनका आयात यहाँ टर्कीसे होता है। मूल १ से २ इञ्च लम्बे, $\frac{१}{२}$ से $\frac{३}{४}$ इञ्च मोटे (व्यासमें), मध्यमें मोटे और दोनों छोरोंकी ओर गोपुच्छाकार होते हैं। बाहरी पृष्ठ गुलाबीभूरा होता है और उसपर लम्बाईके रूखमें गहरी रेखायें होती हैं। भीतरी भाग सफेद पिष्टमय और प्रायः स्वादरहित होता है। काटनेपर छिलका कड़ा और कुछ-कुछ पीले रंगका मालूम होता है। मूल प्रायः निर्गन्ध होता है। ताजे काटे हुए मूलकी गंध धीमी तीक्ष्ण होती है। स्वाद किंचित् चरपरा अथवा मीठा, बादको तिक्त होता है। इसे चबानेपर थोड़ी देर बाद तीक्ष्णता, चरपराहट और थोड़ी-सी कडुआहट मालूम हो और जिह्वापर खिंचावट पैदा हो, वह उत्तम समझा जाता है। इसमें सातवर्ष तक वीर्य रहता है। स्त्री-पुरुष भेदसे यह दो प्रकारका होता है। इसके पुल्लिंग जड़को तोड़नेसे उसके भीतर दो रेखायें एक दूसरेको काटती हुई गुजरती हैं जैसा कि सलीब (स्वस्तिक Cross) में होता है। इसलिये इसे **ऊदसलीब** कहते हैं। औषधमें इसका उपयोग किया जाता है। **फावानिया**

इसका स्त्री भेद है, जिसमें स्वस्तिक (सलीवी) रेखायें नहीं होतीं। इसको ऊदुर्रीह भी कहते हैं। गिबर्टके अनुसार इसके लम्बे, गोल, छोटे कंद होते हैं। जो एक दृढ़ तंतु द्वारा पाताली घड़से लगे रहते हैं। 'फावानिया' लेटिन पेओनियाका ही अरबी रूपान्तर है। इसे अंग्रेजीमें **फीमेल पेओनी** (Female Peony) कहते हैं। यही **पेओनिया ऑफिसिनेलिस** है जिसका विवरण इस लेखमें किया जा रहा है।

पेओनियाकी एक **इमोडी** जाति (**पेओनिया एमोडी Paeonia emodi** Wall.) भारतवर्षमें भी हिमालय व कश्मीर और हजारासे कुमाऊँ तकके प्रदेशों में ५ से १० हजार फुट तककी ऊँचाईपर होती है। इसकी जड़ सफेदी लिए लगभग उँगलीके बराबर मोटी और कुछ मिठास लिये कसैली होती है। यह विदेशी ऊदसलीवका उत्तम प्रतिनिधि द्रव्य है और उन प्रदेशोंमें उन्हीं गुणोंके लिये तथा उन्हीं रोगोंमें इसका उपयोग करते हैं, जिनमें कि ऊदसलीबका प्रयोग होता है। इसके अन्य नाम यह हैं—(पं०) मामेख; (क०) मिद, महामेद; (अं०) हिमालयन पेओनी (Himalayan Peony) या पेओनी रोज (Peony rose)।

रासायनिक संगठन—इसके ताजे मूलमें पिष्टमय पदार्थ, शर्करा, वसा, मैलेट्स (Malates), आग्जेलेट्स (Oxalates) फॉस्फेट्स और किंचित् कषायिन या टैनिन (Tannin) प्रभृति द्रव्य होते हैं।

उपयुक्त अंग—मूल।

कल्प तथा योग—चूर्ण, हब्ब ऊदसलीब।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें गरम और रूक्ष।

गुणकर्म—यह रूक्ष, स्रोतोविशोधक (मुफ़त्तेह उरूक), श्वयथुविलयन, दोषोंको पतला करनेवाला, लेखन, मूत्रजनन, आर्तवजनन, वेदनास्थापन और नाड़ियों (ज्ञान तन्तुओं) को बल देनेवाला है।

उपयोग—प्रमाथी, श्वयथुविलयन और दोषतारल्यजनन होनेके कारण बहुधा मस्तिष्क (शिरः) रोगों और वातव्याधियोंमें ऊदसलीबका उपयोग करते हैं। अस्तु, अपस्मार, कम्पवात, अर्दित, पक्षाघात, उन्माद, वातिक अन्यथाज्ञान (वसवास), मस्तिष्कशोथ, अपतंत्रक (हिस्टीरिया) और बालापस्पारमें यह पुष्कल प्रयोगमें आता है। यकृदवरोध, कामला, आमाशयशूल तथा वस्ति एवं वृक्कशूलमें भी इसका उपयोग करते हैं। आर्तवशोणित और प्रसवशोणितके उत्सर्ग (आविजनन)के लिये अन्यान्य उपयुक्त औषधद्रव्योंके साथ इसे देते हैं। गर्भाशयके रोग, जलोदर, आक्षेपक, अश्मरी और पित्तावरोधमें भी यह प्रयुक्त होता है। बालकोंको रक्तशोधनार्थ इसे देते हैं। अपस्मारी शिशुके गलेमें इसके लटकानेसे उपकार होता है। लेखन होनेके कारण चेहरेके दाग और व्यंग आदि दूर करनेके लिए इसका पतला लेप (तिलाऽ) करते हैं।

अहितकर—गर्भवती स्त्रियोंको।

निवारण—गुलकंद, मुलेठी और मधुशर्कर (माउल्अस्ल)।

मात्रा—१ से ३ ग्राम (१ से ३ माशे) तक। अधिक मात्रामें देनेसे सिरदर्द, कानमें आवाज, दृष्टिभ्रम और वमन होता है।

●

(७४) कंकोल

फ़ैमिली : पीपेरासे (Family : Piperaceae)

नाम—(हि०) कंकोल, कंकोल मिर्च, मिर्च कंकोल; (सं०) कङ्कोलक (रा०नि०; सु० सू० अ० ४६), कङ्कोल (ल्ल); (ले०) **कूबेबा जाति (Cubeba Sp.)** ।

उत्पत्तिस्थान तथा वर्णन—यह कबाबचीनीकी जातिकी एक **लताके फल** हैं जो आकृतिमें कालीमिर्चके समान, किन्तु इससे बड़े और कम काले होते हैं। स्वाद तिक्त और चरपरा होता है। इसके फलका छिलका शीतलचीनीसे मोटा होता है। जहाँ कबाबचीनी या शीतलचीनी होती है, वहीं कंकोल भी होता है।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें **गरम** और **रूक्ष** है।

गुण-कर्म—**दीपन, वातानुलोमन**, संग्राही और वाजीकर है। **उपयोग-अग्निमान्द्य**, क्षुधाकी कमी, आनाह और **नपुंसकता**में इसे खिलाया जाता है। **अहितकर**—उष्ण (पित्त) प्रकृतिको। **निवारण**-शीतल द्रव्य। **प्रतिनिधि**—पीपल और कालीमिर्च। **मात्रा**—०.५ से १ ग्राम (४ रत्ती से १ माशा) तक।

आयुर्वेदीय मत—कंकोल कटु, तिक्त, उष्णवीर्य, तीक्ष्ण, लघु, दीपन, पाचन, रुचिकर, वृष्य तथा कफ, वात, तृषा एवं मुखकी जड़ता और दुर्गन्धका नाश करनेवाली है (सु० सू० अ० ४६; रा० नि०)। वि० दे० "कबाबचीनी"।

•

(७५) कंगनी

फ़ैमिली : ग्रामीने (Family : Gramineae)

नाम—(हिं०) कँगनी, कंगु, काकुन, टाँगुन, काँक; (अ०) दु (दि) ख़्न; (फा०) अर्ज़न; (सं०) कङ्गु (क), कङ्गुनिका, पीततण्डुल, कङ्कनी, वातल; (बं०; बम्ब०; पं०; हिं०) कँगनी; (क०) पिंगनी; (उड़ि०) टाँगुन; (म०) कांग; (गु०) बाजरी; (कों०) काउन; (सिं०) कुरहन्; (कना०) कंगुगिडा; (ते०) कोरलु; (ले०) सेटारिया ईटालिका **Setaria italica** Beauv. **पर्याय**—पानिकुम् ईटालिकुम् (*Panicum italicum Linn.*); (अं०) इटालियन मिलेट (Italian Milct)।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्षमें इसकी खेती होती है।

वर्णन—सावाँ और चेनाकी जातिका एक प्रसिद्ध अन्न जिसका दाना बाजरासे छोटा और पीले रंगका होता है।

उपयुक्त अंग—मूल और तण्डुल।

मात्रा—(मूल) ६ ग्राम से १२ ग्राम (१/२-१ तोला)।

रासायनिक संगठन—एक विषैला ग्लूकोसाइड, स्नेहमय क्षाराभ आदि।

प्रकृति—पहले दर्जेमें **शीतल**; मतांतरसे दूसरे दर्जेमें उष्ण एवं **रूक्ष**।

गुणकर्म तथा प्रयोग—इससे धातुपोषणांश कम प्राप्त होता है तथा यह उदरस्तम्भक, **मलबद्धताकारक**, शोथ आदिको विलीन करनेवाली, बाजरेसे कम **रूक्षताकारक** और **मूत्रजनन** है तथा पित्तके दस्तोंको बन्द करती है। विशेषकर इसका सत्तू घीके साथ वक्षको मृदु करता है। दूध और चीनीके साथ खानेसे कांगुन वीर्य उत्पन्न करती है। वेदनास्थलपर इसे गरमकर सेंकनेसे लाभ होता है। इसका चावल पकाकर दूध और घीके साथ खानेसे शुद्ध आहारकी प्राप्ति होती है। किसी-किसीके मतसे पकी हुई कँगनी वायुको विलीन करती, भूख बढ़ाती, धातुको शक्ति देती और स्वरको साफ करती है। **अहितकर**—विबंधकारक, अश्मरीजनक, प्लीहाको हानिप्रद और देरमें आमाशयसे नीचे उतरती है। **निवारण**—दूध, चीनी, घी और मधु। सत्तूके लिये बबूलका गोंद और मस्तगी तथा प्लीहाके लिए मस्तगी।

नव्यमत—मूत्रजनन, ग्राही (कषाय), आमवातमें इसका बाह्य प्रयोग होता है। प्रसवोत्तर वेदनाशमनार्थ इसका घरेलू औषधिकी भाँति उपयोग होता है।

आयुर्वेदीय मत—कँगनी मधुर, कसैली, रुचिकारक, स्वादु, शीतल, बृंहण, भारी, वायुजनक, पित्त एवं दाहनाशक, रूखी, टूटी हड्डीको जोड़नेवाली और घोड़ोंके लिए विशेष गुणकारी है।

(७६) कंघी

फ़ैमिली : माल्वासे (Family : Malvaceae)

नाम—क्षुप (हिं०) कंघी, कंगही, ककहिया, ककही; (अ०) मश्तुलग़ौल; (फा०) दरख़्ते शान; (वं०) पेटारी; (सं०) अतिबला, कङ्कतिका; (बि०) ककहिया; (म०) मुद्रा; (सिं०) पटतिर; (गु०) खपाट, डाबली कोसकी; (ले०) **आबूटिलॉन इंडिकुम् (Abutilon indicum** G. Don.) दूसरी जाति–**आबूटिलॉन हीर्टुम (Abutilon hirtum** G. Don.); (अं०) कन्ट्री मैलो (Country Mallow)। **पत्र**–(अ०) वर्क़ुल् मश्तुल्ग़ौल; (फा०) बर्गे दरख़्ते शानः।

बीज—(बम्ब०) बलजीज; (अ०) वज़्रुल् मश्तुल्ग़ौल; (फा०) तुख़्मे दरख़्ते शानः।

उत्पत्तिस्थान—भारतवर्षके उष्णप्रधान प्रदेश, शुष्क प्रदेश और लंका। इसके क्षुप वर्षामें उत्पन्न होते हैं।

वर्णन—यह १·५ मीटरसे १·८ मीटर (पाँच-छः फुट) ऊँचा एक मृदुलोमश क्षुप है। **पत्र**-पानके पत्रकी तरह, चौड़े, पर अधिक नुकीले, शुभ्ररोमावृत्त; पत्रप्रान्त दन्तुर, पत्तियोंका रंग भूरापन लिये हलका हरा और पत्रवृंत दीर्घ होता है। यह शरद्ऋतुमें फूलती है। **फूल** पीले और पाँच पंखड़ीयुक्त होते हैं। फूलोंके झड़जानेपर मुकुटक आकारके ढेंढ़ लगते हैं, जिनमें खड़ी-खड़ी कमरखी या कंगनी होती है। **फल** पक जानेपर एक-एक फाँकके बीच कई कालेदाने निकलते हैं। ये छोटे और चपटे होते हैं और इनका सिरा बारीक होता है। इन बीजोंमें से खतमीकी भाँति बहुत लबाब निकलता है। औषधीय व्यवहारानुसार भारतवर्षमें इनको वही स्थान प्राप्त है, जो खतमी और खुब्बाजीको यूरोप में।

रासायनिक संगठन—पत्रमें पुष्कल पिच्छिल द्रव्य (लबाब), किंचित् टैनिन, ऑर्गेनिक अम्ल और अंशतः **ऐस्पैरेंगीन** (जड़में भी ऐस्पैरेंगीन) पाई जाती है।

उपयुक्त अंश—मूल, पत्र, छाल और बीज अर्थात् पंचांग।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें **उष्ण एवं रूक्ष**।

गुणकर्म तथा उपयोग—श्वयथुविलयन, संग्राही, रक्तस्तम्भन, मूत्रजनन, वेदनास्थापन और अर्शोघ्न। **उपयोग**–रक्तष्ठीवनमें कंघीके पत्र और फलोंका शीरा और दस्तोंको बंद करनेके लिये और सूजाक में मूत्रजनन एवं दाहशमन करनेके लिए इसे सफेद जीराके साथ पीस-छानकर पिलाते हैं। दंतशूलमें इसके पत्रक्वाथसे कुल्ली कराते हैं। वातार्श और रक्तार्शमें इसके पत्तोंको कालीमिर्चके कुछ दानोंके साथ पीस-छानकर या उसका फांट बनाकर मिलाते हैं। श्वयथुविलयन (सूजन उतारने) के लिए इसके पत्र घीसे चुपड़कर और गरम करके बाँधते हैं। कंठशोथ (खुनाक) को विलीन करनेके लिए सूजनकी जगह कंघीके पत्तोंको गरम करके बाँधते हैं। इसके पत्तोंके काढ़ेसे गण्डूष कराते और तम्बाकू की जगह चिलममें रखकर धूम्रपान कराते हैं।

अहितकर—दुर्बल व्यक्तियोंको। **निवारण**–शुद्ध मधु और काली मिर्च।

प्रतिनिधि—आलूबोखारेका शर्बत और आँवलेका मुरब्बा। **मात्रा**–कंघीके पत्र ५-७ ग्राम (५-७ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—आयुर्वेदीय निघंटुओंमें इसके गुण बला (बरियरा)के समान लिखे हैं।

नव्यमत—छाल मूत्रजनन; पत्र स्नेहन; बीज स्नेहन, बल्य और स्रंसन;

मूल—मूत्रजनन और कासहर। सूजाक, मूत्रकृच्छ्र, रक्तमूत्र और बस्तिशोथमें पत्र या मूलका काढ़ा देते हैं। **नपुंसकत्वमें बीज देते हैं।**

●

(७७) कंतूरियून

फ़ैमिली : कारिओफिल्लासे (Family : Caryophyllaceae)

नाम—(हिं०; भा० बाजार; अ०; फा०) **कंतूरियून** (इ० बैं०); (यू०) Kentaurion (D. 3, 6,7); (लैं०) डिआन्थुस आनाटोलिकुस (**Dianthus anatolicus** Boiss.) (अं०) सेंटारी (Centaury)।

वक्तव्य—**कंतूरियून** रूमी 'जंतूरियः' शब्द से अरबी बनाया गया है, जिसका संकेत रूमी हकीम 'जंतूरीस' से है, जिसने सर्वप्रथम इस औषधिका पता लगाया था।

उत्पत्तिस्थान—पश्चिम हिमालय, पश्चिम तिब्बत और कश्मीरसे आर्मीनिया तक। पूर्वात्य निघंटु-ग्रन्थोंमें इसका समावेश बारीक़ चिरायता (**Erythraea centaurium** Pers.) के प्रनिनिधिरूपमें हुआ, जिससे उसका सादृश्य केवल इस बातमें है, कि इमका फूल भी उसके समान गुलाबी होता है।

वर्णन—एक क्षुद्र, शाखाबहुल, काष्ठमयडंडीयुक्त घना **गुल्म**; काण्ड १५ सें० मी० से २५ सें०मी० (६–१० इंच) लंबा, अतिकोमल, कड़ा, एक वा एकाधिक पुष्पयुक्त; **पत्र** कड़ा, महीन, बहुत मोटी मध्यशिरा एवं पत्र-प्रांतयुक्त; **पुष्प** गुलाबी होता है। भारतवर्षमें इसका आयात फारससे बम्बई होकर होता है। क्षुद्र एवं वृहद् भेदसे कंतूरियून दो प्रकारका (१) **कंतूरियून सग़ीर** (Common Centaury) और (२) **कंतूरियून कबीर** (**Centaurium officinalis**) होता है। इनमेंसे प्रथम पहाड़ी पुदीना जैसा २२–२३ से०मी० (एकबित्ता)के बराबर होता है। **पत्र** सुदाव पत्रपत्; **पुष्प** नीलापन लिए रक्तवर्णके होते हैं। **द्वितीय** के पत्र गाजरके पत्तेके समान और लम्बे एवं हरे रंगके होते हैं। पुष्प सुरमई रंगके और गोल होते हैं। यह जमीन पर फैलता है।

रासायनिक संगठन—इसमें किंचित् सैपोनिन (Saponin) होता है।

प्रकृति—दूसरे या तीसरे दर्जेमें गरम और रूक्ष है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—**कंतूरियून दक़ीक (सग़ीर)** शोषक, विरेचक, दोषोंका निर्हरण करनेवाला, व्रणशोथनाशक और लेखन है। कफजरोगों तथा संधिशूलमें और प्लीहा एवं यकृत्संशोधन करनेके लिए इसका उपयोग करते हैं। यह समस्त गुणोंमें कंतूरियून कबीरसे श्रेष्ठतर है। इसकी धूनी या इसके काढेकी बस्ति गृध्रसी, पीठके दर्द और शूलरोगके लिए अनुपम है। यह तीनों दोषोंका रेचन करती है। इसका लेप व्रणपूरक और भगंदर (बवासीर) तथा कठिन शोथको लाभकारक है। **अहितकर**-यकृत् तथा अन्त्रको। **निवारण**—अन्त्रके लिए बबूलका गोंद और कतीरा तथा यकृत्के लिए कासनी। **प्रतिनिधि**–हंसराज, अफसंतीन, जरावंद मुदहरज, बाबूना, निशोथ आदि। **मात्रा**–३.५ से ७ या १०.५ ग्राम (३॥ माशा से ७ या १०॥ माशे) तक। **कंतूरियून कबीर**–यह आवर्तजनन, आशुप्रसवकारक, मस्तिष्कसंशोधक; अवरोधोद्घाटक और आमाशयगतक्रमिनाशन है तथा श्वास, पार्श्वशूल, यकृत्प्लीहाके सुद्दों, कफज शूलरोग, जलोदर और कामलाके लिए गुणकारक है। इसका प्रलेप अर्श, अंगस्फुटन, गृध्रसी तथा पट्ठोंके शूलको निवारण करता है। **अहितकर**–मस्तिष्कको। **निवारण**–मधु, शर्करा, मिश्री प्रभृति (मतांतरसे बबूलका गोंद और कतीरा)। **प्रतिनिधि**–कंतूरियून सग़ीर, सूरंजान, रसवत और नागरमोथा। **मात्रा**–७ ग्राम से ९ ग्राम (७ या ९ माशे) तक।

(७८) कंदूरी

फ़ैमिली : कूकुरबिटासे (Family : Cucurbitaceae)

नाम—(हिं०) कुंदु(द)रु, कुनरू; (पं०; उ०) कंदु(दू)री; (सं०) बिम्बी (च०), तुण्डी, तुण्डिका (ध०नि०), तुण्डिकेरी; (बं०) तेला(ल)कुचा; (म०) तोंडले; (गु०) टिंडोरा; घोला(ली); (उड़ि०) बन कुन्दरी; (लै०) **कॉक्सीनिआ कॉर्डीफोलिआ Coccinia cordifolia** (L.) Cogn. (**पर्याय-कॉक्सीनिआ इंडिका** *Cocinia indica W. & Arn;* **सेफेलेन्ड्रा इंडिका** *Cephalandra indica Naud.)*

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष।

वर्णन—कुंदुरुकी आरोही लताएँ निःशाख तंतुओंसे युक्त होती हैं। **काण्ड**—पाँच-कोणोंवाला और **पत्तियाँ** प्रायः ३.७५ से ८.७५ सें० मी० (१॥-३॥ इंच), लट्वाकार या वृत्ताकार, ३-५ कोणों या खण्डोंवाली, चिकनी और दूर-दूर पर किंचित् दन्तुर होती हैं। पुं-पुष्प एकाकी अथवा २-४ के गुच्छोंमें बड़े और सफेद होते हैं। **फल** चिकने, मांसल और बेलनाकार, पकनेपर सुंदर लालरंगके और कच्चे रहनेपर हरे, परन्तु दस सफेद धारियोंसे युक्त होते हैं। यह जंगली (कड़वी) जिसे **पल्वल तल्ख़** या **सहराई** भी कहते हैं और लगाई हुई (मीठी) दो जातिकी होती है। **'कड़वी' औषधके लिए और 'मीठी' सागके लिए प्रयुक्त होती है।**

उपयुक्त अंग—चिकित्सामें **फल** का और शाकार्थ **पञ्चाङ्ग** का उपयोग होता है।

रासायनिक संगठन—इसमें एमाइलोलिटिक गुणविशिष्ट एक किण्व (एन्ज़ाइम enzyme), एक अन्तः-स्राव (हार्मोन hormone) और अंशतः एक प्रकारका ऐल्केलॉइड होता है, जो गुणकर्म दृष्ट्या निष्क्रिय होता है। स्वरसमें एक एमाइलेज (Amylase) होता है।

कल्प तथा योग—प्रकाण्ड और पत्रक्वाथ (१० में १), (मात्रा)—१५ ग्रामसे ३० ग्राम (१। से २॥ तोला); **सूखी छालका चूर्ण**, (मात्रा) २ ग्राम (२ माशा); **मूल-स्वरस**, (मात्रा) ४ से ८ मि० ली० (१ से २ ड्राम); **काण्ड और पत्र-स्वरस**, (मात्रा) १। से २॥ तोला खाली पेट, **मूल और पत्र-स्वरस**, (मात्रा) १ से २ तोले।

प्रकृति—पत्र सर्द और खुश्क; **फल** सर्द एवं तर।

गुण-कर्म तथा उपयोग—फल **वमनकारक**, दोषसंशोधन, मेदनाशक, **स्थौल्यहर**, संग्राही, विबन्धकारक, आध्मानकारक, वातकारक, स्तम्भनकर्ता और भारी है; तथा पित्त, कफ, **रुधिरविकार**, दमा, ज्वर, खाँसी एवं दाहको मिटाता है। कंदूरी अपने प्रभावसे बुद्धिको मंद करती है। यह सर्द तरकारी है और पिपासाको शांत करती तथा रोगियोंके लिए उत्तम पथ्याहार है, विशेषकर उष्ण प्रकृतिवालोंके लिए। फलके ऊपरका छिलका उतारकर सेवन करनेसे पेट कम फुलाती है। यह भूख बढ़ाती, रुधिर उत्पन्न करती, स्तनोंमें दूध बढ़ाती तथा अर्श और अमाशयातिसारको लाभकारी है। फूल-खुजली, पित्त और कामलाको दूर करते हैं। इसके पत्तोंका साग मधुर कषाय, तिक्त, कटुपाकी, लघुपाकी, शीतवीर्य, मलस्तम्भक, वातवर्धक और कफपित्तनाशक है। पत्तोंका खालिस रस पूयमेही को पिलाते हैं। जड़—शीतल, तर, मृदुसारक, अग्निमान्द्यकर, कफनाशक, विषप्रभाव-नाशक, स्तम्भनकर्ता और वीर्यवर्धक है तथा **प्रमेह**, हाथोंकी गर्मी, सिरका दर्द और वमनका नाश करती है। बहुमूत्ररोगमें प्रयुक्त रसायनौषधोंको इसके शुद्ध रसमें भिगोते हैं और फिर इसीके रसमें घोंटकर गोलियाँ बनाकर प्रातःकाल इसमेंसे एक गोली खिलाकर ऊपरसे इसका ताजा रस १ तोला पिला देते हैं। जड़की छालका २ मासे चूर्ण फँकानेसे अच्छी तरह दस्त लगते हैं। जड़का लाल गोंद अत्यन्त संग्राही है, परन्तु फलकी भाँति कडुआ नहीं होता। **अहितकर**—फल संग्राही, आध्मानकारक और अग्निमान्द्यकर है। मूलस्वरस उत्क्लेशकारक, वामक और

तीव्र विरेचक है तथा इससे अंगोंमें दाह होने लगता है। **निवारण**–फलके लिए उष्ण औषध और जड़के लिए इसबगोल, बिहीदाना और बारतंगका लबाब (पिच्छा)। **प्रतिनिधि**–लौकी या परवल। **मात्रा**–फल आवश्यकतानुसार।

आयुर्वेदीय मत—कड़वी कुन्दरूकी लता वमन करानेवाली तथा कफ, पित्त, रक्तविकार, शोथ, पाण्डुरोग और ज्वरको दूर करनेवाली है। उसके फल, श्वास, खाँसी, वात और कफको दूर करनेवाले तथा स्तन्य हैं। (च०;ध० नि०)।

नव्यमत—कुन्दरूकी क्रिया मूत्रेन्द्रियपर होती है। कुन्दरू स्नेहन, मूत्रसंग्रहण, व्रणरोपण और रक्तसंग्राहक है। मूलका स्वरस १ तोला अथवा मूलचूर्ण ३-६ माशा मधुमेहमें वंगेश्वर अथवा सोमनाथरसके साथ देनेसे बहुत लाभ होता है। मधुमेहमें इसका साग देते हैं। पेशाबमें सफेद स्निग्ध पदार्थ जाता हो तब मूलका क्वाथ देते हैं। वंगीय वैद्य इसकी लताके स्वरसका उपयोग मधुमेहमें वसन्तकुसुमाकर आदि रस योगोंके अनुपानार्थ करते हैं।

●

(७९) कँवला।

फ़ैमिली : रूटासे (Family : Rutaceae)।

नाम—(हिं०) **कँवला,** कौंला, कमला, **शर्बती नारंगी;** (अ०) **नारंज;** (बं०) कमला नीबू, नारंगी; (बम्ब०) नारंगी; (ले०) **सीट्रस रेटीकुलेटा** **Citrus reticulata** Blanco. (**पर्याय–Citrus aurantium** proper); (अं०) दी स्वीट ऑरेंज (The Sweet Orange)।

उत्पत्तिस्थान—भारतवर्षके अनेक भागोंमें इसे लगाया जाता है। सिलहटमें इसके जंगली वृक्ष बहुतायतसे मिलते हैं।

वर्णन—यह एक प्रकारकी बड़ी मीठी नारंगी है। इसका **पेड़** देखनेमें नारंगीके पेड़की तरह, किन्तु उससे छोटा होता है। **पत्र** कोमल और कम हरे होते हैं। **फूल** अल्प सुगन्धी; **कच्चा फल** हरा और खट्टा, तथा **पका फल** खटमिट्ठा होता है। कोई फल अधिक मीठे, पुष्ट, सुगन्धिपूर्ण और स्वादिष्ट होते हैं। किसीका छिलका पतला एवं चिकना और किसीका मोटा; किन्तु नारंगीके छिलकेकी तरह कड़ा नहीं होता है। नारंगीके छिलकेकी अपेक्षया इसमें कडुआहट भी कम होती है। मोटे छिलकेवाले से पतले छिलकेवाला उत्तम होता है। सिलहटका कौंला (कँवला) अच्छा और अधिक मीठा होता है।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें **शीत एवं तर**।

गुण-कर्म तथा उपयोग—यह **सौमनस्यजनन** और **हृदयबलदायक** है तथा **उष्ण हृत्स्पंदन**को दूर करता है। पित्त और रक्तके जोशको शान्त करता, प्यास बुझाता और आमाशय तथा यकृत्के शोथ एवं दाहको लाभ पहुँचाता है। इसका **छिलका** दीपन और बिजौरेके छिलका (पोस्त तुरंज)के समान गुणकारी है। चेहरेपर इसके लेप (उबटन) करनेसे चेहरेकी झाईंका नाश होता है। इसके फल (कँवला)का मुरब्बा स्वादिष्ट, मनःप्रसादकर और हृद्य होता है। इसके बीज बिजौरे (तुरंज)के बीजोंके समान अगदगुण विशिष्ट होते हैं। खूब पके हुए समूचे कमला नीबूको एक जगह रख दें। जब वह बिल्कुल सूख जाय तब उसे जलमें पीसकर चना प्रमाणकी गोलियाँ बना लें। विसूचिकामें जब अत्यन्त मिचली, वमन, और दस्त आते हों तब इसमेंसे ५-१० गोली खिलानेसे वे बन्द हो जाते हैं। **अहितकर**–शूलजनक है। **निवारण**–अनीसूँ। **प्रतिनिधि**–खट्टा सेव। **मात्रा**–आवश्यकतानुसार।

●

(८०) कुंदुर।

फ़ैमिली : बर्सेरासे (Family : Burseraceae)।

नाम—(हिं०; द०) कुंदुर, (यू) लिबानोस Libanos (D. 1. 31), थूओस, लिबानोटोस, ओलिबनोस; (सुर०) लबूनिया, लिबानूस; (रू०) तु(थु)स; (अ०) अल्कुंदुर, अल्-लुबान (इ० बै०४।८३), कुंदुर, बस्तज, लबानु;(फा०) कुंदुर; (सं०) कुंदुरुः; (बं०) कुंद्रो; (ले०) **बॉसवेल्लिआ फ्लोरिबुंडा Boswellia floribunda**.); (अं०) ओलिबेनम् (Olibanum), फ्रैंकिन्सेंस (Frankincense)।

वक्तव्य—लेटिन नाम वृक्षका है। **'मख़्ज़नुल् अद्विया'** में इसके भारतीय भेदका भी उल्लेख मिलता है, जो सम्भवतः आयुर्वेदीय निघंटूक्त कुन्दुरु **(शल्लकीनिर्यास)** है। दे० 'सलई'। **क़िशार कुंदुर** जिसे अरब निवासी 'कशफ़' और हिन्दी में 'धूप' कहते हैं एक भिन्न भेद माना जाता है।

उत्पत्तिस्थान—अरब, सोकोतरा (Socotra), एबिसिनिया और अफरीका आदि पश्चिमी देशोंमें इसके वृक्ष होते हैं।

वर्णन—यह एक १.८ से २.७ मीटर (२-३) गज ऊँचे कँटीले वृक्ष (अरबी शल्लकी)का गोंद है, जो कुछ कड़ुआ एवं कुस्वाद होता है। आकृति और रंगभेदसे कुंदुर ५ प्रकारका होता है : (१) **नर कुंदुर (कुंदुर ज़कर)**—इसके दाने ललाई लिए गोल, छोटे और कड़े होते हैं। **मुहीउद्दीन** के मतसे यह ललाई लिए पीले या ललाई लिये भूरे और **डीमक** के अनुसार गहरे पीले रंगके होते हैं; (२) **मादा कुंदुर (कुंदुर उन्सा)**—इसके दाने उससे बड़े, सफेद (या पांडुश्वेत अथवा पांडु पीत) और अर्धस्वच्छ होते हैं। इसे आँवल या अव्वल कुंदुर भी कहते हैं; (३) **गोल कुंदुर(कुंदुर मुदहरज)**-यह कुंदुरका ताज़ा निकला हुआ गोंद है, जिसे थैलियोंमें हिलाकर गोल अश्रुवत् बना लिया जाता है; (४) **क़िशार कुंदुर**—यह आपसमें रगड़ खानेमें पृथक् हुई निर्यासकी पतली एवं चौड़ी पपड़ी या पत्तर अथवा स्रुतनिर्यास द्वारा आच्छादित वल्कल है; (५) **दुक़ाक़ कुंदुर (कुंदुरका चूरा)**—यह शुद्ध नरम और पिसा हुआ उत्तम होता है। कुंदुरके वे कण जो आपसमें रगड़खानेसे अलग होकर कुंदुरकी थैलियोंमें गिरते हैं, बम्बईके बाजारमें इसे 'धूप' कहते हैं। **व्यापार**—बम्बई 'कुंदुर' के व्यापारकी प्रधान मण्डी है। मकुल्ल, अदन आदि समीपवर्ती बंदरगाहोंसे जहाजोंमें लादकर यह बम्बई आता है। बाजारोंमें आनेपर इसे छाँटकर विभिन्न श्रेणियोंका बनाया जाता है। इनमें सर्वोत्तम वह है जिसके दाने औरोंकी अपेक्षया बड़े, स्वच्छ और अश्रुवत् होते हैं। अन्तमें बचा हुआ चूरा इसकी अन्तिम या निकृष्टतम श्रेणी होती है। प्रथम श्रेणीका कुंदुर प्रायः पुनः विदेशोंको चला जाता है। भारतीय बाजारोंमें निम्न कोटिक श्रेणियाँ ही प्रसारित की जाती हैं। **संग्रह**—अफरीका और दक्षिण अरबमें इसके वृक्ष होते हैं। अस्तु अफरीकामें मार्चसे सितम्बर तक और अरबमें मईसे दिसम्बर तक इसका संग्रह किया जाता है। इसके संग्रहकी साधारण रीति यह है—सर्वप्रथम वृक्षके फूले हुए भागके वल्कलमें साधारण चीरा लगा देते हैं। इससे एक प्रकारका चेंप स्रवता है, जिसके कड़ा हो जानेपर उसीका संग्रह कर लेते हैं। **उत्तम कुंदुरके लक्षण**—ताज़ा, नरम, शुद्ध (अमिश्र), नर, जो ऊपरसे सफेद और भीतरसे लेसदार, सुनहला और टूटा न हो, ऐसा कुन्दुर उत्तम समझा जाता है। जो अग्निपर शीघ्र जल उठता है, वह शुद्ध समझा जाता है। असली कुन्दुरमें मस्तगीसी सुगन्ध आती है। इसके विपरीत बबूलके गोंदसे बनाया हुआ नकली कुन्दुर जलता नहीं और सनोवर गोंदसे बनाया हुआ धूआँ देता है। कुन्दुरमें २० वर्ष तक वीर्य रहता है।

उपयुक्त अंग—**कुंदुर (गोंद)**के सभी भेद, विशेषकर किशार कुंदुर जो मोटा, सुगंधित, चरपरा, सफेद, चेंपदार (पिच्छिल), ताजा और चिकना हो, वह उत्तम समझा जाता है। **कज्जल**[1] एवं पंचांग (विशेषतः पत्र)।

---

[1] इसकी कल्पनाविधि यूनानी द्रव्यगुणादर्श पूर्वार्ध भेषज कल्पनाखण्डमें देखें।

वक्तव्य—ताजा कुंदुर पिस नहीं सकता, इसलिए उसे सौंफ या दारचीनी जैसे किसी अर्क या ऐल्कोहॉलमें घोलकर और मरहमोंमें सिरकेमें भिगोकर डालना चाहिए।

रासायनिक संगठन—इसमें एक गोंद (गम) और दूसरा राल (Resin) सरीखा एक द्रव्य होता है।

कल्प तथा योग—जुवारिश कुंदुर और माजून कुंदुर।

प्रकृति—दूसरे दर्जेके आदिमें **उष्ण एवं रूक्ष**। किशारकुंदुर दूसरे दर्जेके आदिमें उष्ण और उसके अन्तमें रूक्ष; दुकाक कुंदुर, कुंदुरसे अधिक रूक्ष एवं सूक्ष्म (लतीफ़) है। कज्जल भी उष्ण एवं रूक्ष है।

गुण-कर्म—**यह वातानुलोमन, स्मृतिवर्धक, वाजीकर,** चक्षुष्य, दीपन-पाचन, संग्राही, दोषपाचन, लेखन, हृद्य, **रक्तस्तम्भन** और विषघ्न है। **उपयोग**—वातानुलोमन, दीपन, पाचन और संग्राही होनेके कारण वमन, संग्रहणी, अतिसार और प्रवाहिकामें कुंदुरका उपयोग करते हैं। रक्तस्तम्भन होनेसे गुदा, अर्शांकुर और गर्भाशय इनमेंसे किसीसे रक्तस्राव होता हो तथा बाह्य अंगोंमें हो अथवा मस्तिष्कावरणजात रक्तस्राव तथा रक्तष्ठीवनमें इसके प्रयोगसे बड़ा उपकार होता है। हृद्य होनेसे दिलकी धड़कन और स्मृतिवर्धक एवं मेध्य होनेसे बुद्धिमान्द्य तथा विस्मृति-रोगमें इसका उपयोग लाभकारी है। चक्षुष्य होनेसे इसे नेत्रमें अंजनकरनेसे दृष्टि तीव्र होती है। लेखनीय होनेसे नेत्रव्रणका शोधन-रोपण होता है। आँखमें जमा हुआ रक्त और कनीनिकाके नीचे स्थित पूय विलीन होता है। नेत्रगत अर्म, कर्कट, नेत्रस्राव, पक्ष्मशात, नेत्रशुक्ल, सिराजालक, कुथूणक, नेत्रकण्डू, धुंध और दृष्टिमान्द्य प्रभृति रोग आराम होते हैं; विशेषतः मधुके साथ लगानेसे चिप्प (दाख़स) रोगमें इसे शहदमें मिलाकर लेप करते हैं। वृष्य और वाजीकरण गुणके लिए अंडेकी अर्धभृष्ट जर्दी या विशेषकर जायफल और जावित्रीके साथ इसका उपयोग कराते हैं। विषघ्न होनेसे जनपदोध्वंसक रोगोंमें इसकी धूनी देते हैं। बस्ति और गवीनीको बलप्रद होनेसे हस्तिमेह और बहुमूत्रमें इसका उपयोग करते हैं। यह रक्त और श्वेतप्रदरमें भी प्रयुक्त होता है। यह तर कास और श्वासमें लाभकारी है और फुफ्फुस-रोगोंमें प्रयुक्त पेय औषधोंमें पड़ता है। किशार कुन्दुर सभी गुणोंमें कुन्दुरसे बढ़कर है। दुकाक कुन्दुर इनकी अपेक्षया निर्बलतर है। **अहितकर**—उष्ण प्रकृतिको। **निवारण**—सिकंजबीन और शर्करा। **प्रतिनिधि**—मस्तगी। **मात्रा १.५ से ३ ग्राम** (१॥ माशे से ३ माशे तक)।

●

(८१) कुंदुश

नाम—(अ०) कुं (क़ुं) दुस (श), ऊदुल्उतास; (फा०) बेख़ गाजुरान (रजक काष्ठ या मूल), कंदसः (शः); (सुर०) अदरना; (शीराज़ी) चोबक उश्नान; (ले०) **वेरार्लुम आल्बुम Verarlum album**।

वक्तव्य—**इब्नुल्बैतार** के कथनानुसार न '**दीसक़ूरीदूस**' और न '**जालीनूस**' ने ही इस पौधेका वर्णन किया है। फिर भी '**हुनैन**' और उसके अनुयायियोंने प्रमादवश इसको दीसकूरीदूस (D. 2.195) लिखित 'Stronthion' मान लिया है, जो एक सर्वथा भिन्न पौधा है। (इ० बै० संचि० ३ पृष्ठ १३; संचि० ४ पृष्ठ ८६)।

वर्णन—नकछिकनी से भिन्न यह एक अन्य बूटीकी जड़ है जो ऊपरसे काली और भीतरसे पीली या पिलाई लिए सफेद होती है। इसको बारीक पीसकर सूंघनेसे अत्यंत छींक आती है। ताजी और तीक्ष्णगंधी जड़ उत्तम समझी जाती है। इसमें २० वर्ष तक वीर्य रहता है।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें उष्ण एवं रूक्ष।

गुण-कर्म—तीव्र छिक्काजनन, मस्तिष्क संशोधन, कफसंशोधन, मूत्रल, आतर्वजनन और लेखन।

उपयोग—कुंदुशको अधिकतया मस्तिष्क (शिरः) रोगों, उदाहरणतः अपस्मार, सन्यास आदिमें, मस्तिष्क संशोधनके लिए उपयोग करते हैं। श्वासरोगमें वमन लानेके लिए इसका काढ़ा पिलाते हैं। लेखन होनेके कारण कतिपय त्वग्रोगोंमें इसे पीसकर लेप करते हैं। नासिकाके रोगोंमें भी इसका उपयोग करते हैं। **अहितकर**–फुफ्फुसको तथा मूर्च्छा एवं आकुलताकारक है। **निवारण**–कतीरा और ताजा दूध। **प्रतिनिधि**–समभाग मैनफल, तिहाई कालीमिर्चके साथ। मात्रा ०.५ ग्राम से १ ग्राम (४ रत्ती से १ माशा) तक।

●

(८२) कौंच, केवाँच

फ़ैमिली : लेगूमिनोसी (Family : Leguminosae)

नाम—(हिं०) केवाँच, केंवाच, कौंच (छ), खुजनी; (सं०) कपिकच्छु, कच्छुरा; (वं०) आलकुशी; (को०, संथा०) अलकुसी; (उ०) बाई-खुजली; (मा०) किवाँच; (म०) खाजकुहिली; (गु०) कौचा, कवच; (ले०) **मूकूना प्रूरीटा Mucuna prurita** Hook. (**पर्याय**–*Mucuna pruriens* Bak); (अं०) काउ-इच (Cow-itch), काउहेज (Cowhedge)।

उत्पत्तिस्थान—भारतवर्ष, अफरीका और दक्षिण अमरीका।

वर्णन—इसकी (वल्लरी) लता अपने इर्द-गिर्दके वृक्षोंपर चढ़ जाती है। **पत्र** गुरुचके पत्तेके समान (कोई-कोई समांतर असमचतुर्भुजवत् (Rhomboid) होते हैं, जिनका ऊर्ध्वपृष्ठ अरोमिल, किन्तु अधःपृष्ठ अधिलग्नसिल्की रोमिल (Adpressedly sikly pubescent) होता है तथा पत्र सहसा तीक्ष्णाग्र (Mucronate) युक्त होता है। **पुष्प** नीलरक्त होते हैं। इसमें फलियाँ लगती हैं जिनपर लगभग ०.२५ सें०मी० (१।१०इंच) लम्बे और तेज नोकदार लगभग ०.६ मि०मि० १।४० इंच व्यासके कोषयुक्त रोंये होते हैं। इनके स्पर्शमें बड़ी सावधानी बरतनी चाहिए, **क्योंकि इनके शरीरपर लगनेसे तीव्र कण्डू और दाह होता है**। यहाँ यह स्मरणीय है, कि केंवाचके संस्कृत एवं प्रायः अन्य सभी भारतीय भाषाओं तथा अंग्रेजी और इसके लेटिन बाइनोमियल नॉमन्क्लेच में जातीय नाम आदि इसी तथ्यके द्योतक हैं। **बीज** लोबियाके समान, किन्तु उससे बड़े, चिकने और कालाई लिए होते हैं। यही बीज **तुख़्म कौंचके** नामसे औषधिमें प्रयुक्त होते हैं। इनके भीतर सफेद गिरी (मग़ज़) निकलती है। इससे मिलती-जुलती इसकी एक दूसरी जाति की लता (**M. capitata** W. & A.) और है जो सहारनपुर, शिवालिकमें मिल जाती है। परन्तु इसका पुष्पव्यूह समशिख-सा और फली दुगुनी लम्बी तथा पतनशील रोमोंसे ढँकी होती है। फारसीग्रन्थोक्त हब्बुलकुलै के गुण-धर्म इसके समान लिखे हैं। इसी भ्रमवश किसी-किसीने हब्बुलकुलै को कौंच का बीज मान लिया है। किन्तु यह ठीक नहीं है। दोनों भिन्न द्रव्य हैं। इसी प्रकार पंजाबमें सफेद रंगके कौंचके बीज पंसारी बेचते हैं। यह किसी सेमकी जातिके बीज हैं न कि कौंचके बीज।

उपयुक्त अंग—बीज, मूल और फली परके बाल (फलरोम)।

प्रकृति—सरदी लिये अनुष्णाशीत।

गुण-कर्म—बीज वाजीकर, शुक्रल वीर्यपुष्टिकर और शुक्रस्तम्भन; **फली परके बाल** कृमिघ्न और रक्तिमाकर।

उपयोग—बीजकी गिरीको शुक्रतारल्य, शीघ्रस्खलन, शुक्रप्रमेह और नपुंसकताके लिए माजून और चूर्णयोगोंमें डालकर सेवन कराते हैं। **फली परके बालको** २-१ चायके चमचकी मात्रामें शहद और शर्बत आदिके साथ उपयोग करनेसे अन्त्रकृमियोंको निकालता है। मलहररूपमें यह ठीक जयपाल तैलकी भाँति कार्य करता है और इसमें कोई असुविधा भी नहीं होती। **अहितकर**–आकुलता एवं हृल्लासजनक। **निवारण** रोगन मस्तगी और बबूलका गोंद।

प्रतिनिधि—सेमलका मूसला। **मात्रा**–३ से ५ ग्राम (३ माशेसे ५ माशे)।

आयुर्वेदीय मत—केवांच मधुर, तिक्त, गुरु, वातशमन, बृंहण, बल्य, वाजीकर तथा वात, पित्त और रुधिरविकारका नाश करनेवाली है (च०; सु०; भा०; प्र०)।

नव्यमत—मूल नाड़ियोंके लिए उत्तेजक और मूत्रजनन है। गोलकृमि मारनेके लिए एक फलीके ऊपरके बाल गुड़में गोली बनाकर खिलाते हैं। दूसरे दिन विरेचन देते हैं। मूलके काढ़ेसे मूत्रका प्रमाण बढ़ता है। इसलिए वृक्क (गुर्दे)के रोगोंमें देते हैं।

●

(८३) ककड़ी

फ़ैमिली : कूकूरबिटासे (Family: Cucurbitaceae)

नाम—(हिं०) ककड़ी; (अ०) क़िस्साऽ; (फा०) ख़ियार्ज़; ख़ियार तवील (-दराज़); (सं०) कर्कटी; (ब०; म०; गु०) काँकड़ी; (लै०) कूकूमिस मेलो प्र० **ऊटीलिस्सिमुस Cucumis melo** L. var. **utilissimus** Duthie & Fuller (**पर्याय** *C. utilissimus Roxb.*); (अं०) कुकुंबर (Cucumber)। (२) **फूटककड़ी**–(हिं०) ककड़ी, फूट; (अ०) क़िस्साऽ; (फ़ा०) खियार्ज़, गाज़रूनी (-नीशापुरी; (सं०) उर्वारु, चिर्भटः; (लै०) **कूकूमिस मोमोर्डिका (Cucumis momordica L.)**; (अं०) कुकुंबर मोमोर्डिका (Cucumber momordica)।

बीज—(अ०) बज्‌रुल् क़िस्साऽ; (फ़ा०) तुख़्मे ख़ियार्ज़ः, तुख़्मे ख़ियारे दराज़; (अं०) कुकुंबर सीड्स (Cucumber seeds)।

उत्पत्तिस्थान—उत्तर प्रदेश, सीमाप्रांत, पंजाब और बंगालमें इसकी खेती होती है।

वर्णन—खीरेकी जातिकी एक बेल है। फागुन-चैतमें बोई जाती है और बैशाख-जेठमें फलती है। इसीसे इसे 'जेठुई ककड़ी' भी कहते हैं। इसके फल गोल, एक हाथ या इससे अधिक लम्बे, कुछ मुड़े हुए, पतले और उसपर लम्बाईके रुख ऊभरी हुई रेखाएँ होती हैं। रंगमें यह हरी या कुछ पीलापन लिये सफेद होती हैं। ठंढाई और यूनानी चिकित्सामें इसीके बीज काममें आते हैं। सफेद, भारी और पकी हुई ककड़ीमेंसे निकाले हुए ताजे बीज उत्तम होते हैं। इसके बीज खीरेके बीजसे उत्कृष्ट समझे जाते हैं। इसके बीज ख़रबूजेके बीजसे अधिक चौड़े, अत्यन्त सफेद, लघु, मसृण और हीकदार होते हैं। ककड़ी और खीरे दोनोंके बीजोंको **तुख़्म ख़ियारैन** (बज्‌रुल्-क़सद वल्-ख़ियार) कहते हैं। उपर्युक्त जेठुई ककड़ीके अतिरिक्त एक और ककड़ी होती है जिसे 'फूट ककड़ी' कहते हैं। इसके फल उससे बहुत मोटे होते हैं और पकनेपर फूट जाते हैं। इसकी दो फसलें होती होती हैं—बरसाती और जेठुई। साम्प्रत बाजारमें जेठुइ और फूट-ककड़ी दोनोंके मिले हुए बीज ककड़ीके बीज (**तुख़्म ख़ियार्ज़ः**)के नामसे मिलते हैं।

उपयुक्त अंग—फल और बीज।

कल्प तथा योग—आब खियार्जः।

फल—(ककड़ी)।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें **शीत एवं तर**।

गुण-कर्म—प्रधान दोषमें शीघ्रपरिणतिशील, **पित्तरक्तसंशमन**, **तृट्प्रशमन**, **मूत्रल** और **वस्तिवृक्काश्मरी निस्सारक** है।

उपयोग—ककड़ी बहुधा कच्ची खाई जाती है। यह उष्ण प्रकृतिको अधिक सात्म्य है। यह पित्त और रक्तके प्रकोपको शांत करती, प्यास बुझाती और खूब पेशाब लाती है। इसका छिलका रखने या इसको पीसकर

लेप करनेसे उष्ण सिर-दर्द आराम होता है। नेत्रके गरमशोथमें यह दोषविलोमकारी औषधका काम देता है। इसको नमक और कालीमिर्चके साथ खाना उत्तम है। **अहितकर**—चिरपाकी और ज्वरोत्पादक। **निवारण**—नमक और अजवायन। **प्रतिनिधि**—खीरा। **मात्रा**—आवश्यकतानुसार।

बीज (**ककड़ीकेबीज**)—

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें शीत एवं तर।

गुण-कर्म—सर, मूत्रल, पित्तरक्तसंशमन, तृट्प्रशमन, लेखन, स्रोतोविशोधक और मनःप्रसादकर है।

उपयोग—मूत्रल और पित्तरक्तसंशमन होनेके कारण **पैत्तिक ज्वरोंमें**, **सूजाक** और **सदाहमूत्रमें** इसका उपयोग करते हैं। आमाशय और यकृतकी उष्णता शमन करने तथा वस्तिवृक्काश्मरिको निकालनेके लिए इसे देते हैं। लेखनीय होनेके कारण मुखमंडलको कांति प्रदान करनेके लिए इसका उपयोग करते हैं। **अहितकर**—सुप्त एवं शान्तदोष प्रकोपक। **निवारण**—मधु। **प्रतिनिधि**—खीरेके बीज। **मात्रा**—५ से ७ ग्राम (५ माशेसे ७ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—ककड़ी (कर्कारु, चिर्भिट)का साग अतिसारनाशक है (च० चि० १० अ०)। ककड़ी मधुर, कड़वी, कफवातकारक, मलमूत्रकी प्रवृत्ति उत्पन्न करनेवाली, रक्तपित्तनाशक (सु० सू० अ० ४६) और पित्तनाशक एवं शीतल है तथा पकनेपर यह पित्तवर्धक एवं गरम हो जाती है (वा० सू० अ० ६)।

कड़वी ककड़ी—रस और पाकमें कटु, तिक्त, मूत्रकारक, वमनकारक तथा मूत्रकृच्छ्र और आध्मान एवं अष्ठीलाको दूर करनेवाली है।

●

(८४) फूट ककड़ी

वक्तव्य—फूटककड़ीका विशेष विवरण 'ककड़ी' शब्दमें देखें। यहाँपर केवल इसकी प्रकृति तथा गुणकर्म और उपयोग आदि दिये गये हैं।

प्रकृति—पहले दर्जेमें **शीत** एवं **तर** है।

गुण-कर्म—**मूत्रल** और **संतापहर**। इसकी **गंध** सौमनस्यजनन है। **उपयोग**—मेवाकी भाँति फूट पुष्कल खाई जाती है। इसमें पोषणांश स्वल्प है। यह गुरु, विष्टंभी और आनाहकारक तथा शीघ्र प्रकुथित हो जानेवाली वस्तु है। अस्तु, इसके प्रचुर उपयोगसे प्रकोथजन्य ज्वर उत्पन्न हो जाता है। यद्यपि इसके सेवनसे पेशाब अधिक आता है, तथापि यह किसी रोगमें प्रयुक्त नहीं होती। **अहितकर**—आमाशयके लिए। **निवारण**—गुड़ और चीनी। **प्रतिनिधि**—खरबूजा।

आयुर्वेदीय मत—फूट ककड़ी (उर्वारु) अति तृप्ति-दायक एवं रुचिकारी तथा संताप, मूत्रके रोग और मूर्च्छाका नाश करती है और अत्यन्त सेवन करनेसे वायुको कुपित करती है। (ध० नि०; रा० नि०)।

खीरा-ककड़ीके बीज (तुख्म ख़ियारैन)

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें **शीत** एवं **स्निग्ध**।

गुण-कर्म—**दाहप्रशमन**, **पित्तरक्तसंशमन** और **मूत्रल**।

उपयोग—शीतजनन और पित्तरक्तसंशमन होनेके कारण **रक्तोद्वेग**, **पित्ताधिक्य**, **उग्र पिपासा**, **आमाशयशोथ**, उष्ण कास और उष्ण ज्वरोंमें इनका शीरा (जलमें पीसकर निकाला हुआ दुधिया रस) पिलाते हैं। यह

मूत्रल भी है, इसलिए यकृत्प्लीहाके उष्ण शोथों, सदाहमूत्र और सूजाक में भी इसका उपयोग कराते हैं। यह उत्कृष्ट मूत्रजनन औषध है। **अहितकर**–शीत प्रकृतिको। **निवारण**–सौंफ और सोंठा। **प्रतिनिधि**–दोनों एक दूसरेके लिए। **मात्रा**–५ से ७ ग्राम (५ से ७ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—मूत्रकृच्छ्र (पित्तज), शर्करा, गुल्म और अश्मरी (च० चि० २६ अ०) तथा मूत्ररोधज उदावर्त एवं मूत्राघात (सु० उ० ५५, ५८ अ०)में ककड़ीके बीज (एर्वारू बीज) देनेसे लाभ होता है। सुश्रुत (चि० ३१ अ०)के मतसे मूत्रसंगमें इसके बीजोंका तेल (कर्कारु स्नेह) गुणकारक है।

●

(८५) ककोडा, खेखसा।

फ़ैमिली : कुकूरबिटासे (Family : Cucurbitaceae)

नाम—(हिं०) ककोड़ा, खे(क) खसा, ककरोल (**मख़्जन**); (सं०) कर्कोटक (की`; (पं०) ककोड़ा; (बं०) बनकरेला, काँकरोल; (म०) करटोले; (गु०) कंटोला, कंकोडा; (मा) काँटोला; (ले०) **मोमोर्डिका डिओइका Momordica dioica** Roxb.।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्षमें प्रायः जंगली होता है।

वर्णन—एक आरोही लताका प्रसिद्ध फल जो शाकके काममें आता है और वर्षाऋतुके प्रारम्भमें होता हैं। इसकी नर और नारी पुष्पोंकी लताएँ भिन्न-भिन्न होती हैं। नरपुष्पोंकी लताको '**बाँझ ककोड़ा (बन्ध्या कर्कोटकी)**' और फल देनेवाली नारी पुष्पोंकी लताओंको 'ककोडा (**कर्कोटकी**)' कहते हैं। फलके ऊपर मुलायम काँटे सदृश बाह्य वृद्धियाँ होती हैं। यह फल २.५सें०मी० से ७.५से०मी० (१ से ३इंच) लम्बा, दीर्घवृत्ताभ, और तीक्ष्णाग्र अथवा अंडाकार होता है। जड़ बहुवर्षायु एवं कन्दवत् होती है। **पत्र** हृद्वत्, अखण्ड अथवा त्रिखण्डित, प्रायः लहरदार, दंतुरधारवाले लट्वाकार तथा व्यासमें २-४॥ इंच होते हैं। **उपयुक्त अंग**–पत्र और फलका शाकार्थ एवं कंद तथा पत्रादि चिकित्सार्थ व्यवहृत होते हैं।

रासायनिक संगठन—छिलकारहित बीजमें कुछ-कुछ हरे रंगका तेल ४३.७ प्र० श० और एक तिक्त ग्लूकोसाइड होता है। राखमें मैंगेनीज होता है।

प्रकृति—ककोडा अनुष्णाशीत, किंचित् तर या **स्निग्ध** (मरतब); आयुर्वेदके मतसे उष्णवीर्य होता है। बाँझ ककोड़ा उष्ण है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—खाँसी, फेफड़ेका दर्द, जीर्णज्वर, अर्श, वृक्कशूल और पार्श्वशूलमें इसका फल और जड़ दोनों गुणदायक हैं। इसे गायके घीमें तलनेके बाद उस घीको नाकमें टपकानेसे आधाशीशीका दर्द तुरन्त दूर हो जाता है। इसका रस नाकमें टपकानेसे नाकके कीड़े मर जाते हैं। यह कानके दर्दके लिए भी गुणकारक है। ११.५ ग्राम (१ तोला) इसकी जड़ पीसकर पीनेसे वृक्कगत पथरी दूर होती है और वह पुनः उत्पन्न नहीं होने देती। बालपर इसकी जड़का लेप करनेसे बालोंकी जड़ें दृढ़ होती हैं और बालखोरेका रोग जाता रहता है। बाल बढ़ते हैं। ककोड़ा विषोंका अगद है। बाँझ ककोड़ा लघु, कफनाशक, पित्तनाशक, फोड़ा-फुन्सी निवारक, सूजन और क्षतका नाशकरनेवाला है। फल अम्ल और शीतल है। फलका रस हृद्य, क्षुधावर्धक और पित्तनाशक है। १॥ तोलेकी मात्रामें इसका कंद पानीमें पीसकर पिलानेसे वमन होकर हर प्रकारका स्थावर और जंगम विष नष्ट हो जाता है। **अहितकर**–दीर्घ पाकी और आध्मानकारक। **निवारण**–गरम मसाला और अदरक। **प्रतिनिधि**–करेला।

आयुर्वेदीय मत—खेखसा तिक्त, कटु, कटुविपाक, उष्णवीर्य, दीपन, रुचिकर तथा कफ, वात और विष-को दूर करनेवाला है। (च०; सु०; रा० नि०)। बाँझ खेखसा तिक्त, कटु, उष्णवीर्य, रसायन तथा कफ और विषका नाश करनेवाला है। (रा० नि०)।

नव्य मत—कंद रेचक नहीं है, मात्रा अधिक हो तो इससे उलटी होती है। इसमें थोड़ा रक्तसांग्राहिक गुण है। रक्तार्शमें भुने हुए कंदका चूर्ण देते हैं। मेह विशेषकर मधुमेहमें, कंदका चूर्ण वंग भस्मके साथ देते हैं। प्रलापयुक्त ऊँचे ज्वरमें इसको जलमें पीसकर शरीरपर लेप करते हैं। बिच्छू एवं सर्पदंशमें तथा कोथप्रतिबंधक रूपमें इसका उपयोग होता है। सूखे फलका चूर्ण या फांटका नस्य प्रबल छिक्काकारक प्रभाव करता है जिससे नाकसे प्रभूत द्रव निकलता है।

●

(८६) कचनाल

फ़ैमिली : लेगूमिनोसी (Family; Leguminosae)

नाम—(हिं०) कचनार (ल); (सं०) काञ्चनार, कोविदार; (पं०) कचनाल, कुलाड़; (म०) कोरल, काञ्चन; (गु०) चंपाकाटी; (बं०) कांचन; (ते०) देवकाञ्चनमु; (ता०) मंदारै; (मल०) शु(चु)पन्नमन्दारम्। भेद–(१) सफेद फूलवाला (श्वेत काञ्चनार)। (लै०) बॉहीनिया आकूमिनाटा (**Bauhinia acuminata** L.); (२) लाल फूलवाला (रक्त काञ्चनार)। (लै०) बॉहीनिया वारिएगाटा (**B variegata** L.) पुष्प बड़े, श्वेत, गुलाबी या बैंगनी; (३) कोविदार। (सं०) कोविदार; (खर०) कोइनार; (था०) कोईलार; (मिरजापुर) कोइला(ना)र; (लै०) बॉ० पर्पूरेआ(**B. purpurea** Linn.) पुष्प नीलारुण।

उत्पत्तिस्थान—भारतवर्ष। बगीचोंमें इसके वृक्ष लगाये जाते हैं।

वर्णन—यह एक १५-२० फुट ऊँचा मझोले कदका पेड़ है। पत्र गोल और सिरेपर अधिक-से-अधिक तिहाई दूरी तक कटा होता है। देखनेमें यह प्रतीत होता है, मानो दो पत्र पत्राधारकी ओरसे जुड़कर सिरेकी ओर पृथक् हो गये हों। पत्रपर बारीक-बारीक नसें उठी होती हैं। यह ३ से ५ इंच तक लम्बे-चौड़े होते हैं। माघ-फागुनमें इसका पतझड़ होता है और जेठ तक नये पत्ते आते हैं। कली लम्बी और हरी होती है। बाह्य पुटका संयुक्त भाग शेष भागके बराबर होता है। फूलमें पाँच विषमाकार पंखड़ियाँ, पाँच पुंकेसर और एक स्त्री-केसर होता है। इसमें भीनी-भीनी सुगंध होती है। पाँच दलपत्रोंमें प्रायः ४सफेद और १लाल होता है जिसमें दृढ़ मध्यशिरा होती है और आधारसे लाल बैंगनी रंगकी शिराएँ निकली रहती हैं। इसके विपरीत निर्गन्ध पुष्प श्वेतकाञ्चनार और पीत काञ्चनमें केसरोंकी संख्या १० होती है। फूलोंके रंगके विचारसे इसके निम्न भेद होते हैं :—(१) बैंगनी या गहरे गुलाबी रंगका लाल कचनार; (२) सफेद और (३) पीले फूलका। फली एक वित्ता लम्बी और चपटी होती है। कोविदारकी पत्तियाँ सिरेपर आधी दूर तक कटी रहती हैं। बाह्यपुटका संयुक्त कलिकाकार भाग शेष भागसे छोटा होता है। पुष्प गहरे गुलाबी रंगके होते हैं। पुष्पकलिकाओंका साग बनाया जाता है।

रासायनिक संगठन—छालमें एक प्रकारका टैनिक एसिड या टैनिन (Tannic acid or tannin), ग्लूकोज़ और एक भूरे रंगका गोंद पाया जाता है।

उपयुक्त अंग—कली, छाल, पत्र, पुष्प, बीज और गोंद।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें शीत एवं रूक्ष (खुश्क)। आयुर्वेदमतसे शीतवीर्य (भा०प्र०) है।

गुण-कर्म–संग्राही, अर्शोजात रक्तस्राव रोधक, अतीसारघ्न, रक्तस्तम्भन, रक्तोद्वेगसंशमन और **रक्तप्रसादन**।

उपयोग—कचनारकी कलीकी तरकारी होती है और अचार पड़ता है। इसे सालनकी भाँति पकाकर खाते हैं। यह अतिसार, अर्शोजात रक्त, आर्तवशोणित और सरुधिरमूत्रताको रोकता है। यह संग्रहणीमें भी लाभकारी है। क्वाथ और चूर्णौषध रूपमें भी इसका उपयोग करते हैं। उपर्युक्त गुणोंके लिए इसके वृक्षकी छाल प्रयुक्त होती है। रक्तप्रसादन और रक्तोद्वेगसंशमन होनेके कारण **मत्बूख़ हफ़्तरोज़ा** (सप्ताहोपयोगी क्वाथ) और आयुर्वेदीय 'काञ्चनार गुग्गुलका यह भी एक उपादान है। कण्ठ और मुखपाकमें इसके काढ़ेसे गण्डूष (गरगरा वा मजमजा) कराया जाता है, विशेषकर जब पारदवा रसकपूरके सेवनसे मुँह आया हुआ हो तब इसके काढ़ेसे गण्डूष करनेसे बहुत लाभ होता है। यह अन्त्रबलदायक है। **अहितकर**–गुरु, चिरपाकी, एवं आनाहकारक है। **निवारण**–गरम मसाला और मांस। **प्रतिनिधि**–बाकला। **मात्रा**–६ ग्राम (६ माशा)।

आयुर्वेदीय मत—कोविदार (तथा कचनार) कषाय, शीतवीर्य, ग्राही, ऊर्ध्वभागहर तथा कफ, पित्त, क्रमि, कुष्ठ, गुदभ्रंश, गण्डमाला और व्रणका नाश करनेवाला है। कचनारके फूल मधुर, मधुरविपाक, रूक्ष, ग्राहि तथा रक्तपित्त, पित्त, रक्तविकार, प्रदर, क्षय और खाँसीका नाश करनेवाले हैं। (च० सू० अ० ४, २७; सु० सू० अ० ३९; भा०प्र०)।

नव्यमत—कचनारकी क्रिया त्वचा और रसग्रन्थियोंपर होती है। कचनार ग्राही, व्रणशोधन और व्रणरोपण है। बड़ी मात्रामें देनेसे वमन होता है। गण्डमाला और अपचीमें छालका क्वाथ गूगलके साथ देते हैं। इससे व्रण धोते हैं। रोग नया हो तो इससे लाभ होता है।

●

(८७) कचरी।

फ़ैमिली : कूकूरबिटासे (Family : Cucurbitaceae)

नाम—(हिं०) कचरी, पेंहटुल, सेंध; (अ०) शम्माम, दर्दाब; (फा०) दस्तम्बूया; (ले०) **कूकूमिस डूडाइन** (**Cucumis dudain** Linn.); (अं०) कुकुंबर मैंडरास (Cucumber Madras)।

वक्तव्य—फारसी नाम दस्तम्बूया, कचरी एवं बिजौरेकी जातिके एक प्रकारके छोटेसे और सुगन्धित नीबू इन उभय अर्थोंमें प्रयुक्त होता है।

उत्पत्तिस्थान—सम्पूर्ण भारतवर्ष विशेषतः पंजाब, उत्तर प्रदेश और जयपुर आदि।

वर्णन—ककड़ी या खीरेकी जातिकी, पर उससे अत्यन्त क्षुद्र, एक बेल जो चौमासे या खरीफकी फसलमें खेतोंमें फैलती है। फूल पीले, फल छोटे ४-५ अंगुल तकके और अंडाकार लगते हैं। इसे ही कचरी कहते हैं। कच्ची कचरी हरे रंगकी वा मिले हुए सफेद और हरे (चितकबरे)रंगकी और अत्यन्त कड़वी होती है। फल पकनेपर पीले पड़ जाते हैं। इनमेंसे किसी-किसीके ऊपर लम्बाईके रुख हरी धारियाँ भी होती हैं। ये खटमिट्ठे या ईषदम्ल स्वादयुक्त हो जाते हैं। बड़ा-छोटा, लम्बा-गोल और मीठा-कड़वा इत्यादि भेदोंसे कचरी अनेक प्रकारकी होती है। कचरी प्रायः छोटी जातिके पेंहटेसे बनती है। इसके कच्चे फलोंको लोग काट-काटकर सुखाते हैं और भूनकर सोंधाई वा तरकारी बनाते हैं। जयपुरकी कचरी खट्टी बहुत होती है और कड़वी कम। पका पेंहटा अत्यन्त सुरम्य एवं सुगन्धित होता है। लोग प्रायः सुगन्ध हेतु इसे पास रखते हैं। सूँघनेके लिए हाथमें रखनेके कारण ही इसे फारसीमें 'दस्तम्बूया' कहते हैं।

उपयुक्त अंग—फल।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें **उष्ण** एवं रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—इसकी मँहक **मस्तिष्क** तथा **हृदयबलदायक** और **अवरोधोद्घाटक** है। पकी या कच्ची कचरी **मूत्रल** है। इसके कुछ दिन सेवनसे पथरी टूट-टूटकर निकल जाती है। यह मांसको गलाती है तथा वाजीकर एवं मलावरोधकारिणी है। **उष्ण, तारल्यजनन और मार्दवकरण** होनेसे यह दोषोंको संचालित करके, स्थानान्तरित या उनके उत्सर्गकी जगह खींच लाती (**जाजिब**) है। यह भोजनमें रुचि उत्पन्न करती है और आहारको पचाती है तथा कफवात और काठिन्यका नाश करती है। इसे बीचमेंसे चीर-सुखाकर और घीमें भूनकर नमक छिड़कर खाते हैं। यह खानेमें अत्यन्त रुचिकारी होती है। कचरी ताजी भी खाई जाती है। यह मांस गलानेके लिए उसमें डाली जाती है। इससे उसमें सुगन्ध आ जाती है और वह सुपाच्य हो जाता है। प्रायः पाचनार्थ एवं वायुनाशनके लिए इसे दाल आदिमें डालते हैं। इसकी धूनी अर्शके लिए परम गुणकारी है। वायुजन्य उदरशूलमें उष्णजलके साथ इसका चूर्ण एक सिद्धभेषज है। इसका छिलका चिरपाकी है। इसका बीज वायुनाशक है। यह **क्षुधावर्धक एवं वाजीकर** है तथा आशय (अहशाऽ)को बल प्रदान करता है। इसलिये दीपन-पाचन चूर्णोंमें इसे प्रायः डालते हैं। यह बाह्यद्रवोंका शोषण करती तथा अर्श, अर्धाङ्गपक्षवध और अर्दित इत्यादि वात एवं कफके रोगोंको लाभ पहुँचाती है तथा वातनाड़ीगत काठिन्य को दूर करती है। **अहितकर**–उष्ण प्रकृतिको एवं शिरःशूलजनक है। **निवारण**–धनियाँ और दही आदि। **प्रतिनिधि**–अंजीर और अंडखरबूजा। **मात्रा**–४-५ ग्राम (साढ़े ४ माशे तक)।

आयुर्वेदीय मत—**कचरी** मधुर, शीतल, रूखी, भारी, ग्राही, मलस्तम्भकारक तथा कफ, पित्त मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी, दाह, प्रमेह, वात और शोपका नाश-करनेवाली है। सभी प्रकारकी कचरी स्वादिष्ट, शीतल और वात कफकारक हैं। **कच्ची कचरी**–कडुई, किंचित् अम्ल, पाकमें मधुर (गौल्य) और दीपन है (रा० नि०)। यह मीठी, गरम नहीं, शीतल, रूखी, भारी, ग्राही, अभिष्यन्दी, विष्टम्भकारक, वातप्रकोपक तथा कफ और पित्तका नाश करनेवाली है। (रा०नि०; भा०प्र०; नि०शि०)। **सूखी कचरी**—रूखी, दीपन, रुचिकर तथा वात, कफ अरुचि और जड़ताको नाश करनेवाली है। (रा०नि०)। **पकी कचरी**–उष्ण एवं पित्तकारक है (भा०प्र०)।

◆

(८८) कटहल

फ़ैमिली : आर्टोकार्पासे (Family: Artocarpaceae)।

नाम—(हिं०) कटहर (ल); (फा०) चक्की; (सं०) पनस, कण्टक फल; (बं०; म०; गु०; बम्ब०) फणस; (ले०) आर्टोकार्पुस हेटेरोफिल्ला **Artocarpus heterophylla** Lam. (पर्याय–आर्टोकार्पुस ईंटेग्रा *Artocarpus integra* auct. non Merr; आर्टो० ईन्टेग्रीफोलिआ *Artocarpus integrifolia* auct non L. f. (अं०) इंडियन जैक-फ्रूट (Indian Jack-Fruit)।

वक्तव्य—लेटिन नाम इसके वृक्षका है। अंग्रेजी नाम फलका है। संस्कृत, हिन्दी, मराठी, गुजराती आदि नाम इसके संस्कृत नामसे व्युत्पन्न हैं तथा फल एवं वृक्षके लिए सामान्य हैं।

उत्पत्तिस्थान—यह भारतवर्षके सब गरम भागोंमें लगाया जाता है। पूर्वी एवं पश्चिमी घाटकी पहाड़ियोंपर इसके स्वयंजात वृक्ष बहुतायतसे पाये जाते हैं। यह वहाँका एक प्रधान खाद्य है।

वर्णन—यह १२ से १५ मीटर (४०–५० फुट) ऊँचे सदाबहार वृक्षका प्रसिद्ध फल है। यह गूलरकी भाँति नीचेसे ऊपर तक वृक्षकी शाखाओं, ज़ड़ और कांडसे निकलता है। फल १ वा १–१॥ हाथ लंबा और उतना ही घेराका और कभी-कभी इससे भी बहुत बड़ा, वजनमें १ सेरसे लेकर १ मन तक वजनी हो जाता है, जिसमें एकसौ तक कोये होते हैं। फलके ऊपरका छिलका बहुत मोटा होता है और उसपर बहुतसे नुकीले कंगूरे होते हैं। जिस कटहलके छिलकेपर ये कंगूरे जितने अधिक कठिन और लंबे हों उसके भीतर ये दाने उतनेही उत्तम और बड़ा निकलते हैं और मीठे भी होते हैं। फलके भीतर बीचमें गुठली होती है जिसके चारों ओर मोटे-मोटे रेशोंकी कथरियोंमें गुदार कोये रहते हैं। कोये पकनेपर बड़े मीठे होते हैं। कोयेके भीतर बहुत पतली झिल्लियोंमें लिपटे हुए बीज होते हैं ये बृक्काकार और तैलमय होते हैं। फल माघ-फागुनमें लगते हैं और जेठ-आषाढ़में पकते हैं।

रासायनिक संगठन—इसकी सूखी लकड़ीमें मोरिन (Morin) एवं सायनोमैक्लुरिन (Cyanomaclurin) नामक रञ्जकतत्व पाये जाते है। छालमें ३.३ प्रतिशत टैनिन पाया जाता है। इसके दूध (Latex) में आर्टोस्टेनोन (Artostenone) नामक स्टीरोकीटोन पाया जाता है।

उपयुक्त अंग—फल (कच्चा वा पका) और बीज।

प्रकृति—मलभूत द्रवोंके साथ दूसरे दर्जेमें उष्ण एवं पहले दर्जेमें रूक्ष (खुश्क)।

गुण-कर्म—वाजीकरण, शुक्रल और वीर्यस्तम्भन।

उपयोग—कच्चे कटहलकी तरकारी होती और अचार पड़ता है। पके फलके कोये मेवाकी भाँति खाये जाते हैं। यह आनाहकारक और चिरपाकी है। परन्तु भलीभाँति पचजानेपर बाजीकर एवं शुक्रल है। वाजीकरण हेतु इसका मुरब्बा और हलवा बनाकर भी खाया जाता है। बीजकी गिरी भूनकर खाई जाती है। **अहितकर**—सांद्र और सौदामिश्र रक्त उत्पन्न करता है।

निवारण—नमक, कस्तूरी और केसर।

आयुर्वेदीय मत–कटहल कषाय रस एवं विपाकमें मधुर, शीतवीर्य, गुरु, स्निग्ध, बल्य, बृंहण, अत्यन्त पिच्छिल, हृद्य, वीर्यवर्धक, रुचिकारक, ग्राही, दुर्जर तथा वातहर और पित्तहर एवं श्रम, दाह और शोषनाशक है। (सु०सू०अ० ४६)। कटहलकी मज्जा शुक्रल (वृष्य) त्रिदोषनाशक तथा गुल्मरोगी और मन्दाग्निवालेको विशेषरूपसे अहितकर है। (रा० नि०)। कच्चा फल-कषाय, मधुर, स्वादिष्ट (मतांतरसे नीरस), शीतवीर्य, गुरु, हृद्य, विष्टम्भी, मलस्तम्भक, वातकारक, कफ और मेदको बढ़ानेवाला (मतांतरसे घटानेवाला), त्रिदोषकारक, बलवर्धक और दाहकारक (मतांतरसे पित्तनाशक) है। कोमल कटहर दाह और वातपित्तनाशक है। अधपका कटहल रुचिदायक है। पका कटहल मधुर, स्वादिष्ट, शीतवीर्य, स्निग्ध, भारी, दुर्जर (कठिनतासे पचनेवाला), विदाही, कफवर्धक, बलवीर्यवर्धक, मांसवर्धक, बृंहण, तृप्तिकारक, धातुवर्धक, पुष्टिजनक, जन्तुजनक तथा वातपित्त, रक्तपित्त और क्षतजव्रण (क्षतक्षय) का नाश करनेवाला हैं। बीज कुछ-कुछ कषाय, मधुर, स्वादिष्ट, शीतवीर्य, भारी, वातकारक, वीर्यवर्धक, मलको बाँधनेवाले, मूत्रको निकालनेवाले और कफपित्तनाशक हैं। ये घृतके साथ स्निग्ध, हृद्य और बल्य हैं। फूल कड़वे, भारी और मुँहको शुद्ध करनेवाले हैं। (रा० नि०; भा० प्र०; नि० र०)।

नव्यमत—यह अत्यन्त सुस्वादु एवं सुप्रसिद्ध भारतीय फल है। इसे अधिक प्रमाणमें खानेसे दस्त आने लगते हैं। खाली पेट और विशेषतः सबेरे इसका खाना सर्वोपरि है। इसका कच्चाफल साधारणतया तरकारी और अचार आदि बनानेके काममें आता है। पकानेपर इसकी कढ़ी उत्तम बनती है। इसके पके फलके कोये खाये जाते हैं। अपक्व फल ग्राही और पका फल सारक होता है। अत्यन्त पौष्टिक होते हुए भी यह कुछ कठिनतासे पचता है। बीजमें जो मण्डवत् द्रव्य रहता है, वह इसको सुखाने और कूटने-पीटनेसे अलग हो सकता है। इसका भुना हुआ बीज उत्तम खाद्य है और यह अखरोटके तुल्य होता है। इसे पीसनेसे सिंघाड़ेके आटे जैसा निकलता है। वृक्षका दुधिया रस मांसके शोथ, सन्धिशोथ और विस्फोटों पर केवल या सिरकेमें मिलाकर उनके विलीनीभवन एवं सपूय-

मलकी वृद्धिके लिए लगाया जाता है। नवीन पत्र एवं जड़ चर्मरोगोंमें और मूल अजीर्णपर चलता है। जड़का काढ़ा तथा जड़से स्रावित रस द्वारा बना हुआ सांद्र पदार्थ–ये दोनो अतिसार रोगमें दिये जाते हैं। इसकी पत्तियाँ सर्प विष का अगद समझी जाती हैं।

●

(८९),(९०) कटाई छोटी व कटाई बड़ी।

फ़ैमिली : सोलानासे (Family : Solanaceae)

छोटी कटाई—

नाम,—(हिं०) छोटी कटाई (कटेरी), कंडियारी, भटकटाई, भटकइया, भुईरिंगिणी; (अ०) बादंजान बर्री (दश्ती), हदक़, शौकतुल् अक़रब, ईसिम्; (फा०) बांदगान वर्री, कटाई ख़ुर्द; (सं०) कण्टकारी, क्षुद्रकण्टा, क्षुद्रा; (बं०) कण्टिकारी; (पं०) कंडियारी; (सिं०) कांडेरी; (म०) भुईरिंगणीं; (मा०) पसरकटाई; (गु०) बेठी रिंगणी, भोरिंगणीं; (ले०) सोलानुम् सूरात्तेंसे **Solanum surattense** (पर्याय–*S. xanthocarpum* Schrad.); (अं)० वाइल्ड एग-प्लांट (Wild egg-plant)।

बड़ी कटाई—

नाम—(हिं०) बनभंटा, वनभटवा, बरहंटा; (फा०) कटाई कलॉ; (सं०) बृहती, स्थूल भण्टाकी; (बं०) व्याकुड़; (म०) डौरलैं (ली); (गु०) उभी रिंगणीं; (को०) अ (ह) न्ज़ड़; (ले०) सोलानुम इंडिकुम् **Solanum indicum** Linn.

उत्पत्तिस्थान—भारतवर्षमें पंजाबसे आसाम और लंका तक यह सर्वत्र तथा अरबमें भी होती है।

वर्णन—यह एक क्षुद्र क्षुप है जो छत्तेकी भाँति भूमिपर आच्छादित होता है। क्षुप काण्डरहित; जड़ न्यूनाधिक द्विवर्षायु; पत्र आकृतिमें बनगोभीके पत्रकी तरह प्रायः युग्म, दीर्घायताकार, पक्षाकार (Pinnatifid) वा भालाकार एवं मसृण होता है; परन्तु इसके उभय पृष्ठपर लंबे, मजबूत, सीधे और पीले काँटे होते हैं। पत्रवृंत, शाखा और पुष्पदंड इन सबपर भी सर्वत्र तीक्ष्णाग्र विपुल कंटक होते हैं। पत्रमध्यसे पुष्पस्तवक निकलते हैं। पुष्पदण्ड प्रायः इतना लम्बा होता है कि उसपर ४-६ तक एकान्तरीय, सवृंत, बृहत्, उज्ज्वल नीलवर्णके पुष्प आते हैं। पुष्पबहिरावरण (कटोरी) पर सीधे कांटे होते हैं। पुष्पदल मिलित होता है और अशाख पुष्पदंडपर स्थित होता है। दलोंके अग्र पाँच भागोंमें चीरित होते हैं। इसके मध्यमें पीले रंगके पराग-केसर और स्थूल पीतवर्णका परागकोष होता है। फल वर्तुलाकार बड़ी रसभरीकी आकृतिका अतिमसृण और नीचेकी ओर झुका हुआ होता है। कच्चा फल हरा, सफेद, या चितले रंगका होता है और उसके गात्रपर सफेद धारियां पड़ी होती हैं। पकनेपर यह पीला पड़ जाता है। बीज भंटेके बीज की तरह होते हैं। इसकी बड़ी जातिको जंगली बैंगन (बनभंटा) कहते हैं। इसका क्षुप भूमिसे उठा हुआ और बैंगनके क्षुपके समान होता है। औषधमें बहुधा छोटी कटाई प्रयुक्त होती है।

रासायनिक संगठन—फलमें वसाम्ल, (Fatty acid), मोम और एक क्षारोद तथा सूखेपत्रमें एक क्षारोद और सैन्द्रियकाम्ल प्रभृति द्रव्य होते हैं।

उपयुक्त अंग—पंचांग, फूल, केसर, फल, बीज और मूल।

प्रकृति—तीसरे दर्जे में उष्ण एवं रूक्ष। आयुर्वेद के मत से उष्णवीर्य एवं रूक्ष (भा० प्र०)।

गुण-कर्म—विरेचन, रक्तप्रसादन, उदर कृमिनाशन और कृमिदन्त नाशन है। इसका नस्य अपस्मारहर, अपतन्त्रकहर, श्लेष्मनिःसारक ओर कफज्वरनाशक है।

उपयोग—विरेचन एवं रक्तप्रसादन होने के कारण कुष्ठ तथा फिरंग (आतशक) आदि रक्तविकार जनित व्याधियों में इसको पिलाते हैं। आतशक और रक्तविकार जन्य रोगों में प्रयुक्त **मत्बूख़ हफ़्तरोज़ा** (साप्ताहिक क्वाथ) का एक उपादान छोटी कटाई का पंचांग भी है। उदरक्रमिनाशन होने से यह उदरज क्रमियों को मारकर उत्सर्गित करती है। क्रमिदंत में इसके फल को चिलम में तम्बाखूके स्थान में रखकर पीने से क्रमि मर जाते हैं और दर्द शान्त हो जाता है। मृगी और अपतन्त्रकके आवेगमें इसका शीरा नाकमें अवपीड़ करने से रोगी होश में आ जाता है। श्लेष्मनिःसारक होने से कास और कफज कृच्छ्रश्वास में यह विविध प्रकार से उपयोग कराई जाती है। कफज्वर में अन्य औषध-द्रव्यों के साथ इसकी जड़का क्वाथ पिलाया जाता है। मात्रा ५ से ७ ग्राम (५ माशे से ७ माशे तक) (क्वाथ में)।

आयुर्वेदीय मत—**छोटी कटेरी** तिक्त, कटु, लघु, रुक्ष, उष्णवीर्य, सारक, दीपन, पाचन, कण्ठ्य, हिक्कानिग्रहण, कासहर, शोथहर, शीतप्रशमन, अंगमर्दप्रशमन तथा खाँसी, श्वास, ज्वर, कफ, वात, पीनस, पार्श्वशूल, क्रमि और हृद्रोगका नाश करनेवाली है। कटेरीके फल तिक्त, कटु, विपाकमें कटु, शुक्रविरेचन, भेदन, पित्तकर, अग्निकर, लघु तथा कफ, वात, कंडू, खाँसी, मेदोवृद्धि, क्रमि और ज्वरको दूर करने वाले हैं। (च० सू० अ०४, सु०सू०अ० ३८; भा० प्र०)। **बड़ी कटेरी**–कटु, तिक्त, उष्णवीर्य, दीपन, पाचन, हृद्य, ग्राही तथा वात, कफ, ज्वर, कुष्ठ, श्वास, कास, मुखका वैरस्य और मल, अरोचक तथा शूलका नाश करनेवाली है। (च०सू०अ०४; सु० सू० अ० ३८; कै० नि०)।

नव्यमत—**छोटी कटेरी**, स्वेदजनन, ज्वरघ्न, मूत्रजनन और कफघ्न है। बीज वेदनास्थापन है। इससे गले और श्वासनलिकाका सूखापन कम होकर कफ छूटने लगता है। इसलिये गले और श्वासनलिकाके शोथकी प्रथमावस्था में इसका प्रयोग करते हैं। स्वेदजनन और ज्वरघ्न होनेसे सर्दी-जुकाममें इसको देते हैं। दाँत सड़कर होनेवाले दंतशूलमें और बवासीर (अर्श) सूजकर होनेवाले दर्दमें छोटी कटेरीके बीजोंकी धूनी देते हैं। **बड़ी कटेरीकी** जड़का कफ रोगमें उपयोग करते हैं। इससे ज्वर कम होता और पेटके वायुका दर्द और मरोड़ कम होता है तथा पेशाब ठीक होता है।

फलचूर्ण अग्निदीपक माना जाता है। शिरःशूलमें फलको मस्तकपर लगाया जाता है और कासमें पंचांग विशेषतः वातिक कासमें यह बहुत उपयोगी पाया गया है।

●

(९१) कतरान।

फ़ैमिली : पीनासे (Family : Pinaceae)

नाम— (हिं०) कातरान, क़ील; (उ०) चुड़ैलका तेल; (यू०) (D. 1.105); (अ०) क़ (क़ि) त्रान, क़त्रान शजरी (चोबी; सनोबर), ज़िफ़्त रतब; (फा०) **क़त्रान चोबी**; (लै०) पिक्स लिक्विडा (Pix liquida); (अं०) टार (Tar), वुड-टार (Wood Tar), पाइन टार (Pine Tar), स्टाकहोम टार (Stockholm Tar)।

वक्तव्य—(१) **कॉतरान** कतरान का अपभ्रंश है। 'पिक्स लिक्वडा' का समीचीन अरबी पर्याय '**अज़्ज़िफ़्तुस्साइला**' या '**ज़िफ़्त रतब**' और टारका 'क़त्रान' प्रतीत होता है। ज़िफ़्त और क़त्रानके अर्थमें यह भेद है 'ज़िफ़्त' ऐसे द्रवको कहते हैं जो वृक्षके तनेमें से स्वयं या चीरा देनेसे निकले। परन्तु जब उसे किसी विशेष विधिसे प्राप्त करते हैं तो उसे 'क़त्रान' कहते हैं। पिक्स लिक्विडा अर्थात् टारको भी विशेष विधिसे निकालते हैं। अस्तु, इसका ठीक पर्याय क़त्रान ही हो सकता है।

(२) यूनानी वैद्यकमें 'ज़िफ़्तेरतब' को 'क़त्रान' भी कहते हैं (देखो मुहीत आज़म में ज़िफ़्त और क़त्रानका विवरण)। ग्रन्थिकृत, क्वथित और घनीकृतको श्याम, स्पेन और बाबुलनिवासी **ज़िफ़्त व ज़िफ़्त स्याह** कहते हैं।

(३) बहरुल् जवाहिर में कतरानका हिन्दी नाम (चुड़ैलका तेल) और **मुहीत आज़म** में 'क़ान्क़रान्' जो कत्रानका अपभ्रंश (विकृत रूप) है।

उत्पत्तिस्थान—फ्रांस, पुर्तगाल और यूनान आदि।

वर्णन—यह एक प्रकारका कालापन लिये भूरे रंगका गाढ़ा या अर्धतरल अलकतरेकी तरहका पदार्थ है। इसकी गंध विशेष प्रकारकी और सुगन्धयुक्त होती है। यह एक प्रकारके चीड़ (Pinus sylvestris), या सनोबर बर्री (शर्बीन) तथा अन्य प्रकारके देवदारु जातीय वृक्षकी लकड़ीके काण्ड एवं मूलसे विघटक आसवन (Destructive distillation) की विधिसे[1] परिस्रावित किया जाता है। इसका आपेक्षिक गुरुत्व १.०२ से १.१५ है। जलमें डालकर हिलानेसे इसकी रंगत हल्की भूरी और प्रतिक्रिया अम्लतायुक्त हो जाती है। **इब्नबैतार** के अनुसार उत्तम कत्रान वह है जिसकी गंध अप्रिय हो और जिसे भूमिपर टपकानेसे उसके बिन्दु स्थिर रहें, फैले नहीं।

वक्तव्य एवं भेद—**हकीम दीसकूरीदूस** यूनानीने दो प्रकारके कतरान–(१) **कत्रान सनोवर** और **कत्रान फर्आर** का उल्लेख किया है। जैसा पहले कहा गया है कतरानको 'ज़िफ़्त रतब' भी कहते हैं। अरबी यूनानी वैद्यकीय (तिबके) ग्रन्थोंमें चतुर्विध जिफ़्तका उल्लेख पाया जाता है। जैसे–(१) **ज़िफ़्त रतब**, (२)**ज़िफ़्त याबिस**; (३)**ज़िफ़्त ज़बली** और (४) **ज़िफ़्त बहरी**। इनमें ज़िफ़्त रतब या कतरान तो वही है जिसका यहाँ वर्णन हो रहा है। भेद केवल यह है कि जब यह वृक्षके तनेमें चीरा लगानेसे या स्वयमेव निकलता है तब इसे **ज़िफ़्त रतब** और जब विशेष विधिसे परिस्रावणकर निकालते हैं तब क़त्रान कहते हैं। जब इसे धूप या आगपर उड़ा कर शुष्क कर लिया जाताहै, तब इसे '**ज़िफ़्त याबिस**' कहते हैं। ज़िफ़्त जबली से कत्रान मादनी (**खनिज कतरान या अलकतरा**) विवक्षित होता है। जिफ़्त बहरी भी वस्तुतः जिफ़्त जबली या कीरकी ही एक किस्म है या संभवतः कतरान सनोबर बहरी हो।

मतभेद एवं परिचय—वैद्यकीय ग्रन्थोंमें कत्रानके स्वरूपपरिचयके विषयमें कतिपय प्राचीन अन्वेषकोंकी केवल शाब्दिक मतभिन्नता है,वास्तविक या अन्वर्थक नहीं। क्योंकि'अरअर' और 'तनूब'(जिसको मुहीत आज़म आदिमें तंबूत लिखा है) ये समस्त सनोवरके भेद हैं, यथा—(१) **हकीम बोलस** अरअरको कत्रान वृक्ष कहते हैं; (२) **हकीम मुहम्मद बिन मुहम्मद** भी अरअर को शर्बीन या कत्रान वृक्ष बतलाता है; (३) **इब्न मासूया** 'शर्बीन' को सनोबरका एक भेद लिखता है, (४) **मिन्हाजुल् बयानका** लेखक लिखता है कि कत्रान कत्रानवृक्षोत्थ स्नेह (तैल) है तथा उसको अरअर, अनम और तनूब आदिसे भी प्राप्त करते हैं। परन्तु जो अरअरसे निकलती है वह अत्युत्तम होती है और तनूबसे प्राप्त निकृष्टः; (५) **क़िताब मालायसअ**का लेखक लिखता है कि शर्बीन कत्रान वृक्ष है, सनोबरके भेदोंके अंतर्भूत है, इत्यादि। फलतः उल्लिखित उपर्युक्त शाब्दिक मतभेदसे इसके स्वरूप-परिचय (माहियत)में कोई अन्तर नहीं आता। प्रत्येक श्रेष्ठ हकीमका कथन स्वयमेव यथार्थ एवं सत्य है।

विलेयता—एक भाग कत्रान १० भाग सुरासार (९० प्र०श०) में और किसी कदर रोग़न जैतून तथा रोग़न तारपीन में विलीन हो जाता है।

---

[1] ऊँची जमीन या टीलेपर गढ़ा खोदकर उसके भीतर चतुर्दिक् पकी ईंट और चूनेकी दीवार खड़ीकर देते हैं। इस गड़ेके भीतर ऐसे काष्ठ (तने) वा जड़ोंको बन्द आँच देनेसे टार या कत्रन प्राप्त होता है। इस विधिको विघटक तिर्यक् परिश्रवण विधि कहते हैं। यह आयुर्वेदोक्त पातालयन्त्रका ही एक रूपान्तर है।

रासायनिक संगठन—इसका रासायनिक संगठन अत्यन्त जटिल है। इसमें क्रियोजोट (Creosoet-oil of Tar) या क्रेसोल, फेनोल, ऑइल ऑफ टर्पेन्टाइन (तारपीनका तेल), शुक्ताम्ल, पाइरोकैटकोल, टोलुएन, जाइलोल, एसीटोन, मीथिलिक एसिड, ग्वायकोल और राल (रेजिन) ये द्रव्य होते हैं।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें उष्ण और पहले दर्जेमें रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—इसका वाह्य प्रयोग श्वयथुविलयन, शोणितोत्क्लेशक और कोथप्रतिबन्धक है। इसे त्वचापर निरंतर लगानेसे तीव्र जलन होने लगती है और फुंसियाँ निकल आती हैं। आंतरिक उपयोगसे यह फुफ्फुसोंपर कोथप्रशमन और श्लेष्मनिःसारक प्रभाव करता है। परन्तु अधिक मात्रामें उपयोग करनेसे पाचनकी शक्ति खराब हो जाती, वमन आता, उदर और शिरमें दर्द होने लगता है। ग्रन्थि विलयन, वाजीकरण और गर्भाशयसंशोधन इसके प्रधान कर्म हैं।

उपयोग—बाहरी तौरपर लगानेसे यह रक्तको बाहर त्वचाकी ओर आकर्षित करता है, इसलिए इसको अकेला या अन्य औषधद्रव्यके साथ वाजीकरण एवं शिश्नको स्थूल करनेवाली तिलाओंमें मिलाते हैं। इसके अतिरिक्त मलहरोंमें सम्मिलित करके कतिपय व्रणों और त्वग्रोगों, जैसे–किलास, चंबल, विर्चाचिका और दद्रुपर लगाते हैं। अंगोंकी कठिनता, विशेषकर गर्भाशयकाठिन्यमें उपयुक्त द्रव्योंके साथ इसकी गोलियाँ बनाकर खिलाते हैं। कफघ्न और श्लेष्मनिःसारक होनेके कारण श्वास और कासमें उपयुक्त औषधद्रव्योंके साथ इसकी गोलियाँ खिलाते हैं। इससे कफकी उत्पत्ति कम हो जाती और उसका उत्सर्ग सुगम हो जाता है। अहितकर–फुफ्फुस और शिरोरोगों में। निवारण–कतीरा, बनफ्शा और बबूलका गोंद। प्रतिनिधि–कीर और ज़िफ़्त रतब। मात्रा–१ ग्रामसे २ ग्राम (१ माशेसे २ माशे) तक।

(९२) कताद और कतीरा।

फ़ैमिली : लेगूमिनोसी (Family : Leguminosae)

नाम—वृक्ष (अ०) क़ताद, शज्रतुल् क़ुद्स (पवित्र वृक्ष), मिस्वाकुल् अब्बास (अब्बासका दंतधावन), मिस्वाकुल् मसीह (मसीहका दातून); (फा०) कुन, नवारिस, क़वीह; (लै०) हेराती कतीरेका वृक्ष–आस्ट्रागालुस हेराटेन्सिस **Astragalus heratensis** Bunge; ईरानी कताद-आस्ट्रागालुस स्ट्रोबिलीफेरा **Astragalus strobilifera** Royle.

(२) **निर्यास**—(हिं०) कतीरा; (फा०) कतीरा; (अ०) अल्कतीरा, हलूसिया (इ०बै० २/३०), कसीरा; (अं०) परसियन ट्रैगाकान्थ (Persian Tragacanth), गम ट्रागाकान्थ (Gum Tragacanth)।

वक्तव्य—(१) डीमकने हेराती कतादका फारसी नाम 'गबिना' और इरानीका 'कोन' लिखा है। किसी-किसीके मतसे हेरातीका फारसी नाम 'कोन' और इरानीका 'कुम' या 'बालिशे आशिकाँ (माबश आशिक़ाँ)' और अरबी 'मिस्वाकुल् अब्बास' है। प्रायः अरबी-फारसीके कोषोंमें 'कतीरा' को फारसी भाषाका शब्द लिखा है, जिससे कसीरा अरबी बनाया गया है। परन्तु उम्दतुल् मुह्ताज के संकलनकर्ता लिखते हैं कि कतिपय हकीम इसे यूनानी 'ट्रागाकंथा' (Tragacantha–'तरागाकन्सा) शब्दका अरबी उल्था बतलाते हैं, जिससे अंग्रेजी ट्रैगाकन्थ व्युत्पन्न है। यह ट्रैगाकंथके प्रतिनिधि द्रव्यकी भाँति काममें आता है। (२) यूनानी ट्रैगाकैन्था शब्दका धात्वर्थ (ट्रागोज = छाग,

बकरा, अकन्था = कन्टक) 'छागकण्टक' या छागशृंग' हैं। इस वृक्षके काँटे छागशृंगवत् लंबे और सीधे होते हैं, इसलिये इसे उक्त नामसे अभिधानित किया गया। 'तरागाक़न्सा' यूनानी 'ट्रागाकैंथा' शब्दका अरबी रूपान्तर है, जिसे मुहीत आज़ममें कतीराके विवरण में प्रमादवश 'तराग़ामस्या' लिखा है।

उत्पत्तिस्थान—फारस, एशिया माइनर, ।

वर्णन—यह एक दृढ़ एवं कंटकाकीर्ण वृक्ष है, जिसके काँटे अत्यन्त तीक्ष्ण और नीचेकी ओर झुके हुए होते हैं। कांड कंटकशून्य होता और देखनेमें बाँसकी तरह प्रतीत होता है। ऊँट इसे नहीं खाते, किंतु जब अनावृष्टिके कारण चारेका अभाव रहता है, तब वे इसे खानेके लिए बाध्य होते हैं। इसके चरनेसे पशु मोटे हो जाते हैं। इसका फूल पीले रंगका होता है और उसमें लाल टुकड़े होते हैं। फूलमेंसे इसका फल निकलता है जिसका रंग छुहारेकी गुठलीकी तरह होता है। किताबोंमें इसके जो चित्र दिये हैं, उन्हें देखनेसे यह प्रतीत होता है, कि इसके काँटे सीधे, नुकीले और बहुत लम्बे होते हैं। कतादके पेड़ ईरान और हेरातमें पुष्कल होते हैं। उक्त स्थानभेदसे ही कतादके भी दो भेद (हेराती और ईरानी) यूनानी ग्रन्थोंमें स्वीकार किये गये हैं। इनमेंसे प्रथम भेद अर्थात् हेरातीको वैज्ञानिक भाषामें (**Astragalus heratensis** Bunge) अर्थात् कून या हेराती कतीरा वृक्ष और द्वितीय भेदको वैज्ञानिक भाषामें (**Astragalus strobilifera**) और अरबी एवं फारसीमें क्रमशः मिस्वाकुल् अब्बास और दरख्ते कुम्म वा बालिश आशिक़ाँ कहते हैं। 'कताद' नामसे मख्जनुल् अदविया और मुहीत आज़ममें कतीरा वृक्षका वर्णन किया गया है। गीलानीके अनुसार इन वृक्षोंमें चीरा देनेसे गुलूनिर्यासवत् एक प्रकारका गोंद निकलता है जिसे फारस निवासी कतीरा कहते हैं। कतीरा गुलूनिर्यासकी तरहका एक गोंद है जिसके पिलाई लिये सफेद, कड़े, स्वाद एवं गंधरहित विभिन्न आकार-प्रकारके फीताकी आकृतिके टुकड़े या पत्रक (Flakes) होते हैं। इसका चूर्ण बनाना सहज नहीं है। यह सुरासार और ईथरमें अविलेय और जलमें स्वल्प विलेय होते हैं। जलमें यह फूल जाते हैं। कुलू गोंदके पांडुपीत टुकड़े प्रायः कृमिकी आकृतिके होते हैं, जिनमें छालके टुकड़े मिले होते हैं। वक्तव्य–पाश्चात्य वैद्यकमें प्रयुक्त "ट्रैगाकान्थ" भी कतादकी ही एक अन्य जातिके वृक्षका गोंद है जिसे लेटिनमें आस्ट्रागालुस गम्मीफेरा (**Astragalus-gummifera** Labill.) कहते हैं। इसके वृक्ष एशिया माइनरमें होते हैं। उत्तर भारतवर्षके कश्मीर, पंजाब और अफगानिस्तान आदि प्रान्तोंमें भी कतादकी कतिपय जातियोंके वृक्ष (**A. tribuloides** Del.; **A. multiceps** Wall.; **A. Strobiliferus** Royle) होते हैं। इनके अतिरिक्त भारतवर्षमें 'गुलू' वा 'कुल्ली' (स्टेर्कूलिआ ऊरेंस **Sterculia urens** Roxb.) और 'पीली कपास' या 'गलगल' (कॉक्लोस्पेर्मुम रेलीजिओसुम **Cochlospermum religiosum** (L.) Alston.) नामक वृक्षोंसे भी बिल्कुल विदेशी कतीराकी तरहका ही गोंद प्राप्त होता है। यह अब प्रायः उसके स्थानमें और कतीरा नामसे ही प्रयुक्त होता है। देशी कतीरा, विदेशी कतीरेका उत्तम प्रतिनिधि पाया गया है। इसे 'कतीरा हिन्दी' कहना चाहिये, क्योंकि गुणतः समान होनेपर भी वानस्पतिक परिचयकी दृष्टिसे दोनोंके प्राप्तिसाधन वृक्ष भिन्न हैं। विदेशागत कतीराका आयात फारससे बम्बईमें होता है।

इतिहास—प्राचीन यूनानी और इस्लामी वैद्योंको इस गोंदका भलीभाँति ज्ञान था। अस्तु, हकीम सावफ़रिस्तुस तथा हकीम दीसकूरीदूस यूनानी एवं मसीही व इब्नसीना और हाजी जीनुल्अत्तार प्रभृतिने इसका वर्णन किया है।

उपयुक्त अंग—मूल, पत्र और निर्यास (कतीरा)।

कल्प तथा योग—कैरूती कतीरावाली, सफूफ गोंद कतीरावाला।

प्रकृति—गरमी और सर्दीमें अनुष्णाशीत और पहले दर्जेमें तर है।

गुण-कर्म—रक्तस्तम्भक, पिच्छिल और मृदुसारक, दाह एवं संतापको शमन करता, बृंहण और उरोमार्दवकर है।

उपयोग—त्वचाको मृदु एवं कोमल बनाने और उसका खरत्व दूर करनेके लिये उपयुक्त द्रव्योंके साथ कतीरेका लेप किया जाता है और फटे हुए होठोंपर लगाया जाता है। पिच्छिल होनेके कारण उपयुक्त द्रव्योंके साथ इसकी वर्ति बनाकर नेत्रव्रण और नेत्राभिष्यंदमें नेत्रके भीतर लगाते हैं। आंतरिक रूपसे शारीरिक संताप एवं दाहको शमन करनेके लिए इसको शर्बतोंमें मिलाकर या इसका फालूदा बनाकर खिलाते हैं। विरेचन औषधोंकी तीक्ष्णता और उष्णता निवारणके लिए भी इसे सम्मिलित करते हैं। **रक्तष्ठीवन, गरम खाँसी, उरोकंठके खरत्व, फुफ्फुसव्रण** और **स्वरभंग**में इसे गदही या बकरीके ताजा दूधके साथ खिलाते या उपयुक्त औषधियोंके साथ शर्बतादिमें मिलाकर चटाते हैं अथवा गोलियोंमें योजित करके मुखमें रखकर चूसते हैं। शरीरकी पुष्टिके लिए मीठे बादामकी गिरी, निशास्ता, शर्करा और कतीरा समप्रमाणका चूर्ण बनाकर दूधके साथ खिलाते हैं। अन्त्रव्रण, मूत्रावयवव्रण और बस्तिक्षोभमें शांति एवं पैच्छिल्यजननके लिये इसका उपयोग करते हैं। अहितकर—निम्न भागके रोगोंमें अहितकर है। निवारण—अनीसूँ। प्रतिनिधि—बबूलका गोंद। मात्रा—१ ग्रामसे ३ ग्राम (१माशा से ३माशे) तक।

●

(९३,९४) कद्दू और तितलौकी।

फ़ैमिली : कूकूरबिटासे (Family : Cucurbitaceae)।

नाम। (१) मीठा कद्दू—(हिं०) कद्दू, लौआ, लौकी, घिया; (यू०) Kolokunthro (D.2.161); (अ०) अल्कर्अ् (ई०बै०), क़र्अ्, क़र्उल् हुलुव्व; (फा०) कदूए दराज़, कदूए शीरीं, खियार कदू; (सं०) अलाबू; (ले०) **कूकूरबिटा लाजेनारिया (Cucrubita lagenaria** Linn.); (अं०) स्वीट या व्हाइट गोर्ड (Sweet or White Gourd)। बीज—(अ०) बज़्रुल्, क़र्अ्; हब्बुल् क़र्अ; (फा०) तुख़्म कद्दू, तुख़्म कदूये दराज़। इससे मीठी लौकीके बीज विवक्षित होते हैं।

(२) तिक्त कद्दू—(हिं०) तितलौकी, तुंबी, तुंबड़ी; (अ०), क़र्उल् मुर्र; (फा०) कदूए तल्ख़; (सं०) कटुतुम्बा; तिक्तालाबू; (बं०) तितलाउ; (म०) कडुभोपला; (गु०) कड़वी; (मा०) कड़वी तुमड़ी (तूबी); (ले०) **लाजेनारिआ सिसेरारिआ Lagenaria siceraria** (Mol.) Standl (पर्याय–*Lagenaria vulgaris* Ser.; *L. leucantha* Rusby, *Cucurbita siceraria* Mol. ; (अं०) दी बिटर या बाट्ल गोर्ड The Bitter or Bottle-Gourd)।

उत्पत्तिस्थान—संपूर्ण भारतवर्षमें इसकी बेल लगाई जाती है या जंगली होती है।

वर्णन—कद्दू (लौकी) एक प्रसिद्ध फलशाक है। यह कूष्मांडजातीय एक बेल है, जो बहुत विस्तृत होती और वृक्षादिके आश्रयसे या भूमिपर प्रतान-विस्तार करती है। इसमें सफेद फूल आते हैं। स्वाद एवं आकृति भेदसे फल अनेक प्रकारके होते हैं। परंतु सभी प्रकारके कद्दूके फलके ऊपरका छिलका बहुत कड़ा, मोटा और काष्ठीय होता है। फलका गूदा स्पंजवत् और सफेद होता है। मीठा और कड़आ भेदसे यह दो प्रकारका होता है। कड़ुए कद्दू या लौकीको तितलौकी कहते हैं। यह मीठे कद्दूमें मीठा और कडुयेमें अत्यंत कड़ुआ होता है। बीज भूरे चपटे, अंडाकार, सिरेपर त्रिखंडयुक्त होते हैं। बीजकी गिरी सफेद, स्नेहमय और मीठी होती है। परन्तु तितलौकीके बीजकी गिरी तिक्त होती है।

यूनानी वैद्यककी पुस्तकोंमें जहाँ कदूए शीरी या क़र्उल्हुलुव्व लिखा होता है, वहाँ कदूए दराज़ (लौकी) ही विवक्षित होता है। व्यवहारोपयोगी एवं उत्कृष्ट लौआ वह है, जो सफेद, कोमल, ताजा एवं मधुर हो और जिसमें रेशे न हों, जो न बहुत बड़ा हो और न बहुत छोटा। जड़ पतली, लंबी किंचिन्मधुर और मदकारी होती है।

उपयुक्त अंग—फल, बीज, बीजोत्थ तेल (रोग़न मग्ज़ तुख्म कद्दू-दुह्न हब्बुल क़र्अ) और मूल। कद्दूका मुरब्बा (मसीर) भी बनाते हैं।

मीठा कद्दू (लौआ)—

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें शीत एवं तर।

गुण-कर्म—यह शीघ्रपाकी, लघु, अल्पपोषण (क़लीलुल् ग़िजाऽ), मूत्रल, सर, शीतजनन, स्निग्ध तथा पित्तकी तीक्ष्णता और रक्तके प्रकोपको शान्त करनेवाला है।

उपयोग—इसको अधिकतया अकेले या मांसके साथ पकाकर खाया जाता है। रक्त और पित्त प्रकृतिवालों के लिए यह सात्म्य आहार है। यह रक्तज और पित्तज ज्वरों, उष्ण कास, उरःक्षत, राजयक्ष्मा तथा उन्माद और मद (मालिन्ख़ोलिया) जैसे उष्ण (पित्तजन्य) रोगोंमें गुणकारी है। स्निग्ध और दाहप्रशमन होनेके कारण इसका गूदा या छिलका सन्निपात (सरसाम), गरम सिर-दर्द, उन्माद और मदमें मस्तक एवं मूर्धापर रखनेसे लाभ पहुँचाता है। पुटपाकक्कृत कद्दू का रस,[1] (आबे कद्दू या माउल् क़र्अ) राजयक्ष्मा और उरःक्षतमें पिलाया जाता है। यह दाह और पिपासाको शांत करता है। अहितकर–गुरुत्व और शूलकारक हैं। निवारण–ऊद हिंदी और लौंग। प्रतिनिधि–पेठा, पालक और कुलफाका साग। मात्रा–कद्दूका रस (आबे कद्दू)–५८ ग्राम से ११६ग्राम (५ तोले से १० तोले) तक।

बीज—(प्रकृति) दूसरे दर्जेमें शीत एवं तर।

गुण-कर्म—स्निग्ध, दाहप्रशमन, बृंहण, मेध्य, उरोमार्दवकर, पित्तरक्तसंशमन और मूत्रल है।

उपयोग—उपर्युक्त गुणकर्मके कारण कद्दूका बीज या कद्दूके बीजकी गिरी (मग्ज़तुख़्मेकद्दू) शरीर एवं वृक्ककार्श्य, रक्तोद्वेग, पित्तोल्बणता, पिपासा, आमाशयशोथ, उष्ण ज्वर, कंठनलिका एवं फुफ्फुसीय खरत्व, गरम खाँसी, रक्तनिष्ठीवन और उष्णज्वरों में अधिकतया शीरा निकालकर पिलाई जाती है। यह शरीर को मोटा करती है। शीत एवं स्निग्ध होनेसे यह अनिद्रा एवं मस्तिष्कगत रूक्षतामें पान-लेप और नस्य रूपमें प्रयुक्त होती है। मूत्रजनन होनेसे सदाहमूत्र (सोज़िश बौल), सूज़ाक और मूत्रकृच्छ्रमें इसका शीरा निकालकर पिलाया जाता है। बीजोत्थ तेल (रोग़न मग्ज़ तुख़्मकद्दू) अनिद्रा, रूक्षाक्षेप एवं मस्तिष्ककी रूक्षतामें और शरीरको तरावट पहुँचानेके लिए नस्यरूपमें प्रयुक्त होता है। अहितकर–श्लेष्मप्रकृतिको। निवारण–शुद्ध मधु और मिश्री। मात्रा ३ ग्रामसे ५ ग्राम (३ माशेसे ५ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—कद्दू और लौकी मधुर, शीतवीर्य, भारी, स्निग्ध (मतांतरसे रूक्ष), वातकारक, कफकारक (मतांतरसे कफनाशक), वृष्य, बल्य, रुचिकर, धातुवर्धक, पुष्टिकारक, हृद्य, संतर्पण (तृप्तिकारक), गर्भपोषक, भेदक (मतांतरसे मलस्तम्भक) और पित्तनाशक है। (भा० प्र०; रा० नि०; नि० र०)। इसकी बेलके कांड मधुर, शीतल, स्निग्ध, वातकारक, कफकारक तथा भेदक और पित्तनाशक हैं। (नि० र०)। वाग्भटके अनुसार इसके बीजोंका चूर्ण ७ दिन तक शहद मिला-चाटकर ऊपरसे भेड़का दूध पीनेसे अश्मरीरोगका नाश होता है। भावमिश्र ने प्रदररोगमें कद्दूके गूदेको चूर्णकर मधु और चीनी मिला मोदक बनाकर सेवन करनेको लिखा है।

तितलौकी—(प्रकृति) तीसरे दर्जेमें उष्ण एवं रूक्ष। आयुर्वेदमें शीतवीर्य (भा० प्र०) लिखा है।

---

[1] आबे कद्दू या कद्दूका रस प्राप्त करनेकी विधि यह है—कद्दूके ऊपर कपड़मिट्टी करके भाड़ या तनूरमें रख देते हैं। जब मिट्टी लाल हो जाती है तब उसे निकालकर कपड़मिट्टी दूर करके कद्दूका रस निचोड़ लेते और मिश्री या शर्बत नीलूफ़रसे मीठा करके पिलाते हैं।

गुण-कर्म—तितलौकीका रस छर्दिजनन, कामलानाशक और द्रवनिस्सारक तथा मूल श्वयथुविलयन है।

उपयोग—वामक होनेके कारण हरी तितलौकी–रस निचोड़कर या सूखी तितलौकीको जलमें पीस-छानकर जीर्णकफज कास और श्वास (दमा) के रोगी को पिलाते हैं। उक्त रोगोंमें इससे बड़ा उपकार होता है। उक्त रसको अथवा इसके फूलोंके रसको कामला और कफज मस्तिष्क रोगोंमें नाकके अंदर टपकाते हैं। इससे अत्यधिक प्रमाणमें नासिकासे द्रवोत्सर्ग होकर नेत्र और चेहरेका पीलिया (जर्दी) दूर हो जाती है तथा मस्तिष्कके कफज रोग, जैसे प्रसेकजन्य शिरःशूल और अर्धावभेदक आदि दूर होते हैं। दन्तवेष्टप्रकोप और क्लेदजन्य दंतशूलमें इसके रसका गंडूष कराते हैं। शिरःशूलनिवारण और श्वयथुविलयनके लिए तितलौकी जड़ उपयोगकी जाती है। अहितकर–प्रायः अंगोंके लिए। निवारण–स्नेहद्रव्य। प्रतिनिधि–कड़वी तुरई। मात्रा–वमनके लिये हरी तितलौकी का रस ६ ग्राम से १८ ग्राम (६ माशे से १ तोला) तक या इससे अधिक रोगीके बलाबल के अनुसार।

आयुर्वेदीय मत—कटुतुंबी तिक्त, कटुविपाक, शीतवीर्य अहृद्य, वमन करानेवाली, शोधन तथा कास, विष, वमन, पित्तज्वर, शोथ, व्रण, शूल, वात और कफको दूर करनेवाली है। कटुतुम्बीका तेल तिक्त, कषाय, अधोभागदोषहर, दुष्टव्रणशोधन तथा कृमि, कुष्ठ, कफ और वायुका नाश करनेवाला है। (च० सू० अ०१,२; च० क० अ० ३; सु०सू० अ० ३९, ४५, ४६; रा० नि०; भा०प्र०)।

नव्यमत—कटुतुंबीके गुण-कर्म इन्द्रायनके समान हैं। इसका गर्भमांस बहुत कडुआ, तीव्र वामक और भेदन है। पत्ते और प्रतान वामन और थोड़ी मात्रामें श्लेष्मनिःसारक हैं। इससे एक दम उलटी और जुलाब होते हैं। यहाँतक कि रोगीकी अवस्था हैजा होनेके जैसी हो जाती है। अल्पमात्रामें देनेसे कफ छूटता है और दस्त साफ होता है। पत्तोंके कल्कमें पकाया हुआ तेल गण्डमाला, बद आदि ग्रन्थिरोगों पर मलते हैं।

(९५) कनेर।

फ़ैमिली : आपोसीनासे (Family : Apocynaceae)।

नाम—(हिं०) कनेर (ल), कनइल; (यू०) Nerion (D. 4.82); (अ०) अल्-दिफ़्ला (इ० बै०), दिफ़्ला, सम्मुल्हिमार, सम्मुल्मार; (फा०) ख़रज़हरा; (सं०) करवीर, हयमार, अश्वघ्न; (बं०) करवी; (म०) कण्हेर; (गु०) कणेर, करेण; (सिं०) जंगीगुलु; (पं०) कनेर; (कु०) कन्यूर; (क०) खरज़हर; (लै०) (१) सफ़ेद तथा लाल कनेर। नेरिउम ईंडिकुम् **Nerium indicum** Mill. (पर्याय–*Nerium odorum* Sol.); (२) पीला कनेर–थेवेटिआ पेरुविआना **Thevetia peruviana** (Pers.)Merr. (पर्याय–*Thevetia nerifolia* Juss.); (अं०) स्वीट सेंटेड ओलिएन्डर (Sweet-scented Oleander)।

वक्तव्य—अरबी 'सम्मुलहिमार' एवं फारसी 'ख़रज़हरा'का अर्थ 'गर्दभविष' तथा अरबी 'सम्नुलमार'का अर्थ 'सर्पविष' है। कनेर उक्त प्राणियोंके लिए घातक विषतुल्य है। अतएव उक्त नाम अन्वर्थक हैं। भारतीय भाषाओंके नाम प्रायः इसके संस्कृत नामसे उत्पन्न है।

उत्पत्तिस्थान—लाल एवं सफेद कनेरके पेड़ भारतवर्षमें जंगली होते हैं और फूलके लिए बगीचोंमें एवं मन्दिरोंकी वाटिकाओंमें लगाये जाते हैं। पीला कनेर पुष्पके लिए बगीचोंमें तथा देवस्थानोंमें लगाया हुआ मिलता है।

वर्णन—यह मझोले कदका एक प्रसिद्ध पुष्पवृक्ष है। फूलोंके रंगके विचारसे इसके निम्न भेद हैं—(१) सफेद कनेर, (२) लाल या गुलाबी कनेर और (३) पीला कनेर। इसके पत्र, छाल और फूल सभी विषैले होते हैं। इनमें मूलत्वक् सर्वाधिक विषैली होती है। इसलिए अधिक मात्रामें यह घातक विष है।

रासायनिक संगठन—सफेद या लाल कनेरकी जड़में नीरीओडोरिन (Neriodorin) जो जलमें अविलेय हैं तथा नीरीओडोरेम (Neriodorem) ये दो तिक्त सत्व पाये जाते हैं।

कल्प तथा योग—दवाए दिफली (सफेद कनेर)।

उपयुक्त-अंग—जड़ (या जड़की छाल) और पत्र।

प्रकृति—विषके साथ तीसरे दर्जेमें उष्ण एवं रूक्ष। आयुर्वेदमतेन उष्णवीर्य (ध० नि०)।

गुण-कर्म—श्वयथुविलयन, वेदनास्थापन, व्रणलेखन, रक्तप्रसादन और वाजीकर।

उपयोग—सूजन,कच्छू, कण्डू, दद्रु, झाईं (कलफ़) आदि पर इसका लेप करते हैं। व्रणलेखन होनेपे इसके पत्रका चूर्ण व्रणोंपर अवचूर्णन करते हैं तथा कतिपय मरहमोंमें मिलाते हैं। रक्तविकारजन्य रोगों तथा कुष्ठ और आतशक (फिरंग) आदिके कतिपय रक्तप्रसादनीय योगोंमें इसकी जड़ या पत्र मिलाते हैं। इसके मूलको दूधमें उबालकर और उस दूधसे यथाविधि मक्खन निकालकर यथोचित मात्रामें वाजीकरणके लिए खिलाते हैं और उसको प्रायः ऐसे तिलाओंमें सम्मिलित करते हैं जो इन्द्रियको शक्ति देनेके लिए प्रयुक्त होते हैं। यह विष है, इसलिए सावधानीपूर्वक इसका आन्तरिक उपयोग करना चाहिये। अहितकर–उरो-मस्तिष्कको। निवारण–तेल (रोग़न) और ताजा पनीर। प्रतिनिधि–मैनफल। मात्रा–१ ग्रान (१ माशा)।

आयुर्वेदीय मत—कनेर तिक्त, कटु, कषाय, उष्णवीर्य चक्षुष्य, ज्वरहर तथा इसका प्रलेप कुष्ठ, कण्डू, नेत्रप्रकोप और व्रणको दूर करनेवाला है। भक्षण करनेसे यह विषप्रभाव दिखलाता है। (च० सू० ४ अ०, वि० ८ अ०; सु० सू० ३८ एवं ३९ अ०; ध० नि०, भा० प्र०)।

नव्यमत—**पीले कनेरका दूध** दाहजनक तीक्ष्ण विष है। छाल तिक्त, भेदन, प्रबल ज्वरघ्न और पर्यायज्वर-प्रतिबन्धक है। १५ रत्ती सिंकोनाकी छालसे जितना असर होता है उतना एक रत्ती पीले कनेरकी छालसे होता हैं। घन १।२ रत्ती ज्वर उतरनेके बाद देनेसे ज्वरकी पारी रुकती है। फांट ज्वर चढ़नेपर देते हैं। इसे भरेपेट देना चाहिए। खाली पेट कभी न देवें। इसकी क्रिया शारीरिक उष्णताके केन्द्रस्थान और त्वचापर होती है। इसके देनेपर खूब पसीना छूटता हैं और शरीर ठंढा पड़ता है। यदि अधिक थकावट मालूम हो तो गरम दूध और शराब देना चाहिये। हृदयपर पीली कनेरकी क्रिया डिजिटेलिसके समान होती है। इसकी क्रिया साक्षात् हृदय, हृदयमें जानेवाली नाड़ियों और हृदयके केन्द्रपर होती हैं। इससे हृदयकी संकोचन क्रिया सुधरती है तथा संकोचन थोड़े समयमें होनेसे हृदयको अधिक समय तक आराम मिलता हैं और आरामके समयमें हृदयका रक्ताभिसरण अच्छा होकर उसको पुष्टि मिलती है। हृदयके ठीक काम करने लगनेसे इतर इन्द्रियोंका रक्तानुधावन भी ठीक होता है। वृक्कों (गुर्दों)का रक्तानुधावन बढ़नेसे मूत्रका प्रमाण बढ़ता हैं। इन सब क्रियाओंका उपयोग हृदय और हृदयोदरमें होता है। हृदयमें शिथिलता आनेसे हृदयका स्पंदन ठीक सुननेमें न आता हो, नाड़ी कमजोर होकर बहुत शीघ्र चलती हो, पेशाब अत्यल्प होता हो, जरा उठने-बैठनेपर साँस फूलता हो, बिछौनेपर पोया न जाता हो, पाँव सूजकर पेटमें पानी हो गया हो, तो उक्त अवस्थाओंमें पीली कनेर अथवा उसके समान कार्य करनेवाले डिजिटेलिस, सफेद कनेर, ज़ंगली प्याज, कुटकी आदि द्रव्य देते हैं। इन द्रव्योंको मिलाकर नहीं देना चाहिये; क्योंकि ये द्रव्य स्वतः प्रभावशाली हैं। इन द्रव्योंके साथ स्वेदजनन, मूत्रजनन और विरेचन द्रव्य दे सकते हैं।

सफेद और लाल कनेरका रासायनिक संगठन स्ट्रोफैन्थसके समान है। हृदयपर इसकी क्रिया डिजिटेलिसके समान जोरदार होती है। यह हृदयके लिए घातक, शोथघ्न, त्वग्दोषहर और सब प्राणिओंके लिए विष है। अल्पमात्रामें जड़की छालकी क्रिया हृदयपर पीलीकनेरके समान होती है। पीलीकनेरसे यह अधिक तीव्र है। जड़की छालकी मात्रा ३०मि०ग्रा० से २५०मि०ग्रा० (½से एक गुंजा) है। हृद्रोग और हृदयोदरमें कनेर देनेसे पेशाब होता

और उदर कम होता है। इसको सदैव भरे हुए पेटपर देना चाहिये। मात्रा अधिक होनेपर शरीर शीत पड़ता है, नाड़ीका स्पंद एकदम कम होता है, शरीर खिंचता है और हृदय तथा श्वासोच्छासकी क्रिया एक साथ बन्द होती है। त्वग्रोग और व्रणशोथमें जड़को गोमूत्रमें पीसकर लगाते हैं।

●

(९६) कनौचा।

फ़ैमिली : एउफ़ॉर्बीआसे (Family : Euphorbiaceae)।

नाम—(हिं०; पं०) कनोचा, कनौचा; (फा०; इसफहान) मर्व; (गु०) कनोछा; (ले०) फिल्लान्थुस मड्रासपाटेन्सिस (**Phyllanthus madraspatensis** Linn.)। बीज–(अ०) बज्रुल मर्व; (फा०) तुख्म मर्व। **वक्तव्य**-किसी-किसीके मतसे यह लेबिआटी फ़ैमिलीकी साल्विया स्पीनोज़ा (**Salvia spinoso** Linn.) नामक वनस्पतिके बीज हैं जो पंजाबके बाजारोंमें मिलते हैं।

उत्पत्तिस्थान—पंजाब, लंकाके शुष्क भाग, अफरीकाके गरम भाग तथा जावा, चीन और आस्ट्रेलिया।

वर्णन—यह मर्वजातीय एक पौधेके बीज हैं, जिसकी शाखायें लम्बी, पत्र कुछ गोलाई लिए हरे एवं सुगंधित और फूल पीले वा काले रंगके होते हैं। बीज अलसीकी तरह, भूरे, मसृण तिकोने और कोषावृत होते हैं। ये ऊपरसे जालीनुमा, कोमल, गहरे भूरे रंगकी रेखाओंसे चित्रित २·५ मि० मी० या ०·२५ सें० मी० (१/१० इंच) लम्बे उससे कुछ कम चौड़े और एक और मेहराबनुमा होते हैं। इसका छिलका कड़ा और भंगुर होता है। जलमें भिगोनेपर यह जलको सोखकर फूल जाते अर्थात् शीघ्र (अर्धस्वच्छ लबाब द्वारा घनावृत्त) हो जाते हैं। गिरी स्नेहमय और स्वादमें गिरिवत् (Nutty) एवं मधुर होती हैं। उक्त लबाबके लिए ही तुख्म कनौचाका औषधमें उपयोग होता है।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें उष्ण एवं रूक्ष।

गुण-कर्म—अवरोधोद्घाटक, व्रणशोथपाचन, पिच्छिल (मुग़री) और संशमन (मुसक्किन) हैं। अन्त्र और आमाशयपर दीपन, वातानुलोमन और किसी कदर सारक कर्म करते हैं। भृष्ट किये हुए बीज संग्राही हैं।।

उपयोग—स्त्रीके दूधमें कनौचाके बीजोंका लबाब निकालकर कानमें टपकानेसे कर्णशूल आराम होता है। आंतरिकरूपसे खिलानेसे यह आमाशय और अन्त्रको शक्ति देता और उनके दर्दको शान्त करता है। इसको भृष्ट करके अकेले या उपयुक्त औषधद्रव्यके साथ रक्तातिसार एवं प्रवाहिकामें खिलाते हैं। फोड़े-फुन्सियों और कठिन शोथोंके पाचनके लिए लेप लगाते या पुल्टिस बाँधते। अहितकर–इसके सूँघनेसे शिरःशूल उत्पन्न होता है। निवारण–चुक्र बीज (तुख्म हुम्माज) और बादामका तेल। प्रतिनिधि–रैहाँके बीज। मात्रा–५ से ७ ग्राम (५ माशे से ७ माशे) तक।

●

(९७) कपास।

फ़ैमिली : माल्वासे (Family : Malvaceae)।

नाम।(क्षुप)—(हिं०) कपास, मनवाँ; (अ०) नबातुल् क़ुत्न, शज्रतुल्क़ुत्न; (फा०) दरख़्ते पंबः; (सं०) कर्पास, कार्पासी; (क०) कपस; (पं०) कपा, फुट्टी; (बं०) कापास; (म०) कापसी; (गु०) वींण, वोण, कपास; (ते०) ब्वरि,

कर्पासम्; (ता०) रामुत्तिरदम्, कार्बाशम्; (मल०) परुत्ति; (ले०) **गॉस्सोपिउम् हेर्बासिउम् (Gossypium herbasium** Linn.); (अं०) कॉटन प्लान्ट (Cotton Plant)। **रूई**—(हिं०) रूई; (अ०) क़ुत्न, कुतुन (न्न०), कुर्सुफ़, कुर्फ़ुस; (फा०) पंबः, पश्मपंब; (सं०) तूल, पिचु; (म०) कापूस; (गु०) रू, कापूस; (ले०) गॉस्सीपिउम् (Gossypium); (अं०) कॉटन (Cotton), कॉटनवूल (Cotton wool)। **बीज**—(हिं०) बिनौला, बेनउर; (अ०) हब्बुल, क़ुत्न; (फा०) पंबःदाना; (सं०) कार्पासवीज; (म०) सरकी; (गु०) कपासिया; (मा०) काकड़ा; (अं०) कॉटन सीड्स (Cotton Seeds)। **(जड़की छाल)**–(फा०) पोस्त बेख पंब; (सं०) कर्पासमूलत्वक्; (ले०) गॉस्सीपिई रैडीसिस कॉर्टेक्स (Gossypi Radicic Cortex); (अ०) कॉटन रूटबार्क (Cotton Root-bark)। **वक्तव्य**–'कुर्फ़ुस' संस्कृत कर्पास का अरबी रूपान्तर है। अंग्रेजी 'कॉटन' अरबी क़ुत्न या क़ुतुनका रूपान्तर प्रतीत होता है। भारतीय भाषाओंके नाम संस्कृत 'कपास' या 'कार्पासी'से व्युत्पन्न हैं।

इतिहास—सर्वप्रथम भारतीयोंको कपासवृक्षका ज्ञान हुआ और उन्होंने ही प्रथमतः इसका वैद्यकीय उपयोग किया। उत्तरकालीन यूनानियोंने 'कस्वूस' नामसे कपासका उल्लेख किया है। परन्तु सावफरिस्तुस यूनानीने 'इरिओफोरा' और प्लाइनीने 'गॉसीपिओ' नामसे इसका वर्णन किया है। इसलामी वैद्योंने 'क़ुत्न' और 'क़ुर्फ़ुस' नामसे इसका उल्लेख किया है।

उत्पत्तिस्थान—यह सम्भवतः भारतवर्ष, मिस्र, अरब और एशियामाइनरका मूलनिवासी है। अधुना सर्वत्र उष्ण देशोंमें इसकी खेती की जाती है।

वर्णन—यह एक प्रसिद्ध क्षुप है, जिसके ढेंढ़ से रूई निकलती है। इसके अनेक भेद होते हैं। इनमें किसीके क्षुप ऊँचे और बड़े होते हैं, किसीका झाड़ होता है, किसीका क्षुप छोटा होता है, कोई सदाबहार होता है और कितनेकी खेती प्रतिवर्ष की जाती है। इसके पत्र भी भिन्न-भिन्न आकार के होते हैं। फूल किसीका लाल किसीका पीला और किसीका सफ़ेद होता है। फूलोंके गिरनेपर उनमें ढेंढ़ लगते हैं, जिनमें रूई होती है। ढेंढ़ोंके आकार और रंग भिन्न-भिन्न होते हैं। रूई अधिकतर सफेद होती है, पर किसी-किसीकी रूई कुछ लाल और मटमैली भी होती है, और किसी-किसीकी अन्य रंगकी भी होती है। किसीकी रूई चिकनी और मुलायम तथा किसीकी खुरखुरी होती है। बीजोंको 'बिनौला' कहते हैं।

रासायनिक संगठन—जड़की छालमें स्टार्च और द्राक्षशर्करा तथा बीजों (बिनौले)में एक प्रकारका पांडुपीत या पीतवर्णका लगभग निर्गंध एवं फीका तेल होता है।

उपयुक्त अंग—बीजोंकी गिरी (मग़ज़ पंबःदाना); फूल, जड़की छाल और ढेंढ़ (कपासका फल वा डोड़ा जो रूई निकालनेके उपरान्त बच रहता है)।

प्रकृति—रूई (पंबः) पहले दर्जेमें उष्ण एवं रूक्ष; और फूल पहले दर्जेमें उष्ण एवं तर, ढेंढ़ (डोड़ा) और जड़की छाल उष्ण एवं रूक्ष।

गुणकर्म—(रूई) उष्णताजनन और उपशोषण, (फूल) मनःप्रसादकर तथा डोंड़ा और मूलत्वक् आर्तवजनन, गर्भशातक, अपरानिःसारक और सुखप्रसवकारक है।

उपयोग—धुनी हुई रूईको सूजनपर गरमी पहुँचाने और व्रणोंपर उनके रक्षार्थ बाँधते हैं। व्रणलेखन होनेसे यह व्रणोंको सुखाता है। सौमनस्यजनन होनेके कारण कपासके फूलोंका शर्बत उष्ण हृत्स्पंदन (दिलकी धड़कन), उन्माद और वातिक अन्यथाज्ञान (वसवास)में देते हैं। गर्भपात, अपरापातन और सुखप्रसवके लिए तथा रजोरोधमें कपासका डोंड़ा और उसके मूलकी छालको अकेला या अन्य द्रव्योंके साथ क्वाथ करके पिलाते हैं।

मात्रा—कपासका डोंड़ा और जड़की छाल ७ ग्रामसे लगभग १२ ग्राम (७ माशेसे १ तोला) तक।

बिनौलेकी गिरी—

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें उष्ण एवं तर।

गुण-कर्म—बृंहण, वाजीकर, शुक्रल, स्तन्यजनन, कफोत्सारि और लेखन तथा उरोमार्दवकर हैं।

उपयोग—शरीरबृंहण तथा बलवर्द्धन, वाजीकरण और शुक्र एवं स्तन्यजननके लिए बिनौलेकी गिरीकी खीर पकाकर या अन्य औषधद्रव्योंके साथ हरीरा बनाकर पिलाते हैं। श्लेष्मनिःसारक होनेसे खाँसीमें भी इसका उपयोग करते हैं। लेखनीय होनेके कारण मुखमंडल (चेहरा)को कांति प्रदान करनेके लिए व्यंग आदि पर इसका लेप लगाते हैं। यह वाजीकर और पौष्टिक माजूनोंमें सम्मिलितकी जाती है। यह कुस्वप्न (काबूस) और वातिक अन्यथा ज्ञान (वसवास) निवारणके लिए भी प्रयुक्त होती है। **अहितकर**–वृक्कोंके लिए। **निवारण**–खमीरा बनफ़शा या शर्बत बनफ़शा। **प्रतिनिधि**–कीकरके बीज और कुसुम बीज (क़ुर्तुम)। **मात्रा**–३ ग्रामसे ७ ग्राम (३ माशेसे ७ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—कार्पासी मधुर, लघु, शीतवीर्य, बृंहणीय, बल्य, वातसंशमन, स्तन्यजनन तथा तृषा दाह, श्रम, भ्रम और मूर्च्छाको दूर करनेवाली है। **अरण्यकार्पासी** शीतवीर्य, रुचिकर तथा व्रण और शस्त्रक्षतका नाश करनेवाली है। **कपासके पत्ते** वातनाशक, रक्त और मूत्रको बढ़ानेवाले तथा कानकी आवाज, फुंसी और पीपको दूर करनेवाले हैं। **बिनौले** स्तन्यवर्धक, वाजीकर, स्निग्ध, गुरु और कफकर हैं। (च० सू० ४ अ०; सु० सू० ३९ अ०; रा०नि०; भा०प्र०)।

नव्यमत—बिनौले स्तन्यजनन, स्नेहन, मूत्रजनन, स्रंसन, श्लेष्मनिःसारक, बल्य और नाड़ीसंस्थानके लिए पौष्टिक हैं। **रूई** उपशोषण और रक्षण है। **पुष्प** उत्तेजक और सौमनस्यजनन हैं। **कोमल पत्र** स्नेहन और मूत्रजनन हैं। **मूलकी छाल** गर्भाशयोत्तेजक, आर्तवजनन और स्नेहन है। इससे गर्भाशयका उत्तम संकोच होकर रक्तस्राव बंद होता है। **मूलकी छालकी** क्रिया गर्भाशयपर अर्गटके समान होती है। कपासकी जड़की छालका काढ़ा प्रसव होनेके बाद देते हैं। इससे गर्भाशयका भली-भाँति संकोचन होता है, रक्तस्राव नहीं होता और गर्भाशय शिथिल रहनेसे होनेवाले ज्वर, शूल आदि उपद्रव नहीं होते। आँवल (अपरा) गिरनेके बाद तुरत ही क्वाथ देना चाहिए। इसका पूरा असर होनेमें एक घंटा लगता है। एक घंटेमें गर्भाशय गेंदके समान संकुचित न हो और नाड़ी तेज चलती हो तो दूसरी बार क्वाथ देना चाहिए। कपासकी जड़की छाल बड़े प्रमाणमें देनेसे गर्भपात होता है। पीडितार्तव और शीतसे उत्पन्न अनार्तवमें कपासकी जड़की छालके काढ़ेसे लाभ होता है। प्रसूता स्त्रीको बिनौलेकी गिरीकी पेया देते हैं। इससे दूध बढ़ता है। **रूई** जलाकर घाव (सद्योव्रण)में भरते हैं। इससे रक्तस्राव बंद होता है और घाव शीघ्र भर जाता है। कपासके फूलोंका शर्बत उदासीनताप्रधान मानसिक रोगोंमें देते हैं।

स्थानविशेषमें सर्दीसे बचाने, उष्णता पहुँचाने और व्रणसंरक्षणार्थ **रूई**का उपयोग किया जाता है।

●

(९८) कपूर

फ़ैमिली : लाउरासे (Family : Lauraceae)।

नाम—(हिं० म०, गु०) कपूर; (यू०) काफोरा; (अ०) काफ़ूर; (फा०) कापूर; (सं०) कर्पूर; (ले०) काम्फोरा (Camphora); (अं०) कैम्फर (Camphor)। **वक्तव्य**–अरबी 'काफ़ूर' शब्द फारसी 'कापूर'से संस्कृत 'कर्पूर' द्वारा अरबी बनाया हुआ अथवा अरबी 'कफ़ूर' धातुसे व्युत्पन्न है जिसका अर्थ 'छिपाना' है। कपूरकी गंध समस्त सुगंधद्रव्योंकी गंधको छिपा लेती है, अर्थात् उनको ढँक लेती है। इसलिए सम्भवतः इसका उक्त नाम रखा गया। इसके लेटिन, अंग्रेजी और यूनानी नाम अरबी 'काफ़ूर'से व्युत्पन्न। कपूरके भारतीय भाषाओंके नाम संस्कृत 'कर्पूर'से व्युत्पन्न हैं।

इतिहास—फार्माकोग्राफिया ग्रन्थके लेखक डॉ० **फ्लकोजर** महोदयके कथनानुसार प्राचीन यूनानी एवं लाखानी वैद्यगण कपूरसे अभिज्ञ नहीं थे। परन्तु अरबी चिकित्साविद् इससे पूर्णतया अभिज्ञ थे। अस्तु, उन्हींके द्वारा यूरूपवासियों तथा उत्तरकालीन यूनानी चिकित्सा विशारदोंको इसका ज्ञान हुआ। इसीलिए इसका यूनानी नाम 'काफोरा' है, जो इसकी अरबी संज्ञा 'काफ़ूर'से व्युत्पन्न है।

उत्पत्तिस्थान—चीन (फारमूसा), जापान, पूर्वीद्वीप समूह, सुमात्रा और बोर्नियो। भारतवर्षमें इसका आयात चीन और जापानसे होता है।

वक्तव्य—आजकल नैसर्गिक साधनोंसे प्राप्त कर्पूर (Natural Camphor) के अतिरिक्त इसका निर्माण कृत्रिम **संश्लेषण** पद्धतिसे (Synthetic Camphor) भी किया जाता है। नैसर्गिक साधनोंमें पहले यह मुख्यतः सिन्नामोमुम् प्रजातिकी विभिन्न जाति (Species)के वृक्षोंसे प्राप्त किया जाता था, जिनका आयात उपरोक्त देशोंसे होता है। **सिन्नामोमुम् प्रजातिके** अतिरिक्त अब यह **लेबिआटी** फ़ैमिलीकी 'कर्पूरतुलसी' नामक क्षुद्र बनस्पति (**Ocimum kiliman-oscharicum**) से भी प्राप्त किया जाता है। भारतवर्षके कतिपय स्थानोंमें इसकी खेतीका भी प्रयास किया गया है।

वर्णन—कपूर एक प्रकारके उत्पत् तेल या गोंदका सांद्रभाग (Stearoptene) हैं, जिसे अधुना दारचीनी जातीय कतिपय वृक्षों, विशेषकर **सिन्नामोमुम् काम्फोरा** (**Cinnamomum camphora** Nees.)से निकाला जाता है। यह मझोले कदका सदाबहार पेड़ है, जो चीन, जापान, कोचीन और फारमूसामें होता है। अब इसके पेड़ हिंस्दुस्तानमें भी देहरादून, नीलगिरि, कलकत्ता और सहारनपुरके कंपनी बागोंमें लगाये गये हैं, यद्यपि इनसे कर्पूर प्राप्त नहीं किया जाता। इस वृक्षकी छालको गोदनेसे एक प्रकारका दूध निकलता है जिससे कपूर प्रस्तुत किया जाता है। **कपूर बनानेकी साधारण विधि**—इसकी पतली-पतली चैलियाँ तथा डालियाँ और जड़ोंके टुकड़े बंद बरतनमें जिसमें कुछ दूरतक पानी भरा रहता है, इस ढंगसे रखे जाते हैं कि उनका लगाव पानीसे नहीं रहता। बरतनके नीचे अग्नि जलाई जाती है। आँच लगनेसे लकड़ियोंमेंसे कपूर उड़कर ऊपरके ढक्कनमें जम जाता है। उन्हें पृथक्कर पुनः ऊर्ध्वपातनकी विधिसे साफ कर लेते हैं। यही उल्लिखित कपूर है। यह बेरंग सफेद, अर्धस्वच्छ, क्रिस्टली, बेडौल डलियों या छोटी चौकोर टिकियों अथवा चूर्णरूपसे भी पाया जाता है, जिसे 'कपूरका फूल-**गुले काफ़ूर (फ्लावर्स आफ कैम्फर)**' कहते हैं। गंध तीक्ष्ण भेदनीय और स्वाद किंचित् तिक्त एवं कटु (तेज) होता है, जिससे अंतमें ठंढक प्रतीत होती है। इसका आपेक्षिक गुरुत्व ०.९९५ है। जलानेसे यह तुरन्त जल जाता है। साधारण उत्तापपर यह धीरे-धीरे उड़ता रहता है। परन्तु तीव्र उत्ताप देनेसे सम्यक् ऊर्ध्वपातित हो जाता है। **विलेयता**—एक भाग कपूर ७०० भाग पानीमें, एक भाग सुरासार (९०प्र० श०), चार भाग ज़ैतून तेल, डेढ़ भाग तारपीन तेल और चौथाई भाग क्लोरोफॉर्ममें विलीन हो जाता है। ईथरमें यह अत्यंत विलेय, किंतु क्षारोंमें अविलेय होता है। तीव्र शुक्ताम्लमें भी यह विलेय होता है। **द्रावण**—३ भाग कपूर, १ भाग कार्बोलिकाम्ल तथा ३भाग कपूर उतना ही क्लोरलहाइड्रेटके साथ मिलाकर रगड़नेसे द्रवीभूत हो जाता है। कपूरको जब पिपरमिंट (मेंथोल), सत अजवायन (थाइमोल), फेनोल, नेफ्थोल, सैलोल, ब्युटल-क्लोरल या सैलीसिलिक एसिडमेंसे किसीके साथ मिला दिया जाता है तब वह द्रवीभूत हो जाता है। अर्थात् दोनों मिलकर द्रव बन जाते हैं।

भेद—यूनानी द्रव्यगुणमें इसके यह **तीन भेद** स्वीकार किये गये हैं। (१) **रियाही**—यह वृक्षसे आपसे आप निकलता और ललाई लिये सफेद होता है। यह सर्वोत्तम माना गया है। आयुर्वेदमें इसे **भीमसेनी कपूर** (भीमसेन कर्पूर—(सं०); (बम्बई) बरास कपूर और अंग्रेजीमें **बोर्नियो कैम्फर** (Borneo Camphor) कहते हैं। (२) **कैसूरी**—यह फारमूसा द्वीपका कपूर है। यह अत्यंत सफेद, स्वच्छ, उज्ज्वल और परतदार होता है, और वृक्षके भीतरसे निकलता है। यह भी उत्तम समझा जाता है। अंग्रेजीमें इसे **फारमूसा कैम्पर** (Formosa Camphor) कहते हैं।

(३) काफ़ूर मोती–यह वृक्षके पंचांगको क्वथित करनेसे प्राप्त होता है। अंग्रेजीमें इसे **ब्लूमिया कैम्फर** (Blumea Camphor) कहते हैं। यह मटियाले रंगका होता है।

कल्प तथा योग—माउल्काफ़ूर, बरूद काफ़ूरी, **क़ुर्स काफ़ूर** (काफ़ूरी), क़ुर्स काफ़ूर लूलुई, जुवारिश काफ़ूर, **मरहम काफ़ूर** (काफ़ूरी), रोग़न कपूर, हब्ब जवाहर काफ़ूरी और **हब्ब काफ़ूर मरवारीदी**।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें शीत एवं रूक्ष (इसके भीतर एक विलीन करनेवाला उष्णवीर्य भी है)। आयुर्वेद-मतसे भी शीतवीर्य (ध० नि०; कै० नि०) मतांतरसे उष्णवीर्य है।

गुण-कर्म—बाह्यरूपसे कपूर **कोथप्रशमन, स्वापजनन** और **वेदनास्थापन** है। किसी स्थानपर लगाने या मर्दन करनेसे प्रारम्भमें उत्तेजक और शोणितोत्क्लेशक प्रभाव करता है; किन्तु अंतमें ठंडक पहुँचाता और संवेदनाको कम करता है। आंतरिक उपयोगसे यह **सौमनस्यजनन** और **हृदयबलदायक** है, ज्वरको दूर करता है, आमाशयको बलप्रदान करता (दीपन) है, और वायुका उत्सर्ग करता, अन्त्रमें कब्ज पैदा करता, फुफ्फुसोंपर कफोत्सारि और वातानाड़ियोंपर आक्षेपहर कर्म करता तथा पसीना लाता है। इसका अत्यधिक प्रमाण में उपयोग नपुंसकता उत्पन्न करता है।

उपयोग—कपूरको विविध स्नेहोंमें हल करके कटिशूल, आमवात, पार्श्वशूल और फुफ्फुसशोथ आदिमें मर्दन करते हैं। कतिपय त्वग्रोगोंमें उनकी तीक्ष्णता एवं दाह मिटानेके लिए इसे उपयुक्त द्रव्योंके साथ लगाते हैं। दन्तशूल-निवारणके लिये इसे पीड़ित दाँतपर रखकर दबा लेते हैं। मुखदौर्गन्ध्य निवारणके लिए पानके साथ या किसी उपयुक्त औषधिके साथ इसे खिलाते हैं। नासादौर्गन्ध्य तथा नकसीरको बन्द करनेके लिए इसे हरे धनियांके रसमें घोलकर नाकमें टपकाते हैं, और कर्णशूलमें इसी प्रकार कानमें टपकाते हैं। अक्षिपाकमें एवं नेत्रको शीतला-रोगसे सुरक्षित रखनेके लिये इसे सुरमा (अंजन)के साथ उक्त रसमें घोलकर आश्च्योतन करते हैं। मुखपाकमें उपयुक्त औषधद्रव्यके साथ इसका अवचूर्णन करते हैं। आनाह, रक्तज और पित्तज अतिसार तथा हैजामें इसको नाना भाँतिसे खिलाते हैं। रक्तज और पित्तज ज्वरों एवं राजयक्ष्मामें भी इसे देते हैं। प्रसेक और प्रतिश्यायमें इसे सुँघाते और पुरानी खाँसीमें कफोत्सर्गके लिये खिलाते हैं। सौमनस्यजनन एवं हृद्य होनेसे इसे हृदयदौर्बल्यमें देते हैं। कामावसादकर होनेसे सहवासेच्छाकी अधिकताको रोकनेके लिए इसे खिलाते हैं। सद्यो व्रणसे रक्तस्रुति बन्द करने और उष्ण व्रणोंके संताप एवं दाहको शमन करनेके लिए इसे मरहमोंमें मिलाकर व्रणोंपर लगाते हैं। यह ओजोल्लासकारी (मुफ़र्रेह रूह) है। अहितकर–शीत प्रकृति और कामशक्तिको अहितकर तथा अश्मरीकारक है। निवारण–कस्तूरी, अम्बर, जुंदबेदस्तर, गुलकंद, सौसन-नरगिस-बनफशाका तेल आदि। प्रतिनिधि–सफेद वंशलोचन और चंदन। मात्रा–२५० मि० ग्रा०से ०·४ ग्राम (१ रत्तीसे ३ रत्ती) तक।

आयुर्वेदीय मत—कपूर कटु, तिक्त, मधुर, लघु, शीतवीर्य, हृद्य, मेध्य, पाचन, सुगन्धी, चक्षुष्य, लेखन, वाजीकर, रुचिकर तथा कफ, तृषा, मेदोरोग दाह, कण्ठरोग, कृमि और मुखका वैरस्य–मल और दुर्गन्धको दूर करनेवाला है (वा० सू० अ० ५; ध० नि०; रा० नि०; कै०, नि०)।

नव्य मत—कपूर वातहर, दीपन, पूतिहर, रक्तगत श्वेतकणोंकी वृद्धि करनेवाला, कफघ्न, कासहर, ज्वरघ्न, स्वेदजनन, दाहशामक, वाजीकर (अल्पमात्रामें), कामावसादक (बड़ी मात्रामें), स्तन्यनाशन, नाड्युत्तेजक, संकोच-विकासप्रतिबन्धक, हृदयोत्तेजक, हृदयसंरक्षक, रक्तवाहिनी संकोचक और श्वासहर है। कपूरकी क्रिया मात्राके न्यूनाधिक्यानुसार भिन्न-भिन्न होती है। साधारण औषधीय मात्रामें कपूर प्रारम्भमें स्वेदजनन, सार्वांगिक उत्तेजन, नाड्युत्तेजक, रक्ताभिसरणोत्तेजक और श्वासोच्छ्वासोत्तेजन कार्य करता है। पीछे उसके अवसादन, वेदनास्थापन और संकोचविकासप्रतिबन्धक गुण देखनेमें आते हैं। औषधीय मात्रासे अधिक मात्रामें कपूर दाहजनक और मादक विष है। कपूर मुँहमें रखनेसे लालास्राव अधिक होता है, उष्णता उत्पन्न होती है और कुछ समयके बाद मुँहकी श्लेष्मल त्वचामें सुन्नता आती है। कपूरके आमाशयमें जानेपर वहाँ उष्णता उत्पन्न होती है, तथा आमाशयकी श्लेष्मल त्वचाका

रक्तानुधावन बढ़ता, आमाशयरस अधिक उत्पन्न होता है तथा अन्नका सडाँद (पूतिभाव) कम होता, पेटमें वायु नहीं भरता और पाचन बढ़ता है। कपूरका कुछ अंश शरीरमें ज्यों-का-त्यों रहता है और कुछ अंश शरीरगत शर्करामें मिल जाता है। कपूरसे शरीरकी उष्णता कम होती है। कपूर त्वचाके मार्गसे बाहर आता है और बाहर आते समय रक्तवाहिनियोंका विकासन होता है तथा स्वेदग्रन्थियाँ उत्तेजित होती हैं। इन दो कारणोंसे पसीना आता है और त्वचामें कपूरका वास आता है तथा वह शीतल मालूम होती है। कुछ भी रूपान्तर हुए बिना कपूर फुफ्फुसद्वारा उत्सर्जित होता है तथा कफको पतला एवं ढीला करता है। श्वासोच्छ्वासके केन्द्रस्थानपर इसकी प्रबल उत्तेजक क्रिया होती हैं तथा कफ सरलतासे गिरने लगता है। स्वयं हृदय एवं हृदयगत नाड़ीकेन्द्रपर कपूरकी उत्तेजक क्रिया होती है, इसलिए हृदय अपना कार्य ठीक करने लगता है। इससे रक्तवाहिनियोंका संकोचन होता है और धमनीगत रक्तका दबाव पड़ता है, इसलिये नाड़ी भरी हुई और तीव्रतासे चलती है। अति उष्णता अथवा कुछ अन्य कारणोंसे हृदयमें कुछ विकृति होती है वह कपूर देते रहनेसे उत्पन्न नहीं होती, इसलिये इसको **हृदयसंरक्षक** कहा गया है। मस्तिष्क, सुषुम्ना और नाडियोंपर इसकी क्रिया मद्यके समान होती है। नाड़ीतन्त्रके सब स्थानोंपर इसकी प्रारम्भमें उत्तेजक और पीछे अवसादक (शामक) क्रिया होती है।

मात्रा—२५० मि० ग्रा० से ०.४ ग्राम (१-३ रत्ती) गोलीके रूपमें देना चाहिये।

●

(९९) कपूरकचरी।

फ़ैमिली : ज़िंजीबेरासे (Family : Zingiberaceae)।

नाम—(हिं०, भा० बाजार) **कपूरकचरी;** (सं०) शटी, पलाशी; (बं०) कपूरकचरी; (म०;गु०) कपूरकाचरी; (बं०) शटी, गंधशटी; (क०) गंधशठी; (पं०) कचूर कचु, शेदूरी; (ता०) शिमैकिचिलिकू; (लें०) **हेडीकिउम् स्पीकाटुम (Hedychium spicatum** Ham. ex. Smith)।

वक्तव्य—विद्वद्वर आजमखाँकी रचनाओंमें यह औषधि संदिग्ध हो गई है। **'रुमूज़ आज़म'** में, जो उनकी प्रथम रचना है, वमन चिकित्सामें एक सामान्य-सा प्रयोग लिखा है जिसकी शब्दावली इस प्रकार है, "ज़रंबाद कोफ़्ता बेख़्ता बक़दर मूँग दरगुलाब हब्ब साज़ंद व दो हब्ब बदेहंद व अगर किफ़ायत नकुनद बाद साअन्ते दो-सेह हब्ब दीगर देहंद।" तथा **'अक्सीर आज़म'**में जो रुमूज़के बादकी रचना है, जंरबादके स्थानमें कपूरकचरी है और 'करा-बादीन आजम'में जो अक्सीरसे भी पीछे बनाई है, यही कपूरकचरी लिखी है एवं **मुहीत आजम** में जो अंतिम कृति है, लिखा है "कि नरकचूर ज़रंबादका एक भेद है जिसको कपूरकचरी भी कहते हैं।" सुतरां कपूरकचरीके विषयमें उनके कथनानुसार निम्न मत स्थिर होते हैं—(१) ज़रंबाद और कपूरकचरी अभिन्न हैं; (२) ज़रंबादका एक भेद हैं और (३) नरकचूर और कपूरकचरी अभिन्न हैं, यद्यपि इन दोनोंमें बड़ा भेद है। नरकचूर हलदीके समान होता है तथा कपूरकचरीके टुकड़े होते हैं। स्वाद और गंधमें भी इन दोनोंमें बहुत अन्तर है।

उत्पत्तिस्थान—अनुष्ण हिमालय प्रदेश विशेषतः कुमाऊँ, नेपाल आदि ५,०००से ७,००० फुटकी ऊँचाई तक तथा चीन। भारतवर्षमें इसका आयात चीनसे सिंगापुर होकर होता है। देशी कपूरकचरीमें (ताजी होनेसे) सुगंधि अपेक्षाकृत अधिक पायी जाती है। इसकी कन्दाकार जड़ोंके गोल-गोल कतरानुमा टुकड़े बाजारोंमें पंसारियों-के यहाँ मिलते हैं।

वर्णन—नरकचूरसे बड़ी और मोटी एक जड़ है जिसमें कपूर जैसी सुगन्ध आती है। इसे जमीनसे उखाड़-उबालकर कतरा-कतरा सुखाकर रखते हैं जिसमें वायुविकार एवं कीड़ा लगनेसे सुरक्षित रहे। **छोटी** और बड़ी भेदसे यह दो प्रकारकी होती है। कपूरकचरीके सुन्दर **क्षुप** होते हैं। **पत्तियाँ** ३० सें० मी० (या १ फुट) तक लम्बी (या अधिक), रूपरेखामें आयताकार-भालाकार तथा चिकनी होती हैं। चौड़ाईमें बहुत भिन्नता पाई जाती है। **पुष्पव्यूह** विदण्डक (Spike) होता है, जो कभी-कभी ३० सें० मी० (या १२ इञ्च) तक लम्बा होता है, जिसपर सघन सफेद पुष्प होते हैं। सहपत्र या कोणपुष्पक बड़े (१ – १॥ इंच × $\frac{३}{४}$ इंच), रूपरेखामें आयताकार, कुण्ठिताग्र तथा हरे रंगके होते हैं, जिनमें प्रत्येकके कोणमें १-१ पुष्प होता है। केशरसूत्र हलके लालरंगके होते हैं। **फल** (Capsule) गोलाकार एवं चिकना होता है। मूल जमीनमें अनुप्रस्थ दिशामें फैलता है और सुगन्धित होता है। औषध्यर्थ इन्हीं (कन्दाकार मूलस्तंभ)का संग्रह किया जाता है।

बाजारोंमें मिलनेवाली **देशी कपूरकचरी**के गोल-गोल कतरानुमा तिरछे काटे हुए टुकड़े होते हैं, जो व्यासमें १·२५ सें० मी० (या १/२ इञ्च) तक होते हैं। वल्कलका भाग एवं मध्यवस्तु स्पष्टतया पृथक्-पृथक् मालूम पड़ते हैं। वल्कल रक्तिमा लिए भूरेरंगका होता है, जिसपर अनेक चिह्न (Scars) एवं मुद्रिकाकार रेखायें मालूम पड़ती हैं। अन्तर्वस्तु सफेद रंगका होता है। वल्कलमें कहीं-कहीं सूत्राकार उपमूलोंके अवशेष भी लगे होते हैं। कपूरकचरीमें कर्पूर जैसी उग्र सुगन्धि होती है तथा स्वादमें तिक्त सुगन्धित एवं तीक्ष्ण होती है। **चीनी कपूरकचरी**के कतरे अपेक्षाकृत बड़े तथा अधिक सफेद होते हैं। त्वचा भी हलके रंगकी होती है और स्वादमें इनमें तीक्ष्णता भी भारतीय कपूरकचरीकी अपेक्षया कम पायी जाती है।

प्रतिनिधि द्रव्य एवं मिलावट—कभी-कभी कपूरकचरीकी कतिपय अन्य प्रजातियोंके मूलका संग्रह भी कपूरकचरीके ही नामसे किया जाता है। यथा (१) **हेडीकिडम् कोरोनारिया** (**Hedychium coronaria** Koen.); परंतु यह असली कपूरकचरी नहीं है। (२) **केम्फेरिया गलंगल** (**Kaempferia galangla** Linn.)–इसे चंद्रमूल कहते हैं। इसके क्षुप दक्षिणकी ओर बगीचोंमें लगाये मिलते हैं। किन्तु ये असली कपूरकचरी नहीं हैं।

संग्रह एवं संरक्षण—कपूरकचरीको अच्छी तरह मुखबंद पात्रोंमें अनार्द्र, शीतल स्थानोंमें रखना चाहिए। सूर्यप्रकाशसे इसे बचाना चाहिये। **वीर्यकालावधि**–१ वर्ष।

रासायनिक संगठन—कपूरकचरीकी जड़में राल (रेजिन), सुगंधित तत्व, एक स्थिर तेल तथा स्टार्च, म्युसिलेज, ऐल्ब्युमिन, सेलूलोज एवं शर्करा प्रभृति तत्व पाये जाते हैं। मात्रा–(चूर्ण) १से ३ग्राम (१–३ माशे) तक।

प्रकृति—यूनानी चिकित्साविदोंने दूसरे दर्जेमें गरम और खुश्क (रूक्ष) लिखा है। आयुर्वेदमतसे भी उष्णवीर्य है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—हृदय-मस्तिष्क-आमाशयबलदायक, अवरोधोद्धाटक, मनःप्रसादकर, वाजीकर, शिश्नोच्छ्रायकारक, मूत्रार्तवजनन तथा शीतजन्य कास एवं बालप्रवाहिका हर, वातानुलोमन, आमाशयगत वातविलयन और पाचन है। इसका चूर्ण मलनेसे सूजन उतरती है और वेदना शमन होती है। कीड़ा न लगे हुए इसके छोटे भेदको महीन पीस, पानीमें सान, मटरप्रमाणकी गोली बना १–२ गोली खिलानेसे तीव्र छर्दि बंद हो जाती है। ६ ग्राम (६ माशे) कपूरकचरीका चूर्ण समप्रमाण खाँड़ मिला ठंडे पानीसे फाँकनेसे दस्त बन्द हो जाते हैं। मात्रा–४॥ ग्रामसे ६ ग्राम (माशा) तक (रूमूज़ आ'ज़म-अतिसार प्रकरण)।

आयुर्वेदीय मत—कटु, तिक्त तथा कषाय रसयुक्त, ग्राही, लघु, तीक्ष्ण तथा थोड़ा उष्णवीर्य होती है एवं यह मुखके मलको दूर करनेवाली, शोथ, खाँसी, व्रण, श्वास, शूल, हिक्का और ग्रहबाधा इन सबको दूर करनेवाली है। (भा० प्र० कर्पूरादि वर्ग ९९-१००)। चरकोक्त (सू० अ० ४) हिक्कानिग्रहण एवं श्वासहर महाकषायोंमें (शटी नामसे) कपूरकचरी भी है।

नव्यमत—कपूरकचरी उष्ण, ग्राही, लघु, कटु, तिक्त, दीपन एवं वातानुलोमक होती है। इसका उपयोग कास, श्वास, हिचकी, वमन, अपतन्त्रक, शूल एवं व्रणमें किया जाता है। दंतशूलमें इसके मंजनसे लाभ होता है। इससे मुखकी दुर्गंधि दूर होती है। सिरपर लगानेके लिए प्रयुक्त तैलयोगोंमें सुगन्ध हेतु भी कपूरकचरी डाली जाती है।

◆

(१००) कबर।

फ़ैमिली : कैप्पारीडासे (Family : Capparidaceae)।

नाम—(हिं०) कबर, कब्र, बेर; (यू०) कैपरिस Kapparis (D. 2.204); (अ०) **अल्क़बर** (इ० बै०), कबर, कब्र; (फा०) **कवर**; (पं०) **कबार**, बेर; (बम्ब०) कबर; (लैं०) **कैप्पारिस स्पीनोजा** (Capparis spinosa L.); (अं०) दी एडीबल् केपर या केपर प्लांट (The Edible Caper or Caper Plant)। (मूलत्वक्)—क़श्र अस्लुल्कबर; (फा०) पोस्तबेख़ कबर।

वक्तव्य—अरबी 'कबर', फारसी 'कवर'से व्युत्पन्न है। लैटिन नाममें प्रजातिक नाम (Generic name) 'Capparis' इसके ग्रीक या यूनानी नाम 'Kapparis' पर आधारित है। जातीय नाम (Specific name) 'स्पीनोजा' उक्त वनस्पतिके **कंटकाकीर्ण** होनेका परिचायक है।

उत्पत्तिस्थान—भारतवर्षमें उष्णप्रधान पश्चिम हिमालयकी घाटीसे पूरवकी ओर नेपाल तक तथा पंजाब और सिंधमें बेतियाकी पथरीली घाटियोंमें इसके क्षुप पाये जाते हैं। दक्षिण भारतमें दकन, कोंकण एवं पश्चिमी घाटमें भी होता है। भारतवर्षमें इसका आयात फारससे भी होता है।

वर्णन—यह ऊसर और कंकरीली भूमिमें होनेवाली करीरकी तरहका अत्यंत शाखायुक्त और प्रसरणशील तीक्ष्ण कंटकाकीर्ण झाड़ी व गुल्म होता है जो श्वेताभ मृदु रोमावरणसे ढँका रहता है। शाखायें भूमिपर झुकी और फैली हुई होती हैं। पत्तियाँ वृत्ताकार अथवा चौड़ाई लिये हुए लट्वाकार २·५से ५ सें०मी० (१"–२") बड़ी होती है। फूल प्रारंभमें हरे रंगके कोष (कटोरी)से आवृत्त होता है और आकारमें छोटेसे जैतून या चनेके दानेके बराबर होता है; परंतु खिलनेपर यह सफेद हो जाता है और उसके बीचमें बालोंकी तरह कुछ तंतु होते हैं। बसुके मतसे ये तंतु बैंगनी रंगके (पुंकेशर) होते हैं। फूलके झड़ जानेपर इसमें बलूतके समान या उससे बड़ा लम्बा या अंडाकार फल लगता है। अरबीमें इसको 'ख़ियार कबर' कहते हैं। पकनेपर इसका गूदा लाल हो जाता है। यह जितना ही परिपक्व हो जाता है, उतना ही कड़ुआहट और कसायपन कम और मिठास अधिक होती जाती है। बीज पीले होते हैं, जड़ सफेद, बड़ी और लम्बी तथा कड़ुई, चरपरी और किंचित् क्षारीय होती है। इसकी छाल मोटी होती और सूख जानेके उपरांत प्रायः काष्ठसे भिन्न हो जाती है। इसे पोस्त बेख़ कबर कहते हैं। इसमें आड़े रुख दरारें होती हैं। यह बाहरसे भूरी और भीतरसे सफेद होती है। इसका सर्वांग कड़ुआ होता है। उपर्युक्त वर्णनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि कबर सफेद फूल का करीर है।

उपयुक्त अंग—यूनानी वैद्यकमें इसकी जड़ वा जड़की छाल (जो उनके मतसे इसका सर्वाधिक वीर्यवान् भाग है), फल, बीज और पुष्प।

रासायनिक संगठन—इसकी छालमें सेनेगिन (Senegen)के समान एक उदासीन तिक्त सत्व होता है। फूलकी कलियोंमें कैप्रिक एसिड और एक ग्लूकोसाइड पाया जाता है। इसके क्षुपसे एक उत्पत् तेल प्राप्त होता है।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें उष्ण एवं रूक्ष।

गुण-कर्म—कबर अवरोधोद्घाटक, लेखन, श्वयथुविलयन, कफोत्सारि एवं कफछेदनीय है तथा दर्दोंको शांत करता (पीड़ाशामक) है, और कड़ुआहटके कारण कृमियोंको नष्ट करता (कृमिहर), वायुका अनुलोमन और मूत्र तथा आर्तवका प्रवर्तन करता है। कबरके फल दीपन, क्षुधाजनक, वातानुलोमन और सर हैं।

उपयोग—पक्षाघात, स्वाप, आमवात, गृध्रसी और वातरक्त जैसे कफ एवं वात रोगियोंमें कबर उपयोग किया जाता है। कबरकी जड़की छालको सिरकामें क्वाथ करके गंडूष करानेसे दंतशूल आराम होता है। यकृत्प्लीहाके अवरोधोद्घाटन, उदरज कृमिको नष्ट करने और मूत्र एवं आर्तव-प्रवर्तनके लिए उपयुक्त औषधोंके साथ इसका क्वाथ बनाकर पिलाते हैं। प्लीहाशोथ मिटानेके लिए कबरके फलको सिरकामें डालकर तैयार होनेपर खिलाते हैं और इसके मूल एवं पत्रको पीसकर प्लीहाके ऊपर लेप करते हैं। मूल या पत्रको पीसकर कंठमाला तथा अन्य शोथोंको विलीन करने और व्यंग तथा दद्रुको नष्ट करनेके लिए भी लेप लगाते हैं। उदरकृमिनाशनार्थ इसका पत्रस्वरस पिलाते हैं। श्लेष्मनिःसारक होने से कास और श्वासमें इसका उपयोग करते हैं। यह मस्तिष्क संशोधक भी है। **अहितकर**–वस्ति और आमाशयको। **निवारण**–सिकंजबीन, अनीसूँ और शुद्ध मधु। **प्रतिनिधि**–बीज, पत्र और पुष्प एक दूसरेके प्रतिनिधि हैं। **मात्रा**–५ ग्रामसे ९ ग्राम (५ माशेसे ९ माशे) तक।

नव्य मत—इसकी पुष्पकलिकाओंका उत्तम अचार बनता है और चिकित्सामें उपयोग होता है। ये वरुण या सेनेगाके समान कार्य करती हैं। कबर उष्ण, उत्तेजक, श्लेष्मघ्न और मूत्रजनन होता है। इसकी पुष्पकलिका और छालकी क्रिया वरुण और सेनेगाके बहुत समान होती है। इसकी उक्त क्रिया यद्यपि बिल्कुल समान नहीं, पर उससे मिलती-जुलती सैंपोनिन नामक सत्वपर निर्भर करती है (ऐन्सली और डीमक)। यह अर्दित, जलोदर, आमवात और संधिवातमें गुणदायक है।

◆

(१०१) कबाबचीनी।

फ़ैमिलीः पीपेरासे (Family: Piperaceae)।

नाम—(हिं०; बम्ब०; द०; उ०) **कबाबचीनी**; (हिं०) शीतलचीनी, शीतलमिर्च; (अ०) **कबाबे सीनी**, हब्बुल् उरूस; (फा०) कबाबः; **कबाबचीनी**; (द०) दुमकी मिर्ची, दुमदार मिर्च; (बं०) कबाबचीनी; (गु०) चणकबाब; (ले०) **कुबेबी फ्रुक्टुस** (Cubebae Fructus); (अं०) क्यूबेब्स (Cubebs), टेल्ड पेपर (Tailed pepper)।

वक्तव्य—उपर्युक्त प्रायः सभी नाम इसके उपयुक्त अंग अर्थात् 'फल'के हैं। इन्द्रीपर इसका लेप करनेसे सुरतकर्मकी वृद्धि करनेसे अरबीमें इसको '**हब्बुल-उरूस = नवपरिणीतावधूफल**' कहा गया है। अंग्रेजी **क्युबेब** सम्भवतः अरबी 'कबाबः'से व्युत्पन्न है। इसका व्यवसाय चीनी व्यापारियोंके माध्यमसे होनेके कारण सम्भवतः इसका प्रसिद्ध नाम कबाबचीनी पड़ा। इसकी लताको लैटिनमें **पीपेर क्यूबेबा (Piper Cubeba L.f.)** या **क्यूबेबा ऑफ़्फ़ीसिनालिस (Cubeba officinalis** Miq.**)** कहते हैं, परन्तु डाक्टर ब्लूमके विचारसे यूरोपीय बाजारोंमें इस जातिसे प्राप्त कबाबचीनी नहीं भेजी जाती। उनके मतसे व्यापारिक कंबाबचीनी उसकी एक अन्य जातिके पौधे **(P.Caninum** Rumph or **P, Cubeba** Roxb.)से प्राप्त होती है। यह उसकी अपेक्षया छोटी और कम चरपरी होती है।

इतिहास—मध्यकालीन अरबी चिकित्साविशारदोंने कबाबचीनीका समावेश चिकित्सामें किया। सुतरां **मसऊदीने**, जो ईसवी सन् की दशवीं शतीमें हुआ, कबाबचीनीको जावाकी उपज लिखा और '**सहाह**' के रचयिताने जिसका निधन ईसवी सन् १००६ में हुआ, इसे चीनकी एक विशेष औषधि लिखा। **इब्नसीनाने** भी उसीकालमें इसका उल्लेख किया है और लिखा है कि इसमें मजीठ (फुव्वः) के गुणधर्म निहित हैं। कतिपय यूनानी वैद्यकीय

ग्रन्थोंमें लिखा है–जो इसका यूनानी नाम 'माहीलियून' या 'करफियून लिखा है, वह वास्तविक नहीं है। राजनिघण्टुमें 'कंकोल' के नामसे कबाबचीनीके उल्लेखका संकेत मिलता है। प्रतीत होता है, कि इसकी समस्त संस्कृत संज्ञायें अभिनव ग्रहीत हैं। फार्माकोग्राफियाके लेखक लिखते हैं, कि मूत्रेन्द्रिय और जननेन्द्रियपर कबाबचीनीके जो प्रभाव होते हैं, यद्यपि प्राचीन आरब्य चिकित्साविदोंको ज्ञात थे, तथापि यूरूपीय चिकित्सकोंको ईसवी सन्‌की १८वीं शतीके आरम्भमें उक्त औषधिका ज्ञान हुआ। सन् १८१६ ई०में डॉ०वेलवशने फ्रांसमें एक पुस्तिका लिखी, जिसमें उक्त औषधि-विषयक प्रयोग प्रकाशित किया।

उत्पत्तिस्थान—सुमात्रा, जावा, मलाया, आदि टापू इसके आदि उत्पत्तिस्थान हैं। अधुना वहाँ इसकी खेती भी की जाती है। भारतवर्षमें भी कहीं-कहीं थोड़ी बहुत इसकी खेतीकी जाती है। बम्बई बाजारमें सिंगापुरसे कबाबचीनी आती है।

वर्णन—यह मिर्च, पीपल और पान आदिकी जातिकी एक लिपटनेवाली पराश्रयी झाड़ीके प्रसिद्ध सूखे फल हैं। फल प्रारम्भमें वृंतशून्य होते हैं, परन्तु ज्यों-ज्यों वे परिपक्वावस्था को पहुँचते जाते हैं, त्यों-त्यों प्रत्येक फलकी डंडी भी दृष्टिगोचर होती जाती है। अंततः वे गुच्छोंसे पृथक दृग्गोचर होने लगते हैं। जब फल पूर्ण वृद्धिको प्राप्त हो जाते हैं, पर अभी वे हरे एवं कच्चे होते हैं, तो उन्हें गुच्छेसे तोड़ लेते हैं। कतिपय फलोंकी डंडियाँ भी उनमें ही लगी रहती हैं, जिससे उन्हें कभी-कभी 'दुमदार मिर्च' या 'दुमकी मिर्ची' और अंग्रेजीमें 'टेल्ड पेपर' कहते हैं। इन फलोंको धूपमें सूखाकर रख लेते हैं, जिससे हरा रंग कालाई लिये भूरे रंगमें परिणत हो जाता है। फलमें लगी हुई पतली-सी गोल या किंचित् चिपटी डंडी स्वयं फलाधारके सिकुड़नेके कारण बन जाती है। इसलिए यद्यपि वह वास्तविक नहीं, तथापि देखनेमें वैसी प्रतीत होती है। फलके शीर्षपर फूलके कुछ दंदानेदार अविशिष्टांश भी दृग्गोचर होते हैं। फल कालीमिर्चके बराबर गोल होता है। इसके बाह्य तल पर चुनटें वा झुर्रियाँ पायी जाती हैं, जो कच्चे फलोंको सुखानेकी दशामें प्रायः उत्पन्न हो जाती हैं। यह अन्दरसे सफेद होता है। इसे कुचलने से इसमेंसे मसालेकी तरह विशिष्ट मनोरम एवं तीक्ष्ण गंध आती है। ये मिर्चसे कुछ मुलायम और खानेमें कड़वे और चरपरे होते हैं। इनके खानेसे पीछे जीभ बहुत ठंडी मालूम पड़ती है। इसमें दो-वर्ष तक वीर्य रहता है। स्वर्गवासी श्री जादवजी त्रिकमजी आचार्य महोदयने इसे आयुर्वेदका 'कङ्कोल' मानकर वर्णन किया है (दे० द्रव्यगुणविज्ञानम् उत्तरार्ध २रा खण्ड पृ० ३१७)। **भेद**–गंजबादावर्द के मतसे चीनी, हबशी, हिन्दी भेदसे कबाबचीनी तीन प्रकारकी होती है। सर्वोत्तम कबावचीनी वह है जो ताजी, सुगंधित, चरपरी और चीनसे आयी हो। इससे बाद हबशी वा रूमी होती है। भारतीय कड़वी तथा हीन कोटिकी होती हैं। परन्तु तेलके विचारसे यह विदेशी कबाबचीनीसे किसी प्रकार कम नहीं है। **असली-नकली की पहचान**–नकली कबाबचीनी साधारण तथा असलीसे कुछ बड़ी और रंग एवं सुगन्धमें इससे सर्वथा भिन्न होती है। उनमेंसे किसीकी डंडी टेढ़ी होती है और इससे अधिक कड़वी होती है। तीव्र सल्फूरिक एसिडके स्पर्शसे इसका चूर्ण गहरा लाल हो जाय तो असली समझना चाहिये।

रासायनिक संगठन—इसमें एक प्रकारका लघु एवं पिलाई लिये हरा या हलका हरापन लिये पीले रंगका उड़नशील तेल (रोग़न कबाबः **Oil of cubeb**) १० प्र०श० होता है जो स्वाद और गंधमें कबाबचीनीके समान होता है। इसके अतिरिक्त इसमें दो प्रकारकी रालें और क्युबेबिन नामका दानेदार सक्रिय तत्व होता है।

उपयुक्त अंग— सम्यक् विकसित सूखे कच्चे फल (कबाबचीनी) और फलोंसे प्राप्त उड़नशील तेल (रोग़न कबाब:)।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें उष्ण एवं रूक्ष।

गुण-कर्म—दोषोंको पतला करनेवाली, प्रमाथी, श्वथुविलयन, दीपन, दाँतों और मसूड़ोंको बलप्रद स्वरजशोधक, मूत्रल, आर्तवनन, वातानुलोमन, मुखदौर्गन्ध्यहर, शोणितोत्क्लेशक और ध्वजोच्छ्रायजनक हैं।

उपयोग—दोषतारल्यजनन एवं प्रमाथी होनेके कारण यकृत्प्लीहाके अवरोधमें इसका उपयोग करते हैं। आर्तव एवं मूत्र प्रवर्तनके लिए इसका क्वाथ और चूर्ण देते हैं (सूजाकमें)। मूत्र-मार्गके शोधनके लिए इसे अकेला या योगौषधके रूपमें प्रयुक्त करते हैं। यदि एक प्याला छाछमें ३ माशे कबाबचीनी बारीक पीसकर छिड़क दें और प्याले पर कपड़ा बाँधकर रातके समय ओसमें रखें और प्रातःकाल मिलाकर पिलायें। इसी प्रकार ४-५ दिन करें, तो मूत्रमार्गस्थ व्रणमें अत्यन्त उपकार हो। पथ्यमें बिना नमकके दहीके साथ केवल भात खिलावें। यह दाँतों और मसूड़ोंको मजबूत करती और मुखका दुर्गन्ध दूर करती है। इसलिए इसे दन्तमंजनोंमें डालते हैं। स्वरशुद्धिके लिए तथा दन्तशूल एवं मुखपाक निवारणके लिए इसे मुखमें रखकर चबाते हैं। खाँसीके लिए इसे मधुमें मिलाकर चटाते हैं। इन्द्रियपर इसका लेप करनेसे यह शिश्नोत्थापन करती है। इसका लेप श्वयथुविलयन है। शरीरको सुवासित करनेके लिए इसे सुगन्धयोगविशेष (ग़ालिया) में मिलाकर उपयोग करते हैं। **अहितकर**—वस्तिरोगोंको। **निवारण**—सफेद चन्दन, अर्कगुलाब और मस्तगी। प्रतिनिधि—दालचीनी और छोटी-बड़ी इलायची। **मात्रा**—१ ग्रामसे ३ ग्राम (१ माशेसे ३ माशे); तेल, ५-२० बूँद तक।

आयुर्वेदीय मत—के लिए 'कंकोल' देखें।

नव्य-मत—कबाबचीनी कफघ्न, उत्तेजक, पूतिहर, मूत्रजनन, वातनाशक और दीपन है। इसकी क्रिया श्लेष्मल कलापर विशेषतः मूत्रमार्ग और गुदा पर होती है। श्वासमार्गकी श्लेष्मल कलापर इसकी थोड़ी बहुत उत्तेजक क्रिया होती है। पुराने सूजाक और अर्शमें यह उत्तम औषध है। पुराने कफरोगमें कबाबचीनी उत्तेजक कफघ्न क्रिया करती है। गलेकी शिथिलता और मुखपाकमें कबाबचीनी मुँहमें रखनेको देते हैं। नाकके भीतरका कफ कम होनेके लिए कबाबचीनीका नस्य देते हैं। बनौषधिदर्पणकारके अनुसार ग्रन्थान्तरमें 'सुरप्रिय' नामसे कबाब चीनीका उल्लेख आया है। उनके मतसे यह वातप्रशमन, श्लेष्मापहारक, अग्निवर्धक और मूत्रवृद्धिकर है तथा यह औपसर्गिक (पूय)मेह, शुक्रमेह, श्वेतप्रदर, अर्श और मूत्रकृच्छ्रका नाश करती है।

●

(१०२) कमरख।

फ़ैमिली : ऑक्ज़ैलिडासे (Family : Oxalidaceae)

नाम—फल (हिं०) कमरख, कमरक (मख़्ज़न), कमरंग; (द०) ख़म्रक़ (**ज़खीरे अकबरशाही**), कर्मलं, (मीठा, कामरंग; (सं०) कर्मरङ्ग, धाराफल; (बं०) कामरांगा; (गु०) कमरख; (म०) कर्मर, कमरल; (तें०) करमग्ग; (मल०) चतुरपुलि; (का०) धौरहुली; (ले०) आवेर्‌होआ कारम्बोला (**Averrohoa carambola** Linn.) (अं०) चायनीज गूजबेरी (Chinese gooseberry), कारंबाला एपल (Carambala apple)।

उत्पत्तिस्थान—सम्भवतः मलायाका आदि निवासी है। किसी-किसीका अनुमान है कि मलक्का या नई दुनियाँसे पुर्तगालनिवासी इसे यहाँ ले आये थे जो इसे 'करबोला और 'बिलिंबिनास' कहते हैं। खट्टे फलोंके लिए भारतवर्षके समस्त उष्णप्रधान प्रदेशोंमें इसे लगाते हैं। राजनिघंटुमें 'कर्मरङ्ग' नामसे इसका उल्लेख आया है।

वर्णन—यह मझोले कदके एक वृक्षका प्रसिद्ध फल है, जो लम्बा और पाँच या छः फाँकोंवाला होता है। कच्चा फल हरा होता है, किन्तु पकनेपर यह पीला हो जाता है। यह रसपूर्ण और अम्ल होता है। कच्चे फल खट्टे और पके खट-मिट्ठे होते हैं। पत्र हरफारेबड़ीके पत्र जैसे होते हैं। खट्टा और मीठा (वा खटमिट्ठा) भेदसे कमरकका

फल दो प्रकारका होता है। बिलिंबी (**Averrhoa bilimbi** Linn.) नामक कमरख भी इसीकी एक अन्यतम जाति है जिसमें पत्तियाँ कम चौड़ी और फलके खण्ड गोलाई लिए होते हैं।

रासायनिक संगठन—फलके रसपूर्ण गूदेमें अधिक प्रमाणमें **एसिड पोटैसियम ऑक्ज़ेलेट** पाया जाता है। बीजोंमें **हर्मेलाइन** नामक उपक्षार रहता है।

उपयुक्त अंग—फल, मूल, पुष्प और पत्र।

कल्प—फलका साग, चटनी, अचार और शर्बत बनाया जाता है।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें शीत एवं रूक्ष। आयुर्वेदमतसे शीतवीर्य (रा० नि०)।

गुण-कर्म—यह संग्राही है और पित्तकी तीक्ष्णता और तृष्णाको शमन करता है।

उपयोग—यह पित्तल प्रकृतिवालोंको सात्म्य है। यह बहुधा मेवाकी भाँति खाया जाता है। पित्तज वमन और अतिसारको बन्द करने तथा प्यासको बुझानेके लिए इसे खिलाते और इसका रस (३ तोले से ५ तोले तक) पिलाते हैं। अहितकर–शीतप्रकृतिको। निवारण–उष्ण औषधियाँ और जुवारिशें (खाण्डव)। प्रतिनिधि–रेबास।

आयुर्वेदीय मत—पका हुआ कमरख मधुर, अम्ल, शीतवीर्य, बल्य, पुष्टिकारक, रोचक और कफ तथा वातको दूर करनेवाला है (रा० नि०; भा० प्र०)।

नव्य मत—पका फल या उसका शर्बत शीतल रोचक और रक्तशुद्धिकर है। ज्वर और रक्तपित्तमें इनका प्रयोग करते हैं। कमरख प्रशीताद (स्कर्वी) रोगमें और रक्तार्शमें लाभकर है।

●

(१०३,१०४) कमल और नीलूफ़र

फ़ैमिली : नीम्फ़ीआसे (Family : Nymphaeaceae)

नाम। कमल–(हिं०) कमल, कँवल, पुरइन; (अ०) क़ातिलुन्नहल (मधुमक्षिकानाशक); (म०, गु०) कमल; (सं०) कमल, पद्म; (क०) पम्पोश; (बं०) पद्म; (ता०) तामरै; (लै०) नेलुम्बो नूसीफेरा **Nelumbo nucifera** Gaertn. (पर्याय *Nelumbium speciosum Willd.*); (अं०) इजिप्शन या सेकरेड लोटस (Egyptian or Sacred lotus) बीज–(हिं०) कमलगट्टा, कँवलगट्टा, कमल-ककड़ी; (अ०) बाक़िलाए नब्ती (या क़ुब्ती वा मिश्री); (सं०) कमलाक्ष, कमलकर्कटी। (अं०) कॉप्टिक बीन (Coptic bean)।

नीलूफ़र

नाम—(हिं०) कूईं, कोईं, कोंई; (अ०) कर्नबुल्माऽ; (फा०) नीलू(लो)फर; (सं०) कुमुद, उत्पल; (बं०) सुँदि, शालूक; (गु०) पोयणुं; (म०) कमोद; (क०) पम्पोश, निलोफर; (लै०) नीम्फ़ीआ लोटुस (**Nymphaea lotus** Linn.); (अं०) वाटर लिली (Water lily)। (पुष्प)–(यू०) निम्फेआ (Nymphaia); (अ०) वर्द नीलूफ़र; (फा०) नीलूफ़र, गुल नीलूफ़र। (बीज)–(हिं०) बेरा, गंगोल; (अ०) बज़्रुल् नीलूफ़र; (फा०) तुख़्म नीलूफ़र।

उत्पत्तिस्थान—यह समस्त भारतीय जलाशयोंमें उत्पन्न होता है। इसके अतिरिक्त अमेरिका, कास्पिअन सागरके तटवर्ती प्रदेश, फारस, चीन और मिश्र देशमें इसका पौधा होता है। नील कमल केवल कश्मीरके उत्तरांश, तिब्बतके अंतर्गत और चीनके किसी-किसी स्थानमें देख पड़ता है।

वर्णन—सूर्यविकाशी कमलके फूल सूर्योदयके समय खिलते हैं और संध्याको बंद हो जाते हैं। श्वेत, रक्त और नील आदि भेदसे यह कई प्रकारका होता है। इसके बीजको कमलगट्टा कहते हैं। चन्द्रोदयविकाशी या रात्रिविकाशी कुमुदके फूल सन्ध्या समयमें खिलते हैं और सूर्योदयके समय बंद हो जाते हैं। कमलकी भाँति श्वेत, रक्त, नील और पीत आदि इसके भी अनेक भेद होते हैं। इनमें पीले फूलका दुर्लभ है और सफेद फूलका पुष्कल मिलता है। यूनानी वैद्यकमें मात्र नीलूफर शब्दसे कूईंका पुष्प वह भी 'नीला फूल' विवक्षित होता है। नीलूफर शब्द संस्कृत 'नीलोत्पल' (नील, उत्पल = कूई)से व्युत्पन्न जान पड़ता है। इन भेदोंमें औषधार्थ सफेद कूईं सर्वोत्कृष्ट समझी जाती है। बाजारमें नीलूफर नामसे प्रायः इसीके पुष्प मिलते हैं। रात्रिविकाशी कूईंके बीज छोटे, गोल, कच्ची हालतमें लाल और पकनेपर काले होते हैं। हमारे यहाँ इसे 'बेरा' कहते हैं।

रंगभेदसे कूईंके नाम—(१) सफेद (हिं०) सफेद कूईं (कुमुदिनी); (लै०) नीम्फ़ीआ आल्बा (**N.alba**-Linn.); (अं०) ह्वाइट वाटर-लिली (White Water-lily); (२) लाल कूईं; (सं०) हल्लक, कोका, रक्त कंबल; (लै०) ना० रूब्रा या प्यूबीसेन्स (**N.rubra** Roxb. or **pubescens**)। (३) नीला (हिं०) नीली कूईं (कुमुदिनी) (सं०) नीलोत्पल, कोकावेली; (फा०) नीलूफ़र; (लै०) नी० स्टीलाटा या सीरुलेआ (**N. stellata** Willd. or **caerulea**); (अं०) ब्ल्यू वाटर लिली (Blue Water-lily)।

वक्तव्य—यूनानी हकीम सावफरिस्तुसने 'कुआमोस इजिप्टिओस (Kuamos aigyptios)' अर्थात् 'मिश्रकी सेम' नामसे इसका उल्लेख किया है। अरब और फारस निवासियोंने नीलूफ़र शब्दके अंतर्गत कई प्रकारके कमल और कूईंका उल्लेख किया है। ऐसा प्रतीत होता है कि वे कमलको किसी प्रकार कूईंसे बढ़कर नहीं मानते थे। यही कारण है कि यूनानी वैद्यकमें केवल कूईं (नीलूफर) का ही इतना अधिक प्रयोग देखनेमें आता है। वास्तवमें कमल और कुमुदकी सब जातियाँ गुण-कर्ममें अधिकांशमें समान हैं। अतः योगोंमें जहाँ उनका उल्लेख हो वहाँ जो जाति प्राप्त हो सके उनसे काम चल सकता है।

कल्प तथा योग—अर्क़ नीलूफ़र, शर्बत नीलूफ़र।

नीलूफ़र—

प्रकृति—अन्याय अंगोंसे पुष्प श्रेष्ठ है। यह दूसरे दर्जेमें शीत एवं तर है। जड़ उष्ण एवं रूक्ष; बीज शीत एवं रूक्ष है। भारतीय नीलूफर विदेशी से कम सर्द है।

गुण-कर्म—पुष्प शीतसंग्राही, स्वप्नजनन, दाहप्रशमन, कामावसादकर, वीर्यपुष्टिकर दोषतारल्यजनन, स्निग्ध और मार्दवकर होता है। जड़ और बीज संक्षोभरहित रूक्षण और स्रावरोधक हैं।

उपयोग—शीतल और संग्राही होनेसे नीलूफर नींद लाता, उष्ण हृदय और मस्तिस्कको शक्ति देता, दाह शमन करता और उष्ण एवं पित्तज शिरः-शूलको नष्ट करता है। शीतल एवं प्रभावज गुणके कारण यह स्वप्नदोष एवं कामशक्तिको घटाता और वीर्यको पुष्ट करता है। जालीनूसके मतसे इसकी जड़ और बीजमें एक ऐसा वीर्य है जो संक्षोभरहित रूक्षता उत्पन्न करता है। इसीके कारण यह उदरमें कब्ज पैदा करता और द्रवोंकी प्रवृत्ति एवं शुक्रप्रमेहको बंद करता है। इसका शर्बत जो दाहप्रशमन के लिये उपयोग किया जाता है इसमें थोड़ी-सी उष्णता भी है जिससे यह दोषोंको तरल बनाता (मुलत्तिफ़) है। तीव्र स्निग्ध एवं मार्दवकर होनेसे यह कास और सीनेकी खुश्कीको दूर करता है। मसूरिकामें दाने निकल आनेके उपरांत इसका (नीलूफरका) उपयोग गुणकारी है। अहितकर—वस्ति एवं मैथुन शक्तिको और शीतके कारण मस्तिष्कको कमजोर करता है। निवारण—मिश्री और गाजर (मुरब्बा) और मैथुन शक्तिके लिये लुबूब और मधु। प्रतिनिधि—बनफशा और बेतसपत्र या सफेद ख़तमी। मात्रा—(पुष्प) १०॥ ग्राम या १०॥ माशे; (चूर्ण) २ तोले (क्वाथ में); जड़ ३·५ ग्राम (३॥ माशे) और बीज १०·५ ग्राम (१०॥ माशे) तक।

कमलगट्टा—

प्रकृति—शीत एवं तर।

गुण-कर्म—पित्त एवं रक्तोद्वेगसंशमन, तृट्प्रशमन, संग्राही और वीर्यपुष्टिकर।

उपयोग—पित्तसंशमन होनेके कारण कमलगट्टेकी गिरीको जलमें पीस-छानकर शिशुओंके पिपासाधिक्य (उतास) रोगमें पिलाते हैं। ग्रीष्म ऋतुमें विषैले वायुसे सुरक्षित रखनेके लिए भी इसका शीरा निकालकर पिलाया जाता है। संग्राही होनेके कारण बच्चोंके अतिसारमें इसका शीरा वा चूर्ण उपयोग करते हैं। संशमन होनेके कारण रक्तकी तीक्ष्णता एवं रक्तोद्वेगमें उक्त विधिसे पिलाते हैं। वृष्य होनेके कारण शुक्रतारल्य एवं शुक्रप्रमेहमें अन्य औषधियोंके साथ इसका चूर्ण (सफ़ूफ़ कंवलगट्टा) खिलाते हैं। हकीम अजमलखाँ महोदयके अनुसार कमलगट्टेके अन्दरकी हरी पत्तीको अर्क गुलाबमें घिसकर पिलानेसे हैजेकी असाध्यावस्थामें भी उपकार होता है।

मात्रा—३ ग्रामसे ५ ग्राम (३ माशे से ५ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—सब प्रकारके कमल और कूईके पुष्प रसमें कषाय, मधुर और किञ्चित् तिक्त, शीतवीर्य, स्निग्ध, पिच्छिल, आह्लादकारक, मूत्रविरजनीय तथा रक्तपित्त, दाह, तृषा, हृद्रोग, वमन और मूर्च्छाका नाश करनेवाले हैं। बिस रक्त और पित्तको शान्त करनेवाला, विष्टम्भि, दुर्जर, रूक्ष, शीतवीर्य, अविदाहि और कफ तथा वायुको उत्पन्न करनेवाला है। कमल और कूईके कन्द रसमें मधुर और कषाय, विपाकमें मधुर, शीतवीर्य, पित्तका शमन करनेवाले और वायुका प्रकोप करनेवाले हैं। कमलगट्टा रसमें मधुर और किंचित् कषाय, विपाकमें मधुर, शीतवीर्य, कुछ विष्टम्भि, बलकारक, गुरु, कफकारक और रक्तपित्तका शमन करनेवाला है। कमलकेशर ग्राही और रक्तपित्त प्रशमन है। (च० सू० अ० ४, २५ व २७; सु० सू० अ० ३८, ४६)।

नव्य मत—कमलकी पंखड़ियाँ शीतल, दाहप्रशमन, हृदयबल्य, हृदयसंरक्षक, रक्तसंग्राहक, मूत्रजनन, मूत्रविरजनीय और ग्राही हैं। इनकी क्रिया साधारणतः डिजिटेलिसके समान स्वयं हृदय और छोटी रक्तवाहिनियों पर होती है। इससे रक्तवाहिनियोंका संकोचन होता है और हृदयकी गति शान्त और कम होती है। इनमें मूत्रजनन और ग्राही गुण कम है। कमलकेशर दाहप्रशमन और रक्तसंग्राहक है। कमलगट्टा पौष्टिक, स्नेहन, ग्राही और रक्तसंग्राहक है। कमलकन्दका चूर्ण पौष्टिक स्नेहन, ग्राही और रक्तसंग्राहक है। उष्णदेशमें होनेवाले कमलकी अपेक्षया ईरान, कश्मीर आदि शीतल प्रदेशोंमें होनेवाले कमल विशेष गुणदायक हैं। रक्तार्श, अत्यातर्व और दाह कम होनेके लिए कमलकेशरको मिश्री और मक्खनके साथ देते हैं। गर्भिणीके गर्भाशयसे रक्तस्राव होता हो तो वह कमलके फाँटसे तुरन्त बन्द होता है। रक्तार्श और रक्तप्रवाहिकामें कमलकन्दके चूर्णकी पेया देते हैं। इसके फूलोंके फाण्टसे हृदयकी धड़कन और नाड़ीकी गतिकी तीव्रता कम होती है। यह जीर्ण हृद्रोगमें उपयुक्त नहीं है। कमलका हृदयसंरक्षक धर्म ज्वरचिकित्सामें देखनेमें आता है। तीव्र संतत-ज्वरमें उष्णतासे हृदयपेशी खराब और शिथिल होती है। ऐसे ज्वरमें प्रारम्भसे ही कमल देते रहनेसे ये दोनों घातक क्रियाएँ नहीं होतीं। कमल देनेसे हृदयकी धड़कन दूर होती है और हृदय अशक्त नहीं होता। कमलके फूल, चंदन, रक्तचंदन, खस, मुलेठी, नागरमोथा और मिश्रीका मन्दाग्निपर बनाया हुआ काढ़ा ज्वरमें अति हितकारक है। इस काढ़ेसे हृदयका संरक्षण होता है, पेशाब होता है, दाह कम होता और दस्त पतले होते हों तो बन्द होते हैं। कमलगट्टेकी पेयासे वमन, हिचकी और प्रदर आराम होता है।

●

(१०५) कमाजरियूस

फ़ैमिली : लेबिआटी (Family : Labiatae)

नाम—(यू०) खमाइड्रूस Khamaidrus (D. 3. 112.); (अ०) **कमाद(ज)रियूस;** (लैं०) **टेउक्रीउम् कामेड्रीस** (**Teucrium chamaedrys** Linn.); (अं०) वॉल जर्मेण्डर (Wall Germander)। **वक्तव्य**—'खमाड्रुस' यूनानीसे 'कमाजरियूस' अरबी बनाया गया है। इस वनस्पतिका प्रजातिक (Generic) नाम 'Teucrium', यूनानी पौराणिक कथाओंमें ट्रायके प्रथम बादशाह 'Teucer' द्वारा इसका सर्वप्रथम औषधीय प्रयोग किये जानेपर आधारित है।

उत्पत्तिस्थान—यूरोप और एशियाके किसी भागका निवासी है। जहाँतक ज्ञात है यह बाजारमें अप्राप्त है।

वर्णन—काण्ड ३०से ६० सें०मी० (१-२ फुट) ऊँचा; पत्र गहरा हरा, ऊपरकी ओर चमकीला, लट्वाकार (Ovate);१·२५से २·५ सें० मी० (।। से १ इंच) लम्बा और ०·६२५ सें० मी० से १·२५ सें० मी० (१।४-१।२ इंच) चौड़ा, आयताण्डाकार एवं अधिककोणीय, दंतुर और फानाकार (Wedge-shaped), अखण्ड आधारयुक्त; पौष्पिक पत्र लगभग अखण्ड; पुष्प बैंगनी लिये-लाल, ऊर्ध्वोष्ठ गम्भीर द्विविभक्त (Bifid) और बाहर निकले हुए पुंकेसर (Projecting stamens) युक्त होता है। स्वादमें तिक्त और गंधरहित होता है।

उपयुक्त अंग—क्षुप (पंचांग)।

रासायनिक संगठन—इसमें उत्पत् तेल (Essential oil) और एक तिक्त सत्व पाया जाता है।

प्रकृति—तृतीय कक्षाके मध्यमें उष्ण और तृतीय कक्षाके प्रथममें रूक्ष।

गुण-कर्म—बल्य, मूत्रल, स्वेदल और उत्तेजक। **प्रधानकर्म**—रजःप्रर्वत्तक और प्लीहाशोथहर।

उपयोग—पूर्वकालमें वातरक्तकी औषधिके रूपमें यूरोपमें इसका उपयोग होता था तथा यह प्रसिद्ध संधिवातहर औषधि या 'पोर्टलैण्ड पाउडर'का एक उपादान था। विषमज्वर, कण्ठमाला और त्वग्रोगोंमें भी इसका उपयोग होता था। **अहितकर**–वस्ति, वृक्क और अन्त्रको। **निवारण**–वस्तिके लिए बिही और शेषके लिए कतीरा या सर्दतर वस्तु। **प्रतिनिधि**–गाफिसकी जड़, तुख्म हुम्माज बर्री, तुख़्म शलगम बर्री, तज। **मात्रा**–चूर्णकी मात्रा ५ तोले तक और क्वाथमें २ तोले तक।

●

(१०६) कमाफ़ीतूस

फ़ैमिली : लेबिआटी (Family : Labiatae)

नाम—(यू०) Khamaipitus (D. 3.165); (अ०) **कमाफ़ीतूस;** (लैं०) आजूगा कामेपिटिस **Ajuga chamaepitys** Schreber. **(Teucrium chamaepitys);** (अं०) यूरोपियन ग्राउंड पाइन (European Ground-pine)।

वक्तव्य—यूनानी 'खमाइपीतूस'से 'कमाफीतूस' अरबी बनाया गया है, जिसका धात्वर्थ 'भूमिज सनोबर अर्थात् 'सनोबरूल् अर्ज़' है।

उत्पत्तिस्थान—यूरोप।

वर्णन—**क्षुप**, झाड़ीदार, ७·५ सें०मी०से १५ सें० मी० (३-६ इंच) ऊँचा, अतिरोशम, गंभीर त्रिखंडमय-पत्रयुक्त, खंड रेखाकार अखण्ड; **पुष्प** एकाकी पत्रकोणमें स्थित, पुष्पाभ्यन्तर कोष (Corolla) पीले, काले बिंदुयुक्त, नीचेके पत्र भालाकार, किंचित् विभक्त (Scarcely divided) स्वाद और गंध सुगन्धित एवं तारपीनवत् ।

उपयुक्त अंग—पत्र ।

कल्प—हिम वा फांट, और तरलसार (१/२-२ ड्राम) ।

प्रकृति—दूसरे या तीसरे दर्जेमें उष्ण तथा **रूक्ष** ।

गुण-कर्म तथा उपयोग—उत्तेजक, मूत्रल, आर्तवप्रवर्तक, अवरोधोद्घाटक और संशोधनकर्ता है। अन्य उपयुक्त औषधियोंके साथ वातरक्त और संधिवात (आमवात)की उत्तम औषधि है। स्त्री रोगोंमें यह गुणकारी है। **अहितकर**–फुफ्फुस और उष्ण यकृत् को। **निवारण**–पहलेके लिए शहद और अनीसूँन; दूसरेके लिए जुअरूर। **प्रतिनिधि**–जंगली या दीवारी मूली (**Laggera aurita** Schultz-Bip.), कमाजरियूस, जीरा स्याह आदि।

मात्रा—७ ग्राम (७ माशे) तक ।

●

(१०७) कमीला ।

फ़ैमिली : एउफॉबिआसे (Family : Euphorbiaceae)

नाम—(हिं०) कबीला, कमीला, रोरी (मिर्जापुर; पलामू; खर०), रैनी (देहरादून); (अ०) क़ंबील (इ०बै०), क़िंबील; (फा०) कंबाला; (सं०) कम्पिल्लक; (बं०) कमला गुँडि; (म०) कपिला; (गु०) कपीलो; (माल०; पं०) देवसिन्दूर; (लै०) कमाला (Kamala); (अं०) कमीला (Kameela), रॉटलेरा (Rottlera) ।

वक्तव्य—इसके लैटिन, अंगरेजी, अरबी, फारसी एवं अन्य भारतीय नाम संस्कृत 'कम्पिल्लक'से व्युत्पन्न हैं और पक्व फलोंपर लिपटे लालरज (Crimson powder)के लिए प्रयुक्त होते हैं जो इसका औषधोपयुक्त भाग है। वृक्षका लेटिन नाम **माल्लोटुस फिलीप्पिनेन्सिस Mallotus philippinensis** Muell-Arg. (पर्याय–*Rottleria tinctori* Roxb.) है। अंग्रेजी में इसको **मंकी-फेस-ट्री** (The monkey-face tree) कहते हैं। इसके वृक्षको दूरसे देखनेसे मुरचई रंगका दिखाई देता है, इसीसे अंग्रेजी नाम रखा गया।

उत्पत्तिस्थान—इसके पेड़ एशिया तथा अरब और अबीसिनीया, आस्ट्रेलिया और भारतवर्षके प्रायः सभी गरम प्रांतोंमें पाये जाते हैं।

वर्णन—यह एक मझोले कदके सदाबहार पेड़के फलके ऊपरका रज है। इसके फल त्रिदल, आकारमें झड़बेरीके समान और गुच्छोंमें लगते हैं। आरंभमें ये हरे रंगके होते हैं, पर बादको उनपर ललाई लिये चमकदार, घनावृत रोम और सूक्ष्म लाल रंगकी ग्रंथियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। यह देखनेमें लाल धूलसी जमी हुई प्रतीत होती हैं। पके फलके गात्रपर जो यह कुछ-कुछ बैंगनी लिये लाल वा ईंटके रंगका दानेदार पदार्थ (रज) संचित होता है, इसी लाल रजको कमीला कहते हैं। यह निर्गंध तथा स्वादरहित होता और जलके ऊपर तैरता है। यह लाल रेणु फलके अतिरिक्त शाखाओंपर भी लगा रहता है जिसे संग्रह करनेवाले झाड़कर और अलोड़ितकर रखते हैं। **नकली-असली कमीलेकी पहिचान**–जलसे भींगी हुई उँगलीसे कबीलेको उठाकर सफेद कागजपर जोरसे लकीर खींचने या रगड़नेसे यदि वह मसृण वर्तिरूपसे परिणत हो जाय, अथवा उसपर उज्ज्वल पीले रंगका निशान हो जाय

और स्पर्श मृदु मालूम हो तो शुद्ध एवं उत्कृष्ट, अन्यथा मिश्रित वा अशुद्ध कबीला समझना चाहिये । गंजबादावर्द में कबीलेकी पहिचान इस प्रकार लिखी है–"शुद्ध हलका एवं स्वादरहित होता और उसकी सुर्खीमें पिलाईकी झलक होती है । नकली भारी एवं अत्यन्त लाल होता है । इसमें पिलाईका लेश भी नहीं होता और किसी-न-किसी प्रकार का स्वाद भी होता है ।"

रासायनिक-संगठन—इसका प्रधान सत्व **कम्पिल्लीन-राट्टलरिन** (Rottlerin) नामक एक क्रिस्टली द्रव्य है जो ललाई लिये पीला, पत्राकार परतके रूपमें पाया जाता है । यह ईथरमें तुरन्त विलीन हो जाता है । **विलेयता**–कबीला शीतल जलमें अविलेय, खौलते जलमें अंशतः विलेय, किन्तु क्षार, सुरासार एवं ईथरमें सम्यक् विलेय होता है और इससे गहरे लाल रंगका विलयन प्राप्त होता है ।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें **उष्ण एवं रूक्ष** । आयुर्वेदके मतसे उष्णवीर्य (ध० नि०) ।

गुण-कर्म—**उदरकृमिनाशन**(Taenifuge) एवं **निःसारक**, पिच्छिल (लज़िज) द्रव और दूषित दोष विरेचनीय, एवं क्षत और **व्रण शोषण-रोपण** ।

उपयोग—दिल्लीके हकीम उदरकृमि, विशेषकर कद्दूदानेको नष्ट करके निकालनेके लिए कमीलाको दहीमें मिलाकर उपयोग करते हैं । इसके लिए यह परमोपयोगी औषध है । इससे समस्त कृमि मरकर दस्तके द्वारा निकल जाते हैं । अकेला उपयोग करनेके अतिरिक्त इसे अन्य औषध द्रव्योंके साथ चूर्ण बनाकर भी खिलाते हैं । लखनऊके हकीम इसके आभ्यंतरिक प्रयोगकी आज्ञा नहीं देते । तर खुजली, दद्रु और अन्य तर व्रणों और क्षतोंमें तथा खालित्यमें इसे अकेला तेलमें मिलाकर (**रोग़न कमीला**) लगाया जाता है या बिना तेल मिलाये छिड़का जाता है । यह व्रणोंको बहुत जल्द सुखा देता है और बाह्य कृमियोंको भी नष्ट करता है । अहितकर–अन्त्र और आमाशयिक द्वारको । **निवारण**–मस्तगी, कतीरा और अनीसूँ । प्रतिनिधि–बायविडंग ।मात्रा–१ ग्रामसे ३ ग्राम (१ माशासे ३ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—कमीला कटु, उष्णवीर्य, रेचक तथा व्रण, गुल्म, उदर, मलावरोध, पेटका अफारा, कफ और कृमिका नाश करनेवाला है (च० सू० अ०२; सु० सू० अ० ३८; ध० नि०) ।

नव्य मत—सब प्रकारके उदरकृमिके लिए कमीला उत्तम औषध है । इससे कृमि मरकर विरेचन द्वारा निकल जाते हैं । कमीलेको तेलमें मिलाकर व्रण, अग्निदग्ध व्रण और कण्डूपर लगाते हैं । मात्रा–१.५ ग्राम से ३ ग्राम (१॥-३ माशा); बालकोंको ०·६ ग्राम (५ रत्ती) ।

◆

१०८ (कयपूती) ।

फ़ैमिली : मीर्टासे (Family : Myrtaceae) ।

नाम—(हिं०) कय (कै) पूती, कायपुटी, कायाकुटी; (बं०) कायपुटी; (द०) काईपुती, काईबूटी; (गु०) कायपुती; (ले०) मेललिउका लीउकाडेन्ड्रोन **Meloleuca leucadendron** Linn. (पर्याय–मे०काजुपुटी *M. Cajuputi Roxb.*); (अं०) केजुपुट (Cajuput), कैजेपुट (Cajeput) । तेल–(हिं०) कयपूतीका तेल; (लै०) केजुपुटी ओलेउम (Cajuputi Oleum); (अं०) केजुपुट ऑइल (Cajuput oil) ।

वक्तव्य—'कयपूती' मलायन (कयु = पेड़ + पूती = सफेद) शब्दका किंचित् परिवर्तित रूप है ।

इतिहास—सर्वप्रथम डॉ० रम्फीअस ने उक्त वृक्षके सुगंधित गुणका और मलाया और जावावासियोंने इसके पत्तोंके उपयोगका उल्लेख करके इससे तेल निकालनेकी विधि बतलाई । सुतरां सन् १७२७ ई० में डचनिवासियोंने

सर्वप्रथम व्यापार हेतु यह तेल बनाया। भारतीयोंको १८वीं शतीके आरम्भमें इस तेलका ज्ञान हुआ, जबकि यूरुपमें इसका व्यापार होने लगा।

उत्पत्तिस्थान—सुमात्रा, जावा, फिलिपाइन आदि पूर्वीय द्वीपसमूह। कभी-कभी भारतीय बगीचोंमें इसे लगाते हैं।

वर्णन—एक सदाबहार विशाल वृक्ष जावा और मैनिला आदि स्थानोंमें जिसकी ताजी पत्तियों एवं टहनियों का तेल निकाला जाता है। यह तेल प्रथम कुछ-कुछ हरे रंगका किंतु दोबारा भभकेसे चुआनेपर यह रंगरहित या पांडुरपीत वर्णका होता है। महक बहुत कड़ी होती है और जो बहुत साफ यूकेलिप्टस और कपूरकी तरह उड़नेवाला और स्वादमें चरपरा होता है।

रासायनिक संगठन—इसमें एक उत्पत् तैल (Essential oil) पाया जाता है, जिसका प्रधान उपादान केजुपुटोल ४०-६० प्र० है, जो यूकेलिप्टोलके समान होता है।

उपयुक्त अंग—तेल (१-३ बिंदु)।

गुण-कर्म तथा उपयोग—उत्तेजक, आक्षेपहर, स्वेदल और कोथप्रतिबंधक। मलक्का द्वीपके निवासी, जहाँ इसके वृक्ष उत्पन्न होते हैं, बाह्याभ्यंतरिक सभी प्रकारके दर्दोंकी उपकारी औषधिकी भाँति बड़ी प्रशंसा करते हैं। आमवातिक विकारों, दन्तशूल, वातवेदना, कण्डरावितान, (मोच) और नील (Bruises) के लिए द्रवौषधोंमें इसका लाभकारी उपयोग हो सकता है। शूल (Colic), आक्षेप, आध्मान और हिक्का रोगोंमें मूल्यवान्, आशुकारी उत्तेजक (Diffusible stimulant) औषधकी भाँति १-१० बिंदुकी मात्रामें चीनीके ऊपर डालकर इसका आन्तरिक उपयोग किया जा सकता है। उत्तेजक और कोथप्रतिबन्धक होनेसे वैसूचिकीय अतिसारमें, रक्तिमाकर (Rubefacient) होनेसे सोरिएसिसि (Psoriasis), चिरकालज पिटिरिएसिस (Chronic pityriasis), मुहाँसा (Acne) और पामा (Ecrzema) रोगोंमें तथा मशकवारणके लिए इसका उपयोग करते हैं। छाल उत्तेजक एवं बल्य है।

●

(१०९) करंजुवा (कंजा)

फ़ैमिली : सीसैल्पीनिआसे (Family : Caesalpiniaceae)

नाम—(हिं०) कंजा, सागरगोटा; (अ०; सु०) अकितमुकित; (अ०) हज्रुल्बिलादत, हज्रुल्मासक, हज्रुल् उक़ाब, रश्क़ेमरियम्, हज्रुन्निसाऽ; (फा०) ख़ाये इब्लीस, ख़ुर्माए अबूजहल; (सं०) पूतिकरञ्ज, पूतीक, कुबेराक्षी, लताकरञ्ज,, कण्टकिकरञ्ज; (म०) सागरगोटा; (गु०) काकच, कांचका; (बं) नाटाकरञ्ज; (ले०) सीसैल्पीनिया क्रीस्टा **Coesalpinia crista** Flem. (पर्याय–*C. bonducelli* Flem.); (अं०) बॉडक नट (Bonduc nut)।

वक्तव्य—"अकितसकित" (सुर०, अ०) को क़ानून (संचिका १, पृ० २६२) में एक भारतीय औषधद्रव्य लिखा है। इब्नुल्बैतार (संचिका ६, पृ० १५१)ने इसे एक प्रकारका प्रस्तर लिखा है, जिसे 'हज्रुल्बिलादत' और 'हज्रुल्उक़ाब' भी कहते हैं। इसे 'बुन्दुक़ हिंदी' भी कहते हैं (Schlimmer)।

उत्पत्तिस्थान—भारतवर्षके समस्त उष्ण-प्रधान प्रदेश।

वर्णन—यह एक विस्तृत आरोही कँटीली झाड़ी की फली के बीज हैं। शाखाओं पर अंकुशकी तरहके सरल कड़े, पीले कांटे होते हैं। पत्र सिरिसके पत्रसे मिलते-जुलते, उनसे कुछ अधिक चौड़े, अत्याधिक रोमावृत, एक सींकपर

६-९ जोड़े, पत्रयुगलके बीच तीक्ष्णाग्र कंटक होता है। **फूल** बड़े पीले वा गंधकी रंगके मंजरीमें भरपूर लगे होते हैं। प्राय: बरसातमें इसमें फूल और फलियाँ लगती हैं। **फलियाँ** २॥-३ अंगुल चौड़ी और ६-७ अंगुल लंबी प्राय: लंबगोल होती हैं। इसके ऊपरका छिलका कड़ा और घन कंटकावृत होता है। प्रत्येक फलीमें १ से २ तक बेरके बराबर प्राय: लंबोतरे गोल और १.२५ सें० मी० से १.८७ सें० मी० (१।२ से ३।४ इंच) व्यासके **दाने** होते हैं। ये हरियाली लिये सीसाके गहरे भूरे रंगके, मसृण और अति कड़े होते हैं। इन बीजोंके छिलके बहुत कड़े, मोटे, गहरे खाकी धुएँके रंगके और भंगुर होते हैं। इसके भीतर एक द्विदल पिलाई लिये सफेद **गिरी** और अत्यंत कड़ुवा बीज्ज पत्र होता है। जड़ और जड़की छाल कड़वी नहीं होती। पत्र अत्यंत तिक्त होते हैं।

रासायनिक संगठन—अभी तक इसमें किसी प्रकारके वीर्यवान् सत्व आदिकी विद्यमानता सिद्ध नहीं की जा सकी है। बीजोंमें विपुल प्रमाणमें एक प्रकारका अप्रिय गंधयुक्त, सफेदी लिये पीले रंगका तेल (१४ प्र० २७०) होता है।

कल्प—पत्रस्वरस १-२ तोला; मूलचूर्ण १·३ ग्राम से २ ग्राम (१०-१५ रत्ती)।

उपयुक्त अंग—बीजकी गिरी (**मग़ज़ तुख़्म करंजुआ**), पत्र और मूल। बीजको भून लेनेसे कड़ुवाहट किंचित् कम हो जाती है।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें उष्ण एवं पहले दर्जेमें रूक्ष।

गुण-कर्म—करंजुवा उपशोषण (रूक्षण) और द्रवशोषणकर्ता है। यह **वायुका उत्सर्ग** करता और **उदरज-कृमियोंको नष्ट करता** है तथा **रक्तप्रसादन** एवं सर, व आक्षेपहर और कोथप्रतिबंधक, तथा विशेषकर नियतकालिक **(नौबती) ज्वर प्रतिबंधक** है।

उपयोग—रूक्षण और द्रवशोषणकर्ता होनेके कारण जलोदर और मूत्रजवृद्धिमें करंजुवाका लेप लगाते हैं अथवा इसका बारीक चूर्ण बनाकर मलते हैं। पीड़ित वृषणोंपर इसका चूर्ण एरण्ड पत्रपर छिड़ककर बाँधते हैं। इसके अतिरिक्त खुजलीमें इसका बारीक चूर्ण मर्दन करते हैं। करंजुवाकी आधी गिरी सात नग लौंगके साथ बारीक पीसकर वातिकशूलमें खिलाते हैं। शीतपूर्व ज्वरों और रक्तविकारजन्य रोगोंको दूर करनेके लिए करंजुवाके पत्र कालीमिर्चके कुछ दानोंके साथ जलमें घोंट-छानकर पिलाते हैं। करंजुआ, छिलका उतारा हुआ, पलासपापड़ा और बबूलका कोंपल इनको समप्रमाणमें लेकर जलमें पीसकर गोलियाँ (**हब्ब करंजुवा**) बनाकर नियतकालिक ज्वरों विशेषकर चतुर्थक ज्वरका आवेग रोकनेके लिए खिलाते हैं। आक्षेपयुक्त रोगोंमें विशेषकर कृच्छ्रश्वासमें इसका उपयोग करते हैं। यदि दो-तीन दाने करंजुवाके बीजोंको आगमें डाल दें और जब उनका बाहरी छिलका जल जाय तब उनकी गिरी निकालकर कृच्छ्रश्वासकी उग्रावस्थामें उपयोग करें तो वह तत्काल बन्द हो जाता है। करंजुवाकी गिरीको तिलोंके तेलमें जलानेके उपरांत तेल छानकर रख लेते हैं और इसे दूषित व्रणोंपर लगाते और खुजलीमें मर्दन करते हैं। **अहितकर**—रूक्षताकारक है। **निवारण**—कालीमिर्च और पीपल। **प्रतिनिधि**—करंजुआके पत्र। **मात्रा**—०·२५ ग्रामसे १ ग्राम (२ रत्तीसे १ माशा) तक। (**मग़ज़**) १·३ ग्राम से २·६ ग्राम या १०-२० रत्ती। (**मूलचूर्ण**)—१·३ ग्रामसे २ ग्राम या १०-१५ रत्ती। **पत्रस्वरस**—१ से २ तोला।

आयुर्वेदीय मत—करंजुवाके पत्र विपाकमें कटु, लघु, उष्णवीर्य, विरेचक तथा वात, कफ और शोथका नाश करनेवाले हैं। करंजुवाकी छाल रेचन है। फल यकृत् और प्लीहाके रोग तथा वायुका नाश करनेवाला है। (च० सू०अ०१; सु०सू०अ० ३९, ४६; सोढ० नि०)।

नव्य मत—करंजुवा उत्तम ज्वरघ्न है। शीतज्वरमें पत्रस्वरस हींगके साथ या बीजोंका चूर्ण कालीमिर्चका चूर्ण मिलाकर देते हैं। सूतिकाज्वरमें करंजुवा अनेक प्रकारसे लाभ पहुँचाता है। इससे ज्वर कम होता है, गर्भाशयका संकोचन होता है तथा पेटकी पीड़ा बन्द होती है, रक्त अच्छी तरह गिरता है और ज़ख़्म पड़ा हो तो वह शीघ्र भर आता है। सूतिकावस्थामें ज्वर न हो तो भी करंजुआका उपयोग लाभकारी है। इसे ज्वरांत-दौर्बल्य दूर करनेके लिए

देते हैं। यह उत्तम कटुपौष्टिक औषध है। इसका तिक्त द्रव्य कुनैन जैसा विषमज्वरप्रतिबन्धक है। बीजोंको दबाकर निकाला हुआ तेल आमवातमें लगाया जाता है। अंडशोथमें इसे खिलाते हैं और इसका लेप करते हैं। यकृत्के रोग, कुष्ठ और उपदंशकी द्वितीयावस्थामें इसे देते हैं। पेटके दर्दमें बीज और लौंगका चूर्ण देते हैं। कुपचनमें बीज और कालीमिर्चका चूर्ण उपयोगी होता है।

●

(११०) करीर (ल)।

फ़ैमिली : कैप्पारिडासे (Family : Capparidaceae)।

नाम—(हिं०) करीर (ल); (अ०) कबरूल् हिन्द; (फा०) कबरे हिन्दी; (सं०) करीर, मरुरुह; (ब्रज) टेंट, टेटी; (पं०) करीं; (फल) डेले; (गु०) केर, केरडां; (मा०) कैर, झांसड़ी; (म०) नेवती; (सिंध) किरिड; (कच्छ) डब(व)रा; (का०) निर्प्पाड; (ले०) **कैप्पारिस डेसीडुआ Capparis decidua** (Forsk.) Edgew. (पर्याय—*Capparis aphylla* Roxb.)।

उत्पत्तिस्थान तथा वर्णन—ब्रज, मारवाड़ आदि सूखे प्रदेशोंमें करीरके काँटेदार गुल्म होते हैं, जो देखनेमें, कबरकी झाड़ी जैसे दिखते हैं। अंतर केवल यह है कि कबरका फूल सफेद होता है। इसमें पत्र नहीं होते। गुल्म हरी, पतली शाखाओंकी एक झाड़ी-सा होता है। इसमें फागुन-चैतमें गुलाबी रंगके छोटे फूल लगते हैं। चैत-वैसाख में फल आते हैं, जो असाढ़ तक पकते हैं। फल पकनेपर लाल रंगके हो जाते हैं। यह यूनानी कबरका उत्तम प्रतिनिधि द्रव्य है तथा उसके अभावमें उसकी जगहमें काममें लिया जा सकता है। उपयुक्त अंग-फूल और कच्चे फलों (टेंटी)का शाक और अचार बनाते हैं।

रासायनिक संगठन—इसकी छालमें सेनेगिन (Senegen)के समान एक उदासीन तिक्त तत्व होता है। फूल और कलियोंमें कैप्रिक अम्ल और एक ग्लूकोसाइड होता है, जिसे गंधकके तेजाबके साथ उबालने पर आइसोडल्साइट (Isodulcite) और क्वरसेटिन (Quercetin)वत् एक प्रकारका रंजक पदार्थ—ये दो तत्व होते हैं।

प्रकृति—अनुष्णाशीत, मतांतरसे सर्द एवं तर। आयुर्वेदमतसे उष्णवीर्य (सु०)।

गुण-कर्म तथा उपयोग—यह कड़वा, उष्णवीर्य, तीक्ष्ण, मृदुविरेचक, भेदन, मनःप्रसादकर तथा आनंददायक है। हृदयको शक्ति देता, बुद्धि एवं चेतनाशक्ति (हवास)को बलवती बनाता और कामेच्छाको पुष्ट करता है तथा कफ, वात, फोड़ा, फुन्सी, सूजन, अर्श, विष, धड़कन, वहशत और विशेषतः उन्मादका नाश करता है। इसका फूल कफ और पित्तका नाश करनेवाला है। इसके फल (टेंटी)को पकाकर खाते हैं और पानी, नमक और रोग़नस्याहमें इसका अचार भी डालते है। यह पक्षाघातसे आक्रांत रोगीके लिए गुणदायक है। मीठे तेलके साथ इसकी राख नासूरको लाभ पहुँचाती है (म०, मु०; बु० मु०; ना० मु०, ता० श०)।

आयुर्वेदीय मत—करीर रसमें तिक्त और कटु, लघु, उष्णवीर्य, भेदन तथा अर्श, कफ, वात, आमशोथ, कृमि और व्रणका नाश करनेवाला है। करीरके फूल कटुविपाक, वातहर और मल-मूत्रको साफ करनेवाले हैं। करीरके फल (टेंटी) मधुर (पाकावस्थामें), कटु और तिक्त (आमावस्थामें) तथा कफ और वातका नाश करनेवाले हैं (सु० सू० अ० ४६; कै० नि०)।

नव्यमत—'करील' और 'करेरुआ' दोनों प्रतिक्षोभक (Counter-irritant) रूपमें काममें आते हैं। इन दोनोंके कच्चे फलोंका कालीमिर्च, राई और तेल मिलाकर डाला हुआ अचार काममें आता है। छाल, कडुआ,

मृदुरेचक और प्रदाहजन्य शोथोंके लिए उपयोगी है। आमवात, वातरक्त, कास, जलोदर और अंगघात एवं अर्धांगवात (Palsy) प्रभृति रोगोंमें इसकी जड़की छालका चूर्ण वा शीतकषाय काममें आता है। दुष्ट व्रणोंपर इसके चूर्णका बहिःप्रयोग होता है। फोड़े-फुन्सी एवं सन्धि रोगोंपर इसके क्षुपके शीत कषायका बाह्य और विषके अगदस्वरूप अन्तः-प्रयोग होता है। कविराजगण यक्ष्मा, हृद्रोग, उदरशूल, क्षुधानाश और स्कर्वीमें इसका व्यवहार करते हैं। इसके फूल और बन्द कलियोंका अचार पड़ता है या इनकी चटनी काममें आती है। कानके कीड़ोंको नष्ट करनेके लिए इसके ताजे पौधोंका रस कानमें डालते हैं। यह 'सेनेगा' का उत्कृष्ट प्रतिनिधि भी है। पंजाबमें इसके पिसे हुए पल्लव एवं कोमल पत्तोंका उपयोग छाला डालनेके लिये करते हैं।

●

(१११) करेमू

फ़ैमिली : कॉन्वॉल्वुलासे (Family : Convolvulaceae)

नाम—(हिं०) करमी, करेमू, कलमीसाग, नाड़ी; (सं०) कलम्बी, कलम्बुका, शाकनाडिका, नालिका; (बं०) कलमीसाक; (बम्ब०,म०) नाली चोभाजी, नाड़ीसाक; (पं०) नाली, नाड़ी; (ले०) **ईपोमेआ आक्वाटिका Ipomoea aquatica** Forsk. (पर्याय–*I. reptans* (L.) Pers.)।

उत्पत्तिस्थान—भारतवर्षके सभी भागोंमें तालाबोंमें इसकी स्वयंजात लताएँ होती हैं।

वर्णन—इसकी लताएँ जलाशयोंमें पानीके ऊपर या उनके पास जमीनपर फैली हुई पाई जाती हैं। पत्तियाँ प्रासवत्से अण्डाकार-आयताकार या लट्वाकार कुन्तवत् या हृद्वत्, ३·७५ सें० मी०से १५ सें० मी० (१·५ इंचसे ६ इंच) लम्बी और लम्बे वृन्तवाली होती हैं। पुष्प सफेद या हलके जामुनी रंगके (कण्ठमें गाढ़े जामुनी रंगके) होते हैं। इसकी नवीन शाखाओंका शाक होता है।

उपयुक्त अंग—पत्र, शाखा (नाल), पत्र और कंद (पंचांग)।

प्रकृति—शीतल एवं स्निग्ध (सर्द एवं तर); मतांतरसे गरम व रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—थोड़ा एवं अनुपयोगी आहाररसोत्पादक, श्वयथुविलयन, वातविलयन, वातानुलोमन, मन्दाग्निकारक, सौदावी, दूषित दोष उत्पन्न करनेवाला तथा भारतीयोंके आहारमें समाविष्ट है। इसका स्वरस निचोड़कर पिलानेसे आमाशयशोथ दूर होता हैं, शरीरकी उष्णता शान्त होती है तथा कफजकास मिटता है और मृदु विरेचन भी होता है। संखिया और अफीमका विष उतारनेके लिए इसका स्वरस मिलाकर वमन कराते हैं। बोए हुएकी अपेक्षया स्वयंजात पौधेमें विषनिवारणकी शक्ति अधिक होती है। इसके पत्तोंको पकाकर रोटीके साथ खानेसे अफीमका नशा उतरता है। इसके सुखाये हुए उसारे (Dry extract)के चूर्णकी फंकी देनेसे दस्त आते हैं। इसके पत्ते और टहनियोंके टुकड़े सुखाकर रख छोड़ते हैं और खटाईके साथ उबालकर चावलके साथ खाते हैं। उन्हें रातमें उबालकर रख देवें और प्रातःकाल रोटी खानेसे पूर्व खावें तो स्त्रियोंकी वातनाड़ी विषयक सामान्य-रोगजनित दुर्बलता दूर होती है और स्तनों में दूध की वृद्धि होती है। इसकी कोमल शाखा, पत्र और जड़ पकाकर रोटी और चावलसे खाये जाते हैं। **अहितकर**–मन्दाग्निकारक और आध्मानकारक है। **निवारण**–नमक और खटाई आदि। **प्रतिनिधि**–कतिपय गुणोंमें बथुआका साग। **मात्रा**–बलाबल अनुसार।

आयुर्वेदीय मत—नाडी शाक दो प्रकारका होता है—कडुआ और मीठा। इनमें मीठा करेमू मधुर, शीत-वीर्य, पिच्छिल और विष्टम्भकारक तथा कफवातजनक है; तथा कडुआ रक्तपित्त, कृमि और कुष्ठका नाश करता है।

इसके सूखे पत्ते ज्वरदोषनाशक विशेषतः पित्तज्वर, कफज्वर (तथा आमवात) विनाशक हैं। इसका रस भी पित्तका हरण करनेवाला, रुचिकारक और व्यञ्जनयोगकारक है। (सु० सू० अ० ४६; रा० नि०)। राजवल्लभके अनुसार यह मधुर, कषाय, भारी, स्तन्यवर्धक, शुक्रजनक और कफकारक है।

नव्यमत—इसकी कोमल कलियों और पत्तियोंका साग बनाया जाता है। यह साग गर्मी तथा खूनके दस्तोंको बन्द करता, वायुकी वृद्धि करता और पौष्टिक है। इसकी कलियाँ ज्वरनिवारक हैं। ज्वरजनित सन्निपात और मूर्च्छामें इसकी डंडी और पत्ते उपयोगी होते हैं। वात, एवं सार्वदैहिक दौर्बल्यसे पीड़ित ललनाओंके लिए इसका पंचांग गुणकारी है। इसकी पत्ती पीसकर फोड़ेपर बाँधनेसे वह पक जाता है। यह वामक, विरेचक, और अफीम तथा संखियाके विषका अगद है। आत्महत्याके लिए यदि किसीने अधिक मात्रामें अफीम खा लिया हो तो उसे आधेसे एक छटाँक करेमूका रस पिलानेसे अफीमका विष दूर हो जाता है और उसके प्राणनाशकी आशंका जाती रहती है।

●

(११२) करेला

फ़ैमिली : कूकूरबीटासे (Family : Cucurbitaceae)

नाम—(हिं०) करेला, करैला; (सं०) कारवेल्लक, कारवल्ली; (बं०) उच्छे; (म०) कारलें; (गु०) कारेला; (क०) करेल; (ता०) पाकै, पाकल; (ते०) काकर; (मल०) पेरुंपावल; (ले०) मोमोर्डिका कारांटिआ **Momordica charantia** Linn.) (अं०) कारिल्ला फ्रूट (Carilla Fruit)।

वक्तव्य—लेटिन नाम करेलाकी बेलका है।

उत्पत्तिस्थान—समग्र भारतवर्ष।

वर्णन—यह एक आरोही लताका प्रसिद्ध फल है जो लंबगोल वा अंडाकार होता है। इसके छिलकेपर उभड़े हुए लंबे-लंबे और छोटे दाने या अर्बुद होते हैं या धारियाँ पड़ी होती हैं। बीज अंडाकार, चिपटा कद्दू या तुरईके बीजकी तरह और खुरदरा होता है। कच्चा फल हरे रंगका और अत्यन्त कडुवा (तिक्त) पर रुचिकारी होता है। पकनेपर यह पीला और भीतरसे लाल हो जाता है और इसकी कडुवाहट कम हो जाती है। इसका सर्वांग तिक्त होता है। इसका एक सफेद भेद भी है जो ४५ सें० मी० (आध गज) तक लम्बा होता है।

रासायनिक संगठन—इसमें एक जलविलेय तिक्त ग्ल्यूकोसाइड होता है, जो ईथरमें अविलेय होता है तथा एक प्रकारका पीलेरंगका अम्ल, राल और ३प्र० श० भस्म इत्यादि।

उपयुक्त अंग—फल और पत्र।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें उष्ण एवं रूक्ष है। आयुर्वेदके मतसे भी उष्ण-वीर्य (कै० नि०) है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—करेला अधिकतर तरकारीकी तरह खाया जाता है। यह वातानुलोमन, वाजीकर, नाड़ीबलदायक, दीपन, सर, कफछेदन, उदरकृमिनाशन, श्वयथुविलयन अश्मरीछेदक और श्लेष्मप्रकृति वालों के लिए गुणकारी है। कफज रोगों, जैसे–आमवात, शीतल वातरक्त, जलोदर, प्लीहाशोथ, उदरकृमि तथा कास एवं श्वासमें खिलानेसे यह लाभ करता है। बालकोंके फुफ्फुसशोथ में इसका पत्रस्वरस पिलानेसे उपकार होता है और इससे दस्त आते हैं। कंठशोथपर करेलेको सिरकामें पीसकर लेप करनेसे उपकार होता है। **अहितकर**–रूक्षताकारक है। **निवारण**–काली मिर्च और पीपल। **मात्रा**–पत्रस्वरस ११·६ से २३·२५ ग्राम (१ तोला से २ तोले) तक।

आयुर्वेदीय मत––करेला तिक्त, कुछ कटु, कटुविपाक, लघु, उष्णवीर्य, दीपन, भेदन, अवृष्य तथा अरुचि, पित्त, रक्तविकार, कफ, पाण्डुरोग, व्रण, कृमि, श्वास, कास, प्रमेह, अश्मरी, कुष्ट और ज्वरका नाश करनेवाला है। जंगली करेला–तिक्त, दीपन, हृद्य तथा ज्वर, अर्श, कृमि, कास, कफ और वायुका नाश करनेवाला है (च०वि०अ० ८; सु० सू० अ० ४६; कै० नि०)। सुश्रुत ने चि० १ अ० में करेलेकी बेलके काढ़ेद्वारा सिद्ध धृतको वातरक्तमें गुणकारक बतलाया है। चक्रदत्तने ज्वर रोगीको करेलेका शाक देनेको लिखा है। इनके मतसे करेलेके पत्तोंका स्वरस हलदीका चूर्ण मिलाकर पीने से रोमान्तिका, ज्वर, विस्फोट और मसूरिका शान्त होती है तथा करेलेकी जड़ पीस कर लेप करनेसे अंतःप्रविष्ट योनि बहिःनिसृत होती है। भावप्रकाशके अनुसार करेलेकी लताका काढ़ा, तिलतैलका प्रक्षेप देकर पीनेसे विसूचिका रोग शान्त होता है।

नव्य-मत—करेला कृमिध्न, मूत्रजनन, स्तन्यजनन, आर्तवजनन और वायुनाशक है। विरेचनके लिए तथा तिक्त भेषजसुगंधिकरणार्थ इसका व्यवहार करते हैं। करेलेका फल दीपन, उत्तेजक, बल्य, पित्तनाशक, मृदुरेचक, कृमिघ्न और रसायन है। फलमज्जा, पत्र एवं पत्रस्वरस और बीज कृमिध्न हैं। पत्र कृमिध्न, स्तन्यजनन और पित्तनाशक है और जड़ संग्राही है। पंचांग त्वग्रोगनाशक है। रुचिदायक होनेसे इसके फलकी तरकारी खाई जाती है। फल और पत्तेका व्यवहार कृमिघ्नरूपसे किया जाता है। कुष्ठमें इसका बहिःप्रयोग होता है। वातरक्त, आमवात तथा यकृत् और प्लीहाके रोगोंमें फल गुणदायक है। यह रक्तविकारनाशक, मद (मालिन्खोलिया)नाशक और विकृत दोषसंशोधक माना जाता है। कुष्ठ, अर्श, कामला आदि रोगोंमें फल और पत्ती दोनोंका आभ्यन्तररूप से उपयोग होता हैं। मुखपाकमें एक चम्मच भर इसके फलका स्वरस थोड़ी खड़ी मिट्टी और चीनी मिलाकर दिया जाता है। आर्तवजनन होनेसे कृच्छ्रार्तव, रजोरोध या विलम्बित आर्तवमें यह सेवनीय है। अधिक मात्रामें सेवन करनेसे गर्भस्राव हो जाता है। प्रसवोत्तर इसका काढ़ा पीनेसे गर्भाशयद्वार संकुचित होता और स्तन्यमें वृद्धि होती है। शिरकी सपूय छोटी-छोटी फुन्सियोंमें इसका सिरपर लेप करते हैं। दग्ध एवं विस्फोट आदिमें इसका बाह्य प्रयोग करते हैं। कष्टदायक हस्त–पाद शोथमें इसे पानीमें पीसकर लेप करते हैं। कृमिके लिए भी यह गुणदायक है। दीपन और वातानुलोमन होनेसे विषमज्वर, ग्रहणी, अग्निमांद्य, अजीर्ण और अतिसारमें चीतेकी जड़के साथ इसका उपयोग करते हैं। पित्तके रोगोंमें वमन और विरेचनके लिए पावभर करेलेकी पत्तीका रस अकेला या सुगन्धद्रव्योंके योगसे दिया जाता है। पाद-तलदाहमें इसकी पत्तीका रस मर्दन करते और रतौंधीमें उसमें कालीमिर्च घिसकर अक्षिगुहाके चारों ओर लेप करते हैं। बालकोंके उत्क्लेशमें इसकी पत्तीका स्वरस आधा तोला थोड़ी हल्दीके चूर्णके साथ दिया जाता है। इससे वमन होकर आमाशय शुद्ध हो जाता है। शिशुओंके यकृत रोगोंमें करेलेके पत्तोंका स्वरस गोरखइमलीके पत्तोंका रस और जामुनकी ताजी छालका रस एकत्र मिलाकर उसमें वच घिसकर सप्ताहपर्यन्त सेवन कराते हैं। इसकी समग्र बेल, दालचीनी, पीपल, चावल और तुवरकतैल द्वारा प्रस्तुत अनुपेल चर्मरोग विशेष (Psoriasis), कण्डू, दुष्टक्षत तथा अन्य चर्मरोगोंमें गुणकारी सिद्ध होता है। कुष्ठ एवं अन्य संक्रमणशील व्रणोंपर इसकी लताके चूर्णका अवधूलन या अवचूर्णन कहते हैं। इसकी जड़ संकोचक है तथा रक्तार्शको दूर करती है।

●

(११३) करौंदा

फ़ैमिलीः आपोसिनासे (Family: Apocynaceae)।

नाम––(हिं०) करोंदा, करौंदा, करोना; (सं०) करमर्दक; (ले०) कारीस्सा **कारांडास Carissa carandas Linn.**); (अं०) जैस्मिन-फ़लावर्ड कैरिसा (Jasmine-flowered Carissa)।

उत्पत्तिस्थान––यह सर्वत्र भारतवर्षमें शुष्क, बलुई और पथरीली भूमि में उपजता है।

वर्णन—यह एक बड़े कंटीले झाड़का प्रसिद्ध फल है जो १·२५ सें० मी० से २·५ सें० मी० (आध इंच से १ इंच) लंबा, गोल, छोटे बेरके बराबर और बहुत सुन्दर होता है। कच्चा फल हरा, खट्टा और कसैला होता है। यह जितना बड़ा होता जाता है, उतना ही इसका खट्टापन और कसैलापन कम होता जाता है और मिठास बढ़ने लगती है। यह आधा लाल हो जाता है। जब भलीभाँति पक जाता है तब वह काला वा नीलगूँ और खटमिट्ठा हो जाता है। इसके भीतर २-३ या इससे अधिक बीज होते हैं। यह सफेद और किंचित् चौड़े होते हैं। यह करौंदाका उद्यानज भेद है। जगली करौंदा या करौंदी अर्थात् करमर्दिका को लेटिनमें कारीस्सा ओपाका या स्पीनारुम् (**Carissa opaca** Stapf. or **C. spinarum** DC.) कहते हैं। संथाल लोग इसे कनवत् या करवत और मीरजापुरके जंगलोंमें करवन् कहते हैं।

रासायनिक संगठन—इसमें सैलिसिलिक एसिड और उपक्षार पाया जाता है।

उपयुक्त अंग—फल।

प्रकृति—संग्राही वीर्यके साथ शीत एवं तर।

गुण-कर्म— कच्चा और पका करौंदा संग्राही और उष्ण आमाशयबलदायक है। पका करौंदा पित्तकी अधिकता एवं प्यासको शान्त करता है।

उपयोग—कच्चे करोंदाको छीलकर तरकारी आदिकी भाँति उपयोग करते हैं। इसके अतिरिक्त इसको मुरब्बा और अचार बनाकर खाते हैं। यह रक्तपित्त प्रकृतिवालोंको सात्म्य है और उनके आमाशयको शक्ति देता (दीपन) है। पका करौंदा पित्तसंशमन होता है और प्यास बुझाता है। इससे खूब भूख लगती है और पित्तके दस्त बन्द हो जाते हैं। इसका प्रचुर उपयोग कामशक्तिको अहितकर है। **अहितकर**–आनाहकारक, चिरपाकी और कफकारक है। निवारण–नमक, शक्कर और कालीमिर्च।

आयुर्वेदीय मत—करौंदा (कच्चा) खट्टा, उष्णवीर्य, भारी, प्यासको दूर करनेवाला, रुचिकारक, अग्निदीपन, पित्ताकारक, कफकारक, वातनिवारक, ग्राही और रक्तपित्तकारक है। करौंदा (पका) मधुर, शीतवीर्य रक्तपित्तानाशक, पित्त और वायुनाशक, शुक्रदोषनाशक, सर्वप्रमेहनाशक, शोथघ्न, त्रिदोषनाशक, अरुचिनाशक (रुचिकारक) और विषनाशक हैं। जड़ कृमिनाशक और दस्तावर (सर) है (सु०सू०अ० ४६; ध०नि०; रा०नि०; कै०नि०; शो०नि० भा०प्र०;)।

नव्य मत—करौंदेका कच्चा फल अम्ल, संग्राही (मलरोधक) और स्कर्वीहर है। पका शीतल, पित्तनाशक, रक्तशोधक, दीपन, स्कर्वीहर, शैत्यजनक और पाचक है। खट-मीठा फल पेशाबकी रुकावटको या बूँद-बूँद पेशाब आने की शिकायतको दूर करता है। कच्चे फलका उत्तम मुरब्बा, अचार और चटनी भी बनती है और पकनेपर यह उत्कृष्ट अम्लफल है। यूरोपवासी इसकी जेली भी प्रस्तुत करते हैं जो सर्वथा लाल किशमिश द्वारा बनी जेलीके समान होती है। पित्तोल्वणतामें शर्करा और इलायची मिला पके करौदेंका स्वरस शीतजनक पेय है, और यह पित्तका निवारण करता है। ज्वरोंमें इसकी पत्तियोंका काढ़ा शीतजनक है और इसे लगातार आनेवाले ज्वरोंमें देते हैं। पत्तियोंके रसमें मधु मिलाकर पिलानेसे सूखी खाँसी मिटती है। जड़ चरपरी एवं कुछ-कुछ कड़वी होती है। इसे नीबूके रस एवं कपूरमें फेंटकर खाजपर लगानेसे खुजली कम होती है और मक्खियाँ नहीं बैठतीं। इसके बीजोंका तेल मलनेसे हाथ-पैर फटनेमें बड़ा उपकार होता है।

(११४) कलंबा।

फ़ैमिली : मेनिस्पेर्मासि (Family : Menispermaceae)

नाम। (जड़)—(हिं०; द०) कलंबा, कलंबाकी जड़; (यू०) कलस्तारियून; (अ०) रा (अ्) यूल् हमाम, साक़ुल् हमाम; (फा०) गावमुशंग, देवमुशंग, बेखेकलंबः, (म०) कलमकाचरी; (बम्ब०) कलंबकचरी; (गु०) कलुंबो; (ले०) कालुम्बी राडिक्स (Calumbae Radix`; (अं०) कैलंबा रूट (Calumba Root)। (लता) ज़ाटेओर्‌हीज़ा पाल्माटा **Jateorhiza palmata** (Lam.) Miers.।

वक्तव्य—कपोतको इस लतापर रहना और बसेरा करना बहुत पसंद है, इसलिए इसकी अरबी संज्ञा 'राअयुल्‌हमाम (अर्थात् कपोततृण)' अन्वर्थक है। इसी प्रकार कतिपय लेखकों द्वारा दिया गया इसका अरबी नाम 'साक़ुल्‌हमाम (Dove's foot)' भी सार्थक है। किसी-किसीने 'वर्वेन' Vervain (**Verbene officinalis** Linn.)को राअ्युल्‌हमाम लिखा है। कतिपय आधुनिक ग्रन्थोंमें इसके लिए 'कपोतपदी' संस्कृत नाम दिया हुआ है जो उक्त अरबी नामका संस्कृत अनुवाद एवं अभिनव संज्ञा है। भारतीय कलंबा जिसे अंग्रेजीमें फाल्स कलंबा (**False Calumba**) भी कहते हैं एक सुदीर्घ लता है, जो दक्षिणभारतमें होती है। किसी समय इसकी जड़ एवं काण्डका उपयोग असली कलंबाके प्रतिनिधि स्वरूप अथवा मिलावटके लिए किया जाता था। अनेक लेखकोंने भ्रमवश इसके लिए भी 'दारुहल्दी' नाम दे दिया है, जबकि शास्त्रीय दार्वी (दारुहल्दी) इससे भिन्न वनस्पति (बर्बेरिसकी जाति) है और हिमालयमें पायी जाती है। इसी भ्रमवश आज भी दक्षिण भारतके बाजारोंमें इसका आयात दारुहल्दी नामसे ही होता है। स्वरूपतः एवं गुणतः साम्यता होनेपर भी यह सर्वथा भिन्न द्रव्य है। इसको आयुर्वेदीय निघंटूक्त (भा०प्र०) कलम्बक कहना अधिक समीचीन होगा।

इतिहास—अफरीकावासियोंको तो इस औषधिका ज्ञान अतिप्राचीन कालसे था। अस्तु, अतिप्राचीन कालसे ही वे इसका उपयोग प्रवाहिका एवं अन्त्रके अन्य रोगोंमें करते थे। इसी प्रकार अरबवासियोंको भी पुराणकालसे ही यह औषधि ज्ञात थी। परन्तु यूरोपमें इसे पुर्तगाली लोग सन् १६७१ ई०में ले गये, जहाँपर कुछ कालोपरान्त इसकी ओरसे डॉक्टरोंका ध्यान हट गया था। पर पुनः सन् १७७३ ई०में इसके उपयोगकी ओर ध्यान गया। सन् १८०५ ई०में यह पहले पहल मद्रासमें लाई गयी। तदुपरान्त बंगाल और बम्बईमें आई। भारतीय कलंबाका उपयोग लंका (एवं दक्षिण भारत)में तिक्त औषधिकी भाँति प्राचीनकालसे ही होता था। लंकामें प्रमादवश कलम्बा समझकर उपयोग करने लगे। सम्भवतः कलम्बा नामका सम्बन्ध लंकाके कोलम्बो बन्दरगाहसे है, जहाँसे किसी समय इस औषधिका व्यवसाय यूरोपीय देशोंसे होता था। जब यह औषधि योरोपीय बाजारोंमें गई तो वहाँ पहचान होनेपर '**फाल्स कलम्बा**'के नामसे प्रसिद्ध हुई।

उत्पत्तिस्थान—पूर्वी अफरीकाके वनोंमें मोज़म्बीक कूलपर तथा जंबेसी और मैडागास्कर प्रदेशमें इसकी बेल होती है।

वर्णन—यह दक्षिणी झाड़की हलदीकी जातिकी एक सुदीर्घ लताकी जड़ है, जो भारतीय बाजारोंमें अफरीकासे बिकनेके लिए आती है। इसके आड़े या वक्राकार खंड काटकर सुखाकर रख छोड़ते हैं। यह चपटे, विषम, वृत्ताकार वा अंडाकार होते हैं, जो लगभग ५ सें० मी० (२ इञ्च) व्यासके और ०·८३ सें० मी०से १·२५ सें० मी० (१.३से १.२ इञ्च) तक याअधिक मोटे होते हैं। किनारोंका भाग मोटा, भूरापन लिये पीला और झुर्रीदार, बीचका भाग हरापन लिये पीला होता है। गंध काईकी तरह (Mossy) और स्वाद अत्यन्त तिक्त होता है। ये सहजमें चूर्ण हो जाते हैं।

रासायनिक संगठन—इसमें बर्बेरीन (Berberine), कोलंबिन (Columbin), स्टार्च एवं कैलंबिक एसिड (Calumbic acid) और लबाब आदि द्रव्य पाये जाते हैं।

कल्प—चूर्ण (२॥से १० रत्ती); हिम (२से ४ तोला)।

गुण-कर्म तथा उपयोग—यह कटुपौष्टिक, दीपन और पित्तसारक है। इसके उपयोगसे आमाशयका क्षोभ दूर हो जाता है। यह न उत्तेजक है और न संग्राही। इसके सेवनसे भूख लगती है। प्रायः जब आमाशय अन्य कटुपौष्टिक द्रव्योंको ग्रहण नहीं करता, तब इसका उपयोग अनुकूल होता है। दौर्बल्य, अरुचि (भूखकी कमी), पाचन विकार, हृल्लास, अम्लताधिक्य (अम्लत्व) और आनाहमें इसका उपयोग अत्यन्त गुणकारी है। जब सगर्भावस्थामें वमन होता हो अथवा वृक्कसे पथरीका उत्सर्ग होते समय या किसी छर्दिजनन औषधके सेवनोपरांत वमन बन्द न होता हो, तब इसे देते हैं। दाँत निकलते समय जब बच्चोंको अतिसारादिका उपद्रव होता है, उसमें भी यह औषधी गुणकारी है। कषायरहित एवं शुद्ध कटु द्रव्य होनेसे मुख और जिह्वागत प्रान्तस्थ वातनाड़ियोंपर प्रभाव डालकर यह (अन्यान्य कटु द्रव्योंकी भाँति) निगलनेसे पूर्व आमाशयिक रस और लालास्रावको बढ़ाता है। इससे आमाशयगत वातनाड़ियोंको उत्तेजना प्राप्त होकर क्षुधा प्रतीत होती है। आमाशयमें पहुँचकर यह तत्स्थानीय वातनाड़ियोंपर सीधे प्रभाव करके आमाशयिक वाहिनियोंको विस्फारित कर देता और तत्रस्थ रक्तपरिभ्रमणको तीव्र कर देता है। इससे आमाशयिक रसोद्रेक बढ़ जाता है। इसके अतिरिक्त लालारसके आमाशयमें पहुँचनेसे भी उसकी श्लैष्मिक-कलाको उत्तेजना मिलती है। फलतः उक्त कर्मोंका यह परिणाम होता है कि भूख एवं पाचनक्रिया बढ़ जाती है। कलंका अन्त्रकी पुरप्रसरणगतिको किसी कदर तीव्र करता है, परन्तु इतना नहीं जितना कि कटु सुगंध द्रव्य। यह हलका वातानुलोमन और कोथप्रतिबंधक है। इसके काढ़ेकी वस्ति देनेसे गुदागत सूत्रकृम मर जाते हैं। आमाशयशोथ, आमाशयशूल, आमाशयिकव्रण एवं आमाशयके कैन्सर आदि रोगोंमें इसका प्रयोग निषिद्ध है। कलंबा रसमें तिक्त विपाकमें लघु, उष्णवीर्य, दीपन-पाचन और जीर्णज्वरनाशक है।

मात्रा—०·३ ग्रामसे ०·६ ग्राम (२ रत्तीसे १० रत्ती) तक।

●

(११५) कलौंजी

फ़ैमिली : रानुनकुलासे (Family : Ranunculaceae)

नाम—(हि०) कलौंजी, मँगरैला; (यू०) Melanthion (D. 3. 83.); (अ०) शोनीज़, अल्शोवनीज़, हब्बतुस्सौदा, **अल्कम्मूनुल् असवद, हब्बे अमवद**; (फा०) स्याह-दानः; (सं०) उपकुञ्चिका; (बं०) कालजीरा, मुग्रेला; (गु०; म०) केलांजी; (ले०) **नीजेल्ला माटीवा (Nigella sativa** Linn.); (अं०) नीगेला सीड्स (Nigella seeds)। **वक्तव्य**–लैटिन नाम पौधेका है। इसके अरबी 'हब्बतुस्सौदा' और फ़ारसी 'स्याहदाना' नामोंके धात्वर्थ (कृष्णबीज = कालादाना)को दृष्टिमें रखकर किसी-किसी लेखकने इसका हिन्दी नाम (कालादाना) लिखा है। परन्तु कालादाना इससे सर्वथा भिन्न द्रव्य है जिसका वर्णन आगे होगा।

उत्पत्तिस्थान—भारतवर्ष और मिश्र आदि।

वर्णन—यह सौंफकी तरहके एक क्षुपके बीज हैं जो छोटे, तिकोने, गहरे भूरे व काले रंगके होते हैं। इनके ऊपरका छिलका खुरदुरा होता है। ये स्वादमें किंचित् तिक्त और सुगंधित होते हैं। उनको मसलनेसे नीबू जैसी तीक्ष्ण सुगंध आती है। बीजको काटनेपर उसमें तेलसे भरा हुआ सफेद मग़ज़ दिखता है। बीजोंको गरम मसालेमें डालते हैं। नये, भारी, मोटे, तेज और चपरपरे दानेकी कलौंजी उत्तम होती है। इसमें सात वर्ष तक वीर्य रहता है।

रासायनिक संगठन—बीजमें एक स्थिर तेल ३७·५ प्र० श० और उत्पत् तेल १·५ प्र० श० होता है। इनमें यह उत्पत् तेल ही इसका वीर्य भाग है।

उपयुक्त अंग—बीज।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें उष्ण एवं रूक्ष है। आयुर्वेदमतसे उष्णवीर्य (सु०) एवं० रूक्ष (भा० प्र०) है।

गुण-कर्म—बाह्य प्रयोगसे कलौंजी लेखन एवं शोणितोत्क्लेशक है। सूँघनेसे मस्तिष्कके द्रवोंको नासिकाकी ओर आकर्षित करती है। भीतरी तौरपर खिलानेसे श्लेष्मनिःसारक, वातानुलोमन, दीपन, सर और उदरकृमिनाशक तथा आर्तव, स्तन्य और मूत्रका प्रवर्तन करती तथा वेदनाशामक होती है।

उपयोग—कलौंजीको अकेला या उपयुक्त औषधद्रव्योंके साथ सिरकामें पीसकर व्यंग, किलास, दद्रु, गंज, खालित्य और मुँहासोंपर लगाते हैं। सिरके पुराने दर्द और आधासीसी (शकीका)को दूर करनेके लिए इसको सिरकामें भिगोनेके बाद पीसकर नस्य देते हैं। इसको स्त्रीके दूधमें पीसकर नाकमें टपकानेसे कामला रोग आराम हो जाता है। सर्द प्रतिश्यायमें इसे भूनकर कपड़ेमें पोटली बाँधकर रोगीको सुँघाते हैं तथा इसकी धूनी देते हैं। कृच्छ्रश्वास और उरोवेदनाको नष्ट करनेके लिए इसका चूर्ण बनाकर खिलाते हैं। अग्निमांद्य, उदरानाह, उदरशूल, शूल (कुलंज), जलोदर, कामला, पेटके कृमि, आमवात, कटिशूल और प्रायः सर्द कफजरोगोंमें इसका उपयोग करते हैं। रजोरोधमें इसका चूर्ण व क्वाथ इत्यादि प्रयोग करते हैं। पक्षवध, अर्दित और कटिशूल इत्यादिमें इसका तेल तैयार करके मर्दन करते हैं। इसके लेपसे सूजन उतरती है। कलौंजीको जलाकर बनाई हुई मसी मोम और तेलमें मिलाकर सिरके गंजपर लगाना गुणकारी है। इसे छाछमें पीस-गरम करके नारूपर लगानेसे नारू बाहर निकल आता है। कलौंजी ५ तोला, बकुची ५ तोला, गूगल ५ तोला, दारुहलदी ५ तोला और गंधक २॥ तोला–इनके कल्कमें १ प्रस्थ नारियलका तेल सिद्ध करके लगानेसे पामा, विर्वाचिका आदि त्वचाके रोगोंमें लाभ होता है।

अहितकर—कंठशोथ (खुनाक) और भ्रम (सिर चकराना) उत्पन्न करती है। **निवारण**–कतीरा और शीतल-द्रव्य। **प्रतिनिधि**–अनीसूँ। **मात्रा**–१से २ माशे तक।

आयुर्वेदीय मत—कलौंजी रसमें कटु और तिक्त, विपाकमें कटु (लघु), वीर्यमें उष्ण, रूक्ष और तीक्ष्ण, रोचन, दीपन (अग्निवर्धन), दौर्गन्ध्यनाशन, ग्राही, पित्तकर, मेध्य, गर्भाशयशोधन, पाचन, बलकारक, वृष्य, सुगंधी तथा कफ, वात, गुल्म, आमदोष, अफारा, वातगुल्म, वमन, अतिसार, कृमि और ज्वरका नाश करनेवाली है। (च० सू० अ० २७; सु० सू०, अ० ४६; रा० नि०; भा० प्र०)।

नव्यमत—कलौंजी तिक्त, सुगन्धी, कोष्ठवातप्रशमन, दीपन, ज्वरहर, कृमिघ्न और स्तन्यजनन है। इससे भूख लगती है, अन्न तथा घृत-तेल पचता है और पेटमें वायु (रियाह) नहीं भरता। यह त्वचा, स्तन तथा मूत्रपिंडके रास्तेसे बाहर निकलती है तथा बाहर निकलते समय इन अवयवोंको उत्तेजित करती है। अतः मूत्र तथा दूध बढ़ता है और पसीना आता है। गर्भाशयपर इसकी प्रत्यक्ष क्रिया होती है। गर्भाशयका संकोच विकास जोरसे होता है और ऋतु साफ होता है। प्रसवके बाद स्त्रियोंको केवल कलौंजी देनेसे भूख लगती है, घी और अन्न पचता है, पेटमें वायु नहीं भरता, कमरकी पीड़ा कम होती है, मूत्र साफ होता है और पुष्कल दूध उत्पन्न होता है। विषमज्वरमें आधा तोला कलौंजी जरा भूनकर गुड़के साथ मिलाकर देते हैं। त्वचाके रोगोंमें कलौंजी खानेको देते हैं और तेलमें मिलाकर लगाते हैं। इससे कण्डू कम होती है। सूजे हुए अर्शको कलौंजीकी धूनी देते हैं। इससे सजे हुए अर्शको कलौंजीकी धूनी देते हैं। इससे मसेकी वेदना और सूजन कम होती है। इसको खिलानेसे गोलकृमि निकलते हैं। विरेचन द्रव्योंके साथ इसे मिलाकर देनेसे पेटमें मरोड़, (ऐंठन) नहीं होता।

◆

(११६) कलगा (जटाधारी)

फ़ैमिली : आमारान्थासे (Family : Amaranthaceae)

नाम—कलगा, जटाधारी; (ले०) **आमारान्थुस हीपोकान्ड्रिआकुस Amaranthus hypochondriacus** Linn.; **Amaranthus melancholiacus** Linn.; (अं०) रेड कॉक्सकूम (Red Cock's Comb), ऐमरन्थ (Amaranth), लव-लाइज ब्लीडिंग (Love-lies bleeding)।

उत्पत्तिस्थान—सामान्य उद्यानज क्षुप। प्रायः भारतीय बगीचोंमें लगाया जाता है।

वर्णन—काण्ड चपटा; पुष्प अतिक्षुद्र, गोलाकार गुच्छोंमें जो समूहबद्ध (Crowded), रेखाकार, गोपुच्छाकार (Tapering), शल्कसहपत्रवत् (Chaffy) गहरे लाल रंगके पौष्पिक सहपत्रों (Bracts) से आवेष्टित (Hidden) होते हैं। बीज लेन्साकारी (Lens-shaped), काले, लगभग १·२५ मि०मी० (१/२० इंच) व्यासके होते हैं।

उपयुक्त अंग—पुष्पित क्षुप।

गुण-कर्म तथा उपयोग—संग्राही होनेसे **रक्तप्रदर, अतिसार, प्रवाहिका** और **अन्त्रस्थ रक्तस्राव** में यह बड़ा ही प्रशंसनीय है। इसके काढ़ेका आंतरिक उपयोग होता है। बाह्य रूपसे मुख और कण्ठकी व्रणित अवस्थाओंमें इसका लेप लगाते हैं। श्वेतप्रदरमें इसकी बस्ति देते और व्रण एवं घाव आदिमें इससे उनको धोते हैं। रंगरूपादि द्वारा द्रव्योंके गुणकर्म ज्ञानकी पद्धति (Docrine of Signature)में विश्वास रखनेके कारण **कुलपेपर** महोदय सभी-प्रकारका रक्तस्राव बंद करनेके लिए इसके लाल फूलोंके उपयोगकी अभ्यर्थना करते हैं।

कल्प (तरल सार)–मात्रा, १।२–१ ड्राम। २ मि० लि० से ४ मि० लि० (१/२ ड्राम से १ ड्राम)

●

(११७) कलहड़पात

फ़ैमिली : आल्गी (Family : Algae)

नाम—(हिं०) कलहड़पात (नुस्खा सईदी), गलहड़ (र)का पत्ता, गलहूर (गिलूर)का पत्ता, गिल्हड़पात; (ले०) **लामीनारिआ साक्कारीना Laminaria saccharine** Lam.); (अं०) स्वीट टैंगल (Sweet tangle)।

उत्पत्तिस्थान—समस्त गहरे समुद्रोंमें पाया जाता है और प्रायः भारतीय समुद्रतटोंपर फेंका हुआ मिलता है। यह कश्मीर तथा तिब्बतकी खारी झीलोंमें और चीनदेशकी अमूर नदीमें भी उत्पन्न होता है। पंजाब और सिंधके बाजारोंमें यह बाहरसे आकर बिकती है।

वर्णन—सेवारकी जातिका एक उद्भिज्ज जिसके पत्ते तमाकूके पत्तेके सदृश, किन्तु उससे छोटे, ललाई लिये कालेरंगके सूखे पत्तेकी तरह दीखनेवाले होते हैं। सूखनेपर ये पान सरीखे होते हैं। धूपमें सुखानेपर इसमेंसे एक प्रकारका सफेद शर्करावत् मधुर पदार्थ स्रवित होता है।

उपयुक्त अंग—पंचाङ्ग।

रासायनिक संगठन—इसमें आयोडीन (Iodine) होता है।

प्रकृति—गरम एवं खुश्क।

गुण-कर्म—रसायन और धातुपरिवर्तक।

उपयोग—शीतनिर्यास उपदंश, वा फिरंग, कंठमाला और गलगण्डमें लाभदायक है। यदि गलेमें सूजन आ जाय (**Bronchocele**) तो थोड़ासा कलहड़पात सोते समय मुँहमें रखकर सो जाँय, जिसमें लबाब कंठके भीतर उतरता रहे। थोड़े दिनोंके उपयोगसे उपकार होता है। इसे रातमें ठंढ़े पानीमें भिंगोकर प्रातः इसका हिम खाली पेट पीनेसे भी इस रोगमें लाभ होता है।

●

(११८) कसेरू

फ़ैमिली : सीपेरासे (Family : Cyperaceae)

नाम—(हिं०) कसेरू; (सं०) कशे (से) रुक; (बं०) केशुरू; (म०) कचरा; (ले०) **स्कीर्पुस कीसूर** (**Scirpus kysoor** Roxb.); (अं०) वाटर चेस्टनट (Water chestnut)। (२) **स्कीर्पुस ग्रॉस्सुस** (**Scirpus grossus** Linn.)।

उत्पत्तिस्थान—भारतवर्षके प्रायः सभी गरम प्रदेश और चीन।

वर्णन—यह एक प्रकारके मोथेकी जड़ है। पौधे तालों और झीलोंमें प्रायः ३० सें०मी० (१ फुट) या अधिक गहरे पानीमें अथवा उनके किनारे जहाँ पानी रुका होता है अथवा आर्द्र-भूमिमें उपजते हैं। यह कंद वा जड़ जायफलके बराबर, अंडाकार गोल, गाँठकी तरह होती हैं। इसके काले छिलकेपर काले रोएं या बाल होते हैं। इसे काटनेपर भीतरका गूदा बहुत सफेद दिखता है। वह मधुर, स्वादिष्ट, किंचित् फीका और सुगंधित होता है। इसका ताजा कंद भूनकर, जलमें उबालकर या वैसे ही खाया जाता है।

उपयुक्त अंग—कंद।

रासायनिक संगठन—इसमें पिष्ट (स्टार्च) ६३%, मांसवर्धक द्रव्य ७%, गोंद ७%, सीठी ६% और राख २½% होती है।

प्रकृति—**शीत एवं रूक्ष**। आयुर्वेदके मतसे शीतवीर्य (सु०) एवं रूक्ष (कै०नि०)।

गुण-कर्म—**शीतजनन, संग्राही, हृद्य** और हैजेमें गुणकारक है।

उपयोग—शीतजनन होनेसे यह प्यास बुझाने और विशेषतः आमाशय एवं यकृत् आदि अंगोंका दाह मिटानेके लिए इसका उपयोग करते हैं। यह संग्राही भी है; अतएव रक्तातिसार और पित्तातिसार बन्द करनेके लिए इसका उपयोग करते हैं। यह हृदयदौर्बल्य एवं उष्ण **हृत्स्पंदन** का निवारण करता है। हैजेमें जबकि वमन और अतिसारके द्वारा दूषित दोषोंका उत्सर्ग भली-भाँतिहो चुका हो, इसका उपयोग कराते हैं। उक्त समस्त रोगोंमें अधिकतया इसका शीरा मिश्रीसे मीठा करके पिलाया जाता है। कभी इन कर्मोको तीव्र करनेके लिए इसे अर्क-गुलाबमें पीसकर पिलाते हैं। रक्तज और पित्तज ज्वरोंमें भी शीतजनन (तब्रीद) औषधकी भाँति दाहशमनार्थ इसका उपयोग कराते हैं। **अहितकर**–किंचित् गुरु एवं चिरपाकी है। **निवारण**–शर्करा और शुद्ध मधु। **प्रतिनिधि**–ताजा कँवलगट्टा। **मात्रा**—७ ग्राम से १२ ग्राम (७ माशे से १ तोला) तक।

आयुर्वेदीय मत—कसेरू मधुर, कषाय, शीतवीर्य, रूक्ष, गुरु, विष्टम्भि, ग्राही, शुक्रल, स्तन्य (दूध), कफ और वात को बढ़ानेवाला, वृष्य, कृमिकारक तथा पित्त, रक्तविकार, दाह, नेत्ररोग, प्रमेह और तृष्णाको दूर करनेवाला है (सु०सू०अ० ४६; कै०नि०)।

नव्यमत—कसेरू ग्राही है। इसका उपयोग अतिसार या (रक्तातिसार) एवं वमनके निवारणके लिए किया जाता है।

●

(११९) कसौंदी

फ़ैमिली : लेगूमिनोसी (Family : Leguminosae)

नाम—(हिं०) कसौंदी, कसौंजी; (सं०) कासमर्द; (बं०) कासन्दा; (म०) कासविंदा; (गु०) कासोंदरो; (ते०) कासिन्दु; (ता०) पेयाविरै; (मल०) पोन्नाविरम्; (का०) दाङ्गुतगचे; (ले०) **कास्सिआ आक्सिडेन्टालिस Cassia occidentalis** Linn.; (अं०) निग्रो काफी (Negro Coffee)।

उत्पत्तिस्थान—कसौंदीके क्षुप समस्त उष्णप्रधान स्थानोंमें यत्र-तत्र होते हैं।

वर्णन—यह एक शाखाबहुल ०.९ मीटर से १.८ मीटर (३-६ फुट) ऊँचा क्षुप है। शाखाएँ लम्बी, चिकनी चारों ओर फैली हुई और प्रायः जड़के पाससे अथवा उससे थोड़ा ऊपरसे निकली हुई होती हैं। पत्रक एक सींकमें आमने-सामने २-६ वा ३-५ जोड़े लगते हैं। उनके मध्य ग्रन्थियाँ नहीं होतीं। यह भालांडाकार, प्रायः गोल, नुकीले और दोनों ओरसे मसृण होते हैं। फूले हुए पत्रवृंतमूलके समीप एक बृहत् वृंतशून्य ग्रन्थि होती है। पुष्प सवृंत, क्षुद्र, पीला, चकवँडके फूलकी तरह होता है। वृंत लंबोतरा होता है। ऊपरी पुष्पस्तबक टहनीके सिरे (शाखांत) पर और निम्न पुष्पगुच्छ ३-५ तक अत्यन्त क्षुद्र कक्षीय पुष्पदंडपर स्थित होते हैं। फलियाँ ६-७ अंगुल लंबी, पतली और चिपटी लगती हैं। यह चारों ओर उभरी हुई प्राचीर द्वारा आवेष्ठित होती है। प्रत्येक फलीमें १०-३० बीज होते हैं। बीज भूरे, गोल, चक्रिकाकार ४.६ मि० मी० से ६.२५ मि० मी० ($\frac{३}{१६}$ इंच से $\frac{१}{४}$ इंच) व्यासके और १.५ मि० मी० (१।१६ इंच) मोटे होते हैं। यह वर्षांत या जाड़ेमें फूलती-फलती और हेमंतमें फलियोंके पकनेके साथ सूख जाती है। इसकी गंध खराब होतो है। इसके अतिरिक्त कसौंदीका एक दूसरा भेद भो है जिसे **काली कसौंदी** कहते हैं। इसके फूल, पत्रनाल और डालियाँ काली (रक्ताभ बैंगनी रंगकी) होती हैं। इसको लेटिनमें **कास्सिआ पूर्पूरेआ (C. purpurea** Royle.) कहते हैं। यह बहुत विरल होती है और गाँवके आस-पास कहीं-कहीं मिल जाती है। यह सर्पविषमें बहुत उपयोगी बतलाई जाती है।

रासायनिक संगठन—बीजमें **क्राइसोफैनिक एसिड** (Chrysophanic acid) होता है। कसौंदीकी पत्तियोंमें सनाय जैसा विरेचन द्रव्य होता है। क्षुपके इतर भागकी अपेक्षया बीजोंमें विरेचन सत्व अधिक होता है। काली कसौंदीमें इमोडीन और क्राइसोफैनिक एसिड, ये दो तत्व होते हैं।

प्रकृति—उष्ण एवं रूक्ष। आयुर्वेदके मतसे भी यह उष्णवीर्य है (रा० नि०)।

गुण-कर्म—उष्णताजनन और श्वयथुविलयन, लेखन, वातानुलोमन, ज्वरघ्न तथा **प्राणिज एवं खनिज विषनाशक है।**

उपयोग—उष्णताजनन और श्वयथुविलयन होनेसे पाण्डु, जलोदर और यकृतके शीतविप्रकृतिके लिए इसके पत्तोंका शीरा कालीमिर्चोंके साथ निकालकर या फांटकी भाँति उपयोग करते हैं। इन्हीं गुण-कर्मोंके कारण यह कास, कृच्छ्रश्वास, उदरकृमि और आमवातमें गुणकारी है। पत्रस्वरसके नेत्रमें आश्च्योतन करने या कसौंदीके बीजोंको सुरमाकी भाँति अंजन करने या पत्तोंको सुखाकर, बारीक पीसकर आटेमें मिलाकर रोटी पकाकर तिलके तेलके साथ खानेसे रतौंधी (नक्तांध्य) दूर होती है। **काली कसौंदी**की जड़को नीबूके रसमें घिसकर नेत्रमें लगानेसे कामला रोग दूर होता है। कसौंदी विशेषकर काली कसौंदीकी जड़ या उसकी छाल उतारकर थोड़ी कालीमिर्चोंके साथ घोंटकर पिलानेसे सर्प और विच्छूके काटेको बहुत उपकार होता है। १॥ तोला काली कसौंदीकी जड़ कूट-छानकर उपयोग करनेसे अतिसारसहित जलोदर आराम हो जाता है। आमवातमें जड़का लेप उपकारी है। कसौंदीके भुने हुए बीज संग्राही और बिना भुने बीज विरेचन हैं और हर प्रकारके गर्म और सर्द विषोंके लिए लाभदायक हैं।

कसौंदीकी जड़को नीबूके रसमें पीसकर लगानेसे दाद अच्छा हो जाता है। **काली कसौंदीके** गुणधर्म कसौंदीके समान हैं। दादमें पत्तीका बाह्य प्रयोग होता है। उग्र कासमें पत्तियोंका क्वाथ दिया जाता है। **अहितकर**-उष्ण प्रकृतिको। **निवारण**—कालीमिर्च और मधु। **प्रतिनिधि**-एक भेद दूसरे भेदका। **मात्रा**—७ ग्रामसे १२ ग्राम (७ माशेसे १तोला) तक।

आयुर्वेदीय मत—कसौंदी कुछ तिक्त, मधुर, उष्णवीर्य, पाचन, कण्ठशोधन, तथा कफ, वात पित्त, अजीर्ण, खाँसी, हिक्का और श्वासकासनाश करने वाली है (सु० सू० अ० ३८, च० चि० अ० १७; रा० नि०)।

नव्यमत—कसौंदी कफघ्न, संकोचविकासप्रतिबन्धक (आक्षेपहर), स्रंसन और किंचित् मूत्रजनन है। **बीज** ज्वरहर, कुष्ठघ्न तथा **मूल** मूत्रजनन, कुष्ठघ्न, ज्वरहर और बल्य तथा **पञ्चाङ्ग** रेचन है। **बीजोंको** सेकनेसे उनके भीतर का विरेचन सत्व नष्ट होता है और उसमें कॉफी जैसा स्वाद उत्पन्न होता है। इनकी काफी (कहवा) तैयार करते हैं। कूकरखाँसीमें **पत्रस्वरसमें** शहद मिलाकर देते हैं। कफज्वरमें पत्रस्वरस देते हैं। इससे स्वासनलिकाओंके संकोच विकाससे होनेवाला त्रास कम होता है। **पचाङ्गके** क्वाथसे वायु सरता है, मरोड़ कम होता है और दस्त साफ होता है। **पत्तियोंको** पीसकर व्रणशोथ और विसर्पपर लेप करते हैं। **मूलसे** पेशाब बढ़ता है, इसलिये उदररोग और जलशोथमें देते हैं।

●

(१२०) कहरुवा

फ़ैमिली: कोनीफ़ेरी (Family: Coniferae)

नाम—(हिं०) कहरुवा, कहरवा; (अ०) समगुल्बहर (सामुद्र निर्यास), क़र्नुल्बहर (सामुद्र शृंग), मिस्बाहुर्रूम (रोमदीप); (फा०) **कहरुबा**; (सं०) तृणकान्त, तृणमणि–(अभिनव); (म०) केरबो; (गु०) केरबा, कहरोबा; (द०) कपूर; (ले०) सूक्सिनुम् (Succinum); (अं०) (Amber)।

वक्तव्य—फारसी 'कहरुबा' शब्दका अर्थ ('काह'कहयाका संक्षिप्त रूप = सूखी घास या तिनका, 'रूबा' = ले जानेवाला या खींचनेवाला) 'सूखी घास या तिनकेको खीचनेवाला' है। इसके अरबी नाम इसे समुद्री द्रव्य समझकर प्राचीन अरबी यूनानी चिकित्सकों द्वारा कल्पित किये जान पड़ते हैं।

उत्पत्तिस्थान तथा प्राप्ति—यह विविध सरल या देवदारु कुल (**Coniferae**)के वृक्षों, विशेषकर **पीनुस सूक्सीनिफेरा (Pinus succinifera)**से प्राप्त होनेवाला, जिनका अधुना वंशच्छेद हो गया है अथवा जिसके वृक्ष अत्र पृथ्वीपर नहीं रहे अथवा जिसका लोप हो गया है, एक प्रकारका पीलेरंगका **अश्मीभूत गोंद या राल (Fossil resin)** है। अब यह सिद्ध हो चुका है कि यह खानसे निकलनेवाला पत्थर विशेष नहीं है, अपितु एक प्रकारका वानस्पतिक राल है। कहरुवाजनक वृक्षोंके भूमिके अन्दर दब जानेके कारण कालान्तरमें उक्त राल अश्मीभूत रूप धारण करती है। वास्तवमें जिस प्रकार तृतीयकल्पमें पृथ्वीगर्भमें उथल-पुथल होनेके फलस्वरूप जंगलके जंगल भूगर्भमें समा गये थे वही वृक्ष आज हमें पत्थरके कोयलेके रूपमें मिल रहे हैं; ठीक उसी तरह कहरूबा भी उस तृतीय कल्पकी रालें, जो टपकती रहती थीं, जमकर और भूगर्भस्थ होकर अपने विशेष गुण-धर्मके प्रभावसे अक्षुण्ण बनी रहीं। वही रालें आज हमें कहरुबाके नामसे प्राप्त हो रही हैं।

ऐसा अनुमान किया गया है कि उक्त वृक्षोंका जंगल पहले उत्तरी स्कैन्डिनेविया (Scandinavia)में प्रचुरतासे था, जिनका अब लोप हो गया है। उनसे जीवितावस्थामें स्रावित रालें वृक्षोंके नष्ट हो जानेके उपरान्त शेष

रह गई और उसके बहुत कालोपरान्त बाल्टिक सागरके पूर्वी तटोंके समीपकी नीली मिट्टीके भारी प्रमाणके नीचे दब गयीं और दीर्घकालोपरांत अब्र खानकी खोदाईके फलस्वरूप इसी नीली मिट्टीसे कहरुबा (Amber) पाया गया है। सुतरां बाल्टिक सागरके तटीय प्रदेशोंमें नदियोंके मुहानोंपर, कभी-कभी ब्रिटेनके पूर्वी तटोंपर भी कहरुबा पाया जाता है। यही कहरुबा (**बाल्टिक** अंबर या सक्सिनाइट Baltic Amber or Succinite) सर्वोत्तम माना जाता है।

वर्णन—यह एक भंगुर, स्वच्छ, चमकदार, लाल या पीला रंगका राल है, जिसके डले बेडौल, चमकदार, नदियोंके तटपर या भूमिमें दबे स्पेन, रोम और जर्मनीके कुछ प्रान्तोंमें प्राप्त होते हैं। इसमें न तो किसी प्रकारकी गंध होती है न खानेमें कोई स्वाद होता है। इसके डले या टुकड़ेको कपड़े या बालोंपर रगड़कर तिनकेकी ओर करें तो तिनका खिंचकर इससे चिपट जाता है, किन्तु तुरत ही छूट भी जाता है। इसमें निहित इस चुम्बकीय (आकर्षण) गुणके कारण ही इसे '**कहरुबा**' कहते हैं। हथेली या कपड़ेपर खूब रगड़कर इसे सूँघा जाय तो इससे नीबूकी-सी गंध आती है। अग्निपर डालनेसे इसके धुएँसे मस्तगीकी-सी महक आती है। इसे वायुशून्य पात्रमें बन्द करके ६० श० पर पिघलानेका प्रयत्न करनेपर यह मृदु होते ही क्षीण होने लगता है और इसकी चमक, आभा-प्रभा सब जाती रहती है। इसलिये इसकी दृढ़ताका अन्दाजा लगाना कठिन है। **भेद**–प्राचीनोंके मतसे कहरुबा दो तरहका होता है। एक रोम देशसे आता है (**रूमी**) और दूसरा स्पेनके पश्चिमीय नटीतटोंके नगरोंसे। इनमें रूमी अपेक्षाकृत उत्तम होता है।

उत्तमताकी पहचान—उत्तम कहरुबा वह है जो कड़ा, उज्ज्वल और सुनहले रंगका हो, देरमें पिघले, हाथमें रगड़नेपर गरम हो जाय, उससे नीबूकी-सी सुगंध आवे और जो घासके तिनके, पक्षीके पर, रेशम और रूई जैसी हल्की वस्तुको अपनी ओर खींच लेवे या उठावे। **कहरुबा शमई** इसका सर्वोत्कृष्ट भेद है। इसमें कोई पिलाई लिये लाल और कोई ललाई या सफेदी लिये पीला होता है (**गंजबादाबर्द**)।

मिश्रण आदि—इसमें किसी अन्य रालकी मिलावट नहीं की जा सकती। हाँ, इसके बारीक-बारीक टुकड़ों (चूरों)में अवश्य संदरूसका चूरा गोंद और मिला दिये जांय तो पहचानना कठिन होता है। इस रूपमें मिलावट हो सकती है, डलेमें नहीं। परन्तु संदरूसकी भग्न सतह चमकदार होती है। इन दोनोंमें सूक्ष्म भेद इस प्रकार है–(१) संदरूसके हाथमें अल्पमर्दनसे ही जो थोड़ी गरमी उत्पन्न होती है, उससे यह चुम्बककी तरह तृणको अपनी ओर आकृष्ट कर लेता है। इसके विपरीत कहरुबाको अत्यधिक घर्षणकी आवश्यकता होती है। फिर भी तृणाकर्षणमें सुन्दरूस कहरुबाके बराबर नहीं; (२) संदरूस कोमल होता है, परन्तु कहरुबा कठोर होता है; (३) कहरुबाको मलनेसे उसमेंसे कागजी नीबूके रसकी-सी सुगंध आती है; परन्तु संदरूसमें उक्त सुगंधका अभाव होता है और यह स्वादमें कडुवाहट लिये होता है। (४) संदरूस रक्तवर्ण-प्रधान, परन्तु कहरुबा पीतवर्ण-प्रधान होता है। (५) संदरूसको जलानेसे हींगकी सी दुर्गंध आती है, परन्तु कहरुबाको जलानेसे उसमेंसे मस्तगीकी-सी महक आती है।

रासायनिक संगठन—यह कार्बन, हाइड्रोजन और ऑक्सीजनका यौगिक है। बन्द बर्तनमें रखकर अधिक गरम करनेपर इससे जो बाष्प उड़ती है, उसे परिस्रावित किया जाय तो इससे एक प्रकारका उद्गामी तेल **कहरुबा तैल** (Succinum oil or oil of amber) प्राप्त होता है, जो औषधिमें प्रयुक्त होता है। इसे इत्र **कहरुबा** भी कहते हैं। इसके सूखे चूर्णको बन्द बर्तनमें रखकर निर्वातमें स्रावित करें तो इससे ८ प्रतिशत एक अम्ल प्राप्त होता है, जिसे **कहरुबाम्ल** (Succinic acid) कहते हैं। यह कई प्रकारके रालीय यौगिकोंका समाहार है। कहरुबाका मूल यौगिक **फिनोल** (Phenol) है। यह एक ऐसा अतृप्त यौगिक है जो जलका सम्पर्क पाकर गाढ़ा होने लग जाता है। कहरुबापर साधारण गर्मी, जल और वायुका कोई प्रभाव नहीं होता। इसका काठिन्य २·२॥ और विशिष्ट गुरुत्व १·१ है।

कल्प तथा योग—इसकी जलाकर बनाई हुई मसी या विशेषकर बिना जलाये ही अर्कगुलाब या चन्दनादि-अर्कमें घोंटकर बनाई हुई पिष्टी (अतिसूक्ष्म चूर्ण) चिकित्सामें प्रयोगमें आती है। **योग**–**क़ुर्स कहरुबा**।

प्रकृति—अनुष्णाशीत (मोतदिल), दूसरे दर्जेमें रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—हृदयकी गतिको नियमित बनाये रखनेका इसमें विशेष गुण है अर्थात् हृदयकी क्रियाओंको व्यवस्थित करनेमें इसका विशेष प्रभाव देखा जाता है। इसीलिये यह **हृदयके लिए बलप्रद** माना जाता है। अतः हृदयदौर्बल्य एवं दिलकी धड़कन दूर करनेके लिए इसे सौमनस्यजनन योगों (मुफ़र्रेहा)में मिलाते हैं। नाड़ी-मण्डल और मस्तिष्कके मानस क्षेत्रपर भी इसका प्रभाव होनेसे यह मनको प्रसन्न करनेवाला (मुफ़र्रेह) है। इसलिये उन्माद, मनौलिया (मेलन्खोलिया) आदि मानसिक व्याधियोंमें इसके सेवनसे लाभ देखा जाता है। रक्तस्तम्भन-आनेवाले रक्तको रोकने अर्थात् रक्तकी द्रवताको घढ़ाकर उसे गाढ़ा करने (रक्तस्कंदन)का विशेष गुण इसमें है। इसलिये नकसीर बन्द करने (रक्तस्तंभन)के लिए इसको खिलाते अथवा नस्य (नफ़ूख़) देते और मस्तकपर लेप करते हैं। उरःक्षतमें रक्तष्ठीवन (खून थूकना) रोकनेके लिए अकेला या उपयुक्त औषधियोंके साथ इसे शर्बत ख़शख़ाशमें मिलाकर चटाते हैं। रक्तातिसार, रक्तार्श और रक्तप्रदर या अत्यंत रजःस्राव आदि रोगोंमें रक्त आना बन्द करनेके लिए इसे उपयुक्त औषधियोंके साथ खिलाते हैं। सद्योव्रणपर छिड़कनेसे रक्तस्राव बन्द करता है और उसको सुखाता है। **अन्त्र और आमाशयको बल देनेवाला होनेसे** आमाशय और आँतोको बल प्रदान करनेके लिए इसको मस्तगीके साथ मिलाकर खिलाते हैं। रालरूप होनेसे इसमें संकोचन और शोषणका भी विशेष गुण (संग्राही) है। इसलिये यह प्रवाहिका, ग्रहणी और अतिसारमें भी लाभ पहुँचाता है। कहरुबा रालोंमें एक विशिष्ट राल है, इसलिये इसमें **दोषों (विकारों)को शोषण करने**का भी गुण है। यह विकारोंको शोषितकर अपने साथ बाहर निकाल देता है। कहरुबा तेल श्वास और कुक्कुर-कासमें उपकारी है। पाश्चात्य चिकित्सामें इसे संधिवात, आमवात आदिकी पीड़ाओंमें मलनेके लिए देते हैं। **अहितकर**—शिरःशूलजनक। निवारण—बनफ़शा। प्रतिनिधि—संदरूस। **मात्रा**—१से २ ग्राम (१—२ माशा)। इसका अर्कगुलाब या चन्दनादि अर्कमें पिष्टी बनाकर उपयोग किया जाता है, भस्म नहीं बनाई जाती है।

(१२१) क़हवा।

फ़ैमिली : रूबिआसे (Family : Rubiaceae)

नाम—(हिं०) काफी, कहवा, बुन; (अ०) क़हवा, बुन्न; (द०) बून, बूँद; (बं०) काफि; (बम्ब०; मर०) काफी; (गु०) काफि; (म०; गु०) बुंद, बुंददाण; (लें०) **कॉफ्फेआ अराबिका Coffea arabica** Linn.; (अं०) कॉफी (Coffee)।

वक्तव्य—अन्य देशी भाषाओंमें इसके अंगरेजी 'कॉफी' शब्दका ही अपभ्रंश रूपमें प्रायः व्यवहार होता है।

उत्पत्तिस्थान—अरब। साम्प्रत इसकी खेती हिन्दुस्तानमें कई जगह होती है। वहाँ इसकी उपज भी पुष्कल होती है।

वर्णन—यह एक पेड़के बीज हैं। ये अंडाकार और कुछ पिलाई लिये हलदीके रंगके होते हैं। इनका एक पृष्ठ गोल, (नतोदर) और दूसरा सपाट होता है जिसपर लम्बाईके रुख़ गहरी धारियाँ होती हैं। गन्ध एक प्रकारका मृदु और स्वाद मधुर, कषाय एवं तिक्त होता है। इन बीजोंको भूनते और उनके छिलके अलग करते हैं। इन्हीं बीजोंको पीसकर गरम पानीमें डाल, छान, उसमें चीनी और दूध आदि मिला कर पीते हैं।

रासायनिक संगठन—कहवेके सूखे बीजोंमें १से ३ प्रतिशत तक चायसे प्राप्त **थेईन** (Theine) नामक पदार्थके अनुरूप **काफीन** (Caffein) वा **कहवीन** नामक एक प्रकारका रेशमकी तरह सफेद क्रिस्टली ऐल्केलॉइड (क्षारोद) होता है।

प्रकृति—**ताजा** कहवा और विशेषकर उसका छिलका गरमी और खुश्की लिये हुए होता है। पुराना और **भृष्ट** कहवा शीत एवं रूक्ष होता है। यह जितना पुराना पड़ता जाता या जितना अधिक भुनता है, उसमें उतनी शीतलता एवं रूक्षता उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है।

गुण-कर्म—अवरोधोद्घाटक, वेदनास्थापन, दोषतारल्यजनन, लेखनीय, मूत्रल, सौमनस्यजनन और दीपन हैं तथा मस्तिष्ककी ओर वाष्पारोहण नहीं होने देता और पित्तकी तीक्ष्णता, रक्तोद्वेग और दाहको शांत करता है। कदाचित् पुराना, भुना हुआ और काला कहवा वीर्यको सुखाता और कामावसाद उत्पन्न करता है। परन्तु कच्चेमें उक्त गुणकी सम्भावना नहीं है। इसका छिलका तो किसी-किसी प्रकृतिमें वाजीकर एवं आहारपाचन कर्म प्रगट करता है।

उपयोग—लेखनीय और दोषतारल्यजनन होनेसे रक्तपित्त और वातजन्य ज्वरोंमें विशेषतः उनकी प्रारम्भिक अवस्थामें तथा शीतला एवं खर्जू रोगमें भी यह उपयोगी सिद्ध होता है। यह रक्तविकारजन्य उदर्द तथा कामला रोगमें भी गुणकारी है। **सारक** होनेपर भी यह दस्तोंको रोकता है, विशेषकर अधभुना कहवा। यह द्रवशोषणकर्ता है और बलगमी खाँसी और प्रतिश्यायको नष्ट करता है। यह मार्गजनित श्रम, क्लम एवं शरीरकी शिथिलताको दूर करता तथा नेत्राभिष्यंद, कुष्ठ और अर्शको नष्ट करता है। इसको पीसकर शहदमें मिलाकर चाटनेसे शुष्क एवं तर कास आराम होता है। यह आमाशयकी क्लिन्नताको सुखाता और उसकी शिथिलताको दूर करता है। इसे पीनेके उपरांत अधिक सोना, प्यास मारना और अल्पाहार, किन्तु इतना नहीं जिससे निर्बलता बढ़ जाय, अतीव गुणकारी है। इसे बार-बार पीनेसे प्रकृति और मस्तिष्क में रूक्षताकी उल्वणता होती और नींद कम आती है। परन्तु जिनके गरमी बढ़ी हुई हो और नींद न आती हो, कहवा पीनेसे उसकी हरारत घट जाती है। इसलिए द्रव कम विघटित होता और नींद आने लगती है। **अहितकर**–यह शिरःशूल, धड़कन, आध्मान, शूल (कूलंज) और कुस्वप्न (काबूस) उत्पन्न करता, शरीरको कृश एवं रूक्ष करता और पीला करता तथा फुफ्फुस एवं स्वरयन्त्रमें खुश्की अत्पन्न करता है। शीत, मृदु और विकृत दोषोल्वण प्रकृतिवालेको यह अहितकर है। **निवारण**–दवाउल्मिस्क, सोंठ, गुलाब, रोग़न पिस्ता, खाँड़, मिश्री, अम्बर और केसर आदि।

नव्यमत—कॉफीकी पत्तियाँ ज्वरघ्न हैं। बीज हृदयबल्य, हृदयोत्तेजक, नाड्युत्तेक, मूत्रजनन और चयापचय क्रियाको सुधारनेवाले हैं। ३ से ६ ग्राम (३ से ६ माशा) इसकी पत्तियोंका काढ़ा देनेसे ज्वर और उससे उत्पन्न शिथिलता कम होती है। दूध, जल और चीनीके साथ बनाया इसका फांट नाड़ीकी शिथिलतामें देते हैं। इससे नाड़ी स्वाभाविक जोर और स्थिरतासे चलती है। यह फांट उत्तम हृदयबल्य और हृदयोत्तेजक है। हृदयपर इसकी क्रिया प्रत्यक्ष हृदयपेशीपर और नाड़ियों द्वारा होती है। ज्वरमें या अन्य किसी कारणसे हृदयमें शिथिलता आयी हो, तब इसे देते हैं। हृत्पटलके रोगसे जब उदररोग हुआ तब हृदयको शक्ति देनेके लिए इसे देते हैं। यह मूत्रजनन भी है, इसलिये इससे हृदयोदरमें शरीरमें संचित विष मूत्रद्वारा उत्सर्जित हो जाते हैं। हृदयोदरमें कॉफीके साथ मूत्रल और आनुलोमिक द्रव्य देते हैं। ज्वरसे हृदयमें शिथिलता आयी हो तो इसके साथ कुचला और डिजिटेलिस जैसे द्रव्य देते हैं।

●

(१२२) कहेला, कहेली

वर्णन—यह तज (सलीखा) है। परन्तु हकीम **शरीफखाँ**के मतसे यह एक पहाड़ी वृक्षकी छाल है, जो कड़ी, मोटी, खुरदरी, मटियाले एवं लालगेरूके रंगकी होती है। **कहेला** मोटी छाल है और **कहेली** पतली, यही दोनोंमें अन्तर है। ये दोनों द्रव्य तेज और दालचीनीसे भिन्न और उनके मध्यमें हैं।

प्रकृति—**शीत एवं रूक्ष**।

गुण-कर्म तथा उपयोग—संग्राही होनेके कारण अधिकतया कटि एवं वृक्कको बलप्रदान करनेके लिए तथा स्त्री-गुह्यांगसे नाना प्रकारके स्रावोंको रोकनेके लिए कहेला-कहेलीका उपयोग करते हैं। इस हेतु ललनागण प्रायः इसे पिंडियोंमें डालकर खाती हैं और पिचुवर्तिकाओंमें योजित करती हैं।

●

(१२३) काई

फ़ैमिली : आल्गी (Family : Algae)

नाम—(हिं० बं०); काई; (अ०) तुहल (लु)ब, तुह्लबुल्माऽ; (फा०) चग़्ज़ाब़ः, पश्म वज़ग़, जामे ग़ोक, जुल्लेबज़ग़, जुल्लेबुक, जाम ख्वाब बुक, कश्शिश जोय; (सं०) कावारम्; (द०) दरियाकी पाची, मोस; (ले०) **ग्रैसीलारिया लीकेनोइडीज़ (Gracilaria lichenoides** Harv.); (अं०) मॉस (Moss)।

वक्तव्य—काईमें मेढक छिपे रहते हैं, इसलिये इसका फारसी नाम **चग्जाबः** (चग़्ज़, चग़र = मेंढक, आब = पानी) अन्वर्थक है। **जामेग़ोक** (जामा = पोशाक, ग़ोक = मेंढक) उसका समानार्थी है। 'जुल्' फारसी 'गुल' (पुष्प)से अरबी बनाया गया है। सुतरां 'जुल्लेआब'का अर्थ **'पानीका फूल'** हुआ। यह काईका नाम है। **'जलपानी'** भी कहते हैं। **'बज़ग'**का अर्थ 'छिपकली' वा 'मेंढक' है। **'जुल्लेबुक'**का अर्थ **'मण्डूकपुष्प'** है।

वर्णन--सेवारसे भिन्न यह एक प्रकारकी सब्जी है जो स्थिर बँधे हुए पानी, जैसे–हौज, तालाब, बावली आदिके ऊपर जिसपर सूर्यका प्रकाश कम पड़ता है, जमती (हरे कपड़ेकी तरह बिछी होती) है और उसको दूषित कर देती है। इसकी जड़ पानीमें अवलंबित रहती है। **भेद**–यूनानी निघंटुग्रन्थोंमें इसके यह तीन भेद लिखे हैं–(१) यह वृत्ताकार और परस्पर पृथक् होती है। अरबी में इसको 'तुहबुल लीफ़ी' और **हज़ाज़ुल्माऽ** (हज़ाज़ = सिरकी भूसी, माऽ = पानी) कहते हैं। यह काई है जिसका वर्णन ऊपर किया गया है। (२) यह परस्पर मिली हुई तन्तु वा डोरीकी तरह होती है और नहरों तथा नदीके कूलोंपर प्रचुरतासे पैदा होती है। इसको अरबीमें **ग़िज़्लुल्माऽ** (**मख़्ज़न**) वा **गज़ालुल्माऽ** (मुहीत) कहते हैं। इनका अर्थ 'पानीका हिरन' है। यह सेवार जान पड़ता है। सेवारको लेटिनमें **बाल्लिसनेरिआ स्पीरालिस (Vallisneria spiralis** Linn.) कहते हैं। (३) इसके अवयव परस्पर खूब मिले हुए और गठे हुए नमदेकी भाँति होते हैं। इसे अरबीमें **ख़रउल् ज़फादअ** (मंडूक-विष्ठा), **मख्ज़न**के अनुसार **ख़िर्वउल् ज़फादअ** (मंडूकैरण्ड) कहते हैं। यह स्थिर वा खड़े जलके ऊपर पैदा होती है। मीठे पानीपर जमी हुई उत्तम होती है। समुंदरके पानीके ऊपर भी काई उत्पन्न होती है।

वक्तव्य—कानूनके भाष्यकार **गाज़ुरूनी**के मतसे **तहलुब नहरी** एक सब्जी है जिसके दाने मसूरके छोटे-छोटे दानोंकी तरह होते हैं। यह पानीके धरातलपर खड़ी होती है। **गीलानी**के मतसे इस प्रकारकी मसूराकार काईके दाने जिसे अरबीमें **अदसुलमाऽ** (जल मसूर) कहते हैं, मसूरके बड़े-बड़े दानोंके बराबर होते हैं।

रासायनिक संगठन—इसमें **आयोडीन** होती है।

प्रकृति—संग्राहीवीर्यसहित दूसरे दर्जेमें **शीत** एवं **तर** है।

गुण-कर्म—बाह्य प्रयोगसे काई **शीतजनन**, दोषविलोमकर्ता संशमन तथा **रक्तस्तंभन** है; एवं आंतरिक उपयोगसे यह कब्ज पैदा करती है।

उपयोग—विसर्प एवं अन्य उष्ण शोथोंमें दाहप्रशमनके लिये और दोषोंको विलोम करनेके लिए इसका प्रलेप करते हैं। रक्तस्राव बन्द करनेके लिए जौके आटाके साथ इसका लेप लगाते हैं। यदि कंठके भीतर जोंक चिपटी हुई हो, तो उसको निकालनेके लिए काई खिलाकर वमन कराते हैं। सूखी काईका चूर्ण बनाकर दस्त बन्द करनेके लिए खिलाते हैं। नमनाक (आर्द्र) पत्थर आदिपर उत्पन्न हुई काई बहुत संग्राही बतलाई जाती है। रक्तस्राव बन्द करनेके लिए इसका पतला लेप करते हैं। **अहितकर**–कफप्रकृतिके लिए। **निवारण**–जौका आटा और कालीमिर्च। **प्रतिनिधि**–जलकुम्भी जो तालाबोंमें विपुल पाई जाती है। **मात्रा**–५ ग्रामसे ७ ग्राम (५ माशेसे ७ माशे) तक।

●

(१२४) काकजंघा (रिज्लुल्गुराब)।

नाम—(हिं०) काकजंघा; (अं) रिज्लुल्गुराब, रिज्लुल्उक्राब, रिज्लुल्अक्अक्-(-ज़ुरज़ूर, -तीर,–ज़ाग); (फा०) पाये कुलाग़, कुलाग़पाव; (तु०) गाज़बागी; (सं०) काकजंघा, पारावतपदी, लोमशा; (वं०) काउय ठूठी, काउयाठेङा; (कों) काउया ठोका; (मं०) कांगा ठेंगड़े।

वर्णन—इसका पौधा २२·५सें०मी० (एक बित्ता)के बराबर बड़ा और जमीनपर फैला होता है, इसके पत्ते इतने गहरे हरे रंगके होते हैं कि स्याहीकी झलक मालूम होती है। आकृति राईके पत्ते जैसी, प्रत्येक पत्ता दो भागों में विभक्त होता है और प्रत्येक भागमें तीन-तीन बारीक पत्ते होते हैं जिनमेंसे बीचका लंबा होता है। इस प्रकार कौएके पंजेकी-सी शकल मालूम होती है। शाखाएँ इसकी फैली होती हैं। चाबनेसे इसमें थोड़ीसी तेजी मालूम होती है तथा जिह्वाको किंचित् सिकोड़ती है और गाजरकी तरह मिठास पाई जाती है। इसकी जड़ जमीनके भीतर गोल और ग्रन्थिल होती है। यह ऊपर थोड़ी पीली, पीसनेपर सफेद सुरंजान जैसा रंग निकल आता है। 'आजुरबैजान' और 'बैतुल्मुकद्दस'की ओर इसको लोग उबालकर और घीमें बघारकर खाते हैं। कमर और घुटने आदिके दर्दमें बहुत गुणकारक है।

वक्तव्य—उपर्युक्त यूनानी विवरणसे यह 'मसी' और 'आतरीलाल'से सर्वथा भिन्न पौधा ज्ञात होता है। उक्त विवरणका मेल बहुत कुछ लीआ हीर्टा **Leea hirta** Roxb; और वीटेक्स पेडन्कुलारिस (**Vitex peduncularis** Wall.) तथा वीटेक्स ल्यूकॉक्सीलोन (**V. leucoxylon** L.f.)से मालूम होता है। इनमेंसे प्रथमको आसाम और बंगालके वनवासी 'काउरठइयाँ (काउ = काग + ठइयां)' तथा दूसरीको बिहारमें 'सिमजंघा' (को०) एवं 'मुरगीगोड' (उड़ि०) और तीसरीको चिरईगोड़ा (भुइयाँ) कहते हैं। इन स्थानीय नामोंके आधारपर इसे शास्त्रकारोंकी काकजंघा माना जा सकता है। यूनानी 'रिज्लुल्गुराब'का अर्थ 'कागजंघा' है। इसीसे किसी-किसीने इसे काकजंघा लिखा है। किंतु आधुनिक भारतीय वैद्योंमें इसके संबंधमें बड़ी मतभिन्नता पाई जाती है। कोई इसे 'मसी' तो कोई 'आतरीलाल' बतलाते हैं। अस्तु हकीमोंने भी इसे मसी आदि ही समझा है। किन्तु जब भारतीय काकजंघाका ही निश्चय नहीं हुआ है, तब रिज्लुल्गुराबको मसी कैसे माना जा सकता है। यदि उपर्युक्त पौधोंमेंसे किसी एकको काकजंघा मान लिया जाय तो उसे रिज्लुल्गुराब माना जा सकता है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—यूनानी हकीमोंके मतसे रिज्लुल्गुराब प्रमाथि (अवरोधोद्घाटक), वातविलयन, शूल एवं पेटकी मरोड़के लिए हितकर, जीर्ण अतिसारको बन्द करनेके लिये बहुत लाभकर तथा कटि, संधि, घुटना एवं पेटके दर्दको मिटानेवाला है। इसे बकरीके मांसमें पकाकर खानेसे अंगोंकी थकावट ; (मांदगी) और दर्द आराम होता तथा दस्त बन्द हो जाते हैं। कहते हैं कि दस्तोंको बन्द करनेके लिए इसकी जड़ इतनी गुणकारी है कि एक व्यक्तिको २० वर्षसे दस्त हो रहे थे वह इससे बंद हो गये। कोई-कोई इसे क्षोभरहित कोष्ठमार्दवकर (मृदुसारक) बतलाते हैं। इसकी रसक्रिया (उसारा)को पानीमें घोलकर संधियोंपर लगानेसे संधिशूल आराम होता है। अधिक कष्ट होनेपर ७ ग्राम (७ माशे) वह दवा पानीमें मलकर और उसमें ७ ग्राम (७ माशे) लुफाह (बेलाडोना)की जड़ पीस-मिलाकर लगानेसे बड़ा लाभ होता है। **मात्रा**—अकेला ४ से ९ ग्राम (४॥ माशे से ९ माशे) तक; माजून ४॥ ग्राम (४॥ माशे) तक, मतांतरसे अकेला वातरक्तके लिए ७ से १०·५ ग्राम (७-१०॥ माशे) तक खा सकते हैं। गोलीके रूप में ३·५ से ४·५ ग्राम (३॥-४॥ माशे) तक सेवन करना चाहिये।

(१२५) काकडासींगी

फ़ैमिली : आनाकार्डिआसे (Family : Anacardiaeae)

नाम—(हिं०) काकडासीं (-सि-) गी; (सं०) शृङ्गी, कर्कटशृङ्गी; (बं०) काँकेड़ा-शृङ्गी; (पं०) ककड़सिंगी; काकड़ासिंगी; (म०) काकड़ाशिंगी; (गु०) काकड़ासिंगी; (क०) काकड़सिंगी; (लै०) **पिस्टासिआ ईन्टेगेरीमा (Pistacia integerrima** Stewart); (अं०) क्रैब्स क्ला (Crabs claw)।

उत्पत्तिस्थान—पेशावरकी घाटी, सुलेमान पहाड़, हिमालयकी उत्तर-पश्चिम श्रेणियाँ तथा सिंध नदीसे कुमाऊँ तक शिमलाके पासके स्थानोंमें **'काकड़'** (पंजाबीमें **'कक्कर'**) नामक वृक्ष होते हैं।

वर्णन—यह काकड़ नामक पतझड़वाले एक ऊँचे वृक्षके पत्तों एवं टहनियोंपर लगा हुआ एक प्रकारका शृंग-सदृश कीटगृह (Gall) है। समय आते ही पत्तोंकी गांठोंपर अर्बुदाकार चिह्न (Galls) पड़कर बढ़ता हुआ शृंगाकार हो जाता है। इसीको काकड़ासिंगी कहते हैं। बाजारमें मिलनेवाली काकड़ासींगी कठिन, भीतरसे पोली, हलकी, अनियत आकारवाली लगभग ३·७५ सें० मी० (१॥ इंच) लम्बी बकरीके सींगके समान, नोकदार, कालापन लिये लाल और स्वादमें कसैलापन लिये कुछ कड़वी होती है।

वक्तव्य—बहुत प्राचीन यूनानी निघंटुग्रन्थोंमें काकड़ासिंगीका उल्लेख नहीं मिलता और न इसके अरबी-फारसी नामोंका ही उल्लेख उक्त ग्रन्थोंमें मिलता है। मख्जनुल् अद्विया और मुहीत आज़म इत्यादि उत्तरकालीन ग्रन्थोंमें काकड़ासिंगी नाम से इसका उल्लेख मिलता है। इनके मतसे यह भारतीय द्रव्य है।

रासायनिक संगठन—इसमें ७५ प्र० श० टैनिन होता है।

कल्प तथा योग—सफ़ूफ़ काकड़ासिंगी।

प्रकृति—पहले दर्जेमें उष्ण और दूसरेमें रूक्ष है। आयुर्वेदमतसे भी उष्णवीर्य (भा० प्र०)

गुण-कर्म—श्लेष्मनिस्सारक, उपशोषण, दीपन, ज्वरघ्न, और श्वास-कासहर है।

उपयोग—इसको अधिकतया अकेले या अन्य औषधद्रव्योंके साथ कास और कफज कृच्छ्रश्वासमें शहदमें मिलाकर चटाते हैं। विशेषतः बच्चोंकी खाँसीमें यह अत्यन्त गुणकारी है; यहाँतक कि कालीखाँसीमें भी लाभदायक सिद्ध होती है। **अहितकर**—यकृतके रोगोंको। **निवारण**—कतीरा और बबूलका गोंद। **प्रतिनिधि**—मुलेठी। **मात्रा**—१ से २ ग्राम (१ से २ माशा)। तक।

आयुर्वेदीयमत—काकड़ासिंगी कषाय, तिक्त, उष्णवीर्य तथा वात, कफ, क्षय, ज्वर, श्वास, ऊर्ध्ववात, तृषा कास, हिक्का, अरुचि और वमनका नाश करनेवाली है (च० सू० अ०४; भा. प्र.)।

नव्य-मत—काकड़ासिंगी कषाय, तिक्त, उष्ण, कफघ्न और संग्राहक है। कफरोगोंमें काकड़ासिंगी विशेष उपयोगी है। नये और पुराने श्वासनलिकाशोथमें इससे जमा हुआ कफ गिरता है और नया कफ उत्पन्न नहीं होता। श्वासनलिकाओंकी श्लेष्मल त्वचाको इससे शक्ति मिलती है। श्वासनलिका शोथमें गलेमें शिथिलता उत्पन्न होती है और कौआ बढ़ता है, जिससे अकारण (कफरहित) खाँसी आतो है, वह इससे बन्द होती है। बड़े मनुष्योंकी अपेक्षया यह शिशुओंको विशेष अनुकूल पड़ती है। काकड़ासिंगी, अतीस, बच और नागरमोथा का चूर्ण (बाल-चातुर्भद्र चूर्ण), बालकोंको देते हैं। कफरोगोंमें कभी-कभी उलटी और विरेक होते हैं, तब काकड़ासिंगीसे विशेष लाभ होता है। आमाशयके प्रदाहसे उत्पन्न वमन, हिक्का, जीर्ण अतिसार और जीर्ण आँव में काकड़ासिंगीका उपयोग करते हैं।

(१२६) काकनज।

फ़ैमिली : सोलानासे (Family : Solanaceae)

नाम—क्षुप (अ०) काकनज, (अल्-), काकिनज; (फा०) काकन; अरूसक-पसे-पर्दः, अरूसक-दर-पर्दः, अरूस-दर-पर्दः, (शीराजा) कचूमन; (सु०) ख़मरी मरजा; (यू०) स्ट्रुख़्नोस अह्सि ककावोस, फुसेंल्लिस, फुसेलीस; (रू०) वेसिकेरिआ (Vesicaria), हेलिकाकाबुस (Helicacabus); (ले०) फ़ीज़ालिस आल्काकेंजा (**Physalis alkakengi** Linn.); (अं०) विंटर-चेरी (Winter-cherry), एल्केकेंजी (Alkekengi)। फल (अ०) हब्बकाकनज, हब्बुल्लहू, जौज़ुल्मर्ज; (फा०) काकनः, अरूसक-पसे-पर्दः।

वक्तव्य—फ़ारसी 'काकनः' संज्ञासे काकनज अरबी बनाया गया है। अरबी वैद्यकीय कोशग्रंथोंमें अरूसक को बीरबहूटीकी तरहके एक कीड़ेका नाम लिखा है। डीमक ने 'अरूसक-पसे-पर्दः' का परदेके पीछे (आड़में) दूल्हन' ऐसा अर्थ किया है। प्राचीन यूनानी 'स्ट्रुख़्नोस' संज्ञाका व्यवहार जिसका आधुनिक रूपान्तर स्ट्रिक्नॉस (Strychnos) है, काकमाची कुलके उद्भिजके अर्थमें करते थे। परन्तु अधुना उक्त संज्ञाका व्यवहार कारस्करादि कुलके अर्थमें होता है। इसकी रूमी संज्ञा 'हेलिकाकाबस' यूनानी 'अह्लिकाकाबोस' से व्युत्पन्न है। इसके हब्बुल्लहू आदि संज्ञाओंसे यह ज्ञात होता है कि यह मदकारि अनुमान किया जाता था। इसके यूनानी, रूमी, फारसी और अरबी इत्यादि संज्ञाओंके अर्थका विचार करनेसे यह विदित होता है कि यूनानी और रूमी चिकित्सक इसे बस्तिरोगोपयोगी अनुमान करते थे। प्रायः यूनानी निघंटुग्रथोंमें इसके हिंदी नाम 'राजपूतिक' और 'वनपूतिका' दिये गये हैं। डीमकने इसका संस्कृत नाम 'राजपुत्रिका' लिखा है। डॉ० वामन गणेश देसाईने इसकी एक संस्कृति संज्ञा 'हेमन्त-फल' भी लिखा है। परन्तु ये नवीन कल्पित संज्ञाएँ हैं। किसी-किसीने इसका हिन्दी नाम 'पपोटन' भी लिखा है। परन्तु पपोटन 'देशी काकनज' वा 'पुनीर (**Withania coagulans**)' का नाम है। वि० दे० 'असगंध देशी'।

उत्पत्तिस्थान—फारस, दक्षिण यूरोपसे जापान तक और संयुक्तराज्य अमरीका, भारतीय बाजारों विशेषकर बम्बईमें इसके फल ईरानसे आते हैं।

वर्णन—यह मकोयकी जातिकी एक विदेशीय वनस्पति है। फल मकोयके फल से बड़ा, लाल रंगका होता है। फलत्वक् मसृण, चमकदार, ललाई लिये भूरी और अत्यन्त झुर्रीदार होती है। इसके भीतर चपटे, वृक्काकार, हल्के

भूरे रंगके बहुसंख्यक बीज भरे होते हैं। **मात्रा–काकनज** शब्दसे इसका फल विवक्षित होता है। शुष्क फल मंद लाल, लगभग ८·३मि. मी.से १·२५ सें. मी. (१।३-१।२ इंच) व्यासमें, गोलाकार, द्विकोषयुक्त जिनमें असंख्य सफेदी लिये अंडाकार (Ovoid), चपटे (वृक्काकार) बीज होते हैं। लाल विस्फारित (Inflated) बाह्यदलकोष (Calyx) लगभग १ इंच व्यासके कभी-कभी फलमें लगे रह जाते हैं। स्वाद तिक्ततालिये मधुर, गंध कुछ नहीं। **वक्तव्य–** भारतवर्षमें भी काकनजकी जातिकी एक वनस्पति होती है जिसे **पनीर या देशी काकनज (Withania Coagulans** Dunal) कहते हैं। यह गुण और स्वरूपमें वास्तविक काकनजसे सर्वथा मिलती-जुलती होती हैं। इसी कारण बम्बईमें जहाँ वास्तविक काकनज ईरानसे विक्रयार्थ आता है, लोग इसे काकनज कहनेके भ्रममें पड़ जाते है; परन्तु काकनज भारतीय पैदावार नहीं है। इसी प्रकार पंजाबमें टंकारी वा चिरपोटा (**Physalis minima**)को काकनज कहते हैं। वास्तविक काकनज न होने पर भी वे दोनों इसके उत्तम प्रतिनिधि द्रव्य हैं।

उपयुक्त अंग—पत्र, लाल और पका हुआ फल। तीन वर्ष तक इसमें वीर्य रहता है।

रासायनिक संगठन—फलमें मैलिक एसिड, सिट्रिक एसिड, साइट्रोन, एक उत्पत पदार्थ, शर्करा, लबाब, पेक्टिन, काष्ठतंतु और जल ये द्रव्य होते हैं। पत्र एवं पुष्प-बाह्यावरण (Calyx)में **काकनजीन** (फायसेलीन) नामक एक अक्रिस्टली तिक्त सत्व होता है।

कल्प—खाण्डव (जुवारिश), चक्रिका (कुर्स) और माजून इत्यादि।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें शीत एवं रूक्ष है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—स्वापजनन, मूत्रल एवं बस्ति-वृक्क रोगोंमें उपकारी, पित्तरेचन, यकृत्संशोधन और सूत्र एवं ब्रघ्नाकारकृमि-निःसारक है। काकनज वृक्क एवं बस्तिरोग, अश्मरी, बस्तिवृक्कस्थ व्रण और मूत्रमार्गस्थ व्रणमें लाभ पहुँचाता है। पित्तज कामला, पित्तसंचयजन्य यकृद्विकार और यकृच्छोथमें भी यह लाभकारी है। दोषविलोमकरण हेतु इसके ताजे पत्रको प्रारंभिक सूजन पर लेप करते हैं। श्वयथुविलयन और ग्रंथिविलयनके लिए काकनजका लेप लगाते हैं। काकनजकी बनी चक्रिकायें (**कुर्स काकनज**) बस्तिवृक्कगत व्रणके कारण होनेवाले सपूयमूत्रमें गुणकारी हैं। **अहितकर**–अंगको शिथिल एवं सुस्त करता है। **निवारण**–गुलकंद। **प्रतिनिधि**–मकोय। **मात्रा**–५ से ७ ग्राम (५ से ७ माशे) तक।

नव्यमत—यह मूत्रल और ज्वरघ्न है। विषम ज्वरों तथा वातरक्त और आमवात जनित मूत्र विकारोंमें इसका सफलतापूर्वक प्रयोग होता है। बस्ति और वृक्क विकारोंके लिए इसके फलको दूधमें पकाकर और चीनी मिलाकर सेवन करनेकी अभ्यर्थना जोसेफ मिलर महादेय करते हैं। कामलाके लिए भी इनकी अभ्यर्थना की जाती है।

●

(१२७) काजू

फ़ैमिली : आनाकार्डिआसे (Family : Anacardiaceae)

नाम—(हिं०) काजू (ट्), काजूबादाम; (फा०) बादामे फिरंगी; (सं०) काजूत (क), वृत्तारुष्कर–(नवीन); (म०; गु०) काजू; (मेवाड़) काजूकुली; (बं०) काजू बादाम (गिरी), काजूसेव (फल), हिजली बादाम; (मारवाड़) काजूगुली; (ले०) आनाकार्डिअम ऑक्सिडंटाले (**Anacardium occidentale** Linn.); (अं०) केश्यू नट (Cashew-nut)।

उत्पत्तिस्थान—ट्रॉपिकल (या दक्षिण) अमेरिकाका मूलनिवासी है। लगभग ४००साल पहले पुर्तगाली इसे ब्राजीलसे भारतवर्षमें ले आये। अब दक्षिण भारतवर्षके समुद्रतटीय जंगलों, विशेषतः मद्रास और केरलमें पुष्कल, अंशतः बम्बई, मालावार तथा उड़ीसामें इसके वृक्ष होते हैं। कुछ अंशोंमें यह पश्चिम बंगालके मेदनीपुर जिलेमें भी उत्पन्न होता है।

वर्णन—यह एक ९ मीटरसे १२ मीटर (३०-४० फुट) ऊँचे, बड़े वृक्षके फलका मग़ज है। फल–वृक्काकृति, मसृण, भूरापन लिये (या सफेद राखकी तरह) लगभग २·५ सें० मी० (१ इंच) लम्बा, १·२५ सें० मी० ($\frac{१}{२}$ इंच) चौड़ा और मोटा, इसके ऊपरका मोटा छिलका सुषिरपूर्ण होता है। इसके भीतरका मग़ज वृक्काकार, महीन छिलकेके भीतर और सफेद रंगका होता है। इसे काजू या काजू बादाम कहते हैं। यह चिकना, मधुर और स्वादिष्ट होता है तथा स्वादमें बादामसे कम नहीं होता। भूननेसे या नमकीन बनानेपर इसका स्वाद बहुत बढ़ जाता है। गिरी प्राप्त करनेके लिए गुठली (Nut)को भूनते हैं। फलको ताजी अवस्थामें बड़े चावसे खाया जाता है। इसका रंग लाल-पीला होता है और आकारमें यह बादामसे तीनगुना होता है। भिन्न-भिन्न श्रेणीके काजूका रंग, आकार और चेहरेमें बहुत अन्तर होता है।

वक्तव्य—यूनानी निघण्टुग्रन्थोंमें सर्व प्रथम **मुहीतआज़म** में काजू नामसे इसका उल्लेख मिलता है। काजू शब्द केश्यूनटके स्थानीय नाम ब्राजील शब्द 'आकाजन (Acajan)'से व्युत्पन्न है।

रासायनिक संगठन—इसके छिलकोंमेंसे एक प्रकारका काला कडुआ (तेजाबकी तरह तीक्ष्ण) तथा अतिसंवेदनशील, त्वचाके लिए भयकारी तेल प्राप्त होता है। इसे शरीरपर लगानेसे छाले उठ आते हैं। इसकी गिरीमें ४१·६ प्रतिशत एक प्रकारका हलका पीला तेल (स्नेह) निकलता है। इसके अतिरिक्त इसमें औसतन प्रोटीन ३१·२ प्रति०; धातव द्रव्य २·४ प्रति०, शर्करा २२·३ प्रति०, सुधा ०·५ प्रति०, फॉस्फोरस ०·४५ प्रति०, लोहा ५·० (मि० ग्रा०) प्रति० और १·३ प्रति० सीठी होती है।

इसके अतिरिक्त हर १०० ग्राम काजूमें विटामिन 'A (कैरोटीन)' १०० मि० ग्रा०, थियामिन (Thiamin), जो वाततंतुओं एवं पाचनयन्त्रको कार्यक्षम रखनेमें आवश्यक है ६३० मि० ग्रा०, नियासिन (Niacin) २·९ मि० ग्रा० तथा रिबोफ्लेवीन जो बुढ़ापेको दूर रखनेके लिए आवश्यक है १९० मि० ग्रा० होते हैं।

कल्प—मक्खन, दूध, दही, बिस्कुट, केक आदि।

प्रकृति—गरम और तर।

गुण-कर्म तथा उपयोग—काजू बृंहण, सौमनस्यजनन, हृद्य, शुक्रल और बाजीकर है। यह वृक्क, स्मृति और मस्तिष्कको शक्ति प्रदान करता है (मेध्य एवं बुद्धिवर्धक है)। इसे नोहार खाकर ऊपरसे थोड़ा शहद चाटनेसे विस्मृतिरोगका नाश होता है। शीतल एवं तर प्रकृतिके लिए यह भिलावेसे कम नहीं है (मुहीत)। अहितकर–गरम प्रकृतिवालोंके रक्तमें उष्णता उत्पन्न करता एवं पित्तकारक है। निवारण–खट्टा अनार और सिकंजबीन।

आयुर्वेदीय मत—काजू कषाय, मधुर, उष्ण, लघु, धातुवर्धक तथा वात, कफ, गुल्म, उदररोग, ज्वर, कृमि, व्रण, मन्दाग्नि कुष्ठ, श्वेतकुष्ठ, संग्रहणी, अर्श और अफाराको दूर करनेवाला है (नि०र०)।

नव्यमत—काजूका मग़ज पोषणकर्ता, स्निग्ध और स्नेहन है। तैल उत्तम स्नेहन है। अविराम और चिरकारी वमनसे पीड़ित अति दुर्बलरोगियोंके लिए काजू उत्तम खाद्य है। क्षोभक विषोंके लिए इसका तेल यान्त्रिक एवं रासायनिक प्रतिविष (Mechanical & Chemical antidote) है। यह न केवल आमाशय और आँतोंके भीतर स्तर करनेवाली झिल्लीकी विषजन्य क्षोभसे रक्षा करता है और इसको विलयन और शोषण दोनोंसे बचाता है; अपितु यदि संयोगवश क्षार हुआ तो उसे साबुनके रूपमें परिणतकर उसके प्रभावको नष्ट (निर्विषीकरण) भी करता

है। यह मलहमों और इतर बहिः प्रयोगके औषधोंके लिए एक उत्तम अनुपान (Vehicle) भी है। तेल बादाम और जैतूनके तेलका उत्तम प्रतिनिधि है (डॉ० मोहिउद्दीन शरीफ़)। काजूका आदर अधिक खाद्य-मूल्यके कारण होता है। इसका व्यवहार खाद्य तथा दवाके रूपमें किया जा सकता है। खानेके बाद जो फल खाये जाते हैं, उनमें काजूका एक श्रेष्ठ स्थान है। वस्तुतः भोजनके बाद काजूके साथ और कोई सूखा फल मुकाबिला नहीं कर सकता। सूखे मीठे फलोंके साथ यह बहुत अच्छी तरह ग्रहण किया जा सकता है और कभी-कभी किसमिस, खूबानी, खजूर तथा अंजीरके साथ खाया जाता है। इस मिश्रणसे इसका स्वाद और खाद्य मूल्य ही नहीं बढ़ जाता है, अपितु इनसे यह एक निर्भर योग्य रोचक स्वादमें परिणत होता है। कोष्ठशुद्धिके लिए रोज करीब-करीब २० दाने एक मुट्ठी किसमिसके साथ लिये जा सकते हैं (डॉ० कुलरंजन मुखर्जी)।

●

(१२८) कायफल

फ़ैमिली : मीरिकासे (Family : Myricaceae)

नाम—(हिं०; म०; गु०) कायफल, कायछाल; (अ०) अज़ूरी, ऊदुल्बर्क़, क़ंदूल; (फा०) दारशीश्आन; (सं०) कट्फल; (कु०; गढ़०; नें०) काफल; (बं०) कट्फल, कायछाल; (लें०) मीरिका एस्कूलेंटा (Myrica esculenta Buch-Ham.) (**पर्याय**—*M. nagi Hook. f. pp. non Thunb.*); (अं०) दी बॉक्समिर्टिल (The box myrtle)।

वक्तव्य—जब इन्द्रधनुष या विद्युत् इसके समीप पहुँचती है, तब इसमेंसे हिंदी अगरसे भी अधिक सुगंध आने लगती है; इसीलिए इसे अरबीमें 'ऊदुल्बर्क़' (ऊद = अगर, बर्क़ = बिजली) कहते हैं। कंदूलका उच्चारण 'बुह्रीन'में 'क़िन्दूल' लिखा है।

उत्पत्तिस्थान—उत्तर पंजाब, गढ़वाल, कुमाऊँ, नेपाल और खसिया पर्वतपर इसके वृक्ष पाये जाते हैं।

वर्णन—यह एक पतझड़ वाले लगभग ९ मीटर (३० फुट) ऊँचे वृक्षकी छाल है। मात्र कायफल शब्दसे यह छाल ही अभिप्रेत होती है। छाल १·२५ सें० मी० (½ इंच) मोटी, भारी, लालई लिए, स्वादमें चरपरी या चरपराहट लिए कडुई और कसैली होती है। इसमें वर्षोंतक वीर्य रहता है। छालका चूर्ण सूँघनेसे छींकें आने लगती हैं। इसके वृक्षमें आश्विनसे मार्गशीर्ष तक फूल आते हैं, जो लाल रंगके तथा सुगंधित होते हैं।

उपयुक्त अंग—वृक्षकी छाल, छालका चूर्ण या क्वाथ और पुष्पतैल।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम और खुश्क; मतांतरसे पहले दर्जेमें गरम और दूसरेमें खुश्क। इसमें शीत और संग्राही उभयवीर्य हैं। अतएव यह संमिश्रवीर्य (मुरक्किबुल्क़ुवा) है। आयुर्वेदमतसे उष्णवीर्य (रा०नि०) है।

गुण-कर्म—यह ग्रन्थिविलयन (मुहल्लिल), वाजीकर, संग्राही (क़ाबिज) है। अन्त्र और आमाशयकी वायुको विलीन करता और उनके गाढ़े द्रवोंको सुखाता है। वातनाड़ियोंको बल प्रदान करता है और प्रकोथको नष्ट करता है। इसका नस्य की भाँति उपयोग करनेसे यह नाककी श्लेष्मल कलापर संक्षोभ उत्पन्न करके छींकें लाता है और मस्तिष्कके द्रवोंको आकर्षित करता, फुफ्फुसोंसे श्लेष्माका उत्सर्ग करता और रक्तनिष्ठीवन बन्द करता है।

उपयोग—कायफलको महीन पीसकर तिल इत्यादिके तेलमें मिलाकर पक्षवध, अर्दित और कम्पवात आदिमें मर्दन करते हैं। इसका सूक्ष्म चूर्ण दूषित व्रणोंपर छिड़कनेसे प्रकोथ दूर होता है, और उनका शोषण-रोपण होता है। मुखपाकमें प्रकोथनिवारणके लिए तथा दंतशूलमें शूलको शांत करनेके लिए इसके काढ़ेसे गण्डूष (ग़रग़रा)

कराते हैं। वेदना निवारण एवं दृढ़ताके लिए इसे मंजनोंमें डालकर दाँतोंपर मलते हैं। शीतल शिरःशूल, शीतल प्रसेक और प्रतिश्यायमें इसको वारीक पीसकर अकेला या उपयुक्त औषधियोंके साथ हुलासकी भाँति उपयोग करते हैं। आमाशयशूल, उदराध्मान और कफज कासमें इसका काढ़ा पिलाते हैं। खाँसीमें इसे मधुमें मिलाकर चटाते हैं। अहितकर–यकृत्प्लीहाको। निवारण–मस्तगी। प्रतिनिधि–असारून। मात्रा–३ ग्रामसे ५ ग्राम (३से ५ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—कायफलकी छाल कटु, उष्णवीर्य, संधानीय, शुक्रशोधन, वेदनास्थापन, रुचिकर तथा कास, श्वास, ज्वर, प्रतिश्याय और मुखरोगका नाश करनेवाली है (च०सू०अ० ४;सु० सू०अ० ३८;रा० नि०)।

नव्यमत—कायफलकी छाल कटु, तिक्त, सुगन्धि, ग्राही, स्वेदजनन, कफघ्न, उत्तेजक, वातहर, शोथघ्न और गर्भाशयोत्तेजक है। ज्वरमें कायफलसे पसीना आता है, शरीरकी पीड़ा कम होती है, सरदी और सिरका दर्द कम होता है और छातीमें कफ हो तो ढीला होकर निकलने लगता है। अग्निमांद्य, अरुचि, कुपचन, अतिसार, गलेका शोथ, कास और श्वासमें कायफलका उपयोग करते हैं। कायफल, केसर और काले तिलकी गुड़के साथ गोली बनाकर खिलानेसे पीड़ितार्तवमें लाभ होता है। कपड़ेमें कायफलके चूर्णकी पोटली बनाकर योनिमें रखनेसे गर्भाशयकी संकोचविकाशक्रिया तीव्र होकर आर्तव ठीक तरहसे आने लगता है। मूर्च्छा, जुकाम और सिरके दर्दमें कायफलका चूर्ण सूँघनेको देते हैं। कायफलका चूर्ण छिड़कनेसे अथवा इसके क्वाथसे व्रणको धोनेसे उसका शोधन-रोपण होता है। शरीर शीतल पड़नेपर कायफलके चूर्णकी मालिश करते हैं।

कायफलके फूलोंका तेल (दुह्नुल् क़न्दूल)

निर्माण-विधि—इसके फूलोंसे गुलरोग़न वा रोग़न गुलबनफ़शा और बादामकी भाँति तेल बनाते हैं। यदि बादामके स्थानमें साफकी हुई तिल्ली हो, तो यह अधिक सुगंधित होता है। प्रकृति–दूसरे दर्जेमें उष्ण और रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग–यह कड़ी सूजनको उतारता है। वातरक्त और शीतजन्य संधिवातमें इसे लगानेसे उपकार होता है। इससे शिथिलता मिटती है। इसके नस्यसे मस्तिष्ककी झिल्लियोंमें रुका हुआ वायु विलीन होता और मस्तिष्कके अवरोधोंका उद्घाटन होता है। अस्तु शिरःशूल, प्रसेक, अर्धावभेदक और अपस्मारमें इससे लाभ होता है, अर्धांगवात और अर्द्धावभेदकमें इसके अभ्यंगसे उपकार होता है तथा मस्तिष्क और वातनाड़ियोंके रोग आराम होते हैं। यह वाजीकर और ध्वजोच्छ्रायकारक है।

●

(१२९) कालमेघ

फ़ैमिली : अकैन्थासे (Family : Acanthaceae)

नाम—हिं०) कालमेघ, कलपनाथ, महाभांग, चिरैता (राँची), भूनीम (उड़िया); (फा०) नैनिहाबंदी; (सं०) भूनिम्ब; (बं०) कालमेघ; (म०) पाले किराईत, ओलें किराईत; (गु०) लीलुं कारियातुं; (ले०) आन्ड्रोग्राफिस पानीकुलाटा (**Andrographis paniculata** Nees); (अं०) ग्रीन चिरेटा (Green chiretta)।

वक्तव्य—डॉ० दत्त स्वरचित हिन्दू मेटीरिया मेडिकाके पृष्ठ २१६पर लिखते हैं कि कतिपय लोगोंके विचारसे इसका संस्कृत नाम 'यवतिक्ता' है, महातिक्त और संखिनी जिसके पर्याय हैं। परन्तु यवतिक्ता नाम, किसी योगमें देखा नहीं गया और महातिक्तसे नीम अभिप्रेत है। डॉ० ऐन्सलीके कथनानुसार भारतीय प्रायद्वीपके दक्षिणी भागमें फ्रांसद्वीपसे लाकर लगाई गई है।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्षमें जंगलोंके पथरीले स्थानोंमें विशेषकर बंगालमें यह स्वयंभू होता है। कभी-कभी लगाया हुआ भी मिलता है।

वर्णन—इसके सीधे खड़े क्षुप, १-३ फुट तक ऊँचा हरे रंगका, कांड चौकोन, नीचे चिकना तथा ऊपर रोमश-रसस्रावि, पत्तियाँ अखण्ड, आमने-सामने रेखाकार प्रासवत् चिकनी और ३·७५ सें० मी०से ६·२५ सें० मी० (१-५से २-५ इञ्च) लम्बी होती हैं; पुष्प सवृन्त, श्वेत या हलके जामुनी रंगके होते हैं। फल १·७५से २ सें० मी० (०·७से ०·८ इञ्च) लम्बे, यवाकार और समग्र क्षुप, अत्यंत तिक्त होनेसे बंगालके वैद्य इसे यवतिक्ता मानते हैं।

उपयुक्त अंग—समग्र क्षुप, पत्र और मूल। **संग्रहकाल**–वर्षा ऋतुके अंत और शीतके आरम्भमें इसे छायामें सुखाकर सूखे स्थानमें रखना चाहिये। **मात्रा**–चूर्ण ५-१० रत्ती; माशा; क्वाथ २-४ तोला।

रासायनिक संगठन—इसमें कालमेघिन (Kalmeghin) और एण्ड्रोग्रेफोलॉइड (Andrographolide) नामक एक तिक्त सत्व पाया जाता है।

प्रकृति—गरम और खुश्क।

गुण-कर्म तथा उपयोग—मूल पत्र और क्षुप (पंचांग) दीपन, कटुपौष्टिक, तिक्त, ज्वरघ्न, कृमिघ्न और रसायन है तथा अजीर्ण, प्रवाहिका, और दौर्बल्यमें उपकारक है। ज्वरमें इसका फांट देते हैं। दो भाग कालमेघ और एक भाग कालीमिर्चका चूर्ण १॥ माशाकी मात्रामें मलेरिया ज्वरमें देते हैं। यकृत्की वृद्धि, जीर्णज्वर और शोथमें इसके सेवनसे दस्त साफ होता है, भूख लगती हैं और शरीर सुस्थ होता है। चिरायताके समान गुणकारी होनेसे ही इसे चिरायताके नाम दिये गये हैं। बंगालमें जीरा, अजमोद, लवंग, जायफल और बड़ी इलायचीके बीज–इनके चूर्णको कालमेघके स्वरसकी ५-७ भावनायें दे, २-२ रत्तीकी गोलियाँ बना, माताके दूधमें मिलाकर बालकोंको अतिसार, पेटका दर्द, वमन आदिमें देते हैं। इस योगको 'आलुई' कहते हैं। हरीगिलोय और नौसदार, कल्पनाथके पत्ते और कालीमिर्च समभाग ले-कूट-छानकर जलसे पीसकर चना प्रमाण या उड़द प्रमाणकी गोलियाँ बनाकर ज्वरके आवेगसे पूर्व दो गोलियाँ देनेसे लाभ होता है।

●

(१३०) कालादाना

फ़ैमिली : कॉन्वॉल्वुलासे (Family : Convolvulaceae)

नाम—(हिं०, बं०) कालादाना; (अ०) हब्बुन्नील, कुर्तुम हिन्दी, दम्अतुल् उश्शाक़; (फा०) तुख़्मेनील, तुख़्मेकबूक; (सं०) कृष्णबीज, श्यामबीज (आ०वि०); (क०) सियाहदाना, (कु०) भौरड; (गु०) कालादाणा, कालोकूंपो; (म०) कालादरणा; (लै०) ईपोमेआ नील **Ipomoea nil** (L.)। **पर्याय**–*I. hederacea* Auct. non Jack.।

वक्तव्य—मख़्ज़नुल् अदविया और मुहीत आजम में 'हब्बुन्नील' और 'कालादाना'के विवरण प्रसंगमें इसके एक अन्य भेदका भी उल्लेख किया गया है, जिसको बंगला भाषामें 'अपराजिता', हिन्दीमें 'विष्नुकन्ता' और लेटिनमें **कलीटोरिआ टेर्नाटेआ (Clitoria ternatea)** कहते हैं। यह वस्तुतः माजरियून हिन्दी है जिसको संस्कृतमें अपराजिता और गोकर्ण कहते हैं। बुस्तानुल् मुफ़रदातमें हरमलका भी प्रसिद्ध नाम कालादाना लिखा है जो वास्तवमें ठीक नहीं है। सुतरां विभिन्न वैद्यकीय ग्रन्थोंमें यह नाम तीन विभिन्न औषधियोंके लिए आता है। अर्थात् एक हब्बुन्नीलके

लिए, दूसरे 'माजरियून हिन्दी' के लिए और तीसरे 'हरमल' के लिए। परन्तु जहाँतक खोज किया गया है हरमलके लिये यह नाम सर्वथा त्रुटिपूर्ण है और अपराजिताको जो वस्तुतः माजरियून हिंदी है, कालादानाका भेद कदापि न समझना चाहिये। सुतरां भविष्यमें 'कालादाना' संज्ञाका आरोप केवल 'हब्बुन्नीलके' लिए होना चाहिये।

इतिहास—प्राचीन मुसलमान चिकित्सकोंने 'हब्बुन्नील' के नामसे इस औषधिका वर्णन किया है। किंतु संस्कृत-के प्राचीन द्रव्यगुणविषयक ग्रन्थोंमें इसका स्पष्ट उल्लेख नहीं पाया जाता। इससे ज्ञात होता है कि प्राचीन भारतीय चिकित्साविशारदोंको यह औषधि स्पष्टरूपेण ज्ञात नहीं थी।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष।

वर्णन—यह एक लताके प्रसिद्ध **बीज** हैं जो काले होते हैं, जिससे इसे **'कालादाना'** कहते हैं। ये तिकोनिया होते हैं। तोड़नेपर इनके भीतरसे सफ़ेद मग़ज़ निकलता है। इसका स्वाद आरम्भमें मीठा और पीछे कडुआहट लिए चरपरा प्रतीत होता है। इसमें ३ वर्ष तक वीर्य रहता है।

रासायनिक संगठन—इसमें **फार्बिटिसिन** (Pharbiticin) नामक एक राल लगभग ८ प्रतिशत होती है। यह राल जलापाके रालके समान होती है। गुणकर्ममें भी कालादाना जलापाके समान है।

उपयुक्त अंग—**बीज**। इसको भाड़ में भुना चूर्ण बनाकर प्रयोग करना चाहिए।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें **गरम और खुश्क**।

गुणकर्म—बाहरी तौरपर उपयोग करनेसे कालादाना लेखन और आंतरिक रूपसे **तीव्र विरेचन** कर्म करता है। यह पानीके समान पतला दस्त लाता तथा उदरज कृमियोंको निकालता और रक्तको शुद्ध करता है। उरःफुफ्फुसशोधन, मूत्रजनन और आर्तवजनन इसके प्रधान कर्म हैं।

उपयोग—बाह्यरूपसे किलास और झाँईपर कालादानेको पीसकर पतला लेप (तिलाऽ) करते हैं। समस्त प्रकारके कच्छू (जरब) को नष्ट करने के लिए चीनीके साथ इसका चूर्ण बनाकर खिलाते हैं। संधिवात, वातरक्त जलोदर जैसे शीतल कफज रोगोंमें विरेचनकी भाँति इसका उपयोग करते हैं। इसके खिलानेसे व्याकुलता एवं उत्क्लेश उत्पन्न होता है। इसके निवारणके लिए इसके साथ हड़ या गुलाबका फूल मिला लिया जाता है। इसे अकेला या उपयुक्त औषधियोंके साथ खिलानेसे उदरकृमि मरते और निकल जाते हैं। **अहितकर**—शिरःशूलकारक और व्याकुलता-कारक है। **निवारण**—फलोंका सत (रुब्ब) और अम्ल पदार्थ। **प्रतिनिधि**—सुद्दाबके बीज। **मात्रा**—१ ग्रामसे ३ ग्राम० (१ से ३ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—श्यामबीज (कालादाना) रेचन है। शोथ, उदररोग, ज्वर, आनाह (पुरीषसंग), सिरदर्द तथा उदावर्तमें इसका प्रयोग करते हैं। (आ० वि०)।

नव्य मत—इसकी क्रिया जालप अथवा निशोथके समान होती है। इससे पित्त, कफ और कृमि विरेकद्वारा निकलते हैं। जलोदर, आमवात और वातरक्तमें इसका प्रयोग होता है। कालादानाको बालूके साथ भाड़में भून, चूर्ण बना, चीनीके साथ मिलाकर प्रयोग करना चाहिए।

●

(१३१) कालाबिच्छू

फ़ैमिली : पेडालिआसे (Family : Pedaliaceae)

नाम—(हिं०) बिछुआ, कालाबिछुआ (बिच्छू), कौआ, (ब्रज) बिछुआ घास; (बं०) बघनोकी; (बम्ब०;म०) विंछू; (गु०) विच्छिका; (लै०) **मार्टीनिआ आन्नुआ Martynia annua** Linn. (**पर्याय** *M. diandra* Glox.)।

उत्पत्तिस्थान—यह अमरीकाके मेक्सिकोका आदिवासी पौधा है जो विदेशागत होनेपर अब भारतवर्षमें बस गया है। मध्य वर्षाकालमें यह भारतवर्षके प्रायः उजाड़ स्थानों तथा कूड़ा-करकटके ढेरोंपर उगा हुआ देखा जाता है।

वर्णन—एक प्रसिद्ध क्षुप (९० सें० मी० से १२० सें० मी० या ३-४ फुट ऊँचा) के बीज हैं, जो काले, बहुत कठोर तथा रूपरेखामें विच्छूके समान होते हैं। इसके पिछले वा अग्रभागपर ३ तीक्ष्ण एवं टेढ़े काँटे लगे होते हैं जिनके सिरे नीचेको मुड़े होते हैं।

गुण-कर्म तथा उपयोग—यह वाजीकर तथा स्वाप एवं पक्षवध आदि **वातव्याधियोंमें** प्रयुक्त **तेलयोगों**में पड़ता है। पातालयन्त्रकी विधिसे निकाला हुआ इसके बीजोंका तेल[1] (डढ़ुआ) सफेद दागों (किलास)पर लगानेसे श्वित्रके दाग जाते रहते हैं और शरीरकी समस्त त्वचाका वर्ण समान हो जाता है। इसीलिए इस तेलको **रोग़न** बर्स (श्वित्र-हर तेल) कहते हैं। **खजाइनुल् अदविया**में **हज़रत शाह अब्दुल अलीम**के श्वित्रमें परीक्षित प्रयोगोंमेंसे एक योग इस प्रकार दिया है—कालाबिच्छू १ सेर और बकुची ३ पाव दोनोंको खूब महीन पीसकर रखें। इसमें से ६ मा० प्रतिदिन प्रातःकाल तालाबके या वर्षाके इतने पानीमें मिलाकर, जितनेमें वह केवल भीग भर जावे अधिक नहीं, निरंतर खाते रहें। यदि इतने से दस्त न आवे तो तीन-तीन माशा उत्तरोत्तर बढ़ाते हुए १। तोला तक बढ़ाकर देखें। जब दस्त आने लगे तब वहींपर रोककर सत्तर दिन तक सेवन करें। चालीस दिन औषध सेवन करनेपर श्वित्रका स्थान और उसका रूप आदि काला हो जायगा। पथ्यमें धोई हुई मूँगकी दाल आवश्यकतानुसार लहसुन या प्याजका बघार देकर, किंतु लाल या कालीमिर्च रहित, गेहूँकी रोटीसे खाते रहें। दालसे अरुचि होनेपर रुचिके अनुसार नमक और मसालेमें केवल प्याज और हल्दी पड़ा हुआ छागमांस और रोटी खा सकते हैं। इसके सिवा अन्य सभी प्रकारकी तरकारी एवं फलादि और आहार वर्जित है। औषधि-सेवनकाल में आदिसे अन्त तक हर तीसरे-चौथे दिन चौथे पहर शीतल द्रव्य या औषध (तबरीद) पिया करें। औषधसेवनकी मर्यादा समाप्त हो जानेपर तबरीदकी (शीतल) औषधि प्रतिदिन दिनमें एक-दो बार पिया करें और पूर्ण लाभ होने तक बराबर पीते रहें। **तबरीदकी औषधि**—काहूबीज, कासनीबीज, खीरा-ककड़ीके बीज, कुलफाके बीज और सूखा धनिया प्रत्येक चार माशा—इनको पानी में पीसकर ½ तोला मिश्री मिलाकर पीना चाहिये।

(१३२) कालीजीरी

फ़ैमिली : कॉम्पोजीटे (Family : Compositae.)

नाम—(हिं०) कालीजीरी, **करजीरी, बनजीरी**; (अ०) कमूनबर्री; (फा०) **जीरए बर्री** (सहराई), सियाहज़ीरा जंगली; (सं०) अरण्यजीरक, वनजीरक; (द०; गु०; मा०; बम्ब०; कुमाऊँ) कालीजीरी; (म०) कडूजिरे; (गु०) कड़वीजीरी; (ले०) **सेंट्राथेरुम् आन्थेल्मोन्टिकुम् Centratherum anthelminticum** (Willd.) Kuntze. (**पर्याय**-*Vernonia anthelmintica* Willd.); (अं०) पर्पल फ़्लीबेन (Purple Flea-bane)।

वक्तव्य—करजीरीके फल (बीज) आपाततः जीरे या स्याहजीरे जैसे होते हैं और इसके पौधे प्रायः स्वयंजात पाये जाते हैं। इसीलिए इसको **अरण्यजीरक** या बनजीरी आदि नाम दिए गए हैं। किन्तु यहाँ ध्यान रखना चाहिए कि वास्तवमें जीरेकी भाँति इसका व्यवहार नहीं होता। अरबी नाम कमून बर्री (कमून = जीरा, बर्री =

---

[1] भभकेसे फलका निकाला हुआ तेल पामा आदि चर्म रोगोंमें उपयोगी बतलाया जाता है। (वि० व० पृ० १०२)।

वन्य) तथा फारसी नाम **'जीरए बर्री'** तथा **'सियाहजीरा जंगली'** (रंगमें करजोरीकी अनुरूपता श्वेतजीरककी अपेक्षया स्याहजीरेकी भाँति अधिक होती हैं) इन्ही नामोंके अरबी, फारसी अनुवाद है।

उत्पत्तिस्थान—यह समस्त भारतवर्षकी अनुर्वर ऊसर एवं उजाड़ भूमिमें गाँवोंके समीप साधारणतया होती है।

वर्णन—यह एक वर्षायु वनस्पतिके प्रसिद्ध बीज (फल) हैं। बीज लगभग ३।१६ इंच लंबा, गहरा भूरा, बेलनाकार और आधारकी ओर शंक्वाकार होता है। इसके ऊपर लंबाईके रुख लगभग दस उभरी हुई रेखायें(Ridges) होती हैं। खानेमें यह उत्क्लेशकारक और अत्यन्त कड़ुआ होता है, यहाँतक कि इसे मुखमें रखने मात्रसे कडुआहट प्रतीत होने लगती है। इसकी गंध तीक्ष्ण होती है।

रासायनिक संगठन—इसमें प्रधानतः स्थिर तेल १८ प्रतिशत, अत्यल्प प्रमाणमें लगभग ०-०२ प्रतिशत एक **उत्पत् तेल** और एक **तिक्त सत्व** जो इसका वीर्यवान् भाग है सौ भाग बीजोंमें एक भागसे ऊपर पाया जाता है। इसमें किसी प्रकारका क्षारोद नहीं पाया जाता। तिक्त सत्वको विविध प्रकारसे शुद्ध करनेपर यह पीले अमूर्त चूर्ण रूपमें पाया जाता।

उपयुक्त अंग—फल (बीज)।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें **गरम** और **खुश्क**। आयुर्वेद मतसे शीतवीर्य (ध० नि०) है।

गुण-कर्म—**यह श्वयथुविलयन**, शीतजन्य वेदनास्थापन, वातानुलोमन, उदरकृमिहर और **जीर्णज्वरहर** हैं।

उपयोग—अधिकतया फोड़े-फुन्सियों और शोथोंको विलीन करने एवं उनका दर्द शांत करनेके लिये कालीजीरीका प्रलेपकी भाँति उपयोग करते हैं। इसका आंतरिक उपयोग बहुत कम करते हैं। अलबत्ता पशुचिकित्सा, विशेषकर अश्वरोगोंकी चिकित्सामें इसका पुष्कल उपयोग करते हैं। उदरकृमिनाशनके लिये इसे बायविडंगके साथ खिलाते हैं। विभिन्न आवेगयुक्त जीर्णज्वरोंको दूर करनेके लिये नीमके पत्रके साथ इसका फांट पिलाते हैं। इसके अतिरिक्त जलोदर, जीर्ण कफज्वरों और संधिवातमें भी इसका उपयोग करते हैं। **अहितकर**–आशय (अहशाऽ)के लिये। **निवारण**–कतीरा और गुलरोग़न। **प्रतिनिधि**–स्याहजीरा। **मात्रा**–१ ग्रामसे २ ग्राम (१ से २ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—कालीजीरी (बनजीरः) तिक्त, शीतवीर्य तथा व्रण और कृमिका नाश करनेवाली है। (ध० नि०)।

नव्यमत—कालीजीरीका लेप **शोथविलयन** है। यह तिक्त, दीपन, वातहर, कटुपौष्टिक, कृमिघ्न, ज्वरघ्न, मूत्रजनन, स्तन्यजनन, त्वग्दोषहर और कंडूघ्न है। कृमि नष्ट करनेके लिये बच्चोंको ५-१० रत्ती और प्रौढ़ मनुष्यको ६ माशा देकर ऊपरसे विरेचन देते हैं। पेटकी वायु और पेटफूलने पर इसे १॥-३ माशेकी मात्रामें सुगंधित द्रव्योंके साथ देते हैं। जीर्णज्वरमें इससे अच्छा लाभ होता है। प्रसूतावस्थामें यह सब प्रकारसे उपयोगी है। इससे दूध बढ़ता है। त्वचाके रोगोंमें कंडू कम करनेके लिये यह उत्तम औषध है। इसको नीबूके रसमें पीसकर लेप करनेसे जूँ मरती है।

(१३३) कालीसर।

फ़ैमिली : आपोसीनासे (Family : Apocynaceac.)

नाम—(हिं०; मार०) कालीसर, करण्टा (हिं०); (सं०) कृष्णसारिवा (सु०), श्यामालता, कृष्णमूली (ध० नि०); (बं०) श्यामालता; (व्रजभाषा) करियासाव; (कु०) दुधिलो; (गु०) काली उपलसरी, काली कावलो; (लै०)–(१) क्रीप्टोलेपिस बुकनानी (**Cryptolepis buchanani** Roem. Schult.); (२) ईक्नोकार्पुस फ्रूटेसेन्स (**Ichnocarpus frutescens** R. Br.)।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष ।

वर्णन—ये दोनों ही प्रसिद्ध लताएँ हैं। दोनोंमें अन्तर यह है कि पहलीकी पत्ती बड़ी जामुनके पत्रसे मिलती-जुलती तथा चिकनी और दूसरीकी पत्ती इससे छोटी और रोमश होती हैं। वास्तविक सारिवाके अधिक मात्रामें न मिलनेके कारण उत्तरप्रदेश आदिके बाजारोंमें सारिवाके नामसे इन्हीं लताओंके काण्ड मिलते हैं। मूल सारिवा जैसे कालाई लिये भूरे रंगके होते हैं। काण्डमें तो क्या इनके मूलमें भी कोई गंध (सारिवा या अनन्तमूल तुल्य गंध) नहीं होती। फिर भी काण्डत्वक्के रंगके आधारपर इसे **कृष्णसारिवा या श्यामालता** कहते हैं।

उपयुक्त अंग—मूल और काण्ड ।

प्रकृति—सर्द एवं खुश्क। आयुर्वेदके मतसे शीतवीर्य (ध० नि०)।

गुण-कर्म तथा उपयोग—कालीसर पित्त-कफ-सौदा तथा ज्वर, जलोदर और स्त्रियोंके योनिरोग और अधिक रक्तक्षरण होनेके कारण हुए उसके क्षतको दूर करती है, पेटमें कब्ज उत्पन्न करती और शुक्रकी वृद्धि करती है। गुणकर्ममें यह सारिवा (अनन्तमूल)के समान होती है। **प्रतिनिधि**–अनन्तमूल, उशबा, चोबचीनी ।

आयुर्वेदीय मत—कृष्णसारिवा मधुर, स्निग्ध, शीतवीर्य, ग्राही, शुक्रकर तथा कफ, पित्त, तृषा, अरुचि, रक्तपित्त, अग्निमान्द्य, श्वास, कास, आम, विष, रक्तविकार, प्रदर, ज्वर और अतिसारका नाश करनेवाली है। (सु० सू०, अ० ३८; ध० नि०; भा० प्र०)।

(१३४) काश्मीरी पत्ता ।

फ़ैमिली : रूटासे (Family : Rutaceae)।

नाम—(हिं०) का (क) श्मीरी पत्ता (-पट्ठा); (फा०) बर्गे तिब्बत, बर्गे कश्मीरी, कश्मीरीपत्तर; (गढ़०) नइर; (पं०) नेर; (नेपाल) चुमलनी; (कु०) नेहर; (लें०) **स्कीम्मिआ लाउरेओला (Skimmia Laureola** Hook.)।

उत्पत्तिस्थान—समशीतोष्ण हिमालयमें कश्मीरसे कुमाऊँ तक तथा देहरादून एवं खसिया पर्वत आदि ।

वर्णन—यह एक वनस्पतिके प्रसिद्ध पत्र हैं जो तेजपातके समान, किन्तु उससे बड़े, चर्मवत् १० सें० मी० से १५ सें० मी० (४-६ इंच) लम्बे, १५ सें० मी० से ३७॥ सें० मी० (६ से १५ इंच) चौड़े; कुछ-कुछ मांसल और मोटे होते हैं तथा शाखाओंके अग्र पर पाये जाते हैं। पर्ण सरल धारवाले; आयताकार, ऊपरसे गोलाकार या लट्वाकार होते हैं। **कश्मीरमें इसे बेलपत्रकी भाँति उपयोग करते हैं**। पत्तियोंका व्यवहार चिकित्सामें प्रायः दीपन-पाचन, वायुनाशक औषधिके रूपमें होता है।

प्रकृति—गरम और खुश्क (रूक्ष)।

गुणकर्म—छिक्काजनन ।

उपयोग—इसको अकेला या अन्य औषधियोंके साथ बारीक पीसकर नस्यकी भाँति उपयोग करते हैं। अवरुद्ध प्रसेक और प्रतिश्यायकी दशामें यह अत्यन्त लाभदायक है और प्रसेकको जारीकर सिरदर्दको दूर करता है। **प्रतिनिधि**—नकछिकनी ।

●

(१३५) काशिम

संदिग्ध एवं अनिर्णीत द्रव्य ।

(यू०) Ligustikon (D. 3. 51.)—Ligusticum. इब्नुल्‌बैतार इसे काशिमुल् रूमी (संचिका ४, पृ० ४४) कहते हैं जिसे वे Kardilon (संचि० ४ पृ० ६५)से भिन्न बतलाते हैं। (अ०; फा०) काशिम ।

●

(१३६) कासनी

फ़ैमिली : कॉम्पोजीटी (Family : Compositae)

नाम—**वन्य (स्वयंजात)**:(हिं०; पं०) कासनी; (यू०) Seris (D. 2. 159); (अ०) हिंदबाऽ(-दि–,–दु–); (फा०) **कासनी**, कसनाज; (ले०) **सिकोरिउम् इन्टीबुस (Cichorium intybus** Linn.); (अं०) एण्डिह्व (Endive), चिकोरी (Chicory), सकोरी (Succory)। **उद्याजज (बागी)** : (हिं०) कासनी; (क०) सञ्त्रे हंद; (ले०) **सिकोरिउम एण्डीविया (Cichorium endivia** Linn.); (अं०) दी गार्डेन एन्डिह्व (The Garden Endive)।

वक्तव्य—**'अन्जुमन आराए नासिरी'**के मतसे, यह **'कासान'** जो समरकंदके निकट एक नगर है, वहाँ प्रचुरतासे होती है इसलिए इसका **कासनी** नाम रखा गया है। अरबी **हिंदुबाऽ** इसके रूमी 'इन्टुबमः' संज्ञाके बहुवचन 'इन्टुवा'से व्युत्पन्न है।

उत्पत्तिस्थान—कासनी उत्तर-पश्चिम भारतवर्षमें ६,००० फुटकी ऊँचाईपर तथा कुमाऊँ, उत्तरप्रदेश, बजीरिस्तान, बलूचिस्तान, ईरान, पश्चिमी एशिया और यूरोपमें स्वयंजात होती है। पंजाब और कश्मीरमें इसकी खेती की जाती है। यूनानी दवा बेचनेवालोंके यहाँ इसकी जड़ और बीज मिलते हैं। हिन्दुस्तानमें अच्छी कासनी उत्तरी पंजाब और कश्मीरमें होती है।

वर्णन—यह एक बहुवर्षायु क्षुप है। इसके दो भेद हैं—(१) **जंगली (दश्ती व बर्री)**, और (२) **लगाया हुआ (बुस्तानी या बागी)**। बागीके भी ये दो भेद हैं—(१) इसका पौधा ९० सें० मी० से १८० सें० मी० (१-२ गज) या अधिक ऊँचा; **शाखाएँ** कोमल, **पत्ते** जंगलीकी अपेक्षया अधिक लम्बे-चौड़े, खुरदरे, स्वादमें किंचित् तिक्त; **फूल** बड़ा, नीलवर्णका और प्रियदर्शन होता है। (२) पत्ते और फूल छोटे; **फूल** नीलवर्णके स्वादमें अत्यन्त तिक्त होते हैं। इसके बीज छोटे खाकस्तरी सफेद रंगके, वजनमें हलके और स्वादमें तिक्त या फीके कुस्वाद होते हैं। कालाई लिये मोटे और भारी बीज उत्तम समझे जाते हैं। जड़ गोपुच्छाकार, गुदार, उपमूलयुक्त, लंबाईके रुख झुर्रीदार, बाहरसे हलकी भूरी, भीतरसे सफेद, ऊपरकी त्वचा पतली, स्वाद फीका कुछ तिक्त एवं लबाबदार तथा निर्गन्ध होता है।

उपयुक्त अंग—पंचांग, बीज और जड़ ।

रासायनिक संगठन—**बीजोंमें** एक प्रकारका मृदु तेल (Bland oil) होता है। जलाई हुई कासनीमें शर्करा, स्वतन्त्र तद्भव द्रव्य (Tree extractives), सेलूलोज (Cellulose), भस्म, वसा और नत्रजनीय पदार्थ होते हैं। **जड़में** नाइट्रेट और सल्फेट ऑफ पोटाश, लबाब, तिक्तसत्व और इन्युलिन (Enulin) ३६ प्रतिशत होते हैं। **फूलमें** एक प्रकारका वर्णरहित क्षारविलेय, उष्णजलविलेय एवं सुरासारविलेय स्फटिकीय ग्लूकोसाइड होता है।

कल्प तथा योग—**अर्क कासनी, अर्क कासनी सब्ज और आब मुरव्वकीन ।**

प्रकृति—हरी कासनीके पत्र प्रथम कक्षामें शीत एवं तर हैं। इसके पत्तोंपर सूक्ष्म उष्ण घटक भी फैले होते हैं। इनका संगठन इतना शिथिल होता है, कि धोने मात्रसे नष्ट हो जाता है। अतः कासनीपत्रको धोनेसे मना किया जाता है। सूखे पत्ते शीत एवं रूक्ष हैं। जंगली (छोटी)की अपेक्षया बागी (बड़ी) अधिक तर और शीत है।

गुण-कर्म—कासनी तिक्त, फीकी, क्षारवाली, संग्राही और अवरोधोद्घाटक है। यकृत्के उन्नतोदर भागके अनुबंधसे होनेवाले कासमें यह लाभकारी है। यह **संताप तृष्णा, रक्त** और **पित्तका प्रकोप** और **रक्तकी उष्णता** तथा पित्तकी तीक्ष्णताका शमन करनेवाली, मूत्रल, आर्तवजनन आमाशय-यकृत्-प्लीहा आदिके उष्ण शोथको विलीन करने तथा इन अंगोंकी उष्णताको नष्ट करनेवाली है। उष्ण शोथोंमें इसका प्रलेप ठंढक पहुँचाता है तथा दोषोंको विलोम करता और शांति प्रदान करता है। यह आमाशय और यकृत्को बलप्रद और उष्ण यकृत्को सात्म्य है।

उपयोग—हृत्स्पन्दनमें इसके स्वरसमें सत्तू मिलाकर अथवा इसके हरे पत्ते जौके आटेके साथ पीसकर लेप करते हैं। गरमी एवं पित्तके सिरदर्दमें हरी कासनीका पत्र-स्वरस अकेला या सिरका और चंदनके साथ सिरपर लेप करते हैं। लालचंदन, अर्कगुलाब और सिरकेके साथ पित्ती उछलने (शीतपित्त)में ददोड़ेपर लगाते हैं। इसके पत्तोंको पीस रोग़न बनफ़शामें मिलाकर पित्तज नेत्राभिष्यंदमें नेत्रके चतुर्दिक् और पपोटोंपर लेप करते हैं। इसका स्वरस यकृत्, आमाशय और प्लीहाका शोथ, कामला, पित्तज जलोदर, तृषा, उत्क्लेश तथा पित्तोद्वेगमें देनेसे लाभ करता है। इसके पत्रस्वरसमें अमलतासका गूदा और शर्बत तूत घोलकर गंडूष करनेसे कण्ठशोथमें लाभ होता है। उष्ण आमवात एवं वातरक्तमें इसे जौके आटेके साथ प्रलेप करते हैं। यकृच्छोथ और आमाशयशोथमें इसके रसमें दवाओंको पीसकर लेप करते हैं। आमाशयको बल प्रदान करनेके लिए इसके पत्रस्वरसमें सिकंजबीन मिलाकर पिलाते हैं। मूत्रल होनेके कारण मूत्रमार्गके शोधनार्थ इसका रस पिलाते हैं। **अहितकर**–खाँसीके लिये। **निवारण**–शर्करा और शर्बत बनफ़शा। **प्रतिनिधि**–शाहतरा वा हरी खतमी वा खुब्बाजीके पत्रका स्वरस। **मात्रा**–पत्रस्वरस १४ तोले (मख़्ज़न); हरी कासनीका फाड़ा हुआ रस ४-५ तोले तक।

कासनीके बीज—

नाम—(हिं०; पं०; गु०) कासनी, कासनीके बीज; (अ०) बज़्रुल् हिंदबाऽ; (फा०) **तुख़्मे कासनी**।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें शीत एवं रूक्ष।

गुण-कर्म—पित्त एवं रक्तसंशमन, अवरोधोद्घाटक, मूत्रल, दीपन और पित्तज्वरनाशक हैं तथा यकृत्के रोगोंमें लाभकारी है।

उपयोग—इसके गुणकर्म पत्रके समान हैं। बीजोंके काढ़ेका गंडूष करानेसे मसूढ़ोंका दर्द मिटता है। इसे शर्बत बनफ़शाके साथ पीनेसे नींद आती है। कासनीके बीज अवरोधोद्घाटक और मूत्रल होनेके कारण यकृद्विकारज अवरोधजन्य कामला, जलोदर, यकृदवरोध, यकृच्छोथ और दोषसंमिश्र एवं जीर्णज्वर जैसे यकृत् और प्लीहाके रोगोंमें प्रचुरतासे प्रयुक्त किये जाते हैं। कभी पित्तज्वरोंमें अन्य द्रव्योंके साथ क्वाथ वा फांट बनाकर और कभी शीरा निकालकर पिलाया जाता है। यकृत्के अवरोधोंके उद्घाटनके लिए तथा यकृत्के अमिश्र उष्ण विप्रकृति, पीत कामला और यकृत्के अनुबन्धसे होनेवाले जीर्णज्वरोंमें कासनीके बीजोंसे प्रस्तुत किये हुए **चकीदए कासनी**[1] और **दरीदए कासनी**[2]के योग (नुसखा) यूनानी औषधालयोंमें प्रयुक्त होते हैं। **अहितकर**–आमाशयमें देर तक ठहरता है। कुस्वाद होनेसे कभी मिचली और उबकाई उत्पन्न करता है। प्लीहाको अहितकर, वृक्कको निर्बल करता तथा कास-

---

१—**नुसखा चकीदये कासनी**–कासनीके बीज १ तोलाको अधकुट करके रातके समय उष्णजलमें भिगो रखें। प्रातःकाल चार तहकी साफी (छनना)में उसके चारों कोने चार लकड़ियोंसे बाँधकर सात बार रंगरेजोंकी रेनीकी भाँति टपकायें। इसके उपरांत ४ तोले **शर्बत बजूरी** मिलाकर पिलायें।

२—**नुसखा दरीदये कासनी**-कासनीके बीज १ तोला और सेंधानमक १॥ माशा दोनोंको पानीमें पीसकर आगपर रखें। जब फट जाय तब नीचे उतारकर पिलायें। कभी सेंधानमकके स्थानमें ४ रत्ती नौसादर और योजित करते हैं।

श्वास करता है। **निवारण**–हालों, सुगंधिद्रव्य, सिकंजबीन, अनीसून, कतीरा और बबूलका गोंद। **प्रतिनिधि**–हरी कासनीका अर्क, तुख्म कुशूस, तुख्म खुरफा और तुख्म शाहतरा। **मात्रा**–७ ग्राम से १० ग्राम (७-१० माशा)।

कासनीकी जड़—

नाम—(अ०) अस्लुल् हिंदबाऽ; (फा०) बीखे **कासनी**।

प्रकृति—प्रथम कक्षामें उष्ण और द्वितीय कक्षामें रूक्ष।

गुण-कर्म—**दोषपाचन**, **मूत्रल**, आर्तवजनन, प्रमाथी, संशोधन, **दोषतारल्यजनन**, **श्वयथुविलयन**, **रक्तशोधक** और **कफज्वरहर** है।

उपयोग—दोषपाचन रूपसे यह कफज व्याधियों वा कफज्वरों और उदरविकृतिमें भी प्रयुक्तकी जाती है तथा उदरविकृतिमें प्रयुक्त योगोंका एक उपादान यह भी है। मूत्र एवं आर्तवप्रवर्तनके लिए भी इसका उपयोग करते हैं। श्वयथुविलयन होनेके कारण आशय (अह्शाऽ) गत शोथ उदाहरणतः यकृच्छोथ आदिमें यह उपयोग की जाती है। प्रमाथी, दोषतारल्यजनन और मूत्रजनन होनेके कारण संधिशूल, जलोदर और दोषसंमिश्र ज्वरोंमें इसका उपयोग करते हैं। **अहितकर**–मिचली करती है। **निवारण**–शुद्ध मधु। **प्रतिनिधि**–सौंफकी जड़। **मात्रा**–७ ग्राम (७माशा)।

वक्तव्य—कासनीके हरे पंचांगसे अर्क तैयार किया जाता है और ७-१४ तोलेकी मात्रामें उक्त रोगोंमें प्रयुक्त होता है। कासनी पत्रस्वरसको भीतरी तौरपर प्रायः फाड़कर (मुरव्वक करके)[1] पिलाया जाता है।

नव्यमत—बल्य, मूत्रजनन और मृदुसारक। एक पाइंट उबलते जलमें २॥ तोले कासनीमूल डालकर बनाया हुआ काढ़ेका स्वतंत्रतया उपयोग होता है तथा कामला, यकृद्वृद्धि, वातरक्त और आमवातिक विकारोंमें प्रभावकारी सिद्ध हुआ हैं। यही कासनीका फाड़ा हुआ (मुरव्वक) पानी है।

(१३७) कासनी जंगली (दुधल)

फ़ैमिली : कॉम्पोजीटी (Family : Compositae)।

नाम—(हिं०) जंगली कासनी, दुधल, कानफूल, बरन; (फा०) कासनी दश्ती, कासनी सहराई; (अ०) हिंदबाऽ अल्बर्री (इ० बै०), बक़्ले यहूदिया; (सं०) **दुग्धफेनी** (रा० नि०); (कश्मीर) हंज, हंद; (पं०) दूदल (ली), दुधल (ली) दूधबत्थल, कानफूल; (गु०) कानफूल, (बम्ब०) वथुरी; (ले०) **टाराक्साकुम् आफ़्फ़ीसिनाले** (**Taraxacum officinale** Weber.); डेंडिलाइन (Dandelion)।

वक्तव्य—**इब्नसीनाने** '**तरख़्श़्क़ून**' नामसे जंगली कासनीका उल्लेख किया है। लेटिन '**टाराक्साकुम्**' शब्द सम्भवतः इसीका रूपान्तर है। इस वनस्पतिके पत्तोंके दंदाने सिंहके दाँतोंके समान होते हैं। इसलिए अंग्रेजीमें इसे **डेंडिलाइन** कहते हैं। पौधेको तोड़नेसे दूध (Latex) निकलता है। इसी आधारपर इसका संस्कृत नाम है, जिससे हिन्दी और पंजाबी नाम व्युत्पन्न हैं। इसके पुष्पव्यूहकी रूपरेखा प्रसिद्ध अलंकार 'कर्णफूल (कनफूल)'की भाँति होती है, जिससे हिन्दी, पंजाबी, गुजराती नाम '**कानफूल**' व्युत्पन्न हैं। (अ०) तल्ख़श्क़ूक़, तल् (र) ख़श्क़ूक़ (इ०बै० संचि० ३ पृ० १०२); (यू०) सेरिस (D. 2.759); (अं०) Wild Succory। अल्तबरी के अनुसार यह अल्ख़सुल बर्री

---

[1] –कासनीके पत्रस्वरसको किसी मिट्टी आदिके पात्रमें आगपर पकायें। जब इसका पतला और गाढ़ा भाग पृथक्-पृथक् हो जायँ तब पतले भागको लेकर काममें लेवें।

(Wild Lettuce lactica) है। '**पिजिश्कीनामा**'के संकलयिता जनाब नाजिमुल् **अतिब्बा**के कथनानुसार 'टैरेक्सेकम्' संज्ञा यूनानी है जो '**तारास्सुव**'से जिसका अर्थ '**सारककी ओर संकेतके हैं**', व्युत्पन्न है। परन्तु डॉक्टर **डाइमॉक**के कथनानुसार उक्त संज्ञाकी वास्तविकता अज्ञात है। संभव है कि यह फारसी 'तरख़श्क़ून' संज्ञाका अपभ्रंश हो। **मख्ज़नुल् अदविया**में '**हिन्दुबाऽ बर्री**' और **मुहीत आज़म**में '**कासनीदश्ती**'के नामसे इसका विवरण किया गया है।

इतिहास—भारतीयोंको इस औषधिका ज्ञान प्राचीन कालसे था। राजनिघण्टूक्त '**दुग्धफेनी**' या '**कर्णफूल**' उपर्युक्त औषधिके ही संस्कृत नाम हैं। अस्तु, जिन्होंने यह लिखा है कि भारतीयोंको इस औषधिका ज्ञान नहीं था, उन्होंने प्रमाद किया है। प्राचीन यूनानी चिकित्साविदोंने यद्यपि कई प्रकारकी कासनीका उल्लेख किया है, तथापि प्रतीत होता है कि उन्होंने इस कासनीका उल्लेख नहीं किया है। **इब्नसीना**के अतिरिक्त अन्यान्य मुसलमान चिकित्सकोंने भी इसका वर्णन किया है। यूरूपमें ईसवी सन्की सोलहवीं सदीमें **ट्रैगस** और **मेथीओलस** प्रभृतिने डेंडिलॉयनके नामसे, जिसको इब्नसीनाके तरखश्कूनका पर्याय समझते थे, इसका वर्णन किया है। सत्रहवीं शतीके अन्तमें यूरूपमें उक्त औषधिका पुष्कल प्रयोग होने लगा।

उत्पत्तिस्थान—यह समस्त हिमालय (१०,०००-१८;००० फुटकी ऊँचाई तक), नीलगिरी पर्वत, पश्चिमी तिब्बत एवं मिष्मी पर्वत प्रभृति स्थानोंमें तथा यूरोप और उत्तरी अमरीकामें होती है। उटकमंडमें यह अपने आप होती है।

वर्णन—यह दुग्धयुक्त बहुवर्षायु बनगोभीसे मिलता-जुलता या कासनी जैसा पौधा है जिसमें सभी पत्तियाँ मूलस्तंभसे निकली रहती हैं। परंतु इसके पत्ते उसकी अपेक्षया अधिक बारीक, अधिक मोटे और क्षुद्रतर होते हैं। इसके फूल छोटे, पीले, ५-२० सें०मी० लम्बे, पीले, निष्पत्र एकाकी पुष्पदण्डपर स्थित, पुष्पस्तबकमें रहते हैं। यह अत्यंत कड़ई होती है। फूल झड़ जानेके बाद बारीक बीज प्रकट होते हैं। इसकी जड़ मूलीके सदृश, गुलगुली, बाहरसे ऊदी और भीतरसे पिलाई लिये सहजमें मुड़नेवाली होती है। इसके ताजे पत्ते भी मुड़ जाते हैं। इसमें एक प्रकारका गंधरहित कडुआ श्वेत दूध सदृश चिकना पदार्थ निकलता है। यह सूखनेपर चिक्कट ऊदीरंगका हो जाता है।

रासायनिक संगठन—इसके दुधिया रसमें एक तिक्त विकृताकार वा अस्फटिकीय सत्व–टैरेक्सेसिन (Taraxacin), एक स्फटिकीय सत्व–टैरेक्सेसेरिन (Taraxacerin) तथा पोटैसियम और कैल्सियमके लवण एवं रालदार (Resinoid) और सरेशी (Glutinous) पदार्थ होते हैं। जड़में इन्युलिन (Inulin) २५ प्रतिशत तथा पेक्टिन, शर्करा, लेवुलिन (Levulin) और भस्म ५ से ७ प्रतिशत होती हैं।

उपयुक्त अंग—**सूखी या ताजी जड़**। औषधमें प्रयुक्त इसकी जड़ अधिकांश बाहरसे आती है। बाहरवालीसे यहाँवालीकी जड़ कुछ छोटी होती है। परन्तु गुणकर्ममें उससे अधिक कार्यकर होती है।

प्रकृति—प्रथम कक्षामें या उसके अन्तमें शीत और रूक्ष। यह कासनीसे अधिक शीत है। परन्तु सत्यान्वेषकोंके मतसे कहा जाता है कि यह शीत नहीं, अपितु प्रथम कक्षामें उष्ण और रूक्ष है। इसके समर्थनमें वे **शैख**का यह वचन कि इसका दूध आँखका जाला दूर करता है, प्रमाण मानते हैं।

गुण-कर्म—यह संग्राही, दीपन, आर्तवजनन, स्तन्यजनन तथा यकृत् एवं प्लीहाके अवरोधोंका उद्घाटन करनेवाली, रक्तनिष्ठीवनको दूर करनेवाली और कामलानाशक है। यह समस्त गुणोंमें बागी कासनीसे बलवती है।

उपयोग—इसका दूध आँखमें लगानेसे फूली कट जाती है। इसके स्वरसमें कपड़ा भिगोकर योनि वा गर्भाशयके भीतर स्थापन करनेसे, उनकी सूजन दूर होती है। जैतूनके तेलके साथ इसका रस पीनेसे प्रायः पानजनित विषों एवं जमीनके भीतर रहनेवाले जानवर (हवाम्म)के विष लक्षणोंका निवारण होता है। बिच्छू, भिड़ और सर्पदंशमें इसकी जड़ पीसकर प्रलेप करनेसे उपकार होता है। **इब्नजह्र**के मतसे जंगली कासनीका रस मद्यके साथ पीनेसे

कृष्ण सर्प (अफई)का विष उतर जाता है। विसर्प (सुर्खबादा)में इसे जौके आटाके साथ और अग्निदग्ध एवं दाहमें सिरका और सफेदाके साथ लेप करनेसे उपकार होता है। गीलानीके अनुसार जंगली कासनी (तरखश्क़ूक) यकृत्की श्रेष्ठ औषधोंमें से है। इसका निचोड़ा हुआ स्वरस और जड़ दोनों ही जलोदरमें उपकारी हैं। इसका शर्वत सभी प्रकारकी सूजन और यकृत्के अवरोधोंमें लाभकारी है। चिरज यकृत् और वृक्क विकारोंमें औषधकी भाँति प्रयुक्त होती है। अहितकर–मूत्रपिंड (वृक्क)को। निवारण–सिकंजबीन। प्रतिनिधि–बागी कासनी। मात्रा–२से ६ ग्राम (२से ६ माशा) तक।

●

(१३८,१३९) काहू (बागी तथा जंगली)

फ़ैमिली : कॉम्पोजीटी (Family : Compositae)

नाम—(१) उद्यानज (बागी या बुस्तानी)–(हिं०; ब०; पं०) काहू, सलाद; (अ०) खस, खस्स; (फा०) काहू; (ले०) लाक्टूका साटीवा (**Lactuca sativa** Linn.); (अं०) दी गार्डेन लेटिस (The Garden Lettuce), लेटिस (The Lettuce)। (२) वन्य (जंगली)–(हिं०) जंगली काहू; (अ०) खस्स बर्री; (फा०) काहू सहराई, काहू बर्री; (सिंध) बन काहू; (ले०) लाक्टूका सेर्रिओला **Lactuca serriola** Linn. (पर्याय–*L. scariola* Linn.); (अं०) दी वाइल्ड लेटिस (The Wild Lettuce)।

वक्तव्य—अरबीमें 'ख़स (वा ख़स्स)' शब्दका व्यवहार काहूके अर्थमें होता है, पर हिन्दीमें इसका व्यवहार उशीर वा वीरणमूलके अर्थमें होता है। प्राचीन यूनानी काहूको 'थ्रीडास (Thridas)' कहते थे। 'तरीदास' इसीका अरबी रूपान्तर है। सावफरिस्तुस् ने इसका एक यूनानी नाम 'थ्रीडाकिनी' भी लिखा है। जंगली काहूको यूनानीमें 'थ्रीडास अगरिया' कहते हैं। सम्प्रति 'थ्रीडास' शब्दका व्यवहार काहू स्वरसके अर्थमें होता है।

उत्पत्तिस्थान—फारस और समस्त भारतवर्षमें इसकी खेती की जाती है। बम्बईमें इसको 'सालीटची भाजी' कहते हैं। जंगलीकाहू पश्चिम हिमालयमें मुर्रीसे लेकर कुनावर तक जंगली होता है। चिकना काहू अर्थात् सुगन्धित और जंगली अंग्रेजी काहू (*L. virosa*) इसका एक निकटतम भेद है।

वर्णन—यह एक उद्भिद् है जो लगाया हुआ (बागी वा बुस्तानी) और जंगली (बर्री वा सहराई) भेदसे दो प्रकारका होता है। इनमें बागीके पुनः दो अवांतर भेद होते हैं—(१) इसके पत्र चौड़े और पेड़ आध गजसे डेढ़ गज तक ऊँचा, चिकना, मधुर और कोमल होता है। इसमें बारीक शाखाएँ निकलती हैं जिनके आस-पास सफेद फूल आते हैं। बीज बारीक और सफेद होते हैं। बीजोद्भव कालमें इसमें दूध पैदा हो जाता है और पत्ते कड़ुए हो जाते हैं। शरद्ऋतुमें जबकि पानी नहीं बरसता तब यह हिन्दुस्तान और बंगालमें होता है; परन्तु अरब, ईरान और रोम आदिमें यह वसंतऋतुमें होता और विपुल होता है। इनमें भारतीय काहू ऊँचाई और गुणमें विदेशीसे हीन होता है। (२) फिरंगी है। यह भी दो प्रकारका होता है। इनमें एक किस्मके पत्र, हरे, कमरंग, अत्यंत कोमल, मसृण और मधुर होते हैं। दूसरी किस्मके पत्तोंके सिरोंपर कुछ-कुछ बैगनी रंगत रहती है। ये पहलीकी तरह कोमल, मसृण और मधुर नहीं होते। इन उभय जातियोंके पत्ते एक दूसरेसे लिपटे और बँधे हुए कलिकाकी भाँति एवं गोल होते हैं। प्रतिवर्ष इनके ताजे बीज फिरंगसे लाते और जाड़ेमें बोते हैं। वायु जितना ही शीतल एवं तर होता है, उतना ही ये उभय जातियाँ अधिक प्रफुल्लित होती हैं और खूब, अत्युत्तम, अत्यंत कोमल और अधिकाधिक (पत्तियाँ) सिकुड़ती जाती हैं। इन दोनों (मख्जनके मतसे बनफ्शई फिरंगी)के बीज प्रायः काले होते हैं। इनकी मृदुता-कठोरता और उत्कृष्टता-निकृष्टतामें भूमिभेदका बहुत हाथ होता है। सुतरां नरम, उर्वर भूमिमें जिसमें

अच्छी सिंचाई की गई हो, बोये हुएका पत्ता और तना कोमल, चिकना एवं मधुर और बीज सफेद होता है। इसके विपरीत बोये हुएका इसके विरुद्ध होता है। खानेमें केवल बागी काममें आता है। जंगली काहूके पत्र बागीसे अधिक पतले और अधिक लम्बे होते हैं, चिकने नहीं होते और उससे अधिक हरे, कुछ अधिक कड़े और तिक्त होते हैं। तनेमें प्रचुर दुग्ध होता है। किसी-किसी स्थानमें इसके उक्त दूध (दुधिया रस या लैटेक्स Latex)से अफीम बनाते हैं। परन्तु यह पोस्तेसे बनी अफीमसे घटिया होती है। (मख्ज़न)। प्राचीन कालमें यह जंगली काहूसे प्राप्त की जाती थी, पर अधुना इसे उद्यानिज काहूसे भी प्राप्त करते हैं। सुतरां पंजाब और सिंधमें खेती किये जानेवाले काहूके दुधिया रससे अफीम बनाई जाती है जिसे वहाँ खीखाओ कहते हैं। परन्तु जंगली काहूसे बनी अफीम उद्यानिजकी अपेक्षया अधिक गुणकारी होती और प्रमाणमें अधिक निकलती है। पाश्चात्य वैद्यकमें प्रयुक्त काहूकी अफीम (Lactucarium) या लेटिस ओपियम् (Lettuce Opium) प्रायः लाक्टूका वीरोसा (*Lactuca virosa* Linn.)से जो जंगली काहूका ही एक भेद है, प्राप्त की जाती है।

रासायनिक संगठन—जंगली काहू (**L. scariola**)में लैक्टूकेरिअम नामक एक दुधिया रस (काहूजात अहिफेन) होता है। यह लैक्टोसिन (Lactocin), लैक्टूसिन नामक प्रधान वीर्यवान् सत्व, लैक्टोपिक्रिन् (Lactopicrin), और लैक्टूसिक एसिड (Lactucic acid) नामक तिक्त सत्वका यौगिक है। लैक्टूसिनके सफेद स्फटिक वा परत होते हैं। इसके अतिरिक्त इसमें लैक्टूसेरिन नामक एक निष्क्रिय मोमकी तरहका पदार्थ, फेरिक ऑक्साइड और सुधा प्रभृति द्रव्य लगभग ५० प्रतिशत, अंशमात्र हायोसायमीन, शुक्लि, पोटास एवं सोडा आदि होते हैं। पत्रमें शुक्लीय पदार्थ, पिष्टमय पदार्थ, शर्करा, निर्यास इत्यादि पदार्थ होते हैं। अपवाद स्वरूप इसमें प्रचुर लौह होता है। परन्तु कोषस्थ रस (Cell-sap)में अत्यल्प लौह होता है। यह उबलनेसे बहुधा सम्यक् अवक्षेपित हो जाता है।

उपयुक्त-अंग—पत्र (शाकार्थ), बीज और प्रगाढ़ीभूत दूधिया रस अर्थात् काहूकी अफीम।

कल्प तथा योग—**क्वाथ** और **फाण्ट**, मात्रा २॥ तोलेसे ३॥। तोले; **दुधिया रस या काहू की अफीम** (Lactucarium), मात्रा–१८० मि० ग्रा० से ०.५ ग्राम (१॥-४ रत्ती); **बीजचूर्ण**, मात्रा–०.५ से १.२५ ग्राम (५ से १० रत्ती); **सुरासव (टिंकचर)** : मात्रा–१०-३० बूँद; **शार्कर (शर्बत)** जिसमें १० प्रतिशत टिंक्चर होता है। **मात्रा**–१-४ ड्राम; **रसक्रिया** : मात्रा–०.३ से ०.६ ग्राम (२॥-४॥ रत्ती); **तेल** (बीजोत्थ) और पाक आदि।

उद्यानज (बाग़ी) काहू—

प्रकृति—काहूके पत्र दूसरे दर्जेमें सर्द एवं तर हैं।

गुण-कर्म—काहू पित्तकी तीक्ष्णता और रक्तोद्वेगको शांत करता है। यह रक्तप्रसादन, तृट्प्रशमन, स्वप्नजनन, स्वापजनन, मूत्रल, स्तन्यजनन, उष्ण आमाशयको बलप्रद, बाष्पारोहणका प्रतिषेधक और क्षुधाजनक है। जलवायु-परिवर्तनसे शरीरमें जो विकार उत्पन्न होते हैं, यह उनको निवारण करता है।

उपयोग—काहू अधिकतया पत्रशाककी भाँति उपयोग किया जाता है और अपने उपर्युक्त गुणकर्मोके कारण रक्त एवं पित्त प्रकृतिवालोंके लिए बहुत सात्म्य है। यह गरम खाँसी, खुजली, उन्माद, मद (मालीख़ोलिया), कामला, गरम ज्वरों और सूजाकमें बहुत लाभ करता है। बच्चेवाली स्त्रियोंको दूध बढ़ानेके लिए खिलाया जाता है। भूख बढ़ाने और आमाशयशूल निवारणके लिए सिरकाके साथ इसका उपयोग करते हैं। महामारीके जमानेमें और यात्राकी अवस्थामें जलवायुजनित दोषोंके प्रतीकारके लिए इसे खाते हैं। शैख़के अनुसार कच्चा काहू अथवा इसका काढ़ा स्वप्नजनन है और इससे अनिद्रा रोगका नाश होता है। यह तीव्रज्वरजात प्रलापमें लाभदायक है। **अहितकर**–अवाजीकर और विस्मृतिकारक। **निवारण**–पुदीना और करफ़्स। **प्रतिनिधि**–कुलफा पत्र-स्वरस। **मात्रा**–पत्र-स्वरस २ से ४ तोले तक।

नाम—**काहूके बीज**–(अ०) बज़्रुलख़स्स; (फा०) तुख़्म काहू; (द०) काहूके बीज; (ता०) शलात्तुविरै; (ते०) कापु वित्तुलु; (अं०) लेटिस सीड्स (Lettuce seeds)।

वर्णन—काहूके बीज सफेद, चमकीले, छोटे-छोटे और लम्बे होते हैं। स्वाद फीका होता है। किसी-किसीके मतसे कालाई लिये लाल बीज बहुत भारी (कसीफ़) और बलवान होते हैं तथा ललाई लिये सफेद बीज हलके (लतीफ़) एवं निर्मल होते हैं।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें शीत एवं रूक्ष।

गुण-कर्म—शीतजनन, शिरःशूलनाशक, अवसादक (मुसक्किन), स्वापजनन, स्वप्नजनन और तृट्शमन हैं तथा पित्तकी तीक्ष्णता एवं रक्तोद्वेगको शमन करते, पतला लेप (तिलाऽ) करनेसे बालोंको शक्ति प्रदान करते और खिलानेसे वीर्यको सुखाते हैं।

उपयोग—गरम सिरदर्दको नष्ट करने और अनिद्राको दूरकर नींदलानेके लिए काहूके बीजोंको पीसकर सिर-पर लेप करते हैं तथा बालझड़ता बन्द करनेके लिए भी इसे सिरपर लगाते हैं। रक्तज एवं पित्तज ज्वरों, मालन्खोलिया, उन्माद जैसे रोगोंमें अकेले या उपयुक्त औषधद्रव्योंके साथ इनका शीरा पिलाते हैं। वीर्यशोषण और शीतजनन होनेसे ये वीर्यको पुष्ट एवं गाढ़ा करते हैं। स्वापजनन होनेसे ये कामवासनाको कम करते (पुंस्त्वोपघाति) हैं। इसी कारण ये स्वप्नदोषको भी कम कर देते हैं। **अहितकर**—काम (बाह)को। **निवारण**—मस्तगी और शुद्ध मधु। **प्रतिनिधि**—खशखाश (पोस्तेका दाना)। **मात्रा**—३ ग्राम से ५ ग्राम (३ से ५ माशे) तक।

काहूका तेल—

नाम—(अ०) दुह्नुल्ख़स्स; (फा०) रोग़न तुख़्म काहू। कल्पना विधि—काहूके बीजोंका शीरा २ भाग, तिलका तेल अथवा बादामका तेल १ भाग—दोनोंको यहाँतक पकायें कि केवल तेलमात्र शेष रह जाय। इसे बादामके तेलकी भाँति अथवा कोल्हूमें पेरकर भी तेल प्रस्तुत करते हैं। यह कुछ पिलाई लिये सफेद और स्वादमें किंचित् तिक्त होता है।

प्रकृति—शीत एवं तर (स्निग्ध)।

गुण-कर्म-तथा उपयोग—नींद लानेके लिए इसे शिरमें लगाया जाता और नाकमें टपकाया जाता है। इसके अतिरिक्त बालोंको दृढ़ करनेके लिए भी इसका उपयोग करते हैं। **अहितकर**—शीत प्रकृतिको तथा विस्मृतिकारक एवं दृष्टिमान्द्यकर है। **निवारण**—बादामका तेल। **प्रतिनिधि**—कद्दूका तेल या सफेद पोस्तेका तेल।

काहूकी अफीम—

नाम—(फा०) अफ़्यून काहू; (ले०) लाक्टूकारिउम् (Lactucarium); लेटिस ओपियम (Lettuce Opium)।

निर्माणविधि और वर्णन—बागी काहूके पौधोंकी फूलदार शाखाओं और तनोंको पाछने वा चीरा देनेसे एक प्रकारका दूध सरीखा सफेद रालदार रस निकलता है। यह हवा लगनेसे गाढ़ा और कड़ा हो जाता है और उसकी रंगत भी बदल जाती है। यही काहूकी अफीम है। यह पोस्तेकी अफीमकी तरह तेज नहीं होती। इसकी रंगत बाहरसे भूरी किन्तु भीतरसे सफेद वा पिलाई लिए और टूटे हुये मोमके समान कुछ चमकीली होती है। स्वाद तिक्त होता है। गंध किसी प्रकार अफीमकी गंधकी तरह गंभीर होती है।

प्रकृति—चौथे दर्जेमें शीत एवं रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—काहूकी अफ़ीम पोस्तेकी अफीम, खुरासानी अजवायन और भाँगकी भाँति स्वापजनन, वेदनास्थापन, स्वप्नजनन, संकोचविकास प्रतिबन्धक, कासहर और संशमन है। परन्तु इसका स्वप्नजनन कर्म पोस्तेकी अफीमकी अपेक्षया कम होता हैं। इससे गाढ़ी और सुखदायक नींद आती है। अफीमसे भी गाढ़ी निद्रा

आती है; किन्तु उससे कब्जियत होती है और यकृतकी क्रिया बिगड़ती है। यह दुर्गुण इस औषधिसे पैदा नहीं होता। पोस्तेकी अफीमके सदृश इससे न तो पाचन-विकार होता है और न कब्ज होता है। इससे गाढ़ी और सुखदायक नींद आती है। अफीमसे भी प्रगाढ़ निद्रा आती है। किन्तु उससे कब्जियत होता है और यकृत्की क्रिया बिगड़ती है। यह दुर्गुण इस औषधीसे पैदा नहीं होता। पोस्तेकी अफीमके सदृश इससे न तो पाचन-विकार होता है और न कब्ज होता है और न इसके खानेके बादको आलस्य एवं कमजोरी प्रतीत होती है। इसका वेदनास्थापन गुण भी अफीम की अपेक्षया बहुत कम है। इस कारण भयंकर कष्टके कारण जब निद्रा भंग हो जाती है, तब काहूके सत्वसे काम नहीं होता। उस समय अफीम ही कारगर होती है। किन्तु जहाँ अफीम वर्जित हो वहाँ वेदनाहर एवं निद्राकारक-रूपमें इसका उपयोग विहित है। सूखी खाँसी और कफक्षयमें काहूका सत्व देनेसे लाभ होता है। अफीमसे भी खाँसीमें लाभ होता है, परन्तु उससे कफका पड़ना बन्द हो जाता है; काहूके सत्वसे कफका पड़ना बन्द नहीं होता। संक्षोभयुक्त कासमें इसका शर्बत वा चक्रिका गुणकारी होती है। ज्वरमें जब रोगी प्रलाप करता है, तब इसके सेवनसे वह कम हो जाता है। इससे भूख लगती है और पाखाना साफ होता है। मात्रा—२ चावल से १ रत्ती तक (मतांतरसे १ से ३ रत्ती तक।)

जंगली-काहू—

गुणकर्म तथा उपयोग—यह बागीसे कम शीत एवं तर है। गुणकर्ममें यह बागीसे बलवत्तर है। इसका दूध आँखमें लगानेसे कनीनिका (कॉर्निया)गत व्रण शुद्ध होता है। इससे नेत्रनाडी (गर्ब)में भी उपकार होता है। इसका दूध जलीय दोष मलमार्गसे उत्सर्ग करनेवाला (मुसहिल कैमूस माई) आर्तवजनन और लगानेसे विच्छूविष-नाशक है।

●

(१४०) किरमाला

फ़ैमिली : कॉम्पोज़ीटी (Family : Compositae)

नाम—(हिं०) किरमानी अजवायन, किरमाला, छुहारी जवाइन; (अ०) शीह, अफसन्तीनुल्बहर; (फा०) दिर्मनः; (सं०) चौहार, किरमाणी (कीटमारी) यवानी; (क०) अम्मुरीन, मुञ्जमुरीन. भुट्ट टिट्ठवन; (पश्तो) तर्ख़; (म०) किरमाणी ओंवा; (गु०) करमाणी अजमा, छुहा (वा) रो; (यू०) सेरिफोन (सरीफून); (ले०) आर्टीमीसिआ मेरीटिमा (**Artemisia maritima** Linn.); (अं०) वर्मसीड (Worm-seed), सैटोनिका (Santonica)।

वक्तव्य—फारसके 'किरमान' नामक प्रदेशसे यह औषधि भारतवर्षमें आती है। 'किरमाला' इसीका अपभ्रंश है। इस उद्भिज्जके नामोंमें 'यवानी' या 'अजवायन' शब्दका उल्लेख करना इसलिए अनुचित है कि एक तो इस उद्भिज्जका अजवायनके साथ किसी प्रकारका सम्बन्ध नहीं है और दूसरे इसके नामोंमें अजवायन शब्दका उल्लेख किया जानेसे अधिकांश वैद्य व हकीम महाशय इसके अविकसित पुष्पोंको अजवायनका भेद और खुरासा-एनी अजवायन समझ बैठनेके जिस भ्रममें फँसे हुये हैं उसका निराकरण करना भी आवश्यक है। इतने विवरणके बाद हमें यह कहनेकी आवश्यकता नहीं कि उपर्युक्त वनस्पतिका अजवायन खुरासानी अर्थात् 'पारसीक यवानी'से या 'अजवायन' अथवा 'यमानी' शब्दोंसे कोई सम्बन्ध नहीं है।

उपयुक्त अंग—इसके कोमलपत्र, पंचांग तथा अविकसित पुष्पस्तवक (Santonica) और उससे प्राप्त सत्व सेंटोनीन औषधके काममें आते हैं। इसकी गन्ध विशेष प्रकारकी, तीव्र एवं प्रिय, किसी प्रकार कपूर या कयपूतीके तेलकी गन्धसे मिलती हुई होती है। संग्रहकाल–अगस्त मासमें कोमल पत्र संग्रह कर लेवें।

उत्पत्तिस्थान—यह एशिया, फारस, अफगानिस्तान, बलूचिस्तान, पश्चिमी पाकिस्तान, पश्चिम हिमालयकी श्रेणियोंसे संलग्न कश्मीर, कुल्लू, नैपाल, गढ़वाल तथा भारतके कतिपय पार्वत्य प्रदेश (८००० फुटकी ऊँचाईपर) और पश्चिम तिब्बतमें विपुल होता है।

वर्णन—एक **क्षुप**, प्रायः ४५से ९० सें० मी० (१॥-३ फुट) ऊँचा; मूल, काण्ड और शाखायें काष्ठमय; **काण्डकी मोटाई**, अंगुलि प्रमाण और शाखाओंकी पेंसिल प्रमाण; क्षुपका रंग धूमिल; **पत्र** छोटे अंडाकार (ओवेट) रंगमें श्वेत; **पुष्प** लट्वाकार मंजरियोंके रूपमें, शाहतराकी तरह रंगमें गुलाबी; पत्र और पुष्पकी गन्ध कर्पूरवत् और आस्वाद किंचित् तिक्त होता है। स्वाद सुगन्धित एवं तिक्त होता है। भारतवर्षमें अफगानिस्तान और फारससे इसका विपुल प्रमाणमें आयात होता है। इसके अविकसित पुष्पोंका बम्बईके बाजारोंमें **किरमाणी अजवायन**, **किरमाणी ओंवा** (म०) और **किरमाणी अज्मो** (गु०) आदि नामोंसे क्रय-विक्रय होता रहा है और संभवतः आजकल भी होता है। अधुना कश्मीर सरकार द्वारा इसके संग्रह और इससे सेंटोनीन निकालनेका प्रबन्ध किया गया है। **भेद**-**शीह अरमनी**, **शांह जबली** (**पहाड़ी शीह**), **शीह खुरासानी** या **तुर्की** (दिर्मिनः तुर्की) और **जंगली शीह** प्रभृति इसके कतिपय भेद यूनानी ग्रंथोंमें लिखे हैं। इन विदेशी भेदोंके अतिरिक्त इसका एक भारतीय भेद भी है, जिसे **जौहरी जवाहन** (क़िरमाला) कहते हैं। फारसीमें इसे '**दिर्मनः**' कहते हैं। इसीका वर्णन यहाँ हो रहा है। **दिर्मनःतुर्की** इसीका एक भेद है, जिसका वर्णन उक्त शब्दमें होगा। पाश्चात्य चिकित्सामें प्रयुक्त सेंटोनीन, इसके जिस भेदसे प्राप्त किया जाता है उसे अंग्रेजीमें **लेवांट वर्मसीड** (Levant Worm-seed) और लेटिनमें **आर्टीमीसिआ सीना** (**A. cina** Berg.) कहते हैं। इसकी उत्पत्ति प्रायः रूसमें होती है।

रासायनिक संगठन—इसमें ६.५ प्रतिशत राख होती है। राखमें चूना (कैल्सियम) और यवक्षार होते हैं। डॉ० के०सी० बोसके अनुसार इसमें एक उड़नशील तेल भी होता है, जिसकी गन्ध कपूर तथा कयपूती तेलके समान होती है। फूलोंमें **सेंटोनीन** नामक एक क्षारस्वभावी कार्यकारी तिक्त सत्व (२.३ से ५ प्रति०) होता है। यह नया होनेपर श्वेत और पुराना होने या धूपमें रखनेपर पीला पड़ जाता है। पुष्पोंके विकसित होनेपर उसकी यह राशि शीघ्रतासे घटने लगती है। इसी सेंटोनीनके लिए लेवांट वर्मसीडका मुख्यतया उपयोग होता है। इसके अतिरिक्त इसमें **आर्टिमिसिन** (Artimisin) नामक सत्व भी पाया जाता है।

मात्रा—पंचांग चूर्ण ३से ६ ग्राम (३-६ माशा)। सेंटोनीन ६० मि० ग्रा० से १८० मि० ग्रा० ($\frac{१}{२}$-१॥ रत्ती)।

कल्प तथा योग—अतरीफल दीदान। बच्चोंके लिए अविकसित पुष्प चूर्ण ०.२५से ०.६ ग्राम (२-५ रत्ती) तक; वयस्क मात्रा ४ से ८ ग्राम (३०-६० रत्ती) तक। फाण्टके लिए पंचांगको उपर्युक्त मात्रासे दुगुना लें।

प्रकृति—दूसरे या तीसरे दर्जेमें गरम और रूक्ष।

गुण-कर्म—अवरोधोद्घाटक, दीपन, कृमिघ्न, छेदन, लेखन, वातानुलोमन, दोषतारल्यजनन, दोषोत्सर्गकर्ता, रोमसंजनन, श्वयथुविलयन, मूत्र और आर्तवप्रवर्तक, सर, मूत्रावरोधनिवारक और कामोत्तेजक है।

उपयोग—उदरज कृमियों, विशेषतः ब्रध्नाकार कृमियोंको मारकर निकालनेके लिए किरमालाको खिलाते और पेटपर लेप करते हैं। उक्त गुणके लिए इसके तेलको नाभिपर लगाते और अकेला या चावलके साथ पकाकर शहद मिलाकर पिलाते हैं। इससे कृमि मरकर मलके साथ निकल जाते हैं। इसको जलाकर बनाई हुई राखको जैतून या कड़ुए बादामके तेलमें फेंटकर लगानेसे बालखोरा और सिरका गंज आराम होता है, और उस पर बाल उग आते हैं। यह लोमवर्धक भी है। किरमाला और उसका तेल कृच्छ्रश्वास, शीतपूर्व ज्वर, मिश्रदोषजन्य ज्वरों, शीतजन्य व्याधियों, आमाशयशोथ, जलोदर तथा वृश्चिक एवं रुतैला-दंशमें लाभकारी है। इसे लगानेसे व्रणपूरण होता है। हिक्का और मरोड़में इसके सेवनसे उपकार होता है। इसके अभ्यंगसे पृष्ठ एवं कूल्हेका दर्द आराम होता है। **अहितकर**–शिर, आमाशय और वातनाड़ियोंको तथा शिरःशूलजनक है। **निवारण**–अफसंतीन, कमीला या बायविडंग। **मात्रा**–१.७५ ग्रामसे ९ ग्राम (१॥। माशेसे ९ माशे) तक।

नव्यमत—

गुण-कर्म—डॉ० वामन गणेश देशाईके अनुसार यह दीपन, वेदनास्थापन और उत्तम कृमिघ्न है।

उपयोग—शहद या गुड़ (Treacle)के साथ इसके बीजोंका घरेलू चिकित्सामें व्यवहार होता है। इसका कृमिघ्न प्रभाव इसमें स्थित सेंटोनीन नामक क्षाराभ(ऐल्केलॉइड)के ऊपर निर्भर करता है। इसके पुष्पस्तबकको जिसे साधारणतया बीज (Semen Sanctum) कहते हैं, ०·६से २ ग्राम (५-१५ रत्ती)की मात्रामें रात और दिनमें उपयोग करनेसे गोलकृमि–गण्डूपदाकार कृमि (केंचुए) निकल जाते हैं। सूत्रकृमियोंपर इसका अत्यल्प और ब्रघ्नाकार कृमियों (कद्दूदाने)पर थोड़ा प्रभाव होता है। पार्किसनके मतसे प्रधानतया यह बालकोंमें कृमिघ्न कार्य करता है। (पॉटर्स न्यू० सा० पृ० ३२८)। इसमें रेचन गुण नहीं है, इसलिए इसके अविकिसित पुष्पोंके गुड़मिश्रित चूर्णको रात्रि में देकर सबेरे एरंडतैलका विरेचन देते हैं।

सटोनीन

सेंटोनीनका मात्रासे अधिक सेवन करनेसे विषलक्षण प्रगट होते हैं। अतः इसका प्रयोग विज्ञ चिकित्सकके कथनानुसार मात्रामें करना चाहिये।

मात्रा—एक वर्षके बच्चेके लिए–१५ मि० ग्रा० से ३० मि० ग्रा० (१/८ रत्तीसे १/४ रत्ती) तक।

पाँच वर्षके बच्चेके लिए–६० मि० ग्रा० से १२० मि० ग्रा० (१/२ रत्तीसे १ रत्ती) तक।

पाँच वर्षसे अधिक आयुवालोंके लिए–१२० मि० ग्रा० से १८० मि० ग्रा०(१ रत्तीसे १॥ रत्ती) तक और वयस्क एवं प्रौढ़ मनुष्यके लिए अधिकसे अधिक पूर्ण मात्रा २५० ग्राम (२ रत्ती) तक है।

सेवन-विधि—इसके सेवनकी सामान्य विधि यह है, कि जिस दिन रोगीको सेंटोनीन देनी हो उस दिन उसे रात्रिमें अन्न खानेको नहीं देते और सोनेसे पूर्व ही सेंटोनीनको समभाग कैलोमल और थोड़ी-सी मिल्कशूगर अथवा सादे शक्करमें मिलाकर दुग्ध अथवा जलके अनुपानसे खिला देते हैं और अगले दिन प्रातः ही एरंड तैल या अन्य किसी विरेचन द्रव्यका प्रयोग कराते हैं। तदनन्तर एक-दो दिनके अन्तरसे इस प्रयोगविधिकी तीन-चार बार पुनरावृत्ति करते हैं। सूत्रकृमियोंके प्रतीकारार्थ सेंटोनीनका मुखमार्ग द्वारा प्रयोग करना तो विशेष लाभदायक नहीं है, परन्तु एरण्डतैलमें मिलाकर इसकी वस्ति प्रयोग की जाय तो एक-दो बारके प्रयोगसे ही रोगी रोगमुक्त हो जाता है। वस्तिके लिए सेंटोनीन एक वारमें ०·२ ग्राम (१॥ रत्ती) तक प्रयोग की जा सकती है। परन्तु सूत्रकृमियोंके लिए अफसन्तीन और चिरायतेके क्वाथका बस्ति द्वारा प्रयोग कराना विशेष लाभदायक सिद्ध होता है। सूर्यके प्रकाशमें जो सेंटोनीन पीतवर्णकी हो जाती है, ०·३ ग्राम (२॥ रत्ती)की मात्रामें उचित अनुपानके साथ संग्रहणी (Sprue)में प्रातः एवं सायं सेवन कराना चाहिए।

●

(१४१) किसमिस कावलियाँ

फ़ैमिली : लोरान्थासे (Family : Loranthaceae)

नाम—(फा०; भा० बाजार) किशमिश कावली, किशमिशे कावलियाँ; (यू०) इक्सोस (Ixos); (अ०) दिब्क़, मवीज़जे असली; (फा०; इरान) अंगूरे कोली, मवीज़क असली; (हिं०) बन, बंदर, बंदा; (पं०) बाँदा, बंबल; (नेपाल) हुर्चु; (जौनसार) चुलुका वंदा, चुल्लूका बाँदा; झिंझा, हरिबंबल; (ले०) **वीस्कुम् आल्बुम् (Viscum**

album Linn.); (अं०) ह्वाइट मिस्टलेटो (White mistletoe), यूरोपियन मिस्टलेटो (European Mistletoe), बर्डलाइम मिस्टलेटो (Birdlime Mistletoe)। कुल्पेपर इस (Mistletoe)का उच्चारण मिस्सेल्टो (Misselto) करते हैं।

उत्पत्तिस्थान—समशीतोष्ण हिमालय (Temperate Himalayas), कश्मीरसे नैपाल तक, वज़ीरिस्तान (Waziristan) ३,००० फुटसे ७,००० फुटकी ऊँचाईपर; पश्चिमकी ओर एटलांटिक तक।

वर्णन—यह एक प्रकारके बाँदाके सूखे फल हैं, जो छोटे चनाके दानेकी तरह लगभग ८·३ मि० मी० (५/३ इञ्च) व्यासके, नरम, हलके, अधिक गोल नहीं, ताजे हरे और सूखे भूरे या कालापनलिये और झुर्रीदार होते हैं। फलके भीतर चेपदार द्रव और पोस्तेके दानेके बराबर एक छोटा बीज होता है। औषधके लिए उत्तम फल वह है, जो ताजा, चिकना और गोल हो, तोड़नेपर रंग गहरा नीला (कालापन लिये नीला) निकले और बाहरसे रंग कुछ-कुछ हरा, काला और नीला हो, ऊपर खुरदरा न हो और उस पर भूसीकी तरह कोई चीज न हो। यह बलूत, सेव और नासपाती इत्यादिके वृक्षपर होता है। इनमें बलूतपरका उत्तम समझा जाता है।

रासायनिक संगठन—इसके फलमें विस्किन (Viscin) नामक एक पदार्थ होता है। मात्रा–०·६से २ ग्राम (५से १५ रत्ती)।

उपयुक्त अंग—फल।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम और पहले दर्जेमें खुश्क। इसहाकने मलभूत द्रवके साथ गरम और तर लिखा है।

गुण-कर्म—दोषतारल्यजनन, श्वयथुविलयन, सारक (मुलय्यिन), दोषाकर्षणकर्त्ता (जाज़िब), ज्ञानेन्द्रियोंको बलप्रद और अंगोंकी सर्दी दूर करनेवाला है।

उपयोग—इसके उपयोगकी एक साधारण विधि यह है कि इसे रातमें गरम जलमें भिगोकर सबेरे छिलके और बीजोंको दूर करके अखरोट या एरंडकी गिरीके साथ पीस और शहदमें मिलाकर अन्य उपयोगी औषधियोंके साथ उपयोग करते हैं। यदि सूखा उपयोग करना हो तो तिलके तेलमें मिलाकर उपयोग करें। इससे कफ और सौदाका उत्सर्ग होता, अवरोधोंका उद्घाटन होता और गृध्रसी, भगंदर तथा सर्दीके रोगोंमें उपकार होता है। शीतल शोथपर इसका लेप करनेसे वह विलीन हो जाता है। यह कफज शीतपित्त और उदर्दमें भी लाभ करता है। यह दूषित पुराने फोड़ों और व्रणोंको नरम करता है। सम प्रमाण मोम और रालके साथ इसकी क़ैरूती बनाकर लगानेसे कठिन संधि नरम हो जाती है। इस क़ैरूतीमें कुंदुर भी योजितकर लेनेसे वह अधिक गुणकारी हो जाती है और संधियोंकी कठोरतासे होनेवाला दर्द आराम हो जाता है। इसके लेपसे समस्त शीतल और कफज शोथ पककर फूट जाते हैं। इससे मुँहकी झाँई दूर हो जाती है। इसको हड़ताल और जिफ़्तके साथ सड़े-गले नखोंपर लगानेसे वे उखड़ जाते हैं। इसे चूना, अंगूरका रस और शहदके साथ लगानेसे नख निकल आते हैं और उनमें शक्ति आती है। मेंहदीके साथ यह शिरोगत गंज और अन्हौरियोंको मिटाता है। गुलरोग़नमें मिलाकर लगानेसे केशोंको बढ़ाता है। इसे चूनाके पानीमें पकाकर या चूनामें मिलाकर लगानेसे प्लीहाशोथ दूर होता है और अन्य अंशोंपर लगानेसे उनके अन्दरसे पतले और गाढ़े द्रवोंको आकर्षित करके उन्हें नष्ट कर देता है। इसे अधिक खा लेनेसे भ्रम, अंगगौरव तथा उदरमें मरोड़ और ऐंठन होने लगती है। ऐसा होनेपर पानी और शहद मिलाकर क़ै(वमन) करायें और बस्तिका प्रयोग करें। इसके उपरांत सिकंजबीन पिलायें। अहितकर–हृदयको। निवारण–बिल्लीलोटन, गावजबान और खीरा-ककडीके बीज। मात्रा–४-५ ग्राम (४ा। माशे) तक; कफजरोगोंमें ३-५ ग्राम (३ा। माशे) तक।

नव्यमत—फलकी क्रिया रक्तपरिसंचरण पर डिजिटेलिसके समान ही नहीं, अपितु उससे भी बढ़कर होती है। और इससे छोटी रक्तवाहिनियोंका संकोच होता है। हृदयको शक्ति मिलती है। और मूत्रका प्रमाण बढ़कर जलोदर अच्छा होता है। यह आनुलोमिक और शोथघ्न है। गर्भाशयपर इसकी क्रिया अर्गटके समान होती है। सगर्भावस्थामें देनेसे गर्भपात हो जाता है। मज्जाउतक के रोगोंमें भी यह अच्छा काम करता है।

(१४२) किसाउल् हिमार

फ़ैमिली : कूकूरबिटासे (Family : Cucurbitaceae)

नाम--(भा० बाजार; हि०) कांटेरी इन्द्रायन, कातरी इन्द्रायन, काँटेवाली इन्द्रवारुणी; (गु०) कांटालां इन्द्रावणा; (म०) कांटेरी इन्द्रावणी; (यू०) इस्फईरिदिआेन अगरिओन; (अ०) कुसाऽअल्हिमार, क़िस्साउल् हिमार (गर्दभकर्कटी), मश्तुज़्ज़ीब, सुआब; (फा०) ख़ियार्ज़ए (ख़ियार) ख़र (= गर्दभकर्कटो), ख़रख़ियार, ख़ियारदश्ती (अरण्य-कर्कटी), समाहंग; (सं०) कण्टकिनो, कण्टकर्कटी-(नवीन संज्ञा); (ले०) एकबालिलउम एलाटेरिउम् (**Ecballium elatorium** A. Rich; (अं०) स्क्विर्टिंग कुकुंबर (Squirting cucumber)। किसाउल्हिमारका सत (इलातरियून)—(अ०) ख़ुलासये क़िस्साउल् हिमार, असीर क़िस्साउल् हिमार; (फा०) उसारये ख़ियार दश्ती, असीर ख़ियारख़र; (ले०) एलाटेरिउम (Elaterium)।

वक्तव्य—लेटिन 'एलाटेरिउम', यूनानी 'एला टेरिओन (**Elaterion**)' से, जिसका अर्थ 'तीव्र विरेचनौषध' है और जिससे 'इलातिरियून' अरबी बनाया गया है, व्युत्पन्न है।

उत्पत्तिस्थान—यूरोप (फ्रांस और इंगलैंड में औषधार्थ इसकी खेती करते हैं), उत्तर एशिया, विशेषकर टिफलिस और जॉर्जिया (रूसस्थित) तथा फारस आदि। ईरान आदि विदेशोंसे इसके फल भारतवर्ष लाये जाते हैं।

वर्णन—यह बंदाल और इन्द्रायनसे भिन्न एक १·२ से १·८ मीटर (४-६ फुट) लम्बी बेलका फल है। फल ककड़ीके समान, हरा और हरे काँटोंसे व्याप्त होता है। बेल और फल बंदाल (देवदाली)की बेल और फलसे मिलते-जुलते होते हैं। इसके कच्चे वा पके फलोंको तोड़कर सुखा लेते हैं। यह अत्यन्त कड़ुये होते हैं। औषधके लिए, अन्य समस्त अंगोंसे, इसका फल श्रेष्ठ होता है। उसमें भी पका, अत्यन्त पीला, ककड़ीके बराबर लम्बा और बहुत कडुआ फल अधिक श्रेष्ठ है। **सत्वकल्पना विधि**–क़िसाउल्हिमारके जो फल ग्रीष्मके अन्तमें पककर पीले पड़ गये हों और हाथसे छूते ही बिना तोड़े पेड़से गिर पड़ें एवं ताजे और पुष्ट हों, लेकर काट डालें। फिर उनको कूट-पीसकर साफी या चलनीमें रखकर छानें। इसके उपरान्त उस पर मीठा पानी डालें और स्थिर होने दें। जब गाद नीचे बैठ जाय और ऊपर निथरा हुआ साफ पानी रह जाय तब उस पानीको निथारकर फेंक देवें। कई बार ऐसा ही करें। फिर नोचे बैठे हुए द्रव्यको (तलछट) इस प्रकार सुखा लेवें। बारीक और छनी हुई राखको पहले एक चौड़े बरतनमें बिछा देवें। फिर उस राखपर कपड़ा फैलाकर उस तलछटको कपड़ेके ऊपर फैला देवें। जब राख पानीको चूस ले तब शेष रहे उस शुष्क द्रव्यको बारीक पीसकर टिकिया बनाकर सायामें सुखा लें अथवा उसमें समभाग बबूल का गोंद या अर्धभाग निशास्ता[1] अथवा गिल अरमनी या कैलामीन (Calamine)के साथ घोटकर टिकिया बना-सुखाकर रख लें। इसमें दस-वर्ष तक वीर्य शेष रहता है। **शुद्धता परीक्षा**–जिसे बने एक वर्षसे अधिक न हुआ हो और चिरागके पास रखनेसे शीघ्र भड़क उठे (जल जाय) तथा जो चिकना, सफेद और हलका हो, वह शुद्ध और उत्तम समझा जाता है। जिसमें ये लक्षण न हों और जो अत्यन्त सफेद और गंदनेके रंगका तथा खुरदरा और भारी हो, वह अशुद्ध (रद्दी) समझा जाता है।

रासायनिक संगठन—इसमें किस्साउल्हिमारीन[1] अर्थात् **एलेटेरिन** या एकबेलिन[2] (Elaterin या Ecballin) नामक एक ऐल्केलॉइड जो इसका गुणोत्पादक सत्व है, एक गलूकोसाइड प्रोफेटिन (Prophetin) और निर्यासवत् पदार्थ–ये घटक पाये जाते हैं।

---

[1] यह विधि **दीसकूरीदूस** और **प्लाइनी** लिखित 'एलाटेरिओन, की कल्पनाविधिके समान हैं।

[2] पाश्चात्यवैद्यकमें **एलेटेरीन** ऐल्केलॉइड और (**एलाटेरियम्**) दोनों ही सत्व मान्य हैं।

उपयुक्त अंग—फल, फलसत्व, पत्र, मूल और पंचांग।

प्रकृति—दूसरे या तीसरे दर्जेमें गरम और रूक्ष।

गुण-कर्म—यह दोषतारल्यजनन, पतले कफसे मिले हुए विकृत पित्त और आम श्लेष्माका विरेचन-वमनकर्ता, शिरोविरेचनीय, लेखनीय, विलयन (मुहल्लिल) तथा मूत्र एवं आर्तवजनन है।

उपयोग—शिरोविरेचन होनेसे पुरातन शिरःशूल, संपूर्ण शिरोगत सामान्य शूल, अर्द्धावभेदक और कामला तथा समस्त चिरकारी शीतजन्य शूलोंमें बंदालकी भाँति इसे पीसकर नकुओंमें लगाने या मलने अथवा कन्यावती-स्त्रीके दूधमें इसका स्वरस मिलाकर नाकमें टपकानेसे नाकके द्वारा शिरोगत मलोंका प्रचुर उत्सर्ग होकर उक्त रोग आराम हो जाते हैं। कफ और पतला कफ मिला हुआ विकारी पित्तका विरेचनकर्ता होनेसे जलोदर, कामला और पाण्डुमें इसका उपयोग करते हैं। सर्वांग शोफमें इसको जड़का शरीरपर लेप करते हैं। इसके फलस्वरसको तिलके तेलमें पकाकर तैयार किया हुआ तेल अर्शांकुरों पर लगानेसे वे गिर जाते हैं। गरम और श्वयथुविलयन होनेसे इसे कानमें टपकानेसे कर्णनाद, वाधिर्य, ऊँचासुनना और कर्णक्ष्वेड, कृमिकर्ण तथा सांद्र वायुका नाश होता है। इसके अभ्यंग और पानसे शरीरको सर्दी, व्यंग, झाईं, यौवन पिड़का और चिरकारी आमवात आराम होता है। इसे योनिमें धारण करनेसे आर्तवका प्रवर्तन होता और गर्भस्थ शिशु बाहर निकल जाता है। कफ और पित्तके वमन-रेचनार्थ इसके उसारेका उपयोग करते हैं। थोड़ा उसारा जलमें घोलकर मुरगीके परमें लत करके जिह्वामूल और उसके आस-पास लगानेसे वमन होता है। इसके पत्रका स्वरस कुनकुना नाभिके नीचे मलनेसे कृमि मरकर निकल जाते हैं। इसे आमाशयके ऊपर मलनेसे क़ै आती है। **अहितकर**–अत्यंत वामक और मरोड़ पैदा करता है। **निवारण**–शीतल और तर द्रव्य, स्नेह, फल और मेवे आदि। प्रतिनिधि–माहूदाना। मात्रा–सत(उसारा) १२० मि०ग्रा० से १ ग्राम या १ रत्ती से १ माशा तक; जड़ २ ग्राम या २ माशे तक; फूल और फल ३.५ ग्राम (३॥ माशे) तक, इन्हें निवारण द्रव्यके साथ मिलाकर उपयोगमें लें।

●

(१४३) कीडामारी

फ़ैमिली : आरीस्टोलोकिआसे (Family : Aristolochiaceae)

नाम—(हिं०) कीड़ामारी; (सं०) कीटमारी, कीटारि, धूम्रपत्रा (रा०नि०); (म०) कीडामार (बम्ब०); (गु०) कीड़ामारी; (मा०) गंधण, कीड़ामारी; (ले०) आरिस्टोलोकिआ ब्राक्टेआटा (**Aristolochia bracteata** Retz.)।

उत्पत्तिस्थान—बंगाल, गंगाका उत्तरी मैदान, बुन्देलखण्ड, सिंध, कोंकण, उत्तरसरकार, कर्नाटक आदि।

वर्णन—एक क्षुद्र प्रसरी वनस्पति, जो इसरौलकी एक दूसरी जातिकी लता है। इसके पत्र वृक्काकार या चौड़े, लट्वाकार और उनके अधस्तल धूम्रवत् श्वेताभ होते हैं। फूल किरमिजी होता है। फल १·२५ सें० मी० से २·५ सें०मी० (½-१ इंच) लम्बा, १·२५ सें० मी० (१/२ इञ्च) चौड़ा और ६ फांकवाला होता है। समग्र लताका स्वाद तिक्त होता है।

उपयुक्त अंग—पंचांग। मात्रा–१·५ ग्रामसे ३ ग्राम (१॥-३ माशे)।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें गरम और खुश्क। आयुर्वेदमतसे उष्णवीर्य (रा० नि०)।

गुण-कर्म तथा उपयोग—यह विरेचक, कृमिघ्न और आर्तवजनन तथा उदरकी कठोरता, कफज्वर और शीतपूर्व ज्वरोंमें उपकारी है। यह पिच्छिल द्रवोंको संधियोंसे निकालती तथा उदरकृमियोंको नष्ट करती है। यही नहीं, इसके पेटके ऊपर लेप करनेसे भी कृमि नष्ट होते हैं। यह कफज ग्रंथियोंको पिघलाती है; फोड़ों, क्षतों और

उनमें पड़े कृमियोंको भी नष्ट करती है। इसके पत्रस्वरसमें रूई तर करके नासिकाके भीतर स्थापना करनेसे नासागत अर्श (नाकड़ा) कट जाता है। पत्तियोंको कुचलकर रेंडीका तेल मिलाकर लगानेसे शिशुओंके पैरका पामा (Eczema) आराम होता है। केंचुओंको निकालनेके लिए जड़का काढ़ा पिलाते हैं।

आयुर्वेदीय मत—कीड़ामारी (धूम्रपत्रा) तिक्त, उष्णवीर्य, रुचिकारक, दीपन तथा वात, कफ, शोथ, कृमि, खाँसी और विषको दूर करनेवाली है (शो०नि०; रा०नि०)।

नव्यमत—कीडामारी कडुई, कटुपौष्टिक, स्रंसन, कृमिघ्न, गर्भाशयोत्तेजक, स्वेदजनन, पर्यायज्वरप्रतिबंधक और विषघ्न है। कीडामारीसे गर्भाशयका संकोचन होता है और शीघ्र प्रसव होता है। अनार्तवमें स्त्रीको विशेषतः पाण्डुरोग और मलावरोध हो तो कीड़ामारीसे लाभ होता है। इसका ज्वरघ्न और स्वेदजनन गुण प्रशंसनीय है। विषमज्वरमें इसे कालीमिर्चके साथ देते हैं। इससे पेटके कृमि मरकर निकल जाते हैं। व्रणान्तर्गत कृमिनाशनार्थ इसका रस व्रण पर लगाते हैं।

गुण-कर्म तथा उपयोग—उष्ण शिरःशूलमें इसका लेप गुणकारक है। यह वमन, पित्तकी उष्णता, खाँसी, रक्तविकार और विषके प्रभावको नष्ट करती है। तेलमें इसके फूलोंको बसाकर तेल तैयार करनेसे वह अत्यंत सुगंधित होता है। यह हृदय एवं शीतल मस्तिष्कको शक्ति देता है। चमेलीके तेलकी अपेक्षया इसे गरम बतलाते हैं। इस तेलमें सिरका और नीबूका रस मिलाकर मलनेसे खुजली मिटती है।

(१४४) कुंद

फ़ैमिली : ओलेआसे (Family : Oleaceae)

नाम—(हिं०) कुंद, कुंदी, जंगली रायबेल; (सं०) कुन्दः; (बं०) बड़ा कुंद; (गु०) मोंगरो; (बम्ब०) कुंदी; (ले०) जास्मीनुम पूबेसेन्स (**Jasminum pubescence** Willd.)।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्षके उद्यान।

वर्णन—एक पुष्पलता जो दूसरे वृक्षोंपर चढ़ती है। फूल चमेलीकी तरह होता है और ऐसे समयमें इसमें फूल आता है, जबकि इतर सुगंधित फूल बेला, मोतिया, मोगरा और चमेली आदि नहीं होते। इसके फूलमें सुगंध होती है, परन्तु कम होती है। मतांतरसे यह एक प्रकारकी 'नेवाड़ी' है, जो चमेलीकी तरह और निर्गंध होती है।

प्रकृति—शीत एवं रूक्ष। हकीम शरीफ खाँ महोदय कुंदके फूलको गरम बतलाते हैं।

(१४५) कुकरौंधा

फ़ैमिली : कॉम्पोजिटी (Family : Compositae)

नाम—(हिं०) कुकरौंधा, ककरोंदा, कुकरछदी; (सं०) कुक्कुरद्रु (कुकुन्दर); (बं०) कुकुरशोंका; (म०) कुकुरवंदा; (द०) दीबारीमूली; (गु०) कोकरोंदा; (ले०) ब्लूमेआ बाल्सामीफ़ेरा (**Blumea balsamifera** DC.); ब्लूमेआ लासेरा (**B. lacera** DC.)।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष।

वर्णन—यह एक कर्पूरगंधी क्षुद्र वनस्पति है। पत्र कासनीपत्रके समान, किन्तु उससे दलदार और रोईदार होते हैं और इनसे तीव्र गन्ध आती है। पत्र प्रथमतः जड़से निकलकर भूमिपर फैल जाते हैं। इसके उपरांत उनके मध्यसे तना और शाखायें निकलती हैं। पौधेकी ऊँचाई ६७·५ सें० मी० से ९० सें०मी० (३ या ४ बित्ता) या इससे न्यूनाधिक होती है। फूल छोटे और पीले प्रियदर्शन होते हैं। फूल खिलनेके बाद रुई जैसे बारीक रेशे निकलते हैं। बीज क्षुद्र (बारीक), काले और शकायिककी बोंडी जैसे एक रोंगटेदार कोषके भीतर होते हैं। जड़ बारीक, सफेद और स्वादरहित होती है। यह दीवारके नीचे सायादार, उजाड़ और गन्दी जगहोंमें वर्षान्तमें उत्पन्न होता है।

रासायनिक संगठन—इसमें पुष्कल कपूर होता है, जिसे 'पत्रीकपूर' या 'नागीकपूर' कहते हैं।

उपयुक्त अंग—पत्र, मूल, बीज और पंचांग।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम और खुश्क (रूक्ष)।

गुण-कर्म—कुकरौंधा शोथहर, उदरकृमिनाशक, प्रकृतिको मृदु करता (सर), खूनी और बादी दोनों प्रकारके बवासीरको नष्ट करता और पागल कुत्तेके विष (जलसंत्रास रोग)को दूर करनेके लिए गुणदायक बतलाया जाता है। यह नेत्राभिष्यंदमें भी लाभकारी है।

उपयोग—इसके पत्तोंका रस निचोड़कर नेत्रके भीतर बार-बार आश्च्योतन करनेसे नेत्राभिष्यंद (आशोब-चश्म) आराम होता है। शिशुओंकी गुदामें इसका रस टपकानेसे चुरने (सूत्रकृमि) नष्ट हो जाते हैं। इसके पत्तोंपर घी लगाकर गरम करके बाँधनेसे सूजन उतर जाती है। इसके पत्तोंका रस निचोड़कर अर्शांकुरोंपर लगाते हैं। आंतरिक रूपसे जलोदर, अर्श और उदरकृमि, इनको नष्ट करनेके लिए इसका रस पिलाते हैं। इसके पत्रस्वरसको, पकाकर गाढ़ा होनेपर कालीमिर्चका बारीक चूर्ण मिलाकर गोलियाँ बनाते हैं और वातार्श तथा रक्तार्शमें खिलाते हैं। कुकुरौंधाके पत्र और गेरूकी गोलियाँ बनाकर भी अर्शमें खिलाते हैं। इसकी जड़ १२ ग्राम (१ तोला)की मात्रामें पागल कुत्ता काटे हुएको खिलाते हैं। इससे क़ै आती है। अहितकर–फुफ्फुस और कंठके रोगोंमें। निवारण–कालीमिर्च और मधु। प्रतिनिधि–एक भेद दूसरे भेदका। मात्रा–पत्रस्वरस ११.६ ग्राम (१ तो०)।

आयुर्वेदीय मत—कुकुरौंधा कटु, तिक्त, उष्ण, ज्वरनाशक तथा रुधिरविकार, कफ, दाह और तृषाको दूर करने वाला है। इसकी ताजी जड़को मुंहमें रखनेसे मुँहके रोग दूर होते हैं (नि० र०)।

नव्यमत—कुकरौंधाकी जातियोंमें न्यूनाधिक मात्रामें दीपन, वातहर, स्वेदजनन, मूत्रजनन, कासहर, कफघ्न, संकोचविकासप्रतिबन्धक (आक्षेपहर), संग्राहक, कृमिघ्न और वेदनास्थापनके गुण होते हैं। अत्यार्तव, रक्तातिसार तथा अर्शमें इसका उपयोग होता है।

●

(१४६) कुचला

फ़ैमिली : लोगानिआसे (Family : Loganiaceae)

नाम—(हिं०) कुचला, कुचिला; (अ०) अज़(ज़ा)राक़ी, फ़ल्समाही (मछलीका सेहरा), खानिक़ुल् कल्ब (कुत्तेका गला घोंटनेवाला अर्थात् हलाक़ करनेवाला या मारनेवाला), हब्बुल् ग़ुराब (कागफल); (फा०) कुचूला, फ़ुलूसे माही; (सं०) कुपीलु, काकपीलु, कारस्कर, विषतिन्दुक; (म०) काजरा; (गु०) झेरकचोंला (केचिला); (बं०) कुँचिला; (पं०) कागफल; (ले०) स्ट्रीक्नोस नुक्सवॉमिका (**Strychnos nux-vomica** Linn.); (अं०) नक्स-वॉमिका (Nux-vomica), वामिट नट (Vomit-nut), डॉग पॉइज़न (Dog poison)।

वक्तव्य—अंग्रेजी 'नक्सवॉमिका' और 'वॉमिटनट' संज्ञाका अर्थ 'अल्ज़ौजुल् मुक़ई' या 'ज़ौज़ुल्क़ै' (इ०बै०) अर्थात् 'वामकास्थि' है। इसीलिए उत्तरकालीन और वर्तमान मिश्र देशीय यूनानी हकीमोंने अपने ग्रन्थोंमें 'जौज़ुलक़ै'को कुचिला (नक्सवामिका)का पर्याय लिखा है। परन्तु पुराकालीन अरबी-यूनानी हकीम रवृअ यमानी (Trichilia emetica)को ज़ौज़ुल्क़ै कहते थे और भारतीय मुसलमान हकीम 'जौज़ेकौसल' अर्थात् मैनफल (**Randia dumetorum**)को जौज़ुल्क़ै कहते हैं। सुतरां पुराकालीन अरबी-यूनानी हकीमों और भारतीय मुसलमान हकीमोंके जौज़ुलक़ै यद्यपि दो भिन्न द्रव्य हैं तथापि वे गुणकर्ममें सर्वथा अभिन्न हैं; क्योंकि इन उभय द्रव्योंमें सैंपोनिन नामक सत्व विद्यमान होता है। परन्तु वर्तमान मिश्रदेशीय हकीमोंका ज़ौज़ुल्क़ै (कुचिला) पूर्वोक्त उभय द्रव्योंसे सर्वथा भिन्न और एक विषैला द्रव्य है। कुत्तोंके लिए प्रसिद्ध विष होनेसे इसे अरबीमें 'क़ातिलुल्कल्ब (श्वानघातक)' और 'ख़ानिक़ुल् कल्ब' और अंग्रेजीमें 'डॉग प्वाइज़न (श्वाविष)' कहते हैं। इसका प्रयोग कौओंको मारनेके लिए होनेसे अरबीमें इसे 'हब्बुल्ग़ुराब (कौओंकी गोली या कागबीज)' कहते हैं। 'अज़ाराक़ा' इसकी सुरियानी (Syrian) संज्ञा है। स्ट्रिक्नोससे, जिसका शुद्ध यूनानी रूप 'स्ट्रुख्नोस' है, काकमाची (Nightshade)का तात्पर्य है। अस्तु, प्राचीन यूनानी काकमाची जाति (जीनस नाइटशेड) या सूची (ऐट्रोपा)के अर्थमें इस शब्दका व्यवहार करते थे। ईसवी सन्‌की सोलहवीं बल्कि सत्रहवीं शताब्दी तक भी यूरोपमें स्ट्रिक्नोसको ऐट्रोपाका पर्याय समझते रहे; किन्तु अधुना इस शब्दका व्यवहार कारस्करादिवर्गके अर्थमें होता है।

इतिहास—प्राचीन यूनानी वैद्योंको उक्त ओषधि ज्ञात न थी। डॉ० फ्लकीजर स्वनिर्मित फार्माकोग्राफिया (ओषधिका इतिवृत्त)में लिखते हैं, कि प्राचीन यूनानी एवं यूरूपीय वैद्योंको इस ओषधिका ज्ञान नहीं था। संभवतः अरबी यूनानी हकीमोंने इसका समावेश चिकित्सामें किया। यद्यपि कुचला भारतवर्षमें होता है. परन्तु फार्माकोग्राफिया ईंडिका (भारतीय ओषधियोंका इतिवृत्त)के रचयिता डॉक्टर डाइमॉकके कथनानुसार प्राचीनकालमें भारतवर्षमें ओषधि रूपमें प्रयुक्त नहीं होता था। कारण प्राचीन वैद्यकीय ग्रंथोंमें इसका उल्लेख नहीं है। अलबत्ता शार्ङ्गधर वैद्यने विषमुष्टिके नामसे जिस द्रव्यका उल्लेख किया है, कोई-कोई उसे कुचिला समझते हैं। किन्तु भावप्रकाश निघंटुके लेखकके मतसे इसके फल खाये जाते हैं और संस्कृतमें इसे 'डोडिका' और हिन्दीमें 'करेरुआ' कहते हैं। हाँ उक्त द्रव्यका हिन्दी नाम 'कुचला (कचूला)' फारसीके कतिपय प्राचीन ग्रन्थोंमें पाया जाता है इत्यादि। ईसवी सन्‌की सोलहवीं शतीमें उक्त द्रव्यका ज्ञान यूरुपवासियों विशेषकर जर्मनवासियोंको हुआ और लगभग सन् १५४० ई०में डॉ० विलियरी इसकारुडस ने इसका खोजपूर्ण विवरण किया और सन् १९४० ई०में इंगलैंडके औषधविक्रेताओंकी दुक़ानोंमें यह ओषधि बिकने लगी। परन्तु उक्त कालमें अधिकतर यह कुत्तों, बिल्लियों और कौओंके मारनेके लिए ही प्रयुक्त होती थी, औषधरूपेण इसका प्रयोग नहीं होता था।

शङ्का-समाधान—फार्माकोग्राफिया इण्डिका नामक स्वरचित ग्रन्थकी द्वितीय संचिका पृष्ठ ४६० पर नक्सवॉमिकाके वर्णनप्रसंगमें डॉ० विलियम डॉइमॉक महोदय शैखुर्रईस बू-अलीसीना का वचन उद्धृत करते हुए लिखते हैं कि जनाब शैखने अज़ाराक़ी को 'ज़ुब्दुल्बहर (एक प्रकारका समुद्रफेन)' लिखा है। मुझे इससे अत्यंत आश्चर्य हुआ कि शैख़ने ऐसी त्रुटि की। परन्तु फिर अन्यान्य ग्रन्थोंका ध्यानपूर्वक परिशीलन, आलोड़न करनेसे ज्ञात हुआ कि स्वयं डॉ० डाइमॉक महोदयको ही शंका-भ्रम हुआ। कारण उन्होंने अज़ाराफ़ी (اذارفی)को जिसका अर्थ समुद्रफेन है अज़ाराक़ी (اذارقی) पढ़ लिया और एक बिंदुकी त्रुटिसे शैखके व्यक्तित्वपर अंगुलिनिर्देश किया। खैर मनुष्य प्रमाद एवं विस्मरणका एक समवाय है—अस्तु, उन्हें भी क्षम्य समझना चाहिए।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्षके उष्णप्रधान प्रदेशों, विशेषतया मद्रास प्रांतमें, मानभूमके समीपवर्ती वनों, त्रावणकार, कोचीन और कारोमंडल तटोंपर इसके वृक्ष प्रायः जंगली और विपुल होते हैं। यह बंगालमें बहुत कम होता है, परन्तु मदरास और आसाममें विपुल होता है। लंका, कोचीन, चीन और पूर्वी भारतीय द्वीपसमूहमें भी होता है। मीरजापुरमें अघोरीके किलाके समीप चोपनमें इसके वृक्ष देखनेको मिलते हैं।

वर्णन—यह एक बड़े वृक्षके फलके बीज हैं। फल तेंदूँकी तरह, बीज गोल, चपटे टिकियोंकी तरह, २·५ सें० मी० या एक इञ्च व्यासमें (अधेलाके बराबर) और ६·२५ मि० मी० (चौथाई इञ्च) मोटा होता है। बाहरसे बीजकी रंगत खाकी होती है और छिलकेपर रेशमकी भाँति छोटे-छोटे सफेद और चमकदार घने रोंगटे होते हैं। भीतरकी गिरी अर्धस्वच्छ, लचीली, गंधरहित और अत्यन्त तिक्त होती है। इसकी रचना शृंगके समान होती है। इसके दो दलोंके भीतर एक मोटा-सा पर्दा निकलता है जिसे 'जीभी' कहते हैं।

रासायनिक संगठन—बीजोंमें स्ट्रिक्नीन ०·९से १·९ बल्कि २ प्रतिशत तक (भिन्न-भिन्न प्रकारके बीजोंमें इसका प्रमाण भिन्न-भिन्न होता है), ब्रूसीन ०·५से १·५ और कभी ३ प्रतिशत तक, आइगेस्युरिक अम्ल जिसमें स्ट्रिक्नीन और ब्रूसीन दोनों होते हैं; लोगेनिन एक निष्क्रिय ग्लूकोसाइड, वसा, शर्करा, निर्यास, श्वेतसार और मोम प्रभृति द्रव्य होते हैं। काष्ठ, वल्कल और पत्रमें ब्रूसीन होता है; परन्तु स्ट्रिक्नीनका अभाव होता है। नये वृक्षकी ताजी छालमें अत्यधिक ब्रूसीन (३·१ प्रतिशत) होती है। पत्रमें यह १·३ प्रतिशत होता है।

उपयुक्त अंग—वृक्ष वल्कल और बीज।

शुद्धि—कुचला विष है। इसलिए यूनानी वैद्यकमें शुद्ध किये हुए कुचलाका ही प्रयोग करनेका विधान है। इसके शोधनकी विधि मेरे लिखे 'यूनानी द्रव्य गुणविज्ञान' ग्रंथमें देखें। इसका चूर्ण बहुत मुश्किलसे होता है। इसलिए इनको सर्वप्रथम पानीमें भिगोकर मुलायम कर लेते हैं। फिर छिलका उतारकर सोहान वा रेती से रेतकर बुरादा करके या कूट-पीसकर चूर्ण बनाकर उपयोग करते हैं।

कल्प तथा योग—रोग़न कुचला, हब्ब कुचला, हब्ब अज़ाराक़ी, दवाए अज़ाराक़ी और माजून अज़ाराक़ी आदि। प्रकृति—तीसरे दर्जेमें गरम और खुश्क है। आयुर्वेदीय मतसे उष्णवीर्य (रा० नि०) है।

गुणकर्म—कफज और वातज व्याधिनाशक, दीपन, वातनाड़ीबलदायक, सारक, उत्तेजक, हृदयबलदायक, श्लेष्मनिःसारक, वाजीकर, बस्तिबलदायक, विलयन, रक्तप्रसादन और त्वग्रोगनाशक है।

उपयोग—पक्षवध, अर्दित, आमवात और कटिशूल आदि जैसे कफज और वातज व्याधियोंमें तथा आमाशय, वातनाडी और वाजीकरणके लिए उसका उपयोग करते हैं। अरोचक और अन्त्रकी निर्बलताके कारण रहनेवाले कब्ज (आनाह) में इसका उपयोग किया जाता है। कफष्ठीवनकर्ता एवं कफोत्सारि होनेसे यह कास, कृच्छ्रश्वास और उरःक्षतरोग (मर्जे सिल) में भी प्रयुक्त होता है। वृद्धावस्थाके कारण होनेवाले बहुमूत्रको रोकने और बच्चोंके बस्ति-दौर्बल्यनिवारणके लिए इसका उपयोग करते हैं। श्वयथुविलयन होनेसे शोथ विशेषतः प्लेगकी ग्रन्थियों (सूजन) पर इसको घिसकर लेप करते हैं। इसको तिलके तेलमें जलाकर और तेलको छानकर मर्दन करनेसे आमवात आदिमें उपकार होता है। रक्तप्रसादन होनेसे फिरंग जैसे रक्तविकारजन्य रोगोंमें इसे खिलाया जाता है। माजून लना और हब्बे आज़ाराक़ी इसके प्रसिद्ध योग हैं जिनका कुचला प्रधान उपादान है।

कुचलाके विषलक्षण और उसकी चिकित्सा—अशोधित या औषधीय मात्रासे अधिक (३ माशे) कुचला सेवनसे ये लक्षण होते हैं। थोड़ी देर बाद अंग टूटने लगता है, पीठ और हाथ-पाँवमें दर्द होने लगता है; फिर संपूर्ण शरीरमें आक्षेप प्रारम्भ हो जाता है; नाड़ीकी गति तीव्र हो जाती है और शरीरका तापमान किसी कदर बढ़ जाता है। इसके उपरांत शरीरपर पसीना आ जाता है। रोगी थकान एवं श्रान्ति अनुभव करने लगता है। इसके बाद आक्षेपका वेग शीघ्र-शीघ्र और अत्यन्त तीव्र होने लगता है। नेत्रगोलक बिल्कुल बाहरको निकल आते हैं और भय एवं सन्नाटा छा जाता हैं। जबड़ेकी पेशियोंमें भी आक्षेप होने लगता है और पृष्ठकी पेशियोंके आक्षेपग्रस्त होनेसे संपूर्ण शरीर धनुषकी भाँति वक्राकार, केवल रोगीका शिर और एड़ी चारपाई पर लगी रहती है। अंतमें आक्षेपकी अवस्थामें श्वास बन्द होकर रोगीकी मृत्यु होती है।

विषकी चिकित्सा—आक्षेपसे पूर्व प्रथमतः रोगीको गायका घी और दूध बारम्बार पिलाकर वमन करायें या स्टमक पम्प द्वारा गरम जलसे बारम्बार आमाशय को धोकर खूब साफ कर दें। इसके उपरान्त उपयोगी विषघ्न औषधियोंको दूध, अण्डेकी सफेदी या किसी स्नेहमें मिलाकर पिलायें।

अहितकर—अशोधित कुचला अधिक प्रमाणमें सेवन करानेसे आक्षेप एवं बुद्धिविपर्यय उत्पन्न कर देता है। इसके बाहरी प्रयोगसे छाले (विस्फोट) पड़ जाते हैं। निवारण–शर्करा, लबाब और समस्त प्रकारके स्नेह। प्रतिनिधि-भिलावाँ। मात्रा—६० मि० ग्रा० से २५० मि० ग्रा० ($\frac{१}{२}$ रत्तीसे २ रत्ती) तक।

आयुर्वेदीय मत—कुचला (कारस्कर) कटु, तिक्त, उष्णवीर्य तथा कुष्ठ, वातरोग, रक्तविकार, खाज, कफ, आम, अर्श और व्रणको दूर करनेवाला है। (रा० नि०)।

नव्यमत—कुचला तिक्त, दीपन, पाचन, कटुपौष्टिक, नियतकालिकज्वरप्रतिबन्धक, बल्य और बाजीकर है। बीजका लेप पूतिहर और वेदनास्थापन है। इससे शरीरकी सब क्रियाएँ उत्तेजित होती हैं। नाड़ीसंस्थानके ऊपर इसकी विशेष क्रिया होती हैं। मस्तिष्कके ऊपर तो इसकी विशेष क्रिया नहीं होती, परन्तु मस्तिष्कके नीचे जो जीवनीय केन्द्र हैं, उनपर और पृष्ठवंशकी नाड़ियोंपर इसकी विशेष उत्तेजक क्रिया होती है। श्वासोच्छ्वासके केन्द्रस्थानको उत्तेजन मिलनेसे रोगीकी श्वास लेनेकी शक्ति बढ़ती है, भली-भाँति खाँसा जाता है और कफ गिरता है। हृदय और रक्तवाहिनियोंके केन्द्रस्थानको उत्तेजन मिलनेसे हृदयकी संकोचन-विकासन क्रिया ठीक होती हैं। रक्तवाहिनियोंकी स्थिति सुधरती है और रक्तका दबाव बढ़ता है। कुचला शीतज्वरमें गुणकारक है। इससे ज्वरकी बारी रुकती है और ज्वरके दुष्परिणाम नहीं होते। इससे आमाशय की शक्ति बढ़ती है और पाचनक्रिया सुधरती है। अतएव कुपचन और जीर्ण अभिष्यंदयुक्त आमाशयके रोगोंमें इसे देते हैं। आमाशयकी अपेक्षया आँतोंपर विशेषतः बड़ी आँत पर इसकी प्रबल क्रिया होती है। इससे आँतों की चलनशक्ति बढ़ती है। आँतों की शिथिलतामें सुगंधित द्रव्योंके साथ इसे देते हैं। इसे अल्पप्रमाणमें देनेसे कष्ट दूर होता है। अर्दित, अर्धांगवात आदि नाड़ियोंके रोगोंमें जो गतिभ्रंश और ज्ञानभ्रंश होता है, उसमें भी इसे देते हैं। शिशुओंका शय्यामूत्र, हस्तमैथुनके अनन्तर अपने-आप वीर्यस्खलन, अतिमैथुनसे उत्पन्न नपुंसकता, मूत्राशयकी अशक्तता, मानसिक थकावटसे उत्पन्न अनिद्रा इन रोगोंमें इससे लाभ होता है। हृदयमें शिथिलता आनेसे हृदयका स्पन्दन ठीक सुननेमें आता हो, नाड़ीको गति मन्द-अतित्वरित किंवा खंडित होती हो, जरासा श्रम करने पर पसीना आता हो और दम भर आता हो, उक्त अवस्थामें इसका प्रयोग आवश्यक है। हृत्पटलके जीर्णरोगोंमें हृदयमें शिथिलता आती है और हृदय बड़ा होता है, हाथ-पाँवमें सूजन आती है, पेटमें जल उत्पन्न होता है, यकृत् बड़ा होता है, मूत्र कम और लाल रंगका होता है, दस्त साफ नहीं होता, अन्न नहीं पचता पेट फूलता है, सोनेसे जी घबराता है, इसलिये दिन-रात बैठा रहना पड़ता है। उक्त अवस्थाको हृदयोदर कहते हैं। इसमें कुचलाका अर्क देते हैं और साथमें इतर सहायक औषध, जैसे कफकी प्रधानता हो तो कफघ्न द्रव्य, हींग और कपूर; जलशोथकी प्रधानता हो तो स्वेदजनन, मूत्रजनन और रेचनद्रव्य तथा कॉफी आदि देना चाहिये। फुफ्फुसके तीव्र रोगोंमें जब श्वासक्रिया ठीक नहीं चलती, जी घबराता है और रोगी थकने लगता है, उस समय इसे देते हैं, श्वासनलिकाशोथ; फुफ्फुसशोथ और दमेमें उत्तेजक कफघ्न औषधियोंके साथ इसे देते हैं। राजयक्ष्मामें इससे रात्रिको स्वेद आना बन्द होता है।

●

(१४८; १४९) कुट (ठ), कड़ुआ कुट

फ़ैमिली : कॉम्पोजीटी (Family : Compositae)

मीठा कुट—

नाम—क़ुट (हिं०) कुट (ठ), कूट, मीठाकूट; (अ०) अल्क़ुस्त (इ० बैं०), क़ुस्त, कुस्ते अरबी, कुस्ते बहरी, कुस्तुल् हुलुव्व; (फा०) कुस्ते शीरीं, कुस्ते सफ़ेद; (ले०) ईरिस वि० (Iris sp.); (अं०) ऑरिस रूट (Orris root); (यू०) Kostos, Costus (D. 1. 15)।

वक्तव्य—यह वास्तविक कुटसे भिन्न अरबवालोंका कुट है। यह ईरिडे फैमिलीके एक गुल्मकी जड़ है जो रोम और ईरान आदि देशोंमें होती है। इसे 'ईरसा' या 'सौसनकी जड़' कहते हैं।

कड़ुआ कुट—(हिं०) कुट (ठ), कड़वा कुट, कूठ; (अ०) क़ुस्ते हिन्दी, कुस्तुल्मुर्र, (फा०) क़ुस्ते तल्ख (-स्याह), कोश्तः; (यू०) कोस्टोस (Kostos); (सं०) कुष्ट, काश्मीरज; (बं०) कुड़, पाचक; (पं०; क०) कुट (ठ); (का०) पोस्तरवैं; (बम्ब०) कुट, औपलेट; (म०) कुष्ट; (गु०) कठ, उपलेट; (कर्णाटकी) कोष्ट; (ते०) गोश्नमु; (ता०) गोश्तम्; (लें०) **साउस्सूरेआ लाप्पा Saussurea Lappa** C. B. Cl.। (आप्लोटाक्सिस आउरीकुलाटा **Aplotaxis auriculata** DC.; कोस्टुस आराबिकुस **Costus arabicus** Linn.); (अं०) दी कॉस्टस (The Costus), इण्डियन कास्टस (Indian Costus)।

वक्तव्य—यह मुण्डीकुल (Compositae Family)का कुट ही वास्तविक कुट है। कुट या कूठ आदि संज्ञाएँ सीधे संस्कृत 'कुष्ठ'से अथवा संस्कृतसे अन्य भाषाओंके द्वारा व्युत्पन्न हुई हैं। उनमें अरबी 'क़ुस्त' तो संस्कृत कुष्ठ ही है। अन्तर केवल यह है कि उसमें 'ठकार'की जगह जिसका अरबी या फारसी वर्णमालामें अभाव है, 'तकार' हो गया है। जहाँ तक ज्ञात होता है अरबी क़ुस्त संस्कृत कुष्ठसे यूनानी 'कोष्टोस (क़ुस्तुस)' द्वारा अथवा सुरयानी 'क़ोश्ता' या फारसी 'कोश्तः' द्वारा व्युत्पन्न है।

कुट क्या सन्दिग्ध औषधि है?

यह अत्यन्त प्रसिद्ध वस्तु है और इसमें सुगन्ध होती है तथा यह कृमिघ्न गुण रखती है। प्रायः इसकी गंधके समीप कीड़े नहीं आते। रेशमो और ऊनी वस्त्रोंमें रखनेसे कोड़े नहीं लगते। इसीलिए इसका उपयोग चीनमें रेशमकी रक्षाके लिये होता है तथा वहाँ इसे धूपकी सामग्रीके साथ मिलाकर देवस्थानोंको सुगन्धित करनेके लिये अधिक उपयोग में लाते हैं। इसी से यह चीन देशमें अधिक जाती है। इसका उत्पत्तिस्थान एकमात्र चम्बा और जम्बू कश्मीर स्टेट था। इसे वहांसे ठेकेदार ही खरीद सकते थे अन्य व्यक्ति नहीं। कुष्टके विक्रयकी रोक-थामके लिए जम्बू कश्मीर स्टेटने सन् १९२२ ई०में पंजाब गवर्नमेंट द्वारा विशेष अधिकार प्राप्त किये और कानून बनवाया। इसीसे कुठको प्रत्येक व्यक्ति न ला सकता था न बेंच सकता था। अभी यह सामान्यतया महँगी रहती थी। किन्तु, आज कोई ६-७ वर्षके भीतर स्वर्गवासी लाल धन्वन्तरि प्रसादजी कविराज इसका बीज जम्बूकश्मीर स्टेटसे किसी प्रकार प्राप्त कर सके और उन्होंने मण्डी स्टेट, टिहरी स्टेट, चम्बा स्टेट तथा कांगड़ा जिलाके लाहुल प्रान्तमें इसके बीजोंको भेजकर वहाँ खेती करवायी। परिणाम यह हुआ कि पंजाब गवर्नमेन्टने इसके विक्रयका प्रतिबन्ध पंजाबसे उठा लिया। अब प्रत्येक व्यक्ति कश्मीर स्टेटसे बाहर कहीं लगा सकता, रख सकता और बिना परमिट (पास)के बेंच सकता है। इसका बीज अन्य स्थानोंमें पहुँच जानेसे इन दो-तीन वर्षोंमें इसकी खेती काफी बढ़ी। इसी कारण अब कुठ बाजारमें काफी आने लगा है जिससे इसका बाजारभाव भी गिर गया है।

यद्यपि कुठका पूर्ण अभाव कभी नहीं हुआ, तो भी ठेका होने और चीनमें जानेके कारण भारत में प्रायः कम रह पाती थी। इसीलिये महँगी और बहुत स्थानोंमें अप्राप्य रही, जब जो चीज महँगी हो और प्रायः कठिनतासे मिले और माँग अधिक हो, तो दूकानदार उसके स्थानमें दूसरी चीज देवे तथा नकली चीजें मिलाकर बेंचनेका प्रपंच करते हैं। इसीलिए पंजाबको छोड़कर प्रायः अन्य प्रान्तोंमें वैद्योंको यह मिलावटका या नकली मिलता था। अभी, "कुठ क्या है? कैसा होता है?" इसके सम्बन्धमें वैद्यसमुदाय सन्देहमें रहता आया है। यद्यपि यह कभी सन्दिग्ध नहीं था। कश्मीर स्टेटके जंगलातके महकमें से पता चलता है कि वहाँ ठेके द्वारा इसका विक्रय सन् १८८०-८१ ई० से होता चला आ रहा है। फिर आज तक वैद्य इसको सन्दिग्धकहनेका साहस करें तो उन्हें क्या कहा जाय, यह मेरी समझमें नहीं आता।

उत्पत्तिस्थान—इसका मूल उत्पत्तिस्थान जिला हजारा, कश्मीर स्टेटका वारामूला वाला प्रान्त, कष्टवार, भद्रवार प्रान्त तथा चम्बा स्टेटका मनमहेस और यांगी-की-जोत नामके स्थान थे। हजारों वर्षोंसे इन्हीं प्रदेशोंके हिमाच्छादित स्थानोंमें और उसके आस-पास होता चला आया है। इसकी उत्पत्ति प्रायः सात हजार फुटसे लेकर बारह हजार फुटको हिमाच्छादित गिरिशिखरपर देखी जाती है। परीक्षाओंसे सिद्ध हो गया है कि यह हिमालयके किसी भी ऊँचे स्थानपर लगानेसे लग जाती है। इसीलिए अब कश्मीरसे लेकर टिहरी गढ़वाल तक फैल गयी है। यह वनस्पति बहुत प्राचीन वनस्पतियोंमेंसे है। इसका उल्लेख अथर्ववेदमें कई जगह आया है।

वक्तव्य—यहाँ यह स्मरण रखना चाहिये कि यूनानी निघण्टुओंमें वर्णित क़ुस्तके अन्यान्य भेद तो यमन, इरान, रोम और भारतीय द्वीपसमूहों अर्थात् विदेशोंमें अवश्य होते हैं, किन्तु वास्तविक कुष्ट जिसका यहाँ वर्णन किया जा रहा है, केवल भारतवर्ष, वह भी विशेषकर कश्मीरमें होता है। इसलिये उन्होंने 'क़ुस्ते हिन्दी (Indian Costus)' नामसे इसका उल्लेख किया यह कुष्ठ प्राचीन कालसे ही मसाला आदि अन्यान्य द्रव्योंकी भाँति भारतसे बाहर जानेवाले निर्यात द्रव्यावलीकी तालिकामें समाविष्ट था। तालीफ़शरीफ़ीके अनुसार भी तिक्त कुष्ट हिन्दुस्तानमें पुष्कल होता है। अरब व्यापारी इसे यहाँसे यूरोप आदि पश्चिमी देशोंमें ले जाते थे। अस्तु, बहुत काल तक वहाँके निवासी इसे अरबकी पैदावार समझते रहे। इसीलिये इसका एक अँगरेजी नाम **अरेबियन कॉस्टस** (Arabian Costus) लिखा मिलता है। परन्तु 'क़ुस्ते अरबी (अरबी कुट)' इससे सर्वथा भिन्न द्रव्य है। इस बातको स्वयं अरबी ग्रन्थकार स्वीकार करते हैं।

वर्णन—इसका क्षुप ४॥–५ फुट तक सीधा उठता है और बहुवार्षिक होता है। बरफ गलनेके कुछ दिन बाद पत्र निकलने लगते हैं। जेठ-आषाढ़में अंकुर निकलते हैं और कार्तिकमें जब काफी ठंढ पड़ने लगती है, इसके पत्ते जल जाते हैं, केवल डंठल खड़े रह जाते हैं। वह भी फरवरीमें टूट-फूट जाते हैं। इसके पत्तोंकी आकृति राईके बड़े पत्तोंके समान होती हैं। पत्ता आगेसे चौड़ा और पीछेसे पतला होता चला जाता है, अर्थात् पत्ते गोपुच्छाकार होते हैं। कुछ पत्ते बीचसे तीन-चार हिस्सोंमें बँट भी जाते हैं। पत्तेके किनारे आरे सरीखे या कँगूरेदार होते हैं। पत्तेके बीचमें एक बड़ी रेखा चलती है। उसीमेंसे पत्राच्छादक और रेखाएँ निकलती हैं। पत्ता खुरदरा और वृन्त-विहीन होता है, अर्थात् पत्रदण्डी नहीं होती, मूल दण्डसे ही पत्रका भाग लगा होता है। पत्रकी चौड़ाई आगेकी ४ से ६–७ इंच तक और लम्बाई १२-१८ इञ्च तक होती है। अंकुरोदय होनेपर वह पत्ता जैसे-जैसे बढ़ता है, धरतीपर सरसों या राईकी तरह चारों ओर फैलने लगता है। तीन-चार बरसोंमें जाकर उसमेंसे ऊँटकटारा या राईके समान एक मूल तना या डंठल निकलता है जो ऊपर जाकर कुछ शाखा-प्रशाखाओंमें बँट जाता है। इसके डण्ठलकी लम्बाई चार-पाँच फुट तक चली जाती है। डण्ठल या मूल तना बीचसे रेंडकी तरह पोला रहता है। उस डण्ठलपर पत्र-रचना विषम होती है; मूलकी अपेक्षा डण्ठलपर, छोटे पत्ते होते चले जाते हैं। शाखाओंके अन्तमें तीन-तीन चार-चार फूलोंके गुच्छे निकलते हैं। फूलकी आकृति चन्द्र मल्लिका (गुलदाउदी)के समान ज्वालामुखी फूल जैसी होती है। फल अव्यक्त अवस्थामें ईषत् नील-पीत वर्णका पुष्पपत्र द्वारा छोटे-छोटे काँटोंसे युक्त होता है। फूल खिलनेपर कुछ पीला सूरजमुखीकी तरह होता है। बीजोंकी शकल भी इससे मिलती है। फूल भादोंमें खिलते हैं और कार्तिकमें बीज पककर गिरने लगते हैं। (रंगीन चित्र देखिये)।

जड़—इसकी जड़की शकल मूली-गाजरकी तरह होती है। किसी-किसी जड़में शाखाएँ भी हो जाती हैं। इसकी लम्बाई जमीनमें कभी-कभी दो-दो फुट तक चली जाती है। जड़में छोटे-छोटे तन्तु या रोएँ होते हैं जो आसपासकी भूमिमें फैल जाते हैं। उन्हीं के द्वारा यह अपना खाद्य चूसता है। इसके मूलका रंग सफेदीमायल हलका पीला होता है। उखाड़नेपर अच्छी तरह सुखाया जाय तो उसका रंग ज्योंका त्यों बना रहता है। इसे यदि पूरेका पूरा सुखा लिया जाय तो यह हरिनकी सींगकी तरह लम्बी-लम्बी सीधी झुर्रियोंमें मरोड़ खाकर और सिकुड़-

कर सूख जाता है। इसीलिये तो शास्त्रकारने "मृगश्रृङ्गोपमं कुष्ठं" अर्थात् कुठ मृगके सींगकी आकृतिका होता है और तोड़नेपर भी मृगश्रृंग जैसा तोड़में दिखाई देता है, ऐसा लिखा है। औषधमें केवल इसकी जड़ काममें ली जाती है। इसे सितम्बर और अक्टूबर महीनेमें जमीनसे खोदकर संग्रह करते हैं। इसके टेढ़े-मेढ़े बल खाये-हुए २ से ६ इञ्च लम्बे टुकड़े होते हैं जो १/२ से १॥ इञ्च मोटे होते हैं। बाहरसे ये भूरे होते हैं और उनपर लम्बाईके रुख उभरी हुई रेखाएँ होती हैं। उसका धरातल खुरदरा और कुछ-कुछ जालनुमा होता है। यह भंगुर होता है। जड़के टूटे भागपर गोंदसी लगी हुई जान पड़ती है और वह खाकी सफेद रंगका होता है। जड़ स्वादमें तिक्त और चरपरी होती है तथा उसमेंसे ईरसा (Orris root) जैसी एक विशेष प्रकारकी अत्यन्त सुरभिपूर्ण गन्ध आती है।

अरबी या मीठा कुट (क़ुस्ते अरबी)—यह सफेद या पिलाई लिये सफेद, एक जड़ है जो वजनमें हलकी, सुगन्धित और मीठी होती है। यूनानी वैद्यकमें मात्र 'क़ुस्त' संज्ञासे यही विवक्षित होता है और औषधमें अधिकतया इसीका व्यवहार होता है। यूनानी हकीम इसे 'क़ुस्ते हिन्दी (कड़ुआ कुट)'से उत्तम समझते हैं। इनके मतसे इसमें भी उत्कृष्टतर कुट वह है जो ताजी हो, कृमिभक्षित न हो, जिसमें सुगन्ध हो, जिसके चाबनेसे जिह्वामें दाह मालूम हो और जिसकी छाल पतली और नरम हो। इसमें दस वर्ष तक वीर्य शेष रहता है।

वक्तव्य—यूनानी वैद्यकमें यद्यपि 'मीठा कुट' या 'सफेद कुट' को कुट का एक भेद लिखा है, तथापि मुल्ला **नफ़ीस** के मतसे यह कुष्ठभेद नहीं, अपितु एक प्रकारके सौसनकी जड़ है जो रोम देशमें होती है। बनफ़शाके साथ इसकी खेती की जाती है। इराकमें इसकी जड़को 'बेखे बनफ़शा (बनफशा की जड़)' कहते हैं। परन्तु यह उससे भिन्न एक जड़ है जिसे 'ईरसा' या 'सोसनकी जड़' कहना चाहिये; क्योंकि अरब निवासी इसे ईरसा या सौसन कहते हैं। इसे अंगरेजीमें 'ऑरिस रूट' और इसके क्षुपको **आयरिस**(Iris Sp.) कहते हैं।

उक्त विवरणसे तथा यूनानी ग्रन्थोक्त इसके अन्यान्य भेदोंका विचार एवं उसपर लिखे गये अन्यान्य विद्वानों-के विवरणोंका गंभीर ऊहापोह एवं गवेषणात्मक अध्ययन-परिशीलन करनेपर अन्ततः यह निष्कर्ष निकलता है कि वास्तविक कुट (क़ुस्त) वस्तुतः एक ही है और वह 'भारतीय कुष्ठ' है। नामभेदसे इसे ही अरबी क़ुस्त (Arabian Costus) कहते हैं। यूनानी ग्रन्थोक्त इसके अन्यान्य भेद कुष्ठभेद नहीं, अपितु गुण या स्वरूपादिमें इससे मिलते-जुलते, किन्तु इससे सर्वथा भिन्न द्रव्य हैं। अस्तु, मैंने विस्तारभयसे उनका यहाँ उल्लेख नहीं किया है।

यूनानी हकीमोंमें इसके उपर्युक्त दोनों भेद ही अधिक प्रचलित हैं। इसलिये मैंने उनका यहाँ वर्णन कर दिया है। यद्यपि इनके अतिरिक्त इसके एक 'तीसरे' भेदका उल्लेख यूनानी निघण्टुओंमें मिलता है, जो सुर्खी मायल, भारी और सुगंधित होता है, किन्तु तिक्त नहीं होता, तथापि विषैली होनेके कारण इसका उपयोग चिकित्सामें नहीं होता।

रासायनिक संगठंन—कड़ुवे कूटमें एक उत्पत् तेल १·५%; कुष्ठोन या सॉसूरीन (Saussurine) नामक एक क्षारोद ०·०५%, राल लगभग ६·०%, अंशतः एक तिक्त पदार्थ, अल्प प्रमाणमें कषायिन (Tannin), इन्युलीन लगभग १८·० प्रतिशत, अनुत्पत् तेल, पोटैसियम नाइट्रेट और शर्करा इत्यादि द्रव्य होते हैं। पत्रमें ०·०२५% यह क्षारोद होता है और कोई उत्पत तेल नहीं होता। (इं० ड्र० इं०—चोपड़ा)।

उपयुक्त अंग—मूल। मात्रा—२५० मि० ग्रा० से १·२५ ग्राम (२ रत्ती से १० रत्ती)।

कल्प तथा योग—अमरूसिया, रोग़न क़ुस्त।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें गरम और खुश्क है।

गुण-कर्म—यह बाह्यतः लेखन, शोणितोत्क्लेशक, श्वयथुविलयन और रूक्षण कर्म करता है। आंतरिक उपयोग से यह उत्तमांगोंको बलप्रद और वातनाड़ीबलदायक है तथा फुफ्फुसोंपर कफोत्सारि कर्म करता और उरोवेदनाको

शांत करता है। अन्त्र और आमाशयपर बलदायक और वातानुलोमन कर्म करता, उदरज कृमियोंको नष्ट करता, मूत्र और आर्तवका प्रवर्तन करता तथा जरायुशूलको शमन करता है। खिलाने और लगानेसे यह कामोत्तेजक कर्म करता और जीर्ण कफज्वरोंको लाभ पहुँचाता है। **वाजीकरण** और **उत्तमाङ्गशक्तिवर्धन** इसके प्रधान कर्म हैं।

उपयोग—कुट को मधुवारिमें पीसकर झाईं और त्वचाके दाग-धब्बों तथा युवापिटिकाओंको दूर करनेके लिए लेप लगाते हैं। खालित्य विशेष (दाउस्सालब), झाईं (बरश व नमश) और गंजको **नष्ट** करने तथा रोमसंजननके लिए इसको सिरका, क़त्रान और मधुके साथ पीसकर लगाते हैं। अर्दित, पक्षाघात, अपतानक, कम्पवात, आमवात, वातरक्त और गृध्रसी जैसे शीतल रोगोंमें वेदनाको शमन करने और वातनाड़ियोंको उत्तेजन एवं शक्ति प्रदान करनेके लिए जैतून या तिलके तेलमें मिलाकर मर्दन करते हैं। आंतरिक रूपसे उपर्युक्त कफज और वात व्याधियोंमें इसे विविध प्रकारसे खिलाते हैं। कास, कृच्छ्रश्वास, उरोवेदना और पार्श्वशूलमें इसे मधुमें मिलाकर चटाते हैं। प्लीहाशोथ, जलोदर और उदरज कृमिरोगमें इसको खिलाते हैं। आर्तवप्रवर्तनके लिए इसका क्वाथ करके पिलाते हैं। जरायुशूल निवारणके लिए इसके काढ़ेमें रोगियोंको बिठाते हैं। वाजीकर औषधियोंमें योजित करके नपुंसक रोगियोंको बाह्यांतरिक रूपसे उपयोग कराते हैं। **अहितकर**—बस्ति और फुफ्फुस रोगोंके लिए। **निवारण**—गुलकंद। **प्रतिनिधि**—अकरकरा। **मात्रा**—२ ग्रामसे ३ ग्राम (२ से ३ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—कुष्ठ तिक्त, कटु, मधुर, लघु, उष्णवीर्य, लेखन, शुक्रशोधन, शुक्रल, आस्थापनोपग, वातहराभ्यङ्गोपयोगी तथा वात, कफ, कुष्ठ, विसर्प, विष, कंडू, दाह, वातरक्त, खाँसी, श्वास, हिक्का और ज्वरको दूर करनेवाला है (च० सू० अ० ४,२५; सु०सू०अ० ३८; ध०, रा० नि०; कै० नि०)। प्रायः यह लगानेमें अधिक प्रयुक्त होता है।

नव्यमत—कुष्ठ सुगन्धि, तिक्त, दीपन, पाचन, वातहर, कुछ संग्राहक, उत्तेजक, कफघ्न, संकोचविकासप्रतिबन्धक, कुछ मूत्रजनन, आर्तवजनन, आर्तवशूलप्रशमन, बाजीकर, त्वग्दोषहर, कान्तिकर, व्रणरोपण, व्रणशोधन और वेदनास्थापन है। त्वग्रोगोंमें इसको खानेको देते हैं और इसका लेप करते हैं। इससे त्वचाका रक्तानुधावन और विनिमय क्रिया सुधरती है। काँजीके साथ पीसकर लेप करनेसे सिरका दर्द बन्द होता है। दाँत ढीले होनेसे मसूढ़े दुखते हैं तब कुष्ठका चूर्ण मसूढ़ोंपर मलनेसे मसूढ़े शुद्ध होकर पीड़ा शांत होता है। व्रणपर लेप करनेसे व्रणजन्तु मरते हैं। व्रणकी शुद्धि होती है और वह शीघ्र भर आता है। व्रणको कुष्ठकी धूनी भी देते हैं। आमवातमें कुष्ठका चूर्ण रेंड़ीके तेलमें मिलाकर खिलाते हैं और सूजे हुए जोड़पर उसका लेप भी करते हैं। कुष्ठ उत्तेजक और स्वेदजनन है, इसलिए इसे ज्वरमें देते हैं। स्वेदल औषध प्रायः थकावट लानेवाले होते हैं, परंतु यह उत्तेजक और चेतनाकारक है। ज्वरमें इससे थोड़ा पेशाब भी अधिक होता है। यह उत्तेजक कफघ्न है; इसलिये खाँसीमें जब कफ अधिक आता हो तब इसे देते हैं। इससे ज्वर उतरता है, खाँसनेकी शक्ति बढ़ती है, कफ निकलने लगता है और खाँसीका जोर कम होता है। कूकरखाँसी और दमामें इसका संकोचविकासप्रतिबन्धक गुण उपयोगी होता है। जननेन्द्रिय और मूत्रेन्द्रियपर इसकी उत्तेजक क्रिया होती है। इससे दूध बढ़ता है। प्रसूतावस्थामें कुष्ठ देते हैं और प्रसूतिगृहमें कुष्ठका धूप देते हैं। इससे ऋतु साफ होता है और ऋतुकालमें होनेवाली पीड़ा कम होती है। इसलिए अनार्तव और पीड़ितार्तवमें इसे देते हैं। अपचन, कुपचन, उदरशूल, आध्मान, अतिसार और हैजेमें इससे अच्छा लाभ होता है। महामारीमें इसके फांटसे शरीरमें उष्णता आती है और नाड़ी सुधरती है। हृदयोदर और जलोदर में इससे पाचनका सुधार होता है। मूत्रमार्ग से उदरस्थ जल निकलता है और शरीरमें उत्तेजना आती है। यह उन्माद, संन्यास, भूतोन्माद एवं अपस्मार रोगोंमें गुणकारक है।

अफीमके बदलेमें इसका धूम्रपान करनेसे अफीमचीको कुछ शांति मिलती है। दाँतके दर्द और पार्श्वशूलमें इसे लगानेसे लाभ होता है। लगानेसे मुखपर निकलनेवाली यौवनपिटिकाओं—झाइयों (मुँहासों)को दूर करता है, वर्णको बढ़ाता है। प्रायःयह लगानेमें अधिक प्रयुक्त हुआ है।

●

(१४९) कुटकी

फ़ैमिली : स्क्रोफुलारिआसे (Family : Scrophulariaceae)

नाम—(हिं०) कुटकी; (अ०; फा०) ख़रबक़े हिंदी; (सं०) कटुका, कटुकी; (पं०) कौड़; (बं०) कट्की; (म०) बालकडू; (ले०) पीक्रोर्हीज़ा कुरोंआ (**Picrorhiza kurroa** Royale ex Benth.)।

वक्तव्य—'**ख़रबक**' एक तीव्र विषाक्त औषधि है। यह भारतवर्षमें नहीं होता। सम्भवतः इस औषधिका वास्तविक आयात भी भारतीय बाजारोंमें नहीं होता था; किन्तु इसका ज्ञान मुलसमानों द्वारा अवश्य आया। कुटकी एक निरापद औषधि है, जिसका प्रयोग चिकित्सा व्यवहारमें प्रचुरतासे होता है। अरबी-फ़ारसीमें कुटकीके लिए '**ख़रबक़े हिंदी**' नामसे यूनानी निघण्टुओं एवं चिकित्सकों तथा उनके कारण बाजारमें भी भ्रमास्पद धारणा फैली है। यद्यपि बाजारमें कुटकी और ख़रबकको एक समझा जाता है, और **मख़ज़न** तथा **मुहीत आज़म**में कुटकीको 'ख़रबक-स्याह' लिखा भी है, किंतु उक्त दोनों सर्वथा पृथक् द्रव्य हैं। अतएव यूनानी निघण्टुओंमें भी इसके नामकरणमें सुधार किया जाना चाहिए (वि०दे० 'ख़र्बक')।

उत्पत्तिस्थान—कुटकी हिमालयकी बनौषधि है। यह हिमालय के उच्चतर भागोंमें (९,००० से १५००० फुटकी ऊँचाईपर) कश्मीरसे सिक्किम तक स्वयंजात पायी जाती है।

वर्णन—यह ख़रबकसे सर्वथा भिन्न एक गुल्मकी जड़ है, जो पतली, सफ़ेदी लिये काली और गाँठदार एवं जोड़दार होती है। इसमें तारकी तरह बारीक तंतु लगे होते हैं। तोड़नेपर इसके भीतरी भागका रंग काला होता है। यह स्वादमें अत्यंत कड़ुई होती है। इसके ऊपर झुर्रियाँ होती हैं।

रासायनिक संगठन—इसमें पिक्रोर्हाइजीन (Picrorhizine) या कटुकीन नामक एक मुख्य तिक्तसत्त्व १५ प्रतिशत और एक रेचन द्रव्य कैथारटिक एसिड (Cathartic acid) ९$\frac{१}{२}$ प्रतिशत होता है।

उपयुक्त अंग—जड़।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें गरम और खुश्क; आयुर्वेद मतसे शीतवीर्य एवं रूक्ष। (भा० प्र०)।

वक्तव्य—प्रायः यूनानी निघंटु ग्रन्थोंमें कुटकीमें लिखे हुए गुण-कर्मादि कुटकीके न होकर ख़रबकके प्रतीत होते हैं।

गुण-कर्म—यह दीपन, वातानुलोमन, सारक और अधिक प्रमाणमें सेवन करनेसे विरेचन है, उदरकृमियों को मारकर निकालती है तथा ज्वरघ्न है और शिरोरोगोंमें गुणकारी है।

उपयोग—अजीर्ण और मंदाग्निमें जठराग्नि दीपनार्थ कुटकीको खिलाते हैं। उदरजकृमियोंको नष्ट करनेके लिए भी इसका उपयोग करते हैं। जलोदर और जीर्ण ज्वरोंमें जबकि यकृत्‌के रोगपीड़ित होनेके कारण हाथ-पांव पर सूजन आ जाती है, तब इसका चूर्ण खिलाते हैं। पित्तज ज्वरोंमें नीमकी छालके साथ इसका क्वाथ पिलाते हैं। **अहितकर**-वमन, कंठशोथ (ख़ुनाक) और आक्षेप उत्पन्न करती है। **निवारण**-बादाम का तेल और मस्तगी। **मात्रा**-कटुपौष्टिक गुणके लिए ०·६ ग्राम से १·३ ग्राम (५ रत्ती से १। माशा) तक; ज्वरोंमें २-३ ग्राम (२ से ३ माशे) तक और जलोदरमें विरेचनार्थ ६-७ ग्राम (६ से ७ माशे) तक क्वाथ बनाकर देना चाहिये।

आयुर्वेदीय मत—कुटकी तिक्त, कटुविपाक- शीतवीर्य, रूक्ष, लघु, लेखन, भेदन, स्तन्यशोधन, दीपन, हृद्य तथा कफ, पित्त, ज्वर, प्रमेह, श्वास, कास, रक्तविकार, दाह, कुष्ठ और कृमिका नाश करनेवाली है। (च०सू० अ० ४, वि० अ० ८; सु० सू० अ० ३८; भा० प्र०)।

नव्यमत—कुटकी दीपन, उत्तम कटुपौष्टिक और बड़ी मात्रामें स्रंसन है। इसका नियतकालिकज्वरप्रतिबंधक धर्म कुनैनसे कम दर्जेका है। इससे दीपन-पाचन होता है। आमाशयरस बढ़ता है और दस्त साफ होता है। इसकी जड़का काढ़ा देनेसे डिजिटेलिसके समान क्रिया होती है। हृदयकी गति कम होती, परंतु शक्ति बढ़ती है और रक्तका दबाव बढ़ता है। विषमज्वर रोकनेके लिए कुटकी बड़े प्रमाणमें देनी पड़ती है। कभी-कभी इससे विरेक होने लगते हैं। जिन रोगियोंको विषमज्वरके साथ मलावष्टंभ हो उनको अच्छा लाभ पहुँचाती है। कुपचनसे उत्पन्न श्वास-रोगमें कुटकीको मिश्रीके साथ देते हैं। कुटकीका काढ़ा दिनमें तीन-बार हृदयोदर और जलशोथमें देनेसे विशेष लाभ होता है। इससे पानी सरीखे दस्त होते तथा हृदय को शक्ति मिलती है और उदर कम होता है।

●

(१५०,१५१) कुड़ा सफ़ेद व काला

फ़ैमिली : आपोसिनासे (Family : Apocynaceae)

नाम। काला या तिक्तकुड़ा वृक्ष—(हिं०) कुड़ा, कोरया (था०, को०), कुरैया, कोरैं(र)या; (खर०) काला-कुडा, दुधिया (मुंगेर); (अ०) शज्रलिसानुल् असाफ़ीरुल् मुर्र; (सं०) कुटज; (बं०) कुड़चि गाछ; (उड़िया) कुड़ा; (पं०) कुरो; (म०) कालाकुड़ा; (गु०) कडो; (ले०) होलेर्हीना आंटीडीसेंटेरिका (**Holarrhena antidysenterica** Wall.)। कुड़ाकी छाल (हिं०) कुड़ाछाल, कुरैयाकी छाल; (अ०) क़श्र शज्रलिसानुल् असाफ़ीरुल् मुर्र, तीवाजे हिंदी; (फा०) पोस्तकुड़ा, पोस्तदरख़्त ज़बानकुंजिश्क तल्ख़, पोस्त दरख़्त इन्द्रजौ तल्ख़; (सं०) कुटजत्वक्; (बं०) कुर (ड़) चो; (अं०) कोनेस्सी बार्क (Conessi Bark), कुरची बार्क (Kurchi Bark)। कड़ुआ इंद्रजौ (हिं०) इंद्रजौ, कड़ुआ इंद्रज़ौ; (अ०) लिसानुल् असाफ़ीर, लिसानुल् असाफ़ीरेल् मुर्र; (फा०) ज़बाने कुंजिश्के तल्ख़, ज़बाने कुंजिश्क, इन्द्रजवे तल्ख़, पंजशकरदान; (सं०) कुटज बीज; इन्द्रयव (तिक्त); (गु०) कडवों इन्द्रजव; (म०) कडू इन्दरजो, कडवा इन्द्रजव।

वक्तव्य—(१) 'विलायती कुडा' अर्थात् विलायती कड़ुए इन्द्रजौकी छालको यूनानी वैद्यकमें 'तीवाज' कहते हैं। यह 'ख़तादेश'में होता और वहींसे आता है। इसीलिए इसे 'तीवाजे ख़ताई' भी कहते हैं। अरबी 'तीवाज' शब्द सम्भवतः संस्कृत 'त्वक्' शब्दसे व्युत्पन्न है। (२) इन्द्रजौ गौरे(चटक)की जीभकी रूपरेखाका होता है। इसीलिए, इसे अरबीमें 'लिसानुल् असाफ़ीर या लिसानुल् उस्फ़ुर (चटक जिह्वा)' और फारसीमें 'ज़बान कुंजिश्क (चटक जिह्वा)' कहते हैं।

●

(१५२) सफेद या मीठा कुड़ा

नाम—वृक्ष (हिं०) सफ़ेद कुड़ा, मीठाकुड़ा, खिरना, खिन्ना; (खर०; मिर्जापुर), दूधी, दूधकोरैया (मुंगेर); (सं०) सित कुटज; (म०) सफेद कुरा, पांढरा कुड़ा; (गु०) धवलकुड़ा; (काठियावाड़) दुधलो; (ले०) राइटिआ टींक्टोरिआ (**Wrightia tinctoria** R. Br.); (२) राइटिआ टोमेंटोसा (**W. tomentosa** Roem & Schult.)। बीज (हिं०, द०, गु०) मीठा इन्द्रजौ; (अ०) लिसानुल् असाफ़ीर हुलुव्व (हलो); (फा०) इन्द्रजवे शीरीं, ज़बान कुंजिश्के शीरीं; (म०) गोडा इन्द्रयव।

उत्पत्तिस्थान और वर्णन—भारतवर्षके शुष्कतर वनों और बंगालमें कुड़ाके वृक्ष विपुल होते हैं। **वृक्ष** मझोले आकारके लगभग ६ से ९ मीटर (२० से ३० फुट) तक ऊँचे होते हैं। **तना** छोटा और उसकी गोलाई ०·९ से १·२ मीटर (३–४ फुट) होती है। **पत्र** प्रायः धाराकदंब या अमरूदके पत्रकी तरह होते हैं। पुराने पत्र माघमें गिर जाते और चैत-वैसाखमें पुनः नये पत्र निकलते हैं। कोमल शाखाग्र या पत्र तोड़नेपर सफ़ेद दूध निकलता है। यह चैत-वैसाखमें फूलता है। **पुष्प**, पत्रवृन्तके समीपसे निकलता और सशाख पुष्पदण्डपर स्थित होता है। पुष्प गुच्छोंमें लगता तथा अनुज्ज्वल शुभ्र, मिलितदल, पुष्पनाल क्षीण एवं संकुचित, पुष्पनालाग्रभाग पाँच भागोंमें चीरित होता है। इसमें मधुर सुगंध होती हैजो दूरतक फैल जाती है। **फलियाँ** गोल, पतली (२२·५ से ३३·२५ सें० मी०) लम्बी, युग्म और सिरेपर मिली हुई नहीं होती हैं। ये जाड़ेमें पकती और प्रायः फागुन-चैतमें तड़क जाती हैं। इनमेंसे जौ या गौरेकी जीभ जैसे लंबे बीज निकलते हैं। इनके सिरेपर सफेद रोएँका गुच्छा (घूआ) लगा रहता है, जो खुलकर गोल हो जाता है। इन बीजोंको **इन्द्रजौ या कड़ुआ इन्द्रजौ (इन्द्रजवे तल्ख़)** कहते हैं। वास्तविक इन्द्रजौ ये ही हैं। पके बीज बाहरसे ललाई लिये और सूखनेपर मटमैले या भीतरसे पिलाई लिये सफ़ेद होते हैं। स्वाद, तिक्त और तीक्ष्ण वा चरपरा होता है। इसके चाबनेसे जीभपर संक्षेभ प्रतीत होता है। इसकी **छाल** मोटी, बाहरसे कुछ भूरी व काली और भीतर लाल, हलकी और कडुई होती है। वास्तविक कुड़ा **छाल (कुटज त्वक्)** यही है। भारतवर्षमें होनेसे इसे अरबीमें **'तीवाजे हिन्दी'** कहते हैं। वास्तविक तीवाजको जिसका यूनानी निघंटुओंमें वर्णन आया है, **'तीवाजे ख़ताई'** कहते हैं, क्योंकि उसे खतादेशसे लाते हैं। वस्तुतः ये दोनों एक ही द्रव्य हैं। केवल देश (हिंदी और खताई) भेदसे इनमें भेद किया जाता है। तात्पर्य यह कि भारतीय कुड़ा (काला या कडुआ कुड़ा) की छाल तो 'तीवाजे हिंदी' और फारस एवं खता इत्यादि विदेशोंमें होनेवाले कुड़ाकी छाल तीवाज या 'तीवाज खताई' है। अस्तु, इनमेंसे प्रत्येक एक दूसरेके स्थानमें काम आ सकती है।

मीठे वा सफेद कुड़ाके वृक्ष काले वा कडुए कुड़ाके वृक्षसे बहुत बड़े होते हैं। फली भी उससे लम्बी, मोटी तथा काले रंगकी और **सिरेपर जुड़ी हुई** होती है। इसके बीज कालाकुड़ाके बीजकी तरह कडुवे नहीं होते, इसलिये इसको लोग **'इन्द्रजवे शीरीं'** कहते हैं। यूनानी वैद्यकमें कडुये की अपेक्षया इसका ही अधिक व्यवहार होता है। इसकी **छाल सफेद** होती और कड़वी नहीं होती। इसलिये इसे **सफेद कुड़ा या मीठा कुड़ा** कहते हैं।

वक्तव्य—कोई-कोई इसके विपरीत पहले भेद को सफेद कुड़ा (पांढरा कुड़ा) और दूसरे भेदको कालाकुड़ा (काली कुड़ई) कहते हैं।

रासायनिक संगठन—इसकी छालमें गुडूचीसत्व जैसा एक पिष्टमय, क्षारस्वभावी तिक्तसत्व होता है। इन्द्रजवमें एक कड़ुआ और क्रिस्टली सत्व होता है, जो मद्यमें घुलता है, परन्तु जलमें नहीं घुलता।

कल्प तथा योग—जुवारिश तीवराज (जदीद व मुरक्कब)।

उपयुक्त अंग—छाल और बीज।

छाल **(तीवाज-पोस्त कुड़ा)**—

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें शीत एवं रूक्ष है; आयुर्वेदके मतसे शीतवीर्य (भा० प्र०) है।

गुण-कर्म—संग्राही और रक्तस्तम्भन।

उपयोग—संग्राही और रक्तस्तम्भन होनेके कारण कुड़ा छाल (तीवाज)को पुराने अतिसार, अर्शोजात अतिसार, रक्तातिसार, रक्तार्श, अतिरज और प्रत्येक अंगजात रक्तस्राव बन्द करनेके लिये पुष्कल उपयोग करते हैं। **जुवारिश तीवाज** और हब्ब **तीवाज** इसके प्रसिद्ध योग हैं। कुड़ाछालको बारीक पीस-छानकर ५ माशेसे १ तोला तक (वय और बलानुसार) दहीमें मिलाकर अर्शोजात रक्त और अतिसार बन्द करनेके लिये खिलाते हैं। कोई-कोई

हकीम रक्तार्शमें इस प्रकार इसका प्रयोग करते हैं : कुड़ाछाल २½ तोलेको बारीक पीस-छानकर बादामके तेलमें मलकर चिकना करके पहले दिन ४·५ ग्राम (४·५ माशा) खिलाते हैं। इसके बाद प्रतिदिन ०·५३ ग्राम (४-४ रत्ती) बढ़ाकर पाँच दिनमें समाप्त कर देते हैं। प्रतिदिन एक बार दोपहरके समय अंडेकी जर्दीके साथ चलाव खानेको देते हैं। पाँचवें दिन ताजे मक्खनके साथ खिलाते हैं। ग्राही होनेके कारण दाँतोंकी मजबूतीके लिये मंजनोंमें सम्मिलित करते हैं। ग्राही और रक्त-स्तम्भन होनेके कारण नकसीर बन्द करनेके लिये इसको बारीक पीसकर नाकमें फूँकते (नफ़ूख करते) और चन्दन तथा कपूरके साथ अर्क़ गुलाबमें पीसकर मस्तकपर लेप करते हैं। रक्तप्रवाहिकामें मूलकी छालके समान दूसरी औषधि नहीं मानी जाती। **मात्रा**–३ ग्राम से ५ ग्राम (३ से ५ माशे) तक।

इन्द्रजौ—

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम और रूक्ष (खुश्क)। आयुर्वेदके मतसे उष्णवीर्य (ध० नि०) है।

गुण-कर्म—वातानुलोमन मूत्रल, अश्मरीघ्न, वाजीकर, वृष्य (शुक्रल), काम (बाह) जनक और गर्भस्थापक।

उपयोग—अश्मरिनाशन, मूत्रोत्सर्जन और वातार्श (रीहुल्‌बवासीर)में वायुके उत्सर्गके लिये इसका उपयोग करते हैं। परन्तु अधिकतर वृष्य एवं वाजीकर होनेके कारण माजूनों और चूर्णौषधोंमें सम्मिलित करके खिलाते हैं। गर्भस्थापक होनेसे मधु एवं केसरके साथ ऋतुस्नानोत्तर इसकी योनिवर्ति बनाकर योनिमें रखते हैं। **अहितकर**–आमाशयको। **निवारण**–गरम मसाला और नमक। **प्रतिनिधि**–बहमन और तोदरी। **मात्रा**–२ ग्रामसे ३ ग्राम (२ माशेसे ३ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—कुड़ा (कुटज) तिक्त, कषाय, रूक्ष, शीतवीर्य, दीपन, वामक, अर्शोघ्न, कण्डूघ्न, स्तन्य-शोधन, आस्थापनोपग, सांग्राहिक, उपशोषण तथा कफ, पित्त, रक्तपित्त, हृद्रोग, ज्वर, वातरक्त, विसर्प, अतिसार तृषा, आम और कुष्ठको मिटानेवाला है। कुड़ाके **पुष्प** तिक्त, कषाय, शीतवीर्य, लघु, दीपन, वातकर तथा कफ, पित्त, रक्तविकार, कुष्ठ, अतिसार और कृमिका नाश करनेवाले हैं। **इन्द्रजव** तिक्त, तीक्ष्ण, उष्णवीर्य, त्रिदोषघ्न, दीपन तथा रक्तार्श, अतिसार, शूल और कृमिका नाश करनेवाला है (च० सू० अ० २, ४, २५; च० क० अ० ५; सु० सू० अ० ३८; ध० नि०; कै० नि०; भा० प्र०;)।

नव्यमत—**सफेद कुड़ेकी छाल** इपिकाक्वानाके समान तिक्त, दीपन, स्तम्भन, नियतकालिक ज्वर-प्रतिबन्धक, ज्वरहर और बल्य है। छाल और बीजोंमें रक्तसंग्राहक और वेदनास्थापन गुण है। बीजोंके सेकनेसे संग्राहक गुण बढ़ता है। रक्तप्रवाहिकामें इसकी जड़की छालके बराबर दूसरी औषधि नहीं है। ताजी जड़की छाल खट्टे छाछमें पीसकर ५ तोलाकी मात्रामें वह छाछ चार-चार घंटेपर देनेसे ज्वर, बार-बार दस्त आना और मलमें रक्त आना कम होता है। आँवमें इन्द्रजौका काढ़ा देते हैं। नवीन आँवमें छालसे विशेष गुण नहीं होता, परन्तु जीर्ण आँवमें निश्चित गुण होता है। सदा ताजी छालका उपयोग करना चाहिये। क्योंकि सूखनेपर वह निरुपयोगी हो जाती है। ताजी छालकी घनरसक्रिया करके रख लेनेसे काम चलता है। कुड़ेके धनक्वाथके साथ अतीस, बच और मधु मिलाकर देते हैं। शिशुओंके रक्तातिसारमें कड़वा इन्द्रजव और नागरमोथाका काढ़ा देते हैं। संग्रहणीमें छालके साथ कषाय, सुगन्धि और बल्य औषध मिला, काढ़ा करके अथवा सेंका हुआ इन्द्रजव देते हैं। कड़वे इन्द्र-जवका चूर्ण प्रतिदिन खानेसे भूख बढ़ती तथा अन्न पचता है। पेटमें वायु नहीं भरता और कृमि हों तो मरकर निकल जाते हैं। अर्शसे रक्त गिरता हो तो इन्द्रजवका फांट देनेसे बन्द होता है। मसूढ़ोंसे रक्त बहने और मसूढ़ोंमें पूय होनेपर इन्द्रजवको मसूढ़ोंपर मलनेसे लाभ होता है। कालाकुड़ा अल्पप्रमाणमें देनेसे आमाशय और यकृत्‌की क्रिया सुधरती है। परन्तु अधिक प्रमाणमें देनेसे वमन और विरेक होते हैं। कोमल पत्तियोंका स्वरस १ ड्रामभर देनेसे कामलामें लाभ होता है।

(१५२) कुरूया

फ़ैमिली : ऊम्बेल्लीफेरे (Family : Umbelliferae)

नाम—(हिं०; म०; गु०) विलायती जीरा; (यू०) Karon (D.3.59). (अ०) अल्कराविया (इ० बै०), करंबाद, करेकार कुरूया, करोया, कराविया, **कमूनेरूमी**, कमूने अरमनी; (फा०) करोया, कुरूया, ज़ीरएरूमी; ज़ीरए अरमनी, शाहज़ीरा; (द०) करोया; (बं०) विलायतीजीरा; (ले०) **कारुम कार्वी (Carum Carvi** Linn.); (अं०) कैरावे, केरवे (Caraway)।

वक्तव्य—लेटिन नाम कुरूयाके पौधेका है। **कुरूया** सुरयानी 'करावी (करुई)' 'कराविया य' वा 'करावियानी'से अथवा इसके लेटिनशब्द (कार्वी)से व्युत्पन्न या अरबी बनाया गया है। बानस्पतिक नाममें प्रजातिक नाम '**कारुम्**' यूनानी '**केरोन** (Karone)'से व्युत्पन्न है। अंग्रेजी Caraway भी 'कार्वी'का ही अपभ्रंश प्रतीत होता है। प्राचीन आयुर्वेदीय संहिताओंमें कालाजीरेके अर्थमें '**कारवी**' संस्कृत शब्द आता है ('कारवी कृष्णजीरकम्', इति चक्रः)। कुरूया इसीका एक विदेशी भेद है। अतः बहुत सम्भव है कि इसके उक्त सभी नाम मूलतः इसी संस्कृत शब्द 'कारवी'से ही व्युत्पन्न हों। यूनानी इसको '**अरमानियून (Armenion)**' कहते हैं।

उत्पत्तिस्थान—यूरोप, ईरान (किरमान) और एशियामें यह सामान्यरूपसे होता है। उत्तर अफ़रीका एवं ग्रेटब्रिटेनमें कभी-कभी इसकी खेती की जाती है। भारतके कश्मीर आदि प्रदेशोंमें भी यह होता है।

इतिहास—प्रतीत होता है कि यूरूपीय या विलायती स्याहजीराके भारतमें आनेसे पूर्व भारतीयोंको एक प्रकारके जीराका ज्ञान था, जिसको संस्कृतमें **कृष्ण(=स्याह)जीरक** अर्थात् '**स्याहजीरा**' कहते हैं। किन्तु **शोनीज** 'कलौंजी'को भी कृष्णजीरक कहते हैं। सर्वप्रथम अरबवासियोंने 'कराविया'के नामसे विलायतीजीराका उल्लेख किया है। **इब्नमासूया, इद्रीसी** एवं **इब्नबैतार** आदि सभीने इसको "कमून (Colam)"से पृथक् वर्णन किया है। परन्तु वास्तवमें यह '**कमूनरूमी**' है। **मख़ज़नुल् अदविया** और **मुहीतआज़ममें** कुरूया नामसे इसका वर्णन किया गया है। **भेद**–यूनानी चिकित्साविशारदोंने रंग एवं उत्पत्तिस्थानके विचारसे जीरा (कमून)के कतिपय निम्नभेदोंका वर्णन किया है :—

(१) कमून किरमानी, कमूनहब्शी व कमून असवद अर्थात् '**स्याहजीरा**'; (२) **कमून अस्फ़र व कमून फ़ारसी** अर्थात् '**पीलाजीरा**'; (३) **कमून अख़्ज़र व कमूनशामी** अर्थात् 'सब्ज(हरा)जीरा'; (४) **कमूननब्ती** अर्थात् '**सफ़ेद जीरा**'; (५) **कमूनरूमी** और **कमून अरजी** अर्थात् '**करोविया**' या '**जीराविलायती**'।

वर्णन—यह एक क्षुद्र वनस्पतिके **फल** हैं, जिनको गलतीसे (व्यवहारमें) बीज कहते हैं। बागी और जंगली भेदसे कुरूया दो प्रकारका होता है। इसके जंगली भेदको **किर्दिमाना** कहते हैं। यहाँपर इसके उद्यानज भेद अर्थात् '**कुरूया**'का वर्णन किया जाता है। इसका **पौधा** लगभग ४५ सें० मी० (हाथ भर) ऊँचा, तथा **पत्र** सोयेके पत्तोंके समान और स्याहीमायल और इसके छत्रक भी सोयेके छत्रक जैसे होते हैं। **फूल** सफेद, बीज (फल) पिलाई लिये सफ़ेद जीरेकी तरह, किन्तु उससे किंचित् बड़ा और तिक्त एवं कटु होता है। **जड़** गाजरकी तरह होती है। इसको पकाकर खाते हैं। मात्र 'करुई वा कुरुया' शब्दसे इसका यह उद्यानजभेद ही विवक्षित होता है। **तीन वर्ष** तक इसमें वीर्य रहता है। भारतवर्षमें इसका आयात बहुधा इंगलैंड और कभी लेवांटसे होता है। अब कश्मीरसे भी यह भारतीय बाजारों में आता है। अंग्रेजी कुरुया अपेक्षाकृत स्वच्छ, चमकीला, भूरा और सर्वोत्तम होता है। आयुर्वेद और यूनानीका कृष्णजीरक एवं स्याहजीरा संभवतः इसीको कहना चाहिए, क्योंकि स्याहजीरा नामका इससे भिन्न कोई उद्भिद भारतवर्षमें होता है, यह ज्ञात नहीं है। भारतीय बाजारोंमें स्याहजीराके नामसे जो वस्तु विकनेको आती है, वह प्रायः नकली होती है। कृष्णजीरककी एक संस्कृत संज्ञा 'कारवी' लिखी है, जो यूनानीग्रंथोक्त 'कुरूया' ही है, यह स्पष्ट है।

रासायनिक संगठन—इसमें एक उत्पत् तेल पाया जाता है, जिसके ये पाँच उपादान हैं;–(१) **सायमिन** (Cymin) जो यूकेलिप्टस तेलमें भी विद्यमान होता है; (२) **कारीओन** (Caryon अर्थात् 'कारवीन' नामक सत्त्व); (३) **कारवोल** (Carvole) या कारवी कर्पूर; (४) **क्युमिनोल** (Cuminol) या जीरककर्पूर (काफ़ूर कम्मूनी) और (५) **लाइमोनिन** (Limonin) या निम्बुकीन एक प्रकारकी टर्पीन जो निंबुकतेलमें भी पाई जाती है)। **मात्रा**–१से ३ बूँद।

उपयुक्त अंग—फल (बीज) और पंचांग।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम और खुश्क।

गुण-कर्म—अन्त्र और आमाशयपर कुरूया ग्राही और **वातानुलोमन** कर्म करता है और **भूख लगाता** है; उदरजकृमियोंको मारकर निकालता है और मूत्रजनन कर्म करता है। प्रधानतया यह **वातानुलोमन**, दीपन और **पाचन** है।

उपयोग—वातिक हिक्का, **अरोचक**, **उदरशूल**, **अजीर्ण**, आनाह और वातिकोद्वेष्टनमें कुरूयाका उपयोग करते हैं। इसे उदरजकृमियोंको नष्ट करनेके लिए खिलाते हैं। मूत्रल होनेके कारण जलोदरमें भी इसका उपयोग किया जाता है। यह आनाहकारक आहारोंके उक्त दोषनिवारणके लिये भी उपयोग किया जाता है। **अहितकर**–फुफ्फुसके लिये। **निवारण**–शुद्ध मधु और सातर फ़ारसी। **प्रतिनिधि**–अनीसूँ और जीरा। **मात्रा**–३ ग्रामसे ५ ग्राम (३से ५ माशे) तक। आयुर्वेदीय मतके लिये '**जीरास्याह**' देखें।

नव्यमत—इसमें एक उड़नेवाला तेल होता है। यह दीपन, स्तन्यजनन और उत्तम कोष्ठवातप्रशमन है। आध्मान, उदरशूल, शिथिलताप्रधानकुपचन और पेचिशमें यह उपयुक्त औषध है। इसको अजीर्णमें अन्न पचने और भूख बढ़ानेके लिए देते हैं।

◆

(१५३) कुलंजन

फ़ैमिली : ज़ीजिबेरासी (Family : Zingiberaceae)

नाम—(हिं०) कुलं (लिं) जन; (अ०) **ख़ौलिंजान**, ख़ूलं (लिं) जान, ख़ूलिंजान अक़ारिबी, ख़ावलिंजान; (फा०) खुसरवे, खुसरो (इ०बै०)दारू; (सं०) **कुलञ्जः** (रा० नि०); कुलिञ्जन, मलयवचा, सुगन्धा (भा०प्र०); (प०) **खुलंजान**; (ब०) कुलंजन; (म०) कुलीजन; (गु०, सिंध) कुलिजन; (ता०) सितरित्ती; (ले०) **आल्पीनिआ ऑफ़्फ़ीसिनारुम** Alpinia officinarum Hance (*Alpinia chinensis* Roscoe); (अं०) दी लेसर गेलंगल (The Lesser Galargal), गेलंगल (Galangal), ईस्टइंडियन रूट (East Indian Root)।

वक्तव्य—चीनीभाषामें जहाँ कि इसके क्षुप होते हैं इसको, '**काओन-लिअंग-किअंग**' कहते हैं। इसीसे **ख़ौलिंजान** आदि इसके अरबीनाम व्युत्पन्न हैं। इन अरबी नामोंसे इसके अंगरेजी, संस्कृत एवं संस्कृत प्रभावित भारतीय भाषाओंके नाम व्युत्पन्न हैं। पौलूसईजिनेट (Paulus Aegineta ७वीं शती) यूनानी ने '**गैलगस**' और तत्पश्चात्कालीन यूनानी लेखकोंने '**खैलीजेन**'; **गलाङ्कस** और **कोलौट्जीआ**' नामोंसे इसका उल्लेख किया है। आयुर्वेदीय निघण्टुओंमें इसका समावेश भारतागत यवन चिकित्सकोंके माध्यमसे हुआ प्रतीत होता है जैसाकि इसके 'कुलंज, कुलिञ्जन' नामोंसे अनुमान होता है। क्योंकि यह उपरोक्त अरबीनामोंका साधारण रूपान्तरमात्र हैं। किन्तु आयुर्वेदीय निघण्टुओंमें इसीप्रकारकी एक भारतीय ओषधिका उल्लेख '**मलयवचा**' नामसे वचाभेदोंमें मिलता है।

सम्भवतः उस समय व्यवहारमें चीनी कुलंजन सुलभ रहा था तथा भारतीयकी अपेक्षा श्रेष्ठतर समझा जाता था। इधर कतिपय वर्षोंसे विदेशी सामानोंके आयातकी स्थितिमें परिवर्तन होनेसे अब भारतीय 'मलय वचा' ही कुलंजन नामसे चलने लगी है। इसके पौधेका नाम आल्पीनिआ गालांगा (**Alpinia Galanga** (L.) Willd.) है। इसका पौधा एवं राइज़ोम पूर्वकी अपेक्षा बड़े होनेसे इसे बड़ाकुलिंजन तथा अंग्रेजीमें ग्रेटर गैलंगल (Greater Galangal) कहते हैं।

इस प्रकार वर्तमान स्थितिमें प्रथमको **चीनी कुलंजन** तथा द्वितीयको **देशी कुलंजन** कहना अधिक समीचीन होगा।

कतिपय आधुनिक निघण्टुकारोंने प्रमादवश 'पानकी जड़को कुलंजन' मान लिया है। अस्तु प्रायशः आयुर्वेदीय-यूनानी निघण्टुओंमें ऐसा ही लिखा मिलता है। प्रमाणस्वरूप विद्वद्वर हकीम कबीरुद्दीन महाभागा किताबुल् अद्विया नामक स्वरचित ग्रन्थके द्वितीय भाग, चतुर्थ आवृत्तिमें लिखते हैं, 'ख़ौलिंजान (कुलींजन) पानकी जड़ है जिसका रंग बाहरसे सुर्खीमायल और भीतरसे पीताभ श्वेत होता है।' खज़ाइनुल् अद्विया नामक विशाल निघण्टुग्रन्थके रचयिता विद्वद्वर मौलवी मुहम्मद नजमुलग़नी महोदय भी इसके परिचयके विषयमें अपना कोई निजी अभिमत स्थिर न करके पानकी जड़के चक्करमें ही आकर रह गये हैं। जनाब हकीम मुज़फ़्फ़र हुसेन साहब किताबुल् मुफ़रदातके चतुर्थ संस्करणमें लिखते हैं, 'ख़ूलंजान पानके पुराने वृक्षकी जड़ है।' तात्पर्य यह कि इसी प्रकार अनेकानेक यूनानी निघण्टु ग्रन्थोंमें मक्षिका स्थाने मक्षिका लिख दिया गया है।

इसी प्रकार पं० विश्वनाथजी द्विवेदी शास्त्री महाभागाने जो भावप्रकाशनिघण्टुकी हिन्दी टीका की है उसके तृतीय संस्करणमें महाभरी वचा (कुलंजन)के वर्णनमें वे लिखते हैं, "कुलंजनके विषयमें बड़ा प्रमाद पाया जाता है क्योंकि बहुशः वैद्यगण पानकी जड़को ही कुलंजन कहते हैं। परंतु उक्त कथन सत्य नहीं है।"

वस्तुतः इसका स्वरूप इस प्रकार है, "इसकी बेल अंगूरकी बेलकी तरह फैलती है। पत्ते पानके समान होते हैं। जड़ ग्रन्थिल रक्तवर्णकी और सुगन्धित होती है। वास्तवमें यही कुलंजन है।" तात्पर्य यह कि आप भी एक प्रमादका निराकरण करते हुए स्वयं ही एक अन्य प्रमादका आखेट हो गये हैं।

वास्तवमें कुलंजन न तो पानकी जड़ हैं और न कुलंजनकी कोई बेल होती है, जैसा कि कुलंजनके उपर्युक्त वर्णनसे ज्ञात होता है। प्रत्युत ये दोनों भिन्न-भिन्न कुलकी वनस्पतियाँ हैं। मैंने स्वयं शतशः पुरानेसे-पुराने पानकी जड़ें निकलवाकर अवलोकन की है। पानकी जड़से इसका कोई सादृश्य नहीं है। अस्तु पानकी जड़को कुलंजन कहना और मानना सर्वथा भ्रामक एवं प्रमादमूलक है। इतने विश्वस्त प्रमाणिक प्रत्यक्षमूलक विवरणके पश्चात् अब इस भ्रमका निराकरण हो जाना चाहिए। वि० दे० 'पान'।

उत्पत्तिस्थान—हेनान द्वीप और चीनका दक्षिण-पूर्वी तटप्रदेश। भारतीय कुलंजन भारतवर्षके कतिपय भागोंमें होता है।

वर्णन—कुलंजन एक क्षुपका कंदवत् पाताली धड़ है जिसे प्रायः जड़ समझते हैं। इसके कटे हुए उँगलीके बराबर या इससे अधिक मोटे, ५ सें० मी० से ७·५ सें० मी० (२ से ३ इञ्च) लम्बे, एक सिरेपर दूसरेकी अपेक्षया अधिक मोटे टुकड़े बाजारमें मिलते हैं। इनमेंसे किसी-किसी टुकड़ेपर उपमूल भी होते हैं। उनपर गोल-गोल सफेद मुद्रिकाएँ होती हैं। बाहरसे ये गहरा ललाई लिये भूरे और भीतरसे भूरापन लिए सफेद (फीका लाल) और कड़े एवं चिमटा तथा सुगन्धित होते हैं। स्वाद तीक्ष्ण काली मिर्चवत् और चरपरा होता है। गन्ध प्रिय जो सोंठका स्मरण दिलाती है। यह प्रायः ग्रन्थिल होते हैं। चीनसे भारतवर्षमें इसका आयात होता है।

रासायनिक संगठन—इसमें एक उत्पत् सुगंधित तेल होता है।

कल्प तथा योग—अर्क़ ख़ूलञ्जान।

उपयुक्त अंग—पाताली धड़ (जड़) ।

प्रकृति—दूसरे दर्जे तक गरम और रूक्ष। आयुर्वेदके मतसे उष्ण एवं तीक्ष्ण (रा० नि०) है ।

गुण-कर्म–सौमनस्यजनन, हृद्य, आमाशय और शीतल यकृत्को बल देनेवाला, उष्णताजनन, सौदा और कफ रोगनाशक, वातानुलोमन, मुखको सुवासित करनेवाला, कफोत्सारि, लालाप्रसेकजनन, शीतजन्य वेदनाहर, लेखन और वाजीकर है । विशेषकर यह हृदयको उल्लसित करता (मुफ़र्रेह क़ल्ब) है ।

उपयोग—आमाशय और यकृत्को बल देनेवाले तथा कफज रोगहर योगोंमें कुलंजन मिलाते हैं। मुखदौर्गन्ध्यमें इसे मुखमें रखकर चाबते हैं। जिह्वास्तम्भ, वाक्संग (सिक़्लुल्लिसाँ) और हकलापन (लुकलत),कास, श्वास और कफज स्वरभेदमें इसका उपयोग कराते हैं । कफज वेदनाओं विशेषकर शीतल वृक्कशूल और हस्तिमेहमें इसे खिलाते हैं । वाजीकरणके लिए इसे वाजीकर माजूनों और चूर्णोंमें डाला जाता और अकेला भी लगभग ३ माशे चूर्ण करके दूधके साथ उपयोग कराते हैं । वातानुलोमन होनेसे यह उदरशूल और वातिक शूलमें प्रयुक्त होता है । झांईमें इसका लेप करते हैं । **अहितकर**—मूत्रावरोधकारक है । **निवारण**–कतीरा, चन्दन, अनीसूँ और बंशलोचन। **प्रतिनिधि**–दालचीनी । **मात्रा**–२ ग्राम से ३ ग्राम (२ से ३ माशे) तक ।

आयुर्वेदीय मत—कुलंजन कटु, तीक्ष्ण, सुगन्धि, दीपन, रुचिकर, स्वरको सुधारनेवाला, छाती, कण्ठ और मुखका शोधन करनेवाला तथा कफकी खाँसीको दूर करनेवाला है । (रा० नि०; भा० प्र०) ।

नव्यमत—मधुमेहमें पेशाब कम करनेके लिए कुलंजनका फांट देते हैं । पसीना अधिक आकर शरीर ठंढा हो तो कुलंजनका चूर्ण शरीरपर मलते हैं ।

●

(१५४) कुलथी

फ़ैमिली : लेगूमिनोसी (Family : Leguninosae)

नाम—(हिं०)कुल (र)थी, खुरथी; (अ०) हब्बुल्-क़ु(क़ि)ल्त, बज़्रु्ल्लबूस; (फा०) संगे शिकन, माशे हिंदी; (सं०) कुलत्थ, कुलित्थ; कुलत्थिका; (बं०) कुलत्थ; (म०) कुलीथ; (गु०) कलथी; (ले०) **डॉलीकॉस बीफ़्लोरुस** (**Dolichos biflorus** Linn.); (अं०) हॉर्स ग्राम (Horse Gram) ।

वक्तव्य—लेटिन नाम इसकी वनस्पतिका है । अरबी एवं अंग्रेजी नाम बीज (उपयुक्त अंग)के हैं । हिन्दी, संस्कृत एवं शेष अन्य संज्ञायें वनस्पति एवं बीज दोनों ही के लिए सामान्य हैं । 'क़ुल्त' संस्कृत 'कुलत्थ' से अरबी बनाया गया है । फारसी नाम 'माशे हिन्दी' भारतका इस औषधिसे मौलिक सम्बन्धकी ओर संकेत करता है ।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष ।

वर्णन—यह एक प्रकारका प्रसिद्ध अनाज है, जो पीला और मीठा या कोई कड़ुआ, मसूरके दानेके बराबर और कुछ गोलाई लिए होता है । यह खरीफ़ (भदई)के साथ उत्पन्न होती है । कुलथी कई रंगकी होती है । कोई कुछ नोली झाईं मारती हुई काली और चमकीली, कोई पिलाई लिए सफेद, और कोई मटमैली होती है । कुलथी जंगली भो होती है । आयुर्वेदीय निघंटुओंके मतसे चाकसू जंगली (कुलथी) है ।[1]

उपयुक्त अंग—बीज ।

---

[1] १—कुलत्था दृक्प्रसादा च ज्ञेयाऽरण्यकुलत्थिका ।
कुलाली लोचनहिता चक्षुष्या कुम्भकारिका ॥१८॥ (रा० नि०—पर्पटादि वर्ग ५)

रासायनिक संगठन—इसमें मांसजातीय द्रव्य, पिष्ठ, तेल, राख और फॉस्फोरिक एसिड १ प्रतिशत होता है।

प्रकृति—स्निग्धता (रतूबत) लिए दूसरे दर्जे (मतांतरसे तीसरे दर्जे)में गरम और दूसरेमें रूक्ष है। **शैख़** और **मासरजोया** के मतसे यह दूसरे दर्जेमें शीत और पहले दर्जेमें तर है।

गुण-कर्म–यह अत्यंत क्षुधाजनक, **वृक्काश्मरीनाशक**, नेत्ररोगनाशक (चक्षुष्य), **मूत्रजनन**, वीर्यशोषण, आर्तवजनन, सारक (प्रकृतिमार्दवकर) और प्लीहाके अवरोधोंका उद्घाटन करनेवाली तथा अर्श, उदरशूल और कफको नष्ट करती है।

उपयोग—इसे अकेला या अन्य उपयोगी औषधियोंके साथ क्वाथक रके पीनेसे वस्ति एवं वृक्वस्थ-अश्मरी खंड-खंड होकर निकल जाती है। **मख्ज़न**में इसके लिए निम्न प्रयोगको परीक्षित लिखा है:–२ तोला ३ माशा कुलथी और इतना ही शलगमके बीज, इनको २८ तोले जलमें इतना पकायें कि ९ तोले पानी शेष रहे। फिर इसे छानकर ४॥ तोलेकी मात्रामें प्रातः सायंकाल रोगीको पिलायें। इसके प्रलेपसे अर्श नष्ट होता है और कपोलोंका रंग निखरता है। ३॥ माशे कुलथी मूलीके पत्रस्वरसके साथ उपयोग करनेसे पथरीका नाश होता है।

वक्तव्य—**तोह्फ़तुल् मोमिनीन** में इसकी जड़ (अस्लुल्कुल्त)के जो गुणकर्मादि लिखे हैं, वे कुलथीकी जड़के न होकर शौकरान (Conium)के ज्ञात होते हैं, जिसे अरबीमें '**तफ़्त**' कहते हैं। अस्तु, अस्लुल्कुल्तकी जगह अस्लुल्तफ़्त ऐसा शुद्ध पाठ होना चाहिये। उसमें लिखा हुआ **शबीबी शब्द** भी शौकरानवाचक ही है। **अहितकर**–फुफ्फुसको। **निवारण**–मधु। **प्रतिनिधि**–अलसी या पत्थरबेर (हज्रुल्यहूद)। **मात्रा**–४-५ ग्राम (४॥ माशा)।

आयुर्वेदीय मत—कुलथी रसमें कषाय, विपाकमें कटु (**चरक और वाग्भटके** अनुसार अम्ल), उष्णवीर्य, कफवातनाशक, शुक्र-अश्मरी और गुल्मकी नाशक तथा संग्राही है और पीनस तथा खाँसीको हरनेवाली (सु०सू० अ०४६ श्लो०३७) तथा हिचकी, श्वास और अर्शके रोगियोंके लिये हितकर है (च०सू०अ०२७)।

●

(१५५,१५६) कुलफा और लोनिया

फ़ैमिली : पोर्टूलाकासे (Family : Portulacaceae)

नाम—कुलफा (हिं०) कुलफा; (पं०) खुर (ल) फा, बड़ी लोनी; (बि०) नोना; (यू०) अॅन्ड्राख्नी Andrakhne (D.2.150); (अ०) बक़्लतुल् हमक़ाऽ, बक़्लतुल्लीनः, बक़लतुल् मुबारिकः (फ़ात्मः), रजलः (इ०बै० १।१०२), बक़्लतुल् ज़ोहरा, फ़रफ़ख़; (फा०) ख़ुर्फ़ः, तोरक़, तुबुर्क; (सं०) वृहल्लोणी (-णिका); (क०) नूनर; (मा०) संमोली स्याह; (द०) खुलफेकी भाजी; (बं०) बड़ी लोनिया; (गु०) म्हाटी (मोटी) लुणी; (म०) मोठी (म्होटी) घोल; (ले०) **पोर्टूलाका ओलेरासेआ** (**Portulaca oleracea** Linn.); (अं०) **दी कॉमन इंडियन पर्सलेन (The Common Indian Purslane)**। बीज–(हिं०) खुरफाके बीज; (अ०) बज्र्ुल् बक़्लतुल् हुम्क़ाऽ; बज्र्ुल्फ़र्फ़ख़; (फा०) तुख़्मे तोरक, तुख़्मे ख़ुर्फ़ः; (द०) खुलफेके बीज; (बं०) बड़ोलोनिया बीज; (अं०) दी कॉमन इण्डियन पर्सलेन सीड्स (The Common Indian Purslane seeds)।

लोनिया—

नाम—(हिं०) लोनिया, लोनी, छोटा कुलफा, नोनियासाग; (सं०) लोणी, क्षुद्रघोलिका, लघुलोणिका; (पं०) लूणक; (बि०) नोनी; (द०) घोलकी भाजी; (म०) भुई (रान) घोल; (गु०) नानी (झीणी) लुणी; (ले०) **पोर्टूलाका कुआड्रीफिडा** (**Portulaca quadrifida** Linn.)।

वक्तव्य—**अंजुमन आराए नासिरी**के मतसे इसका वास्तविक नाम '**बक़्लतुज़्ज़ोहरा**' था जिसे इसलाम (अह्लेबैत)के शत्रुओंने 'बक़्लतुल्हम्क़ा' कर दिया। इसका उक्त नाम रखनेका कारण **सुलेमान-बिन हसान**के मतसे यह है कि यह मनुष्योंके मार्गमें, अथवा जंगल एवं जलासन्न तथा आर्द्र अथवा त्याज्य भूमिमें स्थानविशेषका विचार किये बिना उत्पन्न होता है जहाँ यह पैरों तले रौंदा जाता है अथवा पानीके बहावके स्थानमें पैदा होता है, जहाँ पानीका बहाव इसे उन्मूलित कर डालता है; फिर भी यह उसी स्थानमें उत्पन्न होता है। इसलिये इसे 'मूर्ख या अविवेकी शाक (बक़्लः = साग, हुम्क़ा = अह्मक़ का स्त्री० = मूर्खा)' कहा गया है। परन्तु यहाँ पर यह स्मरण रखना चाहिए कि उद्यानज कृषिकृत कुलफा जिसका साग खाते हैं, वह इतनी सरलतापूर्वक और सामान्य रीतिसे नहीं होता; अपितु परिश्रमपूर्वक खेती करनेसे होता है। अस्तु, इसके नामकरणके उपर्युक्त कारण असंगत प्रतीत होते हैं। **फ़रफख़**, '**परपहन**' फारसीसे अरबी बनाया गया है। **दीसकूरीदूस** यूनानीने '**अनड्राख्नी** (Andrakhne)' और **कैल्सूस** रूमी (Celsus)ने '**पॉर्च्युलका (Portulaca)**' नामसे इसका उल्लेख किया है।

उत्पत्तिस्थान—भारतवर्षके समस्त उष्णप्रधान प्रदेशोंमें कुलफाकी खेती होती है। लोनिया प्रायः नीची, सार्द्र, दलदली स्थानों एवं नम नालों आदिमें स्वयंजात होती है।

वर्णन—यह एक छोटा विसर्पी कोमल रसदार प्रसिद्ध साग है जो छोटा और बड़ा भेदसे दो प्रकारका होता है। इनमें बड़ेको **कुलफा** और छोटेको **लोनिया** कहते हैं। **कुलफा**–इसका पौधा ४५ सें० मी० (हाथ भर)से कम होता है और इसकी खेतीकी जाती है। इसका तना उँगलीके बराबर या उससे न्यूनाधिक मोटा, अत्यंत कोमल, (सहजमें टूटनेवाला), ललाई लिये और भूमिपर परिविस्तृत होता है। **पत्र** गोलाई लिये किंचित् मोटे होते हैं, और उनके भीतर चेपदार रस भरा होता है। यह स्वादमें पानीका-सा होता है। **फूल** सफेद (अपने यहाँ होनेवाले स्वयंजात कुलफाका फूल पीला, और स्वादमें फीका होता है। **बीज** छोटे-छोटे पोस्ताके दानेके बराबर और काले रंगके होते हैं। **लोनिया**–इसका पौधा भूमिपर अच्छादित होता है। इसके **पत्र**, शाखायें और बीज इत्यादि कुलफेके पत्र और बीजादि से बहुत छोटे होते हैं। इसमें नमकीन (खारापन) अधिक और खटास थोड़ी होती है। **फूल** छोटा और पीला तथा चार पंखडीयुक्त होता है। यह पहर दिन चढ़े खिलता और फिर मुरझा जाता है।

रासायनिक संगठन—इसमें एक अम्ल क्षार पाया जाता है, जिसमें अंशतः जवाखार और ऑक्जैलिक एसिड होते हैं।

उपयुक्त अंग—पत्र और बीज।

प्रकृति—दिल्लीवालोंके अनुसार दूसरे दर्जेमें शीत एवं स्निग्ध (तर) है। लखनऊवालोंके अनुसार तीसरे दर्जेमें शीत एवं दूसरेमें तर है। आयुर्वेदमतसे लोणिका शीतवीर्य एवं रूक्ष (च०;सु०) है।

गुण-कर्म—कुलफाके पत्र **वाह्यत** शीतजनन और संशमन कर्म करते हैं। यकृत् और आमाशयपर भी इसका **शीतजनन** और **संशमन** प्रभाव होता है। अन्त्रपर भी यही कर्म होनेके अतिरिक्त इसके उपयोगसे कब्ज भी होता है। व्रध्नाकार कृमियोंपर इसका घातक कर्म होता है; परन्तु निश्चितरूपसे यह नहीं कहा जा सकता कि कुलफेमें ऐसा कौनसा गुण-कर्म निहित है जिससे वह कद्दूदानोंको मार डालता है। बस्ति और वृक्कपर संशमन कर्म करनेके अतिरिक्त, यह मूत्रजनन कर्म भी करता है। इसका प्रधान कर्म पित्तसंशमन और यकृत्संताप निवारण है।

उपयोग—अकेले या मांसके साथ कुलफाका साग पकाकर खाया जाता है। उष्ण व्याधियों जैसे पित्तज एवं रक्तज ज्वर, सदाह मूत्र, उरः क्षत, यक्ष्मा, रक्तष्ठीवन तथा गर्भाशय-आमाशय और यकृत्की उष्णताको शमन करनेके लिये उपयोगी साग है। उष्ण जल या अग्निदग्ध अंग, उष्णशोथ और गरम सिरदर्दपर लेप करनेसे शान्ति और शीतलता प्रदान करता है। हस्त-पादका दाह मिटानेके लिए मेंहदीके साथ इसका लेप लगाते हैं। पित्तातिसारको बंद करने और अन्त्रको बल देनेके लिए इसका साग खिलाते हैं। पत्रको सुखाकर और बारीक पीसकर बालकोंके मुखपाक और (बुसूरुद्दहन)में छिड़कते हैं। **अहितकर**–प्लीहा और दृष्टिको। **निवारण**–पुदीना।

आयुर्वेदीय मत—कुलफा और लोनिया (लोणिका)का शाक गुरु, रूक्ष, पेटमें गड़बड़ाहट करके पचनेवाला, शीतवीर्य, मधुर लवणानुरस, सक्षार और मलको पतला करनेवाला है (च० सू० अ० २७; सु० सू० अ० ४६)।

नव्य मत—नोनिया शीतल, ग्राही, शोथहर और रक्तशोधक हैं। कुलफा और लोनियाका साग और बीज मूत्रपिंड (गुर्दा) और मूत्राशयके शोथमें देते हैं। इसके फांटसे मूत्रका प्रमाण बढ़ता है। इसका साग अर्शरोगीको देते हैं। दाँत, कफ, पेशाब आदिके रक्तस्रावमें लोनियाका स्वरस देते हैं।

बीज (तुख़्म ख़ुर्फ़ा)—

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें शीत दूसरे दर्जेमें तर है।

गुणकर्म—शीतजनन, पित्तरक्तसंशमन और मूत्रल है। इसको पुंस्तवोपघाति वर्णन किया जाता है।

उपयोग—शीतजनन और पित्तरक्तसंशमन होनेसे यह प्रायः उष्ण व्याधियों, जैसे उष्ण शिर-दर्द, उग्र तृष्णा, रक्तोद्वेग, पित्तोल्वणता, गरम खाँसी, अन्त्रामाशयदाह और सदाहमूत्रमें प्रयुक्त होता है। उष्ण यकृज्जन्य अतिसारमें इसके बीजोंका शीरा मिश्री या शर्बत बज़ूरी मिलाकर पिलानेसे उपकार होता है। शीतजनन और पित्तरक्तसंशमन होनेके साथ ही यह मूत्रल भी है। इसीलिए उष्ण ज्वरों यहाँ तक कि आन्त्रिक सन्निपात ज्वरमें शीरा निकालकर उपयोग किया जाता है और परम लाभदायक सिद्ध होता है। भुने हुए कुलफाके बीज उष्ण प्रकृतिवालोंके लिए अन्त्रामाशय-बलदायक और उदर स्तंभक (क़ाबिज़ शिकम) हैं और मधुमेहमें प्रयुक्त होते हैं। **अहितकर**–आमाशयके लिए। **निवारण**–मिश्री (कंद सफेद)। **मात्रा**–३ ग्राम से ७ ग्राम (३ माशा से ७ माशे) तक।

●

(१५७) कुसुम

फ़ैमिली : कॉम्पोजीटी (Family : Compositae)

नाम—क्षुप (हिं०) कुसुम; (बं०) बर्रे; (यू०) Knikhos (D.4. 187); (अ०) उस्फ़ुर (इ०बै०); (फा०) दरख़्ते क़ुर्तुम; (सं०) कुसुम्भ; (बम्ब०) कुसुम्ब; (म०) करडई; (गु०)कसुंबो; (ले०) **कार्थमुस टींक्टोरिउस (Carthamus tinctorius** Linn.); (अं०) सैफ़्फ़लावर (Safflower), फाल्स या बस्टर्ड सैफ्रन (False or Bastard Saffron)। पुष्प–(हिं०) कुसुम, कुसुम (बर्रे)का फूल; (अ०) इहरीज़, इह्‌रीस उस्फ़ुर; (फा०) गुलकाफ़िशः, गुलकाज़ीरः; (सं०) कुसुम्भपुष्पं; (बं०) कुसुम फूल। बीज (हिं०) कड़, कुसुम (बर्रे)के बीज; (अं०) क़ु(क़ि) र्तुम (इ० बै०), हब्बुल् उस्फ़ुर (क़ुर्तुम, मासफर), बज़्रुल् इह्‌रीस; (फा०) खसकदानः, तुख़्म काफ़शः, तुख़्म क़ुर्तुम, काज़ीरः; (सं०) कुसुम्भ-बीज; (द०) कुसुमके बीज; (बं०) कुसुमबीचि।

वन्य कुसुम—(हिं०) जंगली कुसुम, कालकुसुंब; (पं०, हिं०) कंटियारी, मोल; (अ०) दरख़्ते क़ुर्तुम बर्री, उस्फ़ुर बर्री; (ले०) **कार्थामुस ऑक्सीकान्था (C. oxycantha Bieb)**।

वक्तव्य—यूनानीमें कुसुमको 'अट्रक्टुलिस (Atraktulis)' कहते हैं। **'अत्रक़्तूलीस'** इसका अरबी रूपांतर है। इसको यूनानीमें **'क्नीकोस** (Knikos)' भी कहते हैं। इसीसे इसकी रूमी संज्ञा **'क्नकोस** (Cnecos)' व्युत्पन्न है। **'क्नीक़ुस'** इसका अरबी रूपान्तर है। जंगली कड़को यूनानीमें **क्नीकोस अग्रिओन** (Knikos agrion) कहते हैं और **'क्नीक़ुस अग़रियून'** इसका अरबी रूपान्तर है। इसके फूलोंके रंगसे रंगे हुए कपड़ेको अरबीमें 'मासफ़र' कहते हैं।

उत्पत्तिस्थान—भारतवर्षमें यूरोपसे रंगोंके आनेके पूर्व प्रचुरताके साथ इनकी खेती होती थी, क्योंकि इसका फूल (कुसुम) वस्त्र रंगनेके काम आता था। अब भी भारतवर्षके कतिपय स्थानोंमें रबीकी फसलके साथ इसकी खेतीकी जाती है।

वर्णन—इसका **क्षुप** कँटीला और लगभग ०.९ मीटर या ९० सें० मी० (गजभर) ऊँचा होता है। **पत्र** लंबे ऊपरकी ओर नीचेसे अधिक चौड़े, तना एवं शाखाके जोड़पर तथा शाखा फूटनेकी जगह और शाखापर निकलते हैं। पत्रप्रांत दंतित या बहुशः क्षुद्र, कंटीले अनीदार कंगूरोंसे व्याप्त होता है। तना और शाखायें छोटी और अपरिपक्व पौधेकी हरी और पक्व एवं पुष्ट पौधेकी सफेद हो जाती हैं। **फूल** कँटीले और पिलाई लिए लाल (कुसुम)रंगके होते हैं, जो अधिकतया कपड़ा रंगनेके काम आते हैं। **फलकोष** कँटीला और गोपुच्छाकार तथा फूलोंके नीचे पैदा होता है। इसके भीतर बीज भरे होते हैं जिन्हें '**कड़** (तुख़्मक़ुर्तुम-खसकदाना)' कहते हैं। इनका औषधमें उपयोग होता है। प्रत्येक कोषमें ७-८ बीज होते हैं। बीज शंक्वाकार किसी कदर चपटे, चौकोर, चिकने और सफेद रंगके होते हैं। इनको तोड़नेपर अंदरसे सफेद चिकना मग़ज़ निकलता है। बीज जितना पुराने पड़ते हैं, उनका छिलका उतना ही स्याही मायल और मग़ज़ ज़र्दीमायल होता है। अंतमें ये काले पड़ जाते हैं।

उपयुक्त अंग—बीज (कड़)। औषधके लिए बुस्तानी (कृषिकृत), सफेद, या भारी और मोटा दाना उत्तम होता है। मात्र कड़ या **क़ुर्तुम** शब्दसे यही विवक्षित होता है।

रासायनिक संगठन—फूलमें **कार्थेमीन** नामक एक रंजक द्रव्य, बीजमें २०-३० प्रतिशत एक प्रकारका **तेल** होता है।

कल्प तथा योग—मत्बूख़ हब्ब क़ुर्तुम, जुवारिश क़ुर्तुम और माजून क़ुर्तुम आदि।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें **गरम** और पहले दर्जे में **रूक्ष**।

गुण-कर्म—**कफपाचन-रेचन**, कफोत्सारि स्वरशोधक, **वाजीकर**, शुक्रल, आर्तवजनन, वातविलयन और उरःशोधक है। उपयोग—कफपाचन और विरेचन होनेसे कफज प्रसेक, कास, श्वास (कृच्छ्रश्वास), जलोदर, सर्वांगशोफ और शूल (क़ुलंज)में इसका उपयोग किया जाता है। कास और श्वासमें इसे मधुके साथ उपयोग करनेसे यह कफका उत्सर्ग करके सीनाको शुद्ध करता है। स्वरभंगमें उपयोग करनेसे यह स्वरको शुद्ध और कंठकी खरखराहटको दूर करता है। आर्तवप्रवर्तनके लिए आर्तवजनन योगोंमें मिलाया जाता है। वाजीकरण और शुक्रजननके लिए माजूनोंमें डाला जाता है। **अहितकर**—आमाशयिक रोगोंके लिए। **निवारण**—अनीसूँ। **प्रतिनिधि**—हब्बतुल् खज़्रा। **मात्रा**—५ ग्राम से ७ ग्राम (५ से ७ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—**कुसुम** पाकमें कटु (चरपरा), रूक्ष, दीपन, विदाही, वातकारक, कफनाशक तथा रक्तपित्त और मूत्रकृच्छ्रका नाश करनेवाला है (ध०नि०; रा० नि०; वै० निघ०; भा० प्र०)। **कुसुमके पत्ते** मधुर, अम्ल, कटु, उष्णवीर्य, गुरु, रूक्ष, पित्तकारक, अत्यंत रुचिकारक, नेत्रको हितकर, अग्निदीप्तिकर, गुदरोगकारक तथा कफ-मल-मूत्र-मेद इनके परम नाशक हैं (वै०निघ०)। **कुसुमका शाक** मधुर, अम्ल, कटु (रा०नि), उष्णवीर्य, रूक्ष, लघु तथा कफनाशक और पित्तवर्धक है (च०सू०अ० २१; सु०सू० अ० ४६), रुचिकर, अग्निदीपन, मदनाशक, मलमूत्रके दोषहरण करनेवाला और विशेषकर दृष्टिको स्वच्छ करनेवाला है (रा०नि०)। **कुसुमके पुष्प** सुस्वादु, उष्णवीर्य, रूक्ष लघु, भेदक, त्रिदोषनाशक, पित्तकारक, केशरञ्जन तथा कफनाशक हैं (वै०निघ०)। **कुसुमका बीज** मधुर, कषाय, शीतवीर्य, स्निग्ध, गुरु, अवृष्य तथा कफवात, रक्तपित्त (वृ० नि० र०), अश्मरी और मूत्रकृच्छ्रका नाश करनेवाला है (च०चि०अ० २६)। **कुसुमका तेल** विपाकमें कटु, उष्णवीर्य, गुरु, विदाही, त्रिदोषकारक तथा विशेषकर रोगप्रकोपक (ध०नि०; रा०नि०), प्रमेहनाशक (सु०चि०अ०३७) और निर्लोमकारक है (चक०चि०)।

नव्यमत—कुसुमके बीज विरेचक हैं। कुसुमके क्षुपको कूट-पीसकर तिलके तेलके साथ पकाकर सिद्ध किया हुआ तेलकी मालिश वातमें सूजी हुई संधिकी पीड़ामें, पक्षाघातग्रस्त अंगपर, तथा दुष्टव्रणके पूरणार्थ इस तेलका प्रयोग करते हैं। स्वेदजनन होनेसे कुसुमके सूखे हुए फूलोंका कोष्ण फाण्ट कामला, प्रतिश्याय और आमवातमें सेवन कराते हैं। इसका शीतकषाय मृदुरेचक एवं बल्य है, इसलिए खसरा और कोठोत्पादि सन्निपातज्वर विशेषतः रक्तज्वर (Scarlatina)में इसके सेवनसे खसरा और कोठके उत्तमरूपसे प्रकाशपानेमें सहायता मिलती है। इसकी पत्तियोंमें रेनेट (Rennet)की भाँति दूध जमानेकी शक्ति है। इसलिए पनीर बनानेके लिए इसका उपयोग किया जा सकता है (आर० एन० खोरी-मेटीरिया मेडिका ऑफ इंडिया, भा० २ पृ० ३५६)। **बरहाम** के कथनानुसार एक ड्रामकी मात्रामें इसके सूखे फलोंके सेवनसे कामला आराम हो जाता है।

●

(१५८) कूजा

फ़ैमिली : रोजासे (Family : Rosaceae)

नाम—(हिं०)कूजा, कुजोई, जंगली गुलाब; (फा०) गुले कूजः; (अ०) वर्दमुन्तिन; (सं०) कुब्जक; (बं०) कूजा; (ले०) **रोजा मॉस्काटा (Rosa moschata** Herrm.), **रोजा इन्वॉल्युक्रेटा** (**R. involucrata** Roxb.); (अं०) मस्कसेन्टेड रोज (Musk scented rose)।

उत्पत्तिस्थान—समशीतोष्ण, मध्य एवं पश्चिम हिमालय, मुर्रीसे नेपाल तक २,०००से ११,००० फुटकी ऊँचाई तक, पुर्णिया आदि (केवल उत्तरी भागमें) यह प्रायः नदियोंके किनारे अधिक होता है। अन्यत्र विरल होता है।

वर्णन—जंगली या लतागुलाबकी एक जातिके पुष्प श्वेत, व्यासमें २ इंच, पत्रकोणीय, एकाकी अथवा समस्थकाण्डज व्यूहमें रहते हैं। फूल सफेद और गुलाब तथा सेवतीकी अपेक्षा अल्प सुगंधि होते हैं। इसका सुन्दर गुल्म होता है जिसकी शाखाएँ लम्बी एवं प्रसरणशील होती हैं। इसमें सदा फूल आता रहता है। इसलिए इसे सदागुलाब कहते हैं।

गुण-कर्म तथा उपयोग—कूजा, गुलाब और सेवती तीनों शीतल, लघु, वाजीकर, त्रिदोष-रक्तविकार नाशक, हृद्य, संग्राही और चेहरेका रंग निखारनेवाले हैं। इसके सफेद भेद लालकी अपेक्षया अधिक हृदयबलदायक एवं गुणकारी मानते हैं तथा गुलकंद और अर्क दिलके धड़कन दूर करनेके लिए प्रायः प्रयुक्त करते हैं। यह आमाशय और यकृत्को बल देता है। मुखपाक और कण्ठशूलमें इसका गण्डूप उपकारक है। सदागुलाब सर्द एवं खुश्क है। इसके फूल रक्तविकार, विस्फोट और फोड़े-फुंसीमें परीक्षित हैं।

आयुर्वेदीय मत—कूजा सुगन्धित, स्वादिष्ट, किंचित् कषाय, शीतल, सारक, वातपित्तका नाशकरनेवाला एवं वीर्यवर्धक है। फूल शीतल, शरीरके वर्णको निखारनेवाला (वर्ण्य) दाह और वातपित्तनाशक है (रा० नि०; भा० प्र०)।

●

(१५९) केला

नाम—(हिं०) केरा केला; (अ० फा०) मौज़, तल्ह; (सं०) कदली, मोचा; (बं०) कला; (द०) मौज; (म०) केल; (ले०)—(छोटे फल) **मूसा सापीन्टुम (Musa Sapientum** L.); (बड़े फल) **मूसा पाराडीजिका (M. Paradisica** Linn.); (गु०) केला; (अं०) प्लाण्टेन (Plantain), बैनाना (Banana)।

वक्तव्य—अरबी 'मौज़' संस्कृत 'मोचा' से व्युत्पन्न हैं। लेटिन 'मूसा (जा)' अरबी 'मौज़' से, अंग्रेजी 'बनाना Banana' ग्रीक अरियाना (**Ariana**)' से और अरियाना (Ariana) संभवतः तैलंगी भाषा के शब्द 'अरिति' से व्युत्पन्न है। ग्रीक अरियाना का अन्यतम पर्याय औराना (Ourana) है। कितने ही लोग ग्रीक 'औराना' शब्दको संस्कृतके 'वारणवुणा' शब्दसे व्युत्पन्न मानते हैं; क्योंकि ग्रीक भाषामें जिन भारतीय औषधियोंका उल्लेख है, उनका देशीय नाम अधिकांश दक्षिण देशीय भाषासे ही संग्रहीत हुआ है। 'Plantaṇ' शब्द ग्रीक ग्रन्थकार **सावफ्रास्तुस** (Theophrastus) और रूमी प्लाइनी (Pliny) द्वारा लिखित '**पल**' नामक शब्दसे व्युत्पन्न है। उनके द्वारा लिखित 'पल' वृक्ष और उसके फलका वर्णन सर्वथा कदली वृक्ष और इसके फलके समान है। पुनः उन्होंने उसे हमारे ऋषियोंका खाद्य भी बतलाया है। अस्तु, इसमें कोई संदेह नहीं कि 'पल' संस्कृत 'फल' वा तामिल 'बल' शब्दसे व्युत्पन्न है। मलाबारमें अब भी इसे '**पल**' नामसे पुकारते हैं। इसकी लैटिन **मूसा सापीएन्टुम** संज्ञा इसके वृक्ष की है।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष, विशेषकर पूरब और दक्षिण भारतवर्ष, अरबके उपकूल, यमन, अमान, बसरा, ईरान, चीन, अफरीका, अमेरिका इत्यादि देश।

वर्णन—यह एक प्रसिद्ध फल है, जो खानेमें अत्यंत स्वादिष्ट और मीठा होता है। पहाड़ी, कोकनी, जंगली, बागी, छोटा, बड़ा, हरे और पीले छिलकेके विचारसे भारतीय केला नाना प्रकारका होता है। अच्छी किस्मोंके फलोंमें बीज नहीं होता है।

रासायनिक संगठन—केलाके पूरे पके फलमें २२ प्रतिशत शर्करा और श्वेतसार इत्यादि द्रव्य होते हैं। इसमें विपुल प्रमाणमें विटामिन 'A' और कुछ मात्रामें विटामिन 'B' पाया जाता है। कच्चे वा हरे फलमें विपुल प्रमाणमें टैनिन होती है। इसमें श्वेतसारकी मात्रा लगभग आलूगत मात्राके बराबर ही होती है। किन्तु पोषणकी दृष्टिसे यह उससे अधमतर होता है। अच्छे पके केलेमें २२ प्रतिशत शर्करा होती है। केलेके पञ्चांगको जलाकर बनाये हुए क्षारमें अधिकांश यवक्षार होता है। पक्का केला, छिलका सहित जलानेसे कोयला ७॥, चूना ७, यवक्षार ४५, सर्जिकाक्षार ६, लवणाम्ल और यवक्षारका मिश्रण २५ तथा (पोटैसियम फॉस्फेट) ५·२५ प्रतिशत मिलता है। काण्डके स्वरस में यवक्षार २५·२५, सर्जिकाक्षार ९·५, चूना १५·७५ और मैग्नीशिया ५ प्रतिशत होता है।

उपयुक्त अंग—फल।

प्रकृति—गरमी सर्दीमें मोतदिल, अनुष्णाशीत और संग्राही वीर्यके साथ दूसरे दर्जेमें तर (स्निग्ध) है। आयुर्वेद मतसे किंचित् शीतल (सु०) एवं स्निग्ध (कै० नि०) है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—केला मेवाकी भाँति खाया जाता है। इसका निहार मुँह खाना अहितकारी है। यह बृंहण, ग्राही, चिरपाकी और आनाहकारक है। परन्तु तीक्ष्णाग्नि लोगोंमें जब भली-भाँति पच जाता है तब यह अन्त्रपर मृदुसारक कर्म करता, शरीरको पुष्टि प्रदान करता और उसे परिबृंहित करता एवं बाजीकरण होता है। यह कफोत्सारि है, इसलिये शुष्क कास और उरः कंठके खरत्वको नष्ट करता है। इसमें किसी कदर लेखनीय वीर्य भी है। इसलिए सिरका और नीबूके रसके साथ पीसकर पतला लेप करनेसे खुजली, गंज, कण्डू एवं कच्छूको लाभ पहुँचाता है। अग्निदग्ध पर लगानेसे यह दाह और वेदनाको शांत करता है और छाले (विस्फोट) नहीं पड़ने देता। यह उदरावष्टंभक है। **अहितकर**—आनाहकारक (नफ़्फ़ाख़) और अभिष्यंदी है। **निवारण**—नमक और आदीका मुरब्बा। **प्रतिनिधि**—शकरकंद।

आयुर्वेदीय मत—केला रसमें मधुर, कषायानुरस, किंचित् शीतल, रुचिकारक, बृष्य, गुरु, कफकारक, स्निग्ध तथा रक्तपित्त, रक्तप्रकोप, योनिरोग और भ्रमको दूर करनेवाला है। केलेका **कन्द** कषाय, रूक्ष, शीतवीर्य,

बलकारक, वातकर तथा रक्तविकार, क्रमि, कुष्ठ, कफ, पित्त, कर्णशूल, रजोदोष और सोमरोगको दूर करनेवाला है। केलेका काण्डस्तम्भ गुरु और शीतल है। केलेका जल शीतवीर्य ग्राहि तथा तृषा, मूत्रकृच्छ, प्रमेह, कर्णरोग, अतिसार है। केलेके फूल तिक्त, कषाय, ग्राही, दीपन उष्णवीर्य और कफनाशक है। (सु० सू० अ० ४६; ध० नि०; कै० नि०)।

नव्यमत—पका हुआ केला बल्य, रक्तपित्तप्रशमन, शोणितस्थापन, संग्राहक और जीवनीय है। कच्चे, केलेका छिलका निकाल सुखाकर बनाया हुआ आटा बल्य और संग्राहक है। काण्डका स्वरस स्वेदजनन और तृष्णा-निग्रहण है।

●

(१६०, १६१) केवड़ा और केतकी

फ़ैमिली : पांडानासे (Family : Pandanaceae)

नाम—(हिं०; म०) केवड़ा; (अ०) काज़ी, कादी, कदिर; (फा०) कादी, गुलकेरी, गुलकबदी; (सं०) केतक (को), तृणशून्य; (बं०) केया; (म०) श्वेत केवड़ा; (गु०) केवड़ो; (ले०) पांडानुस फासीकुलारिस **Pandanus Fascicularis** Lam.); (अं०) कल्डेरा बुस (Kaldera bush), अम्ब्रेला ट्री (Umbrella tree)। वक्तव्य—इसका दैनिक व्यवहारमें आनेवाला प्रसिद्ध और अधिक प्रचलित नाम 'कादी' है।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष, विशेषतः दक्षिण भारतवर्ष और बंगाल।

वर्णन—यह एक प्रसिद्ध पुष्प है, जिसके यह दो भेद होते हैं-(१) केतकी (सफेद केवड़ा)—इसका वृक्ष दूर से देखनेमें खजूरके वृक्षकी तरह मालूम होता है। पत्र आदमीके कदके बराबर लम्बे और नोकदार होते हैं, और पत्र-प्रान्त कंटकित होता है। वृक्षके मध्य भागसे गोफा (पत्रकोशावृत पुष्पसमूह) निकलता है जो मकाईके भुट्टाकी तरह सफेद या मटमैला सफेद तथा परम सुगंधित होता है। इसके ऊपर तह-बतह पत्ते लिपटे हुए (सफेद पत्रकोश) होते हैं। इसके मध्यमें असली फूल (पुष्पव्यूह) होता है। यह इसका 'पुंपुष्प' भेद है। इसको प्रायः केवड़ा कहते हैं। इसीका वर्णन यहां हो रहा है। (२) सोन केतकी या पीला केवड़ा (सुवर्ण केतकी)—इसका पेड़ सफेद या काले मोटे गन्नेकी तरह मालूम होता है। फूल केवड़ेके फूलसे छोटा, पिलाई लिए सफेद और अधिक सुरभिपूर्ण होता है। यह इसका 'स्त्रीपुष्प' भेद है। प्रायः इसे 'केतकी' कहते हैं।

प्रकृति—यूनानी निघंटुमें इसे दूसरे दर्जेमें गरम तथा खुश्क और मतांतरसे अनुष्णाशीत लिखा है। परन्तु केवड़ा अत्यन्त शीतल (शीतवीर्य) है। आयुर्वेदका भी यही मत है। (रा० नि०)।

गुण-कर्म तथा उपयोग—केवड़ेके फूलका अर्क़ (अर्क़ केवड़ा) और शर्बत बनाया जाता है। इनका व्यवहार अन्तर्बाह्य ज्ञानेन्द्रियों, हृदय और मस्तिष्कको बल एवं सौमनस्य प्रदान करने तथा दिलकी धड़कन (खफ़क़ान) दूर करनेके लिए किया जाता है। खसरा, मसूरिका और शीतपित्त आदिमें भी इनका उपयोग होता है। यदि शीतला निकलनेके समयमें इनको पिलाया जाय तो ये उसे निकलनेसे रोकते हैं। यदि निकले भी तो कुछ दानोंसे अधिक नहीं निकलता और यदि निकली हुई हो तो इनके उपयोगसे उपद्रव कम हो जाते हैं। यह रक्तकी तीक्ष्णताका शमन करते हैं, इसलिए रक्तविकारमें भी इनका उपयोग होता है। तिलोंको केवड़ेके फूलमें वास कर तेल निकालते हैं जिसे रोग़न केवड़ा कहते हैं। इसे मर्दन करनेसे कटिशूल, आमवात और अंगोंकी थकावट दूर होती है।

इसे सूँघनेसे मनःप्रसाद एवं आनन्द प्राप्त होता तथा कानमें डालनेसे कर्णशूल आराम होता है और व्रणोंपर लगानेसे वे सूख जाते हैं। अहितकर–प्रसेकोत्प्रेरक। निवारण–अर्क बेदमुश्क। प्रतिनिधि–लाल चंदन। मात्रा–अर्क केवड़ा (४ से ६ तोले) तक; शर्बत केवड़ा २३ से ४६ ग्राम (२ तोले से ४ तोले) तक।

आयुर्वेदीय मत—केवड़ा तिक्त, कटु, कटुविपाक, शीतवीर्य, वर्ण्य तथा पित्त, कफ और केशकी दुर्गन्धको दूर करनेवाला है (ध० नि०; रा० नि०)।

●

(१६२) केस(श)र

फ़ैमिली : ईरिडासे (Family : Iridaceae or Irideae)

नाम—(हिं०; म०; गु०) केस(श)र; (अ०) ज़ाफ़रान; (फा०) करकमीसः; (सं०) केसर, कुङ्कुम, रुधिर, संकोच; (सु०; इब्रा०) कुर्कुम; (क०) कुं (कों)ग; (बं०) कुम्कुम्; (ता०) कुंगुमपु; (ते०) कुंकुमपुवु; (ले०) क्रोकुस साटीउस **Crocus sativus** Linn.); (अं०) सैफ्रन (Saffron), क्रोकस (Crocus)।

वक्तव्य—लैटिन 'क्रोकुस' यूनानी 'क्रोकोस (Krokos)' से, अंग्रेजी 'सैफ़रन' अरबी 'ज़ाफ़रान'से और सीरियन एवं इब्रानी 'कुर्कुम' संभवतः संस्कृत 'कुङ्कुम'से व्युत्पन्न हैं। इब्रानी भाषामें इसे 'कर्कुम' भी लिखा है। यह फारसी 'करकमीस'से व्युत्पन्न है।

उत्पत्तिस्थान—दक्षिणी यूरोपका आदिवासी है तथा श्यामदेश, मिस्र, स्पेन, खुरासान, ईरान और यूनान आदि भारतेतर देशोंमें भी होता है; परन्तु उनमें कश्मीरी केसर सर्वश्रेष्ठ होता है। कश्मीरके पाम्पुर-क्षेत्र में ५३०० फुटकी ऊँचाई पर इसकी खेती की जाती है।

वर्णन—यह एक क्षुद्र गुल्मके पुष्पके भीतरके सूखे तंतु (केसर) और फूलके जीरे हैं जो 'केसर' के नामसे प्रसिद्ध हैं। इसका प्रत्येक तंतु पतला और लगभग २·५ सें०मी०से ३.७५ सें० मी० (१–१॥ इंच) लम्बा होता है, और उसके सिर पर तीन दबीज गहरे नारंगी लालरंग के जीरे पाये जाते हैं। यह मुलायम और छूनेसे चिकना मालूम होता तथा पिलाई लिए गहरे लाल रंगका, तीक्ष्ण, प्रियगंधी और तिक्त एवं सुगन्धित होता है; तथा पानीमें घोलनेसे पानीका रंग गहरा पीला हो जाता है। स्वाद सुरभित किन्तु विशिष्ट प्रकारका, गंध प्रिय (मनोरम) तथा केसरके असली होनेकी दशामें इसके स्वरूपमें उपर्युक्त विवरणसे भिन्न कोई इतर वस्तु नहीं होनी चाहिए। पानीमें रखने पर पानीमें कोई वस्तु तलस्थित नहीं होनी चाहिए और न जलाने पर इसमेंसे फूत्कार या सुरसुराहटकी आवाज या आँचसे चटकनेका शब्द आना चाहिए। सफेद कागज पर इसको रखकर दबानेसे चिकना दाग नहीं पड़ता। मिश्रण–गेंदा और कुसुमके फूल आदि। किन्तु कुसुमके फूल अपने नलिकाकार स्वरूप और पीले कुक्षिवृन्त (Style) के कारण सहजमें पहिचाने जा सकते हैं।

रासायनिक संगठन—इसमें क्रोकिन (Crocin) नामक एक नारंगी रंगका ग्लूकोसाइड और एक उत्पत् तैल होता है।

उपयुक्त अंग—बसंतऋतुमें संग्रह किया हुआ गर्भकेसर (Flower pistils)।

कल्प तथा योग—दवाए कुर्कुम सग़ीर व कबीर, जिमाद ज़ाफ़रान, सुरमा ज़ाफरानी आदि।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम और पहले दर्जेमें खुश्क है। आयुर्वेदके मतसे उष्णवीर्य (ध० नि०) एवं स्निग्ध (भा० प्र०) है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—यह सौमनस्यजनन, मूत्रजनन, आर्तवजनन, संग्राही, श्वयथुविलयन और लेखन है तथा औषधियोंके अहितकर गुणोंके परिहारके लिए अधिकतया प्रयुक्त होता है। यह हृदय, मस्तिष्क, यकृत् और शरीरको बल प्रदान करता और कामोत्तेजक है। अन्य औषधियोंके साथ योजित करनेसे यह उनके वीर्यको हृदय एवं मस्तिष्क तक शीघ्र पहुँचाता है। कतिपय शोथों, विशेषकर यकृच्छोथ और जरायुशोथको विलीन करने या कतिपय औषधद्रव्योंके दोषनिवारणके लिए इसे योजित करके प्रलेप करते हैं। दृष्टि-दौर्बल्यमें अकेले या अन्य द्रव्योंके साथ खरल करके नेत्रमें डालते हैं। हृदय और मस्तिष्कको सौमनस्य एवं बल प्रदान करनेके लिए नाना प्रकारसे इसका पुष्कल उपयोग करते हैं। हृदय और मस्तिष्क तक शीघ्र औषधीय प्रभाव (वीर्य) पहुँचानेके लिए इसे अन्य औषधद्रव्योंके साथ सम्मिलित करते हैं। नपुंसकताके लिए इसे पुंस्त्वदायक योगोंमें मिलाकर खिलाते हैं। आर्तव-प्रवर्तनके लिए बाह्याभ्यन्तरिक रूपसे इसका उपयोग करते हैं। इसका तंतु मूत्रमार्गके भीतर रखनेसे मूत्र जारी हो सकता है। **अहितकर**–वृक्कदौर्बल्यकारक और क्षुधानाशक है। **निवारण**–अनीसूँ, शुक्तमधु और ज़रिश्क। **प्रतिनिधि**–बिजौरे-केबीज, कुट और तज। **मात्रा**–१ ग्रामसे २ ग्राम (१ माशा से २ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—केसर कटु, तिक्त, उष्णवीर्य, स्निग्ध, शरीरकी कांति सुधारनेवाला तथा कफ, वात, व्रण, नेत्ररोग, शिरोरोग, विष, व्यंग, कृमि और तीनों दोषोंको दूर करनेवाला है (च० सू० अ० ८; सु० सू० अ० ३८; ध० नि०; भा० प्र०)।

नव्य मत—केसर दीपन, पाचन, रुचिकर, वेदनास्थापन, संग्राही, संकोचविकासप्रतिबन्धक और कामोत्तेजक है। **मात्रा**–६२५ मि० ग्रा० से २·५ ग्राम (५ से २० रत्ती)। पीड़ितार्तवमें केसर पूर्ण मात्रामें देनेसे पीड़ा शान्त होती हैं और रक्त ठीक पड़ने लगता है। इस रोगमें केशरकी गोली बनाकर योनिमें रखवाते हैं। स्तनपर केशरका लेप करनेसे दूध बढ़ता है। बच्चोंके सर्दी-जुकाममें केसरको दूधमें मिलाकर पिलाते हैं और कपाल, नाक तथा छातीपर केसरका लेप करते हैं। मसूरिका, रोमान्तिका आदिमें दाने बाहर आनेके लिये केसर देते हैं।

●

(१६३) कैथ

फ़ैमिली : रूटासे (Family : Rutaceae)

नाम—(हिं०) कैथ, कवीट, कै(कइ)त; (सं०) कपित्थ, दधित्थ; (बं०) कठबेल; कयेद्, कयेत्बेल; (गु०) कोठुं(ठ); (म०) क(कं)वठ; (ता०) करुविला; (मल०) विलावु; (ले०) फ़ेरोनिया लीमोनिया **Feronia limonia** (Linn.) Swingle (**पर्याय**–*F. elephantum* Correa; *Limonia acidissima* (L.) Sw.); (अं०) वुड-एपल (Wood Apple)।

उत्पत्तिस्थान—भारतवर्ष, विशेषतः दक्षिण हिन्दुस्तानमें यह विपुल होता है।

वर्णन—इसका वृक्ष बड़ा होता है। पर्णक्रम एकान्तर; पर्ण संयुक्त होते हैं तथा पत्तोंको मलनेसे सौंफ जैसी महक आती है। शाखाओंपर काँटे होते हैं। पुष्प फीके लाल रंगके ग्रीष्मऋतुके आरम्भमें लगते हैं। फल गोल और बेल या छोटे गोल खरबूजेकी तरह होता है। कच्चे फलका गूदा कसैलापन लिए खट्टा और सफेद होता है। पकने पर वह खटमिट्ठा, स्वादिष्ट और सुन्धित तथा कुछ लाल हो जाता है। बीज बेलके बीजकी तरह, किन्तु उनसे छोटे होते हैं।

रासायनिक संगठन—फलके सुखाये हुए गुदा (कैथगिरी)में विपुल (१५ प्रतिशत प्रमाणमें) सिट्रिक एसिड, लबाब और राख होती है, जिसमें पोटास (जवाखार), सुधा और लोहेके क्षार होते हैं। पत्रमें, बेलपत्रमें वर्तमान उत्पत् तेलके समान तेल होता है।

उपयुक्त अंग—फल, वृक्षवल्कल और पत्र।

प्रकृति—कच्चा कैथ तीसरे दर्जेमें **शीत एवं रूक्ष; पका** कैथ दूसरे दर्जेमें शीत एवं रूक्ष है। आयुर्वेदके मतसे भी कैथ शीतवीर्य (रा० नि०) है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—पका कैथ **सौमनस्यजनन** और **हृदयबलदायक** है; अन्त्र, यकृत् और आमाशयको शक्तिप्रदान करता और ग्राही है तथा पित्तकी तीक्ष्णताको नष्ट करता, प्यास बुझाता, वेदना शमन करता और रुत्तेलाके विषको नष्ट करता है। पके हुए कैथका गुदा एक मेवाकी भाँति खाया जाता है। पित्तप्रकृतिके लोगों और पित्तज व्याधियोंमें यह लाभदायक है। इसे दस्तोंको रोकनेके लिए खिलाते हैं। इसके खानेसे मुखके भीतरी अंगोंमें संकोच (कब्ज) पैदा होता है। तालु, जिह्वा और कंठको चेचकके आबलोंसे सुरक्षित रखनेके लिए इसके काढ़ेसे कुल्ली कराते हैं। रुतेलाके विष निवारणके लिए इसका गूदा खिलाते हैं और दंशस्थान पर इसे मलते हैं। पातालयंत्रसे इसके वृक्षकी छालका अर्क खींचकर व्यंग (बहक), किलास और दद्रु प्रभृति त्वचाके रोगोंमें लगाते हैं। इसके पत्रको जीराके साथ जलमें पीस-छान, चीनी मिलाकर पिलानेसे शीतपित्त (पित्ती) आराम हो जाता है। **अहितकर**–उरःकंठको। **निवारण**–लवण, शर्करा और कालीमिर्च।

आयुर्वेदीय मत—कैथ (कपित्थ) मधुर, अम्ल, कषाय, तिक्त, शीतवीर्य, वृष्य, ग्राही तथा पित्त और व्रणका नाश करनेवाला है। **कैथका कच्चा फल** कण्ठ (स्वर)के लिए अहितकर, ग्राही, कफ तथा विषका नाश करनेवाला और वायु करनेवाला है। **परिपक्व कैथ** मधुर-अम्ल-कषाय तथा सुगन्धि होनेसे रुचिकर, दोषघ्न, विषघ्न, ग्राही, गुरु, कण्ठको स्वच्छ करनेवाला तथा कफ, वायु, श्वास, खाँसी, अरुचि और तृष्णाको दूर करनेवाला है। (च० सू० अ० २५, २७; सु० सू० अ० ४६; रा० नि०)।

नव्यमत—कैथके गुण-कर्म बेलफलके समान हैं। परन्तु रक्तपित्तप्रशमन धर्म बेलमें विशेष है। पत्र वातनाशक है। इसके गोंदसे आँतोंकी पेचिश कम होती है।

●

(१६४) क़ैसूम

फ़ैमिली : कॉम्पोजीटी (Family : Compositae)

नाम—(अ०) क़ैसूम; (हिं०) गंदमार; (द०) दौना; (ले०) **आर्टीमीसिआ आउस्ट्रिआका (Artemisia austriaca** Linn.); (अं०) इण्डियन सदर्न-वुड (Indian Southern-wood)।

उत्पत्तिस्थान—कारोमण्डल तट।

वर्णन—वस्तुतः क़ैसूम बिरंजासिफ़से भिन्न, किन्तु उसी किस्मकी एक घास है। यह बिरंजासिगका बड़ा भेद है। नर व मादा भेदसे यह दो प्रकारका होता है। क़ैसूम और बिरंजासिफ एक ही उद्भिद्के नर व मादा दो भेद हैं। नरको 'क़ैसूम' मादाको 'बिरंजासिफ़' कहते हैं। क़ैसूमके कांडके सिरेपर फूलका एक छत्र-सा होता है जिसकी गंध भारी और अरुचिकर होती है। रंग पीला और स्वाद तिक्त होता है। इसके फूलोंसे कभी पत्तोंसे तेल तैयार करते हैं, जिसे **रोग़न क़ैसूम** कहते हैं।

कल्प तथा योग—जिमाद क़ैसूम, रोग़न क़ैसूम आदि।

प्रकृति—पहले दर्जेके आदिमें या तीसरे दर्जेमें गरम व खुश्क (रूक्ष) है। तेल दूसरे दर्जेमें गरम व खुश्क है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—यह तिक्त, श्वयथुविलयन, ज्वरघ्न, कृमिघ्न, मूत्रजनन, आर्तवजनन, शोणित-स्थापन, वातहर, तारल्यजनन, विषघ्न, अश्मरीघ्न और रोमसंजनन है तथा ज्वर एवं कम्प, छातीकी पीड़ा, दमा, संधिगत वायु और गृध्रसीवातको लाभ पहुँचाती है और पेटके कृमियोंको निकालती है। योनिमें इसे धारण करनेसे उदरस्थ गर्भशिशु गिर जाता है। इसकी राख रक्तस्रावको बन्द करती है। इसलिये जहाँसे रक्तस्राव होता हो वहाँपर इसकी राख बुरकी जाती है। इसके फूलमें अफसन्तीनकी अपेक्षा तारल्यजनन शक्ति अधिक है। जलाई हुई कैंसूममें जलांशके नष्ट हो जानेके कारण रूक्षता बढ़ जाती, किन्तु उष्णता थोड़ीसी घट जाती है; क्योंकि जलनेके कारण अग्नेयांश घट जाता है। इसको जलाकर मलनेसे खालित्य (दाउस्सालब) आराम हो जाता है। जैतून, रेंडी, मूलीके बीज और कलौंजी इनके तेलोंमें इसे मिलाकर लगानेसे भौं और दाढ़ीके बाल शीघ्र निकल आते हैं। ऐसे व्रणशोथोंपर, जिनका पकना कठिन हो, इसे बिहीके साथ पकाकर या जौके आटेके मिलाकर लगानेसे वे शीघ्र पक जाते हैं या बैठ जाते हैं। इसके पीनेसे जीर्ण गृध्रसी वायुकी पीड़ा जाती रहती है। इसको जैतूनके तेलमें मिलाकर लेप करनेसे सर्दी जाती रहती है। इसको काढ़ा करके पीनेसे श्वासकी कृच्छ्रता (कष्ट) दूर हो जाती है तथा पेटके कीड़े मर जाते हैं, रुका हुआ पेशाब खुल जाता है, वृक्क (गुर्दे) एवं बस्तिगत पथरी टूटकर निकल जाती है तथा कम्प दूर होता है। इसको शराबके साथ पीनेसे बिच्छू, रुत्तेला और इतर कीड़ोंका विष उतर जाता है। इसको घरमें रखने और सुलगानेसे कीट-पतंगे भाग जाते हैं। इसमें अवरोधोद्घाटन (तफ़्तीह), संग्रहण (कब्ज) और शोषण (जज़्ब)की शक्ति निहित है। पेड़ूपर इसके बीजोंका लेप करनेसे महिनवारीका रक्त चालू हो जाता है। इसका लेप अपने प्रभावसे गर्भाशयका शूल मिटाता है। **अहितकर**–फुफ्फुस और आमाशयको। **निवारण**–फुफ्फुसके लिए कतीरा, खशखाश और बनफ्शा तथा आमाशयके लिए मधु एवं शीह। **प्रतिनिधि**–अफसंतीन, बाबूना और पुदीना। **मात्रा**–७ ग्राम (७ माशे) तक।

क़ैसूम का तेल—

प्रकृत तथा गुण-कर्म—इसके पत्तों और फूलोंसे तैयार किया हुआ तेल दूसरे दर्जेमें गरम एवं खुश्क (रूक्ष), विलयन, दोषको चूसकार निर्हरण करनेवाला (मुनश्शिफ़), श्रम-क्लमनिवारक, गर्भशातक और आर्तवजनन है तथा गर्भाशयमें गर्मी उत्पन्न करता एवं उसके मुँहको खोल देता है। प्रायः सर्दीके वायुके रोगोंको लाभ करता है। इसको मालिशसे सूजन उतरती है। ज्वरमें इसकी मालिशसे कँपकँपी पैदा नहीं होती।

◆

(१६५) कोंहड़ा, विलायती

फ़ैमिली : कूकूरबिटासे (Family : Cucurbitaceae)

नाम—(हिं०) कोंहड़ा, विलायती (लाल या पीला) कोंहड़ा, काशीफल; (अ०) अक़्तीन; (फा०) कद्दूयेशीरीं; (सं०) पीत कूष्माण्ड (भा०प्र०), डंगरी; (गु०) पतकारू कोलुँ, साकर कोलुँ; (म०;बम्ब०) लाल भोंपला, तांबड़ा भोंपला; (बं०) सफुरी कोमड़ा, विलायती कुमड़ा; (ले०) **कूकूरबिटा माक्सीमा (Cucurbita maxima** Duch.), **पर्याय–कूकूरबीटा पेपो** (*C. pepo* Linn.); (अं०) रेड गोर्ड (Red gourd), पम्पकिन (Pumpkin)।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्षमें इसकी खेती होती है।

वर्णन—गोल कद्दूकी तरहकी एक लताका प्रसिद्ध फल है, जो ऊपरसे पीला या ललाई लिए अथवा चितकबरा होता है। उसके भीतरसे ललाई लिए पीला मोटा गूदा निकलता है। इनमें कोई-कोई घड़ेके इतना बड़ा होता है। पका हुआ कुछ मिठास लिये हो जाता है। यह प्रायः वर्ष भर रह जाता है। कूकूरबीटा पेपो (**Cucurbita pepo** Linn.) इसकी दूसरी जाति है। इसको संस्कृतमें महा (राज-)कोशातकी; हिंदीमें 'कोकुँहड़ा' और कौल 'कर्कारू' कहते हैं। बीज चौड़ा-लट्वाकार लगभग २·५ सें०मी० (१ इंच) लम्बा, कुछ-कुछ सफेद, किनारेके चारों ओर किंचित् खातोदर और चपटी उभरी रेखा होती है। नुकीले सिराके समीप हाईलम (Hilum) होता है। गिरीका दल चप्टा, सफेद, तैलीय एवं एक छोटे शंक्वाकार बीजपत्र (Radicle)से युक्त होता है। इसमें कोई विशेष गंध नहीं होती, किन्तु स्वादमें गिरीकी भाँति (Nutty) होता है।

उपयुक्त अंग—फलका गूदा, बीज और बीजोत्थ तेल।

रासायनिक संगठन—इसमें सैपोनिन (Saponin), कूकुरबिटीन और लूटीन (Lutein) प्रभृति सत्व पाये जाते हैं।

प्रकृति—सर्द एवं तर। स्वाद मधुर एवं स्वादिष्ट।

गुण-कर्म तथा उपयोग—(बीज) **कृमिघ्न,** विशेषकर कद्दूदानाहर (Taenicide), मूत्रल और बल्य। बीजोत्थ तेल कृमिघ्न एवं नाड़ीबलदायक; फलका गूदा दग्ध, शोथ और फोड़े-फुन्सीपर पुलटिसकी भाँति प्रयुक्त करते हैं। यह गुरु, कोष्ठमृदुकर (सारक), पित्तहर, बवासीरका खून बन्द करता, खुलकर मूत्रोत्सर्ग कराता, हाथ-पाँवकी जलन या दाह दूर करता, प्रमेह और हस्तिमेहभेद (सलसलुल्बौल)को लाभ पहुँचाता, प्यास बुझाता, शरीरको स्थूल करता और भूख बढ़ाता है। **पका फल** बारीके ज्वरको लाभ पहुँचाता और **अधपका** कफका नाश करता है। उसके अतिरिक्त यह वायु, पित्त और फोड़ा-फुन्सीको दूर करता, सुस्वादु होता, चित्तको प्रसन्न रखता, कफ उत्पन्न करता, शरीरको बल प्रदान करता तथा विषको नष्ट करता है। गुण-कर्ममें कद्दूके समान, प्रत्युत उससे आर्द्रता कम रखता और पेठेसे सादृश्य रखता है। कृमिनिर्हरणके लिये पहले रोगीको एक दिन उपवास रखकर उसे लवण विरेचन देते हैं। पुनः यह मिश्रण पीनेको देते हैं :—३-४ औंस बीजका मग्ज इतनी चीनी और दूध या पानी मिलाकर पीसते हैं कि वह एक पाइंट हो जाता है। इसकी तीन मात्रायें बनाकर दो-दो घंटे बाद एक-एक मात्रा देते हैं और अन्तिम मात्रा देनेके तीन-चार घंटे बाद एरंड तेलकी एक मात्रा देते हैं। बीजोत्थ तेल १५ ग्राम ($१\frac{१}{४}$-$१\frac{१}{४}$ तोला) दो-दो घंटेके अन्तरसे दो बार देकर उसके दो-तीन घंटे बाद एरंड तेलका विरेचन देते हैं। **अहितकर**–आमाशयको। **निवारण**–गरम मसाला तथा अदरक-सोंठ आदि।

आयुर्वेदीय मत—पीला कोंहड़ा स्वादु, गुरु, अग्निमान्द्यकर, वातप्रकोपक, परम पित्तकारक और कफनाशक है। (भा० प्र०)।

●

(१६६) कोका

फ़ैमिली : एरिथ्रॉक्सीलासे (Family : Erythroxylaceae)

नाम—(अं०) कोका (Coca); (ले०) भेद–(१) **एरीथ्रॉक्सिलुम् कोका Erythroxylum coca** Lam. (अं०–**बोलीवियन कोका** Bolivian Coca); (२) **एरीथ्रॉक्सिलुम् ट्रूक्सीलेंसे** (**Erythroxylum truxillense** Rusby.) (अं०–**पेरूवियन कोका** Peruvian Coca)।

उत्पत्तिस्थान—यह भी एक विदेशागत वनस्पति है और पेरू तथा **बोलीवियामें** होती है। जावा तथा फारमूसामें यह विस्तृत परिमाणमें लगाया जाता है। भारतवर्षमें मद्रास, मैसूर एवं राँचीलेटो तथा अन्य स्थानोंमें भी इसको लगानेका प्रयास किया गया है।

वर्णन—१(**बोलीवियन या हुआनुकोमें** होनेवाला) पत्र–भूरापन लिए हरा, अण्डाकार, पतला, किंतु दृढ़ वा सघन, लगभग ५ सें० मी० (२ इञ्च) लम्बा और २·५ सें० मी० (१ इञ्च) चौड़ा अधः पृष्ठपर मध्यपर्शुकाके समानान्तर दो स्पष्ट शिराओंसे युक्त; पत्रप्रान्त अखण्ड, अग्र (Apex) गोल, मध्यपर्शुकाके ऊपरी धरातलपर एक धूमिल उभरी हुई रेखा होती है। (२) पेरूवियन कोकाके पत्र हरे, अभिप्रासवत् (Oblanceolate) और अत्यन्त भंगुर, किन्तु आधारकी ओर उत्तरोत्तर कम चौड़े होते हैं। यह लगभग ३·५७ सें० मी० (१॥ इञ्च) लम्बे और १·२५ सें० मी० ($\frac{1}{2}$ इञ्च चौड़े) तथा ऊपरी आधे भागमें मध्यमपर्शुकापर बिना किसी उभरी हुई रेखाके होते हैं।

जावा कोका अर्थात् जावाके कोका (**E. trux.**)का निर्यात स्थूल चूर्णके रूपमें होता है, और **कोकेन** बनानेके काम आता है। इसके पत्रका ऊपरीपृष्ठ हरा और अधः पृष्ठ किंचित् पिलाई लिए होता है। इसमें चाय जैसी हल्की गंध होती है, जो मसलनेपर अधिक स्पष्ट होती है। स्वाद किंचित् तिक्त एवं सुगन्धित होता है।

रासायनिक संगठन—इसकी पत्तियोंमें **कोकेन** (Cocaine) नामक प्रसिद्ध ऐल्केलॉइड पाया जाता है, जिसका उपयोग चिकित्सामें स्थानिक संवेदनाहरण (Local anaesthesia)के लिए किया जाता है। वनस्पतिकी छाल एवं बीजमें भी उक्त ऐल्केलॉइड पाया जाता है।

वक्तव्य—इस औषधिका प्रदान एवं वितरण 'डेंजरस ड्रग्स ऐक्ट' द्वारा नियन्त्रित होता है।

उपयुक्त अंग—पत्र, ऐल्केलॉइड (**कोकेन**)।

कल्प—प्रवाहीरसक्रिया (मात्रा–१/२ से १ ड्राम) एलिक्जिर कोकी, (मात्रा–१-४ ड्राम)।

गुण-कर्म तथा उपयोग—सबल नाड्युत्तेजक और वेदनाहर है। कोका थकानको रोकता है। दक्षिण अमेरिकानिवासी इसकी पत्तीको इसलिए पानकी तरह चबाते हैं जिसमें यह उनमें उत्साहके शौर्य (Feats of endurance)का सामर्थ्य उत्पन्न करे, थकावट दूर करे और प्यास बुझावे। इसके अतिरिक्त इसका उपयोग श्वासरोगकी चिकित्सामें तथा सार्वदैहिक नाडीबलदायक और बाजीकरणके रूपमें भी होता है। सामान्य दौर्बल्य एवं रोगोत्तर-दौर्बल्यनिवारणके लिए ये पत्तियाँ अतिशय गुणकारी हैं। मद्यपान और अहिफेनभक्षणकी आदत छुड़ानेके लिए इनको देते हैं। स्वापजनन और अवसादन भी इनके गुणोंमेंसे है। कोकाके पत्तोंकी रसक्रियाका द्रव आँतोंके रक्तस्रावको बंद कर देता है। अन्यान्य योगोंकी अपेक्षया इसके ताजा सुखाये हुए पत्ते श्रेष्ठतर होते हैं।

कोकेनको जलमें विलीन करके आँखमें डालनेसे पुतली फैल जाती है और आँखके पटल सुन्न हो जाते हैं। उस समय नेत्रके ऊपर शस्त्रक्रिया की जाती है। ५ भाग कपूर, ५ भाग क्लोरल हाइड्रास और १ भाग कोकेनको मिलानेसे बने हुए द्रवको दांतमें लगाने दंतशूल आराम होता है। कोकेनके विलयनकी पिचकारी देकर बिना पीड़ाके दांत उखाड़ा जा सकता है; परन्तु यह क्रिया भयकारी है। कोकेनको केवल मसूढ़ोंपर मल देनेसे भी उनको संज्ञाहीन किया जा सकता है जिससे दन्तोत्पाटनयन्त्रमें दांतको पकड़नेसे बिल्कुल पीड़ाका अनुभव नहीं होता। दंतशूल, सूजाक और बिच्छूके काटनेमें विविध प्रकारसे इसका उपयोग करते हैं, जिससे आध मिनट या मिनट भरमें आराम हो जाता है। विभिन्न प्रकारकी वेदनाओंमें इससे बहुत शीघ्र लाभ होता है। **अहितकर**–प्रबल घातक विष है। अस्तु इसके उपयोगमें बड़ी सावधानी रखनी चाहिए। **निवारण**–नाइट्रेट ऑफ एमाइल सूंघना, ब्रोमाइड ऑफ पोटैसियमका उपयोग, सिरपर ठंडे पानी आदिसे सर्दी पहुँचाना।

●

(१६७) कोदों

फ़ैमिली : ग्रामीने (Family : Gramineae)

नाम—(हिं०) कोदो (दों), कोदव, को (कु)दई; (फा०) ख़ुदरव; (सं०) कोद्रव, कोरदूष (क); (गु०) कोद्रो; (म०) कोद्रु; (बं०) कोदोआ-धान; (बम्ब०; पं०) कोद्र (ले०) पास्पालुम् स्क्रोबीकुलाटुम (**Paspalum scrobiculatum** Linn.); (अं०) पंक्चर्ड पैसपेलम् (Punctured paspalum)।

उत्पत्तिस्थान—भारतवर्षके समस्त उष्ण प्रदेशमें यह जंगली होता या इसकी खेती की जाती है।

वर्णन—एक प्रसिद्ध अन्न जिसे देहातके लोग खाते हैं। इसके दाने कंगनीके समान होते हैं।

प्रकृति—सर्द (मतांतरसे गर्म) एवं खुश्क।

गुण-कर्म तथा उपयोग—यह आमाशयको (गलीज) करता है। यह गुरु, बल्य, दीपन, विबंधकारक, शुक्रक्षयकर्त्ता और विकृतदोष तथा कब्ज एवं अफारा उत्पन्न करता है। इससे बहुत कम पोषण प्राप्त होता (कम रक्त बनता) है। (म० मु०)। इसका पुआल बहुत उष्ण है। इसे जलाकर मंजन करनेसे सूजे हुए मसूढ़ोंसे खून बहकर सूजन उतर जाती है। (बु० मु०)। यह उदरजकृमिनिस्सारक, अतिसारघ्न और शुक्रसांद्रकर्त्ता है तथा अकेला सेवन करनेसे आमाशयस्थ द्रवोंका शोषण करता है। यह तर (मर्तूब) प्रकृतिको सात्म्य है। अहितकर–निर्बल एवं रूक्ष प्रकृतिको; प्रबलरोधोत्पादक है। निवारण–खांड, गुड़, दूध, घी और शीतल पदार्थ। प्रतिनिधि–किसी-किसी गुणमें साँवाँ। प्रधानकर्म–स्निग्धप्रकृतिको लाभकारी है। मात्रा–आवश्यकतानुसार।

आयुर्वेदीय मत—कोदों रसमें कषाय, मधुर, शीतवीर्य, लघु, वातवर्धक, कफपित्तनाशक, संग्राहक (अत्यन्त-ग्राही) तथा शोषक है। (च० सू० अ० २९; सु० सु० अ० ४६)। कोदो रूक्ष, लेखन, विषनाशक, आमनाशक एवं रक्तपित्तको दूर करनेवाला है। बनकोदों स्वादु, कषाय, उष्णवीर्य, रूक्ष, लघु, लेखन, वातकारक (वादी), कफनाशक और मलमूत्रवर्द्धक है (वाग्भट्ट; शो० नि०; भा० प्र०)।

●

(१६८) खजामा

फ़ैमिली : लाबीआटी (Family : Labiatae)।

नाम—(अ०) खज़ामा; (फा०) शबेअंबूय, शबेबू; (ले०) लावैंडुला जाति (**Lavandula Sp.**)।

वक्तव्य—इसे फारसीमें 'शबेबू' और 'शबेअंबूय' कहते हैं, विशेषकर सफेद फूलवालेको। परन्तु भारतवर्षमें जिसे 'शबेबू (गुलशब्बू)' कहते हैं, वह इससे भिन्न है।

वर्णनादि—एक क्षुद्र वनस्पति जिसका क्षुप १ गज ऊँचा होता है। तना बारीक और चौकोर होता है; पत्र लकीरदार और सफेद; फूल नन्हें-नन्हें और आसमानी रंगके होते हैं, जिनसे कपूरकी तरह तीव्र सुगन्ध आती है। अधिकतया ये फूल ही औषधके काममें लिये जाते हैं। लावेण्डूला कुटुंबकी जातियाँ निम्न हैं :—

(१) लावेंडुला वेरा (**Lavendula vera** DC.), अर्थात् 'खज़ामा मुत्आरफ़ी' या (**Lavandula officinalis** Choise.)। इसको रोमसागरके पश्चिमी तटों पर और इंगलैण्डमें बोया जाता है। इसके फूलोंका तेल (Lavender Oil) ब्रिटिश फार्माकोपियामें सम्मत है। (२) लावेंडुला स्पीका (**Lavendula spica**)। इसको

ख़ज़ामउस्सुंबुल, ख़ज़ामउल्कबीर, सुंबुल ख़ज़ामी (ख़ज़ामउल् मुज़क्कर) और अंगरेजीमें स्पाइक लैवेण्डर (Spike Lavender) कहते हैं। इसके फूल गुच्छों या बालियोंमें लगते हैं, इसलिए इसे स्पाइक या 'सुंबुल' कहते हैं। यह स्पेन और इटलीमें विपुल होता है। इससे भी एक अत्यन्त तीक्ष्ण गंधी तेल खींचते हैं, जिसे साधारणतः 'स्पाइक ऑयल' कहते हैं। (३) लावेंडुला स्टीकास (**Lavendula stoechas** Linn.) अर्थात् उस्तूख़ूदूस। अंगरेजीमें इसको 'स्टीकाडोस (Stoechados)' कहते हैं, जो इसकी यूनानी संज्ञासे व्युत्पन्न है। वस्तुतः स्टीकाडोस जिससे उस्तूख़ूदूस अरबी बनाया गया है, उस द्वीपका नाम है, जहाँ यह उत्पन्न होता है (दे० 'उस्तूख़ूदूस')। (४) लावेंडुला बाइपिन्नाटा **Lavendula bipinnata** O. Ktze. (Syn L. **burmani** Benth.) अर्थात् ज़ंगली लैवेंडर आदि।

प्रकृति—पहले दर्जेमें गरम और दूसरेमें रूक्ष है।

गुण-कर्म—तीव्र सुगन्धपूर्ण होनेके कारण यह कोथप्रतिबंधक औषध है। व्रण और सूजन पर इसका उपशोषण और श्वयथुविलयन कर्म होता है। हृदय और मस्तिष्क पर यह सौमनस्यजनन एवं बल्य कर्म करता है। यह वातनाड़ियों तथा अन्त्र और आमाशयको भी शक्ति देता और उनसे वायुका उत्सर्ग करता (वातानुलोमन) है। यह गर्भाशयगत द्रवों और मलोंको सुखाता और संशोधन करता तथा गर्भधारणामें सहायक होता है।

उपयोग—वायुकी दुर्गन्ध दूर करनेके लिए खजामाके फूलकी धूनी देते हैं। व्रणरोपण और श्वयथुविलयनके लिए जौके आटाके साथ इसका लेप लगाते हैं। मस्तिष्क, वातनाड़ी, हृदय और यकृत्के दौर्बल्य, अग्निमांद्य, उदराध्मान और शूल (कुलंज) जैसे रोगोंमें इसका उपयोग करते हैं। गर्भाशयके शोषण और संशोधन तथा गर्भधारणाके लिए इसकी योनिवर्ति उपयोग करते हैं। इसके फूलोंसे निकाला हुआ तेल उदराध्मान, शूल, वातिक मद (मराक़), अपतन्त्रक और वातनाड़ीदौर्बल्य प्रभृति रोगोंमें प्रयुक्त होता है। मात्रा–५ ग्राम से ७ ग्राम (५ से ७ माशे) तक; रोग़न ख़ज़ामा ½ बूँद से ३ बूँद तक।

(१६९) खजूर

फ़ैमिली : पामे (Family : Palmeae)

नाम—पक्का ताजा पिंडखजूर(हिं०) खजूर (म०; गु०), पिंडखजूर; (अ०) रुतब, तम्र रुतब; (फा०) ख़ुर्माए तर, ख़ुर्माए ताज़ा; (सं०) पिण्डखर्जूरी, द्वीप्या; (बं०) खेजुर। पक्का सूखा पिण्डखजूर या छुहारा (हिं०) छुहा(–वा,–आ)रा, छोहारा, खार (–रि) क, खुरमा; (अ०) ख़ुर्माए याबिस, तम्र; (फा०) ख़ुर्मा, ख़ुर्माए ख़ुश्क, ख़ुर्माए ख़ारके (ख़रके); (बं०) खाजूर, खुर्मा; (अ०) ख़ुर्मा; (तु०) कर्मा; (पश्तु) कजूर; (म०) खारीक; (कना०) खर्जूर; (गु०) खजूर, खारेक; (सिंध) कुरमा; (पं०) पिंड; (बलू०) ख़ुर्मा; (अं०) डेट (Date)।

वक्तव्य—इसके उपर्युक्त समस्त नाम फलके हैं। वृक्षको लैटिनमें फेनिक्स डेक्टिलीफेरा (**Phoenix dactylifera** Roxb.) कहते हैं। अंगरेजीमें अरेबिअन या कल्टिवेटेड डेट पाम (Arabian or cultivated Date-palm), यूनानीमें फोइनिक्स (Phoinix), इब्रानीमें 'तोमेर' जिससे अरबी 'तम्र' व्युत्पन्न है, अरबीमें नख्ल, नख़ील और शज्रतुत्तीब तथा फारसीमें 'दरख़्ते ख़ुर्मा' और हिंदीमें खजूरी, सेंधी या सेंदी कहते हैं। यह विदेशी खजूर है। देशी या जंगली खजूरको लैटिनमें फेनिक्स सिल्वेस्ट्रिस (**Phoenix sylvestris** Roxb) कहते हैं।

उत्पत्तिस्थान—उत्तरी अफ्रीका, मिस्र, सीरिया और अरबका यह आदिनिवासी है तथा यूनान, इटली और सिसलीमें इसके पेड़ लगाये भी जाते हैं। साम्प्रत भारतवर्षके सिंध और पंजाब आदि देशों विशेषतः मुलतानमें इसकी खेतीकी जाती है। यह मुलतान, अजमेर, सूरत, बम्बई और गुजरातकी ओर से यहाँ आती है। विदेशी पिंडखजूर (रुतब) मक्केसे यहाँ आती है।

वर्णन—यह ताल या खजूरकी जातिके एक बड़े पेड़का प्रसिद्ध फल है। फल पकने पर १ से ३ इंच लम्बा प्रायः कुछ लाल या कुछ भूरे रंगका होता है। इसका गूदा मीठा होता है। जब यह सूख जाता है तब 'छुहारा' कहलाता है। छुहारा अंगूठेके बराबर लंबा, बेलनाकार और गोपुच्छाकार होता है। यह एक अत्यन्त बारीक और स्वच्छ लाल और कुछ-कुछ पीले छिलकेसे आवरित होता है। इसका ऊपरी धरातल झुर्रीदार होता है और गूदा अत्यन्त स्वादिष्ट होता है। इसके भीतर एक बड़ी गुठली होती है। इसके वृक्षसे बहनेवाले रसको 'खजूरी' कहते हैं।

रासायनिक संगठन—इसमें विटामिन 'B' और स्कर्वी (प्रशीताद) हर जीवतिक्ति, फलमें जीवतिक्ति 'A' 'B' और 'D' होती है।

पिंडखजूर और छुहारा—

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम और पहले दर्जेमें तर है। आयुर्वेदके मतसे शीतल (च०; सु०) है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—यह जीवनीय (कसीरुल्ग़िज़ा), सांद्ररक्तजनक, वाजीकर, शुक्ल, बृंहण, उष्णताजनन और वातनाड़ीबलदायक है। छुहारेको आहारकी भाँति खानेसे यद्यपि अत्यन्त पुष्टि प्राप्त होती है, तथापि इससे जो रक्त उत्पन्न होता है वह सांद्र होता है (इसी कारण यह यकृत्प्लीहाके लिए अहितकर है)। औषधकी भाँति इसको अधिकतर शरीरके बलवर्धन (पुष्टि), बाजीकरण और पैच्छिल्यजननके लिये दूधमें उबालकर उपयोग करते हैं। नपुंसकताके लिये इसका माजून खिलाते हैं। माजून आर्द्र-खुर्मा इसका एक प्रसिद्ध माजून है जिसका प्रधान उपादान छुहारेका आटा (आर्द्र-खुर्मा) है। उष्णताजनन और वातनाड़ीबलदायक होनेके कारण कतिपय कफजरोगों, जैसे–कटिशूल, कूल्हेका दर्द (दर्देवरिक) आदिमें इसका उपयोग कराते हैं। यह वक्षका कफसे शुद्ध करता है। उष्णताजनन होनेसे शीत प्रकृतिवालोंको सात्म्य और उष्ण प्रकृतिवालोंको असात्म्य है। अहितकर–कब्ज पैदा करता है। निवारण-काहू और शुक्तमधु। प्रतिनिधि–खजूर। मात्रा–५ से ७ दाने तक।

आयुर्वेदीय मत—खजूर (फल) रस और विपाकमें मधुर, गुरु, शीतल, बृंहण, वृष्य, हृद्य, तर्पण, वातपित्तहर तथा क्षय, अभिघात, क्षत-क्षय, दाह और रक्तपित्तको दूर करनेवाला है। खजूर की ताड़ी (खजूरी) मादक, पित्तकर, रुचिकर, दीपन, बलकारक, वीर्यवर्धक तथा वातकफहर है। (च० सू० अ० २७; सु० सू० अ० ४६; कै० नि०)।

वक्तव्य—नारियल (म०-माड़), ताड़ और खजूरके वृक्षसे बहनेवाले रसको क्रमशः माड़ी (मराठीमें), ताड़ी और खजूरी कहते हैं। इसको सड़ानेसे इसमें अम्लता और मद्य उत्पन्न होता है। इसको भबकेमें खींचकर मद्य तैयार करते हैं। यह मद्य दीपन, पाचन और उत्तेजन होता है। विदेशी मद्यसे यह मद्य विशेष अच्छा होता है। रोगीको मद्य देनेकी आवश्यकता होने पर विलायती मद्य देनेकी अपेक्षया इसे देना अधिक प्रशस्त है। नारियल, ताड़ और खजूरके रससे गुड़ तैयार करते हैं। यह गन्नेकी चीनीसे अधिक पौष्टिक और सारक है। फल स्निग्ध, कफोत्सारि, पोषणकर्ता, मृदुसारक और वाजीकर है तथा श्वास, उरःव्याधि एवं कास और ज्वर, सुजाक आदिमें भी इसका उपयोग करते हैं। निर्यास–अतिसारमें तथा मूत्र-जननेन्द्रिय संस्थानके रोगोंमें गुणकारक है।

नव्यमत—(यह) ताजारस शीतल, मूत्रजनन, पौष्टिक एवं मृदुसारक है।

●

(१७०, १७१) खतमी और गुलखैरू

फ़ैमिली : माल्वासे (Family : Malvaceae)

खतमी—

नाम—वृक्ष (फा०) ख़त्मी, ख़ित्मी (खतमी); (अ०) कसीरुल् मुनफ़ेअत; (तु०) हत्मी; (क०) सजपोश; (लें०) आल्थेआ आफ़्फ़ीसिनालिस (**Althoea officinalis** Linn.); (अं०) मार्श मैलो (Marsh-mallow)। पुष्प (हिं०) खत्मीका फूल; (अ०) ख़ित्मी, वर्दुल् ख़ित्मी; (बम्ब०; द०) गुलखैरू (रा)। बीज (हिं०) ख़त्मीका बीज; (अ०) बज्रुल् ख़ित्मी, हब्बुल्ख़त्मी; (फा०) तुख़्मे ख़ित्मी। पत्र (फा०) बर्गे ख़ित्मी। मूल (अ०) अस्लुल् ख़ित्मी; (फा०) रेशए ख़ित्मी, बेख़े ख़ित्मी।

उत्पत्तिस्थान—संसारके लगभग हर भागमें यह बोई जाती है। यह कश्मीर और पश्चिम हिमालयमें भी होती है। भारतवर्षमें इसका आयात फारससेभी होता है।

गूलखैरू—

नाम—(हिं०) गुलखैरू; (फा०) ख़ैरू, गुले ख़ैरू; (बम्ब०; द०;० म०) गुलखैरू; (लें०) आल्थेआ रोजेआ (**Althoea rosea** Linn.); (अं०) होली हॉक (Holly Hock); राउंड डॉक (Round Dock)।

वक्तव्य—'ख़ेरूज' ख़ेरू (फ़ारसी)का अरबी रूपान्तर है।

उत्पत्तिस्थान—अब यह प्रायः समस्त भारतीय उद्यानोंमें लगाया जाता है।

वर्णन—यह एक बड़ा बहुवर्षायु क्षुप है जो ६० सें० मी० से ९० सें० मी० (२ से ३ फुट) ऊँचा और लोमयुक्त होता है। पत्र बड़े, भूरापन लिए हरे (फीके), तारकाकार रोमोंसे घनावृत होनेके कारण मखमली, हृदयाण्डाकार, नुकीले, पत्र प्रान्त अनियमितरूपसे दन्तुर (Serrate), ६·२५ सें० मी० (२$\frac{१}{२}$ इंच) लम्बे, ३·७५ सें० मी० (१$\frac{१}{२}$ इंच) चौड़े, किंचित् खुरदरे, खुब्बाजीके पत्रसे बड़े, सूखनेपर भंगुर होते हैं। फूल बड़ा, गोल और चौड़ा तथा गंधरहित होता है। फूलोंके रंगके विचारसे सफेद, लाल और काला इत्यादि इसके विविध भेद होते हैं। इनमें सौसनी या ऊदे फूलकी खतमीको 'गुलखैरू' कहते हैं। इसके फूल खतमी के फूलसे बहुत बड़े होते हैं। फूलोंके झड़नेके बाद इसमें बोंड़ी लगती है जिसमें गोल, चपटे और काले बीज होते हैं। जड़ बेलनाकार या किंचित् शंक्वाकार और तंतुकी तरहके उपमूलोंसे युक्त, ७·५ सें० मी० से १५ सें० मी० (३ से ६ इंच) लम्बी भीतरसे सफेद और भरी हुई तंतुमय होती है। बाहरसे भी इसका रंग सफेद (भूरापन लिए सफेद) होता है और उस पर लंबाईके रुख गहरी लंबी झुर्रियाँ पड़ी होती हैं। यह साधारणतया छिलका उतारी हुई दशामें बिकती है। उस समय इसका बाहरी धरातल तंतुमय और सफेद होता है। सूखनेके कारण इसपर लंबाईके रुख गंभीर सीतायें या नलिकायें (Furrows) होती हैं तथा नीचेकी ओर यह क्रमशः गोपुच्छाकार होता जाता है। इसकी गन्ध हलकी और मनोरम तथा स्वाद पिच्छिलतायुक्त किंचिन्मधुर एवं फीका (Mawkish) होता है। इसको थोड़ा छीलकर उपयोग करना चाहिए। इतर भागकी अपेक्षया जड़में लबाब अधिक होता है। प्रायः दो वर्षके पुराने क्षुपसे एक प्रकारका पीला या लाल गोंद प्राप्त होता है। इसको सूखा रखना चाहिए; अन्यथा (सीलसे) इसका काढ़ा पिलाई लिए और अप्रिय गन्धवाला बनेगा।

रासायनिक संगठन—सूखी जड़में २५ प्रतिशत लबाब, ५० प्रतिशत पिष्ट (स्टार्च), पेक्टिन, शर्करा, स्थिर तेल और १ या २ प्रतिशत ऐल्थीईन (Althein) या खत्मीन एवं ऐस्पैरैगिन (Asparagin) होता है। यह क्रिस्टली और ऐस्पैरागसमें वर्तमान ऐस्परीन (Asparin)के समान होता है। जलाने से ४$\frac{१}{२}$ प्रतिशत राख मिलती है।

उपयुक्त अंग—फूल, बीज, जड़, पत्र, तना और गोंद इत्यादि।

प्रकृति—दिल्लीके हकीमोंके मतसे समताके साथ गरम। लखनऊके हकीमोंके मतसे पहले दर्जेमें गरम व तर।

गुणकर्म तथा उपयोग—खतमीके बीज और पत्र शोथ, फुंसी (बुसूर) और दर्दकी जगह लगानेसे दोषविलोमकरण, श्वयथुविलयन, दोषपाचन और संशमन कर्म करते हैं। इसके बीजों और फूलोंका क्वाथ आंतरिक रूपसे कफका पाचन करता है और श्वासोच्छासावयवोंमें मृदुता उत्पन्न करता है। जड़ अन्त्रपर संशमनकर्म करती है और उससे दोषोंको फिसलाकर उत्सर्गित करती है। इसका प्रधान कर्म श्वयथुविलयन और कासघ्न है। ख़तमी और उसके पत्तोंको पानीमें पीसकर प्रलेप करनेसे या पानीमें पकाकर परिषेक करनेसे बालतोड़ (दुम्मल), स्तनकोप, गृध्रसी, आमवात और अन्य उष्णशोथ विलीन या परिपक्व हो जाते हैं। पार्श्वशूल (फुफ्फुसावरणशोथ) और फुफ्फुसशोथमें इसके बीजोंको कैरूतीमें योजित करके मालिश करते हैं। प्रसेक, प्रतिश्याय और उष्ण कालमें इसका काढ़ा पिलाते हैं। मूत्रदाह, अन्त्रशोथ, प्रवाहिका, अन्त्रावरोध और पित्तज अतिसारमें खतमीका बीज दोषोंको फिसलाकर निकालनेवाले और संशमनकी भाँति इसका काढ़ा करके या जलमें लबाब निकालकर पिलाते हैं। **अहितकर**–आमाशय को। **निवारण**–मधु और सौंफ। **प्रतिनिधि**–खुब्बाजी। **मात्रा**–५ से ७ ग्राम (५ से ७ माशे) तक।

ख़मान सग़ीर व कबीर

यूनानी निघंटु-ग्रन्थोंमें इसके इन दो भेदोंका उल्लेख मिलता है–(१) क्षुद्र (**ख़मान सग़ीर**) और (२) बृहत् (ख़मान कबीर)। नीचे इनमेंसे प्रत्येकका क्रमशः विवरण किया जा रहा है :—

* * *

(१७२) ख़मान सग़ीर

फ़ैमिली : काप्रीफोलिआसे (Family : Caprifoliaceae)

नाम—(पं०) मुश्कियार, गन्हुला; (नब्ती) ख़मान, ख़म्मान; (अ०) खमान सग़ीर, ख़मानुल् अर्ज़, रक़्आ बसरा; (ले०) साम्बुकुस एबुलुस (**Sambucus ebulus** Linn.); (अं०) ड्वार्फ एल्डर (Dwarf Elder), ग्राउंड एल्डर (Ground Elder)।

उत्पत्तिस्थान—हिमालयकी शुष्क आंतरिक घाटियाँ जैसे–कंगन घाटी, कश्मीर, पंगी और चंबामें ६,०००-११,००० फुटकी ऊँचाई तक तथा यूरोप और ब्रिटिश द्वीपसमूह।

वर्णन—एक तृणजातीय पौधा (घास); काण्ड चौकोर, कड़ा नहीं और ग्रंथिल; पत्र बादाम पत्रवत्, पत्रप्रांत कटवाँ, प्रत्येक गाँठ पर फल लगता है; पुष्प सफेद, नरकेसर गुलाबी, शाखांतपर घुंडियाँ भी बड़े भेदवालेकी तरह होती हैं। बीज राईके दानेके बराबर होते हैं। गंध गंभीर; जड़ लम्बी और उंगलीके बराबर मोटी, काले और रक्त वर्णकी होती है। यूनानी वैद्यकमें इसीका अधिक व्यवहार होता है। मात्र खमान शब्दसे यही क्षुद्र भेद अभिप्रेत होता है।

उपयुक्त अंग—पत्र, फल और मूल।

रासायनिक संगठन—पत्तीमें सायनोजेनेटिक ग्लूकोसाइड (Cyanogenetic glucoside) तथा उत्पत् तेल (Essential oil) होता है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—जड़ एवं फल विरेचन होनेसे शोथमें प्रयुक्त होते हैं। पत्र--श्लेष्मनिस्सारक, मूत्रल, स्वेदल, विरेचन एवं शोथोपयोगी है। बुक़रात जलोदरमें प्रायः खमानका प्रयोग कराता था। इस रोगमें रोगीके विरेचनार्थ वह खमानके पत्तोंको पानी और दूधमें उबालकर पिलाया करता था।

* * *

(१७३) ख़मान कबीर

नाम—(अ०) खमान कबीर; (यू०) आकनी; (ले०) साम्बुकुस नीग्रा (**Sambucus nigra** Linn.); (अं०) कॉमन एल्डर (Common Elder), ब्लैक एल्डर (Black Elder)।

उत्पत्तिस्थान—यूरोपके बहुशः भाग, ब्रिटेन, उत्तरी अमरीका, एशिया माइनर और जापान और भारतीय उद्यानोंमें अल्प मात्रामें इसकी खेती की जाती है।

वर्णन—इसके पौधे खमान सगीरके पौधोंसे बड़े, शाखायें सफेदी मायल और नरकट या बाँसकी तरह गोल; पत्र अखरोटके पत्रकी तरह, किन्तु उससे छोटे होते हैं और उनसे दुर्गन्ध या तीव्र गंध आती है। प्रत्येक शाखामें पांच तक पत्र होते हैं और हर शाखाकी छोर पर घुण्डी (कुब्बः) होती है। छोटे-छोटे फूलोंके गुच्छे परस्पर मिलकर एक बड़े फूलमें परिणत हो जाते हैं। फूल पहियेके आकारका छोटा, पंच अंडाकार और अधिककोणीय खंडयुक्त, ताजा पांडुपीत और सूखनेपर पांडुधूसरित पीत, स्वाद पिच्छिलतायुक्त, गंध हलकी किन्तु विशिष्ट प्रकार की होती है। फूलकी ऊपरी पंखुड़ियाँ दंतित रंगमें ललाई लिये सफेद होती हैं। पुष्पके मध्यमें पाँच पुंकेसर (Stamens) या बाल होते हैं और केसर पीले रंगका होता है। स्वाद तिक्त और गंध विशिष्ट प्रकारकी अप्रिय होती है। फल—हब्बतुल्ख़जराकी तरह तथा श्यामता लिए नीलवर्णका और आकृतिमें बाल (खुशे) के सदृश होता है तथा उससे मदिराके समान गंध आती है। छाल बाहरसे हलकी भूरी, कोमल और कॉर्कवत्, जिसमें चौड़ी दरारें पड़ी होती हैं, भीतरी धरातल सफेद और चिकना होता है। स्वाद पहले कुछ-कुछ मीठा, उसके बाद तिक्त एवं उत्क्लेशकारक होता है।

उपयुक्त अंग—पत्र, पुष्प, फल, त्वक् और मूल। पुष्प (पत्र और छालका) तथा पुष्पार्कका पाश्चात्यवैद्यकमें भी उपयोग होता है।

रासायनिक संगठन—पत्र और छालमें सम्बुनाइग्रिन (Sambunigrin) नामक एक सायनोजैनेटिक ग्लुकोसाइड; कोमल पत्तियोंमें सम्बुसिन (Sambucin) नामक एक क्षाराम (Alkaloid), ऑक्जैलिकाम्ल, अनुत्पत् तेल (Essen. oil); फूलमें रूटिन (Rutin)के समान एल्ड्रीन नामक सत्व और अल्पप्रमाणमें उत्पत् तेल; छाल, पत्र और पुष्पकी घुंडीमें कोलीन (Cholin) और एक क्षाराभ तथा फल में क्राइसैन्थेमिन (Chrysanthemin) नामक सत्व होता है।

प्रकृति—उभय भेद खुश्क (रूक्ष) हैं। खमान सगीर स्पष्टतया दूसरे दर्जेमें सर्द एवं खुश्क है, यद्यपि इसमें स्वल्प प्रमाणमें उष्णता भी है, तथापि वह पराभूत है और शीतलता अभिभूत (प्रबल) है। किन्तु खमान कबीरमें उष्णता अभिभूत है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—(बृहत्) फूल-स्वेदल, मूत्रल, ज्वररोगमें प्रयुक्त, फिरंग तथा आमवातमें रसायनरूपेण प्रयुक्त; फल-छाल-मूल मृदुसारक; तनेकी भीतरी हरी छाल विरेचक एवं अवरोधोद्घाटक है। यूरोपीय चिकित्सक ५ रत्ती से $\frac{१}{२}$ ड्रामकी मात्रामें मद्यके साथ इस छालका व्यवहार उन अवस्थाओंमें जिनमें तीव्र विरेचनकी आवश्यकता हो, करते थे। उभय भेद शोथादिविलीनकर्ता हैं। इनमें बृहत् भेदके पत्तोंको पीसकर प्रलेप करनेसे व्रणपूरण होता है। क्षुद्रभेद दोषादि विलोमकर्त्ता (रादेअ) है। यह पिच्छिल दोषोंका मलमार्गद्वारा निर्हरण करता है। इसके तने और पत्तोंका काढ़ा पीनेसे श्लेष्मा और कफमिश्र अप्रकृत पित्त (मिर्रए सफ़रा)का मलमार्ग द्वारा निर्हरण होता है। इसी प्रकार इनके स्वरस और मूलक्वाथके उपयोगसे भी होता है। संधिच्युत (जब्र) एवं अस्थिभग्न स्थानपर अस्थिसंधानार्थ तथा उग्रकंडरावितान अर्थात् मोच आनेपर इसकी जड़का स्वरस एवं क्वाथ तथा इसी प्रकार ९ माशा इसकी जड़ पीसकर लगाने या बाँधने और अभिघात (सक़्ता) पर प्रलेप करनेसे बड़ा उपकार होता है। जलोदर, कृष्णसर्पदंश और संधिशूलमें इसकी जड़का काढ़ा मद्यके साथ सेवन करने अथवा जड़ और पत्तोंको मद्यमें

पकाकर खानेसे जलोदर आराम होता है। इसके सेवनसे उदरसे पीले रंगके द्रवका निर्हरण खूब होता है तथा अवरोधोंका उद्घाटन होता है। इसके रसका गंडूष करनेसे दन्तकृमि नष्ट होते हैं। तीन दिनतक इसे नाकमें टपकानेसे नेत्रकी लालिमा दूर होती है। इसके काढ़ेमें बैठनेसे जरायुकी सूजन एवं कठोरता दूर होती हैं, गर्भाशय कोमल होता है, गर्भाशय का मुँह खुल जाता और अन्यान्य गर्भाशयिक विकारोंका सुधार होता है। इसका फलस्वरस मद्यके साथ पीनेसे भी उक्त लाभ होता है। इसके फलोंका स्वरस पीनेसे अथवा पके फलोंको बालोंपर मलनेसे वे काले होते हैं और उनका झड़ना बन्द हो जाता है। इसके ताजे पत्तोंको पीसकर जौवके आँटेमें मिलाकर लेप करनेसे गरम सूजन, अग्निदग्ध (एवं तज्जन्य वेदना वा) जलसंत्रास और भगंदर आराम होता है। बकरीकी चरबीके साथ इसका उपयोग करनेसे वातरक्त आराम होता है। गर्भाशय-शूल, गुदरोग और नाड़ीव्रणमें इसकी जड़के स्थापनसे उपकार होता है। (मख़्ज़न व मुहीत)।

आधुनिक पाश्चात्य वैद्यकके मतसे इसके फूल (गुलेखमान-Sambuci floweres)में कोई विशेष गुण नहीं होता। केवल इसका अर्क (Aqua Sambuci) सुगंधके लिए लोशनोंमें पड़ता है। यह छाईं (Freckles)को दूर करता है। इसके फूलोंका मलहर भी बनाते हैं। यह ठंढा मुलायम करनेवाला है। आध सेर इन फूलोंको आध सेर चर्बीमें उबालकर छान लेते हैं।

●

(१७४) खरबूजा

फ़ैमिली : कूकूरबिटासे (Family : Cucurbitaceae)

नाम। फल—(हिं०) खरबूजा, डँगरा; (अ०; रू०) बित्तीख़; (फा०) ख़र्बु(र्बू)ज़ः, ख़र्पु(र्पू)ज़ः; (सं०) खर्बु(र्बू)जं, षड्भुजं(जा); (म०) खरबुज, चिबुड; (ले०) कूकूमिस मेलो (**Cucumis melo** Linn.); (अं०) स्वीट मेलन (Sweet Melon)। (बीज) (अ०) बज्रुल् बित्तीख़; (फा०) तुख़्म ख़र्पु(र्बु)ज़ः।

उत्पत्तिस्थान—सम्पूर्ण भारतवर्षमें इसको खेती की जाती है।

वर्णन—यह ककड़ीकी तरहकी एक लताका प्रसिद्ध फल है, जो गोल, परिपुष्ट, मीठा और सुगंधित होता है।

फल (खरबूजा)—

प्रकृति—पका और मीठा पहले (मतान्तरसे दूसरे) दर्जेमें गरम और दूसरे दर्जेमें तर (स्निग्ध), कच्चा और फीका खरबूजा पहले दर्जेमें शीत और दूसरेमें तर है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—खरबूजेका गूदा शरीरको पुष्टि (आहार) प्रदान करता और तरी पैदा करता है। सुगंधित होनेसे हृदय एवं मस्तिष्क पर इसका सौमनस्यजननकर्म होता है। त्वचा पर यह लेखनकर्म करता है। यह आशुप्रवेशक्षम (सरीउन्नुफ़ूज़) है और आमाशयमें प्रधान दोषमें परिणत हो जाता है। अन्त्र पर यह सारक (मुलय्यिन) तथा वृक्क, बस्ति और स्तनकी वाहिनियों (दुग्धस्रोतस्) प्रवर्तनकारीकर्म करता है। इसका प्रधान कर्म मूत्रजनन और कामलानाशन है। खरबूजा एक मेवाकी भाँति खाया जाता है। इससे पर्याप्त पुष्टि (ग़िज़ाइय्यत) एवं तरावट (तरतीब) भी प्राप्त होती है। अतएव इसके निरंतर उपयोगसे शरीरका कार्श्य दूर होकर शरीर मोटा हो जाता है। इसके सेवनका सर्वोत्तम काल दो आहारोंके मध्यका काल है जबकि प्रथम आहार आमाशयमें पचकर अन्त्रकी ओर चलायमान हो चुका रहता है। इसके सिवाय अन्य दशाओंमें इसका सेवन निरापद नहीं है। इसके बारबार खानेसे

दांत स्वच्छ और चमकीले हो जाते हैं; दाँतों पर जमा हुआ मैल भी साफ हो जाता है। इसे उचित रीति और प्रमाणमें खानेसे खुलकर साफ दस्त होता है, परन्तु अंधाधुन्ध और अत्यधिक सेवनसे दस्त आने लगते हैं। मूत्रजनन होनेके कारण जलोदर, कामला, मूत्रमार्गस्थ व्रण और बस्तिवृक्काश्मरीमें इसका सेवन गुणकारी है। स्तन्याल्पताकी दशामें यह स्तन्यकी वृद्धि करता है। त्वचाके चिह्न और झाईं दूर करनेके लिए इसका गूदा पीसकर त्वचापर लगाया जाता है। इसका छिलका भी मूत्रल और अश्मरीघ्न है। इसे मांसके साथ मिलाकर पकानेसे उसको शीघ्र गला देता है। अहितकर—यह अजीर्ण तथा पित्तज ज्वर उत्पन्न करता और शीघ्र परिणतिशील है। निवारण—शुक्तमधु, सिरका और अनारका रस। प्रतिनिधि—प्रवर्तन कर्मके लिए फूट।

बीज (तुख्म ख़र्पुज़ा)—

प्रकृति—पहले दर्जेमें गरम और दूसरेमें तर है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—मूत्रजनन, आर्तवजनन, वस्ति-वृक्काश्मरीनाशन, लेखन और अवरोधोद्घाटक है। इसका प्रधान कर्म यकृदवरोधोद्घाटन और मूत्रप्रवर्तन है। रुद्धमूत्रार्तव, वस्तिवृक्काश्मरी और औपसर्गिक पूयमेह (सूजाक) में इनका शीरा निकालकर पिलाया जाता है। प्रवर्तनकारी होनेके कारण ही यह ज्वरसंतापको शमन करता है। मूत्रजनन, लेखन और प्रमाथी (मुफ़त्तेह) होनेके कारण यह यकृत्के अवरोधोंका उद्घाटन करता तथा यकृत्, बस्ति और वृक्कके शोथोंको नष्ट करता है। लेखन होनेके कारण चेहरेका रंग निखारने और त्वचाके कतिपय रोगोंको नष्ट करनेके लिये पतला लेप (तिला)की भाँति इसका बाह्य प्रयोग करते हैं। अहितकर—प्लीहाके रोगोंके लिए। निवारण—शुद्ध मधु। प्रतिनिधि—ककड़ीके बीज। मात्रा—५ से ७ ग्राम (५ से ७ माशे) तक।

आयुर्वेदीयमत—कच्चा खरबूजा कड़वा, कुछ-कुछ मीठा और पाकमें किंचित् खट्टा है; पका खरबूजा तृप्तिकारक, पुष्टिकारक, वृष्य, दाहको दूर करनेवाला, श्रमको हरनेवाला, मूत्रवर्धक तथा पित्त और उन्मादका नाश करनेवाला, कफकारक और वीर्यजनक है (रा० नि०)। रत्नाकरमें इसे शीतवीर्य लिखा है।

(१७५) ख़र्नूब (बुस्तानी व बर्री)

फ़ैमिली : लेगूमिनोसी (Family : Legumicseae)

(१७५) ख़र्नूब बुस्तानी

नाम—(अ०) ख़र्नूब, ख़ुर्नूब सँदलानी, खर्नूब शामी; (यू०) केराटिआ (Keratia), केराटोनिआ (Keratonia); (पं०) खर्नूब; (ले०) सेराटोनिआ सिलिकुआ (**Ceratonia siliqua** Linn.); (अं०) सेंट जॉन बीन (ब्रेड) (Saint Jhon's bean (bread), फ्रूट ऑफ दि केरोब ट्री (Fruit of the Carob tree), दी केरोब ट्री (The Carob Tree)।

उत्पत्तिस्थान—भूमध्यसागरके तटीय देश (प्रान्त) का आदिवासी है। एशियामाइनरमें फैला हुआ है। अन्य देशों जैसे फिलस्तीन, श्यामदेश, पुर्तगाल और अफ्रीकामें यहींसे लगाया गया है। भारतवर्षमें भी पंजाब तथा अन्य कतिपत स्थानोंमें यह अब नैसर्गिक रूपसे होने लगा है।

वर्णन—खर्नूबके वृक्ष दो प्रकारके होते हैं:—(१) बागी (बुस्तानी) और (२) जंगली (बर्री)। इनमें बागी खर्नूब (ख़र्नूब बुस्तानी)का पेड़ बड़ा होता है। पत्र संयुक्त, पक्षाकार (Pinnate), गहरे हरे गोलाई लिए, दलदार और कड़े, पत्रप्रान्त अखंडित, शाखापर आमने-सामने लगे होते हैं। फूल सुनहला पीला होता है। इसमें फलियाँ

लगती हैं जो एक बित्ताके बराबर १०सें० से १२·५ सें०मी० या २० सें०मी० (४-५ या ८ इञ्च लम्बी), २·५ सें० मी० (१ इञ्च चौड़ी), ३·१२५ मि० मी०से ४·१६ मि० मी० (१/८-१/६ इञ्च) मोटी और पतली, चपटी, सूखनेपर चौकोर, काली या ललाई लिए भूरी, मसृण, गुदार, बहुकोषयुक्त और कपाटरहित होती हैं। इनके भीतर हलका भूरा, मुलायम मीठा मांसल गूदा भरा होता है। बीज बाकलाकी तरहके, कुछ-कुछ चपटे, स्थूलतः अण्डाकार पृथक् कोषमें और ८-९ मिलीमीटर लंबे होते हैं जो कागजकी तरह पतले छिलकेसे ढँके होते हैं। बीजकी गिरी द्विदलीय पीले रंगकी और किंचित् मधुर होती है। इसके दोनों ओर कठिन श्वेत, श्रृंगमय धातु (Endosperm) युक्त दो आवरण खंड होते हैं। यह धातु ही निर्यासका आश्रय होती है। यदि इन उभय खंडोंको अलग कर कुछ समय जलमें भिगो रखें, तो वे खूब फूल जाते हैं और निर्यासीय स्वभावका प्रकाश करते हैं। यह निर्यास ट्रैगाकन्थ निर्यास (Gum Tragacanth)के प्रतिनिधि और उससे अल्पमूल्यसाध्य हैं। इसका फल भी मीठा होता है और खाया जाता है। इससे मधुवत् एक प्रकारका तेल निकालते हैं। मिस्र और श्यामदेशमें इससे सत्व (रुब्ब)कल्पना भी करते हैं। मात्र खर्नूब शब्दसे यही विवक्षित होता है। (२) जंगली ख़र्नूब (खर्नूब बर्री)को खर्नूबनब्ती भी कहते हैं। इसका वर्णन आगे उक्त शब्दमें किया गया है। 'खर्नूब हिन्दी'को अमलतास कहते हैं।

उपयुक्त अंग—फली (The Carob pod), बीज (The Carob seed), बीजोत्थ निर्यास (Carob seed gum, Carob gum)।

रासायनिक संगठन—फलीमें स्थूलतः ५० प्रतिशत शर्करा होती है। खाद्यमूल्य लगभग दालोंके तुल्य है।

प्रकृति—पहले दर्जेमें शीत और दूसरे दर्जेमें खुश्क है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—संग्राही, दीपन और बृंहण है। बस्ति और वृक्कपर इसका मूत्रजनन कर्म होता है। मांसधातुपर इसका संग्राही (क़ाबिज़) और संशमन (मुसक्किन) कर्म होता है। इसके बीज भी संग्राही और रक्तस्तंभन कर्म करते हैं। यदि पके खर्नूबको मेवाकी भाँति खाया जाय और यह भलीभाँति पच भी जाय तो इससे अच्छा आहार (गिज़ा) प्राप्त होता है। इसके मूत्रजनन कर्मसे किसी विशेष रोगमें कोई लाभ नहीं प्राप्त किया जाता है। खर्नूबका उरोवेदना और जीर्णकासके लिए लाभदायक वर्णन किया जाता है। परन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि फेफड़ोंपर इसका क्या कर्म होता है जिससे यह कासमें लाभ पहुँचाता है। आमाशयके मांसधातुओंको बल प्रदान करनेके कारण यह दीपन है। यह कब्ज़ पैदा करता और रक्तस्रुतिको बन्द करता है। चोटपर लगानेसे यह दर्दको शांत करता है। इसके बीजोंको बारीक पीसकर गुदभ्रंशमें अवचूर्णन करते हैं। रक्तस्राव बन्द करनेके लिए इसका चूर्ण बनाकर खिलाते हैं।

मुअल्लिमुल् अद्वियाके लेखक लिखते हैं कि गुरुवर्य स्वर्गवासी श्रीमान् शिफाउल्मुल्क हकीम अलहाज अब्दुल् हमीद साहब तथा पितृवर्य स्वर्गवासी श्रीमान् हकीम मौलवी मोहम्मद सुलेमान साहब नपुंसक रोगियोंको शुक्रतारल्य एवं शुक्रमेह निवारणकरने और कामेच्छा जागृत करनेके लिए माजून और चूर्णक कल्पोंमें इसका पुष्कल उपयोग कराते थे। बीज, पूर्वकालमें फली का अनुपयोगी भाग समझा जाता था। पर अधुना शर्करा एवं पिष्ट (Starch) रहित उच्च प्रोटीनमय आटाका आश्रयरूप माना जाने लगा है और अब मधुमेहीके खाद्यरूपमें प्रयुक्त किया जाता है। इसका आटा रंगमें पांडुपीत होता है तथा इसमें अत्यधिक प्रमाणमें (६० प्रतिशत) प्रोटीन होता है। (वेजिटेबुल् गम्स एण्ड रेजिन्स-एफ० एन० हावेस डी०, एस-सी०)। गायकलोग स्वर सुधारनेके लिए फलीको खाते हैं। अहितकर—संग्राही है। निवारण—विहदाना और मिश्री। मात्रा—५ ग्राम से १२ ग्राम (५ माशा से १ तोला) तक।

●

(१७६) खर्नूब नब्ती (बर्री)

नाम—(अ०) खर्नूब नब्ती, खर्नूब बर्री, खर्नूब मग़रबी, खर्नूबुश्शौक; (फा०) गुर्दः, जीलाक; (श्याम और पश्चिम) यंबूत।

उत्पत्तिस्थान—पूर्वी भूमध्यसागर स्थित प्रांतोंका मूलनिवासी है। भारतवर्षमें वहींसे लाया गया है।

वर्णन—यह खर्नूबका जंगली भेद है। इसका वृक्ष लगभग ०.९ मीटर (१ गज) ऊँचा होता है। शाखायें इतस्ततः होती हैं और उनपर बारीक-बारीक तेज काँटे लगे होते हैं। फूल पीला और दागदार होता है। फल बकरीके छोटेसे वृक्कके समान और कालापन लिए लाल होता है। इसके भीतर बीज होते हैं।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें शीत एवं रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—बाह्य त्वचापर लेप करनेसे यह शरीरके अंगोंपर संग्राही कर्म करता है। आमाशय और अन्त्रपर इसका संग्राही और बल्य (दीपन) कर्म होता है। बाहरी त्वचापर खर्नूबको पीसकर लेप करनेसे शरीरकी क्लांति (थकान) दूर हो जाती है। मेंहदीके साथ इसको पीसकर बालोंपर लगानेसे यह उनको शक्ति देता और उन्हें समयसे पूर्व श्वेत होनेसे रोकता है। खिलानेसे यह दस्तोंको रोकता और मेदेकी कमजोरी (मंदाग्नि)को दूर करता है। इसके काढ़ेसे गण्डूष (मजमजा) करने या सुखाकर और बारीक पीसकर मंजनकी भाँति उपयोग करनेसे दंतशूल आराम हो जाता है और हिलते हुए दाँत मजबूत हो जाते हैं। मात्रा--५ ग्राम से १२ ग्राम (५ माशे से १ तोला) तक।

ख़र्बक (Helleborus)

वक्तव्य—एक उद्भिज्ज जिसके अनेक भेद होते हैं। उनमेंसे ख़र्बक सफ़ेद और ख़र्बक स्याह इन दो भेदोंका उल्लेख यूनानी चिकित्सा ग्रन्थोंमें मिलता है। नीचे इनमेंसे प्रत्येकका संक्षिप्त विवरण किया गया है।

●

(१७७) ख़र्बक सफेद[1]

फ़ैमिली : लीलिआसे (Family : Liliaceae)

नाम—(फा०) खर्बक़, ख़र्बक़ सफ़ेद; (अ०) खर्बक़ अब्यज़, अल्ख़र्बक़ुल् अब्यज़, क़ातिलुल् कल्ब (श्वघातक); (यू०) एल्लेबोरोस-ल्युखोस Elleboros leukhos (एल्लेबोरोस = सांघातिक विषौषधि, विषाक्त औषधि + ल्युखोस = सफेद); (लै०) वेराट्रुम आल्बुम् (**Veratrum album** Linn.); (अं०) ह्वाइट हेलेबोर (White Hellebore), यूरोपियन हेलेबोर (European Hellebore)।

उत्पत्तिस्थान—यह मध्य और दक्षिण यूरोपके पर्वतीय नम स्थानोंमें उत्पन्न होता है।

वर्णन और उपयुक्त अंग—कुटकीसे ही सर्वथा भिन्न नहीं, अपितु 'ख़र्बक़ स्याह' से भी भिन्न कुल एवं जातिके एक विदेशीय उद्भिज्जकी प्रसिद्ध जड़ जिसका छिलका औषधके काममें आता है। जड़ (पाताली घड़) खर्बक़ अमेरिकी

---

[1] **खर्बक सफेद**का चित्र **जेराड्र्स हर्बल** (Gerard's Herbal)में अंकित है। 'दी फ्लोरा ऑफ ग्रीस'के प्रणेता हेल्ड्रीख (Heldreich)ने अपने प्रत्यक्ष ज्ञानके आधार पर इस बातकी पुष्टिकी है कि **साव्रफरिस्तुस (Theophrastus)** लिखित ख़र्बक सफ़ेद (ह्वाइट हेलेबोर) यही है।

या हरितसे बहुत मिलती-जुलती होती है और लोग इसे उसीकी एक जाति मानते हैं। व्यापारमें साधारणतया समूचा और कभी जड़ दूरकिया हुआ पाताड़ी धड़ (Rhizome) मिलता है। गंध तिक्त और अत्यन्त कटु, निर्गंध किंतु चूर्णसे नकुओंमें अत्यन्त क्षोभ उत्पन्न होता है।

रासायनिक संगठन—इसका रासायनिक संगठन भी 'अमरीकी खरबक (**वेराट्रुम विरिडे Veratrum viride** Aiton. (*Family* : *Liliaceae*) की भाँति होता है। इसमें ईस्टर ऐल्केलाइड्स (Ester alkaloids), ग्लाइको-ऐल्केलॉइड्स (Glyco-alkaloids) एवं ऐल्कामीन्स (Alkamines) का जटिल सम्मिश्रण (Complex mixture) पाया जाता है। क्रिया की दृष्टिसे इनमें **प्रोटोवेराट्रीन A** (Protoveratrine A) एवं **प्रोटोवेराट्रीन B** (Protoveratrine B) नामक दो ईस्टर ऐल्केलॉइड अधिक महत्त्वके हैं। सफेद खर्बकमें रक्तचापह्रासी (Hypotensive) गुणकर्म भी पाया गया है, जो सम्भवतः इन्हीं ऐल्केलॉइड्सके कारण होता है।

प्रकृति—तीसरे दर्जेके मध्य या अन्तमें गरम और खुश्क (रूक्ष)।

गुण-कर्म तथा उपयोग—प्रबल वामक एवं तीव्र विरेचक, गाढ़े पित्त और पिच्छिल एवं पीले कफ तथा श्लैष्मिक दोषोंका विरेचनद्वारा शोधन करनेवाला, आर्तवजनन, गर्भशातक और छिक्काजनक है। प्रायः अत्यल्प प्रमाणमें देनेसे भी यह कम्प, चक्कर और मूर्छा तथा प्रमाणके अधिक होनेपर मृत्यु उत्पन्न करता है। प्रधानतया यह शीतजन्य मस्तिष्करोगोंमें लाभकारी है और वामक (वमनद्वारा दोषोंका निर्हरण करने वाला) है। कतिपय त्वग्रोगों एवं जूओं (Pediculi) को नष्ट करनेके लिये इसका सामान्यतः बाह्यरूपेण प्रयोग किया जाता है।

अहितकर—आमाशयको तथा खुनाक (कण्ठक्षत), आक्षेप एवं तीव्र वमन उत्पन्न करता है। निवारण—आमाशयके लिये मस्तगी, अन्यान्य उपद्रवों के लिये ताजा छाछ, रोगन बादाम, गोघृत, यवमंड (आशे जौ), थोड़ा हाशा और कतीरा। खालीपेट इसका सेवन कदापि न करें। सेवनसे पूर्व इसे गूंधे हुये आटेमें रखकर पका लेना चाहिये। प्रतिनिधि—खर्बक़ स्याह। मात्रा—१·५ ग्रामसे ३·५ ग्राम (१$\frac{१}{२}$ माशासे ३$\frac{१}{२}$ माशे) तक। बिना शोधन किये या बिना निवारणद्रव्यके तथा अधिक मात्रामें इसका सेवन भयसे खाली नहीं है। **नव्यमतसे** मात्रा—(जड़ चूर्ण)—६० मि० ग्रा० से १२० मि० ग्रा० ($\frac{१}{२}$ रत्तीसे १ रत्ती); (प्रवाहीसार) १-२ बिंदु; (टिंक्चर वेरेट्रम) (१० में १) ५ से ३० बिंदु।

◆

(१७८) ख़र्बक स्याह

फ़ैमिली : रानुन्कुलासे (Family : Ranunculaceae.)

नाम—(फा०) ख़र्बक़ स्याह, ख़ालजंगी; (अ०) अल्ख़र्बक़ुल् अस्वद, ख़र्बक़ अस्वद, रिज्लुर्राई; (यू०) फरी एल्लेबोरो मेलानोस (Feri elleborou melanos); (लै०) **हेल्लेबोरुस नीगेर Helleborus niger** L. (पर्याय—*Veratrum niger*); (अं०) ब्लैक हेलेबोर (Black Hellebore), क्रिस्मस् रोज (Christmas rose)।

वक्तव्य—(१) यह क्रिस्मस (बड़ा दिन) कालमें फूलता है तथा फूल लाल रंगके होते हैं। इसलिये इसे '**क्रिस्मस रोज**' कहते हैं जिसका समीचीन अरबी भाषान्तर '**वर्दुल मेलाद**' और '**वर्दुश्शता**' है। अब यह निश्चित हो चुका है कि **वेराट्रुम्** (**Veratrum**) एवं '**हेल्लेबोरुस**' (**Helleborus**) दो पृथक् वानस्पतिक जातियाँ हैं, इनमें एक दूसरेका भ्रम नहीं होना चाहिए। और **हेल्लेबोरुस** प्रजातिकी वनस्पतियोंका 'वेराट्रुम्' प्रजातिमें समावेश नहीं होना चाहिये। वेराट्रुम् पर भेषजगुणकी दिशामें अमेरिकामें हुए आधुनिक शोधकार्योंसे भी यह सिद्ध हो चुका

हैं कि इनमें एक दूसरेके विपरीत गुणधर्म पाये जाते हैं। (२) जहाँ तक ज्ञात होता है खर्बककी किसी जातिकी जड़ भारतीय बाजारोंमें बिकनेके लिये नहीं आती और न इसकी कोई जाति भारतवर्षमें उत्पन्न होती है। फिर भी यूनानी द्रव्य-गुण पर भारतीय मुसलमानों द्वारा रचित सभी ग्रन्थों में यूनानियों द्वारा वर्णित खर्बक (हेलेबोर)का वर्णन उपलब्ध होता है। ऐसा प्रतीत होता है कि **दीसक़ूरीदूस** आदि यूनानियों और रोमनोंके ग्रन्थोंसे सर्वप्रथम अरबी चिकित्सकोंने एतद्विषयक विवरणका अरबी भाषान्तर किया और उसीका भारतीय मुसलमान चिकित्सकोंने अपने ग्रन्थोंमें ग्रहण किया और उसे 'कुटकी' समझकर उसके पर्याय नामोंमें इसको (कुटकी) स्थान दिया; परन्तु गुणकर्म आदि खर्बकके ही दिये। **यह सर्वथा भ्रामक एवं हानिकारक है।** इसके निम्न कारण हैं :—

(१) जैसा कि ऊपर वर्णन किया गया है, खर्बक न तो भारतीय पैदावार है और न यह भारतीय बाजारोंमें बिकता है। कुटकी इससे सर्वथा भिन्न कुल एवं जातिके भारतीय उद्भिज्जकी जड़ है जो भारतीय बाजारोंमें सामान्यतया मिलती है।

(२) कुटकीसे इसका न तो गुण-साम्य है और न स्वरूप-साम्य ही है।

(३) ख़र्बकके दोनों भेद महान् सांघातिक विष-(सफ़ेद ख़र्बक वामक और स्याह ख़र्बक विरेचक विष) है। इसके सेवनमें थोड़ी-सी असावधानीसे तथा कभी-कभी इसकी अत्यल्प मात्रासे भी तीव्र विरेचन, वमन एवं छिक्काजनन प्रभाव होकर कम्प, भ्रम और मूर्च्छा आदि लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं तथा मात्रा अधिक होनेपर मृत्यु तक हो जाती है। अस्तु, प्राचीन चिकित्सकोंने बड़ी सावधानीपूर्वक एवं निवारण औषधियोंके साथ इसके उपयोग करनेका आदेश किया है; और उत्तरकालीन यूनानी चिकित्सकोंने तथा आधुनिक पाश्चात्य चिकित्सकोंने तो इसका उपयोग सर्वथा वर्जित ही कर दिया है। इसके विपरीत कुटकी एक सर्वथा निरापद औषधि है। इसकी अधिक मात्रासे भी किसी प्रकारकी विशेष हानिकी संभावना नहीं होती। भारतीय यूनानी चिकित्सकोंका इसके सेवनमें भयका कारण उनका खर्बक और कुटकीको एक मान लेना है, जो सर्वथा निराधार है। वि० दे० 'कुटकी'।

उत्पत्ति-स्थान—यह पूर्वी, मध्य एवं दक्षिणके उपाल्पीय जंगलों, टीलों और पर्वतोंपर उत्पन्न होती है। यह भारतवर्षमें नहीं होती।

वर्णन—कुटकीसे ही सर्वथा भिन्न नहीं, अपितु ख़र्बक सफेदसे भी भिन्न कुल एवं जातिके एक विदेशी उद्भिज्जकी प्रसिद्ध ग्रन्थिल, तन्तुल, अनियमित मुड़ी हुई, एक वा एकाधिक इंच लम्बी, चौथाईसे आध इंच मोटी जड़ है, जिसपर लम्बाई और आड़े रुख चिह्न पड़े होते हैं। यह बाहरसे काली और भीतरसे सफेदी लिये होती है। **गन्ध** अत्यन्त सूक्ष्म तथा वसामय; **स्वाद** तिक्त और किञ्चित् कटु होता है। इसकी कडुआहट सफेदकी अपेक्षया कम होती है, किन्तु शक्ति एवं तीव्रता उससे बढ़ी हुई, भयकारी एवं सापद होती है। इसकी जड़मेंसे प्याजकी जड़की पेंदीमें लगे बारीक तन्तुके समान काले बारीक तन्तु लगे होते हैं। ये तन्तु ही औषधके काम आते हैं। मात्र खर्बकस्याह संज्ञासे उक्त तन्तु ही अभिप्रेत होते हैं, जो न बहुत पुराने, न बहुत नये, न बहुत मोटे, न बहुत पतले, खाकी रंग के और शीघ्रभंगुर हों, जिनके भीतर मकड़ीके जालेकी तरह कोई वस्तु हो, स्वादमें जो तिक्त तीक्ष्ण एवं चरपरे हों और चाबनेसे जो स्वादमें तिक्त, तीक्ष्ण एवं चरपरे हों अर्थात् चाबनेसे जो जिह्वामें दाह उत्पन्न करें वह जड़ उत्तम है। **उपयुक्त अंग**–जड़ (Rhizome) और जड़में लगे हुये तन्तु।

रासायनिक संगठन—इसमें **खर्बकीन** (हेलेबोरिन Helleborin) और हेलेबोरीन (Helleborein) नामके दो विषाक्त ग्लूकोसाइड पाये जाते हैं। जड़ में हेलेब्रिन (Hellebrin) नामक एक और ग्लूकोसाइड पाया जाता है जो हेलेबोरीनसे २०-३० गुना अधिक कार्यकारी तथा गुण-कर्ममें स्ट्रोफैन्थीनसे श्रेष्ठतर है।

प्रकृति—दूसरे या तीसरे दर्जेके अन्तमें (मतान्तरसे चौथे दर्जेके अन्तमें) गरम और खुश्क (रूक्ष) है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—तीव्र विरेचन, मूत्रल, आर्तवजनन और कृमिघ्न है। स्थानीय स्वापजनन एवं तिलपुष्पी (डिजिटेलिस) के समान हृदयबलवर्धन तथा उन्माद, सन्यास, अपस्मार आदि मानस एवं शिर:रोगों, अपतन्त्रक और मालिन्खोलिया (मद) आदि वातव्याधियों, रजोरोध और हलीमक (Chlorosis) प्रभृत स्त्रीरोगों एवं जलोदर आदि तथा किलास, व्यंग, उकौता और अन्यान्य त्वचाके रोगोंमें इसका उपयोग होता है। प्रधानतया यह शीतव्याधिनाशक और कफ एवं सौदाका विरेचनकर्ता है। सफेद खर्बककी अपेक्षया यह तीव्र प्रभावकारी एवं विष है। अस्तु, इसके प्रयोगमें उसकी अपेक्षया अधिक सावधानीकी अपेक्षा होती है। इसे कम-से-कम मात्रामें देना चाहिये। **अहितकर**–उष्ण प्रकृति एवं वृक्कको तथा कण्ठशोथ (ख़ुनाक़) उत्पन्न करती है। **निवारण**–कतीरा, सातर, पुदीना, मस्तगी और गोघृत। **प्रतिनिधि**-ख़र्बक सफेद, ख़र्बक सब्ज (Helleborus viridis) या अमरीकी ख़र्बक सब्ज (Veratrum viride) आदि। **मात्रा**–१$\frac{१}{२}$ माशासे २$\frac{१}{४}$ माशा तक (पाश्चात्य वैद्यकीय मतसे ५ रत्तीसे १० रत्ती तक चूर्ण; टिंक्चरकी मात्रा २०-६० बूँद तक; प्रवाही रसक्रियाकी २-१० बिंदु; घन रसक्रियाकी मात्रा–६० से १२० मि० ग्रा० या $\frac{१}{२}$ से १ रत्ती)।

(१७९) खस

फ़ैमिली : ग्रामीने (Family : Gramineae)

नाम—(हिं०) खस, गांडर(सींक)की जड़, बीरन (मीर्जापुर); (फा०) बीख़ेबाला, रेशए बाला; (सं०) उशीर, वीरण; (बं० द०) बाला; (बं०) वेणारमूल, खश, वाला; (गु०) वालो; (ता०) वेट्टिवेर, वीरणा; (ले०) **वेटीवेरिया ज़ीज़ानिओइडेस Vetiveria zizanioides** (L.) Nash. (**पर्याय**–*Andropogon muricata* Retz.); (अं०) कुस-कुस (Cus-Cus), खुस-खुस (Khus-Khus)।

वक्तव्य—'**खस**' वस्तुतः हिन्दी भाषाका शब्द है। इसे फारसी लिपिमें प्रायः 'ख़स' लिखते हैं। अरबीमें **'ख़स' शब्दका व्यवहार 'काहू'के अर्थमें** होता है। आयुर्वेदीय साहित्यमें इसके लिए 'उशीर' एवं '**वीरणा**' आदि नाम दिए गए हैं। भारतवर्षमें इसके औषधीय एवं व्यावहारिक उपयोगोंका ज्ञान अति प्राचीनकालसे है। उपर्युक्त भारतीय भाषाओंके नामोंको देखनेसे प्रतीत होता है कि इनमें अनेक '**वीरण**' शब्दसे व्युत्पन्न हैं। अनेक जंगली क्षेत्रोंमें स्थानिक लोग इसे 'बीरनी' या '**बीरने**' नामसे जानते हैं। वह भी सम्भवतः संस्कृत नाम 'वीरण' की ओर संकेत करता है। लेटिन नाममें इसका प्रजातिक नाम सम्भवतः खसके तामिल नाम '**वेट्टिवेर**' पर आधारित है।

उत्पत्तिस्थान—भारतवर्षके पंजाब, उत्तरप्रदेश और कुमाऊँ आदि प्रान्तोंमें विशेषतः तालाबों, सभी बहते हुए पानीके किनारे और नीची गीली जमीनमें खस विपुल होता है। राजपूताना, छोटानागपुर, कन्नोज और इटावा आदि स्थानोंमें भी यह बहुत होता है।

वर्णन—यह 'गांडर' या 'सींक' नामक घासकी जड़ है, जिससे गरमीमें पंखे, खसगृह (खसख़ाना), टट्टियाँ और हुक्कोंके नैचे इत्यादि बनाते हैं। यह सूत या तार जैसी बारीक न्यूनाधिक लम्बी, सीधी या घुँघराले बालोंकी तरह और पिलाई लिये भूरी होती है। गंध कुछ-कुछ बोलजैसी, तीक्ष्ण एवं स्थायी होती है। स्वाद तिक्त और सुगंधित होता है। यह जड़ ही औषधके काममें ली जाती है।

रासायनिक संगठन—इसमें एक उत्पत् तेल, एक बोलगंधी चरपरा और गहरा रक्तधूसर रालदार पदार्थ, रंजक द्रव्य, स्वतन्त्र अम्ल, चूने के लवण, लौहभस्म और काष्ठपदार्थादि होते हैं।

प्रकृति—दिल्लीके हकीमोंके मतसे दूसरे दर्जेमें शीत एवं रूक्ष। लखनऊके हकीमोंके मतसे दूसरे दर्जेमें गरम व खुश्क। आयुर्वेदके मतसे शीतल (रा० नि०) एवं रूक्ष (कै० नि०)।

गुण-कर्म तथा उपयोग—हृदय और मस्तिष्कको बलप्रद और सौमनस्यजनन, ग्राही, पित्तशामक, रक्तोद्वेगहर, दीपन और रक्तज एवं पित्तजज्वरनाशक है। इसको अधिकतया अर्क, हिम या फाँट और शर्बतके रूपमें उपयोग करते हैं। इसका इत्र अत्यन्त सूक्ष्म (लतीफ़) एवं सुगंधित और उष्णप्रकृतिवालोंके लिए गुणकारी है। सौमनस्यजनन (हृद्य) तथा हृदयबलदायक होनेके कारण दिलकी धड़कन, हृदयदौर्बल्य, मूर्च्छा और मरकवायु (हवाए वबाई)के दोषोंके निवारणके लिए इसका पान और आघ्राणरूपमें उपयोग करते हैं। संशमन और ग्राही और दीपन होनेसे संग्रहणीमें इसका उपयोग करते हैं। संशमन और पित्तघ्न होनेके कारण यह तृष्णा एवं रक्तज और पित्तज ज्वरोंको शमन करता है। बालकोंके तृष्णाधिक्य (उताश)रोगोंमें थोड़े अधकुटे खसको दो-तीन दाने अधकुटे कंवलगट्टाकी गिरीके साथ अर्ककेवड़ामें भिगोकर अथवा पीस कपड़ासे छानकर पिलानेसे विशेष लाभ होता है। **अहितकर**–उष्णप्रकृतिके लिये। **निवारण**–चंदन। **प्रतिनिधि**–खसका इत्र। **मात्रा**–५ ग्राम से ७ ग्राम (५ से ७ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—खस, तिक्त, मधुर, शीतल, रूक्ष, लघु, पाचन, स्तम्भन, छर्दिनिग्रहण, दाहप्रशमन, पित्तसंशमन, जलको सुगन्धित करनेवाला तथा स्वेदकी दुर्गन्ध, श्रम, पित्तज्वर, मुखशोष, मद, तृषा, रक्तविकार, विष, मूत्रकृच्छ्र, कुष्ठ, वमन और व्रणका नाश करनेवाला हैं। (च० सू० अ० ४, वि० अ० ४, सू० अ० २५; सु० सू० अ० ३८, ३९; ध० नि०; रा० नि०; कै० नि०)।

नव्यमत—खस शीतल, मूत्रजनन, विपासाहर, मृदु, स्वेदजनन, ज्वरमें त्वचाका दाह कम करनेवाला और रोचन है। खसके फाँटसे वमन बन्द होता है।

●

(१८०) खाकसी

फैमिली : क्रूसीफेरी (Family : Cruciferae)

नाम—(हिं०) खाकसी (–र), खूबकलाँ; (यू०) एरूसिमोन (Erusimon) (अ०); खुब्ब; (फा०) खूबकलाँ (ला), खाकची, शिब्बः; तुख्मे शहूह; (ईरान) खाकशी (-शू), शफ़्तरक; (क०) चरिल छज; (ले०) सिसीम्ब्रिउम ईरीओ (**Sisymbrium irio** Linn.); (अं०) हेज मस्टर्ड (Hedge Mustard); लंडन रॉकेट (London Rocket)

उत्पत्तिस्थान—उत्तर भारतवर्ष, फारस और यूरोप आदि। इसके पौधे बनों, बगीचों और पर्वतांचलोंमें आपसे-आप उत्पन्न हो जाते हैं। भारतवर्षमें रबीकी फसलमें यह गेहूँ, मेथी इत्यादिके साथ पैदा होती है।

वर्णन—यह ललाई लिये पीले और अत्यन्त क्षुद्र (पोस्ताके दानेसे भी छोटे) बीज हैं। इसका क्षुप आध गजसे लेकर १ गज तक ऊँचा होता है। पत्र लम्बे, शाखायें पतली, पुष्प छोटे पीले और फलियाँ सरसोंकी फलियोंके समान, किन्तु अत्यन्त बारीक सीधी होती हैं। इसमें क्षुद्र बीज भरे रहते हैं। ये नीचे से ऊपरको खुलती हैं, केवल सिरेपर लगी रहती हैं। यूनानी वैद्यकमें ये बीज ही काममें लिये जाते हैं। भारतीय मुसलमान हकीमोंमें इसकी बड़ी माँग होनेके कारण फारससे यहाँ इसका आयात बड़े परिमाणमें होता है।

उपयुक्त अंग—बीज। **मात्रा**–४ से ६ ग्राम (४-६ माशे तक।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें उष्ण एवं तर है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—यह विसूचिका (हैजा) में लाभकारी, ज्वरघ्न, उरःस्थदोषष्ठीवनकर्ता, पुष्टिकर, बृंहण और श्लेष्मनिस्सारक है। ज्वरघ्न होनेसे ज्वरों (पित्त और कफ)में खाकसी का पुष्कल उपयोग करते हैं। मसूरिका (चेचक) एवं खसरा (रोमान्तिका)में भी इसका क्वाथ पिलाते हैं तथा रोगीके बिछौनेपर छिड़कते या दाने पानीके साथ खिलाते हैं। इससे मसूरिका (चेचक) और खसराके दाने शीघ्र प्रगट हो जाते हैं। यह बालयक्ष्मा (दिक़ुल्अत्फ़ाल)के लिये भी उपयोगी समझी जाती है। उर.स्थदोषनिस्सारक होनेके कारण इसका जीर्ण कासमें उपयोग कराते हैं। श्वास, स्वरभंग और कंठ या स्वरयंत्र संबंधी सभी प्रकारकी निर्बलतामें इसका गुणकारी होना एवं श्लेष्मनिःसारक होना भी प्रसिद्ध है। सुतराँ खाँसीमें इसका अवलेह बनाकर चटानेसे कफ सरलतासे निकल जाता है। हैजामें प्यास और वमन बंद करनेके लिए इसे अर्कगुलाबमें उबालकर पिलाते हैं। पित्तल बिसूचिकामें इसे हरी कासनीके फाड़े हुये रसके साथ खिलाते हैं। भारतवर्षमें इसके बीज पुष्टिकर एवं बृंहणीय पाकोंमें पड़ते हैं और शरीरको पुष्टिके लिये इसे दूधके साथ पकाकर देते हैं। आँख, रक्त, वृषण आदिकी सूजनपर इसको जलमें पीसकर लेप करते हैं। मात्रा–(बीज) ५ से ७ ग्राम (या ५ से ७ माशे) तक।

●

(१८१) खिरनी

फ़ैमिली : सापोटासे (Family: Sapotaceae)

नाम—(हिं०) खिरनी, खिन्नी; (सं०) क्षीरी, राजादन; (बं०) खीरखेजूर; (म०) रांजण, केरनी; (गु०) रायण; (ता०) पल्ल; (बम्ब०) अहमदाबादी मेवा, खेर्नी; (लै०) मानील्कारा हेक्साण्ड्रा **Manilkara hexandra** (Roxb.) Dubard. (पर्याय–**Mimusops hexandra** Roxb.)।

उत्पत्तिस्थान—भारतवर्ष विशेषतः दक्षिण भारत, गुजरात और बंगाल आदि।

वर्णन—यह एक भारतीय बहुत बड़े प्रसिद्ध वृक्षका फल है। यह आकृतिमें नीमकी निबौलीसरीखा, किंतु उससे कुछ लम्बा और मोटा चिरगोजाके समान होता है। पकने पर इसका रंग पीला और स्वाद मीठा और स्वादिष्ट हो जाता है। कच्चा फल हरा होता है। इसमें दूध जैसा चेप बहुत निकलता है। खानेके समय होंठ और हाथ चिपक जाते हैं। फलके भीतर एक बीज होता है। बीजोंसे तेल निकाला जाता है। वृक्षकी छाल कुछ भूरी या कुछ काले रंगकी और खुरदरी होती हैं।

रासायनिक संगठन – फलमें फलशर्करा (फ्रुक्टोज) होती है।

उपयुक्त अंग—फल, बीज और वृक्षकी छाल।

प्रकृति—मलभूत द्रवोंसे युक्त पहले दर्जेमें गरम और तर।

गुण-कर्म तथा उपयोग—इसका प्रधान कर्म शरीरके अंग-प्रत्यंगको बल प्रदान करना और दोषोंके प्रकोपको शांत करना है। यह सौमनस्यजनन, हृदयबलदायक, तृष्णाप्रशमन और वाजीकरण है तथा कास और मूत्रमार्गस्थ व्रणोंको लाभ पहुँचाती है। इसके बीजोंका मग्ज लेखनीय है। नेत्रगत फूली (शुक्ल), जाला, कण्डू और दृष्टिदौर्बल्य इनको दूर करनेके लिये अकेला या अन्य उपयुक्त ओषधियोंके साथ इसको खरल करके आँखमें लगाते हैं। इसकी छाल वीर्यपुष्टिकर (मुग़ल्लिज मनी) है। इसको अकेला या अन्य उपयुक्त ओषधद्रव्योंके साथ चूर्ण बनाकर शुक्रप्रमेहमें खिलाते हैं। अहितकर–गुरु, चिरपाकी और आनाहकारक है। मात्रा–छाल ५ ग्रामसे ६ ग्राम (५ माशे से ६ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—खिरनी स्वादु, मधुर, कषाय, पाकमें अम्ल, शीतवीर्य, भारी, स्निग्ध, तृप्तिकारक, वृष्य, बलप्रद, हृद्य, देहको स्थूल करनेवाली (बृंहण), संग्राही (मलरोधक), विष्टम्भजनक, रुचिकर, मांसवर्धक तथा तृष्णा, दाह, मद, मूर्च्छा, भ्रान्ति, मोह, क्षय, क्षतक्षय, रक्तपित्त, प्रमेह और त्रिदोषका नाश करनेवाली है। (सु० सू० अ० ४६; रा० नि०; म० नि०)।

●

(१८३) खीरा

फ़ैमिली : कूकुरबिटासे (Family : Cucurbitaceae.)

नाम—(हिं०) खीरा; (अ०) क़सद; (फा०) खियार, ख़ियार बादरंग (माकूल या बालंग), बादरंग, बादरू (ग़); (सं०) त्रपुस, त्रपुसी; (ले०) कूकूमिस साटीवुस (**Cucumis sativus** Linn.); (अं०) कुकुंबर (Cucumber)।

वक्तव्य—यद्यपि फारसी ख़ियार शब्द का व्यवहार 'ककड़ी' और 'खीरा' उभय अर्थों में होता है, इसी लिये इनके बीजों को 'तुख़्म ख़ियारैन' कहते हैं, तथापि 'खियार' से प्रायः खीरा ही अभिप्रेत होता है। ककड़ी के लिये प्रायः 'ख़ियारजः' शब्द व्यवहार में आता है।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष में इसकी खेती की जाती है।

वर्णन—यह ककड़ी जैसी एक लताका प्रसिद्ध फल है, जो एक बित्ता या इससे न्युनाधिक लंबा होता है। इसको ककड़ीकी तरह छीलकर खाते हैं। बीज ककड़ीके बीज की तरह होते हैं और फारसी तथा अरबी में क्रमशः 'तुख़्म ख़ियार' और 'बज़्रुल्क़सद' कहलाते हैं। बीजों से प्राप्त तेलको फारसी तथा अरबी में क्रमशः रोग़न तुख़्म ख़ियार और दुह्नुल् बज़्रुल्क़सद कहते हैं। ककड़ी और खीरा इन उभय बीजोंसे प्राप्त तेलको फारसी में रोग़न तुख़्म ख़ियारैन कहते हैं।

कल्प तथा योग—आबेखियार, बनादिक़ुल्बज़ूर आदि।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें शीत एवं स्निग्ध (तर)।

गुण-कर्म तथा उपयोग—खीरेको छीलकर नमकके साथ खाते हैं। यह रक्त और पित्त की तीक्ष्णताको दूर करता, प्यास बुझाता और खूब पेशाब लाता (तृष्णाघ्न और मूत्रल) है तथा पित्तज एवं रक्तज ज्वरों, मूत्रदाह और कामला रोग में लाभकारी है। गरम सिर-दर्दमें खीरेको सूँघने और इसके छिलकोंको मस्तक पर रखने से दर्द आराम होता और नींद आ जाती है। उष्ण हृत्स्पंदनमें खीरा लाभदायक है। यह अनिद्रा और गरम सिरदर्दमें विशेष रूप से लाभ पहुँचाता है। अहितकर–शीत प्रकृतिमें आनाह उत्पन्न करता है। निवारण–सिकंजबीन। प्रतिनिधि–ककड़ी।

आयुर्वेदीय मत—खीरा (त्रपुस) रसमें मधुर, कड़वा, शीतवीर्य, भारी, कफवातकारक, मलमूत्रकी प्रवृत्ति उत्पन्न करनेवाला, बहुमूत्रजनक और रक्तपित्तनाशक तथा श्रम, पित्त, दाहकी पीडा और वमनको दूर करनेवाला है। (सु० सू० अ० ४६; रा० नि०)। कच्चा खीरा स्वादिष्ट, शीतवीर्य, हलका तथा तृष्णा, क्लम, दाह, पित्त और रक्तपित्तको दूर करनेवाला है। पका खीरा खट्टा, गरम, पित्तकारक और कफवातनाशक है। इसके बीज शीतवीर्य, रूक्ष, मूत्रजनन तथा रक्तपित्त और मूत्रकृच्छ्रको दूर करनेवाले हैं। (भा० प्र०)।

●

(१८४, १८५) खुन्सा व अस्‌राश

फ़ैमिली : लीलिआसे (Family : Lilaiaceae)

नाम—खुन्सा (हिं०) पियाजी, गोनी, मुनमुना; (पं०; सिंध) पियाजी, बोखा(पोगा—)ट; बिं(बूं)घर बीज, गन्दुमदाना; (अ०, फा०) खुन्सा; (ले०) आस्फोडेलुस फिस्टुलोसुस (**Asphodelus fistulosus** Linn.)।

असराश। (हिं०) पियाजी, बोखाह; (फा०) अश्‌राश, सरेश; (पं०) प्याजी, बोकाट; (गु०) डुंग्रु (—ग्रो०); (ले०) आस्फोडेलुस् टेनुइफोलिउस् (**Asphodelus tenuifolius** Cav.)।

उत्पत्तिस्थान—प्रायः अन्नके खेतोंमें अन्नके साथ समस्त भारतवर्ष, विशेषतया उत्तर भारत में तथा अफगानिस्तानमें भी होती है। पंजाब और सिंध में इसके बीज बाजारों में बिकते हैं। दक्षिण अफगानिस्तान और झेलमके समीपवर्ती जोतें-बोए खेतोंमें यह पुष्कल होती है।

वर्णन—खुन्सा और अश्रास दोनों एक ही जातिके दो भेदमात्र हैं। इनमें खुन्सा या गोनी ४५ सें० मी० (आधागज) ऊँची एक वर्षायु प्रसिद्ध घास है। जड़ तंतुबहुल या झकरा होती है। पत्र प्याज के पत्तेकी तरह, सरल, रेखाकार, बेलनाकार, नालीदार, खोखला (Fistulosus), गोपुच्छत् अग्रकी ओर नुकीला होता है। पत्तोंके पुष्ट होने पर एक वा अधिक कड़े डंठल वा कांड निकलते हैं जो भीतर से ठोस और सशाख होते हैं। पुष्प क्षद्रु एवं, श्वेत जिसके मध्य भूरे रंगकी एक रेखा पड़ी होती है। फल-गोल, प्रत्येक फलमें कालेरंग के तीन तिकोने (वा-गोल) बीज होते हैं। स्वाद खारापन लिये कषाय (अफीस), जड़ गोल, चिकनी, कम चौड़ी, लम्बोतरी और स्वाद में तीक्ष्ण होती है। बीजों में चार साल तक वीर्य शेष रहता है। अश्राश का पौधा खुन्सा के समान होता है। अन्तर केवल यह है कि अश्रासकी पेड़ी चौड़ी और ऊँची होती है, पत्र प्याजके पत्तोंकी तरह किन्तु उनसे मोटे और चौड़े होते हैं। फूल ललाई लिये सफेद और फल गोल स्वाद में कुछ-कुछ तिक्त एवं कटु होते हैं। इसके विपरीत खुन्शा का फूल सफेद होता है। इसमें लेश मात्र भी ललाई नहीं होती और पेड़ी छोटी होती है। अश्रास की तरकारी पका कर खाते हैं।

उपयुक्त अंग—पंचांग, जड़ और बीज।

खुन्शा—

प्रकृति—दूसरे दर्जे में गरम और खुश्क। जला लेने पर दूसरे दर्जेमें गरम और तीसरे दर्जेमें रूक्ष हो जाती है। जड़ में मलभूत द्रव होता है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—मूत्रल, अवरोधोद्घाटक, श्वयथुविलयन और मार्दवकर है तथा गर्मी एवं खुश्की (रूक्षता) उत्पन्न करती है। टूटी हुई हड्डीपर बाँधनेसे उसका संधान करती है। वृषणशोथ निवारण करती, वायु को विकीरित करती (बिखेरती), तथा बस्ति और वृक्कको पथरीको खण्ड-खण्ड करती है। इतर अंगोंकी अपेक्षया इसकी जड़ अधिक वीर्यवती है। इसकोजड़ को जलाकर किसी तेलमें मिलाकर इन्द्रलुप्त और खालित्य (दाउस्सालब व दाउल्‌हय्य:) पर लगानेसे बाल उत्पन्न हो जाते हैं।

व्यंग (बहक सफेद) पर इसकी राख मलकर धूपमें बैठनेसे लाभ होता है। इसे मुर्गी के अंडेकी सफेदीमें मिलाकर आगसे जले हुए स्थानपर लगानेसे उपकार होता है और गंधकके साथ दाद जाता रहता है। इसका स्वरस कानमें टपकानेसे कानसे पीप बहना आराम होता है। इसे दाँत पर लगानेसे दंतशूल मिटता है। इसमें यह प्रभाव है

कि यदि दाँत कोट (कुन्द) हो गये हों और उनमें दर्द होता हो तो इसको सिरकेमें पीसकर उस ओर के अंगूठे पर लेप कर देवें तो दर्द जाता रहे। इसके फूल और फल कब्जनिवारक हैं। उनको थोड़ासा खा लेनेसे सरलतासे वमन हो जाता है और शराबके साथ खानेसे विरेक (दस्त) होते हैं, तथा बिच्छू और कनखजूरेका विष उतर जाता है। इसके अतिरिक्त इससे इतर कीटोंके विषोंको भी लाभ होता है। अहितकर—प्लीहा एवं वृक्कको अहितकर है। इसकी अधिकता पित्तको वढ़ाती है। निवारण—प्लीहा के लिये चिकना शोरबा, वृक्कके लिये मस्तगी और पित्त के लिये इमली। प्रतिनिधि--मैंदालकड़ी (मग़ास) और मजीठ, वाजीकरण हेतु शकाकुल और विषोंके लिये जंगली प्याज़।

मात्रा—१०$\frac{१}{२}$ ग्राम (१०$\frac{१}{२}$ माशे) तक।

अश्रास्—

प्रकृति—जड़ पहिले दर्जेमें गरम एवं रूक्ष; जला लेनेके बाद दूसरे दर्जेमें गरम और तीसरे दर्जेमें रूक्ष हो जाती है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—इसके पीनेसे पार्श्वशूल आराम होता है, पित्तज कामला और गलेकी कर्कशता मिटती है। जलीहुई जड़ मूत्रजनन, आर्तवजनन और कफजशोथविलयन है। सिरकेके साथ इन्द्रलुप्त (दाउस्सालब), छींप और दादको लाभ पहुँचाती है, टूटी हुई हड्डीको जोड़ती है तथा अन्त्रवृद्धि (फतक), फोड़े-फुन्सी, वृषणशोथ और कण्डूका नाश करती है। बीज लेखन है और सांद्रदोषोंका उत्सर्ग करता तथा जड़से अधिक उष्ण है। थूक में रक्त आता हो तो इसके उपयोगसे लाभ होता है। अहितकर—जड़ आमाशयको शिथिल करती और अवरोध (सुद्दा) उत्पन्न करती है। निवारण—आमाशयके लिये गुलकंद और सुद्देके लिये सिकंजबीन। प्रतिनिधि—प्रायः गुणकर्मोंमें सरेशमाही। मात्रा-(जड़) १७ ग्राम (१ तोला ५$\frac{१}{२}$ माशे) तक और जली हुई ४·५ ग्राम (४$\frac{१}{२}$ माशे) तक तथा बीज ७ ग्राम (७ माशे) तक।

●

(१८६) खुब्बाजी व खुब्बाजी बुस्तानी

फ़ैमिली : माल्वासे (Family : Malvaceae)

नाम। क्षुप—(हिं०) पापरा (ड़ा), पापिरा (ड़ा), चगेर, चंगेल; (ले०) माल्वा सिल्वेस्ट्रिस (**Malva sylvestris** Linn.)।

फल—(हिं०) कुंझि, खुबाजी; (यू०) मलाखी (Malakhe); (अ०) खुबा (ब्बा) जी; (फा०) नानेकुलाग़ (कागरोटिका), पीज़क; (सिन्ध) खबाजी; (अं०) दी कॉमन मैलो (The Common Mallow); ब्लू मैलो (Blue-Mallow); चीज केक (Cheese Cake); (शीराजी) खित्मीए कूचक।

उत्पत्तिस्थान—यह समशीतोष्ण हिमालयमें कुमाऊँ, कश्मीर और पंजाब पर्यन्त होती है। औषधके लिये भारतवर्षमें इसके फलोंका आयात फारससे होता है।

वर्णन—खुबाजी नामसे इसके फल बाजारमें मिलते हैं। पुष्पकाल मई और जून। फल बहुकोशयुक्त, मंडलाकृति (Disciform), प्रत्येक कोश एक बीजयुक्त; स्वाद लुआबी (पिच्छिल) एवं निर्गन्ध होता है। 'खुब्बाजी बुस्तानी' इसका अन्यतम भेद है।

रासायनिक संगठन—खुब्बाजीमें पुष्कल स्नेह या लबाब (पिच्छा) और अल्पप्रमाणमें एक तिक्त पदार्थ होता है। ये दोनों ही जलमें विलेय होते हैं। इतर भागकी अपेक्षया फूलमें लबाब पुष्कल होता है।

उपयुक्त अंग—यद्यपि शीत एवं पिच्छिल गुणके कारण इसका समस्त अंग यूनानीवैद्यकमें प्रयुक्त होता है, तथापि बीज (फल) सर्वापेक्षया अधिक गुणकारी माना जाता है।

प्रकृति—पहिले दर्जेमें शीत एवं स्निग्ध।

गुण-कर्म तथा उपयोग—यह कास तथा अन्य फुफ्फुस रोगोंमें विशेष गुणकारी, दोषपाचन, सारक, दोषविलोमकर्ता, स्नेहन, पिच्छिल तथा मूत्रजनन है। तुख़्म खुब्बाजीका उपयोग पित्तपाचनकी भाँति करते हैं। यह पित्तके किवाम (चाशनो)को प्रकृतिस्थ करती है। स्नेहन होनेके कारण उरःफुफ्फुसके खरत्व, उष्णकास और स्वरघ्न (गिरफ़्तगी आवाज)को दूर करनेके लिये इसका उपयोग करते हैं। इसी प्रकार स्नेहनगुणके कारण अन्त्रके घर्षण (सहज्ज), अन्त्रव्रण और वृक्कबस्तिदाह तथा विरेचन औषधियोंकी तीव्रता दूर करनेके लिये इसका उपयोग करते हैं। दोषविलोमकर्ता होनेके कारण उष्णशोथोंमें दोषविलोमकरणार्थ अकेला या अन्य औषधियोंके साथ इसका लेप किया जाता है। **अहितकर**–आमाशयको। **निवारण**–मूली। **प्रतिनिधि**–कुलफाके बीज। **मात्रा** ५ से ७ ग्राम (५ से ७ माशे) तक।

(१८७) खुमी

फ़ैमिली : आगारिकासे (Family : Agaricaceae)

नाम—(हिं०) खुंबी, खुमी, छतरी, गगनधूल, कुकुरमुत्ता, साँपकी छतरी; (अ०) कमात, नबातुर्राद; (फा०) समारोग़ कुलाहे बाराँ (ज़मीं), कुलाहेमार; (सं०) भूच्छत्र, सर्पच्छत्र, छत्रक, कवक, शिलीन्ध्र; (बं०; हिं०) छाता; (बम्ब०) अलो(ले)म्बें, खुम्ब; (सिंध) खुंब; (म०) अलम्बी, भुईफोड; (आसा०) कठफूल; मसरवेल; (गु०) बिलाड़ोनो टोप; (पं०) भूफोड़, ढिंगरी; (सिं०) खुम्भा, खुम्भी; (ले०) आगारिकुस कम्पेस्ट्रिस (**Agaricus campestris** Linn.); सालिओटा कम्पेस्ट्रिस (**Psalliota campestris** Linn.); (अं०) कॉमन मशरूम (Common mushroom)।

वक्तव्य—इसके अभक्ष्य भेदको अरबीमें 'फ़ि(फ़ु)तूर' और भक्ष्यभेदको 'कमात' कहते हैं। किसी-किसीके अनुसार उक्त दोनों संज्ञाओंका व्यवहार साधारणतया उभय भेदोंके लिये होता है। कहते हैं कि हिन्दीमें भक्ष्यभेदका नाम 'खुंबी' और अभक्ष्यका नाम 'पद्भेरा' है और 'गगनधूल' एवं 'फेनछत्र' आदि इसके भेद हैं। इसके एक भेदको 'कश्नज' कहते हैं। यह अत्यन्त स्वापजनन है। यह रेगिस्तानमें उत्पन्न होती है और स्वादिष्ट होती है। यह खुरासानमें तथा नहरीशहरोंमें अधिक होती है। यह फ़ितूरके समान हानिकारक नहीं, अपितु इसके स्वादमें थोड़ी-सी मिठास होती है। मासरजोयाके अनुसार इसका वीर्य चौलाईकी तरह और बसरीके अनुसार छड़ीलाकी तरह होता है। इसका एक भेद कश्मीरकी ओरसे आता है। इसको 'कानकच्चू' कहते हैं। कश्मीरी लोग इसे नमकीन और चासनीदार मांसके साथ पकाकर बहुत खाते हैं। कहते हैं कि यह स्वादिष्ट एवं बलकारक है।

उत्पत्ति स्थान—भारतवर्षके अनेक भागोंमें सामान्यतः, विशेषकर मध्य पंजाबके पशुशालाओंमें बरसातके अन्तमें, मध्य तथा दक्षिण पंजाव और बलूचिस्तानके उजाड़ एवं बंजर भागोंमें यह स्वयंभू होती है।

वर्णन—पत्रपुष्परहित छत्राकार क्षुद्र उद्भिज्जकी एक जाति जिसके अन्तर्गत भूँफोड़, ढिंगरी, गगनधूल आदि हैं। पराश्रयी और मृताश्रयी भेदसे ये दो प्रकारकी होती हैं। इनमें पराश्रयी, जैसे–गेरूई आदि और मृताश्रयी, जैसे–कुकुरमुत्ता, कठफूल और भूँफोड़ आदि हैं। भक्ष्या-भक्ष्य भेदसे भी ये द्विविध होती हैं—(१) भक्ष्य या निर्विषैली,

जैसे–भूफोड़, ढींगरी आदि और अभक्ष्य अर्थात् दुर्गन्धयुक्त और विषैली, जैसे–कुकुरमुत्ता, कठफूल आदि। कश्मीर तथा पंजाबके पहाड़ी प्रदेशोंमें गुच्छी और ढींगरी ये दो छत्रककी जातियाँ होती हैं, जो निर्विष हैं। कच्चा या इनका साग बनाकर खाते हैं जो स्वादिष्ट और पौष्टिक होता है। इसके तरोताजा पौधोंको खानेके काममें लेना चाहिये और सूखी हुईको अच्छी तरह भिगोकर और घी डालकर खाना चाहिये। उत्तम वह है जो रेतीली जमीनमें और पर्वतोंकी तराईमें उत्पन्न हुई हो। दुर्गन्धित भूमिमें तथा खराब किस्मके पेड़ोंके तले जमी हुयी और कालाई लिये हुयी त्याज्य है। इसका उत्तम रंग ललाई लिये हुये है। किसी-किसीके मतसे सफेद रंग उत्तम है, स्याहीमायल रंग त्याज्य है और बिल्कुल स्याह (काला) तो घातक एवं विष है। अतएव उसको नहीं खाना चाहिए। बल्कि धूमिल रक्तवर्ण भी विषप्रभावसे शून्य नहीं है।

उपयुक्त अंग—समग्र क्षुप।

रासायनिक संगठन—इसके रसमें एक तापसह (Thermostable) पदार्थ होता है।

प्रकृति—इसका भक्ष्यभेद दूसरे दर्जे में शीत एवं स्निग्ध (सर्द एवं तर) और अभक्ष्य भेद तीसरे दर्जे में सर्द एवं तर है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—इसका स्वरस विशेषतः जो इसके भूनने से टपके, लगाने से आँखका जाला कट जाता है। सुरमेको इसके स्वरसमें घोंटकर लगाने से दृष्टि, दृष्टिशक्ति और पलकोंको शक्ति प्राप्त होती है तथा प्रसेक (नज़ला) दूर होता एवं पलक और आँखकी खुजली मिटती है। इसको सुखा-पीसकर खानेसे हर प्रकार के दस्त बन्द हो जाते हैं। बच्चोंकी फूली हुई नाभि और अन्त्रवृद्धि पर भी इसे सिरका और सरेशममाहीके साथ लगाने से लाभ होता है। कहते हैं कि इसका एक विशेष प्रभाव यह है कि यदि खुंबी खाये हुये व्यक्तिको विषैला कीड़ा काट खाये तो जब तक उसके आमाशयमें यह उपस्थित रहेगी, उस समय तक कोई औषधि लाभ नहीं करेगी। यह कफ और कफात्मकरक्त उत्पन्न करती है। इसे व्रणों पर लगाने से वे सूख जाते हैं। ग्रन्थोंमें लिखा है कि इसके नमकीन भेदसे जिसे पहले दर्जेमें शीत एवं रूक्ष अथवा शीतल एवं स्निग्ध बताते हैं, उत्पन्न रक्त इतर भेदोंसे खराब नहीं होता। यह ग्राही है। इसे अधिक नहीं खाना चाहिये। अधिक खा लेने पर ऊपर से शराब पियें। इसका मधुर भेद आध्मानकारक, दीर्घपाकी और स्थूल (ग़लीज़) है। अधिक खानेसे शूल (कुलंज) उत्पन्न करता है। इसका प्रतिकार इतर भेदोंके समान है। सुखाई हुई खुमीको पानी में पीसकर सिरके अग्रभागपर लगानेसे बालउतरजानेका रोग (सलअ) दूर होता है। सूखी हुई खुमी नहीं खानी चाहिये। यदि आवश्यक हो तो मिट्टीमिले पानीमें इसे घोलकर तीन-दिन उसमें भींगा रखें। इसके बाद इसे साफ करके काममें लेवें। यूनानी वैद्योंके कथनानुसार सूखे हुये फ़ितर (खुंबीभेद) के खानेसे कम हानि होती है। इसका **कश्नज** नामक भेद उष्णतानिवारक है। इससे सार्द्र दोष उत्पन्न होता और बहुत कम उत्न्न होता है। स्त्रियाँ इसे बृहणीय हलुओंमें मिलाती हैं। खुंबीको मुर्गीके अंडे या मुर्गीके मांसके साथ खाकर ऊपरसे ठंढा पानी पीना हानिकर है। इसके निरंतर सेवनसे सन्तानोत्पादनी शक्ति नष्ट हो जाती है।

विषैली खुंबीके खानेसे मूर्छा, शीतल स्वेद, आमाशयमें गौरव, शूल और अंडशोथ आदि विकार प्रगट हो जाते हैं। इसकी चिकित्सा यह है कि मूली, पुदीना, सिकंजबीन, काँजी, बूरए अरमनी और नमक अथवा मुर्गीके बच्चेकी विष्टा सिकंजबीन या सिरकेके साथ और अंजीरकी लकड़ीकी राख थोड़ेसे नमक और सिरकेके साथ और मधु आदि के साथ खायें तथा तीक्ष्ण बस्तिका प्रयोग करें। आमाशय के ऊपर तारल्यजनन एवं छेदनीय औषधोंका लेपन करें। शराबके मटकेके नीचे उत्पन्न खुमीका छिलका सांघातिक विष है। सुखाया हुआ इसके भीतरका हिस्सा अल्पमात्र भी खानेसे मूर्छा उत्पन्न हो जाती है। बंगाल में इसका भक्ष्यभेद भी विषसे रहित नहीं है। अहितकर–अधिक खानेसे विबंध, शूल, सन्यास, पक्षवध, स्वाप और जिह्वा तथा आमाशयमें गौरव उत्पन्न करती है, मूत्रावरोध करती व कोखों को फुलाती एवं छीप और श्वासकृच्छ्र उत्पन्न करती, आमाशय तथा मस्तिष्कको हानि पहुँचाती और दीर्घपाकी है; तथा शीघ्र सड़ जानेवाला खराब एवं सान्द्रदोष उत्पन्न करती है। इसके अधिक खानेसे हैजा

उत्पन्न हो जाता है। निवारण-शैख़के अनुसार उबालना, तर व खुश्क नाशपाती इसके साथ सम्मिलित करना और भाष्यकार गीलानीके अनुसार राई और काँजीके साथ खाना। इसके अतिरिक्त सातर, सोआ, नमक़, पुदीना, घी और गरम मसाला डालकर पकाना। इसीप्रकार सिरका और तिल या जैतूनका तेल भी इसके निवारण हैं। इसके सेवनोपरांत सिकंजबीन चाटना, अदरक का मुरब्बा, जुवारिस कमूनी और माजून फ़लासफ़ा आदिका खाना इसके दोषोंका निवारण करनेवाला है। प्रतिनिधि—नेत्रके लिये आस के पत्तों का स्वरस।

आयुर्वेदीय मत—सर्पछत्रक (सांप के छाते) को छोड़कर अन्य छत्रक जातियां शीतवीर्य, जुकाम करनेवाली मधुर और गुरु हैं। (च० सू० अ० २७)।

नव्यमत—बल्य, मृदुसारक, बाजीकर उद्भिज्ज होने पर भी यह मांस के समान किंबहुना मांससे भी अधिक पौष्टिक एवं वाजीकर है। जब आमाशयकी पाचनकी शक्ति कम हो और रोगी सूखता जाता हो तब इसका साग खिलाते हैं। क्षयरोगमें इसको दूध के साथ पकाकर देते हैं। (औ० सं०)।

●

(१८८) खेरी या खैरी

नाम—(यू०; हिं०) खेरी, खैरी; (अ०) मन्सू(शू)र; (फा०) शबेबूय, शब्बू; (अं०) इजिप्शन वॉयोलेट (Egyptian Violet)।

वक्तव्य—'शबेबूय' शब्दका प्रयोग गुलशब्बोके सिवाय 'खेरी' और 'खजामा'के अर्थमें भी होता है। ये प्रायः रात्रिमें सुगंध देते हैं। अस्तु, इनके लिये शबेबू (शब = रजनी, बू = गंध = रजनीगंधा) संज्ञाका व्यवहार अन्वर्थक है। मन्सूर संज्ञाका व्वहार 'खेरी' और 'लालपोस्ता (खश्खास मन्शूर)' दोनोंके लिये होता है। इब्नज़हरके मतसे खेरी 'मन्सूरसुर्ख़ (गुलेलाला)'का भी नाम नाम है जिसका फूल सुगन्धित होता है।

उत्पत्तिस्थान—अरब, फारस, इराक़ आदि।

वर्णन—खजामा और भारतीय गुलशब्बोसे भिन्न एक छोटा-सा कांडमय, शाखाबहुल पुष्पवृक्ष जिसकी छाल सफेदी लिये हुये होती है। पत्र—किंचित् सूक्ष्म रोमावृत; पुष्प शाखाओंके ऊपरी भागमें आता है और कई रंगका होता है; कोई पीला, कोई सफेद, कोई लाल और कोई नीला होता है। इनमेंसे औषधके काममें केवल पीला या लाल आता है। मात्र खेरी शब्दसे इसका पीला भेद ही अभिप्रेत होता है। लाल फूलवाले को 'खिलाले इब्राहीम' कहते हैं तथा यह उसका जंगली भेद है। फारसीमें इसको 'अरवानः' कहते हैं। बाग़ी और जंगली भेदसे यह दो प्रकारकी होती है। खेरीको इराक और अरब में 'मन्सूर' कहते हैं।

उपयुक्त अंग—पत्र, पुष्प, बीज और मूल सभी औषधमें काम आते हैं।

प्रकृति—पहले या दूसरे दर्जेमें गरम और खुश्क। पीला तीसरे दर्जेमें गरम और दूसरे में खुश्क है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—फूल आंतों और आमाशयके वायु तथा हिचकीका नाश करनेवाला, लेखन और तारल्यजनन है। इसे नेत्रमें लगानेसे नेत्रगत जाला कट जाता है। इसके सूंघनेसे मस्तिष्कगत वायु एवं कफ विलीन हो जाते हैं। इसके काढ़े में अवगाह (आबजन) करनेसे मूत्र और आर्तवका रक्त चालू हो जाता है। मरा हुआ शिशु और आंवल (अपरा) निकल पड़ती है। योनिमें इसकी वर्ति धारण (हमूल) करनेसे भी उक्त लाभ होता है। इसमें उष्णता और आर्तवजननकी शक्ति अधिक होनेसे इसके उपयोगसे गर्भाशयगत शिशु मर जाता है। अतएव गर्भवती स्त्रीको इसे नहीं देना चाहिये। इसे १० ग्राम (१० माशे)की मात्रामें पीसकर पीनेसे आर्तवरक्त जारी हो जाता है और

गर्भ गिर पड़ता है। गुलाबके फूलोंकी भाँति इसके फूलोंका तेल बनाया जाता है। यह अत्यन्त श्वयथुविलयन (मुहल्लिल) है। इसके नस्यसे अवरोध का नाश होता है। इसे खीरा-ककड़ीके छिले बीजोंके साथ पीनेसे वृक्क एवं बस्तिगत पथरी बह जाती है। इस तेल का तैलपिचु योनिमें रखने से गर्भशिशु नष्ट होकर निकल जाता है। तुख्म-अंजुरा के साथ कमरपर मालिश करनेसे वाजीकरण होता है। इसके बीजोंको मधुके साथ योनिमें रखनेसे भी गर्भ-शिशु नष्ट होकर निकल पड़ता है। कठिन सन्धिशोथपर इसके बीजोंको पीसकर लेप करनेसे लाभ होता है। इसकी जड़ और पत्तों के लेपसे प्लीहाशोथ मिटता है। दोषतारल्यजनन एवं मूत्रार्तवप्रवर्तनमें जंगलीखेरी बढ़ी हुई है। अहितकर–सिरदर्द उत्पन्न करती है। निवारण–गुलरोग़न और सिरका। मात्रा–लगभग १४ ग्राम (१४ माशे) तक।

●

(१८९) खेसारी

फ़ैमिली : लेगूमिनोसी (Family : Leguminosae)

नाम—(हिं०) खि(खे,के)सारी, कस्सा, केराव, लतरी, (अ०) जुल्बान अस्वद; (सं०) त्रिपुट(टी); (गु०) लांग(क); (ते०) लांक; (बं०) खेसारिकलाय; (ले०) **लाथीरुस साटीवुस (Lathyrus sativus** Linn.); (अं०) चिक्लिंग या ह्वाइट वेच (Chickting vetch or White vetch)।

उत्पत्तिस्थान—भारतवर्ष के अनेक भागोंमें इसकी खेती की जाती है।

वर्णन—एक प्रसिद्ध अन्न है।

रासायनिक संगठन—इसके बीजों में एक विषतत्व सम्भवतः फायटिक एसिड (Phytic acid)का अम्ल-लवण होता है। बीजोत्थ तेल प्रबल एवं भयंकर तीव्र विरेचक है।

प्रकृति—पहले दर्जेमें सर्द और दूसरे दर्जेमें खुश्क है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—इसको सर्वसाधारण बादी जानते हैं। यूनानी वैद्य गुणमें मसूरवत् मानते हैं। इससे दुष्ट सांद्रदोष तथा वातावृत रक्त उत्पन्न होता है। यह वायु, आध्मान और बुद्धिमांद्य उत्पन्न करती है।

अहितकर—वरोताजाको अधिक खानेसे सिरमें चक्कर आने लगता है। निवारण–मधुकृत मद्य।

आयुर्वेदीय मत—खेसारी मधुर, तिक्त, कषाय, शीतवीर्य, अत्यन्त रुक्ष, गुरु, रुचिकर, अत्यन्त वातको कुपित करनेवाली, शोधक या (मलरोधक), कफपित्तनाशक, खञ्जत्व(पंगुत्व)कारक, हड्डोकी नसोंको बलवान् करनेवाली तथा शूल, विबन्ध, भ्रम, सूजन, दाह, अर्श एवं हृदयके रोगको उत्पन्न करनेवाली और बैलोंको हितकारी है। (हा० सं०; भा० प्र०; नि० र०)। इसके पत्तोंका शाक बादी, रुचिकारी तथा पित्त और कफनाशक है। (नि० र०)।

●

(१९०) खैर (कत्था)

फ़ैमिली : लेगूमिनोसी (Family : Leguminosae)

नाम। कत्था—(हिं०) कत, कत्था, कथ, खैर, खैरसार; (अ०) कात, काद; (फा०) कात; (सं०) खदिर-सार, खादिरः (खदिरनिर्यास); (द०) कत्थ; (बं०) कत. कात; (म०) कथो, कात; (गु०) कथो; (मल०) कात्तु; (अं०) कैटेच्यू (क्यू) Catechu, कच (Cutch)। (वृक्ष)–(हिं०; म०) खैर; (फा०) दरख्त कात; (सं०) खदिर; (पं०; गु०) खैर; (बं०) खये(ए)र; (मल०) कदरम्, कारङ्गालि; (ता०) काचुकट्टि करङ्गालि; (ते०) पोडलमानु; (ले०) **आकासिआ काटेचू (Acacia Catechu** (L. f.) Willd)।

वक्तव्य—खैरका ज्ञान भारतीयोंको अतिप्राचीनकालसे है। इसकी विभिन्न भाषीय संज्ञाओंपर भी संस्कृत नाम 'खदिर' एवं लोकप्रचलित नाम 'कत्था'का मूलतः प्रभाव प्रतीत होता है। औषधीय प्रयोगके अतिरिक्त पानके साथ सर्वत्र भारतवर्षमें कत्थेका दैनिक व्यवहार होता है। कत्था भारतीय व्यवसायके एक प्रमुख द्रव्योंमेंसे है। केटेच्यू (क्यू)का समावेश ऐलोपैथिक निघण्टुओंमें भी है, लेकिन वह रूबिआसी फैमिली की एक आरोही स्वभावके गुल्म (**Uncaria gambir** Roxb. (*Famly : Rubiaceae*) से प्राप्त किया जाता है। यह एक विदेशी पौधा है, जो मलाया प्रायद्वीप एवं पूर्वी द्वीपसमूह (बोर्नियो, सुमात्रा)आदिमें पाया जाता है। भारतीय कत्थेकी अपेक्षा इससे प्राप्त कत्था कुछ हल्के रंगका होता है। बनौषधियों पर लिखित आधुनिक ग्रन्थों में कहीं-कहीं इस वनस्पतिके लिये भी संस्कृत नाम 'खदिर' दिया गया है। कत्थेका प्राप्तिसाधन होने पर भी यह भारतीय खदिरसे सर्वथा भिन्न वनस्पति है। अतएव इसको (विदेशी खैर या खदिर) कहना ही अधिक समीचीन है।

उत्पत्तिस्थान—भारतवर्ष और ब्रह्मा।

वर्णन—यह खैरके पेड़ (Acacia catechu Willd.)के सारकाष्ठ (हीर)से विशेष विधिद्वारा काष्ठके छोटे-छोटे टुकड़ोंसे घनक्वाथकी क्रियासे कल्पनाकी गई हुई शुष्क रसक्रिया है। इसके घनाकार चौरस लगभग एक इंच लंबे-चौड़े टुकड़े या उनसे मिलकर बने हुये डले होते हैं। इसके निम्न भेद होते हैं :—

१—यह ललाई लिये हुये भूरा और भीतरसे अत्यंत हलका पीले (या बादामी) रंग का होता है और दालचीनीकी भाँति सहजमें टूट जाता है। स्वाद पहले तिक्त एवं कषाय गोंद जैसा और पीछे मधुर प्रतीत होता है। इसको पानके साथ खाते और औषधमें प्रयुक्त करते हैं। इसको प(पा) पडिया, भगूरी या पखरा कत्था कहते हैं।

२—लाल—इसे औषधमें नहीं प्रयुक्त करते। यह अधिकतया पानके साथ खाया जाता है।

३—काला—यह अत्यंत तिक्त होता है और औषधके काममें नहीं आता। यह तीनों निर्गन्ध होते हैं। खौलते हुये जलमें कत्था विलीन हो जाता है।

रासायनिक संगठन—इसमें कैटेक्यु टैनिकएसिड नामक एक गुणोत्पादक वीर्य होता है। यह उबालनेसे या मुखकी लालासे मिलकर कैटेकीन (कातीन या खदिरीन)में परिणत हो जाता है। छालमें ५७ प्रतिशत कषाय द्रव्य और ३५ प्रतिशत कत्था है। छालका काढ़ा होने पर पात्रके तलभागमें कत्था बैठता है।

कल्प तथा योग—ज़रूर कत्था आदि।

उपयुक्त अंग—कत्था, खैरसार या खदिरसार (वृक्षोंके काष्ठके भीतर दरारोंमें पायाजानेवाला एक रवेदार कृष्णाभ जमा हुआ पदार्थ) और छाल।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें शीत एवं रूक्ष (खुश्क)। आयुर्वेदमतसे शीतवीर्य (भा० प्र०) है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—शीतसंग्राही, रक्तप्रसादन, व्रणलेखन और उदरकृमिनाशन है। दाँतोंसे खून आने (शीताद) और गलशुण्डिकामें यह विशेष लाभकारी है। संग्राही होनेके कारण दन्तमूलकी दृढताके लिये तथा गलशुण्डिकामें मंजन, गण्डूष या कवल की भाँति इसका उपयोग करते हैं और अतिसारमें चूर्ण बनाकर खिलाते हैं। व्रणलेखन होनेके कारण मुखपाकमें तथा शरीरगत व्रणोंपर भी इसका अवचूर्णन किया जाता है तथा इसे मलहरोंमें मिलाकर लगाते हैं। इसे अकेला भी मक्खनमें मिलाकर उपयोग करते हैं। यह पानमें लगाकर पुष्कल खाया जाता है। अहितकर—कामावसादकर और वृक्काश्मरिकारक है। निवारण—अंबर और कस्तूरी। प्रतिनिधि—गेरू और माजू। मात्रा—१ से २ ग्राम (१ माशा से २ माशे) तक।

आयुवदीय मत—खैर तिक्त, कषाय, शीतवीर्य, पाचन, कफ और शुक्रको सुखानेवाला तथा पित्त, कफ कुष्ठ, खाँसी, शोथ, कण्डू, व्रण, अरुचि, मेद, प्रमेह, ज्वर श्वित्र, आम, रक्तविकार और पाण्डुरोगका नाश करनेवाला है। (च० सू० अ० ४, २५, वि० अ० ८; सु० सू० अ० ३८, चि० अ० ९, ११; ध० नि०; रा० नि०; भा० प्र०)।

नव्यमत—खैरसार गलेकी शिथिलतामें उत्तम औषध है। इसको कफरोगोंमें देते हैं। इससे कफ कम होता है और छोटी-छोटी रक्तवाहिनियोंका संकोच होता है। इससे नया कफ उत्पन्न होना बंद होता है। मात्रा–२५० से ६००मि०ग्रा० (२से५ रत्ती)। कत्था अच्छा संग्राहक है। इसकी क्रिया श्लेष्मलत्वचा और रक्तवाहिनियोंपर होती है। कत्थेसे आमाशयका पाचकरस कम होता है और आँतोंका मल गाढ़ा होता (बँधता) है। इससे सर्वशरीरकी शिथिलता कम होती है। खैरकी छालमें कत्थेके सब गुण वर्तमान हैं। खैर संग्राहक, श्लेष्मघ्न, रक्तसंग्राहक, रक्तपित्तप्रशमन, विषमज्वरप्रतिबन्धक और कुष्ठघ्न है। जीर्णज्वरमें खैरकी छाल और चिरायतेका काढ़ा देनेसे प्लीहाकी वृद्धि कम होती है और शरीरको वल प्राप्त होता है। छालका काढ़ा पीने और कुल्ली करनेमें मसूढ़ोंसे खून आना बन्द होता है। त्वचाके रोगोंमें व्रण होकर पीप और रक्त आता हो तो छालका काढ़ा पिलाते हैं और उससे व्रणको धोते हैं। संग्रहणी, अतिसार और अम्लोद्गारमें कत्था गुणकारी है। गर्भाशयकी शिथिलतासे उत्पन्न प्रदर, रक्तस्राव और योनिशैथिल्यमें समभाग कत्था और बोलकी गोलियाँ गुणकारी हैं। तरुणोंके कफविकारमें जब बहुत कफ निकलता है, कफ पतला हो, शरीर फीका पड़ गया हो और हलका ज्वर रहता हो तब इन गोलियोंसे लाभ होता है। अकेला कत्था मुँहमें रखनेसे गलेकी शिथिलता से उत्पन्न सूखी खाँसी में उपकार होता है।

◆

(१९१) दुर्गन्ध खैर

नाम—(हिं०) गुआ बबूल, दुर्गन्ध खैर; (सं०) अरिमेद, विट्खदिर; (बं०) गन्धबाबुल, गुइया बाबुल; (मुंगेर) गुइआ सेन; (संथा०) गबुर; (ले०) आकासिआ फार्नेसिआना (**Acacia farnesiana** Willd.)।

उत्पत्तिस्थान—सर्वत्र भारतवर्ष।

वर्णन—इसके गुल्म या १२-२० फुट ऊँचे वृक्ष होते हैं। शाखाओंपर छोटे और प्रायः मुलायम काँटे होते हैं। पुष्प गहरे नारंगवर्णके सुगंधित और मुण्डकवत् गुच्छेमें रहते हैं। मूल और मूलत्वक्में तीव्र दुर्गंध होती है। इसलिये इसे 'गुआ (गुह) बबूल' या विट्खदिर कहते हैं। विलायती बबूल या रेंवा (**Acacia leucophloea** Willd.) की छाल तथा ताजी लकड़ीमें भी दुर्गंध होती है। इसलिये कुछ लोग इसे भी विट्खदिर मानते हैं। खैरकी एक जाति श्वेतसार (लकड़ी) वाली होती है। उसको संस्कृतमें सोमवल्क (सफेद छालवाला) कहते हैं।

◆

(१९२) गंगेरन, गुलशकरी

फ़ैमिली : टीलिआसे (Family : Tiliaceae)

नाम—(हिं०) गंगरेन, गुलसकरी (मीरजापुर जंगल), कुकुराँड; (सं०) गाङ्गेरुकी (वृक्ष); गाङ्गेरुक (फल) (सु०; च०); (बम्ब०;म०) गोवली; (ले०) ग्रूइआ हिर्सूटा (**Grewia hirsuta** Vahl.)। भेद (हिं०) गंगेरन, गंगेरून, गंगो (राजपुताना); (सं०) गाङ्गेरुकी; (गु०) गंगेटी; (पं०; मा०) गंगेर (न); (ले०) ग्रूइआ टेनाक्स (**Grewia tenax** (Forsk.) Aschers. (पर्याय–**G. populifolia** Vahl.)।

वक्तव्य—सुश्रुतकी टीका (सु० उ० ४२ अ०, श्लो० ६८)में टीकाकार डल्हणने 'गुड़शर्करा'का अर्थ 'गांगेटीफल' लिखा है। इससे यह सिद्ध होता है कि 'गांगेटी' गुड़शर्करा ही है। मीरजापुरके जंगलोंमें उपर्युक्त पौधोंके लिए प्रयुक्त होनेवाला गुलशकरी शब्द शास्त्रोक्त गुड़शर्कराका अपभ्रंश मालूम होता है। अस्तु, प्रायः आधुनिक निघंटुग्रंथोंमें श्वेतबला (**Sida spinosa L.**) के लिये प्रयुक्त हुआ गुलशकरी शब्द गलत है; क्योंकि कहीं भी इसे उक्त नामसे नहीं बोलते। पीछेके निघंटुकारोंने गांगेरुकी तथा नागबलाको एक मान लिया है जिससे गुलशकरीको भूलसे नागबला माना जाने लगा; किन्तु यह ठीक नहीं है। मुहीतआजममें लिखे **'गंगेरक', 'गंगेरन', 'गंगेरुक'** और **'नागबला'** शब्द सब एक ही उद्भिज्जके नाम हैं।

उत्पत्तिस्थान—प्रथम भेद उत्तर भारतमें सिन्धु नदीसे पूरबकी ओर बिहार एवं उड़ीसा तक और द्वितीय भेद पंजाब, सिन्धु, राजपुताना और पश्चिमी भारतवर्ष नीचेकी ओर नीलगिरि तक इसके वृक्ष जंगली होते हैं।

वर्णन—प्रथम भेदके रोमश गुल्म प्रायः १½-३ फुट ऊँचे और मूलके पाससे निकली हुई अनेक शाखाओंसे युक्त होते हैं। पत्तियाँ विचित्र प्रकारकी होती हैं, यथा रेखाकार, लट्वाकारप्रासवत् अथवा चौड़ाई लिए हुए आयताकार आदि प्रकारकी होती हैं, जो प्रायः लम्बाग्र, अल्पवृन्तवाली और तीक्ष्ण दन्तुर होती हैं। फूल पीले और फल प्रायः चार खंडवाले होते हैं और मृदु रोमों से ढके रहते हैं। फल गुच्छोंमें लगते हैं। कच्चाफल स्वादमें अम्ल और मधुर होता है। द्वितीय भेदके इससे मिलते-जुलते ५-१० फुट ऊँचे वृक्ष होते हैं; पुष्प श्वेतवर्ण, किंचित् सुगंधित, जेठ आषाढ़में आते हैं। शीतकालके आरम्भमें फल पक जाते हैं। पके फल कुछ कसैलापन लिए हुए खटमीठे होते हैं।

प्रकृति—गरम व रूक्ष; मतांतरसे शीत एवं स्निग्ध। आयुर्वेदके मतसे गाङ्गेरूक(फल) शीतवीर्य (च०) है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—मुहीत आजममें उक्त चारों संज्ञाओंके अन्तर्गत लिखी हुई गुणवर्णनाका सारांश यह है—यह दस्त लाता है, वात, पित्त और रक्तके विकारको दूर करता तथा अपने प्रभावसे रक्तपित्तका नाश करता है। यह बल्य, वाजीकर और रसायन है तथा कण्डू एवं किलासको नष्ट करता और घावोंको साफ करता है। इसका फल मधुर, शीतल, भारी एवं प्रभावतः ग्राही है तथा रक्तपित्तका नाश करता है।

आयुर्वेदीय मत—गंगरेनका फल (गांगेरुक) मधुर, कुछ कषाय, शीतवीर्य तथा पित्त और कफ का नाश करनेवाला (च० सू० अ० २७), कफवातनाशक (सु० सू० अ० ४६) है। तलवार आदिसे घाव होनेपर तत्काल उसमें गंगेरनकी जड़का स्वरस भरकर बाँध देनेसे घाव शीघ्र आराम होता है (च० सू० अ० २७; सु० सू० अ० ४६, शार्ङ्ग० म० खं०)।

नव्यमत—बिहारमें शुक्रदौर्बल्यमें इसके मूलका प्रयोग किया जाता है। इसको फोड़ा पकाने या पकाकर बहानेके लिये जलमें पीसकर लगाया लाता है। मूल और फलका अतिसार और प्रवाहिकामें भी प्रयोग होता है।

●

(१९३) गंदना

फ़ैमिलि : लीलिआसी (Family : Liliaceae)

नाम—(हिं०) गंदना, दंदना; (अ०) करास, कुरास, किरास, कुरसि; (फा०) **गंदना**, कालूख़; (पं०) परु; (ले०) **आलिअम् पोर्रम्** (**Allium porrum** Linn.; **A. ampelo-prasum** Linn.); (अं०) लीक (Leek), पोर्रेट (Porret)। (अ०) बज्रुल्कुर्रास; बीज (फा०) तुख़्म गंदना।

उत्पत्तिस्थान—ईरान और भारतवर्षमें इसके पौधे गेहूँ और चनेके खेतोंमें स्वयंजात होते हैं। उद्यानज फसलके रूपमें भारतीय उद्यानोंमें इसकी खेती भी की जाती है।

वर्णन—यह वर्षायु प्याजकी तरहका एक क्षुद्र गुल्म है। पत्र प्याजकी तरह किन्तु उससे बारीक, तीक्ष्ण एवं दुर्गन्धित होता है। पूरा बढ़ जानेपर इसमेंसे एक कांड निकलता है जिसके सिरेपर पुष्प और बीज लगते हैं। पुष्प सफेद प्याजके फल जैसे, किन्तु उससे क्षुद्र होते हैं। बीज भी प्याजके बीज जैसे, काले दुर्गंधित और स्वादमें तिक्त, चरपरे एवं कुस्वादु होते हैं। इसकी जड़में प्याज (कंद) भी होती है। इसे **कुर्रास शामी** या **गंदनाए शामी** कहते हैं। इसके वन्य भेद **गंदनाए दश्ती** या **कुर्रासुस्सौमका** वैज्ञानिक नाम **आल्लिउम् स्कीनोप्रासुम्** (**Allium schoenoprasum** Linn.) है, जो भारतवर्षमें पश्चिमी हिमालयमें कश्मीरसे कुमायूँतक ८,०००-११,००० फुटकी ऊँचाई पर वन्य रूपसे भी पाया जाता है। उद्यानज फसलके रूपमें यह बगीचोंमें बोया भी जाता है। इसके अतिरिक्त इसका एक भारतीय भेद भी है, जिसे लेटिनमें **आल्लिउम् टूबेरोसुम्** (**Allium tuberosum** Roxb.) और अंग्रेजीमें इंडियन लीक (Indian leek) कहते हैं। प्रायः यह वन्य जाति है जो पश्चिमी हिमालय एवं खसिया की पहाड़ियोंपर पायी जाती है। बंगालमें इसको लगाते भी हैं।

वक्तव्य—प्रायः हकीमोंने इसे प्याजी वा मुनमुना (पोगाट) समझा है। परन्तु पोगाट खुन्सा (Asphodel) है न कि गंदना।

उपयुक्तअंग—पंचांग (विशेषतः **पत्र** और **बीज**)।

रासायनिक संगठन—एलाइल-डाइसल्फाईड (Allyl disulphida)के साथ एक उड़नशील तेल (Essential oil) इसका प्रधान उपादान है।

प्रकृति—दूसरे दर्जे में **गरम और खुश्क**।

गुण-कर्म तथा उपयोग—श्वयथुविलियन, संशमन, लेखन, बाष्पकारक (मुबख्खिर), वाजीकर, मूत्रार्तवजनन और श्लेष्मनिःसारक। गंदनाके हरे पत्रका साग कच्चा या पकाकर खाया जाता है। यह अत्यन्त बाष्पकारक होता है तथा शिरःशूल उत्पन्न करता और ज्ञानेन्द्रियोंको दूषित एवं अस्त-व्यस्त कर देता है। गंदनाकेबीज वातार्श और रक्तार्शमें प्रयुक्त होते हैं। अन्य औषधद्रव्यके साथ इसकी गोली और चूर्ण अर्शोघ्न हैं। प्रायः अर्शोघ्नी गुटिकायें गंदनाके पत्रस्वरसमें गूँधकर बनाई जाती हैं। अर्शांकुरोंको गंदनाके बीजोंकी धूनी भी दी जाती है। मूत्र और आर्तव प्रवर्तनके लिए भी इसका उपयोग करते हैं। लेखन होनेके कारण कतिपय त्वग्रोगोंमें पतले लेपकी भाँति इसका उपयोग करते हैं। **अहितकर**–उष्णप्रकृतिवालोंके लिए। **निवारण**–धनिया और हरी कासनी। **प्रतिनिधि**–प्याज और लहसुन। **मात्रा**–१ से २ ग्राम (१ से २ माशे तक)।

●

(१९४) गंधपूरो

फ़ैमिली : एरीकासे (Family : Ericaceae)

नाम—(हिं०) गंदपूरो, हरीभरी; (द०) गंधपूरो; (अ०) हशीशतुल्बतूल, हुज़रतुश्शता; (सं०) शीतहरित, गंधपूर्ण, हेमंतहरित, तैलपत्र, चर्मपर्ण (नवीन); (ले०) (१) **विदेशी–गाउल्थेरिया प्रोकुम्बेन्स** (**Gaultheria procumbens** Linn); (अं०) विंटरग्रीन (Winter-green), टी-बेरी (Tea-berry)। (२) **देशी-गाउल्थेरिया फ्राग्रान्टिस्सिमा** (**Gaultheria fragrantissima** Wall.); (अं०) इंडियन विंटर-ग्रीन (Indian Winter-green)।

उत्पत्तिस्थान—संयुक्तराज्य अमेरिका और कनाडा। भारतीय जाति नेपालसे भूटान तक ६,०००–८,००० फुटकी ऊँचाईपर, खसियाकी पहाड़ी एवं पश्चिमीघाट, नीलगिरि और ट्रावन्कोर आदिमें ५,००० फुटकी ऊँचाई पर होती है। नेपालमें इसे 'मचिनो' और लेपचामें 'कलोंबा' कहते हैं।

वर्णन—पत्र चर्मिल, रूपरेखामें अभिलट्वाकार (Obovate) या दीर्घवृत्ताकार (Elliptical), ह्रस्व-वृन्तयुक्त; पत्रप्रान्त हलका दन्तुर (Faintly serrate), ऊर्ध्वपृष्ठ चमकीले हरेरंगका तथा अधःपृष्ठ पांडुरवर्ण (Paler) स्वादमें कषाय तथा सुगन्धित। पत्तोंमें मेथिल सैलिसिलेट जैसी विशिष्ट सुगन्धि होती है।

रासायनिक संगठन—इससे एक प्रकारका उत्पत् तैल (Essential oil) प्राप्त होता है, जिसे **ऑयल ऑफ विंटरग्रीन** (Oil of Wintergreen) या **ऑयल बीटूल** (Oil Betul) अथवा **गाउल्थेरिया औलियम्** कहते हैं।

गुणकर्म तथा उपयोग—सुगन्धित (Aromatic), संग्राहक और उत्तेजक तथा आमवातके लिए बड़ी ही मूल्यवान् औषधि है जिसके लिए प्रायः इसका उपयोग होता है, विशेषकर अन्य औषधियोंके साथ। अतिसार और शिशु-वातानुलोमन औषधिकी भाँति इसका उपयोग किया जा सकता है। २½ तोला इस औषधिका १ पाइंट जलमें बनाया गया फाण्ट सुरापात्रकी मात्रामें लेते हैं।

●

(१९५) गन्ना

फैमिली : ग्रामीने (Family : Gramineae)

नाम—(हिं०) ईख, ऊख, गन्ना; (अं०) कसबुस्सुक्कर; (फा०) नैशकर; (पं०) इख; (कु०) रिखु; (मा०) सांठा; (सिं०) कमंद; (वं०) आक्; (नेपाल) उक; (गु०) शेरडी; (म०) ऊँस; (ले०) **साक्कारुम् आफ़्फ़ीसिनारुम्** (**Saccharum officinarum** Linn.); (अं०) सुगर केन (Sugar-cane)।

उत्पत्तिस्थान—दक्षिण एशिया विशेषतः भारतवर्ष इसका मूल उत्पत्तिस्थान है। यह सर्वत्र भारतवर्षमें और प्रायः संसारके सभी उष्णप्रधान देशोंमें होता है।

वर्णन—यह तृणजातिको एक प्रसिद्ध वनस्पति है, जिसके तनेमें मीठा रस भरा रहता है। इसीके रससे गुड़, चीनी और अन्य समस्त मिठाइयाँ बनती हैं। यह कई प्रकारका होता है। उनमें पौंढ़ा सर्वोत्तम होता है। यह खानेमें नरम, बहुत मीठा और स्वादिष्ट होता है।

रासायनिक संगठन—ईखके रसमें इक्षुशर्करा (Saccharine matter), जल, लबाब, राल, बसा और ऐल्ब्यूमिन प्रभृति द्रव्य पाये जाते हैं। इसमें अल्पमात्रामें **ग्वानीन** (Guanine) नामक एक जलविलेय सफेद स्फटिकीय चूर्ण भी होता है।

उपयुक्त अंग—इसप्रकारका **रस** और उससे बने हुए **राब** (सं०-फाणित; म०-काकवी), **खाँड़** (**चीनी**), **गुड़**, **सिरका** और **मद्य** प्रभृति पदार्थ तथा **इक्षुमूल**।

कल्प तथा योग—लऊक़ आवनैशकरवाला आदि।

प्रकृति—पहले दर्जेमें गरम और दूसरे दर्जेमें तर। आयुर्वेदके मतसे शीतवीर्य (सु०) है।

गुणकर्म तथा उपयोग—गन्ना हृदयको उल्लसित करनेवाला प्रकृतिको मृदु करता (सर) तथा मूत्रजनन, बल्य और बृंहण है। यह दाँतोंको मजबूत और साफ करता तथा मुखकी दुर्गन्धको निवारण करता है। गन्नेको

अधिकतया छीलकर खाया जाता है। इसके **निरन्तर** सेवनसे शरीर बलवान् और स्थूल (परिबृंहित) हो जाता है। मूत्रजनन होनेके कारण यह मूत्रके दाहको मिटाता है। गन्नेकी गडेरियोंको छीलकर रात्रिमें ओसमें रखकर सबेरे चूसनेमें मूत्रदाह और सूजाक आराम होते हैं। कभी-कभी बहुत पेशाब लानेके कारण बस्तिवृक्काश्मरीको निकालता है। गन्नेके निकाले हुए रसमें भी प्रायः उपर्युक्त गुण पाया जाता है। **अहितकर**—श्लेष्म प्रकृतिको। **निवारण**—अनीसूँ। **प्रतिनिधि**—एक भेद दूसरेका प्रतिनिधि हैं।

गुड़—

नाम—(हिं०) गुड़; (अ०), क़ंद स्याह, क़ंद अह्मर, क़ंद खाम; (सं०) गुड़; (अं०) जैगरी (Jaggery)।

वर्णन—ईखके रसका बना हुआ प्रसिद्ध पदार्थ है। गन्नेके रसको पकाकर बिना साफ किये जमा लिया जाता है। जब कड़ी चाशनी बनाकर और हाथोंसे मलकर चूर्ण बना लेते हैं तब उसको '**शकरसुर्ख़**' कहते हैं। इसको हिन्दीमें **लाल खाँड़** या '**लाल देशीचीनी**' कहते हैं। **राब** या जूसी वह है जिसे हमारे यहाँ देशमें खाँड़ और आयुर्वेदमें 'फाणित' कहते हैं।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम और तर, पुराना गुड़ गरम और खुश्क है। आयुर्वेदके मतसे नातिशीत(कुछ-शीत) एवं रूक्ष (सु०) है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—गुड़ उष्णताजनन, एवं प्रकृतिमार्दवकर (सर) है, कफका उत्सर्ग करता, थोड़ी मात्रामें खानेको हजम करता है, सूजन उतारता और पकाता तथा कोथप्रतिबंधक है एवं औषधिवीर्यको सुरक्षित रखता है। गुड़ आहार (खाद्य)की भाँति पुष्कल खाया जाता है। आयास विशेषतः मैथुनजन्य क्लांतिको दूर करनेके लिये इसको खाते हैं। विरेचन औषधियोंके सहायतार्थ इसको उसके साथ उपयोग करते हैं। भोजनोत्तर आहारको पचानेके लिये थोड़ी मात्रामें इसका उपयोग करते हैं। अधिक परिमाणमें खानेसे यह आहारको दीर्घपाकी और गुरु बनाता है। व्रणशोथको विलीन करने और पचाने तथा आघात-प्रत्याघात (चोटचपेट)जन्य सूजन और वेदनाको शांत करनेके लिये इसकी पुलटिस बनाकर बाँधते हैं। औषधिवीर्यको सुरक्षित रखनेके लिये मधुके स्थानमें गुड़की चाशनी बनाकर माजून भी कल्पना करते हैं।

मात्रा—मृदुकरणार्थ विरेचन औषधियोंके साथ ४ से ६ तोले तक।

रासायनिक संगठन—गुड़में इक्षुशर्करा ५९·७१%, मधुशर्करा (ग्लूकोज) २१·२८%, क्षार (खनिज) ३·३६%, जलांश ८·८६ प्रतिशत, इनके अतिरिक्त खनिजोंमें कैल्सियम् (Calcium), फॉसफोरस (Phosphorus), आयरन (Iron) और ताम्र (Copper) प्रधान रूपसे होते हैं। इसमें शर्कराका पाँचवाँ भाग ग्लूकोज होनेसे जिसका पाचन करनेकी आवश्यकता नहीं होती, चीनीकी अपेक्षया गुड़से बल जल्दी उत्पन्न होता है।

खांड़ (चीनी-शकर)—

नाम—(हिं०) चीनी, खाँड़, बूरा, सफेद शक्कर; (अ०) सुक्कर, सुक्करुल् अब्यज़; (फा०) शकर, शकरतरी, शकरे सुपेद, (सुफ़ेद); (सं०) शर्करा, खण्ड; (बं०) भूरा, बूरा, चीनी; (म०) साखर; (गु०) शकर, चीनी, भूरो खाँड; (ले०) साक्कारुम् (Saccharum); (अं०) सुगर (Sugar)।

वक्तव्य—अरबी '**सुक्कर**' संस्कृत 'शर्करा'से फारसी 'शकर' द्वारा व्युत्पन्न है। इसके लेटिन और अंग्रेजी नाम अरबी सुक्करसे व्युत्पन्न हैं। ईखका मूल उत्पत्तिस्थान भारतवर्ष है। प्राचीन भारतवासियोंको ईख, शर्करा और

गुड़ भली-भाँति मालूम थे; परन्तु इनको तथा प्राचीन यूनानियोंको शर्कराका ज्ञान नहीं था। सर्वप्रथम अरबी व अजमी हकीम, यथा–राज़ी, **अलीअब्बास और इब्नसीनाने** इसवी सन्‌की दसवीं शताब्दीमें इसका ग्रंथोंमें उल्लेख किया। शर्करानिर्माणके आविष्कारका श्रेय भी पूर्वात्योंको ही है।

वर्णन—यह एक प्रसिद्ध मिष्ठ पदार्थ है। यद्यपि खजूर, नारियल, ज्वार, चुकंदर, ताड़ और अन्यान्य वनस्पतियोंके रससे भी खाँड बनाते हैं, तथापि इसका सबसे बृहत् स्रोत गन्ना है। यहाँ उसीके रससे बनी खाँड (चीनी) अभिप्रेत है। यह दो प्रकारकी होती है —(१) **शकर सुर्ख़** अर्थात् विना साफ की हुई लाल देशी चीनी। घोटनेसे जब यह कुछ पीले रंगकी हो जाती है, तब **'शकर ख़ाम'** कहलाती है। (२) **शकर सफेद** अर्थात् साफ़ की हुई दानेदार सफेद खाँड़ (शकर) या चीनी। इसको पुनः साफ करके जमाकर मिश्री (नबात या नबात सफ़ेद) और बताशे तथा अन्य मिष्ठ पदार्थ बनाते हैं।

जब नबात सफेदको दोबारा साफ करके बर्तनमें डालकर जमा लें तो उसको **शकर सुलेमानी** कहते हैं। जब तीसरी बार पुनः साफ करके सनोबरी कालिबों (साँचों)में ढालें तो उसे **फ़ानीज या कन्द** कहते हैं। यदि तीसरी बारके पकानेमें बहुत आँच दी गई तो उसको **अबलूज** (अ०) और **कन्द मुकर्रर** (फा०) कहते हैं। यदि इसे फिर आँच दी जाय तो उसको **नबात सज्ज़ी** (फारसी सग्ज़ीका अरबीकृत) कहते हैं। यदि शकर सफेदको तीसरी बार पकानेमें इसका दसवाँ भाग दूध डालकर यहाँ तक पकाया जाय कि जम जाय, तो उसे **'तबरज़द'** कहते हैं। किन्तु प्रायः कन्दमुकर्रके लिये इस शब्दका प्रयोग होता है।

रासायनिक संगठन—चीनीमें इक्षुशर्करा ९९·७%, मधुशर्करा शून्य प्रतिशत, क्षार (खनिज) ०·०२ प्रतिशत, जलांश ०·०४ प्रतिशत होता है। रासायनिक दृष्टिसे इसमें तथा खजूर और चुकंदरकी बनी शर्करामें केवल इक्षुशर्करा (Saccharose) सारके रूपमें एक ही द्रव्य होता है।

प्रकृति—शकरसफेद पहले दर्जेमें गरम और तर; शकरसुर्ख़ शकरसफेदकी अपेक्षया किसी कदर अधिक गरम होती है; पुरानी होने पर शकरकी तरी कम और खुश्की अधिक हो जाती है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—शकर कोथप्रतिबंधक उष्णताजनन और बल्य है। बड़ी मात्रामें खिलानेसे यह प्रकृतिमार्दवकर (सारक) है। शकरसुर्ख़में मार्दवकरणकी शक्ति अधिक होती है। व्रणों पर अवचूर्णन करनेसे उनका लेखन करती और मलादिसे शुद्ध करती है। हलकी मात्रामें पाचन है। इसका प्रधान कर्म यकृत् और ओजों (अरवाह) को बल प्रदान करना है। औषधियोंको बिगड़ने या खराब होनेसे बचाने, उनका स्वाद सुधारने और उनके वीर्य-संरक्षणके लिये इसका पुष्कल उपयोग करते हैं। सुतरां माजून, शर्बत और मुरब्बे खाँड़ (शकर) की चाशनीमें तैयार किये जाते हैं। स्वादिष्ट बनानेके लिये इसको क्वाथ और फाँटमें मिलाते हैं। साधारण कब्ज दूर करनेके लिये विशेषतः शकरसुर्ख़को दूधमें मिलाकर पिलाते हैं तथा अन्य विरेचन औषधियोंमें डाला करते हैं। पाचनक्रिया के सहायतार्थ थोड़ी मात्रामें भोजनोत्तर खाते हैं। परन्तु इसके अधिक सेवन से पाचनक्रिया बिगड़ जाती है और मधुमेह जैसा रोग लग जाता है। दूषित एवं प्रकुथित व्रणों पर छिड़कने से उनका प्रकोथ दूर हो जाता है और वे दूषित मलोंसे शुद्ध हो जाते हैं। शकर का आहारों में उपयोग करनेसे कृश एवं दुर्बल शरीर परिबृंहित, पुष्ट एवं बलवान् हो जाता है। किसी-किसी रोगीमें इसके विपुल रक्त उत्पन्न होनेके कारण शरीर लाल हो जाता है। शारीरिक व्यायाम करनेवाले अधिक शकर पचा सकते हैं। **अहितकर**—उष्ण प्रकृतिवालों को। **निवारण**—बादाम और दूध। **प्रतिनिधि**—यवासशर्करा (तरंजबीन)। **मात्रा**—मार्दवकरण (सारक)के लिए ४-५ तोले तक; आहार की भाँति जितना पच सके।

आयुर्वेदीय मत—ईख मधुर, मधुरविपाक, शीतवीर्य, गुरु, स्निग्ध, बल्य, वृष्य, मूत्रल, रक्तपित्तप्रशमन तथा क्रमि और कफको उत्पन्न करनेवाला है। **दाँतोंसे दबाकर चूसी हुई ईखका रस** मधुर, शीतवीर्य, वृष्य, सारक, स्निग्ध

बृंहण, कफकर, अविदाही, मुखको आल्हादित करनेवाला तथा वातपित्तनाशक है। **यन्त्रसे निकाला हुआ रस** गन्नेके मूल, अग्रभाग (तथा पर्वसन्धि), कीड़ा लगा हुआ भाग इनका भी पीड़न द्वारा रस आने तथा वाह्य मलके संसर्ग और कुछ समय खुला पड़ा रहनेसे विकृत हो जानेके कारण गुरु, विदाही और विष्टम्भी होता है। गुड़ कुछ क्षारधर्मी मधुर, कुछ शीत, स्निग्ध, मूत्रल, रक्तशोधक (असृक्प्रसादन-रक्तवर्धक), कुछ पित्तशामक, वातघ्न मेद-कृमि और कफको बढ़ानेवाला, बल्य और वृष्य होता है। साफ किया हुआ गुड़ मधुर, रक्तप्रसादन तथा पित्तवातनाशक होता है। पुराना (एक सालके ऊपर और दो सालके भीतरका) गुड़ अधिक गुणवाला और पथ्य होता है। मत्स्यण्डिका (मींजाखाँड़), खाँड़ (चीनी) और मिश्री (शर्करा) उत्तरोत्तर निर्मल, शीत, स्निग्ध, मधुर, गुरु, वृष्य तथा रक्तपित्त और तृष्णाको शमन करनेवाली है। (सु० सू० अ० ४५; च० सू० अ० २७; वा० सू० अ० ३५)।

वक्तव्य—गुड़में जो क्षार होते हैं उनमें अयस् तथा ताम्र दोनों रहते हैं। आधुनिक विज्ञानसे यह सिद्ध हुआ है कि अयस् रक्त बनाता है, परन्तु उसके बननेमें ताम्रसे बहुत सहायता मिलती है। आरोग्यशास्त्रके आधुनिक विद्वानोंका यह मत है कि आहार्य द्रव्योंमें जो अंशमात्र खनिज द्रव्य होता है वह स्वास्थ्यरक्षाकी दृष्टिसे बहुत उपयोगी रहता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि चीनी की अपेक्षया गुड़ स्वास्थ्य रक्षाकी दृष्टिसे अधिक लाभकर होता है।

नव्यमत—आर्यों का असली शक्कर गुड़से बनी हुई देशी शक्कर ही है जिसे **बनारसी शक्कर** कहते हैं। औषध में इसीका प्रयोग करना चाहिये। राब सौम्य रेचन है। इतर पदर्थामें मिलाने से राब उसे सड़ने नहीं देती। वनस्पतियोंके घनक्वाथोंको कुछ समय रखना हो और उसमें मद्य न डालना हो तो उसमें राब मिलाकर रखना चाहिये। शक्कर शीतल, पौष्टिक, स्नेहन, मूत्रजनन, उत्तेजक, कासहर, पाचन, आश्वासकर, श्रमहर, जीवन, कोथ-प्रशमन, व्रणरोपण और कण्ठ्य है। शक्कर हृदयको पुष्टि देनेवाली है। इसलिये वृक्क और हृदयके रोगोंमें शक्कर देना चाहिये।

सिरका—

नामादि—तथा निर्माण विधिके लिये यूनानी द्रव्यगुण विज्ञान का पूवार्ध पृष्ठ २१९ पर देखें।

कल्प तथा योग—सिकंजबीन सादा व बजूरी, उम्मुलख़ल और सिरकए अंसल।

प्रकृति—यह उष्ण एवं शीत वीर्योंसे युक्त होनेसे संमिश्रवीर्य हैं; किन्तु उनमें शीतवीर्य प्रधान है। मतांतरसे यह दूसरे दर्जेमें सर्द एवं खुश्क है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—यह संग्राही, **उपशोषण**, त्वचामें बहुत शीघ्र प्रवेश करनेवाला, सांद्रदोषछेदन एवं तारल्यजनन, कृमिघ्न, वेदनाहर, **आहार-पाचन**, **क्षुधाजनक** एवं पित्तनाशक और विशेषकर आशुप्रवेशकारक दोषविलोमकर्ता तथा विलयन है। उष्ण शिरःशूल एवं उष्ण सरसाममें मिलित सिरका, रोग़नेगुल और अर्कगुलाबमें कपड़ा भिगोकर सिर पर रखते हैं। आशुप्रवेशनीय होनेके कारण प्रायः लेपों और अभ्यंग (मालिश) की औषधियोंमें औषधीय वीर्यको शीघ्र प्रवेश करानेके लिये इसे मिलाकर लगाते हैं। कृमिकर्णको नष्ट करने तथा कर्णशूल निवारणके लिये इसे कानमें टपकाते हैं। दंतशूल, शीताद और कंठशोथ (खुनाक)में उपयुक्त औषधियाँ सम्मिलित करके मिलाकर गण्डूष कराते हैं। आहारपाचन तथा अरुचि (जोफ़े इश्तिहा) को दूर करने के लिये भोजनके साथ या अचार-चटनीके रूपमें खिलाते हैं। इसका शर्बत जिसे सिकंजबीन कहते हैं, पैत्तिक ज्वरोंमें पित्तकी तीक्ष्णता दूर करने और मिचली तथा क़ै नष्ट करने लिये पिलाते हैं। **अहितकर**—नाड़ियों तथा कामशक्ति को। **निवारण**—शुद्ध मधु। **प्रतिनिधि**—नीबू का रस और शराब। **मात्रा**—६ ग्राम से १२ ग्राम (६ माशे से १ तोला) तक।

आयुर्वेदीय मत—सिरका (शुक्तचुक्र) रक्तपित्तकारक, छेदि, भोजनका पचानेवाला, स्वरभंगकारक, आमपाचक, कफनाशक (चरकके अनुसार कफोत्क्लेदि, पाण्डुरोग और कृमिका नाशक तथा हलका (सु० सू० अ० ४५), वातानुलोमन (च० सू० अ० २७) है। शुक्तके अनुसार शुक्तसंधित-शुक्तमें संधित किया हुआ (कन्द, मूल आदि) तीक्ष्ण, उष्ण, मूत्रल, हृश, कफनाशक, विपाकमें कटु और विशेषतया रुचिकारक होते हैं। (सू० सू० अ० ४५)। गुड़के शुक्त, रसके शुक्त और मधुके शुक्तमें गुड़शुक्त सबसे अधिक भारी और अभिष्यन्दकर तथा मधुशुक्त सबसे हलका और कम अभिष्यन्दकर है। (सु० सू० अ० ४५)।

●

मद्य—

नाम—(हिं०) मदिरा, दारु, शराब; (अ०) ख़म्र; (फा०) शराब, मै, बादः; (सं०) मद्य, मदिरा, सुरा; (द०) दारु; (बं०) मद, सुराप; (म०) दारु, सराय; (गु०) दारू; (ले०) लिकर स्पिरिट्स (Liquor Spiritus); (अं०) ऐरक (Arrack), लिकर (Liquor)।

वक्तव्य—यूनानी वैद्यकमें ऐसे प्रत्येक प्रवाही द्रव्यको, जो जल वा शर्बतकी भाँति पी जावे, शराब कहते हैं। अर्थात् 'शराब' शर्बत का पर्याय है, जैसे–शर्ब बनफ़्शा, अर्थात् शर्बत बनफ़्शा। सुतरां मदकारी शराब (शराबे मुस्किर) के लिये 'ख़म्र' या 'नबीज़' शब्दका व्यवहार होता है। किन्तु साधारण बोलचालकी भाषामें शराब शब्द का व्यवहार मद्य (ख़म्र) के अर्थ में भी होता है।

वर्णन—यह एक प्रसिद्ध मादक रस (प्रवाही) है जो अंगूरके रस, गन्नेके रस, गुड़, महुआ आदिसे विशेष विधिसे संधान करके और भभकेसे खींचकर बनाया जाता है। द्रव्यभेद और विधिभेद आदिसे इसके अनेक भेद होते हैं।

प्रकृति—ताजी शराब स्निग्धता (रतूबत) लिए गरम और पुरानी शराब गरम और खुश्क होती है।

गुण-कर्म—शराब **कोथप्रतिबंधक** और **आशुप्रवेशनीय** है। बाहरी तौरपर लगानेसे **शीतजनन** और **वेदनास्थापन** है। मर्दन करनेसे यह सूजन उतारती, त्वचामें दाह उत्पन्न करके वेदनाओंको शमन करती और किसी खराश (संक्षोभ)पर लगानेसे उसकी वेदना शांत करती और उसको प्रकोथसे बचाती है। आन्तरिक उपयोगसे यह मद (सुरूर) एवं आनन्द उत्पन्न करती तथा हृदय, मस्तिष्क और सम्पूर्ण शरीरको बल प्रदान करती और नींद लाती हैं। यह शरीरकी प्रकृतोष्माको जागृत करती, यकृत् और आमाशयको बल देती, पाचनको बढ़ाती, क्षुधाकी वृद्धि करती, वायुका उत्सर्ग करती, शरीरमें रुधिर एवं मांसकी वृद्धि करती और उनको शक्ति देती है। यह शरीरको स्थूल एवं बलवान् और मनुष्मको वीर एवं साहसी वना देती है। इसके पीनेसे किसी कदर पसीना आता और मूत्रका प्रवर्तन होता है। यह अन्त्र पर संग्राही कर्म करती है।

उपयोग—शराबको आघात-प्रत्याघात (ज़र्बः व सक़्तः)में वेदनाशमनार्थ लगाते हैं। सद्यः व्रणों एवं खराश (संक्षोभ)को प्रकोथसे बचाने और उनकी वेदना नष्ट करनेके लिए इसका उपयोग करते हैं। चिरज आमवात, संधिकाठिन्य, फुफ्फुसशोथ और फुफ्फुसावरणशोथ (ज़ातुज्जनब)में इसका तिला करते और दन्तशूल, कण्ठशोथ, दंतवेष्ट और मुखपाकमें प्रकोथ निवारण, श्वयथुविलयन और वेदनाशमनार्थ इसका गण्डूष कराते हैं। पाचन वा जठराग्निको तीव्र करने, दुर्बल एवं रोगीको बलवान् बनाने, दुःख और चिन्ता तथा मानसिक एवं शारीरिक क्लांतिको दूर करनेके लिए इसको पिलाते हैं। आमाशयशूल के कतिपय भेदों, उदरानाह और अतिसारमें में भी इसका उपयोग कराते हैं। शरीरसे अत्यन्त रक्तस्राव हो जाने और ज्वरोंमें जबकि हृदय अत्यन्त दुर्बल हो गया हो, तव वलवर्धनके निमित्त इसको पिलाते हैं। अनिद्रा, अपतन्त्रक और कतिपय वातवेदनाओंको यह आरजी

तौर पर नींद लाकर लाभ पहुँचाती है। प्रतिश्यायमें शरीर एवं मस्तिष्कको गरमी पहुँचाने और पसीना लानेके हेतु इसका उपयोग कराते और स्वेदन होनेसे कतिपय ज्वरोंमें भी इसे पिलाते हैं। दुर्बल एवं कृश व्यक्ति शराबकी औषधीय आहारकी भाँति एतदालके साथ (नियमित) उपयोग करनेसे तरोताजा एवं स्थूल हो जाता है। इनकी समस्त शक्तियाँ सचेष्ट हो जाती हैं। रुधिर उत्तम, निर्मल और पुष्कल उत्पन्न होता है। मस्तिष्क भी स्फूर्तिमान् हो जाता है तथा साहस और वीरता उत्पन्न हो जाती है। शरीर चतुर, सजग या तेजस्वी और स्फूर्तिमान बन जाता है। परन्तु इसे अनियमित मात्रामें सेवन करनेसे सरासर अनिष्ट होता है। अस्तु, इसके अनियमित प्रचुर प्रयोग से मस्तिष्क विकृत हो जाता है, बुद्धि भ्रष्ट एवं ज्ञानेन्द्रियाँ कुण्ठित हो जाती हैं। मस्तिष्क केवल एक निष्क्रिय एवम् निश्चेष्ट अंगकी भाँति रह जाता है और प्रायः मस्तिष्क एवं वातरोग, जैसे—उन्माद, कम्पवात, पक्षवध और अर्दित आदि हो जाते हैं। इसके प्रचुर प्रयोगसे आमाशय भी अपने निर्दिष्ट प्रतिनियत कर्मोंसे जवाब दे बैठता है और पाचनशक्ति नष्टप्राय हो जाती है। इन सबसे प्रबल अहित यह होता है कि मनुष्य अपना सम्पूर्ण शक्तिकोष इस धनधर्मविघातिनी मदिराको भेंट करके अपने निर्धन एवं कंगाल बन जाता है और दीनहीन एवम् दुनियामें किसी काम का नहीं रहता है। इसी हेतु प्रायः धर्मोंमें इसे निषिद्ध एवम् वर्ज्य (हराम) माना है। **अहितकर**—विराग एवम् ज्वरकारक। **निवारण**—उपयुक्त द्रव्य। **प्रतिनिधि**—एक भेद दूसरेका। **मात्रा**—३०मि० लि०से ६० मि०लि० (२½ तोले से ५ तोले) तक।

आयुर्वेदीय मत—मद्य अम्ल, पाकमें लघु, उष्णवीर्य, तीक्ष्ण, पित्तकारक, अग्निदीपक, दाह उत्पन्न करनेवाला, रुचि उत्पन्न करनेवाला, विरेचक, हृदयके लिए हितकर (अथवा मनको आनन्द देनेवाला), मदकर, (विकासी), ज्ञानेन्द्रियोंको उत्तेजना देनेवाला, मलमूत्र खुलकर लानेवाला, मूत्रशोधक तथा हर्ष, ऊर्ज (तेजस्विता वा चातुरी), पुष्टि, आरोग्य तथा परम पौरुष करनेवाला तथा कफवातनाशक है। यह मदके सुखको देनेवाला, स्वरको शुद्ध करनेवाला, वर्णको निखारनेवाला, धातुओंका संतर्पण करनेवाला (प्रीणन), शरीरको स्थूल करनेवाला (बृंहण), बल्य, भय-शोक तथा थकावटको दूर करनेवाला, अनिद्रामें नींदलानेवाला मूक पुरुषोंकी वाणीको खोल देनेवाला, अतिनिद्रायुक्त पुरुषोंकी नींदको दूर करनेवाला, स्रोतोंके बन्धको खोलनेवाला, बध वा बन्ध आदिके अतिक्लेशके दुःखको न अनुभव होने देनेवाला होता है। मद्यसे उत्पन्न होनेवाले रोगोंका बाधक भी मद्य ही है। मद्य रति है—आनन्द है वा कामको उत्पन्न करनेवाला है। रूप, शब्द आदि विषयोंके संयोगमें प्रीति और संयोग बढ़ानेवाला होता है। तात्पर्य यह है कि इसके सेवनसे पुरुषको रूप, शब्द आदि इन्द्रिय विषयोंमें प्रीति अधिक होती है और इन्द्रियाँ विषयग्रहणमें पूर्वापेक्षया अधिक समर्थ होती हैं। बड़े वयवाले अर्थात् प्रौढ़पुरुषोंके लिए भी मद्य उत्सव और आमोदका कारण होता है। जवान या बूढ़ेपुरुषोंको प्रथम मदमें पाँच काम्य विषयों (रूप, रस-शब्द आदि)में जो आनन्द प्राप्त होता है, उसकी उपमा इस पृथ्वीपर नहीं है अर्थात् प्रथम मदमें सेवनकर्ता अतुल आनन्दका अनुभव करता है। युक्तिपूर्वक (उचित कालमें अपने बलके अनुसार और हितकर अन्नोंके साथ) सेवन किया गया मद्य बहुत दुःखोंसे दुःखी, शोकमें डूबे हुए जीवोंका एकमात्र विश्राम है (सु० सू० अ० ४५, च० चि० अ० २४, अन्नपानविधि अध्याय, मदात्ययचिकित्सा)। चरक चि० अ० २४ और सुश्रुत उ० अ० ४७ में इसके ये दस गुण लिखे हैं–लघु, उष्ण, तीक्ष्ण, सूक्ष्म, अम्ल, व्यवायी, आशुग, रुक्ष, विकाशी (सी) और विशद। मद्यके इन गुणोंमेंसे केवल विकासी गुणको छोड़कर जो शरीरके लिए हानिकर है, शेष सभी गुण शरीरके लिए हानिकर नहीं, अपितु लाभकर ही होते हैं। अतः इस गुणका प्रादुर्भाव जिस प्रकार न हो उस प्रकार मद्यका सेवन करना उचित है—

"यावद् दृष्टेर्न संभ्रान्तिर्यावन्न क्षोभते मनः। तावदेव विरन्तव्यं मद्यादात्मवता सदा।" (अष्टांग हृदय, चिकित्सा ७)।

(१९६ गर्जन)

फ़ैमिली : डीप्टेरोकार्पासे (Family : Dipterocarpaceae)

नाम—(हिं०, बं०; म०; गु०; मार०) गर्जन; (सं०) यक्षद्रुम, अश्वकर्ण; (ले०) डीप्टेरोकार्पुस् अलाटुस् (**Dipterocarpus alatus** Roxb.)। तेल (हिं०) गर्जनका तेल; (अ०) दोहनुल्‌गर्जन; (फ़ा०) रोग़न गर्जन (या चोब); (सं०) यज्ञद्रुतैल; (ले०) बाल्सामुम् डिप्टेरोकार्पी (**Balsamum dipterocarpi**); (अं०) गर्जन आइ्‌ल् (Garjan oil), वुड ऑइल (Wood oil)।

उत्पत्ति स्थान—गर्जनके वृक्ष पूर्व बंगालमें चटगाँव, आसाम एवं ब्रह्मा, सिंगापुरमें होते हैं। इसके काण्ड-स्कन्धसे तेल निकलता है। उसको गर्जनका तेल (दोह्नुल् गर्जन) कहते हैं।

उपयुक्त अंग—पत्र, फल, बालसम, छाल और तेल।

रासायनिक संगठन—उत्पत् तेल (Essential oil), राल जिसमें स्फटिकीय अम्ल होता है।

प्रकृति—तीसरे दर्जे तक गरम एवं खुश्क।

गुण-कर्म तथा उपयोग—गर्जनके तेल (Oil or Balsam)की क्रिया कोपाइबा (Copaiba) जैसी होती है। यह श्लेष्मल त्वचाके लिये विशेषतः मूत्रेन्द्रियकी श्लेष्मल त्वचाके लिए उत्तेजक है। इससे पेशाब बढ़ता है और मूत्रमें कोथप्रशमन धर्म उत्पन्न होता है। अतः मूत्रमें जीवाणु जीते नहीं और नये उत्पन्न होते नहीं।

गर्जनका तेल—पुराने सूजाक (गोनोरिया)में दिया जाता है। मात्रा–२ मि० लि०से ८ मि० लि० (½ से २ ड्राम)।

उपयोग—गर्जनका तेल, कबाबचीनीका तेल और चंदनका तेल समभाग मिलाकर ३० बूंदकी मात्रामें चीनीमें मिलाकर खिलानेसे सूजाकमें अच्छा लाभ होता है। सिरकेमें पकाकर बनाये हुये इसके पत्तोंके काढ़ेसे कुल्ली करनेसे दंतशूल आराम होता है। तर खाँसी, यकृद्रोग, मूत्रकृच्छ्र और अपरापातनके लिये इसके फलका खाना लाभकारी है तथा इससे मूत्रका प्रवर्तन होता है। छालका काढ़ा पीनेसे उदरस्थ भ्रूण एवं अपराका निर्हरण होता है। **अहितकर**–फल आमाशयको हानिकर, शिरःशूल उत्पन्न करता तथा शरीरको कृश करता है। **निवारण**–बारतंगका स्वरस, खट्टे फल और धनिया।

●

(१९७) गर्भफूल (कफ़ेमरियम्)।

फ़ैमिली : क्रूसीफेरी (Family : Curciferae)

नाम—(हिं०; गु०, बम्ब०) गर्भफूल; (अ०) कफ़ेमरियम्, कफे आयेशा (इशा), असाबेउस्सिफ़र; (ले०) अनास्टाटिका हिरोकून्टीना (**Anastatica herochuntina** Linn.); (अं०) रोज़ ऑफ ज़ेरिको (Rose of Jericho)।

उत्पत्तिस्थान—अरेबिया, फिलस्तीन और सीरिया आदि। भारतवर्षमें इसका आयात सीरियासे फारस की खाड़ी होकर होता है।

वर्णन—यह एक वार्षिक क्षुद्र मरुभूमिज वनस्पति है। काण्ड छोटा और काष्ठीय तथा कठोर होता है। पत्र अभिलट्वाकार, निम्नस्थ अखण्ड, ऊर्ध्वस्थ दूर-दूर दंतित; पुष्प क्षुद्र पीताभश्वेत होता है। दे० 'बखुरमरियम्'।

गुणकर्म तथा उपयोग—कष्टप्रसूतिमें यह उपयोगी सिद्ध होता है।

(१९८, १९९) गाजर, जंगली गाजर

फ़ैमिली : ऊम्बेल्लीफेरी (Family : Umbelliferae)

नाम—कंद (हिं०;म०;गु०;बं०) गाजर; (यू०) डायकी (Dayki), डायकोस (Daykos); (अ०) ज़जर; (फा०) गज़र, ज़र्दक; (सं०) ग(गा)र्जर ?; (क०) मोरमूज; (ले०) **डाउकुस कारोटा प्र० साटीवा (Daucus carota L. var. sativa DC.** (**पर्याय**–*D. carota* Auclt.); (अं०) केरट (Carrot), गार्डेन कैरट (Garden carrot)। बीज–(हिं०) गाजरके बीज; (अ०) बज़्रुल् जज़र; (फा०) तुख़्मे ज़र्दक, तुख़्मे गज़र।

वक्तव्य—फारसी '**गज़र**' से अरबी '**जज़र**' बनाया गया है। फारसी 'गज़र' संस्कृत गाजर या **गर्जरसे** व्युत्पन्न है।

उत्पत्तिस्थान—कश्मीर और पश्चिमी हिमालय। समस्त भारतवर्षमें, विशेषतः उत्तरभारतमें, इसकी खेती होती है।

वर्णन—यह गोपुच्छाकार लाल, पिलाई लिए लाल या सफेद रंगकी प्रसिद्ध जड़ है। यह मधुर एवं स्वादिष्ट होती है। बीज सौंफसे बहुत मिलते-जुलते होते हैं। इसके **जंगली** भेद (**गज़र बर्री**)को संस्कृतमें **गृञ्जन**, फारसीमें '**गज़रेदश्ती**', अरबीमें '**ज़ज़रुल्बर्री**' और लेटिन तथा अंग्रेजीमें क्रमशः डाउकुस कारोटा (**Daucus carota** Linn.) और वाइल्ड कैरट (Wild carrot) कहते हैं। इसकी जड़ गाजरकी अपेक्षया छोटी, बड़ी तथा सफेद होती है। **यह जड़ प्रसिद्ध 'शकाकुल' नहीं है**। किसी-किसीके मत से 'दूक़ू' इसीके बीज हैं, किन्तु यह सत्य नहीं है। त्रि० दे० 'दूक़ू'।

रासायनिक संगठन—जड़में **गर्जरीन (कैरोटीन)**, शर्करा, पिष्ट (स्टार्च), ऐल्ब्युमिन, मैलिक एसिड, लवण और एक उत्पत् तेल प्रभृति पदार्थ होते हैं। इसमें पर्याप्त मात्रामें लोह भी होता है। बीजमें एक प्रकारका पीला, गाजरके समान प्रियगंधी और चरपरा उत्पत् तेल होता है।

उपयुक्त अंग—मूल (कंद), बीज और पंचांग।

कल्प तथा योग—जोशाँदा (क्वाथ), अचार, सफ़ूफ़ गाजर, हलवाए गाजर, मुरब्बाए गाजर, अर्क गजर सादा (व अंबरी), अर्कगजर अंबरी बनुसखा कलाँ आदि।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम और तर है। सुर्ख (विलायती) पहले दर्जेमें गरम व तर है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—गाजर सौमनस्यजनन, उत्तमांगोंको बलप्रद और वाजीकर है तथा फुफ़्फ़ुसों पर श्लेष्मनिस्सारक और मूत्रपिंडों पर मूत्रजनन कर्म करता है। गाजरको पकाकर या बिना पकाये पुष्कल खाया जाता है। इससे पुष्टि (ग़िज़ाइय्यत) प्राप्त होती है। परन्तु अधिक प्रमाणमें खाने से आनाह उत्पन्न करता है। गाजरको भूभल (भौरा)में पकानेके उपरांत उसे कतरा-कतरा काटकर रात्रिमें ओसमें रख दिया जाता है। सबेरे अर्ककेवड़ासे सुगंधित और मिश्रीसे मीठा करके दिलकी धड़कन (खफ़क़ान)के लिए खिलाते हैं। श्लेष्मनिस्सारक और मूत्रल होनेके कारण कास, श्वास, मूत्रदाह और वस्तिवृक्काशमरीमें गाजरका सेवन गुणकारी है। इसका मुरब्बा और हलवा तथा अर्क बनाया जाता है। सौमनस्यजनन और शरीरको बल और पुष्टिप्रदान करनेके लिए इनका उपयोग करते हैं। **अहितकर**–गुरु और दीर्घपाकी है। **निवारण**—गरम दवायें, मांसके साथ पकाना। **प्रतिनिधि**–शलगम।

गाजर के बीज—

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें गरम और पहले दर्जेमें खुश्क है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—मूत्रल, आर्तवजनन या गर्भाशयशोधक और गर्भशातक, वस्तिवृक्काश्मरिनाशन तथा पृष्ठ-उरःशूलहर है। उदराध्मान, मूत्रावरोध और जलोदरमें इसकी मसी बनाकर उपयोग करते और व्रणों पर

अवचूर्णन (छिड़कते) रहते हैं। गाजरसे उसका बीज अधिक वाजीकर है। १ भाग गाजरके बीज और १ भाग शलगमके बीज दोनोंको मूलीके भीतरका गूदा निकालकर उसके भीतर भर दें और उसका मुँह बन्द करके भूभलमें पका लें। इसके सेवनसे बस्ति और वृक्कगत अश्मरी निकल जाती और मूत्रका प्रवर्तन होता है। ये पलक और पादशोथ मिटाते हैं। **अहितकर**–कंठ, आमाशय और वातनाड़ियोंको। **निवारण**–अनीसूँ। **प्रतिनिधि**–दूकू और अनीसूँ। **मात्रा**–७ ग्राम (७ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—**गाजर** मधुर, तिक्त, किंचित् कटु, उष्ण, दीपन, हलका, रुचिकारक, संग्राही तथा पित्त, रक्तपित्त, दाह, कफ, वात, संग्रहणी, अर्श, कृमि, शूल, आध्मान और तृषाको दूर करता है। (रा० नि०; भा० प्र०)। **जंगली गाजर (गृंजन)**=चरपरा, उष्ण, दीपन, रुचिकारक, हृदयको हितकारी तथा दुर्गन्ध, कफवातरोग और गुल्मका नाश करता है।

(२००,२०१,२०२) ग़ाफ़िस, ग़ाफ़िस देशी (त्रायमाण) और पश्चिमी ग़ाफ़िस

फ़ैमिली : जेंटिआनासे (Family : Gentianaceae)

नाम—(भा० बाजार) गुले ग़ाफ़िस; (अ०) ग़ाफ़ि (फ़)स, हशीशतुल् ग़ाफ़िस; (फ़ा०) गुलख़ाना, गुलकल्ली; (लै०) **जेंटिआना डाहुरिका Gentiana dahurica** Fisch. (**पर्याय**–*G. olivieri*)।

वक्तव्य—फारसमें इसे 'गुलकल्ली' इसलिए कहते हैं, कि वहाँ की ग्रामीण जनता 'कल्ली (शिशुकपालगत दद्रु)' नामक रोगको नष्ट करनेके लिए इसका उपयोग करती है। इसकी दर्याफ़्तसे पूर्व यूनानी चिकित्सामें इसकी जगह स्पेनदेशज पाश्चिमात्य ग़ाफ़िसका प्रयोग होता था, जो एक कँटीला क्षुप है। **मख़्ज़नुलअद्विया** एवं **मुहीत आज़म**में इसकी यूनानी संज्ञा '**उबतूरी**' लिखी है जो '**यूपेटोरियोन**' यूनानी संज्ञाका अरबी रूपांतरमात्र है। इससे यह स्पष्ट होता है कि प्राचीन यूनानी चिकित्सकोंका गाफिस वह रहा जिसको अरबीमें '**शज्रतुल्‌बरागीस**' और लेटिन तथा अंग्रेजी में क्रमशः **आग्रीमोनिआ एउपाटोरिआ** (**Agrimonia eupatoria** Linn.) तथा **ऐग्रिमनी** (Agrimony) कहते हैं। बादमें इसका उपयोग उपर्युक्त औषधिके लिए होने लगा। परन्तु इस बातका निश्चित ज्ञान न होनेके कारण तथा इन दोनों वनस्पतियोंको एक (अभिन्न) समझने तथा इन दोनोंके पृथक्-पृथक् स्वरूपज्ञान न होनेसे अनेक यूनानी निघण्टुओंमें गाफिसके प्रसंगमें इन दोनों भिन्न वनस्पतियोंके मिलितस्वरूप (कुछ स्वरूप एकका तथा कुछ दूसरेका) विवरण कर दिया गया है, जो औषधि-अभिज्ञान की दृष्टिसे भ्रमोत्पादक है। अतएव यहाँ ग़ाफ़िस नामसे प्रयुक्त इन दोनों वनस्पतियोंके अपने पृथक् वास्तविक स्वरूपके स्पष्टीकरणकी दृष्टिसे तथा उनके कालक्रमके ऐतिहासिक तथ्यके स्पष्टीकरणके लिए, आधुनिक एवं प्रचलित **ग़ाफ़िस** और **प्राचीन ग़ाफ़िस** दोनोंका विवरण पृथक्-पृथक् दिया गया है। '**जेंटिआना डाहुरिका**'में जातीय नाम डाहुरिका उक्त वनस्पतिके उद्भवस्थलके नाम पर आधारित है।

उत्पत्तिस्थान—फारस, बलूचिस्तान, **डहूरिया**, मेसोपोटेमिया और पश्चिमी हिमालय। भारतवर्षमें इसका आयात फारससे होता है। इसकी एक अन्य जाति **जेंटिआना कुरूं** (**Gentiana kurroo** Royle) भारतवर्षके कश्मीर आदि स्थानोंमें होती है, जिसे वहाँ '**त्रामान(ण)**' या '**नीलकण्ठ**' कहते हैं। सम्भवतः यह आयुर्वेदोक्त **त्रायमाण** है। इस नामसे यह पंजाबके बाजारोंमें मिलती भी है। इसे '**देशी गाफिस**' कह सकते हैं। **तज़किरतुल्‌हिन्द** और **मुहीत आज़म**में गाफिसका संस्कृत नाम '**त्रायमाणा** (तुरियामाना)' दिया है। **गाफिस** नामसे यूनानी औषध-

विक्रेताओंके यहाँसे मिलनेवाला उद्भिज्ज त्रायमाणाकी फारसमें होनेवाली एक जाति है, जिसका यहाँ वर्णन किया जा रहा है।

वर्णन—फारससे भारतवर्षमें आये हुए गाफिसके पार्सलोंमें इसका समग्र क्षुप प्रायः मिल जाता है। उसके देखनेसे इसका जो विवरण प्राप्त होता है, वह निम्न है :—

पुष्पदण्ड २-४ इंच लम्बा, कोमल और चौकोर होता है। समूचे पुष्पदण्ड पर पाँच फूल होते हैं, जिनमेंसे एक उसकी छोर पर और शेष चार दो-दोके सम्मुखवर्ती युग्ममें तथा लम्बे पुष्पवृंत्तपर स्थित होते हैं। पौष्पिकसहपत्र पुष्पपत्रके बराबर लम्बा होता है। पुष्पाभ्यंतरिक कोष (दलचक्र) फुनेलके आकार का, लगभग २·५ सें०मी० (१ इंच) लम्बा, सीधा, पंचधा चीरित और नीलवर्ण; पुष्पबाह्यकोष (पुटचक्र) पंचधा चीरित, बाह्यपुटके खण्ड बराबर (त्रायमाणामें बाह्यपुट लम्बाईमें आभ्यन्तर पुटसे आधा, पुष्प नीले सफेद दागवाले, फल आयताकार, पुष्पलिंग पाँच पुटचक्र खंडोंसे एकांतरित, योनिसूत्र अकेला, योनिच्छत्र दो, फल पौन इंच लम्बा, एक कोपयुक्त, असंख्य क्षुद्रबीजयुक्त, दलचक्र और पुटचक्र उभय स्थायी होते हैं)। क्षुपके निचले भागमें लगे हुए पत्र जेन्शियन पत्रवत् होते हैं। समग्र क्षुप १५ सें०मी०से २० सें० मी० (६ इंचसे ८ इंच = एक बित्ता भर) ऊँचा और अत्यन्त तिक्त होता है। फारसमें शीराजके पहाड़ोंमें उत्पन्न गाफिस सर्वोत्तम समझा जाता है।

रासायनिक संगठन—इसमें एक स्फटिकीय तिक्त सत्त्व होता है।

उपयुक्त अंग—फूल (**गुले ग़ाफ़िस**) और इसके क्षुप (पंचांग)से बनाई हुई **रसक्रिया**। इसमें तीन वर्ष तक वीर्य रहता है।

कल्प तथा योग—हब्ब ग़ाफ़िस, क़ुर्स ग़ाफ़िस आदि।

प्रकृति—पहले दर्जेमें गरम और दूसरेमें खुश्क (रूक्ष) है। आयुर्वेद (ध० नि०) मतसे भीयह (त्रायमाण) उष्णवीर्य है। परन्तु किराततिक्तादि कुलकी सभी औषधियाँ शीतवीर्य होती हैं और उक्त कुलकी औषधि होनेसे इसे भी शीतवीर्य होनी चाहिए। इसके पित्तविकारोंमें प्रयुक्त होनेसे भी इस बातकी पुष्टि होती है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—यह यकृत्-प्लीहाके अवरोधोंको खोलनेवाला, दोषतारल्यजनन, दोषच्छेदन, लेखन, स्रोतोविशोधन (वाहिन्युद्घाटक), दग्धदोषविरेचन, मूत्रजनन, आर्तवजनन, स्तन्यजनन (शोधन), स्वेदन, दीपन और रक्तप्रसादन है। यकृत्-आमाशयका शोथ एवं काठिन्य प्लीहाकाठिन्य, पाण्डु और सर्वांगशोथमें इसका उपयोग करते हैं। दोषतारल्यजनन और स्वेदल होनेके कारण जीर्ण एवं दोषसंमिश्र ज्वरोंमें भी इसका उपयोग करते हैं। रक्तप्रसादन होनेसे कण्डू, कच्छू तथा इन्द्रलुप्त भेदों (दाउस्सालब और दाउल्हय्यः)में पेय और लेपकी भाँति इसका उपयोग करनेसे लाभ होता है। इसका उसारा (रसक्रिया–उसारए ग़ाफ़िस) प्रायः माजूनों एवं चक्रिकाओंमें सम्मिलित किया जाता है। **अहितकर**–प्लीहा को। **निवारण**–असारून (तगर) और अफसंतीन। **प्रतिनिधि**–अनीसून। **मात्रा**–३ ग्राम से ५ ग्राम या ७ ग्राम (३-५ या ७ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—त्रायमाणा तिक्त, उष्णवीर्य, सारक तथा पित्त, कफ, रक्तविकार, गुल्म, ज्वर, मक्कलशूल, रक्तपित्त, भ्रम, वमन, विष और हृद्रोगको दूर करनेवाली है। (चरक वि० अ० ८, चि० अ० ३; सु० सू० अ० ३८; ध०नि०; भा०प्र०)।

नव्यमत—स्वाद तिक्त। इससे भूख लगती है, आमाशयरस बढ़ता है (दीपन), अन्न पचता है, पित्तका स्राव होता है और दस्त साफ होता है। इसमें थोड़ा कोष्ठवातप्रशमन धर्म होने से पेट फूलनेसे जो हलका दर्द होता है वह कम होता है। इससे मूत्रका प्रमाण बढ़ता है। इसका प्राचीन समयमें आर्य वैद्य विशेष उपयोग करते थे।

आजकल हकीम लोग इसका विशेष प्रयोग करते हैं। यह तिक्त होनेसे कुपचनरोगमें और अग्निमांद्यजनित शरीर-शैथिल्यमें कटुपौष्टिकके रूपमें इसका उपयोग करते हैं। इससे दस्त साफ होता है। यह पीड़ाशनामक है, इसलिए इसे अर्शमें देते हैं। इससे दस्त साफ होता है और मूत्रका प्रमाण बढ़ता है। इसलिए प्लीहोदर यकृदुदर, जलोदर और हृदयोदरमें भी इसे देते हैं। मूत्रजनन और स्रंसन होनेसे जीर्णज्वर और पित्तज्वरमें इसका प्रयोग करते हैं। इन सब रोगोंमें इतर योगवाही औषधों के साथ (गाफिस या) त्रायमाणा देते हैं।

◆

प्राचीन पाश्चिमात्य ग़ाफ़िस

फ़ैमिली : रोजासे (Family : Rosaceae)

नाम—(अ०) शज्रतुल् बराग़ीस, शौकतुलमुन्तिनः (शौकः = कण्टकी, मुन्तिनः = बदबू, दुर्गन्धित), हशीशतुलग़ाफ़िस, (स्पेन) तुवाक; (यू०) युपेटोरियोन (Eupatorion) जिसे मख्जनमें 'ऊब्रतूरी' लिखा है; (ले०) **आग्रिमोनिआ एउपाटोरिआ (Agrimonia eupatoria** Linn.); (अं०) ऐग्रीमनी (Agrimony), स्टिक-वर्ट (Stick-wort)।

वक्तव्य—पश्चिमी देशके अरबलोग इसको पहले **शज्रतुल्बराग़ीस** आदि नामोंसे और पीछे **'ग़ाफिस'** नामसे जानते रहे हैं। **इब्नसीना** और पूर्वदेशीय अरबी तथा फारसनिवासियोंने यूनानियोंके 'यूपेटोरियोन (अरबी रूपांतर ऊबतूरी)'के स्थानमें गाफिस नामक एक फारसी पौधेका ग्रहण किया, जो अद्यावधि भारतवर्ष (पूर्व)में उक्त नामसे बिकता है, जिसका वर्णन प्रथम गाफिस शीर्षकमें किया गया है। भारतीय और फारसी हकीम ग़ाफ़िसका वर्णन इस प्रकार करते हैं—

एक कँटीला क्षुप जिसके पत्र भाँगके पत्रकी तरह और फूल लम्बे एवं नीले रंगके होते हैं। उक्त वर्णनमें वे यूनानियों द्वारा दिये गये एग्रिमनी अर्थात् यूपेटोरिओनके पौधेके वर्णनकी प्रतिलिपि करते हैं और उसके साथ फारसी गाफिस अर्थात् जेन्शनके फूलोंका जिससे वे परिचित हैं, आरोप करते हैं। उनके द्वारा दिये गये इसके औषधीय गुणकर्म आदि गाफिसके न होकर एग्रिमनी (शज्रतुल् बरागीस–तुवाक)के हैं।

उत्तरकालीन पूर्वात्य ग़ाफ़िसकी दर्याफ़्त (खोज)से पूर्व उसकी जगह इसी पाश्चिमात्य प्राचीन स्पेनीय गाफिस शज्रतुल्बरागीस का उपयोग होता था। तदुपरांत उसके स्थानमें वर्तमान गाफिसका व्यवहार होने लगा। यही कारण है कि प्राचीन यूनानी निघंटुओंमें गाफिसके वर्णनमें इन दोनोंका मिलित वर्णन किया गया मिलता है जो ठीक नहीं है।

जॉन हिल एम० डी० ब्रिटिश हर्बल (सन् १७५१ ई०)में विवरण करते हैं कि प्राचीनों द्वारा एग्रिमनीके प्रयोगकी बहुत ही अभ्यर्थना की जाती थी, परन्तु वर्तमान व्यवहारमें वह अत्यधिक उपेक्षित एवं विस्मृत कर दी गयी है। कामला और आशयगत अवरोधोंके उद्घाटनके लिए वे इसके उपयोगकी अभ्यर्थना करते हैं। (पा० न्यू० सा०)।

उत्पत्तिस्थान—समशीतोष्ण हिमालय, मुर्री और कश्मीरसे सिक्किम–खासिया पहाड़ी तक ४,०००-६,००० फुटकी ऊँचाईपर।

वर्णन—यूनानी और रूमी हकीमोंका 'यूपेटोरिओन' एक हाथ या इससे अधिक ऊँचा रोमश और कँटीला **क्षुप** है। पत्र भाँगके पत्ते जैसे ऊपरकी ओर हरे और नीचेकी ओर भूरापन लिए हुए (Greyish), रोमश, १२·५सें०मी०

(५ इंच) या इससे लंबे,३-५जोड़े, भालाकार, दंतुर पत्रकोंसे युक्त, मध्यवर्ती पत्रक अपेक्षाकृत छोटे और अर्ध हृदयाकार एवं दंतुर उपपत्र (Stipules)से युक्त; **पुष्प** क्षुद्र, पंच क्षुद्र दलों (Petals) वाले, रंगमें पीले, पतले, लंबे पुष्पदण्ड (Spikes)पर स्थित; **फल** क्षुद्र ऊर्ध्व शंक्वाकार (Obconical), पर्शुकायुक्त (Ribbed), अग्रपर अंकुशाकार हृष्टरोमोंसे युक्त। प्रत्येक फल दो बीज युक्त होता है; स्वाद कषाय, किंचित् तिक्त होता है। पुष्पकाल जुलाई-अगस्त है। इसके शीघ्र बाद ही बीज परिपक्व हो जाते हैं।

उपयुक्त अंग—क्षुप।

रासायनिक संगठन—इसमें एक प्रकारका उत्पत् तेल (Essential oil) होता है।

गुणकर्म तथा उपयोग—क्षुप और मूल मृदु कषाय, बल्य, मूत्रजनन, अवरोधोद्घाटक तथा कास, साधारण अतिसार और अन्त्रशैथिल्यमें गुणकारक है। २॥ तोले सूखे क्षुपको एक (पाइंट उबलते पानीमें डालकर फांट तैयारकर मधु या शर्करा मिलाकर आधे प्याले भरकी मात्रामें प्रायः सेवन कराते हैं। (पा०न्यू-सा०)।

(२०३) ग़ार

फ़ैमिली : लाउरिनी,–आसे (Family : Laurineae.,–aceae)

नाम—फल (अ०) हब्बुल्ग़ार; (यू०) डफ्नी (Daphne); (ले०) लाउरुस नोबिलिस (**Laurus nobilis** Linn.); (अं०) बे (Bay)लारेल, लॉरेल बे (Laurel bay), स्वीट बे (Sweet bay)।

वक्तव्य—**मुहीतआज़म** आदिमें **गीलानी**के कथनानुसार जो इसका यूनानी नाम 'जाक़्नी' लिखा है, वह शुद्ध '**दफ्नी**' है। '**दफ्नी**' यूनानी '**डफ्नी**' का अरबी रूपांतर है। इसका लेटिन नाम वृक्षका है।

उत्पत्तिस्थान—एशिया माइनर और दक्षिण यूरोप। यह भारतीय बगीचोंमें लगाया गया है।

वर्णन—बाजारमें गारवृक्षके अंडाकार या कुछ गोल लगभग ०.८३ सें०मी०से १.२५ सें०मी० ($\frac{1}{3}$ से $\frac{1}{2}$ इंच) लम्बे फल मिलते हैं। सूखने पर ये हरापन लिये काले या कालापन लिये भूरे हलके झुर्रीदार तथा भिदुर या भंगुर; छिलका एवं छिलके का भीतरी पृष्ठ ललाई लिये भूरा स्तरयुक्त, पतला और भंगुर होता है। इसके भीतर एक ढीला अंडाकार **बीज** होता है, जिसके उन्नतोदर-सपाट, कुछ-कुछ भूरे, दोनों दल सरलतासे पृथक हो जाते हैं। ये सुगन्धित, चिकने (स्नेहयुक्त) एवं तिक्त होते हैं। ये जितने पुराने पड़ते जाते हैं, उतना ही हरापन और कालापन लिये होते हुए अंतमें काले पड़कर बिगड़ जाते हैं। **पत्र** चर्मवत्. गहरा हरा, नीचेकी ओर अधिकाधिक पांडुर, लगभग ७.५ सें० मी० (३ इञ्च) लम्बा और २.५ सें० मी० (१ इञ्च) चौड़ा, दीर्घ वृत्तभालाकार, मध्योर्ध्व अपेक्षाकृत किंचित् चौड़ा, अखंड, पत्रप्रान्त तरंगित तथा पत्रपर क्षुद्र कुछ श्वेतशिराकृत लगभग वर्गीकृत सूक्ष्म जालरंध्रोंका जाल बना होता है; **स्वाद** रुचिकर; गंध मलने पर या कुचलने पर सुगन्धित होती है।

इतिहास—यूनानी हकीम **दीसक़ूरीदूसने** '**डफ्नी**' नामसे इस ओषधिका उल्लेख किया है। प्राचीन यूनानवासी गारवृक्षको बड़े सम्मानसे देखते थे। इसका कारण यह उपाख्यान है कि, ''डफ्नी नामकी एक कुमारीकन्या थी, जिसपर अपोलोदेव प्रेमासक्त हो गये थे। अस्तु, जब उक्त देवराजने उक्त कुमारीकन्याका पीछा किया तथा उसको जा पकड़ा तब उसने सहायताकी पुकार की। उसकी उक्त पुकार स्वीकृत हुई। परिणामतया वह गारवृक्षके रूपमें परिवर्तित हो गया। **प्रोफेसर मैक्समूलरने** यूनान निवासियोंके उक्त कथानकसे जो वेदोंमें उल्लिखित है, तुलना की है। कारण वह भी इसी प्रकारका कथानक है। प्राचीन यूनानी कवि इस वृक्षको शाखाओंको सम्मानस्वरूप अपने

हाथमें रखते थे। कदाचित् इस भावनासे कि अपोलोकी कामुक वासनासे उनके कामुक पद्य प्रभावित एवं स्वीकार्य हों। आजकल भी कतिपय यूनानो कवि इस वृक्षकी शाखाओंका मुकुट अपने सिर पर धारण करते हैं। इस वृक्षकी शाखाओंको विजयका, भी एक शकुन समझा जाता था इसलिये प्राचीन रोमवासी भी अपनी कतिपय रस्मोंमें इसका उपयोग करते थे।''

एशिया माइनरमें इसके वृक्ष स्वयंजात पाये जाते हैं। वहाँसे इसे यूरोपमें ले गए और इसको बगीचोंमें लगाते हैं। भारतवर्षमें इसके **फल 'हब्बुल्ग़ार' नामसे** बिकते हैं। भारतवर्षमें इसका प्रवेश मुसलमान चिकित्सकोंके द्वारा हुआ। हकीम दीसकूरीदूस द्वारा आविष्कृत 'रोगन हब्बुलगार' यूरोपमें अद्यावधि नाड्युत्तेजकरूपसे प्रयुक्त किया जाता है।

रासायनिक संगठन—हब्बुलगारमें एक पाण्डुपीत उत्पत् तेल (Essen. oil) होता है। बीजोंमें वसा, उत्पत् तेल और राल होते हैं।

उपयुक्त अंग—फल (हब्बुल्ग़ार–Laurel berries)। भारतवर्षमें इनका आयात मिस्रसे होता है। भारतमें यह मुसलमानोंद्वारा लाया गया और अद्यावधि प्रायः सभी बड़े-बड़े शहरोंमें मुसलमान औषध-विक्रेताओंकी दूकानोंमें यह 'हब्बुल्ग़ार' नामसे मिलता है। **इसके** अतिरिक्त पत्र और रोग़न हब्बुल्ग़ार (Essen. oil)।

प्रकृति—दूसरे या तीसरे दर्जेमें गरम और ख़ुश्क; फलकी मींग, वृक्षकी छाल और पत्रसे अधिक गरम तथा ख़ुश्क; मींगका तेल अखरोटकी मींगके तेलसे भी अधिक गरम है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—यह कफज शिरःशूलकारक, विवेक और बुद्धिवर्धक और मृगीहर है। इसे ९ ग्राम (९ मासे) निरंतर खाते रहने से स्वाप, पक्षवध और अर्दित आराम होता है। इसे गुलरोगन और सिरका या शराबमें पीसकर कानमें टपकानेसे शिरःशूल, बाधिर्य और कानमें साँय-साँय होना आराम हो जाते हैं। मधुमें पीसकर चाटनेसे श्वासरोग आराम हो जाता है। इसे (९ ग्राम) ९ माशे अकेला पीसकर इसबगोलके लबाबके साथ पीनेसे पेटकी मरोड़ तुरंत मिट जातो है। यह हस्तिमेह और बिंदुमूत्रमें भी लाभकारी है तथा पथरीको तोड़ता और अखिल विषोंका अगद है। सर्प-वृश्चिक और अन्यान्य कीड़े-मकोड़ोंका विष दूर करनेके लिये इसे शराबके साथ पीना चाहिये और भिड़ या मधुमक्खीके दंश पर इसे पीसकर लेप करना चाहिये। शहदमें इसका लेह प्रस्तुतकर चाटनेसे कृच्छ्रश्वास और उरःफुप्फुस व्रण दूर होते और वक्षके अन्य सर्दरोग भी जाते रहते हैं। यदि गरमीसे सीनेमें यह रोग हो गये हों तो सिकजबीनके साथ इसे खानेसे उरःफुप्फुसकी ओर दोषका गिरना रुक जाता है और जीर्णकास मिट जाता है। **अहितकर**–यकृत् तथा आमाशयको शिथिल करता और वमन कराता है। **निवारण**–जरिश्क। **प्रतिनिधि**–हब्बुलमहलिब और कड़वे बादामकी गिरी। **मात्रा**–२·२५ ग्राम से ९ ग्राम (२$\frac{१}{४}$ माशेसे ९ माशे) तक।

ग़ारका तेल (रोग़न हब्बुल्ग़ार)—

कल्पना विधि—गारके फलोंको कुचलकर पानीमें क्वाथ करते हैं और फिर छोड़ देते हैं। शीतल होने पर जो कुछ पानीके ऊपर जम जाता है उसे ले-लेते हैं अथवा इसके फलों या पत्तोंका रस पानीमें पकाते हैं। जब रसका वीर्य पानीमें आ जाता है तब उसको जैतूनके तेलके साथ इतना पकाते हैं कि पानी जलकर तेलमात्र शेष रह जाता है। फिर उसे छानकर रखते हैं।

गुणकर्म तथा उपयोग--यह समस्त अंगोंसे अधिक गरम है। इसका अन्वेषण यूनानी हकीम दीसकूरीदूसने किया है। दक्षिण यूरोपमें अद्यावधि यह वातनाड्युत्तेजकरूपसे उपयोग किया जाता है इसको अंगूरी शराबके साथ पीनेसे या इसकी मालिशसे यकृच्छूल आराम हो जाता है। यह संशोधन करता, किन्तु मिचली उत्पन्न करता और आमाशयको ढीला करता है। इससे कै भी आ जाती है। **कानून** और उसके भाष्योंमें लिखा है कि यह चिरज संधिशूल में लाभकारी है। वायुको विलीन करता है और इन्द्रलुप्त विशेष (दाउस्सालब) तथा दद्रुको लाभ पहुँचाता

है। नया और तीक्ष्ण तेल उत्तम होता है। इसमें लेखनीय वीर्य और सूजन उतारनेवाली गरमी है। इससे मस्से और फोड़े-फुन्सी के चिह्न जाते रहते हैं। यह वातनाड़ियोंको मुलायम करता और खुजलीको नष्ट करता है। वातग्रस्त और सुप्त (सुन्न) अंग पर इसके मर्दनसे उपकार होता है। इसे चर्बीमें मिलाकर कानमें टपकानेसे बाधिर्य (तर्श) जाता रहता है। इसके मर्दनसे सर्दीका दर्द, प्रसेक और मस्तिष्ककी सर्दी जाती रहती और मस्तिष्क गरम रहता है। इसके नस्यसे सर्दीका आधासीसी आराम होता है। **अहितकर**—आमाशय, वक्ष और उष्ण प्रकृतिको। **निवारण**—आमाशयके लिये इसके पीनेसे पूर्व अनीसूँ खा लेवे। वक्षके लिये इसे कतीराके साथ उपयोग करना चाहिये। **प्रतिनिधि**—जिफ्त तर।

(२०४) गारीकून

नाम—(भा० बाजार) ग़ारीक़ून; (पं०) कीआईन; (हिं०) छत्री; (यू०) अगारिकोन (Agarikon); (अ०) अग़ारीक़ून, ग़ारीक़ून, ग़ारीक़ून अव्यज, ग़ारीकून तिब्बी; (फा०) ग़ारीकून सफेद (मुसहिल-सनोब्रर); (का०) जंगली बलगर; (ले०) **१. आगारिकुस आल्बुस Agaricus albus** (*Family : Agaricaceae*); **२. पोलिपोरुस आफ़्फ़ीसिनालिस Polyporus officinalis** Fries (*Family : Polyporaceae*); (अं०) लार्च एगैरिक (Larch Agaric), पूर्जिंग या ह्वाइट एगैरिक (Purging or White Agaric)।

वक्तव्य—**सरमाशिया** (Sarmatia) प्रदेशांतर्गत **'अगारिका'** नामक स्थानमें यह ओषधि विपुल होती थी, इसीलिये यूनानीमें **'अग़ारीकोन'** नामसे प्रसिद्ध हो गई। इसीसे **'अग़ारीक़ून'** अरबी बनाया गया। इसका 'अ'कार हटा देनेसे 'ग़ारीक़ून' रह गया। अरबी यूनानी-वैद्यकीय ग्रंथोंमें इसी नामसे इसका उल्लेख मिलता है। बाजारोंमें भी यह इसी नामसे मिलता है।

उत्पत्तिस्थान और वर्णन—यह खुमी (फितर)की जातिकी एक पराश्रयी क्षुद्र वनस्पति है जो दक्षिण और मध्य यूरोपमें सनोबर (चीड़)के पुराने वृक्षोंपर उत्पन्न हो जाती है। बाजारमें यह सफेद विषम टुकड़ोंके रूपमें प्राप्त होती है जो वजनमें हलके, ऊपरी त्वक्रहित, किसी प्रकार तंतुल और स्पंजवत् होते हैं। गंध अत्यन्त सूक्ष्म होती है। स्वाद पहले मधुर और पीछे (अम्ल) तिक्त एवं चरपरा होता है। जब इसको बारीक तारोंकी चलनीसे छान लिया जाता है, तब उसको **ग़ारीक़ून मुग़र्बल**(चलनीसे चाला हुआ) कहते हैं। औषधमें यही काम आता है। **नकली और असली की परीक्षा**—छना हुआ गारीकून सफेद, हलका और कमजोर होना चाहिये। यदि सफेद और हलका न हो तो नकली या मिश्रणयुक्त समझें। असली स्वादमें कुछ मधुरता लिये कड़ुआ होता है। दूसरी परीक्षा यह है कि जलमें खूब भिगोने और मिला देने पर यदि पानी पर ठहर जाय तो असली और यदि तलस्थित हो जाय तो नकली समझें (गंजबादावर्द)।

रासायनिक संगठन—इसमें **एगेरिसिन** (Agaricin) या **एगेरिक एसिड** (Agaric acid) नामक एक तत्त्व होता है जिसके अत्यन्त सूक्ष्म सफेद चमकदार रवे होते हैं। ये शीतल जलमें तो स्वल्पविलेय, किन्तु उष्णजलमें सुविलेय होते हैं।

प्रकृति—पहले दर्जेमें गरम और दूसरेमें खुश्क है।

गुणकर्म—गारीकून सांद्रदोषविरेचन, छेदन, अवरोधोंका उद्घाटन करनेवाली दोषोंमें तरलता उत्पन्न करनेवाली, रक्तसांग्राहिक, रक्तस्तंभन, छर्दन, मूत्रजनन और आर्तवजनन है। विशेषकर यह सौदा और कफविरेचक है।

उपयोग—गारीकूनका एक छेदन और विरेचन औषधकी भाँति आमवात, गृध्रसी, वातरक्त, मृगी, श्वास, कास, अवरोधजन्य कामला, जलोदर, कुलंज(शूल) कफज्वर, रक्तष्ठीवन और राजयक्ष्मामें उपयोग करते हैं। सिकंजबीनके साथ इसे प्लीहाशोथमें देते हैं। **अहितकर**–कंठशोथ और आकुलताकारक है। **निवारण**–ताजा दूध और जुंदबेदस्तर। **प्रतिनिधि**–इंद्रायन का गूदा। **मात्रा**–०·५ ग्रामसे २ ग्राम (४रत्तीसे २ माशे) तक।

●

(२०५) गावजबान

फ़ैमिली : बोराजीनासे (Family : Boraginaceae)।

नाम—(फा०; हिं०; म०;गु०; भा० बाजार) गाव (अ)ज़बान; (ऊ०) लिसानुस्सौर; (सं०) गोजिह्वा, दर्वीपत्रा, खरपत्रा, गोजी;(१)(पं०) काजबाँ; (क०) काहजबान; (सिं०) गाजबाँ; (लें०) **काक्सीनिआ ग्लाउका (Caccinia glauca** Savi.)।

वक्तव्य—फारसी '**गावजबान**'का अर्थ (गाव = वृष या गो, जबान = जिह्वा) '**गोजिह्वा**' और अरबी लिसानुस्सौरका अर्थ (लिसान् = जिह्वा, सौर = वृष) '**वृषजिह्वा**' है। प्राचीन यूनानी और रूसी वैद्योंने **बोग्लोस्सूस** (Bouglossos) नामक जिस औषधिका वर्णन किया है, उस 'बग्लोस (Bugloss)'को दीसकूरीदूसके भाष्यकार **मार्सेलस वर्जिलिअस** (Marcelus vergilius)ने **सबल प्रमाणों** द्वारा 'बरीज (Borage, Burrage)' सिद्ध किया है। यह दोनों ही अर्थात् (१) बग्लोस, वाइपर्स बग्लोजया ब्लूवीड (**Echium vulgare** Linn.) जिसका फूल नीला और बीजकी आकृति सर्पमुंडाकार होती है तथा कॉमन बग्लोस (**Lycopsis arvensis** Linn.)जिसका फूल नीला होता है और (१) बरीज (**Borago officinalis** Linn) जिसका फूल नीला ही होता है, श्लेष्मातक-कुलके उद्भिज्ज हैं। सुतरां इनमें आकृति एवं गुणसाम्य पाया जाता है। इसलिये पृथक् होनेपर भी इनका एक दूसरेके लिये प्रयोग होने जैसी भूल हो सकती है। फॉर्स्कह्ल (Forskahl)ने बरीज का समन्वय अरबोंके लिसानुस्सौरके साथ किया है। अन्यान्य फारसी लेखकोंके सहित मख्जनके लेखक यह स्वीकार करते हैं कि पारस्यवासियोंका गावज़बान और यूनान तथा रोमवासियोंका बग्लॉस एकही द्रव्य हैं। **मख्जनुलअदविया और तोह्फ़तुल्मोमिनीन**के लेखकोंने इसके एक छोटे भेदका भी उल्लेख किया है जिसका फूल नीला (लाजवर्दी) और छोटा एवं गोल होता है। यह संभवतः औंधाहुली अथवा उसकी ही कोई अन्य प्रजाति (Trichodesma) है। इस प्रजातिकी यह दो जातियाँ **ट्रीकोडेस्मा इंडिकुम्** (**Trichodesma indicum** Br.) और **ट्रीकोडेस्मा जीलानिका** (**T. zeylanica** Br.) संभवतः औंधाहुली(अधोपुष्पी) भारतवर्षमें भी होती हैं। सिंध में इन्हें 'गावजबान' कहते हैं। सिंध और पंजाबमें फारसी गावजबान के स्थानमें इनका उपयोग होता है। इनके अतिरिक्त इस कुलके कतिपय निम्न जातिके क्षुप भी गावजबानके प्रतिनिधिस्वरूप व्यवहार किये जाते हैं; जैसे—(१) **ओनोस्मा ब्रेक्टिएटम्** (**Onosma bracteatum** Wall.)। यह हिमालयमें कश्मीरसे कुमाऊँ पर्वतपर होता है। (२) **मैक्रोटोमिआ बेन्थमाई** (**Macrotomia benthami** DC.)। यह कश्मीर, पंजाब आदि प्रांतों में होता है।

उत्पत्तिस्थान—फारस और बलूचिस्तान।

वर्णन—यह एक बड़ा बहुवर्षायु **क्षुप** है जिसका **तना** पाताली (Rhizome) काला, काष्ठमय, १ से २ इंच व्यासका और एक ग्रंथिल शीर्षमें अंत होता है जिससे कड़े सफेद, चूर्णोपम हृष्ट रोमोंसे युक्त और चूना जैसे सफेद क्षुद्र अर्बुदोंसे घनावृत अनेक कोणाकार (नुकीले) कांड फूटते हैं। **पत्र** जो बहुत मांसल, मोटा, संपूर्ण, सवृंत २०सें०मी०(८ इंच) लम्बा और ११ २'५ सें०मी० (४½ इंच) चौड़ा, और लट्वाकार-लम्बाग्र गोजिह्वाकी आकृतिका होता है; पत्रप्रांत किंचित्

तरंगायित होता है; कांडपत्र ११·२५ सें० मी० (४$\frac{१}{२}$ इंच) लम्बा और ५ सें० मी० (२ इंच) चौड़ा होता है; पत्रके उभय पृष्ठ कड़े, सफेद और चूर्णोपम प्रहृष्ट रोमोंको प्रश्रय देनेवाले, चूना या साबूदाना जैसे सफेद, क्षुद्र अर्बुदोंसे घनावृत होते हैं। पत्रका स्वाद फीका और लबाबदार होता है। पुष्पाग्र वृश्चिकाकार और सशाख तथा कड़े सफेद हृष्ट रोमोंसे घनावृत होता है; वृन्तपत्र (पौष्पिक पत्र) भालाकारसे रेखाकार-भालाकार, हृष्टरोमयुक्त; पुटचक्र (Calyx) १.२५ सें० मी० ($\frac{१}{२}$ इञ्च) लम्बा, पंचधा चीरित (5–partite); खण्ड (Segments) रेखाकार-भालाकार, हृष्टरोमयुक्त; पुष्पवान् क्षुपका पुष्पवृन्त अतिक्षुद्र, बीज पड़ने पर १·२५ सें० मी० ($\frac{१}{२}$ इञ्च) तक लम्बा और चूना जैसे सफेद चित्तियोंसे जटित हो जाता है; गर्भकेशर (Pistil) लोमश, द्वि-शीर्ष, पुटचक्रसे दूना लम्बा; दलचक्र (Corolla) ३·७५ सें० मी० या १$\frac{१}{२}$ इंच लम्बा, नीलवर्ण, ग्रीवापर $\frac{१}{२}$ इंच चौड़ा, फुलेलाकार लगभग द्वयोष्ठीय, बाहरसे लोमश, ५–खण्डयुक्त, दोनों ऊर्ध्वखण्ड सर्वाधिक लम्बे, दलचक्रग्रीवा मसृण (Glabrous), नग्न; पुष्पलिंग (Stamens) पाँच, मिलित, कुछ लम्बे, पुष्पलिंग-मध्यवर्ती रोम नरम; फल लम्बोतरे झुर्रीदार बादाम आदिकी तरहके कड़े छिलके और एक-एक बीजकोषयुक्त फलों (Nuts)का समाहार है। यह $\frac{१}{४}$ से $\frac{५}{१६}$ इञ्च लम्बा, $\frac{१}{१२}$ इञ्च व्यासके अस्थिमय प्यालानुमा फलाधारपर स्थित होता है। बीज (तुख़्मे गावजबान) छोटे-छोटे, गोल और जरा लम्बे खाकी सफेद रंगके, खुरदरे, कड़के बीजकी तरह, परन्तु उससे कुछ पतले होते हैं। भिगानेसे इनसे भी कुछ लबाब निकलता है। देर तक रहने पर इसके फूलोंका गहरा नीला रंग कुछ-कुछ लाल रंगमें परिणत हो जाता है। बाजारमें इसके पत्र (वर्ग गावज़वान) और पुष्प (गुले गावज़वान) सर्वत्र मिलते हैं।

रासायनिक संगठन—पत्रोंको जलमें भिगोनेसे पुष्कल लुआब (पिच्छा) उत्पन्न होता है, जो स्वादमें कुछ खारा होता है और एक प्रकारका नाइट्रोजनी पदार्थ है। इसके क्षुप (पंचांग)की राखमें सज्जीखार ९$\frac{१}{२}$%, यवक्षार १४$\frac{१}{४}$%, मैग्नीशिया २$\frac{३}{४}$%, चूना ६७% और लौह १ प्रतिशत होता है।

उपयुक्त अंग—पत्र, पंचाग, बीज और फूल (गुल गावजबान)। मात्रा–पत्र ५ से ७ ग्राम (५–७ माशा); पुष्प ३ ग्रामसे ५ ग्राम (३ माशासे ५ माशा)।

कल्प तथा योग—अर्क गावजबान (अंबरी), शर्बत गावज़बान, खमीरा गावजवान (सादा), खमीरा गावजबान, खमीरा गावजबान अंबरी जवाहरवाला, ख़मीरा गावजबान जवाहरवाला, ख़मीरा गावजबान जदवार ऊदसलीबवाला, ख़मीरा गावजबान जदवारी आदि।

प्रकृति—ताजा गावजबान पहले दर्जेमें गरम और तर, तथा शुष्क गावजबान रूक्षता (खुश्की) लिये गरम है। आयुर्वेदके मतसे गोजिह्वा शीतवीर्य है।

गुण-कर्म—गावजबान सौमनस्यजनन, सारक, हृद्य, उत्तमांगोंको बलप्रद और श्लेष्मनिःसारक है।

उपयोग—गावजबानके पत्र (वर्ग गावजबान) और पुष्प (गुले गावजबान) मद (मालिन्ख़ोलिया) उन्माद, सौदावी हृत्स्पन्दन जैसे व्याधियोंमें सौमनस्यजनन और हृदयको बल देनेके लिये उपयोग किये जाते हैं। अकेला या उपयुक्त अन्य औषधियोंके साथ गावजबानका क्वाथ शीतल प्रसेक, प्रतिश्याय, कास, श्वास और उरःखरत्वको निवारण करनेके लिये पिलाया जाता है। गावज़बानको जलाकर बनाई हुई मसीको बारीक पीसकर बालकोंके मुखपाकमें दाहशमन करनेके लिये और व्रणोंको सुखानेके लिये छिड़कते हैं। इसका ख़मीरा और अर्क़ बनाया जाता है जिनका उपयोग सौमनस्यजनन और बलवर्धनके लिये होता है। अहितकर–प्लीहाको। निवारण–सफेद चंदन। प्रतिनिधि–बिजौरेका छिलका, अधोपुष्पी भेद (Trichodesma zeylanica R. Br.)।

आयुर्वेदीय मत—गोजिह्वा (गावज़बान) कषाय, तिक्त, मधुर, मधुरविपाक, लघु, शीतवीर्य, वातल, ग्राही, हृद्य तथा कफ, पित्त, कास, अरुचि, श्वास, प्रमेह, रक्तविकार, व्रण और ज्वरको दूर करनेवाली है। (कै० नि०)।

नव्यमत--रसायन, बल्य, मूत्रजनन, रक्तप्रसादन और स्निग्ध है तथा आमवात, काप, हृत्स्पंदन (धड़कन) तथा फिरंगमें इसका उपयोग होता है।

गावजबान क्षारस्वभावी, मूत्रजनन और स्नेहन है। विषमज्वरमें शीत लगने पर इसको आसवके साथ देते हैं। उपदंश और पूयमेह (सूजाक)से उत्पन्न संधिशोथमें इसे चोपचीनीके साथ देते हैं। इसके फांटसे मूत्रका प्रमाण बढ़ता है। हृत्स्पन्दन और मूत्रकृच्छ्रमें फांट देते हैं।

●

(२०६) गिलोय

फैमिली : मेनिस्पेर्मासि (Family : Menispermaceae.)

नाम। लता—(हिं०) गिलोय, गुरुच; (सं०) गूडूची, अमृता; (द०; म०;) गुलवेल; (बं) गुलंच; (गु०) गळो; (कच्छ) गडू; (तें०) तिप्पतीगे; (मल) पैंट्चमृतम्, चिट्टामृतम्; (क०) अमरदवल्लि; (कों०) गरुडवेल; (सिं०) गिलोर; (लै०) टीनोस्पोरा कॉर्डीफोलिआ **Tinospora cordifolir** (Willd.) Miers; (अं०) गूलंचा (Gulancha)। गिलोयका सत–(फा०; हिं०) सतेगिलो; (सं०) गूड़चीसत्व; (हिं०; द०) गुरुच (गुलवेल)का सत; (बं०) पलो; (अं०) एक्स्ट्रैक्ट ऑफ गुलंच (Extract of Gulancha)।

उत्पत्तिस्थान--भारतवर्ष।

वर्णन--गिलोयकी बहुवर्षायु, मांसल और बड़े वृक्षों पर चढ़नेवाली बड़ी लता होती है। पत्र एकान्तर, मसृण और हृदयाकृति; कांडसे अवरोहमूल निकलते हैं; फूल छोटे, पीले रंगके गुच्छोंमें लगते हैं। फल पकनेपर लाल रंगके और मटरके बराबर गोल होते हैं। काण्डकी अन्तस्त्वचा हरे रंगकी और मांसल होती है। बाह्यत्वचा सफ़ेदी लिये हुये भूरे रंगकी होती है। काण्डको काटनेसे भीतरका भाग चक्राकार दिखता है। औषधके लिए नीमपर चढ़ी हुई गिलोय (नीम गुरुच) उत्तम समझी जाती है।

रासायनिक संगठन--इसमें (१) अत्यल्प प्रमाणमें एक अस्फटिकीय तिक्त ग्लूकोसाइड, (२) अत्यल्प प्रमाणमें बर्बरीन और (३) पुष्कल पिष्टमय पदार्थ (स्टार्च) जिसे 'सत गिलोय' कहते हैं, प्रभृति उपादन पाये जाते हैं। सत गिलोय आटेकी तरह दिखता और किंचित् तिक्त होता है। वक्तव्य–बाजारू सतगिलोय साधारण श्वेतसार (स्टार्च)के सिवाय और कुछ नहीं होता। इसके निर्माणके संबंधमें यूनानी द्रव्यगुण विज्ञान ग्रंथका पूर्वार्ध भेषजकल्पनाखंड देखें।

उपयुक्त अंग—काण्ड। इसे ग्रीष्मऋतुमें वर्षाके पूर्व संग्रह करना चाहिए। जहाँ तक बने गिलोय ताजी काममें लेनी चाहिए।

कल्प तथा योग—सत गिलोय, शर्बतगिलोय, हब्बगिलोय, सफ़ूफ़ सतगिलोय शिलाजीतवाला।

प्रकृति—पहले दर्जेमें गरम और खुश्क; मतांतरसे सम्मिश्रवीर्य (परस्परविरोधीवीर्य) है। आयुर्वेदके मतसे उष्णवीर्य (रा० नि०) मतान्तरसे शीत एवं रुक्ष है।

गुण-कर्म—दीपन, ग्राही, बल्य, ज्वरनाशक, कृमिघ्न, रक्तप्रसादन, मूत्रल तथा शुक्रप्रमेह (जिरयान) और सूजाकमें लाभकारी है। उपयोग–हरी एवं ताजी गिलोय ज्वरके समस्तभेदों, यहाँ तक कि दोष सम्मिश्रज्वरों (हुम्म-यात मुरक्कबा मुज़्मिना) और राजयक्ष्माके लिए क्वाथ और फांटके रूपमें प्रयुक्त होती है। यदि हरी गिलोयका रस

निकालकर उपयोग किया जाय, तो वह अधिक गुणकारी होता है। संग्राही होनेके कारण चिरज अतिसार और रक्तातिसारको बन्द करनेके लिए इसका उपयोग कराते हैं। सूजाक और प्रमेहमें भी यह अकेली या उपयुक्त औषधियोंके साथ प्रयुक्त होती है। रक्तशोधक होनेके कारण त्वचाके रोगों, फिरंग और कुष्टरोगमें इसका उपयोग कराते हैं। तिक्त होनेके कारण उदरजक्रमियोंको नष्ट करनेके लिए इसे पिलाते हैं। इसका (सतगिलोका) भी ज्वरोंमें उपयोग किया जाता है। यह मोतदिल (अनुष्णाशीत) है और गुणधर्ममें गिलोयके समान है। **अतिहकर**—बहुत अहितकर नहीं है। **निवारण**—वंशलोचन और इलायचीका दाना। **प्रतिनिधि**—सतगिलोय। **मात्रा**—क्वाथ या फांटमें १ तोला से २ तोले तक; गिलोयका स्वरस (काण्ड और पत्रको कूटकर निकालना हुआ) २४ ग्राम से ३६ ग्राम (२ तोले से ३ तोले) तक और सत्व ०·६ ग्राम से २ ग्राम (५ से १५ रत्ती)।

आयुर्वेदीय मत—गुडूची रसमें तिक्त, कुछ कषाय, गुरु, उष्णवीर्य, ग्राही, दीपनीय, रक्तशोधन, विबन्धप्रशमन, वातपित्तकफहर, तृप्तिघ्न, तृषानिग्रहण, दाहप्रशमन, वयःस्थापन, रसायन और ज्वर, वमन वातरक्त, प्रमेह, पाण्डुरोग, कामला, श्वेतप्रदर तथा भ्रमको दूर करनेवाली है। (च० सू० अ० ४, २५, २७; च० चि० अ० १, ३, १६; सु० सू० अ० ३८, ४६; रा० नि०)।

नव्यमत—गुरुच कटुपौष्टिक, पित्तसारक, संग्राहक, त्वग्रोगहर, मूत्रजनन और ज्वरहर है। यह उत्तम मूत्रजनन और मूत्रविरजनीय है। इस कार्यके लिए इसे बड़े प्रमाणमें देना चाहिये। सभी प्रकारके प्रमेहमें इसका स्वरस या सत्व देते हैं। बस्तिशोथमें बहुत गुणकारक है। मूत्रेन्द्रियके अभिष्यन्दप्रधान रोगोंमें इसके साथ पाठा भी देना चाहिये। नये सूजाक (औपसर्गिक पूयमेह)में इसका स्वरस देनेसे मूत्रका दाह कम होता है और प्रमाण बढ़ता है। सभी प्रकारके प्रमेहमें दो से तीन ड्राम इसके स्वरसमें पाषाणभेदका चूर्ण (५ से ८ रत्ती) और मधु मिलाकर देते हैं। त्वग्रोगों (कुष्ठ)में यह प्रधान औषधि है। इससे त्वचाकी कण्डू और दाह कम होते हैं। इससे भूख लगती, अन्न पचता तथा रक्त बढ़ता है और शक्तिमेंवृद्धि होती है। ज्वर अथवा अन्यरोगके पश्चात् जो दुर्बलता होती है, उसमें इसे देते हैं। इससे पित्तका स्राव भली-भाँति होने लगता है तथा यकृत्की पित्तवाहिनियोंका और आमाशयके भीतरकी श्लेष्मलकलाका अभिष्यन्द कम होता है। इसलिए कुपचन, पेटका हलका दर्द और कामलामें इससे लाभ होता है। जीर्ण अतिसार तथा आँव और अम्लपित्तमें इसका सत्व हितावह है। इससे पचननलिकाकी अधिक अम्लता कम होती है। इसका मिश्रित फांट उत्तम रसायन है। इससे जीर्ण आमवात और फिरंगोपदंशकी द्वितीयावस्थामें उत्तम लाभ होता है।

गुरुचका मिश्रित फाण्ट—१० तोले ताजा गुरुचको धो और पीसकर बनाया हुआ कल्क तथा १० तोले अनन्तमूलका चूर्ण दोनोंको १०० तोले उबलते हुए पानीमें डाल, पात्रको बन्द करके दो घंटे रख छोड़े। पश्चात् हाथसे मसलकर कपड़ेसे निचोड़ लेवे। **मात्रा**—५ से १० तोला दिनमें तीन बार देवे। यह फाण्ट उत्तम रसायन और मूत्रजनन है।

●

(२०७) गुआर, गुआलिन

फ़ैमिली : लेगूमिनोसी (Family : Leguminosae)

नाम—(हिं०) गुआर (ग्वार), गुआलिन (ग्वालिन), भटफली, खुरथी, कौरी; (सं०) गोराणी, दृढ़बीजा, गोरक्षफलिनी–(अभि०); (गु०) ग्वार; (म०) गोवारी चा शोंग; (बम्ब०) गौरी; (ले०) सिआमाप्सिस टेट्रागोनोलोबा (**Cyamopisis tetragonoloba** (L.) Taub. (पर्याय–*C. Psoralioides* DC.)।

उत्पत्तिस्थान—भारतवर्षके बहुतसे भागोंमें इसकी खेती की जाती है।

वर्णन—एक वार्षिक पौधा जिसकी फलियोंकी तरकारी और बीजोंकी दाल होती है।

प्रकृति—शीत लिए हुए अनुष्णाशीत।

गुण-कर्म तथा उपयोग—यह सारक (मतांतरसे संग्राही एवं आध्मानकारक) तथा पित्तप्रकोप और नेत्रान्ध्यरोगमें उपकारक है। यह **बृंहण, वाजीकर,** वातकारक, **शुक्रजनक,** रक्तोद्वेगकारक, ज्वररोगी एवं दर्दके लिये हानिकर और कफवर्धक है। इसका निवारण हरी धनियाँ है। आयुर्वेद मतसे यह मधुर, शीतवीर्य, रूक्ष, पचनेमें भारी (गुरुपाकी), कफजनक, उष्णतावर्धक और पित्तनाशक है। पित्तातिसार मिटानेके लिए इसका काढ़ा पिलाना चाहिए। इसके पत्ते पित्तनाशक हैं। चोट या मोचकी सूजनपर तिल और गुआरकी फलीको कूट-पकाकर बाँधना चाहिए। पत्तोंका रस आँखमें लगानेसे रतौंधी दूर होती है। इसके पत्तोंको पकाकर खानेसे भी रतौंधी मिटती है। दुर्बल एवं बादीके रोगवालेको इसकी फलियाँ पकाकर नहीं खाना चाहिए, क्योंकि इससे उदराध्मान एवं वायुजन्य पीड़ा उत्पन्न हो जाती है। इसकी कच्ची नरम कलियोंको तोड़ सुखाकर रख छोड़ते हैं और जब चाहते हैं, तेल या घीमें तलकर नमक-मिर्च छिड़ककर खाते हैं। (ख० अ०)।

(२०८) गुग्गुल (गूगल)

फ़ैमिली : बर्सेरासे (Family :Burseraceae)

नाम—(हिं०) गुग्गुल, गूगल; (यू०) ब्डेल्लिओन (Bdellion); (अ०) मुक़्ल (मुक़्लि), मुक़्ल-अर्ज़क़, अफ़्लात (तू) न; (फा०) बूए जहूदान; (सं०) गुग्गुलु, कौशिक; (बं०) गुग्गुल; (क०) काण्ठगण; (सिंध) गुगरु, गुगर; (द०) गूगल; (म०; गु०) गुगल; (ले०) कोम्मीफ़ोरा वाइटिई, **Commiphora wightii** (Arn.) Bhandari (पर्याय–*C. Roxburghil* (Stocks) Engl.; *C. mukul* (Hook. ex Stocks) Engl.; *Balsamodendron mukul* (Hook. ex Stocks.); (अं०, ब्डेलियम् (Bdellium)।

वक्तव्य—लेटिन नाम गूगलके वृक्षका है। पहले स्वीकृत लेटिन नाम 'कोम्मीफ़ोरा मुकुल' एवं 'बाल्सामोडेन्ड्रॉन मुकुल'में जातीय नाम (Specific name) गूगलके अरबी नाम 'मुक़्ल'पर आधारित है। कहते हैं कि गुग्गुलके वृक्षको अरबीमें 'दौम' या 'दूम' और फलको मुक़्लमक्की या मुक़्लुद्दूम कहते हैं। परन्तु प्राचीनोंके लिखित दूमवृक्ष और उसके फल (मुक़्लमक्की)के विवरणसे गुग्गुलके विवरणका मेल नहीं खाता। अस्तु, इन दोनोंको एक मानना शस्त्रसम्मत और ठीक नहीं है। 'दूम' के वृक्ष मक्काके आसपास होते हैं।

उत्पत्तिस्थान—भारतवर्षके सिंध, कच्छ, काठियावाड, बरार, खानदेश, मारवाड़, राजस्थान, सिलहट, आसाम, मैसूर तथा पूर्व बंगाल आदि प्रदेश। अरब और अफरीकामें भी गूगल होता है।

वर्णनादि—यह एक छोटे कँटीले वृक्षका गोंद है जो तिक्त और आकार, स्थान एवं रंगभेदसे कई प्रकारका होता है। जैसे—(१) मुक़्ले अर्ज़क़–यह ललाई लिये होता है; (२)मुक़्ले यहूद–यह पिलाई लिये (कुछ-कुछ पीला) होता है; (३) मुक़्ले सक़्लाबी (सकालबी)–यह भूरा होता है; (४) मुक़्ले अरबी–यह यमनमें पैदा होता तथा ललाई लिये भूरा या बैंगनी होता है और (५) मुक़्लेहिंदी–यह हिंदुस्तानमें होता है। उत्तम वह है जो शुद्ध, चमकीला, चिपकनेवाला (चिमचोड), नरम, मधुरगंधी, कुछ पीला और तिक्त हो; पानीमें शीघ्र घुल जाय तथा लकड़ी, रेत और मिट्टी आदि अपद्रव्योंसे शुद्ध हो। इसमें २० वर्ष तक वीर्य रहता है।

सामान्यतः आजकल बाजारमें गूगलकी दो जातियाँ मिलती हैं : (१) **कणगूगल** और (२) **भैंसा (महिषाक्ष) गूगल**। कणगूगल मारवाड़में होता है और उसके ललाई लिये हुये पीलेरंगके गोल दाने होते हैं। यह भैंसागूगलसे नरम होता है। भैंसागूगलका रंग हरापन लिये पीला होता है। यह सिंध, कच्छ आदि में होता है।

रासायनिक संगठन—इसमें एक उत्पत् तेल, रालदार गोंद (Gum-resin) और एक तिक्त सत्व प्रभृति होता है।

उपयुक्त अंग—निर्यास (गूगल)।

मिश्रण और उसकी परीक्षा— इसमें मुरमक्की (बोल) मिला देते हैं। भेद यह है कि गुग्गुल चिपकती है, परन्तु बोल चिपकता नहीं। गुग्गुल स्वच्छ होता है, परन्तु बोल इसके विपरीत अस्वच्छ होता है। गंजबादावर्द में इसकी पहिचान यह लिखी है, "इसको कूटकर सूँघे, यदि इसमें थोड़ी-सी गंध हो, रंग लाल हो और कड़ा हो तो मिश्रणयुक्त समझें; क्योंकि खालिसमें गंध नहीं होती, रंग नीलापन, वजनमें भारी और हल्केके मध्यमें होता है। स्वाद में थोड़ा-सा कषाय (कब्ज) होता है। इसको शुद्ध करके औषधके काममें लेना चाहिये।"

कल्प तथा योग—अतरीफल मुक्ल, अतरीफल मुक़्ल मुमूसिका, माजून मुक्ल, माजून जोगराज गूगल, हब्ब मुक़्ल आदि।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें **गरम** और दूसरेमें खुश्क है। आयुर्वेदके मतसे उष्णवीर्य एवं स्निग्ध (सु०) है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—श्वयथुविलयन, सर, दोषपाचन, कफविरेचन, उष्णताजनन, लेखन, वातानुलोमन अर्शोघ्न, अर्शोजात रक्तस्तंभन, मूत्र और आर्तवजनन, रगड़ (घर्षण)को रोकनेवाला (मानेअ सहज्ज), वृक्काश्मरीछेदन और वाजीकर है।श्वयथुविलयन होनेके कारण गुग्गुल समस्त अन्तरबाह्य कठिन शोथों और आशय (अह्शाऽ) शोथके लिये पान और लेपकी भाँति उपयोग किया जाता है। यहाँ तक कि कंठमाला और प्लेगकी ग्रथियोंपर इसका लेप किया जाता है। इससे वे बैठ जातीं या पककर फूट जाती हैं। कफपाचन और विरेचन तथा उष्णताजनन होनेके कारण यह समस्त शीतल कफज रोगों, जैसे–अर्दित, पक्षवध, आमवात, वातरक्त और गृध्रसी आदिमें उपयोग किया जाता है। श्लेष्मनिस्सारक होनेके कारण कास और कफज श्वासकृच्छ्रमें तथा रक्तस्तंभन होनेसे रक्तष्ठीवनमें खिलाया जाता है। सांद्र वायुको विलीन करने और आमाशय तथा वाजीकरण शक्तिको बल प्रदान करनेके लिये भी इसका उपयोग करते हैं। वातार्श तथा रक्तार्श और चिरज अजीर्ण (रीहूल् बवासीर)में यह पुष्कल उपयोग किया जाता हैं। सुतरां इसको बवासीरकी गोलियों और माजूनोंमें सम्मिलित करते हैं। उपयुक्त औषधियोंके साथ अर्शाङ्कुरोंको शिथिल करनेके लिये इसका लेप लगाते तथा इसकी धूनी देते हैं। उष्ण विरेचन औषधियोंकी गोलियोंमें उनके दोषपरिहार के लिये इसको इसलिये योजित करते हैं जिसमें अन्त्र रगड़ (सहज्ज)से सुरक्षित रहें। लेखन होनेके कारण दद्रुपर अकेला या अन्य औषधियोंके साथ इसका लेप करते हैं। आर्तवप्रवर्तन और अपरापातन (आविजनन)के लिये पेय और फलवर्ति (हमूल)की भाँति इसका उपयोग करते हैं। **अहितकर**–यकृत् और फुफ्फुसको। **निवारण**–कसीरा और केसर। **प्रतिनिधि**–एलुआ, पीला एलुआ (सिब्र जर्द) और बोल। **मात्रा**–१ ग्राम से १·५ ग्राम (१ से १½ माशे या ८ रत्ती से १२ रत्ती) तक।

आयुर्वेदीय मत—गूगल रस और विपाकमें कटु, उष्णवीर्य, सुगन्धि, लघु, तीक्ष्ण, स्निग्ध, पिच्छिल, रसायन, हृद्य, सर, त्रिदोषहर, भग्नसंधानकर, अग्निदीपन, व्रण्य तथा कफरोग, वातरोग, कास, कृमि, उदर, प्लीहाके रोग, शोथ, अर्श, प्रमेह, मेदोवृद्धि, कुष्ठ, आमवात, विद्रधि, ग्रन्थि, अपची और गण्डमालाका नाश करनेवाला है। नया गूगल बृंहण और वृष्य है तथा पुराना गूगल कर्षण (लेखन) है। (सु० सू० अ० ३८; सु० चि० अ० ५; रा०नि०)।

नव्य मत—गूगल रसायन, दीपन, स्नेहन, स्रंसन, वातहर, कफहर, कोष्ठवातप्रशमन, आर्तवजनन, रक्तके श्वेतकणोंको बढ़ानेवाला, रक्तवर्धक, श्लेष्मल त्वचाके लिए उत्तेजक, त्वग्दोषहर, व्रणशोधन, व्रणरोपण और शोथघ्न

है। इसके अतिरिक्त यह उत्तेजक, रोगजन्तुघ्न, दुर्गन्धहर और कफघ्न है। इसलिए जब पुरानी खांसीमें अतिशय गाढ़ा और दुर्गन्धयुक्त कफ निकलता है, तब इसे पीपल, वासा, शहद और घीके साथ मिलाकर देते हैं। अशक्त और मध्यम अवस्थाके मनुष्यको इसे लोहभस्मके साथ देते हैं। यह दीपन और आनुलोमिक है, इसलिये कुपचन और मलावष्टम्भमें विशेष करके जब आमाशय और आंतोंमें शिथिलता हो तब इसे सुगन्धित द्रव्य, इन्द्रजव, एलुवा और गुड़के साथ मिलाकर देते हैं। यह रक्तशोधन है तथा इससे समस्त शरीरको उत्तेजन एवं बल मिलता है। इसलिये उपदंश, सूजाक और जीर्ण आमवातमें इसका उपयोग करते हैं। गण्डमालामें इससे बहुत लाभ होता है। इन रोगोंमें यह रक्तके श्वेत कणोंको बढ़ाता है और श्वेतकण बढ़ने से लाभ होता है। गण्डमालामें पारा (रससिन्दूर), संखिया और बायविडंगके साथ और उपदंश में सारिवा (अनन्तमूल)के साथ देते हैं। जीर्ण आमवातमें अथवा सूजाकसे जो संधिशोथ होता है उसमें शिलाजीतके साथ खिलाते हैं और इसका लेप करते हैं। पुराने सूजाक और बस्तिशोथमें गुरुचके काढ़ेके साथ इसे देते हैं। खानेको देनेपर यह त्वचा द्वारा शरीरसे बाहर निकलता है और बाहर निकलते समय त्वचाकी विनिमयक्रिया सुधारता है। इसीलिये सभी प्रकारके जीर्ण त्वग्रोगोंमे इसे देते हैं और इससे लाभ होता है। इससे त्वचा की कण्डू कम होती है। नीरोग मनुष्य इसका सेवन करे तो त्वचाका रंग सुधरता है। यह गर्भाशयके संकोचविकासको भी कम करता है। जवान स्त्रियोंके अनार्तवमें गूगल, एलुवा और कसीसकी गोलियाँ बनाकर देते हैं। गर्भाशयसे कभी-कभी चिकने पदार्थका स्राव होता है और इससे स्त्रीको वन्ध्यात्व आता है। उक्त अवस्थामें इसे रसौतके साथ मिलाकर देते हैं। रक्तमें जैसे-जैसे श्वेतकण बढ़ते हैं वैसे-वैसे रक्तकण भी सुधरते हैं। श्वेतकण बढ़नेसे जैसे रोगोत्पादक जन्तुओंका नाश होता है वैसे ही रोगीकी तेल-घी आदि स्निग्ध पदार्थ पाचन करनेकी और उनको रक्तमें शोषण करनेकी शक्ति भी बढ़ती है। इसलिये पाण्डुरोग में इसे लोह और सुगन्धि द्रव्योंके साथ देते हैं। इसे कुट और घी में मिलाकर बनाए हुए मरहमसे व्रणका उत्तम शोधन और रोपण होता है। इसे गरम पानीमें पीसकर दिनमें दो-चारबार लेप करनेसे क्षयरोगके जन्तुओंसे होनेवाली ग्रन्थियाँ जिनको गण्डमाला (अपची) कहते हैं उनमें उत्तम लाभ होता है। दिल्लीसोर (Delhi Sore)में गूगल, गन्धक, सुहागा और कत्थे का मलहर लगानेसे लाभ होता है।

(२०९) गुडमार

फ़ैमिली : आस्क्लेपिआडासे (Family : Asclepiadacae)

नाम—(हिं०) गुड़मार, मेढ़ासिंगी; (सं०) मेषश्रृंगी, मधुनाशिनी—(नवीन); (बं०) मेषसिंगी, मेड़ाशिंगे; (ते०) पोडपत्री, पुड़पत्र, पुड़पत्रम् (मुहीत); (द०; म०) परपत्राह; (बम्ब; म०) कावली; (ले०) जीम्नेमा सील्वेस्ट्रे **(Gymnema sylvestre** (Retz.) Schult); (अं०) पेरिप्लोका ऑफ दी वुड्स (Periploca of the woods), स्मॉल इन्डियन इपीकाकुआन्हा (Small Indian Ipecacuanha)।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्षके उष्णप्रदेश।

वर्णन—इसकी काष्ठीय परन्तु पतले-पतले कांडकी चक्रारोही लतायें होती हैं। शाखायें या टहनियाँ रोमश होनेके कारण प्रायः पीताभ; पत्तियाँ अंडाकार आयताकार, या लट्वाकार कभी-कभी हृद्वत् और २.५ से ५-७.५ सें० मी० (१-२ इञ्च कभी-कभी ३ इञ्च) लम्बी होती हैं। पत्तियोंको चबानेसे जीभकी स्वाद और स्वादग्रहणशक्ति नष्ट हो जाती है। इसीसे इसे गुड़मार या 'मधुनाशिनी' कहते हैं। स्वाद किंचित् तिक्त। इसकी लकड़ी (काष्ठ) पत्तोंसे वीर्यवान् होती है। इसमें कई वर्ष तक वीर्य रहता है।

उपयुक्त अंग—पत्र, मूल और काष्ठ ।

रासायनिक संगठन—जिम्नेमिक एसिड, पत्रमें ऐन्थ्राक्विनोन के योग पाये जाते हैं ।

कल्प—चूर्ण, क्वाथ, सुरासव आदि ।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम और खुश्क ।

गुण-कर्म तथा उपयोग—गुणधर्ममें यह उतरन (Daemia extensa Br.) और इपीकाक (Cephaelis ipecacuanha) के सदृश होता है । पत्तियोंका उपयोग मधुमेह (जयाबीतुस शकरी) में होता है । जड़ कफोत्सारि एवं वामक है । सर्पविषमें मूल का क्वाथ दिया जाता है, जिससे वमन और दस्त आते हैं । यह खुजली, दाद, कोढ़ और खांसीमें उपकारक है । पत्तियोंको कालीमिर्चोंके साथ पीसकर पिलानेसे विसूचिकामें लाभ होता हैं । इसकी लकड़ीका चूर्ण चौड़े मुँहकी बोतलमें डालकर ऊपरसे भरकर मुँह बंद कर देवें और दो सप्ताह रहने देवें । तदुपरान्त बोतलको उलटकर छानकर प्राप्त सुरासवको बोतलमें सुरक्षित रखें । इसमेंसे ४ माशे चूर्णसे बने सुरासवको १ मात्रा मानकर इसी प्रकार १-१ मात्रा सर्पदष्ट, अफीम खाये हुये और हैजाके रोगीको पिला देवें । इसी प्रकार यथोचित अन्तर दे-देकर इसका सेवन करनेसे उक्त रोगोंका नाश हो जाता है । प्लेगवालेको इस बूटीके सेवनसे सूजन जाती रहती है । खजाइनुल् अद्वियाके लेखकके मतसे ये दोनों प्रयोग श्रीमान् मौलवी फर्खी साहबके बारम्बारके अनुभूत हैं । यह गुहेरा और विषखोपड़ाके विषका भी नाशक है । निवारण—तेल ।

◆

(२१०) गुड़हल (जपा)

फ़ैमिली : माल्वासे (Family : Malvaceae)

नाम—(हिं०) गुड़हल (र), अढ़ (ड) उल, जासून, जवा; (अ०; फा०) अंग़िरा (–हिंदी); (सं०) जपा, जवा, ओड्रपुष्पी; (बं) जवा, जवाफूलेरगाछ; (पं०) गुड़हल, (म०) जास्वंद; (गु०) जासून; (बम्ब०) जासुंद, जासुन; (ते०) दासनमु; (ता०) शपात्तुपू; (मल०) अयंबरुत्ति, शेपरुत्ति; (का०) दासवाल; (ले०) हिबीस्कुस रोज़ासीनेन्सिस् (**Hibiscus rosa-sinensis Linn.**); (अं०) शू-फ्लॉवर (Shoe-flower) ।

वक्तव्य—लेटिन नाम गुड़हलके पेड़का है ।

उत्पत्तिस्थान—प्रायः समस्त भारतीय उद्यानोंमें इसके वृक्ष लगाये मिलते हैं । बागोंकी मेड़पर इसकी झाड़ी लगायी जाती है ।

वर्णन—वृक्ष अनारके बराबर और खूब झावेदार; पत्र शहतूतके पत्रकी तरह किंतु उससे अधिक छोटे; फूल गुलनारकी तरह, किंतु उससे बहुत बड़ा, मुलायम एवं निर्गंध होता है । सफेद और लाल रंगके फूलके विचारसे इसके दो भेद होते हैं । कहते हैं कि जोगिया, पीले और कासनी फूलका गुड़हल भी होता है । इसकी सुखाई हुई जड़ बम्बईमें खित्मीकी जड़के स्थानमें बिकती है ।

उपयुक्त अंग—फूल, फूलकी कली । मात्रा–३ से ६ ग्राम (३-६ माशे) तक ।

कल्प तथा योग—शर्बत गुड़हल–गुड़हलके एक सौ फूलोंको काँच या चीनी-मिट्टीके पात्रमें रख, उसमें २० कागजी नीबूका रस डाल, पात्रको ढाँककर रातभर रहने देवें । सवेरे उनको हाथोंसे मसल कपड़ेसे छानकर

उसमें १ सेर मिश्री तथा गुले गावजबानका अर्क, मीठे अनारका रस और संतरेका रस प्रत्येक २० तोला मिलाकर मंदी आँचपर पकावें। जब शर्बत जैसी चाशनी हो जाय तब उसमें कस्तूरी २ रत्ती, अंबर ३ माशा, केशर १ माशा अर्कगुलाबमें पीसकर मिला देवें। मात्रा–२ तोला किसी योग्य अर्कमें मिलाकर देवें। यह शर्बत दिल और दिमागको शक्ति देता है तथा उन्माद और पैत्तिकज्वरको दूर करता है।

वक्तव्य—शर्बत गुड़हलके अन्य योगोंके लिए देखें **'यूनानी सिद्धयोगसंग्रह और जामेउल् हिकमत'** प्रभृति ग्रंथ।

प्रकृति—अनुष्णाशीत (मोतदिल) लिये सर्द व तर।

गुणकर्म—सौमनस्यजनन, हृद्य और ज्ञानेन्द्रियोंको बलप्रद, हृद्रोगनाशक और शीतजनन है।

उपयोग—सौमनस्यजनन और हृदयबलदायक होनेके कारण अधिकतया हृद्रोग, जैसे-धड़कन, हृदयदौर्बल्य और उन्मादरोगमें इसका उपयोग कराते हैं। बहुधा इसका फांट, अर्क और शर्बत पिलाया जाता तथा इसका गुलकंद खिलाया जाता है। शर्बतगुड़हल इसका प्रसिद्ध योग है। हृद्य और मनः प्रसादकर माजूनोंमें भी इसे प्रयोग करते हैं। अहितकर–प्रसेकरोगी और शीतप्रकृतिको। निवारण–कालीमिर्च, मिश्री और चीनी। प्रतिनिधि–गुलचाँदनी। मात्रा–५ से ७ ग्राम (५ से ७ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—गुड़हल (जपा) ग्राही, केशके लिए हितकर और रक्तप्रदर का नाश करनेवाला है। इसके फूलोंको काली गायके मूत्रमें पीसकर लगानेसे सिरका गंज आराम होता है और बाल बढ़ते हैं। जपाके फूलोंकी १०-१२ कलियाँ दूध में पीसकर खानेसे तथा केवल दूध पीकर रहनेसे प्रदर आराम होता है। (रा० मा०; ग० नि०)।

नव्य मत—इसकी कली रक्तसंग्राहक, वेदनास्थापन और मूत्रजनन है। प्रमेह और प्रदरमें इसका प्रयोग करते हैं।

●

(२११) गुल अब्बास

फ़ैमिली : नीक्टाजिनासे Family : Nyctaginaceae)

नाम—(हिं०) गुलाबाँस, गुलबास, गुलब्बास; (अ०) शबुल्लैली; (फा०) गुले-अब्बास (सी), अब्बास (सी); (द०) गुलाबाश; (बं०) कृष्णोकेलि, गुलाबास; (म०) संध्याकाली; (बम्ब०) गुल अब्बास; (ले०) मीराबिलिस जालापा (**Mirabilis jalapa** Linn.); (अं०) मार्वेल ऑफ पेरू (Marvel of Peru), फोर-ओ-क्लॉक फ्लावर (Four o' clock flower)।

वक्तव्य—इसके अधिकांश भारतीय भाषाओंके नाम फारसी नाम पर आधारित हैं।

उत्पत्तिस्थान—उष्णकटिबन्धीय अमेरिका विशेषतः पश्चिम भारतीय द्वीप-समूह। अब प्रायः यह भारतके अधिकांश भागोंमें फैल गया है, तथा अब स्वयंजात स्वरूपका भी हो गया है। भारतीय उद्यानों एवं रेलकी पटरीके किनारोंपर लगाया हुआ मिलता है।

वर्णन—यह लगभग एक गज ऊँचा क्षुप है, जिसे सुन्दरताके लिए घरों और बगीचोंमें लगाते हैं। शाखायें विपुल, नरम और कोमल, इतस्ततः और ग्रन्थिपूर्ण; पत्र प्रायः त्रिकोण, हृद्वत्, लगभग ३ गिरह लंबे फूल–शहनाईकी आकृतिके लाल-सफेद और लाल-पीले रंग के तथा निर्गन्ध; बीज (फल) गोल कालीमिर्चकी तरह और झुर्रीदार; मूल बहुवर्षायु स्थूल और कन्दसदृश, नये क्षुपकी जड़ ऊपरकी ओर बेलनाकार और नीचेकी ओर गोपुच्छाकार,

परन्तु पुराने पौधेकी जड़ सलगमाकार या अर्धगोल होती है। इसका बाहरी पृष्ठ गहरा भूरा और असंख्य वृत्ताकार छल्लोंसे युक्त तथा भीतर से मटियाली सफेद या कुछ-कुछ भूरी होती है। यह मंद उत्क्लेशगंधी और मूल बहुवर्षायु होता है। इससे प्रतिवर्ष वर्षामें नया पौधा फूट पड़ता है। फूल प्रायः संध्याकालमें खिलता है।

रासायनिक संगठन—जड़में अल्पप्रमाणमें एक क्षारोद (ऐल्केलॉइड) होता है जिसे अद्यावधि पृथक् नहीं किया जा सका है।

उपयुक्त अंग—पत्र, पुष्प और जड़ (कन्द)।

प्रकृति—**पत्र** तीसरे दर्जेमें गरम और खुश्क; फूल अनुष्णाशीत; मूल (कंद) दूसरे दर्जेमें गरम और तर तथा **बीज** शीत एवं रूक्ष है।

गुणकर्म—**पत्र** बाह्यतः उपयोग करनेसे **श्वयथुविलयन, व्रणशोफपाचन** और **दारण** हैं तथा आंतरिक उपयोगसे **विरेचन** हैं। फूल अर्शोघ्न हैं। जड़ वाजीकरण और रक्तप्रसादन है। बीज ग्राही, उपशोषण और रक्तस्तंभन है।

उपयोग—फोड़े-फुंसियोंको विलीन करने तथा उनके **पाचन** और **दारण** के लिए अब्बासी पत्रको तेलसे चुपड़कर गरम करके बाँधते या पीसकर लेप करते हैं। कामला और जलोदरमें इसके पत्रकी भुजिया बनाकर दिनमें दो-तीन बार रोटीके साथ खिलाते हैं। इससे विरेक आकार रोगजनक दोष-नष्ट हो जाता है। फूलोंका चूर्ण अर्शमें खिलाते हैं। आमवात, फिरंग, कण्डू और कच्छूमें इसकी जड़का क्वाथ पिलाते हैं। वाजीकरणार्थ जड़का चूर्ण बनाकर खिलाते हैं। श्वेतप्रदर और असृग्दरमें इसके बीजोंका चूर्ण उपयोग कराते हैं। **अहितकर**–उष्ण प्रकृतिको। **निवारण**–मिश्री और ताजा दूध। **मात्रा**–जड़ ७ ग्रामसे ११·६ ग्राम (७ माशेसे १ तोला) तक; बीज और फूल ५ ग्रामसे ७ ग्राम (५ माशेसे ७ माशे) तक।

नव्यमत—मूल स्नेहन और कुछ-कुछ आनुलोमिक होता है, तथा पत्ती शीतल, वेदना-स्थापक और शोथहर होती है। शोथादिकी लाली और वेदनाको दूर करनेके लिये पत्ती पीसकर बाँधी जाती है।

●

(२१२) गुलचाँदनी

फैमिली : आपोसीनासे (Family : Apocynaceae)

नाम—(हिं०) चाँदनी, टेंगरी; (फा०) गुलचाँदनी; (बं०; म०; गु०; हिं०) त (ट) गर; (ले०) टाबेर्नेमोंटाना डीवारिकाटा **Tabernaemontana divaricata** (L.) R. Br. (**पर्याय**–*T. coronaria* Willd.; *Ervatania coronaria* Stapf.; *E. divaricata* (L.) Alston); (अं०) वैक्स फ्लॉवर प्लांट (Wax-flower Plant), सीलोन जैस्मीन (Ceylon Jasmine)। **वक्तव्य**–लेटिन तथा अंग्रेजी नाम इसके वृक्षके हैं। इसका व्यवहार-प्रचलित नाम 'चाँदनी' सम्भवतः इसके फारसी नाम पर आधारित है। गुलचाँदनी बाटिकाओं एवं मन्दिर आदिके पास सौन्दर्य एवं पुष्पोंके लिए लगाया जानेवाला मालियोंका सुपरिचित पौधा है। सम्भवतः इसके मालियोंमें प्रचलित नाम **'टेंगरी एवं (त)टगर'** प्रजातिक नाम (Tabernaemontana)के अपभ्रंशस्वरूप व्युत्पन्न हुए हैं। किन्तु यहाँ यह विशेष ज्ञातव्य है, कि **यह शास्त्रोक्त 'तगर' नहीं है,** और नहीं तगरके स्थानमें इसकी जड़का ग्रहण होना चाहिए।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्षमें उद्यानों एवं वाटिकाओंमें सौन्दर्य एवं पुष्पोंके लिए लगाया मिलता है। अनेक क्षेत्रोंमें स्वयंजात भी होने लगा है।

वर्णन—यह एक झाड़दार आदमीके कदके बराबर (६-८ फुट) ऊँचे **वृक्ष** का प्रसिद्ध फल है। **पत्र**–चिकना और चमकदार बहुत करके चर्मवत्, हरे, उत्तम सुदृश्य, ४-६ इंच लंबे और १–१½ इंच चौड़े; पत्रप्रांत तरंगीयत, पत्रवृंत १/४ से १/२ इंच, वृंताक्षकोण ग्रंथिल; पुष्पदंड १/२ इञ्च, पुष्पवृंत पतला, वृंतपत्र (Bracts) क्षुद्र; **पुष्प** सफेद, प्रायः दोहरा और सुगन्धित तथा रातमें खिलता है; **फली** १–३ इञ्च लंबी, विनाल या आधारपर एक प्रकारके नालरूपमें संकीर्णभून, फुलावसहित दीर्घाकार, चंचुयुक्त या चञ्चुरहित, त्रिपर्शुकायुक्त; **बीज** ३ से ६ दीर्घाकार धारीदार, एरिल (Aril) लाल और मांसल होता है। इसके समस्त अंगोंमें एक प्रकारका तिक्त दूध होता है। तगरके लिए दे० 'बालछड़'।

रासायनिक संगठन—इसके काण्ड एवं मूलत्वक्में भेषजगुणकर्मकी दृष्टिसे दो **सक्रिय ऐल्केलाइड्स टेबर्नेमान्टेनीन** (Taberaemontanine) एवं **कोरोनेरान** (Coronarine) पाये जाते हैं; तथा दूध (Latex)में राल एवं कुचूक (Caoutchouc) आदि पदार्थ होते हैं।

उपयुक्त अंग--पुष्प, मूल और दूध। **प्रकृति**–दिल्लीके हकीमोंके मतसे अनुष्णाशीत (मोतादिल); लखनऊके हकीमोंके मतसे दूसरे दर्जेमें शीतल एवं रुक्ष। **गुणकर्म**–मनःप्रसादकर, हृदयबलदायक, प्रमाथी, श्वयथुविलयन और मृदुविरेचन है। यह विशेषरूप से मनःप्रसादकर और दिलकी धड़कनको दूर करनेवाला है। **उपयोग**–इसका गुलकन्द उन्माद और दिलकी धड़कनमें खिलाया जाता है। इसे क्वाथ करनेसे इसका मार्दवकर वीर्य निर्बल और अन्य वीर्य बलवत्तर हो जाते हैं; परन्तु इसका निचोड़ हुआ स्वरस इसके विपरीत होता है। अन्त्रव्रणमें इसके काढ़ेमें बादामका तेल मिलाकर पिलानेसे उपकार होता है। पत्रस्वरस खटमलनाशक है। **खुलासतुल् इलाज**के मतसे ३ नग गुलचांदनीको प्रतिदिन बतासोंके साथ निरन्तर सप्ताहपर्यंत खानेसे हृदयदौर्बल्य और उष्ण हृत्स्पंदन आराम होता है। ऊल्वीखाँने दोनों की मात्रा ७-७ नग लिखी है। **अहितकर**–शीतल प्रकृतिको। **निवारण**–मिश्री, बतासा या चीनी। **मात्रा**–५ ग्राम से ७ ग्राम (५ से ७ माशे) तक।

नव्यमत—यह शीतल, ज्वरघ्न वेदनास्थापन, शामक, गर्भाशय-उत्तेजक और व्रणरोपण बतलाया गया है। प्रसूतिकामें मूलका लेप बहुत गुणकारक बतलाया जाता है।

◆

(२१३) गुलदाउदी

फैमिली : कॉम्पोजीटी (Family : Compositae)

नाम—(हिं०, बं०; गु०) गुलदाऊदी, गुलदाउ (वो)दी; (फा०) गुलेदाउदी; (सं०) शतपत्री; सेवंती; (द०) गुलचीनी; (म०) शेवंती–च–फूल; (ले०) क्रासान्थमुम् ईंडिकुम् (**Crysanthumum indicum**), पारेन्थ्रुम ईंडिकुम् (**Pyrenthrum indicum** DC.)।

उत्पत्तिस्थान—चीन और जापान। इसे भारतीय उद्यानोंमें बोते तथा घरोंमें गमलोंमें लगाते हैं।

वर्णन—यह लगभग १ मीटर (गजभर) ऊँचा एक क्षुप है। **पत्र** कपासके पत्रकी तरह और फूल सेवती (गुल नसरीन)के समान होते हैं। इससे बरंजासिफकी तरह सुगन्ध आती है। फूलके रंगके विचारसे यह तीन प्रकार का होता है, **पीला, सफेद** और **नीलापन लिये सफेद**। इनमें पीला सुलभ है। यह शरदृतुमें फूलता है।

रासायनिक संगठन—इसमें एक उत्पत् तेल (Essen. oil) क्रिसेन्थिमिन (Crysanthemin) नामक एक अर्धशुष्क तेल होता है।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें **गरम** और **खुश्क** है।

गुणकर्म—समस्त गुणकर्मोंमें यह **बरंजासिफके समीप है।** इसका सूँघना मस्तिष्कको उष्णताप्रद, **सौमनस्यजनन** और हृद्य है। आंतरिक उपयोग वातानुलोमन, मूत्रजनन, आर्तवजनन और बस्तिवृक्काश्मरीछेदन हैं। यह शोथोंको विलीन करता और व्रणोंको सुखाता है। **सौमनस्यजनन** और श्वयथुविलयन इसके प्रधान कर्म हैं। **उपयोग**-मनःप्रसादकरण और हृदयबलवर्धनके लिए गुलदाउदीका अर्क उपयोग किया जाता है। शीतल मस्तिष्क रोगोंमें इसका फूल सूँघनेसे उपकार होता है। बस्तिवृक्काश्मरी छेदन और मूत्रप्रवर्तनके लिए फूलोंका चूर्ण, क्वाथ तथा क्षुपकृतक्षार देते हैं। गर्भाशयकी कठोरता दूर करनेके लिए इसके काढ़ेसे कटिस्नान (आबज़न) कराते हैं। पीले गुलदाउदीको व्रणशोषणके लिए प्रलेप करते हैं। पीली गुलदाऊदी १ तोला, सौफ ३ माशे और सफेद जीरा १½ माशे इनको पकाकर मरहमकी भाँति गाढ़ा हो जानेपर लगानेसे कफज सूजन उतर जाती है। **अहितकर**–उष्ण प्रकृतिको। **निवारण**–गुलाबपुष्प और बरंजासिफ। **मात्रा**-५ ग्राम से ७ ग्राम (५ से ७ माशे) तक।

(२१४) गुलदुपहरिया

फ़ैमिली : स्टेर्कूलिआसे (Family : Sterculiaceae)

नाम—(हिं०) दुपहरिया, गुलदुपहरिया, गेजुलिया; (सं०) बन्धूक, बन्धुजीव, पुष्परक्त; (बं०) बांधुली, काटलाला; (पं०) गुलदुपहरिया; (पं०) तांबड़ीदुपारी; (ले०) **पेन्टापेटीस फ़ीनीसेआ (Pentapetes phoenicea** Linn.)।

उत्पत्तिस्थान—गुलदुपरिया उत्तरपश्चिम भारत, बंगाल, गुजरात आदिका देशज (Indigenous) पुष्पवृक्ष हो गया है। भारतवर्षके समस्त उष्णप्रधान प्रदेशमें वाटिकाओंमें लगाया जाता है।

वर्णन—यह एक १·२ से १·५ मीटर या ४-५ फुट ऊँचा वार्षिक पुष्पवृक्ष (क्षुप) है, जो बागोंमें लगाया जाता है। यह पावस ऋतुमें नम जमीनमें उत्पन्न होता है। **पत्र** लंबोतरे गोपुच्छाकार (सनोबरी) और कंगूरेदार होते हैं। **फूल** साधारणतः लाल (किरमिची-श्यामता लिए लाल) चमकदार, २ इंच लंबा और गुल्लालासे कुछ मिलता-जुलता होता है। सफेद, पीला और काला फूलका भी गुलदुपहरिया होता है। यह प्रायः दोपहरमें खिलता है; इसीलिए इसे **'गुलदुपहरिया'** कहते हैं। इसमें बारहो मास विशेषकर बरसातमें फूल लगते हैं। बोंड़ी (Capsule) लंबगोल, खुरखुरी, पंचकोष तथा पंचकपाट युक्त और लगभग स्थायी अन्तर्पुट चक्रके लगभग आधा लंबी, प्रत्येक फलकोषमें ८ से १० तक बीज होते हैं।

उपयुक्त अंग—फूल।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम और रूक्ष है।

गुण-कर्म—संग्राही, वातानुलोमन और द्रवाकर्षणकर्त्ता (जाज़िब रतूबात) विशेषतः अर्धावभेदकनाशक है।

उपयोग—अर्धावभेदकको नष्ट करनेके लिए इसके फूलोंका रस निकालकर रोगीकी नाकमें टपकानेसे द्रवका उत्सर्ग होकर रोग आराम हो जाता है। **अहितकर**–उष्ण प्रकृतिको। **निवारण**-कतीरा और मधु। **मात्रा**–किसी भी रोग में इसका आंतरिक उपयोग नहीं किया जाता है।

* * *

(२१५) गुलमेंहदी

फ़ैमिली : बाल्सामिनासे (Family : Balsaminaceae)

नाम—(हिं०; फा०) गुलमेंहदी; (बं०) दुपटी; (ले०) **ईम्पाटिएन्स बाल्सामिना** (**Impatiens balsamina** Linn.); (अं०) टच-मी-नॉट (Touch-me-not)।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष।

वर्णन—इसका **क्षुप** ४५ सें०मी० से ६७·५ सें०मी० (हाथ-ड़ेढ़ हाथ तक) ऊँचा और प्रियदर्शन होता है। **पत्र** बारीक, लंबे और कोमल होते हैं। **फूल** लाल, गुलाबी, नीला और सफेद इत्यादि नाना वर्णका होता है। **बीज** गोल, काले, बड़ी इलायचीके दानेकी तरह और एक छोटीसी थैलीके अन्दर कई दाने होते हैं। इसे प्रायः ग्रीष्मके अन्त और वर्षाके प्रारम्भमें बगीचोंमें बोते हैं। कहते हैं कि जंगलमें यह स्वयंजात भी होता है।

उपयुक्त अंग—**फूल**, कांड और शाखा तथा **बीज**।

प्रकृति—गरम और तर।

गुण-कर्म तथा उपयोग—यह वाजीकर, दीपनीय और दाहप्रशमन है। इसके फूलोंको मांसके साथ पकाकर खाया जाता और बाजीकर वर्णन किया जाता है। इसके कांड और शाखाओंको जलमें हलका जोश देनेके उपरांत सिरकामें डालकर अचार बनाते हैं। यह अत्यन्त स्वादिष्ट होता है। इसके बीजोंको बारीक पीसकर गुदभ्रंशमें अवचूर्णन करते हैं। इसके फूलों और पत्रका स्वरस जले हुए अंगका संताप और दाहशमन करनेके लिए लेप करते हैं। इसके अतिरिक्त कोई-कोई हकीम गुलमेंहदीको दीपन, बल्य और सौमनस्यजनन वर्णन करते हैं। **अहितकर**—स्निग्ध प्रकृतिको। **निवारण**—मांस और स्नेह। **मात्रा**—५ से ७ ग्राम (५ से ७ माशे) तक।

●

(२१६) गुललाला

फ़ैमिली : रानुन्कुलासे (Family : Ranunculaceae)

नाम—(हिं०) लाला, लालए नुअमानी; (अ०) शक़ीक़, शक़ायिक़, शक़ायिक़ुन्नुअ्मान्; (ले०) **आनेमोने ओब्टूसीफ़ोलिआ Anemone obtusifolia** D.Don); या **आनेमोने पुल्साटिल्ला** (**A. pulsatilla** Linn.) (अं०) वुड एनीमोन (Wood Anemone), विंड फ्लावर (Wind flower), पास्क फ्लावर (Pasque flower) पल्साटिल्ला (Pulsatilla)।

वक्तव्य—उत्तर भारतवर्ष और कश्मीरमें लाल पोस्ते (खशखश मन्सूर)को 'लाला', 'गुललाला' या 'गुल्लाला' कहते हैं। (दे० 'पोस्ता')। '**पल्सेटिल्ला**' पल्सेटाइल (Pulsatile = फड़फड़ाना, कंपित होना)से व्युत्पन्न है। यह वनस्पति सदा कंपित रहती है, इसलिए इसका यह नाम रखा गया है। '**एनीमोन**' यूनानी '**अनीमोस** (**Anemos** = वायु)से व्युत्पन्न है। यह वनस्पति खुली हुई वायु और स्थानमें उत्पन्न होती है। इसीलिए लेटिन और अंग्रेजीमें, क्रमशः इसे '**आनामोन**'और '**विंड फ्लावर**' कहते हैं। किसी-किसीके मतसे 'अनीमोन', 'नुअ्मान'का अपभ्रंश है। बसन्त (ईस्टर)ऋतुमें फूलनेसे इसे अंग्रेजीमें '**पास्क फ्लावर** (गुलईद)' कहते हैं। 'नुअ्मान बिन-गुञ्जर' शकायिक पुष्पको बहुत पसद करता था और इनको अपने महलके चतुर्दिक् लगवाया करता था; इसलिए अरबीमें इसका **शक़ायिक़ुन्नु-**

अमान' नाम पड़ गया। फूल लाल होनेके कारण फारसीमें इसका **'लाला' नाम** पड़ा जो शकायिकुन्नुअ्मान का पर्याय है। **दीसक़ूरीदूस** यूनानीने **'अनीमून** (Anemone)' नामसे इसका उल्लेख किया है।

उत्पत्तिस्थान—मध्य और उत्तरी यूरोप विशेषकर इंगलैंड, जरमनी, साइबेरिया और हिमालयके समशीतोष्ण उच्चतर भाग। गंजबादावर्दके मतसे इसकंदरियामें विपुल होने से इसके बीज वहींसे आते हैं।

वर्णन—यह एक वर्षायु क्षुद्र वनस्पति है। इसका तना सीधा होता है जिसके ऊपरी छोर पर एक प्यालानुमा फूल होता है। **पत्र** कोमल, रोंगटेदार, बल्कि समग्र क्षुप रोंगटेदार होता है। यह निर्गंध और चरपरा होता है। पत्र रोमश ३ से ५ इंच या अधिक लम्बा और २–३ इंच चौड़ा, द्विपक्षाकार (Bipinnate), पत्रक सम्मुखवर्ती, नीचे सवृंत (Stalked below), खंड त्रिशीर्षक और रेखाकार, नुकीला; पत्रदंड गोल, ऊर्ध्वपृष्टपर सकरी नालीयुक्त और आधार पर कुछ-कुछ बैगनीयुक्त; **फूल** बड़े, रक्तलोहित और कभी-कभी बनफ़शई (नीललोहित), बैंगनी कटोरीयुक्त, बाहरसे रोमश ओर रोमावृत्त पुच्छयुक्त होते हैं जो बारीक शाखाओंके सिरोंपर लगते हैं। इनके झड़ने पर डोंडा या **फल** (Carpel) लगता है जो पोस्तेके डोंड़ेसे बहुत छोटा होता है। ताजेपर इसका स्वाद चरपरा, दाहक एवं निर्गंध होता है। इसमें काले रंगके छोटे-छोटे गोल **बीज** भरे हुए होते हैं। ये स्वादमें चरपरे और कषाय होते हैं।

उद्यानज और **वन्य** भेदसे यह दो प्रकारका होता है। इनमें वन्य उद्यानजसे बड़ा होता है। इसके अनेक भेद हैं, यथा-**कोही, सहराई, नुअ्मानी, शक़ायिक़, दिलसोज़, खुदरव, ज़र्द, सफेद, अब्बासी** आदि।

वक्तव्य—ज़हीरुद्दीन मोहम्मद **बाबर बादशाहने वाक़भात-बाबरीमें** लिखा है कि लगभग पचास प्रकारके लाला काबुलके कतिपय जिलोंमें देखे गये हैं।

आवश्यक टिप्पणी—उम्दतुल्मुह्ताज और **पिजिश्कीनामाके** लेखकों जैसे बहुधा लेखकों एवं संकलनकर्त्ताओंने **पापावेर रूहीआस (Papaver rhoeas)**या रेडपॉपी (Red Poppy)को 'लाला' या 'शक़ाइक़नुअ्मान' लिखा है। परन्तु कतिपय डॉक्टरों, जैसे—डॉ० डाइमाक आदिने इसको **खशखशमंसूर** लिखा है। अस्तु, **मुहीतआजममें** भी खशखाश (पोस्ता)के वर्णनमें पोस्त (डोडा शकाइक़ुन्नुअ्मानके पोस्त (डोडा)से छोटा होता है, ऐसा लिखा है। चूँकि मेरे अभिमत में **पापावेर रहीआसका** कुल पोस्ता और अनीमून या शक़ाइक़ुन्नुअ्मानका वत्सनाभ है, अतएव इन दोनोंमें अवश्य अंतर होना चाहिये। फलतः मैं, डॉक्टर डाइमॉक़से सहमति रखते हुए **पापावेर रहीआसका समनार्थी खश्खाश मंसूर** ही समीचीन समझता हूँ।

इतिहास—हकीम दीसक़ूरीदूसने अनीमून (शक़ाइक़ुन्नुअ्मान)का उल्लेख किया है और **जालीनूसने** इसको आर्तवजनन, स्तन्यजनन और मूत्रजनन आदि लिखा है। साम्प्रत भी बहुधा इन्हीं गुणोंके लिए इसका उपयोग किया जाता है। ईसवी सन्की अठारहवीं शती के अन्तमें यूरोपमें इस औषधिका उपयोग बहुत कम हो गया है। परन्तु इसके कुछ कालोपरांत अमरीकामें **'पल्लाटिल्ला'**के नामसे अनीमूनके कई एक रोगोंमें लाभकारी होनेकी बहुत प्रशंसाकी गई और आजकल यह औषधि अमरीका व यूरोपमें एलोपैथी (प्रत्यनीक-चिकित्सा-डॉक्टरी) और विशेषकर समचिकित्सा (होमियोपैथी) दोनोंमें प्रयुक्त है।

इसलामी चिकित्सकोंने **शक़ायिक़ुन्नुअ्मानके** नामसे कई प्रकारके एनीमूनका वर्णन किया है। परन्तु उन्होंने इसके गुणकर्मवर्णनामें यूनानी चिकित्साविशारदोंका अनुसरण किया है। अस्तु, **मुहीत आज़ममें** भी 'शक़ाइक़ुन्नुअ्मान'के वर्णनके अन्तमें इसको आर्तवजनन, स्तन्यनजन और मूत्रजनन आदि लिखा है। अलबत्ता इतना अधिक लिखा है कि 'अखरोटत्वक् (पोस्त जौज़) आदिके साथ मिलाकर केशरंजनार्थ इसक खिजाब बनाया जाता है।'

संग्रहकाल और उपयुक्त अंग—जब यह फूलता है उस समय इसका संग्रह करते हैं। फूल, बीज और मूल प्रायः औषधके काम आते हैं। एक वर्षके बाद यह निर्वीर्य हो जाता है।

मिश्रण और उसकी परीक्षा—गंजबादावर्दके मतसे इसके बीजोंमें 'गासूल (उश्नान)'के बीज मिला देते हैं। इनमें भेद यह है कि शकायिकके बीज पोस्ताके दानेकी तरह स्वादमें चिकने और गोल होते हैं; परन्तु उनसे

छोटे एवं कुछ-कुछ लाल होते हैं। इसके समस्त बीज आकार और स्वरूपाकृतिमें एक समान होते हैं। उश्नानका बीज शकायिकके बीजसे बड़ा, सफेदी लिए पीला और किंचित् स्नेहास्वादयुक्त होता है। यह भी शीघ्र टूट जाता है। रंगके सिवाय इन दोनोंमें और कोई अन्तर नहीं है।

रासायनिक संगठन—इसमें **अनीमोनोल** (Anemonol) नामक पीले रंगका एक अत्यन्त कटुक (तीक्ष्ण) तेल होता है जो इसके क्षुपका अर्क परिस्रुत करनेसे प्राप्त होता है। यह जलकी उपस्थितिमें **अनीमोनिन** (Anemonin) अर्थात् **शक़ाक़ीन या पल्सांटिल्ला कैम्फर** (काफूर शफीफ)में परिणत हो जाता है।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें **गरम** और तीसरेमें **खुश्क**।

गुण-कर्म तथा उपयोग—बाहरी प्रयोग करनेसे गुलेलाला **लेखन, श्वथुविलयन** और **शोणितोत्क्लेशक** है। इसके लगानेसे त्वचामें दाह होने लगता है और कभी-कभी विस्फोट उत्पन्न हो जाता है। बालोंपर लगानेसे यह उनको काला और सुन्दर बनाता है। मुखमें रखकर चाबनेसे यह **लालाप्रसेकजनन** कर्म करता है। इसके रसका नस्य देनेसे नाकसे द्रवोत्सर्ग होता है। आंतरिक उपयोगसे यह **स्रोतोद्घाटक, दोषतारल्यजनन** और **रक्तप्रसादन** है तथा **मूत्रार्तवस्तन्यजनन, श्लेष्मनिःसारक, वेदनास्थापन** और **विकासी**कर्म करता है। परन्तु अधिक मात्रामें उपयोग करनेसे अन्त्रामाशयमें संक्षोभ (खराश) करनेके कारण यह विरेक और वमन कराता है। इसका प्रधान गुण रक्तस्तम्भन और किलासघ्न है। श्वयथुविलयनके लिए सूजन पर गुलेलालाका लेप लगाते हैं। लेखन और शोणितोत्क्लेशक होनेसे किलास, झाईं (बहक़), न्यच्छ (नमश) और दादपर तथा व्रणोंपर लेप करते या मरहमोंमें मिलाकर लगाते हैं। गुलेलालाको ताजा अखरोटके छिलकेके साथ कूटकर बाल काला करनेके लिए लगाते और अन्यान्य केशरंजन औषधों (खिजाबों)में डालते हैं। इसके बीजोंको आंतरिक रूपसे खिलानेसे किलास (बर्स) आराम हो जाता है। इसका रस निकालकर नाकमें टपकानेसे द्रवोत्सर्ग होकर मस्तिष्कका शोधन हो जाता है। यह अर्धावभेदक और पुरातन शिरःशूलको लाभ पहुँचाता है। नेत्रके जाला, फूला और धुंध नष्ट करनेके लिए इसका रस आँखमें आश्च्योतन करते हैं तथा प्रारम्भिक लिंगनाश (मोतियाबिंदु)में इसे बूँद-बूँद, नेत्रमें टपकाते हैं। कास, कुक्कुरकास और श्वासमें विकाशी और कफोत्सारि की भाँति इसे सातरके साथ पकाकर पिलाते हैं तथा आंतरिक अंगोंके दर्दोंको शमन करनेके लिए इसका उपयोग करते हैं। मूत्रार्तवप्रवर्तनके लिए इसको जौके भूसाके साथ पकाकर देते हैं। आर्तवप्रवर्तनके लिए इसके काढ़ेमें कपड़ा भिगोकर योनिमें रखते हैं। स्रोतोद्घाटक, दोषतारल्यजनन और रक्तप्रसादन होनेके कारण शीतला (जुद्री)को प्रगट करनेके लिए इसका काढ़ा पिलाते हैं। **अहितकर**—मस्तिष्कको। **निवारण**—सौंफ। **प्रतिनिधि**—कतिपय गुणकर्ममें पोस्तेका डोंड़ा (पोस्त खशखाश)। **मात्रा**—३ से ५ ग्राम (३ से ५ माशे) तक; बीज १ से ३ ग्राम (१ से ३ माशे) तक।

●

(२१७) गुलशब्बो

फ़ैमिली : आमारील्लीडासे (Family : Amaryllidaceae)

नाम—(हिं०;बम्ब०) गुलशब्बो (ब्बू), गुलचेरी; (फा०) शब्बू; (म०) गुलछड़ी; (बं०) रजनीगंधा; (पं०) गुलशब्बो; (ले०) **पोलिआन्थिस टूबेरोसा (Polyanthes tuberosa** Linn.); (अ०) टचुबरोज (Tuberose)।

वक्तव्य—गुलशब्बो एक विदेशागत (Exotic) फूलबनस्पति है। यह फारसी शब्द है, जिसका तात्पर्य "गुल = पुष्प; शब्ब = रात्रि = 'रजनीगन्धा' = (रातमें खिलापुष्प तीव्र सुगन्धियुक्त) है। **'रजनीगंधा'** गुलशब्बूका ही संस्कृत (तथा बंगला) रूपान्तर है। पुष्पवाहक दण्ड पत्तियोंके बीचसे छड़ीकी भाँति निकलता है। इसीसे इसे गुलछड़ी भी कहते हैं।

उत्पत्तिस्थान—मेक्सिकोका आदिवासी पौधा है। भारतवर्षके उष्णभागोंमें बगीचोंमें लगाया जाता है।

वर्णन—गुलशब्बोका गुल्म बहुवर्षायु अशाखी और प्रकांडरहित होता है। पत्र–प्याजके पत्रकी तरह अरोमश पर भीतरसे पोले नहीं होते तथा अरोमश, बहुत दलदार (गुदार एवं रसपूर्ण) होते हैं और प्याजके पत्तेकी तरह जड़से ही निकलते हैं। जड़-काँदाके समान गाँठ होती है। पूरे वर्षभर इसकी जड़ मिट्टीमें दबी रहती है; पत्ते सूख जाते हैं। आषाढ़के महीनेसे पत्र फूटकर और बीचमें एक छड़ी निकलकर सफेद रंगके फूल आते हैं। कलीमें सुगंध नहीं होती। रातमें खिला हुआ फूल खूब महकता है। इसीलिए इसको 'शब्बू (रजनीगंधा)' कहते हैं। फूल तुरही (नफीरी)की आकृतिका होता है। इसे बगीचा और घरोंमें लगाया जाता है। यह जंगली भी होता है। यह 'खेरी' और 'खजामा'से भिन्न है।

उपयुक्त अंग—पत्र, फूल और मूल।

प्रकृति—उद्यानज दूसरे दर्जेमें गरम और रूक्ष; जंगली तीसरे दर्जेमें गरम और रूक्ष है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—श्वयथुविलयन, वातानुलोमन, दोषतारल्यजनन, लेख, उपशोषण और हिक्कानाशक है। ३ तोले इसके हरेपत्रका स्वरस पीनेसे आर्तव एवं मूत्रका भली-भाँति प्रवर्तन होता है। इससे मृतगर्भका भी उत्सर्ग होता है। इसके ताजे पत्तोंको पीसकर योनिमें रखनेसे भी उक्त कार्य होता है। गुलरोगनकी भाँति इसके फूलोंसे तेल बनाते हैं। इसके पीनेसे मूत्र एवं आर्तवका प्रर्वतन होता तथा गर्भपात होता है। इसका अभ्यंग श्वयथुविलयन और नस्य मस्तिष्कके अवरोधोंका उद्घाटनकर्ता है। इसे बालों पर लगानेसे वे बढ़ते हैं। फूल सूँघनेसे मस्तिष्कगत सांद्र वायु और कफ विलीन होता है। इसके फूलोंका तेल कटिगत सुषुम्नाकेन्द्र पर लगानेसे खूब ध्वजोच्छ्राय होता है। संधिवात और गर्भाशयशोथमें इसके खानेसे उपकार होता है। जड़ आर्तवजनन, उत्क्लेशजनन और छर्दिजननके लिए सिद्ध भेषज है। जड़का काढ़ा दाँत पर लगानेसे शीतजन्य दंतशूल आराम होता है। प्लीहाशोथमें जड़को सिरकामें पीसकर लगाते हैं। इसके उक्त गुण-कर्मादि खेरीके समान हैं। **अहितकर**–उष्णप्रकृतिमें शिरःशूलजनक है। **निवारण**–गुलरोगन और सिरका।

नव्यमत—कंद मूत्रल एवं कफघ्न माना जाता है।

(२१८) गुलसेवती (सेवती)

फ़ैमिली : रोज़ासे (Family : Rosaceae)

नाम—(हि०) सफेद गुलाब, चैती गुलाब, सेवती (गुलाब); (अ०) वर्द अब्यज़, वर्दसीनी; (फा०) गुलसफेद, गुलमुश्की(कीं), गुलनसरीन, मुश्की वफादार, नस्तर (न), न(नि)सरीन, गुल अम्बरी; (सं०) शतपत्री, तरुणी; (क०) काशुर गुलाब; (म०) शेवती गुलाब; (बं०) श्वेत गुलाब; (पं०) गुल सेवती; (ले०) रोज़ा आल्बा (**Rosa alba** Linn); (अं०) इंडियन ह्वाइट रोज (Indian White Rose)।

वक्तव्य— गुलमुश्की'को लेटिनमें रोजा मॉस्काटास (**Rosa moschatas** Mill.) कहते हैं। दे० 'कूज़ा'।

उत्पत्तिस्थान—हिमालयके कश्मीर, गढ़वाल आदि प्रदेशमें जंगली (स्वयंजात) गुलाब होता है। भारतवर्षके अन्य प्रदेशोंमें लगाया जाता है।

वर्णन—सेवती गुलाबसे भिन्न और प्राचीन क्षुप है। इसका पौधा गुलाबके समान होता है। परन्तु फूल लाल होनेके स्थानमें पिलाई लिए सफेद होता है और यही औषधमें काम आता है। यह बागी (बुस्तानी-उद्यानज) और जंगली (स्वयंजात) भेदसे दो प्रकारका होता है–(१) गुल सफ़ेद बुस्तानी (वर्द अब्यज़); और (२) गुल सफ़ेद सहराई (वर्द अब्यज़ बर्री)।

कल्प—गुलकंद सेवती।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें **गरम** और **खुश्क** (रूक्ष) है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—हृदयबलदायक, हृत्स्पंदनहर और कोष्ठमृदुकर (सर) है। गुलसेबतीका गुलकंद और अर्क हृदयको उल्लसित और बलप्रदान करने तथा दिलकी धड़कन (खफक़ान) दूर करनेके लिए पुष्कल उपयोग किया जाता है। कतिपय औषधद्रव्यके साथ इसे फाण्टकी भाँति भी पिया जाता है। **अहितकर**–उष्णप्रकृतिवालोंको। **निवारण**–चमेलीका फूल। **मात्रा**–५ ग्राम से ७ ग्राम (५ माशे से ७ माशे) तक। इसका गुलकंद १२ ग्राम से २४ ग्राम (१ से २ तोले) तक।

आयुर्वेदीय मत—शतपत्री (गुलाब)के पुष्प तिक्त, कटु, शीतवीर्य, हृद्य, सारक, शुक्ल, लघु, वर्ण्य, पाचन तथा तीनों दोष और रक्तके विकारोंको दूर करनेवाले हैं। (भा० प्र०)।

नव्यमत—गुलाब शीतस्वभावी आनुलोमिक है। इससे दस्त साफ होता है, भूख लगती है, अन्न पचता है और शरीर पुष्ट होता है। बच्चों और गर्भिणी स्त्रियोंको गरमीके दिनोंमें इसका गुलकंद खानेको देते हैं। गुलकंद और अर्क गुलाबका अनुपानके रूपमें प्रयोग किया जाता है।

●

(२१९) गुलाब

फ़ैमिली : रोज़ासे (Family : Rosaceae)

नाम—पुष्प–(हिं०) गुलाबका फूल, (अ०) वर्द, वर्दे अहमर, वर्दुल् अहमर; (फा०) गुल, गुलेसुर्ख़, गुले गुलाब; (सं०) तरुणी; (बं०) गोलाप फूल; (म०) गुलाब चे फूल; (गु०) गुलाबि, गुलाबनु; (ता०) इराशा; (मल०) पन्नीरपु; (ले०) रोजा डैमासेना (**Rosa damascena** Miller.); (अं०) डमस्क रोज (Damask Rose), रोज (Rose)।

वक्तव्य—यद्यपि फारसी 'गुलाब' शब्दका योगार्थ–वास्तविक भाव (गुलपुष्प या गुलाबपुष्प; आब = जल) पुष्पजल (आबेगुल या अर्कगुलाब) है, तथापि उर्दू और हिंदीमें इससे 'गुलाबपुष्प (गुलेसुर्ख़)' का अर्थ ग्रहण होता है। फारसी 'गुल' से ही 'जुल' (गुलाबपुष्प) अरबी बनाया गया है।

इतिहास—रोज़ेज (विभिन्न प्रकारके गुलेवर्द) यूनानवासियोंको ज्ञात थे। प्रत्युत वह देवजानस और ज़ोहरा (शुक्र)के लिये पुनीत माने जाते थे। प्राचीन रोमवासियोंमें 'रोसालिया (Rosalia)'के नामसे मालियोंका मेला हुआ करता था। प्राचीनकालमें गुलाब (गुलेसुर्ख़) पूर्व और पश्चिम में कतिपय अनोखे सौर्य भ्रमों (ताह्मभात)का हेतूभूत हुआ है। सुतरां गुलबकावलीकी कथा इसका उत्कृष्टतम दृष्टान्त है। प्राचीन यूनानी, रूमी और मुसलमान चिकित्साविदोंने गुलाबघटित प्रायः योग और उनके वैद्यकीय उपयोगोंका उल्लेख किया है। यथा–गुलकंद, गुलाब, गुलंगबीन (मधुघटित गुलकंद), दुह्नुल्वर्दख़ाम एवं क्वाथ (मत्बूख़) और इत्रगुल आदि, ये सब पुरातन योग हैं। अलबत्ता अधुना इनके घटक एवं कल्पनाविधिमें कुछ अन्तर आ गया है।

हकीम **दीसक़ूरीदूस** यूनानीने गुलाबकी पंखड़ियोंके ग्राही गुणका उल्लेख किया है और इनकी भस्मका गण्डूषोंमें प्रयोग बतलाया है। उन्होंने गुलाबके फूलसे जीरे (ज़रेवर्द)का प्रयोग भी लिखा है। **जालीनूस** और **शैख़** तथा कानूनके भाष्यकार आदिने गुलावके विषयमें जो कुछ लिखा है, उसके विवरण स्थानाभावके कारण यहाँ अनपे-

क्षित हैं। इच्छा होनेपर क़ानूनमें अथवा कमसे कम मुहीत आज़ममें उन विचारोंका अध्ययन कर सकते हैं। और अर्क हृदयको उल्लसित और बलप्रदान करने तथा दिलकी धड़कन (ख़फ़क़ान) दूर करनेके लिए पुष्कल उपयोग किया जाता है। इससे खींचा हुआ अर्क़ भी उक्त रोगोंमें प्रयुक्त होता है। कतिपय औषधद्रव्योंके साथ इसे फांटकी भाँति भी पिलाया जाता है। **अहितकर**–उष्ण प्रकृतिवालोंको। **निवारण**–चमेलीका फूल। **मात्रा**–५ से ७ माशे तक। इसका गुलकंद १२ ग्राम से २४ ग्राम (१ से २ तोले) तक।

गुलाबकेसर—

नाम। गुलाबकेसर—(हिं०) गुलाबका जीरा; (अ०) ज़रेवर्द; (फा०) ज़ीरए गुल, तुख़्मे गुल; (अं०) रोज स्टेमेंस (Rose stamens), रोज-सीड्स (Rose seeds)।

वक्तव्य—यद्यपि 'ज़रेवर्द' का अर्थ किसी-किसीने 'गुलाबका फल' या 'गुलाबकी कली' लिखा है, तथापि हकीम और औषधविक्रेतागण इसका प्रयोग उन दोनोंके अर्थमें करते हैं जो गुलाबके फूलके अन्दर पीले रंगके होते हैं। ये उद्यानज लालगुलाबके केसर (पुष्पलिंग Stamens) हैं।

फल—(हिं०) गुलाबका फल; (अ०) दलीक, समरुल्वर्द; (फा०) समरे गुल।

वक्तव्य—अरबीमें 'दलीक़' जंगली गुलाब (**Rosa canina**)के फलको कहते हैं।

उत्पत्तिस्थान—इसका मूल उत्पत्तिस्थान सीरिया है; परन्तु अब यह सम्पूर्ण भारतवर्ष (और ईरान)के बगीचोंमें लगाया जाता है।

वर्णन—यह एक प्रसिद्ध झाड़दार कँटीले क्षुपका प्रसिद्ध सुन्दर एवं सुगन्धित पुष्प है जो हलके लाल (गुलाबी)रंगका होता है। यह स्वादमें तिक्त, चरपरा, कषाय और किंतिन्मधुर है। परन्तु रखे हुए (शुष्क) पुष्पमें कटुत्व कम हो जाता है। इसलिए ताजा सारक है और शुष्क सारक नहीं है। इसके पीले पुष्पलिंग (जीरे)को अरबीमें 'ज़रेवर्द' और फारसीमें 'ज़ीरएगुल'कहते हैं। प्राचीनोंने इसे बीज (तुख़्मे गुल) लिखा है। फल जैतूनके फलकी तरह, अण्डाकार, मांसल (गुदार), खोखला, ताजे (पकने)पर गहरा लाल, सूखनेपर कालाईलिए, शीर्षपर पुष्प-बाह्यकोषके दन्तों (Calyx teeth)के अवशेषोंसे युक्त; बीज कोणयुक्त कुछ-कुछ सफेद घनरोमावृत्त; फलको अरबीमें **समरुल्वर्द** (समरेगुल-गुलाबफल) कहते हैं। इसका स्वाद कुछ-कुछ मिठास लिए और खट्टा (किंचिन्मधुर और कषाय) होता है। पका फल औषधमें प्रयुक्त होता है। उद्यानज और वन्य भेदसे गुलाब दो प्रकारका होता है। **भेद**–(१) लाल उद्यानज गुलाब (**वर्दुल् अहमर बुस्तानी**–गुलेसुर्ख़ बुस्तानी)–यह अत्यन्त सुगन्धित होता है। इसीका वर्णन यहाँ हो रहा है। यह शरद्के अंत (चैत-बैसाख)में फूलता है; इसलिए इसे **फसली (मौसमी)** कहते हैं। यूनानी वैद्यकमें इसीके फूल और केसर (ज़रेवर्द) काममें लिए जाते हैं। मात्र 'वर्द' और 'गुल'से इसीके फूल विवक्षित होते हैं। (२) लाल वन्य गुलाब (**वर्दुल् अमहर बर्री, गुलेसुर्ख़ सहराई**) यह जंगली लाल गुलाब (**Rosa canina** Linn.) है। इसे अंग्रेजीमें डॉगरोज कहते हैं। इसीके फलको अरबीमें 'दलांक' कहते हैं। हिमालयके कश्मीर, गढ़वाल आदि प्रदेशोंमें जंगली (स्वयंजात) गुलाब होता है। उसमें गुलाबी रंगकी ५ पंखड़ियाँ होती हैं। बागोंमें गुलाब लगाया जाता है। उसमें अधिक पंखड़ियाँ होती हैं। (३) **सेवती** या सफेद गुलाब (वर्द अब्यज़्–गुलसफेद बुस्तानी)। (४) **जंगली सेवती** (वर्द अब्यज़ बर्री–गुल सफ़ेद सहराई)। गुलाबकी इस जातिके फूल पीताभ श्वेत रंगके होते हैं। इन दोनोंका वर्णन 'गुलसेवती'में देखें। (५) **पीली बागी सेवती** (**वर्द अस्फ़र बुस्तानी–गुलज़र्द बुस्तानी**)। (६) **पीली जंगली सेवती** (**वर्द अस्फ़र बर्री—गुलज़र्द बर्री**)। (७) गुलेराना (वर्दुल् हमाक–हिमार)–एक प्रकारका जंगली गुलाब जिसकी पंखड़ियाँ बाहरसे पीली और भीतरसे लाल वर्णन की गई हैं। (८) **सदा गुलाब** जिसे गुलकूजा (**Rosa pubescens**) भी कहते हैं (दे० 'कूजा')। सदा फूलनेसे इसे 'बारहमासी' भी कहते हैं। (९) **हजारा गुलाब**–तरुणी या शतपत्री (**वर्द मुज़ाअफ़-गुलसदबर्ग**) जिसका फूल गुलाबी आधारकी ओर कुछ-कुछ सफेद होता

है। इसे अंग्रेजीमें पेल या केबैज रोज (**Pale or cabbage rose**) तथा हंड्रेड-लीव्ह्ड रोज (Hundred-leaved rose) और लैटिनमें 'रोजा सेन्टिफ़ोलिआ (**Rosa centifolia**)' कहते हैं। फ्रांसमें यह अर्क गुलाब चुआनेके काममें आता है। हिमालयके कश्मीर, गढ़वाल आदि प्रदेशमें यह जंगली (स्वयंजात) होता है। आयुर्वेदमें इसे शीतवीर्य (भा० प्र०) लिखा है। इनमें बारहमासी उत्तम नहीं होता और सफेद भेद निर्बल है। अकबराबादी सर्वोत्तम होता है। इसके बाद पेशावरी, फिर कशमीरी। फूलके रंगके विचारसे गुलाब अनेक जातिका और नवीन है अर्थात् पहिले भारतवर्षमें नहीं होता था।

संग्रहकाल—सिराजुल्वहाज के अनुसार गुलाबके फूल वृक्षसे उस समय तोड़े, जब तक उसके अंदरका जीरा (ज़रे वर्द) फटे नहीं। औषधके लिये वसंतऋतुमें उत्पन्न (मौसमी), छायामें सुखाई हुई पुष्पोंकी अविकसित कलिकाएँ ली जाती हैं। औषधप्रयोगमें सेवती और गुलाब को लेना चाहिये।

रासायनिक संगठन—इसमें (१) गुलाबपुष्पसार–रोग़न गुल या इत्रगुल (ऑलियम् रोज़ी), (२) टैनिक एसिड (कषायाम्ल), और (३) मायाफलाम्ल (गैलिक एसिड) ये तीन उपादन होते हैं। फलसे बनाये गये शर्बतमें इन्वर्ट शूकर, निम्ब्वम्ल, मेवाम्ल और ०·४–१·० प्रतिशत ऐस्कॉर्बिक एसिड (जीवतिक्ति 'सी') पुष्कल प्रमाणमें होता है। शिशुओंको जीवतिक्ति 'सी'की हीनतामें इसका उपयोग करते हैं। **उपयुक्त अंग**–खिले हुए फूल विशेषतः कली, गुलाबका जीरा (ज़रेवर्द) और गुलाब फल।

कल्प तथा योग (१) अर्क—(हिं०) अर्क गुलाब, अर्क बहार, गुलाबजल; (अ०) माउल्वर्द; (फा०) गुलाब, अर्क गुलेसुर्ख़; (ले०) एक्वा रोजी (Aqua Rosae); (अं०) रोज-वाटर (Rose Water); (२) पुष्पखंड (अ०) वर्द मुरब्बा; (फा०) गुलकंद, गुलशकर; (अं०) कन्फेक्शन ऑफ रोजेज (Confection of Roses)। इसके भेद–गुलकंद आफ़्ताबी, गुलकंद माहताबी, गुलकंद आबी, गुलकंद सेवती (गुलसेवती)। (३) पुष्पमधु (अ०) जुलंजबीन; (फा०) गुलंगबीन, गुलकंद असली। (४) गुलाबपुष्पसार या इत्र (हिं०) गुलाबका इतर या अतर; (अ) इत्रुल्वर्द, इत्रुल्वर्दुल् अहमर; (फा०) इत्र गुलाब, इत्रेगुलेसुर्ख़; (अं०) अट्टर या अट्र ऑफ रोजेज (Attar or Utr of Roses), ओट्टो ऑफ रोजेज (Otto of Roses)। (५) गुलाब का तेल (अ०) दुह्नुल्वर्द; (फा०) राग़नगुल; (ले०) ऑलियम् रोजी (Oleum Rosae); (अं०) रोज ऑइल (Rose Oil), ऑइल या ओट्टो ऑफ रोजेज (Oil or Otto of Roses)।

वक्तव्य—गुलाबके ताजे फूलोंको तिल या ज़ैतूनके तेलमें डालकर शीशेमें करके धूपमें रख देते हैं। जब फूलोंका रंग बदल जाता है तब तेलको छानकर उसमें दोबारा ताजे फूल डाल देते हैं। इसी तरह सातबार करनेके उपरांत उसे छानकर रख छोड़ते हैं। यह रोग़न गुल (दुह्नुल्वर्द) है। यह तेज धूपमें २० दिनमें और शरदऋतुमें ४० दिन में तैयार होता है। इसे दुह्नुल्वर्द ख़ाम (रोग़नेगुल ख़ाम या रोग़ने गुल आफ़्ताबी) कहते हैं। यह एक वर्षके उपरांत बिगड़ जाता है। कभी धूपमें रखनेके स्थानमें इसे अग्नि पर पकाकर तैयार करते हैं अर्थात् अर्क गुलाब या गुलाबके फूलोंको तिल या जैतूनके तेलमें इतना पकाते हैं कि तेलमात्र शेष रह जाता है। तब इसे अग्निसे उतारकर छान लेते हैं। इसे दुहनुल् वर्द मत्बूख़ (रोग़नेगुल मत्बूख़ या रोग़नेगुल आतशी) कहते हैं। शेष अर्क और गुलकन्द इत्यादिकी परिभाषा और कल्पनाविधि ग्रन्थके यूनानी द्रव्य गुण विज्ञान पूर्वार्ध भेषजकल्पनाखण्डमें दी गई हैं। अस्तु वहीं देखें। (६) क़ुर्स वर्द (गुल); (७) शर्बत वर्द; जंगली या गुलाबके अन्य भेदोंके फल (Hips)से एक प्रकारका शर्बत बनाया जाता है। वि० दे० 'रासायनिक संगठन'।

गुण-कर्म तथा उपयोग

गुलाबके फूल—

प्रकृति—यह संमिश्रवीर्य (मुरक्क़िबुल्क़ुवा) है, क्योकि इसमें सूक्ष्म उष्णवीर्य और स्थूल शीतवीर्य यह दो परस्परविरोधी वीर्य वर्तमान हैं। उष्णता शीतलतासे अधिक है। प्रायः हकीमोंके समीप यह पहले दर्जेमें शीत और दूसरेमें खुश्क है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—यह मनःप्रसादकर, बल्य, उत्तमांगोंको बलप्रद, अन्त्रामाशयको बलप्रद (दीपन), दस्त लाता और कब्ज पैदा करता, विशेषतः शुष्क गुलाबपुष्प संग्राही, पित्तकी तीक्षणताको शान्त करता, शरीरके स्वेदको सुगंधित बनाता और उसकी अधिकताको रोकता है। बारीक पीसकर अवचूर्णन करनेसे यह व्रणोंको सुखाता है। इसका प्रधान कर्म सौमनस्यजनन, श्वयथुविलयन और अवरुद्धदोषोत्सर्गकरण है। गुलाबका ताजा फूल सूँघना मनःप्रसादकर, हृद्य और मेध्य (हृदयमस्तिष्क बलदायक) है; परन्तु दुर्बल व्यक्तियोंमें इससे प्रसेक और प्रतिश्यायको उत्तेजना प्राप्त होती है। इसका रस नेत्रमें डालनेसे उष्ण नेत्राभिष्यंद और कानमें डालनेसे उष्ण कर्णशूल आराम होता है। शिरःशूलमें इसको जलमें पीसकर मस्तक पर लेप करते हैं। विलीनीकरण वीर्यके अतिरिक्त इसमें संग्राही वीर्य और सुगन्धित (इत्रिय्यत) है। अतएव यकृच्छोथमें इसे लेपोंमें योजित करके उपयोग करते हैं। दाँतोंको मजबूत करने और दंतशूलनिवारण करनेके लिए इसके काढ़ेका गण्डूष कराते तथा इसे दंतमंजनोंमें डालकर दाँतों पर मलते हैं। शुष्क फूलोंको बारीक पीसकर मुखपाकमें अवचूर्णन करते हैं। आंतरिक रूपसे गरम हृत्स्पंदन, मूर्च्छा और हृदयदौर्बल्यको दूर करने तथा यकृत् और अन्त्रामाशयको शक्ति देनेके लिए इसका उपयोग करते हैं। गरम दस्तोंको तथा पेचिस और रक्तष्ठीवनको बन्द करनेके लिए इसे खिलाते हैं। स्वेदाधिकताको रोकने और दुर्गंधस्वेदताको नष्ट करनेके लिए इसको बारीक पीसकर शरीरपर मलते हैं। अहितकर—वाजीकरण (काम)के लिए। निवारण—अनीसूँ और हब्बुज़्ज़ुल्म। प्रतिनिधि—बनफ़्शा और मर्ज़ञ्जोश। मात्रा—५ ग्रामसे ७ ग्राम (५ माशेसे ७ माशे) तक।

अर्क गुलाब—

प्रकृति—सर्दीके लिए संमिश्रवीर्य है; किन्तु थोड़ी-सी गरमीसे खाली नहीं है। गुण-कर्म तथा उपयोग—सौमनस्यजनन और हृदयमस्तिष्क बलवर्धन है। धड़कन और मूर्च्छाको नष्ट करनेके लिए इसका उपयोग किया जाता है। निवारण—अर्क़ नीलूफ़र, मिश्री और खाँड़। मात्रा—६$\frac{३}{४}$ तोले तक।

गुलकंद (गुलंगबीन)—

प्रकृति—पहले दर्जेमें तर और दूसरेमें गरम है। गुण-कर्म तथा उपयोग—सौमनस्यजनन हृदयमस्तिष्क-बलवर्धन और क़ब्ज़ निवारणके लिए इसका उपयोग होता है। यह बल्य और बृंहण माना जाता है। मात्रा ४६ ग्राम (४ तोले) तक।

गुलाबका जीरा (ज़रेवर्द) और फल—

प्रकृति—जीरा दूसरे दर्जेमें गरम और खुश्क (फल दूसरे दर्जेमें शीत एवं खुश्क) है। गुण-कर्म तथा उपयोग—मांसतंतुसांग्राहिक, दीपन, रक्तस्रुतिको रोकनेवाला और उपशोषण है। इसका प्रधान गुण अतिसारघ्न है। संग्राही होनेके कारण अन्त्रामाशयातिसारमें यह स्वतन्त्र या योगोंमें प्रयुक्त होता है; रक्तष्ठीवन और हर प्रकारके रक्तस्रावके लिए उपयोग किया जाता है। उपशोषण और मांसतंतुसांग्राहिक होनेके कारण गर्भाशयस्थ द्रवोंको शुष्क करके तथा गर्भाशय आदिके मांततंतुओंको सिकोड़कर गर्भाशयको दृढ़ एवं संकुचित कर देता है। उक्त प्रयोजनके लिए यह पिचुवर्तिकाकी भाँति उपयोग किया जाता है। अहितकर—फुफ्फुसको। निवारण—कतीरा और गोंद। मात्रा—१ ग्रामसे २-३ ग्राम (१से २-३ माशे) तक।

गुलरोग़न (रोग़नगुल)—

प्रकृति—गुलाबका वीर्य प्राप्त होनेसे संमिश्रवीर्य (मुरक्क़िबुल्क़ुवा) है।

गुण-कर्म—यह मस्तिष्क बलदायक (मेध्य), अनिद्रांतक, दोषविलोमकर्ता, श्वयथुविलयन, संग्राही तथा दर्दोंको शान्त करनेवाला है। आंतरिक उपयोगसे यह विरेचन और संग्राही कर्म करता है तथा आंतरिक दर्दोंको शमन करता है। यह अन्त्रामाशयका दाह मिटाता और उनके व्रणोंको ठीक करता है।

उपयोग—गुलरोग़न, अर्क़गुलाब और सिरकामें कपड़ा भिगोकर सन्निपात (सरसाम) रोगमें सिरपर रखते हैं। मस्तिष्कको बल देनेके लिए इसे सिर पर लगाते हैं और कर्णशूल निवारणके लिए कानमें डालते हैं। अधिक चूना खानेसे मुखमें जो व्रण हो जाते हैं उनको नष्ट करनेके लिए तथा दंतशूल निवारणके लिए इसका कवल कराते हैं। अग्निसे जले हुए अंगोंको शान्ति देनेके लिए अग्निदग्धावयव पर लगाते हैं। अन्त्रामाशयव्रण, पेचिस और मरोड़में इसका आंतरिक उपयोग कराते हैं। अहितकर–काम (बाह)के लिए। निवारण–मीठे बादामका तेल। प्रतिनिधि–रोग़न बनफ़्शा। मात्रा–७ ग्रामसे ११.६ (१२) ग्राम (७माशेसे १ तोला) तक।

●

(२२०) गुलाबजामुन

फ़ैमिली : मीर्टासे (Family : Myrtaceae.)

नाम—(हि०) गुलाबजामुन; (बं०) गुलाबजांब; (ले०) सीज़ीजिडम् जाम्बोस (**Sygygium jambos** Linn.) Alst. (पर्याय–एउजेनिआ जाम्बोस (**Engenia jambos** Linn.); (अं०) रोज़एपल (Rose Apple)।

उत्पत्तिस्थान—पूर्वी भारतीय द्वीप का मूलनिवासी है। अधुना भारतीय बगीचोंमें विशेषतः आसाम, बंगाल और सिक्किम को तराईमें लगाया जाता है।

वर्णन—इसका वृक्ष जामुनके वृक्षसे छोटा होता है। इसकी शाखायें बिखरी हुई होती हैं। पत्र भी जामुनके पत्रसे छोटे, हरे और चमकीले होते हैं। गरमीके अन्तमें और बरसातके आरम्भ में इसमें फल लगते हैं। फल नासपातीकी तरह और आकारमें नीबूके बराबर, पर कुछ चपटा होता है। इसमें गुलाब जैसी सुगन्ध आती है। स्वाद ऐसा होता है, मानो अर्कगुलाबमें भिगोया हुआ और मधुर एवं रसदार हो। फलमें १ से ३ तक खाकी गोल बीज निकलते हैं जो परस्पर चिपके होते हैं। इनको तोड़नेपर अन्दरसे हरा मग्ज निकलता है। फलोंको परिस्रुत करनेपर उत्तम 'अर्कगुलाब' प्राप्त किया जा सकता है।

रासायनिक संगठन—पत्र और छालमें जम्ब्रोसीन (Jambosine) नामक ऐल्केलॉइड होता है। इसके अतिरिक्त एक ओलियोरेजिन तथा टैनिन आदि द्रव्य भी पाये जाते हैं।

उपयुक्त अंग—फल और बीजकी गिरी।

प्रकृति—शीतलता और रूक्षता लिए हुये मोतदिल।

गुणकर्म—यह सौमनस्यजनन है और हृदय, मस्तिष्क, यकृत् तथा आमाशयको बल प्रदान करता है। परन्तु अधिक प्रमाणमें खानेसे यह आनाह उत्पन्न करता है। इसके बोजोंका मग़ज़ संग्राही और दोषविलोमकर्ता है। इसका प्रधानगुण वाजीकर और संग्रही है।

उपयोग—गुलाबजामुन एक मेवाकी भांति खाया जाता है। इसके बीजोंके मग्जका चूर्ण दस्त बन्दकरनेके लिये खिलाते हैं। मिश्री और किंचित् सोंठके साठ चूर्ण बनाकर शुक्रप्रमेहमें उपयोग कराते हैं। अहितकर–चिरपाकी और आनाहकारक। निवारण–कालीमिर्च और दारचीनी। प्रतिनिधि–सेब। मात्रा–बीज का मग्ज ३ से ५ ग्राम (३ से ५ माशे) तक।

●

(२२१) गूमा

फ़ैमिली : लाबिआटी (Family : Labiatae)

नाम—(हिं०) गूम (-मा,-मां), गोम; (सं०) द्रोणपुष्पी; फलेपुष्पा, कुतुम्बक (च०;सु०); (बं०) घल्घसे, दण्ड-कलस; (कु०) उधनफूला; (म०) तुंबा, कुंभा, देवकुंभा; (गु०) कूब्रो; (मा०) दड़घल; (ले०) **लेउकास सेफ़ालोटीस** (**Leucas cephalotes**) Roth. (Spreng.)।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष (कश्मीर, पंजाब, बंगाल, आसाम, हिमाचल प्रदेश, राजस्थान, काठियावाड़ , गुजरात एवं मद्रास स्टेटमें वर्षामें इसके पौधे होते हैं।

वर्णन—गूमा वर्षाऋतुमें सर्वत्र भारतवर्षके मैदानोंमें विशेषतः हलकृष्ट क्षेत्रोंमें भदईके साथ विपुल होता हैं। यह एक वर्षायु २२.५ से० मी० से ४५ सें० मो० (एक बित्तासे आध गज ऊँचा) सीधा या छत्तादार क्षुद्र क्षुप है। काण्ड चोकोर, दृढ़, खुरखुरा या रोंगटेदार; पत्र २·५ से ७·५ सें० मी० (१–३ इंच) लम्बा, रेखाकार या लम्ब कुण्ठिताग्र, पुष्पके प्रत्येक स्तरमें आमने-सामने दो-दो पत्रविन्यास होते हैं। पत्रप्रान्त पूर्णधार या गोल दन्तमयधार, मर्दन करनेपर विचित्र तीव्रगन्धयुक्त होता हैं। पुष्प बहुत बड़ा; शाखांत, गोलचक्राकार (अन्य भेदमें अन्तिम और अक्षकोणीय), वृन्तपत्र लम्बे, रेखाकार; पुष्प शरद् ऋतुमें फूलते हैं। गरमीमें क्षुप शुष्क हो जाता है।

रासायनिक संगठन—इसमें अल्प प्रमाणमें एक उत्पत् तेल और एक क्षारोद (ऐल्केलॉइड) होता है।

उपयुक्त अंग—पत्र, पुष्प और पञ्चांग।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम क्षौर खुश्क; आयुर्वेदमतसे उष्णवीर्य (रा० नि०)।

गुण-कर्म तथा उपयोग—श्वयथुविलयन, उदरकृमिनाशन, अर्श, कामला एवं कफज्वरनाशक तथा विषघ्न है। जीर्ण कफज्वरमें और उदरकृमियोंको मारने तथा निकालनेके लिए इसका काढ़ा पिलाते हैं। सूजन उतारनेके लिए इसको जलमें उबालकर और कुचलकर बाँधते हैं। सभी प्रकारके प्राणिज और वानस्पतिक विषोंमें इसको पीसकर पिलाते हैं। यह अर्शमें लाभकारी है। इसके पञ्चांगका रस नेत्रमें लगानेसे कामला आराम हो जाता है। **अहितकर**–उष्ण प्रकृतिको। **निवारण**–कालीमिर्च, मधु और अदरक। **प्रतिनिधि**–भँगरा। **मात्रा**– ३ से ५ ग्राम (३ से ५ माशा)।

आयुर्वेदीय मत—गूमा कटु, उष्णवीर्य, रुचिकर तथा वात, कफ, अग्निमान्द्य कामला और ज्वरको दूर करनेवाला है। (च० सू० अ० २७; सु० सू० अ० ४६; रा० नि०)।

नव्यमत—गूमा उष्ण, स्वेदजनन, वातप्रशमन, स्रंसन और कफघ्न है। कफज्वरमें गूमाका स्वरस शुद्ध टंकण और मधु मिलाकर देते हैं। आध्मान और पेटके दर्दमें स्वरस पिलाते हैं। सर्दीके सिरदर्दमें इसके स्वरस का नस्य देते हैं।

●

(२२२) गूलर

फ़ैमिलो : मोरासे : (Family : Moraceae)

नाम—(हिं०) **गुल्लर**, गूलर, ऊमर; (अ०) जम्मैज़, तीनुल्-अहमक़; (फा०) अंजीरे आदम, अंजोरे अहमक़, समरे-पश्शः (जंतुफल); (सं०) उदुम्बर, जन्तुफल; (बं०) यज्ञडुमुर; (म०) उंबर, (गु०) उंबरो, उमरडो; (ले०) **फ़ीकुस् ग्लोमेराटा Ficus glomerata** Roxb. (**पर्याय**–*F. racemosa* Linn.); (अं०) दी गूलर फिग् या कन्ट्री फिग् (The Gular Fig or Country Fig), ग्लोमरस फिग् (Glomerus Fig)।

वक्तव्य—यूनानी हकीम जिस गूलरका उपयोग करते थे, उसे यूनानी और अरबीमें क्रमशः 'सुक़ोमोरोस' और 'जम्मैज़' और लैटिनमें 'फीकुस सीकोमोरुस' (**Ficus sycomorus** Linn.) कहते हैं। मिस्रमें उन्हीं प्रयोजनोंके लिए अब भी इसका उपयोग किया जाता है। भारतीय मुसलमान हकीम उसकी जगह गूलर (**Ficus glomerata**)का प्रयोग करते हैं। दोनों गुणकर्म और स्वभावमें प्रायः समान हैं।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष विशेषतः बंगाल, मध्य भारतवर्ष, आसाम, ब्रह्मा और दक्षिण भारतवर्षमें इसके वृक्ष होते हैं।

वर्णन—यह पीपल और बरगदकी जातिका एक बड़ा और मोटा प्रसिद्ध पेड़ है, जो ६ से ९ मीटर (२०-३० फुट) ऊँचा होता है। शाखायें घनी होती हैं। कांड 'सितवल्कल' और खुरदरा होता है। पत्र—एकांतर, सवृंत, चौड़ा या लंबभालाकार, दोनों छोरोंकी ओर समानरूपसे क्रमशः कमचौड़ा (Tapering), अखंड, अतिसूक्ष्म त्रिनाडीयुक्त, उभय पृष्ठ मसृण; पुष्पव्यूह संयुक्त या सदण्डिक (Panicled), कांड या बड़ी शाखाओंपर लगे होते हैं। फल सवृंत, लगभग साधारण अंजीर जैसा बड़ा और आकृतिमें सर्वथा उसीके समान और कोमल रोइयोंसे घनावृत और पकनेपर लाल और स्वादमें मीठा होता है।

वक्तव्य—अश्वत्थवर्गके और पेड़ोंके समान इसके फूल और फल भी बहुत सूक्ष्म होते हैं। ये नीचेसे चौड़ी और नीचेसे ऊपरकी ओर गोलाई ली हुई (कोष्ठाकृति अर्थात् शून्यगर्भ वर्तुलाकार) कर्णिका अथवा पुष्पाधारपर स्थित होते हैं। इस कर्णिका या पुष्पाधारको ही इसका फल समझा जाता है। परन्तु वास्तवमें तो इसके फूल और फल इन कर्णिकाओंके अन्दर सूक्ष्मरूपमें (बंद) रहते हैं। पुष्प और फल दोनों सूक्ष्म होनेसे तथा कर्णिका द्वारा आच्छादित होने (ढके रहने)के कारण बाहरसे दिखते नहीं; इसीलिए इसे 'अदृश्य' (गुह्य) पुष्प' कहते हैं। पुंपुष्प और स्त्रीपुष्पके अलग-अलग कोष होते हैं। गर्भाधान कीड़ोंके सहायतासे होता है। पुंकेसरकी वृद्धिके साथ-साथ एक प्रकारके कीड़ोंकी उत्पत्ति होती है जो पुंपरागको गर्भकेसरमें ले जाते हैं। यह नहीं जाना जाता कि ये कीड़े किस प्रकार पराग ले जाते हैं; परंतु यह तो निश्चित है कि ले अवश्य जाते हैं और उसीसे गर्भाधान होता है तथा कोष बढ़कर फलके रूपमें होते हैं। यह बिलकुल मांसल और मुलायम होता है। उसके ऊपर कड़ा छिलका नहीं होता, बहुत महीन झिल्ली होती है। फलको तोड़नेसे उसके भीतर पके हुए सूक्ष्म बीजों जैसे फल दीख पड़ते हैं, जिन्हें हम 'गूलरके बीज' कहते हैं। उसके भीतर भुनगे या कीड़े भी मिलते हैं। इसीलिए फारसी और संस्कृत में इसे क्रमशः '**समरेपश्शः**' और '**जंतुफल**' कहते हैं। इसके कांड और शाखाओं पर चीरा देने, कच्चे फलोंको काटने और नरम शाखाओंको तोड़नेसे दूध निकलता है। कच्चा फल हरा और सफेद, फीका और किंचित् कसैला होता है।

रासायनिक संगठन—इसमें टैनिन, (Tannin), मोम और काउचूक (Caoutchouc) अर्थात् रबर और राखमें सिलिका तथा फॉस्फोरिक एसिड होता है।

उपयुक्त अंग—मूल, मूलत्वक् या वृक्षत्वक्, क्षीर और फल।

प्रकृति—पका गूलर दूसरे दर्जेमें गरम और पहले दर्जेमें तर; कच्चा गूलर दूसरे दर्जेमें शीत एवं रूक्ष है। आयुर्वेदमतसे शीतवीर्य (ध० नि०) एवं रूक्ष (कै० नि०) है।

गुणकर्म तथा उपयोग—गूलर मनःप्रसादकर, शरीरको विशेष पुष्टि प्रदान करता, सर और श्लेष्मनिस्सारक है। कच्चा गूलर संग्राही और रक्तस्तंभन है। यह विशेषकर अतिसारघ्न है। इसका दूध श्वयथुविलयन, दोषपाचन और दारण है। जड़का रस (पानी) शीतजनन और संशमन है। पकागूलर मेवोंकी भाति खाया जाता है। गरमियोंमें पके गूलरका शर्बत उत्तम पेय है। इससे मनःप्रसाद और शरीरको पुष्टि प्राप्त होती, कब्ज दूर होता तथा कास और श्वासमें लाभ पहुँचता है। कच्चे गूलरोंको पकाकर तरकारीकी भाँति खाया जाता है। संग्राही होनेके कारण यह दस्तोंको बंद करते और बवासीरके खूनको रोकते हैं। गूलर और इसके पत्र एवं शाखाओंसे यथाविधि

अवलेह (लऊक़) बनाकर कास, श्वास और स्वरभेदमें चटाते हैं। गूलरके पत्तोंको जलमें पीस-छानकर दस्त बंद करनेके लिए पिलाते हैं। इसके दूधको सूजन पर उसे बिठाने, पकाने और फोड़नेके लिए लगाते हैं। जड़का पानी निकालकर दाहप्रशमन और संशमन होनेके कारण राजयक्ष्मा (तपेदिक) और मधुमेहमें पिलाते हैं। गूलरकी जड़से पानी निकालनेकी विधि यह है कि गूलरके युवा वृक्षकी जड़में गड्ढा खोदकर उसकी किसी एक जड़को काटकर एक घड़ेके अंदर रख दे। जड़से बूँद-बूँद पानी टपककर घड़ेमें एकत्रित होता जायगा। इसी पानीको लेकर आध पाव से पाव भर तक प्रातः सायंकाल प्यास लगनेपर पिलायें। अहितकर—आमाशयके लिये अहितकर और ज्वरकारक है। निवारण—अनीसूँ, सिकंजबीन और शीतल जल। मात्रा—कच्चे गूलर का चूर्ण ५ से ७ ग्राम (५ से ७ माशे) तक। गूलरके पत्रका शीरा ७ ग्रामसे १२ ग्राम (७ माशेसे १ तोला) तक।

आयुर्वेदीय मत—गूलर कषाय, मधुर, शीतवीर्य, गुरु, रूक्ष, मूत्रसंग्रहण, भग्नसंधानकर, वर्ण्य तथा व्रणका शोधन और रोपण करनेवाला है। गूलरका कच्चा फल कषाय, पक्कफल मधुर, शीतवीर्य, क्रमिकर तथा पित्त, रक्त-विकार, मूर्च्छा, दाह और तृषाको मिटानेवाला है। (च० सू० अ० ४, वि० अ० ८; सु०सं०; ध०नि०; कै० नि०)।

नव्यमत—गूलरकी छाल स्तम्भन, पक्वफल शीतल, स्तम्भन और रक्तसांग्राहिक; दूध शीतल, स्तम्भन, रक्तसांग्राहिक, पौष्टिक और शोथहर है। जिन रोगोंमें रक्तस्राव होता हो अथवा शोथ हो उन रोगोंमें गूलरका उपयोग करते हैं। मधुमेहमें पाचन और पौष्टिक गुणके लिए उसका फल देते हैं। छोटे बच्चे जब सूखते जाते हों, खाया-पीया लाभ नहीं पहुँचाता हो, वमन और दस्त होते हों तथा हलका ज्वर रहने लगता हो तब गूलरका दूध ०·३ मि० लि० से ०·६ मि०लि० (५-१० बूँद) दूधमें मिलाकर देते हैं। गंडमाला, बद आदि सूजे हुए स्थानपर एवं कमर तथा वक्षःस्थलके दर्दपर गूलरका दूध लगाते हैं। इसकी जड़ आँवमें देते हैं। ताजे गूलरका रस शीतल, स्तम्भन, रक्त-स्तम्भन और उत्तम पौष्टिक है तथा सूजाकमें देनेसे मूत्रनलिका शोथ कम करता है। अत्यार्तवमें इसकी छालका फाण्ट देते हैं।

(२२३) गेंदा

फ़ैमिली : कॉम्पोजीटी (Family : Compositae)

नाम—(हिं०) गेंदा, गुलजाफरी, मखमल (बम्ब०); (फा०) सदबर्ग, गुलहज़ारा; (सं०) झण्डू (रा० नि०); (म०) झेंडु; (गु०) गलगोटो; (उडि०) गेंदु; (बं०) गेंदा; (ले०) टाजेटीस एरेक्टा (**Tagetes erecta Linn.**); **टाजेटीस पाट्ठुला** (T. Patula)। (अं०) फ्रेंच मैरिगोल्ड (French Marigold)।

उत्पत्तिस्थान—गेंदा अपने पीले सुन्दर फूलोंके लिए समस्त भारतीय बागों एवं घरोंमें लगाया जाता है।

वर्णन—वर्षायु ०·९ मीटर (१ गज) तक ऊँचा क्षुप; काण्ड सीधा, साधारण कोनयुक्त और खुरदरा; शाखायें पतली और विपुल एवं खरस्पर्श; पर्ण एकान्तर; अंडाकार, मोटे, भाँगके पर्णकी तरह और उभय पृष्ठ रोयेंदार; पुष्प गोल, कटोरीनुमा, कोई पीला, कोई लाल और कोई केसरिया होता है। गंध किंचित् अफीम सरीखा, स्वाद तिक्त एवं क्षारीय; बीज बारीक, लंबे काले रंगके होते हैं। पुष्प आनेपर इसका प्रयोग किया जाता है।

रासायनिक संगठन—इसमें एक तिक्तसत्व होता है।

उपयुक्त-अंग—पत्र, पुष्प, बीज और पंचांग।

कल्प तथा योग—अर्क सदवर्ग, गुलकंद सदवर्ग।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम और खुश्क।

गुण-कर्म एवं उपयोग—उष्णताजनन, श्वयथुविलयन, संग्राही, मूत्रल, अश्मरीनाशन और कामावसादकर है। व्रणशोथपाचन-विलयनके लिए इसको लेप लगाते हैं। अर्शका रक्तबंद करनेके लिए गुणकारी है। यह वातार्शमें भी लाभकारी है। इसकी कोंपलोंका शीरा मिश्री मिलाकर पिलानेसे मूत्रावरोधका नाश करता है। हज्रुल्यहूद (बेर-पत्थर)के साथ यह बस्त्यश्मरीके उत्सर्ग और मूत्रसंगको खोलनेके लिए प्रयुक्त होता है। भिड़ (बर्रे)के दंशपर इसे कालीमिर्चके साथ पीसकर लेप करते और पिलाते हैं। इसके पत्तोंका रस कानमें डालनेसे कर्णशूल आराम हो जाता है। इसके पत्रक्वाथका गण्डूष करनेसे दंतशूल आराम होता है। ११·६ ग्राम (१ तोला) इसके पत्रको दो माशे कालीमिर्चके साथ पीसकर पीनेसे अर्श आराम होता है। गेंदेके पत्र पाव भर और केलेकी जड़को दो सेर पानीमें रात्रि भर भिगोकर सबेरे अर्क खींचे। इसमेंसे दो तोले सबेरे-शाम पिलानेसे अर्शका खून बन्द होता है और विसर्प भी जाता रहता है। गेंदेके बीज २० ग्राम (१० माशे) सुखा-कूटकर खिलानेसे स्त्री-पुरुष दोनोंकी कामेच्छा शांत हो जाती है। **साहब शम्सुद्दररके** मतसे गेंदा वीर्यको शुष्क करता और वीर्य-स्तम्भन भी करता है। **अहितकर**–शिरःशूल, नेत्राभिष्यंद और कण्डू उत्पन्न करता है। **निवारण**–बिल्लीलोटन और अम्ल पदार्थ। **प्रतिनिधि**–कुसुमके फूल। **मात्रा**–(हरे पत्र) १२ ग्राम (१ तोला)।

आयुर्वेदीय मत—गेंदा (झण्डू) तिक्त, कषाय और ज्वर तथा भूतग्रहका नाश करनेवाला है (रा० नि०)।

नव्यमत—गेंदा शोणितसंग्राहक और शोथकर है। फूलकी पंखड़ियाँ $\frac{1}{2}$ –१ तोला घीमें तलकर अर्शका रक्त बन्द करनेके लिए देते हैं। गेंदेके पंचांगका स्वरस जोड़ोंके मोच और अभिघातज शोथपर लगानेसे लाभ होता है।

●

(२२४) गेहूँ

फ़ैमिली : ग्रामीने (Family : Graminae)

नाम—(हिं०; द०) गेहूँ, गोहूँ; (यू०) पुरोस (Puros); (अ०) हिंतः, कमुर; (फा०) गंदुम; (क०) कनक; (पश्तु) ग़नम; (अफ़गा०) गनम्, गंदम; (सं०) गोधूम; (बं०) गम; (म०) गहूँ; (गु०) घऊँ; (कु०) गोधी; (ले०) **टीट्रीकूम् एस्टीवुम Triticum aestivum** Linn. (**पर्याय**–*T. sativum* Linn.; T. vulgare Host.); (अं०) ह्वीट (Wheat)। **भूसी**–(हिं०) चोकर, गेहूँ की भूसी; (अ०) नुख़ाला; (फा०) स(सु)बूस गंदुम। **निशास्ता**–(यू०) आमोलून; (अ०) नशाऽ, नशास्तज; (फा०; उ०; हिं०) निशास्तः; (ले०) आमीलुम (Amylum); (अं०) **स्टार्च** (Starch)।

उत्पत्तिस्थान—भारतवर्षके पंजाव, (मुलतान), राजपुताना, सिन्ध, अयोध्या, सम्भलपुर, जबलपुर, नरसिंहपुर, होशंगाबाद, बम्बई और मद्रास प्रान्त, काठियावाड़ और इंग्लैंड, ब्रह्मा तथा चीन इत्यादि देशोंमें गेहूँ विपुल होता है।

वर्णन—यह एक प्रसिद्ध मांसल और पौष्टिक अन्न है। इसका धान्य और उसका चोकर औषधमें काम आता है। गेहूँके दानों (धान्य)का छिलका जो आटा छान लेनेके उपरान्त चलनीमें बच रहता है, चोकर (सबूस गंदुम) कहलाता है।

रासायनिक संगठम—इसमें अधिक मात्रामें कार्बोहाइड्रेट, अल्प प्रमाणमें **प्रोभूजिन** (प्रोटीन) नामक धातुवर्धक पदार्थ और चरबी, कुछ खनिज द्रव्य तथा **छिलके (चोकर)** में अधिक परिमाणमें प्रोटीन और खनिज तथा सेल्युलोज होता है।

कल्प—**दलिया,** फालूदा और **निशास्ता** (सत)।

प्रकृति—पहले दर्जेमें गरम तथा स्निग्धता (रतूबत) और रूक्षतामें मोतदिल (समस्निग्धरूक्ष) है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—गेहूँ समस्त धान्योंमें **श्रेष्ठतर धान्य** (अन्न) है। मनुष्यके लिए यह सर्वोत्तम पौष्टिक (**कसीरुल्ग़िजा**) आहारद्रव्य है। इसके आटेकी रोटी पकाकर खाई जाती है। इसके मैदे (बारीक चलनीसे छाने हुए आटे)की रोटी संग्राही (काबिज) और दीर्घपाकी होती है। बादामकी गिरीके साथ गेहूँका हरीरा बनाकर कास, रक्तष्ठीवन, कामावसाद (नपुंसकता), मस्तिष्कदौर्बल्य और शरीरदौर्बल्यको दूर करनेके लिए उपयोग किया जाता है। इसका निशास्ता (गोधूमसत्व) भी हरीरामें योजित करके पिलाया जाता है। गेहूँमें लेखन, विलीनीकरण और दोषपाचन वीर्य भी हैं। अस्तु, गेहूँ को मुखमें चाबकर बालतोड़ (दुम्मल) और अन्य फोड़े-फुन्सियों पर लगाते हैं तथा इसके आटेकी पुलटिस (उपनाह) बनाकर सूजनपर बाँधते हैं। इसमें एक प्रकारका **स्नेह** (दुह्नियत्) भी हैं, जिसको पातालयन्त्रके द्वारा निकाल (तेल) दद्रु, गंज (खालित्य) और झाईंपर लगाते हैं। गेहूँकी भूसी जो आटा छाननेके उपरान्त बच रहती है, श्लेष्मनिस्सारक, श्वयथुविलयन, लेखन, संशोधन और कफपाचन है। इसे कास और प्रतिश्यायमें अकेले या उपयुक्त औषधियोंके साथ क्वाथ करके पिलाया जाता है। स्तनशोथ विलीन करनेके लिए इसका लेप लगाते हैं। इसका विशेष गुण श्वयथुविलयन और शरीर स्थौल्यजनन (बृंहण) है। **अहितकर**–आनाहकारक और अभिष्यंदी। **निवारण**–सिरका।

गेहूँकी भूसी (सबूस गंदुम)—

प्रकृति—पहले दर्जेमें **गरम** और **खुश्क** है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—**श्लेष्मनिःसारक** और **श्वयथुविलयन** है। प्रधानकर्म श्वयथुविलयन, लेखन और **संशोधन** (मुनक़्क़ा) हैं।

उपयोग—इसे कास और प्रतिश्यायमें अकेले या उपयुक्त औषधियोंके साथ क्वाथकरके पिलाते हैं। यह सुगमतापूर्वक कफोत्सर्ग करके वक्षको शुद्ध करता है। इसमें निशास्ता (पिस्ट) शेष नहीं रहता; इसलिए इसको पीसकर विशेष विधि से इसकी रोटी पकाकर मधुमेहीको खिलाते हैं। **अहितकर**–यकृतको। **निवारण**–स्नेह और मधु। **मात्रा**–७ ग्रामसे १२ ग्राम (७ माशेसे १ तोला) तक।

आयुर्वेदीय मत—गेहूँ मधुर, शीतवीर्य (या अतिशीतल), स्निग्ध (या अतिस्निग्ध); भारी, रुचि उत्पन्न करनेवाला; आयु (एवं देह)को स्थिर करनेवाला; सारक, कफकर, टूटी हड्डीको जोड़नेवाला, जीवन देनेवाला, बृंहण, वृष्य, बल्य तथा वात और पित्तनाशक है (च० सू० अ० २७; सु० सू० अ० ४६)। हारीत संहितामें इसे ईषत्कषाय, विष्टम्भकारक और त्रिदोषनाशक भी लिखा है। राजनिघंटुमें मदकारक, दाहहरण-करनेवाला और भावप्रकाशमें वर्णको सुन्दर करनेवाला, यह अधिक लिखा है।

वक्तव्य—शूकधान्यमें गेहूँके समान कोई उत्तम धान्य नहीं है। सन्तुलित आहारकी दृष्टिसे चावलकी अपेक्षा गेहूँ अधिक उपयुक्त है। जिनका प्रधान खाद्य गेहूँ है वे लोग अन्य लोगोंकी अपेक्षया अधिक हृष्ट-पुष्ट और मोटे-ताजे होते हैं।

●

(२२५) गोंदनी

फ़ैमिली : एउफॉर्बिआसे (Family : Euphorbiaceae)

नाम—(हिं०) गोंदनी, गोंदी, कणलिया; (आसा०) कैशो; (बम्ब०) आसनो; (ले०) **ब्रीडेलिया मान्टाना Bridelia montana** Willd.; ब्रीडे० वेर्हुकोजा (**B. verrucosa** Haines)।

वक्तव्य—छोटे लिसोढ़ाको भी कहीं-कहीं **गोंदनी** या **गोंदी** कहते हैं (वि० दे० **'लटोरा'**)।

उत्पत्ति-स्थान—उप-हिमालयप्रदेश, झेलमसे पूरबकी ओर, खसिया पहाड़ी, मध्यप्रदेश, बिहार और उड़ीसा आदि। इसकी **छाल** एवं **फल** बहुत कसैले होते हैं।

●

(२२६) गोखरू छोटा

फ़ैमिली : ज़ीगोफ़ील्लासे (Family : Zygophyllaceae)

नाम—(हिं०) गोख(खु)रू, गुलखुर, छोटा गोखरू; (फ़ा०) ख़ारेख़सक, ख़ारेख़सक ख़ुर्द, ख़ारे सेहगोशा; (अ०) हसक; (सं०) गोक्षुर, स्वादुकण्टक, क्षुद्र (लघु) गोक्षुर, त्रिकण्टक; (बं०) गोखरी (रि); (म०) लहान गोखुर काँटे गोखरू, सराटे; (गु०) न्हाना (नाना) गोखरू, मीठा गोखरू, मीठां गोखरू; (क०) मिचिर कुण्ड; (पं०) भखड़ा; (ले०) **ट्रीबुलस टेरेंस्ट्रिस (Tribulus terrestris** Linn.), (अं०) स्मॉल कैल्ट्रॉप्स (Small Caltrops)।

वक्तव्य—फ़ारसी 'खसक'से '**हसक**' अरबी बनाया गया है।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष और अन्यान्य उष्ण देशों, जैसे—ईरान और लंका आदिके उजाड़ एवं जंगली भागोंमें यह सामान्यरूपसे होता है।

वर्णन—यह एकवर्षायु या बहुवर्षायु क्षुद्र वनस्पति है जिसके छत्ते १·८-२·४ मीटर (६-८ फुट)की दूरीमें भूमिपर पथराये हुए या भूमिसे २०-२४ सें० मी० (४-६ अंगुल) उठे हुए होते हैं। जडसे चार-पाँच कोमल डालियाँ निकलकर भूमिपर सपाट पसर जाती हैं। ये पतली, नीचे ऊपर तक एकसी गोल, लगभग ४५ सें० मी० (हाथभर लंबी) हलके लाल रंग की और लोमयुक्त होती हैं। **पत्र**-**चनेके पत्रकी तरह संयुक्त पक्षाकार**, साधारणपत्र ५ से ६ जोड़े, क्षुद्र और लगभग गोल, पत्रप्रांत अखंड; **पुष्प** क्षुद्र, अक्षकोणीय, क्षुद्र वृंतयुक्त, दल (पंखड़ी) पाँच, चौडे, पीले, कुण्ठिताग्र होते हैं; **फल** कुछ गोल, पंचकोन, लगभग झड़बेरके बराबर, कँटीला रोमश और कई खंडवाला; प्रत्येक खंड दो बड़े तथा दो छोटे काँटोंसे युक्त होता है। पकनेपर यह पाँच कोणोंमें विभक्त हो जाता है। प्रत्येक कोषमें चार तीक्ष्ण कंटक और १ या २ चतुःश्रंग **बीज** होते हैं। कोष या खंड (Cocci) मेखके आकृतिके, पकनेपर कुछ पीले, काँटोंका मध्यवर्ती, बहिः उन्नतोदर पृष्ठ खुरदरा होता है। जब पाँचों जुड़े होते हैं तब फलके १० काँटोंकी नोकें नीचे वृंतकी ओर और १० की बाहर परिधिके चतुर्दिक् होती हैं। इनमें पीछेके १० प्रथम विकसित होते हैं। इसी कारण किसी-किसी ग्रंथमें यह लिखा मिलता है, कि प्रत्येक कोषमें केवल दो ही कंटक होते हैं। बीज स्नेहमय और बहुत कड़े छिलकेके भीतर होते हैं। फलमें कोई विशेष गंध या स्वाद नहीं होता; परन्तु बीज एक क्षारसमोदकी विद्यमानताके कारण किंचित् तिक्त होते हैं। बाजारमें इसके फल मिलते हैं। इसका एक भेद और है जिसे **लेटिन में ट्रीबुलस अलाटा (Tribulus alata** Delile.), **हिन्दीमें 'गोखुरू कलाँ'** एवं बाखरा; **सिंधमें 'निंढोत्रिकुंड'** एवं **लटक, पंजाबीमें 'हसक'** और **अंग्रेजीमें विंग्ड कैल्ट्रोप्स** (Winged Caltrops) कहते हैं। यह पश्चिम भारतवर्ष

विशेषतः पंजाब, सिंध और बलूचिस्तान तथा फारस, अरब, सीरिया और मिश्रमें होता है। **पत्र** पहले भेदके पत्रकी तरह, किन्तु उनसे बड़े और अत्यंत रोमश, पत्रप्रांत कटावदार, डालियाँ खड़ी या भूमिपर पड़ी, दो हाथ या उससे भी कुछ अधिक लम्बी; **फल** तिकोनिया मीनाराकार, चौड़े पंखयुक्त, खंड (Cocci) हृष्टरोम और प्रत्येक दो बीजयुक्त; कंटक मिले हुए होते हैं।

वक्तव्य—अरबी-यूनानी निघण्टुग्रन्थोंमें 'जंगली' और 'बागी भेदसे' गोखरूके जिन दो भेदोंका उल्लेख किया है, उनमें उपर्युक्त प्रथम यूनानियोंका 'जंगली' और द्वितीय 'बागी' प्रतीत होता है। बागी गोखरूके संबंधमें यूनानी निघंटुकर्ताओंने जो यह लिखा है कि इसके तनेपर बारीक वस्तुयें बालोंकी तरह पतली और गुच्छेकी भाँति संघातभूत लगी होती हैं, वह हिन्दुस्तानी गोखरूमें अभी तक नहीं देखनेमें आई। **आधुनिक यूनानवासी गोखरूको 'ट्रिबोलिया** (Tribolia)' कहते हैं। **दीसकूरीदूसने 'ट्रिबोलोस** (Tribolos)' और **प्लाइनीने 'ट्रीबुलस** (Tribulus)' नामसे गोखरूका उल्लेख किया है।

रासायनिक संगठन—फलमें एक **ऐल्केलॉइड**, स्थिर तेल, अत्यल्प प्रमाणमें एक उत्पत् तेल, राल और पर्याप्त प्रमाणमें **नाइट्रेट्स** होते हैं।

उपयुक्त अंग—फल और मूल।

प्रकृति—दिल्लीके हकीमोंके मतसे गरम और खुश्क; लखनऊके हकीमोंके मतसे संमिश्रवीर्य; आयुर्वेदके मतसे शीतवीर्य (भा० प्र०) है।

गुणकर्म—मूत्रार्तवप्रवर्तक, बस्तिवृक्काश्मरीनाशन और वाजीकर।

उपयोग—मूत्र और आर्तवप्रवर्तनके लिए इसका काढ़ा या शीरा उपयोग किया जाता है। यह **कृच्छ्रमूत्र** और **मूत्रावरोधमें** लाभकारी है तथा बस्ति एवं वृक्कगत अश्मरीको तोड़कर मूत्रके साथ उत्सर्गित कर देता है। मूत्रजनन होनेके कारण औपसर्गिक पूयमेह (सूजाक)में पुष्कल उपयोग किया जाता है। **वाजीकरणके** लिए इसको चूर्णों और माजूनोंमें डाला करते हैं। यह अकेला भी प्रयुक्त होता है। **अहितकर**–शिरोरोगोंके लिये। **निवारण**–बादाम और तिलका तेल। **प्रतिनिधि**–इसकी जड़ और पत्तोंका स्वरस। **मात्रा**–५ से ७ ग्राम (५ से ७ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—गोखरू मधुर, मधुरविपाक, शीतवीर्य, मूत्रविरेचनीय, शोथहर, वाजीकर, बृंहण, बल्य तथा मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी, प्रमेह, श्वास, कास, अर्श, हृद्रोग, शूल और वातरोगोंका नाश करनेवाला है (च० सू० अ० ४, २५; सु० सू० अ० ३८, चि० अ० ७; ध० नि०; भा० प्र०)। **'गोक्षुरादि गुग्गुल'** इसका प्रधान योग है।

नव्यमत—गोखरू स्नेहन, वेदनास्थापन, मूत्रजनन, संग्राहक, बल्य, शीत और मूत्रपिण्ड (गुर्दा)के लिए उत्तेजक है। इसे बड़ी मात्रामें देनेसे दस्त साफ होता है। प्रमेह, सूजाक और बस्तिशोथमें इसे देते हैं। इसमें वेदनास्थापन गुण कम होनेसे इसके साथ खुरासानी अजवायन मिलाते हैं। मूत्र अत्यम्ल स्वभाववाला हो तब गोखरूके काढ़ेमें जवाखार मिला देते हैं। वृक्कशोथमें मूत्र क्षारस्वभाव, दुर्गन्धयुक्त और गंदला हो तब काढ़ेमें शिलाजीत मिलाकर देते हैं। सम-भाग गोखरू और तिलका चूर्ण मधु एवं बकरीके दूधके साथ हस्तमैथुनजन्य नपुंसकतामें देते हैं। गर्भाशय शुद्ध होकर बन्ध्यत्व नष्ट होनेके लिये गोखरू देते हैं।

(२२७) गोखरू बड़ा

फ़ैमिली : पेडालिआसे (Family : Pedaliaceae)

नाम—(हिं०) बड़ा गोखरू (गोखुर), विलायती गोखरू, हस्तिचिंघाड़; (अ०) हसके कबीर; (फा०) ख़ारे-ख़सके कलाँ, ख़सकेकलाँ; (सं०) तिक्त गोक्षुर, बृहद् गोक्षुर, वनशृंगाट; (पं०) गोखरू कलाँ, बड़ा भखड़ा (रा); (द०) बड़ा गोकरू, हत्ती गोकरू; (बं०) बड़ गीखरि; (गु०) कड़वा गोखरू, मोटा (म्हाटाँ) गोंखरू, ऊभा गोखरू; (म०) करोनटीआ, उभो गोखरू, मोठें गोखरू; (ले०) **पेडालिडम् मूरेक्स** (**Pedalium murex** Linn.)।

उत्पत्तिस्थान—**दक्षिण भारतवर्ष** विशेषत: समुद्रतट, गुजरात, काठियावाड़, कोंकण और उष्णकटिबन्धीय अफ्रीकाके रेतीले प्रदेश। थोड़ा बहुत सर्वत्र मिलता है।

वर्णन—इसके किंचित् मांसल क्षुद्र, **क्षुद्र** होते हैं; शाखायें ६–१८ इंच लम्बी तथा उत्थित प्रसरी होती हैं। **पत्तियाँ** एकान्तर, दलदार, अंडाकार, कुण्ठिताग्र, २·५ सें० मी० से ५ सें० मी० (१-२ इञ्च) लम्बी, लहरदार, दन्तुर तटवाली; **पुष्प** पीले, १ इञ्च लम्बे तथा पत्रकोणोंमें एकांकी निकले रहते हैं; पुष्पवृन्त पत्रवृन्तसे ह्रस्व, पत्र-कोणके आसन्न १ से २ वा अधिक, ग्रन्थियुक्त अवयवयुक्त होता है। **फल** लटकनदार, लगभग १·२५ से०मी० ($\frac{१}{२}$ इञ्च) लंबा, आधार पर ६·२५ मि०मी० ($\frac{१}{४}$ इञ्च) मोटा, चौकोना, प्रत्येक उभारयुक्त कोणपर कम नोकदार एक सरल काँटा, इस प्रकार कुल चार काँटे होते हैं और ऊपरकी ओरका भाग चारो ओरसे सिमटा हुआ एक कोनेमें मिलता (शंक्वाकार होता) और भीतरसे दो कोशवाला होता है। काँटोंके ऊपर यह तंग भाग पंच-चंगुलाकृति (5–clawed), पुटचक्र (Calyx)के भीतर अन्तर्निवेशित होता है। कच्चा फल हरा, पकनेपर पीला और सूख जाने-पर मटिया रंगका और कॉर्कवत् होता और दो कोष्ठोंमें विभक्त होता है। प्रत्येक कोष्ठ (कोश)में दो-दो बीज होते हैं। बीज ४, लम्बे और संकुचित होते हैं। बीजका स्वाद लोआबी किन्तु गन्ध कुछ नहीं होती। असंख्य क्षुद्र वृंतशून्य चमकीली, स्फटिकीय, चतुर्धासे पंचधा-चीरित ग्रन्थियोंकी विद्यमानताके कारण तरुण शाखायें, पत्रवृंत, पत्राध: पृष्ठ और अपक्व फलियाँ ऐसी दिखती हैं मानों उनपर ओसके कण जमे हों। इसका ताजा फल हरा और मांसल होता है। ताजे पौधेमें एक विशेष प्रकारकी अप्रिय कस्तूरीवत् गन्ध होती है। इसकी ताजी हरी डालियोंमें बिना कुचले जलमें हिलाने मात्रसे जल अण्डेकी सफेदीकी भाँति गाढ़ा और पिच्छिल हो जाता है। लवाबके स्रोत पूर्वोक्त ग्रंथिवत् स्फटिकीय अवयव होते हैं। यदि इनको नरम हाथोंसे पत्रके अध: पृष्ठसे खुरचकर जलमें मिला दिया जाय तो तुरन्त पिच्छिलता उत्पन्न हो जाती है। लवाबका स्वाद अस्पष्ट और विशेष प्रकारका परन्तु अप्रिय नहीं होता है। इसमें न कोई रंग होता है और न कोई गन्ध। बाजारमें बड़ा गोखरूके नामसे इसके सूखे फल मिलते हैं।

वक्तव्य—**मोहीउद्दीन शरीफ़के मतसे फरीद बूटी** वस्तुत: **बड़ा गोखरूका** नाम है। उसका यह नाम इस घटनाकी स्मृतिमें रखा गया कि हजरत **शैखफरीदुद्दीन शकरगज रहमतुल्ला अलेह** दीर्घकाल पर्यन्त केवल इसकी पत्तियोंको जलमें हिलाकर बनाये हुये घन पिच्छिल जलको सेवनकर जीवन धारण किये रहे अथवा यह वि वे इसे बहुत ही गुणकारी मानते थे और प्राय: शरीर रोगोंमें इसका सफलतातूर्वक प्रयोग करते थे। कोई-कोई इसे '**पाता**' या '**पाथा**' अथवा '**फार(ब)**' भी कहते हैं। अहलुल्लाहकी **तक्मिलहे हिंदीमें** इसका सबसे आश्चर्यजनक गुण यह लिखा है कि यह पानीको अतिशीघ्र फालूदेकी भाँति जमा देता है। बड़ा गोखरू के अतिरिक्त यह गुण जलजमनी या छिरेटा और **भूमिबला** (Sida humilis)में भी होता है। संभवत: इसी गुलधर्मावलम्बित सादृश्यके कारण कुछ लोग भ्रमवश इन्हें भी **फरीदबूटी** कहते हैं। इन्डियन मेडिसिनल-प्लांट्सके लेखक श्री वसु महोदयने राजिका कुलकी **फार्सेटिया** (**Farsetia**) प्रजातिकी '**ईजिप्टिएका**' आदि कतिपय जातियों का पंजाबी नाम **फ़रीदबूटी** लिखा है। डीमनके मतसे मुसलमान चिकित्साग्रंथ-लेखकोंका बड़ा गोखरू (हसक) इससे भिन्न **करोनी** ज़ान्थीउम् स्ट्रूमारिउम् (**Xanthium strumrrium**) है। डॉक्टर मोहीउद्दीनशरीफ़के मतसे यह फरीदबूटी हैं (उपर्युक्त वक्तव्य अवलोकन करें)।

रासायनिक संगठन—फलमें एक हल्के हरेरंगकी चर्बी, अल्पप्रमाणमें राल, एक क्षारोद, निर्यास और राख प्रभृतिद्रव्य होते हैं। **उपयुक्त अंग**–पत्र, फल और पंचांग।

प्रकृति—**शीत** एवं रूक्ष; आयुर्वेदके मतसे शीतवीर्य एवं स्निग्ध (भा० प्र०)।

गुण-कर्म तथा उपयोग—स्नेहन, संशमन, मूत्रजनन, आर्तवजनन, अश्मरीनाशन, बल्य और बाजीकर हैं। इसके ताजे पत्र, काँड और फलका दूध या जलमें निकाला हुआ लबाब (पिच्छा) मूत्रसंस्थानके रोगोंकी बढ़ी हुई गरमी दाह और जलन, मूत्रावरोध, कृच्छ्रमूत्र, वेदनायुक्त बिंदुमूत्रता, हस्तिमेह, सूजाक, अश्मरी आदि तथा शुक्ररोगों, जैसे जननांगोंकी बढ़ी हुई स्पर्शशक्ति (उकसाहट), स्वप्न प्रमेह और शीघ्रपतनमें मिश्री मिलाकर पिलाया जाता है अथवा सूखे गोखरूका चूर्ण फँकाया जाता है। इसे सदैव ताजा तैयार करना चाहिये। ताजे पौधाके अभावमें इसके सूखे फलका काढ़ा व्यवहारमें लेना चाहिए। मूत्रल होनेसे यह जलोदरमें भी गुणदायक है। यकृत् प्लीहावृद्धिमें पंचांग का रस या काढ़ा उपयोग किया जाता है। आर्तवजनन होनेसे अनियमित ऋतुमें और सूतिकारोगोंमें प्रसवशोणितके यथेष्ट उत्सर्गके लिए इसका रस या फलका क्वाथ पिलाते हैं। गोखरूके चूर्णमें लौंग, इलायची, चीनी और घी मिलाकर दूधके साथ देनेसे शरीर पुष्ट और बलवान होता है। सूजाक और सूजाकजन्य आमवात (संधिशोथ)में इसके पत्रका चूर्ण दूध और चीनीके साथ देते हैं। गोखरू और सोंठका काढ़ा नित्य सबेरे पिलानेसे आमवात आराम होता है। वाजीकर और वृष्य होनेसे नपुंसकत्व एवं शुक्रप्रमेह (जरयान)में भी गोखरूका उपयोग करते हैं। बालकोंके मुखपाकमें इसके पत्रस्वरसका स्थानीय उपयोग करते हैं। व्रणशोषण, रोपणके लिए इसके पत्रका उपयोग होता है। **अहितकर**–शीत प्रकृतिको। **मात्रा**–पत्रचूर्ण १२ ग्राम (१ तोला); फल १२-३५ ग्राम (२ से ३ तोले) तक; क्वाथ या फांटरूपमें पत्र और फल ३ ग्राम से ६ ग्राम (३ माशा से ६ माशा)।

आयुर्वेदीय मत—बड़ा गोखरू शीतवीर्य, स्निग्ध, बलकारक, वस्तिशोधन (मूत्रविरेचन), मधुर, दीपन, वृष्य, पौष्टिक तथा अश्मरी, प्रमेह, श्वास, कास, अर्श, मूत्रकृच्छ्र, हृद्रोग और वातरोगको दूर करनेवाला है। शर्करा, अश्मरी, प्रमेह, श्वास कास, अर्श मूत्रकृच्छ्र, प्रदर इन रोगों में और रसायन प्रयोगोंमें बड़ा गोखरू विशेष गुणकारक है (भा० प्र०; शिवदत्त)।

नव्यमत—ताजी पत्तियाँ शीतल जलमें मसलनेसे जल लुआबदार हो जाता है। बड़ा गोखरू स्नेहन, मूत्रजनन, बल्य और वाजीकर है। इसका मूत्रजनन धर्म उत्तम है। नये सूजाकमें ताजे हरे पंचांगका हिम ताजा-ताजा बनाकर देते हैं। फलोंका काढ़ा बनाना हो तो उसमें मुलेठी और नागरमोथा पिलाना चाहिये। इससे पेशावकी जलन कम होती है। स्वप्नमें वीर्यस्राव होना, पेशाव अपने-आप हो जाना, कामशक्ति कम हो जाना इनमें फलोंका फाण्ट या दो माशा चूर्ण शक्कर, घी और दूधके साथ देते हैं। सूतिकारोगमें तथा यकृत और प्लीहाके रोगोंमें फलोंका काढ़ा अथवा पंचांगका स्वरस देते हैं। **फाण्टविधि**–२॥ तोला फलका चूर्ण २५ तोले उबलते हुए जलमें डाल, एक घंटे तक पात्रको बंद रख, कपड़े से छान, थोड़ा-थोड़ा करके दिनभरमें दे देवें।

(२२८) गोभी

फ़ैमिली : क्रूसीफेरे (Family : Cruciferae)

नाम—फूलगोभी (हिं०) गोभी, कोबी; (अ०) क़्रिबीत, कर्मशामी कर्मनब्ती; (फा०) कलमरूमी, कलमगिर्द; (अं०) कॉलीफ्लावर (Cauliflower), ब्रोकोल्ली (Broccoli); (लै०) **ब्रास्सिका ओलेरासेआ प्र० बॉट्रीटिस्** (**Brassica oleracea** Linn. **var. botrytis** Linn.)। **पातगोभी या गोभीबंद** (हिं०) करमकल्ला, कोबी;

(अ०) कर्नब, कुर्नुब(फारसी '**कर्म**' से अरबीकृत), बक़्लतुल् अन्सार;(फा०) कर्म कलम, क़रीत; (द०)करम; (बं०) कोपी; (गु०) कम्ब्रोई; (अं०) कैबेज (Cabbage), कोलवर्ट (Colewort)। इसके निम्न तीन भेद हैं :—(१) **उद्यानज** अर्थात् '**बागी**' या '**बुस्तानी**'–(हिं०) **गाँठ गोभी**; (अ०) कर्नब **नबत्ती**। (२) **बर्री** अर्थात् वन्य–(अ०) कर्नब बर्री। वि० दे० 'गोभी जंगली'। (३) **बहरी** अर्थात् सामुद्र–(अ०) कर्नब बहरी; (फा०) क्लम दरियाई।

वक्तव्य—'गाँठ गोबी' का लेटिन एवं अंग्रेजी नाम क्रमशः **ब्रास्सिका ओलेरासेआ प्र० गोंगीलोडीस** (**Brassica oleracea** Linn.**var.gongylodes** L.) तथा Knol-kohl हैं। गोभीका सामान्य वानस्पतिक नाम **ब्रास्सिका ओलेरासेआ** (**B.olercaea** Linn.) है, जो इंगलैंड तथा यूरोपके दक्षिण-पश्चिम समुद्रतटवर्ती प्रदेशोंका आदिवासी पौधा है जहाँ यह स्वयंजात भी होता है। इसीसे अंग्रेजीमें इसे **वाइल्ड कैबेज**(**Wild cabbage**)भी कहते हैं। इसी मूल पौधे से अब उपरोक्त तथा अन्य अनेकों **कृषीजन्य प्रभेद** (varieties) विकसित किए गए हैं जिनका आजकल पुष्कल व्यवहार सब्जीके लिए किया जा रहा है। आलू, पपीता, टमाटर आदि अन्य विदेशागत उपयोगी वनस्पतियोंकी भाँति गोभीका भी विस्तृत परिमाणमें भारतवर्ष में सर्वत्र खेतीकी जाती है और अब गोभीभी यहाँकी उपयोगी वनस्पतियोंमें प्रविष्ट हो गई है।

उत्पत्तिस्थान—मध्य यूरूप। अब भारतवर्षमें भी सर्वत्र इसकी खेतीकी जाती है। गोभी आजकी प्रधान सब्जियोंमें से है।

वर्णन—ये प्रसिद्ध शाक हैं, जो मौसम (सामान्यः जाड़ेके दिनों)में सर्वत्र तरकारी बाजारोंमें प्रचुरतासे मिलती हैं। फूलगोभीमें दहीके थक्केकी भाँति श्वेत या पीताभश्वेत पुष्पव्यूहपिण्ड तथा कोमल पत्तियोंका व्यवहार शाकार्थ, सलाद आदिमें तथा अचारके रूपमें किया जाता है। पुष्पव्यूह–व्यवहृत अंग होनेसे ही इसे फूलगोभी–कहते हैं। फूलोंको सुखाकर मौसमके अतिरिक्त दिनोंमें व्यवहृत करनेके लिए भी इनका संरक्षण किया जाता है, जो बन्द डिब्बोंमें बाजारोंमें उपलब्ध होते हैं। पातगोभीमें चिंगुडी हुई स्तरित पत्तियोंके विभिन्न आकार-प्रकारके गठित पिण्ड होते हैं। चूँकि इसका व्यवहृत अंग पत्रप्रधान होता है, इसीलिए इसे 'पातगोभी' कहते हैं। गाँठगोभीमें छोटाकाण्ड ही फूलकर शलजमके आकारके गाँठके रूपमें परिवर्तित हो जाता है जिसपर इतस्ततः पत्तियोंके स्कार (Scars) होते हैं।

रासायनिक संगठन—पोषक तत्वोंकी दृष्टिसे गोभी एक उपयोगी खाद्य है। इसमें प्रोटीन, वसाजातीय पदार्थ, कार्बोहाइड्रेट, खनिजतत्व (Mineral matter), कैल्सियम्, फॉस्फोरस, लौह एवं अिटामिन 'A' विटामिन 'B' एवं विटामिन 'C', आदि तत्व पाये जाते हैं।

प्रकृति—संमिश्रवीर्य। मतांतरसे पहले दर्जेमें **गरम** और **खुश्क** (रूक्ष)।

गुण-कर्म तथा उपयोग—गोभीका फूल अकेला या मांसके साथ पकाकर खाया जाता है। यह अत्यंत सुस्वादु एवं रुचिदायक होता है। किन्तु इससे वायु (रियाह) और सांद्र रक्त उत्पन्न होता है। वायुकारक होनेसे उदराध्मान उत्पन्न करता है, वाजीकर है, किसी क़दर मूत्रोत्सर्गकी शक्ति भी रखता है। अपने प्रभावसे (खुमार)को नष्ट करता है। कहते हैं कि मद्यपानसे पूर्व इसका खाना नशाप्रतिबंधक है। इसके काढ़ेसे परिषेक करनेसे संधिशूल शमन होता है। बाजीकरण और नशाप्रतिबंधन इसके प्रधान कर्म हैं। पत्र तिक्त, दीपन और हृदयशक्तिवर्धक है। वातरक्त और आमवातमें इसका प्रयोग करते हैं। बीज दूसरे दर्जेमें गरम एवं खुश्क, मूत्रल, सारक, दीपन और कृमिघ्न है। **अहितकर**–चिरपाकी, आध्मानकारक और वायुकारक। **निवारण**–बादामका तेल, घी और गरम मसाला। **प्रतिनिधि**–फूलगोभीका पातगोभी (करमकल्ला)।

(२२९) गोभी जंगली, वनगोभी

फ़ैमिली : कॉम्पोजिटी (Family : Compositae)

नाम—(हिं०) वनगोभी, जंगली गोभी; (अ०) कर्नब बर्री; (फा०) कलमदश्ती; (सं०) गोलोमिका, भूलग्ना दीर्घपत्रा, खरदला, शुभा, मध्यदण्डा (**शिवदत्तः**); (पं०)दूबल, बत्थल, भत्तल; (म०;गु) भोंपथरी; (ले०) **लाउनीआ** नूडीकाउलिस (**Launaea nudicaulis** Hook.), दूसरी जाति लॉ० **पिन्नाटीफिडा** (**L. Pinnatifida** Ceass.) ।

उत्पत्तिस्थान—न्यूनाधिक समस्त भारतवर्षके मैदान ।

वर्णन—एक क्षुद्र उद्भिद् जिसके समस्त अंगोंमें दूध होता है । मूलके समीप पत्तियोंका गुच्छा होता है । पत्तियाँ प्रायः पक्षवत्-खण्डित रहती हैं और उनके मध्यमें वह काण्ड निकलता है जिसपर मुण्डक होते हैं । मुन्डकके पुष्प समानलिंग और जिह्वाकार होते हैं ।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें गरम और खुश्क ।

गुण-कर्म तथा उपयोग—दोषका पाचन करती, रूक्षता एवं मार्दव उत्पन्न करती, अत्यन्त लेखन, श्वयथु-विलयन और रेचन है । यदि दो-तीनवार उबालकर पानी फेंक देवे तो उदरानाह उत्पन्न कर देवें । इसके पत्तोंके लेपसे व्रण भरजाते हैं । इसके पत्तोंका स्वरस लगानेसे शुष्क एवं आर्द्र खुजली मिट जाती है । इसके बीज अत्यन्त कामोद्दीपक हैं । इसके बीज या सूखी हुई जड़ ७ माशा पीसकर मद्यके साथ पिलानेसे साँपका विष उतर जाता है ।

आयुर्वेदीय मत—चरक और सुश्रुतमें गोजिह्वाका उल्लेख शाकवर्गमें हुआ है और उसे शीतल एवं रक्त-प्रसादन लिखा है । गोभीका साग (गोजिह्वा) कोढ़, प्रमेह, रुधिरविकार, मूत्रकृच्छ्र और ज्वरनाशक तथा हल्का है (भा० प्र०) ।

●

(२३०) घीकुआर

फ़ैमिली : लीलिआसे (Family : Liliaceae)

नाम—(हिं०) घीकुँआर, ग्वारपाठा, गोंड़पट्ठा; (यू०) आलूए फ़ैक़रा; (अ०) सब्बारत, सब्बारा, अ़लसी, **नबातुस्सिब्र**;(फा०) दरख़्ते सिब्र; (सं०) घृतकुमारी, कुमारी गृहकन्या (-कुमारी); (बं०) घृतकुमारी; (म०) कोरकांड कोरफड, (गु०) कुंवार, कुंवारपाठु; (कु०) पतकुंवार; (पं०) कुंवारजंदल, (कच्छ) लेपरी; (ले०) आलोए बार्बेडेन्सिस **Aloe barbedensis** Mill. (पर्याय–A. *vera* Tourn.ex L.) । कुमारी (रस) सार—(हिं) एलुवा, एलुवा मुसब्बर; (अ०) सिब्र; (फा०) सिब्र, बोलसियाह, शबयार; (सं०) ऐलेयक, कृष्णबोल; (ब०) मोशब्बर; (म०) एलिया, काला बोल; (गु०) एलिय; (अं०) एलोज (Aloes) ।

वक्तव्य—यूनानी वैद्यकमें एलुआको 'आलूप (Aloe) वा फ़ैक़रा' कहते हैं । हिन्दी 'एलुआ' यूनानी 'आलूय'-से बहुत मिलता जुलता प्रतीत होता है । भाष्यकार गीलानीके मतसे इसे अरबोमें सब्र (सिब्र) इसलिये कहते हैं कि यह बत्तीउलइसहाल है अर्थात् इसका विरेचनीय कर्म इतना बिलंबसे होता है कि इसके सेवन करनेवालेको विरेक आनेकी प्रतिक्षामें बहुत सब्र (धैर्य) करना पड़ता है ।

इतिहास—यूनानवासियोंको इस औषधिका ज्ञान ईसवी सन् से ४०० वर्ष पूर्व था। यद्यपि **सावफ्रस्तुसने** इसका उल्लेख नहीं किया, तथापि यूनानी हकीम **दीसक़ूरीदूस** आदिने इसका उल्लेख किया है। उसने जिस प्रकारके एलुआ (सिब्र)का वर्णन किया है वह यही है।

उत्पत्तिस्थान—अफरीका, अरब और भारतवर्षकी खारी रेतीली जमीन और नदीकूल। यद्यपि **एलो बेरा** या **एलो बार्बेडोज** जातिके घीकुआरके गुल्म जिससे अरबी या बर्बदी एलुआ (Barbadoes Aloes) प्राप्त होता है, तथा कतिपय अन्यजातीय घीकुआर भारतवर्षमें विशेषकर उत्तर-पश्चिम हिमालयकी घाटियों और समस्त मध्य-भारतीय पठारोंसे लेकर कन्याकुमारी तक और बम्बई तथा गुजरातके समुद्रतटवर्ती स्थानोंमें पूर्णतया बस गए हैं, तथापि उनमेंसे इसका **'एलो इंडिका'** नामक भेद ही, जिसे **'एलो ऑफिफ़सिनेलिस'** भी कहते हैं, भारतवर्षका निवासी प्रतीत होता है। यह मैसूर और मद्रास प्रांतके कतिपय भागोंमें होता है।

वर्णन—यह एक प्रसिद्ध गुल्म है जो प्रायः आध गज ऊँचा होता है। **पत्र**—३-४ अंगुल चौड़े, हाथ डेढ़ हाथ लम्बे, गोपुच्छाकार, तीक्ष्णाग्र, बहुत मोटे और गुदेदार तथा बाहरसे हरे; पत्रप्रांत कुछ मुड़े हुए क्षुद्र काँटेयुक्त होते हैं। पत्तोंको काटनेपर पिलाई लिए लसीला कड़ुवा द्रव और सफेद गूदा निकलता है जिसको **लुआब घीकुआर** कहते हैं। कुछ विशिष्ट क्रियाओंसे सुखाया और जमाया हुआ घीकुआरका यह दूध या रस जिसका व्यवहार औषधिके रूपमें होता है, अरबीमें 'सिब्र' और हिन्दीमें 'एलुवा या मुसब्बर' कहलाता है। जब इसके पत्र पूरे बढ़ चुकते हैं और क्षुप पुराना हो जाता है, तब पत्तोंके बीचसे एक डंडा या मूसला (पुष्पदंड) निकलता है। इसी डण्डेमें लाल फूल निकलता है।

एलुआ-निर्माण-विधि—घीकुआरके पत्रको जड़के समीप आड़े बलमें काटने पर जो गाढ़ा रस निकलता है उसे किसी उपयुक्त पात्रमें संग्रह करके बाष्पीकरणकी विधिसे कभी-कभी स्वेच्छापूर्वक यह अधिकतया उबालकर घन-रसक्रिया प्रस्तुत करके सुखा लेते हैं। प्रारम्भमें रस रंगरहित होता है, किन्तु बाष्पीकरण एवं क्वथनकी क्रियाके उपरान्त वह काला हो जाता है। सुतरां व्यापारिक द्रव्य (एलुआ) बाजारमें कड़े काले टुकड़ों या डलीके रूपमें मिलता हैं।

वक्तव्य—व्यापारमें यद्यपि कुल नहीं, तथापि अधिकांश मिलनेवाला एलुआ भारतवर्षमें विदेशोंसे आता है। यद्यपि भारतीय घीकुआरसे बना एलुआ किसी प्रकार घटिया नहीं होता, तथापि सोकोतरा (Socotra) द्वीपमें होनेवाले एक जातिके घीकुआर (**Aloe perryi** Baker)से बना एलुआ (**सिब्र सकोतरी** Socotrine Aloe) बहुत अधिक आदरणीय है। परन्तु जंजीबारमें होनेवाले इसी जातिके घीकुआरसे जो एलुआ प्रस्तुत किया जाता है, उसकी गणना भी इसीमें होती हैं। अस्तु इस प्रकारका एलुआ सोकोट्रा से तो कम अधिकतर जंजीबारसे ही लालसागरके बन्दरगाहोंसे होकर जहाजोंके द्वारा बम्बईमें आता है। यहाँ से इसका थोड़ा भाग बाहर भेज दिया जाता है; परन्तु अधिक भाग यहीं रह जाता है।

भेद—(१) **अरबी**—इस प्रकारका मुसब्बर एक जातिके घीकुआर (Aloe vera var. officinalis Linn.) से विशेष विधिसे अरबमें प्रस्तुत किया जाता है और वहींसे भारतवर्षमें इसका आयात होता है। भारतवर्षमें इसीका प्रचलन अधिक है। इसमें यथेष्ट भेषज्यगुण वर्तमान होता है। फिर भी सभी अरबी और पारस्य देशीय हकीम इस विषयमें एकमत हैं कि अरबी एलुआसे **सकोतरी एलुआ** (सिब्र सकोतरी) श्रेष्ठतर होता है। यूनानी हकीम दीसक़ूरीदूस वर्णित एलुआ यही है। इसे **अरबी, यमनी, मक्की, अदन** या बर्बदी सिब्र (एलुआ) कहते हैं। इसी जातिके एक भारतीय भेदसे प्रस्तुत एलुआको **'सिब्र मैसूरी'** कहते हैं।

(२) **सकोतरी**—इसे **'सिब्र सकोतरी'** कहते हैं। देखनेमें यह सुनहला भूरे रंगका, ऊपरसे कड़ा, भीतरसे नरम और विशेष सुगन्धयुक्त होता तथा तोड़नेपर शीघ्र टूट जाता है। इसका चूर्ण और पतले कण नारंगी-भूरे रंगके होते हैं।

वक्तव्य—सर्वोत्तम एलुआ 'सकोतरी (सिब्र सकोतरी)' है। यही आन्तरिक उपयोगमें लिया जाता है। अरबी केवल बाह्य उपयोगमें आता है।

रासायनिक संगठन—इसमें सिब्रीन (एलोइन) नामक कार्मुकवीर्य, राल, उत्पत् तेल जिसपर इसका गन्ध निर्भर करता है आदि सत्व होते हैं।

कल्प तथा योग—इयारज फ़ैक़रा, क़ुर्स इयारज खास, हब्ब इयारज, जिमाद सिब्र आदि।

घीकुआर—

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम और खुश्क है। आयुर्वेदके मतसे शीतवीर्य (भा० प्र०) है।

गुण-कर्म—विरेचन, रक्तप्रसादन, श्वयथुविलयन तथा व्रणशोथपाचन और कफदोषसंशमन, विशेषकर श्वयथु एवं वातविलयन है।

उपयोग—रक्तप्रसादन एवं विरेचन होनेसे रक्तविकारजन्य रोगोंमें उपयोग करते हैं तथा यकृत्प्लीहाके योगोंमें सम्मिलित करते हैं। सफेद जीरा और फिटकिरीके साथ घीकुआर का गूदा (लबाब) मिलाकर पोटली बनाते और नेत्राभिष्यंदमें आँखोंपर बार-बार फिराते तथा उसका रस आँखमें निचोड़ते हैं। घीकुआरके लबाबको अकेला भी आँखोंमें आश्च्योतन करते हैं। इससे ललाई और दर्द दूर हो जाता हैं। घीकुआरके पत्रको एक ओरसे छीलकर उस पर थोड़ा आंबाहल्दोका चूर्ण छिड़क कुनकुना गरम करके बाघी (बद), कक्राली तथा अन्य शोथोंपर बाँधते हैं। घीकुआरके गूदेका माजून बनाते हैं जो बाजीकरण और कटिको शक्ति देने और आमवातके लिये गुणकारी है। अहितकर—यकृत्, अन्त्र और आमाशयको। निवारण—कतीरा और गुलाबपुष्प। प्रतिनिधि—कब्ज निवारणके लिए एलुआ। मात्रा—घीकुआरका गूदा ७ ग्राम से १२ ग्राम (७ माशेसे १ तोला तक)।

आयुर्वेदीय मत—घीकुआर तिक्त, मधुर, शीतवीर्य, भेदन, नेत्रके लिये हितकर, रसायन, बृंहण, वृष्य, बलकारक, वाजीकर तथा वात, विष, गुल्म, प्लीहवृद्धि, यकृद्वृद्धि, कफ, ज्वर, ग्रन्थि, अग्निदग्ध, विस्फोटक, पित्त, रक्तविकार और त्वचाके रोगोंको दूरकरनेवाला है (भा० प्र०)।

नव्यमत—घीकुआरका रस कडुआ, शीतल, दीपन, पाचन, विरेचन, मूत्रजनन, बल्य, शोणितस्थापन, श्वयथुहर, दाहप्रशमन और व्रणरोपण है। अल्पमात्रामें एलुआ तिक्त, दीपन, पाचन और बल्य है। इससे पचननलिका और यकृत्की क्रिया सुधरती है। बड़ी मात्रामें एलुआ विरेचन, मूत्रजनन, आर्तवजनन और कृमिघ्न है। एलुआका लेप शोथहर और व्रणरोपण है। घीकुआरका रस नेत्राभिष्यन्द, स्तनशोथ, विद्रधि, अर्श और अग्निदग्धपर हलदीका चूर्ण मिलाकर या बिना हल्दी मिलाये लगानेसे शोथ और दाह कम होता है।

एलुआ—

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम और खुश्क है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—सर, विरेचन, दीपन, यकृद्बलदायक, कृमिघ्न, आर्तवजनन और व्रणशोधन है। कब्ज दूर करनेके लिये एलुआका उपयोग होता है। यह शिर, नेत्र और संधियोंके दोषोंका उत्सर्ग करता है। उपयुक्त औषधियोंके साथ यह सौदावी रोगोंमें प्रयुक्त होता है। दीपनके लिये हल्की मात्रामें उपयोग किया जाता है। उदरजकृमि विशेषत: सूत्र (चुरन) कृमियोंके नाश एवं उत्सर्गके लिए इसके घोले हुये जल (आबे महलूल)से बस्ति देते या किसी स्नेहमें मिलाकर गुदामें लगाते हैं। रुद्धार्तवमें या अनार्तवमें उपयुक्त औषधियोंके साथ इसकी गोलियाँ खिलाते हैं। गर्भवती स्त्रियोंको इसका बारबार या अधिक मात्रामें उपयोग करानेसे गर्भपात हो जाता है। गर्भपातके लिये फलवर्तिकी भाँति भी इसका उपयोग करते हैं। व्रणोंको शुद्ध करनेके लिए इसे अकेला या उपयुक्त औषधियोंके

साथ अवचूर्णन करते या मरहमोंमें मिलाकर लगाते हैं। कतिपय शोथोंको विलीन करनेके लिए यह प्रलेपकी भाँति प्रयुक्त होता है। हब्ब अयारिज, हब्ब शबयार, हब्ब सिब्र और हब्ब तंकार इसके प्रसिद्ध योग हैं। कब्ज दूर करने, मस्तिष्कीय मलोंको दस्तके द्वारा निकालने तथा आमाशय और यकृतको शक्ति देनेके लिये इनका उपयोग करते हैं। अहितकर–अन्त्रमें संक्षोभ (खराश) उत्पन्न करता है; इसलिये अर्शमें यह अहितकर है। निवारण–कतीरा और गुलाब-पुष्प। प्रतिनिधि–निसोथ। मात्रा–१२० मि० ग्रा०से ०·५ ग्राम (१ रत्तीसे ४ रत्ती) तक।

आयुर्वेदीय मत—चरपरा, शीतवीर्य, दस्तावर (भेदक), पारेको शोधनेवाला तथा शूल, अफारा, कफ, वात कृमि और गुल्मको दूर करनेवाला है। (रा० नि०)

●

(२३१) घुँघची

फ़ैमिली : लेगूमिनोसी (Family : Leguminosae)

नाम—(हिं०) घुँगची, घूँची, घुमची, गूँच, करजनी, रत्ती, चिरमिटी, गुँची, चुँ(चीं)टली; (फा०) सुर्ख़; (सं०) गुञ्जा, उच्चटा, रक्तिका; (बं०) कुँच; (म०) गुज, चानोटी; (गु०) चणोठी; (क०) रचफोल; (पं०) रत्ती, लालड़ी; (मल०) कुन्नि, कुरञ्जी; (मा०) चिरमी, चिर्मिटी; (सिं०) रत्युं; (ते०) गुरिंगिज (का०) गुलगंजि; (ले०) आब्रुस् प्रीकाटोरिउस् (**Abrus precatorius** Linn.); (अं०) इंडियन या वाइल्ड लिकरिस (Indian or Wild Liquorice), जैक्विरिटी (Jequirity)।

वक्तव्य—घुँघची, पतंग और कुचन्दन या बड़ी गुमची (**Adenanthera pavonia** Linn.) के बीज कुक्कुटनेत्रके समान होते हैं, अस्तु उनके लिये अरबी 'ऐनुद्दीक' और 'चश्मेख़ुरूस' शब्दका, जिसका अर्थ 'कुक्कुटनेत्र' है, व्यवहार प्रायः किया जाता है। परन्तु 'ऐनुद्दीक' या 'चस्मेखुरूस' उनसे सर्वथा भिन्न द्रव्य है। लेटिन 'आब्रुस' संभवतः यूनानी 'एब्रोस (Abros = सुंदर)'से व्युत्पन्न है।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष हिमालयसे लेकर कन्याकुमारी तक और अन्यान्य उष्ण देश, जैसे—अमेरिका, पश्चिम भारतीय द्वीप आदि।

वर्णन—यह एक सुंदर, काष्ठीय, बहुवर्षायु, आरोही परिवेष्टिका सुन्दरलता है जो वर्षाका प्रथम पानी पड़ते ही पुरानी जड़से अभिनव उत्पन्न होती है। शरत्कालमें यह फूलती है; शरद्के अन्तमें शिम्बी पकती है। शिम्बी पकनेपर लताका प्रतान सूख जाता है। पत्र–इमलीके पत्रकी तरह उनसे किंचित् बड़े, युग्मपक्षाकार, ५ सें० मी० से ७·५ सें०मी० (२–३ इञ्च) लम्बे, पत्रक संख्यामें २०–४० जोड़े, १·२५ सें०मी०से २·५ सें०मी० ($\frac{1}{2}$से १ इञ्च) लंबे तथा ८ मि०मी० ($\frac{1}{3}$ इञ्च) चौड़े, स्वादमें मुलेठीकी तरह मीठे होते हैं। फूल–सेमके फूलकी तरह पर उसकी अपेक्षया बृहत्तर एवं गुलाबी और गुच्छोंमें होता है। शिम्बी छोटी, बाकलाकी फलीकी तरह होती है और प्रत्येक फलीके भीतर २ से ६ तक अंडाकार गोल क्षुद्रतर मसृण और चमकीले बीज--(घुँघची) होते हैं। रक्त और श्वेत आदि पुष्प या बीजभेदसे घुँघची कई प्रकारकी होती है। इसके बीज कहीं दो-तिहाई हिस्सेमें लाल या सफेद और शेष भागमें काले और कभी-कभी वे पूर्णतः सफेद या काले होते हैं। जो एकरंग लाल, गोल, चौड़ी कुक्कुटनेत्रकी तरह होती है, उसे ही यूनानीवैद्यकमें 'ऐनुद्दीक' कहते हैं। परन्तु मुहीतके मतसे ऐनुद्दीक इससे भिन्न है। वजनमें औसतन लाल घुँघची १·७५ ग्रेन, काली १·७७ ग्रेन, और सफेद १·९७ ग्रेन होती है। जड़ लम्बी, काष्ठीय, कड़ी और बहुशाखी, क्वचित् ६ मि०मी० (१/४ इञ्च)से अधिक व्यासकी, प्रायः मुलेठीसे बहुत छोटी होती है। वल्कलीय स्तर बहुत पतला, ललाई लिये भूरा, अन्तःकाष्ठीय भाग पिलाई लिये सफेद, गंध और स्वाद कडुआ (Acrid), किन्तु आपाततः प्रायः मधुर होता है।

वक्तव्य—इसकी जड़को मुलेठी मानना या लिखना सही नहीं है। स्वाद या स्वरूप अथवा गुणमें इसका मुलेठीसे कोई सामञ्जस्य नहीं है, चाहे वह कितनी पुरानी लतासे क्यों न ग्रहणकी गई हो। इस लताका सबसे मधुर भाग पत्र होता है। इससे मुलेठीकी तरह एक प्रकारकी रसक्रिया प्रस्तुत हो सकती है। परन्तु मुलेठीसे यह बहुत मँहगी पड़ती है।

रासायनिक संगठन—इसके बीजमें एब्रिन **(Abrin)** नामक एक विषके स्वभावका सत्व पाया जाता है। यह गुणकर्ममें बहुत कुछ एरण्डबीजमें पायेजानेवाले रिसिन (Ricin) नामक तत्व की भाँति होता है। जड़में लगभग १५% ग्लिसिर्हाइज़िन (Glycyrrhizin) और ८% एक चरपरा राल;पत्रमें लगभग १० प्रतिशत ग्लिसिर्हाइजिन पाया जाता है।

उपयुक्त अंग—बीज (सफेद घुँघचीके), पत्र और मूल (तीनों प्रकारकी घुँघचीके)। बीज विषाक्त होते हैं। प्राचीनकालमें अपराधियों द्वारा विष देनेमें इसका उपयोग किया जाता था। आभ्यन्तरिक उपयोगके लिये बीजोंका प्रयोग शोधनोपरान्त ही करना चाहिए। श्वेतगुञ्जाके बीज, पत्र एवं मूल प्रशस्त माने जाते हैं।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें गरम और खुश्क है। आयुर्वेदमतसे उष्णवीर्य (कै० नि०)।

गुण-कर्म तथा उपयोग—विलयन, लेखन, आग्नेय(अक्काल), उत्तेजक और वाजीकर हैं। घुँघचीका अधिकतया बाह्य प्रयोग करते हैं। लेखन होनेके कारण झाईं (बहक़), किलास, दद्रु और व्यंग आदि पर इसका प्रलेप करते हैं तथा नेत्रका जाला और फूला नष्ट करनेके लिये इसे सुरमाकी भाँति उपयोग करते हैं। आग्नेय होनेसे व्रणोंके उत्सन्न (प्रवृद्ध) और दुष्ट मांसको दूर करनेके लिये तथा अर्शाङ्कुरोंको नष्ट करनेके लिये इसका उपयोग किया जाता है। उत्तेजन गुणके लिये इसे प्रलेपोंमें प्रविष्ट करते हैं। अहितकर—उष्ण प्रकृतिवालोंके लिये। निवारण—यवासशर्करा और हरी धनियाँ। प्रतिनिधि—लाल और सफेद उभय एक दूसरेके प्रतिनिधि हैं।

आयुर्वेदीय मत—घुँघची रसमें तिक्त और कषाय, उष्णवीर्य, चक्षुष्य, वाजीकर, केश्य, त्वच्य, रुचिकारक, बलप्रद, तीव्र, उपविष, मदकारक, मोहकारक तथा कफ, पित्त, इन्द्रलुप्त, कण्डू, कुष्ठ, व्रण और कृमिका नाश करनेवाली है। पत्र–मुखपाकको आराम पहुँचानेवाले हैं। बीज-पत्र और मूल श्वेत गुंजाके प्रशस्त हैं। (सु० क० अ० २; कै० नि०; नि० सं०)।

नव्यमत—घुँघचीकी जड़की क्रिया मुलेठी जैसी होती है। पत्तियोंका गुणकर्म मूलके समान है। मूल और पत्र मधुर, स्नेहन, कफशामक, मूत्रजनन और व्रणरोपण हैं। कास एवं मूत्ररोगोंमें अन्य सहकारी औषधोंके साथ इसकी जड़का प्रयोग करते हैं। व्रण एवं व्रणशोथपर इसकी पत्तियोंको पीसकर बाँधते हैं। इससे शीतलता आकर सूजन उतरती है और व्रण भर जाता है। स्वरभंगमें पत्तियोंकी गोलियाँ बनाकर मुँहमें रखते हैं।

●

(२३२) चन्दन लाल

फ़ैमिली : लेगूमिनोसी (Family : Leguminosae)

नाम—(हिं०; पं०; गु०) लालचन्दन; (अं०) संदले अह्‌मर; (फा०) संदले सुर्ख़; (सं० बं०; म०); रक्तचन्दन; (गु०) रतांजली; (क०) रक्तचन्दुन; (ते०) एर्र चन्दनमु; (ता०) चेञ्चन्तनम्, शेन्न शंदनम्; (ले०) टेरोकार्पुस सान्टालिनुस (**Pterocarpus santalinus** Linn.); सान्टालुम् रूब्रुम् (*Santalum rubrum*); (अं०) रेड सैन्डर्स वुड (Red Sanders Wood), रेड सैन्डल वुड (Red Sandal Wood)।

उत्पत्तिस्थान—दक्षिण भारतवर्ष। मलाबार समुद्रतटसे बम्बई और कलकत्तामें इसका आयात होता है।

वर्णन—इसका वृक्ष क़दमें छोटा होता है। इसके ऊपरकी लकड़ी सफेद और हीरकी लकड़ी कुछ कालापन लिये होती है। बाजारमें इसकी लकड़ीके वजनदार, कड़े, लाल टुकड़े मिलते हैं। यह पानीमें डूब जाते हैं। ये प्राय: निर्गन्ध, कषाय एवं तिक्त होते हैं। इसके घिसनेसे लाल रंग निकलता है। लकड़ीका सर्वांग लाल रंजकद्रव्यसे पूर्ण होता है। पानीमें भिगोनेसे पानी लाल नहीं होता, किन्तु तेल लाल होता है। उत्ताप देनेसे इसमेंसे हलकी सुगन्ध आती है।

रासायनिक संगठन—इसमें एक रंजक द्रव्य, सैन्टेलोन या सैन्टेलिक एसिड (एक स्फटिकीय रक्त सत्व), सैन्टल टेरोकार्पीन (एक सफेद स्फटिकीय अविलेय द्रव्य), होमोटेरोकार्पीन प्रभृति द्रव्य होते हैं।

उपयुक्त अंग—हृत्काष्ठ (Heart-wood)।

●

(२३३) चन्दन सफेद

फ़ैमिली : सान्टालासे (Family : Santalaceae)

नाम—(हिं०) चंदन, सफेद चंदन; (अ०) **संदले अब्बज़्**; (फा०) **संदले सफ़ेद**; (सं०) श्वेतचन्दन, चन्दन, श्रीखण्ड, भद्रश्री; (द०) संदल; (बं०) श्वेतचन्दन, साराचन्दन; (गु०) सुखड़; (म०) चंदन; (ले०) **सांटालुम् आल्बुम्** (**Santalum album** Linn.); (अं०) सैन्डल-वुड (Sandal-wood)। तेल—(हिं०) चन्दनका तेल; (अ०) दुह्नुस्संदल; (फा०) रोग़ने संदल; (ले०) ओलिउम् सान्टाली (Oleum Santali); (अं०) ऑयल ऑफ सैन्डल-वुड (Oil of Sandal-wood)।

वक्तव्य—इसके अरबी-फ़ारसी नाम 'संदल' सम्भवत: संस्कृत 'चन्दन'से और लैटिन तथा अंग्रेजी नाम अरबी 'संदल'से व्युत्पन्न हैं। एरिअनने इस भारतीय द्रव्य का उल्लेख 'क्सूला सागालोना (**Xula Sagalina**)' नामसे किया है। अरबी-यूनानी हकीमोंने इसके स्वरूपभेद और गुणवर्णनमें प्राय: आयुर्वेदका ही अनुसरण किया है।

इतिहास—प्राचीन भारतीयोंको चंदनका भली-भाँति ज्ञान था। निरुक्तमें, जो वेदोंका एक अत्यंत पुरातन-भाष्य है (ई० सन्से ५०० वर्ष पूर्व), चंदनका वर्णन है। भारतवर्षके पुराणतम इतिहासग्रंथ रामायण और महाभारतमें भी इसका वर्णन है। यूनानवासियोंको सिकन्दरमहानके काल में इसका ज्ञान हुआ। यूरोपमें सर्वप्रथम 'सलरनो विद्यालय'के एक हकीमने इसका चिकित्सा व्यवहारमें उपयोग किया। मुसलमान चिकित्साविशारदोंमेंसे मसीही और इब्नसीनाने सर्वप्रथम इसका वर्णन किया और इसके गुणकर्म-वर्णनमें भारतीय वैद्योंका अनुसरण किया।

उत्पत्तिस्थान—भारतवर्ष विशेषत: दक्षिण भारतवर्षमें मैसूर, मलाबार और कुर्गमें इसके वृक्ष जंगली होते या लगाये जाते हैं। चन्दन मैसूरसे बम्बई नगरमें आता है और वहींसे फ्रांस, जर्मनी और अमेरिका आदि देशोंमें प्रेषित किया जाता है। मैसूर राज्यमें चन्दनकाष्ठसे चुआकर तेल (चूया) निकालनेका प्रबन्ध है। चन्दनकी जड़ एवं सारकाष्ठसे एक प्रकारका उत्तम प्रचुर तेल प्राप्त होता है जिसे 'चन्दनका तेल (रोग़न संदल)' कहते हैं। यह स्वच्छ, हलका पीला, कुछ गाढ़ा, चंदनकी तरह तीक्ष्ण सुगंधयुक्त, स्वादमें तेज और चरपरा होता है। चन्दनका तेल और 'चूया' दोनों एकही द्रव्य हैं। केवल निष्कासन प्रणाली भिन्न है। इसका सभी अधिकार मैसूरके राज्याधीन है।

वर्णन—यह एक सदाबहार ६ से ९ मीटर (२०–३० फुट) ऊँचे वृक्षका सारकाष्ठ (हीरकी लकड़ी) है। त्वचा और असार सफेद भाग दूर किये हुए इसके सारकाष्ठके लगभग ७५ सें० मी० (२॥ फुट लम्बे) और १२·५

सें० मी० से० १५ सें० मी० (५-६ इंच) व्यासके अथवा इससे छोटे आकारके बेलनाकार गोल टुकड़े (डंडे) बाजारमें मिलते हैं। ये हलके पीले रंगके और परम हृद्य एवं चन्दनकी विशिष्ट स्थायी गंधयुक्त होते हैं। इसका बुराद (बुरादा) संदल सफ़ेद व सुर्ख़ भी बाजारमें मिलता है।

रासायनिक संगठन—सारकाष्ठमें एक उत्पत् तेल ३ से ६ प्रतिशत, एक राल और टैनिक एसिड; काष्ठसारसे परिस्रुत तेल (रोग़न संदल) में सैन्टेलोल (चन्दनसार या सन्दलोल जौहर सन्दल), सैन्टेलीनिक एसिड (चन्दनाम्ल-तेजाब सन्दल) और ईस्टर्ज तथा फ्री एसिड्स प्रभृति द्रव्य होते हैं। तेल सुरासारविलेय होता है।

उपयुक्त अंग—चन्दनका सारकाष्ठ और उससे परिस्रुत किया हुआ तैल। चन्दनके सारकाष्टसे बनाये हुये तरलसार का प्रायः तेलसे अच्छा उपयोग (सहनोय) होता है।

कल्प तथा योग—खमीरा सन्दल सादा, खमीरा संदल तुर्श तिलवाला, जुवारिश संदलैन, माजून संदल, सफ़ूफ़ संदल, शर्वत संदल (सन्दलैन)।

प्रकृति—सफेद चन्दन तीसरे दर्जेमें शीत और दूसरेमें रूक्ष; लालचन्दन दूसरे दर्जेमें शीत और तीसरेमें रूक्ष है। आयुर्वेदके मतसे सफेद और लाल दोनों प्रकारके चन्दन शीतवीर्य (ध. नि.; कै. नि.) होते हैं।

गुण-कर्म तथा उपयोग—संदल बाह्यतः शीतजनन, दोषविलोमकर्ता और संशमन है। लालचन्दन उक्त कर्ममें अधिक वीर्यवान् है, क्योंकि इसमें एक उपादान उष्ण भी होता है। सुतरां इसको बाहरी रूपसे प्रलेपकी भाँति अधिक उपयोग किया जाता है। सफेद चन्दन आंतरिक रूपसे अधिक शीत उत्पन्न करता है। यह मनःप्रसादकर और हृद्य है तथा मस्तिष्कको बलप्रदान करता (मेध्य) है। यह अन्त्र और आमाशयको भी बलप्रदान करता तथा अन्त्रपर ग्राही कर्म करता, संताप (उष्णता) निवारण और रक्तका प्रसादन करता है। चन्दनको अधिकतया उष्ण शोथों और गरम सिर-दर्दको शमन करनेके लिए अकेला या उपयुक्त औषधियोंके साथ लेप करते हैं। हृदयका सताप शमन करनेकेलिए इसे हृत्स्थलपर लगाते हैं। हृदयदौर्बल्य, उष्ण हृत्स्पंदन ओर संतापहरण एवं रक्तप्रसादनके लिये इसका आन्तरिक उपयोग करते हैं। रक्तातिसार और पित्तातिसारको रोकने तथा मूत्रदाह नष्ट करनेकेलिए इसको पिलाते हैं। इसका शार्कर (शर्बत) कल्पना किया जाता है, जो उष्ण हृत्स्पन्दन और अन्त्रामाशयगत उष्णताको नष्ट करनेकेलिए प्रयुक्त होता है। यह विशेष रूपसे यकृत् और आमाशयबलदायक है। लालचन्दन वाष्पारोहरणको रोकता है, त्वचाको लाल करता, रक्तका शोधन करता और उष्ण शोथको उतारता है। अहितकर—कामावसादकर (पुंस्त्वोपघाति) है। निवारण—मधु और मिश्री। प्रतिनिधि—कपूर और छड़ीला। मात्रा—५ ग्राम से ७ ग्राम (५ से ७ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—श्वेतचन्दन वर्ण्य, कण्डूघ्न, विषघ्न, तृषाको कमकरनेवाला, दाहप्रशमन, अंगमर्दप्रशमन, पित्तसंशमन, तिक्त, मधुर, शीतवीर्य, रक्तप्रसादन, वृष्य, हृद्य, आह्लाद उत्पन्न करनेवाला तथा अन्तर्दाह, विष और कृमिनाश करनेवाला है। चन्दनका लेप दुर्गन्धहर तथा दाहनिर्वापण है। (च० सू० अ० ४, २५, वि० अ० ८; सु० सू० अ० ३८; ध० नि०; कै० नि०)।

चंदनका तेल (रोग़न तैल)—

प्रकृति—दूसरे दर्जे में शीत एवं तर है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—मूत्रावयवोंकी श्लेष्मला कलापर यह कोथप्रतिबन्धक और संशमन तथा श्वासोच्छ्वासावयवोंकी वायुप्रणालियोंपर कोथप्रतिबन्धक और श्लेष्मनिस्सारक कर्म करता है। चन्दनके तेलको अधिकतया नये और पुराने सूजाकमें प्रकोथ, मूत्रदाह एवं वस्तिशोथको दूर करनेके लिये उपयोग करते हैं। इसको ५-७ बूंद

मात्रामें बताशेपर डालकर दूधके साथ खिलाते हैं या उपयुक्त औषधियोंके साथ मिलाकर उपयोग करते हैं। इसके अतिरिक्त जीर्णकास और ऐसे कासमें जिसमें दुर्गन्धित कफ निकलता हो, २-३ बूँद बताशेपर डालकर खिलाते हैं। मात्रा-०·३ मि०लि०से १·३ मि०लि० (५ से २० बूँद) तक।

नव्यमत—जलमें घिसा हुआ, चन्दन तिक्त, शीतल, स्वेदजनन, दाहशामक, पिपासाहर, ग्राही, हृदयसंरक्षक और रक्तानुधावनको शान्तिप्रद है। चन्दनका तेल उत्तम मूत्रजनन, मूत्रनलिकाके लिए पूतिहर, मूत्रपिण्ड (गुर्दे) का उत्तेजक त्वग्दोषहर तथा कृमिघ्न है। ज्वरमें हृदय शिथिल होता है और उसमें विकृति होती है वह चन्दन देते रहनेसे नहीं होती तथा अति उष्णतासे हृदयका रक्षण होता है। चंदनसे हृदयकी गति कम होती है, परन्तु शक्ति कम नहीं होती। पित्तज्वर, जीर्णज्वर और तीव्रज्वरमें चन्दन देनेसे पसीना आता है और शरीरका दाह कम होता है। चंदनको जलमें घिसकर देनेसे तृषा, कफमें रक्त आना, दुर्गन्धयुक्त कफ आना और रक्तातिसार ये रोग आराम होते हैं। औपसर्गिक पूयमेह (सूजाक) और जीर्ण बस्तिशोथमें चन्दनका तेल देते हैं। विसर्प, खुजली, फोड़े-फुन्सी, पैत्तिक शोथ, आदिमें चंदनको कपूरके साथ घिसकर लगाते हैं।

•

(२३४) चंपा

फ़ैमिली : माग्नोलिआसे (Family : Magnoliaceae)

नाम—(हिं०) चंपा; (अ०) फाग़िर; (सं०) चम्पक; (बं०) चांपा; (पं०) चंपा (बा); (म०) पिंवलोचांफा सोनचांफा; (गु०) पीलो चंपो, राय चंपो; (ते०) चांपेसु, चंपक्रुम; (ता०) संबकम्; (का०) संपिगे; (मल०) चंपकम्; (लै०) माइकीलिआ चम्पका (**Michelia champaca** Linn.); (अं०) गोल्डेन चंपा (Golden Champa)।

उत्पत्तिस्थान—पूर्वी उप-हिमालय प्रदेश और नीचेकी पहाड़ियोंपर ३,००० फुट तककी ऊँचाई पर, आसाम, एवं पश्चिमीघाट तथा दक्षिण भारतमें यह जंगली होता है। भारतवर्षके अनेक भागोंमें यह लगाया हुआ मिलता है।

वर्णन—चंपाके वृक्ष अपने सुगंधित पुष्पोंके लिए बागोंमें लगाये जाते हैं। इसकी टहनियाँ मुरचई रंगकी; पत्तियाँ एकांतर, नीचे चौड़ी, सिरेपर नोकदार, चिकनी हरी ऊपरकी ओर चमकीली, सीधेकिनारोंवाली, २० से २५ सें० मी० (८-१० इञ्च) लम्बी और ६·२५से १० सें. मी. (२½-४ इञ्च) चौड़ी होती हैं। पुष्प–हलके पीले मन्दमधुर गंधवाले होते और वर्षाऋतुमें आते हैं। त्वचा–बाहरसे फीके भूरे रंगकी और भीतरसे ललाई लिये भूरे रंग की होती है। यह कटु, कुछ तिक्त, कषाय और सुगंधित होती है।

रासायनिक संगठन—फूलमें उत्पत् तैल(Essen. oil) और त्वचामें सुगंधि और तैलके साथ मिश्रित कटु और कषाय द्रव्य होता है।

उपयुक्त अंग—पुष्प और त्वचा। छालको फांट अथवा चूर्ण बनाकर देना चाहिये, क्वाथ नहीं करना चाहिये। काढ़ा करनेसे सुगंधित तैल उड़ जाता है और केवल कषाय द्रव्य काढ़ेमें अधिक उतरता है।

प्रकृति—उष्ण एवं रूक्ष। आयुर्वेदमतसे शीतवीर्य (रा० नि०; क्षे० कु०)।

गुण-कर्म तथा उपयोग—इसका फूल सूँघनेसे हृदय और मस्तिष्कका बल बढ़ता है; खानेसे कफ निस्सरित होता है तथा वायुका नाश होता है। फूलोंको सिरकामें पीसकर कानपर लगानेसे कानका दर्द जाता रहता है। फूलों

का स्वरस कुनकुना गरम करके कानमें टपकानेसे कानका दर्द, कानकी फुन्सी और कानमें पानी चला गया हो तो उसे भी लाभ होता है। इसके फूलोंके बीचमें जो दाना होता है वह किसी भाँति मदकारक होता है। इसके फूलोंको तिलके तेलमें डालकर धूपमें रखनेसे तैयार हुआ तेल अत्यन्त वाजीकर है। इसके मालिशसे संधिशूल आराम होता है। इसके फूलोंसे परिस्रुत किये हुये अर्कके नस्यसे नासिकागत अवरोध दूर हो जाता है। मस्तिष्कगत मल नाकके रास्ते निकल जाते हैं और नकसीरका रक्त चालू हो जाता है। शरीफीमें लिखा है कि इसके फूलकी कलीको पानीमें पीसकर मुँहपर मलनेसे झाइं बिल्कुल जाती रहती है। जड़ गुणमें चोवेहयातके निकट है। इसे पानीमें पीसकर पीनेसे यदि नारू टूट गया हो तब भी लाभ होता है। जड़ और फूलोंको बकरीके दूधमें पीसकर पीनेसे बस्तिगत रेत (शर्करा) निकल जाता है। इसकी छालको पीसकर पीनेसे वमन होता है। यह जब तक आमाशयमें रहती है, वमन कराती है और जब नीचे उतरती है तब तीव्र विरेचन कराती है। यदि अल्प भी आँतोंमें रह जाती है तो बेचैनी और मरोड़ उत्पन्न करती है। विशेषतः जंगली चंपाकी छाल इस विषयमें अत्यंत वीर्यवान् हैं। इसका लेप संधिशूल और वातरक्त में बड़ा गुणकारी है। इसके पत्तोंके लेपसे लिंगेन्द्रियका दर्द जाता रहता है।

आयुर्वेदीय मत—चंपक रसमें कटु, तिक्त, कषाय और मधुर; शीतवीर्य; चक्षुष्य तथा रक्तपित्त, दाह, कुष्ठ, कंडू, व्रण, मूत्रकृच्छ, विष, कृमि, रक्तविकार, कफ और पित्तका नाश करनेवाला है (सु० सू० अ० ४६, पु० व०; रा० नि०; कै० नि०; वै० म०; क्षे० कु०)।

नव्यमत—चंपाकी त्वचा कटुपौष्टिक, सुगन्धि, दीपन, ग्राही स्वेदजनन, विषमज्वरप्रतिबंधक, मूत्रजनन, वातहर, कफहर, आमनाशन, गर्भाशययोत्तेजक, शौथहर, व्रणशोधन और रसायन है। शुष्क मूल एवं मूलत्वक् विरेचन, मूत्रविरेचन, आर्तवजनन और शोथहर है। फूल और फल शीतल, तिक्त, दीपन, वायुनाशक, संकोचविकासप्रतिबंधक, कोथप्रतिबंधक, मूत्रजनन, दाहनाशन, कुष्ठ-कण्डू-व्रणहर और उत्तम उत्तेजक है।

विषमज्वरमें चंपाकी छालका फांट जाड़ा लगनेसे पहले १–१ घण्टेसे तीन-बार और ज्वर चढ़नेके बाद ३–३ घण्टेसे दिया जाता है। उपदंशकी दूसरी अवस्थामें व्रण, दुष्टव्रण, कोथ, गण्डमाला और संधिबंधनका मोटा होना इत्यादि विकारोंमें त्वचा दी जाती है। आमवात और जीर्ण संधिवातमें त्वचा उपयोगी है। विद्रधियोंमें मद्यमें मिलाकर लगानेसे लाभ होता है। छालका फांट आर्तवजनन है। अतएव अनार्तव और पीड़ितार्तवमें उपयोगी है। मूत्रजनन होनेसे फूलोंका फाण्ट वृक्करोगों एवं सूजाकमें देनेसे पेशाबकी जलन कम होती है और मूत्रका प्रमाण बढ़ता है। अजीर्ण, उत्क्लेश और ज्वरमें फूल और फलका उपयोग होता है। तिलके तेलमें मिलाकर भ्रम (चक्कर आना)में बाह्य प्रयोगार्थं इसका लेप बनता है। शिरःशूल, नेत्राभिष्यंद और वातरक्तमें लगानेके लिये इसके फूलोंके तेलका लाभकारी उपयोग होता है। शूल रोग (Colic)में इसकी पत्तियोंका रस मधुके साथ दिया जाता है। पाददारीमें इसके फल और बीजोंका उपयोग होता है।

◆

(२३५) चकोतरा

फैमिली : रूटासे (Family : Rutaceae)

नाम—(हिं०; बं०; पं०; फा०; उर्दू) चकोतरा; (सं०) मधुकर्कटी (मतांतरसे मातुलुंग); (द०) महानीबू; (बं०) बतावी नीबू; (गु०) चकोतरूं, पपनस; (म०) पोपनस; (ले०) सीट्रुस माक्सिमा **Citrus maxima** Merr. (**C. decumana** Linn.); (अं०) प्युमेला (Pumela)।

उत्पत्तिस्थान—इसका मूल उत्पत्तिस्थान बटाविया है। यद्यपि अब यह समस्त भारतवर्षमें लगाया जाता है, तथापि बंगाल विशेषकर हुगलीमें सब जगहोंसे उत्तम होवा है।

वर्णन—यह नीबूकी जातिका एक फल है, जो खरबूजेके बराबर तक बड़ा होता है। इसका छिलका नारंगीसे मोटा और खुरदरा तथा गूदा (मग्ज) लाल और खटमिट्ठा होता है।

रासायनिक संगठन—फलमें शर्करा और सिट्रिक एसिड और छिलकेमें एक उत्पत् तेल होता है।

उपयुक्त अंग—फल और पत्र।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें शीत एवं तर है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—उष्ण हृदयबलदायक एवं सौमनस्यजनन, पित्तसंशमन और उष्ण आमाशयबलदायक है। यह विशेषरूपसे पित्त और रक्तकी तीक्ष्णताको शमन करता है। चकोतराका मग्ज निकालकर खाया जाता है। यह रक्त और पित्त-प्रकृतिके लोगोंके लिये परम गुणकारी है और प्यास बुझाता, उष्ण हृदयको बल और उल्लास प्रदान करता तथा आमाशयको उद्दीप्त करता है। अहितकर—यकृत्‌को। निवारण—मधु और चीनी। प्रतिनिधि—नारंगी।

आयुर्वेदीय मत—चकोतरा (मधुकर्कटिका) स्वादिष्ट, रोचक, शीतवीर्य, भारी तथा रक्तपित्त, क्षय, श्वास, खांसी, हिचकी और भ्रमको दूर करनेवाला है (भा० प्र०)।

(२३६) चक्कादाना

वर्णन—यह एक भारतीय उद्भिज्जके बीज (दाने) हैं, जो मटियाले रंगके और कड़े होते हैं। इनके अन्दर हब्बबलसांके समान, छोटासा बारीक, परन्तु हब्बबलसांसे बड़ा मग्ज होता है। इसके अतिरिक्त उसके समान इसमें आगे-पीछे नोक भी निकली हुई नहीं होती।

प्रकृति—उष्ण और रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—विरेचन। इसको अधिकतया घुटीमें अन्यान्य औषधियोंके साथ मिलाकर उपयोग करते हैं।

(२३८) चचीण्डा (मीठा)

फ़ैमिली : कूकूरबिटासे (Family : Cucurbitaceae)

नाम—(हिं०) चचींडा, चिचिंडा, चचेंडा; (सं०) चिचिण्ड, चिचिण्डा, अहिफल; (गु०) पंडोलुं; (म०) पडोल, पडवल; (बं०) चिचिंगा; (लें०) ट्रीकोजान्थीस आंगूइना (**Trichosanthes anguina** Linn.); (अं०) (Snake Gourd)।

उत्पत्तिस्थान—भारतवर्षमें शाकके लिये यह बीजों द्वारा उगाया जाता है।

वर्णन—यह तुरईकी तरहकी एक लताका फल है, जो एक हाथसे दो हाथ तक लम्बा तुरईके बराबर मोटा और श्यामताविशिष्ट हरा होता है। इसके ऊपर लम्बाईके रुख सफ़ेद धारियां होती हैं। दूरसे यह सर्पके समान

मालूम होता है । पकनेपर यह चमकदार नारंगीके रंगके समान पीला हो जाता है और धारियाँ लुप्तप्राय हो जाती हैं । १० सें० मी० (४ इञ्च) तक लम्बा कोमल फल शाकके काममें लिया जाता है । बीज करेलाके बीजके समान और पत्र तुरईके पत्रके समान होते हैं । फूल सफेद और प्रियदर्शन होते हैं । इसे बगीचोंमें बोते और घरोंमें लगाते हैं । इसका एक भेद ‘कडुआ’ होता है ।

उपयुक्त अंग—फल और मूल ।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें शीत एवं तर ।

गुण-कर्म तथा उपयोग—फल स्नेहन और पित्तसंशमन है । जड़ विरेचन है । चचीण्डाका साग पकाकर खाया जाता है । यह शीघ्रपाकी और बल्य है । उष्णप्रकृतिवालों और उष्णरोगोंमें इसका खिलाना गुणदायक है ।
प्रतिनिधि—तुरई और परवल ।

●

(२३८) चचींडा (कडुआ)

नाम—(हिं०) कडुआ चिचिंडा, जंगली चचींडा; (फा०) चचींडा तल्ख़; (सं०) कटुपटोल; (बं०) बोन पटोल (चिचंगा); (म०) रान (कटु) पडवल; (गु०) कडवी पाडर, कडवी पटोल;(ले०) ट्रीकोज़ांथीस कूकुमेरिना (**Trichosanthes cucumerina** Linn.) ।

वक्तव्य—पश्चिम और दक्षिण भारतवर्षमें जहाँ परवल नहीं होता, वहाँ उसके स्थानमें चचींडा काममें लिया जाता है। अस्तु, वहाँ चचींडाको ही परवल कहते हैं । इसलिए इसको दक्षिणमें ‘कटु पडवल’ आदि नामसे पुकारते हैं ।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्षमें और लंकामें यह जंगली होता है । चचींडा इसका कृषिकृत भेद है ।

वर्णन—यह चचींडाकी जंगली बेल है, जो आलिंगिनी और न्यूनाधिक लोमयुक्त होती है । पत्र–हृदयाकृति प्रायः पाँच-खण्डयुक्त; पत्रवृंत १·८७५ सें०मी० (३/४इंच); आकर्षणी द्विशीर्ष होती है । पुष्प–पाँच पंखडीयुक्त सफेद होता है । फल–२·५ से १० सें०मी० (१–४इंच) लंबा, अंडाकृति, नुकीला, सफेद धारीदार, गहरा हरा और पकनेपर सिंदुरिया रंगका होता है ।

उपयुक्त अंग—फल और मूल ।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम और खुश्क ।

गुणकर्म तथा उपयोग—विरेचन, छर्दन और रक्तप्रसादन है । रक्तविकारजन्य रोगोंमें इसके फलका रस पिलाते हैं । इसे अधिक मात्रामें देनेसे उलटी होती है । विरेचनार्थ इसका मूल उपयोगमें आता है । मात्रा–स्वरस ५ से ७ तोले तक ।

आयुर्वेदीय मत—चिचिंडा रुचिकारक, पथ्य, बलकारक, वातपित्तनाशक, शोषरोगमें हितकारी और परवलसे गुणोंमें किंचित् न्यून है ।

●

(२३९) चना

फ़ैमिली : लेगूमिनोसी (Family : Leguminosae)

नाम—(हिं०) चना, र(ल)हिला; (अ०) हिम्मस; (फा०) नखुद; (सं०) चण, चणक; (बं०) छोला, बूट; (म०) चणे; (ले०) **सीसेर आरिएटिनुम्** (**Cicer arietinum** Linn.); (अं) ग्रैम (Gram)।

वक्तव्य—चनेको प्राचीन रूमी '**सीसेर (Cicer)**' और यूनानी '**एरेबिंथोस (Erebinthos)**' कहते थे। मिस्री इसे '**होमोस**' कहते हैं।

उत्पत्तिस्थान—सम्भवतः पूर्वी भारतवर्ष। भारतवर्षके समस्त उष्ण प्रदेशोंमें इसकी खेती की जाती है।

वर्णन—यह चैती फसलका एक प्रधान दालवर्गीय अन्न है।

रासायनिक संगठन—चनेके सिरका (चणकाम्ल)में आक्ज़ैलिक एसिड और मैलिक एसिड होते हैं। चनेमें पिष्ट ५९ प्रतिशत, ऐल्ब्यूमिनॉइड्स २०प्रतिशत, वसा ४ प्रतिशत, तंतु १ प्रतिशत, राख २ प्रतिशत, फॉस्फोरिक एसिड १ प्रतिशत और जल ११ प्रतिशत होता है।

उपयुक्त अंग—बीज या दाना (चना) और क्षार।

कल्प—रोग़न नखुद, क्षार (चनाखार)।

प्रकृति—मलभूतद्रवसहित पहले दर्जेमें **गरम** और **खुश्क**।

गुण-कर्म तथा उपयोग—बाजीकर, श्लेष्मनिस्सारक, मूत्रल, आर्तवजनन और लेखन। चनेके आटेकी रोटी पकाकर खाई जाती है। इसके अतिरिक्त यह अन्य प्रकारसे भी खाया जाता है। चनेके बनाये हुए आहार स्वादिष्ट होते हैं। पुष्टिके विचारसे यह गेहूँसे दूसरे दर्जेपर है। किन्तु यह गुरु एवं आनाहकारक है। यह शिश्नोच्छ्रायजनक है। इसलिए नपुंसक रोगियोंको इसके आटेका हलवा बनाकर खिलाते हैं अथवा आवश्यकतानुसार केवल चनेको जलमें भिंगोकर सबेरे खिलाते हैं और उसके पानीको मधु मिलाकर पिलाते हैं। स्वरको शुद्ध करने, कासको नष्ट करने एवं मूत्रार्तव प्रवर्तनके लिए चनेके क्वाथमें मधु मिलाकर पिलाते हैं। सूजाकमें चनेके आटे (बेसन)का हिम बार-बार पिलानेसे खूब पेशाब आकर मूत्रमार्ग शुद्ध हो जाता है। शरीर एवं मुखमण्डलको कांति प्रदान करने तथा तर एवं सूखी खुजली नष्ट करनेके लिए चनेके आटेका उबटन बनाकर शरीरपर मलते हैं। **अहितकर**–दीर्घपाकी। **निवारण**–पोस्तेका दाना, जीरा, सोआ और गुलकंद। **प्रतिनिधि**–लोबिया और तुर्मुस।

आयुर्वेदीय मत—**चना** मधुर, कषाय, शीतवीर्य,शरीरमें रूक्षता उत्पन्न करनेवाला,कफ और रक्तपित्तनाशक है। (पित्त) कफके रोगोंमें दाल का रसा बनाकर खिलाने तथा लेपनार्थ प्रशस्त माना गया है (च० सू० अ० २७) और पुंस्त्वनाशक होता है। घीके साथ सेवन करनेसे यह अत्यन्त त्रिदोषशामक होता है (सु०सू०अ०, ४६; च०सू०अ० २७)। चना वादी, वातल (राज०), हलका, विष्टम्भकारक, वातकारक, कुष्ठनाशक (मद०नि०), प्रमेहनाशक, दीपन, वर्णकारक, बलकारक, रुचिकारक, आध्मानकारक (रा० नि०) और ज्वरनाशक है (भा०प्र०)। **कच्चा चना** किंचित् कषाय, शीतवीर्य, कफ और वीर्यकारक, गौल्य, रुचिकर, तृप्तिकारक, दाहनाशक, तृषानिवारक, शोषनाशक और अश्मरीको दूर करनेवाला हैं (रा०नि०)। **चनेका दाल**–क्षोभकारक है (भा०प्र०)। **चने का शाक**–अम्ल, कषाय, कठिनतासे पचनेवाला कफ और वातकारक, विष्टम्भजनक, पित्तनाशक और दाँतोंकी सूजनको दूर करनेवाला है। (रा०नि०; भा०प्र०)। **चनाखार** अत्यन्त अम्लरसान्वित, कुछ लवणरसयुक्त, दीपन,दन्तहर्षजनक,रुचिकारी तथा शूल, अजीर्ण और विबन्धको दूर करनेवाला है (रा०नि०)।

●

(२४०) चनार

फ़ॅमिली : प्लांटानासे (Family : Platanaceae)

नाम—(हिं०; फा० पं०; क०) चनार; (अ०) सनार, दाब, दुल्ब, दुल्लब; (क०) बुइन, बोइन, बुंज; (ले०) **प्लाटानुस ओरिएन्टालिस** (**Platanus orientalis** L.)। **वक्तव्य**–फ़ारसी **'चनार'**से अरबी **'सनार'** बनाया गया है।

उत्पत्तिस्थान—इसके वृक्ष कश्मीरमें केवल लगाये हुए होते हैं।

वर्णन—यह एक प्रकारका बहुत ऊँचा पेड़ है, जिसके पत्र एरण्डपत्रके समान किन्तु उनसे छोटे, करतलाकार, जाड़ेमें बिल्कुल झड़ जाते हैं; **फूल** छोटासा पीले रंगका होता है। **फल**–पीले और मटियाले एवं ललाई लिये गोल या लम्बगोल कोषयुक्त होते हैं। पत्रका स्वाद तिक्त एवं कषाय होता है। **छाल** कुछ सफेद रंगकी और मोटी होती है। **फल** काठ होनेसे खानेके काममें नहीं आते हैं।

रासायनिक संगठन—इसमें **ऐलेन्टोइन** (Allantoin) और **ऐस्पेरेगिन** (Asparagin) ये दो सत्व पाये जाते हैं।

उपयुक्त अंग—पत्र, फल और छाल।

प्रकृति—शीत और रुक्ष है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—लेखन, संग्राही, वेदनास्थापन और व्रणलेखन है। इसका प्रधान कर्म श्वयथुविलयन और व्रण-लेखन है। कफज शोथ और सन्धिशोथपर इसके पत्तोंको महीन पीसकर लेप करते हैं। इसकी छालको जलाकर और बारीक पीसकर दुर्गन्धयुक्त दूषित और प्रकुथित व्रणोंपर छिड़का करते हैं तथा किलास, त्वक्परिपुटन (त्वचाके छिलके उतरना या उसमें व्रण पैदा होना) और परिसर्पी व्रणोंपर इसका लेप करते हैं। सूखे पत्रको बारीक पीसकर अवचूर्णन करनेसे भी व्रण सूख जाता हैं। सद्यव्रणोंको भरनेके लिए इसके ताजे पत्तोंका लेप गुणकारी है। दंतशूल और मसूड़ोंकी गरम सूजन नष्ट करनेके लिए इसकी छालको सिरकामें पकाकर गंडूष कराते हैं। इसके **फूल** और फलको बारीक पीसकर हुलास लेनेसे नकसीर बन्द हो जाती है। **अहितकर**–नेत्र और फुफ्फुसके लिए। **प्रतिनिधि**–खट्टे अनारका छिलका।

●

(२४१) चमेली

फ़ॅमिली : ओलियासे (Family : Oleaceae)

नाम—(हिं०; गु०) चंबेली, चमेली; (अ०) यासमीन, यासमून, यासमन; (फा०) समन; (सं०) सौमनस्यायनो; (बं०) चामेली; (म०) चमेली; (ले०) **जास्मीनुम् ऑफ़्फ़ीसिनाले प्रकार ग्रांडीफ्लोरुम्** (**Jasminum officinale** L. forma **grandiflorum** (L.) Kobuski (**पर्याय**–*J. grandiflorum* Linn.)।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष विशेषतः शीतोष्ण प्रदेशों और शीतोष्ण हिमालय पर इसकी झाड़ियाँ होती हैं। प्रायः भारतीय बागोंमें लगाई जाती है। **'पीली चमेली'** ईरान, दिल्ली, दक्षिण और अन्यान्य स्थानोंमें विपुल होती है।

वर्णन--फूलके लिये चमेली बगीचों में लगाई जाती है। यह एक क्षुप (झाड़ी) जातिकी वनस्पति है जिसकी शाखायें पतली, गोल और लम्बी होती हैं और अपनेसे खड़ी नहीं रह सकतीं, प्रत्युत अपने समीपके वस्तुओंपर चढ़ जाती हैं। पत्र जाईसे छोटे, संयुक्त, साधारण वृन्तमें २-३ जोड़ा और अन्य भागमें एक अयुग्मपत्र होता है। साधारण वृन्तमें नातिदीर्घ, क्षुद्रपत्रवृन्त अति ह्रस्व, केवल अग्रस्थित, अयुग्मपत्रका वृन्त दीर्घतर, वृन्तमूलमें पत्रभाग विषमभावसे अवसित, पत्रोदर गाढ़ हरिद्वर्ण, पत्रपृष्ठ फीकाहरा, पत्र प्रांत अखंड, पत्राग्र सूक्ष्म; पुष्प जाई से छोटे पुष्पदण्ड पर स्थित, पुष्पवृन्त दीर्घ, पंखड़ियाँ ऊपरसे रक्ताभश्वेत और भीतरसे श्वेत वर्णकी होती हैं। सुगन्ध जाईसे अधिक होती है और पुष्प श्वेत वा पीत वर्णके होते हैं। पीले फूलकी चमेलीका नाम **यासमीन ज़र्द (स्वर्णजाती)** है। पुष्प मिलित दल, पुंकेसर दलमें सन्निविष्ट, पुष्पनलातिक्रमपूर्वक स्थित; गन्ध मनोहर, पुष्पकाल फाल्गुन-चैत्र।

रासायनिक संगठन—पत्रमें एक राल, **सैलिसिलिक एसिड** (Salicylic acid) तथा **यास्मीनीन** (जस्मीनीन) नामक एक क्षारोद और एक कषाय सत्व प्रभृति द्रव्य होते हैं। फूलमें उड़नेवाला तेल (Essen. oil) होता है।

उपयुक्त अंग—पत्र, मूल और पुष्प।

कल्प—रोग़न चमेली।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें **गरम** और **खुश्क** है। (तेल) **गरम** और **तर** है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—वातानुलोमन, श्लेष्मद्रवविरेचनीय, वर्णप्रसादन (मुहस्सिन लौन) वेदनास्थापन, मूत्रार्तवजनन और वाजीकर है। यह विशेषरूपसे मस्तिष्कबलदायक (मेध्य) और मनःप्रसादकर है। चमेलीके फूलोंका सूँघना मेध्य और सौमनस्यजनन है। दंतशूल और मुखपाकमें इसके पत्रके काढ़ेका कवल (मजमजा) उपकारी होता है। सर्द सिरदर्द और सर्ददर्दोंमें इसकी जड़के काढ़ेका परिषेक कराया जाता है तथा कफोत्सर्ग एवं वातानुलोमनके लिए इसको पिलाते हैं। पक्षवध, कम्पवात, अर्दित और आमवातमें भी इसका उपयोग कराते हैं। इसकी जड़को उबटनमें योजित करते और अकेले भी चेहरेपर लेप करते हैं। बाजीकरणार्थ इसे शिश्न पर लगाते हैं। आर्तवप्रवर्तनके लिए जड़का क्वाथ पिलाते हैं। तिलोंको चमेलीके फूलोंमें बसाकर तेल निकाला जाता है जो **'रोग़न चमेली'**के नामसे प्रसिद्ध है। पक्षवध, अर्दित, आमवात और गृध्रसी जैसे रोगोंमें इसकी मालिश लाभकारी है। शरीरपर मर्दन करनेसे यह त्वचाको कोमल बनाता और खुजलीको दूर करता है। शिरमें लगानेसे मस्तिष्कको तरावट और शक्ति पहुँचाता है। परन्तु कहा जाता है कि इसके पुष्कल उपयोगसे बाल श्वेत होने प्रारम्भ हो जाते हैं। इसका इत्र हृदयको उल्लसित एवं बलप्रदान करता है। सफेद चमेलीकी अपेक्षया पीली या जर्द चमेली (यासमीन ज़र्द) (Gelsemii nitidum) बलतर होती है। **अहितकर**–उष्णप्रकृतिवालोंके लिए। **निवारण**–गुलबनफ़शा और गुलाबपुष्प। **प्रतिनिधि**–एक दूसरीका। **मात्रा**–जड़ ३ ग्राम से ५ ग्राम (३ से ५ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—चमेली, जूही (जाति) और मालती तिक्त, शीतवीर्य तथा कफ, पित्त, मुखपाक, व्रण और कुष्ठ,को दूर करनेवाली है। उनकी कली और पुष्प चक्षुष्य तथा वात, कफ, नेत्ररोग, व्रण विस्फोटक, और कुष्ठका नाश करनेवाले हैं (च० सू० अ० ४; ध० नि०; रा० नि०)।

नव्यमत—(चमेलीके पत्र) शीत, तिक्त, व्रणशोधन-रोपण और कुष्ठघ्न तथा फूल मूत्रजनन, आर्तवजनन और वाजीकर हैं। त्वचाके रोगोंमें कंडू कम होनेके लिये इसके फूलोंका लेप करते हैं। मुखपाक और दाँतोंकी पीड़ामें इसकी पत्तियाँ चबानेको देते हैं। कानसे पीव आती हो तो चमेलीके पत्तोंके कल्कसे सिद्ध किया हुआ तेल कानमें डालते हैं। पत्तियाँ कुचलकर पेडू और कमरपर बाँधनेसे मूत्रोत्सर्ग होता है, कामवासना बढ़ती है और आर्तवशूल कम होकर थोड़ा आर्तव भी साफ आता है। नेत्ररोगोंमें फूलोंका लेप करते हैं। सिरके दर्दमें फूलोंका लेप या चमेलीके तेलकी मालिश करते हैं।

(२४२) चाकसू

फ़ैमिली : लेगूमिनोसी (Family : Leguminosae)

नाम—(हिं०) चकसू, चाकसू; (अ०) जश्मीज़ज, तश्मीज़ज हब्बुस्सूदान, हब्बुस्सौदा; (फा०) चश्मीज़ज, चश्मीज़क, चश्मक, चशूम, चश्खाम; (सं०) चक्षुष्या, वन्यकुलत्थ,चाक्षु; (पं०) चक्सू; (गु०) चमेड़, चिमेड़; (म०) चिनोल; (सि०) चवर; (क०) क्रीड़, निन्द्रताछ; (बम्ब०) चकसी; (द०) चकसू, चकूत; (ले०) **कास्सिया आब्सुस् (Cassia absus Linn.)**। **वक्तव्य**–'जश्मीज़ज' और 'तश्मीज़ज (मख़्ज़न)' फारसी 'चश्मीज़ज (क)' से अरबी बनाये गए हैं। लैंटिननाम वनस्पतिका है। इब्नबैतारके मतसे सूडानका चाकसू सर्वोतम होता है; इसीसे इसे 'हब्बुस्सूदान' नाम दिया गया है।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष, छोटा नागपुर, पश्चिम हिमालयसे लंकापर्यन्त, उष्णकटिबन्धस्थित एशिया, आस्ट्रेलिया, अफरीका, सूडान, ईरान, अरब, हजाज आदि देश।

वर्णन—एक वर्षायु २० से ४५ से०मी० (हाथभर या ८"-१८") ऊँचा और सूक्ष्म चिपचिपा-रोमश क्षुप है। **पत्र**-संयुक्त समसंख्यक पक्षाकार द्विपत्रक; **पत्रक** केवल दो जोड़े, लट्वाकार या तिर्यगायताकार-लट्वाकार ८" से ९" लम्बे, उभय छोर सरल; **पुष्प**-सवृन्त पीले या लाल जिसमें केवल चार पुंकेसर होते हैं और जो अग्रय मञ्जरीमें रहते हैं; **फली** २·५ से ३.७५ सें०मी० १।२ अंगुल या १-१½ इंच लम्बी चौड़ी, चिपटी और सूक्ष्म रोमश होती हैं; **बीज** काले चिकने और चमकीले चपटे विषमाण्डाकार या दीर्घाकार (बिहदानाके बराबर त्रिकोणाकार) होते हैं। नालचिन्ह (Hilum) वाला सिरा दूसरेकी अपेक्षया अधिक नुकीला, लम्बाई और चौड़ाई लगभग समान, लगभग ४·१६ मि०मी० से ८.३ मि०मी० (१/६ इंचसे १/३इंच) तक; छिलकाकवच श्रृंगवत् कड़ा और मोटा, मग्ज़ (गिरी) द्विदल, पीत, स्वाद तिक्त होता है।

उपयुक्त अंग—बीज (चाकसू) और फलमज्जा (बीजकी गुद्दी)।

रासायनिक संगठन—बीजके मग्जमें **चकसीन** (Chaksine) **एवं आइसो-चकसीन** (Iso-chaksine) दोनों मिलाकर १·५% होते हैं, जिनमें चकसीन हृदय, नाड़ी एवं श्वासोच्छवास का अवसादक होता है। बीज में राख (Ash) ३·७% तथा अंशत: मैंगेनीज पाये जाते हैं।

प्रकृति —दूसरे दर्जेमें गरम और खुश्क (रूक्ष); आयुर्वेदके मतसे शीतवीर्य (ध० नि०) है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—रक्तस्तम्भन और उग्र संग्राहक, **लेखन**, **विलयन**, **चक्षुष्य** एवं प्राय: नेत्ररोगोंमें लाभकारी है। २१ नग चाकसूको ५ माशे सफेद चन्दनके साथ रातमें भिगोकर सवेरे उसका निथरा हुआ पानी पिलानेसे रक्तमूत्र विशेषत: वृक्कविकार-जन्य रक्तमूत्रता आरामहो जाती है। लेखन एवं विलयन होनेके कारण प्राय: नेत्ररोगों, जैसे–दृष्टिदौर्बल्य, नेत्राभिष्यंद, पोथकी, सिराजालक (जाला) और नेत्रस्राव (ढलका) के लिये सुरमा और धूड़ा (अवचूर्णन) की भाँति उपयोग किया जाता है। **अहितकर**–उष्ण प्रकृतिवालोंके लिये। **निवारण**—शोधन करना और अर्क गुलाब। **प्रतिनिधि**–कतिपय कर्मोंमें किरमानी तूतिया।

आयुर्वेदीयमत—चाकसू कषाय, शीतवीर्य, रक्त-पित्तकर तथा स्थावर और जंगमविप, नेत्रस्राव, विस्फोटक, कण्डू, व्रणदोष, आनाह, मेदरोग, अर्श, हिक्का, श्वास, कफ रोग और वातरोगका नाश करने वाला है, विशेषकर नेत्र रोगनाशक होता है। (सु० सू० अ० ४६; ध० नि०)।

नव्यमत—संग्राहक और नेत्राभिष्यन्द प्रशमन, पूययुक्त नेत्राभिष्यन्द में आधी रत्ती बीजोंकी गिरीका चूर्ण पलकके भीतर डालते हैं। इससे उत्तम लाभ होता है। गोबरके साथ पकाकर या प्याजके भीतर रखकर भूभल (भीरा) में पकानेके उपरान्त छिलका उतारकर अकेले या अन्य उपयुक्त औषधियोंके साथ उपयोग करते हैं।

(२४३) चाब और गजपीपल

फ़ैमिली : पीपेरासे (Family : Piperaceae)

नाम—(हिं०) च (चा)ब; (सं०) चव्य (क), चविका; (म०;गु०) चवक; (बं०) चोई; (बम्ब०) कंकल; (ले०) **पाइपेर चाबा (Piper chaba** Hunter.); (अं०) लाँग पेपर (Long Pepper)। फल (हिं०) गजपीपल; (सं०) गजपिप्पली, हस्तिपिप्पली।

उत्पत्तिस्थान—हेन्सके अनुसार भारतभरमें चव्यकी वन्य लतायें नहीं होती, केवल लगाई हुई मिल सकती हैं।

वर्णन—चव्यकी मूलरोहिणी लतायें होती हैं जिनका कांड मोटा, अनेक नालियों एवं २० पर्शुकाओंवाला, गुल्मकीय और चिकना होता है और उससे मूल निकलकर आश्रयसे चिपके रहते हैं। इस काँडके कटे हुए रंगके टुकड़े **चब, चाब** अथवा **चव्य** नामसे प्रयुक्त होते हैं जो गुणमें पिपलामूलके समान होते हैं। पत्तियाँ आयताकार **या** प्रासवत् आयताकार (नीचेकी लट्वाकार प्रासवत् भी), अग्र नोकदार और फलकमूल प्रायः तिरछा होता है। इसकी फलियाँ २·५सें०मी० से ५सें०मी० (१-२ इंच) लंबी और व्यासमें १·२५ सें० मी० से १·८ सें० मी० ($\frac{१}{२}$ इंच से $\frac{३}{४}$ इंच) मोटी होती हैं। यह मूलमें सबसे अधिक मोटी तथा शीर्षपरकुण्ठिताग्र होती हैं। असंख्य सूक्ष्म मांसलफलोंके द्वारा बनी हुई सघन, मांसल तथा शंक्वाकार रचनाको ही यहाँ 'फली' कहा गया है। **फल** बाजारमें **सिंगापुरी पीपल** और **गजपीपलके** नामसे बिकते हैं। 'अल्फाजुल्अद्विया,' 'मुफ़रदात हिन्दी' और 'तालीफ़शरीफ़ी' आदिके मतसे चबके फल को **गजपीपल** कहते हैं और यह सत्य प्रतीत होता है। क्योंकि गजपिप्पलीको पिप्पलीसे बड़ी होनी चाहिये। ऐसा यहाँ होता भी है। आयुर्वेदमें भी लिखा है, "चविकायाः फलं प्राज्ञैः कथिता गजपिप्पली" (भा० प्र०); "श्रेयसी (हस्तिपिप्पली, चविका विशेषः), तस्याः (चविकायाः) फलं विनिर्दिष्टं श्रेयसी गजपिप्पली।" (ध०; रा० नि०)।

उपयुक्त अंग—लता (काँड)के टुकड़े (चाबा) और फल (गजपीपल)।

योग—जोगराज गूगल (इलाजुल्अमराज़)।

चाब—

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें **गरम** और **खुश्क** (रूक्ष)।

गुण-कर्म तथा उपयोग—यकृदामाशयबलदायक, वाजीकर, शुक्रस्तम्भनकर्ता और जीर्णज्वरनाशक है। यह अर्श और उदरशूलको मिटाता तथा गुणधर्ममें पिपलामूलके समान है।

फल (गजपीपल)—स्वादमें यह तिक्त होता है।

प्रकृति—गरम और रूक्ष है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—**यह** क्षुधावर्धक- अतिसारकनाशक, वाजीकर और कुष्ठघ्न तथा कृच्छ्रश्वास, उदर कृमि और वात एवं कफनाशक है।

आयुर्वेदीय मत—चाब कटु (चरपरा), उष्णवीर्य, हलका, रुचिकारक, दीपन तथा कृमि, खाँसी, श्वास, बादी (वात), कफ, ज्वर, अर्श और शूलका नाश करता है (रा० नि०)। इसके गुण पीपलके समान हैं, विशेषकरके गुदाके रोगोंको दूर करता है (मद० नि०)। **गजपीपल**—चरपरा, उष्णवीर्य, रूक्ष, मलशोधक, रतन और कर्णवर्धक तथा कफवातनाशक (तीक्ष्ण, अग्निवर्धक, मलशोषक, लिंगवर्धक तथा अतिसार, श्वास, कण्ठरोग और कृमिका नाश करनेवाला) है। (रा० नि०)।

●

(२४४) चामघास

उत्पत्तिस्थान—बंगाल।

वर्णन—यह एक घास है जो बरसातमें तर स्थानोंमें पुष्कल होती है। इसमें दो-तीन काँड निकलते हैं जो एक गज या इससे न्यूनाधिक ऊँचे होते हैं। प्रत्येक काँडपर दो-तीन पत्र एक दूसरेसे मिले हुए लगते हैं। जड़ सफेद छोटे प्याजके बराबर होती है। पुष्प दुर्गन्धित होते हैं। इसका स्वाद तीक्ष्ण एवं क्षारीय होता है।

प्रकृति—गरम और खुश्क।

गुण-कर्म तथा उपयोग—व्रणलेखन, संशमन और विशेषतः श्वयथुविलयन, विसूचिका विध्वंसन और जलोदरमें लाभकारी है। इसके पत्र पकाकर जलोदरीको खिलाते हैं। इसकी जड़ और कालीमिर्चको पीसकर और चनेके बराबर गोलियाँ बाँधकर ३-४ गोली विसूचिकामें खिलानेसे वमन बंद हो जाता है। प्लीहाशोथ मिटानेके लिए इसकी जड़ चनेके बराबर केलेके एक टुकड़ेमें रखकर खिलाते हैं। इसकी जड़से मरहम बनाकर कतिपय व्रणोंको सुखानेके लिये उपयोग करते हैं। **मात्रा**—चना प्रमाण।

(२४५) चाय

फ़ैमिली : थीआसे (Family : Theaceae)

नाम—(हिं०; भा० बाजार) चा, चाह, चाय; (अ०) शाय; (फा०) चाय; (द०; बं०; गु०; म०) चा; (ले०) **कामेलिआ थीफेरा Camellia theifera** Griff. (पर्याय–थीआ सीनेन्सिस *Thea sinensis* Kuntz.); (अं०) टी (Tea)।

उत्पत्तिस्थान—चीन, तिब्बत, जापान, नीलगिरी, ट्रावनकोर, आसाम, दार्जिलिंग, नेपाल, पंजाब, खता और भारतवर्षके कतिपय अन्य स्थानोंमें इसकी खेती होती है।

वर्णन—यह विशेष विधिसे सुखाये और तैयार किये हुए चायके पत्र हैं जो पीने और औषधके काममें लिए जाते हैं। काली और हरी भेदसे चाय प्रधानतः दो प्रकारकी होती है।

रासायनिक संगठन—चायमें एक विशेष उत्पत् तेल, टैनिक अम्ल (Tannin) और गैलिक अम्ल, क्वेर्सेटिन (Quercetin), बोहिक अम्ल (Boheic acid), थीईन (Theine) नामक क्षारोद जो कहवामें पाये जानेवाले कैफ़ीन नामक क्षारोदके समान होता है तथा जैन्थीन (Xanthine) और थिओफिलीन (Theophylline) नामक क्षारोद आदि द्रव्य होते हैं।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम और खुश्क है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—सौमनस्यजनन, संताप एवं मस्तिष्कोत्तेजक, पाचन, सारक, विलयन, उष्णताजनन, तारल्यजनन, प्रमाथी, स्वेदल, मूत्रल और मिथ्या तृष्णा निग्रहण है। थकावट दूर करनेके लिए इसका उपयोग करते हैं। यह दुःख एवं चिंताको दूर करती है। किसी-किसीके मतसे यह दीपन एवं ओजों और शक्तियों (अरवाह व क़ुवा)को बलप्रदान करनेवाली है। सौमनस्यजनन होनेके कारण यह हृद्रोगों, जैसे—दिलकी धड़कन, दुःख एवं भ्रमनिवारणके लिए उपकारक है। मस्तिष्कोत्तेजक होनेके कारण यह श्रांतिहरणके लिए उपयोग की जाती है।

उष्णताजनन, तारल्यजनन और प्रमाथी होनेके कारण यह पक्षवध, कास, कृच्छ्रश्वास, पांडु (रक्ताल्पता) और जलोदरमें लाभकारी हैं। मूत्रल होनेसे वह कामला और मूत्रावरोधमें लाभ करती है। पकाकर लेप करनेसे यह ग्रन्थिविलयन और अर्शोवेदनाहर हैं। साम्प्रत आहारके एक उपादानकी भाँति चायके उपयोगका प्रचलन प्रचुरतासे हो गया है। इसके प्रयोगबाहुल्यसे प्रजागरण विकार अधिक हो जाता है जिसका निवारण दूधके मिश्रणसे हो सकता है। **अहितकर**–अनिद्रा एवं रूक्षता उत्पन्न करती हैं। **निवारण**–दूध और शर्करा। **प्रतिनिधि**–क़हवा। **मात्रा**–३ ग्रामसे ६ ग्राम (३ से ६ माशे) तक।

●

(२४६) चावल

फ़ैमिली : ग्रामीने (Family : Gramineae)

नाम—(हिं०) चावल; (अ०) उरुज़(ज़्ज़), अरुज़, उर्ज़, रूज़, समन; (फा०) बिरंज; (सं०) तण्डु(न्दु)ल; (बं०) चाल, चांओल; (गु०) चोखा, डांगर; (म०) भात; (सिंध) चांवर; (ले०) **ओरीज़ा साटीवा** (**Oryza sativa** Linn.); (अं०) राइस (Rice)।

वक्तव्य—लेटिन नाम धान (चावलके पौधे)का है। अरबी **उरुज़** यूनानी 'ओरीज़' या 'ओरूजा (Oruza)'से व्युत्पन्न है। यूनानी नाम सम्भवतः संस्कृत 'व्रीहिसे' व्युत्पन्न है। फारसी **बिरंज** भी संस्कृत 'व्रीहि' पर आधारित प्रतीत होता है। सुरयानी भाषामें इसे '**रोज़ी**' और मिस्रमें 'अरूज' या 'रूज' कहते हैं।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्षमें धानकी खेती की जाती है अथवा यह जंगली होता है। भारतवासियों विशेषत: बंगाल, बिहार, आसाम, ब्रह्मा और मदरास एवं बम्बई प्रांतके कतिपय भागोंके निवासियोंका यह प्रधान खाद्य है।

वर्णन—यह तृण जातीय धान नामक पौधेके छिलका उतारे हुए बीज हैं जिनकी गिनती अच्छे अन्नों में है। इसके शालि, षष्टिक और व्रीहि आदि बहुसंख्य भेद हैं। इनमें जो बिना कूटे-फटके सफेद होते और हेमन्तऋतुमें (रबीकी फसल)में होते हैं उनको 'शालि' और 'हैमन्तिक' कहते हैं। तथा जो वर्षाऋतुमें होते हैं उनको 'व्रीहि' कहते हैं। (भा० प्र०)। चक्र० व्रीहियोंको ग्रैष्मिक बताते हैं। षष्ठिक (साठी)व्रीहिका ही एक भेद है जो शीघ्रपाकी अर्थात् साठ दिनमें होता है। इन सबमें 'रक्तशालि' श्रेष्ठ है। अन्यशालि रक्तशालिसे गुणमें हीनतर होते हैं। व्रीहियोंमें षष्ठिक श्रेष्ठ हैं। (अ० हृ०)। उपर्युक्त इन शालिभेदोंके कारण चावल कई प्रकारके होते हैं। उनके अनुसार तथा जमीनकी प्रकृति (दग्ध भूमि, जांगल और आनूप भूमि), सिंचाई, खाद और तैयार करनेकी पद्धति (रोप्य, अतिरोप्य और छिन्नरूढ़) उनके अनुसार चावलोंके गुणधर्मोंमें और पौष्टिकतामें बड़ा अन्तर होता है।

रासायनिक संगठन—इसमें पिष्टमय पदार्थ (कार्बोहाइड्रेट) बहुत अधिक है और शरीरधातुवर्धक (प्रोभुजिन-प्रोटीन), चरबी और खनिज बहुत कम हैं। खनिजमें फॉस्फ़ोरस (भास्वर), लौह, मैंगनीज आदि तत्व होते हैं। खनिज और प्रोभूजिन चावलके ऊपरी पर्तमें होते हैं। इनके अतिरिक्त उसमें विटामिन 'B' (Vitamin 'B') भी होता है।

कल्प—फीरिना और मंड।

प्रकृति—पहले दर्जेमें शीत एवं रूक्ष है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—यद्यपि इसमें गेहूँसे पौष्टिकता कम है तथापि यह शीघ्रपाकी एवं उत्तम आहार है। उष्ण व्याधियों एवं प्रकृतियोंमें इसका उपयोग गुणकारी है चावलोंका धोवन ग्राही और मूत्रल होनेके कारण अति-

सार, सूजाक और श्वेतप्रद जैसे रोगोंमें प्रयुक्त औषधियोंके साथ अनुपानकी भाँति उपयोग किया जाता है। चावलोंका मंड शीघ्रपाकी है। यह उष्णप्रकृतियोंको लाभ पहुँचाता है। चावलके आटेका अकेला या उपयुक्त औषधियोंके साथ चेहरे और शरीरके वर्णप्रसादनके लिए उवटनकी भाँति उपयोग करते हैं। **अहितकर**–सुद्दे पैदा करता है। **निवारण**–गेहूँकी भूसीके पानीमें भिगोना।

आयुर्वेदीय मत—**शालि** रस तथा विपाकमें मधुर, शीतवीर्य, स्निग्ध, लघु (शीघ्र) पाकी, बलकारक, बृंहण, शुक्रल, मूत्रल, मलावरोधक (ग्राही, बद्धवर्चस्), अल्प मात्रामें बँधे हुए पुरीषको लानेवाला (अल्पवर्चस्) तथा वात और कफका थोड़ा प्रकोप करनेवाला है (च०सू० २७ अ०; सु०सू०अ० ४६)। **रक्तशालि** (दाऊदखानी) शुक्र और मूत्र उत्पन्न करनेवाला, नेत्रके लिए हितकर, वर्णकारक और बलकारक, स्वरके लिए हितकर, हृदयके लिए हितकर, तृषा शांत करनेवाला, व्रणमें हितकर तथा ज्वरनाशक, त्रिदोपनाशक एवं सर्व दोषों और विषोंको शांत करनेवाला है। (च० सू० अ० २७; सु० सू० अ० ४६)। **भावप्रकाशमें यह अधिक लिखा है**—दद्रुघ्न, कासश्वासहर और पुष्टिदायक है। महाशालि आदिके गुण इसकी अपेक्षा कम हैं। **राजशालि** (हंसराज, वासमती इत्यादि) मधुर, स्निग्ध, हलके, दीपन, बल्य, कान्तिकारक, धातुवर्धक, पथ्य और त्रिदोपनाशक है। (रत्नाकर)। षष्ठिक–(साठी) धान गुणमें शालि और लाल शालिधानके समान है, और अन्यान्य धान इनसे हीन गुणवाले हैं। यह अनुरसमें कषाय,. स्वादिष्ट, मधुर, विपाकमें मधुर, शीतवीर्य, हलका और (पथ्य), स्निग्ध, स्थिर (शरीर स्थैर्य करनेवाला), नरम (मृदु), मलरोधक (ग्राही), बलदायक तथा त्रिदोपनाशक और ज्वरनाशक हैं। (च० सू० अ० २७; सु० सू० अ० ४६: वाग्भट; भा० प्र०)।

◆

(२४७) चावलमुँगरी

फ़ैमिली : बिक्सीने (Family : Bixineae)

नाम—(हिं०; बं०) चावलमुँगरी (मख्ज़न), चावल(चॉल)मोगरा, चॉलमुगरा; (फा०) तुख़्मे बिरंजमोगरा; (सं०) तुवरक भेद; (बं०) चालमुगरा; (ब्रह्मा) कलंजो; (ले०) **गीनोकॉर्डिआ ओडोराटा** (**Gynocardia odorata** R. Br.); (अं०) चॉलमोगरा (Chaulmoo (u) gra)।

उत्पत्तिस्थान—पूर्वी बंगाल, ब्रह्माका ऊपरी भाग, पेगू, यूमा और मर्तबानके दक्षिणी पूर्वी ढालुओंपर, सिलहट और चिटेगाँवके जंगलोंमें इसके वृक्ष होते हैं।

वर्णन—यह एक बहुत ऊँचे भारतीय वृक्षके प्रसिद्ध बीज हैं जो २·५सें०मी० (१ इंच) लम्बे होते हैं। छिलका पतला, भंगुर और खाकी होता है। इसका मग्ज बाहरसे काला और भीतरसे पिलाई लिये सफेद होता है; किन्तु पुराना होनेपर कालापन लिये पीला हो जाता है। इसमें न कोई स्वाद होता है और न गंध। ताजा अच्छा होता है। इसमें १०० तोले बीजोंमेंसे २५ से ३० तोले तक तेल निकलता है। यह पिलाई लिए भूरे रंगका और प्रायः जमा हुआ होता है। इसकी गंध विशेषप्रकारकी और स्वाद साधारण तीक्ष्ण होता है।

वक्तव्य—इसके अतिरिक्त इसी कुलके कई अन्य वृक्ष, जैसे–सुश्रुतोक्त तुवरक अथवा कटुकपित्थ या कडुकवीठ (म०), **हिड्नोकार्पुस वीटियाना** (**Hydno carpus wightiana** Blume.) तथा 'कलव' **टॅराक्टोजेनोस कुर्जिआई** (**Taraktogenos kurzii** King.) आदि हैं, जिनके बीज एवं तेल स्वरूपाकृतिमें और गुणकर्ममें चॉलमुगराके बीज एवं तेलके बहुत समान होते हैं। अतएव उनका उपयोग भी चॉलमोगराके स्थानमें होता है। पाश्चात्य फार्माकोपिआमें

चॉलमुगराका स्थान अब तुवरकतैलने ले लिया है और इसका तेल पाश्चात्य औषधिसंसारका अधिकृत (Official) द्रव्य है। भारतीय वैद्यों द्वारा कुष्ठमें इसका सफल उपयोग देखकर मौआर्ट (Mauart)ने सन् १७५४ ई० में इसका प्रारम्भ युरोपमें किया और तबसे बहुत दिनों तक पाश्चात्य वैद्यकमें भी कुष्ठकी यही प्रधान औषधि रही है। सुश्रुतके मधुमेह चिकित्सा (अध्याय १३)में तुवरकका विषद विवरण किया गया है। उसके अन्तमें लिखा है–'महावीर्यस्तुवरकः कुष्ठमेहापहः परः'। उसी अध्यायमें इसके कुष्ठनाशक गुणके सम्बन्धमें भी लिखा है। इसकी गंध विशेष प्रकारकी और स्वाद साधारण तीक्ष्ण होता है।

रासायनिक संगठन—तेलमें चालमौग्रिक अम्ल और नारिकेलाम्ल ये दो अम्ल मुख्यतया होते हैं।

उपयुक्त अंग—बीज और बीजोत्थ तेल (चालमुगराका तेल तुवरकतेल)।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें गरम और खुश्क।

गुण-कर्म तथा उपयोग—शोणितोत्क्लेशक, लेखन और रक्तप्रसादन है। चावलमुँगरी कुष्ठकी अन्वर्थ औषधि है। इसका आन्तरिक एवं बाह्य उपयोग करते हैं। इसका तेल कुष्ठके व्रणोंपर लगाया जाता और कुष्ठीको खिलाया जाता है। कुष्ठके अतिरिक्त चावलमुँगरी और इसके तेल (रोग़न चावलमुँगरा)को दद्रु, पामा (नारफारसी), व्रणित कच्छू, आमवात और वातरक्तमें भी खिलाते हैं। **अहितकर**–उष्ण प्रकृतिवालोंके लिए। **निवारण**–दूध, घी और शर्करा। **मात्रा**–चावलमुँगरी १ से ३ माशे तक उत्तरोत्तर बढ़ाकर; चॉलमुगरा तेल ५ से १० बूँद धीरे-धीरे क्रमानुसार उत्तरोत्तर बढ़ाते हुए ३० बूँद से ६० बूँद तक दूधकी मलाई या गायके घीमें मिलाकर दे सकते हैं।

नव्यमत—चॉलमोगराका तेल कृमिघ्न, वेदनास्थापन, त्वग्दोषहर, रक्तशोधन और व्रणरोपण है। सब प्रकारके त्वचाके रोगोंमें और महाकुष्ठोंमें इसे खाने और लगानेको दिया जाता है। फिरंगोपदंशकी द्वितीयावस्थामें यह उपयोगी है। गण्डमाला, व्रण, नाड़ीव्रण और अस्थिव्रणमें इस तेलके खिलाने और लगानेसे उत्तम लाभ होता है। आमवात, गृध्रसी आदि वातरोगोंमें यह खाया और लगाया जाता है।

(२४८) चिरचिटा

फ़ैमिली : आमारान्टासे (Family : Amarantaceae)

नाम—(हिं०) चिरचिटा (रा), चिचड़ा (ड़ी), लटजीरा, ओंगा, अंझाझार; (अ०) अत्‌कुमः; (फा०) ख़ारेवाज़गूनः; (सं०) अपामार्ग; (बं०) आपाङ; (पं०) पुठकण्डा; (गु०) अघेड़ो; (म०) अ(आ) घाड़ो; (कु०) साजी; (मा०) ओंगा; आँधीझाड़े; (ले०) आकीरान्थीस आस्पेरा (**Achyranthes aspera** Linn.); (अं०) रफ चैफ-ट्री (Rough Chaff-tree)।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष।

वर्णन—यह एक प्रकारका फलपाकान्त क्षुप है, जो वर्षाका प्रथम पानी पड़ते अंकुरित होता है। वर्षामें बढ़ता, शीतकालमें पुष्प और फलसे शोभित होता और ग्रीष्मके प्रखर सूर्यातपद्वारा फलके परिपक्व होनेके साथही सूख जाता है। इसका क्षुप $१\frac{१}{२}$ या २ फुट ऊँचा और कभी-कभी इससे भी अधिक ऊँचा होता है। काण्ड या साधारण वृन्त सीधा, खड़ा, चिपटा, चौकोना (लाल चिरचिटाकी शाखायें लाल और सफेदकी श्वेत होती हैं), धारीदार और लोमश होता है। पार्श्विक शाखायें (वृन्त) युग्म, परिविस्तृत; पत्र आमने-सामने बहुत सूक्ष्म शुभ्रवर्णके रोमसे आवृत, हृदयाकृति वा अण्डाकार, आधारकी ओर पतले (नुकीले) ७.५ सें० मी० (३ इंच) लम्बे, ६.२५ सें० मी०

(२½ इंच) चौड़े, पत्रप्रांत सामान्य; पत्रवृन्त क्षुद्र (लाल चिरचिटाके पत्रपर रक्त बिंदुक दाग होते हैं); उभय प्रकारके चिरचिटा की मञ्जरियाँ दीर्घ, कर्कश (खरमञ्जरी); पुष्प लघु हरति वा लाल तथा बैंगनी मिले हुये रंगके होते हैं। पौष्पिकपत्र कठोर तथा कंटकाकीर्ण होता हैं। फूल खिलते समय ऊर्ध्वमुख और उसके बाद कुछ पार्श्वकी ओर तिर्छा और अन्तमें फलके पकनेपर अधोमुख झूलता रहवा है। शरीरसे स्पर्श होनेसे ये कपड़ेमें लिपट जाते हैं। फलके भीतर दीर्घाकार २·५ मि० मी० से ३ मि० मी० (१/१० इंच से १/८ इंच) लम्बा और भूरा वीज होता है। यह चावलके छोटेसे दानेके समान और नोंकदार होता है। इसलिए इसे 'अपामार्ग-तण्डुल' कहते हैं। यह स्वादमें तिक्त होता है। अपामार्गकी जड़ मूसला होती है।

रासायनिक संगठन—बीजमें विपुल प्रमाणमें एक क्षारीय राख होती है जिसमें पोटास वर्तमान होता है।

उपयुक्त अंग—पंचांग और पंचांग क्षार तथा शाखा, पत्र, मूल, और बीज (तण्डुल)।

अपामार्गक्षार। निर्माणविधि—आवश्यकतानुसार चिरचिटेके क्षुप (पंचांग) लेकर छाँहमें सुखाकर जलायें। फिर इसकी सफेद राखको काफी जलमें हाथसे भली-भाँति घोलकर स्थिर होनेके लिये रख छोड़ें। सबेरे निथरा हुआ साफ पानी लेकर पकायें। जब पानी जल जाय और क्षारके कण जम जायें तब उतार लें और उन्हें खुरचकर शीशी में सुरक्षित रखें। इसे ही 'नमक चिरचिटा' या 'चिरचिटेका खार' कहते हैं।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम और खुश्क है। आयुर्वेदमतेन उष्णवीर्य (ध० नि०; कै० नि०)।

गुण-कर्म तथा उपयोग—वृश्चिक एवं सर्पविष-नाशन, वातानुलोमन, दीपन, मूत्रजनन, श्वयथुविलयन, श्लेष्मनि:सारक और रक्तप्रसादन है। चिरचिटाको वृश्चिक एवं सर्पदष्टका अगद मानते हैं। उक्त रोगियोंको इसकी जड़ जलमें पीसकर पिलाते और दंशस्थानपर लेप करते हैं। उदरशूल, आनाह, जलोदर, दद्रु और फोड़े-फुंसियोंको नष्ट करनेके लिये इसके पंचांगका क्वाथ करके या पीस-छानकर पिलाते हैं। अर्शके रक्तको बन्द करनेके लिये चिरचिटाके पत्रके कुछ दाने काली मिर्चोंके साथ पीस-छानकर पिलाते तथा पत्तोंकी टिकिया बनाकर सुहाता गरम करके विकारी अंगपर बाँधते हैं। जड़को पानीमें पीसकर फोड़े-फुन्सियों विशेषकर कक्षराली (कछराली) को बिठानेके लिये लेप करते हैं। चिरचिटाको जड़, पत्र और शाखाओं सहित जलाकर आनाह, उदरशूल, बावगोला, कास, श्वास और बस्त्यश्मरीको नष्ट करनेके लिये उपयोग करते हैं। इसके पंचांगको सुखानेके उपरांत जलाकर विशेष विधिसे नमक (क्षार) प्राप्त किया जाता है। यह इसका क्षार (नमक) या भस्म कफजकास, श्वास, उदरशूल, आनाह, बावगोला, बस्त्यश्मरी और जलोदरमें परम गुणकारी है। जलोदरमें इसे ऊँटनीके दूधके साथ खिलानेसे बहुत शीघ्र लाभ होता है। अहितकर—क्षुधानाशक। निवारण—काली मिर्च और शुद्ध मधु। मात्रा—५ ग्राम से ७ ग्राम (५ माशे से ७ माशे) तक; नमक चिरचिटा ०·५ ग्राम से १ ग्राम (४ रत्तीसे १ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—अपामार्ग कटु, तिक्त, उष्णवीर्य, तीक्ष्ण, दोपन, पाचन, सारक, रोचक, वमन करानेवाला ग्राही, शिरोविरेचन (बीजतण्डुल) तथा कफ, मेद, वात, अर्श, कण्डू, उदर, आम, शूल, हिक्का और अपचीका नाश करनेवाला है (च० सू० अ० २, ४; सु० सू० अ० ३८; ध० नि०; कै० नि०)

नव्यमत—अपामार्ग तिक्त, कटु, तीक्ष्ण, दीपन, अम्लतानाशक, रक्तवर्धक, शोधन, अश्मरीघ्न, मूत्रजनन, मूत्राम्लतानाशक, स्वेदजनन, कफघ्न और पित्तसारक है। भोजनके पहिले चिरचिटा देनेसे आमाशयका पाचकरस बढ़ता है और आमाशयकी पीड़ा कम होती है। भोजनके बाद देनेसे आमाशयमें अम्लता कम होती है और कफ विलीन होता है। चिरचिटासे यकृत्की पित्तवाहिनियोंका शोथ कम होता, यकृत्की क्रिया सुधरती तथा यकृत्में रक्तसंचार ठीक होने लगता है। इसलिये पित्ताश्मरी और अर्शमें चिरचिटा देते हैं। चिरचिटाके अन्तर्गत क्षार रक्तमें शीघ्र मिल जाता है, रक्तके रंजक कण बढ़ते हैं; रक्तका रंग सुधरता है और रक्तोदक का क्षार-धर्म बढ़ता है। रक्त में मिला हुआ क्षार मूत्रपिण्ड (गुर्दे), त्वचा, फुफ्फुस, आमाशय, यकृत् और पित्तके द्वारा बाहर आता है और जिन-

जिन अवयवों द्वारा बाहर आता है उनको जीवन विनिमय क्रिया सुधारता है। यह नवीन और जीर्ण आमवात, संधिशोथ, गण्डमाला, मूत्रपिण्डोदर, हृदयोदर, अश्मरी, बस्तिशोथ, मूत्रपिण्डशोथ, श्वासनलिकाशोथ, प्लीहावृद्धि इन रोगोंमें हितकर है। अपामार्ग रतौंधोमें हितकर है। इसमें चिरचिटाकी जड़का चूर्ण ६ ग्राम से १२ ग्राम ($\frac{१}{२}$-१ तोला) रातको सोते समय दूधके साथ देना और रोगीको पौष्टिक आहार खानेको देना लाभप्रद है। आँखकी फूलीमें चिरचिटाकी जड़ शहदमें घिसकर लगाते हैं।

●

(२४९) चिरायता

फ़ैमिली : जेन्टिआनासे (Family : Gentianaceae)

नाम—(हिं०) चिराय(ई)ता, चिरैता; (अ०) क़सब्बुज़्ज़रीरा; (फा०) नैनिहाबन्दो; (सं०) किरात, किराततिक्त, भूनिम्ब; (ब०) चिरा(रे)ता; (म०) किराईत; (गु०; कना०) करियातुं; (पं०) चिरैता; (मा०) चिरायतो; (सि०) चिराइतो; (ले०) स्वेर्टिआ किराटा **Swertia chirata** Buch.। **(पर्याय-ओफेलिया किराटा** *Ophelia chirata* Griseb.); (अं०) चिरेट्टा (Chiretta), चिरायटा (Chirayta), व्हाइट ऑर ब्राउन चिरेटा (White or Brown Chirata)।

इतिहास—भारतीयोंको अतिप्राचीन कालसे इस औषधिका ज्ञान है। उत्तर भारतमें एक प्राचीन भारतीय पर्वतीय जाति 'किरात' नामसे प्रसिद्ध थी। यह जाति विशेषरूपसे इस औषधिका उपयोग औषधिकी भाँति करती थी। अस्तु इसका संस्कृत नाम 'किराततिक्त अर्थात् किरातोंकी तिक्त औषधि', इसो अनार्य जातिके नामसे अभिहित है। इसके लैटिन एवं अंग्रेजी नाम इसके संस्कृत एवं हिन्दी नाम 'किरात या किराता एवं चिरेता' संज्ञासे व्युत्पन्न हैं। सुश्रुत आदि ने इसका बार-बार उल्लेख किया है। **दीसकूरीदूस** ने इसकी यूनानी संज्ञा **कालामुस आरोमाटीकुस (Calamus aromaticus)** लिखी है। परन्तु यूरोपीय अन्वेषकोंने विश्वास एवं बलपूर्वक लिखा है कि उक्त संज्ञा चिरायताका नहीं, अपितु 'बच' का है, जिसको अब '**आकोरुस कालामुस (Acorus calamus.)**' कहते हैं। इससे ज्ञात होता है कि यूनानियोंको उक्त औषधि अज्ञात थी।

उत्पत्तिस्थान—समशीतोष्ण हिमालयमें कश्मीरसे भूटान और खसिया पर्वतमाला तथा कुमाऊँ पर्वतमें समुद्रके धरातलसे ४,००० से १०,००० फुट तककी ऊँचाई पर इसके क्षुप होते हैं। नैपालके **'मोरंग' प्रदेश**में यह विपुल होता है। मार्चके अंतमें इसके बँधे हुए गट्ठे बाजारोंमें आते हैं। बाजारमें मिलनेवाले चिरायतेका अधिक भाग नेपालसे ही आता है।

वर्णन—यह एक क्षुप है जो ४५ सें० मी० से ९० सें० मी० (१ हाथसे गज भर तक ऊँचा) होता है। कांड-भूरा या बैंगनी लिए २·५ मि० मी० से ·७५ मि० मी० (१/१० से ३/१० इं०) मोटा, नीचे गोल और ऊपर किसी प्रकार चौकोर एवं शाखायुक्त होता है। शाखायेंभी चौकोर होती हैं और प्रत्येक शाखा दो क्षुद्र शाखाओंमें विभक्त होती है। कांड और शाखा गहरे हरे रंगकी खोखली और ग्रंथिल होती हैं। प्रत्येक ग्रंथिसे आमने-सामने दो शाखायें निकलती हैं। पत्र आमने-सामने अंडाकार, लम्बाग्र, आधारको ओर हृदयाकार, अखंड, वृंतशून्य, १ इंच या अधिक लंबा, लंबाईके रूख ३ से ७ सिरायुक्त, जिनमें मध्य पर्शुका दृढ़तम होती हैं। फूलकी तुरी लगती है। फूल पीला होता है। दलचक्र ४, चक्राकार १·२५ स० मी० (१/२ इंच) लंबा, पुटचक्र (पुष्पबाह्यकोष) दलचक्र (पुष्पाभ्यन्तरकोषका $\frac{१}{३}$ लंबा होता है। फली गोपुच्छाकार, एककोषयुक्त, द्विकपाटयुक्त और असंख्य क्षुद्र बीजयुक्त होती है।

चिरायता निर्गंध और अत्यन्त तिक्त होता है। इसका फूल सर्वाधिक तिक्त होता है। **मीठा चिरायता** (**स्वेर्टिआ आंगूस्टीफ़ोलिआ Swertia angustifolia** Ham.) इसका एक अन्य भेद है। यह बिल्कुल तिक्त नहीं होता। वासाकुल के कालमेघ या कल्पनाथ **आण्ड्रोग्राफिस पानीकुलाटा Andrographis paniculata** Nees. (*Family : Acanthaceae*) नामक उद्भिद्को 'हरा चिरायता (Green Chiretta)' कहते हैं। यह चिरायताके समान ही तिक्त होता है, किन्तु स्वादमें मटियाला नहीं होता। इसके लिये 'कालमेघ' देखें।

रासायनिक संगठन—इसमें किरातीन (**चिरेटीन**) नामक एक पीला तिक्त ग्लूकोसाइड, किराताम्ल (**ओफेलिक एसिड**) नामक एक एमॉर्फस तिक्त सत्वसे संयुक्त पाया जाता है। इसमें कपायाम्ल (टैनिक एसिड) नहीं होता।

उपयुक्त अंग—पंचाग और पुष्प।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें **गरम** और खुश्क है। आयुर्वेदके मतसे शीतवीर्य (ध० नि०) है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—**रक्तप्रसादन**, श्वयथुविलयन, तारल्यजनन (मुलत्तिफ़), रूक्षण, संग्राही, मूत्रार्तवजनन, **यकृदामाशयबलदायक**, वातानुलोमन, **कृमिनाशन** और **ज्वरघ्न** है। रक्तप्रसादन होनेके कारण कुष्ठ, फिरंग (आतशक), खर्जू (खुजली), शोथ, फुंसी आदि अन्य त्वचाके रोगोंमें इसका हिम या फांट दिया जाता है। दीपन, बातानुलोमन और संग्राही होनेसे यह आनाह, अरुचि,अजीर्ण, मंदाग्नि और अतिसारमें प्रयुक्त होता है। यह **कटुपौष्टिक** होनेके कारण दौर्बल्य एवं **रोगोत्तरकालीन दौर्बल्य**के लिए उपयोगी है। ज्वरघ्न होनेके कारण जीर्णज्वर और **ऋतुज्वरों**में इसका फांट या क्वाथ बनाकर अकेले या अन्यान्य औषधियोंके साथ पिलाते हैं। श्वयथुविलयन होनेके कारण आंतरिक अंगोंकी सूजनमें पेय औषधकी भाँति और बाह्य शोथमें प्रदेहकी भाँति इसका उपयोग करते हैं। **अहितकर**–कटिके लिए। **निवारण**–अनीसूँ और बुत्मका गोंद या धमासा। **मात्रा**–५ ग्रामसे ७ ग्राम (५से ७माशे)तक।

आयुर्वेदीय मत—चिरायता तिक्त, रूक्ष, लघु, शीतवीर्य, सारक, स्तन्यशोधन तथा कफ, पित्त, रक्त, कुष्ठ, व्रण और कृमियोंका नाश करनेवाला है। (च० सू० अ०४, वि० अ० ८; सु० सू० अ०३८; ध० नि०; भा० प्र०)।

नव्यमत—चिरायता दीपन, पाचन, कटुपौष्टिक, ज्वरघ्न, दाहप्रशमन और आनुलोमिक है। इससे आमाशयिक रस बढ़ता है और अन्नका पाचन होता है। यह उत्तम कटुपौष्टिक है। इसके साथ सुगन्धित द्रव्योंका प्रयोग करना चाहिए। जीर्ण विषमज्वरमें जब शरीरमें ज्वर गुप्तावस्थामें रहता हो और कुपचन तथा शरीरमें दाह रहता हो तब इससे बहुत लाभ होता है। श्वासनलिकाओंके शोथ और संकोचविकाससे उत्पन्न श्वासमें इससे लाभ होता है। आमाशयकी शिथिलतामें यह उत्तम औषध है। इसमें दस्त साफ होता है।

●

(२५०) चिरौंजी

फ़ैमिली : आनाकार्डियासे (Family : Anacardiaceae)

नाम—फलमज्जा व बीज (हिं०; खर०) चिरौंजी, चिरोंजी; (सं०) प्रियाल बीज, चारबीज; (बं०) चिरोंगी; (म०; गु०) चारोंली; (पं०) चिरोली, चिरोंजी। फल एवं वृक्ष (हिं०) पियाल (र), कठभिलावा, चिरौंजीका पेड़, चार (फल); (सं०) प्रियाल; (लें०) **बुकानानिआ लांजान Buchanania lanzan** Spreng. (**पर्याय**–*B. Latifolia Roxb.*); (अं०) दी कुडुपा आमंड (The Cuddapah Almond)।

वक्तव्य—**'नफ़ाइसुल्लोग़ात'** में चिरौंजीका अरबी, फारसी नाम क्रमशः **'हब्बुस्सिमना'** और **'नुक्लेख़्वाजा'** लिखे हैं। परन्तु वे इससे भिन्न हैं। क्योंकि चिरौंजीका फल उससे बड़ा होता है और फल स्वरूपमें भी एकसे नहीं होते। गुणकर्ममें दोनों प्रायः समान हैं।

उत्पत्तिस्थान—इसके वृक्ष भारतवर्षके समस्त उष्ण एवं शुष्क भागोंमें होते हैं। व्यापारमें अधिक मात्रामें चिरौंजी मध्यभारतसे आती है। क्योंकि विंध्यपर्वतके जंगलोंमें इसके वृक्ष अधिक मिलते हैं।

वर्णन—यह 'चार' या 'पियार' वृक्षके फलके बीज (गुठली)की गिरी (मग्ज़) हैं जो बड़े मसूरके दानेके स्वरूपाकारकी बाहरसे बादामी और भीतरसे पांडुश्वेत वर्णकी होती है। यह स्वादमें फीकी, किंचिन् मधुर, स्वादिष्ट और चिकनी होती है। इसके वजनका आधा एक प्रकारका हलका पीलेरंगका स्थिर तेल (रोग़न चिरौंजी) निकलता है। इसके मग्ज (चिरौंजी) भारतवर्षके प्रायः सभी बाजारोंमें मिलते हैं। एक प्रकारका हलका पीले रंगका मीठा स्थिर तेल (रोग़न चिरोंजी) निकलता है। इसके मग़ज़ (चिरौंजी) प्रायः भारतवर्षके सभी बाजारोंमें मिलते हैं।

रासायनिक संगठन—इसमें मांसवर्धक द्रव्य (ऐल्व्युमिनॉइड्स) २८ प्रतिशत, पिष्ट २·५ प्रतिशत और तेल ५८·५ प्रतिशत प्रभृति द्रव्य होते हैं।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें **गरम** और पहलेमें **तर** है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—**वृंहण, वाजीकर** और लेखन। चिरौंजी **पौष्टिक** एवं जीवनीय (**कसीरूल्ग़िज़ा**) है। कृश रोगियोंको पुष्ट एवं स्थूल करनेके लिए इसको हरीरेमें डालकर पिलाते हैं। नपुंसकताके रोगियोंको इसे वाजीकर माजूनोंमें डालकर खिलाते हैं। चेहरेको **कांतिप्रदान** करनेके लिए इसको अकेले या उपयुक्त औषधियोंके साथ पीसकर चेहरेपर मर्दन करते हैं। इसके अतिरिक्त व्रणित कच्छूपर इसकी मालिश करते हैं। इसकी विधि यह है कि चिरौंजी १० तोले और अर्कगुलाब १० तोले दोनोंको पीसकर १४ माशे सुहागा मिलाकर व्रणित कच्छूपर दो-तीन दिन मालिश करें। इससे बहुत शीघ्र लाभ होता है। **अहितकर**–गुरु एवं चिरपाकी है। **निवारण**–शुक्तमधु (सिकंजबीन और मधु। **प्रतिनिधि**– पिस्ता और तिल। **मात्रा**– ७ ग्रामसे १२ ग्राम (७ माशेसे १ तोला) तक।

आयुर्वेदीय मत—चिरौंजीका फल मधुर अम्ल, कषाय, मधुरविपाक, गुरु, स्निग्ध, शीतवीर्य, श्रमहर, उदर्दप्रशमन, सारक, विष्टम्भि, बलकारक, वृंहण, वृष्य, कफ और पित्तको बढ़ानेवाला तथा वात, रक्तविकार, तृषा, दाह, क्षत और क्षयका नाश करनेवाला है। **चिरौंजीकी गिरी** मधुर, वृष्य तथा पित्त और वायुका नाश करनेवाला है। चिरौंजीकी गिरीका तेल मधुर, गुरु और कफको बढ़ानेवाला है।

नव्यमत—चिरौंजी उत्तम पौष्टिक द्रव्य है। इसको बादामके स्थानमें काममें ले सकते हैं। कासमें चिरौंजोका पेया देते हैं। बाल साफ करनेके लिए इसका तेल सिरमें लगाते हैं। त्वचाके रोगोंमें चिरौंजीको पीसकर उबटन (उद्वर्तन) करते हैं।

(२५१) चिलगोजा

फ़ैमिली : कोनीफ़ेरी (Family : Coniferae)

नाम—(हिं०, भा० बाजार) चिलगोजा; (अ०) हब्ब सनोवरकिबार, जि(जु)ल्लौज; (फा०) चिल्ग़ोज़ः, तुख़्म सनोवर; (पहाड़ी) नेज़ा, नौज़ा, नेवज़ा, न्यौज़ी; (सं) निकोचक (सुश्रुत); (म०) चिल्गोज़े; (गु०) चिल्गोज़ा; (का०) चिलग़ोज, हरि, र्ही; (अं०) पाइन नट्स (Pine nuts)। वृक्ष–(हिं०) गुनोबर, र्ही; (फा०) सूस; (अफगा०) चिल्, ज़ंगोज़; (पं०) मिर्रि, गल्मोज, गोगोजल; (ले०) पीनुस जेरार्डियाना (**Pinus gerardiana** Wall.); (अं०) नेओज़ा पाइन (Neoza Pine), एडिबल पाइन (Edible Pine)।

वक्तव्य—'चिल्ग़ोजः' से 'जिल्लौज' अरबी बनाया गया है।

उत्पत्तिस्थान—इसके वृक्ष शीराज, आजरबैजान, रोमदेशके कुछ हिस्सों, ईरान, अफगानिस्तान और उत्तर पश्चिम हिमालयमें कुनवरसे पश्चिमकी ओर गढ़वाल आदिमें होते हैं। भारतीय चिलगोजा विदेशी चिलगोजेसे उत्कृष्टतर होता है। कोष्ट और कुर्रमघाटीसे भारतवर्षमें इसका विपुल आयात होता है। पंजाबमें यह प्रायः बिकता हुआ मिलता है।

वर्णन—यह एक प्रकारके मादा और बड़े देवदार या सनोवरके वृक्षके फल हैं जिसे 'चीरी' भी कहते हैं। फल–लगभग २·५ सें० मी० या १ इञ्च (खिरनीके बराबर) लंबा प्रायः गोल एक तरफसे कुछ चपटा और भूरे रंगका होता है। इसके ऊपरका छिलका पतला होता है और उँगलियोंसे दबाने या चुटकीसे मलनेपर सहजमें टूट जाता है। भीतर सफेद रंगका स्वादिष्ट मधुर एवं तेलके स्वादवाला मग्ज निकलता है। इसमें एक वर्ष तक वीर्य रहता है। पुराना बहुत चिरपाकी हो जाता है। मग्जमेंसे एक प्रकारका तेल निकाला जाता है।

रासायनिक संगठन—मग्जमें मांसल द्रव्य (ऐल्ब्युमिनॉइड्स) १३·६, पिष्ट २२·५, तेल ५१·३ होता है।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम और तर है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—वाजीकर, बृंहण, शुक्रल, उष्णताजनन और श्लेष्मनिःसारक है। चिलगोजा आहारकी भाँति खाया जाता है। इससे शरीर पुष्ट हो जाता है। परन्तु यह दीर्घपाकी है। इसको अन्य उपयुक्त औषधियोंके साथ माजून बनाकरके वाजीकरण, शुक्रवर्धन, बलवर्धन और परिबृंहणके लिए खिलाते हैं। पक्षवध, अर्दित, कटिशूल और आमवातमें इसका उपयोग करते हैं। कास-श्वासमें अकेले या उपयुक्त औषधियोंके साथ मधुमें मिलाकर चटाते या गोलियाँ बनाकर खिलाते हैं। अहितकर–चिरपाकी है। निवारण–शुक्तमधु और खट्टा अनार। प्रतिनिधि–शकाकुल और हुब्बुल्ग़ार। मात्रा–७ ग्राम से १२ ग्राम (७ माशे से १ तोला) तक।

(२५२) चीड़ (ढ़), गंधाविरोजा, तारपीन

फ़ैमिली : पीनासे (Family : Pinaceae)

नाम।वृक्ष—(हिं०) चीड़, चीढ़, चील, सरल देवदार; (अं०) शज्र‌तुल्बक़, शज्र‌तुर्ल्जिन, शज्र‌तुल्आकलः, सनोबरुल् हिन्दा; (फा०) दरख़्ते वसक; (सं) सरल, श्र्याह्व; (बं०) सरल गाछ; (म०, गु०) सरल (तेलियो) देवदार; (पं०) चीड़; (अल्मोडा; गढ़वाल; का०) साला; (क०) चीर; (कु०) सल्ल; (नेपा०) धुप सलसी; (ले०) पीनुस रॉक्सबुर्घिई **Pinus roxburghii** Sargent. (पर्याय–पीनुस लौंगीफोलिआ *Pinus longifolia* Roxb.); (अं०) दी चीर-पाइन (The Chir-pine), लांगलीह्वडपाइन (Long-leaved pine)। गोंद–(हिं०) चीड़का गोंद, गधाविरोजा, बिरोजा, बिहरोजा; (अ०) क़िन्नः; (फा०) बारज़द, बेरज़द; (सं०) श्रीवास, श्रीवेष्ट, सरलनिर्यास (द्रव), (पं०) गंधाबिरोज; (नेपा०) धूम; (पहाड़ी) बिरजे लासा, लोसा; (क०) पद्मारिकांगुललुन; (ग०; कु०) लीसा; (गु०) बेरजो; (अं०) दी ओलियो-रेजिन ऑफ पाइन (The Olco-resion of Pine)। तेल (हिं०) गंधाविरोजेका तेल, तारपीनका तेल; (अ०) दुहनुल् क़िन्नः, जैतुत्तर्बिनतीना-(नवीन); (फा०) रोग़न बारज़द (तारपीन), बेहरोज़ा; (द०) खन्नाका तेल, खन्नुतेल; (बम्ब०) तार्पिन; (ले०) टेरेबिन्थोनी ओलिउम् (Terebinthinae Oleum); (अं०) टर्पेन्टाइन ऑयल (Terpentine Oil)।

वक्तव्य—यद्यपि डीमकके मतसे इब्नसीना लिखित देवदार वास्तविक देवदार सेड्रूस लीबानी (**Cedrus libani** Rich var-**deodara** Hook. f. (**C. deodara** (Roxb.) Loud. है, तथापि यूनानी निघंटुओंके परि-

शीलन एवं ऊहापोहात्मक अध्ययनसे वह बहुधा चीड़ ही सिद्धहोता है। इसलिए इस ग्रंथमें युक्तियुक्तताकी दृष्टिसे उनके द्वारा लिखित देवदारका वर्णन चीड़में ही किया गया है। गंधाबिरोजाका प्राचीन यूनानीनाम 'खल्वानो (Khalbane)' या 'खल्बानोस (Khalbanese)' है, और लैटिन 'गाल्बानुम् (Galbanum)' इसीसे व्युत्पन्न है। मुहीतके मतसे 'बारजद' फारसी 'बेरज़द'से अरबी बनाया गया है। टेरीविंथका अर्थ 'बुत्म' है। प्राचीनकालमें बुत्मके बीजकी गिरीको दबाकर इस प्रकारका अस्वच्छ तेल निकाला जाता था। अस्तु, इसका उक्त यूनानी नाम पाश्चात्यवैद्यकमें ग्रहण कर लिया गया। पाश्चात्यवैद्यकमें प्रयुक्त टर्पेन्टाइन ऑइल सरलजातीय **सनोबरबर्री या शर्बीन** (**Pinus sylvestris**) नामक वृक्षसे प्राप्त किया जाता है। '**कतरान**' भी इससे विशेषविधि द्वारा प्राप्त करते हैं। बि० दे० 'कतरान')

उत्पत्तिस्थान—हिमालयके ढालुओंपर २,००० से ६,००० फुटकी ऊँचाईपर, अफगानिस्तानके पहाड़ी प्रदेशोंसे कश्मीर, पंजाब, उत्तर-प्रदेश (गढ़वाल और कुमाऊँ आदि), भूटान, असम्म और ब्रह्मापर्यन्त इसके वृक्ष होते हैं।

इतिहास—'शज्र्‌ुरुल्‌बुत्म (Terebinth tree)' प्राचीन यूनानी चिकित्सकोंको पूर्णतया ज्ञात था। सुतरां यूनानी हकीम **सावफरिस्तुस**ने '**टर्बिन्ठोस**'के नामसे और अन्यान्य लेखकोंने '**टेरिबिन्थोस**'के नामसे इसका उल्लेख किया है। हकीम दीसकूरीदूसने 'तुख्मबुत्मके' मग्जका उल्लेख किया है जिनको दबाकर एक प्रकारका अस्वच्छ तेल निकाला जाता था और उसको '**टीरीबिन्थीनोन एलेओन**' कहते थे। प्राचीन इसलामी चिकित्सकोंके समीप बुत्मका नाम टेरीबिन्थ प्रसिद्ध नहीं था; किन्तु उन्होंने '**इलकुल्‌अंबात**' या '**इलकुल्‌बुत्म**'का उल्लेख किया है।

वर्णन—इसका वृक्ष ५०–६० गज या इससे भी ऊँचा और सीधा (सरल) होता है। तना–लंबा और सरल; तनेका घेरा ५-७ फुट और कहीं-कहीं १०-१२ फुट होता है। लकड़ी अत्यन्त स्निग्ध और तीक्ष्णगंधी होती है। इसके तनेसे क्षत करनेसे एक प्रकारका दूध वा **निर्यास** (**राळदार गोंद**) निकलकर जम जाता है। इसे **चीड़का गोंद** (शैखके मतसे **रोग़न थेवदार** या **गन्धाविरोजा**) कहते हैं। पहले यह सफेद कुछ पतला और गाढ़ा होता है। इसके बाद उत्तरोत्तर, अधिक गाढ़ा एवं पीला, फिर गहरा पीला और अन्तमें लाल और शुष्क कुन्दुरवत् कठोर हो जाता है। इसके अश्रुवत् विरूप दाने या दानोंसे मिलकर बनी डलियाँ होती हैं। दाने मटरके बराबर या उससे बड़े होते हैं। यह हरापन लिये पीले या पिलाई लिये नारंगी भूरे और अर्धस्वच्छ होते हैं शरद् ऋतुमें कड़े और ग्रीष्ममें नरम हो जाते हैं। गंध विशेष प्रकारकी एवं तीक्ष्ण जो अप्रिय नहीं होती। स्वाद तिक्त, अप्रिय और किसी प्रकार लहसुन जैसा होता है। दसवर्ष तक इसमें वीर्य रहता है। बाजारमें बिरोजा गीला और सूखा दो प्रकारका मिलता है। यह दोनों ही प्रकार औषधमें काम आते हैं। गंधाविरोजेसे ऊर्ध्वनलिकायंत्र (तिर्यक्‌पालन)के द्वारा एक प्रकारका तेल परिस्रावित करते हैं जिसे '**तारपीनका तेल** (**खरल द्रवया सरल तेल**)' कहते हैं यह रंगरहित होता है और इसमेंसे गंधाविरोजेकी सी गन्ध आती है।

चीड़की लकड़ी

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें **गरम** और **खुश्क**, आयुर्वेद मतसे उष्णवीर्य (रा० नि०) है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—यह दोषविलोमकर्ता **शीतजन्यशोथ उतारेवाली** वेदनास्थापन, और सर्प-बिच्छू आदि बिलमें रहनेवाले शीतल विषके जन्तुओंके दंशसे होनेवाली पीड़ाको दूर करनेवाली तथा व्यंग, बहक, नाशक है। अर्दित, पक्षवध, अंगघात, सन्यास, अपस्मार और प्रायः शीतल मस्तिष्क एवं बात व्याधियोंमें इसे बारीक पीसकर पीने और लगानेसे उपकार होता है। इससे बस्तिवृक्काश्मरी खंड-खंड होकर बह जाती है। श्लेष्मातिसार और वातज हिक्का आराम हो जाती है। उदरस्थ वायुका अनुलोमन और आध्मानका निवारण होता है तथा कफज्वर और दूषित कफका नाश होता है। इसके काढ़ेमें बैठनेसे गुदव्रण तथा गुदभ्रंश आराम होता है। कंठमाला और प्रायः शीतल शोथोंको बिलीन करनेके लिये इसका लेप लगाते हैं। यह वातार्शमें गुणकारक है तथा व्रणरोपण तैलौषधोंमें

पड़ती हैं। **अहितकर**–फुफ्फुसको। **निवारण**–कतीरा, बबूलका गोंद और मीठे बादामका तेल। **मात्रा**–३·५ ग्राम (३½ माशा)।

आयुर्वेदीय मत—चीड़ कटु, तिक्त, उष्णवीर्य, कोष्टशुद्धिकर, तथा कफ, वात, त्वग्रोग; शोथ, कण्डू और व्रणका नाश करनेवाला है। (रा० नि०)।

गन्धाबिरोजा। वक्तव्य—इसको प्रायः शुद्ध करके औषधके काममें लेते हैं। इसके शोधनकी विधि यूनानी द्रव्य-गुण-विज्ञान ग्रंथके पूर्वार्द्ध भेपजकल्पनाखंड के शोधन-प्रकरणमें देखें।

प्रकृति—दूसरे (मतान्तर से तीसरे) दर्जेमें गरम और दूसरे दर्जेमें खुश्क है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—उष्णताजनन, विलयन, सर (मुलय्यिन), वातानुलोमन, श्वयथुविलयन, व्रणलेखन वातिक एवं कफज रोगोंमें लाभकारी, श्लेष्मनिःसारक, मूत्रार्तवजनन, आविजनन और कृमिनाशन है। गंधाविरोजेको अधिकतया सूजाकमें गोली या चूर्ण अथवा सतके रूप में या इसका तेल निकालकर भी उपयोग करते हैं। व्रणोंके लिए मरहमोंमें इसका उपयोग करते हैं। यदि व्रणमें कीड़े पड़ गये हों तो यह उनको मारकर व्रणमें नये मांसका रोहण करता और उसको शीघ्र सुखा देता है। कण्ठमाला आदिके विलीन करनेके लिए लेपकी भांति इसका उपयोग करते हैं। गर्भाशयशोथ निवारण, आर्तवप्रवर्तन और आविजननके लिये इसका आंतरिक उपयोग करते और फलवर्ति बनाकर योनिमें रखते हैं। वृक्क एवं बस्तिकी खुजली दूर करने तथा व्रणोंको सुखाने और मूत्रमें सिलकाके उत्सर्गके लिये इसके सतका उपयोग करते हैं। **अहितकर**–उष्णप्रकृति को। **निवारण**–रोग़न बनफ़शा और कपूर। **मात्रा**–१ ग्राम (१ माशा)।

नव्यमत—गन्धाविरोजा खानेसे मुखमें लालाका उद्रेक होता है, उदरमें उष्णता प्रतीत होती है, उद्गार आते हैं, वायु सरता है, नाड़ी भरी हुई रहती है, श्वासोच्छ्वासका प्रमाण बढ़ता है, शरीरमें गर्मी आती है, मूत्रका प्रमाण बढ़ता है और मस्तिष्क तथा नाड़ियोंमें उत्तेजना आती है। इसे बड़ी मात्रामें देनेसे वमन और विरेक होते हैं, नाड़ी पतली होती है, जी घबराता है, शरीर शीतल पड़ता है, पेशाबमें जलन होती है और रक्त आता है तथा समस्त शरीरमें शिथिलता आती है। इसलिए गंधाविरोजा अथवा चीड़का तेल (तारपीनका तेल) अल्प प्रमाणमें देना चाहिये। ये दोनों वातनाशक, पित्ताश्मरीघ्न; कफघ्न, स्वेदजनन; मूत्रजनन, रक्तसंग्राहक, उत्तेजक, कृमिघ्न, शोथघ्न, व्रणशोधन-रोपण और दुर्गन्धनाशक हैं। जीर्णकास और राजयक्ष्मामें गंधाविरोजा बहुत उपयोगी होता है। इससे फुफ्फुस और श्वासनलिकाका रक्तानुधावन बढ़ता है, कफ शीघ्र गिरने लगता है और कफके साथ रक्त आता हो वह बन्द होता है। जीर्ण बस्तिशोथ और पुराने सूजाकमें गन्धाविरोजासे लाभ होता है।

तारपीन का तेल (रोग़न तारपीन)—

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें गरम और खुश्क है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—बाह्यतः तारपीनका तेल त्वचापर शोणितोत्क्लेशक, कोथप्रतिबन्धक और संक्षोभजनक कर्म करता है; परन्तु क्षोभशमनके उपरांत संशमन और स्वापजनन कर्म करता है। अधिक प्रमाणमें त्वचापर मर्दन करनेसे यह उसपर छाले (विस्फोट) डाल देता है और उसे व्रणित कर देता है। इसके अतिरिक्त यह कोथप्रतिबन्धक प्रभाव करता तथा प्रकुथित व्रणोंपर टपकानेसे यह उन कीड़ोंको मार डालता है जो उनमें उत्पन्न हो जाते हैं। नासागत कृमियोंके लिए भी यह सांघातिक हैं।

आंतरिक रूपसे यह अन्त्र और आमाशयको उद्दीपन करता और वातानुलोमन कर्म करता है। यह ब्रध्नाकार कृमियों (कद्दूदाने) और चुरन (सूत्र) कृमियोंको नष्ट करता है। इसे अधिक प्रमाणमें पिलानेसे रक्तमिश्रित दस्त आने लगते हैं। अल्प प्रमाणमें सेवन करनेसे यह हृदयको उत्तेजित करता है, और धमनिकाओंमें यह हृदयावसादकर है। तारपीनका तेल सूँघनेसे श्वासोच्छ्वासांगोंपर इसका उत्तेजक प्रभाव होता है, जिससे यह श्लेष्मनिःसारक

है। इसके अतिरिक्त कफ दुर्गन्धित एवं दूषित हो तो उसे दूर करता है। मूत्रावयवों पर यह मूत्रजनन कर्म करता है। तारपीनको अधिकतया पार्श्वशूल, फुफ्फुसशोथ (श्वसनक ज्वर), कास, आमवात और कटिशूलमें अकेला या उसमें कपूर विलीन करके मर्दन करते हैं। दद्रु, गंज और चंबल पर लगाते हैं। जिन व्रणोंमें कृमि पड़ गये हों उन पर टपकानेसे यह कृमियोंको नष्ट कर देता है और व्रणके प्रकोथको दूर करता है। नासागत कृमियोंको नष्ट करनेके लिए इसमें पिचु आप्लुत करके नथुओंमें रखते या कोष्ण जलमें मिलाकर पिचकारी करते हैं। इससे समस्त कृमि मरकर निकल जाते हैं। ६ माशे से १ तोला तक एरण्ड तेलके साथ उदर कृमि विशेषकर कद्दूदानेको नष्ट करनेके लिए पिलाते हैं। चुरनों (सूत्रकृमियों)को नष्ट करनेके लिये इसकी बस्ति देते हैं। रक्तष्ठीवन और जीर्णकासके लिये खौलते हुए जलमे मिलाकर इसका बाष्प सुँघाते हैं। रक्तवमन और रक्तमूत्रमें रक्तको बन्द करनेके लिए भी इसका उपयोग करते हैं तथा अन्त्र और आमाशयसे रक्तस्रुति होती हो, तो उसको रोकनेके लिए भी इसे देते हैं। मूत्रजनन होनेसे यकृद्विकारजन्य जलोदरमें भी इसे देते हैं। उरोरोगोंमें विशेष रूपसे वक्षपर इसका मर्दन प्रचुरतासे करते हैं। **अहितकर**—क्षोभ (ख़राश) उत्पन्न करता है और अधिक प्रयोग करनेसे विस्फोट उत्पन्न करता है। **मात्रा**—०·६ मि० लि० से ०.६६ मि० ली० (६ से १०) बूँद तक। कद्दूदानोंको नष्ट करनेके लिए ६ ग्रामसे १२ ग्राम (६ माशे से १ तोला) तक।

वक्तव्य—तारपीनके तेलका बहुत सावधानीपूर्वक आंतरिक उपयोग करने की आवश्यकता है विशेषकर कद्दूदानेको नष्ट करनेके लिए इसकी जो मात्रा निर्धारित की गई है, वह निरापद नहीं है।

आयुर्वेदीय मत—चीड़ (सरल), कटु, तिक्त; उष्णवीर्य, कोष्ठशुद्धिकर तथा कफ, वात, त्वग्रोग, शोथ, कण्डू और व्रणको नाश करनेवाला है। सरलके काष्ठका तेल तिक्त, कटु, कषाय; दुष्टव्रण-शोधन तथा कृमि, कफ कुष्ठ और वायुका नाश करनेवाला है। च० सू० ४/१६-३२ (श्रीवेष्टक), सु० सू० ३८/२४ (श्रीवेष्टक), सु० सू० ४५/१२३ (सरल सार स्नेह)।

नव्यमत—आध्मानमें तारपीनका तेल पेटके ऊपर लगाते हैं। चीड़का तेल गोंदके साथ मर्दनकर, उसमें थोड़ी चीनी और पानी मिलाकर देने से पेटके कृमि मरते हैं और आँतोंमें रक्तस्राव होता हो तो वह बन्द होता है।

◆

(२५३) चीता (चित्रक)

फैमिली : प्लूम्बाजिआसे (Family : Plumbaginaceae)

नाम—(हिं०) चीता, चित्ता, चित्रा; (अ०) शीतरज, मिस्वाकुर्राई, (फा०) शीतरः (-क), बेख़, बरिंदः; (सं०) चित्रक, अग्नि; (बं०) चिता; (म०) चित्रक; (गु०) सफेद चित्रा; (पं०) चित्रा; (ले०) सफेदचीता **(श्वेतचित्रक)—प्लम्बागो जेइलानिका** (**Plumbago zeylanica** Linn.); (अं०) सीलोन या ह्वाइट लेडवर्ट (Ceylon or White Lead-wort)। लालचीता **(रक्तचित्रक)—प्लम्बागो इंडिका Plumbago indica** L. (**पर्याय—प्लम्बागो रोज़ेआ P. Rosea** Linn.)। नीला चीता (नीलचित्रक)—**प्लम्बागो कापेन्सिस** (**Plumbago capensis** Thunb.)।

वक्तव्य—संस्कृत चित्रकका ही 'शीतरज' अरबी रूपांतर है। 'श्वेत' एवं 'नील' चित्रकके लेटिन नामोंमें जातीय-नाम (Specific name) उत्पत्तिस्थानवाचक तथा रक्तचित्रकमें पुष्परंगपर आधारित हैं। संस्कृत-हिन्दीमें चित्रकभेदोंका आधार पुष्परंगभेद है। औषधीय प्रयोगमें प्रायः श्वेत एवं रक्तचित्रकका ही व्यवहार होता है। नीला चित्रक वास्तवमें केप-ऑफ गुडहोप (Cape of Goodhope) क्षेत्रका आदिवासी है। सौन्दर्यके लिए भारतवर्षमें सर्वत्र यह वाटिकाओंमें लगाया जाता है। किन्तु यह पौधा अभी यहाँ बसा (Naturailised) नहीं है।

उत्पत्तिस्थान—'लाल चीता' प्रायः समस्त भारतवर्षमें होता है। 'सफेद चीता' इसीकी एक निकटतम जाति है, जिसे उसका उद्यानज भेद माना जाता है। यह झाड़ीदार जंगलों तथा पहाड़ोंमें ४ हजार फुट तक पाया जाता है। 'नीला चीता' प्रायः बागोंमें लगाया हुआ मिलता है।

वर्णन—चीतेका ९० सें०मी०से २ मीटर (३–६ फुट) ऊँचा बहुवर्षायु **क्षुप** होता है। **काण्ड** गोल, रेखायुक्त और हरित; शाखायें अनेक; **पर्ण** एकान्तर, ३·७५ सें०मी० से ७·५ सें० मी० (१½–३ इन्च) लम्बे एवं १·८ सें०मी०से ५ सें० मी० (¾–२ इन्च) चौड़े लट्वाकार नोकीले, आधारपर यकायक नोकीले और काण्डासक्त तथा सरलधारवाले, हरे रंगके होते हैं। **पुष्प** श्वेत, मंजरी विदण्डिक तथा स्पर्शमें लसदार होती है; पुष्पबाह्यकोश और पुष्पाभ्यन्तर कोशके दल ५, पुंकेसर ५, स्त्रीकेसर १ होता है। लाल और आसमानी रंगके फूलके विचारसे इसके दो भेद और होते हैं। **फल** लम्बगोल; **मूल** भंगुर, मूलका रंग ऊपरसे ललाई लिये हुए भूरा और भीतरसे सफेद, मूलका स्वाद कटु, उग्र, जीभको चुभनेवाला और दुखदायक होता है।

रासायनिक संगठन—जड़में चित्रकीन (प्लॅम्बेगीन) नामक एक तीक्ष्ण दाहजनक स्फटिकीय सत्त्व होता है। यह उबलते हुए जलमें अंशतः विलेय और सुरासार एवं ईथरमें सुविलेय है।

उपयुक्त अंग—**जड़ और जड़की छाल**। मूलकी छाल नई काममें लेनी चाहिये। पुरानी होनेसे हीनवीर्य हो जाती है। यूनानी वैद्यकमें मात्र 'शीतरज' से इसके मूलकी छाल अभिप्रेत होती है। इसमें ५वर्षतक वीर्य रहता है।

कल्प तथा योग—हब्ज शीतरज।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें **गरम** और तीसरे दर्जेमें **खुश्क** (रूक्ष); आयुर्वेदके मतसे यह उष्णवीर्य (सु०) है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—चीताके पत्र और मूल बाह्यतः त्वचापर लगानेसे लेखन और व्रणजनन कर्म करते, सूजन उतारते और कतिपय त्वचाके रोगोंमें व्रण डालकर दूषित दोषको बहाकर अच्छा करते हैं। अन्त्र और आमाशयपर इसका उत्तेजक कर्म होता है। यह वायु (रियाह)को परागंदा करता, आहारका पाचन करता और अपनी तीक्ष्णतासे अन्त्रमें उत्तेजना उत्पन्न करके विरेक लाता है। प्लीहापर लगाने और आंतरिक उपयोग करनेसे यह उसको विलीन करता है। मुखमें रखकर चाबनेसे यह कण्ठ और स्वरयंत्रपर उष्णताजनन और उत्तेजन कर्म करता है। पुरुष एवं स्त्री जननांगोंपर इसका उत्तेजनकर्म होता है।

उपयोग—किलास, व्यंग (बहक) अर्थात् छीप वा झाईं, कच्छू, दद्रु और त्वक्परिपुटन जैसे रोगोंमें लेखन और व्रणजननरूपसे इसका लेप लगाते हैं। व्रण डालकर और दूषित दोषको स्रवित करके यह मूल व्याधिको निवृत्त करता है। आमवात, गृध्रसी और कुल्हेके दर्दपर भी इसका लेप किया जाता है। अल्पप्रमाणमें यह विलीन करता, और अधिक प्रमाणमें प्रलेप करनेसे व्रण डालकर लाभदायक सिद्ध होता है। कामोत्तेजन और गर्भशातनके लिये यह बाह्यांतरिकरूपसे उपयोग किया जाता है। आहारपाचन, क्षुधावर्धन और वायुके उत्सर्गके लिये इसका उपयोग करते हैं। कफको नष्ट करके स्वरको शुद्ध करनेके लिए इसको मुखमें रखकर चबाते हैं। कफ और वातव्याधियोंमें कफोत्सर्गके लिये विरेचनकी भाँति इसे उपयुक्त औषधियोंके साथ पिलाते हैं। प्लीहाशोथ एवं प्लीहाकाठिन्यको दूर करनेके लिये इसका लेप करते और आंतरिक प्रयोग करते हैं। **अहितकर**—फुफ्फुस रोगोंमें। **निवारण**—बबूलका गोंद और मस्तगी। **प्रतिनिधि**—प्रवाल, नरकचूर और मजीठ। **मात्रा**—१·५ ग्राम से ३ ग्राम (१½ माशा से ३माशा) तक।

आयुर्वेदीय मत—चित्रक कटु, कटु विपाक, लघु, उष्णवीर्य, रुचिकारक, लेखन, भेदन, दीपन, पाचन, अर्शोघ्न, तृषिघ्न, शूलप्रशमन तथा वात, कफ, शोथ, गुदशोथ, शूल, उदर, अर्श, ग्रहणीरोग, कृमि और पांडुरोगका नाश करनेवाला है। (च० सू० अ० ४, सु० सू० अ० ३८, ४६; ध० नि०)।

नव्यमत—अल्पमात्रामें चीतासे पचननलिकाकी कलाको उत्तेजन मिलता है और आमाशय तथा उत्तरगुदका रक्तानुधावन बढ़कर उनको शक्ति मिलती है। इससे उदरमें उष्णता उत्पन्न होती है और पाचनक्रिया बढ़ती है।

इससे यकृत् उत्तेजित होकर पित्तका उद्रेक ठीक होने लगता है। इसलिये चीता देनेके बाद मलका रंग पीला होता है। यह रक्तमें मिलकर मलोत्सर्जक ग्रन्थियोंपर विशेषतः त्वचाकी स्वेद ग्रन्थियोंपर अपना कार्य करता है। इसलिये इससे पसीना अधिक छूटता है और ज्वर कम होता है। बड़ी मात्रामें चीता दाहजनक तथा मदकारक विष है। इससे गले और आमाशयमें जलन होती है, जी मचलाता है, वमन और विरेक होते हैं, पेशाब करनेमें कष्ट होता है तथा नाड़ी अशक्त होकर वक्रगतिसे चलती है और शरीर शीतल पड़ता है। गर्भाशयपर चीतेकी क्रिया विशेष महत्त्वकी और ध्यानमें रखने योग्य है। साधारण बड़ी मात्रासे कटिस्थित सभी अवयवोंमें दाह उत्पन्न होता तथा विरेक होते हैं और जुलाबके साथ गर्भाशयसे रक्त बहने लगता है। पेशाब बूँद-बूँद आने लगता है और गर्भाशयका प्रबल संकोच होता है। यहाँ तक कि एक-दो पहरमें गर्भ गिर जाता है। यह क्रिया निश्चितरूपसे होती है और नौ मासमें कभी-कभी देनेसे गर्भपात होता है—गर्भ मरा हुआ गिरता है। गर्भपात होनेके लिए चीता देते हैं। चीताकी ताजी जड़के लेपसे फफोला (विस्फोट) उठता तथा त्वचापर लगानेसे बहुत पीड़ा होती है और त्वचा काली पड़ती तथा व्रण शीघ्र नहीं भरता। विषवज्वरमें जब यकृत् और प्लीहाकी बृद्धि हुई हो तब चीतासे बहुत लाभ होता है। ज्वरमें जब रक्तानुधावन मंद होता है और अन्न नहीं लिया जा सकता तब चीता उपयुक्त औषध है। सूतिकाज्वरमें चीतासे ज्वर कम हो जाता है, समस्त शरीरको उत्तेजन मिलता है और गर्भाशयको उत्तेजन मिलकर दूषित रक्त बहने लगनेसे मक्कलशूल कम होता है। सूतिकाज्वरमें चीताके साथ निर्गुंडी देनी चाहिये। जननेन्द्रियोंकी शिथिलतासे उत्पन्न नपुंसकत्वमेंचीतासे लाभ होता है। अरोचक, अग्निमान्द्य, अजीर्ण, कुपचन, कभी कब्ज कभी विरेक, पेटका अफारा आदि पचननलिकाकी शिथिलतासे उत्पन्न रोगोंमें चीता देते हैं।

●

(२५४) चुकंदर

फ़ैमिली : केनोपोडिआसे (Family : Chenopodiaceae)

नाम—(हिं०; फा०) चुकंदर; (यू०) Teutlon (D. 1. 149), सिट्लोन (Sitlon), टिट्लोन (Titlon); (अ०) सिल्क़; (बं)० बिटपलंग, पलंगसाग; (लें०) **बीटा वुलगारिस (Beta vulgaris** L. **var. rapa** Dum.); (अं०) कॉमन या गार्डेन बीट (Common or Garden Beet)।

उत्पत्तिस्थान—भूमध्यसागरके तटवर्ती देश। अब यूरोप और अमेरिकामें बड़े पैमानेपर इसकी खेती की जाती है। वहाँ इसे **सुगरबीट** (Sugar-Beet) कहते हैं। पत्र और मूलके लिये यह अनेक भारतीय उद्यानोंमें भी लगाया जाता है, तथा अनेक स्थानोंमें इसकी खेती की जाती है।

वर्णन—यह एक क्षुद्र क्षुपकी जड़ (कंद) है, जो गाजर वा शलगमकी तरह बाहर और भीतरसे लाल रंग की होती है और तरकारीके काममें आती है। इसका स्वाद कुछ मीठापन लिए होता है। इसे काटनेपर लाल पानी निकलता है। इससे हाथमें गुलाबी रंग लग जाता है। इसके भीतर चक्रसे दिखते हैं। पत्र पालकके पत्रकी तरह होते हैं। इसके निम्न भेद होते हैं–(१) **सफ़ेद (सिल्क अब्यज़- चुकंदर सफेद)**; (२) **लाल (सिल्क अह्मर-चुकंदर सुर्ख़)**; और (३) **काला (सिल्क अस्वद-चुकंदर स्याह)**।

रासायनिक संगठन—इसके कंदमें स्टार्च, शर्करा और एक गुणोत्पादक सत्व **बीटिन** (Betin) होता है। हरे चुकंदरमें अपेक्षाकृत अधिक लौह तथा **विटामिन**, विशेषकर **विटामिन** 'A' पुष्कल प्रमाणमें होता है। इसके अतिरिक्त प्रति किलोग्राममें २ मिलीग्राम यशद तथा **विटामिन** 'B' एवं **विटामिन** 'C' होता है।

उपयुक्त अंग—पत्र एवं कंद। इसके कंदसे चीनी बनाई जाती है।

प्रकृति—दिल्लीके हकीमोंके मतानुसार पहले दर्जेमें **गरम और तर**; परन्तु लखनऊके हकीमोंके मतसे पहले दर्जेमें गरम व खुश्क, संमिश्रवीर्य।

गुण-कर्म तथा उपयोग—सर, लेखन, श्वयथुविलयन, शीतल, स्वेदजनन। चुकंदरको अकेला या मांसके साथ पकाकर तरकारीकी भाँति उपयोग करते हैं। इससे पर्याप्त पुष्टि प्राप्त होती है। सर होनेसे मलावरोध (कब्ज़) की दशामें इसका उपयोग गुणकारी है। इसका पत्रस्वरस मधुके साथ दद्रु, व्यंग (बहक़) और झाईं (कलफ़) आदिपर लगाते हैं। शिरकी भूसी नष्ट करनेके लिए इससे शिरको धोते हैं। चुकंदर और उसके पत्रको क्वाथ करके भी सिरकी भूसीको दूर करने तथा शिरकी जूयें (यूका) मारनेके लिए शिरको धोते हैं। हाथ-पाँवके फट जानेकी दशामें पत्रके क्वाथमें उनको बार-बार रखते और धोते हैं। सूजन उतारनेके लिए इसका पत्रस्वरस लगाते हैं। बाल उगाने और उनको सुन्दर तथा कोमल बनानेके लिये चुकंदरके पत्तोंको मेंहदीके साथ पीसकर लगाते हैं। **प्रतिनिधि–शलगम।**

●

(२५५, २५६) चूका (आबी व जंगली)

फ़ैमिली : पॉलीगोनासे (Family : Polygonaceae)

नाम—(हिं०) चूका, चूकाका साग; (यू०) लापाथोन Lapathon (D. 2. 140); (अ) ह(हु)**म्माज़**, बक़्लए हामिज़ा, बक़्लए सानिया; (फा०) तुर्शः, तरए खुरासानी, साक़ तुर्शक; (सं०) चुक्र, चुक्रिका; (वं०) चुका पालङ्; (म०) चुका, चाकवल; (गु०) चुको, खाटीभाजी; (पं०) चूक; (ले०) **रूमेक्स वेसीकारिउम्** (**Rumex vesicarium** L.); (अं०) कन्ट्री सॉरेल (Country Sorrel), सावर डॉक (Sour Dock), ब्लैडर डॉक (Bladder Dock)। बीज–(हिं०) चूकेके बीज; (अ०) बज्र् ुल् हम्माज़; (फा०) तुख्म तुर्शः (या हुम्माज़); (सं०) चुक्रबीज; (पं०) **बीजबन्द**।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष विशेषतः अजमेर, मद्रास आदि तथा बड़े नगरोंके सड़कोंके किनारे और घासके मैदानोंमें होता है। **'जळपालक'** आसाम, सिलहट, कछार और बंगालके दलदली स्थानोंमें होता है।

वर्णन—यह एक प्रसिद्ध खट्टा साग है, जिसके कई भेद हैं; यथा–(१) जलचूका (चूका आबी)–यह अधिकतया जलके किनारे उत्पन्न होता है। इसके पत्र किसी कदर सख्त और कासनीपत्रके समान होते हैं। इसे अरबीमें **हम्माजुल् माऽ** और वैज्ञानिक परिभाषामें सम्भवतः **रूमेक्स मारीटिमुस** (**Rumex maritimus** L.) या **रूमेक्स आक्वाटिकुस** (**Remex aquaticus** Linn.), और अंग्रेजीमें **वाटर डॉक** (Water Dock) कहते हैं। इसके बीजोंको पंजाबमें **'बीजबंद'** कहते हैं। (२)–जंगली चूका (हम्माज़बर्री)–इसको लेटिनमें सम्भवतः **रूमेक्स एसीटोसा** (**Rumex acetosa** L.) तथा अंग्रेजीमें सॉरेल (Sorrel) कहते हैं। इसके पत्र चौड़े, स्वादमें बारतंगके पत्रके समान और आकृतिमें चुकंदरके समान होते हैं। खट्टे पालकको जनसाधारण 'चूका' कहते हैं। चूकाके बीज छोटे-छोटे, काले रंगके चमकदार और कोई-कोई लाल रंगके और तिपहलू होते हैं। उपयुक्त अंग—**पत्र, बीज और क्षुप।**

रासायनिक संगठन—जड़में **रूमिसिन** (Rumicin) और **लैपाथिन** (Lapathin) ये दो सत्व जो क्राइसोफैनिक एसिडके समान होते हैं, पाये जाते हैं।

चूका—

प्रकृति—पहले दर्जेमें **शीत** और दूसरेमें **खुश्क** (रूक्ष) तथा आयुर्वेदमतेन उष्णवीर्य (रा० नि०) है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—ग्राही, दाहप्रशमन (मुसक्किन हरारत), वेदनास्थापन और उष्ण यकृद्बलदायक है। चूका पित्तातिसार, पित्तके प्रकोपको कम करने तथा प्यास बुझाने और पैत्तिक वमन एवं उत्क्लेशको रोकनेके लिये उपयोग किया जाता है। दंतशूल-निवारणके लिये इसके पत्रस्वरसका कवल-ग्रह कराया जाता है। उष्ण यकृत् को शक्ति देने और कामलाको नष्ट करनेके लिये इसका उपयोग करते हैं। वेदनाशमन और विषनिवारणके लिये इसे वृश्चिकदष्ट रोगीको पिलाते हैं। दस्तोंको बन्द करने तथा कामला, श्वेतप्रदर और रक्तप्रदरके लिये इसकी जड़ गुणकारी है। यह कामलाके लिये विशेष गुणकारी है। **अहितकर**–कामशक्तिको। **निवारण**–शार्कर और खण्ड (कंद)। **प्रतिनिधि**–हुम्माज़ उत्रुज। **मात्रा**–स्वरस ३ तोले से ५ तोले तक।

आयुर्वेदोय मत—चूका (**चुक्रिका**) लघु, रुचिकर, दीपन, पथ्य, किंचित् पित्तकर और वातगुल्मको दूर करनेवाली है। (रा० नि०)।

नव्यमत—चूका शीतल, दीपन; शोथघ्न, वेदनास्थापन और स्रंसन है। पचननलिकाके दाह और आँवमें तथा वमन बन्द करने और भूख लगानेके लिये इसको देते हैं। सूजन और बिच्छूके दंशपर पत्तियोंका लेप करते हैं।

चूकाके बीज--

प्रकृति पहले दर्जेमें **शीत** और दूसरे दर्जेमें **रूक्ष** है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—संग्राही, लेसदार या चिपकनेवाला (मुग़र्री) और दाहप्रशमन है। पित्तोद्वेगको शमन करने, उष्ण हृत्स्पंदन, कामला और आमाशयशोथको नष्ट करने तथा मूत्रमार्गके दाहको शांत करनेके लिये इसका उपयोग करते हैं। चुक्रबीजको भृष्ट करके या बिना भुने दस्तोंको रोकने तथा अन्त्रव्रण एवं रगड़ (सहज्ज)को दूर करनेके लिये अन्य लबाबदार बीजों जैसे–इसबगोलके साथ खिलाते हैं। बिच्छूका विष दूर करनेके लिये भी इसका उपयोग करते हैं। पित्तज रोगोंमें यह विशेष गुणकारक है। **अहितकर**–वृक्क और प्लीहाको। **निवारण**–सौंफ और चीनी। **प्रतिनिधि**–बारतंगके बीज। **मात्रा**–३ ग्राम से ५ ग्राम (३ से ५ माशे) तक।

जलचूका (चूका आबी)—

प्रकृति--पहले दर्जेमें **शीत** और दूसरेमें **खुश्क** (रूक्ष) है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—ग्राही, बल्य, हृदयोल्लासकारक और पित्तसंशमन और विशेषतः उत्क्लेशहर है। उष्ण हृत्स्पंदन और उत्क्लेश शमनार्थ, चिंता और विरागको नष्ट करने तथा मनःप्रसाद एवं आनन्द उत्पन्न करने तथा पित्तसंशमन एवं तृट्प्रशमनके लिये इसका उपयोग करते हैं। पित्तज अतिसार बंद करनेके लिये भी इसका उपयोग होता है। इसके काढ़ेमें बिठानेसे गुदघातमें उपकार होता है। इसके पत्र और बीज चबानेसे दंतशूल आराम होता और मसूढ़े दृढ़ हो जाते हैं। कामलाको नष्ट करनेके लिये भी इसका उपयोग होता है। **अहितकर**–कामशक्ति (बाह) और वृक्क रोगों के लिये। **निवारण**–शर्करा और सौंफ। **प्रतिनिधि**–उद्यानज चूका। **मात्रा**–स्वरस ३ से ५ तोले तक।

जंगली चूका—

प्रकृति—पहले दर्जेमें शीत और दूसरेमें खुश्क है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—इसके पत्तोंका रस पीना या पत्तोंको पकाकर खाना पित्तज सहज्जके लिए गुणकारी है। इसकी जड़ उद्यानज चूकेकी जड़से बलवत्तर है। दस्तोंको रोकने, सहज्ज, कामला, श्वेतप्रदर और रक्तप्रदर (अतिरज)के लिए लाभकारी है। पित्तके दस्तों और पेचिशके लिए यह विशेरूपसे लाभकारी और कामलानाशक है। **मात्रा**–स्वरस ६० मि०लि०से ८५ मि०लि० (५ से ७ तोले) तक; जड़ ३ ग्राम से ५ ग्राम (३ माशे से ५ माशे) तक।

(२५७) चूहाकानी

फ़ैमिली : कॉन्वॉल्वुलासे (Family : Convolvulaceae)

नाम—(हिं०) चूहाकानी, मूसाकनी, मिर्चाई (चुनार); (अ०) अज़ानुल्फ़ार; (सं०) आखुकर्णी, मूषाकर्णी; (वं०) बुड़िगुयापान; (म०;कों०; बम्ब०) उंदीरकानी; (गु०) उंदरकणी; (ले०) **मेरेमिआ गैंजेटिका Merremia gangetica** (L.) Cuf (**पर्याय**–*M. emarginata* (Burm. f.) Hall.; *Ipomoea reniformis* Chois.)।

वक्तव्य—अरबी **'आज़ानुल्फ़ार'** का अर्थ (**आज़ान** = 'उज़्न'का बहुव० = कर्ण या कान, फ़ार = चूहा) **'चूहाकनी'** है। **'मर्ज़न्जोश'** का अर्थ भी 'चूहाकर्नी' है। 'माउस ईयर' Mouse ear) जिसका अर्थ 'चूहाकनी' है, **हेरासिउम् पीलोसेल्ला (Hieracium Pilosella** Linn. (*Family: Compositae*)के एक विदेशी पौधेका अंग्रेजी नाम है। किन्तु यह सभी नाम वास्तवमें भिन्न-भिन्न पौधोंके हैं। इसके कई भेद यूनानी निघण्टुग्रंथोंमें भी लिखे हैं। परन्तु उन सबका किसी द्रव्यसे ठीक समन्वय करना सहज नहीं है। यहाँ भी एक बहुत प्रसिद्ध भेदका ही वर्णन किया जा रहा है।

उत्पत्तिस्थान—इसकी बेल प्रायः समस्त भारतवर्षकी गीली भूमिमें चौमासेमें पायी जाती है।

वर्णन—यह एक परिसर्पी २ से ४ फुट लम्बी क्षुद्र लता है जिसके प्रत्येक पत्रपर गाँठ होती है। इसकी गाँठोंमेंसे जड़ निकलकर जमीनमें जम जाती है। ऊपरकी ओर पत्र निकलते हैं। इसके इधर-उधर दो-दो पत्र होते हैं। पत्र वृक्काकार, तरंगायित, पत्रप्रान्त दंतुर, कुंठिताग्र, खुरदरे, चूहेके कान या मण्डूकपर्णीकी तरह होते हैं। पत्र-वृंत लोमयुक्त, पुष्पवृंत अतिक्षुद्र १ से २ पुष्पयुक्त, दल (पंखड़ी) पीली, प्रायः शरद् ऋतुमें फूलती है। फल छोटे चनेके समान गोल जो पहले हरे या बैंगनी रंगके और पकनेपर भूरे रंगके हो जाते हैं। इनको चीरनेपर ये दो दलोंमें विभक्त हो जाते हैं और प्रत्येक दलमेंसे एक कड़ा बीज निकलता है। थोड़ी दूरसे देखनेपर इसकी लता मण्डूकपर्णीकी तरह प्रतीत होती है। अस्तु प्रायः लोग 'मण्डूकपर्णीके' स्थानमें भूलसे इसका प्रयोग करते हैं।

उपयुक्त अंग—इसके प्रायः सभी अंग (पंचांग) औषधके रूपमें काममें आते हैं।

प्रकृति—उष्ण और रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—मूत्रल, रक्तप्रसादन और कृमिघ्न है। इसको वृक्क और वस्तिरोगोंमें पीस-छानकर पिलाते हैं। कुष्ठ और भगंदर जैसे रोगोंमें भी उपयोग कराते हैं और उदरकृमियोंको नष्ट करनेके लिये देते हैं। नेत्राभिष्यंद और नेत्रनाडीमें इसका पत्रस्वरस नेत्रमें आश्च्योतन करते हैं या नेत्रके चतुर्दिक लेप करते हैं।

वक्तव्य—श्री पागलानंद जी स्वामी इसकी पत्तियों विशेषकर बीजोंको अत्यन्त पौष्टिक बतलाते थे। उनका कहना था कि जिस प्रकार गृहस्थ पुष्टिके लिए दूध-घीका उपयोग करते हैं उसी प्रकार संत-महात्मा लोग इसका उपयोग करते हैं। ये स्वयं भी इसका उपयोग करते थे। (लेखक)। **अहितकर**–बस्तिके लिए। **निवारण**–कुलफा और मरज़न्जोश। **प्रतिनिधि**–एक भेद दूसरे भेदका प्रतिनिधि है। **मात्रा**–शुष्क ३ से ५ ग्राम (३ से ५ माशे) तक। हरी ७ ग्रामसे १२ ग्राम (७ माशेसे १ तोला) तक।

आयुर्वेदीय मत—यह कटु, तिक्त, कषाय, मधुर, पाकमें कटु, शीतवीर्य, लघु, तीक्ष्ण, सारक, पारेको बाँधनेवाली, नेत्रोंकी हितकारी तथा रसायन है और शूल, ज्वर, कृमिरोग, मूत्ररोग, कफरोग, योनिदोष तथा चूहेका विष नाश करनेवाली है। (शो० नि०; भा०प्र०; नि०र०)।

नव्यमत—यह अवरोधोद्घाटक (प्रमाथी), मूत्रजनन और रसायन है तथा आमवात एवं वातवेदनामें इसका उपयोग करते हैं।

●

(२५८) चेना

फ़ैमिली : ग्रामीने (Family : Gramineae)

नाम—(हिं०) चेन, चेना, चीन (ना), चेनवाँ; (अ०) दु(दि)ख़्न; (फा०) अ(उ)र्ज़न; (सं०) चीनक, काककंगु; (बं०) चेने, चीना; (क) चिनवा; (म०) राले; (गु०) चोणो; (ले०) **पैनिकुम् मिलिआसेउम् (Panicum miliaceum** Linn.); (अं०) कॉमन मिलेट (Common Millet)।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्षमें इसकी खेती होती है।

वर्णन—कँगनी या साँवाँकी जातिका एक प्रसिद्ध अन्न जो चैत-बैसाखमें बोया और आषाढ़में काटा जाता है। इसके दाने कँगनीसे छोटे और गोल होते हैं।

रासायनिक संगठन—यह बहुमूल्य खाद्य (कार्बोहाइड्रेट फूड) है। इसमें ऐल्ब्युमिनॉइड्स १२·६%, श्वेतसार ६९·४ प्रतिशत और तेल ३·६ प्रतिशत होता है।

प्रकृति—पहले दर्जेमें **शीत** और दूसरेमें **रूक्ष** (खुश्क) है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—चेनाकी रोटी पकाकर खाई जाती है। यह अल्पाहार (क़लीलुल्ग़िज़ा), **दीर्घपाकी** और **ग्राही** है तथा **पेशाब लाता** और शरीरमें **रूक्षता** उत्पन्न करता है। जबकि आमाशय में आर्द्र रतूबतोंका प्राधान्य हो और उसका शोषण लक्ष्य हो या वायु आर्द्र हो और भूख अधिक लगती हो, उस समय इसकी रोटीका सेवन कराते हैं। आर्द्र प्रकृति और वलि (तरहहुल) एवं जलोदरीके लिये बहुत संभव है कि इसकी रोटी लाभदायक गुणप्रदर्शित करे। क्योंकि जलांशको यह प्रवर्तनकर्मद्वारा उत्सर्गित करती है। यदि स्वस्थ आदमीको चेनेकी रोटी खाना ही पड़े, तो उसको घीमें पकाकर या कम-से कम घीसे लगाकर खाना चाहिए। इसके अतिरिक्त इसके उपयोगकी सर्वोत्तम विधि यह है कि दूधमें पकाकर घी या बादाम का तेल मिलाकर खाँय। इससे पर्याप्त पुष्टि प्राप्त होगी। **अहितकर**—आनाह और विबंध (सुद्दे) उत्पन्न करता है। **निवारण**—शर्करा और मधु। **प्रतिनिधि**—चावल।

आयुर्वेदीय मत—इसके गुण कँगनीके समान हैं (भा० प्र०)।

नव्यमत—क्षुपका प्रयोग सूज़ाकमें होता है।

●

(२५९) चोबचीनी

फ़ैमिली : स्मीलासे (Family : Smilaceae)

नाम—(हिं०; भा० बाजार) चोब(प)चीनी; (अ०) ख़शबुस्सीनी, अस्लुस्सीनी; (फा०) बेख़चीनी, **चोबचीनी**; (सं०) द्वीपान्तरवच, चोपचीनी–भा० प्र०) (म०; गु०) चोपचीनी; (बं०) तोपचिनी; (ले०) **स्मीलाक्स चीना (Smilax china** Linn.); (अं०) चाइना रूट (China Root)।

वक्तव्य—अरबी नाम '**ख़शबुस्सीनी**' एवं '**अस्लुस्सीनी**' फ़ारसी नाम '**चोबचीनी**' एवं '**बेख़चीनी**'के अरबी रूपान्तर हैं। इस औषधिके सभी नाम इसके विदेशी (बाह्यागत) होनेके सूचक हैं, तथा मुख्यतः इसके चीनदेशवासी या व्यवसायमें चीनसे आनेकी ओर संकेत करते हैं। आयुर्वेदके प्राचीन ग्रन्थोंमें इसका उल्लेख नहीं मिलता। आयुर्वेदीय निघण्टुओंमें इमका समावेश सम्भवतः मध्यकालीन युगमें हुआ। **भावप्रकाश** निघण्टूक्त 'चोपचीनी एवं

'**द्वीपान्तरवचा**' नामोंसे भी इसी तथ्यकी पुष्टि होती है। लेटिन संज्ञामें **जातीय नाम 'Specific name'** भी इस औषधिके मूलतः चीनवासी होनेके आधारपर रखा गया है।

उत्पत्तिस्थान—जापानका मूलनिवासी, किन्तु चीन और अनेक दूसरे देशोंमें इसे उत्पन्न करते हैं। व्यवसायमें चीनका ही प्रधान सम्बन्ध होनेसे नामकरणमें भी जापानके स्थानमें चीनको ही महत्व दिया गया प्रतीत होता है।

वर्णन—यह 'उशबा' या 'रामदतुइनिया'की जातिकी एक बेलकी तन्तुमय जड़ोंमें लगा हुआ कंद है (रंभाकार) जो स्वरूप और आकारमें लम्बोतरे आलू जैसे कभी-कभी कुछ-कुछ चपटा, ग्रंथियुक्त, भूरे रंगकी छालसे आवृत्त, कभी मसृण एवं चमकीला और कभी खुरदरा होता है, जो भारी, गुलाबी लिए सफेद काष्ठके टुकड़ेकी तरह १० से १५ सें० मी० (४-६ इञ्च) लम्बा और २·५ से ५ सें० मी० (१-२ इञ्च) मोटा होता है। इसके भीतरका गूदा गुलाबी लिए सफेद, कड़ा, आटेदार (पिष्टमय), फीका (स्वादरहित), पिच्छिल और गंधरहित होता है। इसके साधारणतः छाल उतारे और कटे हुए बेडौल टुकड़े होते हैं। यह **चीनदेशीय चोबचीनी** है। इसे '**चोबचीनी जहाजी**' भी कहते हैं। **मख़्ज़नुल् अद्विया**के लेखकके मतसे भारी, गुलाबी और ग्रन्थिरहित चोबचीनी औषधके लिए प्रशस्त होती है। कीड़ा लगे हुए मूल निरुपयोगी होते हैं। यूनानी निघंटुकर्ताओंके मतसे इसका एक उत्कृष्ट भेद '**चोबचीनी ख़ताई**' है, जो खता और नैपालके पहाड़ोंसे आती है।

वक्तव्य—चोबचीनीकी कतिपय निम्न जातियाँ भारतवर्षमें भी होती हैं, यथा :—(१) **बड़ी चोबचीनी (Smilax glabra** Roxb.); (२) **हिंदी चोबचीनी (Smilax lanceaefolia** Roxb.) और (३) **जंगली (देशी) उशबा अर्थात् रामदतुइनिया (स्मीलॉक्स मैक्रोफ़ील्ला Smilax macrophylla** Roxb.)। इनके मूल चोबचीनी और उशबाके स्थानमें प्रयुक्त किये जानेके लिए परीक्षणोपयोगी हो सकते हैं।

रासायनिक संगठन—जड़में वसा, शर्करा, एक ग्लूकोसाइड, रंजक द्रव्य, निर्यास और श्वेतसार प्रभृति द्रव्य होते हैं।

कल्प तथा योग—अर्क चोबचीनी (जदीद), सनून चोबचीनी, माजून चोबचीनी आदि।

प्रकृति—उष्णता और रूक्षता लिए संमिश्रवीर्य है (दिल्लीके हकीम)। लखनऊके हकीमोंके मतसे पहले दर्जेमें गरम व तर है। आयुर्वेदके मतसे उष्ण (भा० प्र०) है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—तारल्यजनन, अवरोधोद्घाटक, मलोंको विलीन करनेवाली, स्वेदल, रक्तप्रसादन उत्तमांगोंको बलप्रद, मूत्रार्तवजनन, वाजीकर और रूक्षण है। (ताजी चोबचीनी) स्वप्नजनन और संशमन है। रक्तप्रसादनके लिए यह पुष्कल उपयोग की जाती है तथा विदग्ध सौदावी और पित्तज जीर्ण रोगों, जैसे—महाकुष्ठ, फिरंग, परिसर्पी दूषित व्रण, दद्रु, कच्छू और सौदावी कठिन शोथोंके लिए यह बहुत उपयोग की जाती है। इसके अतिरिक्त उत्तमांगोंको बलप्रद, तारल्यजनन, प्रमाथी और मलोंको विलीन करनेवाली होनेसे यह चिरज शिरःशूल, सौदावी अर्द्धावभेदक, चिरज प्रसेक, प्रतिश्याय, बुद्धिविभ्रम, विविध प्रकारके उन्माद, मद (मालिन्ख़ोलिया), पक्षवध, कम्पवायु, सर्वांगशोफ (इस्तिस्क़ाऽ लह्‌मी) एवं गुदरोगों, जैसे—अर्श, भगंदर (बवासीर) और अर्शोजात अतिसार, वृक्कबस्तिव्रण, हस्तिमेह (सलसुल्बौल), गर्भाशयके रोग, आमवात और चिरज सौदावी ज्वर एवं चातुर्थकज्वरके लिए लाभदायक है। यद्यपि उपर्युक्त रोगोंमें साधारणतया यह क्वाथके रूपमें प्रयुक्त होती है, तथापि इसके **माजून, शार्कर** और **चूर्ण** कल्पना करके भी उपयोग किये जाते हैं। वाजीकरणके लिए भी इसका विशेपरूपसे उपयोग किया जाता है। चोबचीनी ताजी जो सूखी न हो, स्वप्नजनन और संशमनकर्म करती है। **अहितकर**—उष्ण प्रकृतिवालोंके लिए। **निवारण**—ऋतु, काल और रोगके विचारसे जो उपादेय हो। **प्रतिनिधि**—उशबा मग़रबी। **मात्रा**-५ ग्रामसे ७ ग्राम (५ माशेसे ७ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—चोबचीनी (द्वीपान्तरवचा) कुछ तिक्त, चरपरी (मधुर), उष्णवीर्य, अग्निदीपन, मल और मूत्रको साफ लानेवाली तथा विबन्ध, आध्मान, शूल, वातरोग, अपस्मार, उन्माद, शरीरकी पीड़ा फिरंग रोगको दूर करनेवाली है। (भा० प्र०)।

नव्यमत—यह स्नेहन, स्वेदजनन, वातहर, वेदनास्थापन, रक्तशुद्धिकर, पौष्टिक और रसायन है। कभी-कभी सारसापरिल्लाके प्रतिनिधि रूपमें तथा समान हितोंके लिए प्रयुक्त होती है। इसकी मुख्य क्रिया त्वचा, स्नायु (सन्धिबन्धन) और रसग्रन्थियोंपर होती है। उपदंश और सूजाकसे उत्पन्न सन्धिशोथ, सन्धिबन्धनकी दृढ़ता, इन रोगोंमें इससे विशेष लाभ होता है। इससे उपदंशकी द्वितीय और तृतीयावस्थामें प्रथम पीड़ा कम होती है और पीछे सूजन उतरती है।

●

(२६०) चोबहयात

फ़ैमिली : ज़ीगोफील्लासे (Family : Zygophyllaceae)

नाम—(हिं) चोबहयात; (अ०) ख़शबुल्हयात; (फा०) चोबेहैवत, **चोबेहयात**; (सं०) **जीवदारु, लोहकाष्ठ-(नवीन)**। (वृक्ष) गुआइआकुम आफ़्फ़ीसिनाले (**Guiacum officinale** Linn.)। (काष्ठ) लीग्नुम्वीटी (सांक्टुम्) Lignum Vitae or Sanctum); (अं०) ग्वायकम वुड (Guiacum Wood)।

उत्पत्तिस्थान—सेंट डोमिंगो (हैटी द्वीपकी राजधानी), पश्चिमी भारतीय द्वीपमें स्थित जमेइका द्वीप और दक्षिणी अमेरिका। किसी-किसीके मतसे भारतवर्षके वाराणसी, गोरखपुर और रोहतास जिलोंमें भी इसके वृक्ष लगाये हुये मिलते हैं। मख़्ज़न और मुहीत में 'गयाक़ू' नामसे इसका उल्लेख हुआ है।

वर्णन—यह एक बहुत बड़े सुन्दर विदेशी वृक्षका सारकाष्ठ है जो अत्यन्त कड़ा और कालाई लिये गहरा भूरा एवं भारी होता है तथा जलमें डालनेसे डूब जाता है। स्वाद मसालेकी भाँति क्षोभक, गंध हलकी एवं प्रिय जो काष्ठको उत्ताप पहुँचाने (रगड़ने या गरम करने) से प्रगट होती है। वृक्षकी शाखायें खाकस्तरी रंगकी खुरदरी छालसे ढँकी हुई होती हैं। पत्र पक्षवत् सदल एवं संयुक्त, सम्मुखवर्ती ३-२ जोड़े, पत्रक अवृन्त अण्डाकार और साफ होते हैं। पुष्प ललाई लिये नीला, टहनियोंके अग्र पर; फल प्रायः अण्डाकार और कभी गोल भी होते हैं।

रासायनिक संगठन—इसमें लगभग २० से २४ प्रतिशत एक राल होती है जो लकड़ीको जलाकर पिघले हुए रालको संग्रह करनेसे प्राप्त होती है।

उपयुक्त अंग—कांडके हीरकी लकड़ी (सारकाष्ठ)।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम और खुश्क (रूक्ष) है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—हृदयबलदायक, विषोंका अगद, वातानुलोमन, श्वयथुविलयन और वेदनास्थापन है। विषोंका अगद होनेसे विसूचिकामें विशेष गुणदायक है। उक्त रोगमें जबकि मलोंका शोधन भलीभाँति हो चुका हो, छर्दि और अतिसारकी अधिकतामें रोगी अत्यन्त निर्बल और निढाल हो गया हो, तब इसका उपयोग किया जाता है। वृश्चिक और सर्पदंशके लिए भी इसको घिसकर पिलाते हैं। इसके अतिरिक्त दंशस्थल पर इसका लेप भी करते हैं। मात्रा-१ ग्राम से ३ ग्राम (१ माशा से ३ माशे) तक।

वक्तव्य—पाश्चात्य चिकित्सामें इसके काष्ठ एवं काष्ठसे निकाली हुई राल का उपयोग होता है।

●

(२६१) चौलाई, काँटाचौलाई

फ़ैमिली : अमरान्थासे (Family : Amaranthaceae)

नाम—(हिं) चौलाई, चौराई; (यू०) Bleton (D. 2. 143); (अ०) बक़्लतुल् अरबिया, बक़्लतुल् यमानिया (इ० वै० १/१०३), बक़्लए (-ला) यमानिया; (सं०) तंदु(ड़ु)लीय, अल्पमारिष; (वं०) चाँपानटे, क्षुदेनटे; (गु०) तांदलजो; (म०) तांदुल-(ली)जा; (ले०) **अमरान्थुस पॉलीगेमुस (Amaranthus polygamus** Willd.) ।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष तथा उष्णकटिबन्धस्थित एशियाके भूभाग ।

वर्णन—यह एक प्रसिद्ध साग है । वास्तवमें यह छोटी जातिका मरसा है । इसका क्षुप लगभग हाथ भर ऊँचा तथा प्रायः भूलुण्ठित होता है । शाखायें कण्टकरहित होती हैं । वन्य और उद्यानज भेदसे तथा श्वेत और रक्तभेदसे भी यह दो प्रकार की होती है । चौमासे में इसके क्षुप विपुल उत्पन्न होते हैं और बरसात में फूलते हैं । काँटा **चौलाई या चौलाई-ख़ारदार (अमरान्थुस स्पीनोसुस Amarathus spinosus** Linn.) इसका एक भेद है ।

उपयुक्त अंग—पत्र, बीज, मूल और पंचाङ्ग ।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें शीत और स्निग्ध (तर) है । (दिल्ली के हकीम) । लखनऊवाले इसे पहले दर्जेमें सर्द व तर मानते हैं ।

गुण-कर्म तथा उपयोग—**संतापहर, रक्तस्तंभन** और मूत्रल । चौलाईका साग पकाकर खाया जाता है । इससे अल्प पुष्टि प्राप्त होती है । परन्तु यह शीघ्रपाकी है और उष्णता एवं दाहको शांत कर देती है । क्षय (तपेदिक़), उष्ण ज्वरों, उन्माद और सूजाकमें इसका साग लाभकारी है । आर्तवशोणित, अर्शोजात रक्त, रक्तवमन और रक्तष्ठीवन बन्द करनेके लिये इसके बीज और मूलका उपयोग कराते हैं । सर्पदष्ट-रोगीको इसका पत्रस्वरस पिलाना गुणकारक वर्णन किया जाता है । **मात्रा–पत्रस्वरस** ६० मि०लि०से १२० मि०लि० (५ से १० तोले) तक; बीज एवं मूल ५ ग्राम से ७ ग्राम (१ माशे से ७ माशे) तक । **निवारण–गरम मसाला । प्रतिनिधि–काँटेवाली चौलाई ।**

आयुर्वेदीय मत—चौलाई रस और विपाकमें मधुर, शीतवीर्य, रूक्ष, दीपन, रुचिकारक, मलमूत्रनिःसारक, पथ्य तथा रक्तपित्त, मद, पित्तकफ, रक्तविकार दाह, व्रम और विषको नष्ट करने वाली है । (च० सू० अ० २७; सु० सू० अ० ४६; भा० प्र०) । **चौलाईके पत्ते** छूनेमें शीतल, पित्तरक्तनाशक, विषाघ्न, कासनिवारण, मलरोधक, पचनेमें मधुर तथा दाह और शोथविनाशक है (रा० नि०) । चौड़ाईकी जड़ गरम कफनाशक, रजरोधक तथा रक्तपित्त और प्रदरको दूर करनेवाली है (आ० सं०) ।

●

(२६२) छड़ीला

फ़ैमली : लीकेनीज (Family : Lichenes)

नाम—(हिं०) छरी(ड़ी)ला, छारछरीला, छैलछबीला, भूरिछरीला, पत्थरका फूल, बुढ़ना, कंजाल; (यू०) Bruon (D. 1. २०); (अ०) उश्नः, तुह्लबुस्सख़र, हज़ाजुस्सख़र, हज़ाजुल्‌जबल, शैबतुल् अजूज़ (इ०बै० १/३०); (फा०) उश्नः, दुबालक (-ला), गुलेसंग; (सं०) शैलेय, शिलापुष्प; (कु०) झोला; (म०) दगड़फूल; (गु०) छडीलो; (मा०) छाड़छडीला; (ले०) **पार्मेलिआ काम्ट्सकाडालिस (Parmelia kamtschadalis** Esch.); लाइचेन ओडोरिफेरुम् (Lichen odoriferum); (अं०) स्टोन फ्लावर्स (Stone flowers), लाइचेन (Lichen) ।

उत्पत्तिस्थान—यह हिमालय, पंजाब, फारसादिमें, वृक्षों (बलूत और सनोवर आदि), लकड़ीके पुराने कुंदों-दीवालों और चट्टान आदि पर होता है।

वर्णन—यह काईकी तरह महीन झिल्लीके समान एक पौधा है जिसमें केसर या फूल नहीं लगते। यह हरी पेड़ी-सी संचित होकर जब सूखकर उतरती है तब इसके ऊपरका काष्ठ काला और नीचेका सफेद होता है। स्वाद किसी कदर फीका और तिक्त-कषाय होता है। सफेद, नया और तीव्र सुगंधयुक्त छड़ीला उत्तम होता है। छड़ीला वास्तवमें खुमीके समान परांगभक्षी पौधा है जो भिन्न-भिन्न प्रकारकी काइयों पर जमकर उन्हींके साथ मिलकर अपनी वृद्धि करता है। इसकी कई जातियाँ हैं।

रासायनिक संगठन—इसमें एक पीला स्फटिकीय पदार्थ, निर्यास, शुगरएक्सट्रैक्टिह्व लाइचेनीन और क्राइसोफैनिक एसिड प्रभृति द्रव्य होते हैं।

प्रकृति—पहले दर्जेमें गरम और खुश्क (रूक्ष) है। लखनऊके झवाई टोलाके हकीमोंके मतसे तीसरे दर्जेमें गरम और दूसरेमें खुश्क हैं। आयुर्वेदके मतके शीतवीर्य (रा० नि०; भा० प्र०) है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—हृदयोल्लासकारक एवं हृदयबलदायक, दीपन, वेदनास्थापन, ग्राही और विलयन। झवाई टोलाके हकीम इसका केवल बाह्य उपयोग करते हैं, परन्तु दिल्लीके हकीमोंके मतसे छड़ीला प्रायः मुफ़र्रेह योगों (मुफ़र्रेहात)में सम्मिलित किया जाता है तथा हृद्रोगोंमें प्रयुक्त होता है। आमाशयको बल प्रदान करने (दीपन) और यकृच्छूल निवारणके लिये इसे खिलाते हैं। इसे आघ्राणौषधों (लखलखों)में डालकर मेधाजनन (मस्तिष्क बलवर्धन)के लिये सुँघाते हैं। कतिपय दर्दोंको शांत करनेके लिये रोगीको इसके काढ़ेमें बिठाते हैं। श्वयथुविलयन के लिये उपयुक्त औषधियोंके साथ इसका लेप करते हैं। नेत्रकी शक्ति देने और नेत्रस्राव (दम्आ) जैसे रोगोंको नष्ट करनेके लिये इसे खरल करके सुरमाकी भाँति आँख में लगाते हैं। **अहितकर–अन्त्रके लिये। निवारण–अनीसूँ। प्रतिनिधि–क़िर्दमान। मात्रा–**३ से ५ ग्राम (३ से ५ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—छरीला तिक्त, शीतवीर्य, सुगन्धि, हृद्य, लघु तथा कफ, पित्त, दाह, तृषा, वमन, श्वास, व्रण, कण्डू, कुष्ठ, अश्मरी, विष, हृल्लास और रक्तविकारको दूर करनेवाला है। (रा० नि०; भा० प्र०)।

नव्य मत—छड़ीला मूत्रजनन है। एक तोला इसके काढ़ेमें मिश्री और जीरेका चूर्ण मिलाकर पिलानेसे पेशाब खुलता है। इसको गरम पानीमें पीसकर सिरपर लगानेसे सिरका दर्द आराम होता है।

(२६३) छतिब(व)न

फ़ैमिली : आपोसीनासे (Family : Apocynaceae)

नाम—(हिं०) छतिब(ब)न, सतिवन, सतौना, छतनो; (सं०) सप्तपर्ण; (पं०) सरौना; (बं०) छातिम; (म०) सातवीण; (गु०) सातवण; (ले०) **आल्सटोनिआ स्कोलेरिस Alstonia scholaris** R. Br. (पर्याय–**एकीटीस स्कोलेरिस** (*Echites scholaris* Linn.); (अं०) डेविल ट्री (Devil Tree)।

उत्पत्तिस्थान—भारतवर्ष।

वर्णन—इसके प्रायः सुन्दर, विशाल और सीधे वृक्ष होते हैं, जिनकी शाखायें और पत्तियाँ चक्रिक क्रममें निकली रहती हैं। पत्तियाँ प्रतिचक्रमें ३-७ अथवा प्रायः ६ और १०सें.मी.से २०सें.मी. (४इंच से ८इंच) लम्बी और अधस्तल पर श्वेताभ होती हैं। पुष्प हरिताभ-श्वेत और गुच्छोंमें पाये जाते हैं। छाल ३.१२५ मि० मी० से ८.३

मि० मी० (१/८ से १/३ इं०) तक मोटी, विषम टुकड़ोंके रूपमें, भंगुर, खण्ड क्षुद्र और दानेदार, बाहरी धरातल खुरदरा मटियाले रंगका (धूसरवर्ण) प्रायः अधिक काले रंग के धब्बोंसे युक्त; भीतरी धरातल हल्का बादामी होता है। इसके आड़े काटमें असंख्य ह्रस्व मज्जकिरणें (Medullary rays) दिखलाई पड़ती हैं। स्वाद तिक्त होता है। यह निर्गन्ध होती है।

उपयुक्त अंग—**छाल** (**डीटा** या एलसटोनिया बार्क Dita or Alstonia Bark), पत्र और दूध।

रासायनिक संगठन—छालमें २ प्रतिशत पिष्ट जैसा कुछ रवेदार, अतितिक्त और क्षारस्वभावी सत्व (**डीटामीन** Ditamine) होता है। यह मद्य और जलमें घुलनेवाला होता है। इस सत्वके गुण कुनैनके समान हैं।

कल्प—छाल का चूर्ण २-४ तोला लेकर, उसका फाण्ट या क्वाथ करके देवें। **सत्व** २ ग्रामसे ४ ग्राम (१५-३० रत्ती) दिनमें तीन-चार बार देना चाहिये।

प्रकृति—आयुर्वेद मतसे उष्णवीर्य (भा० प्र०) है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—यह सत्व **नियतकालिकज्वरप्रतिबन्धक**, **ज्वरघ्न**, **कटुपौष्टिक**, **कृमिघ्न** और **स्तन्यजनन** है। समग्र त्वचामें स्तम्भनगुण अधिक है। **तालीफ़-शरीफ़**के अनुसार यह सारक, वातश्लेष्मघ्न, कुष्ठ और फोड़े फुन्सीको नष्ट करता है। मतान्तरसे यह कषाय, दीपन और स्निग्ध है। इसके दूधिया रसको फोड़ों पर लगाते हैं। इसमें तेल मिलाकर कानमें डालनेसे कर्णशूल आराम होता है। इसकी छालके काढ़े पर अतीसके चूर्णका प्रक्षेप देकर पिलानेसे पुराने दस्त बन्द होते हैं तथा इसकी छाल और सौंफ़को औटाकर पिलानेसे दस्त और आंव बन्द होते हैं। इसकी छालके काढ़ेके साथ वायविडंगका चूर्ण फँकानेसे उदरकृमि नष्ट हो जाते हैं। ज्वरोत्तर दौर्बल्य मिटाने और पाचनशक्ति बढ़ानेके लिए इसकी छालके काढ़ेमें पीपलके चूर्णका प्रक्षेप देकर पिलाना चाहिए। जिन व्रणोंसे दुर्गन्धि आती हो और पूयादि निकलती हो, उन पर इनके नरम पत्तीको अग्नि पर तपाकर और पीसकर लेपकर देना चाहिए। इसका काढ़ा पीनेसे सान्द्र **प्रमेह** आराम होता हैं। इसके पत्तोंका काढ़ा दूधमें मिलाकर दुष्टव्रणों पर लगानेसे लाभ होता है।

आयुर्वेदीय मतानुसार—छतिवन तिक्त, कषाय, स्निग्ध, उष्णवीर्य, सारक, दीपन, सुगन्धि, हृद्य, त्रिदोषघ्न तथा कुष्ठ, उदर्द, शूल, गुल्म, कृमि, व्रण, रक्तविकार और श्वासको दूर करनेवाला है (च० सू० अ० ८, वि० अ० ८; सु० सू० ३८, ३९; ध० नि०; भा० प्र०)।

नव्य मत—सभी प्रकारके ज्वर और पचननलिका के रोगोंमें सतिवन को देते हैं। इससे कुनैन के समान गुण होता है; परन्तु कुनैनसे जो त्रास होता है, वह इससे नहीं होता। प्रसूतावस्थामें पहिले दिन से ही सतिवन सुगंधि पदार्थों, जैसे बच, अदरक, कचूरके साथ देते रहनेसे ज्वर नहीं आता, अन्न ठीक पचता है और दूध बढ़ता है। त्वचा के रोगोंमें इसका पुष्कल प्रयोग किया जाता है। त्वचा पर इसकी उत्तेजक क्रिया होती हैं। पुराने व्रणोंपर छालका लेप करते हैं। पुराने अतिसार और आँवमें छालका काढ़ा उत्कृष्ट औषध है।

●

(२६४) छुईमुई

फ़ैमिली : लेगूमिनोसी (Family : Leguminosae)

नाम—(हिं०) छुईमुई, लजालू लजाधुर, लजनी लजवन्ती, (सं०) लज्जालु, नमस्करी, अंजलिकारिका; (बं०) लाजक, लज्जावती; (म०) लाजरी, लाजालू, (गु०) रोसामणो, लजामणी; (ता०) तोट्टच्चु रंगो, तोड्डालकडी; (ले०) **मीमोसा पूडिका Mimosa pudica** Linn.; (अं०) सेन्सिटिव्ह प्लांट (Sensitive Plant)।

उत्पत्तिस्थान—यह उष्णकटिबन्धस्थित अमेरिका, विशेषतः ब्राजील की मूल निवासी है। वहींसे भारतवर्षमें लाई गई और अब न्यूनाधिक भारतवर्षके समस्त उष्ण प्रदेशोंमें बस गई है और बागों या जंगलोंमें देखी जाती है।

वर्णन—यह एक छोटी पिसर्पी बेल है जो खड़ी, १ बित्तासे १ हाथ ऊँची होती है। **पत्र**– संयुक्त द्विपक्षाकार, बबूल के पत्रकी तरह, किन्तु उनसे बहुत छोटे होते हैं। पत्रक तिहाई इंच तक लम्बे, जो स्पर्श करनेसे सिकुड़ जाते और डालियाँ झुक जाती हैं। कांड और शाखाओंपर काँटे होते हैं। पुष्प लम्बे, पुष्पदण्डों पर गुलाबी गोल पुष्पगुच्छ (मुण्डक) होते हैं। फलियोंमें काँटेदार संधियाँ होती हैं। मूल पतला तन्तुमय, शंक्वाकार, स्वाद अम्ल और चरपरा होता है। इसके यह दो भेद और हैं–(१) चांगेरी (*Family : Geraniaeeae*) कुल की यह वनस्पति प्रायः खेतोंमें वर्षांतमें उत्पन्न होती है। पौधा जमीन पर बिछा या थोड़ा (बित्ता भर) उठा हुआ होता है। पत्र भुँइआँवलेकी तरह पर उससे बड़ा, पत्रविन्यास स्तबकाकार होता है। बीचसे पतला और पत्तियोंसे लम्बा घनरोमश पुष्पदण्ड निकलता हैं। उसपर पीले रंगके छोटे फूल लगते हैं। फली लम्बी और चपटी तथा बीज लाल रंगके होते हैं। यह समस्त भारतवर्ष, एशिया, यूरोप और अमेरिकामें होती है। इसको लेटिनमें **बीओफील्लुम सेंसीटिडम् (Biophyllum sensitivum** DC.), संस्कृतमें **'रक्तपादी'** और हिन्दीमें **लाजरी, लजकन** और **छोटालजाल्** कहते हैं। इसके पत्र भी छूनेसे सिकुड़ जाते हैं। (२) यह भी प्रथम भेद के वनस्पति कुलकी ही वनस्पति है, जो भूमिपर पथराई हुई होती है। शेष बातोंमें प्रथम भेदकी तरह, किन्तु कण्टकरहित होती है। **मख़्ज़नुल् अदवियामें** इसे 'लजालुमाई' लिखा है। संस्कृतमें इसे 'अलम्बुआ' हिन्दीमें **जललजालू** और लेटिनमें **नेप्टूनिआ ओलेरासेआ (Neptunia oleraceaea** Lour.) या **मीमोसा नेटान्स (Mimosa netans** Roxb.) कहते हैं। यह शीतल एवं संग्राही है। इन तीनोंके पत्र छूनेसे सिकुड़ जाते हैं। इसलिए इनको **'छुईसुई'** और 'लजालू' कहते हैं।

रासायनिक संगठन—इसमें **माइमोसीन** (Mimosine) नामक ऐल्कोलॉइड और जड़में कषाय द्रव्य (टैनिन) होता है।

उपयुक्त अंग—जड़ और पत्र।

कल्प तथा योग—दवाउत्ताऊन (खास)।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें **शीत एवं रूक्ष**। आयुर्वेदीय मतमें शीतवीर्य (भा० प्र०) है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—ग्राही, रक्तस्तम्भन, रक्तप्रसादन, पित्त और रक्तसंशमन। रक्तविकार और के पित्तके रोगोंमें छुईमुईका उपयोग करते हैं। नासूर और पुराने व्रणों पर इसका रस टपकाया जाता है। रक्तार्श, एवं भगन्दर), रक्तातिसार, रक्तष्ठीवन और आर्तवशोणितस्रावको बन्द करनेके लिए इसका पत्र-मूलका उपयोग करते हैं। **अहितकर**–वृक्क और प्लीहाको। **निवारण**–काली मिर्च और मधु। **मात्रा**–५ से ७ ग्राम (५ से ७ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—तिक्त, कषाय, संधानीय, पुरीषसंग्रहणीय तथा कफ, पित्त, अतिसार और योनिरोगोंका नाश करनेवाली है। (च०; सु०; भा० प्र०)।

नव्यमत—जलवृषण (Hydrocele) में इसकी पत्तियोंको पीसकर लेप करते हैं। यह रक्तसंग्राहक और छोटी रक्तवाहिनियोंको संकोच करनेवाली है। रक्त और पित्तप्रधान रोगोंमें लजालू देते हैं। रक्तमिश्रित आँव तथा सिकवामेहमें मूलका क्वाथ देते हैं। अर्शमें पत्तियोंका चूर्ण दूधके साथ देते हैं।

●

(२६५) जंभीरी नीबू

फ़ैमिली : रूटासे (Family : Rutaceae)

नाम—(हिं०) जंबीरी, जम्भीरी (–म्बी–), जभीरी; (शीराजी) लीमूए खारकी; (सं०) जम्बीर, दन्तशठ; (पं०) जंबीरी, गलगल; (बं०) जाभीर ले(ने)बु; (म०) इडलिम्बु; (गु०) गोदडिया लिंबु, दोडिंगा; (ले) सीट्रुस **लीमोन Citrus Limon** Burm. f. (**पर्याय–C. medica** Linn. **var. limon** L.)।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष विशेषकर उत्तरप्रदेश, बम्बई आदिमें यह कहीं-कहीं गृह-बगानोंमें लगाया हुआ मिलता है।

वर्णन—जँभीरी नीबूकी छाल मोटी होती है और फल लंबगोल तथा स्वादमें खट्टा होता है। इसके पत्र, पुष्प और फलके छिलकेसे एक प्रकारका तेल प्राप्त होता है।

प्रकृति—सर्द एवं तर (दूसरे दर्जेमें); वैद्य गरम बतलाते हैं।

गुण-कर्म तथा उपयोग—इससे पित्तोद्वेग कम होता है; भोजनकी इच्छा उत्पन्न होती है; खूब भूख लगती है; वायु विलीन होता है; उदरकृमि निकल जाते हैं तथा मद्यका खुमार दूर हो जाता है। वैद्योंके मतसे इसमें वे सभी गुण पाये जाते हैं जो कागजी नीबूमें हैं, भेद केवल यह है कि कागजी नीबूका रस पड़ा रहनेसे निर्वीर्य हो जाता है परन्तु जम्भीरीके रसमें वह कम नहीं होता। **अहितकर**–अधिक कफ उत्पन्न करता है। निवारण–सौंफ।

आयुर्वेदीय मत—जम्बीरी नीबू अम्ल, गुरु, पित्तकारक तथा तृष्णा, शूल, कफ, मिचली, वमन, श्वास, वात, कफ और विबन्ध (कब्ज)को दूर करने वाला है। (सु० सू० अ० ४६; च० सू० अ० २७)।

●

(२६६) जदवार

फ़ैमिली : रानुन्कुलासे (Family : Ranunculaceae)

नाम—(हिं०) निर्विषी; (अ०) **जद्वार**; (फा०) **ज़द्वार, ज़र्दवार**, माहप(फ़)र्वीन, महाफ़र्क़ीन; (सं०) निर्विषा (पी), विषहा, विषभवा; (नेपाल) निलोबिख; (जौनसार) मइन; (ले०) डेल्फीनिउम् डेनुडाटुम् (**Delphinium denudatum** Wall.)।

वक्तव्य—'जद्वार' फारसी 'ज़द्वार'से अरबी बनाया गया है। इसका यूनानी रूप 'ज़ेडोआर Zedoar' है। फारसीमें इसे 'माह-पर्वीं (चन्द्र और कृत्तिका तारापुंज)' सम्भवतः इसलिए कहते हैं, कि यह ग्रीष्मके प्रारम्भमें फूलता है, जबकि कृत्तिकातारापुंजका उदय होता है। जदवारका अर्थ यूनानीनिघण्टुओंमें **'महागद'** लिखा है।

उत्पत्तिस्थान—हिमालयके खोतान (खता), लद्दाख, नैपाल, भूटान, तिब्बत आदि प्रदेशोंमें ८,००० से १२,००० फुटकी ऊँचाई पर होता है।

वर्णन—बाजारमें जद्वारके कालाई लिये भूरे या खाकी रंगके मूल (कंद) मिलते हैं। मूल २·५ से ३·७५ सें० मी० (१ से १½ इञ्च) लम्बे और शंक्वाकार होते हैं। स्वाद पहले कुछ मधुर और बादमें तिक्त होता है। इसको छीलकर चबानेसे बछनाग जैसी जीभपर सुन्नता, चरपराहट और सनसनाहट नहीं मालूम पड़ती। यूनानी वैद्यकके मतसे यह छः प्रकारकी होती है (१) बाहरसे श्यामवर्ण, भीतरसे बनफ़्सई रंगकी तथा गोपुच्छाकार होती है। चबने

पर प्रथम मधुर और बादको अत्यन्त कड़वी मालूम होती है। यह खता (खोतान)की पर्वतमालामें बहुतायतसे उत्पन्न होती है; इसलिये इस भेदको **'जद्वारखताई'** कहते हैं। यह सब भेदोंसे उत्तम होती है। अतः यही अधिकतया औषधमें प्रयुक्त होती है। (२) भीतर और बाहरसे पिलाई लिये श्यामवर्ण, स्वादमें तिक्त और वृश्चिकपुच्छाकार होती है। इसको **जद्वार अक़रबी** (अक़रब = विच्छू) कहते हैं। यह **नैपाल** और **तिब्बतमें** होती है। गुणमें खताईके बाद इसका नम्बर है। (३) भीतर और बाहरसे श्यामवर्ण पीसनेपर नीलवर्ण और स्वादमें तिक्त होती है। यह नैपाल, तिब्बत, मोरंग और रंगपुरके पहाड़ोंपर उत्पन्न होती है। (४) कालाई लिये हुए तिक्त और जैतूनके फलके बराबर होती है। यह भी नैपाल और तिब्बतमें होती है और नैपालसे आती है। (५) यह काली 'नरम' अतितिक्त और एक बित्ता तक लम्बी होती है। इसे **'जद्वार अन्दलुसी** (अन्दलुस = स्पेन)' कहते हैं। यह बच्छनागके समीप एक ही स्थानमें उत्पन्न होती है (विषभवा—रा० नि०)। (६) सफेद, मधुर, सुगन्धित और थोड़ी चरपर भी होती है। यह भी एक प्रकारकी जद्वार अन्दलुसी ही है। वहाँ इसे **'कैहक़'** कहते हैं। पाँचवें भेदको **'अन्तिलएसौदा'** और छठवेंको **'अन्तिलए बैजा'** कहते हैं।

जद्वार और बछनागमें भेद—जद्वार बछनागके समान होती है। इन दोनोंमें भेद यह है कि प्रायः जद्वार बछनागसे छोटी होती है। बछनागको छीलकर जिह्वापर रखनेसे दाहः सुन्नता और सनसनाहट प्रतीत होती है। इसके बाद जद्वारको घिसकर चटानेसे बछनागके उक्त दोष दूर हो जाते हैं। इससे भिन्न जद्वार कड़ुई या मधुर और रंगमें भीतर और बाहरसे न्यूनाधिक भूरी, गुणमें निर्विष एवं विषघ्न होती है।

जद्वार नकली—बछनागके मूलको दूधमें उबाल, फिर उसपर काला रंग चढ़ाते हैं। इन नकली मूलोंको जलसे भिगोकर फिर कपड़ेसे घिसनेपर कपड़ेपर काला दाग पड़ता है। इस नकली जद्वारको तोड़नेपर भीतरसे सफेद निकलता है।

संरक्षण—जद्वारमें शीघ्र कीड़े लग जाते हैं इसलिये इसे तेलके भीतर या पारदके साथ रखना चाहिये। **विक्रय-स्थान (मंडी)**—अमृतसर और दिल्ली।

रासायनिक संगठन—इसमें **डेल्फिनीन** (Delphinine) और **स्टैफिसेग्रीन** (Staphisagrine) नामक दो सुरासारविलेय क्षारभ होते हैं। जड़मेंसे **डेल्फोक्युरारीन** (Delpho-curarine) नामक क्षारोद निकाला गया है।

उपयुक्त अंग—मूल।

कल्प तथा योग—खमीरा जदवारी, ख़मीरा गावजवान जदवारी, मरहम जदवार, हब्ब जदवार आदि।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें **गरम** और **खुश्क** (रूक्ष)।

गुण-कर्म तथा उपयोग—**विषनाशक, सौमनस्यजनन,** उत्तमांगों (मस्तिष्क, हृदय और यकृत्)को और **नाड़ियोंको** बलप्रद, प्रमाथी, दोषविलयन, तारल्यजनक; दोषपाचन, वाजीकर, प्रवर्तक, अश्मरीनाशक, वेदनास्थापन, लेखन तथा कफज और सौदावी ज्वरों (रोगों)को दूर करनेवाली है। विषनाशक होनेके कारण यह सब प्रकारके उष्ण-शीत पेय, दंशजविषोंमें प्रयोगकी जाती अर्थात् उनका तिरियाक़ (अगद) है। इसको घिसकर पिलाते हैं तथा दंशज विषोंमें घिसकर दंशस्थानपर लगाते हैं। बछनागके विषमें वमन करानेके बाद इसको दूधमें घिसकर पिलाते हैं। सर्प और वृश्चिक आदिके दंशपर इसको मद्यमें घिसकर लगाते हैं और पिलाते हैं। उत्तमाँगोंको बलप्रद, सौमनस्यजनन और विषनाशक गुणके कारण जनपदोध्वंसक (अमराज़ वबाइया) रोगोंमें यह एक उत्तम रोगनिवारक है और पूर्वावधानतास्वरूप प्रयुक्त होता है। प्लेग और हैजामें उपयोग करनेसे यह रोगको दूर करती, उत्तमांगोंका रक्षण करती और उनकी शक्तिको बनाये रखती है। पीड़ाशामक होनेसे बाह्य और आन्तरिक वेदनाओंको शमन करनेके लिये इसका लेप किया जाता है तथा ४ रत्तीकी मात्रामें उपयुक्त औषधियोंके साथ इसको खिलाते हैं।

श्वयथुविलयन और दोषपाचन होनेके कारण सब प्रकारके शोथोंपर इसका प्रलेप किया जाता है। अस्तु ब्रध्न (बद) और फुंसियों(बुसूर), प्लेग, कण्ठमाला, कण्ठशोथ (खुनाक) और अन्यान्य प्रकारके शोथों और फुंसियों (बुसूर) पर प्रलेप करनेसे या तो यह उनको विलीन कर देती है, या पकाकर फोड़ देती है। लेखन होनेके कारण इसके लेपसे सिध्म, श्वित्र, व्यंग (झाईं) तथा चेहरेके अन्य चिह्न दूर होते हैं। जद्वार स्रोतोंके अवरोधको दूर करनेवाली और दोषतारल्यजनक होनेके कारण यकृत् और प्रतिहारिणी सिराओं (स्रोतों)का अवरोध, कामला, कष्टार्तव, शूल और जलोदर तथा प्रसेक, प्रतिश्याय और अपस्मार प्रभृति कफज शिरोरोगों एवं बालापस्मार जैसे बालशिरोरोगोंमें लाभ करती है। कामलाको दूर करती है और मूत्रकृच्छ्रमें इसका मूत्रजनन कर्म सहायक होता है। वातनाडियोंको बलप्रद होनेसे पक्षाघात, अर्दित, अपस्मार, अंगघात, कम्पवात, त्वचाकी सुन्नता और इनके अतिरिक्त मंदाग्नि आदि वातरोगोंमें इसका प्रयोग किया जाता है। जद्वारकी गोलियाँ बनाकर प्रतिश्याय आदि कफरोगों तथा अन्यत्र मस्तिष्करोगोंमें और वाजीकरणके लिए प्रयुक्त होती है। कतिपय माजूनोंमें इसको डालते और वाजीकरणके लिए तथा कफज रोगोंमें प्रयुक्त करते हैं। **अहितकर**—उष्ण प्रकृतिको। **निवारण**—धारोष्ण दूध और यवमंड। **प्रतिनिधि**—नरकचूर और तिरियाक़ फ़ारूक़। **मात्रा**—०·५ ग्रामसे १ ग्राम (४ रत्तीसे १ माशा) तक।

आयुर्वेदीय मत—निर्विषी रसमें कड़वी, उष्णवीर्य, बलकारक, सर्वदोषहर, व्रणरोपण और कफ, वातरक्त तथा अनेक प्रकारके विषदोषोंका नाशकरनेवाली है। इसका लेप सूजनको दूर करता है। (रा०नि०; भा०प्र०; श०चि० पृ० १४२७)

●

(२६७) जमालगोटा

फ़ैमिली : एउफ़ॉर्बिआसे (Family : Euphorbiaceae)

नाम—बीज। (हिं०; म०) **जमालगोटा**; (यू०) Lathuris (D.4.164); (अ०) हब्बुस्सलातीन, **दंदुस्सीनी**, हब्बुल्मुलूक (इ०बै०); (फ़ा०) दंद, तुख़्मबेद अंजीर ख़ताई, दंदचीनी, माहूदाना; (सं०) **जयपाल**, **जेपाल**; (बं०) जयपाल; (पं०) जपो(ब्बो)लोटा; (गु०) नेपालो; (आसाम) **कोनीवीह**; (ले०) क्रोटोनिस सीमेन (Crotonis Semen); (अं०) क्रोटन सीड्स (Croton Seeds)। तेल (हिं०) जमालगोटाका तेल; (अ०) जैत हब्बुल्मुलूक; (फ़ा०) रोग़न दंद, रोग़न बेद अंजीर ख़ताई; (उ०) रोग़न जमालगोटा; (सं०) जयपाल तैल; (ले०) क्रोटोनिप ओलिउम् (Crotonis Oleum); (अं०) क्रोटन ऑइल (Coroton Oil)।

वक्तव्य—जमालगोटेके पौधेको **क्रोटोन टीग्लिउम् (Croton tiglium** Linn.) कहते हैं।

इतिहास—प्राचीन भारतीय वैद्योंको उक्त औषधिका ज्ञान नहीं था। अर्वाचीन संस्कृत ग्रन्थोंमें 'जयपाल' प्रभृति नामोंसे इसका वर्णन किया गया मिलता है। 'दन्द' नामसे ईरानवासियोंको अतिप्राचीन कालसे इस औषधिका ज्ञान है। इसके 'दंदचीनी' फारसी संज्ञासे यह संकेत मिलता है, कि चीनसे ईरानमें इसका प्रवेश स्थलमार्गसे हुआ। अरबीमें भी इसकी यही फारसी संज्ञा किंचित् परिवर्तित रूपमें 'दंदुस्सीनी' नामसे प्रयुक्त है। किन्तु अरबनिवासी इसको 'हब्बुल्ख़ताई', 'हब्बुस्सलातीन', 'ख़िर्वअ सीनी (चीनी एरण्ड)' और 'हब्बुल्मुलूक' भी कहते हैं। इब्नुल्बैतारके अनुसार 'हब्बुल्मुलूक' एक संदिग्ध संज्ञा है, जिसका प्रयोग विभिन्न द्रव्योंके लिए होता है (संचिका २, पृ० १५)। इब्नसीनाने 'दन्दसीनी' नामसे उक्त औषधिका उल्लेख किया है और उसी प्रकरणमें

उसने '**दन्दहिन्दी**'का भी वर्णन किया है, जो सम्भवतः 'दन्ती' है, जिसको 'भारतीय जमालगोटा' कह सकते हैं। इंगलैंडमें सर्वप्रथम सन् १५७८ ई० में उक्त औषधिका वर्णन किया गया। ईसवी सन्की सत्रहवीं शतीमें क्रोटन सीड्स (जयपाल बीज) वहाँ औषधरूपेण प्रयुक्त थे। अधुना केवल जयपाल तैल प्रयुक्त हैं।

उत्पत्तिस्थान—**चीन**; समस्त **भारतवर्ष**, विशेषतः पूर्वी बंगाल तथा **आसाम**में यह पुष्कल होता है। मलाबार तटपर भी पाया जाता है। इसके अतिरिक्त ब्रह्मा, लंका एवं भारतीय द्वीपसमूहमें भी होता है।

वर्णन—यह एक छोटे सदाहरित वृक्षका फल है, जो एरण्ड बीज (रेंडी)की तरह लगभग १·२५ सें०मी० (१/२ इंच) लम्बा और ०·८३ सें०मी० (१/३ इंच) चौड़ा, अंडाकर, किसी कदर गोल शकलका, तीन खण्डवाला, कालाई लिए भूरा होता है। इसके भीतरसे पीलाई लिए सफेद मग़ज़ (गिरी) निकलता है, जिसके दो दल होते हैं। विषैला होनेके कारण बिना शुद्ध किये इसका उपयोग उचित नहीं है। इसके शोधनकी विधि मेरे लिखे 'यूनानी-द्रव्य-गुणविज्ञान' ग्रन्थके पूर्वार्धमें यथास्थान देखें। मग्जसे ५० या ६० प्रतिशत एक प्रकारका तेल (**रोग़न हब्बुस्सलातीन**) निकलता है। यह पिलाई या ललाई लिये भूरा, गाढ़ा और स्वादमें तीक्ष्ण (चरपरा) एवं दाहजनक (जलन पैदा करनेवाला) होता है। **भेद**–(१) **चीनी** या **ख़ताई**, (२) **हिंदी** और (३) **सज्ज़ी** भेदसे यह तीन प्रकारका होता है। इनमें प्रथम सर्वोत्तम, द्वितीय भी उत्तम; परन्तु तृतीय निकृष्ट एवं अनुपयोगी माना जाता है।

उपयुक्त अंग—**बीज** और तेल।

रासायनिक संगठन—बीजमें एक अनुत्पत् वसामय तेल, टिग्लिनिकाम्ल, क्रोटोनिक या क्वार्टेनिलिकाम्ल और जयपाल तेल होता है। **तेल**में (१) क्रोटोन ऑलीइक अम्ल जो इसका कार्यकर प्रधान वीर्य प्रतीत होता है, (२) टिग्लिक एसिड या मीथिल-क्रोटोनिक एसिड, (३) क्रोटोनोल जो विरेचनीय तो नहीं, तथापि तीक्ष्ण दाहक और त्वचापर लगनेसे विस्फोट उत्पन्न कर देता है, (४) कतिपय उत्पत् अम्ल जो सब मिलकर **एक** प्रतिशत होते हैं जिनपर इसका गंध निर्भर करता है और (५) कतिपय वसामय अम्ल जो स्वतन्त्र और चर्बीकी शकलमें संयुक्त भी होते हैं।

कल्प तथा योग—**तिलाए जमालगोटा, हब्बुस्सलातीन**, हब्ब मिस्कीनेवाज आदि।

प्रकृति—चौथे दर्जेमें उष्ण और रूक्ष (खुश्क); आयुर्वेदके मतसे भी उष्णवीर्य (रा०नि०) है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—**बीज** तीक्ष्ण विरेचन और विस्फोटजनन है। **तेल** (**रोग़न जमालगोटा**) बाह्यतः त्वचापर लगानेसे विस्फोटजनन कर्म करता है; और आन्तरिक रूपसे खिलानेसे अन्त्रामाशयमें संक्षोभ (खराश) उत्पन्न करके तीक्ष्ण विरेचन कर्म करता है। बाहरी त्वचापर लगानेसे रक्तमें शोषित होकर भी यह विरेक लाता है। (**बीज**) सौदा और कफके रोगोंमें इसका विरेचनकी भाँति उपयोग करते हैं। सुतरां आमवात, जलोदर, सन्यास (सक्ता) जैसे रोगोंमें इसका विरेचन दिया जाता है। इसके अतिरिक्त बाह्यतः विस्फोटजनन होनेके कारण यह हस्त-मैथुनीके लिए प्रयुक्त तिलाओं (शिश्न लेपों)में डाला जाता है। केवल इसीका भी तिला करते हैं। इसके सिवाय दद्रु, गंज, किलास और आमवात जैसे रोगोंमें भी इसका लेप लगाते हैं। यह विस्फोट (छाला) उत्पन्न करके दूषित द्रवोंका उत्सर्ग कर देता है। इसके स्थानमें जमालगोटाका तेल भी प्रयुक्त किया जाता है। (**तेल**) इसे जैतूनके तेलमें मिलाकर गंजपर लगानेसे वहाँ जख्म डालकर दूषित द्रवोंको बहा देता है जिससे मूल व्याधि नष्ट हो जाती है। जलोदर, जलमस्तिष्क, सन्यास (सक्ता), प्रबल मलावरोध और अन्त्रावरोध नष्ट करनेके लिए तीक्ष्ण विरेचनकी भाँति इसका आंतरिक उपयोग करते हैं। किन्तु जब अन्त्र या आमाशयमें शोफ हो या अन्त्रमें क्षोभ (खराश) वर्तमान हो तब इसका उपयोग नहीं करना चाहिए। वह वमन लाकर कफका उत्सर्ग करता है। **अहितकर**–वामक और व्रणकारक है। **निवारण**–खालिस दूध। **मात्रा**–बीजका मग्ज ६० मि०ग्रा० से १२० मि० ग्रा० (१/२ रत्तीसे १ रत्ती) तक; **तेल** ०·०३ मि० लि० से ०·०६ मि० लि० (१/२ बूँद से १ बूँद) तक।

जयपाल के विषलक्षण और उसकी चिकित्सा—इस मात्रासे अधिक सेवन करनेसे उदर (अन्त्र और आमाशय)में अत्यन्त दाह, मरोड़ और दर्द होने लगता है; रक्त और आँव (कफ) मिले हुए दस्त आने लगते हैं; रोगी अत्यन्त निर्बल हो जाता है; कभी-कभी प्राणनाश तककी नौबत पहुँच जाती है। उक्त अवस्थामें गोदुग्ध और घृत मिलाकर बार-बार पिलायें और क़ै करायें। इसके उपरांत दहीकी लस्सी या अंडोंकी सफेदी दूधमें फेटकर पिलायें।

आयुर्वेदीय मत—जमालगोटा (जेपाल) कटु, वात, कृमि और जलोदर नाश करनेवाला है (रा०नि०)।

नव्यमत—जमालगोटा तीव्र रेचन और बड़ी मात्रामें विष है। एक बूंद इसक तेल देनेसे जोरसे पाँच-पचीस पानी जैसे दस्त हो जाते हैं, पेटमें मरोड़ आते हैं और अन्त्रकलामें शोथ हो जाता है। इससे पेटके कृमि भी मरते हैं; परन्तु कृमिनाशनके लिए इसका उपयोग नहीं करना चाहिए। जब रक्त का जलांश कम करना अभीष्ट हो अथवा हृदयोदरमें जब हृदयपरके पानीका दबाव कम करना हो तब जमालगोटा देते हैं। सिरकी रक्तवाहिनी टूटकर अर्धाङ्गवात होता है, उस समय जमालगोटा देकर रक्तका जलांश कम न किया जाय क्योंकि मस्तिष्कमें रक्तका स्राव अधिक होकर रोग असाध्य हो जाता है। रोगी निःसंज्ञ हो तो तेलकी एक बूँद मक्खनमें मिलाकर जीभपर रखना चाहिए। यदि विरेचन अधिक हो तो कत्था पानीमें मिलाकर या नीबूका शर्बत पिलावें।

●

(२६८) जयन्ती (जैंत)

फ़ैमिली : लेगूमिनोसी (Family : Leguminosae)

नाम—(हिं०) जैंत, रवासन, रायसन, झंजन, जयंती (बं); (अरबीकृत) सैसबान; (सं०) जयन्ती, जयंतिका, मदगन्धवती; (बम्ब०) जैत; (मल०) शेम्प; (ता०) सेम्बइ; (ते०) जलुगु; (लै०) **सेस्बानिआ सेस्बान Sesbania sesban** (L.) Merr. (**पर्याय—सेस्बानिआ ईजीप्टिआका** *Sesbania aegyptiaca* Poir.)।

उत्पत्तिस्थान—यह हिमालयसे लंका तकके मैदान, उत्तर-पश्चिममें ४,००० फुटकी ऊँचाईपर होता है।

वर्णन—इसके बड़े **गुल्म** या ४·५ मीटर (१५ फुट) तक ऊँचे अल्पायु, छोटे-छोटे वृक्ष होते हैं और प्रायः बागोंमें पाये जाते हैं अथवा कहीं स्वतः भी उग जाते हैं। समपक्षवत् पत्तियाँ १० से १५ सें० मी० (४-६ इंच) लम्बी; **पत्रक** १२ से २० जोड़े, रेखाकार-आयताकार और **पुष्प** पीले या लाल, संतरा और जामुनी रंगके धब्बेके कारण चित्रित वर्णके होते हैं। फलियाँ लम्बी, पतली, रम्भाकार, परन्तु बीच-बीचमें संकुचित होती हैं।

सैसबान—

प्रकृति—खुश्क (एवं गरम)।

गुण-कर्म तथा उपयोग—आमाशयके चुन्नटोंको शक्ति देता, उनको दबागत देता, अतिसारको बंद करता, कब्ज पैदा करता, रक्तष्ठीवनको बन्द करता और प्लीहाशोथ मिटाता है। इसके लेपसे भी प्लीहाशोथ मिटता है। दूधके साथ विषोंका अगद है। इसके पत्ते घरमें फैला देनेसे पिस्सू उत्पन्न नहीं होते। यह दोषोंको दूसरी ओर लौटा देता है और द्रवोंका शोषण करता, तथा कफ एवं पित्तको नष्ट करता है। **अहितकर**—उष्ण प्रकृतिको। **निवारण**—धनियाँ। **प्रतिनिधि**—बादावर्द। **मात्रा**—७ ग्राम (७ माशा)। इसके बीजकी, जिसे 'हबूब' तथा 'संगसबूया' व 'संजसबूया' लिखा है, मात्रा ३.७५ ग्राम (३$\frac{३}{४}$ या पौने चार माशा) है।

उपयुक्त अंग—वृक्षत्वक्, फली, बीज, पत्र-पुष्प।

रासायनिक संगठन—बीजोंमें एक स्थिर तेल, एक गंधमय तत्व, उद्यास, शर्करा, एक आर्गेनिक अम्ल, निर्यास, प्रोटीड्स और भस्म ५%।

जैंत—

प्रकृति—छाल, पत्ते और फली पहले दर्जेमें गरम और खुश्क तथा फूल समशीतोष्ण है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—पत्रस्वरस कफविरेचनीय है। प्रातः थोड़ा मीठा खाकर ऊपरसे लगभग ३ तोले इसका पत्रस्वरस पीनेसे समस्त उदरकृमि निकल जाते हैं। इसके ताजे पत्तोंको अग्निपर तपाकर बाँधनेसे सूजन उतर जाती है। फोड़ेपर बाँधनेसे वह पक जाता है। सपूय व्रणों (फोड़ों) पर इसके पत्तोंका लेप करनेसे सम्पूर्ण मवाद खिचकर निकल जाता है। वर्षोंके पुराने नाडीव्रण (नासूर)पर कुछ दिन इसके पत्तोंको पीसकर बाँधनेसे वह आराम हो जाता है। किसी अवयवमें पानी उतर आने पर इसके पत्ते तपाकर बाँधनेसे वह विलीन हो जाता है। वृषणप्रकोप या मूत्रजवृद्धि अर्थात् वृषणोंमें पानी उतर आनेपर इसकी पिसी हुई पत्तियोंका टिकिया बनाकर और उसे एक ओर तवेपर पकाकर वृषणोंपर बाँधनेसे उपकार होता है, परीक्षित है। इसके गरम किये हुये पत्तोंसे सेंक करनेसे वातजशूल एवं संधिशोथ आराम होता है। इसके पत्रस्वरसका आघ्राण करनेसे संमिश्र ज्वर छूट जाता है। पेड़की छालको चौगुने पानीमें भिगोकर अर्क खींचे और इसमेंसे प्रतिदिन १-३ तोले तक रोग और बलके अनुसार कलेवाके रूपमें पी लिया करें। इसी प्रकार २१ बल्कि ४० दिन तक पीते रहें तथा लवण, खटाई एवं वादी पदार्थोंसे परहेज करें तो श्लीपद (फीलपाँव) रोग जाता रहता है तथा अवयवगत उतरा हुआ पानी विलीन हो जाता है। कहते हैं कि इसके अर्कको काँचके बर्तनमें नहीं रखना चाहिये, क्योंकि उसे तोड़ देता है। फली वृंहणीय और फूल बल्य एवं इसके लाल भेदका रस खुनाकको मिटाता है। बीजोंको पीसकर उसमें बत्ती लत (आप्लुत) करके नाड़ीव्रण (नासूर) आदि पुराने व्रणोंके मुँहमें रखनेसे वे अच्छे हो जाते हैं। लगभग १ माशा इसके बीजोंका चूर्ण प्रतिदिन खानेसे वायु नष्ट होती और अवयवगत बेदना मिटती है।

आयुर्वेदीय मत—जैंत तिक्त, कटु, उष्णवीर्य, रसायन (काली जैंत), कण्ठशोधनी तथा वात-पित्त-कफ (विशेषकर वात), भूत, विष, गलगण्ड, कृमि और शोथका नाश करनेवाली है (ध० नि०; रा० नि०, भा० प्र०)?।

उपयोग—इसकी जड़को सिर पर धारण करनेसे सभी प्रकारके ज्वर नष्ट होते हैं। इसकी जड़के काढ़ेमें मधु मिलाकर पीनेसे ईक्षुमेह आराम होता है। इसके पत्तोंके काढ़ेसे शिश्नको धोनेसे मेढ्रपाक नष्ट होता है। मसूरिकाके बाहर निकलनेके लिये गायके घीके साथ पिसे हुए इसके २४ बीज मसूरिकाके प्रथम आविर्भाव कालमें बासी पानीसे लेना चाहिये। नित्य रविवारके दिन सफेद जैंतकी जड़को गायके दूधके साथ घोंट-पीसकर पीनेसे किलास (श्वित्र)का लाभ होता है। पुटपक्व-जैंतकी पत्तीका रस सेंधा नमक और सरसोंके तेलके साथ सेवन करनेसे प्रतिश्याय आराम होता है। (चक्रदत्त)। ऋतुकालमें तीन दिन तक जैंतके पिसे हुए फूलोंको पुराने गुड़के साथ सेवन करनेसे स्त्री बन्ध्या हो जाती है। (भावप्रकाश-बन्ध्या चि०)।

नव्यमत—ग्राही होनेसे जैंतके बीज एवं छालका स्वरस अतिसारमें दिया जाता है। इसको पीसकर पकाई हुई पत्तियोंका उष्णलेप करनेसे अपक्व स्फोटक शीघ्र पक जाते हैं। बिच्छूके दंशमें पीड़ा दूर करनेके लिये बीजोंका लेप हितकर है।

(२६९) जरदालू और खूबानी

फ़ैमिली : रोज़ासे (Family : Rosaceae)

नाम—(हिं०) जरदालू, कुश्मालू; (यू०) अरमीनाकन; (अ०) मिशमिश; (फा०) ज़रदालू, ज़र्द आलू, (सं०) उरुमाण (सु०; च०); (पं०) खुरमानी, खुर्बानी, खुबानी, गुर्दालु, गर्दालु, शिरन; (क०) चेर; (हिमा०) चूलू, चुल्लू, चील्; (पश्तु) जरदालू; (काश०) इसेर; (सतलज) जलदारु; (कुमा०) चुआरू; (अं०) एप्रीकॉट (Apricot)।

वक्तव्य—इसके वृक्षको लैटिनमें **प्रूनुस आरमेनिआका (Prunus armeniaca** Linn.) कहते हैं।

उत्पत्तिस्थान—शीतप्रधान प्रदेश, हिमालय, दक्षिण भारत, मैसूरादि तथा अफगानिस्तान और बलूचिस्तान आदि।

वर्णन—यह एक प्रसिद्ध फल है जो अखरोटके बराबर, किसी कदर आडूके सदृश गोल २·५ सें० मी० (१ इंच) लम्बा और सफेदी लिए होता है। सूखने पर वह भूरा और मीठा हो जाता है। पीले रंगके जरदालूको **'खूबानी'** कहते हैं। सूखा हुआ फल ताजेकी अपेक्षया उत्तम होता है। मीठा, खट्टा और खटमिट्ठा भेदसे यह तीन प्रकारका होता है। इसके अन्दर बादामकी तरह चिकनी गुठली होती है। तोड़नेपर इसके भीतरसे बादाम मग्जकी तरह मग्ज (गिरी) निकलता है। इसे **'शकर बादाम'** कहते हैं। यह स्वादमें बादामके मग्जकी तरह स्वादिष्ट होता है। मीठा और कडुआ भेदसे यह मग्ज दो प्रकारका होता है। सूखे फल बाजारमें सर्वत्र मिलते हैं।

प्रकृति—**फल** दूसरे दर्जेमें शीत एवं स्निग्ध वा तर (खट्टा शीत एवं तर और मीठा उष्ण एवं तर) है। आयुर्वेदके मतसे उष्णवीर्य है। **पत्र** दूसरे दर्जेमें शीत एवं रूक्ष (खुश्क) **फूल** भी शीत एवं रूक्ष। **कडुआ मग्ज** दूसरे दर्जेमें उष्ण एवं रूक्ष और मीठा पहले दर्जेमें उष्ण एवं तर; **बीजोत्थ तेल** उष्ण एवं रूक्ष है। कडुए मग्ज़का तेल मीठेसे अधिक उष्ण एवं रूक्ष (दूसरे दर्जे तक) है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—खूबानी **जीवनीय, प्रकृतिमार्दवकर** (सर) **पित्तविरेचन,** पित्त तीक्ष्णता एवं **रक्तप्रकोप** संशमन और पित्तज्वरहर है। **ताजा खूबानी** (जरदालू) आनाहकारक और प्रकोथजन्य ज्वरोत्पादक है। **पत्र** कृमिघ्न, कृमिनिस्सारक और श्वयथुविलयन; **पुष्प** दोषतारल्यजनन; **बीजकी गिरी** (मग्ज) दीर्घपाकी और वाजीकर; **बीजोत्थ तेल** अवरोधोद्घाटक, श्वयथुविलयन, कृमिहर और विरेचन है। खूबानी पित्तविरेचन एवं पित्तकी तीक्ष्णता और रक्तप्रकोपसंशमन है; इसलिए पैत्तिक रोगोंमें विशेषकर पित्तज ज्वरों और आमाशयशोथकी दशामें प्रायः इसका हिम वा फाँट बनाकर उपयोग करते हैं। प्यास बुझानेके लिए भी इसका उपयोग करते हैं। यह आशुप्रकोथशील है। इसलिए प्रकोथजन्य ज्वरोंको उत्पन्न करती है। पत्रका काढ़ा पीनेसे उदरज कृमि निकल जाते और मूत्रका प्रवर्तन होता है। पत्तोंको पीसकर नाभिपर लेप करनेसे भी उदरकृमि नष्ट होते हैं। पत्रके काढ़ेसे अवसेचन करनेसे सूजन उतरती है। सूखे पत्र कूट-पीसकर ७ माशेकी मात्रामें शीतल जलसे लेनेसे चिरज अतिसार नष्ट होता है। **कड़वे जरदालूके** पत्तोंका रस कानमें डालनेसे कर्णशूल और कृमिकर्ण आराम होता है। **फूलोंको** पीसकर अवचूर्णन करनेसे बाहरी और भीतरी रक्तस्राव बन्द हो जाता है। कड़वी गिरियोंका तेल ४½ माशा पीनेसे उदरज कृमि निकलते और तीव्र विरेक आते हैं, गुदशोथ मिटता, अश्मरी खण्ड-खण्ड होकर निकल जाती और शीतजन्य पेचिस जाती रहती है। इसके पानाभ्यंगसे बाह्यांतर अर्श आराम हो जाता है। बाह्य एवं कानमें टपकानेसे कर्णशूल, कृमिकर्ण और बाधिर्यका नाश होता है। **अहितकर**–खूबानी आनाहकारक है। **निवारण**–शर्करा, मस्तगी और अनीसून। **प्रतिनिधि**–खूबानीका शफ़तालू, पत्रका आडूपत्र, तेलका कड़वे बादामका तेल। **मात्रा**–खूबानी ५ दानेसे १० दाने तक।

आयुर्वेदीय मतसे—जर्दालू और खूबानी (उरुमाण) मधुर, गुरु, स्निग्ध, उष्णवीर्य, बृंहण, बल्य तथा पित्तकफवातहर है (च०सू०अ० २७; सु०सू०अ० ४६)।

जरावंद

फ़ैमिली : आरीस्टोलोकिआसे (Family : Aristolochiaceae)

वक्तव्य—ज़रावंद फारसी शब्दका अर्थ **गीलानीके** मतसे 'सुवर्णपात्र' है। इसका रंग सुनहला होता है, इसलिए इसका उक्तनाम अन्वर्थक है। इसका आधुनिक नाम **आरीस्टोलोकिआ** (Aristolochia) वस्तुतः इसका यूनानी (Gr. Aristolokhia D. 3. 4) नाम है जिसको अरबी यूनानी वैद्यकीय ग्रन्थोंमें **'आरिस्तालोख़िया'** लिखा है। आरिस्टोलोकिआका योगार्थ 'प्रसवशोणितोपयोगी द्रव्य' है। परन्तु **इब्नबैतार** और **किताबमालामस्अ** के संकलनकर्त्ताके मतसे इसका अर्थ 'प्रसवशोणितवाली स्त्रीके लिए अत्युपयोगी द्रव्य' है। जराबंद वा आरीस्टोलोकिआकी प्रायः ८-९ जातियोंका उल्लेख 'उम्दतुल्मोहताज' और कतिपय अन्यान्य पाश्चात्य वैद्यकीय निघण्टुग्रंथोंमें मिलता है। परन्तु अरबी हकीमोंने उनमेंसे केवल इन २ जातियों (१) **ज़रावंद तवील** और (२) **जराबंद मुद्हरज**का उल्लेख अपने ग्रंथोंके किया है। अस्तु इनमें से प्रत्येकका क्रमशः वर्णन यहाँ किया जा रहा है। **इसरौल** या **ईश्वरी** (**आरीस्टोलोकिआ इंडिका Aristolochia indica**) तथा कीटमारी या धूम्रपत्रा (**आरीस्टोलोकिआ ब्राक्टिओलाटा Aristolochia bracteolata** Lamk.) इसकी अन्यतम भारतीय जातियाँ हैं (देखो—'इसरौल एवं कीटमारी')। इसके अतिरिक्त इसका एक अन्य भेद भी है जो उत्तरी अमरीकामें होता है, जिसे **आरीस्टोलोकिआ सर्पेन्टारिआ** (**Aristolochia serpentaria**) कहते हैं।

●

(२७०) जरावंद तवील

नाम—(अ०) ज़रावंदे तवील; (फा०) ज़राबन्दे दराज़; (ले०) **आरीस्टोलोकिआ लाँगा** (**Aristolochia longa** Linn.); (अं०) लाँग बर्थवर्ट (Long Birthwort)।

उत्पत्तिस्थान—दक्षिण यूरोप और ग्रेट ब्रिटेन।

वर्णन—वह जराबन्द मुदहरजकी तरहको एक वनस्पतिकी जड़ (Rhizome) है जो एक बित्ता या इससे न्यूनाधिक लम्बी, बेलनाकार, १ इंच या अधिक व्यासकी, लगभग एक अंगुल मोटी, बाहरसे पांडुर-धूसर या ललाई लिए काली, चिकनी, धारीदार या उभारयुक्त (Warty) और कड़ई होती है। इसका व्यत्यस्त काट (Transverse section) सफेदी लिये, तैलोद्यास (Oleo resin)से युक्त वाहिनीपूलों (Vascular bundles)के कारण भूरे बिन्दुओंसे युक्त होता है। स्वाद मधुरता लिये, बादको कटु एवं अप्रिय होता है। यह जरावन्दका 'नरभेद' है। पौधा लगभग ६० सें०मी० (२ फुट) ऊँचा, पत्र एकांतर, पिलाई लिये हरे रंगका और आकृतिमें कुछ-कुछ **लबलाब** (Ivy)के समान; पुष्प, कांड और प्रत्येक पत्रवृन्तके संयोग-स्थलसे निकलते अर्थात् कक्ष स्थित होते हैं तथा प्रत्येक पुष्पमें एक लम्बी खोखली नलिका होती है जिसके छोरपर भूरापन लिए एक पीले रंगका लोलक (Flap) होता है।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें **गरम** और दूसरेमें **रूक्ष** (**खुश्क**) है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—मूत्रार्तवजनन, गर्भनिस्सारक, विलयन, उष्णताजनन, कफोत्सारि, श्लेष्मविरेचन, कृमिघ्न, लेखन और व्रणरोपण। रुद्धार्तव, गर्भाशयशोधन और गर्भनिर्हरणके लिए इसका बाह्यांतरिक उपयोग करते हैं। दुर्गन्धित (अफ़िना) व्रणोंपर इसको ईरसा और शहदके साथ मिलाकर लगाते हैं। व्रणस्थ मुर्दार मांसको दूर करके नया मांस उत्पन्न करता है। इसे कतिपय मरहमोंमें भी मिलाकर लगाते हैं। चेहरेका रंग निखारनेके लिए इसका तिलाऽ(पतला लेप)की भाँति उपयोग करते हैं। वक्षको कफसे शुद्ध करनेके लिए कास तथा श्वासमें इसे

उपयुक्त अवलेहोंमें मिलाकर चटाते हैं। नाडीघात, रक्तसंचयजन्य आक्षेप, अपस्मार और अपनानक (कुज़ाज़) जैसे वातज (असबी) और कफज रोगोंमें इसे खिलाते हैं। उदरज कृमियोंके नष्ट करने और उनके निर्हरणके लिए इसका उपयोग करते हैं। जूओं (यूकाओं)को मारनेके लिए तेलके साथ इसका शरीर और शिरापर मर्दन करते हैं। **अहित-कर**–यकृत-प्लीहाके लिए। **निवारण**–मधु, सिकंजबीन और कालीमिर्च, **प्रतिनिधि**–जरावन्द मुदह्‌रज, चीता और नरकचूर (जुरंबाद)। **मात्रा**–३ ग्राम से ५ ग्राम (३ माशे से ५ माशे) तक।

(२७१) जरावन्द मुदह्‌रज

नाम—(अ०) ज़रावन्दे मुदह्‌रज (मुदव्वर); (फा०) ज़रावंदे गिर्द; (ले०) **आरीस्टोलोकिआ रोटुण्डा (Aristolochia rotunda** Linn.); (अं०) राउण्ड वर्थ-वर्ट (Round Birthwort)।

उत्पत्तिस्थान—दक्षिण यूरोप।

वर्णन—यह एक छोटेसे पौधेकी विदेशोंसे लाई हुई जड़ (कंदमूल) है जो गोलाकार (मुदव्वर), फिंदकके बराबर (या उससे कुछ छोटी या बड़ी), किसी भाँति चपटी होती है। यह बाहरसे पीली और भीतरसे ललाई लिए, कड़ुई और कपूर जैसी गंधवाली होती है। यह जरावन्द तबीलकी 'मादाजाति' है। भारतवर्षमें यह प्रायः दुर्लभ है। जराबन्दके इन उभय भेदोंके गुण-कर्म लगभग समान हैं, तथापि औषधमें अधिकतया जरावन्द मुदह्‌रज ही अधिक प्रयुक्त होता है।

रासायनिक संगठन—इसमें **आरिस्टोलोकीन** (Aristolochine) नामक क्षाराभ (ऐल्केलॉइड) होता है।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें **गरम** और **खुश्क**।

गुण-कर्म तथा उपयोग—वलयन, दोषतारल्यजनन, प्रमाथि, कफछेदन, श्लेष्मनिस्सारक, लेखन, वेदना-स्थापन, व्रणरोपण, वाजीकर, आर्तवजनन और प्रधानतः श्लेष्मविरेचन है। दोषतारल्यजनन और प्रमाथि होनेके कारण यह आर्तवजननके लिए उपयोग की जाती है। इन कर्मोंके अतिरिक्त यह कफविरेचन एवं विलयन भी है, इसलिये अखिल श्लेष्मज व्याधियोंमें उपयोगी ख्याल की जाती है और कतिपय व्याधियोंमें प्रयुक्त भी होती है। यह जीर्ण कास एवं श्वासमें उपयोग की जाती है। इसे उन मरहमोंमें भी सम्मिलित करते हैं जो दुर्गन्धित दुष्टव्रणोंके लिए गुणकारी होते हैं। वाजीकरणार्थ इसे वाजीकर माजूनोंमें डालते हैं। पार्श्वरुक् (ज़ातुज्जनब), चिरज वेदनाओं, कूल्हे के दर्द (वज्‌उल्‌वरिक), गृध्रसी और वातरक्तमें वेदनाको शमन और विलीन करनेके लिए इसको पिलाते और लेप लगाते हैं। यकृत्प्लीहाशोथ एवं काठिन्यमें भी इसको पिलाने और लेप लगानेसे लाभ होता है। **अहितकर**–प्लीहाको तथा नाड़ियोंमें भी रूक्षता उत्पन्न करता है। **निवारण**–रोगन कद्दू और रोगन बनफ़शा। **प्रतिनिधि**–जरावन्द तवील और रेवन्दचीनी। **मात्रा**–३ ग्राम से ५ ग्राम (३ माशे से ५ माशे) तक।

(२७२) जरीर

फ़ैमिली : रानुन्कुलासे (Family : Ranunculaceae)

नाम—(हिं०) असबर्ग; (फ़ा०) ज़रीर; (इरान) ज़लील, अस्फ़क, अस्परग (क); (बम्ब०) गुलजलील; (ले०) **डेल्फीनीउम् ज़लील (Delphinium zalil** Aitch.)।

वक्तव्य—यद्यपि डीमकके मतसे इसे फारस और बम्बईमें 'त्रायमान' और पंजाबीमें 'गाफिज़' कहते हैं; तथापि वास्तविक वैद्यकीय त्रायमाण 'देशी गाफिस' जेन्टीआना कुरू (**Gentiana kurroo** Royle.); **और** वास्तविक गाफिस उसकी एक अन्य विदेशीय जाति **जेन्टीआना ओलीवेरी** (**Gentiana oliveri** Griseb.) है, न कि यह जरीर। इसे शास्त्रीय त्रायामाणका प्रतिनिधि द्रव्य माना जा सकता है, त्रायमाण नहीं, क्योंकि यह विदेशी द्रव्य है और त्रायमाण भारतीय।

उत्पत्तिस्थान—फारसके **बदगीज़** और **खोरासान** आदि प्रदेश। वहींसे इसका आयात भारतवर्षके बम्बई तथा उत्तरभारतीय बाजारोंमें होता है।

वर्णन—यह ९० से १८० सें० मी० (एकसे दो फुट) ऊँचा एक बहुवर्षायु **क्षुप** है। बाजारमें इस औषधिके पुष्प, पत्र, पुष्पदण्ड और थोड़े प्रमाणमें अपरिपक्व फल अर्थात् पंचांगके टुकड़े मिले-जुले आते हैं। यह सब हलका हरापन लिए पीले रंगके होते हैं और उसमेंसे मधुसरीखा सुवास आता है, **पुष्प** रोमश, सुन्दर पीतवर्णके होते है और उनके नीचे सूक्ष्म कण्टकसदृश रचनायें होती हैं। **पत्ती** तीन कोष (खंड) युक्त जो भीतरकी ओर स्फुटित होते हैं। **फलनासा** टेढ़ी, अग्र नोकीला और पृष्ठ रीढयुक्त होता है, **पत्तियाँ** पीताभ और छोटी होती हैं। **मूल** एक वित्तासे अधिक होता है। **बीज** कोनयुक्त और हलका भूरे रंगका होता है। पंचांगको जलमें डालनेमें जल पीला और स्वादमें कड़ुआ हो जाता है। रंगरेज इसे कपड़ेको पीला रंगनेके काममें लाते हैं। इसके **फूलसे** एक पीला रंग निकाला जाता है जिसे **'असबरग'** कहते हैं। इससे रेशम रंगा जाता है।

उपयुक्त अंग—समग्र क्षुप (पंचांग)।

रासायनिक संगठन—इसमें एक **बेरंग तिक्तक्षारोद** और दूसरा दारुहारिद्रिक सरीख **पीला तिक्तक्षारोद** यह दो कटुसत्व पाये जाते हैं।

प्रकृति—शीत एवं रूक्ष। इसमें कुछ गरमी भी है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—लेखन, संशोधन, श्वयथुविलयन, वेदनास्थापन, मूत्रार्तवजनन और त्वचाके चिह्न दूर करनेवाला है। इसे मुनक्काके साथ उबालकर तीन दिन तक पीने अथवा सवा दो (२$\frac{१}{४}$) तोलेकी मात्रामें पीसकर शहदमें मिलाकर चाटनेसे बढ़ी हुई प्लीहा घट जाती है और जलोदर एवं कामला रोगमें उपकार होता है। इसके काढ़ेमें जौका आटा मिलाकर उष्ण सूजनपर बाँधनेसे उपकार होता है। इसको जलाकर बनाई हुई राख दद्रु, खर्जू और जख्मपर लगानेसे लाभ होता है। **अहितकर**–शिरःशूलजनक है। **निवारण**–सिकंजबीन। **प्रतिनिधि**–मजीठ। **मात्रा**–डेढ़ १७.५ ग्राम (१$\frac{१}{२}$ तोला)।

◆

(२७३) जर्नब

फ़ैमिली : सालीकासे (Family : Salicaceae)

नाम—(अ०) जर्नब; रिजलुल्‌जराद (रिज्ल = पाद + एल् + जराद = टिड्डी); (फा०) सरो तुर्किस्तानी; (ले०) **सालिक्स इजिप्टिका** (**Salix aegyptiaca** Sprengel.)।

उत्पत्तिस्थान—फ़ारसके पहाड़ोंमें उत्पन्न होती है। वहाँ इसे **'सरोतुर्किस्तानी'** कहते हैं। भारतवर्ष और बंगालमें भी इसकी उत्पत्ति बतलाते हैं।

वर्णन—**खजाइनुल्अदविया के रचयिता** अपने निजी दर्शनके आधारपर लिखते हैं कि मैंने जो सूखी हुई ज़र्नब देखी है, वह ऐसी मालूम होती थी मानो मूँजकी पत्तियाँ हैं। रंग पिलाई लिए काला मानो धूआँ लगनेसे उक्त रंग आ गया हो जिसमें पिलाई व ललाई एवं कालाई होती है। उसमें किसी भाँति हरेपन की झलक भी होती है जैसे कतिपय बिस्फायजको तोड़नेसे मालूम होती है। शाखायें गोल, सींककी तरह बारीक और कोई इससे मोटी और स्थान-स्थानपर ग्रन्थियोंपर ऐसे चिन्ह होते हैं मानो पत्तों की जड़ें टूट जानेके बाद रह गई हों। शाखायें बहुत होती हैं और वे भीतरसे ठोस होती हैं। स्वाद बहुत हलका कटु (तीक्ष्ण) एवं तिक्त, गन्ध तीव्र नहीं, किंचित् बिजौरे नीबूकी सुगन्धियुक्त, चखनेपर हलका दालचीनीके स्वादसे मिलता-जुलता स्वाद होता है। जितनी बारीक एवं तीव्र गंध हो वह श्रेष्ठतर है। इसकी शक्ति **चार वर्ष** तक रहती है। यह ब्राह्मी और तालीसपत्रसे सर्वथा भिन्न द्रव्य है, क्योंकि तालीस पत्रका वृक्ष १२० फुटसे १५० फुट तक ऊँचा होता है, किन्तु ज़र्नब का छोटा क्षुप होता है। ब्राह्मीका पौधा तो और भी छोटा होता है।

प्रकृति—दूसरे दर्जेके अन्तमें और मतांतरसे तीसरे दर्जेमें गरम और खुश्क है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—**मनःप्रसादकरण** एवं **हृदयबलवर्धन**का गुण इसमें सर्वोत्तम है। मनोल्लासकरण गुणमें यह मद्यके समान है। **शैख़के** मतसे यह प्रभावमें नरकचूरसे भी अधिक है। **मासरजौया** इसकी शक्ति बालछड़की शक्तिके समीप और उससे सूक्ष्म (लतीफ़) बतलाता है। **राजी** तज और कबाबचीनीके संमिश्रवीर्योंके समान इसके वीर्यको मानता है। आमाशय, यकृत् और उत्तमांगोंको बहुत बल प्रदान करती है तथा भूख लगाती है। यह पचनदोषको दूर करती, वायुको अनुलोम करती, स्वर को शुद्ध करती तथा कास, श्वास और हिक्काको दूर करती और कफका नाश करती है। बातव्याधियोंको लाभ पहुँचाती और वस्तिगत शीतको दूर करती है। यदि मूत्रकी प्रवृत्ति सरलतासे न होती हो तो इससे लाभ होता है। यह कामोद्दीपन करती, कष्टसूतिमें लाभ पहुँचाती तथा विषसेवीके लिए भी लाभकारी है। **अहितकर**–उष्ण प्रकृति, निर्बल व्यक्ति और जिसके यकृत्में उष्णता हो उसे जर्नब हानि पहुँचाती है। **निवारण**–धनियाँ और **चन्दन**। **प्रतिनिधि**–समभाग तज और कबाबचीनी, दुगुना नरकचूर, छोटी इलायची, कबाबचीनी और बिजौरे नोबूका छिलका। **शैख़के** मतसे चौलाई और बथुआ। **मात्रा**–१·७ से ३·५ ग्राम (पौने दो से साढ़े तीन माशा) तक; मतान्तरसे (साढ़ेतीन से सात माशा) तक।

(२७४) जलकुम्भी

फ़ैमिली : आरासे (Family : Araceae)

नाम—(हिं०) जलकुंभी (-खुंबी,-कुम्ही); (अ०) फ़ारिसुल्माऽ ; (यू०) सतरात्यूतीस (Stratiotes); (सं०) कुम्भिका, वारिपर्णी; (बं०) टाकापाना; (म०) जलकुमी (गु०) जलकुंभी; (ते०) तुरिकुर; (ले०) **पीस्टीआ स्ट्रेटिओटीस Pistia stratiotes** Linn.; (अं०) वॉटर सोल्जर या लेटिस (Water Soldier or Lettuce.)।

उत्पत्तिस्थान तथा वर्णन—जलकुंभीके क्षुप समस्त भारतवर्ष में जलाशयोंके ऊपर तैरते हुए पाये जाते हैं। **पत्तियाँ** २.५ सें० मी० से ७·५ सें०मी० (१ इञ्च से ३ इञ्च) लम्बी, अभिलट्वाकार और चक्राकार गुच्छमें रहती हैं। **पुष्पव्यूह** पत्रावृत्त होता है, और **पत्रावरण** पीला या श्वेत होता है। स्वाद तिक्त होता है।

उपयुक्त अंग—मूल व पत्र। स्वरसकी **मात्रा** १-२ तोला; क्वाथ ५-१० तोला।

प्रकृति—**सर्द एवं तर**।

गुण-कर्म तथा उपयोग—यह शीतल, मूत्रजनन, दाहशामक तथा मूत्रकृच्छ्र, रक्तमूत्र, अर्श, गण्डमालादिमें उपयोगी होती है। सिरकेके साथ इसका लेप जख्मोंको पैदा नहीं होने देता है। यह उष्ण शोथोंको पकाती तथा उनकी लालिमा मिटाती है और प्रायः अवयवगत व्रणोंमें मांस भर लाती है।

रासायनिक संगठन—इसमें पोटैसियम, सोडियम, मैग्नीशियम और सुधाके अतिरिक्त लौह ओर सिलिसिक एसिड भी होता है।

आयुर्वेदीय मत—जलकुम्भी स्वादु, तिक्त, शीतवीर्य, रूक्ष, लघु तथा सर, त्रिदोषघ्न एवं कफ, रक्तदोष, ज्वर और शोथहर है (भा० प्र०)।

नव्यमत—इसकी जड़ स्निग्ध एवं अवसादक है तथा मूत्रकृच्छ्र रोगोंमें इसे देते हैं। अन्तधूर्मदग्ध की हुई इसको जड़ को भस्मको गुलाब जलमें मिलाकर केशदद्रुपर लगाते हैं। इसको पत्तियोंको पीसकर लेप करनेसे अर्शकी पीड़ा शान्त होती है।

●

(२७५) जलनीम, ब्राह्मी ? (बंगीय)

फ़ैमिली : स्क्रोफुलारिआसे (Family : Scrophulariaceae)

नाम—(हिं०) जलनीम(-ब), जलब्राह्मी; (सं०) ब्राह्मी ? (बं०) ब्रिह्मी साक; (म०) बाँब (बी), वाम; (ता० मल०) ब्रमी, नीरु ब्राह्मी; (ले०) बाकोपा मोन्निएरा **Bacopa monnierri** Perrel.(पर्याय–हर्पेस्टिस मोन्निएरा *Herpestis monniera* H. B. & K.)।

उत्पत्तिस्थान तथा वर्णन—जलासन्नभूमिजाति कटुलोणी अर्थात् जलनीमका क्षुप प्रसरी और किंचित् मांसल होता है। पत्तियाँ अभिलट्वाकार, आयताकार या स्रुवा के आकार की अखण्ड, अवृन्त, अकुण्ठिताग्र और ८ मि०मी०से १·८७५ सें०मी० (०·३ इंचसे ०·७५ इञ्च) लम्बी होती हैं। पुष्प जामुनी मिला हुआ श्वेत या गुलाबी (Pink) रंगका ०·३ इंचसे ०·४५ इञ्च लंबा; पुष्पवृन्त ०·२५ इञ्चसे ०·५ इञ्च लम्बा होता है। पानीके समीप इसके पौधे प्रायः सर्वत्र पाये जाते हैं और बंगीय वैद्य इसे 'ब्राह्मी' कहते हैं। नीमकी तरह कड़वी होनेके कारण इसे हिन्दीमें 'जलनीम' कहते हैं। कानून नामक ग्रन्थके कतिपय योगोंमें 'बाफलून'के सम्बन्धमें लिखा है कि वह 'वेलमून' है जो जंगली कुल्फाका नाम है। किसी-किसीके मतसे वह यही जलनीम है।

रासायनिक संगठन—इसमें ब्राह्मीन (Brahmine) नामक एक क्षाराभ जो गुणकर्ममें कुचलेमें पाये जानेवाले स्ट्रिक्नीन (Strychnine) नामक क्षाराभके समान, किन्तु उससे कम बिषैला होता है और हर्पेस्टीन (Herpestine) नामक क्षारसमोद रस होता है।

उपयुक्त अंग—समग्र क्षुप।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम एवं खुश्क; मतान्तरसे तर या सर्द एवं खुश्क।

गुण-कर्म—यकृदवरोधोद्घाटक, रक्तशोधक, वातानुलोमन, पाचन, दोषविरेचन, मूत्रजनन और मस्तिष्क एवं नाड़ीबलवर्धन हैं।

उपयोग—यह सौदाके रोग विशेषकर कुष्ठ, फिरंग और खर्जू (खुजली)को नष्ट करती हैं, कफ और सौदाके दोषोंका मलमार्गसे निर्हरण करती है। तेलमें मिलाकर सेवन करनेसे तर खुजलीमें लाभ पहुँचाती है। हरी जलनीमके स्वरसको समभाग तिलके तेलमें यहाँ तक पकायें कि तेलमात्र शेष रह जाय। इसे सूखी खुजली और

शिरके गंजपर लगानेसे बड़ा लाभ होता है। इसकी एक तोला पत्तीका स्वरस निकालकर पीनेसे बहुतसे दस्त आ जाते हैं। यदि सेर भर लेकर बड़े बर्तनमें भर कर पैरसे एक घड़ी तक मलते रहें यहाँ तक मुँहका स्वाद कड़ुआ हो जाय तो खुजली दूर हो जाय। यह ज्वर, किलास, गुदभ्रंश और कण्ठमालाको दूर करती है। इसके तीन तोले स्वरसमें ६ माशा जीराका चूर्ण और एक तोला चीनी मिलाकर तीन दिनतक पीने और बिना नमकका आहार करनेसे शिश्नगत और वस्तिगत व्रण जाते रहते हैं। मस्तिष्क एवं वाततंतु (नाडीव्यूह)के रोगों; जैसे–उन्माद और अपस्मार आदि तथा श्वास, स्वरभंग आदि रोगोंमें इसे हितकारी बतलाया गया है। **अहितकर**–क्षतोत्पादक है। **निवारण**–तेल। **मात्रा**–९ ग्राम (९ माशा)।

आयुर्वेदीय मत—ब्राह्मी, तिक्त, कषाय, मधुर, स्वादुपाकी, शीतवीर्य, लघु, सर, अग्निजनक, आयुवर्धक, रसायन, स्वरको उत्तम करनेवाली, स्मरणशक्तिवर्धक, मेधाजनक, बुद्धिदायक, हृदयको हितकारी तथा कोढ़, पाण्डु, प्रमेह, रुधिरविकार, खाँसी, विष, सूजन, कफ-पित्त-वात (सकलदोष), कण्डू, प्लीहा, वातरक्त, अरुचि, श्वास, शोप और उन्मादका नाश करनेवाली है। 'मण्डूकपर्णी' या 'ब्रह्ममण्डूकीके' गुण भी इसीके समान हैं। (ग० नि०; रा० नि०; भा० प्र०; नि० र०)।

●

(२७६) जलपीपल

फ़ैमिलो : वेर्बीनासे (Family : Verbenaceae)

नाम—(हिं०) भुई ओकरा, जलपीपल (ली), गंगतिरिया, पनिसिंगा; (सं०) जलपिप्पली, मत्स्यगंधा; (बं०; उड़ि०) बुक्कन; (पं०) बुक्कन (–म); (म०) जलपिप्पली, रतवेल, रतोलिया; (गु०) रतवेलियो; (ले०) फीला नोडीफ्लोरा (**Phyla nodiflora (L.)** Greene. (पर्याय–*Lippia nodiflora* Rich.); (अं०) पर्पल लिप्पिया (Purple Lippia)।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष विशेषकर कश्मीर और दक्षिण भारतवर्ष और लंका को आर्द्र एवं जलासन्न भूमिमें यह सर्वत्र होती है और बारहो महीने ताजो मिल सकती है।

वर्णन—यह जमीनपर फैलनेवाली एक क्षुद्र वनस्पति है। कांड पुष्कल, प्रायः फुटभरकी लम्बाईमें जमीनपर पसरा हुआ, गोल, रेखांकित और मसृण; पत्र क्षुद्र, लंबे, नोकदार, किंचित् चौड़े; पत्रप्रांत दंतुर; पुष्प क्षुद्र सफेद या गुलाबी रंगके गोल एवं शाखांत मंजरीमें होते हैं; फल–पीपल सरीखा, किन्तु उससे छोटा जिसमें दो बीज होते हैं; बीज गोल, दूसरेकी अपेक्षया एक ओर अधिक चपटा होते हैं। पौधेसे मछली जैसी गंध आती है। इसलिए इसको मत्स्यगंधा कहते हैं।

उपयुक्त अंग—समस्त क्षुप (पंचांग)।

रासायनिक संगठन—इसमें एक तिक्त तत्त्व होता है।

प्रकृति—गरम और खुश्क; मतान्तरसे शीत।

गुण-कर्म तथा उपयोग—रक्तसंशमन और रक्तप्रसादन, अर्शोघ्न, मूत्रल और विशेषतः कफघ्न है। मूत्रल होनेके कारण यह मूत्रकृच्छ्र में लाभकारी है और अपने प्रवर्तनकारी शक्तिसे वस्तिस्थ अश्मरीको उत्सर्गित करती है। यह नकसीर और खूनी बवासीरके लिए गुणदायक है और साधारणतया काली मिर्चोंके साथ पीसकर पिलाई

जाती है। रक्तसंशमन-प्रसादन होनेके कारण इसे रक्तविकारजन्य रोगोंमें उपयोग करते हैं। **अहितकर**—उष्ण प्रकृतिके लिए। निवारण—कालीमिर्च और मधु। **मात्रा**—११.६ ग्राम (१ तोला)।

आयुर्वेदीय मत—जलपिप्पली रस और पाकमें कटु, कषाय, शीतवीर्य, रूक्ष, तीक्ष्ण, ग्राही, रुचिकारक, अग्निप्रदीपक (वर्धक), नेत्र तथा हृदयको हितकारी, शुक्रजनक मुखको शुद्ध करनेवाली, वातकारक तथा रुधिर-विकार, दाह, व्रण, रसदोष, कृमि, श्वास, कफ, वात, विष, भ्रम, मूर्छा, तृषा और पित्तको दूर करनेवाली है।

नव्यमत—**श्वेत और रक्तप्रदरकी** यह विशिष्ट औषधि है। १$\frac{१}{४}$ तोला जलपिप्पली ५ नग कालीमिर्च और ३ माशे झड़बेरीका गोंद या लाखको आध पाव पानीमें घोलकर कपड़ेसे छानकर १ (एक) तोला मिश्री मिलाकर प्रातःसायं पिलानेसे थोड़े ही दिनमें रोग निर्मूल हो जाता है। इसके अतिरिक्त **फिरंग** और **सूजाकमें** भी यह परम गुणकारी है। **फिरंग** और **सूजाकमें** सवा तोला जलपिप्पली और ५ कालीमिर्चोंको आधपाव पानीमें घोटकर कपड़ेसे छानकर रोगीको पिलावें और ऊपरसे वह जितना खा सके उतना मक्खन (नवनीत) खिलावें। पथ्य घी और गेहूँकी रोटी है। दूध और लवण न देना चाहिए। शेष अन्य प्रकारका आहार भी बन्द कर रखना चाहिए। इनके अतिरिक्त नाड़ीव्रण, मुख-ओष्ठ-तालूगत छाले, मूत्रकृच्छ्र, बहुमूत्र, शुक्रप्रमेह प्रभृति रोगोंकी भी यह अचूक औषधि है। फिरंग रोगकी तो यह रामबाण औषधि ही है।

(अनुभूत योगमाला जुलाई सन् १९३७ ई०)।

●

(२७७) जलापा

फैमिली : कॉन्वॉल्वुलासे (Family : Convolvulaceae)

नाम—(हिं०; भा० बाजार) जलापा (–वा), चलापा; (अ०; फा०) जलब, जल्लाबा; (लै०) जालापा (Jalapa); (अं०) जैलेप (Jalap)।

वक्तव्य—इसकी लताको लेटिनमें **ईपोमीआ (कॉन्वॉल्वुलस) पुर्गा (Ipomoea (Convolvulus) purga** Hayne.) अथवा **ईपोमीआ जलापा (Ipomoea jalapa** Schiede.) या **कॉन्वॉल्व्युलस जलापा (Convolvulus jalapa** Linn.) कहते हैं।

इतिहास—मेक्सिकोवासी तो प्राचीनकालसे उक्त औषधिके विरेचनीय गुणसे अभिज्ञ थे। परन्तु यूरोपमें इसका प्रवेश कतिपय स्पेनीय पर्यटकोंके द्वारा ईसवी सन्‌की सोलहवीं शतीमें हुआ। परन्तु इस औषधिके मूल उद्भिज्जका यथार्थ ज्ञान सन् १८२९ ई० में उस समय हुआ जबकि डॉ० कॉक्सने इसका वर्णन एवं गुणकर्मसहित रंगीन चित्र प्रकाशित कराया, अन्यथा इससे पूर्व कोई-कोई उसे 'रेवंद अस्वद' कहते थे और कोई कुछ और। **मख़्ज़नुल्अदबिया** और **मुहीत आज़म** में '**जलापा**' के नामसे इसका वर्णन मिलता है।

उत्पत्तिस्थान—अमरीकाका जलापा नामक प्रदेश। नीलगिरि और पूनामें उगाया जाता है। यह गङ्गोत्तरीय क्षेत्रमें बगीचोंमें पाया जाता है।

वर्णन—जलापा निशोथजातीय एक विदेशी लताकी सूखी गिरहदार जड़ है जो बेडौल अण्डाकृति या तर्क्वाकार, २.५ सें० मी० से ७.५ सें० मी० (१ से ३ इञ्च) लम्बी, कड़ी, ठोस और भारी होती है। बड़ी जड़के प्रायः दो-दो या चार-चार टुकड़े कटे हुए होते हैं। यह बाहरसे काली और भीतरसे पिलाई लिये मटमैली होती है और उस पर झुर्रियाँ पड़ी होती हैं तथा प्रायः स्थान पर छोटे-छोटे दाग होते हैं। इसको आड़े बलमें काटनेसे भीतरकी ओर

काली, अनियमित, गोल रेखायें पायी जाती हैं। गंध हलकी धुएँके समान, स्वाद पहले मीठा और बादको उत्क्लेशकारक होता है। यह एक विदेशीय द्रव्य है। यूनानी वैद्यकमें इसका ग्रहण बहुत थोड़े समयसे हुआ है।

रासायनिक संगठन—इसमें ९ से ११ प्रतिशत एक राल (Jalapoe resina) होती है। उत्तम जलापामें यह राल १० प्रतिशत होनी चाहिये। इसी रालके ऊपर इसका विरेचन गुण निर्भर करता है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—विरेचन और **श्लेष्मविरेचन**। यह एक परमपयोगी और निरापद विरेचन औषधि है। इसके उपयोगसे कफ और पानीकी तरह पतले तीव्र विरेक आते हैं; इसलिए इसको जलोदर, तीव्र मलावरोध, दायमी कब्ज, अर्दित, पक्षबध, आमवात गृध्रसी, प्रसेक और प्रतिश्याय आदिमें उपयोग कराते हैं। इसको अकेला चूर्ण करके सुहाता गरम मांस रस (आबे यख्नी) या गुलावजल (आबे गुलाब) अथवा सोंठ, लौंग आदि वातानुमोलन द्रव्योंके साथ खिलाते हैं या अन्य विरेचन औषधोंके साथ देते हैं। **अहितकर**–उष्ण प्रकृतिको। **निवारण**–गुलकंद और सौंफका अर्क़। **प्रतिनिधि**–मचूकान। **मात्रा**–०.५ ग्राम से १.५ ग्राम (४ रत्तीसे १॥ माशा) तक।

(२७८) जवाशीर

फ़ैमिली : ऊम्बेल्लीफ़ेरी (Family : Umbelliferae)

नाम। वृक्ष–(यू०) Ponakes (D. 2. 48); (अ०) दरख़्ते जावशीर; (फा०) गावर; (ले०) फ़ेरुला गाल्बेनीफ्लुआ (**Ferula galbaniflua** Boiss.)। निर्यास (हिं०; भा० बाजार) जवाशीर; (बम्ब० बाजार) जावशीर; (यू०) Khalbane (D. 3. 37); (अ०) बारज़द, क़िन्नः (इ० बै० १/८३)। (फा०) जवाशीर, गावशीर, गोशीर, बरज़द; (ले०) गाल्वानुम् (Galbanum); (अं०) गाल्बेनम (Galbanum)।

वक्तव्य—पानीमें घोलनेपर जवाशीरका रंग गोदुग्धकी भाँति सफेद होता है। इसीलिए फारसीमें इसको '**गावशीर (गोक्षीर)**' कहते हैं। 'जावशीर' इससे अरबी बनाया गया है। मात्र 'जावशीर' शब्दसे यह निर्यास ही विवक्षित होता है। 'गाल्बानुम्'या 'गाल्बेनम' क्रमशः इसके लैटिन और अंग्रेजी नाम यूनानी 'खल्बानी(Khalbane)' से व्युत्पन्न हैं।

उत्पत्तिस्थान और आयात—फारस, शीराज, किरमान और यूनानके मक़दूनियाँ प्रदेशके आस-पास यह पुष्कल होता है। यह उत्तर पश्चिम-भारतवर्ष, स्मरना, ईरान, लेवांट तथा भूमध्यसागरके तटवर्ती प्रदेशोंमें भी होता है। हरीरुदकी घाटी, हमदान और बदगीसमें तथा शीराज और किरमानके मध्यवर्ती देशोंमें भी इसका संग्रह किया जाता है। **बम्बईमें** इसका आयात फारससे होता है।

वर्णन—यह एक वृक्षका गोंद (रालदार-निर्यास) है जिसका रंग बाहरसे हरापन लिए पीला या नारंगी, अर्ध स्वच्छ और भीतरसे पिलाई लिए सफेद; स्वाद तिक्त और अप्रिय होता है। इसे जलमें घोलनेपर घोल दूधकी तरह सफेद हो जाता है। इसमें उशक और मोमका मिश्रण करते हैं। **मुहीत** में इसके कृत्रिमाकृत्रिम होने की पहचान यह लिखी है—"इसे जलमें घोलनेसे यदि विलयन रंगयुक्त हो तो कृत्रिम और यदि क्षीरवत् सफेद हो तो असली समझना चाहिए।"

रासायनिक संगठन—इसमें (१) **उत्पत् तेल** ६ से ९ (मतांतर से १९-६१ प्रतिशत) जिसका तारपीनके तेलके साथ रासायनिक साम्य है; (२) **सल्फ्युरस रेजिन** (राल) ६० से ७५ प्रतिशत; (३) **निर्यास** १९ से २२ (मतांतरसे ६.४१ प्रतिशत); और (४) एक सत्व (अम्बेलिफेरोन Umbelliferone) ये चार उपादान होते हैं।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें उष्ण एवं रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—उष्णताजनन, श्वयथुविलयन, सर, विरेचन, कफसारक, दोषतारल्यजनन, प्रमाथि, वातनाडीबलदायक, कफोत्सारि, लेखन, व्रणरोपण, मूत्रार्तवजनन और वातानुलोमन। उष्ण, प्रमाथि और दोषतारल्यजनन होनेसे इसे प्रायः मस्तिष्क (शिरः) और वात व्याधियों, जैसे–अंगघात, अर्दित, पक्षाघात, कम्पवात, अपस्मार, बालापस्मार; सन्यास (सकता), प्रसेक और प्रतिश्याय, जलोदर, मंदाग्नि, कफज उदरशूल (क़ुलंज) आदिमें प्रयुक्त करते हैं। यह नाड़ियोंको बल देता है औन इन कर्मोंके साथ ही कफोत्सारि होनेसे कफज कास, श्वास और कृच्छ्रश्वासमें और वातानुलोमन होनेसे आनाह (नफ़ख़ शिकम), वातिकशूल (कुलंजरीही) और वातिक जरायुशूलमें उपयोग किया जाता है तथा लेखन और व्रणरोपण होनेसे दुष्ट व्रणोंमें अकेला या मरहम बनाकर प्रयुक्त किया जाता है। कठिन शोथोंपर लेप करनेसे यह उनको विलीन करता है। **अहितकर**–वृषणोंके लिये। **निवारण**–उबालना या भिगोना। प्रतिनिधि–अंजीरका दूध (क्षीर) और बिरोजा। **मात्रा**–१ ग्राम से २ ग्राम (१ माशा से २ माशे) तक।

●

(२७९) जवासा

फ़ैमिली : लेगूमिनोसी (Family : Leguminosae)

नाम। क्षुप—(हिं०) जवास, जवा(वाँ)सा, हिंगुआ; (अ०) हाज, अल्ग़ौल, आक़ूल; (फ़ा०) ख़ारे शुतुर, शुतुरख़ार (=उष्ट्रकण्टक), खारेबुज़ (छागकण्टक); (सं०) यास, यवास(क); (बं०) ज़वाशा(सा); (म०) जवासा; (गु०) जवासो; (ले०) आल्हागो केमेलोरुम् **Alhagi camelorum** Fisch.; आल्हागो मॉरोरुम् (**Alhagi maurorum** Baker.); (अं) अरेबियन या पर्सिअन मेन्ना प्लांट (Arabian or Persion Manna Plant.), केमल्स थॉर्न (Camel's Thorn)। शर्करा (अ०) त(तु)रंजबीन, अस्लुल्हाज (यासमधु);(सं०)यवासशर्करा, य़ासशर्करा (च०; सु०), तबराजशर्करा (रा० नि०); (अं०) मेन्ना ऑफ दि डेजर्ट (Manna of the Desert), पर्सिअन मेन्ना (Persian Manna)।

वक्तव्य—'**ख़ारेशुतुर**' जवासेका विदेशी भेद मात्र है। उपयुक्त नामोंमें से संस्कृत, हिन्दी, बँगला और गुजरती नाम जवासेके तथा शेष '**ख़ारेशुतुर**' के हैं। शर्कराके लिये प्रयुक्त नामोंमें संस्कृत नाम जवासेकी शर्कराके और शेष खारेशुतूरका **शर्करा** के हैं। 'तरंजवीन' फ़ारसी 'तरंगबीन' से बनाया गया अरबी शब्द है, जिसका अर्थ (तरअंगबीन (मधु) अर्थात् **अस्लेतर या तरमधु**' है। '**शकरजवासा**' संस्कृत **यवासशर्करा** का रूपान्तर है।

उत्पत्तिस्थान—भारतवर्ष, मिस्र, सीरिआ, मेसापोटामिया, फ़ारस, खुरासान, अरब आदि। इसके गुल्म शुष्क ऊसर भूमिमें या नदियों के किनारे पाये जाते हैं।

वर्णन—३०-९० से १२० सें० मी० (१-३ या ४ फुट) तक ऊँचा क्षुप (गुल्म) होता है। क्षुपमें पतली-लम्बी बहुत शाखाएँ निकलती है। क्षुप पीलापन लिये हुए हरे रंगका होता है। **पत्तियाँ** छोटी, अपत्रक, आयताकार, रोमश, कुठिताग्र, चिकनी और नीचेकी ओर झुकी हुई रहती हैं और काँटोंके मूलसे १-१ निकलती हैं। पत्रकोणोंमें सामान्य शाखाओंके अतिरिक्त प्रायः १½ (डेढ़) इंच लम्बे काँटे निकलते हैं। **पुष्प** खुले लालरंगके माघ-फाल्गुनमें आते हैं और मंजरियाँ १½ (डेढ़) इंच लम्बी, बीजोंके बीचमें सिकुड़ी हुई होती है। फली १ इंच लम्बी सीधी या टेढ़ी तथा मालाकार होती है तथा ग्रीष्मऋतुमें पक जाती है। बीज वृक्काकृति, हरापन लिये भूरे अत्यन्त कड़े होते हैं। ग्रीष्मके प्रखर तापमें जब और वनस्पतियाँ सूख जाती हैं तब यह हरा-भरा रहता है।

तुरंजबीन—जवासेके क्षुपसे निर्यासकी भाँति एक प्रकारका द्रव रसकर पत्र और शाखाआदि पर जम जाता है। उसको यूनानी वैद्यकमें **तुरंजबीन** और आयुर्वेदमें **यासशर्करा** कहते हैं। यह जवासेके पौधेका प्रगाढी एवं शुष्कीभूत द्रव है जो देखनेमें कुछ ललाई और भूरापन लिए हुए सफेद रंगके छोटे-छोटे गोलाकार दानोंके रूपमें होता है। इसका स्वाद प्रथम मधुर और बादको हलका चरपरा होता है। इसमें मुश्किलसे कोई गंध होती है। ताजी, सफेद, शुद्ध और मिश्रणरहित तथा जिसमें पत्ते न हों और काँटे कम हों, वह तुरंजबीन श्रेष्ठतर होती है। इसे पत्रशाखा-फली और कूड़ा-कर्कटादिसे शुद्ध करके काममें लेते हैं।

उपयुक्त अंग—पंचांग, मूल और निर्यास (**तरंजबीन**)।

असली और नकली की पहचान—**गंजबादावर्द** में लिखा है कि शुद्ध (अमिश्र) तुरंजबीन सफेद होती है; किन्तु उसमें ललाईकी थोड़ी-सी झलक होती है और उसमें फूल और काँटे पाये जाते हैं; दाने गोल, कुछ-कुछ लंबोतरे, हलके और मधुर होते हैं। इसमें चीनी वा मिश्रीके दानोंका मिश्रण करते हैं। उसकी पहचान यह है—यद्यपि असली तुरंजबीनका स्वाद भी मधुर होता है, तथापि मधुरताके साथ उसमें कुछ कुस्वाद और बसागंध भी होती है और गरम पानीमें भिगानेसे उसमें किंचित चिकनाई मालूम होती है। इसके विपरीत नकली (खोटी वा मिश्र)में उक्त गुण नहीं होते।

संग्रह की विधि—जवासेके सुपक्व क्षुप (शाखाओं)को काटकर चादरोंमें डालकर हिलाते अथवा गीलाकर चादरों पर रखते हैं तो जो कुछ तुरंजबीन उन पर जमी होती है, वह पृथक् हो जाती है। इसे पत्र-शाखा और कूड़ा-करकट आदिसे शुद्ध करके काममें लेते हैं। इस प्रकार जो रेणुतुल्य मधुर कण प्राप्त होते हैं, वही असली तुरंजबीन है। यह उत्तम होती है। जो शाखाओंमें लिपटी रह जाती है उसे पानीमें घोलकर और छाननेके बाद पकाकर गाढ़ा कर लेते हैं। यह तुरंजबीन अधम होती है। (मखज़न)।

वक्तव्य—इन विधियोंसे प्राप्त यासशर्कराका ज्ञान हमारे प्राचीन आर्य वैद्योंको था, इसमें किंचिन्मात्र भी संदेह नहीं है। चरकाचार्य लिखते हैं, "कषायमधुरा-शीता-सतिक्ता यासशर्करा" तथा सुश्रुतमें भी लिखा है, "यवासशर्करा-मधुरकषाया तिक्तानुरसा श्लेष्महरी सरा चेति।" इससे ज्ञात होता है कि चरक तथा सुश्रुत इन दोनोंको परदेशीय **यासशर्करा** अवश्य प्राप्त होती रही होगी। परन्तु आगे चलकर भारतमें यासशर्करा क्वाथ आदि प्रक्रियासे बनानेकी प्रथा चल पड़ी। क्योंकि चरकके टीकाकार **चक्रपाणि** लिखते हैं, "दुरालभाक्वाथकृतशर्करा" तथा डल्हण सुश्रुतकी टीकामें लिखते हैं "यवासक्वाथघनीभावात् शर्कराकृता यवासशर्करा।" इन उद्धरणोंसे जहाँ यह स्पष्ट हो जाता है कि भारतमें यासशर्करा बनानेकी प्रथा चल पड़ी थी, वहाँ यह भी स्पष्ट होता है कि उपर्युक्त तुरंजबीनकी विधिके अनुसार भारतीय जवासासे यह प्राप्त नहीं होती है। अरब स्थानीय जवासाका इस दृष्टिसे प्रयोग करना आवश्यक है, फिर भी हम अपनी आयुर्वेदीय पद्धतिके अनुसार जवासेका तुरंजबीन निकाल सकते हैं। इससे यह स्पष्ट है कि यह 'धमासा' और 'जवासा' दोनों ही से प्राप्त होती थी और प्राप्त की जा सकती है। फिर भी यूनानी-चिकित्सा ग्रन्थोंमें धमासाका पृथक् विवरण न कर जवासामें ही उसका अन्तर्भाव कर दिया गया है, यह भी ज्ञात होता है। व्यापार—क्षुप-संग्रह भारतवर्षमें होता है। तरंजबीन यहाँ (बम्बईमें) फारस (ईरान) और अरबस्थानसे आती है।

रासायनिक संगठन—तुरंजबीनमें एक स्फटिकीय सत्व होता है जो किसी अम्लमें उबालने पर द्राक्षाशर्करा (ग्लूकोज)में परिवर्तित हो जाता है। इसमें इक्षुशर्करा भी होती है।

शुतुरखार—

प्रकृति—शीत एवं रूक्ष; मतांतरसे पहले दर्जेमें उष्ण एवं रूक्ष (लखनऊ); उष्ण एवं अत्यन्त रूक्ष; आकूल तीसरे दर्जेमें उष्ण एवं रूक्ष। आयुर्वेद मतसे यास शीतवीर्य (भा० प्र०) है।

गुण-कर्म एवं उपयोग—इसके पत्तोंको पानीमें पीसकर निहार दशामें तीन बूँद नाकमें टपकाने और एक घड़ीके बाद रोग़नबनफ़्शाका नस्य लेनेसे गरमीका पुराना सिरदर्द जाता रहता है। इसे नेत्रके भीतर लगानेसे धुंध आराम होता और पतला जाला कट जाता है। इसमें लेखन और दोषविलोमकरणकी शक्ति है; इसलिए इसे नेत्रमें प्रयुक्त बरूद नामक कल्पोंमें डालते हैं। इसके पंचांगको पीसकर पीने, लगाने और काढ़ेसे धोनेसे अर्श आराम होता है। इसके पत्रको पीसकर तेलमें पकाकर उस तेलको आमवात पर लगानेसे उपकार होता है और सरदीके दर्द दूर हो जाते हैं। स्रावी व्रणोंको दूर करता और मूत्र साफ लाता है। यह कंकड़ियों (संगरेजों)को तोड़कर निकालता है। इसके पत्तोंका पानी (रस) फाड़कर पिलानेसे समस्त रोगोंमें लाभ होता है। इसके स्थानमें जवासेका उपयोग कर सकते हैं। **अहितकर**—वृक्कको। **निवारण**—कतीरा। **प्रतिनिधि**—विषखपड़ा।

तुरंजबीन (यवासशर्करा)—

प्रकृति—उष्णता लिए हुए अनुष्णाशीत (मोतदिल) (दिल्लीके हकीम या)। लखनऊवाले इसे पहले दर्जेमें गरम व तर मानते हैं।

आयुर्वेदीय मत—**जवासा** मधुर, तिक्त, कषाय, लघु, शीतवीर्य, सारक तथा कफ, पित्त, रक्तदोष, भेद, मद, भ्रम, कुष्ठ, कास, तृषा, विसर्प, वातरक्त, वमन, ज्वर और रक्तपित्तका नाश करनेवाला है। (ध०नि०; भा०प्र०)। **यासशर्करा** मधुर, कषाय, तिक्त अनुरस, कफहर और सारक है। (च०सू०अ० २७; सु०सू०अ० ४५)।

नव्यमत—जवासा उत्तम कफघ्न, स्वेदजनन, अल्पमूत्रजनन और अल्प आनुलोमिक है। खाँसीकी प्रथमावस्थामें इससे गला और श्वासनलिका तर होकर खाँसनेका कष्ट कम होता है और कफ आने लगता है। प्रतिश्याय और गलेका शोथ, श्वासनलिका शोथ आदि श्वासमार्गके रोगोंमें जवासेका क्वाथ पीनेसे और उसका भाव गलेमें लेनेसे अच्छा लाभ होता है, दमे में जवासेका धूम्रपान करनेसे लाभ होता है। अर्शको जवासेके काढ़ेसे धोनेसे लाभ होता है (अर्शमें इसके पत्तोंका भी उपयोग होता है)।

(२८०) जामुन

फ़ैमिली : मीर्टासे (Family : Myrtaceae)

नाम—(हिं०) जामन, जामुन (त); (सं०) जम्बु(म्बू), राजजम्बू; (बं०) जाम, काल जाम; (गु०) जांबू; (म०) जाम्बूल; (पं०) जामलु; (मा०) जामन, जाम्बोली; (ते०) नेरेडु; (ता०) शंबु,नानल; (मल०) भावल; (सिंध) जंमू; (आ०) जमु; (ले०) **सीज़ीजिउम् कूमिनी Syzygium cumini** (L.) & Skeels. (**पर्याय**–*Eugenia jambolana* Lam.); (अं०) जामोल (Jamol), जम्बुल (Jambul), जम्बू (Jambu), जम्बूल (Jambool), जम्बोल (Jambol), जावा प्लम् (Java Plum)।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्षके मैदान।

वर्णन—यह एक प्रसिद्ध वृक्ष है। इसके फलको 'जामुन' और गुठलीको फारसीमें 'खस्तए जामुन' कहते हैं। इसके पके हुए ताजे फल खाये जाते हैं। **फरेंदा, कठजमुनिया** (जमता (खर०), **कठजामुन–Eugenia heyneana** Wall.) और 'गुलाबजामुन' आदि भेदसे जामुन कई प्रकारका होता है।

उपयुक्त अंग—पत्र, वृक्षकी छाल, काष्ठ, फलका गूदा और गुठलीका मग़ज़ (गिरी)।

इतिहास—भारतीय वैद्यों और मुसलमान हकीमोंको बहुत प्राचीनकालसे जामुनकी गुठलीके मधुमेहनाशक गुणका ज्ञान है तथा वे इसका प्रयोग इस हेतु करते हैं। इसके अतिरिक्त ये और भी कई एक रोगमें इसका उपयोग करते हैं। विस्तारके लिये देखें आर्य एवं अरबी यूनानी वैद्यकीय ग्रन्थ।

रासायनिक संगठन—**गुठलीमें जैम्बोलीन** (Jamboline) नामक एक ग्लूकोसाइड, **जैम्बोसीन** (Jambosine) नामक एक क्षारसमोद, अल्पमात्रामें एक पांडु-पीत उत्पत् तेल, हरित रंजक द्रव्य (क्लोरोफिल), वसा, राल; मायिकाम्ल, ऐल्ब्युमेन आदि; छालमें टैनिन १२ प्र० श० और विजयसारनिर्यास(Kino)वत् एक गोंद होता है।

कल्प तथा योग—रुब्ब (सत), सिरका।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें शीत एवं रूक्ष (खुश्क)।

गुण-कर्म तथा उपयोग—उष्ण यकृदामाशयबलदायक; क्षुधावर्धक, संग्राही और संतापहर (दाहप्रशमन)। जामुनका रुब्ब (सत) और **सिरका** बनाकर उष्ण आमाशय और यकृत्को शक्ति देने और भूख लगानेके लिए उपयोग करते हैं। यह दाह (सोज़िश)को शमन करते और पित्तज एवं रक्तज अतिसारको बन्द करते हैं। केवल फल खानेसे भी उक्त लाभ होता है। जामुनकी गुठलीका मग्ज (मग़्ज़ ख़स्तए जामुन) संग्राही होनेके कारण अतिसार एवं मधुमेह रोगमें प्रयुक्त किया जाता है। इसको आमकी गुठलीकी गिरी और भुनी हुई काली हड़के साथ चूर्ण बनाकर सेवन करायें। यह जीर्ण अतिसारके लिये सिद्ध भेषज है। जामुनके वृक्षकी छालके काढ़ेका कवल (मजमजा) करानेसे दाँत मजबूत (दृढ़) होते हैं। जामुनकी लकड़ीका कोयला बनाकर मंजनकी भाँति उपयोग करनेसे दाँत हिलना (चलदन्त) एवं दाँतोंसे रक्त बहना (शीताद) आराम होता है। **अहितकर**—आनाहकारक और दीर्घपाकी है। **निवारण**—कालीमिर्च और नमक। **प्रतिनिधि**—छोटा, बड़े का। मात्रा—जामुन रुब्ब (सत) १२ ग्रामसे २४ ग्राम (२ तोले से ३ तोले) तक; और गुठलीका मग़्ज़ ३ ग्राम (३ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—जामुन पुरीषविरजनीय, मूत्रसंग्रहणीय, ग्राही, वातकर तथा कफ-पित्तहर है। जामुनकी कोमल पत्ती वमनको बन्द करनेवाली है। (च० सू० अ० ४, २५, २७; सु० सू० ३८, ४६)।

नव्य मत—संग्राही, मूत्रजनन। फल और मग्ज पाचन और साधारण स्तंभन हैं। मधुमेहमें यकृत्की क्रिया बिगड़ती है, वह इसके मग्जसे फिर सुधरती है। इसका विशेष उपयोग शर्कराके पाचनमें होता है। मधुमेहमें यह बड़ा उपयोगी सिद्ध हुआ है। थोड़े समयमें यह मूत्रगत शर्कराकी राशिको कम कर देता है। यद्यपि सभी प्रकारके मधुमेह रोगमें यह रामबाण सिद्ध नहीं होता, तथापि यह बड़ा मूल्यवान् सिद्ध होता है और अवसर आनेपर इसकी परीक्षा अवश्य करनी चाहिये। फलोंका उत्तम आसव बनता है। यह मधुमेह, अतिसार, संग्रहणी और आँवमें दिया जाता है। फलोंका रस उत्तम स्तंभन है। इसलिए इसे रक्तमिश्रित आँव, अत्यार्तव आदि रक्तस्रावयुक्त रोगोंमें देते हैं।

●

(२८०) जायफल और जावित्री

फ़ैमिली : मिरीस्टिकासे (Family : Myristicaceae)

नाम—जायफल (हिं०, बं०, म०, गु०) जायफल; (अ०) जौज़बूया (इ० बै०), जौज़बव्वा, जौज़बोवा (–बुवा), जौजुत्तीब; (फा०) गौज़बूया (–बोवा); (सं०) जातीफल; (पं०) जयफल; (अं०) नटमेग (Nutmeg)। जावित्री (हिं०) जावित्री; (यू०) Maker (D. 1. 14); (अ०) ब(बि०)स्बास (–स :); (फा०) बज़्बाज़; (सं०) जातीकोष; जातीपत्री; (बं०) जैत्री; (पं०) जयपत्री, जवित्री; (म०) जायपत्री; (गु०) जावंत्री; (अं०) मेस (Mace)।

वक्तव्य—इसके वृक्षको लेटिनमें **मिरीस्टिका फ्राग्रांस (Myristica fragrans** Houtt. (**पर्याय**–*M. aromatica* Lam.) कहते हैं। 'जंगली' और 'नकली' जायफल और 'जावित्री'के वृक्षको लेटिनमें मिरीस्टिका **मालाबारिका (Myristica malabarica** Linn.); कहते हैं। 'जावित्री और जायफलको अंग्रेजीमें क्रमशः बाम्बे मेस (Bombay Mace) और 'कंट्री या मलाबार नटमेग (Country or Malabar Nutmeg)' और बम्बई बाजारमें **'रामपत्री'** एवं जंगली जायफल (**रामफल**) कहते हैं।

इतिहास—प्राचीनकालीन कतिपय भारतीय जो जावा और भारतीय पूर्वीद्वीपोंमें आकर बस गये थे—सम्भवतः उनके द्वारा प्राचीन भारतीय वैद्योंको जायफल और जावित्रीका ज्ञान हुआ। **सुश्रुत**ने इन उभयद्रव्योंका उल्लेख किया है। भारतीयोंसे ईरानियों और अरबवासियोंको इसका ज्ञान हुआ, और फिर अरबोंद्वारा पूर्वी यूरोपमें इसका प्रवेश हुआ। कुस्तुन्तुनिया (Constantinople) वालोंको इससे ५६० वर्ष पूर्व उक्त औषधिका ज्ञान था। **मसऊदी** जिसने ९१६ ईस्वीमें पूर्वी देशोंका पर्यटन किया, लिखता है कि जरबाद द्वीपमें यह ओषधि मिलती थी। **इब्नसीना**ने 'जौज़बवा' और 'बसबासः'में से प्रत्येकका विवरण किया है। ईसवी सन्‌की बारहवीं शतीके अन्तमें यह औषधि समस्त यूरोप महाद्वीपमें भली-भाँति ज्ञात हो गई थी।

उत्पत्तिस्थान—मलक्का द्वीपपुंज, पिनाङ्ग, सुमात्रा, सिंगापुर, लंका, पूर्वी भारतीय द्वीपपुंज, मलाया आदि तथा जंजीबार। भारतवर्षमें नीलगिरिकी पहाड़ियों और मलाबारतटपर भी इसकी कई जातियाँ होती हैं। **जंगली (नकली) जायफल**के वृक्ष कोंकण, कनाड़ा और मलावारमें होते हैं।

वर्णन—जायफल एक वृक्षके फलका **बीज** है। फल गोलकाकृति, आकार कुक्कुटडिम्बवत्, फलगात्र मसृण एवं पीतवर्ण होता है। फलमें यह तीन स्तर होते हैं–(१) **फलावरण** (Pericarp) जो स्थूल, मांसल, पक्वावस्थामें पीतवर्ण होता है। इसे घेरे हुए एक सीताचिह्न होता है। फलके पकनेपर यह विदीर्ण होकर फलावरण दो भागोंमें विभक्त हो जाता है। (२) **जावित्री**–फलावरणके विभक्त होनेपर भीतर पलाशपुष्पवर्ण, मांसल, बहुधा भिन्न जावित्री का दलगुच्छ दिखाई देता है। यह बीजावरणको घेरे हुए उसके गात्रपर संश्लिष्ट होता है। ताजी अवस्थामें हरापन लिये हुए और सूखनेपर जावित्री भंगप्रवण, पिलाई और ललाई लिये हुए, स्वादमें तीक्ष्ण सुगंधमय एवं सुगन्धित (विशिष्ट गन्धी) होती है और बीजावरणपर से खिसक पड़ती है। (३) बीजावरण (Testa)– बहुधा भिन्न जावित्री के दलगुच्छके आश्लेषहेतु बीजावरणके गात्रपर तदनुकारि चिह्न विद्यमान होता है। यह बीजावरण कठिन स्थूल एवं काष्ठमय होता तथा तोड़नेपर उसके भीतर **जायफल** दिखाई पड़ता है। बाजारमें दो प्रकारका जायफल मिलता है—बीजावरणसहित एवं बीजावरणवर्जित। यह माजूके बराबर अण्डाकृति या गोल लगभग १ इञ्च लम्बा, बाहरसे खाकी-मायल भूरा ओर भीतरसे खाकीमायल रक्तवर्ण, जिसमें सुर्ख भूरे रंगके रेखाओंका जाल होता है। गन्ध तीक्ष्ण विशेष प्रकारकी एवं प्रिय तथा स्वाद कड़ुआहट लिए उष्ण एवं सुगन्धित होता है। जायफल जितना बड़ा हो उतना उत्तम होता है। नकलीमें उक्त सुगन्धका प्रायः अभाव होता है।

उपयुक्त अंग—बीजावरणरहित शुष्क बीज (जायफल) और एरिल (जावित्री)।

रासायनिक संगठन—**जायफल**में एक उत्पत् तेल, एक अनुत्पत् तेल, प्रोभूजिद (Proteids), वसा, श्वेतसार (Starch), लबाब और भस्म; जावित्रमें एक उत्पत् तेल, एक अनुत्पत् तेल, राल, वसा, शर्करा, द्राक्ष-शर्करा (Dextrin) और लबाब होता है।

कल्प तथा योग—जुवारिश बस्बासा आदि।

जायफल—

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें उष्ण एवं रूक्ष; मतांतरसे तीसरेमें रूक्ष। **आयुर्वेद मतसे** उष्णवीर्य (ध० नि०)।

गुण-कर्म तथा उपयोग—सौमनस्यजनन, बल्य, मुखदौर्गन्ध्यहर, वाजीकर, किंचित् संग्राही, स्वापजनन, दीपन, पाचन और वातानुलोमन। जायफलको उष्ण मुफर्रेह एवं माजूनोंमें डालकर हृदयदौर्बल्य, क्लीवत्व और शीघ्रपतनमें उपयोग करते हैं। मन्दाग्नि तथा उदरानाहको दूर करने और दस्त बन्द करनेके लिए इसे उपयुक्त विधिसे खिलाते हैं। बाजीकर औषधद्रव्योंके साथ इसका तेल निकालकर तिलाऽकी भाँति उपयोग करते हैं। शिरःशूल, आमवात और पक्षवधमें इसका लेप लगाते हैं। मुखदौर्गन्ध्यनिवारणके लिए इसे मुखमें रखकर चबाते हैं। तिला आदिके तेलमें मिलाकर समस्त शीतल व्याधियों, जैसे—अर्दित, पक्षबध और आमवात आदिमें इसकी मालिश करते हैं। यह सर्वांगशोथमें भी गुणकारी है। **अहितकर**—यकृत् और फुफ्फुसके लिए। **निवारण**-सूखी धनिया और मधु। **प्रतिनिधि**—जावित्री और बालछड़। **मात्रा**—०·५ ग्राम से १ ग्राम (४ रत्ती से १ माशा) तक।

आयुर्वेदीय मत—**जायफल** तिक्त, कटु, कषाय, उष्णवीर्य, लघु, तीक्ष्ण, वृष्य, दीपन, रुचिकर, ग्राही, स्वरके लिए हितकर तथा कफ, वात, तृषा, मुँहका क्लेद—दुर्गन्ध और वैरस्य, कृमि, कास, वमन, श्वास, ज्वर; पीनस, कण्ठके रोग, अतिसार प्रमेह और हृद्रोगका नाश करनेवाला है। (ध० नि०; भा० प्र०)।

नव्यमत—जायफल सुगन्धि, दीपन, वातहर, वेदनास्थापन, उत्तेजक, मादक, पौष्टिक और बाजीकर है। इससे आमाशयका पाचकरस बढ़ता है, भूख लगती है और अधोवायु खुलता है। बड़ी मात्रामें जायफल जोरदार नशालानेवाला (कैफी) है। मस्तिष्कके ऊपर इसकी क्रिया कपूरके समान होती है। पेटका दर्द, ऐंठन और अतिसारमें जायफलको सेंककर देते हैं। सिरका दर्द और प्रसवोत्तरकालीन कमरके दर्दमें जायफल पानी या मद्यमें घिसकर लगाते हैं।

जावित्री—

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें उष्ण एवं रूक्ष। **आयुर्वेद मतसे** उष्णवीर्य (भा० प्र०) है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—दीपन, पाचन, उष्णताजनन, वातानुलोमन, किंचित् संग्राही, सौमनस्यजनन, श्वयथुविलयन, अवरोधोद्घाटक, रूक्षण, द्रवशोषणकर्ता, वाजीकर, कामोत्तेजक, गर्भाशय-संशोधक, बलदायक और कोथ प्रतिबन्धक है। सौमनस्यजनन होनेके कारण यह हृदयदौर्बल्यको नष्ट करती और हृदय रोगोंमें प्रयुक्त योगोंमें डाली जाती है। उपशोषण एवं द्रवशोषणकर्ता होनेके कारण यह फुफ्फुसके लिए लाभकारी है। उनके प्रवृद्ध द्रवोंको शुष्क एवं शोधन करके उनको बल प्रदान करती है। दीपन पाचन होनेसे यह आमाशयिक रोगोंमें प्रयुक्त होती है। संग्राही और बल्य होनेसे यह जीर्ण अतिसारको बन्द करती और अंत्रामाशयको शक्तिप्रदान करती है। उपशोषण और शोषणकर्ता होनेके कारण ही इससे हस्तिमेहमें परम उपकार होता है। इस रोगमें पीठ, नाभि और पेडूपर इसका लेप करते हैं और खिलाते भी हैं। गर्भाशयके बढ़े हुए द्रवोंको शोषण करके यह उसको शक्ति प्रदान करती है। केशरके साथ फलवर्तिकी भाँति उपयोग करनेसे यह गर्भका शोधन करती है। बाजीकर ओर कामोत्तेजक होनेसे यह बाजीकर माजूनोंमें पड़ती है तथा शिश्नके ऊपर पतला लेप करनेसे शिश्नोच्छ्राय उत्पन्न करती है, इसलिए इसे बाजीकर तिलाओंमें भी डाला जाता है। बाह्यांतरिक आनाह और कठिनताके लिए कैरूतीमें मिलालर इसका बाहरी तौर पर उपयोग किया जाता है। श्वयथुविलयन, प्रमाथी और वातानुलोमन होनेसे यह उक्त रोगोंमें लाभ पहुँचाती है। यह सुगन्धित एवं कोथप्रतिबन्धक है, इसलिए मुखदौर्गन्ध्यनिवारणके लिए इसको मुखमें रखकर चाबते और कक्षाके दुर्गन्धिनिवारणके लिए किसी तेल आदिमें मिलाकर मलते हैं। श्वयथुविलयन और उष्णताजनन होनेके कारण शीत एवं वायुजन्य शिरःशूल और अर्धावभेदकमें इसका लेप गुणदायक है। **अहितकर**—शिरःशूलजनक है। **निवारण**—बबूलका गोंद और गुलाबपुष्पार्क। **प्रतिनिधि**—जायफल। **मात्रा**—१ ग्राम से ३ ग्राम (१ माशा से ३ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—जावित्री तिक्त, कटु, मधुर उष्णवीर्य, लघु, रुचिकर, वर्णकर तथा कफ, तृषा, मुखका क्लेद और दुर्गन्ध, कास, वमन, श्वास, कृमि और विषको दूर करनेवाली है। (सु०सू०अ० ४६; भा० प्र०)।

नव्यमत—जावित्री वेदनास्थापन है। पुराने सन्धिशोथमें जावित्रीके तेलकी मालिश करते हैं।

●

(२८१) जिंतियाना

फ़ैमिली : जेन्टिआनासे (Family : Gentianaceae)

नाम—(बाजार) जिंतियाना; (अ०) जिंतियाना, दवाउल् ह्य्यः क़फ़ुल् अर्नव; (फा०) जिंतियाना, कौशाद; (ले०) जेन्टिआना राडिक्स (Gentiana radix); (अं०) जेंशन रूट (Gentian root)।

वक्तव्य—यह **जेन्टिआना लूटेआ (Gentiana lutea** Linn.) अर्थात् साधारण यूरोपदेशीय पीत जिंतियानाकी ग्रन्थिल जड़ है, जो सुखाकर औषधके काममें ली जाती है। यह **देशी गाफिस** या त्रायमाण (**जेन्टिआना कुरू** (**Gentiana kurroo** Royle.)का विदेशी भेद है। **प्रायः यूनानी निघण्टुओंमें इसका हिन्दी नाम 'पखानभेद' लिखा है जो सही नहीं;** क्योंकि बाजारमें इस नाम (पखानभेद, पाषाणभेद)से मिलनेवाली औषधि **साक्सीफ्रागा लिगूलाटा (Saxipraga ligulata)** नामक वनस्पतिकी जड़ होती है। **मुहीत आजम**के लेखकका भी यही मत है।

यूनानी **जेन्तिस या जिंतियूस** (Gr. **Gentiae** (D. 3. 3.) राजाने सर्वप्रथम इसका अन्वेषण किया था। अतएव इसके नाम पर इसका उक्त नाम पड़ा (**इ० बै० संचिका** १,११७ पृ)। इतिहास–यूनानी हकीम **दी सकूरीदूस** और रोमदेशीय हकीम **प्लाइनी**ने 'जिंतियाना (Gentiana)'के नामसे इस औषधिका उल्लेख किया है। मध्ययुगमें यूरोपमें यह औषधि सर्प आदिके विषका अगद समझी जाती थी। इसलिए अरबीमें इसकी एक संज्ञा 'दवाउल्ह्य्यः (सर्पविषकी औषधि) पड़ी है।

उत्पत्तिस्थान—मध्य और दक्षिण यूरोपके पर्वती प्रांत।

वर्णन—यह देशी गाफिसकी एक अन्य विदेशी जातीय क्षुपकी सूखी जड़ है, जो बाहरसे यहाँ आती है। इसके न्यूनाधिक गोल टुकड़े या लम्बाईमें चिरी हुई ६ इञ्चसे एक फुट या अधिक लम्बी और आधसे १ इञ्च तक मोटी कार्शें (Splits) होती हैं। छाल पर सीधे बलमें बेकायदा और गोल झुर्रियाँ होती हैं और स्थान-स्थान पर पत्तोंके चिह्न होते हैं। जड़ बाहरसे पिलाई लिए भूरी और भीतरसे पिलाई लिए लाल; गंध विशेष प्रकारकी; स्वाद पहले मधुर, पर बादको अत्यन्त तिक्त होता है। देशी गाफिसकी जड़ इसकी उत्तम प्रतिनिधि है और इसके स्थानमें औषधके काममें ली जा सकती है। रूसी और फारसी आदि भेदसे यह कई प्रकारका होता है। इनमें रूसी सर्वोत्तम होता है। इसमें तीन वर्ष तक वीर्य रहता है। उसारामें ७ वर्ष तक वीर्य रहता है।

उपयुक्त अंग—जड़।

रासायनिक संगठन—इसमें (१) **जेंटिओपिक्रन** (Gentiopicrin) (**जिंतियानीन**) एक तिक्त ग्लूकोसाइड, (२) जंशियानिक एसिड, (३) जंशिओनोज एक प्रकार की शर्करा, (४) गोंद और (५) एक उत्पत् तेल ये पाँच उपादान (तत्व) होते हैं। इसमें टैनिन (Tannin) नहीं होती।

कल्प—चूर्ण, रसक्रिया (उसारा)।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें उष्ण एवं रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—दीपन, बल्य, वातानुलोमन, मूत्रार्तवजनन, विषघ्न (तिरियाक सुमूम) और गर्भशातन। विष प्रशमनके लिए जितियानाको जलसंत्रास, सर्पदष्ट और वृश्चिकदष्ट आदिको खिलाया जाता है। यह भी **'तिरियाक़ अरबआ'** और **'तिरियाक़ समानिया'** का एक उपादान है। मन्दाग्नि, वस्तिदौर्बल्य और आमाशय-शूलमें इसको चूर्ण बनाकर खिलाया जाता है। इसे आर्तव और मूत्रप्रर्वतनके लिए उपयोग किया जाता है। गर्भ-शांतनके लिए भी इसे देते हैं। **अहितकर**–यकृत् एवं उष्णप्रकृतिवालोंको और वक्षके लिए। **निवारण**–रेवंदचीनी और उस्कूलूकंदरियून। **प्रतिनिधि**–कुट (क़ुस्त), जरावंद और असारून। **मात्रा**–१ ग्रामसे २ ग्राम (१ माशासे २ माशे) तक।

(२८२) जीरा

फ़ैमिली : ऊम्बेल्लीफेरी (Family : Umbelliferae)

नाम—(हिं०) जीरा; (यू०) Kuminon (D. 61. 62); (अ०) कम्मून; (फा०) ज़ीरः; (सं०) जीरक; (बं०) जीरे; (गु०) जीरुँ; (म०) जिरें; (अं०) क्यूमिन (Cumin)। सफेद जीरा–(हिं०) जीरा; (अ०) कम्मून अब्यज़, कम्मून नब्ती; (फा०) ज़ीरए सफ़ेद; (सं०) जीरक, जरण, शुक्लाजाजी, शुक्लजीरक; (बं०) सफेत् जीरे; (गु०) धोतुं जीरुं; (म०) पांढरे जिरें; (क०) जुर; (पं०) जीरा सुफेद, चिट्टा जीरा; (सिंध) जीरो अच्छा; (मा०) जीरो; (का०) जीरिगे; (ते०) जीलकरी; (ता०) चीरकम्; (मल०) जीरकम्; (ले०) **कूमीनुम् सीमीनुम् Cuminum cyminum** Linn. (पर्याय–*C. odorum* Roxb.)। कालाजीरा, (हिं०) स्याहज़ीरा सियाजीरा; (अ०) कम्मून अस्वद, कम्मून किरमानी; (का०) ज़ीरए स्याह, ज़ीरए किरमानी; (सं०) कृष्णजाजी, कृष्णजीरक, जरणा; (बं०) केले (काल) जीरे, शाजीरा; (गु०) शाहजीरुं; (म०) शाहजिरें; (क०) कुहनज्यु(जु)र; (उर्दू) स्याहज़ीरा; (ले०) **कारुम् कार्वी (Carum carvi** L.); (अं०) ब्लैक क्यूमिन (Black Cumin)।

वक्तव्य—लेटिन नाम जीरेके क्षुपका है। मात्र **'कम्मून'** शब्दसे 'स्याहजीरा' अभिप्रेत होता है। अरबी **'कम्मून'** यूनानी **'कुमीन' (Kuminon)** या सुरयानी **'कमूना'** शब्दसे व्युत्पन्न है। संस्कृत जीरः जीरक, तथा फ़ारसी ज़ीरः और अन्यान्य भारतीय नाम संस्कृत 'जॄ' धातुसे व्युत्पन्न हैं।

उत्पत्तिस्थान—उत्तरी नील (मिस्र)का आदिवासी है। समस्त भारतवर्षमें इसकी खेती की जाती है। फारस और एशिया माइनरसे भी यहाँ इसका पुष्कल निर्यात होता है। स्याहजीरा कश्मीर, सीमाप्रांत, अफगानिस्तान और ईरानमें भी होता है।

वर्णन—यह सोयेकी तरहके एक क्षुपके प्रसिद्ध बीज हैं, जो सौंफके समान, पर उससे बहुत छोटे किसी प्रकार झुके हुये और काले रंगके होते हैं। **गन्ध** प्रिय; **स्वाद** कुछ मधुर, चरपरा और सुगन्वित होता है। जीरा, **काला** और **सफेद** दो प्रकारका होता है। **यूनानी निघुट्ट ग्रंथोंमें हरा और पीला ये दो भेद और लिखे हैं;** इनमें काला सफेदकी अपेक्षया कतिपय गुण-कर्मोंमें प्रशस्ततर होता है। औषधमें यही विपुल उपयोगमें आता है। 'कुरुया' इसका एक विदेशी भेद है। परन्तु जहाँ तक ज्ञात होता है यह कुरुया ही है। आयुर्वेदके ग्रंथोंमें लिखा है—('कारवी कृष्ण-जीरकम्' इति चक्रः) दे० 'कुरुया'। जीराका एक भेद 'जंगली' है जो कालीजीरी के नामसे प्रसिद्ध है जिसकी आकृति सम्बन्धी समानता होनेपर भी जीरेके साथ व्यावहारिक सम्वन्ध नहीं है।

उपयुक्त अंग—फल (बीज)।

रासायनिक संगठन—इसमें एक **उत्पत् तेल** जिसपर इसका सुगन्ध और स्वाद निर्भर करता है, पाया जाता है। उत्पत् तेलमें ५६% **क्युमिनोल** या क्युमिन ऐल्डीहाइड होता है।

कल्प तथा योग—**जुवारिश कमूनी, जुवारिश कमूनी कबीर, जुवारिश कमूनी मुसहिल,** और **माजून कमूनी।**

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें **उष्ण एवं रूक्ष** (खुश्क)। आयुर्वेदके मतसे भी सफेद और स्याह दोनों प्रकारके जीरा उष्णवीर्य हैं (सु०; ध० नि०)।

गुण-कर्म तथा उपयोग—यह बाहरी तौरपर **लेखन, संग्राही और उपशोषण** कर्म करता है। आंतरिक प्रयोगसे यह फुफ्फुसोंको शक्ति प्रदान करता, कफोत्सर्ग करता, द्रवोंकी अधिकतासे होनेवाली **मंदाग्नि**को दूर करके आमाशयको बलवान बनाता और वायुका उत्सर्ग करता है। इसका प्रधान कर्म **वातानुलोमन** है। किसी कदर यह **मूत्रजनन** कर्म भी करता है। चेह्‌रेके रंगको साफ करनेके लिए जीराके पानीमें धोते हैं। अर्म (नाखूना), जाला और अ(परि)क्लिन्न वर्त्म (इल्तिसाक़ुल् जफ़्न) को नष्ट करनेके लिए इसको बारीक पीसकर नेत्रमें लगाते हैं और ऊर्ध्वश्वास (नफ़सुल् इन्तिसाब) में उपयोग करते हैं। मन्दाग्नि, आनाह, उदरशूल, वातज हिक्का, मरोड़ और अजीर्णको दूर करने तथा अतिसार बन्द करनेके लिए इसका उपयोग करते हैं तथा गरम मसालामें डालकर खिलातेया औषधकी भाँति चूर्णौषधमें मिलाकर देते हैं। मूत्रजननके लिए इसको जलमें पीस छानकर पिलाते हैं। '**जुवारिश कमूनी**' इसका प्रसिद्ध योग है। यह आमाशयगत शीत और द्रवोंको दूर करता, आहार पचाता, भूख लगाता, हिचकीको दूर करता और कब्ज पैदा करता है। आमाशयके रोगोंमें दीपन और वायुनाशनके लिए इसका अर्क उपयोग किया जाता है। **अहितकर**—फुफ्फुसोंके लिए अहितकर एवं कर्षण है। **निवारण**—कतीरा और शीत एवं तर द्रव्य। **मात्रा**—३ ग्राम से ५ ग्राम (३ माशे से ५ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—**सफेदजीरा** कटु, कटु विपाक, रूक्ष, तीक्ष्ण, उष्णवीर्य, रुचिकर, दीपन, पित्त और अग्निको बढ़ानेवाला, शिरोविरोचन, शूलप्रशमन, सुगन्धि तथा कफ, वायु, दुर्गन्ध, गुल्म, अतिसार, ग्रहणी और कृमिविकारको दूर करनेवाला है। (च० सू० अ० २४, २७; सु० सू० अ ३८, ४६; ध० नि०)।

नव्य मत—जीरा दीपन-पाचन, कोष्ठवातप्रशमन, शीतल, मूत्रविरजनीय, वेदनास्थापन और दाहप्रशमन है। जीर्णज्वरमें जीरा देनेसे भूख और शक्ति बढ़ती है। नवीनज्वरमें देनेसे शरीर और पेशाबकी जलन कम होती है। जीरेके क्वाथसे शरीर धोनेसे कंडू कम होती है। आध्मान, वमन, विरेक, संग्रहणी और कुपचनमें जीरा हितकर है। अर्शके सूजनेसे पीड़ा होती हो तो जीरा और मिश्रीका चूर्ण खानेको देते हैं और जीराको ठंढे पानीमें पीसकर उसका लेप करते हैं। सूजाक, अश्मरी और मूत्रावरोधमें जीरा बड़ी मात्रामें शक्करके साथ देते हैं। त्वग्रोगोंमें कंडू और पीड़ा कम करनेके लिए जीरेका लेप करते हैं।

आयुर्वेदीय मत—**कारवी (कृष्णजीरक)**, दीपन तथा वात, कफ और दुर्गन्धनाशक है (च० सू० अ० २७); जरण (इसके अतिरिक्त) कटु, उष्णवीर्य, ग्राही, चक्षुष्य तथा शोथ एवं जीर्णज्वरको नाश करनेवाला है (ध० नि०) दे० 'कुरूया'।

नव्य मत—इसमें एक उड़नेवाला तेल है। यह दीपन, स्तन्यजनन और उत्तम कोष्ठवातप्रशमन है। आध्मान उदरशूल, शिथिलताप्रधान कुपचन और पेचिशमें यह उपयुक्त औषध है। इसको जीर्णज्वरमें अन्न पचने और भूख बढ़ानेके लिए देते हैं।

●

(२८३) जूफ़ा

फ़ैमिली : लाबिआटी (Family : Labiatae)

नाम—(हिं०) जूफा; (यू०) (१) Oisupos (D. 2. 84); Ussopos (D. 3. 27); (अ०) (१) अल्ज़ूफ़ल रतब; (२) अल्ज़ूफ़ल याबिस; (फा०) ज़ूफ़ाए खुश्क, उश्नान दाऊद; (लें०) **हिस्सापुस ऑफ्फ़ीसिनालिस** (Hyssopus officinalis Linn.); (अं०) हिसोप (Hyssop)।

उत्पत्तिस्थान—फारस और श्यामदेश। भारतवर्षके पश्चिम हिमालयमें कश्मीरसे कुमाऊँ तक ८,००० से १०,००० फुट पर भी यह होता है; फिर भी इसका निर्यात फ़ारससे भारतवर्षमें होता है। इसकी एक अन्य जाति **हिस्सॉपुस पार्वीफ्लोरा (Hissopus parviflora** Benth.) समशीतोष्ण हिमालय, कश्मीर और पंजाबमें होती है। सिंधमें एक प्रकारके **बिल्लीलोटन** (नेपेटा सिलिआरिस *Nepeta ciliaris* Benth.) को 'जूफ़ायाबिस' कहते हैं। यह पश्चिमी समशीतोष्ण हिमालयमें कश्मीरसे गढ़वाल तक ६,००० से ८,००० फुटकी ऊँचाई पर होता है।

वर्णन—यह एक क्षुद्र वनस्पति है, जो भूमि पर फैली हुई होती है। कांड काष्ठीय, पत्र रेखा-भालाकार प्रायः अवृंत, लगभग १·२५ सें० मी० (१/२ इं०) लम्बा और ३ मि० मी० (१/८ इंच) चौड़ा, प्रांत पर रोमश मरज़न्जोशके पत्रके समान, सुगन्धित एवं तिक्त; पुष्प हर एक शाखाकी ग्रन्थिपर एक ओर कक्षीय गुच्छोंमें, दलचक्र (Calyx) पाँच विषम दंतयुक्त, पुं०केसर (Stamens) संख्यामें चार, पुष्प कुछ पीला, स्वाद तिक्त, गंध सुगंधमय और कपूर जैसी होती है। बाजारमें मिलनेवाला पौधा सूखा और बहुत टूटा-फूटा होता है। इसमें मधुर सूखी घास जैसी प्रिय गन्ध और तिक्त स्वाद होता है।

रासायनिक संगठन—टैनिन (Tannin) के अतिरिक्त इसमें राल, वसा, शर्करा और लबाब आदि पदार्थ होते हैं। इसका प्रसिद्ध उपादान एक तेल (Oil of Hyssop) है जो ताजे क्षुपसे १/४ से १/२ प्रतिशत प्राप्त होता है। यह कुछ-कुछ हरा या पांडु-पीत वर्णका होता है। इसमें क्षुपके समान गन्ध एवं स्वाद होता है।

उपयुक्त अंग—पंचाङ्ग।

कल्प तथा योग—अर्क जूफ़ा, शर्बत जूफ़ा (जदीद)।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें उष्ण एवं रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—प्रमाथी, कफोत्सारि, श्वयथुविलयन, लेखन, वातानुलोमन, उदरकृमिनाशन और प्रधानतया कास-श्वासघ्न है। यह कफोत्सारि और श्वयथुविलयन होनेके कारण कृच्छ्रश्वास, कफज कास, श्वसनक ज्वर (ज़ातुर्रिया), प्रसेक और प्रतिश्यायमें इसका काढ़ा प्रयुक्त होता है। प्रमाथी होनेसे यह जलोदर और यकृदवरोधमें प्रयुक्त कराया जाता है। सूजन उतारनेके लिये इसको लेपोंमें भी सम्मिलित करते हैं। इसका शर्बत बनाकर श्वास और कफज कासमें देते हैं। **अहितकर**–यकृत्के रोगोंमें। **निवारण**–खट्टा अनार और बबूलका गोंद। **मात्रा**–३ ग्राम से ९ ग्राम (३ माशे से ९ माशे) तक।

●

(२८४) जूही, जूई

फ़ैमिली : ओलिआसे (Family : Oleaceae)

नाम—(हिं०) जाही (ई), जू(जु)ही; (सं०) यूथी, सुमना, जाती, यूथिका; (बं०) जाती; (पं०; मार) जूही; (म०; गू०) जाई; (गु०) जूई; (लें०) **जास्मीनुम् आउरिकुलाटुम् (Jasminum auriculatum** Vahl.)।

उत्पत्तिस्थान—दक्षिण कर्नाटक आदि। भारतवर्षके बागोंमें फूलके लिये इसके क्षुप लगाये जाते हैं।

वर्णन—जूहीकी पत्तियाँ और फूल चमेलीसे बड़े होते हैं, और फूल सफेद होता है। जूहीकी एक जाति पीले फूलवाली होती है। उसको **सुवर्णयूथिका** (सं०), **सोन (पीली) जूही** या **स्वर्णजाती** (सं०) कहते हैं। लैटिनमें इसका **जास्मीनुम हूमिले (J. humile** Linn.) कहते हैं। यह दक्षिणभारतमें होती है। इसकी जड़से पीला रंग निकाला जाता है और फूलोंसे सुगन्धित तेल बनाया जाता है।

प्रकृति—सर्द। आयुर्वेदके मतसे शीतवीर्य (सु०) है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—इसके फूलोंके सूंघनेसे आँखका दर्द जाता रहता है। इसके फूल वात, पित्त, कफ (तीनों दोषों) को बढ़ानेवाले तथा सिरके दर्दको दूर करनेवाले हैं। पत्तोंके काढ़ेसे कुल्ली करनेसे मुँहका आना (मुखपाक) दूर होता है। इसके फूलोंको पीसकर योनिमें धारण करनेसे स्थानिक संकोचक प्रभाव होता है।

आयुर्वेदीय मत—दे० 'चमेली'।

नव्यमत—शीतल, त्वग्दोपहर, व्रणशोधन और व्रणरोपण है। मुखपाकमें जूहीकी पत्तीयाँ चबाते हैं या जूहीकी पत्ती, दारुहलदी और त्रिफलाका काढ़ा करके उससे कुल्ले कराते हैं। कर्णशूल और पूतिकर्णमें पत्तियोंके स्वरससे सिद्ध किया हुआ तेल कानमें डालते हैं। पाँवकी अंगुलियोंके बीचमें पड़े हुये चीरे पर और व्रण पर पत्तियों कल्क लगाते हैं।

पीली जूही—फूल संग्राही तथा अन्त्र और हृदयके लिये बल्य है। जड़का प्रयोग दद्रुमें होता है। चिरकारी नाड़ीव्रणमें और भगंदरकी अस्वस्थ आवरक दीवारों (Lining walls), विकृत अस्थि और सड़े-गले घावोंके किनारों यर उनको नष्ट करनेके लिये इसके दूधिया रंगका प्रयोग होता है। इसके फूलोंको पीसकर लेप करनेसे योनिका संकोचन होता है।

●

(२८५) जैतूनका तेल

फ़ैमिली : ओलिआसे (Family : Oleaceae)

नाम—(हिं०) जैतूनका तेल; (अ०) ज़ैत; (फा०) रोग़न ज़ैतून; (ले०) ओलिउम् ओलीवी (Oleum olivae); (अं०) ऑलिव्ह ऑयल (Olive oil)। **वक्तव्य–ओलिया एउरोपेआ (Olea europaea** Linn.) नामक वृक्षके पके फलसे मशीनमें दबाकर (प्रपीड़न expression) द्वारा निकाला जाता है।

इतिहास—ईसामसीहसे सत्रह सौ वर्ष पूर्व पुरातन मिस्रमें जैतूनवृक्ष 'वाक' नामसे ज्ञात था। तौरेत और इन्जील (बाइबिल) में भी जैतून तेलका उल्लेख है। प्राचीन यूनान एवं रोमवासियोंको भी यह भली-भाँति ज्ञात था। परन्तु प्राचीन भारतीयोंने इसका उल्लेख नहीं किया।

उत्पत्तिस्थान—भूमध्यसागरीय देश, दक्षिणी यूरोप, कैलिफोर्निया, अल्जीरिया, आस्ट्रेलिया, एशिया, फिलस्तीन, एशियामाइनर और यूनान। कुछ समयसे यह हिमालय पर्वताञ्चल और नीलगिरीमें भी लगाया गया है। एक जातिके जैकूनका वृक्ष अफगानिस्तान, बलूचिस्तान और पश्चिम सिंधमें भी होता है।

वर्णन—यह कुछ-कुछ हरापन लिये हलका पीलेरंगका तेल है जिसकी गन्ध हलकी और स्वाद तैलीय होता है।

रासायनिक संगठन—इसमें (१) ओलीईन एक प्रवाही तेल जो ओलीइक एसिड और ग्लीसरीलका यौगिक है, ९३ प्रतिशत; (२) लीनोलीन जो कि ग्लीसरॉइड और लाईनोलिक एसिडका एक यौगिक है, ७ प्रतिशत; और (३) पाल्मेटीन एक गाढ़ा तेल जो कि पाल्मेटिक एसिड और ग्लीसरीलका यौगिक होता है, प्रभृति उपादान पाये जाते हैं। **मिश्रण**–बिनौलेका तेल, तिल्लीका तेल और पोस्तेका तेल, इन तेलोंकी मिलावट करते हैं। किन्तु विशिष्ट स्वादसे इसे पहचाना जा सकता है।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें उष्ण एवं तर, मतांतरसे दूसरे दर्जेमें उष्ण एवं पहलेमें रूक्ष है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—बाह्य उपयोगसे यह त्वचापर स्नेहन, मृदुकर, श्वयथुविलयन और संशमन कर्म करता है तथा शरीरपर मर्दन करनेसे अंग-प्रत्यंगोंको शक्ति प्रदान करता है। भीतरी तौरपर खिलानेसे यह शरीरकी पुष्टि करता है; आहारांगोंके संक्षोभ एवं दाहको शमन करता है; अधिक प्रमाणमें खिलानेसे हलका सारक कर्म करता है और यकृद्गत पित्ताश्मरियोंको द्रवीभूत करके निकाल देता है। यह विशेषकर नाडीबलदायक है। जैतूनके तेलको अंगवेदना, पक्षवध, आमवात, गृध्रसी और अन्य रोगोंमें विलयन और संशमन हेतुमर्दन करते हैं। शरीरकी रूक्षता-निवारण एवं चंबल और शुष्कगंज जैसे त्वचाके रूक्ष रोगोंमें इसको लगाते हैं। अग्निदग्धावयवके दाह मिटानेके लिए इसका मलहम बनाकर उपयोग करते हैं। निर्बल व्यक्तियों विशेषकर निर्बल एवं कृश शिशुओंमें इसको शरीरपर मर्दन करते हैं। यह उनके शरीरमें शोषित होकर उसे पुष्ट करता है और दौर्बल्य एवं कृशताको दूर करता है। इसके अतिरिक्त व्रणशोधन-रोपण और संधानके लिए इसको मरहमोंमें मिलाकर व्रणोंपर लगाते हैं। संखिया जैसे विषोंके विष निवारण और उनसे आहारावयवमें होनेवाली वेदना और दाह या शोथ नष्ट करनेके लिए इसका आंतरिक उपयोग करते हैं। शरीरके दौर्बल्य एवं कृशतानिवारण और वाजीकरणके लिए इसको पिलाते हैं। चिरज मलावरोध, गुदव्रण और गुदचीरमें इसको २ तोले से ५ तोलेकी मात्रामें पिलाते हैं। शूल (कुलंज) रोगमें तथा कृमिनिस्सारणके लिए भी इसे पिलाते हैं। चिरज मलावरोध, गुदव्रण और गुदचीर में इसको २ तोले से ५ तोले की मात्रा में पिलाते हैं। शूल (कुलंज) रोगोंमें तथा कृमिनिस्सारणके लिए भी इसे पिलाते या वस्ति करते हैं। **अहितकर**–सड़ी-गली अवस्थामें उपयोग करने से खुजली उत्पन्न करता है। **निवारण**–मधु और शर्बत बनफ़्शा। **प्रतिनिधि**–रोग़न बलसाँ। **मात्रा**–६ ग्राम से ११.६ ग्राम (६ माशे से १ तोला) तक।

●

(२८६) जोंक (मुलूखिया)

फ़ैमिली : स्टेर्कूलियासे (Family : Sterculiaeae)

नाम—(हिं०) जोंक; चेंच; (सं०) चञ्चु; (मालवा) रजायन, रजायनकी भाजी; (यू०) मुलूखिया (मुलूकिया); (बं०) तिकि ओकरा; (लें०) मेलोकिया कार्कोरिफोलिया (**Melochia corchorifolia** Linn.); (अं०) रेड मेलोकिया (Red Melochia)।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष। इसका पौधा बरसातमें घूरों, उजाडों, खण्डहरों और दीवालोंपर जमा हुआ मिलता है।

वर्णन—इसका क्षुप एक गज या इससे न्यूनाधिक या एक हाथ ऊँचा होता है। शाखायें लाखी रंगकी और हरी भी होती हैं। पत्ते जड़की ओरसे चौड़े और शिरकी ओरसे पतले, नीचे खुरदरे और ऊपरसे चिकने तथा सिराओं (नसों)की अधिकताके कारण चरसदार, बीचमें से दो अंगुल या उससे भी अधिक चौड़े, चार अंगुल तक

लम्बे और जो अधिक चौड़े होते हैं, वे कम लम्बे होते हैं और किनारे कटवाँ होते हैं। फली आध गिरहके बराबर और ऐसी दीखती है मानो जोंक लटक रही हो। इसलिए इस पौधेको 'जोंक' कहते हैं। फूल पीला और छोटा होता है। पत्तोंमें बहुत लबाब होता है। इनको पकाकर रोटीके साथ खाते हैं। **मुहीतआज़म**के लेखक लिखते हैं कि अरबके लोगोंकी जबानी मालूम हुआ कि '**मुलूखिया**' यही है।

प्रकृति—**जोंक** शीत है। **मुलूखिया** पहले दर्जेमें शीत और दूसरे दर्जेमें स्निग्ध; तथा मतांतरसे तीसरे दर्जेमें शीत है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—**तालीफ़शरीफ़** के अनुसार जोंक मधुर, गुरु, सूजाक और गरमीके लिए गुणकारी तथा वायु, कफ और पित्तका नाश करनेवाला है। अन्य ग्रन्थोंके अनुसार यह वाजीकर है। १ तोला इसके पत्र एवं फलका शीरा (पानीमें पीसकर छानकर निकाला हुआ रस) पीनेसे मुँहसे खून थूकना और उरःक्षतमें लाभ होता है। मुलूखियाके ताजे पत्ते पीसकर गुलरोगनमें मिलाकर लेप करनेसे सूजन उतरती है और सिरका दर्द अच्छा होता है। सूखी खाँसी और गलेकी कर्कशतामें इसको पकाकर खानेसे उपकार होता है। इसके बीज भी गुणकारी हैं। ९-१० तोले इसके पत्तोंका स्वरस पीनेसे यकृत् और पित्ताशयका अवरोध दूर होता है। छाती और आमाशयके ऊपर लेप करनेसे आर्तव-रक्त बन्द हो जाता है। भिड़से दंशस्थानपर इसके लेपसे उपकार होता है। इसके पत्तोंको जौके आटेके साथ पीसकर लेप करनेसे आँखका दर्द आराम होता है। इसको मांसके साथ पकानेसे शोरबा लबाबदार हो जाता है। छाती और फेफड़ेकी कर्कशताके लिए गुणकारी है। '**इब्न तल्मीज़**'के अनुसार मुलूखिया उरोमार्दवकर, बस्ति एवं शोथके लिए गुणदायी है। **अहितकर**–बस्ति स्निग्ध, आमाशय और शीत प्रकृतिवालोंके लिए। **निवारण**–बस्तिके लिए गुलाबके फूल और आमाशय आदिके लिए अनीसून।

●

(२८७) जोंकमारी

फ़ैमिली : प्रीमूलासे (Family : Primulaceae)

नाम—(हिं०) जिघना, जैंघनी; (यू०) अनागाल्लिस; (अ०) अनाग़ालि(लु)स, आनाग़लुस (पुरातन); मरिजानेः (नवीन) (म०) जोंकमारी; (गु०) काली फुलडी; (कश्मीर) कालाचंग; (पं०) घब्बर; (ले०) **आनागाल्लिस आर्वेन्सिस (Anagallis arvensis** Linn.); (अं०) स्कार्लेट पिम्पर्नेल (Scarlet Pimpernel)।

उत्पत्तिस्थान—न्यूनाधिक समस्त भारतवर्ष विशेषतः हिमालयमें ८.००० फुटकी ऊँचाई तक तथा नेपाल, कुमाऊँ, खसिया पर्वत, कश्मीर, चम्पारन, हजारीबाग आदिमें शीतकालमें प्रायः खेतोंमें इसके क्षुप पाये जाते हैं।

वर्णन—इसके क्षुप स्वावलम्बी अथवा किंचित् प्रसरी होते हैं। जड़ क्षुद्र; काण्ड चतुष्कोण; पत्तियाँ आमने-सामने, अवृन्त, अखण्ड, बिन्दुकित, लट्वाकार, आयताकार-लट्वाकार या प्रासवत् और प्रायः ०-५ इंच बड़ी, लगभग १.२५ सें० मी० ($\frac{१}{२}$ इञ्च) और ९ मि० मी० ($\frac{३}{८}$ इञ्च) चौड़ी होती हैं; पुष्प पत्रकोणीय, एकाकी, नीले (लाजवर्दी) रंगके और उनके वृन्त पतले होते हैं, जो फल तैयार होनेपर अग्रपर टेढ़े हो जाते हैं, आभ्यन्तर कोश चक्राकार; फल गोल, मटराकार और टोप स्फुटनविधिसे फटता है। बीज खुरदरा होता है। क्षुप किंचित् तिक्त एवं चरपरा होता है। यूनानियोंके मतसे यह उसकी 'मादा जाति' है। नरका फल उनके मतसे लाल होता है।

उपयुक्त अंग— समग्र क्षुप (पंचाङ्ग)।

रासायनिक संगठन—क्षुपमें दो ग्लूकोसायडिक सैपोनिन होते हैं। जड़को रखनेपर उसमें जटामांसीकी गंध बढ़ने लगती है और उसमें **साइक्लेमिन** (Cyclamin) नामक एक विषसत्व होता है।

प्रकृति—दूसरे या तीसरे दर्जेमें गरम और खुश्क है। कोई-कोई नरको उष्ण और मादाको शीतल जानते हैं। **जालीनूस**के मतसे सर्द एवं तर है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—अत्यंत श्वयथुविलयन, संग्राही, लेखन, अकष्टकर, रौक्ष्यजनन, अवरोधोद्घाटक, दोषाकर्षण करनेवाली (जाज़िब) और व्रणके लिए लाभकारी है। इसे उनपर लगानेसे सूजन नहीं आती। यदि दुष्टव्रणके ऊपर लगायें तो उसे फैलने नहीं देती। इसके काढ़ेसे दन्तशूल आराम होता है। इसे ९ माशेकी मात्रामें सिकंजबीनके साथ सेवन करनेसे अपस्मार दूर होता है। इसे शहदके साथ आँखमें लगानेसे दृष्टिशक्ति तीव्र होती है। आँखका जाला (सिराजाल), पोथकी (जरव) और आंध्य (कुम्‌नः) आराम होता है तथा नेत्रकी फुन्सीमें पूय संचित नहीं होता। कण्ठमें जोंक चिमट जाय तो इसके सेवनसे वह छूट जाती है और यदि वह आमाशयमें चली जाय तो मरकर निकल जाती है। इसे गुलरोगनमें मिलाकर योनिके भीतर रखनेसे योनि गर्भाशयशोथ मिटता है। **अहितकर**–इसके सेवनसे (सहज) उत्पन्न होता है। **निवारण**–बबूलका गोंद। **प्रतिनिधि**–हत्थाजोड़ी। **मात्रा**–२·२५ ग्राम से ४·५ ग्राम (२$\frac{१}{४}$-४॥ माशा) तक।

* * *

(२८८) जोअ्दा

फ़ैमिली : लाबिआटो (Family : Labiatae)

नाम—(अं०) जोअ्दा, जादेह, बूलियून; (यू०) पोलिओन, फू(बू)लियून ; (ले०) **टेउक्रिइम् पोलिउम्** (**Teucrium polium** Linn.); (अं०) पाली-जर्मॅण्डर (Poley-germander)।

उत्पत्तिस्थान—यह प्रायः रुके हुए पानीके पास और आर्द्रभूमिमें वहारके मौसममें उगता है और जाड़ों तक रहता है। फारस, खुरासान, पूर्वीदेश और भूमध्यसागरीय प्रदेश।

वर्णन—एक उद्भिज्ज जिसके ये दो भेद होते हैं। (१) पहाड़ी–इसका क्षुप सफेद और बित्ताभर ऊँचा होता है। पत्ते छोटे और जमीनपर बिछे रहते हैं। पत्तोके ऊपरी पृष्ठपर रोआँ होता है और किनारोंपर नन्हें-नन्हें काँटे होते हैं। शाखाओंके सिरोंमें घुंडियाँ लगती हैं जिनपर बालकी तरह बारीक और सफेद रंगके तार लटकते हैं। इन घुंडियोंमें बीज भरे होते हैं। फूल पिलाई लिए सफेद रंगका होता है। गंध बड़ा गम्भीर, अप्रिय और किंचित् सुगन्धि होती है। स्वाद किंचित् तिक्त होता है। इसे अरबीमें **जोअ्दा सग़ीर** और **जोअ्दा शामी** तथा फारसी या शीराजीमें 'उर्बः' कहते हैं। (२) बागी (बुस्तानी–उद्यानज)–इसके पत्ते पहलेसे बड़े होते हैं। गंध अपेक्षया कम होती है। इसको **जोअ्दए कबीर** और **जोअ्दए रूमी** तथा फारसीमें **अंबरबेद** कहते हैं। तोड़नेके पश्चात् आठ मास तक इसमें औषधीय वीर्य रहता है। **शम्सुद्दरर** के अनुसार उपयोगके लिए बागी श्रेष्ठतर होता है। **मख़्ज़न**के अनुसार इसका पहाड़ी भेद उपयोगमें आता है। मतांतरसे बीजोद्भवकालमें लिया हुआ ताजा एवं सफेद श्रेष्ठतर होता है।

उपयुक्त अंग—क्षुप (पंचांग)।

रासायनिक संगठन—उत्पत् तेल।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें गरम और खुश्क।

गुण-कर्म तथा उपयोग—आभ्यन्तरिक उपयोगसे बुद्धिवर्धक एवं बल्य है और विरेक (दस्त) लाता है, अवरोधोंका उद्घाटन करता, दोषोंको प्रकृतिस्थ करता, मूत्र तथा आर्तवका प्रवर्तन करता, उदरकृमिको नष्ट करता

और उसे निकालता, वायुका अनुलोमन करता और ओजकी रक्षा करता है। (गंज एवं बालखोरा) दूर करनेके लिए इसका बाह्य उपयोग होता है। इसके नेत्रमें लगाने (मधुके साथ अंजन करने)से दृष्टिशक्ति बढ़ती है तथा जाला एवं धुंध जाता रहता है। जलोदर एवं कृष्णकामला (यर्क़ान स्याह)के लिए गुणदायक है। इसका अवचूर्णन व्रणपूरक है। इसकी धूनी विषैले जानवरोंको भगाती है। बालज्वरमें शरीरमें इसकी धूनी लेते हैं। २½ तोलेकी मात्रामें इसको रात्रिभर ढंढे जलमें भिगोकर प्रात: छानकर पोनेसे ज्वरविकार दूर होता है। **अहितकर**–शिर:शूलजनक और आमाशय हानिकारक। **निवारण**–आवश्यकतानुसार सर्द एवं तर वस्तु, जैसे–धनियाँ, हमामा और बनफ़्शा। **प्रतिनिधि**–पहाड़ी पुदीना, किरमाला, अनारकी जड़की छाल और तज। **मात्रा**–१०½ (साढ़े दस) ग्राम या माशा; काढ़ा ७½ तोला तक।

●

(२८९) जौ

फ़ैमिली : ग्रामीने (Family : Gramineae)

नाम—(हिं०) जौ, जव; (अ०) शईर; (फा०) जौ; (सं०) यव; (गु०; बं०; पं०) जव; (म०) सातु; (लै०) होर्डेउम् वुलगारे **Hordeum vulgare** L. (पर्याय–*H. sativum* Jessen.; *H. distichum* L.); (अं०) बार्ली (Barley)।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष, विशेषतः उत्तर भारतवर्षमें इसकी खेती होती है। यह एक प्रसिद्ध धान्य (अन्न) है।

रासायनिक संगठन—इसमें स्थिर तेल, स्टार्च (Starch), प्रोटीड कम्पाउण्ड्स (ग्लूटेन ऐल्ब्युमिन), सेलूलोज (Cellulose), अन्य नाइट्रोजन तत्त्व और भस्म, जिसमें सिलिसिक एसिड, फाँस्फोरिक एसिड, लोह और कैल्सियम होता है, पाये जाते हैं।

उपयुक्त अंग—निस्तुषीकृत बीज (दाना-जौ) गेहूँके दानेकी भाँति निकाला हुआ तेल (रोग़न जौ) तथा पंचांगको जलाकर बनाया हुआ क्षार-यवक्षार (दे० 'जवाखार')।

कल्प तथा योग—सत्तू, माउश्शईर, आशे जौ, कशकुश्शईर, कीरूती आर्दजौवाली, आदि। आयुर्वेदमें भी जौ से सत्तू, क्षार, अपूप, मन्थ, वाट्य, कुलमाष, धान यूष एवं अन्य विविध चिकित्सोपयोगी पदार्थ बनाये जाते हैं।

प्रकृति—शीत एवं रूक्ष। आयुर्वेदके मतसे शीतवीर्य एवं रूक्ष है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—किंचित् उदरसंग्राहक उपशोषण, रक्त-पित्तसंशमन और लेखन। जौमें गेहूँकी अपेक्षया पोषणांश कम होता है। इसकी रोटी किंचित् संग्राही एवं चिरपाकी होती है, अनाह और वायु (रियाह) उत्पन्न करती और शरीरमें रूक्षता उत्पन्न करती है। उष्ण प्रकृतिवालों और अधिक स्थूल मनुष्योंको खिलाई जाती है। जौका आटा चेहरे और शरीरकी सफाईके लिए अकेला या अन्य औषधद्रव्योंके साथ उबटन बनाकर उपयोग किया जाता है। शिरके गंज और दद्रुमें जौका तेल लाभकारी है। यह शोथको नरम और विलीन करता, दाह और गर्मी मिटाता तथा कठोर एवं गरम सूजनको लाभ पहुँचाता है। जौका सत्तू और यव मड बनाकर उपयोग करते हैं। अहितकर–बस्तिके लिए। निवारण–अनीसून और गुलकंद। प्रतिनिधि–ज्वार।

आयुर्वेदीय मत—यव मधुर, कुछ कषाय, कटुविपाक, शीतवीर्य अतिशय रूक्ष, पिच्छिल, लघु, मल और उदरवायु अधिक उत्पन्न करनेवाला, शरीरको स्थिर-दृढ़ करनेवाला, बलकारक, व्रणमें पथ्य (तिलकी भाँति व्रण-

लेपनमें सदैव हितकर), मूत्र कम करनेवाला, अग्नि-वर्धक, मेध्य, स्वरको अच्छा करनेवाला, शरीरके वर्णको निखारनेवाला, स्थूलको पतला करनेवाला, रक्तशोधक, पित्तशामक तथा कफ, मेदोवृद्धि, वातविकार और तृषाको मिटानेवाला है (च०सू०अ० २७; सु०सू०अ० ४६), प्रमेहनाशक (राज०), लेखन, मृदु, अनभिष्यंदी तथा पीनस, श्वास, खाँसी और ऊरुस्तम्भको दूर करनेवाला है (भा०प्र०)। तिलकी भाँति व्रणालेपनके लिए पथ्यकर'—तिलवद्यवकल्कं तु केचिदाहुर्मनीषिणः' (सु० चि० अ० १), होनेके अतिरिक्त जौ आभ्यन्तरीय प्रयोगके लिए भी उपयोगी है—'शक्तून् विलेपी कुल्माषञ्जलं चापि शृतं पिवेत् (सू० अ० १९)। मूत्रकी राशि कम करनेके कारण प्रमेहमें यवोंका उपयोग होता है—'यवप्रधानस्तु भवेत् प्रमेही। यवस्य भक्ष्यान् विवधांस्तथाऽद्यात्' (च०चि० अ० ६)। मधुमेहीके लिए जौ प्रधान खाद्य है। इसके सेवनसे मधुमेहमें बड़ा लाभ होता है, इसमें कोई संदेह नहीं है। चरकमें मेदसावृत वायुकी चिकित्सामें जौका भोजन करनेके लिए लिखा है–'यवका यवाः भोजनार्थं प्रयोज्यानि।' (सूत्र० २१)।

जौका सत्तू—

नामादि—(अ०) सवीक़ुश्शईर; (सं०) यवश(स)क्तु। जौको भूनकर पिसवा लेते हैं। यह पिसा हुआ आटा **'सत्तू'** कहलाता है।

प्रकृति—पहले दर्जेमें **शीत** और दूसरेमें रूक्ष है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—उदरसंग्राहक (क़ाबिज़ शिकम) और संतापहर एवं अतिसारघ्न है। यवमंडकी अपेक्षया जौके सत्तूमें पोषणांश कम है। बहुधा ग्रीष्मऋतुमें गरमी और प्यास बुझानेके लिये इसका उपयोग करते हैं। उष्णप्रकृतिके रोगियोंको विरेक आनेकी दशामें इसको खिलाते हैं। यह उष्णज्वरोंमें भी प्रयुक्त होता है। सत्तूको जलमें भिगो रखनेके उपरांत साफ जल निथारकर उसमें मिश्री या शर्बत मिलाकर पीना गरमी और प्यास बुझानेके लिए उत्कृष्ट द्रव्य है। **अहितकर**–शीत प्रकृतिको।

आयुर्वेदीय मत—सत्तू (श(स)क्तु) अर्थात् भृष्टयवचूर्ण शरीरपुष्टिकर, वृष्य, तृष्णाशामक, पित्तकफनाशक है। सेवन करते ही बल देता है, भेदी है और वातनाशक है। उसका अत्यन्त कठिन लड्डू भारी होता है और मुलायम लड्डू हलका होता है, तथा अवलेह पतला होनेके कारण शीघ्र पच जाता है। (सु०सू०अ० ४६)। यह वातवर्धक, रूखा मलको अधिक मात्रामें उत्पन्न करनेवाला तथा आनुलोमिक होता है। पीनेपर ये सद्यः तृप्त करते हैं और सद्यः (तत्क्षण) बलकारक है। ये वाजीकरण द्रव्योंकी तरह तत्क्षण ही बलको उत्पन्न करते हैं; परन्तु रूक्ष होनेसे परिणाममें बलकारक नहीं होते। (च० सू० अ० २७)।

यवमंड (आशे जौ)–

नव्यमत—इसकी परिभाषा, कल्पना और पर्याय आदिके लिए **यूनानी द्रव्य-गुण-विज्ञान** ग्रंथके पूर्वार्ध पृ० २१५ और ३१५ पर देखें।

प्रकृति—शीत एवं तर।

गुण-कर्म तथा उपयोग—शीतजनन (मुबर्रिद), स्निग्धताजनक (स्नेहन), मूत्रल, रक्त और पित्तसंशमन। यह उत्तम और शीघ्रपाकी आहार है। समस्त व्याधियों विशेषतः उष्णरोगोंमें इसका उपयोग गुणदायक है। यकृत् और आमाशयकी उष्णता (संताप) और उग्र पिपासा शमन करनेके लिए श्रेष्ठतर आहार है। समस्त उष्ण ज्वरों, राजयक्ष्मा, उरःक्षत, पार्श्वशूल (ज़ातुज्जनब), शुष्क कास और उष्ण शिरःशूलमें इसका उपयोग परम गुणदायक है। वाट्यमंड (भृष्टयवकृत मंड) संग्राही होता है और अतिसारमें उत्कृष्ट आहार गिना जाता है। विशेषकर उरःक्षत

और राजयक्ष्माके ऐसे रोगीके लिए जिसको विरेक आ रहे हों, अत्युत्तम है। रोगियोंके लिये यह सर्वोत्तम लघु पथ्याहार है।

आयुर्वेदीय मत—जौका मण्ड (यावक) तथा भुने जौका मण्ड (वाट्य) उदावर्त, प्रतिश्याय, कास, प्रमेह तथा मलग्रह, इन रोगोंको नष्ट करता है। (सु० सू० अ० ४६; च० सू० अ० २७)। यवका यूष कण्ठके लिए हितकर और वातनाशक है। (सु० सू० अ० ४६)।

जवाखार

नाम। (हिं०) जौखार, जवाखार; (अ०) मिल्हुश्शईर; (फा०) नमके जौ; (सं०) यवक्षार, यावशूक; (म०; गु०) जवखार; (लि०) पोटास्सिउम् कार्बोनास इम्प्योरा, (Potassium Carbonas Impura), पर्ल ऐश (Pearl Ash); (अं०) इम्प्योर कार्बोनेट ऑव पोटास (Impure Carbonate of Potas)।

प्राप्ति और वर्णन—औषधमें प्रयुक्त जवाखार पके जौके पौधों तथा बालियोंको जलाकर उनकी राखसे विशेष-विधि द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। इसकी निर्माण-विधिके लिए 'यूनानी-द्रव्यगुण-विज्ञान' देखें। इस प्रकार बनाया हुआ खार स्वच्छ अक्रिस्टलो चूर्ण होता है। केवल जौकी बालियोंको जलाकर बनाये हुए जवाखारकी अपेक्षया समग्र क्षुपको जलाकर बनाया हुआ जवाखार न्यूनगुणवाला होता है। यह श्वेत सूक्ष्म दानेदार चूर्णके रूपमें होता है। इसका स्वाद तिक्त, क्षारीय और कुछ अम्ल होता है।

रासायनिक संगठन—जवाखारमें प्रधानतः पोटैसियम क्लोराइड ५०·८, पोटैसियमसल्फेट २०·२, पोटैसियम कार्बोनेट ६·८ तथा पोटैसियम-बाई-कार्बोनेट १२·६ प्रतिशत होता है (अर्थात् यह पोटैसियम लवणोंका मिश्रण (मिक्स्चर ऑव पोटैसियम साल्ट्स) है। जौकी राखमें सैलिसिलिक एसिड २९, फास्फोरिक एसिड ३२·५, पोटैसियम २२·५ तथा कैल्सियम ३·५ प्रतिशत होता है।

वक्तव्य—पाश्चात्य वैद्यक (डॉक्टरी)में प्रयुक्त पोटैसियम कार्बोनेट (Potassium Carbonate) नामक द्रव्य 'विलायती जवाखार' ही है। उक्त पद्धतिमें यह जौके पौधोंको जलाकर तैयार नहीं किया जाता, अपितु पोटैसियम सल्फेट और कैल्सियम कार्बोनेटको परस्पर मिलाकर उष्णता पहुँचानेसे प्राप्त किया जाता है। प्रायः वैद्य और हकीम महोदय इसे ही 'देशी जवाखार'की जगह प्रयुक्त करते हैं। यह ठीक नहीं है।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें रूक्ष एवं उष्ण।

गुण-कर्म तथा उपयोग—दीपन, पाचन, वमन, विरेचन, मूत्रल, वस्तिवृक्काश्मरीनाशन और श्लेष्मनिस्सारक। मूत्रल होनेके कारण यह बद्धमूत्र और कामलामें गुणकारक है। मूत्रल और अश्मरीघ्न होनेसे वस्तिवृक्काश्मरीमें प्रयुक्त किया जाता है। दीपन और पाचन होनेसे दीपन-पाचन चूर्णौषधोंमें पड़ता है और मन्दाग्निमें लाभ पहुँचाता है। कफोत्सारि होनेसे कास और कृच्छ्रश्वासमें भी प्रयुक्त होता है। एकही बार अधिक प्रमाणमें देनेसे यह वमन लाता है और बार-बारके उपयोगसे अन्त्रके मांसस्तरको वातग्रस्त (घातित) करनेसे विरेक लाता है। **अहितकर**–आंतोंके लिए अहितकर और वामक है। **निवारण**–कतीरा और गोंद। **प्रतिनिधि**–शोरेका नमक। **मात्रा**–०·५ ग्राम से १ ग्राम (४ रत्ती से १ माशा) तक।

आयुर्वेदीय मत—जवाखार (यावशूक) हृद्रोग, पाण्डुरोग, ग्रहणी रोग, प्लीह और यकृत्की वृद्धि, आनाह, गलग्रह, कफज कास और अर्शको दूर करनेवाला है (चरक सू० अ० २७)। सज्जीखार और जवाखार उष्णवीर्य तथा कफ, विबन्ध, अर्श, गुल्म और प्लीहवृद्धिका नाश करनेवाले हैं (सुश्रुत सू० अ० ४६)। यह कटु, उष्णवीर्य, सर (मल-मूत्रको साफ लानेवाले) तथा कफ, वात, उदर, आमशूल, अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र, विबन्ध, गुल्म और विषदोषको दूर करनेवाले हैं (सु० सू० अ० ४६; ध० नि० वर्ग २)।

नव्यमत—जवाखार स्निग्ध, लघुपाकी, सूक्ष्म (शरीरके सब स्थानोंमें शीघ्र प्रवेश करनेवाला), अग्निवर्धक (दीपन), सारक (मृदुविरेचन), मूत्रल, अम्लत्वनाशक और रसायन है (डॉ० कार्तिक चन्द्र वसु)। यह रक्तशोधक, स्वेदजनन, कफशामक और पित्तक्रियाको सुधारनेवाला है। भोजनके पहिले देनेसे यह दीपन और आमाशयकी पीड़ाको कम करता है। भोजनके बाद देनेसे आमाशयकी अम्लताको कम करता है और वहाँके कफको विलीन करता हैं। रक्तमें मिलनेपर रक्त-कणोंकी संख्या और रंग बढ़ाता है। रक्तशुद्धिकेलिए जवाखार कसीस और सुगन्धित द्रव्योंके साथ देते हैं। जवाखार वृक्कको उत्तेजित करके मूत्रका प्रमाण बढ़ाता है; त्वचाको उत्तेजित करके पसीना लाता है; इससे कफ पतला होकर छूटने लगता है और श्वासनलिकाशोथ कम होता है। इससे पित्त पतला होता है और पित्त नलिकाका शोथ कम होता है। इसलिए कामला और यकृच्छोथमें जवाखार देते हैं। फुफ्फुसके रोगोंमें जवाखारकी अपेक्षा जवकी राखका उपयोग उत्तम होता है (ओ० सं०)।

उत्तम मूत्रल होनेसे यह बद्धमूत्र और मूत्रकृच्छ्र (कष्टसे मूत्र आना और कष्टके साथ बूँद-बूँद मूत्र आना)में अतीव गुणकारी होता है। सूजाकमें इसके साथ रेवन्दचीनी और कलमी शोरा आदिको मिलाकर इन्द्रीजुल्लाब कराया जाता है, जिससे खूब खुलकर पेशाब आता है और व्रण शुद्ध हो जाते हैं। जब मूत्रमें अम्लता बढ़ जानेसे वस्ति-वृक्काश्मरी और मूत्रशर्करा उत्पन्न हो जाती हैं, तब इसके उपयोगसे विशेष लाभ होता है। इसी प्रकार मिहिकाम्ल (यूरिकएसिड)से उत्पन्न हुए संधिशूल एवं वातरक्तमें बड़ा लाभ होता है। श्लेष्मलकलापर भी इसका अच्छा प्रभाव होता है। अस्तु, जब कफ शुष्क हो तथा शुष्क कास आरहा हो तथा गला बैठ गया हो, कफ लेसदार और कड़ा गाँठके समान निकलता हो, तब इसके देनेसे तुरन्त लाभ होता हैं। यह सांद्रीभूत एवं गाढ़े कफको पतला करके निकलने योग्य बनाता है। तापांशको कम करनेके लिये भी इसका उपयोग होता है। जब आमाशयमें अम्लताकी अधिकताके कारण आमाशय द्वारमें दर्द होता है, कलेजा जलता है और अम्ल एवं दुर्गन्धित डकारें आती हैं, कण्ठमें प्रायः क्षोभ रहता हैं तो इसको भोजन करनेसे दो घण्टे बाद पानीमें मिलाकर पीनेसे आश्चर्यकारक लाभ होता है। त्वचाके रोग, जैसे शीतपित्त (पित्ती), खर्जू आदिमें १० छटाँक पानीमें इसे चार माशाकी मात्रामें मिलाकर स्नान करने या अंग विशेष पर लगानेसे अतिशीघ्र लाभ होता हैं।

●

(२९०) जौ बिरहना (जई)

फ़ैमिली : ग्रामीने (Family : Gramineae)

नाम—(हिं०) जई, गंदल, गनेर, कुलजुद, आतजौ; (अ०) सु(सि)ल्त, शईर उरयाँ; (फा०) जौ बिरहना, जौ गंदुम; (सं०) अतियव, मुण्डयव; (म०) ओट; (ले०) **आवीना साटीवा (Avena sativa** Linn.); (अं०) ओट (Oat), ग्रोट्स (Groats)।

उत्पत्तिस्थान—ब्रिटेन, अमेरिका, फारस और उत्तर भारतवर्षमें बंगालसे सिन्धु नदी तक और हिमालयमें १२,००० हजार फुटकी ऊँचाई तक इसकी खेती होती है। भारतीय बाजारोंमें यह उपलब्ध होता है।

वर्णन—यह जौकी जातिका एक अन्न है, जिसका पौधा जौके पौधेसे बहुत मिलता-जुलता होता है। यह जौसे अधिक बढ़ता है। इसका दाना (बीज) जौसे छोटा और छिले हुए गेहूँके समान होता है।

उपयुक्त अंग—दाना (बीज)।

रासायनिक संगठन—इसमें वसा, श्वेतसार, शर्करा, एल्ब्युमिन, सेलूलोज एवं खनिज द्रव्य होते हैं। दानेमें आवेनिन (Avenin) एवं विटामिन 'B' तथा बाहरी भागमें फास्फेट्स होते हैं।

प्रकृति—पहले दर्जेमें उष्ण और दूसरेमें तर।

गुण-कर्म तथा उपयोग—बृंहण, स्नेहन, स्वप्नजनन, कफोत्सारि, मूत्रजनन और वेदनाहर। कृश शरीरको स्थूल (परिवृंहित) करने और मालिन्खोलिया, प्रलाप और जीर्णकासमें इसका हरीरा बनाकर पिलाते हैं। मालिन्खोलिया और प्रलापमें इसकी अधपकी टिकिया बनाकर गरम-गरम शिरपर बाँधते हैं। अर्शवेदना शमन करनेके लिए इसके काढ़ेमें रोगीको बिठाते हैं। **अहितकर**–आमाशयके लिए। **निवारण**–गोदुग्ध। **मात्रा**–१२ से २४ ग्राम (१ से २ तोला) तक।

आयुर्वेदीय मत—अतियव (निःशूक काले, लाल रंगके यव)को सब गुणोंमें यवकी अपेक्षया किंचित् हीन-कोटिका समझना चाहिए। (सु० सू० अ० ४६)। बलवर्धक, वीर्यवर्धक, वृष्य और पुष्टिकारक (रा० नि०)।

* * *

(२९१) ज्वार

फ़ैमिली : ग्रामीने (Family : Gramineae)

नाम—(हिं०) ज्वार, जोन्हरी, जोंधरी, जोनरी, छोटा मक्का; (यू०) Kegkhros (D. 2.119); (अ०) ज़ुर्रत, जावर्स; (फा०) जावरसे हिन्दीं, गावर्स; (सं०) या(य)वनाल; (पं) चरी, छोटी जुआर, छोटी जुनरी; (बम्ब०; द०) जोवारी, जोआर, जोंधला; (बं०) जोइ, जोआर; (गु०) जुवार; (म०) जोंघला; (ले०) **सॉर्घुम डॉक्ना (Sorghum dochna** (*Forsk.*) Snowden (**पर्याय–सॉर्धुम वुल्गारे** (**S.** *Vulgare* Pers.); (अं०) मिलेट (Millet), ब्रूम कार्न (Broom corn)।

उत्पत्तिस्थान—उत्तर-पश्चिम संयुक्त राष्ट्र अमरीका। समस्त भारतवर्षमें इसकी खेती होती है।

वर्णन—यह एक प्रसिद्ध खाद्य अन्न (धान्य) है।

रासायनिक संगठन—इसमें जल, ऐल्ब्युमिनॉइड्स, श्वेतसार, तन्तु, भस्म, भास्वराम्ल और पोटास आदि होते हैं।

उपयुक्त अंग—दाना (बीज)।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें शीत एवं रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—संग्राही; रूक्षण, विलोमकर्त्ता (रादेअ) उष्णश्वयथुविलयन और स्तन्यजनन। आहारकी भाँति इसका पुष्कल उपयोग होता है। बहुधा इसके आटेकी रोटी पकाकर खाते हैं। यह गुरु (सक़ील) और ग्राही है। यद्यपि इससे यथेष्ट पुष्टि (गिज़ाइय्यत) प्राप्त होती है, तथापि इसके बहुत प्रयोगसे शरीरमें रूक्षता उत्पन्न होती है। स्तन्यजननार्थ स्त्रियाँ सौंफके साथ ज्वारका हरीरा पकाकर खाती हैं। इसके आटेकी पुलटिस बनाकर गरम सूजनको विलीनकरने और उनका दर्द शांत करनेके लिए बाँधते हैं। **अहितकर**–आनाहकारक और चिरपाकी है।

आयुर्वेदीय मत—ज्वार, स्वादिष्ट, शीतवीर्य, रूक्ष, भारी, ग्राही, रुचिकारक, वृष्य, मलस्तम्भक, पित्तकफनाशक और रुधिर के विकार का शांत करनेवाला है।

* * *

(२९२) झाऊ

फ़ैमिली : टामारीसीने (Family : Tamariceneae)

नाम—वृक्ष (हिं०; द०) झाऊ, झाव; (यू०) (Murike D. १·११६); (अ०) तर्फ़ा; (फा०) ग़ज़; (सं०) झावु (क) (बं) झाव; (गु०) झाव, झावु, प्रांस; (वि०) झउला; (पं०) फरवां, ओकां; (सिं०) लई; (मा०) लवो; (लै०) टामारिक्स ट्रूपिई (**Tamarix troupii** Hole.) पर्याय–टामारिक्स गॉलिका (*T. gallica* auct-non. L.); (अं०) टेमेरिक्स (Tamarix)। फल (हिं०) बड़ी माईं (ई); (अ०) समरतुत्तर्फ़ा, हब्बुत्तर्फ़ा, जौज़ुत्तर्फ़ा; (फा०) माईं कलाँ; (सं०) झावुकफल; (म०) पड़बास; (गु०) पड़वास; (बम्ब०) मगिया माईं; (अं०) टैमेरिक्स गॉल्स (Tamarix galls)। शर्करा–(अ०) कज़ंन्जबीन; (फा०) गज़ङ्गबीन; (स०) झावुक शर्करा; (अं०) टेमेरिक्स मेन्ना (Tamarix manna)।

वक्तव्य—फारसी क(ग)ज़माज़ज, क(ग)जमाज़क और क(ग)ज़माज़ू शब्दोंका व्यवहार उभय प्रकारकी (छोटी बड़ी) माईंके लिए होता है; परन्तु प्रसिद्ध यह है कि ये बड़ी माईंके नाम हैं। 'जज़माज़ज' गज़माज़जका और 'कज़न्जबीन' गज़ङ्गबीनका अरबी रूपान्तर है। इब्नुलबैतारके कथनानुसार असल तर्फ़ाके चार भेदोंमेंसे एक भेद है।

उत्पत्तिस्थान—यूरोप, अफरीका, एशिया, फारस, अफगानिस्तान, उत्तरभारतवर्षमें गंगा और यमुना नदियोंके कूलों पर तथा समुद्रतटपर और उत्तर गुजरातमें प्रायः शीत एवं समशीतोष्ण कटिबन्धमें इसके वृक्ष होते हैं।

वर्णन—यह एक झाड़दार बेढंगा, छोटा (आदमीके कदका या उससे भी कम ऊँचा) और जंगली वृक्ष है। पत्र सरोके पत्रके समान और फल ललाई लिये सफेद होता है। इसकी शाखाओंमें एक प्रकारके कीड़के छिद्र करने और उन छिद्रोंमें अपने अण्डे रखनेसे उन स्थानोंमें एक प्रकारकी गाँठें उत्पन्न हो जाती हैं जिनको इसका फल समझा जाता है। इनको बड़ी माईं कहते हैं। ये कुछ-कुछ गोल एवं बहुत ग्रंथिल, विभिन्न आकारकी, मटरसे लेकर रीठेके बराबर तक होती हैं। ये माजूफलसे छोटी तथा छोटीमाईंसे बड़ी होती हैं। इनके धरातल पर प्रायः तंग गर्दनवाले इतने अधिक छोटे-छोटे उभार (गाँठें) होते हैं कि ये उसे घौंदका रूप प्रदान करते हैं। इनके भीतरका भाग प्रायः खोखला होता है। इसका रंग बाहरसे साधारणतः कुछ-कुछ हरा या पिलाई लिए भूरा होता है। इसकी झाड़से यवासशर्कराकी भाँति एक प्रकारकी शर्करा प्राप्त होती है जिसे **गज़ंगबीन (झावुक शर्करा)** कहते हैं। भारतीय झाऊमें इसका अभाव होता है।

रासायनिक संगठन—बड़ी माईंमें पुष्कल कषायाम्ल (Tannic acid) और गज़ंगबीन में इक्षुशर्करा, इन्वर्ट शूगर (लिव्युलोज और ग्लूकोज), द्राक्षशर्करा (डेक्स्ट्रिन) और जल ये उपादान होते हैं।

उपयुक्त अंग—पंचांग, फल (बड़ी माईं) और गज़ंगबीन।

झाऊ (पंचांग)—

प्रकृति—पहले दर्जेमें शीत और दूसरेमें रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—तन्तुसंग्राहक (ग्राही), उपशोषण, श्वयथुविलयन; वेदनास्थापन, रक्तस्तम्भन एवं रक्तशोधन है तथा प्लीहाशोथमें अर्थात् प्लीहाकी वृद्धि एवं कड़ाईमें विशेष लाभकारी है। प्लीहाकाठिन्य, शिथिलशोथ और उष्णशोथ पर इसके पत्तोंको पीसकर लेप करते हैं। प्लीहाकी वृद्धिमें पत्तियोंका क्वाथ पिलाते हैं और झाऊकी लकड़ीके प्यालेमें १२ घन्टा रखा हुआ जल पिलाते हैं। मसूढ़ोंसे खून एवं पीप आना बन्द करने तथा दन्तशूल मिटाने और मसूढ़ोंकी दृढ़ताके लिये पत्तियोंके काढ़ेसे कुल्ली कराते हैं। पत्तोके क्वाथसे व्रणको धोनेसे व्रणका

शोधन और रोपण होता है। व्रणशोषणके लिये झाऊके पत्तोंकी धूनी देते हैं; विशेषकर मसूरिका (चेचक)के तथा अन्य व्रणको सुखानेके लिये इसके पत्रकी धूनी देते अथवा पत्तियों या पत्तियोंके राखको बारीक पीसकर व्रणोंपर भी छिड़कते हैं। अर्शांकुरोंको सुखानेके लिये भी इसके पत्रकी धूनी लाभकारी है। इसकी जड़का काढ़ा जैतूनके तेलके साथ बहुतकालपर्यन्त पिलानेसे कुष्ठरोगमें बहुत उपकार होता है। इसकी जड़ और पत्रके काढ़ेमें श्वेतप्रदर और गुदभ्रंशके रोगीको बिठानेसे तथा श्वेतप्रदरमें पत्तियोंके क्वाथकी उत्तरबस्ति (डूश) देनेसे लाभ होता है। ताजी पत्तियोंका स्वरस और माईंका चूर्ण बाजीकर और शुक्रस्तम्भक हैं। **अहितकर**–आमाशयके लिये। **निवारण**–मधु और स्नेह द्रव्य। **प्रतिनिधि**–गुलनार। **मात्रा**–५ ग्रामसे ७ ग्राम (५ माशे से ७ माशे) तक।

माईं (छोटी और बड़ी)—

प्रकृति—पहले दर्जेमें शीत एवं रुक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—ग्राही, स्तम्भन, दोषविलोमकर्ता, रक्तस्तम्भन (शोणितस्थापन), उपशोषण, लेखन, प्रमाथी, छेदन, दीपन और प्लीहायकृद्बलदायक। माईंका उपयोग माजूफलके समान होता है। शीतसंग्राही होनेके कारण गलशुण्डिका और दन्तशूलमें यह मंजन और कवलकी भाँति प्रयुक्त होती है तथा पित्तज अतिसार और चिरज अतिसारमें इसको खिलाते हैं। संग्राही और दोषविलोमकर्ता होनेके कारण कंठशूल और कंठशोथमें इसके गण्डूष कराये जाते हैं। रक्तस्तम्भन होनेके कारण नकसीर, रक्तष्ठीवन और अरतिरजमें इसको क्रमशः प्रधमन, भक्षण और पान एवं वर्तिकी भाँति उपयोग करते हैं। क्षतज रक्तस्रावोंमें इसका अवचूर्णन करते हैं। उपशोषण और संग्राही होनेके कारण श्वेतप्रदर (सैलानुर्रिहम)में यह वर्ति और चूर्णौषधकी भाँति प्रयुक्त की जाती है और इसीकारण शीघ्रपतन और शुक्रतारल्यमें इसका उपयोग करते हैं। लेखन, प्रमाथी और छेदनीय होनेके कारण प्लीहाशोथमें भी इसका उपयोग करते हैं। **अहितकर**–आमाशयको। **निवारण**–मधु। **प्रतिनिधि**–एक दूसरेका प्रतिनिधि है। **मात्रा**–३ ग्रामसे ५ ग्राम (३ माशेसे ५ माशे) तक।

झावुकशर्करा (गज़ंगबीन)—

प्रकृति—पहले दर्जेमें उष्ण (एवं तर) और खुश्की एवं तरीमें मोतदिल (समस्निग्धरूक्ष)।

गुण-कर्म तथा उपयोग—यह लेखन, रेचन, मस्तिष्कसंशोधन, प्रतिश्यायहर, उरोमार्दवकर, स्वरशोधक, उर:कार्कश्यहर, श्वासकासहर और आहार एवं श्वासावयवके लिए उपकारक हैं तथा स्निग्ध प्रकृतिके लिए लाभकारी है। **मात्रा**–२ तोलेसे ३ तोले, प्रत्युत ६ तोले तक।

आयुर्वेदीय मत—झाऊ तिक्त, कटु और मूत्रकृच्छ्रनाशक है।

●

(२९३) टमाटर

फ़ैमिली : सोलानासे (Family : Solanaceae)

नाम—(हिं०) टमाटर, टुमेटो, विलायती भंटा; (अ०) बादंजाने हिन्दी; (फा०) बादंगाने हिन्दी; (लें०) **लीकोपेर्सिकॉन एस्कूलेंटुम्** (**Lycopersicon esculentum** Mill.) (**पर्याय**–सोलानुम् लीकोपेर्सिकुम् Solanum lycopersicum); (अं०) टोमेटो (Tomato), लवएपल् (Loveapple)।

उत्पत्तिस्थान—फ्रांस आदि भारतेतर देश। आजसे लगभग १०० वर्ष पूर्व विदेशियोंके द्वारा यहाँ इसका उपयोग प्रचलित हुआ। भारतवर्षमें अब इसकी पुष्कल खेती होती है।

वर्णन—प्रसिद्ध फल है।

रासायनिक संगठन—इसके बीजों एवं छिलकेमें **'सोलेनोन'** नामक एक क्षारसमोद होता है। इसके अतिरिक्त अम्ल (एसिड)के रूपमें ऑक्सलीक ऑफ पोटासियम् भी होता है। इसमें पोषण, यद्यपि अधिक नहीं होता; परन्तु जीवतिक्ति (ए), (बी), (सी) खूब होती है। प्रायः सब भोजनोंकी तुलनामें टमाटरोंमें खाद्योजका परिमाण अधिक बताया जाता है।

उपयुक्त अंग—फल।

गुण-कर्म तथा उपयोग—बादी, आध्मानकारक, शुक्रवर्धक, किंचित् बाजीकर है तथा इससे सौदावी रक्त उत्पन्न होता है। पके हुए टमाटरको फलोंमें गिना जाता है। अकेला या अन्य सब्जियोंके साथ पकाकर व्यंजनकी भाँति खाया जाता है। सलाद और चटनीमें इसका प्रयोग तो भूमण्डलके अधिक भागमें हो रहा है। अच्छे पके टमाटरोंको कच्चा या सलादमें खाना सबसे अच्छा रहता है। बीमारोंके लिये इसका यूषके रूपमें प्रयोग अधिक पसन्द किया जाता है। यूरोप और अमेरिकामें टमाटरका रस कभी-कभी नारंगीके रसका प्रतिनिधि समझकर उन बच्चोंको दिया जाता है जो ऊपरके दूध पर पाले जा रहे होते हैं। पूरे पके टमाटरको कुचलकर मलमलके साफ कपड़ेमें रस निचोड़ लेवें। जीवतिक्तियोंकी कमीसे होनेवाले प्रशीताद (स्कर्वी) आदि रोगोंमें टमाटरका रस देनेसे लाभ होता है।

◆

(२९४) डिजिटेलिस (दीजताल)

फ़ैमिली : स्क्रोफुलारिआसे (Family : Scrophulariaceae)

नाम—(अ०) कफ़ुस्सालब (अनुवाद), दीजताल (नवीन); (फा०) दस्तानए रोबाह (अनुवाद); (सं०) हृत्पत्री, तिलपुष्पी, घंटावीणा, अंगुलपिधान (नवीन); (लै०) **डिजिटालिस पूर्पूरेआ (Digitalis purpurea** Linn.); (अं०) फॉक्स ग्लव (Fox glove) पर्पल् फॉक्सग्लव (Purple fox-glove)।

वक्तव्य—पोपुलर नेम्स ऑफ ब्रिटिश प्लान्ट्स (Popular names of British Plants (1870)के लेखक प्रायर (Prior)के मतसे फॉक्सग्लव ऐंग्लो-सैक्सन-फॉक्सेजग्ल्यु (Foxes-glew)से जो लटकती हुई घंटियोंसे युक्त एक प्राचीन वाद्य यंत्र है, व्युत्पन्न है। उम्दतुल्मोहताजके लेखकके मतसे यद्यपि यह (**D. lanata** Ehrh.–Grecian foxglove); यूनानमें भी उत्पन्न होता है तथापि यह सिद्ध होता है कि यूनानीचिकित्सकोंको इसका ज्ञान नहीं था। सर्वप्रथम **डॉक्टर ब्लूरंडाने** सन् १७२१ ई० में और उसके बाद **डॉक्टर मुरेने** सन् १७८८ ई०में इसका उल्लेख किया।

उत्पत्तिस्थान—यूरोप, ब्रिटिश द्वीपसमूह, यूनान और भारतवर्षके हिमालय पर्वत पर यह उत्पन्न होता है। कश्मीरके तंगमर्ग और किश्तवारमें ६०००-७००० फुटकी ऊँचाई पर तथा कुमाऊँ, दारजिलिंग और नीलगिरि पर इसकी खेती की जाती है।

वर्णन—इसके क्षुप और पत्र गीदड़तम्बाकूके समान तथा क्षुपकी ऊँचाई भूमिभेद एवं जलवायुके प्रभावानुसार २ फुटसे लेकर ५-६ फुट तक होती है। मूलपत्र ८ या ९ इंच दीर्घायताण्डाकार या इससे अधिक लम्बे और ३-४ इञ्च चौड़े नीचेकी ओर सपक्षवृन्तसमन्वित गोपुच्छाकार, सपक्ष भागमें सिरा व्याप्त, मध्यपर्शुकासे सिरा न्यूनकोणीय, अधःपृष्ठ पर सिरा स्पष्ट (उभरी हुई) और ऊर्ध्व पृष्ठ पर अस्पष्ट (दबी हुई) जिससे पत्रपृष्ठ जालनुमा दिखाई

देता है। रोम ह्रस्व जो अधःपृष्ठको घनमखमली पीताभहरित धरातलमय बनाते हैं; किन्तु ऊर्ध्वपृष्ठ पर वे अपेक्षाकृत अधिक विरल (विकीर्ण) अल्प एवं सूक्ष्म और पत्रवृन्त पर दीर्घ एवं रेशमके समान होते हैं। पत्रप्रांत अनियमित रूपसे दंतित होते हैं। स्वाद अतितिक्त, सूखे पत्तोंकी गंध चायके समान होती है। **पुष्प** तिलके पुष्पोंके समान, किंतु उनसे बड़े होते हैं। **पुष्पकाल** भारतमें अप्रैलसे जूनके अन्त तक और पाश्चात्य देशोंमें जुलाईसे सितम्बर तक है।

उपयुक्त अंग—केवल पत्र। **संग्रहकाल**–पूर्ण पुष्पित अवस्थामें।

रासायनिक संगठन—डिजिटोनीन (Digitonin), डिजिटेलाइन (Digitaline), डिजिटेलीन (Digitalin), डिजिटॉक्सीन (Digitoxin) और डिजिटीन (Digitin) नामक ये पाँच विशेष वीर्यवान् तत्व (Glycosides) होते हैं। इनके अतिरिक्त दो प्रकारके अम्ल हैं जिनके नाम 'डिजिटेलिक एसिड' और 'एण्टीरिहानिक एसिड' हैं। इनके सिवाय कुछ इतर उपादान, यथा श्वेतसार, निर्यास, कुछ लवण एवं रंगीन पदार्थ तथा किसी अंश तक कषायीन, शर्करा और उत्पत् तैल आदि भी होते हैं।

कल्प तथा योग—चूर्ण $\frac{१}{४}$ से $\frac{१}{२}$ या १ रत्ती तक; फाण्टके रूपमें ६ मा०से १ तोला (६ ग्रामसे १२ ग्राम) तक; गोली या चक्रिका।

गुण-कर्म—अल्पमात्रामें अवसादक (नाड़ी और हृदय), हृद्‌गतिसुधारक, मूत्रजनन, ज्वरघ्न और शोथ-निवारक है। अधिक बड़ी मात्रामें तीव्र हृदयसंकोचक, विवमिषाजनक, वमन-विरेचनकारक तथा उग्र-दाहजनक और मादक–विष होनेके कारण प्राणसंहारक है। इसलिए निश्चित मात्रासे अधिक प्रमाणमें नहीं देना चाहिये।

उपयोग—हृदयकी कतिपय दशाओंमें विशेषकर हृदयोत्तेजक एवं हृदयशक्तिवर्धकरूपमें इसका उपयोग किया जाता है। वृक्करोगजनित हृद्विकारोंमें तथा शोथ (Dropsy) एवं मूत्रावरोधमें भी इसका उपयोग करते हैं। इसमें संचयी (संचित होनेका) स्वभाव होनेसे बड़ी सावधानीपूर्वक इसका उपयोग करना चाहिए। डिजिटेलिसकी क्रिया हृदय, रक्तवाहिनियों और रक्ताभिसरण पर होती है[1]। इसकी क्रिया विशेषतः हृदय, हृदयमें जानेवाली नाड़ी और हृदयके केन्द्रस्थानपर होती है। छोटी रक्तवाहिनियोंपर भी इसकी क्रिया होती और उनका संकोचन होता है; हृदय अपना कार्य जोरसे और शीघ्र करता है। इसलिए हृदयको अधिक विश्रांति मिलती है, नाड़ी सावकाश चलती है और कुछ समयके अनन्तर मूत्रका प्रमाण भी बढ़ता है। ऊपर लिखे हुए गुणोंके कारण ज्वर किंवा इतर रोगोंमें जब हृदयमें शिथिलता आती है तब डिजिटेलिस देते हैं। जलोदर और सर्वांगशोथमें जो विशेषतया हृद्विकार अथवा वृक्क-विकारजन्य हो अर्थात् हृदयोदर और वृक्कोदरमें इससे दो प्रकारसे लाभ होता है। प्रथम हृदयको शक्ति मिलती है, दूसरे मूत्रका प्रमाण बढ़कर उदर कम होता है। इस प्रकारके उदरमें मूत्रजनन, स्वेदजनन और विरेचन औषध इस गणके साथ देना चाहिए। इस औषधिके सेवनकालमें रोगीको बिछौनेपर लेटाये रखना चाहिए और दूध, शर्करा, मांसरस आदि पौष्टिक अन्न देना चाहिए। दमा, खाँसी, क्षय फुफ्फुससे रक्तस्राव होना और फुफ्फुसशोथ इन रोगोंमें डिजिटेलिससे लाभ होता है। (औ० सं०)।

विष-लक्षण

डिजिटेलिसकी अधिक मात्रासे पहले उत्क्लेश होता है, उसके अनंतर वमन और वमनके थोड़ी देर बादही विरेचन भी आरम्भ हो जाते हैं। वमन द्वारा उत्सर्गित होनेवाले पदार्थ का रंग घासके समान हरा होता है। यदि शीघ्र ही विष लक्षणोंकी शान्तिका उपाय न किया जाय तो रोगी २--३ घण्टेमें ही मर जाता है।

---

[1] रक्ताभिसरण पर क्रिया करनेवाला द्रव्योंका एक गण है। उससे डिजिटेलिसके अतिरिक्त कनेर, जंगली प्याज (काँदा), कहवा, कपूर, जवाखार, ताँबा, जस्ता, एरंडखर्बूजेके पत्र, मकाईके ऊपरके केश, ये प्रधान हैं। यह गण हृदयोत्तेजक, हृदयशक्तिवर्धक और मूत्रजनन है। ये सब द्रव्य विष हैं। इसलिए निश्चितमात्रासे अधिक प्रमाणमें नहीं देने चाहिए। जो गुणकर्म डिजिटेलिसके हैं, वे ही थोड़े बहुत प्रमाणमें इस गणके अन्य द्रव्योंमें भी हैं। (औ. सं.)।

विष-लक्षणोंकी चिकित्सा—तुरत किसी वमनकारक औषधि द्वारा अथवा स्टॉमक पम्प द्वारा रोगीके आमाशयका प्रक्षालन करना चाहिए और उसे यथेष्ट मात्रामें स्नेहपान कराना चाहिए तथा निवारण औषधिके रूपमें उसे कषायाम्ल (टैनिक एसिड) का प्रयोग कराना चाहिए। जीवनीयशक्तिकी रक्षार्थ उसे सुरा सेवन करानी चाहिए। इसके अतिरिक्त बछनागको भी इसका प्रतिविष समझा जाता है। ऐसा समझनेका कारण यह है कि क्रियायें एक दूसरेके प्रतिकूल होती हैं।

•

(२९५) तगर (सुगन्धवाला)

फ़ैमिली : वालेरियानासे (Family Ualerianacae)

नाम—(हिं०; बं०) मुश्क (ष्क) बाला (क०), तगर; (फा०) असारून हिन्दी; (उ०) रीशावाला; (सं०) तगर, नत वक्रं; (पं०; बाजार) सुगन्धबाला; (बम्ब०; गु०) तगरगंठोडा; (म०) तगरमूल; (ले०) **वालेरिआना जटामांसी** (**Valeriana Jatamansi** Jones.) (**पर्याय–वालेरिआना वालकीची** *V. Wallichi* Dc.); (अं०) इण्डियन वैलेरियन (Indian Velerian)।

वक्तव्य—यह जटामांसो (बालछड़)की ही जातिका एक अन्य भेद है, जो गुणमें **वालेरिआना आफ्फीसीनालिस** (**Valeriana officinalis**)के समान होता है तथा उसका उत्तम प्रतिनिधि है। पाश्चात्य चिकित्सामें उसके स्थानमें ग्राह्य प्रतिनिधिस्वरूप यह स्वीकृत भी है। इसे आयुर्वेदीय तगर मानना तो युक्तियुक्त प्रतीत होवा है, किंतु यूनानी वैद्यकके असारूनकी उत्तम प्रतिनिधि होनेपर भी उससे भिन्न द्रव्य है। (विशेष दे० 'असारून')।

उत्पत्तिस्थान तथा वर्णन—तगर हिमालयके कश्मीर, गढ़वाल, कुमाऊँ, नेपाल आदि प्रदेशोंमें ५,०००--१०,००० फुटकी ऊँचाई पर होता है। बाजारमें तगरकी जड़के एक-डेढ़ इंच लम्बे अंगुलीके बराबर मोटे भंगुर टेढ़े और उग्रगन्धवाले टुकड़े मिलते हैं। तगरके नामसे कहीं-कहीं काले रंगकी चन्दनके समान भारी लकड़ी या उसका चूरा बिकता है, वह तगर नहीं, अपितु कालानुसार्य है। 'तगर' नामका सफेद फूलोंवाला एक छोटा वृक्ष होता है, वह भी असली तगर नहीं है।

रासायनिक संगठन—इसमें एक उत्पत् तेल, दुर्गन्धयुक्त अम्लद्रव्य, राल और मधुर पदार्थ होता है।

प्रकृति—उष्ण एवं रूक्ष।

गुणकर्म तथा उपयोग—यह उन्माद, कुष्ठ, सिरदर्द, आँखका दर्द, नेत्ररोग, विष, नशा, दिलकी धड़कन और मृगी इन रोगोंमें गुणकारक है। इसके उभय भेदोंके गुण समान हैं। इसे सुगंधियोंमें डालते हैं। (ख० अ० भा० ३ पृ० १८०)।

आयुर्वेदीय मत—तगर कटु, तिक्त, कषाय, कटुविपाक, उष्णवीर्य, लघु, स्निग्ध, शीतप्रशमन तथा सन्निपात, नेत्ररोग, शिरोः रोग, विष, रक्तविकार, भूतावेश और अपस्मार को दूर करनेवाला है। (च० सू० अ० ४, सु० सू० अ० ३८; ध० नि०; कै० नि०)।

नव्यमत—तगर वातहर, संकोचविकासप्रतिबंधक (आक्षेपहर), रक्तानुधावन और नाडीसंस्थानके लिए उत्तेजक, पौष्टिक, चेतनाकारक, वेदनास्थापन और व्रणरोपण है। इसे अधिक मात्रामें देनेसे चक्कर आते हैं, हिचकी आती है और वमन होते हैं। इसके फांटसे हृदयकी शक्ति और नाडीकी गति और रक्तानुधावनका बल घटता है। इससे जैसे शरीरमें गरमी आ रहा हो, ऐसा प्रतीत होता है और पीछे पसीना आता है। इसकी क्रिया रक्तानुधावन और दोनों प्रकारकी (संज्ञावह और चेष्टावह) नाडियों पर होती है। इससे संज्ञावहनाड़ियोंके प्रान्तोंकी स्पर्शग्रहणकरनेकी शक्ति कम होती है और उनमें शून्यता आती है। इसलिए इसमें वेदनास्थापन धर्म है। घाव, दुःख-

दायक व्रण, अस्थिभग्न (काण्डभग्न) और तीव्र आमवातमें सूजी हुई संधिकी पीड़ा कम करनेके लिए इसके फांटका उपयोग करते हैं। अधिक दिन ज्वर रहनेसे हृदय और सम्पूर्ण शरीरमें शिथिलता आती है और वात-पित्त-कफ तीनों दोषोंका प्रकोप होता है। उक्त अवस्थामें यह उत्तेजक एवं चेतनाकारक होता है। इससे प्रलाप और अस्वस्थता कम होकर नाड़ी सुधरती है। कूकरखाँसी और श्वासनलिकाके संकोचविकाससे उत्पन्न श्वासमें इसका उत्तम उपयोग होता है।

●

(२९६) तज

फ़ैमिली : लॉउरीने (Family : Laurineae)

नाम—(हिं०; गु०) तज; (यू०) Kassia (D.१ १२); (अ०) सलीखा, क़िर्फ़ा; (सं०) त्वक्, गुड़त्वक्, सैंहलम्; (ले०) **सीन्नामोमुम्** टामाला (**Cinnamomum tamala** Nees.), **सिन्नामोमुम् नीटिडुम्** (**C. nitidum** Hooker.); (अं०)सिनेमन् (Cinnamon), इण्डियन सिनेमन् (Indian cinnamon), कास्सिया कॉर्टेक्स (Cassia cortex)।

वर्णन—यह दालचीनी जातीय वृक्ष (दालचीनीसे भिन्न)की छाल है जो दालचीनीके समान किन्तु उससे मोटी और तेजीमें कम होती है। इसका स्वाद और गंध सुगन्धमय दालचीनीहीके समान, किन्तु भिन्न होती है। इसे 'भारतीय दालचीनी' कह सकते हैं। जलके साथ पीसनेसे यह पिच्छिलतायुक्त हो जाती है। बंगालीमें इसे 'नालुका' कहते हैं, ऐसा श्री यादवजी महाराजका मत है। बाजारमें मिलनेवाला **तेजपात** या तमालपत्र इसीके पत्र हैं। दक्षिण भारतवर्षमें इसके अपक्व सूखे फलको **काला नागकेसर** कहते हैं।

रासायनिक संगठन—इसमें एक उत्पत् तेल, गोंद, कषायाम्ल, शर्करा और सुगन्ध तत्व आदि उपादान होते हैं।

उपयुक्त अंग—त्वक् (छाल)।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें उष्ण एवं रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—शरीरके अंग-प्रत्यंगको बलदेनेवाला, यकृदामाशयबलदायक, वातानुलोमक, संग्राही, आर्तवजनन और कफोत्सारि है। यह मसालेमें डाला जाता है। इससे आहार सुगंधित हो जाता और आमाशय बलवान् (दीप्त) होता है। मसालेके अतिरिक्त शरीरके अंग-प्रत्यंगों, विशेषकर आमाशय और यकृत्को शक्ति देनेके लिये इसका अन्य उपयोगी औषधद्रव्योंके साथ उपयोग करते हैं। इसे आर्तवप्रवर्तनकारी योगोंमें डालते हैं। संग्राही होनेके कारण दस्तोंको बन्द करनेके लिए उपयुक्त औषध-द्रव्योंके साथ इसका चूर्ण खिलाते हैं। प्रसेक, प्रतिश्याय और कासमें इसे अकेला या अन्य औषधद्रव्योंके साथ मधुमें मिलाकर चटाते हैं। **अहितकर**–वृक्कके रोगोंमें। **निवारण**–कतीरा। **प्रतिनिधि**–दालचीनी। **मात्रा**–२ ग्रामसे ३ ग्राम (२ माशेसे ३ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—तज स्वादिष्ट, तिक्त, कटु (चरपरा), शीतवीर्य (रा० नि०), उष्णवीर्य (भा० प्र०), रूक्ष, लघु, पित्तजनक, कण्ठको शुद्धकरनेवाला, शुक्र और आमको शान्त करनेवाला, कफवातनाशक तथा कफ, कास, कण्डू, अरुचि, बस्तिरोग, हृदयरोग, वातार्श, कृमि, पीनस और शुक्रका नाश करता है (रा० नि०; भा० प्र०)। तजका तेल संग्राही, वान्ति (उलटी) और मिचलीको दूर करनेवाला है। दन्तरोगोंको दूर करनेवाला तथा मंदाग्नि, वात, अफरा और आक्षेपका विनाशक है तथा रक्तस्राव अर्थात् रुधिरके गिरनेपर इसे पानीमें डालकर लगाना चाहिए। (आत्रेय सं०)।

●

(२९७) तमाकू

फ़ैमिली : सोलानासे (Family : Solanaceae)

नाम—(हिं०) तमाकू (खू), सुर्ती; (सं०) ताम्रकूट, कलञ्ज; (बं०) तामाक (कु); (गु०) तंबाकु, तमाकु; (म०) तंबाखू, गुडाखु; (ता०) कट्टु पापल्लय; (ले०) **नीकोटिआना टाबाकुम् (Nicotiana tabacum** Linn.)। (जंगलीतमाकू) **लोबेलिआ नीकोटिनेफोलिआ (Lobelia nicotinaefolia** Heyne. ex Roth.); (अं०) इंडियन टुबैको (Indian tobacco)।

वक्तव्य—इस प्रकारका तमाकू भारतवर्षमें बम्बईसे ट्रावन्कोर तक और लंकामें जंगली होता है। तामिलमें इसे 'कट्टू पापल्लय' अर्थात् **जंगली तमाकू** और अंग्रेजीमें **'वाइल्ड टुबैको'** कहते हैं। इसके विदेशी भेदको लेटिनमें **लोबेलिआ इन्फ्लाटा (Lobelia inflata)** कहते हैं। यह अमरीकाका जंगली तमाकू हैं।

उत्पत्तिस्थान—यह अमेरिकाका मूलनिवासी है। अधुना भारतवर्षके सब भागोंमें इसकी खेती की जाती है। टर्की या फारसमें होनेवाली इसकी एक अन्य जाति **नीकोटिआना रुस्टिका (Nicotiana rustica** Linn.) यह उत्तरभारतके कुछ भागोंमें बोई जाती है। इसे 'कलकतिया तमाखू' कहते हैं।

वर्णन—यह एक प्रसिद्ध **क्षुप** है। इसके सूखे पत्र भारतवर्षके प्रत्येक बाजारमें खरीदे जा सकते हैं। इसकी गंध विशेष प्रकारकी और गम्भीर तथा स्वाद अप्रिय, तिक्त एवं चरपरा होता है।

रासायनिक संगठन—इसमें निकोटीन (Nicotine) नामक एक प्रवाही क्षारोद (रंगरहित तेल) जो विषैला होता है २·४% तथा निकोटिआनिन (Nicotianin) नामक एक उत्पत् कर्पूरीय सत्व आदि उपादान होते हैं। **उपयुक्त अंग**—आर्द्र और शुष्क पत्र, डांटा और पंचांग।

कल्प तथा योग—सुनून तम्बाकू आदि।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें **उष्ण एवं रूक्ष**।

गुण-कर्म तथा उपयोग—वामक, श्लेष्मनिःसारक, वेदनास्थापन, छिक्काजनन, द्रवाकर्षणकर्ता (जाज़िब रतूबात), श्वयथुविलयन, उपशोषण, दोषनिर्हरणकर्ता और कृमिघ्न है। यह विशेषरूपसे द्रवोत्सर्गकर्ता है। तम्बाकू अधिकतया हुक्कामें पीने और पानमें रखकर खानेके काममें आता है। इससे हानिके सिवाय कोई लाभ नहीं होता। हां, इतना अवश्य होता है कि हुक्का पीनेसे अन्त्रमें कुछ उत्तेजना उत्पन्न होती है जिससे कब्ज दूर हो जाता है और वायु अनुलोम होता है। परन्तु इसका अभ्यासी हो जाने पर कभी-कभी कठिनाई प्रतीत होती है। इसके अतिरिक्त कासरोगियोंमें हुक्का पीनेसे खांसी उठकर छातीमें संचित कफ निकलकर वह शुद्ध हो जाता है। इसके पत्रको उबाल (क्वाथ) कर या जलमें पीस-छानकर पिलानेसे सर्पदंश और श्वासरोगमें बहुत उपकार होता है। इन रोगोंमें कभी गुड़ या शीरामें बने तमाकूको जलमें घोलकर पिला देते हैं। इससे वमन होकर बड़ा उपकार होता है। श्वासकालमें इसका शर्बत बनाकर पिलाया जाता है तथा यथाविधि इसका क्षार (नमक) प्राप्त करके पानमें रखकर खिलाया जाता है। इसका हरा पत्ता कुनकुना सुहाता गरम करके बांधनेसे वृषणशोथ और वृषणशूल आराम होता है। इसे मुखमें रखकर चबानेसे दंतशूल आराम होता है और द्रवोंको आकर्षित करके थूकके द्वारा उत्सर्गित करता है। इसके अतिरिक्त इससे एक मंजन भी बनाया जाता है जो **सुनूनतंबाकूके** नामसे प्रसिद्ध है और दंतशूल दूर करने और मसूढ़ोंसे दूषित द्रव शोषण करनेके लिये प्रयुक्त होता है। इसके सूखे पत्रको बारीक पीसकर नस्य (हुलास) बनाते हैं। प्रसेक और प्रतिश्यायके बन्द हो जानेसे शिरःशूल हो जाता है, उसको नष्ट करनेके लिये इसे सूँघते हैं। तमाकूके गुलको जो हुक्का पीनेके बाद चिलममें जलकर (सोख्ता) रह जाते हैं, दोबारा जलायें, यहाँ तक कि

वह श्वेत भस्म (राख) हो जायँ। इस राखको कासश्वासमें खिलाते हैं। हुक्काकी नैमें जो मैल इकट्ठा हो जाती है उसको प्रारम्भिक मोतियाबिंद (नुजूलुऽमाऽ), रतौंधी और धुंधको नष्ट करनेके लिये आँखमें लगाते हैं। यह व्रणोंको सुखाता है, दाँतोंको दृढ़ करता और वेदनाको शांत करता है। **अहितकर**—उष्ण प्रकृति, हृदय और मस्तिष्कके लिये। **निवारण**—ताजा दूध। **प्रतिनिधि**—प्रतिनिधि रहित। **मात्रा**—वमनार्थ ३ ग्रामसे ६ ग्राम (३ माशे से ६ माशे) तक।

●

(२९८) तरबूज

फ़ैमिली कूकूरबिटासेः (Family : Cucurbitaceae)

नाम—(हिं०) तरबूज, हिनवाना, कलींदा; (अ०) **बित्तीख़ हिंदी, बित्तीख़-** (-शामी,-रूमी,-नब्ती इत्यादि), बित्तीख़ अख़्जर, बित्तीख़ ज़िक्क़ी; (फा०) हिंदुवानः, खरपुज़ए हिंदी, तर्बुज़; (सं०) कलिङ्ग, मांसफल, तरबुज; (बं०) तरमुज; (मार०) तरबूज; (म०) कलिंगड; (लैं०) **सिट्रयुलस् वुँल्गेरिस (Citrullus vulgaris** Schrad.); (अं०) वॉटर मेलन (Water melon)।

उत्पत्तिस्थान—यह सर्वत्र भारतवर्षमें होता है।

वर्णन—एक बेलका प्रसिद्ध फल है। इसका गूदा सफेद या गुलाबी, मीठा और स्वादिष्ट होता है। इसमें काले या लाल चमकीले बीज निकलते हैं। इनको फारसीमें 'तुख़्मतरबूज (हिंदुवानः)' और अरबीमें '**बज़ुल्बित्तीख़ोल-हिंदी**' कहते हैं।

रासायनिक संगठन—इसके १०० तोले बीजोंमेंसे ३० तोला पीला चिकना स्थिरतेल निकलता है।

उपयुक्त अंग—बीजका मग्ज, फलका रस और गूदा।

कल्प तथा योग—लऊक़ तर्बुज़, लऊक नज़ली आब तर्बुज़वाला आदि।

प्रकृति—(फल) दूसरे दर्जेमें शीत एवं तर।

गुण-कर्म तथा उपयोग—शीतजनन (दाहप्रशमन), पित्त और रक्तकी तीक्ष्णताको शमन करनेवाला, मूत्रजनन और सर है। दाहप्रशमन और संशमन होनेके कारण रक्तोद्वेग, पित्ताधिक्य, तृषाधिक्य, आमाशयशोथ, उष्णज्वरों, जैसे—पित्तज ज्वर और आन्त्रिक सन्निपातज्वरमें तरबूजका रस (पानी) पिलाया जाता है। तरबूजका रस **लऊक़ आबे तरबूज़वाला**में जो उरःक्षत, राजयक्ष्मा और शुष्ककासके लिये प्रयुक्त होता है, पड़ता है, विशेषकर सिकंजबीनके साथ पिलानेसे यह खूब मूत्र लाता है और वृक्क एवं बस्तिका शोधन करता है। मूत्रल होनेके कारण यह वृक्काश्मरी और कामलामें भी गुणकारक है। तरबूजके मग्जको पित्तज अतिसार और अन्त्रक्षोभमें खिलानेसे उपकार होता है। **अहितकर**–शीतप्रकृतिको और पुंस्त्वोपघाति है। **निवारण**–मधु और गुलकंद। **प्रतिनिधि**–पेठा।

बीज (तुख़्म तरबूज)। प्रकृति—दूसरे दर्जेमें शीत एवं तर।

गुणकर्म—शीतजनन, स्नेहन, बृंहण, उरोमार्दवकर, पित्तरक्तसंशमन और मूत्रजनन है। उपर्युक्त गुणकर्मके कारण तरबूजके बीजको कार्श्य, वृक्कदौर्बल्य, रक्तोद्वेग, पित्ताधिक्य, तृष्णाधिक्य, आमाशयशोथ, फुफ्फुस एवं फुफ्फुस-प्रणाली (कसबारिया)गत कर्कशता, उष्णकास, रक्तष्ठीवन और उष्णज्वरोंमें बहुधा शीरा निकालकर पिलाया जाता है। स्नेहन और दाहप्रशमन होनेसे मस्तिष्कगत रूक्षता और अनिद्रामें यह पान, लेप और नस्यकी भाँति प्रयुक्त

होता है। यह उरःक्षत और राजयक्ष्मामें तथा मूत्रल होनेसे सदाहमूत्र, सूजाक और मूत्रकृच्छ्र (उष्णता एवं रूक्षताजन्य)में भी उपयोग किया जाता है। **अहितकर**–प्लीहाको। **निवारण**–मधु और मिश्री। **मात्रा**–५ ग्रामसे ६ ग्राम (५ माशेसे ६ माशे) तक।

आयुर्वेदीयमत—तरबूज मधुर, शीतवीर्य, तृप्तिकारक, बल्य, वृष्य, वीर्यपुष्टिवर्धक तथा पित्त, दाह और श्रम इनका नाश करनेवाला है। (रा० नि०)। **कच्चा तरबूज** मधुर, शीतवीर्य, भारी, बल्य, संतर्पण, पुष्टिकर, मलस्तम्भक, कफकारक तथा पित्त, शुक्र, धातु और दृष्टिका नाश करनेवाला है। **पका तरबूज** गरम, क्षारयुक्त, पित्तजनक और वातकफनाशक है। (नि० र०; भा० प्र०)। **तरबूजके बीजका मग्ज**–मधुर, रुचिकर, बल्य और रक्तवर्धक है। (नि० र०)।

●

(२९९) तरामीरा

फ़ैमिली : क्रूसीफ़ेरे (Family : Cruciferae)

नाम—(हिं०) तर (-रा) मि (-मी) रा, तारामि(-मी)रा, तिरमिरा; (यू०) Eujomon (D. 2. 169.); (अ०) जिर्जीर; (सं०) तुवरिका, तुवरी (भा० प्र०); (ग्रामीण) तीरा, तिउरा; (पं०) तरामिरी; (बं०) सेतसारिश, सफेदसरसों; (कुमाऊँ; पश्चिम) तिरा, दुआँ; (लें०) **एरुका साटिवा (Eruca Sativa** Mill.); (अं०) रॉकेट (Rocket)।

उत्पत्तिस्थान—यह भूमध्यसागरीय देशोंका आदिवासी है। अधुना भारतवर्षके बहुतसे भागोंमें इसकी खेती होती है। खेतोंमें शीतकालीन फसलोंके साथ यह स्वयंजात भी होता है।

वर्णन—यह एकवर्षायु या द्विवर्षायु सरसोंके समान क्षुप है, जो शीतकालीन फसलोंके साथ खेतोंमें होता है। पौधे रोमश अथवा किंचित् मसृण कांडवाले ७·५ सें० मी० से २० सें० मी० (३ से ८ इंच) लम्बे प्रायः पत्र अर्धानुत्तर पक्षवत् खण्डित, खण्ड रेखाकार—आयताकार श्वेताभ या पीताभ और बैंगनी सिराओंयुक्त पुष्पोंवाले होते हैं। इसके बीज मूलीके बीजके समान होते हैं।

रासायनिक संगठन—बीजोंमें तैल, ऐल्ब्युमिनाइड्स, विलेय कार्बोहाइड्रेट्स, सेलूलोज, खनिज द्रव्य और सिलिका प्रभृति उपादान होते हैं।

उपयुक्त अंग—बीज एवं बीजतैल।

प्रकृति—मलभूत द्रवोंसे युक्त तीसरे दर्जेमें उष्ण एवं रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—आहारपाचन, वातानुलोमन, शुक्रल, वाजीकर, मूत्रार्त्तवजनन और शोणितोत्क्लेशक। तरामीराके बीजों (तुख्म जिर्जीर)को बहुधा वाजीकरणके लिये उपयोग करते हैं। इनको पीसकर थोड़ा नमकके साथ अर्धभृष्ट अण्डेपर डालकर खिलाते हैं और वाजीकर योगोंमें डालते हैं। लेखन और शोणितोत्क्लेशक होनेसे झाईं, छीप, किलास आदि रोगोंमें इसका पतला लेप करते हैं। **अहितकर**–उष्णप्रकृतिको। **निवारण**–लेखनकर्ममें हुस्नयूसफ। **मात्रा**–१ ग्रामसे ३ ग्राम (१ माशासे ३ माशे) तक। बीजतैल (तुवरीतैल)का प्रयोग चर्मरोगोंमें किया जाता है।

●

(३००) ताड़

फ़ैमिली : पामासे ((Family : Palmaceae)

नाम—वृक्ष (हिं०) ताड़, ताल; (फा०) दरख़्ते ताड़ी; (सं०) ताल, ताड; (बं०) तालगाछ; (म०; गु०) ताड; (ले०) **बोरास्सुस फ़्लाबेल्लिफेर Borassus flabellifer** L. (**पर्याय–बोरास्सुस फ़्लाबेल्लिफॉर्मिस** *B. flabelliformis* Rox.); (अं०) पाल्मिरा ट्री (Palmyra tree)। तालरस (हिं०; फा०) ताडी; (सं०) **तालरस** (अं०) **पाल्मिरा टॉडी** (Palmyra toddy)।

उत्पत्तिस्थान—भारतवर्षके समस्त उष्ण कटिबंधस्थित भाग, लंका और ब्रह्मा आदि देशोंमें यह लगाया जाता है और आपसे आप भी उगता है।

वर्णन—यह एक प्रसिद्ध शाखारहित बहुत बड़ा **वृक्ष** है। **फल** नारियलके बराबर काला और कड़ा होता है। फलका गूदा रेशाबहुल ललाई लिए पीला और मधुर होता है तथा खाया जाता है। वृक्षसे एक प्रकारका सफेदी लिए हुए रस टपकता है जिसको ताड़ी कहते हैं। इसकी गंध अप्रिय और स्वाद खट्टापन लिए मीठा होता है। कच्चे फलका गूदा सफेद मांसवत् और मीठा होता है।

रासायनिक संगठन—निर्यास, वसा और अॅल्ब्युमिनॉइड्स।

उपयुक्त अंग—मूल, पुष्पयुक्त पुष्पदंड, **तालरस** (ताडी), त्वचा और फल।

प्रकृति—ताड़के कच्चे फलका मग़्ज शीत और तर। पका फल शीत एवं रूक्ष है। ताडी शीत एवं तर है। सिरका पहले दर्जेमें उष्ण और तीसरेमें रूक्ष तथा पाचन है। आयुर्वेदके मतसे शीतवीर्य एवं स्निग्ध (च०) है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—ताड़के पकेफलका मग़्ज (गूदा) सौमनस्यजनन, हृदयबलदायक, दाहप्रशमन और वीर्यपुष्टिकर है। ताड़ी मदकारी (ताजी मादक नहीं होती), रक्तप्रसादन, सर, वाजीकर, बल्य, बृंहण, दाहप्रशमन (संतापहर), मूत्रल और उदरकृमिनाशन है। ताड़के कच्चे फलको काटकर उसका मग़्ज निकाल लेते हैं। यह अत्यन्त रसीला, मीठा, स्वादिष्ट और फालूदाके समान घनीभूत होता है। बलवर्धन, सौमनस्यजनन और संतापहरणके लिए इस मग़्जको चाकूसे बारीक-बारीक फाँकों (काशों)में तराशकर गुलाबपुष्पार्कमें तर करके मिश्रीसे मीठा करके खाते हैं। प्यास बुझानेके लिए यह अत्युत्तम है। इसके अतिरिक्त इसके सेवनसे शरीर पुष्ट होता है; किन्तु यह दीर्घपाकी (देरहज़म) है। इसके पके फलोंके बीजका गूदा निकालकर खानेसे खूब मूत्र आता है और मूत्रकी जलन दूर हो जाती है। ताडी बहुधा शौकिया भी पी जाती है। यद्यपि अपने मदकारी गुणके कारण यह उपयोग करने योग्य नहीं है; तथापि लाभकी दृष्टिसे यह पुष्कल उपयोग की जाती है। दुर्बल एवं रोगोत्तरकालीन दौर्बल्ययुक्त व्यक्ति इसके उपयोगसे बलवान् और स्थूल हो जाते हैं। नपुंसकताके रोगी भी इससे यथेच्छ लाभ प्राप्त करते हैं। शोक एवं चिंताकुल व्यक्ति भी उनके निवारणके लिए इसको पीते हैं। यह उल्लास (सौमनस्य) एवं सुरूर पैदा करती है। थके-माँदे व्यक्ति इसके पीनेके बाद ताजादम हो जाते और उनकी थकावट दूर हो जाती है। मलावरोधीको इसका उपयोग करानेसे मलावरोध दूर हो जाता है। इसे प्यासकी दशामें पीनेसे प्यास दूर हो जाती है। यह मूत्रकी जलनको दूर कर देती है और मूत्रका प्रवर्त्तन करके मूत्रनलिका शुद्ध करती है। इसलिए यह सूजाकमें गुणकारी है। इसे नीहारमुँह पीनेसे उदरकृमि नष्ट हो जाते हैं। थकानको दूर करनेके लिए चायकी जगह इसका उपयोग करते हैं। इसके अतिरिक्त दुर्बल एवं कृश व्यक्ति इसका उपयोग करके स्थूल हो जाते हैं।

आयुर्वेदीय मत—**तालका फल** मधुर, शीतवीर्य, गुरु, स्निग्ध, बल्य, बृंहण तथा पित्तहर है। **बीज** विपाकमें मधुर, मूत्रल तथा वातपित्तहर है। ताल–नारियल और खजूरके वृक्षकी मज्जा (चोटीपर होनेवाला मीठा

गूदा) रस और विपाकमें मधुर, शुक्रल, वातहर तथा कफवर्धक है। (च० सू० अ० २७; सु० सू० अ० ३८, ४६)। वि० दे० 'खजूर'।

●

(३०१) तालमखाना

फ़ैमिली : आकान्थासे (Family : Acanthaceae)

नाम—(हिं०) तालमखाना(-रा); (सं०) कोकिलाक्ष, इक्षुरक; (बं०) कुलेखाड़ा, कुलेकाँटा; (म०) कोलसुंदा, कालसंद, तालिमखाना; (गु०) एखरो; (ले०) **हीग्रोफ़िला आउरीकुलाटा (Hygrophila auriculata** Schum.) Heine. (**पर्याय**–*H. spinosa* T. And.); *Astercantha longifolia* (L.) Nees.)।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्षमें प्रायः धानके खेतोंमें अथवा उस क्षेत्रमें जलाशयोंके पास इसके स्वयंजात पौधे पाये जाते हैं। बीज (तालमखाना) सर्वत्र बाजारोंमें मिल जाते हैं।

वर्णन—यह एक कँटीले, द्विवर्षायु, छोटे क्षुपके बीज हैं, जो औषधके काम आते हैं। यह छोटे-छोटे, कुछ-कुछ चपटे, विषमाकृति, भूरे, किसी प्रकार तिलकी रूपरेखाके, किन्तु उससे छोटे (बड़ासे बड़ा बीज १/३ सें० मी० लम्बा और १/६ सें० मी० चौड़ा) और खाकी रंगके होते हैं। स्वाद फीका और लबाबी (पिच्छिल) होता है।

रासायनिक संगठन—बीजमें काफी मात्रामें लुआब (पिच्छा–२३ प्रतिशत) एवं पोटैंसियम्के लवण होते हैं, जिन पर इसका मूत्रलगुण निर्भर होता है। इसके अतिरिक्त स्थिर पीला तेल और मांसल पदार्थ (३१ प्रतिशत) होता है।

उपयुक्त अंग—बीज (तालमखाना), मूल, पत्र और पंचांगका क्षार।

प्रकृति—शीत एवं तर (स्निग्ध)। आयुर्वेदमतेन शीतवीर्य (रा० नि०)।

गुण-कर्म तथा उपयोग—वीर्यपुष्टिकर, शुक्रस्तम्भन, वाजीकर और बृंहण। तालमखाना अधिकतया शुक्रप्रमेह, स्वप्नदोष और शुक्रतारल्यको नष्ट करनेके लिये खिलाया जाता है। इसे अकेला दूधके साथ चूर्ण बनाकर खिलाते हैं अथवा उपयुक्त औषधियोंके साथ चूर्ण और माजून बनाकर उपयोग करते हैं। **अहितकर**–आनाहकारक और चिरपाकी है। **निवारण**–मिश्री, मधु और दूध। **प्रतिनिधि**–सालममिश्री, सतावर और तोदरी। **मात्रा–बीजचूर्ण**–१·५ ग्रामसे ३ ग्राम (५ से ७ ग्राम तक) या १½से ३ माशा (५से ७ माशा) तक। **पंचांगका स्वरस**–२ तोला; **मूल**--**क्वाथ**–४ तोला; **क्षार**–१से ५ रत्ती।

आयुर्वेदीय मत—तालमखाना मधुर, तिक्त, शीतवीर्य, शुक्रशोधन, वृष्य, पिच्छिल, संतर्पण, बल्य, रुचिकारक तथा पित्त, कफ, अश्मरी, आमवात, शोथ, तृषा, अरुचि, वातरोग और रक्तविकारको दूर करनेवाला है। (च०सू०अ० ४; रा०नि०; भा०प्र०)।

नव्यमत—तालमखानाकी जड़ उत्कृष्ट शीतल, वेदनास्थापन, बलकारक और मूत्रजनन है। बीज–स्निग्ध, मूत्रजनन और कामोत्तेजक है। पंचांगका क्षार मूत्रजनन है। जड़का काढ़ा मूत्रजनन है तथा सूजाक और बस्तिशोथमें इसे देते हैं। जड़का काढ़ा अथवा पंचांगका क्षार यकृदुदरमें देते हैं। सूजाकमें इसके बीज देते हैं। इसके पत्र, मूल और बीज मूत्रल हैं तथा कामला, शोथ, आमवात, सर्वांगशोथ (Anasarca) तथा मूत्रजननेन्द्रियपथके रोगोंमें इनका प्रयोग करते हैं।

●

(३०२) तालीसपत्र

फ़ैमिली : कोनीफ़ेरे (Family : Coniferae, Taxaceae)

नाम—(हिं०; भा० बाजार) तालीसपतर, तालीसपत्ता; (सं०) तालीस, तालीसपत्र; (बं०; हिं०; पहाड़ी) बिर्मी; (पं०; हिं०) बिर्मि; (गढ़०; कुमाऊँ; चकरौता) थुनेर; (बं०) थूनो; (क०) पोस्ति (-स्तु) ल; (बम्ब०) बर्मी, बिर्मी, ब्रह्मी; (ले०) **टाक्सुस बाक्काटा (Taxus baccata** Linn.); (अं०) यू (yew)।

वक्तव्य—यह वास्तविक **'ब्राह्मी'** और यूनानी निघंटूक्त **'ज़र्नब'**से भिन्न द्रव्य है। ज़र्नब इससे भिन्न होनेपर भी, जैसा कि ज़र्नबके प्रसंगमें कहा जा चुका है, प्रायः यूनानी हकीमोंने इसे ज़र्नब समझा है, यह ठीक नहीं है। इसी प्रकार ब्राह्मीके पर्यायोंमें प्रायः ज़र्नब नाम लिखा मिलता है, यह भी ठीक नहीं है। उक्त प्रमादका कारण यह जान पड़ता है कि, भ्रमवश प्रायः हकीमोंने इसे ज़र्नब समझा है और इसके पर्यायोंमें ब्रह्मी, बिर्मी आदि नाम देखकर ब्राह्मीके पर्यायोंमें ज़र्नब लिख दिया है। यह आयुर्वेदका **'स्थौणेयक'** हो सकता है। स्थौणेयकका उल्लेख चरक चि०अ० ३, **अगुर्वादितैल**में, चि०अ० २३, **मृतसंजीवनी अगद**में, चि०अ० २८, **बलातैल**में तथा कल्पस्थान अ० १ में मदनफल-उत्कारिकामोदकयोगमें और **सुश्रुत** सू० अ० ३८में **एलादिगण**में मिलता है। बंगाल के वैद्योंका तालीसपत्र इससे भिन्न है। उसे कश्मीरमें 'बुदु(दि)ल' और लेटिनमें **'आबीएस वेब्बिआना (Abies webbiana)'** कहते हैं। यह कोष्ठवातप्रशमन, दीपन, श्लेष्मनिःसारक और ग्राही है। (औ० सं०)।

उत्पत्तिस्थान—समशीतोष्ण हिमालय, कश्मीर, पूर्वी पंजाबका पहाड़ी प्रदेश, गढ़वाल आदि में ६०००-१०,००० फुटकी ऊँचाईपर अथवा अफगानिस्तानसे भूटान और खसिया पहाड़ी तक इसके वृक्ष होते हैं।

वर्णन—यह एक ऊँचे सदाहरित वृक्षके सुगंधित पत्र और बारीक शाखायें हैं, जो औषधके काम आते हैं। पत्र दो कतारोंमें बेदपत्रके समान, १.२५ सें० मी० (१/२ इञ्च) से ३.१५ सें० मी० (१॥ इञ्च) लम्बे, १/४ सें० मी० (१/१० इञ्च) चौड़े, एकांतर, रेखाकार, शल्याकृति, कठोर, शिरारहित, चिपटे और नुकीले तथा पिलाई लिए हरे रंगके होते हैं। इसकी किसी-किसी टहनी पर पुं-पुष्प भी लगे पाये जाते हैं। फलके गूदेको छोड़कर शेष इसके सभी भाग मनुष्य और पशु दोनोंके लिए विषैले होते हैं। उत्तर प्रदेश, राजस्थान, महाराष्ट्र, गुजरात आदिके वैद्य इसके पत्रोंका व्यवहार **तालीसपत्र**के नामसे करते हैं।

रासायनिक संगठन—पत्रमें एक उत्पत् तेल, टैनिक एसिड, गैलिक एसिड और एक रालमय पदार्थ होता है।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें रूक्ष एवं उष्ण। आयुर्वेदमतानुसार भी उष्णवीर्य (रा० नि०) है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—सौमनस्यजनन, हृदय, मस्तिष्क और **नाड़ी** (तन्त्रिका) अर्थात् उत्तमाङ्गबलदायक, उष्णताजनक, दीपन और वातानुलोमन। तालीसपत्रको अधिकतर हृदयको उल्लसित एवं बलप्रदान करनेके लिये तथा हृदयदौर्बल्य, हृत्स्पन्दन, और अन्यान्य हृद्रोगोंमें उपयोग करते हैं। इसके अतिरिक्त मस्तिष्क और वातव्याधिमें प्रयुक्त योगोंमें इसको मिलाकर खिलाते हैं। आमाशयदौर्बल्य (मंदाग्नि), अरुचि आदिमें भी इसे देते हैं तथा कफज कास, कृच्छ्रश्वास और कफज हिक्कामें उपयोग करते हैं। **अहितकर**—उष्ण प्रकृतिको। **निवारण**—सूखा धनियाँ। **प्रतिनिधि**—दालचीनी, कबाबचीनी और इलायची। **मात्रा**—१ ग्रामसे ३ ग्राम (१ माशासे ३ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—तालीसपत्र तिक्त, कटु, मधुर, उष्णवीर्य, लघु, तीक्ष्ण, शिरोविरेचन तथा कफ, वात, कास, श्वास, हिक्का, क्षय, वमन, अरुचि, गुल्म, आम, अग्निमान्द्य और कृमिका नाश करनेवाला है। (सु० सू० अ० ३९; ध० नि०; रा० नि०; भा० प्र०)।

नव्यमत—विषैला स्वभाव और अनिश्चित गुण-कर्मके कारण औषधमें इसका क्वचित् ही उपयोग होता है। किसी समय मृगीरोगके लिए यह उत्तम ख्याल किया जाता था। मात्रा (पत्रचूर्ण) १/२–२॥ रत्ती तालीसपत्रके पत्र

और बीजमें एक जहरीला द्रव्य होता है जो बीजके ऊपरके लाल कोषमें नहीं होता। तालीसपत्र अवसाद, संकोचविकासप्रतिबन्धक और आर्तवजनन है। अल्पमात्रामें देनेसे नाडी और श्वासकी गति कम होती है, मध्यम मात्रासे श्वासोच्छ्वास शीघ्र चलता है और हृदय धड़कता है; बड़ी मात्रासे चक्कर आते हैं, आक्षेप होता है और प्राणनाश होता है। तालीपत्रका जहर चढ़नेपर वमन होता है, नशा चढ़ता है, आँखकी तारकाएँ संकुचित होती हैं और श्वासोच्छ्वास मन्द होता है। आक्षेपयुक्त रोग श्वासनलिकाके जीर्ण शोथ और दमामें तालीसपत्र देते हैं।

स्थौणेय (क) कटु, तिक्त, मधुर, स्निग्ध, सुगन्धि, पित्तप्रकोपको शान्त करनेवाला, त्रिदोषहर, रुचिकर बल-पुष्टि-मेधा-शुक्रकर तथा ज्वर, क्रमि, कुष्ठ, रक्तविकार, तृषा, दाह, दुर्गन्ध और तिलकालकका नाश करनेवाला है। (ध० नि०; भा० प्र०)।

(३०३) तालीसफर

फ़ैमिली : एरीकासे (Family : Ericaceae)

नाम—(कश्मीर) तालीशफर; (अ०) तालीसफ़र; (नेपाल; हिं०) तालीसपत्र; (पंजाब) तालीस, तालीस्त्र; (ले०) र्‌होडोडेन्ड्रॉन आन्थोपोगॉन (**Rhododendron anthopogon** D. Don.) या (R. **lipidotum** Royle.)।

उत्पत्तिस्थान—यह हिमालयके ११,००० से १६,००० फुटकी ऊँचाई पर कश्मीरसे नेपाल तकके प्रदेशोंमें होता है।

वर्णन—इसका सद्यहरित गंधयुक्त क्षुप ३० से ७५ सें० मी० (१-२½ फुट) ऊँचा होता है जिनकी शाखाओं पर वल्कपत्र और खुरदरापन होता है। पत्तियाँ सनाल २·५ से ३·७५ सें० मी० (१-१॥ इंच) लम्बी अण्डाकार या चौड़ी आयताकार, ऊपरी पृष्ठपर चमकदार और अधःपृष्ठपर भूरे रोमावरणसे युक्त होती हैं। **नेपाल और पंजाबके कुछ वैद्य इसका व्यवहार तासीसपत्रके नामसे करते हैं।** पुष्प–किंचित् पीताभ। इसके सम्बन्धमें यूनानी द्रव्यगुणके ग्रन्थोंमें बहुत मतभिन्नता पायी जाती है।

वक्तव्य—इस औषधिके परिचयके विषयमें हकीमोंमें बहुत ही मतभिन्नता है। **बूअलीसीनाके** मतसे यह किसी 'भारतीय वृक्षकी छाल' है। (कानून १,३२८)। **अलीअब्बासके** मतसे यह 'भारतीय जैतून' है। (किताबुल् मलिकी संचिका २, पृ० ११६)। **इब्नुलबैतार** कहते हैं कि बहुतसे लोग इसे जावित्री (बस्बासः) मानते हैं। **इब्न जुल्जुल** इसको लिसानुल्अ़सफीर (Ash tree) मानते हैं। **हुनैनने** **दीसकूरीदूसके** माकेर (१,१११)का अनुवाद तालीसफर (इ० बै० ३९४) किया है।

प्रकृति—दूसरे या तीसरे दर्जेमें गरम व खुश्क; मतांतरसे समशीतोष्ण।

गुण-कर्म तथा उपयोग—अर्दित, वक्षवध और मुख अथवा और किसी स्थानसे रक्तस्राव होनेको लाभ पहुँचाता है। प्रायः अवयवोंसे द्रवास्रावको रोकता है; अतिसार बन्द करता है; अर्श तथा अंत्रव्रणको लाभ पहुँचाता है। इसके काढ़ेमें सिरका मिलाकर कुल्ली करनेसे दंतशूल आराम होता है। **अहितकर**–रूक्ष प्रकृति एवं फुफ्फुसको। **निवारण**–रूक्ष प्रकृतिके लिये लिसोढ़ा एवं मधु और फुफ्फुसके लिये मुलेठीका सत। **प्रतिनिधि**–$\frac{२}{३}$ जीरा, आधा या समभाग हाऊबेर, आधी जावित्री एवं तेजपात और समभाग बालछड़ एवं गूगल। **मात्रा**–३·५ ग्रामसे ४·५ ग्राम (३० से ४० माशा) तक।

नव्यमत—सुगंधि, उत्तेजक और छिक्काजनन है।

◆

(३०४) तिपत्ती (खटकल)

फ़ैमिली : जेरानिआसे (Family : Geraniacea)

नाम—(हिं०) तिनपतिया, अमलोनी, तिपत्ती (खट्टी), चूकातिपाती; (सं०) चाङ्गेरी, अम्लपत्रिका; (क०) सिबर्गी, चोकचिन; (बं०) आ(अ)मरुल शाक; (म०) आंबटी (अंबुटी), भुईं सर्पटी; (गु०) तीनपानकी रुखड़ी; (ते०) पुलिचित; पुल्लचेंचलि; (ता०) पुलियारै, अडाशिन; (मल०) पुलियारल्; (पं०) खटकल, सुर्चि, खट्टी बूटी; (ले०) **ऑक्सालिस कॉर्नीकुलाटा (Oxalis corniculata** Linn.); (अं०) इंडियन सोरेल (Indian sorrel)।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष और लंका। यह बहुधा नीची और नम (आर्द्र) भूमिमें विशेषकर छोटे एवं छिछले नालों या सोतों आदिके किनारे जहाँ सदा नमी रहती है, होती है।

वर्णन—यह एक क्षुद्र लता है जो भूमिपर पसरी हुई होती है। **पत्र** संयुक्त, एक दंडपर तीन-तीन, हृदयाकृति और लोमयुक्त; **पुष्प** प्रत्येक पुष्पदंडपर २ से ५ और पीले; **कटोरी** (आच्छादनपत्र) ५ पत्रयुक्त; **फल** शिम्बी, रेखाकार, लंबोतरा, बहुबीजयुक्त और घनरोमावृत होता है। पौधेका प्रत्येक भाग खट्टा होता है।

उपयुक्त अंग—समस्तलता (पंचांग)।

रासायनिक संगठन—इसमें समभाग चांगेर्यम्ल और जवाखार (एसिड पोटासियम् ऑक्ज़लेट) मिला होता है।

प्रकृति—शीत और तर; आयुर्वेदमत से उष्णवीर्य (च०; सु०)।

गुण-कर्म तथा उपयोग—पित्तसंशमन, मूत्रल, दीपन और उष्ण यकृद्बलदायक। इसका साग पकाकर खाया जाता है। उष्णप्रकृतियों और उष्णरोगोंमें यह गुणदायक है तथा उष्ण यकृदामाशयको शक्ति प्रदान करता है। कामलारोगमें इसका उपयोग गुणकारी है। बस्तिके ऊपर लेप करनेसे पेशाबमें उत्तेजना उत्पन्न करती है। इसके और श्वसनके पत्तोंका स्वरस समप्रमाण मिलाकर अनन्तवात (असाबा)जनित शूल नष्ट करनेकेलिए नाकमें टपकाते हैं। इसे १ तोलाकी मात्रामें कालीमिर्चके कुछ दानोंके साथ एक पाव जलमें पीस-छानकर पिलानेसे विसूचिका (हैजे)में लाभ होता है। **अहितकर**—फुफ्फुस और शीतप्रकृतिवालोंको। **निवारण**—गरम मसाला। **प्रतिनिधि**—कुलफाका साग या खट्टी पालक। **मात्रा**—७ माशेसे १ तोला तक।

आयुर्वेदीय मत—चाङ्गेरी रसमें अम्ल, कुछ कषाय, उष्णवीर्य, अग्निदीपन, ग्राही, वात और कफके लिये हितकर तथा ग्रहणी और अर्शका नाश करनेवाली है। (च० सू० अ० २७; सु० सू० अ० ४६)।

नव्यमत—चांगेरी शीतल, रोचक, दीपन, हृद्य, पित्तशामक, दाहप्रशमन, रक्तसंग्राहक, शोथघ्न और स्रंसन है। इसके स्वरससे सूक्ष्म वाहिनियोंका संकोच होकर रक्तस्राव बंद होता है। रक्तमिश्रित आँव और गुदभ्रंशमें चाङ्गेरीका उत्तम उपयोग होता है। चांगेरीका कल्क व्रणशोथपर बाँधनेसे पीड़ा और दाह कम होकर सूजन उतरती है। धतूरेके विष-निवारणके लिये चाङ्गेरीका स्वरस देते हैं। (औ० सं०)।

●

(३०५) तिल

फ़ैमिली : पेडालीने (–नासे) (Family : Pedalineae) (-aceae.)

नाम—(हिं०) तिल, तिल्ली; (अ०) सिम्सिम्, सम्सम्, हल; (फ़ा०) कुंजद; (सं०) तिल; (बं०; म०) ति (ती)ल; (गु०) तल; (सि०) तिर; (ले०) **सेसामुम् इंण्डिकुम् (Sasamum indicum** Linn.); (अं०) सिसेम (Sesame), जिंजिली (Jinjili, Gingelly)। तेल (हिं०) तिलका तेल, मीठा तेल; (अ०) शीरज, दुह्नुलहल, दुह्नुस्सिमसिम; (फ़ा०) रोग़न कुंजद; (सं०) तिलतैल; (म०) चोखोट तेल; (गु०) मीठा तेल; (ले०) सेसामी ओलेउम् (Sesami oleum); (अं०) सिसेम् ऑइल (Sesame oil), तिल या **जिंजिली ऑइल** (Teel or jinjili oil)।

उत्पत्तिस्थान—भारतवर्षका निवासी है। समस्त भारतवर्षमें इसकी खेती होती है। पूर्वी और पश्चिमी अमरीकामें बोई जाती है।

वर्णन—यह ६० से ९० सें० मी० (२ से ३ फुट) ऊँचा एक वर्षायु क्षुप है जिसके बीज तिल या तिल्लीके नामसे प्रसिद्ध हैं। ये काला और सफेद दो प्रकारके होते हैं। सरसोंकी भाँति इनको कोल्हूमें दबाकर तेल निकाला जाता है। यह तेल पतला और हलका पीले रंगका होता है। इसका गंध मंद और स्वाद रोगनी होता है।

रासायनिक संगठन—बीजोंमें ५० से ६० प्रतिशत स्थिर तेल तथा स्निग्ध और मांसल पदार्थ होता है। तेलमें (१) सिसेमीन, (२) **ऑलीइक एसिड** और **लाइनोलीक एसिड**के ग्लीसरॉइड्स और (३) फिनोलसंयुक्त सिसेमोल ये तीन उपादान होते हैं। ताजे पत्रमें पुष्कल लबाब होता है।

उपयुक्त अंग—बीज (तिल), बीजोत्थ तेल और पत्र एवं मूल (पंचांग)।

कल्प तथा योग—कोहल गुल कुंजद।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें **उष्ण एवं तर** (स्निग्ध)। आयुर्वेदमतेन उष्णवीर्य एवं स्निग्ध (च०)।

गुण-कर्म तथा उपयोग—बाजीकर, बृंहण, पिच्छिल (मुग़र्री), श्वयथुविलयन और अर्शोजात रक्तस्तंभन तिलोंको बाजीकर माजूनोंमें डालते हैं। इसके अतिरिक्त इनको शर्करा, पोस्ताके दाने (खशखश) और बादामकी गिरीके साथ खिलाते हैं। इससे शरीर परिबृंहित (पुष्ट) होता और वाजीकरण होता है। चिकनाहट (ग़र्वियत)के कारण यह कास, श्वास और कंठकी कर्कशता, जैसे–उरःव्याधियोंको दूर करता है। इसे मधुमें मिलाकर अवलेहकी भाँति चटाते हैं। श्वयथुविलयनके लिये इसका लेप लगाते हैं। अर्शोजात रक्त बन्द करनेके लिए इसका अखरोटकी गिरीके साथ खाना परम उपकारी वर्णन किया जाता है। तिलके क्षुपके पत्र और जड़के काढ़ेसे शिर धोनेसे बाल बढ़ते और काले होते हैं। **अहितकर**–दीर्घपाकी। **निवारण**–भृष्ट करना, शुद्ध मधु और चीनी। **प्रतिनिधि**–अलसी। **मात्रा**–७ ग्रामसे १२ ग्राम (७ माशासे १ तोला) तक।

तेल (रोग़न कुंजद)—

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें उष्ण एवं तर (स्निग्ध)।

गुण-कर्म तथा उपयोग—स्नेहन, बृंहण और त्वचाको मृदु करता (मुलय्यिन त्वचा) है। तिल्लीका तेल घीकी भाँति आहारोंमें पुष्कल उपयोग किया जाता है। यह शरीरको पुष्ट करता है और तरी पहुँचाता है। औषधकी भाँति यह शुष्ककास और श्वासमें प्रयुक्त होता है। शरीरगत रूक्षता एवं कण्डू नष्ट करनेके लिये शरीर पर इसको मर्दन करते हैं। शरीर के अंग-प्रत्यंगको गरमी पहुँचानेवाले (उष्णताजनन) और वेदनाहर उपयुक्त द्रव्योंको मिलाकर पक्षवध, अर्दित, आमवात आदिमें इसे इसलिये मलते हैं कि यह औषधोंको शरीरके भीतर प्रवेश करानेमें सहायता करे। मरहमोंमें घी आदिकी भाँति यह पड़ता है। **अहितकर**–चिरपाकी और आमाशयको शिथिल करता

है। **निवारण**–प्याजका रस या नीबूका रस। **प्रतिनिधि**–मीठे बादामका तेल। **मात्रा**–औषधरूपेण ५ ग्रामसे ७ ग्राम (५ माशेसे ७ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—तिल मधुरकटु-कुछ कषाय और तिक्त, विपाकमें मधुर, स्निग्ध, गुरु, उष्णवीर्य, दाँत-त्वचा और केशके लिये हितकर, बल्य, कफ-पित्तकर, सांग्राहिक, व्रणमें लेपनके लिये पथ्य, मूत्र कमकरनेवाला, जठराग्नि और मेधाको बढ़ानेवाला तथा वातहर है। तिलोंमें कालेतिल उत्तम, सफेद मध्यम और अन्य कम गुणवाले होते हैं। तिलका तेल मधुर, तिक्त कषायानुरस, मधुरविपाक, उष्णवीर्य, सूक्ष्म, व्यवायि, पित्तको बढ़ानेवाला, शरीरकी स्थूलता कमकरनेवाला, कफको न बढ़ानेवाला, वातघ्न द्रव्योंमें श्रेष्ठ, बलकारक, मेधा और अग्निको बढ़ानेवाला, त्वचाको हितकर, द्रव्यान्तर-संयोग और संस्कारसे तीनों दोषोंके रोगोंको हरनेवाला, तीक्ष्ण, बृंहण, प्रीणन, गुरु, सारक, विकासि, वृष्य, शोधन, मार्दवकर, मांसको दृढ़ करनेवाला, चक्षुष्य, लेखन, पाचन, कृमिघ्न, योनि-कान और सिरके दर्दको दूर करनेवाला, गर्भाशयशोधन तथा छिन्न-भिन्न, कटा हुआ, विद्ध, उत्पिष्ट, च्युत, मथित, क्षत, पिच्चित, भग्न, स्फुटित, क्षार तथा अग्निसे दग्ध, विश्लिष्ट, दारित, अभिहत, दुर्भग्न, अहिंस्र या हिंस्र पश्वादिसे दष्ट आदि अवस्थाओंमें परिषेक. अभ्यंग, अवगाह आदिमें प्रशस्त है (च० सू० अ० २७; सु० सू० अ० ४६, ४५)।

नव्यमत—तिल स्नेहन, कंठ्य, कफघ्न, आनुलोमिक, मूत्रजनन, बाजीकर, आर्तवजनन, स्तन्यजनन, पौष्टिक, बल्य, व्रणशोधन, व्रणरोपण और केशवर्धन है। अर्शरोगमें तिलोंको गरम करके अर्शके ऊपर बाँधते हैं और मक्खनके साथ मिलाकर खानेको देते हैं।

●

(३०६) तीखुर

फ़ैमिली : जींजीबेरासे (Family : Zingiberaceae)

नाम—(हिं०; बं०) तीखुर, आरारूट; (फा०) तवाशीर; (सं०) तवक्षीर (-री), त्वक्क्षीरी, तुगाक्षीरी; (म०) तवाखीर; (बं०) अरोरूट; (लें०) **कूर्कुमा आंगुस्टीफोलिआ (Curcuma angustifolia** Roxb.); (अं०) इण्डियन एरोरूट (Indian arrowroot)।

उत्पत्तिस्थान—प्रान्तके जङ्गलोंमें इसके क्षुप सर्वत्र पाये जाते हैं। छोटे पैमाने पर इसकी खेती भी होती है।

वर्णन—हलदी जातिका एक गुल्म जिसका मूलस्तम्भ ऊपर शंखाकार और काटनेपर भीतर हलका पीला तथा बाहरकी ओर सफेद होता है। अन्तर्भूमिशायीका विकास नहीं होता, केवल मांसल जड़ोंके अग्रपर कन्द बन जाते हैं जिनसे तीखुर (तवक्षीर या त्वक्क्षरीका अपभ्रष्ट) या आरारूट निकलता है। यह बंसलोचनके समान होता है। 'वंशलोचनानुकारि द्रव्यम्'—डल्हण, चक्रपाणि। रंग इसका निशास्ताके समान सफेद, किंतु उसकी तरह उज्ज्वल नहीं होता, नरम होता और शीघ्र टूट जाता है। इसके टुकड़े निशास्तेकी तरह होते हैं, मुखमें रखनेसे शीघ्र घुल जाते हैं। स्वादमें यह कुछ-कुछ बंसलोचनके समान होता है। उपर्युक्त क्षुपके अतिरिक्त हल्दीकी जातिकी तथा अन्य अनेक जातिके कंदोंसे यह प्राप्त किया जाता है। विदेशीय तीखुर जिसे 'बरमुडा ऐरोरूट या वेस्ट इंडियन ऐरोरूट (Bermuda or West Indian arrowroot)' कहते हैं। तुगाक्षीरी या मेरंटा (Marantaceae)-कुलके **मरांटा आरुंडीनासेआ (Maranta arundinacea** Linn.) नामक क्षुपकी जड़से निकाला जाता है। इसके क्षुप ४-६ फुट ऊँचे होते और अमेरिका तथा पश्चिमी भारतीय द्वीपसमूहोंमें पाये जाते हैं।

व्यापारिक आरारूट इन्हींकी जड़ों (Rhizomes)से निकाला जाता है जो सफेद चूर्णके रूपमें होता है और उसमें निशास्ता—पिष्ट (Starch)के छोटे-छोटे पिंड होते हैं। अणुवीक्षण यन्त्रमें देखनेसे ये विषमतया (Irregularly) अण्डाकार (Oval) दाने होते हैं जिनके बृहत्तर सिरे या मध्यभागके समीप (Hilum) होता है। औसत व्यास ३०-४० μ होता है। उपर्युक्त भारतीय तीखुर इसके प्रतिनिधि रूपमें व्यवहार किया जाता है।

प्रकृति–सर्द और रूक्ष।

गुण तथा उपयोग—स्निग्ध (Demulcent), अक्षोभक और पोषणकर्ता। रोगसे दुर्बल हुए रोगियों तथा शिशुओंके लिए बहुत ही उपादेय, उत्तम एवं लघु पथ्य है। इसे दूध या पानीमें पकाकर स्वादके लिए चीनी, नीबूका रस या कोई सुगन्ध या एसेंस मिलाकर सेवन करते हैं। **आधपाव तीखुरके लिए ६ माशा काफी होता है।** मुखपाक या जिह्वाके बिदारमें इसका सेवन उपकारक है। मूत्रकृच्छ्र, औपसर्गिक पूयमेह, हृत्स्पन्दन, पेचिस और हृद्दाहमें यह गुणकारी है तथा दन्तकृमिको नष्ट करती है।

●

(३०७) तुम्बरू

फ़ैमिली : रूटासे (Family : Rutaceae)

नाम—फल (हिं०) नेपाली धनियाँ, तुम्ब(बु)रु, तुंबुल, तुमरु, तेजफल; (अ०) फ़ाग़िरः; (फा०) कबाबेहे खंदाँ, कबाबेहे दहनकुशादः (-शिग़ाफ़्तः), फाखिरः; (पश्तो) डम्बरे; (सं०) तुम्ब (म्बु)रु; (बं०) तम्बुल, नेपाली धने; (प०) कबाबा, तुंबरु, तीमरू; (म०) नेपाल धनिया, ति(चि)रफल। वृक्ष—(हिं०) तेजबल; (सं०) तेजस्विनी, तेजोवती; (ले०) **जान्थोक्सीलुम् आलाटुम् (Zanthoxylum alatum** Roxb.); (अं०) इण्डियन प्रिक्ली ऐश (Indian Prickly Ash), टूथ-एक ट्री (Toothache tree)।

उत्पत्तिस्थान—यह सूडान और जेरबादसे आता है और समशीतोष्ण हिमालयमें २ से ५ हजार फुटक ऊँचाईपर तथा हरद्वार, भूटान, नेपाल, खसिया पर्वत और दार्जिलिंग जिलेमें भी सामान्यतया होता है।

वर्णन—उत्तरभारतीय नेपाली धनिया एक गँठीली, काँटेदार जंगली झाड़ीका प्रसिद्ध फल है जो देखनेमें धनियाके समान और कबाबचीनीसे बड़ा, बड़े धनियेके बराबर, प्रायः आधे तक बीचसे खुला या फटा हुआ (फ़ाग़िरः; दहनशिगाफ़्ता), खाकी और मुश्की रंगका होता है। इसमें एक डंडी लगी होती है। इसके भीतर छोटा-सा गोल काला और चमकदार बीज होता है। गंध प्रिय, स्वाद तीक्ष्ण एवं तीव्र और सुगन्धित होता है। हिमालयसे आनेवाला ताजा फल कुछ हरे रंगका होता है। इसकी चटनी पीसकर खानेके साथ खाते हैं। यह स्वादमें अम्लता लिये तीक्ष्ण और थोड़ा-सा सुगन्धित होता है। फलके ऊपर तेलयुक्त रालसे भरी हुई सूक्ष्म ग्रंथियाँ और भीतर कागज जैसा परदा होता है। दक्षिण भारतमें इसका भेद **ज़ान्थोक्सीलुम् बुदरंगा Zanthoxylum budrunga** Wall. (पर्याय-*Z. rhetsa* DC.) होता है जिसको 'तिरफल' या 'चिरफल' कहते हैं।

उपयुक्त अंग—बोजरहित फल, छाल और मूल। **मात्रा**–(फल) ०·६ से १·३ ग्राम (५ से १० रत्ती); (त्वचा और मूल)–१ से ३ ग्राम (१ से ३ माशा)।

रासायनिक संगठन—छिलके (Bark) में एक उत्पत् तेल, राल (और बार्बेरीनकी तरहका एक तिक्त क्रिसटली द्रव्य) तथा फलमें एक अनुत्पत् तेल, राल एक पीला अम्लसत्व और **जान्थोक्सिलिन** (Zanthoxylin) नामक

एक क्रिस्टली ठोस तत्व पाया जाता है। तेलमें रंग नहीं होता, परन्तु मनोहर सुगन्ध होती है। इस तेल और बिरोजेकी संघटना समान होती है।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें उष्ण एवं रूक्ष। आयुर्वेदमतसे तेजबल (कै० नि०) और तुम्बरु (ध० नि०) दोनों उष्णवीर्य हैं।

गुणकर्म तथा उपयोग—यह एक सुगन्धित द्रव्य है। इसका सूँघना और खाना मस्तिष्क एवं हृदयबलदायक है। यह शीतल आमाशय और यकृत्‌को शक्ति देता है, पाचनशक्तिको बढ़ाता, वायुका उत्सर्ग करता और मलावरोध उत्पन्न करता है। यह बहुधा आमाशय और यकृत्‌के शीतल रोगोंमें प्रयुक्त होता है तथा दस्तोंको बन्द करनेके लिए खिलाया जाता है। सुगंधित होनेके कारण मुखदौर्गन्ध्यनिवारणके लिए इसको मुखमें रखकर चबाते हैं और मस्तिष्कके शीतलरोगों में भी उपयोग करते हैं। इसके खानेसे प्यास बुझती है। मुखपाकमें इसके स्वरस या काढ़ेसे कुल्ली करनेसे उपकार होता है। इससे हकलापन भी दूर होता है। **अहितकर**—शिरःशूलजनक है। **निवारण**—नीलूफर और कपूर। प्रतिनिधि—कबाबचीनी। मात्रा—२ ग्राम से ३ ग्राम (२ माशे से ३ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—तेजबल कटु, तिक्त, उष्णवीर्य, रुचिकारक तथा वात, कफ, श्वास, कास, हिक्का और मुखके रोगोंको नाश करनेवाला है। तुम्बरू कटु, तिक्त, तीक्ष्ण, उष्णवीर्य, शिरोविरेचन, कृमिघ्न, दीपन तथा कफ, वात, शूल, अपतन्त्रक और पेटके अफारेका नाश करनेवाला है। (च० सू० अ० २, वि० अ० ८; कै० नि०; ध० नि०)। तेजबलकी छाल और तुम्बरूको दाँतोंके मंजनोंमें डालते हैं। चरकने अपतन्त्रकके लिए, तुम्बार्वादि चूर्ण' लिखा है। योग—तुम्बरू, हड़, हींग, पुष्करमूल, सैंधव, कालानमक और समुंदरनमक समभागका चूर्णकरके यवमंडके साथ हृद्ग्रह और अपतन्त्रकमें देवे (च० सि० अ० ९)।

नव्यमत—तुम्बरू सुगन्धि, उष्ण, दीपन, पाचन, ग्राही, वातहर और उत्तेजक है। इसकी क्रिया युकेलिप्टस तेल और गंधाबिरोजेके समान होती है। कुपचन और अतिसारमें इसे देते हैं। ज्वरमें मूलकी छालका फाण्ट देनेसे उत्तेजना आती है और ज्वर कम होता है। व्रणवालेको फलोंका चूर्ण खानेको देते हैं और व्रणपर बुरकते हैं। मूलके क्वाथसे दुष्टव्रणको धानेसे व्रणका शोधन होता है। तुम्बरूके अन्दरका उत्तेजक द्रव्य त्वचाके मार्गसे बाहर निकलता है; इसलिए श्लेष्मत्वचा (कला) तथा व्रणकी शुद्धि होती है और ज्वरमें पसीना आता है। तिरफलकी जड़की छाल सुगन्धित, मूत्रजनन और कटुपौष्टिक है। इसे आँतोंके शैथिल्यसे होनेवाले कुपचनमें देते हैं। दाँतोंकी पीड़ामें और लकवेमें जीभका हलन-चलन ठीक न होता हो तब तिरफलकी छाल चबानेको देते हैं। आमवातमें इसे देते हैं। इससे शरीरका दर्द कम होता है। पेटका दर्द और अफरा, अजीर्ण, कुपचन तथा अतिसारमें इसे देते हैं। इसे और अजवाइनका बाष्पके साथ निकाला हुआ तेल हैजेमें देते हैं।

●

(३०८, ३०९) तुरई (मीठी व कड़ुई)

फ़ैमिली : कूकूरबिटासे (Family : Cucurbitaceae)

नाम। तोरई—(हिं०) तुरई, तोरई, तरोई, तोरी; (सं०) झिंगाक, धाराकोषातकी, घोषा, झिंगा, धुंदुला; (क०) तुरेल; (पं०) तोरी; (मा०) तोरुं, तूरीं, (गु०) तुरया, तुरीआं; (म०) शिरोलें, दोड़के; (ता०) पेप्पीर्क्कम्; (मल०) काट्टपीच्चि; (ले०) लूफ्फा आकूटांगुला (**Luffa acutangula** (L.) Roxb.)। घियातोरई (हिं०) घियातोरी (–तुरई), नेनुआँ; (सं०) राजकोषा(शा)तकी, धामार्गव; (बं०) धुंदुल; (पं०) घियातोरी; (मा०) घीयातुरीं; (गु०) गोंसली, गलकां; (म०) घोसालें, घड़घोसडी; (ले०) लूफ्फा सीलींड्रिका **Luffa cylindrica** (L.)

Roem. (पर्याय–*L. Aegyptica* Mill.)। **कड़वी तरोई**–(हिं०) कटतुरइआ, कड़वीतुरई; (सं०) कोषा(शा)तकी, कृतवेधन; (बं०) तेंतोधुंदुल; (गु०) कडवाँतुरीआँ; (म०) कडुतुरई, कडु दोडके, रान दोडके (तुरई); (काठियावाड़) कड़वीघीसोडी; (ले०) लूफ्फा आक्यूटांगुला प्र० अमारा (**Luffa acutangula** (L.) Roxb. var. **amara** (Roxb.) D. B. Cl.; (अं०) बिटर लुफ्फा (Bitter Luffa)।

उत्पत्तिस्थान—तुरई और घीयातुरई भारतवर्षके अनेक भागोंमें बोई जाती है। कड़वी तुरई जंगली होती है।

वर्णन—तुरई लताजातीय वनस्पतिका प्रसिद्ध फल है; जिसकी तरकारी पकाकर खाई जाती है। यह तीन प्रकारकी होती है—(१) तुरई–इसके फलपर लम्बाईके रुख उभरी हुई रेखाएँ होती हैं। इसे अर्रा तुरई कहते हैं। इसके फल कडुईको अपेक्षया बड़े होते हैं। इसका साग बनाकर खाते हैं।

(२) घिया तुरई—इसका बाहरी छिलका मसृण और समतल होता है। इसमें भी मीठी और कडुई दो जातियाँ होती हैं। कडुईका औषधके लिए व्यवहार होता है और मीठेका साग बनाकर खाते हैं। (३) कड़वी (तल्ख) तुरई—इसका प्रत्येक अंग कडुआ होता है। फल अत्यन्त तिक्त, तीव्र विरेचन और वामक होता तथा खानेके काम नहीं आता है। यह जंगलमें स्वयंजात होती है।

उपयुक्त अंग—फल।

रासायनिक संगठन—इसके बीजरहित सूखे फलमें इन्द्रायनमें पाये जानेवाले कॉलोसिंथीन नामक सत्वके समान एक सत्व और एक लुफ्फीन (Luffein) या कोषातकीन नामक सरेशी सत्व होता है। बीजमें गहरे भूरे या ललाई लिए भूरे रंगका स्थिर तेल होता है।

प्रकृति—पहले दर्जेमें शीत एवं तर।

गुण-कर्म तथा उपयोग—संतापहर और किसी कदर मूत्रल। इसको अकेला या मांसके साथ पकाकर खाते हैं। उष्ण प्रकृतिके लोगों और उष्ण व्याधियोंमें यह सर्वोत्तम पथ्य शाक है। घिया (लौआ)की अपेक्षया यह शीघ्रपाकी है। सूजाक, रक्तमूत्र, अर्श और उष्ण (पित्तज) ज्वरोंमें अकेला तरोई पकाकर खिलाना श्रेयस्कर है। घियातरोई अर्रातोरईकी अपेक्षया आनाहकारक होती और श्लैष्मीय द्रव उत्पन्न करती है। अहितकर–आनाहकारक और शीतप्रकृतिवालोंके लिए अहितकर है। निवारण–गरम मसाला। प्रतिनिधि–लौआ।

आयुर्वेदीय मत—कडुई तोरई वमन और विरेचन करानेवाली, अत्यन्त तिक्त, तीक्ष्ण, उष्णवीर्य तथा प्रबल कुष्ठ, पाण्डुरोग, प्लीहा, शोथ, गुल्म और गर (विष) आदिमें प्रशस्त है (उनका नाश करनेवाली है)। (च० सू० अ० १, २; क० अ० ६)। मांठातुरईका शाक अतिलघु, हृद्य तथा रक्तपित, कुष्ठ, प्रमेह, ज्वर, श्वास, कास और अरुचिको दूर करनेवाला है। (सु० सू० अ० ४६)। तुरईके बीजोंका तेल कटु, कटुविपाक, तीक्ष्ण, लघु उष्णवीर्य, सारक तथा वायु, कफ, कृमि, कुष्ठ, प्रमेह और शिरोरोगको दूर करनेवाला है। (सु० सू० अ० ४५)। जंगली (कड़वी) घियातोरई (धामार्गव) वमन करानेवाली है। कफके संचयसे होनेवाले गुरु और स्थिर विकारोंमें जब वायु कफके आशयोंमें संचित हुआ हो तथा कफ, कंठ और मुँहमें स्थित हो तब तथा गर, गुल्म और खाँसीमें इसका प्रयोग करना चाहिए (च० सू० अ० १, २; क० अ० ४७; सु० सू० ३९; ध० नि०)। मीठी घियातोरई त्रिदोषहर तथा ज्वरके अन्तमें हितकर है। (ध० नि०)। कड़वी घियातोरईके गुणकर्म कड़वी तोरईके समान हैं।

नव्यमत—जंगली तोरई तिक्त, दीपन, मूत्रजनन, विरेचन, वामक, उदरहर, शिरोविरेचन, व्रणशोधन, व्रणरोपण और विषघ्न है। इसे अल्प प्रमाणमें देनेसे भूख लगती है, दस्त साफ होता है और उदरस्थ अवयवोंकी

क्रिया सुधरती है। मध्यममात्रासे विरेचन होता है और मूत्रका प्रमाण बढ़ता है। बड़ी मात्रामें देनेसे पानी जैसे दस्त होते हैं। बीजकी गिरीकी क्रिया इपिकाकुआनाकी तरह होती है। जो व्रण सड़ने लगे हों उन्हें धोनेके लिए इसका शीतकषाय बहुत गुणकारक है। इससे व्रणकी शुद्धि होकर व्रण शीघ्र भर जाता है। **अधकपारी** (कफज), सिरका दर्द और कामलामें फलके शीतकषायका नस्य देनेसे शिरोविरेचन होकर उपकार होता है। यकृद्दाल्युदर, प्लीहोदर और यकृत्की विकृतिसे उत्पन्न जलोदरमें इसका सुरासव (टिंक्चर) हितकारक है। आरम्भमें बड़ी मात्रा देकर पीछे दस्त और पेशाबका प्रमाण देखकर मात्रा घटानी-बढ़ानी चाहिए।

●

(३१०) तुरमुस

फ़ैमिली : लेगूमिनोसे (Family : Leguminosae)

नाम—(अ०; फ़ा०; भा० बाजार) तुर्मुस, तिर्मूस, बाक़लाए मिश्री; (यू०) **थरमोस** (Thermos) D. 2. 132); (ले०) लूपीनुस् आल्बुस (**Lupinus albus** Linn.); (अं०) ह्वाइट लूपीन (White lupine)।

उत्पत्तिस्थान—मिस्र और लेवांटका आदिवासी है। भारतके कुछ भागोंमें तथा दक्षिण यूरोप, मिस्रादि देशोंमें बड़े पैमानेपर इसकी खेती की जाती है।

रासायनिक संगठन—बीजमें लूपीनीन, लूपीनीडोन एवं लूपीमीन–ये तीन ऐल्केलॉइड्स पाये जाते हैं। बीजक्वाथ मधुमेहियोंमें शर्करा सहनकी शक्ति बढ़ाता है।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें उष्ण एवं रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—श्वयथुविलयन, लेखन, मूत्रजनन, आर्तवजनन और उदरकृमिनाशक। तुरमुसके बीजका मग्ज निकालकर श्वयथुविलयनके लिये लेप करते हैं। व्यंग और किलासको नष्ट करनेके लिये तथा चेहरेका रंग निखारनेके लिये इसका पतला लेप (तिलाऽ) करते हैं। कृमिघ्न औषध-द्रव्योंके साथ इसे उदरजकृमियोंको नष्ट करनेके लिये खिलाते हैं। आर्तवजननके लिये भी इसका उपयोग करते हैं। जलोदर, आमवात, वातरक्त, गृध्रसी, पक्षवध, अर्दित और कास तथा श्वासजनक दोषोंको विरेक द्वारा उत्सर्गित करता है। **अहितकर**–गुरु और चिरपाकी। **निवारण**–सातर फारसी और लवण। **प्रतिनिधि**–बाकला और खरबूजेके बीज। **मात्रा**–३ ग्रामसे ५ ग्राम (३ माशे से ५ माशे) तक।

●

(३११, ३१२) तुलसी

फ़ैमिली : लाबिआटी (Family : Labiateae)

वक्तव्य—यहाँ तुलसीके भेदोंका वर्णन किया जा रहा है—(१) जंगली तुलसी ममरी और (२) रामतुलसी।

जंगली तुलसी—

नाम—(हिं०) जंगली (बन) तुलसी, बबुई, बाबरी, न्याजबो, ममरी; (यू०) ओकीमून Okimon; (अ०) रैहान, हूक (इ० बै० १७९). बाजरूज (अरबीकृत); (नब्ती) बादरूज; (फा०) बादरूक, बादरू (-य), तरए खुरासानी,

रेहाँ काही; (सं०) अजगंधा, बर्बर (री); (बं०) बाबुईतुलसी; (पं०) नियाजबो, बबरी; (म०) सबजा; (का०) नाजबी, हजूबू; (ले०) ऑसीमुम् बासीलिकुम् (**Ocimum basilicum** Linn.); (अं०) स्वीट बेसिल (Sweet basil), गार्डेन बेसिल (Garden basil)।

उत्पत्तिस्थान—सर्वत्र भारतवर्ष, विशेषकर जोती-बोई हुई जमीन में।

वर्णन—रे(री)हांकी जातिकी एक वनस्पति जिसके पत्ते छोटे, सम्मुखवर्ती, शाखाएँ चौपहल और फूल ललाई लिये, छोटे, सफेद या धूमिल बैंगनी डंससे युक्त होते हैं। इसमें मध्यग्रीष्ममें फूल आते हैं। बीज भूरे होते हैं, जिनको तुख्मशर्बती (हिन्दोमें ममरी) कहते हैं। किसी-किसीने इसके बीजको ही तुख्म रे(री)हाँ लिखा है। तुख्मरीहाँके स्थानमें इसका प्रयोग होता है।

रासायनिक संगठन—इसके पत्तोंमें एक पिलाई लिए हरा उत्पत् तैल होता है, जो जलकी अपेक्षया हल्का होता है। कालान्तरसे यह चोकोर क्रिस्टलके रूपमें परिणत हो जाता है, जिसे अजगंधाकपूर (Basil camphor बेजिल कैम्फर) कहते हैं।

उपयुक्त अंग—क्षुप और बीज।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें उष्ण और पहलेमें रूक्ष (खुश्क)।

गुण-कर्म तथा उपयोग—सौमनस्यजनन, हृदयबलदायक, दीपन, मूत्रार्तवजनन और श्वयथुविलयन। जंगली तुलसीके बीजको रैहाँके बीजके समान भिगाकर शर्बतमें मिलाकर पीते हैं। यह हृदयदौर्बल्य और हृत्स्पंदनमें गुणकारी है। इसके पत्र सूँघनेसे मूर्च्छा दूर हो जाती है। इसके पत्तोंका रस कानमें टपकाने से कर्णशूल शांत हो जाता है। श्वयथुविलयनके लिये पत्तोंको पोसकर लेप करते हैं। पत्रस्वरसको उबाल-छानकर पिलानेसे मूत्र और आर्तवका प्रवर्तन हाता है तथा आमाशय बलवान् होता है। अहितकर–दृष्टिदौर्बल्य उत्पन्न करता है। निवारण–सिरका, खीरा और कुलफा। प्रतिनिधि–कलौंजी। मात्रा–बीज (तुख्म शर्बती) ५ ग्रामसे ७ ग्राम (५ माशेसे ७ माशे) तक। पत्र (बर्ग बादरूज) ७ ग्रामसे १२ ग्राम (७ माशेसे १ तोला) तक।

नव्यमत—स्वरस तीक्ष्ण, उष्ण, रूक्ष, उत्तेजक, वातप्रशमन, स्वेदजनन, कृमिघ्न और मज्जातंतुके लिए उत्तेजक होता है। बीज मधुर, स्निग्ध, शीतल, मूत्रल और स्तम्भन होता है।

री (रै)हाँ—

प्रकृति—पहले दर्जेमें गरम एवं तर।

गुण-कर्म तथा उपयोग—हृदयको उल्लसित करता और उसे शक्ति प्रदान करता है। हृद्रोग विशेष (तक़श्शुर क़ल्ब)के लिए लाभकारी है तथा प्यास बुझाता है।

रामतुलसी—

नाम—(हिं०;बं०) रामतुलसी; (अ०) फ़रंजमिष्क; (सं०) फणिज्जक; (म०) रामतुलस; (गु०) रान (-म) तुलसी; (ले०) ऑसीमुम् ग्राटीस्सीमुम् (**Ocimum gratissimum** Willd.)।

वक्तव्य—फारसीसे 'पलंगगमिष्क' 'फ़(बि)रंजमिष्क' अरबी बनाया गया है। किसीने इसी फ़ैमिलीके ड्राकोसेफ़ालुम् मोलडाविका (**Dracocephalum moldavica** Linn.) नामक क्षुपके बीजोंको 'तुख्म फ़िरंजमिष्क' लिखा है।

उत्पत्तिस्थान—भारतवर्ष तथा ईरान।

वर्णन—यह रैहाँकी जातिका एक बहुवर्षायु क्षुप है जो कमर भर ऊँचा होता है। इसका पौधा और पत्ते रैहाँसे अधिक बड़े होते हैं और उनसे रैहाँकी तरह सुगन्ध आती है। कांड चौकोर और लोमयुक्त; पत्र बड़ा, दंतित,

लोमयुक्त और सुगन्धित होता है। फूलकी मंजरी बड़ी और अपरिमित होती है। बीज हरापन लिए पीले, भूरे या काले तिकोने लगभग १/१२ इञ्च लम्बे, जीरेकी आकृतिके, होते हैं। भिगोने पर ये पारदर्शक लबाबसे आवृत हो जाते हैं। स्वाद हल्का चरपरा होता है।

उपयुक्त अंग—पत्र और बीज (तुख़्म फरंजमिष्क)।

रासायनिक संगठन—इसमें पतला सोनेके रंगका एक पीला तेल होता है जिसमें कार्बोलिक अम्ल और थायमोल होता है।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें उष्ण एवं रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—हृदयबलोल्लासकारक, प्रमाथी, शीतल, यकृदामाशयबलदायक, वातानुलोमन, अन्त्रशूलहर (मुसक्किन मग़्स), कोथप्रतिबंधक, उदरस्तंभक, उपशोषण, रजोरोधक, विशेषकर मस्तिष्क संशोधन और यकृदामाशयबलदायक। हृदयबलोल्लासकारक होनेसे यह दिलकी धड़कन (खफकान), वातिक अन्यथाज्ञान (वसवास) और इनके अतिरिक्त अन्यान्य हृद्रोगोंमें प्रयुक्त होती हैं। अवरोधोद्घाटक होनेसे यह नथुनोंके अवरोधोंको खोलती और शीतल शिरःशूलमें लाभ प्रदान करती है। दीपन और वातानुलोमन होनेसे यह अन्त्र और आमाशयके रोगोंमें प्रयुक्त होती है। मुखमें चबानेसे यह मुखकी दुर्गन्ध दूर करती और मसूढ़ोंको मजबूत बनाती है। रूक्षण होनेसे यह वीर्यको सुखाती है। **अहितकर**–शिरःशूलजनक। **निवारण**–गुलबनफसा और सिकंजबीन। **प्रतिनिधि**–बिल्लीलोटन। बीजका तुख़्मबालंगू। **मात्रा**–५ ग्रामसे ६ ग्राम (५ माशासे ७ माशा) तक।

नव्यमत—यह पूतिहर, व्रणरोपण, वेदनास्थापन और कुछ मूत्रजनन है।

●

(३१३, ३१४) तूत (स्याह व सफेद)

फैमिली : मोरासे (Family : Moraceae)

नाम—(हिं०;अ०; फा०; बं०) तूत; (सं०) तूद, तूत; (क०) तूल; (गु०) शेतूत, शे (से) तूर; (मा०) सहतूत; (म०) तूत; (कु०) किमु; (का०) तुखु; (नेपाल) किमू, किंबु; (भूटान) सिंगतोक; (लें०) **मोरुस ईण्डिका (Morus indica** Linn.); (अं०) इण्डियन मलबेरी (Indian Mulberry)।

उत्पत्तिस्थान—समशीतोष्ण हिमालयपर यह जंगली होता है। कश्मीर, पंजाब, बंगाल और ब्रह्मामें इसके वृक्ष लगाये जाते हैं।

वर्णन—यह एक बड़े वृक्षका प्रसिद्ध फल है जो ३ अंगुल से ४ अंगुलतक लम्बा होता है। यह दो प्रकारका होता है। एक पिलाई लिए सफेद, लम्बा और स्वादमें मीठा होता है। इसको **तूतसफेद या तूतनब्ती**; लेटिनमें **मोरुस आल्बा (Morus alda** Linn.) और अंगरेजीमें ह्वाइट मलबेरी (White Mulberry) कहते हैं। दूसरा ललाई लिये काला (हरा, लाल या काला) स्वादमें खट्टा होता है। इसको **तूत स्याह या तूत शामी**, लेटिनमें **मोरुस नीग्रा (Morus nigra** Linn.) और अंगरेजीमें ब्लैक या पर्पल मलबेरी (Black or Purple Mulberry) कहते हैं। यही 'शहतूत' के नामसे प्रसिद्ध है। बलूचिस्तानमें इसे लगाते हैं। इसके फलोंपर रेशमके कीड़े पलते हैं।

उपयुक्त अंग—फल, पत्र, मूल और छाल (यह रेचक है)।

रासायनिक संगठन—फलमें शर्करा, पेक्टिन, सायट्रेट्स, मलेट्स आदि द्रव्य होते हैं।

तूत सफेद (शीरीं-मीठा)—

प्रकृति—पहले दर्जेमें उष्ण एवं तर (मतांतरसे तर दूसरे दर्जेमें)। आयुर्वेदमतसे शीतवीर्य (कै० नि०) है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—अवरोधोद्घाटक, प्रकृतिमार्दवकर (सर), मस्तिष्कस्नेहन, उरःफुफ्फुसबलदायक, दोषपाचनकर्ममें अंजीरके समान है; परन्तु प्रबल दोषकी ओर शीघ्र बदल जाता है और आमाशयके लिए अहितकर है। यद्यपि कतिपय गुणकर्ममें सफेद तूत काले तूतके समान है, तथापि औषधरूपेण बहुधा काले तूत (तूत स्याह)का उपयोग होता है। यह शरीरको मोटा करता और रूक्षता दूर करता है। पत्र कण्ठरोगोंमें प्रयुक्त होता है।

आयुर्वेदीय मत—मीठा तूत बल और अग्निको बढ़ानेवाला तथा पित्त और वायुका शमन करनेवाला है। (ध० नि०; कै० नि०)।

तूत स्याह (तुर्श-खट्टा)—

प्रकृति—शीत एवं तर।

गुण-कर्म तथा उपयोग—शीतजनन, शीतसंग्राही, दोषविलोमकर्ता (विशेषकर कच्चातूत), दोषतारल्यजनन, अवरोधोद्घाटक, रक्तकी तीक्ष्णताका शामक, पित्तघ्न, स्वरयन्त्र और कंठके उष्ण शोथका विलयन और जड़की छाल उदरकृमिनाशक है। स्वरयन्त्र और कंठके उष्ण शोथका विलयन होनेसे यह गलेका दर्द, कंठशोथ (खुनाक़), रोहिणी (जुबहा), जिह्वामूलशोथ, जिह्वाशोथ, मुखपाक और तालुकंटक (बुसूर दहान)में लाभदायक है। इन रोगोंमें शहतूतका स्वरस निकालकर या जलसे पानक बनाकर पिलाया जाता है। अथवा केवल इसके रससे या उसमें हरे धनियाका रस या कासनीका रस या फिटकरी मिलाकर कवल या गण्डूष कराया जाता है। उक्त रोगोंको दूर करनेके सिवाय यह स्वरयन्त्र और कंठकी ओर दोष आनेको भी रोकता है। शीतजनन होनेके कारण यह प्यासको शमन करता और रक्तकी तीक्ष्णताको निवारण करता है। पित्तल प्रकृतिके लोगोंमें यह आमाशयके लिए अहितकर नहीं है। इसके पत्र और जड़के काढ़ेसे गण्डूष करनेसे भी स्वरयन्त्र और कंठगत शोथमें लाभ होता है। जड़का काढ़ा ब्रध्नाकार-कृमिनाशन है, विशेषकर उस समय जब इसके साथ सफतालूके पत्र मिला लिए गये होते हैं। तूतकी छाल और काढ़ेका कवल करनेसे दंतशूल भी आराम होता है। अहितकर–उरोव्याधि और वातनाड़ीको। निवारण–मधु और अनारका रस। प्रतिनिधि–गिर्देसमाक़। मात्रा–ताजा तूत ५ से १० तोले तक खा सकते हैं। परन्तु इसका स्वरस २ तोलेसे ५ तोले तक और सत (रुब्ब) १ तोलासे ३ तोले तक उपयोग कर सकते हैं।

आयुर्वेदीय मत—मधुराम्ल तूत, गुरु, सारक, वातपित्तहर, दाहप्रशमन तथा वृष्य है। (ध० नि०; कै० नि०)।

●

(३१५, ३१६) तेंदू और माकातेंदू

फ़ैमिली : एबेनासे (Family : Ebenaceae)

नाम। तेंदू—(हिं०) तेंदू (द), तेन, केंद (दु); (अ०; फा०) आबनूसे हिंदी; (सं०) तिन्दुक; (खर०) तेंद; (को०; संथा०) तिरिल; (गु०) टींबरवो, टैंबु(भु)णी; (ले०) डिओस्पिरॉस मेलानॉक्सीलॉन (**Diospyros melanoxylon L.**)। माकातेंदू (हिं०) काला (माका) तेंदु, गाब; (सं०) काकतिन्दुक, मर्कटतिन्दुक; (बं०) गाब; (संथा०) मकरकेंद, माकाकेंद; (को०) केन्दु, गाडातिरिल; (ले०) डिआस्पिरॉस पेरेग्रिना (**Diospyros peregrina**) (Gaertn.) Gurke (पर्याय–*D. embryopteris Pers.*, *D. malabarica* Desr.); (अं०) इंडियन पर्सिमोन (Indian Persimon)।

उत्पत्तिस्थान—समग्र भारतवर्ष। प्रान्तके उत्तरी भागको छोड़कर सर्वत्र यह वृक्ष पाया जाता है। माकातेंदूके वृक्ष प्रान्तके मध्य भागमें प्राय: नदीनालोंके किनारे पाये जाते हैं।

वर्णन—यह एक मझोले कदके वृक्षका प्रसिद्ध फल है जो लड्डुकाकृति गोल या अंडाकार व्यासमें २·५ से ३·७५ सें० मी० या १—१·५ इंच (आमलेके बराबर), चिकना पकनेपर पिलाई लिए और स्थायी बाह्यकोशसे युक्त होता है। इसके सिरपर बैंगनके समान टोपी होती है। इसकी छाल और लकड़ी काली होती है। लकड़ीके भीतरका सार काला और वजनदार होता है। इसकी दूसरी जाति (माकातेंदू)के फल व्यासमें ६·२५ सें० मी० से ७·५ सें० मी० (२·५—३ इंच) गोल और रक्तकिट्टावरणसे ढँका रहता है। कच्चे फलका गात्र ईंटके चूर्णके समान एक पदार्थ (किट्टावरण)से ढँका होनेके कारण रंगीन दिखाई देता है। कच्चा फल हरियाली और कालाई लिए और अत्यन्त कसैला होता है। पकाफल ललाई लिए पीला और मीठा होता है और इसके भीतर आठ या कम शरीफाके समान वृक्काकृतिके बीज गूदासे संश्लिष्ट होते हैं। फलमज्जा (गूदा) प्राय: बन्दरोंको बहुत प्रिय होती है। अत: इसका मर्कटतिन्दुक नाम अन्वर्थक ही है।

रासायनिक संगठन—फलमें टैनिन, पेक्टिन और द्राक्षशर्करा (ग्लूकोज), कच्चे फल, फूल और छालमें विपुल प्रमाणमें टैनिन होता है।

तेंदू (फल)—

प्रकृति—कच्चा फल शीत एवं रूक्ष और पका फल अनुष्णाशीत (मोतदिल) है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—शीतसंग्राही और शुक्रस्तम्भन। प्रधान गुण वीर्यपुष्टिकरण है। कच्चे तेंदूका चूर्ण अकेला या उपयुक्त औषधद्रव्योंके साथ अतिसार बन्द करने और शुक्रप्रमेह, शुक्रतारल्य एवं शीघ्रपतनको नष्ट करनेके लिए खिलाते हैं। अहितकर-अन्त्र और आमाशयके लिए। निवारण-दूध और तेल (स्नेह)। प्रतिनिधि-कठजामुन। मात्रा-५ ग्राम से ७ ग्राम (५ माशे से ७ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—निघंटुओंमें इसका समावेश फलवर्गमें किया गया है। कच्चा तिन्दुक कषाय, ग्राही, वातप्रकोपक (सु०) और पक्व फल, मधुर, विपाकमें गुरु तथा कफ और पित्तनाशक हैं। (सु० सू० अ० ४६; च० सू० अ० २७)। चरकने इसे रसमें कषाय, मधुर और लघु लिखा है। तेंदूकी लकड़ीका सार पित्तरोगनाशक है (नि० र०)।

नव्यमत—तेंदूका अपक्व फल कषाय, संग्राही, वातकारक और श्लेष्मल होता है। पक्वफल मधुर, स्निग्ध, दुर्जर तथा छाल संग्राहक और बल्य मानी जाती है। गाब (माकातेंदू)की फलमज्जा बन्दरोंको बहुत प्रिय होती है। बीजतैल तथा फलमज्जा पुराने आँव और अतिसारमें उपयोगी होती है। भीतर या बाहरके रक्तस्रावके रोकनेमें भी इनका उपयोग होता है।

◆

(३१७) तेजपात

फ़ैमिली : लाउरीने (Family : Laurinae)

नाम—(हिं०) तेजपात, तेजपत्ता; (यू०) Melabathron (D. 1. 11); (अ०) अल्—साज़जुल् हिन्दी (इ० वै०), साज़ज हिन्दी; (सं०) पत्र(क)म्; (ले०) सिन्नामोमुम् नीटिडुम् (**Cinnamomum nitidum** Hooker.); (अं०) इण्डियन सिन्नेमन (Indian Cinnamon)।

उत्पत्तिस्थान—हिमालयके उष्णकटिबन्धस्थित भाग, संयुक्तप्रान्त, बंगाल और ब्रह्मा आदि।

वर्णन—यह दालचीनीकी जातिके, पर उससे भिन्न, एक जंगली वृक्षके प्रसिद्ध सूखे पत्ते हैं, जो औषधके काममें आते हैं। ये सुगन्धित एवं स्वादमें तीक्ष्ण (चरपरे) होते हैं।

रासायनिक संगठन—पत्रमें एक उत्पत् तेल **यूजीनोल** (Eugenol), **टर्पीन** (Terpene) और **सिन्नैमिक ऐल्डीहाइड** (Cinnamic aldehyde) होता है।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें उष्ण एवं रूक्ष। आयुर्वेदके मतसे उष्णवीर्य एवं पिच्छिल (भा० प्र०)।

गुण-कर्म तथा उपयोग—मनःप्रसादकर मस्तिष्कबलदायक, दीपन, वातविलयन, मूत्रार्तवजनन, लेखन, कोथप्रतिबंधक, शीतल, शोफहर और विशेषतः **आमाशयबलदायक** हैं। सौमनस्यजनन औषधकी भाँति तेजपातको हृदयोद्वेष्टन (वजउल्फ़ुवाद) और हृदयदौर्बल्य जैसे हृद्रोगोंमें प्रयुक्त करते हैं और वातिक अन्यथाज्ञान (वसवास), उन्माद, विराग (वहशत) जैसे मस्तिष्करोगोंमें खिलाते हैं। आमाशयदौर्बल्य, पाचनदौर्बल्य, उदरशूल, अन्त्रशूलमें और अन्त्र एवं गर्भाशयगत वायुके उत्सर्गके लिये इसका उपयोग करते हैं। मूत्रार्तवजननके लिये इसको सिरकामें पीसकर उदर और पेड़ूपर लेप करते और आन्तरिक उपयोग करते हैं। सव्रणनेत्रशूल (फूली), पक्ष्मशात, दृष्टिमांद्य (धुन्ध) और अर्म (नाख़ूना)के दूर करनेके लिये अकेले या अन्य औषधियोंके साथ सुरमाकी भाँति बारीक पीसकर आँखमें लगाते हैं। वस्त्रको सुवासित करने या कीटोंसे सुरक्षित रखनेके लिये उसमें तेजपातको रखते हैं। कक्षा और वंक्षणस्थ दुर्गन्ध दूर करनेके लिये इसको महीन पीसकर सिरकामें मिलाकर उक्त स्थलोंपर लेप करते हैं। मुखदौर्गन्ध्यनिवारणके लिये इसे मुखमें रखकर चबाते हैं। शीतल शोथोंके विलयनके लिये इसका लेप करते हैं। **अहितकर**–बस्ति और फुफ्फुसको। **निवारण**–मस्तगी और बिहीका शर्बत। **प्रतिनिधि**–बालछड़ और तज। **मात्रा**–क्वाथमें ३ से ४ ग्राम (३ से ४ माशे) तक; चूर्ण और माजूनके रूपमें २ ग्राम (२ माशे)।

आयुर्वेदीय मत—तेजपात कुछ मधुर पिच्छिल, लघु, तीक्ष्ण, उष्णवीर्य तथा कफ, वात, अर्श, हृल्लास, अरुचि और पीनसको दूर करनेवाला है। (भा० प्र०)।

नव्यमत—तेजपात कफ और आमप्रधान रोगों तथा उदरमें वायु भरना, उदरशूल, अतिसार आदि पाचन-संस्थानके रोगों और गर्भाशयकी शिथिलतामें इसे देते हैं।

●

(३१८, ३१९, ३२०) तोदरी (तुदरी) सफेद, सुर्ख़ व जर्द

फ़ैमिली : क्रूसीफेरे (Family : Crucifereae)

नाम—(फा०) तो(तु)दरी; (अ०) बज़्रुल् खुमखुम, बज़्रुल् हुवः, क़सीसः; (ले०) लेपीडिउम् इबेरिस (**Lepidium iberis** Linn.); (अं०) पेपर-ग्रास (Pepper-grass), पेपरवर्ट (Pepper-wort)।

उत्पत्तिस्थान—दक्षिण यूरोपसे साइबेरिया तक और फारसमें तथा हिमालयके पंजाबादि स्थानोंमें इसके पौधे होते हैं। बीजका आयात यहाँ फारससे होता है।

वर्णन—यह एक कँटीली क्षुद्र वनस्पतिकी क्षुद्र फलियोंके प्रसिद्ध बीज हैं जो रंगके विचारसे तीन प्रकार के होते हैं—सुर्ख़ (लाल), जर्द (पीला) और सफेद। तोदरी लाल 'तुदरिये सुर्ख़'को तोदरी गुलगूँ भी कहते हैं। पीली तोदरी (तुदरिएज़र्द) शेष उभय भेदोंसे उत्कृष्टतर होती है। सफेद तोदरी (तुदरिये सफ़ेद) लाल भेदकी अपेक्षया रंगमें केवल कुछ हलका लाल होती है। इसका भूरा भेद कभी-कभी तोदरीस्याह (काली तोदरी) नामसे

बाजारमें मिलती है ? इनमें सफेद सबसे बड़ी और अधिक चपटी होती है। बीज मसूराकार, किंतु उससे बहुत क्षुद्र किंचित् चपटे होते हैं। पानीमें भिगोने पर ये लबाबसे घनावृत हो जाते हैं।

उपयुक्त अंग—बीज।

रासायनिक संगठन—बीजोंमें **तोदरीन** (Lepidin) नामक एक अक्रिस्टली (Amorphous) तिक्त सत्व, एक उड़नेवाला तेल और गंधक (Sulpher) होता है।

प्रकृति—सफेद और पीली उभय प्रकारकी तोदरी दूसरे दर्जेमें **उष्ण** और पहलेमें तर।

गुण-कर्म तथा उपयोग—**वाजीकर**, शुक्रल, **स्तन्यजनन** उष्णताजनन, **दोषतारल्यजनन**, **श्लेष्मनिष्ठीवनोत्सर्गकर्ता**, शीतलामाशयबलदायक, बृंहण और लेप श्वयथुविलयन है। वाजीकर, वृष्य; बृंहण और स्तन्यजनन होनेसे अकेले इसका चूर्ण या इसके साथ अन्य औषधद्रव्य मिलाकर दूधके साथ खिलाते हैं। इन प्रयोजनोंके लिए यह पुष्कल उपयोग की जाती है। श्लेष्मनिःसारक होनेसे कास, श्वास और कृच्छ्रश्वासमें यह अवलेहकी भाँति उपयोग की जाती है। उरःफुफ्फुसको यह सांद्र दोषोंसे शुद्ध करती है। शोफघ्न होनेसे इसका लेप सूजन उतारता है। यह जननांगोंमें गर्मी पहुँचाती है। **अहितकर**—दाह और घबराहट उत्पन्न करती है। **निवारण**—क्वाथ करना और पानीसे तर करना। **प्रतिनिधि**—लाल और सफेद बहमन। **मात्रा**—७ ग्रामसे १२ ग्राम (७ माशेसे १ तोला) तक।

नव्यमत—तोदरी पौष्टिक, मूत्रजनन श्लेष्मनिःसारक और शोणितोत्क्लेशक है। श्वासनलिका शोथमें कफ निकालने और कम करनेके लिए इसका फांट देते हैं। इससे मूत्रका प्रमाण बढ़ता है। इसके बीजोंका दबाकर निकाला हुआ तेल सन्धिवातमें मलते हैं। इससे त्वचा किंचित् लाल होती है।

●

(३२१) थकार

वर्णन—यह मनुष्यके आकारका एक **वृक्ष** है, जो बंगालमें विपुल होता है। शाखायें गँठीली और विकीर्ण होती हैं। इसके प्रत्येक गाँठपर एक या दो बारीक शाखाएँ होती हैं जिनपर छोटे-छोटे पत्र लगे होते हैं। स्वादमें ये तिक्त और कषाय होते हैं। फूल छोटा सफेद रंगका होता है।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें उष्ण एवं रूक्ष।

गुणकर्म तथा उपयोग—स्वेदन और वेदनाहर। श्लेष्मज्वर और अंगवेदना (विशेषतः हस्तपादकी वेदना)में खिलाते तथा इसके काढ़ेका बफारा देते हैं। सुतरां थकारके पत्र ७ ग्राम से १० ग्राम (७ माशे से १० माशे) तक थोड़ीसी आदीके साथ पीसकर खिलाते हैं। इससे खूब खुलकर स्वेद आता है और कफज्वर तथा अंगवेदना नष्ट हो जाती है। इसके पत्तोंको जलमें क्वाथ करके अंगघात और अंगवेदनाके रोगियोंको इसका बफारा देते हैं जिसमें पसीना आ जाय। **अहितकर**—उष्ण प्रकृतिको। **निवारण**—शीतल और तर द्रव्य। **मात्रा**—७ ग्राम से ९ ग्राम (७ माशे से ९ माशे) तक।

●

(३२२, ३२३, ३२४) थूहर

फ़ैमिली : एउफॉर्बिआसे (Family : Euphorbiaceae)

नाम—(हिं०) थूहर (ड़), सेंड, सेहुँड़; (अ०) ज़क़ू (ज़क़ू)म, ज़र्उल्‌कल्ब; (सं०) स्नुही, सेहुण्ड; (बं०) मनसा गाछ (सिज्); (म०) निवडुंग, काँटेनिवडुंग; (गु०) थोर; (काठियावाड) कंटालो; (पं०; मा०) थोर। डंडा थूहर—(हिं०) सेहुँड़, थूहर; (बं०) मनसासिज, पातसीज; (गु०) थोरकँटालो; (म०) मिंनगुट, वईनिवडुंग; (ले०) एउफॉर्बिओ निवूलिया (**Euphorbia nivulia** Ham.)। त्रिधारा थूहर (हिं०) तिधारा सेहुण्ड या थूहर; (अ०) ज़क़्क़ूमे हिंदी; (सं०) स्नुही, वज्री, वज्रकंटक; (बं०) तेकांटासिज, त्रिशिरामनसा; (म०) तीनधारीनिवडुंग; (गु०) तनधारी थोर (सेंड) (ले०) एउफार्बिआ आंटीक्वोरुम् (**Euphorbia antiquorum** Linn.); (अं०) ट्रैंगुलर स्पोन्ज (Triangular Sponge)।

उत्पत्तिस्थान—सर्वत्र भारतवर्ष।

वर्णन—यह एक क्षीरी वनस्पति है जिसके तने और शाखाओं पर काँटे होते हैं। यह कई प्रकारकी होती है; यथा—डंडाथूहर, तिधाराथूहर, चौधाराथूहर, अंगुलिया थूहर (**E. tirucalli** Linn.), नागफनी (Cactuses) थूहर इत्यादि। मात्र थूहर शब्दसे डंडा थूहर, तिधारा और चौधारा थूहर विवक्षित होते हैं। डंडा थूहरका तना और शाखाएँ गोल होती हैं। तिधाराका तना और शाखाएँ तिपहलू (तिधारा) तथा चौधाराका चौपहलू होता है।

उपयुक्त अंग—दूध, कोमल शाखा और पत्र।

रासायनिक संगठन—इसमें युफॉर्बोन, राल, निर्यास, रबड़ (काउचूक), मैलेट ऑफ कैल्सियम् आदि द्रव्य होते हैं।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें उष्ण और तीसरेमें रूक्ष, दूध चौथे दर्जेमें उष्ण एवं रूक्ष है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—श्वयथुविलयन, त्वग्रागकारक, व्रणकारक, श्लेष्मविरेचनीय और श्लेष्मनिःसारक। थूहरके दूधको तिलाके योगोंमें डालकर हस्तमैथुनीके शिश्नपर तिला करते हैं। यह रक्तको बाहरी त्वचाकी ओर आकर्षित करके उसको रागयुक्त (सुर्ख) बना देता है और निरंतरके उपयोगसे व्रण उत्पन्न कर देता है। अतः शिश्नमें इसके उपयोगसे उत्तेजना और उच्छ्राय उत्पन्न होता है और शक्ति जागृत हो उठती है। इसकी कोमल शाखाओंको पुटपाककी विधिसे पका (मुशव्वी)कर निचोड़ते और उसमें समभाग तिलका तेल मिलाकर अग्निपर पकाते हैं। जब तेलमात्र शेष रह जाता है तब उसे उतार-छानकर आमवात, वातरक्त, गृध्रसी, पक्षवध और अर्दितमें इस तेलकी मालिश करते हैं। इसी प्रकार पत्तोंका स्वरस निचोड़कर भी तेल तैयार करते और उक्त रोगोंमें मर्दन करते हैं। पत्तोंको गरम करके उनका रस निचोड़ते और समभाग पालकजूहीकी जड़ मिलाकर गोलियाँ बना लेते हैं। आवश्यकतानुसार गोलीको थूहरके पत्रस्वरसमें घिसकर दद्रु पर लगाते हैं। केवल थूहरका दूध लगानेसे दद्रु आराम हो जाता है। कर्णशूलनिवारणके लिये इसके पत्तोंका गुनगुना रस कानमें टपकाते हैं। दंतशूल मिटाने और दाँतोंको शीघ्र उखाड़नेके लिए विकारी दाँतपर इसका दूध टपकाते हैं। इसका दूध कफविरेचन होनेसे फिरंग (आतशक), आमवात, जलोदर और कुष्ठमें उपयोग किया जाता है। बारीक किये हुए निसोथ या चनेके आटेको थूहरके दूधमें गूँधकर चनाप्रमाणकी गोलियाँ बाँधकर रोगीके बलाबलके अनुसार खिलाते हैं। इससे विरेक होकर रोगजनक दोष उत्सर्गित हो जाता है। यह कफजकास और श्वासमें भी खिलाया जाता है। इससे यथाविधि क्षार (नमक)भी बनाया जाता है जो कफजकास, श्वास और जलोदर में लाभकारी है। **अहितकर**—उष्णप्रकृतिके लिये। **निवारण**—दूध। **प्रतिनिधि**—हर एक दूसरेका प्रतिनिधि है। **मात्रा**—दूध १/२ बूँदसे १ बूँद तक।

आयुर्वेदीय मत—पांडुरोग, उदर, गुल्म, कुष्ठ, दूषीविष, शोथ, मधुमेह और दोषज उन्मादमें बलवान् रोगीको थूहरका प्रयोग करना चाहिए। थूहरका क्षीर—दूध तीक्ष्णविरेचन है; इसलिए मृदुकोष्ठवालेको दोष अल्प हो और अन्य उपायसे रोगी अच्छा हो सकता हो तो इसका प्रयोग नहीं करना चाहिये। तीक्ष्ण और अधिक काँटेवाले सेहुँड़के दो या तीन वर्षके वृक्षमें शस्त्रसे छेद करके क्षीर लेना चाहिये। (च० सू० अ० २५; च० क० अ० १०; अ० सं० क० अ०; सु० सू० अ० ३८, ३९)।

नव्यमत—सेहुँड़के दूधको अण्डेकी जर्दीके साथ रेचनार्थ देते हैं। सेंकी हुई पत्तियोंका स्वरस, नमक और गायका घी बच्चोंकी खाँसीमें दिया जाता है। कोल इसके दूधको ज्वरमें तीव्ररेचनके रूपमें देते हैं। **तिधारा थूहर** कफघ्न, ज्वरघ्न, रेचन और रक्तशोधक है। इससे कफ पतला होकर मुख और गुदाके द्वारा निकल जाता है। बालकके कफरोगमें तिधारे थूहरका बहुत उपयोग करते हैं। इसके साथ अडूसा, शहद और शुद्ध सोहागा दे सकते हैं। मूलका काढ़ा जीर्ण आमवात और उपदंशमें देते हैं। थूहरकी जातिमें जो दाहजनक द्रव्य होता है वह इसमें अल्पप्रमाणमें होता है।

उपयुक्त अंग—मूल और डंडा। डंडेके टुकड़ेको गरमकर कुचल और निचोड़कर रस निकालना चाहिये। **मात्रा**–बच्चोंके लिये १½—३ माशा, बड़ोंके लिये १½—२ तोला (सेहुँड़ (डंडा थूहर) थूहरकी जातिमें जो दाहजनक विष होता है वह इसमें अधिक होता है। सेहुँडका दूध तीव्र रेचन है। इससे वमन और पानीके समान दस्त होते हैं। उदररोगमें कालीमिर्चके चूर्णको सेहुँडके दूधमें भिगो गोली बनाकर देते हैं। सेहुँडके मूल और कालीमिर्चका चूर्ण सूतिकाज्वरमें देते हैं। **मात्रा—मूल चूर्ण** २—४ रत्ती; **पत्रस्वरस** २—५ बूँद और **क्षीर** ½—१ रत्ती।

●

(३२५) दम्मु(-मु-)ल् अख़्वैन

फ़ैमिली : लीलिआसे (Family : Liliaceae)

नाम—(हिं०) हीरादोखी, खूनखराबा; (अ०) दम्मुल्अख़्वैन, दम्मुत्तिन्नीन, दम्मुश्शोअबान, क़ातिरुद्दम, ऐदअ; (फा०) खूनसियावशाँ; (सं०) रक्तनिर्यास (नवीन); (क०) खुनखाँरा; (म०; बम्ब०) हिरादखण; (गु०) हीरादखण; (ले०) **ड्राकेना सिन्नाबारी Dracaena cinnabari** Balf. (**पर्याय**—Sanguis draconis); (अं०) ड्रैगन्स ब्लड (Dragon's blood)।

उत्पत्तिस्थान और भेद—सकोतराद्वीप और कनारीद्वीपमें होनेवालेको ड्राकेना ड्राको (Dracaena draco) कहते हैं। जंजीबार या सिंगापुरी हीरादोखी तालजातीय (Palmae) डीमोनोरॉप्स ड्राको **Doemonorops draco** *Blume*. (**पर्याय–कलामस ड्रैको** = *Calamus draco*) नामक वृक्षसे प्राप्त होता है।

वर्णन—यह एक वृक्षका प्रसिद्ध गोंद है जो निलाई लिये हुए लाल (गंभीररक्त) रङ्गका गोल डलियों के आकारका होता है। इसके यह तीन भेद हैं—(१) चकीदा (मुक़त्तर), (२) तुराबी और (३) मुअत्तर (ख़शबी)। भारतवर्षमें इसका निर्यात अरबस्तान और अफरीकासे बम्बई होकर सकोतरा द्वीपसे होता है। यह सर्वोत्कृष्ट मुक़त्तर स्वच्छ रक्तवर्ण होता है। जो पीसनेपर अति रक्तवर्णका और काष्ठरहित हो उसको औषधके काममें लेना चाहिये। अन्य भारतवर्ष और अफरीका आदिसे आते हैं।

वक्तव्य—इसके स्वरूपके विषयमें यूनानी चिकित्सकोंमें बहुत कुछ आशंका हुई है। अस्तु, किसीने इसे 'बकमनिर्यास (समग बकम)' लिखा है, किसीने 'उसारए हूचोबा' और किसीने 'किसाउल्हिमारका उसारा'

लिखा है जो सर्वथा निराधार है। गीलानीने जो लिखा है कि यह एक नीलाभ रक्तवर्णका गोंद है जिसे हिंदमहासागर स्थित सकोतरी द्वीपसे लाते हैं, यथार्थ है। उन्होंने इसके पूर्वोक्त तीन भेद लिखे हैं। यूरोपमें पहले तो अफ्रीका और जमैकाकी काइनो आती थी। परन्तु सन् १८११ ई० में उसके स्थानमें मलाबार-काइनो जाने लगी और अधुना भी यही जाती है। भारतवर्षमें इसके स्थानमें दम्मुलअख़्वैन्, कमरकस और पलासनिर्यास (Butea kino) प्रयुक्त की जाती है। दे० 'विजयसार'।

रासायनिक संगठन—गोंदमें लोबानाम्ल (बेंजोइक एसिड) और सिन्नैमिक एसिड होता है।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें शीत एवं रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—आन्तरिक उपयोगसे दम्मुल्अख़्वैन अन्त्रपर प्रबल संग्राहक कर्म करती है। बाहरीतौरपर सद्यःव्रणोंपर छिड़कनेसे यह रक्तस्रावको रोकती है और जख्मोंको अतिशीघ्र सुखाती है। यह अतिसार और प्रवाहिकाको बन्द करनेके लिये उपयोग की जाती है। यदि रक्त भी आता है तो उसे रोकनेके लिये भी इसे खिलाते हैं। रक्तष्ठीवन, अत्यन्त रजःस्राव और अर्शोजात रक्त बंद करनेके लिये भी इसे देते हैं। रक्तस्राव रोकनेके लिये इसे सद्यःव्रणोंपर छिड़कते और नेत्रव्रणमें बारीक खरल करके नेत्रमें लगाते हैं। इसका प्रधान गुण समस्त अंगों और आशयोंके रक्तका स्तम्भन करना है। अहितकर—वृक्कके लिये। निवारण—कतीरा और बबूल का गोंद। प्रतिनिधि—धोया हुआ शादनज। मात्रा—१ से १·५ ग्राम (१ माशा से १ १/२ माशे) तक।

●

(३२६) दरूनज अकरबी

फ़ैमिली : कॉम्पोज़ीटो (Family : Compositae)

नाम—(अ०; भा० बाजार) दरूनजे अक़रबी; (ले०) डोरोनिकुम् पार्डालीआन्केज **Doronicum pardalianches** (पर्याय—*D. scorpioides*); (अं०) लेपर्ड्स बेन (Leopard's bane)।

वक्तव्य—इसकी एक भारतीय जाति डोरोनिकुम् रॉयलेई (**Doronicum roylei** DC.) या डोरोनिकुम् हूकेरी (**D. hookeri** Clarke.) की जड़को भी पंजाबमें दरूनज अकरबी कहते हैं। यह पश्चिमी हिमालयमें १०,००० फुटकी ऊँचाईपर कश्मीरसे गढ़वाल तक होती है। 'दरूनज', फारसी 'दरूनः' या 'दरूनक' से अरबी बनाया गया है।

उत्पत्तिस्थान—यह यूरोप, सोरिया, श्याम और अफरीकामें पुष्कल होती है और वहाँ अक़रबीके नामसे पुकारी जाती है।

वर्णन—यह एक वनस्पतिकी प्रसिद्ध जड़ (पाताली घड़) है जो छोटी गँठीली, कड़ी, बाहरसे खाकस्तरी (मटियाली) और भीतरसे सफेद होती है। बाहरसे देखनेपर यह बिच्छूकी पूँछके समान दिखती हैं; इसलिये दरूनज अक़रबी (अ० अक़रब = बिच्छू) कहलाती है। स्वाद इसका प्रारम्भमें फीका, किन्तु कुछ मिनटोंके उपरान्त जिह्वा पर उष्णता एवं चुभनकी-सी प्रतीति होती है। रूमी और फारसी भेदसे यह दो प्रकारकी होती है। इनमें रूमी उत्तम है, विशेषकर वह जो किसी कदर तिक्त, सुगन्धित, कड़ी और अन्दरसे सफेद हो। इसमें दस वर्ष तक वीर्य शेष रहता है।

उपयुक्त अंग—जड़।

रासायनिक संगठन—इसमें औषधीयवीर्यकी अपेक्षया पोषणतत्व अधिक होता है।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें उष्ण एवं रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—हृदयबलोल्लासकारक, यकृदामाशयबलदायक, उष्णताजनन, कफसौदाविलयन, सांद्रवातानुलोमन, गर्भाशयशूलहर, गर्भरक्षक और विषोंका अगद (विषघ्न) है। हृदयबलोल्लासकारक होनेसे इसकी गणना हृद्रोगोंकी प्रधान औषधियोंमें होती है। शीतल हृत्स्पंदनके लिये यह परम गुणकारी है और इन्हीं गुणकर्मों के कारण दवाउल्‌मिस्कका एक उपादान यह भी है। कफसौदाविलयन और उष्णताजनन होनेके कारण सौदा और कफजन्य रोगों, जैसे—पक्षवध, अर्दित और वातिक उन्माद (मालीन्खोलियाए मराक़ी) आदिमें यह अन्य औषध द्रव्योंके साथ प्रयुक्त होता है। सांद्रवायुका अनुलोमन होनेके कारण यह उदरानाह, वायुजन्य उदरशूल और वातज गर्भाशयशूलको नष्ट करता है। गर्भरक्षक होनेके कारण गर्भरक्षक माजूनोंमें इसको भी डालते हैं। विषघ्न होनेके कारण मरक (वबाई) रोगों विशेषकर प्लेगमें और वृश्चिक एवं अन्य बिलेशायी विषधर जन्तुओं (हवाम्म)के दंशमें पान और लेपकी भाँति इसका उपयोग करते हैं। **अहितकर**—शिरःशूलजनक। **निवारण**—सौंफ। **प्रतिनिधि**-नरकचूर (जुरंबाद)। **मात्रा**—१ ग्राम से ३ ग्राम (१ माशासे ३ माशे) तक।

(३२७) दवाएजुनून (धवलबरुआ)

फ़ैमिली : आपोसीनासे (Family : Apocynaceae)

नाम—(हिं०; भा० बाजार) सर्पगन्धा, **धवलब(म)रुआ**, पागलकी बूटी (जड़ी)–(उ० प्र०), धनमरवा, ईशरगज, चंदमरवा (बिहार); (बं०) चाँदड़ (र), चाँद, **छोटाचाँद, छोटी चंदन**; (म०) अडकई; (अ०) दवाउज्जुनून, दवाउश्शिफ़ा (नवीन); (फा०) दवाए जुनून; (सं०) जम्बू (रा० नि०), **सर्पगन्धा** ? (ले०) **राउवॉलफिया सेर्पेन्टीना (Rauwolfia serpentina** Benth ex. Kurze)। इसकी एक दूसरी जाति भारतवर्षके नम एवं उष्णप्रदेशोंमें उपर्युक्त उद्भिज्जके साथ-साथ उगी हुई मिलती है। यह बंगाल विशेषकर चौबीस परगनाके जिलों और हवड़ामें पुष्कल तथा उड़ीसा एवं उत्तरप्रदेशके बनारस तथा चुनार आदि स्थानोंमें भी मिलती है, जहाँ इसे **'पागलकी बूटी'** कहते हैं। परन्तु बिहारमें इसके मिलनेका उल्लेख नहीं मिलता। इसके नाम, गुणधर्म तथा उपयोग आदि सभी उपर्युक्त औषधिके सर्वथा समान हैं। इसे लेटिनमें **राउवॉलफिआ कानासेन्स (Rauwolfia canascens** Linn.) कहते हैं।

वक्तव्य—इसका जातिगत नाम 'राउवॉलफिआ' सोलहवीं शतीके जर्मन पर्यटक और चिकित्सक 'रॉवुल्फ'के नामपर रखा गया। आयुर्वेदमें चरकमें इसका कोई उल्लेख नहीं मिलता केवल सुश्रुत उ० तं० अ० ६० के अमानुषोपसर्गाध्यायमें मानसरोगहर अपराजितादिगणमें सर्पगन्धाका उल्लेख, उन्माद आदि मानसरोगहरणार्थ पान-नस्यके रूपमें मिलता है। भाष्यकार डह्लणने इसके परिचयमें 'वर्षासु छत्राकार'के अतिरिक्त और कुछ नहीं लिखा है। केवल इतने ही से इसे धवलबरुआ मानना उचित नहीं जान पड़ता। क्योंकि यदि इतने उपयोगी एवं गुणदायी ओषधिका ज्ञान प्राचीनोंको होता तो उनके द्वारा इसका अनेकविध प्रयोग किया हुआ मिलता। इससे ज्ञात होता है कि भ्रमवश धवलबरुआके लिए इसका प्रयोग प्रचलित हो गया है। सर्पगन्धा वस्तुतः 'ईश्वरी' या 'ईश्वरमूल' का नाम हैं और उसीके लिए इसका प्रयोग होना चाहिए। धवलबरुआका विवरण राजनिघण्टूक्त 'जम्बू'से अधिक मिलता है, ऐसा श्रीभागीरथस्वामीका मत है, जो ठीक प्रतीत होता है। यूनानीके प्राचीन ग्रन्थोंमें धवलबरुआका उल्लेख नहीं मिलता, केवल आधुनिक ग्रन्थोंमें इसका उल्लेख मिलता है। अस्तु, इसके अरबी-फारसी नाम नवीन एवं इसके गुणोंको ध्यानमें रखकर दिये गये हैं। 'सर्पगन्धा' जो संस्कृत नाम जैसा लगता है, वस्तुतः 'बाजारू नाम' है।

उत्पत्तिस्थान—यह बिहार, नेपालकी तराई और बंगालमें विपुल मात्रामें तथा उत्तरप्रदेशके देहरादून, गोरखपुर आदि स्थानों और कोंकणमें अल्पप्रमाणमें होता है।

प्राप्तिस्थान (मण्डी)—कलकत्ता, पटना, भागलपुर और काठमाण्डू (नेपाल)से इसकी जड़ अन्य स्थानोंको भेजी जाती हैं। आजकल प्रायः सब बड़े शहरोंके पंसारी लोग इसे बेचनेके लिये रखते हैं।

वर्णन—इसके सुन्दर, चिकने और २-३ हाथ ऊँचे **गुल्मक** होते हैं। **काण्ड** स्वाश्रयी; **पत्तियाँ** आमने-सामने अथवा चक्रित, प्रत्येक सन्धिमें ३-४ आयताकार या अभिलट्वाकार और ३-७ इञ्च लम्बी होती हैं। **पुष्प** छोटे श्वेत या जामुनी छाया लिये हुए लाल रंगके, आभ्यन्तर नाल प्रायः टेढ़ा और आपद्म और कण्ठमें प्रायः घनरोमश; **फल** रक्ताभ और अन्तमें काले, व्यासमें ·२५–·५" इञ्च अर्थात् मटर जितने बड़े और दो बीजोंवाले होते हैं; **मूल** लगभग १०–१२ इञ्च लम्बे, अंगुली जितने मोटे, बाहरसे भूरा-सफेद, भीतरसे पिलाई लिए सफेद और भंगुर; स्वाद अत्यन्त तिक्त; गन्ध विशेष प्रकार की, मूल तोड़ने पर भीतर गोल चक्र और केन्द्ररेखा स्पष्ट दिखती है।

उपयुक्त अंग—जड़ (विशेषकर ताजी जड़ अभावमें सूखी) और क्वचित् पत्रका भी उपयोग होता है।

रासायनिक संगठन—इसमें अजमलीन और सर्पेन्टाईन नामक दो समूहके क्षाराभ जो इसके कार्मुक प्रभावांश (प्रधान वीर्य) हैं, पाये जाते हैं। इनमें प्रथम समूह **अजमलीन**–अजमलीन ·१ प्रतिशत, अजमलीनीन ·०५ प्रतिशत और अजमलीसीन ·०२ प्रतिशत, इन तीन सफेद मणिभीय कमजोर मौलिक उपादानोंका यौगिक है और द्वितीय समूह सर्पेन्टाइना एवं सर्पेनटाइन १% तथा सर्पेन्टाइनीन ·०८ प्रतिशत इन दो चमकदार एवं मणिभीय दृढ़तर मौलिक उपादानोंका यौगिक है। इनके अतिरिक्त इसमें राल, पिष्ट, गोंद और लवण ये तत्व वीर्यमें इसमें होते हैं। **इसकी दूसरी** जाति में रॉवुल्सीन (Rauwolscine) नामक क्षाराभ पाया जाता है जो मूलत्वक् में ०·१ प्रतिशत, कांडत्वक्में ०·२ प्रतिशत और पत्रमें ०·२ प्रतिशत होता है। इसके अतिरित्त इसमें रिसर्पीन (Reserpine) नामक क्षाराभ भी होता है।

कल्प तथा योग—मूलचूर्ण, पत्रस्वरस, रसक्रिया (सर्पगन्धाघन), **दवाएजुनून** (दवाउश्शिफा), सर्पगन्धाघनवटी, सर्पगन्धादि घनवटी, करामाती गोलियाँ, सर्पगन्धा योग, सर्पगन्धाचूर्णयोग आदि।

प्रकृति—उष्णवीर्य।

गुण-कर्म तथा उपयोग—यह तिक्त, क्षुधाजनक (क्षुद्बोधक), सारक, उत्तम निद्रालानेवाला और उत्तेजनाशामक है। आजकल अधिकतया नाड़ीशामक औषधिके रूपमें ही इसका अधिक उपयोग होता है। अस्तु, नाड्युत्तेजन (वातप्रकोप)के कारण होनेवाले रोग, जैसे–उन्माद, अपतन्त्रक और अपस्मारके लिये यह असीम गुणकारक एवं आशुफलदायक सिद्ध हुआ है। इसके मूलका चूर्ण उपयुक्तमात्रामें सेवन करनेसे अच्छी नींद आती है और उन्मत्तताका ह्रास होता है; इसलिए अनिद्रा एवं उन्माद रोगमें इसका उपयोग होता है। किन्तु उन्मादके सब रोगियोंको इससे लाभ नहीं होता। खूब उत्तेजित और बलवान् रोगीपर इसका प्रयोग करना चाहिए। दुर्बल, निस्तेज और मनोऽवसाद(Melancholy)ग्रस्त रोगीपर सावधानीसे इसका प्रयोग करना चाहिए। इन रोगियोंके रक्तके दबाव की परीक्षा करके यदि वह अधिक हो तब ही इसका प्रयोग करना चाहिए। जिन उन्माद रोगियोंका रक्तका दबाव कम हो उनको इससे लाभ नहीं होता। बनारस, बिहार और बंगालके लोग प्राचीनकालसे उन्माद और अनिद्रामें इसका प्रयोग करते आ रहे हैं। अतः वास्तवमें यहाँसे ही अन्य लोगोंने इस रहस्यका ज्ञान प्राप्त किया। हिन्दुस्तानी दवाखाना दिल्लीकी दवाउश्शिफा या दवाएजुनून नामक उन्मादकी प्रसिद्ध औषधि अर्थात् 'दवाउज्जुनून' भी छोटी चन्दनके सिवाय और कुछ नहीं है। प्रारम्भमें केवल इसका चूर्णही इस नामसे बेचा जाता था। किंतु इसकी रासायनिक परीक्षा एवं विश्लेषण हो जानेके बाद जब इसका क्षारीय प्रभावांश (क्षाराभ) प्राप्त कर लिया गया तब फिर

अब यह सत्व ही **दवाउश्शिफा**के नामसे विक्रय किया जाता है। इसका क्षाराभ हृदयपर अवसादक क्रिया करता है और सूक्ष्मरक्तवाहिनियों का विकास–विस्फार करता है। इसलिए रक्तका दबाव (ब्लडप्रेशर) कम होता है। अस्तु, **उच्चरक्तचाप** (हाईब्लडप्रेशर) की यह अव्यर्थ महौषधि है। रालकी रक्तके दबावपर कोई क्रिया नहीं होती, परन्तु उसके द्वारा नींद आती है। इसका क्षाराभ गर्भिणीके जरायुका संकोच अर्गटके समान ही करता है। इसलिए प्रसवोत्तर १-१ माशाकी मात्रामें इसे दिनमें तीनबार देते हैं। गर्भाशयोत्तेजक होनेके कारण यह अनियमित ऋतुके लिये गुणकारी है। प्रबल ज्वरमें इसका सेवन करनेसे अशांति और मोह दूर होता है, अच्छी नींद आती है, प्रलाप दूर होता है, आँखोंका वर्ण स्वाभाविक होता है और साथ ही ज्वरका वेग भी कम होता है। उकसाइट (जिकावते हिस) दूर करनेका गुण होनेसे यह स्वप्नदोष एवं शुक्रप्रमेहके लिये भी गुणकारक है। अकारण लिंगोत्थानसे जिनको निद्राभंग और सिरमें दर्द होता हो तथा सूजाक (औपसर्गिक पूयमेह)के परिणामस्वरूप अत्यन्त ध्वजोच्छ्रायसे शिश्न टेढ़ा होता हो, उनको यह फलप्रद है। इसकी क्रिया स्त्री और पुरुष दोनोंपर समान होती है। सर्प और वृश्चिक आदिके दंशमें इसका सामान्यरूपसे उपयोग होता है। शोष वा फक्क एवं नेत्रशुक्लमें भी इसका उपयोग होता है। नेत्रशुक्ल (फूली)में इसकी पत्तियोंका दो-तीन बूँद रस पिचकारी (ड्रॉपर)के द्वारा डालनेसे लाभ होता है।

मात्रा—रक्तका दबाव कम करनेके लिये २½–५ रत्ती; नींद लानेके लिये ५-१५ रत्ती; उन्माद और प्रबल अपतन्त्रक (हिस्टीरिया) के लिए १॥–३ माशा तक।

अनुपान—जल, दूध या गुलाबके फूलोंका अर्क। इसका चूर्ण १-३ माशा (अथवा ३ से ६ माशा) ५ तोले गुलाबके अर्कमें ३-४ घण्टेतक भिगोकर, या रात्रिका भिगोया प्रातः और प्रातःकालका भिगोया सायंकालको रख देवें। पीछे इसे खूब हिलाकर पिलाये अथवा ठंढाई-जैसा पीसकर पिलाये। यदि चाहें तो ४–६ माशे मिश्री भी इसमें मिला सकते हैं। तीन-चार रत्तीकी अल्प मात्रामें सेवन करना हो, तो फाँककर ऊपरसे अर्कगुलाब आदि पीकर सरलतासे निगला जा सकता है। इसके चूर्णकी गोलियाँ अर्कगुलाब या पानीसे बनाकर अथवा यथाप्रमाण कीचेटमें डालकर सरलतासे उपयोग कर सकते हैं। यन्त्रकी सहायतासे इसकी बनाई हुई गोली या चक्रिका (टिकिया) भी प्रयुक्त हो सकती है, जिन्हें निगल लेना अत्यन्त सरल होता है। आराम होनेपर मात्रा घटा देनी चाहिये और फिर २-२ या ३-३ दिनके अन्तरसे दवा देनी चाहिये। पथ्य केवल दही-भात खिलावें। मांस तथा गरम एवं उत्तेजक पदार्थोंसे परहेज करे। **अहितकर**—पित्तप्रकृतिवालोंको (वातकफवालोंके लिये उपयुक्त)। **निवारण**—अर्क गुलाब।

●

(३२८) दानक

वर्णन—अमीनुद्दौलाके मतसे लाल तोदरी जैसा, किंतु उससे छोटा एक बीज है। इसका क्षुप एक बालिश्तके बराबर होता है।

उत्पत्तिस्थान—तबरिस्तानके पर्वतों तथा उस ओरके अन्यान्य प्रदेशोंमें उत्पन्न होता है।

प्रकृति—गरम एवं तर है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—श्लैष्मिक एवं सौदावी रोगोंमें गुणकारी है। ग्रन्थोंमें लिखा है कि १४½ तोलेसे २९ तोले तक पीसकर दुगुने गेहूँके आटेमें मिलाकर रोटी पकाकर खानेसे खूब तैयारी आती है। इसे योनिमें धारण करनेसे गर्भ रह जाता है। गर्भ रहनेकी दशामें योनिमें रखनेसे गर्भ गिर जाता है।

●

(३२९) दामीसाका गोंद

वर्णन—शीराजकी ओर होनेवाला एक बड़ा और कांटेदार वृक्ष है। इसका गोंद ललाई लिये हुए तिक्त एवं कटु होता है।

प्रकृति—गरम एवं रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—यह समस्त गुणधर्मोंमें हींगका प्रतिनिधि है। भेद केवल यह है कि यह हींग जैसा दुर्गन्धित नहीं है। यह उष्ण, तारल्यजनन (मुलत्तिफ़), वातविलयन, पाचन, आमाशयगत द्रवोंका शोषक है तथा अन्त्रगत शीतको निवारण करता और वातज दंतशूलका लाभ पहुँचाता है। मात्रा—१½ ग्राम (१½ माशे)।

●

(३३०) दारु(रू)हलदी

फ़ैमिली : बेर्बेरिडासे (Family : Berberidaceae)

नाम—वृक्ष एवं काष्ठ (हिं०) दारु(रू)हलदी; (अ०; फा०) दारहल्द; (फा०) दारचोबा; (सं०) दारुहरिद्रा, दार्वी, पीतदारु; (बं०) दारुहरिद्रा; (म०) दारुहलद; (गु०) दारुहलदर; (बम्ब०) दारहलद; (ने०) चित्रा, कष्मल; (गढ़०) किंगोड़ा, तोतरा; (क०) कावटच्छमूल, दांलिद्धर; (पं०) दारहल्दी, सिमलू (पहाड़ी इलाका); (ले०) (१) **बेर्बेरिस आरिस्टाटा (Berberis aristata** DC.); (२) **बेर्बेरिस आशिआटिका (Berberis asiatica** Roxb.); (अं०) एशियाटिक बार्बेरी (Asiatic Barberry)। **घन-रसक्रिया** (हिं०) रसवत, रसोंत, रसौंत; (यू०) Lukion (D. I. 132); (अ०) अल्हुज़ुज़ (इ० बै०), हुज़ुज़े हिन्दी, ख़ौलान, फ़ीलज़ह्लज; (फा०) फी(पी)लज़ह्लः; (सं०) रसाञ्जन (च०; सु०); (म०; बं०) रसांजन; (गु०) रसवन्ती; (ने०) रसवन्तो; (सिंध) रसवल; (ले०) एक्स्ट्राक्टम् बर्बेरिडिस (Extractum Berberidis); (अं०) एक्स्ट्रैक्ट बर्बेरिस (Extract Berberis)।

फल—(हिं०; भा० बाजार); जरिष्क; (अ०) बरबारीस, अंब(अम्ब)र बारीस; (फा०) ज़(ज़ि)रिष्क। (अं०) बर्बेरी फ्रूट या बेरीज़ (Berberry Fruit or Berries)। **जड़** (हिं०) दारुहल्दीकी जड़; (अ०) आरग़ीस; (सं०) दार्वीमूल; (अं०) बर्बेरी रूट (Berberry root)।

वक्तव्य—संस्कृत संज्ञाएँ (जो काष्ठके लिए प्रयुक्त हुई हैं) इसके वृक्षके लिए भी प्रयुक्त हैं। लेटिन, नेपाली एवं गढ़वाली नाम इसके वृक्षके हैं। किसी-किसी क्षेत्रमें स्थानीय लोग इसके वृक्षको भी 'रसवत' या 'रसौंत' नामसे ही अभिधानित करते हैं। लेटिन संज्ञा 'लीकिउम्', यूनानी 'लूकिओन (Lukion)'से व्युत्पन्न है।

उत्पत्तिस्थान और भेद—हिमालयकी शुष्क घाटियोंमें ३,००० से ७,५०० फुटकी ऊँचाई पर इसके वृक्ष होते हैं। भूटान, गढ़वालसे हजारा तक, बिहार और पारसनाथकी पहाड़ियों और दक्षिणमें नीलगिरी पर्वत पर इसकी झाड़ियाँ उत्पन्न होती हैं। इसकी एक जाति नेपालमें होती है जिसे लैटिनमें बेर्बेरिस ऑरिस्टाटा (**Berberis aristata** DC.) और अँगरेजीमें **नेपाल बारबेरी** (Nepal Barberry) कहते हैं। **बेर्बेरिस लीकिउम्** (**B. lycium** Royle) वा ऑफ्थैल्मिक बारबेरी (Ophthalmic barberry) नीलगिरी पर्वतपर होती है। इनका काष्ठ वा मूल, रसक्रिया और फल सभी उपर्युक्त जातिकी दारुहलदीके समान होते और प्रायः उन्हीं नामोंसे बोले जाते हैं। गुणकर्ममें भी ये समान होते हैं। विदेशीय दारुहल्दीको बेर्बेरिस वुलगारिस (Barberis vulgaris Linn.) कहते हैं। यह भारतवर्षमें भी होती है।

वर्णन—दारुहलदी अंकोलकी तरहकी एक कँटीली झाड़ीकी प्रसिद्ध लकड़ी है जो पीली, तिक्त और मन्द गन्धवाली होती है। इस लकड़ी (वा मूल)से विशेष विधिसे कल्पना की हुई रसक्रिया (घनसत्व—उसारा)को जो कालाई लिए पीली, कड़ुई एवं कुस्वादु होती है, **रसवत** (हुज़ुज़) कहते हैं। हिन्दी (हुज़ुज़े हिंदी) और मक्की (**हुज़ुज़े मक्की** या रसवत मक्की या फ़ीलज़हरा) भेदसे यह दो प्रकारकी होती है। इसका फल किशमिशसे छोटा, कालाई लिए लाल और रुचिदायक खटमिट्ठा होता है। इसको **'ज़रिश्क'** कहते हैं।

उपयुक्त अंग—मूल, काष्ठ (कांडके नीचेके भागकी पीलेरंगकी लकड़ी) रसक्रिया और फल।

रसवत बनानेकी विधि—वर्षाऋतुके अन्तमें दारुहलदीके मूल और लकड़ीका क्वाथकर, उस क्वाथको पुनः पकाकर प्रस्तुत करते हैं। बाजारकी रसौतमें मिट्टी, पत्ती आदि अन्य द्रव्य मिले होते हैं। उसको चौगुने पानीमें घोलकर १-२ घण्टा रख, ऊपरका पानी निथार, कपड़ेसे छानकर मन्दाग्निपर रसक्रिया-जैसा गाढ़ा कर लेवें। इस प्रकार शुद्ध किया हुआ रसवत औषधके काममें लेवें।

रासायनिक संगठन—दारुहरदीमें दारुहारिद्रीन (बर्बेरीन—Berberine) नामक एक पीला और तिक्त क्षारोद (Alkaloid) और फलमें चिञ्चाम्ल (टार्टेरिक एसिड—Tartaric acid) और सेवाम्ल (मैलिक एसिड—Malic acid) होता है।

दारुहलदी—

प्रकृति—पहले दर्जेमें शीत एवं रूक्ष। आयुर्वेदके मतसे उष्णवीर्य एवं रूक्ष (ध० नि०)।

गुण-कर्म—**श्वयथुविलयन, संशमन और रक्तप्रसादन।**

उपयोग—यह अधिकतया नेत्ररोगोंमें प्रयुक्त होती है। नेत्राभिष्यन्दमें यह दोषोंको विलीन, विलोम और शमन करती है। यह कामला, फोड़े-फुन्सियों और खर्जूमें भी प्रयुक्त की जाती है। भग्नास्थिके संधान और रक्तसंचय रोकनेकेलिये अंडेकी सफेदीके साथ इसका लेप भी लगाते हैं। नेत्राभिष्यन्द और चोटके लिए विशेष गुणकारी है। **अहितकर**–उष्ण प्रकृतिके लिए। **निवारण**–बिजौरा या नारंगीका अर्क। **प्रतिनिधि**–चोटके लिए हलदी। **मात्रा**–३ ग्रामसे ५ ग्राम (३ माशेसे ५ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—दारुहलदी रसमें तिक्त, विपाकमें कटु, रूक्ष, उष्णवीर्य, लेखन तथा अर्श, कुष्ठ, कण्डू, व्रण, प्रमेह, मुख-नेत्र-कर्णरोग और विसर्पका नाश करनेवाली है (च० सू० अ० ४; सु० सू० अ० ३८; ध० नि०-गुडूच्यादि व० ; रा० नि०–पिप्पल्यादि व०)।

नव्यमत—दारुहलदी तिक्त, उष्ण, कटुपौष्टिक, सौम्य, ग्राही, विषमज्वरनाशक, स्वेदजनन, ज्वरहर, श्लेष्मघ्न और त्वग्दोषहर है। थोड़ी मात्रामें दारुहलदी कटुपौष्टिक, दीपन और सौम्यग्राही है। बड़ी मात्रामें जोरदार स्वेदन, ज्वरहर और मृदुरेचक है तथा पारीके ज्वरको रोकती है। इसका यह गुण कुनैन जैसा होता है। परंतु कुनेनसे जैसा रोगीको त्रास होता है, ऐसा इससे नहीं होता। जीर्णज्वरमें जैसे कुनैनसे बढ़ी हुई प्लीहाका संकोचन होता है, ऐसा इसमें भी होता है। रसौत शोथघ्न, कफघ्न, विषमज्वरप्रतिबन्धक और स्रंसन है। विषमज्वरमें पहले हल्का रेचन देकर पीछे १५ रत्ती रसौत जलमें मिलाकर देते हैं। ऐसी दिनमें तीन मात्रा देते हैं। रसौत देनेके बाद रोगीको खूब कपड़ा ओढ़ाकर सोने देना चाहिए। कुछ देरके बाद रोगीको प्यास लगेगी। परन्तु जल पीनेको नहीं देना चाहिए। एक घण्टे बाद उसको पसीना आयेगा। पसीना पोंछकर उसको पेय या गरम दूध पिलाना चाहिए। दारुहलदीसे त्वचा और उसके नीचेकी रसग्रन्थियोंकी विनिमय क्रिया सुधरती है। इसलिए फिरंगोपदंश, गण्डमाला, अपची, नाडीव्रण, भगन्दर, व्रण और विसर्पमें दारुहलदीसे लाभ होता है। इन रोगोंमें रसौत खिलाते हैं और इसका लेप कराया जाता है। श्वेतप्रदर और गर्भाशयकी शिथिलतासे उत्पन्न अत्यार्तवमें दारुहलदीका काढ़ा या रसौत दी जाती है।

रसवत (उसारए दारहल्द)—

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें शीत एवं रूक्ष (खुश्क(मतांतरसे तीसरेमें रूक्ष)। (दिल्लीके हक़ीम)। लखनऊ-वालोंके मतसे मोतदिल, दूसरे में रूक्ष। आयुर्वेदके मतसे शीतवीर्य।

गुण-कर्म तथा उपयोग—बाहरी प्रयोगसे यह दोषविलोमजनन, संशमन और संग्राही कर्म करती है। आंतरिकरूपसे खिलानेसे यह संतापको शमन करती और अन्त्रपर संग्रहण कर्म करती है। दोषविलोमकरण और वेदनास्थापनके लिये रसवतको अकेला या उपर्युक्त औषधद्रव्यके साथ उष्ण शोथपर लगाते हैं। कर्णस्राव रोकनेके लिये कानमें इसका आश्च्योतन करते हैं तथा कण्ठके उष्ण शोथको नष्ट करनेके लिये तथा मसूढ़ोंको दृढ़ करनेके लिये इसके घोल (विलयन)से गण्डूष कराते हैं। नेत्राभिष्यंदमें इसे नेत्रके चतुर्दिक् लेप करते तथा नेत्रमें डालते हैं। सूज़ाकमें इसके घोलकी पिचकारी करते हैं। अर्शोजात रक्त और अतिसारको रोकने, वातार्शको निवारण करने तथा अन्त्रव्रणको नष्ट करनेके लिये इसका प्रचुरतासे आंतरिक उपयोग करते हैं। बालविसर्पमें रक्तप्रसादन द्रव्योंके साथ इसकी गोलियां (हब्ब रसवत) बनाकर खिलाते हैं। **अहितकर**–प्लीहारोगमें। **निवारण**–अनीसून। **मात्रा**–१ ग्रामसे २ ग्राम (१ माशासे २ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—रसाञ्जन तिक्त, शीतवीर्य तथा रक्तपित्त, व्रण, व्रणशोथ, नेत्रके रोग और विषमज्वरको नाश करनेवाला है।

नव्यमत—रसौत, फिटकिरी और अफीमको नीबूके रसमें पीसकर आंखकी सूजनमें आँखके ऊपर लेप करते हैं। अर्शमें रसौत, नीमके फलकी गिरी समभाग ले, उसको मूलीके रसकी सात भावनाएँ देकर बनायी हुई गोली देनेसे लाभ होता है। व्रणशोथ पर रसौतका लेप किया जाता है। एक औंस उत्तम गुलाबके अर्कमें दो रत्ती रसौत और दो रत्ती फिटकिरी डालकर बनाये हुए द्रवके बिन्दु आंखमें डालनेसे नेत्राभिष्यन्द आराम होता है। उबले हुए जलमें रसौत मिलाकर बनाये हुए द्रवसे व्रणको धोनेसे और सूजाकमें शिश्नके भीतर तथा प्रदरमें योनिमें उत्तरबस्ति देनेसे उपकार होता है। रक्तार्श और रक्तप्रदरमें रसौत केवल या नागकेसर और खूनखराबा (दम्मुल्-अख्वैन)के साथ मिलाकर खानेको देते हैं।

कल्प तथा योग—क़ुर्स जरिश्क, **जुवारिश जरिश्क** आदि।

जरिष्क—

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें शीत एवं रूक्ष (दिल्लीके हकीम) तथा लखनऊके हकीमोंके मतसे तीसरे दर्जेमें शीत एवं रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—यह पित्तसंशमन और रक्तोद्वेगसंशमन है; तथा यह उष्ण यकृदामाशयके संतापको शमन करती, उनको शक्ति देती और अन्त्रमें कब्ज उत्पन्न करती है। पित्तज रोगों विशेषकर ज्वरोंको शमन करने तथा वमन और उत्क्लेश-निवारणके लिये इसको जल या अर्कमें पीस-छानकर पिलाते हैं तथा यकृदामाशयका संताप दूर करने और उनको शक्ति देनेके लिये इसका उपयोग करते हैं। यकृत्काठिन्यमें इसको केसरके साथ देते हैं। पित्तज अतिसार और अन्त्रसंक्षोभ बन्द करनेके लिये अकेला या उपयुक्त औषधद्रव्यके साथ इसको पिलाते हैं। पित्तल प्रकृतिके लोगोंके लिये तथा पैत्तिक रोगोंमें इसको आहारमें मिलाकर भी खिलाते हैं। **अहितकर**–कफ-प्रकृतिवालोंको। **निवारण**–शर्करा और लौंग। **प्रतिनिधि**–गुलाबके फूलका जीरा (जरेवर्द) और सफेदचंदन। **मात्रा**–३ ग्रामसे ५ ग्राम (३ माशेसे ५ माशे) तक।

नव्यमत—जरिष्क शीतल, अम्ल और रोचक है।

(३३१) दालचीनी

फ़ैमिली : लाउरीने (Family : Laurineae)

नाम—छाल (हिं०; म०) दालचीनी; (यू०) Kinnamomon; (अ०) दारसोनी (इ०बै०), क़िर्फ़ा; (फा०) दारचीनी; (सं०) त्वक्, त्वचा, गुडत्वक्, वराङ्ग; (बं०) दारुचीनी; (ले०) सिन्नामोमी कॉर्टेक्स (Cinnamomi Cortex); (अं०) सिन्नेमन बार्क (Cinnamon Bark)। वृक्षको लैटिनमें **सिन्नामोमुम् जेलानिकुम्** (**Cinnamomum zeylanicum** Nees) और अँगरेजीमें सीलोन सिन्नेमन (Ceylon Cinnamon) कहते हैं।

उत्पत्तिस्थान—सिंहल (लंका) और दक्षिण भारतवर्ष। सिंहली दालचीनी सर्वोत्तम होती है।

तेल—(हिं०) दालचीनीका तेल; (फा०) रोग़न दारचीनी; (ले०) ऑलिउम् सिन्नेमोमाइ (Oleum Cinnamomi); (अं०) ऑइल ऑफ सिन्नेमन (Oil of Cinnamon)।

वर्णन। **सिंहली या सिलोनी**—यह तज जातीय एक वृक्षकी सुगन्धित छाल है जो एक दूसरेपर लिपटी हुई होती है। यह सबसे पतली, सहजमें टूट जानेवाली, गंदलेलाल रंगकी, अंदरसे कालाई लिये भूरो, स्वाद चीनीसे विशेष मीठी और तेजीमें कम तथा सुगंधित होती है। ताजा तेल (त्वक्तैल) पीला और कालांतरमें लाल हो जाता है। रुचि एवं वास दालचीनी सरीखा होता है। इसका एक भेद और है जिसे **'चोनी दालचीनी'** कहते हैं। लैटिन में इसे **सिन्नामोमुम् कास्सिआ** (**Cinnamomum cassia** Blume.) और अँगरेजीमें चायनीज सिन्नेमन (Chinese Cinnamon) या कॅसिया बार्क अथवा कॅसिया लिग्निया (Cassia Bark or Cassia Lignea) कहते हैं। यह चीन और सिंगापुरसे आती है। चीनी और सिंहली दोनोंको दाल(र)चीनी कहते हैं। ये दालचीनीके उत्तम भेद हैं। कागजकी तरह पतली होनेसे यह **'पत्री दालचानो'** कही जाती है। दालचीनीका एक तीसरा भेद भो है जिसे **'तज'** कहते हैं। दे० 'तज'।

वक्तव्य—इसकी लैटिन संज्ञा 'सिन्नामोमुम्', इसकी यूनानी संज्ञा 'किन्नेमोमोन'से व्युत्पन्न है। इसकी अरबी संज्ञा फारसो दारचीनीका अरबी रूपान्तर है। प्राचीन फारसीमें 'दार' वृक्षको कहते हैं। प्राचीन कालमें यह छाल चीन देशसे ईरान देशमें पहुँची। इसलिये इसका उक्त नामकरण किया गया। 'क़िर्फ़ः' अरबीमें त्वक् (छाल)को कहते हैं। किन्तु अरबवासी 'क़िर्फ़तुद्दारसीनी' के स्थानमें केवल 'क़िर्फ़ः' ही बोलते हैं। इसकी हिन्दी संज्ञा 'तज' इसकी संस्कृत संज्ञा 'त्वचः'का अपभ्रंश है। यूनानी भाषामें 'मोमून' 'क़िर्फ़ः' या दारचीनीको कहते हैं और कासिया (Cassia) जिसका प्राचीन आरब्य उच्चारण **'क़सया'** और वर्तमान आंग्ल उच्चारण 'केशिया' है, **तज** (सलीख़ः)को कहते हैं। परन्तु अधुना यूरूपीय उद्भिज्जशास्त्रवेत्ता इन शब्दोंका योगकर **'सिन्नामोमुम् कासिया (Cinnamomum cassia)'** दारचीनीको कहते है और प्रायः इन दोनोंको एक दूसरेका पर्याय भी मानते हैं। किन्तु अर्वाचोन मिस्री लेखक 'सिन्नेमन' को 'क़िर्फ़तुल्क़रन्फ़ुलियः' और कासिया या केशिया अर्थात् 'सलीख़ा (तज)' को 'किर्फ़तुल्ख़श्बियः' लिखते हैं। हिंदीमें 'क़िर्फ़ः' और 'सलीख़ः' दोनोंको 'तज' कहते हैं।

इतिहास—सिन्नेमन् अर्थात् 'क़िर्फ़ः' या दालचीनो और केशिया अर्थात् 'सलीख़ा या तज' इन दोनोंका उल्लेख 'तौरेत'में आया है और यूनानी हकीम **सावफरिस्तुस्** तथा कई एक अन्य प्राचीन लेखकोंने भी इनका उल्लेख किया है। जालीनूसके कथनानुसार 'क़िर्फ़ः व दारचीनी' और 'सलीख़ः' दोनों अभिन्न वस्तु हैं। भेद केवल यह है कि सलीख़ा क़िर्फ़ाको अपेक्षया घटिया होता है। यूनानो हकीम दीसक़ूरीदूसने भी कई प्रकारकी दारचीनीका उल्लेख किया है। यद्यपि निश्चितरूपसे तो नहीं कहा जा सकता, तथापि यह संभवनीय प्रतीत होता हैं कि प्राचीन यूनानी 'किन्नेमामान्' दालचीनीको कहते थे और 'कासिया' तज अर्थात् हिन्दी दालचीनीको कहते थे। परन्तु सीलोन सिन्नेमन (Ceylon Cinnamon) अर्थात् लंकाको दालचीनी जिसे यूनानी वैद्यकीय ग्रंथोंमें 'दार-

चीनी सीलानी' लिखा है और जो सर्वश्रेष्ठ भेद है, उसका ज्ञान वस्तुतः प्राचीन यूनानी एवं अरबी प्रभृति चिकित्साविशारदोंको नहीं था। कारण पवित्र अर्थात् धर्मग्रन्थों और प्राचीन सिंहली आलेखोंमें उसका कहीं उल्लेख नहीं आया है तथा यह भी ज्ञात नहीं कि उक्त द्वीपमें उक्त छालका संग्रह किस कालमें करने लगे। कदाचित् क़ज़्वीनी प्रथम व्यक्ति है जिसने ईसवी सन्‌की तेरहवीं शतीमें इसका विवरण किया। ईसवी सन्‌के २७०० वर्ष पूर्वके लिखे चीनी लेखोंमें 'केदोके नामसे' जिसका समानार्थी 'केशिया अर्थात् सलीखः(तज)' है, दालचीनीका उल्लेख है। परन्तु भारतीय दालचीनी या तजका उल्लेख ईसवीसन् की आठवीं शतीकी लिखी चीनी पुस्तकोंमें पाया जाता है। प्राचीन भारतीयोंको भारतवर्षके विविध भागोंमें उत्पन्न होनेवाली विभिन्न प्रकारकी दालचीनीका ज्ञान था। सुतरां प्राचीन संस्कृतग्रंथोंमें त्वक्, गुडत्वक् प्रभृति इसकी कतिपय संज्ञायें दी हैं। अरबवासी जिनके माध्यमसे प्राचीनोंकी दालचीनी यूरोपमें पहुँची, उसको 'क़िर्फ़तुद्दारसीनी', संक्षेपमें केवल 'क़िर्फ़ः' कहते हैं। अरबोंको इस औषधिका ज्ञान संभवतः ईरानवासियोंसे हुआ। **इब्नसीनाने** दीसकूरीदूसके अनुकरणमें विभिन्न प्रकारके दालचीनीभेदोंका उल्लेख किया है। परन्तु तत्पश्चात्कालीन इसलामी ग्रन्यसंकलनकर्ता **दारचीनी सीलानी** और **दारचीनी हिन्दीसे** भलीभाँति अभिज्ञ हैं। सुतरां **हाजीजीनुल्अत्तार** (सन् १३६८ ई०)ने दारचीनीके वर्णनमें लिखा है कि सर्वोत्तम वह है जो सीलान (लंका—सिंहल)से आती है तथा उसके कथनानुसार 'सलीखा' क़शिया (केशिया—Cassia) है जो **सलखवृक्षकी** छाल है।

उपयुक्त अंग—त्वचा और उससे निकाला हुआ तेल।

रासायनिक संगठन—दालचीनीमें एक उत्पत् तेल, राल, कषायाम्ल और थोड़ी-सी शर्करा और तेलमें त्वगम्ल, त्वङ्मद्य प्रभृति द्रव्य होते हैं।

कल्प तथा योग—सफ़ूफ़ दारचीनी, **हलवाये दारचीनी** और रोग़न दारचीनी।

प्रकृति—दिल्लीके हकीमोंके मतसे तीसरे और लखनऊके हकीमोंके मतसे दूसरे दर्जेमें उष्ण एवं रूक्ष (खुष्क); आयुर्वेदके मतसे उष्णवीर्य (ध० नि०) एवं रूक्ष (भा० प्र०) है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—दालचीनी **सुगन्धित, दोषतारल्यजनन** और **कोथप्रतिबन्धक** है। बाह्य त्वचापर लेप लगानेसे यह **शोणितोत्क्लेशक**, उत्तेजक, **वेदनास्थापन** और **लेखन** कर्म करती है। सुगन्धित होनेसे हृदय और मस्तिष्कपर इसका **सौमनस्यजनन** कर्म होता है। श्वासोच्छ्वास अंगोंमें उत्तेजना उत्पन्न करके यह उनको श्लेष्मोत्सर्गके लिये उद्यत करती है और यकृत् और आमाशयको शक्ति प्रदान करती तथा अन्त्रमें कब्ज पैदा करती है। यह कामोत्तेजक, मूत्रार्तवजनन और उत्तमांगोंको विशेषरूपसे बलप्रद है। मुखको सुवासित बनाने और दाँतोंको दृढ़ करनेके लिये दालचीनी मंजनोंमें डाली जाती है। छीप वा झाईं (बहक़) और व्यंग (कलफ़) जैसे रोगोंको नष्ट करनेके लिये इसका पतला लेप (तिलाऽ) किया जाता है। इसे वाजीकर द्रव्योंमें मिलाकर तेल निकालते और नपुंसकताको दूर करनेके लिये शिश्नपर मर्दन करते हैं या उपयुक्त औषधियोंके साथ पीसकर लेप लगाते हैं। इसे माजून और मुफर्रेह कल्पोंमें डालते हैं; कास और श्वासको नष्ट करनेके लिये मधुमें मिलाकर चटाते या क्वाथ करके पिलाते हैं। अग्निमांद्य, अतिसार और प्रवाहिकाको दूर करनेके लिये इसे उपयुक्त औषधियोंके साथ चूर्ण बनाकर खिलाते हैं। सर्दीके शिरःशूलको दूर करनेके लिये इसको जलमें पीसकर मस्तकपर लगाते हैं और आर्तवप्रवर्तनके लिये क्वाथ करके पिलाते हैं। दालचीनीका तेल अकेला या उपयुक्त तेलोंके साथ वाजीकरणार्थ तिलाऽकी भाँति प्रयुक्त किया जाता है तथा भिड़ और बिच्छूके दंशस्थानपर लगानेसे वेदना और सोज़िश (जलन)को शमन करता है। **अहितकर**–बस्तिको। **निवारण**–कतीरा और असारून। प्रतिनिधि–तज। **मात्रा**–छाल १ ग्राम से २ ग्राम (एक माशेसे दो माशे) तक। तैल ०·१३ मि० लि० से ०·३ मि० लि० (२-५ बूँद)।

आयुर्वेदीय मत—**दालचीनी** (त्वक्) कटु, मधुर, तिक्त, उष्णवीर्य, लघु, रूक्ष, पित्तहर तथा कफ, वात, विष, कुष्ठ, मुखरोग, कृमि, हृद्रोग, कण्डू, आम, अरुचि, बस्तिके रोग, अर्श, पीनस और कासको दूर करनेवाली है,

(सु०; ध० नि०; भा० प्र०, आ० सं०)। दालचीनीका तेल ग्राही, आर्तवप्रवर्तक तथा अग्निमांद्य, वात, आध्मान, आक्षेप, वमन, उत्क्लेश और दंतशूल इनको दूर करनेवाला है। (आ० सं०)।

नव्यमत—दालचीनो उष्ण, सुगंधित, दीपन, पाचन, वातहर, स्तम्भन, गर्भाशयोत्तेजक, शोणितस्थापन, रक्तगत श्वेतकणोंकी वृद्धि करनेवाली और उत्तेजक है। इससे आमाशयकी श्लेष्मल त्वचा उत्तेजित होकर जठररस बढ़ता है और अन्नका परिपाक उत्तम होता है। आध्मान, मरोड़ (पेचिश) और छर्दिको बन्द करनेके लिये इसके तेलको शक्करमें मिलाकर देते हैं। कृमिदंतमें इसके १-२ बूँद तेलको रूईमें डालकर दाँतके नीचे दबाते हैं। राजयक्ष्माके जन्तुसे उत्पन्न व्रणपर इसका तेल लगानेसे व्रणकी शुद्धि होती है। राजयक्ष्मा एवं उसके कीटाणुओंसे उत्पन्न रोगोंमें इसका तेल देते हैं। किसी अवयवसे होनेवाले रक्तस्रावमें दालचीनीका हिम देते हैं। दालचीनीसे गर्भाशयका संकोचन होता है, इसलिये प्रसवकालमें आवीका वेग बढ़ानेके लिये पीपलामूल और भाँगके साथ तथा अत्यार्तवमें अशोककी छालके साथ इसे देते हैं। (औ० सं०)

●

(३३२) दिरमना तुर्की

फ़ैमिली : कॉम्पोज़ीटी (Family : Compositae)

नाम—क्षुप (अ०) बस्तियाज, हशीशतुल् ख़ुरासानिया, शीहतुर्की (-ख़ुरासानी); (फा०) दिरमना ख़ुरासानी, खिलाल मक्का; (ले०) आर्टेमीसिआ स्टेक्मानिआना (**Artemisia stechmaniana** Besser.)। बीज (हिं०) बस्तियाजके बीज ; (फा०) दिरमनातुर्की, बख्शीरक, बख्शीज़क; (अ०) कंबाद, कंद बाक़ली; (अरबीकृत) बख्शीर (ज)क़।

उत्पत्तिस्थान—फारस, खुरासान और रूसी तुर्किस्तानके किरगिज आदि प्रदेशोंके विस्तृत अकृष्ट भूभागमें यह पुष्कल होता है।

वर्णन—यह शीहकी जातिका एक कँटीला क्षुप है जो सोयेके बराबर ऊँचा होता है। पत्र छोटे-छोटे खुरदरे; फूल सफेद और नीला होवा है; शाखाएँ एक बालिस्त लम्बी और एक जड़से निकली हुई, प्रत्येक शाखाके सिरे पर खुरदरी घुण्डी होती है। इसकी बारीक टहनी या शाखासे दाँत कुरेदनेका तिनका (खिलाल) बनाते हैं, इसलिये इसे ख़िलाल मक्का कहते हैं। बीज अजवाइनकी तरह छोटे और स्वादमें तिक्त एवं चरपरे होते हैं। इनमें से कुछ सुगन्धि भी आती है।

रासायनिक संगठन—इसके अविकसित पुष्पों और कोमल पत्तोंमें सैन्टोनीन पाया जाता है।

कल्प तथा योग—अतरीफल दीदान।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें उष्ण और दूसरेमें खुश्क (रूक्ष)।

गुण-कर्म तथा उपयोग—यह श्वयथुविलयन, त्वचाका लेखन करता और व्रणोंको शुष्क करता है। उदरकृमि विशेषकर गण्डूपदकृमिनाशन इसका जबरदस्त कर्म है। यह विरेक लाता है, मूत्रार्तवका प्रवर्तन करता, वायुको विकीर्ण (परागंदा) करता, कफ छेदन करता और संयुक्त एवं जीर्णज्वरोंको दूर करता है। इसका प्रधान गुण वातज श्वयथुविलयन है। कफज प्रगाढ़ शोथोंको विलीन करनेके लिये इसका लेप लगाते हैं। इसको जलाकर जैतून या ज़ंबक़ (सफेद चमेली या सोसन)के तेलमें मिलाकर लगानेसे खालित्य नष्ट होता और बाल शीघ्र उग आते हैं। आमाशयशोथ और जलोदर एवं केचुओंको नष्ट करनेके लिये इसका काढ़ा पिलाते हैं। यह केचुओंको मारकर विरेक-

के द्वारा उत्सर्गित करता है। आर्तवप्रवर्तनके लिये भो उपयुक्त औषधियोंके साथ इसका क्वाथ देते हैं। **अहितकर**—आमाशय और मस्तिष्कको। **निवारण**—रूमी मस्तगी और तुरमुस। **प्रतिनिधि**—अफसंतीन और सुदाब। **मात्रा**—१से ३ ग्राम (१से ३माशे)।

* * *

(३३३, ३३४) दुद्धी (छोटी व बड़ी)

फ़ैमिली : एउफ़ॉर्बिआसे (Family : Euphorbiaceae)

नाम। छोटी–(हिं०) छोटी दुद्धी (दूधी), दुधियाघास, निगाचूनी; (फा०) शीरेगियाह, शीरक; (सं०) लघुदुग्धिका, क्षीरिणी, नागार्जुनी; (बं०) रक्तकेरु, दुधिया; (पं०) दोधक, हज़ारदाना (नी); (म०) लहान नायटी; (गु०) नानी दुधेली; (संथा०) नन्हा पूसो-तोआर; (लै०) (१) **एउफ़ॉर्बिआ थीमीफोलिआ (Euphorbia thymifolia** Burm.), (२) **एउफ़ॉर्बिआ मीक्रोफ़ील्ला (E. microphylla** Heyne.)।

बड़ी—(हिं०) बड़ी दुद्धी (दूधी, दूधिया), लाल दुद्धी; (बं०) बड़केरु, बड़ा केरुई; (म०) मोठी दुधी, नायटी; (गु०) राती दुधेली, नागला दुधेलो; (को०; संथाल) पूतोसोआ; (लै०) (१) एउफ़ॉर्बिआ पिलूलीफ़ेरा (**Euphorbia pilulifera** Linn.), (२) एउ० हीर्टा (**E. hirta** Linn.); (अं०) ऐज़्मावीड (Asthma weed), स्नेकवीड (Snake weed), कैट्स हेयर (Cat's hair)।

उत्पत्तिस्थान—यह समस्त भारतवर्षके उष्णप्रधान प्रदेशोंमें होती है।

वर्णन—यह एकवर्षायु क्षुद्र प्रसिद्ध क्षीरी वनस्पति है, जिसके पत्र और शाखाओंके तोड़नेसे दूध निकलता है। इसके यह दो भेद हैं–(१) छोटी—यह वर्षायु, शाखाबहुल, न्यूनाधिक लोमयुक्त, तांबडे रंगकी क्षुद्र वनस्पति है जो जमीन पर पसरी होता है। पत्र छोटे-छोटे आमने-सामने तिर्यक् आयताकार या गोल, गोलदन्तुर $\frac{१}{६}$ से $\frac{१}{३}$ इञ्च, सवृंत ललाई लिये हरे होते हैं। शाखाएँ पतली-पतलो सुतारीकी तरह, लाल रंगकी होतो हैं। इसमें बारह-महीने फूल होते हैं। सुखाई हुई वनस्पतिमें थोड़ीसो कालीचाय सरीखी सुगन्धि होती है, रुचि जरा कषाय होती है। यह दूर्धाखुर्दके नामसे प्रसिद्ध है। यही अधिकतया औषधमें प्रयुक्त होती है। इसकी दूसरी जातिमें एकाभ-व्यूह चिकने (पहलेमें मृदुरोमश)और पत्तियाँ पहलीको पत्तियोंसे कुछ छोटी और कभी-कभी केवल अग्रपर दंतित (पहलीमें गोलदन्तुर) होती हैं। इसके पौधे प्रायः श्वेतवर्ण होते हैं।

उपयुक्त अंग—पंचांग।

रासायनिक-संगठन—छोटी दुद्धीमें क्वर्सेटिनसे मिलता-जुलता एक स्फटिकोय क्षारोदी सत्व होता है। बड़ी दुद्धीमें मायाफलाम्ल (Gallic acid), क्वर्सेटिन (Quercetin), एक नवीन फेनोलिक सब्सटैन्स, एक उत्पत् तेल, एक क्षारोद इत्यादि उपादान होते हैं।

(२) बड़ी—यह प्रतिवर्ष उत्पन्न होनेवालो लगभग एक वित्ता या इससे अधिक उच्च और लोमयुक्त वनस्पति है। कांड महीन, वेलनाकार, हृष्टरोम; पत्र पहले भेदसे वड़े $\frac{३}{४}$ इंचसे $\frac{१}{२}$ इंच लम्बे, $\frac{३}{८}$ इंच चौड़े आमने-सामने क्षुद्रवृंतयुक्त, नुकीला, अंडाकार(भालाकार), पत्रप्रांत नीमके पत्रके समान तीक्ष्ण दंतित; शाखायें लाल-रंग की और रोंगटेदार; फूल क्षुद्र, असंख्य, गोलाकार, पत्रकक्षीय, क्षुद्रवृंतयुक्त, स्तवकोंमें होते हैं। फल(बीज) अंडाकार, बाजरा सरीखे होते हैं। यह बारहोंमास होती है। गंध कुछ नहीं; स्वाद तिक्त होता है। अपने नुकीले पत्र, खड़े रोम और क्षुद्र फलके द्वारा यह सहजमें पहचानी जाती है। इसको दूधी कलाँ कहते हैं। इसके एक भेदके पौधेका पत्रप्रांत

समान और पौधा लोमरहित (मसृण) और हरे रंगका होता है। शेष बातोंमें यह पहले भेदके समान होती है। इसको लेटिनमें **एउफॉर्बिआ हाइपीरिसिफोलिआ (Euphorbia hypericifolia** Linn.) कहते हैं।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें **उष्ण और रूक्ष**; मतांतरसे दूसरे दर्जेमें शीत और **रूक्ष**।

गुण-कर्म तथा उपयोग—यह अन्त्रपर संग्राही कर्म करती है। सुतरां शुक्राशयपर भी इसका संग्राही कर्म होता है। यह आंतरिक रक्तस्रावको रोकती है। मूत्रप्रणाली (गवीनी)पर भी इसका संग्राही कर्म होता है। यह आंतरिक रक्तस्रावको रोकती है। मूत्रप्रणाली (गवीनी) पर भी इसका संग्राही कर्म होता है। यह रक्तप्रसादन और सर्पविषघ्न है। छोटी दुद्धीको जलमें पीस-छानकर अतिसार बंद करनेकेलिये पिलाते हैं। सूजाकमें जलन और मवाद बंद करनेके लिये इसका चूर्ण बनाकर खिलाते हैं। शोणितार्त्तव, रक्तार्श, शुक्रप्रमेह, योनिसे नाना प्रकारका स्राव (सैलानुर्रहम), शुक्रतारल्य और शीघ्रपतन नष्ट करनेकेलिए इसका उपयोग करते हैं। रक्तप्रसादन होनेसे रक्तविकारके कारण शरीरपर उत्पन्न सूजन और फुन्सियों (बुसूर)को नष्ट करनेकेलिये इसको पिलाते हैं। १ तोलाके लगभग दुद्धीको कालीमिर्चके कुछ दानोंके साथ जलमें पीस-छानकर सर्पदष्टरोगीको पिलानेसे उपकार होता है। इसमें चाँदी और वंगकी बनाई हुई भस्म सूजाक, शुक्रमेह और शुक्रतारल्य रोगमें प्रयुक्त होती है। **अहितकर**–फुफ्फुसको। **निवारण**–मधु। **प्रतिनिधि**–एक भेद दूसरेका प्रतिनिधि है। **मात्रा**–५ से ७ ग्राम (५ से ७ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—दुद्धी क्षीरयुक्त, स्वादिष्ट, चरपरी, कड़वी, मधुर, उष्णवीर्य, रूक्ष, भारी, वातकारक, गर्भकारक, मलमूत्रको निकालनेवाली, विष्टम्भजनक, वीर्यवर्धक तथा कफ, कोढ़ और कृमिका नाश करनेवाली है। (भा० प्र०)।

नागार्जुनी मधुर, कड़वी, चरपरी, खारी, उष्णवीर्य, रूखी, ग्राही, वातकारक, वीर्यवर्धक, धातुवर्धक, हृदयको हितकारी, गर्भस्थापक, पारेको बाँधनेवाली, मलस्तम्भक तथा प्रमेह, कफ, कोढ़ और कृमिको दूर करनेवाली है।

नव्यमत—बड़ी दुद्धी–श्वासहर और श्लेष्मनिस्सारक (Pectoral) है। आस्ट्रेलियामें कास, फुफ्फुस और फुफ्फुसप्रणालिकाके रोगोंकी औषधिरूपमें किन्तु उससे अधिक विशेषकर श्वासके आवेग (Paroxymal asthma)में जो यह तुरंत आराम पहुँचाती है, उसके लिये यह बहुप्रशंसित है। १। तोला इस औषधिका १ पाइंट उबलते पानीमें फाण्ट बनाकर चायके चम्मचकी मात्रामें इसे देते हैं।

(३३५) दुकू

फ़ैमिली : ऊम्बेल्लीफेरी (Family : Umbelliferae)

नाम—(हिं०; बम्ब०) दूकू; (यू०) Daukhos (D. 3. 76); (म०; फा०) बाफली; (ले०) **पेउसेडानुम् ग्रान्डे (Peucedanum grande** C. B. Clarke.)।

वक्तव्य—लेटिन नाम वनस्पतिका है। यूनानी 'डाउखोस' संज्ञासे प्रथमतः 'अल्दूक़ुआ' संज्ञा व्युत्पन्न हुआ, परन्तु अरबों द्वारा 'अल्जज़र अल्बर्री अर्थात्' जंगली गाजर (Wild Carrot)के लिए प्रयुक्त किया गया। (इ० बैं० २, १२०; क़ानून १,२९४)। दूकू 'अल्दूक़ुआ' का ही किंचित् परिवर्तित रूप (अपभ्रंश) है। 'बाफली' बहुफली नहीं, अपितु 'दूकू' की ही मराठी संज्ञा है। दूकूको बहुफली समझना भ्रामक है।

उत्पत्तिस्थान—पश्चिम भारतवर्षकी पहाड़ियाँ, पश्चिमी घाट, डेक्कन, कोंकण आदि तथा ईरान।

वर्णन—यह शकाकुल, जंगली या पहाड़ी गाजर, बहुफली और पहाड़ी करफ्स (अजमोद) इन सबसे भिन्न एक बहुवर्षायु, ३-७ फुट ऊँचे क्षुपके प्रसिद्ध बीज (फल) हैं जो बड़े, विस्तीर्ण-अण्डाकार, अजवाइनकी तरह, किन्तु उनसे क्षुद्रतर, भिन्न-भिन्न आकारके, वृहत्तम १·६ सें० मी० ($\frac{५}{८}$ इञ्च) लम्बे और ०·९ सें० मी० ($\frac{३}{८}$ इञ्च) चौड़े, मध्यमें उन्नतोदर, ललाईलिए पीले, किनारे आस-पाससे कटवाँ, आरीके दाँतोंकी तरह और पांडु-पीत, पृष्ठपर उभरी हुई रेखायें होती हैं। बीज (फल)का स्वाद गाजरके समान अथवा तीक्ष्ण नीबूके समान होता है। स्वाद कुछ तीक्ष्ण होता है। यह बीज ही औषधके काम आते हैं। ताजा और पीला बीज श्रेष्ठतर होता है। मीरजापुरके जंगलोंमें प्रसिद्ध कामराज (**Peucedanum nagpurense** Prain.) इसकी एक दूसरी उपजाति है।

रासायनिक संगठन—फलमें हलके पीले रंगका एक उत्पत् तेल होता है।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें उष्ण और दूसरे (मतांतरसे तीसरे)में रूक्ष है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—कफशोथविलयन, प्रमाथी, श्लेष्मनिःसारक, दीपन, शुक्रल, वाजीकर, वातानुलोमन, मूत्रार्तवजनन, बस्तिवृक्काश्मरिनाशन, स्वेदल और कृमिघ्न हैं। दूकू अधिकतया मूत्रार्तवजनन और बस्तिवृक्काश्मरिनाशनके लिए प्रयुक्त किया जाता है। इसके अतिरिक्त मधुके साथ खानेसे यह वाजीकरण करता है तथा माजूनोंमें पड़ता है। अवरोधोद्घाटक और वातानुलोमन होनेसे यह यकृदवरोध और वातोदरमें प्रयुक्त होता है। श्लेष्मनिःसारक होनेसे यह वक्षको गाढ़े कफसे शुद्ध करता है और कफज कासमें प्रयुक्त किया जाता है। इसका लेप कफज शोथ, विशेषकर कफज पार्श्वशूल (शौसा)को नष्ट करता है। **अहितकर**–उष्ण प्रकृतिको। **निवारण**–कतीरा और बबूलका गोंद। **प्रतिनिधि**–गाजरके बीज और करफ्सके बीज। **मात्रा**–३ ग्रामसे ५ ग्राम (३ माशेसे ५ माशे) तक।

●

(३३६) दूब

फ़ैमिली : ग्रामीने (Family : Gramineae)

नाम—(हिं०; पं०) दूब; (अ०) उश्ब; (फा०) मर्ग़; (सं०) दूर्वा, नीलदूर्वा; (कु०) दुबो; (बं०) दूर्वाघास; (पं०) दुबड़ो, खबल; (सिंध) छब(ब्ब)र; (म०) हरियाली, दूर्वा; (गु०) ध्रो, धिरो, घरोखड़; (ले०) **सीनोडॉन डाक्टीलॉन Cynodon dactylon** (L.) Pers.; (अं०) क्रीपिंग साइनोडॉन (Creeping Cynodon)। सफेद दूब (सं०) गोलोमी; (बं०) शादादूर्वा; (गु०) सफेद धरो, धोलीध्रो; (म०) श्वेत दूर्वा।

उत्पत्तिस्थान—सर्वत्र भारतवर्ष।

वर्णन—यह एक प्रसिद्ध घास है। सफेद और नील (हरा) भेदसे यह दो प्रकार की होती है।

उपयुक्त अंग—समस्त लता वा क्षुप विशेषतः मूल।

प्रकृति—सरदीकी तरफ मायल और समशीतोष्णके समीप है। आयुर्वेदके मतसे शीतवीर्य (ध० नि०; कै० नि०) है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—लगानेसे यह गरम सूजन उतारती और दर्द शमन करती है। इसमें एक प्रकारका अगद गुण भी वर्णन किया जाता है। यह आमाशयावसादक, संतापहर और मूत्रल है। उष्णताजन्य शिरःशूलमें दूबको जौके साथ ठंढे पानीमें पीसकर मस्तक पर लेप करते हैं। उष्णशोथ, विसर्प और शीतपित्तको नष्ट करनेके लिए इसको अकेला पीसकर लगाते हैं। चेचकके खुरंड उतारनेके लिए इसको चावल और हलदीके

साथ चमेलीके तेल़में पीसकर लेप करते हैं। मूत्रदाह मिटानेके लिये इसको जलमें भाँगकी तरह पीस-छानकर पिलाते हैं। वमन, विसूचिका और सर्पविष नष्ट करनेके लिये इसे कालीमिर्चके कुछ दानोंके साथ पीस-छानकर पिलाते हैं। **अहितकर**–शीतल आमाशयके लिये। **निवारण**–कालीमिर्च, मधु और मिश्री। **प्रतिनिधि**–धनियेके पत्र। **मात्रा**–७ ग्राम से १२ ग्राम (७ माशेसे १ तोला) तक।

आयुर्वेदीय मत—दूब, मधुर, कषाय, तिक्त, शीतवीर्य, जीवनीय, वर्ण्य, प्रजास्थापन तथा कफ, पित्त रक्तविकार, विसर्प, दाह, रक्तपित्त, तृषा और त्वचाके रोगोंका नाश करनेवाली है। (च०सू०अ० ४ वर्ण्ये 'सितालता', प्रजास्थापने 'शतवीर्या-सहस्रवीर्या; ध०नि०; कै० नि०)।

नव्यमत—दूब शीतल, रक्तस्कन्दन, व्रणरोपण और मूत्रजनन है। जड़का काढ़ा वेदनास्थापन और मूत्रजनन है। इसलिए वस्तिशोथ, सूजाक और मूत्रमार्गके दाहमें इसे देते हैं। त्वग्रोगमें जड़का काढ़ा बनाकर पिलाते हैं। इसका स्वरस नाकमें टपकानेसे नकसीर (नाकसे रक्तस्राव होना) आराम होता है। सद्योव्रण, नेत्राभिष्यन्द और अर्शके दाहमें इसके कल्कका लेप करते हैं। अतिसार, आँव, पैत्तिक वमन, उदर, जलोदर, अत्यार्तव, उन्माद और अपस्मारमें इसका स्वरस पिलाते हैं।

●

(३३७) देवदार

फ़ैमिली : पीनासे (Family : Pinaceae)

नाम—(हिं०) देवदार, किलन; (फा०) देवदार; (सं०) देवदारु, किलिम (च०), स्निग्धदारु, भद्रदारु (सु०); (बं०) देवदारु; (पं०; म०; गु०) देवदार; (ता०; ते०) देवदार; (कु०) दयार; (पहाड़ी) केलोन; (पं०) दियार; (क०) दीवदार; (ले०) **सेड्रुस लीबानी Cedrus libani** Rich. **var. deodara** Hook. f. (**पर्याय**–*C. deodara* (Roxb.) Loud.)। **तेल** (हिं०) किलनका तेल; (फा०) रोग़न देवदार; (सं०) देवदारुतैल; (द०) किलन; (अं०) टार (Tar)। **लकड़ी** (हिं०) देवदारकी लकड़ी।

वक्तव्य—वि० दे० "चीड़" तथा 'वर्णन'।

उत्पत्तिस्थान—उत्तर-पश्चिम हिमालयमें अर्थात् अफगानिस्तान और बलूचिस्तानके उत्तरमें और दोली नदीके जो अलकनन्दामें गिरती है, पूर्व तक अथवा कश्मीरसे गढ़वाल तक ४,०००-१०,००० फुटकी ऊँचाईपर देवदारके विशालकाय एवं अत्यन्त ऊँचे वृक्ष होते हैं। इसमेंसे एक प्रकारका चेंपदार द्रव निकलता है जिसे 'रोग़न-देवदार' कहते हैं। यह इसके सारकाष्ठसे भी विशेष विधिसे अथवा जलाकर निकाला जाता है। इसके आविष्कर्ता कानूनके भाष्यकार हकीम अली गीलानी हैं। इसकी लकड़ी (सारकाष्ठ) कुछ पिलाई लिये हलके भूरे रंगकी, भारी, कटे हुवे पतले खण्डोंमें, जो आड़े काटकी तरफ अर्धस्वच्छ होते हैं, क्योंकि उस ओर तारपीनका बहुत बड़ा अंश एकत्रीभूत होता है। इसकी गन्ध तारपीनवत् और प्रिय होती है। गुजरात और दक्षिण भारतमें प्रायः देवदारके नामसे सरल(चीड़)की लकड़ी बिकती है।

उपयुक्त अंग—सारकाष्ठ (लकड़ी) और इसके काष्ठको जलाकर निकाला हुआ तेल (रोग़न देवदार) औषधार्थ प्रयुक्त होते हैं।

रासायनिक संगठन—इसमें निर्यास, कोलेस्ट्रिन (Cholestrin) और उत्पत् तेल (Essnential oil) प्रभृत तत्व पाये जाते हैं। इसकी लकड़ीसे बलसाँकी गन्धवाला एक तेल प्राप्त होता है।

प्रकृति—आयुर्वेदमतसे उष्णवीर्य एवं स्निग्ध (भा० प्र०) है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—यह वातनाशक, स्वेदजनन, मूत्रजनन और त्वग्दोषहर है। तेल उत्तम व्रणशोधन, व्रणरोपण और वेदनाहर है। यह आमवात, अर्श, पक्षवध, अपस्मार, अश्मरी और गुदभ्रंशमें उपकारक है। (इब्नसीना)। आघात-प्रत्याघातजनित शरीरपीड़ामें रोग़नदेवदारके अभ्यंग करनेसे लाभ होता है (गंजबादावर्द)। शुष्क एवं आर्द्र खुजलीमें इसे फुरेरीसे लगानेसे असीम उपकार होता है।

आयुर्वेदीय मत—देवदार कटु तिक्त, कटुविपाक, उष्णवीर्य, लघु, स्निग्ध, स्तन्यशोधन, अनुवासनोपग तथा विबन्ध, आध्मान, शोथ, आम, तंद्रा, हिक्का, ज्वर, रक्तविकार, प्रमेह, पीनस, कफ, कास, कण्डू और वायुका नाश करनेवाला है। (च० सू० अ० ४, वि० अ० ८; सु० सू० अ० ३८; भा० प्र०)। देवदारका तेल तिक्त कटु, कषाय, दुष्टव्रणशोधन तथा कृमि, कुष्ठ और वातको मिटानेवाला है। (सु० सू० अ० ४५)।

नव्यमत—देवदार स्वेदजनन, मूत्रजनन, वातनाशक और त्वग्दोषहर है। देवदार तेल उत्तम व्रणशोधन और व्रणरोपण है। जीर्णत्वग्रोगमें देवदारका तेल खाने और लगानेको देते हैं। ज्वरमें देवदारको देनेसे स्वेद आता है, मूत्रका प्रमाण बढ़ता तथा शोथ कम होता है और शरीरकी दुर्गन्ध कम होकर ज्वर नष्ट होता है। जीर्ण संधिवातमें इससे लाभ होता है।

◆

(३३८) दौना

फ़ैमिली : काम्पोजीटी (Family : Compositae)

नाम—(हिं०) दवना, दौना, सेमरी; (बं०; बम्ब०) दौना; (सं०) दमन (क); (म०) दवणा; (गु०) डमरो; (पं०) तर्खा; (ता०) मशि(चि)पत्री; (ते०) माचीपत्री; (ले०) **आर्टेमीसिआ वुल्गारिस (Artemisia vulgaris** Linn.); (अं०) मगवर्ट (Mug-wort), फेलोन हर्ब (Felon herb)।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्षके पर्वतीय जिले विशेषकर, दूनके उद्यानों तथा पहाड़ोंके पास इसके क्षुप मिलते हैं।

वर्णन—इसके ४–८ फुट ऊँचे क्षुप होते हैं; कांड कोणयुक्त, लम्बाईके रुख खातित (Furrowed); पत्र ऊपरसे गहरे हरेरंगका एकान्तर, पक्षाकार खण्डोंमें विभक्त, ५–७ खण्डयुक्त, अर्धसरल; पत्रतट अरवत् तीक्ष्णदन्तुर, ऊर्ध्वपृष्ठ मसृण, किन्तु रजतश्वेत, अधःपृष्ठ तूलरोमश होता है। स्वादमें किंचित् तिक्त, रुचिकर एवं एक सुगन्धियुक्त होता है। नीचेकी पत्तियाँ २-४ इंच व १-२ इंच, सनाल लट्वाकार, एक या दो बार पक्षाकारक्रमसे विच्छिन्न, दोनों पृष्ठोंपर रोमश और नीचेके पृष्ठपर राख या श्वेतवर्णकी होती हैं। ऊपरकी पत्तियाँ प्रायः विनाल, रेखाकार-भालाकार, सरलधारवाली तथा तीन विच्छेदोंसे युक्त होती हैं।

उपयुक्त अंग—क्षुप, पत्र और मूल।

रासायनिक संगठन—दौनेमें एक तिक्त सत्व, हरा उड़नेवाला कपूरके समान गंधवाला एक उत्पत् तेल ०·२% तथा उड़नेवाला तेल (Essential oil) और पुष्कल यवक्षार होता है। तेल उत्तम लार्वानाशी (Larvicide) और कुछ-कुछ कीटाणुनाशी गुणवाला (Insecticide) भी होता है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—क्षुप रजःप्रवर्तक, कृमिघ्न, कोथप्रतिबन्धक और दीपन; जड़ बल्य एवं कोथप्रतिबन्धक; पत्र आर्तवप्रवर्तक, मूत्रजनन और स्वेदजनन है। प्रधानतया स्त्रीरोगोंकी औषधियोंमें तथा रुद्धार्तवके

लिये अन्य ओषधियोंके साथ प्रयुक्त होता है। पत्र एवं पुष्पित अग्रों (Tops)के फाँटका प्रयोग वातिक एवं आक्षेपक विकारों तथा श्वास एवं मस्तिष्करोगोंमें होता है।

आयुर्वेदीय मत—दौना वमन, तिक्त, कषाय, हृद्य, वृष्य, सुगन्धि तथा कण्डू, कुष्ठ, ग्रहणी, विष, रक्त-विकार, क्लेद और तीनों दोषोंको दूर करनेवाला है। (ध० नि०; भा० प्र०)।

नव्यमत—दौना तिक्त, दीपन, पाचन, पित्तद्रावो, वातहर, वेदनास्थापन, ज्वरघ्न, कासहर, शोथघ्न, आनुलोमिक, आर्तवजनन, भूतोन्मादहर और गर्भाशयसंकोचन है। मस्तिष्कके ऊपर इसके तेलकी क्रिया कपूर जैसी होती है। अग्निमांद्यमें दौनेका मद्यासव (टिंचर) देते हैं। ५-१० रत्ती चूर्ण देनेसे डकार और अपानवायुका अनुलोमन होकर उदरका शूल कम होता हैं। दौनेसे मलका रंग पीला होता है; इसलिये इसको पित्तद्रावो कहते हैं। ज्वरमें दौनेका फांट देनेसे स्वेद और मूत्रका प्रवर्तन होकर ज्वर और शरीरका दर्द कम होता है तथा नींद आती है। अनार्तव और पीड़ितार्तवमें दौना देनेसे स्त्रीको थोड़ा नशा होता है, पीड़ा शान्त होती है और ऋतु साफ आता है। पांडुरोगमें लौहभस्मके साथ दौना देनेसे उत्तम लाभ होता है। दौनेका क्षार जलोदर, वृक्कोदर तथा हृदयोदरमें देते हैं। इससे मूत्रका प्रमाण बढ़कर सूजन उतर जाती है। दौनेका व्रणशोथपर लेप करनेसे वेदना और शोथ कम होते है। (औ० सं०)।

(३३९, ३४०, ३४१) धतूरा (श्वेत, कृष्ण, राज)

फ़ैमिली : सोलानासे (Family : Solanaceae)

नाम—साधारण (हिं०) धतूर (रा); (अ०) जौजुल्मासेल, जौज़्मासम, दातूरः; (फा०) तातूरः (लः); जौज़आफ़त, गौज़्मासेल; (सं०) धत्तूर, धुस्तूर, धूर्त, कनक, उन्मत्तक; (द०; बम्ब०) घरभूली; (बं०) धूतूरा; (म०) धोत्रा, धोतरा; (गु०) धत्तुरो, धत्तूरो, धतुरो; (मा०) धत्तूरो; (ले०; अं०) डटूरा (Datura)।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्षके उजाड़ स्थान, गाँव और सड़कोंके किनारे कश्मीरसे मालाबार तक इसके क्षुप होते हैं।

वर्णन—धतूरेका पौधा बैंगनके पौधेके बराबर या उससे बड़ा होता है। पत्ते भी बैंगनके पत्तेके समान होते हैं। यूनानी निघंटुग्रंथोंमें दो प्रकारके धतूरेका वर्णन मिलता है—(१) सफेद—इसका फूल सफेद तुरहीकी आकृतिका और शाखाएँ हरी होती हैं; (२) काला (नीलवर्ण)—इसके फूल-फल और शाखा आदि पहलेके समान, किंतु काले या नीले और फूल दोहरा-तेहरा होते हैं। फल अखरोटसे बड़ा होता है और उसपर बारीक काँटे लगे होते हैं। फलके फटनेपर बीज निकलते हैं। बीज सुमाकके दानेकी तरह, कर्णाकृति, चपटे, खुरदरे, हलका पिलाई लिये भूरे, तिक्त और अप्रियगंधी होते हैं। काला धतूरा अधिक वीर्यवान् समझा जाता है।

विशेष भेद। **सफेद फूलका धतूरा**–(हिं०) सफेद धतूरा; (अ०) जौज़्मासेल, जौज़्मासले(मे)अब्यज़; (फा०) तातूरहे सुफ़ेद, गौज़्मासले सुपेद; (सं०) धत्तूर, श्वेतधत्तूर, उन्मत्ता; (द०) उजला धतूरा; (बं०) धूतूरा, सादा धूतूरा; (म०) पाँढ़रा धोत्रा; (गु०) सफेद धतुरो; (ले०) **डॉटूरा आल्बा (Datura alba** Linn.); (अं०) व्हाइट-फ्लावर्ड धतूरा (White-flowered Dhatura)। **सफेद फूल व कालेबीजका धतूरा**—(हिं०); (अ०;फा०) शैकियः, दातूरहे फ़िरंगी, दातूरहे सफ़ेदगुल; (सं०) **राज-धत्तूर** (रा०नि०); (ले०) डॉट्टूरा **स्ट्रामोनिउम् (Datura stramonium** Linn.); (अं०) स्ट्रैमोनियम (Stramonium), थार्न-एपल् (Thorn-apple)।

उत्पत्तिस्थान—इसका मूल उत्पत्तिस्थान उत्तरी ईरान और अफगानिस्तान है। यह यूरोप, दक्षिणी रूस, अमरीका, अफ़गानिस्तान और ईरान तथा कश्मीर, गढ़वाल, कुमाँऊ, नेपाल आदि हिमालयके प्रदेशोंमें होता है। अमरीकाके दर्याफ्त (पता लगने)के पश्चात् ईरानसे यूरोपमें ले जाया गया।

वर्णन—एक क्षुद्र गुल्म; कांड परिविस्तृत, द्वि–त्रिशाखी; पत्र दीर्घवृन्तयुक्त, आधारपर विषम; पुष्प सफेद, नलिका फुनेलाकार पंचदंतयुक्त होती है। बीज काला, वृक्काकृति एवं चपटा, लगभग $\frac{१}{६}$ इंच लंबा और $\frac{१}{२४}$ इञ्च मोटा और विंदुकित होता है।

काले फूलका धतूरा। भेद :—

(१) राजधतूराका एक भेद जिसका फूल बनफ्शई, बैंगनी सिरायुक्त होता है। यह पश्चिम हिमालय और दक्षिण प्रायद्वीपमें होता है।

नाम—(अ०; फा०) दातूरए अर्ग़वानी (किर्मिज़गुल); (ले०) **डॉटूरा टाटूला** (**Datura tatula** Linn.), **डॉटूरा मीटिल** (**D. metel** Linn.)।

(२) पूरा पौधा और पुष्प आदि बैंगनी रंगका, बीज कुछ पिलाई लिये सफेद होता है। यह समस्त भारतवर्षमें मिलता है।

नाम—(हिं०) काला धतूरा; (अ०) जौज़मासले अस्वद, दातूरए स्याह, दातूरए कबूद, दातूरए सुर्ख़ गुल; (फा०) तातूरहेस्याह, गौज़मासले स्याह; (सं०) कृष्ण धत्तूरक (धुस्तूर), कनक; (द०) ऊदा धतूरा; (बं०) कनक धूतूरा; (म०) कला धोत्रा; (गु०) कालो धन्तुरो; (ले०) **डॉटूरा फेस्टूओसा** (**Datura fastuosa** Linn.); (अं०) ब्लैक या पर्पल-फ्लॉवर्ड धतूरा (Black or Purple-flowered Dhatura)।

वक्तव्य—संस्कृत 'धत्तूर' शब्दका अर्थ 'उन्मत्त' या 'उन्मत्त करनेवाला' हैं। इसका बीज अत्यन्त मदकारक एवं स्वापजनन है, इसलिए इसको उक्त नामसे अभिधानित किया गया।

इतिहास—प्राचीन इसलामी और भारतीय वैद्योंको उक्त ओषधिका भली-भाँति ज्ञान था। कारण इसका मूल उत्पत्तिस्थान ईरान और भारतवर्ष ही है। प्राचीन यूनानवासियोंको इसका ज्ञान नहीं था। उत्तरकालीन यूनानी चिकित्सकोंने '**टाटूला**' नामसे जिसका फारसी नाम 'तातूला' है, इस ओषधिका वर्णन किया है। कतिपय लेखकोंके विचारसे इसकी संस्कृत संज्ञा धत्तूरसे ही इसकी अरबी, फारसी और लेटिन संज्ञाएँ व्युत्पन्न हैं, तथापि डॉ० डाइमॉक अपने औषधिका इतिहास विषयक पुस्तकमें लिखते हैं कि इसका कोई प्राचीन हिंदी नाम नहीं पाया जाता। इससे ज्ञात होता है कि जब आर्यलोगोंने मध्य एशियासे भारतपर आक्रमण किया, तब वे इसे भारतमें ले आये। अस्तु, उनके मतसे संभवतः इसकी संस्कृत संज्ञा इसकी फारसी संज्ञा 'तातूरः' से व्युत्पन्न है। क्योंकि उत्तरकालीन यूनानी वैद्योंने भी इसकी फारसी संज्ञा 'तातूलः' को ही अपनी भाषामें समाविष्ट कर लिया। इसकी लेटिन संज्ञा '**डॉटूरा**' इसकी अरबी संज्ञा 'दातूरः' से व्युत्पन्न है, बल्कि वही नाम है, केवल उच्चारणका किंचित् अन्तर है। इसकी अंग्रेजी संज्ञा 'थॉर्न एपल' का अर्थ '**कण्टकितसेब**' और 'डेविल्स-एपल' का अर्थ '**आसुरसेब**' है। संस्कृतमें भी इसका नाम '**राजधत्तूर**' अर्थात् '**महासुर**' है।

उपयुक्त अंग—बीज, पत्र और मूल।

रासायनिक संगठन—पत्र और बीजमें काफी प्रमाणमें अजवायन ख़ुरासानीमें पाये जानेवाले हायोसायमीन और हायोसीन नामक क्षारोद और अल्पप्रमाणमें सूची (बेलाडोना)में पाया जानेवाला ऐट्रोपीन नामक क्षारोद होते हैं। गुण-कर्ममें धतूरा सूची (बेलाडोना)के समान होता है।

प्रकृति—चौथे दर्जेमें शीत एवं खुश्क (रूक्ष); आयुर्वेदमतेन उष्णवीर्य (ध० नि०) है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—बाह्य प्रयोगसे धतूरा अवसादक और स्वापजनन हैं। मर्दन या लेप करनेसे यह रूक्षण कर्म करता है। आंतरिक प्रयोगसे प्रथमतः यह मस्तिष्कको उत्तेजना प्रदान करता और नशा (मद) तथा प्रलाप उत्पन्न करता है, पर अंतमें मूर्च्छा उत्पन्न करता और नींद लाता है। श्वासोच्छ्वासावयवकी प्रणालिकाओं पर यह आक्षेपहर कर्म करता है। धतूरेको नाना प्रकारसे तेलोंमें डालकर आमवात, वातरक्त और पार्श्वशूल आदि पर मर्दन करते हैं। शिरःशूलमें इसको मस्तकपर लेप करते हैं। श्वासका वेग रोकनेके लिये रोगीको इसके पत्तोंकी धूनी देते हैं और हुक्कामें तम्बाकूकी जगह रखकर पिलाते हैं। कास और श्वासमें उपयुक्त औषधियोंके साथ इसके बीजोंकी गोलियाँ बनाकर खिलाते हैं तथा प्रसेक (नजला)को रोकने और ज्वरकी बारी बन्द करनेके लिये देते हैं।

धतूरेके विष-लक्षण और उसकी चिकित्सा—धतूरके बीज विषैली मात्रामें खिलानेसे रोगीकी ज्ञानेन्द्रियाँ अस्थिर और बुद्धि लुप्त हो जाती है। जिह्वा और कंठ शुष्क हो जाते हैं। नेत्र रक्त वर्ण हो जाते हैं और पुतलियाँ फैल जाती हैं। दृष्टि कम हो जाती है। आवाज भर्रा जाती है और रोगी प्रलाप करने लगता हैं। कभी-कभी उठकर भागनेका प्रयास करता है। परन्तु मद्यपानसे मदमस्त मद्यपियोंकी भाँति इधर-उधर पैर रखता है। कभी-कभी काल्पनिक वस्तुएँ दृष्टिगोचर होती हैं और वह उनके पकड़नेका यत्न करता हैं कभी-कभी सरसामियोंकी भाँति अपने कपड़ेको चुनने लगता है और बिछौना, दीवाल आदिसे काल्पनिक वस्तुओंको पकड़ता है। एक-दो दिन यह दशा रहकर विष प्रभाव हो जाता है। पर कभी गफलत तारी हो जाती है और श्वास एवं हृदयकी गति बंद होकर रोगी मर जाता है। इसकी चिकित्सा यह है कि रोगीको कोई वामक औषधि, जैसे-मैनफलका काढ़ा पिलाकर वमन करायें, जिसमें आमाशय सम्यक् शुद्ध हो जाय। इसके उपरांत घी या ताजा मक्खन खिलायें या गायका ताजा दूध पिलायें। इसके बाद धतूरके विषका कोई अगद खिलायें। **शोधन**—इसके बीजोंको सदा शुद्ध करके औषध काममें लेना चाहिये। **अहितकर**–प्रलाप और उन्माद उत्पन्न करता है। **निवारण**–कालोमिर्च और सौंफ। **प्रतिनिधि**–अफीम। **मात्रा** १५ मि० ग्रा०से ६० मि० ग्रा० ($\frac{१}{८}$ रत्तीसे $\frac{१}{२}$ रत्तो) तक। १ ग्रामसे १$\frac{१}{२}$ ग्राम (१ माशासे १$\frac{१}{२}$ माशा) घातक मात्रा है।

आयुर्वेदीय मत—धतूरा कटु, कषाय मधुर, तिक्त, उष्णवीर्य, गुरु, भ्रम–मद–मूर्च्छा–वर्ण–जठराग्नि–पित्त और वायु करनेवाला तथा कफ, कुष्ठ, कण्डू, ज्वर, व्रण, कृमि, विष, जूँ और लीखका नाश करनेवाला है। (ध० नि०; रा० नि०; भा० प्र०)।

नव्यमत—धतूरा वेदनास्थापन, संकोचविकासप्रतिबंधक, कासश्वासहर, नियतकालिकज्वर–प्रतिबंधक और शोथहर है। बड़ी मात्रामें तीव्र विष है। धतूराको बेलाडोना (लुफाह)के प्रतिनिधि–रूपमें ले सकते हैं। श्वासमार्गके संकोचविकासप्रधानरोगोंमें धतूरेका विशेष उपयोग करते हैं। श्वासनलिकाशोथ और दमा इन दोनों रोगोंमें धतूरा खानेको देते हैं और उसके पत्रका धूमपान कराते हैं। इससे कफ गिरने लगता है और दमा कम होता है। पारीसे आनेवाले शीतज्वरमें धतूरेके बीज दहीके साथ देते हैं। शीतज्वरमें अफीम, भाँग और खुरासानी अजवायन जैसे और भी मादक द्रव्य देते हैं। इन औषधियोंसे शीत, शरीरका दाह तथा शिर और शरीरकी पीड़ा कम होती है। इन औषधियोंसे शीतज्वर समूल नष्ट नहीं होता, परन्तु उससे होनेवाली पीड़ा कम होती है। उदरशूल, पित्ताश्मरीशूल और वृक्कशूलमें इसका उपयोग करते हैं। शोथमें धतूरेकी पत्तियों या मूलको गोमूत्रमें पीसकर उसका लेप करते हैं। धतूरा और शिलाजीत मिलाकर लेप करनेसे अंडशोथ, उदरशोथ, फुफ्फुसधराकलाशोथ, संधिशोथ और अस्थिशोथमें विशेष लाभ होता है। स्तनशोथ, शोथयुक्त अर्श और पीड़ायुक्त अक्षिशोथपर पत्तेको जरा गरम करके बाँधते हैं।

●

(३४२) धनियाँ

फ़ैमिली : ऊम्बेल्लीफेरी (Family : Umbelliferae)

नाम—(हिं०) धनिया(आ); (अ०) कज़्बुरः, कस्फु(बु)रः (इ०बै०), कुज़्ब(बु)रः ; (फा०) कश्नीज़ ; (सं०) धान्यक, कुस्तुम्बरु; (क०) धानिवल; (पं०) धनिया, धेनेल; (द०) धनिया; (बं०) धने; (म०) धणे, कोथिंब्या; (गु०) धाणा, कोथमीर; (मा०) धणीया, धांणा; (कना०) कोत्तुंब्रि; (सिंह०) कोत्तमल्लि; (ले०) कोरिआंड्रुम् साटीवुम् (**Coriandrum sativum** Linn.); (अं०) कोरिऐन्डर (Coriander)।

वक्तव्य—'कोत्तमल्लि' या 'कोथ(थि)मीर' उपर्युक्त भाषाओंमेंसे कुछ भाषामें धनियाके क्षुप (हरी धनिया)के और 'धनिया' या 'धनियालु' उसके फलके नाम हैं। किन्तु इन सब नामोंका व्यवहार प्रायः अभेदरूपमें उनमेंसे केवल एक या उभय द्रव्योंके अर्थमें होता है। हरे धनियाँ (**धनिया सब्ज**)को फारसी और अरबीमें क्रमशः **कश्नीज़रतब** (पत्रको **बर्ग कश्नीज़**) तथा **कुज़्बुरः** एवं संस्कृतमें **कुस्तुम्बरी**(सु०) और सूखे धनिया अर्थात् फल (जिनको व्यवहारमें बीज कहा जाता है) यानी **धनिया खुश्कको** '**कश्नीज़ खुश्क**' तथा 'कुज़्बुरःयाबिसा', **बज़्रुल् कुज़्बुरः** या **समूरुल् कुज़्बुरः** और संस्कृतमें '**धान्यतुम्बरु**' (च०) कहते हैं।

इतिहास—भारतवासियों, यूनानियों, अरबों और ईरानियों आदिको पुरातनकालसे ही इसका ज्ञान है। दीसकूरीदूसने '**कारिओन (कूरिऊन)**' नामसे इसका उल्लेख किया है। इसकी लैटिन संज्ञा '**कोरिआंड्रुम्**,' जिससे इसकी अंग्रेजी संज्ञा बनी है, इसकी यूनानी संज्ञा '**कोरिऐन्नून**' से व्युत्पन्न है।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्षमें इसकी खेती की जाती है।

वर्णन—यह एक प्रसिद्ध सुगन्धित वनस्पति है, जो साग आदि (सालन)और चटनीमें सुगन्धके लिए डाली जाती है। इसके बीज मसालेमें डाले जाते हैं तथा औषधकी भाँति उपयोग किये जाते हैं। जब इनको कूटकर बाहरी छिलका उतार दिया जाता है, तब उसको **मग़ज़ कश्नीज़** या **बिरंज कश्नीज़** कहते हैं। **वन्य** और **उद्यानज** भेदसे धनियाँ दो प्रकारकी होती है।

उपयुक्त अंग—बीज (सूखे फल) और पत्र।

रासायनिक संगठन—फलमें एक **उत्पत्** सुगन्धित तेल, अनुत्पत् तेल, वसायम पदार्थ, लबाब, टैनिन, मैलिक एसिड और भस्म; तेल (**रोग़न कश्नीज़**)में **कोरिएन्ड्रोल** (Coriandrol) नामक एक प्रकारका सुरासार होता है।

पत्र (धनियाँ सब्ज)—

प्रकृति—विलयन और संशमन दो परस्परविरोधी गुणकर्म प्रगट होनेके कारण हरा धनिया संमिश्रवीर्य है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—हरा धनियाँ बाह्यतः विलयन और संशमन कर्म करता है। आंतरिक उपयोगसे मस्तिष्कपर इसका संशमन (मुसक्किन) कर्म होता है। यह बाष्पभवन (तबख़ीर)को रोकता है और शारीरिक संताप-को शमन करता है। गरम सूजन और फुन्सियों तथा विसर्पपर पतला लेप (तिलाऽ) करनेसे यह दोषोंको विलोम और विलीन करता तथा वेदनाको शांत करता है। कंठमाला (खनाजीर) और कठिन सूजनके ऊपर इसको जौके आटाके साथ लेप करनेसे यह उनको विलीन करता है। मुख और दाह (सोजिश)को शांति प्रदान करनेके लिये हरे धनियेके रससे गण्डूष कराते हैं। नेत्राभिष्यंदको नष्ट करने और वेदना शमन करनेके लिये इसे स्त्रीस्तन्यके साथ नेत्रमें आश्च्योतन करते हैं। शीतला (चेचक)के प्रारम्भमें नेत्रको उससे सुरक्षित रखनेके लिये इसको अकेला या कपूर घोल (हल)करके टपकाते हैं। नकसीर बन्द करनेके लिये भी इसमें कपूर घोलकर नाकमें टपकाते या उसके

भीतर पिचकारीसे पहुँचाते हैं। नींदलाने और मस्तिष्ककी ओर बाष्पारोहण करनेसे रोकनेके लिये २½ तोले इसका पानी (स्वरस) शर्करा मिलाकर पिलाते हैं। हरा धनियाँ पित्त, आमाशयशोथ या दाह और तृष्णाको शमन करता और क़ै को रोकता है तथा मैथुनशक्ति (कुव्वतबाह)को घटाता है। यह क्षुधावर्धक है। **अहितकर**–शिरोभ्रमण(सदर) कारक और विस्मृतिजनक। **निवारण**–सिकंजबीन सफरजली और मधु। **प्रतिनिधि**–काहू और पोस्ताका पत्रस्वरस। **मात्रा**–१ तोलेसे २½ तोले तक।

बीज या फल (धनियाँ खुश्क)—

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें शीत एवं रूक्ष (खुश्क)। आयुर्वेदके मतसे भी यह शीतवीर्य (रा०नि०) है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—धनिया (फल) बाहरी तौरपर संशमन कर्म करता है। आंतरिकरूपसे खिलानेसे यह हृद्य और मस्तिष्कको शक्ति और उल्लास प्रदान करता है तथा बाष्पको आरोहण करनेसे रोकता है। यह दीपन, वातानुलोमन और संग्राही है। उष्ण शिरःशूलको शमन करनेके लिये धनियाको अकेला या अन्य उपयुक्त औषधियोंके साथ पीसकर मस्तकपर लेप करते हैं। हृदय और मस्तिष्कको पुष्ट एवं उल्लसित करने तथा बाष्पारोहण रोकनेके लिये अकेला या अन्य उपयोगी औषधियोंके साथ इनका चूर्ण बनाकर या अन्य योगौषधियोंमें मिलाकर खिलाते हैं। **अतराफल कश्नीज़ी** इसका प्रसिद्ध योग है जो मस्तिष्कको बलप्रदान करने, बाष्पारोहण रोकने और शिरःशूलको नष्ट करनेके लिये प्रयुक्त होता है तथा भ्रम और सम्मोहमें खिलाया जाता है। मंदाग्नि और उदरानाहमें इसको चूर्ण बनाकर खिलाते हैं। दस्तोंको रोकनेके लिये इसको जलमें पीस-छानकर पिलाते हैं। विशेषतः भुनाहुआ धनिया विशेष लाभ पहुँचाता है। कामोन्मादको शान्त रखनेके लिये भी इसका उपयोग करते हैं। **अहितकर**–शुक्रनाशन। **निवारण**–भृष्ट करनेसे इसके दोषका परिहार हो जाता है और सिकंजबीन सफरजली। **प्रतिनिधि**–पोस्ताके दाने और काहूके बीज। **मात्रा**–५ ग्रामसे ७ ग्राम (५ माशेसे ७ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—धनिया कषाय, तिक्त, मधुर, कटु, मधुरविपाक, शीतवीर्य, लघु, स्निग्ध, हृद्य, स्रोतोविशोधन, रोचन, दीपन, पाचन, ग्राही, मूत्रल, तृष्णानिग्रहण, शीतप्रशमन, त्रिदोषहर, चक्षुष्य तथा ज्वर, तृषा, दाह, कास, श्वास, वमन, आँव, अर्श और कृमिका नाशकरनेवाला है। (च० सू० अ० ४,२७; सु० सू० अ० ३८; ध० नि०; रा० नि०; भा० प्र०)। **हरा धनिया** भक्ष्य-भोज्य और व्यंजनमें मिलानेसे उसको स्वादिष्ट, सुगन्धित और हृद्य बनाता है तथा विशेषकरके पित्तका शमन करता है (सु० सू० अ० ४६; भा० प्र०)।

नव्यमत—धनिया दीपन, मधुर, शीत, कषाय, रूक्ष, मूत्रविरजनीय, पिपासाघ्न, दाहप्रशमन, वातहर और अभिष्यन्दप्रशमन है। कुटे हुये धनियेको पानीमें उबाल कपड़ेसे छानकर आंखमें डालनेसे नेत्राभिष्यंदमें बड़ा लाभ होता है। ज्वरमें धनियेके पानी (हिम या फांट)का उत्तम उपयोग होता है। उदरशूलमें धनियेका तेल उत्तम औषध है। सिरके दर्द और भिलावेकी सूजनपर हरे धनियेका लेप करते हैं।

●

(३४३) धमासा (धमाहा)

फ़ैमिली : जीगोफील्लासे (Family : Zygophllyaceae)

नाम—(हिं०) धमासा; (सं०) धन्वयास, दुरालभा; (पं०) धमांह, धमाहा (या), धम्या; (बं०) दुरालभा; (म०) धमासा; (गु०; मा०) धमासो; (कच्छ) ध्रामाऊ; (ते०) चित्तिगार; (का०) नेलइगल; (ले०) **फागोनिआ आराबिका (Fagonia arabica Linn.)**।

उत्पत्तिस्थान—मूलतः यह भारतीय वनस्पति नहीं; अपितु अरबस्थान जैसी मरुभूमिकी वनस्पति है। धीरे-धीरे भारतमें भी विशेषकर रेतीली और खारी भूमिमें (सर्वत्र नहीं), इसकी उपज होने लगी है और अब

दक्षिण भारतके महाराष्ट्र (अहमदनगर), सिंघ और पश्चिम खानदेश आदि जिलोंमें और उत्तर भारतके पंजाब, मारवाड़ आदि प्रान्तोंमें यह विपुल प्रमाणमें होती है। यही कारण है कि मख़्ज़नुल् अद्विया आदि यूनानी निघंटु-ग्रन्थोंके लेखकोंने इसे एक भारतीय घास लिखा है। इसके अरबी, फारसी आदि नाम नहीं दिये हैं और गुण-कर्म आदि भी भारतीय ग्रंथोंके आधार पर लिखे हैं।

वर्णन—धमासेका १५ सें० मी० से ३० सें० मी० (१/२—१ फुट) ऊँचा अथवा ३० सें० मी० (एक फुट)-के घेरेमें भूमिपर लिपटा या बिछा हुआ छोटा क्षुप होता है। पत्तियाँ अलसीकी पत्तियोंसे कुछ मिलती-जुलती होती हैं। प्रत्येक पत्तीके पास दो तीक्ष्णाग्र काँटे होते हैं। पौष तथा माघ मासमें इसमें गुलाबी रंगके पाँच पंखड़ीवाले फूल लगते हैं। फल पाँच पंखवाले और ऊपर तीक्ष्णाग्र लम्बा काँटा होता है। जवासा भी धमासा जैसा दिखता है और उसे इसका ही एक भेद मानते हैं। परन्तु उसमें फलियाँ (शिम्बी) लगती हैं और इसमें फल लगते हैं। जवासेका क्षुप इससे बड़ा ०·९ से १·२ मीटर (३-४ फुट) तक ऊँचा होता है। यह अन्तर ध्यानमें रखनेसे दोनोंमें भ्रम नहीं होता। इन दोनोंमें प्रधान साम्य यह है कि दोनों कण्टकित हैं। धमासेमें दो पत्तियाँ, जिन स्थानोंसे उपशाखा निकलती है, उस स्थानपर 'गुणाकार' × 'की आकृतिके समान चार काँटे, पत्र, फूल (सवृन्त) और फल चक्राकार-में होते हैं। पंचफूलीके प्रत्येक भागमें क्रमसे लगे हुए पाँच बीज होते हैं। फल पक्व होनेपर इन बीजोंका रंग ऊदी बन जाता है। भारतीय धमासेकी जड़ सफेद होती है। कांड सफेद और अत्यंत कठोर तथा काण्डत्वक् हलके भूरे रंगकी होती है। भिगोने पर यह चिपचिपा और पिच्छिलतायुक्त हो जाता है। यह 'शुकाई' या 'बादावर्द' से भिन्न द्रव्य है (दे० 'जवासा')।

तरंजबीन—अरब आदि देशोंमें धमासा या दुरालभाके सुपक्व क्षुपसे जवासेकी भाँति ही रेणुतुल्य मधुर-कणरूपमें तरंजबीन प्राप्त होती है। यही असली तरंजबीन (यासशर्करा) है। इस पद्धतिके अनुसार भारतीय धमासा व जवासासे तरंजबीन प्राप्त नहीं होती। अरबदेशीय दुरालभाका इस दृष्टिसे प्रयोग करना आवश्यक है, तो भी हम अपने आयुर्वेदीय पद्धतिके अनुसार धमासाका तुरंजबीन निकाल सकते हैं (वि० दे० 'जवासा')।

उपयुक्त अंग—समग्र क्षुप, पत्र, टहनी, पुष्प, फल अर्थात् पंचांग और क्षुपसे प्राप्त शर्करा (तुरंजबीन)।

कल्प तथा योग—समग्र क्षुपको कूटनेसे रस नहीं प्राप्त होता, इसलिये उसका हिम तथा फाँट बनाना पड़ता है। धमासा, पित्तपापड़ा और मुनक्का इन सबका हिम या फाँट बनाना अच्छा है। क्योंकि इससे इसका प्रभावांश एक घण्टेमें उतरता है। इसे अधिकसे अधिक एक दिन तक रख सकते हैं। ६ से १२ ग्राम (१/२ से १ तोले) चूर्णका हिम बनाकर देना चाहिए।

प्रकृति—मख़्ज़नके अनुसार सर्द एवं खुश्क; मतांतरसे समशीतोष्ण या गरम एवं खुश्क। आयुर्वेदके मतसे यह रसमें स्वादुकषाय, शीतवीर्य और विपाकमें मधुर है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—तालीफ़शरीफ़के मतसे किसी-किसीने गुणमें जवासाके समान लिखा है। अस्तु, इसका अन्तर्भाव जवासामें ही कर दिया है तथा धमासामें भारतीय (आयुर्वेदीय) ग्रन्थोंके आधारपर इसके गुणकर्म आदि लिखे हैं। यथा—यह शीतल, ज्वरघ्न, पित्तदाहप्रशमन, रक्तशोधन, तृष्णानिग्रहण, मूत्रजनन, श्वयथुविलयन, कोथ-प्रतिबन्धक, बल्य, विषघ्न और व्रणरोपण है। इसके प्रधान कर्म पित्तप्रशमन और रक्तशोधन हैं। बहिराभ्यन्तरिक समस्त पित्तज विकारोंमें धमासा लाभकारी है। ग्रीष्म ऋतुमें सन्तापजनित समस्त विकारोंको शमन करनेमें यह अतिशय गुणकारी है। इसके उपयोगसे ज्वर विशेषकर पित्तज एवं सम्मिश्र ज्वर छूट जाते हैं। इस हेतु धमासेका फाँट बनाकर पिलाते हैं और उसमें कपड़ा भिगोकर उससे शरीर पोंछते हैं। इससे प्यास, शरीरका दाह (संताप) और कण्डू कम होती है। सर्दीका ज्वर तथा गले (कण्ठ) और श्वासनलिका एवं फुफ्फुसकी सूजनमें धमासेका अच्छा उपयोग होता है। इससे गलेका सूखना कम होता है और कफ निकलने लगता है तथा कास एवं कृच्छ्रश्वास मिटता

है। विषमज्वरमें इसका प्रधानरूपमें उपयोग नहीं होता, पर जिस स्थान पर पित्ताधिक्य है उस स्थान पर इस औषधिका इस दृष्टिसे अच्छा उपयोग होता है। चिरायता पित्तविरेचनका तथा पित्तशमनका कार्य करता है; परन्तु उसके तिक्त गुण (उष्णवीर्य)से कभी-कभी पित्तकी भी वृद्धि होती है। यही कारण है कि इसके साथ सदा धमासा देना लाभकारी होता है। जहाँ पित्तप्रकोप होनेसे कोष्ठशूल होता है वहाँ पित्तपापडाके साथ धमासाका प्रयोग लाभकर होता है। इतना ही नहीं यह मिश्रण किसी अन्य औषधिसे पित्त बढ़ना, जागरण, अग्नि आदिसे पित्तप्रकोप होना, वमन, सर्वाङ्गदाह बलमांसक्षय, अग्निमांद्य आदि स्थानोंमें भी चलता है। शीतपित्तमें इसका काढ़ा पिलाते हैं।

यह वातवाहिनियोंको शान्त करता है। अतएव पित्तप्रकोपके कारणभूत विविध वातक्षोभजविकारमें इसका प्रायः उपयोग होता है। वातपित्तज शिरःशूलमें यह अच्छा काम देता है। मनःक्षोभ, चित्तविभ्रम, मूर्च्छा एवं चित्तविक्षोभजन्य शिरःशूल तथा शुक्रप्रमेहमें भी यह लाभकारी है। इसके क्वाथमें घी मिलाकर पिलानेसे भ्रम (चक्कर आना) आराम हो जाता है। निद्रा लानेवाली औषधोंमेंसे धमासा भी एक है। मनःसंताप, विचार, तन्द्रा आदि इससे नष्ट होकर शान्तिकी नींद आती है। इससे निद्रापर यह उत्तम औषधि सिद्ध हुई है। पाश्चात्य औषध ब्रौमाइडसे भी इस काममें यह प्रभावशाली है। इस हेतु सोनामक्खीकी भस्म १ रत्ती, १ तोला गायके घीमें चाटकर रातमें धमासाका लघुकषाय पीना चाहिए।

मुखमें छाले पड़े हों (मुखपाक) तो धमासेके काढ़ेसे कुल्ले कराते हैं। धमासेके स्वरसमें मिश्री डालकर मन्दाग्निसे इतना पकावें कि वह पूर्णतया गाढ़ा हो जाय अथवा धमासेको गन्नेके रसमें पका-छानकर उसका अवलेह बनायें। इसमेंसे थोड़ा-सा मुखमें धरा रखनेसे मुखपाकमें होनेवाला दाह शमन होता है। कण्ठ तथा फुफ्फुसके रोगोंमें अन्य औषधोंके साथ इस अवलेहको अनुपानरूपमें देते हैं। धमासेका धूम्रपान करानेसे दमा (श्वास) कम होता है। धमासा प्राणिज औद्भिज वानस्पतिक और अन्य दूषित विषोंके प्रभावको नष्ट करती है।

रक्तशोधक होनेसे यह रक्तदुष्टिजन्य कुष्ठप्रभृति रोगों तथा त्वग्रोगोंमें लाभ पहुँचाता है। इस हेतु रक्तशोधक (मुसफ़्फ़ीख़ून) काढ़ा आदि योगोंमें डालकर इसका उपयोग करते हैं। शीतल संग्राही होनेसे यह प्रत्येक स्थानसे रक्तस्रावको रोकता है। ३॥ तोले मुनक्का और उतनाही धमासाका काढ़ा बनाकर पीनेसे रक्तातिसार आराम होता है। खुले घावपर इसका स्वरस लगानेसे उसका पकना रुक जाता है। इसे पानी या दूधमें पीसकर-पकाकर कुनकुना लेप करनेसे फोड़ा बैठ जाता है और कठिन सूजन उतर जाती है। धमासेके काढ़ेसे घाव धोनेसे पीप नहीं पड़ती और घाव शीघ्र भर जाता है। काँटा गड़ जानेसे जो सपूयव्रण हो जाते हैं, उन्हें पकानेके लिये इसकी पत्तियोंको पीसकर उनपर लेप करना चाहिये। शीतल मूत्रजनन होनेसे मूत्रावरोधजन्य विकारों एवं मूत्रदाहमें तथा सूजाकमें इसका उपयोग होता है। यह आमाशय तथा यकृत्‌को बलप्रदान करता है। यह जलोदर (इस्तिस्काऽजिक्की)में भी इसी हेतु गुणकारी है। अहितकर—फुफ्फुसको। प्रतिनिधि—शाहतरा, पित्तपापड़ा, अफसंतीन।

आयुर्वेदीय मत—धमासा मधुर, तिक्त, प्यास कम करनेवाला तथा अर्श, दाह विषमज्वर, वमन, प्रमेह और भ्रम (चक्कर आना)का नाश करनेवाला है। (च०सू०अ०४; ध०नि०)।

नव्यमत— धमासा शीतल, ज्वरहर, दाहप्रशमन, तृष्णानिग्रहण, मूत्रजनन, बल्य, कोथप्रशमन और व्रणरोपण है। आधेसे एक तोले चूर्णका हिम बनाकर देना चाहिये। धमासेका फाँट ज्वरमें पिलाते हैं और उसमें कपड़ा भिगोकर उससे शरीर पोंछते हैं। इससे प्यास, शरीरका दाह और कंडू कम होती है। सर्दीका ज्वर तथा गले और फुफ्फुसकी सूजनमें धमासेका अच्छा उपयोग होता है। इससे गलेका सूखना कम होता है और कफ निकलने लगता है। धमासेके काढ़ेसे घावको धोनेसे पीप नहीं पड़ती और घाव शीघ्र भर जाता है। मुँहमें छाले पड़े हों तो धमासेके काढ़ेसे कुल्लियाँ करते हैं। धमासेको ईखके रसमें पका, छानकर उसका अवलेह बनाते हैं। इस अवलेहको गले और फुफ्फुसके रोगोंमें अन्य औषधोंके अनुपानरूपमें देते हैं। धमासेका धूम्रपान करानेसे दमा आराम होता है।

●

(३४४) धवई

फ़ैमिली : लीथ्रासे (Family : Lythraceae)

नाम—(हिं०) घतकी, धवईके फूल, धाय(ई)के फूल, धाव; (फा०) गुले धावा; (सं०) धातकी; (खर०) फुल धवई, धायफूल; (बं०)धाईफुल; (पं०) धावी; (क०) गुलिदावा; (म०) धायटी, धावस; (गु०) धावड़ी (णी); (का०) थाई; (मा०) धावड़ी; (सिं०) फूल धावो; (ते०) सिरींजी; (मल०) तादिरे, तादिरी; (ले०) वूडफोर्डिआ फ्रूटीकोसा (**Woodfordia fruticosa** (L.) Kurz. (पर्याय–*W. floribunda* Salisb.); (अं०) डाउनी ग्रिजलेआ (Downy Grislea)।

उत्पत्तिस्थान—प्रायः समस्त भारतवर्षके पहाड़ी प्रदेशोंमें यह जंगली होती है।

वर्णन—यह एक गुल्मके प्रसिद्ध फूल हैं। फूल और कटोरी (Calices) उभय ताँबड़ा रंग (अग्निवर्ण)के होते हैं। कटोरी स्थायी और १२ दंतयुक्त होती है तथा फूलके सूखने पर भी उसका रंग स्थिर रहता है।

उपयुक्त अंग—फूल।

रासायनिक संगठन—फूलमें २० प्रतिशत टैनिक अम्ल होता है।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें शीत एवं रूक्ष (मतांतरसे तीसरे दर्जेमें रूक्ष)। आयुर्वेदके मतसे शीतवीर्य है (भा० प्र०) है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—रक्तस्तम्भन, शीतजनन तथा रूक्षण। संग्राही होनेके कारण अतिसारको बन्द करनेके लिये इसका चूर्ण या क्वाथ पिलाते हैं। संग्राही और रक्तस्तम्भन होनेके कारण अतिरज और अर्शोजात रक्त बन्द करनेके लिये रोगीको इसके काढ़ेमें उसे शीतल होने तक बिठाते हैं तथा इसका चूर्ण बनाकर खिलाते हैं। योनिसे नाना प्रकारका स्राव होता हो तब भी अकेले या अन्य औषधियोंके साथ इसका चूर्ण उपयोग कराते हैं। गुदभ्रंशमें इसके काढ़ेके भीतर रोगीको बिठाते हैं या इसका चूर्ण बनाकर अवचूर्णन करके लगोट बाँध देते हैं। शीतजनन और रूक्षण होनेके कारण इसको सरसोंके तेलमें जलाकर दग्ध अंगोंपर लेप (तिला) कराते हैं। अहितकर–कृमिजनक है। निवारण–अनारका रस। मात्रा–३ ग्राम से ५ ग्राम (३ माशे से ५ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—धायके फूल कटु, कषाय, लघु, शीतवीर्य, संधानीय, पुरीषसंग्रहणीय, मूत्रविरजनीय तथा प्रवाहिका, अतिसार, विसर्प और व्रणका नाश करनेवाले हैं (च० सू० अ० ४; सु० सू० अ० ३८; रा० नि०; भा० प्र०)।

नव्यमत—आसवोंमें इसका फूल डालनेसे अच्छा रंग आता है। फूल संग्राहक है। अत्यार्तव, अतिसार और पुराने आँवमें इसका फूल देते हैं।

●

(३४५) धावा (धव)

फ़ैमिली : कॉम्ब्रीटासे (Family : Combretaceae)

नाम—वृक्ष (हिं०) धौ(धौं)रा, धव(धौ), धौंकरा, बाकल; (सं०) धव, धुरन्धरी, शकटाक्ष; (बं०) धाओया; (गु०) धावड़ो; (म०) धावड़ा; (मार०) धवकडो, धव; (खर०) धौंटा; (ले०) आनोगेईस्सुस लाटीफ़ोलिया **Anogeissus latifolia** Wall. ex Bedd.); (अं०) क्रेन ट्री (Crane Tree)। निर्यास या गोंद (हिं०) धावागोंद; (अ०; फा०) समग़ेहिन्दी; (सं०) धवनिर्यास; (ले०) गुम्मी ईंडिकुम् (Gummi indicum); (अं०) इंडियन गम (Indian Gum)।

उत्पत्तिस्थान—पूर्वी बंगाल और आसामको छोड़कर यह शेष समस्त भारतवर्षके शुष्क जंगलोंमें होता है।

वर्णन—बड़े या मध्य ऊँचाईका वृक्ष; स्कंध सीधा और छाल सफेद, पत्र चौड़ाई लिये हुए अण्डाकार ५ से १० सें० मी० (२—४ इञ्च) लम्बे, कुण्ठित या गोल अग्रवाले, पृष्ठपर बिन्दुयुक्त और सनाल, पत्रवृन्त-वृन्तमूल-वृन्ताधः पृष्ठ अरुणाभ; पुष्प छोटे हरिताभ; फल चिपटे द्विपक्ष और चोंचदार होते हैं। चैतके महीनेमें इससे एक प्रकारका गोंद निकलता है, जो साफ कुछ पीला और कभी शहदके रंगका होता है, तथा मैल मिल जानेसे भूरे रंगका हो जाता है। यह बबूलके गोंदका उत्तम प्रतिनिधि है। स्वाद कषाय तथा तोड़नेसे धरातल काँच जैसा दिखता है। यह पानीमें शीघ्र घुल जाता है। इसे 'नागौरी गोंद' भी कहते हैं।

उपयुक्त अंग—फूल, फल, काष्ठ, मूल, पत्र, गोंद और छाल।

रासायनिक संगठन—इसमें टैनिन, गोंदमें पेन्टोज और गैलेक्टोज आदि होते हैं।

प्रकृति—दूसरेमें सर्द और तीसरेमें खुश्क; मतांतरसे अनुष्णाशीत; गोंद सर्द एवं खुश्क है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—फूल ग्राही, कृमिघ्न व कृमिनिस्सारक, क्षुधावर्धक तथा अतिसारनाशक है। इसके काढ़ेमें बैठनेसे गुदभ्रंशरोग, अर्श, आर्तवका अधिक स्राव आराम होता है। यह शुक्रमेह और शीघ्रस्खलनमें लाभकारी है। फूल इतर अंगोंकी अपेक्षया लघु (लतीफ़) है तथा तृष्णाशमन करता और रक्तविकारका नाश करता है। आमाशयातिसारमें इसे जायफल और खाँड़के साथ देते हैं। शहदके साथ यह बच्चोंके उदरका सुधार करता है। पौने-दो तोले इसके फूलको पानीमें भिगो-मल-छानकर पौने दो तोले मिश्री मिलाकर पीनेसे अर्शका खून बन्द हो जाता है। फूलोंको जलाकर कड़वे तेलमें मिलाकर आगसे जले हुए स्थानपर लगानेसे बड़ा लाभ होता है। मात्रा—फूल ४·५ ग्राम (४½ माशे)।

गोंद—

प्रकृति—शीत एवं रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—ललनाएँ सूतिकागारमें तथा अन्याय कालोंमें इसे खाती हैं। इससे उनकी कमरशक्ति सम्पन्न होती है। यह आर्तवरक्त तथा योनिस्रावको बन्द करता है। यह प्रसिद्ध है कि धवका गोंद पुरुषको नहीं, स्त्रीको खाना चाहिए और खैरका गोंद स्त्रीको नहीं पुरुषको खाना चाहिए। इस गोंदको राजपुतानेकी ललनाएँ एक विशेष विधिसे खाती हैं अर्थात् इसको दरदराकर घीमें भूनकर और खांड़ में जमाकर खाती हैं। इससे योनि द्वारा होनेवाला श्वेत पानीका स्राव (श्वेतप्रदर) बन्द हो जाता है। इसे उनकी परिभाषामें 'गोंद जनाना' कहते हैं।

आयुर्वेदीय मत—धव कषाय, मधुर, चरपरा, शीतवीर्य, दीपन, रुचिकारक तथा पाण्डुरोग, प्रमेह, कफ, पित्त, अर्श और वातको दूर करनेवाला है। फल स्वादिस्ट, कसैला, शीतवीर्य, रूक्ष, वातकारक, ग्राही (मलस्तम्भक), वातकारक तथा कफत्तिनाशक है। जड़ चरपरी, कसैली, पित्तकारक और परम दीपन है। (नि० र०)।

●

(३४६) नकछिकनी

फ़ैमिली : कॉम्पोजीटी (Family : Compositae)

नाम—(हिं०) नकछिकनी; (सं०) छिक्किका, क्षवक, छिक्कणी; (बं०) छिकनी; (म०) नाकशिकणी; (गु०) नाकछींकणी; (ले०) सेन्टीपीडा ऑर्बीकुलारिस (**Centipeda orbicularis** Lour.); (अं०) स्नीज-वीड (Sneeze-weed)।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष और लंकाके मैदान।

वर्णन—यह एक बहुत क्षुद्र वनस्पति है, जो भूमिपर पसरी हुई शरद्‌ऋतुके अन्तिम भागोंमें उत्पन्न होती है। इसका घेरा बित्ताभर (६—८ इञ्च)से अधिक नहीं होता। जड़ साधारण; कांड पुष्कल, सशाख, भूमिसे लगा हुआ होता है; ये सब कुछ-कुछ लोमयुक्त होते हैं; पत्र पुष्कल, अवृंत, मेखाकृति, दंतित, मृदुरोमयुक्त; पुष्प कक्षीय या शाखाविभागगत, एकांतिक, अवृंत, कुछ-कुछ गोल-गोल झुबका (झेंडू), क्षुद्र, व्यामिश्रलिंगी और प्रत्येक झेंडूमें १० से १२ पीले फूल होते हैं। इसको हाथमें मलकर सूंघनेसे छींकें आने लगती हैं। यह 'कुंदुश' या 'ऊदुल्उतास'से भिन्न द्रव्य हैं।

उपयुक्त अंग—क्षुप।

रासायनिक संगठन—इसमें एक उत्पत् तेल और अक्रिस्टली तिक्त तत्व होता है।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें गरम और खुश्क (रूक्ष)।

गुण-कर्म तथा उपयोग—छिक्काजनन वातश्लेष्मरोगनाशक, दीपन, वाजीकर और लेखन है। प्रसेक और प्रतिश्यायावरोध,प्रसेकजन्य शिरःशूल और शीतल शिरःशूलमें इसका हुलास बनाकर सुंघाते हैं। इससे छींकके द्वारा दूषित द्रव उत्सर्गित हो जाता है। इससे बना माजून वाजीकरणार्थ प्रयुक्त होता है तथा कफज शीतलरोगोंमें तथा दीपन, क्षुधाजनन और प्लीहाकाठिन्य दूर करनेके लिए भी इसका उपयोग कराते हैं। इसका प्रलेप दद्रुमें भी उपकारक हैं। नासिका और मस्तिष्करोगोंमें यह विशेष गुणकारक है। **अहितकर**—आकुलताकारक, मूर्च्छाजनक, खुनाकजनक और फुफ्फुसोंके लिए अहितकर है। **निवारण**—कतीरा और गोघृत। **प्रतिनिधि**—सनके बीज। **मात्रा**—३ ग्रामसे ५ ग्राम (३ मांशेसे ५ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—नकछिकनी चरपरी, उष्णवीर्य, रूक्ष, तीक्ष्ण, अग्निजनक, पित्त कारक तथा वातरक्त कोढ़, कृमि, वात, कफ, श्वास, कास, रुधिरविकार और विषका नाश करनेवाली है। (शो० नि०; भा० प्र०)।

●

(३४७) नरकचूर

फ़ैमिली : ज़ींज़ीबेरासे (Family : Zingiberaceae)

नाम—नरकचूर (हिं०; पं०; गु०) नरकचूर (बम्ब०), कालो हलदी; (अ०) ज़रंबाद; (सं०) शटी, पृथुपलाशिका; (बं०) काली हलद, नीलकण्ठ; (म०) काली हलद; (बम्ब०) नरकचोरा; (ले०) कूर्कुमा सेसिआ (**Curcuma caesia** Roxb.); (अं०) ब्लैक ज़ेडोअरी (Black zedoary)। कचूर (हिं०) कचूर; (अ) ज़रंबाद, इर्कुल् (उरूकुल्) काफूर; (फा०) कज़ूर; (सं०) कर्चूर; (गु०) कचूरो, पट्‌कचूरा; (बं०) शटी; (म०) कचोरा; (कु०) बनआदो; (ले०) कूर्कुमा ज़ेडोआरिया (**Curcuma zedoaria** Rosce.) पर्याय—(*C. zerumbet* Roxb.); (अं०) जेडोआरी (Zedoary)।

उत्पत्तिस्थान—बंगालमें नरकचूरकी प्रायः खेती होती है। कचूर पूर्वी हिमालयमें होता है। कुछ-न-कुछ समस्त भारतवर्षमें इसकी खेती होती है।

वर्णन—जरंबाद हलदीकी जातिकी एक वनस्पतिकी जड है जो किसी प्रकार हलदीसे सादृश्य रखती है। यह दो प्रकारकी होती है। एक 'खुर्द (क्षुद्र)' जो तीक्ष्णगन्धी होती है। इसको समूचा उबालकर और सुखाकर

रखते हैं। इसको 'कचूर' कहते हैं। दूसरी 'कलाँ (बृहत्)' जो मोटी और लम्बी होती है। इसको जमीनसे निकालनेके बाद उबालकर टुकड़े-टुकड़े करके सुखा लेते और औषधके काममें लेते हैं। इसको 'नरकचूर' कहते हैं। दोनोंकी प्रकृति और गुण-कर्म लगभग समान हैं।

उपयुक्त अंग—मूल (कंद)। कल्प-चूर्ण और फाँट।

रासायनिक संगठन—कचूरमें जदवारीन (Zedoarin) नामक सत्व और नरकचूरमें उत्पत् तेल और रालादि पदार्थ होते हैं।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें उष्ण एवं रूक्ष। आयुर्वेदके मतसे उष्णवीर्य (ध० नि०) है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—वातानुलोमन, अवरोधोद्घाटक, सौमनस्यजनन, हृदयमस्तिष्कबलदायक (हृद्य और मेध्य), यकृदामाशयबलदायक, तीव्र लेखन, मुखदौर्गन्ध्यहर (मुखको सुवासित करनेवाला), श्लेष्मनिस्सारक (कफोत्सारि), मूत्रार्तवजनन, वाजीकर और श्वयथुविलयन। उपर्युक्त गुणोंके कारण जरंबादको यकृत्, आमाशय और हृद्रोगोंमें प्रयुक्त माजून और मुफर्रेह कल्पोंमें डालते हैं। दीपन और पाचनके लिए यह बालकोंके सफूफ घुटकीमें पड़ता है। श्वयथुविलयन और वेदनास्थापन होनेके कारण इसका लेप किया जाता है। मुखदौर्गन्ध्यहर होनेके कारण मुखदुर्गन्धिमें इसको मुखमें रखकर चबाते हैं। श्लेष्मनिःसारक और कफोत्सारि होनेके कारण कास और कफज कृच्छ्रश्वासमें इसको खिलाते हैं। लेखन होनेसे व्यंग और कच्छूमें लेपकी भाँति इसका उपयोग करते हैं। अहितकर–शिरःशूलजनक। निवारण–गुलेबनफ़्शा। मात्रा—१ ग्राम से ३ ग्राम (१ माशा से ३ माशे तक)।

आयुर्वेदीय मत—कचूर कटु, तिक्त, उष्णवीर्य, रोचन, दीपन, हृद्य, सुगन्धि तथा कफ, बात, श्वास, हिक्का, अर्श, प्लीहा, गुल्म, कुष्ठ और कासको दूर करनेवाला है (च० सू० अ० २७; ध० नि०)।

●

(३४८) नरगिस

फ़ैमिली : आमारीलिडासे (Family : Amaryllidaceae)

नाम–(हिं०; पं०; फा०) नर्गिस; (अ०) नर्जिस, अम्बर; (ले०) नार्सीस्सुस टाज़ेट्टा (**Narcissus tazetta** Linn.)।

वर्णन—यह प्याजके क्षुपकेसे पौधेका एक प्रसिद्ध सफेद, सुगन्धित और सुन्दर फूल हैं जो प्याजके समान होता है। इसके पत्र और मूल प्याजके समान होते हैं। अधिकतया इसकी जड़ (प्याजे नरगिस) औषधमें प्रयुक्त की जाती है। भारतीय बगीचोंमें नरगिसका गुल्म लगाते हैं।

रासायनिक संगठन—इसमें टॅजेटीन (Tazettine) और जड़में सुइसेनीन (Suisenine) नामक क्षारोद (Alkaloid) पाये जाते हैं।

कल्प तथा योग—रोगन प्याज नरगिस, सफूफ प्याज नरगिस आदि।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें उष्ण एवं रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—प्रबल श्वयथुविलयन, लेखन, द्रवशोषणकर्ता, शोणितोत्क्लेशक, उदरकृमिनाशक, गर्भनिस्सारक और वाजीकर। श्वयथुविलयन होनेके कारण प्याजेनरगिसको फोड़े-फुंसियोंको बिठाने और उनको फाड़नेके लिए लेपकी भाँति उपयोग करते हैं। लेखन होनेके कारण झाईं, छीप और गंजपर इसका लेप करते हैं।

द्रव एवं शोणितोत्क्लेशक होनेके कारण इसको पतले लेपोमें डालते हैं। यह शिश्नकी वातनाड़ियोंको बल देता और उनको पुष्ट करता है। इसको क्वाथ करके पिलानेसे उदरकृमि नष्ट हो जाते हैं और गर्भपात हो जाता है। अहित-कर–उष्ण प्रकृतिवालोंमें शिरःशूलजनक है। निवारण–बनफ्शा, कपूर और निलूफर आदि। प्रतिनिधि–गुले नरगिस। मात्रा–१ ग्राम से ३ ग्राम (१ माशे से ३ माशे) तक।

नव्यमत—जड़ वामक है। शिरःशूल निवारणके लिए इसका उपयोग करते हैं।

(३४९) नागकेसर

फैमिली : गुट्टीफेरे (Family : Guttifereae)

नाम—(हिं०) पीला नागकेशर, नागेसर; (अ०) मिस्कुर्रुम्मान; फा०) नारेमुष्क; (सं०) नागकेश(स)र, नागपुष्प, चाम्पेय; (बं०) नागेश्वर; (म०) नागकेस(श)र, नागचाँफा (वृक्ष); (गु०) पीलुं नागकेशर; (ते०) नाग-केशरम्, नागचंपकमु; (का०) नागसंपिगे; (ले०) मेसुआ फेर्रेआ (**Mesua ferrea** Linn.)। (अं०) आयर्न-वुड ट्री (Iron-wood Tree)।

उत्पत्तिस्थान—पूर्व बगाल, कुमाऊँ, नैपाल, पूर्व हिमालय, दक्षिण हिन्दुस्तान (कोंकण), आसाम, ब्रह्मा, लंका, पूर्वी-पश्चिमी घाट और अण्डमान टापू। यह बगीचोंमें लगाया जाता है।

वर्णन—यह पुन्नागजातीय नागचम्पा वृक्षके फूलके केसर है जो औषधके काममें आते हैं। फूल लगभग २ सें० मी०से ७·५ सें० मी० (०·७५-३ इंच) घेरे (व्यास)में पिलाई लिए सफेद और सुगंधित होता है; कुण्डपत्र (Sepals) गोल, स्थूल, प्रान्त झिल्लीनुमा, भीतरी युग्म सबसे बड़े, स्थायी एवं कठोर; दल (पंखड़ियाँ) ४ या ५ शुभ्रवर्ण (सफेद), पुंकेसर बड़े, दीर्घाकार, बहुसंख्यक, सुविन्यस्त और सुनहले पीलेरंगके होते हैं। कुण्ड और दल-युक्त ये नरकेसर (पीले रंगका गुच्छा) नागेसरके नामसे प्रसिद्ध है। नरकेशरका पीले रंगका यह गुच्छा जिसे नाग-केशर (नागेसर) कहते हैं, असली नागकेशर है और औषधमें इसीका व्यवहार होना चाहिए। इसके फूलों विशेषतः फूलोंके मध्यमें स्थित पीले नरकेसरोंसे इत्र खींचा जाता है जिसकी गंध बहुत तीक्ष्ण होती है।

उपयुक्त अंग—नरकेशरोंका गुच्छा।

मात्रा—०·५ से १ ग्राम (१/२–१ माशा)।

रासायनिक संगठन—इसके कच्चे फलोंमें एक प्रकारका तैलोद्यास (Oleo-resin) होता है जिससे एक प्रकारका उड़नेवाला तेल प्राप्त होता है। यह अत्यन्त सुगन्धित हलके पीले रंगका फूलके गंधका और चेन-टर्पेन्टाइन-के समान होता है।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें उष्ण एवं रूक्ष (खुश्क)। आयुर्वेदमतसे कुछ उष्णवीर्य (रा० नि०) एवं रूक्ष (भा० प्र०)।

गुणकर्म तथा उपयोग—संग्राही, उपशोषण और हृदयबलदायक है तथा हृदयको उल्लसित करता, यकृत्, आमाशय और अंत्रको शक्तिप्रदान करता और कामोत्तेजक है। विशेषकर यह उदरजक्रिमि निःसारक और अर्शोघ्न है। नागेसरको मुफ़र्रेह कल्पोंमें डालकर उन्माद और मालीखोलिया प्रभृति, जैसे-मस्तिष्क एवं हृद्रोगोंमें उपयोग कराते हैं। हर प्रकारका अर्श नष्ट करनेके लिये इसका उपयोग किया जाता और गुणदायक है। यदि इसके फूलके केसरको रात्रिमें भिगो दिया जाय और प्रातःकाल छानकर मिश्री या मधु मिलाकर कुछ दिन निरन्तर पिलायें तो अर्शका रक्त बंद हो जाता है और मस्से सूख जाते हैं। इसके अतिरिक्त इससे खींचे हुए इत्रको एक रत्तीकी मात्रामें पानके साथ

खिलानेसे नपुंसकता दूर होती है। इसको इन्द्री पर तिला भी कराते हैं। व्रणोंको सुखानेके लिए इसको महीन पीसकर उनपर छिड़कते हैं। अतिस्वेद रोकनेके लिये इसका लेप करते या बारीक पीसकर शरीरपर मलते हैं। अहितकर—उष्ण प्रकृतिके लिए। निवारण—शुद्ध मधु। प्रतिनिधि—नागरमोथा। मात्रा—३ ग्रामसे ५ ग्राम (३ माशेसे ५ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—नागकेशर रसमें तिक्त और कषाय, लघु, रूक्ष, कुछ उष्णवीर्य, आमपाचन तथा ज्वर, कण्डू, तृषा, स्वेदाधिक्य, वमन, मिचली, दौर्गन्ध्य, कुष्ठ, विसर्य, बस्तिवात, विष, कण्ठ और सिरके रोग, कफ और पित्तका नाश करनेवाला है। नागकेशरको मक्खन और मिश्रीके साथ मिलाकर सेवन करनेसे बवासीरका खून बन्द होता है (च० चि० अ० १४; सु०; रा० नि०; भा० प्र०)। रक्तार्श, रक्तातिसार, रक्तप्रदर, रक्तकास, रक्तपित्त आदिमें नागकेसर उत्तम औषध है (द्रव्यगुणविज्ञानम् खं० २, पृ० १०२)।

वक्तव्य—सुरपुन्नाग (लाल नागकेसर **Ochrocarpus longifolius**) के गुणकर्म पीले नागकेशर या नागकेशर जैसे ही हैं, परन्तु उससे निम्न कोटिके हैं। इसकी सुखाई हुई 'अविकसित पुष्पकलिका' लालनागकेशर-के नामसे बाजारमें बिकती है।

नव्य मत—नागकेशर शीतल, पीड़ाशामक, रक्तसंग्राहक और ग्राही है। गुदद्वारकी जलन रक्तप्रवाहिका, रक्तार्श और हाथ-पाँवकी जलनमें यह उत्तम औषध है। पुष्कल कफयुक्त कासमें यह दिया जाता है। संधिवात और शरीरकी पीड़ामें इसके बीजोंके तेलकी मालिश की जाती है।

●

(३५०) नागफनी (१)

फ़ैमिली : काक्टासे (Family : Cactaceae)

नाम—(हिं०) नागफनी; (सं०) रात्रिप्रफुल्ल, मधुरगंधी ? (ले०) सेरेउस ग्रान्डीफ्लोरुस (**Cereus grandiflorus** Mill.), कैक्टुस ग्रान्डीफ्लोरुस (**Cactus grandiflorus** Mill.); (अं०) स्वीट-सेंटेड कैक्टस (Sweet-scented Cactus), नाइट-ब्लूमिंग सेरियस (Night-blooming Cereus)।

उत्पत्तिस्थान—जमेइका। यह तथा इसकी कई अन्य जातियाँ, जैसे—ऑपुन्टिआ डिल्लेनी (**Opuntia dillenii** Haw.) या कॉक्टुस ईडिकुस (**Cactus indicus** Roxb.) अर्थात् नागफनी संभवतः मेक्सिको आदि विदेशोंसे लाकर भारतवर्षमें लगाई गई है।

वर्णन—इसके ताजे कांड मांसल (गुदार), ५-७ कोणयुक्त और १·२५ सें० मी० से १·८७ सें० मी० (१/२से ३/४ इंच) व्यासमें और पुष्प ४-५ इंच; कटोरी (Calyx) के बहुसंख्यक, रेखाकार, रोमश नारंगी रंगके खंड होते हैं; पंखड़ी (Petals) आयता-भालाकार, श्वेत, नरतंतु बहुसंख्यक और स्त्रीकेशर (Stigma) बहुरश्मिमय।

उपयुक्त अंग—ताजा पौधा।

कल्प—रसक्रिया ०·०६ मि० लि० से ०·६ मि० लि० (१-१० विन्दु) और सुरासव ०·१३ मि० लि० से २ मि० लि० (२-३० विंदु)।

गुणकर्म तथा उपयोग—हृदयोत्तेजक और बल्य। अनेक हृद्रोगों, जैसे—हृत्स्पंदन (दिलकी धड़कन), हृच्छूल, हार्दिक वातशूल आदिमें इससे शीघ्र लाभ होता है। यह प्रोस्टेटके रोगों, संक्षुभित बस्ति और वृक्कस्थ रक्तसंचयमें भी उपकारक है। अमेरिकामें शोथ (Dropsy)के लिये इसका उपयोग किया गया है। प्रोफेसर लोक (Prof. Locke) वातिक ऋतुज शिरःशूलके लिए इसके सेवनकी अभ्यर्थना करते हैं।

●

(३५१) नागफनी (२)

फैमिली : काक्टासे (Family : Cactaceae)

नाम—(हिं०; पं०) नागफनो, चप्पलसेंढ; (सं०) नागफण; (बं०; म०) नागफण; (द०) नागफनसी, चप्पलसेंढ; (मार०; वृजभाषा) नागफनी थूहर; (गु०) हतला थूहर; (ता०; ते०) नागदली; (मल०) नागमुल्ल; (ले०) **ओपुंटिआ डिल्लेनी** (**Opuntia dillenii** Haw.); प्रिक्ली पीयर (Pricly Pear), स्लिपर थॉर्न (Slipper-Thorn)।

उत्पत्तिस्थान—संभवतः मेक्सिकोका आदिवासी है। भारतमें ला कर लगायी गयी है।

वर्णन—सेहुँडकी जातिका दस-पन्द्रह फुट ऊँचा एक पौधा है। इसके पत्ते जिनको 'पंजा' कहते हैं, जो वस्तुतः इसके कांडके भाग हैं, १५ सें० मी० से २३·५ सें० मी० (६ से ९ इञ्च) लम्बे होते हैं और साँपके फनकी तरह होते हैं; इसलिए **'नागफनी'** कहलाते हैं। इनमें लबाबदार गूदा भरा होता है। इनपर रोआँ और काँटे भी होते हैं। फल बहुत बड़ी हड़की तरह होता है। कच्चेपर यह हरा और पकनेपर यह अंदर और बाहरसे गुलाबीलाल रंगका और मीठा हो जाता है। कम काँटे और काँटेरहित नागफनी भी होती है। इसके फलका स्वाद खट्टा होता है। फलके भीतर काले रंगके बीज होते हैं।

उपयुक्त अंग एवं कल्प—फलके गूदेसे गुड़, शर्बत और उच्चकोटिका मद्य बनाया जाता है। पंजा (कांड के खंड)।

प्रकृति—मीठी, गरम एवं खुश्क (रूक्ष) और खट्टी शीत एवं रूक्ष।

गुणकर्म तथा उपयोग—खट्टी किस्मके पंजों अर्थात् पत्तोंको काँटे और छिलके दूर करके टुकड़े-टुकड़े करके पानीमें भिगोंकर रातमें ओसमें रखकर और प्रातः उसे मलकर थोड़ीसी मिश्री मिलाकर पीनेसे रक्तदाह (इह्तिराक़ खून)में बड़ा लाभ होता है। खट्टी नागफनीके पंजेके दोनों ओरके काँटे दूर करके एक ओरसे छिलका दूर कर उस पर हलदीका चूर्ण छिड़ककर गुनगुना अर्शके अंकुरोंपर बाँध देवें और तीनदिन तक बँधा रखें। केवल पाखानेके समय खोलकर मल-प्रक्षालन करनेके बाद पुनः गरम करके बाँध लिया करें तो जलन, सूजन और खूनका निकलना सब बन्द हो जाय। यह संधिशूल, पक्षवध और अंगघातके लिए बड़ा गुणकारी है। इसके फलको पकाकर रोटीसे खाने और शेष भागको तिलके तेलमें तलकर और छानकर घातित अंगपर तीन महीनेतक बराबर मालिस करनेसे बिल्कुल आराम हो जाता है। यह विधि **खज़ाइनुल्अद्विया ग्रन्थके** लेखक महोदयकी नाना परीक्षित है। तिलतेलकी भाँति इसके बीजोंसे निकाला हुआ तेल परम वाजीकर, शिश्नोच्छ्राय एवं दार्ढ्यकर है। मीठी नागफनीका फल खाँसीवालेको सेककर खाना चाहिए। इसके फलका शर्बत पौने चार-चार माशेकी मात्रामें दिनमें तीन-चार बार पीनेसे पित्तका उद्रेक बढ़ता है। इसका फल खानेसे पेशाबका रंग लाल हो जाता है। इसके फलके पौने चार माशे शर्बतमें १५ बूँद चंदनका तेल मिलाकर पीनेसे सूजाक आराम हो जाता है। इसके पत्तोको गरम करके बाँधनेसे फोड़ा शीघ्र पक जाता है। इसके पंजेका गूदा आँखपर बाँधनेसे आँखका दुखना बन्द हो जाता है और नारूपर बाँधनेसे लाभ होता है। फलका निवारण दूध है।

नव्यमत—सर्पदंशमें पौधेका उपयोग होता है। पत्र-शोथ एवं गर्मी दूर करनेके लिए इसकी पत्तियोंकी-सपुलटिस (उपनाह) बनाकर लगाते हैं। नेत्राभिष्यंद (दुखती हुई आँखों)में इसका गूदा नेत्रके ऊपर लगाते हैं। फोड़ोंको शीघ्र पकानेके लिये उनपर गरम करके लगाते हैं। इसका दूधिया रस विरेचन है। फल शीतल है। सूजाकमें इसका उपयोग करते हैं। कुकुरखाँसीमें इनको भूनकर खिलाते हैं। कफ निकालने और आक्षेपयुक्त खाँसीमें इसको शर्बत (शार्कर)के रूपमें देते हैं।

●

(३५२) नाना (नाऽनाऽ)

फ़ैमिली : लाबिआटी (Family : Labiatae)

नाम—(हिं०) नाना; (अ०) नअ्न(ना)अ, अन्नअ्नाउल्फ़िल्फ़िली; अल्हब्कुल नहरीं, हब्रकुलभाऽ (नदी-कूलोंपर होनेसे) इ०बै०; (फा०) हज़ारपाया, पूदनः फ़िल्फ़िली; (ले०) **मेंथा पाइपेरीटा (Mentha piperita** Linn.); (अं०) स्पीयर-मिन्ट (Spear-mint)। नाना का सत (हि०) पिपरमिंट; (अं०) पेपरमिंट (Pepper-mint), बार्मिंट (Balm-mint)।

वक्तव्य—प्राचीन यूनानवासियोंके अनुसार 'मेन्था' वस्तुत: एक यूनानी कुमारी कन्याका नाम था, जो यूनानी धनकुवेर प्लेटोकी प्रेयसी थी और जिसको उसकी पत्नी प्रोसर्पाइन (जो धनकी देवी है, जिसे भारतीय **लक्ष्मी** कहते हैं)ने राग-द्वेषके वशीभूत हो उसे उद्भिज्जके रूपमें परिणत कर दिया था। अतः इस उद्भिज्जका नाम उसी कुमारी मेंथाके नामपर प्रसिद्ध हो गया। मेंथाका अरबी उच्चारण '**मन्सा**' है, परन्तु मुहीत और मख़्ज़नमें भूलसे इसे '**मब्सा**' लिखा है।

उत्पत्तिस्थान—यूरोप और उत्तरी अमेरिकाके विस्तृत भूभागपर यह होता है। भारतीय एवं यूरोपीय बगीचोंमें इसकी खेती की जाती है। यूरोपमें होनेवाला अपेक्षाकृत श्रेष्ठ होता है। चीनमें और जापानमें इसकी पैदाइश बहुलतासे होती है।

वर्णन—पुदीनाकी जातिका एक **क्षुप** जिसका कांड सामान्यतया बैंगनी लिये, ०·६ से १·२ मीटर (२-४ फुट) ऊँचा, चौकोर; **पत्र** सवृन्त, ५सें०मी०से ७·५ सें०मी० (२-३इंच) लम्बा और १·८७ से ३·७५सें०मी० ($\frac{३}{४}$-१$\frac{१}{२}$ इंच) चौड़ा, दंतुर, कालाई लिए हरा, सूक्ष्म, किन्तु अप्रत्यक्षतया लोमश, स्वाद एवं गंध विशिष्ट होती है और शाखाओंके छोरपर बनफसई रंगके फूल निकलते हैं। यूनानी वैद्योंका यह 'नाना बुस्तानी' है। इसका जंगली भेद '**नाना बर्री**' कुस्वादु होता है। इसके पत्ते छोटे होते हैं और उनपर फफूँदीकी तरह रोआँ होता है। इसका 'बागी (बुस्तानी)' भेद सुस्वादु होता है। इसके पत्ते अपेक्षाकृत चिकने और बड़े होते हैं। इसमें सुगन्ध होनेके कारण इसे मसालेमें डालते हैं। इसे छायेमें सुखाना चाहिए।

भेद—

पुदीना नहरी (**मेन्था आक्काटिका** Mentha aquatica)—झुके हुए पत्र। जालीनूसने नानाको पुदीना नहरीसे अल्प-वीर्य लिखा है।

पुदीना विशेष (Corn-mint)—पत्र-कुण्डल कांडके चतुर्दिक् होते हैं और प्रत्येक कुण्डलके नीचे युग्म-पत्र होते हैं (**मेन्था आर्वेन्सिस Mentha arvensis**)। यह पश्चिमी हिमालय, कश्मीरमें (५,०००से १०,००० फुटकी) ऊँचाईपर, पंजाब, कुमाऊँ और गढ़वालमें होता है।

मेंथोल—(पुदीनेका सत्व, सत या फूल—**पिपरमिंट**) तथा इसका तेल (**ऑइल पिपरमिंट**) पुदीनेकी इसी जाति तथा **मेन्था पाइपरेटा** और प्रधानतया इसीके पाइपरेशियस भेदसे जापान और चीनमें निकाला जाता है और वहींसे भारतवर्षमें आता है।

इतिहास—सर्वप्रथम गेमेलिन नामक एक रासायनिकने सन् १८२९ ई० में मेंथोलका वर्णन किया। उसने इसे यूरूपीय उद्भिज्जसे प्राप्त किया था। सन् १८२९ ई० डॉ० परेरा आदिने चीनी और जापानी मेंथोलका वर्णन किया और बतलाया कि चीनी मर्तबानोंमें बन्द होकर यह चीनसे यूरोपमें आता है।

रासायनिक संगठन—इसमें उत्पत् तेल (Essen. oil) ०.५से १.५% जिसमें ३६.२% से ५६% स्वतन्त्र **मेन्थोल** (पुदीनेका सत—**पिपरमिंट**) और ४ प्रतिशत अथवा ४.४ से ९.९ प्रतिशत ईस्टर्स (Esters) होते हैं। इसकी खेतीमें १०-१५ दिन आगे-पीछे होनेपर इसमें मेन्थोलका प्रमाण ३० प्रतिशत कम हो जाता है।

उपयुक्त अंग—क्षुप, पत्र, पुष्पित और ताजे पौधों (क्षुपों)से भभके (परिस्रावणविधि)से निकाला हुआ तेल अर्थात् ऑइल पेपरमिंट (Distilled or Essen. oil) और इस तेलसे प्राप्त लम्बे, षट्कोन, दानेदार पदार्थ जिसे **पुदीनेका फूल या सत** (सत-पिपरमिंट) कहते हैं।

कल्प—क्षुपका चूर्ण; मात्रा, १५-३० रत्ती; पिपरमिटका तेल (Oil. Menth.Pip.); अर्कपुदीना (Aq. Menth. Pip. or Essence Peppermint), सतपुदीना (मेन्थोल या पेपरमेंट-कैंफर) औषधोपयोगी द्रव्य पुदीनेसे ही तैयार किये जाते हैं।

नाना—

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें **गरम एवं रूक्ष** (खुश्क)।

गुण-कर्म तथा उपयोग—कहते हैं कि यह पुदीनेकी अपेक्षया अधिक वीर्यवान् है। कोई-कोई इसकी गर्मी एवं रूक्षता पुदीनेसे कम मानते हैं। यह किंचित् संग्राही, मनःप्रसादकर, हृदयबलदायक, शीतल दोषोंको विलीन करनेवाला और गाढ़े रक्तको पतला करनेवाला है। इसमें कुछ कषायपन भी है जो पुदीनेमें नहीं है। इसलिए यह थूकमें रक्त आनेको तथा रक्तवमनको रोकता है, यदि रोग पुराना न हो गया हो। अपने कड़वापनके कारण यह पेटके कीड़ोंको मारता है तथा पेटके रक्तको भी बन्द करता है। इस गुणके लिए इसे सिरकेके साथ खाना चाहिए। इसके पत्तोंका रस ६ रत्ती गुलरोग़न मिलाकर तीन बार नाकमें टपकानेसे कण्ठमालेमें बड़ा लाभ होता है। इसे मस्तकपर मलनेसे शीत एवं वायुका दर्द आराम होता है। यह आमाशयमें गर्मी उत्पन्न करता और उसे शक्ति देता (दीपन) है और हिचकी बन्द करता है। यह पाचन, क्षुधावर्धक, वाजीकर, शुक्रस्तम्भक तथा आध्मानहर, है और शुक्रके रहनेके स्थानको भी शक्ति देता है। कुक्कुरदंशमें इसके बीज गुणकारी हैं। इसके चबानेसे दाँतका दर्द मिटता है। इसके लेपसे स्तनोंमें जमा हुआ दूध विलीन हो जाता है और स्तनका शोथ भी उतर जाता है। इसके खानेसे भी उक्त लाभ होता है। इसे छातीपर मलनेसे थूक सरलतासे निकलने लगता है और दर्द मिट जाता है। इसे हंसराजके साथ औटाकर पीनेसे अधिक लाभ होता है। उरःफुफ्फुसके द्रवोंको पकाकर उनका संशोधन करता है तथा हृदयको शक्ति देता और कुछ उल्लास भी उत्पन्न करता है। आमाशयजात हृत्स्पंदन इसके सेवनसे जाता रहता है। इसका शर्बत भी इसमें तथा कामलामें लाभकारी है। नानाको अनारदानाके साथ सेवन करनेसे विसूचिका शांत होती है; क्योंकि यह दोनों संग्राही होनेके कारण आमाशयको शक्ति देते (दीपन) हैं। इसके सेवनसे खूब भूख लगती है, पेटकी मरोड़ और वातज शूल आराम होता है। वातार्शमें इसके पत्तोंका लेप गुणकारक है। **अहितकर**—अधिक खानेसे गलेमें कण्डू उत्पन्न करता है। कभी ताजा नाना वायु उत्पन्न करता और आँतों एवं गुदाको हानि पहुँचाता है। **निवारण**—कण्डू एवं वायुके लिए मधु और आँतों एवं गुदाके लिए अजमोदा और बिहीदाना। **प्रतिनिधि**—पुदीना और दुगुना सातर। **मात्रा**—९ ग्राम (९ माशे) तक।

पीपरमिंट—

प्रकृति—**गरम एवं रूक्ष**।

गुण-कर्म तथा उपयोग—बाह्योपयोगसे पुदीनेका सत उत्तम कोथप्रशमन, स्वापजनन (सुन्नता करनेवाला) और त्वग्दोषहर है। खिलानेसे इसकी क्रिया कपूरके समान होती है; परन्तु इसमें श्लेष्महर और कोष्ठवातप्रशमन धर्म विशेष हैं। यह उत्तेजक, दीपन और वातानुलोमन है। उत्क्लेश, आध्मान, रुग्णता और छर्दिनिवारणार्थ एवं शिशुओंके लिए हृद्य रूपमें इसका उपयोग होता है। इसका दीपन प्रभाव अपेक्षित होनेपर साधारणतया

अन्यान्य औषधियोंके साथ योगके रूपमें इसका उपयोग होता है। पुदीनेका सत्व धान्याहारी लोगोंके कुपचन, अजीर्ण और उदरशूलमें देते हैं। इससे उलटी विशेषतः सगर्भावस्थामें होनेवाली उलटी बन्द होती है। दन्तशूलमें रूईको १ से २ बूँद पीपरमेंटके तेलमें भिगोकर दाँतके नीचे दबानेसे पीड़ा शान्त होती है। एक भाग मेंथोल और दो भाग कपूरको एकत्र मिलानेसे वह द्रव बन जाता है। किसी भी प्रकारकी वातजन्य पीड़ाको शमन करनेके लिए इसकी मालिश करते हैं। अजीर्णजन्यवमन, अतिसार, विसूचिका और उदरशूलमें इसको २-५ बूँद शक्करमें मिलाकर देते हैं। (पा० न्यू० साइ०; औ० सं०; द्रव्यगुणविज्ञानम्)।

●

(३५३) नाय

फ़ैमिली : जेंटिआनासे (Family : Gentianaceae)

नाम—(हिं०) छोटा किरायता (चिरेता), नैं, नाय, नाई; (सं०) नागजिह्वा, मामज्जक; (म०) मामिजवा; (गु०,बम्ब०) कड़वी नाही (नही); (काठि०) मामेजवो; (पं०) बहुगुणी; (ले०) **एनीकॉस्टेमा वेर्टीसील्लाटुम Enicostema verticillatum** (L). Engl. (**पर्याय**—*E. littorale Bl.*)।

उत्पत्तिस्थान—बंगालको छोड़कर समस्त भारतवर्ष। पंजाब और बम्बईके बाजारोंमें इसका सुखाया हुआ क्षुप सामान्यरूपसे मिलता है।

वर्णन—यह एक क्षुद्र क्षुप है जो चौमासेमें सर्वत्र उगता है। जड़ बहुवर्षायु, परिसर्पी; कांड साधारण, सरल, ५सें०मी०से १०सें०मी० (२ से ४इञ्च) कभी-कभी १५सें०मी०से ३० सें०मी० (६ से १२ इंच) या इससे भी ऊँचा, चौकोर, ग्रंथिल होता है और इस पर जड़के पाससे सिरे तक पत्ते लगते हैं। **पत्र**—प्रत्येक ग्रन्थिके आमने-सामने, अवृंत, शल्या(भाला)कृति, त्रिशिरायुक्त, मसृण, अखंड, ३·७५ सें० मी० से ५ सें० मी० (१॥ से २ इंच) लम्बा और १·२५ सें० मी० (१॥ इंच) चौड़ा; **फूल**—प्रत्येक पत्रकोणमें स्थित कक्षीय, प्रायः तीन, अवृंत, सूक्ष्म, सफेद; दल फनेलकी आकृतिके (Funnel-shaped); **फल** जौके बराबर, गोल जिसके भीतर पोस्ते के दानेके समान छोटे-छोटे बीज भरे होते हैं। समस्त क्षुप तिक्त होता है।

उपयुक्त अंग--पंचाङ्ग।

रासायनिक संगठन—इसमें ग्लूकोसाइडके स्वभावका एक तिक्तसत्व होता है।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें उष्ण एवं रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—ज्वरघ्न, मूत्रार्त्तवजनन, उदरकृमिनाशन और रक्तप्रसादन। कफज्वरमें इसका शीरा निकालकर अथवा क्वाथ बनाकर पिलाया जाता है। गूमाबूटीके साथ तपेदिकमें भी इसका उपयोग कराते हैं। जीरा, कालीमिर्च और एक दाना लहसुनके साथ इसके पत्रका शीरा निकालकर मूत्र और आर्तवजननार्थ पिलाते हैं। उदर-कृमि नष्ट करनेके लिए शीराकी भाँति उपयोग कराते हैं। मात्रा–३ ग्रामसे ५ ग्राम (३ माशेसे ५ माशे तक।

●

(३५४) नारंगी

फ़ैमिली : ऑउराण्टिआसे (Family : Aurantiaceae)

नाम—(हिं०) ना(रिं)गी, नौरंगी, नवरंगी; (सं०) नारंग, नागरंग; (बं०) नारेंगा; (गु०) नारंगी; (म०) नारिंग; (ले०) सीट्रुस् आउरान्टिउम् (**Citrus aurantium** Linn.); (अं०) बिटर ऑरेंज (Bitter Orange)।

उत्पत्तिस्थान—उत्तर भारतवर्ष। यहींसे यह यूरोप गयी। यह जंगली और लगाई हुई दोनों प्रकारकी होती है।

वर्णन—यह एक वृक्षका प्रसिद्ध फल है जो संतरासे छोटा होता है। पकी नारंगीका छिलका पिलाई लिए लाल होता है। संतरेके समान इसके भीतर भी फाँके होती हैं जिनका रस चूसा जाता है। इसका स्वाद मिठास लिए खट्टा होता है। यह नारंजसे भिन्न है।

उपयुक्त अंग—फल और फलका छिलका।

रासायनिक संगठन—फूल और ताजे फलके छिलकेमें नेरोली नामक सुगन्धित हलका पीले रंगका और तिक्त मनोरम स्वादयुक्त उत्पत् तेल होता है। नारंगीके रसमें लबाव, शर्करा, सीट्रिक अम्ल, निरिन्दिय लवण यथा-सीट्रेट ऑफ पोटाश विशेषरूपसे होते हैं।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें शीत एवं तर; नारंगीका छिलका उष्ण एवं रूक्ष है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—सौमनस्यजनन, हृदयबलदायक, पित्तकी तीक्ष्णता और रक्तके उद्वेगको शान्त करती और दीपन है। नारंगीका छिलका लेखन है। नारंगीके छिलकेको मेवेकी भाँति पुष्कल खाया जाता है। यह उष्णप्रकृतिवालोंके लिए तथा उष्ण व्याधियोंमें परम गुणकारक है। उष्णप्रकृतिवालोंके आमाशयको बल देनेके लिये इसका उपयोग कराते हैं। पित्तज वमन, उत्क्लेश और उबकाई शान्त करनेके लिए इसकी फांके चुसाते हैं। इसके छिलकेको उबटनमें मिलाकर चेहरेकी रंगत निखारनेके लिए मलते हैं। अतिहकर-शीत प्रकृति और वात-नाड़ियोंको। निवारण-चीनी, नमक और कालीमिर्च। प्रतिनिधि-नारंज और संगतरा (संत्रा)।

आयुर्वेदीय मत—नारंगी(नारंगफल) मधुर, अम्ल, हृद्य, विशद, गुरु, दुर्जर (चिरपाकी), अन्नमें रुचि उत्पन्न करनेवाली और वातघ्न है। (च०सू०अ० २७; सु०सू०अ० ४६)।

●

(३५५) नारंज

फ़ैमिली : आउरान्टिआसे (Family : Aurantiaceae)

नाम—(हिं०) करना, कन्ना; (अ०) नारंज; (फा०) नारंग; (सं०) करुण; (बं०) करुणोलेबुर गाछ, कन्ना लेंबू; (मल०) करना; (ले०) सीट्रुस आउरान्टिउम् (**Citus aurantium** Linn. var. **bigaradia**); (अं०) बिगार्डी (Bigarade)।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्षमें मिलता है। मद्रासके गण्टूर जिलेमें इसकी पुष्कल खेती होती है।

वर्णन—यह एक वृक्षका प्रसिद्ध फल है। कच्चे फलका छिलका हरा होता है; किन्तु पकने पर वह पिलाई लिए लाल हो जाता है। इसके भीवर संतरेकी भाँति फाँकें होती हैं जिनका स्वाद खट्टा रसीला होता है। **बीज** बिजौरेके बीजकी तरह, किन्तु उससे बहुत छोटे होते हैं। वृक्ष बिजौरेके वृक्षके समान होता है। इसमें सफेद सुगंधित फूल लगते हैं जो **बहार नारंज** या **गुल करना**के नामसे प्रसिद्ध हैं।

उपयुक्त अंग—फूल, फल, फलका छिलका और पत्र आदि।

रासायनिक संगठन—फलमें शर्करा और सिट्रिक अम्ल होता है। फलके छिलकेमें विपुल प्रमाणमें उत्पत् तेल होता है।

प्रकृति—छिलका और फूल दूसरे दर्जेमें उष्ण एवं रूक्ष और फलका रस (तुर्शी नारंज) दूसरे दर्जेमें शीत एवं रूक्ष है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—नारंज और गुलनारंज (नारंज का फूल)का सूँघना मनःप्रसादकर, हृदयबलदायक और हृदयको उल्लसित करनेवाला है। इसका छिलका वेदनास्थापन, दीपन और उदरकृमिनाशन है। नारंजके गूदे (मग़्ज़)का चूसना या उसका रस निचोड़कर पीना रक्त और पित्तका उद्वेग एवं तीक्ष्णता शमन करता है। यह भूख लगाता और आमाशयशोथको मिटाता और पित्तविरेचनीय भी है। नारंजके फूलोंसे खींचा हुआ अर्क़ सौमनस्यजनन और बलवर्धनके लिए मस्तिष्क एवं हृद्रोगोंमें प्रयुक्त होता है। सौमनस्यजनन एवं हृदयबलदायक होनेके कारण नारंजके समस्त अंग-प्रत्यंग जनपदोध्वंसक (वबाई) व्याधियों, जैसे–प्लेग और हैजामें विविध प्रकारसे उपयोग किये जाते हैं। इसमें कृमिघ्न गुण होनेके कारण कपड़ोंको कीड़ा लगनेसे सुरक्षित रखनेके लिए उनमें इसका छिलका और फूल रखते हैं। शीतल शिरःशूलको शमन करनेके लिए नारंजके छिलकेको सिरकामें पीसकर लेप करते हैं। आन्त्रस्थ कृमियोंके उत्सर्गके लिए इसको बारीक पीसकर जैतूनके तेलमें मिलाकर गरम जलके साथ पिलाते हैं। हृदयोद्वेष्टन (वज्उल फुवाद)को नष्ट करनेके लिए केवल नारंजके छिलकेको पीस-छानकर गरम पानीके साथ खिलाते हैं। इसके अतिरिक्त वमन और हृल्लास शमनार्थ उपयोग करते हैं। नारंजके रसमें चीनी मिलाकर पित्तकी तीक्ष्णता और रक्तोद्वेग शमनार्थ पिलाते हैं। **अहितकर**–यकृद्दौर्बल्यकारक (मुज़्इफ़ जिगर)। **निवारण**–चीनी, नमक और कालीमिर्च। **प्रतिनिधि**–बिजौरा (तुरंज)। **मात्रा**–नारंजका छिलका ३ ग्रामसे ५ ग्राम (३ माशेसे ५ माशे) तक। नारंजका रस ५ तोलेसे ७ तोले तक।

●

(३५६) नारियल

फ़ैमिली : पामे (Family : Palmeae)

नाम—वृक्ष (हिं०) नारियल(र), नारियलका पेड़; (अ०) शज्रतुन्नारजील; (फा०) दरख़्ते नारगील; (बं०) नारकेल गाछ; (सं०) नारिकेल वृक्ष; (गु०) नालीएर; (म०) नारल, नारलचाझाड़, माड़; (सिं०) पोल; (लै०) **कोकोस नूसीफ़ेरा (Cocos nucifera** Linn.); (अं०) कोकोनट पाम (Cocoanut Palm)। **फल** (हिं०) नारियल, नरियल, नरियर; (अ०) नारजील, जौज़े हिन्दी (इ० बै०); (फा०) नारगील, बार्दिज; (सं०) नारिकेल (र)फल, नालिकेर; (बं०) नारकेल; (पं०) नरेल, खोपा; (गु०) नारिअ(य)ल; (म०) नारल; (अं०) कोकोनट फ्रूट (Cocoanut Fruit)। **खोपरा** (अ०) मग़्ज़नारजील; (गु०) खोपु; (म०) खोबरी; (अं०) ड्राई कर्नेल ऑफ कोकोनट (Dry kernel of cocoanut)। **तेल** (हिं०) खोपरेका तेल, नारियलका तेल; (अ०) दोहनुन्नारजील, दोहनुल्जौज़े-

हिन्दी, (फा०) रोग़ने नारगील(बार्दिज); (सं०) नारिकेल तैल; (म०) नारलाचें तेल; (अं०) कोकोनट ऑइल (Cocoanut Oil)।

वक्तव्य—संस्कृत नारिकेलसे फारसी 'नारगील' एवं फारसी नारगीलसे अरबी 'नारजील' बनाये गये हैं। 'नारियल' नारिकेलका हिन्दी अपभ्रंश है। मराठीमें वृक्षसे बहनेवाले रसको 'माड़' कहते हैं।

उत्पत्तिस्थान—दक्षिण भारतवर्ष, लंका, पूर्वीबंगाल, ब्रह्मा, मलाबारतट, कारोमंडलतट एवं पूर्वीद्वीपसमूह आदि।

वर्णन—एक प्रसिद्ध फल है। इसका मग्ज जिसको 'खोपरा' कहते हैं, अधिक व्यवहारमें आता है। वृक्ष ताड़के वृक्षके समान होता है।

उपयुक्त अंग—फलकी गिरी(खोपरा) और तेल आदि।

कल्प तथा योग—हब्ब नारजील।

रासायनिक संगठन—ताजा खोपरा(गिरी)में मांसवर्धक द्रव्य, वसा, तालशर्करा (ग्लूकोज—द्राक्षशर्करा और इक्षुशर्करा) और निरिन्द्रिय द्रव्य; तेलमें लॉरिक, मायरिस्टिक, पामिटिक और स्टियरिक अम्लोंके ग्लीसराइड्सके साथ कैप्रिलिक (Caprylic) अम्ल होता है। ताजा तेल चर्बीके स्थानमें प्रयुक्त होता और उससे श्रेष्ठ सिद्ध होता है।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें **गरम और तर**। आयुर्वेदके मतसे शीतवीर्य एवं स्निग्ध (च०; सु०) है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—नारियलकी गिरी(खोपरा) पुष्टिदायक आहार है; परन्तु गुरु होनेके कारण चिरपाकी है। यह बृंहण और वाजीकरण है, प्रकृत देहाग्निको शक्ति देता और सम्पूर्ण शरीरको शक्ति और उष्णता पहुँचाता है। पुराना खोपरा उदरकृमि विशेषतः कद्दूदानेको नष्ट करता है। इसका प्रधान गुणकर्म शुद्ध रक्तवर्धन और वाजीकरण है। बृंहण और वाजीकरणके लिए खोपराको चीनीके साथ खिलाते हैं तथा वाजीकरण माजूनोंमें डालते हैं। कद्दूदानेको नष्ट करनेके लिए ३ माशा पुराना खोपरा देते हैं। उत्तम नारियलसे निकाला हुआ तेल घीके स्थान पर उपयोग करनेसे बाजीकर और वृंहण है। बाहरी तौरपर मर्दन करनेसे अंगोंके शीतल दर्दोंको नष्ट करता है। सिरमें लगानेसे यह बाल बढ़ाता और उनको नरम और मुलायम बनाता है। अहितकर–अत्ररोधजनक (अभिष्यंदि) एवं दीर्घपाकी है। निवारण–शर्करा और मिश्री। प्रतिनिधि–अखरोट, पिस्ता, चिलगोजा इत्यादि। मात्रा–दो-तीन तोले तक। पुराने नारियलका स्वरस स्रंसन और पौष्टिक है। खोपड़ा (सूखा नारियल) कृमिघ्न है। पके हुये ताजे नारियलका जलके साथ पका कर निकाला हुआ तेल क्षयरोगमें कॉडलिवर ऑइलके समान लाभ पहुँचाता है। मेदोवृद्धिमें खोपड़ेका तेल खानेसे मेद कम होता है। सूजाकरोगके लिये नारियलका पानी अच्छा है। इससे मूत्र खुलकर आता है और जलन आदि दूर हो जाती है। हैंजेके वमनको बन्द करनेके लिए इसका पानी दिया जाता है।

आयुर्वेदीय मत—नारियल मधुर, शीतवीर्य, स्निग्ध, गुरु, बृंहण, बल्य; मांसवर्धक, हृद्य, बस्तिशोधन (मूत्रल) और पित्तघ्न है। नारियलका जल मधुर, शीतवीर्य, स्निग्ध, गुरु, हृद्य, दीपन, वृष्य तथा पित्त और तृषाको दूर करनेवाला है। (च० सू० अ० २७; सु० सू० अ० ४५, ४६)।

नव्यमत—नारियलके कवचको जलाकर पातालयन्त्रसे निकाला हुआ तेल कुष्ठघ्न (दद्रु पामा आदि चर्मरोगनाशक) है। नारियलका तेल केश्य, कृमिघ्न, व्रणरोपण, कफघ्न, शोषघ्न और कर्शन है। कच्चे नारियलका पानी शीतल, मूत्रजनन, मूत्रविरंजन और पिपासाहर है। कोमल नारियलका दूध (स्वरस) आश्वासजनन, वृत्तिकर मूत्रजनन और स्रन्सन है। नारियलका मद्य बल्य, सौमनस्यजनन, दीपन, पाचन, बृंहण, कोष्ठवातप्रशमन, ज्वरहर, निद्रालानेवाला और वाजीकर है।

●

(३५७) नारियल दरियाई

फ़ैमिली : पामे (Family : Palmeae)

नाम—(हिं०) दरियाई नारियल; (अ०) नारजीले बहरी; (फ०) नारगीले दरियाई (बहरी), नारजीले दरियाई; (सं०) अब्धि नारिकेल; (हि०; द०) दरियाका नारियल; (म०) दर्याचा नारल; (गु०) दर्यानु नालीएर (नारिअल), झेरी नारियेल; (बम्ब०; कों०; म०; मारवाड़) जहरी नारल; (ले०) **लोडोईसेआ सीचेल्लारुम् Lodoicea seychellarum** Labill. (**पर्याय**–*L. maldivica* Pers.); (अं०) सी-कोकोनट (Sea-Cocoanut)।

उत्पत्तिस्थान—सिचेलीज टापू तथा अफ्रीका और अमेरिकाके समुद्रतट। यह भारतवर्षमें लगाया जाता है। बम्बईकी ओर इसके फल मिलते हैं।

वर्णन—यह एक वृक्षका प्रसिद्ध फल है जो स्वरूप और आकृतिमें नारियलके समान होता है; परन्तु यह उससे अधिक कठोर, मोटा और भारी (२० से २५ सेर तक) होता है। इसके कवचका कमण्डलु बनाते हैं। बाजारमें दरियाई नारियलके नामसे इसके मग़्जके कटे हुए बेडौल टुकड़े मिलते हैं।

उपयुक्त अंग—मग़्ज (गिरी)। यह बड़ा कठिन होता है, इसलिये इसका बुरादा बनाकर या अर्कगुलाबमें घिसकर प्रयोग करते हैं।

प्रकृति—संमिश्रवीर्य (मतांतरसे गरम और तर अथवा गरम और खुश्क)।

गुण-कर्म तथा उपयोग—सौदावी और कफज्वरनाशक, प्रकृत शरीरोष्माका उत्तेजक, विसूचिकाहर और विषोंका अगद है। इसको अधिकतया हैज़ामें अकेला या अन्य औषधियोंके साथ अर्कगुलाबमें घिसकर पिलाते हैं। जब तक शरीरके भीतर विष वर्तमान होता है, वमन लाता रहता है। यहाँ तक कि संपूर्ण विषको दूर कर देता और प्यास बुझाता है। अफीम और बछनाग खाये हुएको भी इसे घिसकर पिलाते हैं। सर्प, वृश्चिक, भिड़ और अन्य विषधर जंतुओंके दष्टस्थानपर पतला लेप करनेसे यह सूजन, दाह और विषको दूर करता है। प्रकृत देहाग्निको उद्दीप करनेके कारण इसको जवाहरमोहरामें डालते हैं। कफज और सौदावी ज्वरोंमें शीत या कँपकपी (कश्अरीरा)के प्रारम्भमें इसको घिसकर पिलाते हैं। **अहितकर**–उष्णप्रकृति और उष्ण व्याधियोंमें। **निवारण**–गुलाब-पुष्पार्क, ताजा दूध और कालीमिर्च। **प्रतिनिधि**–पपीता। **मात्रा**–०.५ ग्राम से १ ग्राम (४ रत्तीसे १ माशा) तक।

* * *

(३५८) नारेदीन (नारदीन)

फ़ैमिली : वालेरिआनासे (Family : Valerianaceae)

नाम—(हिं०) विदेशी बालछड़, नारदीन; (यू०) नारडीन; (अ०) नारेदीन इक़लीती, सुंबुले अस्फ़र, सुंबुले रूमी (शैख़ुर्रईस व भाष्यकार गीलानी); (ले०) **वालेरिआना ऑफ़्फ़ीसिनालिस (Valeriana officinalis** Linn.)।

वक्तव्य—मख्जनुल्अदविया डॉक्टरीके लेखक सुंबुलुत्तीबके वर्णनमें इसके इतिहासमें लिखते हैं कि यूनानी हकीम दीसकूरीदूसने 'फ़ू'के नामसे इसका और नारदीनके नामसे सुंबुलुतीबका वर्णन किया हैं। उन्होंने इसका संस्कृत 'ह्रीवेर' और हिन्दी 'सुगंधवाला' लिखा है।

वर्णन—बालछड़से भिन्न एक तृण(घास)की सुगंधित जड़ है जो ममीरे या हल्दीके समान पीले रंगकी और आकृतिमें असारून (नारेदीन बर्री)की तरह होती है। इसके ऊपर बहुतसे बारीक तार लगे होते हैं जो असारूनके तारोंसे बारीक होते हैं। उत्तम वह है जो मोटी, नई, सुगंधित और पीले रंगकी हो। सफेदीमायल निकृष्ट होती है। दे० 'बालछड़'।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें **गरम** और तीसरे दर्जेमें **रूक्ष** है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—अर्दित, पक्षवध और कामलामें इसके सेवनसे लाभ होता है। यह आमाशयपर दोष (मवाद) नहीं गिरने देता है। इससे पेशाब और आर्तवरक्त बढ़ जाता है और अधिक आता है। यह श्वयथुविलयन है। इसको पीसकर आँखमें लगानेसे गिरे हुए पलकोंके बाल जम आते हैं। यकृच्छूल, वृक्कशूल और प्रायः गर्भाशयकी बीमारियोंमें इससे (आबज़न) करनेसे उपकार होता है। इसको गरम मलहमोंमें डालते हैं। **अहितकर**–फेफड़ेको। **निवारण**–कतीरा और मधु। **प्रतिनिधि**–बालछड़। **मात्रा**–३·५ ग्राम (३½ माशे)।

●

(३५९) नाशपाती

फ़ैमिली : रोज़ासे (Family : Rosaceae)

नाम—(हिं०) नास(श)पाती, नासपाती; (अ०) कुम्मस्रा, (फा०) अम्रूद; (सं०) टङ्क (च०; सु०), अमृतफल; (क०) टङ्ग; (का०) नाख, नाक; (पं०) नाक, नाशपाती; (मा०) बनास्पति; (उ० प्र०) नासपाती, नाक; (अफ़०) अमरूच, अमरूद, नाक; (ले०) **पीरुस कॉम्मूनिस (Pyrus communis** Linn.), **पीरुस पीरीफॉलिआ प्र० कूल्टा (Pyrus pyrifolia** Nakai var. **culta** Nakai); (अं०) पीयर (Pear)।

वक्तव्य—यह अमरूदसे भिन्न द्रव्य है। जिस फलको भारतवर्षमें 'अमरूद' कहते हैं उसका कोई अरबी, फारसी नाम नहीं है (दे० 'अमरुद')।

उत्पत्तिस्थान—पूर्वी और मध्य यूरोप तथा पश्चिमी एशिया। उत्तर-पश्चिम हिमालयमें अर्थात् कश्मीर, सरहद और पंजाबमें यह बड़े पैमानेपर लगायी जाती है।

वर्णन—यह एक मीठा प्रसिद्ध फल है जो विभिन्न आकार-प्रकारका होता है। सामान्यतया नाशपाती खानेमें कड़ी होती है; परन्तु कश्मीर आदि पहाड़ी प्रदेशोंकी अत्यंत कोमल और रसीली होती है। उसकी आकृति साधारणतया सुराहीनुमा होती है। इसको विशेषतया नाख (क) कहते हैं। यह नाशपाती की कलम करके सुधारी हुई जाति है। जंगली (कुम्मस्रा बर्री), पहाड़ी (कुम्मस्रा जबली), बागी (कुम्मस्रा बुस्तानी) और खट्टी वा चीनी (कुम्मस्रा हामिज) भेदसे यह चार प्रकारकी होती है।

कल्प—मुरब्बा नाशपाती।

प्रकृति—शीत एवं स्निग्ध (तर)। आयुर्वेदमें भी इसे शीतवीर्य लिखा है (च०; सु०)।

गुणकर्म—संग्राही, आनाहकारक, मनःप्रसादकर, हृद्य विशेषतः पित्त और रक्तकी तीक्ष्णताका प्रशामक एवं बृंहण है।

उपयोग—नाशपाती मेवेकी भाँति खायी जाती है। परन्तु इसको अधिक नहीं खाना चाहिये; क्योंकि ग्राही और आनाहकारक होनेके कारण कभी-कभी उदरशूल उत्पन्न हो जाता है। इसको या तो नमक, कालीमिर्च और

खट्टे नीबूके रसके साथ उपयोग करें या इसके खानेके उपरांत मधु या जुवारिशकमूनी खायँ, जो इसके निवारण हैं। औषधकी भाँति इसका स्वरस निचोड़कर मुफर्रेहात (मनःप्रसादकर योगौषधों)में डालते हैं। **अहितकर**–मूत्रपिंड (गुर्दे)को। **निवारण**–अनीसूँ और अगर (ऊद) इत्यादि। प्रतिनिधि–खट्टा सेब।

आयुर्वेदीय मत—नाशपाती (टङ्क) कषाय, मधुर, गुरु, शीतवीर्य और वातकर है (च० सू० अ० २७; सु० सू० अ० ४६)।

(३६०) निगंदबाबरी

फ़ैमिली : लाबिआटे (Family : Labiatae)

नाम—(हिं०) निगंदबाबरी, अजगुर (काशी; मिर्जापुर), दमजरी, देवमंजनी, देवमंजरी (चित्रकूट); (सं०) अर्जक; (मार०; राज०) कालीनगदी, नगदीबूटी; (ले०) आर्थोसीफॉन पाल्लिडुस (**Orthosiphon pallidus** Royle.)।

वक्तव्य—यूनानी निघण्टुग्रन्थोंमें इसका संस्कृत नाम 'आगवल्ली' या 'आजवल्ली' लिखा है। निगंदबाबरी का अर्थ '**बिना गंधकी बाबुई**' (निगंद = निर्गंध + बाबरी = वर्बरी (तुलसी) है।

उत्पत्तिस्थान—सर्वत्र भारतवर्ष।

वर्णन—यह तुलसी या रीहाँकी जातिकी एक निर्गंध क्षुद्र **वनस्पति** है जो लगभग एक बित्ता ऊँची होती है। **पत्र** छोटे पुदीनाके पत्रकी तरह और फूल सफेद तुलसीके फूलके समान होता है। स्वादमें यह कड़वी होती है।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें उष्ण एवं रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—रक्तप्रसादन, विषोंका अगद, श्वयथुविलयन और चातुर्थकज्वरनाशन। रक्तप्रसादनके अभिप्रायसे निगन्दबाबरीको रक्तविकारजन्य रोगों, जैसे–कुष्ठ, कण्डू, शोथ और फोड़े-फुन्सीं, दद्रु और किलासमें उपयोग किया जाता है। फांट बनाकर और ऊपर निथरा हुआ पानी लेकर बारीक किए हुए कालीमिर्चके कुछ दानोंका प्रक्षेप देकर पिलाते हैं या कालीमिर्चके कुछ दानोंके साथ जलमें पीसकर शीरा निकालकर देते हैं। चतुर्थक ज्वरमें चूर्णकी भाँति बकरीके दूधके साथ खिलाते हैं। किलास और अर्शजन्य शोथमें कालीमिर्चके साथ पीसकर पिलाते हैं। किलासमें इसको दीर्घकालपर्यंत सेवन करनेसे उपकार होता है। कहते हैं कि इसके निरंतर सेवनसे मनुष्य वानस्पतिक और प्राणिज विषोंसे सुरक्षित हो जाता है। मात्रा–७ ग्रामसे १२ ग्राम (७ माशे से १ तोला) तक।

(३६१) निर्मली

फ़ैमिली : लोगानिआसे (Family : Loganiaceae)

नाम—(हिं०; बं०; पं०; बम्ब०) निर्मली; (सं०) कत(-क), अंबुप्रसादन; (पं०) जलनिर्मली; (ते०) कतकमु; (उड़ि०) कोतोको; (मल) कतकम्; (कना०; गु०) कतक; (ले०) स्ट्रीक्नॉस पोटाटोरुम (**Strychnos potatorum** Linn.); (अं०) क्लियरिंग नट्-ट्री (Clearing nut-tree)।

उत्पत्तिस्थान—मध्यप्रदेश, दक्षिण, बंगाल, बिहार, कोंकण, उत्तरकनाडा, कर्नाटक से ट्रावनकोर तक।

वर्णन—एक मझोले सदाबहार वृक्षके फलका बीज है जो कुचलेकी तरह, किन्तु उससे छोटा होता और गूदेसे लिपटा हुआ होता है। इसका फल पकनेपर जामुनकी तरह काला पड़ जाता है, किन्तु कुचलेका फल पकनेपर लाल होता है। निर्मली अगदगुणविशिष्ट होती है और कुचला विषगुणसमन्वित होता है, यह दोनोंमें अन्तर है।

उपयुक्त अंग—बीज। मात्रा—¾ग्रामसे १·५ ग्राम (१-२ आना)। वमनार्थ ५·२५ ग्राम (३ आना)। निर्मलीके बीजको पानीसे घिसकर गँदले पानीमें मिलानेसे गँदलापन नीचे बैठकर जल निर्मल हो जाता है। फिटकिरीकी अपेक्षया निर्दोष होनेसे इसका व्यवहार अधिक स्पृहनीय है।

रासायनिक संगठन—बीजमें ब्रूसीन (Brucine) नामक ऐल्केलॉइड होता है।

प्रकृति—सर्द एवं खुष्क, मतांतरसे समशीतोष्ण।

गुण-कर्म तथा उपयोग—निर्मलीको पानीमें पीसकर नाभिके आस-पास लेप करनेसे पेटके कीड़े मर जाते हैं और साँपके काटे हुएको पिलानेसे लाभ होता है। चार-दाने निर्मलीको पानीमें पीसकर मिश्री मिलाकर एक सप्ताह पर्यन्त पीनेसे सूजाकमें पूर्णतया लाभ होता तथा रुका हुआ पेशाब खुलता है और दाह (सोजिश)शमन होता है। चारदाने निर्मलीको पानीमें पीसकर दही मिलाकर चीनीके प्यालेमें रखकर उसके मुँहपर कपड़ा बाँधकर रात में ओसमें रखें और प्रातः उसे खा जायँ। इसी प्रकार सात दिन तक खायँ और पथ्यमें नमकरहित खशका और दहीका सेवन करें। इससे मूत्रावरोध, सूजाक और सदाहमूत्र आराम होता है तथा मूत्रके रास्ते रक्त आना बंद हो जाता है। इसे जलाकर अकेला या थोड़ासा शक्कर मिलाकर खानेसे बवासीरका खून (रक्तार्श) बंद होता है। यदि आँखोंमें बहुत कीचड़ आता हो तो निर्मलीके बीजोंको पीसकर थोड़ा कपूर और मधुमें मिलाकर आँखोंमें लगानेसे वह बन्द हो जाता है। निर्मलीके बीज और सेंधानमकको पानीमें पीसकर आँखमें लगानेसे अर्जुनरोग मिटता है। आँखके और कई रोगोंमें निर्मलीके बीज काममें आते हैं। इसके बीजोंको पीसकर दूधके साथ फाँकनेसे सूजाक आराम होता है। इसके बीजको पानीमें घिसकर आँखमें लगानेसे आँखकी रोशनी बढ़ती है तथा शहदमें पीसकर लगानेसे मोतियाबिन्द दूर होता है। निर्मलीके आधे या समूचे बीजको बारीक पीसकर थोड़े छाछमें मिलाकर सप्ताहपर्यन्त खानेसे पुराने दस्त जो किसी दवासे बन्द न हो सकते हों, बन्द हो जाते हैं। निर्मलीके प्रयोगसे अतिमूत्रका होना बन्द हो जाता है। इसके एक तोला बीजको छाछके साथ पीसकर शहदमें मिलाकर खानेसे सब प्रकारके प्रमेह आराम होते हैं। ७½ ग्राम या ७½ (साढ़े सात) माशे निर्मलीके पके हुए फल खानेसे वमन होता है। इसके ताजा बीज खानेके काममें आते हैं। इनका मुरब्बा बनाया जाता है।

आयुर्वेदीय मत—निर्मली (कतक), मधुर, कटु, तिक्त, कषाय, शीतवीर्य, लघु, रुचिकारक, लेखन, विशद विकासी, छेदन, नेत्रोंको हितकारी तथा तृषा, दाह, विष, गुल्म, शूल, कृमि, प्रमेह, नेत्ररोग और जलके मैलेको दूर करती है। इसका कोमल फल नेत्रोंको हितकारी, शीतवीर्य, वातवर्धक तथा रक्तपित्त, तृषा, विष और मोहको दूर करता है। तरुण फल दुर्जर, रुचिजनक, कफ और पित्तनाशक है। पका फल पित्तकारक, वमनकारक, स्वेदल तथा सूजन, पाण्डुरोग, विष, प्रतिश्याय और कामला रोगको दूर करता है। बीज मधुर, कषाय, भारी, नेत्रोंको हितकारी तथा पथरी, वात, कफ, मूत्रकृच्छ्र, तृषा, नेत्ररोग, विष, प्रमेह और मस्तकके रोगोंको दूर करता है तथा जलको निर्मल करता है। जड़ सब प्रकारके कुष्ठोंको नष्ट करनेवाली है।

नव्यमत—नेत्ररोगोंमें बीजका स्थानीय प्रयोग करते हैं। नेत्रसे पुष्कल अश्रुस्राव हो रहा हो, तो जलसे घिसे हुए बीजमें मधु और थोड़ा-सा कपूर मिलाकर नेत्रमें लगानेसे लाभ होता है। मधुमेह, पूयमेह और वमनरूपसे प्रवाहिका रोगमें इसका उपयोग होता है।

●

(३६२) निसोथ

फ़ैमिली : कॉन्वाल्वुलासे (Family : Convolvulaceae)

नाम—(हिं०) निसो(शो)थ, निसो(शो)त, न(ना)कपतर; पितोहरी; (अ०; फा०) तुर्बुद (मख़्ज़न); (फा०) तर्बुद; (सं०) त्रिवृत् (ता), त्रिपुटा; (सिंध) ट्रीज; (द०) तिकड़ा; (बं०) तेउड़ो(री); (संथा०) वनएटका; (पं०) तिरवी; (ते०) तेगड़; (ता०) शिवदै, चिवतै; (मल०) चिकोल्पकोन्न; (म०) निशोत्तर; (गु०) नसोत्तर; (ले०) ओपेर्कूलीना टुर्पेथुम् **Opercutina turpethum** (L.) Silva Manso. (पर्याय–ईपोमेआ टुर्पेथुम् *Ipomoea turpethum* R. Br.); (अं०) टर्पेथ (Turpeth), इंडियन जैलप (Indian Jalap)।

वक्तव्य—अरबी व फारसी 'तुर्बुद' संभवतः संस्कृत 'त्रिवृत्' या 'त्रिपुटा' के अरबी रूपांतर हैं। इस बेलका तना और शाखायें तिकोनी होती हैं, इसीलिए संस्कृतमें इसे त्रिवृत् या त्रिपुटा कहते हैं। लेटिन नाममें जातीय (**Specific**) संज्ञा (**Turpethum**) एवं इसके अंग्रेजी नाम 'turpeth' अरबी तुर्बुद से व्युत्पन्न प्रतीत होते हैं। मख़्ज़नुल्अदवियामें तुर्बुदका एक हिंदीनाम 'नाकपतर' एवं 'विधारा' भी दिया है। किसी-किसीने इसे 'आलूबन' (Gr. Alupon (D. 4.176) तथा 'तरीफूलियून (Gr. Tripolion (D. 4.133)'के साथ मिलाकर भ्रामक बना दिया है। परन्तु वे अवास्तविक हैं (इ० बै० १/५३; ३/१०२)।

इतिहास—भारतीयोंको प्राचीनकालसे 'त्रिवृत्' या 'त्रिपुटा' नामसे इस विरेचक औषधिका ज्ञान है। मध्यकालीन टीकाकारोंने इसे 'श्याम' और 'अरुण' दो प्रकार का बतलाकर श्यामको उग्रवीर्य एवं विषैला अतः परित्याज्य तथा कहीं-कहीं 'श्वेतरक्त-कृष्ण' इस प्रकारके तीन भेद बतलाकर श्वेतको ग्राह्य बताया है। सुखविरेचन द्रव्योंमें शास्त्रकारोंने इसे उत्तम बतलाया है। यूनानियोंने श्वेत और कृष्ण इसके ये दो भेद लिखे हैं। इनमें कृष्णको उन्होंने विषैला लिखा है। इसलामी चिकित्साविशारदोंमें से इब्नसीना, मसीही और राजी आदिने इसका वर्णन किया है। उत्तरकालीन यूनानियोंने भी 'टुरेथ' नामसे इसका उल्लेख किया है। ऐन्सलीके कथनानुसार यह औषधि दीर्घकालतक ब्रिटिश मैटीरिया मेडिकामें भी समाविष्ट रही। इस प्रकार हम देखते हैं कि 'त्रिवृत्' या 'निसोथ' के ज्ञान एवं चिकित्सोपयोगकी एक अविच्छिन्न धारा चली आ रही है, जिसमें इसके 'श्वेत' एवं 'कृष्ण' भेदकी धारणाका प्रभाव भी साथ-साथ अनुबद्ध प्रतीत हो रहा है। यहाँ तक कि भारतीय भेषजकोश या इंडियन फार्माकोपिया (I. P. 1956) में भी टर्पेथके Specification में **'White variety** of **I. turpethum'** ऐसा उल्लेख है। किन्तु इस धारणाको लेकर आधुनिक व्यवसायमें निसोथके बारेमें व्यर्थ भ्रम फैला हुआ है, जिससे **Operculina turpethum** के स्थानमें अन्य अनेक औषधियाँ 'सफेद निसोथ' करके बेची जाती हैं, जिनमें विरेचक क्रिया बिल्कुल नहीं पायी जाती। दूसरे यूनानी निघण्टुओंमें इसे विधाराका पर्याय लिखनेसे अनेक क्षेत्रोंमें निसोथका व्यवहार विधारा नामसे किया जाने लगा है, जो भ्रमपूर्ण है। डॉ० रामसुशील सिंह तथा उनके सहयोगियों द्वारा इस भ्रम का स्पष्टीकरण किया जा चुका है कि आयुर्वेदीय ग्रन्थोंके निसोथ भेद भिन्न-भिन्न वनस्पतियाँ हो सकती हैं, तथा **Ipomoea turpethum** के **'white'** या **'black variety'** का भ्रम निराधार है। अतएव व्यावहारिक दृष्टिसे त्रिवृत् या निसोथ एक ही समझना चाहिए, जिसका वानस्पतिक प्राप्तिसाधन उपरोक्त लता है।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्षमें ३,००० फुटकी ऊँचाई तक इसकी बेल होती है।

वर्णन—इसकी बहुवर्षायु तथा बड़ी-बड़ी आरोही लतायें होती हैं; परन्तु काण्ड प्रायः काष्ठीय नहीं होता और स्राव कुछ-कुछ दुग्धसदृश होता है। इसके ऊपर ३-४ धारायें या पंख सदृश उभार होते हैं। नीचेकी पत्तियाँ चौड़ाई लिए हुई लट्वाकार, हृद्वत्, प्रायः ६ इंच × ४·७ इंच बड़ी लम्बाग्र तथा तीक्ष्णाग्र और ऊपरकी प्रायः आयताकार, कुण्ठित रोमश अग्रवाली और सवृन्त (वृन्त १·८७५ सें० मी० से ७·५ सें० मी० या ०·७५ इंच से ३ इंच

लंबे) होती हैं। पुष्प श्वेत और ५-७·५ सें० मी० (२-३ इंच) लंबे होते हैं। आभ्यन्तर नाल चिकना और सपक्ष, मुखपर घण्टिकाकार होता है। फलत्वक्‌का बाहरी भाग जब फट जाता है तो भीतरी पारदर्शक पर्दा रह जाता है जिसके भीतर दो गह्वर और ४-१ भूरे तथा चिकने बीज रहते हैं। इसको जड़ ही वीर्यवान् होती है। परन्तु बाजारमें यह शुद्ध नहीं मिलती, अपितु प्रायः तनेके टुकड़ोंके साथ मिली हुई मिलती है। लताकाण्डका बाहरी धरातल रस्सीके समान बलदार, रंग गहरा खाकस्तरी, गंध हल्की, स्वाद फीका किंचित्तिक्त होता है। गंजबादावर्द में लिखा है कि काली निसोथ उपयोग न करें, जो निसोथ सफेद और भारी हो, सड़ी-गली न हो, उसे उपयोग करें। उत्तम निसोथ वह है जिसके दोनों छोरों पर गोंद लगी हो। सूखी जड़ ऊपरसे भूरी होती है जो छीलने पर सफेद निकलती है। इसके भीतर एक कड़ी लकड़ी (काष्ठगर्भ) होती है जिसको निकालकर और बाहरी भूरे हिस्साको छीलकर औषधकी भाँति प्रयुक्त किया जाता है। बाजारोंमें इसके विभिन्न लंबाई और मोटाईके छोटे-छोटे खोखले ५ से ७·५ या १० सें०मी० (२ से ३ या ४ इंच) लंबे टुकड़े मिलते हैं, जिनका व्यास १·२५ सें०मी० से ५ सें०मी० (½ से २ इंच) होता है और जो एक बाजूसे फटे हुए होते हैं।

योग—हब्ब तुर्बुद (ता० श० पृ० १७५), अतरीफल अस्तूखुद्दूस, जवारिश शहरयारां, जवारिश कमूनी मुसहिल, हब्ब इयारज, दवाए कुब्बाए अरबआ, शर्बत मुसहिल, जिमाद उशक़, जिमाद तिहाल, माजून सरख्स, माजून कलकलानज, हब्ब बवासीर (बयाज कबीर भा० २), अतरीफल अफतीमून या जमानी, हब्ब इयारज, शर्बत मुसहिल, माजून नजाह (इला० अ०), माजून तुर्बुद, हब्ब इस्तिस्काऽ आदि।

रासायनिक संगठन—जड़में (तथा काण्डमें भी, किन्तु अपेक्षाकृत कम) टर्पेथिन (Turpethin) नामक एक विरेचक राल (५ से १०%) होती है। यह एक ग्लूकोसाइड है, जिसका संगठन जलापामें पाये जानेवाले 'जलापिन' या 'कॉन्वाल्वुलिन' नामक सत्वके समान होता है।

उपयुक्त अंग—जड़।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें उष्ण एवं रूक्ष। आयुर्वेदमें भी उष्ण (कै० नि०) एवं रूक्ष (च०) लिखा है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—द्रव कफविरेचनीय तथा सोंठके साथ सांद्रकफविरेचनीय है। गुणमें यह जलापाके समान होता है। इसके उपयोगसे जलवत् पतले दस्त आते हैं। इसलिए इसको आमवात, वातरक्त, गृध्रसी, अर्दित, पक्षवध, खाँसी और दमामें खिलाते हैं। जब सांद्रकफका उत्सर्ग अभीष्ट होता है, तब उसमें सोंठ मिलाकर खिलाते हैं। अस्तु, मोटापा (स्थूलता)को दूर करनेके लिए विरेचनकी भाँति इसका उपयोग गुणकारी है। मालिख़ोलिया, उन्माद और अपस्मारमें मस्तिष्कशुद्धिके लिए पीली हड़के साथ इसका उपयोग करते हैं। इसके उपयोगसे कफके पतलेदस्त आते हैं। इसलिए इससे शारीरिक द्रवोंमें कमी उत्पन्न होकर शरीरका स्थौल्य दूर हो जाता है। यह विशेषकर कफोत्सारि और मस्तिष्करोगोंमें लाभकारी है। अहितकर—आकुलताकारक है। निवारण—छीलकर बादामके तेलमें स्नेहाक्त (चर्ब) करना। प्रतिनिधि—ग़ारीकून और कालादाना। मात्रा—चूर्णके रूपमें ३ ग्रामसे ५ ग्राम (३ माशेसे ५ माशे) तक; क्वाथमें ५ ग्रामसे १२ ग्राम (५ माशे से १२ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—निशोध कषाय, कटु, मधुर, रूक्ष, कटुविपाक, उष्णवीर्य, वातकर, विरेचन द्रव्योंमें श्रेष्ठ तथा कफ, पित्त, कृमि, उदर, ज्वर, शोफ, पाण्डुरोग, प्लीहवृद्धि और व्रणका नाश करनेवाली है। (च० सू० अ० ४,-२५; च० क० अ० ७; सु० सू० अ० ३८, ३९; ध० नि०; कै० नि०)। निशोध अरुण (फीके लाल)रंगके मूलवाली और श्याममूलवाली दो प्रकारकी होती है। इनमें अरुणमूलवाली श्रेष्ठ है और सुकुमार, बालक, वृद्ध तथा मृदुकोष्ठवालोंके लिये उत्तम है।

नव्यमत—निशोध रेचन है। इसकी क्रिया जैलपके समान होती है। इससे पीले रंगके पानीके समान दस्त होते हैं। इससे उदरमें मरोड़ होती है, इसलिये इसके साथ सुगन्धिद्रव्य और सैंधव वा मिश्री मिलाकर देना चाहिए। जलोदर, आमवात और वातरक्तमें यह विशेष लाभप्रद है। निशोथ और बड़ी हर्रेका चूर्ण उत्तम कार्य करता है।

●

(३६३) नीबू

फ़ैमिली : रूटासे (Family : Rutaceae)

नाम—(हिं०) नीबू, नींबू, (नेंबू), काग़जी नींबू, पत्ती नींबू; (अ०) लीमून; (फा०) लीमून, लीमूए काग़जी (तुर्श); (सं०) निम्बू(क), ऐरावत; (पं०) खट्टा; (बं०) ले(ने)बु, कागजी ने(ले)बु, पाति नेबू; (सिन्ध) लिमो; (द०) लीमू, लीमूँ, लीमूँ कागजी; (म०) लिंबू, (गु०) लींबु; कागदी लींबु, (ते०) निम्म; (ता०) एलुमिच्चै; (मल०) चेरुनाखम्; (लै०) सीट्रस आउरांटीफोलिया (**Citrus aurantifolia** (Christm.) Swingle; **(पर्याय–सीट्रस मेडिका प्र० एसिडा** (*Citrus medica L. var. acida* Watt); (अं०) लेमन (Lemon), लिमोन (Limon); लाइम (Lime) फलत्वक् (हिं०) नीबूका छिलका; (अ०) कश्रुल्लीमून, (फा०) पोस्ते लीमून; (लै०) लीमोनिस कॉर्टेक्स (Limonis Cortex); (अं०) लाइम पील (Lime Peel)। फलरस (हिं०) नीबूका रस; (अ०) माउल्लीमू, (फा०) आबेलीमू शीरए लीमू; (अं०) लाइम जूस (Lime Juice)। भेद-(हिं०) शर्बती या मीठा नीबू; (पं०) मीठा; (सं०) मिष्ठनिम्बू मधुजम्बीर; (म०) साखर लिंबु; (गु०) मीठालिम्बु; (ब) मिठालेंबु; (लै०) सीट्रस लीमेट्टिऑइडेस **Citrus limettioides** Tanaka (**पर्याय**–*C. medica L. var. Limetta* Wt. & Arn.)।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष, विशेषत: उत्तरप्रदेश, बम्बई आदिमें गृहबागानोंमें यह लगाया जाता है। हिमालयकी तराईकी जलप्राय घाटियों, हरिद्वार और हजारीबागके प्लेटोपर यह जंगली होता हैं। इसे कोल-संथाल जर्मीर या जम्बीर कहते हैं। मीठेनीबूके वृक्ष भारतके उत्तरी एवं मध्यभागीय प्रदेशोंमें लगाये जाते हैं।

वर्णन—यह एक प्रसिद्ध फल है। इसकी कई जातियाँ हैं और हर एक जातिका अलग-अलग नाम है। मात्र लीमूँसे लीमूँ कागजी या कागजी लीमू (लीमूए काग़ज़ी) अभिप्रेत होता है। औषधमें तथा आहारमें प्राय: इसीका व्यवहार होता है। फल जबीरी नीबूके फलसे छोटा और गोल, छिलका पतला (कागजी) एवं पीला तथा रस खट्टा होता है। मीठेनीबूका फल कागजीनीबूसे बड़ा, गोल, पतले छिलकावाला और मीठा होता हैं।

उपयुक्त अंग—फलरस (ओबेलीमूँ), बीज (तुख़्मेलीमूँ), एवं फलका छिलका (पोस्तेलीमूँ) औषधमें प्रयुक्त किये जाते हैं।

रासायनिक संगठन—इसके तथा जँबीरी दोनोंके फलके रसमें सीट्रिकएसिड (६—१०%), होताहै, किन्तु कागजीनीबूमें अपेक्षाकृत अधिक होता है। इसके अतिरिक्त इसमें फॉस्फोरिक एसिड, मैलिक एसिड एवं शर्करा आदि तत्व होते हैं। फलके छिलकेमें एक उत्पत् तैल तथा एक तिक्त क्रिस्टली ग्लूकोसाइड (विशेषत: छिलकेके सफेद भागमें) होता है।

कल्प तथा योग—तिरियाकजहर, सिकंजबीनलीमूनी(सादा)।

प्रकृति—नीबूका रस दूसरे दर्जेमें शीत तथा पहले दर्जेमें खुश्क (रूक्ष), मतांतरसे दूसरे दर्जेमें शीत और पहले दर्जेमें तर (स्निग्ध) है। बीज और फलके ऊपरका छिलका दूसरे दर्जेमें गरम और खुश्क है। आयुर्वेदके मतसे नीबू किंचित् उष्णवीर्य (रा० नि०) और मीठा नीबू शीतवीर्य (ध० नि०, रा० नि०) होता है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—नीबूका रस शीतजनन, सौमनस्यजनन, लेखन, सांद्रदोषछेदन, तारल्यजनन, ऋतुज्वर (तपेमौसमी) नाशन, पित्त और रक्तकी तीक्ष्णताको दूर करनेवाला, पाचन, विषघ्न, दीपन और क्षुधाजनन; बीज सौमनस्यजनन और विसूचिकामें लाभदायक; छिलका संग्राही, दीपन, सौमनस्यजनन और मुखको सुवासित करनेवाला है। नीबूका रस–शीतजनन, सौमनस्यजनन और पित्तघ्न होनेके कारण ऋतुज्वरोंमें इसकी सिकंजबीन

ख़ाम[1] या पोख़्ता बनाकर पिलाते हैं जिससे ज्वरजन्य संताप और तृष्णा कम हो जाती है और हृदयको आह्लाद (फ़र्हत) मिलता है। दाल-तरकारियोंमें नीबूका रस निचोड़कर खाया जाता है। इससे आमाशयको बल प्राप्त होता है और पाचनशक्तिकी वृद्धि होती है। छेदन और लेखन होनेके कारण बाहरीतौरपर उपयोग करनेसे यह त्वचाको मलोंसे शुद्ध करता है। नीलिका (बहक़ स्याह), व्यङ्ग (कलफ़) और दद्रुको नष्ट करनेके लिए अकेले या अन्य औषधियोंके साथ यह सहायककी भाँति उपयोग किया जाता है; क्योंकि सूक्ष्म होनेके कारण औषधीयवीर्यको त्वचामें शीघ्र प्रविष्ट कराता है। पित्तकी तीक्ष्णनाका निवारण करनेवाला होनेके कारण पित्तजन्य वमन और हृल्लासको दूर करता है। आमाशयको बलवान् बनाता और खूब भूख लगाता है। साँप, बिच्छू, भिड़ आदिके दंशस्थानपर लगाने और पेयजन्य विषोंमें संशोधनोपरांत पिलानेसे उनका निवारण करता है। बीजका मग्ज निकालकर हैजेमें उपयोग कराया जाता है और अपने सौमनस्यजनन और अगदगुणके कारण उसमें लाभ करता है। छिलका—दीपन और हृदयोल्लासकारक होनेके कारण यह आमाशय और हृदयके रोगोंमें प्रयुक्त किया जाता है। केवल इसका सूँघना भी मनःप्रसादकर और हृदयबलदायक है। अगद होनेके कारण महामारीकालमें इसका सूँघना और खाना गुणदायक है। नीबूका अचार आमाशय, यकृत् और हृदयको शक्ति देता है, आहारको पचाता और उद्गार एवं मुखकी गन्धको सुवासित करता है। वर्षाऋतुमें जबकि ऋतुज्वर और हैजा जैसे जनपदोध्वंसक (वबाई) रोगोंका प्रसार और प्रकोप होता है, तब आहारके साथ इसका उपयोग गुणदायक होता है। **अहितकर**–शीतप्रकृतिवालों और वातनाडियोंको। **निवारण**–चीनी। **प्रतिनिधि**–नारंज। **मात्रा**—नीबूका रस ६ ग्राम (६ माशा)। छिलका और बीज १ ग्राम (१ माशा)।

आयुर्वेदीय मत—**कागजी नीबू** अम्ल, किंचित् उष्णवीर्य, अग्निदीपन, चक्षुष्य, रोचन तथा गुल्म, आमवात, कास कफ, कण्ठकी पीड़ा और वमनका नाश करनेवाला है (रा० नि०)।

मीठा नीबू—मधुर, गुरु, शीतवीर्य, बल्य, बृंहण, वृष्य, तर्पण, कफको बढ़ानेवाला, रक्तशोधक तथा गलेके रोग, विष, शोष, अरुचि, तृष्णा, थकावट, वात और पित्तको दूर करनेवाला है। (ध० नि०; भा० प्र०)।

नव्यमत—**कागजी नीबू का रस** दीपन, पाचन, तृष्णानिग्रहण, रक्तपित्तप्रशमन, विषमज्वरघ्न, ज्वरहर और मूत्रजनन है। नीबू की छाल दीपन और कोष्ठवातप्रशमन है। नीबूके रसमें जवाखार मिलाकर देनेसे पसीना आता है, पेशाबकी अम्लता कम होती है और उसकी राशि बढ़ती है। नवीन आमवात, रक्तपित्त और वातरक्तमें नीबूका रस उपयोगी है। पित्तज नेत्राभिष्यंद और पित्तज वमनमें तथा अतिसार और आँवमें नीबूको गरमकर, रस निकाल, उसमें सैंधव और शक्कर मिलाकर देते हैं।

(३६४) नीम

फ़ैमिली : मेलिआसे (Family : Meliaceae)

नाम—(हिं०) नीम, नीब, (अ०) आज़ाद्‌दरख़्तुल्‌हिंद; (फा०) आज़ाददरख़्ते हिंदी; (सं०) निम्ब; (बं०) निम; (पं०) निंब; (सिंध) निमु; (म०) कडूनिंब, बालंत निंब; (गु०) लींबडो, लीमडो; (ता०) वेंबु, वेंपु; (मल०) वेप्पु आर्यवेप्पु; (ले०) आजाडीराक्टा इंडिका **Azadirachta indica** A. Juss (पर्याय—*Melia azadirachta*

---

[1] चीनी या मिश्रीका शर्बत बनाकर उसमें नीबूका रस निचोड़ देते हैं। यही **सिकंजबीनख़ाम** कहलाती है। जब नीबूके रसमें चीनी मिलाकर यथाविधि उसका शर्बत बना लेते हैं, तब उसको सिकंजबीन पोख़्ता या **सिकंजबीनलीमूनी** कहते हैं।

Linn.); (अं०) नीम या मारगोसा ट्री (Neem or Margosa Tree), इंडियन लिलैक (Indian Lilac), इण्डियन ऐज़ाडिरैक (Indian Azadirach)।

वक्तव्य—'आज़ादरख़्त' जो वस्तुतः 'आज़ाददरख़्त' था, बकाइनका फ़ारसी नाम है। अरबीमें इसको मुहीतआज़मके अनुसार 'ख़रबीत' और 'शज़रतुलहुर्रत' तथा 'उम्दतुल् मोहताज'के लेखकके अनुसार मिस्रमें इसको 'जन्जलख़्त' और श्याममें 'अल्हजरदू' और तबरिस्तानमें 'ताफ़क' कहते हैं। इसकी लेटिन और अँगरेजी 'आज़ाडिराक्टा' एवं ऐज़ाडिरैक्ट संज्ञा वस्तुतः इसकी फारसी संज्ञाका किंचित् परिवर्तित रूप (अपभ्रंश) है। 'आज़ाददरख़्त हिन्दी' संज्ञासे नीम विवक्षित है, जो भारतवर्ष एवं पूर्वी उपनिवेशोंमें उत्पन्न होता है।

इतिहास—यह अति प्राचीन भारतीय औषधि है। अस्तु सुश्रुत आदि आयुर्वेदके आचार्योंने इसका उल्लेख 'निम्ब' नाम से किया है।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष।

वर्णन—यह भारतवर्षका प्रसिद्ध वृक्ष है जिसके सभी अंग-प्रत्यंग अत्यन्त तिक्त होते हैं।

उपयुक्त अंग—काष्ठको छोड़कर नीमके सभी अंग-प्रत्यंग (पत्र, पुष्प, फल, तैल, छाल) औषधमें प्रयुक्त होते हैं। परन्तु अधिकतया पत्र और छाल प्रयुक्त होते हैं। नीमकी ताड़ी (मद वा रस) का भी औषधमें प्रयोग उन्हीं गुणोंके लिए होता है।

रासायनिक संगठन—अन्तःछाल (अन्तस्त्वक्)में मार्गोसीन (Margosine) नामक एक तिक्त न्युट्रल, अक्रिस्टली (Amorphous) रालसत्व होता है। इसके अतिरिक्त इसमें उड़नेवाले तेल, गोंद, स्टार्च, शर्करा, टैनिन आदि द्रव्य होते हैं। बाहरीछाल (बाह्यत्वक्)में टैनिन अधिक होता है। केवल अन्तस्त्वक्का काढ़ा करनेसे उसमें तिक्तरालमय द्रव्य और तिक्तक्रिस्टली द्रव्य उतरते हैं। सम्पूर्ण छालका काढ़ा करनेसे काढ़ेमें ये तिक्तद्रव्य नहीं उतरते, अपितु प्रधानतः कषायद्रव्य ही उतरता है। वैसे तो यह जलमें भलीभाँति नहीं घुलता, किन्तु क्षारस्वभावी द्रव्योंके साथ छालको पकानेसे उनके साथ मिलकर पानीमें भलीभाँति उतरता है। छालके अन्दरका तिक्तद्रव्य अम्लस्वभावी होता है। पत्रमें अल्पप्रमाणमें इसी प्रकारका एक तिक्तसत्व होता है, परन्तु उसकी अपेक्षया अधिक जलविलेय होता है। बीज (निबौली)में लगभग १०% एक पीले रंगका अनुत्पत् तैल होता है। तेलमें गंधक होता है। यह तेल क्षारस्वभावी द्रव्यसे मिलता है। मद (Toddy or Sap)में इक्षुशर्करा, ग्लूकोज, निर्यास और रंजकद्रव्य प्रोटीड्स तथा भस्म होता है, जिसमें पोटैसियम् लोह, ऐलुमिनियम्, कैल्सियम् तथा कार्बनडाइऑक्साइड आदि होते हैं।

कल्प तथा योग—अर्क गुलनीम; अन्तःछालका चूर्ण; मात्रा–४ ग्राम (३० रत्ती) दिनमें ४ बार देना चाहिए। इसके साथ सुगंधित द्रव्य देनेसे इसकी क्रिया शीघ्र होती है; **पत्रस्वरस** (२४ ग्रामसे ६० ग्राम या लगभग २-५ तोला); तेल (४-१० बूँद)।

प्रकृति—पहले दर्जेमें गरम और खुश्क है। आयुर्वेदमतानुसार नीम शीतवीर्य (च०; ध० नि०) तथा नीमका तेल उष्णवीर्य (सु०) है।

गुणकर्म तथा उपयोग—श्वयथुविलयन, संशमन, छेदन, सर, दोषपाचन, रक्तप्रसादन, ज्वरघ्न, कोथप्रतिबन्धक, कीटाणुनाशन, उदरक्रिमिनाशन और व्रणशोधन है। श्वयथुविलयन एवं पाचन होनेसे इसके पत्तोंका भर्ता बनाकर फोड़े और अन्यान्य शोथों पर बाँधनेसे वे विलीन हो जाते हैं या पककर फूट जाते हैं। कठोरताको नरम करनेके लिए भी भर्ता बनाकर बांधा जाता है। इसके अतिरिक्त पत्तोंको उबालकर कर्णशूल (जोकि कानकी फुंसीके कारण हो)में इसका बफारा देते हैं। पत्तोंको पीसकर और टिकिया बनाकर या पत्तोंका भर्ता बांधनेसे दुष्टव्रणोंका शोधन होता है; दुष्टमांस दूर हो जाता और नवीन मांस शीघ्र उत्पन्न हो जाता है। पत्तोंके काढ़ेसे व्रणोंको धोनेसे

व्रणका कोथ दूर हो जाता है। यदि कोथ न हो, तो यह उनमें कोथ होनेको रोकता है। सूखे पत्तोंको बारीक पीसकर भी व्रणोंपर अवचूर्णन करते हैं। कण्डू (खाज) आदि त्वचाके रोगोंमें इसके पत्तोंके काढ़ेका स्नान लाभकारी है। रक्तप्रसादन होनेके कारण लगभग समस्त त्वचा और रक्तविकारजन्य रोगोंमें इसका विभिन्न प्रकारसे उपयोग कराया जाता है। नीमके पत्तोंका रस निकालकर कृमि पड़े हुए व्रणोंमें तथा नाकके अन्दर कृमि उत्पन्न होनेकी दशामें नाकमें टपकाया जाता है। छाल भी यद्यपि पत्तोंकी भाँति यही सब गुणकर्म रखती है; तथापि यह अधिकतया ज्वरघ्न औषधियों और रक्तप्रसादन अर्कोंमें प्रयुक्त होती है। इसका काढ़ा उदरकृमिनाशनार्थ भी पिलाते हैं। फूलको साधारणतया रक्तप्रसादन योगोंमें डालते हैं। यदि एक कपड़ेमें फूलोंको लपेटकर बत्ती बनायें और उसको सरसोंके तेलमें तर करके जलायें और उससे काजल प्राप्त करें तो यह काजल नेत्रकण्डूके लिये गुणकारक है। फल (निबौली) भी रक्तशोधक है। पकी निबौली खानेसे कोष्ठमार्दव भी होता है और रक्तप्रसादन भी। इसके अतिरिक्त यह उदरकृमिनाशन है। फलका मग्ज अर्शोघ्न है। सिरके जूओंको मारनेके लिए पानीमें पीसकर बालोंकी जड़ोंमें लगाते हैं। इसके बीजोंका तेल समस्त त्वग्रोगों, यहाँ तक कि कुष्ठरोगमें भी अभ्यंग करनेसे गुणदायक है। जीर्णआमवातमें भी लाभ पहुँचाता है। व्रणोंपर अकेले या अन्यान्य औषधियोंके साथ लगानेसे उनका कोथ दूर करके बहुत जल्दी अच्छा कर देता है। यदि व्रणमें कीड़े पड़ गये हों तो उनको मार डालता है। कंठमालाके पुराने व्रणोंको भी लाभ पहुँचाता है। नीमके पुराने नरवृक्षसे एक प्रकारका पतला दूधिया द्रव या रस महीन धारोंमें या बूँद-बूँद निकलता या झरा करता है, जिसको नीमका मद (ताड़ी) कहते हैं। यह उच्चश्रेणीका रक्तप्रसादन होनेके कारण कुष्ठ, फिरंग और खुजलीको दूर करता है। कतिपय सुरमोंको इसमें खरल करके बनाते हैं। नीमका गोंद भी किसी भाँति रक्तशोधक है और इसको बल्य एवं उत्तेजक समझा जाता है। नीमकी डालीसे दंतधावन करना मुखदौर्गंध्यको दूर करता और दाँतोंमें कीड़े लगनेसे बचाता है। यह प्रधानतः सौदानाशक और रक्तशोधक है। **अहितकर**—रूक्ष प्रकृतिवालोंके लिये। **निवारण**—मधु, कालीमिर्च और स्नेह-द्रव्य। **मात्रा**—इसके हरे पत्ते और छाल जबकि रक्तप्रसादनके लिए इनका शीरा निकाला जाय या क्वाथ बनाया जाय, ६ ग्राम से १२ ग्राम (६ माशे से १ तोला) तक उपयोग कर सकते हैं।

आयुर्वेदीय मत—नीम रसमें तिक्त, विपाकमें कटु, शीतवीर्य, लघु, वमनकारक तथा पित्त, कफ, कण्डू कुष्ठ, रक्तविकार और व्रणका नाश करनेवाला है। नीम अपक्व व्रणका पाचन और पक्व (पककर फूटे हुए) व्रणका शोधन करनेवाला है। नीमका तेल कटु, कटुविपाक, उष्णवीर्य, तीक्ष्ण, लघु, सारक तथा वात, पित्त, कफ, कृमि, कुष्ठ और शिरोरोगका नाश करनेवाला है (च० सू० अ० ४, २, २७, वि० अ० ८; सु० सू० अ० ३८, ४६, ४५; ध० नि०)।

नव्यमत—नीमकी अन्तरछाल शीत, विषमज्वरप्रतिषेधक, ग्राहीपौष्टिक, कटुपौष्टिक, त्वग्दोषहर, शोथघ्न, कृमिघ्न और रसायन है। नीमकी छालका ज्वरप्रतिबन्धक गुण सिंकोनाकी छालके समान है। इसके भीतरका तिक्त रवादार अम्लस्वभावी द्रव्य त्वचाके रास्तेसे बाहर निकलता है। यह त्वचाके लिये उत्तेजक और दाहशामक है। समग्र त्वचामें ग्राहीपन अधिक है। इसलिये इसकी ग्राहीपौष्टिक क्रिया सविशेष होती है। समग्र त्वचामें ज्वरप्रतिबंधक गुण अल्प है। नीमकी क्रिया त्वचाके ऊपर संखिया जैसी होती है। पत्तियाँ शोथघ्न, त्वचाके लिये उत्तेजक, त्वग्दोषहर, उत्तम व्रणशोधन, व्रणरोपण, कोथप्रशमन, कृमिघ्न, विषमज्वरप्रतिबन्धक, यकृत्के लिये उत्तेजक और बड़ी मात्रा में वामक है। तैल वातहर, पूतिहर, व्रणशोधन, व्रणरोपण, उत्तेजक, कोथप्रशमन, शोधन, उत्तम कुष्ठघ्न और रसायन है। तेलकी क्रिया उसके भीतरके गन्धकसे होती है। नीमके समस्त भागोंकी अपेक्षया तेल विशेष प्रबल कार्यकारी है। शीतज्वरमें टिंचर वा क्वाथकी अपेक्षया अन्तरछालका चूर्ण देना श्रेयस्कर है। जीर्ण विषमज्वरमें तेल बहुत गुणकारी है। प्रसूता स्त्रीको पहले दिनसे ही पत्रस्वरस देनेसे गर्भाशयका संकोचन होता है। रक्तस्राव ठीक होता है, गर्भाशय और तत्समीपवर्ती स्थानोंकी सूजन उतर जाती है, भूख लगती है, दस्त साफ होता है, ज्वर नहीं आता

और आया भी तो उसका जोर नहीं बढ़ता। नीमका थोड़ा अंश बच्चेको मिलते रहनेसे उसकी प्रकृति ठीक रहती है। त्वग्रोगोंमें पत्तियोंका स्वरस पीनेको देते हैं और उसका लेप कराते हैं। नवीन रोगकी अपेक्षया जीर्णरोगमें इससे विशेष लाभ होता है। फिरंगोपदंश और कुष्ठमें पत्तियोंका स्वरस या तेल देते हैं। बद, ग्रंथि, व्रणशोथ और व्रण कम करनेके लिए पत्तियोंका कल्क गरम करके बाँधते हैं। तेल उत्तम कृमिघ्न और पूतिहर है। इससे उदरस्थ एवं बाह्य कृमि मर जाते हैं। गण्डमाला पककर जो व्रण होता है उसपर और नाड़ीव्रणपर तेलमें बत्ती भिगोकर रखते हैं। जीर्णज्वर, जीर्णविषमज्वर, त्वग्रोग, फिरंगोपदंश, कुष्ठ आदिमें ५-१० बूँद तेल दिनमें दो बार खिलाते हैं। सूजाकमें शिश्न सूजकर मूत्र रुक जाता है, तब रोगीको पत्तोंके काढ़ेमें बैठाते हैं। इससे मूत्र उतरता है और सूजन घटती है। अर्शकी सूजनपर पत्रकल्क बाँधते हैं। सन्धिशोथ और आमवातमें तेलकी मालिश करते हैं। आमवातमें तेल खानेको भी देते हैं।

●

(३६५, ३६६) नील व बननील

फ़ैमिली : लेगूमिनोसे (Family : Leguminosae)

नाम—(हिं०) नील, लील; (अ०) अल्-नील (इ० बै०), नीलज; (फा०) नील; (सं०) नीलिनी, नीली; (बं०) नील; (म०) नील, गुली; (गु०) गली; (मा०) लील; (सिंध) नीर; (ते०) अविरि; (ता०) अवुरि; (मल०) अमरि; (ले०) **इँडिगोफेरा टिंक्टोरिआ (Indigofera tinctoria** L.); (अं०) इन्डिगो प्लांट (Indigo plant)।

उत्पत्तिस्थान—भारतवर्ष विशेषकर बंगाल, सिन्ध, अवध, मद्रास और बम्बईमें नील (Indigo)के लिए पहले विस्तृत परिमाणमें इसकी खेती की जाती थी।

वर्णन—इसका क्षुप ६० से ९० सें० मी० (२-३ फुट) ऊँचा, सरल, मृदुलोमयुक्त और आपाततः देखनेमें सरफोंका (शरपुंखा)की तरह होता है। पत्रमें पत्रक २-६ जोड़ा, जिसके अग्रपर एक अयुग्म पत्रक होता है। पुष्पदण्ड ह्रस्व, पत्रवृन्तके मूलसे निकलता है, जिसपर दलबद्ध क्षुद्र नीलाभ गुलाबी पुष्प धारण किये जाते हैं। शिम्बी छोटी, बेलनाकार, अग्रकी ओर वक्र; बीज १०, गोल, बेलनाकार तथा दोनों सिरोंकी ओर खण्डित (Truncated) होते हैं। वस्मा इसका जंगली भेद है। (दे० 'बननील')।

वक्तव्य—खजाइनुल् अद्वियाके लेखकके मतसे 'वस्मा' नीलीपत्रका नाम नहीं, अपितु 'बननीलके पत्र'का नाम है, जिसकी पत्तियोंसे खिजाब बनाया जाता है तथा यह फारसीका शब्द है। फारसीमें इसे कतम भी कहते हैं (वि० दे० बननील)। स्लिम्मर (Schlimmer) 'अल्-वस्मा'को 'Indigoferae folia' मानते हैं। इब्नुल्बंतार[1] और बूअलीसीनाका भी यही मत है। परन्तु तथ्यविश्लेषणसे ऐसा प्रतात होता है कि इस नामके दो विभिन्न पौधोंको अरबोंने एकमें मिलाकर स्थितिको भ्रमात्मक बना दिया है।

उपयुक्त अंग—बीज (तुख़्मेनील), पत्र (वस्मा, वर्क़ुन्नील) और पत्तोंसे तैयार किया हुआ रंग (नील)।

रासायनिक संगठन—इन्डिकन नामक एक ग्लूकोसाइड इसका प्रधान सत्व है।

प्रकृति—तीमरे दर्जेमें गरम और खुश्क। आयुर्वेदमतसे उष्णवीर्य (भा० प्र०)।

---

[1] इब्नुल्बैतार संख्या २२४४, २२९१ पादटिप्पणीसे अनूदित।

गुण-कर्म तथा उपयोग—लेखन। लेखन होनेके कारण बीजोंको बारीक पीसकर मोतियाबिंद और फूलीमें सुरमाकी भाँति उपयोग करते हैं। किलास, छीप वा झाईं और दद्रु आदि त्वचाके रोगोंमें इसका पतला लेप लगाते हैं। पत्ते खिजाबमें पड़ते हैं।

आयुर्वेदीय मत—नील तिक्त उष्णवीर्य, रेचन, केश्य तथा मोह, भ्रम, उदर, प्लीहाकी वृद्धि, वातरक्त, कफ, वात, आमवात, उदावर्त, मद और विषका नाश करनेवाली है। (च० सू० अ० २; सु० सू० अ० ३९; भा० प्र०)।

नव्यमत—नीलका लेप दाहशामक, व्रणरोपण, त्वग्दोषहर, केशवर्धक और केशरञ्जन है। इससे प्रथम व्रणका संकोचन और पीछे उत्तेजन होता है। व्रणके ऊपर इसका संग्राहकधर्म उत्तम है। यह विषमज्वरप्रतिबन्धक, यकृदुत्तेजक, नाड़ीसंस्थानके लिए शामक, भेदन, मूत्रजनन और कासहर है। जो गुण नील (रंग)में हैं, वे ही जड़में कम प्रमाणमें और पत्तियोंमें उससे भी कम प्रमाणमें हैं। यकृत् और प्लीहाकी वृद्धि तथा जलोदरमें जड़का घन देते हैं। इससे दस्त और मूत्र होकर उदरका जल कम होता है। जीर्णमलावरोधमें जड़का घन अल्पमात्रामें देते हैं। अर्शमें जड़का घन खिलाते हैं और नीलको जलमें पीसकर अर्शके ऊपर लेप करते हैं। इससे मस्से संकुचित होते और पीड़ा शांत होती है। कुकुरखाँसी और फुफ्फुसके शोथमें जड़का घन देते हैं। शीतज्वरमें नीलको कालीमिर्चके साथ देते हैं। त्वचाके रोगोंमें नीलको देते हैं। अंग जलनेपर नीलको पानीमें पीसकर लेप करते हैं। इससे जलन और पीड़ा शान्त होती है और घाव शीघ्र भर आता है। बीजोंको ७ दिन मद्यमें भिगो कपड़ेसे छानकर वह मद्य जूँमारनेके लिये लगाते हैं। त्वग्रोग, अर्श और व्रणमें पत्तियोंका लेप करते हैं। पागल कुत्ता काटनेपर पत्तियोंका स्वरस ५ तोलेकी मात्रामें नित्य प्रातःकाल देते हैं और दंशस्थानपर पत्तियोंका लेप करते हैं। विसर्पका फैलाव रोकनेके लिए चारों ओर नीलका लेप करते हैं।

●

(३६७) नीलकंठी

फ़ैमिली : एउफॉर्बिआसे (Family : Euphorbiaceae)

नाम—(हिं०) शदेवी, सुबाली; (पं०) नीलकंठी; (बं०) खुडि ओकरा; (ले०) क्रोजोफ़ोरा प्रॉस्टाटा (**Chrozophora prostata Dalz.**)।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष।

वर्णन—यह एक देशी बूटी है, जिसके पत्ते खुरदरे और जड़ तथा फूल नीले होते हैं।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम और खुश्क।

गुण-कर्म तथा उपयोग—रक्तप्रसादन होनेके कारण यह रक्तविकारजन्य रोगों, जैसे—विसर्प और कण्डू आदिमें उपयोग की जाती है। यह अर्क मुरक्कब मुसफ्फीखूनका एक उपादान भी है। जीर्णज्वरोंको नष्ट करनेके लिये अकेले या अन्य औषधियोंके साथ इसका क्वाथ पिलाते हैं। प्रधान गुण रक्तप्रसादन और सौदानाशन है। अहितकर–फुफ्फुसके लिये। निवारण–मधु और कासनी। प्रतिनिधि–ब्रह्मदण्डी। मात्रा–५ ग्राम से ७ ग्राम (५ माशे से ७ माशे) तक। लखनऊके हकीम रक्तशोषनार्थ ४ ग्राम (४ माशे) लिखते हैं।

●

(३६८) पँवाड़

फ़ैमिली : लेगूमिनोसे (Family : Leguminosae)

नाम—(हिं०) चकवँ(व)ड़, चकौंड़, पँवाड़, पमाड़; (द०) तरोटा; (अ०) संजेसबूया, क़ल्व; (फा०) संगेस्बूया; (सं०) चक्रमर्द, प्रपुन्नाट, एडगज, पामारि, दद्रुघ्न; (बं०) चकुंडा, चाकुन्दे; (गु०) कुवाडियो; (म०) टाकला, तरवटा; (ते०) तगिरिसे, तंडेमु; (ता०) तघ(क)रै; (मल०) तघर, पोन्नांतकरा; (ले०) कास्सिआ टोरा (**Cassia tora** Linn.); (अं०) रिंगवर्म प्लांट (Ringworm plant)।

वक्तव्य—फारसी 'संगेस्बूया'से अरबी 'संजेसबूया' बनाया गया है। संगेस्बूया पँवाड़के बीजको कहते हैं। 'सैसबान'के बीजको फारसीमें 'संगेसबूह (दे० 'जयन्ती') और पँवाड़के बीजका अरबमें 'ऐनुस्सरातीन' कहते हैं।

उत्पत्तिस्थान—भारतवर्षके सभी उष्णकटिबन्धस्थित प्रदेशोंमें वर्षाऋतुमें इसके क्षुप उत्पन्न होते हैं।

वर्णन—यह एक वर्षायु क्षुप है, जो ६० सें० मी० से १५० सें० मी० (२ फुटसे ५ फुट) तक ऊँचा होता है। पत्र संयुक्त, पत्रक ३ जोड़े, लम्बगोल, कुण्ठिताग्र, मसृण, अन्तिम युग्म बृहत्तम। पत्र रातमें एक-दूसरेसे मिल जाते हैं; पुष्प कक्षीय, साधारणतः युग्म, हलका पीला; शिम्बी लगभग ६ इञ्च लम्बी, बारीक, चौकोनी; बीज पुष्कल, लम्बोतरा, बहुत कड़ा, कुछ भूरा, दोनों छोर ऐसा प्रतीत होते हैं मानो तिरछे काटे हुए हों तथा मेथी या मोठके दानेके समान दिखता है। प्रत्येक फलीमें २०-३० बीज होते हैं। सम्पूर्ण क्षुप दुर्गन्धयुक्त होता है। बड़े पत्र लबाबदार होते हैं और उनका स्वाद उत्क्लेशकारक होता है। कोमल पत्तोंकी तरकारी बनाते हैं।

उपयुक्त अंग—पत्र, बीज और पंचांग विशेषतः बीज औषधके काममें लिए जाते हैं।

रासायनिक संगठन—पत्र और बीज दोनोंमें क्राइसोफेनिकाम्ल (Chrysophanic acid)की तरहका एक ग्ल्युकोसाइड, इमोडीन और एक मधुरगन्धि अनुत्पत् तेल होता है। पत्रमें कॅथार्टीन या सनायके समान एक विरेचन सत्व, एक रक्तरंजक द्रव्य और खनिज द्रव्य होते हैं।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम और खुश्क। आयुर्वेदके मतसे पँवाड़ और बीज उष्णवीर्य एवं रूक्ष हैं। पत्र शाक शीतवीर्य एवं रूक्ष (सु०) है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—विरेचन, सौदा और श्लेष्मनिःसारक, रक्तप्रसादन, लेखन, मरकविकारहर, अर्शोघ्न और विशेषतः किलास, दद्रु और कण्डू इनका नाश करनेवाला है। रक्तप्रसादन और लेखन होनेके कारण पँवाड़के पत्र और बीजको प्रायः रक्तविकार एवं त्वचाके रोगों, जैसे–कुष्ठ, कण्डू, दद्रु, छीप या झाईं, किलास और व्यंगमें लेप और पानरूपमें उपयोग करते हैं। चकवड़के बीजोंको कुछ दिन दहीमें सड़ानेके बाद लेप करना दद्रुकी परीक्षित औषधि है। महामारीकाल विशेषकर प्लेगमें अनागतावाधप्रतिषेधरूपमें इसके पत्तोंका साग बनाकर खाया जाता है। पँवाड़के बीजोंका खाना और लगाना अर्शरोगमें लाभकारी है। यह कास और कफज कृच्छ्रश्वासके लिए भी प्रयुक्त होता है। इसके अतिरिक्त सौदा और श्लेष्मनिःसारक और विरेचक होनेके कारण यह पक्षवध, आमवात और अन्य शीतल व्याधियोंमें गुणदायक है। अहितकर–अन्त्रके लिए। निवारण–दही, दूध और अर्कगुलाब। प्रतिनिधि–बकुर्ची और सरकण्डेकी जड़। मात्रा–१ ग्रामसे ३ ग्राम (१ माशेसे ३ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—पँवाड़ कटु, मधुर, शीतवीर्य, रूक्ष, लघु तथा मेद, वात, कफ, दाद, खाज, श्वास, कुष्ठ और कृमियोंका नाश करनेवाला है। (सु० सू० अ० ३९; ध० नि०; भा० प्र०)। इसके बीज कटु, उष्णवीर्य तथा

कुष्ठ, कण्डू, दाद, विष, वायु, गुल्म, कास, कृमि और श्वासका नाश करनेवाले हैं। (भा० प्र०)। इसका शाक रूक्ष, लघु, शीतवीर्य, वातपित्तप्रकोपक तथा कफनाशक है। (सु० सू० अ० ४६)।

नव्यमत—पँवाड़की क्रिया त्वचापर होती है। इसको सब प्रकारके त्वचारोगोंमें देते हैं। त्वचा मोटी हो गयी हो तो इससे विशेष लाभ होता है। त्वचाके रोगोंमें इसकी पत्तियोंका साग खिलाते हैं और बीजोंको नीबूके रसमें पीसकर लगाते हैं। पत्र-क्वाथ मृदुसारक, पत्र और बीज दाद-खाजमें और मूल सर्पविषमें प्रयुक्त होता है।

●

(३६९) पखानभे(बे)द

फ़ैमिली : साक्सीफ्रागासे (Family : Saxifragaceae)

नाम—(हिं०) पखानभेद, पखानबेद; (सं०) पाषाणभेद, वटपत्री (रा० नि०); (क०) पहाँड; (म०; गु०) पाखाणभेद; (बं०) पाथरचुरी; (लें०) बेर्जेनिआ लीगूलाटा (**Bergenia ligulata** Wall., Engl.) (पर्याय—*Saxifraga ligulata* Wall.)।

उत्पत्तिस्थान—७,००० से १०,००० फुटकी ऊँचाई पर हिमालयके कश्मीर आदि प्रदेशोंमें पर्वतोंकी ढालों पर पत्थरोंकी दरारोंमें अधिकतया निकले रहते हैं।

वर्णन—जिन्शियानासे भिन्न एक बहुवर्षायु क्षुप; कांड छोटा और मांसल; पत्र लट्वाकार या कुछ गोल, प्रायः ७·५ से १२·५ सें० मी० (३–५ इञ्च) व्यासमें किनारेपर सूक्ष्म सघन दाँतोंसे युक्त, निचले पृष्ठपर प्रायः गुलाबी, चमकीले, पहले हरे और पीछे लाल रंगके; पुष्प श्वेत, गुलाबी या जामुनी रंगके, मूलस्तंभ ऊपरसे ललाई या कालाई लिए तोड़नेपर भीतरसे सफेद, लगभग २·५ सें० मी० (१ इञ्च) मोटा और टूटे हुये धरातलपर तार-तार दिखता है। स्वाद तिक्त होता है। इनके मोटे मूल बाजारमें पखानभेद (पाषाणभेद)के नामसे मिलते हैं।

उपयुक्त अंग—मूल।

मात्रा—१ से ३ ग्राम (१—३ माशे)।

रासायनिक संगठन—जड़में कैल्सियम् ११·५%, गैलिक एसिड, टैनिक एसिड (१४·२%), द्राक्षशर्करा (ग्लूकोज ५·६%), पिच्छा २·२५%, मोम, एल्बूमिन (७·७५%), स्टार्च (१९%) तथा क्षार प्रभृति द्रव्य होते हैं। मूलको जलानेसे १३% राख मिलती है।

प्रकृति—आयुर्वेदके मतसे शीतवीर्य तथा रूक्ष या स्निग्ध; यूनानीमतके लिये जिन्शियाना देखें।

गुण-कर्म तथा उपयोग—पखानबेद तीक्ष्ण एवं सारक है तथा प्रमेह, सूजाक और बस्त्यश्मरीका नाश करता है। हकीम **शरीफखाँ** कहते हैं कि हमारे दिवंगत चाचा इसका इस तरह प्रयोग करते थे कि समभाग पखानबेद और मेंहदीके पत्तोंको पिसवाकर मेंहदीकी भाँति उस स्त्रीकी हथेलियों और तलवोंपर लगवाया करते थे जिसे आर्तवरक्त जारी होता था, इससे वह बन्द हो जाया करता था। (तालीफ शरीफ)। मुहीत आजममें यह भी लिखा है कि आर्तवरक्तका दाह मिटानेके लिए इसे ४·५ ग्राम (४॥ माशे) देना चाहिए। यह अर्शमें लाभकारी एवं पित्तनाशक है। सूजाकमें इसे बकरीके दूधके साथ देना चाहिए। फोड़ोंपर इसका लेप करनेसे वह बैठ जाता है। तक़्मिलए हिंदीके अनुसार यह तृषा, संताप एवं विंदुमूत्रको लाभ करता और बस्तिगत पथरीको तोड़कर निकाल देता है। यूनानी वैद्य इसे ग्राही मानते तथा इसमें निहित संग्राही एवं अगद गुणके कारण इसे हृदयका संरक्षक जानते हैं और सर्दीके दर्द तथा सूजनका उतारनेवाला समझते हैं। किन्तु वैद्य इसे सारक और संतापहर मानते हैं।

आयुर्वेदीय मत—तिक्त, कषाय, शीतवीर्य, मूत्रविरेचनीय, बस्तिशुद्धिकर, भेदन तथा वातादि तीनों दोष, शूल, मूत्रकृच्छ्र, हृद्रोग, प्लीहाके रोग, गुल्म, अर्श, योनिरोग, प्रमेह और व्रणका नाश करनेवाला है। (सु० सू० अ० ३८; च० सू० अ० ४; ध० नि०; भा० प्र०)।

नव्यमत—स्नेहन, श्लेष्मघ्न, स्तम्भन, मूत्रजनन और स्कर्वीहर है। अश्मरिमें देनेसे पेशाबका प्रमाण बढ़कर उसका गाढ़ापन (आविलता) कम होता है। दूधमें घिसकर देनेसे बच्चोंको मूत्रमें क्षार जाना बन्द होता है। आँव और अतिसारमें इसे देनेसे आँतोंको शक्ति मिलती है। दाँत निकलते समय बच्चोंके मुँहसे लार गिरती है और मुँहमें व्रण होते हैं; तब इसे शहदमें घिसकर मुखमें लगाते हैं। व्रणशोथ और नेत्राभिष्यंदमें इसका लेप करते हैं। ज्वर और फुफ्फुसविकारमें इसका उपयोग करते हैं।

●

(३७०) पचौली

फ़ैमिली : लाबिआटे (Family : Labiatae)

नाम—(हिं०) पचो(चौ)ली, पंच पानडी; (बं०) प(पं)चपात; (बम्ब०) पचपान; (ले०) **पोगोस्टेमॉन पचौली (Pogostemon patchouli** Pell. Hook.), पो० हेनिएनस (P. heyneanus Benth.); (अं०) पचौली (Patchouli)।

उत्पत्तिस्थान—कनाड़ा, पश्चिमीघाट, नीलगिरीसे दक्षिणकी ओर तथा मलायाप्रायद्वीपमें यह जंगली होती है अथवा खेती की जाती है। मध्यभारत तथा बम्बईमें यह अधिकतासे होती है।

वर्णन—बाहरसे आनेवाली पचौलीके पत्र साधारणतया गहरे भूरे रंगके सिकुड़े हुए (Crumpled) और प्रायः अन्यान्य पत्तियोंके साथ मिले-जुले होते हैं। इसके जलमें भींगे हुये वास्तविक पत्र आकृतिमें लट्वाकार (Ovate) दिखलाई देते हैं। वे १० सें० मी० (४ इंच) लंबे और १३·७५ सें० मी० (५½ इंच) चौड़े, किंतु अपेक्षाकृत नये पत्ते उससे आधे आकारके होते हैं। पत्रप्रांत खंडित, विषम तीक्ष्णाग्रगोल दाँतवाले (With irregular crenate-serrate teeth), खंड कुण्ठिताग्र और पत्राधार अदंतित होता है। रोम साधारण (Simple) और साधारणतया चार कोषयुक्त होते हैं। स्वाद, रुचिकर; गंध तीव्र एवं स्थायी।

उपयुक्त अंग—पत्र।

रासायनिक संगठन—इसमें, एक उत्पत् तेल (Essen. oil) होता है।

गुणकर्म तथा उपयोग—मूत्रजनन, वातानुलोमन और कृमिघ्न। इसकी पत्तियोंसे एक प्रकारका तेल निकाला जाता है जो विलायती सुगंधियों (एसेंस आदि)में पड़ता है।

●

(३७१) पटेरा, पटेर

फ़ैमिली : टीफासे (Family : Typhaceae)

नाम—(हिं०) पटेर; (-रा,-री,-ला), गोंदपटेर, गोंदल, मोथीतृण; (अ०) बर्दी, फ़ाफ़ीर (इ० बै०), कसबुल्बर्दी, हलफ़ा, दख्ख; (फा०) पीरज़, दोख, लोख; (मिश्र०) फ़ाफ़ा (फ़ी) रूस, फ़ाफ़ीर; (सं०) एरका, गुन्द्रा, गुन्द्रमूला, पटेरक; (यू०) पेपिरस (Papyrus); (बं०) होगला; (उड़ि०) होगोला (लो); (म०) एरका; (पं०; कं०)

पीरा; (बम्ब०) रामबाण; (लें०) टीफा एलेफान्टीना (**Typha elephantina** Roxb.); (अं०) एलीफैन्ट्स ग्रास (Elephant's grass), कैट्स टेल (Cat's tail)।

उत्पत्तिस्थान—उत्तरपश्चिम भारतवर्षसे आसामतक तथा दक्षिणकी ओर इन्डस डेल्टा आदिमें, झील या नदीके किनारे पानी या दलदलमें होती है।

वर्णन—इसके तृणजातीय परंतु १·८ से ३·६ मीटर (६–१२ फुट) ऊँचे पौधे होते हैं जो जलप्राय स्थानोंमें और नदीके किनारे समूहबद्ध होकर उगते हैं। **पत्तियाँ** १·२ से १·८ मीटर (४–६ फुट) लंबी, २·५ सें० मी० (१ इंच) तक चौड़ी और नतोदर होती हैं। पुष्पवाहक कांडके अग्रपर नर और नारी पुष्पोंके पत्रावृत्त अवृन्तकाण्डज सघनव्यूह होते हैं जो १ फुट तक लंबे और रोईंदार होते हैं। यह रोआँ उनपर धूलिकी तरह होता है। स्वादमें यह मधुर एवं स्वादिष्ट होता है। इस रोईंके नीचे रूईके समान एक वस्तु होती है जिससे कागज बनाते हैं। बीज मेथीके बीजोंसे अधिक छोटे एवं कड़ुए होते हैं। जड़ मधुर एवं सुस्वादु होती है। मिस्रदेशीय बर्दीमें जो रूई होती है उससे रस्सियाँ और कागज बनाते हैं। जली हुई बर्दी जले हुए कागजका काम देती है। यूनानी वैद्यकमें मात्र कागजसे कागज बर्दी अभिप्रेत होता है। **बुरहान कातेअ**में लिखा है कि भारतवर्षमें इसे हाथियोंको खिलाते हैं। पत्तियोंसे बोरिये और चटाइयाँ बुनते हैं। गोंद और इसमें यह अंतर है कि पटेरेकी पत्ती चौड़ी होती है, गोंदकी पतली। मजबूत एवं बहुमूल्य चटाई गोंदकी होती है। पटेरकी एक दूसरी जाति (T. angustata Chanb.) भी होती है। मुख्य भेद दोनोंकी पत्तियोंमें होता है। पहली जातिमें कोषमय पत्राधारके ऊपर पत्तीका घेरा त्रिभुजाकार और दूसरी जातिमें क्वचित् गोलाकार होता है। यह न्यूनाधिक समस्त भारतवर्षमें होता है। इसे होगला (बं०) तथा एरका (सं०) कहते हैं।

प्रकृति—शीतल एवं रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—इसकी राख अत्यन्त रूक्ष एवं व्रणशोषणकर्त्ता है। इसे सिरकेमें तर कर, अलसीका चूर्ण मिला, नासूरपर छिड़कनेसे लाभ होता है। यह (आकिलः)को भी लाभकारी है। इसबगोल, अलसी; बिहीदाना आदिके लबाबमें इसे मिलाकर चाटनेसे छातीसे आता हुआ रक्त बन्द हो जाता है। केकड़ोंके काढ़े या अर्कगुलाबके साथ ३½ माशे यह राख सेवन करनेसे उरःक्षत और हर प्रकारके फुफ्फुसके रोग आराम होते हैं। पैरोंमें जूता काटनेसे हुए घावपर इसकी राख छिड़कनी चाहिए। नकसीरमें इसकी राखका नस्य देनेसे लाभ होता है। इसकी धूनी प्रसेक और प्रतिश्यायके लिए गुणकारी है। इसको मंजनमें डालनेसे मसूढ़े मजबूत होते हैं और उनसे रक्त एवं पानी आना बंद होता है। इसको अलसी या सनके कपड़ेमें लपेटकर नासूर या खूनी बवासीरके मस्सोंमें रखनेसे वे सूख जाते हैं। इसे पेचिसकी बस्तियोंमें मिलाते हैं। इसकी जड़ चाबनेसे लहसुन, प्याज और मदिराकी गंध जाती रहती है। **अहितकर**–अन्त्रामाशय और फुफ्फुसको। **निवारण**–अन्त्रामाशयके लिए मधु और फुफ्फुसके लिए लुबूब। **प्रतिनिधि**–समतोल अकाकिया, गर्बके पत्ते और तृतीयांश खूनेखराबा।

नव्यमत—महाराष्ट्रमें पक्वफलरोम (पुष्पों)का चूर्ण घाव और व्रणोंमें लगानेके काममें आता है तथा औषधीय कार्पासपिचुकी भाँति कार्य करता है। इससे घाव शीघ्र अच्छा होता है। मूलस्तंभ शीतल, कषाय (ग्राही), वीर्यवर्धक, चक्षुष्य और मूत्रजनन है तथा अश्मरि, दाह, खसरा (Measles) एवं रक्तपित्तनाशक है और प्रवाहिका एवं सूजाकमें प्रयुक्त होता है।

एरका—शीतवीर्य, वृष्य चक्षुष्य, वातप्रकोपक तथा मूत्रकृच्छ्र, पथरी, दाह, पित्त और रक्तविकारनाशक है। (भा० प्र०)।

(३७२) कसरानी

नाम—(हिं०) कसरानी, कसेरा, कौलन; (अ०) अस्ल, इजखिर अजामी; (फा०) दूख, कर्त:; (मिश्र०) समख।

वक्तव्य—कसरानीका वर्णन जिसे अरबोमें 'अस्ल' व 'इज़ख़िर अजामी' लिखा है, देखनेसे यह आयुर्वेदोक्त 'गुन्द्र' प्रतीत होता है। वि० दे० 'गोदरी' या 'गोंद'।

गोंदरी, गोंद

फ़ैमिली : ग्रामीने (Family : Gramineae)

नाम—(हिं०) गोंद, गोंद (रा, री, ला), गु(गो)नरा (री), नेरुई; (सं०) गुन्द्र, गुण्डतृण, नीलपत्र; (फा०) सामान; (पं०) धमूर, गिरुई, घिरीं; (गु०) दुस्तो, दून; (ले०) पानीकुम् आन्टीडोटाले (**Panicum antidotale** Retz.)।

उत्पत्तिस्थान—पंजाब, गंगाका उत्तरी मैदान, पश्चिमी प्रायद्वीप।

वर्णन—एक घास जो प्रायः जलप्राय स्थानोंमें उत्पन्न होती है। पटेर और इसमें यह अन्तर है कि पटेरकी पत्ती चौड़ी होती है और इसकी पतली, मजबूत, गोल और नरम भी होती है। इससे चटाइयाँ बनाते हैं। इस विवरणसे यूनानी ग्रन्थोक्त कसरानी जिसे अरबीमें 'अस्ल' व 'इज़ख़िर अजामी' कहते हैं, प्रतीत होती है। वि० दे० 'कसरानी' और 'पटेर'।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें सर्द एवं खुश्क।

गुण-कर्म तथा उपयोग—इसको जलाकर घावपर छिड़कनेसे रक्तस्राव बन्द हो जाता है। घावोंको इसके जलते हुए पौधेके धुएँकी धूनी देते हैं और शीतलामें (Disinfectant)की भाँति इसका उपयोग करते हैं। इसकी चटाईपर बैठनेसे अर्शका नाश होता है।

आयुर्वेदीय मत—गुन्द्र यह कषाय, मधुर, शीतवीर्य, रक्तपित्त एवं मूत्रकृच्छ्रको दूर करनेवाला तथा स्तनमें स्थित दूध, शुक्र, रज और मूत्रका शोधन करनेवाला है। (भा० प्र०)।

●

(३७३) पतंग

फ़ैमिली : लेगूमिनोसे (Family : Leguminosae)

नाम—(हिं; म०; गु०; द०) पतंग; (अ०)बु(ब)क़्क़म, बक़म, खशबुल्अह्मरहिन्दी; (फा०) बकम हिन्दी; (सं०) पत्राङ्ग, पतङ्ग; (बं०) बोक़ोम; (ते०) बुक्कपुचेट्टु; (ता०) शप्पंगु; (मल०)पत्तंगम्, चप्पङ्ङम्, वरत्तांगि; (ले०) सेसालपीनिआ साप्पान (**Caesalpinia sappan** Linn.); (अं०) सैप्पन वुड (Sappan wood)।

वक्तव्य—लेटिन नाम वृक्षके और शेष नाम उसकी लकड़ीके हैं। यह 'बकम अमरीकी (**Haematoxylon compectianum**)' या 'लॉगवुड (Logwood)' का उत्तम प्रतिनिधि है।

उत्पत्तिस्थान—दक्षिण भारतमें पूर्वी-पश्चिमी प्रायद्वीप, शानकी पहाड़ियाँ और पेगू (ब्रह्मा)। दक्षिण भारतके मद्रास प्रांतमें इसके वृक्ष काफी परिमाणमें लगाये हुए मिलते हैं।

वर्णन—यह एक कँटीले गुल्म या छोटे वृक्षके हीरकी लकड़ी है, जो औषधके काम आती है। लकड़ी ठोस, भारी, कड़ी, ताजी कटी हुई कुछ-कुछ सफेद, किन्तु वायुमें खुला रहनेसे लाल हो जाती है। इसमें कोई विशेष गंध और स्वाद नहीं होता, किन्तु यह कषाय (संग्राही) होती है। इससे जल और सुरासारमें उत्तम लाल रंग आ जाता है। बाजारमें इसके विभिन्न आकार-प्रकारके कड़े और भारी टुकड़े या लाल नारंगी रंगकी चपटियाँ मिलती हैं। आड़े रूख काटनेसे इनपर वृत्त और सरल रेखायें पायी जाती हैं। बाजारमें सिंगापुरी, घुनसरी और लंका ऐसी तीन नामकी लकड़ियाँ मिलती हैं। इनका आयात बम्बईमें होता है।

रासायनिक संगठन—इसमें सैपेनीन नामक एक क्रिस्टलीय सत्व होता है, जो हीमेटॉक्सीलीनकी भाँति होता है। फलियों एवं छालमें टैनिन पाया जाता है। पत्तियोंमें (०·१६%–०·२५%) एक सुरभियुक्त उत्पत् तैल पैदा भी पाया जाता है।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम और चौथेमें खुश्क।

गुण-कर्म तथा उपयोग—उपशोषण (व्रणलेखन), संग्राही और **रक्तस्तंभन**। पतंगके चूर्णको पुरातन और सद्यःव्रणोंपर छिड़कते हैं। रक्तस्राव बन्द करने और व्रणपूरणके लिए लाभकारी है। इसे बालकोंके अतिसार और पेचिसमें खिलाते हैं। योनिसे नाना प्रकारके स्रावमें इसके काढ़ेकी पिचकारी करते हैं। अहितकर–उष्ण प्रकृतिके लिए। निवारण–वमन कराना। मात्रा–२ ग्राम से ३ ग्राम (२ माशे से ३ माशे १½ तोलेकी मात्रामें अधिक खुश्की करनेके कारण घातक वर्णन की जाती है)।

आयुर्वेदीय मत—पतंग मधुर, तिक्त, वर्ण्य तथा पित्त और कफका नाश करनेवाला है। (ध० नि०)।

नव्यमत—पतंग ग्राही, रक्तसंग्राहक, गर्भाशयका उत्तेजक और संकोचक, श्लेष्मघ्न और व्रणरोपण है। रक्तस्राव बन्द करनेके लिए पतंगका काढ़ा पिलाते हैं और काढ़ेमें कपड़ा भिंगोकर उस व्रणपर बाँधते हैं। फुफ्फुस, आंत, गर्भाशय आदिके रक्तस्रावपर पतंगसे उत्तम लाभ होता है। रक्त प्रदर और श्वेतप्रदरमें पतंगके काढ़ेकी बस्ति देते हैं। अतिसारमें पतंग उपयोगी है। बनफशा और पतंगके काढ़ेसे मांसाबुर्द (कैन्सर)के व्रणको धोनेसे पीड़ा और दुर्गन्ध कम होती है।

●

(३७४) पथरचूर

फ़ैमिली : क्रास्सूलासे (Family : Crassulaceae)

नाम—(हिं०) पथरचूर, पथरचट; (हिं०; द०) ज़ख्महयात; (सं०) पर्णबीज (नवीन); (म०) घायमारी; (बं०) पाथरकुचा, हिमसागर; (गु०) खाटखटुम्बो; (ले०) कालांची पीन्नाटा **Kalanchoe pinnata** (Lamk.) Pers. (पर्याय–*Bryophyllum pinnatum* (Lamk.) Kurz.; *B. calycinum Salisb.*)।

वक्तव्य—हेमसागर (हिं०; बं०) या ज़ख्महयात (बम्ब०) **Kalanchoe laciniata** DC. इसकी एक दूसरी जाति है, जिसमें शोथघ्न एवं व्रणशोधन गुण इसीके समान होते हैं, और पुराने व्रणोंपर इसका विशेष उपयोग होता है। इसीलिए कोई-कोई इसको जख्महयात कहते हैं। इसके पत्ते रंगीन होते हैं।

उत्पत्तिस्थान—भारतवर्षके समस्त नम और उष्ण भाग, विशेषकर बंगालमें यह साधारण रूपसे होता है। यह उड़ीसामें जंगली और बिहारमें लगाया हुआ मिलता है।

वर्णन—बहुवर्षायु मांसल क्षुप; कांड सीधा, मोटा, पोला, रक्तवर्ण; पत्तियाँ अपत्रक अथवा नीचे त्रिपत्रक, हरी, आयताकार या अण्डाकार, गोलदन्तुर, पत्रक २ से ६ इंच लम्बे और पुष्पवाहक कांड १-३ फुट ऊँचा होता है। पुष्प हलके हरे या बैंगनी रंगके, चतुरंगभागी और बाह्यकोश फूला हुआ तथा घंटिकाकार होता है। पत्तीके किनारे दाँतोंके बीचमें कलिकाएँ होती हैं। अतः जब पत्ती टूटकर गिर जाती है अथवा जब पत्ती जमीनमें दबा दी जाती है तब ये कलिकाएँ विकसित होकर स्वतन्त्र पौधे उत्पन्न करती हैं। इसलिए इसे **पर्णबीज** कहते हैं। कुछ लोग इसको 'पखानभेद' मानते हैं। पखानभेदकी तरह यह भी मूत्रल होता है; अतः उसका प्रतिनिधित्व कर सकता है।

उपयुक्त अंग—पत्र और पत्रस्वरस।

रासायनिक संगठन—पत्तियोंमें मैलिक अम्ल (सेवाम्ल), आइसोसाइट्रिक और साइट्रिक एसिड (जम्बीराम्ल) प्रभृति अम्ल पाये जाते हैं।

गुण-कर्म तथा उपयोग—

नव्यमत—पर्णबीज तिक्त व्रणशोधन, व्रणरोपण, रक्तसंग्राहक और रक्तस्कंदन है। इसके रसकी क्रिया सूक्ष्म धमनियोंपर होकर उनका संकोचन होता है और उससे रक्तका स्राव भीतरसे होता हो अथवा त्वचासे होता हो तो बन्द होता है। रक्तमिश्रित आँवमें चौथाईसे आधातोला पत्रस्वरस देते हैं। मार (अभिघात) और व्रणपर पत्तोंका कल्क जरा गरम करके बाँधनेसे सूजन, लाली और वेदना शांत होकर घाव शीघ्र अच्छा होता है। नवीन घावके लिए इसके बराबर अन्य कोई औषध नहीं है।

●

(३७५) पत्थरफोड़ी

फ़ैमिली : स्क्रोफुलारिनी (Family : Scrophularineae)

नाम—(हिं०) पत्थ(थ)रफोड़ी; (गु०) कनोड़ी, मिंटगलोडी; (ले०) क्किक्सिआ रैमोसिस्सिमा (**Kichxia ramosissima** Janche.)।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष, साधारणतया पथरीले और चट्टानबहुल स्थानोंमें होती है।

वर्णन—एक बूटी जो पत्थरों और दीवारोंमें उगती है। इसके पत्ते दबीज होते हैं। इनको मुखमें चाबनेसे ल्हेस उत्पन्न होती है। इसका स्वाद खारा होता है।

उपयुक्त अंग—पत्र। इस नामकी दूसरी औषधि पश्चिमी उपहिमालयमें चंबासे कुमाऊँ तक २,५०० से ५,५०० फुटकी ऊँचाईपर होनेवाला फैमिली जेस्नेरिआसे (*Family : Gesneriaceae*)की डिडीमोकार्पुस पेडीसेल्लाटा (**Didymocarpus pedicellata** R. Br.) नामक औषधि है।

रासायनिक संगठन—इसकी पत्तियोंसे पेडिसिन (Pedicin), पेडिसिनीन (Pedicinin) प्रभृति युक्त एक क्रिस्टली रंजक द्रव्य पृथक् किया जाता है। इनमें पेडिसिन मछलियोंके लिए विष है। पत्तियोंसे प्राप्त उत्पत् तेलमें डाइडिमोकार्पीन (Didymocarpene) नामक प्रधान उपादान होता है।

प्रकृति—गरम और खुश्क।

गुण-कर्म तथा उपयोग—प्रबल मूत्रजनन और बस्तिवृक्काश्मरिनाशन हैं। इस बूटीके पत्र अकेले या प्रवर्तनकारी औषधियोंके साथ पीसकर मिश्री या शर्वतबजूरी मिलाकर पिलानेसे मूत्रका अत्यन्त प्रवर्तन होता है और यह बस्तिवृक्काश्मरिको तोड़-फोड़कर निकाल देती है। अहितकर—कामशक्तिको (अवाजीकर)। निवारण—कुलथीका फांट। मात्रा—५ ग्राम से १२ ग्राम (५ माशे से १ तोला) तक।

●

(३७६) पपीता

फ़ैमिली : लोगानियासे (Family : Loganiaceaeae)

नाम—(हिं०; अ०; फा०; द०) पपीता, पापीता, पपीता रूमी; (ले०) ईग्नाटिआ आमारा **Ignatia amara** Linn. (पर्याय–*Strychnos ignatii*); (अं०) सेंट इग्नेशियस बीन (St. Ignatius Bean), इग्नेशियस बीन्स (Ignatius Beans)।

वक्तव्य—पपीता (Pepita) वस्तुतः इस औषधिका स्पेनभाषाका नाम है। हिंदुस्तानमें यह औषधि उसी नामसे आयी; इसलिए इसका यही नाम प्रसिद्ध हो गया। 'ईग्नाटिआ' और इग्नेशियस' क्रमशः इसके लैटिन और अंग्रेजी नाम 'सन्त इग्नेशियस' के नामपर रखे गए हैं जो ईसवी धर्मानुयायी एक भद्र पुरुष थे। नवीन औषधि करके 'पपीता'का नाम सर्वप्रथम मख़्ज़नुल अदविया और उसके बादके यूनानी वैद्यकीय ग्रन्थोंमें उल्लिखित है। यह **अरंडखरबूजासे सर्वथा भिन्न द्रव्य है**। (देखो 'अरंडखरबूजा')। 'स्ट्रीक्नोस (Strychnos)' यूनानी संज्ञा 'काकमाची (Nightshade)'का पर्याय है। सुतरां यूनानवासी काकमाचीजाति या सूची (ऐट्रोपा या यबरूज) जातिके लिए इसका आरोप करते थे और ईसवीसन्की सोलहवीं बल्कि सत्रहवीं शती तक भी यूरोपमें स्ट्रीक्नोसको ऐट्रोपा (बेलाडोना)का पर्याय समझते रहे। पर अधुना इसका आरोप 'लोगानिआसे (Loganiaceae)' फैमिलीके लिए होता है।

इतिहास—ईसवी सन्की सोलहवीं शतीके अन्तमें जोज़ट नामी एक ईसाई धर्मोपदेष्टाने फिलिपाइन द्वीपसे यूरोपमें इस औषधिको भेजा। सन् १६९९ ई० में 'डॉ० रे' और डॉ० पीटीवरने इसको लन्दनके डॉक्टरोंकी राजकीय सोसाइटीके समक्ष उपस्थित किया तथा ईसवी सन्की सत्रहवीं शतीमें यह भारतवर्षमें आयी। अस्तु, मख़्ज़नुल् अदविया और उसके बादकी यूनानी वैद्यकीय पुस्तकोंमें 'पपीता' नामसे इसका वर्णन किया गया।

उत्पत्तिस्थान—फिलिपाइन और कोचीन चाइना टापू जो अधुना अमेरिकाके अधीन है।

वर्णन—यह कुचलाजातीय एक विदेशीवृक्षके प्रसिद्ध बीज हैं जो औषधिके काममें आते हैं। बीज १ इंचसे १¼ इञ्च लम्बे, १½ इञ्च व्यासमें, दीर्घाकार या अंडाकृति और अनियमितरूपसे नोकदार होते हैं। प्रायः बीज लगभग तिकोने होते हैं। बाहरसे हलका भूरा या कालाई लिये, किन्तु भीतरसे अर्धस्वच्छ होते हैं। ये कुचलाके समान श्रृंगवत्, अत्यंत कड़े और अत्यंत तिक्त होते हैं। गन्ध कुछ नहीं होता। पपीताके एक फलमें जो बड़े अमरूदके बराबर होता है १५ से २० बीज होते हैं।

रासायनिक संगठन—इसमें भी वे ही सत्व और उपादान होते हैं जो कुचलामें होते हैं। प्रयुक्त कुचलाकी अपेक्षया इसमें विषमुष्टीन (स्ट्रिक्नीन) नामक वीर्य अधिक होता है।

कल्प तथा योग—हब्ब पपीता।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें गरम और खुश्क।

गुण-कर्म—गुणकर्ममें यह कुचलाके समान, संभवतः अधिक कार्मुक है। प्राणिज, वानस्पतिक और खनिज विषोंका अगद, श्वयथुविलयन, उष्णताजनन, श्लेष्मनिःसारक, वातानुलोमन, अन्त्रामाशयशूलहर, अतिसार और छर्दिनाशक, आर्तवजनन वाजीकर और विशेषकर अगदगुणके साथ हैजा और छर्दिनाशक है।

उपयोग—प्रतिविष और छर्दि एवं अतिसारनाशक होनेसे यह हैजामें प्रयुक्त होता है। यह अन्त्र और आमाशयके शूलको दूर करता है। इसलिए आधी रत्तीकी मात्रामें इसे अर्कगुलाबमें घिसकर पिलाते हैं। श्वयथुविलयन, उष्णताजनन और श्लेष्मनिःसारक होनेसे यह कास, कृच्छ्रश्वास, शीतल जलोदर, वायुजन्य वेदना, अर्श, आमवात और पक्षवध आदिमें गुणदायक है। मूर्च्छा और बेहोशोमें इसको घिसकर मुखमें टपकाते हैं। अर्बुद (रसौली) पर लेप करनेसे उसको विलीन करता और प्राणियोंके दंशपर लेप करनेसे पीड़ाको शांत करता और विषका नाश करता है। वाजीकरणार्थ भी इसका उपयोग करते हैं। यदि बीजको रेजा-रेजा करके तिलके तेलमें पकानेके बाद छानकर उस तेलकी मालिश करें तो पक्षवध, अंगघात और कण्डूमें उपकार होता है। **अहितकर**–उष्णप्रकृतिको। **निवारण**–हरी कासनी। **प्रतिनिधि**–दरियाई नारियल। **मात्रा**–२ चावलसे लेकर ४ चावल तक।

वक्तव्य—पपीतामें कुचलाकी अपेक्षया दूने प्रमाणमें सतकुचला या विषमुष्टीन (अज़ाराकीन या स्ट्रिक्नीन) पाया जाता है जो एक सांघातिक विष है। सतर्कतापूर्वक इसका उपयोग करना चाहिये।

●

(३७७) परवल

फ़ैमिली : कूकुरबिटासे (Family : Cucurbitaceae)

नाम—(हिं०) पर(ल)वल, परवर, परोरा; (सं०) पटोल; (बं०) पटोल, पल्‌ता; (म०) पड(-र)वल; (गु०) पाडर, पटोल, परवल; (पं०) पलवल (मख्ज़न); (बम्ब०) पोटल; (ते०) पोट्‌ल; (ता०) पुटोल; (मल०) पटोलम्; ट्रीकोज़ान्थेस डिओइका (**Trichosanthes dioica** Roxb.)।

वक्तव्य—भारतीय वनस्पति होनेसे इसका कोई अरबी-फारसी नाम नहीं है। मख्ज़नुल्‌अदविया आदि यूनानी निघंटुग्रंथोंमें 'पल्वल' नामसे ही इसका उल्लेख मिलता है। आयुर्वेदके प्राचीन ग्रन्थोंके मतसे 'पटोल'से कड़वा परवल अभिप्रेत है। परन्तु भावप्रकाश आदि उत्तरकालिक ग्रन्थोंमें इससे 'मीठा परवल' विवक्षित है। सुतरां कड़वे (तिक्त) परवल या जंगलीपरवलका 'तिक्त पटोलिका' नामसे उन्होंने पृथक् उल्लेख किया है। परवल उत्तर भारतवर्षमें होता है, दक्षिणमें नहीं। यहाँ परवलकी विस्तृत परिमाणमें खेती की जाती है। दक्षिण भारतमें बनचिंचिडा (**Trichosanthes cucumerina** Linn.)को ही औषधीय पटोल (तिक्त या वन्य पटोल)के नामसे प्रयुक्त करते हैं। चिंचिडाकी एक कर्षित जाति (ट्रीकोजांथेस आंगूइना **Trichosanthes anguina** Linn.) भी होती है जिसका व्यवहार शाक-भाजीके लिए किया जाता है। महाराष्ट्रमें भ्रमवश इसे भी 'पडवल' कहते हैं। यूनानी निघंटुओंमें तिक्तपटोल (कडवा पलवल) का प्रयोग नहीं है।

उत्पत्तिस्थान—उत्तरभारतमें पंजाबसे आसाम-बंगाल तक इसकी वेल होती है। बनचिचिंडा (दक्षिणभारतीय पटोल) विन्ध्य एवं दक्षिण भारतमें जंगलीरूपसे होता है।

वर्णन—यह एक बेलका प्रसिद्ध फल है जो कंदूरी और कचरीकी तरह २-३ इञ्च लम्बा, गोला, दोनों छोरोंकी ओर क्रमशः पतला और सफेद होता है तथा उसपर लम्बाईके रुख धारियाँ पड़ी होती हैं। कच्चा फल (सफेदी

लिये) हरा और पकनेपर पीला या नारंगी रंग हो जाता है। इसको 'मीठा पटोल' और 'पटोल' भी कहते हैं। सुदीर्घकाल तक यत्नपूर्वक पालित होनेसे आरण्य तिक्त पटोल ही स्वादु पटोल रूपमें परिणत हो जाता है। स्वयंजात (जंगली-कडवा) और लगाया हुआ (मीठा) परवलकी ये दो जातियाँ होती हैं। औषधके लिये कड़वा परवल लेते हैं। इसका कांड और पत्र खर, तथा पुष्प श्वेत होता है।

उपयुक्त अंग—फल, पत्र, फुनगी और मूल तथा पंचांग।

प्रकृति—पहले दर्जेमें उष्ण और दूसरेमें तर। आयुर्वेदमतसे उष्णवीर्य है।

गुण-कर्म—सर, शुद्धरक्तजनक, शीघ्रपाकी और विशेषतः त्रिदोषविकारहर है। पत्र ज्वरघ्न है।

उपयोग—परवलको अकेले या मांसके साथ पकाकर खाया जाता है। इससे शुद्ध दोष (धातु) उत्पन्न होते हैं। शीघ्रपाकी होनेसे यह रोगियोंके लिए उत्तम पथ्यकर तरकारी है। इसके पत्रादिका स्वरस जीर्णज्वरोंमें पिलाया जाता है। सुतरां पत्रसहित इसकी बेल १ तोला लेकर सूखा धनियाके साथ अधकुटा करके रात्रिमें भिगो देते हैं। प्रातःकाल मल-छानकर आवश्यकतानुसार शुद्ध मधु मिलाकर आधा सुबह और आधा सायंकाल पिलाते हैं। जड़को जलमें घिसकर नस्य (सऊत्त) करना, पान और दंशजनित विषोंके लिये गुणकारक वर्णन किया जाता है। **अहितकर**—उष्ण प्रकृतिको। **निवारण**—हरा और सूखा धनियाँ। **प्रतिनिधि**—तुरई। **मात्रा**—बेल और पत्र ६ ग्राम से १२ ग्राम (६ माशा से १ तोला) तक।

आयुर्वेदीय मत—कड़वा परवल कटुविपाक, उष्णवीर्य, पित्तवर्धक, व्रणके लिए हितकर, वृष्य, रुचिकर, दीपन, तृप्तिघ्न, तृष्णानिग्रहण तथा कफ, रक्तविकार, कण्डू, कुष्ठ, ज्वर और दाहका नाश करनेवाला है। (च० सू० अ० ४, २७; सु० सू० अ० ३८, ४६; ध० नि०)।

नव्यमत—जड़ तीव्र रेचन; **फलगर्भ** भेदन; **प्रतान** और **वृंत** कटुपौष्टिक, ज्वरहर और आनुलोमिक; **पत्ते** कटुपौष्टिक, दीपन, पाचन और बल्य है। अधिकमात्रामें देनेसे वमन और विरेचन होता है। **बीज** कृमिघ्न है। पित्तप्रधानरोगोंमें परवलको विरेचनके लिए देते हैं। पित्तज्वर, जीर्णज्वर, कामला, शोथ और उदररोगोंमें इससे विरेचन होकर पचन-क्रिया सुधरती है। पित्तज्वरमें परवलकी पत्तो और धनियेका काढ़ा (या हिम) देते हैं। त्वग्रोगोंमें परवल और गुरुचका काढ़ा देते हैं। पत्तियोंका स्वरस लगानेसे इन्द्रलुप्त आराम होता है।

●

(३७८) पलास

फ़ैमिली : लेगूमिनोसी (Family : Leguminosae)

नाम—**वृक्ष** (हिं०) पला(रा)स, ढाक, टेसू, छिउल(ला); (फा०) पलः, दरख्ते पलः, (सं०) पलाश, किंशुक; (द०) पलासका झाड़; (बं०) पलाशगाछ; (म०) पलस; (गु०) खाखरो (वृक्ष), केसुडा (पुष्प); खाखयडों पल; (ते०) मोटुग; (ता०) मुरुक्कु; (मल०) मुरुक्कप्पूयम्; (ले०) बूटेआ मोनोस्पेर्मा **Butea monosperma** (Lamk.) Taub. (पर्याय–बूटेआ फ्रांडोसा *Butea frondosa* Koen. ex Roxb.); (अं०) बस्टर्ड टीक (Bastard-Teak)। **फूल**–(हिं०) ढाकके फूल, टेसू, केसू; (फा०) गुले पलास (टेसू); (सं०) पलाशपुष्प; (गु०) केसुडा। **शिम्बी या फली** (हिं०) ढकपन्ना। **बीज** (हिं०) पलासके बीज, पलास(ढाक)पापड़ा, पसदामा; (फा०) तुख्मपलः (पलास, ढाक); (सं०) पलाशबीज; (द०) पलाशपापड़ा; (म०) पलसाचीबो; (गु०) पलासपापड़ो, पलाशपापड़ा; (ले०) बूटेआ सेमिना (Butea Semina); (अं०) बूटिया सीड्स (Butea Seeds)।

गोंद—(हिं०) पलास(ढाक)का गोंद, कमरकस, चुनियाँगोंद, चुन्नी गोंद, ढाककी कनी; (फा०) समग़ पलः (पलास, ढाक); (सं०) पलासनिर्यास; (बं०) पलाशगुँ; (म०) पलसाचा गोंद; (गु०) खाखरनोगोंद; (लै०) बूटेआ गुम्मी (Butea Gummi); (अं०) बूटिआ गम (Butea Gum), बंगाल काइनो (Bengal Kino)।

वक्तव्य—बम्बईमें फैमिली : लाबिआटोकी साल्विआ प्लीबीआ (Salvia plebeia) नामक क्षुपके बीजको इस नामसे पुकारते हैं।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष और ब्रह्मा तथा उत्तरपश्चिम हिमालयमें झेलम तक।

वर्णन—यह एक मझोले कदका, पतझड़वाला प्रसिद्ध वृक्ष है। **पत्र त्रिपर्ण–एक वृंतमें तीन पत्रक होते हैं। साधारण वृंत** अतिदीर्घ होता है। मध्यस्थ पत्रकका वृंत पार्श्वस्थ उभय पत्रकोंके वृंतकी अपेक्षया दीर्घतर, मध्यस्थ पत्र क्वचित् किंचित् सगह्वराग्र होता है। पत्रक बृहद्, अण्डगोलाकार, पत्रोदर चिक्कण, तथा पृष्ठ रोमांकित होते हैं। वर्षाका पहला पानी पड़ते ही पलासमें नये पत्ते निकल आते हैं। वसन्तमें पतझड़के बाद इसमें फूल लगते हैं। फूल केसरिया नारंगी रंगका वासरहित, परमसुन्दर अशाख पुष्पदण्डपर स्थित; कुण्ड (Calyx) मखमलकी तरह कोमल कृष्णवर्ण सघन रोमोंसे व्याप्त; दल शिम्बीधारी उद्भिदके पुष्पदलकी तरह; शिम्बी चपटी सेमकी तरह और पतली, जिसके अग्रभागमें पतले कागजकी तरह आवरणमें आवृत एक ही वृक्काकृति बीज होता है; बीज–चपटा पैसेके बराबर २·५ से ३·७५ सें० मी० (१ से १$\frac{१}{२}$ इञ्च) लम्बा, २ सें० मी० से २·५ सें० मी० ($\frac{३}{४}$ से १ इञ्च) चौड़ा, १·५ मि० मी० से २ मि० मी० ($\frac{१}{१६}$ इञ्च से $\frac{१}{१२}$ इञ्च) मोटा और वजनमें हलका होता है। इसके ऊपरका छिलका बारीक, चमकदार और झुर्रीदार ललाई लिये भूरा होता है। इसकी नाभि बड़ी और प्रशस्त होती है और मग़ज़ पिलाई लिए सफेद होता है। गन्ध हलकी और स्वाद तिक्त, चरपरा होता है। इसके वृक्षसे एक प्रकारका गोंद प्राप्त होता है। सूखनेपर इसके छोटे-छोटे बेडौल चमकदार टुकड़े हो जाते हैं जो कालाई लिए लाल (गहरे लाल) होते हैं। यह अत्यन्त कषाय और गन्धरहित होते हैं।

उपयुक्त अंग—पत्र, छाल, फूल, बीज और गोंद।

रासायनिक संगठन—गोंद और छालमें काइनो-टैनिक और गैलिक अम्ल और बीजमें पीले रंगका एक अनुत्पत् तेल (Moodooga oil या Kino-tree oil) तथा बसाम्ल प्रभृति द्रव्य और फूलमें एक पीतरंजक द्रव्य होता है।

छाल और पत्र—

प्रकृति—शीत एवं रूक्ष आयुर्वेदमतसे उष्णवीर्य (भा० प्र०) है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—संग्राही, वीर्यपुष्टि(सांद्र)कर, उदरकृमिनाशक विशेषकर बाजीकर और मूत्रार्तवजनन है। ढाकके पत्ते (विशेषतः कोंपल) और छाल संग्राही होनेके कारण अतिसार, योनिसे नाना भाँतिका द्रव बहना (सैलानुर्रहम), शुक्रप्रमेह और शुक्रतारल्यके लिए उपयोग किये जाते हैं। कोंपलको चूर्ण बनाकर खिलाते और छालके काढ़ेसे गुदप्रक्षालन करनेसे योनिसे नाना प्रकारका द्रवस्राव (सैलानुर्रहम) बन्द होता है। योनिसंकोचनके लिए भी इसका उपयोग होता है। ढाककी छाल (पोस्त ढाक)के काढ़ेमें साठीके चावलोंको भिगो-सुखाकर चीनी (शकर सफेद)के साथ चूर्ण बनाकर या यथाविधि हलवा तैयार करके खिलाना भी उक्त रोगों विशेषकर श्वेतप्रदर (सैलानुर्रहम) और शुक्रप्रमेह एवं शुक्रतारल्यके लिए कृतप्रयोग है। अहितकर–अन्त्रके लिए। निवारण–अर्क-गुलाब और बाबूना। प्रतिनिधि–शफ्तालूके पत्र। मात्रा–कोंपल ३ ग्रामसे ५८ ग्राम (३ माशेसे ५ तोले) तक; छाल ५ ग्रामसे १२ ग्राम (५ माशेसे १ तोला) तक।

बीज (पलासपापड़ा)—

प्रकृति—दिल्लीके हकीमों के मतसे तीसरे और लखनऊके हकीमोंके मतसे पहले दर्जेमें गरम और खुश्क। आयुर्वेदमतसे उष्णवीर्य एवं रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—वातानुलोमन, उदरकृमिनाशक, चतुर्थकज्वरनाशक, लेखन, व्रणकारक और सर्प-वृश्चिकविषघ्न विशेषतः कृमिनिःसारक। उदरकृमिनिःसारण और नाशनके लिए चूर्ण या क्वाथके रूपमें अकेले या औषधियोंके साथ पिलाते हैं। चतुर्थकज्वर नष्टकरनेके लिए समप्रमाण कंजेकी गिरीके साथ गोलियाँ बनाकर वेगसे पूर्व खिलाते हैं, विशेषकर उस समय जबकि विरेचन द्वारा सौदाका शोधन कर लिया गया हो। लेखन और व्रण-कारक होनेके कारण त्वग्रोगों विशेषकर दद्रुमें इसका लेप करते हैं। व्रण डालकर यह सम्पूर्ण दूषित माद्दको बहा देता है। लेखन होनेसे फूलीके दूर करनेके लिए भी इसका उपयोग करते हैं। लिंगेन्द्रियके दोष दूर करनेवाले तिलाओंमें भी इसे डालते हैं और केवल इसीका तेल (रोग़न पलासपापड़ा) पतालयन्त्रके द्वारा निकालकर उपस्थेन्द्रिय-पर तिला (लेप) करते हैं। सर्प और वृश्चिकदंशमें पान और लेपकी भाँति इसका उपयोग करते हैं। मृगीमें इसका नस्य भी करते हैं। अहितकर–अन्त्रके लिए। निवारण–गुलाबपुष्पार्क। प्रतिनिधि–राई। मात्रा–०·२५ ग्रामसे १ ग्राम (२ रत्तीसे १ माशा) तक।

चुनिया गोंद (पलाशनिर्यास)—

प्रकृति—दिल्लीके हकीमोंके अनुसार गरम और खुश्क, परन्तु लखनऊके हकीमोंके मतानुसार पहले दर्जेमें शीत एवं रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—शुक्रस्तम्भ, वीर्यपुष्टि(सांद्र)कर, उपशोषण और आमाशयसंग्राहक। वीर्यस्तम्भन और वीर्यपुष्टिकर होनेके कारण वाजीकर और शुक्रप्रमेह एवं शुक्रतारल्यनिवारक माजूनों और चूर्णोंमें यह पुष्कल उपयोग किया जाता है। संग्राही और व्रणलेखन होनेके कारण श्वेतप्रदर एवं योनिसंकोचनके लिए भी पान और फलवर्तिकी भाँति बहुत प्रयुक्त होता है। इसको अकेले मिश्रीके साथ चूर्ण बनाकर उक्त रोगोंमें दूधके साथ भी उपयोग करते हैं। कटिको शक्ति देनेके लिए स्त्री-पुरुषोंको सेवन कराया जाता है। इसी हेतु इसको कमरकस कहते हैं। दीपन (आमाशयबलदायक) और आमाशयसंग्राहक होनेसे गुदभ्रंश और संग्रहणीमें प्रयुक्त होता है। अहितकर–निम्न अंगोंको। निवारण–कतीरा, अर्कगुलाब और चन्दन। प्रतिनिधि–बबूलका गोंद। मात्रा—१ ग्रामसे ३ ग्राम (१ माशासे ३ माशे) तक।

फूल (गुलटेसू)—

प्रकृति—उष्णता लिए शीत एवं खुश्क।

गुण-कर्म तथा उपयोग—श्वयथुविलयन, दोषविलोमकर्ता, उदर संग्राहक और मूत्रार्तवजनन। शोथहर, दोषविलोमकर्ता और मूत्रल होनेसे बस्तिशूल, बस्तिशोथ, जरायुशोथ, मूत्रकृच्छ, रुद्धमूत्र, रुद्धार्त्तव और वृषणशोथमें गुलटेसूके काढ़ेसे परिषेक (नतूल) करते हैं और साठांको ऊपरसे बाँध देते हैं। सूजाक और अतिसारमें इसका फाण्ट या चूर्ण सेवन कराया जाता है। अहितकर–शीतप्रकृतिके लिये। निवारण–नमक। मात्रा—७ ग्रामसे १२ ग्राम (७ माशेसे १ तोला)।

आयुर्वेदीय मत—**पलाश** कषाय, कटु, तिक्त, उष्णवीर्य, क्षारद्रव्योंमें श्रेष्ठ, कृमिघ्न, संग्राही, दीपन, वृष्य, तथा प्लीहाकी वृद्धि, गुल्म, ग्रहणीरोग, अर्श, व्रण और शोष (राजयक्ष्मा)का नाश करनेवाला है। (सु० सू० अ० ३८, ४६; ध० नि०; भा० प्र०)। पलाशका **फूल** मधुर, कटु, तिक्त, कषाय, मधुरविपाक, गतिवीर्य, ग्राही, भग्न-संधानकर, वातल तथा कफ, पित्त, रक्तविकार, मूत्रकृच्छ्र, तृषा, दाह, वातरक्त और कुष्ठका नाश करनेवाला है। (ध० नि०; भा० प्र०)। पलाशके **फल** (बीज) लघु, उष्णवीर्य, कटुविपाक, रूक्ष तथा प्रमेह, कृमि, वात, कफ, कुष्ठ, गुल्म और उदररोगको दूर करनेवाले हैं। (ध० नि०; भा० प्र०)। पलाशके बीजोंका **तेल** कफपित्तप्रशमन है (सु० सू० अ० ४५)।

नव्यमत—बीज कृमिघ्न, भेदन और कुष्ठघ्न है। फूल वेदनास्थापन और मूत्रजनन है। गोंद ग्राही है। इसकी क्रिया विशेषतः आमाशयपर होती है। खानेके बाद गलेमें खट्टा पानी आता हो तो उसपर यह गोंद उत्तम औषध है। जीर्ण अतिसार और आँवमें इसे देते हैं। फूलों के फांटमें कलमीशोरा मिलाकर देनेसे और फूलोंको पानीके साथ गरम करके पेडू और कमरपर बाँधनेसे मूत्रावरोध दूर होता है। बीज कृमियोंके लिए उत्तम औषध है।

◆

(३७९) पाठा

फैमिली : मेनीस्पेर्मासे (Family : Menispermaceae)

नाम—(हिं०) पाढ़, पाढ़ी (देहरादून, मीरजापुर), मिर्चियाकंद, कालीपहाड़; (सं०) पाठा, अम्बष्ठा; (बं०) आकनादि; (पं०) पाड; (मार०) पाठ; (गु०) कालीपाठ, करंडियुं; (म०) पहाडवेल, बेलपाडली, पाडावल; (ते०) पाडा; (का०) पाडावलि; (मल०) पाडक्किलंगु; (अं०) वेल्वेट लीफ (Velvet leaf); (लें०) : (१) छोटीपाठा अर्थात् पाढ़ी—सीस्साम्पेलॉस पारेईरा **Cissampelos pareira** Linn. (संस्कृतमें इसे 'लघुपाठा' कहते हैं)। और (२) बड़ीपाठा अर्थात् पाढ़ा–स्टेफानिआ हर्नान्डीफोलिआ **Stephania hernandifolia** Walp. (इसे संस्कृतमें 'राजपाठा' कहते हैं)।

उत्पत्तिस्थान—छोटीपाठा भारतवर्षके सभी प्रदेशोंमें (नीचेके पहाड़ी जंगलों तथा मैदानके उष्ण जंगलों में) और बड़ीपाठा पूर्वी और पश्चिमीघाट, देहरादून, बिहार, कछार, पूर्वीबंगाल, सिक्किम और आसाममें होती है।

वर्णन—छोटीपाठाकी पतली आरोहिणी या प्रतानिनी लता होती है जिसमें बहुवर्षीय मूलस्तम्भ और पतली, लम्बी, छोटे वृक्षों और झाड़ियोंपर फैली हुई तथा मृदुश्वेताभ रोमोंसे आवृत शाखाएँ होती हैं। पत्तियाँ ३·७५ सें० मी० से १० सें० मी० (१½ से–४ इञ्च) लम्बी, पत्रनालसे ढालकी भाँति पीठकी ओर जुड़ी हुई (Peltate), लट्वाकार या कभी-कभी वृत्ताकार–वृक्काकार या हृद्वत्, लोमश ऊर्ध्वपृष्ठपर गहरे हरे रंगकी और थोड़ी रोमश तथा अधः पृष्ठपर अधिक रोमश होनेसे फीके रंगकी होती हैं। इसमें नर और मादा पुष्प अलग-अलग होते हैं अर्थात् पुष्प एकलिंग छोटे और श्वेताभ या पीताभ; फल मटरके बराबर लाल या नारंगी वर्णके और पीलू जैसे होते हैं। बड़ीपाठाकी देखनेमें पाठातुल्य लता होती है। परंतु दोनोंकी पुष्पमंजरियोंमें स्पष्ट अंतर होता है। पाठामें बाह्य कोशके दल ४ (पुं० पुष्प) और २ (स्त्रीपुष्प) और इसके बाह्य कोशके दल ६–१० और आभ्यन्तर दल ३-५ (पुं० पुष्प) अथवा (स्त्री-पुष्प) दोनों चक्रोंमें होते हैं। पाठाकी अपेक्षया इसमें पत्ती प्रायः बड़ी (१।। इंच–५।। इंच), चिकनी और शिराजालिका कमसघन होती है। मूल कन्दवत्, गाजरके सदृश बाहरसे खाकी और भीतरसे सफेद, ऊपरसे स्थान-स्थानपर सिकुड़ा हुआ, दानेदार उभारयुक्त, उपमूलरहित, स्वाद अत्यन्त तिक्त होता इन लक्षणोंसे है। इसे वास्तविक पाठासे अलग कर सकते हैं।

उपयुक्त अंग—मूल और पत्र। मात्रा–मूलका चूर्ण १·२५ ग्राम से ३·७५ ग्राम (१०-३० रत्ती)।

रासायनिक संगठन—छोटी पाठाकी जड़में सिसैम्पेलीन (Cissampeline) नामक तथा अन्य ऐल्केलॉइड। इनके अतिरिक्त पौधेके रसमें साबुनी सत्व (सेपोनिन); बड़ी पाठामें भी साबुन सत्व (सेपोनिन) होता है।

प्रकृति—तीसरे दर्जेके आदिमें गरम एवं खुश्क; आयुर्वेदके मतसे उष्णवीर्य।

आयुर्वेदीय मत—पाठा रसमें तिक्त, विपाकमें लघु, उष्णवीर्य, ग्राही, सन्धानीय, स्तन्यशोधन, त्रिदोषशमन, बल्य तथा ज्वर, अतिसार, विष, कुष्ठ, कण्डू, वमन, शूल (पेटका दर्द) और हृद्रोगका नाश करनेवाली है। (च० सू० अ० ४, २७; सु० सू० अ० ३८; ध० नि०)।

नव्यमत—पाठा लघु, तिक्त, बल्य, ग्राही, मूत्रजनन और शोथहर है। इसे अल्पप्रमाणमें देनेसे भूख लगती है, अन्न पचता है और अन्त्रकी श्लेष्मलत्वचा (कला)को शक्ति प्राप्त होती है। बड़े प्रमाणमें देनेसे दस्त साफ होता है। मूत्रेन्द्रियकी श्लेष्मकलापर इसकी संग्राहक, शामक और बलकारक क्रिया होती है। पाठा मूत्रेन्द्रियसे बाहर निकलती है। इसलिए मूत्रेन्द्रियको उत्तेजित करके मूत्रका प्रमाण बढ़ाती है। नूतन और जीर्णवस्तिशोथ, बस्तिका अभिष्यन्द, मूत्रकृच्छ्र, रक्तमूत्र और सांद्रमेहमें पाठा बड़े प्रमाणमें दी जाती है। इन विकारोंमें पाठाके साथ गुरुच और मूलेठी भी देते हैं। कुपचन, पेटका दर्द, अतिसार, ज्वरातिसार तथा रक्तप्रवाहिकामें अल्पप्रमाणमें पाठा देते हैं। आँतोंकी बीमारीमें पाठाके साथ सुगन्धि द्रव्य देते हैं। यह नियतकालिक ज्वरप्रतिबन्धक, विरेचन, दीपन और सर्पविषघ्न है तथा शोथ एवं अजीर्णमें इसका प्रयोग करते हैं। खाजमें पत्रका बाह्य प्रयोग होता है।

◆

(३८०) पान (तंबूल)

फ़ैमिली : पीपेरासे (Family : Piperaceae)

नाम—(हिं०;बं०;द०) पान; (अ०) तंबूल, तांबूल; (फा०) तंबूल, बर्गेतंबूल; (सं०) ताम्बूलल्वली, नागवल्ली; (गु०) नागरबेल (नांपान), पान; (म०) नागवेल नागरवेल; पानवेल्य; (मा०) नागरवेल; (लें०) पीपेर बेटेल (Piper betel L.); (अं०) बीटिल या पेपर लीफ (Betel or pepper leaf)।

वक्तव्य—'तंबूल' और 'तांबूल' क्रमशः इसके फारसी-अरबी नाम वस्तुतः इसके संस्कृत नाम ही हैं। उत्तरभारतकी सभी भाषाओंमें इसके पत्तेको 'पान' कहते हैं।

इतिहास—भारतवर्षमें पानका व्यवहार अतिप्राचीन है। यही नहीं अब यह यहाँके आतिथ्यका प्रधान द्रव्य है। प्राचीन यूनानी हकीम दीसक़ूरीदूसने 'मेलेडाथ्रोन' नामसे पानका उल्लेख किया है।

उत्पत्तिस्थान—सम्भवतः यह जावाका मूलनिवासी है। भारतवर्षके उत्तरप्रदेश, बंगाल, मध्यप्रदेश और मद्रास आदिमें तथा लंका और मलायामें पत्तेके लिए बड़े पैमानेपर इसकी खेतीकी जाती है।

वर्णन—यह एक बहुवर्षायु लताके प्रसिद्ध पत्ते हैं, जो खानेके लिए भी व्यवहृत होते हैं तथा औषधके काम भी आते हैं। पत्ते चौड़े, गोल, अण्डाकार, नुकीले (हृद्वत्) होते हैं, और पत्रोदर चमकदार होता है। स्वाद उष्ण, सुगन्धित और तिक्त होता है। भारतवर्षमें बारह-तेरह प्रकारका पान (माघी, महोबा, बनारसी, कलकतिया, कपूरी मालवी आदि) होता है। कुलंजन इसकी जड़ नहीं है।

रासायनिक संगठन—इसके पत्तेमें एक हल्का पीलेरंगका सुगन्धित तीक्ष्ण दाहकस्वादयुक्त (उष्ण) उत्पत्तैल (Betel oil) ४·२ प्रतिशत तक होता है। कोमल पत्तोंमें यह विशेषरूपसे पाया जाता है। उक्त तेलमें फीनोल तथा टर्पीन होता है। पानभेदसे उत्पत् तैलकी मात्रामें भी न्यूनाधिकता होती है।

कल्प तथा योग—अर्क तंबूल।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम और खुश्क। आयुर्वेदमतसे उष्णवीर्य (सु०)। देशावरी मोतदिल है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—हृदयोल्लासकारक, उष्णताजनन, श्वयथुविलयन, दोषतारल्यजनन, प्रमाथी, कफोत्सारि, वातानुलोमन, यकृदामाशयबलदायक, लालाजनन, दंतमूलको दृढ़ करनेवाला और मुखदौर्गन्ध्यहर है। लालाप्रवर्तक होनेसे पान मुखकी रूक्षताको दूर करता और किसी कदर प्यास बुझाता है। इसके अन्दर एक प्रकारकी सुगन्धि पायी जाती है। इसलिए इसके खानेसे विशेषतः जबकि इसे कत्था, चूना, सुपारी, इलायची, सौंफ आदिके साथ खाया जाय तब मुख एवं श्वासोच्छ्वासकी दुर्गंधको दूर करता, मसूढ़ोंको दृढ़ करता, दन्तवेष्ट (क़ुरूहलिस्सा), दन्तवेष्टप्रकोप (वरमलिस्सा) और मंदाग्निमें लाभ पहुँचाता है। वृक्कशोथ और मधुमेहमें पिपासा शान्त करनेके लिए भी इस प्रकार पानका खाना लाभदायक है। उष्णताजनन होनेसे जठराग्निको दीप्त करता है। इसी हेतु तथा श्लेष्मनिःसारक होनेके कारण कास और कृच्छ्रश्वासमें गुणकारक है। यह शीतजन्य स्वरघ्न (बुह्हतुस्सौत) रोगको दूर कर देता है, विशेषतः जबकि मुलेठीका चूर्ण डालकर खाया जाता है। पानको तेलसे चुपड़कर गरमकरके फोड़े-फुंसियोंपर बांधनेसे उनको बैठाता है। इसी प्रकार वक्षपर बाँधनेसे बालकासमें लाभ करता है। शीतल शिरःशूल, यकृच्छोथ, वृषणशोथ, कंठशूल (दर्देगुलो) और शोथयुक्त ग्रन्थियोंपर बाँधनेसे उनको लाभ पहुँचाता है। शिश्नपर तिला लगाने के उपरांत सामान्यतः पान बांधे जाते हैं। **अहितकर**—उष्णप्रकृतिवालोंके लिए विशेषतः निहारमुँह। **निवारण**—सफेद इलायची। **प्रतिनिधि**—लौंग।

आयुर्वेदीय मत—पान कटु, तिक्त, कषाय, कटुविपाक, उष्णवीर्य, सुगंधित, विशद, स्वरको सुधारनेवाला, दीपन, रुचिकर, दाहकर, पित्तप्रकोपक तथा वात, कफ, मुँहके कण्डू-क्लेद, मल और दुर्गन्ध, पीनस और खाँसीका नाश करनेवाला है (सु०सू०अ० ४६,रा०नि०)। यह कामाग्निसंदीपक और कृमिनाशक है। (यो०र०)।

नव्यमत—पान उत्तम दीपन, पाचन, श्लेष्मघ्न, शोथघ्न, वेदनास्थापन और व्रणरोपण है। पानका रस उत्तम पूतिहर है। कारबोलिक एसिडसे भी यह अधिक जन्तुघ्न और कफप्रधान रोगोंमें बहुत उपयुक्त होता है। दमा, फुफ्फुसनलिकाशोथ और श्वासमार्गद्वारशोथमें पानका रस देते हैं। कण्ठरोहिणी (डिफ्थीरिया)में पानका रस गरम पानीमें डालकर कुल्ला करनेसे जन्तुओंका नाश होता है। गलेकी सूजन कम होती है और कफ छुटता है। भोजनोपरांत पान खानेसे लालाका प्रमाण बढ़कर आमाशयको उत्तेजना मिलती है। पान गरम करके सूजी हुई ग्रन्थिपर बाँधनेसे सूजन और पीड़ा कम होती है। स्तनशोथपर पान गरम करके बाँधनेसे दूध नष्ट होता है और शोथ उतरता है। **मात्रा**—स्वरस १/२ से १ तोला तक।

●

(३८१) पानडी

नाम—(हिं०) प(पा)नडी, जमी, पर्पटी।

उत्पत्तिस्थान—जैसलमीर, बीकानेर और जोधपुरके इलाकेमें इसके पौधे सामान्यरूपसे पाये जाते हैं।

वर्णन—इसका क्षुप आदमीके कदसे कुछ छोटा होता है। पत्ते चौड़े दाउदीके पत्रके समान होते हैं। इसमें श्वेतहरिताभ पुष्पगुच्छ लगते हैं। फल नहीं आते; पत्र एवं पुष्प अत्यन्त सुगन्धित होते हैं। अस्तु, सुगन्धिहेतु ही इनका प्रयोग किया जाता है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—रक्तशोधक एवं मनःप्रसादकर है। इसका काढ़ा बनाकर पिलाते हैं। यह जवारिश तथा माजूनके योगोंमें पड़ती है। इसका इत्र तथा अर्क भी खींचते हैं। जोधपुरके पाली प्रदेशमें सुगंधिके लिए इसे नस्ययोगोंमें योजित करते हैं। इसे कपड़ेमें भी इसी हेतु रखते हैं। **मात्रा**—७ ग्राम या ७ माशा (ख०अ०)।

●

(३८२) पालक

फ़ैमिली : केनोपोडियासे (Family : Chenopodiaceae)

नाम—(हिं०) पालक(की); (अ०) इस्फ़ानाख़ (इ० बै०), इस्फ़नाख़; (फा०) इस्पानाख़ (क-ज); इस्पानख़ (ज); (सं०) पालक्य, पालङ्ग (ङ्गच); (बं०) पालङ्; (गु०) पालक (ख); (लै०) **स्पीनासिआ ओलेरासेआ (Spinacia oleracea** Linn.); (अं०) स्पिनैक (Spinach)। **बीज** (हिं०) पालकके बीज; (अ०) वज़्रुल् इस्फ़ानाख़; (फा०) तुख़्मे पालक, तुख़्मे इस्पानाख़।

उत्पत्तिस्थान—फारस। समस्त भारतवर्षमें इसकी खेती की जाती है।

वर्णन—यह एक प्रसिद्ध साग है। **कांड**, सरल, गोल, कोनदार, खोखला, लगभग २ फुट ऊँचा; **पत्र** बृहत्, स्थूल, मांसल, गहरा हरा, साधारण, त्रिकोणाकृति, दीर्घवृंतयुक्त; **पुष्प** अतिक्षुद्र, अवृंत, पत्रकोणस्थित (Axillary) और झुमकोंमें और नरजातीय क्षुपके फूल कांडके छोरपर हरे रंगके होते हैं। **फल**—किसी-किसी भेदमें कंटकित और किसीमें मसृण होते हैं। **बीज**—तिकोने, पिलाई लिये हरे और स्वादमें फीके होते हैं।

उपयुक्त अंग—क्षुप वा पत्र और बीज। औषधके लिये सुर्खीमायल बीज प्रशस्ततर होते हैं।

रासायनिक संगठन—इसके क्षुपमें लबाब, मांसल पदार्थ, क्षारनत्रेत्, वसा, शर्करा, तंतु और भस्म होता है। बीजोंमें एक प्रकारका गाढ़ा तेल (Chenopodium oil) निकलता है। इसके अतिरिक्त इसमें **फोलिक एसिड** (Folic acid) पाया जाता है, जिसकी आवश्यकता लाल कणों की उत्पत्तिके लिये होती है। इसकी कमीसे पाण्डु-रोग या अल्परक्तता (Anaemia)की बीमारी होती है।

प्रकृति—पहले दर्जेसे शीत एवं तर।

गुण-कर्म तथा उपयोग—संताप एवं दाहप्रशमन तथा मूत्रजनन है और उष्ण ज्वर एवं कंठशूलमें विशेष गुणदायक है। पालकका साग शीघ्रपाकी और प्रकृतिमार्दवकर (खर) है तथा उष्णज्वरों, राजयक्ष्मा, उरःक्षत, मलावरोध, कामला और सदाहमूत्रमें गुणदायक वस्तु है। कंठशूलमें इसके पत्रस्वरससे गण्डूष करना और चीनी मिलाकर पीना लाभप्रद है। **अहितकर**—शिरःशूलजनक। **निवारण**—बादामका तेल, घी और दालचीनी। **प्रतिनिधि**—कुलफा और बथुआका साग। **मात्रा**—५ ग्राम से ७ ग्राम (५ माशे से ७ माशे) तक।

प्रकृति—पहले दर्जेमें शीत एवं तर।

गुण-कर्म तथा उपयोग—संतापहर और मूत्रल है तथा उष्णज्वर एवं हृच्छूलमें विशेष गुणदायक है। रक्तज और पित्तज ज्वरों, राजयक्ष्मा और मूत्रदाहको दूर करनेके लिये अकेला या उपयुक्त भेषजोंके साथ इसे पीस-छानकर पिलाते हैं। **अहितकर**—प्लीहाके लिये। **निवारण**—गिलेमख़्तूम। **प्रतिनिधि**—कुलफाके बीज। **मात्रा**—५ ग्राम से ७ ग्राम (५ माशे से ७ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—पालक चौलाईके अनुसार वातकारक (वादी), किंचित् चरपरा, मधुर, शीतवीर्य, रूक्ष, मलमूत्रावरोध तथा कफपित्तमें हितकर, कफकारक, भेदक, भारी, विष्टम्भजनक (मलरोधक), पथ्य, तृप्तिकारक तथा मद, श्वास, रक्तपित्त और विषका नाश करता है। (सु० सू० अ० ४६; रा० नि०; आ० प्र०)।

(३८३) पालकजूही

फ़ैमिली : आकान्थासे (Family : Acanthaceae)

नाम—(हिं०) पालकजूही, पालिक जुहिया, जूईपानी; (फा०) गुलबगला; (सं०) यूथिकापर्णी (नवीन); (बं०) जोईपाणी; (द०) कबूतरका झाड़; (म०) गजकर्णी; (बम्ब०) जुइपान; (गु०) गजकरण; (ले०) **र्‍हीनाकांथुस नासूटा Rhincanthus nasuta** (L.) Kurz. (पर्याय—*R. communis Nees*)।

वक्तव्य—किसी-किसीने इसका संस्कृत नाम 'यूथिकापर्णी' लिखा है।

उत्पत्तिस्थान—डेक्कन प्रायद्वीप, लंका और पश्चिमी घाटोंमें यह जंगली होती है। समस्त भारतवर्ष विशेषकर पश्चिम और दक्षिण भारतवर्षके बहुशः भागों (बगीचों) और लंकामें इसे लगाते हैं।

वर्णन—यह एक झाड़ी है जो लगभग ५ फुट ऊँची होती है। जड़ कठिन, विपुल उपमूलयुक्त; कांड पुष्कल, सरल, सशाख, पुराने कड़े भाग गोल और सुंदर मसृण राखके रंगकी छालयुक्त, कोमल शाखायें और नये कल्ले जोड़युक्त, मसृण और अप्रशस्त षट्कोण; पत्र आमने-सामने, सवृंत, चौड़े-भालाकृति, कुण्ठिताग्र; पत्रोदर मसृण और पत्रपृष्ठ लोमयुक्त; पत्रप्रांत खण्ड २ से ४ इंच लंबा और १ से २ इंच चौड़ा होता है। इसमें सफेद फूलोंकी तुरी लगती है। चाबने पर पत्रका स्वाद चरपरा और मसलनेपर इसमेंसे अप्रिय (बुरी) गंध आती है।

उपयुक्त अंग—पत्र विशेषतः जड़।

रासायनिक संगठन—मूल और छालमें र्‍हीनाकैन्थिन (Rhinacanthin) नामक एक लाल रंगका रालदार पदार्थ होता है। यह इसका कार्यकर वीर्य (गुणोत्पादक सत्व) है और क्राइसोफैनिक एसिड तथा फ्रैंग्युलिक एसिडसे इसका बहुत साम्य है।

कल्प तथा योग—जिमाद दाद।

प्रकृति—गरम और तर।

गुण-कर्म तथा उपयोग—लेखन, व्रणकारक और कुष्ठघ्न एवं दद्रुघ्न। पालकजूहीकी जड़की छाल दादके लिए परम गुणदायक भेषज है। दादको कपड़ेसे रगड़कर इसे अकेला या उपयुक्त भेषजके साथ पानी या नीबूके रसमें पीसकर लेप करते हैं। इसके हरे पत्तोंका रस निचोड़कर झाईं और छीपपर लगाते हैं।

नव्यमत—मूल, पत्र, बीज दाद और अन्य चर्मरोगोंके लिए उपयोगी औषध है। दूधमें पकाया हुआ मूल बाजीकरणके लिये प्रयुक्त होता है। यह सर्पविषका अगद है।

●

पिपरमिंट

फ़ैमिली : लाबिआटी (Family : Labiatae)

नाम—(हिं०) पिपरमिंट; (अ०) अन्नअ़नाउल् फ़िलिफ़िली; (फा०) पूदनः फ़िल्फ़िली; (ले०) **मेन्था पीपेरीटा (Mentha piperita** Linn.); (अं०) पेपरमिंट (Peppermint), बार्मिंट (Balm mint)।

उत्पत्तिस्थान—यूरोप और उत्तरी अमरीकाके विस्तृत भूभाग पर यह होता है। चीनमें भी इसकी पैदाइश बहुतायतसे होती है। भारतीय बगीचोंमें इसकी खेती की जाती है। अब भारतवर्षमें मेन्थोलके लिये कतिपय संस्थाओं द्वारा व्यावसायिक रूपसे पिपरमिंटकी खेती करनेका प्रयास भी किया जा रहा है।

वर्णन—इसके कोमल काण्डीय क्षुप होते हैं। काण्ड सामान्यतया बैंगनी लिये चतुष्कोणाकार (चौकोर); **पत्र** सवृंत, ५ से ७·५ सें० मी० (२-३ इंच) लंबा और लगभग २ सें० मी० से ३·७५ सें० मी० ($\frac{३}{४}$ इंच से १$\frac{१}{२}$ इंच) चौड़ा, दंतुर, सूक्ष्म किन्तु अप्रत्यक्षतया लोमश। सम्पूर्ण पौधे (विशेषतः पत्तों)में एक विशिष्ट स्वाद एवं गंध पाया जाता है। **पुदीना नहरी** (Mentha aquatica), पुदीना विशेष (Corn Mint)–इसमें पत्रकुण्डल काण्डके चतुर्दिक् होते हैं और प्रत्येक कुण्डलके नीचे युग्मपत्र होते हैं। **मेन्था आर्वेन्सिस** (Mentha arvensis)—यह पश्चिमी हिमालय, कश्मीर, (५,०००–१०,००० फुट), पंजाब, कुमाऊँ और गढ़वालमें होता है। **मेंथोल** (पुदीनेका **सत**–सत्व या फूल) तथा इसका तेल (**ऑयल पीपरमिंट**) मेन्थाके पीपरीटा जाति तथा प्रधानतया इसीके पीपेरासेउस (Piperaseus) भेदसे जापान और चीनमें निकाला जाता है और वहांसे भारतवर्षमें आता है।

उपयुक्त अंग—क्षुप, पुष्पित और ताजी वनस्पतियोंसे आसवन विधि (Distillation) द्वारा प्राप्त तेल (**ऑयल पेपरमिंट**) तथा तेलसे प्राप्त पुदीनेका **सत या फूल** (**मेन्थोल**)।

रासायनिक संगठन—इसमें उत्पत् तेल (Essential oil) ०·५% से १·५% होता है, जिसमें २६ २ से ५६°/० स्वतंत्र **मेन्थोल** (सतपुदीना) और ४ प्रतिशत अथवा ४·४°/० से ९·९°/० ईस्टर्स (Esters) होते हैं। इसकी खेतीमें फसल काटनेमें १०-१५ दिन आगे-पीछे होनेपर या शुष्कीकरणकी अनवधानतासे मेन्थोलकी प्रतिशत मात्रामें कमी (३० प्रतिशत तक) हो जाती है।

कल्प एवं योग—क्षुपका चूर्ण (मात्रा–२ से ४ ग्राम या १५ से ३० रत्ती); पिपरमिटका तेल (Ol. Menth. Pip.), अर्कपुदीना (Aq. Menth. Pip.), मेन्थोल या सतपुदीना, पेपरमिंट कैम्फर आदि योग पुदीनेसे ही तैयार किये जाते हैं। अमृतधारा जैसे योगोंमें भी मेन्थोल एक उपादान होता है।

प्रकृति—गरम व खुश्क।

गुण-कर्म तथा उपयोग—वाह्य प्रयोगसे पुदीनेका सत उत्तम कोथप्रशमन, स्वापजनन (सुन्नता लानेवाला) और त्वग्दोषहर है। खिलानेसे इसकी क्रिया बहुत कुछ कपूर जैसी होती है। यह **उत्तेजक, दीपन एवं वातानुलोमन** है। उत्क्लेश, आध्मान, रुग्णता और छर्दिनिवाणार्थ एवं शिशुओंके लिए हृद्यरूपमें इसका उपयोग होता है। दीपन एवं वातानुलोमन होनेसे इसको कुपचन, अजीर्ण और उदरशूलमें देते हैं। इससे उलटी (विशेषतः सगर्भावस्थामें होनेवाली) बन्द होती है। दन्तशूलमें रूईको १-२ बूंद पेपरमिंटके तेलमें भिगोकर दांतके नीचे दाबनेसे पीड़ा शान्त होती है। एक भाग मेन्थोल और दो भाग कपूरको एकत्र मिलानेसे वह द्रव बन जाता है। किसी भी प्रकारकी वातजन्य पीड़ाको शमन करनेके लिए इसकी मालिश करते हैं। अजीर्णजन्य वमन, अतिसार, विसूचिका और उदरशूलमें इसको २-५ बूंद शक्करमें मिलाकर देते हैं।

●

(३८४) पियारांगा

फ़ैमिली : रानुन्कुलासे (Family : Ranunculaceae)

नाम—(हिं०) (पिप) यारांगा, पीलीजड़ी, शूप्रक, पीतरांगा; (सं०) पीतरंग ? (बम्ब०) पीआरंग; (ले०) थालीक्ट्रुम् फोलिओलोसुम् (**Thalictrum foliolosum** DC.)।

उत्पत्तिस्थान—यह हिमालयमें सर्वत्र ५ से ७ हजार फुटकी ऊँचाईपर होता है। खसिया पर्वतमालापर पियारांगाके पौधे प्रचुरतासे मिलते हैं। संग्रहकर्त्ता इसे सिलहट और इस्लामाबादमें लाते हैं। जहांसे यह अन्य स्थानोंको भेजा जाता है।

वर्णन—पियारांगाके मूल ललाई लिए पीले रंगके, १ अंगुली तक मोटे, १५ सें० मी० से २० सें० मी० (६ से ८ इञ्च तक) लम्बे और स्वादमें बहुत तिक्त होते हैं। कहीं-कहीं इसको 'ममीरा' भी कहते तथा उसमें इसका मिलावट करते हैं।

उपयुक्त अंग—मूल।

रासायनिक संगठन—इसके मूलमें भी **बर्बेरीन** (Berberine) नामक ऐल्केलॉइड पाया जाता है।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम और खुश्क।

गुण-कर्म तथा उपयोग—वेदनास्थापन, श्वयथुविलयन, दीपन, श्लेष्मनिःसारक विसूचिकाहर और सर्पविषनाशक है। यह प्रायः रोगोंमें प्रयुक्त किया जाता है। परन्तु यह हैजेमें परम गुणदायक है। इस रोगमें इसको अर्क गुलाबमें घिसकर पिलाते हैं। शीतल शोथोंको बैठानेके लिए और कई प्रकारके दर्दोंको शमन करनेके लिए इसका लेप करते हैं। कास, श्वास और फुफ्फुसशोथमें उपयुक्त भेषजोंके साथ इसका प्रयोग करते हैं। सर्पदष्टको घिसकर पिलाते और दंशस्थानपर लगाते हैं। यह विषनाशक है। नेत्राभिष्यंदमें भी इसका प्रयोग करते हैं। **अहितकर**–उष्ण प्रकृतिको। **निवारण**–कालीमिर्च। **प्रतिनिधि**–पपीता और दरियाई नारियल। **मात्रा**–०·५ ग्राम से १ ग्राम (४ रत्ती से १ माशा) तक।

नव्यमत—पियारांगाके खानेसे पेटमें गरमी प्रतीत होती तथा जठररस उत्पन्न होता है और अन्न पचता है। इसमें उत्तम कटुपौष्टिक गुण होनेके साथ यह सारक भी है। इसमें थोड़ा विषमज्वरको रोकनेका गुण भी है। जीर्णज्वरमें भी यह उपयोगी है। गंभीर रोगके पीछे जो शरीरमें दुर्बलता आती है उसमें और आमाशयकी शिथिलतासे जो कुञ्चन होता है, उसमें विशेष उपयोगी है। इससे रोगीको भूख लगती है और प्रकृति अच्छी है ऐसा प्रतीत होता है। नेत्ररोगोंमें ममीरीके समान इसका उपयोग किया जाता है। संक्षेपमें पियारांगा रसमें तिक्त, वीर्यमें उष्ण एवं रूक्ष, कटुपौष्टिक, दीपन, पाचन, शोथहर, ज्वरघ्न, चक्षुष्य, मृदुरेचक, श्लेष्मनिःसारक और श्वासहर है। **मात्रा**–०·२५ ग्रा० से ०·६२५ ग्रा० (२ से ५ रत्ती) तक।

◆

(३८५) पिस्ता

फैमिली : आनाकार्डिआसे (Family : Anacardiaceae)

नाम—वृक्ष (हिं०) पिस्तेका वृक्ष, (फा०) दरख्ते पिस्तः, (सं०) मुकूल विटप; (ले०) **पीस्टासिआ वेरा Pistacia vera** Linn.); (अं०) पिस्टेसिओ-नट ट्री (Pistachio nut tree)। फल–(हिं०; बं०; पं०; गु०) पिस्ता; (अ०) फ़ुस्तुक़, मुक़श्शर; (फा०) पिस्तः; (सं०) निकोचक (सु०), मुकूल (क); (म०) पिस्ते; (गु०) पिस्तां; (अं०) पिस्टेसिओ नट (Pistachio-nut)। **फलका छिलका**–(फा०) पोस्ते पिस्त; (अं०) पिस्टेसिओ हस्क (Pistachio husk)। **पिस्तेका फूल**—(फा०) बुज़गंज, बुज़गंद, गुलेपिस्तः; (बं०) गेटेला; (अं०) पिस्टेसिओ गॉल्स (Pistachio Galls)। **निर्यास**–(अ०) इल्कुल् अंबात (इ० बै०); (अं०) रेजिन ऑफ पिस्टेसिओ ट्री (Resin of Pistachio-tree)।

वक्तव्य—'फ़ुस्तुक़' फारसी पिस्तःसे अरबी बनाया गया है।

उत्पत्तिस्थान—सीरिया, फारस और अफगानिस्तानमें इसके वृक्ष लगाये जाते हैं। फारस और अफगानिस्तानसे यह भारतवर्षमें आता है।

वर्णन—यह एक वृक्षका प्रसिद्ध फल (मेवा) है जो लगभग जैतूनके आकारका होता है। इसके ऊपर नम सुर्खीमायल कसेला और तारपीनगन्धी एक छिलका और भीतर एक सफेद कठोर गुठली होती है। तोड़नेपर इसके दोनों कपाट पृथक हो जाते हैं और भीतरसे एक नुकीला मग्ज (Almond) निकलता है, जिसका छिलका पतला और बैंगनी लिये लाल होता है। इसके भीतर हरिताभस्नेहयुक्त दो दल होते हैं, जो आपाततः देखनेमें नीम के बीजकी गिरीकी भाँति प्रतीत होते हैं। किन्तु स्वादमें यह तैलीय और स्वादिष्ट होते हैं। इनको जलमें रगड़ने पर इमल्सनके रंगका घोल प्राप्त होता है। 'मग़्ज़ पिस्ता' और इसका बाहरी छिलका (पोस्ते पिस्तः या पोस्त बेरूँ पिस्ता) जो मग्ज निकालनेके बाद बच रहता है औषधमें प्रयुक्त होता है। पिस्तेके वृक्षोंके पत्तोंपर विभिन्न आकार-प्रकारके बनाये हुये कीड़ेके घर (कीटकोश) या कीटगृह (Galls)को पिस्तेका फूल (गुलेपिस्ता) कहते हैं। यह एक ओरसे गुलाबी और दूसरे ओर पिलाई लिए सफेद, कोई अंजीरके आकारके, कोई गोल और कोई अंडाकृति होते हैं। स्वाद खट्टा और अत्यन्त कसैला तथा सुगन्धित होता है। यह भी औषधमें प्रयुक्त होता है।

रासायनिक संगठन—बीजके मग्जमें एक **मीठा सुगन्धित** तेल और पिस्तेके फूलमें टैनिक एसिड तथा टैनिन (४५ प्रतिशत) तथा राल (७ प्रतिशत) या तैलीय राल (ओलियो-रेजिन) (इल्कुल् अंबात) जिसपर इसकी गन्ध निर्भर करती है, होता है।

मग्ज (पिस्ता)—

प्रकृति—दिल्लीके हकीमोके मतसे दूसरे दर्जेमें (लखनऊके हकीमोंके मतसे पहले दर्जेमें) **गरम और तर**। आयुर्वेदके मतसे भी उष्णवीर्य एवं स्निग्ध अर्थात् उष्ण एवं तर (च०; सु०) है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—**हृद्य, मेध्य, बृंहण, वाजीकर** और श्लेष्मनिस्सारक। पिस्तेकी गिरी (**मग्ज पिस्ता**)का चिकित्सोपयोग हृदय एवं मस्तिष्कके बलवर्धक एवं मेध्य क्रियाके लिए किया जाता है। यह मस्तिष्ककी रूक्षताको दूर करता है। इसे वाजीकर माजूनोंमें डालकर क्लीवताके रोगियोंको खिलाते हैं। वृक्क एवं शरीरके दौर्बल्यको दूर करनेके लिए भी यह गुणकारी है तथा कासमें श्लेष्मोत्सर्ग (एखराजज़ बलग़म)में सहूलियत करता है। **पिस्ताके फूल** मोतदिल, दूसरे दर्जेमें खुश्क है और श्वेतप्रदर तथा कासमें गुणदायक हैं। **हब्बगुलेपिस्ता** इसका प्रसिद्ध योग है। **अहितकर**–अधोशाखागत व्याधियोंके लिए। **निवारण**–खूबानी, सिकंजबीन और आलूबोखारा। **प्रतिनिधि**–मीठे बादामका मग्ज। **मात्रा**–६ ग्रामसे १२ ग्राम (६ माशेसे १ तोला तक)।

छिलका (पोस्ता बेरूँ पिस्ता)—

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें **शीत एवं रूक्ष** (खुश्क)।

गुण-कर्म तथा उपयोग—संग्राही, दीपन, हृदयबलदायक, उत्क्लेश (गसियान) और छर्दिनाशक, विशेषकर अतिसार और उत्क्लेशहर। यह अतिसार बन्द करने, हृदय और अन्त्रामाशयको बल देनेके लिए प्रयुक्त होता है। अकेले या उपयुक्त भेषजोंके साथ बारीक पीसकर छिड़कनेसे मुखपाक आराम होता है। उत्क्लेश और वमन नाश करनेके लिए इसका फांट बनाकर पिलाते हैं या किसी शर्बतमें मिलाकर चटाते हैं। इससे हिचकी भी बन्द होती है। **मात्रा**–३ ग्रामसे ५ ग्राम (३ माशेसे ५ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—पिस्ता (मुकूल) मधुर, गुरु, स्निग्ध, उष्णवीर्य, बल्य बृंहण, वृष्य, वातहर और कफ तथा पित्तको बढ़ानेवाला है। (च० सू० अ० २७; सु० सू० अ० ४८)।

नव्यमत—पिस्तेके फूलका चूर्ण पानीमें ८५ प्रतिशत और मद्यमें ७५ प्रतिशत विलीन होता है। **धर्म**–संग्राहक। गलेकी शिथिलतामें और घाटी (कौआ) लटकने या बढ़नेपर इसकी गोलियाँ बनाकर (मुँहमें रखते हैं)। पुराने **अतिसारमें इसका चूर्ण** खिलाते हैं।

(३८६) पीपर

फ़ैमिली : ऊर्टिकासे (Family : Urticaceae)

नाम—(हिं०) पीपर; (अ०) शज्रतुल्मुर्तअश; (फा०) दरख़्तेलरज़ाँ; (सं०) अश्वत्थ, पिप्पल; (बं०) आशुद गाछ; (गु०) पीपलो; (म०) पिंपल; (नेपाल) पिप्ली; (ले०), **फीकुस रेलीजिओसा (Ficus religiosa** Linn.); (अं०) दी पीपल ट्री (The Peepul Tree)।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष। यह बंगाल, मध्यभारत और हिमालयके निचले प्रदेशोंमें जंगली होता या लगाया जाता है।

वर्णन—यह एक प्रसिद्ध क्षीरी विशाल छायातरु है।

उपयुक्त अंग—छाल और पत्र।

रासायनिक संगठन—छालमें **टैनिन**, रबड़ (काउचूक) और मोम होता है।

प्रकृति—गरम और खुश्क। आयुर्वेदके मतसे शीतवीर्य एवं रूक्ष (कै० नि०)।

गुण-कर्म तथा उपयोग—श्वयथुविलयन, रूक्षण छर्दिघ्न और उबकाईको दूर करनेवाला विशेषत: **फोड़ेको बिठानेवाला है।** पीपलके पत्रको गरम करके फोड़े पर बाँधते हैं। यह उसके पकाने या बैठानेमें सहायता करता है। इस प्रयोजनके लिये पीपलकी छालको भी जलमें पीसकर फोड़े पर लेप किया जाता है। पीपलके पेड़की छालको जलाते हैं। जब धुआँ बंद हो जाता है तब उसको जलमें डालकर बुझाते हैं और फिर छानकर रोगीको पिलाते हैं। इससे वमन, उबकाइयाँ और पिपासा नष्ट हो जाती है। कोई इसी अभिप्रायसे पीपलके पत्तोंको जलाकर गरम-गरम राखको जलमें बुझाकर जलको छानकर पिलाते हैं। पार्श्वशूल (जातुज्जनव) और बालकोंके डब्बा (पसली चलने) रोगोंमें पीपलके पत्तोंकी राखका निथरा हुआ पानी (आब ज़ुलाब) पिलाया जाता है। पीपलकी छालको उबालकर उस काढ़ेसे दन्तवेष्टशोथ और मुखपाकमें कवलग्रह कराते हैं। स्त्री-पुरुषके शुक्रमेह (जरायन)में अन्य औषधियोंके साथ इसके चूर्णकी भाँति इसका उपयोग होता है और रूक्षण होनेके कारण उक्त रोगोंमें इससे लाभ होता है। प्रतिनिधि–बरगदके पत्ते।

आयुर्वेदीय मत—पीपल कषाय, शीतवीर्य, रूक्ष, गुरु, मूत्रसंग्रहण, वर्ण्य, योनिविशोधन, दुर्जर तथा व्रण, पित्त, कफ और रक्तविकारकको दूर करनेवाला है। (च० सू० अ० ४, वि० अ० ८, सु० सू० अ० ३८; कै० नि०)। पीपलके फल, मूल, त्वचा और कोंपलके साथ दूध पका, उसमें शर्करा एवं मधु मिलाकर पीनेसे वाजीकर गुण होता है। (सु० चि० अ० २६)।

नव्यमत—पीपलकी छाल स्तम्भन, रक्तसंग्राहिक और पौष्टिक; **पत्र** आनुलोमिक; **कोमलपत्र** पहिले रेचन और पीछे स्तम्भन; फल पाचन आनुलोमिक, संकोचविकासप्रतिबन्धक और रक्तशोधक है।

●

(३८७) पीपल

फ़ैमिली पीपेरासे (Family : Piperaceae)

नाम—फल (हिं०) पीपल (र); (अ०) दारफ़िलफ़िल्; (फा०) फ़िल्फ़िल् दराज़; (सं०) पिप्पली; (पं०) मगा; (द०) पिपली, पिपलियाँ; (बं०) पिपुल; (गु०) पीपर(ल०), लिंडीपीपर; (म०) पिंपली; (सिंध) तिघिली; (थारु) पीपल; (अं०) लांग पेपर (Long pepper)। जड़ (पीपलामूल)—(हिं०) पि(पी)पली(ला)मूल, पिपलामूर;

(अ०) फ़िल्फ़िल्मू(मो)यः; (फा०) बेख़ दारफ़िल्फ़िल्, बेख़ फ़िल्फ़िल् दराज़; (सं०) पिप्पलीमूल; (बं०) पिपुलीमूल; (थारू) **पिपलामूल**; (म०) पिंपली मूल; (गु०) पीपला(रा)मूल, पीपरगंठोडा; (अं०)पेपर(पाइपर)रूट (Pepper or Piper root)।

वक्तव्य—पीपलकी दो जातियाँ बाजारमें मिलती हैं। (१) **छोटीपीपल या पीपल**, जिसकी बेलको लेटिनमें **पीपेर लोंगुम् Piper longum** Linn. (या **चाविका रॉक्सबुर्घी** (**Chavica roxburghii** Miq.) कहते हैं। 'फ़िल्फ़िल्' संस्कृत पिप्पलीसे फारसी 'पिल्पिल्' द्वारा अरबी बनाया गया हैं। लेटिन और अंग्रेजी नाम भी संस्कृत पिप्पलीसे व्युत्पन्न है। (२) **बड़ीपीपल या गजपीपल**। इसीके काण्डको **चव्य या चविका** कहते हैं, जिसका विवरण 'चाब' शब्दके अन्तर्गत किया गया है। यहाँ पीपलका वर्णन किया गया है।

उत्पत्तिस्थान—उत्तर-पूर्वी और दक्षिणी भारतवर्ष तथा लंका। पूर्वी बंगालमें फलके लिए इसकी खेती की जाती है।

वर्णन—**पीपल** एक बेलदार बूटीका प्रसिद्ध फल है जो २·५ सें० मी० से ५ सें० मी० (१ इंचसे २ इञ्च) तक लम्बा, आकृतिमें कच्चे शहतूत के समान, परन्तु उससे छोटा और बारीक होता है। सूखनेपर यह खाकस्तरी श्यामवर्ण हो जाता है। स्वाद कालीमिर्चकी तरह कड़वाहट लिये तीक्ष्ण एवं चरपरा होता है। **पीपलामूल** पीपलकी बेलकी जड़ है जो ग्रन्थिल, कड़ी और भारी होती हैं। इसकी आकृति किसी भाँति असारून (तगर)की तरह और रंगत श्यामता लिए खाकस्तरी होती है और तोड़ने पर अन्दरसे सफेद निकलती है। स्वाद पीपलके समान कड़वाहट लिये तीक्ष्ण एवं चरपरा होता है।

उपयुक्त अंग—धूपमें सुखाये हुए अपक्व फल (पीपल) और जड़ (**पीपलामूल**) वा कांड।

रासायनिक संगठन—राल, उत्पत् तेल, श्वेतसार (पिष्ट), निर्यास, वसामय तेल, अनैन्द्रियक पदार्थ और पाइपेरीन (Piperine) नामक एक ऐल्केलॉइड १%से २%।

कल्प तथा योग—अर्क फिलफिल, **जुवारिश फलाफली, माजून फलाफली**।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें **गरम** और खुश्क। आयुर्वेद मत से अनुष्णाशीत।

गुण-कर्म तथा उपयोग—दीपन, वातानुलोमन, वाजीकर, उष्णताजनन और श्वयथुविलयन। **अग्निमांद्य, उदरशूल, उदरानाह** दूर करने और पाचन-शक्ति बढ़ानेके लिए इसका उपयोग कराया जाता है। वाजीकरणार्थ अकेले या उपयुक्त भेषजोंके साथ इसका चूर्ण या माजून बनाकर खिलाते हैं। कास और श्वासमें इसे शहदमें मिलाकर चटाते हैं। **आमवात**, वातरक्त, गृध्रसी और अन्य **शीतल कफज** व्याधियोंमें इसे सम्मिलित करते हैं। बकरीकी कलेजीमें पीपलके कुछ दाने चुभाकर अग्निपर सेकते हैं। उनसे जो पानी टपकता है उसे नेत्रमें लगानेसे रतौंधी और धुन्ध (ज़ुल्मते बस्र) आराम होता है। उपयुक्त भेषजोंके साथ खरल करके फूली, ढलका (नेत्रस्राव) और नाखूनाको नष्ट करनेके लिए इसे नेत्रमें लगाते हैं। **अहितकर**–शिरःशूलजनक है। **निवारण**–बबूलका गोंद, चंदन और अर्कगुलाब। प्रतिनिधि–सफेदमिर्च और सोंठ। **मात्रा**–१ ग्रामसे २ ग्राम (१ माशेसे २ माशे) तक।

पीपलामूल—

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम और खुश्क। आयुर्वेदीयमतसे उष्णवीर्य एवं रूक्ष (भा० प्र०)।

गुण-कर्म तथा उपयोग—दीपन, वातानुलोमन, वाजीकर, उष्णताजनन, लेखन, श्वयथुविलयन विशेषतः दीपन और पाचनकर्ता है। यह पीपलसे अधिक वीर्यवान् है। अग्निमांद्य, अरुचि, आमाशयके वायुजन्य शूल, शूल (कुलंज) और उदरानाहमें इसका उपयोग करते हैं। इसे बाजीकर योगोंमें सम्मिलित करते और शीतल कफज व्याधियोंमें उपयुक्त भेषजोंके साथ खिलाते हैं। कूल्हेका दर्द, गृध्रसी, वातरक्त और प्लीहाकाठिन्यमें इसका लेप लगाते हैं। चेहरेका रंग निखारनेके लिये इसको जलमें पीसकर लेप करते हैं। अहितकर–वीर्य और दृष्टिको कम

करता है। **निवारण**—बबूलका गोंद और सफेद चंदन। **प्रतिनिधि**—नारेमुष्क और सूरंजान। **मात्रा**—१ ग्रामसे २ ग्राम (१ माशासे २ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—पीपल कटु, मधुर विपाक, स्निग्ध, अनुष्णशीत, लघु, दीपन, पाचन, वृष्य, रसायन, शिरोविरेचन, उर्ध्वभागदोषहर, पित्तको न बढ़ानेवाली तथा कफ, वात, तृप्ति, हिक्का, कास, शूल, उदररोग, ज्वर, कुष्ठ, प्रमेह, गुल्म, अर्श, प्लीहारोग और आमवातका नाश करनेवाली है। (च० सू० अ० २, ४, २७; सु० सू० अ० ३८, ३९, ४६; भा० प्र०)। **पीपलामूल** कटु, उष्णवीर्य, लघु, रूक्ष, दीपन, पाचन, पित्तकर, वेदना तथा कफवात, उदर, आनाह, प्लीहरोग, गुल्म, कृमि, श्वास और क्षयका नाश करनेवाला है। (च० सू० अ० २५; भा० प्र०)।

नव्यमत—पीपल उष्ण, वातहर, श्वासहर, दीपन, नियतकालिकज्वरप्रतिबन्धक और गर्भाशयसंकोचक है। कालीमिर्चकी क्रिया जैसे पचनेन्द्रियपर विशेष होती है वैसे पीपलकी क्रिया फुफ्फुस और गर्भाशयपर विशेष होती है। शीत और कफ प्रधान रोगोंमें पीपलसे लाभ होता है। प्रसव होनेमें बिलम्ब होता हो तो पीपलामूल, ईशरमूल और हींग पानके साथ देते है। इससे आवीका जो बढ़कर शीघ्र प्रसव हो जाता है। प्रसवके अनन्तर पीपरामूलका फांट देनेसे जरायु सरलतासे गिर जाता है। प्रसूतिज्वर, शीतज्वर, आमवात, गृध्रसी और **कफज्वरमें पोपलको मधुके साथ देते हैं।**

●

(३८८, ३८९) पीलू (छोटा, बड़ा)

फ़ैमिली : साल्वाडोरासे (Family : Salvadoraceae)

नाम। (१) छोटा—(हिं०) पीलू(लु), पिलुआ; (हिं०; बं०) छोटा पीलू; (यू०) अराक; (अ०) बरबर; (फा०) दरख्त मिस्वाक, दरख्त शोरा; (सं०) पीलु, गुडफल, लघुपीलु; (पं०) पीलूं, वण, जाल; (म०) पीलु; (बम्ब०) पिल्वु; (गु०) खारीजाल(र); (लें०) **साल्वाडोरा पेर्सिका (Salvadora persica** Linn.); (अं०) दी टूथब्रश ट्री (The Tooth-brush Tree)।

(२) बड़ा—(हिं०) बड़ा पीलू; (बम्ब०) खांखड़; (सं०) वृद्धपीलु, महापीलु; (गु०) मीठीजाल(र); (लें०) **साल्वाडोरा ओलेऑइडेस (Salvadora oleoides** Dcne.)।

उत्पत्तिस्थान—उत्तरप्रदेशके इटावा आदि प्रदेश, पश्चिमी बिहार, दक्षिणपंजाब, गुजरात, कच्छ, काठियावाड़, राजस्थान, सिंध और बलूचिस्तान आदि रूक्षोष्ण प्रदेशोंमें पीलूके वृक्ष अधिक होते हैं।

वर्णन—इसके बड़े-बड़े गुल्म अथवा छोटे तथा टेढ़े-मेढ़े वृक्ष होते हैं जिनकी शाखायें नीचे झुकी हुई और दुर्बल होती हैं। **पत्तियाँ** आमने-सामने चर्मिल या मांसल और अण्डाकार-आयताकार, ३·३ सें० मी० से ५ सें० मी० (१·२५ से २ इञ्च) लम्बी तथा दोनों शिरोंपर गोल होती हैं। **पुष्प** सूक्ष्म हरिताभ श्वेत या पिलाई लिए हरे रंगके चतुरंग-भागी पौष माघमें आते हैं। **फल** एक बीजवाला, माँसल और मसलकर सूँघनेपर राई आदिके समान तीक्ष्ण गंध देता है। फल चैत-बैसाखमें पक जाते हैं और पकनेपर श्यामता लिए लाल रंगके होते हैं। फलका स्वाद मीठा और चरपरा होता है। इसके पके काला पड़े फलको अरबीमें **कबास** कहते हैं।

उपयुक्त अंग—पत्र, पुष्प, मूल, मूलत्वक्, काष्ठ, कांडत्वक्, बीज और बीजोत्थ तेल।

रासायनिक संगठन—पत्र और मूलमें ट्राइमेथिलेमाइड (Trimethylamide) नामक क्षाराभ; बीजमें वसामय तेल और ईथरियल ऑयल (Etherial oil) होता है।

प्रकृति—समशीतोष्ण एवं खुश्क अथवा पहले या दूसरे दर्जेमें गरम और खुश्क। आयुर्वेदीय मतसे उष्णवीर्य (सु०) है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—**लेखन**, **श्वयथुविलयन**, **कफघ्न**, **स्रोतोद्घाटक**, वाजीकर, अतिसारघ्न, गर्भाशय-शोथनाशक तथा अर्श, खर्जू एवं कुष्ठ इनमें लाभ करता है। छाल सूजन एवं पित्तका निर्हरण दस्तके रास्ते करती है तथा जलोदरमें लाभ पहुँचाती, वाजीकरण करती और बावगोला, तापतिल्ली, अश्मरी एवं वायु तथा कफके रोगोंको नष्ट करती हैं। इसकी टहनीका दातौन दाँतोंको स्वच्छ एवं चमकीला बनाता है, उनको शक्ति देता मुखकी दुर्गन्ध दूर करके सुगंध उत्पन्न करता है और मसूढ़ोंको ढीला करनेवाले द्रवोंको निकाल देता है। परन्तु इसकी अधिकतासे गलशुण्डी (कौए) पर जोश आता है। **पत्तों**का लेप श्वयथुविलयन है। जैतूनके तेलमें बनाये हुए इसके पत्तोंके तेलकी मालिससे पीड़ा शमन होती है। इस तेलसे गर्भाशयशोथ, अर्श और सिरका गंज (खालित्य) दूर होता है। **फल**को पकाकर पीनेसे मूत्रका प्रवर्तन और वस्तिका शोधन होता, आमाशयको शक्ति प्राप्त होती (दीपन) तथा दस्त बन्द होता है। इसी प्रकार बीज भी आमाशयबलदायक (दीपन) और अतिसारनाशक है। इसके काले भेदका रस प्रतिदिन २$\frac{१}{४}$ तोला ६ रत्तीकी मात्रामें पीनेसे, कुछ कालोपरांत शरीर कृश एवं दुर्बल हो जाता है। इसमें खिजाबकी दवा भिगोनेसे बाल खूब काले होते हैं। आगसे जलेपर इसके **पत्तों**का लेप करना चाहिए। इस लेपसे प्रसेक रुक जाता है तथा मुखविसर्प (माशिरा), कक्षा, उष्णशोथ और नेत्रभिष्यंद एवं कालस्फोट (जुमरा) आराम होता है। इसके पत्ते शरीरावयवपर रखनेसे मल और दोष भीतर घुसने नहीं पाते तथा उस अंगमें स्थित मल विलीन एवं उत्सर्गित हो जाते हैं। फोड़ोंपर इसके पत्तोंके लेपसे पीप निकलना बन्द हो जाता है तथा उनका शोधन-रोपण होता और प्रसार रुक जाता है, कारण यह क्षोभरहित उपशोषण है। रोग़न ईरसामें पीलूके फल पका-छानकर नस्य लेनेसे सिरदर्द जाता रहता है, तथा शिर एवं हृदयको शक्ति प्राप्त होती है। सिरकेमें पकाकर इसके लेप करनेसे प्लीहाशूल मिटता है। मुखके रोगोंकी उत्तम औषधि है। फल आर्तवजनन है। **अहितकर**—खानेसे पेचिस उत्पन्न करता है। **निवारण**—कतीरा और इसबगोल। **प्रतिनिधि**—चंदन। **मात्रा**—१४ तोले २ माशे; फल ४·५ ग्रामसे १०·५ ग्राम (४$\frac{१}{२}$ माशेसे १०$\frac{१}{२}$ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—पीलू तिक्त, कटु, कटुविपाकी, तीक्ष्ण, उष्णवीर्य, किंचित् स्निग्ध, सारक शिरोविरेचन, विरेचनोपग, ज्वरहर, पित्तहर तथा गर (कृत्रिम विष), कफ, वात, रक्तपित्त, अर्श और बस्तिके रोगोंको दूर करनेवाला है। (च०सू०अ० २, ४, २७, वि०अ० ८; सु०सू०अ० ४६; ध०नि०)। पीलूका फूल शिरोविरेचन (सु०सू०अ० ३९)। पीलूका फल कटुविपाकी, स्नेहन, वस्तिशमन तथा वात, कफ और अर्शका नाश करनेवाला है। (ध०नि०)। पीलूके फलका रस मधुर, तीक्ष्ण और गुल्म तथा अर्शका नाश करनेवाला है। (ध०नि०)। छोटा पीलु कटु, कषाय, खटमीठा, स्वादिष्ट, सारक, दीपन और गुल्म तथा अर्शका नाश करनेवाला है। बड़ा पीलू मधुर, वृष्य, रुचिकर, दीपन, पित्तप्रशमन तथा विष और आमका नाश करनेवाला है। (रा०नि०)।

नव्यमत—छोटे **पीलूके फल** वातानुलोमन मूत्रजनन और अवरोधोद्घाटक और **पत्तियाँ** सनाय जैसी विरेचन हैं। और हर प्रकारके विषोंकी अगद और चरपरी हैं। संधिवातमें इसका लेप करते हैं। स्कर्वीरोगमें इसका पत्रस्वरस दिया जाता है। बीजोंको तेलकी क्रिया राईके तेलके समान है। तेल संधिवातमें लगाते हैं। मूलकी छाल कटु, उत्तेजक, स्वेदजनन और थोड़ो मूत्रजनन है। यह रुद्धार्तवमें उत्तेजक एवं बल्यरूपमें प्रयुक्त होती है। मूल (कांड)की छालका काढ़ा ज्वरमें जब रोगी प्रलाप करता हो और अशक्त होता हो तब चेतनावर्धनार्थ देते हैं। बड़े **पीलुकी पत्तियाँ** उष्णवीर्य, वातनाशक, मूत्रजनन और क्षीरजनन हैं। **छाल** तिक्त उष्णवीर्य, दाहजनक और उत्तेजक है। **फल** उष्णवीर्य, लघु, दीपन वाजीकर वातनाशक और मूत्रजनन हैं। फलमें पुष्कल शर्करा होती है। संधिवात और प्लीहावृद्धिमें फल देते हैं। बीजोंसे निकाला हुआ तेल गाढ़ा हरापन लिए और तीक्ष्णगंधवाला होता है। जीर्णसंधिवातमें तेलको मालिश करनेसे पीड़ा कम होती है। बम्बईमें तेल 'खांखड़का तेल' के नामसे मिलता है।

(३९०,३९१,३९२) पुदीना

फ़ैमिली : लाबिआटी (Family : Labiatae)

नाम—(हिं०) पुदीना; (अ०) फ़ूतनज, फ़ूदनज, हबक़; (फ़ा०) पूद(दि)नः, पू(पो)दीनः; (सं०) पुदिनः, पूतिहा, रोचनी; (बं०) पुदिना; (पं०) पोदीना; (म०) पुदिना; (गु०) पुदीनो; (लै०) **मेन्था साटीवा (Mentha sativa** Linn.); (अं) इंडियन पेपरमिंट (Indian peppermint)।

वक्तव्य—मेन्था लेटिन शब्द, यूनानी 'मिन्था (एक कुमारी)से व्युत्पन्न है। मेन्थाका अरबी रूपांतर 'मि(मे)न्सा' है जिसे मख़्जन और मुहीतके फ़ूदनजके प्रकरणमें प्रमादवश मशी लिखा है। अरब लोग इसे भारतवर्षमें लाये। यही कारण है कि आयुर्वेदकी प्राचीन संहिताओंमें इसका उल्लेख नहीं मिलता है।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष विशेषतः उत्तर भारतवर्षके बगीचों, घरों और खेतोंमें लगाया जाता है। हिमालयकी पहाड़ियोंमें यह स्वयंजात भी होता है। परन्तु चीनमें इसकी उत्पत्ति बहुतायतसे होती है।

वर्णन और भेद—यह भूमिपर फैलनेवाला एक प्रसिद्ध क्षुप है जिसकी पत्तियाँ चटनी आदिके काममें ली जाती हैं। इसे **पूदिनःबुस्तानी** (उद्यानज (बागी) पुदीना) कहते हैं। मात्र पुदीना शब्दसे यही विवक्षित होता है। औषधिकर्म एवं खान-पानमें इसीका व्यवहार प्रचुरताके साथ किया जाता है। यूनानी निघण्टुग्रन्थोंमें पुदीनाके इन तीन भेदोंका उल्लेख मिलता है—

(१) पूदनः बर्री (अल्नअ्नाउल् बर्री) अर्थात् जंगली पुदीना (**Mentha sylvestris** Linn.) अथवा वाइल्ड या हॉर्स मिन्ट (Wild or Horse Mint)—यह पश्चिम हिमालयमें ४,०००-१२,००० फुटकी ऊँचाईपर होता है। गंध और स्वाद पहाड़ी पुदीनावत् होता है। (२) पूद(दि)नः कोही अर्थात् पहाड़ी पुदीना—(लै०) **मेन्था स्पीकाटा या विरिडिस (Mentha spicata** Linn. or **M. viridis** Linn.) तथा (अं०) गार्डेन या स्पियर मिन्ट (Garden or Spear Mint) और (३) पूद(दि)नः नहरी अर्थात् नहरी या जलज पुदीना (अ०) अल्हबक़ुल् नहरी, हबक़ुल्माऽ, नाऽनाऽ (इ० बै०); (लै०) **मेन्था आक्वाटिका (Mentha aquatica)** तथा (अं०) मार्श या हेयर मिंट (Marsh or Hair Mint), इन दोनोंको भारतीय बगीचोंमें लगाते हैं। कोई-कोई इसे ही उद्यानज पुदीना मानते हैं।

रासायनिक संगठन—इसमें एक उत्पत् तेल जिसका संगठन पेपरमिंटके समान होता है। राल, निर्यास और कषाय सत्व होता है। चीनकी जलभूमि इसके विशेष अनुकूल होनेसे चीनदेशका पुदीना अधिक सुगन्धित होता है। इसीसे चीन और जापानमें इसके बड़े-बड़े कारखाने हैं, जहाँपर पुदीनाका सत विशेष प्रमाणमें तैयार होकर देश-देशान्तरोंमें भेजा जाता है। इसके दूसरे भेदमें उत्पत् तेलका प्रमाण पिपरमिंटसे कम होता है। वि० दे० 'पेपरमिंट'।

कल्प तथा योग—स्वरस १/२-१-२ तोला; फॉट २-४ तोला; अर्क़ २–४ तोला; अर्क़ पुदीना मुरक्कब, जुवारिश पुदीना (फ़ूतंजी), अर्क़ नाऽनाऽ, सफ़ूफ़ नाना, सिकंजबीन नानाई।

वक्तव्य—इसका क्वाथ बनाकर देना ठीक नहीं, कारण वह दुर्जर हो जाता है। क्वाथ बनाकर देना ही अभीष्ट हो तो उसमें अदरक और अभावमें कालीमिर्च मिला लेना चाहिए।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम और खुश्क (रूक्ष)। आयुर्वेदमतसे उष्णवीर्य।

गुण-कर्म तथा उपयोग—सांद्रदोषपाचन (मुञ्ज़िज मवाद ग़लीज़), श्वयथुविलयन, दोषतारल्यजनन (मुलत्तिफ़), शोणितोत्क्लेशक (जाज़िज), त्वग्रागकारक (मुहम्मिर जिल्द), कृमिघ्न, वेदनास्थापन, मूत्रार्तवजनन, स्वेदन,

वातानुलोमन और दीपन। इसमें अगद गुण भी है। पुदीना अधिकतया आमाशयिक रोगों, जैसे आमाशयदौर्बल्य, अग्निमान्द्य, उदरशूल, उदरानाह और क्षुधामांद्यमें उपयोग किया जाता है। वमन और उत्क्लेशनिवारणके लिए इसका क्वाथ या अर्क पिलाते हैं। अगदगुणविशिष्ट होनेके कारण यह विसूचिकामें भी प्रयुक्त होता है। इसका रस पिलाने और वस्ति देनेसे अन्त्रकृमि नष्ट हो जाते हैं। कर्ण और नासाकृमि भी इसका रस टपकानेसे मर जाते हैं। आर्तवजननके लिए यह अत्यन्त वीर्यवान् औषधि है। इसलिए गर्भावस्थामें इसकी फलवर्ति (हमूल) स्थापन करनेसे गर्भपात हो जाता है। यह श्वास और कासमें लाभकारी है और कफको पतला करके उक्त रोगमें लाभ पहुँचाता है। स्वेदन होनेसे यह कामलामें भी गुणदायक है और दोषको पतला एवं द्रवीभूत करके त्वचाके स्रोतोंसे बाहर निकालता है। मद्यके साथ लेप करनेसे यह त्वचाकी कालाई (कृष्णवर्णता)को दूर करता है। बिच्छू और भिड़ आदिके काटे हुए स्थानपर लेप करनेसे यह विषको खींच (जज्ब) लेता और दर्दको शान्त करता है। इसका सत्व (जौहर) भी निकाला जाता है जो सत पुदीनाके नामसे प्रसिद्ध है और आमाशयके रोगोंमें पुष्कल प्रयुक्त होता है। माजूने फूतंजी इसका प्रसिद्ध योग है जो जमे हुये रक्तबस्ति अथवा आमाशयगत रक्तस्कंदनको पिघलने तथा आमाशयशूल और यकृच्छूलको नष्ट करनेके लिए गुणदायक है तथा कफज एवं जीर्ण-ज्वरोंमें गुणकारक एवं प्रयोगित होता है। अहितकर–अन्त्रके लिए। निवारण–कतीरा। प्रतिनिधि–नहरी पुदीना। मात्रा–३ ग्रामसे ५ ग्राम (३ माशेसे ५ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—पुदीना कटु, उष्णवीर्य, रोचन, दीपन तथा वायु, कफ, उलटी, पेटका दर्द और अफारा तथा कृमियोंका नाश करनेवाला है।

नव्यमत—पुदीना उष्ण, रूक्ष, वातप्रशमन, दीपन, आर्तवजनन, आक्षेपहर और उत्तेजक है। पुदीना अजीर्ण, कुपचन, उदरशूल उदराध्मान और वमनमें देते हैं। प्रसूतिज्वरमें पुदीनेका स्वरस १–२ तोला प्रतिदिन देनेसे बहुत लाभ होता है। कफज्वर, आमाशयकी अशक्ता, अतिसार, वातरोग और अश्मरीमें इसका स्वरस देनेसे लाभ होता है।

◆

(३९३) पुनर्नवा

फ़ैमिली : नीक्टाजिनासे (Family : Nyctaginaceae)

नाम—(हिं०) गदहपुन्ना (पूर्नी), साँठ(ठी), साँटा, साटा, ठिक्री; (सं०) पुनर्नवा (रक्त–); (पं०) इटसिट, (बं०) गदापुण्या; गदहपूरना, (मा०) साटी(टो); (म०) घे(घें)टुली; (गु०) रानीसाहोडी, साटेडी; (बिहार) सांजर; (मला०) पुनर्नवा; (ता०) मूक्किरट्टे; (ले०) अटडमामिडि; (ले०) **बोएर्हाविआ डिफ्फूजा Boerhaavia diffusa** L. (पर्याय–*B. repens* L.); (अं०) स्प्रेडिंग होग-वीड (Spreading Hog-weed); (पुर्त०) (Beju-code pergacaea)।

उत्पत्तिस्थान—यह सर्वत्र भारतवर्ष, विशेषतः घासवाली, कंकरीली, पथरीली जमीन में होता है।

वर्णन—इसकी बहुवर्षायु, भूमिपर फैलनेवाली (प्रसरी) लता होती है। वर्षारम्भमें इसमें नये अंकुर उत्पन्न होते हैं। प्रतिवर्ष पुरानी जड़से ही नवीन वनस्पतिकी भाँति पुनः-पुनः पल्लवित होनेके कारण पुनर्नवा इसकी अन्वर्थ संज्ञा है। काण्ड प्रायः ललाई लिये हुये एवं बारीक होता है। पत्तियाँ चौड़ी लट्वाकार, अधस्तल पर प्रायः श्वेताभ, आमने-सामनेकी पत्तियाँ छोटी-बड़ी, सबसे बड़ी पत्तियाँ ५ सें० मी० × ४·५ सें० मी० (२ इञ्च × १·७५

इञ्च) बड़ी होती हैं। पुष्प कक्षीय पुष्पदण्डपर धारण किये जाते हैं और छोटे, गुलाबी रंगके लगभग अवृन्त होते हैं। सवर्णकोश, घण्टिकाकार, पुंकेशर २–३ होते हैं। पत्तीका सागके रूपमें और मूलका चिकित्सामें व्यवहार होता है। पत्तीकी अपेक्षया मूलमें औषधीय वीर्य अधिक होता है। पुनर्नवा **सफेद** फूलका भी होता है; किन्तु अपेक्षाकृत कम उपलब्ध होता है। लैटिनमें इसे बोएर्हाविया वेर्टीसिल्लाटा (Boerhaavia verticillata Poir.) तथा संस्कृत और बंगलामें **श्वेतपुनर्नवा** तथा हिन्दीमें **साठ** कहते हैं। यह लालफूलवालेकी अपेक्षया अधिक गुणकारी माना जाता है। लाल पुनर्नवाके दो भेद और होते हैं, एकमें मूलकन्द सदृश होता है और पत्रादि छोटे होते हैं। यह शुष्क भूमिमें अधिक होते हैं। पुनर्नवाकी **दूसरी** भिन्न जाति बोएर्हाविया रेपांडा (Boerhaavia repanda Willd.) है, जो प्रसरणशील अथवा आरोहणशील लताजातिकी होती है। इसमें आमने-सामनेकी दोनों पत्तियाँ प्रायः कदमें बराबर होती हैं। मूल कंदसदृश मोटा, किन्तु भंगुर होता है।

वक्तव्य—'पुनर्नवा' और 'वर्षाभू' दो सर्वथा भिन्न उद्भिज हैं। परन्तु दोनोंके रूप और गुणोंमें बहुत कुछ साम्य होनेसे निघण्टुकारोंने दोनोंको परस्पर मिला दिया है। अनेक स्थानोंमें आज भी 'बिसखपरा (वर्षाभू)'को ही 'पुनर्नवा' और कुछ उसे केवल 'श्वेतपुनर्नवा' मानते हैं (वि० दे० 'बिसखपरा')। इस प्रसंगमें यह स्मरणीय है कि श्वेत और रक्तभेद, पुनर्नवा और (विसखपरा) दोनोंमें ही होते हैं। अतः रक्तपुनर्नवा और श्वेत पुनर्नवाका अभिधान पुनर्नवा (बोएर्हाविआ **Boerhaavia**)की जातियोंके लिए तथा 'रक्तवर्षाभू' और 'श्वेत वर्षाभू'का अभिधान बिसखपरा (ट्रिआंथेमा **Trianthema**) जातियोंके लिए पृथक्-पृथक् रूपसे होना चाहिए। वर्षाभूकी ही किसी जातिको **'वसुक'** मानना चाहिए।

रासायनिक संगठन—जड़में एक प्रकारका क्षारोदीय गंधेत् (**पुनर्नवीन**) ०.०१%, शोरा (पोटैसियम नाइट्रेट) ६.१ प्रतिशत, एक तैलीय समूह, सल्फेट्स, क्लोराइड्स और भस्ममें अंशतः नाइट्रेट्स और क्लोरेट्स होते हैं।

उपयुक्त अंग—पत्र और मूल। पत्रकी अपेक्षया मूलमें औषधीय वीर्य अधिक होता है।

प्रकृति—**गरम** और **रूक्ष**। आयुर्वेदके मतसे उष्णवीर्य (सु०) एवं रूक्ष (ध० नि०)।

गुण-कर्म तथा उपयोग—यह वामक, विरेचक, **मूत्रल**, कृमिघ्न, गर्भशातक और विषघ्न है। जो पानीसे दूर और सूखी जमीनमें हो और जिसके पत्ते बारीक हों, उस पुनर्नवाको सूर्यके निकलनेसे पूर्व जिसमें न मनुष्यकी छाया पड़ी हो और न धूप लगी हो, जमीनसे उखाड़कर उसकी जड़ कामला रोगीके गलेमें बाँधनेसे आँखका पीलापन दूर हो जाता है। यदि **कामलाके** रोगीके शरीरपर सूजन आ गयी हो तो शोथहर औषधियोंमें इसकी जड़ मिलाकर उससे तेल बनाकर मालिश करना चाहिए। इसके पंचांगको पीसकर जलोदरीके पेटपर लेप करनेसे लाभ होता है। सूखे पुनर्नवाके पंचांगको गरम पानीमें भिगो मल-छानकर उसमें शोरा मिलाकर पीनेसे भी जलोदरीको लाभ होता है। जलोदरके आरम्भमें इसके पत्तोंको पकाकर रोटीके साथ खिलाना चाहिए। सामान्य दौर्बल्य और सूजन दूर करनेके लिए इसकी जड़को पानीमें पीसकर पैरोंपर लेप करना चाहिए। इसके पत्तोंके स्वरसको दूधमें मिलाकर पिलानेसे पेशाबकी रुकावट मिटती है। जड़का काढ़ा **सारक, मूत्रल** और उदरकृमिनाशक है। इसके पत्ते और कालीमिर्चोंको घोंट-छानकर पिलानेसे मूत्र अधिक होकर सूजाक आराम होता है। इसके फांटमें जवाखार मिलाकर पिलानेसे भी सूजाक आराम होता है। इसको अधिक प्रमाणमें खिलानेसे वमन होता है। इसकी जड़के चूर्णमें खाँड़ मिलाकर फंकी देनेसे सूखी खाँसी तर हो जाती है। इसकी जड़के ३ माशे चूर्णमें चार रत्ती हलदीका चूर्ण मिलाकर देनेसे दमा और जड़का काढ़ा पिलानेसे जोरकी खाँसी और दमा दूर होता है। गाँठके ऊपर इसके पत्तोंका लेप करना चाहिए। यदि (रतूबत)के कारण सम्पूर्ण शरीर सूज जाय तो पुनर्नवा, चिरायता और सोंठका काढ़ा पिलानेसे लाभ होता है। योनिमें इसकी जड़ रखनेसे गर्भशिशुका पात हो जाता है। सफेद पुनर्नवाका नानाविध

प्रयोग आँखके विविध रोगोंमें गुणदायक होता है। इसे पँवाड़के बीजोंके साथ खानेसे दाद आराम हो जाता है। इसके पत्ते और चरिचिटेकी टहनियोंको पीसकर मलनेसे विच्छूका विष उतर जाता है।

आयुर्वेदीय मत—पुनर्नवा मधुर तिक्त सारक, रूक्ष, स्वेदोपग, अनुवासनोपग, कासहर, वयस्थापन, उष्णवीर्य तथा वात, कफ, शोथ रक्तप्रदर, पाण्डुरोग, हृद्रोग, उरःक्षत और शूलको दूर करनेवाला है। (च०सू०अ० ४; सु०सू०अ० ३८, ४५; ध०नि०; रा०नि०) श्वेतपुनर्नवाकी जड़को पीसकर घीमें मिलाकर अंजन करनेसे आँखकी फूली दूर होती है तथा उसमें मधु मिलाकर अंजन करनेसे रक्तस्राव, भाँगरेके रसके साथ अंजन करनेसे नेत्रकण्डू दूर होता है। इसकी जड़ केवल जलके साथ आँखोंमें लगानेसे तिमिर रोग दूर होता है। गायके गोबरके रसमें इसकी जड़ और पीपल उबालकर अंजन करनेसे रतौंधी दूर होती है। इसके पत्तोंका रस गरम है। (नि०र०) शेष गुण रक्तपुनर्नवावत् होते हैं। **नीलपुनर्नवा** राजीघण्टूके अनुसार रसायत है। पुनर्नवाका शाक अत्यन्त रूक्ष तथा वात, मन्दाग्नि, गुल्म, प्लीहा और शूलनाशक है। (नि०र०)।

नव्यमत—पुनर्नवा दीपन, विरेचन, मूत्रविरेचन, स्वेदजनन, कफघ्न, वामक और शोथहर है। पुनर्नवासे मूत्रपिण्ड (गुर्दा)को कुछ भी त्रास न होकर मूत्रकी राशि दूनी बढ़ती है। इसे आधा तोलाकी मात्रामें देनेसे ही मूत्रजनन गुण होता है। कफघ्न गुण थोड़ा-थोड़ा बार-बार देनेसे देखनेमें आता है। वमन होनेके लिए ५ माशेकी मात्रा १-२ बार देनी पड़ती है। इससे वमनके साथ विरेचन होकर उभय मार्गोंसे कफ बाहर निकल जाता है। इसका स्वेदजनन गुण अल्प है। इसका असर हृदयपर अल्पप्रमाणमें, धीरे-धीरे परन्तु स्पष्ट होता है। इससे हृदयकी संकोचन क्रिया बढ़ती है। रक्त वेगसे धमनियोंमें जाता है, रक्तका दबाव बढ़ता है और सिराओंसे हृदयमें रक्त अधिक शोषित होता है। यह क्रिया डिजिटेलिस (हृत्पत्री)के समान है। रक्तका दबाव बढ़नेसे मूत्रकी राशि बढ़ती है और शरीरमें संचित चल कम होता है। इसलिए पुनर्नवाको शोथघ्नी कहा गया है। इसमें स्थित 'पुनर्नवीन' तत्त्व वृक्कके ऊपर कार्य करके मूत्रद्वारा शरीरमें संचित हुए जलका नाश करके शोथ दूर करता है।

●

(३९४) पुहकरमूल

फ़ैमिली : कॉम्पोजीटी (Family : Compositae)

नाम—(हिं०; उ०) पु(पो)हकरमूल, पुष्करमूल; (सं०) पुष्करमूल, पद्मपत्र, काश्मीर, कुष्टभेद; (पं०) पोहकरमूल; (म०; गु०) पुष्करमूल, पोहकरमूल; (क०) पोशकरमूल, पोहकरमूल; (ले०) ईनूला रेसीमोसा (**Inula racemosa** Hook)।

उत्पत्तिस्थान—समशीतोष्ण और आल्पपर्वतीय पश्चिमी हिमाच्छादित पर्वतमालाओंमें ५,०००–१४,००० फुटकी ऊँचाई तक तथा कश्मीरमें ५,०००–७,००० फुटकी ऊँचाई तक जहाँ सदा नमी रहती है या जलके स्रोत-समीप हैं, उत्पन्न होता है और यह लगानेसे लग सकता है। इसकी जड़की विक्री अमृतसरमें होनेसे यह वहीसे मिल सकता है। इसके अतिरिक्त पोहकरमूल दिल्ली, बम्बई आदि बड़े शहरोंमें भी मिलता है। कश्मीर सरकार पुष्करमूल बेचती है।

वक्तव्य—पुष्करमूलका लैटिन या अंग्रेजीमें कोई नाम नहीं मिलता। जो नाम अन्य लेखकोंने तथा मैंने भी पुष्करमूलके वर्णनमें दिया है वह वास्तवमें कुष्ठका नाम है। लेटिनमें (*Aplataxis auriculata*) कुष्ठका नाम है। पुष्करमूलका लैटिन नाम (**Inula racemosa**) मिलता है। यह सेवती, सूर्यमुखी या कुष्ठकुल (*Family : Compo-*

silae) की ही वनस्पति है। डॉक्टर वामनगणेश देसाईने 'ओषधि संग्रह' नामक मराठी ग्रन्थमें इसका उल्लेख रास्नाके नामसे किया है। वास्तवमें रास्ना और चीज है। रास्ना एरालिआसे-कुल (*Family : Araliaceae*)की वनस्पति है। डॉक्टर देसाईने इसे 'वन्दाक' कुलमें स्थान दिया है, यह भी भूल है। पुष्करमूल सेवती कुलकी वनस्पति है। कौन जाने लोगोंने कैसे इसे रास्ना माना। रास्नाका इनका दिया वर्णन पुष्करमूलके वर्णनसे ठीक मिलता है।

इस वनस्पतिका ज्ञान तो वैद्योंको हजारों वर्षोंसे है। किन्तु मालूम होता है कि आजसे ६०–७० वर्ष पूर्व यह कम आता रहा है। इसीलिये पंजाबको छोड़कर अन्य प्रान्तोंमें नहीं पहुँच पाया। जभी इसके सम्बन्धमें भ्रम व भूल होने लगी।

भ्रमका कारण कुष्ठ भी था—

'कुष्ठ' और 'पुष्करमूल' दोनोंकी जड़ें प्रायः बहुत कुछ रूप व गन्धमें समान होती हैं। कुष्ठ तो थोड़ा-बहुत देशके कोने-कोने तक कुछ-न-कुछ पहुँचता था, पर यह शायद ही कभी किसी वैद्यको प्राप्त होता है। क्योंकि हर एक वैद्यका अपने-अपने शहरके पंसारियोंसे ही सम्बन्ध रहता है और उन पंसारियोंका अपने प्रांतके बड़े शहरोंके पंसारियोंसे बड़े पंसारी जो कुछ छोटे पंसारियोंको दे देते हैं वही छोटे पंसारी वैद्योंके गले मढ़ देते हैं। वैद्योंमें पुष्करमूलकी माँग सदा रही, किन्तु जितनी इसकी माँग थी उतनी इसकी उपज न थी।

खोजोसे पता चला है कि आजसे ५०–६० वर्ष पूर्वतक यह कश्मीरसे ऊपर कागान इलाकेसे ही आता था। वहाँ यह बहुतायतसे होता था। किन्तु वहाँ इसको प्रतिवर्ष इतनी कसरतसे उखाड़ा गया कि आजसे २० वर्ष पूर्व ही उस प्रांतमें इसका वंश ही मिट गया। तभी तो इसकी अन्य प्रांतोंमें खोज होने लगी। परिणामस्वरूप इसके मिलनेका पता निम्न स्थानोंमें लगा—कश्मीरमें जोजपाल, खिलानमर्ग, गुरिज, काकेवार, भद्रपोंगी, लाहौल, पित्ती, कुल्लू, व्यासकुण्ड, चम्बा स्टेटका मनमहेश, लटानकी जोन, काली छोकी जोन आदि। जबसे इन देशोंमें इसका पता लगा अच्छा मूल्य मिलनेके कारण इन देशोंके निवासियोंने इसे निकालना आरम्भ किया जिसका परिणाम यह हुआ कि धीरे-धीरे इसका आयात बढ़ता चला गया। इस समय तो यह वर्षमें २००–३०० मनके लगभग निकलकर आने लगा है।

अभावके दिनोंमें इसकी पूर्ति कैसे हुई ?

जब देशमें इसकी माँग बराबर बनी रही, और इसका बहुत कुछ अभाव हुआ, तो पंजाबके व्यापारियोंने कुष्ठकी ऊपरकी लकड़ियोंको, जो ऐरण्डवत् पोली तथा वर्णमें काली भूरी-सी होती हैं, भेजना शुरू कर दिया, जिसका परिणाम यह हुआ कि समस्त उ० प्र०में कुष्ठके डण्ठल पुष्करमूलके स्थानपर प्रचलित हो गये। और आज समस्त उत्तर प्रदेश वैद्य इन्हीं पोली लकड़ियोंको पुष्करमूलके स्थानपर बरतने लगे हैं। धीरे-धीरे कुछ ही समयमें उत्तरप्रदेशके वैद्य इस असली पुष्करमूलको भूल बैठे। और आज यह अवस्था हो रही है कि वैद्योंको असलीका ज्ञान करनेपर भी उनका भ्रम दूर नहीं होता। कई वैद्य तो अबतक इसे कुष्ठ ही कह देते हैं। और प्रांतोंको जाने दीजिये, अभी थोड़े ही दिनकी बात है कि सिंध प्रांतके एक अच्छे विद्वान् वैद्यने एक सेर पुष्करमूल मँगाया। पुष्करमूल जब उन्होंने देखा तो बिना समझे-बूझे चट उसे एक आदमीके हाथ वापिस कर दिया, और एक लम्बा चौड़ा पत्र लिखकर शिकायत की कि इतनी बड़ी फार्मेसीवाले भी धोखा देते हैं; पुष्करमूलके स्थानपर कुष्ठ भेज दिया। जब उनको दूसरी बार कुछ गाँठें पुष्करमूलकी, और कुछ गाँठें कुष्ठकी साथ-साथ भेजी गईं तो वैद्यजीका भ्रम दूर हुआ।

रचना या आकृति

इसका क्षुप अषाढ़-श्रावणमें—जब बरफ गलती है—भूमिसे निकलता है। यह बहु-वार्षिक क्षुप है। जब बर्फ पड़ने लगती है तब इसका क्षुप जल जाता है, केवल मूल भूमिमें पड़ा रहता है। जब सर्दी समाप्त होकर भूमि

बरफ रहित हो जाती है तो यह अपना सिर भूमिसे बाहर निकालता है और देखते-देखते कुछ ही दिनोंमें इसका ५-६ फुटतकका अच्छा क्षुप तैयार हो जाता है, और इसके मूल स्कन्धसे कई शाखायें-प्रशाखायें निकलती हैं। नये तनोंका वर्ण कुछ ललाई-युक्त होता है जो बड़े होने पर घट जाता है।

पत्तोंकी आकृति लम्बाईमें ८ इञ्चसे लेकर १८ इञ्च तक तथा चौड़ाई ५ से ८ इञ्च तक पायी जाती है। इसका पत्रदण्ड भिन्न नहीं होता प्रत्युत तना मूलसे ही पत्र लगकर बड़ा होता चला जाता है। बहुधा इसके पत्र चन्दनाकृति या ग्रहण स्थितिवत् कटे गावदुमाकार बनते हैं; कुछ पत्ते आगे जाकर दो-दो, तीन-तीन हिस्सोंमें फटकर विभक्त हो जाते हैं। पत्तोंके किनारे कँगूरेदार तथा उनपर सूक्ष्म लोम कंटक होते हैं। पत्रका निचला भाग भी लोम या रोयेंसे पूर्ण होता है। पत्ते वृक्षपर घने और विषम होते हैं। फूल सूर्यमुखीके फूलवत् पीले रंगकी पंखड़ियोंसे युक्त होता है जिसमें प्रायः ७ पुष्पपत्र होते हैं। बीचमें कमल-फूलवत् केसरको नीलाभायुक्तकेसरी झालर बनी हुई होती है। बीजकी आकृति सूर्यमुखीके बीजवत् या कुसुम्भबीजवत् होती है। फूल सुगन्धित होता है।

मूल भाग व संग्रहका समय

आश्विन, कार्त्तिकमें इसका संग्रह करना चाहिये किन्तु लोग भाद्रपदसे ही इसे उखाड़ना आरम्भ कर देते हैं। इसकी जड़ें ही काममें आती हैं। पत्र व तने फेंक दिये जाते हैं।

मूलकी रचना

उखाड़ते समय मूल कई शाखोंमें विभक्त मूली जैसा होता है। सूखनेपर उसमेंसे सफेद व हमनवत् मोटी-मोटी झुर्रियाँ हो जाती हैं। इसकी जड़से सदा मीठी-मीठी कुष्ठसे मिलती-जुलती कपूरकी-सी कुछ गन्ध लिये बास आती रहती है। यह वास कई वर्षोंतक बनी रहती है। इसे कीड़ा नहीं लगता।

मूलका रूप

इसकी शकल कुछ-कुछ कुष्ठसे मिलती है, किन्तु सर्वांशमें नहीं। एक तो यह टूटनेमें सख्त व चटखदार टूटता है। टूटनेपर इसका तोड़ बिलकुल नया हो तो सफेदीयुक्त मटमैला-सा होता है। कुष्ठका तोड़ नरम भुरभुरा होता है; इसका तोड़-स्थान सफेद-पीत होता है। इसके तोड़-स्थान कुछ सुविधापूर्ण दिखाई देते हैं। इसलिये ये दोनों जल्दी पहचाने जाते हैं। दूसरे कुष्ठकी जड़पर झुर्रियाँ भी पतली-पतली पड़ती हैं। वह प्रायः गोल, कुछ पीतता लिये भूरे वर्णका होता है यह सफेद भूरा-सा। फिर इसकी गन्ध भी कुष्ठकी गन्धसे कुछ भिन्न होती है। यह स्वादमें कुछ चरपरी, कटु गन्धयुक्त होता है। और कंठमें लगता है। (विज्ञानसे साभार उद्धृत)।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम व खुश्क। आयुर्वेद मतसे उष्णवीर्य (रा० नि०) है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—श्वयथुविलयन, क्षुधाभिजनक, वातानुलोमन, श्लेष्मष्ठीवन और वाजीकर। इसका प्रधान कर्म दीपन (आमाशयको बल देना) है। इसका उपयोग वातकफरोगोंमें करते हैं। मिश्रितज्वर, क्षुधाकी कमी तथा कामावसाद (जोफ़ेबाह)में यह उपकारक है। उदरशूल और पार्श्वशूलमें खिलाने और लेप करनेसे लाभ पहुँचाता है तथा खाँसी-दमा और जलोदरमें उपकार होता है। हाथ-पाँवके सर्द पसीनाको रोकनेके लिए इसको महीन पीसकर मलते हैं। **अहितकर**—उष्ण प्रकृतिको। **निवारण**—खालिस शहद। **प्रतिनिधि**—पुरुषत्व रोगमें प्याजके बीज। **मात्रा**—२ ग्राम से ४ ग्राम (२ माशा से ४ माशा) तक।

आयुर्वेदीय मत—पुष्करमूल कटु, तिक्त, उष्णवीर्य तथा वात, कफ, कास, श्वास, पार्श्वशूल, हिक्का, अरुचि, ऊर्ध्व वात, शोथ और पांडुरोगका नाश करनेवाला है। (च० सू० अ० ४, २५; रा० नि०; भा० प्र०)।

नव्यमत—पुष्करमूल तिक्त, कटु, उष्ण, पाचन, उत्तेजक, कफघ्न, श्वासहर, कासहर, ज्वरघ्न, शोथहर, त्वग्रोगनाशन, वातहर और विषहर है। मस्तिष्क, आमाशय, वृक्क और गर्भाशयके ऊपर इसकी उत्तेजक क्रिया

होती है। यह जन्तुनाशक और पूतिहर है। कुपचन, उदराध्मान और उदरशूल तथा सभी प्रकारके फुफ्फुसके रोगों (जैसे—दमा, जीर्णश्वासनलिकाशोथ, क्षय, फुफ्फुसकलाशोथ, पार्श्वशूल आदि)में इसे देते हैं। इससे श्वासांगोंकी सूजन कम होती हैं, रोगजन्तुका नाश होता है और ज्वर उतरता है। सब प्रकारके वातरोग चाहे वे सर्दीसे हुये हों अथवा आमविषसे, इसके उपयोगसे आराम होते हैं। इससे सूजन और ज्वर उतरता है तथा पीड़ा कम होती है। क्षयजन्तुओंसे जो एक विशिष्ट प्रकारका व्रण होता है, उसका शोधन और रोपण इससे होता है। अनार्तवमें इसे देनेसे पेटका दर्द कम होकर आर्तव आने लगता है।

●

(३९५) पेठा

फ़ैमिली : कूकुरबिटासे (Family : Cucurbitaceae)

नाम—(हिं०) पेठा, रकसा(रकसवा) कोंहड़ा, कुम्हड़ा; (अ०) मह्.दबः; (फा०) बज़्दुबः, कद्दूए रूमी; (सं०) कूष्माण्ड, वल्लीफल; (बं०) देशी कुम्ड़ा; (कोल) रकस, रकसा; (क०) अल; (पं०) पेठा; (सिंध) पेठो, साओ; (म०) कोहला; (गु०) भुरूँ कोहलुं; (मा०) पेठा, कोला, कोहला; (ते०) गुम्मडि; (मल०) कुम्पलम्; (ले०) **बेनीनकासा हीस्पिडा Benincasa hispida** (Thunb.) Cogn. (**पर्याय**—*Benincasa cerifera* Savi); (अं०) ह्वाइट पम्पकिन (White Pumpkin), ह्वाइट गोर्डमेलन (White Gourd-melon)। **बीज** (अ०) बज़्रुल् मह्दबः; (फा०) तुख़्म कद्दूए रूमी। (बीजका) तेल (अ०) दुह्न बज़्रुल् मह्.दबः; (फा०) रोग़न तुख़्म कद्दूए रूमी।

उत्पत्तिस्थान—न्यूनाधिक समस्त भारतवर्षमें इसकी खेती होती है या यह जंगली होता है।

वर्णन—यह एक रोईंदार लताका प्रसिद्ध फल है जो तरबूजके समान, किन्तु लंबाई लिए गोल होता है। फलका छिलका कड़ा और हरे रंगका होता है और उसके ऊपर रोएँकी तरह एक सफेद चीज बिछी होती है, इसलिए वह सफेद मालूम होता है। जहाँ यह सफेदी उतर जाती है, वहाँ यह हरा दिखने लगता है। इसका गूदा मोटा और सफेद होता है। बीज हिंदवानेके बीजकी तरह, किन्तु सफेद होता है। पेठा बहुत काल तक सड़तागलता नहीं (स्थिरफल) है।

उपयुक्त अंग—फलका गूदा और उसका स्वरस तथा बीज एवं बीजोत्थ तेल।

रासायनिक संगठन—पेठामें जीवतिक्ति (विटामिन) 'बी', अनुत्पत् तेल, श्वेतसार, कुकुरबिटिन (Cucurbitin) नामक एक क्षारोद, एक तिक्तराल, प्रोभूजिद, मायोसीन, वाइटेलीन, शर्करा और राल और भस्म आदि तत्व होते हैं।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें शीत एवं तर। आयुर्वेदके मतसे पका उष्णवीर्य, कच्चा पित्तघ्न, बीज तैल शीतवीर्य (सु०) है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—**हृदयबलोल्लासकारक, संतापहर, स्नेहन और मूत्रल** विशेषतः पित्तरक्तोद्वेगसंशमन। पेठेकी बनी मिठाई सौमनस्यजनन और बल्य है। इसका मुरब्बा (**मुरब्बा पेठा**) मस्तिष्क और हृदयको बल देने और सौमनस्यजननके लिए खिलाया जाता है। इसका हलवा अधिक बनाते हैं और कभी-कभी अचार और बड़ियाँ भी बनाते हैं। हलवाके लिए पुराना पेठा उत्तम होता है। पित्त और रक्तका प्रकोप शमन करने, प्यास बुझाने और मूत्रका दाह मिटानेके लिए इसके बीजोंका मग्ज अकेला अथवा उपयुक्त द्रव्योंके साथ तब्रीदकी

भाँति पीस-छानकर पिलाते हैं तथा शुष्क कास और उरःक्षत एवं राजयक्ष्मा रोगमें उपयोग करते हैं। इसके उपयोगसे रक्तोद्वेग, पित्तकी तीक्ष्णता, पिपासा और मूत्रदाह मिटता है। **अहितकर**—शीत प्रकृतिवालोंको। **निवारण**—नमक, सौंफ और कालीमिर्च। **प्रतिनिधि**—लौकी। **मात्रा**—पेठेके बीजका मग़ज ५ ग्राम से ७ ग्राम (५ माशे से ७ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—कच्चा कूष्माण्ड (पेठा) पित्तघ्न; अधपका कफकर; पका हुआ मधुर, अम्ल, क्षारयुक्त, लघु, उष्णवीर्य, दीपन, बस्तिशोधन, मूत्रल, हृद्य, मल-मूत्रको साफ लानेवाला, बल्य, वृष्य, बृंहण तथा उन्माद आदि मनके विकार, मूत्राघात, प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी, तृषा, अरुचि और पित्तको दूर करनेवाला है। पेठेके बीजोंका तेल मधुर, मधुरविपाक, शीतवीर्य, अभिष्यन्दि, मूत्रल, अग्निमांद्यकर तथा वात और पित्तका प्रशमन करनेवाला है (च० सू० अ० २७; सु० सू० अ० ४५, ४६; रा० नि०)।

नव्यमत— पेठा बल्य, पौष्टिक, शीतल, मूत्रजनन रक्तसंग्राहक, शमन और रक्तपित्तप्रशमन है। इससे रक्तवाहिनियोंका संकोचन होता है। बड़ी मात्रामें देनेसे दस्त साफ होता है और निद्रा आती है। बीज कृमिघ्न है। चपटे कृमियोंको मारनेके लिए २-४ तोला बीजका कल्क देते हैं और ऊपरसे विरेचन देते हैं। उन्मादमें जब रोगीके नेत्र लाल हों, नाड़ीकी गति तीव्र हो और रोगी उत्तेजित हो तब पेठेका रस देनेसे दस्त साफ होता है और निद्रा आती है। राजयक्ष्मामें कभी फुफ्फुससे रक्त आता है तब और किसी भी अन्दरके अवयवसे रक्त आता हो तब पेठेका रस देते हैं। क्षयकी प्रथमावस्थामें मुक्तापिष्टिके साथ पेठेका ताजा रस देनेसे बड़ा उपकार होता है। मधुमेहमें पेठेका रस देते हैं। अर्शमें कूष्माण्डपाक देते हैं। (औ० सं०)।

फल मृदुसारक, मूत्रजनन, बल्य, वाजीकर, नियतकालिकज्वरप्रतिबंधक है तथा रक्तष्ठीवन एवं आन्तरिक अवयवोंसे होनेवाले अन्य रक्तस्रावोंकी विशिष्ट औषधि है। उन्माद, अपस्मार और अन्य वातव्याधियोंमें फलका रस प्रयुक्त होता है। बीज एवं बीजोत्थ तेल कृमिनाशक है।

●

(३९६) पोई

फ़ैमिली : केनोपोडिआसे (Family : Chenopodiaceae)

नाम। सफ़ेद—(हिं०) पोई, पोय; (सं०) उपोदकी (-दिका), पोतकी; (बं०) पुँई-शाक; (म०) मायाल, मायाल ची बेल; (गु०) पोई, पोथीनी बेल; (ता०) वसेला; (ले०) बासेल्ला आल्बा (**Basella alba** Linn.); (अं०) इंडियन स्पिनाच (Indian Spinach), मलबार नाइटशेड (Malabar Night-shade)। लाल—(हिं०) लाल पोई; (सं०), रक्त उपोदिका, रक्तपूतिका; (बं०) रक्तबनपुँई; (ले०) बासेल्ला रूब्रा (**Basella rubra** Linn.); (अं०) रेड मलाबार नाइटसेड (Rcd Malabar Night-shade)।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष, विशेषतः बंगाल और आसाममें यह प्रायः स्वयंजात वा जंगली होती और घरोंमें लगाई जाती है।

वर्णन—यह एक बड़ी शाखा-प्रशाखाविशिष्ट प्रसिद्ध लता है। पत्र मोटा, मांसल, पानकी तरह गोल और गहरा हरा; पुष्प मंजरीयुक्त; फल गोल मटराकृति, पकनेपर पके जामुनके काले और नीले डोल-मकोइया जैसे होते हैं। लाल पोईकी बेल सर्वथा सफेद पोईके समान होती है; किन्तु इसका तना लाल और पत्तोंकी नसें भी लाल होती हैं।

उपयुक्त अंग—पंचांग विशेषतः पत्र।

रासायनिक संगठन—इसमें पुष्कल लबाब और कुछ लोहा होता है।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें सर्द एवं तर।

गुण-कर्म तथा उपयोग—तीव्र ज्वर (संताप)हर, दाहप्रशमन, स्वप्नजनन और वीर्यपुष्टिकर। रक्तज और पित्तज ज्वरोंको शांत करनेके लिए पोईके पत्तोंको जलमें पीस छानकर पिलाते हैं। नींद लानेके लिए भी इसको इसी भाँति पिलाते और सिरपर लेप करते हैं। अग्निदग्धस्थलपर तुरन्त इसके पत्तोंको पीसकर लेप करनेसे दाह शांत हो जाता है और फोला नहीं पड़ता। शुक्रप्रमेह और शुक्रतारल्यमें इसके पत्तोंका चूर्ण बनाकर खिलाते या छानकर पिलाते हैं। **अहितकर**–शीतल प्रकृतिके लिए। **निवारण**–बादामका तेल और कालीमिर्च। **प्रतिनिधि**–पालक या बथुआका साग। **मात्रा**–७ ग्राम से १२ ग्राम (७ माशे से १ तोला) तक।

आयुर्वेदीय मत—पोई रस और विपाकमें मधुर, शीतवीर्य, स्निग्ध, सारक (सु०), भेदक (च०), वृष्य, बल्य, कफकारक (वर्धक) तथा वातपित्त और मदको नष्ट करनेवाली है। (सु०सू०अ० ४६, च०सू०अ० २७); कण्ठको अहितकारी, पिच्छिल, निद्राजनक, रुचिकर, पथ्य, पुष्टिकारक, तृप्तिजनक और रक्तपित्तनाशक है। (भा०प्र०) सभी प्रकारकी पोईके गुण समान हैं।

●

(३९७, ३९८) पोस्ता (सफेद व लाल)

फ़ैमिली : पापावेरासे (Family : Papaveraceae)

नाम। क्षुप—(हिं०) पोस्ता; (अ०) नबातुल् ख़श्ख़ाश; (फा०) कोकनार; (ले०) **पापावेर सोम्नीफ़ेरुम् (Papaver somniferum** Linn.); (अं०) ह्वाइट या ओपियम् पॉपी (White or Opium Poppy)। फल (डोड़ा)–(हिं०) पोस्त, पोस्ता या अफीमका डोंड़ा (बोंड़ी); (अ०) क़िश्रुल् ख़श्ख़ाश; (फा०) पोस्ते ख़श्ख़श, पोस्ते कोकनार (मुसल्लम); (सं०) खाखस, खसफल, खस्तिल वल्कल; (म०) खसखस चे बोंड़े; (गु०) खसखसना डोड़ा; (ले०) पापावेरिस काप्सूले (Papaveris Capsulae); पॉपी (अं०)कैप्सूल्स (Poppy Capsules)। बीज—(हिं०) पोस्तेका दाना, खसखस, पोस्तदाना, खसखास; (अ०) वज्रुल्ख़श्ख़श; (फा०) तुख्मे ख़श्ख़ाश (कोकनार), ख़श्ख़ाश पोस्तदाना; (बं०, बम्ब०; म०; गु०) खसखस; (अं०) ह्वाइट पॉपी सीड्स (White Poppy-seeds)।

अफीम—(यू०) ओपिओन (Opion); (अ०) अल्-अफ़्यून (इ० बै०), अफ़्यून, लब्नुल् ख़श्ख़ाश; (फा०) तिर्याक; (सं०) अहिफेन; (हिं०;द०) अफीम; (बं०) आफिम्; (क०) अफीम; (म०) अफू, (गु०) अफीम; (मा०) अमल, अफीम; (ले०) ओपिउम् (Opium); (अं०) ओपियम्, थेरिआक (Theriac)।

वक्तव्य—उपर्युक्त नाम 'सफेद पोस्ता' 'ख़शख़ाश सफ़ेद' या 'ख़शख़ाश बुस्तानी' के हैं। यूनानी वैद्यकमें खशखाश शब्दसे पोस्तेका डोंड़ा (पोस्तखश्खाश) विवक्षित होता है। परन्तु जनसाधारण पोस्तेके दानेको खश्ख़ाश कहते हैं। 'मात्र ख़शख़ाश' शब्दसे यह सफेद भेद विवक्षित होता है।

लालपोस्ता—(हिं०; बं०) लालपोस्ता, लाला; (अ०) ख़श्ख़ाशे मन्सूर, ख़श्ख़ाशे अह्मर; (फा०) गुलेलाला, (गु०) लाल खश्खश, लाला; (म०) ताँबड़े खसखस; (बम्ब०) जंगली मुद्रिका; (ले०) **पापावेर र्‌हीआस (Papaver rhoeas** L.); (अं०) रेड पॉपी (Red Poppy)।

वक्तव्य—उत्तर भारतवर्ष और गुजरातमें इसको 'गुललाला (गुलेलाला, गुल्लाला)' कहते हैं। परन्तु गुलेलाला '**शकायिक़ुन्नुअमान**' है। (वि० दे० 'गुललाला')।

विशेष टिप्पणी—अफीमकी लैटिन और अंग्रेजी संज्ञा ओपियम (Opium) और अरबी 'अफ़्यून' आदि संज्ञायें सभी यूनानी संज्ञा **ओपियून** (जो स्वयं '**ओपोस**' से जिसका अर्थ स्वरस है)से व्युत्पन्न हैं। इसलिए यूनानियोंने इसे उक्त संज्ञासे अभिधानित किया। परन्तु कतिपय ग्रन्थोंमें लिखा है, कि '**अफ्यून**' संज्ञा यूनानी '**उब्यून**'से जिसका अर्थ 'निद्रल औषधि' है, व्युत्पन्न है। कतिपय शब्दकोषकार, यथा **कामूसके लेखक** आदि अफ्यूनको अरबी भाषाका शब्द ख्याल करते हैं और उसकी धातु '**फ़ीन**' या '**अफ़िन**' बतलाते हैं। इसकी संस्कृत संज्ञा अहिफेन '**अहि**' (जिसका अर्थ सर्प है) तथा 'फेन' (जिसका अर्थ झाग या फेन है) का यौगिक है। **प्राचीन भारतीय इसे सर्पका फेन या झाग** ख्याल करते थे, इसलिए इसको उक्त नामसे अभिधानित किया गया। (३) इसकी फारसी संज्ञा '**तिरियाक**' यूनानी 'तिरियाकका पर्याय है जिसका धात्वर्थ 'वनपशु या काटनेवाला जानवर', जैसे—सिंह व सर्प आदि है। किन्तु यूनानी-वैद्योंकी परिभाषामें तिरियाकका अर्थ पशुओंके विषका अगद, जैसे सर्प आदिके विषका अगद है और अंगरेजी ट्रीकिल (Treacle) जिसका अर्थ अधुना 'शीरा' लिया जाता है, यह भी वस्तुतः यूनानी '(Theriaka)' संज्ञाका समानार्थी है। कतिपय तिरियाकका चाशनी शीराके समान होती थी और अफ़्यून वास्तवमें खश्खाशका शीरा ही है। परन्तु कहते हैं कि रुस्तमने सुहराबको देनेके लिए जो तिरियाक (तिरियाक़) केकाऊसे लिया था, उसमें अफ्यूनभी सम्मिलित थी। अस्तु, उपर्युक्त उभय सम्बन्ध (मुनासिबतों) से अफ़्यूनका नाम तिरियाक रखा गया। ईरानमें अधुना तिरियाक़ संज्ञाका व्यवहार 'कच्ची अफ़्यून' के लिए होता है और 'पक्की अफ़्यून' **मदक** अर्थात् अफ्यूनके शीराको ईरानी **शीरअफ़्गन** कहते हैं। यह संज्ञा वस्तुतः तिरियाकके धात्वर्थ एवं परिभाषित अर्थोंका अतिसमीचीन पर्याय है।

इतिहास—प्राचीन यूनानियोंको उक्त औषधिका ज्ञान था। यद्यपि **बुक़रातको** इसके गुण-कर्मका ज्ञान नहीं था, तथापि इसके समकालीन **रियागोरास** इसके गुण-कर्मसे पूर्णतया अभिज्ञ था और वह कतिपय मस्तिष्क एवं सौपुप्निक रोगोंमें इसका उपयोग करता था। **जालीनूसने** भी इसका संक्षिप्त विवरण किया है। हकीम **सावफरिस्तुसने** ईसवी सन्से ३०० वर्ष पूर्व 'मैकोनियून' नामसे अफीमका उल्लेख किया है। यूनानी हकीम **दीसक़ूरीदूसने** भी ईसवी सन्से ३०० वर्ष पूव पोस्ताके डोड़ाके शीराको 'आपोस' के नामसे जिससे 'ओपियून' संज्ञा और उससे '**ओपियम्**' और 'अफ़्यून' संज्ञायें व्युत्पन्न हैं, अफ़्यून का उल्लेख किया है। और मैकोनियूनको (जो डोंड़ासहित पोस्ताके वृक्षका उसारा होता है) ओपोसको अपेक्षया प्रभावमें निर्बलतर बताया है। इसने अफीमकी प्राप्तिविधिका भी यथार्थ वर्णन किया है। रोमदेशी हकीम **प्लाइनीने** भी **ओपियून** नामसे इसका उल्लेख किया है। यूनानियोंसे अरबोंको उक्त औषधिका ज्ञान हुआ और उन्हींके माध्यमसे पूर्वी देशों, जैसे—ईरानमें अफीमके गुणकर्मका ज्ञान हुआ। सूतरां **शैख़ बूलीसीना** और **राज़ी**ने भी इसका विशद विवरण किया है। चीनदेशमें भी अरबवासियोंके माध्यमसे अफीम पहुँची और भारतीयोंको भी मुसलमानों हीसे इसका ज्ञान हुआ। प्राचीन मिस्र और भारतवासियोंको अफीम का ज्ञान नहीं था। सुतरां संस्कृतके प्राचीन ग्रन्थोंमें इसका विवरण नहीं मिलता। कदाचित् बादके ग्रन्थोंमें 'अहिफेन' नामसे इसका उल्लेख किया गया है। **लालपोस्तेका** उल्लेख '**रूईऑस**' के नामसे यूनानी हकीम सावफरिस्तुसने तथा हकीम **दीसक़ूरीदूसने मेक्योन रुईऑसके** नामसे, अरबी और अजमी चिकित्सकोंने 'खशख़ास मन्सूर', 'खशखाश अहमर' और 'गुललाला' के नामसे किया है। इब्न अबी उसैबिआ (संचिका १ पृ० २३)ने लिखा है कि अल्-तिर्याकि (यू० Therika) एक **योगौषध** है जिसे तिरियाक (Theriac) भी कहते हैं। उनके कथनानुसार इसकी व्यवस्था सर्वप्रथम अस्कलीवियूस ने दी है। अल्तिर्याक़ुल अकबर इसका एक भेद है।

उत्पत्तिस्थान—भारतवर्षके विहार, बनारस, मध्य और पश्चिम भारतवर्ष, राजपुताना और मालवामें पोस्तेकी खेती होती है। यह नेपाल, आसाम और ब्रह्मामें भी होती है। इसके अतिरिक्त चीन, ईरान और एशिया

माइनरमें इसको विपुल उपज होती है। **लाल पोस्ता** कश्मीर तथा भारतवर्षके अनेक स्थानों (मैदानों)में होता है। इसका मूल उत्पत्तिस्थान एशिया माइनर है।

वर्णन—यह एक क्षुद्र **क्षुप** है। **पत्र** **चौड़ा**, लंबा, अवृन्तक, पत्रप्रांत कटावदार (खंडित) शिराबंधुर, मध्य पर्शुका शुभ्रवर्ण; **पुष्प** बृहत्, दल पीत या श्वेतवर्ण, स्थूलतः देखनेपर इसका क्षुप भँड़भाँड़के क्षुपकी तरह दिखता है। **फल** अर्थात् डोंडा (पोस्ते खश्खाश) साधारणतः अर्ध गोलाकार या अण्डाकृति या किसी कदर लम्बा, २ या ३ इञ्च व्यासमें होता है इसके नीचेकी तरफ ग्रीवा और ऊपरकी ओर कंगूरेदार चोटी होती है। रंगत पिलाई लिये भूरी जिसमें कहीं-कहीं काले धब्बे होते हैं। रचना भीतरसे खानेदार जिनकी दीवारें अत्यंत कोमल और महीन होती हैं। भारतीय बाजारोंमें मिलनेवाले डोंडे अत्यंत टूटे-फूटे होते हैं और टुकड़ों पर प्रायः लम्बाईके रुख और कभी-कभी व्यत्यस्त ३ या ४ चीरा लगे होते हैं। खानोंके भीतर बहुत छोटे-छोटे प्रायः सफेद, पर कभी-कभी भूरे या काले बीज पाये जाते हैं जिनको **ख़श्ख़ाश** कहते हैं। स्वादमें यह मधुर और स्निग्ध (Oily) होता है। रंगके विचारसे यह दो प्रकारका होता है—(१) ख़श्ख़ाश सफ़ेद जिसका वर्णन यहाँ किया गया है। इसको **खश्ख़ाश बुस्तानी** भी कहते हैं। (२) ख़श्ख़ाश स्याह जिसको **'जंगली ख़श्ख़ाश'** भी कहते हैं। इसका फूल भी काला या नीला होता है। **खश्खाश मन्सूर** (लाल पोस्ता)के दाने भी काले होते हैं; परंतु फूल लाल और डोंडी भी लाल मसृण और गोल होती है। सायंकाल कच्चे पोस्तेके चतुर्दिक् कतिपय गंभीर चीरायें (किंतु जो अंदर तक न जायँ) लगा देते हैं और उनसे जो दूधके समान रस निकलकर जम जाता है, उसको प्रातःकाल उनपरसे खुरचकर सुखा लेते हैं। इसे **अफीम** कहते हैं। यह पहले कुछ-कुछ भूरी और बादमें काली हो जाती है। स्वाद तिक्त, उत्क्लेशजनक और गंध विशेष प्रकारकी अप्रिय होती है।

उपयुक्त अंग—सुखाई हुई पोस्तेकी डोंडी (**पोस्ते खश्खाश**—फलत्वचा), बीज (**तुख़्मेखश्खाश**), बीजोत्थ तेल (**रोग़न खश्खाश**) और सुखाया हुआ दूध अर्थात् फलनिर्यास (**अफीम**)।

रासायनिक संगठन—पोस्त (डोंडी)में अल्पप्रमाणमें अफीम और बीजोंमें मीठा अनुत्पत् हलके पीले रंगका गंधरहित तेल होता है, जिसको पोस्ते खश्खाशका तेल (**रोग़न खश्ख़ाश**) कहते हैं। अफीममें **मार्फिन** (Morphine), नार्कोटीन (Norcotine) और कोडीन (Codeine) प्रभृति क्षारोद होते हैं।

कल्प तथा योग—रामहराम (म० जवामेअ), **बरशाशा**, **दियाकूजा**, **ख़मीरा खशखाश** (मुरक्कब), **शर्बत खशखाश**, क़ुर्स खश्खाश, **लऊक़ खशखाश**, **जिमाद् अजीब**, हब्ब शकीका, **माजून** दिक व सिल, **कुर्स मुसल्लस**, **ख़्वाब आवर**, रोग़न मुजर्रबा राजी, तिर्याक अफ़्यून।

अफीम

अफीम—शैखलिखित संमोहन औषधि योगका एक उपादान है। इसके अतिरिक्त इसके अन्य योग निम्नलिखित हैं:—

संजरीना (शैख)। माजून मुकव्वी व मुबह्री (जामेउस्सेनाआ), रोग़न मुसक्किन, जदेजाम इश्क बुजुर्ग, तिर्याक बाहे (शैख), हब्ब अफ़्यून, हब्ब जदवार, शियाफ़ अब्यज़ अफ़्यूनी।

प्रकृति—चौथे दर्जेमें **शीत** और **रूक्ष** (खुश्क)। आयुर्वेदमतसे उष्णवीर्य।

गुण-कर्म तथा उपयोग—**स्वापजनन**, स्वप्नजनन, **वेदनास्थापन**, अभिष्यंदि (मुसद्दिद), उग्र **संग्राही**, **रक्तस्तंभन**, **शुक्रस्तंभन** और ऋतुज्वरहर, विशेषतः वेदनास्थापन और प्रसेकावरोधक (हाबिस नज़ूलात) है।

स्वापजनन और वेदनास्थापन होनेके कारण शिरःशूल, अनन्तवात (दर्दे असाबः) पार्श्वशूल (जातुज्जनब), कटिशूल, आमवात, दंतशूल, नेत्र एवं कर्णशूल, गृध्रसी और बहुधा समस्त अंगप्रत्यंगोंकी पीड़ा शमन करनेके लिए लेप, अभ्यंग और आश्च्योतनकी भाँति इसका उपयोग करते हैं। स्वप्नजनन होनेके कारण रक्तज और पित्तज सरसाम (सन्निपात), मद, उन्माद, अनिद्रा इत्यादि और आंतरिक वेदनाओंमें इसे खिलाते हैं जिससे रोगीको नींद आकर मूलव्याधि बहुत कुछ दूर होती है। संग्राही होनेके कारण यह अतिसार और प्रवाहिकाको बंद करनेके लिए उपयोग की जाती है। पर यदि प्रवाहिका विबंधजन्य हो तो रेचनके द्वारा विबंध (सुद्दा)का उत्सर्ग कर लेनेके उपरांत इसका सेवन हितकर होता है। रक्तस्तंभन होनेके कारण प्रत्येक अंग विशेषकर अन्त्रके रक्तस्राव-को रोकनेके लिए यह पान और बस्तिकी भाँति प्रयुक्त होती है। स्वापजनन और संशमन होनेके कारण बाह्याभ्यंतर उपयोगसे यह समस्त प्रकारके कास विशेषकर उस कासके लिए परम गुणदायक है, जो वातप्रकोप (असबी हैजान) के कारण बार-बार आता है और कफोत्सर्ग कम होता हो। किंतु जबकि वायुप्रणालिकायें (शोबरिया) कफसे परिपूर्ण हो तब अफीमका सेवन अहितकर सिद्ध होता है। प्रसेकावरोधक होनेके कारण दायमी प्रसेक और प्रतिश्यायमें इसका उपयोग करते हैं। शुक्रस्तंभन होनेके कारण शीघ्रपतन रोगमें यह पुष्कल उपयोग की जाती है। ऋतुज्वरोंको दूर करने और गर्भपात रोकनेके लिए भी इसका उपयोग करते हैं। गर्भपात और प्रसवोत्तर वेदनाको दूर करनेके लिए भी इसे खिलाते हैं। रोमके रोगोंमें भी इसका उपयोग होता है। यह बाल गिरनेको रोकती है। **अफीमके विषलक्षण और उसकी चिकित्सा**—अधिक प्रमाणमें अफीम खानेसे रोगी इतनी गंभीर निद्रामें सो जाता है कि वह सर्वथा अचेत हो जाता है और उसका जागना कठिन होता है। शरीरकी त्वचा शीतल एवं चिपचिपी हो जाती है। नाड़ी कमजोर एवं सुस्त चलने लगती है। श्वासोच्छ्वास भी सुस्त हो जाता है। अंततः खर्राटे और साँस आने लगता है और श्वास अवरुद्ध होकर रोगी यमलोक सिधारता है। **चिकित्सा**—अफीम खाये हुएको कै करायें या स्टँमक-पम्पके द्वारा मेदेको भली-भाँति धोकर बिनौलेका काढ़ा पिलायें अथवा हींग या जुंदबेदस्तर खाई हुई अफीमकी मात्राके बराबर खिलायें। **अहितकर**–कामावसादकर है और समस्त बाह्यांतरिक शक्तियोंको निर्बल बनाता है। **निवारण**–केसर और जुंदबेदस्तर। **प्रतिनिधि**–खुरासानी अजवायन। **मात्रा**–दो चावलसे १ रत्ती तक।

आयुर्वेदीय मत—अहिफेन (अफीम) रसमें तिक्त, विपाकमें कटू, सूक्ष्म, उष्णवीर्य, विष; स्तम्भन, वेदनास्थापन, स्वेदजनन, निद्रा लानेवाला और कफके रोगोंका नाश करनेवाला है। (द्रव्यगुणविज्ञानम्)।

नव्यमत—मुँहसे लेकर गुदापर्यंत महास्रोतस् (पचननलिका) पर अफीमकी प्रत्यक्ष क्रिया होती है। इससे थूक और आमाशयका रस कम होता है, भूख कम होती है और मल गाढ़ा (शुष्क) होता है। नाड़ीकी गति सुधरती है। मन आनन्दित और उत्साहित होता है। विचारशक्ति और कामशक्ति बढ़ती है तथा मनके शान्त होनेसे नींद आती है। ये सब क्रियायें थोड़ी मात्रामें अफीम देने पर देखनेमें आती हैं। इसे बड़ी मात्रामें देनेसे इसकी उत्तेजकता नष्ट होती है, पाचनशक्ति बिगड़ती है तथा स्पर्शज्ञान और सुख-दुखः समझनेकी शक्ति कम होती है। मस्तिष्कपर अफीमकी ये सब क्रियायें प्रथम और मुख्यतया होती हैं और पीछे ज्ञानवाहिनियों पर होती हैं। इससे शरीरके सभी रस कम होते हैं; मात्र पसीना, मूत्र और दूध कम नहीं होता। अफीममें उत्तेजकआह्लादकारक, वाजीकर शामक, स्वापजनन, पीड़ाशामक, शूलघ्न, मादक, कफघ्न, ग्राही, रक्तस्तंभन, स्वेदजनन, विषमज्वरप्रतिबन्धक शोथघ्न, कासहर और संकोचनविकास प्रतिबन्धक (आक्षेपहर) ये बहुमूल्य गुण हैं। इसे थोड़ी मात्रामें देनेसे ये सब गुण देखनेमें आते हैं। एक मात्रामें ऊपर लिखे सब गुण देखनेमें नहीं आते। **मात्रा**–धीरे-धीरे गुणकी अपेक्षा हो पावसे इससे किसी भी प्रकार की वेदना शांत होती है। आधी रत्ती गोलीके रूपमें देना चाहिए और त्वरित गुणकी अपेक्षा हो तो १ रत्ती मात्रामें आसव या मद्यमें मिलाकर देना चाहिए।

शस्त्रक्रिया करने बाद, चोट या भार (अभिकात) लगनेके बाद और शरीर जलनेपर रोगीक अफीम देते हैं। इससे पीड़ाका ज्ञान नहीं होता, रोगीको नींद आ जाती है और मनका आघात कम होता है। यह उत्कृष्ट

वेदनास्थापन है। इससे सब प्रकारकी वेदना शांत होती है। इसीलिए मूत्राश्मरी, पित्ताश्मरी, (भार) मानसिक आघात, अंग जलना, अस्थिभंग, उदरशूल, अर्बुद (केन्सर आदि), आमाशयका क्षत, तीव्रसन्धिवात आदिमें पूर्ण मात्रामें और लारम्बार इसे देते हैं। पीड़ासे निद्राभंग होती हो तो इसके समान दूसरी औषधि नहीं है इसका लेप शोथघ्न और पीड़ाशामक है। इसलिए सन्धिशोथ, कटिशूल, फुप्फुस सावरणशोथ, नेत्राभिष्यन्द आदि वेदनाधिक शोथोंमें इसे अकेला या उचित द्रव्योंके साथ मिलाकर लेप किया जाता है। यह फुप्फुसान्तर्गत श्वास-नलिकाओंके संकोच-विकासको कम करता है। इसलिए शुष्क कास-कास और दमामें तथा कफयुक्त कासमें इससे लाभ होता है। परन्तु श्वासोच्छास टीक चलता हो, त्वचा मृदु हो और कफ एकदम ढीला पड़ गया हो, तब ही इसे सूक्ष्म प्रमाणमें कपूर, नौसादर, मदारकी जड़की छाल, लोबान, लोबानके फूल, कांदा जैसे उत्तेजक श्लेष्मनिःसारक द्रव्योंके साथ मिलाकर देना चाहिये। आमाशय या आँतोंमें क्षत होकर रक्तस्राव होता है। तब इसे देते हैं। इससे आँतोंकी पुरःसरण गति कम होती है और रक्तस्राव बन्द होता है। क्षय रोगमें होनेवाला रात्रिस्वेद इशके सेवनसे कम होता है। मधुमेहमें इसे देनेसे शर्कराकी राशि कम होती है।

फल (पोस्तेकी डोंडी-पोश्त खश्खाश)—

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें शीत और पहलेसे रूक्ष। जिस पोस्तेसे अफीम न निकाली गई हो वह अफीम निकाले हुए पोस्तसे वीर्यवान् होता है।

गुण-कर्म—स्वापजनन, स्वप्नजनन, **वेदनास्थापन**, संग्राही रक्तस्तंभन विशेषतः स्वापजनन और वेदना-स्थापना है।

उपयोग—यह कण्ठ और उरः फुप्फुस रोगोंमें लाभकारी है। स्वापजनन और वेदनस्थापन होनेके कारण शिरःशूल, अतन्तवात अर्धावभेदक, पार्श्वशूल, कटिशूल, आमवात और गृध्रसीमें यह लेप ओर परिषेककी भाँति प्रयुक्त होता है। नेत्राभिष्यंदमें दर्दको शमन करने और दोषको विलोम करनेके लिए नेत्रके चतुर्दिक् इसका लेप किया जाता है और अन्य औषधद्रव्योंके साथ पोटली बनाकर अर्कगुलाबमें तर करके नेत्रके ऊपर बारम्बार फिराया जाता है। कर्णशूलमें इसके काढ़ेका बफारा देते और कपड़ेकी गद्दी इसमें भिगोकर सेक वा टकोर करते हैं। प्रसवोत्तर वेदनाको शमन करनेके लिए भी इसके काढ़ेसे सेक कराते हैं। कंठके उष्णशोथोंमें दोषको विलोम और वेदनाको शमन करनेके लिए इसका गण्डूष कराते हैं। स्वप्नजनन होनेके कारण सन्निपात (सरसाम) मद मालिन्खोरिय, उन्माद और अनिद्रामें इसका काढ़ा पिलाते और लेप करते हैं और अकेले या उपयुक्त औषधियोंके साथ पीसकर शिर और मस्तकपर लेप करते हैं। संग्राही होनेके कारण अतिसार एवं प्रवाहिकामें इसका चूर्ण बनाकर खिलाते हैं। यह शुष्क कासके लिए परम गुणदायक है और इस रोगमें नाना प्रकारसे उपयोग किया जाता है। **लऊकसपिस्ताँ** इसका प्रसिद्ध योग है जो कासके लिए सिद्ध भेषज है। रक्तस्तंभन होनेके कारण यह रक्तष्ठीवन और अन्त्रस्थ रक्त-स्रावमें उपयोग किया जाता है। **शर्बत ख़श्ख़ाश, लऊक़ ख़श्ख़ाश** और **दियाक़ूजा** इसके प्रसिद्ध योग हैं जो उष्ण प्रसेक और कास एवं रक्तष्ठीवनमें प्रयुक्त होते हैं। **अहितकर**—फुप्फुसों और शीतप्रकृतिके लिए। **निवारण**—शुद्ध मधु, शर्करा और मस्तगी। **प्रतिनिधि**—बहुत ही हलकी मात्रामें। **मात्रा**—एक माशा से २ माशा तक।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें शीत और पहले (साहबहावीके मतसे दूसरे)में तर है।

गुण-कर्म—बाह्यत्वचापर उपयोग करनेसे यह अवसादक और स्वापजनन कर्म करता है। सिरपर लेप करनेसे इसका **स्वप्नजनन** कर्म होता है। चूर्ण बनाकर खिलानेसे भी यह स्वप्नजनन और स्वापजनन कर्म करता है तथा अन्त्र-आमाशयमें कब्ज उत्पन्न करता (संग्राही), अतिसारको बन्द करता, फिर भी इसका क्वाथ और फांट सारक और सीठी संग्राही है। यह अन्त्रस्थ-रक्तस्रावको बंद करता है।

उपयोग—शरीरके समस्त अंग-प्रत्यंगोंकी पीड़ा शमन करनेके लिए इसको उपयुक्त औषधियोंके साथ पीस-कर लेप करते हैं तथा इसका काढ़ा परिषेक वातरेडा और सीकर (सकूब)की भाँति उपयोग करते हैं। शर्कराके

साथ यह उरःकण्ठ और फुफ्फुसकी कर्कशताको दूर करता है। यह शिरःशूल-निवारण और मस्तिष्क-बलदायक है। गरम तथा खुश्क खाँसी, रक्तष्ठीवन, तपेदिक (क्षयज्वर) और यकृत् तथा वृक्कके दौर्बल्यको नष्ट करता है। यह वस्तिसंक्षोभ और वस्तिके अन्य रोगोंके लिए गुणदायक है; शरीरको पुष्ट करता, बादामके मग्जके साथ उत्तम रक्त उत्पन्न करता है। इनको किंचित् भूनकर सूँघनेसे अनिद्रा दूर हो जाती है। शैखके मतसे इसमें पर्याप्त पोषणांश नहीं है। यह सांद्रदोष उत्पन्न करता है। १ माशा कम ३ तोलेकी मात्रामें पीसकर शर्कराके साथ खानेसे नींद आ जाती है। स्वर्गवासी **हकीम मुहम्मद हुसैन** रामपुरी ऋतुजन्य शीतपूर्वज्वरका वेग रोकनेके लिए इसको पिसवाकर शीरा पिलवाते थे। इनको पीसकर शहदमें मिलाकर चाटनेसे शुक्र और वाजीकरणकी शक्ति अधिक होती है। **मग्जबादाम** और चीनीके साथ इसका हरीरा बनाकर पीते रहनेसे शुक्र उत्पन्न होता है और वृक्कमें स्थूलता आती है। वाह्य प्रयोगसे झाईं, श्याम दाग (नमश) और तिलकालक (ख़ैलान) को दूर करता है। काला पोस्तेका दाना (**खस्खाश स्याह**) तीसरे दर्जेमें शीत और दूसरेमें रूक्ष है तथा सभी कर्मोंमें सफेदकी अपेक्षया बलवत्तर होता है। ज्वरोंमें यह सफेदकी भाँति प्रयुक्त होता है। **अहितकर**—अधिकतर फुफ्फुसको अहितकर है। काला मस्तिष्कके लिये अहितकर है। **निवारण**—मस्तगी, तज, अजमोदा खाँड और शहद। कालाका सौंफ। **प्रतिनिधि**—काहूके बीज। कालेका जंगली काहू। **मात्रा**—१ माशासे ३ माशे तक।

ख़श्ख़ासका तेल (रोग़न ख़श्ख़ाश)—

गुण-कर्म तथा उपयोग—पोस्तेके दानेसे उसके तेलका कर्म निर्बल होता है। यह नींद लाता और सुद्दा (अवरोध) डालता है। इसको गुलरोगनमें मिलाकर सिरपर मलनेसे शिरःशूल आराम होता है। यह अन्य तेलोंकी भाँति प्रसेक (नज़ला) उत्पन्न नहीं करता; प्रत्युत सफेद पोस्तेका तेल तो गरमीसे हुई खाँसीको मिटाता है तथा गरम दर्दों और शोथोंको मिटाता है। काला पोस्तेका तेल कनपुटियों पर मलनेसे सुन्नता पैदा करता और नींद लाता है तथा शरीरको भारी बना देता है। कानमें टपकानेसे यह तत्काल कर्णशूल शमन करता है।

आयुर्वेदीय मत—पोस्तेका क्षुप पाकमें मधुर, भारी, ग्राही, वृष्य, बल्य, कफकारक, वीर्यदायक, कान्तिदायक तथा वातपित्तको शमन करनेवाला है। **फल** रूक्ष, ग्राही और रक्तशोषक है। (नि० र०)। **पोस्तेकी डोंडी** तिक्त, कषाय, शीतवीर्य, रूक्ष, वातकारक, मलरोधक (ग्राही), धातुशोषक, मदकारक, वाणीको बढ़ानेवाली, रुचिकर, बारंबार मोहको उत्पन्न करनेवाली तथा कफनाशक, कासनिवारक और बहुत सेवन करनेसे पुंस्त्वका नाश करनेवाली है। **पोस्तदाना (खसबीज)** मधुर, भारी, बल्य वृष्य, ग्राही और वातविनाशक है। (भा० प्र०)।

●

(३९९) प्याज

फ़ैमिली : लीलिआसे (Family : Liliaceae)

नाम—(हिं०) प्याज; (अ०) बस्ल; (फा०) पियाज़; (सं०) पलाण्डु; (बं०) पेंयाज; (पं०) गंडा; (क०) पाज; (सिं०) वसर; (म०) कांदा; (गु०) कांदो; डुंगली(री); (लै०) आल्लिउम् सेपा (**Allium cepa Linn.**); (अं०) ओनियन (Onion)।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्षमें इसकी खेती की जाती है।

वर्णन—यह एक प्रसिद्ध कंदशाक है। लाल और सफेद भेदसे यह दो प्रकारका होता है। इसके बीज तिकोने, काले और तिक्त होते हैं। फारसी और अरबीमें इनको क्रमशः 'तुख़्मे पियाज़' और 'बज़्रुल्बस्ल' कहते हैं।

उपयुक्त अंग—जड़ (कंद) और बीज।

रासायनिक संगठन—कंदमें एक चरपरा एवं उग्रगंधि उत्पत् तेल और गंधक होता है। कंदके बाहरी छिलकेमें क्वर्सेंटीन नामक एक पीतरंजक द्रव्य होता है। स्वरस कीटाणुनाशक है।

प्याज—

प्रकृति—मलभूत द्रवोंके साथ तीसरे दर्जेमें गरम और पहलेमें खुश्क है। आयुर्वेदमतसे कुछ उष्णवीर्य (सु०) है।

गुण-कर्म—श्वयथुविलयन, दोषपाचन, छेदन, श्लेष्मनिःसारक, लेखन, बाजीकर, प्रमाथी (मुफ़त्तेह), विषघ्न, मूत्रार्तवजनन विशेषतः व्रणशोथपाचन एवं वाजीकर है।

उपयोग—प्याज अधिकतया मसालेमें डालकर खाया जाता है। यह चिरपाकी एवं आनाहकारक है। इसका अत्यधिक सेवन मस्तिष्कको हानि पहुँचाता है; किंतु इसका सेवन संभोगशक्तिवर्धक है। वाजीकरणके लिए इसके स्वरसका शर्बत बनाकर उपयोग करते अथवा प्याजका रस मधु और घी तीनों समप्रमाण लेकर पिलाते हैं। व्रणशोधविलयन और पाचनके लिए इसको अग्निमें दबाकर सुहाता गरम बाँधते हैं। किलास और छीप वा झाईं (वहक) जैसे रोगोंमें औषधद्रव्यको इसके रसमें पीसकर लेप करते हैं। बवासीरका मुँह खोलनेके लिए इसको मस्सोंपर बाँधते हैं। हैजेमें प्याजके रसके साथ चूनेका पानी मिलाकर पिलाते हैं। प्लेग तथा अन्य जनपदोद्ध्वंसक रोगोंके प्रकोपकालमें प्याजको सिरकामें डालकर खाते हैं। मरकवायुजन्य दोषसे बचनेके लिए कोई-कोई बिना सिरकाके कच्चे प्याजका उपयोग करते हैं। नेत्रकी अंधता (तारीकी) और धुंधको नष्ट करनेके लिए केवल प्याजका रस या उसमें समप्रमाण मधु मिलाकर नेत्रमें लगाते हैं। यदि कानमें फुंसी और उसके कारण दर्द हो तो अग्निमें पुटपाक (मुशव्वी) करके उसका रस निचोड़कर सुहाता गरम टपकाते हैं। यात्रामें विभिन्न प्रकारके जलदोषसे सुरक्षित रहनेके लिए प्याज या उसके अचारका सेवन लाभकारी है। **अहितकर**—उष्णप्रकृतिको। **निवारण**—सिरका, नमक, मधु और अनारका रस। **प्रतिनिधि**—कांदा और कुर्रास शामी। **मात्रा**—प्याजका रस २-३ तोले।

बीज—

प्रकृति—मलभूतद्रवोंके साथ दूसरे दर्जेमें गरम और खुश्क।

गुण-कर्म तथा उपयोग—बाजीकर और लेखन। प्याजके बीजोंको अधिकतया वाजीकर माजूनोंमें डालकर नपुंसकताके रोगियोंको खिलाते हैं। इसे शहदके साथ पीसकर खालित्यभेद (दाउस्सालब), व्यंग (कलफ) और छीप वा झाईं (बहक)पर लगाते हैं। सिरकामें पीसकर दद्रुपर और मस्सोंको नष्ट करनेके लिए नमकके साथ पीसकर मस्सोंपर लेप करते हैं। यह शीतल प्रकृतिवालोंके लिए विशेष वाजीकर है। **अहितकर**—उष्ण प्रकृतिवालोंके लिए। **निवारण**—मधु, सिरका और नमक। **प्रतिनिधि**—गंदनाके बीज। **मात्रा**—१ ग्रामसे ३ ग्राम (१ माशेसे ३ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—प्याज गुरु, कुछ उष्णवीर्य, तीक्ष्ण, कुछ कफ और पित्तकर, बल्य, आहारयोगी, वाजीकर, रोचक, अग्निवर्धक तथा वातघ्न है। (च० सू० अ० २७; सु० सू० अ० ४६)।

नव्यमत—प्याज उष्ण, लघु, कटु, उत्तेजक, आनुलोमिक, कफघ्न और मूत्रजनन है। इससे कफ पतला होकर गिरने लगता है और नया कफ उत्पन्न होना बंद होता है। आँतोंकी शक्ति बढ़कर दस्त साफ होनेके लिए तथा अर्श, गुदभ्रंश और कामलामें प्याजको देते हैं।

●

(४००, ४०१) प्याज जंगली, व विलायती

फ़ैमिली : लीलिआसे (Family : Liliacea)

नाम—काँदा (हिं०) जंगली प्याज, बनपियाज, काँदा, कनरी; (अ०) उन्सुले हिंदी, इस्क़ीले हिंदी; (फा०) पियाज़ सहराई; (सं०) कोलकन्द, वनपलाण्डु; (क०) बनप्राण; (बं०) जोंगलीपेयाज; (गु०) जंगली काँदो, पाणकंदो; (म०) रानकाँदा, कोलकाँदा; (का०) पुटालु; (ले०) (१) **ऊर्जीनेआ इंडिका (Urginea indica** Kunth.); (२) इससे गुण तथा रूपमें लगभग समान एक दूसरी वनस्पति भी होती है, जिसका नाम **सिल्ला हिआसींथिना Scilla hyacinthina** (Roth.) Macb. (**पर्याय—सील्ला इंडिका** *Scilla indica* Baker.) है; (अं०) इन्डियन स्क्विल्ल (Indian Squill), अर्जीनिया (Urginea)।

विलायती काँदा—(हिं०) विलायती जंगली प्याज (काँदा; (अ०) अल्-इस(श्–)क़ील, इस्क़ील, उन्सुल (इ० बै० संचि० ३ पृ० १३८), उन्सुल(-लान) (इ० बै०) बस्लुल् उन्सल, बस्लुल्फ़ार (कानून १ पृ० ३४६) बस्लुल्बर्र; (फा०) पियाज़ उन्सुल, पियाज़ दस्ती(मूश); (ले०) **ऊर्जीनेआ सील्ला (Urginea scilla)**; (यू०) स्किल्ला (Skilla = सूखाना)।

वक्तव्य—यह समुद्रतटों, विशेषकर भूमध्यसागर (Mediterranean Sea) एवं ओकियानूस सागरके तटीपर अधिक उत्पन्न होता है; इसलिए इसकी एक प्राचीन संज्ञा **स्क्वील्ला मारीटिमा** अर्थात् सामुद्रपलाण्डु (Sea onion) है जिसका अरबी पर्याय 'बस्लुल् उन्सुल' है। यह समुद्रतटसे दूर जंगलमें भी उत्पन्न होता है। अतएव इसे अरबीमें **बस्लुल्बर्र** और फारसीमें **प्याज़ दस्ती** और उर्दू तथा हिन्दीमें **जगली प्याज़** (बनपलाण्डु) कहते हैं। 'इस्क्विल' यूनानी 'स्क्वल्ला' संज्ञासे व्युत्पन्न है, जिसका अर्थ 'शुष्क करना' या पीड़ा देना है। **मुहीत आज़ममें उन्सुल या उन्सलको 'ऊन्सल'** लिखा है जो यथार्थ नहीं है। उपयुक्त दोनों वनस्पतियाँ यद्यपि गुण एवं स्वरूपमें समान हैं और इसलिए एक दूसरेका ग्राह्य प्रतिनिधि हो सकती हैं, तथापि वानस्पतिकदृष्टिसे एक ही फैमिलीकी होने पर भी भिन्न-भिन्न वानस्पतिक प्रजातियाँ हैं। यूनानीनिघण्टुओंमें विलायती काँदाका वर्णन किया गया है।

इतिहास—यह अतिप्राचीन औषधि है। यूनानी हकीम **फ़ीसागोरसने** इसके गुणकर्म विषयक एक सजिल्द पुस्तककी रचनाकी। **'सिरकये उन्सुल'** इसीका आविष्कार है। **बुक़रात** इसका बाह्यान्तर प्रयोग करता था। **प्लाइनी** इससे परिचित था और इसके दोनों भेदों (लाल और सफ़ेद) का ज्ञान रखता था। **दीसक़ूरीदूसने** भी **'इस्क्विल'** या **'इस्क़ील'** नामसे इसका उल्लेख किया है। उसने इससे सिरका (सिरकए उन्सुल) बनानेकी विधिका उल्लेख किया जो ब्रिटिश फार्माकोपिआके पिछले संस्करणमें एक मान्य कल्प था। प्राचीन यूनानी हकीम कफोत्सारि, मूत्रजनन, अङ्गरोधोद्घाटकके रूपमें कई एक रोगों विशेषकर श्वास, शोथ, आमवात, कुष्ठ और कतिपय अन्य रोगोंमें इसका उपयोग किया करते थे। अरबी यूनानी चिकित्सकोंने इसके गुणकर्म वर्णनमें यूनानी चिकित्सकोंका अनुसरण किया।

उत्पत्तिस्थान—काँदा भारतवर्षमें विशेषतः कारोमंडल तट और भारतीय प्रायद्वीपमें तथा विलायती काँदा भूमध्यसागरीय तटवर्ती प्रदेशोंमें स्वयंजात होता है।

वर्णन—जंगली प्याज भी आपाततः देखनेमें कर्षितकी ही भाँति होता है, केवल इसके पत्र प्याजके पत्रसे बड़े और चौड़े होते हैं। ताजाकंद चखनेपर जीभपर कण्डू प्रतीत होती है। इसका स्वाद अत्यन्त कटु एवं तिक्त होता है।

उपयुक्त अंग—काँदाकी परतदार गाँठ (कंद) जो विलायतीसे छोटा, प्याजवत् विभिन्न आकार-प्रकारकी, सफेदी लिए तिक्त और उत्क्लेशजनक होती हैं। काँदाकी नवीन छोटी और ताजी सुखाई हुई जड़ काफी गुणकारी है और गुणसाम्यके कारण विलायती काँदाकी जगहमें काममें ली जा सकती है। औषधार्थ प्रथमवर्षका नोबू जितना

बड़ा कांदा लेना चाहिए। विलायती काँदाके भीतरी परतकी फाँकें जो किसी कदर बल खायी हुई २·५ सें०मी० से ५ सें०मी० (१ या २ इञ्च) लम्बी अर्धस्वच्छ, पिलाई लिये सफेद या गुलाबी, निर्गंध और तिक्त होती हैं।

रासायनिक संगठन—इसमें (१) सिल्लीटॉक्सिन और (२) सिल्लीपिक्रिन् यह दो वीर्य जो ग्लुकोसाइड हैं और (३) सिल्लीन यह तीन उपादान पाये जाते हैं।

कल्प तथा योग—सिकंजबीन अंसली, सिरकए उन्सुल।

प्रकृति—मलभूत द्रवोंके साथ गरम और खुश्क। आयुर्वेदमतसे उष्णवीर्य।

गुण-कर्म तथा उपयोग—श्वयथुविलयन, दोषपाचन, व्रणकारक, शोणितोत्क्लेशक (जाज़िब खून), विषघ्न, मूत्रार्तवजनन, कफोत्सारि, उदरकृमिनाशक और विशेषतः कामलाहर तथा दृष्टिप्रसादन (मुजल्ला बस्र) है। जंगली प्याज साधारण प्याजसे अधिक वीर्यवान् होता है। यह उसकी भाँति खानेके काममें नहीं लिया जाता; किन्तु उन समस्त रोगोंमें गुणदायक है जिनमें साधारण प्याज उपादेय होता है। जंगली प्याज विशेषतः मूत्रजनन और कफनिष्ठीवनकर्ममें अधिक बलवान् है। कास और जलोदरमें पुष्कल उपयोग किया जाता है। उदरकृमिनाशनके लिए भी इसका उपयोग करते हैं। अहितकर–उष्ण प्रकृतिवालों और वातनाडीको। निवारण–मिश्री और सिकंजबीन। प्रतिनिधि–जंगली लहसुन और बच (वजतुर्की)। मात्रा–३ ग्राम से ५ ग्राम (३ माशेसे ५ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—जंगली प्याज कटु, उष्णवीर्य, उत्क्लेश और वमन करानेवाला, हृद्य तथा कफ, कृमि, कास और श्वासको दूर करनेवाला है।

नव्यमत—इसकी क्रिया डिजिटेलिसके समान होती है। यह अल्पमात्रामें स्वेदजनन, मूत्रजनन कफघ्न और हृदयबल्य है। बड़ी मात्रामें इससे वमन और विरेचन होता है तथा आमाशय और अन्त्रका दाह होता है। यह अन्त्र, वृक्क और फुफ्फुस द्वारा उत्सर्जित होता है। आँतोंसे निकलते समय मलको पतला करता है। वृक्कसे निकलते समय मूत्रकी राशि बढ़ाता है और फुफ्फुससे निकलते समय कफको पतला करता है। इससे हृदयको शक्ति मिलती है और हृदयका स्पंदन स्पष्ट मालूम होने लगता है। विदेशी चिकित्सापद्धतिमें इसका स्वेदजनन, मूत्रविरेचन, कफघ्न और हृदयबल्य औषधके रूपमें उपयोग होता है। बड़ी मात्रामें यह वामक और रेचक होता है।

◆

(४०२) फंजियून

फ़ैमिली : कॉम्पोजीटी (Family : Compositae)

नाम—(हिं०;पं०) वातपान; (अ०; भा०बाजार) फंजियून; (अ०) सोआली, हशीशतुस्सोआल; (यू०) फंजियून फंजरियून; (ले०) टूस्सीलागो फार्फारा (**Tussilago farfara** Linn.); (अं०) कोल्ट्स फूट (Colts' Foot), हॉर्स-हूफ (Horse-hoof), कफ-वर्ट (Cough-wort)।

उत्पत्तिस्थान—पश्चिम हिमालयमें कश्मीरसे कुमायूँ तक, पंजाब, ईरान और यूरोपकी सान्द्र भूमिमें होता है।

वर्णन—यह एक क्षुद्र वनस्पति है, जिसकी जड़ जमीन पर पसरी हुई, पुष्कल उपमूलयुक्त, पिच्छिल और किंचित् तिक्त होती है, जिसमें पत्तोंसे पहले फूल आते हैं अर्थात् फूल आनेके बहुत बाद पत्ते निकलते हैं। बहारके मौसममें पत्तोंमेंसे लगभग १ बित्ता लम्बा मूलीय पुष्पदंड निकलता है, जो गोल और लोमयुक्त होता है। प्रत्येक पुष्पदंडपर एक फूल आता है, जो चमकीला, पीला, लगभग २·५ सें० मी० (१ इञ्च) चौड़ा होता है। पत्र सरल,

जड़के समीप निकले हुए (Radical) हृदयाकृति (खुराकृति), विभक्त और बहुकोणाकार दाँतेयुक्त, ऊर्ध्वपृष्ठपर मसृण और हलका चमकीला हरा तथा अधःपृष्ठपर सफेद लम्बे घनरोमावृत और उभरी हुई स्पष्ट शिराओंसे युक्त; पत्र-मुकुल गोल और घनरोमावृत होता है। स्वाद पिच्छिलतायुक्त कुछ तिक्त और कषाय।

उपयुक्त अंग—पंचांग।

रासायनिक संगठन—इसमें (पत्तोंमें) एक बेरंग तिक्त ग्लूकोसाइड और लुआब होता है।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें उष्ण एवं रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—यह वातविलयन है। प्रारम्भमें फोड़ोंपर इसके पत्र बाँधने से वे बैठ जाते हैं और अंतमें बाँधनेसे वे पक जाते हैं। इसे तरखुजलीमें लगानेसे लाभ होता है। दृष्टिको तीव्र करनेवाली औषधियोंमें इसको डालते हैं। थोड़ी-सी इसकी जड़ या पत्ते मुखमें रखनेसे कास, श्वास और कृच्छ्रश्वासमें उपकार होता और वायु विलीन हो जाती है। पत्तोंका धुआँ पीनेसे भी यह लाभ होता है। इसे गर्भाशयमें रखनेसे गर्भपात हो जाता है और मृत भ्रूण निकल पड़ता है।

●

(४०३) फरफियून

फ़ैमिली : एउफॉर्बिआसे (Family : Euphorbiaceae)

नाम—(भा० बाजार; अ०) फ़रफ़ि(वि)यून, अफ़रबियून; (यू०) Euphorbion (D. 3.86); (अ०) अल् अफ़्रबिय्यून, फ़रबियून, लुबानत गर्बियत (इ० बै० ३/१५८; कानून १/१०८); फ़रफ़्यून, हाफ़िज़ुल् अत्फ़ाल, हाफ़िज़ुन्नहल; (ले०) एउफॉर्बिउम् (Euphorbium); (अं०) यूफॉर्बियम्, गम यूफॉर्बियम् (Euphorbium, Gum Euphorbium)।

वक्तव्य—उत्तर अफरीकाके मॉरिटेनिआ (Mauritania) नामक एक प्राचीन देशके द्वितीय नूबा नामक राजाके युफॉर्बस (Euphorbus) नामक राजकीय हकीमके नामपर इस औषधिका नाम 'युफॉर्बिअम्' रखा गया है।

उत्पत्तिस्थान—अफरीकाके मोरोक्को प्रदेश। यह ऐटलस पर्वत के समीप होता है।

वर्णन—फरफियून अफरीकाके डंडाथूहर (**एउफॉर्बिआ रेजीनीफेरा Euphorbia resinifera** Berg.) का सुखाया हुआ रालदार दूध है जो औषधके काम आता है। मतांतरसे इसका कांड मांसल, चौकोर (चौधारा), कण्टकावेष्टित और नागफनी (Cactus)के समान होता है। इसमें चीरा देकर दूधके निकलने और सूखनेके लिए छोड़ दिया जाता है। यह सुखाया हुआ दूधियारस (Latex) ही फरफियून (यूफॉर्बियम्) है। इसके पिलाई लिए भूरे रंगके छोटे-छोटे बेडौल टुकड़े होते हैं जिनमें एक तीक्ष्ण गंध (विशेष प्रकारके मोमके समान) तथा स्वाद तिक्त, चरपरा और काटनेवाला होता है। पुराना होनेपर इसका रंग कालाई या पिलाई लिए लाल हो जाता है। इसमें चारवर्ष-तक वीर्य रहता है। इसका रज तीव्र छिक्काकारक होता है और सूँघनेमें भयकारी है।

रासायनिक संगठन—इसमें (१) एक राल, (२) युफॉर्बोन (Euphorbon) नामक एक सत्व, (३) लबाब, (४) कैल्सियम तथा सोडियम और अन्य खनिज योगोंके मैलेट्स होते हैं।

प्रकृति—चौथे दर्जेमें उष्ण और रूक्ष (खुश्क)।

गुण-कर्म तथा उपयोग—बाह्य उपयोगसे फरफियून लेखन और विस्फोटजनक है, वातनाडियोंको उष्णता पहुँचाता और शक्ति देता है। आंतरिक उपयोगसे यह विरेक लाता (तीव्र विरेचन) है। यह विशेषतः पिच्छिल श्लेष्मविरेचन और प्रायः वातव्याधिनाशक है। इसको अधिकतया कुष्ठतेल या जैतूनतेल आदिमें मिलाकर अर्दित,

पक्षवध, कम्पवायु, स्वाप और आमवात जैसे कफ एवं वातरोगोंमें अभ्यंग करते या लेप कराते हैं। उपयुक्त औषधियों के साथ इसे वाजीकर तिलाओं और लेपोंमें मिलाकर शिश्नको उत्तेजना देनेके लिए उपयोग करते हैं। अर्दित एवं पक्षाघातमें इसे मर्जन्जोशके साथ हल करके नाकमें टपकाते हैं। अर्दित, पक्षवध, स्वाप, कम्पवायु, आक्षेप, सन्यास (सकता), आमवात, जलोदर और शूल (कुलंज) जैसे कफज एवं वातरोगोंमें आंतरिकरूपमें इसे विरेचनार्थ औषधकी भाँति खिलाते हैं। रजोरोधनिवारण एवं गर्भपात करानेके लिए फलवर्तिकी भाँति इसका उपयोग करते हैं। अहितकर—अन्त्र, वृषण और गर्भाशयके लिए। निवारण—गूगल और मुलेठी। प्रतिनिधि—जलोदर के लिए माजरियून और शूलमें जुंदबेदस्तर। मात्रा—०·२५ ग्रामसे ०·५ ग्राम (दो रत्तीसे ४ रत्ती) तक।

वक्तव्य—तीव्र विरेचनकी भाँति इसका उपयोग होता है। किंतु अधुना इसका आंतरिक प्रयोग नहीं होता। प्राचीनोंको इसके उक्त गुणका ज्ञान था। प्लाइनीने इसका विवरण किया है।

●

(४०४) फरासियून

फ़ैमिली : लाबिआटी (Family : Labiatae)।

नाम—(भा बाजार; अ०) फरासियून; (हिं०) पहाड़ी गंदना; (यू०) फ्रा (प्रा) सिओन Frasion, Prasion (D. 3. 109); (अ०) अल्फ़रासियून (इ० बै०) शनार; अल्क़मा(तिक्तद्रव्य), सूफ़ुल् अर्ज़(पार्थिवऊर्ण), हशीशतुल्कल्ब(श्वानतृण); (ले०) **मार्रूबिउम् वुल्गारे** (**Marrubium vulgare** Linn.); (अं०) कॉमन ह्वाइट होरहाउंड (Common white Hore-hound), होर-हाउंड (Hore-hound)।

वक्तव्य—'फरासियून' यूनानी 'फ्रासिओन (Frasion)'का किंचित्परिवर्तित रूप है।

उत्पत्तिस्थान—उत्तरपश्चिम सीमाप्रान्त, बलूचिस्तान और हिमालयमें कश्मीरसे पश्चिममें यूरोपपर्यन्त (५,०००–८,००० फुटकी ऊँचाई पर) यह जंगली होता है। इसकी खेती भी की जाती है।

वर्णन—यह एक छोटी वनस्पति है, जिसका काण्ड लगभग ३० सें० मी० (१ फुट) ऊँचा, चौकोर, बहुशाखान्वित और सफेद नरम रोइयोंसे घनावृत होता है। पत्र सम्मुखवर्ती, सवृंत, लगभग २·५ सें० मी० (१ इञ्च) लम्बा, रूपरेखामें अंडाकार, हृदयाकृति या आधारकी ओर गोल; पत्रतट सूक्ष्म या स्थूल एवं दूर-दूर दंतित, पृष्ठ उभरी हुई शिराओंके कारण झुर्रीयुक्त; पत्रादर हलका हरा, लोमश तथा पत्रपृष्ठ श्वेतरोमावृत होता है। पुष्प छोटे, सफेद तथा कक्षीय झुमकोंमें लगते हैं। बाह्यदलपुञ्ज या कैलिक्स (Calyx) १० शिरा और १० कड़े अंकुशवत् दंतुओंसे युक्त होता है। क्षुपमें विशेष प्रकारका सुगंधित और कुछ कस्तूरीवत् वास और तिक्त-चरपरा स्वाद होता है। कुछ कालोपरान्त यह गंध जाती रहती है। इसका एक कालाभेद और होता है, जिसे बलूती तथा अंग्रेजी और लैटिनमें क्रमशः ब्लैक होरहाउंड (Black Horehound) तथा मार्रूबिउम् नीग्रुम् (Marrubium nigrum Crantz.) या बाल्लोटा नीग्रा (Ballota nigra Linn.) कहते हैं।

उपयुक्त अंग—पंचांग।

रासायनिक संगठन—इसमें (शुष्क पुष्पिताग्र तथा पत्रमें) एक उत्पत् तैल तथा मार्रुबिन (Marrubin) नामक एक तिक्त ग्लूकोसाइड (०·४%), राल, टैनिन और वसा प्रभृति द्रव्य होते हैं।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें उष्ण एवं रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—**उरःफुफ्फुस संशोधन**, सार्वदैहिक उत्तेजक, **श्लेष्मनिस्सारक, अवरोधोद्घाटक, मूत्रल, वातानुलोमन, स्थानिक वेदनाहर, आर्तवजनन, लेखन, श्वयथुविलयन, कफछेदन**, तिक्तबल्य और अगद हैं। **मस्तिष्क संशोधनके** लिए इसका रस शिरःशूलमें अकेले वा गुलरोग़नके साथ नाकमें टपकाते हैं। लेखन होनेसे यह **नेत्रहितकर वर्तियोंमें** पड़ता है। अंधता, धुंध, फूली, मोतियाबिन्द, नेत्रकंडू, नेत्रस्राव और नेत्रमें शेष रही हुई कामलाजन्य पिलाईको दूर करनेके लिए इसे अकेले या शहदके साथ नेत्रमें लगाते हैं। नेत्रमें इसकी धूनीसे कामलाजन्य नेत्रकी पिलाई और इसके स्वरसके नस्यसे कामला आराम होता है। कर्णगूथ, कर्णस्रोतगत अवरोध और चिरज कर्णशूलमें इसके रस या काढ़ेमें मद्य मिलाकर कानमें टपकानेसे उपकार होता है। इसके पत्र मुखमें रखकर चाबनेसे मुखरोग आराम होते तथा दाँत और मसूढ़े दृढ़ होते हैं। श्लेष्मनिःसारक होनेके कारण तर (कफज) कास, उरःफुफ्फुसव्रण, श्वास, कृच्छ्रश्वास आदि कफज रोगोंमें अकेले या अन्य उपयुक्त औषधियोंके साथ क्वाथ या शर्बत आदिके रूपमें इसका उपयोग करते हैं। इससे श्लेष्मा, पूय एवं सांद्र दोषोंसे उरःफुफ्फुसका शोधन होता है। पार्श्वशूल और कृच्छ्रश्वासमें इसके पत्र पीसकर और शहद मिलाकर लेप करते हैं। पार्श्व एवं कुक्षि आदि शूलोंमें यह बहुत गुणकारी है। ऊर्ध्वाधोभागहर (सांद्र मलों अर्थात् सांद्र वायु और पिच्छिल श्लेष्मासे शरीरके अंग-प्रत्यंगको शुद्ध करनेवाले) द्रव्योंमें फरासियून श्रेष्ठ है। पान, लेप या स्वेद चाहे जिस प्रकार इसका उपयोग करें यह समस्त प्रकारके सांद्र वायुका अनुलोमन करता है। इस हेतु इसके रस वा काढ़ेमें गुलरोगन या जैतूनका तेल मिलाकर पिलाते हैं। इससे अन्त्रशूल आराम हो जाता है। गर्भाशयशोधन, गर्भ और अपरा निःसारण, सुखप्रसूति एवं आर्तवजननके लिए विशेषकर इसे ईरसाके साथ पिलाते हैं। वायुजन्य बस्तिरोग एवं मूत्रकृच्छ्रमें रोगीको इसके काढ़ेमें बैठाते या पेडूपर टकोर करते हैं। अन्त्रपरिवर्तन (तअक्कुद अमूआऽ) और अन्त्रशूलमें जिसे नाभिका स्थानभ्रंश (नाफका टल जाना) कहते हैं, इसे नाभिके नीचे लेप करते हैं। सांघातिक औषधियोंके विषनिवारणके लिए इसकी पत्तीका स्वरस पिलाते हैं। कुकुरदंश पर इसके पत्तोंको पानीमें पीस-पका और शहद मिलाकर लेप करनेसे सूजन उतर जाती तथा दुर्गन्धित एवं गाढ़े पूय आदिसे पूर्ण दुष्ट एवं पुराना व्रण शुद्ध हो जाता, दुष्टमांस दूर हो जाता, विषगाँठ (दाखिस) आराम हो जाता, कंठमाला कोमल एवं विलीन हो जाती, पक्वापक्व व्रण बिना कष्टके फूट जाते और उनका रोपण होता है। इसके विधिवत् स्वेदनसे हर प्रकारकी सूजन उतर जाती है। **अहितकर**—बस्ति, वृक्क और वातनाड़ीको। **निवारण**—रक्तमूत्रताके लिये बबूल का गोंद, कतीरा, शहद और बालछड़; वातनाड़ियोंके लिये बालछड़। सौंफ इसका अगद एवं गुणवर्धक है। **प्रतिनिधि**—हंसराज, कुन्दुर, (उशक), अफ्तीमून और अनीसूँ। **मात्रा**—१·७५ ग्राम से ३·५ ग्राम (१$\frac{३}{४}$ माशे से ३$\frac{१}{२}$ माशे) तक।

◆

(४०५) फर्राश

फ़ैमिली : टामारीसीने (Family : Tamariscineae)

नाम। वृक्ष—(हिं०) फरास, फर्राश, लालझाऊ; (अ०) असल; (फा०) शोरगज; (सं०) रक्तझावुक, महाझावुक; (बं०) लालझाऊ; (लै०) टामारिक्स आर्टीकुलाटा (**Tamarix articulata** Vahl.)। कीटगृह या माईं (Galls)—(हिं; द०) छोटी माईं, नन्हीं माईं; (अ०) समरतुल् अस्ल, हब्बुल् अस्ल, अज़बः; (फा०) माईं खुर्द; गज़्माज़जे खुर्द; (बम्ब०) छोटी मुइ (मैन), मगिया मैन; (अं०) स्माल टैमेरिक्स गॉल्स (Small Tamarisk Galls)।

उत्पत्तिस्थान—इसके वृक्ष उन्हीं प्रदेशोंमें होते हैं, जिनमें झाऊके वृक्ष होते हैं; परन्तु यह उसकी अपेक्षया कम होते हैं। उत्तरभारतवर्षमें नदियोंके किनारे तथा पंजाब और सिन्धमें यह विपुल होता है। प्रायः इसे लगाते हैं।

वर्णन—यह झाऊकी जातिका और उसका बागी (बुस्तानी) भेद है। इसके वृक्ष झाऊसे बड़े होते हैं। इसके पत्ते भी झाऊके पत्तेके समान होते हैं। इसके वृक्षसे प्राप्त कीटगृह गाँठें (Galls) जिन्हें भ्रमवश फल समझा जाता है, झाऊसे प्राप्त गांठों (बड़ी माईं)की अपेक्षया बहुत छोटी, आकारमें प्रायः लगभग चने या मटरके बराबर, त्रिकोणाकार नहीं, अपितु गोल, गँठीली और पिलाई लिए भूरे या मटियाले रंगकी होती हैं। इसे छोटी माईं कहते हैं।

उपयुक्त अंग—लकड़ी; पत्र और छोटी माईं। 'छोटी माईं'के गुणकर्म तथा उपयोग आदि झाऊमें देखें।

रासायनिक संगठन—छोटी माईंमें माजूफलमें होनेवाला टैनिक एसिड पुष्कल और खारी जमीन और समुद्रके किनारे होनेवाली झाड़ीकी राखमें पुष्कल सोडियम सल्फेट होता है।

प्रकृति—पहले दर्जेमें शीत और दूसरे दर्जेमें रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—श्वयथुविलयन, लेखन, रूक्षण, यकृत्प्लीहाबलदायक, वेदनास्थापन और रक्तप्रसादन। झाऊकी भाँति इसके पत्तों और लकड़ियोंको भी बाह्यांतरिक रूपसे उपयोग करते हैं। यकृद्दौर्बल्य एवं यकृच्छूलमें इसका उपयोग करते हैं। दंतशूल शमन करने और मसूढ़ोंको दृढ़ करनेके लिये इसके पत्रक्वाथके कुल्ले (मज़मज़ा) कराते हैं। व्रणों विशेतः मसूरिका (चेचक)के व्रणोंको सुखाने और बवासीरके मस्सोंको गिरानेके लिए इसके पत्तोंकी धूनी देते हैं तथा व्रणोंपर महीन पीसकर छिड़कते हैं। कतिपय रक्तविकारजन्य रोगोमें इसका पत्रक्वाथ पिलाते हैं। चेहरेकी रंगत निखारने और त्वचाके दाग (धब्बे) मिटानेके लिए इसका पतला लेप करते हैं। उष्णशोथों विशेषकर मुखगतविसर्प (माशिरा)को विलीन करनेके लिए पत्तोंको महीन पीसकर लेप करते हैं। मात्रा–५ ग्रामसे ७ ग्राम (५ माशेसे ७ माशे) तक।

वक्तव्य—माईंके गुणकर्म आदिके लिए दे० "झाऊ"।

●

(४०६) फालसा

फ़ैमिली : टीलिआसे (Family : Tiliaceae)

नाम—(हिं) फा(पा)लसा, फरसिया, पुरुषा; (फा०) फाल्सः; (सं०) परूष(क); (बं०) फलूसा; (गु०; म०) फालसा; (ते०) नल्लजान; (ता०) पलिशम्; (का०) बुत्ति-मुड़िप्पे; (सिं०) फारवाँ; (ले०) ग्रूइया आशिआटिका (**Grewia asiatica** Mast.); (अं०) एशियाटिक ग्रीविया (Asiatic Grewia)।

उत्पत्तिस्थान—भारतवर्ष। इसके क्षुप फलके लिए प्रायः बागोंमें ही लगाये हुए मिलते हैं।

वर्णन—यह एक प्रसिद्ध फल है जो जंगलीबेरके बराबर या उससे छोटा होता है। कच्चा फालसा हरा और कषेला, अधपका लाल एवं खट्टा और पूरापका कालाई लिए लाल एवं खटमिठा होता है। भेद—फालसा दो प्रकारका होता है—(१) यह रसीला, पकनेसे पूर्व खट्टा और पकनेके उपरांत खटमिट्ठा होता है। इसको फालसा शर्बती कहते हैं। (२) यह कम रसीला, खटमिट्ठा और बादमें मीठा होता है। इसको फालसा शकरी कहते हैं।

उपयुक्त अंग—फल, वृक्षत्वक्, वृक्षमूलत्वक्।

कल्प तथा योग—शर्बत फालसा।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें शीत और पहले दर्जेमें तर (स्निग्ध)। आयुर्वेदके मतसे पका हुआ शीतवीर्य और कच्चा उष्ण एवं रूक्ष (कै० नि०)।

गुण-कर्म—यह पित्तकी तीक्ष्णताको दूर करनेवाला, रक्तके प्रकोपको शमन करनेवाला, उत्क्लेश, वमन और उबकाईको लाभप्रद, उदरसंग्राहक, हृदयबलदायक, उष्णयकृदामाशमबलदायक, पित्तज्वरनाशक विशेषतः पित्तज रोग एवं हृद्द्रवनाशक है।

उपयोग—यह पित्तज रोगोंके लिए गुणदायक है। इस हेतु फालसाका शर्बत पिलाते हैं। इस गुणकर्मके कारणसे ही उत्क्लेश, छर्दि एवं उबकाई दूर करने और पित्तज रोगोंमें इसका उपयोग होता है। इसकी जड़की छाल (**पोस्त बेख फालसा शकरी**) सूजाक और सदाह मूत्रमें तथा रक्तकी तीक्ष्णता एवं उद्वेग शमन करने और प्यास बुझानेके लिए प्रयुक्त होती हैं। हृदयबलवर्धन, दीपन और उष्ण यकृद्बलदायक होनेके कारण यह उष्ण हृत्स्पंदन एवं विराग (तवह्हुश) जैसे हृद्रोगोंको जो हृदयदौर्बल्यके कारण हो जाते हैं, दूर करता है और आमाशय तथा यकृत्के दौर्बल्यको निवारण करता है। उदरस्तम्भक होनेके कारण यह पित्तज अतिसारको बन्द करता है। मूत्रकृच्छ्र एवं रक्तमूत्रमें इसकी जड़की छाल और मधुमेहमें इसके वृक्षके तनेकी छाल ले उसको ऊपरसे छील उसका फाण्ट बनाकर पीनेसे उपकार होता है। **अहितकर**—आनाहकारक (नफ़्फ़ाख) है। **निवारण**—गुलकंद, अनीसूँ और माजूनकम्मूनी। **प्रतिनिधि**—आलूबोखारा। **मात्रा**—फलसा मेवाकी भाँति २ से ५ तोले तक; औषधरूपेण उसका निचोड़ा हुआ स्वरस २ से ३ तोले तक; फालसेके वृक्षकी छाल फांटमें १ तोलासे २ तोले तक।

आयुर्वेदीय मत—**कच्चा फालसा** अम्ल, कुछ मधुर, कषायानुरस, लघु, वातघ्न, ग्राही तथा कफ-पित्त प्रकोपक है। (सु० सू० अ० ४६; वा० सू० अ० ६; कै० नि०)। **पका हुआ फालसा** रस और विपाकमें मधुर, वातपित्तहर, शीतवीर्य, वीर्यवर्धक, रोचन, हृद्य, विष्टम्भी, बृंहण, विरेचनोपग, ज्वरहर, श्रमहर तथा दाह, तृषा और क्षतक्षयका नाश करनेवाला है। (च० सू० अ० ४, २१; २७; सु० सू० अ० ३८, ४६; कै० नि०)।

नव्यमत—फालसा पित्तघ्न और हृद्य है। हृद्रोग, पित्तप्रकोप और ज्वरमें फालसेका शर्बत देते हैं।

●

(४०७) फाशरा

फ़ैमिली : कूकुरबिटासे (Family : Cucurbitaceae)

नाम—(यू०) अम्पीलोस ल्यूक (दीसकूरीदूस); (अ०) फ़ाशरा (सुर्यानी 'फाशारः' से अरबीकृत), फाशीरा, अल् हज़ारजशान (इ० बै०), कर्मतेल्बैज़ाऽ(श्वेत द्राक्षा—Vitis alba), लफ़तुल्शैतान(शैतानका शलगम); (फा०) हज़ारफ़ेशान, हजारक(ज)शान, स्याहदारू, मारदारू, करमेदश्ती, ताक सहराई; (ले०) **ब्रीओनिया डीओइका** (**Bryonia dioica** Jacq.), **ब्रीओनिया आल्बा** (**Bryonia alba** Linn.); (अं०) इंगलिश मैन्ड्रेक (English Mandrake), मैन्ड्रागोरा (Mandragora), ह्वाइट ब्रायोनी (White Bryony), वाइल्ड वाइन (Wild Vine)।

उत्पत्तिस्थान—यूरोप, फारस आदि।

वर्णन—सूत्रोंके सहारे बृक्षोंपर फैलनेवाली शिवलिंगीकी जातिकी एक लता जिसका काण्ड १५०से १८० सें० मी० (५-८ फुट) लम्बा, महीन और सशाख, नालीदार और क्षुद्र कर्कशरोमोंसे आवृत्त होता है। पत्र वृहत्, एकांतर, करतलाकार पाँच नुकीले खण्डाग्रयुक्त, मूलमें हृदृत् (Acute), विषमदंतित खंडयुक्त ऊर्ध्वाधः उभयपृष्ठ कर्कश, पत्रवृंत लम्बा; पुष्प पत्रकोणसे निकले हुए क्षुद्रगुच्छोंमें होते हैं। फल चिकना, गोल, हरा और पकनेपर नारंगी लालरंगका होता है। इसमें छः तक अंडाकार बीज होते हैं। जड़ शलगमकी जड़के सदृश बहुत बड़ी ३० से ६० सें० मी० (१-२

वर्णन—यह झाऊकी जातिका और उसका बागी (बुस्तानी) भेद है। इसके वृक्ष झाऊसे बड़े होते हैं। इसके पत्ते भी झाऊके पत्तेके समान होते हैं। इसके वृक्षसे प्राप्त कीटगृह गाँठें (Galls) जिन्हें भ्रमवश फल समझा जाता है, झाऊसे प्राप्त गांठों (बड़ी माईं)की अपेक्षया बहुत छोटी, आकारमें प्रायः लगभग चने या मटरके बराबर, त्रिकोणाकार नहीं, अपितु गोल, गँठीली और पिलाई लिए भूरे या मटियाले रंगकी होती हैं। इसे छोटी माईं कहते हैं।

उपयुक्त अंग—लकड़ी; पत्र और छोटी माईं। 'छोटी माईं'के गुणकर्म तथा उपयोग आदि झाऊमें देखें।

रासायनिक संगठन—छोटी माईंमें माजूफलमें होनेवाला टैनिक एसिड पुष्कल और खारी जमीन और समुद्रके किनारे होनेवाली झाड़ीकी राखमें पुष्कल सोडियम सल्फेट होता है।

प्रकृति—पहले दर्जेमें शीत और दूसरे दर्जेमें रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—श्वयथुविलयन, लेखन, रूक्षण, यकृत्प्लीहाबलदायक, वेदनास्थापन और रक्तप्रसादन। झाऊकी भाँति इसके पत्तों और लकड़ियोंको भी बाह्यांतरिक रूपसे उपयोग करते हैं। यकृद्दौर्बल्य एवं यकृच्छूलमें इसका उपयोग करते हैं। दंतशूल शमन करने और मसूढ़ोंको दृढ़ करनेके लिये इसके पत्रक्वाथके कुल्ले (मज़्मज़ा) कराते हैं। व्रणों विशेतः मसूरिका (चेचक)के व्रणोंको सुखाने और बवासीरके मस्सोंको गिरानेके लिए इसके पत्तोंकी धूनी देते हैं तथा व्रणोंपर महीन पीसकर छिड़कते हैं। कतिपय रक्तविकारजन्य रोगोमें इसका पत्रक्वाथ पिलाते हैं। चेहरेकी रंगत निखारने और त्वचाके दाग (धब्बे) मिटानेके लिए इसका पतला लेप करते हैं। उष्णशोथों विशेषकर मुखगतविसर्प (माशिरा)को विलीन करनेके लिए पत्तोंको महीन पीसकर लेप करते हैं। मात्रा-५ ग्रामसे ७ ग्राम (५ माशेसे ७ माशे) तक।

वक्तव्य—माईंके गुणकर्म आदिके लिए दे० "झाऊ"।

(४०६) फालसा

फ़ेमिली : टीलिआसे (Family : Tiliaceae)

नाम—(हिं) फा(पा)लसा, फरसिया, पुरुषा; (फा०) फाल्सः; (सं०) परूष(क); (बं०) फलूसा; (गु०; म०) फालसा; (ते०) नल्लजान; (ता०) पलिशम्; (का०) बुत्ति-मुड़िप्पे; (सिं०) फारवाँ; (ले०) ग्रूइया आशिआटिका (**Grewia asiatica** Mast.); (अं०) एशियाटिक ग्रीविया (Asiatic Grewia)।

उत्पत्तिस्थान—भारतवर्ष। इसके क्षुप फलके लिए प्रायः बागोंमें ही लगाये हुए मिलते हैं।

वर्णन—यह एक प्रसिद्ध फल है जो जंगलीबेरके बराबर या उससे छोटा होता है। कच्चा फालसा हरा और कषेला, अधपका लाल एवं खट्टा और पूरापका कालाई लिए लाल एवं खटमिठा होता है। भेद—फालसा दो प्रकारका होता है—(१) यह रसीला, पकनेसे पूर्व खट्टा और पकनेके उपरांत खटमिट्ठा होता है। इसको **फालसा शर्बती** कहते हैं। (२) यह कम रसीला, खटमिट्ठा और बादमें मीठा होता है। इसको **फालसा शकरी** कहते हैं।

उपयुक्त अंग—फल, वृक्षत्वक्, वृक्षमूलत्वक्।

कल्प तथा योग—शर्बत फालसा।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें शीत और पहले दर्जेमें तर (स्निग्ध)। आयुर्वेदके मतसे पका हुआ शीतवीर्य और कच्चा उष्ण एवं रूक्ष (कै० नि०)।

गुण-कर्म—यह पित्तकी तीक्ष्णताको दूर करनेवाला, रक्तके प्रकोपको शमन करनेवाला, उत्क्लेश, वमन और उबकाईको लाभप्रद, उदरसंग्राहक, हृदयबलदायक, उष्णयकृदामाशमबलदायक, पित्तज्वरनाशक विशेषतः पित्तज रोग एवं हृद्द्रवनाशक है।

उपयोग—यह पित्तज रोगोंके लिए गुणदायक है। इस हेतु फालसाका शर्बत पिलाते हैं। इस गुणकर्मके कारणसे ही उत्क्लेश, छर्दि एवं उबकाई दूर करने और पित्तज रोगोंमें इसका उपयोग होता है। इसकी जड़की छाल (**पोस्त बेख़ फालसा शकरी**) सूजाक और सदाह मूत्रमें तथा रक्तकी तीक्ष्णता एवं उद्वेग शमन करने और प्यास बुझानेके लिए प्रयुक्त होती हैं। हृदयबलवर्धन, दीपन और उष्ण यकृद्बलदायक होनेके कारण यह उष्ण हृत्स्पंदन एवं विराग (तवहूहुश) जैसे हृद्रोगोंको जो हृदयदौर्बल्यके कारण हो जाते हैं, दूर करता है और आमाशय तथा यकृत्के दौर्बल्यको निवारण करता है। उदरस्तम्भक होनेके कारण यह पित्तज अतिसारको बन्द करता है। मूत्रकृच्छ्र एवं रक्तमूत्रमें इसकी जड़की छाल और मधुमेहमें इसके वृक्षके तनेको छाल ले उसको ऊपरसे छील उसका फाण्ट बनाकर पीनेसे उपकार होता है। **अहितकर**–आनाहकारक (नफ़्फ़ाख़) है। **निवारण**–गुलकंद, अनीसूँ और माजूनकम्मूनी। **प्रतिनिधि**–आलूबोखारा। **मात्रा**–फलसा मेवाकी भाँति २ से ५ तोले तक; औषधरूपेण उसका निचोड़ा हुआ स्वरस २ से ३ तोले तक; फालसेके वृक्षकी छाल फांटमें १ तोलासे २ तोले तक।

आयुर्वेदीय मत—**कच्चा फालसा** अम्ल, कुछ मधुर, कषायानुरस, लघु, वातघ्न, ग्राही तथा कफ-पित्त प्रकोपक है। (सु० सू० अ० ४६; वा० सू० अ० ६; कै० नि०)। **पका हुआ फालसा** रस और विपाकमें मधुर, वातपित्तहर, शीतवीर्य, वीर्यवर्धक, रोचन, हृद्य, विष्टम्भी, बृंहण, विरेचनोपग, ज्वरहर, श्रमहर तथा दाह, तृषा और क्षतक्षयका नाश करनेवाला है। (च० सू० अ० ४, २१; २७; सु० सू० अ० ३८, ४६; कै० नि०)।

नव्यमत–फालसा पित्तघ्न और हृद्य है। हृद्रोग, पित्तप्रकोप और ज्वरमें फालसेका शर्बत देते हैं।

●

(४०७) फाशरा

फ़ैमिली : कूकुरबिटासे (Family : Cucurbitaceae)

नाम—(यू०) अम्पीलोस ल्यूक (दीसकूरीदूस); (अ०) फ़ाशरा (सुर्यानी 'फाशारः' से अरबीकृत), फाशीरा, अल् हज़ारजशान (इ० बै०), कर्मतेल्बैज़ाऽ(श्वेत द्राक्षा—Vitis alba), लफ़तुल्शैतान(शैतानका शलगम); (फा०) हज़ारफ़ेशान, हजारक(ज)शान, स्याहदारू, मारदारू, करमेदश्ती, ताक सहराई; (ले०) **ब्रीओनिया डीओइका** (**Bryonia dioica** Jacq.), **ब्रीओनिया आल्बा** (**Bryonia alba** Linn.); (अं०) इंगलिश मैन्ड्रेक (English Mandrake), मैन्ड्रागोरा (Mandragora), ह्वाइट ब्रायोनी (White Bryony), वाइल्ड वाइन (Wild Vine)।

उत्पत्तिस्थान—यूरोप, फारस आदि।

वर्णन—सूत्रोंके सहारे बृक्षोंपर फैलनेवाली शिवलिंगीकी जातिकी एक लता जिसका काण्ड १५०से १८० सें० मी० (५-८ फुट) लम्बा, महीन और सशाख, नालीदार और क्षुद्र कर्कशरोमोंसे आवृत्त होता है। पत्र बृहत्, एकांतर, करतलाकार पाँच नुकीले खण्डाग्रयुक्त, मूलमें हृदृत् (Acute), विषमदंतित खंडयुक्त ऊर्ध्वाधः उभयपृष्ठ कर्कश, पत्रवृंत लम्बा; पुष्प पत्रकोणसे निकले हुए क्षुद्रगुच्छोंमें होते हैं। फल चिकना, गोल, हरा और पकनेपर नारंगी लालरंगका होता है। इसमें छः तक अंडाकार बीज होते हैं। जड़ शलगमकी जड़के सदृश बहुत बड़ी ३० से ६० सें० मी० (१-२

फुट) अथवा इससे भी लम्बी, (अरबी 'लूफ़' यूनानी 'ल्यूक़का' अपभ्रंश है) सशाख और २·५ सें० मी० से ७·५ सें० मी० (१-३ इञ्च) व्यासमें बाहर और भीतरसे सफेद होती है। इसके अनुप्रस्थ काटके तलपर अनेक सुषिर वाहिनी-पूलों (Vascular bundles)की एक केन्द्रिक मुद्रिकाकार रेखायें तथा आरावत् अर्धव्यासीय रेखायें दिखाई पड़ती हैं। स्वाद, कटु, तिक्त तथा गन्ध कोई विशेष नहीं होता। व्यापारमें इसकी सूखी जड़के गोल-गोल कटे हुए टुकड़े पाये जाते हैं जो व्यासमें ३·७५ सें० मी० से ७·५ सें० मी० ($१\frac{१}{२}$-३ इञ्च) अथवा इससे अधिक और ३·१२ सें० मी० ($१\frac{१}{४}$ इंच) तक मोटे होटे हैं। इनका रंग बाहरसे पिलाई लिए भूरा और भीतरसे सफेदी लिए होता है। ये सरलतासे चूर्ण हो जाते हैं और चूर्णका रंग सफेद होता है। स्वाद अरुचिकर एवं तिक्त होता है। पानीमें भिगोनेसे उसमें इसका वीर्य आ जाता है। व्यापारी इसकी जड़को कुष्ठ (क़ुस्ते तल्ख़)की जगह बेचते हैं। गुण·कर्मकी दृष्टिसे सर्वाधिक वीर्यवान् इसका फल है उसके बाद जड़ और उसके बाद इसका पत्ता है। ब्रीओनिया या ब्रीओनॉप्सिस लॉसीनिओसा (**Bryonia or Bryonopsis laciniosa** Linn.) इसकीभारतीय जाति है, जिसे संस्कृतमें '**शिवलिङ्गी**, कहते हैं। यह फाशराका उत्तम प्रतिनिधि हैं।

रासायनिक संगठन—इसमें ब्रायोनिन (Bryonin) अर्थात् फाशरिन नामक एक तिक्त सत्व होता है जिस पर इसके गुणधर्म निर्भर करते हैं।

उपयुक्त अंग—पत्र, फल और मूल।

कल्प तथा योग। प्रवाही सार—मात्रा–$\frac{१}{२}$–१ ड्राम; ब्रायोनिन–मात्रा–१५ मि० ग्रा० से १२० मि० ग्रा० ($\frac{१}{८}$ रत्ती से १ रत्ती)।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें **गरम और रूक्ष**; जड़में गरमी कम अर्थात् समता (एतदाल)के साथ है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—यह भौमकीटविषोंका अगद है तथा मृगी, चक्कर (शिरोभ्रम), पक्षवध, अंगघात, विस्मृति, पार्श्वशूल, आमाशयशूल, खाँसी और अन्त्रामाशयके वायुके लिए गुणकारक है। यह मल तथा स्तन्यका प्रवर्तन करता है और पथरीको तोड़कर निकाल देता है। इसकी पेड़ीके (उसारा)को गेहूँके साथ पकाकर खानेसे शुक्र और स्तन्यकी वृद्धि होती है। इसके कच्चे कोंपलोंको तरकारीकी भाँति पकाकर खानेसे आमाशयको शक्ति प्राप्त होती तथा उसमें गरमी आ जाती है तथा लेसदारमल निकल जाते हैं। इसके अतिरिक्त हृच्छूल एवं आमाशय शूलको भी लाभ होता है, दूध बढ़ जाता है और दस्त होते हैं। शैख़के अनुसार यह प्लीहाकी उत्तम औषधि है। पौने दो ($१\frac{३}{४}$) माशे इसकी जड़को सिरका या शराबके साथ लगातार तीस-दिन अर्थात् एक मासपर्यन्त खानेसे बढ़ी हुई प्लीहा घट जाती है। इसको एलुए या सिरके और अंजीरके साथ पीसकर लेप करनेसे भी प्लीहाका शोथ जाता रहता है। मधुजलके साथ यह गाढ़े कफको छाँटकर निकाल देता है। खाज, झाईं, मस्से और काले दागोंपर इसकी जड़को सिरकेमें पीसकर लेप करनेसे लाभ होता है। इसके लेपसे टूटी हुई हड्डीके कण (शल्य) निकल जाते हैं और फोड़ोंमें मुँह हो जाता है। इसकी जड़को घीमें पकाकर व्रणोंपर लगाने, बवासीरके मस्सोंपर थोड़ा-सा लेप करने और सर्दीके दर्दोंपर लेप करनेसे उपकार होता है। यह घी सूजनको भी उतारता है। इसका कटिस्नान (आबजन) गर्भाशयको शुद्ध करता है और बच्चेको निकाल देता है। इसके फलोंका लेप बालोंको दूर कर देता है। ३·५ से ४·५ ग्राम ($३\frac{१}{२}$–$४\frac{१}{२}$ माशे) तक इसकी जड़ कतीरा या मधुजलके साथ खानेसे खूब वमन और दस्त होते हैं। ३·५ ग्राम ($३\frac{१}{२}$ माशे) इसकी जड़ खानेसे गर्भशिशु मर जाता है। **अहितकर**–यकृत्, प्लीहा, बुद्धि, विवेक और दृष्टिको। **निवारण**–यकृत्के लिए रेवंदचीनी और शेषके लिए कतीरा खाना या वमन करना और फिर खट्टे सत्व (रुब्ब) खाना। **प्रतिनिधि**–समभाग दरूनज और $\frac{२}{३}$ या $\frac{१}{२}$ भाग जावित्री। **मात्रा**–जड़ ४·५ ग्राम ($४\frac{१}{२}$ माशे) तक; फल ७·५ ग्राम (७॥ माशे) तक।

नव्यमत—यह तीव्र संक्षोभक विरेचन है। अल्पमात्रामें कास, दुष्टप्रतिश्याय, श्वसनिकाशोथ (Bronchitis) और श्वसनक ज्वर (न्यूयोनिया)में उपकारक तथा वातरक्त या आमवातजन्य हृद्विकारों एवं विषमज्वर और अभिषवण सम्बन्धी (Zymotic) रोगोंकी मूल्यवान् औषधि है। अधिक मात्रा भयावह है। मात्रा—३०० मि० ग्रा० से ८५० मि० ग्रा० (२½ से ७½ रत्ती) इसका चूर्ण दिया जाता है।

●

(४०८) फिंदक

फ़ैमिली : कुपूलीफ़ेरे (Family : Cupuliferae)

नाम—(हिं०) **फिंदक**; (यू०) Karuon, pontikon (D. 1.179); (अ०) **फ़ुंदुक़, बुन्दुक़**; (फा०) बादाम कश्मीरी, बादाम कोही, बादाम सेहगोशा; (ले०) **कोरीलूस आवेल्लाना (Corylus avellana Linn.)**; (अं०) हैज़ेलनट (Hazel Nut)।

वक्तव्य—'फ़ुन्दक़' और 'बुंदुक़', फारसी '**पंदक**' से अरबी बनाये गए हैं। **अबूहनीफ़ाके संदर्भसे इब्नुल्बैतार**के कथनानुसार यह वही फल है जिसको अरब 'जिलौज़ (अ)' कहते हैं। (इ० बै० १।१२५)। यह 'बुन्दुक़ हिन्दी' से भिन्न द्रव्य है जिसे श्लीमर (Schlimmor)ने करंजुवा (Caesalpinia bonducella) बतलाया है।

वर्णन—यह एक बड़े पहाड़ी वृक्षका फल है जो तिकोना गोलाई लिये होता है। इसको तोड़नेसे बादामकी तरह मग्ज निकलता है जिसके ऊपर बारीक लाल छिलका होता है। यह बादामके मग्जकी तरह मीठा और स्वादिष्ट होता है। यह **मग्ज** ही औषधके काम आता है।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें उष्ण और पहलेमें तर। मतांतरसे पहले दर्जेमें गरम और दिल्लीके हकीमोंके मतसे पहले या दूसरे दर्जेमें खुश्क है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—बल्य, बृंहण, वाजीकर, आंत्रबलवर्धक, मेध्य, श्लेष्मनिःसारक और वृश्चिकदंश का अगद है।

उपयोग—फ़िंदककी गिरी (मग़ज़ फ़ुन्दुक़)को बादामकी भाँति पोषणार्थ खाते हैं। यह चिरपाकी एवं गुरु (विष्टम्भी) होता है और आनाह एवं वायु उत्पन्न करता है। औषधकी भाँति मस्तिष्कदौर्बल्यमें अकेले या उपयुक्त भेषज द्रव्यके साथ इसका **हरीरा** बनाकर पिलाते हैं अथवा **माजून** बनाकर वाजीकरण, बलवर्धन तथा बृंहणके लिये खिलाते हैं। कास और श्वासमें कफोत्सर्गके लिये इसको शहदमें मिलाकर चटाते हैं। थोड़ा भूनकर कालीमिर्चके साथ शीतल प्रसेक और प्रतिश्यायमें खिलाते हैं। वृक्कदौर्बल्य दूर करनेके लिये इसका उपयोग करते हैं। बिच्छू काटे हुएको इसे खिलाते और दंश पर लेप करते हैं। अहितकर–संग्राही वा स्तम्भक और शिरःशूलकारक है। **निवारण**–चीनी और विरेचनीय जुवारिश। **प्रतिनिधि**–चिलगोजा और अखरोट। **मात्रा**–६ ग्राम से ११·६ ग्राम (६ माशे से १ तोला)।

●

(४०९) फ़ितरासालियून

फ़ैमिली : ऊम्बेल्लीफेरी (Family : Umbelliferae)

नाम—(अ०) करफ़्स सख़री (-जबली-; मक़दूनी); (फ़ा०) करफ़्स कोही, करफ़्समक़दूनी (ले०) आपीउम् पेट्रोसेलिनुम् **Apium petroselinum** Linn. (पर्याय–*Carum petroselinum* Benth.; *Petroselinum sativum* Hoffm.); (अं०) पार्सले (Parsley)।

वक्तव्य—फ़ितरासालियून यूनानी 'बितरासालियून'का अरबी रूपांतर है। बम्बईमें अधुना फतरासालियून नामसे जो द्रव्य बिकता है, वह बादियानकोही है जिसको हिन्दीमें 'कोमल' और लेटिनमें प्रांगोस पाबूलारिया (**Prangos pabularia** Lindl.) कहते हैं। इसके पौधे कश्मीरमें ६,००० से ११,००० फीटकी ऊँचाई पर पाये जाते हैं।

उत्पत्तिस्थान–पूर्वी भूमध्यसागरीय देश, पश्चिम भारतवर्ष और ईरान।

वर्णन—यह अजमोदेकी तरहके एक क्षुपके बीज हैं जो लम्बे, काले और अजवायनके समान होते हैं। इनमें एक विशिष्ट प्रकारका स्वाद होता है। ये बीज ही औषधके काम आते हैं।

उपयुक्त अंग—मूल, पत्र और बीज।

रासायनिक संगठन—इसमें एक प्रकारका कपूर या स्नेहमय प्रवाही निकलता है जिसको एपिओल (Apiol) कहते हैं। यह पीला, विशिष्टगंधी, स्वादमें चरपरा (तीक्ष्ण) और अप्रिय होता है।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें गरम और खुश्क।

गुणकर्म—उत्कट कफछेदन एवं श्लेष्मनिःसारक, वातानुलोमन, प्रमाथी, मूत्रार्तवजनन, भ्रूण एवं अपरा निस्सारक, अश्मरीघ्न और वाजीकर।

उपयोग—उपर्युक्त गुणोंके कारण यह कृच्छ्रश्वास, पार्श्वरुक्, शूलरोग (दर्दे कुलंज) और मरोड़जन्य शूलके लिए गुणदायक होता है। प्रवर्तक होनेके कारण यह यकृत्का शोधन करती और अपनी प्रकृतिके कारण उसको गर्मी पहुँचाती है। प्रवर्तक होनेके कारणसे ही यह वृक्क-बस्ति एवं गर्भाशयका शोधन करती है। कृच्छ्रमूत्रतामें यह पेशाबको खोलती और रुद्धार्तवमें प्रयुक्तकी जाती है। इसी तरह यह भ्रूण तथा अमराका उत्सर्ग करती है। **अहितकर**–रक्तमूत्रजनक है। **निवारण**–कतीरा, शुद्ध मधु, बालछड़ सौंफ और अनीसूँ। **प्रतिनिधि**–उरोरोगोंके लिए हंसराज। **मात्रा**–३ ग्राम से ५ ग्राम (३ से ५ माशे) तक।

◆

(४१०) फ़िल्फ़िलुस्सूदान

फ़ैमिली : मीर्टासे (Family : Myrtaceae)

नाम—(अ०) फ़िल्फ़िलुस्सूदान (प्राचीन), फ़िल्फ़िल् हुलुब्ब, फिल्फिल् जमेकी, बहार, फ़िल्फ़िल् अफ़रंजी (नवीन); (ले०) पाइमेंटा (Pimenta), पाइमेंटो (Pimento), जमैका पेपर (Jamaica Pepper), आलस्पाइस (Allspice)। इसके वृक्षको पीमेण्टा आफ्फीसिनालिस (**Pimenta officinalis** Lindl.) कहते हैं। अंग्रेजीमें इसे ऑल-स्पाइस ट्री (All-spice Tree) कहते हैं।

उत्पत्तिस्थान—पश्चिमी भारतीय द्वीप विशेषतः जमैका द्वीप। मध्य अमेरिकामें इसकी खेती होती है।

वर्णन—यह **फ़िल्‌फ़िलुस्सूदान** नामक सदाहरित वृक्षके कच्चे फल हैं, जिनको तोड़कर सुखा लेते हैं। पुष्पागमकाल जून, जुलाई और अगस्त होता है, जिसके शीघ्र बाद ही फल (Berries) लगते हैं। यह हल्के गोल, कालीमिर्चके समान और भूरे रंगके होते हैं, जिनका व्यास लगभग १/२ सें०मी० (१/५ इंच) होता तथा फलका वाह्यतल खुरदुरा होता है। यह फल दो भागोंमें विभक्त हो जाता है, जिनमें से प्रत्येकमें कालाई लिए भूरे रंगके वृक्कके आकारके एक-एक बीज होते हैं। फलके छिलकेका स्वाद एवं गंध लौंगके समान होता है।

रासायनिक संगठन—इसमें लौंगके तेलकी तरहका एक उत्पत् तेल होता है। उक्त तैलको **पाइमेन्टा ऑयल** (Pimenta Oil) या **आलस्पाइस ऑयल** (All-spice Oil) कहते हैं। यह पहले **यूनाइटेडस्टेट्स फार्माकोपिआ** (U.S.P.) एवं **नेशनल फार्मुलरी** (N. F.) में ऑफिशल द्रव्य था।

प्रकृति—गरम और खुश्क।

गुण-कर्म तथा उपयोग—इसके गुण-कर्म लौंगके समान हैं। जिन रोगोंमें लौंग प्रयुक्त होता है, प्रायः उन्हीं रोगोंमें इसका उपयोग करते हैं। यह विशेषरूपसे कफ एवं वातविलयन और उत्तेजक है। **अहितकर**–कंठके लिए। **निवारण**–मधु। **प्रतिनिधि**–कालीमिर्च। **मात्रा**–०·५ से १ ग्राम (४ रत्ती से १ माशा) तक।

●

(४११) बंदा

फ़ैमिली : लोरांथासे (Family : Loranthaceae)

नाम—(हिं०) बंदा, बाँदा, बंझा, परगाछा; (अ०) ख़रक़तान; (सं०) बन्दाक, वृक्षदनी; (बं०) बांदु, परगाछा; (कु०) बानो; (म०) बांदा(द)गुल, बांदा; (ले०) **डेंड्रोफ्थे फ़ाल्काटा Dendrophthoe falcata** L.f. Etting. (पर्याय–*Loranthus Longiflorus* Desv.)।

उत्पत्तिस्थान और वर्णन—यह एक अर्धपराश्रयी **वनस्पति** है जो जमीनपर नहीं, अपितु वृक्षोंपर उत्पन्न होती है। यह जिस वृक्षपर उत्पन्न होती है उसके नामसे बोली जाती है। जैसे–कीकरका बन्दा, सिरसका बन्दा आदि। पत्र गोंदनीके पत्रके समान, किंतु उससे अधिक लम्बा और कम चौड़ा (३ से १० इंच) अथवा (१/२ से ५ इंच) गोल होता है। फूल कालाई लिए लम्बे डुंबालेवाले होते हैं। फल मांसल खिरनीके बराबर होते हैं और गुच्छोंमें लगते हैं। कच्चे हरे, पकनेपर लालरंगके; बीज स्निग्ध होता है।

उपयुक्त अंग—पत्र और पुष्प।

प्रकृति—शीत एवं रूक्ष। आयुर्वेदके मतसे शीतवीर्य (कै०नि०)।

गुण-कर्म—संग्राही, रूक्षण, रक्तस्तम्भन विशेषतः दीपन और मस्तिष्कसंशोधन है।

उपयोग—इसके पत्रको महीन पीसकर बालकोंके मुखपाकमें छिड़कते हैं। घर्षण (रगड़) रक्तातिसार और रक्तष्ठीवनमें चूर्ण खिलाते या जलमें पीस छानकर पिलाते हैं। कहते हैं कि इसके ताजे पत्तोंका रस भग्नास्थिके संधानके लिए गुणदायक है। **अहितकर**–संग्राही। **निवारण**–कालीमिर्च और मधु। **मात्रा**–३ ग्राम से ५ ग्राम (३ माशे से ५ माशे) तक। ताजे पत्तोंका रस २-३ तोले तक।

आयुर्वेदीय मत—बांदा तिक्त, कषाय, मधुर, शीतवीर्य, मूत्रविरेचन तथा अश्मरी, कफ, वातरक्त व्रण और विषको मिटानेवाला है। (च०सू०अ०४, सु०सू०अ० ३८, ४६ कै०नि०)।

नव्यमत—बांदा शीत, तिक्त, कषाय, मधुर, ग्राही कफघ्न, वातहर, रक्तविकारनाशक और व्रणरोपण है। इसके पुष्प और पत्रका कल्क गरम करके सूजनपर बांधनेसे सूजन उतर जाती है। हृद्रोगसे उत्पन्न दमा, कफके साथ रक्त गिरना, अपस्मार, उन्माद और तरुणशोथमें इसके फूलका उपयोग करते हैं। हृद्रोगमें वमन और मूत्रदाह इससे कम होता है।

●

(४१२) बंदाल

फ़ैमिली : कूकुरबिटासे (Family : Cucurbitaceae)

नाम—(हिं०) बं (बिं)दाल, बंडाल, घघरबेल, घुसरा(ला)इन, सोनैया; (सं०) देवदाली, जीमूत (क), कण्टफला; (बं०) घोषालता, देवताड़; (पं०) घगडबेल; (म०) देवदाली, देवडं(डां)गरी; (गु०) कुकड़वेल, वाउपला; (मा०) बंदालडोडा; (सिंध) नेधंजा, डेलू; (ले०) **लुफ्फा एकीनेटा (Luffa echinata** Roxb.); (अं०) ब्रिस्टली लुफ्फा (Bristly Luffa)।

वक्तव्य—यह क़िस्साउल्हिमारसे भिन्न औषधि है। उपर्युक्त लेटिननाम 'श्वेतपुष्पवाले' बंदालका है। पीले फूलवालेको लेटिनमें **लुफ्फाबिंडाल (Luffa bindaal** Roxb.) कहते हैं। इसके फलपर कम काँटे होते हैं।

उत्पत्तिस्थान—उत्तरपश्चिम भारतवर्ष, गुजरात, सिंध, बम्बई और पूर्वीबंगाल आदि।

वर्णन—यह एक बेलके **फल** हैं जो **'बंडाल डोडा'** के नामसे प्रसिद्ध हैं। यह फल ३·७५ सें० मी० (१½ इञ्च) लम्बे अण्डाकार पीलोहड़ या जायफलके समान, किन्तु हलके पोले, धारारहित, खेखेस (ककोड़ा)की तरह कण्टकित और जालीदार होते हैं। इनके ऊपर घने, बारीक और नरम काँटे खड़े होते हैं। रंगत पिलाई लिए और स्वाद अत्यन्त तिक्त होता है। बाजारमें इसके सूखे फल तथा बीज मिलते हैं।

उपयुक्त अंग—फल। पंचांग भी काममें लिया जाता है।

रासायनिक संगठन—बीजोंमें एक तेल होता है जो कडुआ नहीं होता। बंदालमें पायाजानेवाला मुख्य द्रव्य इन्द्रायनमें पायेजानेवाले मुख्यद्रव्यके समान होता है।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें **गरम** और **खुश्क** है। आयुर्वेदके मतसे भी उष्णवीर्य (रा० नि०) है।

गुण-कर्म—तीव्र **विरेचन**, **छर्दिजनन**, **आर्तवजनन**, **अर्शोघ्न** और विशेषतः **गर्भनिःसारक**।

उपयोग—बंदाल तीव्र विरेचन औषध है। इसको अधिकतया **कामला**, **जलोदर**, **आमवात**, फिरंग, **कुष्ठ**, **कास** और **श्वास**में प्रयुक्त करते हैं। **आर्तवजनन**के लिए इसका काढ़ा पिलाते और योनिमें फलवर्ति रखते हैं। इसके उपयोग से मृतभ्रूणका निस्सरण हो जाता है। यह गर्भपातके लिए भी प्रयुक्त होता है। घ्राणाज्ञान, पीनस और अपस्मार रोगोंमें इसको पीस, गोघृतमें मिलाकर नाकके अंदर टपकाते हैं। **पीतकामलाको नष्ट** करनेके लिए दो-तीन बंडाल डोंडाको रात्रिमें जलमें भिगोकर छोड़ देते हैं। प्रातःकाल उसमेंसे दो-तीन बूँद पानी लेकर नाकमें टपकाते हैं। इससे नाकसे पीला पानी बहता है और आँखोंकी पिलाई दूर हो जाती है। गोपित्तके साथ लेप करने या बंडालडोंडेको पीसकर टिकिया बनाकर घृताक्त करके अर्शांकुरोंपर बाँधने या अग्निपर डालकर धूनी देनेसे मस्से सूखकर झड़ जाते हैं। **अहितकर**–इसका प्राचुर्य घातक है। **निवारण**–स्नेह द्रव्य। **मात्रा**–१ ग्राम से १·५ ग्राम (१से १½ माशे)।

आयुर्वेदीय मत—बंदाल कटु, तिक्त, कटुविपाक, उष्णवीर्य, तीक्ष्ण, वामक, शिरोविरेचन, रेचन तथा ज्वर, श्वास, हिक्का, पाण्डुरोग, अर्श, कास, कामला, विष, शोथ, आमविकार, अरुचि, क्षय और कृमिका नाश करनेवाली है। (च० सू० अ० १, २ च० क० अ० २, सु० सू० अ० ३९; रा० नि०, कै० नि०)।

नव्यमत—बंदाल तिक्त, दीपन, मूत्रजनन, विरेचन, शिरोविरेचन, व्रणशोथन और व्रणरोपण है। बड़ी मात्रामें देनेपर वमन और विरेचन होता तथा रोगीकी दशा हैजे जैसी दीखती है। स्त्री गर्भवती हो तो गर्भ गिर जाता है। वंदाल और कड़वी तोरईकी क्रिया समान होती है।

◆

(४१३) बकाइन

फ़ैमिली : मेलिआसे (Family : Meliaceae)

नाम—(हिं०) बकाइ(य)न; (अ०)हर्बीत; शज्र् तुल् हर्र; (फा०) ताक, आज़ाद दरख्त; (सं०) महानिम्ब, द्रेक (क्का), रम्यक; (द०) गौरीनीम; (बं०) घोड़ानिम्; (पं०) द्रेक, ध्रेरक, धरेक, बकायन; (म०) बकाण(णि)निंब; (गु०) बकानलींबड़ो; (क०) द्रेंक; (सिंध) बकाईण निमु; (ता०) चिघरिनिंवम्; (मल०) मल्लवेणु; (का०) हुच्चुवेतु, तुरुकबेनु; (ले०) **मेलिआ आज़ेडाराक** (**Melia azedarach** Linn.); (अं०) पर्सिअन लिलेक (Persian Lilac)।

वक्तव्य—बकाइनके वृक्षके लेटिन नाममें जातीय नाम (Specific name) इसके फारसी नाम 'आज़ाद दरख्त'के आधार पर ग्रहीत मालूम होता है। फारसी 'ताक' एवं पंजावी तथा कश्मीरी नाम, संस्कृत नाम 'द्रेक (-क्का)' पर आधारित प्रतीत होते हैं। इसका बंगला नाम 'घोड़ानिम' किंचित् भ्रामक है; क्योंकि वास्तवमें घोड़ानिम इसी फ़ैमिलीकी एक भिन्न वनस्पति (**Ailanthus excelsa** Roxb.) को कहते हैं, जिसको किसी-किसीने भ्रमवश 'महानीम' कह दिया है।

उत्पत्तिस्थान—फारस, चीन, पश्चिम हिमालयाञ्चल, बलूचिस्तान, कश्मीर और दक्षिण भारतवर्षके प्रायः पहाड़ी स्थानोंमें होते हैं।

वर्णन—यह नीमकी जातिका और उसके समान एक बड़ा प्रसिद्ध वृक्ष है। इसकी पत्ती प्रायः त्रिपक्षवत् नीमकी पत्तीसे छोटी, किंतु उसकी अपेक्षया चौड़ी होती है। साधारण वृन्तमें २-४ जोड़ा पत्ती होती है। प्रथम पत्रयुग्म प्रायः त्रिपत्र होता है। निंबका पत्रप्रांत गंभीरभावसे चीरित, किंतु बकायनका सामान्य चीरित होता है। नीमकी पत्ती वक्र, किंतु बकायनकी वक्र नहीं होती—पत्रांश वृंतके पास किंचित् विषमतया अवसित होता है। फूल नीमकी तरह, किंतु हलका जामुनी रंगका होता है और उसमें पहले मीठा फिर कड़वा वास आता है। फल निबकौड़ी की तरह अष्ठिल १" से कम लंबा होता है। नीमकी भाँति इसके समस्त अंग-प्रत्यंगका स्वाद कड़वा होता है। जड़की ताजी छाल मोटी और अधिकतया स्पंजवत् होती है। इसका बाहरी धरातल खुरदरा अर्बुदोंसे युक्त और गहरा भूरा वा ऊदी, उक्त स्तरके नीचे यह गहरा गुलाबी और भीतरी धरातल सफेद होता है। इसका स्वाद चरपरा उत्क्लेशकारक, कषाय और हलका तिक्त होता है। इसकी दूसरी जाति (**M. composita** Willd.) में पत्तियाँ द्विपक्षवत्, पुष्प श्वेत और फल १ इंच से बड़े होते हैं। यह उड़ीसा प्रांतमें पायी जाती है।

उपयुक्त अंग—फूल, फल या फलमज्जा, पत्र और ताजी छाल (अन्तस्त्वचा)। सूखी छाल निःसत्व होती है और बाजारमें नहीं मिलती।

रासायनिक संगठन—इसका गुणोत्पादक वीर्य एक हलका पीला अस्फटिकीय, तिक्त रालदार, क्षारोदगुण विरहित पदार्थ है। इसके अतिरिक्त इसमें शर्करा होती है। छालके बाहरी भागमें टैनिन (Tannin) होती है। वीर्यवान् भाग इसका अन्तर्छाल है।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम और खुश्क। आयुर्वेदमतसे शीतवीर्य एवं रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—**रक्तप्रसादन** वेदनास्थापन, **अर्शोघ्न** व्रणशोथन-लेखन, **व्रणरोपण कृमिघ्न** तथा जीर्ण एवं चतुर्थज्वरनाशक है। रक्तप्रसादन होनेके कारण इसके पत्र और छाल रक्तविकारजन्य रोग, जैसे—कुष्ठ एवं किलास आदिमें प्रयुक्त होती हैं। वेदनास्थापन होनेके कारण इसके पत्तोंको उबालकर विकारी अंगको वफारा देते और पत्तोंकी भुजिया बाँधते हैं। अर्शमें इसके बीजोंका मग्ज अन्य द्रव्योंके साथ पुष्कल प्रयुक्त होता है। बकायनकी छालको जलाकर सफेदकत्थेके साथ मुखपाकमें मुखके भीतर छिड़कते हैं। उदरकृमि विशेषतः कद्दूदाना एवं केंचवेंको मारने और निकालनेके लिए बकायनकी जड़की छालका काढ़ा पिलाते हैं। जीर्ण एवं चौथिया ज्वरमें बकायनके पेड़की अन्तर छाल लेकर अधकुटे कासनीके बीज और धमासाके साथ फांट बनाकर पिलाते हैं। अर्शमें बकायनके फलकी मज्जाका प्रयोग किया जाता है। **अहितकर**—यकृत् और आमाशयको। **निवारण**—अनीसूँ। **प्रतिनिधि**—तज एवं जावित्री। **मात्रा**—बकायनके बीजका मग्ज ४ रत्तीसे १ माशा तक और छाल ७ माशेसे १ तोला तक अथवा ३ से ६ माशा।

आयुर्वेदीय मत—बकायन रसमें कषाय—कटु और तिक्त, शीतवीर्य, रूक्ष तथा कफ, पित्त, रक्तविकार, दाह विषमज्वर, भ्रम, वमन, कुष्ठ, मिचली, प्रमेह, श्वास, गुल्म, अर्श और चूहेके विषका नाश करनेवाला है। (सु० अ० ३८; सु० सू० अ० ३९; रा० नि०; भा० प्र०)। वाग्भटने अर्शमें महानिम्बका प्रयोग लिखा है। (दे० वा० चि० अ०)।

नव्यमत—बकायनके गुण साधारणतः नीमके समान हैं। यह कृमिघ्न, त्वग्दोषहर, गर्भाशयसंकोचक, वेदनास्थापन और शोधन है। इससे गोलकृमि मरते हैं।

●

(४१४) बकुची

फ़ैमिली : लेगूमिनोसे (Family : Leguminosae)

नाम—(हिं०) बकुची, वाकुची, बावची; (सं०) बाकुची, सोमराजी; (बं०) हाकुच, बुक्चिदाना; (पं०; गु०; म०;) बावची; (ते०) भावजि, बावची (मल०) कार्कोकिल; (ले०) **प्सोरालेआ कोरिलीफोलिआ (Psoralea corylifolia** Linn.); (अ०) पर्पल् फ्लीबेन (Purple Fleabane)।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष।

वर्णन—यह एक क्षुपके प्रसिद्ध बीज हैं जो प्रायः बाजारमें मिलते हैं और औषधके काममें आते हैं। ये मसूरके दानेकी तरह, किन्तु उससे किंचित् बड़े, काले या गहरे भूरे, गोल लम्बोतरेसे और चपटे, किन्तु अभंगुर एवं खुरदरे होते हैं। इसके ऊपरका छिलका मुलायम होता है। इन्हें काटनेपर अन्दरसे सफेद मग्ज निकलता है। गन्ध ठीक बेलके फल सरीखा रुचिकर एवं सुगन्धित और स्वाद तिक्त एवं चरपरा होता है जो जबानमें लगता है।

उपयुक्त अंग—बीज और तेल।

रासायनिक संगठन—बीजमें एक उत्पत् तेल पाया जाता है, जो इसका सक्रिय तत्व (Active principle) होता है। इसके अतिरिक्त एक स्थिर तैल, एक राळ और ऐल्केलॉइड स्वभावका एक पदार्थ पाया जाता है। बीजोंको जलानेसे ७½ प्रतिशत राख मिलती है, जिसमें मैंगेनीज पाया जाता है।

कल्प तथा योग—क़ुर्स बर्स, जिमाद बर्स, दवाएबर्स आदि।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम और खुश्क तथा आयुर्वेदमतसे उष्णवीर्य (रा० नि०)।

गुण-कर्म तथा उपयोग—रक्तप्रसादन, सर, दीपन, वातानुलोमन और उदरकृमिनाशन है तथा किलास एवं छीप वा झाईंमें विशेष प्रयुक्त होती है। यह रक्तविकारजनित रोग, कुष्ठ, व्यंग, दद्रु और खर्जूमें गोली और चूर्ण आदिके रूपमें उपयोगकी जाती है। बाहरी तौरपर अकेले या अन्य औषधियोंके साथ उक्त रोगों विशेषतः क़िलास और छीप वा झाईंमें इसे लेपकी भाँति उपयोग करते हैं। जबकि त्वचाके रोगोंके साथ कब्ज, बवासीर और क्षुधानाश जैसे उपद्रव हों, तब उक्त अवस्थामें इसका उपयोग करते हैं। इसका उपयोग शुद्ध करनेके उपरान्त करते हैं जिसकी विधि यह है—इसको बछियाके मूत्र या आदीके रसमें कमसे कम एक सप्ताह तक भिगाये रक्खें और हर रोज बदलते रहें। **अहितकर**–आनाहकारक। **निवारण**–दही और स्नेह द्रव्य। **प्रतिनिधि**–पँवाड़के बीज। **मात्रा**–१ ग्रामसे ३ ग्राम (१ से ३ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—बाकुची कटु, तिक्त, उष्णवीर्य तथा कृमि, कुष्ठ, कफ, त्वचाके रोग, विष, कण्डू और श्वित्रका नाश करनेवाली है। (रा० नि०)।

नव्यमत—बाकुची मृदु उत्तेजक, वातनाड़ियोंको बलप्रद, कृमिजन्यत्वग्दोषहर, व्रणशोधन और व्रणरोपण है। सफेद कोढ़पर बीजोंका लेप किया जाता है और तेल लगाते हैं। नये रोगमें इससे उत्तम लाभ होता है, परन्तु समय अधिक लगता है। (औ० सं०)।

●

(४१५, ४१६) बख़ुरमरियम और अर्तनीसा

फ़ैमिली : प्रीमूलासे (Family : Primulaceae)

बखुरमरियम—

नाम—(हिं०) हत्थाजोड़ी, हाथ(था)जोड़ी, हत(त्ता)जोड़ी; (भा० बाजार) फ़ंजकुश्त, बखुरमरियम; (अ०) फंजकुश्त बुख़ुरेमर्यम् (इ० बै० ३/५५), दुख़्नए मर्यम्, शजरतुल् मर्यम्; (फ़ा०) पंजंगुश्त, पंजएमर्यम्, चोबक, उश्नान, फंजकुश्त, आज़रब; (शामी) कफ़े मर्यम्; (अरबीकृत) आज़रयून:; (सं०) हस्तज्योडि, हस्त(कर) जोडिका, करजोरिकाकंद (नवीन); (ले०) **सीक्लामेन पेर्सिकुम्** (**Cyclamen persicum** Miller); (अं०) सो-ब्रेड (Sow-Bread)।

उत्पत्तिस्थान—फारस और लेवांट जहांसे यह भारतवर्षमें भी लाया गया है और विशेषतः पर्वतीय ठहरनेके स्थानों (Hill-stations)में प्रायः वृक्षोंकी छाँह एवं नम जमीनमें पुष्कल होता है।

अर्तनीसा—(अ०) कफ़े असद, कफ़ुज़्ज़हब, शजरए अबीमालिक, साबूनुल्क़ाफ़; (फ़ा०) गुलेमशो, कसबेशो, चोब: सबाग़ान; (हिं०) हत्थाजोड़ी; (ले०) **सीक्लामेन यूरोपीउम्** (**Cyclamen europaeum**) Linn.)।
उत्पत्तिस्थान—यूरोप और काकेशिया।

वर्णन—इन पौधों (क्षुपों)की जड़ें कुछ-कुछ गोल, शलगमकी तरह कंदसम तथा मांसल होती हैं जिनके ऊपरी भागसे कभी-कभी पत्ते और फूल निकलते हैं (सीधे सिरेसे और एक छोटे ग्रीवासम कांडसे); पत्र गम्भीर आधारीयनाड़ी(Sinus)युक्त, कुछ-कुछ गोल या अंडाकार, पत्रप्रान्त कभी-कभी कोणमय और प्रायः रोंगटेदार, भूरापन लिए श्वेत होते हैं। पुष्प गुलाबके समान कभी-कभी नीला, पुष्पकी पंखड़ियोंके खण्ड पीछेको उलटे हुए होते हैं। फली पंचकोषयुक्त होती है। भारतवर्षमें भिन्न-भिन्न स्थानोंमें भिन्न-भिन्न वनस्पतियोंको 'हत्थाजोड़ी' कहते हैं।

वक्तव्य—(अ०) बखुरमरियम्, फंजकुश्त; (फा०) पंज अंगुश्त; (ले०) सोक्लामेन (Cyclamen) इसे तथा सामान्यतः 'शज्र्एमरियम' और 'शज्र्एइब्राहीम'को अभिन्न बतलाया जाता है। परन्तु इब्नुल्बैतार इन दोनोंको भिन्न बतलाते हैं। उनके कथनानुसार शज्र्एमरियम जहाँ उकहवान (Feverfew) और कतिपय अन्य पौधोंकी सामान्य संज्ञा है, वहाँ फंजकुश्त और बखुरमरियमका प्रयोग केवल 'सीक्लामेन (Cyclamen)'के लिए होता है। (इ० बै० ३'५५)। बुखुरमरियम और अर्तनीसा ये दोनों एक ही जातिके दो भेद मात्र हैं। इन दोनोंमें यह अन्तर है कि अर्तनीसाके पेड़में काँटे होते हैं, किन्तु बखुरमरियममें उनका अभाव होता है। बखुरमरियमके पेड़का तना भी उसके तनेसे कुछ छोटा होता है।

उपयुक्त अंग—जड़। किन्तु इसका स्वरस इससे बलवत्तर होता है।

रासायनिक संगठन—इसका कार्मुकत्व इसमें उपस्थित सैपोनिन सदृश साइक्लेमिन नामक एक विषैले कार्मुक सत्वपर निर्भर करता है। यह स्वादमें कटु-तिक्त होता है। इसे पानीमें मसलनेसे काफी फेन उठता है।

कल्प तथा योग—(उसारा) ०·७५से १·५ ग्राम (६ रत्तीसे १½ माशे) तक।

बखुमरियम—

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें गरम और दूसरे दर्जेमें रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—यह प्रमाथि, एवं कठिनशोथ, कण्ठमाला और वातविलयन है। पत्तोंका रस कानमें डालनेसे कानका घाव और नाकमें डालनेसे मृगी आराम होती है। जड़ मूत्रार्तवजनन, स्तन्यजनन और स्वेदल है तथा यकृत्गत अवरोधका उद्घाटन करती है। जड़ और बीज दोनों लेखन हैं। बीजोंको पीसकर लेप करनेसे कल्फ, नमश, कठिन सूजन और कण्ठमाला आराम होती है। जड़ चेहरेके दागोंको और मैलको साफ करती चेहरेका रंग निखारती तथा कल्फ और फुंसियोंको दूर करती है। इसे पुराने जैतून तेलके साथ मलनेसे भी उक्त लाभ होता है। जाड़ेमें मुँह फट जाय तो इसके लेपसे आराम होता है। कल्फ, वातरक्त, मोच और खालित्य (दाउस्सालब)पर इसे सिरकामें पीसकर लगानेसे लाभ होता है। गंजपर जड़के काढ़ेका परिषेक और खालित्य एवं झाईपर शुष्क जड़ मलने या शहदके साथ लगाने या मलनेसे लाभ होता है। इसका उसारा शहदमें मिलाकर आँखमें लगानेसे मोतियाबिन्द आराम होता है और दृष्टि बलवान् होती है; परन्तु अकेला आँखमें नहीं लगावें, अपितु निशास्तेसे इसके दोषका परिहार करें। इसके बीज भी नेत्रके लिए हितकारी हैं। परन्तु जड़का उसारा बीजोंकी अपेक्षया अधिक वीर्यवान् है। इसकी एक तोला जड़को कुचलकर शहद या सिकंजबीनसे कामला के रोगीको पिला और कपड़ा ओढ़ाकर सुला देनेसे पीले रंगका पसीना होकर कामला रोग जाता रहता है। इससे यकृत्की शुद्धि होती, अवरोध मिट जाता है और सम्पूर्ण शरीरमें विसरित पित्त निकल जाता है। यह स्वेदानयनकी उत्तम विधि है। इसे १ तोला १॥ माशासे अधिक नहीं सेवन करें; और यदि सेवन करें तो इसके साथ इसके निवारण कतीरा और अनारके पानी का सेवन करें। उत्तम यह है कि अकेला मदिरा या मधुके साथ ८ या ९ माशेसे अधिक सेवन नहीं करें। यह विधि कृष्णकामला (यरकान सौदावी)में भी उपकारी है। उष्णप्रकृतिवालेको तथा सान्द्रदोषोत्पन्न एवं अत्यन्त स्रोतावरोधज कामला रोगीको इसका सेवन उचित नहीं है। जड़ दमाके लिए भी गुणकारी है। सिरका-

के साथ इसका लेप प्लीहाशोथनिवारक है। इसको योनिमें धारण करने और पेडू तथा पेटपर लेप करनेसे भी बलात् आर्तवका प्रवर्तन होता है तथा गर्भ मृत अथवा जीवित हो तो मरकर बच्चा बाहर निकल जाता है। इसका यह एक प्रभाव है कि पेटपर लेप करनेसे दस्त लाती है और गर्भाशय पर बारंबार मलनेसे गर्भपात करा देती है। इसे स्त्रीके गलेमें बांधनेसे गर्भधारण नहीं होता। यदि पायखाना रुका हो तो इसे रूईमें लत करे गुदामें रखनेसे स्रोतोंका मुख खुलकर मल निकल पड़ता है। इसे मधुजलके साथ पीनेसे दस्तके रास्ते काफी कफ निकलता है। अधिक विरेक आते हैं और सूखा मल निकल जाता है। उष्ण औषधियोंके साथ हर प्रकारके उदर कृमियोंको यह मारकर निकालती है। यह विषोंका अगद है। **अहितकर**—बुद्धिमान्द्य एवं शिरोभ्रम उत्पन्न करती तथा, गुदा, फुफ्फुस, बस्ति और उष्ण-प्रकृतिवालोंका अहितकर है। **निवारण**—बस्तिके लिए उन्नाव और शेषके लिए कतीरा और अनारके दानेका रस। **प्रतिनिधि**—मामीसा, बोल और सुमाक। **मात्रा**—जड़ १ तोले १॥ माशे तक।

अर्तनीसा—

यह विषोंका अगद है। अतएव कीड़े-मकोड़ेके विषका निवारण करता है। इसके सूँघनेसे बहुत जोरोंमें छींक आती है और गर्भवती स्त्रीके पेटका बच्चा गिर जाता है। इसे योनिमें धारण करनेसे गर्भाशयकी शुद्धि होती है। पत्ते व्रणरोपण, और फोड़े-फुन्सीको लाभकारी हैं। पत्तेके रसके नस्यसे मस्तिष्कका शोधन होता है। जड़ कुष्ठघ्न, श्लेष्मनिःसारक है और धीरे-धीरे सौदाका निर्हरण करती है और समस्त सौदावी रोगोंमें गुण करती है। इस विषयमें यह लाजवर्दसे श्रेष्ठतर है। इसमें लाजवर्द की अपेक्षया अधिक लेखन और विलयनकी शक्ति है। कण्ठमालेपर इसका लेप गुणकारक है। दमामें भी लाभ पहुँचाता है। विषैला कीड़ा काटे हुएको इसे ४½ माशा खिलानेसे लाभ होता है।

विषलक्षण और उसकी चिकित्सा—इसकी जड़ १ तोला की मात्रामें खानेसे गला रुक जाता है, विरेक होने लगते हैं और आक्षेप उत्पन्न हो जाता है। गलावरोधका उपचार बस्तिद्वारा; विरेकका उतचार वमन द्वारा करें। दूध और छाछ पिलायें और आक्षेपकी दशामें शीतौषधि सेवन करायें। शीतल एवं स्निग्ध तेलकी मालिश करें और गुनगुना पानीमें बिठायें। इसके प्रत्येक भेदकी जड़ खाने और योनिमें धारण करनेसे पेटका बच्चा गिर पड़ता है। विषैला कीड़ा काटे हुए स्थानको इसके काढ़ेसे धारें। शेष गुणप्रयोग बखुरमरियम्के समान (दोनों समानधर्मी) हैं। **अहितकर**—इससे अत्यधिक प्यास लगती है। **निवारण**—कुलफेके पत्ते। **प्रतिनिधि**—अंजीरका दूध, दुगुना बादावर्द, जरावंद तवील और पुदीना। **मात्रा**—४·५ ग्राम (४½ माशे) तक।

नव्यमत—वमन, आर्तवजनन, रेचन, मूत्रजनन मत्स्यविष तथा सर्पविषका अगद है। जड़ (Corm) तीव्र विरेचन है।

◆

(४१७) बच

फ़ैमिली : आरोइडासे (Family : Aroidaceae)

नाम। घोड़वच—(हिं०) बच(छ),घोडबच; (यू०) Akoros (D. 1.2); (अ०) अल्-वज्ज (इ० बै०); ऊदुल्वज्ज; (फा०) अगरे(वज)तुर्की, कारूनक; (सं०) बचा, उग्रगन्धा; (बं०) बच; (पं०) वर्च, वरच; (क०) वय; (सिंधी) किनीकाही; (म०) वेखण्ड; (गु०) घोड़ावज, वज; (ले०) आकोरुस कालामुस (**Acorus calamus** L.); (अं०) स्वीट फ्लैग या सेज (Sweet-Fag or Sedge)।

बालवच (हिं०) खुरासानी बच, सफेदबच, बालब्रच, दुध(दुधिया)ब्रच, मीठाबच; (नेपाल) सतुआ; (फा०) सोसन जर्द ? (अ०) बज्जे खुरासानी; (सं०) श्वेतवचा, हैमवतीवचा, पारसीक वचा (च०; सु०); (वं०) खोरासानी बच, शादाबच; (म०) पांढरे वेखंड, बालवेखंड; (गु०) खुरासानी बच, बालवच; (लै०) **पारिस पॉलीफीला (Paris polyphylla** Sim.) ।

उत्पत्तिस्थान—घोड़बच यूरोप और उत्तरी अमरीकाका मूलनिवासी पौधा है । समस्त भारतवर्षमें भी नम एवं दलदली स्थानोंमें ३,००० फुटसे ८,००० फुटकी ऊँचाई पर इसकी खेती की जाती है । हिमालय प्रदेशमें विशेषतः मणिपुर और नागाकी पहाड़ियोंमें झीलों तथा सोतोंके किनारे यह पुष्कल होती है ।

वर्णन—यह सौसनकी तरहके एक बहुवर्षायु क्षुपकी प्रसिद्ध जड़ (पातालीधड़) है, जो गँठीली, खुरदरी और झुर्रीदार तथा लाली लिए सफेद रंगकी होती है । बाजारमें इसके विभिन्न आकार प्रकारके टुकड़े मिलते हैं जो अर्ध-वेलनाकार या चपटे होते हैं । वास मनोहर एवं सुगंधित तथा स्वाद तिक्त एवं चरपरा होता है । ईरानी बच कुछ कालाई लिए अधिक सुगन्धित होती है । घोडबच और बालवच भेदसे यह २ प्रकारकी होती है, जिनमें घोड़बचका वर्णन ऊपर किया गया है । बाजारू बालबच **पारिस पॉलीफिला** नामक क्षुपकी जड़ है । कहीं-कहीं इस नामसे ई साजातीय वनस्पति (**Iris germanica**) की जड़ (पाताली धड़) मिलती है ।

उपयुक्त अंग—जड़ (पाताली घड़) ।

रासायनिक संगठन—घोड़बचमें एक सुगंधित पीले रंगका उत्पत् तैल होता है जो बिना छिले हुए पाताली धड़में अपेक्षाकृत अधिक होता है । इसके अतिरिक्त इसमें एंकोरिन (Acorin) नामक तिक्त ग्लूकोसाइड, पर्याप्त स्टार्च तथा थोड़ा टैनिन आदि भी होते हैं ।

घोड़बच—

प्रकृति—गरम और खुश्क । आयुर्वेदके मतसे उष्णवीर्य (ध०नि०; कै०नि०) ।

गुण-कर्म तथा उपयोग—कफछेदन, शोषण, वातानुलोमन, वातनाड़ी (तन्त्रिका) एवं मस्तिष्क संशोधन, मूत्रार्तवजनन और लेखन है । विस्मृति, तर आक्षेप, पक्षवध और स्वाप जैसे मस्तिष्क एवं वातरोगोंमें बचका उपयोग करते हैं । हकलाना (लुकनत) और बालकोंको बोलनेमें शीघ्र समर्थ होनेके लिए इसको मधुमें मिलाकर चटाते हैं । आमाशयको बलप्रदान करने और आटोप एवं आनाह दूर करनेके लिए इसको खिलाते हैं । यकृत्के सर्द दर्द और प्लीहा काठिन्यमें भी इसका उपयोग किया जाता है । मूत्रार्तवजननके लिए भी यह उपयोगी है । रतौंधी, फूली, धुंध और मोतियाबिंद जैसे नेत्ररोगोंमें इसे नेत्रमें लगाते हैं । चेहरेकी रंगत निखारने और किलास एवं छीप वा झाईं (बहक़) मिटानके लिए अकेले या अन्य उपयुक्त औषधियोंके साथ इसका लेप करते हैं । **अहितकर**—उष्ण प्रकृति और शिरके लिए । **निवारण**—सौंफ और सादा सिकंजबीन । **प्रतिनिधि**—जीरा और रेवंदचीनी । **मात्रा**—१ ग्रामसे ३ ग्राम (१ माशासे ३ माशा) तक ।

आयुर्वेदीय मत—वचा तिक्त, कटु, कटुविपाक, उष्णवीर्य, वामक, विरेचन, लेखन, अर्शोघ्न, आस्थापनोपग, शीतप्रशमन, संज्ञास्थापन, मेध्य, कण्ठ्य, कृमिहर, वाणी और स्वरको (सुधारने)वाला, आमपाचन, दीपन, मल-मूत्र-विशोधन तथा उन्माद, अपस्मार, विबन्ध, आध्मान, शूल, कफ और वातका नाश करनेवाली है । (च०सू०अ० २, ४; वि०; सु०सू०अ० ३८, ३९; ध०नि०; कै० नि०) ।

नव्यमत—बच उष्ण, स्वेदजनन, कासहर, कफघ्न, वामक, सुगन्धि, दीपन, वातनाशक, उत्तेजक वेदनास्थापन और कृमिघ्न है । प्रतिश्याय-जुकाम, गलान्तर शोथ और श्वासनलिकाशोथमें इसका काढ़ा देते हैं । इसका टुकड़ा मुँहमें रखनेसे शुष्ककास और गलेकी सूजन कम होती है । दमामें ५ माशे इसका चूर्ण ६ माशासे १ तोला

सेंधानमक और आबसेर पानी मिलाकर एक साथ पोनेसे वमन होकर दमेका वेग कम होता है। शिशुओंको दाँत आते समय तथा अपस्मार, उन्माद, लकवा और सन्निपातज्वरमें इसे देनेसे लाभ होता है। इससे गर्भाशयका संकोचन होता है। इसलिए प्रसवके समय आवीका वेग बढ़ानेके लिए केशर और पीपलामूलके साथ इसे देते हैं। पीड़ायुक्त अर्शको बच, भाँग और अजवायनकी धूनी देते हैं।

●

(४१८) बछनाग

फ़ैमिली : रानुन्कुलासे (Family : Ranunculaceae)

नाम—(हिं०) सिंगिया (विष), विष, मीठा ज़हर; (यू०) अकूनीतून (Akoniton); (अ०; फ़ा०) बीश; (सं०) विष, वत्सनाभ; (क०) मोंहद; (पं०) मीठातेलिया, मीठाविष (जहर); (जम्मू) मोहरा; (बं०) काटविष, मिटेविष; (गु०) बछ(स)नाग; (मा०) शिंगी मोहरा; (ले०) आकोनीटुम् नापेल्लुस (**Aconitum napellus** Linn.); (अं०) एकोनाइट (Aconite), वूल्फ्स-बेन (Wolf's-bane)।

उत्पत्तिस्थान—यूरोपमें आल्प्स पर्वत और एशियामें हिमालयपर १०,००० से १५,००० फुटकी ऊँचाईपर कुमाऊँसे कश्मीर, सिक्किम और गढ़वालमें इसके क्षुप होते हैं। प्लाइनीके मतसे एकोनाइट 'एकोनिस'से जो पुराना कृष्णसागर स्थित बंदरगाह है, व्युत्पन्न है।

वर्णन—यह एक क्षुपकी प्रसिद्ध जड़ है जो प्रायः यूरोप(विदेशों)से आकर यहाँ बिकती है। यह ऊपर गोपुच्छाकार, नीचे लम्बी और १/२ से ३/४ इञ्च मोटी बाहरसे भूरी काली (कृष्णाभ) और टूटी हुई जड़के केन्द्रमें ५-७ कोणीय तारक दिखाई देते हैं अन्यथा भीतरसे वह सफेद पिष्टमय तथा निर्गंध होती है। इसके ऊपरी हिस्सेपर टूटे हुए उपमूल (तन्तु)के चिह्न और लम्बाईमें प्रायः झुर्रियाँ होती हैं। यह सरलतासे टूट जाती है। स्वाद प्रथम किसी कदर मधुर, फिर कड़ुआहट लिए होता है। इसे चबानेसे कुछ मिनट बाद—दो मिनटसे भी कम समयमें—चुनचुनाहट और सुन्नता प्रतीत होती है जो बहुत देर तक रहती है। वक्तव्य—'शृंगीविष' अर्थात् 'मोहरी' आकोनीटुम् चास्थान्थुम् (**Aconitum chasmanthum** Staff.ex Holmes) इसका भारतीय भेद है। यह भारतवर्षमें पुष्कल होता है। भारतीय बाजारोंमें मिलनेवाला बछनाग प्रायः आकोनीटुम् फेरोक्स (**Aconitum ferox** Wall.) जातीय विष अथवा उसकी कतिपय अन्य जातियोंकी मिली-जुली जड़ें हैं, जो अधुना आयुर्वेदीय और यूनानी चिकित्सामें व्यवहृत होती हैं।

उपयुक्त अंग—जड़।

रासायनिक संगठन—इसमें एकोनिटीन (अकूनीतीन, Aconitine) नामक एक अत्यन्त विषैला ऐल्केलॉइड होता है। इसमें वर्तमान सभी वीर्योंमें यह सबसे प्रधान है।

प्रकृति—चौथे दर्जेमें गरम और खुश्क।

गुण-कर्म—ज्वरघ्न, वेदनास्थापन, स्थानीय स्वापजनन, मूत्रार्तवजनन, प्रायः कफज एवं सौदावी रोगोंमें उपकारक और त्वक्संक्षोभक (मुहय्यिज जिल्द) है। किसी-किसीके मतसे शुद्ध किया हुआ विष प्रत्येक रोग विशेषतः सौदावी रोगोंके लिए गुणकारक है। वक्तव्य—विष होनेसे औषधमें प्रायः इसे शुद्ध करके उपयोग करनेका विधान है। इसके शोधनकी विधि 'यूनानी द्रव्यगुणविज्ञानग्रंथके पूर्वार्ध भेषजकल्पनाखंड' में देखें।

उपयोग—ज्वरघ्न होनेके कारण इसे शुद्ध करनेके उपरांत उपयुक्त औषधियोंके साथ इसकी गोलियाँ बनाकर उपयोग करते हैं। किन्तु आधुनिक अन्वेषणोंसे यह उन ज्वरोंमें अधिक उपयोगी सिद्ध हुआ है जो किसी अंगके शोथके कारण हुए हों, जैसे—फुफ्फुसशोथ, फुफ्फुसावरणशोथ आदि। यह वेदनाशामक भी है; अतएव ज्वरको दूर करनेके साथ ही यह वेदनाको भी शमन करता है। वेदनाहर और स्थानीय स्वापजनन होनेके करण अर्धावभेदक, अनंतवात (असाब:), गृध्रसी प्रभृति जैसी वातिक वेदनाओंमें इसका बाह्य प्रयोग किया जाता है। इसको बहुधा बाजीकर तिलाओंमें भी डाला जाता है। उत्तेजक होनेके कारण यह अंगोके भीतर उत्तेजना उत्पन्न करता है जिससे उसकी ओर रक्तपरिभ्रमण तीव्र हो जाता है और अंगपोषणका हेतु बन जाता है। यह अंतमें सुन्नता पैदा करता है। अतएव ऐसे रोगीको जिनका अंग स्पर्शासहिष्णु (ज़कीउल्हिस्स) हो, इस प्रकारके तिला गुणदायक होते हैं, विशेषकर सर्दी लगनेसे हुए रजोरोधमें यह आर्तवका प्रवर्तन करता है। कुष्ठ, किलास, कास, श्वास, कृच्छ्रश्वास और दुष्टव्रण जैसे कतिपय सौदा एवं कफजन्य रोगोंमें भी इसका उपयोग किया जाता है।

बछनागके विषलक्षण—इसको अधिक प्रमाणमें खानेसे थोड़ीदेर बाद विषलक्षण प्रकट हो जाते हैं। फलत: मुख एवं अन्नमार्गमें तीव्र झनझनाहट और शोथ होकर निःसंज्ञता उत्पन्न हो जाती है। उदरमें भी तीव्र शोथ उत्पन्न हो जाता है। वमन आता है। शरीरकी त्वचा सर्द और चिपचिपी हो जाती है या प्रचुर स्वेद आने लगता है। सम्पूर्ण शरीरपर च्यूँटियाँसी रेंगती प्रतीत होती हैं। नाड़ी मंद, अल्प और अनियंत्रित हो जाती है। पुतलियाँ विस्फारित हो जाती हैं और आँखोंकी टकटकी बँध जाती है। श्वास कठिनाईसे आता है। पेशियोंकी निर्बलतासे टाँगें लड़खड़ाने लगती हैं। समस्त शक्तियाँ निर्बल हो जाती हैं; यहाँ तक कि निर्बलताके कारण मूर्छा आने लगती है। कभी-कभी आक्षेप होने लगता है। अंततः रोगी श्वासावरोध या मूर्छाके कारण मृत्युको प्राप्त होता है। इसलिए मात्राधिक्यसे सर्वदा बचना चाहिए; क्योंकि इसका कोई निश्चित अगद अभी तक ज्ञात नहीं है। विषकी चिकित्सा उक्त अवस्थामें रोगीको बारबार क़ै करायें और आमाशयको भलीभाँति धो डालें। इसके बाद दवाउल्मिस्क या कस्तूरी अथवा जदवार सेवन कराएँ। अहितकर-अशुद्ध विष सांघातिक विष है। **निवारण**-रेंड़के पत्र और वमन कराना। **प्रतिनिधि**-जदवार। **मात्रा**-१ चावलसे २ चावल तक।

आयुर्वेदीय मत—बछनाग विष, रसायन, बल्य तथा वातरोग, कफरोग, शीत (ठंढी), कुष्ठ, शोथ, अग्निमांद्य, श्वास, खाँसी, प्लीहावृद्धि, उदररोग, ज्वर, कंठके रोग, सन्निपातज्वर और मधुमेहको दूर करता है। बछनागका लेप शोथ, पीड़ा और अपचीका नाश करता है।

नव्यमत—अशोधित बछनागका प्रयोग निषिद्ध है। शोधित बछनाग हृदयोत्तेजक, स्वेदजनन तथा पीड़ाशामक है और अशुद्ध बछनाग जैसा हृदयावसादक नहीं है। (भा०भै० त० पृ० ३९८)। गोमूत्रमें शुद्ध किया हुआ बछनाग हृदयको बल देता है, रक्तका दबाव और शाखागत रक्ताभिसरणको बढ़ाता है। यह प्रभाव देर तक रहता है। बछनागको गोमूत्रके बदले गोदुग्धमें शुद्ध किया जावे तो यह परिवर्तन विशेष स्पष्टरूपसे मालूम होता है। (डॉ० म्हसकर)। बछनाग खिलानेसे आमाशयके ज्ञानतंतु संज्ञारहित होते हैं, आमाशयका रस और कफ कम होता है। इसलिए इसे आमाशयकी पीड़ा, दाह और गर्भिणीके वमनमें देते हैं। इसका वीर्य शीघ्र रक्तमें मिलकर हृदय, हृदयकेन्द्र, श्वासोच्छ्वासकेन्द्र, त्वचा और मूत्रपिण्ड (गुर्दों) पर शीघ्र क्रिया करता है। बछनागसे खूब पसीना और मूत्र आता है तथा सम्पूर्ण शरीरके ज्ञानतंतु थोड़े बहुत संज्ञारहित होते हैं। इन सब गुणोंके कारण शोथ, ज्वर और पीड़ा होनेपर इसका उपयोग किया जाता है। शरीरमें कहीं भी सूजन हो तब ज्वर होता है। ज्वरमें इसे देनेसे पसीना एवं पेशाब होता है और नाड़ीकी गति कम होती है तथा सूजन और ज्वर भी कम होता है। कण्ठ, श्वासनलिका, फुफ्फुस, फुफ्फुसावरणकला, हृदय, अंत्र, अन्त्रावरणकला, सन्धि आदिके शोथप्रधान रोगोंमें प्रारम्भसे ही बच्छनाग देनेसे व्याधि शांत होती है और आगेकी अवस्थायें नहीं उत्पन्न होतीं। बछनाग उत्तम पीड़ाशामक होनेसे सिरका दर्द, दन्तपीड़ा, कर्णशूल, पृष्ठशूल आदि ज्ञानतन्तुओंके पीड़ायुक्त रोगोंमें

खिलाया जाता है और लेप किया जाता है। बछनागमें पीड़ाशामक गुण है, परंतु वह औपचीय मात्रामें देनेसे बहुत सौम्य होता है। इसलिए इसके साथ अफीम, धतूरा या खूरासानीअजवायन देते हैं। सर्दीसे स्त्रियोंका मासिक बन्द हो गया हो तो इसे दिया जाता है। मधुमेह, बहुमूत्र, तंतुमेह, स्वप्नमें शुक्रस्राव और मूत्र होना, इन रोगोंमें इसे दिया जाता है। बछनागके आयुर्वेदोक्त पुराने योग सभी उत्तम हैं, परन्तु उनमें इसकी मात्रा कम करनी चाहिए तथा इसके योगोंमें बछनाग मिलाने चाहिए।

●

(४१९) बजरदंती (बज्रदंती)

वर्णन—एक बूटी जो जमीनसे दो-तीन गिरहसे अधिक ऊँची नहीं होती; शाखाएँ पतली जिनके आस-पास पत्ते होते हैं, अधिक ऊँची नहीं। जमीनसे फूटकर कुछ खड़ी और कुछ बिछी हुई होती हैं और पत्थरोंमें यह बूटी उगती है। शाखाओंपर अर्धग्रन्थिके समान घुंडियाँ लगी होती हैं। यह घुंडियाँ स्पञ्जवत् होती हैं जिनके छिद्रोंमें बारीक-बारीक पत्ते और नन्हें-नन्हें काँटे होते हैं। पत्तोंकी आकृति अनारके पत्ते जैसी, परन्तु उनसे बहुत छोटे होते हैं और शाखाओंसे पृथक् नहीं पाये जाते। जब इसकी शाखा जमीनपर गिर जाती है तब उसमें जड़ निकल आती है और घुण्डियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। शाखाओंके सिरपर भी घुण्डी होती है। ताजी बजरदंतीका रंग लाल और सूखीका रंग कालाई लिए लाल होता है। मेवाड़की पहाड़ियोंमें स्थित जैसमंद तालाबके आस-पास यह बहुतायतसे होती है। इसके अन्य भेदका पौधा गेंदेके पौधा जैसा झावा रखता है और आकार-प्रकारमें बड़ासे बड़ा पौधा दो हाथ तक ऊँचा, पत्ते ऊपरसे हरे, नीचेसे रंगीन ललाई लिए, डालियाँ कालाई लिए लाल यकृद्वर्णकी और सवा इंच तक मोटी होती हैं। यह उसका भेद है।

प्रकृति—पहले दर्जेमें गरम और तीसरे दर्जेमें रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—इसके काढ़ेसे कुल्ली करनेसे दाँत दृढ़ होते हैं और दाँतोंसे खून बहना बन्द होता है। सूखी बजरदन्तीको नमकके साथ पीसकर दाँतोंपर मलनेसे मसूढ़े दृढ़ होते हैं। इसके चाबनेसे भी दाँतोंमें शक्ति आती है। इसके बराबर मौलसिरीकी छाल मिलाकूटकर बनाया हुआ मंजन शिथिल या कमजोर मसूढ़ोंके लिए अनुपम है। एक उत्तम **मंजनका योग** यहाँ दिया जा रहा है—नीलाथोथा, कुट, सफेद कत्था, जीरा, मस्तगी और बज्रदंती ३-३ माशे, नमक लाहौरी, सोंठ सूखा हुआ धनियाँ और कसीस ६-६ माशे, कपूरकचरी कबाबचीनी १½-१½ माशे। नीलाथोथेको गरम तवेपर रखकर आगपर इतना भूने कि सफेद हो जाय। जीरे और धनियेको भी कुछ भून लेवे जिसमें रंगमें लाली आ जाय। पुनः सबको कूटछानकर दाँतोंपर मले और चार घड़ी तक कुल्ली न करे। इससे दाँत मजबूत होते मसूढ़ोंका मांस स्थिर एवं दृढ़ होता और दाँत स्वच्छ, चिकने एवं चमकीले होते हैं। इसका काढ़ा कफज्वरको नष्ट करता है। तीन तोले इसके पत्ते ले—पीसकर तीन-तोले गायका घी मिलाकर खानेसे बस्तिगत अश्मरी अतिशीघ्र निकल जाती है (ख०अ०)।

●

(४२०) बड़हल

फ़ैमिली : आर्टोकार्पासे (Family : Artocarpaceae)

नाम—(हिं०) बड़हल, बड़हर, लकूच, भद्दा, (सं०) लकुच, लिकुच, क्षुद्रपनस, डहुक; (ले०) **आर्टोकार्पुस लाकूचा (Artocarpus lakoocha** Roxb.); (अं०) मंकी फ़ूट (Monkey Fruit)।

उत्पत्तिस्थान तथा वर्णन—एक बड़ा पेड़ जो संयुक्त प्रदेश, पश्चिमीघाट, पूर्वी बंगाल और कुमाऊँकी तराईमें बहुत होता है। इसे प्रायः लगाते हैं। फल गोल जिनके ऊपर उभारसे होते हैं। कच्चा फल हरा और पका नारङ्गी पीलेरंगका होता है। स्वाद किंचित् अम्लता लिए मधुर होता है।

प्रकृति—शीत एवं तर।

गुण-कर्म तथा उपयोग—बड़हल चिरपाकी, गुरु वा विष्टंभ, आनाहकारक, पित्तोद्वेगसंशमन और अबाजीकर है। इसके बीज बच्चोंके लिए सारक हैं। छाल ज्वरघ्न है। **अतिहकर**—कफ प्रकृति और मैथुनशक्तिके लिए। **निवारण**—आदी।

आयुर्वेदीय मत—कच्चा बड़हर मधुर, अम्ल, उष्णवीर्य, भारी विष्टम्भकारक, त्रिदोषकारक, रुधिरविकारकारक, नेत्रोंको अहितकारी तथा शुक्र और अग्निनाशक है। पका बड़हर मधुर, अम्ल, कफकारक, अग्निवर्धक, रुचिकारक, वीर्यवर्धक, विष्टम्भकारक और वातपित्तनाशक है। (भा० प्र०)।

●

(४२१, ४२२) बथुआ, सुगंधबथुआ

फ़ैमिली केनोपोडिआसे (Family : Chenopodiaceae)

नाम—(हिं०) बथुआ, बाथु; (यू०) Atraphaxis (D. 2.145); (अ०) अल्सुर्मक़ (इ० बै०), सर्मक़, क़तफ़; (फा०) सल्मः; सर्मः(-क);(तु०)सर्मः; (सं०) वास्तु(स्तू)क, क्षारपत्र, शाकराज; (बं०) बेतोशाक, बाथुसाग; (म०) चाकवत; (गु०) टांको; (ले०) **केनोपोडिउम् आल्बुम् (Chenopdium album** Linn); (अं०) ह्वाइट गूज-फूट (Whit Goose-foot), आट्रीप्लेक्स (Atriplex)। बीज—(अ०) बज़्रुस्सर्मक़, बज़्रुलक़तफ़; (फा०) तुख़्मसल्मः, तुख़्म बथुआ।

वक्तव्य—देहरादूनके आस-पास खेतोंमें या ऊसर भूमिमें इसकी एक अन्य जातिके क्षुप समूहबद्ध होकर उगते हैं जिसे लेटिनमें केनोपोडिउम् आम्ब्रोसइडेसिओ (**Chnenopodium ambrosioides** Linn.) या के० **आन्थेल्मीन्टिकुम् (C. anthelminticum** A. Gray) और अँग्रेजीमें अमेरिकन वर्म-सीड (American Worm-seed) कहते हैं। इसमें तीक्ष्ण कपूरवत् गंध होनेसे संस्कृतमें इसे सुगंधवास्तुक कह सकते हैं। ऑइल चेनोपोडिअम् (Oil Chenopodium) इसी पौधेके बीजोंसे निकलता है जिसका व्यवहार आक्षेपहर होनेसे वातव्याधियोंमें या कृमिघ्न विशेषकर अंकुशमुखकृमिनाशन रूपमें होता है। वि० दे० 'सुगन्धवास्तूक'।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष।

वर्णन—यह एक छोटा प्रसिद्ध पौधा है जो गेहूँ आदिके खेतोंमें उपजता है और जिसका लोग साग बनाकर खाते हैं। इसके बीज कुलफाके बीजके समान छोटे-छोटे और काले रंगके होते हैं।

रासायनिक संगठन—इसमें एक उत्पत् तैल, कैरोटीन (Carotene) और जीवतिक्ति 'ग' (वाइटामीन 'C' पाया जाता है।

उपयुक्त अंग—पत्र और बीज।

प्रकृति—पहले दर्जेमें शीत एवं तर।

गुण-कर्म तथा उपयोग—सर, उरःकण्ठमार्दवकर, प्रवर्तनकर्ता, संतापहर, तृष्णाहर और यकृद्रोगोंमें प्रयुक्त होता है। यह उष्ण प्रकृतिको सात्म्य और उष्ण व्याधियोंमें गुणकारक, शीघ्रपाकी एवं सर है तथा उष्ण-कास, उरःक्षत, राजयक्ष्मा (दिक), कामला, यकृतकी उष्णता और उष्ण ज्वरोंमें गुणदायक है; प्यास बुझाता और कंठगत शोथको अपने प्रभावसे विलीन करता है। उष्णशोथ, कण्डू और कच्छूके लिए इसका पत्रलेप गुणकारी है। **अहितकर**—वायुकारक है। **निवारण**—गरम मसाला। **प्रतिनिधि**—पालक। जितना पच सके।

बीज। प्रकृति—अनुष्णाशीत और पहले दर्जेमें शुष्क (खुश्क)। गुण-कर्म तथा उपयोग—लेखन, मूत्रल, पित्तच्छर्दनीय है। यह यकृद्रोगोंमें प्रयुक्त होता और त्वचाके दाग एवं धब्बोंको मिटाता है। मूत्रजनन होनेके कारण यकृच्छोथ, जलोदर, कामला, कृच्छ्रमूत्र और उष्णज्वरोंमें अकेले या अन्य औषधद्रव्योंके साथ इसका शीरा पिलाते हैं। पित्तका वमन करनेके लिए नमक, गरम पानी और शहदके साथ इसका उपयोग करते हैं। शरीरकी त्वचाको चिह्न एवं मलादिसे शुद्ध करनेके लिए इसका लेप लगाते हैं। **मात्रा**—५ ग्राम से ७ ग्राम (५ माशे से ७ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—बथुआका साग (वास्तूक) किंचित् क्षारीय, स्वादिष्ट, विपाकमें कटु, लघु, दीपन, पाचन, रुचिकर, सारक, बुद्धि, अग्नि और बल बढ़ानेवाला, शुक्रजनक तथा कृमि, सर्वदोष (तीनों दोष), रक्त, पित्त, प्लीहा और रुधिरविकारका नाश करनेवाला है। (सू० सु० अ० ४६; भा० प्र०)।

●

सुगंधबथुआ (सुगंधवास्तुक)

फ़ैमिली : केनोपोडिआसे (Family : Chenopodiaceae)

नाम (हिं०) सुगन्ध बथुवा, चेनोपोडियम; (ले०) **केनोपोडिअम् अम्ब्रोसिओहडीस (Chenopodium ambrosioides Linn.), के० आन्थेल्मिन्टिकम् (C. anthelminticum** A.Gray);(अं०) अमेरिकन वर्मसीड (American Worm-seed)।

उत्पत्तिस्थान—अमरीका। भारतवर्षमें राँची, गंगा तटपर, तथा पुर्नियाके आस-पास इसके क्षुप पाये जाते हैं।

वर्णन—बथुएकी जातिका एक २-४ फुट ऊँचा क्षुप; फल-किंचित् दबे (Depressed), गोलाकार, लगभग १/२ इञ्च व्यासमें, हरापन लिए या भूरा, ग्रंथिमय (Glandular), अकेला; बीज चमकदार (Glossy), काला, रूपरेखामें अर्धचन्द्राकार (Lenticular), कुण्ठित किनारायुक्त (With an obtuse edge); बीजके ऐल्ब्युमेनमें एक वक्र भ्रूण होता है (The albumen containing a curved Embroy); स्वाद कटु, कषाय और तारपीनवत्; समग्र वनस्पतिमें कर्फूर और तारपीनवत् बहुत तीव्र गंध होती है। काण्ड नालियों या रेखाओंसे युक्त ग्रन्थिरोमश और जालिका सदृश मृदुरोमश होते हैं।

रासायनिक संगठन—इसमें ३ प्रतिशत एक चेनोपोडियम नामक उत्पत् तेल (ऑइल ऑफ चेनोपोडियम् Oil of Chenopodium) होता है, जिसके ऊपर इसका कृमिघ्न गुण निर्भर करता है।

उपयुक्त अंग—बीज और तेल।

कल्प तथा मात्रा—बीजका चूर्ण: मात्रा १ ग्रामसे ४ ग्राम (७.। से ३० रत्ती); प्रवाही सार—मात्रा, १/२ से १ ड्राम; तैल (Ol. Chenopod., B. P.); मात्रा—०·२ मि० लि० से १ मि० लि० (३-१५ विंदु)। यह प्राय: अमेरिकासे आता है। पत्तियाँ आयताकार या प्रासवत्, कुण्ठिताग्र, लहरदार तथा दन्तुर होती हैं। **पुष्प** असंख्य, सूक्ष्म, हरित, अवृन्त और लम्बी मञ्जरियोंपर गुच्छबद्ध होकर निकले रहते हैं।

गुणकर्म तथा उपयोग—कृमिघ्न, आक्षेपहर। अन्त्रगत कृमियोंके निकलनेके लिए इसे भोजनसे पूर्व रातमें सोते समय और प्रातः दो-तीन दिन तक देवें। इसके देनेके बाद कोई विरेचन देना चाहिए।

●

(४२३) बननील (वस्मा)

फ़ैमिली : लेगूमिनोसी (Family : Leguminosae)

नाम—(हिं०) बननील, जंगली नील; (फा०) अल्‌वस्मा (इ० बै, बूअलीसीना); वस्मा, कतम, नीलसहराई; (सं०) वननीली, झिल्ल; (गु०) वेकारिओ; (शोलापुर) बरबेर; (ले०) **ईंडिगोफ़ेरा पाउसीफोलिआ (Indigofera paucifolia** Del.); **ईंडिगोफेरा ओब्लाँगीफोलिआ (I. oblongifolia** Forsk.); (अं० वाइल्ड इंडिगो (Wild Indigo)। **विदेशी बननील** (जो अमेरिकामें होता है)—(ले०) **बाप्टीसिआ टिंक्टोरिआ (Bapticia tinctoria** R. Br.)। इसके प्रभावांशका नाम बॉप्टिसिनम् (बॉप्टीसीन) है। यह मृदुसारक, वमन, यकृदुत्तेजक और अधिक प्रमाणमें विरेचन है। १ ग्रेन से ५ ग्रेन या ६० मि० ग्रा० से ३०० मि० ग्रा० (१/२ रत्तोसे २ १/२ रत्ती) तक गोलीके रूपमें देते हैं।

उत्पत्तिस्थान—भारतवर्ष और बलूचिस्तानके समस्त मैदान।

वर्णन—एक गुल्मजातीय प्रसिद्ध वनस्पति। भुइंनील इसका एक भेद है। इसको लेटिनमें **ईंडिगोफेरा इन्नेआफील्ला (Indigofera enneaphylla** Linn.), (संस्कृतमें) वासुक, मराठीमें 'भुइगुली' कहते हैं। इसका प्रसरी क्षुप होता है। जंगली (स्वयंजात) और बुस्तानी (उद्यानज-कृषिकृत) भेदसे नील दो प्रकारका होता है। बाल काला करनेके लिए इसके जंगली भेदके पत्तोंका ही उपयोग प्राय: होता है, जिसे फारसीमें वस्मा कहते हैं। इसके पौधेको प्रातःकाल काट, उसी दिन धूपमें सुखा कर और पत्ते झाड़-पीसकर शीशीमें वायुसे सुरक्षित रखें और काममें लेवें।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम और रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—यह बालोंका सामान्य और प्रसिद्ध खिजाब है। इसकी धूनी या लेपसे प्रतिश्यायमें लाभ होता है तथा बालोंको शक्ति देता और उन्हें काला करता है। इसे बच्चोंके नखोंपर लगानेसे पसलीका दर्द जाता रहता है। इसके लेपसे छाती एवं गुर्दोंका दर्द जाता रहता है। यह सांद्रवायुको विलीन करता, व्रणोंका पूरण करता (भरता), ग्राही, वामक और लेखन है तथा विसर्प, कण्ठमाला और खालित्य (सिरके गंज)का नाश करता है। यह सड़े-गले घावों (व्रणों)के लिए गुणकारी है। कैसी ही खराब एवं पुराना व्रण हो इसके पत्तोंके लेपसे अच्छा हो जाता है तथा कैसी भी कठिन सूजन हो वह बैठ जाती है। इसका पत्र-स्वरस पीनेसे बहुत वमन होता है। यह पागल कुत्तेके काटे हुएको गुणदायी है। इसके पत्र स्वरसमें बराबर तिलतेल मिलाकर इतना पकायें कि तैलमात्र शेष रह जाय। इस तेलको बालों पर लगानेसे बाल बढ़ते हैं और गिरने नहीं पाते। यह अर्श, गुदाके रोग और सर्दी

के दर्दोंको लाभ पहुँचाता है। प्रसेक (नजला)में इसके बीज पीसकर आँखमें लगानेसे लाभ होता है। १ ग्राम (१ माशा) इसके बीजोंका तेल पीनेसे स्त्रीको कभी गर्भ नहीं रहता। परीक्षित है। नमकके साथ इसके पत्तोंक खिजाब करनेसे वातज एवं कफज विभिन्न प्रकारके शिरःशूल आराम होते हैं।

(४२४) बनफ़शा

फ़ैमिली : वायोलासे (Family : Violaceae)

नाम—(हिं०; गु०; म०; बम्ब०) बनफसा (शा), बनप्शा; (फा०) **बनफ़्शः**; (अ०) बनफ़सज, फ़रफ़ीर; (क०) गुन्नफचा, बूनपौश; (ले०) **वायोला ओडोराटा (Viola odorata** Linn.); (अं०) ब्लू या स्वीट वॉयोलेट (Blue or Sweet Violet)।

वक्तव्य—'**बनफ़्सज**' फारसी 'बनफ़्शः'से अरबी बनाया गया है।

उत्पत्तिस्थान—फारस। भारतवर्षमें भी कश्मीर और अनुष्णाशीत पश्चिमी हिमालयमें लगभग ५,००० फुटकी ऊँचाईपर यह विपुल होता है। इसके स्वयंजात पौधे भी होते हैं तथा बनफ्शेकी खेती भी की जाती है।

वर्णन—बनपशाके ४-६ अंगुल ऊँचे **कोमल पौधे** होते हैं, जिनकी **पत्तियाँ** हृदयाण्डाकृति, लोमयुक्त और शिराबंधुर होती हैं और ब्राह्मीकी पत्तियोंके समान दाँतेदार दिखाई पड़ती हैं। **फूल** आकर्षक बैंगनी नीलेरंगके, झुमकेदार होते हैं, जिनमें एक स्पर (Spur) निकलता है, जो अग्रपर फूला होता है। पुष्पोंसे एक बड़ी ही मनोरम सुगन्धि आती है। पुराना पड़नेपर यह भूरे या पिलाई लिए सफेद हो जाते हैं। **जड़ (बीखे बनफ़्शः)**[1] पाँच छः उपमूलयुक्त पतली होती है।

उपयुक्त अंग—पत्रपुष्प सहित सूखी हुई सम्पूर्ण बूटी औषधके काम आती है। इसे **बनफसा** कहते हैं। इसके केवल सूखे फूल भी बाजारमें '**गुलेबनफ़्शा**' नामसे मिलते हैं। इन फूलोंका व्यवहार यूनानी चिकित्सामें बहुत होता है। उक्त दोनों ही द्रव्य ईरानसे बम्बईमें आते हैं। शुष्क बनफ़्शा एवं गुलबनफ्शा कश्मीरसे भी भारतीय बाजारों (विशेषतः बम्बई)में आते हैं। इसे **कश्मीरी बनफ़्शा** या **बाग़बनफ़्शा** कहते हैं। कश्मीरमें खेतीद्वारा उत्पादित बनफ़्शेमें फूल प्रायः पीले होते हैं। बनफ़्शेकी अनेक जातियाँ हैं। इनमें नीले या जामुनीरंग मिश्रित (नीललोहित) रंगके फूलकी वनस्पति अधिक उत्तम समझी जाती है। मात्रा–५ ग्रामसे ६ ग्राम (५ से ६ माशा)। विशेष-उत्तर भारतमें वायोलाकी अन्य भारतीय जातियों, जैसे–वायोला सिनेरेआ (**V. cinerea** Boiss.) एवं वायोला सर्पेंस (**V. serpens** Wall.) का भी व्यवहार बनफशा नामसे किया जाता है।

रासायनिक संगठन—फूलमें **वायोलीन** (Violine) नामक इपीकेक्वानामें पाये जानेवाले इमेटीनकी भाँति एक वामकगुणधर्मी ऐल्केलॉइड, किंचित् उत्पत् तैल, कई रंजक द्रव्य, वायोलाक्वर्सेटीन नामक एक पीला वीर्य और शर्करा प्रभृति द्रव्य होते हैं।

कल्प एवं योग—अर्क़ बनफ़्शा, **गुलकन्द बनफ़्शा, ख़मीरा बनफ़्शा, शर्बत बनफ्शा, रोग़न बनफ्शा,** सफ़ूफ बनफ्शा एवं हब्ब बनफ़्शा आदि।

प्रकृति—पहले दर्जेमें **शीत एवं तर**।

---

[1] बाजारमें इस नामसे ईरसाकी जड़ मिलती है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—प्रकृतिमार्दवकर, पित्तसंशमन, उदरमार्दवकर, रुधिरसंशमन, स्नेहन, स्वप्नजनन, श्लेष्मनिस्सारक और उरःकंठमार्दवकर। पित्त, ज्वर एवं तृष्णाको शमन करने और रुधिरकी तीक्ष्णता कम करनेके लिए बनफ्शाका उपयोग किया जाता है। प्रसेक और प्रतिश्याय, फुफ्फुसशोथ, फुफ्फुसावरणशोथ (पार्श्वशूल), कास, नेत्राभिष्यंद और आमाशय एवं यकृत्के उष्ण रोगोंमें इसे फांट या क्वाथकी भाँति पिलाया जाता है। उष्ण शिरःशूल और अनिद्रामें इसका लेप किया जाता है। उष्ण शिरःशूलको नष्ट करनेके लिए ताजा बनफ्शा सुँघाया जाता है। मलावरोध दूर करनेके लिए इसके फूलोंका चूर्ण या गुलकन्द खिलाते हैं। इसका ख़मीरा और शर्बत मलावरोध, प्रसेक और प्रतिश्याय तथा ज्वरमें प्रयुक्त होता है। इसके ताजे फूलोंमें तिलों या बादामके मग्जको बसाकर निकाला हुआ तेल (रोग़न बनफ्शा) मस्तिष्कस्नेहन और स्वप्नजननके लिए शिरमें लगाया जाता है। **अहितकर**–आकुलताकारक है। **निवारण**–नीलूफर और मर्ज़ञ्जोश। **प्रतिनिधि**–खुब्बाजीके पत्र, गावज़बान और मुलेठी। **मात्रा**–५ माशेसे ७ माशे तक।

नव्यमत—कर्कटार्बुदीय उभारों (Cancerous growths)में वेदनाशमनके लिए इसका लाभदायक उपयोग होता है। किसी-किसीके कथनानुसार इससे कर्कटार्बुद या कैंसर (Cancer) अच्छा होता जाता है। बनफ्शाकी पत्तीका फाण्ट बनाकर पीने या रुग्ण स्थानको धारने अथवा पत्तीकी पुलटिस बनाकर लगानेसे इस रोगमें उपकार होता है। (पाटर्स न्यू-साइक्लोपीडिआ पृ० ३१३)। **गुलबनफ्शा** शीतल, स्नेहन, कफघ्न और थोड़ा-सा स्रंसन है। मूल एक ड्रामकी मात्रामें वामक और थोड़ा विरेचन है। पंचांग स्वेदजनन, श्लेष्मनिस्सारक, वामक और जरा विरेचन है। पित्तप्रधानरोगोंमें बनफ्शा देते हैं। गरमीके दिनोंमें उष्णताकी बाधा न होनेदेनेके लिये ईरान और अफगानिस्तानमें बनफ्शाका गुलकन्द खानेका बड़ा प्रचार है। अत्यार्तव, रक्तार्श आदिमें रक्तस्राव बन्द होनेके लिए पंचांगका काढ़ा उत्तम द्राक्षासवके साथ मिलाकर देते हैं। कैंसरमें बनफ्शा खानेको देते हैं और इसका लेप लगाते हैं। इससे केन्सरगत पीड़ा एवं स्राव कम होता है। केन्सरको धोनेके लिए बनफ्शा और पतंगके काढ़ेका प्रयोग करते हैं। **मात्रा**–पंचांग चूर्ण ०·६२ ग्रामसे १·२५ ग्राम (५ रत्ती से १० रत्तो) स्वेदजनन और कफघ्न; १५-३० रत्ती रक्तस्राव बन्द करनेके लिए। (औ० स०)।

* * *

(४२५) बनसिटकी

नाम—(हिं०) पनसिटकी (मख्ज़न), बनछि(झि)टकी, बनसि(चि)टकी (मुहीत)।

वर्णन—यह एक छोटा जंगली वृक्ष है जिसमें इधर-उधर बिखरी हुई विपुल शाखाएँ लगती हैं। पत्र मेंहदीके पत्रके समान और फल मकोयके समान होते हैं। कच्चेफल हरे और पकनेपर नीलवर्णके हो जाते हैं। इनके भीतर हरे रंगके छोटे-छोटे बीज भरे रहते हैं।

प्रकृति—गरम और खुश्क।

गुण-कर्म तथा उपयोग—प्रबल प्रवर्तनकर्ता, श्वयथुविलयन और जलोदरमें गुणदायक है। इसके पत्तों, फलों और बारीक शाखाओंको जलमें पीस-छानकर पिलानेसे गर्भपात हो जाता है। जलोदरीके उदर और सूजनके स्थानपर गुनगुना लेप करके ऊपरसे रेंडके पत्र बाँधनेसे तीन-चार दिन तक प्रवर्तनके द्वारा समूचे उदरका पानी उत्सर्गित हो जाता है और सूजन जाती रहती है। **अहितकर**–गर्भिणीके लिए। **निवारण**–कतीरा और शहद। **मात्रा**–७ माशेसे १ तोला तक।

* * *

(४२६) बबूल

फ़ैमिली : लेगूमिनोसी (Family : Leguminosae)

नाम—वृक्ष (हिं०; पं०) बबु(बू)ल (र), कीकर; (अ०) अम्मुग़ीलाँ, समुरः ; (फा०) मुग़ीलाँ; (सं०) बब्बुल, बब्बूल, बर्बुर, बर्बूर; (पं०) किक्करः ; (बं०) बाब्लागाछ; (गु०) बावल; (म०) बाभूल; (मा०) बावलियों; (सिंध) बबुर; (ते०) नल्लतुम्म; (ता०) करुवेल् ; (मल०) करुवेलम्; (ले०) **अकासिआ आराबिका (Acacia arabica)**; (अं०) अकेसिया ट्री (Acacia Tree), बबूल ट्री (Babool Tree)। **गोंद**—(हिं०) बबूलका गोंद, कीकरका गोंद, भिंबरी (भीमरी) गोंद; (अ०) समग़े अरबी, समग़ुल् अरबी; (फा०) अज़दूए ताज़ी; (सं०) बर्बूर निर्यास; (पं०) किकरवा गोंद; (अं०) गम अरेबिक (Gum Arabic), अकेसिया गम (Acacia Gum)। **फली**—(हिं०) बबुरी; (अ०) समरे अम्मुग़ीलाँ; (अं०) अकेसिया पॉड (Acacia pod)। **छाल**—(हिं०) बबूलकी छाल; (अं०) क़श्र अम्मुग़ीलाँ, क़श्रुल् अकाकिया; (फा०) पोस्ते मुग़ीलाँ; (अं०) अकेसिया बार्क (Acacia Bark)। **रसक्रिया**—(हिं०) अकाकिया; (अ०; फा०) अक़ाक़िया; (अं०) अकाकिया (Akakia); (यू०) Akakia (D. 1. 23.)।

वक्तव्य—प्राचीनकालमें अफरीकासे अरबदेशमें बबूलके गोंदका यातायाता अधिक हुआ करता था, इसलिए यह **'गम अरेबिक'** अर्थात् **'समग़ेअरबी** (बबूलका गोंद)'के नामसे अभिहित हो गया। पर अधुना पश्चिमी अफरीकाके **सेनेगल** स्थानसे जो फ्रांसीसियोंका एक उपनिवेश है, बबूलके गोंदका पुष्कल आयात यूरोपमें होता है। **शौकुल् मक्कः, शौकुल् एअराबियः, शौकुल् मिश्रियः**, अरब और मिस्रमें होनेवाले बबूलवृक्षके अरबी नाम हैं। लेटिनमें उनको क्रमशः **आकासिआ वेरा (Acacia vera)** और **आकासिआ नीलोटिका (Acacia nilotica)** कहते हैं। मिश्री-भाषामें उनको **'सन्त'** कहते हैं। फलीको अरबीमें **'क़ुर्ज़'** और फली एवं पत्रके स्वरसको **'अक़ाक़िया'** कहते हैं। **समग़े अरबी** इन्हीं वृक्षोंका गोंद है। अकाकिया और गोंदका आयात यहाँ अरब और मिस्रसे होता है। **डॉ० विटरिंग** महोदय अपनी पुस्तक **फार्माकोपिया इंडिका**में लिखते हैं कि विलायती कीकर जो भारतवर्षके कतिपय स्थानोंमें पाया जाता है, उसका गोंद समग़ अरबीसे भी उत्कृष्टतर होता है। आकासिआ (Acacia) जिसका अरबी रूपांतर 'अक़ाक़िया' है, यूनानी भाषामें कीकरको कहते हैं। परंतु अरबी भाषाके यूनानी वैद्यकीय ग्रंथोंमें अकाकिया कीकरकी फलियोंकी रसक्रियाका नाम लिखा है, जिसे उर्दूमें 'रंग' कहते हैं।

इतिहास—यूनानी हकीम **सावफरिस्तुस्ने** ईसवी सन्से ३०० वर्ष पूर्व **'गम्मी'** नामसे, जिससे अँग्रेजी संज्ञा 'गम' व्युत्पन्न है; इसका उल्लेख किया है।

उत्पत्तिस्थान—यह भारतवर्षके प्रायः सभी प्रान्तोंमें जंगली अवस्थामें अधिकतया पाया जाता है। राजस्थान, सिन्ध आदिमें पायाजानेवाला प्रधान वृक्ष है।

वर्णन—यह मझोले कदका एक प्रसिद्ध कँटीला वृक्ष है। इसके पत्र, पुष्प, फली, वृक्षत्वक् 'गोंद' और कच्ची फलीके रसको सुखाकर बनाई हुई रसक्रिया (अकाकिया) आदि सभी औषधिके काममें लिए जाते हैं।

कल्प तथा योग—दवाए जरयान कोहना, सुनून पोस्त मुग़ीलाँ, क़ुर्स अकाकिया आदि।

रासायनिक संगठन—इसकी छाल और फलीमें प्रचुरतासे **टैनिन** पाया जाता है। गोंदमें अर्बिन (Arbin) या अरेबिक एसिड (Arabic acid), कैल्सियम, मैग्नेसीयम और पोटैसियमके साथ पाया जाता है। इसके सिवाय इसमें थोड़ा सेवाम्ल, शर्करा क्लेद और भी वर्तमान होता है।

पत्र, पुष्प, कच्ची फली और वृक्षत्वक् आदि—

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें **शीत** एवं **रूक्ष** तथा **शुक्रतारल्य** रोगमें प्रयुक्त होते हैं।

गुण-कर्म तथा उपयोग—**शीतसंग्राही**, **उपशोषण** और शीतजनन हैं। आयुर्वेदके मतसे बबूल शीतवीर्य और फली रूक्ष है। दाँतोंको शुद्ध करने और मसूढ़ोंको दृढ़ करनेके लिये इसका दातून गुणकारी है। दाँतोंकी दृढ़ता और स्थिरताके लिए बबूलकी छालको मुखमें रखकर चबाते हैं तथा **मंजनोंमें** डालते हैं। शीतसंग्राही और उपशोषण होनेके कारण **अतिसार**, **शुक्रतारल्य**, **शीघ्रपतन**, **स्वप्नदोष**, **सूजाक**, **शुक्रप्रमेह** एवं **श्वेतप्रदरमें** इसका चूर्ण उपयोग करते हैं। श्वेतप्रदर और योनिसंकोचनके लिए इसके काढ़ेसे धोते या पिचकारी करते हैं। कतिपय **कंठरोगोंमें** इसका गरारा (ग़रग़र) कराते हैं। **शुक्रमेह** और **श्वेतप्रदरमें** बबूलका फूल, नया निकला हुआ पत्र और कच्ची फलीका चूर्ण खिलाते हैं। बबूलके नवीन पत्तोंको जीरा और अनारकी कलीके साथ जलमें पीसकर बालातिसार बंद करनेके लिए देते हैं। **अहितकर**—अन्त्र और आमाशयको। **निवारण**—कतीरा और शहद। **प्रतिनिधि**—अमरूद की छाल। **मात्रा**—५ ग्राम से ७ ग्राम (५ माशेसे ७ माशे) तक।

बबूलका गोंद—

प्रकृति— अनुष्णाशीत, दूसरे दर्जेमें खुश्क; आयुर्वेदके मतसे शीतवीर्य।

गुण-कर्म तथा उपयोग—**शीतसंग्राही**, व्रणलेखन, पिच्छिलताजनक और **शुक्रमेह** एवं **श्वेतप्रदरमें** उपकारक है। बबूलके गोंदके लबाबमें औषधियोंको गूँथकर गोलियाँ और चक्रिकायें बनाई जाती हैं। उरःकंठके खरत्व, फुफ्फुसव्रण, उरःक्षत, प्रवाहिका तौर अतिसारमें इसका उपयोग होता है। **अहितकर**—कब्ज पैदा करता है। **निवारण**—कतीरा और मृदुसारक द्रव्य। **प्रतिनिधि**—कतीरा अकाकिया। **मात्रा**—१ से ३ ग्राम (१माशेसे ३माशे) तक

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें शीत एवं रूक्ष।

गुण-कर्म—शीतसंग्राही, रक्तस्तंभन, रूक्षण, दोषविलोमकर्ता और प्रत्येक अंगसे रक्तस्रावको रोकता है।

उपयोग—अन्त्रस्थ रगड़, रक्तातिसार और प्रत्येक अंगसे रक्तस्राव रोकनेके लिए इसका उपयोग करते हैं। इसे शुक्रप्रमेह, स्वप्नदोष और श्वेतप्रदरमें खिलाते हैं। गरम सूजन और नेत्राभिष्यंदमें दोषको विलोम करनेके लिए इसका लेप लगाते हैं। मुखपाक और गुदभ्रंशमें इसका बारीक चूर्ण छिड़कते हैं। अग्निदग्ध अवयव पर इसे अंडेकी सफेदीमें मिलाकर लगाते हैं। बालोंको काला करनेके लिये भी इसका प्रयोग करते हैं। **अहितकर**—अवरोधजनक (वा अभिष्यंदी) और संग्राही। **निवारण**—स्नेह द्रव्य। **मात्रा**—१ ग्रामसे १.५ ग्राम (१माशासे १॥ माशा) तक।

आयुर्वेदीय मत—बबूल कषाय, शीतवीर्य तथा कुष्ठ, कास, आँव, रक्तातिसार, पित्त, अर्श और दाहका नाश करनेवाला है। बबूलकी फली रूक्ष विशद, स्तम्भन, और गुरु है। गोंद ग्राही, शीतवीर्य, संधानीय तथा पित्त, वात, रक्तातिसार, प्रमेह, उदर और रक्तस्रावको दूर करनेवाला है। बबूलकी छालकी रसक्रियामें मधु मिलाकर अंजन करने से नेत्रस्राव दूर होता है।

नव्यमत—फलीमें २२ प्रतिशत कषाय द्रव्य है। छाल उत्तम संग्राहक तथा गोंद स्नेहन, ग्राही और पौष्टिक है। छालके क्वाथसे मुखरोग, दाँतोंके हिलने और गलेकी शिथिलतामें कुल्ले करते हैं। गुदभ्रंशमें बाहर आये हुए अंगपर छालके काढ़ेमें कपड़ा भिगोकर रखते हैं। गलेकी शुष्कता और शुष्ककासमें मुँहमें इसका गोंद रखनेसे उपकार होता है। मूत्रकृच्छ्रमें गोंदको पानीमें मिलाकर देते हैं। **अतिसारमें** कोमल पत्तियाँ (कल्कके रूपमें) देते हैं।

●

(४२७) बरगद

(फ़ैमिली : (Family Urticaceac)

नाम—(हिं०) बड़, बर, बरगद, (अ०) ज़ातुज़्ज़वानिब, कबीरुल् अश्जार; (फ़ा०) दरख़्ते रीश:; (सं०) वट, न्यग्रोध; (बं०) वटगाछ, (पं०) बोड, बूहड; (गु०) वड, वडलो; (म०) वड; (सिं०) नुग; (ले०) **फ़ीकुस बेन्गालेन्सिस (Ficus bengalensis** Linn.) (अ०) बेनियन ट्री (Banyan Tree) ।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष ।

वर्णन—यह पीपर, गूलर आदिकी जातिका एक प्रसिद्ध बड़ा वृक्ष है ।

उपयुक्त अंग—समस्त अंग अधिकतया दूध, नरम और कोमल कोंपल (शुद्ध), बड़की दाड़ी (रीशे बर्गद) आदि ।

रासायनिक संगठन—छालमें कषायद्रव्य (Tannin), मोम और रबड़ (Caoutchouc); फलमें तेल, ऐल्ब्युमिनॉइड्स, कार्बोहाइड्रेट, तन्तु और रक्षा प्रभृति द्रव्य होते हैं ।

प्रकृति—पहले दर्जेमें शीत और दूसरेमें खुश्क (रूक्ष) । वटक्षीर (शीर बरगद) तीसरे दर्जेमें शीत एवं रूक्ष । आयुर्वेदके मतसे शीतवीर्य एवं रूक्षण (ध० नि०) हैं ।

गुण-कर्म तथा उपयोग—**शीतसंग्राही**, व्रणलेखन विशेषकर **शुक्रस्तम्भन** और उत्तमांगबलदायक है । अर्श स्वप्नदोष, शुक्रप्रमेह और शीघ्रपतनरोगमे उपयुक्त विधिसे बड़का दूध खिलाते हैं । इसकी नरम और कोमल कोपलों और बड़की दाढ़ीका चूर्ण भी शुक्रप्रमेह और स्वप्नदोषमें उपयोग करते हैं । कोई-कोई हकीम इन रोगोंमें वटपत्रका स्वरस (उसारा) निकालकर अकेले या उपयुक्त औषधद्रव्यके साथ मिलाकर देते हैं । स्तनोंको कठोर करनेके लिए वटजटा (बरोंह) का लेप करते हैं । दस्तोंको बन्द करनेके लिए इसे जलमें पीस-छानकर पिलाते हैं । कर्णगत व्रण और कर्णकृमिको नष्ट करनेके लिए कानमें बड़का दूध टपकाया जाता है । पाँवमें बिवाई फटी हुई हो तो उसमें यह दूध भर देनेसे बिवाई शीघ्र ही अच्छी हो जाती है । सूजन विशेषकर वंक्षणपर इसका ताजा दूध लेप करते हैं । यह दोषको विलोम और विलीन करता और दोषाधिक्यकी दशामें व्रणशोफको फोड़ डालता और शीघ्र अच्छा कर देता है । इसके पत्र जलाकर व्रणपर छिड़कते या मलहरमें डालकर लगाते हैं । अहितकर–अन्त्र और आमाशयके लिए । निवारण–शर्करा; मधु और कतीरा । प्रतिनिधि–गूलरका दूध । मात्रा–कोपल या डाढ़ी ३ से ५ माशे तक और दूध २-३ बूंद ।

आयुर्वेदीय मत—बड़ कषाय, शीतवीर्य, गुरु, ग्राही, स्तम्भन, रूक्षण, वर्ण्य, मूत्रसंग्रहणीय तथा तृष्णा, वमन, मूर्च्छा, रक्तपित्त, विसर्प, दाह और योनिदोषको दूर करनेवाला है । (च०सू०अ० ४; वि०अ०; सु०सू०अ० ३८; ध०नि०,भा०प्र०) ।

नव्यमत—बड़का क्षीर वेदनास्थापन और व्रणरोपण; सूखे पत्र स्वेदजनन; कोमलपत्र श्लेश्मघ्न और छाल स्तम्भन है । बहुमूत्रमें मूलकी छालका काढ़ा और मधुमें हमें फल देते हैं । सड़े हुए दाँतों में बड़का दूध भरनेसे पीड़ा शान्त होती है । कटिशूल और संधिशूलमें बड़का दूध लगाते हैं ।

●

(४२८) बरञ्जासिफ़, बिरञ्जास(सि)फ़

फ़ैमिली : कॉम्पोजीटी (Family : Compositae)

नाम—(हिं०; भा० बाजार) **बिरंजासिफ**; (यू०) Artemisia (D. 3. 117), अखिल्लिओन; (अ०) अल् बिरंजास्ब(फ़)-इ०बै०), बरंजासफ़, बिरिंजासफ़; (फा०, अफ०) बिरंजास्प, पलंगअस्प, बूए मादरान; (का०) बिरंजासफ, मोमाद्रु, चोपांदिग; (बम्ब०) रोज़मरी; (कच्छ) बिरंजासिफ; (ले०) **आकिल्लेआ मील्लेफोलिउम् (Achillea millefolium** Linn.); (अं०) मेल्फोइल (Melfoil), येर्रो (Yarrow), नोज़ब्लीड (Nose-bleed), थाउज़ंड लीफ़ (Thousand Leaf)।

उत्पत्तिस्थान—पश्चिमी हिमालयमें कश्मीरसे कुमाऊँ तक ३,५००-१२,००० फुटकी ऊँचाईपर इसके क्षुप होते हैं। प्रायः इसे बगीचोंमें लगाते हैं।

वर्णन—यह अफसंतीनके समान एक बहुवर्षायु क्षुप है, जिसका तना ९० सें० मी० (१ गज) तक ऊँचा होता है। समग्र क्षुप न्यूनाधिक रोमावृत होता है। रोम सफेद तथा रेशमी होते हैं। शाखाएँ बारीक, पत्र एकांतर, ७·५ सें० मी०से १० सें० मी० (३-४ इञ्च) लम्बे और २·५ सें० मी० (१ इञ्च) चौड़े, आधारपर तनेको आवेष्टित किए हुए (Bipinnatifid), खंड पतले, नुकीले होते हैं। पुष्प सोआकी तरह छत्तेदार, पीले, सफेद या गुलाबी (वा नीलवर्ण) होते हैं, जिनमें कुछ-कुछ बाबूना जैसी सुगंध होती है। स्वाद किंचित् तिक्त और अधिकतया नमकीन होता है। पौधेपर एक प्रकारका चिपकनेवाला द्रव्य लगा रहता है।

उपयुक्त अंग—पंचांग (क्षुप)। औषधमें उपयोगके लिए इसके फूलोंके छत्र और ताजी वनस्पति उत्तम होती है।

रासायनिक संगठन—इसमें एक नीला या गहरा हरा उत्पत् तेल और **एचिल्लीन** (Achillein) नामक एक तिक्त वीर्य (ग्लूकोसाइड) होता है।

कल्प तथा योग—अर्क़ बरंजासिफ़।

प्रकृति—पहले दर्जेमें गरम और दूसरेमें खुश्क।

गुण-कर्म तथा उपयोग—**उष्णताजनन, श्वयथुविलयन, तारल्यजनन** (मुलत्तिफ़), **प्रमाथी**, मूत्रार्तवजनन, **अश्मरीघ्न, ज्वरघ्न** और **आशयशोथ** (औराम अह्शाऽ)के लिए विशेष गुणदायक है। उष्णताजनन, शोथघ्न और प्रमाथी होनेके कारण यह आशयशोथ (औराम अह्शाद)में उपयोग किया जाता है। इन्हीं गुणकर्म तथा मूत्रजनन होने के कारण बद्धमूत्रार्तव, कष्टप्रसूति, अपरापातन और जरायुकाठिन्यके लिए इसके क्वाथका पान, परिषेक (नतूल) और कटिस्नान(आबज़न) गुणदायक है। यकृद्विकारयुक्त कफज्वरमें यह लाभ करता है। **अहितकर**–मूत्रपिंडोंको। **निवारण**–अनीसूं। **प्रतिनिधि**–बाबूना। **मात्रा**–३ ग्रामसे ५ ग्राम (३ माशेसे ५ माशे) तक।

नव्यमत—स्वेदल, उत्तेजक, बल्य, आर्तवप्रवर्त्तक; सर्दी, स्वेदावरोध और ज्वरारंभमें इसका उपयोग बहुत गुणकारी है। यह छिद्रोंको खोलता हुआ रक्तको शुद्ध करता है। १ पाइंट उबलते पानीमें एक आउंस इस औषधिका बनाया हुआ फांट १ गिलास (Wine glassful) प्रमाणमें गरम-गरम पीवें। इससे खमानपुष्प (Elder flowers) और पेपरमिंट मिलाकर सेवन करनेसे दुष्ट प्रतिश्याय (Influeza) और सर्दी आदिमें शीघ्र लाभ होता है।

●

(४२९) बरना

फ़ैमिली काप्पारिडासे (Family : Capparidaceae)

नाम—(हिं०) बर(रु)ना, बिलासी; (सं०) वरुण, तिक्तशाक; (बं०) बरुण गाछा; (पं०) बरना; (म०) हाडवर्णा, वायवर्णा; (गु०) वरणो, वायवरणो, कागडाकेरी; (ता०) माविलिंगम्; (मल०) नोर्वाल; (ले०) **क्राटेवा नुर्वाला** (**Crataeva nurvala** Buch.–Ham. (**पर्याय–क्राटेवा रेलीजिओसा** *Crataeva religiosa* Hook. f. & Th.); (अं०) थ्री-लीव्ड केपर (Three-leaved Caper)।

उत्पत्तिस्थान—रावी नदीके पूरबकी ओरसे आसाम तक, मणिपुर, उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश, बुन्देलखण्ड, राजस्थान, बंगाल आदिमें इसे लगाते हैं। दक्षिण भारतके मलाबार, कनाडा आदि स्थानोंमें यह स्वयंजात होता है।

वर्णन—इसके २५-३० फुट ऊँचाईके **छोटे वृक्ष** होते हैं। **पत्र** बेलपत्रकी भाँति त्रि-पत्रक तथा लम्बेवृन्तके अग्रपर धारण किए जाते हैं। इनमें मध्यम पत्रक शेष दोनों पत्रकोंकी अपेक्षया बड़ा होता है। पत्रकोंका ऊपरी पृष्ठ चिक्कण, हरित किन्तु अधःपृष्ठ किंचित् फीकेवर्णका होता है। कोमल शाखाओंपर शुभ्रवर्णका रेखाकृति चिह्न होता है। **पुष्प** पृथग्दल, दल ४, अधखिले दलका वर्ण हरिद्राभ-शुभ्र, विकसित होनेपर शुभ्र एवं परिणतावस्थामें ईषत् स्वर्णाभ होता है। पत्रवृंत पुष्पवृंतकी अपेक्षया ह्रस्वतर, क्वचित् समान; पुष्पधि उत्तान, पुंकेसर लाल गर्भकेसरीकी अपेक्षया ह्रस्वतर; पुष्पकाल फागुन-चैत; **फल** आकृतिमें छोटे कैथके समान तथा फलका ऊपरी धरातल ठीक कैथकी तरह शुभ्र, रूक्ष और बन्धुर एवं अपक्व फल हरा और पका हुआ लाल हो जाता है। इसके पत्र, फूल और कच्चे फलका स्वाद तिक्त, फल पकनेपर किंचित् मधुर हो जाता है।

उपयुक्त अंग—पत्र, वृक्षत्वक् (**पोस्त दरख़्त**) और मूलत्वक्।

रासायनिक संगठन—छालमें सेनेगामें होनेवाला सैपोनिन (Saponin) द्रव्यके समान एक द्रव्य होता है। छालके टिंचरसे उत्तम इमलसन (Emulsion) बनता है।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें **गरम** एवं **खुश्क**। आयुर्वेदके मतसे उष्णवीर्य (सु०) एवं रूक्ष (भा० प्र०)।

गुण-कर्म तथा उपयोग—**मूत्रजनन, अश्मरीनाशन** और **व्रणशोथविलयन-पाचन** हैं। कृच्छ्रमूत्रनिवारण और बस्तिवृक्काश्मरी एवं सिकताके उत्सर्गके लिए इसके पत्र या छालको जलमें पकाकर बाँधते या जलमें पीसकर कोष्ण लेप लगाते हैं। **मात्रा**–३ ग्रामसे ५ ग्राम (३ माशे से ५ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—वरुण रसमें मधुर, तिक्त, कटु और कषाय; रूक्ष, लघु उष्णवीर्य, वात-कफप्रशमन, पित्तकारक, भेदन, दीपन तथा मूत्रकृच्छ्र (वातकफजन्य), गुल्म, वातरक्त और कृमिका नाशकरनेवाला है। (सु०सू० अ० ३८, ४६; चि०अ० ७; भा०प्र०; च०द०)। बरनाकी जड़का काढ़ा मधुमिलाकर पीनेसे गण्डमाला और अपक्व विद्रधिका नाश करता है।

नव्यमत—बरुना कटु, दीपन, उष्ण, कोष्ठवातप्रशमन, पित्तसारक, अनुलोमन, वातहर, मूत्रजनन और शोथघ्न है। इसकी ताजी पत्ती पीसकर त्वचापर बाँधनेसे त्वचा लाल होती है और फफोला उठता है। यह क्रिया राई जैसी होती है। मूत्रेन्द्रियके रोगोंमें, जैसे—अश्मरी, शर्करा, वस्तिशूल और मूत्रकृच्छ्रमें बरुनाकी छाल या मूलका उत्तम उपयोग होता है। इन रोगोंमें बरुनाके साथ चिरचिटा, गदहपूरना, जवाखार और मुलेठी भी मिलाते हैं। गण्डमालामें छालका काढ़ा मधु मिलाकर पिलाते हैं और छालको पीसकर उसका लेप लगाते हैं। व्रणशोथ और विद्रधिमें बरुनाकी छालके साथ गदहपूरना भी देते हैं। उदराध्मान और कुपचनमें बरुनाकी पत्तियोंका फांट देते हैं।

●

(४३०) बरियारा

फ़ैमिली : माल्वासे (Family : Malvaceae)

नाम—(हिं०) बरियारा, बरयारा, बरियाला, बरयाला, बरियरा, खिरैंटी, खरेंटी, खिरहटी; (सं०)बला, खरयष्टिका, वाट्यायनी, वाट्या; (पं०) खरयटी; (कोल; संस्थाल) बरियार; (जम्मू)धमनी; (बं०) बेडेला; (म०) चिकणा; (गु०) बल, बला, खरेटी; (ले०) सीडा कॉर्डीफोलिया (**Sida cordifolia** Linn.)।

वक्तव्य—सीडा प्रजाति (Genus)की कई जातियाँ (Species) भी जैसे **सीडा स्पीनोजा** (**S. spinosa** Linn.) और सीडा राम्बीफोलिआ (**S. rhombifolia** Linn.) आदि भी बरियराके नामसे प्रसिद्ध एवं प्रयुक्त होती हैं। मख़्ज़नुल् अदविया और मुहीतआज़म आदिमें अभिन्न होनेपर भी 'बरियारा' और 'खिरहटी'का पृथक्-पृथक् वर्णन किया है। यह ठीक नहीं है।

उत्पत्तिस्थान—भारतवर्षके समस्त उष्ण प्रदेश।

वर्णन—इसका स्वावलम्बी क्षुप या गुल्मक १॥ से ४ फुट ऊँचा होता है। पत्तियाँ ७–९ शिरायुक्त, तूल-रोमश, लट्वाकार या लट्वाकार-आयताकार (हृदयाकृति), एकान्तर, १–२ इञ्च लम्बी, गोल-दन्तुर; पुष्प पत्र-कोणोद्भूत, हलके पीले या तृणवर्णके, पुष्पबाह्य और आभ्यन्तरकोशके दल ५–५; फल मूँगजितने बड़े जिनमें पाँच ख़ाने होते हैं। बीजोंको हिन्दीमें बीजबंद और गुजरातीमें फलदाणा कहते हैं। दे० 'बीजबंद'।

उपयुक्त अंग—समस्त क्षुप, मूल; मूलत्वक् पत्र और बीज।

रासायनिक संगठन—समस्त क्षुप (मूल, मूलत्वक, पत्र और बीजमें) सम्भवत: एफीड्रीनके समान एक क्षाराभ (ऐल्केलॉइड) होता है।

प्रकृति—गरम और तर (मख़्ज़न); सर्द एवं ख़ुश्क (तालीफ़ शरीफ़ी); आयुर्वेदमतसे शीतवीर्य एवं स्निग्ध (ध० नि०)।

गुण-कर्म तथा उपयोग—खिरेटी ग्राही है और चेहरेका रंग निखारती तथा अर्श एवं कफज रोगों, विसर्प वायुके विकारों और गर्भाशयके रोगोंमें गुणकारी है। ६ माशे इसकी बड़ २–४ कालीमिर्चोंके साथ पीसकर पिलानेसे विसूचिकामें बड़ा लाभ होता है। सफेद बरियराके पत्ते पानीमें पीसकर पीनेसे सूजाक और शुक्रमेह आराम हो जाता है तथा शुक्र गाढ़ा एवं पुष्ट होता है और बस्तिगत अश्मरी नष्ट होती है। इसके पत्तोंका स्वरस पिलाने और सुँघानेसे सर्पविषका नाश होता है। इसके सूखे पत्ते पीसकर सुँघानेसे भी उक्त लाभ होता है। यदि रोगी मूर्च्छित हो तो पत्तोंके स्वरस या चूर्णको फूंकके द्वारा नाकके भीतर पहुँचायें। पीले बरियराके पत्ते पीसकर लेप करनेसे सूजन उतर जाती है, दर्द शांत होता और फोड़ा पक जाता है।

आयुर्वेदीय मत—बरियारा मधुर, स्निग्ध, शीतवीर्य, बृंहणीय, बल्य, प्रजास्थापन, ग्राही, वृष्य, ओजको बढ़ानेवाला तथा वात, पित्त, रक्तपित्त और क्षयका नाश करनेवाला है। (च० सू० अ० ४, २५, २७; वि० अ० ८; सु० सू० अ० ३९; ध० नि०)।

नव्यमत—सोंठ मिली जड़का काढ़ा ज्वरघ्न है। अर्दित और गृध्रसीवातमें जड़की छाल तिलतैल एवं दूधके साथ प्रयोग करनेसे उपकार होता है। श्वेतप्रदर एवं मूत्रकृच्छ्रमें चूर्णके रूपमें दूध और चीनीके साथ इसका उपयोग लाभकारी होता है। शुक्रप्रमेहमें इसके पंचांगका स्वरस जलके साथ दिया जाता है। व्रणरोपणके लिए इसके मूलका रस प्रयुक्त होता है।

●

(४३१) बलसाँ

फ़ैमिली : बुर्सेरासे (Family : Burseraceae)

नाम—वृक्ष (अ०; फा०) बलसाँ, बिलसाँ; (ले०) कोम्मिफोरा ओपोबाल्सामुम (**Commiphora opobalsamum** (Linn.) Engl. (पर्याय–बाल्समोडेन्ड्रोन ओपोबाल्सामुम *Balsamodendron opobalsamum* Kunth.); (अ०) ब'ल्सम ट्री (Balsam Tree)। तेल (हि०; द०) बलसाँका तेल; (यू०) Balsamon (D. 1. 18.); (अ०) लबतुल् बलसाँ, दोहनुल् बलसाँ, अक़ुवुथलासमूँ; (फा०) रोग़ने बलसाँ; (इबरानी) बाल्सेमीन; (ले०) बाल्सामुम् (Balsamum); (अं०) बाल्सम ऑफ मक्का (Balsam of Mecca), बाल्सम (Balsam), बाम (Balm)। फल (अ०) हब्बे बलसाँ; (फा०) तुख्मे बलसाँ। काष्ठ (अ०) ऊदेबलसाँ; (फा०) चोबे बलसाँ।

वक्तव्य—इसका यूनानी नाम 'बाल्सेमून्' इसके इब्रानी (Hebrew) नाम 'बाल्सेमीन (बाल = राजा, सेमीन = स्नेह अर्थात् तैलराज)' से व्युत्पन्न है। इसका लेटिन नाम 'बाल्सामुम्' वस्तुतः इसके यूनानी नामका ही किंचित् परिवर्तित रूप है। इसका अंग्रेजी नाम 'बाल्सम' इसके लेटिन नामसे व्युत्पन्न है। इसके अरबी-फारसी नाम इसके इब्रानी नामसे ही व्युत्पन्न हैं।

टिप्पणी—बाम (Balm) संज्ञाके, जो बाल्समका पर्याय है, डॉक्टरीमें यह चार अर्थ ग्रहण किये जाते हैं :—

(१) लाबिआटी कुलकी एक सुगन्धित वनस्पति जिसको वैज्ञानिक भाषामें मेलिसा आफ़्फ़ीसिनेलिस (**Melissa officinalis**) कहते हैं; (२) कतिपय प्रकारके वृक्षोंका रालदार और सुगंधमय रस; (३) कोई सुगंधित या बहुमूल्य मलहर और (४) कोई ऐसी औषधि या अभ्यंग जो वेदनाहरण एवं वेदनाशमन करे। परन्तु बाल्सम (Balsam) संज्ञाका भाव यद्यपि बलसाँ वृक्ष भी होता है, तथापि सामान्यतया इससे बलसाँतेल (रोग़न बलसाँ) विवक्षित होता है। यूनानी वैद्यकमें बलसाँसे बलसाँवृक्ष अभिप्रेत होता है। इसके काष्ठको ऊदेबलसाँ, फलको हब्ब बलसाँ और तैलोद्यास–रालदार तेल–को रोग़नेबलसाँ कहते हैं। तिबके प्राचीन मनीषी अपनी रचनाओंमें 'बालसम' संज्ञाका अर्थ 'रालयुक्त तेल' या 'रातीनज सय्याल' लिखते हैं। परन्तु उत्तरकालीन मनीषी इस प्रभेदका आरोप उन सान्द्रीभूत या प्रवाही रातीनजी सत्वोंपर करते हैं, जिनमें सतलोबान विद्यमान हो। संक्षेपमें बालसम एक प्रकारका उद्यासमय पारदस्वभावी उत्पत् सुगन्धिमय प्रवाही या सांद्र पदार्थ है जो कतिपय प्रकारके वृक्षोंसे स्वयमेव प्राप्त होता अथवा उनके तनोंमें चीरा देनेसे प्राप्त होता है। बाल्सम दो प्रकारका होता है; एक वास्तविक जिसमें सतलोबान (बेंज़ोइक एसिड) और सतदालचीनी (सिन्नैमिक एसिड) अन्यान्य घटकों सहित विद्यमान होते हैं, यथा बलसानेपेरू या बलसानेमक्का; दूसरा मिथ्या जिनमें सतलोबान विद्यमान नहीं होता, यथा बाल्सम ऑफ कोपाइबा (बलसाने कोबाई)।

भेद—(१) बलसाँ कोपेबी अर्थात् बाल्सम कोपेबा (Balsam Copaiba) जो शिम्बी-कुलके कोपेइफेरा लांग्सडार्फियाई (**Copiafera longsdorffii** Desf.) नामक विदेशी वृक्ष तथा इसकी अन्य जातियोंसे प्राप्त एक प्रकारका ओलियो-रेजिन (Oleo-resin) है। (२) बलसाँ पेरू अर्थात् बाल्सम ऑफ पेरू (Balsam of Peru) या पेरूवियन बाल्सम (Peruvian Balsam) जो शिम्बी-कुलके माइरॉक्सिलॉन पेरीरी (**Myroxylon pereirae** Klotsch) नामक मध्यअमेरिकीय वृक्षसे प्राप्त होता है। (३) बलसाँ टोलू अर्थात् बाल्सम टोलू (Balsam Tolu) या टोलू बाल्सम (Tolu Balsam) जो शिम्बी-कुलके माइरॉक्सिलॉन बाल्सामुम् (**Myroxylon balsamum** Harms.) या टोलुइफेरा बाल्सामुम् (**Toluifera balsamum** Baill.) नामक कोलम्बियामें होनेवाले वृक्षसे प्राप्त होता है। इन तीनों प्रकारके बलसाँका पाश्चात्य वैद्यकमें प्रयोग होता है। इनके अतिरिक्त एक प्रकारका बलसाँ और है जिसका प्रयोग पाश्चात्य तथा यूनानी और आर्यवैद्यकमें भी होता है। उसे शिलारस कहते हैं। वि० दे० "शिलारस''। 'रोग़न गर्जन' भी एक प्रकारका बाल्सम (बलसाने हिंदी) है। दे० 'गर्जन'।

इतिहास—'बाल्सम्' एक अत्यन्त प्राचीन औषधि है। सुतरां 'बलसानेमक्का'का उल्लेख यूनानी हकीम सावफरिस्तुस एवं दीसकूरीदूसने और रोमदेशीय हकीम प्लाइनीने भी किया है। प्राचीन इबरानियोंको तो यूनानियोंसे भी पूर्व यह औषधि ज्ञात थी, जिसका विवरण पूर्वके वक्तव्यमें किया गया है। प्राचीन श्यामवासियों और अरबोंको भी प्राचीनकालसे ही यह औषधि ज्ञात थी।

उत्पत्तिस्थान—मिस्र, श्याम और अरब।

वर्णन—इसका वृक्ष बड़ा होता है। लकड़ी (काष्ठ) सुगन्धित, भारी और लालगन्दुमी रंगकी होती है। इसे ऊद बलसाँ कहते हैं। इसके वृक्षमें चीरा देनेसे एक प्रकारका सुगन्धित, ललाई लिए पीला, रालदार तेल (रोग़न बलसाँ) निकलता है। इसका स्वाद सुगन्धित, तिक्त और किंचित् चरपरा होता है। इसका आयात बम्बईमें होता है। इसके फल (हब्ब बलसाँ) अरबसे यहाँ आते हैं और सभी देशी यूनानी औषधिविक्रेताओंकी दूकानोंमें मिलते हैं। इसकी मनोरम तारपीनवत् गन्ध होती है। यह फल मतांतरसे बीज (तुख़्म बलसाँ) काली मिर्चकी तरह, किंतु उससे बड़ा और किंचित् लम्बोतरा, ऊपरसे पिलाई और कालाई लिए लाल और स्वादमें तिक्त होता है। इसके अन्दरसे सफेद मग़ज़ निकलता है।

उपयुक्त अंग—तेल, काष्ठ और फल।

रासायनिक संगठन—रोग़न बलसाँमें एक उत्पत् तेल ३० प्रतिशत, कठोर राल ६४ प्रतिशत, मृदु राल ४ प्रतिशत और एक तिक्तवीर्य होता है।

फल (हब्ब बलसाँ)—

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम और खुश्क।

गुण-कर्म तथा उपयोग—मस्तिष्क संशोधन, दीपन, आमाशयमें उष्णता उत्पन्न करनेवाला, श्लेष्मनिःसारक और आर्तवजनन है। कतिपय मस्तिष्क (शिरः)रोगोंमें एवं आमाशयदीपनार्थ तथा जीर्णकास, श्वास और रुद्धार्तवमें भी इसका उपयोग करते हैं। **अहितकर**—बस्तिको। **निवारण**—कतीरा। **प्रतिनिधि**—ऊद बलसाँ। **मात्रा**—३ से ५ माशे तक।

तेल (रोग़न बलसाँ)—

प्रकृति—गरम और तर (स्निग्ध)।

गुणकर्म—मस्तिष्क-वातनाड़ीबलदायक, श्वयथुविलयन, श्लेष्मनिःसारक, वाजीकर, व्रणलेखन-शोधन और सूजाकके लिए विशेष गुणदायक है।

उपयोग—पक्षवध, अर्दित, अपतानक (कुज़ाज़) और अपस्मार प्रभृति जैसे शीतल कफज व्याधियोंमें तथा कास, श्वास एवं फुफ्फुसव्रणको अच्छा करनेके लिए भी इसका प्रयोग करते हैं। अधुना औपसर्गिक पूयमेहमें इसका पुष्कल उपयोग करते हैं। **अहितकर**—गर्भिणीके लिए। **निवारण**—कद्दू और काहूका तेल। **प्रतिनिधि**—चंदनका तेल। **मात्रा**—१ ग्रामसे १-५ ग्राम (१ माशासे १।। माशा) तक।

प्रकृति—काष्ठ (ऊद बलसाँ) तीसरे दर्जेमें गरम और खुश्क।

गुणकर्म तथा उपयोग—बल्य, मस्तिष्कगतद्रवसंशोधन, श्लेष्मनिःसारक, दीपन, आमाशयशोधन, गर्भ और अपरानिःसारक।

मस्तिष्कसंशोधन होनेके कारण अपस्मार, भ्रम और मोह (सद्र व दुवार) जैसे मस्तिष्क (शिरः) रोगोंमें इसका उपयोग करते हैं तथा श्लेष्मनिःसारक होनेसे इसे कफज कास एवं कृच्छ्रश्वासमें देते हैं। कफज मलोंसे आमाशयको शुद्ध करने तथा उसको बल देनेके लिए इसका पुष्कल उपयोग करते हैं। **अहितकर**—अन्त्रके लिए। **निवारण**—कतीरा। **प्रतिनिधि**—हब्ब बलसाँ। **मात्रा**—१ ग्रामसे ३ ग्राम (२ माशेसे ३ माशे)।

(४३२) बलूत

फ़ैमिली : फैगेसी (Family : Fagaceae)

नाम—(हिं०; क०) सीतासुपारी; (अ०) अल्बलूत (इ० बै०), ब(बु)ल्लूत, सम्रतुल्फ़ुवाद; (फा०) बालूत; (पं०; कु०); बान[1], बंज, बाँझ बलूत; (ले०) **क्वेर्कुस ईन्काना** (**Quercus incana** Roxb.); (अं०) ह्वाइट या ग्रे-ओक (White or Grey Oak)।

उत्पत्तिस्थान—यह अधिकतया ठंडे देशोंमें होता है। योरपमें यह बहुत होता है। हिंदुस्तानी बलूत बाँज(झ), 'मारू' या 'सीतासुपारी' के नामसे प्रसिद्ध है जो हिमालयमें सिंधु नदीके किनारेसे लेकर नेपाल तक होता है। शिमले, नैनीताल, मंसूरी आदिमें इसके पेड़ बहुत मिलते हैं।

वर्णन—यह एक बड़े सदाहरित पहाड़ी वृक्ष का फल है जो गोल (मुस्तदीर) और लंबोतरा (मुस्ततील) दो प्रकारका होता है। इसके गोलभेदको **शाहबलूत**[2] और **बुल्लूतुल्मलिक** कहते हैं। बलूतके के बाहरी छिलकेके नीचे उसके मग्जसे चिपटा हुआ एक बारीक छिलका होता है जो कि **जुफ़्तबल्लूत** के नामसे प्रसिद्ध है।

उपयुक्त अंग—फल (बलूत-हब्बुल्बान), फलका मग़्ज़, रोग़नबान और मग़्ज़के ऊपरका बारीक छिलका।

जुफ़्त बल्लूत—

कल्प तथा योग—**माजून बलूत**।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें **शीत एवं रूक्ष**।

गुणकर्म तथा उपयोग—शीतसंग्राही, उपशोषण और रक्तस्तंभन।

ताजे बलूतको अग्निमें भूनकर नमकके साथ या बिना नमकके खाते हैं। इसके सूखे मग्जका आटा पीसकर पहाड़ी एवं देहाती रोटी पकाकर खाते हैं। यह दीर्घपाकी होता है और इससे खराब आहार (गिजा) प्राप्त होता है। शुक्रमेह, अष्ठीलाग्रंथिरसस्राव (मेह), श्वेतप्रदर, रक्तस्राव, अतिसार एवं प्रवाहिकामें बलूतका औषधकी भाँति उपयोग करते हैं। बिंदुमूत्र, हस्तिमेह (सल्सुल बौल) और शय्यामूत्रको नष्ट करनेके लिए नागरमोथा अथवा अन्य उपयुक्त औषधियोंके साथ इसका चूर्ण खिलाते हैं। आमाशयस्थ क्लेदको शोषण और शुष्क करनेके लिए चूर्णकी भाँति इसका उपयोग करते हैं। बलूतको जलाकर मुखपाक तथा शिश्न एवं वृषणगत व्रणपर बारीक पीस छानकर छिड़कते हैं। सद्यःव्रणों पर छिड़कनेसे यह उनको शीघ्र सुखा देता है।

संग्रहण और उपशोषण कर्ममें **जुफ़्तबल्लूत** बलूतकी अपेक्षया अधिक बलवत्तर है। सद्यःव्रणोंको सुखाने और प्रत्येक अंगजात रक्तस्राव और द्रवप्रवाहको बंद करनेके लिए इसको पिलाते तथा बाहरी तौर पर इसका लेप लगाते हैं। रक्तष्ठीवन, रगड़, अन्त्रव्रण और जीर्ण अतिसारमें इसका काढ़ा पिलाते हैं। श्वेतप्रदरमें खिलानेके सिवाय इसकी फलवर्ति (फ़िर्ज़जा) भी प्रयुक्त की जाती है। गुदभ्रंशमें इसके काढ़ेमें रोगीको बिठाते और बारीक पीसकर छिड़कते भी हैं। अन्त्रवृद्धिमें इसका लेप करते हैं। **अहितकर**—कंठके लिए तथा सौदाजनक है। **निवारण**—शर्करा, खाँड़। **प्रतिनिधि**—गुलनार। **मात्रा**—२ ग्रामसे ३ ग्राम (२ माशेसे ३ माशे) तक; क्वाथमें ९ ग्राम (९ माशे) तक।

---

[1] (अ०) अल्बान; (अं०) बेन नट (Ben-nut) (यू०) Balanos Murospske.

[2] (अ०) अल्शाहबल्लूत; (फा०) शाहबलूत; (अं०) चेस्टनट ट्री (Chestnut Tree); (यू०) Kastana (D.1·45)।

(४३३)ब(बि)सफाइज

फ़ैमिली : फीलिसीज (Family : Filices)

नाम—(हिं०) खंकाली, खंगाली; (यू०) Polupodion (D.4.185); (अ०) अल्बिस्फ़ाइज (इ० बै०), बस्फ़ाइज, बिस्फ़ाइज, अज़्रासुल् कल्ब (श्वादंत), कसीरुल् अर्जल (= बहुपादी), साक़िबुल् हजर (= पाषाणभेदी), इज़्रासुल् कल्ब (इ०बै०, संचिका ३९; १४९); (फा०) तस्तिवान्, बस्पाईक, बिस्पायः; बिस्तपायः; (बम्ब०; द०) बिस्फायज, बस्फैंज; (ले०) **पॉलीपोडिउम् वुलगारे (Polypodium vulgare** Linn.); (अं०) कॉमन पॉलोपोडी (Common Polypodi)।

वक्तव्य—'विस्फ़ाइज', फारसी 'बिस्तपाय'से अरबी बनाया गया है।

उत्पत्तिस्थान—फारस तथा यूरोप, अमेरिका और टर्की।

वर्णन—पुरानी दीवालों, पेड़के काण्डस्कन्ध आदिपर होनेवाली यह एक क्षुद्र वनस्पतिकी प्रसिद्ध जड़ (भौमिककाण्ड–पाताली धड़) है जो एक ओर चपटी होती है और जिसमें दोनों ओर उपमूल निकले होते हैं, जिससे उसकी आकृति कनखजूरेके समान होती है। उक्त जड़ बारीक, लगभग ०·३ सें० मी० (१/८ इञ्च) व्यासकी, जिसके ऊपर लम्बाईके रुख धारियाँ पड़ी होती हैं तथा ग्रन्थिल और ऊपरकी ओर लगभग ०·६२सें० मी०(१/४ इञ्च)की दूरीसे प्यालेनुमा पत्राधारयुक्त होती है। अनुप्रस्थ विच्छेदमें यदि जड़ पुरानी है तो श्रृंगवत्, हरापन लिए या भूरी, परिधिके समीप क्षुद्र, काष्ठमय, अनियमित प्लेट्सके चक्रसे युक्त होती है। स्वाद बहुत मीठा, किंचित् कटु और निर्गंध, जिसका रंग अन्दरसे पिस्तई निकलता है, वह श्रेष्ठ समझी जाती है। इसको 'बस्फ़ाइज .फुस्तक़ी' कहते हैं।

रासायनिक संगठन—जड़ और पाताली धड़में उत्पत् तेल, एक **वसामय** तेल (जो तीव्र विरेचक होता है), एक राल (जो प्रबल कृमिघ्न है) तथा समानबेन (Samanbain) नामक एक ग्लूकोसाइड और सैपोनिन होता है। मतांतरसे इसमें मुलेठीमें पाया जानेवाला ग्लिस्र्हाइजिन नामक सत्व पाया जाता है।

उपयुक्त अंग—जड़।

प्रकृति—उष्ण एवं रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—श्लेष्म सौदाविरेचन और वातानुलोमन। कुष्ठ, अपस्मार, मद (मालिन्खोलिया) और आमवात जैसे कफ एवं सौदाजन्य रोगोंमें कफ और सौदाके उत्सर्गके लिए इसका उपयोग करते हैं। सौदाके उत्सर्गके कारण उपलक्षण स्वरूप (बिल्अर्ज) इससे हृदयको शक्ति और उल्लास भी प्राप्त होता है। उदरशूल और आनाहमें उपयोग करनेसे यह उनको नष्ट करती है। अर्शाङ्कुरोंको गिरानेके लिए इसको खिलाते हैं। **अहितकर**–फुफ्फुसों एवं मूत्रपिण्डोंके लिए। **निवारण**-पीली हड़ और हंसराज। **मात्रा**–३ ग्रामसे ७ ग्राम (३ माशेसे ७ माशे) तक।

●

(४३४) बहमन सफेद

फ़ैमिली : कॉम्पोजीटी (Family : Compositae)

नाम—(हिं०; भा० बाजार) सफेद (सुफेद) बहमन; (अ०) बह्मन अब्यज़; (फा०) बहमने सुफ़ेद; (ले०) सेन्टाउरेआ वेहेन (बेहमेन) (Centaurea behen L. or behmen Linn.); (अं०) ह्वाइट बेहीन (White Behen), ह्वाइट र्हैपॉन्टिक (White Rhapontic)।

उत्पत्तिस्थान—फारस, सीरिया, अरमीनिया।

वर्णन—यह एक सूखी जड़ है जो बाहरसे सफेदी लिए भूरी, अत्यंत झुर्रीदार एवं खुरदुरी तथा पेंचदार, शीर्ष (Crown)के समीप विपुल वृत्ताकार रेखाओंसे अंकित होती है। या तो यह उपमूलरहित और गोपुच्छाकार (Tapering) अथवा न्यूनाधिक उपमूलयुक्त (सशाख) होती है। कभी कुछ-कुछ बैंगनी तनेका कुछ अंश उससे लगा रहता है। इसकी औसत लंबाई लगभग २½ इञ्च और व्यास ¾ इञ्च (मोटी); काटनेपर भीतरसे यह सफेद और स्पंजवत्; जलमें भिगोनेसे यह फूलती और लबाबदार हो जाती है, स्वाद लबाबदार और किंचित् तिक्त होता है। भारी, कड़ी तथा खुरासानी और अर्मनी जड़ उत्तम होती है।

रासायनिक संगठन—जड़में एक तिक्त क्रिस्टली स्वरूपका लैक्टोन (**बहमनीन**) होता है।

●

(४३५) बहमन सुर्ख

फ़ैमिली : लाबीआटी (Family : Labiatae)

नाम—(हिं०; भा० बाजार) लाल बहमन; (फा०) बहमने सुर्ख; (ले०) **सालिविआ हीमोटोडीस (Salvia haemotodes)**; (अं०) रेड बहमन या र्‍हैपॉन्टिक (Red Behmen or Rhapontic), ब्लड-वेन्ड सेज (Blood-vened Sage)।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष और खुरासान।

वर्णन—यह प्रसिद्ध सूखी जड़ है जो छोटी, गाजरके समान झुर्रीदार, खुरदरी, कड़ी, भारी और किसी कदर टेढ़ी होती है। यह टूटनेमें सख्तीसे टूटती है। इसमें सुगंध आती है। यह बाहरसे कालाई लिए अधिक लाल और अन्दरसे कम लाल होती है। साफ, भारी और लाल जड़ उत्तम समझी जाती है। व्यापारमें मिलनेवाला द्रव्य जड़के कटे हुए और मध्य काष्ठभाग दूर किए हुए टुकड़े हैं जो बाजारमें मिलते हैं। स्वाद लबाबी और कुछ कषाय होता है।

रासायनिक संगठन—इसमें वसा, कषायाम्ल (Tannic acid) और बहमनीन नामक एक तिक्त स्फटिकीय क्षारोद प्रभृति द्रव्य होते हैं।

प्रकृति—उष्ण एवं रूक्ष। सफेद दूसरे दर्जेमें और लाल तीसरे दर्जेमें गरम व खुश्क है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—वाजीकर, बृंहण, शुक्रल और हृदयबलोल्लासदायक है। दोनों बहमन (बह्मनैन)को हृदयबलवर्धन (हृद्य) और सौमनस्यजननार्थ, दिलकी धड़कन (खफकान) और हृदयदौर्बल्यमें उपयोग करते हैं तथा मुफ़र्रेह या याक़ूती कल्पोंमें डालकर खिलाते हैं। कामावसादके रोगियों (नपुंसकों)को वाजीकरण एवं शुक्रजननके लिए इसका चूर्ण दूधके साथ या उपयुक्त औषधियोंके साथ चूरण या माजून बनाकर खिलाते हैं। शरीरको स्थूल करनेके लिये अकेले या उपयुक्त औषधियोंके साथ इसका उपयोग करते हैं। सफेद बहमन वाजीकर है और कामला तथा अश्मरिविकारोंमें इसका उपयोग होता है। **अहितकर**—उष्ण प्रकृतिको। **प्रतिनिधि**—एक दूसरेका प्रतिनिधि है और दोनोंका प्रतिनिधि तोदरी और मुसली हैं। **मात्रा**—५ ग्राम से ७ ग्राम (५ से ७ माशे) तक।

●

(४३६) बहुफली

फ़ैमिली : टीलिआसे (Family : Tiliaceae)

नाम—(हिं०) बहुफली, भूफली, बौफली; (सं०) क्षुद्रचंचु; (गु०) झीणकी छुंछ, बहुफली; (बम्ब) बाफली, माफली; (ले०) **कॉर्कोरुस फासीकुलारिस** (**Corchorus fascicularis** Linn.); **कॉर्कोरुस आन्टीकोरुस** **C. anticorus** Raeswch.) या **कार्कोरुस डिप्रेसुस** (**C. depressus** Linn.)।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष।

वर्णन—यह चेंचकी जातिकी एक क्षुद्र वनस्पति है, जो छत्तेकी तरह जमीनपर पसराई हुई होती है। इसीलिए इसे '**भूफली**' कहते हैं। **का० फासीकुलारिसमें** फल गुच्छोंमें लगते हैं और पौधे प्रसरणशील होते हैं। चूँकि इन वनस्पतियोंमें अत्यधिक फलियाँ लगती हैं, इसलिए इनको **बहुफली** कहते हैं।

प्रकृति—पहले दर्जेमें **शीत एवं रूक्ष**।

गुण-कर्म तथा उपयोग—वीर्यपुष्टिकर, अवसादक (संशमन) विशेषतः शुक्रमेहघ्न है। शीघ्रपतन, शुक्रतारल्य, शुक्रमेहको नष्ट करनेके लिए बहुफली-बूटीको चूर्णों एवं माजूनोंमें डालते हैं तथा इसका चूर्ण समभाग मिश्रीका चूर्ण मिलाकर दूधके साथ उक्त रोगोंमें व्यवहार कराते हैं। अवसादक होनेके कारण सूजाकमें भी चूर्णकी भाँति अकेला या अन्यान्य द्रव्योंके साथ खिलाते हैं। **अहितकर**–आनाहकारक और चिरपाकी। **निवारण**–शहद और चीनी। **मात्रा**–५ ग्राम से ७ ग्राम (५ से ७ माशा) तक।

आयुर्वेदीय मत—क्षुद्रचंचु मधुर, कटु, कषाय, उष्णवीर्य, विबन्धकारक तथा गुल्म, शूल और बवासीरको नष्ट करता है।

●

(४३७) बहेड़ा

फ़ैमिली : कॉम्ब्रेटासे (Family : Combretaceae)

नाम—(हिं०; म०) बहेड़ा, बहेरा, बहेर (मिर्जापुर); (अ०) अल्बलैलज (इ०बै०), बलीलज, बलैलज; (फा०) बलीलः, बलेलः; (सं०) बिभीतक, अक्ष; (बं०) बयड़ा, बहेड़ा; (क०) बलेल; (म०) बहेड़ा, बै; (गु०) बहेंढा; (ते०) ताडि; (ता०) अक्कम, अक्कदम; (मल०) तान्निः; (ले०) **टेर्मिनालिआ बेल्लॅरिका** (**Terminalia bellirica** (Gaertn.) Roxb.); (अं०) बेलेरिक मायरोबेलन (Belleric Myrobalan)।

वक्तव्य—फारसी 'बलीलः' से 'बलीलज' अरबी बनाया गया है। फारसी-अरबी संज्ञायें इसकी हिन्दी संज्ञा 'बहेड़ा' एवं मूलतः संस्कृत 'बिभीतक' से व्युत्पन्न हैं।

उत्पत्तिस्थान—शुष्क भागोंको छोड़कर समस्त भारतवर्ष।

वर्णन—यह एक बड़े जंगली पेड़का प्रसिद्ध फल है जो बड़े माजूनके बराबर या उससे कुछ बड़ा, पीला मटियालासा और स्वादमें तिक्त कषाय होता है। इस फलका छिलका औषधके काममें लिया जाता है। यह प्रायः बाजारमें मिलता है।

रासायनिक संगठन—फलमें मायाफल-कषायाम्ल (गैलो-टैनिक एसिड Gallo-tannic acid), रंजक द्रव्य, राल और एक हरियाली लिए पीला तेल होता है।

प्रकृति—पहले दर्जेमें शीत और दूसरेमें रूक्ष। आयुर्वेदमतसे उष्णवीर्य है (सु०)।

गुण-कर्म तथा उपयोग—बहेड़ा आमाशयबलदायक (दीपन), मस्तिष्क-बलदायक (मेध्य), दृष्टिवर्धक, संग्राही और निचोड़कर विरेक लानेवाला (मुसहि्ल बअस्र) है। उपयोग—बहेड़ा अत्रीफल कल्पों (अत्रीफलात)में पुष्कल डाला जाता है। दस्तोंको बन्द करने और दीपनार्थ इसको भृष्ट करके खिलाते हैं। कतिपय व्यक्तियोंमें यह अन्त्रस्थ मांसतंतुओंमें संकोच पैदा करके विरेक भी ले आता है। इसको भृष्ट करके सुरमेकी भाँति बारीक पीसकर नेत्रमें लगानेसे नेत्रस्राव आराम होता है। यह अर्श भी गुणकारी है। अहितकर–अन्त्र और गुदाके लिए। निवारण–मधु और शर्करा। प्रतिनिधि–मेंहदीकी कली (शिगूफ़ा)। मात्रा–५ ग्रामसे ७ ग्रामसे ७ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—बहेड़ा कषाय, मधुरविपाक, उष्णवीर्य, रूक्ष, लघु, भेदन, चक्षुष्य, केश्य (बालोंके लिए हितकर तथा बालोंको काला करनेवाला) तथा रस रक्त-मांस और मेदके रोग, स्वरभेद, कफ, उत्क्लेश, पित्तके रोग, क्रमि और कासका नाश करनेवाला है। बहेड़ेका मग़ज़ कषाय, लघु, मादक तथा कफ, वायु, तृषा और वमनको दूर करनेवाला है (च० सू० अ० ४, २७; सु० सू० अ० ३८, ४६; भा० प्र०)।

नव्यमत—बहेड़ेकी क्रिया मुख्यतः गले और श्वासनलिकापर होती है। फलका मग़ज़ साधारण मादक, वेदनास्थापन और शोथघ्न है। बहेड़ेके फलकी छाल को प्रतिश्याय, कास, श्वास और स्वरभंगमें मुँहमें रखते हैं। दाह कम होनेके लिए सूजनपर मग़ज़का लेप लगाते हैं। तेल लगानेसे खाज कम होती है।

●

(४३८) बाँस

फ़ैमिली : ग्रामीने (Family : Gramineae)

नाम—(हिं०) बाँस; (अ०) क़सब; (फा०) नै; (सं०) वंश, वेणु; (बं०) बाँश; (गु०, सिंध) वांस; (म०) बाँस, वेणू, बांणू; (ले०) बाम्बूसा बाम्बोस **Bambusa bambos** Druce. (पर्याय–बाम्बूसा आरुन्डीनासेआ *B. arundinacea* Willd.)। (अं०) बैम्बू (Bamboo)। वंश(स)लोचन (अ०; फा०) अल्तबाशीर, रमादुल् हुय्यः (इ० बै०), तबाशीर; (सं०) त्वक्क्षीर, वंशरोचन, वंशकर्पूर; (गु०) वंशलोचन, बाँसकपूर; (अं०) बैम्बू मेन्ना (Bamboo Manna)।

वक्तव्य—बाँसके विभिन्न भारतीय भाषाओंके नाम तथा लेटिन नाममें प्रजातिक (Generic) नाम संस्कृत 'वंश'से व्युत्पन्न है। 'तबाशीर' संस्कृत 'त्वकक्षीर' का अरबी अपभ्रंश है।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष। बंगालमें यह प्रचुरतासे लगाया जाता है। भारतवर्षमें किसी-किसी बाँसके खोखले भागसे बंसलोचन निकलता है।

वर्णन—यह तृणजातीय एक प्रसिद्ध वनस्पति है जिसके खोखले भागसे बंशलोचन प्राप्त होता है। यह एक सफेद वस्तु है जो प्रारम्भमें पतले द्रव (मद-रस)के रूपमें मादा बाँसके खोखले भागमें संचित होता है और उसके बाद जमकर सूख जाता है। जब बाँसको फाड़ते हैं तब उससे बाहर निकलता है। यह जावा और सिंगापुरसे आता है। जो वजनमें हलका रंगमें नील आभायुक्त सफेद, उज्ज्वल और सीपके समान हो उसको तबाशीर सद्फ़ी या तबाशीर कबूद कहते हैं। यह सबमें उत्तम बंसलोचन है। इस समय बाजारमें कृत्रिम वंसलोचन मिलता है।

(४३६) बहुफली

फ़ैमिली : टीलिआसे (Family : Tiliaceae)

नाम—(हिं०) बहुफली, भूफली, बौफली; (सं०) क्षुद्रचंचु; (गु०) झीणकी छुंछ, बहुफली; (बम्ब) बाफली, माफली; (ले०) **कॉर्कोरुस फासीकुलारिस (Corchorus fascicularis** Linn.); **कॉर्कोरुस आन्टीकोरुस C. anticorus** Raeswch.) या **कार्कोरुस डिप्रेसुस (C. depressus** Linn.)।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष।

वर्णन—यह चेंचकी जातिकी एक क्षुद्र वनस्पति है, जो छत्तेकी तरह जमीनपर पसराई हुई होती है। इसीलिए इसे '**भूफली**' कहते हैं। **का० फासीकुलारिसमें** फल गुच्छोंमें लगते हैं और पौधे प्रसरणशील होते हैं। चूँकि इन वनस्पतियोंमें अत्यधिक फलियाँ लगती हैं, इसलिए इनको **बहुफली** कहते हैं।

प्रकृति—पहले दर्जेमें **शीत एवं रूक्ष**।

गुण-कर्म तथा उपयोग—वीर्यपुष्टिकर, अवसादक (संशमन) विशेषतः शुक्रमेहघ्न है। शीघ्रपतन, शुक्रतारल्य, शुक्रमेहको नष्ट करनेके लिए बहुफली-बूटीको चूर्णों एवं माजूनोंमें डालते हैं तथा इसका चूर्ण समभाग मिश्रीका चूर्ण मिलाकर दूधके साथ उक्त रोगोंमें व्यवहार कराते हैं। अवसादक होनेके कारण सूजाकमें भी चूर्णकी भाँति अकेला या अन्यान्य द्रव्योंके साथ खिलाते हैं। **अहितकर**–आनाहकारक और चिरपाकी। **निवारण**–शहद और चीनी। **मात्रा**–५ ग्राम से ७ ग्राम (५ से ७ माशा) तक।

आयुर्वेदीय मत—क्षुद्रचंचु मधुर, कटु, कषाय, उष्णवीर्य, विबन्धकारक तथा गुल्म, शूल और बवासीरको नष्ट करता है।

●

(४३७) बहेड़ा

फ़ैमिली : कॉम्ब्रेटासे (Family : Combretaceae)

नाम—(हिं०; म०) बहेड़ा, बहेरा, बहेर (मिर्जापुर); (अ०) अल्बलैलज (इ०बै०), बलीलज, बलैलज; (फा०) बलीलः, बलेलः; (सं०) बिभीतक, अक्ष; (बं०) बयड़ा, बहेड़ा; (क०) बलेल; (म०) बहेड़ा, बै; (गु०) बहेंढा; (ते०) ताडि; (ता०) अक्कम, अक्कदम; (मल०) तान्निः; (ले०) **टेर्मिनालिआ बेल्लेरिका (Terminalia bellirica** (Gaertn.) Roxb.); (अं०) बेलेरिक मायरोबेलन (Belleric Myrobalan)।

वक्तव्य—फारसी 'बलीलः' से 'बलीलज' अरबी बनाया गया है। फारसी-अरबी संज्ञायें इसकी हिन्दी संज्ञा 'बहेड़ा' एवं मूलतः संस्कृत 'बिभीतक' से व्युत्पन्न हैं।

उत्पत्तिस्थान—शुष्क भागोंको छोड़कर समस्त भारतवर्ष।

वर्णन—यह एक बड़े जंगली पेड़का प्रसिद्ध फल है जो बड़े माजूनके बराबर या उससे कुछ बड़ा, पीला मटियालासा और स्वादमें तिक्त कषाय होता है। इस फलका छिलका औषधके काममें लिया जाता है। यह प्रायः बाजारमें मिलता है।

रासायनिक संगठन—फलमें मायाफल-कषायाम्ल (गैलो-टैनिक एसिड Gallo-tannic acid), रंजक द्रव्य, राल और एक हरियाली लिए पीला तेल होता है।

प्रकृति—पहले दर्जेमें शीत और दूसरेमें रूक्ष। आयुर्वेदमतसे उष्णवीर्य है (सु०)।

गुण-कर्म तथा उपयोग—बहेड़ा आमाशयबलदायक (दीपन), मस्तिष्क-बलदायक (मेध्य), दृष्टिवर्धक, संग्राही और निचोड़कर विरेक लानेवाला (मुसहिल बअस्र) है। उपयोग—बहेड़ा अत्रीफल कल्पों (अत्रीफलात)में पुष्कल डाला जाता है। दस्तोंको बन्द करने और दीपनार्थ इसको भृष्ट करके खिलाते हैं। कतिपय व्यक्तियोंमें यह अन्त्रस्थ मांसतंतुओंमें संकोच पैदा करके विरेक भी ले आता है। इसको भृष्ट करके सुरमेकी भाँति बारीक पीसकर नेत्रमें लगानेसे नेत्रस्राव आराम होता है। यह अर्श भी गुणकारी है। अहितकर–अन्त्र और गुदाके लिए। **निवारण**–मधु और शर्करा। **प्रतिनिधि**–मेंहदीकी कली (शिगूफ़ा)। **मात्रा**–५ ग्रामसे ७ ग्रामसे ७ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—बहेड़ा कषाय, मधुरविपाक, उष्णवीर्य, रूक्ष, लघु, भेदन, चक्षुष्य, केश्य (बालोंके लिए हितकर तथा बालोंको काला करनेवाला) तथा रस रक्त-मांस और मेदके रोग, स्वरभेद, कफ, उत्क्लेश, पित्तके रोग, कृमि और कासका नाश करनेवाला है। बहेड़ेका मग़ज़ कषाय, लघु, मादक तथा कफ, वायु, तृषा और वमनको दूर करनेवाला है (च० सू० अ० ४, २७; सु० सू० अ० ३८, ४६; भा० प्र०)।

नव्यमत—बहेड़ेकी क्रिया मुख्यतः गले और श्वासनलिकापर होती है। फलका मग़ज़ साधारण मादक, वेदनास्थापन और शोथघ्न है। बहेड़ेके फलकी छाल को प्रतिश्याय, कास, श्वास और स्वरभंगमें मुँहमें रखते हैं। दाह कम होनेके लिए सूजनपर मग़ज़का लेप लगाते हैं। तेल लगानेसे खाज कम होती है।

●

(४३८) बाँस

फ़ैमिली : ग्रामीने (Family : Gramineae)

नाम—(हिं०) बाँस; (अ०) क़सब; (फा०) नै; (सं०) वंश, वेणु; (बं०) बाँश; (गु०, सिंध) वांस; (म०) बाँस, वेणू, बांणू; (ले०) बाम्बूसा बाम्बोस **Bambusa bambos** Druce. (पर्याय–बाम्बूसा आरुन्डीनासेआ *B. arundinacea* Willd.)। (अं०) बैम्बू (Bamboo)। वंश(स)लोचन (अ०; फा०) अल्तबाशीर, रमादुल् हय्यः (इ० बै०), तबाशीर; (सं०) त्वक्क्षीर, वंशरोचन, वंशकर्पूर; (गु०) वंशलोचन, बाँसकपूर; (अं०) बैम्बू मेन्ना (Bamboo Manna)।

वक्तव्य—बाँसके विभिन्न भारतीय भाषाओंके नाम तथा लेटिन नाममें प्रजातिक (Generic) नाम संस्कृत 'वंश'से व्युत्पन्न है। 'तबाशीर' संस्कृत 'त्वकक्षीर' का अरबी अपभ्रंश है।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष। बंगालमें यह प्रचुरतासे लगाया जाता है। भारतवर्षमें किसी-किसी बाँसके खोखले भागसे बंसलोचन निकलता है।

वर्णन—यह तृणजातीय एक प्रसिद्ध वनस्पति है जिसके खोखले भागसे वंशलोचन प्राप्त होता है। यह एक सफेद वस्तु है जो प्रारम्भमें पतले द्रव (मद-रस)के रूपमें मादा बाँसके खोखले भागमें संचित होता है और उसके बाद जमकर सूख जाता है। जब बाँसको फाड़ते हैं तब उससे बाहर निकलता है। यह जावा और सिंगापुरसे आता है। जो वजनमें हलका रंगमें नील आभायुक्त सफेद, उज्ज्वल और सीपके समान हो उसको तबाशीर सद्फ़ी या तबाशीर कबूद कहते हैं। यह सबमें उत्तम बंसलोचन है। इस समय बाजारमें कृत्रिम वंसलोचन मिलता है।

उपयुक्त अंग—जड़, अंकुर, पत्र, कांड, फल और निर्यास (बंशलोचन)।

रासायनिक संगठन—बंसलोचनमें सिलिका ९० प्रतिशत या हाइड्रेट ऑफ सिलिसिक एसिडके रूपमें सिलिकम, जवाखार, मंडूर, पोटास और सुधा प्रभृति द्रव्य होते हैं।

कल्प तथा योग—जुवारिश तबाशीर, सफ़ूफ़ तबाशीर, क़ुर्स तबाशीर क़ाबिज (वा मुलय्यिन), कुर्स तबाशीरकाफ़ूरी लूलुई (वा मुरक्कब), सफ़ूफ़ तबाशीर।

बाँस—

प्रकृति—शीत एवं रूक्ष; जला हुआ उष्ण एवं रूक्ष।

गुणकर्म तथा उपयोग—लेखन और मूत्रार्तवजनन। बाँसकी जड़ अकेले या उपयुक्त औषधियोंके साथ चेचकके दागोंको मिटाने और चेहरेकी रंगत निखारनेके लिए उपयोग की जाती है। इसको जलाकर दद्रु और गंजपर लगाते हैं; तथा मंजनोंमें डालकर दाँतोंपर मलते हैं। आर्तवप्रवर्तक योगोंमें इसकी जड़ डालते हैं। अहितकर--फुफ्फुसको। निवारण–कतीरा और फिंदकका मग़ज़। मात्रा--७ ग्रामसे १२ ग्राम (७ माशेसे १ तोला) तक।

बंसलोचन—

प्रकृति--तीसरे दर्जेमें **शीत एवं रूक्ष** (शैख़के मतसे दूसरे दर्जेमें शीत और तीसरेमें रूक्ष)। आयुर्वेदके मतने शीतवीर्य (ध० नि०) है।

गुण-कर्म तथा उपयोग--हृद्य, हृदयको उल्लसित करनेवाला, **उष्णयकृद्बलदायक**, **संग्राही**, तीव्र शीतजनन और रूक्षण है। सौमनस्यजनन होनेके कारण यह हृदयको बल प्रदान करता है, और उष्ण हृत्स्पन्दन, मूर्च्छा एवं बेचैनी (हृदयद्रव)के लिये गुणकारक है। यह पित्तज वमनको दूर करता है तथा उष्ण यकृत् और आमाशयके लिए लाभप्रद है। संग्राही एवं रूक्षण होनेके कारण यह पित्तज अतिसारको बंद करता और शुक्रमेह एवं शुक्रस्रावको रोकता तथा रक्तार्शमें गुणकारी, आमाशयिक द्रवोंको सुखाकर उसको शक्ति प्रदान करता (दीपन), और अन्त्रमें कब्ज उत्पन्न करता है। तीव्र शीतजनन होनेके कारण उष्ण ज्वरों और आशयशोथ (सोज़िश अह्शाऽ,में गुणकारी है तथा प्यास बुझाता है। शीतजनन एवं रूक्षण होनेके कारण अग्निदग्धमें इसका अवचूर्णन एवं पतला लेप लाभदायक है। मुखपाक, मुखव्रण और मुखकी फुन्सियों (बुसूर दहन)में अकेले या गुलाबके फूलके साथ इसका पान और अवचूर्णन गुणकारी है। संग्राही होनेके कारण दाँतोंको बल देनेके लिये मंजनोंमें डालते हैं। **अहितकर**–इसका अधिक प्रयोग वाजीकरण शक्ति और फुफ्फुसोंके लिए अहितकर है। **निवारण**–मधु, मस्तगी, उन्नाव, एलुआ और केसर। **प्रतिनिधि**–कुलफा और सुमाक। **मात्रा** १ ग्रामसे ३ ग्राम (२ से ३ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—बाँस, मधुर, कषाय, शीतवीर्य, वस्तिशोधन (मूत्रल), छेदन तथा कफ, पित्त, रक्तविकार कुष्ठ, शोथ और व्रणको दूर करनेवाला है। (कै० नि०)। बाँसके अंकुर (करीर) गुरु तथा कफ और वायुका प्रकोप करनेवाला है। (सु० सू० अ० ४६)। बाँसके बीज (वेणुयव) मधुर, कषायानुरस, कटुविपाक, उष्णवीर्य, मूत्रको कम करनेवाला, बल्य, वातकोपन तथा कफ, पित्त, मेद, कृमि और विषको दूर करनेवाले हैं। (सु० सू० अ० ४६, च० सू० अ० २७; कै० नि०)। वंशलोचन कषाय, मधुर, शीतवीर्य, बल्य, बृंहण तथा कास, मूत्रकृच्छ्र, क्षय और श्वासमें हितकर है। (ध० नि०)।

●

(४३९) बाकला

फ़ैमिली : लेगूमिनोसी (Family : Leguminosae)

नाम—(हिं०) बाकला, बाकिला, बल्लर; (अ०) बाक़िल्ला; (यू०) कुआमोस; (ले०) **बिसिआ फाबा (Vicia faba** Linn.); (अं०) ब्रॉडबीन (Broad bean), गार्डेन या फील्ड बीन (Graden or Field bean)।

उत्पत्तिस्थान—फारस। समस्त संसारमें इसकी खेतीकी जाती है।

वर्णन—यह एक प्रकारकी बड़ी मटर हैं जिसकी फलियोंकी तरकारी बनती है। फली तीन-चार अंगुल लम्बी, गोल और सूक्ष्म रोइयोंसे व्याप्त होती है। हर एक फलीके अन्दर चार-पाँच बीज निकलते हैं। बीज मटर-की तरह गोल और सफेद होता है जिसके सिरपर एक काले रंगका अर्द्धचन्द्राकार चिह्न होता है। सफेद, पीला, लाल और काला। भेदसे यह चार प्रकारका होता है। किसी-किसीने बाल्क़िलाए नब्ती वा क़ुब्तीको जो यूनानी **कुआमोस ईजुप्टिओसका** अरबी रूपांतर है, इसका मिश्रदेशीय भेद बाक़लाए मिश्री लिखा है; परन्तु यह कमल-गट्टेका नाम है। लोबिया इससे भिन्न द्रव्य है।

रासायनिक संगठन—इसमें प्रोभूजिद (Proteids) और भास्वराम्ल (Phosphoric acid) विपुल होता है; परन्तु श्वेतसार और शर्करा द्रव्य अल्पप्रमाणमें होता है।

उपयुक्त अंग—ताजी फली और हरा वा सूखा बीज।

कल्प तथा योग—कैरूती आर्द्र बाकला।

प्रकृति—हरा बाकला पहले दर्जेमें शीत एवं तर और सूखा पहले दर्जेमें शीत एवं दूसरेमें खुश्क (रूक्ष) है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—श्लेष्मनिःस्सारक; श्वयथुविलयन और लेखन। बाकलाकी ताजी फलियाँ अकेली या मांसके साथ पकाकर खाते हैं। इससे पर्याप्त पुष्टि (ग़िज़ाइय्यत) प्राप्त होती है; किन्तु यह आनाह उत्पन्न करती और देरमें पचती है। इसके बीजोंके मग्जको उपयुक्त औषधियोंके साथ कास और श्वासमें कफोत्सर्गके लिए तथा उरःफुफ्फुसरोगोंमें दोषको प्रकृतिस्थ करनेके लिए मुखसे सेवन करते हैं। व्रणशोफपाचनविलयनके लिए इसको पीस-कर लेप करते हैं। चेहरेका रंग निखारने और झाईं दूर करनेके लिक उपयुक्त औषधियोंके साथ इसका पतला लेप (तिलाऽ) करते तथा उबटनकी भाँति उपयोग करते हैं। **अहितकर**—अफरा (नफ़ख) करता है। **विवारण**—बादामका तेल। इसको छीलकर उबालनेसे भी इसके अवगुणोंका परिहार हो जाता है। **प्रतिनिधि**—लोबिया। **मात्रा**—आहार-की भाँति जितना पच सके; औषधिकी भाँति ३ ग्राम से ५ ग्राम (३ से ५ माशे) तक।

◆

(४४०) बाजरा

फ़ैमिली : ग्रामीने (Family : Gramineae)

नाम—(हिं०) बाजरा, बजरी, बजरा, जोंधरिया; (अ०) जावरस; (फा०) गावरस; (सं०) बर्जरी; (म०) बाजरी; (गु०, मा०) बाजरो; (पं०) बाजरी; (ले०) **पेन्नीसेटुम टीफॉइडेस (Pennisetum typhoides** Rich.); (अं०) मिलेट (Millet)।

उत्पत्तिस्थान—भारतवर्षके अनेक स्थानोंमें इसकी खेती होती है।

वर्णन—प्रसिद्ध अन्न है।

रासायनिक संगठन—माल्टेड बीजसे एमाइलेस (Amylase) पृथक् किया गया है। इसमें फॉस्फोरस प्रचुर मात्रामें होता है।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें उष्ण एवं रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—शीतसंग्राही और उपशोषण। बाजरेकी रोटियाँ और खिचड़ी पकाकर खाई जाती है। यह चिरपाकी और गुरु वा विष्टंभी होता है; प्यास लगाता और कम पुष्टि प्रदान करता है। बाजरेकी पोटली बाँधकर तवेपर बार-बार गरम करके उदरानाह और उदरशूलमें वातविलयनके लिए सेक (तकमीद) करते हैं। **अहितकर**–दीर्घपाकी एवं गुरु। **निवारण**–घी-तेलादि स्नेह-द्रव्य और दूध। **प्रतिनिधि**–कॉक। **मात्रा**–जितना पच सके।

आयुर्वेदीय मत—बाजरा गरम, रूक्ष, पित्तप्रकोपक, दुर्जर (देरमें पचनेवाला), वातकारक (बादी), हृद्य, बल्य, कान्तिकारक, स्त्रियोंके कामको बढ़ानेवाला तथा पुंस्त्व और पुष्टिका नाश करनेवाला है। (नि० र०)।

नव्यमत—बल्य, क्षुधावर्धक तथा हृद्रोगोंमें उपकारक।

(४४१) बादाम कडुआ

फ़ैमिली : आमीग्डाले (Family : Amygdaleae)

नाम। वृक्ष—(अ०) शज्रतुल्लौज़ुल्मुर्र; (फा०) दरख्ते बादाम तल्ख; (लें०) **प्रूनुस आमीग्डालुस** प्र० आमारा (**Prunus amygdalus** var. **amara** (पर्याय–P. *Communis* Arcang var. *amara* Sehneid.); (अं०) बिटर आमंड ट्री (Bitter Almond-tree)। बीज (हिं०; द०) कडुआ बादाम, कडुआ बदाम; (अ०) लौज़ुल् मुर्र; (फा०) बादामे तल्ख; (सं०) कटुवाताद; (म०;पं०) कोडा बादाम, (बं०) तितो बादाम; (गु०) कडवो(वी)बदाम; (म०)कडूबादाम; (लें०) आमीग्डाला आमारा (**Amyddala amara**); (अं०) बिटर आमंड (Bitter Almond)।

इतिहास—मीठा और कडुआ दोनों प्रकारके बादाम ईरानमें प्राचीनकालसे उत्पन्न होते हैं। बादाम वृक्षका आरंभ फार्माकोग्राफियाके रचयिता डॉ० फ्लकीजरके अनुसार ईरानदेशसे हुआ है। यूनानी हकीम सावफरिस्तुतकी रचनाओंमें 'आमंड' नामसे बादामका प्रायशः स्थलोंपर उल्लेख हुआ।

वक्तव्य—प्राचीन यूनानी चिकित्साविद् भी कडुए बादामके विषप्रभावसे अभिज्ञ थे। परन्तु उत्तरकालीन चिकित्सकोंके विस्तृत प्रयोगोंसे यह बात प्रमाणित हो चुकी है कि कडुवा बादाम विषैला होता है। अस्तु, उन्होंने लिखा है कि एक कुत्ता बीस बादाम खानेसे विषाक्त हो गया। इसके अतिरिक्त ऐसे कई व्यक्तियोंका उल्लेख भी वैद्यकीय ग्रन्थोंमें उदाहरणस्वरूप किया है जो कडुए बादामके अतिमात्रामें खानेसे विषाक्त हो गये। सुतरां एक भौतिकशास्त्रीका उल्लेख किया गया है कि उसने २ छं० (४ आउंस) कडुवा बादाम खाया और वह मर गया। मुहीतआज़ममें लिखा है कि कडुवा बादाम लोमड़ीको मार डालता है। परन्तु जो यह लिखा है कि सुरापान करनेसे पूर्व यदि ५० कडुआ बादाम खा लेवें तो फिर शराबका नशा नहीं होता या अरस्तूके कथनानुसार यदि ५ दिरम या २२॥ माशा कडुआ बादाम कूटकर नीहारमुँह खा लेवें तो इसके पश्चात् मद्यपान करनेसे नशा नहीं होता, यह प्रयोग बहुत भयानक एवं वर्जनीय है।

उत्पत्तिस्थान—ईरान, एशिया माइनर, अफगानिस्तान, श्याम, मोरक्को, सिसली और फ्रांस आदि।

वर्णन—यह मीठे बादामकी तरह मझोले कदके एक वृक्षके फलके प्रसिद्ध बीज हैं जो आकृतिमें मीठे बादामकी तरह, किन्तु उससे कुछ छोटे और अधिक चौड़े, स्वादमें अत्यंत कड़वे और अप्रिय होते हैं, विशेषतः 'जंगली' और 'पहाड़ी' बहुत ही कड़वे होते हैं। मीठे बादमके विपरीत इसे जलके साथ रगड़ने या जलमें भिगोनेसे विशेष प्रकारकी गन्ध निकलती हैं और यह विषमें परिणत हो जाता है। इसलिए इनको जलमें न भिगोना चाहिए। इसका मग्ज जहरीला होता है।

रासायनिक संगठन—इसमें एक अनुत्पत् तेल (जो निर्विष होता है) ४५%, बातादसत्व लौज़ीन या ऐमिग्डेलिन (Amygdalin) ३%, प्रोभूजिद (Proteids) २५%, इमल्सन, शर्करा लबाव और भस्म प्रभृति द्रव्य होते हैं। बाताद सत्व अर्थात् ऐमिग्डेलिन एक स्फटिकीय ग्लूकोसाइड पदार्थ है जो मीठे बादाममें नहीं पाया जाता। जलमें अभिषवोत्पादक इमल्सीनके प्रभावसे यह हाइड्रोसायनिक या प्रुस्सिक एसिड ४-७%, द्राक्षशर्करा (ग्लुकोज) और उत्पत् तेल (जो सविष होता है)में परिणत हो जाता है। इसे दूर करके प्रयोगमें लेते हैं। इसकी मात्रा १/४ से १ बिन्दु है।

उपयुक्त अंग—बीजका मग़्ज़ और बीजोत्थ तेल (रोग़न बादामे तल्ख़)।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें गरम और खुश्क।

गुण-कर्म— विरेचन, विलयन, लेखन, श्लेष्मनिःसारक और मूत्रार्तवजनन है।

उपयोग—कडुए बादामको यद्यपि कास, श्वास, रुद्धमूत्रार्तव और सांद्रदोषोत्सर्गके लिए गुणदायक वर्णन किया जाता है और अरस्तूके कथनानुकूल डेढ़ तोला कडुआ बादाम मद्यपानके बाद खानेसे नशा नहीं आता, तथापि इसमें विषप्रभाव होनेसे यह आंतरिक रूपसे बहुत कम प्रयुक्त होता है। अधिकतया त्वचाके रोगोंमें लेपकी भांति इसका बाह्य प्रयोग होता है। दद्रु एवं झाईंके दूर करने और चेहरेका रंग निखारनेके लिए इसका लेपकी भांति उपयोग किया जाता है। जूओंके मारनेके लिए इसे शिरमें लगाते है। कड़वे बादामका तेल कर्णशूल और कर्णनादको दूर करनेके लिए कानमें टपकाते हैं। कृमिकर्णको नष्ट करनेके लिए भी इसे कानमें टपकाते हैं। चेहरेकी झाईं आदि दूर करनेके लिए इसे लगाते हैं। **अहितकर**–अन्त्रके लिए। **निवारण**–शर्करा मिश्री और मीठा बादाम। **प्रतिनिधि**–हब्बुल्महलिब। **मात्रा**–यद्यपि इसका आन्तरिक उपयोग उचित नहीं है; तथापि यदि उपयोग करना हो पड़े तो आधेसे एक मग्ज तक उपयोग करना चाहिये।

नव्यमत—कडुए बादाममें एक प्रकारका जहरीला सत्व (हाइड्रोसाइनिक एसिड) होता है। इसलिये इसको खानेके काममें नहीं लेना चाहिये।

●

(४४२) बादाम मीठा

फ़ैमिली : आमीग्डाले (Family : Amygdaleae)

नाम। वृक्ष—(अ०) शज्र्तुल् लौज़ुल्ह्लो; (फा०) दरख्त बादामे शीरी; (ले०) प्रूनूस आमीग्डालुस प्रा० डुल्सिस **Prunus amygdalus** var **dulcis** (पर्याय–*Prunus communis* Arcang var. *dulcis* Schneid); (अं०) स्वीट आमण्ड ट्री (Sweet Almond tree)। बीज–(हिं०) मीठा बादाम, बदाम; (अ०) लौज़ेल्हुलो; (फा०) बादामे शीरीं; (सं०) मिष्ट वाताद, मधुर वाताम; (क०) बादम; (म०) गोड बदाम; (ले०) आमी-

ग्डाला डुल्लिस (Amygdala Dulcis),' (अं०) स्वीट आमण्ड (Sweet almond)। तेल (हिं०) बादाम का तेल; (अं०) दोह्नुल्लौज़; (फा०) रोग़न बादाम, बादाम रोग़न; (ले०) ओलेउम आमीग्डाले (Oleum Amygdalae),' (अं०) आमण्ड ऑयल (Almond Oil)।

उत्पत्तिस्थान—संभवतः फारस और एशियामाइनरका आदिवासी है और अब पश्चिम एशियामें अधिकतासे होता है। उत्तर-पश्चिम भारतवर्ष (पंजाब, कश्मीर आदि) के शीतस्थानोंमें इसके वृक्ष लगाये जाते हैं। अच्छे बादामका आयात अफ़गानिस्तान आदिसे होता है।

वर्णन—यह एक मझोले आकारके वृक्षके फलका प्रसिद्ध बीज है जिसको तोड़नेपर अन्दरसे सफेद मग्ज निकलता है। यह स्वादमें मीठा एवं स्वादिष्ट होता है। इसके कई भेद हैं। उनमें एकका छिलका इतना पतला होता है कि चुटकीसे मलनेसे टूट जाता है। इसको कागजी बादाम कहते हैं। यह बागी होता है। दूसरेका कड़ा और मोटा होता है। इसे ठड्डा कहते हैं। यह जंगली होता है। इनका मग्ज खाया जाता है।

रासायनिक संगठन—इसके मग्जको जलमें पीसकर शीरा बनानेपर इसमेंसे किसी प्रकारकी गन्ध नहीं आती। इसमें ऐल्ब्युमिन बिल्कुल नहीं होता। इसके मग्जको दबाकर एक प्रकारका अनुत्पत् (स्थिर) तेल ५६% निकाला जाता है। इसमें कडुए बादाममें पाया जानेवाला ऐमिग्डेलीन नामक सत्व जिसे पानीमें नम करनेसे रासायनिक परिवर्तन होकर हाइड्रोसायनिक या प्रुस्सिक एसिड नामक विषाक्त अम्ल बनता है, बिल्कुल नहीं होता और न तो इसमें उसमें होनेवाला उत्पत् तेल होता है। यह कडुये बादामके विपरीत निर्विषैला एवं निरापद द्रव्य है। इसमें जल विलेय इमल्सीन नामक एक अभिषवजनक द्रव्य, लबाब, शर्करा, प्रोभूजिद और रक्षा (राख) होती है जिसमें पोटैसियम, कैल्सियम और मैग्नीसियम फॉस्फेट्स होते हैं।

उपयुक्त अंग—बीज (बादाम) के ऊपरका कड़ा छिलका, मग्ज और मग्जका तेल (रोग़न बादाम शीरी)।

तेल निकालनेकी विधि—तेल निकालनेके एक विशेष यन्त्र (प्रेस-मशीन) द्वारा इसका तेल निकालें। उसके अभावमें : (१) बादामकी मींगीको कूँडेमें डालकर डन्डेसे खूब पीसें। जब अच्छी तरह पीस जायँ, उनमें थोड़ी-सी खाँड मिलायें और गरम पानीका छींटा देते और रगड़ते जायँ। रोग़न (तेल) अलग हो जायगा। फिर हाथसे दबाकर अवशिष्ट तेल निकाल लेवें। यह तेल हलके पीले रंगका प्रायः निर्गन्ध, स्वाद तैलीय या हलका बादामी होता है। यह ईथर और क्लोरोफार्ममें सुविलेय, किन्तु सुरासार (९%) में कठिनतासे विलेय होता है। (२) बादामकी भींगीको कूटकर थोड़ी-सी मिश्री मिलाकर ताँबेके बर्तनमें कोयलेकी आगपर फिर थोड़ा-सा पानी छिड़ककर गरम करके हाथसे निचोड़े और बर्तनको टेढ़ा रखें, जिसमें तेल अलग होकर नीचेकी ओर एकत्रित हो जाय।

कल्प तथा योग—रोग़नबादाम, लऊक़ बादाम, हरीरा या हलवा बादाम।

तेलकी परीक्षा—कभी-कभी आड़ूके बीजोंके तेलका बादाम तैलमें मिश्रण कर देते हैं। इसकी सहज परीक्षा यह है कि इसमें समान भाग गन्धकका तेजाब, शोरेका तेजाब और पानी मिलाकर हिलायें। यदि आड़ूके बीजका तेल मिला होगा तो इससे वह ललाई लिये भूरे रंगका हो जायगा, केवल बादामका तेल रहनेपर उसमें किसी प्रकारका रंग नहीं आयेगा वह रंगरहित रहेगा। पिसी हुई बादामकी गिरीको प्रेसके अन्दर दबाकर निकाल लेनेके पश्चात् शेष रही हुई सीठी (Powdered cake) को 'बादामका आटा' कहते हैं। इसमें तेल अत्यल्प प्रमाणमें होता है। पिष्टके अभाव और प्रोटीनके प्रमाण के बाहुल्यके कारण यह मधुमेहीके लिये पथ्य एवं उत्तम खाद्य है।

परीक्षा—गञ्जबादावर्दमें लिखा है—

(१) इसे गरम रोटीपर डालकर खायें। यदि बादाम जैसा स्वाद प्रतीत होता हो तो शुद्ध वरना अशुद्ध जानें। (२) थोड़ा-सा हाथकी हथेलीपर लगाकर दोनों हाथोंकी हथेलियों को परस्पर इतना रगड़ें कि गरम हो जायँ। इसके पश्चात् सूँघें और चखें। यदि बादाम जैसा स्वाद हो तो शुद्ध वरन् अशुद्ध जानें।

वक्तव्य—रोगनबादाम दो प्रकारका होता है (१) स्थूल (अनुत्पत्‌-सकील) और (२) सूक्ष्म (उत्पत्‌-लतीफ़)। इनमें सूक्ष्म वा उत्पत्‌ तेल केवल कड़ुए बादाम से ही निकलता है। परन्तु दूसरे प्रकारका तेल स्थूल तेल कड़ुए और मीठे दोनों प्रकारके बादामोंसे दबाकर निकलता है और व्यापारिक मण्डियोंमें यह इंग्लिश आमण्ड ऑइल (अंग्रेजी बादामका तेल)के नामसे बिकता है। स्थूल बादाम तेल चाहे कड़वे बादामोंसे निकाला जाय या मीठे बादामोंसे, यदि उन्हें प्रेसयन्त्रमें दबाकर निकाला जाय, जैसा कि यूरोपमें निकालते हैं, तो वह विषैला नहीं होता है। पर यदि बादामोंको कूटकर और उनमें थोड़ी-सी मिश्री मिलाकर तथा पानीका छोंटा देकर पुनः उनको गरम करके तेल निकाला जाय जैसा कि साधारणतया भारतवर्षमें निकालते हैं ता इस प्रकार यदि कड़वे बादामोंका तेल निकाला जाय तो वह अत्यन्त विषैला होता है। कारण कड़वे बादाममें जो ऐमिग्डेलिन नामक वीर्य होता है वह पानीके साथ मिलकर विषमें परिणत हो जाता है। अतएव यह परमावश्यक है कि यदि साधारणरूपसे बादामतेल निकालना हो तो केवल मीठे बादामोंका ही निकालना चाहिए। यदि उनमें कड़वे बादाम मिले हों तो उन सबको छाँटकर निकाल देना चाहिए; क्योंकि कड़वे बादामके तेलसे विषमयता की संभावना हो। अतः डॉक्टर सय्यद अहमदने उम्दतुल्‌मोहताज नामक स्वरचित ग्रंथमें लिखा है कि एक व्यक्ति जो मालीखोलिया (मद) रोगसे पीड़ित था उसने ७ माशे (दो दिरम)की मात्रामें कड़वे बादामका तेल खाया और वह आधे घण्टेमें मर गया।

प्रकृति—पहले दर्जेमें गरम ओर तर।

गुण-कर्म तथा उपयोग—मस्तिष्कबलदायक (मेध्य), मस्तिष्कस्नेहन, शुक्रल, वाजीकर, उदरमार्दवकर (सर), उरोमार्दवकर और लेखन। तेल मृदुताकारक, आंतरिक प्रयोगसे पोषक, स्निग्ध (Demulcent) और हलका सारक है। बादामका मग्ज खानेसे पुष्टि (ग़िज़ाइय्यत) प्राप्त होती है। इसका हरीरा पीनेसे मस्तिष्क बलवान् एवं तर और शरीर पुष्ट होता है। शुक्रजनन एवं वाजीकरणके लिए भी इसका उपयोग करते हैं और उक्त प्रयोजनके लिए इसको वाजीकर माजूनोंमें डालते हैं। खाँसीमें प्रयुक्त करनेसे यह उरःकण्ठमें मार्दव पैदा करके कफके सुगमतापूर्वक उत्सर्गमें साहाय्यभूत होता है। चेहरेका रंग निखारनेके लिए इसे उबटनमें डालकर चेहरेपर लेप करते हैं। मस्तिष्क-स्नेह एवं बलवर्धनके लिए इसका तेल (रोग़न बादाम) शिरमें लगाते हैं। नित्य बने रहनेवाले (दायमी) कब्जको दूर करनेके लिए इसको दूधमें मिलाकर पिलाते हैं। कतिपय त्वचाके रोगोंमें दाह एवं शोथको शमन करनेके लिए इसका लेप करते हैं। बादामका बाहरी कड़ा छिलका जलाकर मंजनोंमें डालकर दाँतोंपर मलते हैं। इससे दाँत स्वच्छ एवं चमकदार हो जाते हैं। अहितकर—चिरपाकी। निवारण—मस्तगी और मिश्री। प्रतिनिधि—अखरोटका मग़ज़। मात्रा—बादामका मग़ज़ ७ से ११ दाने तक। रोगन बादाम ३ माशेसे १ तोला तक विरेचन है।

आयुर्वेदीय मत—बादाम (वाताम) मधुर, गुरु, स्निग्ध, उष्णवीर्य, बृंहण, बल्य, पित्तश्लेष्मकर तथा वातहर है। (च० सू० अ० २७; सु० सू० अ० ४६)।

नव्यमत—बादाममें पिष्टमय सत्व (स्टार्च) न होनेसे इसकी पेया बनाकर मधुमेहमें देते हैं। इसकी पेया बनानेके पूर्व इसको रातभर गरम पानीमें डालकर भिगोना चाहिए। इससे उसमें एक नये तरहका सत्व उत्पन्न होता है जो पचन क्रियाका उत्तेजक एवं सहायक है। इसकी पेयाको अधिक पकानेसे यह सत्व नष्ट होता है। अतः पेयामें एक दो उफान आते ही उसको आगपरसे उतार लेना चाहिए। श्वासोच्छ्वासेन्द्रियके तथा मूत्र एवं जननेन्द्रियके रोगोंमें इसकी पेया देते हैं। भिगोया हुआ बादाम असगन्ध, पीपर, घी, दूध और शर्करा इनकी पेया रसायन है। स्त्रियोंमें इस पेयासे कटिशूल एवं श्वेतप्रदर आराम होता है और दूध बढ़ता है। कड़वे बादामको जलमें पीसकर कण्डूपर विशेषतः जननेन्द्रियके कण्डूपर लगाते हैं।

◆

(४४३) बादावर्द (भूदण्डी)

फ़ैमिली : कॉम्पोजीटी (Family : Compositae)

नाम—(हिं०) बादावर्द; (यू०) Akantha tauke (D. 3. 12); (अ०) शोकतुल् बैज़ाऽ Santapan अल्बावर्द (इ० बै०); (फा०) बादआवर्द; (सं०) भूदण्डी, भूमिदण्डी; (गु०) भोंयदण्डी; (लें०) वॉल्टारेल्ल रामोसा **Volutarella ramosa** Roxb. (पर्याय–*V. divaricata Benth.* Hook. f.; *Amberboa divaricata* Kuntge.)।

वक्तव्य—किसी-किसीने इसको तथा ट्रीकोलेपिस प्रोकुम्बेन्स (**Tricholepis procumbens** Wight) नामक बूटीको एक माना है। इसका मराठी नाम सकायी, जो शुद्ध, 'शुकाई' है, लिखा है। परन्तु वह इससे भिन्न इसका एक भेद है (दे० 'शुकाई')। इसी प्रकार किसी-किसीने इसकी लॅटिन संज्ञा (**Cardunus benedictus**) भी लिखा है।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्षमें इसके क्षुप होते हैं।

वर्णन—यह ब्रह्मदण्डी नामक वनस्पतिका वह भेद है जो भूमिमें बिछी हुई होती है। इसमें काँटे होते हैं। शाखायें पुष्कल, रेखायुक्त, सफेदी लिए चौपहल और खोखली, सर्पके समान मुड़ी हुई होती हैं। पत्र लोमयुक्त; फूल नीले, ब्रह्मदण्डीके समान और कंटकित होते हैं। फूल और फल झुमकेमें लगते हैं। बीज कड़के समान, उससे गोल होते हैं, स्वाद तिक्त होता है। इसका आयात यहाँ फारससे होता है। बाजारमें इसके सूखे क्षुप मिलते हैं।

रासायनिक संगठन—एक हरा उत्पत् तेल, एक अम्ल राल, वसा, एक क्षारोद और निर्यास।

उपयुक्त अंग—पंचाग।

प्रकृति—पहले दर्जेमें शीत एवं रूक्ष।

गुण-कर्म—अवरोधोद्घाटक, प्रवर्तक (मुदिर्र), रक्तस्तंभन, वेदनास्थापन और ज्वरघ्न, विशेतषः कफज जीर्णज्वरोंमें प्रयुक्त होता है।

उपयोग—अधिकतया जीर्णज्वरोंमें उपयुक्त औषधियोंके साथ इसको क्वाथ करके पिलाते हैं। रक्तष्ठीवन, यकृतच्छूल, यकृदवरोध और चिरज अतिसारमें इसका उपयोग करते हैं। दंतशूलमें इसके काढ़ेसे कुल्लियाँ कराते हैं। बिच्छूके दंशस्थानपर इसके बीजोंका लेप करनेसे यह विषका शोषण करता और दर्दको शांत करता है। अहितकर—फुफ्फुसको। निवारण—अफसंतीन। प्रतिनिधि–शाहतरा और चिरायता। मात्रा–५ ग्रामसे ७ ग्राम (५ माशेसे ७ माशे) तक।

●

(४४४) बादियान खताई

फ़ैमिली : माग्नोलिआसे (Family : Magnoliaceae)

नाम - (हिं०), अनासफल; (अ०;फा०) बादियाने खताई; (फा०) राज़ियानए खताई; (द०, बम्ब०) अनसफल बादियान; (लें०) इल्लीसिउम वेरुम (**Illicum verum** Hook. f.); (अं०) स्टार एनिस (Star Anise), चायनीज एनिस (Chinese Anise), बाडियान (Badian)।

उत्पत्तिस्थान—चीन, कोचीन-चीन और जापान। इसका आयात यहाँ चीनसे होता है। यह भारतके प्रायः सभी बड़े बाजारोंमें मिलता है।

वर्णन—यह तारेकी आकृतिके कालाई लिए लाल और धूसरित, अंडाकार क्षुद्र बीज हैं, जो स्वादमें सुगन्धित, मधुर, सौंफ या अनीसूँके समान होते हैं। इसलिए बादियान ख़ताई कहलाते हैं। गंध भी उन्हींके समान होती है। फलत्वक् भूरी, नीचे झुर्रीदार और शीर्षकी ओर चंचुवत् होती है।

रासायनिक संगठन—इसमें एक सुगन्धित उत्पत् तेल ४ से ५ प्रतिशत होता है, जिसमें ८०% से ९०% **ऐनिथोल** होता हैं। इसके अतिरिक्त एक शर्करा, तिक्तवीर्य, तथा टैनिन आदि द्रव्य होते हैं।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें उष्ण एवं रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—गुणकर्ममें यह अनीसूनके समान होता है, तथा दीपन, पाचन, वातानुलोमन और प्रवर्तनकर्ता है। इसको अधिकतया चाय खताईके साथ उबालकर पीते हैं। यह आहारको पचाता तथा वायुका उत्सर्ग करता है। उपर्युक्त गुणकर्मोंके लिए इसे अकेला उबालकर पीते हैं। **अहितकर**–शिरःशूल उत्पन्न करता है। **निवारण**–भून लेनेसे इसके अवगुणोंका परिहार हो जाता है। **प्रतिनिधि**–जावित्री। **मात्रा**–३ ग्रामसे ५ ग्राम (३ माशेसे ५ माशे) तक।

(४४५) बाबूना

फ़ैमिली : कॉम्पोज़ीटी (Family : Compositae)

नाम—(हिं०; पं०; बं०) बाबूनेका फूल, बाबूना, सोनामोती; (अ०) अल्‌बाबूनज, हबक़ुल् बक़र, तुफ़ाहुल् अरज़ (इ०बै० १/१३९; २/६), बाबूनज; (फा०) **बाबूनः, गुलेबाबूनः**; (लै०) **माट्रीकारिआ कामोमिल्ला (Matricaria chamomilla** L.); (अं०) कैमोमाइल या सिंगल कैमोमाइल फ्लावर्स (Chamomile or Single Chamomile flowers), जर्मन कैमोमाइल (German Chamomile)।

वक्तव्य—इसका अरबी नाम 'बाबूनज' वस्तुतः इसके फारसी नाम 'बाबूनक' से अरबी बनाया गया है। इराक और अरबके 'बाबूनः' नामक गाँवमें अधिक होनेसे इसका बाबूना नाम रखा गया। मात्र बाबूनासे इसके फूल विवक्षित होते हैं। लैटिन नाम इसके क्षुपका है। फारसी वैद्यकीय ग्रंथोंमें बाबूना शब्दका व्यवहार प्रायः 'माट्रीकारिआ कामोमिल्ला'के लिए होता है।

इतिहास—प्राचीन यूनानी हकीम बाबूनाका उपयोग ज्वरनाशनार्थ करते थे। जबतक कुनैनकी प्राप्ति नहीं हुई थी, तबतक वे इसे पर्यायज्वरोंकी मुख्य औषधि जानते थे। यद्यपि हकीम बुक़रात और हकीम सेल्सस को इसके गुणधर्म (खासियत)का ज्ञान नहीं था, तथापि जाळीनूस ज्वरनाशनार्थ इसका उपयोग करता था और विशेपकर यूनानी हकीम दीसक़ूरीदूस गुलबाबूनाके बारीक चूर्णको पर्यायज्वरोंमें अत्यंत प्रभावी एवं गुणकारी जानता था। सुतरां गुलबाबूना का क्वाथ आमाशयको बलदेने (दीपन) और तद्गत वायुके अनुलोमनार्थ तथा वातनाड़ी-बलवर्धन एवं अंगमर्दप्रशमनार्थ बहुप्रयुक्त एवं लाभकारी है और इंगलिस्तानमें बाबूनेके घनक्वाथका वमनार्थ उपयोग करते हैं तथा उदराध्मानमें इसके तेलके अभ्यंग और क्वाथकी बस्तिको लाभकारी मानते हैं। प्रवाहिका एवं अतिसारमें गुलबाबूनाका क्वाथ प्रयुक्त है। इसी प्रकार आर्तवजननार्थ जहाँ कपूर एवं जुंदबेदस्तर आदिका प्रयोग करते हैं, वहाँ बाबूनाक्वाथको भी प्रभावी एवं लाभकारी जानते हैं।

उत्पत्तिस्थान—फारस, यूरोप, उत्तरभारतवर्ष विशेषतः गंगाका ऊपरी मैदान (पंजाब आदि)। पहले समस्त भारतवर्षमें यही छोटा एकहरे फूलोंका बाबूना बिका करता था। परन्तु अब थोड़े समयसे दोहरे सफ़ेद फूलोंका बाबूना यूरोपसे आकर बिकता है। इसकी वनस्पतिको लेटिनमें **आन्थेमिस नोबिलिस** (**Anthemis nobilis** Linn.) कहते हैं। इसके अन्य नाम इस प्रकार हैं—(यू०) कामोमिलोन; (अ०) बाबूनज रूमी या तुफ़ाही; (फ़ा०) बाबूनः तुफ़ाही, बाबूनः इंगलिसी; (अं०) डबल कैमोमाइल (Double Chamomile), रोमन कैमोमाइल (Roman Chamomile), इङ्गलिश कैमोमाइल (English Chamomile)। इसका मूल उत्पत्तिस्थान फारस और यूरोप है। किंतु अब भारतवर्षमें (विशेषतः पंजाबमें) इसकी खेती की जाती है।

वक्तव्य—इसकी अंग्रेजी संज्ञा '**कैमोमाइल** Chamomile' इसकी यूनानी संज्ञा 'कामोमिलोन'से, जो इन दो शब्दोंका यौगिक है (कामो = भूमिपर, मिलोन = सेब), व्युत्पन्न है। बाबूनारूमीसे सेवकी-सी गंध आती है, इसलिए यूनानियोंने इसका उक्त नाम रखा। सम्भवतः इसी आधारपर अरबी—यूनानी वैद्यकीय ग्रन्थोंमें भी इस प्रकारके बाबूनाको '**बाबूनए तुफ़्फ़ाही** (तुफ़्फ़ाह = सेव)' लिखा है। इसकी लेटिन संज्ञा 'आन्थेमिस' या अंग्रेजी संज्ञा 'कैमोमाइल' जिस प्रकार प्रजातिक (Generic) नामके रूपमें प्रयुक्त होती है, अरबी संज्ञा 'बाबूनज' या फारसी 'बाबूनः' का आरोप जेनरिक नामकी भाँति इसके समस्त भेदोंके लिए होता है। यूनानी वैद्यकमें प्रयुक्त चारों भेदों—(१) **बाबूना रूमी**, (२) **बाबूना बदबू**, (३) **बाबूना गावचश्म** अर्थात् **उक़हवान** और (४) **बाबूना हस्पानी** अर्थात् **अकरकरा** इन सबके लिए आन्थेमिस या कैमोमाइल (बाबूना) संज्ञाका ही आरोप होता है। परन्तु यूनानी वैद्यकमें मात्र अकेले इस शब्दका आरोप 'गुल बाबूना' पर होता है अर्थात् यदि नुस्खेमें केवल बाबूना लिखा हो तो इससे गुलबाबूना विवक्षित होगा।

वर्णन—यह एक क्षुपके प्रसिद्ध फूल हैं जो गुलसेवतीके समान पीले या सफेद होते हैं। वास तीक्ष्ण, सुगंधित मनोरम और स्वाद तिक्त होता है। यह विदेशीय बाबूनाका उत्तम प्रतिनिधि द्रव्य है।

रासायनिक संगठन—एक उत्पत् तेल (**रोग़नबाबूना**), एक तिक्त, वीर्य, राल और टैनिन (Tannin) प्रभृति द्रव्य होते हैं।

उपयुक्त अंग—फूल, तेल और जड़।

कल्प तथा योग—रोग़न बाबूना और कैरूती बाबूनावाली।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें **गरम** और पहलेमें **खुश्क**।

गुण-कर्म तथा उपयोग—**दीपन**, **वातानुलोमन**, श्वयथुविलयन, **मस्तिष्कबलदायक** (मेध्य), **वातनाड़ीबलदायक**, गर्भशातक और **मूत्रार्तवजनन** है। अधिकतया सूजनों एवं कठोरताओंको विलीन करनेके लिए लेपोंमें बाबूनाको डालते हैं। उरःवेदना आदिमें इसके तेलकी मालिश करते हैं। मोच खाये हुए अंग या शोथकी जगह इसके काढ़ेसे सेक (तक्मीद) करते हैं। दिल्लीके हकीम आन्तरिक रूपसे मस्तिष्क एवं वातरोगोंमें इसे खिलाते हैं। मंदाग्नि (जोफ़े मेदा) और वायुजन्य आमाशयशूलमें तथा वक्षसे कफोत्सर्ग एवं कामलाको नष्ट करनेके लिए यह प्रयुक्त होता है। क़ै लाने और शीतपूर्वज्वरके लिए इसका काढ़ा पिलाते हैं। मूत्रार्तवजनन एवं गर्भ तथा अपरा निःसारणके लिए इसके काढ़ेसे कटिस्नान (आबजन) कराते हैं और आंतरिकरूपसे भी उपयोग कराते हैं। बाबूनाकी जड़ बाबूनासे अधिक वीर्यवान् वर्णनकी जाती है। **अहितकर**–कंठको। **निवारण**–शुद्ध मधु। **प्रतिनिधि**–बिरंजासफ़। **मात्रा**–१ ग्राम से २ ग्राम (१ माशा से ३ माशे) तक।

●

(४४६) बाबूनएगावचश्म

फ़ैमिली : कॉम्पोजीटी (Family : Compositae)

नाम—(फा०; भा० बाजार) बाबूनए गावचश्म; (अ०) उक़हवान, रिज्लुल् दुजाज:; (यू०) फ़र्तानियून; (ले०) **माट्रीकारिआ पार्थेनिडम् (Matricaria parthenium)**; (अं०) फेदर फ्यू (Feather few)।

उत्पत्तिस्थान—यह शीतल प्रदेशोंमें आवादीके समीप खेती की जानेवाली भूमिमें उत्पन्न होता है। इसे बगीचोंमें सुन्दरताके लिए लगाते हैं।

वर्णन—एक क्षुपके फूल हैं जो बाबूनेकी तरह सफेद और बीचसे पीले गोनेत्रके समान होते हैं। इसलिए इसे **बाबूनए गावचश्म** कहते हैं। गंध खराब और स्वाद तिक्त होता है। इसकी केवल पुष्पवान् शाखाएँ औषधके काममें ली जाती हैं।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें **गरम और खुश्क**।

गुण-कर्म तथा उपयोग—**श्वयथुविलयन, प्रमाथी, वातानुलोमन, स्वेदन और मूत्रार्तवजनन** हैं। जलोदर, अग्निमांद्य (जोफ़ेमेदा), आमाशयगत आनाह एवं बस्तिगत जमे हुए रक्तको पिघलाने और सूजन उतारनेके लिए उकहवानका प्रयोग करते हैं। श्वासकासमें अवलेह बनाकर चटाते हैं। मूत्रार्तवजननके लिए इसका काढ़ा उपयोग करते हैं। जरायुकाठिन्यमें इसके काढ़ेसे कटिस्नान (आबजन) कराते हैं। **अहितकर**–शिर:शूलजनक और आकुलताजनक। **निवारण**–बाबूना। **मात्रा**–२ ग्राम से ५ ग्राम (२ माशे से ५ माशे) तक।

●

(४४७) बाय(व)खुम्बा

फ़ैमिली : मीर्टासे (Family : Myrtaceae)

नाम—(हिं०) बाय(व)खुम्बा, कुम्हीका फल; (सं०) कुम्भी, कुम्भीर (रा०नि०), कुम्भीफल; (बं०;हिं०) कुम्भी-बकुम्भ; (म०) वाकुंभ; (गु०) बाकुंभ; (को०) कुम्ब, कुम्बी, असुन्द; (ले०) **केरिआ आर्बोरिआ (Careya arborea** Roxb.); (अं०) वाइल्ड ग्वावा (Wild Guava)।

वक्तव्य—लेटिन नाम वृक्षका है।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष।

वर्णन—यह एक बड़े वृक्षके फल हैं जो गोलाई लिए हुये हरे (कच्चेपर), व्यासमें २½-३ इंच, शीर्षपर बाह्य नालसे युक्त, भूरे, खाकस्तरी (पकनेपर) रंगके होते हैं और औषधके काममें लिए जाते हैं।

रासायनिक संगठन—पत्रमें १९ प्रतिशत कषाय तत्व होता है।

प्रकृति—दिल्लीके हकीमोंके मतसे गरमी और खुश्की लिए हुए अनुष्णाशीत, मतांतरसे पहले दर्जेमें उष्ण और दूसरेमें खुश्क (रूक्ष)।

गुणकर्म तथा उपयोग—दोषपाचन, सर, वातानुलोमन और दीपन। अधिकतया आमाशयके सुधार और बलदेनेके लिए बच्चोंकी घुटीमें इसे अन्य औषध द्रव्योंके साथ मिलाकर फाण्ट बनाकर पिलाते हैं। वातानुलोमन होनेके कारण यह वायुजन्य बालउदरशूलको दूर करता है। योन्यर्शकी यह प्रधान औषध है। **मात्रा**–बालकोंके-लिए ०.५ ग्रामसे १ ग्राम (४ रत्तीसे १ माशा) तक।

●

(४४८) बायबिडंग

फ़ैमिली : मीर्सिनासे (Family : Myrsinaceae)

नाम। (हिं०) बाय(व)बिडंग, भाभीरंग; (अ०) बिरंक़(ज)काबुली; (फा०) बिरंग काबुली; (सं०) बिड़ङ्ग, चित्रतण्डुला; (गु० पं०) वावडींग; (म०) वावडिंग; (बं०) बिड़ङ्ग; (ले०) एम्बेलिया रीबेज (**Embelia ribes** Burm.); (अं०) बाब्रेंग (Babreng), एम्बेलिया (Embelia)।

वक्तव्य—'बिरंक' वा 'बिरंज' फारसी 'बिरंग' से अरबी बनाये गये हैं, और फारसी 'बिरंग' संस्कृत विडंगका फारसी रूपांतर है। लेटिन नाम इसकी झाडीका है।

उत्पत्तिस्थान—हिन्दुस्तानका समस्त पहाड़ी प्रान्त।

वर्णन—यह एक छोटे पेड़ (झाड़ी) का सुखाया हुआ फल है जो कालीमिर्चके समान, किन्तु उससे छोटा, लगभग सफेदमिर्चके आकारका और चिकना, गोल, चित्रित, ललाई लिये काला (खाकस्तरी), शीर्ष पर ह्रस्व चंचुयुक्त, किंचित् चरपरा तथा पतला वृन्तयुक्त होता है। इसके ऊपर लम्बाईके रूख धारियाँ बनी होती हैं जो इसके एक अन्य भेद—**मामीरंग या अमबुर (एम्बेलिया त्सेजेरिआमकोट्टम्** (**Embelia tsjeriamcottam** A. DC. या **E. robusta** C. B. Cl.)में नहीं होतीं, किन्तु शेष सभी बातोंमें यह उसके समान होता है। इसको काटनेपर एक लाल कड़ा बीज और सफेद मग्ज निकलता है। इसके आधारपर एक कटोरीनुमा गड्ढा (खात) होता है। स्वाद किंचित् तिक्त कषाय एवं रुचिकर होता है। गन्ध अतिसूक्ष्म या अलक्षित।

इतिहास—भारतीय और मुसलमान वैद्यों (हकीमों)ने इस औषधिका उल्लेख किया है। सुतरां **सुश्रुत** और **शैख़ुर्रईस इब्नसीनाने** इसको प्रबल क्रमिघ्न लिखा है।

रासायनिक संगठन—इसमें एक अम्लस्वभावी सत्व विडंगाम्ल **एम्बेलिक एसिड** (Embelic acid) २.५ प्रतिशत, एक उत्पत् तेल, रंजक द्रव्य, टैनिन, रालदार पदार्थ और क्रिस्टेम्बीन (Christembine) नामक एक क्षारसमोद प्रभृति द्रव्य होते हैं।

उपयुक्त अंग—सूखे फल (बायबिडंग)।

कल्प तथा योग—**अतरीफल दीदान**।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें **गरम** और **खुश्क** (रूक्ष)। आयुर्वेदमतसे ऊष्णवीर्य (भा० प्र०) है।

गुणकर्म—उदरक्रमिनाशन, सौदा और सांद्रकफविरेचनीय, क्रमिदंत एवं दंतशूलहर विशेषतः अन्त्रस्थ क्रिमिनाशक है।

उपयोग—उदरक्रमि विशेषतः कद्दूदानेको मारने और निकालनेके लिए यह पुष्कल उपयोग किया जाता है। सौदा और सांद्रकफविरेचनीय होनेके कारण संधियोंसे कफोत्सर्गके लिए यह उत्कृष्ट भेषज है। क्रमिदंत और दंतशूलमें इसके काढ़ेका कवलग्रह (मजमजा) कराते हैं। **अहितकर**—अन्त्रको। **निवारण**—कतीरा और मस्तगी। **प्रतिनिधि**—तुरमुस। **मात्रा**—१ग्राम से २ ग्राम (१ माशा से २ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—बायविडंग कटु, तीक्ष्ण, उष्णवीर्य, रूक्ष, लघु, दीपन, शिरोविरेचन, तृसिघ्न, कुष्ठघ्न, तथा शूल आध्मान, उदररोग, कफ, क्रमि, वात और विबन्ध नाश करनेवाला है। (च० सू० अ० २, ४, २५; सु० सू० अ० ३८, ४५; भा० प्र०)।

नव्यमत—वायबिडंग थोड़ा कड़ुआ, कषाय, उष्णवीर्य, दीपन, पाचन और आनुलोमिक और मूत्रजनन, क्रमिघ्न, वातहर, बल्य, मस्तिष्क और नाडियोंको बलप्रद, रक्तशोधन और रसायन है। इससे मूत्रका रंग लाल

होता है और उसमें अम्लता बढ़ती है। इसकी क्रिया शरीरकी सभी ग्रंथियोंपर विशेषकर रसग्रन्थियोंपर होती है। इसके सेवनसे भूख लगती है, अन्न पचता, दस्त साफ होता, भार बढ़ता तथा त्वचाका रंग सुधरता है और मनको आह्लाद मालूम होता है। शिशुओंके लिए यह दिव्य औषधि है। गण्डमालामें वायविडंग, गूगल, मैंनसिल और साबरसींगके भस्मके साथ मिलाकर घी और शहदके साथ देते हैं। इससे देरीसे, पर उत्तम लाभ होता है। आक्षेपक, अपस्मार, अर्धांगवात आदि मस्तिष्क और नाड़ियोंके रोगोंमें इसे लहसुनके साथ क्षीरपाकविधिसे पकाकर देते हैं। त्वग्रोगोंमें मुखद्वारा इसका उपयोग करते हैं और इसका लेप तथा धुआँ देते हैं। विविध प्रकारके त्वग्रोग अन्नके ठीक न पचनेसे होते हैं। इससे पाचनक्रिया सुधरती है। दस्त साफ होता है और त्वचा पर इसकी उत्तेजक क्रिया होती है; इसलिए कुष्ठविकार शमन होते हैं। अग्निमांद्य, अरुचि, कुपचन, वमन आध्मान और अर्शमें इसका चूर्ण छाछके साथ देते हैं। गोल और चिपटे कृमिके लिए १ तोला इसका चूर्ण पहिले विरेचन देकर खाली पेट देते हैं। और ऊपरसे पुनः विरेचन देते हैं। इससे कृमि मरकर गिर जाते हैं। पीनस और अधकपारीमें इसका नस्य देते हैं। स्फीतकृमिघ्न (Taenicide), वातानुलोमन, मूत्रजनन होनेसे पूर्वी भारतवासी अजीर्ण और आमवातिक विकरों में इसका उपयोग करते हैं, किन्तु इसकी प्रसिद्धि इसके स्फीतकृमि (कद्दूदाना) निकालनेके कर्मके कारण हैं। **मात्रा**—फल चूर्ण १-४ ड्राम। कृमिनिर्हरणार्थ फलके चूर्णको १-३ चायके चम्मच भर खाली पेट दूधके साथ लेकर पीछे कोई विरेचन लेना चाहिए।

●

(४४९) बारतंग

फैमिली : प्लांटाजिनासे (Family : Plantaginaceae)

नाम। वृक्ष (भा० बाजार) बारहंग, बारतंग; (हिं०) लहुरिज़ (-या); (अ०) लिसानुल्हमल (=शेषशावक जिह्वा (–इ० बै० संचि० ४, पृ० १०८); (फा०) बारतंग, बारहंग; (ले०) प्लांटागो मेजोर (**Plantago major** Linn.); (अं०) ग्रेटर प्लान्टेन (Greater Plantain)। बीज (हिं०; भा० बाजार) बारतंग; (अ०) बज्र् लिसानुल्हम्ल; (फा०) तुख़्मे बारतंग।

उत्पत्तिस्थान—समशीतोष्ण भारतवर्ष, विशेषतः पंजाब काश्मीरसे भूटान, आसाम, खसिया पहाड़ी तथा बम्बई एवं नीलगिरी आदि और फारस एवं यूरोप। हिन्दुस्तानमें इसका विपुल आयात फारससे होता है।

वर्णन—यह इसबगोलकी जाति और उसकी तरह के एक क्षुपके बीज हैं जो छोटे लंबगोल, बनफ़्शई लिए काले और इसबगोल जैसे होते हैं। जलमें भिगोनेपर इसमें इसबगोलकी तरह लबाब निकलता है। स्वाद फीका एवं हीकदार होता है। गीलानी के मतसे ललाई लिये काले बीज उत्तम होते हैं। पत्र भेड़की जीभके समान होते हैं।

रासायनिक संगठन—बीजमें हरित रंजकद्रव्य (Chlorophyll), राल, मोम, ऐल्ब्युमेन, शर्करा और विपुल प्रमाणमें लबाब होता है।

उपयुक्त अंग—पत्र या पत्रस्वरस और बीज।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें शीत एवं रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—संग्राही, रक्तस्तंभन और वेदनाहर। हरे बारतंगकी पत्तीके रसका फाड़ा हुआ (मुरव्वक) पानी आंतरिक अंगोंके रक्तस्राव रोकनेके लिए पिलाया जाता है। सुतरां नकसीर, रक्तार्श और असृग्दरमें इसका उपयोग करते हैं। अतिसार एवं रक्तस्राव बन्द करनेके लिए इसके बीज प्रयुक्त किये जाते हैं। अस्तु,

उरःक्षत एवं यक्ष्मा रोगमें इनका उपयोग किया जाता है। कर्णशूलमें इसके पत्तेके काढ़ेका बफारा देते हैं या रस कानमें टपकाते हैं। कंठगत पीड़ा एवं दंतशूलमें इसके पानीका गण्डूष कराते हैं। कतिपय उष्ण शोथोंपर वेदनाशमनार्थ इसका लेप कराते हैं। **अहितकर**—फुफ्फुस एवं प्लीहाको। **प्रतिनिधि**—बीजका प्रतिनिधि इसके पत्र हैं। **मात्रा**—बारतंगके पत्रस्वरसको फाड़कर लिया हुआ पानी ५ तोलेसे ७ तोले तक। **बीज**-५ ग्रामसे ७ ग्राम (५ माशेसे ७ माशा) तक।

◆

(४५०) बाराहीकंद

फ़ैमिली : डिओस्कोरेआसे ((Family : Dioscoreaceae)

नाम—(हिं०) गेंठी, बाराहीकंद, गाँठालू; (अ०) अस्लुर्ल्ख़िज़ीर-(नवीन); (फा०) बेख़ ख़ोक-(नवीन); (सं०) गृष्टि(क), वराहकंद, वाराहीकंद; (म०; गु०) डुकरकंद; (ले०) **डिओस्कोरिआ साटिवा** (**Dioscorea sativa** Thunb.) या दूसरी जाति डि० **बुल्बीफेरा** (*D.* **bulbifera** Linn.)।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्षके जंगली और पहाड़ी स्थान।

वर्णन—एक लताका कन्द जो आकृतिमें जमीकंद (सूरन)के समान, किन्तु उससे छोटा होता है और उसपर वराहलोमसदृश लोम होते हैं। इसकी लतामें गोल काले रंगकी आलूके समान गाँठें लगती हैं। मीठी लताकी गाँठें तरकारीकी भाँति खाई जाती हैं। बाराहीकन्द इसकी तिक्त जातिका कन्द है जो औषधके काममें आता है। इसका छिलका खुरदरा और मोटा होता है। स्वाद किंचिन्मधुर और कटुतिक्त होता है। सूअर इसे रुचिपूर्वक खाता है, इसलिए इसे **वाराहीकन्द** (वराह = सूअर, कन्द = कंदमूल) कहते हैं। दक्षिणमें डाही-कुल (*Family: Taccaceae*)के **डुकरकंद** (**Tacca aspera** Roxb.)को बाराहीकंद मानते हैं।

प्रकृति—गरम।

गुण-कर्म तथा उपयोग—वृष्य, वाजीकर, बृंहणीय, क्षुधाजनक, बल्य और वातकफघ्न है। इसका लेप फोड़ों और शोथको उतारता है। यह उदरकृमिनाशक और शुक्रप्रमेहनाशक है। मूत्रदाह और औपसर्गिकमेह (सूजाक)को नष्ट करता है। इसकी तरकारी खानेसे भूख खूब बढ़ जाती है, चेहरेका रंग निखरता है, खूब भोजन होता है और कुष्ठ एवं सौदाका नाश होता है। **अहितकर**-पित्तकारक है।

आयुर्वेदीय मत—बराहकन्द रस और विपाकमें कटु, बल्य, वृष्य, रसायन तथा कफ, प्रमेह, कुष्ठ और कृमिका नाश करनेवाला है (सु० सू० अ० ४६)।

◆

(४५१) बालछड़

फ़ैमिली : वालेरिआनासे (Family : Valarianaceae)

नाम—(हिं०; पं०) बालछड़, छड़, जटामांसी; (अ०) सुंबुले हिंदी, सुंबुलुत्तीबे हिंदी; (फा०) नारदे हिन्दी, नारदीने हिंदी; (सं०) मांसी, जटामांसी, नलदा, जटिला (च०); (द०; बं०; गु०, म०, ते०) जटामांसी; (क०) भूतजटा; (पहाड़िया) भूतकेस; (ले०) **नार्डोस्टाकीस जटामांसी** (**Nardostachys jatamansi** DC.); (अं०) इण्डियन स्पाइकनार्ड (Indian Spikenard)।

वक्तव्य—'**सुंबुलुत्तीब**' इसका विदेशी भेद है, जिसको लेटिन और अरबीमें क्रमशः **वैलेरिअना ऑफ़िसिनालिस** (**Valeriana officinalis** Linn.) और '**नारदीन**' या '**सुंबुलेरूमी**' कहते हैं। यद्यपि विदेशोंके अतिरिक्त डॉ० डीमकके मतसे यह हिन्दुस्तान विशेषतः उत्तरी कश्मीरमें भी होती है तथापि भारतवर्षमें इसकी जगह हकीम लोग 'देशी सुंबुल' अर्थात् 'बालछड़' का ही उपयोग करते हैं।

उत्पत्तिस्थान—हिमालयके ऊँचे भागमें ऐल्पाइन हिमालय (११,०००से १५,००० फुट), केदारनाथके पास कुमाऊँ और गढ़वालसे सिक्किम तक १७,००० फुटकी ऊँचाईपर इसके क्षुप होते हैं।

वर्णन—यह एक बहुवर्षायु क्षुपकी प्रसिद्ध जड़ (पातालीधड़) है जो पिलाई लिए काली (गहरा भूरी), लगभग छोटी उँगलीके बराबर मोटी होती है और उसपर कुछ-कुछ लाल भूरे रंगके बारीक तन्तु लिपटे रहते हैं। बास अत्यन्त तीक्ष्ण एवं मनोरम होती है। स्वाद तिक्त होता है।

रासायनिक संगठन—जटामांसीमें एक काला राल जैसा पदार्थ ६%, भीमसेनी कपूर जैसा कपूर और गोंद ९%, तगर जैसी सुगन्धवाला अम्ल द्रव्य (क्रिस्टली अम्ल-जटामांसिक अम्ल) और जलविलेय पदार्थ १२% तथा उत्पत् तेल १/४% होता है। यह तेल (**रोग़न सुंबुले हिन्दी** या रोग़न नारदीन) इसका गुणोत्पादक वीर्य (मुख्य सत्व) है जो कुछ हरापन लिए हुए पीले रंगका, जलसे हलका, हवामें जमनेवाला, कपूरके समान गन्धवाला तथा रसमें तिक्त और कटु होता है। इनके अतिरिक्त इसमें शर्करा, श्वेतसार और तिक्त तद्भव द्रव प्रभृति उपादान होते हैं।

उपयुक्त अंग—जड़ एवं तेल।

कल्प तथा योग—जिमाद सुंबुलुत्तीब, रोग़न नारदीन।

प्रकृति—पहले दर्जेमें **उष्ण** और दूसरेमें **रूक्ष**। आयुर्वेद मतसे शीतवीर्य (रा० नि०) है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—**मस्तिष्कयकृद्बलदायक**, श्वयथुविलयन, उष्णताजनन प्रमाथी, लेखन, **वर्णप्रसादक** (मुहस्सिन लौन), स्वेद एवं मुखदौर्गन्ध्यहर, उपशोषण, वातानुलोमन, **हृदयबलदायक**, वाजीकर और आर्तवजनन है। सुंबुलुत्तीब प्रायः गरम माजूनोंमें डाली जाती है। अपनी सुगन्धिसे यह उनको सुगन्धित बनाती और प्रायः शीतल स्निग्ध व्याधियोंमें लाभ पहुँचाती है। लेखन और वर्णप्रसादक होनेके कारण चेहरेकी झाईं दूर करने और चेहरेको कान्ति प्रदान करनेके लिए इसका लेप किया जाता है तथा इसे उबटनोंमें डाला जाता है। सुगन्धित तथा लेखन एवं उपशोषण होनेके कारण इसे मलहरोंमें मिलाते हैं। बारीक पीसकर शरीरपर मलनेसे यह स्वेदाविक्य को रोकती है। स्वेदकी दुर्गन्ध और बगलकी गन्दगी (मल) दूर करनेके लिए भी यह उपादेय है। मुखमें चबानेसे यह मुखकी दुर्गन्धको दूर करती है। यह यकृत्, आमाशय और शीत मस्तिष्कको बलवर्धनके लिए भी प्रयुक्त होती है। इसके अतिरिक्त वायुका उत्सर्ग करती, उदरानाहको दूर करती तथा सर्वांगशोफ, कामला, यकृच्छोथ, आमाशयशोथ तथा बस्ति और गर्भाशयशोथके लिए भी गुणकारक है। इन रोगोंमें अन्य औषधियोंके साथ इसको पेय और लेपकी भाँति उपयोग करते हैं। आर्तवजनन होनेके कारण इसे रजोरोधमें उपयोग करते हैं। इसके अतिरिक्त यह प्रायः कफज रोगोंमें प्रयुक्त की जाती है। **अहितकर**–वृक्कके लिए। **निवारण**–गुलरोग़न। **प्रतिनिधि**–इज़ख़िर मक्की। **मात्रा**–३ ग्रामसे ५ ग्राम (३ माशेसे ५ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—जटामांसी मधुर, कषाय, कटु, शीतवीर्य, संज्ञास्थापन, मेध्य, कान्ति-बल और आमोद देनेवाली तथा कफ, पित्त, भूत, दाह, त्रिदोष, रक्तविकार, विसर्प और कुष्ठको दूर करनेवाली है। (च० सू० अ० ४; रा० नि०; भा० प्र०)।

नव्यमत—यह सुगन्धित (Aromatic), तिक्त, बल्य, उत्तेजक और कोथप्रतिबन्धक है तथा अपस्मार, अपतन्त्रक तथा आक्षेपीय विकारों एवं दिलकी धड़कनमें इसका उपयोग करते हैं। यह विदेशीय जटामांसीका प्रतिनिधि

है और अन्त्रशूलमें लाभकारी है। जटामांसी तिक्त, कटु, सुगन्धि, कषाय, शीतल, वातहर, संकोचविकासप्रतिबन्धक हृदयबल्य, रक्तानुधावनोत्तेजक, त्वग्दोषहर, ज्वरहर, वेदनास्थापन, कफघ्न, केशवर्धक, कान्तिवर्धक और मोदकर है। इससे भूख बढ़ती तथा खूब अन्न पचता है; परन्तु कब्ज नहीं होता, उदरमें गर्मी प्रतीत होती है, उद्गार आता है, समस्त शरीर गरम होता है, पसीना आता है, मूत्र छूटता है और नाड़ी सुधरती है। बड़ी मात्रामें देनेसे वमन, उदरमें मरोड़ और विरेक होते हैं। मस्तिष्क और नाड़ियोंपर इसकी पौष्टिक एवं उत्तेजक क्रिया होती है। छोटी मात्रामें अधिक दिन लेते रहनेसे मन शान्त होता है, काम करनेका उत्साह मालूम होता है और नाड़ीका वेग बढ़ता है। अतिशय मानसिक परिश्रम अथवा चिन्तासे जब मन अस्थिर होता है, थकावट मालूम होती है और नाड़ी द्रुतगामिनी होती है। उस दशामें जटामांसीसे लाभ होता है। सिरके दर्दमें जटामांसी उत्कृष्ट औषध है। मस्तिष्क और नाड़ियोंके रोगोंमें प्रयोग की जानेवाली कस्तूरी, हींग आदि औषधोंकी अपेक्षया जटामांसी शीघ्र एवं जोरदार काम करती है। भूतावेश जैसी चेष्टाओंमें जटामांसी, ब्राह्मीका स्वरस, बच और मधु मिलाकर देते हैं। रक्तानुधावन ठीक न होता हो, उस समय जटामांसी उपयुक्त औषध है। मस्तिष्कका रक्तानुधावन अधिक होनेपर मस्तिष्कमें रक्तका भराव-सा प्रतीत होता है तथा अन्य कुछ विशेष लक्षण होते हैं और रक्तानुधावन कम होनेपर चक्कर आना, मूर्च्छा होना, कम सुनना, आँखोंके सामने अँधेरा मालूम होना आदि लक्षण होते हैं। उक्त अवस्थामें जटामांसीसे मस्तिष्कगत रक्तानुधावन सम होता है। हृदयकी शिथिलता, धड़कन और हृदयके कुछ रोगोंमें उदरमें वायुका संचय होता है। उस दशामें अन्य सुगन्धिद्रव्योंके साथ जटामांसी देते हैं। जटामांसीकी रक्तानुधावनके ऊपरकी यह क्रिया स्वयं हृदयपर, रक्तवाहिनियोंपर, नाड़ियोंपर और रक्तानुधावनके केन्द्रोंपर होती है। इससे रक्तवाहिनियोंका संकोच होता है। आध्मान, उदरशूल, कुपचन आदि पचननलिकाके रोगोंमें जटामांसी, नौसादर और सुगन्धि द्रव्योंके साथ इसे देते हैं। इससे पित्तका स्राव यथावत् होता है और पचनक्रिया सुधरती है। ज्वर अथवा शोथज्वरमें जब तीनों दोष बढ़कर रोगी थकता है और त्रिदोषके लक्षण दिखने लगते हैं। तब इसे देनेसे रक्तानुधावन सुधरता है, नाड़ीव्यूहको शक्ति मिलती है, कण्ठ और श्वासनलिकाके भीतरका कफ छूटता है, शरीरका दाह कम होता है और शोथ भी कम होता है। व्रणके ऊपर इसका लेप करनेसे दाह और पीड़ा कम होती है। पीड़ितार्तवमें इससे पीड़ा कम होती है और आर्तव ठीक आने लगता है।

●

(४५२) बालंगू

फ़ैमिली : लाबिआटी (Family : Labiatae)

नाम—(हिं०) बालंगा (गू), तूतमलंगा, तोकमलंगा; (अ०) बालंकू, वज्रुल्बालंकू; (फा०; बम्ब०) बालंगू तुख्मे बालंगू; (द०) बालंका; (पं०; हिं०) घरेइ कश्मालू, तुख्ममलंगा; (बाजार; क०) तुक्मे(ख्मे)बालुंगा; (ले०) **लाल्लेमांटिआ रॉयलेआना (Lallemantia royleana** Benth.)।

वक्तव्य—उत्तर भारतवर्षमें तुलसीजातीय एक पौधे **साल्विआ ईजिप्टिआका (Salvia aegyptiaca** Linn. var **pumila** Benth.)के बीजोंको तुख्मबालंगूके प्रतिनिधि द्रव्यकी भाँति उपयोग करते हैं तथा पंजाबमें इसे **'तुख्ममलंगा'** कहते हैं। कहीं-कहीं **ड्राकोसेफालुम् रॉयलेआनुम् (Dracocephalum royleanum.)** और कहीं **नेपेटा एलीप्टिका (Nepeta elliptica** Benth.) नामक वनस्पतिके बीजोंको भी तुख्ममलंगा कहते हैं।

उत्पत्तिस्थान—पश्चिम हिन्दुस्तान, पंजाब, बलूचिस्तान तथा फारस जहाँसे इसके बीजोंका आयात यहाँ बम्बई होकर होता है।

वर्णन—यह एक क्षुपके बीज हैं जो इसबगोलकी तरह होते हैं और औषधके काममें आते हैं। बाजारमें मिलनेवाले बीज काले लगभग ३ मि०मी० (१/८ इञ्च) लम्बे, लम्बोतरे, मसृण और तिकोने, नाभि (Umbilicus)की ओर जिसपर एक सफेद बिंदु होता है, गोपुच्छाकार (Tapering) होते हैं। बीजका एक पार्श्व अन्य दोनोंकी अपेक्षया चौड़ा एवं किंचित् मेहराबनुमा होता है। जलमें भिगोनेसे ये फूलकर शीघ्र एक प्रकारके चिपचिपा, पारदर्शक, फीका (स्वादरहित), भूरे लबाबसे ढँक जाते हैं।

प्रकृति—पहले दर्जेमें **गरम** और **तर**।

गुण-कर्म तथा उपयोग—**सौमनस्यजनन, हृदयबलदायक** और हलका **शीतसंग्राही** है तथा हृत्स्पंदन एवं हृदयदौर्बल्यमें विशेषतया प्रयुक्त होता है। सौमनस्यजनन एवं हृदयबलदायक होनेसे हृदयकी धड़कन, विराग और हृदयदौर्बल्यको दूर करनेके लिए इसका उपयोग किया जाता है। संग्राही और पिच्छिल होनेसे रक्तातिसार, मरोड़ और प्रवाहिकामें इसका उपयोग करते हैं। **अहितकर**–आमाशयको। **निवारण**–चीनी और मिश्री। **प्रतिनिधि**–रैंहाँके बीज। **मात्रा**–५ ग्राम से ७ ग्राम (५ से ७ माशे) तक।

नव्यमत—मूत्ररोगोंमें मूत्रजनन एवं शामकपेयकी भाँति इसका आंतरिक उपयोग करते हैं। फोड़े (Boils) और विद्रधियोंपर इसका **स्थानीय** उपयोग करते हैं। यह पुष्टिकर माना जाता है।

●

(४५३) बिजयसार

फ़ैमिली : लेगूमिनोसी (Family : Leguminosae)

नाम—(हिं०; पं०) बिजयसार, विजयसार, बीउँ (मीरजापुर), बिजासार, बिजैसार; (सं०) **असन**, बीजक; (म०) बिवला; (गु०) बीयों; (मा०) बिजैसार; (बं०) पियासाल, बोजसाल; (ले०) **प्टेरोकार्पुस् मार्सूपिउम्** (**Pterocarpus marsupium** Roxb.); (अं०) इण्डियन या मलाबार काइनो-ट्री (Indian or Malabar Kino-tree)। गोंद (हिं०) बिजयसारका गोंद, देशी हीरादोखी, देशी खूनखराबा; (अ०) दम्मुल्अख़्वैन हिन्दी; (फा०) खून-सियवशाने हिंदी; (सं०) बीजकनिर्यास; (अं०) काइनो (Kino), गम-काइनो (Gum-Kino)।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष और लंका।

वर्णन—इसके बड़े वृक्ष जंगलोंमें होते हैं। पत्र संयुक्तदल; पुष्प श्वेताभ पीले रंगके शीतकालके आरम्भमें आते हैं; फली पौष-माघमें पक जाती है। इसकी लकड़ीको पानीमें डालनेसे पहले पीला और पीछे कालेरंगका हो जाता है। वृक्षकी पेड़ीमें चोरा देने (घाव करने)से जो लाल रस निकलता है, उसे बिना अग्निके धूपमें सुखा लेते हैं। सूखकर यह काला और कड़ा हो जाता है। गुणधर्ममें यह दम्मुलअख़्वैनके समान होता है। इसलिए इसे दम्मुल् अख़्वैन हिन्दी कह सकते हैं तथा दम्मुल्अख़्वैन (खूनखराबा)के प्रतिनिधि रूपसे काममें ले सकते हैं। इसके छोटे-छोटे नुकीले और चमकीले कालाई लिए टुकड़े होते हैं या मोटा चूर्ण होता है। यह निर्गंध और स्वादमें अत्यंत कसैला होता है। चबानेपर यह दाँतोंसे चिपक जाता है और थूकका रंग खूनके समान लाल हो जाता है। यह सुरासारमें सम्पूर्ण घुल जाता है। रसको उबालकर यथाविधि बनाये हुए चूर्णको ठंडे पानीके साथ हिलानेपर पूरा-पूरा घुल जाता है। प्रोटोसाल्ट ऑफ आयरनके स्पर्शसे यह घोल बैंगनी (Violet) रंग धारण कर लेता है। यूरोपमें पहले तो अफरीका और जमेइकासे काइनो लाते थे। किन्तु सन् १८११ ई०में उनके स्थानमें मालाबारसे काइनो (मलाबार काइनो) जाने लगा और अब भी यहाँसे ही जाता है; क्योंकि भारतवर्षमें उसके स्थानमें दम्मुल्अख़्वैन और चुनिया गोंद (पलासका गोंद) काममें आते हैं जो गुणकर्ममें बिजयसारके गोंद जैसे हैं। दे० 'दम्मुल्अख़्वैन'।

इतिहास—प्रतीत होता है कि प्राचीन भारतीय या इसलामी लेखकोंमें से किसीने भी मालाबार काइनोका उल्लेख नहीं किया है।

उपयुक्त अंग—पत्र, त्वचा, सार और लालरंगका गोंद जिसे मलबार-काइनो (Malabar-Kino) कहते हैं।

रासायनिक संगठन—इससे विजयसार निर्यास (Gum-Kino) प्राप्त होता है, जिसमें काइनो-टैनिक-एसिड होता है। इस निर्यासको खूनबराबा (दम्मुल्अख्वैन)के प्रतिनिधिरूपमें काममें लिया जा सकता है।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम व खुश्क (रूक्ष)।

गुण-कर्म तथा उपयोग—यह भूख लगाती तथा शरीरपरके दानों तथा उदरजकृमियोंको नष्ट करती है। इसके अतिरिक्त शोथ एवं वायुको विलीन करती, श्वित्रके दागको मिटाती, गुदज कृमियोंको नष्ट करती और शुक्रप्रमेह एवं रक्त दोषका नाश करती है। शोथ और त्वग्रोगोंमें पत्तोंका लेप या मालिश करते हैं। इसके पत्तोंको फोड़े-फुंसी और घावके ऊपर बाँधनेसे उपकार होता है। पत्तोंका क्वाथ बना-छानकर कुल्लियाँ करनेसे मुख और दांतोंका दर्द मिटता है। विरेक बन्द करनेवाली औषधियोंके साथ इसका योग करना चाहिए। क्योंकि यह संग्राही है। शिशुओं और बड़ोंके लिए यह अत्युत्तम औषध है। इसकी लकड़ीको पानी से घिसकर लेप करनेसे चोटकी पीड़ा मिटती है। इसकी लकड़ीको कूटकर पानीमें भिगोकर ४० दिन तक पिलानेसे कुष्ठ और मधुमेह आराम होता है। इसकी लकड़ीके चूर्ण (१ तोले)का क्वाथ समभाग दूध और थोड़ी चीनी मिलाकर पीनेसे आघातज पीड़ा मिटती है। गोंद संग्राहक है। पुराने अतिसार और आँवमें गोंद खानेको देते हैं। दाँतके दर्दमें गोंद या पत्ते दाँतोंमें रखकर चबाते हैं। अतिरज, रक्तातिसार प्रभृति रक्तरोगोंमें गोंद लाभ पहुँचाता है। श्वेतप्रदर, कण्ठशैथिल्य (Relaxed throat) आदिमें इसका स्थानीय प्रयोग होता है। उरःक्षतरोगमें रात्रिस्वेद बन्द करनेके लिए बहुत गुणकारी है। शोथरहित रक्तस्रावरोगमें इसके उपयोगसे बड़ा लाभ होता है। जब मसूढ़े फूल जाते और व्रणित (जख्मी) हो जाते हैं तब इसको पानीमें क्वाथ करके उस पानीसे गण्डूष कराते हैं। मात्रा–२५० मि० ग्रा० से ०·६२५ ग्राम (२ रत्ती से ५ रत्ती)। प्रतिनिधि–ढाकका गोंद (चुनिया गोंद), यूकलिप्टस काइनो,[1] दम्मुल्अख्वैन (खूनखराबा)।

आयुर्वेदीय मत—विजयसार कषाय, तिक्त, त्वच्य, केश्य, रसायन तथा उददर्द, कुष्ठ, विसर्प, श्वित्र, प्रमेह, व्रण, कृमि, वातरोग, कफ, रक्तपित्त और रक्तविकारका नाश करनेवाला है। (च० सू० अ० ४; सु० सू० अ० ४; चि०अ० ६; ध०नि०; भा० प्र०)।

●

(४५४) बिजौरा

फ़ैमिली : रूटासे (Family : Rutaceae)

नाम। फल(हिं०)बिजो(जौ)रा; (यू०)कित्रिआ; (अ०)उत्र(त्रु)ज; (फा०) तुरंज, बालंग; (सं०) मातुलुंग, बीजपूर(क); (बं०) छोलोंगनीबू, होंसानेबू, टावा ने(ले)बु; (म०)महालुंग; (गु०)बि(बी)जोंरू; (मा०) बीजौरो; (ता०) मादलम्; (सिंध) तुणिज; (अं०) साइट्रन (Citrum), मेलन लाइन (Melon Lime)। फलका छिलका (हिं०) बिजौरेका छिलका; (अ०) क़िश्रुल् उत्र(त्रु)ज; (फा०) पोस्ते तुरंज; (अं०) साइट्रन पील (Pitron peel)।

---

[1] विजयसारनिर्यासकी तरहका लाल रंगका एक गोंद (Red gum) जो मदरास और लंकामें होनेवाले युकेलिप्टस रॉस्ट्रेटा (Eucalyptus rostrata Sch.) नामक वृक्ष तथा इसकी इतर जातियोंसे प्राप्त होता है।

वक्तव्य—वृक्षको लेटिनमें **सीट्र्स मेडिका प्र० मेडिका प्रॉपर (Citrus medica var. medicoa proper)** कहते हैं।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष।

वर्णन—यह नीबूकी जातिका एक प्रसिद्ध फल है, जो भारतवर्षके प्रायः सभी बड़े बाजारोंमें बिकनेके लिए आता है। फल नीबूकी तरह बड़ी नारंगीके बराबर लम्बाई लिए गोल, चिकना, ललाई लिए पीला और सुगन्धित होता है। मीठा और खट्टा भेदसे यह दो प्रकारका होता है। छिलका मोटा और तिक्त होता है। अन्दरका गुदा सफेद और थोड़ा मीठा होता है। बीज (**तुख़्मे तुरंज**) सफेद सनोबरी शकलका होता है। इसके अन्दरसे कड़ुआ सफेद मग्ज निकलता है।

रासायनिक संगठन—इसमें भी प्रायः वही उपादान पाये जाते हैं, जो नीबूमें होते हैं। इसके छिलकेसे दबाकर निकाले तेल (**रोग़न तुरंज या उत्रज, दोहनुल् उत्रज**) पांडु-पीत, सुगन्धित, तिक्त और ऐल्कोहॉलविलेय होता है। इसमें सिट्रीन या लाइमोनीन ७६ प्रतिशत, सिट्रोल ७·८ प्रतिशत, साइमीन और साइट्रोनेलल आदि सत्व होते हैं। **मात्रा**–१/२ से ३ बूँद।

उपयुक्त अंग—इसके पत्र, फूल, फलका गूदा(**शहम या लहम उत्रज, गोश्ते तुरंज**, प्रियः बालंग, फलरस, छिलका और बीज प्रभृति सभी अंग औषधिके काम आते हैं।

कल्प तथा योग—**जुवारिश तुरंज**, रोग़न उत्रज।

प्रकृति—वह भाग जो बीजोंके साथ लिपटा हुआ होता है (**हुम्पाज़ उत्रज** (तीसरे मतांतरसे दूसरे) दर्जेमें शीत एवं रूक्ष है। आयुर्वेदके मतसे शीतवीर्य एवं स्निग्ध (सु०) है।

गुणकर्म तथा उपयोग—संग्राही, पित्तरक्तसंशमन, यकृदामाशयबलदायक, हृदयबलदायक, लेखन तथा पित्तातिसारमें विशेष गुणदायक है। पित्तातिसारको बंद करनेके लिए एवं पित्तकी अधिकता एवं रक्तोद्वेगको नष्ट करके तथा मिचली एवं कै बन्द करनेके लिए हुम्पाज उत्रुज खिलाते हैं। इसे झाईं और दद्रुपर लगाते हैं। उष्ण हृत्स्पन्दनको दूर करने और हृदय एवं यकृदामाशयको बल देनेके लिए इसका मुरब्बा खिलाते हैं। महामारीके कालमें इसका खाना गुणदायक है। **अहितकर**–उष्ण प्रकृतिवालोंके मस्तिष्क एवं यकृत्को। **निवारण**–मधु और कालीमिर्च। **प्रतिनिधि**–नीबू और करना (नारंज)।

बिजौरेका छिलका—

प्रकृति—पहले दर्जेमें गरम और खुश्क; मतांतरसे दूसरेमें खुश्क।

गुणकर्म तथा उपयोग—उत्तमांगबलदायक, दीपन, वातानुलोमन, आहारपाचन, उत्क्लेशहर और विसूचिकाके लिए अगद है। हृदय, मस्तिष्क, यकृत् और आमाशयको बलदेनेको बिजौरेके छिलकेको साधारणतया उपयुक्त औषधियोंके साथ खिलाते हैं। आहारपाचन और वातनाशनके लिए अग्निमांद्य एवं उदरशूलमें इसका सेवन करते हैं। विसूचिकामें उपयुक्त औषधियोंके साथ इसे देते हैं। यह मिचली और क़ै को शांत करता तथा आमाशयको शक्ति देता है। **अहितकर**–शिरःशूल उत्पन्न करता है। **निवारण**–शहद। **मात्रा**–३ ग्रामसे ५ ग्राम (३ माशेसे ५ माशे) तक।

बीज—

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें गरम और दूसरेमें खुश्क; मतांतरसे दूसरे दर्जेमें गरम और पहलेमें खुश्क।

गुणकर्म तथा उपयोग—श्वयथुविलयन, आर्तवजनन और विशेषतः विषोंका अगद है। बिच्छू और साँप का विष दूर करनेके लिए इसे (**तुख़्म तुरंज**) को खिलाते हैं और लगाते हैं। यह बिच्छूके विषके लिए विशेष गुण-

दायक है । श्वयथुविलयनके लिए इसका लेप लगाते हैं और आर्तवजननके लिए भी देते हैं । **अहितकर**–उष्ण प्रकृति में शिरःशूल उत्पन्न करता है । **निवारण**–शहद और बनफ़्शा । **प्रतिनिधि**–करनाके बीज । **मात्रा**–३ ग्रामसे ५ ग्राम (३ माशेसे ५ माशे) तक ।

आयुर्वेदीय मत—बिजौरा अम्ल, लघु, दीपन, हृद्य और वमनको बन्द करनेवाला है । (च०सू०अ०४, २७; सु० सू० अ० ४६) । शूल अरुचि, विबन्ध, मदाग्नि, मंदात्य, हिक्का श्वास, कास, वमन, गुल्म, अर्श तथा पुरीष (मल), वात और कफके रोगोंमें बिजौराका केशर दिया जाता है (च० सू० अ० २७; सु० सू० अ० ४६) । यह मेध्य, दीपन, लघु और ग्राही है । **बिजौरेकी फलत्वक्**–तिक्त, दुर्जर तथा वात, कृमि और कफका नाश करनेवाली है । (सु० सू० अ० ४६) । **विजौरेका मांस**–मधुर शीतवीर्य गुरु, स्निग्ध तखा वात और पित्तका नाश करनेवाला है । (सु० सू० अ० ४६) । शूल, अजीर्ण, विबन्ध, मन्दाग्नि, अरुचि तथा कफ और वातके विकारोंमें बिजोरेका रस दिया जाता है (सु० सू० अ० ४६) ।

नव्यमत—बिजौरेका रस शोणितास्थापन और दीपन-पाचन है । छाल सुगन्धित और कटुपौष्टिक है । पत्र स्वेदजनन और वेदनास्थापन है । फल मृदु स्वप्नजनन (निद्राकारक) है । मूल ग्राही और थोड़ा वेदनास्थापन है ।

●

(४५५) बिदारीकंद

फैमिली : लेगूमिनोसी (Family : Leguminocae)

नाम—(हिं०) बिलाईकन्द, पतालकोंहड़ा, भुँई कोंहड़ा (कोहला); (सं०) विदारी, विदारीकन्द, भूमिकूष्माण्ड; (बं०) भूँई कुमड़ा; (गु०) खाखरवेल, फंगियो, फगडानो वेलो, बिदारीकन्द; (म०) भुई कोहला, बेंदर; (खर०) पताल कोंहड़ा; (ते०) नेल्ल गुम्मुड़ु; (मल०) मुक्षुकु; (जम्मू) सियालिया; (मा०) घोड़वेल; (ले०) **पुएरारिआ टूबेरोसा–(Pueraria tuberosa)** ।

उत्पत्तिस्थान—कोंकड़, कनाड़ा, हिमालय, नैपाल, उड़ीसा, बिहार और उत्तरप्रदेशकी पहाड़ियोंमें इसकी बेल मिलती है ।

वर्णन—यह एक त्रिपत्र वृक्षाश्रयी बड़ी लताके प्रायः गोल, बहुत बड़े सनाल कन्द हैं, जो देखनेमें सूरनसे मिलते-जुलते, कभी-कभी ४५ सें० मी० (१½ फुट)लम्बे और ३० सें० मी० (एक फुट) तक मोटे और ७५ सें०मी० (२½ फुट) तकके घेरेमें होते हैं । बाजारमें इनको काटकर सुखाई विभिन्न आकार-प्रकारकी पतली चपटी सफेद पपड़ियाँ विदारीकन्दके नामसे मिलती हैं । स्वाद मीठा कुछ-कुछ मुलेठीकासा तीक्ष्ण एवं तिक्त होता है । क्षीरविदारी इसका एक भेद है ।

उपयुक्त अंग—कंद ।

रासायनिक संगठन—इसमें पुष्कल पिष्ट, शर्करा १० प्रतिशत और अल्प प्रमाणमें आनुलोमिक राल है ।

प्रकृति—गरम और खुश्क । आयुर्वेदमें शीतवीर्य (शीतवीर्य (सु०) एवं स्निग्ध (रा०नि०) लिखा है ।

गुण-कर्म तथा उपयोग—वीर्यपुष्टि(सांद्र)कर, वाजीकर, श्वयथुविलयन और विशेषकर दीपन है । विदारीकन्द अधिकतया तरकारी बनाकर खाया जाता है । यह अत्यन्त पुष्टिकर और समस्त अंगोंको शक्ति देता है । इसको सुखानेके बाद अकेला या अन्य उपयुक्त औषधियोंमें साथ चूर्ण बनाकर शुक्रमेह और नपुंसक रोगीको खिलाते

हैं। श्वयथुविलयनके लिए इसे जलमें पीसकर लेप करते हैं। अहितकर—उष्ण प्रकृतिको। मात्रा—३ ग्राम से ६ ग्राम (३ माशे से ६ माशे) तक। जरासे घीमें सेंक, दूध और मिश्री मिला, पेय बनाकर देना चाहिए।

आयुर्वेदीय मत—विदारीकन्द मधुर, स्निग्ध, शीतवीर्य, बृंहण, बल्य, कण्ठ्य (स्वर्य), वर्ण्य, स्नेहोपग, पित्तसंशमन, स्तन्यजनन, वृष्य, मूत्रल, जीवनीय, रसायन, कफकर तथा वात, पित्त, रक्तविकार और दाहको दूर करनेवाला है। (च० सू० अ० ४, वि० अ० ८; सु० सू० अ० ३८, ३९, ४६; रा०नि०; ध० नि; भा० प्र०)।

नव्यमत—यह उष्ण, स्तन्यजनन, मूत्रजन, उत्तम पौष्टिक, आनुलोमिक, पित्तसारक और स्नेहन है। इससे भूख लगती है, अन्न पचता तथा दस्त साफ होता है एवं शरीरका वर्ण सुधरता है और वजन बढ़ता है। इससे कॉड-लिवर ऑयलसे भी उत्तम कार्य होता है। शारीरिक अथवा मानसिक कारणोंसे जब शिथिलता आई हो और वजन कम हुआ हो तब विदारीकन्द देते हैं। इससे पित्तका स्राव ठीक होता है और दस्त साफ आता है। दूध बढ़ानेके लिए इसे द्राक्षासवके साथ देते हैं।

●

(४५६) बिधारा

फ़ैमिली : कॉन्वॉल्वुलासे (Family : Convolvulaceae)

नाम—(हिं०) बिधारा; (अ०) शारफ़; (सं०) वृद्धदारु, छगलान्त्री; (ले०) ईपोमेआ पेटालोइडेआ **Ipomoea petaloidea** Chois. (पर्याय—*Operculina petaloidea* Chois.)।

वक्तव्य—यद्यपि यूनानियोंने शारफ़का स्वाद कटुत्वरहित (बेहिद्दत) और आयुर्वेदज्ञोंने वृद्धदारुका स्वाद कटु-तिक्त-कषाय लिखा है, जिसके आधारपर दोनोंको अभिन्न मानना आपत्तिहीन नहीं प्रतीत होता, तथापि यूनानियोंने एक स्वरसे इन दोनोंको एक माना है। अतएव यहाँ भी इसी विचारधारासे सहमत होते हुए ही इसका वर्णन किया गया है। चरक, सुश्रुत आदि प्राचीन आयुर्वेदीय संहिताओंमें तो 'वृद्धदारु' शब्दका उल्लेख नहीं मिलता, किन्तु मध्यकालीन टीकाकारोंने जिस द्रव्यको विधारा माना है, वह त्रिवृत् या निशोथ जैसी रेचक गुणवाली प्रतीत होती है और पाठमें उसका उल्लेख भी रेचक औषधियोंके (अधोभागहर)के गणमें मिलता है (इसका विस्तृत विवेचन सहायक लेखक डा० आर० एस० सिंह द्वारा शोधपत्रमें, जो जर्नल ऑफ रिसर्च इन इन्डियन मेडिसिनमें छप चुका है, किया जा चुका है)। इसी विचारधाराका प्रभाव भारतीय मुसलमान यूनानी निघण्टुकारोंपर भी पड़ा प्रतीत होता है। अस्तु तालीफ़शरीफ़ी, मख़्ज़नुल् अदविया, मुहीत आज़म एवं ख़ज़ाइनुल् अद्विया आदि यूनानी द्रव्यगुणविषयक ग्रन्थोंके परिशीलनमें यही प्रतीत होता है, कि उन्होंने विधारा (शारफ़)को निशोथ (तुर्बुद = त्रिवृत्)की ही एक जातिकी ओषधि माना है। मध्यकालीन युगमें यूनानी चिकित्सकों द्वारा विधाराकी प्रसिद्धि एक वाजीकर औषधिके रूपमें हुई, जो उत्तर भारतमें विशेषतः पंजाब एवं उत्तरप्रदेश आदिमें अभी भी है। वाराणसी, चुनार, इलाहाबाद एवं कानपुर आदि विधाराके क्रय-विक्रयके अभी भी महत्त्वपूर्ण बाजार हैं। मिर्जापुर एवं चित्रकूट आदि विन्ध्यक्षेत्रोंसे प्राप्त विधारा भी निशोथकी ही जातिकी एक लताके काण्ड एवं जड़ होते हैं। अतएव इन तथ्योंके ऊहापोहसे इसीको विधारा मानना अधिक समीचीन प्रतीत होता है।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष, विशेषतः मिर्जापुर, इलाहाबाद, चित्रकूट तथा कानपुर आदिके जंगली क्षेत्रोंमें इसकी लतायें होती हैं।

वर्णन—निशोथजातीय एक लता, जो प्रायः अतिविस्तृत एवं काष्ठीय होती है। काण्ड मसृण और उसपर २-४ उभरी हुई रेखाएँ अथवा धारायें होती हैं। नीचेकी पत्तियाँ लट्वाकार, प्रायः १५ सें०मी० × १३ सें०मी० बड़ी, सवृन्त (वृन्त ५ सें०मी० से ७½ सें०मी० (२ से ३ इंच) लंबे) और ऊपरकी पत्तियाँ लट्वाकार से प्रासवत्से प्रासवत्—आयताकार ३·७५ सें०मी० से ७·५ सें०मी० (१·५ इंचसे ३ इंच) बड़ी, चिकनी और रक्ताभ तथा दृढ़मध्यपर्शुकवाली होती हैं। पुष्प लगभग ३·५ सें०मी० (१·५ इंच) लंबे, न्यूनाधिक पीले (कभी-कभी श्वेत भी) हल्ले रोमश होते हैं। पुष्पकाल मार्चसे मई तक (कभी कुछ पहले भी)। पत्राग्र द्वि-विभक्त या कुण्ठितरोमश होता है। फल (Capsule) १·५ सें०मी० (०·६ इंच), अंडाकार (Ovoid), फलत्वक् पतला और चारफाँकवाला, और भीतर दो-गह्वरयुक्त होते हैं। बीज सूक्ष्म मखमली होता है। फलनेका समय अप्रैल से जून तक होता है। इलाहाबाद तथा वाराणसीके बाजारोंमें मुख्यतः इसीके मूल तथा काण्ड (दुग्ध युक्त) विधाराके नामसे व्यवहृत होते हैं। बाजारमें इसके विभिन्न आकार-प्रकारके काटकर सुखाये हुए टुकड़े मिलते हैं, जो बाह्यतः खाकी या भूरे, हल्के और मुलेठीके बराबर मोटे होते हैं। इनके कटे हुए भागपर गोंदकी तरह एक चीज (जमा हुआ दूध Resinous latex) लगी होती है। स्वाद मामूली कड़ुआहट लिए फीका होता है। इसका ५-६ ग्राम चूर्ण फाँकनेसे बिनाकष्टके ४-५ पतले दस्त आ जाते हैं। यह खानेमें बुरा भी नहीं लगता। इसका कार्मुक वीर्य विशेषकर इसकी मूलत्वक् एवं काण्डत्वक्में होता है।

योग – हब्ब असगंध (बयाजकबीर)।

प्रकृति—पहले दर्जेमें गरम और खुश्क। आयुर्वेद मतानुसार उष्णवीर्य (कै०नि०)।

गुण-कर्म तथा उपयोग—सारक, श्वयथुविलयन, वाजीकर और जलीय श्लेष्म विरेचनीय है। अधिकतया शीतल कफरोगों, जैसे–आमबात, वातरक्त और जलोदरमें इसका उपयोग करते हैं। अहितकर–उष्ण-प्रकृतिको। निवारण–आलूबोखारेका जुलाल। प्रतिनिधि–निसोथ। मात्रा–३ ग्रामसे ६ ग्राम (३ माशासे ६ माशा) तक।

आयुर्वेदीय मत—विधारा कटु, तिक्त, कषाय, उष्णवीर्य, रसायन, सारक, शुक्र-आयु-बल-मेधा-जठराग्नि-स्वर और कान्ति देनेवाला तथा शोथ, आमवात, वातरक्त, व्रण, प्रमेह और कफको दूर करनेवाला है। (सु०सू० अ० ३९; कै०नि०)।

विधाराकी जड़का चूर्ण ३-६ माशा देनेसे दस्त साफ होता है। समभाग विधारा और असगंधका चूर्ण ३ माशा दूधके साथ खानेसे श्वेतप्रदर और शुक्रदोष मिटता है।

●

(४५७) बिन्ताफलु(लू)न

फ़ैमिली : रोजासे (Family : Rosaceae)

नाम—(अ०) बिन्ताफ़ुलुन(फ़्लून), बिन्तातूस, ज़ूख़म्सतेल औराक़, ज़ूख़म्सतेअक़्साम; (ले०) पोटेन्टिल्ला टोर्मेन्टिल्ला (**Potentilla tormentilla** Neek.); (अं०) सेप्टफोइल (Septfoil), टोर्मेन्टिल्ला (Tormentilla)।

वक्तव्य—'बिन्ताफ़्लुन' यूनानी 'पेन्टाफाइलोन (Pentaphyllon)' से, जिसका अर्थ "पंचपत्र" है, अरबी बनाया गया है। 'ज़ूख़म्सतेल औराक़' अरबीशब्द इसका भाषान्तर है।

उत्पत्तिस्थान—यूरोप, ग्रेट-ब्रिटेन। यह तरभूमिमें तथा नदियोंके किनारे होता है।

वर्णन—एक छोटा क्षुप, जिसमें ४५ सें० मी० से ६७ सें० मी० (२–३ बित्ता) लम्बी और पतली शाखायें (Stalks) होती हैं। प्रत्येक शाखाके सिरेपर पाँच-पाँच पत्ते लगे होते हैं। कभी-कभी पत्ते अधिक भी तथा दो तरफ होते हैं। पत्र लम्बे और संकुचित, 'नाना'के पत्रके समान, पत्रप्रांत सिरेपर दंतुर होते हैं। पुष्प चार पंखुड़ीयुक्त, छोटे और रङ्गमें पीले होते हैं। जड़ मटमैले भूरे रङ्गकी, कठिन, रम्भाकार, अग्रकी ओर सहसा गोपुच्छाकार (Tapering) टुकड़ोंके रूपमें, धरातलपर खुरदरी, अनियमित गोलाकार उभारों और क्षतचिह्नजन्य खातों (Scars)-से युक्त होती है। उक्त मूलपर टूटे हुये महीन, पतले आकारके (Filiform) उपमूलोंके चिह्न भी होते हैं। टूटे हुये तल अन्दरसे हलका भूरापन लिये लाल होते हैं, जिनमें अन्दरकी ओर चौड़ी मज्जा (Pith) का भाग होता है, जिसके चारों ओर काष्ठीय पूलों (Wood bundles)का विच्छिन्न एक या दो वृत्त होते हैं। इस प्रजातिकी कतिपय जातियाँ (Species), जैसे पो० रेप्टांस (*P. reptans* L.) तथा पो० सुपीना (*P. supina* L.) भारतवर्षमें होती हैं, जो इसका उत्तम प्रतिनिधि हो सकती हैं। किसी-किसीने इसे भ्रमवश 'हुलहुल' माना है, जो इसका प्रतिनिधि भले ही हो सकता है किन्तु वास्तविक द्रव्य नहीं।

रासायनिक संगठन—जड़में टार्मेनोल (Tormenol) नामक सत्व होता है।

उपयुक्त अंग—साधारणतया जड़, पर कभी-कभी क्षुप।

कल्प—प्रवाहीसार : मात्रा २ मि० लि० से ४ मि० लि० ($\frac{१}{२}$ ड्राम से १ ड्राम)। फाण्ट : (१ पाइण्ट उबलते हुये जल में २$\frac{१}{२}$ तोला) : मात्रा–सुरापानग्लासभर या आवश्यकतानुसार; द्रव (Lotion) आदि।

प्रकृति—समशीतोष्णताके निकट और तीसरे दर्जेमें रूक्ष; मतांतरसे दूसरे दर्जेमें गरम।

गुण-कर्म तथा उपयोग—यह प्रवल मूत्रजनन, बस्तिवृक्काश्मरिछेदक, निःसारक और उदरकृमिनाशम है। इसके पत्ते पीसकर पीनेसे श्वित्रका नाश होता है। नमकके साथ इसके पत्ते पीनेसे जलोदर, शूल और वायुका नाश होता है। इसके पत्तोंका रस लेकर तीन बूँद कोष्णकानमें टपकानेसे कानका दर्द जाता रहता है और फोडिया फूट जाती है। इसका एक पत्ता और धतूरेका एक पत्ता चौथियाके रोगीको खिलानेसे एक बारमें लाभ हो जाता है। ऐसा भी करते हैं कि इसके पत्तोंके बराबर कालीमिर्च लेकर दोनोंको पीसकर मुद्गप्रमाणकी गोलियाँ बनाकर चार-दिन तक एक-एक गोली खिलाते हैं। इसके क्षुपको घोंट-पीसकर पीनेसे आतशक आराम हो जाता है। इसके काढ़ेसे गुदप्रक्षालन करने और गुदापर तरेडा देनेसे बवासीरके मस्से ठीक हो जाते हैं और बवासीरका खून बन्द हो जाता है। विषों और सांघातिक औषधियोंका अगद है। इसके पत्तोंके काढ़ेकी कुल्लीसे दन्तशूल और गलेकी कर्कशता (खरखराहट) जाती रहती है। जड़को सिरकेमें पकाकर लेप करनेसे कण्ठमाला, कठिन एवं कफज शोथ विलीन हो जाते हैं और कक्षारूप फुन्सियोंका जिसे मकड़ी मूतना (नम्ला) भी कहते हैं प्रसार रुक जाता है। पुरानी मृगीमें इसके पत्तोंको शराबके साथ एक मास पर्यन्त पीनेसे उपकार होता है। इसके पत्तोंको सुखा-पीसकर सद्यःजात क्षतोंपर छिड़कनेसे वे भर जाते हैं। नासूरमें इसका लेप उपकारी है। अवरोधजन्य कामलामें ९ या १० रत्ती इसके पत्तोंका रस पीनेसे लाभ होता है। इसके खानेसे बाह्याभ्यन्तरित रक्तस्राव बन्द होता है। शय्यापर इसके पत्ते बिछाकर सोनेसे नींदमें शुक्रक्षरण (स्वप्नदोष) नहीं होता। जलवृषणमें इसका सेवन गुणकारी है। अहितकर–आमाशयको। निवारण–सिकंजबीन। प्रतिनिधि–प्रतिविष या अगद रूपमें उस्कूलूकन्दरयून और मृगीमें जमुर्रद। मात्रा–३·५ से १०·५ ग्राम (३$\frac{१}{२}$ माशेसे १०$\frac{१}{२}$ माशे) तक।

नव्यमत—बल्य और कषाय। जड़ अपेक्षाकृत अधिक बलवती होती है। इसका पुष्कल उपयोग होता है और अन्त्रशैथिल्य, अतिसार, विसूचिका आदिके सभी रोगी (Case) में इसका उपयोग किया जा सकता है। पुराने घावों तथा व्रणोंके लिये इससे बने द्रवका धावन रूपमें प्रयोग होता है। कटे हुये स्थानों, घावों आदिमें इसका प्रवाहीसार रक्त स्तम्भनका कार्य करता है। इस जड़की गणना सर्वाधिक वीर्यवान् एवं निरापद कषायोंमें की जा सकती है। (पा० सा०)।

●

(४५८) बिल्लीलोटन

फ़ैमिली : लाबिआटी (Family Labiatae)

नाम—(हिं०) बिल्लीलोटन; (यू०) (Mellisophullon D. 3.108); (अ०) अल्बादरञ्जबूया, अल्बक़्लतुल् उत्रुजिया, हबक़ रैहानी (इ० बै० संचिका १, पृ० ७३); मुफ़र्रेहुल्क़ल्ब, बादरंजबूया; (फा०) बादरंगबूया (नारंगगन्धी); (ले०) **मेलीस्सा आफ्फ़ीसिनालिस (Melissa officinalis** Linn.); (अं०) **अरेबियन या जेन्टिल बॉम** (Arabian or Gentle balm), **स्वीट या लेमन बॉम (Sweet or Lemon balm)** बॉम (Bawm), बाम (Balm)।

वक्तव्य—अरबी 'बादरंजबूया', फ़ारसी 'बादरंगबूया (बादरंग = तुरंज; बूयः = गंधावाली)' से अरबी बनाया गया है।

उत्पत्तिस्थान—मध्य एशिया विशेषतः फारस, यूरोप और उत्तर अमरीका। भारतवर्षमें इसका आयात फारससे होता है।

वक्तव्य—इसकी एक भारतीय जाति भी है, जिसको **मेलीस्सा पार्वीफ्लोरा (M. parviflora,** Benth.) कहते हैं। यह समशीतोष्ण हिमालयमें गढ़वालसे सिक्किम और खसियाकी पहाड़ियोंमें होती है। पंजाबमें इसको औषधिके काममें लेते हैं। अपने यहाँ होने वाली **नीलेफूलके** बिल्लीलोटनको लेटिनमें **नेपेटा हिन्दोस्ताना (Nepeta hindostana** Haines.) या **नेपेटा रूडेरालिस (N. ruderalis** Hook.) कहते हैं। यह अफगानिस्तान, पंजाब, बंगाल, मध्यभारत तथा दक्षिणभारतमें होती है। इसका एक भेद और है, जिसका फूल सफेद और पत्र लंबोतरा होता है। कश्मीर आदि हिमालयके पहाड़ोंमें होनेवाला बिल्लीलोटन इसी कुलकी भिन्न वनस्पतिका नाम है। मैदानोंमें कुछ लोग इसे ही बिल्लीलोटन कहते हैं।

वर्णन—बाजारमें मिलनेवाले विदेशी द्रव्यमें जो अत्यन्त टूटी-फूटी अवस्थामें होती है, प्रधानतः इसके कांड जो चौकोर, जूफासे अधिक बड़े और कुछ-कुछ नीली झाईंयुक्त होते हैं, तथा फल होते हैं। पत्र आमने-सामने अंडाकृति, सवृंत, १½ इंच लम्बा, पतला, पत्रप्रांत गम्भीर दंतित, रोमयुक्त; कटोरी (पुष्प वाह्यावरणकोष) धारीदार, रोमयुक्त, पंचविभागयुक्त, जुफाए याबिसके इतनी लंबी नहीं और रंगविरहित; बीज ४, नग्न, भूरे, तिकोने, लगभग मसृण, हिलम (Hilum) के प्रत्येक पार्श्वपर सफेद धब्बायुक्त; फूल अक्षकोणीय, लगभग ६ फूल एक स्तवकमें और क्षुद्रवृंतपर स्थित होते हैं। स्वाद तिक्त; गंध मंद सुगंधयुक्त। ताजे क्षुपसे बिरोजेकी तरह मनोरम सुगन्ध आती है; इसलिए इसको बादरंजबूया कहते हैं। सूखे क्षुपपर उक्त सुगंध नहीं होती। इस क्षुपकी गंधपर बिल्ली मोहित होती है। जब उसको देख लेती है तब मस्त होकर मारे खुशीके उसपर लोटने लगती है। इसीलिए इसको बिल्लीलोटन कहते हैं।

रासायनिक संगठन—पत्रमें अन्य उपादानोंके अतिरिक्त स्वल्पप्रमाणमें कषायद्रव्य (Tannins), एक तिक्तवीर्य और लगभग १/८ से १/४ प्रतिशत रंगरहित या कुछ-कुछ पीला उत्पत् तेल होता है। तेलमें स्टियरोप्टीन होती है।

उपयुक्त अंग—क्षुप (पंचांग)।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम और खुश्क।

गुण-कर्म तथा उपयोग—हृदयबलोल्लासकारक, सौदापाचन, रक्तप्रसादन, मुखदौर्गन्ध्यहर, श्वयथु-विलयन एवं उष्णताजनन है और विशेषकर सौमनस्यजनन तथा बलवर्धनके लिए प्रयुक्त होता है। अधिकतया अपस्मार,

पक्षवध और अर्दित आदि सरीखे सौदा एवं कफजन्य रोगोंमें तथा हृदयबलवर्धन एवं सौमनस्यजननके लिए बिल्लीलोटनका उपयोग करते हैं। आमवात और स्तनशोथपर इसका लेप लगाते हैं। मुखदौर्गन्ध्यनिवारणके लिए इसे मुखमें चबाते हैं। सौदा और कफके रोगोंमें इसका शर्बत और अर्क प्रयुक्त होता है। अहितकर—पार्श्वगत रोगोंमें इसका उपयोग अहितकर है। निवारण—कुंदुर और बबूलका गोंद। प्रतिनिधि—अबरेशम। मात्रा—५ ग्रामसे ७ ग्राम (५ माशेसे ७ माशे) तक।

नव्यमत—वातानुलोमन, स्वेदल, ज्वरहर। यह हलका स्वेदप्रवर्तन करता और ज्वररोगियों के लिये सुरुचिपूर्ण एवं शीतल चायका काम देता है। यह हृदय और मनको प्रफुल्लित करता है और मालिनखोलिया (मद) या कृष्ण पित्त अर्थात् सौदाजन्य दुःखदायिनी चिंता और कुविचारोंको दूर भगाता है तथा हृदयको निद्राभिभूत जैसी मूर्छा एवं संमोह आदिसे पुनर्जीवित करता है।

●

(४५९) बिसखपरा

फ़ैमिली-फीकोइडे (Family : Ficoideae)

नाम—(हिं०) बिसखपरा, पथरी, पाथ्री; (अ०) हन्दक़ूक़ा; (फा०) इस्पिस्त; (पं०) विशकाप्रा; (मला०) चरण; (तें०) गलिजेरु; (क०) बिलेगणजलि; (सं०) वर्षाभू, वसुक; (म०) पांढरी बंसु, खापरा, (गु०) श्वेत-साटोडी, वसेडों; (को०) कोचोआ; (ले०) ट्रिआंथेमा पोर्टूलाकास्टुम **Trianthema portulacastrum** Linn. (पर्याय—*T. monogyna* L.)।

वक्तव्य—राजनिघण्टुकारने 'वर्षाभू' और 'वसुक' के नामोंसे इसकी दो जातियों (Species) का उल्लेख किया है।

उत्पत्तिस्थान—सर्वत्र भारतवर्ष। चौमासेमें इसके स्वयंजात पौधे घासको भांति प्रचुरतासे पाये जाते हैं।

वर्णन—यह एक मांसल प्रसरणशील, द्विविभक्त शाखाओं वाली क्षुद्र वनस्पति है, जो बरसातमें निकलती है, और शीतकाल तक सूख जाती है। पत्तियाँ प्रायः अभिमुख, परंतु हरएक जोड़ेमें एक छोटी और दूसरी बड़ी (पुनर्नवा की तरह) होती हैं। रूपरेखामें पत्तियाँ अधिलट्वाकार या अण्डाकार और प्रायः लाल एवं लहरदार तट (Margin) वाली होती हैं। द्विविभक्त शाखाओंके बीचसे एकाकी, श्वेत या गुलाबी रंगके फूल निकलते हैं। इस विचारसे सफेद और गुलाबी इसके यह २ भेद होते हैं। यह वनस्पति प्रायः चौमासेमें सर्वत्र पायी जाती है। पत्तोंका शाक होता है। अनेक स्थानके वैद्य इसे ही 'पुनर्नवा' और कुछ इसे 'श्वेतपुनर्नवा' मानते हैं। परन्तु यह ठीक नहीं है। पुनर्नवा इससे भिन्न वनस्पति है। दोनोंके रूप और गुणोंमें बहुत कुछ साम्य होता है। इससे यह गड़बड़ी हुई, ऐसा प्रतीत होता है। इस प्रकारका भ्रामक उल्लेख भारतीय औषधीय वनस्पतियोंपर अंग्रेजीमें लिखे आधुनिक ग्रन्थोंमें भी प्रायः मिलता है।

उपयुक्त अंग—पत्र, बीज और मूल।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम और खुश्क। आयुर्वेदमतेन उष्णवीर्य (सु०) एवं रूक्ष (रा० नि०) है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—मूत्रार्तवजनन, लेखन, श्लेष्मनिःसारक, श्वयथुविलयन, ज्वरघ्न और वृश्चिक विषनाशन है। बीज (तुख्म विषखपरा) वाजीकर और वातानुलोमन है। बद्धमूत्रको खोलनेके लिए ताजे विषखपरेका स्वरस निकालकर गोदुग्धमें मिलाकर पिलाते हैं और जलोदर, कामला तथा विबंधयुक्त अतिसारमें इसे बिना

दूधके उपयोग करते हैं। यकृत्प्लीहाकी कठोरता और बस्तिवृक्काश्मरीको दूर करनेके लिए भी इसका उपयोग करते हैं। जाला एवं फूलीमें विषखपरेकी जड़को जलमें घिसकर सलाईसे लगाते हैं। नारुवा, फोड़ा और ग्रीवा शोथमें ताजे विषखपरेकी जड़को पीसकर लगाते तथा श्वास और कासमें उपयोग करते हैं। इसे सौदा और कफजन्य आन्तरिक ज्वरमें खिलाते हैं। बिच्छूका जहर नष्ट करनेके लिए विसखरपराको कूटकर काटे हुए स्थानपर बाँधते हैं। जड़को जलमें घिसकर पतला लेप करते हैं। इसके बीजोंको वाजीकर माजूनोंमें डालकर खिलाते हैं। **अहितकर**—वृक्षके लिए। **निवारण**—काहू, कतीरा और शहद। **मात्रा**—पत्र स्वरस ६ ग्रामसे १२ ग्राम (६ माशेसे १ तोला) तक; जड़ ३ ग्रामसे ५ ग्राम (३ माशेसे ५ माशे) तक और बीज २ ग्रामसे ३ ग्राम (२ माशेसे ३ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—विसखपरा (वर्षांमू और वसुक) मधुर, तिक्त, कषाय, कटु, क्षारयुक्त, उष्णवीर्य, दीपन, रूक्ष, रुचिकर, सारक, हृदयको हितकारी तथा वात, कफ, अर्श, व्रण, पाण्डु, विष और उदररोगको नाश करनेवाला है। (रा० नि०; ग० नि०)।

(४६०) बिही

फ़ैमिली : रोज़ासे (Family : Rosaceae)

नाम। फल (हिं०) बिही, बीहि, कश्मीरकी नासपाती; (यू०) क्राइसोमिलिआ, किडोनिआ; (अ०) सफ़रजल; (फा०) बि(बे)ह, बिही, आबी, तौज; (खुरासान) बिही; (क०) बंमचूंठ, बमसुतु, बम्सुंत; (म०) बीहि; (अं०) क्विन्स (Quince)। बीज (हिं०) बिहीदाना, बेहदाना; (अ०) हब्बुस्सफ़रजल; (फा०) बिहीदाना, बेहदानः, तुख्मे आंबी; (गु०) मुगलाइ बेदाणा; (म०) बिहीदाणा, मोंगली बेदाणा; (अं०) क्विन्स सीड (Quince Seed)।

वक्तव्य—वृक्षको लेटिनमें **पीरुस सीडोनिया Pyrus cydonia** Linn. (पर्याय—**सीडोनिआ वुल्गारिस** *Cydonia vulgaris* Pers.; **सीडोनिया ओबलांगाटा C. oblongata** Mill.) कहते हैं।

उत्पत्तिस्थान—ईरान, अफगानिस्तान काबुल और पेशावर तथा उत्तर-पश्चिम भारतवर्षके कश्मीर और पंजाब आदि प्रदेश। अधिकतया काबुलसे इसके फल यहाँ आते हैं।

वर्णन—यह एक छोटे वृक्ष वा झाड़का प्रसिद्ध फल है, जो सेव या (नाशपाती), अमरूदसे मिलता-जुलता, उसकी आकृतिका, पकनेपर सुनहले पीले रंगका, मनोहर सुगन्धयुक्त और खानेमें बहुत स्वादिष्ट होता है। मीठा, खट्टा और खटमिट्ठा भेदसे यह तीन प्रकारका होता है। बिहीदाना इसीके बीज हैं, जो लगभग ६·२५ मि० मी० ($\frac{१}{४}$ इंच) लम्बे, अण्डाकृति या लंबगोल, त्रिकोणाकृति अर्थात् तीन तरफसे दबे हुए होते हैं। और उनपर एक सफेद पिच्छिल (लबाबदार) द्रव्य लगा हुआ होता है, जिसके कारण ये बीज एक दूसरेसे चिमटे हुए होते हैं। रंगत ललाई लिए भूरी होती है। जलमें डालनेसे बीज फूल आते हैं और एक प्रकारका फीका लबाब (पिच्छा) बना देते हैं। ये ईरान, कश्मीर आदिसे यहाँ आते हैं।

रासायनिक संगठन—बीजमें साइडोनिन (Cydonin) नामक एक विशिष्ट प्रकारका लबाब (पिच्छा) होता है। ताजे बीजमें एक पीला एवं बादामके तेल जैसा मंदगन्धी तेल १५·३ प्रतिशत होता है। लबाबमें निर्यास और लबाब मिले हुए पाये जाते हैं। बीजकी राखमें जवाखार, सज्जीखार, मैग्नीसिया तथा कैल्सियम प्रभृति द्रव्य होते हैं।

उपयुक्त अंग—फल और बीज ।

कल्प तथा योग—जुवारिश सफ़रजली काबिज वा मुसहिल, मुरब्बा बिही, हब्बबिहीदाना, रुब्ब बिही, लऊक बिहीदाना (जदीद), शर्बत बिहीदाना ।

फल—

प्रकृति—मीठी बिही अनुष्णाशीत (गरमी और सरदीमें सम) और पहले दर्जेमें तर है । खट्टी बिही पहले दर्जेमें शीत और दूसरेमें खुश्क है ।

गुण-कर्म तथा उपयोग—सौमनस्यजनन, हृदयमस्तिष्कबलवर्धन, यकृदामाशयबलदायक, संग्राही और मूत्रजनन है । मेवाकी भाँति बिही पुष्कल खाई जाती है । यह भारी एवं काबिज है । हृदय और मस्तिष्कको उल्लास एवं शक्ति पहुँचाती और उष्णप्रकृतिवालोंके लिए सात्म्य है । हृदयदौर्बल्य, उष्ण हृत्स्पंदन, पित्तातिसार और यकृदामाशयका संताप शमन करनेके लिए इसका शर्बत, रुब्ब (सत) और मुरब्बा सेवन कराते हैं । प्यास, मिचली और क़ै शान्त करनेके लिए इसे अकेला या उपयुक्त औषधियोंके साथ देते हैं । अहितकर–कास, शूल, हिक्का और कम्पवात उत्पन्न करता है । निवारण—शहद और अनीसूँ । प्रतिनिधि—अमरूद और सेब । मात्रा—१ तोलासे ५ तोले तक ।

बिहीदाना—

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें शीत एवं तर ।

गुण-कर्म तथा उपयोग—फिसलानेवाला, पिच्छिलताकारक, संतापहर और उष्ण अतिसारमें विशेष गुणदायक है । गरम प्रसेक और प्रतिश्याय, गरम खाँसी कंठकी कर्कशता, जिह्वापाक, उरःक्षत और राजयक्ष्मा, पेचिस, अन्त्रक्षोभ और उष्ण ज्वरोंमें बिहीदानेका लबाब उपयोग किया जाता है । इसका मग्ज, उरःक्षत और कासमें प्रयुक्त होता है । अहितकर–आमाशयको ढीला एवं दुर्बल (मंदाग्नि) करनेवाला है । निवारण–चीनी और सौंफ । प्रतिनिधि–इसबगोल । मात्रा–३ ग्रामसे ५ ग्राम (३ माशे से ५ माशे) तक ।

नव्यमत—बिहीदानाका लबाब शीतवीर्य, स्नेहन, ग्राही, मूत्रजनन, कफघ्न और पौष्टिक है । राख बल्य है ।

●

(४६१) बीजबंद

वर्णन—यह बरियरा(बला)के बीज हैं, जो प्याजके बीजकी तरह तिकोने, खाकसतरी, गहरे भूरे या काले रंगके होते हैं । इनका स्वाद फीका और बुरा होता है । प्रायः बाजारोंमें बीजबन्द मिल जाता है । गुजरातीमें इसे 'बलदाणा' कहते हैं ।

वक्तव्य—डीमकके मतसे यह चूका (Rumex)की किसी जातिके बीज हैं । मुरेंके मतसे अंजबार जातीय पौधे पोलीगोनुम आवीकुलारे (**Polygonum aviculare** Linn.) के बीजको सिन्धमें बीजबंद कहते हैं । सम्भवतः इस नामसे इसकी कई जातियोंके मिले हुये बीज बाजारमें मिलते हैं, ऐसा डीमकका मत है । अधिकांश लोग बरियारा (बला) के बीजको बीजबंद कहते हैं ।

कल्प तथा योग—सफ़ूफ़ बीजबंद।

प्रकृति—पहले दर्जेमें सर्द एवं खुश्क।

गुण-कर्म तथा उपयोग—वीर्यपुष्टि (सांद्र)कर, शुक्रस्तम्भन और बाजीकर। शुक्रमेह, स्वप्नदोष और शुक्रतारल्य एवं शीघ्रपतनको दूर करनेके लिए बीजबंदका पुष्कल उपयोग किया जाता है। सफ़ूफ़ बीजबंद इसका प्रसिद्ध योग है, जो उक्त रोगोंमें प्रयुक्त होता है। अहितकर—आनाहकारक। निवारण—शुद्ध मधु और मस्तगी। प्रतिनिधि—इमलीके बीज (चीआँ)का मग्ज। मात्रा—३ ग्रामसे ५ ग्राम (३ माशेसे ५ माशे) तक।

●

(४६२) बुत्म (बतुम)

फ़ैमिलो : आनाकार्डिआसे (Family : Anacardiaceae)

नाम। वृक्ष (हिं०) खं(खि)जक, अल्बतुम (इ०बै०), शज्रुल्बुत्म, बुत्म; (फा०) दरख्ते बुन; (ले०,पीस्टासिआ टेरेबींथुस (**Pistacia terebinthus** Linn.); (अं०) टेरीबिन्थ या चिआन टर्पेनटाइन ट्री (Terebinth or Chian Turpentine Tree)। फल (हिं०) बुत्मका फल;(अ०)अल् हब्बतुल्ख(खि)जरा (इ० बै० संचिका २/५), हब्बुल्बन, हब्बुल्बुत्म; (फा०) बुन, दंदानः, सब्ज़दाना। **पत्रपर बनी गाँठें अर्थात् कृमिगृह या गॉल्स (Galls)**—(फा०; हिं०; द०) गुलेपिस्ता; (बम्ब०) बूज़गंज। **रालदारगोंद** (हिं०) बुत्मका गोंद, खिजक, काबुली(बम्बईकी)मस्तगी; (अ०) इलकुल् बुत्म; (अं०) बॉम्बे या काबुल मैस्टिक (Bombay or Kabul Mastich)।

उत्पत्तिस्थान—ईरान, अफगानिस्तान, काबुल, अफरीका और यूरोप।

वर्णन—यह एक बड़े वृक्षका हरे रंगका फल है। इसे हब्बतुल्ख़िज़रा कहते हैं। इसके तोड़नेपर अन्दरसे पिस्तई रंगका चपटासा मग्ज निकलता है, जो खानेमें स्वादिष्ट होता है। इसे मग़ज़ तुख्मबुत्म कहते हैं। इसको दबाकर तेल निकाला जाता है।

उपयुक्त अंग—फल (बीज का मग़ज़), इससे निकाला हुआ तेल, गोंद(काबुली मस्तगी), गुलेपिस्ता—यह सभी औषध्यर्थ व्यवहृत होते हैं।

कल्प तथा योग—लऊक़ इलकुल् अंबात।

फल—

प्रकृति—उष्ण एवं रूक्ष (मतांतरसे तीसरे दर्जे में)।

गुण-कर्म तथा उपयोग—वाजीकर, श्लेष्मनिस्सारक, सर, लेखन और मूत्रार्तवजनन। हब्बतुल्खिजराको अधिकतया वाजीकर माजूनकल्पोंमें डालकर नपुंसक रोगियोंको खिलाते हैं। चेहरेका रंग निखारने, दद्रु, झाईं और छीप जैसे त्वचाके रोगोंके नष्ट करनेके लिए इसका लेप लगाते हैं। कास और श्वासमें कक्षको कफसे शुद्ध करनेके लिए तथा बैठी हुई आवाजको खोलनेके लिए इसको खिलाते हैं। अहितकर—मस्तिष्क और आमाशयको। निवारण—कतीरा, बनफ़्शा और अर्क गुलाब। प्रतिनिधि—तरबूजके बीज, कढ़वे बादाम, अखरोट और पिस्तेका मग़ज़। मात्रा—३ ग्रामसे ५ ग्राम (३ माशेसे ५ माशे) तक।

●

(४६३) बूजीदान (वलायती)

फ़ैमिली : कॉम्पोजीटी (Family : Compositae)

नाम—(भा० बाजार) मीठा अकरकरा, बोजीदान; (अ०; फा०) बूजीदान; (ले०) **टानासेटुम ऊम्बेल्लीफेरुम् (Tanacetum umbelliferum)**; (अं०) स्वीट पेलिटरी (Sweet Pellitory)।

उत्पत्तिस्थान—पूर्वीईरान।

वर्णन—यह अकरकराकी जातिके एक क्षुपकी प्रसिद्ध जड़ है जो ६-१० इंच लम्बी उँगलीके बराबर या उससे बड़ी नुकीली, जरा पिलाई लिए हुए असली अकरकराके समान होती है। यह बाहरसे ऊदी रंगवाली, खुरदरी, टेढ़ी-मेढ़ी, फटी हुई, रेखायुक्त, सिकुड़ी हुई, थोड़ा मोड़ते ही टूट जानेवाली, काटनेसे चक्राकार, मध्यमें कुछ लाली लिए हुए होती है। इसकी छाल काष्ठसे चिपकी रहती है। इसमें अकरकरे जैसी, किन्तु उससे मंद सुगंध होती है। यह अकरकरेसे अधिक काष्ठमय एवं सत्वरहित है। इसे मीठा अकरकरा इसलिये नहीं कहते कि यह बहुत मीठी होती है, प्रत्युत इसलिए कि इसमें चरपरा वीर्य अत्यल्प होता है। भारतीय हकीम बूज़ीदानके नामसे इस जड़को ही औषधिके काममें लेते हैं।

रासायनिक संगठन—इसमें **पायरेथ्रिन** (Pyrethrin) नामक तीक्ष्ण लालाजनक द्रव्य अकरकरेकी अपेक्षया अत्यल्प प्रमाणमें होता है।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम और खुश्क।

गुण-कर्म तथा उपयोग—पित्तविरेचन, वाजीकर, वातनाड़ी और संधिसंशोधन। बूजीदानको वाजीकर चूर्णों तथा माजूनोंमें डालकर उपयोग करते हैं। इसका चूर्ण दूधके साथ सेवन करना वाजीकर एवं पुष्टिकर है। वातनाड़ियों और संधियोंको गाढ़े दोषोंसे शुद्ध करनेके कारण यह आमवात तथा वातरक्तमें लाभ पहुँचाती है। **अहितकर**–वृषणोंके लिये। **निवारण**–खालिस शहद और राई। **प्रतिनिधि**–सफेद बहमन। **मात्रा**–३ ग्रामसे ५ ग्राम (३ माशेसे ५ माशे) तक।

●

(४६४) बूली(लू)गाली, सनेगा

फ़ैमिली : पॉलीगालासे (Family : Polygalaceae)

नाम—(अ०) बूलीग़ाली; (यू०) पोलीगाली या पोलीगालोन (Polygalon), सनीगा; (ले०) **पॉलीगाला सेनेगा (Polygala senega** Linn.); (अं०) सेनेगा (Senega), सेनेका (Seneka), स्नेकरूट (Snake root)। जड़ (अ०) जज़रे सनीग़ा; जज़रे बूलीग़ाली; (ले०) सेनेगा राडिक्स (Senega Radix); (अं०) सेनेगारूट (Senega Root)। वक्तव्य—सेनेगा संज्ञा 'सनीगा' से व्युत्पन्न है, जो एक प्राचीन अमरिकीय जातिका नाम है। इस जातिके लोग इस वनस्पतिका प्रयोग सर्पविषमें करते थे। सुतरां उक्त जातिके नामसे ही यह अभिहित हो गया है। 'बुलीगाली' यूनानी 'पालीगाली' संज्ञाका अरबी रूपान्तर है। पहले इसे 'बोलूग़ाली' कहते थे। ईर्स से मुहीत आज़ममें 'बोलूग़ालीन' नामसे उक्त औषधिका संक्षिप्त वर्णन है।

इतिहास—प्राचीन यूनानी और रूमी हकीमों, यथा–दीसकूरीदूस और प्लाइनी आदि ने 'पौलीगॉलोन' नामसे इसका वर्णन किया है। अरबदेशीय चिकित्सकोंने भी अपनी रचनाओंमें उक्त नामका उल्लेख किया है, जिनमेंसे इब्नबैतारकी एक आदरणीय रचना है, जिनमें दीसकूरीदूस और जालीनूसके उद्धरण प्रमाणतया प्रतिलिपि किए गये हैं। अमरीकाके आदिवासी (सनीगा जातीय) सर्पदष्टके श्वासकृच्छ्रकी दशामें इस जड़को दिया करते थे। सन् १७३८ ई० में प्रथमतः वक्षरोगोंमें उक्त औषधिका प्रयोग किया गया।

उत्पत्तिस्थान—उत्तरी अमरीका।

वर्णन—जड़में ऊपरकी ओर साधारण एक ग्रन्थिल मुकुट (Knotty crown) या एक विषम चौड़ी ग्रन्थि होती है, जिससे पतले काण्ड फूटते हैं, जिनके आधारपर छोटी-छोटी अल्पवर्धित पत्तियोंके अवशेष रहे होते हैं। उक्त जड़ पतली, हलकी पिलाई लिए भूरे रंगकी १/२ सें०मी० से ५/६ सें०मी० (१/५ इंच से १/३ इंच) मोटी, ५ सें०मी० से १० सें०मी० (२ इंच से ४ इंच) लम्बी होती है, जिसपर आड़ेबल बहुत-सी दरारें होती हैं। अधस्तल नतोदर, गावदुमी और बलदार होता है, जिसपर एक कीलकी तरहका उभार विद्यमान होता है। जड़को तोड़नेसे वह खटसे टूट जाती है तथा टूटातल सफेदीमायल होता है। स्वाद कटु और किंचित् अम्ल तथा गॉल्थीरियाका स्मरण दिलानेवाला और गंध विशिष्ट प्रकारकी होती है। विशेष—आर्निका, वँलेरियन और ग्रीन हेलबौर (खरबक़)की जड़ें इसकी जड़के समान होती हैं। परन्तु इनमेंसे किसी जड़पर कील जैसा उभार नहीं होता।

उपयुक्त अंग—मूल। मात्रा–०·४ ग्राम से ०·८ ग्राम (३ रत्ती से ६ रत्ती)।

रासायनिक संगठन—इसमें सेनेगिन नामक एक ग्लूकोसाइड पाया जाता है, जो रचनामें सँपीनिन के सदृश होता है। परन्तु इसकी क्रिया डिजिटेलिस जैसी होती है। यह एक निर्गंध चूर्ण होता है, जिसको सूँघनेसे छींकें आने लगती हैं। स्वाद पहले मधुर, पीछे अत्यन्त अम्ल तथा क्षोभक, जिससे लार बहने लगती है। पानीके साथ मिलकर यह साबुनकी भाँति झाग तथा इमल्सन बनाता है। सेनेगिनके अतिरिक्त दूसरा उपादान पॉलीगैलिक एसिड होता है।

कल्प—प्रवाहीसत्त्व (लिक्विड एक्स्ट्रॅक्ट)। मात्रा–०·३ मि०लि० से १ मि०लि० (५ से १५ बूँद); जड़का चूर्ण—मात्रा–०·४ से ०·८ ग्राम (३ रत्ती से ६ रत्ती); टिन्चर सेनेगा (२ मि०लि० से ४ मि०लि० या ३० बूँद से ६० बूँद); फाण्ट (एक पाइंट उबलते हुए जलमें २½ तोलाका बनाया फाण्ट); मात्रा–चायके १ चम्मच भरसे १ वाइनफुलग्लास।

गुण-कर्म तथा उपयोग—स्वेदल, मूत्रल, वमन, कफोत्सारि, चिरकालीन प्रसेक (Catarrh), कासश्वासहर। क्रूप (Croup)में भी अतिशय गुणकारी है।

●

(४६५) बेंत

फ़ैमिली : पामासे (Family : Palmaceae)

नाम—(हिं०) बें(बेत); (अ०) खेज़(खज)रान; (फा०) बेद; (सं०) बेत्र, वेत; (मलय०) रोटंग; (बं; बम्ब०, हिं०) चचीबेत; (ले०) कालामुस्स रोटंग Calamus rotang Linn.); (अं०) केन-पाम (Cane-palm), चेयर-बॉटम केन (Chair-bottom cane)।

उत्पत्तिस्थान—बंगाल, आसाम, दक्षिण भारत, लंका, देहरादूनके पूर्वी भाग, शिवालिकके जंगल, नेपाल, कुमाँयू, गढ़वाल, कर्नाटक आदि।

वर्णन—इसके पौधे प्रायः आरोही और काँटेदार होते हैं। आरोहणके लिए पत्रदण्ड, पत्राधार अथवा पुष्पव्यूहसे निकले हुए लंबे, काँटेदार और सूत्राकार अवयव (Flagellum) होते हैं जिनपर टेढ़े-मेढ़े काँटे होते हैं। इसकी कई जातियाँ होती हैं।

उपयुक्त अंग—जड़, पत्र, काष्ठ।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम और खुश्क; वैद्य शीतवीर्य मानते हैं।

गुण-कर्म तथा उपयोग—इसके ताजे पत्तों एवं लकड़ीको पानीमें पीसकर पीनेसे रक्तस्राव बंद होता और पथरी टूटकर निकल जाती है तथा विकारी अवयवपर दोष नहीं गिर पाता। इसके ताजे पत्तों एवं लकड़ीके लेपसे सूजन उतर जाती है। इसका यह विशेष प्रभाव है कि इसे कपड़ोंमें रखनेसे दीमक नहीं लगती। **अहितकर**–रूक्षता उत्पन्न करती है। **निवारण**–स्नेह (तेल)। **प्रतिनिधि**–हरसिंगार। **मात्रा**–७ ग्राम (७ माशे)।

आयुर्वेदीय मत—बेंत (वेत्र) कटु, तिक्त, कषाय, शीतवीर्य तथा वात, पित्त, कफ, दाह, सूजन, अर्श, अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र, विसर्प, अतिसार, रुधिरविकार, योनिरोग, तृषा, रक्तप्रकोप, व्रण, प्रमेह, रक्तपित्त, कुष्ठ और विषका नाश करनेवाला है। अंकुर–क्षार कटु, उष्णवीर्य, लघु तथा कफवातनाशक हैं। पत्र–कटु, तिक्त, कषाय, शीतवीर्य, लघु, वातकारक, भेदक तथा रुधिरविकार, कफ और पित्तका नाश करनेवाला है। बीज–स्वादिष्ट, कषाय, अम्ल, रूक्ष, पित्तजनक तथा रक्तविकार और कफका नाश करनेवाला है। बड़ा बेंत—शीतवीर्य तथा भूतबाधा, पित्त, आम और कम्पको दूर करनेवाला है। शेष गुण बेंतके समान हैं। (नि० र०)।

नव्यमत—जड़का उपयोग जीर्णज्वरोंमें होता है। यह सर्पविषका अगद है। पत्रका व्यवहार रक्त और पित्तके रोगोंमें होता हैं। काष्ठ कृमिहर है।

●

(४६६) बेदमुश्क

फ़ैमिली : सालीकासे (Family : Salicaceae)

नाम—(हिं०; पं०) बेदमुश्क, बेदमिश्क; (अ०) अल्-खिलाफ़ (इ० बै०); खिलाफ़ुल् बलखी; (फा०) बेदेमुश्क, बेदेबलखी, गुर्बएबेद; मुश्कबेद; (उर्दू) बेदमिश्क; (सं०) वेतस, वानीर, गन्धपुष्प; (क०) भ्रेडमुश्क; (पश्तु; अफ०) ख़बगवल्; (पं०) बेदमुश्क; (का०) मुश्कबेद; (श्याम) शाह्वेद; (रू०) बेह्रामज; (ले०) सालिक्स काप्रेआ **Salix caprea L.**); (अं०) ब्रॉड-लीव्ड विलो (Broad-leaved Willow), गोट्स सैलो (Goat's Sallow)।

वक्तव्य—'सफ्साफ़' इसकी एक अन्यतम जाति है। (इ० बै० २/६८)। कोई-कोई इसे दीसकूरीदूसोक्त 'सतूबी (Stoibe)' मानते हैं (D.4.12)। किन्तु इब्नबैतारके मतसे यह प्रमाद है। (इ० बै० ३/१४)।

उत्पत्तिस्थान—फारस, यूरोप तथा पश्चिमोत्तर भारतवर्ष, विशेषकर कश्मीर और पंजाबमें इसकी उपज होती है। इसका प्रत्येक अंग पश्चिमोत्तर भारतके बाजारोंमें सुलभ है।

वर्णन—यह वेतस (बेद-Salix)की जातिका और बेदसादाकी तरहका एक **क्षुप** वा १५ से ३० फुट ऊँचा **छोटा वृक्ष** है। पत्र एकांतरीय, हरा, लंबगोल, सपाट, टोंकदार और दंतित; **पुष्प** (Catkins) १-२ इञ्च लम्बा, मोटा, बेलनाकार वा बलूती शकलका, कोई-कोई बिल्लीके हाथ जैसा (गुर्बए बेद), चमकीला पीले रंगका और परम सुगन्धित होता है। इसके ऊपर लम्बा-लम्बा रोआं होता है। इसलिए अत्यन्त कोमल मखमली होता है। फूल पत्तोंके निकलनेसे पूर्व ही निकल आता है। **मकरंदकोष** अंडाकृति होता है। छाल बाहरसे बैंगनी भूरी, क्षुद्र पौधेकी सूक्ष्म लोमयुक्त, अन्दरसे सफेद ठोस और तंतुयुक्त होती है।

रासायनिक संगठन—इसकी छालमें **वेतसीन** (जौहर सफ़साफ़ या बेद **सफ़्साफ़ीन सैलीसिन** Salicin) नामका एक तिक्त, रेशमकी तरह मुलायम, चमकदार और श्वेत क्रिस्टली ग्लूकोसाइड, टैनिन (Tannin), मोम, वसा और निर्यास प्रभृति द्रव्य होते हैं।

उपयुक्त अंग—फूल जिससे **अर्कबेदमुश्क** (माउल्ख़िलाफ़, माउल्बहरामज) तैयार किया जाता है; छाल; पत्र; मधु वा शर्करा (बेद अंगबीन) आदि सभी भाग औषधके काममें लिए जाते हैं।

प्रकृति—पहले दर्जेमें शीत और दूसरेमें तर। आयुर्वेदमतसे शीतवीर्य (भा० प्र०) है।

कल्प तथा योग—**अर्क बेदमुश्क**।

गुण-कर्म तथा उपयोग—हृदयबलोल्लासकारक, मेध्य, संतापहर, मूत्रल, वेदनास्थापन, विशेषकर शिरःशूलनाशक और हृदयबलदायक है। बेदमुश्कके गुणकर्म तथा इसका रोगोंमें प्रयोग बेदसादाके समान हैं। यह बेदसादासे सभी गुण-कर्मोंमें अधिक बलवान् होता है। हृदय तथा मस्तिष्कको बल और उल्लास प्रदान करता, कोष्ठको मृदु करता, आशयांगों (आज़ाए अह्शाऽ)को शक्ति देता और उष्ण प्रकृतियोंमें वाजीकरण शक्तिको बढ़ाता है। उष्ण शिरःशूलको नष्ट करने और हृत्स्पंदनके समस्त भेदोंको दूर करनेके लिए यह गुणकारी है। उक्त रोगों तथा उष्ण ज्वरोंमें इसका अर्क पिलाया जाता है। **अहितकर**–कटिके लिए। **निवारण**–अर्कगुलाब और शर्करा। **प्रतिनिधि**–अर्क बेदसादा और नीलूफर। **मात्रा**–बेदमुश्कका ताजा रस २ तोलासे ५ तोला तक; अर्क १० तोलेसे १५ तोले तक।

आयुर्वेदीय मत—बेदमुश्क (वेतस, वानीर) स्वादिष्ट, तिक्त, कषाय, चरपरा, शीतवीर्य, रूक्ष, रुचिकारक तथा दाह, शोथ, अर्श, योनिरोग, विसर्प, मूत्रकृच्छ्र, पित्त, रक्तविकार, रक्तपित्त, अश्मरी, व्रण, कफ, भूत (राक्षस-बाधा, ग्रहपीड़ा), कोढ़ और वातको दूर करनेवाला है (ध० नि०; रा० नि०; भा० प्र०; नि० र०), दीपन और वातको कुपित करनेवाला है (रा० नि०; नि० र०)।

नव्यमत—बेदमुश्ककी छाल ग्राही, शीतल, ज्वरघ्न और दाहप्रशमन है। फूल रोचक है। छालका काढ़ा और फूलोंका अर्क उपयोगमें लेना चाहिए। छालका काढ़ा विषमज्वर, पित्तज्वर, तरुण आमवात और क्षयमें देते हैं। इससे ज्वरमें दाह और सिरका दर्द, क्षयमें छातीसे रक्त आना और सन्धिवातमें संधिकी सूजन एवं पीड़ा कम होते हैं। नेत्राभिष्यंद और सिरके दर्दमें अर्कबेदमुश्कमें कपड़ा भिगोकर रखनेसे लाभ होता है।

(४६७) बेदसादा

फ़ैमिली : सालीकासे (Family : Salicaceae)

नाम—(अ०) खिलाफ़, सफ़्साफ़; (फा०) बेद, बेदसादा; (सं०) जलवेतस, वञ्जुल (च० सू० अ० ४, २५, क० अ० १,८; सि० अ० १०,११); (क०) वीर, वेद; (पं०) बेद; (अफगा०) ओला; (म०) वालुंज; (ले०) **सालिक्स आल्बा (Salix alba Linn.)**; (अं०) ह्वाइट विलो (White Willow) ।

उत्पत्तिस्थान—हिमालयके पश्चिमोत्तर भागमें इसे लगाते हैं । कश्मीर आदिमें नदी-नालोंके किनारे इसके आरोपित वृक्ष प्रचुरतासे मिलते हैं ।

वर्णन—यह बेदमुश्ककी जातिका पर उससे बड़ा एक वृक्ष है । इसकी लकड़ी ठोस नहीं, अपितु कुछ पोली और सफेद होती है । तनेकी छाल भी सफेद होती है । पत्र बारीक-बारीक लगभग २२ सें० मी० से २३ सें० मी० या कम लंबे तथा पत्रपृष्ठ सफेद होता है । पत्र निकल चुकनेके बाद वसंतऋतुमें इसमें फूल लगते हैं । फूल पीले, कुछ सुगंधित, बालकी शकलके तथा कोमल मखमली होते हैं । **बेदमुश्क, बेदस्याह** अर्थात् **सालिक्स नीग्रा (Salix nigra** Marsh.) या ब्लैक विलो (Black Willow)—यह अमेरिकामें होता है । **बेदमजनू** (**सालिक्स टेट्रास्पेर्मा Salix tetrasperma** Roxb.) आदि इसकी अन्य जातियाँ हैं ।

रासायनिक संगठन—इसकी छालमें भी **सैलिसिन** (Salicin) नामक वीर्य पाया जाता है । **मात्रा**–०·३ ग्राम से० ०·९ ग्रा० (२½ से ७½ रत्ती) ।

उपयुक्त अंग—पत्र, पुष्प और छाल । छाल क्वाथके लिए ६ ग्रामसे १२ ग्राम (½-१ तोला) ।

कल्प तथा योग—अर्कबेदसादा, अर्कतपेदिक खासुल्खास । **निवारण**–अर्कनीलूफ़र ।

प्रकृति—पहले दर्जेमें सर्द एवं खुश्क । फूल पहले दर्जेमें सर्द और दूसरेमें तर हैं ।

गुण-कर्म तथा उपयोग—संतापहर, हृदयबलोल्लासकारक, मूत्रल, वेदनास्थापन और विशेषकर हृद्य, मेध्य (मस्तिष्क बलदायक) तथा उष्णज्वरके लिए गुणकारक है। उष्ण प्रकृतिवालोंके लिए यकृत् एवं हृदयका संताप और रक्तज एवं पित्तज ज्वरोंको दूर करनेके लिए इसके पत्तोंकी शय्यापर सोना गुणकारी है । रक्तातिसार बंद करनेके लिए इसके ताजे पत्तोंका रस पिलाया जाता है और कर्णशूलमें कानमें टपकाया जाता है । यकृदवरोध, कामला और प्लीहाशोथको मिटानेके लिए इसे पिलाते हैं । इसके ताजे फूल सूँघनेसे मस्तिष्क उल्लसित होता है, और उष्ण शिरःशूल नष्ट होता है । अवसादक होनेसे उष्ण हृत्स्पंदन, तपेदिक, मसूरिका और उष्ण ज्वरोंमें इसका अर्क प्रयुक्त होता है । **प्रतिनिधि**–अर्कनीलूफ़र । **निवारण**–अर्कगुलाब और शर्कंसा । **मात्रा**–ताजे पत्तोंका रस २ तोलासे ५ तोला तक । अर्क १० तोलासे १५ तोला तक ।

आयुर्वेदीय मत—जलवेतस (वञ्जुल) वेदनास्थापन (च०सू०अ० २५), शीतवीर्य, मलरोधक और वातको कुपित करनेवाला है । (भा० प्र०) । बेदसादा पौष्टिक, ज्वरघ्न और नियतकालिक ज्वरप्रतिबन्धक है ।

नव्यमत—यह बल्य, नियतकालिकज्वर प्रतिबन्धक और कषाय है । वातरक्त या आमवातिक मूलभूत ज्वरोगों तथा अतिसार एवं प्रवाहिकामें भी इसका उपयोग लाभकारी होता है । इसके प्रयोगकी सामान्य विधि काढ़ेके रूपमें दिनमें ३-४ बार शराबकी प्यालीभर (Wineglassful) प्रमाणमें होती है ।

●

(४६८) बेर

फ़ैमिली : र्‌हाम्नासे (Family : Rhamnaceae)

नाम। वृक्ष (हिं०) बेरी; (अ०)अल्‌सिद्‌र (इ० बै०); (फा०) दरख्ते कुनार; (सं०) बदरी; (ले०) ज़ीज़िफुस् मॉरीटिआना **Zigyphus maritiana** Lamk. (पर्याय—ज़ीज़िफ़ुस जूजूबा *Z. jujuba* (L.) Lamk.); (अं०) इंडियन जूजुब (Indian Jujube), वाइल्ड जूजुब (Wild Jujube)। फल (हिं०) बेर; (पं०; सिं०; बं०) बैर; (अ०) नवक़, नबिक़, उन्नावे हिंदी; (फा०) कुनार, किनार; (सं०) बदर; कोल, बदरी, (बं०) बयर, कूल, बरुई; (पं०) संजित; (म०; गु०; बम्ब०) बोर; (अं०) जूजुब फ्रूट (Jujube Fruit), इंडियन प्लम (Indian Plum)। (२) झड़बेर (हिं०, पं०) झाड़ीबेर, झड़बेर, जंगली बेर; (अ०) ग़ुबैरा; (फा०) सिंजद, कुनार दश्ती;(सं०) कर्कन्धु, क्षुद्रबदर, भूबदरी; (पं०) कोकन बेर; (बं०) बन कूल, लता बरुई; (गु०) चणी बोर; (मा०) चणीया बोर; (म०) जंगली बहेर, जंगर; (अं०) वाइल्ड जूजुब (Wild Jujube)। इसके क्षुपको झड़बेरी, अरबीमें ज़ाल (र) और लेटिनमें **ज़ीज़िफ़ुस् नुम्मूलारिआ Zizyphus nummularia** (Burm. f.) Wt. & Arn.) कहते हैं।

उत्पत्तिस्थान—यह समस्त भारतवर्ष और फारसमें जंगली होता है।

वर्णन—यह मझोले आकारका एक प्रसिद्ध कँटीला वृक्ष होता है जिसके छोटे-बड़े कई भेद होते हैं। यह वृक्ष जब जंगली दशामें होता है तब झरबेरी और लगाया जानेवाला (बागी) बेरी (सिद्‌र) कहलाता है। उन्नाव बेरकी जातियोंमें सबसे उत्तम है (दे० 'उन्नाब')। जब कलम लगाकर तैयार किया जाता है तब उसे पेबंदी (पैवंदी) कहते हैं। यह फल प्रसिद्ध है। बेरसे सर्वथा 'बागीबेर' अभिप्रेत होता है।

रासायनिक संगठन—फलमें फलाम्लोंके साथ लबाब और शर्करा होती है। पत्र और छालमें अधिक टैनिन, कलम बनने योग्य वीर्य (Principle), बदराम्ल और शर्करा होती है।

उपयुक्त अंग—फल (पक्वापक्व) या सुखाये हुए पक्व बेरका चूरा (बैरचूर), वृक्षकी छाल, मूल (त्वक्), पत्रादि अर्थात् पंचांग।

प्रकृति—पहले दर्जेमें शीत एवं रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—संग्राही, सौमनस्यजनन विशेषतः संतापहर एवं पित्तघ्न। मेवाकी भाँति बेर खाया जाता है। यद्यपि यह चिरपाकी एवं कम पुष्टिकर है, तथापि इससे जो पुष्टि–पोषणांश प्राप्त होता है, वह उत्तम होता है। उष्णप्रकृतिको यह सात्म्य है। यह रुधिर और पित्तके उद्वेग एवं तृष्णाको शमन करता है। भूना हुआ पित्तातिसारको बंद करता है। बालोंको शक्ति देने और शिरकी भूसी दूर करनेके लिए इसके पत्रक्वाथसे शिरको धोते हैं। जंगली कच्चे बेरोंको जिनमें अभी गुठली न पड़ी हो छाँहमें सुखाकर चूर्ण बनाते और शुक्रप्रमेह एवं श्वेतप्रदर (जरयान और सैलान)में खिलाते हैं। झड़बेरीकी जड़की छालका भी शुक्रप्रमेह और श्वेतप्रदरमें उपयोग करते हैं। मुखपाकमें इसके काढ़ेसे कवलग्रह कराते हैं। **अहितकर**—आनाहकारक और दीर्घपाकी। **निवारण**—गुलकंद एवं मस्तगी।

आयुर्वेदीय मत—कोल (मध्यम प्रमाणकेबेर) कुछ अम्ल, रुचिकारक, वातहर, गुरु, सारक तथा कफ और पित्तको उत्पन्न करनेवाले हैं। छोटे बेर अम्ल, कषाय, कुछ मधुर, स्निग्ध, गुरु और वातपित्तहर हैं। सब प्रकारके सूखे बेर भेदन, दीपन, लघु तथा तृष्णा, थकावट और रक्तविकारको दूर करनेवाले हैं। बेरकी मज्जा (मग्ज या मींगी) कषाय, मधुर, वीर्यवर्धक तथा श्वास, कास, तृष्णा, दाह, वमन, वात और पित्तका नाश करनेवाली है। बेरकी ताजी पत्तियोंका शरीरपर लेप करनेसे ज्वरका दाह कम होता है। बेरकी छाल विस्फोटका शमन करती है। (सु० सू० अ० ३९; च० सू० अ० २७; भा० प्र०; कै० नि०; रा० नि०)।

(४६९) बेल

फ़ैमिली : रूटासे (Family : Rutaceae)

नाम—(हिं०; बं०; उ०) बेल; (अ०) सफ़रजले हिंदी; (फ़ा०) बेह हिंदी, बल, शुल्ल; (सं०) बिल्व, श्रीफल; (गु०) बीली; (म०) बेल; (पं०) बिल, सीफल; (का०) बिलकथ; (ते०) बिल्वमु; (ता०) अलुविलम्, कुविलम्; (मल०) कुवलम्; (सिंध) कठोरी; (ले०) **एग्ली मार्मेलॉस (Aegle marmelos** Correa.); (अं०) बेल (Bel), बेलफ्रूट (Bael Friut), बेंगाल क्विन्स (Bengal Quince)। फलका गूदा या मज्जा (हिं०) बेलगिरी; (अ०) मग़ज़ सफ़रजले हिंदी; (फ़ा०) मग़ज़बेल (-बेह हिंदी); (सं०) बिल्वपेशिका; (पं०) बिलकत्त।

इतिहास—बेल भारतीयोंका पवित्र वृक्ष है। भारतीय वैद्य इसका उपयोग अति प्रचीनकालसे करते आ रहे हैं। इसलामी हकीमोंने भी 'सफ़रजले हिंदी', 'बल' या 'बेल' नामसे इसका उल्लेख किया है। मुहीतआज़ममें 'बल' नामसे इसका वर्णन हुआ है।

उत्पत्तिस्थान—इसके वृक्ष भारतवर्षमें सर्वत्र लगाये जाते या जंगली होते हैं। औषधोपयोगी बेलगिरीके लिए जंगली वृक्षोंके कच्चे फल अधिक उपयुक्त समझे जाते हैं।

वर्णन—यह प्रसिद्ध है।

रासायनिक संगठन—फलके गूदेमें लबाब, पेक्टिन, शर्करा, टैनिन, उत्पत् तैल, तिक्तवीर्य प्रभृति द्रव्य होते हैं। मार्मेलोसिन इसका सबसे अधिक सक्रिय घटक है। ताजे पत्तोंमें एक विशिष्ट गंधी, तिक्त, पिलाई लिए हरा तेल होता है। जड़, पत्र और छालमें प्रधानतः कषायद्रव्य (टैनिन) होता है। काष्ठ भस्ममें पोटैसियम, सोडियमके यौगिक, फॉस्फेट ऑफ लाइम, लौह, कैल्सियम कार्बोनेट, मैग्नीसियम कार्बोनेट, सिलिका आदि तथा बीजोंमें एक हल्का पीला तेल जो उत्तम विरेचन है, पाये जाते हैं।

उपयुक्त अंग—पक्वापक्व फल, फलका गूदा (=बेलगिरी), पत्र मूल, त्वक् (छाल) आदि। चूर्ण आदिके लिए कच्चे फलका, मुरब्बाके लिए अधपके फलका और पानकके लिए परिपक्वफलका गूदा लेना चाहिए। दशमूल आदि कषायोंमें मूल या वृक्षकी छाल ली जाती है।

कल्प तथा योग—मुरब्बा बेलगिरी।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें सर्द और तीसरेमें खुश्क है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—संग्राही, रक्तस्तम्भन, दीपन, विशेषकर प्रवाहिकामें गुणदायक है। जड़की छाल ज्वरघ्न है। संग्राही होनेके कारण बेलगिरी जीर्ण अतिसार, संग्रहणी और पेचिसको बन्द करती है। प्रवाहिका (जहीर सादिक)में बहुत लाभ पहुँचाती और अपनी संग्राहिणी शक्तिसे आमाशयको बल देती है। रक्तस्तम्भन और संग्राही होनेके कारण हर प्रकारके रक्तस्रावके लिए गुणकारी है। अतएव रक्तातिसार तथा अतिरजस्राव आदिमें इसका उपयोग किया जाता है। अहितकर-अर्शजनक और अवरोधजनक (अभिष्यंदी)। निवारण-शर्करा। मात्रा-चूर्ण २ ग्रामसे ३ ग्राम (२ माशासे ३ माशा) तक। फाण्टमें ३ ग्रामसे ५ ग्राम (३ माशेसे ५ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—बेल मधुर, कषाय, हृद्य, गुरु, रुचिकर, दीपन, आस्थापनोपग, अनुवासनोपग तथा अर्श, शोथ, पित्त, कफ, ज्वर और अतिसारका नाश करनेवाला है। बेलका मूल मधुर, लघु, छर्दिघ्न और वातहर है। पत्र वातहर है। कच्चा (कोमल) फल कटु, तिक्त, कषाय, स्निग्ध, उष्ण, तीक्ष्ण, दीपन, ग्राही तथा कफ और वायुका नाश करनेवाला है। पका हुआ फल मधुर, गुरु, विदाही, विष्टंभि, दुर्जर, दोषकर और दुर्गन्धयुक्त, अधोवायु उत्पन्न करनेवाला है। (च०सू०अ० ४,२५,२७; सु०सू०अ० ३८, ४६; रा०नि०)।

नव्यमत—बेलकी जड़ ज्ञानतंतुओंके लिए शामक है। यह वातरोगोंमें उपयोगी है। हृदयका स्पन्दनाधिक्य, उदासीनता, निद्रानाश और उन्मादमें जड़का प्रयोग करते हैं। इससे नशा (कैफ) होता है। विषज्वरमें जड़की छालका काढ़ा देते हैं। उस कुपचनमें जिसमें कब्ज और उदराध्मान हो और ऐसे आँतोंके रोगमें जिसमें कभी विरेक और कभी कब्ज (आनाह) हो, **पके हुए बेल (फल)का शर्बत** (पानक) सबेरे देनेसे बड़ा लाभ होता है। **कच्चे** फलको भूनकर उसका गूदा रक्तमिश्रित आँवमें और जीर्ण अतिसार में देते हैं। कच्चे बेलफल, सौंफ और बचका काढ़ा जीर्ण आँवमें विशेष हितकर है। कच्चे फलका गूदा और तबाशीर (आरारूट)की पेया अतिसारमें देते हैं। ताजे फलका गूदा और कबाबचीनी पीसकर दूधके साथ सूजाकमें देते हैं। ताजे पत्तोंका स्वरस ज्वर, अभिष्यन्द, शोथ और कफरोगमें देते हैं। इससे दस्त साफ होकर ज्वर और अभिष्यन्द कम होता है। मधुमेहमें बेलकी पत्तियोंका स्वरस १-२ तोला देते हैं।

●

(४७०) बेला

फ़ैमिली : ओलेआसे (Family : Oleaceae)

नाम—(हिं०) बेला, मोगरा; (सं०) मल्लिका; (म०) मोगरा; (गु०) डोलर, मोगरो; (बं०) बेल, मोगरा (री); (तें०) वोन्दुमल्लो; (ता०) मल्लिजाई; (म०) मुल्ल; (ले०) **जास्मीनुम् साम्बाक (Jasminum sambac (L.) Ait.)**; (अं०) डबल जैस्मिन (Double Jasmine)।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्षमें फूलोंके लिए लगाया जाता है।

वर्णन—बेलाका ९० सें० मी० (दो हाथ) या इससे अधिक ऊँचा क्षुप या झाड़ (गुल्म) होता है। यह सुगन्धित फूलोंके कारण बागोंमें तथा मन्दिरोंकी फुलवारियों एवं गृहउद्यानोंमें लगाया जाता है। इसकी कई ज़ातियाँ होती हैं। इनमें **प्रथम** बेलाका फूल सफेद और सुगन्धित होता है। यह वसन्तसे वर्षा तक खिलता है। इसका फूल थोड़ा लम्बोतरा और दोहरा होता है। द्वितीय–मोतियाका फूल गोल, बड़े, मोतीके समान होता है। इसमें बेलेसे भी अधिक पंखुड़ियाँ होती हैं। कई तह नीचे ऊपर बराबर होती हैं। **तृतीय—मोगरेका** फूल दोनोंसे बड़ा होता है और इसमें पंखड़ियाँ भी दोनोंसे अधिक होती हैं। यह तीनों ही एक ही जातिके तीन भेद मात्र हैं। केवल भूमि आदिके भेदसे इनमें अन्तर आ गया है। बेलाको **रायबेल** भी कहते हैं। आयुर्वेदीय निघंटुओंके अनुसार इसकी जिस जातिमें वर्षामें पुष्प आते हैं, उसको वार्षिकी, जिसमें ग्रीष्ममें फूल आते हैं, उसको **ग्रैष्मी** तथा जिसमें छोटे फूल आते हैं, उसको **अतिमुक्त** कहते हैं।

उपयुक्त अंग—पत्र, पुष्प, मूल और पंचांग।

रासायनिक संगठन—फूलोंमें उत्पत् तेल (Essential oil) होता है, जिसके कारण इसकी सुगन्धि होती है।

प्रकृति—**गरम एवं तर**। आयुर्वेदमतानुसार सर्द एवं तर या उष्णवीर्य (कै० निघ०)।

गुण-कर्म तथा उपयोग—बेलेके फूलको सूँघनेसे हृदय एवं मस्तिष्कको शक्ति एवं उल्लास प्राप्त होता है। इसका फुलेल गुणमें चमेलीके फुलेल जैसा है, किन्तु उसकी अपेक्षया यह किंचित् उष्ण एवं लतीफ़ है तथा उत्तमांगोंको शक्ति देता है। नीबूके रस और आम्बाहल्दीमें मिलाकर मालिश करनेसे शरीरकी रूक्षता और कण्डूका नाश होता है।

आयुर्वेदीय मत—मल्लिका कटु, तिक्त, लघु, उष्णवीर्य, वाजीकर, चक्षुष्य तथा वात, पित्त, मुखपाक, नेत्रके रोग, कुष्ठ, विस्फोटक, कण्डू, विष, व्रण और अरुचिको मिटानेवाली है। (सु० सू० अ० ४६; ध० नि; कै० नि०)।

नव्यमत—क्षुप शीतल है तथा उन्माद, दृष्टिदौर्वल्य और मुखरोगोंमें इसका उपयोग होता है। मल्लिका शोथघ्न, शोणितस्थापन, स्तन्यजनन और गर्भाशयोत्तेजक है। गर्भाशय और स्तनपर इसकी क्रिया होती है। प्रसूतावस्थामें जब स्तनकी दुग्धवाहिनियोंमें शोथ होकर स्तन पकने लगता है तब मल्लिकासे त्वरित लाभ होता है। तोला भर फूलोंको पीसकर शोथपर बाँधते हैं। ४–४ घण्टेपर उसे उतारकर नये फूल बाँधते हैं। इस प्रयोगमें दूध बन्द होता है, स्तनकी सूजन उतरती है और पीव बननेकी क्रिया बन्द होती है। आर्तव अनियमित और थोड़ा होता हो तब पाव तोला इसकी जड़का काढ़ा देनेसे आर्तव साफ होता है। रक्तप्रवाहिकामें २–४ कोमल ताजी पत्ती २–३ तोले ठंढे पानीमें पीस, कपड़ेसे छान, मिश्री मिलाकर दिनमें ३–४ बार देते हैं। इससे रक्त और बार-बार दस्त आना कम होता है। न भरनेवाले व्रणोंपर पत्तियोंका लेप करते हैं।

(४७१) बैगन

फ़ैमिली : सोलानासे (Family : Solanaceae)

नाम—(हिं०) **बैगन, भटा, भंटा, भाँटा**, (अ०) अल् बादंजान, क़हक़ब, अनब, मग़्द, वग़्द(इ० बै० १/८०; ४/१९३); (फा०) बादंगान; (सं०) वृन्ताक, वार्ताकी; (बं०) बेगुन; (म०) बांगी; (गु०) वेंगण, वंताक, रींगणां; (पं०) बैंगण; (ले०) **सोलानुम् मेलोंगेना (Solanum melongena** Linn.); (अं०) ब्रिजल (Brinjal), एग-प्लान्ट (Egg-plant)।

उत्पत्तिस्थान और वर्णन—यह कटाईकी जातिका एक पौधा है जिसकी सारे भारतवर्षमें खेती की जाती है। फल तरकारीके काममें आता है। इसके जंगली भेदको **बनभंटा** कहते हैं। फलके आकार, छोटाई-बड़ाई और रंगके भेदसे भंटेकी अनेक जातियाँ होती हैं। गोल फलवालेको **मारू बैगन** कहते हैं।

प्रकृति—गरम और खुश्क (मतान्तरसे दूसरे दर्जेमें)।

गुण-कर्म तथा उपयोग—संग्राही, आनाहकारक, अवरोधजनक, श्वयथुविलयन, शोथप्रशमन, विशेषकर दीपन और वेदनाप्रशमन है। बैंगनको अकेला या मांसके साथ पकाकर खाते हैं। परन्तु इसे अपथ्यकर तरकारी समझा जाता है, क्योंकि यह कब्ज एवं आनाह उत्पन्न करता और दुष्ट दोष उत्पन्न करता है। जरायुके रोग, आघात प्रत्याघात (जर्बा व सकता) में उष्ण श्वयथुको ब्रिठानेमें और वेदनाको शमन करनेके लिए इसको भुलभुलाकर कोष्ण बांधते हैं। आघातजन्य पीड़ाको शांत करनेके लिए तथा प्रवर्तन (इद्‌रार) के लिए भुलभुलाए हुए बैंगनका पानी (५-७ तोले) गुड़ मिलाकर पिलाते हैं। **अहितकर**–सोदाजनक तथा अर्शजनक। **निबारण**-(रोग़न, स्नेह या तैल), सिरका और मांस।

आयुर्वेदीय मत—बैंगन (वार्ताक) कटु, तिक्त, मधुर (स्वादु), पाकमें कटु, उष्णवीर्य, रुचिकर, दीपन, लघु, भारी (रा० नि०), शुक्रल, बलकारक, पुष्टिकारक, हृदयको हितकारी, अपित्तल तथा ज्वर, वात-पित्त कफ (तीनों दोषों) को नष्ट करनेवाला और वातरोगोंमें निन्दित है। (च० सू० अ० २७; सु० सू० अ० ४६; रा० नि०; भा० प्र०)। **कच्चा बैंगन**–कफपित्तनाशक (रा० नि०; भा० प्र०) और पका हुआ बैंगन (पीला) किंचित् क्षारयुक्त

पित्तकारक और भारी है (सु० सू० अ० ४६; राज०; भा० प्र०)। **मध्यम बैंगन**–त्रिदोषनाशक और रक्तपित्तका प्रसादन करनेवाला है (रा० नि०)। **अंगारों पर भुना हुआ बैंगन** अर्थात् बैंगनका भुरता किंचित् पित्तकारक, सारक, दीपन, लघुतर (अत्यंत लघु) तथा कफ, मेद और वातनाशक है। वही तेल और लवणयुक्त भारी और स्निग्ध है। मुरगेके अण्डेके समान सफेद बैंगन अर्शके रोगीके लिये विशेष हितकारक है तथा पहिले बैंगनोंसे गुणोंमें हीन है। (रा० नि० भा० प्र०)।

●

(४७२) बैजन्ती (गुलतस्बीह)

फ़ैमिली : केन्नासे (Family : Cannaceae)

नाम—(हिं०) बैजन्ती, जयापुहुप, सब्बजया; (अ०) अलीकुल् बहार (अलीकुल्बहर, अलीकुल्बर्र); (फा०) गुलतस्बीह; (सं०) सर्वजया, देवकेलि, वैजयन्ती; (बं०) कामाक्षी, लाल सर्वोजया; (पं०) हकीक; (म०) देवकली (केलि); (गु०) अकलबेर; (ले०) **कान्ना इंडिका (Canna indica** Linn.); (अं०) इन्डियन शॉट या बीड (Indian Shot or Beed)।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्षमें यह पुष्कल लगाया जाता है।

वर्णन—हलदी या आदीकी तरहका आधा गजसे लेकर मानवाकारका गुल्म जिसकी पत्तियाँ हल्दीकी पत्तियों जैसी होती हैं। इनके बीचसे शाखा निकलकर उसपर फूल आता है। किसीका फूल एकरंग लाल, किसीका सफेद किसीका पीला और किसीका इनके मिले-जुले रंगोंका होता है। फूल बारहो महीने आते हैं। फूल सूखनेके बाद रेंडीकी तरह थैली बनकर उसमें बीज उत्पन्न होते हैं। कच्चे बीज सफेद और पकनेपर काले, चमकदार, कड़े और मटरके दानेके समान होते हैं। इनमें कोई लंबाई लिये गोल और कोई बिल्कुल गोल होते हैं। एक कोशमें एकसे चार तक बीज देखे गये हैं। इन बीजोंसे माल्य (तसबीह) बनाया जाता है।

उपयुक्त अंग—मूल, कांड और बीज।

प्रकृति—गरम और खुश्क।

गुणकर्म तथा उपयोग—जड़ चरपरी, ग्राही एवं उत्तेजक है। ग्राही होनेके कारण इसके पीनेसे नकसीरका खून, मसूढ़ोंका खून और खून थूकना बंद होता है तथा यह शुक्रप्रमेह एवं योनिस्राव (श्वेतप्रदर) में गुणकारक है। इसके लेपसे सूजन उतरती है। इसके काढ़ेसे गुदप्रक्षालन करनेसे काँच निकलना (गुदभ्रंश) बंद होता है। यह सिरके बालोंको काला करता, शक्ति देता और जमाता है। ज्वरमें पसीना लानेके लिये इसकी जड़का काढ़ा पिलाते हैं। इसकी जड़को ठंडाईकी तरह पीनेसे अधिक मूत्र होकर जलोदर आराम हो जाता है। बीज हृदय बलदायक है। इसके लेपसे घाव भर जाता है।

नव्यमत—मूल स्वेदजनन, मूत्रजनन, उत्तेजक और स्निग्ध (Demulcent.) है तथा ज्वर एवं शोथमें प्रयुक्त होता है।

●

(४७३) बोल

फ़ैमिली: बर्सेरासे (Family : Burseraceae)

नाम—(हिं०) बोल, बीजाबोल, हीराबोल; (यू०) Samurna (D. 1.77); (अ०) अल्-मुर (इ० बै०), मुर्र, मुर; (फ़ा०) बोल; (सं०) बोल, गंधरस, बर्बर; (बं०) गंधरस, बोल, गन्धबोल; (म०) हिराबोल; (गु०) हिराबोल, (पं०) मुरमकी; (पं०; मा०) बीजाबोल; (ले०) मीर्हा (Myrrha); (अं०) मिर्ह (Myrrh)। इसके वृक्षको लेटिनमें **कॉम्मीफ़ोरा मीर्हा Commiphora myrrha** Nees. (**पर्याय**—*Balsamodendron myrrha* T. Nees) कहते हैं। **वक्तव्य**—प्राचीन भ्रामक विचारोंके पुजारी यूनानियोंके विश्वासानुसार **'मिर्हा'** एक सुन्दर कुमारी कन्या थी, जिसके साथ कालाकलूटा पिताने बलात्कार किया था। इस दुष्कर्मसे अत्यंत लज्जित होकर उसने देवताओंसे प्रार्थना की कि वे उसे किसी ऐसी वस्तुमें परिवर्तित कर देवें जो न जीवित हो न मृत। फलतः देवताओंने इसको बोल (मुर्र) उद्भिजके रूपमें परिणत कर दिया। परंतु कतिपय शोधकर्ताओंका विचार है कि **मुर्र** यूनानी 'मुर्दन' शब्दसे व्युत्पन्न है, जिसका अर्थ 'अत्यंत सुगंधित' होता है। इस संज्ञाका आरोप साधारणतया सुगंधित उद्भिज्जों और उनसे प्राप्त पदार्थों, जैसे-गोंद आदिपर होता है।

इतिहास—मिस्रके एक प्राचीन आलेखसे ज्ञात हुआ है कि महाराज्ञी हत्सूके कालमें ईसवी सन्से १७०० वर्ष पूर्व सुमालीलैंडसे मुर्रके कुछ एक वृक्ष मिस्रमें लाकर लगाये गए थे। इसलिए प्राचीन मिस्रवासियोंको इस द्रव्यका भलीभाँति ज्ञान था और वह अपने प्रार्थनागृहोंमें इसका धूप देते थे। धनवान् एवं राजपुरुष अपने धनागारोंमें इसलिए रखते थे, कि वह इसके आशीर्वादसे परिपूर्ण रहें। प्राचीन यूनानी एवं रूमी अपनी शराबों और शिरःतैलोंको इससे सुवासित करते थे। हकीम **दीसकूरीदूसने सुमरना** के नामसे इसका उल्लेख किया है। प्राचीन इस्लामी एवं भारतीय चिकित्सकोंको भी यह औषधि भली-भाँति ज्ञात थी। परन्तु भारतीयोंने इसका अधिक प्रयोग नहीं किया।

उत्पत्तिस्थान—सुमालीलैंड (अफरीका), एबीसीनिया, सकोतरा और अरब। पूर्वी अफरीका, अरब-फारस और श्यामसे इसका आयात बम्बईमें होता है।

वर्णन—यह गुग्गुलकी जातिके एक क्षुप या छोटे वृक्षका प्रसिद्ध गोंद है जो उसके तनेमें घाव करनेसे प्राप्त होता है। इसके गोल-गोल, बेडौल, छोटे-बड़े, अश्रुवत् दाने होते हैं या इन दानोंके परस्पर मिलनेसे विभिन्न आकार-प्रकारकी डलियाँ बन जाती हैं। इनकी रंगत बाहरसे ललाई लिए पीली या भूरी, वास सुगंधित, स्वाद सुगंधित तिक्त होता है। मक्काका बोल (**मुरमक्की**) सर्वोत्तम समझा जाता है।

उपयुक्त अंग—निर्यास। मात्रा–०·६२५ ग्राम से ०·८७५ ग्राम (५-७ रत्ती)।

रासायनिक संगठन—बोलमें एक उत्पत् तेल मिर्होल (२ प्रतिशत), राल (३५ प्र०श०), मिर्हिन (Myrrhin), गोंद (६० प्र०श०) एक तिक्त सत्व, कैल्सियम फॉस्फेट और कार्बोनेट आदिके रूपमें लवण—ये द्रव्य होते हैं। असली बोलको तेजाब लगानेसे जामुनी छाया लिए किरमिजी रंग उत्पन्न होता है।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम और खुश्क। आयुर्वेदीय मतसे उष्णवीर्य (रा० नि०)।

गुण-कर्म तथा उपयोग—**कोथप्रतिबंधक, व्रणलेखन, लेखन, वातानुलोमन, दीपन, उदरकृमिनाशन, आर्तवजनन, श्लेष्मनिःसारक, श्वयथुविलयन, प्रमाथी, उष्णताजनन, विशेषकर कृमिनाशन, कफोत्सारि** और नेत्ररोगोंमें गुणकारी है। यह कोथप्रतिबंधक है। इसलिए अन्य उपयुक्त औषधियोंके साथ गोलियाँ बनाकर उसको महामारी कालमें अनागताबाधा प्रतिषेधनकी भाँति उपयोग कराते हैं। व्रणलेखन और लेखन होनेके कारण अन्य औषधद्रव्योंके

साथ अंजनमें डालकर नेत्रव्रण और दृष्टिमांद्य (धुन्ध)में इसे नेत्रमें लगाते या दूधमें घोलकर नेत्रको उससे धोते हैं। व्रणलेखन एवं कोथप्रतिबंधक होनेके कारण व्रणों पर इसको लेपकी भाँति लगाते हैं। दीपन और वातानुलोमन होनेके कारण पाचनदोष और कब्जमें इसका उपयोग करते हैं। अपनी कटुताके कारण यह उदरस्थ क्रमियोंको नष्ट कर देता है। श्लेष्मनिःसारक होनेके कारण कास, कफज कृच्छ्रश्वास, कण्ठगत खरत्व और स्वरघात एवं पार्श्वशूलमें भी गुणकारी है। मुखपाक, दन्तवेष्ट और कंठघातमें इसको अर्कगुलाबमें मिलाकर गण्डूष कराते हैं या औषधद्रव्यके साथ मिलाकर अवचूर्णन करते हैं। श्वयथुविलयन, प्रमाथी और उष्णताजनन होनेके कारण यह संधिवात, वातरक्त और गृध्रसीमें पान और लेपकी भाँति उपयोग किया जाता है। कफजश्वयथुविलयनके लिए भी इसका लेप लगाते हैं। **अहितकर**–उष्णप्रकृतिको। **निवारण**–शुद्ध मधु और सर्द एवं तर द्रव्य। **प्रतिनिधि**–कूट, जुंदबेदस्तर और मोमियाई। **मात्रा**–१ ग्रामसे २ ग्राम (१ माशासे २ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—बोल कटु, तिक्त, कषाय, उष्णवीर्य तथा रक्तदोष, कफरोग, वातरोग और स्त्रियोंके प्रदरादि रोगोंको दूर करनेवाला है। (रा० नि०)।

नव्यमत—बोल वातहर, उत्तेजक, व्रणशोधन, व्रणरोपण, श्लेष्मलत्वचाको उत्तेजक, संग्राहक, श्लेष्मनिःसारक, रक्तके श्वेतकणोंको बढ़ानेवाला, दीपन, कोष्ठवातप्रशमन, स्वेदजनन, मूत्रजनन और आर्तवजनन है। बोलका लेप उत्तेजक और मृदुकोथप्रशमन हैं। इसलिए व्रणपर इसका लेप कराते हैं। मुखपाक और मसूढ़ोंकी सूजनमें इसे मुँहमें धारण कराते हैं। दन्तमंजनमें इसे डालते हैं। कण्ठरोहिणी (डिफ्थीरिया)में इसके टिंचरको पानीमें मिला कर उससे कुल्ले करानेसे लाभ होता है। बोल दीपन, वातहर, उत्तेजक और कोथप्रशमन है। इसलिए कुपचन, मलावष्टम्भ और पाण्डुरोगमें इसके देते हैं। इसे रक्तमें मिलनेपर, रक्तान्तर्गत श्वेतकण बढ़ते हैं इसलिए स्त्रियोंके पाण्डुरोगोंमें इसे देते हैं। यह त्वचा, मूत्रेन्द्रिय, जननेन्द्रिय, श्वासमार्ग, फुफ्फुस और श्लेष्मल त्वचा द्वारा शरीरसे बाहर निकलता है और निकलते समय उन-उन अवययोंकी विनिमय क्रिया सुधारता है तथा उनको उत्तेजित करता है। इससे श्लेष्मलत्वचाकी अशक्ति कम होती है। यह त्वचासे बाहर निकलनेके कारण स्वेदजनन, मूत्रपिण्डों (गुर्दों)से बाहर निकलनेके कारण मूत्रजनन तथा फुफ्फुस और श्वासमार्गसे बाहर निकलते समय कफकी दुर्गन्धि नष्ट करके उसे पतला करनेके कारण उत्तेजक श्लेष्मनिःसारक तथा रोगजन्तुघ्न है। इसलिए जीर्ण कास-श्वासमें इसका उपयोग करते हैं। यह गर्भाशयका संकोचन करनेवाला, उत्तेजक और आर्तवजनन है। इसलिए एलुआ और लोहेके साथ अनार्तवमें इसका बहुत उपयोग करते हैं। गर्भाशयके शैथिल्यमें यह विशेष उपयोगी है। इससे जीर्ण बस्तिशोथ और श्वेतप्रदर कम होता है।

●

(४७४) ब्रह्मदण्डी

फ़ैमिली : कॉम्पोजीजी (Family : Compositae)

नाम—(हिं०) ब्रह्मदण्डी, बरमदंडी, बरमडंडी; (सं०) ब्रह्मदण्डी, अजदण्डी; (गु०) फुसियाई; (म०) ब्रह्मदण्डी; (ले०) **ट्रीकोलेपिस ग्लाबेरिमा (Tricholepis glaberrima** DC.)।

वक्तव्य—डीमकने इसी कुलकी **लाम्प्राकेनिउम् मीक्रोसेफालुम् (Lamprachaenium microcephalum** Benth.) नामक वनस्पतिका, जो पश्चिम भारतवर्षमें होती है, संस्कृत, मराठी और कनाड़ी नाम ब्रह्मदण्डी लिखा है।

उत्पत्तिस्थान—यह मध्य भारत, उत्तरप्रदेश, पंजाब, मारवाड़ और दक्षिण कोकणमें प्रायः झाड़ियोंके नीचे या मैदानोंमें पैदा होती है।

वर्णन—यह ऊँटकटारेकी जातिका ३० सें० मी० (१ फुट)से ९०–१२० सें० मी० (३–४ फुट) ऊँचा और सीधा प्रसिद्ध क्षुप है। इसकी रंगत सफेदी लिए हुए होती है तथा तना चौकोर और शाखायें बारीक होती हैं। शाखांतपर फूल लगता है, जो प्रथम गोल निकलता और खिलनेपर कटोरीकी आकृतिका और रंगमें ललाई लिए नीला हो जाता है। इसके चारों ओर बारीक और नरम काँटे होते हैं। पौधेके समस्त अंग स्वादमें अत्यन्त तिक्त होते हैं।

उपयुक्त अंग—पंचांग।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम और खुश्क।

गुण-कर्म तथा उपयोग—शरीरबलवर्धन, स्मृतिवर्धक, जीर्णज्वरनाशक विशेषकर रक्तप्रसादन है। बलवर्धन, स्मृतिवर्धन तथा शुक्रमेह (जरयान और सैलानमनीको) बंद करनेके लिए ब्रह्मदंडीका चूर्ण गोदुग्धके साथ उपयोग कराया जाता है। रक्तप्रसादनार्थ इसको हिम या फांटमें डालकर उपयोग कराते हैं। कालीमिर्चोंके साथ इसे जलमें पीस-छानकर भी पिलाते हैं। खर्जू, फोड़े-फुंसी तथा रक्तविकार एवं त्वचाके रोगोंमें यह परम गुणकारी है। जीर्णज्वरोंके लिए अन्य औषधियोंके साथ फांट और क्वाथकी भाँति इसका उपयोग करते हैं। **अहितकर**–रूक्षता उत्पन्न करती है। **निवारण**–मधु। **प्रतिनिधि**–मुंडी और नीलकण्ठी। **मात्रा**–५ ग्राम से ७ ग्राम (५ माशे से ७ माशे) और हरीको १२ ग्राम (१ तोला) तक उपयोग कर सकते हैं।

आयुर्वेदीय मत—यह तिक्त, उष्णवीर्य, कफ, वातरोग और सूजनको दूर करनेवाली है। (नि०र०)।

(४७५) ब्रह्ममंडूकी या मण्डूकपर्णी

फैमिली : ऊम्बेल्लीफेरी (Family : Umbelliferae)

नाम—(हिं०)बेंगसाग (बिहार) = मेंढकका साग), बरहमी; (सं०) ब्रह्ममण्डूकी, मण्डूकपर्णी; (बं०) थानकुनी, थुलकुडी; (गु०) खड़ब्राह्मी; (म०) कारिवणा; (का०) ब्रह्मबूटी; (हरिद्वार) कोटयाली; (ले०) **सेन्टेल्ला एशियाटिका Centella asiatica** Urban. Linn. (पर्याय–हाईड्रोकोटाइल एशियाटिका *Hydrocotyle asiatica* Linn.); (अं०) इंडियन पेनिवर्ट (Indian Penny-wort), हाइड्रोकोटाइल (Hydrocotyle)।

वक्तव्य—कतिपय आधुनिक एवं प्राचीन लेखकोंने इसका अरबी नाम 'ज़र्नब' लिखा है जो ठीक नहीं है। इस विषयमें तालीसपत्रमें दिया गया वक्तव्य देखें।

यह वही प्रसरणशील वनस्पति है जो उत्तरप्रदेशमें अधिकांश वैद्यों द्वारा ब्राह्मीके नामसे ग्रहण की जाती है और हरिद्वार आदिसे ब्राह्मीके नामसे भेजी जाती है। परन्तु विद्वानोंके मतसे यह शास्त्रकारोंको मण्डूकमर्णी हो सकती है न कि ब्राह्मी। ब्राह्मीके लिए 'जलनीम' में लिखा वक्तव्य देखें।

उत्पत्तिस्थान—यह भारतवर्षके शीतप्रधान और आर्द्र प्रदेशों, जैसे कश्मीर, पंजाब, गढ़वाल और हरिद्वार आदिमें होती है। जल मिलनेपर यह बारहों महीने रहती है। नहरों और नालोंके किनारे यह अधिक देखी जाता है।

वर्णन—यह एक **क्षुद्र विसर्पी वनस्पति** है जो छत्तेदार होती है। इसका **तना** जमीनपर दूर तक फैलता है जिसकी प्रत्येक जोड़ (मूलग्रन्थि)पर अनेक पत्र, मूल, फूल और फल लगते हैं। पत्रवृन्त और पुष्पवृन्त उभयः गुच्छेदार होते हैं। **पत्रवृन्त** प्रायः ३-४ इंच लम्बे; **पुष्पवृन्त** अत्यन्त क्षुद्र जिनपर ३ या ४ पुष्पोंका अत्यन्त क्षुद्र रश्मियुक्त सादा छत्र होता है। **दलपत्र** कुंठिताग्र और अनाच्छादित होते हैं। **पत्र** अखंड वृक्काकृति, १/२ से २१/२ इंच व्यासमें, ७ शिरायुक्त, दंतित, चिकना या कोमल, पत्र नीचेकी तरफ कुछ-कुछ लोमयुक्त; **फल** पार्श्वमें दबे हुए; ताजा क्षुप सुगन्धित एवं विशेष प्रकारकी गाजर पत्रवत् गंध देता है; परन्तु सूखी हुई पत्तीमें यह बात नहीं होती। स्वाद उत्क्लेशकारक तिक्त और किंचित् कषय होता है। परन्तु सूखनेपर इसके उक्त गुण जाते रहते हैं।

रासायनिक संगठन—सूखे क्षुपसे **हाइड्रोकोटायलीन** नामक ऐल्लेलॉइड प्राप्त होता है। हरी पत्तीसे **एशियाटिकोसाइड** (Asiaticoside) नामक एक महाकुष्ठ एवं क्षयनाशक ग्लूकोसाइड प्राप्त होता है। इसमें **बेल्लेरीन** (Vellarine) नामक एक सफेद क्रिस्टली तिक्त गुणोत्पादक वीर्य, राल, कुछ वसामय सुगन्धद्रव्य, निर्यास, शर्करा, कषायद्रव्य, ऐल्ब्युमिनीय द्रव्य, लवण (विशेषकर ऐल्केलाइन सल्फेट्स) तथा ऐस्कॉर्बिक एसिड आदि उपादान भी होते हैं।

उपयुक्त अंग—पंचांग या पत्ती।

कल्प तथा योग—**हब्ब बरहमी**, ताजे पंचांगका **स्वरस** या छायाशुष्क पंचांगका चूर्ण। इसका फाण्ट या काढ़ा नहीं बनाना चाहिए, क्योंकि गरम करनेसे इसका तेल उड़ जाता है।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें **गरम और खुश्क**। मतांतरसे सर्द और खुश्क (या तर)। आयुर्वेदके मतसे शीतवीर्य (सु०) है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—मेध्य, स्मृतिवर्धक विशेषतया सौमनस्यजनन तथा उत्तमांगबलदायक और रतिशक्तिवर्धक है। इसको अधिकतया शीरा निकालकर या चूर्ण बनाकर मेधाजनन एवं स्मृतिवृद्धिके लिए गोदुग्धके साथ खिलाते हैं तथा अन्य उपयुक्त औषधियोंके साथ चूर्ण या गुटिका या माजून बनाकर भी उपयोग करते हैं। कोई-कोई हकीम अन्य रोगों विशेषतः शुक्रमेहमें भी इसे नानाप्रकारसे खिलाते हैं। **अहितकर**–उष्ण प्रकृतिके लिए। **निवारण**–सूखी धनियाँ। **प्रतिनिधि**–दालचीनी, कबाबचीनी और तज। **मात्रा**–३ ग्राम से ५ ग्राम (३ माशेसे ५ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—मण्डूकपर्णी तिक्त, कषाय, कटुविपाक, लघु, शीतवीर्य, वयःस्थापन, कफपित्तहर, हृद्य तथा रक्तपित्त, कुष्ठ, प्रमेह, ज्वर, कास, श्वास और अरुचिका नाश करनेवाली है। (च०सू०अ० ४, २७, वि०अ० ८३, चि०अ० १ पाद ३; सु०सू०अ० ४२, ४६)।

नव्यमत—क्षुप त्वग्रोग, महाकुष्ठ, नाडीव्यूह एवं रक्तके रोगोंमें उत्तम रसायन एवं बल्य औषधि है। पत्रका उपयोग बल्य रूपमें तथा स्मृति बढ़ानेके लिए होता है। फिरंगीय त्वग्रोगोंमें यह बाह्यान्तरिक उभय प्रकारसे उपकारक है।

मण्डूकपर्णी कुष्ठघ्न, व्रणशोधन, व्रणरोपण, मूत्रजनन, स्तन्यशोधन, संग्राहक, बल्य और रसायन है। बड़ी मात्रामें मादक (नशा लानेवाली) है। इससे सिर दुखता है, चक्कर आते हैं और नशा चढ़ता है। त्वचापर इसकी विशेष क्रिया होती है। इसका तेल त्वचाके मार्गसे निकलता है, त्वचा गरम मालूम होती है। और त्वचामें चुभन-सी प्रतीत होती है। प्रथम हाथ-पाँवमें चुभन प्रतीत होती है और पीछे सारे शरीरमें दाह प्रतीत होता है, यहाँ तक कि कभी-कभी वह असह्य हो जाता है। त्वचाकी रक्तवाहिनियोंका विकास होता है और उसमें रक्तसंचार शीघ्रतासे होने लगता है। त्वचा लाल होती है और उसमें खाज मलूम होने लगती है। सप्ताहके बाद भूख

बढ़ती है। इसका तेल वृक्कके द्वारा निस्सारित होता है, इसलिए मूत्रकी राशि बढ़ती है। त्वचाके रोगोंमें यह उत्तम गुणकारक है। उपदेशकी द्वितीयावस्थामें जब रोगका वेग त्वचा एवं त्वचाके नीचेकी कलामें होता है तब इससे विशेष लाभ होता है। सभी प्रकारके जीर्ण व्रण, गण्डमाला, क्षयज व्रण और श्लीपदमें यह उत्तम औषध है। व्रणके ऊपर इसका चूर्ण बुरकनेसे व्रण शीघ्र भर आता है। त्वग्रोगोंमें इसे खिलाते और इसका लेप करते हैं। इसके कुछ-दिन सेवनसे त्वचा लाल होती है और खाज होने लगती है। उस समय मात्रा घटानी चाहिए या औषध देना बन्द करके विरेचन देना चाहिए। (औ० सं०)।

(४७६) भंगरा

फ़ैमिली : कॉम्पोजीटी (Family : Compositae)

नाम—(हिं०) भँगरा, भाँगरा, भँगरैया; (अ०) क़दीमुल्बित; (सं०) भृंगराज, मार्कव, केशराज; (क०) भाँगर, जाडबबर; (पं०) भँगरैया; (बं०) भीमराज, केशुत्ते, केसूही, केससी; (म०) माका; (गु०) भाँगरो; (मा०) जलभीगरी; (सिंध) भंगिए; (को०) हातुकेसारी; (उ०) केसरडा; (ले०) **एक्लीप्टा प्रोस्ट्राटा Eclipta prostrata** (L.)—(पर्याय—*E. alba* Hassk. (E. ereta L.); (अं०) ट्रेलिंग एक्लिप्टा (Trailing Eclipta)।

उत्पत्तिस्थान और वर्णन—यह एक प्रकारकी प्रसिद्ध क्षुद्र वनस्पति है जो बरसातमें विशेषकर प्रायः ऐसी जगह जहाँ पानीका सोता बहता है, बारहों महीने उगती है। यह समस्त भारतवर्षमें होती है। इसका दण्डायमान वा भूलुण्ठित १/२ से १-२ फुट लम्बा क्षुद्र क्षुप होता है। तना कुछ ललाई लिए; पत्र आमने-सामने जरा लम्बा, पत्रप्रान्त तरंगायित; समस्त क्षुप सूक्ष्म-श्वेतधनरोमावृत होनेके कारण छूनेमें कर्कश (खरस्पर्श); फूल साधारणतः सफेद; बीज—कासनीके बीजकी तरह, किन्तु उनसे अधिक मोटे और काले होते हैं। भँगरा पीले फूलका भी होता है जिसे लेटिनमें वेडेलिआ कालेंडुलासेआ (**Wedelia calendulacea** Less.) और बंगालमें केशराज कहते हैं। काले फूलका भँगरा भी होता है जो कम मिलता है।

रासायनिक संगठन—इसमें विपुल प्रमाणमें राल और एकलिप्टीन (Ecliptine) नामक क्षरोदीय वीर्य होता है।

उपयुक्त अंग—पंचांग, (छायाशुष्क) या स्वरस।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम और खुश्क। आयुर्वेदमें उष्णवीर्य (कै०नि०) लिखा है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—रक्तप्रसादन, वाजीकर, दृष्टिवर्धक, वातानुलोमन, श्वयथुविलयन विशेषकर कामवर्धक है। भँगराके पत्रको अधिकतया रक्तविकारजन्य रोगों, जैसे—कुष्ठ, किलास, शीतपित्त और कच्छू आदिमें प्रयुक्त करते हैं। शोथपर इसका लेप करते हैं। दृष्टिको शक्ति देनेके लिए इसे खिलाते हैं। नेत्राभिष्यंदमें इसके रसका नेत्रमें आश्च्योतन करते हैं। उदरशूल एवं शूलरोग (कुलंज)को नष्ट करनेके लिए भी इसका उपयोग करते हैं। वाजीकरण एवं बलवर्धनके लिए इसके बीज खिलाए जाते हैं। काला भँगरा विशेषरूपसे बालोंको काला करनेके लिए उत्कृष्ट भेषज है। अहितकर—उष्णप्रकृतिको। निवारण—कालीमिर्च, शहद और अदरक। प्रतिनिधि—बिनौला। मात्रा—पत्र ५ माशेसे ७ माशे तक। बीज १ माशासे ३ माशे तक।

आयुर्वेदीय मत—भँगरा कटु, तिक्त, रूक्ष, उष्णवीर्य, रसायन, दाँत, त्वचा और केशको हितकर तथा कफ, वात, कास, कृमि, श्वास, कुष्ठ, शोथ आम और पांडुरोगका नाश करनेवाला है। जो मनुष्य केवल दूधपर रहकर एक मास तक केवल भँगरेका रस पीते हैं वे बल और वीर्ययुक्त होकर सौ वर्ष जीते हैं (कै० नि०; वा० उ० अ० ३९)।

नव्यमत—भँगरेको उबालनेसे इसका गुण नष्ट होता है, अतः इसके स्वरसका प्रयोग करना चाहिए। भँगरा तिक्त, उष्ण, दीपन, पाचन, बातहर, अनुलोमन, मूत्रजनन, बल्य, वातहर, त्वग्दोषहर, व्रणशोधन, व्रणरोपण और वर्ण्य है। इसकी मुख्य क्रिया यकृत्पर होती है। इससे यकृत्की विनिमय क्रिया सुधरती है, पित्तका उद्रेक (स्राव) ठीक होता है, आमाशय और पक्वाशयकी पचनक्रिया सुधरती है और इन तीन स्थलोंकी क्रिया सुधरनेसे सम्पूर्ण शरीरमें शक्ति प्रतीत होती है। यकृत्की क्रिया बिगड़ी हो तब भँगरा देते हैं। यकृत्की क्रिया सुधरनेसे कामला यकृद्वृद्धि, प्लीहवृद्धि, अर्श, उदर और कुपचन ये रोग आराम होते हैं। यकृत्की क्रिया बिगड़नेसे एक प्रकारका शारीरिक विष जिसको आयुर्वेदमें **आम** कहते हैं शरीरमें संचित होता है और उससे आमवात, चक्कर आना, सिरका दर्द दृष्टिमान्द्य और नाना प्रकारके त्वग्रोग उत्पन्न होते हैं, उनमें इसे देनेसे उत्तम लाभ होता है। अग्निदग्ध व्रणपर भँगरा, मरवा और मेंहदीकी ताजी पत्तियाँ पीसकर लेप करनेसे जलन नष्ट होती है और जो नई त्वचा आती है वह शरीरके समान रंगकी आती है।

●

(४७७) भाँग

फ़ैमिली : कान्नाबिनासे (Family : Cannabinaceae)

नाम—पत्र (हिं०) भंग, भाँग, विजया, सिद्धि सब्जी; (यू०) क(क़)न्नबिस (Kannabis D. 3.133); (अ०) अल्बंज (इ०बै०), खादअतुर्रजाल, क़िन्नब, (क़ुन्नब) हिंदी, हशीश, हशीशतुल्फ़ुक़्रा, वर्कुल्ख़ियाल, निशात अफ़ज़ाऽ, शह्वतअंगेज़, अर्शनुमा; (फा०) कनब(किनब) हिंदी, बंग; (सं०) भंगा, विजया; (बं०) भाङ्, सिद्धि; (म०; गु०) भांग; (ले०) **कान्नाबिस साटीवा Cannabis sativa** Linn. (पर्याय—*C. indica* Lamk.); (अं०) इंडियन हेम्प (Indian Hemp)। वक्तव्य—लेटिन एवं अंग्रेज़ी नाम इसके क्षुपके हैं। गाँजा (अ०) क़िन्नब, क़ुन्नब; (फा०) किन्नब; (सं०) गंजा; (म०; गु०) गाँजा; (बं०) गाँजा; (अं०) गंजा (Ganjah), ग्वारा (Guara)। बीज—(यू०) कन्नाबिसKannabis (D. 3.155); (अ०) अल्शह्दानक़ (इ०बै०), शाहदानज, बज़्रुल्क़िन्नब; (फा०) शा(श)हदान; तुख़्मे किन्नब, तुख़्मेबंग। (ले०) कान्नाबिस साटिवा सीमेन Cannabis Sativae semen। इसकी अरबी संज्ञा 'कुन्निब' इसकी फारसी संज्ञा 'कुन(नि)ब'का अरबी रूपान्तर है। इसकी यूनानी संज्ञा 'कनविस' और लेटिन 'कैनेबिस' (Cannabis) भी इसकी फारसी 'कनब'से ही व्युत्पन्न है।

मख़्ज़नुल् अद्विया और मुहीत आज़म में जो इसकी यूनानी संज्ञा 'दूसीफ़रूस' लिखी है, वास्तवमें इसकी यूनानी संज्ञा नहीं है। प्रत्युत सुरियानी या श्यामी संज्ञाप्रतीत होती है, जो इसके संस्कृत संज्ञा 'विजया' का पर्याय है।

इसकी यूनानी वैद्यकीय पारिभाषिक संज्ञा 'हशीश' जिससे 'हशीशीन' जातिकी आधारशिला रखी गई, अत्यंत विलक्षण है, जिसकी विशदता आगे इसके इतिवृतमें की गई है।

भाँगके नारीक्षुपोंकी पुष्पित शाखाओंको जिनके पत्तोंपर राल (उद्यास) लगी हुई होती है, हिंदी व उर्दूमें **'गाँजा'** कहते हैं जो भाँगकी संस्कृत संज्ञा 'गंजा' का पर्याय है। इसके फलवान् पत्तोंको 'भाँग' कहते हैं। इसके पिच्छिल द्रव या राल (उद्यास) को जो इसके पत्तोंपर जमी हुई होती है, जिसे उनपरसे खुरचिकर संचित कर लेते हैं, **'चरस'** कहते हैं। चरस वास्तवमें चमड़ेके थैलेको कहते हैं। मध्य एशियामें इस रालको चमड़ेकी थैलियोंमें संग्रहीत करते थे। अतएव इसका उक्त नाम पड़ गया।

अरबीमें शुष्क घासको **हशीश** कहते हैं। शुष्क भंगको भी रगड़कर पीते हैं। इसलिए पारिभाषितरूपमें इसको भी **हशीश** कहने लगे और हशीश अर्थात् भंग पीकर अपराध करनेवालोंका नाम **हशीशिय्यीन** या **हशीशीन** पड़ गया। सुतरां अंग्रेजी शब्द **अस्सेसीन** (Assassin) जिसका अर्थ 'धोखा देकर मारने वाला', इसी हशीशीन संज्ञासे व्युत्पन्न है।

शीतल एवं मोतदिल देशोंमें जो भाँग उत्पन्न होती है, वह अपने गुणधर्ममें ऐसी प्रभावी नहीं होती, जैसाकि उष्णप्रधान देशोंकी भांग।

इतिहास—पूर्वी देशों विशेषकर भारतवर्ष और चीनमें तंतूत्पादक क्षुपके रूपमें भाँग प्राचीन कालसे ज्ञात है। भारतीयोंका विश्वास है कि भाँगकी उत्पत्ति अमृतसे हुई और यह प्रायः देवताओं विशेषकर शिव और इंद्रको बहुत प्रिय था। इसलिए इसको संस्कृतमें **'इन्द्राशन'** और हिन्दीमें **'शिवबूटी'** या **'शिवजीकी घुटी'** भी कहते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि प्राचीन भारतीयोंको भाँगके मादक गुणका पूर्णतया ज्ञान नहीं था। कदाचित् मनुने ब्राह्मणोंको इसके सेवनकी मनाही की है। इसलाममें 'कुल्लो मुस्किरन हरामुन्' के अनुसार भंग सर्वथा अविहित है। वैद्य, हकीम, डॉक्टर सबका इस विषयमें **मतैक्य** है कि भाँगके पुष्कल प्रयोग एवं निरंतर सेवनसे अजीर्ण, दौर्बल्य, कास, जलोदर, पुंस्त्वहीनता, कामावसाद, मद (मनोलिया) और उन्माद प्रभृतिरोग उत्पन्न होते हैं।

यूनानियोंको भी दो सहस्र वर्षसे इस औषधिका ज्ञान है। वह भाँगके पौधोंके तनोंके रेशोंसे वस्त्र बनाते थे और कतिपय रोगोंमें इसके बीजोंकी धूनी देते थे। यूनानी हकीम **दीसकूरीदूसने** 'कनबिस' के नामसे दो प्रकारकी भाँग—उद्यानज और वन्य—का उल्लेख किया है। सुतरां कान्नाबिस साटिवा (Cannabis sativa) से 'उद्यानज भंग' अभिप्रेत है।

जालीनू, **इब्नसीना** और राजीने भंगके गुणकर्मवर्णनमें **दीसकूरीदूसके** अभिमतका अनुसरण किया है और इसके मादक गुणपर कुछ ध्यान नहीं दिया।

पश्चिमी वैद्यकीय रचनाकारोंमेंसे प्रथम इब्नबैतार है, जिसने भंगके मादक गुणका उल्लेख किया है। तत्पश्चात् बहुधा इसलामी वैद्यकीय संकलनकर्ताओंने दो प्रकारकी और किसी-किसीने तीन-प्रकारकी भाँग, वन्य, उद्यानज और पार्वतीयका उल्लेख किया है। किसी-किसीने तीसरे भेदमें 'भारतीय भंग' का वर्णन किया है जो ईसवी सन्की सत्रहवीं शतीसे लेकर अद्यावधि रूपमें औषधकी भाँति प्रयुक्त है। अब इसीका वर्णन किया जाता है।

उत्पत्तिस्थान—भारतवर्ष, ईरान, ईराक और मिस्र।

वर्णन—यह उष्णकटिबन्धजात ५० सें०मी० से १०० सें०मी० (१८–२० इञ्चसे ३६–४० इञ्च) ऊँचा एक वर्षायु प्रसिद्ध क्षुप है। इसकी बारीक-बारीक शाखायें होती हैं, जिनपर चार-पाँच पत्ते लगे होते हैं। पत्र लम्बे, नुकीले, गहरे हरे और खुरदरे, पत्रप्रान्त दन्तित; फूल सफेद और बीज (फल) छोटा-सा गोल होता है जिसको शहदाना (भाँगके बीज) कहते हैं। इसके फलयुक्त पत्तोंको भाँग; मादा पौधेकी फूलदार शाखाओं (मञ्जरी) को जिनपर रालदार द्रव्य लगा होता है गाँजा और लेसदार द्रव या राल (निर्यास) को जो भंगके पत्तोंपर लगी होती है और हाथपर चिपक जाती है और जिसे उनपरसे खुरच कर संग्रहकर लेते हैं, **चरस** (मारवाड़में 'सुल्फा') कहते हैं। इसको उसारए भंग और इत्रेविलायती भी कहते हैं।

उपयुक्त अंग—फलयुक्त पत्र (भाँग), गाँजा, चरस, बीज आदि।

रासायनिक संगठन—इसमें कैनेबिनोल (Cannabinol) नामक एक रालजातीय गुणोत्पादक वीर्य, एक उत्पत् तेल और एक क्षारोद होता है।

कल्प तथा योग—माजून फ़लकसेर।

भाँग—

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें **शीत एवं रूक्ष**। आयुर्वेदिक मतसे उष्णवीर्य (शो० नि०) है।

गुण-कर्म—संग्राही, दीपन, क्षुधाजनक, सौमनस्यजनन, वाजीकर, शुक्रस्तंभन, वीर्यशोषण, वेदनास्थापन, स्वप्नजनन, आक्षेपहर, प्रलापजनक और विशेषकर मनोल्लासकारक है। शैख़ुर्रईस आदि अरबीचिकित्सकों द्वारा उल्लिखित संमोहन योगौषधोंका भंग एक उपादान हैं। इसके अतिरिक्त इसके निम्न योग हैं :—
माजून फ़लकसेर, माजूनमसीहा, हब्ब तुख़्मभंग, रोग़नभंग, हब्ब मुनश्शित आदि।

उपयोग—संग्राही, दीपन और क्षुधाजनक होनेके कारण पाचनविकृति, अतिसार एवं प्रवाहिका (ज़हीर) में इसका उपयोग कराते हैं। मनःप्रसादकर, वाजीकर एवं शुक्रस्तंभन होनेके कारण इसे कतिपय माजूनोंमें डालते हैं। **माजून फ़लकसर** इसका प्रसिद्ध योग है। संग्राही होनेके कारण अतिरजःस्रावमें भी इसका चूर्ण खिलाते हैं। वेदनास्थापन होनेके कारण पीड़ाशमनके लिए इसका बाह्यांतरिक उपयोग करते हैं। वेदनाशमनार्थ, सूजन उतारने, कृमि नष्ट करने और आर्शांकुरोंको गिरानेके लिये झवाईटोलाके हकीम इसका बाह्य प्रयोग करते हैं। सुतरां अर्शांकुरोंकी पीड़ा शमन करनेके लिए इसको गोदुग्धमें उबालकर बफारा देते और भाँगको दूधसे निकालकर उसकी टिकिया बनाकर बाँधते हैं। अर्धावभेदक और निरंतर बने रहनेवाले शिरःशूलमें इसका आंतरिक रूपसे भी उपयोग करते हैं। स्वप्नजनन होनेके कारण अनिद्रा, कम्पोन्माद और उन्मादमें तथा पीड़ाशामक और आक्षेपहर होनेके कारण कालीखाँसी, यकृच्छूल, शूलरोग और अपतानक (कुजाज)में भी इसका उपयोग कराते हैं। पचनावयवों पर इसका बुरा प्रभाव नहीं पड़ता। इसलिए अनेक दशाओंमें नींदलानेके लिए यह अफीम की अपेक्षया अधिक उपयुक्त होता है। भंगके पुष्कल एवं निरंतर उपयोगसे क्षुधानाश, अनिद्रा, कृशता (दौर्बल्य) और कामावसाद प्रभृति उपद्रव प्रगट हो जाते हैं और मस्तिष्कपर ऐसा अहितकर प्रभाव पड़ता है कि रोगी पागल हो जाता है। **अहितकर**—दृष्टि क्षीणकर, उन्मादजनक और मद (मालिन्खोलिया) कारक है। **निवारण**—घी, पिलाना। **मात्रा**—१माशा।

चरस—

प्रकृति—चौथे दर्जेमें शीत एवं रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—मदकारि, शुक्रस्तंभन, मूर्च्छा एवं हृदयदौर्बल्यकारक है। मदकारि एवं शुक्रस्तंभन होनेके कारण इसको माजूनफ़लकसेरमें डालते हैं। इसके पुष्कल एवं निरंतर उपयोगसे वही उपद्रव प्रगट होते हैं जो भंगके प्रचुर उपयोगसे होते हैं। **अहितकर**—दृष्टि एवं मस्तिष्कके लिए। **निवारण**—स्निग्ध पदार्थ। **प्रतिनिधि**—भाँग और गाँजा।

आयुर्वेदीय मत—भाँग दीपन, पाचन, लघु, ग्राही, रुचिकर, निद्राकर, कामोत्तेजक तथा कफ और वातको दूर करनेवाली है। (शो० नि०)।

नव्यमत—गाँजेकी क्रिया प्रधानतः मस्तिष्कपर होती है। यह उत्तेजक, वेदनास्थापन, शांतिकारक, क्षुधावर्धक, पित्तद्रावी, मूत्रजनन, आह्लादकारक, कफघ्न, स्वापजनन, शोणितस्थापन, आक्षेपहर, गर्भाशयसंकोचक, बल्य, वाजीकर और त्वचाकी ज्ञानग्राहक शक्तिको कम करनेवाला है। मात्रा—शुद्ध भाँग १२० मि० ग्रा० से २४० मि० ग्रा० (१ रत्तीसे २ रत्ती) तक, शुद्ध गाँजा ६० मि० ग्रा० से १२० मि० ग्रा० ($\frac{१}{२}$—१ रत्ती); चरस ३० मि० ग्रा० या $\frac{१}{४}$ रत्ती (ओ० सं०)।

भाँग और गाँजेको दूधमें दोलायन्त्रसे पका, ज़लसे धोकर सुखा लेनेसे ये शुद्ध हो जाते हैं।

(४७८) भारंगी

फ़ैमिली : वेर्बेनासे (Family : Verbenaceae)

नाम—(हिं०) भारंगी, बनबाकरी (जौनसार); (सं०) भार्गी; (म०) भारंग; (गु०; बम्ब०) भारंगी; (पं०) भरंगी; (ते०) गंटुबरंगी; (ले०) **क्लेरोडेन्ड्रन सेर्राटुम** (Clerodendron serratum (L.) Moon.)। वामनहाटी (हिं०) बभनेटी, वाह्मनेटी; (सं०) ब्राह्मणयष्टिका; (बं०)वामन(वामुन)हाटी; (ले०) **क्लेरोडेन्ड्रुम् ईंडिकुम् (Clerodendrum indicum** (L.)O.Kuntze. (पर्याय—*C. siphonanthus* (R.Br.) C.B.Cl.)।

उत्पत्तिस्थान—न्यूनाधिक समस्त भारतवर्षके प्रायः अधिक नमीवाले जिले एवं स्थानोंमें घासके मैदानों एवं नदी नालोंके आसपास विशेषकर हिमालयकी तराई, बंगाल, बिहार आदिमें इसके पौधे होते हैं।

वर्णन। भारंगी—इसके बहुवर्षायु ३-६ फुट ऊँचे गुल्म होते हैं, जिनमें अनियमित क्रमसे अनेक चौपहल शाखायें निकली रहती हैं। पत्तियाँ कुछ-कुछ मांसल आमने-सामने या प्रतिचक्रमें तीन-तीन; लगभग अवृंत, ३-६ इंच लंबी और आरावत् दंतुर; पुष्प व्यास में १ इंचसे अधिक, नीले, हलके गुलाबी रंग या सफेद रंगके; फल अष्ठिल, प्रायः १–३, परस्पर संयुक्त और मांसल खंडफलों के होते हैं। वास्तविक भारंगी यही है, परन्तु बाजारमें मिलनेवाली भारंगी इससे भिन्न होती है।

वामनहाटी—इसके गुल्मकीय या शाकीय पौधे होते हैं, जिनमें काण्ड सीधा, लम्बा, ३-६ फुट ऊँचा, नालाकार और एक वर्षायु होता है। पत्तियाँ संधियोंपर तीन या पाँच-पाँचके चक्रोंमें (कभी-कभी अभिमुख), ५–८ इंच × ०·५—१·५ इंच बड़ी, चिकनी, प्रायः अखण्ड या लहरदार तटवाली होती हैं। पुष्प सुन्दर, श्वेत या मलाई वर्णके पत्रकोणीय गुच्छोंमें होता है; फल परस्पर संयुक्त, १-४ फलखण्डोंका बना हुआ अष्ठिल, जिसके साथ रक्तवर्णका फलोपचयी बाह्यकोश लगा होता है। शृंगारके लिए इसे बगीचोंमें लगाते हैं। इसे बंगालमें वामनहाटी और हिंदी में कहीं-कहीं भारंगी कहा जाता है जो ब्राह्मणयष्टिका और भार्गीके क्रमशः बिगड़े हुए रूप हैं। इसे भी हम वास्तविक भार्गी या उसका एक भेदमात्र मान सकते हैं। दोनों एक दूसरेका प्रतिनिधित्व कर सकते हैं।

उपयुक्त अंग—पत्र, (पत्रस्वरस), मूल और वामनहाटीसे प्राप्त उद्यास (राल)।

रासायनिक संगठन—वामनहाटीके पत्रमें विद्यमान एक तिक्त सत्वपर इसका कृमिघ्न गुण निर्भर करता है।

प्रकृति—उष्ण और रूक्ष। (आयुर्वेदमतेन उष्णवीर्य (रा० नि०) एवं रूक्ष (भा० प्र०)।

गुण-कर्म तथा उपयोग—आयुर्वेदीय औषधि होनेके कारण यूनानी ग्रन्थोंमें इसके आयुर्वेदलिखित गुण प्रयोग ही कुछ फेर-फारके साथ लिखे मिलते हैं।

आयुर्वेदीय मत—भारंगी कटु, तिक्त, कषाय, उष्णवीर्य, लघु, रूक्ष, दीपन, रुचिकर तथा कफ, वात, कास, श्वास, शोथ, व्रण, कृमि, दाह, ज्वर, गुल्म, रक्तविकार और पीनसका नाश करनेवाली है। (सु० सू० अ० ३८; रा० नि०; भा० प्र०)।

नव्यमत। भारंगी—मूलका प्रयोग दमा में, कुटजके साथ आर्तवजनन योगमें तथा ज्वरघ्न रूपमें होता है। (वि० व० पृ० १११)। यह उष्ण, तिक्त, कटु, दीपन, पाचन, किंचित् उत्तेजक, ज्वरघ्न, श्वासहर, वातहर और शोथघ्न है। इसे ज्वर और कफयुक्त रोगोंमें तथा मलेरिया ज्वरमें भी देते हैं। सर्दी, कण्ठशोथ और कफयुक्त दमामें सोंठ अथवा बचके साथ भारंगीमूल देते हैं। पत्रको ज्वरमें देते हैं। तेल और मक्खनके साथ पकाई हुई पत्तियोंका मलहर बनाकर शिरःशूल एवं नेत्राभिष्यंदमें उपयोग (लेपरूपमें) करते हैं। सर्पविषमें भी पत्तियोंका प्रयोग होता है।

वामनहाटी—मूलका कास-श्वास तथा कण्ठमालामें विशेष उपयोग होता है (वि० व०)। फिरंगीय आमवातमें इसके छालका उपयोग होता है। पत्र कटुपौष्टिक एवं कृमिहर हैं। हर्पीज विस्फोट (Herpetic eruptions) तथा पेम्फिगस (Pemphigus)में पत्तियोंके रसको घीके साथ लगाते हैं।

●

(४७९) भिंडी

फ़ैमिली : माल्वासे (Family : Malvaceae)

नाम—(हिं०) भिंडी, रामतरोई, लिलिबिरवा; (अ०) बामिया; (फा०) बामियः; (सं०) भें(भिं)डा, भिंडक, करपर्णफल; (बं०) ढेंड़श; (म०) भेंडा (डे); (गु०) भींडा(डे); (ले०) **आबेलमॉस्कुस् एस्कूलेंटुस्** (**Abelmoschus esculentus** (Linn.)Moen.(पर्याय–*Hibiscus esculentus L.*); (अं०) लेडीज़ फिंगर (Ladies finger), एडिबल हिबिस्कस (Edible Hibiscus)।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्षमें इसकी खेती की जाती है।

वर्णन—यह एक पौधेका चौपहल या पाँचपहल फल है जिसपर बारीक-बारीक चुभनेवाला रोआँ होता है। इसके अन्दर चार-पाँच कोष (खाने) होते हैं जिनमें मटरके समान गोल-गोल दाने (बीज) भरे होते हैं। फल और पौधेकी शाखायें सभी लबाबदार होती हैं। **मुश्कदाना या लताकस्तूरी** इसका एक भेद है।

उपयुक्त अंग—कच्ची फली, बीज और मूलत्वक्।

रासायनिक संगठन—ताजी फलीमें विपुल लबाब, पिष्ठ (श्वेतसार) और पुष्कल श्लेष्मनिःसारक द्रव्य; सूखी फलीमें २ प्रतिशत मांसल द्रव्य और भस्ममें सुधा, यवक्षार और लघुमृत्तिका (मैग्नीसिया); सूखे बीजमें २$\frac{१}{२}$ प्रतिशत शोराजनक सत्व और भस्ममें २४ प्रतिशत फास्फोरिक अम्ल होता है।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें सर्द एवं तर।

गुण-कर्म तथा उपयोग—अवसादक, फिसलानेवाली, पिच्छिलताकारक विशेषकर वीर्यपुष्टिकर और प्रवाहिकाहर है। इसकी तरकारी पुष्कल खाई जाती है। यह कम पुष्टिकर, चिरपाकी एवं आनाहकारक होती है। उष्ण प्रकृतिवालोंके लिए पेचिस, आन्त्रव्रण, सूजाक और गरम खाँसीमें इसका सेवन अधिक गुणकारी है। पेचिस और सुजाकमें इसका लबाब निकालकर पिलाना गुणकारक है। नरम और कोमल भिंडी जिनमें अभी बीज न पड़े हों, चूर्ण बनाकर खिलानेसे शुक्रप्रमेह और शुक्रतारल्यमें उपकार होता है। इसकी जड़की छालका लबाब भी इन रोगोंमें गुणदायक है, विशेषकर जंगली भिंडी (दुल्ला)की जड़की छाल जलमें भिगोछानकर पिलानेसे सूजाक आराम हो जाता है। **अहितकर**–चिरपाकी और आनाहकारक। **निवारण**–गरम मसाला और अदरक। **मात्रा**–औषधरूपेण ५ ग्रामसे ७ ग्राम (५ माशेसे ७ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—भिंडी (भण्डी) अम्ल, उष्ण, पिच्छिल, भारी, बादी (वातल), रुचिकारक, ग्राही, वृष्य, कफकारक, बलकारक, शुक्रवर्धक तथा खाँसी, मन्दाग्नि, वात और पीनसके रोगमें अहितकारी (चरकके अनुसार वात और पित्तकाहरण करनेवाली) एवं मलरोधक है। (च० सू० अ० २७; नि० र०)।

●

(४८०) भिलावाँ

फ़ैमिली : आनाकार्डिआसे (Family : Anacardiaceae)

नाम—(हिं०) भिलावाँ, भिलावा, भेला; (अ०) अन्क़र्दिया, इन्क़र्दिया, अल् बलाज़ुर (इ० बै०), हब्बुल्-क़ल्ब, हब्बुल्फ़ह्म, समरुल्फ़ह्‌म; (फा०) बलादुर, बिलादुर; (सं०) भल्लातक, अरुष्कर; (बं०) भेला; (क०) बिलावा; (पं०) भिलावा; (खर०) भेलवा; (म०) बिब्बा; (गु०) भिलामां; (गु०; मा०) भिलायो; (बम्ब०) बि(भि)बा; (ले०) **सेमीकार्पुस् आनाकार्डिउम् (Semecarpus anacardium** L. f.); (अं०) मार्किंग नट (Marking Nut), धोबीज़ नट (Dhobis Nut)।

वक्तव्य—लेटिन नाम वृक्षका है। बलादुरसे 'बलाज़ुर' अरबी बनाया गया है। लेटिन नाममें जातीय (Specific name) 'अनाकार्डिउम् (Anacardium)', अरबी 'अन्क़र्दिया' या 'इन्क़र्दिया' से ग्रहण किया गया है, जो भिलावेके फलके हृदयाकार रूपरेखापर आधारित प्रतीत होता है। इसका मांसल फलवृन्ताग्र जो पकनेपर लाल रंगका हो जाता है और खाया जाता है, अलिन्दों (Auricles)के आकारके प्रतिरूप; तथा वास्तविक फल निलयों (Ventricles)के प्रतिरूप होता है। पके भिलावेके फलका रस कपड़ेपर लगनेसे काले रंगका दाग देता है, इसीलिये धोबी लोग इसका उपयोग कपड़ोंपर नम्बर या निशान लगानेके लिए करते हैं, जिससे इसे अंग्रेजीमें 'Dhobis Nut' या 'Marking Nut' कहते हैं। आयुर्वेदके प्राचीन निघण्टुकारोंने भल्लातकका पर्याय 'पृथग्बीज' लिखा है।

उत्पत्तिस्थान—यह सतलजसे पूरबकी ओर ३,५०० फुटकी ऊँचाईपर तथा समस्त भारतवर्षके उष्ण-भागोंमें आसाम पर्यंत इसके वृक्ष जंगली होते हैं।

वर्णन—यह पतझड़वाले मझोले आकारके एक वृक्षका प्रसिद्ध फल है जो हृदयाकृति उज्ज्वल कृष्णवर्णका होता है। हृदयाकृति (सनोबरी शक्लका) होनेसे ही इसको अरबीमें 'हब्बुलक़ल्ब (हृत्फल)' कहते हैं। फलके अन्दर एक प्रकारका रस होता है जो अपक्वावस्थामें दुग्धवत् सफेद और पक्वावस्थामें शहदकी तरह गाढ़ा और काले रंगका हो जाता है। यह **अस्ले बलादुर** (भल्लातक मधु)के नामसे प्रसिद्ध है। इसे शरीरपर लगानेसे सूजन एवं दाह होता है। **फलवृन्ताग्र** मांसल प्रायः फलतुल्याकृति, मसृण, पक्वावस्थामें पीला और मीठा होता है। अतएव इसे खाते हैं। इसके ऊपर फल अधिष्ठित होता है। इसको कुलाहे बलादुर (भल्लातकवृन्त) कहते हैं। प्राचीन आर्यवैद्योंने इसी फूले हुए वृन्तको फल (फलाभास फल) माना है और सच्चे फलको अस्थि या बीज माना है। फलके अन्दरसे बादाम-की तरह मग्ज निकलता है जो मीठा, स्वादिष्ट एवं निरापद होता है।

उपयुक्त अंग—फलरस (अस्ले बलादुर) और फलका मग़ज़ (मग़ज़े बलादुर)।

रासायनिक संगठन—फलके मग्जमें काजूकी गिरीके समान पौष्टिक द्रव्य और अनुत्पत् मीठा तेल (रोग़न-बलादुर, दुह्‌नुलफ़ह्म) और फलके रसमें काला दाहजनक तेल होता है।

कल्प तथा योग—अन्क़र्दियाए सग़ीर व कबीर, रोग़न भिलावाँ।

प्रकृति—फलका रस चौथे दर्जेमें गरम और खुश्क; आयुर्वेद मतसे उष्णवीर्य (सु०; भा०प्र०); मग़ज़ दूसरे दर्जेमें गरम और पहलेमें खुश्क है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—**फलका रस** व्रणकारक, श्वयथुजनक, उष्णताजनन, श्वयथुविलयन, वातानुलोमन, वातनाड़ीबलदायक, बुद्धिस्मृतिवर्धक; इसकी धूनी अर्शांकुरोंको सुखानेवाली है। **मग़ज़**—वाजीकर और कफरोगनाशक विशेषकर सर्दरोगोंमें गुणदायक है। भिलावाँ और भिलावेंके रस (अस्ले बलादुर) को शुद्ध करके आंतरिक रूपसे उपयोग करते हैं। शोधनके बाद इससे कई माजूनें प्रस्तुत की जाती हैं जो बुद्धिस्मृतिवर्धनके लिये और वात एवं

कफरोगोंमें प्रयुक्त होती हैं। इसकी धूनी देनेसे अर्शांकुर सूखकर गिर जाते हैं। व्रणकारक होनेके कारण चर्मकील (सालील), दद्रु, किलास तथा पुरुष एवं त्वचाके रोगोंमें भिलावेंके रसका पतला लेप (तिला) करते हैं। सर्पदंशपर पछने लगाकर इसे लगानेसे सर्पविष भीतर शोषित होनेसे रुक जाता है। इसके **मग़ज** (गिरी) को वानीकर माजूनोंमें डालते हैं। **अहितकर**–व्रणकारक और उन्मादजनक है। **निवारण**–तिलका तेल और घी। **प्रतिनिधि**–बलसाँ। **मात्रा**–मग़ज़ १ ग्राम या १ माशा।

नव्यमत—कंठमाला, पुरुषरोग और महाकुष्ठमें गोंदका प्रयोग करते हैं।

आयुर्वेदीय मत—**भिलावेके फल** (फलाभास वृन्ताग्र) का गूदा मधुर, कषाय, शीतल, विष्टंभि, दुर्जर, वातकोपन और वातपित्तप्रकोपक है। भिलावा रसमें मधुर-कषाय और कटु, लघु, तीक्ष्ण, उष्णवीर्य, शुक्रल (वीर्यवर्धक), पाक करनेवाला (फोला उत्पन्न करनेवाला) तथा कृमि, ज्वर, आनाह, प्रमेह, उदावर्त, कुष्ठ, अर्श, ग्रहणीरोग, गुल्म, श्वित्र, अग्निमान्द्य तथा वात और कफके रोगोंका नाश करनेवाला है। कोई भी ऐसा कफज रोग या विबन्ध (कब्ज या स्रोतोंका अवरोध) नहीं है कि जिसको भिलावा दूर न करता हो। भिलावाका **मग़ज**, वृष्य, बृंहण तथा वात और पित्तको दूर करनेवाला है। (च० सू० अ० ४, २७; च० चि० अ० १ पा० ३; सु० सू० अ० ३८; भा० प्र०; राजवल्लभ)।

नव्यमत—भिलावेका रस (तेल) शरीरपर लगनेपर त्वचा काली होकर जलन होने लगती है, फोला उठता है और उसमेंकी लसीका (पंछा) जहाँ-जहाँ लगती है वहाँ-वहाँ भी फोले (छाले) उठते हैं। अधिकांश लोगोंको यह (भिलावां) लगता है अर्थात् मूत्रत्यागनेमें त्रास होता है, ज्वर आता है और फोले फटकर व्रण बनते है। भिलावेंकी यह क्रिया लक्ष्यमें आनेपर मनमें स्वभावतः यह विचार उत्पन्न होता है कि जैसे भिलावाके बाहर लगनेसे त्रास होता है वैसा ही किंबहुना उससे भी अधिक त्रास इसे खिलाने पर होगा। परन्तु ऐसा कुछ होता नहीं। योग्य प्रमाणमें और योग्य आहार-विहारके साथ इसे खिलानेसे कुछ भी हानि नहीं होती। यह तीक्ष्ण, उष्ण, लघुपाक, कटु, दीपन, पाचन, स्वेदजनन, अनुलोमन, यकृदुत्तेजक, मूत्रजनन, कुष्ठघ्न, अर्शोघ्न, वाजीकर, नाड़ीसंस्थानके लिए उत्तेजक, रक्ताभिसरणके लिए उत्तेजक, कासहर, उत्तेजक श्लेष्मनिःसारक, शोथघ्न, रसग्रंथियोंके लिए उत्तेजक, आमनाशन, रक्तान्तर्गत श्वेतकणवर्धक और रसायन है। यह रक्तमें शीघ्र मिल जाता है, परन्तु धीरे-धीरे शरीरसे बाहर निकलता है। पचननलिकाके आमाशय और उत्तरगुद इन भागोंपर इसकी क्रिया विशेष होती है। यकृत्पर इसकी प्रबल उत्तेजक क्रिया होती है और पित्तस्राव ठीक होता है। इससे यकृत्का रक्तानुधावन और विनिमयक्रिया यथावत् एवं भलीभाँति होती है। इसलिये उत्तरगुदपरका रक्तका दबाव कम होता है। गुदाकी फूली हुई सिरायें (अर्श) संकुचित होती हैं और गुदवलीको शक्ति मिलनेसे मलसंचय नहीं होने पाता। इससे खूब भूख लगती हैं और दस्त पीले रंगका साफ होता है। त्वचापर इसकी प्रबल क्रिया होती है और त्वचाके रास्ते यह बाहर निकलता है, इसलिये खूब पसीना आता है, त्वचा गरम मालूम होती है, खुजली उठती है और त्वचा लाल होती है। मूत्रपिण्ड(वृक्कों)पर इसकी अतितीव्र और उत्तेजक क्रिया होती है। प्रारम्भमें इससे मूत्रका प्रमाण बढ़ता है, परन्तु तुरन्त गुर्दोंके थक जानेसे मूत्रकी उत्पत्ति कम हो जाती है। यह क्रिया इतनी तीव्र होती है कि कभी-कभी मूत्र रक्तसे भरा हुआ होता है। गुर्दोंके समान मूत्रनलिकाके लिये भी यह उत्तेजक है। इसलिये इसे खानेके बाद शिश्नेन्द्रियमें पीड़ा होती है और शिश्नको दबानेकी इच्छा होती है। इसके सिवाय ज्ञानतन्तुओंके द्वारा भी यह शिश्न और वृषणके लिये उत्तेजक है। इस प्रकार यह प्रत्यक्ष और परोक्षरीत्या वाजीकर है। इससे नाडीका प्रमाण बढ़ता है और हृदयका स्पन्दन स्पष्ट प्रतीत होता है तथा रक्तान्तर्गत श्वेतकण बढ़ते हैं और शोथ कम होता है। श्वेतकण बढ़नेसे और रसग्रंथियोंको उत्तेजन मिलनेसे ग्रंथियोंकी वृद्धि कम होती है। सारांश यह कि शरीरके समस्त अवयवोंके लिये उत्तेजक है और थोड़ी मात्रामें लेते रहनेसे विनिमय क्रिया सुधरती है। इसलिये यह रसायन है।

कफज और वातज रोगोंमें भिलावेका प्रयोग किया जाता है। यह उष्णवीर्य है। इसलिये शीतकालमें ही इसका प्रयोग करना चाहिये। गरमीके समयमें इसका प्रयोग नहीं करना चाहिये। छोटे बालक सगर्भास्त्री और वृद्धों (तथा पित्तप्रकृतिवालों)को भिलावाँ नहीं देना चाहिये। इसके प्रयोगकालमें रोगीको दूध, घी, शर्करा और भात देना चाहिये। नमक और उष्ण पदार्थ नहीं देना चाहिये और रोगीका मूत्र देखते रहना चाहिये। यदि मूत्रकी राशि घट जाय और मूत्र धूम्र (या रक्त)वर्णका आने लगे तो प्रयोग बन्द कर देना चाहिये। भिलावेकी मात्रा अधिक होनेपर (या भिलावा सहन न होनेपर) पहिले शरीरमें खुजली उठने लगती है, खूब पसीना आता है, जलन होती है, तृषा अधिक लगती है और अन्तमें मूत्र लाल होता है। इन लक्षणोंके होते ही तुरन्त निवारण औषध देना चाहिये (औ० सं०)।

भिलावेकी हानिकर क्रिया सबसे पहले गुदा और शिश्नेन्द्रियके मुखपर मालूम होती है। वहाँ खाज होने लगे या जलन मालूम होने लगे तो तुरन्त प्रयोग बन्द करके नारियलका तेल, घी या रालका मरहम लगाना चाहिये और तिल एवं नारियल (खोपरा) खानेको देना चाहिए।

◆

(४८१) मँडुआ

फ़ैमिली : ग्रामीने (Family : Gramineae)

नाम—(हिं०) **मँडुआ, मडुआ, मकड़ा**; (सं०) रागी, मट्टक, मड़क; (बं०) माणी, मेरुया; (ता०; कना०) रागी; (ले०) **एलेउसीने कोराकाना** (**Eleusine coracana** Gaertn.); (२) **कुरीधान्य या जंगली मडुआ—एलेउसीने इंण्डिका** (**Eleusine indica** Gaertn.)।

उत्पत्तिस्थान—मडुआकी खेती भारतवर्षके सभी भागोंमें होती है। इसका दूसरा भेद 'जंगली' होता है।

वर्णन—बाजरेकी जातिका एक क्षुद्र धान्य (कदन्न) जिसके दाने लाल राईके सदृश होते हैं। भूसी दूर करनेपर इसके भीतरसे सफेद मग्ज निकलता है। बहुत प्राचीन कालसे यह भारतमें बोया जाता है, और अब अनेक स्थानोंमें जंगली दशामें भी मिलता है।

रासायनिक संगठन—ऐल्ब्युमिनॉइड्स ७·३, स्टार्च ७३·२, तैल १·५, तन्तु २·५, फॉस्फोरिक एसिड ०·४ आदि घटक होते हैं।

प्रकृति—सर्द एव खुश्क।

गुण-कर्म तथा उपयोग—गरीब और देहाती लोग मँडुएके आटेकी रोटी पकाकर खाते हैं। यह अल्पाहार (कम पोषक), गुरु, विष्टंभी एवं आध्मानकारक होता है और आनाह तथा कब्ज उत्पन्न करता है। जिस अंगपर मकड़ी मली जाय, उसपर मँडुएको पानीमें पीसकर पतला लेप करनेसे लाभ होता है। मडुएके आटे और खारी नमक (नमकेशोर)को जलोदरीके शोथयुक्त स्थानके ऊपर मलनेसे सूजन उतर जाती है। श्वयथुविलयन इसका प्रधान कर्म है। अहितकर–उष्ण प्रकृतिको। निवारण–विविध स्नेह (तेल)। प्रतिनिधि–बाजरा।

आयुर्वेदीय मत—मडुआ (नर्तक) मधुर, तिक्त, कषाय, शीतवीर्य, लघु, तृप्तिकारक, बलकारक तथा पित्त, त्रिदोष और रुधिरके दोषोंको दूर करनेवाले हैं। (नि० र०)।

◆

(४८२) मुंडी

फ़ैमिली : कॉम्पोजीटी : (Family : Compositae)

नाम—(हिं०) मुंडी, गोरखमुंडी; (सं०) मुण्डिका, मुण्डी, श्रावणी; (पं०) मुंडी; (म०; गु०; मा०) गोरखमुंडी; (बं०) मुरमुरिया; (ले०) स्फेरांथुस् इंडिकुस् (**Sphaeranthus indicus** L.); (२) महामुंडी या महाश्रावणी–स्फेरांथुस आफ्रीकानुस (**S. africanus** Linn.)।

वक्तव्य—इसे यूनानी ग्रन्थोक्त 'कमाजरियूस' समझना ठीक नहीं है।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्षमें कुमाऊँसे सिक्किम तक हिमालयमें ५,००० फुट की ऊँचाई पर, प्रान्तके सभी भागोंमें प्रायः धानकी क्यारियों अथवा नम जमीनमें इसके पौधे अधिक होते हैं।

वर्णन—मुण्डीके प्रसरणशील (जमीनपर फैले हुए) प्रायः ८ इंच ऊंचे, गंधयुक्त क्षुप वर्षाऋतुके अंतमें होते हैं। काण्ड सपक्ष; पत्तियाँ अवृन्त, अभिलट्वाकार अथवा अभिप्रासवत्, दन्तुर, १-२ इञ्च लंबी तथा काण्डसंयुक्त होती हैं। मुण्डक पत्राभिमुख विषमलिंग, संयुक्त, ०·५ से ०·७५ इञ्च लंबे, व्यूहाक्ष दीर्घित और अधःपत्रावलिके पत्र रेखाकार तथा तीक्ष्णाग्र होते हैं। शीतकालमें किरमजी रंगके फूल आते हैं। पुष्प छोटे-छोटे (फूल मुण्डक) लगते हैं। यह फूल 'गुलेमुंडी' नामसे अधिक औषधके काम आते हैं। जड़ तन्तुल होती है। स्वाद किंचित् तिक्त और फूलकी गंध तारपीनवत् होती है। छोटी और बड़ी भेदसे मुण्डी दो प्रकारकी होती है।

उपयुक्त अंग—पंचांग और पुष्प।

रासायनिक संगठन—ताजे पुष्पित क्षुपमें एक कालापन लिए लाल रंगका स्थिर तेल और पत्र-पुष्प कांडमें स्फीरेन्थीन (Sphaeranthine) नामक एक ऐल्केलॉइड (तिक्त सत्व) होता है।

कल्प तथा योग—अतरीफल मुंडी, अर्कमुण्डी, माजून मुंडी, शर्बतमुण्डी, रोग़नमुण्डी और चोआ मुण्डी।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम और तर। आयुर्वेदके मतसे भी उष्णवीर्य (भा० प्र०)। राजनिघण्टुमें इसे हिम औइ पित्तघ्न बताया है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—मुण्डीका प्रधान कर्म रक्तशोधन (मुसफ़्फ़ीखून) है। यह हृदय एवं ज्ञानेन्द्रियोंको भी बल देनेवाली है। रक्तशोधन होनेके कारण इसे दमामील, सूजन, बुसूर, कण्डू एवं कच्छू और दद्रुरोगमें अकेले या अन्य द्रव्योंके साथ शीरा निकालकर या फाण्ट (नक़ूअ) बनाकर या चूर्ण (सफ़ूफ़)के रूपमें गुलेमुण्डी (मुंडीके फूल) का उपयोग किया जाता है। ज्ञानेन्द्रियोंको बल देनेके कारण तथा हृदय बलदायक होनेके कारण हृदयदौर्बल्य, मद (मालिनखोलिया), धड़कन, (ख़फ़कान) तथा मस्तिष्ककी दुर्बलता आदि रोगोंमें इसका उपयोग होता है। इन रोगोंमें यथाविधि इसका अर्क निकालकर या शर्बत बनाकर उपयोग कराया जाता है। पुष्प आनेसे पूर्व समग्र बूटीको उखाड़कर छायामें सुखाकर समभाग मिश्री या शहद मिलाकर ज्ञानेन्द्रियोंको शक्तिदेनेके लिये सेवन कराते हैं। इसका चोआ निकालकर भी सेवन कराया जाता है। शीतल व्याधियों और वाजीकरणके लिये भी इसे लाभदायक समझा जाता है। अहितकर–उष्ण प्रकृतिको। निवारण–भाँगरेका स्वरस। प्रतिनिधि–ब्रह्मदंडी और सरफोंका। मात्रा–७ ग्रा० से १२ ग्रा० (७ माशासे १ तोला)।

आयुर्वेदीय मत—गोरखमुंडी कटु, तिक्त, मधुर, कटुविपाक, उष्णवीर्य, लघु, मेध्य, रसायन तथा वात, रक्तविकार, अपची, अपस्मार, श्लीपद, कुष्ठ, क्रमि, योनिरोग, पांडुरोग, प्लीहाके रोग, मेदोरोग और अर्शका नाश करनेवाली है। (च०चि०,अ० १, पाद ४; ध०नि०; भा०प्र०)।

नव्यमत—मुंडी दीपन, मूत्रजनन और आनुलोमिक है। इसका तेल त्वचा और वृक्क द्वारा निःसरित होता है। इसलिए मुंडी सेवन करनेवालेके पसीना और पेशाबमें एक प्रकारकी गंध आती है। मूत्रेन्द्रियके रोगोंमें मुंडीसे उत्तम लाभ होता है। इससे पेशाव उतरता है और वृक्कसे मूत्रद्वार पर्यंत सारे मार्गका शोधन होता है, बारम्बार पेशाब होना कम होता है और पेशाबका रंग सुधरता है। इसके अधिक दिन सेवन करते रहनेसे बारम्बार फोड़े-फुंसी निकलनेकी आदत मिटती है और कास, गण्डमाला, शारीरिक अशक्तता आदि जीर्णरोग आराम होते हैं तथा कान्ति सुधरती है।

●

(४८३) मकाई

फ़ैमिली : ग्रामीने (Family : Gramineae)

नाम—(हिं०) मकई, मकाई, मक्का, बड़ी ज्वार(जोन्हरी), भुटा, ललमकरी; (अ०) खंदरूस, हिंतए-रूमिया, गंदुमे मक्का, शईररूमी; (फा०) जुर्त(जुर्रा) मक्का, ज्वार कलाँ; (बं०) भूटा, जनर; (पं०) मकई; (म०) मका; (गु०;सिंध) मकाई; (मार०) मक्का; (ले०) ज़ेआ मेज़ (**Zea mays** Linn.); (अं०) मेज (**maize**), इंडियन कॉर्न (Indian Corn)। दाढ़ी या बाल (ले०) स्टिग्माटा माइडिस (Stigmata Maidis); (अं०) कार्नसिल्क (Corn-silk), फ्लावर पिस्टिल्ज ऑफ मेज (Flower pistils of Maize)।

उत्पत्तिस्थान—भारतवर्षमें मक्केकी प्रचुरतासे खेतीकी जाती है।

वर्णन—यह जोन्हरीकी जातिका एक प्रसिद्ध अन्न है, जो लाल, पीला और सफेद रंगका होता है। इसकी बालको 'भुट्टा' और दाने निकले बालको 'गुल्ली' या 'छूछ' और इसके बालोंको 'दाढ़ी' कहते हैं।

उपयुक्त अंग—भुट्टाके दाने, दाढ़ी और गुल्ली।

रासायनिक संगठन—दाढ़ीमें ईथर-सुरासार तथा जलविलेय मेज़िक एसिड (Maizic acid) २ प्रतिशत, चिपचिपा, निर्मल, हलका भूरा, फीका, न सूखनेवाला, न बिगड़नेवाला, भुट्टेकी गंधवाला अनुत्पत् तेल (Oleum maidis), राल, शर्करा, लबाब और लवण; हरेदानेमें मांसवर्धक पदार्थ (८$\frac{३}{४}$ प्रतिशत), स्टार्च (५४.३ प्रतिशत), वसा (३ प्रतिशत) तथा सेलूलोज (१५.२५ प्रतिशत) आदि तत्व होते हैं। इसके अतिरिक्त जल (१२ प्रतिशत) राख (१ प्रतिशत–१$\frac{१}{२}$ प्रतिशत) सूखे दानेमें पिष्ठ (७० प्रतिशत), मांसवर्धक द्रव्य ९ प्रतिशत, वसा ६ प्रतिशत; वृक्षके कांडमें शर्करा प्रभृति द्रव्य होते हैं।

प्रकृति—पहले दर्जेमें सर्द तथा दूसरेमें खुश्क।

गुण-कर्म तथा उपयोग—संग्राही और आनाहकारक। भुनी हुई मकाई सर है। यह नेत्रके जालामें विशेष गुणकारी है। मकाईके आटेकी रोटी पुष्कल खाते हैं। यह भी काफी पुष्टिकर है। परन्तु ज्वारकी अपेक्षया अधिक गुरु एवं काबिज है, आनाह उत्पन्न करती और उष्ण प्रकृतिवालोंके लिए पथ्यकर आहार है। मकाईको भूनकर भी बहुत खाते हैं। इसके खानेसे कब्ज दूर हो जाता है। आर्तवशोणित एवं अर्शोजात रक्त रोकनेके लिए भुट्टेकी गुल्लीको जला-चूर्ण बनाकर खिलाते और नमकके साथ खाँसीमें उपयोग करते हैं। अहितकर–आनाहकारक, गुरु, विष्टंभी एवं दीर्घपाकी है। निवारण–नमक, कालीमिर्च और शर्करा। प्रतिनिधि–छोटी ज्वार (जोन्हरी)।

आयुर्वेदीय मत—मकाई, रूक्ष, वातकारक(बादी), तृप्तिकारक, विष्टम्भकारक और कफपित्तनाशक है। कच्ची मकाई पुष्टि और रुधिरकारक है। (शा० नि० भू०)।

नव्यमत—दाढ़ी मूत्रल और स्निग्ध (Demulcent) है। बहुशःमूत्ररोगों, वस्तिविकार आदिमें बहुमूल्य औषधकी भाँति इसकी प्रशंसाकी जाती है। वस्तिगतमूत्रके सपूय विघटन (Purulent decomposition)में विशेषरूपसे उपकारक है। एक पाइंट उबलते जलमें २½ आउंस इसका बनाया हुआ फांट एक सर्वाधिक कार्यकारी कल्प है और स्वच्छंदरूपेण प्रयोगमें लेने योग्य है। प्रवाही सत्वकी **मात्रा ½** ड्रामसे २ ड्राम है।

●

(४८४) मकोय

फ़ैमिली : सोलानासे (Family : Solanaceae)

नाम—(हिं०) मको, मकोय, कवैया; (अ०) इनबुस्सालब; (फा०) रोबाह तुर्बुक, अंगूरे शिफ़ा, अंगूरे रोबाह, सगेअंगूर, अंगूरे शिग़ाल; (सं०) काकमाची; (सिं०) कावलि; (कच्छ) कापरू, कांपेरू; (कु०) किव, गिव; (द०) कामूनी; (बं०) काइस्तला शाक; गुड़कामाई; (पं०) काचमाच, मको; (म०) कामोणी; (गु०) पीलुड़ी; (सिं०) कांवलि; (कु०) किवे, गिवे; (लें०) **सोलानुम् मीनिआटुम्? (Solanum miniatum**); (अं०) गार्डेन नाइटशेड (Garden Nightshade)।

उत्पत्तिस्थान—यह समस्त भारतवर्षमें बगीचों और जोते हुए खेतोंमें होती है, और प्रसिद्ध है।

वर्णन—मकोयका ३० से ९० सें० मी० (१-३ फुट) ऊँचा क्षुप होता है। पत्र लालमिर्चके समान; पुष्प सूक्ष्म, श्वेतवर्णके; कच्चे फल हरे, पकनेपर ललाई लिए काले रंगके हो जाते हैं। **लाल फलका मकोय इसीका एक भेद है। इब्न बैतारके** कथनानुसार इसके अनेक भेद होते हैं। **काकनज (Physalis alkekengi** Linn.) इसकी पुं० जाति है (इ०बै० ३/१३५)।

उपयुक्त अंग—शुष्क अपक्व फल, पत्र और फलयुक्त पंचांग।

रासायनिक संगठन—इसके पंचांगमें विशेषतः फलोंमें सोलेनीन (**Solanine**) नामक एक क्रिस्टली ऐल्केलायड, जो शर्करा एवं सोलेनिडीनका एक यौगिक है, पाया जाता है। यह कनीनिकाविस्फारक है। इसके अतिरिक्त इसमें साबुनतत्व या सैपोनिन (Saponin) होता है।

कल्प तथा योग—कोमलशाखाग्र एवं पत्रस्वरस (मात्रा ३० ग्रामसे १०० ग्राम)। ताजे पत्रके स्वरससे बनाया हुआ क्वाथ तथा रसक्रिया। **रसक्रिया-निर्माणविधि**—मकोयकी ताजी पत्तियोंको खूब कुचल-पीसकर छान लेवें। तत्पश्चात् मिट्टीके बर्तनमें १०-१५ मिनट तक पकावें। पुनः उसे उतारकर ठंढा होनेपर छानकर रखें। यह क्वाथ है जिसे यूनानीमें हरी मकोयकी पत्तीका फाड़ा हुआ पानी (**अर्क़ बर्गइनबुस्सालब सब्ज़ मुरव्वक**) कहते हैं। इसकी मात्रा १०० मि० लि० से १२५ मि०लि० है। उक्त प्रकारसे प्राप्त रसको पकानेके स्थानमें उसे बालुका या जलबाष्प (Sand or water-bath)पर इतना पकावें, कि वह गाढ़ा हो जाय तो उस मृदु गाढ़े पदार्थको रसक्रिया (Extract) कहते हैं। **मात्रा**–२ ग्राम, दिनमें तीन बार। **योग–अर्क़ मको, कैरूती मकोवाली।**

●

(४८५) मकोय लाल

फ़ैमिली : सोलानासे (Family : Solanaceae)

नाम—(भा० बाजार) इनबुस्सालब; (लें०) **सोलानुम डल्कामारा (Solanum dulcamara** Linn.); बिटर-स्वीट नाइटशेड (Bitter Sweet Nightshade), बुडी नाइटशेड (Woody Nightshade)।

उत्पत्तिस्थान—हिमालयके अनुष्णाशीत प्रदेशोंमें कश्मीरसे गढ़वाल तक, तथा ईरान, तुर्किस्तान, मध्य एशिया आदिमें इसके क्षुप होते हैं। परन्तु कुछ प्रमाणमें इसके लाल शुष्क फलका आयात बम्बईमें फारससे होता है। बाजारोंमें इसके सूखे हुए **कोमल** लकड़ीके टुकड़े और लाल फल बिकते हैं।

वर्णन—यह एक छोटी-सी काष्ठमय झाड़ी या आरोही पौधा है जो लगभग १·८मीटरसे २½ मीटर (६-८फुट) तक ऊँचा होता है। इसकी **शाखाएँ** पतली और जड़ काष्ठमय होती है। **पत्र** एकान्तर, सवृंत, त्रिखण्ड, नोकदार, नरम, चिकना और हलका हरा; **पुष्प** बनफशई रंगका; **फल** छोटा अण्डाकृति चनेके बराबर प्रारम्भमें हरा फिर पीला, अन्तमें श्वेतांग रक्तवर्णका हो जाता है, और पत्तोंके गिर जानेके उपरान्त गुच्छोंमें लटकते रहते हैं। स्वाद पहले तिक्त बादमें मधुर होता है। इसलिए इसको लेटिनमें **डलकेमारा**, आंग्लभाषामें **बिटरस्वीट** और अरबी तथा संस्कृतमें क्रमशः **अल्हलोबल्मुर** तथा **स्वादुतिक्त** कहते हैं। ताजा क्षुप दुर्गन्धयुक्त होता है, परन्तु शुष्कक्षुपमें दुर्गन्ध नहीं होती।

उपयुक्त अंग—पत्र और छोटी-छोटी शाखाएँ। किन्तु यूनानी वैद्यकमें इसके फल प्रयुक्त होते हैं। भारतीय हकीम इसके सिवाय पूर्वोक्त दोनों प्रकारकी मकोयका अपेक्षाकृत अधिक व्यवहार करते हैं।

रासायनिक संगठन—इसमें डलकेमारिन (Dulcamarin) या पिक्रोग्लिसिओन (Picrogliycion) नामका एक विशेष प्रकारका कुछ पीताभ वर्णका **ग्लूकोसाइड**के स्वभावका (अक्षारोदस्वभावी) सत्व है जो शर्करा और सोलैनिडीनमें वियोजित हो जाता है।

कल्प तथा योग—**अर्क़ मको**, केरुती मकोवाली।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें **सर्द** एवं **खुश्क** है। आयुर्वेदमतेन अनुष्णाशीत (च०; सु०) एवं उष्णवीर्य है।

गुणकर्म तथा उपयोग—संग्राही, **दोषविलोमकर्ता**, उपशोषण, तारल्यजनन, संतापहर तथा लेप **और** पानतः **उष्णश्वयथुविलयन** है। कोषस्थ अंगों (अहशाऽ) की सूजन विशेषतः **यकृच्छोथ**, अन्त्र आमाशयशोथ और **जलोदरमें** तथा **कण्ठ** एवं **उरःफुफ्फुस रोगोंमें** सूखी मकोय पान और लेपतः उपयोग की जाती है। उक्त रोगोंमें इसके पत्रस्वरसका फाड़कर लिया हुआ पानी पिलाते हैं। इससे विरेक द्वारा दोषोत्सर्ग होता है। अकेला या अन्य औषधियोंके साथ पीसकर इसका (मकोय) लेप करते हैं। प्रारम्भमें लेप करनेसे यह दोषविलोमकरण और उसके बाद श्वयथुविलयन कर्म करती है। अग्निदग्ध, विस्फोटजन्य व्रण, परिसर्पी व्रण और व्रणित कर्कट (सर्तान) रोगमें इसका अकेला या अन्य औषधियोंके साथ लेप किया जाता है। जिह्वाशोथ और कंठशोथमें इसका अकेला या अमलतासकी गुद्दी डालकर बनाए हुए काढ़ेसे गण्डूष कराते हैं। नासिका एवं कर्ण रोगोंमें मकोयके पत्तेका कुनकुना रस कान और नाकके भीतर टपकाया जाता है। यह उष्ण उरःशूलका प्रशामक एवं सूजन उतारनेवाला है। **अहितकर**—बस्तिरोगोंमें। **निवारण**—मधु। **प्रतिनिधि**—काकनज। **मात्रा**—शुष्क मकोय ५ ग्रामसे ७ ग्राम तक। मकोयकी पत्तीका फाड़ा हुआ रस ४ तोले तक।

आयुर्वेदीय मत—मकोय कटु, तिक्त अनुष्णाशीत, भेदन (सारक), वृष्य, स्वर्य, रसायन, त्रिदोषप्रशमन तथा कुष्ठ, शूल, अर्श, शोथ और कण्डूको मिटाने वाली है एवं ज्वर, प्रमेह, वमन और हृदयरोगको हरनेवाली है।

सुश्रुतने काकमाचीके शाकको सतीन (मटर)के समान लिखा है। चरकमें वात, रक्त, अर्श, ऊरुस्तम्भ आदिमें मकोय शाकको गुणप्रद माना है। मकोय और मधु मिलाकर खानेसे विष होकर मरणकी आशंका रहती है। उनके मतसे मकोयका बासी शाक खानेका निषेध है।

नव्यमत—मकोय शीतल, मूत्रजनन, रेचन, वेदनास्थापन, श्लेष्महर, स्वेदजनन और कुष्ठघ्न है। मकोय की प्रधान क्रिया यकृत्पर होती है। यकृत्क्रियाके बिगड़नेसे जीर्ण यकृद्वृद्धि, अर्श, उदर आदि नाना प्रकारके रोग उत्पन्न होते हैं। मकोयके पत्रस्वरससे दस्त साफ होकर आन्त्रगत विषका निर्हरण हो जाता है अल्प संचित विष जो बाहर दस्तके साथ नहीं निकलते और यकृत्में पहुँचते हैं, वे मूत्र द्वारा निकल जाते हैं। शोथमें स्वरस बहुत ही उपयोगी है। ज्वर, शोथ, हृद्रोग और नेत्र रोगमें इसका फल उपयोगी है।

डॉ० मोहीउद्दीनने सशोथ या अशोथ चिरज यकृद्वृद्धिमें काली और लाल दोनों प्रकारकी मकोयके पत्रस्वरसके फाड़े हुए पानी अथवा पत्रस्वरसकी रसक्रियाका बहुत बड़ी मात्रा (अत्यधिक प्रमाण)में प्रयोगका निर्देश किया है।

यकृद्विकारोंमें इसका प्रयोग अतीव गुणकारक सिद्ध हुआ है। इसके ताजे पत्रके रससे तैयार किया हुआ क्वाथ और रसक्रिया काममें ली जाती है। इसके स्वरसको अग्निपर पका छानकर प्राप्त किये हुए पानीको १००-१२५ मि० लि० की मात्रामें प्रतिदिन प्रातःकाल देनेसे इसका जलवत् विरेचन तथा मूत्रजनन कार्य होता है। इसकी रसक्रियाको २ ग्रामकी मात्रामें दिनमें २-३ बार देनेसे इसका मूत्रजनन एवं मृदुविरेचन कर्म होता है तथा यकृद्वृद्धि एवं अन्य चिरज यकृद्रोगोंमें इसका बड़ा अच्छा प्रभाव होता है।

●

मकोय जंगली

फ़ैमिली : र्‌हाम्नासे (Family : Rhamnaceae)

नाम—(हिं) जंगली मकोय, मकोय (ई), मकोइचा, मकोइया, अम्लचाँक(ग)डी (**मक़ालात एह्सानी**); (सं०) शृगालकोली, दुःस्पर्शा, वल्लीबदर; (बं) सियाकुल; (म०) मकोर; (उडि०) बड़ोकोली, कोंटकोलो; (खर०) डथौरा; (ते०) परकीपंडु; (ले०) **ज़ीज़िफ़ुस एनोप्लिआ** (**Zizyphus oenoplia** Mill.); (अं०) जैकाल जुजुब (Jakcal Jujube)।

वक्तव्य—वास्तवमें यह बेर (ज़ीज़िफ़ुस) ज्ञातिकी वनस्पति है; किन्तु चूंकि इसका फल रूपरेखा एवं रंगमें मकोयकी भाँति होता है, और उक्त वनस्पति जंगलीरूपसे (Wild) ही पायी जाती है, इसीलिए इसके उक्त **जंगलीमकोय** या **मकोइया** आदि नाम रखे हैं। बदर जातिमें प्रायः झाड़ियाँ या छोटे वृक्ष होते हैं; किन्तु यह लतास्वभावकी होती है, जिससे संस्कृत में "**वल्लीबदर**" संज्ञा पड़ी है; कँटीली होनेसे पौधेपर हस्तक्रिया सुगम न होनेसे **दुःस्पर्शी**, तथा सियारको इसके खटमिट्ठे फल प्रिय होनेसे '**शृगालकोली**' नाम रखा गया प्रतीत होता है।

उत्पत्तिस्थान और वर्णन—यह बेरकी जातिकी तरहकी एक कँटीली झाड़ीका फल है, जो रंगरूपमें मकोयके समान; किन्तु अपेक्षाकृत कुछ बड़ा और बेरकी भाँति कड़ा गुठलीदार होता है। अपक्वावस्थामें यह हरा और किंचित् अम्ल, किन्तु पक्वावस्थामें काला और अम्लतायुक्त मधुर हो जाता है। बीज छोटा और चिपटा तथा कड़ा और मग्ज अरहरकी दालके बराबर, जिसका स्वाद फीका और किंचित तिक्त होता है।

प्रकृति—पहले या दूसरे दर्जेमें सर्द और खुश्क।

गुण-कर्म तथा उपयोग—यह क्षुधाजनक, आहारपाचन, अश्मरीनाशक, कुष्ठघ्न, अर्शोघ्न और अतिसारघ्न है (मफ़ालात एह्सानी)। कच्चे फलमें किसी कदर चेप होता है और पका हुआ फल थोड़ा-सा चिकना और फीका, गुरु, कफकारक तथा मलमूत्रसंगकारक है (ख़ज़ाइनुल् अदविया)।

●

(४८६) मखाना

फ़ैमिली : नीम्फेआसे (Family : Nymphaeaceae)

नाम—(हिं०; बं०) मखाना, मखारा, फूलमखाना; (सं०) मखान्न; (म०) मकाणे, मखाणे; (गु०) मखाणा; (पं०) जवेर; (ले०) **एउरीआले फेरोक्स (Euryale ferox** Salisb.)।

उत्पत्तिस्थान—बिहारके मिथिला प्रदेशमें विशेषतः दरभंगामें मखाना अधिक होता है। उत्तर, मध्य, पश्चिम भारतवर्ष, कश्मीर, बंगाल, बिहार, अवध, मणिपुर आदिके पानीके बड़े तालाबोंमें या झीलोंमें भी पाया जाता है।

वर्णन—यह कमलकी तरहके कँटीले जलीय पौधेके फलके बीज हैं, जो कमलगट्टेकी तरह होते हैं। इनको भूननेसे मखानेका लावा प्रस्तुत होता है। कच्चे मखानेका सफेद मग्ज़ निकालकर खाते हैं और पके सूखे मखानेको भूनकर योगोंमें डालते हैं। मखाना (बीज) और कमलबीज (कमलगट्टा) गुणधर्ममें समान माने जाते हैं।

गुण-कर्म तथा उपयोग—ताजा मखाना बल्य, वाजीकर और शुक्रल है। सूखा भुना हुआ मखाना संग्राही होता है। मखानेका प्रयोग अधिकतया स्त्रियोंमें प्रसवोत्तर दौर्बल्यको दूर करनेके लिये हलुओंमें डालनेके लिये किया जाता है। इसके अतिरिक्त शुक्रप्रमेह एवं कामावसादके लिये इसे चूर्णोंमें डालकर उपयोग करते हैं। यह विशेषरूपसे बृंहण है। **अहितकर**–शीतल प्रकृतिके लिये। **निवारण**–इसका भृष्ट करना। **मात्रा**–७ ग्रामसे १२ ग्राम (७ माशेसे १ तोला)।

आयुर्वेदीय मत—मखाना गुणमें कमलगट्टे जैसा होता है।

●

(४८७) मछेछी

फ़ैमिली : आमारान्थासे (Family : Amaranthaceae)

नाम—(हिं०) मछेछी, पानाचूनी; (संथाल) गुडरीसाग, गरैपडी अड़ा; (बं०) शालिंच; (बम्ब०) कांचडी; (सं०) मत्स्याक्षी, मत्स्याक्षक (सु० शा०), मीनाक्षी; (कना०) हुनगुंदा; (ले०) **आल्टरनैन्थेरा सेस्सिलिस (Alternanthera sessilis** R. Br.)।

उत्पत्तिस्थान तथा वर्णन—एक छोटी बूटी जो भारतवर्षके समस्त उष्णतर भागोंमें पानीके किनारे या नम स्थानोंमें उगती है। इसके क्षुप परिप्रसरी, अथवा ग्रन्थिमूलप्रसरी होते हैं। कभी-कभी शाखायें उत्थितप्रसरी होकर आस-पासकी झाड़ियोंपर फैली रहती हैं। पत्तियां लम्बी अण्डाकार, रेखाकार, आयताकार या अन्य प्रकार

की भी होती हैं और प्रायः ०·५–२ इञ्च लम्बी रहती है। पुष्प मुण्डकाकार, पुष्पगुच्छ श्वेत या गुलाबी होते हैं; पुष्प खिलने पर आधार भागमें गुलाबी और ऊपर सफेद होते हैं। इसका पत्रशाक होता है।

उपयुक्त अंग—पंचांग (क्षुप); कांड, पत्र।

रासायनिक संगठन—नवीन शाखायें पोषक होती हैं और उनमें प्रोटीन ५ प्रतिशत तथा लोहा होता है।

प्रकृति—गरम और खुश्क (मतान्तरसे मोतदिल)। वैद्योंकी रचनाओंमें सर्द लिखा है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—रक्तशोधक, व्रणलेखन (मुजाफ़्फ़िफ़ क़ुरूह), संग्राही (काबिज), दृष्टिसंरक्षक, रक्तशोधन, व्रणलेखन और शुक्रप्रमेहनाशन इसके प्रधान कर्म हैं। रक्तशोधक होनेसे रक्तविकारजन्य रोगोंमें इसका उपयोग करते हैं। व्रणलेखन (मुजफ़्फ़िफ़ कुरूह) होनेसे मलहरकल्पोंमें इसे डालते हैं। जिन व्रणोंसे पीला पानी बहता है उनको यह अतिशीघ्र सुखा देती है। तिलके तेलमें इसका स्वरस मिलाकर इतना पकायें कि केवल तेलमात्र शेष रह जाय। यह तेल भी व्रणोंमें लगाया जाता है। संग्राही होनेके कारण शुक्रस्राव, शुक्रप्रमेह और रक्तातिसारको बन्द करती है। मछेछी, भँगरा और विषखपरा इनके स्वरससे नेत्रवर्ति बनाकर उपयोग करनेसे नेत्राभिष्यंद, रक्ताजाधिमन्थ (वर्दीनज), नेत्रकण्डू, पोथकी या रोहे और दृष्टिमान्द्यमें लाभ होता है। **अहितकर**—उष्णप्रकृतिको। **मात्रा**—५ ग्रामसे ७ ग्राम (५ माशासे ७ माशा)।

आयुर्वेदीय मत—मछेछी स्वादिष्ट, तिक्त, कषाय, विपाकमें कटु, शीतवीर्य, लघु, ग्राही तथा कुष्ठ, पित्त, कफ और रुधिरविकारको दूर करनेवाली है। (भावप्रकाश)।

●

(४८८) मजीठ

फ़ैमिली : रूबिआसे (Family : Rubiaceae)

नाम—(हिं०; पं०; गु०) म(मँ)जीठ; (यू०) Erathrodanon (D. 3.150); (अ०) फूह; फ़ुव्वः, फोव्वहुस्सबग़, फोव्वहु (–तु)स्सबाग़ीन, उरूक़ुस्सबग़, उरूकुल्हम्र; (फा०) रबूनास; (अफ़०; फा०)रूदक, रूदानक; (सं०) मंजिष्ठा, लोहितलता, योजनवल्ली; (क०) मजेठ; (बं०) मंजिष्ठा; (सिंध) मैंठ, (म०) मंजिष्ठा; (ले०) **रूबिआ कार्डिफ़ोलिआ (Rubia cordifolia** Linn.); (अं०) हार्ट-लीव्ह्ड मैडर (Heart-leaved Madder), इण्डियन मेडर (Indian Madder)।

वक्तव्य—इसका विदेशी भेद **रूबिआ टींक्टोरिआ** (**R. tinctoria** Linn.) है।

उत्पत्तिस्थान—यह शीत कटिबंधीय पहाड़ी प्रदेशों, कश्मीर, नेपाल, अफगानिस्तान आदि स्थानोंमें होती है।

वर्णन—यह एक सुदीर्घ लता वा झाड़ी है, जो वृक्षादिको आश्रय करके प्रतानविस्तार करती है। जड़ एक-दो इंच लम्बी, छोटी और ताजी ललाई लिए बैंगनी होती हैं। मोड़नेपर अन्दरकी आभा लाल होती है। पुरानी होनेपर जड़ें काली पड़ जाती हैं। स्वाद प्रारम्भमें मीठा इसके बाद जरा चरपरा और तिक्त होता है। हिन्दुस्तानी, नेपाली, ईरानी और अफगानी इन नामोंसे चार प्रकारकी मजीठ मिलती है। अफगानिस्तानसे सिंध होकर जो मजीठ यहाँ आती है, वह उत्तम समझी जाती है। हिन्दुस्तानी मजीठ कनिष्ठ होती है।

उपयुक्त अंग—समग्र लता विशेषकर जड़।

रासायनिक संगठन—जड़में रालदार एवं तद्भव पदार्थ, निर्यास, शर्करा, रंजक द्रव्य और चूनेके लवण होते हैं। रंजक द्रव्यमें पर्प्यूरिन (Purpurin) नामक एक लाल क्रिस्टली सत्व, मंजिस्टीन (नामक एक पीला सत्व (ग्लूकोसाइड) प्रभृति सत्व होते हैं।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम और खुश्क; आयुर्वेदके मतसे भी उष्णवीर्य (कै० नि०, ध० नि०) है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—यकृत और प्लीहाके अवरोधका उद्घाटनकर्ता तथा उनका संशोधनकर्ता, मूत्रार्तवजनन, श्वयथुविलयन, लेखन और उष्णताजनन है। प्रसवशोणितके उत्सर्ग तथा मूत्रार्तवजननके लिए यह अधिकतर प्रयुक्त होती है। कहते हैं कि इसके प्रचुर प्रयोगसे रक्तमूत्र रोग हो जाता है। यकृत्प्लीहा-संशोधन तथा अवरोधोद्घाटनके लिए इसको सिकंजबीनके साथ उपयोग कराते हैं। शीतल वातव्याधियोंमें भी यह पान और लेपतः प्रयुक्त होती है। लेखन होनेके कारण दद्रु, झाई, किलास और त्वचाके चिह्न दूर करनेके लिए इसे सिरकामें मिलाकर लेप करते हैं। अहितकर–वस्तिको। निवारण–कतीरा और अनीसूँ। प्रतिनिधि–कबाबचीनी और तज। मात्रा–३ ग्राम से ५ ग्राम (३ माशेसे ५ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—मजीठ कषाय, मधुर, तिक्त, गुरु, उष्णवीर्य, वर्ण्य, विषघ्न, ज्वरहर, पित्तसंशमन तथा कफ, व्रण, प्रमेह, रक्तविकार, नेत्ररोग, कानके रोग, योनिरोग, शोष, विसर्प, कुष्ठ, अर्श और रक्तातिसारको दूर करनेवाली है। (च० सू० अ० ४; सु० सू० अ० ३८, ३९; ध० नि०; कै० नि०)।

नव्यमत—मजीठ स्तम्भन, पौष्टिक, आर्तवजनन, गर्भाशयोत्तेजक, त्वग्दोषहर शोथघ्न और व्रणरोपण है। इसकी क्रिया मस्तिष्क और नाड़ियोंपर होती है। अल्पप्रमाणमें देनेसे इन्द्रियोंको शान्ति मिलती है। परन्तु बड़े प्रमाणमें देनेसे थोड़ा नशा (कैफ) चढ़कर भ्रम उत्पन्न होता है। इससे गर्भाशयका संकोचन होता है, उसकी पीड़ा कम होती है और आर्तव जारी होता है। यह क्रिया स्वयं उसकी पेशीपर और नाड़ियोंद्वारा होती है। इससे त्वचाका रक्तानुधावन बढ़कर त्वचाकी जीवनविनिमयक्रिया सुधरती है। मजीठसे मूत्र और स्तन्य लाल होता है। प्रसूतावस्थामें रक्त साफ गिरनेके लिये इसका काढ़ा देते हैं। इसके साथ गर्भाशयपर कार्य करनेवाले कीड़ामारी, कपासके मूलकी छाल, भाँग, पीपलामूल आदि अन्य औषध भी मिलाये जाते हैं। सूतिकाज्वरमें इसके साथ मूत्रजनन और स्वेदजनन औषध मिलाने चाहिए।

●

(४८९) मटर

फ़ैमिली : लेगूमिनोसी (Family : Leguminosae)

नाम—(हिं०) मटर; (अ०) करस्नः, हब्बुल्-बक़र; (फा०) मुशंग, मुशंगगावी, गावदानः (सं०) कलाय, मुण्डचणक, सतीन, हरेणु; (म०; बम्ब०) बटाना; (गु०) (पं०; बं०) मट्र; (ले०) उद्यानज अर्थात् गार्डेन-पी—पीसुम साटीवुम (**Pisum sativum L.**); क्षेत्रज या देशी अर्थात् फील्डपी–पीसुम आर्वेन्स (**P. arvense Linn.**) इसको हिन्दीमें **छोटी मटर**, **उरी मटर** और दिलभी भी कहते हैं। (अं०) पी (Pea), पीसन (Peason); (फ्रां०) पोइस (Pois)।

उत्पत्तिस्थान—भारतवर्षके अनेक भागोंमें इसकी खेती की जाती है।

वर्णन—एक प्रसिद्ध फली जिसके हरे बीजोंकी तरकारी और अन्य खानेकी वस्तुयें बनाई जाती हैं। पकी फलियों और सूखे बीजोंको भी विविध प्रकारसे खाया जाता है। छोटे-बड़े, सफेद-काले आदि भेदसे यह कई प्रकार-

की होती है। **काबुली मटर** इसका एक भेद है। इसे अरबीमें 'खुल्लर' या 'जल्बान' और फारसीमें '**मुशंगदानः**' या '**मशो**' कहते हैं।

उपयुक्त अंग—बीज।

रासायनिक संगठन—इसमें **ट्रिगोनेल्लीन** (**Trigonelline**) नामक एक ऐल्केलाइड होता है। पके बीजोंमें एक तेल होता है, जिसमें बीज ग्रंथि अन्तःस्रावविरोधी (Anti-sexhormonic) प्रभाव होता है और जो **बन्ध्यत्व** (Sterility) उत्पन्न करता और नर (वृषणोंके) अन्तःस्रावके प्रभावको नष्ट करता (ओजहर) है।

कल्प तथा योग—क़ीरूती आर्द्र करस्ना।

प्रकृति—पहलेसे दूसरे दर्जे तक **गरम** और दूसरे दर्जेमें **रूक्ष**; आयुर्वेदके मतसे शीतल एवं रूक्ष है।

गुणकर्म तथा उपयोग—यह **प्रमाथि, लेखन, सांद्र कफका उत्सर्ग करती और उरःफुफ्फुसको दोषोंसे शुद्ध करती है।** मधुके साथ यह **तर खाँसीमें** गुणकारी है। इसके लेपसे **स्तनशोथ** मिटता है। जरावंद मुदहरज, ईरसा, कुंदुर और खूनखराबाके साथ इसका मंजन दाँतोंकी जड़ोंके मांसको दृढ़ करता है। तिलके तेलके साथ यह पेटकी मरोड़ एवं पेचिशको गुणकारक है। शिरके के साथ यह कण्डू, वृक्क, कामला और तापतिल्लीको लाभकारी है। खालित्य, फिरंग और अस्थिभग्नमें मधुके साथ इसका लेप गुणकारी है। कनेरस्वरस और खरबूजोंके बीजोंके साथ इसका प्रयोग श्वित्रनाशक है। जिफ़्तके साथ इसका प्रयोग घावका प्रसार रोकता है। इसके काढ़ेसे मुँह धोनेसे चेहरा लाल होता है तथा दाग आदि मिट जाते हैं। इसकी रोटी खानेवाले लोग खुश्कीके रोगसे पीड़ित हो जाते हैं। इसको पीसकर लेप करनेसे छीप, झाइं और लहसुन (नमश) आदिके दाग दूर हो जाते हैं। इसको भून-पीसकर पौने तीन तोले ४ रत्तीकी मात्रा मधुमें मिलाकर चाटनेसे दुबला आदमी भी मोटा हो जाता है। इसके छिलके उतार-पीसकर खानेसे कामशक्ति बढ़ती है। **मात्रा**—७ ग्रामसे १०·५ ग्राम (७ माशे–१०॥ माशे) तक। **अहितकर**—रक्तस्राव जारी करती तथा रक्तातिसार और दूषित दोष उत्पन्न करती है। **निवारण**—गिल अरमनी और गुलाबके फूलोंका अर्क।

आयुर्वेदीय मत—मटर (कलाय) मधुर, कषाय, पाकमें स्वादिष्ट, शीतवीर्य, रूक्ष, लघु, अत्यन्त वातकारक, रुचिकारक, पुष्टिकारक, आमदोषकारक, मलको निकालनेवाला तथा दाह, पित्त, कफ और रुधिरविकारका नाश करनेवाला है। (च० सू० अ० २७; सु० सू० अ० ४६; रा० नि०; भा० प्र०)। मटरका शाक (कलायशाक) अनुरसमें कषाय, विपाकमें मधुर, भारी, वातजनक और पित्तकफनाशक है। (सु० सू० अ० ४६ शाकवर्ग)।

नव्यमत—ऐसा विश्वास करते हैं कि इसके कच्चा सेवन करनेसे प्रवाहिकारोग हो जाता है। स्पेनमें इसका आटा ग्रन्थिविलयन एवं मार्दवकर (Emollient and Resolvent.) समझा जाता है और पुलटिस (Cataplasm) की भाँति इसका उपयोग करते हैं।

●

(४९०) मनसिम् (मिन्सम् या मिन्शम्)

फ़ैमिली : बर्सेरासे (Family : Burseraceae)

नाम। वृक्ष (हिं०) जावाबदाम; (यू०) लंजीतुस; (अ०) मनसि(शि)म्; (फा०) **दरख़्त हब्बुल्मन्सिम्**; (मलाबार) कानारि; (उ०) बादामजावी; (ले०) **कानारिउम् कॉम्मूने** (**Canarium commune L.**); (अं०) जावा आमन्ड ट्री (Java Almond Tree)। **बीज** (अ०) हब्बुल्मन्सि(शि)म्, मिन्सम्(मिन्शम्); **फल** (अ०) समर मन्शिम्। **राल** (अ०) रातीनजुल् मन्शिम; (उ०) मुन्शिमकी राल।

उत्पत्तिस्थान—पेनांग, पश्चिम भारतीय द्वीपसमूह तथा जावामें इसके वृक्ष होते हैं। भारतवर्ष, विशेषतः दक्षिण भारतके त्रावणकोण और लंका आदिमें इसके वृक्ष लगाये जाते हैं।

वर्णन—इसके शमशादके समान बड़े वृक्ष होते हैं, जिसके तने और मोटी शाखाओंसे पुष्कल **निर्यास**(राल—रातीनजुल् मन्सिम) स्रवित होता है। यह इतना अधिक होता है कि शंक्वाकार (Conical) अश्रुरूप वा बड़े टुकड़ोंमें लटकता रहता है। पहले यह सफेद, तरल एवं चिपकदार होता है, किन्तु पीछे पीताभ और मोमकी तरह ठोस हो जाता है। यह पीताभ श्वेतरंगके बड़े सूखे समूहोंमें प्राप्त होता है। गरम करने पर यह तुरत नरम हो जाता है और तब उससे सौंफ या नीबू या एलीमाई (Elimi)के समान गन्ध आती है। इसलिए **इसे ईस्ट इंडियन एलिमाई** कहते हैं। फल (समर मन्सिम्) ३·१२५ सें० मी० से ३·७५ सें०मी० लम्बा, लट्वाकार (Ovoid), त्रिकोणयुक्त, सिरेकी ओर नुकीला, मसृण, कुछ-कुछ बैंगनी तथा बाह्य फलत्वक् पतला होता है। **बीज** (Nut)–अर्थात् हब्बुल्मन्सिम् सुगन्धित, स्वादिष्ट, कालीमिर्चके बराबर, बहुत चिकना और सरलतासे टूट जानेवाला, बहुत कड़ा, त्रिकोण, अस्फोटी (Indehiscent), एककोषयुक्त होता है। गिरी या मग़ज़में एक प्रिय एवं सुस्वादु अर्धतरल वसा ४० प्रतिशत पायी जाती है। यूनानीमतानुसार **बागी** और **जंगला** भेदसे इसके वृक्ष दो प्रकारके होते हैं।

उपयुक्त अंग—पत्र, राल (Elimi), फल, बीज और मूल।

रासायनिक संगठन—ओलियोरेज़िन (Oleo-resin)से प्राप्त अनुत्पत् तेलके ३० प्रतिशत ऐनेथोल, और अल्प प्रमाणमें टरपीन्स (Terpenes) होते हैं। बीजमें आर्द्रता ३·७६, प्रोटीन १९·५७, वसा ७२·८४ और भस्म ३·८५ प्रतिशत होता है।

हब्बुल् मन्सिम—

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें **गरम एवं खुश्क**।

गुण-कर्म तथा उपयोग—उष्ण एवं खुश्क प्रकृतिके कारण यह उष्णता, रूक्षता और उत्तेजन उत्पन्न करती है। इसमें किसी भाँति अवरोधोद्घाटनकी शक्ति भी होती है। अतः मूत्रावयवों पर इसका मूत्रोत्सर्जक प्रभाव होता है। **नाड़ी बलवर्धन** और **वाजीकरण** इसके प्रधान कर्म हैं। नाड़ीदौर्बल्य, कामावसाद (नपुंसकत्व), आर्द्र अग्निमांद्यमें इसको मधुमें मिलाकर खिलाते हैं। बस्तिवृक्काश्मरीमें इसका उपयोग करते हैं। हब्बुल्मन्शिम् वृक्षकी राल व्रणोपयुक्त मलहर कल्पोंमें पड़ती है। **अहितकर**–शिरःशूल उत्पन्न करता है। **निवारण**–ऊँटनीका दूध। **प्रतिनिधि**–तुम्बरू। **मात्रा**–२ ग्राम से ३ ग्राम (२ माशासे ३ माशा तक)।

●

(४९१) ममीरा

फ़ैमिली रानुन्कुलासे (Family : Ranunculaceae)

नाम—(हिं०) ममीरा, मुमीरा; (अ०) अल्मामीरान (इ० बै०), **मामीरान**; (सं०) मिष्मीतिक्ता, पीतमूला (नवीन); (म०) ममीरा; (बं०) ममीरो; (बम्ब०) मिष्मीतीत, मामीरान, मम्मीरा; (अस०) मिष्मीतीता; (ले०) **कोप्टिस टीटा (Coptis teeta** Wall.); (अं०) कोप्टिस (Coptis), गोल्डेन थ्रेड (Golden Thread)।

वक्तव्य—यह आसामके मिष्मी नामकी पर्वतमालामें अधिकतया होता है, जहाँसे 'मिष्मी' नामकी जातिके लोग इसको बेचनेके लिए लाते हैं, तथा यह स्वादमें तीता (तिक्त) होता है, इसलिए इसको आसाममें 'मिष्मी तीता' कहते हैं। वनस्पतिके लैटिननाममें Specifie name 'teta' भारतीय नामके 'तीता' का ही रूपान्तरमात्र है।

उत्पत्तिस्थान—काबुलसे लेकर असम तक समशीतोष्ण हिमालय प्रदेशमें विशेषतः असमके पूर्वके पहाड़ी स्थानों (मिष्मी पहाड़ियों)में तथा चीनमें होता है।

वर्णन—इसका कांडहीन छोटा **क्षुप** होता है। क्षुप **वर्षायु**, परन्तु मूल बहुवर्षायु होती है। **पत्ती** देखनेमें हंसराजकी पत्तो-सी मालूम पड़ती है। **मूल (पाताली धड़)** लगभग २·५ से ७·५ सें० मी० (१ से ३ इंच) लंबे, गिरहदार और टेढ़े, ऊपरसे श्यामवर्ण या कालाई लिए पीले, और भीतरसे पीले, स्वादमें तिक्त होते हैं, जो बम्बईमें चीनसे सिंगापुर होकर आते हैं। भारतीय बाजारोंमें ममीरा असमसे भी आता है। कुछ दूसरे पौधोंकी जड़ें, जैसे कुटकी और पियारांगा वा ममीरी (**थालीक्ट्रुम फ़ोलिओलोसुम् Thalictrum foliolosum** DC.)की जड़ें भी, जो इससे मिलती-जुलती होती हैं, ममीरेके नामसे बिकती हैं, और उन्हें **नकली ममीरा** कहते हैं। **चीनी ममीरा** (मामीरान चीनी) ममीराका उत्कृष्टतम भेद है।

रासायनिक संगठन—ममीरामूलमें **बर्बेरीन** (Berberine), तथा **कॉप्टीन** (Coptine) नामका एक पीला तिक्त सत्व होता है, जो जल और सुरासारमें विलेय है।

कल्प तथा योग—नूरुल्ऐन।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें **गरम** और **खुश्क**।

गुणकर्म तथा उपयोग—ममीरा लेखन और **दृष्टिबलवर्धन** है। आंतरिक उपयोगसे वातानुलोमन और मूत्रल है। इसको अकेला या उपयुक्त औषधद्रव्यके साथ खरल करके दृष्टिदौर्बल्य, जाला, फूली और धूम्रदर्शन (गुब्बार) प्रभृति जैसे नेत्ररोगोंके निवारणके लिये नेत्रमें लगाते हैं। यह नेत्ररोगोंमें विशेष गुणदायक है। लेखन होनेके कारण नखोंका सफेद होना, श्वित्र, छीप वा झाईं, कच्छू तथा त्वचाके दाग (धब्बे)में मधु और सिरकेके साथ इसको पीसकर लेप करते हैं। मूत्रल होनेके कारण इसे अवरोधजन्य कामलामें अनीसूनके साथ पीसकर पिलाते हैं तथा उपयुक्त औषधियोंके साथ इसे सूजाकमें खिलाते हैं। **अहितकर**—वृक्करोगोंमें। **निवारण**—मधु। **प्रतिनिधि**—हल्दी और मुर मक्की। **मात्रा**—१ ग्रामसे २ ग्राम (१ माशेसे २ माशे) तक।

नव्यमत—चीनमें मधुमेहघ्न रूपमें इसका उपयोग होता है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—ममीरा रसमें तिक्त, वीर्यमें उष्ण और रूक्ष, लेखन, शोथहर, **चक्षुष्य**, **ज्वरहर**, **दीपन**, **पाचन** और सर है। नेत्राभिष्यन्दमें नेत्रके ऊपर इसका लेप किया जाता है। बीस भाग गुलाबपुष्पार्कमें एक भाग ममीरा महीन पीसकर कपड़ेसे छानकर बनाये हुए द्रव्यकी बूँदें नेत्रमें डाली जाती हैं। नेत्रशुक्ल (फूली)में इसे मधुसे घिसकर नेत्रके भीतर लगाते हैं। नेत्रमें लगानेके सुरमेमें इसे डाला जाता है। १·५ से ३ ग्राम (१॥ माशेसे ३ माशे) तककी मात्रामें ज्वर आनेके पूर्व ३-३ घण्टेसे ३ मात्रा देनेसे विषमज्वर रुक जाता है। कटुपौष्टिक और दीपन पाचन होनेसे रोगोत्तर दौर्बल्यमें ५ से १० रत्तीकी मात्रामें अकेला या लोह भस्मके साथ मिलाकर दिया जाता है।

(४९२) मरोड़फली

फ़ैमिली : स्टेर्कूलिआसे (Family : Sterculiaceae)

नाम—(हिं०) मरोर(ड़)फली, मुर्रा, मुरेर, मुरेरुआ (मिर्जापुर); (सं०) आवर्तनी, आवर्तफला, विषाणिका (अथर्व०); (बं०) आंतमोड़ा; (म०) आडशःमन्ति; (ता०) वलवुरि; (मल०) ईश्वरमुरि; (का०) भूतकरुलु; (ले०) **हेलाक्टेरास ईसोरा (Helicteres isora** Linn.); (अं०) ईस्ट इण्डियन स्क्रू (East Indian Screw)।

वक्तव्य—किसी-किसीने इसका अरबी नाम इल्तिवाऽअलीडल् इल्तिवाऽ और फारसी नाम **गश्तबरगश्त**(वा किश्तबरकिश्त) तथा **पेचक** लिखा है।

उत्पत्तिस्थान—समस्त मध्य और पश्चिम भारतवर्ष और लंका आदि।

वर्णन—यह एक गुल्मकी बाजारमें मिलनेवाली प्रसिद्ध फली है, जो २·५ सें० मी० से ५ सें०मी० (१–२ इञ्च) लम्बी, बटी हुई रस्सीकी तरह पेचदार होती है। इन फ़लियोंके गुच्छे लगते हैं।

उपयुक्त अंग—फली।

रासायनिक संगठन—फलीमें थोड़ी मात्रामें स्निग्धपदार्थ होता है।

प्रकृति—पहले दर्जेमें गरम और खुश्क। आयुर्वेदमतसे शीतवीर्य।

गुण-कर्म तथा उपयोग—श्वयथुविलयन, तारल्यजनन, विरेचन विशेषकर श्लेष्म-विरेचन, लेखन, संशमन (अवसादक) और प्रवाहिकाहर। विलयन और तारल्यजनन होनेके कारण यह श्लेष्मविकृतिको दूर करती और उदरस्फीतिमें गुणकारी है। लेप करनेसे यह सर्द सूजनको उतारती है। प्रवाहिकामें इसका क्वाथ और फांट बनाकर पिलाते हैं। लेखन होनेके कारण इसको सिरकेमें पीसकर दद्रुपर लेप करते हैं। **अहितकर**–पुंस्त्वोपघाति है। **प्रतिनिधि**–एलुवा। **मात्रा**–५ ग्राम से ७ ग्राम (५ माशेसे ७ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—मरोड़फली (आवर्तनी) कषाय, शीतवीर्य तथा अतिसार, उदरशूल और कृमिका नाश करनेवाली है। अतिसार और प्रवाहिकामें मरोड़फलीका चूर्ण १½ माशेसे ३ माशेकी मात्रामें देनेसे अच्छा लाभ होता है। (द्र०गु०वि०)।

नव्यमत—मरोड़फलीकी जड़की छालका काढ़ा मधुमेहमें देते हैं।

●

(४९३) मर्जञ्जोश

फ़ैमिली : लाबिआटी (Family : Labiatae)

नाम—(हिं०) मरुआ, मरुवा, मर्वा; (यू०) ओरिगनोस (Origanos); सम्पसुखोन Sampsukhon (D. 3.410); (अ०) अल्मर्व (इ०बै०), मर्ज़ञ्जोश, मर्ज़जोश, समगक़; (फा०) मर्ज़ङ्गोश, मर्ज़गोश; (सं०) मरुवक (ध०नि०); मरुव(रा०जि०); (म०) मरवा; (गु०) मरवो; (बम्ब०) मुरवो; (बं०) मुर्‌ँ; (ले०) **माजोराना हॉर्टेन्सिस Majorana hortensis** Moen.(पर्याय—**ओरीगानुम माजोराना** *Origanum majorana* L.); (अं०) स्वीट मार्जोरम् (Sweet Marjoram)।

वक्तव्य—लेटिन 'Origanum' यूनानी 'Origanos'का रूपान्तरमात्र है। **मर्जङ्गगोश** (मर्ज़नः या मर्जः = मूषः; गोश = कर्ण = मूषाकर्ण) फारसीसे 'मर्ज़ञ्जोश' अरबी बनाया गया है। प्रजातिक (Generic) नाम '**माजोराना**' उक्त अरबी नामपर आधारित प्रतीत होता है।

उत्पत्तिस्थान—पुर्तगाल और पश्चिम एशिया। मरुआ भारतीय बागोंमें लगाया जाता है और जंगली भी होता है।

वर्णन—बनतुलसीकी जातिका एक लगभग ३० सें० मी० (फुटभर) ऊँचा ऊपरकी ओर सशाख, वार्षिक क्षुप होता है। **पत्र**–क्षुद्र, अण्डाकार अतिकुण्ठित, अखण्ड, भूरापन लिए हरा या श्वेताभ मृदुरोमावृत और स्वच्छ-बिंदुओंसे चिह्नित (Pellucid punctate); **पुष्प** क्षुद्र घुंडियोंमें समूहबद्ध, पुष्पाभ्यन्तरकोष (Corolla) क्षुद्र एवं

कुछ-कुछ श्वेताभ होता है। क्षुपकी गंध प्रिय एवं तीक्ष्ण तथा स्वाद सुगंधमय एवं रुचिकारक होती है। बीज काले होते हैं। इसके एक अन्यभेदके पुष्प काले होते हैं। इसको मरुआ कहते हैं।

रासायनिक संगठन—अनुत्पत् तेल, एक तिक्तसत्त्व और रोग़न मर्जँजोश (Oleum Marjorana) नामक एक उत्पत् तेल जो पतला, पीताभ तथा क्षुपको सुगंधियुक्त होता है।

उपयुक्त अंग—क्षुप (पंचांग), पत्र, बीज और बीजोत्थ तेल।

प्रकृति—दूसरे या तीसरे दर्जेमें गरम एवं खुश्क। आयुर्वेदमतेन उष्णवीर्य है (रा०नि०)।

गुण-कर्म तथा उपयोग—यह तारल्यजनन, अवरोधोद्घाटक, श्वयथुविलयन और लेखनीय है तथा द्रवोंका आकर्षण करता है। बस्ति एवं वृक्कस्थ अश्मरियोंको तोड़ता है, अर्दित तथा सर्दी एवं वातज शिरःशूलको लाभ पहुँचाता है और मस्तिष्कगत द्रवोंको छाँटता है। यह उरोशूल, श्वास, वातजशूल (कुलंज) रोग, यकृत् एवं प्लीहाके अवरोध तथा जलोदरको लाभ पहुँचाता और मस्तिष्कका शोधन करता है। इसके सूँघनेसे प्रतिश्याय, पक्षवध और सन्यास (तामसी निद्रा-सुबात) रोगमें लाभ होता है। अहितकर—बस्ति, वृक्क एवं मस्तिष्कको। निवारण—कुलफा और कासनीके बीज तथा नीलूफर। प्रतिनिधि—अफसंतीन, चमेलीके पत्र और अर्धभाग कालीमिर्च। मात्रा—७ ग्राम से ९ ग्राम (७ माशा से ९ माशा) तक, काढ़ेमें १ तोलाभर तक।

आयुर्वेदीय मत—मरुआ कटु, तिक्त, रुचिकारक, मुखको सुगन्धित करनेवाला तथा कृमि, कुष्ठ, मलावरोध, आध्मान, शूल, अग्निमान्द्य और त्वग्दोषका नाश करनेवाला है (ध०नि;रा०नि०)।

नव्यमत—मरुआ सुगन्धी, कोष्ठवातप्रशमन, स्वेदजनन, उत्तेजक, श्वासहर और आर्तवजनन है। सर्दी (प्रतिश्याय)में मरुआका फांट देनेसे पसीना आता है और स्फूर्ति मालूम होती है। सर्दीसे ऋतु आना बंद होनेपर मरुवाका फांट देते हैं। पुराने व्रणपर मरुआका स्वरस लगानेसे व्रणरोपण और वेदनास्थापन कार्य होता है।

●

जंगली मरुआ

फ़ैमिली : लाबिआटी (Family : Labiatae)

नाम—(हिं०) साथर; (पं०) मिर्जञ्जोश; (ते०) मृदुमरुवामु; (ले०) **ओरीगानुम् वुल्गारे** (**Origanum vulgare** L.); (अं०) वाइल्ड मार्जोरम (Wild marjoram)।

उत्पत्तिस्थान—समशीतोष्ण हिमालय, कश्मीरसे सिक्किम पर्यन्त ७,०००-१२,००० फुटकी ऊँचाई पर।

वर्णन—क्षुप; पत्र सम्मुखवर्ती-सवृंत, साधारणतः अखंड, कुछ-कुछ बैंगनी, अंडाकार या लंबायमान घुंडियों (Heads)में न्यस्त, पौष्टिक पत्र साधारणतया गुलाबी, पुष्पबाह्यकोष (Calyx) नलिकाकार और पंचदंतयुक्त, गंध और स्वाद थाइम (Thyme)के समान। यह व्यापारकी वस्तु नहीं है। इसके नामसे बिकनेवाला तेल वस्तुतः फ्रांससे थीमुस वुल्गारिस (**Thymus vulgaris** Linn.)से प्राप्त उत्पत् तैल होता है।

रासायनिक संगठन—इसमें उत्पत् तेल (Essential oil) होता है। जिसमें ५० प्रतिशत थायमोल (Thymol) होता है।

उपयुक्तअंग—क्षुप, उत्पत् तैल।

●

(४९४) मवीज़ज

फ़ैमिली : रानुन्कुलासे (Family : Ranunculaceae)

नाम—(हिं०) जंगली दाख; (अ०) ज़बीबुज्-जबल; (फ़ा०) मवीज़क, मवीज़ सहराई; (ले०) **स्टाफिसाग्री सेमिना (Staphisagriae semina)**; (अं०) स्टैफिस ऐग्रिस (Staphis agris), स्टैवीसैक्री सीड्स (Stavesacre Seeds)। लताका लेटिन नाम डेल्फीनिउम् **स्टाफिसाग्रिआ (Delphinium staphisagria** Linn.) है।

वक्तव्य—लताके लेटिन नाममें जातीय नाम "**स्टाफिसाग्रिआ**" वस्तुतः यूनानी (स्टैफिस = गुच्छा; अग्रिआ = वन्य) नाम है। इसका पुष्प गुच्छस्वरूप होता है; इसलिए यूनानियोंने इसको उक्त नामसे अभिधानित किया। **मख़्ज़नुल्अदविया** और **मुहीत आज़ममें** इसका यूनानी नाम "**अस्ताफ़ियूस अग़िया**" लिखा है, जो वस्तुतः "**स्टाफिस अगरिया**" है। केवल उच्चारणका किंचित् भेद है। '**मवीज़ज**' फारसी '**मवीज़क**' से अरबी बनाया गया है।

इतिहास—प्राचीन यूनानो चिकित्साविद् इस औषधिसे भली-भाँति अभिज्ञ थे तथा इसका उपयोग करते थे। सुतरां **दीसक़ूरीदूस** वमन और विरेचनरूपमें इसका उपयोग करते थे। वह कुष्ठमें भी इसे लाभकारी मानते थे। जालीनूसने भी इसका उपयोग किया है। कतिपय चिकित्सकोंने इसे उदरकृमिनाशन भी लिखा है। अरबी और अजमी हकीम भी इससे भली-भाँति अभिज्ञ थे, तथा इसका उपयोग करते थे। उनके अनुसार यह अपनी तीक्ष्णता एवं उष्णता (हिद्दत) गुणके कारण अवरोधोद्घाटन करती तथा कफका उच्छेदन एवं उसको पतला (लतीफ़) करती, और कृमिघ्न है। जूओंकी उत्पत्तिको रोकती एवं उनका नाश करती है। सुतरां उत्तरकालीन यूरूपीय चिकित्सकोंका भी इस अन्तिम गुणसे सर्वथा मतैक्य है। प्रत्युत डॉक्टरीमें यह केवल इसी गुणके लिए प्रयुक्त है। **मख़्ज़नुल्** अदवियामें 'जबीबुल्जबल' और **मुहीत आजममें** "**मवीज़ज**" नामसे इसका वर्णन आया है।

उत्पत्तिस्थान—इंग्लैंड, इटली, ग्रीस तथा एशिया माइनर।

वर्णन—यह एक ०·९ से १·२ मीटर (३ या ४ फुट) ऊँचे क्षुप या बेलदार वनस्पतिका वक्राकार (खमदार) बीज है। पककर सूखा हुआ बीज न्यूनाधिक तिकोना या चौपहल, पृष्ठ उन्नतोदर लगभग १·८७५ सें० मी० ($\frac{3}{8}$ इंच) लम्बा और इससे कुछ कम चौड़ा होता है। रंगमें उक्त बीज कालाई लिये भूरे या भूरापन लिए काले होते हैं; किन्तु पुराना होनेपर हलका खाकीमायल हो जाता है। छिलका झुर्रीदार होता है और अन्दरसे सफेद रोग़नी मग़ज निकलता है जो स्वादमें तिक्त एवं चरपरा तथा निर्गन्ध होता है।

रासायनिक संगठन—इसमें २ ऐल्केलॉइड्स **स्टैफिसैग्रीन** (Staphisagrine) जो श्वासोच्छ्वासके लिये प्रबल विष और क्युरारीके समान है, तथा (२) **डेल्फिनीन** (Delphinine) जो गुणकर्ममें एकोनाइटीन और खर्बकीन (वैरेट्रीन)के समान है; और (३) एक उत्पत् तैल आदि घटक होते हैं।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें गरम और खुश्क।

गुण-कर्म तथा उपयोग—यह तीव्र लेखन और व्रणकारक है। मुखमें चबानेसे यह लालाप्रसेकजनन, दंतशूलहर, कृमिदन्त और शिरः यूकाओंको नष्ट करनेवाली है। खिलानेसे यह वमन और विरेचन लाती है तथा उदरज कृमियोंको नष्ट करती है। यह विशेषतः अवरोधोद्घाटक और गर्भशातक है। उपयोग—कृमिघ्न और लेखन होनेके कारण खालित्य, दद्रु और त्वचाके दागको दूर करनेके लिये इसको शहद या सिरकामें पोसकर लेप करते हैं। हकलापन (लुक्नत) और दन्तशूल निवारणके लिये इसको मस्तगी और कुन्दुरके साथ चबाते हैं। लालाप्रवर्तक होनेके कारण यह उक्तरोगोंमें लाभ करती है। एक दाना मवीज़जको साफ रूईमें लपेट-भिगो और किंचित् कूटकर तथा गरम करके

विकारी दांतपर रखनेसे कृमिभक्षित दाँतका दर्द शान्त हो जाता है । इसके अतिरिक्त मवीजजको सिरकामें उबालकर गण्डूष करनेसे भी दर्द शान्त होता है । जूओंको मारनेके लिये इसे पीसकर शिरमें लगाते हैं । अधुना इसका आंतरिक उपयोग नहीं करते । **अहितकर**–प्लीहाके लिये । निवारण–कतीरा और शीतल पदार्थ । **प्रतिनिधि**–अकरकरा । **मात्रा**–१ ग्रामसे २ ग्राम (१ माशासे २ माशे) तक । ४ ग्राम (चार माशे) से अधिक घातक बतलाई गई है ।

●

(४९५) मसूर

फ़ैमिली : लेगूमिनोसी (Family : Leguminosae)

नाम—(हिं०) मसूर, मसुरी; (अ०) अदस; (फा०) नशिक, मिरजूमक, बनूसुर्ख; (सं०) मसूर; (बं०) मुस्सूरि, मसूर; (म०) मसूर; (ले०) **लेंस कूलीनारिस Lens culinaris** Medik. (पर्याय–लेन्स एस्कुलेन्टुस **Lens esculentus** Moen.); (अं०) लेंटिल (Lentil) ।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष । इसकी खेतीकी जाती है ।

वर्णन—एक प्रकारका प्रसिद्ध अन्न, जो द्विदल, चपटा, ऊपरसे मटमैला और भीतरसे लाल होता है । इसकी दाल पकाकर खाई जाती है ।

रासायनिक संगठन—इसमें जल, मांसवर्धक (प्रोटीन) और कार्बोहाइड्रेट, तेल, तन्तु, राख और फॉस्फोरिक एसिड आदि तत्व होते हैं ।

प्रकृति—समताके साथ उष्ण और दूसरे दर्जेमें खुश्क है ।

गुण-कर्म तथा उपयोग—मसूरीकी दाल संग्राही, आनाहकारक और चिरपाकी है । समूचे मसूरके काढ़ेसे गलशोथ और कंठशोथमें गण्डूष कराते हैं । यह सूजन उतारती और वेदना शमन करती है । चेहरेका रंग निखारनेके लिये इसका आटा उबटनमें डालते हैं । मुखपाक और कण्ठशोथमें यह विशेष गुणकारी है । **अहितकर**–अर्शके लिए । निवारण–बादामका तेल, घी और पकाना । प्रतिनिधि–उड़द और बाकला ।

आयुर्वेदीय मत—मसूर रस और विपाकमें मधुर, शीतवीर्य, मलको बाँधनेवाला (बद्धवर्चस, संग्राही), मधु, वातरोगकारक तथा कफपित्त और मूत्रकृच्छ्रका नाश करनेवाला है । खाने और लेपनमें प्रशस्त है । (च० सू० अ० २७; सु० सू० अ० ४६; रा० नि०) । मसूरका लेप वर्णको सुन्दर करनेवाला और त्वचाके रोगोंको हरनेवाला है । इसके पत्तोंका साग तिक्त, कषाय और हलका है ।

●

(४९६) मस्तगी

फ़ैमिली : आनाकार्डिआसे (Family : Anacardiaceae)

नाम—(हिं०) रूमीमस्तगी, मस्तगी; (अ०) मस्तकी (इ० बै०) मुस्तक्का, मस्तकोए रूमी, इल्कुरूमी; (फा०) मस्तकी रूमी, कुन्दुरे रूमी; (म०, गु०) रूमी (मा) मस्तकी; (मा०) रूमीमस्तंगी; (बं०) रूमी मोस्तकी; (ले०) मास्टिके या मस्टिके (Mastiche); (अं०) मैस्टिक (Mastic, Mastich), लेन्टिस्क (Lentisk) ।

वक्तव्य—इसका लेटिन नाम 'मास्टिके' वस्तुतः इसका यूनानी नाम है। मस्तकी इसीका अरबी रूपान्तर है।

उत्पत्तिस्थान—दक्षिण यूरोप, उत्तरी अफरीका, लेवांट और श्याम, रोम तथा अरमीनिया और भूमध्यसागरके आस-पासके प्रदेशोंमें होनेसे इसे **रूमीमस्तकी** कहते हैं।

वर्णन—यह एक प्रकारका जमा हुआ रालदार गोंद है, जो पिस्टासिआ लेन्टिस्कुस् (**Pistacia lentiscus** Linn.) नामक पिस्ता या बुत्म अर्थात् हब्बतुल् खजराकी जातिकी एक सदाबहार झाड़ीके तने और बड़ी-बड़ी शाखाओंमें आड़े चीरा देकर या उनको पाछकर निकाला जाता है। इसके छोटे, गोल, बेकायदा लंबोतरे (Pear-shaped) या अश्रुवत् पारदर्शक दाने (Tears) होते हैं, जिनका रंग पिलाई लिए सफेद होता है। गंध हलकी, किंचित् मधुर एवं सुगन्धित (Cedar-like) होता है। यदि इसको खरलमें लोढ़ेसे बलपूर्वक रगड़ा जाय, तो यह बारीक नहीं होती, अपितु चिपक जाती है।[1] इसके विपरीत संदरूस (Sandrac)के बेलनाकार अस्रुवत् दाने रगड़नेसे चूर्ण हो जाते हैं। भारतवर्षमें इसका आयात एशियामाइनरसे होता है। इसमें २० वर्ष तक वीर्य रहता है।

रासायनिक संगठन—इसमें अत्यल्प प्रमाणमें एक उत्पत् तैल, मैस्टिकोनिक एसिड, मैस्टिकीनिक एसिड और मैस्टिकोलिक एसिड–यह तीन ऐल्कोहॉलविलेय रालाम्ल होते हैं। इसके अतिरिक्त मैस्टिकीन नामक राल (१०%) जो ऐल्कोहॉलमें अविलेय तथा एक ऐल्कोहॉलमें विलेय राल (३० प्रतिशत) आदि द्रव्य होते हैं।

कल्प तथा योग—जुवारिश मस्तगी, जुवारिश मस्तगी बनुस्खाकलाँ, रोग़न मस्तगी।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम एवं खुश्क है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—यकृदामाशयबलदायक, वातानुलोमन, कब्जके साथ मृदुसारक, श्लेष्मनिस्सारक, दोषतारल्यजनन, श्वयथुविलयन, द्रवाभिशोषणकर्ता (जाजिबरतूबात), लेखन, रक्तसांग्राहिक, रुधिरस्तम्भक, मूत्रार्तवजनन और विभिन्न अनुपानोंसे विभिन्न दोषोंका विरेचक है। दीपन और वातानुलोमन होनेके कारण मंदाग्नि आदिमें मस्तगीका उपयोग करते हैं। मृदुकरण (तलय्यिन)के निमित्त इसे गुलकंदके साथ मिलाकर खिलाते हैं। सूजन उतारनेके लिए इसे लेपोंमें डालते हैं। द्रवाभिशोषणकर्त्ता होनेसे इसे विस्मृतिरोगमें उपयोग करते हैं। लेखन, संग्राही और रक्तस्तम्भन होनेके कारण इसे मंजनोंमें डालते हैं। रक्तस्तम्भन होनेके कारण रक्तष्ठीवन और अन्य अंगजात रक्तस्रावमें उपयोग कराते हैं। दोषतारल्यजनन और श्लेष्मनिःसारक होनेके कारण खाँसीको दूर करने और फुफ्फुसप्रणालीके शोधनके लिए इसका उपयोग करते हैं। यह ग़ारीकूनके साथ कफविरेचन, एलुआके साथ पित्तविरेचन और हड़ोंके साथ सौदाविरेचन है। लेखन होनेके कारण इसे उबटनमें मिलाकर चेहरेपर मलते हैं। **अहितकर**–गुर्दाके रोगोंमें अहितकर है तथा रक्तमूत्र उत्पन्न करता है। **निवारण**–सिरका और विलायती मेंहदी (मूरद)का रस। **प्रतिनिधि**–श्वयथुविलयनमें पुदीना। **मात्रा**–१ ग्राम से २ ग्राम (१ माशा से २ माशा) तक।

नव्यमत—रूमीमस्तगी सुगन्धि, उत्तेजक, कफघ्न, मूत्रजनन और ग्राही है। फुफ्फुसके रोगोंमें कफ अधिक गिरता हो तब रूमीमस्तगी देते हैं। इससे श्वासमार्गकी श्लेष्मल त्वचाको शक्ति मिलता है। मुखकी दुर्गंध दूर करने, दाँतोंको मजबूत बनाने और आमाशयरस बढ़ानेके लिए इसे मुँहमें रखकर चबाते हैं।

●

---

[1] इसके चूर्ण बनानेकी विधि यह है कि पहले कपड़ेमें इसकी पोटली बाँध-पानीमें डुबा, फिर पानीसे बाहर निकाल, कोरे कपड़ेसे पोंछ तुरन्त इसे पीसते हैं।

(४९७) महुआ

फ़मिली : सापोटासे (Family : Sapotaceae)

नाम—(हिं०) महुआ, महुवा; (फा०) गुलेचकाँ; (सं०) मधूक, गुडपुष्प, (द०) मोहा, (बं०) मोहुवा, मौल, मोयाफूल; (गु०) महुडो; (म०) मोहड़ा; (पं०) महुआ, मह्वा; (ले०) **माधूका इंडिका Madhuka indica** Gmel. (**पर्याय—माधूका लेटीफोलिआ** *M. latifolia* (Roxb.) Mac. Br.; **बास्सिआ लाटीफोलिआ** *Bassia latifolia* Roxb.)।

फल या बीज—(हिं०, कोल, संथा०) कोइना, कोइनी; (बं०) कोचरा।

तैल—(को०, संथा०) कोइनी सुनुम, डोला।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष। पहाड़ोंपर ३,००० फुटकी ऊँचाई तक इसके पेड़ पाये जाते हैं।

वर्णन—यह एक बड़े प्रसिद्ध वृक्षका फूल है, जो पिलाई लिए सफ़ेद और मांसल होता है, और उससे मीठी-सी गंध आती है। स्वाद भी मीठा, पर किंचित् हीकदार होता है। सूखने के उपरांत यह मुनक्काकी तरह हो जाता और शराब बनानेके काम आता है। फल (कोइना) किसी कदर लम्बगोल होता है। पकनेपर इसका स्वाद मीठा हो जाता है। इसके अन्दरसे एक या दो गुठलियाँ निकलती हैं, जिनके मग़ज़से तेल निकाला जाता है। इसे **डोरिया या टोइयाका** तेल कहते हैं।

उपयुक्त अंग—छाल, फूल फल तथा तेल (डोरिया)।

रासायनिक संगठन—बीजमें एक वसायमय अनुत्पत् तेल (५०%-५५%), फूलमें काफी प्रमाणमें शर्करा, एंज़ाइम (Enzymes) और किण्व (Yeast) होते हैं। वायुशुष्क फूलमें इक्षुशर्करा २·२%, इन्वर्ट शर्करा ५२·६%, अन्यान्य जलविलेय पदार्थ ७·२%; काष्ठोज २·४%, मांसवर्धक द्रव्य (Albuminoids) २·२%; राख ४·८% प्रभृति द्रव्य होते हैं। राखमें सिलिसिक अम्ल, फॉस्फोरिक एसिड, कैलसियम, लौह, पोटास और अंशतः सोडा प्रभृति द्रव्य होते हैं।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें **गरम और खुश्क**। आयुर्वेदके मतसे फूल और फल दोनों शीतवीर्य (भा०प्र०) हैं।

गुण-कर्म तथा उपयोग—महुआ (गुले महुआ) वाजीकर, शुक्रल और स्तन्यजनन है। इससे काफी पुष्टि प्राप्त होती है। इसका हलुआ बनाकर खाया जाता है तथा मद्य खींचा जाता है। यह विशेषकर वातविलमन और शीतलवेदनाहर है। फल उदरादष्टंभकारक और मूत्रजनन बतलाया जाता है। इसकी गुठलीके मग्जका तेल आमवात, कटिशूल आदि सर्द दर्दोंपर मर्दन करते हैं और इसमें सुहागा मिलाकर दद्रुपर लगाते हैं। महुएके बीजके मग्जको आर्तवजनन और सारक वर्णन किया जाता है। उक्त गुणोंके लिए इसकी वर्ति या फलवर्ति बनाकर उपयोग करते हैं। छालका खुजली और सन्धिवातमें और तेलका वातनाशकरूपमें अच्छा उपयोग होता है। घरेलू चिकित्सामें तेलको गुदामें लगाकर शीघ्र मलत्याग कराया जाता है। **अहितकर**—शिरःशूलजनक है। **निवारण**—शीतल और स्निग्ध पदार्थ। **प्रतिनिधि**—बूरए अर्मनी। **मात्रा**—यद्यपि फलकी भाँति इसका फूल पुष्कल खाया जाता है, तथापि ४–५ तोलेसे अधिक नहीं खाना चाहिए।

आयुर्वेदीय मत—महुआका फूल मधुर, गुरु, शीतवीर्य बृंहण, बल्य, वीर्यवर्धक तथा रक्तपित्त, वात और पित्तका नाश करनेवाला है। महुआका फल मधुर, गुरु, शीतवीर्य, शुक्रल, अहृद्य तथा वात, पित्त, तृषा, रक्तविकार, दाह, श्वास, क्षत और क्षयको दूर करनेवाला है। (सु० सू० अ० ४६; भा० प्र०)।

नव्यमत—फूलोंमें ६० प्रतिशत एक प्रकारकी शर्करा होती है, जो शीघ्र मद्यमें परिणत होती है। फूलोंमें थोड़ा-बहुत मद्य तैयार हुआ होता है, इसलिए फूल खानेसे थोड़ा नशा आता है। बीजोंका तेल शीघ्र खराब होता है। इसलिये दवाके काममें नहीं आता। इससे उत्तम साबुन और मोमबत्ती बनती है। महुआके फूल शीतल, बल्य, पौष्टिक और स्नेहन हैं; इसलिये ज्वर और कफ रोगमें प्रयुक्त कषायोंमें इसे डालते हैं।

●

(४९८) माजरियून

फ़ैमिली : थीमेलासे (Family : Thymelaceae)

नाम—(भा० बा०; हिं०) माजरियून; (यू०) खामीलिआ Khamelaia (D. 4.109); (अ०) माज़ेरियून (इ० बै०), जैतूनुल् अर्ज़; (लै०) मेज़ेरी फ़ोलिआ (Mezerei Folia); (अं०) मेर्ज़ीरिओन लीव्ज् (Mezerion Leaves), स्पर्ज ऑलिव्ह या लॉरेल (Sperge Olive or Laurel), वाइल्ड पेपर (Wild pepper)।

वक्तव्य--इस औषधिका लेटिन और अंग्रेजी नाम **'मेज़ेरिओन** Mezerion' इसके अरबी नाम **'माज़र्यून'** से व्युत्पन्न है। इसका यूनानी नाम **'कामीलिजा'** है, जिससे **'खामीलिया'** अरबी बनाया गया है। इसी प्रकार **डैफ़्नी (द्फ़्नी)**का 'ज़ाकनी' अरबी रूपांतर किया गया है।

उत्पत्तिस्थान और वर्णन—यह सुमाकके बराबर एक विदेशीय तीक्ष्ण एवं जहरीले दूधवाले वृक्षके पत्र हैं जो औषधके काममें लिये जाते हैं। डॉक्टरीमें वृक्षत्वक् व्यवहार किया जाता है। माजरियूनके निम्न भेद हैं—(१) इसके पत्र छोटे और पीले तथा मोटे होते हैं। इसको **हफ्तवर्ग** और **मुश्तरू** तथा लेटिनमें **डाफ़्नी लाउरेओला** (**Daphne laureola** Linn.) कहते हैं। (२) इसके पत्र बड़े और सफेद किन्तु मोटे नहीं होते। इसको **अश्खीस** और **जाक़नी वेदास** तथा लेटिनमें **डाफ़्नी मेजेरेउम्** (**Daphne mezereum** Linn.) कहते हैं। औषधमें प्रायः यही प्रयुक्त होता है। (३) **इसके** पत्र काले होते हैं। इसको **कमालियून, ख़ामालियून** और **खामालावन** तथा लेटिनमें **डाफ़्नी नीडिउम्** (**Daphne gnidium** Linn.) कहते हैं। यह निकृष्ट भेद है और औषधके काममें नहीं लिया जाता। यद्यपि डाफ्नेकी कई जातियाँ भारतवर्षमें भी होती हैं, तथापि यूनानी ग्रंथोक्त 'माजरियून' हिंदी **'अपराजिता'** है, ऐसा मोहीउद्दीन शरीफ़का मत है। गंजवादावर्दके मतसे जिसका पत्ता हरा और थोड़े समयका लिया हुआ हो तथा जिसमें जौकी तरह दराज हो एवं किसी क़दर उससे चौड़ा हो वह औषधिके लिये उपादेय एवं प्रयोजनीय है।

शोधन—जहरीला होनेसे इसे शुद्ध करके औषधमें बरतनेका विधान है। **मख़्ज़नुल् अदविया** के मतसे इसे ४८ घण्टे तक सिरकामें भिगो रखनेसे यह शुद्ध और भेषजोपयोगी हो जाता है। बीच-बीचमें सिरका बदलते रहना चाहिये। इसके बाद जलसे धो-सुखाकर बादामके तेलमें घोंटकर काममें लेना चाहिये।

रासायनिक संगठन—इसमें मेज़ेरिनिक एसिड (Mezerienic acid), **डैफ्नीन** (Daphnine) नामक एक सत्व, एक अनुत्पत् तेल और एक राल ये चार उपादान होते हैं।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें **गरम और खुश्क**।

गुणकर्म तथा उपयोग—लेखन, तीव्र विरेचन (जलके समान पतले विरेक लाता है), कृमिघ्न, उदर कृमिनिःसारक और मूत्रार्तवजनन विशेषकर श्वयथुविलयन और कण्डूघ्न है। उपयोग—तीव्र विरेचन और जलके समान

पतले दस्त लानेके कारण इसको जलोदर, कामला और उदरज कृमिरोगमें विरेचनीय, तिक्त एवं सुगन्ध औषधियोंके साथ प्रयुक्त करते और लेखन होनेके कारण इसे छीप वा झाईं, किलास और दद्रु आदि त्वचाके रोगोंमें उपयुक्त औषधियोंके साथ लेप करते हैं । **अहितकर**–उष्णप्रकृति एवं यकृत्को । **निवारण**–किसी तेल, जैसे बादामका तेल आदिमें स्नेहाक्तकर लिया जाय । **प्रतिनिधि**–ईरसा । **मात्रा**–१ ग्रामसे १॥ ग्राम (१ माशा या १॥ माशा) ।

(४९९) माजूफल

फैमिली : कुपूलीफेरे (Family : Cupuliferae)

नाम—(हिं०; बं०) माजूफल; (यू०) केकिस Kekis (D. I. 146); (अ०) अफ़्स, अल्अफ़्स (इ० बै०), अफ़्सुल्बुलूत; (फा०) माज़ू; (सं०) मायाफल, मज्जफल; (द०; बम्ब०) माजूफल, माईफल; (म०) मायफल; (गु०) माजुफल (कांटालुं), कांटावालां मायुं; मायुं; (ले०) गॉला (Galla); (अं०) गॉल्स (Galls), ओक गॉल्स (Oak Galls) । वक्तव्य—इसके वृक्ष ईरानी बलूत (दरख्त बुलूतुल् अफ़्स)को लेटिनमें कुएर्कुस इन्फेक्टोरिआ (**Quercurs infectoria** Olivier.) कहते हैं । इसके फलके ऊपर कतिपय चिह्न कच्छूवत् होते हैं, इसलिए इसको लेटिन और अंग्रेजीमें क्रमशः गॉला या गॉल (–कच्छू) कहते हैं । इसका स्वाद कषाय होनेसे इसको अरबीमें अफ़्स (=कषाय) कहते हैं ।

इतिहास—प्राचीन यूनान और रोमवासियों तथा अरब और ईरानवासियोंको इस औषधिका ज्ञान था । मध्यकालीन भारतीय वैद्य भी इससे अभिज्ञ थे ।

उत्पत्तिस्थान—यूनान, एशिया माइनर, सीरिया और फारस । वहीसे इसका आयात हिन्दुस्तान में होता है ।

वर्णन—यह बलूतकी जाति और आकृतिकी माजू नामक एक झाड़ी—ईरानी बलूत—की डालियोंपर एक विशेष प्रकारके कृमि (Cynips Gallae-tinctoria Olivier.)के छिद्र करने और उन छिद्रोंमें उसके अंडे रखनेसे उन स्थानोंमें एक प्रकारकी गांठें उत्पन्न हो जाती हैं । यही (कीटगृह) माजू या माजूफल कहलाते हैं । प्राचीन यूनानी वैद्यकीय ग्रंथोंमें जो इसे फल लिखा गया है, वह ठीक नहीं है । माजूका आकार उन्नावके बराबर और रंग बाहरसे नीलापन लिए गहरा हरा और धरातलपर छोटे-छोटे उभार तथा पीला या सफेदी लिये भूरा, मध्यमें किंचित पीला; निर्गन्ध और स्वाद अत्यन्त कषाय होता है। रंगके विचारसे यह चार प्रकारका होता है—(१) नीला—माजू नीला (अफ़्सुल् अर्ज़क़); (२) काला—माजू स्याह (अफ़्सुल् अस्वद); (३) हरा—माजू सब्ज़ (अफ़्सुल अख़्ज़र); और (४) सफ़ेद—माजू सफ़ेद (अफ़्सुल् अब्यज़) ।

वक्तव्य—नीलापन लिए गहरे हरे या काले रंगके अछिद्र माजू जिनको कीड़ोंके छिद्र करके बाहर निकलनेसे पूर्व संग्रह किया गया हो, औषधके लिए सर्वोत्तम होते हैं और सफेद सछिद्र माजू जिनमेंसे कीड़ा छेद करके बाहर निगल गया हो, निकृष्ट होते हैं ।

रासायनिक संगठन—इसमें मायाफलाम्ल (गैलिक एसिड Gallic acid) ६० से ७० प्रतिशत और कषायाम्ल (टैनिक एसिड Tannic acid) २ से ५ प्रतिशत ये दोनों अम्ल गॉलो-टैनिक एसिड ५० से ६० प्रतिशत होते हैं ।

कल्प तथा योग—कोहल माजू ।

प्रकृति—पहले दर्जेमें शीत और दूसरेमें रूक्ष; मतांतरसे दूसरे दर्जेमें शीत और तीसरेमें रूक्ष ।

गुण-कर्म तथा उपयोग—संग्राही, उपशोषण, रक्तस्तंभन, कोथप्रतिबन्धक और बालोंको काला करनेवाला है । संग्राही और उपशोषण होनेके कारण स्वेदाधिक्यको रोकने और स्वेदकी दुर्गन्ध दूर करने के लिए माजूके चूर्णका शरीरपर अवधूलन करते हैं । अन्त्रव्रण, पुराना अतिसार और श्वेतप्रदरमें इसका आंतरिक उपयोग करते हैं । कर्णस्रावमें इसके चूर्णको कुलफाके रसमें मिलाकर कानमें डालते हैं । संग्राही और उपशोषण होनेके कारण दाँतों और मसूढोंको दृढ़ करने, उनके रक्तस्रावको बंद करने और मुखसे पानी आनेको रोकनेके लिए इसको चूर्णोमें डालते है और अकेले भी काममें लाते हैं । इसके काढ़ेसे गण्डूष भी कराते हैं । गलशुण्डिका, कंठशोथ, मुखपाक और दन्तवेष्ठप्रकोपमें इसका अवचूर्णन तथा गण्डूष कराते हैं । यह किसी कदर कोथप्रतिबंधक भी है । अतएव मुख की दुर्गंधको दूर करता है । संग्राही, उपशोषण और कोथप्रतिबन्ध होनेके कारण परिसर्पी व्रण, कक्षा (नम्ला), गोश्तखोरा (आकिल:)में और झाईं आदिके लिए यह अवचूर्णनकी भांति उपयोग किया जाता है । सिरके के साथ लेप करने से यह दद्रु, खालित्य विशेष (दाउस्सालब) और झाईं आदिके लिए गुणकारी है । नेत्रस्राव, पक्ष्मशात (सुलाक) और नेत्रगत कच्छूमें इसका अंजन (सुरमा) गुणकारी है । रक्तस्तंभन होनेके कारण सद्यः व्रणोंपर इसका अवचूर्णन किया जाता है और नकसीर बंद करनेके लिए इसका नस्य दिया जाता है । इसी प्रकार अतिरजःस्राव, रक्तमूत्र और रक्तातिसारमें इसकी फलवर्ति या पिचुवर्ति योनिमें स्थापितकी जाती या इसके काढ़ेकी वस्ति दी जाती है तथा चूर्ण बनाकर खिलाया जाता है । गुदभ्रंश, गुदशोथ और गुदव्रणमें इसका अवचूर्णन किया जाता है तथा इसके काढ़ासे गुद-प्रक्षालन कराते हैं । यह बालोंको काला करता है । इसलिए खिजाबों (केशकल्पों)में प्रयुक्त होता है । **अहितकर**—उर:कंठरोगोंके लिए । **निवारण**—कतीरा, बबूलका गोंद और अधभुना अंडा । **प्रतिनिधि**—छोटी माईं और अनार का छिलका । **मात्रा**–१ ग्राम से २ ग्राम (१ माशा से २ माशे) तक ।

आयुर्वेदीय मत—**माजूफल** (मायाफल, मायुक) कषैला, विपाकमें कटु, शीतवीर्य (मतांतरसे उष्णवीर्य), रूक्ष या तीक्ष्ण, हलका दीपन, ग्राही, शिथिलतानाशक (शिथिलताको संकुचित करनेवाला), केशोंको काला करनेवाला तथा कफ, पित्त और वातका नाश करनेवाला है । (रा० नि०; शो० नि०; नि० र०) ।

नव्यमत—माजूफल उत्तम स्तम्भन, श्लेष्मघ्न, शोणितस्थापन और विषघ्न है । दालचीनी आदि अन्य सहायक औधषोंके साथ माजूफलका चूर्ण पुराने अतिसार और संग्रहणीमें देते हैं । पुराने सूजाक और तन्तुमेहमें माजूफलका चूर्ण १० रत्तीकी मात्रामें दिया जाता है । विना पीड़ाके पूय आनेपर इसे देना चाहिए । कुचला, धतूरा, बछनाग, अफीम आदि विषद्रव्य खाये हुएको प्रथम वमन कराके पीछे विषप्रशमनार्थ माजूफलका तेज काढ़ा बड़ी मात्रामें बारंबार देना चाहिए । माजूफलको जलमें घिसकर व्रणपर लगानेसे व्रणका संकोचन होता है और वह शीघ्र भर जाता है । इसे जलमें घिसकर गलेमें लगानेसे गलेकी गाँठों (टांसिल)की सूजन उतरती है; और बढ़ा हुआ कौआ संकुचित होकर शुष्क कास आराम हो जाता है (सूखी खाँसी आना बन्द होता है) ।

●

(५००) मामीसा

वर्णन—यह एक भूलुण्ठिवा बूटी है, जिसको कूटकर बलूती शकलकी चक्रिकाएँ बना लेते हैं । इनको उसारए मामीसा और शियाफ़ मामूसा कहते हैं । यही औषधमें प्रयुक्त किये जाते हैं । (यू०) Glaukion (D. 3. 90); (ले०) ग्लाउकिउम् (Glaucium) ।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें शीत एवं रूक्ष है ।

गुण-कर्म तथा उपयोग—शीतजनन, संग्राही, उपशोषण, दोषविलोमकर्ता और नेत्ररोगोंमें विशेष गुणकारी है। उपर्युक्त गुण-कर्मोंके कारण उसारए मामीसाको उष्ण नेत्राभिष्यंद, उष्ण शिरःशूल, उष्ण आमवात, मुखगत विसर्प(माशिरा), उग्र विसर्प और रक्तजशोथविशेष (फलग़मूली)में पतले लेपकी भाँति उपयोग किया जाता है। नेत्रस्राव, नेत्रच्छदपात और दृष्टि-दौर्बल्यमें सुरमेकी भाँति इसका उपयोग करते हैं। मुखपाक और परिसर्पी व्रणमें इसका अवचूर्णन करते हैं। संग्राही एवं शीतजनन होनेके कारण पित्तज अतिसारमें इसका चूर्ण बनाकर खिलाया जाता है। **अहितकर**—प्लीहारोगमें। **निवारण**—मीठा बादाम और शहद। **प्रतिनिधि**—सुमाक। **मात्रा**—१ ग्राम से २ ग्राम (१ माशा से २ माशे) तक।

●

(५०१) मालकाँगनी

फ़ैमिली सेलास्ट्रासे (Family : Celastraceae)

नाम—(हिं०) मालकाँगनी, मालकँगनी; मालकाकनी, मोंजनी, मि(मु)झनी (मीरजापुर); (अ०) तालाक़ियून; (सं०)ज्योतिष्मती, कंगुनी, ककुन्दनी; (पं०) मालकँगनी; (म०) मालकाँगाणी; (गु०) मालकांगण(णी), मालकांकणा; (कुमायूँ) मलकक्नी; (को०, संथा०) कुजरी; (था०) मालटांगुन; (पलामू) मिझनी, मुजनी; (ता०) बालुलवे; (मल०) पालुरु (ल)वम्; (लें०) सेलास्ट्रूस पानीकुलाटुस (**Celastus paniculatus** Willd.); (अं०) स्टॉफ़ ट्री (Staff Tree)।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्षके पहाड़ीस्थानोंमें, विशेषकर हिमालयपर्वतपर झेलम नदीसे आसाम तक ४,००० फुटकी ऊंचाई तक तथा उत्तरी, मध्य एवं दक्षिण भारतवर्ष, लंका एवं ब्रह्मामें पाई जाती हैं।

वर्णन—इसकी लता वृक्षारोही बड़ी लम्बी कभी-कभी वृक्षाकार होती है। **पत्र**, लम्बे, दाँतेदार, गोल और नुकीले; फूल छोटे-छोटे पीताभ नीले रंगयुक्त और मधुर गन्धयुक्त तथा घौंदके घौंद लगते हैं; फल आकारमें छोटे मटरकी आकृतिके, कच्चे नीले और पके लाल पीले, फलके चटकनेपर भीतरसे पीत-अरुण बाजरेके दाने या मुनक्काके बीजके आकारके बीज निकलते हैं। फल तीन भागोंमें फटता और प्रत्येक भागमें २-३ तिकोने बीज होते हैं। यह बीज ही मालकाँगनीके नामसे प्रसिद्ध है। यह स्वादमें अत्यन्त तिक्त एवं उष्ण होता है। बीजोंसे कोल्हूसे या ऊर्ध्वपातनसे एक प्रकारका पीले रंगका गाढ़ा तेल निकाला जाता है।

उपयुक्त अंग—बीज और बीजोत्थ तेल। यह दोनों ही बाजारमें मिलते हैं।

रासायनिक संगठन—बीजमें ३० प्रतिशत एक गाढ़ा ललाई लिए पीला, तिक्त एवं गन्धयुक्त तेल, एक तिक्त रालयुक्त वीर्य, टैनिन और राख (५ प्रतिशत) होती है। बीजोंको जलाकर निकाले हुए तेलमें क्रियोजोट नामक महत्वपूर्ण द्रव्य होता है।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम और तीसरेमें खुश्क; मतांतरसे तीसरे दर्जेमें गरम और दूसरेमें खुश्क। आयुर्वेदमतसे बीज और तेल दोनों उष्णवीर्य (ध० नि०; रा० नि०) हैं।

गुण-कर्म तथा उपयोग—बुद्धि और स्मृतिवर्धक, शीतल कफरोगनाशक, दीपन, पाचन, वातानुलोमन, वाजीकर, रक्तप्रसादन, श्लेष्मष्ठीवनोत्सर्गकर्ता और सारक है। शीतल कफरोगनाशक होनेके कारण आमवात, पक्षवध, अर्दित, कटिशूल, वातरक्त, गृध्रसी आदिमें मालकँगनीका उपयोग करते हैं तथा इसका तेल उक्त रोगोंमें अभ्यंग रूपसे प्रयुक्त होता है। वाजीकरणके लिए इसे विविध प्रकारसे खिलाते हैं। इसे वाजीकर तिलाओंमें डालकर

तिला बनाते हैं। रक्तप्रसादन होनेके कारण कुष्ठ, किलास, कच्छू और कण्डूमें उपयोग कराते हैं। कफष्ठीवनोत्सर्गकर्ता होनेके कारण इसे कास और कफज कृच्छ्रश्वासमें खिलाते हैं। **अहितकर**—उष्ण प्रकृति विशेषकर युवाओंके लिये बहुत ही अहितकर है। **निवारण**—गोदुग्ध और गोघृत। **प्रतिनिधि**—लौंगका तेल। **मात्रा**—०.५ ग्राम से १ ग्राम (आधा माशासे एक माशा) तक। **तेल**—(२ से १० बिन्दु)।

आयुर्वेदीय मत—मालकँगनी कटु, तिक्त, उष्णावीर्य, तीक्ष्ण, शिरोविरेचन, सारक, जठराग्नि, बुद्धि और स्मरणशक्तिको बढ़ानेवाली तथा कफ और वायुके रोगोंका नाश करनेवाली है। मालकँगनीका तेल कटु, तिक्त, उष्णवीर्य, बुद्धि और स्मरणशक्ति बढ़ानेवाला, पित्तप्रकोपक तथा वायुका नाश करनेवाला है। (च० सू० अ० २; सु० सू० अ० ३९; ध० नि०; रा० नि०)।

नव्यमत—मालकँगनी तिक्त, उष्ण, उत्तेजक, स्वेदजनन, मूत्रजनन, वातहर और त्वग्दोषहर है। इसकी क्रिया मस्तिष्क और नाड़ियोंपर होती है।

●

(५०२) मालती

फ़ैमिली : ओलिआसे (Family : Oleaceae)

नाम—(सं०; हिं०; बं०; गु०; पं०; मार०) मालती; (म०) कुसर; (ले०) **जासीमुम् आर्बोरेसेन्स (Jasimnum arborescens** Roxb.)।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष।

वर्णन—इसकी बड़ी लता होती है। पत्र लम्बोतरे, और नुकीले, २॥–३ अंगुल चौड़े, ४-५ अंगुल लम्बे; फूल सफेद जूही-जैसे, परन्तु उससे बड़े होते हैं। पुष्पवृन्त १-२ अंगुल लम्बा होता है।

प्रकृति—तालीफ़शरीफ़के अनुसार इसका फूल गरम और खुश्क। वैद्य शीतल बतलाते हैं। (रा० नि०)।

गुण-कर्म तथा उपयोग—तालीफ़शरीफ़के अनुसार यह अर्श, मृगी और संग्रहणी—इनको दूर करनेवाली है।

आयुर्वेदीय मत—मालती वमनकारक है तथा कफ, पित्त, रक्त-पित्त, मुखरोग (मुखपाक), त्वग्दोष, कृमि, कुष्ठ, व्रण, सूजन और पूतिकर्ण इनको नष्ट करनेवाली है। फूल नेत्रोंको हितकारी हैं। पत्र कफपित्तनाशक है। (रा० व०; शो० नि०) वि० दे० "चमेली"।

नव्यमत—पत्र हलका तिक्त, संग्राही, वल्य, दीपन, कालीमिर्च, लहसुन तथा अन्य उत्तेजक औषधियोंके साथ इसके पत्रस्वरसका पिच्छिल श्लेष्माजन्य फुफ्फुसप्रणालीगत अवरोधमें वामक (कफोत्सारि) रूपमें प्रयोग होता है। यह ज्वरघ्न, कफघ्न, वामक और विरेचन है। फुफ्फुस और श्वासनलिकाके शोथमें मालतीका प्रयोग करते हैं।

●

मालती

फ़ैमिली : आपोसीनासे (Family : Apocynaceae)

नाम—(सं०; हिं०; बं०; ते०) मालती; (संथाल) रतेड़; (ले०) **आगानोस्मा कारीओफिल्लाटा** (**Aganosma caryophyllata** G. Don.)।

उत्पत्तिस्थान—भारतवर्षके अनेक भागोंमें पथरीले नालों आदिमें इसकी लताएँ पायी जाती हैं।

वर्णन—इसकी विस्तृत **लताएँ** उद्यानोंमें लगाई हुई मिलती हैं। **पत्तियाँ** लट्वाकार या अण्डाकार, नोकीली, ७·५ सें० मी० से १५ सें० मी० (३-६ इञ्च) लम्बी व ३·७५ सें० मी० से ७·५ सें० मी० (१॥-३ इञ्च) चौड़ी होती हैं। पत्र शिराएँ लाल होती हैं। **पुष्प** बड़े श्वेत, सुगन्धयुक्त समशिखाकार गुच्छोंमें होते हैं। **फलियाँ** दो-दो, अग्रपर जुड़ी हुई और प्रायः ४ इञ्चसे १० इञ्च लम्बी तथा अग्रकी ओर क्रमशः संकुचित रहती हैं।

गुण-कर्म तथा उपयोग—लता वामक, पत्र पित्तप्रकोपमें और फूल नेत्ररोगोंमें प्रयुक्त होता है। पानी लगनेसे जब पैरकी अंगुलियोंके बीचमें पक जाता है तब इसकी अग्र कलिकाओंका स्वरस निकालकर लगाया जाता है।

●

(५०३) माहीज़हरज

फ़ैमिली : मेनिस्पेर्मासे (Family : Menispermaceae)

नाम—(हिं०) **काकमारी**; (अं०) शीकरानुल्हूत, बूसीर, अल्माहीज़हरज(इ० बै०); नबात सस्मुस्समक, माहीज़हरज; (फा०) माहीज़हरः, ज़हरेमाही; (क०; ते०; म०) **काकमारी**; (सं०) काकमारी, काकघ्नी; (गु०) काकफल; (पं०) नेत्रमल; (को०) गरुडफल; (ले०) आनामीर्टा कॉक्कूलुस **Animarta cocculus** (L.) Wt. & Arn. (पर्याय–**A. Paniculata** Colebr.); (अं०) फिश बेरी (Fish-berry)।

वक्तव्य—इसका चूर्ण जलमें डालनेसे मछलियाँ मर जाती हैं, इसलिए इसको फारसीमें 'माहीज़हर (अर्थात् ज़हरमाही = मत्स्यविष)' कहते हैं। इसीसे "**माहीज़हरज**" अरबी बनाया गया है। इससे काक आदि पक्षी और गायें भी मर जाती हैं। इसलिए संस्कृत और देशी भाषाओंमें इसे तदर्थवाचक (गोघातक और काकनाशक) संज्ञाओंसे अभिधानित करते हैं। 'डीमक' के मतसे वास्तविक माहीजहरा **गीदड़तमाकू** (**Verbascum thapsus** L.; or **V. glomeratum**) है न कि उपयुक्त काकमारी।

उत्पत्तिस्थान—दक्षिण एवं पूर्वी भारतवर्ष और ब्रह्माके पहाड़ी जंगलोंमें इसकी बेल होती है।

वर्णन—यह वृक्षारोही बड़ी बेल है जिसकी छाल खुरदुरी, मोटी और कागवत् होती है। **फल** कुछ-कुछ गोलाई लिए वृक्काकृति १ सें० मी० से १·२५ सें० मी० ($\frac{२}{५}$ से $\frac{१}{२}$ इञ्च) लम्बे और बैंगनी तथा छोटे अंगूरके आकारके गुच्छोंमें होते हैं। सूखनेपर यह झुर्रीदार कालीमिर्चके समान होते हैं। **बीज**–घोड़ेके नालकी आकृति के समान (Horse-shoe shaped) तथा स्वादमें अत्यन्त तिक्त होते हैं। गन्ध तेल सरीखा होता है।

उपयुक्त अंग—फल और छाल।

रासायनिक संगठन—फलमें **पिक्रोटॉक्सिन** (Picrotoxin) नामक एक अत्यन्त विषैला तिक्त क्रिस्टली ग्लूकोसाइड होता है।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें **गरम और खुश्क**।

गुण-कर्म तथा उपयोग—तीव्र विरेचन विशेषकर कफविरेचन और जलोदरनाशक है। इससे छोटे-छोटे जीव मृतप्राय हो जाते हैं। आमवात, गृध्रसी और जलोदर जैसे रोगोंमें इसका काढ़ा करके पिलाते हैं और जूओंको मारनेके लिए शिरमें लगाते हैं। **अहितकर**–अन्त्रको। **निवारण**–कतीरा, निशास्ता और अनीसून। **प्रतिनिधि**–एलुआ और उसारा। **मात्रा**–२ ग्राम से ३ ग्राम (२ माशासे ३ माशा) तक। अधिक मात्रामें **यह सांघातिक विष है**।

●

(५०४) मिर्च, काली

फ़ैमिली : पीपेरासे (Family : Piperaceae)

नाम—(हिं०) कालीमिर्च, गोलमिर्च, मिरिच; (अ०) अल्फ़िल्फ़िलुल्अस्वद; (फा०) फ़िल्फ़िले स्याह, (गिर्द), पिल्पिल्; (उर्दू) स्याहमिर्च, कालीमिर्च; (सं०) मरिच, मरीच; (द०) कालीमिर्ची; (बं०) गोलमरिच; (गु०) मरी,मरीआं, कालामरी, तीखा; (म०) मिरीं, मिरे, मिरिच; (ले०) **पीपेर नीग्रम्** (**Piper nigrum** Linn.) (अं०) ब्लैक पेपर (Black Pepper), पेपर (Pepper)।

वक्तव्य—यूनानी 'पेपेरी' अंग्रेजी 'पेपर (Pepper),' लेटिन 'पीपेर' आदि तथा अरबी, फ़िल्फ़िल्, फारसी 'पिल्पिल्' यह सभी संस्कृत शब्द '**पिप्पली**' से व्युत्पन्न हैं।

इतिहास—ऊपरके वक्तव्यसे यह ज्ञात है कि अन्य भाषाओंके सभी नाम संस्कृत '**पिप्पली**' से ही व्युत्पन्न हैं। इससे स्पष्ट है कि भारतीयोंको अति प्राचीनकालसे इस औषधिका ज्ञान है। इसका कारण यह है कि भारत एवं इसके समीपवर्ती उष्ण प्रदेशीय देश इसके मूल उद्भव स्थान हैं। ईसवी सन्से लगभग ४०० वर्ष पूर्व यूनानी हकीम **सावफरिस्तुस्**ने तीन प्रकारके मरिच अर्थात् **फिल्फिल् दराज़** (पिप्पली), **फ़िल्फ़िल् सफेद** (सफ़ेद) मरिच और **फिल्फिल् स्याह** (काली मरिच) का वर्णन किया है। **शैखुर्रईसने जालीनूससे** प्रतिलिपि करते हुए लिखा है कि फ़िल्फ़िल् नामक उद्भिज्जमें जो प्रथम फल लगता है वह दारफ़िल्फ़िल (पीपल) होता है और तत्पश्चात् वह गोल मिर्च (फिल्फिल्गिर्द) में परिवर्तित हो जाता है; किंतु **इब्नेजमीअ** और क़ानूनके भाष्यकार **गाजरूनीनने** शैखके इस कथनसे मतभेद व्यक्त किया है।

उत्पत्तिस्थान—**दक्षिण भारतके** गरम और आर्द्र भागों (**ट्रावनकोर एवं मलावारके समुद्रतट एवं जंगली प्रदेश**) में विस्तृत परिमाणमें इसकी खेती की जाती है। **कालीमरिच भारतका एक मुख्य व्यावसायिक उपज है।**

वर्णन—यह एक बहुवर्षायु वृक्षारोही दीर्घलताके कच्चे सुखाए हुए फल हैं जो औषधमें काम आते हैं और बाजारोंमें मिलते हैं। ये छोटे लगभग १/५ इंच व्यासमें, गोल, झुर्रीदार और कालाई लिए भूरे होते हैं। इसके अन्दर एक कड़ा, चिकना, खाकी, गोल बीज होता है। गंध—मनोरम, स्वाद चरपरा एवं दाहक होता है। इसका एक भेद सफेद है और **मिर्चसफेद**के नामसे प्रसिद्ध है। पकी कालीमिर्चका छिलका विशेष विधिसे (पानीमें भिगो-रगड़कर) दूर कर देनेसे यह प्राप्त होती है। यह कालीमिर्चकी तरह झुर्रीदार नहीं होती और उसकी अपेक्षया-छोटी, कम चरपरी तथा भूरी वा सफेद एवं चिकनी होती है।

रासायनिक संगठन—इसमें (१) रालमय तेल जिसमें एक मिर्चगंधी उत्पत् तेल होता है और एक राल होती है और (२) एक हलके पीले रंगका चमकीला **पाइपेरीन** (Piperine) अर्थात् **पिप्पलीन** वा **फ़िल्फ़िलीन** नामक क्षारोद होता है जो पिप्पल्यम्ल (Piperic acid) और पाइपरीडीनमें वियोजित हो जाता है।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें **गरम और खुश्क**। आयुर्वेदीय मतसे उष्णवीर्य (च०; सु०)।

गुण-कर्म—बाहरी तौर पर उपयोग करनेसे कालीमिर्च प्रथमतः लेखन, रक्ताकर्षणकर्ता और **संक्षोभजनन** कर्म करती है; परन्तु अंततः इसका अवसादक कर्म होता है। इसको मुखमें चबानेसे अत्यंत लालास्राव होता है। आंतरिक उपयोगसे यह **वातनाड़ीबलदायक, दीपन** और **यकृद्बलवर्धन** कर्म करती है। यह पाचनको शक्ति देती, खूब भूख बढ़ाती, अन्त्रामाशयगत वायुका उत्सर्ग करती, मूत्र और आर्तवका प्रवर्तन करती और वाजीकरण करती है। फुफ्फुसोंपर इसका श्लेष्मनिःसारक कर्म होता है। यह सरलान्त्रकी वातग्रस्त और शोथयुक्त श्लैष्मिक कलाको शक्ति पहुँचाती है, तथा शीतल विषोंके प्रभावको नष्ट करती और पर्यायसे होनेवाले रोगोंकी बारीको रोकती है। यह विशेषरूपसे दीपन-पाचन और कफ रोगोंके लिये गुणकारक है।

उपयोग—लेखन, शोणितोत्क्लेशक और संक्षोभजनन होनेसे औषधरूपेण कालीमिर्चको किलास और झाईं पर पतला लेप करते हैं तथा कतिपय वेदनाओंमें वेदनाशमनार्थ इसे लगाते या इसकी मालिश करते हैं। कण्ठमालेको बैठानेके लिए इसे जिफ्तके साथ पीसकर लेप करते हैं तथा वातज शोथ (तहब्बुज रीही) और कफज शोथोंपर उपयुक्त औषधियोंके साथ पीसकर लेप करते हैं। अंगघातजन्य कंण्शोथ और दंतशूलमें इसके काढ़ेसे कुल्ले कराते हैं। कृमिभक्षित दंतशूलमें अकेले या उपयुक्त औषधद्रव्यके साथ मंजनकी भाँति इसका उपयोग करते हैं। इसको मुखमें चबानेसे मुखसे अत्यंत लालास्राव होता है। अतएव जिह्वागौरवमें इसे चबाया जाता या बारीक पीसकर जिह्वापर मला जाता है। इसके अतिरिक्त मस्तिष्कके द्रवोंको कम करनेके लिये इसे बीज निकाले हुए मुनक्काके साथ चबाते हैं। प्लीहाशोथको विलीन करनेके लिए इसे सिरकाके साथ पीसकर लेप करते हैं। फूली, नाखूना (शुक्लार्म) और दृष्टिमांद्यको दूर करनेके लिये इसे उपयुक्त औषधियोंके साथ खरल करके आँखोंमें लगाते हैं। कालीमिर्च आंतरिक रूपसे आहारोंमें मसालेकी भाँति डालकर खायी जाती है। इससे आनाहकर (बादी) खाद्याहारोंके उक्त दोषका परिहार हो जाता है और पाचन-शक्ति बलवती होती है। इसके अतिरिक्त दीपन, आहार-पाचन और भूख लगानेके लिये इसे **जुवारिश जालीनूस, जुवारिश कमूनी** और अन्य योगोंमें डालकर खिलाते हैं। कफज कास और श्वासमें कालीमिर्चको अकेले या उपयुक्त औषधियोंके साथ मधुमें मिलाकर चटाते हैं और प्रायः वातिक-कफज रोगोंमें खिलाते और बाहरी तौरपर लेप करते हैं। कामोत्तेजनके लिये इसको पतले लेपों (तिलाओं) में डालते और योगोंमें मिलाकर खिलाते हैं। शीतपूर्व ज्वरों (तपे लरज़ा)को रोकनेके लिये इसको उपयुक्त औषधियोंके साथ उपयोग करते हैं। इसके अतिरिक्त अर्श एवं गुदव्रणमें सरलान्त्रकी कलाको शक्ति देनेके लिए इसे खिलाते हैं। कतिपय मूत्रार्तवजनन नुसखोंमें इसको डालते हैं, और कतिपय शीतल औषधियोंके दोषपरिहारके लिये इसे मिलाकर उपयोग करते हैं। वृश्चिक एवं सर्पदष्ट तथा अफीम खाये हुयेको इसका काढ़ा बार-बार पिलाकर वमन करानेसे उनका विष नष्ट हो जाता है। **अहितकर**—उष्ण प्रकृति और वृद्धोंके लिये। **निवारण**—मधु और शीतल स्नेहद्रव्य। **प्रतिनिधि**—सफेद मिर्च और सोंठ। **मात्रा**—३६० मि० ग्राम से १ १/४ ग्राम (३ रत्तीसे १ १/४ माशा) तक।

आयुर्वेदीय मत—कालीमिर्च कटु, उष्णवीर्य, तीक्ष्ण, लघु, अवृष्य, रोचन, छेदन, शोषण, दीपन, शिरोविरेचन, कृमिघ्न, शूलप्रशमन तथा कफ, वात और हृद्रोगका नाश करनेवाली है। सफेदमिर्च उष्णता और शीतलतामें मध्यम (न अति उष्ण न अति शीत), कालीमिर्चसे विशेष गुणकारक और नेत्रके लिए हितकर है। आर्द्र (ताजी) मरिच मधुरविपाक, गुरु और कफका स्राव करानेवाली है (च०सू० अ० २, ४, २७; सु०सू० अ० ३८, ४६; रा० नि०)।

नव्यमत—कालीमिर्च उष्ण, दीपन, वातनाशक, नियतकालिकज्वर-प्रतिबन्धक, उत्तेजक तथा मूत्रेन्द्रिय और उत्तरगुदके लिए उत्तेजक है। कुपचन और आध्मानमें कालीमिर्च गुणकारक है। उत्तरगुदपर इसकी विशेष क्रिया होती है। इसलिए इससे अर्शमें लाभ होता है। मूत्रपिंडके लिए उत्तेजक होनेसे इससे मूत्रकी राशि बढ़ती है। शीतज्वरमें ज्वर आनेसे पूर्व इसे देनेसे रोगीको अच्छा मालूम होता है। परन्तु इसमें ज्वरघ्न गुण अल्प है, इसलिए इसके साथ अन्य ज्वरघ्न औषध देना चाहिए।

(५०५) मिर्च, लाल

फ़ैमिली : सोलानासे (Family : Solanaceae)

नाम—(हिं०) लालमिर्च, मिरचा, मरचा, मर्चा; (अ०) फ़िल्फ़िले अहमर; (फा०) फ़िल्फ़िले (पिल्पिले) सुर्ख़; (उर्दू) सुर्ख़मिर्च; (सं०) कटुवीरा ? लंका ? रक्तमरिच ? (द०; बम्ब०) मिर्ची, लालमिर्ची; (बं०) लंका, लंकामरिच, गाछमरिच; (म०) लालमिर्ची; (गु०) मरचाँ; (ले०) **कॉप्सीकुम् फ्रूटेस्सेंस** (**Capsicum frutescens Linn.**); (अं०) रेड चिली या पेपर (Red Chilli or Pepper), बर्ड चिली (Bird Chilli), कैप्सिकम (Capsicum)।

इतिहास—इसका मूल उत्पत्तिस्थान अज्ञात है। **कलसूस** कहता है, कि इसे पुर्तगाली लोग भारतवर्षमें लाये थे और यहाँसे सन् १५९५ ई० में यह इंग्लैंड पहुँचा। प्राचीन भारतीयोंको इसका ज्ञान नहीं था, क्योंकि प्राचीन संहिताओं तथा अन्य संस्कृत ग्रन्थोंमें इसका उल्लेख नहीं मिलता। लालमिर्च भी एक बाह्यागत वनस्पति प्रतीत होती है। किन्तु अब यह यहाँ सर्वत्र खेती द्वारा ऊँचे परिमाणमें उत्पन्न की जाती है।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्षमें इसकी खेती की जाती है। **हरी मिर्च** प्रायः साल भर सब्जी-बाजारोंमें तथा सूखी **लालमिर्च** सर्वत्र पंसारियोंके यहाँ मिलती है।

वर्णन—यह एक छोटे क्षुपकी लम्बी गोपुच्छाकार विभिन्न आकारकी प्रसिद्ध **फली** है, जो अपक्वावस्थामें हरी या हरापन लिए काली और पक्व होनेपर लाल हो जाती है। इसके अन्दर पीले रंगके छोटे-छोटे चपटे बीज भरे होते हैं। गंध विशेष प्रकारकी और स्वाद कटु एवं अत्यन्त चरपरा होता है। चाबनेपर जिह्वा एवं मुखमें जलन की अनुभूति होती है। बाजारोंमें जो सूखा लालमिर्च मिलता है और जिसकी खेती समस्त भारतवर्षमें अधिकतासे होती है, उसके क्षुपको लेटिनमें **काप्सीकुम् आन्नुउम्** (**Capsicum annuum** Linn.) कहते हैं।

रासायनिक संगठन—इसमें **कैप्सिसिन** (Capsicin) नामक एक रालदार उत्पत् क्षारोद, (२) एक क्रिस्टली कटु पदार्थ कैप्पेसिन (Capsaicin), (२) एक उत्पत् तैल, (४) एक अनुत्पत् तैल, (५) राल, (६) रंजक द्रव्य और (७) राख प्रभृति तत्त्व होते हैं। इसकी चरपराहटका कारण इसमें वर्तमान कैप्सिसिन नाम रालदार तैल है।

उपयुक्त अंग—फल।

मात्रा। **चूर्ण**—०·१८ से ०·७५ ग्राम ($\frac{१}{४}$ से १ आना भर); **काढ़ा**–१२ से २४ ग्राम (२ से ४ तोला)।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें **गरम** और **खुश्क**।

गुण-कर्म तथा उपयोग—बाहरी तौरपर उपयोग करनेसे लालमिर्च श्वयथुविलयन, शोणितोत्क्लेशक और संक्षोभजनन है। मुखमें चबानेसे यह लालास्रावको बढ़ाती तथा अन्त्र और आमाशयपर उद्दीपक एवं वातानुलोमन कर्म करती है। अधिक प्रमाणमें खानेसे यह अन्त्र और आमाशयमें संक्षोभ (ख़राश) करके रगड़ (सहज्ज) उत्पन्न कर देती है, तथा हृदय और वाहिनियोंको उत्तेजित करती एवं किसी प्रकार मूत्रल और वाजीकर भी है। यह विशेषकर दीपन-पाचन और हृदयोत्तेजक है। **उपयोग**—लालमिर्च भारतवर्षमें अधिकतया आहारोंमें मसालेकी भाँति उपयोग की जाती है। इससे बादी एवं आनाहकारक आहारोंके दोषका परिहार होता है और पाचनको सहायता प्राप्त होती है। इससे जल और आहारके दोषोंका परिहार हो जाता तथा जलवायु परिवर्तनसे आमाशयपर जो कुप्रभाव पड़ता है यह उसे नष्ट करती है। सुतरां यात्रामें विविध जलोंके सेवनसे जो हानि होती है, उसे दूर करनेके लिए लालमिर्चको आहारोंमें डाला जाता है। इसके अतिरिक्त मंदाग्नि, कुपचन, उदरानाह और मदात्ययमें यह परम गुणकारी है। सम्भवतः दीपन और वाहिनी एवं हृदयोत्तेजक होनेके कारण हैजेकी अन्तिम अवस्थामें जबकि हृदय दुर्बल हो

गया हो, यह उत्तम प्रभाव करती है। इसलिए हैजेमें भी इसका उपयोग करते हैं। बाहरी तौरपर कुत्तेके काटे हुए स्थानपर इसको जलमें पीसकर लगाते हैं। इससे प्रथम तो दाह प्रतीत होता है और द्रवोंका उत्सर्ग बहुत होता है। किन्तु इसके उपरांत बास्तविक वेदना और मिर्चोंका दाह मिट जाता है और जख्ममें पीव नहीं पड़ती, अपितु वह बहुत शीघ्र सूख जाता है। इसी प्रकार कतिपय अन्य वेदनाओं और दाह, जैसे–कफज शिरःशूल, आमवात, कटिशूल, पार्श्वशूल और गृध्रसीमें इसका लेप लगानेसे वेदना और दाह मिट जाता है। **अहितकर**–उष्ण प्रकृतिको। **निवारण**–दूध और घी। **प्रतिनिधि**–कालीमिर्च। **मात्रा**–०·५ ग्राम से १ ग्राम (४ रत्ती से १ माशा) तक।

आयुर्वेदीय मत—लालमिर्च अग्निकारक, कफघ्न, दाहकर तथा अजीर्ण, विसूचिका और सुदारुण क्लिन्न व्रण तथा तन्द्रा, मोह, प्रलाप, स्वरभेद एवं अरुचिका नाश करनेवाली है। लालमीर्च दर्शन, श्रवण व वाक्शक्ति-विरहित क्षीण एवं लुप्तनाड़ीयुक्त सन्निपातरोगियोंको मृत्युके मुखसे आकर्षण कर जीवनदान कर सकता है। (आत्रेय संहिता)।

नव्यमत—लालमिर्च तीव्र स्थानीय उत्तेजक (संक्षोभक) है। इसका लेप अधिक समय तक शरीरपर रहनेसे वहाँ फफोला उठ आता है। औषधोपयोगी मात्रामें सेवन करनेसे यह अन्नप्रणालीको उत्तेजन प्रदान करता है, मुँहमें जलन उत्पन्न करता और लालारसकी वृद्धि करता है। आमाशयमें उष्णताका अनुभव होता है, आमाशय-रसका उद्रेक बढ़ता है तथा अन्त्रकी पुरस्सरण गति में वृद्धि होती है। इसके खानेसे हृदय, त्वचा और वृक्कद्वय उत्तेजित होते हैं। वाजीकरणरूपेण यह वात एवं जननेन्द्रियसंस्थानको उत्तेजित करता है। यह रक्तवहाओंके धारी-विहीन मांसतंतुओंपर अपनी संकोचनीशक्तिके प्रभावसे यह अर्गटकी भाँति रक्तस्रावको बन्द करता है। इन्द्रीक्रिया वैकल्यजात नपुंसकत्व, शुक्रमेह, चिरज मूत्राशय(वस्ती)शोथ एवं मूत्रग्रंथिप्रसेक (Catarrh of the Prostate)में यह वाजीकररूपसे व्यवहार किया जाता है। वृक्कशोथ विशेष (Parenchymatous nephritis)में यह ऐल्ब्युमिनक्षयको बन्द करता है। कुचिलाके साथ इसका सेवन दीपन, बल्य एवं ग्रहणी, अजीर्ण, शूल, उदावर्त, कम्पज्वर, अत्यन्त अवसाद एवं दीर्घकालिक सुरापानजनित कुपरिणाम (अत्युत्कट मद्यपानेच्छारोग)में प्रशस्त है। प्रलाप, कम्पादि रोगमें तथा अफीमकी आदत छुड़ानेके लिए इसका अधिक मात्रामें सेवन हितकर है। समुद्रयात्राजन्य रोग, विषमज्वर एवं अन्यविध सूक्ष्मज्वर (जीर्णज्वर), चिरज कोष्ठबद्धता, अर्श तथा विसूचिकामें यह उत्तेजनीय भेषजस्वरूप कार्य करता है।

(५०६) मिश्केतरामशीअ

फ़ैमिली : लाबिआटी (Family : Labiatae)

नाम—(भा० बाजार) मिश्केतरामशीअ(**मिश्कतरामशी**); (अ०) **मिश्केतरामुश्शीअ**, फ़ूदनज जब्ली, बक़्लतुल् ग़ज़ाल; (फा०) पूदनः कोही, पूदनः केक, संग; (ले०) **मेन्था पॉलीजिउम्** (**Mentha polygium**); (अं०) वाइल्ड थाइम (Wild Thyme), फ्ली-मिंट (Flea-Mint)।

वक्तव्य—इसकी गंधसे पिस्सू और मक्खियाँ भाग जाती हैं, इसलिए इसको लेटिनमें पॉलीजिउम्(= पिस्सू-नाशक = दाफ़ेअ केक (फा०)' कहते हैं।

उत्पत्तिस्थान—फारस, पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त और बलूचिस्तान।

वर्णन—यह ५से ७·५ सें० मी० (२से ३ इञ्च) या ३० सें० मी० (१ फुट) तक ऊँचा बहुत छोटा पौधा है। **तना**–काष्ठमय, नीचेकी ओर जमीनपर बिछा हुआ, गोल, पतला शाखायुक्त और किंचित् लोमयुक्त होता है।

पत्र छोटे-छोटे अंडाकृति, लगभग बेनोक और लोमरहित; पुष्प बहुसंख्यक, बारीक और लोमयुक्त; **गंध और स्वाद** तीक्ष्ण और मनोरम, पेपरमिंटकी तरह, किन्तु उससे मधुरतर होता है।

उपयुक्त अंग—पंचांग।

रासायनिक संगठन—एक **उत्पत् तैल** जिसमें **पालीगोन** नामक एक कीटोन सत्व होता है।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें **गरम** और **खुश्क**।

गुण-कर्म तथा उपयोग—**वातानुलोमन, मूत्रार्तवजनन** और **उदरकृमिनाशन** आदि। उपयोग—इसको अधिकतया आर्तवप्रवर्तन और अमरा एवं गर्भनिःसारणके लिए क्वाथकी भाँति उपयोग किया जाता है। उदरकृमिनाशनके लिए इसको पान और बस्तिकी भाँति उपयोग करते हैं। कर्ण एवं नासिका आदिके व्रणोंमें इसका निचोड़ा हुआ स्वरस डालनेसे उनमें उत्पन्न हुए कृमि नष्ट हो जाते हैं। मात्रा–५से ७ ग्राम (५से ७ माशे) तक।

नव्यमत—**क्षुप** कफोत्सारि एवं वाजीकर; बीज ज्वरघ्न हैं। प्रवाहिकामें बीजोंका चूर्ण मक्खनमें मिलाकर देते हैं।

●

(५०६) मुचकुन्द

फ़ैमिली : स्टेर्क्यूलिआसे (Family : Sterculiaceae)

नाम—(हिं०,म०;गु०;क०) मुच(चु)कुंद; (फा०) गुले मुचकुन (=मुचकुंद); (सं०) मुचकुंद, छत्रवृक्ष; (बं०) मुचुकुंदचाँपा; (ले०) **प्टेरोस्पेर्मुम् आसेरीफ़ोलिउम्** (***Pterospermum acerifolium*** Willd.)।

उत्पत्तिस्थान—भारतवर्षके पहाड़ी प्रदेश, देहरादून आदि। अन्यान्य बहुशः भागोंमें तथा पूरबमें ब्रह्मा और दक्षिणमें लंका पर्यन्त इसके वृक्ष होते हैं। बागोंमें पुष्पके लिए तथा सड़कोंके किनारोंपर छाया वृक्षके लिए इसके लगाये पेड़ मिलते हैं।

वर्णन—यह बड़े वृक्षका प्रसिद्ध सुगन्धित पुष्प है, जो बड़ा, पीताभश्वेत, गंधयुक्त होता है। आभ्यन्तरदलपुंज ८·७५ सें० मी०से ११·२५ सें० मी० (३½से ४½ इञ्च) लम्बा होता है। मुचकुंदका उक्त पुष्प ही औषध्यर्थ व्यवहृत होता है। बाजारमें इसके सूखे फूल मिलते हैं।

रासायनिक संगठन—फूलमें एक सुगन्धित **उत्पत् तैल** होता है।

कल्प तथा योग—जिमाद **गुलमुचकुन**।

प्रकृति—(पहले दर्जेमें) **गरम** और **खुश्क**।

गुण-कर्म तथा उपयोग—अर्शोजात रक्त बन्द करनेके लिए समप्रमाण बारीक किया हुआ मुचकुंद, घी और चीनीका हलुआ गुणकारी है। परन्तु झवाई टोलाके हकीम इसका केवल बाह्य प्रयोग उचित समझते हैं। शीतल शिरःशूलमें इसे जलके साथ पीसकर मस्तकपर लेप किया जाता है। यह विशेषरूपसे अर्शोजात रक्तस्तम्भन है। **अहितकर**–उष्ण प्रकृतिको। **निवारण**–काहूका तेल। मात्रा–७से १२ ग्राम (७ माशेसे १ तोला)।

आयुर्वेदीय मत—मुचकुंद तिक्त, कटु, उष्णवीर्य, स्वरको सुन्दर करनेवाला तथा कफ, पित्त, खाँसी, कण्ठरोग, त्वचाके विकार, सूजन, सिरकी पीड़ा, त्रिदोष, रक्तपित्त, रक्तविकार, व्रण और पामारोगका नाश करनेवाला है। (म०वि;नि०र०)।

●

(५०७) मुलीम

वर्णन—एक भारतीय पौधेकी जड़ है जो कालाई लिए भूरी (गुब्बारी) और कटु-तिक्त होती है।

वक्तव्य—डीमक लिखित फार्माकोग्राफिया इंडिका और एतद्विषयक अन्य ग्रन्थोंमें गीदड़ तमाकू (**Verbascum thapsus** Linn.)का अंगरेजी नाम मुलीन (Mullein) लिखा है। गुणकर्म और उपयोग आदि देखनेपर इसका उपर्युक्त मुलीमसे बहुत सादृश्य दिखलाई पड़ता है। अस्तु, बहुत संभव है कि यह उपर्युक्त 'मुलीम' ही है। किसी-किसीके मतसे यह सरख़्स है। दे० 'सरख्स'।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें गरम और खुश्क।

गुण-कर्म तथा उपयोग—कृमिघ्न विशेषकर व्रणस्थ कृमिहर। कृमिघ्न होनेके कारण इसको ऐसे व्रणोंपर छिड़कते हैं जिनमें कीड़े पड़ गए हों। शरह अस्बाबके हाशिएपर लिखा है कि इसके पत्तेके स्वरससे भी कीड़े मर जाते हैं। मस्तिष्कगतकृमिजन्य शिरःशूलमें इसके नस्य देनेसे कीड़े मरकर निकल जाते हैं और शिरःशूल जाता रहता है। जूओंको मारनेके लिए इसे जलमें पीसकर बालोंकी जड़में लगाते हैं। यह उदरकृमियोंको भी मारकर निकालता है। **अहितकर**—उष्ण प्रकृति और फुफ्फुसके लिए। **निवारण**—स्नेह द्रव्य (मक्खन, तेल आदि)।

●

(५०८) मुलेठी

फ़ैमिली : लेगूमिनोसी (Family : Leguminosae)

नाम।मूल (हिं०) मुलेठी, मुलहठी, मुलठी, जेठीमध; (यू०) मेयन (Meyan); (अ०) अस्लुल्सूस, इर्क़ुस्सूस; (फा०) बेखमहक, महकमतकी; (सं०) मधुक (च०;सु०), मधुयष्टि, मधुयष्टिका, मधुयष्टी, यष्टीमधुक (च०), क्लीतक; (क०) शंगर; (पं०) मुलेठी, जेठीमध; (उ०प०प्रां०) मुलेठी; (बं०) यष्टिमधु; (द०) मीठी लकड़ी, (म०) जेष्ठीमध, जेष्ठमध; (गु०) जेठीमध; (कना०) ज्येष्ठमध; (सिं०) मिठीकाठी; (ते०) यष्टीमधुकमु; (ता०) अतिमतुरम्; (मल०) इरट्टि-मधुरम्; (ले०) ग्लीसीर्रहीज़ा राडिक्स (Glycyrrhiza Radix); (अं०) लिकोरिस (Liquo rice), लिकोरिस रूट (Liquorice Root)। इसकी लताका लेटिन नाम **ग्लिसीर्रहीज़ा ग्लाब्रा (Glycyrrhiza glabra** Linn.) है। (अ०) अल्सूस् (इ०बै०); (यू०) Glukurriza (D.3.5.)। **वक्तव्य**—यह सौसन नहीं, उससे भिन्न है।

(सत्त्व रसक्रिया)—**मुलेठीका सत, सत मुलेठी**; (अ०) रुब्बुस्सूस, खुलासतुस्सूस; (फा०) उसारए महक; (ले०) एक्स्ट्राक्टुम ग्लीसीर्रहीज़ी (Extractum Glycyrrhizae); (अं०) एक्स्ट्रैक्ट ऑफ लिकोरिस (Extract of Liquorice)। इसकी लेटिन संज्ञा '**ग्लीसीर्रहीज़ी**' इसकी यूनानी संज्ञा 'ग्लूकूर्रीज़ा (Glukurriza)'से, जो 'ग्लूकोज़ = मधुर' (मिष्ट) और 'र्‌हीज़ा = जड़'का यौगिक है, व्युत्पन्न है। इसकी जड़ स्वादमें मीठी होती है, इसलिए इसको उक्त नामसे अभिधानित किया गया।

इतिहास—सावफरिस्तुस् और दीसकूरीदूस जैसे प्राचीन यूनानी हकीमोंने 'ग्लूक़ोर्रीज़ा' नामसे उक्त औषधिका उल्लेख किया है। रोमदेशीय हकीम कल्सूस तथा प्लाइनीने 'डल्कस राडिक्स (= मीठी जड़)'के नामसे इसका वर्णन किया है। इसलामी हकीमोंको भी यह औषधि भलीभाँति ज्ञात थी। भारतीय वैद्योंको भी प्राचीन कालसे ही इस औषधिका ज्ञान था। चरक, सुश्रुत आदि आयुर्वेदीय प्राचीन संहिताओंमें 'यष्टिमधु'का प्रचुरतासे उल्लेख मिलता है।

उत्पत्तिस्थान—यह दक्षिण यूरोप, मिस्र, अरब, ईरान (फारस), तुर्किस्तान, अफगानिस्तान, एशिया माइनर और मध्य एशियामें उगती है। यद्यपि देशी मुलेठी पेशावरकी घाटी और उपहिमालयन प्रदेशोंमें चनाबसे पूरबकी ओर पायी जाती और समस्त ब्रह्मा और अंडमान टापुओंमें उत्पन्न होती है, तथापि वहाँ इसका संग्रह अत्यल्प प्रमाणमें होता है। अधिक मुलेठी फारसकी घाटी, एशिया माइनर, तुर्किस्तान और साइबेरिया आदिसे आती है। इस देशमें मध्य एशियाके कबीलोंद्वारा लायी जाती है। अधुना पंजाब, सिंध और पेशावरमें इसकी खेती होती है।

वर्णन—यह घुंघचीसे भिन्न एक बेलकी प्रसिद्ध जड़के लंबे और गोल टुकड़े हैं जो औषधके काममें लिये जाते हैं। छाल भूरी, काली और झुर्रीदार; काष्ठ भीतरसे पीला और रेशेदार; गंध हलकी विशेष प्रकारकी; ताजी जड़का स्वाद मधुर और लबाबदार होता है; किन्तु सूखने पर उसमें किंचित् तिक्तता और अम्लता आ जाती है। इसके यह तीन भेद हैं–(१) मिस्री, (२) अरबी और (३) तुर्की। इनमें मिस्री उत्तम, अरबी मध्यम और तुर्की अधम होती है। 'तुरुष्क' और 'पारसीय मुलेठी' अल्प मधुर और मिस्री तथा अरबी मधुरतर होती है। भारतवर्षमें मुलेठी प्रायः फारस, सिंध और पंजाब आदिसे आती है और यह अधम होती है। मुलेठी का सुखाया हुआ सत्व (रुब्ब) जो बाजारमें काले रंगके पेंसिलकी आकृतिके गोल-गोल लंबे टुकड़ों (बत्तियों)के रूपमें मिलता है, 'रुब्बस्सूसके नामसे यूनानी' चिकित्सामें काम आता है।

उपयुक्त अंग—छिलका उतारी हुई जड़के टुकड़े।

रासायनिक संगठन—जड़में मधुयष्टीन या सूसीन (ग्लीसीर्‌हाइजीन Glycyrrhizein) नामक एक पीला रूपरहित चूर्ण (ग्लुकोसाइड), ॲस्परागीन, द्राक्षशर्करा, राल, श्वेतसार और मैलिक अम्ल (Malic acid) प्रभृति पदार्थ होते हैं।

कल्प तथा योग—सत मुलेठी, सफ़ूफ़ अस्लुस्सूस मुरक्कब।

प्रकृति—संमिश्रवीर्य; मतांतरसे पहले दर्जेमें गरम और तर और अन्य मतसे पहले दर्जेमें गरम और खुश्क। आयुर्वेद मतसे शीतवीर्य एवं स्निग्ध। (भा० प्र०)।

गुण-कर्म तथा उपयोग—सांद्रदोषपाचन, तृट्प्रशमन, वातनाड़ीबलदायक, अवसादक, सर, उत्क्लेशकारक तथा छर्दिजनन, विलयन, श्लेष्मनिस्सारक, अन्तरावयवप्रक्षालक, लेखन, बल्य, वातानुलोमन, मूत्रार्तवजनन और जीर्णज्वरनाशक तथा फुफ्फुसरोगोंमें विशेष गुणकारक है। सांद्रदोषपाचन होनेके कारण यह प्रायः सौदा एवं श्लेष्मारोगोंमें प्रयुक्त, पाचनयोगोंमें डाली जाती है। सांद्रदोषपाचन होनेके अतिरिक्त यह विलयन, मार्दवकर और श्लेष्मनिःसारक भी है; अतएव फुफ्फुस तथा फुफ्फुसप्रणालीके शोथ और खरत्वको दूर करती है तथा स्वरभंग श्वास, कृच्छ्रश्वास और कासमें प्रयुक्त होती है। यह यकृत्प्लीहाके कतिपय रोगोंमें गुणकारी है। लेखन और अन्तरावयवप्रक्षालन होनेके कारण यह सदाहमूत्र, सूजाक, व्रण और वस्तिवृक्कसंक्षोभके लिए उपकारक है। वातनाड़ीबलदायक होनेसे यह प्रायः वातव्याधियोंमें उपयोग की जाती है। यह वातनाड़ीशूलको भी नष्ट करती है। अंजन से दृष्टिवर्धन और नेत्रशुक्लके लिए हितकर है। उत्क्लेशकारक एवं छर्दिजनन होनेके कारण इसका काढ़ा श्लैष्मिक द्रवोंको आमाशयसे उत्सर्गित करनेके लिए पिलाते हैं। यदि इस प्रकार सम्यक् उत्सर्गित न हो, तो कुछ विरेक और कुछ मूत्रमार्गसे उत्सर्गित होता है। शहदके साथ इसका लेप विषगांठ (दाखिस)के लिए उपादेय है। अहितकर–वृक्क और प्लीहाके लिए। निवारण–वृक्कमें कतीरा और प्लीहामें गुलाबका फूल। प्रतिनिधि–वक्षतोदमें इसका प्रतिनिधि कतीरा है। मात्रा–३ ग्रामसे ७ ग्राम (३ से ७ माशे) तक।

मुलेठी का सत—

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम और खुश्क।

गुण-कर्म तथा उपयोग—इसके गुणकर्म मुलेठी के समान हैं। यह अधिकतया **कासके** योगोंमें प्रयुक्त किया जाता है तथा कास और मिथ्याकासके अपहरणके लिए इसको मुखमें रखकर चूसते हैं। यह **विरेचन औषधोंके दोष-परिहारके** लिए विरेचन गुटिकाओंमें भी डाला जाता है और कासके लिए विशेष गुणकारक है। यह झूठी प्यासको दूर करता है। **अहितकर**–वृक्कके लिये। **निवारण**–कतीरा और गुलाबके फूल। **प्रतिनिधि**–मुलेठी। **मात्रा**–०.५ ग्रामसे १ ग्राम (४ रत्तीसे १ माशा) तक।

आयुर्वेदीय मत—मुलेठी मधुर, गुरु, स्निग्ध, शीतवीर्य, जीवनीय, सन्धानीय, वर्ण्य, कण्ठ्य, कण्डूघ्न, स्नेहोपग, वमनोपग, आस्थापनोपग, छर्दिनिग्रहण, मूत्रविरजनीय, शोणितस्थापन, रसायन, वाजीकरण, चक्षुष्य, बलकारक, केश्य तथा पित्त, वात, रक्तविकार, व्रणशोथ, विष, तृष्णा, ग्लानि और क्षयको दूर करनेवाली है (च० सू० अ० ४, चि० अ० १, २; सु० सू० अ० ३८; भा० प्र०)।

नव्यमत—मुलेठी मधुर, शीतल, स्नेहन, कफशामक, मूत्रजनन और व्रणरोपण है। मुलेठीको स्वरभंग, खाँसी और मूत्रदाहमें देते हैं।

●

(५०९) मुश्कदाना

फ़ैमिली : माल्वासे (Family : Malvaceae)

नाम—(हिं०; मार०; फा०) **मुश्कदाना,** कस्तूरीदाना; (अ०) **हब्बुल्मि(मु)ष्क;** (सं०) **लताकस्तूरिका** (भा० प्र०) **कटुक;** (बं०; गु०) मुश्कदाना, लताकस्तुरी; (म०) कस्तूरभेंड, मुश्कदाणा; (ता०) वेत्तिलै कस्तूरि; (मल०) काट्टुकस्तूरी; (का०) काडकस्तूरि; (ले०) **आबेल्मॉस्कुस मॉस्काटुस Abelmoschus moschatus** Medic. (**पर्याय**–*Hibiscus abelmoschus* Linn.); (अं०) मस्कमैलो सीड्स (Musk-mallow Seeds), मस्क सीड्स (Musk Seeds)। **वक्तव्य**—लेटिन नाम **Abelmoschus moschatus** इसके अरबी नाम 'हब्बुल्मिष्क (हब्ब = गोली (अर्थात् दाना), मिष्क = मुष्क (Musk) = कस्तूरी दाना पर आधारित है।

उत्पत्तिस्थान—भारतवर्षके उष्णतर भागों, विशेषकर बंगाल और मदरासमें इसकी खेती की जाती है।

वर्णन—इसका **क्षुप** जंगली भिंडीके समान, दो हाथ ऊँचा; **पत्र** भिंडी सरीखा; **फूल** भिंडीके फूलकी तरह पीला; **फल** भिंडी सरीखा; बीज मूत्रपिंडाकृति, जरा चपटा, लगभग १/६ इञ्च व्यासमें, साधारणतः भिंडीके बीज जैसा खाकी स्याहीमायल होता है। इसके अन्दर चिकना सुगन्धित मग्ज निकलता है। तैलीय बीजोंको **'मुश्कदाना'** कहते हैं। बीजको मसलनेसे कस्तूरीवत् गंध आती है।

उपयुक्त अंग—पत्र, बीज और मूल। कभी-कभी इसका बीज बाजारमें भी मिलता है।

रासायनिक संगठन—निर्यास, अल्ब्युमेन, अनुत्पत् तेल, एक ठोस स्फटिकीय पदार्थ, सुगन्ध द्रव्य और राल। अनुत्पत् तेल हरापन लिये पीला होता है और वायुमें खुला रहने पर जम जाता है।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें **शीत** और **रूक्ष**; आयुर्वेद मतसे शीतवीर्य (भा० प्र०)।

गुण-कर्म तथा उपयोग—चक्षुष्य, सूजाक और **शुक्रस्रावनाशक, संग्राही** और संशमन है। इसको महीन खरल करके नेत्रमें लगाते हैं और चूर्ण बनाकर शुक्रमेहमें खिलाते हैं। सूजाकमें इसके पत्र और मूलको जलमें मल-छानकर चीनी मिलाकर पिलाते हैं। (मात्रा–२ माशेसे ३ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—लताकस्तूरी रसमें तिक्त और मधुर, शीतवीर्य, लघु, नेत्र्य, दीपन, वाजीकर तथा कफ, तृष्णा, बस्तिके रोग और मुखके रोगोंका नाश करनेवाली है। इसे मुँहमें रखकर चबानेसे मुँह स्वच्छ एवं सुगन्धित होता है तथा भोजनपर रुचि उत्पन्न होती है। (च० सू० अ० ५; सु० सू० अ० ४६; भा० प्र०)।

●

(५१०) मौ(मु)संबी

फ़ैमिली : रूटासे (Family : Rutaceae)

नाम— (हिं०; बं०; बम्ब०) मु(मौ)संबी, मुसम्मी, मालटा; (ते०) बटाबिया नारिंज; (ले०) **सीट्र स सीनेन्सिस** (**Citrus sinensis** Linn.); **सीट्रस डुल्सिस** (**Citrus dulcis** Pers.); (अं०) स्वीट ऑरेञ्ज (Sweet Orange), पोर्चुगाल ऑरेञ्ज (Portugal Orange)।

उत्पत्तिस्थान—सिसिली, पश्चिम भारतीय द्वीप और अफरीका। भारतवर्षके बहुतसे भागों विशेषकर बम्बई, मदरास आदि तथा हैदराबाद, मध्यप्रदेश, नासिक और पंजाबमें इसे लगाया जाता है।

वर्णन—संतरेकी जातिका एक प्रसिद्ध फल है जो आकृतिमें संतरेके समान, किन्तु पकनेपर पीले रंगकी होती है। इसका छिलका संतरेके विपरीत भीतरकी फाकोंसे संसक्त होनेसे सुगमतासे छीला नहीं जा सकता न तो इसकी फांकें संतरेके समान सरलतासे अलग की जा सकती हैं।

रासायनिक संगठन—फलमें स्कर्वीहर विटामिन 'सी' तथा कैल्सियम फास्फोरस और अयस् प्रभृति शरीरोपयोगी द्रव्य पाये जाते हैं। फलत्वक्‌में तेल, लिमेनोन, लिमेनूल आदि; फलमें मोगरेकी सुगन्धवाला उत्पत् तैल (Essential oil) होता है, जिसे निरोली तैल (Neroli Oil) कहते हैं।

उपयुक्त अंग—फल, फलका छिलका।

गुण-कर्म तथा उपयोग—फल रक्तको शुद्ध करता, ज्वरजन्य तृषाको शांत करता, प्रसेक (Catarrh) और भूख बढ़ाता है। स्वरस पित्तज अतिसार तथा पैत्तिक विकारोंमें उपकारक है। फलका छिलका वातानुलोमन और बल्य है। ताजा फलका छिलका, मुँहांसों पर रगड़नेसे लाभ होता है।

●

(५११, ५१२) मुसली (काली व सफेद)

काली मुसली (मूसली स्याह)

फ़ैमिली : हीपॉक्सीडे (Family : Hypoxideae)

नाम—(हिं०) काली मुसली, सिया(स्याह)मुसली, मुसलीकन्द; (सं०) कृष्णमुसली, तालमूली, तालपत्री, मुसली, हेमपुष्पी, भूताली, मुसलीकन्द; (बं०) तालमूली; (गु०) कालीमुसली; (म०) कालीमुशली; (ले०) **कूर्कूलीगो आर्किओइडेस** (**Curculigo orchioides** Gaertn.)।

उत्पत्तिस्थान—यह समस्त भारतवर्ष और लंकाके उष्णतर छायान्वित आर्द्र भूमिमें होती है।

वर्णन—यह पौधा अतिशिशु तालवृक्षाकृति ३० सें० मी० से ४५ सें० मी० (१-१½ फुट) ऊँचा पौधा होता है, जो चौमासेमें उगता है। फूल सूक्ष्म और पीला; मूलस्तम्भ रम्भाकार, कन्दवत्, देखनेमें तालस्कन्धके सदृश, अंगुलितुल्य एवं क्षुद्र उपमूल समन्वित; यह 'मुसलीकन्द' नामसे प्रसिद्ध है। कन्दका ऊपरी भाग कृष्णताम्र वर्ण और भीतरी भाग शुभ्र वर्ण होता है। औषधमें दो वर्षीय पौधेका कन्द काम आता है। बाजारमें इसकी सूखी जड़के काटे हुए छोटे-छोटे टुकड़े मिलते हैं, जो बाहरसे काले और अन्दरसे सफेद या मटमैले होते हैं। स्वाद फ़ीकासा लबाबदार होता है। चबानेसे कुछ एलुआ-सी गन्ध आती है, किन्तु कडुआहट नहीं होती।

उपयुक्त अंग—कंद।

रासायनिक संगठन—राल, कषाय द्रव्य, लबाब, वसा, स्टार्च और सुखाये हुए कंदकी राखमें चूना होता है।

●

सफेद मुसली (मूसली सफेद)

फ़ैमिली : आस्पार्गासे (Family : Aspargaceae)

नाम—(हिं०) सफेद मु(मू)सली; (अ०; फा०; द०) शक़ाक़ुले हिंदी; (सं०) श्वेतमूसली; (म०) सफेद (द) मुसली; (गु०) सफेद मुसली, घोली मुसली; (बं०) श्वेत मुषली; (ले०) **आस्पारागुस आड्सेंडेंस** (**Asparagus adscendens** Roxb.)।

वक्तव्य—मिर्जापुरके जंगलों एवं विन्ध्यके कतिपय क्षेत्रोंसे संग्रहीत सफेद मुसली संभवतः **लीलीआसे** कुल की **क्लोरोफीटुम्** प्रजातिकी **क्लोरोफीटुम्** ब्रेविस्कापिउम् या **क्लोरोफी०** आरांडीनासेउम् (**Chlorophytum breviscapium** or **C. arundinaceum** Baker.) नामक वनस्पतिकी कन्दाकार जड़ होती है। क्षुप कँदरीके समान और जड़ शतावरीमूलकी तरह गुच्छाकार होती है।

उत्पत्तिस्थान—पश्चिम हिमालय, पंजाब, मुरीसे कुमाऊँ तक, गुजरात, रतलाम, रुहेलखण्ड और मध्य भारतवर्ष। उत्तम सफेद मुसली रतलाममें होती है।

उपयुक्त अंग—कंद।

वर्णन—यह शतावरकी तरहकी एक कँटीली झाड़का कंदमूल वा पाताली घड़ है जिसकी छाल उतारकर सुखा लेते हैं। यह बाजारमें मिलती है और झुर्रीदार, स्वच्छ, हस्तिदंत तुल्य, श्वेत, ५ सें० मी० से ७·५ सें० मी० (२ इञ्च से २॥ इञ्च) लम्बी, ६·३ मि० मी० (१।४ इञ्च) मोटी, कड़ी, भंगप्रवण, स्वादमें फीकी और लबाबदार होती है। मूल जलमें भिगोनेपर फूलता और शतावरी सरीखा दिखता है। इसका एक भेद बहुत छोटा होता है। उसको **मूसली दक्खिनी** कहते हैं। यह संभवतः आस्पारागुस् सार्मेन्टोसुस् (**Asparagus sarmentosus** Linn.) की सुखाई हुई जड़ है।

रासायनिक संगठन—ऐल्ब्युमिनस पदार्थ, लबाब और सेलूलोज। कंदचूर्णमें जलीय सत्व, सेलूलोज, आर्द्रता और राख होती है। जलविलेय भागमें प्रोटीन होता है। स्टार्च बिल्कुल नहीं होता। इसलिए मधुमेहमें इसका प्रयोग हो सकता है।

कल्प एवं योग—**जुवारिश मुसलियैन, सफ़ूफ़** (चूर्ण) **मुसली**।

प्रकृति—मलभूत द्रवके सहित पहले दर्जेमें गरम और दूसरेमें खुश्क है। आयुर्वेदके मतसे काली मूसली शीतवीर्य एवं पिच्छिल (रा० नि०), मतांतरसे उष्णवीर्य (कै० नि०) है।

उपयोग—कामावसाद (नपुंसकता) और शुक्रमेहमें इसके (मुसली) चूर्णमें समभाग चीनी मिलाकर खिलाते हैं। इसके अतिरिक्त इसे वाजीकर और शुक्रमेहघ्न माजूनों और चूर्णौषधोंमें उपयोग करते हैं। **निवारण**–नमक, शहद और सोंठ। **प्रतिनिधि**–एक भेद दूसरीका। **मात्रा**–५ ग्राम से ७ ग्राम (५ माशेसे ७ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—मुसली–मधुर, तिक्त, गुरु, पिच्छिल, वाजीकर, रसायन, पौष्टिक, बल्य, कफकर तथा पित्त, दाह, थकावट, अर्श और वायुका नाश करनेवाली है (रा० नि०; कै० नि०)।

नव्यमत—सफेदमूसली मधुर, शीतवीर्य, स्नेहन और उत्तम बल्य है। सभी प्रकारकी अशक्तितामें शक्कर और दूधके साथ इसका प्रयोग करते हैं। **काली मूसली—**स्नेहन, मूत्रजनन, बल्य और वृष्य है। इसकी क्रिया विशेषकर मूत्र-मार्गपर होती है। इसकी दूधके साथ बनाई पेया पूयमेह, मूत्रकृच्छ्र और अत्यार्तवमें देते हैं। जंगली लोग चोट तथा अस्थिभंगपर भी इसका प्रयोग करते हैं।

◆

(५१३) मूँग

फ़ैमिली : लेगूमिनोसी (Family : Leguminosae)

नाम—(हिं०) मूँग; (अ०) माष, मुज्ज; (फा०) बनोमाष, माषेसब्ज, मुंग; (सं०; बं०) मुद्‌ग; (म०) मूग; (गु०) मग; (ले०) **फासेओलुस्‌ राडिआटा (Phaseolus radiata** Linn.)। वक्तव्य—'मुज्ज' मुंजका संक्षिप्त रूप है और मुंज संस्कृत मुद्‌ग (वा हिंदी मूंग)से या इसके द्वारा फारसी 'मुंग' से अरबी बनाया गया है।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्षमें बड़े पैमानेपर इसकी खेती की जाती है।

वर्णन—यह एक प्रसिद्ध अन्न है, जिसकी दाल खायी जाती है। इसके दाने उड़दके दानोंसे छोटे और हरे रंगके होते हैं। इसके जंगली भेद बनमूँग या मुंगानी अर्थात्‌ मुद्‌गपर्णी (**Phaseolus trilobus** Ait.) का आयुर्वेदीय चिकित्सामें व्यवहार होता है। यह शीतवीर्य (रा० नि०) है।

रासायनिक संगठन—ऐल्ब्युमिनॉइड्स (Albuminoids) २२%, स्टार्च ५४%, तेल २%, तंतु ५%, और राख ४%। तंतु इसके छिलकेमें अधिक होता है। इसलिए छिलका वर्जित है। इसमें फॉस्फोरिक एसिड भी होता है।

प्रकृति—रूक्षता लिए हुए **पहले दर्जेमें शीतल** है। धोई हुई **(मुक़श्शर) मूंग समस्निग्धरूक्ष** है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—मूंगकी दाल पुष्टिकर है, शुद्ध खिल्त (धातु) उत्पन्न करती और गरमीको शांत करती है। अतएव उष्ण प्रकृतिवालोंको तथा उष्ण व्याधियोंमें उपयोग की जाती है। बिना छिली हुई सर और छिली हुई संग्राही है। छिली हुईको बादामके तेलके साथ पकानेसे इसके उक्त दोष (संग्रहण)का परिहार हो जाता है। परन्तु जब कब्ज इष्ट हो तब इसको भृष्ट करके और पकाकर देना चाहिए। पैत्तिक रोगों विशेषकर पित्तज ज्वरोंमें कुलफा और काहूके पत्रके साथ पकाकर इसका खिलाना गुणकारक है। मूंगके आटेकी टिकिया एक तरफसे पकाकर दूसरे कच्चे तरफ गुलरोग़न और सिरकासे चुपड़कर सन्निपात (सरसाम) रोगमें सिर पर बाँधते हैं और दो-दो घंटे बाद उसे बदलते रहते हैं। **प्रधान गुणकर्म**—अत्यंत पुष्टिकर और रोगियोंके लिए पथ्यकर आहार है। **अहितकर**—शीतल रोगोंके लिए। **निवारण**—जीरा, लौंग, दालचीनी, काली मिर्च और सोंठ। **प्रतिनिधि**—बाक़ला।

आयुर्वेदीय मत—मूँग रसमें कषायमधुर, विपाकमें कटु, शीतवीर्य, रूक्ष, लघु, विशद (पिच्छिलसे विपरीत) और कफपित्तनाशक है। यह दालोंमें श्रेष्ठ है। (च० सू० अ० २७)। दालोंमें मूँग अत्यन्त वातल नहीं है और दृष्टिको प्रसन्न करता है। उनमें भी 'हरे मूँग' प्रधान हैं और 'वनमूँग' गुणमें हरे मूँगके समान होते हैं (सु० सू० अ० ४६)।

◆

(५१४) मूँगफली

फ़ैमिली : लेगूमिनोसी (Family : Leguminosae)

नाम—(हिं०) मूँगफली, चिनिया बदाम, चीनी बादाम; (सं०) भूचणक–(नवीन); (बं०) चीनेर बदाम; (बम्ब०) भुई चणे; (गु०) माण्डवी; (म०) मूँगफली; (ले०) **आरेकिस हीपोजेआ (Arachis hypogaea** Linn.); (अं०) ग्राउण्ड नट (Ground-nut), मन्की या पी-नट (Monkey or Pea-nut), अर्थ-नट (Earth nut)।

वक्तव्य—बंगालमें यह प्रथम चीनसे आती थी; इसलिए इसका नाम 'चीनी बादाम' प्रसिद्ध हो गया।

उत्पत्तिस्थान—ट्रॉपिकल अफरीका। अधुना भारतवर्षमें सर्वत्र इसकी खेती की जाती है।

वर्णन—इसके नीचेके फूलोंसे मूँगफलीका विकास होता है, जो पृथ्वीके नीचे गड़ जाते हैं और पक जाते हैं। बीज ललाई लिए भूरे होते हैं। इसमें लगभग ४५ प्रतिशत तेल (मूँगफलीका तेल (Oleum arachis) होता है। जैतूनके तेलके स्थानमें इसका पुष्कल उपयोग होता है। परन्तु प्रायः इसके बिगड़नेका भय होता है।

उपयुक्त अंग—पक्वापक्व फल, बीजकी गिरी, बीजोत्थ तेल जो जैतून तैलके प्रतिनिधि स्वरूप बहुत प्रयुक्त होता है, किन्तु यह बिगड़ जाता है।

रासायनिक संगठन—इसमें वसा, प्रोभूजिन (Protein), वाइटामाइन B_1 B_2 B_6 (पाइरिडॉक्सीन), वाइटामीन 'ई', निकोटिनिक एसिड और लेसिथीन ०·५% से ०·७% होती है। खली (Nut meal) में अरेकिन, कॉन अरेकिन होता है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—यह खानेमें मधुर और किंचित् हीकदार होती है। इसकी गिरी (मग़ज़) बहुत पौष्टिक होती है। बहुत खानेसे बादी उत्पन्न करती है। इसको खाकर अनुभव करनेवाले लोग कहते हैं कि यह बहुत गर्मी पैदा करती है। इसके अधिक खानेसे आँखें आ जाती हैं, मुँहमें छाले पड़ जाते हैं। एक लड़केने इसका सेवन दीर्घकाल तक किया। वह प्रतिदिन दुर्बल होने लगा। ज्ञात हुआ कि मूँगफलीने शुक्र को पतला कर दिया और शुक्रप्रमेह उत्पन्न कर दिया है। अधिक खानेसे शिरमें चक्कर भी आने लगता है। इसका तेल किंचित् मृदुसारक है (ख० अ०)।

◆

(५१५) मूली

फ़ैमिली : क्रूसीफ़ेरी (Family Cruciferae)

नाम—(हिं०) मूली, मुरई, मूरा; (यू०) Raphanis (D. 2. 137); (अ०) फ़ुजुल (–जलः)–इ०बै०; (फा०) तुर्बः; (सं०) मूलक; (बं) मूला; (म०; गु०) मु(मू)ला; (गु०) मूलो; (पं०) मुरि; (क०) मुञ्ज, मुज्जी; (ले०) **राफानुस् साटीवुस् (Raphanus sativus** Linn.); (अं०) रैडिश (Radish)। बीज (हिं०) मूलीके बीज; (अ०) बज़्रुल् फ़ुज्ल; (फा०) तुख़्मे तुर्ब; (अं०) रैडिश सीड्स (Radish Seeds)।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्षके मैदानमें इसकी खेती की जाती है।

वर्णन—यह विभिन्न आकार-प्रकारकी सफेद रंगकी एक प्रसिद्ध कन्दशाक है। यह १ या १॥ बित्ता लम्बा; सफ़ेद रंगकी स्वाद रसीला, क्षारीय और तीक्ष्ण होता है। **पत्र** शलगमकी तरह, किन्तु उससे छोटे होते हैं। **फलियाँ** दो-तीन अंगुल तक लम्बी होती हैं। जिनको **सेंगरी** या **मूँगरे** कहते हैं। पकनेपर इनके भीतरसे गोल, ललाई लिए भूरे रंगके राईके समान **बीज** निकलते हैं जो प्रत्येक बड़े भारतीय बाजारमें बिकते हैं।

उपयुक्त अंग—कंद (मूली), पत्र और बीज। इसकी कोमल पत्ती, पुष्प, फली और कंदका शाक बनाकर खाते हैं। मूलीके स्वरस और बीजोंका औषधार्थ प्रयोग करते हैं।

रासायनिक संगठन—बीज और मूलमें एक अनुत्पत् तेल, एक गंधकित उत्पत् तेल जो राईके तेलके समान होता है। तेलमें गंधक और फ़ास्फोरिक अम्ल होता है। यह रंगरहित और स्वादमें मूलीके समान होता है।

कल्प तथा योग—रोग़न तुर्ब, सफ़ूफ़ तुर्ब।

प्रकृति—पहले दर्जेमें उष्ण और दूसरेमें रूक्ष है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—मूलीमें दो वीर्य (जौहर) एक दूसरेके विपरीत पाये जाते हैं। एक वीर्य पार्थिव है जो सांद्र (ग़लीज) और चिरपाकी होता है और दूसरा उष्ण एवं प्रवाही (लतीफ़) है और इसी वीर्यके आधारपर मूली तारल्यजनन, पाचन, वातानुलोमन, मूत्रल, विरेचन और प्लीहाशोथविलयन है। जब इसको भोजनके बाद खाया जाता है तब यह उसको शीघ्र पचाकर भूख लगाती है, किन्तु अपने पार्थिव वीर्यके कारण स्वयं देरमें पचती है। यही कारण है कि भोजन पच जानेपर भी पीछे तक डकारें आती रहती हैं जिनमें मूलीकी गंध होती है। मूलीके पत्तोंमें मूत्रजनन शक्ति अत्यधिक होती है। **फली** (सेंगरी) पाचन होनेपर गुरु एवं ग्राही होती है। मूलीके पत्तों और जड़ोंको जलाकर बनाया हुआ **क्षार** (मूलीखार) पाचन, अवरोधोद्घाटक, वातानुलोमन एवं मूत्रल हैं। उपयोग-कच्ची मूलीको काटकर नमकके साथ खाते तथा तरकारी पकाकर सेवन करते हैं। प्लीहाशोथ मिटानेके लिए मूलीको सिरकेमें डालकर खिलाते हैं। इसका तराशा गुदरोगमें सूजन उतारता, वेदना शांत करता और द्रवोंको सुखाता है। इसके पत्ते उपयुक्त गुणोंके साथ-साथ वमन द्वारा शीतल दोषोंका उत्सर्ग करते हैं। इसके स्वरसमें अर्शोघ्न औषधियोंको गूँथकर गोलियाँ बनाते हैं। इसके स्वरसमें चौथाई भाग तिलका तेल मिलाकर मंदाग्नि पर पकाते हैं। जब केवल तेल रह जाता है तब उसको छानकर रखते और कर्णशूल एवं कर्णक्ष्वेड (तिन्नीन व वदी) नष्ट करनेके लिए कानमें टपकाते हैं। कामलारोगमें मूलीकी पत्तियोंका रस शक्कर वा बूरा मिलाकर पिलाते हैं। मूत्रल होनेसे उक्त रोगमें यह परम गुणकारी है। इसी हेतु जलोदरमें भी इसका सेवन गुणदायक है। वस्तिवृक्काश्मरीमें भी उपयुक्त औषधियोंके साथ इसका प्रयोग करते हैं। आहारपाचन और वस्तिवृक्काश्मरिके उत्सर्गके लिए इसका क्षार (नमक) खिलाते हैं। **अहितकर**-सिर, कण्ठ एवं दंतको और उत्क्लेशकारक है। **निवारण**-जीरा और नमक। **प्रतिनिधि**-शलगम। **मात्रा**-स्वरस ४ तोले से ६ तोले तक।

बीज—

प्रकृति—तीसरे दर्जे में **गरम** और दूसरेमें **खुश्क**।

गुण-कर्म तथा उपयोग—बहिः प्रयोगसे मूलीके बीज (तुख्म मूली वा तुर्ब) लेखन और आंतरिक प्रयोगसे वामक, मूत्रल और वातानुलोमन विशेषकर मूत्रार्तवजनन और वातविलयन है। शोथजन्य शूल निवारण और सार्वदैहिक बलवर्धनार्थ इसका प्रयोग होता है। कफज रोगोंमें वमनार्थ मूलीके बीजोंको उबालकर पिलाते हैं। मूत्रजनन और वायुनाशनके लिए भी इसका उपयोग करते हैं। व्यंग, किलास, छीप एवं झाईं आदि त्वचाके रोगोंमें इसे अकेला या उपयुक्त औषधियोंके साथ पीसकर लेप करते हैं। **अहितकर**–आकुलता एवं उत्क्लेशकारक है। **निवारण**–

नमक, जीरा और मधु। **प्रतिनिधि**—सरसों। **मात्रा**–१ ग्राम से ३ ग्राम (१ माशा से ३ माशे) तक। वमनार्थ ६ ग्राम या ६ माशे तक।

आयुर्वेदीय मत—कच्ची (कोमल) मूली रसमें कटु और तिक्त, हृद्य, रोचन, दीपन, सर्वदोषहर, लघु और कण्ठ (स्वर)के लिए हितकर है। **पकी मूली** गुरु, विष्टम्भी और तीक्ष्ण है। पकी मूली बिना सिजाये खानेसे तीनों दोषोंको उत्पन्न करती है। पकी मूली स्नेह (तेल आदि)के साथ पकाकर खानेसे तीनों दोषोंको दूर करती है। **सूखी मूली** त्रिदोषहर, विषहर और लघु है। मूलीको छोड़कर अन्य सूखे शाक विष्टम्भी और वातल होते हैं। मूलीके **पुष्प, पत्र** और **फल** उत्तरोत्तर गुरु हैं। मूलीके फूल कफ और पित्त तथा फली कफ और वायुका नाश करनेवाली है (सु० सू० ४६)। **कोमल मूली** त्रिदोषहर, **वृद्ध पकी मूली** त्रिदोषकर, स्नेहके साथ पकाई हुई मूली वातहर और सूखी मूली कफवातहर है (च० सू० अ० २७)।

नव्यमत—मूली उष्णवीर्य है। ताजी पत्तियोंका रस और बीज मूत्रजनन, अनुलोमन और अश्मरीघ्न हैं। चिरकालकी कब्जियत मूलीका शाक प्रतिदिन खानेसे दूर होती है। पेटके दर्द, अफारा और अर्शमें इसकी पत्तियोंका रस देते हैं। ३ ग्राम (३ माशा) बीजका चूर्ण अनार्तवमें देते हैं। **मात्रा**–लगभग ११½ ग्राम से २३ ग्राम या १ से २ तोला (स्वरस); (बीज) ३ ग्राम से ६ ग्राम या (३ माशा से ६ माशा)।

●

(५१६) मेंगोस्तीन, मुंगिस्तान

फ़ैमिली : गुट्टीफ़ेरी (Family : Guttiferae)

नाम—(हिं०) बं०; बम्ब०) मंगुस्तान, मंगोस्तान, मेंगोस्तान, मेंगोस्तास्तिन, मुंगिस्तान; (ब्रह्मा) मंगकोप (ब); (मल०) मंगुस्ता; (म०) मंगिस्तना; (ता०) सुलंबुली; (ले०) **गार्सीनिआ मांगोस्टाना (Garcinia mangostana L.)**; (अं०) मैंगोस्टीन (**Mangostine**)।

उत्पत्तिस्थान—मदरासके पश्चिमीघाट, नीलगिरि और बम्बई राज्य में (बहुत कम) लगाया जाता है।

वर्णन—एक वृक्षका फल जो छोटेसे सेबके बराबर होता है। रंग कालाई लिए नीला होता है। छिलका मोटा, नरम और खुरदुरा होता तथा नारंगी और सन्तरेके छिलकेके समान हाथसे पृथक् हो जाता है। इसके भीतर कुछ दाने होते हैं। हर एक दानेमें बीज होता है। स्वाद अत्यंत मधुर होता है। इसमें फाँकें होती हैं जो नारंगीके फाँकोंके समान नहीं, अपितु अंगूरके दानोंकी तरह होती हैं।

उपयुक्त अंग—फल और उसका छिलका।

रासायनिक संगठन—इसमें मैंगोस्टिन (Mangostin) नामक एक तिक्त सत्व होता है।

प्रकृति—फल सर्द एवं तर।

गुण-कर्म तथा उपयोग—छिलका संग्राही है। चावलके धोवनके साथ इसे देनेसे अतिसार और प्रवाहिकामें उपकार होता है। (**नुसखा सईदी**)।

●

(५१७) मेंहदी

फ़ेमिली : लीथ्रासे (Family : Lythraceae)

नाम—(हिं०; मा०) में(मे)हदी, मेहँदी, हिना; (यू०) किप्रोस; (अ०) हिन्ना (इ० बै०); (फा०) हिना; (उर्दू) हिना; (सं०) मदयन्तिका (च०; सु०; वाग्भट्ट), मेन्दी, मेंदिका, रागांगी; (बं०) मेंदी, मेउदी; (म०, गु०) मेंदी; (क०) माञ्ज, मोञ्ज; (ते०) क्रोम्मि, कुरुवकमु; (ता०) मरुदोंड्डि; (मल०) मैलाञ्चि; (ले०) लासोनिआ ईनेर्मिस **Lawsonia inermis** Linn. (पर्याय—लासोनिया आल्बा *L. alba* L.); (अं०) हेना (Henna)।

उत्पत्तिस्थान—यह मिस्र, अरब, फारस और संभवतः भारतवर्षके उष्ण प्रदेश और लंकाका मूल निवासी है। समस्त भारतवर्षमें बगीचों, फुलवारियों एवं खेतोंके किनारे मेंहदी बाड़के रूपमें लगायी जाती है।

वर्णन—यह एक प्रसिद्ध झाड़ी है, जिसके पत्ते सनायके पत्तेके समान होते हैं। ललनाएँ इसको जलमें पीसकर हाथ और पैरके तलवोंमें तथा नाखूनोंपर लगाती हैं, जिससे उसकी रंगत लाल हो जाती है। कहीं-कहीं इसे बाल रंगनेके काममें भी लाते हैं। फूल सुगन्धित होते हैं। फूलोंसे इत्र (इत्र हिना) बनाया जाता है।

उपयुक्त अंग—पत्र, छाल, गोंद, पुष्प, फ़ाग़िया (फूल और बीज = फ़ागिया और बीज।

रासायनिक संगठन—पत्रमें एक रंजक द्रव्य १२ प्र०श० से १५ प्र०श०, हेन्नो-टैनिक एसिड (Henno-tannic acid) नामक एक कषाय द्रव्य (Tannin) और एक जैतूनी हरे रंगका ईथरसुरासारविलेय राल होता है। बीजमें एक प्रकारका तेल और फूलोंमें एक प्रकारका सुगन्धित इत्र (Otto) या तेल (रोग़न हिना) होता है।

प्रकृति—मेहदी शीत और उष्ण इन उभयवीर्योंका यौगिक है। इनमें उष्णवीर्य प्रधान है। किन्तु शीत-वीर्यकी शक्ति बहुत शीघ्र प्रगट होती है। इसलिए इसकी प्रकृति दूसरे दर्जेमें शीत और रूक्ष वर्णन की जाती है। लखनऊवालोंके मतसे शीत लिए संमिश्र वीर्य।

गुण-कर्म तथा उपयोग—यह वेदनास्थापन और उपशोषण है। लेप करनेसे बालोंको सुर्ख कर देती और सूजन उतारती है। यह मूत्रल, विशेषतः रक्तप्रसादन एवं त्वग्रोगनाशक है। शिरःशूल निवारणके लिए मेहदीको जलमें पीसकर मस्तकपर लेप करते हैं। हस्त-पादका दाह मिटानेके लिए इसे हथेली और तलुओंपर लगाते हैं। ज़िफ्त और गुलरोगनके साथ इसे शिरागत व्रणोंपर लेप करते हैं। घुटनों (जानु)का दर्द मिटानेके लिए इसे एरंड-पत्रस्वरसके साथ लगाते हैं। मुखपाकमें इसके काढ़ेका गण्डूष कराते हैं। सफेद बालोंको रक्त करनेके लिये केवल मेहदीका लेप करते हैं, किन्तु काला करनेके लिए इसके साथ वस्मा मिलाकर लगाते हैं। इससे बाल काले और सुन्दर हो जाते हैं तथा बाल गिरना बन्द हो जाता है। कामलामें मूत्रल होनेके कारण तथा प्रारम्भिक कुष्ठ, आतशक और खुजली (ख़ारिश) प्रभृति रक्तविकारजन्य रोगोंमें इसका खेसाँदा (फाण्ट) उपयोग कराते हैं। अहितकर—कण्ठ और फुफ्फुसके रोगोंको। निवारण—कतीरा और इसबगोल। प्रतिनिधि—मुण्डी और शाहतरा। मात्रा—३ ग्राम से ५ ग्राम (३ माशे से ५ माशे) तक।

बीज—दूसरे दर्जेमें शीत एवं रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—रक्तशोधक, विलयन एवं प्रमाथी (मुफ़त्तेह)।

इत्र—वृक्क एवं बस्तिके रोग, खर्जू तथा स्वप्नदोषका रोधक है। गोंद-मूत्रदाहको मिटाता और वीर्यको गाढ़ा करता है।

आयुर्वेदीय मत—सुश्रुतमें कुष्ठचिकित्साके महानीलघृतमें (चि० अ० ९) तथा राजयोग्य अंगरागके योगमें (सु० चि० अ० २५) और वाग्भट (अष्टांगहृदय)में रक्तपित्त चिकित्सा (अ० २)में 'मदयन्तिका (मेहदी)का' उल्लेख मिलता है। "मदयन्तिका मेंहदी' इति लोके, अस्याः पिष्टैः पत्रैर्नखानां रागं स्त्रिय उत्पादयन्ति।" (डल्हण)।

नव्यमत—पत्र शीतल और कुष्ठघ्न हैं। फूल उत्तेजक तथा हृदय और मस्तिष्कको बल देनेवाले हैं। दाह और सिरकी पीड़ा कम करने तथा हृदयसंरक्षण और नींद लानेके लिए ज्वरमें इसके फूलोंका फाण्ट देते हैं। संधिशोथमें पत्तियोंका लेप करते हैं। त्वग्रोगमें मेंहदीका पुष्कल उपयोग किया जाता है। मुखव्रण और गलेकी सूजनमें पत्तियोंके काढ़ेसे कुल्लियाँ कराते हैं। सूजाकमें उष्णता कम करनेके लिए पत्र स्वरसमें मिश्री मिलाकर देते हैं। रक्तमिश्रित आँवमें मेंहदीके बीजोंका कल्प देते हैं।

(५१८) मेथी

फ़ैमिली : लेगूमिनोसी (Family : Leguminosae)

नाम—(हिं०; द०; म०; गु०) मेथी; (यू०) बॉनकेरास, टिली Telis (D. 2·124); (अ०) हुल्बः; (फ़ा०) शम्लीत, शम्लीज़, शम्बलीद; (सं०) मेथिका, पीतबीजा; (क०) मीथ; (पं०) मेथरी, मेथरे; (ते०) मेंति; (ता०; मल०) वेंदयम्; (मल०) उलुच; (ले०) **ट्रीगोनेल्ला फ़ीनुम्-ग्रीकुम्** (**Trigonella foenum-graecum** Linn.); (अं०) फेनुग्रीक (Fenu-greek)।

वक्तव्य—'फ़ीनुम् ग्रीकुम्' का अर्थ 'Greek hay = यूनानी तृण' है।

उत्पत्तिस्थान—उत्तरी अफ़रीका और भारत। भारतमें कश्मीर, पंजाब, बम्बई और मद्रासप्रांतमें बड़े पैमानेपर इसकी खेतीकी जाती है। यह जंगली भी होती है।

वर्णन—यह एक वार्षिक क्षुपके प्रसिद्ध बीज हैं, जो भूरापन लिये पीले, लगभग ३·१२५ मि०मी० ($\frac{१}{८}$ इंच) लम्बे, विषमकोणायताकार, थोड़े-से चपटे और स्वादमें कटु होते हैं। इसका स्वाद और गंध सेलरी (Celery) का स्मरण दिलाता है। इसके पत्तोंका साग पकाकर खाया जाता है। 'बनमेथी' को अरबी में 'हुल्ब बर्री' कहते हैं। 'इक्लीलुल्मलिक' इसीका एक विदेशीय भेद है।

उपयुक्त अंग—पत्र, फली और बीज।

रासायनिक संगठन—बीजावरणके कोषोंमें टैनिन (Tannin), दालोंमें शर्करारहित एक **पीतरंजक द्रव्य** और बीजोंमें एक दुर्गन्धित, तिक्त, वसामय तैल ६% तथा राल और लबाब २८%, ऐल्ब्युमिन २२ प्रतिशत और **कोलीन** (Choline) तथा ट्रीगोनेल्लीन (Trigonelline)–यह दो ऐल्केलॉइड होते हैं। इसके अतिरिक्त भी कई अन्य ऐल्केलॉइड्स होते हैं। बीजोंकी राखमें २५ प्रतिशत फॉस्फोरिक एसिड होता है। इसका रासायनिक संघटन कॉडलिवर ऑयलके समान होता है। इसमें शरीरमें शीघ्र अभिशोषित होने योग्य काफी प्रमाणमें सेन्द्रिय स्वरूपका लोह भी होता है।

प्रकृति—मलभूतद्रवयुक्त दूसरे दर्जेमें उष्ण एवं रूक्ष। आयुर्वेदके मतसे उष्णवीर्य (ध० नि०) है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—यह लेखन, विलयन, व्रणशोथपाचन, बल्य, वाजीकर और नाड़ीबलदायक है। फेफड़ोंपर श्लेष्मनिस्सारक प्रभाव करनेके कारण उनको गाढ़े लेसदार कफसे शुद्ध करती हैं; अन्त्रामाशयपर दीपन, वातानुलोमन एवं शोथहर और सारक कर्म करती है। यह गर्भाशयको उत्तेजना प्रदान करती और आर्तवजनन कर्म करती तथा गर्भाशयशूलको शमन करती है। यह शीतल रोगोंको विशेष लाभ पहुँचाती है। श्वयथुविलयन तथा पाचनके लिए मेथीका लेप करते हैं। चेहरेके दाग और धब्बोंको मिटानेके लिए अकेले या उपयुक्त अन्य औषध द्रव्योंके साथ इसका पतला लेप करते हैं। नेत्रस्राव, अर्जुन (तर्फ़ा) और नेत्राभिष्यंद आदिमें इसका लबाब निकाल-

कर नेत्रके भीतर आश्च्योतन करते हैं। श्वास और कासमें इसके काढ़ेमें शहद मिलाकर पिलाते हैं। आर्तव प्रवर्तन के लिए भी इसका काढ़ा पिलाते और उससे कटिस्नान कराते हैं। वाजीकरणार्थ इसे विभिन्न योगोंमें डालकर खिलाते हैं। आमवात, कटिशूल और नाडी-दौर्बल्य जैसे शीतल कफज रोगोंमें विभिन्न प्रकारसे इसका उपयोग करते हैं। अहितकर–वृषणद्वयके लिए। निवारण–पालक और कुलफाका साग। प्रतिनिधि–मेथीके बीज। मात्रा–३ ग्राम से ५ ग्राम (३ माशेसे ५ माशे) तक।

आयुर्वेदीयमत—मेथी कड़ुई, उष्णवीर्य, अरुचिकर, दीपन, रक्तपित्त का प्रकोप करने वाली तथा कफ, वात और ज्वरका नाश करने वाली है (यह बल्य, स्निग्ध और वातनाशक है)—(ध० नि०; भा० प्र०)।

नव्यमत—यह मार्दवकर है। सिरकी रूसी, छिलके, ढील तथा अन्य दोष मिटाने के लिए इसके काढ़े से सिरको धोते हैं। (पॉटर्स सालक्लोपीडिया, पृ० १२४)। मेथीकी पत्ती शीतल, पित्तशामक, पाचन, आनुलोमिक और शोथघ्न है। बीज–वातनाशक, वातहर, पौष्टिक, शोथघ्न, रक्तसंग्राहक और गर्भाशयसंकोचक है। पित्त प्रकृतिके लोगोंके कब्जमें मेथीका साग खिलानेसे दस्त साफ होता है। व्रणशोथमें पत्तीके लेप से दाह और सूजन कम होती है। पित्तज्वरमें पत्तीका रस देते हैं। रक्तमिश्रित आँवमें मेथीके बीजोंको सेंक, कूटकर उसका फांट देते हैं। इससे मलकी दुर्गन्ध और आँव कम होती हैं तथा मलका रंग पीला होता है। शरीरकी पीड़ामें बीजोंका चूर्ण ½ तोलेकी मात्रामें खानेसे उपकार होता है। प्रसूता स्त्रियोंको मेथीके बीजके साथ सुगन्धि-द्रव्य मिला उसके लड्डू बनाकर खिलाते हैं। इससे भूख लगती है तथा दस्त और आर्तव साफ होता है। व्रणशोथसे बीजोंका लेप करते हैं।

●

(५१९) मैदालकड़ी

फ़ैमिली : लाउरासे (Family : Lauraceae)

नाम—(हिं०; म०; बम्ब०; कों०) मैदालकड़ी, मेद (मीर्जापुर); (अ०) मग़ासे हिंदी; (फ़ा०) किन्ज़; (पं०) मेदालकड़ी, मेदासक; (ले०) लीट्सेआ ग्लूटीनोसा **Litsea glutinosa** (Lour.) Robins. (पर्याय–लीट्सेआ चीनेन्सिस (*L. Chinensis* Lam.); लीटसेआ सेबीफेरा (*L. sebifera* Pers.); लीट्से मोनोपेटाला **Litsea monopetala** (Roxb.) Pers. (पर्याय–*L. Polyaltha* Juss.)।

उत्पत्तिस्थान—उत्तर भारतवर्ष विशेषतः बंगाल, मीर्जापुर, सहारनपुर और दून आदिके जंगलोंके प्रायः छायादार नालोंके किनारे इसके वृक्ष पाये जाते हैं।

वर्णन—यह मध्यम ऊँचाईके सदाहरित वृक्षकी प्रसिद्ध छाल है, जो मोटी, मुलायम, कॉर्कयुक्त और काले-धूसर या गंदले लाल रंगकी तथा दालचीनी–जैसी कुछ गंधवाली होती है। छाल पानीमें डालनेसे चिकनी और पिच्छिल हो जाती है। मोच या चोट पर इसकी अन्तस्त्वक् (मैदालकड़ी)का प्रयोग होता है। यही औषधके काम आती है, और प्रायः बाजारमें मिलती है। इसके 'बंगाली नालुका' होनेकी सम्भावना अधिक है। कुछ लोगों ने तजको 'नालुका' माना है।

रासायनिक संगठन—इसमें लवाब या लॉरोटिटैनीन (Laurotitanine) नामक ऐल्केलॉइड होता है।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें उष्ण और पहिलेमें रूक्ष है।

गुणकर्म तथा उपयोग—यह विलयन, संग्राही, नाड़ीबलदायक, दीपन और कामोत्तेजक विशेषकर वाजीकर एवं श्वयथुविलयन है। अस्थिभग्न, मोच, आघात-प्रत्याघात (ज़रबा व सकता), नाड़ियोंमें बल पड़जाना (इल्तिवाए असब) और कड़ाईके विलीन एवं मृदुकरणार्थ गिलअरमनीके साथ इसका लेप करते हैं तथा कटिशूल, आमवात, गृध्रसी, वातरक्त, आक्षेप, कामावसाद और अस्थिभग्न जैसे कफ एवं वातरोगोंमें तथा कड़ाईको दूर करनेके लिए इसे शहदमें मिलाकर खाते हैं। **अहितकर**—बस्ति रोगोंमें। निवारण—शुद्ध मधु। **प्रतिनिधि**—सूरंजान। **मात्रा**—३ ग्रामसे ५ ग्राम (३ माशेसे ५ माशे) तक।

◆

(५२०) मैनफल

फ़ैमिली : रूबिआसे (Family : Rubiaceae)

नाम—(हिं०) मैनफल, मैनफर; (अ०) जौज़ुल् क़ै, जौज़ुल्कौसल; (सं०) मदन, मदनफल; (बं०) मयनफल; (गया) मौन; (खर०) मोयन; (था०) मयना; (म०) मेलफल, मदन; (गु०; मार०) मींढल, मींढोल; (पं०) मिंडल, मेणफल; (ते०) मंग, म्रंग; (ता०) मारुकारै, मरुक्कालम्; (मल०) करलिक्काय; (ले०) ज़ीरॉम्फिस स्पीनोसा **Xeromphis spinosa** (Thunb.) Keay. (पर्याय—*Randia spinosa* (Thunb.) Poir; रान्डिआ डूमेटोरुम् (**R. dumetorum** Lamk.); (अं०) इमेटिक नट (Emetic Nut), बुशी गार्डीनिआ (Bushy Gardenia)। वक्तव्य—प्राचीन अरबी हकीम मेलिआसे (Meliaceae) कुलकी रक़्अ यमानी (**Trichilia emetica**) को "जौज़ुल् क़ै" कहते थे। बम्बईमें बलसुरा (**Trichilia trijoliata** Wall.) नामसे प्रसिद्ध उद्भिज्ज इसका भारतीय भेद है।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष के जंगली और उजाड़ स्थानोंमें इसके वृक्ष होते हैं।

वर्णन—यह एक कँटीले छोटे वृक्षका प्रसिद्ध फल है, जो २.५ सें० मी० से ३.७५ सें० मी० (१-१½ इंच) लंबा, गोल या अंडाकार, आकारमें जायफलके बराकर या उससे किंचित् बृहत्तर, प्रायः धारायुक्त और पकने पर पीला होता है। छिलका मोटा, कालाई लिये पीला होता है। इसके भीतर दो खाने होते हैं और हर खानेमें विहीदानाके समान बहुत छोटे-छोटे बीज परस्पर एक-दूसरेसे चिपके हुए होते हैं और बिहीदानाके समान लबाबदार होते हैं। काले रंगके बीजोंके इस पिंडको "**मदनफल पिप्पली**" कहते हैं। फल बाजारमें प्रायः मिल जाते हैं। फलका छिलका तथा मदनफलपिप्पली को औषधके काममें लिया जाता है। इसका स्वाद तिक्त, कुस्वाद और गंध खराब होती है।

रासायनिक संगठन—इसमें सैपोनिन (Saponin) नामक एक कार्मुक वीर्य-साबुन सत्व (प्रत्येक फलमें लगभग २ गुंजा अर्थात् रत्ती बराबर), जटामांस्यम्ल, मोम, राल और रंजक द्रव्य प्रभृति होते हैं।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें उष्ण एवं रूक्ष। आयुर्वेदके मतसे यह उष्णवीर्य है। (कै० नि०)

गुण-कर्म तथा उपयोग—यह व्रणशोथविलयन-पाचन और दारण है। आंतरिक उपयोग से यह श्लेष्मवमन-विरेचन है। फोड़े-फुंसियोंको विलीन करने तथा उनके पाचन और दारण के लिये इसको जलमें पीसकर लेप करते हैं। कफज रोगोंमें वमनार्थ उसे नमकके साथ पीसकर, शहदमें मिलाकर खिलाते और ऊपरसे उष्ण जल या सोएकी पत्तियोंका काढ़ा शहद पिलाकर पिलाते हैं। अहितकर—उष्ण प्रकृतिके लिये। **निवारण**—कतीरा एवं शीतल पदार्थ। **प्रतिनिधि**—बूरए अरमनी और राई। मात्रा—३ ग्रामसे ६ ग्राम (३ माशे से ६ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—मैनफल मधुर, तिक्त, कटु, उष्णवीर्य, अरूक्ष, लघु, लेखन, **वमन द्रव्योंमें श्रेष्ठ,** आस्थापनोपग, अनुवासग, वातानुलोनोमन तथा कफ, पित्त, प्रतिश्याय, ज्वर, विद्रधि, कुष्ठ, गुल्म, शोथ, आनाह और व्रणका नाश करनेवाला है (च० सू० अ० १, २, २५; क० अ० १, ११; सु०सू० अ० ३८, ३९; कैं० नि०)।

नव्यमत—मैनफलके बीज और फलके इतर भागके गुणोंमें अन्तर है। बीज वामक तथा कफघ्न हैं, गर्भ तथा त्वचाकी क्रिया आमाशय और पक्वाशय पर होती है। इससे रक्त और पूयमिश्रित कफ तथा उस भागकी पीड़ा कम होती है। समग्र फल कफघ्न है। मैनफल उत्तम वामक है। एक फलका चूर्ण २½ तोले जलमें एक घंटा भिगो, पत्थरके खरलमें घोट, कपड़ेसे छान, उसमें मधु और सेंधानमक मिलाकर खाली पेट पिलानेसे एक घंटेमें एक-दो उत्तम वमन हो जाते हैं। कभी-कभी वमनके बाद विरेक भी आते हैं। तीव्र रक्तयुक्त आँव (प्रवाहिका)में मैनफलसे उत्तम गुण होता है। एक फलके कवचका चूर्णकर, उसके तीन भाग दिनमें करके तीन बार देना चाहिये। आंवमें भीतरके बीज नहीं देना चाहिए।

●

(५२१) मोठ

फ़ैमिली : लेगूमिनोसी (Family : Leguminosae)

नाम—(हिं०) मोठ, मुगानी, मोथी; (सं०) मुकुष्ठक; (बं०) खेरी; (म०, गु०,) मठ; (लें०) **फ़ासेओलुस् आकोनीटीफ़ोलिउस् Phaseolus aconitifolius** (L.) Ait. **(पर्याय–फासेओलुस ट्राइलोबुस (*P. trilobus*** Wall. non Ait); (अं०) मोठबीन (Moth-bean)।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्षमें इसकी खेती की जाती है तथा जंगलोंमें भी होती है।

वर्णन—यह एक प्रसिद्ध अन्न है, जिसकी दाल खाई जाती है। आकृतिमें यह मूँगके समान, किन्तु लाल होती है।

रासायनिक संगठन—मांसवर्धक-द्रव्य २३%, स्टार्च ५६%, तेल अत्यल्प प्रमाणमें, तंतु ४% और राख ३·५% प्राप्त होती है।

प्रकृति—पहले दर्जेमें गरम और खुश्क।

गुण-कर्म तथा उपयोग—यह स्वल्प पुष्टिकर (क़लीलुल् ग़िजाऽ) और संग्राही है। अधिकतया इसकी दाल पकाकर खाई जाती है। शीतल कफज रोगोंमें इसका उपयोग गुणदायक है। यह विशेष रूपसे अतिसारघ्न है। **अहितकर–वायुकारक। निवारण–गरम मसाला और स्नेह द्रव्य। प्रतिनिधि–माष।**

आयुर्वेदीय मत—मोठ रसमें मधुर, विपाकमें मधुर, शीतवीर्य, रूक्ष, संग्राहक तथा रक्तपित्त और ज्वर आदि रोगोंमें उत्तम माने गये हैं। (च० सू० अ० २७)। मोठ कृमिकारक है (सु०सू० अ० ४६); कषाय, रुचिकारक, बादी, लघु, दाहहारक, कफपित्त (सर्वदोष)नाशक और वमननिवारक है (रा० नि०; भा० प्र०)।

●

(५२२, ५२३) मोथा, नागरमोथा

फ़ैमिली : सीपेरासे (Family : Cyperaceae)

नाम—(हिं०) मोथा, मुथा; (यू०) कूपीरोस(न); (अ०) सोअ(अ्)द कूफ़ी, सोअ(अ्)द; (फा०) मुष्कक, मुष्के-ज़मीं, मुष्क ज़ेरेज़मीं; (सं०) मुस्तक, मुस्त(ता); (बं०) मुता; (क०) मोस्त; (पं०) मुथ्रां, मुथरां; (म०; गु०) मोथ; (लै०) सीपेरुस् रोटुंडुस् (**Coperus rotundus** L.); (अं०) नट ग्रास (Nut grass)।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष।

वर्णन—यह एक क्षुद्र वनस्पतिकी प्रसिद्ध कन्दाकृति जड़ है, जो बाहरसे काली और भीतरसे सफेद, लंबगोल, १·२५ से ३·७५ सें०मी० (½ से १½ इंच) लंबी, कठिन और सुगंधित होती है। स्वाद तिक्त होता है। यही कंदमूल औषधके काममें आता है। **केवटी मोथा** (सं०-कैवर्तमुस्ता; गु० चगामोथ) इसका क्षुद्र भेद है इसके छोटे ग्रन्थि सदृश कन्द होते हैं। इसकी दूसरी जाति प्रायः जलाशयमें होती है, जिसमें मोटे अन्तर्भूमिशायी कांड होते हैं। इनको हिंदीमें **नागरमोथा**, संस्कृतमें नागरमुस्तक और लैटिनमें सीपेरुस् स्केरिओसुस् (**Cyperus scariosus** R.Br.) कहते हैं। इसके मूल लंबे, कुछ दबे हुए, टेढ़े और कालापन लिये होते हैं। यह भी प्रायः सर्वत्र मिलता है। तीनों गुणमें प्रायः समान होते हैं। अस्तु, एकके अभावमें दूसरेका प्रयोग हो सकता है।

रासायनिक संगठन—इसमें एक सुगंधित तेल, वसा, शर्करा, निर्यास, कार्बोहाइड्रेट्स, मांसवर्धक पदार्थ (Albuminous matter), पिष्ट, तंतु और भस्म आदि तथा अंशतः एक क्षारसमोद (ऐल्केलॉइडकी भाँति) प्रभृति द्रव्य होते हैं।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम और खुश्क। आयुर्वेदके मतसे शीतवीर्य (ध० नि०) है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—हृद्य, मेध्य, नाड़ीबलदायक, दीपन, वातानुलोमन, मुखदौर्गन्ध्यहर और विशेषतः मूत्रार्तवजनन है। इसको (मोथा) अधिकतया मस्तिष्कदौर्बल्य, नाड़ीदौर्बल्य, स्मृतिदौर्बल्य तथा अन्यान्य मस्तिष्क (शिरः) और वात रोगोंमें उपयोग करते हैं। इसे मंदाग्निमें खिलाते हैं तथा मुख और नासिकाकी दुर्गन्ध दूर करके मुखको सुवासित बनानेके लिए भी इसका उपयोग करते हैं। **अहितकर**—कण्ठ और फेफड़ेके लिए। **निवारण**—शर्करा, सौंफ और अनीसूँ। **प्रतिनिधि**—मुरमक्की। **मात्रा**—१ ग्रामसे ३ ग्राम (१ माशासे ३ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—मोथा तिक्त, कषाय, कटु, शीतवीर्य, लेखन, तृप्तिघ्न, कण्डूघ्न, स्तन्यशोधन, तृष्णानिग्रहण, स्तम्भन, दीपन, पाचन तथा कफ, रक्तविकार, पित्त, ज्वर, अतिसार, तृषा, अरुचि और कृमिका नाश करनेवाला है (च० सू० अ० ४; सु० सू० अ० ३८; ध० नि०; कै० नि०)। भद्रमुस्ता तिक्त, शीतवीर्य, पाचन, ग्राही तथा पित्त, ज्वर और कफको दूर करनेवाला है (रा० नि०)। नागरमोथा-तिक्त, कटु, कषाय, शीतवीर्य तथा पित्त, ज्वर, अतिसार, अरुचि, तृषा, दाह और श्रमका नाश करनेवाला है। (रा० नि०)। केवटी मोथा-तिक्त, कषाय, कटु, शीतवीर्य, कान्तिवर्धक, मेध्य तथा वात, विसर्प, कण्डू, कुष्ठ, कफ, पित्त, रक्तविकार और विषको दूर करनेवाला है। (रा०नि; कै०नि०)।

नव्यमत—नागरमोथा कटु, तिक्त, कषाय, शीतल, दीपन, पाचन, ग्राही, स्वेदजनन, कफघ्न, तृष्णानिग्रहण, स्तन्यजनन, स्तन्यशोधन, कण्डूनाशक, मूत्रजनन, उत्तेजक और जन्तुघ्न है। यह अरुचि, अतिसार, रक्तार्श और कुपचन रोगमें गुणकारक है। इसे पित्तज्वर और सूतिकाज्वरमें देनेसे पसीना आता है, तृषा कम होती है, जीभ सुधरती है, पेशाब साफ होता है और गर्भाशयका संकोचन होता है। यह कृमिघ्न है; परन्तु यह गुण बड़ी मात्रामें देनेसे देखनेमें आता है। दूध बढ़ाने और दूधको शुद्ध करनेके लिए इसे खिलाते हैं और स्तनपर इसका लेप भी करते हैं।

(५२४) मौलसिरी

फ़ैमिली : सापोटासे (Family : Sapotaceae)

नाम—(हिं०; पं०; मा०) मौलसिरी, मौलसरी, मौसली, बकुल; (सं०) बकुल; (बं०) बकुल गाछ; (गु०) बोलसरी; (म०) ओवली, बकुल; (ले०) मीमूसॉप्स एलेंङ्गी (**Mimusops elengi Linn.**)।

उत्पत्तिस्थान—दक्षिणभारत और ब्रह्मा। समस्त भारतवर्षके उद्यानोंमें इसके वृक्ष यत्नपूर्वक लगाये, जाते हैं।

वर्णन—यह एक सदाहरित पल्लवयुक्त, सुंदर, बड़ा छायातरु है। पुष्प शुभ्र, मिलितदल, छोटा, गोल संदली रंगका और परम सुगन्धित होता है। ग्रीष्मसे शरत् पर्यन्त फूलता है। इस गंधमें महुएके फूलकी तरह मिठास होती है। यह सूखनेपर भी अविकृत एवं सुगंधित रहता है। फल उन्नावके बराबर कुछ-कुछ लंबोतरा; कच्चा हरा, कषाय और दुग्धवत् क्षीरबहुल, पक्व सिंदूरवर्ण एवं कषाय मधुर होता है। इसके अन्दर एक बड़ा बीज होता है जिसका मग़ज़ दुर्गन्धित और तिक्त होता है।

उपयुक्त अंग—त्वक्, पुष्प, तैल, फल और बीजोत्थ तेल।

रासायनिक संगठन—छालमें कषाय द्रव्य, कुछ रबड़ (Caoutchouc), मोम, रंजक द्रव्य, पिष्ट और भस्म; फूलमें एक उत्पत् तैल; बीजमें एक अनुत्पत् तेल और फलके गूदेमें अधिक प्रमाणमें शर्करा होती है।

प्रकृति—पुष्प गरम और खुश्क तथा फल एवं छाल शीत और रूक्ष हैं।

गुण-कर्म तथा उपयोग—फूल अपने मनोरम सुगन्धके कारण मनःप्रसादकर, हृद्य और मेध्य; फल और त्वक् संग्राही, वेदनास्थापन और उपशोषण विशेषकर योनिस्रावनाशक एवं शुक्रमेहघ्न हैं। हृदय और मस्तिष्कके उल्लास एवं बलवर्धन तथा दिलकी धड़कन दूर करनेके लिए इसके फूलोंका अर्क सेवन करते हैं। सफेद चन्दनके बुरादेकी भूमि देकर खींचा हुआ इसके फूलोंका इत्र परम सुगन्धित मनप्रसादकर और बल्य होता है। सूखे या ताजे फूलोंके स्वरसका कतिपय मानसिक (दिमागी) शीतल व्याधियों और शीतल शिरःशूलमें नस्य कराते हैं। शुक्रप्रमेह और अतिसार बन्द करनेके लिए इसके फल अकेले या उपयुक्त औषधियोंके साथ खिलाए जाते हैं। इनके चबानेसे दन्तशूल मिट जाता और हिलते हुए दाँत दृढ़ होते हैं। स्राव और योनिस्रावको नष्ट करनेके लिए छालका चूर्ण बनाकर खिलाते हैं। मुखपाक, चलदन्त एवं दन्तशूलमें इसके काढ़ेसे कुल्ली कराते हैं और फांट सूजाकमें पिलाते हैं। मौलसिरीके मूलकी छालका चूर्ण शुक्रमेह, शुक्रतारल्य और योनिस्रावको दूर करने और कटिको शक्ति देनेके लिए खिलाते हैं। **प्रधानकर्म**–स्राव एवं शुक्रस्रावहर। **अहितकर**–आनाहकारक और संग्राही। **निवारण**–स्नेह और मधु। **प्रतिनिधि**–बबूलकी छाल। **मात्रा**–५ ग्राम से ७ ग्राम (५ माशे से ७ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—मौलसिरीका फूल मधुर, कषाय, कटुविपाक, गुरु, हृद्य, स्निग्ध तथा कफ, पित्त, विष, श्वित्र, कृमि और दाँतके रोगोंका नाश करनेवाला है। (सु० सू०अ० ४६; ध० नि०; भा० प्र०)।

नव्यमत—मौलसिरीकी छाल कषाय, पौष्टिक; फूल रोचक; फल स्नेहन और संग्राहक है। ज्वरमें पुष्टिकरणार्थ इसकी छालका काढ़ा देते हैं। ज्वरमें उत्तेजनार्थ फूलोंका अर्क देते हैं। दांत हिलने और मुखपाकमें छालके काढ़ेकी कुल्लियाँ कराते हैं अथवा कच्चे फल चबानेको देते हैं। रक्तयुक्त जीर्ण आँवमें पके हुए फल खिलाते हैं।

●

(५२५) यूकेलिप्टस

फ़ैमिली : मीर्टासे (Family : Myrtaceae)

नाम—(हिं०) युकेलिप्टस, नीलगिरी; (सं०) तेलपत्र, सुगन्धपत्र–(नवीन); (ले०) **एउकालीप्टुस् ग्लोबुलस्** एवं अन्य **एउकालीप्टुस्** जातियाँ **Eucalyptus globulus** Labill. and other **E. species**); (अं) युकेलिप्टस (Eucalyptus); ब्लूगम-ट्री (Blue-gum Tree)।

वक्तव्य—यह भी एक नवागत औषधि है। अतएव प्राचीन निघण्टुओंमें इसका उल्लेख नहीं मिलता। युकेलिप्टस तैलका आजकल सभी चिकित्सक प्रचुरतासे व्यवहार करते हैं। इसके उपरोक्त संस्कृत नाम अभिनव हैं। सर्वप्रथम नीलगिरीकी पहाड़ियोंपर युकेलिप्टस उत्पादनका सफल प्रयास किया गया था। इसलिए 'नीलगिरी' नामसे यह प्रसिद्ध हो गया है।

उत्पत्तिस्थान—विक्टोरिया और टसमेनिया। यह भारतवर्षमें लगाया गया है तथा दक्षिण भारतवर्षके नीलगिरि आदि और आसामकी पहाड़ी तथा शिलांग आदि स्थानोंमें खूब होता है।

वर्णन—एक बड़ा ऊँचा वृक्ष। पत्र कड़ा चिमड़ा, चर्मवत्, भूरापन लिए हुए हरा, कृपाण (टेढ़ी तलवारकी आकृतिका) या क्वचित् अपेक्षाकृत क्षुद्रतर पत्रों या पल्लवोंसे प्राप्त होनेपर अण्डाकार और वृन्तशून्य, १०-१५ सें० मी० (४-६ इंच) लम्बा और बीचमें लगभग ३·५ से ३·७५ सें०मी० (१-१½ इंच) चौड़ा, ह्रस्ववृन्तयुक्त और आधारपर गोल, असंख्य पारदर्शक तैलपूर्ण चिह्नोंसे युक्त; स्वाद सुगन्धित और शीतजनक, विशिष्ट, कुछ-कुछ कर्पूरवत्। यूकेलिप्टसकी कतिपय जातियोंसे **युकेलिप्टसका** तैल (Eucalyptus Oil) भभकेसे निकाला जाता है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—इसका आंतरिक उपयोग करते हैं। आस्ट्रेलियामें बहुशः रोगों एवं विकारोंके लिए यह घरेलू औषधकी भाँति प्रयुक्त होता है। इंग्लैंडमें यह सुविख्यात एवं बहुप्रयुक्त औषध है। इसकी गुणवत्ता प्रधानतया इसके कोथप्रतिबन्धक गुणोंपर निर्भर करती है, जो इसमें प्रबल रूपमें पाये जाते हैं, यद्यपि बिल्कुल निरापद हैं। ज्वरों एवं ज्वरावस्थाओंमें तेलका स्वच्छंदतया बहिराभ्यन्तारिक उपयोग हो सकता है। श्वास, रोहिणी (Diphtheria) और कण्ठक्षत आदिके लिए इसे सुँघाया जा सकता है। लगभग डेढ़ पाव (१ पाइंट)के कोष्ण पानीमें २½ तोले इसका तेल मिलाकर व्रण आदिके लिए स्थानीय ओषधकी भाँति इसका उपयोग होता है। इसका उत्तेजक, कोथप्रतिबन्धक और शोधक (Corrective) प्रभाव होता है। स्थानीय सूचिकाभरण (Injection)के लिए १ पाइंट पानीके लिए १। तोला पर्याप्त है। चिकित्सकोंके प्रतिवेदनके अनुसार इससे केवल व्रणका शीघ्र शोधन-रोपण ही नहीं आरम्भ हो जाता है, प्रत्युत इससे सभीप्रकार की दुर्गन्धियोंका भी तुरत निवारण हो जाता है। इस सम्बन्धमें यह घावों (Wounds) और विकृतवृद्धियों (Growths)के लिए स्थानीय प्रयोगकी औषधिकी भाँति सबसे अधिक मूल्यवान् औषधि है। रक्तज्वर, सन्ततज्वर (Typhoid) और विषमज्वरोंमें इसके पत्तोंकी प्रवाही रसक्रियाका आंतरिक उपयोग किया जाता है और इसके साथ ही तेलका स्वच्छन्दतया प्रायः शरीराभ्यंगार्थ प्रयोग होता है। कण्ठगतरोगविशेष (Croup) और आक्षेपक कण्ठरोगोंमें इसका इसी प्रकार प्रयोग किया जा सकता है। श्वास, उरःक्षत और चिरज कासमें इसकी सूखी पत्तियोंका सुरासवके रूपमें उपयोग होता है। जड़ विरेचक है। गोंद सुकुमार प्रकृतिके लोगोंको संग्रहणी, अतिसार आँवमें देते हैं। पत्रफांट कफघ्न, कफदुर्गन्धिनाशक, मूत्रजनन और पूतिहर है। इसलिए फुफ्फुसके पुराने रोग, बस्तिशोथ और पुराने सूजाकमें इसे देते हैं। ज्वरमें फांट देनेसे पसीना आता है, सिर और शरीरकी पीड़ा कम होती है तथा समस्त शरीरमें स्फूर्ति प्रतीत होती है। छायाशुष्क १-१ पत्रका चूर्ण दिनमें दो बार देनेसे शीतज्वर आराम होता है।

●

(५२६) रतनजोत

वक्तव्य—भारतवर्षके विभिन्न स्थानोंमें निम्नलिखित औषधियोंको रतनजोत या लालजड़ी कहते हैं:—(१) ओनोस्मा एकिओइडेस **Onosma echioides** L. (फ़ैमिली : बोराजिनासे *Boraginaceae*); (२) जेरानिउम् वाल्लीचिआनुम् **Geranium wallichianum** D. Don. (फ़ैमिली : जेरानिआसे *Geraniaceae*); (३) पोटेनटिल्ला नेपालेन्सिस् **Potentilla nepalensis** Hook. (फ़ैमिली : रोज़ासे *Rosaceae*); (४) क्लाउसना पेन्टाफ़िल्ला **Clausena pentaphylla** DC. (फ़ैमिली : रूटासे *Rutaceae*); तथा (५) आनेमोन आब्टूसीफ़ोलिआ **Anemone obtusifolia** D. Don. (फ़ैमिली : रानुन्कुलासे Ranunculaceae)। इससे यह ज्ञात होता है, कि रतनजोतके नामसे कई वनस्पतियोंका प्रयोग होता हैं। यह निश्चित रूपसे नहीं कहा जा सकता कि बाजारमें इनमेंसे किसका जड़ मिलती है।

वर्णन—यह एक वनस्पतिकी प्रसिद्ध जड़की छाल (मूलत्वक्) होती है, जो ५ सें०मी० से १० सें०मी० (२-४ इञ्च) लम्बी तथा मोटी होती है। यह गहरे लाल रंग (Purplish)की होती है, और सरलतापूर्वक छुड़ाई जा सकती है। इसे अरबीमें **शंजार** तथा **अबुख़ल्सा** और अंग्रेजीमें **ऐल्कानेट** (Alkanet) कहते हैं। यह अधिकतया तेलों, तथा मलहरों आदिके रंजन (रंगन)के लिए उपयोग किया जाता है। किन्तु जल, मद्य, एवं वसा आदि इससे रंगीन नहीं होते। वक्तव्य–ऐल्कानेट वस्तुतः आल्कान्ना टीङ्क्टोरिआ **Alkanna tinctoria** Tausch. (*Family : Boraginaceae*) नामक विदेशी पौधेकी जड़ है। इसे अंग्रेजीमें **डायर्स** या **स्पैनिश बग्लॉस** (Dyers or Spanish Bugloss) कहते हैं।

कल्प तथा योग—**मरहन रतनजोत**।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें **गरम** और **खुश्क**। शैख़के मतसे पहले दर्जेमें शीत और दूसरेमें रूक्ष है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—संग्राही, उपशोषण, लेखन, छेदन, तारल्यजनन, आर्तवजनन और अश्मरीनाशन, विशेषकर व्रणलेखन (बाह्यतः) है। रतनजोतका अधिकतर बाह्य प्रयोग होता है। सुतरां यह मलहरोंमें डाली जाती है। उपशोषण और संग्राही होनेके कारण यह दुष्ट व्रणों और अग्निदग्ध आदिमें लाभ करती है। इसे अकेले सिरकामें पीसकर छीप वा झाईं, किलास, चर्मकील, विसर्प, कक्षा, परिसर्पी व्रण और व्रणित कच्छूमें उपयोग किया जाता है। इसे तेलमें जलाकर उसे घोटते और फिर उसे गंजपर लगाते हैं। इससे उपकार होता है। उपशोषण एव ग्राही होनेके कारण इसे तेलमें मिलाकर शरीरपर मर्दन करते हैं। इससे अतिस्वेद रुक जाता है। कामला, प्लीहायकृच्छूल, वातरक्त, वृक्कशूल, बस्तिवृक्काश्मरि और जीर्ण ज्वरोंमें इसका आंतरिक उपयोग गुणकारक है। किन्तु इन रोगोंमें बहुत कम प्रयुक्त होती है। गर्भाशयशूल, कटिशूल, रुद्धार्तव, गर्भपात और गर्भके निर्हरणके लिए इसका पान, फलवर्ति और अवगाह गुणकारक हैं। **दासकूरीदूस**का कथन है कि इसके बहिराभ्यन्तरिक उपयोगसे विषैले जंतुओंके काटे हुएको सहायता मिलती है। वह यहाँ तक कहता है कि इस जड़को चाबकर साँपके मुँहमें थूकनेसे वह तुरत मर जाता है। (पाटर्स न्यू साइक्लोपीडिया, पृ० ११)। **अहितकर**–शिरःशूलकारक। **निवारण**–स्नेह द्रव्य, यथा-रोगन बनफ़्शा आदि। **प्रतिनिधि**–उक़्हवान (मूत्रजननकर्ममें)। **मात्रा**–३ ग्रामसे ५ ग्राम (३ माशेसे ५ माशे) तक।

●

(५२७) राई

फ़ैमिली : क्रूसीफ़ेरी (Family : Cruciferae)

नाम—(हिं०;बं०;म०;गु०;) राई; (अ०) ख़रदल; (फा०) सिपंदाँ, सिपंदाँ गिर्द (ख़ुश), इस्पंदाँ; (सं०) राजिका, आसुरी; (द०) रायाँ; (बं०) सरिषा; (क०) आसुर; (पं०) ओहार; (म०) मोहरी; (का०) सासिषे; (सिंध) अहुरि; (ता०) कडुवु; (मल०) कडुवम्; (ले०) ब्रास्सिका नीग्रा (**Brassica nigra** (L.) Koch.); (अं०) ब्लैक या ट्रू-मस्टर्ड (Black or True Mustard)। वक्तव्य—भारतीय राईको लेटिनमें **ब्रास्सिका जुंसेआ** (**Brassica Juncea** (L.) Czern. et Coss.) कहते हैं।

उत्पत्तिस्थान—भारतवर्षके किसी-किसी भागमें इसकी खेती होती है।

वर्णन—यह सरसोंकी जातिके एक पौधेके प्रसिद्ध बीज हैं, जो सरसोंके बराबर, लाल रंगके या काले होते हैं। स्वाद तिक्त और तीक्ष्ण होता है। बीजोंसे तेल (**रोग़न ख़र्दल**) निकाला जाता है।

उपयुक्त अंग—बीज और तेल।

रासायनिक संगठन—बीजमें माइरोसिन और सिनिग्रिन अर्थात् पोटैसियम माइरोनेट (Potassium myronate) ०·५ प्रतिशत, अनुत्पत् तेल २५ प्रतिशत, और सिनैपीन (Sinapine) प्रभृति द्रव्य होते हैं।

प्रकृति—दिल्लीके हकीमोंके मतसे चौथे दर्जे (मतांतरसे दूसरे दर्जे)में उष्ण और रूक्ष। आयुर्वेदीय मतानुसार उष्णवीर्य (रा०नि०)।

गुण-कर्म तथा उपयोग—बाह्य प्रयोगसे राई श्वयथुविलयन, लेखन, शोणितोत्क्लेशक और विस्फोटजनन है। लेप करनेसे प्रथमतः दाह उत्पन्न करती है, इसके उपरांत संशमन कर्म करती है। आंतरिक उपयोगसे यह आमाशयको उद्दीप्त करके पाचन और क्षुधाकी वृद्धि करती है और प्लीहाकी सूजन उतारती है। अधिक प्रमाणमें उपयोग करनेसे यह छर्दिजनन है। यह प्रधानतः **शोथविलयन, शोणितोत्क्लेशक और आहारपाचन** है। कफोल्वण सन्निपात (लीसुर्गुस), पक्षवध, आमवात, वातरक्त, गृध्रसी, पार्श्वशूल और फुफ्फुसशोथ जैसे प्रायः शीतल रोगोंमें राईका लेप करते हैं या उपयुक्त औषध द्रव्योंके साथ मिलाकर मर्दन करते हैं। आमाशयशूल, प्लीहाशूल और यकृच्छूलशमन करनेके लिए इसका लेप करते हैं। शीतजन्य आर्तवस्तम्भ(संग)को दूर करनेके लिए इसके क्वाथमें रोगिणीको बैठाते हैं। शोणितोत्क्लेशक और विस्फोटजनन होनेके कारण दद्रु, किलास और खालित्य प्रभृति रोगोंमें इसका लेप करते हैं। शीतल शोथों और कण्ठमालाको विलीन करनेके लिए भी इसका लेप करते हैं। जिह्वाशोथ और दंतशूलमें इसके काढ़ेसे कुल्ले कराते हैं। आहारपाचन और अरुचिको नष्ट करनेके लिए इसे आहारमें डालकर खिलाते हैं। प्लीहाशोथको विलीन करनेके लिए इसका चूर्ण सेवन करते हैं। आमाशयसे कफोत्सर्ग और कतिपय विषोंके प्रभावको नष्ट करनेके लिए वमन द्रव्यकी भाँति अधिक प्रमाणमें (लगभग १ तोला) गरम पानीमें मिलाकर पिलाते हैं। दंतरोगोंमें इसकी कुल्ली कराते हैं। **अहितकर**—तृष्णा उत्पन्न करती है। **निवारण**—बादामका तेल और सिरका। **प्रतिनिधि**—हब्बुर्रशाद। **मात्रा**—१ ग्राम से ३ ग्राम (१ माशासे ३ माशा) तक।

आयुर्वेदीय मत—राई रसमें कटु और तिक्त, तीक्ष्ण, उष्णवीर्य, दाहकर, पित्तकर तथा वात, कफ, प्लीहाके रोग, शूल, गुल्म, कृमि और व्रणका नाश करनेवाली है। (च० शाक वर्ग अ० २७ श्लो० १०१; रा० नि०)।

नव्यमत—राई अल्पप्रमाणमें दीपन-पाचन, उत्तेजक और स्वेदजनन है। बड़ी मात्रामें वामक है। राईसे शीघ्र वमन होता है और वमनके बाद थकावट नहीं मालूम होती। वमन करानेके लिए राई और थोड़ा सेंधानमक गरम पानीमें मिलाकर जब तक ठीक वमन न हो तब तक थोड़ी-थोड़ी देरके बाद पिलाना चाहिए। राईके

लेपसे त्वचा लाल होती है, त्वचा और त्वचाके नीचेके रक्तानुधावनको उत्तेजना प्राप्त होती है। पीछे उस स्थानमें सुन्नता आती है। लेप अधिक समय रखनेसे वहाँ फोड़ा हो जाता है। फुफ्फुस, यकृत्, श्वासनलिका, मस्तिष्क आदिके शोफमें राईके लेपसे बड़ा लाभ होता है। ज्वरमें मनोभ्रम कम करनेके लिये सिरपर तथा हृदयकी अशक्तता और शरीरके किसी भागके शीतके दर्दमें राईका लेप करते हैं। (ओ० सं०)। राईका तेल वायुके दर्दमें लगाया जाता है।

●

(५२८) राल

फ़ैमिली : डीप्टेरोकार्पासे (Family : Dipterocarpaceae)

नाम—(हिं०; द०; म०; गु०) राल; (अ०) रातीनज (इ० बै०), रातियानज, क़ैक़हर, क़ङ्कहर; (फ़ा०) रातियानः, लाल मोअब्बरी (मग़रबी); (सं०) राल, शालनिर्यास; (बं०) धुना; (ले०) रेजिना (Resina), कोलोफोनिउम् (Colophonium); (अं०) रेजिन (Resin), रोइजिन (Roisin), कोलोफोनी (Colophony)।

उत्पत्तिस्थान—उत्तर हिन्दुस्तान, हिमालयकी तराई, गोदावरीके जंगल और मोरंग आदि।

वर्णन—यह शाखू या शाल (**Shorea robusta** Gaertn.) नामक वृक्षका गोंद है। नवीन राल रंगरहित और पारदर्शक, परन्तु पुराना फीका अम्बरी वा ऊदी, स्वाद गन्धरहित होता है और धूपकी तरह जलता है। **वक्तव्य**—पाश्चात्य द्रव्यगुण शास्त्रमें वर्णित रालका वर्णन इस प्रकार है—'चीढ़ वा सरल (Pinus) जातीय वृक्षोंसे एक प्रकारका रालयुक्त गाढ़ा तेल निकलता है। परिस्रावणविधिसे तेल और रालको पृथक्-पृथक् कर लिया जाता है। इस प्रकार पृथकभूत तेल "**तारपीनका तेल या रोग़न तारपीन**" कहलाता है। रालकी अर्धस्वच्छ, हलके अंबरी या हलके पीले रंगकी डलियाँ होती हैं, जो आसानीसे टूट जातीं और चूर्ण हो जाती हैं। तोड़नेपर टूटी हुई सतह चमकदार होती है। गन्ध और स्वाद तारपीनवत् होता है। इसके जलानेसे विपुल धूम्र उत्पन्न होता है और लौ का रंग पीला होता है।

वक्तव्य—(१) बूअलीसीनाके कथनानुसार अल्-राजीनज सनोबर वृक्ष (Pine tree)का निर्यास है (क़ानून १/४३०)। इब्नुल्बैतारके कथनानुसार इस शब्दका अर्थ साधारणतया गलत समझा जाता है। राल (Resin)के लिए इसका सामान्य प्रयोग गलत किया जाता है। हुबैनने कोलोफोनी (Colophony)के लिए इसका यथार्थ प्रयोग किया है। (इ० बै० संचिका २, पृ० १३५)।

परिचय—(२) विभिन्न प्रकारके सनौब्बर (देवदार–Pine)के वृक्षोंसे जो सांद्र रालयुक्त तारपीन तैल प्राप्त होता है, उसमें तारपीनतैलको परिस्रुत करनेके बाद शेष रेजिन (राल) रह जाती है।

रासायनिक संगठन—इसका प्रधान उपादान आर्हबोटिक एसिड नामक एक क्रिस्टली यौगिक है, जो क्षारोंसे विलेय लवणके रूपमें परिणत हो जाता है। विलेयता–यह सुरासार (९०%), ईथर, तारपीन तेल, बेंजोल, कार्बनबाई सल्फाइडमें सुविलेय है तथा गरम जैतून तेल और क्षारमें भी घुलनशील है।

कल्प तथा योग—मरहम राल।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें गरम और खुश्क है।

इतिहास—प्राचीन यूनानी एवं अरबी चिकित्साविशारदोंमें इसके स्वरूपके विषयमें परस्पर मत-भिन्नता रही है। सुतरां हकीम जालीनूस और उनके अनुसरणमें इब्न समजूनने लिखा है कि रातीनज सनोबरके बड़े भेद-

का निर्यास (गोंद) है और 'क़लफ़ूनिया' जिसको मख़्ज़नुल् अदवियामें क़ल्क़ूनिया और मुहीतआज़ममें कल्मूनिया भी लिखा है, छोटे भेदके सनोबरका गोंद है। शैख़ महोदयने भी इसको एक प्रकारके बुत्मवृक्षका गोंद लिखा है। परन्तु वास्तवमें सनोबरसे निर्यास (गोंद) नहीं, अपितु 'इलक' निकलती है और अरबोंके समीप रातीनज इलक, का नाम है; क्योंकि 'इलक' ऐसे निर्यासको कहते हैं जो मुख़में चबाया जा सके। सुतरां रातीनजुल्जाफ़ को 'इलकुल्जाफ़' और रूमीमस्तगीको 'इलकुर्रूमी' कहते हैं।

राल तैलीय घटकोंके साथ मिली हुई विभिन्न प्रकारके वृक्षों (विशेषकर सनोबर वृक्ष)से स्वयमेव या चीरा देनेसे निकलती है। जब इसमें तैलांश अधिक हो तो यह प्रवाही होती है। तब इसे कोई-कोई 'जिफ़्त रतब' या 'क़तरान' भी कहते हैं, जो यथार्थ नहीं। और जब तेलका परिमाण अल्प हो अथवा उसे इसमेंसे परिस्रुत कर लिया जाय या आँचपर उड़ा दिया जाय, तब इसे अरबीमें रातीनज़ुल् याबिस या रातीनज़ुल्जाफ़ और यूनानीमें 'कुल्क़ूनिया (कल्फूनिया या क़ल्मूनिया)' कहते हैं। सुतरां दीसकूरीदूसने लिखा है कि रातीनज इलक सनोबर है और जब इसे आँच पर उड़ाकर शुष्क कर लिया जाय तो इसे कल्क़ूनिया कहते हैं।

दीसकूरीदूसके वर्णनानुसार तो रेजिनका वास्तविक पर्याय क़ल्क़ूनिया ही होना चाहिए, परन्तु रातीनज या रातियानज संज्ञा जो एक रूमी भाषाका शब्द है, वह भी इसका यथार्थ पर्याय है। मख़्ज़नुल्अदवियामें 'रातियानज' या 'क़ैक़हर'के नामसे रालका और सकुवा के नामसे शाल वृक्षका वर्णन है और मुहीतआज़ममें रातीनजके नामसे इसका उल्लेख किया गया है। इसकी अँगरेजी संज्ञा 'कोलोफोनी (Colophony)', 'कोलोफोन (Colophone)'-से, जो एक नगरका नाम है, संबंधित है। आइओनिय द्वीपमें यह बलकान प्रायद्वीपके पश्चिममें स्थित द्वीपसमूहोंमें स्थित है। वहाँ राल पुष्कल उत्पन्न होती है, अतएव उक्त नामसे अभिधानित हुई।

गुण-कर्म तथा उपयोग—व्रणोंमें इसका बाह्य प्रयोग करनेसे यह कोथप्रतिबंधक और व्रणलेखन कर्म करती है। आंतरिक उपयोगसे फेफड़ों पर इसका कोथप्रतिबंधक और कफोत्सारि कर्म होता है। विशेषतः यह श्लेष्मनिस्सारक एवं दृष्टिवर्धक है। इसको अधिकतया मलहरोंमें डालकर व्रणों पर लगाते हैं तथा कण्डू, दद्रु, छीप वा झाईं और अर्श जैसे रोगोंमें उपयोग करते हैं। हाथ-पैरका फटना, या बिवाईमें इसे मक्खनमें मिलाकर लगाते हैं। पुरातन कास, श्वास और फुफ्फुस व्रणमें विभिन्न प्रकारसे इसका उपयोग करते हैं। कास एवं श्वासमें इसका धूम्रपान भी गुणदायक है। **अहितकर**–उष्ण प्रकृतिके लिए। **निवारण**–दूध और घी। **प्रतिनिधि**–अंज़रूत नेत्रके लिए। **मात्रा**–१ ग्रामसे २ ग्राम (१ माशासे २ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—राल रसमें मधुर और कषाय, स्तम्भन, व्रणरोपण, अस्थिभग्नका संधान करनेवाला तथा विपादिका (बिवाई) और भूतका नाश करनेवाला है। (ध० नि०)।

नव्यमत—राल उत्तम व्रणशोधन, व्रणरोपण, रक्तसंग्राहक और ग्राही है। रालका मरहम लगानेसे फोड़े-फुन्सियोंकी पीड़ा शांत होती है, वे फूट जाते हैं और व्रण शीघ्र भर जाता है और यदि नये हों तो बैठ जाते हैं। रालका मलहम लगाये जानेवाले स्थानका रक्तानुधावन बढ़ता है तथा वह स्थान कृमिशून्य होता है। **रालका मरहम**–राल, मोम और तिलका तेल सम भाग ले, आग पर पिघला, कपड़ेसे छानकर काच-पात्रमें भर लेवें। अन्य सुगन्धि द्रव्योंके साथ मिलाकर रालका धूप किया जाता है। यह जन्तुघ्न है। कुपचन, सूजाक, रक्तप्रवाहिका और रक्तार्शमें इसको (रालको) देते हैं।

●

(५२९) रासन

फ़ैमिली : कॉम्पोजीटी (Family : Compositae)

नाम—(हिं०) रासन; (यू०) Elenion (D. 1. 27); (अ०) अल्‌रासन (इ० बैं०), सौसन जबली, ज़ंजबील शामी(-बलदी), क़ुस्तशामी, क़ल्मूज; ज़ंजबीलुल्‌अजम (फा०)रासन ? (ले०) इनूला हेलेनिउम् (**Inula helenium** L.); (अं०) एलीकैम्पेन (Elecampane), स्कैब-वर्ट (Scab-wort)।

वक्तव्य—यह ज्ञात नहीं हो सका कि रासन किस भाषाका शब्द है; फिर भी यूनानी तथा अरबी-फारसी चिकित्सा-ग्रंथोंमें इसी नामसे इसका विवरण मिलता है। उन देशोंमें इस नामसे जिस औषधिका ग्रहण होता है, उसके गुण-कर्म-उपयोग तथा परिचय आदि विषयक विवरणका आयुर्वेदीय रास्नाके साथ बहुत सादृश्य जान पड़ता है। अस्तु, बहुत संभव है कि कदाचित् रास्ना ही विदेशोंमें पहुँचकर रासन कहलाई हो। ख़ज़ाइनुल् अदविया तथा डीमकोक्त रासनका विवरण और कैयदेवनिघंटुमें रास्नाकी पाद टिप्पणी देखनेसे मेरे इस मतकी पुष्टि होती है।

उत्पत्तिस्थान—समशीतोष्ण यूरोप और उत्तरी एशिया। कतिपय यूरोपीय देशोंमें औषधीय व्यवहारके लिए इसकी खेती की जाती है। ग्रेट-ब्रिटेनमें भी इसकी खेती होती है।

वर्णन—पुष्करमूल जातीय क्षुपकी जड़, जो हलकी भूरी, शृंगवत् कठिन, साधारणतः ८·१३ मि० मी०से १·८७५ सें० मी० (१/३ से ३/४ इंच) मोटी होती हैं। इसके विभिन्न लंबाईके रंभाकार टुकड़े होते हैं। प्रायः बड़े खंडोंके साथ जड़का शीर्ष (Crown) संलग्न होता है। खंड छोटा होता है। व्यत्यस्त काटमें पुष्कल काले तेल-कोशाओंके साथ अरवत् रचना (Radiate structure) दिखलाई पड़ती है। स्वाद सुगंधित एवं कटु-तिक्त; गंध ईरसाकी जड़ (Oris root) और कपूरका स्मरण दिलाती है। जड़ रंग और रूपमें बेलाडोनाकी जड़के समान होती है, किन्तु बेलाडोनाके विपरीत इसकी बाहरी छाल उतारी हुई जड़में सफेद धरातलका अभाव होता है। इसका क्षुप आकृतिमें जंगली मूली (Horse-Radish)[1] के समान होता है। सभी अवयवोंमें जड़ ही अधिक गुणकारी होती है। अतएव औषधमें प्रायः इसीका उपयोग होता है। गर्मीमें इसे उखाड़कर सुखा लेते हैं। जड़ को असलुर्रासन और बीजको हब्बुर्रासन कहते हैं। जड़में दो वर्ष तक बीर्य शेष रहता है। उत्तम जड़ वह है जो ताजी हो, जिसमें कीड़े न लगे हों, जिसमें हलकी-सी सब्जीके साथ थोड़ी-सी ललाई हो और स्वाद विकसा (फीका) हो। बुर्हानके मतसे इसकी जड़से मुरब्बा बनाते हैं। ज़ंजबील कोही (**I. royleana** DC.) इसका एक भेद है जिसके क्षुप समशीतोष्ण पश्चिम हिमालयमें ७,०००—११,००० फुट की ऊँचाई पर होते हैं (कुष्ठमें इसकी जड़का मिश्रण करते हैं)। कल्प–चूर्ण(मात्रा–१/२ ड्रामसे १ ड्राम); तरलसार (मात्रा–१/२ से १ ड्राम); फांट और मुरब्बा; इन्युलीन (Inuline मात्रा–१/२ से ११/२ रत्ती)।

रासायनिक संगठन—जड़में इन्युलीन (Inuline) नामक सैन्टोनीन जैसा एक तिक्त सत्व होता है।

प्रकृति—मलभूत द्रवके साथ जड़ दूसरे या तीसरे दर्जेमें गरम और रूक्ष है। पत्ते सर्द एवं रूक्ष हैं।

गुण-कर्म तथा उपयोग—जड़ मनःप्रसादकर, पाचन, वातानुलोमन और वाजीकर है तथा हृदय, आमाशयद्वार और बस्तिको शक्ति देती एवं यकृत्‌के अवरोधका उद्घाटन करती है। यह शीतल यकृच्छूल, संधि एवं पृष्ठशूल, वातरक्त, गृध्रसी, दमा, कृच्छ्रश्वास, कुष्ठ और जलोदरमें गुणकारी है तथा मालीखोलिया मराकी (मद विशेष), हृदय एवं आमाशयद्वारकी दुर्बलतासे होनेवाले विराग (वहशत) एवं चिंताको दूर करती है। कर्णक्ष्वेड और कर्णनादमें इसे कानमें टपकानेसे लाभ होता है। इसे पकाकर मल-छानकर या इसकी शराब बनाकर पीनेसे

---

[1] (ले०) (Cochlearia armoracia Linn. (*Family* : *Crucifera*)

आर्तवरक्त और पेशाब अधिक आता है, स्रोतोंका मल मूत्र और आर्तवरक्तके साथ निकल जाता है। समस्त गुणोंमें जड़की अपेक्षया इसकी शराब श्रेष्ठतर है। इसकी धूनीसे भी आर्तवरक्तका प्रवर्तन होता है। इसमें एक प्रभाव यह है कि इसके सेवनसे मूत्रकी उत्पत्ति कम हो जाती है। इसके निरंतर सेवनसे बस्ति इतनी बलवान हो जाती है कि बारम्बार मूत्रका आना बन्द हो जाता है। इसका लेप अधिक समय तक एक स्थानपर रखनेसे वह स्थान लाल हो जाता है। यह वाजीकर भी है। किसी तेलमें पकाकर शिश्नपर इसका पतला लेप (तिला) करनेसे वाजीकरण होता है। इसको पीसकर शहदमें मिलाकर चाटनेसे जोड़ोंका दर्द जाता रहता है। कफज अर्धावभेदकमें इसके लेपसे लाभ होता है। इसको शहदमें मिलाकर चाटनेसे पुरानी खाँसी, दमा और कृच्छ्रश्वास आराम होता है तथा छातीसे कफ निकल जाता है। रासनका मुरब्बा शीत प्रकृतिवालेको, पक्षबधवालेको तथा जिसके वृक्क शीताभिभूत हों उनको गुणदायक है। यह मूत्रका उत्सर्ग करता और कटिको शक्ति देता है। मुरब्बाकी विधि–दस भाग रासन लेकर उँगलीके बराबर काटकर छीलें और बीस दिन तक नमकके पानीमें भिगो रखें। हर तीसरे दिन इस पानीको बदलते रहें या शहद और पानीमें भिगो देवें और हर पाँचवें दिन उसे बदलते रहें। इसके बाद पत्थरकी हाँड़ीमें डालकर तीन भाग शहदको पानीमें घोलकर उसे मिलाकर पकावें जिसमें नरम हो जाय। पुनः उसमेंसे निकालकर दोबारा उतने ही शहद और पानीके साथ अच्छी तरह पकावें। इसके बाद उसे हरे मर्तबानमें रखकर उसमें सोंठ, इलायचीदाना, जायफल, दालचीनी, लौंग और पीपलका चूर्ण मिला देवें। बस मुरब्बा तैयार है। **अहितकर**–उष्ण प्रकृतिको, आमाशयसे नीचे देरमें उतरती है। निवारण–सिरका, अम्ल रसक्रिया, खट्टा अनार, शर्बत रेवास भी, आमाशयसे नीचे देरमें उतरनेका निवारण मस्तगी और खमीरा बनफशा। प्रतिनिधि–ईरसा, मीठा कुट और बच। मात्रा–७ ग्राम (७ माशे) तक।

नव्यमत—रसायन, बल्य, पाचन, मूत्रल, कफोत्सारि, स्वेदल, आमवातहर तथा मनःप्रसादकर है। अन्यान्य औषधियोंके साथ कासमें मुख्यरूपसे और श्वास अर्थात् फुफ्फुसविकारोंमें सामान्यतया इसका उपयोग होता है। चेहरे या शरीरके अन्य भागोंकी त्वचाका रंग निखारने या उनसे दाग या धब्बे मिटानेके लिए रासनके पत्र और मूल दोनोंसे परिस्रुत किया हुआ अर्क बहुत ही गुणकारी है।

आयुर्वेदोक्त रास्नाके गुणकर्म तथा उपयोग—रास्ना तिक्तरस, मधुरविपाकी, उष्णवीर्य, गुरु, श्लेष्मप्रशमन, उत्तम वातहर, कफवातहर एवं शोफ, कम्प, उदर, श्वास, कास, हिचकी, विष, ज्वर (बिषम) कफशूल तथा वातरक्त एवं वातशूल आदि सभी प्रकारके वात रोगोंको नष्ट करती है। रास्नामें स्निग्धत्व, उष्णत्व, अनुलोमकत्व अनायास सिद्ध होता है। शैत्यके निवारणके लिए इसका प्रलेप उत्तम है। पित्तमें इसका उपयोग नहीं हुआ है। (च०; सु०; भा० प्र०; शो० नि०)। चरक, सुश्रुत, वाग्भट और मेलसंहितामें आये इसके गुणप्रयोग सबन्धी समस्त विवरणोंको देखनेसे यह ज्ञात होता है कि रास्ना प्रलेपन, निरूहण, आस्थापन, लेखन, उत्तरबस्ति, उद्वर्तन, तैल, घृत, क्वाथ, चूर्ण, लेह, नस्य, अवसेचन, स्वेदन, यवागू, क्षीरपाक, परिषेचन इत्यादि कल्पनाओंमें व्यवहृत है और वातश्लेष्मप्रशमन, श्वास, कास, अपस्मार, श्वयथु, वातरोग, अपतानक, हृद्रोग, वातरक्त, योनिरोग, कफज रोग, शुक्रदौर्बल्य इत्यादि रोगोंमें रास्नाके उपयोग देखे जाते हैं। सूक्ष्म निरीक्षणसे ज्ञात होता है कि वात और कफप्रधान रोगोंमें रास्नाके विशेष उपयोग हुए हैं।

●

(५३०) रीठा

फ़ैमिली : सापींडासे (Family : Sapindaceae)

नाम—(हिं०; द०) रीठा, रीठी; (अ०), फ़ुन्दुक़े (फ़िन्दक़े) हिंदी, बुन्दुक़े (बन्दक़े) हिंदी; (फा०) फ़ुन्दुक़े फारसी; (सं०) अरिष्टक, फेनिल; (बं०; म०) रिठा; (क०) रेंट; (पं०) रेठा; (गु०) अरीठां; (को०) रिंगीण; (ले०) **सापींडुस् इमार्जीनाटुस् Sapindus emarginatus** Vahl. (पर्याय–*S. trifoliatus* auct. non. Linn.); (अं०) सोपनट (Soap nut)। वक्तव्य—लेटिन नाम रीठेके वृक्षका है। अंग्रेजी नाम फलका है। भारतीय भाषाओं के नाम इसको संस्कृत संज्ञा 'अरिष्टक' से व्युत्पन्न हैं। सस्कृत एवं अन्य भारतीय भाषाओंके नाम वृक्ष तथा फल दोनोंके लिए सामान्य हैं।

उत्पत्तिस्थान—दक्षिण भारतवर्ष तथा भारतवर्षके अन्य शुष्क बन। बंगालमें इसके पेड़ लगाए जाते हैं। उत्तर भारतमें होनेवाले रीठेको लेटिनमें **सापींडुस् मुकोरोस्सी (Sapindus mukorossi** Gaertn.) कहते हैं। इसके पेड़ जौनसार और पंजाबमें लगाए हुए मिलते हैं।

वर्णन—दक्षिणी रीठेके वृक्ष बड़े होते हैं। प्रत्येक संयुक्तदल (Compound leaf) में तीन-तीन पत्रक (Leaflets trifoliolate) होते हैं, जो लम्बे और नुकीले होते हैं। उत्तरी रीठेके बृक्ष देखनेमें तूनके सदृश मालूम होते हैं। पत्ती युग्मपक्षाकार, ३० सें०मी० से ५० सें०मी० (१२ से २० इंच) लम्बी; पत्रक ५–१० जोड़े, मालाकार, नोकदार, सरलधारवाले, चिकने तथा आगेके पत्रक क्रमशः छोटे होते हैं। पुष्प सफेद तथा दोनोंके फल एक तरहके, छालियाके बराबर, मांसल, गोल, एक बीजवाले होते हैं। छिलका झुर्रीदार, रंगत, कालाई लिए गदला पीला, तोड़नेपर अन्दरसे कँवलगटेके सदृश काला चिकना बीज और बीजको तोड़नेपर सफेद मग्ज निकलता है। ऊनी कपड़ा धोनेके लिए इसका उपयोग होता है। अधिकतया इसका छिलका औषधमें प्रयुक्त होता है।

रासायनिक संगठन—फलमें साबुन तत्व या सैपोनिन (Saponin) ११·५ प्रतिशत, द्राक्षशर्करा १० प्रतिशत और लबाब सरीखा पेक्टिन (Pectin) नामक कफघ्न पदार्थ; स्थूल दलों (Cotyledons)में ३० प्रतिशत सफेद चर्बी होती है।

कल्प तथा योग—**तिरियाक अफ्यून।**

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें **गरम और खुश्क**। आयुर्वेदीय मतसे उष्णवीर्य एवं स्निग्ध (रा०नि०)।

गुण-कर्म तथा उपयोग—बाहरी तौरपर लगानेसे रीठा लेखन, श्वयथुविलयन, शोणितोत्क्लेशक और संक्षोभजनन है। संक्षोभजनन होनेके कारण नाकमें नस्य करनेसे यह छींके लाता, और द्रवोंको शोषित करता है। फलवर्तिकी भाँति उपयोग करनेसे आर्तवप्रवर्तन करता और गर्भ एवं अपराका निर्हरण करता है। थोडी मात्रामें आंतरिक रूपसे खिलानेसे दीपन और वातानुलोमन है; और शीतल व्याधियोंमें लाभ करता है। किन्तु अधिक मात्रामें खिलानेसे वमन और विरेचन करता है। इसका कारण संभवतः यह है कि आमाशय और अन्त्रपर इसका संक्षोभजनन प्रभाव होता है। छीप वा झाँई तथा किलास आदि जैसे त्वचाके रोगोंके लिए लेपके रूपमें तथा सर्प एवं बृश्चिकविषके लिए भक्षणोय औषध रूपमें इसका विशेष रूपसे उपयोग किया जाता है। झाँई, व्यंग और किलास जैसे त्वचाके रोगोंमें रीठेको पोसकर लेप करते हैं। चेहरेका रंग निखारनेके लिए इसे उबटनमें मिलाकर उपयोग करते हैं। कण्ठमालापर इसे सिरकेमें पीसकर लेप करते हैं। अर्दित, अर्धावभेदक, अपस्मार और शीतल शिरःशूल निवारणके लिए इसको पानीमें पीसकर नस्य कराते हैं। इससे छींकें आती हैं, या छींकके बिना नासिकामें संक्षोभ होकर विपुल द्रव स्रवित होता है और रोग निवृत्त हो जाता है। रुद्धार्तवको नष्ट करने और मृत गर्भ एवं अपरानिर्हरणके लिए इसको जलमें पीसकर फलवर्ति बनाकर रखते हैं। रतौंधी और धुंधके लिए इसको जलमें

घिसकर नेत्रके भीतर लगाते हैं । सर्प और बृश्चिक दष्टके लिए यह अगद है । सर्प और बृश्चिक दष्टको ६ माशेके लगभग बारीक पीसकर जलमें मिलाकर दो-दो घण्टे बाद पिलानेसे छर्दि एवं अतिसार होकर सम्पूर्ण विष दूर हो जाता है । दष्ट अवयवपर पतला लेप भी करते हैं । कहते हैं कि रीठेका चूर्ण जलमें घोलकर गृहमें छिड़कनेसे सर्प भाग जाता है । वाजीकरणके लिए रीठेकी गुठलीका मग्ज खिलाया जाता है । **अहितकर**—उष्ण प्रकृतिके लिए । **निवारण**—तेल, विशेषतः बादामका तेल । **मात्रा**—१ ग्रामसे २ ग्राम (१ मासासे २ माशे) तक ।

आयुर्वेदीय मत—रीठा तिक्त, कटु, स्निग्ध, लघु, तीक्ष्ण, कटु विपाक, उष्णवीर्य, लेखन, गर्भपात करनेवाला तथा वात, कफ, कुष्ठ, कण्डू, विष और विस्फोटका नाश करनेवाला है । रीठेके पानीका नस्य देनेसे सिरका दर्द मिटता है तथा रीठेका जल पिलानेसे वमन होता है और वमनके द्वारा विष निकल जाता है (रा० नि०; नि० सं०) ।

नव्यमत—रीठेका गूदा, उष्ण, तिक्त, स्निग्ध, कफघ्न, वामक और वातहर है । बड़ी मात्रामें रेचन और वामक है । इसकी क्रिया इपीकाक्वाना और सेनेगा जैसी होती है । इससे शीघ्र वमन होता है और त्रास नहीं होता । इसका लेप वेदनास्थापन और शोथघ्न है । दमामें कफ निकालनेके लिए इसका वमन देते हैं । इससे कफ पतला होकर गिरता है और हृदयको शक्ति मिलती है । कफ रोगोंमें इसको अल्प मात्रामें ही देना चाहिए । दमा और आधासीसीमें इसके नस्यसे बड़ा लाभ होता है । अफीमके विषमें रीठेका पानी वमन करानेके लिए देते हैं । कुष्ठ, कण्डू, सन्धिशोथ, विस्फोटक और गण्डमालामें तथा बिच्छू, कनखजूरा (गोजर) और विषैली मक्खीके दंशमें रीठेका लेप किया जाता है ।

●

(५३१) रुदंती

फ़ैमिली : कॉन्वॉल्वुलासे (Family : Convolvulaceae)

नाम—(हिं०) रुद्रवन्ती, रुद्रंती; (सं०) रुदन्ती, चणकपत्री; (बं०) रुदन्ती; (म०) रुदन्ती, खरडी; (गु०) पडीयो, पलीयो; (सिं०; गु०; कच्छ) उंग; गुंण; (ले०) **क्रेस्सा क्रेटीका (Cressa cretica Linn.)** ।

उत्पत्तिस्थान—यह समस्त भारतवर्षके प्रायः उष्ण भागोंमें समुद्र तटके समीप मुलतान, सिंध, गुजरात, कारोमण्डलके किनारे और लंका आदिमें होती है । यह वर्षाके उपरांत खेतोंमें और प्रायः सख्त, आर्द्र और क्षारीय भूमिमें नदी-नालोंके समीप उत्पन्न होती है ।

वर्णन—यह एक वर्षायु, चनेके पौधेके सदृश क्षुद्र क्षुप है । पत्र पुष्कल, चनेके पत्रके समान, किन्तु उनसे छोटे, अण्डाकृति, अवृन्त, राखके रङ्गके; पुष्प क्षुद्र, सफेद या मोतिया रङ्ग या फीका गुलाबी रङ्गके और एकत्र पुष्कल पुष्प होते हैं । फल गोलाई लिए क्षुद्र होता है । रुचि तिक्त और खारी । इस बूटीसे सदा पानी-सा टपकता रहता है । अतएव इसके नीचेकी भूमि सदा भींगी और स्याह रहती है और तेलसे सनी हुई मालूम हुआ करती है ।

उपयुक्त अंग—पंचाङ्ग ।

रासायनिक संगठन—एक ईथरविलेय क्षारोद (ऐल्केलॉइड) ।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम और खुश्क ।

गुण-कर्म—यह शरीर एवं शरीरके प्रत्येक अंग-प्रत्यंगको शक्ति प्रदान करती है । उपयोग—रुद्रवंतीको छायेमें सुखाकर समप्रमाण मिश्रीके साथ या मधुमें मिलाकर शरीर बलवर्धन, वाजीकरण और असामयिक पलितको

रोकनेके लिए खिलाते हैं। इसके अतिरिक्त गर्भस्थापनके लिये भी इसका उपयोग करते हैं। संभवतः गर्भाशयको शक्ति देनेके कारण यह गर्भस्थापनमें सहायक होगी। अर्धप्रमाण त्रिफला, चौथाई प्रमाण त्रिकुटा और समप्रमाण मिश्रीके साथ चूर्ण बनाकर लगभग ७ माशे यह चूर्ण गोदुग्धके साथ समस्त शरीरकी वेदनाओं और शरीर वलवर्धनके लिए खिलाते हैं। अहितकर–किसी प्रत्यंगके लिए विशेष रूपसे अहिकर नहीं है। निवारण–गोघृत और ताजा दूध। **मात्रा**–३ ग्रामसे ५ ग्राम (३ माशेसे ५ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—हदंती कड़वी, चरपरी, उष्णवीर्य, रसायन, अग्निजनक, वीर्यवर्धक तथा क्षय, कृमि, पित्त, रक्तपित्त, कफ, श्वास और प्रमेहनाशक है (रा० नि०; राज०)।

•

(५३२) रेंड़

फ़ैमिली : एउफॉबिआसे (Family : Euphorbiaceae)

नाम—बीज (हिं०) अरंड, अरंडी, रेंड़ी; (अ०) खिर्वअ, बज़्रुल् खिर्वअ; (फा०) बेद अंजीर, तुख़्मे बेदअंजीर; (सं०) एरण्डबीज; (बं०) भेरेंड, भेरेंडा; (द०) यरण्डी; (म०) एरण्डी, एरण्डीच बीज; (गु०) एरण्डो, एरण्डियो; (अं०) कैस्टर सीड (Castor seed)। तेल (हिं०) अरण्ड (अरण्डी)का तेल, रेंड़ीका तेल; (अ०) दुह्नुल् खिर्बअ, दुह्न हब्बुल् खिर्वअ; (फा०) रोग़न बेदअंजीर; (सं०) एरण्डतैल; (अं०) भेरेंडा तेल; (म०) एरण्डेल तेल; (गु०) दीवास, एरण्डीनु तेल; (लै०) ओलेउम् रिसिनी (Oleum Ricini); (अं०) कैस्टर ऑइल (Castor Oil)। **वक्तव्य**—इसके पौधेको लेटिनमें रीसीनुस् कोम्मूनिस् (**Ricinus communis** L.) और अंग्रेजीमें कैसटर ऑयल प्लान्ट (Castor-oil plant) कहते हैं।

उत्पत्तिस्थान—यह अफरीकाका मूलवामी है; किन्तु समस्त भारतवर्ष विशेषतः बंगाल, बम्बई और उत्तरप्रदेश आदिमें विस्तृत परिमाणमें बोया जाता है।

वर्णन—एक प्रसिद्ध वृक्ष जिसके यह दो भेद हैं—(१) लाल और (२) सफेद। सफेदके पुनः ये दो अवांतर भेद होते हैं—(१) इसके बीज बड़े होते हैं। इसका तेल जलानेके काममें आता है। (२) इसके बीज छोटे होते हैं। इसका तेल औषधमें प्रयुक्त होता है। फलपर बारीक-बारीक और मुलायम काँटे लगे होते हैं। बीजको तोड़नेपर सफेद मग्ज निकलता है। इसे कोल्हूमें दबाकर तेल निकाला जाता है। यह गाढ़ा, सफेद या पिलाई लिये होता है।

उपयुक्त अंग—पत्र, बीज, बीजोत्थ तेल और मूल।

रासायनिक संगठन—बीजमें अन्यान्य तेलोंके विपरीत सुरासार विलेय एक अनुत्पत् तेल ४५%, प्रोभूजिद (Proteids) २० प्रतिशत, पिष्ट, लबाब, शर्करा और राख १० प्रतिशत। तेल ग्लीसरोलके रिसिनओलिएट या स्वल्प पामिटिन और स्टियरीन युक्त ट्राइ-रिसिन-ओलीइन का यौगिक है। रिसिन-ओलीइक एसिडके ग्लीसराइड्स प्रधानतः विरेचन कर्मके लिए उत्तरदायी हैं। मुखद्वारा उपयोग करनेसे तेल साबुनके रूपमें परिणत हो जाता और स्वतन्त्र अम्ल योग मुक्त हो जाता है। इसीके द्वारा उक्त कर्म निष्पन्न होता है। मग्जमें पाये जानेवाले तेलसे भिन्न बीजमें रिसिन (Ricin) नामक ऐल्ब्युमिनॉइड स्वभावका एक परम विषाक्त पदार्थ भी होता है। इसमें विरेचन गुण नहीं होता और न तेलमें यह किसी अंशमें पाया जाता है।

पत्र, बीज, मूलादि—

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम और खुश्क। आयुर्वेदीयमतसे उष्णवीर्य (सु०)।

गुण-कर्म—रेंड़ीकी गुद्दी (मग्ज तुख्म बेदंजीर) श्वयथुविलयन, शोथघ्न, वेदनास्थापन, लेखन, तीव्र विरेचन, कठोरताको मृदु करनेवाली, आर्तवजनन, उदरकृमिनिःसारक और सर्पदष्टका अगद है। रेंड़ीकी गुद्दीमें रेंड़ीके तेलकी अपेक्षया विरेचनीय शक्ति अधिक है। पत्र यद्यपि गुणकर्ममें निर्बल है, तथापि इसमें अगदगुण अधिक है। यह प्रधान रूपसे दुष्टदोष विरेचनीय और शोथविलयन है। उपयोग—पक्षवध, अर्दित, कम्पवात, कास, कृच्छ्रश्वास, शूल (कुलंज), जलोदर और आमवात आदि जैसे श्लेष्म रोगोंमें रेंड़ीकी गुद्दी खिलानेसे यह कफ और जलांशका निर्हरण करके उक्त रोगोंमें लाभ पहुँचाती है एवं नाड़ीदार्ढ्य तथा हर एक प्रकारकी कठिन सूजन उतारनेके लिए इसका बहिराभ्यंतरिक उपयोग करते हैं। लेखन, विलयन और संशमन होनेसे चर्मकील, व्यंग, कच्छू, वातरक्त और आमवात आदिमें इसका लेप किया जाता है। औदरीय पेशियोंकी कठोरतामें भेड़के दूधमें इसे खीरकी भाँति पकाकर बाँधनेसे पेशियाँ नरम हो जाती हैं। विलयन, श्वयथुविलयन और वेदनास्थापन होनेके कारण एरण्डपत्रको तेलसे चुपड़कर सुहाता गरम करके बाँधते हैं तथा स्तनशोथमें इसे सिरकेके साथ पीसकर लेप करते हैं और उनकी भुजिया बनाकर कण्ठशोथपर बाँधते हैं। सर्पदष्टका अगद होनेके कारण रेंड़की कोंपलको जलमें पीस-छानकर सर्पदष्ट रोगीको पिलाते हैं। इससे वमन-विरेचन होकर विष दूर हो जाता है। सीठीको सर्पदंशपर बाँधते हैं। उपर्युक्त विधिसे इसको बारंबार पिलानेसे बछनाग और अहिफेनका विष भी वमन-विरेचनके द्वारा दूर हो जाता है। पत्र आघात प्रतिघात और दर्दके लिए लाभकारी है। अहितकर—आमाशयके लिए। निवारण—कतीरा और मस्तगी। प्रतिनिधि—जमालगोटा। मात्रा—रेंड़ीकी गुद्दी ३ दानेसे ५ दाने तक और पत्र ७ ग्रामसे १२ ग्राम (७ माशेसे १ तोले) तक।

तेल (रोग़न बेदंजीर)—

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम और खुश्क। आयुर्वेदमतसे उष्णवीर्य (सु०)।

गुणकर्म—विरेचन, कफनिर्हरणकर्ता, विलयन, शोथघ्न, वेदनास्थापन, कठोरताको मृदुकरनेवाला, उदरकृमिनाशन एवं निर्हरणकर्ता, अन्त्रमृदुकर तथा अन्त्रको फिसलानेवाला है। अधिकतया पेचिस, मलावरोध और शूलके लिए विशेष रूपसे प्रयुक्त किया जाता है। उपयोग—प्रत्येक आयु एवं अवस्थामें रेंडीका तेल एक उत्कृष्ट विरेचन औषध है। मलभूत एवं वायुजन्य शूल, मलवद्धता और अन्य कफज रोगोंमें इसका विरेचन दिया जाता है। इसके अतिरिक्त इसकी बस्तिभी देते हैं। प्रवाहिकामें किंचित् अफीम या गोंदके पानीके साथ पिलानेसे एक-दो दस्त होकर पेचिस दूर हो जाती है। उदरकृमिनाशन और निर्हरणके लिए भी इसे पिलाया जाता है। नेत्रमें चूना पड़नेसे जो दाह एवं कष्ट होता है, नेत्रके भीतर डालनेसे यह उसको शमन करता है। दृष्टिदौर्बल्य और प्रारंभिक मोतियाबिंदमें भी इसे नेत्रमें डालनेसे उपकार होता है। विलयन, शोफघ्न और वेदनास्थापन होनेसे आमवातज तथा अन्यान्य वेदनाओंमें इसकी मालिश करते हैं। कठोरता पर मालिश करनेसे यह उनको नरम बनाता है। अहितकर—आकुलताकारक है। निवारण—दूध। प्रतिनिधि—अन्त्र मृदुकरणमें कोई उत्तम प्रतिनिधि नहीं है। मात्रा—२ तोलेसे ५ ताले तक।

आयुर्वेदीय मत—एरण्ड मधुर, गुरु, उष्णवीर्य, भेदन, स्वेदोपग, अंगमर्दप्रशमन, अधोभागहर, वातसंशमन, वृष्य, मार्गशोधन तथा कफ, पित्त, वात, श्वास, कास, ब्रध्न, अश्मरी, गुल्म, प्लीहारोग, उदर, आनाह, कटि-बस्ति और सिरका पीडा, प्रमेह, ज्वर, आमवात, रक्तविकार, शूल और शोथको दूरकरनेवाला है। (च० सू० अ० ४; सु० सू० अ० ३८ व ४६; कै० नि०)। एरंडपत्रका शाक तिक्त, मधुर, उष्णवीर्य, वातप्रशमन और मलको पतला करनेवाला है। (च० सू० अ० २७)। एरंडतैल मधुर, कटुकषायानुरस, मधुरविपाक, उष्णवीर्य, तीक्ष्ण, सूक्ष्म, स्रोतोविशोधन, त्वच्य, वाजीकर, वयःस्थापन, मेधा-आरोग्यकान्ति और बलको बढ़ानेवाला, योनि (गर्भाशय) और शुक्रशोधन, गुरु, कफवर्धक, अधोभाग-दोषहर तथा वातरक्त, गुल्म, हृद्रोग और जीर्ण ज्वरको दूर करने वाला है। (च० सू० अ० २७; सु० सू० अ० ४५)। एरंडकी जड़ वृष्य एवं वातहर है (च० सू० अ० २५)।

नव्यमत—एरण्डतैल सौम्य, स्रंसन, स्तन्यजनन, दाहशामक और वातहर है; एरण्डमूल वातहर है। दो-चार ड्राम एरण्डतैल रातको सोते समय देनेसे सबेरे साधारण पतले पीले रंगके एक-दो दस्त होते हैं। एरण्डतैलसे आँतोंकी श्लेष्मल त्वचा मृदु होती है और उससे मलकी गांठें (सुद्दे) नीचे आती हैं। इस प्रकार मलको नीचे सरकानेवाले द्रव्योंको संस्रंन (सारक, आनुलोमिक) कहते हैं। सबेरे खाली पेट अदरकके रसके अनुपानसे एरण्डतैल देना चाहिए। एक ड्रामकी मात्रामें प्रतिदिन रातको सोते समय एरण्ड तैल लेनेसे पुराना कब्ज दूर होता है, और अर्शमें तथा गुदामें पड़े हुए चीरेमें लाभ होता है। बड़ी आँतके सिरेपर एक अवशिष्ट भाग रहता है, उसमें कभी-कभी शोथ होता है, इससे पेड़ूमें दाहिने ओर दर्द होता है, वमन होते हैं, ज्वर आता है, नाड़ी त्वरित चलती (द्रुतगामिनी) है और बारीक होती है; इस रोग (एपेन्डिसाइटिस या अन्त्रपुच्छाशोथ)में प्रारंभसे ही एरण्ड तैल देते रहनेसे शस्त्रक्रियाकी आवश्यकता नहीं पड़ती। इसमें एरण्डतैल पीनेको देनेके साथ हींगमिश्रित जल और एरण्ड तैलकी बस्ति देना चाहिए। इस व्याधिमें बहुत पीड़ा होती है। इसको दबानेके लिए अफीम नहीं देना चाहिये, खुरासानी अजवायन दे सकते हैं। कटिशूल, गृध्रसी, पार्श्वशूल, हृदयशूल, आमवात और संधिशोथमें एरण्डमूल और सोंठका काढ़ा प्रातः-सायंकाल और रात्रिमें सोते समय एरण्ड तैल और थोड़ा शिलाजीत मिलाकर देते हैं और पीड़ित स्थानपर एरण्ड तैलकी मालिश करते हैं। स्तनपर एरण्ड तैल लगाकर एरण्ड पत्र बांधनेसे स्तनशोथ उतरता है और दूधकी राशि बढ़ती है।

●

(५३३) बघरेंड

फ़ैमिली : एउफॉर्बिआसे (Family : Euphorbiaceae)

नाम—(हिं०) बघरेंड, बाघरेंड(ड़ा), बाघभेरंड; (म०) मोगलाई एरण्ड; (बं०) बागभेरंड; (सं०) व्याघ्रैरण्ड (नवीन); (ले०) जाट्रोफ़ा कुर्कास (**Jatropha curcas** L.); (अं०) फिजिक नट (Physic Nut)।

उत्पत्तिस्थान—अमेरिकाका मूल निवासी है। भारतवर्षमें इसके वृक्ष लगाये हुए मिलते हैं। अब यहाँ फैल रहा है।

वर्णन—इसके वृक्ष एवं पत्र रेंडके समान किन्तु उससे छोटे ३ से ६ मीटर (१०–२० फुट) ऊँचे, होते हैं। फल उसके समान गुच्छोंमें नहीं लगते, गोल और किसी भाँति लंबे होते हैं तथा इनके भीतर सफेद मग्ज होता है। इसके पत्तोंको तोड़नेसे सफेद लेसदार द्रव निकलता है। इसीको दूसरी जाति जाट्रोफा गॉस्सीपीफ़ोलिआ (J. gossypifolia L.) है, जिसे लाल व्याघ्रैरण्ड कह सकते हैं। सड़कोंके किनारे तथा ऊसर भूमिमें उगी हुई मिलती है। इसके पौधे ०·९ से १·८ मीटर (३–६ फुट) ऊँचे, पत्तियाँ ३–५ खण्डित तथा पुष्प लाल होते हैं। पत्रतट, पर्णनाल और उपपत्रोंके ऊपर श्लेष्मोत्पादक ग्रंथियाँ रोगोंके रूपमें रहती हैं, जिससे यह पौधा स्पर्शमें चिपचिपा होता है।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें गरम एवं खुश्क (रूक्ष)।

गुण-कर्म तथा उपयोग—वमन एवं स्वापजनन (मुखद्दिर)। व्रणरोपण इसका प्रधान कर्म है। इससे बीजका भाग मग्ज धतूरके समान विषैला एवं स्वापजनन (मुखद्दिर) है। इसके सेवनसे बहुत वमन होता है। वृक्षका सफेद लेसदार द्रव सद्यः व्रण अर्थात् क्षतका संधान एवं रोपण करनेके लिए तथा खाज, पामा और दद्रुके लिये अत्यन्त गुणकारक है। फूले हुए मसूढ़ोंमें इसकी टहनियोंका दातून गुणकारी है। इसकी पत्तियोंका काढ़ा और स्तनोंके ऊपर इसका लेप स्तन्यजनन और रक्तिमोत्पादक (Rubefacient) है। इसका क्षुप मछलियोंके लिये विषवत् है। निवारण–गुलरोगन और शहद। प्रतिनिधि–बरगदके नये पत्ते। मात्रा–आंतरिक प्रयोगमें नहीं आता।

●

(५३४) रेवंदचीनी

फ़ैमिली : पोलीगोनासे ((Family : Polygonaceae)

नाम—(हिं) रेबंदचीनी, रेबंचीनी; (Gr.) Pa; (अ०) अल्‌राबंदुस्सीनी, रावंद, रकूबत यमानिया; (फा०) रेबंद; (द०) रेवनचीनी; (बं०) रेवन, (रेउ) चिनी; (गु०) रेवनचीनी, रेवन्दचीनी; (म०; ते०) रेवलचीन्नी; (बम्ब०) लकड़ी रेवंचीनी; (पं०) रेवंदचीनी रियोंदचीनी; (का०) पम्बचांलन; (ले०) र्‌हेउम्‌ (Rheum), र्‌हेई राडिक्स (Rhei radix); (अं०) र्‌हुबार्ब (Rhubarb), र्‌हुबार्बरूट (Rhubarb root)।

वक्तव्य—इब्नुल्बैतार 'अल्‌-रावंद' विषयक अपने विस्तृत लेखमें इब्नेजामीको उद्‌धृत करते हुए कहते हैं, कि उनके समयमें इस संज्ञाका व्यवहार ४ विभिन्न प्रकारके रावंदके अर्थमें होता था, यथा–चीनी, ऐबीसीनियन, पारस्य (फारसी) और तुर्की, जिनमेंसे केवल प्रथम दोका व्यवहार प्राचीनों द्वारा होता था। किसी-किसीने इसे ही रेबां(वा)स या रांबा(वा)स या रेवाज समझा है। उनके मतसे रेवंदचीनी इसीकी जड़ है। परन्तु रे(रां)बास वस्तुतः रेवंदचीनीकी एक अन्य छोटी जातिकी लता है, जिसे लेटिनमें र्‌हेउम्‌ रीबेस (**Rheum ribes**) कहते हैं। यह कश्मीरमें होती है। रेवंद फारसी नाम है। यह फारस एवं अरब आदि देशोंमें चीनी और खता (खोताना) से जाती थी, इसलिए हकीमोंने इसका नाम रेवंदचीनी या रेवंदखताई रखा। र्‌हेउम आफ्फ़ीसिनाले **Rheum officinale** Baill.) अर्थात् अंगरेजी या र्‌हेउम्‌ पाल्माटुम (**Rheum Palmatum** L.) अर्थात् चीनी रेवंद अथवा इसी प्रकारके अन्य पौधोंका मूल है जिसकी छाल उतारकर सुखा लेते हैं। इनके पौधे तिब्बतके दक्षिण पूर्व और चीनके उत्तर पश्चिम भागोंमे होते हैं। बाजारमें इसकी सूखी जड़ और लकड़ी रेवंदचीनीके नामसे बिकती हैं और औषधके काम आती है। यह चीनसे फारस होकर यहाँ लायी जाती है। 'भारतीय रेवंद (**Rheum emodi** Wall.) जिसे गढ़वालमें आर्चा, डोलु (कु०) और मद्‌म(दम)चाल (नैपा०) कहते हैं, हिमालयमें तथा कश्मीर, नेपाल, भूटान और सिक्किमके पहाड़ोंमें ४,००० से १२,००० फुटकी ऊँचाईपर होती है। कश्मीरसे सिक्किम तक हिमालयके जिन प्रदेशोंमें बर्फ पड़ती है, वहाँ रेवंदका एक और उपजाति र्‌हेउम नोबीले (**Rheum nobile** Hook.) होती है। इसकी पत्ती और टहनियाँ खट्टी होती हैं। कहते हैं कि बाजारू गुच्छाकार अम्लवेतस इसीकी टहनियाँ हैं, जिन्हें वेणीकी तरह गूँथकर अमलबेदके नामसे बेचते हैं। इसकी एक छोटी जाति और कश्मीरमें होती है जिसे रेबा(वा)स या रेवाज़ कहते हैं। लेटिनमें इसको र्‌हेउम्‌ रीबेस (**Rheum ribes**) कहते हैं। हिन्तुस्तानी रेवंद चीनीकी अपेक्षया अधिक काली (कालाई लिये पीली) और रचनामें स्थूल होती है। यह न तो छिली हुई होती है और न इसमें वैसी महक होती है। इसका चूर्ण भूरापन लिए पीला होता है। इसलिए यह चीनी जैसी उत्तम नहीं समझी जाती। फिर भी पंजाबके कांगड़ा जिलेसे देशी औषधोंके व्यवहारके लिए यह काफी प्रमाणमें प्रतिवर्ष लाई जाती है।

उत्पत्तिस्थान—उपर्युक्त व्यापारिक रेवंद जो इसका उत्कृष्ट भेद है और जिसे चीनी, रूसी और पूर्व-भारतीय रेवंद कहते हैं चीन एवं यूरोप से आता है।

इतिहास—प्रतीत होता है कि ईसवी सन्‌-से २७०० वर्ष पूर्व चीनवासियोंको 'रावंद'का ज्ञात था। प्राचीन यूनानी चिकित्साविद् यथा दीसक़ूरीदूस आदिने 'र्‌हा' जिसको मख़्ज़न एवं मुहीतमें 'राऽआ' लिखा है और र्‌हीअीन' जिससे र्‌हेउम्‌ (Rheum) संज्ञा ब्युत्पन्न है और जिसको मुहीत आदिमें रायून लिखा है, के नामसे 'रावंद'का उल्लेख किया है। रेवास (रेवाज-रेवाज)के नामसे प्राचीन ईरानवासियोंको भी यह औषधि ज्ञात थी। सुतरां अद्यावधि ईरानके जीलान प्रांतमें एक प्रकारकी रेवंदको 'रेवास' कहते हैं। इब्नसीना (जीवनकाल सन् ९७८ ई०)ने रेवास और रावंद उभय प्रकारके उद्‌भिज्जोंका उल्लेख किया है। इब्न मासविया (मृत्यु सन् १०१५ ई०)ने 'रेवंद-

चीनी' और रेवंदखताईमें अन्तर किया । पिंजिश्किनामाके संकलयिता जनाव नाजिमुल्अतिब्बाके कथनानुसार प्राचीन कालमें बर्बरी लोग रेवंदकी नकल किया करते थे, अतएव इसका लेटिन नाम र्‌हा वार्बारुम् **Rha barbarum**) अर्थात् 'बर्बरीरेवंद' पड़ गया और ऊहापोह करनेसे फारसी संज्ञा 'रेवंद'का भी यही अर्थ ज्ञात होता है । कारण 'रा'का अर्थ 'रेशा (जड़)' और 'वंद'का अर्थ बर्बरी (उजाड़खण्डमें रहनेवाला) है । मानो र्‌हुबार्ब और रावंद नाम पड़नेका कारण एक ही है ।

संज्ञा विवरण—प्राचीन यूनानी चिकित्साविदोंने 'र्‌हा **Rha**'के नामसे रावंदका उल्लेख किया है । 'र्‌हा' जिसको अधुना वोल्गा (Volga) कहते हैं, यूरूपीय रूसमें एक २२०० मील लम्बी नदी है । रेवंदकी वेल इसके कूलोंपर पुष्कल उत्पन्न होती थी, अतएक उक्त नामसे अभिधानित हुई ।

'र्‌हुबार्ब' जिसका उच्चारण 'रुबर्ब' भी कहते हैं, र्‌हा बार्बेरुम् (**Rha barberum**)से, जिसका अर्थ 'बर्बरी तंतु' है, व्युत्पन्न है । कतिपय अन्वेषकोंका विचार है कि प्राचीनकालमें उत्तरी चीनसे बोखारामें रेवंद लाई जाती थी और वहांसे यह कदाचित् कालासागरके रास्ते यूरूपमें जाती थी अथवा सिंधु नदीके मार्गसे प्राचीन बंदर बार्बरीक पर पहुँचती थी; अस्तु, जो रेवंद कालासागरके रास्ते पहुँचती थी, वह र्‌हा पॉन्टिकुम (**Rha ponticum**) कहलाती थी; क्योंकि (पान्टिकुम्‌का अर्थ कालासागर है) और जो बार्बरीक वंदरपर पहुँचती थी उसको र्‌हाबार्बारुम् (**Rha barbarum**) अर्थात् 'रावंदबर्बरी' कहते थे । अस्तु, र हुबार्ब (**Rhubarb**) संज्ञा इसी र्‌हाबार्बारुम् (**Rhabarbarum**)का परिवर्तित रूप है । और हाजां जीनुल्‌अत्तार रेवंदको 'रेबास' ही मानता है । मिन्हाजके संकलयिता इब्नजज़्ला कहता है कि रेवंद दो प्रकारकी होती है—एक चीनी और दूसरी खुरासानी । सुतरां उत्तरकथितको रेवंददवाब कहते हैं । इस प्रकारकी रेवंदका उपयोग पशु-चिकित्सामें होता है; और रेवंदचीनीका मानुषी-चिकित्सामें । मख़्ज़नुल्‌अद्‌वियाके संकलनकर्ता हकीम मुहम्मद हुसेन 'जो स्वयं खुरासानका राजा है', रेवासके वर्णनमें इसकी जड़को 'रावंद (रेवंद)' लिखता है (दे० मख्जनुल्अद्‌विया वर्णन 'रावंद' और 'रेबास') । अबुरेहान भी रेबासकी जड़को रावंद कहता है । इसलामी चिकित्साशास्त्रियोंने रावंदके गुणकर्म वर्णन करनेमें जालीनूस, पॉलूस (Paulos), राजी, इब्नसीना और मसीहीका अनुकरण किया है । प्राचीन आर्य वैद्योंने इस औषधिका वर्णन नहीं किया । अलबत्ता उत्तरकालीनोंने इसलामी और यूरोपीय चिकित्साचार्योंसे इसके गुणकर्म ज्ञात किये ।

वर्णन—यह एक जड़ है, जिसके छिलका उतारे हुए लम्बे और गोल टुकड़े या गोपुच्छाकार या सिलिंड्रिकाकृतिके बेडौल या एक तरफसे चपटे और दूसरी ओरसे उन्नतोदर टुकड़े होते हैं, जिनपर पीले रंगका चूर्ण छिड़का हुआ होता है । बाहरी सतह साफ या किसी कदर झुर्रीदार जिस पर भूरे, लाल या पीले रंगकी रेखाएँ और तारोंके सदृश बिन्दु होते हैं । प्रायः टुकड़ोंमें छिद्र होते हैं, क्योंकि वे डोरीमें पिरोकर सुखाये हुए होते हैं । ये टुकड़े सख्त होते हैं और तोड़नेपर टेढ़े टूटते हैं । गंध विशेष प्रकारकी तीक्ष्ण; स्वाद किसी कदर कषाय एवं तिक्त (कुस्वाद) मुखमें चबानेसे दाँतोंमें कुरकुराहट प्रतीत होती है और थूक पीला हो जाता है । इसमें १ वर्ष तक वीर्य रहता है । इसे ममीरेके साथ रखना चाहिये । रेवंदचीनीका रस निकालकर इतना पकायें कि गाढ़ा हो जाय । इसे रेवंदचीनीका शीरा (उसारा) कहते हैं । यह एक साल तक ठीक रहता है ।

रासायनिक संगठन—विश्लेषण करने पर इसमें निम्न उपादान पाये जाते हैं । (१) क्राइसेरोबीन (Chrysarobin) जिसको र्‌हीईन (Rhein) (जौहर रेवंद) और क्राइसोफेन भी कहते हैं । यह सत्व इसका प्रधान उपादान है । इसकी रंगत और विरेचन कर्म इसी सत्वके आश्रयभूत है; (२) क्राइशोफैनिक एसिड जो ताजी जड़में नहीं पाई जाती प्रत्युत सुखानेमें क्राइसेरोबिन ऑक्सीजनको अभिशोषित करके क्राइसोफैनिक एसिड में परिणत हो जाता है; (३) इमोडिन (Emodin); (४) र्‌हीओ टैनिक-एसिड; (५) ऑक्ज़ेलेट ऑफ लाइम ३५ प्रतिशत । रेवंदको चबानेसे दाँतोंमें कुरकुराहट इसी उपादानके कारण होती है; (६) अन्यान्य उपादान, जैसे—र्‌ह्युमिक ऐसिड, राल, पिष्ट (स्टार्च) प्रभृति उपादान होते हैं ।

प्रकृति—संमिश्रवीर्य, क्योंकि विरेक लाती है और कब्ज भी पैदा करती है ।

गुण-कर्म तथा उपयोग—बहिः प्रयोगसे रेवंदचीनी लेखन, संक्षोभजनन, विलयन और वेदनास्थापन कर्म करती तथा आंतरिक प्रयोगसे फुफ्फुसोंसे कफ निर्हरण करती, अल्प प्रमाणमें खिलानेसे अन्त्रामाशयको शक्ति देती, वायुका उत्सर्ग करती, कब्ज उत्पन्न करती और सम्पूर्ण शरीरको शक्ति प्रदान करती है। किन्तु अधिक प्रमाणमें उपयोग करनेसे पीले रंगके पतले विरेक लाती और अन्तमें कब्ज करती है। यकृत्पर इसका बल्य एवं उत्तेजक प्रभाव होता है। इसके अतिरिक्त यह मूत्र एवं आर्तवका प्रवर्तन करती है। यह प्रधानतः पिच्छिल दोष-विरेचनीय है। झाईं, न्यच्छ(नमश), दद्रु और त्वचाके दाग-धब्बोंको नष्ट करनेके लिए इसको सिरकामें पीसकर लेप करते हैं। कतिपय बहिराभ्यंतरिक अंगोंकी सूजन उतारनेके लिए भी इसका लेप करते हैं। कास, श्वास और रक्तष्ठीवनमें इसका उपयोग कराते हैं। अन्त्रामाशयदौर्बल्य और उदरानाहको दूर करने तथा अतिसार बंद करनेके लिए इसे अल्प प्रमाणमें खिलाते हैं। कामला, जलोदर, यकृच्छोथ, प्लीहाशोथ और चतुर्थक ज्वरमें विभिन्न प्रकारसे इसका उपयोग करते हैं। अजीर्णजन्य अतिसारमें इसे अधिक प्रमाणमें उपयोग करनेसे प्रथम खुलकर विरेक आ जाते हैं और तदुपरान्त कब्ज हो जाता है। बद्धमूत्रार्तवको नष्ट करने तथा बस्तिवृक्कशूल निवारणके लिए इसका चूर्ण या काढ़ा सेवन करते हैं। **अहितकर**—निर्बल व्यक्तियोंको इसका विरेचन अहितकर है। **निवारण**—बबूलका गोंद, कतीरा, बिहीदानेका लबाब आदि। **प्रतिनिधि**—आमाशय और यकृत्के रोगोंके लिए गुलाबका फूल। **मात्रा**—क़ब्ज आदिके लिए १२० मि० ग्रा०से ३६० मि० ग्रा० (१ रत्तीसे ३ रत्ती) तक। विरेचनके लिए १·५ ग्रामसे २ ग्राम (१½ माशेसे २ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—रेवतचीनी (रेवंद चीनी) चरपरी, कड़वी, बलकारक, मृदुरेची तथा अजीर्ण, अतिसार, मंदाग्नि, अरुचि, विबंध, शीतपित्त और दुष्ट व्रणको दूर करनेवाली है (शा०नि०भू०)।

नव्यमत—रेवंदचीनी तिक्त, दीपन, अल्प (१-५ रत्ती) मात्रामें ग्राही यकृत् उत्तेजक और सारक है; बड़ी (७½-१५ रत्ती) मात्रामें रेचक है। थोड़ी मात्रामें देनेसे लालारस और आमाशयरस बढ़ता है, भूख लगती है, अन्न पचता है और यकृतको उत्तेजन मिलनेसे पित्तका उद्रेक ठीक होता है। छोटी मात्रामें देनेसे इसका गुण स्पष्ट देखनेमें आता है। बड़ी मात्रामें देनेसे विरेक् होते हैं। इससे बड़ी आँतोंकी गति बढ़कर छः-आठ घण्टोंमें विरेचन होने लगता है और पेटमें मरोड़ होते हैं, विरेचन होनेके पश्चात् इसकी ग्राही क्रिया आरम्भ होती है और विरेक अपनेआप बन्द हो जाता है। इससे मूत्रका रंग गाढ़ा (लाल) होता है। वातरक्त रोगीको विरेचनके लिए रेवंद-चीनी प्रशस्त औषध है। अर्शके रोगीको रेवंदचीनीके विरेचनसे लाभ होता है। छोटे बच्चोंको पेटमें दूध न पचकर सड़नेसे और अम्लता बढ़नेसे दस्त होते हैं। उक्त अवस्थामें रेवंदचीनो देनेसे सड़ा हुआ दूध विरेक द्वारा निकल जाता है, अम्लता कम हो जाती है और विरेक अपनेआप बन्द हो जाते हैं। प्रथम विरेक लाकर, पीछेसे कब्ज करनेवाले दो औषध द्रव्य हैं—एक एरण्डतैल और दूसरा रेवंदचीनी। परन्तु एरण्डतैल क्षारस्वभावी न होनेसे उससे पेटकी अम्लता नष्ट नहीं होती और रेवंदचीनीसे अम्लता नष्ट होती है। रेवंदचीनीका क्षारस्वभाव अल्प है, इसलिए इसके साथ थोड़ा शुद्ध सर्जिका क्षार (सोडा-बाई-कार्ब०) मिलाना चाहिए। रेवंदचीनीसे पेटमें मरोड़ होती है, इसलिए इसके साथ सोंठ (और सौंफ) जैसे सुगंधित द्रव्य मिलाने चाहिए। इसे जलमें पीसकर सूजनपर लगानेसे सूजन उतरती है।

रेबास या रेवाज—

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें सर्द एवं खुश्क।

गुण-कर्म तथा उपयोग—संशमन, तारल्यजनन (तल्तीफ़), शोधन (तस्फ़िया) और प्रतिविषघ्न इसके प्रधान कर्म हैं। उन्माद, विराग, दाह, ज्वरोंकी तीव्रता, पित्तज वमन एवं अतिसार, अर्श कामला और प्लेगजन्य विषमयताको इसका शर्बत नष्ट करता है (मु०आ०)।

(५३५) लटकू, लखोट

नाम—(हिं०) लटकू, लखोट।

उत्पत्तिस्थान—इसके वृक्ष बंगालमें पुष्कल होते हैं।

वर्णन—आलूबोखारेके इतने बड़े कँटीले एक वृक्षका फल, जो छोटे आलूबोखारेके बराबर होता है। इसका रंग सफेदी लिए पीला और स्वाद कच्चेपर खट्टा तथा पकनेपर खटमिट्ठा हो जाता है। कतिपय फलोंके भीतरसे तीन और कतिपयके भीतरसे चार दाने निकलते हैं, जो शरीफाके दानेके समान होते हैं। इन दानोंके खानों (जोफ)-से पीले रंगके नरम, लुआबदार बीज निकलते हैं। फल गुच्छोंमें लगते हैं।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें सर्द एवं तर।

गुण-कर्म तथा उपयोग—प्रधानतया रक्तोद्वेग और पित्तकी तीक्ष्णता (पित्तप्रकोप)को शमन करता, प्यासकी उग्रताको शान्त करता और वमन एवं उत्क्लेशको नष्ट करता है। यह अन्य फलोंकी भाँति खाया जाता है। पित्त प्रकृतिवालोंके लिए और पैत्तिक रोगोंमें लाभकारी है। इसका रस निकालकर शर्बत बनाया जाता है, जो गर्मीके ऋतुमें प्यास बुझाने और शरीरका उत्ताप शमन करनेके लिए उपयोगमें लाया जाता है। अहितकर—पित्त प्रकृतिको। निवारण—कालीमिर्च और लवण।

(५३६) लटूकरी

फ़ैमिली : रानुन्कुलासे (Family : Ranunculaceae)

नाम—(हिं०) लटूक(प)री, देवकाँडर, कड़री, जलधनियाँ, लटपुरिया; (यू०) बट्राखिओन Batrakhion; (अ०) कबीकज, कफ़ुस्सबअ; (फा०) मूषक, करफ़्स दश्ती; (सं०) कांडीर (ध०नि०); (लें०) रानुन्कुलाटुस स्क्लेराटुस (**Ranunculatus scleratus** L.); (अं०) वॉटर सेलरी (Water Celery)। वक्तव्य—इसके पौधे प्राय: आर्द्र एवं दलदली भूमिमें जलस्रोतके किनारोंपर होते हैं, तथा आपातत: देखनेमें हरा धनियाँके पौधों जैसे लगते हैं, जिससे इसको "जलधनियाँ" कहने लगे। किन्तु स्मरण रखना चाहिए कि, गुणकर्ममें धनियाँसे इसका कोई सम्बन्ध नहीं है। हिन्दी नाम "कड़री" सम्भवत: संस्कृत "कांडीर" या संस्कृत "कांडोर" सम्भवत: इसके बोलचालकी भाषाके नाम "कड़री"पर आधारित प्रतीत हाता है। फारसी नाम "करफ़्स दश्ती" एवं अंग्रेजी "वॉटर सेलरो"में भी इस कल्पनाके अनुसरणको झलक मिलती है।

उत्पत्तिस्थान—उत्तर भारतवर्ष और बंगालमें नदियोंके किनारे, पेशावरके दलदली भागों और हिमालयकी गरम घाटियों, सिंध, बजोरिस्तान और श्याम आदि स्थानोंमें उत्पन्न होती है।

वर्णन—यह एक मसृण, ४५ सें० मी० (आध गज) तक ऊँचा वार्षिक क्षुद्र क्षुप है, जो साधारणतया नदियोंके किनारे ग्रीष्म ऋतुमें उत्पन्न होता है। पत्र धनियेके पत्रकी भाँति कटावदार तथा फूल पीला और फल पिप्पलीकी भाँति होता है। इसके पत्र और टहनियोंमें राईकी-सी झाल होती है।

उपयुक्त अंग—समस्त क्षुप।

रासायनिक संगठन—इसके समस्त पौधामें उग्र वीर्यवान् सत्व होता है।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें गरम और खुश्क।

गुण-कर्म तथा उपयोग—बिस्फोटजनन। यह उभरी हुई गिलटी बैठानेकी अच्छी दवा है। अचार भी इसका पड़ता है। हस्तमैथुनीके शिश्नपर इसका लेप किया जाता है जिससे बिस्फोट उत्पन्न होकर मलिन द्रव उत्सर्गित हो जाता है तथा इन्द्रीकी उत्तेजना एवं शक्ति प्राप्त होती है। विस्फोटजनन औषधकी भाँति दद्रु, किलास, स्वाप (सुन्नबहरी) और आमवातमें भी इसका उपयोग करते हैं। प्लेगके प्रकोप कालमें कतिपय हकीम इसको कलाईपर बाँधते हैं। इससे विस्फोट उत्पन्न होकर असली गिलटीका जोर कम हो जाता है। कहते हैं कि फीलपाँवकी सूजनपर इसका लेप गुणकरी है।

●

(५३७, ५३८) लटोरा, लिटोरा (लिसोड़ा)

फ़ैमिली : बोराजिनासे (Family : Boraginaceae)

नाम—(१) बड़ा (हिं०) लसोड़ा, लिसोड़ा, लसोरा, लिसोरा, लसोढ़ा, लिसोढ़ा, लटोरा, लिटोरा, लसूड़ा, लभेड़ा, लभेरा, व्योहार (मीरजापुर); (अ०) मुख़ीता (इ०बै० ३/४), दिब्क़, सफ़िस्ताँ, अत्बाउल्कलबा, मोख़ातए कबीर; (फा०) सपिस्ताने कलाँ, सपिस्ताँ, सपिस्तान; (सं०) बहुवार, श्लेष्मान्तक, श्लेष्मातक, कर्बुदार, शेलु; (बं०) बहुवार; (पं०) लसूडा; (मा०) बड़गूंदा, ल्हेसवा; (म०) मोंकर; (गु०) बड़गूँदा, गूँदा; (सिंध) लेसूडो; (ले०) कॉर्डिआ आब्लीकुआ (**Cordia obliqua** Willd.); (अं०) लार्ज सेबेस्टन प्लम (Large Sebestan Plum)। (२) छोटा (हिं०) छोटा लिसोड़ा, लटोरा, गोंदनी, गोंदी; (अ०) सबिस्ताँ (इ०बै०), मोख़ात, मोख़ीत; (फा०) सपि-(बि)स्ताँ, सगपिस्ताँ, सपिस्ताने ख़ुर्द; (सं०) भूशेलु, भूकर्बुदार, श्लेष्मातक; (गु०) गूंदी; (द०) गोंदनी; (ले०) कॉर्डिआ मीक्सा (**Cordia myxa** L.); (अं०) स्माल सेबेस्टन प्लम (Small Sebestan plum)। वक्तव्य—'**सपिस्ताँ**' फारसी '**सगपिस्ताँ**' (सग = सगेभादा अर्थात् कुतिया; पिस्तान = चूचुक) का संक्षिप्त रूप है। लिसोढ़ेके फलोंकी रूप-रेखा बहुत-कुछ कुतियाके चूचुककी रूप-रेखासे मिलती-जुलती है, अतएव यह स्वरूपवाचक अन्वर्थ संज्ञा है। '**सफ़िस्ताँ**' फ़ारसी 'सपिस्ताँ'से अरबी बनाया गया है। अरबी संज्ञा '**अत्बाउल्-कल्बा**'का अर्थ भी (अत्बा = पिस्तान; कल्बा = कुतिया अर्थात् 'कुतिया चूचुक' (सगपिस्ताँ) है। मीरजापुरके जंगलोंमें स्थानिक लोग इसे '**व्योहार**' कहते हैं, जो संस्कृत संज्ञा बहुवार' से मिलता-जुलता है। संस्कृत संज्ञाएँ 'श्लेष्मान्तक' एवं 'श्लेष्मातक 'गुणवाचक' हैं, जो लसोढ़ेके कफनिस्सारक कर्मपर आधारित हैं। लेटिन नाम लसोढ़ेके वृक्षका, तथा अंग्रेजी नाम इसके फलका है। अरबी-फारसी संज्ञाएँ भी विशेषतः फलपरक हैं। शेष भारतीय नाम वृक्ष एवं फलके लिए सामान्य हैं। लेटिन नाम भी इसके फलके आकारपर रखा गया Cordia = तिर्यग् (हृदयाकार) प्रतीत होता हैं।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष, मिस्रसे कोचीन–चीन तक तथा आस्ट्रेलिया।

वर्णन—यह मझोले क़दके वृक्षका प्रसिद्ध फल है, जो २·५ सें०मी० से २·७५ सें०मी० (१ इंच या १$\frac{१}{१०}$ इंच) व्यासमें पुच्छाकर या दोनों ध्रुवोंपर चपटा-अंडाकर, कच्चा हरा किंतु पका पीला चमकीला, एकबीजी तथा चिपचिपी मज्जासे युक्त एवं किंचित् मधुर लबाबदार होता है। सूखा लिसोढ़ा (सपिस्ताँ) औषधमें प्रयुक्त होता है और प्रायः सभी बाजारोंमें मिलता है। यह स्याहीमायल और झुर्रीदार होता है। इसे जलमें भिगोनेसे लबाब पैदा होता है। लिसोढ़ेकी पत्ती विभिन्न आकारकी प्रायः चौड़ी लट्वाकार, गोलदन्तुर या लहरदार धारवाली, ७·५ सें० मी० से १५ सें०मी० (३ से ६ इंच) लंबी, ५ सें०मी० से १० सें०मी० (२ से ४ इंच) चौड़ी प्रायः चिकनी और चर्मिल (Coriaceous) होती है। छाल सफेद या भूरी और अनुलंब शिकनोंसे युक्त होती है। छोटा लिसोढ़े (गोंदनी)का वृक्ष लिसोढ़ेके वृक्षकी अपेक्षया छोटा होता है। शेष सब अंग प्रायः समान होते हैं। फल अपेक्षाकृत छोटा–प्रायः

छोटे जायफल या फालसेके बराबर, गोल, मसृण और किसी कदर गोपुच्छाकार होता है। कच्चा हरा और पका याकूतकी तरह लाल या पीला हो जाता है। गूदा बीज संश्लिष्ट लिसोढ़ेके समान पिच्छिल एवं मधुर होता है।

उपयुक्त अंग—फल, पत्र और छाल।

रासायनिक संगठन—फलके गूदेमें शर्करा, निर्यास तथा राख; छालमें कैथार्टिनके समान एक सत्व और २०% टैनिन होता है।

कल्प तथा योग—लऊक़ सपिस्ताँ (खयारशंबरी), शर्बत सपिस्ताँ।

प्रकृति—समशीतोष्ण (अनुष्णशीत) और प्रथम कक्षामें स्निग्ध। पका फल शीतवीर्य (भा०प्रा०) है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—उरःकण्ठमार्दवकर, कफनिःसारक, पित्तकी तीक्ष्णताका शमनकर्त्ता, फिसलानेवाला और प्रकृतिमार्दवकर है। विरेचन औषधियोंके साथ सम्मिलित करनेसे तज्जन्य तीक्ष्णता एवं संक्षोभका परिहार करता है। यह शुष्क कासमें विशेष गुणकारी है। पके हुए लिसोड़े अन्य फलोंकी भाँति खाए भी जाते हैं। इसके अतिरिक्त शुष्क कास, उष्ण प्रेसक और उरःकण्ठके खरत्वको नष्ट करनेके लिए मुखमें रखकर उसका लवाब चूसते या फाण्ट कल्पना करके पिलाते हैं। रक्तज एवं पित्तज ज्वरों, सदाह मूत्र और उग्र तृष्णामें भी इसका उपयोग करते हैं। रगड़ (सहज्ज) और पेचिसमें अकेला या उपयुक्त औषधद्रव्योंके साथ इसका फांट पिलाते हैं। संक्षोभजनन एवं तीक्ष्ण विरेचन औषधियोंके दोषपरिहार एवं उनके कर्मसौकर्यके लिए इसे उनमें डालते हैं। **अहितकर**–यकृदामाशयदौर्बल्यजनक है। **निवारण**–उन्नाब और गुलाबके पत्र। **प्रतिनिधि**–खतमी। **मात्रा**–९ दानेसे १५ दाने तक।

छोटा लिसोड़ा (गोंदनी)—

प्रकृति—पकी गोंदनी समशीतोष्ण और पहले दर्जेमें तर (स्निग्ध); कोंपल शीत और रूक्ष है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—गोंदनीके गुणकर्म सपिस्ताँके समान हैं। विशेषकर यह श्लेष्मनिस्सारक एवं वाजीकर है। पकी गोंदनीको दूसरे फलोंकी भाँति खाते हैं। यह उरःमार्दवकर और कफनिःसारक है। इससे खाँसी एवं उरःकण्ठके खरत्वमें उपकार होता है। गोंदनीकी कोंपल और गुठली निकाला हुआ मुनक्का प्रत्येक एक-एक तोला जलमें पीस-छानकर एक माशा गेरूका चूर्ण मिलाकर अर्शोजात रक्त रोकनेके लिए पिलाते हैं। पकी गोंदनीका लबाब निकालकर सम प्रमाण चीनी मिलाकर चाशनी करते हैं। फिर उसने किंचित् बबूरके गोंदका चूर्ण मिलाकर कासनिवारणके लिए चटाते हैं। शुक्र प्रमेह एवं शुक्रतारल्यमें सूखी गोंदनीका चूर्ण बनाकर चटाते हैं। **अहितकर**—यकृदामाशयके लिए। **निवारण**—गुलाबकी पत्ती, उन्नाब और मिश्री। **प्रतिनिधि**—सपिस्ताँ। **मात्रा**—सूखी गोंदनीका चूर्ण ७ ग्रामसे १२ ग्राम (७ माशेसे १ तोला) तक।

आयुर्वेदीय मत—लिसोड़ा मधुर, कषाय, तिक्त, केशके लिए हितकर तथा कफ, पित्त और विषको दूर करनेवाला है। लिसोड़ेका फल विष्टम्भी, रूक्ष तथा पित्त, कफ और रक्तविकारको दूर करनेवाला है। लिसोड़ेका पका हुआ फल मधुर, स्निग्ध, गुरु और शीतवीर्य हैं। (च० सू० अ० ४; भा० प्र०)।

नव्यमत—छाल संग्राहक और पौष्टिक तथा फल स्नहेन और संग्राहक है। कफको पतला करने और पेशाबकी जलन कम करनेके लिए तथा अतिसारमें फलका काढ़ा देते हैं।

●

(५३९) लब्लाब

फ़ैमिली : आरालिआसे (Family : Araliaceae)

नाम—(हिं०) चाँदनी बेल; (यू०) कोस्सूस (Kossos); Elxine (D. 4. 39); (अ०) ल(लि)बलाब, लबलाब कबीर, किसोस (यूनानीसे अरबीकृत–शैख़); Kissos(Low इ० बै० 4.12); (फ़ा०) लबलाब कलाँ; (बिहार) लबलाब; (पं०; मुमा०) बाँदा; कटमोरा; (ले०) हेडेरा हेलिक्स (**Hedera helix** L.); (अं०) आइवी (Ivy)।

वक्तव्य—'गुलचाँदनी' जो एक झाड़ीनुमा पौधा है, इससे भिन्न है। 'हब्बुल्मसाकीन' संज्ञाका आरोप सफेद फूल और बीजवाले भेदके लिए होता है। इसके 'काले' भेदका फूल नीला और बीज (पिलाई लिए) काला होता है। उक्त दोनों भेदोंके पत्र लोबिएके पत्रके समान होते हैं। इनके पत्तों और शाखाओंमें दूध होता है। बूअली-सीनाने इसका एक 'लाल' भेद भी लिखा है।

उत्पत्तिस्थान—यूरोप, हिमालय पर ६,०००-१०,००० फुटकी ऊँचाई पर सर्वत्र, खसिया पर ४,०००-६,००० फुटकी ऊँचाई पर कहीं-कहीं उगता है।

वर्णन—एक वृक्षारोही लता; पत्र गहरा हरा, नीचेकी ओर अपेक्षाकृत पांडुर वर्ण, चर्मवत्, चमकीला, दीर्घवृन्तयुक्त, लगभग ४ से १० सें० मी० (२-४ इंच) चौड़ा और दीर्घ, केन्द्रसे फैलनेवाली सिराओंसे युक्त (Radiate-veined), ३-४ त्रिकोणाकार खंडयुक्त, ऊपरी पत्र लट्वाकार (Ovate) या अण्डाकार-भालाकार (Ovate-lanceolate); फल (Berries) लगभग मटराकार; पुष्प बाह्यकोषके किनारेके तुल्य अग्रपर एक मण्डलयुक्त; बीज २ या ३ (Ruminated); स्वाद तिक्त और उत्क्लेशकारक; गंध मलने पर सुगंधित और रालवत् (Resinous)।

उपयुक्त अंग—पत्र और फल।

रासायनिक संगठन—१ किलोग्राम पत्रमें ०·२२५ मिलीग्राम आर्सेनिक ऑक्साइड, लगभग १०% सैपोनिन (Saponin), हेड्रिन; फलों से हेलिक्सिन (Helixin) नामक ग्लूकोसाइड प्राप्त होता है।

प्रकृति—गरमी लिए हुए संमिश्रवीर्य।

गुणकर्म तथा उपयोग—प्रमाथी, श्वयथुविलयन, सर और भेदन या विरेचन है। पकानेसे इसके प्रमाथी गुणकी वृद्धि होती है और रेचनीय शक्ति घट जाती है। इसका दूध लगानेसे बाल झड़ जाते हैं। इसके पत्तोंसे सिर मलकर धोनेसे जूएँ मर जाती हैं। इसके रससे बाल काले हो जाते हैं। इसके ताजे पत्तोंके लगानेसे बड़े-बड़े घाव अच्छे हो जाते हैं। आगसे जले हुए पर इसका लेप करनेसे उपकार होता है। इसके काढ़ेसे सूजन उतर जाती है, दर्द और थकावट मिटती है। जोड़ोंके उष्ण शोथ पर इसके पत्तोंका रस लगानेसे बड़ा लाभ होता है। दूध सहित इसके पत्तोंके लेपसे फोड़ोंके मुँह हो जाते हैं। इसके पत्तोंका रस कानमें टपकानेमें कर्णशूल आराम होता है और कर्णगत पिड़िका जाती रहती है। इसके नस्यसे सिरदर्द आराम होता है। इसके रसमें बत्ती लतकर कानमें रखनेसे भी पीप साफ होती है। इसका काढ़ा सिरकेके साथ कानमें टपकानेसे भी गरमीकी सूजन और सिरदर्द आराम होता है।

इसके सफेद भेद के ताजे पत्तोंका रस पीनेसे सिर दर्द और उरः फुफ्फुस रोगोंमें बड़ा लाभ होता है, यकृत के अवरोधका उद्घाटन होता है, उष्णदोषोद्भूत शूल आराम होता है तथा विदग्ध पित्त एवं पीत द्रव और विदग्ध जले हुए द्रव दस्तोंके रास्ते निकल जाते हैं। इसके सेवनकी एक श्रेष्ठतर विधि यह है कि इसका १४ तोले रस लेकर उसमें ३½ तोलेके लगभग अमलतासका गूदा और ५ तोले खाँड तथा १¾ तोले बादामका तेल मिलाकर

पिलायें। १ माशा सक़मूनिया मिलानेसे यह अधिक प्रभावकर हो जाता है। १०$\frac{१}{२}$ माशे इसके फूल अन्त्रक्षत मिटाते हैं। सिरकेके साथ इसके ताजे पत्तोंका लेप प्लीहाशोथ मिटाता है। इसके काले भेदके लेपसे दुष्टव्रण भर जाते हैं और सूखे पत्तोंको पीसकर बुरकरनेसे वे सूख जाते हैं। इसे बालोंपर लगानेसे वे काले होते हैं। यह उरःशूल, खाँसी, प्लीहाशोथ, शूल, जोर्णज्वर और चातुर्थक ज्वरमें गुणकारक है। इसका ७ तोले रस ७ माशे गेरूके साथ प्रत्येक स्थानके रक्तस्राव को बंद करता है। इसका फलरहित (वन्ध्या) भेद नासादौर्गन्ध्यहर, आर्तवजनन, गर्भनाशक, लोमनाशक, जूँनाशक तथा कीटविषनाशक है। **बुर्हानकातेअ** के अनुसार केसूसके गोंदसे जूएँ मर जाती हैं। यह आर्तवजनन है। **अहितकर**—आमाशय, सिर, वस्ति और वातनाड़ियोंको, काले भेदके अधिक सेवनसे विवेकका नाश होता और बल घटता है। **निवारण**—आमाशयके लिये इमली और शोषके लिए मिश्री और जैतूनका तेल। **प्रतिनिधि**--खतमी, कासनीपत्र और शाहतरा। **मात्रा**—पत्रस्वरस २$\frac{१}{४}$ से ८$\frac{३}{४}$ तोले तक मिश्रीके साथ और विना पकाये (मिन्हाज के रचयिता)।

नव्यमत—(पत्र और फल) उत्तेजक, स्वेदजनन और विरेचन। ग्रन्थिवृद्धि (Glandular enlargement), मंदरोहीव्रण (Indolent ulcer), विद्रधि, घाव आदिमें सेक या उपनाह (पुल्टिस)की भाँति इसकी पत्तियोंका बाह्य प्रयोग होता है। फल रेचक है तथा ज्वरके विकारोंमें लाभकारी पाये गये हैं। लंदनमें जब प्लेगकी महामारी फैली थी, उस समय इनका सिरका बनाकर बड़े पैमाने पर प्रयोग किया गया था।

●

(५४०) लबलाबभेद

फ़ैमिली : कॉन्वॉल्वुलासे (Family : Convolvulaceae)

नाम—(हिं०; बं०) दुधिया कलमी, चाँदनी; (अ०) हब्बुलमसाकीन; (सं०) चन्द्रकान्ति; (बम्ब०) गुलचांदनी; (ले०) **कोलोनीक्टिओन आकूलीआटुम्** (**Colonyction aculeatum** Hax.), **ईपोमेआ बोनानॉक्स Ipomoea bona-nox** (**I. bona-nox** Boj. var. **grandiflora**); (अं०) मून फ्लावर (Moon-flower)।

उत्पत्तिस्थान तथा वर्णन—कौड़ेनाकी जातिकी एक शृंगारमयी (Ornamental) या सुंदर लता जो न्यूनाधिक समस्त भारतवर्षमें लगाई हुई मिलती है। उत्तरी दुनियांमें इसकी अन्य लताएँ भी पायी जाती हैं। इसके फूल बड़े-बड़े सुगंधयुक्त, श्वेत और केवल रातमें खिलनेवाले होते हैं।

रासायनिक संगठन—इससे उद्यास या राल जैसा एक पदार्थ निकाला जाता है। यह उद्यास जैसा पदार्थ कदाचित् 'लादन' है। (दे० 'लादन')।

गुण-कर्म तथा उपयोग—इसके कच्चे बीजोंको खाया जाता है। सर्पविषमें बीज उपयोगी माने जाते हैं।

●

(५४१) लहसुन

फ़ैमिली : लीलिआसे (Family : Liliaceae)

नाम—हिं०) लहसुन, लसुन; (यू०) स्कोर्डोन Skordon (अरबी रूपांतर 'स्कूर्दून'), आग्लिडिओन Aglidion इसका अरबीरूपांतर (अग्लिदियून); (अ०) सूम, फ़ूम; (फा०) सीर; (सं०) लशुन, रसोन; (क०) रोहन; (कु०) आलण; (मा०) लहसण, लहकुल; (पं०; सिं०) थूम; (द०) लस्सन, लसन; (बं०) रशुन; (म०) लसूण; (गु०) लसण, डुंमरी;

(ले०) आल्लिउम् साटीवुम् (**Allium sativum** L.); (अं०) गार्लिक (Garlic)। वक्तव्य—लशुनमें अम्ल रसको छोड़कर शेष पाँच रस विद्यमान हैं, इसलिए संस्कृतमें इसको '**रसोन**' एक रसकी कमीवाला कहते हैं।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष।

वर्णन—यह एक प्रसिद्ध कंद है। **पत्र** प्याजके पत्रके समान, किंतु उनसे बहुत छोटे एवं पतले होते हैं। **कंद** प्याजके समान गोल गाँठके रूपमें, तीक्ष्ण और उग्रगंधवाला होता है। इसकी गाँठ चारों ओर एक पंक्तिमें गुछी हुई फांकोंसे बनी होती है, जिन्हें 'जवा' कहते हैं। लहसुनकी एक जाति और है, जिसकी जड़ छोटे प्याजके समान केवल एकपोथी (एकपुतिया या **एकदाना**) होती है। इसको **एकपोथिया लहसुन**, अंग्रेजी और लेटिनमें क्रमशः वनक्लोव गार्लिक (One-clove garlic) या शैलट (Shallot) अथवा **एस्कैलॉट** (Eschallot) और आल्लिउम् आस्कालोनिकुम् (**Allium ascalonicum** Linn.) कहते हैं। जंगली लहसुनके लिये दे० 'उस्कूर्दियून'।

उपयुक्त अंग—कंद और पत्र।

रासायनिक संगठन—लहसुनमें पिष्ट (स्टार्च), गोंद, ऐल्ब्युमिन, शर्करा और एक विशेष दुर्गन्धित स्वच्छ (पारदर्शक), गहरे भूरे या पीले रंगका उत्पत् तेल होता है। शुद्ध करने पर यह बेरंग हो जाता है। लहसुनके गुण-कर्म इसी तैलके ऊपर निर्भर होते हैं। इसकी गंध लहसुनकी-सी एवं बड़ी खराब होती है। इस तेलमें रासायनिक दृष्टिसे ऐलिल, प्रोपिलडाइसल्फाइड, डाइएलिल डाइसल्फाइड (Allyl, Propyl disulphide, Diallyldi sulphide) तथा **गंधकके अन्य यौगिक** होते हैं। इस तैलका गन्ध बहुत अप्रिय होता है और यही लहसुनका बड़ा भारी दोष है।

कल्प तथा योग—माजून सीर, माजून सीर, ऊबली खाँ।

प्रकृति—मलभूत द्रव सहित तीसरे दर्जेमें गरम और खुश्क। आयुर्वेद मतानुसार उष्णवीर्य एवं स्निग्ध है (च०; सु०)।

गुण-कर्म—लहसुन बाह्यतः लेखन विलयन (मुहल्लिल) और व्रणकारक है। आंतरिक उपयोगसे यह उष्णताजनन (मुसख्खिन बदन), सर, सांद्रदोषछेदनीय और श्लेष्मिनिःसारक है। यह आमाशयिक द्रवोंको सुखाकर आमाशयको शक्ति देता और वायुका उत्सर्ग करता है। मूत्रार्तवका प्रवर्तन करता, पसीना लाता और वाजीकरण करता है। उपयोग—यह कफज एवं वातज रोगोंमें विशेष गुणकारी बताया जाता है और आहारमें मसालेकी भाँति प्रयुक्त किया जाता है। इसको बारीक पीसकर फोड़े-फुंसियोंमें लेप करते हैं। यदि अभी उनमें पीव न पड़ी हो तो उनको बिलीन कर देता है। यदि पीव पड़ चुकी हो, तो उनको फोड़ देता है। इसके अतिरिक्त लहसुनको अकेला या उपयुक्त औषधियोंके साथ तिलके तेलमें पकाकर आमवात तथा शीतजन्य वेदनाओंमें इस तेलकी मालिश करते हैं। झांई, किलास एवं दद्रु पर इसे नौसादरके साथ लगाते हैं। समस्त कफज एवं वातज व्याधियों, जैसे-पक्षवध, अर्दित, कम्पवात, आमवात, गृध्रसी, कटिशूल, कास, श्वास और जीर्णज्वरोंमें इसे खिलाते हैं। माजून सीर इसका प्रसिद्ध योग है। यह उक्त प्रकारके रोगों, नाड़ीदौर्बल्य और कामावसादमें उपयोग किया जाता है। इसमें अगदीय वीर्य भी है। अतएव यात्राकालमें इसका उपयोग करनेसे विभिन्न प्रकारके जलसेवनसे होनेवाला दोष दूर हो जाता है। इसी प्रकार महामारीके प्रकोपकालमें इसका सेवन मरकवायुके विकारसे सुरक्षित रखता है तथा विषका शोषण करता और वेदनाको शांत करता है। अहितकर–गर्भवती स्त्रियोंको। निवारण–बादामका तेल, सूखा धनियाँ, नमक और पानीमें पकालेना। प्रतिनिधि–जंगली लहसुन। **मात्रा**–२–३ ग्राम (२–३ माशे)।

आयुर्वेदीय मत—लहसुन कटु, मधुर, गुरु, स्निग्ध, उष्णवीर्य, तीक्ष्ण, पिच्छिल, सर, बल्य, वृष्य, मेध्य, स्वर्य और नेत्रकी ज्योतिको बढ़ानेवाला तथा भग्न अस्थिका सन्धान करनेवाला एवं ज्वर, उदरशूल, विबन्ध, कास, अरुचि, राजयक्ष्मा, अर्श, अग्निमान्द्य और श्वासको मिटानेवाला है। (च० सू० अ० २७; सु० सू० अ० ४६)। काश्यप-

संहिताके कल्पस्थानमें लशुनकल्प नामक स्वतन्त्र अध्याय है जिसमें लशुनके सम्पूर्ण गुणोंका विवरण बड़े विस्तारके साथ किया गया है। उन गुणोंका परिशीलन करनेसे यह स्पष्ट होता है कि काश्यपके अनुसार लशुनका सबसे श्रेष्ठ गुण प्रजास्थापन या गर्भस्थापन है (उत्तर ४९)। **अष्टांगसंग्रहमें** भी इस गुणका उल्लेख लशुनकल्पके अन्तमें किया है। प्रजास्थापनके साथ लशुनको वृष्य और बाजीकर भी बताया है। अष्टांगसंग्रह उत्तर ४९ में वाग्भट्टने भी इसे एक श्रेष्ठ प्रकारका रसायन माना है। काश्यपने भी इसे रसायन माना है। यह अग्निदीपक, वातानुलोमन, सन्धिवातनाशक और कफनिस्सारक है। पित्तावृत और रक्तावृत वायुको छोड़कर अन्य सब आवरणयुक्त या शुद्ध वायुके लिए लशुन परमौषध है। (दे० अष्टांगहृदय उत्तर ४९)।

नव्यमत—लहसुन उष्ण, लघु, दीपन, वातनाशक, कृमिघ्न, उत्तेजक, कफघ्न, कोथप्रशमन, मूत्रजनन और बल्य है। लहसुनका तेल त्वचा, फुफ्फुस और मूत्रपिण्डद्वारा उत्सर्जित होता है। इससे श्वासनलिकाका कफ शिथिल होकर सरलतासे निकलने लगता है तथा कफकी दुर्गन्ध कम होती है और रोगजन्तुओंका नाश होता है। नाड़ीव्यूहपर इसकी प्रबल उत्तेजक क्रिया होती है। गृध्रसी, पृष्ठग्रह, अर्दित, पक्षवध, एकांगरोग, ऊरुस्तम्भ, सन्धिवात आदि वातरोगोंमें लहसुनका क्षीरपाक करके देते हैं और लेप करते हैं। लेप अधिक समय तक नहीं रखना चाहिए, क्योंकि इससे शरीर पर फोड़ा हो जाता है। हृद्रोगोंमें लहसुन देनेसे उदराध्मान कम होकर हृदयपरका दबाव कम होता है तथा हृदयको शक्ति मिलती है और मूत्र छूटने लगता है। आधुनिक दृष्टिसे लशुनमें कृमि तथा जीवाणुओंके नाश करनेका उपसर्गनाशक गुण भी है। इसलिए लशुन, श्वास, कास, राजयक्ष्मा, फुफ्फुस, विद्रधि आदि फुफ्फुसके रोगोंमें बहुत लाभदायक होता है। इसका उपयोग टिंक्चर, सिरप तथा कई पेटेंट औषधिके रूपमें पाश्चात्यवैद्यकमें किया जाता है। किसी-किसीने इसे रक्तचापहर भी लिखा है। एक पोथी लहसुन सेवन करनेसे रक्तवाही नाड़ियोंमें मार्दव उत्पन्न होता है तथा पाचनशक्ति बढ़ती एवं हृदयकी गति सम और प्रसादयुक्त होने लगती है और रक्तचाप धीरे-धीरे स्वाभाविक होता जाता है।

(५४२) लादन

नाम—(यू०) Ladanon (D. 1·128); (अ०) अल्लादन, लाज़न (इ० बै०); (फा०) लादन; (ले०) लाडानुम् **Ladanum** (Labdanum)। **वक्तव्य**—मख़्ज़नुल् अदवियामें लिखित लादन डीमकोक्त 'लाडानुम्' ही है।

वर्णन और भेद—बड़े लबलाब या उसके एक भेदके पौधेपर स्रवित एवं शुष्क होकर लगा हुआ एक द्रव है। इसके यह दो भेद हैं—(१) पौधेकी पेड़ी और पत्तोंसे प्राप्त या संग्रहीत द्रव जो शुद्ध, अत्युत्तम और सुगंधित होता है। इसको लादन अंबरी कहते हैं। (२) उक्त पौधेको चरते समय बकरी या भेड़ोंके बालोंमें लगे हुए द्रवको छुड़ानेसे प्राप्त द्रव्य। यह निकृष्ट है। विशेशतः वह जो उनके खुरों (सुमों)से छुड़ाया जाता है, अत्यन्त खराब होता है। इसमें रेत और मिट्टी मिली होती है। किबरिस द्वीपसे लाया हुआ, सुगन्धित, चिकना, ललाई लिए काला, अंबरी शुद्ध एवं भारी तथा जो हाथोंपर मलनेसे नरम हो जाय, वह उत्तम है। जो पिलाई लिए हो शैख़ उसे उत्तम बतलाते हैं। यह इसकी खूबीमेंसे है कि तेलमें डालनेपर पूरा-पूरा घुल जाय और कुछ भी तलछट शेष न रह जाय। काला भेद अग्राह्य है। गंजबादावर्दके अनुसार शुद्ध लादनके निम्न लक्षण हैं—नरम, स्वादमें फीका, जिसमें थोड़ा कसाव (कब्ज) हो, हलका हो, चाबनेसे दाँतोंके नीचे कर्कशता (खुशूनत) नहीं पाया जाय और न तलछट रहे, उसे शुद्ध समझना चाहिए। मिश्रणयुक्त (खोटा) इसके विपरीत होता है।

प्रकृति—**गरम और खुश्क** (रूक्ष)।

गुण-कर्म तथा उपयोग—**लादन अत्यंत तारल्यजनन**, किंचित् ग्राही, लेसदार एवं सांद्र दोषको पकाकर प्रकृतिस्थ एवं विलीन करती, शोषण एवं उष्णता उत्पन्न करती, **स्रोतोंके मुखका उद्घाटन करती**, सूजन और वायुको बिखेर देती, केशोंके लिये हितकर, तथा **ओजोवर्धक, वेदनास्थापन** और **व्रणरोपण** है। आगसे जले हुए स्थानपर इसे गुलरोग़नमें मिलाकर लगानेसे लाभ होता है और मस्तकपर लगानेसे प्रसेक (नजला) एवं वाष्पारोहण बन्द हो जाता और शिरःशूल विशेष (दर्दसर ज़र्बानी) मिट जाता है। इसके सूँघनेसे भी प्रतिश्याय आराम हो जाता है। इसे गुलरोगनमें मिलाकर कानमें डालनेसे कानका दर्द जाता रहता है। बच्चोंको प्रसेकजन्य खाँसी हो तो इसे तालूपर लगाना चाहिए। इसके पानेसे प्रसेकजन्य कास, आमाशयकी शिथिलता, मिचली, आमाशय शैथिल्यके कारण मुँहसे लार गिरना, वातज हिक्का और यकृत्-गर्भाशय-आमाशयका शोथ मिटता है तथा इनको शक्ति प्राप्त होती है। पुरानी शराबके साथ पीनेसे पेटमें कब्ज और संग (हब्स) उत्पन्न हो जाता है। यह स्तन्य-आर्तवरक्त और मूत्रका प्रवर्तन करती है। इससे बच्चा शीघ्र पैदा हो जाता है। किसी उपायसे योनिमें इसका धुआँ पहुँचानेसे बच्चा और आँवल निकल जाता है। आमाशयपर इसके लेपसे भी मिचली, हिचकी और आमाशयकी शिथिलतामें उपकार होता है। इसे योनिमें धारण करनेसे अपतन्त्रक (हिस्टीरिया)में आराम होता है। इसके तेल बनानेकी विधि यह है—२$\frac{१}{४}$ तोले लादनको २८ तोले तिल या जैतूनके तेलमें घोलकर आगपर पकाते हैं। जब छठाँ हिस्सा तेलका छीज जाता है तब उतारकर रख लेते हैं। यह तेल अंगोंके शीत एवं प्रसेकी जुकाम (जुकाम रतूबी)को मिटाता, आमाशय और केशोंको शक्ति देता और केशोंको काला करता है। **अहितकर**–गुर्दा वृक्क और उष्ण प्रकृतिवालेके सिरको तथा बेचैनी उत्पन्न करता है। **निवारण**–सुंबुल रूमी, चन्दन और अर्क गुलाब। **प्रतिनिधि**–शिलारस। **मात्रा**–१·७५ से ३·५ ग्राम (१$\frac{३}{४}$–३$\frac{१}{२}$ माशे) तक।

* * *

(५४३) लीची

फ़ैमिली : सापींडासे (Family : Sapindaceae)

नाम—(हिं०) लीची, नउँजी, नौजी, न्योजी; (बम्ब०) लीची; (बं०) लीचू(ची); (उड़ि०) लीशी; (उ०) लिचुर; (ता०) इलिचि; (लै०) लीची-चीनेंसिस **Litchi chinensis** L. (पर्याय–*Nephelium litchi* Camb.); (अं०) दी लीची ट्री (The Litchi Tree)।

उत्पत्तिस्थान—चीनका मूल निवासी, भारतवर्षमें इसके वृक्ष बहुत लगाए जाते हैं।

वर्णन—एक सदाबहार बड़े पेड़का प्रसिद्ध फल है। जो लोकाटके बराबर होता है। बाहरी छिलका कँटीला, गुलाबी, लाल रंगका होता है। इसके भीतर सफेद और स्वादिष्ट या मीठा गूदा होता है। इसकी गुठली लोकाटके समान होती है।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम और तर; मतांतरसे दूसरे दर्जेमें सर्द एवं तर है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—लीची अत्यन्त सुस्वादु और मीठा फल है। यह पुष्कल खायी जाती है तथा मनःप्रसादकर एवं हृदय-शक्ति-वर्धक है और प्यास बुझाती है।

* * *

(५४४) लु(लो)काट

फ़ैमिली : रोज़ासे (Family : Rosaceae)

नाम—(हिं०) लु(लो)का(गा)ट; (उ०) लोखाट; (कना०) लक्कोटे; (ता०) नोक्कोट्ट; (ले०) एरिओबोट्रिआ जापोनिका (**Eriobotrya japonica** Lindl.); (अं०) दी लोकाट (The Loquat), चायनीज या जापान मेडलर (Chinese or Japan Medlar), जापान क्विन्स (Japan Quince)।

उत्पत्तिस्थान—चीन और जापान। लगभग समस्त भारतवर्षमें ५,००० फुटकी ऊँचाईपर इसके वृक्ष बगीचोंमें लगाए जाते हैं।

वर्णन—एक प्रसिद्ध फल जिसके वृक्ष अंग्रेज भारतवर्षमें ले आये। वृक्ष कलमी आम या अमरूदके वृक्ष जितने बड़े होते हैं। पत्ते महुएके पत्तोंके समान और लम्बे, नुकीले; फूल और फल गुच्छोंमें लगते हैं। कच्चा फल हरा और रोइयोंसे व्याप्त होता है। किन्तु पकनेपर पीला और गहरा पीला हो जाता है। यह कबूतरके अण्डेसे लेकर मुर्गीके अण्डेके बराबर और स्वादमें खटमिट्ठा होता है। इसके भीतरसे कालाई लिए लाल तीन-चार चिकने बीज निकलते हैं।

उपयुक्त अंग—फूल, फल और पत्र।

रासायनिक संगठन—**पके फलके** प्रधान उपादान यह हैं—लीवूलोज(Laevulose), इक्षुशर्करा (सुक्रोज Sucrose) और मैलिक एसिड (Malic acid), **अपक्व फलके** छिलके और बीजमें बादाममें पाया जानेवाला प्रधान तत्व ऐमिग्डेलिन (Amygdalin) तथा **पत्रमें** ऐस्कॉर्बिक-एसिड ऑक्सिडेज (Ascorbic acid oxidase) और विटामिन 'B' होता है।

प्रकृति—(तुसखासईदी)के मतसे सर्द एवं खुश्क, किन्तु मतांतरसे सर्द एवं तर।

गुण-कर्म तथा उपयोग—**फल** पित्तनाशक एवं रक्तकी तीक्ष्णता (हिद्दते खून)का हारक अर्थात् संशमन (Sedative), मनःप्रसादकर, दीपन (आमाशय बलदायक) और संग्राही है। **फूल** कफोत्सारि है। यह पित्तकी तीक्ष्णताको शमन करता है। अतएव पैत्तिक रोगोंमें इससे लाभ होता है। यह पित्तज उत्क्लेश और वमनको शान्त करता है। पैत्तिक ज्वरोंमें इसे खिलाने और इसका स्वरस या उससे बनाया हुआ शर्बत पिलानेसे उपकार होता है। **मनःप्रसादकर** होनेसे, हृद्रोग जैसे उष्ण हृत्स्पन्दन और हृदयदौर्बल्यमें इसका उपयोग करते हैं। **संग्राही** होनेसे यह पैत्तिक अतिसारमें गुणदायक है तथा आमाशय और अन्त्रको शक्ति प्रदान करता है। यह प्यास बुझाता है। मनःप्रसादकर और पैत्तिक रोगोंमें गुणकारी होना इसके प्रधान गुण-कर्म हैं। अतिसारमें पत्तियोंका फाण्ट गुणदायक है। **अहितकर**–कासजनक है। **प्रतिनिधि**–संतरा। **मात्रा**–(फल) ५–१० दाने तक और इसका स्वरस ५–७ तोले तक।

●

(५४५) लुफ़ाह, यब्रूज, बेलाडोना

फ़ैमिली : सोलानासे (Family : Solanaceae)

वक्तव्य—बेलाडोनाका विवरण करनेसे पूर्व यह समीचीन प्रतीत होता है कि फ़ैमिली सोलानासे (काकमाचीकुल)का जिसमें बेलाडोना भी सम्मिलित है, औषधीय वनस्पतियोंकी दृष्टिसे यहांपर संक्षिप्त वर्णनकर दिया

जाय। काकमाची-कुलमें अनेकानेक उद्भिज्ज समाविष्ट हैं। परन्तु इस कुलके वे उद्भिज्ज जिनका उपयोग चिकित्सामें किया जाता है, उनमेंसे कतिपय अत्यन्त विषयुक्त और स्वापजनन हैं, यथा—लुफ़ाह (बेलाडोना), यबरूज (मैंड्रागोरा), धतूरा (डाटूरा), खुरासानी अजवायन (हायोसायमस), तमाकू (टुबैको) आदि। परन्तु कतिपय अन्य भेद सविष नहीं केवल किसी भाँति स्वापजनन हैं, यथा—फ़ाक़नज (**Solanum vesicarium**), वन्यचमेली (यास्मीन बर्री) आदि। और तृतीय प्रकारके वे उद्भिज्ज हैं, जो आहारमें काम आते हैं; यथा—बैंगन, आलू, प्रभृति। इस कुलके सविष उद्भिज्ज यह तीन हैं : (१) धतूर, (२) अजवायन खुरासानी; और (३) लुफ़ाह (बेलाडोना)। सुतरां इनमेंसे तृतीय अर्थात् लुफ़ह और उसके प्रसंगमें यब्रूजका वर्णन यहाँ किया जा रहा है।

संज्ञा विवरण—बेलाडोला (Belladonna) वास्तवमें लैटिन संज्ञा है, जो 'बेल्ला = सुन्दर' और डोन्ना = नारी'का यौगिक है। अस्तु, बेल्लाडोन्नाका अर्थ 'सुन्दरीनारी' है। परन्तु मिस्रवासियोंने प्रथम शब्द बेल्लाका अर्थ सुन्दरके स्थानमें 'सौंदर्य' किया है। अस्तु, उन्होंने बेल्लाडोन्ना संज्ञाका अर्थ 'नारीसौन्दर्य' किया है।

पुरातन कालमें ईसवी सन्‌की सोलहवीं शतीतक इटलीदेशकी ललनाएँ अपने कपोलोंको रक्तवर्ण (सुन्दर) बनानेके लिए उक्त उद्भिज्जके अर्क़ (परिस्रुत जल)से धोया करती थीं, इसलिये इसका उक्त नाम पड़ गया और इसी आधार एवं सम्बन्धके कारण अर्वाचीन अरबी वाङ्मयमें इस उद्भिज्जको हशीशउल्हमरत, हशीशुल्हुस्न या सबुल्हुस्न भी कहते हैं।

टिप्पणी (१)—मख़ज़नुल्अदविया और मुहीत आज़म प्रभृति द्रव्यगुण विषयक ग्रन्थोंमें लुफ़ाहके गुणकर्ममें यह भी लिखा है कि अर्ध दिरम लुफ़ाहबीजके पीनेसे कपोल ऐसे रक्तवर्ण हो जाते हैं जैसा अत्युष्ण स्नानागारमें स्नान करनेसे वे रक्तवर्ण होते हैं। बेलाडोनाका वैज्ञानिक नाम आट्रोपा बेलाडोना है और इस प्रजातिमें इन दो उद्भिज्जोंका समावेश होता है :—

(१) आट्रोपा बेलाडोना (**Atropa belladonna** Linn.) अर्थात् नबात लुफ़ाहबर्री (वन्य लुफ़ाह) और (२) आट्रोपा मैन्ड्रागोरा (**A. mandragora**) अर्थात् नबात यब्रूज (यबरूज)।

बेलाडोना संज्ञाके नामकरणका हेतु ऊपर दिया जा चुका है। अब 'आट्रोपा' और 'मैंड्रागोरा' संज्ञाओंके नामकरणहेतुका विवेचन नीचे दिया जा रहा है—

'आट्रोपा' संज्ञा वास्तवमें 'ऐट्रोपॉज़' था, जो एक यूनानी संज्ञा है, जिसका अर्थ 'काल' या 'मृत्यु' है। यह एक सविष उद्भिज्ज है। अतएव यूनानियोंने इसको उक्त नामसे अभिधानित किया। 'मैंड्रागोरा' संज्ञाका अर्थ 'जीवधारियोंके लिए हानिकर' है।

टिप्पणी (२)—ईसवी सन्‌की सोलहवीं और सत्रहवीं शतीमें 'ऐट्रोपा'को 'स्ट्रिक्नोस्' भी कहते थे। प्राचीन यूनानी चिकित्सक भी 'यबरूज'को बेख़ लुफाहबर्री लिखते हैं और लुफ़ाहको वन्य यबरूजफल कहते हैं। मानो इनके समीप भी यह उभय ओषधियाँ अभिन्न हैं। सुतरां पूर्व एवं उत्तरकालीन चिकित्साचार्योंके शोधोंसे ज्ञात हुआ कि बेलाडोना निःसन्देह यबरूजकी एक जाति या भेद है। मैन्ड्रागोराका सत 'मैन्ड्रोगोरीन' बेलाडोनाके सत 'बेलाडोनीन' या 'ऐट्रोपीन (धत्तूरीन)'के सर्वथा समान होता है। मानो रासायनिक गुणोंके विचारसे भी यह उभय ओषधियाँ सजातीय और गुणप्रभावमें समान हैं। अर्थात् एकही जातिके दो भेद मात्र और विदेशी हैं। यहाँ मैन्ड्रागोराके पर्याय और इसके आमयिक प्रयोगका संक्षिप्त इतिहास लिखकर तदनु बेलाडोनाका विशद वर्णन किया जायगा।

यबरूज (मेन्ड्रागोरा)

नाम—(हिं०) लछमना, लछमनी ?; (भा० बा०) यबरूज; (यू०) मैन्ड्रागोरोस Mandragoros (D. 4. 76); (अ०) यबरूज(ह), यबरूजु(हु)स्सनम्, बेख़लुफाह, अस्तरंज; (फा०) अस्तरंग, शाहबीरक, मर्दुम गियाह, मिह्रे गियाह, सगशिकन, बेख़ लुफ़ाह बर्री; (ले०) आट्रोपा मैन्ड्रागोरा (**Atropa mandragora**), मैन्ड्रागोरा आफ़्फ़ीसिनारुम् (**Mandragora officinarum** Betro.); (अं०) मैन्ड्रेक (Mandrake)।

वक्तव्य—कतिपय आरब्य यूनानी चिकित्सा ग्रन्थों, यथा मख़्ज़न एवं मुहीत आदिमें इसको 'मन्द्रागोरस' लिखा है, जो यथार्थतः मेन्ड्रागोरस है जिसका अर्थ 'हानिकर प्राणी' है।

श्याममें '**शम्माम**' और ईरानमें 'दस्तम्बू'को भी लुफ़ाह कहते हैं। शम्माम और दस्तम्बू एक प्रकारका छोटा सा सुगन्धित खरबूजा है जिसकी प्रशंसामें यह एक फारसी पद्य भी उल्लिखित है :—

> "यार दस्तम्बू बदस्तम दाद व दस्तमबू गिरफ़्त।
> वा चे दस्तम्बू कि दस्तमबूए दस्ते ओ गिरफ़्त॥"

इतिहास—बुकरात कालसे लेकर रोम साम्राज्यकी प्रथम शती तक यूनानी चिकित्सक यबरूजका औषधरूपेण उपयोग करते थे। सुतरां कतिपय काल वे शल्यकर्म (जर्राही-ऑपरेशन)से पूर्व संमोहनार्थ (यथा साम्प्रत क्लोरोफॉर्म और ईथर सुँघाकर मूर्च्छित करते हैं) उक्त औषधिका मूलत्वक् श्रेष्ठतर माना जाता था।

उक्त ओषधिके **दीसकूरीदूस** और **प्लाइनी** लिखित गुणकर्म निःसन्देह बेलाडोनाके गुणकर्मके सदृश पाये जाते थे। यूनानी हकीम **सावफरिस्तुस** और **दीसकूरीदूस**ने लिखा है कि उक्त औषधिके मूलका उपयोग प्रेमासक्ति या मोहनीकी भाँति भी करते थे, इसी हेतु फारसीमें भी इसकी एक संज्ञा 'मेहरे गियाह' है, जिसको (मेह्र = प्रेम) कतिपय ग्रंथों यथा मख़्ज़न एवं मुहीत आदिमें 'मुहरेगियाह (मुहरः = जहरमोहरा, सर्पमणि)' लिखा है।

उक्त ओषधिके उत्पादनके विषयमें एक विचित्र भ्रम था। उन्होंने लिखा है कि जो कोई उक्त औषधिको उखाड़ता था वह मर जाता था। अतएव इसकी जड़को उखाड़नेके लिये वे ऐसा करते थे कि जड़के आस-पासकी मिट्टी खोदकर और उसमें एक रस्सी बाँध देते थे और दूसरा सिरा एक कुत्तेकी गरदनमें बाँध देते थे तथा पुनः उसको मारकर भगाते थे। इस प्रकार कुत्तेके बलपूर्वक दौड़नेसे जड़ उखड़ आती थी; परन्तु कुत्ता मर जाता था। ईरानियोंने भी इसीलिये इसका नाम 'सगशिकन (श्वघ्न)' रखा है। इसके विपरीत उत्तरकालीन विद्वान् इन बातोंको केवल कथानक मानते हैं।

फलतः सावफरिस्तुस्के जीवनकालसे लेकर ईसवी सन्की पन्द्रहवीं शती तक यूरोपमें एतद्विषयक भ्रम उत्तरोत्तर वृद्धिगत होते गये। यहाँ तक कि फिर इसको ऐन्थ्रोपोमोरफोन (Anthropomorphon) अर्थात् मानवसदृश और सेमिहोमो (Semi-homo) अर्थात् अर्धमानव सदृशके नामोसे अभिधानित किया गया। अतएव सुरियानी या अरबी संज्ञाएँ 'यबूरूज' जिसका अर्थ 'प्राणहीन मानव युगल' और फारसी अस्तरंग ('अस्तरंज' जिसका अरबी रूपान्तर है) जिसका अर्थ भी 'नर-नारी युग्म (जोड़े)' है, या 'मर्दुमगियाह' यह इन्हीं यूनानी एवं लेटिन भ्रामक संज्ञाओंके समानार्थी शब्द हैं।

मध्ययुगमें यूरोपमें यह एक ऐन्द्रजालिक औषधि या जादूकी ग्रंथि समझी जाती थी। डॉक्टर परेराके कथनानुसार कतिपय इटेलियन कारीगर इसकी जड़ और अन्यान्य उद्भिज्ज मूलोंके मानवी अर्थात् स्त्री-पुरुषके चित्र बनाकर प्रेमासक्ति (अमलियात हुब्ब)के लिए विक्रय किया करते थे। तात्पर्य यह कि ईसवी सन् की अठारहवीं शती तक यूरोपके प्रायः देशों, यथा—इंग्लैंड, जर्मनी, और फ्रांसमें उक्त औषधिविषयक ऐसे ही भ्रम चालू रहे।

फार्माकोग्राफिया इंडिकाके संकलयिता डॉक्टर डाइमॉकके कथनानुसार यूनानियोंसे अरबों और उनसे ईरानियोंने उक्त औषधिके वैद्यकीय एवं भ्रामक, उभय गुणोंकी पूर्ण प्रतिलिपि की। हाजी ज़ीनुलअत्तार लिखते हैं, कि उनके कालमें अर्थात् सन् १३६८ में शीराजके गरमसीलकी सीमाओंपर उक्त उद्भिज्ज उत्पन्न होता था। मुफ़्रदात क़ानूनके भाष्यमें गाज़रूनी लिखते हैं कि लुफाह ईरानमें पुष्कल होता है।

●

लुफ़ाह, यबरूज

फ़ैमिली : सोलानासे (Family : Solanaceae)

नाम—लुफाह (यू०) स्ट्रिक्नोमेनिकोस (Strychnomanikos); (अ०) लुफ़ा(फ़्फ़ा)ह, यबरूज, लुफाह बर्री, यबरूजुस्सनम; (फा०) शाबीरक (शाबीरज-अरबी); (ले०) आट्रोपा बेलाडोना (**Atropa belladonna** Linn.); बेलाडोना (Belladonna); (अं०) डेड्ली नाइटशेड (Deadly-Nightshade), ड्वेल (Dwale), डेथ्स हर्ब (Death's herb), ग्रेट मोरेल (Great Morel)। **वक्तव्य**—यह उभय उद्भिज्ज एक ही प्रजातिके दो भेदमात्र हैं और विदेशी हैं। इसके देशमें होनेवाले भेदके नाम निम्नलिखित हैं—नाम–(हिं०;उ०) सग अंगूर; (क०) मैतब्रंद, झलाकफल; (पं०) सूची, बनतमाकू; (बं०) यबरूइ; (बम्ब०) गिरबूटी; (ले०) आट्रोपा आकूमिनाटा (**Atropa acuminata** Roxb.); (अं०) इंडियन बेलाडाना (Indian Belladonna)। **वक्तव्य**–'नाइटशेड' और 'मोरल' आंग्ल भाषामें 'काकमाची' को कहते हैं, जिसे फारसीमें 'ताजरेज़ी' या 'रोबा तुरबक', उर्दूमें 'मकोय' और पंजाबीमें 'गाचमाच' कहते हैं। इस उद्भिज्जका भी समावेश काकमाची कुलमें होता है। यह कई प्रकारकी होती है। डॉ० फ्लकीजर स्वरचित ग्रन्थ फार्माकोग्राफियाके पृ० ४५६ पर बेलाडोनाके वर्णन प्रसंगमें लिखते हैं कि सन् १५४२ ई० में जर्मनीके एक उद्भिज्जशास्त्रवेत्ता श्रीमान् ल्यूहार्डन्सने इनबुस्सालब मुनब्बिम-निद्रल **काकमाची** (**Solanum somniferum**) के उद्भिज्ज बेलाडोनाका एक अत्युत्तम चित्र बनाया था आदि।

डॉ० डाइमॉक अपने ग्रंथ फार्माकोग्राफिया ईंडिकाकी संचिका २ के पृ० ५७२ पर ऐट्रोपा बेलाडोनाके वर्णनमें लिखते हैं कि यूनानी वैद्यकके आरब्य लेखकोने यूनानियोंसे उनके विभिन्न प्रकारके 'स्ट्रिक्नोस' के, जो प्राचीन कालमें ऐट्रोपाका समानार्थी माना जाता था, गुणकर्मोंकी केवल प्रतिलिपि कर लिया है और वे अर्थात् अरबवासी इनको काकमाचीके विविध भेद बतलाते हैं। काकमाचो (इनबुस्सालब) अरबीमें नाइटशेड (Nightshade) का प्रजाति नाम है अर्थात् सभी प्रकारके मकोयके लिए बोला जाता है। फलतः इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि 'इनबुस्सालब मुनव्विम' या 'मुखद्दिर' या मुजन्निन या 'इनबुस्सालब सियाह' जिसके आभ्यन्तर प्रयोगको यूनानी वैद्योंने सामान्यतया वर्जित किया है, वह बेलाडोना ही है।

जैसा कि ज्ञात हुआ कि, कतिपय सत्यान्वेषकोंने इनबुस्सालब मुनव्विम एवं मुखद्दिरको बेलाडोना माना है, वैसा ही इसके उपर्युक्त आंग्ल संज्ञाओं डेड्ली नाइटशेड (इनबुस्सालब मुहलिक) और 'ग्रेट मोरल' अर्थात् 'इनबुस्सालब कबीर'से भी यह प्रमाणित होता है। यद्यपि पंजाब प्लान्ट्सके संकलयिता डॉ० स्टुवर्टके कथनानुसार पंजाबमें यह स्वयंजात होता है जिसे वहाँ 'सूची' कहते हैं और भौमकीटोंको भगानेके लिए इसे जलाते या इसकी धूनी देते हैं, तथापि ऐसा प्रतीत होता है कि भारतीय आर्य वैद्योंने इसका कभी औषधमें उपयोग नहीं किया। अस्तु, संस्कृतके वैद्यकीय ग्रंथोंमें इसका उल्लेख किया गया नहीं मिलता।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें शीत एवं रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—बाहरी तौरपर लुफाह वेदनाहर एवं स्वापजनन है। यह त्वचाको रागयुक्त करती तथा उष्णशोथको विलीन करती है और स्वेद एवं दुग्धकी उत्पत्तिको बन्द करती है। यह विशेषकर मूत्रजनन एवं दिलके धड़कनको दूर करनेवाली है। आन्तरिक प्रयोगसे नाड़ियोंकी संवेदना नष्ट करके संवेदनास्थापन कर्म करती है। अधिक प्रमाणमें खिलानेमे यह नशा (मद) लाती, प्रलाप उत्पन्न करती और अन्तमें तीव्र मूर्च्छा उत्पन्न करती है। आमवात, वातरक्त एवं समस्त वातज वेदनाओंमें इसका लेप करते या उपयुक्त तेलमें मिलाकर मालिश करते हैं। विसर्प, बालतोड़ और वृषणशोथ जैसे उष्ण शोथोंमें वेदना शमनार्थ तथा सूजन उतारनेके लिए इसका लेप करते हैं। अतिस्वेदको रोकने, स्त्रीस्तन्यको सुखाने और स्तन्यकी अधिकतासे होनेवाले शोथ–स्तनशोथ (वरमे पिस्तान)को नष्ट करनेके लिए इसका उपयोग करते हैं। व्यंग, न्यच्छ (नमश), और किलासपर इसका पतला लेप करते हैं। नेत्रगत शूल एवं शोथको नष्ट करनेके लिए तथा नेत्रस्रावको दूर करनेके लिए नेत्रके चतुर्दिक इसका लेप लगाते और नेत्रके भीतर आश्च्योतन करते हैं। प्राचीन कालमें शस्त्रकर्मके समय रोगीको मूर्च्छित (संमोहित) करनेके लिए लुफाहकी जड़को मद्यके साथ मिलाते थे। किन्तु अधुना इसका उपयोग परित्यक्त हो गया है। कतिपय आंतरिक अंगोंकी वेदना शमनार्थ इसे खिलाते हैं। योनिस्रावमें इसकी फलवर्ति योनिमें रखते हैं। स्वप्नदोष, पुरानी खाँसी और काली खाँसीमें इसे खिलाते हैं। पसीना रोकनेके लिए भी इसे देते हैं। अहितकर–शिर:शूलकारक। निवारण–सिकंजबीन और जुवारिश कमूनी। प्रतिनिधि–सेब। मात्रा–४ रत्ती से १ माशा तक (१/८ से १/२ रत्ती)। ७ माशे की मात्रामें प्राणनाशक है।

नव्यमत—बेलाडोना घातक विष है, परन्तु सावधानीसे और अत्यल्प प्रमाण (औषधीय मात्रा)में उपयोग करनेसे उपयुक्त औषधि है। यह अवसादक, संकोचविकासप्रतिबन्धक, कासहर, श्वासहर, हृदयबल्य, नाड़ी शैथिल्यकर, तारकाविकासी, शोथहर, रक्तप्रतिबन्धक, ग्रन्थिस्रावस्तम्भन, मस्तिष्कावसादक, मूत्रजनन, स्तन्यनाशन, कंडूघ्न, वेदनास्थापन और त्वचाको सुन्न करनेवाला हैं। फुफ्फुसके रोगोंमें बेलाडाना परम गुणकारक है। श्वास, श्वासनलिकाशोथ और कुक्कुरकासमें इसे देते हैं। खांसीमें कफ अधिक हो, खांसनेकी शक्ति कम हो और हृदय अशक्त हो तब यह उत्तम औषधि है। इससे शरीरके बहुतसे रस कम होते हैं। मस्तिष्कके रोगोंमें और सगर्भावस्थामें लालास्राव अधिक होता हो तब इसे देते हैं। क्षयमें और अन्य कई ज्वरोंमें पसीना बहुत होता हो तब इसे अकेला या यशद भस्मके साथ देते हैं। दूध बन्द करनेके लिये भी इसे देते हैं। इससे दूध बन्द होता है और स्तनमें आई हुई सूजन भी उतरती है। आमाशयमें अम्लरस अधिक उत्पन्न होता हो तब इसे देते हैं। पुराने कब्जमें इसे एलुआके साथ देते हैं। मूत्रमार्गसे निकलते समय यह मूत्रका प्रमाण बढ़ाता है। केवल मूत्रजनन कर्मके लिए इसका प्रयोग नहीं होता। परन्तु अन्य उपयुक्त द्रव्योंके साथ इसे देनेसे मूत्र मार्गकी पीड़ा और सकोच विकास, दु:खदायक शिश्नस्तब्धता, स्वप्नमें शुक्रस्राव (स्वप्नदोष), मूत्रावरोध, शय्यामूत्र, बस्तिशोथ और कफमेह इन रोगोंमें इसका प्रयोग करते हैं। इसे मधुमें पीसकर लेप करनेसे ज्ञान तन्तुओंके छोरोंपर इसकी क्रिया होकर उतने भाग सुन्न होकर पीड़ा कम होती है। इससे शोथकी विभिन्न अवस्थाओंका जोर कम होता है। मूत्रोत्पत्ति कम होती है या होती ही नहीं। व्रणशोथ, ग्रंथिशोथ, दूध भरनेसे उत्पन्न स्तनशोथ और सन्धिशोथमें इसका पूय-रक्तप्रतिबन्धक धर्म अच्छा देखनेमें आता है। आमवात, सन्धिशोथ, वातरक्त, विसर्प और शिराशोथमें इसका लेप करनेसे सूजन उतरती है और पीड़ा कम होती है। हृदयकी पीड़ा हृद्द्रव और हृदयके अनियमित स्पन्दनमें इसे देते हैं। यह अफीमका अगद (निवारण-उतार) है। इसके प्रयोगसे आँखकी तारका (पुतली) विकसित होती है, जब पुतली बड़ी हो जाय तब इसका प्रयोग बन्द कर देना चाहिये।

●

(५४७) लोध पठानी

फ़ैमिली : स्टीरासे (Family : Styraceae)

नाम—(हिं०) लोध्र (थारू); (पं०) पठानी लोध; (सं०) लो(रो)ध्र, शा(सा)बर, शाबरक; (बं०) लोध; (म०) लोध्र; (गु०) लोधर; पठाणी लोधर; (को०) लुदम्; (संथा०) लोदम्; (कु०) लोधिया; (मा०) लोद; (लै०) **सीम्प्लोकास रासेमोसा** (**Symplocas racemosa** Roxb.); (अं०) दी लोध (The Lodh)।

उत्पत्तिस्थान—उत्तर भारतवर्षके मैदान व जंगल, बंगाल, आसाम तथा ब्रह्माकी नीची पहाड़ियोंपर और छोटा नागपुरके शुष्क बनोंमें समुद्रके धरातलसे २५०० फुटसे अधिक ऊँचाईपर इसके वृक्ष होते हैं।

वर्णन—यह एक छोटे वृक्षकी प्रसिद्ध छाल है जो औषधके काममें ली जाती है और प्रायः बाजारोंमें मिलती है। यह भीतर और बाहरसे सफेदी लिए लाल या कृष्णाभ श्वेत और खुरदरी होती है। स्वाद कषाय होता है। काट (Blaze) १/२ इञ्च तक मोटा, रेशेदार, हलका पीला, परन्तु हलके नारंगी भूरे रंग़की रेखाओंसे युक्त होता है। इसकी दूसरी जाति सीम्प्लोकॉस क्राटेगोइडेस (**S. crataegoides** Ham.)की छाल हलके सफेद रंगकी तथा कार्कयुक्त होती है। उसपर खड़ी नालियाँ रहती हैं। इसकी त्वचाका काट भी पहली जातिके वृक्षकी छालके काट इतना मोटा, हलका, पीला व रेशेदार होता है। इसके वृक्ष जौनसार और बाहरी हिमालयमें ३ से ९ हजार फुटके बीच (चकराता और देवबन) पाये जाते हैं। बाजारमें जो लोधकी छाल आती है वह इन वृक्षोंकी छालोंसे भिन्न मालूम होती है। संभवतः पश्चिमी पहाड़ी देशोंमें जहाँसे यह छाल आती है, ये ही वृक्ष ऊँचाई, मोटाई आदिमें कुछ भिन्नता रखते हैं। (ब० दर्श०; वि० व०)।

वक्तव्य—चरक और सुश्रुत दोनोंके मतसे लोध और सावरलोध दोनों ही ग्राही और स्तम्भन हैं तथा तिल्वक इनके विपरीत विरेचन है। अतः 'तिल्वक' और 'लोध्र' एक वस्तु नहीं है।

रासायनिक संगठन—इसमें यह तीन क्षारोद होते हैं-(१) लोटूरीन ०·२४ प्रतिशत; (२) कोलोटरीन ०·०२ प्रतिशत और (३) लोटूरिडीन ०·०६ प्रतिशत। इनके अतिरिक्त इसमें विपुल प्रमाणमें एक रक्तरंजन द्रव्य और छालकी राखमें १८ प्रतिशत सज्जीख़ार (Carbonate of Soda), परन्तु कषाय द्रव्य (Tannin)का अभाव होता है।

प्रकृति—शीत एवं रूक्ष। आयुर्वेदके मतसे भी शीतवीर्य है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—तंतुसंग्राहक, वीर्यपुष्टिकर और नेत्ररोगोंमें उपादेय है। लोध अधिकतया नेत्राभिष्यंदमें वेदनाशमनार्थ उपयोग की जाती है। सुतरां नेत्रके चतुर्दिक् इसका लेप किया जाता है तथा इसको अन्य औषधियोंके साथ पोटलीमें बाँधकर जल या अर्कमें भिगोकर नेत्रके ऊपर फिराते हैं। संग्राही होनेके कारण आर्तवशोणित, रक्तातिसार, अर्शोजन्य अतिसार, बिंदुमूत्र, सूजाक और योनिस्रावमें हितकर है। संग्राही होनेसे शुक्राशयको शक्ति देती है। अतएव शुक्रमेह एवं वाजीकरणके लिए यह माजूनों और चूर्णोंमें डाली जाती है तथा गर्भाशयको शक्ति देनेके निमित्त भी सेवनकी जाती है। मंजनोंमें डालनेसे यह दाँतोंको मज़बूत करती है। इसको महीन पीसकर कानमें डालनेसे कर्णस्राव आराम हो जाता है। अहितकर–उष्ण प्रकृतिके लिए। निवारण–हरी कासनीके स्वरसका फाड़ा हुआ पानी। प्रतिनिधि–पीली हड़। मात्रा–१से ३ ग्राम (१ माशासे ३ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—लोध कषाय, लघु, शीतवीर्य, ग्राही, संधानीय, शोणितस्थापन, चक्षुष्य तथा कफ, पित्त, रक्तपित्त, रक्तविकार, ज्वर, अतिसार और शोथका नाश करनेवाला है। (च० सू० अ० ४; सु० सू० अ० ३८; भा० प्र०)।

नव्यमत—लोध ग्राही, रक्तस्तम्भन, श्लेष्मघ्न, शोथघ्न और व्रणरोपण है। इसकी मुख्य क्रिया छोटी रक्तवाहिनियोंपर होती है और उनका संकोच होता है। इसलिए रक्तस्राव बन्द होकर सूजन उतरती है। लोधसे श्लेष्मल त्वचामें शक्ति आकर कफका उत्पन्न होना कम होता है। त्वचाके रोग (कुष्ठ) और व्रणमें लोधको खिलाते और उसका लेप करते हैं। आँखकी लाली और सूजन उतारनेके लिए आँखकी पलकपर इसका लेप करते हैं। अतिसार, रक्तातिसार और प्रवाहिकामें इसे देते हैं। श्वेतप्रदर और अत्यार्तव बहुत करके गर्भाशयकी शिथिलतासे उत्पन्न होते हैं। लोधमें शिथिलता कम होती है और रक्तवाहिनियोंका संकोच होता है। इसलिए उक्त दोनों रोगोंमें इससे लाभ होता है। सगर्भावस्थामें सातवें-आठवें मासमें गर्भका विशेष चलन होता है। उस समय इसे मधुके साथ देते हैं। इससे गर्भाशयकी शिथिलता कम होकर गर्भका चलन कम होता है। प्रसूतावस्थामें योनिमें क्षत होनेपर लोधका लेप करते हैं या लोधके काढ़ेकी उत्तरबस्ति देते हैं। (ओ०सं०)।

●

(५४८) लोबान

फ़ैमिली : स्टीरासे (Family : Styraceae)

नाम—(हिं०) लोबान, लोहबान; (अ०) अल्‌जावी, जावी, हसी लु(लो)बान; (फा०) हस्नलुबः; (सं०) देवधूप; (द०) ऊद; (बं०) लोबान; (पं०;म०) लोबान; (म०क;) ऊद; (गु०) लोबान, साम्ब्राणी; (ब्रह्मा) लोबाँ; (लै०) बेन्ज़ोइनुम् (Benjoinum); (अं०) बेन्ज़ोइन (Benzoin), गम बेन्जामीन (Gum Benjamine) या गम बेन्ज़ोइन (Gum Benzoin)।

वक्तव्य—इसका लैटिन नाम 'बेन्ज़ोइनुम् (**Benzoinum**)', वस्तुतः इसके इब्रानी (Hebrew) नाम 'बिनजावा (= जावाजात)'का अपभ्रंश है। उक्त नाम इसके नैसर्गिक उद्भवस्थलका संकेत करता है। लोबानके वृक्ष जावा टापूमें अधिक होते हैं। इसी हेतु अरबीमें भी इसे जावी या अल्जावी कहते हैं। इसकी अँगरेजी संज्ञा 'बेन्ज़ोइन' इसकी लेटिन संज्ञासे व्युत्पन्न है जो किंचित् परिवर्तित होकर बेन्जामिन बन गया।

इतिहास—डॉ० फ्लुकीजर लिखित फार्माकोग्राफिया और डॉ० डाइमॉक लिखित फार्माकोग्राफिया इंडिका, इन ग्रन्थोंके परिशीलनसे ज्ञात होता है कि इस बातका कोई प्रमाण नहीं मिलता कि यूनानी या रूमी या प्राचीन आरब्य चिकित्सक उक्त द्रव्यसे अभिज्ञ थे और न प्राचीन भारतीय आर्यवैद्योंको इस औषधिका ज्ञान था। ईसवी सन्‌की दसवींसे तेरहवीं शती तक अरबी एवं अजमी व्यापारी जो व्यापारका माल चीन ले जाते रहे हैं, उसमें लोबानका कहीं उल्लेख नहीं आया। परन्तु उसमें सुमात्राके कपूरका उल्लेख अवश्य है। यूरोपवासियोंको इब्न-बतूताके पर्यटनवृत्तसे लोबानका ज्ञान हुआ जिसने सन् १३२६ ई० से १३४९ ई० पर्यन्त पूर्वी देशोंकी यात्राकी और जावाद्वीपके बिवरणमें लोबान और कपूरका उल्लेख किया है।

उत्पत्तिस्थान—जावा, सुमात्रा और स्याम। पेनांगसे भारतवर्षमें इसका आयात होता है।

वर्णन—यह एक सुगन्धित राल (बाल्समिक रेजिन Balsamic resin) है, जो स्टीराक्स बेन्ज़ोइन (**Styrax benzoin** Dryander) जिसे अरबीमें ज़िर्व और फारसीमें कमकाम कहते हैं और उसी जातिके विभिन्न वृक्षोंकी छालमें त्रिकोणाकार चीरा देनेसे प्राप्त होती हैं। वायु लगनेसे यह जम जाती है। इसके अश्रुवत् दाने (Tears) या डलियाँ होती हैं, जो एक रालदार पदार्थद्वारा एक दूसरेसे चिपकी होती हैं। रंग बाहरसे ललाई लिए भूरा और अन्दरसे दुधिया सफेद होता है। यह सहजमें टूट जाता या चूर्ण हो जाता है। उष्णतासे

पहले नरम हो जाता फिर जलने लगता है। बास रुचिकर (मधुर) होता है। एक प्रकारके लोबानका रंग सफेद और ललाई लिए भूरा, दागदार या चितकबरा होता है। इसमें कोई खास स्वाद नहीं होता, तथा इसके बादामके आकारके कौड़ी-जैसे देखनेवाले टुकड़े होते हैं। यह सुमात्राका लोबान है जिसे अँगरेजीमें सुमाट्रा बेंज़ोइन (Sumatra benzoin) कहते हैं। स्यामीलोबान (स्यामबेंज़ोइन)के दाने या डले चपटे या मुड़े हुए ललाई लिए भूरे होते हैं। इसके दाने छोटे-बड़े होते हैं। बड़ेसे बड़ा दाना ५ सें० मी० (२ इञ्च) लम्बा १·२५ सें० मी० (आध इञ्च) मोटा होता है। तोड़नेपर इसका रंग भीतरसे दूधके समान होता है। परन्तु सुमात्रा बेंजोइनके दाने अश्रुवत् होते हैं, जो परस्पर मिलकर डले बने होते हैं। इनका रंग सफेद और ललाई लिए दागदार या चितकबरा होता है। इसी प्रकारके लोबानको हिन्दीमें कौड़िया लोबान कहते हैं। आयुर्वेद-यूनानी चिकित्सक इसी लोबानको अधिक उत्तम एवं श्रेयकर समझते हैं। परन्तु आधुनिक चिकित्सक स्यामीको वरीयता देते हैं। स्यामी लोबान स्टीराक्स टोंकिनेन्स (**Styrax tonkinense** Craib.) नामक वृक्षसे प्राप्त किया जाता है। इसकी गंध अमरीकीखर्नूबके समान होती है। परन्तु सुमात्रा या जावाके लोबानकी गंध शिलारस (Storax)के समान होती है। आयुर्वेदके प्राचीन ग्रंथोंमें लोबानका वर्णन नहीं मिलता।

रासायनिक संगठन—इसमें एक अम्लस्वभावी सत्व (१२% से २०%) होता है, जिसको बेंजोइक एसिड (एसिडबेंजोइन— लोबानका फूल, सतलोबान) कहते हैं। स्यामके लोबानमें यह १५ प्रतिशत होता है। इसके अतिरिक्त सिन्नैमिक एसिड (Cinnamic acid—दालचीनीका फूल), वैनिल्लिन (Vanillin) आदि सत्व पाये जाते हैं।

कल्प तथा योग—जौहर लोबान, रोग़न लोबान ख़ास।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें उष्ण और पहलेमें खुश्क है।

गुणकर्म तथा उपयोग—कोथप्रतिबन्धक, शोषणकर्ता, लेखन, यकृदुत्तेजक, कफनिस्सारक, कफरोगनाशक, दीपन, वाजीकर, ज्वरघ्न— विशेषकर वाजीकर यथा श्वयथुविलयन है। कोथप्रतिबन्धक होनेसे लोबान धूनियों (बख़ुरात) में उपयोग किया जाता है तथा व्रणरोपण मलहरोंमें पड़ता है। शरीरकी त्वचाको स्वच्छ एवं सुवासित करनेके लिए अन्य औषधियोंके साथ इसका उबटन बनाकर मालिश किया जाता है। कफज रोगों, अर्दित, पक्षवध, वातरक्त, आमवात आदिमें यह पेय तथा लेपकी भाँति प्रयुक्त होता है। कफष्ठीवन-निर्हरणकर्ता (श्लेष्मनिःसारक) होनेके कारण पेय और आघ्राणरूपमें (शुमूरान् व शर्बत) इसका उपयोग किया जाता है। यह उरोव्याधियों, कफज कास और कृच्छ्रश्वासमें लाभ पहुँचाता है। इसका चूर्ण बनाकर खिलानेसे ज्वर नष्ट होता है। किसी उपयुक्त तेलमें मिलाकर कानमें टपकानेसे शीतल कर्णशूलको शमन करता है। वाजीकरणके निमित्त पेय और लेपके रूपमें प्रयुक्त किया जाता है। इसका सत्व (जौहर) प्रस्तुत करके भी उपयोग किया जाता है। यह लोबानकी अपेक्षया अधिक प्रभावकारक होता है। **अहितकर**—उष्ण प्रकृतिको। **निवारण**—रोग़न वनफ्शा और काहू। **प्रतिनिधि**—मस्तगी और लादन। **मात्रा**—१ माशा तक। लोबानका सत (जौहर लोबान) १ रत्ती तक।

नव्यमत—लोबान पूतिहर, दुर्गन्धनाशक, त्वचाकी रक्तवाहिनियोंको उत्तेजित करनेवाला, व्रणशोधन, व्रणरोपण, शोणितस्थापन, श्लेष्मघ्न, उत्तेजक, कफघ्न और मूत्रजनन है। पेटमें जाने पर लोबान श्वासनलिका द्वारा निःसारित होता है। पुष्कल गाढ़े और दुर्गन्धकफयुक्त जीर्ण श्वासनलिका शोथमें लोबानको बादाम और गोंदके साथ जलमें घोंटकर देते हैं। इससे श्वासनलिकाकी श्लेष्मल त्वचामें शक्ति आकर कफकी उत्पत्ति कम होती है तथा उत्पन्न कफ शीघ्र निकलकर कास कम होता है। क्षय और दमामें इससे लाभ होता है। फुफ्फुसके समस्त रोगोंमें इसका धुआँ लेनेसे लाभ होता है। इसके धुएँसे प्रतिश्याय, सिरका दर्द, गलेकी सूजन और श्लेष्मकज्वर (इन्फ्लुएन्जा) में लाभ होता है। आमाशयमें अन्नका विदाह, सूजाक और बस्तिशोथमें इसे देते हैं। इसका सुरासव (टिंक्चर बेंज़ोइन) ताजे घाव (सद्योव्रण) पर लगानेसे रक्तस्राव बंद होता है। इसके फूल उत्तम पूतिहर, स्वेदजनन,

ज्वरघ्न, मूत्रजनन, उत्तेजक, कफघ्न और चयापचय क्रियाको उत्तेजित करनेवाला है। यह त्वचासे निस्सरित होता है। उस समय पसीना आता है। फुफ्फुससे भी निस्सरित होता है। इसलिये कफघ्न है। जब वृक्कसे निःसारित होता है, तब मूत्रका प्रमाण बढ़ता है और मूत्र अम्ल होता है। **मात्रा**—३ से ८ रत्ती मुलेठीके चूर्णके साथ देवें। जीर्णबस्तिशोथमें लोबानके फूल बहुत उपयोगी हैं। यह वृक्कसे मूत्राशयमें जानेपर उसकी शोधन और पूतिहर क्रिया आरम्भ होती है। इससे गाढ़े तथा क्षार और दुर्गन्धयुक्त मूत्रकी शुद्धि होती है। वृक्कशोथमें इससे लाभ होता है। पुराने सूजाकमें होनेवाले पेशाबकी जलन इससे कम होती है। तीव्र और तरुण आमवातमें लोबानके फूल १५ रत्ती प्रमाणमें देनेसे वेतसाम्ल (सैलिसिलिक एसिड) जैसा गुण होता है। इसके साथ शुद्ध सर्जिकाक्षार (सोडा-बाई कार्ब०) मिलानेसे विशेष लाभ होता है।

●

(५४९) लोबिया

फ़ैमिली : लेगूमिनोसी (Family : Leguminosae)

नाम—(हिं०) लोबिआ(या), रौसा, सोंट; (अ०) फ़रीक़ा, लोबा; (फा०) कज़राज़; (सं०) राजमाष; (बं०) बर्वटी; (म०) चवल्या; (गु०); चोला; (मा०) चवला; (ले०) **विग्नाकाटिएन्ग (Vigna catiang** Linn.), **डोलीकोस काटिआंग (Dolichos catiang** Linn.); (अ०) काउ-पी (Cow pea); किड्नी बीन्स (Kidney-beans)।

उत्पत्तिस्थान तथा वर्णन—यह एक प्रसिद्ध शिम्बी धान्य है जिसकी समस्त उष्णदेशोंमें खेती की जाती है। यह एक बेलदार बूटी (सफेद और बड़े बोड़े) की फलियोंके प्रसिद्ध बीज हैं जो सफेद और छोटेसे गुर्दे (वृक्क) की शक्लके होते हैं। इसके सिर पर काले रंगका चिह्न होता है। इसका एक भेद लाल भी है जिसके दाने लाल होते हैं।

रासायनिक संगठन—मांसवर्धक द्रव्य २४%, स्टार्च ५६%; तेल १%, राखमें १% फॉस्फोरिक अम्ल होता है।

प्रकृति—मलभूत द्रवयुक्त गरम और खुश्क।

गुण-कर्म—लोबियासे पुष्टि प्राप्त होती है, किन्तु आनाहकारक एवं दीर्घपाकी है। यह श्लेष्मनिःसारक और मूत्रार्तवजनन तथा कामोत्तेजक, वाजीकरण, स्तन्यजनन, लेखन और श्वयथुविलयन तथा विशेषकर शुक्रल है।

उपयोग—लोवियाकी कोमल और नरम फलियाँ अकेली मांसके साथ पकाकर खायी जाती हैं और पकी फलियोके बीजोंकी दाल पकाकर खाते हैं। आर्तवजनन के लिए इसका क्वाथ करके पिलाते हैं। चेहरे का रंग निखरने और सूजन उतारनेके लिए इसका लेप लगाते हैं। अहितकर—आनाहकारक एवं चिरपाकी। निवारण—दालचीनी, अदरक और कालीमिर्च। प्रतिनिधि—दूसरा भेद (लाल)। मात्रा—क्वाथ रूपमें १ तोला।

●

(५५०) लौंग

फ़ैमिली : मीर्टासे (Family : Myrtaceae)

नाम—(हिं०) लौंग, लोंग; (अ०) क़रन्फ़ल, क़रन्फ़ुल; (फ़ा०) मेख़क; (यू०) कारुओफुल्लोन (प्राचीन), केरियोफिल्लोन (उत्तरकालीन); (सं०) लवङ्ग, देवकुसुम; (द०) लवंग; (बं०; म०; गु०) लवङ्ग; (गु०) लवींग; (क०) रुंग; (मा०) लौंग, लूंगू; (ता०) किराम्बु, करुवाप्पु; (ते०) लवंगपू; (मल०) कराम्पु, करयांपूवु; (सिं०) कराम्बु; (लै०) केरिओफ़ील्लुम् (Caryophyllum); (अं०) क्लोव्ज (Cloves)।

वक्तव्य—लौंगके वृक्षको लेटिनमें एउजेनिआ कारीओफ़ील्लुस (**Eugenia caryophyllus** Spreng.) कहते हैं। इसकी 'करन्फ़ुल' अरबी संज्ञा इसकी तामिली संज्ञा 'करांबू' या इसकी मलायी संज्ञा 'काराम्पु'से व्युत्पन्न है। इसकी यूनानी संज्ञा कोरोफ़ुल्लोन संभवतः इसकी अरबी संज्ञा 'करन्फ़ुल'से और इसकी वर्तमान लेटिन संज्ञा कारीओफ़ील्लुम् इसकी यूनानी संज्ञासे व्युत्पन्न है।

इतिहास—प्रतीत होता है कि चीनवासियोंको ईसवी सन्से २६६ वर्ष पूर्व इसका ज्ञान था। कारण उक्त-कालके राजदरबारके दरबारी फग़फ़ूर चीनराजके सम्मुख कुछ प्रार्थना करते समय अपने मुखमें कोई सुगंधित वस्तु रख लिया करते थे और वे प्रायः लौंगको ही मुखमें रखकर चबाया करते थे। यद्यपि यह ज्ञात नहीं कि भारतवर्षमें प्रथमवार इसे कब लाया गया था, तथापि चरकाचार्यने लवङ्गके नामसे उक्तद्रव्यका उल्लेख किया है और लगभग यही नाम अद्यावधि विभिन्न भारतीय भाषाओंमें प्रचलित है। प्राचीन यूनानवासियोंको तो उक्त द्रव्यका ज्ञान नहीं था। परन्तु प्राचीन मिस्रवासी इससे पूर्णतया अभिज्ञ थे; क्योंकि इनकी एक अत्यन्त प्राचीन एवं पवित्र क़ब्रसे लौंगका हार निकला था।

उत्पत्तिस्थान—पहले तो लौंग मलक्का टापुओंमें उत्पन्न होता था। किन्तु इसके बाद समीपवर्ती द्वीपोंमें बोया गया और अब जंजिबार, पेम्बा, पेनांग, मेडागास्कर, मलाबार, अफ्रीकाके समुद्रतट, मलाया, जावा आदिमें और थोड़े परिमाणमें मॉरीशस, दक्षिण भारत तथा लंका आदिमें भी इसकी खेती की जाती है। लौंगका आयात मुख्यतः जंजिबार और पेम्बाके टापुओंसे ही होता है।

वर्णन—लौंग एक सदाबहार झाड़की वृन्तयुक्त कली है जो खिलनेके पहले तोड़कर सुखा ली जाती है। बाजारमें मिलनेवाला लौंग अधिकतर हीनकोटिका होता है; क्योंकि उसमें से तेल निकाल लिया गया होता है अथवा वह बहुत पुराना होनेसे संशुष्कस्नेह होता है। जिसमें उग्र सुगन्ध हो, जो स्वादमें अतिशय तीक्ष्ण एवं झालदार हो, जिसे नखसे दबानेसे अन्दरसे तेल चुकचुका पड़े, वह औषधके कामके लिए उत्तम होता है। लौंग लगभग १·५ सें०मी० (५/८ इञ्च) लंबा और ललाई लिये होता है। जिसे हम लौंग कहते हैं, वह लौंगके वृक्षकी कलिका होती है, जो बाह्यदल नलिका (Calyx tube) के साथ मुग्दरके रूपरेखाकी होती है। मुण्ड अविकसित दलपत्रोंसे बनता है (जो संख्यामें ४ होते हैं)। इसके अन्दर अनेक पुंकेसर (Stamens) तथा एक स्त्रीकेसर (Style) होता है। जब पुष्प कलिकावस्थामें ही होता है तथा मांसल बाह्यदल नलिका और पुष्पाधार (Receptacle) गहरे गुलाबीरंग या लोहितवर्णका हो जाता है, तब इसे हाथसे चयन कर लेते हैं और छायाशुष्ककर विक्रयार्थ प्रेषित करते हैं। इस समय लौंग अधिकतम तैल पूर्ण होता है। अस्तु, यही इसके तोड़नेका उपयुक्त काल होता है।

इसमें एक उत्पत् तेल (रोग़न क़रन्फ़ुल) १८ प्रतिशत; केरियोफिलीन या यूजीनीन नामक एक कर्पूरवत् सत्व (करन्फ़लीन या लवंगीन—लवंग सत्व) नामक एक स्फटिकीय पदार्थ, एक कर्पूरवत् राल (जो शोरकाम्लकी सहायतासे केरियोफाइलिक यायुजीनिक अम्लमें परिवर्तनीय होता है) ६ प्रतिशत, कषायद्रव्य (गैलो-टैनिकअम्लमें परिवर्तनीय टैनिन), काष्ठ-तन्तु, निर्यास प्रभृति उपादान होते हैं। केरियोफायलीन रेशमी तारकाकार सूचिकाओंके रूपमें होता है।

लौंगसे खींचे हुये तेलमें (१) यूजीनोल ८५ से ९२ प्रतिशत रसायनतः फेनोलवत्, (२) एसोटिल-यूजिनोल, (३) केरियोफायलीन (Caryophyllene) आदि उपादान होते हैं।

कल्प तथा योग—**अर्क़ लौंग, नक़ूअ क़रन्फुल, रोग़न क़रन्फुल**, सफ़ूफ़ लौंगाद आदि।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें **गरम** और **खुश्क**। आयुर्वेदमें शीतवीर्य (भा० प्र०) लिखा है।

गुण-कर्म—बाहरी तौरपर लगानेसे यह श्वयथुविलयन, शोणितोत्क्लेशक(मुहम्मिर), स्वापजनन और कोथप्रतिबंधक है। आंतरिकरूपसे उपयोग करनेसे सौमनस्यजनन, मस्तिष्कहृदयबलवर्धन, श्लेष्मनिःसारक और आक्षेपहर है तथा अन्त्र, आमाशय और यकृत्को शक्ति प्रदान करता और वायुका उत्सर्ग करता तथा वाजीकर एवं शुक्रस्तम्भन भी है। यह विशेषरूपसे वाजीकर, वातानुलोमन, पाचन और श्वयथुविलयन है।

उपयोग—फोड़े-फुंसियोंपर लौंगका लेप करते और शीतजन्य वेदना एवं शोथपर मालिश करते हैं। शोणितोत्क्लेशक और स्वापजनन होनेसे हस्तमैथुनीमें लेप और तिलाकी भाँति इसका उपयोग करते हैं या उसके तेलकी मालिश करते हैं। लौंग मुँहमें चबानेसे मुखकी दुर्गन्ध दूर करके उसे सुवासित करता है, मसूढ़ोंको शक्ति प्रदान करता और शीतजन्य दन्तशूलको नष्ट करता है। दन्तशूल शमन करनेमें लौंगका तेल परम श्रेयष्कर है। पीड़ित दाँतपर इस तेलके एक-दो बूँद टपकानेसे दंतशूल आराम हो जाता है। आंतरिक रूपसे लौंगको मसालेकी भाँति आहारोंमें डालते हैं। इससे आहार सुगन्धित हो जाता है और आनाहकारक एवं विष्टम्भी आहारके दोषका परिहार भी होता है। इसके अतिरिक्त औषधरूपसे इसे शीतल हृत्स्पंदनमें प्रयुक्त कराते तथा मुफर्रेह कल्पों (**मुफ़र्रेहात**)में डालते हैं तथा वाजीकर और शुक्रस्तम्भन योगोंमें डालकर खिलाते हैं। यकृदामाशयदौर्बल्य, अजीर्ण, उदरानाह और शूल (कुलंज)में इसका क्वाथ या योग देते हैं। लौंगसे परिस्रुत किया हुआ तेल (**रोग़न लौंग**) भी खिलानेसे आमाशयको शक्ति देता तथा आनाह एवं शूलको नष्ट करता है। वाजीकरणके लिए इसे तिलाओंमें मिलाकर लगाते हैं। तिलके तेलमें पकाकर प्रस्तुत किया हुआ लौंगका तेल साधारणतया वेदनाओंको शमन करने और अंगघात निवारणके लिए मालिश किया जाता है। **अहितकर**–मूत्रपिंडोंको। **निवारण**–बबूलका गोंद। **प्रतिनिधि**–दालचीनी, जावित्री और फरंजमुष्क। **मात्रा**–०·५ ग्राम से १ ग्राम (४ रत्ती से १ माशा) तक। तेल आध बूँदसे ३ बूँद तक।

आयुर्वेदीय मत—लवंग कटु, तिक्त, लघु, शीतवीर्य, दीपन, पाचन, मुँहको साफ करनेवाला, रुचिकर, सुगन्धि तथा कफ, पित्त, रक्तविकार, तृषा, वमन, अफारा, शूल, कास, श्वास और क्षयको दूर करनेवाला है। (च० सू० ५; सु० सू० अ० ४६; रा० नि०; भा० प्र०)।

●

(५५१) वर्स

फ़ैमिली : लेगूमिनोसी (Family : Leguminosae)

नाम—(अ०) अल्वर्स (इ० बै०), वर्स, खुस; (फा०) कर्कमा; (ले०) **फ्लेमींगिआ ग्राहामिआना Flemingia grahamiana** W. A.; (मेमेसीलॉन टिंक्टोरिउम् Memecylon tinctorium (*Family : Melastomaceae*)

उत्पत्तिस्थान—भारतमें नीलगिरी; यमन और अफरीका।

वर्णन—पिसे हुए केसरकी तरहका किंचित् तिक्त एवं सुगन्धित एक रालदार चूर्ण, जो उपर्युक्त क्षुपकी फलीगत ग्रन्थियोंसे प्राप्त होता है और दूर-दूर देशान्तरमें ले जाया जाता है तथा वहाँ कपड़े रंगनेके काममें आता है। यमनी, हबशी और हिंदी भेदसे यह तीन प्रकारका होता है।

प्रकृति—दूसरें दर्जेमें गरम एवं खुश्क।

गुण-कर्म तथा उपयोग—पश्चिम अफरीका और दक्षिण अरबमें कृमिघ्नरूपमें इसका उपयोग किया जाता है। यह प्रायः विषोंका अगद है; शरीरको बल प्रदान करता है; परम उल्लास प्रदान करता, हृत्स्पंदन (धड़कन)-को दूर करता; काले दाग मिटाता, सांद्र वायुको विलीन करता, लेखन करता, वाजीकरण करता और अश्मरीको तोड़कर निकाल देता है। इसका लेप चेहरेकी झाईं और श्यामताको दूर करता तथा छीपको लाभ पहुँचाता है। **अहितकर**–फुफ्फुसको। **निवारण**–मस्तगी, शहद और कतीरा। **प्रतिनिधि**–समभाग केसर और आधाभाग तेजपात (साज़िज)। **मात्रा**–४·५ ग्राम (४½ माशे) तक।

●

(५५२) शकरकंद, कंदा

फ़ैमिली : कॉन्वाल्वुलासे (Family : Convolvulaceae)

नाम—(हिं०) श(स)करकंद, कंदा; (सं०) शर्करकन्द–(नवीन); (पं०; बम्ब०; बं०) शकरकंद; (बं०; असम) रंगा आलू; (बम्ब०) रताल़ू; (म०) रताली; (ले०) **ईपोमेआ बाटाटास** (**Ipomoea batatas** Lamk.); (अं०) स्वीट पोटेटो (Sweet Potato)। **वक्तव्य—मख़ज़नमें** भूलसे इसका फारसी नाम 'जमींकंद' लिखा है, जो वस्तुतः 'सूरन' का नाम है।

उत्पत्तिस्थान—यह अमेरिकाका मूल निवासी है। अधुना समस्त भारतवर्षमें इसकी खेती की जाती है।

वर्णन—यह एक कंदलताकी प्रसिद्ध जड़ (कंद) है जो लाल और सफेद दो प्रकारकी होती है। यह अधिकतया उबालकर या भूभलमें भूनकर खायी जाती है तथा मधुर एवं स्वादिष्ट होती है।

रासायनिक संगठन—इसमें आइपोमोसिन (Ipomocin) नामक एक सत्व पाया जाता है।

प्रकृति—मलभूत द्रवके साथ दूसरे दर्जेमें शीतल एवं स्निग्ध।

गुणकर्म तथा उपयोग—शकरकंद आध्मानकारक एवं आनाहकारक होता है तथा शरीरको शक्ति प्रदान करता है। इसीलिए यह शुक्रोत्पत्ति एवं रतिशक्तिमें किसी प्रकार वृद्धि करता है। वाजीकरण और मस्तिष्कबल-वर्धन (मेधाजनन) इसके प्रधान कर्म हैं। शकरकंदका सामान्यतः उपयोग आहारके रूपमें किया जाता है। इसे चीनी और घीमें भूनकर हलुआ बनाकर शुक्रोत्पत्ति एवं वाजीकरणके लिए खिलाते हैं। **अहितकर**–आनाहकारक, आध्मानकारक और अवरोधोत्पादक (अभिष्यंदि) है। **निवारण**–ताजादूध और चीनी। **प्रतिनिधि**–गाजर।

●

(५५३) शकाकुल

फ़ैमिली : ऊम्बेल्लीफेरी (Family : Umbelliferae)

नाम—(हिं०) दुधाली, सताली, सवाली; (अ०) शक़ाक़ुल, शिक़ाक़ुल, अल्शिक़ाक़ुल (इ० बै०); (फा०) शक़ाक़ुल, गज़रदश्ती, कौज सहराई; (ले०) **ट्राकीडिउम् लेह्मान्नी Trachydinm lehmanni** Benth. (पास्टीने साकाकुल Pastinae sacacul)।

उत्पत्तिस्थान—फारस, मिस्र और अफगानिस्तान। भारतवर्षमें भी यह कतिपय स्थानोंमें, विशेषतः कश्मीरमें पायी जाती है।

वर्णन—यह एक वनस्पतिकी प्रसिद्ध जड़ (कंद) है जो आकार एवं आकृतिमें छोटे गाजरके समान, शीर्ष (Crown)से निकला हुआ शंक्वाकार पत्रमुकुलयुक्त, बाह्य तलपर झुर्रीदार और लम्बाईके रुख गहरीरेखायुक्त और हलके भूरे रंगकी, भीतरसे सफेद, स्टार्ची, तोड़नेपर खटसे टूटनेवाली, स्वाद निशास्ता जैसा लेसदार और किंचिन्मधुर होता है। बाजारमें यह प्रायः **काकुलमिश्री**के नामसे मिलती है और अधिकतर काबुलसे आती है।

वक्तव्य—कश्मीरमें **एरीन्जिउम् सेरुलेउम्** (**Eryngium coeruleum** Bieb. (*Family : Umbelliferae*) एवं चकरातामें **पॉलीगोनाटुम् वेर्टीसिल्लाटुम् Polygonatum verticillatum** (*Family : Liliaceae*) को शकाकुल कहते हैं। उक्त पौधेका क्षेत्रीय नाम **'दुधाली'** (हिं०; पं०) है।

प्रकृति—मलभूत द्रवयुक्त पहले दर्जेमें गरम और दूसरेमें तर है।

गुणकर्म तथा उपयोग—बल्य, वाजीकर, शुक्रल, वीर्य पुष्टिकर तथा स्तन्यजनन और विशेषकर वाजीकर है। शुक्रमेह और नपुंसकता (कामावसाद)को नष्ट करनेके लिए इसे चूर्णों और माजूनोंमें डालते हैं। दूध बढ़ानेके लिए इसका चूर्ण बनाकर स्त्रियोंको खिलाते हैं। शरीर बलवर्धन एवं वाजीकरणके लिए इसका मुरब्बा सेवन किया जाता है। **अहितकर**–क्षुधाको कम करती और शिरःशूलजनक है। **निवारण**–शहद। **प्रतिनिधि**–बूजीदान और हब्बुस्सनोवर। **मात्रा**–३ ग्रामसे ५ ग्राम (३ माशेसे ५ माशा) तक।

●

(५५४) शमशाद

फ़ैमिली : पीनासे (Family : Pinaceae)

नाम—(फा०) श(शि)मशाद; (अरबीकृत)बक़्स (मख्जन); (यू०) बक़्सीन, बक़्सियून।

वर्णन—सरो या मोरपंखीकी तरहका एक सुन्दर वृक्ष है।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें उष्ण एवं रूक्ष; मतांतरसे दूसरे दर्जेमें शीतल और तीसरे दर्जेमें खुश्क (रूक्ष) है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—इसके पत्र पशुओंके लिए विष हैं। विशेषकर ऊँटके लिए अत्यन्त अहितकर है। काँच निकलता हुआ (गुदभ्रंश) हो तो इसके पत्तोंके क्वाथसे इस्तिजा करनेसे लाभ होता है। इसके फल और बीज संग्राही (काबिज) तथा आमाशय और अन्त्रस्थ आर्द्रताके शोषक हैं और मुँहसे लार बहना बन्द करते हैं। **साहब** जामाके कथनानुसार इसमें यह एक विचित्र गुण है कि इसका फल खानेसे स्त्री वन्ध्या हो जाती है। मदिराके साथ इसके पत्रक्वाथका लेप कालस्फोट वा ऐन्थ्राक्स (जम्रा), कक्षा (नमला सइया) और गंज वा अरुंषिका (साफ़ा)के लिए गुणकारी है। शहद और मेंहदीके साथ इसके प्रयोगसे त्वचाके दाग व धब्बे दूर होते हैं। इसकी लकड़ीकी कंघी बालोंकी जड़ोंको दृढ़ करती है। बालोंपर मेंहदीके साथ इसके बुरादाके लेपसे उनमें शक्ति आती है। सिरके ऊपर इसके लेपसे सिरदर्द आराम होता है। इसके फूलोंका अर्क हृदय मस्तिष्कबलदायक है तथा यह पित्तकी तीक्ष्णताको शमन करता है। अर्क बहार नारंजकी अपेक्षया बलवत्तर है।

●

(५५५) शरीफा

फ़ैमिली : आनोनासे (Family : Anonaceae)

नाम—(हिं०) शरीफा, सरीफा, सीताफल; (सं०) गण्डगात्र, सीताफल; (बं०) आता, (पं०) शरीफा; (म०; गु०; मा०; वृज) सीताफल; (गु०) अनुरां; (ता०) आत्तापलम्; (ते०) सीताफलम्; (ले०) **आनोना स्क्वामोजा (Anona squamosa** Linn.); (अं०) कस्टर्ज एपल (Custard Apple)। **वक्तव्य**—अंग्रेजी नाम इसके फलका तथा लेटिन नाम वृक्षका है। शेष (भारतीय) संज्ञायें इसके वृक्ष एवं फल दोनोंके लिए सामान्य हैं।

उत्पत्तिस्थान—सम्भवतः शरीफावृक्ष वेस्टइण्डीज (अमरीका)से यहाँ आया है। अधुना प्रायः समस्त भारतवर्ष विशेषकर बंगाल, उत्तर प्रदेश, राजपुताना, पंजाब, मध्यप्रदेश, बुन्देलखण्ड, कुमाऊँ, पंचमहल और बंबई आदिमें यह लगाया जाता है तथा जंगली भी होता है।

वर्णन—यह मझोले आकारके एक वृक्षका प्रसिद्ध फल है जो खाया जाता है। शरीफाका फल अमरूदके सदृश गोला और हरिताभ खाकी रंगका होता है। इसका छिलका कड़ा होता है और इसके ऊपर उभरे हुए दाने होते हैं। पकाफल खानेमें मधुर और रसीला होता है।

रासायनिक संगठन—पत्र, वृक्षत्वक् और मूलमें **हाइड्रोसायनिक** एसिड होता है। फलमें विटामि 'ए' एवं 'सी' तथा ग्लूकोज सेवसे अधिक होते हैं।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें **गर्म** और **तर** है। आयुर्वेदके मतसे शीतवीर्य है।

गुणकर्म तथा उपयोग—शरीफा एक मेवाकी भाँति खाया जाता है। इसका रस सर (प्रकृतिमार्दवकर है और सीठी (फोक) कब्ज पैदा करती है। इसके गूदेसे रस चूसकर सीठीको फेंक देना चाहिये। यह सौमनस्यजनन, हृदयबलवर्धन और दिलकी धड़कन दूर करनेवाला है। यह वाजीकर एवं बृंहण भी वर्णन किया जाता है तथा यह विशेष रूपसे सारक (प्रकृतिमार्दवकर) है। **अहितकर**–सौदाके रोग उत्पन्न करता है। **निवारण**–सिकंजबीन और अम्ल पदार्थ।

आयुर्वेदीय मत—सीताफल मधुर, शीतवीर्य, हृद्य, बलकारक, तृप्तिजनन, बृंहण तथा दाह, रक्तपित्त और वायुका नाश करनेवाला है।

नव्यमत—**मूल** विरेचक; **बीज** गर्भाशयमुख और आँखके भीतरी भागकी झिल्ली (Conjunctiva)के लिये क्षोभक तथा गर्भशातक; **बीज, फल** और **पत्र** कीटघ्न (Insecticide) एवं मत्स्यविष हैं। इसके पत्र या बीजका कल्क सिरमें लगानेसे सिरकी जूँ मर जाती हैं। रातको सोते समय लगाकर सिरको एक मोटे कपड़ेसे कसकर बाँधकर सो जाना चाहिये अथवा दिनमें इसे लगाकर २-३ घण्टेके बाद सिरको नीचा करके आँखोंमें पानी न जाने पावे इस प्रकार सावधानीसे सिर धोना चाहिये। इसके पत्रका कल्क लगानेसे दुष्ट व्रणमें पड़े हुए कीड़े मर जाते हैं। पका फल खानेमें स्वादिष्ट, पुष्टिकारक, मांसवर्धक तथा दाहको शांत करनेवाला, कफकारक, शीतवीर्य, हृद्य एवं बल्य है। इसके खानेसे तृप्ति होती है, रक्त बढ़ता है, रक्तपित्त और वात शान्त होता है। जलन शान्त करनेके लिए इसे रात को ओसमें रख देना चाहिए और सबेरे इसके सेवन करनेसे शरीरको जलन और दाह शान्त हो जाता है।

◆

(५५६) शलगम

फ़ैमिली : क्रूसीफेरी (Family : Cruciferae)

नाम—(हिं०) सलगम, सलजम; (अ०) सलजम, शलजम (अरबीकृत); (फा०) शलग़म; (ले०) **ब्रास्सिका रापा (Brassica rapa** Linn.); (अं०) टर्निप (Turnip)।

उत्पत्तिस्थान—यह सारे भारतवर्षमें जाड़ेके दिनोंमें होता (बोया जाता) है।

वर्णन—यह गोभीकी जातिका और गाजरकी तरहका एक प्रसिद्ध **कंदशाक** (मांसल पाताली घड़ वा मूल) है, जिसका तरकारीके लिए उपयोग किया जाता है। बाहरी छिलकेकी रंगतके विचारसे लाल और सफेद दो प्रकारका होता है। स्वाद मधुर किसी कदर तेजी लिए होता है। पौधा और फूल आदि सरसोंकी तरह होते हैं। बीज (तुख़्मे शलग़म-फा०; बज़्रुल्लिफ़्त (अ०) सरसोंके बराबर लालरंगके किसी कदर मैलेसे होते हैं।

शलगम—

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम और पहलेमें तर है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—वाजीकर, कामोद्दीपक, दृष्टिवर्धक, मूत्रल और मूत्रकृच्छ्रनाशक है। शलगम अधिकतया तरकारी या सालनकी भाँति अकेले या मांसके साथ पकाकर खाया जाता है। शलगम पुष्टिकर, सारक और मूत्रल हैं। इसके पत्ते अधिक मूत्रल हैं। यह किसीकदर श्लेष्मनिस्सारक भी है। कब्ज, खाँसी, दौर्बल्य, दृष्टिदौर्बल्य, अश्मरी, आमवात, वातरक्त, गृध्रसी और वृक्कदौर्बल्यमें यह एक पथ्यकर आहार है। सर्दीसे फटे हुए हाथ-पाँवको इसके काढ़ेसे धोते हैं। शलगमका अचार पाचनके लिए खाया जाता है। **अहितकर**—चिरपाकी एवं आनाहकारक। **निवारण**–कालीमिर्च और अम्ल पदार्थ। **प्रतिनिधि**–चुकन्दर और गाजर।

बीज (तुख़्म शलगम)—

प्रकृति—दिल्लीके हकीमोंके अनुसार तीसरे दर्जेमें गरम और पहलेमें तर तथा मतांतरसे गरम एवं खुश्क है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—लेखन, कामोत्तेजक और मूत्रजनन है। चेहरेका रंग निखारने और कतिपय त्वचाके रोगोंको नष्ट करनेके लिए शलगमके बीजोंको अकेले या उपयुक्त अन्य औषधियोंके साथ तिलाकी भाँति उपयोग करते हैं। वाजीकरणार्थ इनको वाजीकर माजूनोंमें डालकर खिलाते हैं। **मात्रा**–१ ग्रामसे २ ग्राम (१ माशासे २ माशे) तक।

●

(५५७) शाहतरा

फ़ैमिली : फूमारिआसे (Family : Fumariaceae)

नाम—(हिं०) शातरा, पित(त्त) पापड़ा; (यू०) काप्नूस Kapnos (D. 4·108.); (अ०) अल्शाहरज (इ० बै०), शाहतरज, कुज़्बुरतुल्हि़मार, बक़लतुल्मलिक, मलिकुल्बक़ुल; (फा०) शाहतर:; (म०; बम्ब०) शातरा; (सं०) यवनपर्पट; (ले०) **फूमारिआ आफ़्फ़ीसिनालिस (Fumaria officinalis** Linn.); (अं०) फ्युमिटरी, कॉमन (Fumitory, Common), अर्थ-स्मोक (Earth-smoke)।

वक्तव्य—'शाहतर:' का अर्थ 'शाकराट् (=शाकोंका राजा)' तथा यूनानी, लेटिन और अँगरेजी संज्ञाओंका अर्थ 'पृथ्वीका धुआँ (भूधूम्र)' है। '**शज्रतुद्दम**' प्राचीन यूनानी-अरबी संज्ञासे अभिप्रेत '**रक्तशोधक औषध**' है।

उत्पत्तिस्थान—यह एशिया, यूनान और फारसमें प्राय: बोये हुए खेतोंमें होता है। भारतवर्षमें इसका आयात फारससे होता है।

वर्णन—एक क्षुद्र कोमल **क्षुप; कांड** कोणयुक्त; **पत्र** दोहरा पक्षाकार (Twice pinnate) अन्तिम खण्ड (Ultimate segments), रेखाकार, कुण्ठिताग्र या तीक्ष्णाग्र, अलोमश; **पुष्प** पतला (Slender), गुलाबी (बनफशई), बालियाँ ह्रस्व (In short spikes), अनियमित, तीन पुंकेसरोंके दो बन्डलयुक्त, **फल** गोलाकार, खातयुक्त, एक बीजयुक्त; प्राय: निर्गन्ध, स्वाद तिक्त, किंचित् कटु, कषाय और नमकीन तथा कुछ-न-कुछ अरुचिकर। बाजार में इसके सूखे पौधेके प्राय: बहुत टूटे-फूटे टुकड़े मिलते हैं जिसमें लगभग गोल, मसृण और अस्फोटी बहुसंख्यक फल मिश्रीभूत होते हैं।

रासायनिक संगठन—इसमें फ्युमेरीन (Fumarine-पर्पटीन) नामक एक ऐल्केलॉइड जिसके ऊपर इसका गुणधर्म निर्भर होता है ६ प्रतिशत और एक अम्लस्वभावी सत्व फ्युमेरिक एसिड (Fumaric acid) होता है।

●

(५५८) पित्तपापड़ा (देशी शाहतरा)

नाम—(हिं०) पित(त्त) पापड़ा, धमगजरा; (अ०) शाहतरज; (फा०) शाहतर:; (सं०) पर्पट(-क), वरतिक्त; (पं०) शाहतरा; (गु०) शाहतरा, पित्तपापड़ो; (म०; बम्ब०) पित्तपापड़ा; (सिं०) शहतरा, शातरा; (बं०) बन सुल्फा; (लै०) फूमारिआ पार्वीफ्लोरा (Fumaria parviflora Linn.) भेद–फूमारिआ ईण्डिका (Fumaria indica Pugsley); (अं०) फाइन-लीव्ह्ड फ्युमिटरी (Fine-leaved Fumitory)। वक्तव्य—पंजाब, सिंध, राजपूताना, उत्तरप्रदेश और बिहारके वैद्य प्राय: पर्पट नामसे इसका व्यवहार करते हैं।

उत्पत्तिस्थान—बलूचिस्तान और भारतवर्षके अनेक भागों, अधिकतर प्रान्तके पश्चिमी-उत्तरी भागमें गेहूँ और चनेके खेतोंमें जाड़ेके दिनोंमें पाया जाता है।

वर्णन—यह अनेक शाखाओंवाले, स्वावलम्बी, प्रसरणशील १/२ से १ फुट ऊँचा **क्षुप** है। यह खड़ा या जमीनपर फैला हुआ होता है। **पत्ते** गाजरके पत्ते जैसे होते हैं, इसलिये कहीं-कहीं इसे **धमगजरा** कहते हैं। **फूल** श्वेताभ या गुलाबी लाल और सिरेपर जामुनी रंगके ०·२ इञ्च-०·३ इञ्च लंबे होते हैं; बाह्य दल दो, आभ्यंतर दल २-२ इनमें बाहरवाले नीचेकी ओर चोंचदार, भीतरसे दोनों ऊपरकी ओर संयुक्त, पुंकेसर ६, तीन-तीन एक साथ मिले हुये; **फल** शाहतरेके फल जैसे क्षुद्र एवं गोल, अग्र (Apex) पर दो-खातयुक्त; स्वाद तिक्त होता है। यह शाहतराका ही देशी भेद है और औषधमें उसीके स्थानमें प्रयुक्त होता है।

उपयुक्त अंग—क्षुप (पंचांग), पत्र और बीज।

कल्प तथा योग—**तरलसार** (मात्रा–२ मि०लि०से ४मि०लि० या १/२ से १ ड्राम); **फाण्ट** (नकूअ शाहेतर:); १ पाइण्ट उबलते जलमें लगभग २९ ग्राम (२॥ तो०); **हरे पत्तोंका (स्वरस** मात्रा–१४ तो० से २८ तो०); सूखा शाहतरा अन्यान्य औषधियोंके साथ) (मात्रा–१४ ग्रामसे ३५ ग्राम या १४ माशेसे ३ तोले तक); **चूर्ण:** (मात्रा–१०·५ ग्राम से १४ ग्राम या १०॥ माशासे १४ माशे तक); **बीज:**(मात्रा–७ ग्रामसे १० ग्राम या ७ माशेसे १० माशे तक)। **योग**–अतरीफल शाहतरा, अतरीमल शाहतरा उलवीखाँ, अर्कशाहतरा (मुरक्काब), शर्बत शाहतरा और माजून शाहतरा।

प्रकृति—संमिश्रवीर्य; **अनुष्णाशीत**; दूसरे दर्जेमें खुश्क है। आयुर्वेदमें पर्पटको शीतवीर्य लिखा है (च०)।

गुण-कर्म तथा उपयोग—रक्तशोधक मूत्रल, दीपन, क्षुधाजनक, ज्वरघ्न है। इसको अधिकतर रक्तदाह (एह्तेराक़ ख़ून) एवं रक्तविकारजन्य रोगों, जैसे-आतशक, कण्डू दाद, और फोड़े-फुन्सियोमें अकेले या उपयुक्त औष-

धियोंके साथ स्वरस, फाण्ट क्वाथ वा अर्क बनाकर पिलाते हैं। यह जीर्णज्वरोंमें प्रयुक्त होवा है। इसके बीज भी इसी हेतु प्रयुक्त होते हैं। **अहितकर**–फुफ्फुसके लिये। **निवारण**–कासनी। **प्रतिनिधि**–हड़ और सनाय। **मात्रा**–५ से ७ ग्राम (५ माशेसे ७ माशे तक)।

आयुर्वेदीय मत—पित्तपापड़ा (पर्पट) रसमें तिक्त, विपाकमें लघु, शीतवीर्य, ग्राही, तृषा कम करनेवाला वातल तथा पित्त, कफ, ज्वर, रक्तविकार, भ्रम, अरुचि और दाहको दूर करनेवाला है। (च० सू० अ० २७; सु० सू० अ० ४६; ध० नि०; भा० प्र०)।

नव्यमत—(**देशी शाहतरा–पर्पट**)—कृमिघ्न, मूत्रजनन, स्वेदजनन, मलशोधक तथा मन्दज्वर एवं त्वग्रोगोंमें रक्तशोधकके रूपमें इसका उपयोग होता है। इसमें पाया जानेवाला ऐल्केलाइड त्वचा, यकृत् तथा वृक्क द्वारा बाहर निकलता है और निकलते समय इन अवयवोंको उत्तेजित करता है। इसलिये शाहतरा स्वेदजनन, मूत्रजनन, स्रंसन और कटु पौष्टिक है। आँवोंकी शिथिलतासे उत्पन्न कुपचन और त्वचाके रोगोंमें शाहतरा उपयोगी है। साधारण सर्दी-जुकाममें शहतराका काढ़ा देनेसे पसीना और पेशाब आता है, दस्त साफ होता है और शरीरकी पीड़ा कम होवी है। पित्तज्वर और यकृत्के रोगोंमें यह उत्तम औषध है। त्वचाके रोगोंमें इसे देते हैं।

शाहतरा (यवनपर्पट) हलका बल्य, मूत्रल, मलशोधक, प्रधानतया आमाशयिक विकारों, यकृत् व्याधियों और त्वचाके रोगोंमें इसका उपयोग फरते हैं। जिरार्ड (Gerard) लिखते हैं—"दीसकूरीदूस दृढ़तापूर्वक यह स्वीकार करते हैं कि जौके बीच (जौके खेतमें) उगे हुए शाहतराका स्वरस बबूलकी गोंदके साथ प्रयोग करनेसे पलकोंपर उगे हुए अनुपयोगी बालोंको, जो आखोंमें चुभते हैं, दूर कर देता है।' प्रथम आँखोंमें चुभनेवाले बालोंको उखाड़ देवें; क्योंकि वह अपनेमें दूसरोंका उगना सहन नहीं करेगा।" **कुलपेपर** (Culpeper) लिखते हैं: "शाहतरा (और Docks) का स्वरस सिरकाके साथ मिलाकर इससे रुग्ण स्थानको धीरे-धीरे धोनेसे सभी प्रकारके चर्मरोग विशेष (Scabs), फुन्सी या मुँहासा (Pimples), दिदोड़ा (Btotches and Wheals) और आघात (Pushes) जो चेहरे या हाथ या शरीरके अन्य भागमें होते हैं, आराम हो जाते हैं।" शिरःविकारोंके लिए **जॉनहिल** (John Hill. M.D. 1756) कहते हैं "कुछ लोग तमाकू की तरह इसकी सूखी पत्तोको सफलतापूर्वक तमाकूसी पीते हैं।" (पाटर्स न्यूसाइक्लोपीडिया पृ० १२७)।

●

(५५९) शाहपसन्द

फ़ैमिली : कॉन्वाल्वुलासे (Family : Convolvulaceae)

नाम—(हिं०) शाहपसन्द, बादशाहपसन्द, (बं०) शब-पसन्द्, शुप्पसन्दु, शापुस्सुन्दो; (ले०) **फार्बिटीज या कॉन्वाल्वुलस जाति (Pharbitis or Convolvulus** Spp.)।

उत्पत्तिस्थान—भारतवर्ष। बीज प्रायः बाजारोंमें मिलते हैं।

वर्णन—एक आरोहीलताके प्रसिद्ध बीज हैं, जो वृत्तके चतुर्थांश रूपरेखाके या कौड़ेना अथवा बीरबहूटीकी आकृतिके, भूरे, गहरे भूरे वा ललाई लिए भूरे (कुक्कटीरंगके), ऊर्णमय (Woolly), क्षुद्र, अतिकोमल और तूलवत् रोइयोंसे आच्छादित, निर्गंध तथा प्रायः स्वादरहित होते हैं। लताके पत्र लोबिया पत्रवत्, किंतु उनसे चौड़े; पुष्प सफेद एवं मनोरम, फल सूखनेपर उसके तले घुण्डी बँधती है, जिसके भीतर २-३ छोटे दाने होते हैं। औषधिमें उक्त बीजोंका व्यवहार होता है।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें गरम और खुश्क।

गुण-कर्म तथा उपयोग—तीव्र विरेचन है तथा सांद्रदोषोंका उत्सर्ग करता है। यह विशेषरूपसे विरेचन और अवरोधोद्घाटनकर्ता है। आमाशयशोथ (औराम शह्म) को विलीन करनेके लिए इसको अमलतासकी गूदीके साथ पिलाते हैं। इसके अतिरिक्त आमवात जीर्णज्वरों एवं बालकोंके डब्बाके रोग (डब्बाए अत्फ़ाल)में इसको खिलाते हैं। ७ ग्राम (५-७ माशे) इसके महीन चूर्णको नमक या गुलकन्दके साथ खानेसे अच्छे विरेक आ जाते हैं। **अहितकर**–शीतल मस्तिष्कको। **निवारण**–मिश्री। **प्रतिनिधि**–खतमी और खुब्बाजीकी पत्तीका स्वरस। **मात्रा**–३ से ५ ग्राम (३-५ माशे) तक।

●

(५६०) शिलारस

फ़ैमिली : हैमामेलिडे (Family : Hamamelideae)

नाम—(हिं०; बं०; म०: बम्ब०) शिलारस; (यू०) Sturax (D. 1. 79), स्टोरक्स (Storax), स्टाइरेक्स; (अ०) अल् इस्तिरक (इ० बै०), मीअः साइला, लब्नो (ब्ना); (फा०) अम्बर माइअ; अस्ले लब्नी (अ०); (सं०) तुरुष्क (सु०; रा० नि०), सिल्हक (भा० प्र०); (गु०) शेलारस; (ते०) शिलारसम्; (ले०) **लिक्विड अम्बर ओरिएण्टालिस (Liquidamber orientalis** Miller); (अं०) स्टोरैक्स (Storax), स्टाइरैक्स (Styrax), लिक्विड स्टोरैक्स (Liquid Storax), बाल्सम् स्टाइरेसिस (Balsam Styracis)।

वक्तव्य—वृक्षको अरबीमें 'ज़िर्व' या 'उस्तुरक' कहते हैं। लेटिन नाम वृक्षका है। अरबी मीअः (मीआन = प्रवाही) से व्युत्पन्न है। मात्र 'मीअः' से मीअः साइला (प्रवाही शिलारस) अभिप्रेत होती है। इसकी एक जातिके वृक्ष जिसे अँगरेजी और लेटिनमें क्रमशः बर्मीज **स्टोरैक्स** (Burmese Storax) और **आल्टीन्जिआ एक्सेलसा (Altingia excelsa** Noronha) कहते हैं, ब्रह्मा, पूर्वी बंगाल, आसाम भूटान, पेगू, चीन, मलाया और जावा आदिमें भी होते हैं। इससे प्राप्त शिलारस उपर्युक्त विदेशी शिलारसका उत्तम प्रतिनिधि है। 'स्टाइरेक्स' और 'स्टोरेक्स' वास्तवमें यूनानी संज्ञायें हैं। लिक्विडअंबर (Liquidamber)का अर्थ **अम्बरसाइल** (प्रवाही अम्बर) है। 'मीअःसाइला' से अम्बर जैसी सुगन्धि आती है। इसलिए इसको उक्त नामसे अभिधानित किया गया।

इतिहास—प्राचीन यूनानी चिकित्सकों, यथा-दीसकूरीदूस और जालीनूस आदिने इसका वर्णन किया है। इसलामी चिकित्सक इससे पूर्णतया अभिज्ञ थे। अरब व्यापारी इसको चीन और भारतवर्षमें ले गये। ईसवी सन् की प्रथम शतीमें भारतवर्षमें इसके आयातका पता चलता है। सुतरां 'शिलारस'के नामसे यह प्राचीन भारतीय वैद्योंको भी ज्ञात था।

उत्पत्तिस्थान—एशिया माइनरका दक्षिण-पश्चिम भाग और अरब आदि। वहींसे इसका आयात बम्बईमें होता है।

वर्णन—यह एक वृक्षका गोंद (दूध-Balsam) है जो वृक्षकी छालमें चीरा देनेसे स्रवित होनेके उपरांत शहदकी तरह उससे अधिक गाढ़ा हो जाता है। इसका रंग पिलाई या हरापन लिये लाल या भूरा (धूम्रवर्ण), गंध एवं स्वाद रुचिकर (बलसांवत्), पानीसे भारी, अपारदर्शक, नरम और चिकना होता है। इसे **मीअःसाइला** (प्रवाही शिलारस) कहते हैं। इसका एक भेद **मीअःयाबिसा** (शुष्क शिलारस) है, जो उक्त वृक्षकी लकड़ी आदिको पकानेके उपरान्त छानकर और दोबारा पकाकर बनाया जाता है। यह काला और गुरु (सकील) होता है। शिलारस ९०% मद्यमें विलीन होता है।

रासायनिक संगठन—इसमें (१) सिन्नैमिक एसिड २० प्रतिशत, एक उत्पत् तैल जो ऑक्सीजनके मिलनेपर **बेन्ज़ोइक एसिड** (लोबानके फूल)में परिणत हो जाता है; (२) स्टायरीन जो एक उत्पत् तैल है; (३) स्टोरेसिन (Storesin) जिसका रासायनिक नाम सिन्नेमेट ऑफ सिन्नेमाइल है; और (४) दो रालें (Resins) प्रभृति उपादान होते हैं।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें गरम और दूसरेमें खुश्क। आयुर्वेदमतसे उष्णवीर्य है। (भा०प्र०)।

गुण-कर्म तथा उपयोग—बल्य, वेदनास्थापन, यकृद्बलवर्धन, बस्ति और वृक्कके रोगोंमें गुणकारक, कतिपय प्रकारके रोगजनक कीटाणुओंका नाशक, कोथप्रतिबन्धक विशेषकर श्लेष्मनिःसारक तथा मूत्रार्तवजनन है। पुरानी खाँसी और उरःक्षत (सिल)रोगमें कफोत्सर्ग एवं उसके प्रकोथनिवारणके लिए इसका उपयोग करते हैं। यह स्वरघ्न और प्रतिश्यायमें भी प्रयुक्त होता है। इसे जलवृक्कबस्तिप्लीहारोगमें खिलाते हैं। स्वाप, अपतानक, आमवात और वातरक्तमें इसको जैतूनके तेलमें मिलाकर मर्दन करते या लेप लगाते हैं तथा तर खुजली और जूओंको नष्ट करनेके लिये उपयोग करते हैं। अहितकर–फुफ्फुसोंके लिये। निवारण–मस्तगी और कतीरा। प्रतिनिधि--जुंदबेदस्तर। मात्रा-०·५ ग्राम से १·५ ग्राम (४ रत्ती से १½ माशा) तक।

आयुर्वेदीय मत—शिलारस तिक्त, कटु, मधुर, उष्णवीर्य, स्निग्ध, सुगन्धि, वृष्य, कण्ठ्य, कान्तिकर तथा कफ, वात अश्मरी, मूत्राघात, श्वास, ज्वर, स्वेदाधिक्य और दाहका नाश करनेवाला है। (सु० सू० अ० ३८, रा० नि०; भा० प्र०)।

नव्यमत—शिलारस कफघ्न, मूत्रजनन, उत्तेजक, शोथघ्न, पूतिहर, कृमिघ्न, कण्डूघ्न, व्रणशोथहर और व्रणरोपण है। यह उत्तेजक और पूतिहर कफघ्न है; परन्तु कभी-कभी इससे मूत्रपिण्डका शोथ उत्पन्न होता है। यह फुफ्फुस और मूत्रपिण्डके रास्तेसे शरीरसे बाहर निकलता है। मात्रा–५-१० गुंजा, मुलेठीके चूर्णके साथ लेह (चटनी) बनाकर देवें। जीर्णकफरोगमें और क्षयमें शिलारसको मधुमें मिलाकर देते हैं। इससे फेफड़ेको शक्ति प्राप्त होती है। जीर्णपूयमेह (सूजाक)में मुलेठीके साथ शिलारस देते हैं। कण्डू, पामा आदि त्वग्रोगोंमें १ भाग शिलारस और चारभाग तिलका तेल मिलाकर लगाते हैं। क्षयजन्तुजन्य व्रणपर शिलारसको अकेला लगाते हैं। इससे वहाँ रक्ताभिसरण बढ़ता है और क्षयके जन्तु मरते हैं। अण्डवृद्धिपर शिलारस लगाकर ऊपर तमाखू या धतूरेके पत्ते बांधते हैं।

●

(५६१) शीरखिश्त

फ़ैमिली : रोजासे (Family : Rosaceae)

नाम—(हिं०;फा०;द०) शीरखिश्त, (अ०) मन्न, शीरख़िश्त, अस्लुलूहवा, अस्लुस्समावी; (फा०) शीरख़ुश्क, शीरख़िश्त; (सं०) आकाशमधु—(नवीन), (हिं०) शुष्कक्षीर, हरलालू; (म०) माउ; (ता०; ते०) मेना; (मल०) मन्ना; (लै०) मान्ना (Manna); (अं०) मेन्ना (Manna)। **वक्तव्य**—वृक्षको फारसीमें सियाहचोब और कशीरू तथा लैटिनमें **क्रोटोनेआस्टेर नुम्मूलारिआ (Crotoneaster nummularia** Fisch.) (*Crotoneaster racemiflora* Koch.) कहते हैं। डॉक्टरी चिकित्सामें प्रयुक्त शीरखिश्त संभवतः फैमिलीः ओलेआसे (*Family : Oleaceae*) के **फ्राक्सिनुस् ऑर्नुस् (Fraxinus ornus** L.) तथा **फ्रॉक्सिनुस् रोटुन्डीफोलिआ (F. rotundifolia)** नामक वृक्षोंसे प्राप्त होता है।

वक्तव्य—**'मन्न'** वास्तवमें इबरानी (Hebrew) भाषाका शब्द है जिसका अर्थ 'अल्मुग़्ज़ीयुल् इलाही' अर्थात् 'ईश्वरकी ओरसे आहार देनेवाली वस्तु' जैसा कि 'तौरात'के उल्थाकारने लिखा है। किन्तु यूनानी एवं लैटिन भाषामें इसका उच्चारण **'मन्ना'** किया गया है और अंग्रेजीमें **'मेन्ना'**। प्राचीन अरबी एवं फारसी शब्दकोषों एवं यूनानी वैद्यकीय ग्रन्थोंमें लिखा है कि 'मन्न' ऐसे अवश्याय (ओस-शब्नम)को कहते हैं, जो वृक्षों और पाषाणोंपर गिरे और मधुर एवं शहदकी भाँति सांद्र और निर्यासवत् शुष्क हो जाय। अरबी भाषामें इसको 'आकाशीय आर्द्रता नदियुस्समाऽ), वायवीय मधु (अस्लुल्हवा) और आकाशमधु (अस्लुल्समावी)'की काल्पनिक संज्ञाओंसे भी अभिधानित किया गया है। कारण इसके विंदु कतिपय वृक्षोंके पत्तोंपर भी पाये जाते हैं, जिन्हें संग्रह करके सुखा लेते हैं। इसी हेतु प्राचीनकालमें इसको 'आकाशीय आहार (एजाज़ नबूअत)' माना जाता था। परन्तु अधुना यह विश्वास एवं श्रद्धा घट गई है तथा यह मन्न और इसकी फारसी संज्ञा शीरखिश्त या शीरख़ुश्क वास्तवमें 'शीरींख़ुश्क' थी जिसका अर्थ 'शुष्क मिठास' है। क़ुरानशर्र फ़की सूरये बक़रके रुकूअ ६ की आयत में इसका उल्लेख है।

इतिहास—प्राचीन यूनानी चिकित्साविद् इसके वैद्यकीय प्रयोगसे पूर्णतया अभिज्ञ थे। सुतरां हकीम **दीसक़ूरीदूसने** **'एलोमेली'** के नामसे इसका उल्लेख किया है तथा इसको आमदोष एवं पित्तका विरेचक लिखा है। **जालीनूसने** इसका उल्लेख नहीं किया। सर्वप्रथम इटलीवासियोंने इसका प्रयोग किया है। प्राचीनकालमें इटलीके प्रायः स्थलोंमें आहाररूपमें इसका सेवन करते थे और अब भी इटलीके दक्षिणमें स्थित **सिसली**में यह ओषधि पुष्कल उत्पन्न होती है तथा वहींसे इसका अधिक आयात होता है।

वर्णन—जैसा कि उपर्युक्त वक्तव्यमें लिखा गया, पहले इसको एक प्रकारका सांद्रीभूत मधुर अवश्याय (शब्नम) ख्याल करते थे; परन्तु बादमें यह ज्ञात हुआ कि यह निःसंदेह एक प्रकारका सांद्रीभूत मधुर स्वरस है जो ग्रीष्मऋतुमें शीरखिश्त वृक्ष **फ्राक्सीनुस् ऑर्नुस्** (**Fraxinus ornus**), जिसको ख़ुरासानके समीपवर्ती प्रदेशोंमें **कबीरू** कहते हैं अथवा **फ्राक्सीनुस् रोटंडिफोलिया** (**Fraxinus rotundifolia**) के पत्तों, तने और बड़ी-बड़ी शाखाओंकी त्वचासे स्वयमेव रिसकर सांद्रीभूत हो जाता है। परन्तु तनेकी त्वचामें आड़े चीरा देनेसे यह अधिक रिसता है। सुतरां सिसलीमें जहाँ इसके वृक्ष लगाये जाते हैं, सामायतया इन वृक्षोंकी त्वचामें आड़े चीरा देकर इसको प्राप्त करते हैं। शीरखिश्तको संग्रह करनेकी ऋतुके विचारसे इसके मूल्यमें अन्तर होता है। ग्रीष्मऋतुमें संग्रहकी हुई सर्वोत्तम होती है। भेद–जैसा कि ऊपर वर्णन किया गया, असली शीरखिश्त केवल दो प्रकारकी होती है: (१) **शीरखिश्त तब्ता** और (२) **शीरखिश्त अश्क़ी**। परन्तु एतदतिरिक्त नकली एवं कृत्रिम (बनावटी) शीरखिश्त भी कई प्रकारकी होती है। नकली और कृत्रिम शीरखिश्तमें मन्नाइयत (मन्नीन) सत्वका सर्वथा अभाव होता है। कतिपय प्रकारकी नकली शीरखिश्तके नाम अधोलिखित हैं, जो सोथल्ज आर्गेनिक मेटीरिया मेडिकासे नीचे उद्धृत किये गये हैं: (१) **पर्शियन मेन्ना** (Persian Manna) अर्थात् **तरंजबीन** जो यवासाके क्षुपसे प्राप्त होता है। (२) **टैमेरिस्क मेन्ना** (Tamarisk Manna) अर्थात् **'गज़ंगबीन'** जो झाऊवृक्षसे प्राप्त होता है। (३) **ओकमेन्ना** (Oak Manna) अर्थात् **'शीरख़िश्त बलूती'** जो बलूत वृक्षसे प्राप्त होता है आदि। (४) **फिक्टिशश मेन्ना** (Fictitious Manna) अर्थात् कृत्रिम शीरखिश्त जो आलू की शर्करासे प्राप्त होती है। टिप्प०—तिबमें तरंजबीन और गज़ंगबीन पर शीरखिश्त संज्ञाका आरोप नहीं होता। शीरखिश्तके उपर्युक्त भेदोंके अतिरिक्त ईरानी मनीषी **नाजिमुल्अतिब्बा** संकलित 'पिज़िश्कीनामाग्रन्थ' में लिखा है कि 'इस्पन्दन' और 'सफसाफ'से एक प्रकारकी प्रवाही शीरखिश्त (शीरखिश्त माइअ) प्राप्त होती है जिसे फारसीमें **'बेद-ख़िश्त'** कहते हैं। **मख्ज़नुल्अद्वियाके** संकलयिता लिखते हैं कि बिहार, पटना और भागलपुरप्रान्तमें एक प्रकारकी **घाससे**, जिसे 'हिंदी कतीरा' कहते हैं, शीरखिश्त प्राप्त करते हैं जिसे उक्त प्रदेशमें **'हरलालू'** कहते हैं। हकीम मुहम्मद हुसेन और तोह्फाके हाशियालेखक हकीम अब्दुलहमीदने लिखा है कि यह 'हरलालू' गुण-कर्ममें शीरखिश्तके सर्वथा समान है। मुहीतआज़म प्रभृति ग्रन्थोंमें मन्नके वर्णनमें प्रसंगवश सुक्करुल्उशर (मदारशर्करा) और मन्न ख़रज़हरा (कनेरशर्करा)का भी, जो विरले ही प्राप्त होती हैं, वर्णन किया है।

उत्पत्तिस्थान—सिसली, दक्षिण यूरोप, भूमध्यसागरके तटवर्ती प्रदेश, एशियामाइनर, ईरान और खुरासान आदि। पश्चिमी तिब्बत और कश्मीरमें ६,०००–११,००० फुटकी ऊँचाईपर भी पाया जाता है।

वर्णन—यह एक प्रकारका जमाहुआ मधुर द्रवपदार्थ है, जो उक्त वृक्षोंके पत्तों, तनों और बड़ी-बड़ी शाखाओंकी छालसे स्वयं स्रवित होकर जम जाता है। बाजारमें निम्न दो प्रकारका शीरखिश्त मिलता है :—(१) **शीरखिश्त तख्ता** जो अँगरेजी औषधालयोंमें प्रयुक्त होता है इसको **शीरख़िश्ते अँगरेजी** (Flake Manna) तख्ताशीरखिश्त–(फा०) भी कहते हैं। और (२) **शीरख़िश्त अश्की वा समग़ी** (Sortis Manna) अर्थात् शीरखिश्त) जिसके बड़े-त्रड़े मुलायम अश्रुवत् दाने होते हैं। यह बाहरसे देखनेमें पिलाई लिये सफेद और स्वच्छ गोंदके सदृश होते हैं। स्वाद मधुर होता है। मुखमें रखनेपर यह शीघ्र घुल जाता है और पीछे इससे मिठास लिए शीतानुभव होता है। औषधमें प्रायः यही व्यवहृत होता है। इनके अतिरिक्त एक और प्रकारकी शीरखिश्त होती है, जिसे फारसीमें **शीरख़िश्त चोब** (चिकनी)' कहते हैं। वास्तवमें यह विकृतभूत शीरखिश्ततख्ता होती है।

रासायनिक संगठन—ग्लूकोज लगभग ८·३ प्रतिशत, सुक्रोज ४·१ प्रतिशत या एक तद्वत् सुक्रोज लगभग ५० प्रतिशत तथा **चिरखेस्टाइट** (Chirkhestite) नामक एक नवीन शर्करा आदि उपादान इसमें होते हैं। बीजमें हाइड्रोसायनिक एसिड होता है।

कल्प तथा योग—शर्बत शीरखिश्त मुरक्कब।

प्रकृति—दिल्लीके हकीम इसे पहले दर्जेमें गरम एवं तर मानते हैं। मतांतरसे यह अनुष्णाशीत (पहले दर्जेमें उष्ण) है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—लेखन, पित्त एवं विदग्ध दोषविरेचनीय, उरोमार्दवकर, श्लेष्मष्ठीवनोत्सर्गकर्ता और विशेषकर सर, दोषत्रयविरेचनीय और उष्ण (पित्तज) ज्वरनाशक है। सारक एवं विरेचनकी भांति यह उष्ण व्याधियों विशेषकर पित्तज ज्वरमें अकेले गुलाबजलके साथ प्रयुक्त होता है। गर्भिणी स्त्रियों, शिशुओं और कोमल प्रकृतिके लोगोंको, जिन्हें अन्य विरेचन औषधियोंके पीनेसे कष्टानुभव होता है, उन्हें इसका उपयोग कराते हैं। यह निरापद विरेचन है। उरःमार्दवकर एवं श्लेष्मष्ठीवनोत्सर्गकर्ता होनेके कारण उरःफुफ्फुसके खरत्व एवं उष्ण कासमें इसका उपयोग गुणदायक है। लेखन होनेके कारण चेहरेका रंग निखारनेके लिए इसका पतला लेप करते हैं। इसका प्रचुर उपयोग वायुकारक, आटोपकारक (पेटमें गुड़-गुड़ाहट पैदा करता), शुक्रतारल्यजनक एवं शीघ्रपतनकारक है और शूल (कूलंज) रोगीके लिए अहितकर हैं। शीरखिश्त समग़ीमें भी ये ही गुण होते हैं। **निवारण**–बादामका तेल, अर्क गुलाब और सौंफ। **प्रतिनिधि**–खुरासानी तरंजबीन। **मात्रा**–२ तोलेसे ४ तोले तक।

●

(५६१) शीशम

फ़ैमिली : लेगूमिनोसी (Family : Leguminosae)

नाम—(हिं०) शीशम, सीसम, सीसो; (अ०) सासम, सासिम; (फा०) शीशम; (सं०) शिंशपा, कृष्णसारा; (बं०) शिशुगाछ; (पं०) शरई; (म०) शीसव; (गु०) सीसम; (अं०) सीसु (Sissoo)।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष।

वर्णन—यह एक प्रसिद्ध वृक्ष है जिसकी लकड़ीका बुरादा (**बुरादए शीशम**) औषधके काममें आता है।

प्रकृति—दिल्लीके हकीम इसे पहले दर्जेमें गरम और खुश्क मानते हैं। मतांतरसे पहले दर्जेमें गरम मोतदिल है। आयुर्वेदके मतसे भी उष्णवीर्य (भा० प्र०) है।

गुणकर्म तथा उपयोग—लेखन (मुहज़्ज़िल बदन), उदरकृमिनाशन, रूक्षण और विशेषकर रक्तशोधन है। रक्तप्रसादनके निमित्त आतशक, कुष्ठ, क़िलास, कण्डू और फोड़े-फुंसियों तथा अन्यान्य त्वचाके रोगोंमें इसकी लकड़ीके बुरादेका फांट, क्वाथ या शर्बत प्रयुक्त होता है। जूतेकी रगड़से पैरमें होनेवाले जख्म (चमरस)के लिए इसके पत्तोंको पीसकर पतला लेप करते हैं। यह दाह (सोजिश) मिटाता और जख्मको सुखा देता है। इसकी लकड़ीको जलानेसे उसके दूसरे सिरेपर जो द्रव निकलता है, उसे दादपर लगानेसे लाभ होता है। पत्र शामक (मुसक्किन) है। **अहितकर**–उष्ण प्रकृतिके लिए। **निवारण**–बबूरका गोंद और शहद। **प्रतिनिधि**–आबनूस। **मात्रा**–५ ग्राम से ७ ग्राम (५ माशे से ७ माशे) क्वाथ एवं फाण्टके रूपमें प्रयुक्त होता है।

आयुर्वेदीय मत—**शीशम** कषाय, कटु, तिक्त, उष्णवीर्य, वर्ण्य, गर्भपात करनेवाली तथा कण्डू, मूत्राशयके रोग, हिक्का, शोथ, विसर्प, भेदके रोग, कुष्ठ, श्वित्र, वमन, कृमि, दाह, रक्तविकार और कफका नाश करनेवाली है। (च० सू० अ० २५, वि० अ० ८, सु० सू० अ० ३)। शीशमकी लकड़ीका तेल तिक्त, कटु, कषाय, दुष्टव्रणशोधन तथा कृमि, कुष्ठ और वातविकारका नाश करनेवाला है। (सु० सू० अ० ४५)।

नव्यमत—पत्रक्वाथ सूजाकमें उपयोगी है। पत्तियोंका स्वरस रक्तप्रदरमें पिलानेसे लाभ होता है।

◆

(५६२) शुकाई

फ़ैमिली : काम्पोजीटी (Family : Compositae)

नाम—(भा० बाजार; अ०) शुकाई; (यू०) Akatha arabika (D. 3. 13); (अ०) अल्शुकाआ (इ०बै०) अल् शौकतुल् अरबिया, ज़ू सलासुल् शौकात (इ० बै०); (म०) सकायी; (ले०) वाल्यूटारेल्ला (**Volutarella Spp.**); अरेबियन थॉर्न (Arabian Thorn)।

वर्णन आदि—यह बादावर्दकी जातिकी एक कँटीली वनस्पति है जिसका काण्ड तिपहल और उँगलीके बराबर मोटा होता है। पत्ते तिकोने किंचित् मोटे और रोइंदार होते हैं तथा उनकी प्रत्येक नोकपर काँटा होता है। फूल पिलाई लिए नीले (बनफ़्शई); बीज बारीक, तिकोनिया, खाकस्तरी और मधुर होते हैं।

उपयुक्त अंग—फल और मूल। इनमें मूल अधिक वीर्यवान् होता है। बाजारमें सूखे पंचांगके टूटे-फूटे टुकड़े मिलते हैं जिनमें जड़का अत्यल्प अंश विद्यमान होता है।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम और खुश्क।

गुण-कर्म—यह उपशोषण, संग्राही, श्वयथुविलयन, वेदनास्थापन, दीपन, यकृद्बलवर्धन तथा ज्वरघ्न है और जीर्णज्वरों एवं यकृत्के रोगोंमें विशेष गुणकारी है।

उपयोग—शुकाई अधिकतया यकृत् और आमाशयके रोगों तथा पुराने ज्वरोंमें प्रयुक्त की जाती एवं गुणकारी है। गलशुण्डीशोथ (वरम लहास)को विलीन करने और दंतशूलनिवारणके लिए इसके क्वाथसे गण्डूष (गरगरे) कराते हैं। अतिरज और जीर्ण अतिसार बंद करनेके लिए इसकी जड़का क्वाथ पिलाते हैं तथा अतिरज एवं गुदशोथमें अवगाह (आबजन) कराते हैं। अहितकर–फुफ्फुसोंके लिए। निवारण–कतीरा गोंद। प्रतिनिधि–बादावर्द। मात्रा–५ ग्रामसे ७ ग्राम (५ माशेसे ७ माशे) तक।

◆

(५६३) शौकरान

(फ़ैमिली : ऊम्बेल्लीफ़ेरी (Family : Umbelliferae)

नाम—(यू०) Konion; (अ०) कूनियून, शौकरान; (फ़ा०) दोरस, तफ़्त; (ले०) **कोर्नी०म् माकूलाटुम्** (**Conium maculatum** Linn.); (अं०) हेमलॉक (Hemlock), कोनायम (Conium)।

वक्तव्य—इसकी लैटिन संज्ञा '**कोनिउम्**' इसकी यूनानी संज्ञा 'कोनियोन' से, जिसको बुकरातने रखा था और जिसका अरबी रूपान्तर '**कूनियून**' है, व्युत्पन्न है। रूमी भाषामें इसको स्क्यूिटा (Cicuta) कहते हैं।

शैख़ुर्रईस बूअलीसीनाने लिखा है कि 'कूनियून' से शौकरान अभिप्रेत है और कभी-कभी जो इसका उल्था किया गया है, वह अयथार्थ है। **इब्नबैतार और हाजी ज़ीनुल अत्तार** भी कोनियूनको शौकरान ही बताते हैं। इब्न बैतारके कथनानुसार स्पेनमें इसको 'हफ़ूज' कहते हैं और हाजी ज़ीनुल्अत्तारके कथनानुसार यज़्द जिलों (ईरान)में इसको **दोरस** कहते हैं। सर्वोत्तम वह है जो तफ़्त पर्वत पर उत्पन्न होती है और दोस्त तफ़्ती कहलाती है। **मुल्ला नफ़ीसने** भी शरहअस्बावमें ऐसा ही लिखा है। इसकी जड़को **बेख़तफ़्त** कहते हैं।

डॉ० डाइमॉकके कथनानुसार भारतवर्षके कतिपय स्थानों यथा बम्बई आदिमें शूकरानका बाजारू नाम 'किर्दमाना' और 'अजवायन खुरासानी' है जो सर्वथा मिथ्या है। मुहीत आज़मके लेखकके अनुसार कोई-कोई सुकरानको 'बांगर मोठ'की जड़ (बेख मोठदस्ती) मानते हैं। यह भी असत्य है और जिन्होंने इसे 'कालापोस्ता' लिखा है, उन्होंने भी यह आशंका किया है।

इतिहास—प्राचीन यूनानी हकीम इसको अच्छी तरह जानते थे। प्राचीनकालमें यह अपने घातक प्रभावके कारण प्रसिद्ध थी। सुतरां एथेन्सनिवासी जब किसीको मृत्युके घाट उतारना चाहते थे तब इसको पोस्ताके काढ़ेमें मिलाकर देते थे। हकीम सुकरात[1] (Socrates)को यही विष पिलाकर मृत्युके घाट उतारा गया था। इसलिए इसको '**शौकराने सुकरात**' भी कहते हैं। अरबी और अजमी चिकित्सकोंने उक्त औषधिके गुण-कर्मवर्णनमें यूनानी चिकित्सकोंका ही अनुकरण किया है। भारतीयोंने इसका उल्लेख नहीं किया।

उत्पत्तिस्थान—यूरोप और उत्तरी समशीतोष्ण एशिया। इंगलैंडमें साधारणरूपसे होता है।

वर्णन—यह '**शौकरान कबीर**' या '**शौकरान सुकरात**'के ताजे पत्र और छोटी-छोटी शाखायें होती हैं जो जूनके महीनेमें उक्त वनस्पतिमें फल आते समय तोड़कर संग्रह कर ली जाती हैं तथा औषधिमें प्रयुक्त की जाती हैं। पत्र चिकने और साफ, पत्रप्रांत गहरे कटे हुए और नोक तेज होती है। गंध तीक्ष्ण एवं अप्रिय, स्वाद अरुचिकर; इसमें सोयेके समान छत्र लगता है जिससे अनीसूँ की तरहके बीज निकलते हैं।

उपयुक्त अंग—पुष्प, पत्र और जड़ (बेख़े तफ़्त)।

रासायनिक संगठन—इसमें (१) कोनिईन (Coniine जौहर शौकरान), एक स्नेहमय उत्पत् प्रवाही क्षारोद जिसमेंसे चूहोंकी-सी दुर्गन्ध आती है और जो इसका वीर्य है; (२) मीथिल कोनिईन (Methyl coniine) एक रंगरहित प्रवाही क्षारोद; (३) कोनहाइड्राइन (Conhydrine) एक निर्वीर्य क्षारोद और (४) कोनिक एसिड आदि उपादान होते हैं।

प्रकृति—चौथे दर्जेमें शीत और तीसरे दर्जेमें रूक्ष।

---

1. हकीम सुकरातका जन्म और मृत्यु स्थान यूनानकी राजधानी एथेंस, जीवनकाल ईसवी सन् ४६९ से ३९९ पूर्व था। इस धर्मप्राण ईश्वरभक्त यूनानी दार्शनिकको मूर्तिपूजाके विरुद्ध ईश्वरपूजनकी शिक्षादेनेपर यूनानी मूर्तिपूजकोंने उन्हें बन्दी बना दिया और तत्कालीन ग्यारह न्यायाधीशोंने उन्हें बधयोग्य होनेका फैसला दिया। अंततोगत्वा उस वेचारे निरपराधीको बन्दीखानामें ही विष देकर मार डाला गया।

गुण-कर्म तथा उपयोग—बाहरी तौर पर उपयोग करनेसे शूकरान स्वापजनक, वेदनास्थापन और आक्षेपहर है। स्तनों पर लेप करनेसे स्तन्यका शोषण करती है तथा उदरके ऊपर लेप करनेसे यह दस्तोंको बन्द करती है। **आंतरिक** उपयोगसे यह आक्षेप का निवारण करती, नींद लाती, वीर्यका शोषण करके शुक्रस्तंभन करती और नशा लाती है। यह विशेषकर शामक और स्वप्नजनन है तथा स्वप्नदोषके लिए गुणदायक है। उष्ण आमवात, कक्षा, कालस्फोट या जमरा (ऐन्थ्रैक्स), विसर्प और नेत्रशूल आदिमें वेदनाशमनके लिए इसका पतला लेप लगाते हैं। स्तनोंका स्तन्यशोषण और स्तनसंकोचनके लिए इसका लेप करते हैं। दस्तोंको बंद करनेके लिए उदरपर और नकसीर बन्द करनेके लिए मस्तक पर इसका लेप करते हैं। आक्षेपनिवारक और संशमन होनेके कारण इसे आक्षेपयुक्त व्याधियों, जैसे—बालापस्मार, कम्पवात, पक्षबध और कालीखाँसीमें भी देते हैं। इसे शुक्रस्तंभन औषधियोंमें मिलाकर खिलाते हैं। **विषलक्षण**—शूकरान एक सांघातिक जहरीली औषधि है। इसके अधिक प्रमाणमें खानेसे शरीर की मांसपेशियाँ वातग्रस्त हो जाती हैं। दृष्टिमें विकार उत्पन्न हो जाता है। कण्ठस्थ पेशियोंके वातग्रस्त होनेसे निगलना कठिन हो जाता है और अन्ततः श्वास अवरुद्ध हो जानेके कारण रोगी यमलोक सिधारता है। **अहितकर**—दृष्टिको कम करती है और आक्षेप एवं कंठशोथ (खुनाक) उत्पन्न करती है। **निवारण**—अफसंतीन, जुंदबेदस्तर और कालीमिर्च। **प्रतिनिधि**—अजवायन खुरासानी। **मात्रा**—१२० मि० ग्रा० से २४० मि० ग्रा० (१ रत्तीसे २ रत्ती) तक। **७ माशेकी मात्रामें सांघातिक हैं।**

●

(५६४) शैलम

फ़ैमिली : ग्रामीने (Family : Gramineae)

नाम—(हिं०) मूछ्नी; (अ०) शैलम; (फा०) समुक, गंदुम दीवानः; (यू०) ऐरा; (ले०) **लोलीउम् टेमूलेन्टुम्** (**Lolium temulentum** Linn.); (अं०) बिअर्ड डार्नेल (Beared Darnel)।

उत्पत्तिस्थान—एशिया, यूरोप और उत्तरी अफरीका। भारतवर्षमें गंगाके ऊपरी मैदान, पंजाब, सिन्ध और पश्चिम हिमालयमें गेहूँ आदिके खेतमें उत्पन्न होता है।

वर्णन—यह एक पौधेके दाने हैं जो जौसे बहुत छोटे, ललाई लिए और स्वादमें तिक्त होते हैं। पौधा गेहूँके पौधेकी तरह होता है।

रासायनिक संगठन—इसमें **टेमूलीन** (Temuline) नामक ऐल्केलॉइड स्वभावका एक विषैला सत्व होता है।

प्रकृति—गरम और खुश्क।

गुण-कर्म तथा उपयोग—लेखन, श्वयथुविलयन, स्वापजनन, वेदनास्थापन, स्वप्नजनन और मदकारि है। दद्रु, गंज और कन्डूमें इसे सिरकामें पीसकर लगाते और झाईंमें गंधकके साथ लेप करते हैं। पार्श्वरुक्‌को शमन करनेके लिए मद्यके साथ पीसकर लगाते हैं। इसके अतिरिक्त व्रणशोथको विलीन करने एवं दारणके लिए उपयुक्त औषधियोंके साथ इसका लेप करते हैं। **मात्रा**—आंतरिक उपयोग नहीं होता।

नव्यमत—गंदुम दीवानाका आटा (Darnel meal) शामक पुलटिस है और ऐसा विश्वास किया जाता है कि यह चेहरेके दाग-धब्बे (Freckles)को ठीक करता है।

●

(५६५) संखाहुली

फ़ैमिली : कॉन्वॉल्वुलासे (Family : Convolvulaceae)

नाम—(हिं०) संखाहुली, संखहुली, कौड़ियाला; (सं०) शंखपुष्पी; (गु०;पं०) शंखावली; (म०) शंखाहुली, शंखवेली; (ले०) **कॉन्वॉल्वुलस् प्लूरीकाडलिस्** (**Convolvrulus pluricaulis** Chois.)।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्षमें साधारणतया खुली, घासमय एवं सख्त कंकरीली और बंजर भूमिमें उत्पन्न होती है।

वर्णन—यह चौमासेमें बहुत होती है। कहीं-कहीं इससे पूर्व बैसाख-जेठमें भी होती है। इसके **क्षुप** ५से १५ सें० मी० (२से ६ इञ्च) तक ऊँचे बढ़कर बादमें जमीनपर फैल जाते हैं। **पत्र** एकांतर, रेखाकार, १·२५से ३·७५ सें० मी० (१/२ इञ्च से १ १/२ इञ्च) लम्बे एवं सूक्ष्म सफेद रोइयोंसे व्याप्त होते हैं। **पुष्पदण्ड** पत्रकोणीय एवं रोमयुक्त; **पुष्प** कीप वा छूछीकी आकृतिके (कटोरीनुमा), सफेद, किसी कदर गुलाबी होते हैं। **मूल** सुतलीके समान वा अंगुली जैसा १० सें० मी० से १५ सें०मी० (४ इञ्च से ६ इञ्च), कभी-कभी ३० से ४५ सें०मी० (१ या १ १/२ फुट) तक लम्बा, किंचित् रेशेदार, भूरापन लिए सफेद रंगका होता है। इसकी एक दूसरी जातिको जिसके फूल भड़कीले नीले रंगके होते हैं, **विष्णुक्रान्ता** कहते हैं। लेटिनमें इसको **एवॉल्वुलस् आल्सीनोइडेस** (**Evolvulus alsinoidees** Linn.) कहते हैं। ये दोनों गुणमें समान होती हैं। यह अपराजितासे भिन्न है।

उपयुक्त अंग—पंचांग और मूल। **मात्रा**—**स्वरस** २३·० ग्राम से ४६·५ ग्राम या २ तोला से ४ तोला; **चूर्ण** (३ ग्राम से ६ ग्राम या ३ माशा से ६ माशे); **फाण्ट** (४ तोला से ८ तोला)।

प्रकृति—उष्ण एवं तर। आयुर्वेदमें इसे अनुष्ण लिखा है। (कै० नि०)।

गुणकर्म तथा उपयोग—रक्तशोधक होनेसे फिरंग, सूजाक और रक्तविकारजन्य रोगोंमें इसे कालीमिर्चके साथ पीस-छान शीराबनाकर पिलाते हैं। इस प्रकार इसे रक्तार्श (खूनी बवासीर) एवं वातार्शमें भी सेवन कराते हैं। रक्तशोधन होनेके अतिरिक्त यह सारक भी है। स्मृतिवर्धनके लिए तथा सूजाक, शुक्रमेह और मधुमेह (जियाबेतिस)में इसका चूर्ण बनाकर खिलाते हैं। शुक्रप्रमेह (जरयान मनी) और शुक्रतारल्यमें इसके जड़की छाल उपयोग की जाती है। नेत्ररोगोंमें भी इसका सेवन गुणकारी बताया जाता है। **मात्रा**–७ ग्राम से १२ ग्राम (७ माशे से १ तोला) तक। जड़–३ ग्राम से ५ ग्राम (३ माशेसे ५ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत–शंखपुष्पी कषाय, कटु, तिक्त, सारक, मेध्य, वृष्य, बल्य, जठराग्नि और कान्तिको बढ़ानेवाली, स्वर्य, रसायन तथा मानसरोग, उन्माद, अपस्मार, कुष्ठ, कृमि, विष, अनिद्रा और भ्रमको दूर करनेवाली है। (च० चि० अ० १; भा० प्र०; कै० नि०)।

नव्यमत—**शंखपुष्पी** दीपन, पाचन, आनुलोमिक, शामक, ज्वरघ्न, पौष्टिक और गर्भाशय, मस्तिष्क तथा नाड़ियोंको हितावह है। उन्मादमें २–४ तोला ताजी शंखपुष्पीका स्वरस देनेसे दस्त साफ होता है और मद उतरता है। बद्धकोष्ठ, गुल्म और आनाह इन रोगोंमें इसकी जड़ देते हैं। इससे दस्त साफ होकर शारीरिक विष बाहर निकल जाता है। ज्वरमें प्रलाप होनेपर मस्तिष्कको शक्ति देने और नींद लानेके लिए इसका फांट देते हैं। **विष्णुक्रान्ता** तिक्तबल्य, ज्वरघ्न तथा कृमिहर है। प्रवाहिकामें इसका उपयोग करते हैं। दमा और पुरानी खाँसीमें इसकी पत्तियोंका धूम्रपान करते हैं।

●

(५६६) संगतरा

फ़ैमिली : आउरान्टिआसे (Family : Aurantiaceae)

नाम—(हिं०) संगतरा, संवरा, संत्रा, सोंतरा, रंगतरा; (अ०) नारंज; (फा०) नारंग; (सं०) नागरङ्ग, नारङ्ग; (द०) नारंगी; (म०) संत्रे, नारिंग; (गु०) नारंगी; (बं०) नारेंगा (रंगि); (लै०) सीट्रस् आउरान्टिउम् (**Citrus aurantium** Linn.); (अं०) स्वीट ऑरेन्ज (Sweet Orange)।

उत्पत्तिस्थान—चीन तथा कोचीन चीनका आदिवासी है। समस्त भारतवर्षके उष्ण एवं आर्द्र प्रदेशों विशेषकर छोटानागपुरमें इसके वृक्ष लगाए जाते हैं।

वर्णन—यह एक प्रसिद्ध संसारके समस्त फलोंसे स्वादिष्ट मेवा (बड़ी और मीठी नारंगी) है। यह सेबके बराबर और पिलाई लिए लाल रंगका होता है। इसका छिलका (फा०) पोस्त-नारंग; (अ०) कश्रुन्नारंग) चिकना एवं समतल होता है और छिलकेमें कई फाँके लिपटी होती हैं जिनका स्वाद मधुर एवं स्वादिष्ट होता है। छिलकेका स्वाद तिक्त और गंधप्रिय होती है। दे० 'नारंगी'।

उपयुक्त अंग—फलका गूदा और छिलका।

रासायनिक संगठन—फलरसमें अनेक विटामिन तथा ऑर्गेनिक लवण प्रभूत मात्रामें होते हैं। इनमें प्रधानतः शर्करा, सिट्रिक अम्ल (Citric acid), सिट्रेट ऑफ पोटास (२% से ३%) आदि जैसे इन्–ऑर्गेनिक लवण हैं। छिलकेमें उत्पत् तैल (Neroli oil), रालदारगोंद, एक अनुत्पत् तेल, ग्लूकोसाइड्स, कषाय द्रव्य और राख ४%–५% प्रभृति उपादान होते हैं।

प्रकृति—पहले दर्जेमें शीत एवं स्निग्ध।

गुण-कर्म तथा उपयोग—**सौमनस्यजनन, पित्तघ्न**, कोथप्रतिबन्धक और विशेषकर मनःप्रसादकर एवं संशमन है। छिलका लेखन है। सौमनस्यजनन होनेके कारण यह हृदयदौर्बल्य और हृत्स्पंदनको दूर करता और हृदयको बल प्रदान करता है। पित्तघ्न होनेके कारण तृष्णा एवं संतापको शमन करता और रक्तप्रकोपको शांत करता है। कोथप्रतिबंधक होनेके कारण वायुके विषको दूर करता है। महामारीके प्रसारकालमें इसका खिलाना या इसका शर्बत पिलाना हितकारक है। लेखन होनेके कारण छिलकेको उबटनों (गाजा)में डालते हैं। यह रंगतको निखारता और चेहरेकी झाईं आदिको दूर करता है। **अहितकर**–शीत प्रकृतिको। **निवारण**–शुद्ध मधु। **प्रतिनिधि**–मीठा रंगतरा। **मात्रा**–संतरा २–३ तक खा सकते हैं और इसका स्वरस ४–५ तोले तक।

●

(५६७) संद्रूस (चंद्रस)

फ़ैमिली : डोप्टेरोकार्पासे (Family : Dipterocarpaceae)

नाम—वृक्ष (हिं०) सफेद डामर; (सं०) सर्ज; (ते०) तेल्लदामरु; (ता०) वेल्लै कुन्दिरिक्कम्; (मल०) पइन, पय(व)नि०; (लै०) वाटेरिया इंडिका (**Vateria indica** Linn.); (राल जैसा) निर्यास; (हिं०) चंदरस, चन्द्रस; (अ०) सल्संद्रस (इ० बै०); (सं०) सर्जरस; (बं०; पं०); सुंदरस; (क०) सिंद्रुस; (यूनानी वैद्यक) संद्रस, संदरस; (द०) कहरवा; (अं०) सैंडरक (Sandrach), डामर रेजिन (Damar Resin)।

उत्पत्तिस्थान तथा वर्णन—इसका बड़ा सुन्दर वृक्ष मलबार, दक्षिण भारतवर्ष, पश्चिमी घाटकी पहाड़ियों तथा पश्चिमी प्रायद्वीप आदिमें होता है। इसके घड़से राल जैसा निर्यास निकलता है जिसे चंद्रस (चंदरस) कहते हैं। इसके टुकड़े देखनेमें कहरुबा जैसे मालूम होते हैं। यह विभिन्न रंग, गन्ध और गुरुत्वके होते हैं। इनकी उक्त विविधता, गोंदके संग्रहविधि भेदके कारण तथा वृक्षके अवस्थाभेदसे उत्पन्न होती है। इनमें कोई हलका हरेरंगके, घन, समरूप और तोड़नेपर काचवत्, परन्तु दूसरे इससे भिन्न कोशाकार (Vesicular) और अंबरी रंगके (Amber-coloured) होते हैं। इनके उत्तम अंबरी रंगके टुकड़े कहरुबा नामसे दक्षिण भारतवर्षके वाजारोंमें विकते हैं। जलानेपर यह उज्ज्वल एवं स्थिर प्रकाश और सुगन्ध देता है; किंतु धुआँ बहुत कम देता है। थोड़ा कपूर मिलाने और अग्निपर रखनेसे यह मद्य (स्पिरिट) में विलेय होता है। हलकी आँचपर यह मोम और तेलमें मिल जाता है और उत्तम मरहमका रूप ग्रहणकर लेता है। उत्तम चंद्रस वह है जो कहरुवाके समान तिनकेको अपनी ओर खींच लेवे। इसमें २० वर्षतक वीर्य रहता है। चंद्रस और कहरुवाका अन्तर जाननेके लिए 'कहरुवा' देखें।

रंगके विचारसे यह चार प्रकारका होता है। उनमें रक्त एवं उज्ज्वल चंद्रस श्रेष्ठतर होता है। चंद्रस वार्निश और मलहम बनानेके काममें आता है। इस (सफेद डामर) के बीजोंसे तेल निकाला जाता है जो कोकमके तेल जैसा जमा हुआ, पीला और सुगन्धित होता है। चिरज आमवातमें इसका स्थानीय प्रयोग करते हैं।

अफ्रीकामें होनेवाले ट्राकेलोस्पेर्मुम् हार्नेमान्निआनुम् (**Trachelospermum hornemannianum** Hayne.) नामक एक शिम्बीकुलके वृक्ष अर्थात् 'विदेशी डामर' से प्राप्त राल (Fossil resin (Gum Copal) को भी 'भारतीय बाजारोंमें संदरूस' कहते हैं, ऐसा श्री डीमक महोदयका मत है। (फा० इं० भाग १, पृ० ५१०)।

प्रकृति—चन्द्रस दूसरे दर्जेमें गरम और रूक्ष है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—गुण-कर्ममें यह (चंद्रस) कहरुवा और राल (यूरोपीयन रेजिन) के समान है। यह आमाशय और आँतोंके कफको छाँटता (लेखन) है तथा पेटके कीड़ोंको मारता है। इसका मंजन दाँतों और मसूढ़ोंको शक्ति देता है तथा उनके स्रावको रोकता है। इसकी धूनी अर्शमें लाभ पहुँचाती है और व्रणको सुखाती है। इसका अंजन नेत्रको शक्ति देता है। चन्द्रस मूत्र और आर्तवकी प्रवृत्ति करानेवाला है। इसका तेल कानमें डालनेसे कानकी पीड़ा शान्त होती है। चन्द्रसके सेवनसे शरीरकी स्थूलता नष्ट होती है। यह पसीना आनेको रोकता है। सर्जके तेलमें सफेदा (जस्तेका फूल) और चन्द्रस मिलाकर लगानेसे सिरके गंजमें लाभ होता है। गुणकर्ममें यह कहरुवा और रालके समान है। मात्रा–१ ग्राम से ३ ग्राम (१ माशे से ३ माशे) तक।

नव्यमत—चंद्रसके गुण यूरोपियन रेजिनके समान हैं। यह व्रणशोधन और व्रणरोपण है। तेल वेदनास्थापन है। उत्तम व्रणरोपण होनेके कारण इसका मरहम सभी प्रकारके व्रणोंमें उपयोगी है। तेल जीर्ण आमवातमें गुणकारी है। अन्य द्रव्योंके मरहम बनानेमें तेल काममें आता है।

कल्प—मरहम—(चंद्रस ५ भाग; राल ५ भाग, मोम २ भाग, तिलका तेल ८ भाग सबको एकत्र आगपर पिघला, कपड़ेसे छानकर मरहम बनावें)।

●

(५६८) सँभालू

फ़ैमिली : वेर्बेनासे (Family : Verbenaceae)

नाम—(हिं०) सम्हालू, सँभालू, म्योंडो, मेउ(व)ड़ी; (अ०) अस्लक़, फंजंजि(कि)श्त, ज़ूख़म्सतुल् औराक़, ज़ूख़म्सते असाबेअ; (फा०) पंजंगुश्त; (सं०) निर्गुण्डी, सिन्दु(न्धु)वार; (संथा०) सिंदवार; (द०) शेमालू, शंबाली; (बं०) निशिन्दा; (गु०) नगोड़, नगद; (म०) निर्गुंडी, निनिगड़; (कु०) सेंवाली; (उडि०) निगुण्डी; (खर०) सिनुआर; (ले०) वीटेक्स नेगुंडो (**Vitex negundo** Linn.); (अं०) फाइह्व-लीह्वड चेस्ट-ट्री (Five-leaved Chaste-tree)। बीज—(हिं०) सम्हालूके बीज; (अ०) अस्लक़, हब्बुल्फ़क़्द, हब्बुत्ताहिर; (फा०) फ़िल्फ़िल कोही, दिल आशोब, तुख्म पंजंगुश्त; (गु०) हरेणु, रेणुक बीज।

वक्तव्य—ये बीज ईरानसे 'रेणुका' नामसे आते हैं तथा निर्गुंडी कुलके **वीटेक्स आग्नुस् कास्टुस्** (**Vitex agnus-castus** Linn.) नामक विदेशी वृक्ष के बीज होते हैं; किन्तु यह आयुर्वेदोक्त 'रेणुका' नहीं है। इसके क्षुप या वृक्ष उत्तर-पश्चिम भारतवर्ष तथा ईरान आदि देशों में होते हैं। शाखायें चौपहल, पत्रनाल लम्बा, पत्ती करतलाकार संयुक्त, पत्रक पाँच, कभी-कभी सात भी, भालाकार और लम्बे नोकवाले होते हैं। सफेद फूलवाली मेउड़ीको संस्कृतमें सिंदुवार (सिन्धुवार) और लैटिनमें **वीटेक्स ट्रीफोलिआटा या ईन्सीजा** (**Vitex trifoliata** or **incisa**) कहते हैं।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष में इसके (छोटे) वृक्ष बगीचों और पहाड़ोंमें होते हैं।

वर्णन—फलके रंग, पत्तेकी आकृति एवं पत्रसन्निवेशभेदसे निर्गुंडी अनेक प्रकारकी होती है। नीले फूलकी निर्गुण्डी की झाड़ होती है। कांड मनुष्यके जंघातुल्य स्थूल, शाखायें फैली हुई तथा पत्र संयुक्त (परन्तु किसी-किसी नवीन टहनी पर साधारण और सरल या ऊपर की ओर दन्तमय धार के) होते हैं। पत्रक संख्या में ३ या ५ (दूसरी जातिमें १से३) और भालाकार होते हैं, जो २·५ सें०मी०से १२·५ सें० मी० (१ इंच से ५ इंच) लम्बे तथा १·२५ से ३·०५ सें० मी० (½ इञ्च से १½ इञ्च) चौड़े और छोटे-बड़े होते हैं। इनसे एक अत्यन्त तीव्र गंध आती है (मसलने पर उक्त गंध अधिक स्पष्ट होती है)। पुष्प नीलाभ या बैंगनी सफेद होते हैं। बीज (फल) कालीमिर्चके समान; किन्तु उनसे अधिक छोटे और रंगतमें कोई सफेद और कोई काले होते हैं।

उपयुक्त अंग—पत्र (बर्गे सँभालू) बीज वा फल (तुख़्मे सँभालू)।

रासायनिक संगठन—पत्र में सँभालूके पत्रक गंधवाला एक रंगरहित उत्पत् तेल और राल; बीज वा फलमें एक चरपरा राल, एक कषाय सैन्द्रियक अम्ल, सेवाम्ल, एक क्षारोद अंशतः और एक रंजक द्रव्य। ईरानी बीजमें कैस्टीन (Castine) नामक एक तिक्त वीर्य, एक बनफ़्शई तीक्ष्ण पदार्थ, एक स्वतंत्राम्ल और वसामय तेल प्रभृति उपादान होते हैं।

पत्र—

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम एवं खुश्क। आयुर्वेदमें उष्णवीर्य (ध० नि०) एवं रूक्ष (रा० नि०) तथा इसके फूलको शीतवीर्य एवं पित्तनाशक लिखा है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—पत्र (बर्गेसंभालू) लेखन, वेदनाहर, कठिनश्वयथुविलयन, कोथप्रतिबंधक और विशेषकर यकृत् एवं प्लीहाके अवरोधका उद्घाटनकर्ता है। दृष्टिको शक्ति देनेके लिए इसके पत्तोंका रस नेत्रके भीतर आश्च्योतन करते हैं। कंठशूल और मुखव्रणको शमन करनेके लिए इसके पत्रक्वाथसे गण्डूष कराते हैं। गर्भाशयशोथ जरायुशूल वृषणशोथ और गुदशोथमें इसके काढ़ेसे कटिस्नान (आबज़न) कराते हैं। वायुजन्यशूल, जरायुशोथ

और कठिन शोथों पर इसके पत्तोंका अकेले तया अन्य उपयुक्त औषधियोंके साथ भुड़ता बनाकर बाँधते हैं और तेल में जलाकर मरहम जैसा बनाकर प्रकोथयुक्त (दुर्गन्धित) व्रणोंपर लगाते हैं। इसके प्रकोथ दूर होकर व्रण सूख जाते हैं। **अहितकर**–शिरःशूलकारक और वृक्कके लिए अहितकर है। **निवारण**–बबूलका गोंद और कतीरा। **प्रतिनिधि**–शाहदाना। **मात्रा**–पत्रका आंतरिक उपयोग नहीं होता।

बीज—

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम और खुश्क।

गुण-कर्म—सँभालूबीज (तुख़्मे सँभालू) **श्वयथुविलयन** और तारल्यजनन है तथा संग्राही होनेपर प्रमाथी भी है तथा कुछ वातानुलोमन, वीर्यशोषणकर्ता और कामावसादकर है।

उपयोग—सँभालूके बीजोंको कठिन शोथों विशेषतः प्लीहाके कठिन शोथको विलीन करनेके लिए सिकंजबीनके साथ खिलाते हैं तथा सिरकामें भिगोकर गुनगुना टकोर (तकमीद) करते हैं। अफारा (नफ़ख़ शिकम)को दूर करने के लिए इसे खिलाते हैं तथा यकृत् एवं प्लीहाके अवरोधोद्घाटनार्थ उपयोग करते हैं। मैथुनेच्छाको कम करने तथा वीर्यको शुष्क करनेके लिए इसे सिरकाके साथ खिलाते हैं तथा इसका काढ़ा पिलाते हैं। मूत्रार्तवजननके लिए इसका सेवन गुणदायक वर्णन किया जाता है। इसके अतिरिक्त इसका अनोखा स्वभाव यह वर्णन किया जाता है कि यद्यपि यह वीर्यका शोषण करता है, तथापि स्तन्यकी वृद्धि करता है। सफ़ूफ़ फंजंकिश्त इसका प्रसिद्ध योग है जो वीर्याधिक्यजनित शुक्रप्रमेहमें सेवन किया जाता है। **मात्रा**–२ ग्रामसे ३ ग्राम (२ माशेसे ३ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—सँभालू कटु, तिक्त, उष्णवीर्य, रूक्ष तथा कफ, वात, कृमि, कुष्ठ, ज्वर, प्लीहाके रोग गुल्म, अपची, क्षय, कण्डू, शूल, कास, वातरोग, प्रदर और आध्मानका नाश करनेवाला है। ('च० सू० अ० ४', सु० सू० अ० ३८; ध० नि० रा० नि०)। सँभालू (सिन्धुवार)के पुष्प शीतवीर्य और पित्तनाशक हैं। (सु० सू० अ० ४६)।

नव्यमत—सँभालू कटु, तिक्त, कषाय, लघु, उष्ण, दीपन, वातप्रशमन, वेदनास्थापन, कुष्ठघ्न, कण्डूघ्न, व्रणशोधन, व्रणरोपण, उत्तम शोथघ्न, कफनिःसारक, ज्वरघ्न, नियतकालिकज्वरप्रतिबन्धक, कफघ्न, कासहर, मूत्रजनन, आर्तवजनन, कृमिघ्न, मस्तिष्कबलदायक, बल्य और रसायन है। किसी भी प्रकारकी बाहरी या भीतरी सूजन सँभालूसे आराम होती है। शोथमें सँभालूका पत्रस्वरस अथवा मूल या पत्तोंका काढ़ा पिलाते हैं और उनको गरम करके सूजनपर बाँधते हैं। फुफ्फुसशोथ, फुफ्फुसावरणशोथ, अन्त्रकलाशोथ, सन्धिशोथ, आमवात, वृषणशोथ आदिमें सँभालूसे उत्तम लाभ होता है। स्नायुक (नहरवा या नारू) रोगमें इसका स्वरस पिलाते हैं और पत्तियोंके कल्कका लेप करते हैं। सँभालूके पत्रस्वरससे सिद्ध किया हुआ तेल पूयकर्णमें कानमें डालते हैं। सूतिकाज्वरमें सँभालूसे गर्भाशयका संकोचन होकर दूषित रक्त निकल जाता है और गर्भाशयकी सूजन उतरकर गर्भाशय पूर्व स्थितिपर आता है। सूतिकाज्वरमें सँभालूको खिलाते हैं तथा जननेन्द्रिय और पेड़ूपर पत्तियोंको गरम करके बाँधते हैं।

●

(५६९) सकबीनज

फ़ैमिली : ऊम्बेल्लीफेरी (Family : Umbelliferae)

नाम—(हिं०) कंदल; (यू०) Sagapenon; (भा० बाजार) सक(ग)बीनज; (अ०) अल्सकबीनज (इ० बै०), सक(ग)बीनज; (फा०) सकबीनः, इस्कबीनः, इसकबीनः; (ले०) सैगापेनुम् (Sagapenum)।

उत्पत्तिस्थान—फारस, इस्फहान आदि। वहींसे बम्बईमें इसका आयात होता है।

वर्णन—यह जवाशीरकी जातिके एक वृक्षका गोंद है, जो बाहरसे रक्त और पीत तथा भीतरसे आर्द्रतायुक्त सफेद अक्षुवत् दानोंसे बनी डलीके रूपमें होता है। गन्ध तीव्र हिंगु और गन्धाविरोजेके बीच तथा स्वाद किंचित् तिक्त होता है। इसमें २० वर्ष तक वीर्य रहता है।

रासायनिक संगठन—संगठनके विचारसे 'सकबीनज' का फारसी 'जवाशीर'के साथ निकट सादृश्य होता है।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें गरम और खुश्क।

गुण-कर्म तथा उपयोग—बाहरी तौरपर उपयोग करनेसे सकबीनज लेखन, शोणितोत्क्लेशक तथा विलयन और संशमन है। आंतरिकरूपसे उपयोग करनेसे यह जलीय एवं कफके विरेक लाता है तथा विरेचन औषधियोंके अवगुणोंका परिहार करता, उदरकृमियोंको नष्ट करता तथा मूत्रार्तवका प्रवर्तन करता और बस्तिवृक्काश्मरीको निकालता है। यह विशेषकर मूत्रार्तवजनन तथा मोतियाबिंदको लाभप्रद है। सकबीनजको पक्षवध, आमवात, शीतल शिरःशूल, अपस्मार, गृध्रसी और जलोदर जैसे कफज एवं वातज रोगोंमें बहिराभ्यंतरिक रूपसे उपयोग करते हैं। त्वचाके रोगोंमें इसका लेप करते हैं। कठिन शोथों जैसे कण्ठमाला (खनाजीर)में इसे सिरकेमें पीसकर लेप करते हैं। वाजीकरणार्थ इसका शिश्नपर लेप करते हैं। उदरकृमियों तथा बस्तिवृक्काश्मरीके निर्हरणके लिए इसे खिलाते हैं और आर्तवप्रवर्तनके लिए इसको पिलाते तथा योनिमें इसकी फलवर्ति रखते हैं। **अहितकर**–आंतरिक श्वयथुकारक। **निवारण**–कतीरा और बादामका तेल। **प्रतिनिधि**–बिहरोजा। **मात्रा**–१ ग्राम से २ ग्राम (१ माशासे २ माशे) तक।

●

(५७०) सकमूनिया (आ)

फ़ैमिली : कॉन्वाल्वुलासे : (Family : Convolvulaccae)

नाम—(हिं०; भा० बाजार; म०; पं०; सिं०) सकमूनिया; (यू०) स्काम्मोनिआ Skammonia (D. 4. 168) (अ०) अलसक़मूनिया (इ० बै०); (अ०; फा०) सक़मूनिया, महमूदा; (ते०; ता०) मामूदा; (ले०) स्काम्मोनिउम् (Scammoniun), (अं०) स्केमोनी (Scammony), वर्जिन स्केमोनी (Virgin Scammony)। (रालीयगोंद) **निर्यासोद्यास**—(हिं०, उ०) सकमूनिया; (अ०) रातीनज सकमूनिया; (ले०) स्काम्मोनी रेजिना (Scammoniae Resina); (अं०) स्कैमोनी रेजिन (Scammony Resin)।

वक्तव्य—'स्केमोनिआ' या 'सकमूनिया' क्रमशः यूनानी व अरबी संज्ञायें हैं। अरबीमें इसको '**महमूदा**' भी कहते हैं। इसी प्रजातिकी एक अन्य जातिकी बेल जिसे हिन्दीमें **हिरनखुरी** और वैज्ञानिक भाषामें **कॉन्वॉल्वुलस आर्वेन्सिस (Convolvulus arvensis** Linn) कहते हैं, भारतवर्षमें कश्मीरसे कन्याकुमारी तक स्वयंजात होती है। इसकी जड़ विरेचनरूपमें सिन्ध और पंजाबमें प्रयुक्त होती है।

इतिहास—'स्केमोनिया' का उल्लेख बुकरात और जालीनूस आदिने भी किया है। कतिपय संकलनकर्ताओंका कथन है कि यूनानी चिकित्सक विरेचनार्थ सामान्यरूपसे इसका उपयोग करते थे। किन्तु जालीनूस्ने इसके विषयमें कुछ नहीं लिखा। कारण वह केवल आमवातकी औषधियोंमें इसका उपयोग किया करता था। आरब्य चिकित्सकोंको भी यह औषधि पूर्णतया ज्ञात थी।

उत्पत्तिस्थान—यह भूमध्यसागरीय प्रदेशका मूलनिवासी है। स्याम (Syria) तथा एशियामाइनरमें यह प्रचुरतासे होता है। वहींसे भारतवर्षमें इसका आयात होता है। अब सीमित दायरेमें भारतवर्षमें भी इसका उत्पादन किया जाता है।

वर्णन—यह एक प्रकारका रालयुक्त गोंद (Gum-resin) है जो एक बेलदार वनस्पति (कॉन्वॉल्वुलस् स्काम्मोनिआ (**Convolvulus scammonia** Linn.)की जड़में चीरा (शिग़ाफ़) देनेसे स्रवित होकर जम जाता है। इसका रंग बाहरसे खाकस्तरी या कालाई लिए भूरा होता है। ताजा टूटा तल चमकदार, अर्धस्वच्छ, सुषिरपूर्ण और गहरे भूरे रंगका होता है। गंध विशेष प्रकारकी और स्वाद खराब होता है।

रासायनिक संगठन—इसमें ७० प्रतिशत **राळ** तथा **स्कैमोनिन** (Scammonin) नामक ग्लूकोसाइड और निर्यात आदि उपादान होते हैं।

कल्प तथा योग—माजून सक़मूनिया।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें गरम और खुश्क (मतांतरसे खुष्क दूसरे दर्जेमें)।

गुणकर्म तथा उपयोग—बाह्यप्रयोगसे सकमूनिया विलयन है। आन्तरिक प्रयोगसे प्रबल विरेचन है। किंतु इसका उक्त कर्म उस समय होता है जब यह ग्रहणीमें पहुँचकर पित्तके साथ मिल जाती है। इसके उपरांत जलवत् पतले विरेक आने लगते हैं। अधिक प्रमाणमें खिलानेसे यह अन्त्र तथा आमाशयमें संक्षोभ (खराश) उत्पन्न करता है। अन्य विरेचन औषधियोंके साथ मिलानेसे सकमुनिया उनके कर्मको तीव्र कर देता है। इसके अतिरिक्त अन्त्र और आमाशयगत कृमियोंपर यह घातक प्रभाव करता है। किन्तु यह प्रभाव अधिक तीव्र नहीं है। यह किसी कदर यकृदामाशयबलवर्धन भी है। खिलाने और योनिमें फलवर्ति धारण करनेसे यह गर्भशातक भी है। यह विशेषरूपसे कफ पित्तविरेचनीय और गर्भशातक है। इसको बाहरी तौरपर झाइं, किलास, न्यच्छ (नमश), व्यंग और दद्रु जैसे त्वचाके पुराने रोगोंमें लेप करते हैं तथा पुराने सिरदर्द, आमवात और गृध्रसीमें विलयन और संशमनके लिए लगाते हैं। इसको आंतरिक रूपसे खिलानेसे प्रचुरताके साथ पतले विरेक आते हैं। अतएव जलोदर, सन्यास (सक्ता) और उग्र मलावरोध (कब्ज)में खिलाते हैं तथा विरेचन औषधियोंका कर्म तीव्र करनेके लिये इसे उनके साथ मिलाकर देते हैं। उदरकृमियोंको नष्ट करने तथा निर्हरणके लिये इसे निशोथके साथ उपयोग करते हैं और आमाशयको बल देने (दीपन)के लिये इसे गुलाबके फूलके साथ खिलाते हैं। इसके सेवनसे अन्त्र और आमाशयमें खराश होता है, मिचली होने लगती है और आकुलता (कर्ब) उत्पन्न होता है। इसलिये इसको विरेचन औषधियोंके साथ मिलाकर और शुद्ध करके उपयोग करना उपादेयतर है। शोधित सकमुनियाको **सक़मूनिया मुशव्वी** कहते हैं जिसकी विधि यह है—एक सेब या बिही लेकर उसमें छिद्र बनाकर सकमुनिया भर दें। इसके बाद निकले हुये अंशसे छिद्रको भरकर उसके ऊपर आटा लपेटकर तनूरमें रख दें। जब आटा लाल हो जाय, तब तनूरसे निकाल लें और आटा छुड़ाकर सकमुनिया निकालकर काममें लेवें। कोमल प्रकृतिवालोंको यह सेब वा बिही खिलानेसे भी विरेक आने लगते हैं। **अहितकर**–आकुलताकारक। **निवारण**–अर्कगुलाब। **प्रतिनिधि**–एलुआ और हड़। **मात्रा**–२ रत्तीसे ५ रत्ती तक।

●

(५७१) सतावर

फ़ैमिली : आस्पारागासे (Family : Asparagaceae)

नाम—(हिं०; पं०; थारु) सतावर; (सं०) शतावरी, शतमूली; (बं०) शतमूली; (गु०; म०) शतावरी, सतावरी; (म०) सत्तावर; (सिं०) सतावरिय; (कु०) कैरुवा; (ले०) आस्पारागुस् रासेमोसुस् (**Asparagus racemosus** Willd.); (अं०) वाइल्ड ऐस्पैरेगस (Wild Asparagus)।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष।

वर्णन—यह एक प्रसिद्ध कँटीली झाड़दार बेलकी कन्दवत् एवं गुच्छोंमें लगी हुई जड़ है, जो पिलाई लिए सफेद होता है। सूखी हुई जड़में लम्बाईके रुख इसपर रेखायें खिंची हुई होती हैं। स्वाद किंचित् मधुर होता है।

रासायनिक संगठन—इसमें प्रचुर प्रमाणमें शर्करा (Saccharine matter) और लबाब होता है। शतावरी और महाशतावरीके ताजे कन्दमें जलविलेय भाग ५२·५% सीठी ३३·५% और जल ९ प्रतिशत होता है। जलविलेय भागमें शर्करा ७ प्रतिशत होती है।

प्रकृति—पहले दर्जेमें शीत एवं स्निग्ध (मतांतरसे स्निग्ध दूसरे दर्जेमें) आयुर्वेदमें भी शीतवीर्य एवं स्निग्ध लिखा है। (कै० नि०)।

गुण-कर्म तथा उपयोग—यह वीर्यपुष्टिकर, वाजीकर एवं स्तन्यजनन है। इसको अधिकतया अकेले या उपयुक्त ओषधियोंके साथ माजूनों या चूर्णों (सफ़ूफ़ात)में डालकर नपुंसकता, शुक्रप्रमेह एवं शुक्रतारल्यमें प्रयुक्त करते हैं। स्तन्यजननके लिए इसका चूर्ण दूधके साथ खिलाते हैं। अहितकर–आनाहकारक। निवारण–मिश्री। प्रतिनिधि–हब्बुल्सनोवर। मात्रा–७ ग्रामसे १२ ग्राम (७ माशेसे १ तोला) तक।

आयुर्वेदीय मत—शतावरी मधुर, तिक्त, गुरु, बल्य, वृष्य, रसायन, स्निग्ध, शुक्र-स्तन्य और अग्निवर्धक, पौष्टिक, चक्षुष्य तथा वात, पित्त, रक्तविकार, गुल्म, अतिसार और शोथका नाश करनेवाली है। (च० सू० अ० ४, वि० अ० ८; सु० सू० अ० २९, ३९; कै० नि०)। महाशतावरी हृद्य, मेध्य, अग्निवर्धक, बल्य, वयःस्थापन, वाजीकर, शीतवीर्य, रसायन तथा ग्रहणीरोग और अर्शको दूर करनेवाली है। शतावरीके अंकुर तिक्त एवं कफ पित्ताहर हैं। (सु० सू० अ० ४६)।

नव्यमत—शतावरी मधुर, शीत, गुरु, स्नेहन स्तन्यजनन, मूत्रजनन, शुक्रजनन, बल्य और वृष्य है।

●

(५७२) सत्यानासी (भँड़भाँड़)

फ़ैमिली : पापावेरासे (Family Papaveraceae)

नाम—(हिं०) भड़(र)भाँड़, भँड़(र)भाँड़; भरभंडा, घमोइ(य), सत्यानासी(शी); (पं०) सत्यानासी, सियाकाँटा; (मार०) सत्यानाशीं, (बं०) शियालकाँटा; (म०) काँटे धोत्रा, पिंवली धोत्रा; (द०) पीला धतूरा, फिरंगीधतरा; (बिहा०) धमोय, कंटैया; (गु०) दारुडी; (सिं०) खरकांढेरी; (का०) अरसिन उम्मत; (ता०) कुडियाट्टि; (मल०) पोन्नुम्मत्तम्; (कु०) ददहत्तर; कंडीज; (ले०) आर्जीमोने मेक्सिकाना (**Argemone mexicana** Linn.); (अं०) मेक्सिकन पॉपी (Mexican Poppy), येलो थिसल (Yellow Thistle)।

वक्तव्य—इसके वैज्ञानिक नामसे यह विदेशी (अमेरिकन) द्रव्य प्रतीत होता है। परन्तु इस देशमें इसका प्रवेश बहुत दिनोंसे हुआ है, जिससे इसके पौधे प्रायः सर्वत्र (समस्त भारतवर्ष) में अधिक मात्रामें पाये जाते हैं। भिन्न-भिन्न प्रांतों एवं भाषाओंके नामोंसे आयुर्वेदीय संहिताओंमें आये हुए किसी नामसे इसका मेल नहीं खाता। अस्तु, इसे 'स्वर्णक्षीरी' मानना उपयुक्त नहीं प्रतीत होता। प्राचीनोंकी स्वर्णक्षीरी या स्वर्णक्षीरीद्वय कश्मीरमें प्राप्त हिरवी या थैकलजातीय (Garcinia) वृक्ष हो सकते हैं। उत्तरकालीन ग्रन्थों (भावप्रकाश आदि) का चोक भड़भाँड़ हो सकता है। मारवाड़ प्रांतमें इसे उक्त नामसे पुकारते भी हैं।

वर्णन—इसके २–३ फुट ऊँचे क्षुप होते हैं। पत्र, काण्ड, पुष्प तथा फल प्रायः सभी अवयव काँटेदार होते हैं। पुष्प पीले, बाह्यकोश २–३ दलके और आभ्यन्तर कोश ४–६ दलवाले होते हैं। इसका पत्ता या टहनी

तोड़नेसे पीला दूध निकलता है। फल २·५ सें० मी० से ३·७५ सें० मी० (१इञ्च या १½ इञ्च) लंबा होता है। बीज छोटे और काले होते हैं। बाजोंसे एक प्रकारका पीला, स्वच्छ, पारदर्शक, काचकी तरहका तेल निकलता है। खुला पड़ा रखनेसे यह उड़ जाता है। बीजोंमें से जव तेल निकाला जाता है तब गँदला होता है। कुछ दिनों पड़ा रहनेसे उसके नीचे सफेद गाद बैठ जाती है और तेल नियरकर स्वच्छ एवं चमकदार हो जाता है। इसकी गंधसे कुछ जी मिचलाता है, किंतु अत्यधिक दुर्गंध नहीं होती। स्वाद किंचित् कटु (चरपरा) होता है। इसकी पहिचान एवं परीक्षा इस प्रकार करते हैं कि जव इसमें शोरेका तेजाब मिलानेसे यह नारंगी या लाल रंगका हो जाता है, तब इसे असली समझते हैं।

उपयुक्त अंग—मूल (मारवाड़ीमें इसको 'चोक' कहते हैं), बीज, क्षीर, और तैल। मात्रा–मूल १·२ ग्रामसे ३·५ ग्राम (१० से ३० रत्ती); बीज ३ ग्राम (३ माशा); क्षीर, ३–६ ग्राम (३–६ माशे); तेल ३ ग्राम (३ माशे)।

रासायनिक संगठन—इसमें अनेकों ऐल्कलॉइड, वसाम्ल, ग्लूकोसाइड, जैविक अम्ल, शर्कराएँ और क्षारधर्मी द्रव्य पाये जाते हैं। **पत्तियोंमें** ये दो ऐल्केलॉइड—एक बर्बेरीन (Berberine) जो दारुहल्दीके वृक्षमें रहता है, और दूसरा प्रोटोपीन (Protopine) नामक सत्व पाये जाते हैं। **बीजोंसे** सैग्वेनैरीन और उदूष्मी सैग्वेनैरीन नामक दो विषाक्त ऐल्केलाइड प्राप्त होते हैं। इन्हीं ऐल्केलाड्सकी उपस्थितिके कारण जलोदरकी बीमारी उत्पन्न हुआ करती है। जड़में चैलेरीथ्रीन, काप्टीडीन और एलोक्राइन्थीन नामक ये तीन होते हैं। इससे भिन्न इसमें पांशुजम पवनेत, चूनजमबलिकेत, चूनजम स्फुरेत आदि कई लवण व क्षार होते हैं।

गुण-कर्म तथा उपयोग—**बीज** सारक, वामक, कफोत्सारि, स्निग्धतासंपादक तथा सर्पविषका अगद है, तथा अफीमकी अपेक्षया मादक, स्वप्नजनन और मूर्च्छाजनन है। ४ से ९ माशे तक इसके बीजोंका चूर्ण फँकानेसे श्वासरोग बढ़ने नहीं पाता। **बीज-तैल** अल्पमात्रामें मृदुरेचन होता है और इससे पेटमें मरोड़ नहीं होता। **पंचांग**का धन भी रेचक होता है। दो-छटाँक इस धनसत्वमें पुराना गुड़ १ छटाँक और राल २ तोले मिलाकर अदरकके रसमें घोटकर २-२ रत्ती की गोली बनावें। इसमेंसे १-१ गोली प्रातः मध्याह्न और सायंकाल गरम पानीके साथ लेनेसे श्वासमें बहुत लाभ होता है। ताजे तेलके २५ विन्दुओंसे ५ से १० या १२ तक दस्त हो जाते हैं। ताजे तेलकी क्रिया निश्चित होती है। जलापा, रेवंदचीनी और एरंडतैलसे यह तेल इसलिए उत्तम है कि मात्रा अत्यल्प है। जमालगोटेके तेलसे यह इसलिए उत्तम है कि इसमें उसके समान कटु आस्वाद, कुस्वाद एवं उत्क्लेश उत्पन्न करनेका गुण नहीं है और न इससे वमन हो जानेपर भी वैसी बेचैनी, कष्ट एवं दुर्बलता होती है। तीस बूँद तेल माशाभर सोंठके साथ या चीनीमें मिलाकर देनेसे आमाशय या अन्त्रका वातिक शूल (रियाही दर्द) मिटकर रोगीको बहुत सुखकर नींद आ जाती है। चर्मरोगों जैसे खुजली आदिमें अकेला या डिठोरी आदि अन्य तेलोंके साथ इसका बाह्य प्रयोग होता है। श्वासरोगोंको मिटानेके लिए तेलको चीनीके ऊपर डालकर फँकाना चाहिए। फिर भी तेलके प्रयोगमें सावधानीकी आवश्यकता होती है, क्योंकि मात्राधिक्यसे अथवा किसी-किसीमें अल्पमात्रासे भी तथा इसके चिरकालीन प्रयोगसे महामारीके रूपमें होनेवाले शोथमें प्रगट होनेवाले विषलक्षणोंके समान (Epidemic dropsy) विषप्रभाव प्रगट हो जाते हैं। मूल रेचक, कृमिघ्न, कुष्ठघ्न और रसायन है तथा चिरज त्वग्रोगों एवं वृश्चिकविषमें भी इसे उपयोगी माना जाता है। ग्रामीण चिकित्सामें उठती हुई आँखोंमें इसका पीला दूध लगानेसे आँख नहीं उठती, किन्तु इसमें बड़ी सावधानी रखनी चाहिए। यह मूत्रजनन, कुष्ठघ्न, शोथहर, व्रणशोधन, व्रणरोपण और विषमज्वरहर है तथा शोथ, कामला और त्वग्विकारोंमें इसके दूधिया रसका उपयोग होता है। जड़ (चोक) विरेचन और वमन कराती, कफ और रक्तके विकार दूर करती, उदराध्मान और उदरकृमिको नष्ट करती, तथा खाज और कोढ़को लाभ करती है। एक भाग चोकको पानीमें घिसकर तीन माशा रसवत मिला छुहारेकी गुठलीके बराबर वर्ति बना-सुखाकर गर्भाशयके मुँहमें रखनेसे दो या तीन दिनमें गर्भ निस्सरित हो जाता है।

यदि गर्भाशयके आस-पास दानें पड़ जायँ तो उसमें घी लगायें (इलाजुल्गुर्बा)। इसका ४ माशा चूर्ण फाँकनेसे पेटसे कद्दूदाने निकल जाते हैं। सत्यानाशीके ताजे पौधोंको कूटकर रस निकालें। फिर उस रसको समभाग पानीमें मिलाकर भबके द्वारा अर्क खींच लेवें। इस अर्कको २½ तोलेकी मात्रामें प्रातः-सायं लेनेसे उपदंश तथा रक्तकी खराबीसे होनेवाले चर्मरोग पामा, दाद, क्षुद्रकुष्ठ आदि ठीक हो जाते हैं। फिरंगरोगमें यह अर्क इतना प्रभाव दिखाता है कि यदि उस रोगके कारण तालूमें छेद भी हो गया हो तो ठीक हो जाता है। इसके दूधको एक थालीमें निकालकर धूपमें सुखावें। जब गाढ़ा हो जावे तब गोली या बत्ती बनाकर रखें। समय पर इसको मक्खनमें घिसकर लगानेसे आँखोंका अर्म, अधिमांस और अन्धापन दूर होता है।

नव्यमत—सत्यानाशीके बीजोंका तेल मृदुरेचन है। एरण्डतैलसे यह उत्तम है। इसमें दुर्गन्ध या कुस्वाद नहीं होता। मात्रा छोटी है और इससे उदरमें मरोड़ नहीं होता। तेलकी क्रिया निश्चित होती है। बीज रेचन और वेदनास्थापन है। पंचांगका घन रेचन है। मूल कृमिघ्न और कुष्ठघ्न है। पीला दूध मूत्रजनन, कुष्ठजनन, कुष्ठघ्न, शोथहर, व्रणशोधन, व्रणरोपण और विषमज्वरहर है।

●

(५७३) सदासुहागिन

फ़ैमिली बिक्सीने : (Family : Bixineae)

नाम—(हिं०) सिंदूरिया, सेंदूरिया, लटकन, सदासुहागिन; (अ०) मस्नान; (फा०) किर्मदानः, किरिमदानः; (सं०) सिंदूर, सिंदूरपुष्पी, रक्तपुष्पी, सिन्दूर; (बं०) नटकनेर; (बम्ब०; म०) शेंद्री, केसरी, केसरबोंडी; (पं०) लटकन, जाफर; (भा०) सिंदूरपुष्पी; (ले०) बांक्सा ओरेल्लाना (**Bixa orellana** Linn.); (अं०) ऐनेंट्टो या एन्नेट्टोबुश (Arnatto or Annatto Bush)। वक्तव्य—इसके भारतीय नाम बीजके रंगपर आधारित हैं।

उत्पत्तिस्थान—अमरीका। अधुना समस्त भाररवर्षमें रंगके लिए तथा शोभाके लिए बागोंमें इसके क्षुप लगाये जाते हैं।

वर्णन—यह एक छोटा एवं सुन्दर वृक्ष है जिसकी पत्तियाँ कंगूरेदार, हृद्वत्, लम्बाग्र, चिकनी चमकीली और ४ इंच से ८ इंच लम्बी होती हैं। फूल सफेद या सिन्दूरवर्ण (गुलाबी) एवं प्रियदर्शन होते हैं। फल धतूराकी तरह मृदुकंटकोंसे ढके हुए और बीज सिन्दूरवर्ण-स्तरसे ढके हुए होते हैं जिससे एक रंग तैयार किया जाता है।

प्रकृति—पहले दर्जेमें शीत एवं स्निग्ध।

गुणकर्म—इसके पत्र संशमन और पिच्छिल होते हैं। फलमज्जा ग्राही और बड़ी मात्रामें स्रंसन; बीज और मूल रोचक, ग्राही तथा ज्वरघ्न होते हैं।

उपयोग—इसके पत्तोंको जलमें पीस-छान मिश्री मिलाकर पिलाने या सूखे पत्तोंको रात्रिमें जलमें भिगोकर रखने और प्रातःकाल मल-छानकर उपयोग करनेसे सूजाकमें विशेष उपकार होता है। अहितकर—कफज प्रकृतिके लिए। निवारण—कालीमिर्च और शहद। प्रतिनिधि—बुकनबूटी। मात्रा—७ ग्रामसे १२ ग्राम (७ माशेसे १ तोला) तक।

●

(५७४) सन

फ़ैमिली लेगूमिनोसी : (Family : Leguminosae)

नाम—(हिं०) सन, सनई, (अ०) कतफ़ब्रहरी; (सं०) शण; (बं०) शण; (पं०) सनई; (म०) ताग जोरी (गु०) श(स)ण, सिणी; (संथाल) सन; (बम्ब०) सनताग; (ले०) क्रोटालारिआ जुन्सेआ (**Crotolaria juncea** Linn.); (अं०) फाल्स या सनहेम्प (False or San-Hemp)।

उत्पत्तिस्थान—हिमालयाञ्चलसे लंका तक समस्त भारतवर्षमें इसकी खेती होती है। सन बंगालमें अधिक उत्पन्न होता है।

वर्णन—एक प्रसिद्ध पौधा जिसके रेशोंसे बोरी, टाट, रस्सी और कपड़ा आदि बनाये जाते हैं। इसका एक जंगली भेद भी है, जिसे **बनसन** या **शणपुष्पी** कहते हैं। पटुआ या पटसन भी रेशाके लिए बोया जाता है। वि० दे० "हब्बुल जलम्"।

उपयुक्त अंग—पत्र, पुष्प, बीज और तनेके रेशेका कपड़ा।

प्रकृति—सर्द एवं खुश्क; बीज तीसरे दर्जेमें गरम एवं खुश्क है।

गुणकर्म तथा उपयोग—सनके पत्ते गुरु, संग्राही (काबिज), आध्मानकारक और दीर्घपाकी हैं। प्रायः देहातके लोग इसे सुखाकर रखते हैं और आवश्यकता पड़नेपर पेटके कृमियों और मरोड़की चिकित्सामें इसका उपयोग करते हैं। फूरु प्रसवशोणित और आर्तवरक्तको बंद कर देते हैं। सनके थोड़ेसे बीज स्त्रीको खिला देनेसे वह बन्ध्या हो जाती है। इन बीजोंका काढ़ा पिलानेसे गर्भिणी स्त्रीके पेटसे शिशु और अपरा (आँवल) दोनों निकल जाते हैं। बीजोंको पानीमें पीसकर उससे सिरके बाल धोनेसे वे नरम हो जाते हैं और बढ़ते भी हैं। १$\frac{१}{२}$ माशे इसके बीज और १०$\frac{१}{२}$ माशे मधु मिलाकर दो सप्ताहपर्यन्त खानेसे अर्दित रोग नष्ट होता है। इसके पत्ते चौपायाको खिलानेसे वे दस्त करने लगते हैं। इसके पत्ते खानेसे शुक्रवृद्धि होती है और कफ निकलता है। पत्तोंको पकाकर खानेसे स्तन्य और शुक्रकी वृद्धि होती है, सहवासकी इच्छा बलवती होती है। ये लघु हैं। क्षारीयता अधिक होनेसे इसका साग पेटसे शीघ्र निकल जाता है। ७ माशे इसकी जड़ मधुजलके साथ पीनेसे पेटमें होनेवाला मरोड़ दूर हो जाता है। इससे पेशाब भी खुल जाता है। (फारसी और अरबी ग्रन्थोंसे सारांशरूपसे अनूदित)।

आयुर्वेदीय मत—सन अम्ल, कषाय, मल-गर्भ और रक्तका पातन करनेवाला, वमनकारक तथा वात, कफ और तीव्र अंगमर्दको दूर करनेवाला है। (रा० नि०)।

नव्यमत—सनकी पत्ती शीतल, स्नेहन, त्वग्दोषहर और रक्तशोधक है। बीज पाचन, अनुलोमन और आर्तवजनन है। शरीरमें गरमी बढ़नेसे हुए त्वचाके रोगोंमें रक्तके ठंढा और शुद्ध होनेके लिए इसकी पत्तियोंका फाँट पिलाते हैं और पत्तियोंको पिसकर उसका लेप करते हैं। मेदोवृद्धि और अनार्तवमें बीजोंका चूर्ण देते हैं। यह स्थूल स्त्रियोंको विशेष अनुकूल पड़ता है। (ओ० सं०)।

●

(५७५) सन जंगली (शणपुष्पी)

फ़ैमिली : लेगूमिनोसी (Family : Leguminosae)

नाम—(हिं०) झुनुक, झुनझुनिया, घुघरिया सन; (सं०) शणपुष्पी, घण्टारवा; (बं०) झनझन; (म०) खुलखुल, घागरी; (गु०) घुघरो; (ता०) वेल्लक्किलुकिलुप्पे; (मल०) किलुकिलुप्पा; (भार०) वनशण; (ले०) क्रोटेलारिआ वेर्रुक्रोजा (**Crotalaria verruscosa** Linn.); (अं०) ब्ल्यू-फ्लावर्ड क्रोटेलेरिया (Blue-flowered Crotalaria)।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्षके उष्णप्रदेश।

वर्णन—क्षुप २-४ फुट ऊँचा होता है। कांड और शाखा धारदार; पत्र अण्डाकृति, एकान्तर; पुष्प पालापन लिये हुए जामुनी रंगके; फली $\frac{१}{२}$ इञ्चसे १$\frac{३}{४}$ इञ्च लम्बी, अविदारी; बीज १० से १५, सूखी पत्ती हिलानेसे घुँघरू जैसा शब्द होता है।

उपयुक्त अंग—पत्र, पत्रस्वरस।

प्रकृति—गुणकर्म तथा उपयोग सन जैसा। (दे० 'सन')।

आयुर्वेदीय मत—शणपुष्पी तिक्त, कषाय, वमन करानेवाली तथा पित्त, कफ, कण्ठके रोग, हृद्रोग और मुखरोगका नाश करनेवाली है। (च० सू० अ० १; सु०; ध० नि०)।

नव्यमत—शणपुष्पी तिक्त, पित्तघ्न और स्नेहन है। पत्तोंका लेप शीतल और त्वग्दोषहर है। त्वग्रोगमें लेप करते हैं और खिलाते हैं। पत्तियोंके रससे मुँहसे गिरती हुई लार बन्द हो जाती है।

●

(५७६) सनाय

फ़ैमिली : लेगूमिनोसी (Family : Leguminosae)

नाम—(हिं०) सनाय, सनायमकी, सोनामकी(मुखी); (अ०) सनाऽ, सनाऽमक्की; (बं०) सोनामुखी; (गु०) मींढी आवल, सोनामखी; (मं०) सोनामुखी; (कों०) सोनामक्कि; (ले०) कास्सिआ आंगुस्टीफ़ोलिआ (**Cassia angustifolia** Vahl.); (अं०) ईस्ट इण्डियन या टिन्नेवेली सेन्ना (East Indian or Tinnevelly Senna)।

पत्र—(हिं०; उ०) सनायकी पत्ती; (ले०) सेन्नी फोलिउम् (**Sennae Folium**); (अं०) सेन्ना (Senna)।

फली—(हिं०;उ०) सनायकी फली, फली सनाय; (ले०) सेन्ना फ्रुक्टुस् (Sennae Fructus); (अं०) सेन्ना पॉड्स (Senna Pods)।

इतिहास—सर्वप्रथम प्राचीन आरब्य चिकित्सकोंने विरेचनतया सनायका उपयोग किया तथा अरबोंके माध्यमसे ही ईसवी सन् की नवीं शतीमें यह यूरोपमें पहुँची। इसकी अरबी संज्ञा ज्यूँकी त्यूँ यूरोपीय भाषाओंमें ले ली गई।

उत्पत्तिस्थान—अफरीका (मिस्र), दक्षिण अरब, हजाज आदि। अधुना यह दक्षिण भारतवर्षके तिनेवेल्ली, मदुरा, त्रिचनापली आदि स्थानोंमें होती है। तिनेवेल्लीमें होनेवाली सनाय अरबीकी अपेक्षया श्रेष्ठ होती है। इसका निर्यात बम्बईसे होता है। मद्रास प्रांतके तिनेवेल्ली जिलेसे और अरबस्तानसे सनाय यहाँ आती है।

वर्णन—यह एक क्षुपकी प्रसिद्ध फलियाँ एवं पत्र हैं जो औषधके काममें आते और प्रायः बाजारमें मिलते हैं। यूनानी वैद्यकमें हजाजमें होनेवाली सनाय जिसे **सनाय मक्की** कहते हैं सर्वोत्तम समझी जाती है। इसमें ७ वर्ष तक वीर्य रहता है।

वक्तव्य—सनायके पत्र जिन्हें पत्रक कहना उचित है, भूरापन लिये हरे, भालाकार, आधारपर विषम, १·२५ सें०मी० से ३·७५ सें० मी० (१/२ से १ १/२ इंच) लम्बे और ६ मि० मी० से ८ मि० मी० (१/४ से १/३ इंच) चौड़े होते हैं। इनमें **देशी तिनेवेलो सनायके** पत्र मध्यके समीप अपेक्षाकृत अधिक चौड़े और **सिकन्दरी सनायके** पत्रकोंकी अपेक्षया, जो मध्यपर्शुकाके नीचे सर्वाधिक चौड़े होते हैं, अनुपातमें अधिक लम्बे होते हैं, **व्यापारका सनाय मक्की** (Mecca Senna) जिसमें उपर्युक्त उभय जातियोंके पत्र मिले-जुले होते हैं, प्रायः पत्रवृन्तों और विरंजित पत्रकोंसे भरा होता है, अधम कोटिका होता है। **सिकन्दरी सनायकी** फली हरी, ३·७५ सें०मी० से ६·२५ सें०मी० (१ १/२ से २ १/२ इंच) लम्बी और लगभग २ सें० मी० से २·५ सें० मी० (३/४ से १ इंच) चौड़ी होती है। भारतीय सनायकी फली अपेक्षाकृत कालो, कम चौड़ी (संकीर्ण) केवल २ सें०मी० (३/४ इंच) चौड़ो, जिसके ऊपरी छोरपर योनिसूत्राधार स्पष्ट लक्षित होते हैं। स्वाद किंचिन्मधुर, किन्तु वान्तिकर; गंध कुछ चायके समान, पर विशेष प्रकारकी होती है। सिकन्दरी सनायके पत्र एवं फलियाँ यद्यपि भारतीय भेदकी अपेक्षया, जिससे कि वे प्रायः अधिक बढ़कर मानी जाती हैं, कार्यमें मृदुतर, तथापि निश्चित कार्यकर होती हैं।

सिकन्दरी सनायको **सनाय इस्कंदरानी** (Alexandrian Senna) इसलिये कहते हैं कि सिकंदरिया बन्दरगाहसे ही इनका निर्यात किया जाता था। अधुना इनका निर्यात सूडानसे किया जाता है। इसकी उत्पत्ति या निवासस्थान मिस्र और सूडान है। लेटिनमें इसको **कास्सिआ आकूटीफोलिया** (**Cassia acutifolia** Del.) और अंग्रेजीमें **ऐलिक्ज़ेंड्रियन सेन्ना** (**Alexandrian Senna**) कहते हैं।

रासायनिक संगठन—पत्रमें (१) कैथार्टिक एसिड नामक विरेचनीय वीर्य जो एक ग्लूकोसाइड है, तथा (२) इमोडीन; (३) क्राइसोफ़ैनिक एसिड आदि उपादान होते हैं। इसकी फलीमें भी उक्त सत्व होते हैं। इसके अतिरिक्त सेन्नोसाइड (Sennoside) 'ए' और 'बी' ये दो ग्लाइकोसाइड, जो सनायके मृदुसारक वीर्य हैं, इससे पृथक् किये गये हैं।

कल्प तथा योग—**अतरीफल सनाई, माजून।**

प्रकृति—पहले और मतांतरसे दूसरे दर्जेमें **गरम और खुश्क।** मतांतरसे दूसरेमें गरम और पहलेमें खुश्क।

गुण-कर्म तथा उपयोग—सर, कफपित्तसौदाविरेचनीय, अवरोधोद्घाटक, रक्तशोधक, कृमिनाशक, अन्त्रमें मरोड़ उत्पन्न करती और वमनोत्तेजक भी है। सनायको यदि कोष्ठको मृदु करनेके निर्मित्त उपयोग करना हो तो अल्पप्रमाणमें, उदाहरणतः ३ माशे देते हैं और अधिक प्रमाणमें सेवन करके तीव्र विरेचनका काम लेते हैं। विकृत दोषोंके निर्हरणके लिये सर्वोत्कृष्ट विरेचन है। इसी कारण पर्याय ज्वरों (तृतीय, चातुर्थक), पित्तज, कफज एवं सौदाजन्य आमवात एवं कटिशूल, कूल्हेके दर्द, गृध्रसी, वातरक्त और कृच्छ्रश्वासमें उपयोग करते हैं। विरेचन होनेके अतिरिक्त सनाय रक्तशोधक भी है। अतएव कच्छू, कण्डू और फोड़े-फुंसी (बुसूर और दमामील) आदिमें पेयकी भाँति प्रयुक्त करायी जाती है। यह उदरज कृमियोंको नष्ट करके उत्सर्गित करती है और कुलंज (शूल)के अवरोधको उद्घाटित करती है तथा मस्तिष्कका शोधन करती है। कभी-कभी स्तनपायी शिशुको विरेक लानेके निमित स्तन्यधात्री (मुरज़ा)को सनायका उपयोग कराया जाता है। क्योंकि सनाय रक्तमें शोषित होकर स्तन्यके द्वारा भी शरीरसे उत्सर्गित होती है। उक्त अवस्थामें दूधके पीनेसे शिशुको विरेक आने लगते हैं। लेखन होनेके कारण कच्छू एवं कण्डू, खालित्य विशेष (दाउस्सालब एवं दाउल्हय्य:); छीप वा झाईं तथा व्यंगमें इसे सिरकेके साथ लेप करनेसे उपकार होता है।

वक्तव्य—सनायके उपयोगसे मिचली आने लगती और मरोड़ उत्पन्न होती है तथा तृष्णा एवं आकुलता भी पैदा होती है। (फलीमें उक्त अवगुण नहीं होते) अतएव इसका अकेले उपयोग करना उचित नहीं है। प्रत्युत

उक्त दोषपरिहारके निमित्त इसके साथ गुलाबके फूल या गुलकंद या अनीसूँ मिला लेना चाहिये। यदि इसे चूर्णके रूपमें उपयोग किया जाय तो बादामके तेलसे स्नेहाक्त (चर्ब) कर लेना चाहिये। मुलेठीसे इसके कुस्वादका परिहार हो जाता है। **अहितकर**–आकुलता एवं उत्क्लेशकारक। **निवारण**–गुलाबके फूल, बादामका तेल और मुलेठी। **प्रतिनिधि**–निसोथ। **मात्रा**–पत्र विरेचनके निमित्त ७ माशेसे ९ माशे तक। कोष्ठको मृदु करने (सरण)के निमित्त ३ माशेसे ५ माशे तक। फलियाँ–१० से २० फलियोंको ६ घंटे गरम जलमें भिगो हाथसे मलकर कपड़ेसे छानकर देते हैं।

आयुर्वेदीय मत—सनाय (मार्कण्डिका) विरेचक, वामक तथा वातरोग, कृमि, कास, गुल्म और उदररोगको दूर करनेवाला है। (नि० सं०)।

नव्यमत—सनाय रेचन है। इसे थोड़े प्रमाणमें देनेसे पचन क्रिया सुधरकर साफ दस्त होता है। बड़े प्रमाणमें देनेसे पेटमें मरोड़के साथ दस्त होते हैं। इसकी मुख्य क्रिया छोटी आँतोंपर होती है। सनाय यकृत्के लिये भी थोड़ी उत्तेजक है। पेटमें ऐंठन न हो इसलिये इसके साथ सोंठ, सौंफ जैसे सुगन्धित द्रव्य तथा सेंधानमक या मिश्री मिलाते हैं। यह दूध द्वारा शरीरसे बाहर आती है, इसलिये माताको सनाय दी गई हो तो शिशुको भी दस्त होते हैं। कुपचन और दस्त साफ न होनेसे शरीरमें मलसंचय होनेपर **रसायनका जुलाब** देते हैं। पित्तज्वरमें सनाय, अमलतास आदिका जुलाब देना शास्त्रशुद्ध है। इससे दूषित पित्त और पित्तके साथ ज्वरकारक विष शरीरसे बाहर निकल जाते हैं और नया शुद्ध पित्त उत्पन्न होता है तथा ज्वरघ्न औषध अपना कार्य भली-भाँति करते हैं।

●

(५७७) सनोवर

फ़ैमिली : कोनीफ़ेरे (Family : Coniferae)

यह कई प्रकारका होता है। अतः इसकी विविध आयुर्वेदीय यूनानी और डॉक्टरी आदि संज्ञायें नीचे लिखी जा रही हैं :—

(१) देवदार—(हिं०) देवदार, चीड; (अ०) देवदार, शजरतुल्‌जिन, शजरतुल् आकिलः, अर्जलबुस्तान; (फा०) देवदार, सनोवर हिंदी; (ले०) पीनुस् सेड्रुस (Pinus cedrus), पीनुस् डेओडारा (Pinus deodara), सेड्रुस लेबानी (Cedrus lebani)। इस **प्रकारका** सनोवरवृक्ष हिमालय पर्वतपर उत्पन्न होता है। प्राचीनकालमें श्यामदेशके लब्नान पर्वतपर बहुतायतसे होता था। दे० 'देवदार'।

(२) सरल चीड़—(अ०) सनोवर तवीलुल् औराक; (ले०) **पीनुस् रॉक्सबुर्घी Pinus roxburghi** Sargent (पर्याय–पीनुस् लांगीफोलिया *Pinus longifolia* Roxb.)। इस प्रकारका सनोवर हिमालयमें होता है। इसमेंसे 'गन्धबिरोजा' निकलता है। दे० 'चीड'।

(३) चिलगोजा—(अ०) सनोवरुल् कहार; (फा०) काज चिलग़ोजा; (ले०) **पीनुस् जिरार्डिआना (Pinus gerardiana** Wall.)। इस प्रकारका सनोवर हिमालय पर्वतपर, अफगानिस्तान और ईरानमें उत्पन्न होता है। फारसीमें इसकी लकड़ीको सूस कहते हैं। दे० 'चिलगोजा'।

(४) सनोवर बर्री शर्बीन—(ले०) **पीनुस् सिलवेस्ट्रिस् (Pinus sylvestris)** इस प्रकारका सनोवर अमरीका और यूरोपमें उत्पन्न होता है। **'कतरान'** इसीके काष्ठसे प्राप्त किया जाता है।

(५) सनोबर जबली (पार्वतीय सनोबर)–(अ०) सनोबर जबली; (फा०) सनोवर कोही; (लें०) **पीनुस् पामीलिओं** (**Pinus pomiliao**); (अं०) माउन्टेन पाइन (Mountain Pine)। इस प्रकारका सनोबर वृक्ष यूरोपके पर्वतों विशेषकर हंगरीके पर्वतोंमें उत्पन्न होता है। इसका तेल (रोग़नसनोवर–दुह्नुल्सनोवर–ऑलियम् एबीटीज़ (Oleum Abietes) ब्रिटिश फार्माकोपिआमें सम्मत है।

●

(५७८) समुंदरफल

फ़ैमिली : मीर्टासे (Family : Myrtaceae)

नाम—(हिं०) समुंदरफल, इंजर, समुद्रफल; (सं०) हिज्जल (सु०), निचुल, विदुल (च०); (बं०) हिजल; (म०; गु०) समुद्रफल, सत्फल; (मा०) समंदरफल; (ते०) कण(न)पु; कणिगि; (मल०) समुद्रप्पलम्; (लें०) **बारींग्गटोनिआ आक्रूटांगुला** (**Barringtonia acutangula** Gaertn.); (अं०) इण्डियन ओक (Indian Oak)।

उत्पत्तिस्थान—हिंदुस्तानके अनेक भाग, विशेषतः यमुनाके पूरबकी ओर अवध, बंगाल, मध्य प्रदेश और दक्षिण आदि।

वर्णन—इसके वृक्ष छोटे; पत्ती २-५ इंच लम्बी, प्रायः ऊपरसे लट्वाकार-आयताकार अधिकतया कुण्ठिताग्र और सूक्ष्मदंतुर; पुष्प गहरे गुलाबी रंगके और मंजरियां लटकी हुई और सदण्डिक होती हैं; फल १$\frac{१}{८}$ से १$\frac{१}{२}$ इञ्च लंबा, चार उभारोंसे युक्त (चौपहल) और अग्रपर स्थायी बाह्यपुटके साथ रहता है। अशुष्कावस्थामें देखनेमें बादामके समान और भीतर सफेद मग़ज़ होता है। ताजा फल रक्त वर्ण और पुराना होनेपर काला हो जाता है। फलत्वक् अत्यन्त पतला चबानेपर पहले किंचित् मधुर, इसके बाद तिक्त एवं उत्क्लेशकारक होता है।

उपयुक्त अंग—फलका मग़ज़।

रासायनिक संगठन—इसमें सैपोनिनके सदृश एक तत्व बैरिंग्टोनिन, स्टार्च, प्रोटीड (Proteid), सेलूलोज (Cellulose), वसा, रबड़ और क्षारलवण आदि उपादान होते हैं।

कल्प तथा योग—नसवार, नफ़ूख़ बख़र।

प्रकृति—गरम और खुश्क।

गुण-कर्म तथा उपयोग—बाहरीतौरपर समुंदरफल लेखन और विलयन है। नथुनोंमें इसका आश्च्योतन मस्तिष्कसे द्रवोंका शोषण करता और प्रभावतः अर्धावभेदकको नष्ट करता है। वृश्चिकदंशपर इसका पतला लेप वेदनाको शमन करता और उपस्थेन्द्रियमें उत्तेजना पैदा करता है। इसका आंतरिक प्रयोग शीतपूर्वज्वरको रोकता है तथा श्लेष्मनिस्सारक एवं वातानुलोमन भी है। समुंदरफलको स्त्री वा बकरीके दूधमें घिसकर अर्धावभेदकको नष्ट करनेके लिए विपरीत ओरके नथुनेमें आश्च्योतन करते हैं अर्थात् यदि दर्द बायीं ओर हो तो दायें और दायीं तरफ हो तो बायें नथुनेमें टपकाते हैं। अपस्मारमें भी इसका नाकमें टपकाना लाभदायक वर्णन किया जाता है। इसे बारीक दूधमें घिसकर रतौंधी, नेत्रस्राव (ढलका) और फूलीको नष्ट करनेके लिए आश्चोतन करते हैं। बिच्छूके दंशस्थानपर इसे जलमें पीसकर लगाते हैं। उदरशूलको नष्ट करनेके लिए इसका नमक और अजवायनके साथ चूर्ण बनाकर खिलाते हैं। कालीमिर्च, तुलसीपत्र और समुन्दरफल समभागका चूर्ण चतुर्थकज्वरको नष्ट करनेके लिए सेवन करते हैं। एक दाना समुन्दरफलको बारीक पीसकर नीबूके रसमें मिलाकर शीतपूर्वज्वरके रोकनेके लिए

एक-दो घण्टा पूर्व खिलाते हैं। वाजीकरणके लिए इसे लौंग और शहदके साथ बारीक पीसकर तिला करते हैं। मात्रा–१/२ दानासे १ दाना तक।

आयुर्वेदीय मत—समुद्रफल वमन और विरेचन करनेवाला तथा कफ और वातको दूर करनेवाला है। (च० सू० अ० २, ४; सु० सू० ३९)।

नव्यमत—समुद्रफल कफघ्न, वामक, आनुलोमिक और वेदनास्थापन है। शिशुओंके कफरोग (कास-श्वास) में इसे देते हैं। इससे वमन न हो तो गरम पानीमें थोड़ा सेंधा नमक मिलाकर देनेसे वमन हो जाता है और दस्त भी साफ़ हो जाता है। दमेंमें समुद्रफल ८ माशे और सफ़ेद अपराजिताकी जड़ ६ माशे दूधमें पीसकर देनेसे वमन और विरेचन होकर श्वासका कष्ट दूर होता है।

●

(५७९) समुन्दरसोख

फ़ैमिली लाबिआटी (Family : Labiatae)

नाम—(हिं०; भा०बा०) समुन्दरसोख, कम्मरकस; (पं०; सिं०) समुन्दरसोख, कम्मरकस, साठी; (गु०; बम्ब०) कम्मरकस; (ले०) साल्विआ प्लेबीआ (**Salvia plebeia** R. Br.); (अं०) सेज (Sage)।

उत्पत्तिस्थान—प्रायः समस्त भारतवर्षके मैदान और ५,००० फुट ऊँची पहाड़ियोंपर इसके क्षुप होते हैं।

वर्णन—यह एक प्रकारके क्षुपके प्रसिद्ध बीज हैं, जो राईके दानोंसे बहुत छोटे, लम्बगोल, चिकने और काले या भूरे रंगके होते हैं। ये बीज ही औषधमें काम आते हैं। बीजोंको पानीमें भिगोनेसे बहुत लुआब (पिच्छा) निकलता है और वे परस्पर चिपक जाते हैं। कहीं-कहीं घावपत्ते (**Argyreia speciosa** Sweet., [**A. nervosa** (Burm. f.) Boj.; **Lettsomia nervosa** Roxb.] के बीजको भी समुन्दरसोख़ कहते हैं। परन्तु वह बाजारमें 'मिलनेवाला समुन्दरसोख' नहीं है।

रासायनिक संगठन—इसमें तेल १८ प्रतिशत, मांसवर्धक द्रव्य ११$\frac{३}{४}$ प्रतिशत, गोंद तथा तन्तु ४४ प्रतिशत, राख १५ प्रतिशत और नाइट्रोजन २ प्रतिशत होता है।

प्रकृति—पहले दर्जेमें सर्द एवं तर (मातांतरसे दूसरे दर्जेमें सर्द व खुश्क)।

गुण-कर्म तथा उपयोग—यह वीर्यपुष्टिकर और संशमन है। इसको अकेले या चूर्णों तथा माजूनोंमें डालकर शुक्रमेह, शुक्रतारल्य, मूत्रकी जलन और शीघ्रपतनके लिये दूधके साथ खिलाते हैं। अहितकर–गुरु, विष्टंभी एवं दीर्घपाकी है। निवारण–मधु और शर्करा। प्रतिनिधि–तालमखाना। मात्रा–३ ग्राम से ५ ग्राम (३ माशे से ५ माशे) तक।

नव्यमत—यह वातप्रशमन, उत्तेजक, ग्राही सुगन्धित और पौष्टिक माना जाता है। बीज उष्ण स्नेहन और पौष्टिक होते हैं। बीजोंका फाण्ट वीर्यस्तम्भक और बाजीकर बतलाया जाता है।

●

(५८०) सरख़स

फ़ैमिली : पॉलीपोडिआसे (Family : Polypodiaceae)

नाम—(हिं०) कीलदारु, बिसौरा; (अ०) अस्सरख्सुल् मुज़क्कर; (फा०) सरख्स मुज़क्कर, सरख्स, चमाज़; (बं०) पंखराज; (अं०) मेलफर्न (Male fern)। वक्तव्य—यह ड्रॉओप्टेरिस् फिलिक्स मास **Dryopteris Filix-mas** (Linn.) Schott. (*Aspidium filix-mas* Sw.) नामक अपुष्प वनस्पतिकी ग्रंथिल जड़ है, जिसको पतझड़ कालमें काटकर संग्रह कर लेते हैं और उसके ऊपरके पत्तों एवं सड़े-गले अंशको पृथक् कर देते हैं।

उत्पत्तिस्थान—ब्रिटेन, यूरोप, उत्तरी अमरीका, उत्तरी एशिया और हिमालय पर्वत। औषधके लिए इसकी जड़ इटली और हंगरीसे आती है।

इतिहास—यूनानी चिकित्सकों यथा–दीसकूरीदूस, जालीनूस, अन्तियूस और आरब्य चिकित्सकोंने उक्त औषधिका उल्लेख किया है। वे कद्दूदाना (Tape-worm)के मारने और उनके निर्हरणके लिए इसका उपयोग करते थे। जालीनूसने इसको गर्भशातक और गर्भनिरोधक भी लिखा है।

वर्णन—इसकी ७·५ सें० मी०से १५ सें० मी० (३से ६ इञ्च) या अधिक लम्बी गाँठें होती हैं, जिनका व्यास १·८७५ सें०मी०से २·५ सें०मी० (३/४से १ इञ्च) तक होता है। यह गाँठें चारों ओरसे छोटी-छोटी नोकदार, मोटी, कालेरंगके पत्तोंकी डंठलोंसे आवरित होती हैं। डंठल आपसमें ऐसे गुथे हुए होते हैं कि उक्त गाँठयुक्त जड़का धरातल मत्स्यपृष्ठके सदृश मालूम होता है। रंग बाहरसे भूरा या ललाई लिये काला, अन्दरसे पिलाई लिये सफ़ेद होता है। गंध हलकी, अप्रिय; स्वाद प्रथम मधुर और कषाय बादको तिक्त और उत्क्लेशकारक होता है। इसमें १ वर्ष तक वीर्य रहता है।

उपयुक्त अंग—मूल और मूलोत्थ ओलियो-रेज़िन (Oleo-resin)।

रासायनिक संगठन—इसमें (१) फिलिसिक एसिड, जो इसका प्रधान सक्रिय घटक है और श्वेतचूर्णके रूपमें प्राप्त होता है; (२) एस्पिडीन (३%) विषालु द्रव्य है; (३) एक अनुत्पत् तैल; (४) एक उत्पत् तैल; और (५) कतिपय रेजिन्स (Resins) आदि उपादान होते हैं।

कल्प तथा योग—माजून सरख़स।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम और खुश्क।

गुण-कर्म तथा उपयोग—व्रणशोषण, गर्भशातन, उदरकृमिनाशन (विशेषतः कद्दूदानेको नष्ट करनेवाला), यूकाननाशक (क़ातिल कमल), संक्षोभजनन (लाज़िअ) और वातरक्त तथा हृत्स्पंदनमें लाभकारी है। व्रणलेखन होनेके कारण व्रणशोषणके लिए इसका अवचूर्णन करते हैं। उदरकृमि विशेषकर कद्दूदानेको नष्ट करनेके लिये अकेले या अन्यान्य औषधियोंके साथ इसे चूर्ण करके खिलाते हैं। उसके लिये यह एक सिद्ध भेषज है। विरेचनके द्वारा अन्त्र और आमाशयको शुद्ध करनेके उपरांत रोगीको भूखा रखकर रातके समय निहार मुँह इसको खिलानेसे कद्दूदाना नष्ट हो जाता है और प्रातःकाल विरेचन देनेसे मृतप्राय कद्दूदाना निःशेष निकल जाता है। संक्षोभजनन होनेसे इसके उपयोगसे अन्त्र और आमाशयमें खराश होकर वमन आने लगता है। इसके काढ़ेसे सिर धोने या चूर्णको तेलमें मिलाकर बालोंकी जड़में लगानेसे सिरकी जूयें मर जाती हैं। अहितकर–फेफड़ेके लिये। निवारण–शीह अरमनी। प्रतिनिधि–कमीला। मात्रा–३ ग्राम (३ माशे)।

◆

(५८१) सरफोंका

फ़ैमिली : लेगूमिनोसी (Family : Leguminosae)

नाम—(हिं०) सरफोका, सरफोंका, सरपोंखा; (फा०) बर्गसूफ़ार; (सं०) शरपुङ्ख, प्लीहारि; (बं०) बननील, शरपुंख; (म०) शीरपंखा, उटाटी, उन्हाली; (गु०) शरपंखों; (पं०) सरपंख; (क०) सर्पाख, सर्पान; (मा०) बाँसा, झोजरू, मासो, बिसूनी; (ते०) वेंपर्कि; (ता०) काट्टकोलुजि; (मल०) कोलिञ्चिल्; (ले०) टेफ्रोसिआ पूर्पूरेआ (**Tephrosia purpurea** (L.) Pers.); (अं०) पर्पिल टेफ्रोसिआ (Purple Tephrosia)।

वक्तव्य—उपर्युक्त नाम लालफूलके सरफोंकाके हैं। सफेद फूलके सरफोंकाको लेटिनमें गालेगा इन्काना या विल्लोसा (**Galega incana** or **villosa** Roxb.) कहते हैं।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्षकी कड़ी एवं कंकड़ीली-पथरीली भूमिमें इसके क्षुप होते हैं।

वर्णन—यह अनेक शाखाओंसे युक्त एक छोटा क्षुप होता है जो नीलके क्षुपके समान दिखता है। इसीलिये बंगालमें इसे बननील कहते भी हैं। इसके एक पत्रकको दो भागोंमें तोड़नेसे एक भाग शरपुंख जैसा निकलता है, परन्तु नीलके पत्रक इस तरह नहीं टूटते। फूल किरमिजी; फली चपटी होती है। यह सफेद फूलका भी होता है।

उपयुक्त अंग—पंचांग अथवा मूल।

रासायनिक संगठन—निर्यास, अंशतः ऐल्ब्युमिन, रंजक द्रव्य, राख ६% जिसमें मैंगेमीज होता; भूराराल, क्लोरोफिल (Chlorophyll) और क्वेर्सेटिन या उसके सदृश एक सत्व होता है। इसमें रूटिन (Rutin) नामक एक ग्लूकोसाइड, मूलमें टेफ्रोसिन (Tephrosin); पत्रमें ओसीरिटिन (Osyritin) नामक ग्लूकोसाइड लगभग २% होता है।

प्रकृति—गरम और तर।

गुण-कर्म तथा उपयोग—प्रवर्तक और रक्तशोधक। यह अधिकतया फोड़े-फुंसियों (दमाझोला), दाने (बुसूर), कच्छू और कण्डू तथा कुष्ठ एवं आतशकमें रक्तप्रसादनके निमित्त क्वाथ या फांटके रूपमें प्रयुक्त होता है। कभी जलमें पीस-छानकर भी पिलाते हैं। कच्ची भस्मके सेवनसे रक्तमें जो विकार हो जाता है, उसमें सरफोंका का उपयोग करते हैं। रक्तार्शमें यह विशेष गुणकारक है। **अहितकर**—कोई मुख्य अवगुण नहीं है। **निवारण**—ब्रह्मदण्डी। **मात्रा**—३ ग्राम से ७ ग्राम (३ से ७ माशे)।

आयुर्वेदीय मत—सरफोंका (शरपुंखा) तिक्त, कषाय, लघु तथा यकृत्के रोग, प्लीहाके रोग, गुल्म, व्रण, विष, कास, रक्तविकार, श्वास और ज्वरको दूर करता है। (भा० प्र०)।

नव्यमत—सरफोंका तिक्त, आनुलोमिक, पित्तसारक, मूत्रजनन, कफघ्न और विषहर है। यकृत् और प्लीहाकी वृद्धिमें इससे उत्तम लाभ होता है। गण्डमालामें जड़का लेप करते हैं। खुजलीमें बीजोंका लेप करते हैं अथवा बीजोंका तेल लगाते हैं। अर्शमें जड़का कल्क छाछके अनुपानसे देते हैं।

●

(५८२) सरसो

फ़ैमिली : क्रूसीफेरी (Family : Cruciferae)

नाम—(हिं०) सरसो; (यू०)नेपी(पु), सिनेपी; (अ०) हुर्फ़ अब्यज़, ख़र्दल अब्यज़, ख़र्दल अस्फ़र; (फा०) सर्ष(र्शं)फ़, इस्फंदान सफ़ेद; (सं०) सर्षप, सिद्धार्थ, गौरसर्षप, आसुरी; (बं०) श्वेत सरिषा; (म०) शिरसी, शिरस, श्वेत शिरस; (गु०) सरसव; (क०) तिलगगुल; (पं०) सरेयाँ; (सिंध) सिर्याचिकी; (मा०) सरसु; (लें०) ब्रास्सिका काम्पेस्ट्रिस (**Brassica campestris** Linn.); (अं०) रेप (Rape), इंडियन मस्टर्ड (Indian Mustard)। तेल—(हिं०) सरसोका तेल, कड़वा (कडुआ) तेल; (फा०) रोग़न सर्षफ़; (सं०) सर्षप तैल; (म०) शिरसेल, सरसोंचे तेल; (गु०) सरसीया तेल; (अं०) रेप ऑयल (Rape Oil), मस्टर्ड ऑयल (Mustard Oil)।

वक्तव्य—फारसी 'सर्शफ़' संज्ञा संस्कृत 'सर्षप' से व्युत्पन्न हैं। सरसों (हिं०), सरिषा (बं०), शिरस (म०), सरसव (गु०), सरसु (मा०), सरेयाँ (पं०) आदि भारतीय संज्ञायें भी संस्कृत 'सर्षप' से ही व्युत्पन्न हैं।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्षमें इसकी खेती की जाती है।

वर्णन—यह एक प्रसिद्ध तेलहन बीज हैं जो छोटे-छोटे, गोल तथा चरपरे स्वादयुक्त होते हैं। कालाई लिए लाल और पीली-सरसोकी यह दो जातियाँ प्रसिद्ध हैं। इनको कोल्हूमें पेरकर तेल निकाला जाता है, जो रोग़न तल्ख़ (कटुस्नेह) कहलाता है। पत्रको **गाँडल या गंडली** कहते हैं। इसका शाक बनाकर खाया जाता है।

◆

(५८३) राई

नाम—(हिं०; उ०) राई; (अ०) ख़र्दल; (लें०) सिनापिस (Sinapis); (अं०) मस्टर्ड (Mustard)।

सफेद राई या सरसो—(हिं०; उ०) सफेद राई; (अ०) अल्ख़र्दलेल्‌अब्यज़; (फा०) ख़र्दल सफ़ेद; (सं०) गौरसर्षप, श्वेतसर्षप; (लें०) सिनापिस आल्बे (Sinapis albae), ब्रासिका आल्बा (**Brassica alba**); (अं०) ह्वाइट मस्टर्ड (White Mustard)।

उत्पत्तिस्थान—एशिया, दक्षिण यूरोप और संयुक्त राष्ट्र अमरीका।

इतिहास—प्राचीन यूनानी चिकित्सकोंको इसका ज्ञान था। रूमियोंको भी इसका भलीभाँति ज्ञान था। 'राइपो' और 'सनेपी' नामसे इसका वर्णन किया है। अस्तु, रूमी प्लाइनीने तीन प्रकारके (ख़र्दल)का वर्णन किया है। प्राचीन इसलामी और भारतीय चिकित्सक भी इससे भली-भाँति अभिज्ञ थे। राजिका एवं सर्षपका वर्णन आयुर्वेदीय संहिताओंमें प्रचुरतासे मिलता है।

काली राई—(अ०) अल्ख़र्दल अल्‌अस्वद; (फा०) ख़र्दल स्याह; (सं०) कृष्ण सर्षप; (लें०) सिनेपिस नाइग्रे (Sinapis Nigrae); ब्रासिका नाइग्रा **Brassica nigra** (Linn.) Koch.; (अं०) ब्लैक मस्टर्ड (Black Mustard)।

उपयुक्त अंग—बीज, बीजोत्थ तेल (रोग़न सर्शफ़) और पत्र।

रासायनिक संगठन—बीजोंमें २३%–२५% कड़वा अनुत्पत् तेल, सिनाल्बिन (Sinalbin) नामक एक स्फटिकीय द्रव्य, सिनैपिन सल्फोसायनाइड, लेसिथिन, लबाब (केवल बीजावरणमें), मायरोसीन नामक एक पाचक द्रव्य

(Ferment), प्रोभूजिद (Proteids), राख ४% जिसमें फॉस्फेट्स ऑफ पोटैसियम, मैग्नीसियम और कैल्सियम होते हैं।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें गरम और खुश्क। आयुर्वेदमतसे शाक उष्णवीर्य एवं रूक्ष (सु०) और तेल उष्णवीर्य एवं स्निग्ध (सु०) है।

गुणकर्म—सरसों लेखन एवं शोणितोत्क्लेशक है। तेल बल्य है तथा शरीरमें तरी और गरमी पहुँचाता और उसे मोटा करता है। मर्दन करनेसे यह त्वचाके रोगोंको नष्ट करता है। विशेषकर वाजीकर और क्षुधावर्धक है।

उपयोग—सरसोंके पत्तोंका साग पकाकर खाया जाता है। यह विष्टंभी (सक़ील) होता और वायु उत्पन्न करता है। सरसोंको अकेले या उबटनमें डालकर चेहरेका रंग निखारनेके लिए और किलास तथा झाईं जैसे त्वग्रोगोंमें लगाते हैं। इसके तेलका कुछ लोग घीके स्थानमें उपयोग करते हैं। इसको मरहमोंमें डालकर व्रणोंपर लगाते और अन्य औषधियोंके साथ शरीरकी खाज आदि दूर करनेके लिए शरीरपर अभ्यंग करते हैं। आमवात, कटिशूल और अन्यान्य वेदनाओंको शमन करनेके लिए इसकी मालिश करते हैं। इसके बीज (सरसों)को वाजीकरण और मूत्रल भी वर्णन किया जाता है। **अहितकर**–वृक्करोगोंके लिए। **निवारण**–चीनी, मिश्री और शहद। **प्रतिनिधि**–तरातेजक के बीज। **मात्रा**–३ ग्रामसे ५ ग्राम (३ माशेसे ५ माशे तक।

आयुर्वेदीय मत—**सरसोंका शाक** विदाही, मल और मूत्रका अवरोध(कब्ज)करनेवाला, रूक्ष, तीक्ष्ण, उष्णवीर्य और तीनों दोषोंका प्रकोप करनेवाला हैं। (सु० सू० अ० ४६; च० सू० अ० २५)। **सरसों का तेल** रस और विपाकमें कटु, उष्णवीर्य, स्निग्ध, लघु, नेत्रको हानि करनेवाला, रक्त और पित्तको दूषित करनेवाला तथा कफ, वात, शुक्र, कण्डू, कुष्ठ, कृमि और कोढ़का नाश करनेवाला है। (सू० सु० अ० ४५ च० सू० अ० २७)। **काश्यपसंहिता** (पृ० १४६)में सरसोंके तेल (कटुतैल)को प्लीहा वृद्धिको दूर करनेके लिए उत्तम औषध बताया है।

कुष्ठमें बाह्य प्रयोगके लिए जहाँ तेलका विधान हो वहाँ 'तेल' शब्दसे सरसोका तेल लिया जाता है। सरसोंके बीजोंके गुण धर्म राईके बीजोंके समान हैं और राईके बीजोंके समान उसका प्रयोग किया जाता है। सरसोंके तेलमें जरा-सा सेंधानमक मिलाकर दांतोंपर मलनेसे या उसकी कुल्ली करनेसे दन्तपूय आराम हो जाता है और दांत दृढ़ होता है।

●

(५८४) सरो

फ़ैमिली : कुप्रेस्सासे (Family : Cupressaceae)

नाम—(फा०; हिं०) सरो, सरौ, सरु, बनझाऊ; (ले०) **कुप्रेस्सुस् सेम्पेर्विरेंस (Cupressus sempervirens** Linn.); (अं०) दी टॉल पिरामिडल साइप्रेस (The tall Pyramidal Cypress)।

वक्तव्य—जंगली सरो (सरो वर्री या सरो कोही)को लेटिनमें **कासुआरीना एक्वीसेटिफोलिआ** (Casuarina equisetifolia J. R. & G. Forst.) कहते हैं।

उत्पत्तिस्थान—कश्मीर, अफ़गानिस्तान और फारस आदि एशियाके पश्चिम प्रदेश।

वर्णन—यह झाऊकी जातिका एक सीधा पेड़ है, जो प्रायः बगीचोंमें शोभाके लिए लगाना जाता है। इसके पत्ते झाऊकी तरह छोटे-छोटे होते हैं। यह पत्तों और शाखाओंकी प्रचुरतासे नीचे मोटा और फिर ऊपरकी ओर क्रमशः पतला होता जाता (पिरामिडकी रूपरेखाका) है। इसके फल झाऊके फलके समान होते हैं और जौज़ुस्सरोके नामसे प्रसिद्ध हैं। अधिकतया ये फल ही औषधके काम लिये जाते हैं।

प्रकृति—तोसरे दर्जेमें शीत एवं रूक्ष ।

गुणकर्म तथा उपयोग—(जौजुस्सरो अर्थात् सरोका फल) संग्राही, उपशोषण और रक्तस्रावरोधक है । कब्ज दूर करनेके लिए सरोके फलको सरेसके साथ आंत्रवृद्धि (फतक)में लेप करते है । शुक्रमेह एवं अतिसार, योनिस्राव एवं अत्यार्तव आदि दूर करनेके लिये इसका चूर्ण खिलाते हैं । शय्यामूत्र एवं बहुमूत्र बन्द करनेके लिए भी इसका उपयोग करते हैं । गुदभ्रंश (Prolapse ani)में रोगोको इसके काढ़ेमें बैठाते और महीन पीसकर छिड़कते हैं । मात्रा–१ ग्राम से १·५ ग्राम (१ माशा से १½ माशा) तक ।

●

(५८५) सलई और कुंदरू

फ़ैमिली : बर्सेरासे (Family : Burseraceae)

नाम । वृक्ष—(हिं०) स(सा)लई, सजीवन (मोरजापुर); (सं०) श(स)ल्लकी, कुन्दुरुकी, सुस्रवा, गजभक्ष्या; (पं०) सलई; (गु०) शालेडुं (डो), धूपडो; (म०) धूपसालई, शालई; (बं०) शलई, लुबान; (राजपु०) सालर; (बम्ब०) सलैधूप; (ता०) कुन्दुरुकम्; (ले०) बॉसवेल्लिआ सेर्राटा (**Boswellia serrata** Roxb.); (अं०) सलई ट्री (Salai Tree) ।

निर्यास—(हिं०) कुंदुरु गोंद, सलई (सेल) गोंद; (सं०) कुन्दुर, कुन्दुरु, शल्लको निर्यास (द्रव); (बं०) सैलैगुन; (द०) फरंगीऊद; (सिंह०) कुन्द्रिकम्; (अं०) इंडियन् ऑलिबेनम् या फ्रैन्किन्सेन्स (Indian Olibanum or Frankincense) ।

उत्पत्तिस्थान—पश्चिम हिमालय, मध्यप्रदेश अर्थात् भारतके प्रायः गरम और खुश्क प्रदेश, सतलज नदीसे नेपाल तक, मध्यभारत और बरारसे राजपुताना तक तथा दक्षिण एवं कोंकण आदि दक्षिणी प्रांत । आसाम और बंगालमें नहीं होता ।

वर्णन—सलईका लगभग ३० फुट ऊँचा बड़ा पेड़ होता है । शाखायें नीचेकी ओर झुकी हुई होती हैं । पत्ते और फूल शाखाके अग्रपर लगते हैं । पत्ते नीमके पत्ते जैसे होते तथा पुष्प छोटे, सफेदरंगके होते हैं । पुष्प बाह्यकोश और पुष्पाभ्यन्तर कोशके दल ५-५; पुंकेशर ५ बड़े और ५ छोटे । फल मांसल और तीन धारवाला होता है । छालमें चीरा लगानेसे गोंद (निर्यास) निकलता है, जिसको **शल्लकी निर्यास** या 'कुंदुर' कहते हैं । इसके दाने अश्रुवत् गोल और सुडौल होते हैं । यह नरम और बेडौल समूहका भी होता है । इसे 'भारतीय कुंदुर' कहना चाहिए । दवाके लिए फीके पीले रंगका और गोल गोंद लेना चाहिए । इसको जलमें घोंटकर मिलानेसे पानी दूध जैसा हो जाता है । इसमें सुगन्ध और कडुआ स्वाद होता है । गूगल, लोबान और गंधाविरोजासे यह सर्वथा भिन्न द्रव्य है । इस समय बाजारमें जो कुन्दुरु मिलता है वह एबीसिनिया और अरबसे आता है । इसके वृक्षको लेटिनमें वॉसवेलिआ फ्लोरीबुंडा (**Boswellia floribunda**) कहते हैं । यह विदेशी वृक्ष है । सलईके पेड़की एक दूसरी जातिको लेटिनमें बोस्वेल्लिआ ग्लाब्रा (**Baswellia glabra**) कहते हैं । इस वृक्षके पत्रप्रान्त समान अर्थात् अखण्ड और पत्रपृष्ठ चिकने होते हैं । इसके विपरीत उपरिलिखित सलई (बोस्वेल्लिया सिर्रेटा)के पत्र नीमके पत्रकी तरह, पत्रप्रांत दन्तुर और रोमश एवं खुरदरे होते हैं । विदेशी कुंदुरुका वर्णन 'कुंदुर' शब्दमें किया गया है । यहांपर देशी कुंदुरु और उसके पेड़–सलईका वर्णन किया जा रहा है । प्राचीन भारतीय वैद्योंने शल्लकी निर्यासको ही कुन्दुरु अर्थात् कुंदुर माना है–'कुन्दुरुकः शल्लकी चोपः ।' (डल्हण) ।

उपयुक्त अंग—पंचांग, रालदारगोंद (शल्लकी निर्यास) और तेल प्रभृति।

रासायनिक संगठन—इसमें एक स्थिर तेल और गोंदीय राल ९·०% होता है।

प्रकृति—गरम; आयुर्वेदके मतसे सलई और कुन्दुर दोनों शीतवीर्य हैं।

गुण-कर्म तथा उपयोग—निर्यास स्वेदन, मूत्रजनन, कषाय वा संग्राही और आर्तवजनन है तथा आमवात, वात एवं त्वग्रोगोंमें प्रयुक्त होता है। यह फोड़े-फुंसीको लाभ पहुँचाता है, अतिसारको बन्द करता तथा रक्तपित्त और कफके विकारको यह नाश करता है।

आयुर्वेदीय मत—**शल्लकी** कषाय, तिक्त, मधुर, शीतवीर्य, पुरीषविरजनीय, ग्राही तथा कुष्ठ, रक्तविकार, कफ, वात, अर्श और व्रणदोषका नाश करनेवाली है। (च० सू० अ० ४; सु० सू० अ० ३८, ४२; रा० नि०) शल्लकीके पुष्प कफ, वात, अर्श कुष्ठ और अरुचिका नाश करते हैं। (कै०नि०)। **कुंदुर (शल्लकी निर्यास)** शिरोविरेचक, मधुर, कटु तिक्त, तीक्ष्ण, शीतवीर्य, त्वचाको हितकर तथा वातरोग, कफरोग, प्रदर, ज्वर, स्वेद, ग्रह, मलिनता और मुखरोगका नाश करनेवाला है। (च०; सु० सू० अ० ३८; ध० नि०; भा० प्र०)।

नव्यमत—सलईका गोंद स्नेहन, स्रंसन और रक्तशोधक है। गुणमें यह बहुतांशमें हीराबोल और गूगलके तुल्य है, अर्थात् उत्तेजक, श्लेष्मनिःसारक, मूत्रजनन और आर्तवजनन है। यह सुगन्धिद्रव्योंके साथ गोली या चूर्णके रूपमें दिया जाता है। यह व्रणशोधन और व्रणरोपण है। सलईका गोंद, गूगल, सुहागा, गन्धक और कत्था इनसे बने मलहमकी पट्टी पुराने खड्ढेवाले व्रणोंपर लगाते हैं। गण्डमाला, ग्रन्थि और बदपर इसको गरम जलमें पीसकर लगाते हैं। संधिवात और अस्थिशोथमें इसका लेप करते हैं और खिलाते भी हैं। कुन्दुर सुगन्धि और उत्तेजक है। इसकी उक्त क्रिया श्लेष्मल त्वचापर विशेषतः श्वासमार्गकी श्लेष्मल त्वचापर होती है। श्वासनलिकाका जीर्ण शोथ, पुष्कल चिकना कफ गिरना और उसमें दुर्गन्ध आना इसमें कुन्दुरको खिलाते हैं और इसका धूम्रपान कराते हैं। **कुंदुरका मलहम** (कुन्दर १ भाग, खशखाशका तेल १ भाग और सफेद मोम १ भाग सबको मंदाग्निपर गला, कपड़ेसे छानकर काचपात्रमें भर लेवें)। यह ग्रन्थिशोथको कम करता है और व्रणरोपण है। प्रमेहपिडिका (कार्बंकल)के व्रणपर इसका मलहम उत्तम औषध है। कुंदरको कपड़ेपर रखकर गरम पानीकी भाफपर सिझानेसे चिकट गोंद जैसा होता है। उसमें अफोम, धतूरा, खुरासानी अजवायन, बेलाडोना जैसे पीडाशामक द्रव्य मिला उसको मोटे कपड़ेपर पट्टी तैयार करके पार्श्वशूल आदिमें पीडायुक्त भागपर लगानेसे रक्तवाहिनियोंका आकर्षण और हलन-चलन कम होकर पीडा शांत होती है। मात्रा–१·२५ ग्राम से ३·७५ ग्राम (१० रत्ती से ३० रत्ती)। इसे जीर्णकास और सूजाकमें बादाम, शकर और पानीके साथ घोंटकर पिलाते हैं। (औ० सं०)।

●

(५८४) सहदेई

फ़ैमिली : कॉम्पोजीटी (Family : Compositae)

नाम—(हिं०; पं०; मा०) सहदेई, सहदेइया; (सं०) सहदेवी, दण्डोत्पला; (गु०) सेदरडी, सहदेवी; (म०) सहदेवी; (बं०) कुकसीम; (क०) सहदेवी; (ले०) वेर्नोनिआ सिनेरेआ **Vernonia cinerea** Less.); (अं०) ऐशकलर्ड फ्लीबेन (Ash-coloured Flea-bane)।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्षमें वर्षाऋतुमें ज्वार, मकाई और ईखके खेतोंमें यह विपुल पायी जाती है।

वर्णन—यह एक प्रसिद्ध देशी क्षुद्र वनस्पति है, जिसका क्षुप ४५ सें०मी० (आधागज) तक ऊँचा होता है। पत्र तुलसीके पत्रके समान चिरहरित और फूल जामुनी रंगके होते हैं।

उपयुक्त अंग—पंचांग।

प्रकृति—सर्द और तर।

गुण-कर्म तथा उपयोग—बल्य, संतापहर, मूत्रजनन, रक्तशोधक और विशेषकर जीर्णज्वरनाशक है। संतापहर होनेसे रक्तज एवं पित्तज ज्वरों, रक्तप्रकोप और पित्तकी अधिकतामें सहदेईका उपयोग किया जाता है। अश्मरीको नष्ट करनेके लिए इसका शीरा निकालकर पिलाते हैं। मूत्रल होनेसे यह सूजाकमें उपयोगकी जाती है। रक्तष्ठीवन एवं रक्तस्रावमें इसका शीरा मिश्री मिलाकर पिलाया जाता है। **अहितकर**–शीतप्रकृतिको। **निवारण**–कालीमिर्च और शहद। **प्रतिनिधि**–निबौली। **मात्रा**–३ ग्राम से ७ ग्राम (३ माशे से ७ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—सहदेई मधुर, धातुवर्धक, बलकारक, वीर्यवर्धक, वातानुलोमन तथा मूत्रकृच्छ्ररोग, त्रिदोष ज्वर, हृद्रोग, दाह, वातार्श, सूजन, विषमज्वर, सर्वप्रकारके प्रमेह और मूत्रातिसार निवारक है। इसकी जड़को शिखामें बाँधनेसे विषमज्वरका नाश होता है। (भा० प्र० आदि)।

नव्यमत—स्वेदजनन होनेसे ज्वरावस्थामें पसीना लानेके लिए इसका काढ़ा पिलाते हैं। अर्शमें पौधेका रस (अर्क) देते हैं। शोथमें काढ़ा और आँख दुखनेमें फूलोंका उपयोग करते हैं।

●

(५८५) सहिजन

फैमिली : मोरींगासे (Family : Moringaceae)

नाम—(हिं०) सहिजन, सहजन, सैजन, सजना, संगन, सोहांजन, मुनगा; (सं०) शिग्रु, शोभाञ्जन, मुरंगी (सु० सू० ३९, चि० ४, १४, १६, २३); (द०) मुनगा; (बं०) शजिना; (पं०) सु(सो)हांजना; (सि०) सुहांजिडो; (मा०) सहजणीं; (गु०) सरगवो, सरघवा, सेकटो; (म०) शेवगा, सेकटा; (कना०)नुग्गे; (ते०) मुनगा; (ता०) मुरंगमरम्; (ले०) **मोरिंगा ओलेईफेरा Moringa oleifera** Linn. (पर्याय–*Moringa pterigosperma* Gaertn.); (अं०) हार्सरैडिश (Horse Radish), ड्रमस्टिक ट्री (Drum-stick Tree)। **वक्तव्य**—उपर्युक्त नाम सफेद फूलके और मीठे सहिजनके हैं। कड़वे सहिजनको लैटिनमें **मोरिंगा कॉन्कान्नेन्सिस्** (*M. Concannensis* Nimm.) कहते हैं। गुणमें प्रायः दोनों समान होते हैं। सहिजनके उत्तर भारतीय विभिन्न नाम संस्कृत 'शिग्रु' या 'शोभाञ्जन' से व्युत्पन्न हैं। दक्षिण भारतमें यह 'मुनगा' या 'मुरंगा' नामसे प्रसिद्ध है। तामिलमें वृक्षको 'मुरंगमरम्' कहते हैं जो संस्कृत नाम मुरंगीका ही किञ्चित् परिवर्तित रूप है। अथवा सम्पूर्ण दक्षिण भारत में मात्र 'मुरंग' या इसके परिवर्तित रूपों के परम्परागत प्रचार को देखते हुए ऐसा प्रतीत होता है कि संस्कृत 'मुरंगी' संज्ञा 'तामिल' नाम से ही प्रभावित है। लैटिन नाममें प्रजातिक नाम (Generic name) तामिल नामपर आधारित है।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष (विशेषतः भारतके दक्षिणी राज्यों) और ब्रह्मामें इसके वृक्ष लगाये जाते हैं। उपहिमालय प्रदेशोंमें (चनाबसे अवध तक) इसके वृक्ष जंगली होते हैं।

वर्णन—यह एक बड़ा वृक्ष है जिसकी शाखायें बहुत कमजोर होती हैं और फलियोंसे लदनेके बाद भारसे स्वयं टूट जाती हैं ('सहिजन अति फूले-फले डार-पातकी हानि')। छाल कार्कयुक्त, मोटी; पत्ती संयुक्त त्रिपक्षाकार ४५सें०मी०से १·५ मीटर (१½से ५ फीट) लम्बी होती है। फली २२·५सें०मी०से ५०सें०मी०(९ इञ्चसे २० इञ्च)

लम्बी, घेरेमें त्रिकोण, खड़ी रेखाओंसे युक्त तथा बीजोंके बीच-बीचमें पतली होती है। किन्हीं-किन्हीं वृक्षोंमें फलियाँ त्रिपार्श्विक-चपटी-गोल न होकर सिलिंडराकार, किन्तु दोनों अग्रोंपर क्रमशः पतली होती हैं। बाजारोंमें यह **'मुनगा'** नामसे तथा चपटीकी अपेक्षा महँगी बिकती हैं। बीज पंखयुक्त, त्रिकोण और २·५ सें०मी० (१ इञ्च) तक लम्बे होते हैं। जंगली वृक्षोंकी फली कड़वी होती है। वृक्षके तनेसे बबूलके गोंदके समान गोंद निकलता है। ताजी कोमल फलियोंका शाक और अचार बनाते हैं। फूलोंके रंगके विचारसे इसके चार प्रकार बताये गये हैं। यथा (१) सफेद, (२) लाल, (३) नीला और (४) पीला। किन्तु वानस्पतिक दृष्टिसे मोरींगाकी इस प्रकारकी जातियाँ (Species) नहीं मिलतीं।

उपयुक्त अंग—पत्र, फूल, फली, गोंद, छाल, बीज, बीजोत्थ तेल, मूल एवं मूलत्वक्।

रासायनिक संगठन—छालमें एक सफेद क्रिस्टली ऐल्केलॉइड, २ रालें (Resins), एक इन्-ऑर्गैनिक अम्ल, लबाब और राख ८%; मूलमें एक अत्यंत तीक्ष्ण एवं अप्रियगंधयुक्त उत्पत् तैल तथा मूलत्वक्से मोरिंगीन (Moringine) एवं मोरिंगिनीन (Moringinine) नामक दो ऐल्केलॉइड पृथक् किये गये हैं। छिलका उतारे बीजोंमें अनुत्पत् तेल (Beni oil) ३६ प्रतिशत, जिसमें ६० प्रतिशत प्रवाही तेल और ४० प्रतिशत सफेद ठोस वसा होती है।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें गरम और खुश्क। आयुर्वेदके मतसे सहिजन, उसका बीज (भा०प्र०) और तेल (सु०) उष्णवीर्य हैं।

गुण-कर्म तथा उपयोग—सहिजनके फूल, पत्ते, फलियों एवं गोंदको शीतल कफज रोगोंमें उपयोग किया जाता है। यह उदरकृमिनाशक, वातहर, दीपन, वाजीकर कफघ्न एवं मूत्रल है तथा उदरशूलका नाश करता है। खाँसी, श्वास, प्लीहाशोथ, आमवात और कटिशूलमें इसकी फलियों और फूलोंका सालन तथा फलियोंको सिरकामें डालकर उपयोग कराया जाता है। कच्ची फलियोंको पानीमें उबालनेके बाद थोड़ा कड़वा तेल, नमक और राई मिलाकर तीन-चार दिन तक धूपमें रख छोड़ते हैं। इसके बाद पक्षवध, अर्दित, आमवात, कटिशूल, अरुचि, (जोफ़े इश्तिहा) और उदरशूलमें खिलाते हैं। इसका यह अचार खट्टा होनेपर भी नाड़ियोंको हानि नहीं पहुँचाता। श्वयथुविलयन और वेदनास्थापनके लिये इसके पत्तोंका प्रयोग करते हैं। इसके बीज वाजीकर वर्णन किये जाते हैं। यह विशेषरूपसे कफघ्न एवं मूत्रल है। **अहितकर**–उष्ण प्रकृतिके लिये। **निवारण**–सिरका। **मात्रा**–अचार १ तोलासे १½ तोला तक; बीज १ माशा।

आयुर्वेदीय मत—**सहिजन** (शिग्रु व मधुशिग्रु) मधुर, कटु, तिक्त, किंचित् क्षारयुक्त, कटुविपाक, उष्णवीर्य, पिच्छिल, सारक, दीपन, तीक्ष्ण, लघु, कृमिघ्न, स्वेदोपग, शिरोविरेचन, रोचन, विदाही, हृद्य, चक्षुष्य, वीर्यको हानिकारक तथा कफ, वात, विद्रधि, शोथ, मेद, अपची, विष, प्लीहाके रोग, गुल्म, कण्डू और व्रणका नाश करनेवाला है। (च० सू० अ० ४, २७; वि० अ० ८, सु० सू० ३८, ४६; भा० प्र०)। सहिजनेकी छाल और पत्रका स्वरस पीड़ाशामक है। (भा० प्र०)। सहिजनके बीजोंका तेल तीक्ष्ण, उष्णवीर्य तथा विष, शुक्र, कफ और वातका नाश करनेवाले हैं। इसके बीजके चूर्णका नस्य सिरके दर्दको मिटाता है। (भा० प्र०)। सहिजनेके बीजका तेल तीक्ष्ण, लघु, उष्णवीर्य, कटु, कटुविपाक, सारक तथा वायु, कफ, कृमि, कुष्ठ, प्रमेह और शिरोरोगका नाश करनेवाला है। (सु० सू० अ० ४५)।

नव्यमत—सहिजनेकी जड़की ताजी छाल, कटु, तीक्ष्ण, उष्ण, रुचिकर, दीपन, पाचन, उत्तेजक, कोष्ठवातप्रशमन, वातहर, स्वेदजनन, मूत्रजनन, कफहर, शोथहर और व्रणदोषनाशक है। इसमें आमाशयका रक्ताभिसरण बढ़ता है; इसलिए अधिक पाचनरस उत्पन्न होते हैं और अन्न पचता है। अन्न पचकर उससे आंत्रोत्तेजक मल बनता है तथा उससे स्वयं आँतोंको भी उत्तेजन मिलता है, इसलिए दस्त साफ होता है। इसकी स्वेदजन क्रिया नाड़ियों-

द्वारा रक्तवहाओं द्वारा और स्वेदग्रन्थियोंपर होती है और इससे शरीरका दाह होता है। अडूसेसे जैसा प्रत्यक्ष कफ़, निकलता है वैसा इससे नहीं निकलता। परन्तु नाड़ियों और हृदयको उत्तेजन मिलनेसे रोगीकी खाँसनेकी शक्ति बढ़कर कफ निकलता है। यह हृदय और नाड़ियोंके लिए उत्तेजक है। वृक्कोंपर इसकी प्रत्यक्ष क्रिया होती है और मूत्रमें भी क्षारकी वृद्धि होती है। इसकी छालका कल्क त्वचापर बाँधनेसे त्वचा लाल होती है। बांधे हुए भागकी रक्तवाहिनियाँ विकसित होती हैं और वहाँ रक्तान्तर्गत श्वेत कण एकत्रित होते हैं। इसलिए व्रणशोथ उतरता है। इसके सिवाय पसीना होकर और मूत्र बढ़कर व्रणकारक दोष निकल जाते हैं। अग्निमांद्य, कुपचन, आध्मान, आनाह और पेटके दर्दमें छालका कल्क देते हैं। हृद्योदर, यकृद्दाल्युदर और प्लीहोदरमें अन्य मूत्रजनन और विरेचन द्रव्यों-के साथ छालका फाँट देते हैं। वृक्कशोथजन्य उदरमें सहिजनको नहीं देना चाहिये। क्योंकि इससे वृक्कका शोथ बढ़ता है। व्रणशोथपर छालके कल्कका लेप लगाते हैं और उसका फांट पीनेको देते हैं। विद्रधिमें इसके फाँटमें हींग और सेंधानमक मिलाकर देते हैं। संधिवात और आमवातमें इसके बीजोंके तेलकी मालिश करते हैं।

●

(५८६) साँवाँ

फ़ैमिली : ग्रामीने (Family : Gramineae)

नाम—(हिं०) सावाँ, सामाँ, साँवा(माँ), साँवक, **सामक**; (फा०) शामाख; (सं०) श्यामक, **श्यामाक**; (ले०) **एकीनोक्लोआ फ्रूमेन्टासेआ Echinochloa frumentacea** Link. (**पर्याय**–*Panicum frumentaceum* Roxb.)। वक्तव्य—'श्यामाक' का उल्लेख प्राचीन आयुर्वेदीय संहिताओंमें मिलता है। आयुर्वेदीय साहित्यमें इसकी गणना 'क्षुद्रधान्यों'में की गई है। फारसी '**शामाख़**' सम्भवतः इसकी संस्कृत संज्ञा 'श्यामाक'से व्युत्पन्न है।

उत्पत्तिस्थान—भारतवर्षके अधिकतर भागोंमें वन्य या ग्राम्य अवस्थामें होता है। चारेके लिए इसकी खेती की जाती है। चावलका प्रयोग गरीब लोग खानेके लिए करते हैं।।

वर्णन—कँगनी या चेना जातीय प्रसिद्ध अन्न है।

रासायनिक संगठन—१०० तोले साँवाँमें ७२½ तोले आटा और ३ तोले तेल निकलता है।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें सर्द एवं खुश्क। मतांतरसे मोतदिल।

गुण-कर्म तथा उपयोग—यह नेत्रको शक्ति देता तथा उसकी रोशनी बढ़ाता है और गर्भाशयत द्रवोंका आकर्षण करता है। इससे रक्तकी उत्पत्ति कम होती है। यह नेत्र, नासिका, चेहरा और गुदाके व्रणोंको लाभकारी हैं; कक्षागत दुर्गन्धको दूर करता, कफ और पित्तके विकार नष्ट करता और व्रणका शोषण करता है। यह रक्त-का भी शोषण करता है। इसलिए इसके खानेसे रूक्षता उत्पन्न होती है। इसे दूध या घीके साथ खानेसे प्रसेक (नज़ला) दूर होता और रक्तशक्ति बढ़ती है। इसका चावल लघु (सुबुक) है तथा कफ उत्पन्न करता है। भारत-स्थित यूनानी चिकित्सक कभी तो कहते हैं कि यह कफका नाश करता है और कभी कहते हैं कि यह कफ उत्पन्न करता है। वैद्योंके मतसे यह मधुर, स्निग्ध, कषाय, शीतल, लघुपाकी एवं संग्राही है तथा बादीको बढ़ाता और कफ पित्त और विषजन्य दोषोंको दूर करता है। नयेकी प्रकृति उष्ण है। पुराना पड़नेपर यह सर्वथा दोषरहित हो जाता है।

आयुर्वेदीय मत—साँवाँ रसमें कषाय, मधुर, शीतवीर्य, लघु, कफपित्तनाशक, संग्राहक और शोषक होता है। (च० सू० २७ अ०; सु० सू० ४६ अ०)।

●

(५८७) सागूदाना

फ़ैमिली : पामे (Family : Palmeae)

नाम—(हिं०) सागू(बू)दाना; (ले०) सागुस्लीउस् (Sagus loevus), सा० जेनुइना (S. genuina), सा० रूम्फी (S. rumphii Willd); (अं०) सैगो (Sago)।

उत्पत्तिस्थान—सागूके पेड़ जावा, सुमात्रा, बोर्नियो आदि पूर्वी द्वीपसमूहोंमें अधिकता होते हैं। हमारे देशमें अब इसके पेड़ लगाये जाते हैं। भारतोय साबूदाना सिकास पेक्टिनाटा (**Cycas pectinata** Griff.) नामक वृक्षसे तथा कतिपय अन्य वृक्षोंसे प्राप्त किया जाता है।

वर्णन—साबूदाना सागू नामक वृक्षके तनेका गूदा है जो पहले आटेके रूपमें होता है और फिर कूटपीसकर छोटे-छोटे दानोंके रूपमें बनाकर सुखा लिया जाता है। ये दाने पोस्तेके दानेसे बड़े, विभिन्न रूप और आकारके तथा सफेद होते हैं। इन्हीं दानोंको 'सागूदाना' या 'साबूदाना' कहते हैं। हमारे देशमें इसका प्रचार आधुनिक है। आजकल बाजारोंमें जो साबूदाना मिलता है वह प्रायः उपरोक्त वृक्षोंके स्टार्चसे न बनाकर यहाँ सुलभ अन्य स्टार्चोंसे बनाया जाता है। इनमें आलूके स्टार्चका प्रयोग बहुत किया जाता है। असली साबूदाना वास्तवमें नकलीकी तरह नितांत श्वेत नहीं होता। असली एवं स्थानापन्न स्टार्चोंके, (जिनका उपयोग साबूदाना बनानेके लिए किया जाता है) कणोंकी रूपरेखा, आकार, परिमाण आदिमें अन्तर होता है। इसके हाइलम (Hilum)के स्वरूपमें भी अंतर होता है।

उपयुक्त अंग—बनाया हुआ वृक्षके गूदेका स्टार्च (Pith-starch)।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम और तर।

गुण-कर्म तथा उपयोग—सागूदाना लघु एवं शीघ्रपाकी आहार है तथा हलका सारक भी है। रोगी एवं दुर्बल लोगोंके लिए पथ्याहार है। किन्तु प्रत्येक रोगीको यह हितकर (सात्म्य) नहीं होता। वातकफप्रधान रोगीको साबूदाना लाभदायक नहीं होता। साबूदाना अधिकतया दूधमें पका चीनी या मिश्री मिलाकर पिलाया जाता है। यदि दूध न पड़ता हो तो इसे बादामकी गिरी और कदूके बीजकी गिरीके शीरे या जलमें पकाकर मीठा मिलाकर पिला सकते हैं। यह विशेषकर वाजीकर एवं बृंहण है। **अहितकर**–निरापद है। **निवारण**–दूध और चीनी। **प्रतिनिधि**–आरारोट। **मात्रा**–१२ ग्राम से ३५ ग्राम (१ से ३ तोले) तक या जितना पचा सके।

◆

(५८८) सातर

फ़ैमिली : लाबिआटी (Family : Labiatae)

नाम—(हिं०) सातर, साथर; (भा० बा०) सातर; (अ०) अल्-सातर (इ० बै०), सातर; (यू०) ओरीगेनोन (Origanon); (ले०) ज़ाटारिआ मल्टीफ्लोरा (**Zataria multiflora** Boiss); (अं०) वाइल्ड थाइम (Wild Thyme)।

उत्पत्तिस्थान—अरब, फारस, खुरासान, अफगानिस्तान, बलूचिस्तान और पश्चिमी भारतवर्ष।

वर्णन—यह मरुएकी जातिका एक क्षुप है, जिसकी शुष्क पतली शाखाएँ और पुष्प मिले हुए बाजारमें मिलते हैं। पत्र छोटे (बड़ासे बड़ा पत्र ६·२५ मि० मि० या १/४ इंच लम्बा), अण्डाकार या लगभग गोल, धब्बा-

युक्त, चर्मिल तथा पत्रप्रान्त अखण्ड; पुष्प छोटे रक्त वा नीलवर्ण; स्वाद तीक्ष्ण एवं सुगन्धित होता है। **जंगली (सहराई)**, **पहाड़ी (कोही)** और **बागी (बुस्तानी)** भेदसे यह **तीन** प्रकारका होता है।

रासायनिक संगठन—पत्रमें पुदीनेके गंधवाला एक उत्पत् तेल, एक लाल रंगका स्वादरहित अम्लराल और कुछ टैनिक एसिड (Tannic acid) प्रभृति उपादान होते हैं।

कल्प तथा योग—**अर्क सातर**।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें **गरम और खुश्क**।

गुण-कर्म—सातर छेदनीय, विलयन, वातानुलोमन, वेदनास्थापन, श्वयथुविलयन, श्लेष्मनिःसारक, अश्मरीनिर्हरण, मूत्रार्तवजनन, उदरकृमि विशेषकर कद्दूदानेके लिए घातक है तथा अन्त्र, आमाशय और यकृत्को द्रवोंसे शुद्ध करता है; विशेष रूपसे वाजीकर, क्षुधावर्धक, रुचिकर एवं बाष्पघ्न है।

उपयोग—प्लीहाकी सूजन दूर करनेके लिए इसे सिरकेके साथ पीसकर लेप करते और सिरकेमें भिगोकर पिलाते हैं। दूसरे प्रकारके शोथोंको मिटानेके लिए इसे शहदके साथ पीसकर लगाते हैं। दंतशूलमें इसके काढ़ेसे गण्डूष कराते और कूल्हेके दर्द, बस्तिशूल और जरायुशूलमें पिलाते तथा लेप करते हैं। कास और श्वास तथा फुपफुसोंसे कफोत्सर्गके लिए इसे सूखे अंजीरके साथ लेप करते हैं। अश्मरीके उत्सर्गके लिए इसे उपयुक्त औषधियोंके साथ पिलाते हैं। कर्णशूलनिवारणके लिए इसका रस निचोड़कर कानमें टपकाते हैं। नेत्रके जाले और फूलेको नष्ट करनेके लिए इसका नेत्रमें आश्च्योतन करते हैं। **अहितकर**–फुपफुसके रोगोंमें। **निवारण**––अंजीर, सिरका, शहद और लेपमें जैतूनका तेल। **प्रतिनिधि**–पहाड़ी पुदीना। **मात्रा**–५ ग्राम से ७ ग्राम (५ माशे से ७ माशे) तक।

नव्यमत—सुगन्धि (Aromatic), दीपन, उत्तेजक और स्वेदजनन है।

(५८९) साबुनी

फ़ैमिली : कारिओफिल्लासे (Family : Caryophyllaceae)

नाम—(हिं०) साबुनी, साबूनी, बड़गोहुआँ मुस्ना (संथा०, सिंध); (बं०) साबूनी; (अ०) अल्साबूनियः, नबातुस्साबूनियः; (यू०) स्ट्रोन्थिओन (Stronthion); (रू०) स्ट्रूथिउम् (Struthium); (ले०) **सापोनारिआ वाक्कारिया (Saponaria vaccaria** Linn.); (अं०) परफोलिएट सोपवर्ट (Perfoliate Soap-wort)।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष (प्रायः उत्तरी भागके खेतोंमें जाड़ोंकी फसलके साथ); और मध्य यूरोपके गेहूँके खेतोंमें होती है। कैम्पबेलके अनुसार मानभूमिमें तेलहनके रूपमें इसकी खेती होती है।

वर्णन—इसके क्षुप ३० सें० मी० से ९० सें० मी० (१–३ फुट) ऊँचे होते हैं। पत्तियाँ, अभिमुख, भालाकार अथवा रेखाकार-आयताकार, काण्डसंसक्त और चिकनी होती हैं। पुष्प गुलाबी, सवृन्त और २–३ विभक्त मंजरीमें; बाह्यकोश संयुक्त, नलिकाकार और उसके दल कूबड़दार; आभ्यन्तर दल अभिलट्वाकार और दलदण्ड नखराकार (Claw) होते हैं। समस्त पौधेका स्वाद तिक्त एवं क्षारीय होता है। जड़ बहुत लम्बी, बेलनाकार और लगभग शाहीके काँटे (Quill)के आकारकी, जिसकी छाल बाहरसे ललाई लिए और सरलतासे छूटनेवाली और भीतरसे सफेद एवं दृढ़ होती है।

उपयुक्त अंग—जड़।

भेद—**विदेशी साबुनी**।

(१) **क्वील्लाजा सापोनारिआ** (**Quillaja saponaria** Mol. (*Family : Rosaceae*); (अं०) क्विल्लैया सोप (Quillaia Soap), पनामा बार्क (Panama Bark); कुल्लै (Cullay–(Native) । यह चिली और पेरूका निवासी है ।

(२) **सापोनारिआ ऑफ्फ़ीसिनालिस Saponaria officinalis** Linn. (Family : *Caryophyllaceae*); (अं०) सोपवर्ट (Soap-wort) । इसके पुष्प गुलाबी होते हैं ।

उत्पत्तिस्थान—यूरोप और ग्रेटब्रिटेन ।

वक्तव्य—क्विल्लाया (Quillaia) या क्विल्लाजा (Quillaja) **'चिली'** भाषाका शब्द है, जिसका अर्थ **'प्रक्षालन'** या **'धोना'** है । चिली निवासी इसकी छालको साबुन और रीठेकी भाँति वस्त्र आदि के प्रक्षालनार्थ प्रयोग करते हैं इसलिए उक्त नामसे अभिहित हुई ।

इतिहास—प्राचीन यूनानी वैद्योंने 'स्ट्रोथियम' के नामसे **सापोनारिआ ऑफ्फ़ीसिनालिस** (**Saponaria officinalis**) अर्थात् **'उश्नान'** या **'ग़ासूल'** का या **सापोनारीआ वाक्कारिआ** (**Saponaria vaccaria** Linn.) अर्थात् **'साबूनीबूटी'** का उल्लेख किया है। इन दोनोंमें ही **सैपोनिन** सत्व विद्यमान होता है ।

उत्पत्तिस्थान—चिली (दक्षिण अमरीकाके पश्चिमी तटपर स्थित एक प्रदेश) ।

रासायनिक संगठन—इसमें **सैपोनिन** (**Soponin**) होता है जिसपर इसके गुणधर्म अवलंबित होते हैं । यह सत्व तीव्र शिरोविरेचन, कफनिस्सारक; मूत्रजनन और मलोत्सर्जक और बड़ी मात्रामें हानिकारक होता है ।

नव्यमत—खाजमें पौधेका उपयोग होता है । दीर्घकालीन मन्द ज्वरोंमें पौधेका सार या रस (Sap of the plant) ज्वरहर एवं बल्य समझा जाता है ।

विदेशीय—**साबुनी** लेखन, छेदन और रसायन है । प्रायः कण्ठमाला और त्वचाके रोगोंमें सामान्यतया प्रयुक्त सार्सापरिल्लासे यह श्रेष्ठ बतलाया जाता है ।

●

(५९०) सारिबा

फ़ैमिली : आस्ल्केपिआडासे (Family : Asclepiadaceae)

नाम—(हिं०) अनंतमूल, कपूरी; (अ०; फा०) **उशबा हिंदी**; (बं०) अनंतमूल; (सं०) अनन्ता, सारिवा (सु०; ध० नि०), उत्पलसारिवा, गोपवल्ली (च०); (म०) उपरसाल, उपलसरी; (ग०) उपलसरी, कपूरी मधुरो; (उड़िया) कपरी; (ले०) **हेमीडेस्मुस् इंडिकुस्** (**Hemidesmus indicus** Br.); (अं) इण्डियन या कन्ट्री सारसापैरिल्ला (Indian or Country Sarsaparilla) ।

उत्पत्तिस्थान—भारतवर्षमें गंगाका ऊपरी मैदान, पूरबकी ओर बंगाल और सुंदरबन तक तथा मध्यप्रदेशसे दक्षिणभारत तक और लंका ।

वणन—इसकी पतली और लपेटकर चढनेवाली गुल्मजातीय १·५ मीटरसे ४·५ मीटर (५ फुट से १५ फुट) लंबी लताएँ होती हैं । कांड बारीक कालाई लिए लाल रंगका; पर्णविन्यास अभिमुख (आमने-सामने), पत्रवृन्त छोटा, पत्ते छोटे-बड़े, लम्बे, भिन्न-भिन्न आकारके, नीचे हलके रंगके और ऊपर प्रायः सफेद चिह्नोंसे अंकित; पुष्प पत्रकोणोद्भूत, छोटे जामुनी छाया लिये हुये हरे रंगके गुच्छोंमें; **फल** युग्म, कैप्सूल; **मूल** लंबे, गोल, जरा टेढ़े-मेढ़े

मूल और काण्डत्वक् प्राय: कृष्णाभ लाल रंगके, पर उनके भीतर सफेदी होती है । मूलमें एक मधुर एवं प्रिय गंध होती है; स्वाद मधुर एवं किंचित् तिक्त होता है । 'कालीसर' अर्थात् 'कृष्णसारिवा' इसका एक भेद है ।

उपयुक्त अंग तथा रासायनिक संगठन—अनन्तमूलको वायुमें सुखाई हुई जड़में एक सुगन्धि और बाष्प के साथ उड़नेवाला वीर्य होता है । इसलिए इसका क्वाथ नहीं करना चाहिये । यह वीर्य जड़की छालमें होता है, भीतरके काष्ठमें नहीं होता । इसलिए सदा बारीक और नये मूल लेने चाहिये । मूल मोटे हों तो इसकी छाल ही लेनी चाहिये । जड़ सारसापरिल्लाके प्रतिनिधि रूपमें प्रयुक्त होती है ।

कल्प—फांट या हिम ।

प्रकृति तथा गुण-कर्म प्रयोग—सारिवा, शीतल, स्निग्ध (तर), मधुर, गुरु, शुक्रजनन, क्षुधाभिवर्धक है तथा पित्त एवं वातके विकारोंको नष्ट करती, आर्तवको बंद करती, और ज्वरातिसारका नाश करती है । (**तालीफ़शरीफ़ और तिब्बुस्तफ़्वी**) । यह मूत्रविरेचन, मूत्रविरजनीय, स्वेदजनन, दीपन, जीवनविनिभय क्रियाकी उत्तेजक, त्वग्दोषहर, उत्तम रक्तशोधक, बल्य और रसायन है तथा भूखन लगना, खानेकी तरफ रुचि न होना, ज्वर, चर्मरोग, श्वेतप्रदर, फिरंगोपदंश, आमवात, व्रण, शारीरिक दौर्बल्य तथा बिच्छू एवं सर्पदंशमें इसका उपयोग करते हैं ।

आयुर्वेदीयमत—अनन्तमूल, मधुर, स्निग्ध, गुरु, शुक्रकर, वर्ण्य, कण्ठ्य- स्तन्यशोधन, पुरीषसंग्रहणीय, दाहप्रशमन तथा वातादि तीनों दोष, रक्तविकार, ज्वर, कण्डू, कुष्ठ, प्रमेह, शरीरकी दुर्गन्ध, अग्निमान्द्य, अरुचि, श्वास, कास, आँव, विष और अतिसारको दूर करनेवाला है । (च० सू० अ० ४; वि० अ० ९; सु० सू० अ० ३८; ध० नि०; भा०, प्र०) ।

नव्यमत—अनन्तमूलमें एक सुगन्धि और बाष्पके साथ उड़नेवाला वीर्य है; अतएव अनन्तमूलका काढ़ा नहीं करना चाहिये । यह वीर्य मूलकी छालमें होता है, भीतरके काष्ठमें नहीं होता, इसलिए सदा बारीक और नई जड़ लेनी चाहिए । जड़ मोटी हो तो उसकी छालही लेनी चाहिए । यह मूत्रविरेचन, मूत्रविरजन, स्वेदजनन, दीपन, जीवनविनिमय क्रियोत्तेजक, बल्य, त्वग्दोषहर और रसायन है । इसके फांटसे मूत्रकी राशि तिगुनी-चौगुनी बढ़नेपर भी मूत्रपिण्डोंको कुछ भी भय नहीं होता । गुरुच और सौंफ मिलानेसे इसकी क्रिया बढ़ती है । इसका फांट वृक्क-शोथ और संकोचनमें अतीव गुणकारक है । इस रोगमें इसे गुरुच और जीरेके साथ देते हैं । इससे त्वचाकी जीवन-विनिमय क्रिया सुधरती है और केशिकाओं (सूक्ष्म रक्तवाहिनियों) का थोड़ा सा विकास होता है । ज्वरमें इसके फांटसे पसीना और पेशाब होता है, शरीरकी उष्णता कम होती है और पचनक्रिया बढ़ती है । सब प्रकारके त्वचा के रोगों और उपदंशकी द्वितीयावस्थामें इसे गुरुचके साथ देनेसे उत्तम लाभ होता है । गण्डमालामें इसे बायविड़ंगके साथ देते हैं । क्षुधानाश और कुपचन रोगोंमें इसे देनेसे आमाशयकी शक्ति बढ़ती है, भूख लगती है, अन्नपर रुचि उत्पन्न होती है और अन्न ठीक पचता है । शरीरकी थकावट, वजन (भार) घटना, प्रदर, जीर्ण आमवात और रक्त-दोषसे उत्पन्न पांडुरोगमें यह गुणकारक है । उपदंश या सूजाकसे गर्भपात होता हो अथवा शिशु जन्म लेते ही मरता हो, ऐसी स्थितिमें इसे देनेसे बालक बच जाता है । गर्भ रहनेपर प्रसवकाल पर्यंत स्त्रीको इसका सेवन कराना चाहिये ।

●

(५९१,५९२) सालममिश्री, सालमपंजा

फ़ैमिली : ऑर्किडासे (Family : Orchidaceae)

नाम—(हिं०) सालममिश्री; (यू०) Saurion (D.3.133), Satyrion (D.2.64); (अ०) सालबमिस्री, खुस्युस्सालब, खुस्यतुस्सालब (इ०बै०); (फा०) सालबमिसरी; (सं०) मुञ्जातक **(च०)**; (कु०) हथजोड़ी; (बं०) सोलम्मिछरि; (गु०) सालम; (म०) सालममिश्री; (बम्ब०) सालुम; (पं०;बं०;हिं०) सालिबमिश्रि; (अफ़०) सालब, सालप; (ले०) **आर्किस मास्कुला (Orchis mascula** Linn.); **आर्किस माकुलाटा (O. maculata** Linn.) तथा **ऑर्किस लाक्सीफ्लोरा (O. laxiflora** Lam.); (अं०) सैलेप (Salep)।

वक्तव्य—सालब या आर्किसके उपर्युक्त सभी भेद विदेशीय हैं। इनका एक भेद **ऑर्किस लाटीफोलिआ (O. latifolia** Linn.) भारतवर्षके पश्चिमी समशीतोष्ण हिमालयमें कश्मीरसे नैपाल तक और पश्चिमी तिब्बतमें होता है। फिर भी अधिकतया यहाँ होनेवाली मुञ्जातक कुल (ऑर्किडासे) की **एउलोफिआ प्रजाति**की विभिन्न जातियों, जैसे **एउलोफिआ काम्पेस्ट्रिस् (Eulophia campestris** Wall.) आदिसेप्राप्त की जाती है, जो विदेशी सालममिश्रीकी प्रतिनिधि स्वरूप बाजारोंमें मिलती है। बाजारमें एक प्रकारकी 'नकली सालममिश्री' भी मिलती है।

उत्पत्तिस्थान—मध्य और दक्षिण यूरोप, एशिया माइनर, रूस, मिस्र, फारस, अफगानिस्तान, बलूचिस्तान और **ऑर्किस लाक्सीफ्लोरा** भारतवर्षमें काश्मीरसे तिब्बत पर्यंत होता है।

वर्णन—सालममिश्री **ऑर्किस** प्रजातिकी अनेक जातियोंके प्याजकी तरहके गुल्मके सुखाये हुये मूल हैं, जिनमेंसे मुख्य-मुख्य भेदोंके नाम ऊपर दिये गये हैं। इन मूलोंका आयात विदेशोंसे होता है। ये मूल (Tubers) सफेदी लिये या भूरापन लिये पांडुपीत, लगभग (१ इञ्च से १½ इञ्च) लम्बे और (⅓ इञ्च से ½ इञ्च) व्यासमें आयताण्डाकार (Oblong-oval) या दीर्घवृत्ताकार (Elliptical) कुछ-कुछ रम्भाकार चपटा (Compressed), साधारणतया एक छोरपर प्रकांड-चिह्न (Stem-scar) युक्त और दूसरे छोरकी ओर गोपुच्छाकार (Taper) होते हैं। इसे लहसुनी या लहसुनिया सालम कहते हैं। इनमेंसे कुछ भेद चपटे पंजाकार (Compressed palmate), तीन या पाँच नुकीले खंडयुक्त, शीर्ष वा मुकुटपर प्रकाण्ड क्षतचिह्नसे भी युक्त, कभी-कभी झुर्रीदार (Wrinkled or Shrivelled), किन्तु सर्वदा श्रृंगवत् एवं कठोर (Tough) और सरलतया टूटनेवाले नहीं होते। कंदकी आकृति हाथके पंजेके समान होती है इसलिये अन्य इसको **पंजासालब** कहते हैं। आयुर्वेदका **मुञ्जातक** पंजासालम है। स्वाद मधुर, लेसदार, फीका और किसी कदर तीव्र होता है। उत्तम सालममिश्री वह है, जो मोटी, बड़ी और मधुर हो तथा जिसमेंसे वीर्यके समान गंध आती हो। भारतीय सालममिश्री ऐसी नहीं होती।

उपयुक्त अंग—मूल।

रासायनिक संगठन—इसमें एक तिक्त सत्व तथा लोरोग्लोसिन (Loroglossin) नामक एक ग्लूकोसाइड और पिष्ट २७ प्रतिशत, लबाब ४८ प्रतिशत, शर्करा, शुक्लि (ऐल्ब्युमेन), अंशतः उत्पत् तेल और राख जिसमें फॉस्फेट्स, क्लोराइड् ऑफ पोटैसियम और चूना प्रभृति द्रव्य होते हैं। इसका प्रधान उपादान लबाब या पिष्ट है। नकलीमें गोंद और पिष्ट होता है।

कल्प तथा योग—चूर्ण बकरी या गायके दूधमें पका, उसमें मिश्री और इलायचीके बीजका चूर्णमिलाकर देना चाहिये। माजून सालब, सफूफ सालब इत्यादि।

प्रकृति—दिल्लीके हकीम इसे पहले दर्जेमें गरम और तर मानते हैं। आयुर्वेद मतसे शीतवीर्य एवं स्निग्ध (च०) है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—नाडीबलदायक, बाजीकर, शुक्रल, कामोद्दीपक और बृंहण है। वीर्य उत्पन्न एवं पुष्ट करने और वाजीकरणके लिये सालममिश्रीका चूर्ण दूधके साथ खिलाते हैं। इसे प्रायः बाजीकर माजूनोंमें डालते तथा उपयुक्त औषधियोंके साथ इसका हरीरा बनाकर खिलाते हैं। इसका उपयोग अरारोटके समान होता है। **अहितकर**–उष्णप्रकृतियोंमें विशेषकर आमाशयिक द्वारके लिये। **निवारण**–सिकंजबीन और कासनीका स्वरस। **प्रतिनिधि**–बूजीदान। **मात्रा**–३ ग्राम से ५ ग्राम (३ माशेसे ५ माशे तक)।

आयुर्वेदीय मत—सालम (मुञ्जातक) मधुर, गुरु, स्निग्ध, शीतवीर्य, बलकारक, तृप्तिकारक, पौष्टिक, श्रेष्ठ बाजीकर और वात तथा पित्तका नाश करनेवाला है। (च०सू०अ० २७)।

नव्यमत—सालम मस्तिष्क और नाड़ियोंका उत्तेजक और पौष्टिक, संग्राहक, स्तम्भन, जीवन, बृंहण और वयःस्थापन है। पचननलिकाके रोगोंमें सालम हितकर है। इससे श्लेष्मा कम होती है। व्रणका रोपण होता है और अशक्तपन कम होता है। सालम पचनेमें हलका और संग्राहक है। अतिसार, आँव, गर्भिणीका अतिसार और कुपचन, इन रोगोंमें यह गुणकारी अन्न है। प्रसूतिके अनन्तर तथा अति अभ्यास, अतिमैथुन आदिसे होनेवाली थकावटमें सालम लाभप्रद, कफोत्सारि, कषाय और पोषणकर्ता है।

मात्रा—१·५ ग्राम से ३ ग्राम (१½ माशा से ३ माशा) इसका चूर्ण बकरी या गायके दूधमें पका, उसमें मिश्री और इलायचीके बीजका चूर्ण मिलाकर देना चाहिए।

(५९२) सासफ्रास

फ़ैमिली : लाउरासे (Family : Lauraceae)

नाम—(अ०) सासफ्रास; (ले०) **सास्साफ्रास ऑफ्फ़ीसिनाले** (**Sassafras officinale** Nees.) या **सास्साफ्रास वारीफोलिउम्** (**S. varifolium** Kuntze.; **S albidum** (Nuttall) Nees.)। (अं०) सासाफ्रास (Sassafras)।

वक्तव्य—'**सासफरास**' उस व्यक्तिका नाम है जो सर्वप्रथम इसे अपने उत्पत्तिस्थानसे लाया था। अस्तु, उसीके नामपर इसका 'सासाफरास' नाम रखा गया। फ्लोरिडामें सन् १५१२ ई० के बहुत पूर्वसे ही सासफरासका व्यवहार चिकित्सार्थ वहाँके निवासियोंद्वारा किया जाता था।

उत्पत्तिस्थान—पूर्वी संयुक्तराज्य अमेरिका और कनाडा।

वर्णन—सास्फरास उत्तरी अमरिकाके पूर्वी क्षेत्रोंका आदिवासी पौधा है। वृक्ष एवं पत्तोंके स्वरूपमें बहुत अनेकरूपता पायी जाती है। सामान्यतया इसके गुल्म (Shrub) होते हैं। किन्तु कहीं-कहीं इसके २० से ३२ मीटर (२२–३५ गज) ऊँचे वृक्ष भी पाये जाते हैं। एक ही वृक्षकी पत्तियोंकी रूपरेखामें बहुत अन्तर पाया जाता है। कोई लट्वाकार तथा अखण्डित, किन्तु उसी वृक्षमें अनेक पत्तियाँ २–३ खण्डोंवाली होती हैं। सासफ्रासकी जड़ जो साधारणतया काष्ठीय (कठोर) होती है, भूरापन लिए सफेद रंगकी चिप्पियों (Chips)के रूपमें बिकती है। जड़का स्वाद एवं गन्ध सासफ्रास जैसा विशिष्ट होता है, जो काण्डमें नहीं पाया जाता। जड़की छाल चमकीले मुर्चई भूरे रंगकी विषमाकार टुकड़ोंके रूपमें तथा कोमल और भंगुर होती है। अनुप्रस्थ विच्छेद छोटा, कॉर्कवत्, निश्चित स्तरोंवाला होता है। जिसमें असंख्य तैलकोष दिखाई देते हैं। स्वाद कुछ-कुछ मधुर, कसैला तथा सुगंधित होता है।

उपयुक्त अंग--मूल, मुलत्वक् तथा मूलसे प्राप्त सुगन्धित उत्पत् तैल (**सासाफ्रास ऑयल** Sassafras Oil)।

रासायनिक संगठन—एक उत्पत् तैल रोग़न सासफ्रास (सासफ्रास ऑयल) जो स्टीम आसवन (Distilled with steam) द्वारा प्राप्त किया जाता है। इसका ग्रहण **युनाइटेड स्टेट्स फार्माकोपिआ** (U. S. P.) में भी किया गया है।

कल्प--प्रवाही सार (मात्रा—½ से १ ड्राम), रोग़न सासफ्रास (½ से ५ बिन्दु)।

प्रकृति—छाल तीसरे दर्जेके प्रारम्भमें और काष्ठ दूसरे दर्जेमें गरम और रूक्ष है।

गुणकर्म तथा उपयोग--उत्तेजक, रसायन, स्वेदल, आर्तवजनन और मूत्रल। जीर्ण त्वग्रोग, त्वक् विस्फोट (Eruptions of the skin), आमवात, फिरंगके परिणाम स्वरूप वातरक्त आदिमें इसका सफलतापूर्वक प्रयोग होता है; किन्तु चूर्ण बहुत कम अधिकतया फांट या क्वाथ करके। नेत्राभिष्यंद और शोथ आदिमें नेत्रोंके लिए धावन रूपमें इसका काढ़ा उपादेय होता है। लगभग १½ पाव (एक पाइंट) उबलते जलमें २½ तोला इसकी कुचली हुई छालका फांट बनाकर मदिरा पीनेके गिलास भरकी मात्रामें बारंबार लिया जाता है। इसे साधारणतया अन्यान्य औषधियोंके साथ देते हैं। दंतशूल, चौथिया ज्वर, जीर्णकास, मिचली, वमन, विसूचिका, आमाशय-यकृत् तथा बस्ति-वृक्ककी सर्दी और कफज संधिशूल और मूत्रावरोधमें यह औषधि गुणकारक है तथा ज्वरका दौरा रोकती है। रूक्ष, सारक और विरेचन होनेपर भी यह मूत्रनलिकामें अवरुद्ध वायुको विलीन करती है। अगदगुणविशिष्ट होनेके कारण विषैले रोगों विशेषकर प्लेगमें यह बहुत गुणकारक है। दूषित वायुका शोधन करती है। **अहितकर**—उष्ण एवं रूक्ष प्रकृतिको। इसको उश्बा और चोबचीनीके समान पिया जाता है।

◆

(५९३) सिंकोना तथा कुनैन

फैमिली : रूबिआसे (Family : Rubiaceae)

नाम—(हिं०) सिंकोना; (अ०-नवीन) अल्कीना, कीना-कीना; (ले०) **सींकोना ऑफ्फीसिनालिस** (**Cinchona officinalis** L., **सिंकोना कालीसाया C. calisaya** Wedd., **सींकोना लेड्जेरिआना C. ledgeriana** Moens. तथा **सींकोना सूक्सीरुब्रा C. succirubra** Pav.। छाल (हिं०) सिंकोना छाल, बार्क, बार्क; (पेरू) कीनाकीना (कीना-संक्षिप्त); (ले०) सींकोनी कॉर्टेक्स (Cinchonae Cortex); (अं०) सिंकोना बार्क (Cinchona Bark), पेरूवियन बार्क (Peruvian Bark), जेसूट्सबार्क (Jesuits Bark)। **टिप्पणी**—चिकित्सामें सिंकोनाके जिन भेदोंका प्रयोग होता है और जो अधिकृत हैं, उनका उल्लेख ऊपर किया गया है। इनके अतिरिक्त उनकी परस्पर वर्णसंकर जातियों (Hybrids) से प्राप्त छाल भी उपयोग सम्मत है।

वक्तव्य—दक्षिणी अमेरिका स्थित पेरू नामक क्षेत्रकी भाषामें '**कीना कीना**' ऐसी सभी छालोंको कहते हैं, जो अमेरिकामें होती और ज्वरनिवारणका गुण रखती हैं। फिर भी मध्य अमेरिकाके वनस्पतिशास्त्रज्ञ सिंकोना वृक्षकी छालको '**कीना**' कहते हैं, जिसका पूरा नाम '**कीनाकीना**' है। **मख्जनुल्अदवियाके** अनुसार इसको 'किनाकिना' भी कहते हैं। **मुहीतके** लेखकने इसको 'कुनाकुना' और फारसी भाषाका शब्द लिखा है। किन्तु यह उपर्युक्त कीनाकीनाके रूपांतर मात्र प्रतीत होते हैं। क्वीनीन (Quinine) जो उक्त छालका एक प्रधान औषधोपयुक्त ऐल्केलॉइड है, 'कीना-कीना'का किंचित् परिवर्तित रूप है। अंग्रेजीमें छालको बार्क (Bark) कहते हैं। और यह कीना-कीनाका पर्याय नाम है। यद्यपि स्पेनवासियोंने, जिनका पेरूमें उपनिवेश था, सन् १६३६ ई० में इसके ज्वरघ्न गुणका

पता लगा लिया था तथापि इसकी अधिक प्रसिद्धि उस समय हुई जब कि पेरूके तत्कालीन वाइसरायकी पत्नी जिसका नाम काउण्ट ऑफ सिंकोना (Count of Cinchona) था, सन् १६३८ ई० में नियतकालिक ज्वरसे इस प्रकार आक्रांत हुई कि अन्य किसी औषधिसे उनको लाभ नहीं हुआ। अन्ततोगत्वा उनकी अभ्यर्थनापर उनके निजी चिकित्सकने उक्त वृक्षकी छालका चूर्ण (सफ़ूफ़ कीना)का सेवन कराया, जिससे उसको शीघ्र लाभ हो गया। फिर क्या था सन् १९४० ई० में वह इसे प्रचारार्थ स्पेन ले गईं। अस्तु, उनके नामपर इस औषधिका नाम सिंकोना प्रसिद्ध हो गया। **हकीम मीर मुहम्मद हुसेन** ने सन् १७७० ई० में अपने स्वरचित ग्रंथ **मख्जनुल् अद्विया** में इसके अंगरेजी बार्क नामसे इसका वर्णन किया है और इसी प्रसंगमें लिखा है कि बर्कको **'कुनःकुनः** भी कहते हैं। **हकीम आज़मखाँ साहबने** संकलित ग्रंथ **मुहीत आज़ममें** (जिसमें मख्जनुलअद्विया पूरी-पूरी प्रतिलिपि की गयी है) कीना-कीनाको **'कुना-कुना'** फारसी संज्ञा लिखी है और इसे 'उसारेबर्क' बतलाया है। सारांश किनाकिना जिसको अधुना ईरानमें **गनागना** कहते हैं, वास्तवमें पेरूकी भाषाका वही शब्द कीनाकीना है, जिसका वर्णन पहले किया जा चुका है। 'गनागना' फारसीमें कुनैनको कहते हैं और कुनैन भी वस्तुतः इसी कीनाकीना संज्ञाका किञ्चित् परिवर्तित रूप है।

इतिहास—कुनैन अमेरिकासे हिन्दुस्तानमें आई। पेरूके स्पेनी वाइसरायकी पत्नी 'कौंट्स सिनकोना'के नामपर इसके वृक्षका नाम **सिनकोना** रखा गया। भारतमें प्रथम अंग्रेज वाइसराय लॉर्ड कैनिंगकी पत्नीने इसका भारतमें पहले प्रचार किया। इसके कुछ गुण अमेरिकावासी जानते थे, किन्तु विशेषरूपसे स्पेनवासियोंने प्रयोग कर इसके गुण जाने। दक्षिणी-अमेरिकामें पहले स्पेनवाले ही घुसे थे। ई० सन् १६३९ में कौंट्स सिनकोनका मैलेरिया ज्वर इसीसे गया। इससे जब वह यूरोप लौटीं तब बहुत-सी सिनकोनाकी छाल साथ लेती आईं। सन् १६५५ ईसवी तक इसके गुणोंपर बहस होती रही, परन्तु १६७७ ई० में सरकारी तौरपर इसका गुण स्वीकार किया गया। फ्रांसमें इसका प्रवेश १६७६ ई० में हुआ। फ्रांसके बादशाह चौदहवें लुईका बुखार इससे अच्छा हुआ। १७३९ ई० में वैज्ञानिकोंने इसका लोहा माना और १८४० ई० में सिनकोनाका पौधा पेरिसमें रोपा गया। भारतमें पहले स्पेन और पोर्टगालके पादरी इसे लाये और सन् १८३५ ई० में लेडी कैनिंगने इसके पेड़ खसिया पहाड़ी और नीलगिरीमें लगवाये। सन् १८५७ के स्वतन्त्रता युद्धके समय अंग्रेजी सेनाके बहुतसे लोग मैलेरियासे मरे; अतएव बंगालमें भी इसकी खेती बढ़ाई गयी। इसके प्रयोगकी सफलता जावामें अधिक हुई। लेडी केनिंगने डॉक्टर एण्डरसनको जावा भेजकर सिनकोनाके पौधे और बीज मँगवाये। हिन्दुस्तान और लंकामें इसकी खेती बढ़ायी गई। लेडी कैनिंग और डॉक्टर एण्डरसनकी मृत्यु मैलेरियासे ही हुई। किन्तु सरजार्ज किंगके उद्योगसे इसकी खेती सब जगह फैली। व्यापारिक दृष्टिसे सरकारने इसका अलग महकमा कायम किया। मैलेरिया कैसे फैलता है, मच्छरोंसे उसका कितना सम्बन्ध है, इसकी खोज **सर रानल्डरास** ने की।

उत्पत्तिस्थान—ऐण्डीज (Chain of the Andes), दक्षिण अमेरिकाका पेरू प्रदेश तथा उसके समीपवर्ती क्षेत्र। अधुना भारतवर्षके कतिपय क्षेत्रोंमें तथा जावामें इसकी खेतीकी जाती है।

वर्णन—**सींकोना ऑफ्फ़ीसिनालिसकी** छालके लम्बाईके रुख पड़ी दरार एवं अनुप्रस्थ दरार (Tranverse crack) बहुल, संकुचित क्वित्लस (Quills) होते हैं, जिससे छालका पृष्ठ विशेष प्रकारका खुरदुरा प्रतीत होता है। इसमें पुष्कल कुनैन होता है। **सींकोना कालीसायाकी** छाल (Quills)के रूपमें मिलती है, जिसके ऊपर सफेद चिप्पड़ या धब्बे (Patches) बने होते हैं तथा इसके ऊपर ६-१२ मिलीमीटरकी दूरीपर अनुप्रस्थ दरारयुक्त लम्बाईके रुख चौड़ी दरारें पड़ी होती हैं। बाहरी कार्कमयस्तर धीरे-धीरे परत-परत करके उतरता है। इसमें भी पुष्कल कुनैन होता है। **सींकोना लेडजेरिआना** कुनैनके लिए जावामें लगाया जाता है। इसकी छालके एकहरे या दोहरे (Quills) होते हैं, जिनके ऊपर लाइकेन (Lichen)के हलके भूरे धब्बे (Patches) होते हैं। छालके पृष्ठपर प्रचुर अनुलम्ब एवं अनुप्रस्थ दरारें (Cracks) होती हैं। इसमें भो पुष्कल कुनैन पाया जाता है। **सींकोना सूक्सीरुब्रा** अर्थात् रक्तसिकोनाकी छाल दो रूपमें पायी जाती है—चपटी जो अमेरिकासे आती है, और (Quills) जो

जावासे आती है। चपटी लालछालमें लंबी-लंबी उन्नतरेखायें (Ridges) तथा चमकीले लाल उत्सेध (Warts) होते हैं। अन्तस्तल स्पष्टतया लाल होता है तथा बाह्य तल ललाई लिए भूरे रंगका होता है। इसमें पुष्कल **सिंकोनीडीन** (Cinchonidine) होता है।

रासायनिक संगठन—सिंकोना छालमें पाये जानेवाले ऐल्केलॉइड्समें **क्कीनीन** (Quinine) या कुनैन सर्वप्रमुख है। इसके अतिरिक्त क्किनीडीन, **सिंकोनीन** (Cinchonine), **सिंकोनिडीन** (Cinchonidine) प्रभृति अन्य औषधोपयोगी ऐल्केलाइड्स भी पाये जाते हैं।

उपयुक्त अंग—छाल तथा इससे प्राप्त क्कीनीन आदि सत्व।

कल्प—छालका चूर्ण (मात्रा–२½ रत्ती से ७½ रत्ती या ०·३ ग्राम से १ ग्राम); कुनैन (१ ग्रेन से १० ग्रेन या १/२ से ५ रत्ती या ०·०६ ग्राम से ०·६ ग्राम)। फाण्ट (सिंकोनाका कपड़छन चूर्ण २½ तोला, खट्टे नीबूका रस १¼ तोला, सोंठका चूर्ण ९ माशा, दालचीनीका चूर्ण ९ माशा–सबको मिट्टीके पात्रमें उबलते जल ५० तोलामें डाल, पात्रको ढँक २ घंटे रहने दें। बादमें कपड़ेसे छान काँचकी शीशीमें डाट बन्दकर संरक्षण करें)। मात्रा–२½ तोला दिनमें २ से ४ बार।

प्रकृति—उष्ण एवं रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—नियतकालिकज्वरप्रतिबंधक, ज्वरहर, बल्य और कषाय। यह सभी ज्वरमय और संतत ज्वर (टायफॉयड)की दशाओंमें तथा विषम (Remittent) ज्वरोंमें गुणकारी है। सार्वदैहिक बल्यरूपमें यह बड़ी प्रशंसनीय औषधि है तथा वातिक शूल, अजीर्ण और दौर्बल्य इन रोगोंमें पुष्कल प्रयुक्त होता है। अतिमात्रामें इसके सेवनसे बहुतोंमें शिरःशूल, भ्रम और कम सुनाई देना आदि विकार प्रगट होते हैं। चिरायता इसके इन अवगुणोंसे रहित इसका उत्तम **प्रतिनिधि** द्रव्य है। सिंकोनाका प्रयोग ज्वरनाशक और बलदायकके रूपमें किया जाता है; परन्तु इसकी उपजका बड़ा भारी भाग अब कुनैन बनानेके लिए प्रयुक्त होता है। मलेरियानाशक असंख्य अन्य औषधियोंके आविष्कृत होनेके बावजूद भी कुनैन अब भी इस रोगकी सर्वोत्तम दवा है और जब तक स्वच्छताके सिद्धान्तों द्वारा मलेरिया कीटाणुओंको जड़से नष्ट नहीं किया जाता तब तक औषधिविज्ञानमें कुनैनका एक महत्वपूर्ण स्थान रहेगा। **अहितकर**–पित्त प्रकृतिवालोंको तथा उष्णता एवं रूक्षता उत्पन्न करता है। **निवारण**–दूध।

नव्यमत—सिंकोनाकी छाल कटुपौष्टिक, स्तम्भन, ज्वरघ्न, और नियतकालिकज्वर प्रतिबन्धक है। कुनैन कटुपौष्टिक नियतकालिकज्वर प्रतिबन्धक, ज्वरघ्न, वेदनास्थापन और गर्भाशयोत्तेजक है। **मात्रा**–छालका चूर्ण १०-३० गुंजा; कुनैन १-५ गुंजा मधु, दूध, कॉफी अथवा द्राक्षासवके साथ देते हैं। सिंकोना की छालको अल्पप्रमाणमें देनेसे भूख बढ़ती और पेशी तथा नाड़ियोंकी शक्ति बढ़ती है, रक्तवृद्धि होती है और शरीर पुष्ट होता है। शरीरमें अशक्ति आनेसे कभी-कभी पसीना आता रहता है, वह इससे बन्द होता है। कुपचन, संग्रहणी, आँव और अतिसारमें यह प्रशस्त औषध है। इसके साथ शंखद्राव अथवा गन्धकाम्ल देते हैं। इससे पवन-नलिकाकी शिथिलता दूर होकर उसको शक्ति मिलती है। कफरोगमें जब कफ पुष्कल और पूय सरीखा आता है तब सिंकोनाका फाँट अनुपान रूपमें देना चाहिए। बारीसे आनेवाले विषमज्वरमें यह उत्तम औषध है। ज्वर उतरनेके बाद और ज्वरकी हालत में भी इसे दे सकते हैं। इसका ज्वरघ्न गुण अतिप्रबल हैं। विषमज्वरमें देनेके जितने औद्भिज्ज औषध हैं, उनमें सिंकाना श्रेष्ठ है। कुनैनसे आमाशयकी पचन क्रिया बढ़ती है। **मात्रा**–इसे अल्पमात्रामें (१ ग्रेन) देना चाहिए। बड़ी मात्रामें देनेसे पचनक्रिया बिगड़ती है। समस्त ज्वरघ्न औषधोंमें कुनैन श्रेष्ठ है। इसके देनेसे पूर्व रोगीको हलका जुलाब देना चाहिए और साथमें यकृदुत्तेजक द्रव्य देना चाहिए। विषमज्वरमें अम्लद्रव्योंके साथ मिलाकर प्रवाही रूपमें देना उत्तम है। बारीसे आनेवाले ज्वररोगोंमें इससे लाभ होता है। (ओ० सं०)।

●

(५९४) सिंघाड़ा

फ़ैमिली : ओनाग्रासे (Family : Onagraceae)

नाम—(हिं०; द०) सिंघाड़ा, सिंगाड़ा, पानीफल; (गीलान) जीलान(म); (सं०) शृङ्गाट(क); (बं०) पानीफल, शिंगाड़ा; (म०) शेंगाडा; (गु०) शींघोडा; (क०; पं०) गौनरी; (क०) गोअर, गाअरि; (पं०) गाडियाँ; (मा०) सिंगोडा, सींघारा; (ते०) परिकेगड्ड; (मल०) चिरवप्पप्पु; (लें०) **ट्रापा नाटांस प्र० बीस्पीनोसा Trapa natans** (L.) var **bispinosa**(Roxb.)Makino. (**पर्याय**–*T. bispinosa* Roxb.); (अं०) इंडियन वॉटर चेस्टनेट (Indian Water-Chestnut); वॉटर कैल्ट्रॉप (Water Caltrop)।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष। तालाबों, गढ़ों तथा तालोंमें इसे विपुल लगाया जाता है।

वर्णन—यह पानीमें फैलनेवाली एक लताके प्रसिद्ध फल हैं; जो चपटे और त्रिकोणाकृति (तिकोने) होते हैं। फलका छिलका कड़ा, कच्चे फलका हरा या रक्ताभ, किन्तु पकने पर या उबालनेपर काला हो जाता हैं। इसके दोनों कोनोंपर काँटे (Bispinosa) होते हैं। छिलका हटानेपर भीतरसे मीठे सूरंजानके समान सफेद मग्ज निकलता है। यही औषधमें प्रयुक्त होता है।

वक्तव्य—सिंघाड़ा देखनेमें सूरंजानके सदृश होता है। इसलिए सूरंजांनमें मिलावटके लिए भी व्यवहृत करते हैं।

रासायनिक संगठन—लतामें पुष्कल मैंगेनीज तथा फलमें शीघ्रपाकी पिष्ट (कार्बोहाइड्रेट) होता है।

कल्प तथा योग—माजून आर्द खुर्मा।

प्रकृति—ताजा सिंघाड़ा सर्द एवं तर और सूखा सर्द एवं खुश्क है। आयुर्वेदके मतसे शीतवीर्य (च०; सु०) है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—संतापहर, शुक्रल, शुक्रसांद्रकर, वायुकारक, धारक, संग्राही, दाहप्रशमन और तृष्णाहर है। ताजा सिंघाड़ा प्यासको बुझाता है। अंगदाह और कंठके शोथ एवं खरत्वको दूर करता है। शुक्रल होनेसे कामावसाद एवं शुक्रप्रमेहकी औषधियोंमें उपयोग किया जाता है। वायुकारक, धारक एवं संग्राही होनेके कारण यह गुरु, विष्टंभी, दीर्घपाकी, अवरोधकारक एवं बस्तिवृक्काश्मरीजनक है। कभी-कभी इसके प्रचुर खानेसे शूल और मूत्रावरोध हो जाता है। यह अल्पपुष्टिकर है। **अहितकर**–शीतल प्रकृतियोंके लिए। **निवारण**–नमक, कालीमिर्च और चीनी। **मात्रा**–३ ग्रामसे १२ ग्राम (३ माशेसे १ तोला) तक।

आयुर्वेदीय मत—सिंघाड़ा मधुर, गुरु, शीतवीर्य, विष्टम्भि, वाजीकर, रुचिकर, ग्राहि, दीपन, वातकफकर तथा रक्तपित्त, दाह और श्रमको दूर करनेवाला है। (च० सू० अ० २७; सु० सू० अ० ४६; रा० नि; भा० प्र०)।

नव्यमत—सिंघाड़ा शीतल, पौष्टिक और शोणितस्थापन है। सिंघाड़ेकी पेया अतिसार, आँव और प्रदरमें देते हैं। इससे कफ तथा रक्त गिरना बन्द होता है तथा रोगीका फीकापन नष्ट हो जाता हैं। पित्तप्रकृतिवालोंको इसीका पेया बहुत अनुकूल होती है। (औ० सं०)।

●

(५९५) सिरस

फ़ैमिली : लेगूमिनोसी (Family : Leguminosae)

नाम—(हिं०) सिरस, सिरिस; (अ०) सुल्तानुल् अश्जार, दरख़्ते ज़करिया; (सं०) शिरीष; (वं०) शिरीष; (म०) शिरस; (गु०) सरसडो, कालीयो सरस; (पं०) सरींह, शरीं; (सिंध) सिरिंह; (ता०) चि (शि)रीदम्; (मल०) वाक; (ते०) दिरीसनमु, गिरिशमु; (अं०) सिरिस ट्री (Siris Tree)।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष।

वर्णन—यह एक प्रसिद्ध बड़ा **वृक्ष** है। **पत्र** प्रायः आँवलेके पत्रके समान, संयुक्त; पत्रक ४–८ जोड़ा, पत्र-वृन्त अर्बुदयुक्त। शीतकालमें पतझड़ होता है। **पुष्प** गुलाबी या पीताभ शुभ्र, अतिसुगन्धित; पुष्पकाल ग्रीष्ममें; **शिम्बी** दीर्घ, चौड़ी और चपटी, बीज अमलतासके बीजके सदृश, किन्तु उनसे छोटे होते हैं। **फूल** और छालके भेदसे शिरीषके अनेक भेद होते हैं। शिरीष जातिमें कई उपजातियाँ होती हैं। उनमें **आल्बीजिया लेब्बेक (Albizzia lebbeck** (L.) Benth.) तथा **आल्बीजिया ओडोराटीस्सीमा (A. odoratissima** Benth.) को कालीसिरस या कृष्णशिरीष और **आल्बीजिया प्रॉसेरा (A. Procera** Benth.) को **सफेद सिरस** या **श्वेतशिरीष** कहते हैं। क्योंकि पहले दोनोंकी छाल धूसरित कृष्ण, दूसरीकी छालपर जगह-जगह कालेदाग और तीसरीकी छाल श्वेत या हरित श्वेत होती है।

उपयुक्त अंग—छाल और बीज।

रासायनिक संगठन—छालमें टैनिन ७ प्रतिशत, और राल १४ प्रतिशत, तथा राख ९ प्रतिशत प्राप्त होता है।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम और खुष्क। आयुर्वेदके मतसे भी उष्णवीर्य (ध० नि०) है।

गुण-कर्म—लेखन, विलयन, उपशोषण और रक्तशोधक है। **सिरसका बीज** (तुख़्मे सिरस) लेखन, बल्य, वीर्यपुष्टिकर और दाँतोंको दृढ़ करनेवाला है। उपयोग—रतौंधीको नष्ट करनेके लिये सिरसके पत्तोंका रस नेत्रमें टपकाते (आश्च्योतन) हैं। व्रणशोषणके लिये इसको छालको महीन पीसकर छिड़कते हैं। दन्तशूलनिवारण तथा मसूढ़ोंको दृढ़ करनेके लिए इसकी छालके काढ़ेसे कुल्ले कराते हैं और जलमें पीसकर मुँहाँसोंको दूर करने और फोड़े-फुंसियोंको नष्ट करनेके लिए लगाते हैं। रक्तविकारजनित रोगोंमें इसका क्वाथ पिलाते हैं। सिरसकी छाल (पोस्त सिरस) का क्वाथ पीना प्रभावतः शारीरिक शोथोंको विलीन करता है। सिरसके बीजोंको हुलासोंमें डालकर प्रसेक और प्रतिश्यायमें सुँघाते और महीन खरल करके रतौंधी, फूला, धुन्ध तथा नेत्र कण्डूमें लगाते हैं। इसका चूर्ण नपुंसकत्व और शुक्रतारल्य दूर करनेके लिए खिलाते हैं। इसका माजून खिलाना कण्ठमालेके लिए लाभप्रद है। **अहितकर**—रूक्ष प्रकृतियोंको। **निवारण**—गोघृत। **मात्रा**—छाल ५ ग्रामसे ७ ग्राम (५ माशेसे ७ माशे) तक। बीज—१ ग्राम से २ ग्राम (१ माशेसे २ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—सिरस (शिरीष) कषाय, तिक्त, उष्णवीर्य, लघु, त्रिदोषहर, वर्ण्य, वेदनास्थापन, शिरोविरेचन, विषहर तथा वात, पित्त, कफ, कुष्ठ, कण्डू, श्वास और कासको दूर करनेवाला है। (च०सू०अ० ४, अ० २ (शिरीषबीज), अ० २५; वि०अ० ८; सु०सू०अ० ३८; ध०नि०)।

नव्यमत—शिरीष पौष्टिक, वाजीकर, ग्राही और विषघ्न है। शुक्रस्तम्भनके लिए इसका फूल देते हैं। वीर्य गाढ़ा होनेके लिए दूधके साथ इसके बीज देते हैं। वृंहणके लिए घीके साथ इसकी छालका चूर्ण देते हैं। छालके काढ़ेकी कुल्लियाँ करनेसे दाँत दृढ़ होते हैं। गण्डमालामें बीजोंका लेप कराते हैं और खिलाते भी हैं। रतौंधीमें इसका काढ़ा पिलाते हैं और आँखोंमें इसके स्वरसकी बूँद डालते हैं। (ओ० सं०)।

●

(५९६) सुरियारी (सुरवाली)

फ़ैमिली : आमारान्टासे (Family : Amarantaceae)

नाम—(हिं०) सुरवाली, सुरबाली, सरवा(बा)ली, सुर्याली, सिरियारी, शुरुआरी, सफेदमुर्गा; (यू०) बर्वानीकी; (सं०) वितुन्नक, शितिवार; (खर०) सिरवारी; (बं०) सुशुनी शाक; श्वेतमुर्गा; (गु०) लांपडी; (म०) कुरड़ु; (पं०) सरवाली; (सिं०) सर्वली, सुर्वाली; (संथा०) सिरगिट अड़ा; (ले०) **सेलोसिआ आर्जेन्टेआ (Celosia argentea** Linn.) ।

रक्तभेद (५९७)

लालमुर्गा—(हिं०) कोकन, कोकनी; (बं०) लालमुर्गा;(ले०) **सेलोसिआ आर्जेन्टेआ प्र० क्रीस्टाटा Celosia argentea** Linn. var. **cristata** Voss. (**पर्याय**–*C. cristata* Linn.); (अं०) कॉक्स कोम्ब (Cock's comb) ।

जटाधारी (५९८)

(ले०) **आमारान्थुस् हीपोकांड्रिआकुस् Amaranthus hypochondriacus** Linn. (**पर्याय**– *A. melancholiacus* Linn. अर्थात् *A. hybridus* L. का एक भेद); (अं०) रेड कॉक्स-कोम्ब (Red Cock's comb) । ये दोनों बगीचोंमें लगाये हुए मिलते हैं ।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्षमें साधारणतया ज्वार, बाजरा, ग्वार आदि भदई फसलके साथ उत्पन्न होती है ।

वर्णन—यह एक क्षुद्र एकवर्षायु वनस्पति है जो ०·९ मीटर (१–१॥ गज) तक ऊँची होती हैं । शाखाएँ रक्ताभहरित एवं चिकनी होती हैं । पत्र २·५ सें० मी० से १५ सें०मी० (१ इञ्च से ६ इञ्च) लम्बे, पतले चिकने और किनारोंसे लाल होते हैं । इसमें सनोबरी शकलके सुन्दर पुष्पस्तवक लगते हैं जो २·५ सें०मी० (१ इञ्च) लम्बे, सफेदी लिए गुलाबी और छूनेमें अत्यन्त कोमल होते हैं । इनसे अत्यन्त छोटे-छोटे चपटे चिकने चमकीले भूरे या काले रंग के बीज निकलते हैं । ये बीज ही औषधके काम आते हैं । जिनको तुख़्म सुरवाली कहते हैं ।

उपयुक्त अंग—बंगालमें नींद लानेके लिए इसके कोमल पत्तोंकी भाजी और बीजोंका चिकित्सामें उपयोग होता है ।

टिप्पणी—आयुर्वेदमे 'शितिवार, सुनिषण्णक' का पर्याय माना गया हैं । किन्तु दोनों भिन्न-भिन्न द्रव्य हैं । **निद्राजनक वस्तुत: सुनिषण्णक शाक होता है ।**

प्रकृति—**शीत एवं रूक्ष** ।

गुण-कर्म तथा उपयोग—वीर्यपुष्टिकर, संग्राही, बल्य, पित्तघ्न और ज्वर एवं शुक्रप्रमेहमें गुणकारी है । वीर्यपुष्टिकर होनेसे शुक्रप्रमेहके योगोंमें सुरवालीके बीज डाले जाते हैं तथा इनको अकेले भी चूर्ण करके दूधके साथ खिलाया जाता है । संग्राही होनेके कारण यह आर्तवशोणित, रक्तार्श, बहुमूत्र और गुदभ्रंशमें गुणकारक है । सुखालीकी पत्ती (बर्गे सुखाली) का साग पकाकर खाना पित्तको शमन करता है और मधुमेहमें लाभ करता है । **अहितकर**–मिचली उत्पन्न करती है । **निवारण**–उन्नाव या उन्नावका शर्बत । **प्रतिनिधि**–चुकंदरकी पत्तीका स्वरस । **मात्रा**–३ ग्रामसे ५ ग्राम (३ माशे से ५ माशे) तक ।

●

(५९९) सीकाकाई

फ़ैमिली : लेगूमिनोसी (Family : Leguminosae)

नाम—(हिं०) सि(सी)काकाई, चिकाकाई, सिखाकाई, शिखकाई; (सं०) शीतला, श्रीवल्ली, शिववल्ली कण्टवल्ली; (बं०) बनरीठा; (म०) शिकेकाई; (गु०) चिकाखाई; (मा०) छिकाकाई, सिकाकाई; (ते०) शीकाय; (ता०) शीवक्काय, चीवक्काय; (मल०) चीक्कक्कायि, चीनिक्काय; (लै०) **आकासिया रुगाटा Acacia rugata (Lamk.)** Ham. (**पर्याय–आकासिया कान्सीन्ना** *A. concinna* DC.)।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्षके उष्णकटिबन्ध स्थित जंगल, विशेषकर दक्षिण भारत (दकन)में इसकी लतायें होती हैं।

वर्णन—इसके विस्तृत, अत्यन्त काँटेदार और लम्बी आरोही शाखाओंवाले गुल्म होते हैं।

पत्तियाँ—द्विपक्षाकार और पत्रक खट्टे तथा रोचक होते हैं। **पुष्पमुण्डक** मलाईके रंगके या आपद्म होते हैं। फली मोटी, मांसल, बीजोंके बीच-बीचमें संधियों पर संकुचित (संधियाँ चौड़ी) ६·२५ सें०मी० से १० सें०मी० (२॥ इंच से ४ इंच) लम्बी, २·५ सें०मी० (१ इञ्च) तक चौड़ी और चोंचदार होती है। यह बाजारमें मिलती है। इसे पानीमें भिगोकर मसलनेसे रीठे जैसा फेन निकलता है जिससे इसे कोई कोई **बनरीठा** भी कहते हैं। शिर के बाल बढ़ानेके लिए रेशमी कपड़ा धोनेके लिए इसका उपयोग करते हैं। कुछ लोग इसे आयुर्वेदीय "**सातला**" या "**सप्तला**" मानते हैं। परन्तु सप्तला संभवतः कोई थूहरकी उपजाति है।

उपयुक्त अंग—पत्ती और फली।

रासायनिक संगठन—फलीमें सैपोनिन (Saponin) १०%, ऐल्केलॉइड, मैलिक एशिड (Malic acid) १२, राल, ग़्लूकोज (१३½) और गोंद (२१%) आदि घटक पाये जाते हैं।

प्रकृति—पत्ती सर्द एवं खुश्क; फली गरम और खुश्क (मुहीत), कोई-कोई फलीको भी सर्द एवं खुश्क कहते हैं।

गुण-कर्म तथा उपयोग—फलीका स्वाद अम्ल और कटु (तीक्ष्ण) है। यह गलेके भीतर क्षोभ उत्पन्न करती है। इसके खानेसे उबकाई आने लगती है और आमाशयमें आन्दोलन उत्पन्न हो जाता है। इसको पानीमें पीसकर प्रायः उसको सिर मलकर स्नान करते हैं। इससे मस्तिष्क ठंढा रहता है, बाल नरम, मुलायम, साफ और लम्बे भी होते हैं। थोड़ी मात्रामें खानेमें यह मृदुसारक एवं पित्तविरेचक है तथा कामला एवं पित्तज्वरको नष्ट करती है और शरीरको पैत्तिक दोषोंसे शुद्ध करती है। इससे शरीर मलनेसे शरीरका मल दूर होता है, साफ किये हुए इसके पत्ते पावभर से आध सेर तकके प्रमाणमें लेकर पानीमें भिगोयें और मलकर साफ करके उसमें नमक और थोड़ीसी कालीमिर्च, अदरक और लहसुन पीसकर मिलाकर थोड़ेसे घी से बघारकर एक प्याला भरके पी लेवे तो बलपूर्वक दस्तोंमें पित्त निकल जाय और कामलाकी जड़ उखड़ जाय। फलीके बीज निकाल, बारीक पीसकर थोड़ी-सी जावित्री मिलाकर रीठे प्रमाणकी गोलियाँ बाँधकर रोगके बलाबलके अनुसार १-५ गोली तक कामला रोगीको देने से बड़ा लाभ होता है। इसका इस प्रकार भी प्रयोग करते हैं कि रातमें पानीमें भिगोकर ओसमें रख छोड़ते हैं। प्रातः बीज निकाल बारीक पीसकर दहीमें लपेटकर कामला रोगीको खिला देते हैं। इससे दस्तोंके रास्ते पित्त निकलकर कामला रोग जाता रहता है। तात्पर्य यह कि दस्तोंके मार्गसे भली-भाँति पित्तको निकालती है। **अहितकर**–कण्ठ और (नरखरा) को। **निवारण**–इमली, मिश्री और खाँड़।

नव्यमत—फली उत्तेजक, कफघ्न, वामक और आनुलोमिक है। इसकी क्रिया रीठा अथवा सेनेगाके समान होती है। इससे नाड़ीका स्पंदन कम होता है और मूत्रकी राशि बढ़ती है। पत्र खट्टे, रोचक, यकृदुत्तेजक और विरेचन हैं। पुराने कफ रोगोंमें कफ पतला होने और श्वासावरोध कम होनेके लिए इसको फलीका फांट देते हैं। इससे दस्त भी साफ होता है। फलीके काढ़ेसे सिर धोनेसे जूएँ मरती हैं। फलीके काढ़ेमें कपड़ेकी बत्ती भिगोकर बच्चोंकी गुदामें चढ़ानेसे दस्त साफ होता है (ओ० सं०)।

(६००) सीसालियूस

फैमिली : ऊम्बेल्लीफेरी (Family : Umbelliferae)

नाम—(यू०) Seseli (D. 4. 101); (अ०, यू०) सीसाली-(अरबीकृत), अल्-सी(से)सालियूस (इ०बै०), सासाली, सासालियूस; (फा०) अंजुदान रूमी, कासिमरूमी; (ले०) **मीर्हिस ओडोराटा (Myrrhis odorata** Scop.), (अं०) स्वीट या स्मूथर सिसेली (Sweet or Smoother Cicely), स्वीट शेर्विल (Sweet Chervil), सेसेली (Seseli)।

उत्पत्तिस्थान—ब्रिटिश बगीचोंका सामान्य पौधा है। इसकी एक जाति **मेउम् डीफ्फूजुम् Meum diffusum**) भारतवर्षमें भी होता है।

वर्णन—**पत्र** बड़े, त्रिपक्ष (Tripinnate), पत्रक अधः स्थित सिराओंपर और पत्रप्रांत पर लोमश, पत्रवृन्त फैले हुए रोम (Spreading hairs) युक्त; पत्रक लट्वाकार (Ovate) अपेक्षाकृत भालाकार, बड़े पत्रकोंके आधार के समीप साधारणतः सफेद व छींटे (Splashes) युक्त, स्वाद मधुर अनीसूँ की तरह (Anise-like), जड़ सफेदी लिए १·२५ से ३·७५ सें०मी० (।।–१।। इञ्च) चौड़ी। **कासमी**के लेखक के अनुसार यह आयुर्वेदोक्त 'भापंगी' है।

उपयुक्त अंग—जड़ और क्षुप।

प्रकृति—दूसरेसे तीसरे दर्जे तर्क गरम और रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—यह मूत्रजनन, आर्तवजनन, अवरोधोद्घाटनकर्ता, दीपन, पाचन, वाजीकर और वेदनास्थापन है तथा पेटके दर्द, श्वासकृच्छ्र (साँसकी तंगी), मूत्रकृच्छ्र (विदुमूत्र) और गर्भाशयके दर्दको दूर करता है तथा बस्ति एवं वृक्कके रोगोंमें अत्यन्त गुणकारक है। इसके बीज शरीरके भीतरकी पीड़ाको शान्त करते हैं और कफका नाश करते हैं। इनसे मूत्र और आर्तवका खूब प्रवर्तन होता है और अवरोधोंका उद्घाटन होता है। इनके खानेसे गर्भपात हो जाता है। ४।। माशे इसके बीज मद्यके साथ खानेसे यात्रामें होने वाले वायुजन्य विकार एवं शीत से रक्षा होती है। अपस्मार में भी गुणकारक है। इसकी जड़ और बीजोंके खानेसे पुरानी खाँसी जाती रहती है। इसकी जड़को पीसकर मधुमें मिलाकर चाटनेसे छातीसे पिच्छिल द्रव्योंका उत्सर्ग होता है, कुक्षि (कोख), वंक्षण और नितम्ब आदि के वायु का नाश होता है। आमाशयके लिए यह सात्म्य है। पेटके वायु और मरोड़का नाश करती है। चौपायोंके लिए भी यह सुखप्रसवकारक है। अपतन्त्रकमें इसके उपयोगसे उपकार होता है। इसकी ताजी पेडी और बीजको कूटकर रस निकालकर दो-अढ़ाई माशेकी मात्रामें मद्यके साथ खानेसे और इस प्रकार दश दिन तक कभी-कभी सेवन करते रहने से वृक्कशूल जाता रहता है। इसे मधुके साथ चाटतेसे भो उक्त लाभ होता। बस्तिरोगों में भी यह रस लाभ पहुँचाता। **कासमी**के रचयिताके अनुसार भापंगी कटु, तिक्त और उष्ण है तथा कफज कास, दमा और शोथको नष्ट करती है। उदरकृमियोंको नष्ट करती और ज्वरका नाश करती

तथा अप्राकृत ऊष्माको लाभकारी है। **अहितकर**–उष्ण प्रकृतिको और यकृतको । **निवारण**—उष्णप्रकृतिके लिए कतीरा और यकृतके लिए जरिष्क । **प्रतिनिधि**— अंजुदान । **मात्रा**–४·५ ग्राम (४॥ माशा) ।

नव्यमत—वातानुलोमन, दीपन, कफोत्सारि । ताजी जड़ स्वतन्त्रतापूर्वक खायी जा सकती है। खांसी और आध्मानमें यह गुणकारी तथा अजीर्ण और आमाशयके विकारोंमें मृदु (Gentle) उद्दीपन भी पाई गयी है। जड़का काढ़े और क्षुपका फाण्टके रूपमें उत्कृष्टतम प्रयोग होता है। पाण्डु वा रक्ताल्पतामें क्षुपके फाण्टका उत्तम परिणाम होता है तथा यह युवा कन्याओंके लिए उत्तम बल्य औषधि है। प्लेगकालीन संक्रमण रोकनेके लिए सिसलीकी जड़ और सुम्बुलखताई (Angelica)का प्रयोग किया जाता था। (पॉटर्स न्यूसाइक्लोपीडिया पृ० ८६)।

●

(६०१) सुम्बुल

फैमिली : ऊम्बेल्लीफेरी (Family : Umbelliferae)

नाम—(यू०) Nardos (D. 1. 6.) (अ०) अल्सुम्बुल (इ० बै०) मुब्ब, मब्ब; (फा०) बेख सुम्बुला, बेख रीशावाला; (ले०) **फेरुला सुम्बुल Ferula sumbul**; (अ०) सुम्बुल (Sumbul), मस्करूट (Musk-root), हाइएसिन्थ (Hyacinth) ।

वक्तव्य—अँग्रेजीमें इसे 'मस्करूट' अर्थात् '**कस्तूरीमूल**' या '**जज़रमिष्की**' इसलिए कहते हैं कि रूसमें लगभग सन् १८३५ ई० में कस्तूरीके प्रतिनिधि स्वरूप इसका प्रवेश हुआ। तदुपरांत वहाँ इसकी खेतीकी गई। **इब्नजुल्-ज़ुल्** और **सुलेमान-बिन-हसानके** मतसे **मब्ब** '**पहाड़ी सुम्बुल**'का नाम है। अरबीमें सुम्बुल शब्दका प्रयोग प्रत्येक ऐसे गुच्छा या बालीके अर्थमें होता है जिसका गुच्छा या बाली गेहूँ या जौकी बाली या गुच्छेके समान हो; परन्तु आयुर्वेदीय साहित्यमें इसका व्यवहार 'सुगन्धतृण' के अर्थमें होता है। यूनानी वैद्यकमें मात्र सुम्बुल शब्दसे '**सुम्बुले**' हिन्दी अर्थात् सुम्बुलुत्तीब (सुम्बुलुल् असाफीर) जिसे 'बालछड़' और लैटिनमें **नार्डुस् इंण्डिकुस्** (**Nardus indicus**–नारद हिन्दी) कहते हैं, विवक्षित होता है। हकीम **दीसकूरीदूसने** निम्न ३ प्रकारके सुम्बुलका उल्लेख किया है—(१) **सुंबुलुत्तीब** या **सुम्बुले** हिन्दी अर्थात् **बालछड़**; (२) **सुंबुले रूमी** या **सुंबुले इकलीती** जो केवल गंधमें समान है, स्वरूपमें नहीं। इसे लेटिनमें **वालेरिआना केल्टिका** (**Valeriana celtica**) कहते हैं; (३) सुम्बुले जबली या कोही तथा सुम्बुले **सूरी** भी कहते हैं। फारसीमें इसे **रीशावाला** कहते हैं। यह भारतीय सुम्बुलके बहुत समान होती है। यह **सूरियाके पर्वतों** जो हिन्दुस्तानसे मिला हुआ है, होती है। यह तीक्ष्ण सुगन्धित एवं श्रेष्ठतर है।

उत्पत्तिस्थान—समरकंदके दक्षिण-पूर्वी पर्वत, तुर्किस्तान, रूस और भारतवर्ष ।

वर्णन—इसकी व्यापारिक जड़ आड़े कटे टुकड़ोंके रूपमें, लगभग १-२ इञ्च पर्यन्त व्यासमें और १ इञ्च या एकाधिक इञ्च मोटी; इसमें जड़का हृष्टरोमयुक्त शीर्ष (ताज)(Brisling crown) और गोपुच्छाकार नीचेका भाग भी होता है। यह बाहरसे एक कागजकी तरह पतले गहरे भूरे रंगकी छालसे आवेष्टित होती है। व्यत्यस्त काट (आच्छेद) गँदला भूरा और रालमय, सफेदीके साथ कठिनीकृत (Marbled with white) होता है। श्वेत भाग एक स्पंजवत् तन्तुमय, आटामय या धातुसे युक्त स्टार्ची (Mealy) दिखाई देता है। स्वाद तिक्त एवं रुचिपूर्ण; गन्ध कस्तूरीवत् वर्तमान कालमें व्यापारमें इसके स्थानमें इसकी एक दूसरी जाति **फेरुला सुआविओलेंस** (**Ferula suaveolens**) की जड़ मिलती है।

उपयुक्त अंग—जड़ ।

रासायनिक संगठन—इसमें **अम्बेलीफेरोन** (Umbelliferon) नामक उत्पत् तेल (Essential oil) होता है ।

कल्प—**तरल सार** (मात्रा–१० से ६० बिन्दु); **घनसार** (मात्रा–२ र० या १२० मि० ग्रा०; **सुरासव** (Tincture) : मात्रा– $\frac{१}{२}$–१ ड्राम ।

प्रकृति—दूसरे या तीसरे दर्जेमें गरम और रूक्ष ।

गुणकर्म तथा उपयोग—जवाशीरके समान संग्राहिणी शक्ति । यह औषधि समस्त प्रत्यंगोंको बल प्रदान करती है । इससे (कुव्वत मासिका) अत्यन्त बलवती हो जाती है । यह वायुका अनुलोम करती, अफारा, कफज छर्दि और जलोदरका नाश करती है । इससे मद्य भी बनाते हैं जिसकी विधि यह है–एक भाग यह औषधि और दस भाग अंगूरका रस मिलाकर इतना पकायें कि आधा रह जाय । पुनः इसे इक्कीस दिन तक धूपमें रखकर, छानकर रखें । यकृत्के रोगोंमें तथा कामला और सर्वांग शोफ (इस्तिसक़ाऽ लहमी)में इसके सेवनसे बड़ा लाभ होता है । इससे खुलकर पेशाब आता है । सुम्बुलकोहीमें बालछड़की अपेक्षया अधिक (कब्ज) एवं उष्णता है । इसके पीनेसे प्रसेक बन्द हो जाता है, छाती पर नहीं गिरता और स्वर शुद्ध हो जाता है । यह जड़ वातनाड़ियों और सन्धि-शूलको लाभदायक है; आमाशय, यकृत्प्लीहा और बस्ति एवं वृक्कको शक्ति देती है, वायुको विलीन करती है, आमाशय और गर्भाशयके आध्मानको नष्ट करती है । यकृत्के शीत शोथ एवं आध्मानको नष्ट करती है; मस्तिष्ककी ओर वाष्पको चढ़ने नहीं देती, बस्ति एवं वृक्कशूलको लाभ पहुँचाती है । पेटके मरोड़ और आटोप (कराकिर, गुड़गुड़ाहट)को मिटाती तथा मूत्रका प्रवर्तन करती, शुक्रकी वृद्धि करती और कामको उत्तेजित करती है । इसके काढ़ेमें (आबजन) करनेसे मूत्र और आर्तव खुल जाता है; बस्ति और वृक्कमें मलसंचित होकर दर्द हो जाय तो इससे जाता रहता है । बच्चेके पेड़ू पर इसका लेप करनेसे पेशाब खुल जाता है । **अहितकर**–सिरदर्द उत्पन्न करता है और प्लीहाको हानि पहुँचाती है । **निवारण**–सिरदर्दके लिए इसे कुछ दिनों सिरकेमें डालकर पड़ा रहने देनेके उपरान्त निकाल-सुखाकर टिकिया बनाकर काममें लेवें । इसके अतिरिक्त लालचंदन, गुलाबके फूल और अजमोदेके बीज और मधु । **प्रतिनिधि**–यकृत्की चिकित्सामें बालछड़ मूत्रके निर्हरणके लिए कालीमिर्च; मतांतरसे समतोल फितरासालियून आधा तोला, जायफल, असारून, तज या अफसंतीन । **मात्रा**–(१·७५ ग्राम से ४·५ ग्राम, १$\frac{3}{४}$ माशेसे ४$\frac{१}{२}$ माशे) तक । मतांतरसे चूर्णमें ७ माशे तक और फाण्ट एवं काढ़ेमें ९ माशे तक ।

नव्यमत—अंगमर्दप्रशमन, नाडीबलदायकोत्तेजक, किन्तु इसका उक्त गुण-प्रभाव बहुत खफीफ होता है; फिर भी इसको अपतन्त्रक, अपस्मार और सकम्प उन्माद (Delerium tremens)में देते हैं और इस पिछली व्याधिमें इसे अफीमसे अधिक गुणकारी समझते हैं । विसूचिकामें भी इसके उपयोगसे लाभ होता है । वातव्याधियों, हलके (टायफस) ज्वरों, श्वास, कास आदिमें इसे बहुत गुणकारी पाया गया है । अरजःस्राव वा अनार्तव (Amenorrhoea), अपतन्त्रक और अन्यान्य तत्सम (Allied) स्त्रीरोगोंमें भी इसका उपयोग करते हैं । प्रायः इसका उपयोग जवाशीरके समान होता है ।

(६०२) सुदर्शन

फ़ैमिली : आमारील्लीडासे (Family : Amaryllidaceae)

नाम—(हिं०) सुदर्शन, सुखदर्शन; (बं०) सुखदर्शन; (सं०) सुदर्शन (भा० प्र०); (ले०) क्रीनुम् लाटीफोलिउम् (**Crinum latifolium** Linn.); क्री० जेलानिकुम् (**C. zeylanicum** Linn.)।

उत्पत्तिस्थान—यह समस्त भारतवर्षके शुष्क जंगलोंमें प्रायः नदियोंके ऊँचे किनारोंपर जंगली पाया जाता है या बगीचोंमें लगाया हुआ मिलता है।

वर्णन—एक गुल्म जिसकी पत्तियाँ बीचमें ३ इञ्च से ४½ इञ्च चौड़ी और २½ फुट से ४ फुट तक बड़ी और घीकुआरके पत्तेसे कुछ मिलती-जुलती होती हैं। कन्द गोलाकार, व्यासमें ५ इञ्च तक और उसकी मोटी गर्दन ३-५ इञ्च तक लंबी होती है। पत्तियोंके बीचसे पुष्पदंड निकलता है। पुष्प श्वेत होते हैं। इसके कई भेद होते हैं। विषकंदरा भी इसीके एक भेदोंमेंसे है जो संभवतः 'राजनिघंटुका विष्णुकंद' है।

उपयुक्त अंग—पत्र, कंद। प्रकृति—उष्ण एवं रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—आमवातमें शोणितोत्क्लेशक रूपमें इसके कंदको कुचल और भूनकर उपयोग करते हैं। अर्श एवं विद्रधियोंमें पूयोत्पादनके लिये भी इसका उपयोग करते हैं। यह वायुका अनुलोमन करता है। इसके पत्रस्वरसको गुनगुना कानमें डालनेसे कर्णशूल आराम होता है। इसके फूलोंका तेल जंबक (सफेद सोसन या चमेली)के समान है।

आयुर्वेदीय मत—सुदर्शन स्वादिष्ट, उष्णवीर्य तथा कफ, सूजन और वातरकको हरनेवाला हैं। (भा०प्र०)।

●

(६०३) सुदाब

फ़ैमिली : रूटासे (Family : Rutaceae)

नाम—(हिं०) सिताब(ब), स(सु)दाब, सांँवलो, सातरी; (यू०) पीगंनोन Peganon (D. 3. 45); (अ०) अल्सुदाब (इ०बै०), फ़ैजन, सुज़ाब; (फा०) सदाब, सद्दाब, सुदाब, सुद्दाब; (सं०) सर्पदन्ष्ट्रा, पीतपुष्पा-(नवीन); (पं०) सुदाब (बं०) इस्पंद (म०; बम्ब०) सताप; (गु०) स(स)ताब; (ता०) अरुवाण; (कना०) सादाबु; (मल०) अरूदम्, सोमरायम्; (पां)बुथोलिल; (का०) हावुनजु, नागदालि; (ले०) रूटा ग्रावेओलेन्स (**Ruta graveolens** Linn.); (अं०) गार्डेन रू (Garden Rue)।

वक्तव्य—फ़ै(फ़ी)जन वस्तुतः यूनानी 'पीगैनोन' का अरबी रूपान्तर है। 'सुज़ाब' फारसी सुदाबसे अरबी बनाया गया है। रूटा आंगुस्टीफोलिया (**Ruta angustifolia** Pers.) उपर्युक्त वनस्पतिका ही एक भेद है। भारतीय भाषाओंके नाम या तो इसके फारसी नाम 'सदाब' या 'सुदाब'के रूपान्तर मात्र हैं अथवा इसके प्रजातिक नाम (Generic name) 'रूटा' पर आधारित हैं। यद्यपि सुदाब का प्रचार इस देशमें अन्य विदेशागत औषधियोंकी तरह काफी दिनोंसे है, किंतु आयुर्वेदीय निघण्टुओंमें इसका उल्लेख नहीं मिलता और इसीलिये इसके संस्कृत नाम भी नहीं मिलते, यद्यपि कतिपय आधुनिक लेखकोंने इसके लिये 'सोमलता' संस्कृत नाम दिया है। मख्जनुल् अदविया और मुहीत आज़ममें सुदाबके वर्णनमें वानस्पतिक विवरण तो रूटा ग्रावेओलेन्सका दिया है, किंतु इसका

बँगला नाम 'तितली' दिया है। इसी प्रकार द्रव्यगुणविज्ञानम्‌में इसका पंजाबी नाम 'तितली' दिया है। अपने यहाँ—एउफॉर्बिया ड्राकुन्कुलोइडेज (**Euphorbia dracunculoides** Linn.) नामक उद्भिज्जको 'तितली' कहते हैं, जो गेहूँ-चने आदिके खेतोंमें घास (Weed)की तरह उगती है और सुदाबसे सर्वथा भिन्न है। आजकल बाजारोंमें (विशेषतः उत्तर भारतके सभी बाजारोंमें) सुदाबके स्थानमें तितली ही बेची जाती है और अज्ञानवश अधिकांश लोग इसीका प्रयोग करते हैं। इसका स्पष्टीकरण लेखकों द्वारा 'Identity of Sudab and its Adulterants' शीर्षक शोधपत्रमें किया गया है (Ind. Journ. Pheren.)।

उत्पत्तिस्थान—दक्षिणयूरोप और फारस आदि विदेश। भारतके बगीचोमें इसके क्षुप लगाये जाते हैं। भारतवर्षमें इसका आयतन मुख्यतः फारससे होता रहा है। बहुत दिनोंसे इस वनस्पतिका प्रवेश इस देशमें होने पर भी यह यहाँका निवासी पौधा (Naturalised) नहीं हो सका है।

वर्णन—यह एक छोटा क्षुप है जिसके (मसलने पर) समग्र पौधेसे एक अप्रिय तीक्ष्ण गंध आती है। **काण्ड** बेलनाकार, सशाख, चिकना; **पत्र** एकांतर द्विपक्षाकार (Bi-pinnate), खण्ड ऊपरसे भालाकार, नीचे रेखाकृति तथा उक्त पत्र असंख्य व्याप्त अर्धस्वच्छ, अर्धअपारदर्शक् तैलग्रन्थियोंसे युक्त तथा तीक्ष्ण दुर्गन्धयुक्त होते हैं। आपाततः देखनेमें पत्र धुएँके रंगके प्रतीत होते हैं। **फूल** पीला, ५-पंखुड़ीयुक्त; **बीज** ३, त्रिकोणाकृति, कत्थई रंगके होते हैं। 'जंगली' और 'बागी' भेदसे यह दो प्रकारका बतलाया गया है।

उपयुक्त अंग—समस्त क्षुप और उससे निकाला तेल (रोग़न सुद्दाब)।

रासायनिक संगठन—ताजे पत्रमें अल्पप्रमाणमें एक उत्पत् तैल (रोग़न सुदाब) होता है, जिसमें ९०% मीथिलनॉविलकीटोन होता है। इसके अतिरिक्त **रूटिन (Rutin)** नामक ग्लूकोसाइड होता है।

कल्प तथा योग—जवारिश कमूनी, जवारिश कबीर, जवारिश मुसहिल, सफ़ूफ़ असलुस्सूस, सफूफ मुहज़्ज़िल, माजून काशिम (बयाज कबीर, भाग २), रोग़न सुद्दाब, अन्क़र्दियाए कबीर, रोग़न चोबचीनी, माउल् बुजूर, माजून बोलस, जिमाद सुदाब (इला० अमराज), माजून सकमुनिया, ज़िमाद सकमूनिया, जवारिश कमूनी मुसहिल। (यू०सि०यो०सं०)।

प्रकृति—दिल्लीके हकीम इसे दूसरे दर्जेमें गरम और खुष्क मानते हैं। मतांतरसे तीसरे दर्जेमें गरम और खुष्क है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—छेदन, विलयन, प्रमाथी, प्रवर्तक, वातानुलोमन, उपशोषण, अगदगुणविशिष्ट संग्राही, मूत्रार्तवजनन एवं वातविलयन हैं। यह आहारका पाचन करता, भूख लगाता, शीतल आमाशयको शक्ति देता, उसके आनाहको दूर करता, वायुको विलीन करता और आमाशय, यकृत् एवं प्लीहाकी शीतल विप्रकृति (सूए मिज़ाज बारिद)के लिये गुणदायक है। यह प्रवर्तक है। अतएव शारीरिक मलोंको उत्सर्गित करता है; इसी कारण कब्ज पैदा करता है। क्योंकि जलांश (माइय्यत) बस्तिमार्गसे उत्सर्गित हो जाता है जिससे सूखा अवशेष अंत्रमें शेष रह जाता है। पेय और फलवर्तीके रूपमें यह आर्तवजनन हैं। सान्द्रदोषविलयन और उष्णताजनन होनेके कारण यह गृध्रसी, वातरक्त तथा चिरज वेदनाओंमें गुणदायक हैं। यह शरीरको विषोंसे सुरक्षित रखता है। साँप, विच्छू, भिड़ और कुत्तेके दंशस्थान पर इसका पतला लेप (तिला) गुणदायक है। उपशोषण होनेके कारण यह शुक्र तथा अन्य द्रवोंको शुष्क करता है। शोफ (तहब्बुब) और सर्वांगशोथमें यह तिला और लेपकी भाँति प्रयुक्त होता है। इसके ७ ग्राम (७ माशे) और सर्वांगशोथमें यह तिला और लेपकी भाँति प्रयुक्त होता है। इसके बीजोंका चूर्ण स्थायी बल्य है। अहितकर–शिरःशूलकारक और दृष्टिदौर्बल्यकारक है। निवारण–सिकंजबीन और अनीसून। प्रतिनिधि—सातरफारसी और नाना। मात्रा–३ ग्रामसे ५ ग्राम (३ माशेसे ५ माशे) तक।

नव्यमत—सुदाब दीपन, वायुनाशक, उत्तेजक, कृमिघ्न, आक्षेपहर, स्वेदजनन, नाड़ियोंको उत्तेजक, मूत्रजनन और आर्तवजनन है। सुदाबकी उत्तेजक क्रिया विशेषकर त्वचा, नाडीव्यूह (नर्वस सिस्टम) और गर्भाशयपर होती है। स्त्रियों और बालकोंके रोगोंमें सुदाबका विशेष उपयोग करते हैं। इसे ज्वरमें देनेसे मूत्र और पसीना आता है तथा नाड़ीकी गति कम होती है। शिशुओंके आक्षेपकमें गोरोचनके साथ सुदाबको देते हैं। भ्रम, उदरशूल, आध्मान, कुपचन और अपतन्त्रकमें तथा अनार्तव और कष्टार्तवमें भी सुदाबका फांट देते हैं। इससे ऋतु साफ होकर पीड़ा कम होती है। शिशुओंकी सर्दी, जुकाम और कासमें इसका स्वरस देते हैं। कानके दर्दमें इसका स्वरस कानमें डालते हैं।

◆

(६०४) सुपारी

फ़ैमिली : पालमासे (Family : Palmaceae)

नाम—(हिं०) सु(सो)पारी, छालिया, कसैली; (अ०) फ़ो(फ़ौ)फ़ल; (फा०) पोपल; (सं०) क्रमुक, गुवाक, पूग, पूगीफल; (बं०) सुपारि; (गु०) सोपारी; (म०) सुपारी, पोफल(ली); (लें०) **आरेका काटेक्यू (Areca catechu Linn.)** (अं०) बीटल-नट (Betle (Betel) nut), एरीका-नट (Areca nut)।

उत्पत्तिस्थान—दक्षिण भारतवर्ष, कनाडा और भारतके अन्य स्थानोंमें इसके वृक्ष होते हैं।

वर्णन—यह नारियलकी जातिके एक पेड़के फलके प्रसिद्ध बीज हैं। फल २·५ सें० मी० से ३·७५ सें०मी० (१ इंच से १$\frac{१}{२}$ इञ्च)के घेरेमें छोटे अंडेकी आकृतिके गोलाकार एवं नारंगी पीले रंगके होते हैं। फलावरण तंतुमय नारियलके छिलकेके समान होता है और पकनेपर बीजसे सहजमें अलग हो जाता है। यह बीज ही सुपारीके नामसे प्रसिद्ध है जो लगभग २·५ सें० मी० (१ इञ्च) लम्बी, गोल, गोपुच्छाकृति जिसका पेंदा किंचित् नतोदर होता है। रंग बाहरसे भूरा जिसपर बारीक-बारीक ललाई लिये रेखायें होती हैं। काटनेपर अन्दरसे सफेद और लाल धारियाँ होती हैं। यह कड़ी एवं भारी होती है। स्वाद सुगंधित, कषाय एवं किंचित् चरपरा होता है। आकार-प्रकार भेदसे सुपारी अनेक प्रकारकी और साधारणतया दो प्रकारकी होती है। एक गोल गोपुच्छाकृति जिसे 'जहाजी छालिया' और दूसरा गोल जिसे 'मानिक चंदी' कहते हैं। छालियाको काटनेपर यदि उसके अंदर श्वेत रेखाएँ अधिक हों तो वह अच्छी होती है।

रासायनिक संगठन–इसमें १४% एक अनुत्पत् तेल, १०% से १५% कषायद्रव्य और यह चार क्षारोद (Alkaloids) होते हैं—(१) एरीकोलीन Arecoline–फ़ौफ़लीन), (२) एरीकेईन (Arecaine), (३) एरीकेआइडीन (Arecaidine) और गुवेकीन (Guvacine)। इनमें एरीकोलीन सर्वप्रधान है जिसपर सुपारीका लालाप्रवर्तक एवं कृमिघ्न गुण आश्रित है।

कल्प तथा योग—हलवाए सुपारीपाक, माजून सुपारीपाक, सफ़ूफ़ सुपारी।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें शीत एवं रूक्ष। आयुर्वेदके मतसे शीतवीर्य (भा० प्र०) एवं रूक्ष (सु०) है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—संग्राही, दोषविलोमकर्ता, उष्णश्वयथुविलयन और विशेषकर दाँतोंको शक्तिप्रद एवं चूनेका निवारण है। सुपारीको अधिकतया पानमें रखकर खाते हैं। इससे चूनाके अवगुणोंका निवारण होता एवं दाँतोंको शक्ति प्राप्त होती है। इसके अतिरिक्त दस्तोंको बंद करनेके लिए इसका चूर्ण खिलाते हैं तथा दाँतोंको मजबूत करने और उनके रक्तस्रावको बंद करनेके लिए दंतमंजनोंमें डालकर मंजन करते हैं। दोषविलयन एवं

विलोमकरणके निमित्त गरम शोथोंपर इसका लेप लगाते हैं। नेत्रस्राव (ढलका) और नेत्रपाक (शोज़िशे चश्म)में सुपारीको जलाकर और सुरमेकी भाँति बारीक पीसकर लगाते हैं। **अहितकर**–उरःखरत्वकारक और अश्मरीजनक है। **निवारण**–कतीरा और इलायची। **प्रतिनिधि**–चंदन। **मात्रा**–३ ग्रामसे ५ ग्राम (३ माशेसे ५ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—सुपारी कषाय, किंचित् मधुर, गुरु, रूक्ष, शीतवीर्य, मादक, रुचिकर, कुछ सारक तथा कफ, पित्त और मुखके क्लेद-मल एवं वैरस्यको दूरकरनेवाली है। (सु० सू० अ० ४६; भा० प्र०)।

नव्यमत—एक कच्ची सुपारी दूधमें घिसकर पीनेसे चपटे कृमि मर जाते हैं।

●

(६०५) सुमाक

फ़ैमिली : अनाकार्डिआसे (Family : Anacardiaceae)

नाम—(हिं०) तत्रक; (यू०) रहोउस Rhous (D. 1. 147); (अ०) सुमाक़ुल् दब्बाग़ीन, अल्सुमाक़ (इ० बै० २/२९), स(सु)माक़, स(सु)म्माक़, समाक़ील, तमतम, तिमतिम; (फा०) समाक्; (बम्ब०) सुमाक; (ले०) रहुस् कोरिआरिआ (**Rhus coriaria** Linn.); (अं०) सुमाक (Sumak, Sumach)।

उत्पत्तिस्थान—यूरोप, एशियामाइनर, अरब, फारससे लेकर पूर्वमें अफगानिस्तान, तुर्क और भारतवर्षमें कड़ी भूमि एवं सर्द प्रदेशमें इसके वृक्ष होते हैं। बम्बईमें इसके फलोंका आयात फारससे होता है।

वर्णन—यह एक प्रसिद्ध वृक्षका सुखाया हुआ प्रसिद्ध फल है जो मकोयके फलके बराबर किन्तु चपटा मसूरके दानेकी तरह उससे छोटा या बड़ा, गोलाकार या लम्बगोल होता है। फलावरण पतला, हलका, ललाई लिए भूरा या मुरचई रंगका, निर्गन्ध, स्वाद किंचित् कषाय और अम्ल होता है तथा यह हाथसे मलकर सरलतासे बीजोंसे छुड़ाया जा सकता है। फलोंका यह बारीक छिलका ही कषाय एवं वीर्यवान् होता और औषधके काममें लिया जाता है। इसे **पोस्त समाक़ या गर्दए समाक़** कहते हैं। बीज फलसे आधा छोटा, बहुधा सदैव लम्बगोल, बहुत कड़ा और कुछ-कुछ वृक्काकृति होता है। इसमें कोई विशिष्ट गंध या स्वाद नहीं होता। फल एवं बीज बाजारोंमें अत्तारोंके यहाँ **समाकके** नामसे बिकते हैं और हकीमी दवामें काम आते हैं। इसमें ३ वर्ष तक वीर्य रहता है।

रासायनिक संगठन—फल एवं पत्रमें टैनिक एसिड (Tannic acid) होता है।

भारतीय सुमाक—

नाम—(हिं०) तत्रक, रायतुंग (–पं०), मिनास, निनावा, तुंगला, समाकदाना; (अ०) समाक़, सुमाक़; (फा०) समाक; (सं०) तिन्तिडीक; (क०) चोक्कमुसुर; (पं०) खट्टेमसर, डँसरा, तुंगा, तुंगला; (मा०) डाँसरिया; (का०) समाक; (गढ़०; कुमा०) तुंगा; (ले०) र्हुस् पार्वीफ्लोरा (**Rhus parviflora** Roxb.)।

उत्पत्तिस्थान—उत्तर भारतवर्षमें विशेषकर जौनसार तथा बाहरी हिमालयमें २,००० से ५,००० फुट की ऊँचाई तक तथा नैपालसे कुमाउँ तक इसके वृक्ष होते हैं। जमुना और टोंसकी घाटियोंमें प्रायः अधिक मिलते हैं।

वर्णन—इसका पेड़ अनारके पेड़के इतना बड़ा या उससे कुछ बड़ा होता है। नवीन भाग मोरचेके रंगके रोमावरणसे ढके रहते हैं। पत्तियाँ संयुक्त त्रिपत्रक होती हैं, जिनमें अग्रस्थित पत्रक सबसे बड़ा होता है। फल व्यासमें ०·५ सें० मी० (०·२ इंच), अंडाकार, चिकना, भूरा और चमकीला होता है। ये मसूरकी आकृतिके

लाल रंगके दाने (फल) हैं, जो 'समाकदाना'के नामसे बाजारमें बेचे जाते हैं। कच्चेपर उक्त फलोंका स्वाद खट्टा होता है जो खूब पककर खटमिट्ठा हो जाता है। पंजाबीमें इनको समाकदाना कहते हैं। यह विदेशी समाकके स्थान में व्यवहार किया जाता है। इसकी कई अन्य उपजातियाँ भी होती हैं, जिनमें किसीको 'तित्रां' किसीको 'तुंग' और किसीको 'ओईरख' कहते हैं।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें शीत एवं रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—यह संग्राही, विलोमकर्ता, अन्त्र-आमाशयको शक्ति प्रदान करता पित्तको शमन करता तथा रक्तस्राव एवं बहुमूत्रको रोकता है। यह विशेषकर दीपन और पित्तातिसारनाशक है। अधिकतया पित्तज अतिसार, रक्तातिसार तथा उत्क्लेश एवं छर्दिको रोकने और तृष्णाको शान्त करनेके लिये अकेले या अन्य उपयुक्त औषधियोंके साथ पोस्तसुमाकका उपयोग करते हैं। यह उष्ण प्रकृतिके लोगोंके आमाशयको शक्ति देता और भूख लगाता है। इसे बहुमूत्र एवं अतिरजको बन्द करनेके लिए खिलाते हैं। दाँतोंको मजबूत करने और दंतशूलनिवारणके लिए इसके फांटजलसे कुल्ली कराते और मंजनोंमें डालकर दाँतोंपर मलते हैं। नेत्राभिष्यंदके प्रारम्भमें आश्च्योतन करते हैं। दोषविलोमकरणके लिये शोथके प्रारम्भमें इसका लेप लगाते हैं। नकसीरमें इसे जलमें पीसकर मस्तकपर लेप करते हैं। अहितकर–शीतल यकृत्को। निवारण–मस्तगी, अनीसूँ और सौंफके साथ खानेसे इसके दोषोंका परिहार हो जाता है। प्रतिनिधि–जरिष्क। मात्रा–३से ५ माशे तक।

आयुर्वेदीय मत—पके समाकदाने वातहर और कच्चे पित्त तथा कफ करनेवाले हैं। (सु०सू०अ० ४६)।

नव्यमत—सुमाक हृद्य, दीपन, ग्राही रक्तपित्तप्रशमन और रक्तसंग्राहक है। इसको गर्भिणी स्त्रियोंके (जुलाब)में, अशक्त मनुष्योंके रक्तयुक्त आँवमें, पित्तप्रकोपसे उत्पन्न वमनमें तथा ज्वरमें शरीरका दाह और तृषा कम होनेके लिये इसे देते हैं। (ओ०सं०)।

●

(६०७, ६०८) सुरंजान मीठा और कडुआ

फ़ैमिली : लीलिआसे (Family : Liliaceae)

नाम—(हिं०;म०;गु०;उ०) सुरंजान; (भा०बा०) सूरिंजान; (अ०) अल्सूरंजान (इ०बै०), हाफ़िरुल् महर, असाबअ हुर्मुस-(प्राचीन), अल्लहल्लाह (नवीन); (पुष्प) असाबअहुर्मुस, शंबलीज; (फा०) सूरिंजान, ज़ाफ़राने मर्गजारी; (यू०) एर्मोडक्टुलोस, कोल्खि(-च)कोन Kolkh(ch)ikon (D.4.84); (क०) विरक्युम्; (ले०) हेर्मोडाक्टिलेस(लुस) कॉल्चीकुम् Hermodactyles(-us); colchicum); (अं०) कॉल्चिकम (Colchicum), मेडो सैफ्रन (Meadow Saffron), नेकेड लेडीज (Naked ladies)।

वक्तव्य—इसकी यूनानी संज्ञा 'हेर्मोडाक्टिल'का अर्थ 'हुर्मुसकी उँगलियाँ (असाब हुर्मुस या शंबलीज़) है। इसका पुष्प अंगुलीके आकारका होता है। अतएव यूनानियोंने इसको उक्त नामसे अभिहित किया। प्राचीन अरबीमें तो सुरंजानको असाबअ हुर्मुस कहते थे; परन्तु अर्वाचीन अरबीमें इसको 'अल्लहल्लाह' कहते हैं। दाऊद अंताकी ने प्रमादवश अल्लहल्लाहको 'उस्तरखार' लिखा है। इटलीमें एक स्थानका नाम कॉल्चिक (Colchic) है, जहाँ इसके उद्भिज्ज पुष्कल होते हैं। इसलिये यूनानी हकीम दीसकूरीदूसने इसको 'काल्चिकम' नामसे अभिधानित किया। इसके केशरी पुष्पोंके सम्बन्धसे इसे अंग्रेजीमें 'मेडो सैफ्रन (सैफ्रन = केशर)' कहते हैं।

इतिहास—प्राचीन यूनानी चिकित्सकोंको हर्मोडैक्टिल ज्ञात न थी। प्रतीत होता है कि प्रथम अरबोंने इसका उपयोग किया। यूरोपमें सर्वप्रथम एलेक्जेंडर ट्रेलसने सन् ५९० ई०में इसका वर्णन किया। परन्तु सराफियून (Serapion)ने हर्मोडैक्टिलको दीसकूरीदूसोक्त कॉल्चिकम् बतलाया। यूनानी हकीम दीसकूरीदूसने कॉल्चिकोन या कॉल्चिकम्के नामसे कटुसुरंजानका उल्लेख किया है और इसके विषमय गुणकी ओर चिकित्सकोंका ध्यान आकृष्ट किया। तदुपरांत कई अन्य यूरोपीय डॉक्टरोंने कडुए सुरंजानके विषैले गुणका उल्लेख करके इसके प्रयोगसे सतर्क किया। तो भी यह ओषधि सन् १६१८ ई०में लंदनकी फार्माकोपियामें समाविष्ट की गई। परन्तु सन् १६५०ई०के फार्माकोपियामें से इसको निष्कासित कर दिया गया। पुनः कतिपय शोधन एवं प्रयोगकर्ताओंके प्रयोगपर सन् १७८८ ई०के फार्माकोपियामें इसको पुनरपि समाविष्ट कर लिया गया और तबसे आजतक यह समाविष्ट चली आती है।

भेद एवं वर्णन—मसीही तथा अन्य पुराकालीन अरबी हकीमोंने इन तीन प्रकारके सुरंजानका उल्लेख किया है–(१) सफेद; (२) पीला और (३) काला। इनमें सफेदको निर्विषैला माना जाता है और यह खानेकी दवामें काम आता है। इसीको मीठा सुरंजान (सूरिंजाने शीरीं) कहते हैं। पीला एवं विशेषकर कालेको विषैला माना जाता है। इनको कड़वा सुरंजान (सूरिंजाने तल्ख़) कहते हैं। यूनानी हकीम इनका खानेकी दवामें (आंतरिक रूपसे) उपयोग नहीं करते; अपितु केवल तेल आदिमें मिलाकर मालिशके काममें लेते हैं। किन्तु अन्वेषणोंसे यह ज्ञात हुआ है कि कड़वा सुरंजान गुणकर्ममें मीठे सुरंजान (सूरिंजाने शीरीं)की अपेक्षया अधिक वीर्यवान् है। अतएव पाश्चात्य वैद्यकमें 'कड़वे सुरंजान' का ही उपयोग होता है। इसे लेटिनमें कॉल्चीकुम् आउटुम्नाले (**Colchicum autumnale** L.) कहते हैं। यह मध्य एवं दक्षिणी यूरोप, इंगलैंड और आयरलैण्डके आर्द्र चरागाहोंमें तथा इटली, कॉल्चिक और मिस्र आदि देशोंमें होती है। काल्चीकुम् लूटेउम् (**Colchicum luteum** Baker.) इसीकी एक दूसरी जाति है, जो भारतके कश्मीर आदि स्थानोंमें होती है। इसकी जड़ (Corm) उक्त विदेशी कड़वे सुरंजानकी उत्तम प्रतिनिधि है। नीचे इसका तथा मीठे सुरंजानका वर्णन किया जा रहा है।

कड़वा सुरंजान—

नाम—(हिं०) कड़वा सुरंजान; (फा०; भा० बा०) सूरिंजाने तल्ख; (क०) सूरिंजान; (ले०) कॉल्चीकुम् लूटेउम् (**Colchicum luteum** Baker.); (अं०) कश्मीर या बिटर हर्मोडैक्टिल (Kashmir or Bitter Hermodactyl)।

उत्पत्तिस्थान—अफगानिस्तान, तुर्किस्तान और उत्तर भारतवर्षमें पश्चिमी हिमालयके समशीतोष्ण प्रदेशोंमें पहाड़ोंकी ढालपर घासोंके बीच तथा मुरीकी पहाड़ियोंसे कश्मीर और चंबा तक तथा पंजाबमें इसके पौधे उगते हैं। सूरंजान कड़वा कश्मीरसे और सूरंजान मीठा ईरानसे यहाँ आता है।

वर्णन—यह एक कंद है, जो पीला और स्वादमें तिक्त होता है। मीठे सुरंजानसे यह निम्न बातोंमें भिन्न होता है––स्वादमें तिक्त, आकारमें उसकी अपेक्षया छोटा, रंगमें उससे गहरा और कंद जालीदार लकीरवाला होता है। बाजारमें इससे बनाई हुई गहरे भूरेरंगकी शुष्क रसक्रिया हरन तूतिया नामसे मिलती है। अफगानिस्तान और उत्तर भारतवर्षमें यह प्रसिद्ध औषधि है।

उपयुक्त अंग—कंदाकार भौमिक काण्ड (Corm) एवं बीज।

रासायनिक संगठन—कंद एवं बीजोंमें कॉल्चिसीन नामक कार्यकारी वीर्य (ऐल्केलॉइड)–कंदमें ०·२१–०·२५%, बीजोंमें ०·४१–०.४३% पाया जाता है। विदेशी सुरंजानमें यह अपेक्षाकृत अधिक परिमाण (०·५%)में पाया जाता है।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें गरम और खुश्क।

गुण-कर्म तथा उपयोग—**वेदनास्थापन, श्वयथुविलयन और आमवात एवं बवासीरमें** विशेष गुणदायक है। इसको अधिकतया आमवात आदिमें लेप और मालिशकी भाँति उपयोग करते हैं। शोथोंपर भी इसका लेप करते हैं। दीसकूरीदूसके मतसे समस्त प्रकारके सुरंजानकी जड़ आमाशयके लिए अत्यंत हानिप्रद है और खानेपर विषैले कुकुरमुत्तेकी भाँति यह गला घोंटकर मार डालती हैं। इसलिए किसी-किसीने इसको कॉल्चिकुम् स्ट्रैंग्युलेलोरिउम् (Colchicum strangulalorium) नामसे अभिधानित किया है। (जिरार्ड-पा० न्यू० साइक्लोपीडिया पृ० ९०-९१)। इसी कारण यूनानी हकीम इसका खानेकी दवामें उपयोग नहीं करते; किन्तु आधुनिक अन्वेषणोंसे यह प्रभावकारी एवं निरापद प्रमाणित हुआ है। अतः पाश्चात्य चिकित्सामें प्रायः इसीका उपयोग किया जाता है। **अहितकर**—यकृत् और आमाशयके लिए। **निवारण**—सोंठ और कालीमीर्च। **प्रतिनिधि**—पीला सुरंजान। **मात्रा**—१२० मि० ग्रा० से ३५० मि० ग्रा० (१ रत्ती से ३ रत्ती) तक।

नव्यमत—**देशी कडुआ-सुरंजान** पचननलिकाका उत्तेजक है। इसलिए इससे वमन और रेचन होता है। यकृत्का उत्तेजक होनेसे पित्तका उद्रेक ठीक तरहसे होता है और वृक्कोत्तेजक होनेसे मूत्रकी राशि बढ़ती है। बड़ी मात्रामें देनेसे दाह होकर मद (नशा-कैफ) चढ़ता है और ग्लानि आती है। अल्प प्रमाणमें देनेसे जीवनविनिमय क्रिया सुधरती है। इसको सुगन्धिद्रव्योंके साथ देना चाहिए। जीवनविनिमय क्रियाके बिगड़नेसे कभी-कभी संधियोंमें क्षार संचित होता है तथा उनमें शोथ और असह्य पीड़ा होती है। रक्तवाहिनियोंके मोटी होनेसे हृदय शिथिल होकर बढ़ता है तथा उदर और शोथ होता है। मूत्र गाढ़ा होता है और उसमें लाल रंगके क्षार आते हैं। उक्त अवस्थामें कडुआ सुरंजान देते हैं।

विदेशीय कडुआ सुरंजान—आमवातघ्न, तीव्रविरेचन और वामक है। इसकी प्रसिद्धि बहुत करके तीव्र वातरक्त और आमवातिक विकारोंमें इसकी उपयोगितापर निर्भर करती है। बहुधा किसी क्षारीय मूत्रलद्रव्यके साथ इसका योग करके उपयोग करते हैं। गुटिका रूपमें भी इसे देते हैं। अधिक मात्रामें सेवन करनेसे यह तीव्र विरेक आदि कराता है।

मीठा सुरंजान—

नाम—(हिं०) मीठा सुरंजान; (फा०; भा० बाजार) सूरिंजाने शीरीं; (ले०) **मेरेंडेरा पर्सिका (Merendera persica)**; (अं०) स्वीट हर्मोडैक्टिल (Sweet Hermodactyl)।

उत्पत्तिस्थान—फारस।

वर्णन—यह एक क्षुद्र वनस्पतिका प्रसिद्ध कन्द है जो सिंघाड़ेके मग्ज (गिरी)के सदृश होता है। इसमें तीन वर्ष तक औषधीय वीर्य रहता है।

रासायनिक संगठन—इसमें भी अल्पप्रमाणमें एक प्रकारका क्षारोद होता है जो गुणकर्मकी दृष्टिसे अकार्यकर है।

कल्प तथा योग—खुलासा सूरंजान शीरीं, माजून सूरंजान, सफ़ूफ़ सूरंजान, हब्ब सूरंजान आदि।

प्रकृति—दिल्लीके हकीमोंके मतसे मलभूत द्रवसहित गरम और खुश्क। मतांतरसे तीसरे दर्जेमें उष्ण और दूसरेमें रूक्ष है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—प्रमाथी, श्लेष्मविरेचनीय, संशमन, विलयन, वाजीकर और **आमवातनाशक** है। **आमवात, वातरक्त** और गृध्रसीमें इसका आंतरिक रूपसे उपयोग किया जाता है। यह नपुंसकता में भी प्रयुक्त होता हैं। श्वयथुविलयन और वेदनाशमनके लिए केसरके साथ इसका लेप करते हैं। माजूने सूरिंजान इसका प्रसिद्ध योग है जिसका आमवात, वातरक्त और गृध्रसीमें उपयोग करते हैं। **अहितकर**—यकृत् और आमाशयको। **निवारण**—कतीरा, शर्करा और केसर। **प्रतिनिधि**—मेंहदी आमवातके लिए। **मात्रा**—२ माशे से ३ माशे।

(६०९) सूरजमुखी

फ़ैमिली : कॉम्पोजिटी (Family : Compositae)

नाम—(हिं०; बं०) सूरजमुखी; (अ०) आजरयून (–फा० 'आज़रगून' से अरबीकृत); (फा०) गुल आफ़ताब परस्त, आफ़ताबी; (सं०) सूर्यमुखी; (म०) सूर्यफूल; (यू०) हीलियोट्रोपिओन Heliotropion; (ले०) हेलिआन्थुस् आन्नुस् (**Helianthus annus** Linn.); (अं०) सन-फ्लावर (Sun-flower), लेडी एलेविनओ'क्लॉक (Lady Eleven O' clock)।

वक्तव्य—चूँकि सूर्यमुखीका पुष्पव्यूह मण्डलाकार होता है और सूर्यके साथ घूमता और सदा सूर्यके अभिमुख रहता है अथवा पुष्पव्यूहमण्डको रूपरेखा सूर्यमण्डलके अनुरूप होनेसे इसका संस्कृत नाम 'सूर्यमुखी' रखा गया है। इसके हिन्दी, बंगाली, फारसी और अँगरेजी आदि संज्ञायें इसीके समानार्थ हैं। लेटिन नाम भी इसी भाव पर आधारित है।

उत्पत्तिस्थान—अमेरिका। भारतवर्षके बगीचोंमें यह सौंदर्य हेतु लगाया जाता है।

वर्णन—एक प्रसिद्ध उद्यान पुष्प; बीज जो वस्तुतः फल है, अपारदर्शक (Opaque), रंगमें सफेद, लट्वाकार (Ovate) या किंचित् पच्चराकृति (Wedge-shaped), शिरपर रुण्डित (Truncate), किंतु उन्नतोदर, दो पार्श्वोंपर चिपटे जो मिलकर दो तीक्ष्ण तट (Margin) बनाते हैं। काले भेदके बीजका धरातल काले रंगका और चमकीला होता है तथा अपेक्षाकृत बड़ा और पतला होता है। जिसमें कभी-कभी लम्बाईके रुख काली धारियाँ होती हैं। इसके अतिरिक्त और कोई अन्तर नहीं होता है। बीज स्नेहमय एवं गिरीकी भाँति तथा निर्गंध होता है। यहाँ इस बातका विवरण रुचिकर (मनोरञ्जक) होगा कि **जेरुसलेम आर्टिचोक** नामसे प्रसिद्ध पौधा जिससे मनुष्यके आहारके लिए आलूकी तरहका कन्द प्राप्त होता है, सुरजमुखी या हीलिआन्थुसका ही एक भेद है।

उपयुक्तअंग—बीज (फल)।

रासायनिक संगठन—इसमें क्लोरोजेनिक एसिड, पत्रमें कैरोटिन, लूटिन प्रभृति सत्व होते हैं।

कल्प—बीज; तथा तैल (०.६५ मि० लि० से १ मि० लि० या १० से १५ बूँद) या अधिक।

प्रकृति—दूसरे वा तीसरे दर्जेमें उष्ण एवं रूक्ष; आयुर्वेदके मतसे भी उष्णवीर्य है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—मूत्रजनन, कफोत्सारि। वायुप्रणाली, कण्ठ और फुफ्फुसविकारों तथा कास और सर्दी (शीत)में इसका (बीजका) सफलतापूर्वक प्रयोग किया गया है। इसके बीजोंमें रहे तेलमें भी उक्त गुण पाये गये हैं तथा १०-१५ बिन्दु या इससे अधिक मात्रामें इसे दिनमें दो या तीन बार तक दिया जा सकता है। मलेरिया (विषम ज्वर)में इसकी पत्तियोंका उपयोग किया जाता है। इसकी पत्तियोंके कोष्ण लेपसे सूजन उतरती है और दर्द आराम होता है। इसके रसका नस्य करनेंसे मस्तिष्कका शोधन होता है। इसकी पत्तियोंका काढ़ा या फांट पीनेसे वमन होता है। कामोद्दीपनार्थ कमरपर इसके पत्तोंका लेप करते हैं। ७ माशे इसकी पत्तियाँ पीनेसे पेटका बच्चा गिर जाता है और आर्तव आने लगता है। इसकी जड़से कुल्ली करसेसे दंतशूल और शिरःशूल आराम होता है। गीलानीके कथनानुसार शीतप्रकृतिवालेके सिवाय अन्यको इसका सेवन उचित नहीं है। इसे योनिमें रखनेसे गर्भ गिर जाता है और वन्ध्याको गर्भधारणमें सहायता मिलती है। फूलमें इतर अंगकी अपेक्षया अधिक गर्मी है और अगद गुण भी है। यह यकृत् और मस्तिष्कगत अवरोधका उद्घाटन करता, तथा मस्तिष्कका शोधन करता, शिशुओंकी मृगीको मिटाता और अश्मरी निकालता है। इसे सिरकेमें मिलाकर निरन्तर सात-दिन तक गृध्रसीपर लेप करनेसे घाव होकर लाभ होता है और यदि यह बहुत उष्ण नहीं होता तो मनःप्रसादकर औषधियों-

में उच्च स्थान प्राप्त कर लेता। इसके फूलपर मक्खी नहीं बैठती। इसकी धूनीसे चूहा और छिपकली भाग जाती है। **अहितकर**–उष्णप्रकृति एवं प्लीहाको। **निवारण**–सिकंजबीन और मधु। **प्रतिनिधि**–चतुर्थ भाग केसर और डेवढ़ा तज; मतांतरसे बाबूना और बादावर्द। **मात्रा**–पत्तों, जड़ और फूलका रस ३½ माशे से १½ तोले तक; चूर्ण ४½ से ७ माशे तक। डॉक्टर कहते हैं कि इसके पेड़का एक बड़ा लाभ यह होता है वहाँ मच्छर नहीं रहते।

●

(६१०) सूरन

फ़ैमिली : आरासे (Family : Araceae)

नाम—(हिं०) सूरन, जमींकंद; (फा०) ज़मींकंद; (सं०) सू(शू)रण, अर्शोघ्न, ओल्ल; (बं०) ओल; (म०; गु०; बम्ब; कच्छ; कोंक०) सूरण; (ले०) आमॉर्फोफाल्लुस् काम्पानुलाटुस् (**Amorphophallus campanulatus** Bl.)।

उत्पत्तिस्थान तथा वर्णन—सूरन एक प्रसिद्ध कन्दशाक है और भारतवर्षमें सर्वत्र इससे सभी परिचित हैं। कन्द शीर्षपर धँसा हुआ और १५ सें०मी० से २५ सें०मी० (६ इञ्च से १० इंच) या इससे भी अधिक व्यास वाले गोलार्धके सदृश्य होता है। बागी या ग्राम्य (लगाया हुआ) और जंगली या वन्य (जंगलमें स्वयंजात) भेदसे यह दो प्रकारका होता है। सागके लिए ग्राम्य और औषधके लिये वन्य सूरनका उपयोग करना चाहिए।

प्रकृति—गरम और खुश्क।

गुण-कर्म तथा उपयोग—जमीकन्दमें आहारके गुण (पोषणत्व) कम होते हैं। यह संग्राही है, कफके विकार दूर करता है और फेफड़ोंसे कफका उत्सर्ग करता है। कफविकार और अर्शके लिये यह विशेष गुणकारक है। इसको अकेला या मांसके साथ पकाकर तथा अचार भी बनाकर खाते हैं। यह स्वादिष्ट एवं पाचक होता है। बवासीरमें इसे बहुत गुणकारी बतलाया जाता है। श्वास और कासमें कफोत्सर्गके लिए पुराने गुड़ और नमकके साथ एक मिट्टीकी हाँड़ीमें कपड़मिट्टी करनेके उपरांत जलाकर बारीक पीसते और ४ रत्तीकी मात्रामें पानमें रखकर खिलाते हैं। **अहितकर**–आमाशयके लिये। **निवारण**–दही और गरम मसाला। **प्रतिनिधि**–रतालूऔर टिंडे।

आयुर्वेदीय मत—सूरन कटु, रुचिकर, दीपन, पाचन तथा कृमि, वात, शूल, गुल्म, अर्श, श्वास, कास और प्लीहाके रोग–इनमें गुणकारक है। (ध०नि०)। सुश्रुतने इसे गुदकीलहा (बवासीर-नाशक) कहा है। (सु० सू० अ० ४६)।

नव्यमत—इसका साग खानेसे यकृत्‌की क्रिया सुधरती है, दस्त साफ होता है और अर्शांकुरों (मस्सों)की रक्तवाहिनियों (शिराओं)में संकोच पैदा होकर रक्त इकट्ठा नहीं होने पाता। अतः खूनी बवासीरमें सूरण बहुत लाभ करता है। इसका 'अर्शोघ्न नाम' सर्वथा अन्वर्थक है।

●

(६११) सेव

फ़ैमिली : रोजासे (Family : Rosaceae)

नाम—(हिं०) सेव, सेब (-पं०); (यू०) मिलिआ; (अ०) तुफ़्फ़ाह; (फ़ा०) सेब, कतल; (सं०) सिम्बि-(ञ्चि)तिका; (क०) चूंठ; (गु०) सफरजन, सफरचन्द; (म०) सफरचन्द; (का०) सूतं; (सिं०) सुपु, सूफ; (क०) सेबु (वु); (बं०) सेब; (ले०) मेलुस् पूमिला **Malus pumila** Mill. (पर्याय–**M. sylvestris** Hort.; **Pyrus malus** Linn.); (अं०) एपुल (Apple)।

उत्पत्तिस्थान—उत्तर-पश्चिम भारतवर्ष विशेषतः कश्मीर, कुमाऊँ, गढ़वाल, काँगड़ा और पंजाबादिमें इसके वृक्ष लगाये जाते हैं। यह अब सिंध, मध्यभारत और दक्षिण तक फैल गया है। कश्मीर और उत्तरपश्चिम हिमालयमें यह कहीं-कहीं जंगली भी देखा जाता है।

वर्णन—यह प्रसिद्ध सुगन्धित और स्वादिष्ट फल (मेवा) है। स्वाद खट्मिठा या मीठा। पका हुआ फल खाया जाता है।

रासायनिक संगठन—इसमें अत्यधिक जल (८० प्रतिशत), ऐल्ब्युमेन, शर्करा, निर्यास, हरितरंजन द्रव्य, मैलिक एसिड, कैल्सियम, विपुल प्रमाणमें फॉस्फेट्स प्रभृति उपादान होते हैं। बीजमें ऐमिग्डेलिन एवं फ्लोरिजिन नामक ग्लूकोसाइड होते हैं।

कल्प तथा योग—मुरब्बा, रुब्ब, शर्बत।

प्रकृति—मीठा पहले दर्जेमें गरम और तर तथा खट्टा; पहले दर्जेमें सर्द और खुश्क है।

गुणकर्म तथा उपयोग—मीठा सेव (सेबे शीरीं) सौमनस्यजनन और हृद्य है, यकृत् और आमाशयको शक्ति देता और सौदावी अन्यथाज्ञान (वसवास)को दूर करता। यह शुष्ककासमें लाभ पहुँचाता है और आमाशयमें पित्तमें परिणत हो जाता है। सेव कुछ-कुछ काबिज भी होता है और रक्तातिसारमें खिलाया जाता है। खट्टा सेव (सेबे तुर्श) भी मनःप्रसादकर, हृद्य तथा यकृदामाशयबलवर्धन है, कब्ज पैदा करता है, और छर्दि एवं तृष्णाको शमन करता है। पित्त प्रकृतिके लोगोंको सात्म्य है। यह पित्तज अतिसारमें खिलाया जाता है। हृदयबलोल्लासजनन, पित्तोल्वणता, रक्तोद्वेग और पित्तज अतिसारमें इसका रुब्ब (रसक्रिया) उपयोग किया जाता है। सेवका मुरब्बा और शर्बत हृदय एवं आमाशयको शक्ति देने, वमनको रोकने और दस्तोंको बन्द करनेके लिए प्रयुक्त होता है तथा हृत्स्पंदन और हृद्द्रवमें खिलाया और पिलाया जाता है। सेबका रस सौमनस्यजनन है और माजूनोंमें सम्मिलित किया जाता है। यह हृदय, मस्तिष्क और प्राणशक्ति (रुहहैवानी)को विशेषरूपसे उल्लसित करने और बल देनेवाला है। **अहितकर**–विस्मृति, ज्वर और वायु (रियाह) उत्पन्न करता है। वक्षके किए भी अहितकर है। **निवारण**–गुलकंद, दालचीनी और मधु। **मात्रा**–सेवका मुरब्बा १ तोलासे २ तोले तक; शर्बत २ तोलेसे ४ तोले तक; रुब्बसेब (सेवका रुब्ब या सत) १ तोलासे १·५ तोला तक।

आयुर्वेदीय मत–सेब कषाय, मधुर, मधुरविपाक, शीतवीर्य, ग्राही, गुरु, बृंहण, कफकर, रुचिकर, शुक्रल और वातपित्तहर। (च० सू० अ० २७; सु० सू० अ० ४६; भा० प्र०)।

●

(६१२) सेम

फ़ैमिली : लेगूमिनोसी (Family : Leguminosae)

नाम—(हिं०; बं०) सेम; (सं०) शिम्बी, निष्पाव; (म०) वाल; (गु०) अवरि; (ले०) **डॉलीकॉस लाबलाब (Dolichos lablab** Linn.); (अं०) फ्लैट बीन (Flat bean)।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष।

वर्णन—एक प्रकारकी फली जिसकी तरकारी खायी जाती है। इसकी कई जातियाँ हैं। एक प्रकारकी फलियाँ आधे बित्ता तक लम्बी और लगभग एक अंगुल चौड़ी होती हैं। पकनेपर इनके भीतरसे पिस्तेके बराबर चिकना बीज निकलता है।

रासायनिक संगठन—इसमें मांसवर्धक द्रव्य (ऐल्बुमिनॉइड्स) तथा पिष्ट काफी प्रमाणमें होता है।

प्रकृति—पहले दर्जेमें सर्द और खुश्क।

गुण-कर्म तथा उपयोग—सेमकी फलियाँ अकेले या मांसमें पकाकर खायी जाती हैं। ये आनाहकारक, विष्टंभी, पित्तप्रकृतिवालेके लिए पथ्य और दद्रुघ्न एवं बाजीकर हैं। **अहितकर–वादी प्रकृतियोंमें** आनाह उत्पन्न करती है। **निवारण**–गरम मसाला और मांस। **प्रतिनिधि**–अरवी।

आयुर्वेदीय मत—सेम कसैली, मधुर, पाकमें मधुर, शीतवीर्य, भारी, रुचिको दीपन करनेवाली, बलकारक, कफकारक तथा वातपित्त (भा०प्र०), कफपित्त (रा०नि०) और व्रणके विकारोंको दूर करनेवाली है। (भा०प्र०;रा०नि०)।

●

(६१३) सेमल

फ़ैमिली : बॉम्बाकासे (Family : Bombacaceae)

नाम—वृक्ष (हिं०) सेमर(ल), सेंब(भ)ल(र), लाल सेमल; (सं०) शाल्मलि(ली), रक्तशाल्मली, मोचा; (द०) काँटोंका सेमल (खत्यान); (बं०) शिमुल गाछ; (गु०) शेमलो, सी(शी)मलो; (म०) लाल साँवर, काँटे सामर; (पं०) सिंबल; (ते०) वूरुग; (ता०) शालवघु, शल्लघि; (मल०) इलवम्, मुल्लिलवु; (ले०) **बॉम्बॉक्स सेइबा Bombax ceiba** L.(पर्याय–बॉम्बॉक्स मालाबारिकुम् *B. malabaricum* DC.; **साल्मालिआ मालाबारिकुम्** *Salmalia malabaricum* Schott.); (अं०) रेड सिल्क-कॉटन ट्री (Red Sik-cotton Tree)।

सेमलका मूसला या जड़—(हिं०) मूसला(ली), सेमलमूसला, सेमलकंद, सेमरका मुसरा; (सं०) शाल्मलीमूल (कन्द); (पं०) सिंबलकी मूसली; (बं०) शिमुलकंद; (गु०) शेमल मुसली; (म०) शिमुल मुसली। **सेमलका गोंद**—(हिं०) मोचरस, सुपारीका फूल; (फा०) गुलसुपारी, गुलेफ़ोफ़ल; (सं०) मोचास्राव; (गु०;म०;क०;ते०; ता०;वम्ब०) मोचरस।

उत्पत्तिस्थान—भारतवर्षके समस्त उष्णतर जंगली प्रदेश। गाँवोंके आस-पास, बगीचोंमें तथा सड़कोंके किनारे यह लगाया भी जाता है।

वर्णन—यह पतझड़ करनेवाला एक बहुत बड़ा पेड़ है, जिसमें बड़े आकारके तथा मोटे दलोंके लाल फूल लगते हैं। इसके फलों या डोंडोंमें केवल मुलायम रूई (**सेमलकी रूई Silk cotton**) होती है, गूदा नहीं होता। पत्ते एक-एक वृन्तपर पंजेकी भाँति ५-५, ६-६ लगे होते हैं। इसके एक-दो वर्षके छोटे पौधेकी जड़ निकालकर सुखा लेते हैं। वह **मूसलासेमल या सेमल मूसला (सेमल मूसली)**के नामसे औषधमें प्रयुक्त होती है। इसका गोंद (मोचरस) भी औषधके काम आता है। सेमल सफेद फूलका भी होता है, जिसे लैटिनमें सेईबा पेंटांड्रा **Ceiba pentandra** (L.). Gaertn (पर्याय–*Eriodendron anfractuosum* DC.) और संस्कृतमें '**कूटशाल्मली**' कहते हैं। लालफूलवालेकी अपेक्षया इसमें काँटे बहुत कम होते हैं। गुणकर्म भी सेमलके समान हैं।

उपयुक्त अंग—मोचरस, फूल एवं मूल (सेमलमूसला)। मात्रा–मोचरस १·५ ग्राम से ३ ग्राम (१½ माशा से ३ माशा); मूसली सेमल ३ ग्राम से ६ ग्राम (३ माशा से ६ माशा)।

रासायनिक संगठन—मोचरसमें टैनिक अम्ल (Catechu-tannic acid) और गैलिक अम्ल (Gallic acid) होता है। बीजमें २२·३% तेल होता है। मूसलीमें प्रोटीन १·२%, वसामय पदार्थ ०·३, फास्फेटाइड ०·३, टैनिक ०·४, गैलेक्टोज ८·२, स्टार्च ७१·२% तथा सेमुल रेड ०·५% होता है।

मूसली सेमल प्रकृति—मलभूत द्रवसहित पहले दर्जेमें गरम और तर। आयुर्वेदके मतसे सेमल शीतवीर्य एवं स्निग्ध (रा०नि०) है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—शुक्रल, बृंहण और विशेषकर वाजीकर है। इसको अधिकतया बलवर्धन, वाजीकरण, शुक्रजनन और वीर्यपुष्टिके लिए वाजीकर एवं शुक्रसान्द्रकर माजूनों तथा चूर्णोंमें डालते हैं। वाजीकरण और शरीरबलवर्धनके लिये एक तोला सेमलके मूसलेको चूर्ण करके और आध पाव जलमें उसका लबाब निकालकर तथा एक तोला मिश्री मिलाकर चालीस दिन तक प्रतिदिन पीते रहना और सेवनकालमें बादी, अम्लद्रव्य और मैथुनसे परहेज रखना गुणदायक है। **अहितकर**–स्निग्ध प्रकृतियोंको। **निवारण**–चीनी और सतावर। **प्रतिनिधि**–प्रायः गुणकर्मोंमें सालममिश्री और शकाकुल। **मात्रा**–७ माशेसे १ तोला तक।

नव्यमत—यह उत्तेजक एवं बल्य है तथा नपुंसकतामें प्रयुक्त होता है।

मोचरस—

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें शीत और तीसरेमें रूक्ष। आयुर्वेदमतसे शीतवीर्य एवं स्निग्ध (भा०प्र०) है।

गुण-कर्म तथा उपयोग–संग्राही, उपशोषण और विशेषकर शुक्रस्तम्भन एवं वीर्यपुष्टिकर है। उक्त गुणकर्मोंके कारण इसको अकेले या अन्य औषधियोंके साथ अतिसार, शुक्रमेह, शुक्रतारल्य, मूत्रातीत, अतिरज और योनिस्रावमें चूर्ण या माजूनके रूपमें उपयोग करते हैं। संग्राही होनेके कारण दाँतोंको दृढ़ताके लिये इसे चूर्णोंमें डालते हैं। पारदसेवनजनित मुखपाकमें काढ़ेसे कुल्ली कराते हैं। **अहितकर**–दीर्घपाकी एवं सांद्रदोषजनक। **निवारण**–गरम मसाला और दालचीनी। **मात्रा**–३ माशेसे ५ माशे तक।

कल्प तथा योग—माजून मोचरस।

आयुर्वेदीय मत—सेमल रसमें मधुर तथा कषाय, विपाकमें मधुर, शीतवीर्य, लघु, स्निग्ध; पिच्छिल, पुरीषविरजनीय, वृष्य, बल्य, शुक्रवर्धक, कफवर्धक तथा पित्त, वात, रक्तविकार और रक्तपित्तका नाश करनेवाला है। (च०सू०अ० ४; ध०नि०;रा०नि;भा०प्र०)। सेमलके फूल और फल भी पूर्वोक्त गुणवाले हैं। (ध०नि०)। मोचरस कषाय, शीतवीर्य, ग्राही, निग्ध, वृष्य, शोणितस्थापन, वेदनास्थापन तथा प्रवाहिका, अतिसार, आम, कफ, पित्त, रक्तस्राव और दाहका नाश करनेवाला है। (च०वि०अ० ८; सु०; भा० प्र०)।

नव्यमत—**मोचरस** प्रबल संग्राहक परन्तु स्नेहन है। **सेमलमुसली** संग्राहक, पौष्टिक और वयःस्थापन है। जननेन्द्रियपर इसकी थोड़ी उत्तेजक क्रिया होती है। कच्चे फल उत्तेजक, मूत्रजनन और कासहर हैं। मूत्रेन्द्रियपर इसकी क्रिया पाठाके समान शामक होती है। जीर्ण अतिसार, संग्रहणी, आँव और अत्यार्तवमें मोचरस उपयोगी है। वाजीकर, स्निग्ध, रक्तस्तम्भक, ग्राही, बल्य, रसायन है तथा प्रवाहिका, अतिसार और आर्तवस्रावमें दिया जाता है।

●

(६१४) सेवार

फ़ैमिली : हीड्रोकारिटासे (Family : Hydrocharitaceae)

नाम—(हिं०) सि(से)वार(ल), सैवाल, कंजाल; (अ०) तुह्लुब; (सं०) शैवाल; (गु०) जलसरपोलियन (ले०) **वाल्लीसनेरिआ स्पीरालिस (Vallisneria spiralis** Linn.); (अं०) सी-वीड (Sea-weed)।

उत्पत्तिस्थान तथा वर्णन—काईसे भिन्न एक घास जो समस्त भारतीय नदियों, झीलों आदिके भीतर और कम बहते पानीमें हरे रंगके लम्बे-लम्बे तारकी भाँति पृथक्-पृथक् खड़ी होती हैं। इसकी जड़ मिट्टीके अन्दर होती है और इसमें बड़ा बसायँध होती है। यह कई प्रकारका होता है।

गुणकर्म तथा उपयोग—यह दीपन है तथा श्वेतप्रदरमें गुणकारी है। इसको जलाकर सरसोंके तेलमें मिलाकर हाथ-पाँवकी सफेदीपर लगानेसे रंग दुरुस्त होता है। यह दोषका पाचन करता है, शोथको विलीन करता और सूजाकके लिये सिद्ध भेषज है। इसका लेप रक्तस्रावको बन्द करता है।

वक्तव्य—र्‌होडोफीसे (**Rhodophyceae**) कुलका जापानमें होनेवाला **जेलीडिउम् आमान्सी (Gelidium amansii** Kurz.) नामक जलीय उद्भिद एक प्रकारका सेवार ही है जिससे जापानी **आइसिंग्लास या अगर-अगर**—'उद्भिज्ज सरेस' प्राप्त होता है। इसी प्रकार **चीनी घास (Gelidium cartilagineum** Gail.) भी एक प्रकारका सेवार है जिससे **'सरेस'** प्राप्त होता है। दे० 'सरेश'। अगर (उद्भिज्ज सरेश) एक प्रकारका सुखाया हुआ लवाबदार वस्तु है जिसे उबलते हुए पानीके साथ निचोड़कर और तारकी जालीके द्वारा बलपूर्वक दबाकर पट्टिकाओंके रूपमें बनानेके बाद सुखाकर प्रस्तुत किया जाता है। ये पट्टिकायें (पट्टियाँ) पतली, झुर्रीदार, अर्धस्वच्छ (अर्धपारदर्शक), लगभग $\frac{१}{४}$ इञ्च चौड़ी, ९ या १० इञ्च या इससे भी अधिक लम्बी अथवा लगभग एक इञ्च व्यासके चौकोर डंडोंके रूपमें रंगरहित और स्वादरहित होती हैं। ये जेलीके रूपमें परिणत होनेमें अपने आयतन (घनफल)से दुगुना पानी लेनेके योग्य होती हैं।

उपयोग—पोषणार्थ।

●

(६१५) सोंठ और अदरक

फ़ैमिली : जींजीबेरासे (Family : Zingiberaceae)

नाम—अदरक (हिं०) आदी, अदरक; (यू०) ग्जीग्गिबेरिस Gziggiberis, ज़ैगेबर; (अ०) अल् ज़ंजबील (इ० बै०) ज़ंजबीले रतब; (फा०) ज़ंजबीले तर; ज़जवर, शं(शिं)गबीर; (सं०) शृङ्गवेर(सु०), आर्द्रक, विश्वभेषज (च०); (द०) अद(घ)रक, इंजिवेर-(प्राचीन); (कु०) आदी; (बं०) आदा; (गु०) आदु; (म०) आलें;

(ले०) जिंजीबेर ऑफ़्फ़ीसिनाले (**Zingiber officinale** Rosce.); (अं०) ग्रीन जिंजर (Green Ginger), जिंजर (Ginger)। सोंठ (सुखाया हुआ अदरक)—(हिं०) सोंठ; (अ०) ज़ंजबील, ज़ंजबीले याबिस; (फा०) ज़ंजबीले खुश्क; (सं०) शुण्ठी, विश्वौषध, शृङ्गवेर, नागर, विश्वभेषज; (द०) सोंट, शुँठ; (म०) सुंठी; (गु०) सुंठ (वं०; पं०) सोंठ; (अं०) ड्राइड जिंजर (Dried **Ginger**)।

वक्तव्य—इसकी लैटिन संज्ञा 'ज़िंजिबेर' इसकी यूनानी संज्ञा 'ज़ैंगेबर' से और वह इसकी पुरानी फारसी संज्ञा 'सिंगबेरसे' और वह इसकी संस्कृत संज्ञा 'शृंगबेर' से, तथा इसी प्रकार इसकी अरबी संज्ञा जंजबील भी इसकी पुरानी फारसी या उसकी संस्कृत संज्ञासे व्युत्पन्न है। अस्तु, अपनी संकलित उम्दतुल् मुहताज नामक रचनामें डॉ० सय्यद अहमद आफ़ंदीने 'ज़ंजबील' को हिंदी नाम बतलाका है। परन्तु पिंजिश्कीनामाके संकलयिता जनाब नाज़िमुल्अतिब्बा महोदय प्रायः यूरोपीय संकलनकर्ताओं एवं लेखकोंकी भाँति ज़ंजबीलको यूनानी संज्ञा 'ज़ंगेबर' से व्युत्पन्न बतलाते हैं। पर सत्य यह है कि इसकी फारसी, अरबी और यूनानो सभी संज्ञायें इसकी संस्कृत संज्ञासे व्युत्पन्न हैं।

विशेष टिप्पणी—'सोंठ' का व्यावसायिक रूप से बृहत् परिमाण में उत्पादन दक्षिण भारतमें विशेषतः पश्चिमी क्षेत्रों (केरल आदि)में किया जाता था। आज भी सोंठका मुख्य उत्पादन क्षेत्र यही है। संस्कृत 'शृङ्गवेर' संज्ञाभी वास्तवमें, सोंठकी दक्षिणभारतमें प्रचलित पुरानी व्यावसायिक संज्ञा 'इंजिबेर Ingiver' से प्रभावित प्रतीत होती है। संस्कृत 'शृङ्गवेर'में भी 'वेर = मूल' तामिल भाषाका शब्द प्रतीत होता है।

इतिहास—अदरक या सोंठकी खेती भारतवर्षमें अतिप्राचीन कालसे होती है। अस्तु, संस्कृत वैद्यकीय ग्रन्थोंमें इनकी अनेक संज्ञायें मिलती हैं। पुरानी फारसी भाषामें 'शिगहर' और 'अदरक' ये उभय संज्ञायें पायी जाती हैं जिनका आरोप सोंठ पर होता है और कदाचित् यूनानियोंको सर्वप्रथम ईरानियों के माध्यमसे ही उक्त ओषधिका ज्ञान हुआ। क्योंकि इसकी यूनानी संज्ञा 'ज़ंगेबर' इसकी संस्कृत 'शृंगवेर' से इसकी पुरानी फारसी संज्ञाकी रचनाके अनुसार बना ली गई है। अरबों को भी कदाचित् ईरानियोंसे ही इसका ज्ञान हुआ। सुतरां यूनानी हकीम दीसकूरीदूस इसको उष्ण, दीपन, पाचन और किंचित् सारक लिखते हैं। प्लाइनीने भी इसका उल्लेख किया है। जालीनूस ने इसको अंगघात और समस्त श्लैष्मिक रोगोंमें लाभकारी बतलाया है। हकीम पॉलूस वातव्याधियों और वातरक्तमें, इब्नसीना और अन्य अरबी एवं अजमी चिकित्सकों ने इसके गुणकर्म वर्णनमें लगभग यूनानियोंका अनुकरण करते हैं। अलबत्ता उन्होंने केवल इतनी वृद्धि की है कि वे इसको वाजीकर भी बतलाते हैं।

उत्पत्तिस्थान—भारतवर्ष के गरम-तर भागोंमें यह विपुल होता है। जमेइकाका जिंजर सर्वोत्तम होता है।

वर्णन—यह हलदीकी जातिके एक गुल्मकी प्रसिद्ध जड़ (पातालो धड़) है। ताजी जड़को 'अदरक' या 'आर्द्रा' और सुखाई हुई जड़को 'सोंठ' कहते हैं। इसका रंग भूरा, स्वाद कटु सुगन्धियुक्त, गंध विशिष्ट, छिलका उतारा हुआ और विशेष विधिसे बनाया हुआ सफेद और तंतुरहित सोंठ, हिन्दीमें सतुआ सोंठ, मैदा या वैतरा सोंठ, अरबीमें 'ज़ंजबील सतवा' और बंगला में '(भुशुरी शुँठ)' कहलाता है।

रासायनिक संगठन—अदरकमें १% से ३% एक प्रकारका विशेष गन्धी और हलके पीले रंगका उत्पत् तेल होता है। यह भारतीय अदरकमें सर्वाधिक अर्थात् ३·५% तक होता है। इसका कटुसार यथेष्ट प्रमाणमें बाष्पीभूत न होनेसे तेलमें नहीं पाया जाता। यह पृथक कर लिया गया है और इसका नाम जिंजेरिन (Gingerin) या जिंजेरोल (Gingerol) रखा गया है।

प्रकृति—दिल्लीके हकीमोंके मतसे ताजा सोंठ अर्थात् अदरक तीसरे दर्जेमें गरम और पहलेमें खुश्क है। आयुर्वेदमतसे उष्णवीर्य (सु०) है। सोंठ मलभूत द्रव सहित तीसरे दर्जेमें गरम और दूसरेमें खुश्क (मतांतरसे दूसरे दर्जेमें गरम व खुश्क) है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—वातानुलोमन, बुद्धिस्मृतिवर्धक, वाजीकर, आहारपाचन और वातविलयन है। श्लेष्मप्रकृतिके लोगोंके लिए सोंठ परम गुणदायक औषध है। इसे प्रायः आमाशयिक रोगों, जैसे—उदरानाह, उदरशूल, अरुचि आदिमें उपयोग करते हैं; वाजीकर माजूनोंमें सम्मिलित करते हैं या मुरब्बा बनाकर खाते हैं। मरोड़ उत्पन्न करनेवाली ओषधियोंके साथ सम्मिलित करनेसे यह उनके उक्त अवगुणका परिहार करता और मरोड़ नहीं उत्पन्न होने देता है। बाह्यतः सर्द दर्दोंमें इसे उपयुक्त तेलोंमें मिलाकर मालिश करते हैं। **जुवारिश ज़ंजबील**, **मुरब्बा ज़ंजबील** और **माजून ज़ंजबील** इसके प्रसिद्ध योग हैं जो कफज रोगों, विशेषतः मन्दाग्नि, विस्मृति, पृष्ठशूल, नपुंसकता और योनिस्रावमें प्रयुक्त होते और लाभ करते हैं। **अहितकर**—कण्ठरोगोंके लिए। **निवारण**—बादामका तेल और मधु। **प्रतिनिधि**—पीपल। **मात्रा**—१ ग्राम से १·५ ग्राम (१ माशा से १·५ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—सोंठ कटु, मधुरविपाक, किंचित् स्निग्ध, लघु, उष्णवीर्य, दीपन, रोचन, हृद्य तथा कफ और वातनाशक है। अदरक कटु, उष्णवीर्य, स्वरको हितकर, रोचन, वृष्य, दीपन तथा विबन्ध, आनाह और शूलको दूर करनेवाला है। वात, कफ और विबन्धमें अदरकका रस देना चाहिए। (च० सू० अ० २७; सु० सू० अ० ३८, ४६)।

नव्यमत—सोंठ सुगन्धित, उष्ण, वातनाशक, संकोचविकासप्रतिबन्धक, उत्तेजक और कफघ्न है। सोंठसे पाचनक्रिया उत्तम होती है और उदरमें वायुका संचय नहीं होता। सब प्रकारकी पीड़ाको शांत करनेके लिए सोंठका उपयोग करते हैं। जीर्ण संधिशोथमें एक तोला सोंठका फांट रातको सोते समय पीनेसे नींद आती है। उदराध्मानके कारण छातीमें दर्द होता है तो सोंठ देनेसे वायु सरता है और छातीकी पीड़ा शांत होती है।

◆

(६१६) सोम (सोमकल्प-एफीड्रा)

फ़ैमिली : ग्नेटासे (Family : Gnetaceae or Ephedraceae)

नाम—(हिं०) टुटगंठा (चकरौता); (पं०) असमानीबुटी; (क०) असमानिया; (बुशहर) खंड फाग; (ईरान) होम; (सं०) सोमकल्प—(नवीन); (चीन) मा-हुआंग; (ले०) (चीनी)—**एफीड्रा सिनिका** (**Ephedra sinica** Stapf.) या **एफ्रीड्रा इक्वीसेटिना** (**E. equisetina** Bunge.); (भारतीय) **एफीड्रा जिरार्डिएना E. gerardiana** Wall. (पर्याय—ए० वुलगारिस *E. vulgaris* Hook), (अं०) एफीड्रा (Ephedra)।

उत्पत्तिस्थान—प्रथम दोनों उत्तरी चीनके निवासी हैं और अन्तिम समशीतोष्ण हिमालयके अपेक्षाकृत शुष्क प्रदेश कश्मीरसे सिक्किम तक ७,०००-१६,००० फुटकी ऊँचाईपर होते हैं।

वर्णन—इसका छोटा और भंगुर क्षुप होता है। शाखायें हरी, खड़ी और रेखायुक्त; पत्र अल्प, पुष्प अवृन्त मंजरीके रूपमें; स्वाद कषाय, सुगंधित। पारसी लोग अपनी धार्मिक क्रियामें अब तक होम (सोम)के नामसे इसका प्रयोग करते हैं।

उपयुक्त अंग—कांड (समग्र क्षुप)।

कल्प—चूर्ण ०·६ ग्राम से १·२ ग्राम (५ से १० रत्ती); अर्धावशेषक्वाथ २३ ग्राम से ४६·४ ग्राम (२ से ४ तोला)।

रासायनिक संगठन—इसका प्रधान वीर्य **एफीड्रीन** (Ephidrine) नामक **एल्केलॉइड** है जो गुण-कर्ममें ऐड्रीनलीनके समान होता है और ०·२८%से २·७९%तक पाया जाता है।

कल्प तथा योग—तरल रसक्रिया, सुरासव, कांड और मूलका क्वाथ, फलका स्वरस, एवं एफीड्रीन।

गुण-कर्म तथा उपयोग—सोम पाचन, आनुलोमिक, मूत्रजनन, यकृदुत्तेजक, ज्वरघ्न, आमनाशक, वातहर, शोथहर, मस्तिष्कोत्तेजक, तारकाविस्फारक और श्वासावरोधको कम करनेवाला है। चीनमें श्वास और तृणज्वर (Hay fever)के लिए अतिप्राचीनकालसे इसका उपयोग हो रहा है। अधुना भारतवर्ष ही क्यों, समस्त संसारमें उक्त रोगोंमें इसके विभिन्न कल्पों तथा एल्केलॉइड (ऐफीड्रीन)का नानाविध प्रयोग होता है और श्वासकी यह अव्यर्थ रामवाण औषधि समझी जाती है। सोमका काढ़ा तरुण आमवातमें देनेसे पीड़ा और शोथ कम होता है, भूख बढ़ती है, मूत्रकी राशि बढ़ती है, दस्त साफ होता है और ज्वर उतरता है। थोड़ा उत्तम मद्य पीनेसे जैसी मस्तिष्कमें उत्तेजना प्रतीत होती है वैसी इसमें भी प्रतीत होती है, परन्तु नशा नहीं होता है।

(६१७) सोया, सोआ

फ़ैमिली : ऊम्बेल्लीफ़ेरे (Family : Umbelliferae)

नाम—(हिं०) सोया, सोआ(वा); (यू०) अनीथून Anethon.; (अ०) अल्‌श्विन्त(इ०, बै०) शिबित्त, शिब्बित्त; (फा०) शूद, शूत, वालानेखुर्द; (सं०) शतपुष्पा, अतिच्छत्रा; शताह्वा; (बं०) शुल्फा, शुलुफा; (गु०; पं०) सुवा; (म०) शेपु; (सिं०) सूआ; (मा०; सिंध) सोवा; (ले०) **आनेथुम् सोवा Anethum sowa** Kurz. (पर्याय–*Peucedanum sowa Kurz.*); (अं०) डिल (Dill)। वक्तव्य–इसके विलायती भेदको **आनेथुम् ग्रावेओलेन्स** (**A. graveolens** Linn.) कहते हैं। फल (जिसको व्यवहारमें 'बीज' कह देते हैं)–(हिं०) सोयेके बीज; (अ०) समरुश्शिबित्त, बज्रुश्शिबित्त; फा० तुख्म शिबित्त(शबित), तुख्मेसूद;(ले०) एनेथी फ्रुक्टुस (Anethi Fructus); (अं०)डिल फ्रूट या सीड (Dill Fruit or Seed)। तेल (हिं०) सोयेका तेल; (अ०) दोहनुश्शिबित्त; (फा०) रोग़नशवित (शिबित्त); (ले०) ओलेउम् एनेथी; (Oleum Anethi); (अं०) ऑयल ऑफ डिल (Oil of Dill)।

वक्तव्य—इसकी वर्तमान डॉक्टरी लेटिन संज्ञा 'एनीथम्' इसकी यूनानी संज्ञा 'अनीथून' से और इसकी अँगरेजी 'डिल' संज्ञा इसकी प्राचीन आँग्ल संज्ञा 'डल्ला' से व्युत्पन्न है जिसका अर्थ 'शान्ति प्रदान करना' या 'थपकी देकर सुलाना' है। इस औषधिके सेवनसे उदरस्थ वायुका निर्हरण होकर शान्ति मिल जाती है तथा छोटे बच्चोंको नींद आ जाती है, इसलिए इसका उक्त नामकरण किया गया। मुहीतके अनुसार प्राचीन यूनानी चिकित्सक नींद लानेके लिए हरे सोयेका मुकुट (टोपी) बनाकर सिरपर रखा करते थे। इसकी हिंदी और उर्दू संज्ञा 'सोया' भी इसकी वैसी ही गुणप्रकाशिका संज्ञा है; क्योंकि भारतीय वैद्योंके कथनानुसार इसके सूँघनेसे नींद आती है। इसलिए भारतवर्षमें प्रायः स्थानोंमें ऐसा करते हैं कि जब रोगीको नींद नहीं आती तो उसके सिरहाने 'हरा सोया' रखते हैं जिससे उसकी गन्धसे नींद आ जाय। इसकी अरबी संज्ञाका सही उच्चारण 'शिबित्त' है जैसा कि कामूस और मिस्बाहमें उल्लिखित है। परन्तु दाऊद अंताकीने तथा उसका अनुसरणकर अन्य लेखकों, यथा–मुहीत आज़मके लेखक हकीम आज़म खाँ आदिने 'शिबत' लिखा है। पता नहीं उसके इस उच्चारणका आधार क्या है?

इतिहास—यूनानी हकीम दीसकूरीदूसने 'अनीतून' या 'अनीथून' नामसे इसका उल्लेख किया है। बहुशः यूनानी लेखक अनीथून और अनीसूनको अभिन्न मानते रहे। परन्तु अँलेक्सिसने इनमें भेद व्यक्त किया।

उत्पत्तिस्थान—भूमध्यसागरीय एवं दक्षिणी रूसका आदिवासी है। समस्त भारतवर्षके उष्ण प्रदेशोंमें प्रायः इसकी खेतोकी जाती है।

वर्णन—यह ३० सें० मी० से ९० सें० मी० (१ से ३ फुट) ऊँचा क्षुप होता है, जिसके पत्ते सौंफके पत्तोंके समान, किन्तु उनसे छोटे और सुगंधित होते हैं। फूल सौंफकी तरह छत्रकों (Umbels)में लगते हैं। फल (बीज) सौंफके समान, किन्तु उनसे बहुत छोटे होते हैं। उनकी चौड़ाईमें दोनों ओर एक पर-जैसी बारीक झिल्ली लगी होती है।

उत्पत्तिस्थान—भूमध्यसागरी और दक्षिणी रूसका निवासी है। समस्त भारतवर्षके उष्ण प्रदेशोंमें प्रायः इसकी खेती की जाती है।

वर्णन—यह ३० सें० मी० से ९० सें० मी० (१ से ३ फुट) वक ऊँचा क्षुप है, जिसके पत्ते सौंफके पत्तोंके समान, किंतु उनसे छोटे एवं सुगन्धित होते हैं। फूल सौंफकी तरह छत्रकों (Umbels) में लगते हैं। (बीज) फल सौंफके बीजके समान किंतु उनसे बहुत छोटे एवं चपटे होते हैं। उनको चौड़ाईमें दोनों ओर एक पर जैसी बारीक झिल्ली लगी होती हं। यह विलायतीकी अपेक्षया कम चौड़ा और अधिक उन्नतोदर, पांडुर, व्यक्त रिढारी (Ridges.) और तले पंखयुक्त, स्वाद किंचित् तिक्त एवं तीक्ष्ण और सुगन्धित होता है।

उपयुक्त अंग—पत्र, बीज (फल) और बीजोत्थ तेल।

रासायनिक संगठन—बीजमें ३-४% एक उत्पत् तेल (तथा एक अनुत्पत् तेल) जिसपर इसकी सुगंधि एवं कर्म निर्भर करता है। यह विलायतीके समान नहीं होता। इसके अतिरिक्त इसमें **एपिओल** (Dill apiol) भी होता है।

पत्र—

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम और पहलेमें खुश्क।

गुण-कर्म तथा उपयोग—हरे धनियेकी तरह सोएके पत्तोंको सुगन्धके लिए तरकारीमें डालते हैं। यह आहारको पचाता और वायुका उत्सर्ग करता है। अतएव उन रोगियोंके आहारमें इसका डालना अधिक उपादेय है जो उदरशूल, उदरानाह और मरोड़ आदिसे ग्रस्त हों। कतिपय दर्दों और सूजनोंमें इसका बफारा देनेसे दर्द शांत हो जाता है। यह विशेष रूपसे पाचन, विलयन और आर्तवजनन है। **अहितकर**—मस्तिष्क, नेत्र और वृक्कको। **निवारण**—नीबूका रस, लौंग, दालचीनी और मधु। **प्रतिनिधि**—सोएके बीज।

बीज (सोआ) और तेल—

प्रकृति—दिल्लीके हकीमोंके मतसे तीसरे दर्जेमें, मतांतरसे दूसरेमें गरम और खुश्क। आयुर्वेदके मतसे भी उष्णवीर्य (ध० नि०; या० प्र०) है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—बीज वेदनास्थापन, वातानुलोमन, व्रणशोथपाचनविलयन, छर्दिजनन एवं मूत्रार्तवजनन है। इसके बीजोंको तिल या जैतूनके तेलमें मिलाकर संधिवातमें लेप या मालिश करते हैं तथा जलमें क्वाथ करके वेदनायुक्त अंगोंको बफारा देते हैं और इसके कोष्ण काढ़ेमें कपड़ेकी गद्दी भिगो-भिगोकर टकोर करते हैं। उदरानाह, उदरशूल, शूल (कुलंज) एवं अपचन वा मन्दाग्निको नष्ट करनेके लिए इसे खिलाते हैं। मूत्रार्तवजननके लिए भी इसका उपयोग करते हैं। कफज रोगोंमें वमनार्थ इसका क्वाथ पिलाते हैं। वायुजन्य (रीही) वृक्कशूल, मरोड़ और जरायुशूलको नष्ट करनेके लिए इसके काढ़ेमें रोगीको बिठाते हैं। इसके बीजोंसे निकाला हुआ तेल उदरानाह, शूल और मरोड़को नष्ट करनेके लिए, प्रयुक्त होता है। कर्णशूलनिवारणके लिए इसे कानमें टप-

काते हैं और पक्षवध, अर्दित, आमवात तथा वातनाड़ी शूलमें मालिश करते हैं। **अहितकर**–मस्तिष्क, दृष्टि और कामको। **निवारण**–सिकंजबीन और अम्ल द्रव्य। **मात्रा**–२ माशेसे ३ माशे तक, सोयाका तेल एक बूँदसे ३ बूँद तक।

आयुर्वेदीय मत—सोया कटु, तिक्त, स्निग्ध, लघु, तीक्ष्ण, उष्णवीर्य, दीपन, पित्तकर, बस्तिकर्मोपयोगी तथा कफ, वायु, ज्वर, नेत्ररोग, शूल और व्रणको दूर करनेवाला है। (ध० नि०; भा० प्र०)।

नव्यमत—सोया दीपन, वातहर और गर्भाशयोत्तेजक है। प्रसूता स्त्रीको सोया देते हैं। क्योंकि पेटके दर्द और अफारेमें सोयाका अर्क (Dill water), सुधामण्ड (Lime water) के साथ देते हैं। ताजी पत्ती पीसकर व्रण-शोथ पकानेके लिए लेप करते हैं।

●

(६९८) सोयाबीन

फ़ैमिली : लेगूमिनोसी (Family : Leguminosae)

नाम—(हिं०) राम कुरथी, सोया(आ)बीन, भट, भटना(वाँ)स; (सं०) द्विजशम: (ब्राह्मणोंके लिए असेवनीय); (कुमा०) भुट; (ले०) **ग्लीसीने माक्स Glycine max** Linn. (ग्ली० सोजा **G. soja** Sieb.; ग्ली० **हिस्पिडा (G. hispida** Moench.); (अं०) सोयाबीन्स (Saya or Soy-beans); सोजा (Soja), जापान पी (Japan pea)।

उत्पत्तिस्थान—मूल उत्पत्तिस्थान चीन है। कोचीन, कोरिया, मंचूरिया, मंगोलिया, जापान और जावा आदि पूर्वी एशियाई देशोंमें यह बहुत प्राचीन कालसे उत्पन्न होता है। चीनके प्राचीन साहित्यमें इसका नाम 'सोया' या 'सोजा' लिखा है। इसीका रूपान्तर **'सोयाबीन'** है।

वर्णन—सोयाबीनकी बेल मटरकी बेलके समान और इसकी पत्ती भी मटरकी पत्तीसे मिलती-जुलती, किन्तु रोईंदार होती है। इसकी प्रत्येक फलीमें २ से ५ तक बीज होते हैं। इसके बीज मटरकी तरह गोल, अण्डाकृति, परन्तु बीचमें चिपटे और-पांडुपीतसे लेकर काले रंग तक-कई रंगोंके होते हैं। इनके दल चर्मवत् त्वचासे आवृत होते हैं। **गंध हलका, स्वाद स्नेहमय।**

रासायनिक संगठन—इसमें **फॉस्फेट्स** काफी मात्रामें होता है। इसके अतिरिक्त इसमें एक लेसिथिन नामक यक्ष्योपयोगी पदार्थ तथा **प्रोटीन** भी होता है। इसकी प्रोटीन गायके दूधकी प्रोटीनसे मिलती-जुलती है। शरीरको पुष्ट करनेवाले जितने अन्न, फल, शाक, भाजी, मांस, मछली, आदि पदार्थ हैं, इनमें जो पोषकतत्त्व पाये जाते हैं, सोयाबीनमें रहनेवाले पोषकतत्व इन सबसे कहीं विशेष पौष्टिक एवं उपयोगी हैं। मांसके विपरीत इसके मिहिकाम्लोत्पादक (Uric acid) **'न्युक्लियो प्रोटीन'** नहीं होती है।

उपयुक्त अंग—बीजोत्थ तैल, बीजोंका आटा।

कल्प तथा योग—दूध, दही आदि।

गुण-कर्म तथा उपयोग—यह शरीरपुष्टिकर, बल्य, शुक्रवर्धक, उड़दसे कहीं अधिक कामशक्तिवर्धक है। बीजोंसे तेल निकालनेके बाद जो आटा बच रहता है, उसमें प्रोटीन और कार्बोहाइड्रेट्स तो पाये जाते हैं, किन्तु स्टार्च (Starch)का सर्वथा अभाव होता है। अस्तु, खाद्याद्य पदार्थों विशेषकर मधुमेहियोंके खाद्य पदार्थोंके निर्माणमें

इसका उपयोग होता है तथा यह (सोयाबीन) उनके लिए एक उत्तम पथ्य है। पित्तके विदग्ध होनेसे हुए अजीर्ण अम्लपित्त आदि उपद्रवोंमें सोयाबीनके सेवनसे विदग्ध पित्त शमन होकर उक्त रोगोंका निर्मूल होता है। सोयाबीन शरीर में क्षारकी मात्रा बढ़ाकर अम्लताको नष्ट करता है। यह रक्तमें क्षारतत्व उत्पन्नकर रोगप्रतिषेधक शक्ति उत्पन्न करता है। अमेरिकामें शिशुआहारके रूपमें ग्रीष्मातिसार और तत्सम रोगोमें इसके सेवनकी अभ्यर्थना की जाती है। गेहूँमें बीस प्रतिशत सोयाबीन मिला देनेसे उसमें सुधा (कैल्सियम)की मात्रा बढ़ जाती है तथा प्रोटीनकी पाचकता भी बहुत बढ़ जाती है। इस तरह मिलाया हुआ आटा और उससे बने हुए पदार्थ अधिक दिन तक टिकते हैं। तेल खाद्य एवं साबुन बनानेके काममें आता है।

●

(६१९) सौंफ

फ़ैमिली : ऊम्बेल्लीफ़ेरी (Family : Umbelliferae)

नाम—(हिं०) सौंफ; (यू०) Marathron (D. 3. 74); (अ०) अल् राज़ियानज (इ० बै०); (फा०) बादियान, राज़ियानः; (सं०) मिश्रेया, मधुरिका, मिशी(शी); (क०) बादयान; (बं०) मौरी; (म०) बडिशेप; (गु०) वरिआली; वलियारी; (सिं०) वडफ; (मा०) सूंफ, विटियाली; (ले०) **फेनीकूलुम् वुल्गारे (Foeniculum vulgare** Mill.); (अं०) फेनेल फ्रूट या सीड (Fennel Fruit or Seed)। जड़ (हिं०) सौंफकी जड़; (अ०) अस्लुर्रा ज़ियानज; (फा०) बेख़े बादियान।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्षमें इसकी खेती की जाती है।

वर्णन—यह १·५ से २ मीटर (५ फुट से ६·५ या ६½ फुट) ऊँचा, सोयेकी तरहके एक क्षुपके प्रसिद्ध फल (वा बीज) हैं, जिनकी रंगत हरापन या पीलापन लिए होती है। गन्ध प्रिय और स्वाद सुंगधित एवं मधुर होता है। जड़का रंग पिलाई लिए सफेद होता है। इसके विदेशी भेदकी वैज्ञानिक संज्ञा **फेनीकूलुम् कापील्लासेउम् (Foeniculum capillaceum)** है। विदेशी सौंफ भारतीयकी अपेक्षा बड़ा होता है। इसलिए उसको बड़ा सौंफ भी कहते हैं। सौंफकी एक जातिके बीज ईरानसे आते हैं। उनको **'अनीसून'** या **'बादियान रूमी'** कहते हैं। वि० दे० 'अनीसून'।

इतिहास—बुकरात, दीसकूरीदूस और सावफरिस्तुस प्रभृति यूनानी तथा इस्लाली भारतीय आर्यवैद्योंने भी इस दवाका उल्लेख किया है।

रासायनिक संगठन—बीजमें लगभग ३% से ५% एक सुगन्धित उत्पत्तेल, जिसका प्रधान उपादान **एनीथोल** (Anethol) या **एनिस कैम्फर** है, पाया जाता है।

कल्प तथा योग—अतरीफल बादियान, अर्क़बादियान, सफ़ूफ़ अस्लुस्सूस मुरक्कब।

सौंफ—

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम और पहलेमें खुश्क। आयुर्वेदके मतसे शीतवीर्य (ध० नि०) है।

गुण-कर्म—सौदाश्लेष्मपाचन, प्रमाथी, वातानुलोमन, मूत्रार्तवजनन, स्तन्यजनन, विशेषकर दीपन एवं दृष्टिवर्धक है तथा सांद्र दोषोंके किवामको प्रकृतिस्थ करता है।

उपयोग—सौदा तथा कफजन्य रोगोंमें सौदश्लेष्मपाचनके निमित्त अन्य औषधियोंके साथ इसका उपयोग करते हैं। यकृत्प्लीहा तथा वृक्कके अवरोधोंके उद्घाटनके लिए इसे पिलाते हैं। वायुजन्य, उदरशूल, उदरानाह,

मंदाग्नि और मूत्रार्तवावरोधमें इसका उपयोग कराते हैं। स्तन्यजननके लिए इसका चूर्ण गायके दूधके साथ खिलाते हैं। दृष्टिवर्धनके लिए इसका चूर्ण खिलाते हैं और इसके काढ़े या हरे सौंफके रसमें सुरमा खरल करके नेत्रमें लगाते हैं। **निवारण**–धनिया और सफेद चंदन। प्रतिनिधि–तुख्म करफ़्स। मात्रा–५ ग्रामसे ७ ग्राम (५ माशेसे ७ माशे) तक।

सौंफकी जड़—

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम और खुश्क।

गुणकर्म तथा उपयोग—श्लेष्मपाचन और मूत्रार्तवजनन। श्लेष्मपाचनार्थ इसका बहुशः उपयोग करते हैं। यह मूत्रार्तवजननके लिए भी प्रयुक्त होती है। मात्रा–५ ग्रामसे ७ ग्राम तक (५ माशेसे ७ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—सौंफ (मिश्रेण)मधुर, तिक्त, कटु, स्निग्ध, हृद्य, वृष्य, बल्य तथा कफ, वात, प्लीहाके रोग, कृमि अग्निमांद्य, कास, योनिशूल, अर्श, क्षय, रक्तविकार और वमनको दूर करनेवाली है (सु० चि० अ० ३८; च० सू० अ० २७; ध० नि०; भा० प्र०)।

नव्यमत—सौंफ, सुगन्धि, दीपन, वातहर तथा मूत्रविरजनीय है। इससे मूत्र पुष्कल आकर मूत्रका रंग स्वच्छ होता है। आँव, वमन और अजीर्णके जुलाबमें सौंफका उपयोग करते हैं। शुष्क कास और मुखरोगमें इसे मुँहमें रखकर चबाते हैं। इसे रेचक औषधके साथ मिलानेसे उसका पेटमें मरोड़ करनेका दोष मिटता है। (ओ० सं०)।

•

(६२०, ६२१) सौसन और ईरसा

फ़ैमिली : ईरिडासे (Family : Iridaceae)

नाम—सौसन (हिं०; भा० वा०) सोसन, सौसन; (क)मर्जल; (अ०) सौसन; (फा०) सोसन, सोसन सफ़ेद, सोसन आजाद; (ले०) **ईरिस** जाति (**Iris sp.**)।

वक्तव्य—**अल्तबरी**के कथनानुसार यह (Blue lily)की जड़ है। परन्तु **इब्नुल्बैतार**के कथनानुसार यह (Blue lily) है। (इ० बै० संचिका १, पृ० ७१)।

ईरसा (हिं०) ईरसा; (यू०) Iris (D.I.I.); (अ०) सौसन आस्मानजूनी, सौसन अज़रक़, ईरसाए क़ज़्हिय्य:; (फा०) ईरसा, सोसन आस्मानगूनी; (क०) मजारमुंड, **मज़ारपोश**; (ले०) **ईरिस जेर्मानिका** (**Iris germanica** Linn.), ईरिस वेर्सीकोलर (Iris versicolor Linn.); (अं०) ओरिस (Oris), ब्लूफ्लैग (Blue flag)। ईरसाकी जड़—(फा०) बेख़े ईरसा, रेशए ईरसा; (अं०) ओरिस रूट (Orris Root)।

वक्तव्य—कोई-कोई भूलसे इसकी जड़को बालबच (हैमवती वचा) और पुष्करमूल समझते हैं।

उत्पत्तिस्थान—उत्तर भारतवर्ष, विशेषकर हिमालयके पश्चिमोत्तर भाग अर्थात् कश्मीर, ईरान तथा मध्य और दक्षिण यूरोप। कश्मीरमें यह अधिकतया मुसलमानोंकी कब्रपर लगाई हुई मिलती है। इसीलिए वहाँ इसको **मज़ारपोश** (मजार = कब्र + पोश = पुष्प) या **मज़ारमुंड** (मुंड = मूल) कहते हैं।

वर्णन—ईरसा वस्तुतः जंगली सोसनके नीले भेदकी जड़ है जो औषधके काममें ली जाती है। इसका क्षुप बचजैसा होता है। जड़ (Rhizome) ५ सें०मी० (२ इंच) या अधिक लम्बी, लगभग १·८७५ सें०मी० ($\frac{३}{८}$ इंच)

व्यासमें, रंभाकार, स्थूल अग्रपर प्यालानुमा कांडक्षतचिह्न (Scar) युक्त, किंचित् चिपटी, ऊपरकी ओर टूटी पत्तियों-के क्षतसे बने मुद्रिकाकारचिह्नोंसे युक्त होती है। उक्त भौमिककाण्ड कड़ा, सुगन्धित और गिरहदार होता है, जिसका छिलका नीले और लाल रंगसे रंजित होता है और भीतरसे पिलाई-ललाई लिए होता है। कोई-कोई सफेद होता है। मध्यस्थभागमें वाहिनीपूल (Vasiculer bundles) विसरित होते हैं। ईरसाकी जड़में १ वर्ष तक वीर्य रहता है। सफेद बागी सोसनकी जड़को **बेख़े सोसन** या **सोसन** कहते हैं। वन्य और उद्याजन भेदसे सोसन दो प्रकारका होता है। पुनः उनमेंसे प्रत्येकके **सफेद और कबूद (आसमानी रंग)** ये दो अवांतर भेद और होते हैं। **पुष्पकाल**–मई और जून। सोसनके सब भेदोंकी जड़ ग्रंथिल लम्बगोल और सफेद रंगकी होती है। सुगन्ध सबमें बनफ़्शेकीसी आती है। इसलिए जनसाधारण इसे बनफ़्शेकी जड़ समझकर **बेख़े बनफ़्शा** कहते हैं। किन्तु इसका बनफ़्शासे कोई सम्बन्ध नहीं है। कलकत्ता और बम्बईके बाजारोंमें यह जड़ मिलती है।

रासायनिक संगठन—जड़में एक उत्पत् तेल, पिष्ट, राल और कषाय द्रव्य होता है।

सोसन—

प्रकृति—तीसरे, मतांतरसे दूसरे दर्जेमें गरम और खुश्क।

गुण-कर्म–-तारल्यजनन, विलयन, दोष(मवाद) एवं श्वयथु मार्दवकर, प्रमाथी, उष्णताजनन, लेखन, प्राणिज विषोंका अगद और विशेषकर आमवातघ्न है।

उपयोग—तारल्यजनन, उष्णताजनन एवं मार्दकर होनेके कारण यह कृच्छ्रश्वास एवं कासमें गुणदायक है। इन गुणकर्मोंके साथ यह प्रमाथी भी है। अतएव यकृत्प्लीहाशूलमें उपकारक है। सिरकेके साथ खिलानेसे यकृत्प्लीहाका शोथ मिटाता है। इसके अतिरिक्त विविध विधियोंसे गर्भाशय और बस्तिके रोगोंमें भी लाभ करता है। लेप करनेसे वृषणोंकी सूजन उतारता है। बिच्छू आदि विषधर जानवरोंके दंश स्थानपर इसका पतला लेप (तिला) करनेसे उनका विष नष्ट करता और वेदना आदिको शमन करता है। प्रायशः त्वचाके रोगों जैसे-व्यंग, न्यच्छ (नमश) गंज, खुजली आदिमें इसका लेप और तिला गुणकारक है। यह कठिनश्वयथुविलयन, मार्दवकर है। कतिपय मलहरोंमें भी इसको डाला जाता है। लेखन होनेके कारण यह व्रणोंको मल एवं दुष्टमांससे शुद्ध करके नया मांस उगाता है और सुखाता (व्रणरोपण-शोषण) है। **अहितकर**–-दीर्घपाकी एवं गुरु (सकील) है। **निवारण**–-गरम मसाला और सोंठ। **मात्रा**—२–३ माशे तक।

ईरसा (बेख़सोसन आस्मानजनी)–-

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम और खुश्क।

गुणकर्म–-विलयन, तारल्जनन, उष्णताजनन, प्रमाथी, श्लेष्मष्ठीवनशोधनकर्ता, दोषपाचन, उपशोषण, हलका कब्जके साथ लेखन, प्रवर्तक, पित्त श्लेष्मविरेचनीय; विषघ्न और (मुंज़िज) विशेषकर फुफ्फुसोंसे सांद्रदोषों-का उत्सर्ग करता है।

उपयोग—दोष तारल्यजनन, उष्णताजनन, अवरोधोद्घाटक और श्लेष्मपाचनविरेचन होनेसे ईरसा प्रायः कफवातरोगों जैसे—प्रसेक एवं प्रतिश्याय, कास, कृच्छ्रश्वास (श्वास), कफज फुफ्फुसशोथ (ज़ातुर्रियः), उरःकण्ठ एवं कण्ठनाड़ी (कस्बारिया)के खरत्व, पार्श्वरुक्, पार्श्वशूल, उरःशूल, शीघ्रहृदयता (इख़्तिलाज), स्वाप, कम्पवात, सन्यास (सक्ता), पक्षवध और विस्मृतिमें गुणकारक है। तारल्यजनन एवं प्रमाथी होनेके कारण यह मूत्रार्तवका प्रवर्तन करता है और इन्हीं गुणोंके कारण जलोदर एवं कामला रोगमें उपकारक है। शीतल यकृत्को शक्ति देता है। लेखन होनेके कारण नाखूनेमें इसका अंजन लाभदायक है तथा पतला लेप (तिला) व्यङ्ग, न्यच्छ (नमश) आदि त्वग्रोगोंमें लाभदायक है। लेखन होते हुए यह उपशोषण भी है। अतएव यह दुष्टव्रणोंको मल एवं दुष्ट मांससे शुद्ध

करके नया अंकुर लाता और उनको सुखा देता है। तारल्यजनन एवं विलयन होनेके कारण यह चिरज प्रगाढ़ श्वयथु और कंठमालेकी कठोरताके लिए लाभप्रद है। तारल्यजनन, उष्णताजनन और प्रमाथी होनेके कारण इसको महीन पीसकर सूँघनेसे छींकें आती हैं। अतएव यह पुराने सिरदर्द, अर्धावभेदक तथा प्रसेक एवं प्रतिश्यायमें उपकारक है और नेत्रके खराब मलोंको छींकके द्वारा निकालता है। भौमकीटदंश, जैसे—सांप, बिच्छू और भिड़के लिए इसका पतला लेप गुणकारक है। तारल्यजनन, उष्णताजनन और लेखन होनेके कारण सिरका या किसी उपयुक्त स्नेहके साथ इसका आश्चयोतन बाधिर्य और नासादौर्गन्ध्यके लिए गुणदायक है। मात्रा–३ ग्रामसे ५ ग्राम तक (३ माशे ५ माशे) तक।

●

(६२२) स्ट्रोफैन्थस

फ़ैमिली : आपोसीनासे (Family : Apocynaceae)

नाम—(अफरीका) उनीज, उरीज; (लै०) स्ट्रोफांथुस् कोम्बे (Strophantus combe Oliver.); (अं०) स्ट्रोफैन्थस (Strophanthus)।

वक्तव्य—'**स्ट्रोफांथुस्**' वस्तुतः यूनानी 'स्ट्रोफस = पेचीदा' और 'आंथुस् = फूल' इन दो शब्दोंका यौगिक है। इसका पुष्पाभ्यान्तर कोष (Corolla) पेचीदा होता है, इसलिए इसे उक्त नामसे अभिधानित किया गया। अफरीकी भाषामें इसे '**उनूयज**' या '**उरयज्**' कहते है।

उत्पत्तिस्थान—अफरीका, जावा, सुमात्रा आदि।

वर्णन—एक आरोही उद्भिद् जिसके बीज औषधके काममें लिये जाते हैं। ये बीज $\frac{१}{२}$ इंच लंबे और $\frac{१}{८}$ इंच चौड़े, रेशमकी तरहकी रोइयोंसे युक्त, दीर्घवृत्ताकार (Elliptical), हरापन लिये भूरे, तीक्ष्ण नोकयुक्त होते हैं। इनके एक पृष्ठपर लंबी रेखा होती है। मग्ज भीतरसे सफेद स्नेहमय, गंध विशेष प्रकारकी और स्वाद अत्यंत तिक्त होता है। ८ भाग तीक्ष्ण गंधकाम्ल और २ भाग पानीके ताजे बने हुए मिश्रणके स्पर्शसे बीजका छेद (Section) गहरे हरे रंगका हो जाता है। **स्ट्रोफान्थुस् हीस्पिडुस्** (Strophanthus hispidus DC.) के बीज इनकी अपेक्षया छोटे और भूरे होते हैं; किंतु समान प्रतिक्रियावाले होते हैं।

इनकी निम्न दो जातियाँ—

(१) **स्ट्रोफान्थुस् डाइकोटोमस** या **वाल्ची** (S. **dichotomous** Wall. or S. **wallichii** A. DC.); तथा (२) **स्ट्रो० वीटीयानुस्** (S. **wightianus** Wall.) भारतवर्षमें भी होती हैं।

रासायनिक संगठन—इसमें **स्ट्रोफैन्थिन** (Strophanthin) नामक एक कार्मुक सत्व, जो डिजिटेलिसमें पाये जानेवले सत्वके बहुत समान होता है, ८%–१०% तक पाया जाता है। यह जलविलेय, किंतु सुरासार और क्लोरोफॉर्ममें अविलेय होता है।

उपयुक्त अंग—बीज।

कल्प—स्ट्रोफैन्थिनकी मात्रा–$\frac{१}{३००}$ से $\frac{१}{२००}$ ग्रेन तक केवल त्वगीय सूचिकाभरण द्वारा; **रसक्रिया** : मात्रा, $\frac{१}{४}$ से १ ग्रेन तक। टिं० स्ट्रोपेन्थस, बी. पी. सी. मात्रा–२–५ बिंदु।

गुणकर्म तथा उपयोग—हृदयबलदायक। हृदयके पेशीगत दौर्बल्य और कृच्छ्रश्वास (Dyspnoea) युक्त हृच्छूलमें इसका उपयोग करते हैं। शक्तिगत महान् वैवध्यके कारण इसका उपयोग बड़ी सावधानीके साथ करना चाहिए। अफ़रीकाके आदिवासी कतिपय प्रकारके स्ट्रोफैन्थससे वाणकी नोकपर लगानेका विष तैयार करते हैं। बीजोंके अत्यंत विषैले स्वभावके कारण बिना चिकित्साके निर्देशके इनका कदापि प्रयोग न करें।

●

(६२३) हंसराज

फ़ैमिली : फीलिसीज (Family : Filices)

नाम—(हिं०; भा० बा०) हंसराज, मोबारक, काली झाँप, समलपत्ती; (यू०) Adianton (D.4.134); (अ०) अल् अदियान्तून, अल्ब(व)रसियावुशाँ (इ० बै०), शा'रुज्जिन्न, शा'रुज्जबल, शा'रुज्जिबाल (र), शा'रुल् अर्ज़, साक़ुल् अस्वद, नलिफ़ुल अस्वद; (फा०) **परसियावशाँ**; (सं०) हंसपादी, हंसपदी; (कु०) डुमशिणको; (बं०) गोयालिया लता; (गु०) हंसराज, कालोहंसराज; (म०) हंसराज, धोड़खुरी; (का०) दूमतुलि; (ले०) **आडिआन्टुम् वेनुस्टुम् (Adiantum venustum** Don.); **आडिआंटुम् कापील्लुस् वेनेरिस्** (**A. capillus veneris** Linn.); (अं०) मेडेन हेयर (Maiden Hair), वेनस हेयर (Venus Hair)।

उत्पत्तिस्थान—हिमालय, कश्मीर, पंजाब, दक्षिण भारतवर्ष, अफगानिस्तान और फारस आदिमें हौज, तालाबों और कुओंके किनारे सायेदार और आर्द्र भूमिमें उत्पन्न होता है।

वर्णन—यह फर्नकी जातिकी सुंदर तथा छोटी अपुष्प क्षुद्र वनस्पति है जो पहाड़ोंमें चट्टानोंसे लगी हुई मिलती है। इसमें चारों ओर ८-१० अंगुलके सूतके से पतले, गोल, चिकने चमकीले, ललाई लिए काले डंठल फैलते हैं। इन डंठलोंके दोनों ओर बन्दमुट्ठीके आकारकी अथवा धनियेके पत्र जैसी छोटी-छोटी कटावदार पत्तियाँ गुछी होती हैं। पत्रके आकारभेदसे इसकी असंख्य जातियाँ होती हैं। यह बूटी शाखा और पत्र सहित औषधके काममें आती है और प्रायः बाजारोंमें भी मिल जाती है। इसका औषधीय वीर्य ६ मासमें कमजोर और एक वर्षमें पूर्णतया जाता रहता (निर्वीर्य) है। स्वाद किञ्चित् मधुर और थोड़ा कसैला, गन्ध निर्बल।

उपयुक्त अंग—पंचांग।

कल्प तथा योग—**खेसाँदा (फांट) परसियावशाँ**, जल डेढ़ पावमें २ तोले; **जोशाँदा (क्वाथ) परसियावशाँ**, जल एक सेरमें २½ तोले, पाद शेष रहनेपर काममें लेवें। **शर्बत परसियावशाँ**। शर्बतकी मात्रा १/२ से १ तोले।

प्रकृति—अनुष्णाशीत। मतांतरसे गर्मी और खुश्कीके साथ। आयुर्वेदमतसे शीतवीर्य (कै०नि०) है।

गुणकर्म तथा उपयोग—**विलयन**, तारल्यजनन, **प्रमाथी**, उपशोषण, **कफपाचन**, लेखन, मूत्रार्तवजनन, प्रसवशोणितो(नफास)त्सर्गकर्ता विशेषतः सौदापित्तश्लेष्मविरेचनीय एवं प्रसेकहर है। विलयन, तारल्यजनन, प्रमाथी और कफपाचन होनेके कारण वातज उरोवेदना (ज़ातुस्सदर), फुफ्फुसशोथ (ज़ातुर्रिया), प्रसेक, प्रतिश्याय, कास, कृच्छ्रश्वासमें इसका उपयोग किया जाता है। श्लेष्मज्वरोंमें श्लेष्मदोषपाचन (मुञ्ज़िज) की भाँति यह दोषपाचन औषधोंके साथ प्रयुक्त होता है। प्रसवशोणित (नफ़ास) एवं मूत्रार्तवजनन होनेके अतिरिक्त यह अपरानिर्हरणके लिए भी दिया जाता है। लेखन और उपशोषण होनेसे आर्द्रव्रणों एवं खालित्य विशेष (दाउस्सालब एवं दाउल्हय्यः)-के लिए लाभप्रद है। इन्हीं कारणोंसे इसको महीन पीसकर मुखपाक एवं बालकोंके मुखगत फुंसियों (निनावा)में

इसका अवचूर्णन कहते हैं। श्वयथुविलयन होनेके कारण यह लेपतः कंठमालेकी कठोरता तथा अन्य शोथोंको विलीन करता है। खाकस्तर(मसीकृत)परसियावशाँसे सिर धोनेसे सिरकी भूसी (सबूसएसर) नष्ट होती है। सर्पदंश एवं कुक्कुरदंशमें भी इसका काढ़ा पीनेसे उपकार होता है। **अहितकर**–प्लीहाके रोगोंको। **निवारण**–मस्तगी और गुले बनफ़्शा। **प्रतिनिधि**–बनफ़्शा और मुलेठी। **मात्रा**–५ ग्राम से ७ ग्राम (५ माशेसे ७ माशे) तक। मतांतर से १$\frac{१}{२}$ माशेसे ३ तोले तक, क्वाथमें ५ तोले तक।

आयुर्वेदीय मत—हंसराज (हंसप(पा)दी) मधुर, शीतवीर्य, गुरु, कण्ठ्य, रोपण तथा रक्तविकार, दाह अतिसार, विसर्प, लूताविष, शोथ, विष और व्रणको दूर करनेवाला है। (च० सू० अ० ४; वि० अ० ८; सु० सू० अ० ३८; कै० नि०)।

नव्यमत—हंसराज तिक्त, कुछ ग्राही, कासहर, कफघ्न, बड़ी मात्रामें वामक और कुछ मूत्रजनन है। (औ० सं०)।

●

(६२४) हड़, हरड़

फ़ैमिली : कॉम्ब्रेटासे (Family : Combretaceae)

नाम—(हिं०) हड़, हरड़, हर्रा, हर्रे, हर्र; (अ०) इह्लैलज, हलैलज; (फा०) हलील: हलैल:, (हेलाला); (सं०; म०) हरीतकी; (क०) हलेला; (बं०) हर्तकी; (म०) हरडे; (गु०) हरड़े; (ने०) हेरडो; (पं०) हर; (ते०) करक्काय; (ता०) कडुक्काम्; (मल०) कडु(टु)क्का; (ले०) **टेर्मिनालिआ चेबूला** (**Terminaliachebula** Retz.); (अं०) चेबुलिक माइरोबेलन्स (Chebulic Myrobalans)।

उत्पत्तिस्थान—भारतवर्ष।

वर्णन—यह एक बड़े वृक्षका प्रसिद्ध फल है जो तीन प्रकारका होता है—(१) **हलैल: स्याह**; (२) **हलैल: जर्द** और **हलैल: काबुली**। यह तीनों प्रकारकी हड़ें वस्तुतः एक ही वृक्षसे प्राप्त होती हैं। इनमें से प्रत्येकका वर्णन नीचे किया जाता है :—

हलैल: स्याह (छोटी हाड़)—

नाम—(हिं०) जौ(जवा) हड़, काली हड़, बाल हड़, जों(जौं)गी हड़; (उ०) जंगी हड़; (अ०) इह्लैलज (हलैलज) अस्वद, इह्लैलज (हलैलज) हिंदी; (फा०) हलैलए जंगी (–हिंदी,-स्याह); (म०) बाल हरड़े; (गु०) हीमज; (सि०) इंजड़ी; (मा०) जवहरड़ी, जांगीहरड़; (बं०) जांगीहरितकी; (द०) बाल हलड़े।

वर्णन—हड़के वृक्षोंसे जो फल गुठली पैदा होनेसे पहले गिर पड़ते हैं या तोड़कर सुखा लिए जाते हैं, उन्हें **हलैलए स्याह** कहते हैं। यह अण्डाकार दोनों सिरोंपर नोकदार ८.१३ मि० मि० से १.८७५ सें० मी० ($\frac{१}{३}$ से $\frac{३}{४}$ इंच) लंबी और ०.९३ सें० मी० ($\frac{३}{८}$ इञ्च) चौड़ी, लंबाईमें झुर्रीदार, ठोस, भंगप्रवण और काली होती है। स्वाद अत्यन्त कषैला होता है। काली कड़ी, भारी और अविकृत हड़ औषधके लिए उत्तम समझी जाती है।

रासायनिक संगठन—हड़में (१) टैनिन या टैनिक एसिड (Tannin or Tannic acid) लगभग ४५ प्रतिशत, (२) माइरो बैलेनिन (Myro balanin), एक राल (Resin); (३) चेबूलिनिक एसिड (जो जलमें उबालनेसे कषायाम्ल और मायाफ्लाम्लमें विघटित हो जाता है) प्रभृति उपादान होते हैं। इसके अतिरिक्त इसमें माया-

फलाम्ल, लबाब और एक भूरापन लिये रञ्जन द्रव्य भी होता है। इसके अतिरिक्त एन्थ्राक्वीनोनके स्वभावका कोई विरेचन तत्व होता है। बीजके मग्ज में एक प्रकारका स्थिर तेल होता है।

कल्प तथा योग—अतरीफल, अर्क हलैला, मुरब्बा हलैला, दवाये स्याह पेचिस।

वक्तव्य—यद्यपि हड़का वृक्ष कई प्रकारका होता है; परन्तु आयुर्वेदमें ७ प्रकारकी और यूनानी वैद्यकमें ४ प्रकारकी हड़का उल्लेख मिलता है—(१) हलैलः काबुली, (२) हलैलः ज़र्द, (३) हलैलः हिंदी और (४) हलैलः चीनी। किंतु प्रायः अन्वेषणकर्ताओंका इस विषयमें मतैक्य है कि एक ही प्रकारके हरीतके वृक्षके कच्चे, गदराये हुए और पके फलोको उपर्युक्त विविध संज्ञाओंसे अभिधानित करते हैं अर्थात् कच्ची शुष्कीभूत हड़को हलैलः स्याह (काली हड़), गदराई हुईको हलैलः ज़र्द (पीली हड़) और पके फलोंको हलैलः काबुली कहते हैं। सुतरां मख़्ज़नुल्-अदविया में इसी विचारसे ६ प्रकारकी हड़का उल्लेख किया है। परन्तु मुहीत आजमके संकलयिता ने इससे मतभेद व्यक्त किया है।

इतिहास—यह औषधि भारतवर्षमें उत्पन्न होती है। अतएव प्राचीन भारतीयोंको इसका भलीभाँति ज्ञान था। प्राचीन मुसलमान हकीमोंको भी यह ज्ञात थी और उनके माध्यमसे यूनानवासियोंको इसका ज्ञान हुआ। उन्होंने भी पाँच प्रकारके हड़का उल्लेख किया है।

हलैलः स्याह (काली हड़)—

प्रकृति—पहले दर्जेमें शीत और दूसरेमें रूक्ष है।

गुणकर्म—मस्तिष्कबलवर्धन, द्रवाभिशोषणकर्ता, अन्त्रामाशयबलवर्धन, सौदाविरेचनीय, (भृष्ट संग्राही) और रक्तशोधक है।

उपयोग—मेध्य होनेके कारण मस्तिष्क, स्मृति और बुद्धिका दौर्बल्य दूर करने, संवेदना (हवास)को तीव्र एवं बलवान् बनानेके लिए कालीहड़ का उपयोग करते हैं। द्रवाभिशोषणकर्ता होनेसे मस्तिष्कके दूषित द्रवोंका शोषण करनेके लिए इसे मालिन्खोलिया और अर्दित जैसे रोगोंमें चबाते हैं। यह स्निग्ध आमाशयके लिए विशेष रूपसे बलप्रद (दीपन) है। सौदाविरेचनीय और रक्तशोधक होनेके कारण अनेक सौदावी रोगों, जैसे–मालिन्ख़ोलिया, सौदावी अन्यथाज्ञान (सौदावी वसवास) अर्श, कुष्ठ खर्जू आदिमें इसे देते हैं। अतिसार बन्द करनेके लिए इसको घी या बादामके तेलसे स्नेहाक्त (चर्ब) करके और भृष्ट करके चूर्ण बनाकर खिलाते हैं। अतिसार बन्द करनेके अतिरिक्त यह अन्त्र और आमाशयको शक्ति भी देती है। नेत्र और दंत रोगोंमें इसका बाह्य प्रयोग गुणदायक होता है। मात्रा–५ ग्रामसे ७ ग्राम (५ माशेसे ७ माशे तक)।

हलैलए ज़र्द—

नाम—(हिं०) हर्रा, हरड़ा, छीयाहड़, पीलीहड़, बड़ी हड़, (उ०) ज़र्द हड़; (अ०) इह्लैलिज अस्फ़र; (फा०) हलैलए ज़र्द; (म०; गु०) हरडा।

वर्णन—यह हड़का पूरा फल है जिसमें गुठली पड़ी हो। बड़ी, पीली, छोटी गुठलीकी और नई उत्तम होती है।

प्रकृति—पहले दर्जेमें गरम और दूसरेमें खुश्क।

गुणकर्म—मेध्य, चक्षुष्य, दीपन, संग्राही और पित्तविरेचनीय।

उपयोग—हर्रेकी प्रायः मस्तिष्करोगों, जैसे–अपस्मार, भ्रम व सम्मोह (सद्र व दव्वार)में विभिन्न प्रकारसे उपयोग कराते हैं। ग्राही और चक्षुष्य होनेके कारण इसे मधुके साथ घिसकर आँखोंमें लगाते हैं। दृष्टिदौर्बल्य, नेत्रस्राव (ढलका) और नेत्रकी रक्तिमाको दूर करनेके लिए यह गुणकारी है। दीपन होनेसे इसे मंदाग्निमें उपयोग

कराते हैं। पित्त विरेचन होनेके कारण पित्तज रोगोंमें इसे देते हैं। किन्तु यह स्मरण रहे कि इसका **हिम फाण्ट** इसके क्वाथकी अपेक्षया अधिक वीर्यवान् होता है। मस्तिष्क और आमाशयको शक्ति देने तथा कब्ज दूर करनेके लिए इसका **मुरब्बा** खिलाया जाता है। **मात्रा**–५ माशेसे ७ माशे तक। हड़का मुरब्बा (**मुरब्बाए हलैलः**) १ अदद।

हलीलए काबुली (काबुली हड़)—

नाम—(हिं०) काबुली या अँम्बिया हड़; बड़ी हरें (हड़), **अमृतसरी** हड़; (अ०) इह्लीलज काबुली; (फा०) हलैलए काबुली; (म०) सुखारी हरडे; (गु०) हरडे, म्योटी हरडे; (बं०) हरितकी।

वर्णनादि—जब हड़ बढ़कर असाधारण रूपसे परिपुष्ट एवं स्थूल हो जाती है तब उसे **हलैलए** काबुली कहते हैं। प्राचीन कालमें भारतवर्षसे भूमार्गसे काबुल होकर तूरान, खुरासान, ईरान आदि देशोंमें इसे ले जाते थे, इसलिए इसे **हलैलए** काबुली कहते हैं। नई, बड़ी, जलमें डूब जाने वाली, ललाई लिए पीली, गुदार और कम रेशेवाली, छोटी गुठली वाली और जो पुरानी खराब और हलकी न हो वह उत्तम होती है। यह शेष अन्य सभी प्रकारकी हड़ोंसे श्रेष्ठतर एवं वीर्यवान् होती है।

प्रकृति—मोतदिल पहले दर्जेमें खुश्क।

गुण-कर्म आदि—यह दोषत्रयकी विरेचन है और समस्त गुणोंमें पीलीहड़के समान है और इसकी सेवनीय मात्रा भी उसीके बराबर है। यह भ्रम व संमोह (सदर व दव्वार) को दूर करती है तथा रक्तको शुद्ध करती और मस्तिष्कको शक्ति देती है।

आयुर्वेदीय मत—हरीतकी पथ्य (नित्यसेवन योग्य), लवणको छोड़कर अन्य पाँचों रसयुक्त, शिव (आरोग्यकर), दोषोंका अनुलोमन (अधोमार्गसे निर्हरण) करनेवाली, लघु, दीपन, पाचन, आयुष्यको बढ़ानेवाली, वयःस्थापन सर्वदोषप्रशमन, बुद्धिवर्धक, इन्द्रियोंको बल देनेवाली तथा कुष्ठ, गुल्म, उदावर्त, शोथ, पांडुरोग, मद, अर्श, ग्रहणीरोग, पुराना विषम ज्वर, हृद्रोग, शिरोरोग, अतिसार, अरुचि, कास, प्रमेह, आनाह, प्लीहा रोग, नया उदररोग, कफप्रसेक, स्वरभंग, वैवर्ण्य, कामला, क्रमि, श्वयथु, तमकश्वास, वमन, नपुंसकत्व, अंगावसाद, नाना प्रकारके स्रोतोंका अवरोध, हृदय तथा वक्षस्थलका प्रलेप (कफलिप्तत्व) तथा स्मृति और बुद्धिके प्रमोहको शीघ्र दूर करनेवाली है। (च० सू० अ० २५; चि० अ०१ पाद १; सु० सू० अ० ३८, ३९, ४६)। **मात्रा**–जोहड़ घी या एरंडतेल लगाकर सेंकी हुई १·५ ग्रामसे ३ ग्राम (१½ माशासे ३ माशा), बड़ी हड़की गुठली निकालकर किया हुआ चूर्ण ३ ग्रामसे ६ ग्राम (३ माशासे ६ माशा) विरेचनार्थ। (½ माशासे ३ माशा) रसायनार्थ।

नव्यमत—बड़े हरें मृदुविरेचन, अर्शोघ्न, श्लेष्मघ्न, शोथघ्न, रक्तसांग्राहिक, बल्य, पथ्य, गुल्महर, व्रणरोपण और वयःस्थापन है। इससे भूख लगती है तथा अन्न पचता और दस्त साफ होता है। विरेचनके लिए देनेपर प्रारम्भमें विरेक (जुलाब) होकर अपने आप बन्द हो जाता है; पेटमें न तो मरोड़ होता है और न मिचली होती है। इसके नित्य सेवनसे हृदय और रक्तवाहिनियोंकी शिथिलता दूर होती है, रक्तानुधावन सुधरनेसे मस्तिष्कको अधिक रक्त मिलता है और मनमें उत्साह मालूम होता, उत्तम नींद आती, वीर्य गाढ़ा होता एवं शरीरका वर्ण सुधरता है और भार बढ़ता है। **छोटी हड़** मृदुविरेचन, वातनाशक और बल्य है। यह बड़ी हड़ जैसी रसायन नहीं है। इसकी क्रिया केवल पचननलिकापर होती है। कुपचन, अतिसार, आँव और आँतोंकी शिथिलतामें इसे देते हैं। अर्शमें इसे सेंधानमकके साथ देते हैं और रक्तार्शमें काढ़ा करके देते हैं। जीर्णज्वरमें प्लीहा मोटी और कठिन हुई हो तो इसे नौसादरके साथ देते हैं। रक्तपित्त एवं रक्तकासमें, और कई एकको रक्तस्राव होनेकी आदत होती है, उनके लिए हरें गुणकारी है। कई लोगोंको अधिक स्वेद आनेकी, नाक बहनेकी, सर्दी जुकाम होने पर बहुत दिनों तक कफ पड़नेकी आदत होती है। उनको हरेंसे अच्छा लाभ होता है। मुखव्रण और कण्ठशोथमें हरेंको पानीमें घिसकर मुँहमें लगाते हैं। छोटी हरें अजीर्णसे होनेवाले विरेक, पेचिश, जीर्ण अतिसार, जीर्ण आँव, गुल्म, प्लीहावृद्धि और सदा बने रहनेवाले कब्जमें गुणकारी है। (औ० सं०)।

●

(६२५) हब्बुल् क़िल्क़िल्

नाम—(हिं०) ग्वारचिकना; (अ०) हब्बुल्क़िल्क़िल् (क़ुलक़ुल); (फा०) अनारदाना दश्ती; (उ०) अनारदाना जंगली।

वर्णन—एक वृक्षका फल जो यूनानी निघंटुग्रन्थोंके मतसे दो प्रकारका होता है—(१) लोबियाके बराबर सफेद तथा सुगन्धित; (२) दूसरा सँभालूके बीजसे बड़ा एवं काला होता है। इसको हिन्दीमें **चरी कलोटन** कहते हैं। किसी-किसीके मतसे कालीमिर्चके बराबर काले रंगका एक बीज होता है। इसके भीतर मीठा मग्ज निकलता है।

प्रकृति—गरम एवं तर।

गुण-कर्म—बृंहणीय एवं प्रधानतः वाजीकर।

उपयोग—साधारणतः इसे **माजून**के योगोंमें डालकर उपयोग करते हैं। मिश्री और तिल या मुनक्का और शहदके साथ विशेषरूपसे परिबृंहण एवं वाजीकरणके लिए उपयोगी बतलाया जाता है। **अहितकर**–शिरःशूल, विसूचिका और अग्निमान्द्य उत्पन्न करता है। **निवारण**–इसका भृष्ट करना तथा शर्करा एवं सिकंजबीन (मधुशुक्त)। **प्रतिनिधि**–सफेद तोदरी और हब्बुस्सनवोर। **मात्रा**–७ ग्राम से १२ ग्राम (७ माशे से १२ माशे) तक।

●

(६२६) हब्बुल्ज़लम्

फ़ैमिली माल्वासे (Family : Malvaceae)

नाम। वृक्ष—(हिं०) पटसन, पटवा, पटुवा(आ); (सं०) पट्टशण; (बं०) अंबाड़ी, मस्तापाट; (बम्ब०) **अंबाड़ी**; (ले०) **हिबीस्कुस् कान्नाबिनुस्** (**Hibiscus cannabinus** Linn.); (अं०) डेक्कन या अंबाडी हेम्प (Deccan or Ambari Hemp)। बीज—(हिं०) पटुआके बीज; (अ०) हब्बुल्ज़(ज़ु)लम्, हब्बेज़्ज़लिम (मतान्तर से **हब्बुल्गरांज़**)।

उत्पत्तिस्थान—पश्चिम भारत और अफरीका; साधारणतया इसकी खेतीकी जाती है।

वर्णन—**हाजी ज़ैनुल् अत्तार**के मतसे फारसी **हब्बुल्ज़लम्** पटुआके बीज हैं जो इलायचीके बीजके समान होते हैं। मतांतरसे चनेसे बड़ा चपटासा दाना है जिसका बाहरी छिलका काला और मग्ज सफेद होता है। स्वाद स्निग्ध, मधुर और सुगन्धित। 'हब्बुल्जलम्' मिस्र देशसे आता है। इसके यह और दो भेद होते हैं—(१) **आर्टिचोक-बीज**; और (२) **सरापियून** (Serapion)। हब्बुल्जलम् या मंकी पेपर (Habzelia aethiopica) के फल जिनका व्यवहार प्रथम कालीमिर्च (Pepper)के प्रतिनिधि रूपमें होता था, वह बम्बईके बाजारोंमें इस नामसे बिकने वाला फल नहीं है, ऐसा डीमकका मत है।

रासायनिक संगठन—बीजमें मूँगफलीके तेलके समान वसामय तेल (Fatty oil), रेडियम, थोरियम, बिर्डिअम् प्रभृति तत्व होते हैं।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम और पहले में तर।

गुण-कर्म तथा उपयोग—**बृंहण** एवं **वाजीकरण** इसके प्रधान कर्म हैं; तथा यह शुक्रजनन एवं लेखन है। हब्बुल्ज़लमके मग्जको अधिकतया वाजीकरणार्थ वाजीकर या कामसंवर्धक माजूनकल्पों में डालकर उपयोग करते हैं। शरीरको स्थूल करनेके लिए भी इसका उपयोग किया जाता है। झाँईको दूर करने और चेहरेका रंग निखारनेके लिए इसका पतला लेप करते हैं। **अहितकर**–कण्ठके लिए तथा यह अवरोध उत्पन्न करता है। **निवारण**–सिकंजबीन। **प्रतिनिधि**– बुन्मके बीज (बुन)। **मात्रा**–६ ग्राम से ११.५ ग्राम (६ माशे से १ तोला) तक।

(६२७) हब्बुल् मिह्लब्

फ़ैमिली : रोजासे (Family : Rosaceae)

नाम। वृक्ष—गात्रला, घीवनी; (अ०) मह्लिब (मिह्लब = पंजा); (फा०) **पैवंदे मरियम**; (सं०) प्रियंगु, गन्धप्रियंगु ? (म०) गहुला; (गु०; बम्ब०) घउँला; (ले०) **प्रूनुस महालेब** (**Prunus mahaleb** Linn.)।

उत्पत्तिस्थान—पश्चिम या मध्य एशिया और यूरोपका निवासी है। बलूचिस्तानमें इसके वृक्ष लगाये जाते हैं। सम्भवतः उत्तर-पश्चिम भारतवर्षमें भी होता है।

वर्णन—एक वृक्षका प्रसिद्ध फल, जो बादामकी तरह छोटा, काबुली मटरके बराबर होता है। इसके बीज 'हब्बुल्महलिब का मग्ज' बम्बई बाजारमें घउँला नामसे मिलते हैं। मग्ज छोटी चिरौंजी जैसा गोधूमवर्ण और सुगन्धित होता है। स्वादमें यह किंचित् तिक्त होता है। कोई-कोई इसे **आयुर्वेदीय प्रियंगु** मानते हैं। इससे तेल भी बनाते हैं। ताजा, मोटा, सुगन्धित, चिकना और सफेद बीज श्रेष्ठतर होता है।

रासायनिक संगठन—इसमें कोमारिन (Coumarin), सैलीसिलिक एसिड (Salicylic acid) और ऐमिग्डेलिन (Amygdalin) तथा हाइड्रोसायनिक एसिड (Hydrocyanic acid) पाया जाता है।

प्रकृति—पहले दर्जेमें गरम व खुश्क (रूक्ष); मतांतरसे दूसरे दर्जेमें शीत। आयुर्वेदके मतसे प्रियंगु शीतवीर्य है।

गुणकर्म—ये दाने दोषविलयन, पिच्छिल, तिक्त, प्रबल लेखन और संग्राही हैं। विलयन एवं संग्राही होनेपर भी ये अधिक आह्लादकारक हैं और ज्ञानेन्द्रियोंको शक्ति देते हैं। चेपके कारण स्रोतोंके मुँहमें चिपककर अवरोध उत्पन्न करते हैं तथा छाती और फेफड़ेसे गाढ़े और चेपदार द्रवोंको निःसारित करते हैं। दिलकी धड़कन, दमा और मूर्छाको लाभ करते तथा यकृत् और प्लीहाको शक्ति देते हैं। यकृत्प्लीहा, वृक्क और आमाशय इनमें होनेवाली पीड़ाको लाभ पहुँचाते हैं। विशेषतः मधुजलके साथ मूत्र और आर्तवका प्रवर्तन करते, वृक्कके अवरोधका उद्घाटन करते, सान्द्र वायुको विलीन करते, तथा उदरकृमिको निकालते हैं और विदुमूत्रको मिटाते तथा वाजीकर हैं। रक्तातिसार बन्द करनेमें गिलमख्तूमकी अपेक्षया अधिक प्रभावकारी है। इससे सदैव सिर धोनेसे प्रसेक (नज़ला) आराम होता है। इसको पीसकर लेप करनेसे (झाईं), न्यच्छ (नमशा) और कण्डू (जरब) अच्छे होते हैं। इसे मुँहपर लगानेसे मुँहका रंग स्वच्छ होता है। गर्दनपर और ढोड़ीके नीचे लगानेसे कण्ठ और कमरका दर्द जाता रहता है। इसे मिलाकर बनायी हुई रोटी शीघ्र पच जाती है। इसके लेपसे वातरक्त और सर्दीका दर्द मिटता है। गीलानीके कथनानुसार इसका छिलका (फलत्वक्) सर्दीके लिए गुणकारी है। इसमें विलयनके बिना संग्रहणका गुण है। यह वायुके दोषोंका सुधार करती है तथा प्रसेक और प्रतिश्यायको गुणकारक है। इसकी लकड़ीके पास कीटपतङ्ग नहीं फटक सकते। इसकी धूनीसे भी वे भाग जाते हैं। इसकी लकड़ीको सुदाब, मस्तगी, कुट और

तेलके साथ पकाकर पीने और मलनेसे अर्दित, पक्षवध, कम्पवात, अपतानक (कुज़ाज़), संधिशूल, वातरक्त, शोथ, अभिघात और अस्थिभग्नमें लाभ पहुँचता है। **अहितकर**–उष्णप्रकृति, मस्तिष्क और अन्त्रको। **निवारण**–मस्तिष्कके लिए चन्दन और अन्त्रके लिए गुलाब, रोगन बनफ़्शा और रुब्बरेबास। **प्रतिनिधि**–अखरोट और कडुए बादामके मग्ज। **मात्रा**–१०½ माशे से १½ तोला तक शर्करा और मधुके साथ लेहकी भाँति।

आयुर्वेदीय मत—प्रियङ्गु तिक्त, शीतवीर्य, पुरीषसंग्रहणीय, मूत्रविरजनीय तथा मूर्च्छा, दाह, ज्वर, वमन, भ्रम, पित्तविकार, रक्तविकार, रक्तप्रकोष, रक्तपित्त और मुखकी जड़ताको नाश करनेवाला है। (च० सू० अ० ४, ९५, चि० अ०, ४; सु० सू० अ० ३८; ध० नि०; रा० नि०)।

नव्यमत—कटुपौष्टिक और वेदनास्थापन है। अतएव वेदनायुक्त कुपचन तथा आमाशयके क्षत और अर्बुदमें इसका प्रयोग करते हैं। (औ० सं०)।

●

(६२८) हमाम (हमामा)

फ़ैमिली : प्रीमुलासे (Family : Primulaceae)

नाम—(भारतीय बाजार; सुर० या नब्ती) हमाम, हमामा; (यू०) Amomon (D.1.14), Amomum; (अ०) अल्हमामा (इ०बै०), माहलूज; (फा०) म(मा)हिलू, मायलू; (लै०) **डीओनीसिया डीआपेन्सीईफ़ोलिआ Dionysia diapensiaefolia** Boiss.)।

उत्पत्तिस्थान—फारस।

वर्णन—एक उद्भिज्ज जिसके यह तीन भेद हैं—(१) एक पौधा जो जमीनपर गुच्छेकी तरह होता है तथा शाखाएँ एक दूसरीमें इस प्रकार घुसी होती हैं कि जालकी तरह मालूम होती हैं। इनका रंग याकूती रक्तवर्ण मालूम होता है और ये कड़ी होती हैं तथा इनमेंसे सुगन्ध आती है और स्वाद तिक्त होता है। **फूल** छोटा, लाल-रंगका, खेरीके फूल जैसा होता है। इस फूलको शीराजनिवासी 'मायलू' कहते हैं। पत्ते फाशरा या खीरेके पत्ते जैसे, सुनहले रंगके, स्वादमें कटु (तेज) और सुगन्धित होते हैं। **बीजको चाबनेसे** जिह्वापर बहुत तीक्ष्णता और दाह प्रतीत होता है। यह भेद **अरमीनिया और तरसूसमें** पैदा होता है। (२) दूसरी किस्म नब्ती कहलाती है। इसकी शाखाएँ जालीदार नहीं होतीं, अपितु लम्बी (दराज) होती हैं। उनको तोड़नेसे बहुतसे परत पैदा हो जाते हैं। क्षुप एक बित्ता या इससे अधिक ऊँचा भी होता है। रंग ललाई लिये सफेद और सुगंध तीक्ष्ण होती है। फूलका रंग प्रारम्भमें ललाई लिये पीला और खूब पककर बिल्कुल रक्तवर्ण हो जाता है। इसमें बहुतसे बीज लगे होते हैं। (३) तीसरा भेद जलीय (आबी और माई) करके प्रसिद्ध है; क्योंकि यह पानीमें और तर जमीनोंमें जमती है। इसका पौधा मोटा, हरे रंगका, डालियाँ नरम; पत्तोंको मलनेसे सुदाब जैसी सुगंध आती है। इसमें बहुत हलकी सुगन्ध होती है। यह श्यामदेशमें होता है। जब तक हमामाके बीज खूब पक न जायँ, उनको तोड़कर काममें नहीं लेना चाहिये। यदि काममें लेवें तो कोई हर्ज नहीं, परन्तु जमा न रखना चाहिये। जब इन बीजोंमें तीक्ष्णता आ जाय तथा ये जीभको काटने लगें, उस समय समझ लेना चाहिये कि यह पौधा पक गया। उस समय इसका संग्रह करें। उससे पूर्व संग्रह करनेसे खराब हो जानेका भय है।

प्रकृति—मलभूत द्रवोंके साथ दूसरे या तीसरे दर्जेमें गरम और रूक्ष। इसका तेल दूसरे दर्जेमें गरम और पहले दर्जेमें रूक्ष है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—यह दोषोंको पतला करनेवाला (मुरक्किक), दोषपाचन, छेदन, मदकारक, सुरूर उत्पन्न करनेवाला, निद्रल और ग्राही है। इसमें बचकी भाँतिवीर्य होता है। भेद केवल यह है कि इसकी अपेक्षया बच अधिक रूक्षताजनक एवं दोषपाचन भी है। इसे जैतूनके तेलमें मिलाकर लगानेसे सूजन उतर जाती है। मुनक्काके साथ यह अन्त्रशोथको मिटाता है। इसके सेवनसे शिरोगौरव और सिर दर्द भी उत्पन्न हो जाता है। परन्तु सिरपर बाहरसे लेप करनेसे सर्दीका सिरदर्द आराम होता है। उष्ण प्रकृतिवालोंके सिरमें बाहरसे लगानेसे भी सिरदर्द उत्पन्न हो जाता है। इसके काढ़ेसे आँख धोनेसे उष्ण नेत्राभिष्यंद आराम होता है और नेत्रमें सूजन नहीं होती। इसलिए इसे नेत्रांजनोंमें डालते हैं। इसका काढ़ा पीनेसे शीतल पार्श्वशूल (शौसए सर्द) आराम हो जाता है, यकृद्गत अवरोध मिट जाता है। उसमें शक्ति आती, सूजन उतरती, यकृत् और आमाशयकी शुद्धि होती, वायु विलीन हो जाता, पाचनशक्ति बढ़ती, वायगोला आराम होता है तथा रुका हुआ मूत्र और आर्तव प्रवर्तित हो जाता है। इसे योनिमें रखनेसे भी आर्तवरक्त जारी हो जाता है तथा गर्भाशयशोथ मिट जाता है। इसके काढ़ेसे अवगाह (आबजन) करनेसे भी गर्भाशयशोथ मिट जाता है और गुदशोथ भी मिटता है। ३$\frac{१}{२}$ माशे हमामा और १$\frac{१}{४}$ माशे जला हुआ काच जिसे फारसीमें 'आबगीना' कहते हैं, दोनोंको महीन पीसकर खानेसे प्रभूत मूत्रोत्सर्ग होता है और उसी दिन पथरी टूटकर निकल जाती है। वृक्कशूल एवं वातरक्तकी पीड़ामें भी इससे अवगाह (आबजन) करते हैं। वातरक्त एवं गर्भाशयशूलमें भी इसका काढा पीनेसे उपकार होता है। इसका तेल सूँघनेसे और सिरपर रखनेसे मस्तिष्ककी झिल्लियोंमें उष्णता उत्पन्न होती है। ९ माशेकी मात्रामें इसे पीनेसे आमाशयगत वायु नष्ट होता है। **अहितकर**—आमाशय और सिरको तथा आलस्य एवं सिरदर्द पैदा करता है। **निवारण** आमाशयके लिए तुख्म करफ्स, सिरके लिए गुलाबके फूल, सिरदर्दके लिए अर्कगुलाब एवं चंदन और आलस्य (कसल)के लिये दालचीनी। **प्रतिनिधि**—समतोल असारून। **मात्रा**—७ ग्राम या ७ माशे तक, मतांतरसे १०·५ ग्राम या १०$\frac{१}{२}$ माशे तक।

●

(६२९) हरमल (हर्मल)

फ़ैमिली : रूटासे (Family : Rutaceae)

नाम—(हिं०; बम्ब०; बं०) इस्बंद, हरमल, हुरमल, हरमर, लाहौरी; (अ०) अल्हर्मल (इ० बै०), ह(हु)रमल, हर्मुल; (फा०; क०) इस्पंद, सिपंद; (गु०) हर्मरो, इस्पन्द, हरमर; (म०; गु०) हरमल, हरमर; (पं०) हुर्मुल, इस्बंद, लाहोरी; (सिं०) हरमल, इसबंद, लाहोरी; (ले०) पेगानुम् हरमाला (**Peganum harmala** Linn.); (अं०) सीरियन रू (Syrian Rue)।

उत्पत्तिस्थान—उत्तर-पश्चिम भारतवर्ष, सिंध, पंजाब और काश्मीर।

वर्णन—यह ७० सें०मी०से ९० सें०मी० (१$\frac{१}{४}$ से २ हाथ) ऊँचे एक क्षुपके प्रसिद्ध बीज हैं जो भारतके प्रायः सभी बाजारोंमें मिलते हैं। इब्नुल्बैतारने इसके इन २ भेदोंका उल्लेख किया है—(१) सफेद जिसे **'हरमल अब्यज़; 'हरमल अरबी** और **'इस्पंद अरबी'** कहते हैं (यू०-Molu (D. 3. 47); और (२) लाल जिसे **'इस्पंद सोख्तनी (-ख़ती)'** (यू०-Peganon agrion (D. 3. 40; इ० बै० संचिका २. पृ० १४) कहते हैं। मात्र इस्बंन्द (इस्पंद) या हर्मलसे यही 'इस्पंद सरेख्तनी' ही विवक्षित होता है। यह (तुख्मे इस्पंद) राईके दानेके बराबर भूरे व काले रंगके, विषमतया त्रिकोणाकार, निर्गन्ध एवं कुछ कड़वे होते हैं। इसमें ४ वर्ष तक वीर्य रहता है।

रासायनिक संगठन—हरमलमें यह तीन क्षारोद होते हैं—(१) हर्मीन (Harmine); (२) हर्मेलीन (Harmaline) और (३) हर्मलोल। इनमें हर्मेलीन सर्वाधिक और हर्मलोल केवल अंशमात्र होता है।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें **गरम** और दूसरेमें **खुश्क**।

गुणकर्म तथा उपयोग—वाजीकर, बृंहण, श्लेष्मनिःसारक, वातानुलोमन, सांद्रदोषविरेचन, उदरकृमिनाशन, मूत्रार्तवजनन और स्तन्यजनन है। अर्दित और पक्षवध आदि जैसे शीतल रोगों और विशेषकर गृध्रसीके लिए यह गुणकारी है। हरमलको अधिकतया वाजीकरणके लिए उपयोग करते हैं। इसके अतिरिक्त यह श्वास एवं कासमें कफका उत्सर्ग करने और मस्तिष्क (शिरः) एवं वातव्याधियों, अपस्मार, अर्दित, पक्षवध, उन्माद, विस्मृति और गृध्रसी आदिमें दोषका उत्सर्ग करने तथा अंगोंको उष्णता प्रदान करनेके अभिप्रायसे प्रयुक्त होता है। बाधिर्यको दूर करनेके लिए हरमलको जैतूनके तेलमें पकाकर कानमें टपकाते हैं। दंतशूल निवारणके लिए दाँतोंको इसकी धूनी देते हैं। **अहितकर**–शिरःशूलजनन, आकुलताकारक और विवमिषाकारक है। **निवारण**–सिकंजबीन तथा अम्लद्रव्य। **प्रतिनिधि**–सुदाबके बीज। **मात्रा**–२ ग्रामसे ४ ग्राम (२ माशेसे ४ माशे) तक।

नव्यमत—हरमल संकोचविकास प्रतिबन्धक (आक्षेपहर), मादक, स्वापजनन, वेदनास्थापन, आर्तवजनन और स्तन्यजनन है। यह स्त्री और पुरुषके लिए किंचित् कामोत्तेजक है। इसे वात और कफप्रधान रोगोमें देते हैं। अनार्तव, कष्टार्तव और मूत्रावरोधमें इसके काढ़े में तिलका तेल और मधु मिलाकर देते हैं। इससे आर्तव और दूध बढ़ता है। आमवातमें इससे सोडा सैलिसिलासकी अपेक्षया शीघ्र वेदना कम होती है। ज्वर, गृध्रसी, अपतंत्रक, अपस्मार और आक्षेपकमें इसका पोटैसियम ब्रोमाइडकी अपेक्षया उत्तम उपयोग होता है। दमा, सूखी खाँसी, पित्ताश्मरी, मूत्राश्मरी, उदरशूल और हिचकीमें लाभ होता है। (ओ० सं०)।

●

(६३०) ह(हा)रसिंघार

फ़ैमिली : ओलेआसे (Family : Oleaceae)

नाम—(हिं०) ह(हा)रसिंघा(गा)र, परजाता, पारिजाता; (सं०) हार(हरि)श्रृङ्गारपुष्पक, शेफालिका; (बं०) शिऊली; (म०) पारिजात; (गु०) हारशणगार; (ते०) सेपाली; (ले०) **नीक्टान्थीज आरबोरट्रिस्टिस्** (**Nyctanthes arbortristis** Linn.); (अं०) वीपिंग निक्टैन्थिस (Weeping Nyctanthes), नाइट् जैस्मीन (Night Jasmine)।

उत्पत्तिस्थान—भारतवर्ष।

वर्णन—हरसिंगारके वृक्ष अपने सुन्दर और सुगंधित पुष्पोंके लिए बगीचोंमें लगाये जाते हैं। पत्ते गुड़हलके जैसे और खर; पुष्पवृन्त लाल और पँखड़ियाँ सफेद होती हैं। फूल रातमें खिलते हैं और सबेरे झड़ जाते हैं। बीज (तुख़्म हारसिंघार) गोल और चपटे होते हैं।

उपयुक्त अंग—बीज और पत्ते।

रासायनिक संगठन—फूलमें निक्टेन्थीन नामक एक क्रिस्टली सत्व, पत्रमें ऐल्केलाइड, राल, पिपरमिन्ट की तरहका उत्पत्तेल १% और एमार्फस् ग्लूकोसाइड होता है।

कल्प तथा योग—हब्ब हारसिंघार।

प्रकृति—पत्ते और छाल शीतल, मतांतरसे पत्ते गरम, फूलकी डंडी दूसरे दर्जेमें गरम एवं खुश्क और फूल की सफेद पंखड़ियाँ शीतल।

गुण-कर्म तथा उपयोग—ज्वरघ्न, कफघ्न, यकृदुत्तेजक, आनुलोमिक, शामक और त्वग्दोषहर है। पत्र सैन्टोनीन जैसे कृमिघ्न, कटुपौष्टिक, पित्तद्रावक और अनुलोमिक हैं। ६ से ७ माशे इसके नरम पत्ते (कोंपलें) पीसकर थोड़ेसे आदीके रसके साथ पीनेसे जीर्णज्वर नष्ट हो जाता है। किन्तु तेल, दही, दूध, घी तथा मांस और मछली आदिसे परहेज करना चाहिए। संमिश्रज्वरोंमें भी इनसे लाभ होता है। दाद, झाईं और छीप आदिमें इसके पत्तोंके लेपसे उपकार होता है। फूलकी सफेद पँखड़ियाँ उष्ण प्रकृतिवालों के हृदयको शक्ति देती हैं और दाहको शमन करती हैं। इसका गोंद, जड़ तथा फूलकी लाल डंडी वाजीकर हैं। इसकी डंडियोंके रंगसे रंगा कपड़ा पहिननेसे कामला दूर हो जाता है। इसके फूल सेवन करनेसे रक्तदोष मिटता है और रक्तार्श आराम होता है। इसकी छालको बारीक काटकर और पाँच कालीमिर्चोंके साथ पानीमें पीसकर पीनेसे भी अर्शमें लाभ होता है। इसके बीजोंका छिलका दूरकर और भीतरका सफेद मग्ज १ तोला और कालीमिर्च ३ माशा मिला पीसकर चना प्रमाणकी गोलियाँ बना लेवें। इसमें से तीन माशा लेकर सबेरे-सबेरे पानीसे एक सप्ताह तक सेवन करनेसे खूनी और बादी दोनों प्रकारके बवासीर जाते रहते हैं।

नव्यमत—**हारश्रृंगार** ज्वरघ्न, कफघ्न, यकृदुत्तेजक, आनुलोमिक, शामक और त्वग्दोषहर है। पत्र सैन्टोनीन जैसे कृमिघ्न, कटुपौष्टिक, पित्तद्रावक और अनुलोमिक है। ज्वरमें ताजी पत्तियोंका स्वरस और आदीका रस मधुके साथ देते हैं। कास और श्वास (दमा)में १-२ रत्ती **पत्रचूर्ण** नागरपानके साथ देते हैं। बीजको पानीमें पीस कर सिरके गंजपर लगाते हैं। इस लेपसे जन्तु मरकर नये बाल उगते हैं।

●

(६३१) हर्शफ

फ़ैमिली : कॉम्पोजीटी (Family : Compositae)

नाम—(हिं०; उ०) **हाथीचक**, हाथीचोक, अर्तचक; (अ०) अक्रब, खरीअ, हर्शफ़; (फा०) कंक (ग)र; (सं०) हस्तिमिज, वज्रांगी ? (बं०) हाथीचोंक, **हाथीचक**; (ले०) **सीनारा स्कोलीमुस Cynara scolymus** Linn.), **हेलिआंथुस् टूबेरोसुस् (Helianthus tuberosus)**; (अं०) आर्टिचोक (Artichoke)। **निर्यास**—(अ०) कंकरज़द, तुराबुलेक़े; (फा०) कंकरज़द, कंकरी, समग़े हर्शफ़; (ले०) **गूंडेलीटूर्नीफोर्टीरेज़िना Gundeliae tournaefortii Resina**; (अं०) आर्टिचोक गम (Artichoke Gum)।

उत्पत्तिस्थान—सीमित मात्रामें इसके क्षुप समस्त भारतवर्षमें लगाये जाते हैं।

वर्णन—एक उद्भिज्ज जो कंकरीली, पथरीली और आर्द्रभूमिमें होता है। बागी और जंगली भेदसे हर्शफ़ २ प्रकारका होता है। बागी (**बुस्तानी**)की डालियाँ और पत्ते काहूको डालियों और पत्तोंके समान होते हैं। पत्ते प्रायः काहूके पत्तोंसे किंचित् चौड़े और बड़े होते हैं। उनपर द्रव होता है, जो हाथपर लगनेसे चिपकता है। **'जंगली'** हर्शफका बड़ा भेद है जिसे **हर्शफ कबीर** कहते हैं। इसके क्षुप बहुवार्षिक होते हैं। पत्ते बागीके पत्तोंसे बहुत छोटे और बहुत काले रंगके होते हैं। कांड बागीकी अपेक्षया लम्बा होता है और उसपर बहुतसे काँटे होते हैं। कांडके सिरेपर बड़े अनारके बराबर एक पीले रंगकी चीज होती है। बीज लंबोतरा और जौ-से बड़ा होता है। स्वादमें यह कुस्वादु होता है। जड़में सुर्खीकी झलक होती है और किसी-किसीने इसे ही **हब्बुलज़लम** माना है।

यह चेपदार होती है। मात्र हर्शफसे यही अभिप्रेत है। इसके एक भेदमें कांटे नहीं होते। इससे स्रवित द्रवको जो इसका गोंद हैं, **तुराबुल्क़ै** कहते हैं। इसको फारसीमें **कंगरज़द** और **कंगरी** कहते हैं (कंगर = हर्शफ़, ज़द = गोंद)। यह पीला एवं लाल या सफेद किंचित् तिक्त होता है।

रासायनिक संगठन—पुष्पमुण्डक (Flower-heads)में **इनूलिन** (Inulin) नामक सत्व पाया जाता है जो मधुमेहियोंके बहुत ही मूल्यवान् खाद्यपदार्थोंमेंसे है।

उपयुक्त अंग—पत्ते, गोंद और जड़।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम और पहलेमें खुश्क है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—संग्राही, वातानुलोमन, वाजीकर और मूत्रल है तथा बस्तिवृक्कको गरम करता है, वायुको विलीन और आहारका पाचन करता तथा फुपफुस, अन्त्रस्थव्रण और श्वित्र, चातुर्थक, शोथ (Dropsy) और आमवातके लिए उपकारक है। अपने प्रभावसे यह कक्षा और वंक्षणस्थ दुर्गन्धिको नष्ट करता है। यही नहीं, अपितु यह सम्पूर्ण शरीरमें सुगन्धि उत्पन्न करता है तथा दुर्गंधित प्रकुथित द्रवोंकी दुर्गंधिका नाश करता है। इसकी जड़का काढ़ा पानेसे भी उक्त लाभ होता है। शीतल प्रकृतिवालोंके लिए यह बहुत उपकारक है। इसके लेपसे सूजन उतरती है और इन्द्रलुप विशेष (दाउस्सालब) में लाभ होता है। इसके पीनेसे खुजली मिटती है। इसके काढ़ेसे शिर धोनेसे सिरकी भूसी जाती रहती है और जूएँ मर जाती हैं। अग्निसे जले हुए अंगके ऊपर इस (बुस्तानी)की जड़के लेप लगानेसे उपकार होता है। यह श्वास-कासमें भी उपकारक है। बागी हर्शफको पानी, सिकंजबीन और शहदके साथ पीनेसे सरलतासे क़ै आ जाती है। यद्यपि यह आनाहहर है तथापि मद्यके साथ पीनेसे मूत्रातिप्रवृत्तिके कारण बिल्अर्ज़ कब्ज पैदा करता है। **अहितकर**—उष्ण प्रकृति एवं मस्तिष्कको तथा आध्मानकारक एवं उत्क्लेशकारक है। **निवारण**—तेल, सिरका एवं उष्ण औषधियाँ। **प्रतिनिधि**—हलियून या कायफलकी जड़ और मैनफल। **मात्रा**—२ ग्रामसे ३ ग्राम और ४ ग्रामसे ६ ग्राम (२-३ माशेसे ४-६ माशे)।

गोंद—

गरम पानी और सिकंजबीनके साथ पीनेसे **पित्त और कफका** वमन द्वारा निर्हरण करता है। इसका लेप श्वयथुविलयन, संग्राही एवं वाजीकर है और प्रायः शीतल व्याधियोंका शामक हैं। **अहितकर**—उरोमस्तिष्कको। **निवारण**—तेल और ताजा दूध। **प्रतिनिधि**—जौजुलक़ै (मैनफल)। **मात्रा** २ ग्रामसे ६ ग्राम (२ माशासे ६ माशा) तक।

●

(६३२) हलदी

फ़ैमिली : स्कीटामिनासे (Family : Scitaminaceae)

नाम—(हिं०;द०) हलदी, हरदी, हलद; (यू०) Chelidonion (D.2/$2\frac{1}{2}$, 2/2); (अ०) अल् उरूक़ुल्-सुफ़्र (इ०बै०); उरूक़ुल् सब्बाग़ीन, बक़लतुल् खुतातीफ़ (इ०बै० ३/११९); (फा०) ज़र्दचोब(ब्र:), दारज़र्द; (सं०) हरिद्रा (च०;सु०), निशा (कै०नि०); (बं०) हलुद; (क०) लेदिर, लिधर; (कु०) हल्दो; (गु०;पं०) हलदर; (म०) हलद; (पं०) हरदल, हरधल; (ले०) कूर्कूमा डोमेस्टिका **Curcuma domestica** Vahl. (पर्याय–*C. longa* L.); (अं०) टर्मेरिक (Turmeric)। भेद—जंगली हल्दी (**C. aromatica** Salisb.)।

उत्पत्तिस्थान—दक्षिण एशिया। समस्त भारतवर्षमें इसकी खेती की जाती है।

वर्णन—यह १½ से २ हाथ ऊँचे आदीकी तरहके एक गुल्मकी प्रसिद्ध सुखाई हुई पीले रंगकी गाँठ (पाताली धड़) है जो बाजारमें मिलती है और औषधके काममें आती है।

रासायनिक संगठन—इसमें उत्पत् तेल १%, राल, हारिद्रिक या कुर्कुमिन (Curcumin) नामक पीतरंजन द्रव्य, हरिद्रा तेल (Turmeric oil) या 'टर्मेरोल' प्रभृति उपादान होते हैं। हरिद्रा तेल एक गाढ़ा पीला और चिपचिपा तेल है जिसपर इसकी गंध और सुगन्धित स्वाद निर्भर करता है।

कल्प तथा योग—सफ़ूफ़ दमा हलदी।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें गरम और खुश्क। आयुर्वेदीय मतसे उष्णवीर्य एवं रूक्ष (ध०नि०)।

गुण-कर्म तथा उपयोग—श्लेष्मनिस्सारक, वाहिन्युद्घाटक, व्रणलेखन, कृमिघ्न, विलयन, संशमन, रक्तशोधक, लेखन और वर्णप्रसादन (मुहस्सिनलौन) है। बाह्यतः इसे चोटके स्थानपर लगाते हैं। यकृतके रोगोंमें यह लताके रूपमें उपकारक है। श्लेष्मनिस्सारक होनेके कारण यह कास एवं कफज कृच्छ्रश्वासमें प्रयुक्त होती है। लेखन और वर्णप्रसादन होनेके कारण इसे उबटनमें मिलाकर उपयोग करते हैं तथा अन्य त्वग्रोगों यथा खुजली आदिमें तिलाकी भाँति भी प्रयुक्त होती हैं। रक्तप्रसादन होनेके कारण त्वचाके रोगोंमें चूर्ण एवं फांटके रूपमें इसका उपयोग कराते हैं। वाहिन्युद्घाटक होनेके कारण यह अवरोधजन्य कामला और जलोदरमें प्रयुक्त होती है। व्रणलेखन होनेके कारण इसे व्रणोंपर छिड़कते हैं तथा यह मरहमोंमें डाली जाती है। यदि व्रणमें कीड़े पड़ गये हों तो यह उनको मारकर और व्रणको शुद्ध करके सुखा देती है। आघातप्रत्याघात (ज़रबा व सक्ता)में इसे अर्धभृष्ट करके चूर्ण बनाकर दूधके साथ खिलाते हैं और बाहरी तौर पर चोटके स्थानपर लेप करते हैं। लेखन होनेके कारण कच्छू एवं नेत्रशुक्लमें अंजनकी भाँति यह उपयोगकी जाती है। रक्तष्ठीवन एवं जीर्णज्वरमें भी यह लाभ करती है। अहितकर–हृदयके लिये। निवारण–बिजौरा और नीबूका रस। प्रतिनिधि–मजीठ। मात्रा–१ ग्रामसे ३ ग्राम या १ माशेसे ३ माशे तक।

आयुर्वेदीय मत—हलदी तिक्त, कटु, उष्णवीर्य, रूक्ष, वर्ण्य, लेखन, कुष्ठघ्न, कण्डूघ्न, विषघ्न शोधन तथा कफ, पित्त, पीनस, अरुचि, कुष्ठ, कण्डू, विष, प्रेमह, व्रण, कृमि, पाण्डुरोग और अपचीको दूर करनेवाली है। (च०सू०अ० २,वि०अ० ८; सु०सू०अ० ३९;ध०नि०;कै०नि०)।

नव्यमत—हलदी कटु, तिक्त, उष्ण, दीपन, श्लेष्मघ्न, शोथघ्न, ग्राही वातनाशक, त्वग्दोषहर, कांतिवर्धक, व्रणशोधन, व्रणरोपण और स्तन्यशोधन है। यह श्लेष्मल त्वचामें रूक्षता लाती है और कफको कम करती है। इसलिये जब श्लेष्मकलासे आवश्यकतासे अधिक कफका स्राव होता है तब इसे देते हैं। प्रमेहमें जब मूत्र गदला, थोड़ा-थोड़ा और बार-बार होता है तब हलदी और आँवलेके काढ़ेसे बहुत लाभ होता है। प्रदरमें हलदी और गूगल अथवा हलदी और रसवत देते हैं। नेत्राभिष्यंदमें एक भाग हलदीको दस भाग जलमें पका, कपड़ेसे छानकर उसका नेत्रमें आश्च्योतन करने और उसमें भिगोये हुए कपड़ेकी गुद्दी आँखपर रखनेसे आँखमें ठंढक प्रतीत होती है, पीड़ा कम होती तथा कीचड़ और पूय आना कम हो जाता है। सूजे हुए मस्सेपर हलदीको घीकुआरके रसमें पीसकर लगानेसे उपकार होता है। हलदीके चूर्णको मक्खनमें मिलाकर मलनेसे त्वचा नरम होती है और बहुतसे त्वग्रोग नष्ट होते हैं। व्रणपर हलदीका चूर्ण बुरकनेसे व्रण संकुचित होता है और भर आता है। मार-चोट एवं अपघातोंमें हलदी और गुड़ खानेको देते हैं और उसका लेप करते हैं।

●

(६३३) हलियून

फ़ैमिली : लीलिआसे (Family : Liliaceae)

नाम—(भा०बा०; हिं०; रू०) हल्युन, हलियून; (अ०) इस्फ़ेराज़, ख़शबुल्हय्यः; (फ़ा०) मारगियाह, मारचोब; (ले०) **आस्पारागुस् आफ़्फ़ीसिनालिस** (**Asparagus officinalis** Linn.); (अं०) ऐस्पेरेगस (Asparagus, स्पेरेज (Sperage), स्पैरोग्रास (Sparrow Grass)। **वक्तव्य**—इसको यूनानीमें "**आस्फारगीन**" और किसीके मतसे हिंदीमें "**नागदौन**" कहते हैं। जंगली हलियूनको लैटिनमें **आस्पारागुस् टेनुईफोलिउस्** (**A. tenuifolius** L.) कहते हैं।

उत्पत्तिस्थान—फारस और उत्तर भारतवर्षमें इसकी खेती की जाती है।

वर्णन—यह एक झाड़ है जिसकी पत्ती सौंफकी तरह तथा जड़ लगभग ५ सें० मी० (२ इञ्च) लम्बी, १·२५ से०मी० से १·८७५ सें०मी० (१/२ इञ्च से ३/४ इञ्च) मोटी; आभ्यंतरिक रचना ढीली और स्तरित (Laminate) होती है। जड़से लंबे दबे हुए, चिमड़े (Tough) **उपमूल** (Rootlets) निकले होते हैं जो कई इञ्च लंबे १/४ इञ्च व्यासके, लगभग पोले होते हैं। स्वाद फीका (Insipid) तथा निर्गंध होता है। फल गोल, मटराकृति, त्रिकोषयुक्त प्रत्येक कोषमें १-२ कड़े गोल या काले दानेकी तरह बीज होते हैं। कच्चा फल हरा, पका फल लाल या काला होता है। इसकी जड़ और फल (बीज **तुख़्मे मारचोबः, बज़्रुल् हलियून**) औषधके काममें आते हैं। बाजारमें हलियूनके नामसे इसकेछोटे सूखे फल मिलते हैं, जिनका आयात यहाँ फारससे होता है।

रासायनिक संगठन—जड़में **ऐस्पेरेगिन** (Asparagin), एक हरापन लिए पीला राल, शर्करा; निर्यास, ऐल्ब्युमेन, क्लोराइड्स, एसीटेट और फास्फेट आफ पोटास, मैलेट्स आदि और फलमें द्राक्षशर्करा एवं स्पेर्गेन्सिन (Spargancin), एक रंजन द्रव्य; बीजमें उत्पत् तेल, एक सुगंन्धित राल, शर्करा और स्पेर्गिन (Spargin) नामक एक तिक्त सत्व आदि होते हैं।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम और खुश्क।

गुणकर्म तथा उपयोग—विलयन, अवरोधोद्घाटक, मूत्रार्तवजनन, बस्तिवृक्काश्मरी-निर्हरणकर्ता, शुक्रल और वाजीकर है। विलयन, अवरोधोद्घाटक एवं प्रवर्तक होनेके कारण कतिपय कफज रोगोंको दूर करने, यकृत् एवं वृक्कके अवरोधोद्घाटन, कामलानाशन तथा बस्ति एवं वृक्कगत अश्मरीके निकालनेके लिए इसका उपयोग करते हैं। रुद्धार्तव तथा कष्टप्रसूतिको दूर करनेके लिए भी देते हैं। शुक्रल एवं वाजीकर होनेके कारण इसे नपुंसकताकी औषधिमें डालते हैं। **मात्रा**–३ ग्राम से ५ ग्राम (३ माशेसे ५ माशे) तक।

नव्यमत—मृदुसारक, मूत्रल, अवसादक और हृद्य। कहते है कि इसके सेवनसे प्रभूत मूत्रस्राव होता हैं; इसलिये शोथ,हृदय वृद्धि आदि में इसके सेवनकी अभ्यर्थना करते है। इसका ताजा रस चायके चम्मचभर देना चाहिये। स्वादके विचारसे इसका शर्बत बनाकर १-२ चायके चम्मच भर देवें। इसकी नई कोंपले खानेके काम भी आती है।

●

(६३४) हशोशतुद्दीनार

फ़ेमिली : मोरासे (Family : Moraceae)

नाम—(अ०) हशीशतुद्दीनार; (लें०) ह्यूमुलुस् लूपुलुस् (**Humulus lupulus** Linn.); (अं०) हाप्स (Hops)।

वक्तव्य—मुहीत आज़म प्रभृति यूनानी वैद्यकीय ग्रंथोंमें 'कुसूस' का सुरयानी नाम 'दीनार' लिखा है और शर्बत दीनारमें भी तुख़्मकुसूस पड़ते हैं। परंतु उपर्युक्त औषधि उससे भिन्न है। कुसूस इसका पर्याय नाम नहीं है।

उत्पत्तिस्थान—उत्तरी अमेरिका और कदाचित् उत्तरी एशिया। उत्तरपश्चिमी हिमालय, कश्मीर, देहरादून, इंग्लैंड आदि देशोंमें इसकी खेती की जाती है। केंट (Kent) प्रमुख देश है जहाँ इसकी अधिक खेती की जाती है। अन्य सभीसे इंग्लैंडमें होनेवाला श्रेष्ठतर होता है।

वर्णन—एक लता; शाखा रोंगटेदार; पत्र दंतुर, लम्बे और नुकीले जिसपर सिरायें व्यक्त होती हैं। इसके सूखे फल औषधके काममें लिए जाते हैं जो न्यूनाधिक टूटे हुए होते हैं। बिना टूटा हुआ अर्थात् समूचा, कटोरी और पँखड़ीरहित पत्रसम स्त्री-पुष्पोंकी बाली (Leafy female catkin or strobile) लगभग १ से १½ इञ्च लम्बी और ¾–१ इञ्च चौड़ी, अण्डाकार होती है, जिसमें झिल्लीदार छिलके (सेहरे) होते हैं जो पिलाई लिये हरे, अण्डाकार (Oval) और ½ इञ्च लम्बे और जालीनुमा सिराओंसे युक्त (Reticulate-veined) होते हैं। ये सेहरे (Scales) दो प्रकारके होते हैं। एक आधारपर सम (Equal), दूसरा विषम (Unequal)। इनमें पिछले सेहरे (Latter) नतोदर, आधार पर एक छोटा बीजसम फल होता है जिसके ऊपर पिलाई लिये चमकीली ग्रन्थियाँ बिखरी हुई होती हैं। स्वाद तिक्त (Valerian) सुरुचिपूर्ण, गन्ध सुगन्धमय, पुराने पुष्पोंकी बाली (Catkins) बालछड़की गन्धका स्मरण दिलाती है। जब छानकर इन तेल ग्रन्थियोंको पृथक् कर लेते हैं, तब उनको लूपूलिन (Lupulin) कहते हैं। 'हॉप्स' फलका नाम है।

रासायनिक संगठन—उत्पत् तेल, एक तिक्त सत्व, कोलीन (Choline), लूपूलिन (**Lupulin**)–फल वा हॉप्ससे पृथक् की हुई सेहरा(पुष्प)गत ग्रन्थियाँ प्रभृति। ये फल खेती द्वारा उत्पन्न पौधोंसे लिए जाते हैं।

उपयुक्त अंग—पुष्प (Strobiles)। लूपूलिनकी मात्रा–१२० से ३०० मि० ग्रा० (१रत्ती–२½ रत्ती)।

गुण-कर्म तथा उपयोग—बल्य, (सार्वदैहिक और आमाशय), वेदनाहर, मूत्रल, सुरुचिपूर्ण तिक्त, दीपन और निद्रल है। अपचन, दौर्बल्य, कृमि, वातिक अवस्था आदिमें साधारणतः अन्यान्य औषधियोंके साथ इसका उपयोग करते हैं। यह अतानी दुष्पचन (Atonic dyspepsia) में गुणकारी है। अनिद्रा और वातिक संक्षोभ (Nervous irritation) में रोगीके सिरके नीचे यदि रूईकी जगह हॉप्स (Hops) से भरी हुई तकिया रखी जाय तो प्रायः लाभ होता है। १ पाइण्ट उबाले हुए पानीमें २½ तोला हशीशतुद्दीनार डालकर बनाया हुआ फाण्ट शराबकी एक प्यालीकी मात्रामें सेवन करनेसे सार्वदैहिक दुर्बलता दूर होती और क्षोभका निवारण होता (सार्वदैहिक बल्य और अवसादक) है। हॉप्सके योग या इसके प्रधान वीर्य लूपूलिनको स्त्री और पुरुष दोनोंके कोमोन्माद, नाड़ीगतक्षोभ और प्रलाप प्रभृति रोगोंमें शामक औषधिकी भाँति देनेसे प्रायः लाभ होता है। मद्यपानकी इच्छा कभी-कभी इसके सेवनसे शांत हो जाती है। हॉप्सको औषधकी भाँति बहुत कम प्रयोगमें लेते हैं। किंतु बीयर शराब जिसमें कि हॉप्स पड़ते हैं क्षुधाभिजनन और पाचन औषधिकी भाँति विशेषतः ऐसे रोगियोंको जो रोगसे मुक्त हुए हों और दौर्बल्यके कारक भोजन पचा न सकते हों, सेवन कराते हैं, जिससे कभी-कभी बड़ा उपकार होता है। क्योंकि बलवर्धनके सिवाय इससे नींद भी खूब आने लगती है। अतएव स्वास्थ्यका सुधार अतिशीघ्र होता है।

(६३५) हाऊबेर

फ़ैमिली : कूप्रेसासे (Family : Cupressaceae)

नाम—(हिं०) हाऊबेर, हूबेर; (भा० बा०) हब्बुल् अरअर; (यू०) Brathu (D. 1. 104), आगक्युथिस; (अं०) अल् अबहुल (इ० बै०), हब्बुल् अरअर, सम्‌रतुल् अरअर, अब्‌हल, (फा०) तुख़्म रहल, समर सरोकोही; (सं०) हपुषा; (क०) पथुर; (बम्ब०) अबहल; (पं०) अबहल, हाऊबेर, पामा; (ले०) जूनिपेरी फ्रुक्टुस् (**Juniperi Fructus**); (अं०) जूनिपर बेरीज (Juniper berries)।

वक्तव्य—(१) वृक्षको लैटिनमें जूनीपेरुस् कोम्मूनिस् (**Juniperus communis** L.) कहते हैं। विदेशी भेद संभवतः **J. sabina** है। (२) बूअलीसीनाके मतसे यह शज्र‌तुल् अरअर है (कानून १/२४८), परन्तु इब्नुल्-बैतौरने इसे गलत बताया है (इ० बै १।६)। शज्र‌तुल्लाह जो साधारणतया देवदारके नामसे जाना जाता है, इसका एक भेद है (इ० बै० संचिका २, पृ० २०)।

इतिहास—यह ओषधि यूनानमें उत्पन्न होती है; अतएव प्राचीन यूनानवासियोंको इसका अवश्य ज्ञान होना चाहिए। परन्तु दीसकूरीदूसने जो दो प्रकारके आगक्युस (हाऊबेर)का उल्लेख किया है, उनमें परस्पर भेद करना कठिन है। सुतरां बुकरात किसी प्रकारके हाऊबेरको कतिपय गर्भाशयिक रोगोंमें अवश्य प्रयोग करता था। दीसकूरीदूसने इसके मूत्रार्तवजनन एवं पाचन गुणका उल्लेख किया है। इसकी भस्म कतिपय त्वग्रोगोंमें बाह्यतः भी प्रयुक्त होती थी। इब्नसीनाने सर्वथा दीसकूरीदूसका अनुकरण किया है और इस औषधिके सम्बन्धमें कुछ अधिक नहीं लिखा। यद्यपि हिमालयपर्वत पर कई प्रकारका हाऊबेर वृक्ष होता है। परंतु ज्ञात होता है कि भारतीय आर्य वैद्योंने इसका वैद्यकीय उपयोग नहीं किया। अधुना केवल हपुषातेल मूत्रजनन आदिके रूपमें यूरोपमें प्रयुक्त है।

उत्पत्तिस्थान—उत्तर-पश्चिम हिमालय, कुमाऊँ और कुर्रमकी घाटीमें समुद्रके धरातलसे ११,००० फुटकी ऊँचाईपर तथा फारसमें इसके वृक्ष होते हैं। उत्तर यूरोप और ईरानमें भी होते हैं।

वर्णन—इसका वृक्ष बड़ा होता है। इसके यह दो भेद हैं—(१) इसके पत्ते सरोके पत्तोकी तरह और (२) इसके पत्ते झाऊके पत्तेकी तरह और वृक्ष पहले भेदके वृक्षसे छोटे होते हैं। इन दोनोंका फल लगभग गोल, जंगली बेरके बराबर और लाल रंगका होता है और उसके भीतर कई बीज होते हैं। पकनेपर इसका छिलका काले रंगका हो जाता है। फलोंमें कुछ-कुछ बलसाँकी तरह सुगन्ध और मधुर, तारपीनवत् कुछ तिक्त एवं हलका चरपरा स्वाद होता है। यह फल ही औषधके काममें आता है जिसे *अबहल* कहते हैं। यद्यपि भारतवर्षमें कई जातिके हूबेरके वृक्ष होते हैं; तथापि भारतीय बाजारोंमें मिलनेवाला हूबेर सर्वथा बाहरसे ही आता है।

रासायनिक संगठन—फलमें एक उत्पत् तेल (**रोग़न अरअर**—Juniper oil), ०·२५% से ३·२४%; द्राक्षशर्करा ३०%, राल १०%, एक अस्फटिकीम सत्व जूनीपेरिन (Juniperin), वसा, मोम, प्रोभूजिद ४ प्रतिशत, मैलेट्स, टार्मिक एसिड (Tormic acid) और शुक्ताम्ल (Acetic acid) आदि उपादान होते हैं।

उपयुक्त अंग—फल (जिसे साधारणतया बेरी कहते हैं), फलोत्थ तेल (Oil Juniper), और काष्ठ।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम और खुश्क। आयुर्वेदीय मतसे उष्णवीर्य (रा० नि०; कै० नि०)।

गुण-कर्म तथा उपयोग—उग्र विलयन, उपशोषण, लेखन, दीपन, वातानुलोमन, तारल्यजनन, प्रमाथी, हलका संग्राही, प्रबल प्रवर्तक और विशेषकर मूत्रार्तवजनन है। श्वयथुविलयन होनेके कारण कतिपय प्रकारके शोथोंमें यह लेपके रूपमें प्रयुक्त होता है। लेखन एवं रूक्षण होनेके कारण गोश्तखोरा, परिसर्पी व्रणों तथा चिरज दुर्गन्धयुक्त व्रणोमें यह अवचूर्णन एवं तिलाके रूपमें उपयोग किया जाता है। लेखन होनेके कारण यह त्वचाकी

श्यामता एवं मलादिको शुद्ध करता है। श्वयथुविलयन, तारल्यजनन और प्रमाथी होनेके कारण यह पक्षवध, वातनाड़ीघात और कष्टश्वासमें उपकारक है। दीपन और वातानुलोमन होनेके कारण यह पेटकी गुड़गुड़ाहट और आमाशयके रोगोंमें प्रयुक्त होता है। इन गुणोंके साथ इसमें सूक्ष्म कब्ज भी है। अतएव यह संग्रहणीमें लाभदायक है। यह प्रवर्तक है। अतएव बस्ति एवं वृक्कके रोगोंमें लाभदायक है तथा मूत्रार्तवजननार्थ उपयोग किया जाता है। मूत्रजनन कर्ममें यह इतना शक्तिशाली है कि इसके निरन्तर पुष्कल उपयोगसे रक्तमूत्र हो जाता है। गर्भवतीको इसका निरन्तर दीर्घकाल तक उपयोग करानेसे गर्भपात हो जाता है। तारल्यजनन और प्रमाथी होनेसे इसको तेलमें पकाकर और छानकर गुनगुना कानमें टपकानेसे ऊँचा सुनने (सुक़्लसमाअत)में लाभ होता है। संक्षोभसहित तीक्ष्ण होनेसे यह उदरज कृमियोंको मार डालता एवं उनका निर्हरण करता है। **अहितकर**–गर्भशातक है। **प्रतिनिधि**–आर्तवजननमें सुदाबकी पत्ती। **मात्रा**–३ ग्राम से ५ ग्राम (३ माशे से ५ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—हाऊबेर कटु, तिक्त, कषाय, उष्णवीर्य, गुरु, दीपन तथा वायु, कफ, प्रदर, मलावरोध, शूल, गुल्म, अर्श और ग्रहणीको दूर करनेवाला है। (रा० नि०; कै० नि०)।

नव्यमत—हाऊबेर वातनाशक, उत्तम उत्तेजक और मूत्रजनन है। इसकी क्रिया साक्षात् वृक्कपर होती है और इससे मूत्रकी राशि बढ़ती है। यकृदुदर, जलोदर, हृदयोदर, पुराना सूजाक, श्वेतप्रदर और उदरशूलमें इसका प्रयोग करते हैं।

•

(६३६) हाथीसुंडी

फ़ैमिली : बोराजिनासे (Family Boraginaceae)

नाम—(हिं०) हाथीसुँडी; (हिं०; बं०) हाथीसूँड; (सं०) हस्तिशुण्डा(ण्डिका), (–डि); (गु०) हाथीसुंढ; (म०; बम्ब०) भुरुंडी; (लें०) **हेलिओट्रोपिडम् ईंडिकुम् (Heliotropium indicum** Linn.); (अं०) इंडियन टर्न-सोल (Indian Turn-sole)।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष विशेषकर आर्द्र भूमि में।

वर्णन—इसके खुर-खुर क्षुप होते हैं। पत्तियाँ लट्वाकार या लट्वाकार-आयताकार, २ इंचसे ४ इञ्च लम्बी; पुष्पमंजरी हाथीसूँड़की तरह टेढ़ी रहती हैं। पुष्प पंक्तियोंमें और हलके जामुनी रंगके होते हैं। स्वाद चरपरा।

उपयुक्त अंग—क्षुप और पत्र।

रासायनिक संगठन—इसमें कषायिन, एक सैंद्रियक अम्ल और एक ऐल्केलॉइड। **मात्रा**–स्वरस ½ से १ तोला।

प्रकृति—उष्ण।

गुण-कर्म तथा उपयोग—संग्राहक, वेदनास्थापन, व्रणशोधन एवं रोपण; (क्षुप) मूत्रजनन है। फोड़े-फुन्सी (Boils), व्रण, क्षत और कीट एवं सरीसृपदंशमें इसकी पत्तियोंका उपयोग करते हैं। ज्वर छुड़ानेके लिए २ से १० माशे तक पत्रका चूर्ण दिया जाता है। मसूढ़ोंकी सूजन या छाले और मुँहके ऊपरकी फुंसियाँ मिटानेके लिए इसके पत्तोंके रसका लेप करते हैं। इसका पत्रस्वरस लगानेसे शीघ्र व्रणका शोधन रोपण होता है। इसके पत्तोंके रसको रेंड़ीके तेलमें डाल औटाकर बिच्छूके दंशस्थानपर लगानेसे विष उतर जाता है। पागल कुत्तेका विष उतारनेके लिए इस तेलका प्रयोग असीम गुणकारी सिद्ध होता है।

आयुर्वेदीय मत—हाथीशुण्डी कटु, उष्णवीर्य तथा सन्निपातज्वरनाशक है। (रा० नि०)।

नव्यमत—हाथीसुण्डीका स्थानीय (प्रलेप) वेदनाहर है। इसकी पत्तीका स्वरस रेंडीके तेलके साथ पकाकर लगानेसे बिच्छूके दंशकी पीड़ा और पागल कुत्तेके काटनेसे हुआ क्षत आराम होता है। पीड़ायुक्त मसूढ़ेकी सूजन और मुखगत पिम्पलमें इसकी पत्तियोंका उपयोग करनेसे उपकार होता है। (आर० एन्० खोरी–खंड २, पृ० ४२२)।

◆

(६३७) हालिम, हालों

फ़ैमिली : क्रूसीफ़ेरी (Family : Cruciferae)

नाम—(हिं०) हालिम, हालों, चंसुर, चंद्रसु(सू)र; (यू०) कार्डामोन Kordamon (D.2.186); (अ०) अल्हुर्फ़त (इ० बै०), हुर्फबावली, मक़लियासा, हब्बुर्रशाद; (फा०) तुख़्म इस्पंदान, सिपंदान, तुख़्म सिपंदान, तुख़्म तु(न)रहतेज़क; (सं०) चन्द्रशूर, अहालिम; (क०) तरिबुद; (बं०) हालिम; (म०) अहालींव; (गु०) अशेलियो; (पं०) हालों, हालिया; (मा०) असालियो; (सिंध) आहियों; (का०) अलवि; (ले०) **लेपीडिउम् साटीवुम्** (**Lepidium sativum**, L.); (अं०) कॉमन क्रेस (Common Cress), वॉटर या गार्डेन क्रेस (Water or Garden Cress)।

वक्तव्य—कोई-कोई भुने हुए हालों (हुर्फ़)को '**मुक़लयासा**' कहते हैं। (इ० बै०, ४/१६३)।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्षमें इसकी खेती की जाती है। और इसके बीज भारतके सभी बड़े बाजारोंमें बिकते हैं। '**अस्सालिअ**' नामसे इसके विदेशी बीज बम्बईमें फारससे आते हैं।

वर्णन—यह १ फुटसे १$\frac{१}{२}$ फुँट ऊँचे क्षुपके प्रसिद्ध बीज हैं जो औषधके काममें आते हैं; फूल सफेद गुलाबी होता है। बीज छोटे, लाल या ललाई लिए भूरे वा पिलाई लिए सफेद, अंडाकार या लंबगोल (आयताकार) होते हैं। स्वाद लबाबी, पिच्छिलतायुक्त और हलका चरपरा; गंध हलकी, विशेष प्रकारकी एवं रुचिकर होती है। मात्र 'हुर्फ़' या 'हालो' नामसे ये बीज ही अभिप्रेत होते हैं। पानीमें भिगोनेसे इसमें लबाब (पिच्छा) उत्पन्न होता है।

रासायनिक संगठन–बीजमें एक उत्पत् सुगंधित तेल, गुणोत्पादक वीर्य एवं वसामय तेल तथा एक कार्मुक वीर्य होता है। पञ्चाङ्गमें आयोडीन, लोह, फॉस्फेट्स, पोटास और अन्य लवण, एक तिक्त सत्व, जल और काफी गंधक होती है।

कल्प तथा योग—इसके भुने हुये बीजको सुरयानी (Syrian) भाषामें '**मक़्लियासा**' कहते हैं। **सफ़ूफ़ मक़्लियासा**में यह पड़ता है, इसलिये इसे उक्त नामसे अभिधानित किया जाता है।

प्रकृति—तीसरे दर्जेमें गरम और खुश्क।

गुण कर्म—श्लेष्मनिस्सारक, क्षुधाजनक, मूत्रार्तवजनन, उदरकृमिनाशन, गर्भानिःसारक, लेखन, शोणितोत्क्लेशक, श्वयथुविलयन और विशेषकर वाजीकर हैं। **उपयोग**—श्लेष्मनिस्सारक होनेके कारण हालों (तुख़्मे हुर्फ़)को श्वास और कासमें देते हैं तथा अन्त्र एवं आमाशयके रोगों और कामावसाद (जोफ़बाह)में देते हैं। किलास, झाईं और छीप आदिको नष्ट करने तथा कतिपय सूजनोंको उतारनेके लिए इसका तिला या लेप लगाते हैं। ये पुष्टिकर माने जाते हैं। प्रवाहिका, ग्रहणी और चर्मरोगोंमें भी इनका व्यवहार होता है। **अहितकर**–मूत्रपिंडोंको। **निवारण**–शर्करा और खीरा-ककड़ीके बीज। **प्रतिनिधि**–राई। **मात्रा**–२ ग्रामसे ३ ग्राम (२ माशेसे ३ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—चन्द्रशूर बल्य, वाजीकर, पौष्टिक, स्तन्यवर्धक तथा हिक्का, वातविकार, वातशूल, वातगुल्म, कफ और अतिसारका नाश करनेवाला है। (शो० नि०; भा० प्र०)।

नव्यमत—हिक्कामें चन्द्रशूरका फाँट देते हैं। चंद्रशूरके बीजोंकी यवागू बनाकर प्रसूता स्त्रियोंको देते हैं। इसके बीजोंको दूधमें पकाकर पीनेसे कमरका दर्द आराम होता है। कटि और सन्धिस्थानके दर्दमें इसका लेप करते हैं। (औ० सं०)।

(६३८) हाशा

फ़ैमिली : लाबिआटी (Family : Labiatae)

नाम—(हिं०; भा० बाजा०) **हाशा**, जंगली पुदीना; (यू०) थुमोस Thumos (D. 3. 38), एरपुल्लोस, एर्पिलोस (Erpylos); (अ०) अल्हाशा, हास्सः, हाशा, अल् मामून, सातरुल्हमीर, सनोबरुल् हिमार, नम्माम; (फा०) पूदनःकोही; (पं०) माशो; (बम्ब०) इपान; (ले०) **थीमुस् सेर्पील्लुम् Thymus serpyllum** Linn.); (अं०) थाइम (Thyme), वॉइल्ड थाइम (Wild Thyme), मदर ऑफ थाइम् (Mother of Thyme), सर्पिल्लम् (Serpyllum)। वक्तव्य—लेटिन 'थीमुस' यूनानी 'थूमोस' से जिसका अरबी रूपान्तर 'सूमस' है और 'थुमोस' स्वयं 'तवाद' (= धूनी देना, धूपन)से व्युत्पन्न है। प्राचीन यूनानी हाशाका उपयोग धूनीमें करते थे। इसीलिए इसका उक्त नाम पड़ा। अत्यन्त तीक्ष्ण गंध होनेसे इसकी गंध छिपायी नहीं जा सकती, इसलिए इसको **नम्माम** कहते हैं। किसी-किसीने नम्माम को 'हाशाका एक भेद' लिखा है।

इतिहास—'थूमोस (Thumos)' के नामसे **दीसकूरीदूस** (D. 3. 38)ने 'पूदनःकोही' अर्थात् 'हाशा'का वर्णन किया है। यद्यपि कतिपय प्राचीन चिकित्साविशारदोंमें इसके स्वरूप वर्णनमें मतभिन्नता पायी जाती है; तथापि शैखुर्रईसने हाशाको इसका पर्याय लिखा है और उसके वही गुणकर्म लिखे हैं जो दीसकूरीदूसने थूमोसके लिखे हैं। हाजी ज़ीनुल् अत्तारने इसके गुणकर्म वर्णनमें शैखका अनुकरण किया है। हाशाके नामसे मख़्ज़नुल्अदविया और मुहीतआज़ममें इसका वर्णन किया है तथा इसकी यूनानी संज्ञा 'थूमोस (Thumos)' लिखी है। प्राचीन यूनानी चिकित्सक इसके कोथप्रतिबंधक गुणसे अभिज्ञ थे। इसीलिए वह इसको धूपनके रूपमें प्रयोग करते थे।

वर्णन—यह लगभग एक बित्ता ऊँचा, पहाड़ी पुदीनेकी जातिका एक छोटा, सुवासित और कोमल क्षुप है। शाखायें पुष्कल बारीक-बारीक होती हैं और उनपर छोटे-छोटे अवृंत और लम्बगोल **पत्र** लगते हैं जिनपर तेलसे भरी हुई ग्रंथियाँ और रूईके समान बारीक रोआँ होता है। **फूल** अनेक दलबद्ध छोटा-सा गोल ललाई वा बनफ़शई लिए (किरमिजी) और बीज राईसे छोटे होते हैं।

उपयुक्त अंग—पंचांग।

रासायनिक संगठन—इसमें एक मनोहर सुगंधित उत्पत् तेल, कषाय द्रव्य और निर्यास होता है। इसके वर्तमान उत्पत् तेलसे थोड़ा थाइमोल (थाइम कैम्फर) प्राप्त होता है; किंतु यूरोपमें बहुधा यह **थाइमस वुल्गारिस (Thymus vulgaris** Linn.)से प्राप्त किया जाता है, जिसमें यह विपुल होता है। एशिया और भारतवर्षमें यह अजवायन और अजमोदेसे प्राप्त किया जाता है। इसलिए थाइमोलको हिन्दुस्तानमें **अजवायनका फूल या अजवायनका** (सत) कहते हैं।

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें **उष्ण** और तीसरेमें **रूक्ष**।

गुण-कर्म तथा उपयोग—त्वचाकोथप्रतिबन्धक होनेसे हाशा प्रायशः त्वचाके रोगोंमें कोथप्रतिबन्धक रूपमें प्रयुक्त होता है। इसके अतिरिक्त यह स्वेदन कर्म करता है, तथा जमे हुए रक्तको द्रवीभूत करता और सूजन उतारता है। **मूत्रसस्थान** संभवतः मूत्रपिंडों तथा गर्भाशयपर इसका उत्तेजक प्रभाव होता है। अतएव यह मूत्र तथा आर्तवका प्रवर्तन करता है। अधिकमात्रामें सेवन करनेसे यह गर्भ तथा अपराका निर्हरण करता है। **श्वासोच्छ्वास संस्थान**-पर भी इसका उत्तेजक प्रभाव होता है तथा यह श्लेष्मनिर्हरण कर्म करता है। **आहार-संस्थान**-समस्त आहारावयवोंमें यह उत्तेजना पैदा करता है, वायुका उत्सर्ग कर देता है, अन्त्रमें उत्तेजना पैदा करके विरेक लाता है, तथा उदरजकृमि विशेषकर अंकुशमुखकृमिको मार डालता है। इसका उक्त कर्म अत्यन्त तीव्र होता है। अस्तु, हाशा एक कृमिघ्न औषधि है। नमक और सिरकेके साथ पीनेसे हाशा विरेक लाता है और उदरज कृमिको नष्ट करके उत्सर्गित करता है। शहदमें मिलाकर चाटनेसे या गरम पानीके साथ सेवन करनेसे पक्षवध, अर्दित, विस्मृति, अपतानक और अपस्मारमें लाभ करता है। श्वास और कासमें कफको उत्सर्गित करके लाभ पहुँचाता है। यह शूल तथा उदरानाहको नष्ट करता है एवं यकृदामाशयके दौर्बल्यको दूर करता तथा पाचनशक्तिकी सहायता करता है। मूत्रार्तवजनन ओर अपरानिर्हरणके लिए इसका क्वाथ मधु मिलाकर पिलाते हैं। सूजन उतारने, जमे हुए रक्तको पिघलाने तथा न्यच्छ (नमश) और चर्मकील (सालील)को नष्ट करनेके लिए इसे सिरकेमें पीसकर लगाते हैं। कोथप्रतिवंधक होनेके कारण दद्रु, गंज, खालित्य, चम्बल एवं पामा जैसे रोगोंमें इसको तिलके तेलमें पकाकर लगानेसे उपकार होता है। इसको पास रखनेसे इसकी गन्धसे मच्छर भाग जाते हैं। यह विशेषतः विरेचन, कृमिनाशन, कोष्ठांगोंको बलप्रद है तथा कफरोगोंमें गुणदायक है। **अहितकर**-फुफ्फुसोंको। निवारण-नाना और नीले वंशलोचन। प्रतिनिधि-अफ़्तीमून और सातर। मात्रा—५ ग्रामसे ७ ग्राम (५ माशेसे ७ माशे) तक।

●

(६३९) हिरनखुरी

फ़ैमिली : कॉन्वाल्वुलासे (Family : Convolvulaceae)

नाम—(हिं०) हिरनखुरी, हिरनपद्र(दी), सेवटा (-चुनार), सामवेल (-साधु); (गु०) नारी; (म०) हरनपग, हिरणपग, चांदवेल; (पं०) लहली, बँउड़ी; (सिं०) हिरणपग; (ले०) कॉन्वॉल्वुलस् आर्वेन्सिस (**Convolvulus arvensis** Linn.); (अं०) स्मॉल बाइंड-वीड (Small Bind-weed) दे० 'सकमूनियां'।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्षमें प्रायः जोते-बोये खेतोंमें विशेषकर पंजाब और उत्तरप्रदेशमें होती है।

वर्णन—यह एक छोटी लता है जिसकी शाखाएँ धागेकी तरह बारीक होती हैं और अपने पासकी वस्तुपर लिपट जाती हैं। इसके तोड़नेपर सफेद दूधकी बूंद निकलता है। इसके पत्ते हिरनके खुरसे मिलते-जुलते और फूल कटोरीनुमा गुलाबी लिए सफेद होते हैं। इसके हरएक अंगका स्वाद तिक्त होता है।

उपयुक्त अंग—पंचांग।

रासायनिक संगठन—इसमें कन्वॉल्वुलिन (Convolvulin) नामक सत्व होता है। पौधेमें तीव्र विरेचनगुणवाला एक रालदार पदार्थ भी होता है जो सूखी हुई जड़में ४·९% होती है।

प्रकृति—गरम और खुश्क (मतांतरसे गरम और तर) है।

गुणकर्म तथा उपयोग—रक्तशोधक तथा व्रणशोथपाचन एवं विलयन है। रक्तशोधनके निमित्त हिरनखुरीको कालीमिर्चके कुछ दानोंके साथ घोटकर या उसके फांटका निथरा हुआ पानी (आबे जुलाल) लेकर खर्जू, कुष्ठ, फिरङ्ग आदि रक्तविकारजन्य रोगोंमें पिलाते हैं। कोई-कोई सूजाकमें भी इसका उपयोग कराते हैं। सूजनपर इसे पीसकर लेप करते हैं। इससे सूजन उतर जाती है या इसके निरन्तर लेप करनेसे पककर फूट जाती है। मात्रा–११ से १२ ग्राम (१ तोला)।

●

(६४०) हिरबी (हिरवी)

फ़ैमिली : गुट्टीफ़ेरे (Family : Guttiferae)

नाम—(क०; हिं०) हिरबी; (सं०) हियावली, हिमावली, हितावली। (मूल) स्वर्णक्षीरीमूल; (ले०) गार्सीनिआ मोरेल्ला (**Garcinia morella** Desv. (–the **root** of)।

वक्तव्य—वृक्षको भी हिरबी कहते हैं। वि० दे० "उसारेरेवन्द"।

वर्णन—मीरबहाउद्दीनके मतसे यह कश्मीरके पर्वतोंमें बहुतायतसे होनेवाले एक भारतीय वृक्षकी जड़ है जिससे एक प्रकारकी 'सकमूनिया' प्राप्त होती है। इसके दो भेद होते हैं–(१) कालाई लिए और (२) सफेद और लम्बी। (साहब खुलासतुल्तजारुब)।

प्रकृति—काली चौथे, और सफेद तीसरे दर्जेमें गरम एवं खुश्क है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—काली उग्र विष है। आधे चनेके बराबर भी बहुतसे क़ै एवं दस्त लाकर मार डालती है। इसके खानेसे जलन, पेचिस और पेटमें गर्मी उत्पन्न हो जाती है। हाथ-पैरमें आक्षेप हो जाता है। इसका उपचार बछनागविषके समान करें। इसका प्रयोग वर्जित है। सफेद भेद भी छः रत्तीकी मात्रामें सेवन करनेसे मार डालती है और इससे भी काली जैसे ही उपद्रव हो जाते हैं। किसी प्रकारके विषमें इसे देनेसे वह विरेक द्वारा निकल जाता है। समस्त विषलक्षणोंको अपने प्रभावसे नष्ट करती है। इसको उखाड़ते समय चेहरेको इसके बाष्प लगनेसे बचाना चाहिये, क्योंकि इससे तुरन्त सूजन हो जाती है। (मख्जन)। मात्रा–०·८ ग्रामसे १·७ ग्राम (६ रत्ती से १$\frac{३}{४}$ माशे) तक।

आयुर्वेदीय मत—स्वर्णक्षीरी रसमें तिक्त, शीतवीर्य, भेदन, रेचन, व्रणशोधन तथा कृमि, पित्त, कफ, मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी, शोथ, दाह, ज्वर, कुष्ठ, विष, रक्तविकार और आनाहका नाश करनेवाली है। (च० सू० अ० ४; सु० सू० अ० ३८, ३९, चि० अ० ८; रा० नि०; भा० प्र०)।

●

(६४१) हींग और अंजुदान

फ़ैमिली : ऊम्बेल्लीफेरी (Family : Umbelliferae)

नाम—(हिं०) हींग; (अ०) हिल्तीत; (फा०) अंग़ोज़ः, अंग़ोज़; अंगज़द, अंगुश्तगंद; (सं०) हिंगु, रामठ; (गु०; म०; बम्ब०) हिंग; (गु०) हींग, वघारणी; (बं०) हिंगु, हिङ्; (ले०) आस्साफीटीडा (Assafoetida); (अं०) ऐसाफेटिडा (Asafetida), डेविल्स डंग (Devil's Dung)।

इतिहास—यह औषधि अति प्राचीन है। सुतरां प्राचीन यूनानी और रूमी चिकित्सक यथा सावफरिस्तुस, दीसकूरीदूस और प्लाइनी आदिने 'सल्फियम्' नामसे इसका उल्लेख किया है। उन्होंने दो प्रकारके हींगका उल्लेख किया है—(१) एक वह जो सीरियामें उत्पन्न होती है; और (२) जो एशियामें उत्पन्न होती है। भारतीय आर्यवैद्य भी इसका प्रयोग अतिप्राचीन कालसे करते थे। कारण प्राचीन सुश्रुत, काश्यप, चरक आदि संहिताग्रन्थोंमें इसका उल्लेख मिलता है।

उत्पत्तिस्थान—ईरान, तुर्किस्तान, पश्चिमी अफगानिस्तान और पंजाब। **मण्डी**—क्वेटा, डेरा इस्माइल खां, मुलतान और पेशावर।

वर्णन—यह अंजुदान या हींगके क्षुप फेरुला आल्लिआसेआ (**Ferula alliacea** Boiss.), फे० आस्सा-फेटिडा (**F. Assafoetida** L.), फे० नार्थेक्स (**F. narthex** Boiss.)का जमाया हुआ दूध या तैलीय रालदार गोंद (Oleo-gum-resin) होता है जो डलियोंके रूपमें और गहरा पीला और कभी-कभी हलका गुलाबी होता है। इसमें लहसुन जैसी (Alliaceous) तीक्ष्ण गन्ध होती है। स्वाद तिक्त एवं खराब होता है। शोरेके तेजाबके सम्पर्कसे यह हरा रंग देता है। हींगके फलको जिसे व्यवहारमें बीज कहते हैं, अंजुदान कहते हैं। फारसी 'अंगदान' से अरबी 'अञ्जुदान' बनाया गया है। दियासलाईसे जलानेसे जो सम्पूर्ण जल जाय उसे शुद्ध हींग समझकर काममें ले सकते हैं।

भेद—तय्यब (सुगन्धित) और मुन्तिन (दुर्गन्धित) भेदसे हींग दो प्रकारकी होती है :—(१) हिल्तीत तय्यब (अंगोज़ये खुश्बू—सुगन्धित उत्तम हींग) सफेद अंजुदान (Ferula alliacea Boiss)से प्राप्त होती है और इसको हीराहींग कहते हैं। शुद्ध खालिस हींगको त(ता)लाब हींग या मुलतानी हींग कहते हैं। इसीका वर्णन यहाँ किया गया है। औषधमें व्यवहारके लिए यही सर्वोत्तम समझी जाती है। (२) हिल्तीत मुन्तिन (दुर्गन्धित हींग-अंगोज़ये बदबू) काले अंजुदान या कमात (**F. foetida** Regel.)से प्राप्त होती है। इसको केवल हींग या हींगड़ा कहते हैं। यह दोनों गुणकर्मादिमें प्रायः समान हैं (विस्तृत विवरणके लिए दे० उम्दतुल् मुह्ताज एवं मुहीत आज़म)।

रासायनिक संगठन—इसमें राल ४०% से ६४%, गोंद २५%, उत्पत् तेल ६·१७%, पाइनीन (Pinene), ऑर्गन डाइसल्फाइड (Organ di-sulphide) और अम्बेलिफेरोन; प्रथममें उत्पत्तेलके अतिरिक्त फेरुलिक एसिड, ऑर्गेनिक गन्धक योग आदि होते हैं।

कल्प तथा योग—हब्ब हिल्तीत।

हींग—

प्रकृति—चौथे दर्जेमें गरम और दूसरेमें खुश्क है। आयुर्वेदके मतसे भी उष्णवीर्य (च०; सु०) है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—वातानुलोमन, आक्षेपहर, कोथप्रतिबंधक, श्लेष्मनिःसारक, मूत्रार्तवजनन और शोणितोत्क्लेशक, विशेषकर वातानुलोमन, वातनाड्युत्तेजक और कफोत्सारि है। वातानुलोमन होनेके कारण उदर-शूल एवं उदरानाहको दूर करनेके लिए वस्ति, तिला एवं भक्षणीय औषधके रूपमें हींगका उपयोग किया जाता है। आक्षेपहर होनेके कारण यह आक्षेपयुक्त रोगों विशेषकर अपतंत्रक व्याधिमें प्रयुक्त होती है। यह वातनाड़ियोंके भीतर उत्तेजना पैदा करती है; इसलिए ध्वजोच्छ्राय करनेके कारण वाजीकर भी है तथा शोणितोत्क्लेशक होनेके कारण यह तिलाओंमें डाली जाती है। यह उपस्थेन्द्रियमें शक्ति उत्पन्न करती है। श्लेश्मनिःसारक होनेके कारण या कास एवं कफज कृच्छ्रश्वासमें प्रयुक्त की जाती है। यह जलोदरमें भी गुणदायक है। **अहितकर**—यकृत्, मस्तिष्क और उष्ण प्रकृतियोंके लिए। **निवारण**—दोनों अनार, कतीरा, अनीसूँ, सेब और चन्दन। **मात्रा**—१ माशा।

आयुवदीय मत—हींग कटु, उष्णवीर्य, स्निग्ध, तीक्ष्ण, सर, लघु, दीपन, पाचन, रोचन, हृद्य, संज्ञा-स्थापन, छेदन तथा वात, कफ, विबन्ध, शूल, आध्मान, अजीर्ण, कृमि, गुल्म और उदररोगका नाश करनेवाला है। (च० सू० अ० ४, २५, २७; सु० सू० अ० ३८, ४६; रा० नि०)।

नव्यमत—हींग दीपन, पाचन, आमाशय-आँतों और गर्भाशयको उत्तेजित करनेवाला, वायुनाशक, आनुलोमिक, कृमिघ्न, छेदनीय, कफहर, कफदुर्गन्धहर, नाड़ीव्यूहके लिए प्रबल उत्तेजक, संकोचविकासप्रतिबन्धक (आक्षेपहर) और विषमज्वरहर है। हींगमें स्थित उड़नेवाला तेल श्वासनलिका, त्वचा और वृक्कके द्वारा शरीरसे निःसरित होता है। इससे कफ पतला होता तथा कफकी दुर्गन्ध नष्ट होती है और कफस्थित रोगजन्तु नष्ट होते हैं। फुफ्फुसके रोगोंमें हींग बहुत गुणकारक है। प्रौढ़ मनुष्यके जीर्णश्वासनलिकाशोथ, दमा और कुकुरखाँसीमें और बालकोंके फुफ्फुसशोफ, श्वासनलिकाशोथ अथवा शिशुओंके फुफ्फुसके रोग आराम होनेके बाद जो सूखी खाँसी आती है उसमें इसे देते हैं। फुफ्फुसके रोगमें इसे पानीमें मिलाकर देते हैं। इससे कफ पतला होता है और पुष्कल उत्पन्न होता हो तो वह कम होता है। पेटका अफारा और दर्द, कब्ज, आमाशय और आँतोंकी शिथिलता, कुपचन और कृमिरोगमें भी इसे देते हैं। शीतज्वरमें यह बड़ा उपयोगी है। ज्वरमें सन्निपातके लक्षण दीखते ही हिंगुकर्पूरवटिका (हींग १ भाग, कपूर १ भाग मिलाकर दो रत्तीकी गोली बनावें। इसमें १/८ भाग कस्तूरी मिलानेसे विशेष लाभ होता है।) देनी चाहिए। इससे नाड़ीकी गति सुधरती है और हाथ-पाँवका कम्प, कपड़े फेंकना, उठभागना, प्रलाप आदि सान्निपातिक लक्षण कम होते हैं। हृद्रोगमें इसका उत्तम उपयोग होता है। हृदयकी धड़कन, हृदयमें पीड़ा होना, जी घबराना—इसमें हिङ्गु कपूरवटिका देते हैं। हींगसे गर्भाशयका संकोच होकर ऋतु साफ होता है और पेटका दर्द कम होता है। प्रसूतास्त्रीको इसका उपयोग कराना उत्तम है। इसके खिलानेसे नारू भरता है। पेटके रोगोंमें हींगको घीमें भूनकर और फुफ्फुसके रोगोंमें कच्चा देना चाहिए। (औ० सं०)।

अञ्जुदान (हिंगुबीज)

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें गरम और खुश्क।

गुणकर्म तथा उपयोग—श्वयथुविलयन, वातानुलोमन, दीपन, मूत्रार्तवजनन, वाजीकर एवं मूत्रल है। अंजुदानको मस्तिष्क और वातव्याधियों जैसे–अर्दित, पक्षवध, विस्मृति आदिमें उपयोग करते हैं। यह आमाशय और पाचनकी शक्ति देने, वायुका उत्सर्ग करने तथा मूत्रार्तवजननके लिए भी प्रयुक्त होता है। कफज ज्वरों, जलोदर और कामलाके लिए भी इसका उपयोग करते हैं। नपुंसकतामें इसे उपयुक्त औषधियोंके साथ खिलाते हैं। **अहितकर**–बस्तिको। **निवारण**–खरबूजेके बीज। **प्रतिनिधि**–हींग। **मात्रा**–२ ग्रामसे ३ ग्राम (२ माशेसे ३ माशे)।

●

(६४२) हुलहुल

फैमिली : काप्पारीडासे (Family : Capparidaceae)

नाम—(हिं०) हुरहुर, हुलहुल; (बं०) हुरहुरिया; (पं०) बुगरा; (को०) चमनी; (म०; बम्ब०) तिलवण; (गु०) तलवणी; (मा०) बगरो; (मल०) आर्यबाल, कार्वेल; (तेल०) कुक्कवा (नेलवा), मिटम; (ता०) कडुगु नायवेलै; (का०) काडुसारिवे; (सिध०) किनीबुटी; श्वेतपुष्पा; (ले०) गीनान्ड्राप्सिस पेन्टाफील्ला **Gynandropsis pentaphylla** DC. (पर्याय–क्लीओम् पेन्टाफील्ला (*Cleome pentaphylla* Linn.); (अं०) क्लीओम (Cleome); पीतपुष्पा–क्लीओम् विस्कोजा (**Cleome viscosa** Linn.); (अं०) स्टिकी क्लीओम (Sticky Cleome), डॉग मस्टर्ड (Dog Mustard); नीलपुष्पा–क्लीओम् मोनोफील्ला (**Cleome monophylla** Linn.)।

वक्तव्य—इसे यूनानियोंका बिन्ताफलुन (दे०) मानना भ्रामक है। इसके शास्त्रीय नामके सम्बन्धमें मतभिन्नता पायी जाती है। इसकी पत्तियाँ पर्णनालपर सूर्यके साथ घूमती रहती हैं। इसलिए कुछ लोग इसे आदित्य-

मक्का भी कहते हैं । गुजराती और मराठी नाम तलवण(णी) और त(ति) लवण इसके तिलपर्णी होनेका संदेह पैदा करते हैं । वंगीय वैद्य इसे सुवर्चला मानते हैं । श्री आचार्य यादवजीने इसे अजगन्धा माना है ।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्षके उष्ण प्रदेश ।

वर्णन—एक तीव्र दुर्गन्धयुक्त, १ से ३ फुट (१-१॥ हाथ) ऊँचा क्षुप जो वर्षाऋतुमें होता है । काण्ड और शाखा रोमश; पत्तियाँ सपत्रक पाणिवत्; पत्रक प्रायः पाँच, अभिलट्वाकार ग्रंथिल रोमश, पत्तियाँ मसलनेसे उनमें से उग्रगन्ध आती है, पुष्पश्वेत (या बैंगनी) और फलियाँ लम्बी होती हैं । बीज राईके दानेके समान होता है । पीले फूलवालीमें प्रायः नीचे पाँच दलवाले और ऊपर तीन दलवाले संयुक्त पर्ण और फूल पीलेहोते हैं । इसकी एक अन्य जाति होती है जिसके पर्ण अपत्रक और पुष्प बैंगनी होते हैं । ये दोनों जातियाँ प्रान्तमें सर्वत्र मिलती हैं ।

उपयुक्त अंग—क्षुप, पत्र, बीज और मूल ।

रासायनिक संगठन—श्वेतमें उड़नेवाला तेल (Essen. oil) बीजमें क्लीओमिन (Cleomin) नामक वीर्य होता है । पीले हुरहुरके बीजमें विस्कोसिक एसिड (Viscosic acid) ०·१% और विस्कोसिन (Viscosin) ०·०४% ये दो वीर्य होते हैं ।

प्रकृति—उष्ण एवं रूक्ष ।

गुण-कर्म तथा उपयोग—तीनों प्रकारके हुरहुरके बीजकी क्रिया राईके समान होती है । ये स्वेदजनन, उत्तेजक, कोष्ठवातप्रशमन, दाहजनन, शोणितोत्क्लेशक, दीपन-पाचन और कृमिघ्न हैं । कर्णशूल और पूतिकर्णमें पत्र-कल्क और स्वरससे पकाया हुआ तेल कानमें डालते हैं । १॥ माशा से ३ माशा हुलहुलके बीजका चूर्ण खिलानेसे गोल(गण्डूपद)कृमि निकलते हैं । मूर्छितकी संज्ञानयनके लिए बैंगनी फूलवाले हुरहुरकी जड़के चूर्णको रोगीके होंठों पर लगाते हैं ।

नव्यमत—हुलहुलके बीजकी क्रिया राईके समान होती है । यह स्वेदजनन, उत्तेजक, कोष्ठवातप्रशमन, दाहजनन शोणितोत्क्लेशक, दीपन-पाचन और कृमिघ्न है । कर्णशूल और पूतिकर्णमें पत्रकल्क और स्वरससे पकाया हुआ तेल कानमें डालते हैं । १॥ से ३ माशा इसके बीजोंका चूर्ण खिलानेसे गोल (गण्डूपद) कृमि निकलते हैं । (औ० सं०) ।

(६४३) हुस्नयूसुफ

फ़ैमिली : डिआटोमासे (Family : Diatomaceae)

नाम—(हिं०) किर्मली (किल्मली)के बीज; (अ०) हाशीश; (फा०) हुस्नयूसुफ़; (उ०) तुख़्म किर्मली (किल्मली) ।

उत्पत्तिस्थान—कश्मीरी झीलोंमें तैरते हुए पाये जाते हैं, ऐसा डीमक महोदयका मत है ।

वर्णन—ये पोस्तेके दानेसे बहुत छोटे, सफेद एवं तीक्ष्णस्वादयुक्त कठोर दाने (Diatoms) होते हैं ।

प्रकृति—चौथे दर्जेमें गरम और खुश्क ।

गुण-कर्म तथा उपयोग—बाह्य त्वचाके ऊपर इसका लेखनीय और शोणितोत्क्लेशक (मुहम्मिर) प्रभाव होता है । अभ्यन्तर उपयोगसे यह तीव्र वामक है । चेहरेका रंग निखारने और झाईं आदि दूर करनेके लिए

इसका पतला लेप करते हैं अथवा इसे उबटनों (अंगराग लेपों) में मिलाकर मलते हैं। तीव्र वामक होनेके कारण बीजोंका आभ्यान्तरिक उपयोग नहीं किया जाता। तीन-चार माशाकी मात्रामें इसके सेवनसे अत्यन्त वमन होता, दाह एवं बुद्धिविभ्रम उत्पन्न हो जाता है और अन्ततः मनुष्य यमलोक सिधारता है। ताजा दूध या यवमण्ड अथवा जौका सत्तू या छाछ बर्फसे शीतल करके पिलानेसे इसके उक्त विषका नाश होता है।

●

(६४४) हू(ह्यू)फ़ारीकून

फ़ैमिली : हीपेरीकासे (Family : Hypericaceae)

नाम—(हिं०; पं०) बस्सन्त; (उ०) बलसान; (अ०) अल्-ह्यू (हू,ह्यू) फ़ारीक़ून (इ० बै०); (यू०) ऊपेर्कोन Uperkon (D. 3. 161), हिपेरिकोन (Hyperikon); (ले०) **हीपेरिकुम् परफोरेटुम् (Hypericum perforatum** Linn); (अं०) सेन्ट जॉन्सग्रास या वर्ट (St. John's Grass or Wort), हन्ड्रेड होल्स (Hundred holes)।

उत्पत्तिस्थान—समशीतोष्ण और पश्चिम हिमालयमें ६,००० फूट से ९,००० फुट पर, कश्मीर, शिमला आदि तथा समशीतोष्ण उत्तर एशिया, उत्तरी अमेरिका, इंगलैंड आदि।

वर्णन—कांड, कोणाकार, १फुट से १½ फुट ऊँचा; पत्र सम्मुखवर्ती, अवृन्त, अण्डाकार (Oval) और लंबोतरा आयताकार (Oblong), छोरोंपर क्षुद्र काले धब्बों और धरातलमें तीन असंख्य, पारदर्शक, गोल तैलग्रन्थियोंसे युक्त होता है। पत्तियोंमें असंख्य क्षुद्र छिद्रनुमा धब्बे होते हैं, इसलिए इसका 'परफोरेटुम् (सच्छिद या सुषिरपूर्ण)' नाम अन्वर्थक है। पुष्प पीले, तीन समूहोंमें न्यस्त असंख्य पुंकेसर (Stamens) से युक्त और गर्भाशय (Ovary) में गम्भीर (कालाई लिए) लाल योनिसूत्र (Styles) होते हैं। **स्वाद** सुगन्धित, तिक्त एवं कषाय।

उपयुक्त अंग—क्षुप तथा इसका लाल स्वरस।

रासायनिक संगठन—इसमें उत्पत् तेल (Essential oil) और क्षुपमें ०·५–०·१ प्रतिशत हाइपेरिन (Hyperin) अर्थात् हूफारीकीन नामक एक ग्लूकोसाइड होता है।

कल्प तथा योग—**प्रवाही सार : मात्रा–½ से १ ड्राम।**

प्रकृति—दूसरे दर्जेमें उष्ण और रूक्ष।

गुण-कर्म तथा उपयोग—श्वयथुविलयन, दोषतारल्यजनन, व्रणशोधन, व्रणरोपण, नाड़ीबलदायक, मूत्रजनन, आर्तवजनन, सौदा-पित्तविरेचक और नियतकालिकज्वरप्रतिबन्धक है। शीतल दोषोंसे हुए कठिन शोथोंपर इसका लेप करते हैं। इसमें दोषोंको पतलाकर और पिघलाकर विलीन करनेकी शक्ति है, इसलिए दोष निःसरित हो जाते हैं। आगसे जले हुए स्थानपर इसकी पत्तियां पीसकर लगानेसे लाभ होता है। यह लेप बड़े-बड़े घावों और अत्यन्त दुष्टव्रणोंको भर देता है। इसकी सूखी पत्तियोंको पीसकर दुष्टव्रणोंपर छिड़कनेसे व्रण शीघ्र शुद्ध होकर भर जाते हैं। अपतानक (कुज़ाज) में इसकी पत्तियोंको मद्यके साथ पीनेसे लाभ होता है। यदि पक्षवधमें गरदन एक ओर झुक जाय तो इसकी पत्तियोंको मलें। वातरक्त, गृध्रसीवात और कूल्होंके दर्दमें इसके पीने और लगानेसे लाभ होता है। इससे मूत्र और आर्तव खुलकर आ जाते हैं। फल पित्त एवं सौदाको दस्तोंके रास्ते निकालता है। यह यकृत्, गर्भाशय और रंगोंका शोधन करता है। बीजोंसे फल बलवत्तर है। ७ माशे इसके बीज खाकर ऊपरसे

ठंढा पानी पीनेसे दस्त आकर पित्त निकल जाता है। चौथियामें इसके बीज गुणकारक हैं। इस कामके लिये इसको सुदाबके बीजोंके साथ देना चाहिये। जालीनूसके कथनानुसार केवल बीज ही नहीं, अपितु समग्र फलका उपयोग करना चाहिये। **अहितकर**– उष्णप्रकृतिवालोंमें सिरदर्द उत्पन्न हो जाता है। **निवारण**–सिकंजबीन, कतिपय हानियोंके लिए पुदीना। **प्रतिनिधि**– समभाग इजखिर या कबरकी जड़। मतांतरसे अर्धभाग कबरमूल या चीता, समभाग सोया या अनीसून। **मात्रा**–३·५ ग्रामसे ६·७५ ग्राम (३॥ माशेसे ६॥ माशे) तक।

गुण-कर्म तथा उपयोग—किंचित् कषाय, कफोत्सारि और मूत्रल। सर्दी, खाँसी और साधारणतया समस्त फुफ्फुसरोगोंमें उपकारी है। मूत्रपथके विकारोंमें इसकी बड़ी प्रसंशा की जाती है। २½ तोले इसके क्षुपका एक पाइंट उबलते पानीमें बनाया हुआ हिम या फांट एक वाइनग्लासफुलकी मात्रामें सेवन किया जाता है। इसके ताजे फूलोंका जैतूनके तेलमें बनाये हुये हिम (फांट)को **रोग़न हूफारीकून** (Oil of St. Jhon's wort) कहते हैं। इसके उपयोगसे नये घाव एवं व्रण (Wounds, sores, ulcers) और सूजन (Swelling) आराम होते हैं।

यूनानो द्रव्यगुणादर्शके उद्भिज्ज औषधाहारद्रव्य-विज्ञानीय विभाग १ समाप्त हुआ।

प्रस्तुत यूनानी द्रव्यगुणादर्श-ग्रन्थके खण्ड २ में आये उद्भिज्ज औषधाहार-द्रव्यों तथा उनके उपयुक्त अंगों एवं विषयोंके विभिन्न भाषाके शब्दों (नामों)की हिन्दी वर्णानुक्रमणिका।

विषय एवं शब्द पृष्ठांक

(अ)

अंगज़द (फा०) ७२९
अंगदान (फा०) ७३४
अंग़िरा (अ०; फा०) २५५
अंगुलपिधान (सं०) ३५५
अंगुलिया थूहर (हिं०) ३७९
अंगुश्त गंद: (फा०) ७२९
अंगूर (फा०; हिं०; पं०) १-३
अंगूर बेदाना (फा०) ३
अंगूरे कोली (फा०; इरानी) १७४
अंगूरे ख़िरस (फा०) ३; ४
अंगूरे ख़ुश्क (फा०) २
अंगूरे रोबाह (फा०) ५५८
अंगूरे शिग़ाल (फा०) ५५८
अंगोज़ (फा०) ७२९
अंगोज़ए ख़ुश्बू (फा०) ७३०
अंगोज़ए बदबू (फा०) ७३०
अंगोज़: (फा०) ७२९
अंगूरे शिफ़ा (फा०) ५५८
अंजबार (अ०) ५-६
अंजरूत (अ०; फा०) ६
अंजलिकारिका (सं०) ३१७
अंजि(जु)बार (अ०) ५
अंजीर (फा०; हिं०) ७
अंजीर जंगली (हिं०) ७, ८
अंजीर दश्ती (फा०) ८
अंजीर वलायती (फा०) ७
अंजीर शाह (फा०) ७
अंजीरी (हिं०) ७
अंजीरे अहमक़ (फा०) २६९

विषय एवं शब्द पृष्ठांक

अंजीरे आदम (फा०) २६९
अंजुदान (अ०) ७३०
अंजुदान काला ७३०
अंजुदान रूमी (फा०) ६८५
अंजुदान सफ़ेद (अ०) ७३४
अंजुबारे रूमी (अ०) ५
अंजु (ज) र: (अ०; फा०) ८
अंजुरा (अ०; फा०) ८-९;७९
अंझाझार (हिं०) २९८
अंब (भ) (क०; पं०) ५५
अंबज (अ०) ५५
अंबडा (पं०) ३३
अंबरबारीस (अ०) ३८५
अंबाडी (बं०; बम्ब०) ७१४
अंबाडी हेम्प (अं०) ७२४
अं(आं)बुटी (म०) ३६६
अंबुप्रसादन (सं०) ४१८
अंब: (फा०) ५५
अंब: हिंदी (अ०; फा०) ३७
अँवरा (हिं०) ५६
अअर (क०) ६२
अक (क०; सिं०; पं०) ४८
अक़तीन (अ०) २०५
अकरकरा (हिं०) ९-११
अक़रक़र्हा मग़रबी (अ०) १०
अकरब (अ०) ७१९
अकरी (हिं०) ४६
अकरोटु (ता०; ते०) १२
अकरोड (म०; बम्ब०) १२
अकलबेर (गु०) ५४२

विषय एवं शब्द — पृष्ठांक

अकसन (हिं०) ४४
अकाकिया (हिं०; अं०) ४९३
अक़ाक़िया (अ०; फा०) ,,
अकालूफ़ी (यू०) ८
अकाश (स) बेल (हिं०) ११-१२
अकासिआ आराबिका (ले०) ४९३
अकासिआ नीलोटिका (ले०) ४९३
अकासिआ वेरा (ले०) ४९३
अकितमुकित (अ०; सुर०) १३५
अक़ूनीतीन (अ०) ४८५
अकूनीतून (यू०) ४८५
अकेसिया गम (अं०) ४९३
अकेसिया ट्री (अं०) ४९३
अकेसिया पॉड (अं०) ४९३
अकेसिया बार्क (अं०) ४९३
अकौआ (हिं०) ४८
अक्कदम (ता०) ५०४
अक्कलकरा (म०) ९
अक्कलकरो (गु०) ९
अक़्माउर्रुम्मान (अ०) २८
अक्ष (सं०) ५०४
अक्षोट (-क) (सं०) १२
अखरोट (हिं०; बं०) १२-१३
अखिल्लिओन (यू०) ४९६
अगर (१) (हिं०; म०; गु०) १३-१४
(२) (जापान) ७००
अगर-अगर (जापान) ७००
अगर क़मारी (फा०) १४
अगर चीनी (फा०) १४
अगर चूरा (हिं०) १४
अगर चूरा भेद १४
अगर मंदली (फा०) १४
अगर समंदूरी (फा०) १४
अगर हिंदी (फा०) ,,
अगरे(वज)तुर्की (फा०) ४८३
अग़ारीक़ून (अ०) २४७

विषय एवं शब्द — पृष्ठांक

अगारीकोन (यू०) २४७
अगुरु (सं०) १३
अग्नि (सं०) ३०६
अघाडो (म०) २९८
अघेडो (गु०) २९८
अज़ख़र (अ०) ६९
अजगंधा (सं०) ३७३;७३२
अजगंधा कर्पूर (सं०) ३७३
अजगुर (काशी; मीरजापुर) ४१८
अज़दूए ताजी (फा०) ४९३
अज़ब: (अ०) ४७१
अजदण्डी (सं०) ५४४
अजमलीन ३८३
अजमा (मो) (गु०) १६
अजमोद व अरफ़्स (सं०; हिं०; गु०) १४-१६
अजमोदा (सं०; हिं०; म०; गु०) १४
अजमोदो (मा०) १४
अजवाइन (हिं०) १६
अजवाइन खुरासानी (हिं०) १८
अजवायन (देशी) (हिं०) १६-१८
अजवायन अष्टप्रहरी १७
अजवायनका फूल (हिं०) १६,१७,७२७
अजवायनका सत (पं०) १६,१७,७२७
अजवायन खु(खो)रासानी (हिं०) १८-२०
अज़(ज़ा)राक़ी (अ०; सुर०) १७९,१८०
अज़ाराक़ीन (अ०) ४३६
अज़ाराफ़ी (अ०) १८०
अज़ूरी (अ०) १५८
अजोवान (बं०) १६
अज़्ज़िफ़्तुस्साइला (अ०) ११०
अ(इ)ज़रासुल् कल्ब (अ०) ५०२
अ(ह)ञ्ज़ड़ (को०) १०९
अञ्जुदान (अ०) ७३०,७३१
अटडमामिडी (ते०) ४५३
अ(आ)टरूषक (सं०) २१
अट्रक्टुलिस (यू०) १९७

विषय एवं शब्द पृष्ठांक
अडकई (म०) ३८२
अडद (गु०) ७९
अड़हर (बं०; म०) ४०
अडाशिन (ता०) ३६६
अडुलसा (म०) २१
अडूसा (हिं०) २१-२२
अढ(ड)हुल (हिं०) २५५
अत(ति)वखनी कली (गु०) २३
अतसी (सं०) ४२
अतसी तैल (सं०) ४२
३ अतिमुक्त (सं०) ५४०
६ अतिविख (म०) २३
७ अतिविदयम् (ता०) २३
८ अतिविष (म०; गु०) २३
१ अतिबला (सं०) ९५
२ अतिमतुरम् (ता०) ५०४
४ अतियव (सं०) ३५१
५ अतिरोप्य (सं०) २९६
९ अतिविषा (सं०) २३
अतीस (हिं०) २३-२४
अतीसीन २३
अत्कुम (अ०) २९८
अत्बाउल् कलबा (अ०) ६१६
अत्रकतूलीस (अ०) १९७
अदरक (अ०) ६०
(हिं०; द०) ७००
अदरना (सुर०) १००
अदस (अ०) ५७०
अद्सुल्माऽ (अ०) १५२
अधरक (द०) ७००
अधोपुष्पी (सं०) २४८
अनंतमूल (बं०; हिं०) ६७४
अनन्तमूल (हिं०) ८३
अनन्ता (सं०) ६७४
अनन्नास (हिं०; गु०) २४-२५
अनन्नासका एसेंस २४

विषय एवं शब्द पृष्ठांक
अनन्नास भेद २४
अनब (अ०) ५४१
अनसफल (द०; बम्ब०) ५१२
अनागालि (लु) स (अ०) ३४६
अनागाल्लिस (यू०) ३४६
अनानाश (बं०) २४
अनानास (हिं०; यू०; फ्रां०; पुर्त०; अम०) २४
अनार (हिं०; फा०) २५-२९
अनारका छिलका (हिं०) २७
अनारका झाड़ (द०) २५
अनारके भेद २५,२८
अनारगली (फा०) २८
अनार चाशनीदार (फा०) २७
अनार जंगली (उ०; हिं०) २५
अनार तुर्श (फा०) २६
अनारदाना (फा०; हिं०) २८
अनारदाना जंगली (उ०) ७१४
अनारदाना दश्ती (फा०) ,,
अनार बेदाना (फा०) २६
अनार मैखोश (फा०) २७
अनार शीरीं (फा०) २६
अनारस (बं०) २४
अनासफल (हिं०) ५१२
अनासी (अम०) २४
अनासीक्लुस् पीरेथ्रुम् (लै०) १०
अनास्टाटिका हिरोकून्टीना (लै०) २४०
अनीतून (यू०) ७०३
अनीथून (यू०) ७०३
अनीमून (यू०) २६१
अनीमोनिन २६१
अनीमोनोल २६२
अनीसूँ (अ०) २९
अनीसूँका तेल (हिं०) २९
अनीसूँ सत्व (हिं०) ३०
अनीसून (अ०) २९-३०;७०६
अनीसोन (यू०) २९

विषय एवं शब्द पृष्ठांक
अनुरां (गु०) ६३६
अ (इ) न्कर्दिया (अ०) ५५३
अन्ड्राख्नी (यू०) १९५,१९६
अन्तिलए बैज़ा (अ०) ३२०
अन्तिलए सौदा (अ०) ३२०
अन्नजोइन (हिं०; उर्दू) १६
अन्ना'ना'उल् फ़िल्फ़िली (अ०) ४४४
अन्नास (म०) २४
अपराजिता (हिं०) ५७३
,, (बं०) १६०
अपामार्ग (सं०) २९८
अपामार्ग क्षार (सं०) २९९
अपामार्ग तण्डुल (सं०) २९९
अपामार्गक्षार-निर्माणविधि २९९
अप्सिन्थिओन (यू०) ३२
अफतीमून (अ०) ३०-३२
अफतीमूने विलायती (फा०) ३०
अफरबियून (अ०; भा० बा०) ४६९
अफसंतीन (अ०) ३२–३३
अफसंतीन विलायती (अ०) ३२
अफसंतीन हिन्दी ३२
अफसन्तीनुल्बहर (अ०) १७२
अफ़िन (अ०) ४६१
अफ़ीकून (यू०) १९
अफीम (हिं०; क०; द०; गु०) ४६०
,, (हिं०) ४६२–४६४
अफीमके विषलक्षण और उनकी चिकित्सा ४६३
अफीलूस (अफरी०) १६
अफू (म०) ४६०
अफ़्तीमून (अ०) ३०,३२
अफ़्तीमून हिन्दी (फा०) ११,३१
अफ़्यून (अ०) १९,४६०
अफ्यून काहू (फा०) १७१
अफ्लात (तू) न (अ०) २५२
अफ़्स (अ०) ५७४
अफ़्सुल् अख्ज़र (अ०) ५७४

विषय एवं शब्द पृष्ठांक
अफ़्सुल् अब्यज़ (अ०) ५७४
अफ़्सुल् अर्ज़क़ (अ०) ५७४
अफ़्सुल् अस्वद (अ०) ५७४
अफ़्सुल बुलूत (अ०) ५७४
अबहल (अ०; पं०; बम्ब०) ७२४
अबुखल्सा (अ०) ६०१
अब्धिनारिकेल (सं०) ४१६
अब्बास (सी) (फा०) २५६
अब्लूज (अ०) २३६
अमडा (हिं०; संथा०) ३३–३४
अमन, ऐमन (रोम०; मिश्र०) ८६
अमर (था०) ३३
अमरदवल्लि (क०) २५०
अमरबेलिन १२
अमरान्थुस पॉलीगोनुस् (ले०) ३१५
अमरान्थुस स्पीनोसुस् (ले०) ३१५
अमरि (मल०) ४२६
अमरीकाका जंगली तमाकू (हिं०) ३५९
अमरीकाकी चमेली (हिं०) ७४
अमरूच (द०; अफ०) ४१७
अमरूत (हिं०) ३४
अमरूद (हिं०) ३४–३५
अमरूद (फा०) ३४
,, (फा०) ४१७
अमरूद लाल (हिं०) ३४
अमरूद सफेद (हिं०) ३४
अमरूद हिन्दी (फा०) ३४
अमरूल शाक (बं०) ३६६
अमल (मा०) ४६०
अमलज (अ०) ५६
अमलतास (हिं०) ३५-३६
अमलतासफलत्वक् (पोस्त अमलतास) ३६
अमलतासफलमज्जा ३५
अमलबेत (हिं०) ३६
अमलबेद (हिं०) ३६–३७; ६१२
अमलोनी (हिं०) ३६६

विषय एवं शब्द	पृष्ठांक
अमृतफल (सं०)	४१७
अमृतसरी हड़ (हिं०)	७१३
अमृता (सं०)	२५०
अमेड़ा (गु०)	३३
अमेरिकन वर्म-सीड (अं०)	४८८
अमोनियाकून (अ०)	८६
अमोनियाकोन (यू०)	८६
अम्पीलोस ल्यूक (यू०)	४७३
अम्ब (सिं०)	५५
अम्ब्रर (अ०)	४०६
अम्ब्ररबारीस (अ०)	३८५
अम्बर माइअ (फा०)	६४०
अम्बर साइल (फा०)	६४०
अम्बष्ठा (सं०)	४४०
अम्ब्रिया हड़ (हिं०)	७१३
अम्बेलीफेरोन	६८७; ७३०
अम्ब्रेलाट्री (अ०)	२०१
अम्मी (अफ़री०; यू०)	१६
अम्मुग़ीलाँ (अ०)	४९३
अम्मुरीन (क०)	१७२
अम्लचाँक(ग)डी (हिं०)	५६०
अम्लजुल् मुलूक (अ०)	५७
अम्ल, चिंचा (सं०)	७१
अम्ल, जम्बीर (सं०)	७१
अम्ल, निम्बू (सं०)	७१
अम्लपत्रिका (सं०)	३६६
अम्लवेत (सं०)	३७
अम्लवेतस (सं०)	३६,३७
अम्ल, शुक्त (सं०)	७०
अम्ल, सेव (सं०)	७०
अम्लिका (सं०)	७०
अयंवरुत्ति (मल०)	२५५
अयापान(-म) (म०)	५८
अरंड (हिं०)	६०९
अरंड ककडी (हिं०)	३७
अरंड खरबूज़ा (हिं०)	३७–३९
अरंडी (हिं०)	६०९
अरअर (अ०)	१११,७२४
अरडुसी (सो) (गु०)	२१
अरण्ड(ण्डी)का तेल (हिं०)	६०९
अरण्य जीरक (सं०)	१६२
अरबी एलुआ (हिं०)	२८०
अरबी कुट (हिं०)	१८४,१८५
अरमीनाकन (यू०)	३२४
अरमीनियून (यू०)	१९१
अरवानः ( )	२२८
अरवी (हिं०)	३९–४०
अरसिन उम्मत (का०)	६५४
अरहर (हिं०)	४०
अराक (यू०)	४५०
अरिति (ते०)	२००
अरिमेद (सं०)	२३१
अरियाना (यू०)	२००
अरिष्टक (सं०)	६०७
अरीठां (गु०)	६०७
अरु (पं०; का०)	५२
अरुई (हिं०)	३९
अरुज़ (अ०)	२९६
अरुवाण (ता०)	६८८
अरुष्कर (सं०)	५५३
अरूज़ (मिश्र०)	२९६
अरूदम (मल०)	६८८
अरूसक दरपर्दः (फा०)	१५५
अरूसक पसे पर्दः (फा०)	१५५
अरूस दर पर्दः (फा०)	१५५
अरेबिक एसिड	४९३
अरेबियन कॉस्टस (अं०)	१८४,१८५
अरेबियन डेट-पाम (अं०)	२०९
अरेबियन थॉर्न (अं०)	६४४
अरेबियन मेन्ना-प्लांट (अं०)	३३४
अरेबियन लैवेंडर (अं०)	९०
अरोरूट (बं०)	३६८

विषय एवं शब्द	पृष्ठांक
अर्क (सं०)	४८
अर्कक्षार (सं०)	५०
अर्क़गुलाब (फा०)	२६७
अर्क़पुदीना (फा०)	४४५
अर्क़ बर्ग इनबुस्सालब मुरव्वक (फा०)	५५८
अर्कशर्करा (हिं०; उर्दू)	४८,४९,५०
अर्गट (हिं०; अं०)	४१–४२
अर्गट ऑफ राई (अं०)	४१
अर्गटका अर्थ	४१
अर्गोटा (ले०)	४१
अर्गोटॉक्सिन (अं०)	४१
अर्गोटामीन (अं०)	४१
अर्जक (सं०)	४१८
अर्जन (फा०)	९४
अ(उ)र्ज़न (फा०)	३१२
अर्जल बुस्तान (अ०)	६६०
अर्जीनिया (अं०)	४६७
अर्तचक (हिं०; उ०)	७१९
अर्तनीसा (अ०)	४८१–४८२,४८३
अर्तनीसाके विष-लक्षण और उनकी चिकित्सा	४८३
अर्थ-नट (अं०)	५९०
अर्थ-स्मोक (अं०)	६३७
अर्विन	४९३
अर्शोघ्न (सं०)	६९६
अल (क०)	४५८
अलकतरा (हिं०)	१११
अलकुसी (को०; संथा०)	१०१
अलफ़ गोरखर (फा०)	६९
अलम्बी (म०)	२२६
अलम्बु (सं०)	३१८
अलर्क (सं०)	४९
अलवि (का०)	७२६
अलसी (हिं०; गु०)	४२–४४
अलसी (अ०)	२७९
अलसीका तेल	४२
अलसी तैल (सं०)	४३,४४

विषय एवं शब्द	पृष्ठांक
अलाबू (सं०)	११४
अलिश (क०)	४२
अलीकुल्बर्र (-बहर,-बहार) (अ०)	५४२
अलुत्रिलम् (ता०)	५३९
अले(लो)म्बे (बम्ब०)	२२६
अल्अदियान्तून (अ०)	७१०
अल्अफ़रबिय्यून (अ०)	४६९
अल्अफ्यून (अ०)	४६०
अल् अफ़्स (अ०)	५७४
अल् अब्हुल (अ०)	७२४
अल् इस् (श्) क़ील (अ०)	४६७
अल् इस्तिरक (अ०)	६४०
अल् ऊरूक़ुल्सुफ़्र (अ०)	७२०
अल् कतीरा (अ०)	११२
अल् कबर (अ०)	१२५
अल् क़म (अ०)	६४
अल् क़मा (अ०)	४७०
अल् कम्मूनुल् अस्वद (अ०)	१४३
अल् कराविया (अ०)	१९१
अल् क़र्अ (अ०)	११४
अल्क़ली (अ०)	८४,८५
अल्काक्निज (अ०)	१५५
अल्कीना (अ० नवीन)	६७८
अल्कुंदुर (अ०)	९९
अल् क़ुस्त (अ०)	१८२
अल्खर्दल अल् अस्वद (अ०)	६६५
अल्खर्बक़ुल अब्यज़ (अ०)	२१७
अल्खर्बक़ुल् अस्वद (अ०)	२१८
अल्खर्दलेल अब्यज़ (अ०)	६६५
अल् ख़सुल् बर्री (अ०)	१६८
अल्ग़ौल (अ०)	३३४
अल् जज़र अल् बर्री (अ०)	३९२
अल् ज़ंजबील (अ०)	७००
अल्जावी (अ०)	६२९
अल् ज़ूफ़ुल् याबिस (अ०)	३४३
अल् ज़ूफ़ुल रतब (अ०)	३४३

विषय एवं शब्द — पृष्ठांक

अल्जौज़ (अ०) १२
अल् जौज़ुल् मुक़ई (अ०) १८०
अल् तबाशीर (अ०) ५०५
अल् तिर्याक़ (अ०) ४३१
अल् तिर्याक़ुल् अकबर (अ०) ४६१
अल् दिफ़्ला (अ०) ११६
अल्दूक़ुआ (अ०) ३९२
अल्ना'ना'उल् बर्री (अ०) ४५२
अल्नील (अ०) ४२६
अल्पमारिष (सं०) ३१५
अल्फ़रासियून (अ०) ४७०
अल्फ़ाजन (बम्ब०) ९०
अल्फ़िल्फ़िलुल् अस्वद (अ०) ५७२
अल्बंज (अ०) ५४८
अल् बरसियावुशाँ (अ०) ७१०
अल्बलाज़ुर (अ०) ५०३
अल्बलूत (अ०) ५०१
अल्बलैलज (अ०) ५०४
अल्बादावर्द (अ०) ५१२
अल्बादंजान (अ०) ५४१
अल्बान (अ०) ५०१ पा० टि० १
अल्बिरंजास्ब (फ़)-(अ०) ४९६
अल्बिस्फ़ाइज (अ०) ५००
अल्मामीरान (अ०) ५६५
अल्मामून (अ०) ७२७
अल्माही ज़हरज (अ०) ५७८
अल्मुर्र (अ०) ५४३
अल्रातीनज (अ०) ६०३
अल् राज़ियानज (अ०) ७०६
अल्रावंद (अ०) ६१२
अल्रावंदुस्सीनी (अ०) ६१२
अल्रासन (अ०) ६०५
अल्लहलाह (अ०) ६९२
अल्लादन (अ०) ६२१
अल्लाप(पा)-(गु०) ५८
अल्लुबान (अ०) ९९
अल्वज्ज (अ०) ४८३
अल्वर्स (अ०) ६३३
अल्वस्मा (अ०) ४२६, ४९०
अल्शाहतरज (अ०) ६३७
अल्शाहदानक (अ०) ५४८
अल्शाहबलूत (अ०) ५०१
अल्शिक़ाक़ुल (अ०) ६३४
अल्शिब्त (अ०) ७०३
अल्शुकाआ (अ०) ६४४
अल्शेवनीज़ (अ०) १४३
अल्शौकतुलअरबिया (अ०) ६४४
अल्संद्रस (अ०) ६४८
अल् सकबीनज (अ०) ६५१
अल्सक़मूनिया (अ०) ६५२
अल्सी(स)सालियूस (अ०) ६८५
अल्सुदाब (अ०) ६८८
अल्सुमाक़ (अ०) ६९१
अल्सुम्बुल (अ०) ६८६
अल्साज़जुल् हिन्दी (अ०) ३७६
अल्सातर (अ०) ६०२
अल्साबूनियः (अ०) ६७३
अल्सुर्मक़ (अ०) ४८८
अल्सूरंजान (अ०) ६९२
अल्सूस (अ०) ५८४
अल् हजरदू (श्याम) ४२४
अल् हज़ारजशान (अ०) ४७३
अल्हबकुल् नहरी (अ०) ४१०, ४५२
अल्हमामा (अ०) ७१६
अल्हर्मल (अ०) ७१७
अल्हाशा (अ०) ७२७
अल्हुज़ुज़ (अ०) ३८५
अल्हुर्फ़त (अ०) ७२६
अल्हूफारीकून (अ०) ७३३
अवस्तियून (रूमी) ३२
अवरि (गु०) ६९८
अविरि (ते०) ४२६

विषय एवं शब्द पृष्ठांक

अवुरि (ता०) ४२६
अव्वल कुंदुर (फा०) ९९
अशकः (अ०) ७४
अशखर (गु०) ६९
अशेलियो (गु०) ७२६
अश्खार (फा०) ८५
अश्खीस (अ०) ५७३
अश्माभूत गोंद या राल १४८
अश्रास (अ०) २२५
अश्वकर्ण (सं०) २४०
अश्वकर्ण बीज (सं०) ७५
अश्वगधा (सं०) ४४, ४५
अश्वघ्न (सं०) ११६
अश्वत्थ (सं०) ४४८
असगंध (हिं०) ४४—४६
असगंध जंगली ४५
असगंध देशी (हिं०) ४६
असगंध बाजारी (हिं०) ४५
असबर्ग (हिं०) ३२७
असमानिया (क०) ७०२
असमानी बूटी (पं०) ७०२
असरबक्का (अं०) ४६
असराश (फा०) २२४
असल (अ०) ३५३; ४७१
असलुर्रासन (अ०) ६०५
असाफ़ीरुल्मुर्र (अ०) १८८
असाबअ हुर्मुस (अ०) ६९२
असाबउल् मलिक (अ०) ६७
असाबेउस्सिफ़र (अ०) २४०
असारून (अ०; सुर०) ४६—४७
असारून (ने) हिन्दी (फा०) ४७,३५७
असारोन (यू०) ४६
असालियो (मार०) ७२६
असोर क़िस्साउल्हिमार (अ०) १७६
असीर खियारखर (फा०) १७६
अस्तरंग (फा०) ६२५

विषय एवं शब्द पृष्ठांक

अस्तरंज (अ०) ६२५
अस्ताफियूस अग्रिया (यू०) ५६९
अस्पगोल (फा०) ७५
अस्परग (क) (इरान) ३२७
अस्पर्जः (फा०) ७५
अस्पुर्क (हिं०) ६७
अस्फ़क (इरान) ३२७
अस्ल (अ०) ४३२
अस्लक़ (अ०) ६५०
अस्लुर्राज़ियानज (अ०) ७०६
अस्लुल्क़ुल्त (अ०) १९५
अस्लुल् ख़ित्मी (अ०) २११
अस्लुल् तफ़्त (अ०) १९५
अस्लुल् समावी (अ०) ६४२
अस्लुल् हवा (अ०) ६४२
अस्लुल् हाज (अ०) ३३४
अस्लुल् हिंदबाऽ (अ०) १६७
अस्लुस्समावी (अ०) ६४१
अस्लुस्सीनी (अ०) ३१२
अस्लूस्सूस (अ०) ५८४
अस्लेखियारशंबर (अ०) ३५
अस्ले बलादुर (अ०) ५५३
अस्ले लब्नी (अ०; फा०) ६४०
अस्सरख़ुल् मुज़क्कर (अ०) ६६३
अस्ससीन ५४९
अस्सालिअ ७२६
अहमदाबादी मेवा (बम्ब०) २२२
अहालिम (सं०) ७२६
अहालींव (अ०) ७२६
अहिफल (सं०) २८८
अहिफेन (सं०) ४६०, ४६१
अहुरि (सिंध) ६०२

(आ)

आँक (कु०) ४८
आँब (हिं०) २५
आँबपीच (अं०) ५६

विषय एवं शब्द पृष्ठांक
आँबला (हिं०; म०; गु०) ५६
आँबा (म०) ५५
आँबाडे (म०) ३२
आँबा हलदर (गु०) ४७
आँबा (बी) हल्दी (हिं०) ४७–४८
आँबे हलदी (म०) ४७
आँबो (गु०) ५५
आँवल कुंदुर ९९
आँवली (गु०) ७०
आँविलम् (ता०) ७०
ऑइल ऑफ सिन्नेमन (अं०) ३८८
ऑइल चेनोपोडियम् (अं०) ४८८, ४८९, ४९०
आइवी (अं०) ६१८
आइसिंग्लास (अं०) ७००
आइसो क्वर्सिटिन (अं०) ४
आइसो चकसीन (अं०) २९३
आइसो साइट्रिक एसिड (अं०) ४३४
आकंद (बं०) ४८
आक (हिं०) ४८; ५१
आकका गोंद (हिं०; उर्दू) ४८
आकका टिड्डा (हिं०) ५०
आकका डोडा (फल) (हिं०) ४८
आककी मिश्री (हिं०) ४८
आककी लौंग (हिं०) ४८
आककी शकर (उर्दू) ४८
आकडो (गु०) ४८
आकनादि (बं०) ४४०
आकनी (यू०) २१३
आकरकर्भीन (सं०) १०
आक़रक़र्हा (अ०) ९, १०
,, पश्चिमी १०
,, स्यामदेशीय १०
आकल्लक (सं०) ९
आकसन (हिं०) ४४
आकाजन (ब्राजील) १३७, १५६
आकारकरभ (सं०) ९

विषय एवं शब्द पृष्ठांक
आकारान्थीस आस्पेरा (ले०) २९८
आकाश (स) बेंवर (हिं०) ११, ३१
आकाशवल्ली (सं०) ११
आकासिआ (अं०) ४९३
आकासिआ काटेचू (ले०) २२९
आकासिआ कान्सीन्ना (ले०) ६८४
आकासिआ फार्नेसिआना (ले०) ३२; २३१
आर्कासिआ रुगाटा (ले०) ६८४
आकिल्लेआ मील्लेफोलिउम् (ले०) ४९६
आक़ूल (अ०) ३३४
आकोनीटुम् चासमान्थुम् (ले०) ४८५
आकोनीटुम् नापेल्लुस् (ले०) ४८५
आकोनीटुम् फेरोक्स (ले०) ४८५
आकोनीटुम् हेटेरोफील्लुम् (ले०) २३
आकोरुस् कालोमुस् (ले०) ३००; ४८३
आक् (बं०) २३४
ऑक्जेलेट ऑफ लाइम् (ले०) ६१३
आक्वीलारिआ आगाल्लोका (ले०) १३
ऑक्सालिस् कॉर्नीकुलाटा (ले०) ३६६
आख (हिं०) ४८
आखुकर्णी (सं०) ३११
आगक्युथिस (यू०) ७२४
आगक्युस (यू०) ७२४
आग (ज) वल्ली (सं०) ४१८
आगारिकुस् आल्बुस् (ले०) २४७
आगारिकुस् कम्पेस्ट्रिस (ले०) २२६
आगोनोस्मा कारिओफिलल्लाटा (ले०) ५७८
आग्रीमोनिआ एउपाटोरिआ (ले०) २४२
आग्लिडिओन (यू०) ६१९
आघाडो (म०) २९८
आचीन (हिं०) ५१–५२
आज़रव (फा०) ४८१
आज़रयून (अ०; फा०) ४८१; ६९५
आजाडीराक्टा ईंडिका (ले०) ४२३
आज़ाददरख्त (फा०) ४२४
आज़ाददरख्तुल्हिन्द (अ०) ४२३

विषय एवं शब्द पृष्ठांक

आज़ाद दरख़्ते हिन्दी (फा०) ४२३

आज़ादरख़्त (फा०) ४२४; ४७९

आज़ानुल्फ़ार (अ०) ३११

आजूगा कामेपिटिस (लें०) १३२

आट्रीप्लेक्स (अं०) ४८८

आट्रोपा आकूमिनाटा (लें०) ६२६

आट्रोपा बेलाडोना (लें०) ६२६

आडाटोडै (ता०) २१

आडिआन्टुम् कापील्लुस् वेनेरिस् (लें०) ७१०

आडिआन्टुम् वेनुस्टुम् (लें०) ७१०

आड़ू (हिं०; पं०) ५२–५३

आड़ूका शराब ५३

आड़ू, चकइया (हिं०) ५२

आढकी (सं०) ४०

आढाटोडा वासिका (लें०) २१

आदा (बं०) ७००

आदित्यभक्ता (सं०) ७३१, ७३२

आदी (हिं०; कु०) ७००

आदु (गु०) ७००

आनीमार्टा कॉक्कूलुस् (लें०) ५७८

आनेथुम् ग्राविओलेन्स (लें०) ७०३

आनेथुम् सोवा (लें०) ७०३

आन्ड्रोग्राफिस पानीकुलाटा (लें०) ३०१

आतइच (बं०) २३

आतजी (हिं०) ३५१

आत(ति)रोलाल (यू०) ५३–५४; १५३

आता (बं०) ६३६

आतापलम् (ता०) ६३६

आनाकार्डिअम् ऑक्सिडेंटाले (लें०) १५६

आनाग़ालुस (अ०) ३४६

आनागाल्लिस आर्वेन्सिस् (लें०) ३४६

आनानास कोमोसस् (लें०) २४

आनानास साटीवुस् (लें०) २४

आनिसुल्अरवाह (अ०) ९०

आनीमोन (लें०) २६०

आनीमोने ऑ(ओ)न्टूसीफोलिआ (लें०) २६०; ६०१

विषय एवं शब्द पृष्ठांक

आनेमोने पुल्साटिल्ला (लें०) २६०

आनोगेईस्सुस लाटीफोलिआ (लें०) ४०३

आनोना स्क्वामोजा (लें०) ६३६

आन्ड्रोग्राफिस पानीकुलाटा (लें०) १५९

आन्थेमिस् पीरेथ्रुम् (लें०) १०

आन्थ्रिस्कुस सेरेफोलिउम् (लें०) ५३

आन्थ्रिस्कुस् सेरेफोलिउम्के बीजोंका डीमकोक्त वर्णन ५३

आपाङ् (बं०) २९८

आपिउम् ग्राविओलेन्स (लें०) १५

आपिउम् पेट्रोसेलिनुम् (लें०) ४७६

आपुन्टिआ डिल्लेनी (लें०) ४०८

ऑपोस (यू०) ४६१

आप्लोटाक्सिस् आउरीकुलाटा (लें०) १८३

आफ़ताबी (फा०) ६९५

आफिम् (बं०) ४६०

ऑफिशिनल पेओनी (अं०) ९२

ऑथैलिमक बारबेरी (अं०) ३८५

आब (बे) नूस (अ०; फा०) ५४

,, असली और नकलीकी परीक्षा ५४

,, हबशी ५४

,, हिंदी ५४

आबनूसे हिन्दी (अ०; फा०) ३७५

आबीएस वेब्बिआना (लें०) ३६४

आबिस (अ०) ४

आबुटिलॉन ईंडिकुम् (लें०) ९५

,, हीर्टुम् (लें०) ९५

आबेकद्दू या कद्दूका रस प्राप्त करनेकी विधि ११५ पा० टि० १

आबेलीमू (फा०) ४२२

आबेलमॉस्कुस् एस्कूलेंटुस् (लें०) ५५२

आबेल्मॉस्कुस् मॉस्काटुस् (लें०) ५८६

आब्रुस प्रीकाटोरिउस् (लें०) २८२

आब्रोमा आउगुस्टा (लें०) ८१

आब्सिंथिउम् (लें०) ३२

आम (हिं०; बं०) ५५–५६

विषय एवं शब्द पृष्ठांक
आमड़ा (हिं०; बं०; बम्ब०; संथाल) ३३
आमण्ड ऑयल (अं०) ५१०
आमपीच (हिं०; अं०) ५६
आमरुल शाक (बं०) ३६६
आमलः (फा०) ५६
आमलक (-म्)-(सं०) ५६
आमलकी (सं०; बं०) ५६
आमलज (अ०) ५६
आमला (हिं०; बं०) ५६-५८
आमलाके कल्प तथा योग ५७
आमलाके भेद ५७
आमला मुनक्का ५७
आमला शीरपरवर्दा ५७
आमारान्थुस् हीपोकॉन्ड्रिआकुस् (लें०) १४५;६८३
आमॉर्फोफाल्लुस् काम्पानुलाटुस् (लें०) ६९६
आमाहल्दी (हिं०) ४७
आमीग्डाला आमारा (लें०) ५०८
आमीग्डाला डुल्सिस (लें०) ५१०
आर्टोकार्पुस लाकूचा (लें०) ४८८
आर्थोसीफॉन पाल्लिडुस (लें०) ४१८
आर्द्रक (सं०) ७००
आर्यबाल (मल०) ७३१
आर्सेनिक ऑक्साइड ६१८
आर्हबोटिक एसिड ६०३
आ रुकुशी (बं०) १०१
ऑलस्पाइस (अं) ४७६
ऑलस्पाइस ऑयल (अं०) ४७७
ऑलस्पाइस-ट्री (अं) ४७६
ऑलिउम् सिन्नेमोमाइ (लें०) ३८८
ऑलियम् एबीटीज (लें०) ६६०
,, रोजी (लें०) २६६
ऑलिव्ह ऑयल (अं०) ३४७
ऑलीइक एसिड और लाइनोलीक एसिडके
ग्लीसराइड्स ३६७
आलीबाली (फा०) ६१
आलुई (बं०) १६०

विषय एवं शब्द पृष्ठांक
आलु(क) ६०
आलुकी (सं०) ३९
आलुबुखारो (मा०) ६२
आलू (फा०; सं०) ६०-६२
आलू (हिं०; बं०; पं०; सं०) ६०
आलूए ज़र्द बोखाराई (फा०) ६२
आलूए दमिश्की (फा०) ६०
आलूए फरॉसीसी (फा०) ६०
आलूए फिरंग (फा०) ६०
आलूचः (फा०) ६०
आलूचा (हि०) ६०-६१
आलूचे सुलतानी (फा०) ६०
आलूबन (यू० काला आलूपान) ४२०
आलूबालू (फा०; हिं०) ६१
आलूबालूए शीरीं (फा०) ६१
आलू बू-अली (फा०) ६१
आलूबूली (फा०) ६१
आलूबोखारा (हिं०; पं०; गु०; म०; फा०) ६२-६३
,, भेद ६३
आलूय (यू०) २७९
आलें (म०) ७००
आलोए बार्बेडे.न्सस (लें०) २७२
आल्काना टींक्टोरिआ (लें०) ६०१
आल्टरनैन्थेरा सोस्सलिस (लें०) ५६१
आल्टांग्जिआ एक्सेल्सा (लें०) ६४०
आल्थेआ ऑफ्फोसिनालिस (लें०) २११
आ० रोजेआ (लें०) २११
आल्पानिआ आफ़्फ़ीसिनारुम् (लें०) १९२
आल्पानिआ गालंगा (लें०) १९३
आल्बीज़िया ओडोराटीस्सीमा (लें०) ६८२
आल्बीज़िया प्रॉसेरा (लें०) ६८२
आल्बीज़िया लेब्बेक (लें०) ६८२
आल्लिउम् पोरुम् (लें०) २३२
आल्लिउम् स्कीनोप्रासुम (लें०) २३३
आल्लिउम् टूबेरोसुम् (लें०) २३३

विषय एवं शब्द पृष्ठांक

आ० सेपा (लें०) ४६५

आल्सटोनिआ स्कोलेरिस (लें०) ३१६

आल्हागी केमेलोरुम् (लें०) ३३४

आवीना साटीवा (लें०) ३५१

आवेनिन (अं०) ३५२

आवेर्होआ काराम्बोला (लें०) १२८

आशिक़ुश्शज्र (अ०) ७४

आशुद गाछ (बं) ४४८

आशे जौ (फा०) ३४९

आसंध (म०; गु०) ४४

आस (अ०; फा०) ६३-६४

आस जंगली (उ०) ६४

आसुल् बर्री (अ०) ६४

आस तैल (हिं०) ६४

आसनो (बम्ब०) २७४

आसारून (सुर०) ४६

आसारुम् इंडिकुम् (लें०) ४७

आसारुम् एउरोपिडम् (लें०) ४६

ऑसीमुम् ग्राटीस्सीमुम् (लें०) ३७३

ऑसीमुम् बासीलिकुम् (लें०) ३७३

आसुर (क०) ६०२

आसुरी (सं०) ६०२

आस्कंद (म०) ४४

आस्ट्रागालुस गम्मीफ़ेरा (लें०) ११३

आस्ट्रागालुस ट्रिबूलॉयडीस (लें०) ११३

आस्ट्रागालुस मल्टिसेप्स (लें०) ११३

आस्ट्रागालुस सार्कोकोला (लें०) ६

आस्ट्रागालुस स्ट्रोबिलीफेरा (लें०) ११२

आस्ट्रागालुस हेराटेन्सिस (लें०) ११२

आस्पारागुस आडर्सेंडेंस (लें०) ५८८

आस्पारागुस आफ़्फ़ीसिनालिस (लें०) ७२२

आस्पारागुस टेनुईफोलिउस् (लें०) ७२२

आस्पारागुस रासेमोसुस् (लें०) ६०३

आस्पारांगुस सार्मिन्टोसुस् (लें०) ५८८

आस्फारंगीन (यू०) ७२२

आस्फोडेलुस टेनुइफोलिउस् (लें०) २२४

विषय एवं शब्द पृष्ठांक

आस्फोडेलुस फिस्टुलोसुस् (लें०) २२४

आस्साफीटिडा (लें०) ७२९

आहियों (सिंध) ७२६

(इ)

इंग्लिस मैन्ड्रेक (अं०) ४७३

इंग्लिस सर्पेण्टरी (अं०) ५

इंजडो (सिं०)

इंजर (हिं०) ६६१

इंजिबेर (द०) ७००, ७०१

इंडियन ऑलिबेनम् या फ्रैन्किन्सेन्स (अं०) ६६७

इंडियन ऐ(आ)जाडिरैक (अं०) ४२४

इंडियन कॉर्न (अं०) ५५७

इंडियन गम (अं०) ४०३

इंडियन गैंबोज (अं०) ८८

इंडियन जैक-फ्रूट (अं०) १०७

इंडियन जैलप (अं०) ४२०

इंडियन टर्न-सोल (अ०) ७२५

इंडियन टुबैको (अं०) ३५९

इंडियन पर्सिमोन (अं०) ३७५

इंडियन पेनिवर्ट (अं०) ५४५

इंडियन पेपरमिन्ट (अं०) ४५२

इंडियन प्लम् (अं०) ५३८

इंडियन बर्थ-वर्ट (अं०) ७७

इंडियन बेलाडोना (अं०) ६२६

इंडियन मस्टर्ड (अं०) ६६५

इंडियन या वाइल्ड लिकरिस (अं०) २८२

इंडियन लिलैक (अं०) ४२४

इंडियन वॉटर-चेस्टनट (अं०) ६८१

इंडियन विंटरग्रीन (अं०) २३३

इंडियन शॉट या बीड (अं०) ५४२

इंडियन सीलियम् (अं०) ७५

इंडियन स्पिनाच (अं०)

इंडियन हेम्प (अं०) ५४८

इंडियन ह्वाइट-रोज (अं०) २६३

इंद्रजी, कडुआ इन्द्रजी (हिं०) १८८

इंद्रविण (म०) ६४

विषय एवं शब्द — पृष्ठांक
इद्रावणा (गु०) ६४
इंद्रायन (हिं०) ६४-६६
इक्लीलुल् जबल (अ०) ६६-६७
इक्लीलुल् मलिक (अ०) ६७-६९;५९४
इक्लीलुल् शब्दका अर्थ ६८
इक्षुमूल (सं०) २३४
इक्षुरक (सं०) ३६३
इक्षुशर्करा (सं०) २३४;२३६
इक्सोस (यू०)
इख (पं०) २३४
इग्नेशियस बीन्स (अं०) ४३५
इज़खर (अ०) ६९
इज़खिर (अ०) ६९-७०
इज्खिर अजामी (अ०) ४३२
इजखिर अरबी (या मक्की) ६९
इजास, इज्जास (अ०) ६२
इजिप्शन या सेकरेड लोटस (अं०) १२९
इजिप्शन वायोलेट (अं०) २२८
इटसिट (पं०) ४५३
इटालियन मिलेट (अं०) ९४
इडलिम्बु (म०) ३१९
इण्डियन ए(ऐ)रोरूट (अं०) ३६८
इण्डियन ओक (अं०) ६६१
इण्डियन कॉस्टस (अं०) १८३,१८४
इण्डियन प्रिक्ली- ऐश (अं०) ३६९
इण्डियन मलबेरी (अं०) ३७४
इण्डियन मे(मै)डर (अं०) ५६२
इण्डियन वैलेरियन (अं०) ३५७
इण्डियन सारसापैरिल्ला (अं०) ६७४
इण्डियन सदर्न-वुड (अं०) २०४
इण्डियन सिनेमन (अं०) ३५८
इण्डियन सिन्नेमन (अं०) ३७६
इण्डियन सोरेल (अं०) ३६६
इत्र कहरुबा १४९
इत्रगुल (फा०) २६६
इत्र विलायती (फा०) ५४९

विषय एवं शब्द — पृष्ठांक
इत्र हिना (अ०) ५९३
इनब (अ०) १
इनबुद्दुब (अ०) ३,४
इनबुस्सालब (अ०) ५५८;६२६
इनबुस्सालब (भा० बाजा०) ५५९
इनबुस्सालब कबीर (अ०) ६२६
इनबुस्सालब मुखद्दिर या मुजन्निन (अ०) ६२६
इनबुस्सालब मुनव्विम (अ०) ६२६
इनबुस्सालब सियाह (अ०) ६२६
इनारुन (हिं०) ६४
इनूला हेलेनिडम् (ले०) ६०५
इनूलिन (अं०) ७२०
इन्टुबम् (रू०) १६५
इन्टुबा (रू०) १६५
इन्डिकन (अं०) ४२६
इन्डिगो प्लांट (अं०) ४२६
इन्डियन फॉरगेट-मी-नॉट (अं०) ७४
इन्डियन स्क्वील्ल (अं) ४६७
इन्द्रजव (जौ) (हिं०) १९०
इन्द्रजवे तल्ख (फा०) १८८, १८९
इन्द्रजवे शीरीं (फा०) १८८, १८९
इन्द्रबगई (मीरजापुर जंगल) ६२
इन्द्रयव (सं०) १९०
इन्द्रयव तिक्त (सं०) १८८
इन्द्रवारुणी (सं०) ६४
इन्द्राशन (सं०) ५४९
इन्युलिन (अं०) १६८
इन्युलीन (अं०) ६०५
इपान (बम्ब०) ७२७
इभरंकुश (पं०) ६९
इमली (हिं०) ७०-७२
,, के बीजसे मग्ज निकालनेकी विधि ७१
इमलीके बीजका मग्ज (हिं०) ७१
इमेटिक-नट (अं०) ५९६
इमोडीन (अं०) १४७, ४२८, ६१३, ६५९
इम्प्योर कार्बोनेट ऑफ पोटास (अं०) ३५२

विषय एवं शब्द पृष्ठांक
इरट्टि-मधुरम् (मल०) ५८४
इराशा (ता०) २६४
इर्क़ुल् (उरूक़ुल् काफ़ूर) (अ०) ४०५
इर्क़ुस्सूस (अ०) ५८४
इलक (अ०) ६०४
इलक सनोवर (अ०) ६०४
इलकुल् जाफ़ (अ०) ६०४
इलवम् (मल०) ६९८
इलातर्यून (अ०) १७६
इलातिरियून (अ०) १७६
इलकुल्अंबात (अ०) ३०४; ४४६, ४४७
इलकुल् बुत्म (अ०) ३०४
इरवा यची (हिं०) ७३
इलायची (हिं०) ७२
इलिचि (ता०) ६२२
इलायची खुर्द वा सफ़ेद (फा०) ७२
इलायची छोटी (हिं०) ७२-७३
इलायची बड़ी (कलॉ)–(हिं०) ७३-७४
,, मोरंग (हिं०) ७३
,, सुर्ख (लाल) ७३
इलायचीके भेद उत्तरकालीन डाक्टरोंके मतसे ७८
,, ,, यूनानी मतसे ७९
इल्कुर्रूमी (अ०) ५७०
इल्लीसिउम् वेरुम् (ले०) ५१२
इश्कपेचः, इश्कपेचा (फा०) ७४, ७५
इश्कपेचा (बम्ब०) ७४-७५
इसक(एस्क)बीनः (फा०) ६५१
इसबगोल (हिं०) ७५-७७
,, की भूसी ७६
,, के भेद ७६
इसरगोल (हिं०) ७५
इसरमूल (हिं०) ७७
इसरौल (हिं०) ७७-७८; ३२६
इसुरमूलि (ता०) ७७
इस्पेर (काश०) ३२४
इस्क़ील (अ०) ४६७

विषय एवं शब्द पृष्ठांक
इस्क़ीले हिंदी (अ०) ४६७
इस्पंद (बं०) ६८८
इस्पंद (फा०; क०) ७१७
इस्पंद अरबी (अ०) ७१७
इस्पंद सोख़्तनी (-ख़्ती) (अ०) ७१७
इस्पँदा (फा०) ६०२
इस्पन्द (गु०) ७१७
इस्पगुला (अं०) ७५
इस्पानख(ज)–(फा०) ४४३
इस्पानाख (–क,–ज)–(फा०) ४४३
इस्फ़ंदान सफ़ेद (फा०) ६६५
इस्फईरिदिआन अगरिओन (यू०) १७६
इस्फ़नाख ४४३
इस्फर्ज़ः (अ०) ७५
इस्फ़ानाख (अ०) ४४३
इस्फ़ेराज (अ०) ७२२
इस्बंद (हिं०; बम्ब०; पं०; बं०) ७१७
इस्वरमूलि (मल०) ७७
इहरीज़ (अ०) १९७
इहरीस उस्फ़ुर (अ०) १९७
इह्लीलज काबुली (अ०) ७१३
इह्लैलज हिंदी (अ०) ७११
इह्लै(ली)लज (अ०) ७११
इह्लै अस्वद (अ०) ७११
इहलैलिज अस्फ़र (अ०) ७१२

ई

ईंडिगोफेरा इन्नेआफील्ला (ले०) ४९०
ईंडिगोफेरा ओब्लांगोफोलिआ (ले०) ४९०
ईंडिगोफेरा टींक्टोरिआ (ले०) ४२६
ईंडिगोफेरा पाउसीफोलिआ (ले०) ४९०
ईक्नोकार्प्स फ्रूटेसेन्स (ले०) १६३
ईख (हिं०) २३४
ईगलवुड (अं०) १३
ईग्नाटिआ आमारा (ले०) ४३५
ईनूला रेसीमोसा (ले०) ४५५
ईपोमीआ (कॉन्वाल्वुलस्) पुर्गा (ले०) ३३२

विषय एवं शब्द — पृष्ठांक

ई० जालापा (ले०) ३३२
ईपोमेआ आक्वाटिका (ले०) १३८
ईपोमेआ क्वामोक्लिट (ले०) ७४
ईपोमेआ टुर्पेथुम् (ले०) ४२०
ईपोमेआ नील (ले०) १६०
ईपोमेआ बाटाटास (ले०) ६३४
ईपोमेआ बोना-नॉक्स (ले०) ६१९
ईम्पाटिएन्स बाल्सामिना (ले०) २६०
ईरसा (फा०) ७०७
ईरसा (   ) १८३,१८५
ईरसाकी जड़ ७०७,७०८
ईरसाए क़ज़हिय्यः (अ०) ७०७
ईरसा या सोसनकी जड़ १८५
ईरानी बलूत ५७४
ईरिओफोरा (यू०) ११०
ईरिस वि० (ले०) १८२
ईरिस जेर्मानिका (ले०) ७०७
ईरिस वेर्सीकोलर (ले०) ७०७
ईश (-शे,-शो,-श्व) रमूल (बं०) ७७
ईशरगज (हिं०; भा० बाजा०) ३८२
ईश्वरमूल, ईश्वरी (सं०) ७७,३८२
ईश्वरी (सं०) ७७,३२६
ईषद्गोल (अभि० सं०) ७५
ईस्ट इंडियन एलिमाई (अं०) ५६४
ईस्ट इण्डियन रूट (अं०) १९२
ईस्ट इण्डियन या टिन्नेवेली सेन्ना (अं०) ६५८

उ

उंण (सिं०; गु०; कच्छ) ६०८
उंदरकणी (गु०) ३११
उंदीरकानी (म०; बम्ब०; कों०) ३११
उंबर (म०) २६९
उंबरो, उमरडो (गु०) २६९
उक (नेपा०) २३४
उकहवान (अ०) ४८२
उग्रगन्धा (सं०) ४८३
उघनफूला (कु०) २६९

विषय एवं शब्द — पृष्ठांक

उच्चटा (सं०) २८२
उच्छे (बं०) १३९
उजला धतूरा (द०) ३९६
उटंगन (हिं०; म०; बम्ब; पं०) ७८–७९
उटाटी (म०) ६६४
उटिं (टीं) गण (गु०) ७८; २७८
उट्टंगन (हिं०) ७८
उड़द (हिं०; गु०) ७९–८०
उड़द भेद ८०
उड़िद (-रि-), उर्द (हिं०) ७९
उड़ीद (पं०; बम्ब०) ७९
उतंजन (हिं०) ७८
उत्कण्टक (सं०) ९१
उष्ट्रकंटक (सं) ९१
उष्ट्रकाण्डी (सं०) ९२
उत्पत् तेल २१२
उत्पल (सं) १२९
उत्पलसारिवा (सं०) ६७४
उदुम्बर (सं०) २६२
उद्भिज्ज सरेस (हिं०) ७००
उनो(री)ज (अफरीका) ७०९
उन्नाब (हिं०; पं०; म०, गु०; अ०) ८०–८१
उन्नाब खताई और जुरजानी ८१
उन्मत्त, उन्मत्तक (सं) ३९६
उन् (र) यज (अफरीका) ७०९
उन्सुल (-लान)(अ०) ४६७
उन्सुले हिन्दी (अ०) ४६७
उन्हाली (म०) ६६४
उपकुञ्चिका (सं०) १४३
उपरसाल (म०) ६७४
उपलसरी (म०; गु०) ६७४
उपलेट (गु०) १८३
उपेर्कोन (यू०) ७३३
उपोदकी (सं०) ४५९
उपोदिका (सं०) ४५९

विषय एवं शब्द पृष्ठांक
उबैसरान (अ) ६६
उब्यून (यू०) ४६१
उभी रिंगणी (गु०) १०९
उभो गोखरू (म०) २७६
उरी मटर (हिं०) ५६३
उरूकुल् सब्बाग़ीन (अ०) ७२०
उरुज(ज़्ज़) (अ०) २९६
उरुमाण (सं०) ३२४
उर्ज़ (अ०) २९६
उर्वारु (सं०) १०२,१०३
उलटकंबल (हिं०) ८१–८२
उलुब (मल०) ५९४
वशबा मग़रबी (अ) ८२-८४; ३१३
उशबा हिंदी (अ०; फा०) ६७४
उशः, उप (श) क़ (अ) ८६
उशीर (सं०) २२०
उश्तरगाज (फा०) ९१
उश्तुरखार (फा०) ९१
उश्नान (अ०; फा०) २६१, ६७४
इश्नान (फा०) ८४–८६
उश्नानके भेद ८४
उश्नान दाऊद (फा०) ३४३
उश्नः (अ०; फा०) ३१५
उश्बः (अ०) ३९३
उश्बतुन्नार (अ०) ८२; ८३
उश्बा (अ०) ८२
उ(ऊ)षः(शः)–(फा०) ८६
उष(श)क़, उषक, उषुक
(अ०; फा०; हिं०; भा० बाजा०) ८६–८८
,, परीक्षा ८७
उषर, उषार, उष्षर (अ०) ४८
उष्नान (फा०) ८४
उसारए खियारदश्ती (फा०) १७६
उसारए दारहल्द (फा०) ३८७
उसारए भंग (उ०) ५४९
उसारए महक (फा०) ५८४

विषय एवं शब्द पृष्ठांक
उसारए मामसा (फा०) ५७५
उसारे बकं (अ०) ६७९
उसारेरेवंद (अ०) ८८-८९
उसारेरेवन (द०) ८८
उस्क़ूदियून (यू०) ६२०
उस्क़ूर्दियून (अ०) ८९
उस्तादूस, उस्तीकूस (अ०) ९०
उस्तुखुदूस (बम्ब०) ९०
उस्तुरक (अ०) ६४०
उस्तूखूदूस (अ०) २०९
उस्तूखू (खु) दूस (अ०; भा० बा०) ९०
उस्तो (-स्तु) खुद्दू (-दू) (भा० बा०) ९०--९१
उस्तोखुद्दूस भेद ९०,९१
उस्फ़ुर (अ०) १९७
उस्फ़ुरबर्री (अ०) १९७
उस्बा (हिं०) ८२

ऊ

ऊँटकटारा (हिं०) ९१--९२
ऊँटकटेरा (हिं०) ९१
ऊँस (म०) २३४
ऊख (हिं०) २३७
ऊ (ओ) थमी जीरूँ (गु०) ७५
ऊद (द०; म०; क०) ६२९
ऊद (अ०) १३;१४
ऊद खास १४
ऊद ग़र्क़ी (अ०) १४
ऊद नीम ग़र्क़ी(अ०) १४
ऊदुल्हिंदी (अ०) १४
उदसलीब और फावानिया ८२--९३
ऊदसलीब (हिं०) ९२
ऊदसालप (हिं०) ९२
ऊदा धतूरा (द०) ३९७
ऊदुर्रीह (अ०) ९३
ऊदुल् उतास (अ०) ४०५
ऊदुल् क़र्ह् (अ०) ९,१०
ऊदुल् क़र्ह् जबली (अ०) १०

विषय एवं शब्द पृष्ठांक

ऊदुल् बर्क़ (अ०) १५८
ऊदुल् वज्ज (अ०) ४८३
ऊदुल्सलीब (अ०) ९२
ऊदे बलसाँ (अ०) ४९२
ऊदे सालम (बम्ब०) ९२
ऊबतूरी (अ०) २४२,२४४
ऊभाँ गोखरू (गु०) २७६
ऊमर (हिं०)
ऊर्जीनेआ इंडिका (ले०) ४६७
ऊर्जीनेआ सील्ला (ले०) ४६७
ऊर्टिका पिलूलिफ़ेरा (ले०) ८
ऊ० प्रीमा (ले०) ८
ऊवा अर्सी (अ०) ३,४
ऊषज (अं०) ८६

ऋ

ऋक्ष द्राक्षा (सं०) ३,४

ए

एउकालीप्टुस ग्लोबुलुस (ले०) ६००
एउजेनिआ कारीओफील्लुस (ले०) ६३२
एउजेनिआ जाम्बोस (ले०) २६८
एउपाटारिउम् ट्रिप्लिनेर्वे (ले०) ५८
एउपाटारिउम् अयापाना (ले०) ५८
एउफॉर्बिआ आन्टीक्वोरुम् (ले०) ३७९
एउफॉर्बिआ ड्राकुन्कुलोइडेज (ले०) ६८९
एउफॉर्बिआ थीमीफ़ोलिआ (ले०) ३९१
एउफॉर्बिआ मीक्रोफ़ील्ला (ले०) ३९१
एउफॉर्बिआ निवूलिया (ले०) ३७९
एउफॉर्बिआ पिलूलीफ़ेरा (ले०) ३९१
एउफॉर्बिआ रेज़ीनीफेरा (ले०) ४६९
एउफॉर्बिआ हाइपीरिसिफोलिआ (ले०) ५४७
एउफॉर्बिआ हीर्टा (ले०) ३९१
एउफार्बिउम् (ले०) ४६९
एउरीआले फेरोक्स (ले०) ५६१
एउलोफिआ काम्पेस्ट्रिस (ले०) ६७६
एकपोथिया लहसुन (ले०) ६२०
एकपोथी, एकपुतिया लहसुन ६२०

एकबाल्लिउम्, एलॉटेरिउम् १७६
एकबेलिन (अ०) १७६
एकिनॉप्स एकीनाटुस (ले०) ९१
एकीटीस स्कोलेरिस (ले०) ३१६
एकीनोक्लोआ फ्रूमेन्टासेआ (ले०) ६७१
एकोनाइट (अं०) ४८५
एकोनिटिक एसिड (अं०) २३
एकोनिटीन (अं०) ४८५
एकोनिस (रू०) ४८५
एक्लीप्टा प्रोस्ट्राटा (ले०) ५४७
एक्लिप्टीन (अं०) ५४७
एक्स्ट्राक्टम् बर्बेरिडिस (ले०) ३८५
एक्स्ट्राक्टुम् ग्लीसीर्रहीजी (ले०) ५८४
एक्स्ट्रैक्ट ऑफ गुलंच (अं०) २५०
,, लिकोरिस (अं०) ५८४
,, बर्बेरिस (अं०) ३८५
एखरो (गु०) ३६३
एगप्लांट (अं०) ५४१
एगेरिक एसिड (अं०) २४७
एगेरिसिन २४७
एग्ली मार्मेलॉस (ले०) ५३९
एचिलीन ४९६
एज़ाज़ नबूवत (अ०) ६४२
एडगज (सं०) ४२८
एडिबल पाइन (अं०) ३०२
एडिबल हिबिस्कस (अं०) ५५२
एढाटोडा (अं०) २१
एण्डह्व (अं०) १६५
एण्ड्रोग्रेफोलॉइड (अं०) १६०
एण्ड्रोपोगोन लेनिगेर (ले०) ६९
एनिस कैम्फर (अं०) ३०
एनिस, एनिसीड, एनिसफ्रूट (अं०) २९
एनिस कैम्फर (अं०) ७०६
एनिसाई फ्रुक्टुस (ले०) २९
एनीकॉस्टेमा वेर्टीसील्लाटुम् (ले०) ४१२
एनीथम् (ले०) ७०३

विषय एवं शब्द पृष्ठांक
एनीथोल (अं०) ७०६
एनेथी फ्रुक्टुस (ले०) ७०३
एनीमोन (ले०) २६०
एपिओल (अं०) १५,४७६,७०४
एपिथिमून (यू०) ३०
एपुल (अं०) ६९७
एप्रीकॉट (अं०) ३२४
एप्लग्वावा (अं०) ३४
एफीड्रा (अं०) ७०२
एफीड्रा इक्वीसेटिना (ले०) ७०२
एफीड्रा जिरार्डिएना (ले०) ७०२
एफीड्रा वुल्गारिस (ले०) ७०२
एफीड्रा सिनिका (ले०) ७०२
एबेनोस (यू०) ५४
एबोनी (अं) ५४
एब्रिन (अं०) २८३
एब्रोस (यू०) २८२
एब्सिन्थिन (अं०) ३३
एमाइलेस (अं०) ५०८
एमिग्डेलिन (अं०) ७१५
एम्ब्लिक माइरोबेलन (अं०) ५६
एम्ब्लिका आफ्फीसिनालिस (ले०) ५६
एरंड ककडी (हिं०) ३७
एरंडकर्कटी (सं०) ३७
एरंड खरबूजा (हिं०) ३७
एरका (सं०) ४३०,४३१
एरका (म०) ४३२
एरण्डतैल (सं०) ६०९
एरण्डबीज (सं०) ६०९
एरण्डियो (गु०) ६०९
एरण्डी, एरण्डी-च-बीज (म०) ६०९
एरण्डीनु तेल (गु०) ६०९
एरण्डेल तेल (म०) ६०९
एरण्डो (गु०) ६०९
एरपुल्लोस (यू०) ७२७
एरालिआसे कुल ४५६

विषय एवं शब्द पृष्ठांक
एरिस्टोलोकीन (अं०) ७८
एरीकानट (अं०) ६९०
एरीके आइडीन ६९०
एरीकेईन ६९०
एरीकोलीन ६९०
एरीथ्राक्सिलुम् कीका (ले०) २०६
ए० ट्रूक्सीलेंसे (ले०) २०६
एरीन्जिउम् सेरुलेउम् (ले०) ६३५
एरुका साटिवा (ले०) ३६१
एरुसिमून (यू०) २२१
एरेब्रिथोस (यू०) २९०
एर्नेट्टो या एन्नेट्टोबुश (अं) ६५६
एर्पिलोस (यू०) ७२७
एर्ब्युटिन (अं०) ४
एर्मोडक्टुलोस (यू०) ६९२
एर्र चन्दनमु (ते०) २८३
एर्वांदोष (बम्ब०) २९
एर्वारूबीज (सं०) १०४
एलचा (गु०) ७३
एलची (गु०) ७२--७३
एला (सं०) ७२
एलाइच (बं०) ७२
एलाइल-डाइसल्फाइड (अं०) २३३
एलाची (पं; सि०) ७२
एलाटेरिउम् (ले०) १७६
एलाटेरिओन (यू०) १७६, १७६ पा० टि० १
एलाटेरियम् १७६ पा० टि० २
एलिय (गु०) २७९
एलिया (म०) २७९
एलीकैम्पोन (अं०) ६०५
एलुआ (वा)-हिं०) २७९,२८०,२८१
एलुआ निर्माणविधि २८०
एलुआ भेद २८०
,, अरधी २८०
,, सकोतरी २८०,२८१
एलेउसीने इंण्डिका (ले०) ५५५

विषय एवं शब्द पृष्ठांक

एलेडर्सीने कोराकाना (ले०) ५५५
एलुमिच्चै (ता०) ४२२
एलेटेरिन (अं०) १७६
एलेटेरीन (अं०) १७६ पा० टि० २
एलो ऑफिफसिनेलिस (ले०) २८०
एलो ईण्डिका (ले०) २८०
एलोइन (अं०) २८१
एलोज (अं०) २७९
एलोमेली ६४२
एलो वुड (अं०) १३
एल्केकेंजी (अं०) १५५
एल्पाइन नॉट-वीड (अं०) ५
एल्लेटारिआ कार्डामोमुम् (ले०) ७२
एल्लेबोरोस ल्युखोस (यू०) २१७
एवॉल्वुलस् आल्सीनोइडेस (ले०) ६४७
एशियाटिक ग्रीविया (अं०) ४७२
,, बार्बेरी (अं०) ३८५
एशियाटिकोसाइड ५४५
एसिड एसीटिक (अं०) ७१
एसिड टार्टेरिक (अं०) ७१
एसिड पोटैसियम ऑक्जेलेट (अं०) १२९
एसिड बेंजोइक (अं०) ६३०
एसिड मैलिक (अं०) ७१
एसिड सिट्रिक (अं०) ७१
एस्पिडीन (अं०) ६६३
एस्वरमूलि (तें०) ७७

ऐ

ऐकोरिन ४८४
ऐग्रिमनी (अं०) २४२
ऐग्रीमनी (अं०) २४४
ऐज्मा-वीड (अं०) ३९१
ऐट्रोपा (ले०) १८०, ६६२
ऐट्रोपीन (अं०) १९
ऐढाटोडिक एसिड (अं०) २१
ऐदअ (अ०) ३८०
ऐनीथोल (अं०) ३०

विषय एवं शब्द पृष्ठांक

ऐनुद्दीक (अ०) २८२
ऐनुन्नास (अ०) २४
ऐनुस्सरातीन (अ०) ४२८
ऐन्टिनॉशिएन्ट (अं०) १४१, पा० टि० ४
ऐन्टिपाइरेटिक (अं०)
ऐन्टिफ़ेब्राइल (अं०) ११५, पा० टि० ३
ऐन्थ्राक्विनोन (अं०) २५५
ऐमरन्थ (अं०) १४५
ऐमिग्डेलिन (अं०) ६१, ५०९
ऐरक (अं०) २३८
ऐरा (यू०) ६४६
ऐरावत (सं०) ४२२
ऐलेक्जेण्ड्रियन सेन्ना (अं०) ६५९
ऐलेयक (सं०) २७९
ऐलैन्टोइन २९१
ऐल्कानेट (अं०) ६०१
ऐल्टोइन (अं०) ७९
ऐल्थीईन (अं०) २११
ऐल्ब्युमिनॉइड्स ५५५,५८९
ऐश-कलर्ड फ्लीबेन (अं०) ६६८
ऐसाफेटिडा (अं०) ७२९
ऐस्कार्बिक एसिड (अं०) २६६, ५४६
ऐस्परीन (अं०) २११
ऐस्पेरागिन (अं०) ६०
ऐस्पेरेगस (अं०) ७२२
ऐस्पेरेगिन २९१, ७२२
ऐस्पैरागस २११
ऐस्पैरेगिन (अं०) २११

ओ

ओंगा (हिं०) २९८
ओंगा, आंधीझाडे (मा०) २९८
ओंवा (म०) १६
ओईरख (   ) ६९२
ओक गॉल्स (अं०) ५७४
ओक मेन्ना (अं०) ६४२
ओकां (पं०) ३५३

विषय एवं शब्द पृष्ठांक

ओकीमून (यू०) ३७२
ओट (म०) ३५१
ओट (अं०) ३५१
ओड्र(ढ्र)पुष्पी (सं०) २५५
ओनियन (अं०) ४६५
ओनोस्मा एक्किओइडेस (ले०) ६०१
ओनोस्मा बेक्टिएटम् (ले०) २४८
ओपिउम् (ले०) ४६०
ओपिओन (यू०) ४६०
ओपियम् (अं०) ४६०
ओपियून (यू०; ले०) ४६१
ओपुंटिआ डिल्लेनी (ले०) ४०९
ओपेर्कूलीना टुर्पेथुम् (ले०) ४२०
ओपोस (यू०) ४६१
ओफोलिक एसिड (अं०) ३०१
ओफेलिया किराटा (ले०) ३००
ओरासालियून (यू०) १५
ओरिस (अ०) ७०७
ओरिस रूट (अं०) ७०७
ओरीगेनोन (यू०) ६७२
ओरीज, ओरूजा (यू०) २९६
ओरीजा साटीवा (ले०) २९६
ओल (बं०) ६९६
ओलची (पं०) ६०, ६१
ओलिउम् ओलीवी (ले०) ३४४
ओलिउम् सान्टाली (ले०) २८४
ओलिबनोस (यू०) ९९
ओलिबेनम् (अं०) ९९
ओलिया एउरोपेआ (ले०) ३४४
ओलियो-रेजिन ५६४
ओलीइक एसिड (अं०) ३४५
ओलीईन (अं०) ३४५
ओलें किराईत (म०) १५९
ओलेउम् आमीग्डाले (ले०)
ओलेउम् एनेथा (ले०) ७०३
ओलेउम् रिसिनी (ले०) ६०९
ओलेउम् लीनी (ले०) ४२
ओलोटकंब्रल (बं०) ८१
ओल्ळ (सं०) ६९६
ओवली (म०) ५९९
ओसीरिटिन ६६४
ओहार (पं०) ६०२

औ

औंधाहुली (हिं०) २४८
औपलेट (बं०) १८३
औराना (यू०) २००
औल्प (का०) ६१
औस्तखदूस (पं०) ९०

क

कंक (ग)र (फा०) ७१९
कंक(ग)रज़द (अ०;फा०) ७१९
कंकरी (फा०) ७१९
कंकल (बम्ब०) २९४
कंकुष्ठ (सं०) ८८
कंकोडा (गु०) १०४
कंकोल, कङ्कोल (सं०) १२७
कंकोल (हिं०) ९३-९४
कंकोल, कंकोल मिर्च (हिं०) ९३
कंगनखार (हिं०) ८५
कँगनी (हिं०; पं०; बं०; बम्ब०) ९४
कंगरजद (अ०; फा०) ७१९
कंगरज़द (अ०) ७२०
कंगरी (फा०) ७२०
कंगही (हिं०) ९५
कंगु, कङ्गु (सं०) ९४
कंगुगिडा (कना०) ९४
कंगुनी (सं०) ५७६
कंघा (हिं०) ९५
कंजाल (हिं०) ३१५, ७००
कंटालो (काठि०) ३७९
कंटियारी (हिं०; पं०) १९७
कंटैया (बिहा०) ६५४

विषय एवं शब्द पृष्ठांक
कंटोला (गु०) १०४
कंट्री या मलाबार नटमेग (अं०) ३३८
कंडियारी (हिं०; पं०) १०९
कंडीज (कु०)
क़ंतूरियून (अ०; फा०; भा० बा०) ९६
क़ंतूरियून कबीर (अ०) ९६
क़ंद अहमर (अ०) २३५
क़ंद बाक़ली (अ०)
कंदल (अफगा०; बोखारा) ८६.८७
कंदल (हिं०) ६५१
कंदसः(शः)-(फा०) १००
कंद स्याह (अ०) २३५
कंदा (हिं०) ६३४
क़ंदु(दू)री (पं०; उ०) ९७
कंदु भेद ९७
कंदूरी (पं०; उ०) ९७--९८
कंदूल (अ०) १५८
कंबाद (अ०) ३९०
कंबाला (फा०) १३३
क़ंबील, क़िबील (अ०) १३३
कंवठ (म०) २०३
कँवल (हिं०) १२९
कँवलगट्टा (हिं०) १२९
कँवला (हिं०) ९८
कइत (हिं०) २०३
ककड़सिंगी (पं०) १५४
ककड़ी (हिं०) १०२-१०३
ककड़ी बीज १०३-१०४
ककड़ी और खीरे के बीज १०२-१०३
ककड़ी फूट १०३-१०४
ककरोंद (हिं०) १७८
ककरोल (हिं०) १०४
ककहिया (बि०) ९५
ककहिया, ककही (हिं०) ९५
ककुन्दनी (सं०) ५७६
ककोड़ा (हिं०) १०४-१०५

विषय एवं शब्द पृष्ठांक
ककोड़ा (पं०) १०४
कक्कर (पं०) १५४
कङ्कतिका (सं०) ९५
कङ्कनी (सं०) ९४
क़ङ्कहर (अ०) ६०३
कङ्कोल (सं०) ९३-१२७
कङ्कोलक (सं०) ९३
कङ्कोल्ल (मं०) ९३
कङ्ग(क), कङ्गनिका (सं०) ९४
कच (अं०) २२८
कचनार (ल)-(हिं०) १०५
कचनाल (हिं०) १०५-१०६
,, पीला १०५
,, लाल १०५
,, सफेद १०५
कचनाल (पं०) १०५
कचरा (म०) १४६
कचरी (हिं०) १०६-१०७
कचुआलू (बम्ब०) ३९
कचूमन (शीराजा) १५५
कचूर (हिं०) ४०५, ४०६
कचूरकचु (पं०) १२३
कचूरो (गु०) ४०५
कचोरा (म०) ४०५
कजंजबीन (अ०) ३५३
कजवाँ (पं०) २४८
कज़्बुरः (अ०) ३९९
क(ग)ज़मा़ज़ज (क) (अ०) ३५३
क(ग)ज़ माजू (अ०; फा०) ३५३
कज़राज़ू (फा०) ६३१
कजूर (पश्तु) २०९
कजूर (फा०) ४०५
कज्जल (सं०) ४१
कटतुरइया (हिं०) ३७१
कड़वी तुरई (हिं०) ३७१
कटमोरा (प०; सुमा०) ६१८

विषय एवं शब्द पृष्ठांक
कटहर (हिं०) १०७
कटहल (हिं०) १०७-१०९
कटाई छोटी १०९
,, कलाँ (फा०) १०९
,, खुर्द (फा०) १०९
कटाई छोटी व कटाई बड़ी १०९-११०
कटुक (सं०) ५८६
कटुकपित्य (सं०) २९७
कटुका(की)–(सं०) १८७
कटुतुम्बा (सं०) ११४
कटुपापल्लम (ता०) ३५९
कटुवाताद (सं०) ५०८
कटुवीरा (सं०) ५८१
कटु (कड़आ) सुरंजान (हिं०) ६९३
कटोल (हिं०) ८४
कट्की (पं०) १८७
कट्फल (सं०; बं०) १५८
कठ (गु०) १८३
कठगूलर (हिं०) ८
कठफूल (आसा०) २२६
कठबेले (बंक) २०३
कठभिलावा (हिं०) ३०१
कठूमर (–री)–(हिं०) ८
कठोरी (सिंध) ५६९
कड़ (हिं०) १९७, १९८
कड़री (हिं०) ६१५
कड़वा (कड़आ) तेल–(हिं०) ६६५
कड़वा सुरंजान (हिं०) ६९३
कड़वाँ तुरीआँ (गु०) ३७१
कड़वा इन्द्रजव (म०) १८८
कड़वा कूट (हिं०) १८३
कड़वा गोखरू (गु०) २७६
कड़वी (गु०) ११४
कड़वी ककडी (हिं०) १०३
कड़वी घीसोडी (काठि०) ३७१
कड़वीजीरी (गु०) १६२

विषय एवं शब्द पृष्ठांक
कड़वी तरोई (हिं०) ३७१
,, तुमडी (तूम्बी)–(मा०) ११४
कड़वी नाही (नही)–(गु०; बम्ब०) ४१२
कड़वे जरदालू ३२५
कड़वो (वी) बदाम (गु०) ५०८
कड़वों इन्द्रजव (गु०) १८८
कडुआ इन्द्रजौ (हिं०) १८८, १८९
कडुआ कुट (हिं०) १८३, १८५
कडुआ बदाम (हिं०; द०) ५०८
कडुआ बादाम (हिं०; द०) ,,
कडुकवीठ (म०) २९७
कडु(टु)क्का (म०) ७११
कडुक्काय (ता०) ७११
कडुगुनाय बेलै (ता०) ७३१
कडुतुरई (म०) ३७१
कडु दोडके (म०) ३७१
कडु भोपला (म०) ११४
कडुवम् (मल०) ६०२
कडुवु (ता०) ६०२
कडूइन्दरजौ (म०) १८८
कडूजिरे (म०) १६२
कडूनिंब (म०) ४२३
कडूबादाम (म०) ५०८
कडो (गु०) १८८
कणगूगल (सं०) २५३
कण (न)पु(ते०) ६६१
कणिकोन्ना (मल०) ३५
कणिगि (ते०) ६६१
कणेर, करेण (गु०) ११६
कण्टकफल (सं०) १०७
कण्टकर्कटी (सं०) १७६
कण्टकारी (सं०) १०९
कण्टकिकरञ्ज (सं०) १३५
कण्टकिनी (सं०) १७६
कण्टफला (सं०) ४७८
कण्टवल्ली (सं०) ६८४

विषय एवं शब्द **पृष्ठांक**

कण्टिकारी (बं) १०९
कण्हेर (म०) ११६
कत (हिं०; बं०) २२९
कत (–क)–(सं०) ४१८
कतक (कना०; गु०) ४१८
कतकम् (मल०) ४१८
कतकमु (तें०) ४१८
कतफ़ (अ०) ४८८
कतफ़ बहरी (अ०) ६५७
कतम (फा०) ४२६, ४९०
कथ (हिं०) ,,
कथो (म०; गु०) ,,
क़ (क़ि) त्रान (अ०) ११०
,, शजरी (अ०) ,,
कतरान (अ०) ११०-११२; ३०४, १११
क़तरान (अ०) ६६०, ६०४, ३०४
,, मादनी (अ०) १११
,, खनिज (हिं०) १११
कमरान ( ) ६६०
क़तरान चोबी (फा०) ११०
,, फ़र्अर (अ०) १११
;, सनोबर (अ०) ,,
क़ताद (अ०) ११२
कतल (फा०) ६९७
क़ताद और कतीरा ११२-११४
कताद ईरानी (अ०) ११२;११३
कतान (अ०) ४२
कतीदूस (यू०) ७३
कतीरा (फा०; हिं०) ११२, ११३
कतीरा हिन्दी (फा०) ११३
कत्तान (अ०) ४२
कत्थ (द) ५२६, ४९०
कत्था (हिं०) ,, ,,
कत्था प(पा) पडिया २३०
,, पखरा ,,
,, भगूरी ,,

विषय एवं शब्द **पृष्ठांक**

कत्थाके भेद २३०
कत्रान भेद १११
कत्रान और ज़िफ्त का अर्थ भेद ११०
कॅथार्टीन ४२८
कदरम् (मल०) २२९
कदली (सं०) १९९
कदिर (अ०) २०१
क़दीमुल्र्बित (अ०) ५४७
कदूए तल्ख़ (फा०) ११४
कदूए दराज़ (फा०) ,,
कदूए शीरीं (फा०) ,,
कद्दू (हिं०) ११४
कद्दूए रूमी (फा०) ,,
,, शीरीं (फा०) २०५
कद्दू और तितलौकी ११४—११६
कनइल (हिं०) ११६
कनक (सं०) ३९६;३९७
कनक (क०) २७२
कनकच्चू (क०) २२६
कनक धूतूरा (बं०) ३९७
क(कि)नब हिन्दी (फा०) ५४८
कनरी (हिं०) ४६७
कनवत् (संथा०) १४१
कनेर (हिं०; पं०) ११६-११८
कनेर (ल)–(हिं०) ११६
,, पीला ,,
,, लाल तथा सफ़ेद ,,
,, के भेद ,,
कनोचा (हिं०; पं०) ११८
कनोछा (गु०) ११८
कनोड़ी (गु०) ४३४
कनौचा (हिं०; पं०) ११८
कन्ट्री मैलो (अं०) ९५
,, लॉरेल (अं०) ३०९
,, सारसापैरिल्ला (अं०) ६७४
,, सॉरेल (अं०) ३०९

विषय एवं शब्द पृष्ठांक
क़न्तूरियून (अ०; फा०) ९६
क़न्तूरियून दक़ीक़ (अ०) ,,
क़न्तूरियून सग़ीर (अ०) ९६
क़न्द (अ०) २३६
क़न्द मुक़र्रर (फा०) ,,
क (क़)न्नबिस (यू०) ५४८
कन्ना (हिं०) ४१३
कन्ना लेंबू (बं०) ,,
कन्यूर (कु०) ११६
कपरी (उड़ि०) ६७४
कपस (क०) ११८
कपा (पं०) ११८
कपास (हिं० गु०) ११८--१२०
कपासिया (गु०) ११९
कपिकच्छु (सं०) १०१
कच्छुरा (सं०) ,,
कपित्थ (सं०) २०३
कपिला (म०) १३३
कपीलो (गु०) ,,
कपूर (हिं०; म०; गु०) १२०-१२३
कपूर (द०) १४८
कपूरकचरी (हिं०; बं०; भा० बा०) १२३-१२५
,, चीनी १२४
कपूर का फूल १२१
कपूरके तीन भेद ,,
कपूर कँसूरी १२१
,, भीमसेनी ,,
,, मोती (काफ़ूर मोती) १२२
,, रियाही १२१
कपूर बनानेकी साधारण विधि १२१
कपूर हलदी (हिं०) ४७
कपूरी (हिं०) ६७४
कपूरी मधुरी (गु०) ,,
कपोतपदी (सं०) १४२
कप्पलम् (मल०) ३७
कफ़वर्ट (अं०) ४६८

विषय एवं शब्द पृष्ठांक
कफुज़्ज़हब (अ०) ४८१
कफुल् अर्नब (अ०) ३४०
कफ़ुस्सबअ (अ०) ६१५
कफ़ुस्सालब (अ०) ३५५
कफ़े असद (अ०) ४८१
कफ़े आइशा (आयशा) (अ०) २४०
कफ़ेमर्यम् शामी ४८१
कबर (हिं०;अ०;बम्ब०) १२५–१२६
कबरुल् हिन्द (अ०) १३७
कबरे हिन्दी (अ०) १३७
कबाबः, कबाबचीनी (फा०) १२६
कबाबचीना (हिं०;बम्ब०;द०;उ०;फा०;बं०) १२६-१२८
,, के असली-नकलीकी पहचान १२७
,, के भेद १२७
कबाबचीनी (बं०) १२६
कबाबा (पं०) ३६९
कबाबे सीनी (अ०) १२६
कबाबेहे ख़ंदाँ (फा०) ३६९
कबाबेहे दहनकुशादः (दहन शिगाफ़्तः) (फा०) ३६९
कबार (पं०) १२५
कबास (अ०) ४५०
कबिस्त (फा०) ६४
कबीकज (अ०) ६१५
कबीरुल् अश्जार (अ०) ४९५
कबील (हिं०) १३३
क़बीह (फा०) ११२
कबूतरका झाड़ (द०) ४४४
कबर (अ०;हिं०) १२५
कमंद (सिं०) २३४
कमकाम (फा०) ६२९
कमरंग (हिं०) १२८
कमरकस ३८१;४३८
कमरक (हिं०) १२८
कमरख (हिं० गु०) १२८–१२९
कमरल (म०) १२८
कमल (हिं०;सं;म०;गु०) १२९

विषय एवं शब्द पृष्ठांक

कमल और नीलूफर १२९–१३१
कमल ककड़ी (हिं०) १२९
कमलकर्कटी (सं०) १२९
कमलगट्टा (हिं०) ५०७
कमलगट्टा (हिं०) १२९,१३०,१३१
कमला (हिं०) ९८
कमलाक्ष (सं०) १२९
कमलागुंडि (बं०) १३३
कमला नीबू (बं०) ९८
कमाजरियूस (अ) १३२;५५६
कमाज(द)रियूस (अ०) १३२
कमात (अ०) २२६;७३०
कमाफीतूस (अ०) १३२-१३३
कमाला (ले०) १३३
कमालियून ५७३
क़माह (अ०) ८६
कमीला (हिं० अं०) १३३–१३४
,, नकली-असलीकी पहिचान १३३
कमुर (अ०) २७२
कमून अख्जर (अ०) १९१
कमून अरजी कमून नब्ती १९१
कमून अरमरी (अ०) १९१
कमून अस्फर (अ०) १९१
कमून फारसी (अ०) १९१
कमून बर्री (अ०) १६२
,, रूमी (अ०) १९१
,, शामी (अ०) १९१
,, हब्शी (अ०) १९१
,, असवद (अ०) १९१
,, किरमानी (अ०) १९१
कमूना (सुर०) ३४१
कमूनुल् मुलूकी (अ०) १६
कमोद (म०) १२९
कम्पिल्लक (सं०) १३३
कम्बोई (गु०) २७८
कम्मरकस (हिं०;पं०;गु०;बम्ब०;सिं०) ६६२

विषय एवं शब्द पृष्ठांक

कम्मून (अ०) ३४१
कम्मून अब्यज़ (अ०) ३४१
कम्मून अस्वद (अ०) ३४१
कम्मून किरमानी (अ०) ३४१
,, नब्ती (अ०) ३४१
कयपूती (हिं०) १३४–१३५
,, का तेल (हिं०) १३४
कयेत् बेल (बं०) २०३
कयेद् (बं०) २०३
करंजुआ ४७५
करजूवा, कंजा (हिं०) १३५–१३७
करंडियुं (गु०) ४४०
करकमीसः (फा०) २०२
करकरा (हिं०) ९
करक्काय (तें०) ७११
क(क)रङ्गालि (ता०) २२९
करजनी (हिं०) २८२
करजोरी (हिं०) १६२
करजोरिकाकंद (सं०) ४८१
करटोले (म०) १०४
करडई (म०) १९७
करण्टा (हिं०) १६३
करना (हिं०;मल०) ४१३
क़रन्फ़(फु)ल (अ०) ६३२
क़रन्फलीन ६३२
करन्फुल मदार ४८
करपर्णफल (सं०) ५५२
करफियून (यू०) १२६
करफ़श (फा०) १५
करफ़्स (अ०;भा०बा०) १४-१५
,, उद्यानज (बुस्तानी) १५
,, कोही (पार्वती) १५
,, जबली (अ०) १५
,, दश्ती (फा०) ६१५
,, भेद १५
,, मकदूनो (फा०;अ०) ४७६

विषय एवं शब्द पृष्ठांक

,, सखरी (अ०) १५

करफ़्से हिंदी (फा०) १४-१५

करबोला (पुर्त०) १२८

करम (द०) २७८

करमकल्ला (हिं०) २७७

करमग्ग (ते०) १२८

करमर्दक (सं०) १४०

करमर्दिका (सं०) १४१

करमाणी अजमा (-मो)-(गु०) १७२

करमी (हिं०) १३८

करमेदश्ती ४७३

करयांपूवु (मल०) ६३२

करलिक्काय (मल०) ५९६

करवत (संथा) १४१

करवन (मीरजापुर जंगल) १४१

करवी (बं०) ११६

करवीर (सं०) ११६

करस्नः (अ०) ५६३

करांबू (ल०) ६३२

कराम्पु (मल०) ६३२

कराम्बु (सिं०) ६३२

कराविया १९१

करासिया (अ०; रू०; दमिश्क) ६१

करियासाव (व्रज०) १६३

करास, किरास, कुरसि, कुरास (अ०) २३२

करियातु (गु०; कना०) ३००

करीं (पं०) १३७

करीज़ (–स)-(अ०) ८

करीज़ल्कल्ब (अ०) ८

क़रील (फा०) २७८

करीर (सं०) १३७

करोर (ल)—(हिं०) १३७–१३८

करुण (सं०) ४१३

करुणोलेबुरगाछ (बं०) ४१३

करुवाप्पु (ता०) ६३२

करुवेल् (ता०) ४९३

विषय एवं शब्द पृष्ठांक

करुवेलम् (महा०) ४९३

करूविला (ता०) २०३

करेमू (हिं०) १३८ १३९

करेरुआ (हिं०) १३७

करेरूआ (चुनार) १८०

करेल (क०) १३९

करेला (हिं०) १३९-१४०

करैला (हिं०) १३९

करोंदा, करोना (हिं०) १४०

करौंदा (हिं०) १४०-१४१

करौंदी (हिं०) १४१

करोऩ (यू०) १९१

करोनटीआ (म०) २७६

करोनी (हिं०) २७६

करोया (द०) १९१

करोया, कुरूया (अ०) १९१

करोया, कुरूया (फा०) १९१

क़र्अ (अ०) ११४

क़र्उल् मुर्र (अ०) ११४

क़र्उल् हुलुव्व (अ०) ११४

कर्कटश्रृङ्गी (सं०) १५४

कर्कटी (सं०) १०२

कर्कन्धु (सं०) ५३८

कर्कसा (फा०) ६३३

कर्कारु (सं०) १०३, २०६

कर्कुमिन (अं०) ४८

कर्कोटक (की)-(सं०) १०४

कर्चूर (सं०) ४०५

क़र्ज़ (अ०) ४९३

कर्णफूल (सं०) १६८

क़र्न (अ०) १

कर्नब (अ०) २७८

कर्नब नब्ती (अ०) २७८

कर्नब बर्री (अ०) २३८, २७९

कर्नब बहरी (अ०) २७८

कर्नबुल्माऽ(अ०) १२९

विषय एवं शब्द पृष्ठांक

क़र्नुब्रल् बहर (अ०) १४८
कर्पासमु (ते०) ११९
कर्पस (सं०) ११८
कर्पास (सं०) ११८
कर्पासमूल त्वक् (सं०) ११९
कर्पूर (सं०) १२०
कर्पूर तुलसी १२१
कर्पूर हरिद्रा (सं०) ४७, ४८
कर्बुदार (सं०) ६१६
कर्म (फा०)
कर्म, कलम (फा०) २९८
,, ,, दरिया (फा०) २७८
कर्म नब्ती (अ०) २७७
कर्म शामी (अ०) २७७
कर्मतेल् बैज़ाऽ(अ०) ४७३
कर्मरंग (सं०) १२८
कर्मेंर (म०) १२८
कर्मल़ (द०) १२८
कर्मा (तु०) २०९
कर्शफ़ (फा०) १५
कलजो (ब्रह्मा) २९७
कलंबकचरी (बम्ब०) १४२
कलंबा (हिं०) १४२-१४३
कलंबा भारतीय १४२
कलंबा की जड़ (हिं०) १४२
कलकतिया तमाखू ३५९
क़लक़ास (अ०) ३९
कलगा १४५
कलञ्ज (सं०) ३५९
कलथी (गु०) १९४
कलपनाथ (हिं०) १५९
कलमकाचरी (म०) १४२
कलम गिर्द (फा०) २७०
कलम रूमी (फा०) २७७
कलमी साक (बं०) १३८
कलमी साग (हिं०) १३८

विषय एवं शब्द पृष्ठांक

कलम्बक (सं०) १४२
कलम्बी, कलम्बुका (सं०) १३८
कलव २९३
कलस्तारियून (यू०) १४२
कलहड़पात (हिं०) १४५-१४६
कला (बं०) १९९
कलाधोतरा (म०) ३९७
कलाधोत्रा (म०) ३९७
कलामस ड्राको (ले०) ३८०
कलाय (सं०) ५६३
कलिंग (सं०) ३६०
कलिंगड़ (म०) ३६०
क़ली (अ०) ८५
क़लीउस्सबाग़ीन (अ०) ८५
कलींदा (हिं०) ३६०
कलुम्ब्रो (गु०) १४२
कलौंजी (हिं०) १४३-१४४; १४७
कल्कू (ल्म) निया ६०४
कल्टिवेटेड डेट-पाम (अं०) २०९
कल्डेरा बुश (अं०) २०१
कल्पनाथ ३०१
कल्फूनिया ६०४
कल्मूज (अ०) ६०४
क़ल्व (अ०) ४२८
कवक (सं०) २२६
कवच (गु०) १०१
क(कं)वठ (म०) २०३
कवर (फा०) १२५
कवीट (हिं०) २०३
कवैया (हिं०) ५५८
कशफ़ (अ०) ९९
कशिश जोय (फा०) १५२
कशीरू (फा०) ६४१
कशे (से) रुक (सं०) १४६
कश्कुश्शाईर (अ०) २९५
कश्नज (अ०) २२६

विषय एवं शब्द	पृष्ठांक
कश्नीज़ (फा०)	३९९
,, खुश्क (फा०)	३९९
,, रतब (फा०)	३९९
कश्मीर की नाशपाती (हि०)	५३०
कश्मीर या विटर हर्मोडैक्टिल (अं०)	६९३
कश्मीरी पत्तर	१६४
क (का) श्मीरीपत्ता (-पट्टा)—(हिं०)	१६४
कश्मीरी बनफ़्शा	४९१
,, लवंडर	९०
क़श्र अम्मुग़ीला (अ०)	४९३
क़श्र अस्लुल् कबर (अ०)	१२५
क़श्र ख़ियार शंबर (अ०)	३५
क़श्र शज्रलिसानुल् असाफीरुल् मुर्र (अ०)	१८८
क़श्रुन्नारंज (अ०)	६४८
क़श्रुर्रुम्मान (अ०)	२७
क़श्रुल् अक़ाक़िया (अ०)	४९३
क़ (क़ि) श्रुल् ख़शख़ाश (अ०)	४६०
क़श्रुल्लीमून (अ०)	४२२
कषायाम्ल	५७४
कष्मल (नें०)	३८५
क़सद (अ०)	२२३
कसनाज (फा०)	१६५
क़सब (अ०)	५०५
क़सबुज्जरीरा (अ०)	३००
कसबुलब्दी (अ०)	४५०
क़सबुस्सुक्कर (अ०)	२३४
कसबेशो (फा०)	४८१
कसरानी (हिं०)	४३२
कॅसिया बार्क (अं०) } ,, लिग्निया (अ०) }	
कशीरा (अ०)	११२
कसीरुल् अर्जल् (अ०)	५०२
कसीरुल् मुनफ़ेअत (अ०)	२११
क़सीसः (अ०)	३७७
कसुंबो (गु०)	१९७
कसेरा (हिं०)	४३२

विषय एवं शब्द	पृष्ठांक
कसेरू (हिं०)	१४६
कसैली (हिं०)	६९०
कसौंदी (हिं०)	१४७–१४८
,, काली (हिं०)	१४७
कस्टर्ड एपल (अं०)	६३६
कस्तूरभेंड (म०)	५८६
कस्तूरीदाना (हिं०; मार०; फा०)	५८५
कस्फु (-बु)रः (अ०)	३९९
कस्बूस (यू०)	११९
कस्सा (हिं०)	२२९
कस्सूथा (यू०)	३१
क़हक़ब (अ०)	५४१
कहरवा (द०)	
कहरवा (हिं०)	१४८
कहरवा तैल	१४९
कहरूबा (फा०)	१४८
कहरूबामें मिश्रण आदि	१४८
कहरुबा शमई (फा०)	१४८
कहरुवा (हिं०)	१४८--१५०
कहरुवाम्ल	१४९
कहरोबा (गु०)	१४८
कहवा (हिं०)	१५०–१५१
क़हवा (अ०)	१५०
कहेला, कहेलो	१५२
काँक, काकुन (हिं०)	९४
काँकडी (बं०; म०; गु०)	१०२
काँकरोल (बं०)	१०४
काँकेडा–श्रृङ्गी (बं०)	१५४
कांग (म०)	९५
कांगा ठेंगड़े (म०)	१५३
कांचका (गु०)	१३१
कांचड़ी (बम्ब०)	५६१
कांचल (बं०)	१०५
काँटा चौलाई (हिं०)	३१५
कांटालां इन्द्रावणा (गु०)	१७६
कांटालुं (गु०)	५७४

विषय एवं शब्द	पृष्ठांक
कांटावालां मायुं (गु०)	५७४
काँटे गोखरु (म०)	२७४
काँटे च्चोत्ता (म०)	६५४
काँटे निवडुंग (म०)	३७९
काँटेरी इन्द्रायन (हिं०; भा० बा०)	१७६
काँटेरी इन्द्रावणी (म०)	१७६
काँटेवाली इन्द्रवारुणी (हिं०; भा० बा०)	१७६
काँटे सामर (म०)	६९८
काँटों का सेमल (खतयान) (द०)	६९८
काँटोला (मा०)	१०४
काँडीर (सं०)	६१५
कांडेर (सिं०)	१०९
कांडेरी (सिं०)	१०२
कांदर (हिं०)	८६
काँदर (हिं०)	८६
कांदा (म०)	४६५
काँदा (हिं०)	४६७
कांदो (गु०)	४६५
कांपेरू (कच्छ)	५५८
काइनो (अं०)	५२१
काई (हिं०; बं०)	१५२–१५३
काईपुती (द०)	१३४
काईबूटी (द०)	१३४
काउ-इन्त्र (अं०)	१०१
काउ-चूक	२७०,४४८
काउन (कों०)	९४
काउ-पी (अं०)	६३१
काउय-ठूठी (बं०)	१५३
काउयाठेङ्ा (बं०)	१५३
काउयाठोका (कों०)	१५३
काउरठइयाँ (बं०)	१५३
काउहेज (अं०)	१०१
काओन-लिअंग-किअंग (चीन)	१९२
काककंगु (सं०)	३१२
काकघ्नी (सं०)	५७८
काकच (गु०)	५७८
काकजंघा (सं०; हिं०)	१५३-१५४
काकड़	१५४
काकड़सिंगी (क०)	१५४
काकड़ा (मा०)	११९
काकड़ाशिंगी (म०)	१५४
काकड़ासिंगी (हिं०)	१५४
काकड़ासींगी (हिं०; पं०; गु०)	१५४–१५५
काकडुमुर (बं०)	८
काकतिन्दुक (सं०)	३७५
काकनः (फा०)	१५५
काक़नज (अ०)	१५५--१५६;५८८
काकनजे हिंदी (अ०, फा०)	४६
काकपीलु (सं०)	१७९
काव.फल (गु०)	५७८
काकमाची (सं०)	६२६
काकमाची (सं०)	१८०
काकमारी (सं०; हिं०; क०; ते०; म०)	५७८
काकर (ते०)	१३९
काकवी (म०)	२३४
क़ाक़ि(क़ु)लः सिगार (अ०)	७२
क़ाक़ि(क़ु)लज सिग़ार (अ०)	७२
क़ाक़ु (क़ि)लए क़ुबार (अ०)	७३
,, ज़ंजी (अ०)	७३
,, ज़फ़र (अ०)	७३
क़ाक़ु (क़ि) लए सिग़ार (अ०)	७२,७३
क़ाक़ु (क़ि) लए मुन्वस्सित (अ०)	७२
काकुलः (अ०)	७३
काकोदुम्बरिका (सं०)	८
कॉक्लोस्पेर्मुम् रेलीजओसुम् (ले०)	११३
कॉक्स कोम्ब (अं०)	६८३
कॉक्सीनिआ ईंडिका (ले०)	९७
कॉक्सीनिआ कॉर्डीफोलिआ (ले०)	९७
कॉक्सीनिआ ग्लॉउका (ले०)	२४८
कागजी नींबू (हिं०)	४२२
कागजी ने(ले)बू (बं०)	४२२
कागजी बादाम	५१०

विषय एवं शब्द पृष्ठांक

कागजी लीमू ४२२
कागडाकेरी (गु०) ४९७
कागदी या मलबारी एलची (गु०) ७२
कागदी लींबु (गु०) ४२२
कागफल (पं०) १७९
काचुकट्टि (ता०) २२९
काचू (बं०) ३९
काजचिलगोजा (फा०) ६६०
काजरा (म०) १७९
काजानुस काजान (लै०) ४७
काज़ी (अ०) २०१
काज़ीरः (फा०) १९७
काजू (हिं०; म०; गु०) १५६–१५८
काजूकुली (मेवाड़) १५६
काजूगुली (मारवाड़) १५६
काजूत(क)-(सं०) १५६
काजू बादाम (हिं०; बं०) १५६
काजूसेव (बं०) १५६
काञ्चन (म०) १०५
काञ्चनार (सं०) १०५
कॉटन (अं०) ११९
कॉटन प्लान्ट (अं०) ११९
कॉटन रूटबार्क (अं०) ११९
कॉटन वूल (अं०) ११९
कॉटन सीड्स (अं०) ११९
काटलाला (बं०) २५९
काटविष (बं०) ४८५
काटुकस्तूरी (मल०) ५८६
काटू (हिं०) १५६
काट्टकीलुजि (ता०) ६६४
काट्टपीच्चि (मल०) ३७०
काठगिदरो (सिंध) ३७
काडकस्तूरि (का०) ५८६
काडुसारिबे (का०) ७३१
कात (अ०; फा०; बं०; म०) २२९
कातरान (हिं०) ११०

विषय एवं शब्द पृष्ठांक

कातरी इन्द्रायन (हिं०; भा० बा०) १७६
क़ातिरुद्दम (अ०) ३८०
क़ातिलुन्नहल (अ०) १२९
क़ातिलुल् कल्ब (अ०) १८०,२१७
कातीन २३०
कात्तु (मल०) २२९
काद (अ०) २२९
कादी (अ०; फा०) २०१
कॉन कैंजैनीन (अं०) ४०
कानफूल (हिं०; पं० गु०) १६७
कानारिउम् कॉम्मूने (लै०) ५६४
कानारि (मलावार) ५६४
क़ान्क़रान् (अ०) १११
कान्ना इंडिका (लै०) ५४२
कान्नाबिस साटीवा (लै०) ५४८
कान्नाबिस साटीवा सीमेन (लै०)
कॉन्वाल्वुलुस आर्वेन्सिस (लै०) ६५२, ७२८
कॉन्वाल्वुलुस जलापा (लै०) ३३२
कॉन्वाल्वुलुस प्लूरीकाउलिस (लै०) ६४७
कॉन्वाल्वुलुस स्काम्मोनिआ (लै०) ६५३
कॉन्वॉल्वुलिन ४२१, ७२८
कापनूस (यू०) ६३७
कापसी (म०) ११८
कापास (बं०) ११८
कापूर (फा०) १२०
कापूस (म०; गु०) ११९
कॉप्टिक बीन (अं) १२९
कॉप्सीकुम् अन्नुउम् (लै०) ५८१
कॉप्सीकुम् फ्रूटेस्सेंस (लै०) ५८१
काफल (कु०; गढ़०; ने०) १५८
काफि (बं०; गु०) १५०
काफी (बम्ब०; म०) १५०
कॉफी (अं०) १५०
कॉफीन (अं०) १५१
काफ़ूर (अ०) १२०
काफ़ूर कम्मूनी (अ०) १९२

विषय एवं शब्द पृष्ठांक

काफ़ूर शक़ीक़ (अ०) २६२
काफोरा (यू०) १२०
कॉफ्फेआ अराबिका (ले०) १५०
काबुली मटर (हिं०) ५६४
काबुली मस्तगी (बं०) ५३२
काबुली हड़ (हिं०) ७१३
कॉमन एल्डर (अं०) २१३
कॉमन क्रेस (अं०) ७२६
कॉमन पॉलीपोडी (अं०)
कॉमन बग्लेस (अं०) २४८
कॉमन या गार्डेन बीट (अं०) ३०८
कॉमन चेरी (अं०) ६१
,, मशरूम (अं०) २२६
,, मिलेट (अं०) ३१२
,, राई (अं०) ४१
,, ह्वाइटहोर-हाउंड (अं०) ४७०
कामरंग (द०) १२८
कामरांगा (बं०) १२८
कामराज ३९३
कामलता (बम्ब०) ७४
कामलते (क०)
कामाक्षी (बं०) ५४२
कामीलिआ (यू०) ५७३
कामेलिआ थीफेरा (ले०) २९५
कामोणी (म०) ५५८
कामोद (म०) १२९
कामोमिलोन (यू०) ५१४
काम्फोरा (ले०) १२०
काम्बोजिआ (ले०) ८८
कॉम्मीफ़ोरा मीर्हा (ले०) ५४३
कायछाल (हिं०; म०; गु०; बं०) १५८
कायपुटी (हिं०; बं०) १३४
कायपुती (गु०) १३४
कायफल (हिं०; म०; गु०) १५८-१५९
कायफल के फूलों का तेल १५९
,, निर्माण-विधि १५९

विषय एवं शब्द पृष्ठांक

कायाकुटी (हिं०) १३४
कारबाला एपल (अं०) १२८
कारलें (म०) १३९
कारवल्ली (सं०) १३९
कारवेल्लक (सं०) १३९
कारवी (सं०) १९१, ३४२
कारवी कर्पूर (सं०) १९२
कारवीन (अं०) १९२
कारवोल (अं०) १९२
कारस्कर (सं०) १७९
काराम्पु (मल०) ६३२
कारिओन (यू०) ३९९
कारीओन (यू०) १९२
कारिका पपाया (ले०) ३७
कारिल्ला फ्रूट (अं०) १३९
कारिवणा (म०) ५४५
कारीस्सा कारांडास (ले०) १४०
का० ओपाका या स्पीनारुम् (ले०) १४१
कारुओफुल्लोन (यू०) ६३२
कारुम कार्वी (ले०) १९१;३४१
कारूनक (फा०) ४८३
कारेला (गु०) १३९
कार्कोकिल (मल०) ४८०
कॉर्कोरुस फासीकुलारिस (ले०) ५०४
का० आन्टीकोरुम ले०
कार्डामोन (यू०) ७२६
कॉर्डिआ आब्लीकुआ (ले०) ६१६
कॉर्डिआ मिक्सा (ले०) ६१६
कार्डेमम् (अं०) ७२
कार्डेमोम्ज (अं०)
,, बंगाल (अं०) ७२
,, राउण्ड (अं०) ७२
,, विंगडनेवा (अं०) ७२
,, सीलोन वाइल्ड (अं०) ७२
कार्डेमोमोन (यू०) ७२
कार्थामुस् ऑक्सीकान्था (ले०) १९७

विषय एवं शब्द पृष्ठांक
कार्थामुस् टींक्टोरिउस (लें०) १९७
कार्थेमीन (अं०) १९८
कार्न-सिल्क (अं०) ५५७
कार्पास-बीज (सं०) ११९
कार्बाशम् (ता०) ११९
कार्बोनेट ऑफ सोडा (अं०) ८५
कार्बोहाइड्रेट (अं०) ५७०
कार्बेल (मल०) ७३१
कालकुसुंव (हिं०) १९७
कालजीरा (बं०) १४३, ३०१
कालमेघ (हिं०; बं०) १५९—१६०
कालसंद (म०) ३६३
कालांची पीन्नाटा (लें०) ४३३
कालाकुड़ा (खर०; म०) १८८
काला या तिक्त कुड़ावृक्ष १८८
कालाचंग (क०) ३४६
कालाजीरा (हिं०) ३४१
काला (माका) तेंदु (हिं०) ३७५
काला दरणा (म०) १६०
काला दाणा (गु०) १६०
कालोकूंपो (गु०) १६०
कालादाना (हिं०; बं०) १६०—१६१
कालाधतूरा (हिं०) ३९७
कालानागकेसर (द०) ३५८
कालानुसार्य (सं०) ३५७
काला बिछुआ (हिं०) १६१
कालाबिच्छू (हिं०) १६१—१६२
कालाबोल (म०) २७९
कालामरी (गु०) ५७९
कालामुस आरोमाटिकुस (लें०) ३००
कालामुस रोटांग (लें०) ५३६
काली उपलसरी (गु०) १६३
कालो कावली (गु०) १६३
कालीजीरी (हिं०; द०; गु०; मा०; बम्ब०; कुमाऊँ) १६२—१६३
कालीझांप (हिं०; भा० बा०) ७१०

विषय एवं शब्द पृष्ठांक
कालीनगदी (मार०; राज०) ४१८
कालीपहाड़ (हिं०) ४४०
कालीपाठ (गु०) ४४०
कालीफुलडी (गु०) ३४६
कॉलीफ्लावर (अं०) २७७
काली मरिच (हिं०) ५७९
काली मिर्च (हिं०; उड़ि०) ५७९
काली मिर्ची (द०) ५७९
कालीमुशली (म०) ५८७
कालीमुसली (मुसली स्याह) (िंह) ५८७—५८८
कालीमुसली (गु०) ५८७
कालीयो सरस (गु०) ६८२
कालीसर (हिं०; भार०) १६३—१६४;६७५
कालीसिरस (हिं०) ६८२
कालीहड़ (हिं०) ७११,७१२
कालीहलद (बं०; म०) ४०५
कालीहलदी (हिं०) ४०५
कालुम्बी राडिक्स (ले०) १४२
कालूख (फा०) २३२
काले फूलका धतूरा ३९७
कालोकिन्थिस (यू०) ६५
कालोट्रापिस जीगांटिआ (ले०) ४८
कालोटॉपिस आकिआ (ले०) ४९
कालो धन्तुरो (गु०) ३९७
कॉलोसिंथ (अं०) ६;६४
कालोसिन्थिटिन (अं०) ६५
कालोसिन्थिन (अं०) ६५
कालोसिंथिस (ले०) ६५
कालोसिन्थेइन (अं०) ६५
कालो हंसराज (गु०) ७१०
कॉल्चिकम् (अं०) ६९२
कॉल्चिकुम् आउटुम्ना (ले०) ६९३
का० लूटेउम् (ले०) ६९३
का० स्ट्रैंग्युलेलोरिउम् (ले०) ६९४
कॉल्चिकोन (यू०) ६९३
कॉल्चिसीन (अं०) ६९३

विषय एवं शब्द पृष्ठांक
कावटच्छमूल (क०) ३८५
कावलि (सि०) ५५८
कावारम् (सं०) १५२
कावली (बम्ब; म०) २५४
काशिम (अ०; फा०) १६५
काशिमुर्रूमी (अ०) १६५
काशीफल (हिं०) २०५
काशुर गुलाब (क०) २६३
काश्मीर (सं०) ४५५
काश्मीरज (सं०) १८३
काश्मीरी बत्ता (हिं०) १६४;१६५
काषुवित्तुलु (ते०) १७०
काष्ठगण (क०) २५२
कासनी (फा०; हिं०; पं०; गु०) १६५-१६७
,, की जड़ १६७
,, के बीज (हिं०; पं०; गु०) १६६
कासनी जंगली (दुधल) १६७–१६९
कासनी दश्ती (फा०) १६७;१६८
कासनी सहराई (फा०) १६७
कासन्दा (बं०) १४७
कासमर्द (सं०) १४७
कासविंदा (म०) १४७
कासिन्दु (ते०) १४७
कासिम रूमी (फा०) ६८५
कासुआरीना एक्वीसेटिफोलिआ (ले०) ६६६
कासोंदरो (गु०) १४७
कास्सिआ आकूटीफोलिआ (ले०) ६५९
कास्सिआ ऑक्सिडेन्टालिस (ले०) १४७
कास्सिआ आंगुस्टीफोलिआ (ले०) ६५८
कास्सिआ आब्सुस् (ले०) २९३
कास्सिआ कॉर्टेक्स (अं०) ३५८
कास्सीआ टोरा (ले०) ४२८
का० पूर्पूरेआ (ले०) १४७
कास्सिई पल्पा (ले०) ३५
कास्सिआ फीस्टुला (ले०) ३५
काहजबान (क०) २४८

विषय एवं शब्द पृष्ठांक
काहमक्की (फा०) ६९
काहू (फा; हिं; बं०; पं०) १६९
काहू (बागी तथा जंगली) १६९;१७२
काहू का तेल १७१
,, ,, कल्पनाविधि १७१
काहूकी अफ़ीम १७०;१७१;१७२
काहूके बीज (हिं०; द०) १७०-१७१
काहू जंगली १७२
काहूजात अहिफेन १७०
काहूबर्री, काहूसहराई (फा०) १६९
किंगोडा (गढ़०) ३८५
किग्स क्युमिन (अं०) १६
किग्स क्राउन (अं०) ६७
,, क्लेवर या चाफर (अं०) ६७
क़िबीत (अ०) २७७
क़िंवील (अ०) १३३
किंबु, किमु (नेपा०) ३७४
किंशुक (सं०) ४३७
किक्रवा गोंद (पं०) ४९३
किक्कर: (पं०) ,,
किक्सिआ रैमोसिस्सिमा (ले०) ४३४
किडोनिआ (यू०) ५३०
किड्नी बीन (अं०) ७९
किडनी बीन्स (अं०) ६३१
किचिआ (यू०) ५२२
किना-किना ६७८
कि(कु)नार (फा०) ५३८
कीना (पेरू) ६७८
कीना-कीना (अ० नवीन) ,,
किनीकाही (सिंधी) ४८३
किनीबुटी (सिंध) ७३१
किन्ज़ (फा०) ५९५
क़िन्दूल (अ०) १५८
किन्नब (फा०) ५४८
क़ि(क़ु)न्नव (अ०) ५४८
क़ि(क़ु)न्नब ५४८

विषय एवं शब्द पृष्ठांक

क़िन्नः (अ०) ३०३,३३३
किप्रोस (यू०) ५९३
किमु (कु०) ३७४
किरमाणी अजवायन (बम्ब०) १७३
किरमाणी ओवा (म०; बम्ब०) १७२
किरमाणी (कीटमारी) यवानी (सं०) १७२
किरमानी अजवायन (हिं०) १७२
किरमाल (मा०) ३५
किरमाला (हिं०) १७२--१७४
किराईत (म०) ३००
किरात, किराततिक्त (सं०) ३००
किराताम्ल ३०१
किरातीन ,,
किराम्बु (ता०) ६३२
किरिड (सिंघ) १३७
किरिमदानः, किर्मदानः (फा०) ६५६
किर्दिमाना ( ) १९१
क़िर्फ़तुल् क़रन्फ़ुलियः (अ०) ३८८,३८९
क़िर्फ़तुल् खशवियः (अ०) ३८८
क़िर्फ़तुद्दारसीनी (अ०) ३८८
क़िर्फ़ा (अ०) ३५८,३८८
किर्मली (किलमली)के बीज (हिं०) ७३२
किलन (हिं०;द०) ३९४
किलनका तेल (हिं) ,,
किलिम (सं०) ,,
किलुकिलुप्पा (मल०) ६५८
किवाँच (मा०) १०१
किशमिश (फा०) ३
क़िशमिश (अरबीकृत) ३
किशमिश काबली, किशमिशे कावालियाँ (फा०; भा० बा०) १७४
क़िशार कुंदुर (अ०) ९९
क़िश्रुल् उत्र(त्रुज) ५२२
किसमिस (हिं०; म०; गु०; ते०) ३
किसमिस कावलियाँ १७४–१७५
क़िसाऽहिन्दी (अ०) ३५

विषय एवं शब्द पृष्ठांक

क़िसोस (अरबीकृत) ६१८
क़िसाउल्हिमार(अ०क़िस्साउलहिमार)१७६-१७७;४७८
,, का सत १७६
क़िस्साऽ उल्हिमार सत्व कल्पना विधि १७६
कोआईन (पं०) २४७
कीकर (हिं०; पं०) ४९३
कीकरका गोंद (हिं०) ,,
कीटमारी (सं०) ३२६; १७७
कीटारि (सं०) १७७
कीडामार (म०; बम्ब०) १७७
कीडामारी (हिं०; गु०; मा०) १७७–१७८
कीरमादनी (पा. टि. ५, पृ) १०४
कील (हिं०) ११०
कीलदारु (हिं०) ६६३
कुंकुम पुवु (ते०) २०२
कुं(कों)ग (क०) २०२
कुंगुमपु (ता०) २०२
कुँच (बं०) २८२
कुंचिला (बं०) १७९
कुंजद (फा०) ३६७
कुंझि (हिं०)
कुन्द (हिं०) १७८
कुंदी (हिं०; बम्ब०) १७८
कुंदुर (अ०) ९९
कुन्दुर (हिं०; द०) ९९-१००
कुंदुर (फा०) ९९
,, का चूरा ९९
,, का संग्रह ९९
,, उत्तमके लक्षण ९९
,, उन्सा ९९
,, किशार (अ०) ९९
,, गोल ९९
,, जकर (अ०) ९९
;, दुक़ाक़ (अ०) ९९
,, नर ९९
,, मादा ९९

विषय एवं शब्द पृष्ठांक
,, मुदहरज (अ०) ९९
कुंदुरुः (सं०) ९९
कुंदु (द)रु (हिं०) ९७
कुंदुरु गोंद (हिं०) ६६७
क़न्दुश (अ०) १००-१०१
कु(क़ु)दुश(स) (अ०) १००
कुंदुश ४०५
कुंद्रो (बं०) ९९
कुंभा (म०) २६९
कुंवार (गु०) २७९
कुंवार जंदल (पं०) २७९
कुंवार पाठु (गु०) २७९
कुआमोस (यू०) ५०७
कुआमोस इजिप्टिओस (यू०) १३०
कुएर्कुस इन्फेक्टोरिआ (ले०) ५७४
कुकुरछदी (हिं०) १७८
कुकरौंधा १७८-१७९
कुकसीम (बं०) ६६८
कुकुड़वेल (गु०) ४७८
कुकुरबदा (म०) १७८
कुकुंबर (अं०) १०२,२२३
कुकुंबर मंडरास (अं०) १०६
कुकुंबर मोमोर्डिका (अं०) १०२
कुकुंबर सीड्स (अ०) १०२
कुकुर बिटिन (अं०) ४५८
कुकुरमुत्ता (हिं०) २२६
कुकुरशोंका (बं०) १७८
कुकुरांड (हिं०) २३१
कुक्कवा (ते०) ७३१
कुक्कुरद्रु, कुकुन्दर (सं०) १७८
कुङ्कुम (सं०) २०२
कुचला (हिं०) १७९-१८२
कुचला के विषलक्षण और उसकी चिकित्सा १८१
कुचिला (हिं०) १७९
कुचूक —
कुचूला (फा०) १७९

विषय एवं शब्द पृष्ठांक
कुजरी (को०; संथा०) ५७६
कुजोई (हिं०) १९९
कुज़्ब (बु) रः (अ०) ३९७
,, याबिस (अ०) ३९९
कुज़्बुरतुल् हिमार (अ०) ६३७
कुट (बम्ब०) १८३
कुट (ठ) (पं०; क०; हिं०) १८२-१८३
कुट (ठ), कड़ुआ कुट १८२-१८६
कुटकी (हिं०) १८७-१८८; २१९
कुटज (सं०) १८८
कुटज त्वक् (सं०) १८८
कुटज बीज (सं०) ,,
कुट वास्तविक १८५
कुड़ (बं०) १८३
कुडचिगाछ (बं०) १८८
कुड़ा (उड़ि) (हिं०) ,,
कुड़ाकी छाल ,,
कुड़ा सफेद व काला १८९-१९०
कुड़ा सफेद या मीठा १८८-१८९
कुड़ा छाल १८९-१९०
कुडियाट्टि (ता०) ६५४
क़ुतु (नत्र), क़ुत्न (अ०) ११९
कुतुम्बक (सं०) २६९
कुन (फा०) ११२
कुनकुना (फा०) ६७८
कुनरू (हिं०) ९७
कुनार दश्ती (फा०) ५३८
कुनैन ६८०
कुन्दः (सं०) १७८
कुन्दुर (रु)—(सं०) ६६७
कुन्दुरु (सं०) ९९
कुन्दुरुकम् (ता०) ६६७
कुन्दुरुकी (सं०) ६६७
कुन्दुरेरूमी (फा०) ५७०
कुन्द्रिकम् (सिंह०) ६६७
कुन्नि (मल०) २८२

विषय एवं शब्द पृष्ठांक

कुपीलु (सं०) १७९
कुबुबी फ्रुक्टुस (लै०) १२६
कुबेराक्षी (सं०) १३५
कुब्जक (सं) १९९
कुम (ईरान) ११२
कुमारी (सं०) २७२
कुमारी (रस) सार २७९
कुमीनोन (यू०) ३४७
कुमुद (सं०) १२९
कुमुदिनी (सं०) १३०
कुम्कुम् (बं०) २०२
कुम्पलम् (मल०) ४५८
कुम्ब, कुम्बी (को०) ५१५
कुम्भिका (सं०) ३२९
कुम्भी (हि० बं०) ५१५
कुम्भी, कुम्भीफल, कुम्भीर (सं०) ५१५
कुम्मस्रा (अ०) ४१
,, जबली ४१
,, बर्री ४१
,, बुस्तानी ४१
,, हामिज़ ४१
कुम्हड़ा (हिं०) ४५८
कुर(ड़)ची (बं०) १८८
कुरची वार्क (अं०) १८८
कुरञ्जी (मल०) २८२
कुरड्डु (म०) ६८३
कुरथी (हिं०) १९४
कुरमा (सिं०) २०९
कुरहन् (सिं०) ९४
कुरीधान्य (सं०) ५५५
कुरुवकमृ (ते०) ५९३
क़ुरूया (अ०) १९१–१९२
कुरैया, कोरैया (हिं०) १८८
कुरैयाकी छाल (हिं०) ,,
कुरो (पं०) ,,
कु(क)र्कुम (सु०; इब्रा०) २०२

विषय एवं शब्द पृष्ठांक

कुर्कुमिन ७२१
कुर्कूमा आरोमाटिका (लै०) ४७
क़ु(क़ि)तुर्म (अ०) १९७;१९०
क़ुतुर्म हिंदी (अ०) १६०
कुर्नुब (अ०) २७८
कुफ़ुर्स (अ०) ११९
कुर्रास शामी (अ०) २३३
कुर्रासुस्सौम (अ०) ,,
कुर्सु(सूं)फ़ (अ०) ११९
कुलंजन (हिं०; बं०) १९२–१९४
,, चीनी १९३
,, देशी ,,
कुलञ्जः, कुलिञ्जन (सं०) १९२
कुलजुद (हिं०) ३५१
कुलत्थ (बं०) १९४
कुलथी (हिं०) १९४–१९५
कुलफा और लोनिया १९५–१९७
कुलफा (हिं०) १९५;१९६
,, के बीच १९७
कुलाग़पाव (फा०) १५३
कुलाड़ (पं०) १०५
कुलाहे बलादुर (फा०) ५५३
कुलाहे बाराँ (ज़मीं) (फा०) २२६
कुलाहे मार (फा०) २२६
कुलिंजन (हिं०; गु०; सिंध) १९२
कुलिंजन (सं०) ,,
कुलींजन (म०, हिं०) ,,
कुलीथ (म०) १९४
कुलेकाँटा, कुलेखाड़ा (पं०) ३६३
कुल्ली (हिं०) ११३
कुवलम् (मल०) ५३९
कुवाडियो (गु०) ४२८
कुविलम् (ता०) ५३९
कुशूस, कसू(शू)स ३०
,, बज्रुल् कुशूस (अ०) ३०,३१,३२
बीज कुरमालू (हिं०) ३२४

विषय एवं शब्द पृष्ठांक

कुष्ट (म०) १८३
कुष्ठ (सं०) ,,
कुष्ठभेद (सं०) ४५५
कुष्ठीन (हि०) १८५
कुस-कुस (अ०)
कुसर (म०) ५७७
कुसाऽअल् हिमार (अ०) १७६
कुसुम (बर्रे) (हिं०) १९७–१९९
कुसुम (बर्रे) का फूल (हिं०) ,,
,, के बीज १९७
,, जंगली (हिं०) ,,
,, फूल (बं०) ,,
कुसुम बीचि (बं०) ,,
कुसुम्ब (बम्ब०) १९७
कुसुम्भ (सं०) ,,
,, पुष्प ,,
,, बीज ,,
कुसूस (अ०) ११
,, (ले०) ३१
कुस्कुटा एउरोपेआ (ले०) ३०
कु० एपिथिमुम् (ले०) ३०
कु० चायनेन्सिस (ले०) ३१
कु० हार्यलिना (ले०) ३१
कुस्कूटा (ले०) ११
कुस्कूटा रेफ्लेक्सा (ले०) ,,
कुस्कूटिन (अं०) १२
कुस्कूटेलिन (अं०) ,,
क़ुस्त (अ०) १८२
क़ुस्तशामी (अ०) ६०४
कुस्तुम्बरू (सं०) ३९९
कुस्तुम्बरी (सं०) ,,
क़ुस्तुल् मुर्र (अ०) १८३
कुस्तुल् सुलुव्व १८२
क़ुस्ते अरबी (अरबी कुट)(अ०) १८२, १८४; १८५
क़ुस्ते तल्ख या स्याह (फा०) १८३
क़ुस्ने बहरी (अ०) १८२

विषय एवं शब्द पृष्ठांक

क़ुस्ते शीरीं (फा०) १८२
क़ुस्ते सफ़ेद (फा०) ,,
क़ुस्ते हिन्दी १८४
क़ुस्ते हिन्दी (अ०) १८३
कुहनज्यु (जु) र (क०) ३४१
कूई, कोंई, कोई (हिं०) १२९
,, नीली (हिं०) १३०
,, लाल (हिं०) ,,
,, सफेद (हिं०) ,,
कूकूमिस ऊटीलिस्सिमुस (ले०) १०२
कू० ट्रूडाइन (ले०) १०६
कू० मेलो (ले०) १०२
कू० मोमोर्डिका (ले०) २०५
कू० साटीवुस (ले०) २२३
कूकुरबिटीन (अं०) २०६
कूकूरबिटा पेपो ,,
कूकूरबिटा माक्सीमा (ले०) २०५
कूकूरबिटा लाजेनारिया (ले०) ११४
कूजा (हिं०; बं०) १९९
कूट (ठ) (हिं०) १८२; १८३
कूटशाल्मली (सं०) ६९९
कूनियून (अ०) ६४५
कूपीरोस (न)–(यू०) ५९८
कूप्रेस्सुस सेम्पेर्विरेन्स (ले०) ६६६
कूबेबा ऑफ्फासिवालस (ले०) १२६
कूबेबा जाति
कूमीनुम् सोमीनुम् (ले०) ३४१
कूमेरिन (अं०) ६८
कूरिऊन (यू०) ३९९
कूर्कुमा आंगुस्टीफोलिआ (ले०) ३६८
कूर्कुमा जेडोआरिया (ले०) ४०५
कूर्कुमा डोमेस्टिका (ले०) ७२०
कूर्कुमा सेसिआ (ले०) ,,
कूर्कूलीगो आर्किओइडेस (ले०) ५८७
कूल (बं०) ५३८
कूवो (गु०) २६९

विषय एवं शब्द — पृष्ठांक

कूष्माण्ड (सं०) ४५८
क्रतवेधन (सं०) ३७१
कृश्नोकेलि (बं०) २५६
कृष्णजीरक (सं०) १९१; ३४१
कृष्णधत्तूरक (धुस्तूर) (सं०) ३९७
कृष्णबीज (सं०) १६०
कृष्णबोल (सं०) २७९
कृष्णमुसली (सं०) ५८७
कृष्णमूली (सं०) १६३
कृष्ण शिरीष (सं०) ६८२
कृष्ण सर्षप (सं०) ६६५
कृष्णसारा (सं०) ६४३
कृष्णसारिवा (सं०) १६३, १६४, ६७५
कृष्णाजाजी (सं०) ३४१
केंद (दु) (हिं०) ३७५
केवाच (हिं०) १०१
केकिस (यू०) ५७४
केचिला (गु०) १७९
केजुपुट (अं०) १३४
,, ऑयल (अं०) ,,
केजुपुटी ओलेउम् (ले०) १३४
केतक(की)–(सं०) २०१
केदी ३८९
केन-पाम (अं०)
केनोपोडिअम् अम्ब्रोसिओइडीस (ले०) ४८९
केनोपोडिडम् आम्ब्रोसिओडीस (ले०) ४८८
के० आन्थेल्मान्टिकम् (ले०) ४८८, ४८९
के० आल्ब्रुम् (ले०) ४८८
केनोपोडियम आट्रिप्लिसिस (ले०) ८४
केन्दु (को०) ३७५
केपर प्लांट (अं०) १२५
केमल्स थार्न (अं०) ३३९
केमल्स थिसल या थार्न (अं०) ९१
केम्फेरिया गलंगल (ले०) १२४
केया (बं०) २०१
केर, केरडां (गु०) १३७

विषय एवं शब्द — पृष्ठांक

केरट (अं०) २४१
केरनी (म०) २२२
केरबा (गु०) १४८
केरबो (म०) १४८
केरवे, कैरावे (अं०) १९१
केराटिया (यू०) २१५
केराटोनिआ (यू०) ,,
केरा (हिं०) १९९
केराव (हिं०) २२९
केरासिया (यू०) ६१
केरासूस (यू०) ६१
केरिया आर्बोरिया (ले०) ५१५
केरियाफिलीन फायलीन ६३२
केरियोफाइलिक एसिड (अ०) ६३२
केरियोफिल्लोन (यू०) ६३२
केरियोफील्लुम् (ले०)
केल (म०) १९९
केलांजी (म०; गु०) १४३
केला (गु०; हिं०) १९९
केले (काल) जीरे (बं०) ३४१
केलोन (पहाड़ी) ३४४
केवटी मोथा (हिं०) ५९८
केवड़ा और केतकी २०१-२०३
केवड़ा (हिं०; म०) २०१-२०२
केवड़ो (गु०) ,,
केवाँच, कौंच १०१-१०२
केशिया पल्पा (अं०) ३५
केशराज (सं०) ५४७
केशुत्ते (बं०) ५४७
केशुर (रू) (बं०) १४६
केश्यूनट (अं०) १५६
केस(श)र (हिं०;सं०) २०२-२०३
केसरडा (उ०) ५४७
केसर बोडी, केसरी (बम्ब०) ७०
केसुडा (पुष्प)-(गु०) ४३७
कैं (गै) बोज (अं०) ८८

विषय एवं शब्द	पृष्ठांक
केसू (हिं०)	४३७
क़ैक़हर (अ०)	६०३,६०४
क़ैक्टुस ग्रान्डीफ्लोहस (लें०)	४०८
कैजेपुट (अं)	१३४
कैजेनोन (अं०)	४०
कैटेक्यू(-च्यू)-(अं०)	२२९
कैटेक्यु टैनिक-एसिड (अं०)	२३०
कैटेकीन (अं०)	२०३
कैट्स हेयर (अं०)	३९१
कैत (हिं०)	२०३
कैथ (हिं०)	२०३–२०४
कैथगिरी (हिं०)	२०४
कैथार्टिक एसिड	६५९
कैनेबिनोल (अं०)	५४९
कैपरिस (यू०)	१२५
कैपूती (हिं०)	१३४
कैप्पारिस डेसीडुआ (लें०)	१३७
कैप्पारिस स्पीनोजा (लें०)	१२५
कैप्सिकम् (अं०)	५८१
कैप्सि(प्से)सिन (अं०)	५८१
कैंबेज (अं०)	२७८
कैमोमाइल (अं०)	५१३
कैम्फर (अं०)	१२०
कैर (मा०)	
कैरुवा (कुमा०)	६५३
कैरोटीन	६५२
कैरोटीन (विटामिनA)	१५७;४८९
कैलंब रूट (अं०)	१४२
कैलंबिक एसिड (अं०)	१४३
कैलास (फा०)	६१
कैल्सियम्	६५०
कैल्सियम् फॉस्फोरस	५८७
कैवर्तमुस्ता (सं०)	५९८
कैशो (आसा०)	२७४
क़ैसूम (अ०)	२०४–२०५
क़ैसूमका तेल (हिं०)	२०५
कैस्टर ऑइल (अं०)	६०९
कैस्टर-ऑयल प्लान्ट (अं०)	६०९
कैस्टर सीड (अं०)	६०९
कैस्टीन	६५०
कैहक़	३२०
कोंकरोंद (गु०)	१७८
कोंटकोलो (उड़ि)	५६०
कों(कुँ)हड़ (हिं०)	२०६
कोंहड़ा विलायती (हिं०)	२०५–२०६
कोंहड़ा (हिं०)	४५८
कोइला (अ०)	१०५
कोइना(नी)-(हिं०;संघा०)(को०; संघा०)	५७२
कोइनार (खर०)	१०५
कोइनी सुनुम (को०;संघा०)	५७२
कोइना(ला)र (हिं०;मीरजा)	१०५
कोकन(नी)-(हिं०)	६८३
कोकनबेर (पं०)	५३८
कोकनार (फा०)	४६०
कोका (अं०)	२०६–२०७
कोका (सं०)	१३०
कोकाबेली (सं०)	१३०
कोकिलाक्ष (सं०)	३७३
कोकेन (अं०)	२०७
कोकोनट ऑयल (अं०)	४१५
कोकोनट पाम (अं०)	४१२
कोकोनट फ्रूट (अं०)	४१४
कोकोस नूसीफेरा (ले०)	४१४
कोक्कुमेलिआ (यू०)	६३
कोचरा (बं०)	५७३
कोचोधा (बं०)	५३९
कोटयाली (हरिद्वार)	५४५
कोडा बादाम (म०;पं०)	५०८
कोडीन (अं०)	४६२
कोड़े (ता०)	३५
कोतुंबरि (कना०)	३९९
कोतोकी (उड़ि)	४१८

विषय एवं शब्द — पृष्ठांक

कोत्तमल्लि (सिंह०) ३९९
कोथ(थि)मीर (गु०) ३९९
कोथिंब्या (म०) ३९९
कोदव, को(कु)दई (हिं०) २०८
कोदों (हिं०) २०८
कोदो (हिं०) २०८
कोदोआ-धान (बं०) ,,
कोन्द्र (पं०;बम्ब०) ,,
कोद्रो (गु०) ,,
कोद्रु (म०) ,,
कोद्रव, कोरदूष (क)-(सं०)
कोठ (ठुं)-(गु०) २०३
कोन (फा०;इरानी) ११२
कोनायम (अं०) ६४५
कोनिईन (अं०) ,,
कोनियोन (यू०) ,,
कोकीउम् माकूलाटुम् (ले०) ६४५
कोनीबीह (आसा०) ३२१
कोनेस्सी बार्क (अं०) १८८
कोपी (बं०) २७८
कोपेइफेरा लांग्सडॉर्फियाई (ले०) ४९९
कोप्टिस (अं०) ५६५
कोप्टिस टीटा (ले०) ,,
कोबी (हिं०) २७७
कोमल (हिं०) ४७६
कोमारिन ७१५
कोम्मीफेरा ओपोबाल्सामुम् (ले०) ४९९
कोम्मीफेरा वाइटिई (ले०) २५२
कोरकांड (म०) २७९
कोरफड़ (म०) २७९
कोरया (हिं०;था०;को०) १८८
कोरल (म०) १०५
कोरलु (ते०) ९४
कोरिआन्ड्रुम् साटीवुम् (ले०) ३९९
कोरिऐन्डर (अं०) ३९९
कोरिएन्ड्रोल (अं०) ३९९

विषय एवं शब्द — पृष्ठांक

कोरिऐन्नून (यू०) ३९९
कोरीलूस आवेल्लाना (ले०) ४७५
कोरोनेरीन
कोरंफुलोन (यू०) ६३२
कोल (सं०) ५३८
कोलकन्द (सं०) ४६७
कोलकाँदा (म०) ४६७
कोलपुलि (मल०) ७०
कोलंबिन (अं०) १४३
कोलवर्ट (अं०) २७८
कोलसुंदा (बं०) ३६३
कोला (मा०) ४५८
कोलिञ्जिल् (मल०) ६६४
कोलीन ५९४
कोलोकासिआ अण्टिकोरुम् (ले०) ३९
कोलोकिंथिस (यू०) ६४
कोलोटरीन ६२८
कोलोनीक्टिओन आकूलीआटुम् (ले०) ६१९
कोलोफोनिउम् (ले०) ६०३
कोलोफोनी (अं०) ६०३
कोलोकासिआ एस्कूलेंटा (ले०) ३९
कोलौट्जीआ (यू०) १९२
कोल्खि (ल्चि) कोन (यू०) ६९२
कोल्ट्सफ़ूट (अं०) ४६८
कोविदार (सं०) १०५
कोश्त: (फा०) १८३
कोषा(शा)तकी (सं०) ३७१
कोष्ट (कर्णाटक) १८३
कोस्टुस आराबिकुस (ले०) १८३
कोस्टोस (यू०) १८३
कोस्सूस (यू०) ६१८
कोहल किरमानी (अ०) ६
,, फारसी (अ०) ,,
कोहला (म०) ४५८
कोहला (मा०) ४५८
कौंच (छ)-(हिं०) १०१

विषय एवं शब्द पृष्ठांक
कौंचा (गु०) १०१
कौंला (हिं०) ९८
कौआ (हिं०) १६१
कौज सहराई (फा०) ६३४
कौड़ (पं०) १८७
कौंड़तुंबा-तुम्मा (पं०) ६४
कौडियाला (हिं०) ६४७
कौड़िया लोबान (हिं०) ६३०
कौरी (हिं०) २५१
कौल (हिं०) २०६
कौलन (हिं०) ४३२
कौशाद (फा०) ३४०
कौशिक (सं०) २५२
क़नीक़ुस (अ०) १९७
क़नीक़ुस अग़ारियून (अ०) १९७
क्नीकोस अग्रिओन (यू०) १९७
क्नीको(खो)स (यू०) १९७
क्नेकोस (रू०) १९७
क्युपिड्स फ्लावर (अं०) ७४
क्युबेबिन (अं०) १२७
क्युबेब्स (अं०) १२६
क्युमिन ऐल्डीहाइड (अं०) ३४२
क्युमिन (अं०) ३४७
क्युमिनोल (अं०) १९२;३४२
क्रमुक (सं०) ६९०
क्राइसेरोबीन (अं०) ६१३
क्राइसोफेन (अं०) ६१३
क्राइसोफैनिक एसिड (अं०) १४७;३१६६१३;३५९
क्राइसोमिलिआ (यू०) ५३०
क्राटेवा नुर्वाला (लें०) ४९७
क्रा० रेलोजिओसा (लें०) ४९७
क्रियोजोट (अं०) ११२;५७६
क्रिसेम्थिमिन (अं०) २५९
क्रिस्टेम्बीन (अं०) ५१६
क्रिस्मस रोज़ (अं०) २१८
क्रीड़ (क०) २९३

विषय एवं शब्द पृष्ठांक
क्रीनुम् जेलानिकुम् (लें०) ६८८
क्रीनुम् लाटीफोलिडम् (लें०) ६८८
क्रींपिग साइनोडॉन (अं०) ३९३
क्रीप्टोलेपिस बुकनानी (लें०) १६३
क्रीसान्थुमुम् इंडिकुम् (लें०) २५८
केन-ट्री (अं०) ४०३
क्रेस्सा क्रेटिका (लें०) ६०८
क्रैब्स क्लॉ (अं०) १५४
क्रोकस (अं०) २०२
क्रोकिन (अं०) २०२
क्रोकुस साटीउस (लें०) २०२
क्रोकोस (यू०) २०२
क्रोजोफोरा प्रॉस्टाटा (लें०) ४२७
क्रोटन ऑयल (अं०) ३२१
क्रोटन सीड्स (अं०) ३२१;३२२
क्रोटालारिआ जुन्सेया (लें०) ६५७
क्रोटेलारिआ वेरुंकोजा (लें०) ६५८
क्रोटोन ऑलीइक अम्ल ( ) ३२२
क्रोटोन टीग्लिउम् (लें०) ३२१
क्रोटोनिक या क्वार्टेनिलिकाक्षम्ल (अं०) ३२२
क्रोटोलिस ओलिउम् (लें०) ३२१
क्रोम्मि (लें०) ५९३
क्लाउसेना पेन्टाफिल्ला (लें०) ६ १
क्रोटोनिस सीमेन (लें०) ३२१
क्रोटोनोल (अं०) ३२२
क्रोटोनेभास्टेर नुम्मूलारिआ (ले) ६४१
क्लाउसेना लानसिउम् (लें०) ५६
क्लाउसेना वाम्पो (लें०) ५६
क्लियरिंग नट (अं०) ४१८
क्लीओम् (अं०) ७३१
क्लाओम् पेन्टाफोल्ला (लें०) ७३१
क्लीओम् मोनोफील्ला (लें०) ७३१
क्लीओम विस्कोजा (लें०) ,,
क्लीओमिन (अं०) ७३२
क्लीटोरिया टेर्नाटिआ (लें०) १६०
क्लीतक (सं०) ५८४

विषय एवं शब्द	पृष्ठांक
क्लेरोडेन्ड्रन सेर्राटुम् (लें०)	५५१
क्लैविसेप्स पर्पूरेआ (लें०)	४१
क्लोरोफील्ला आरुन्डीनासेउम् (लें०)	५८८
क्लोरोफीटुम् ब्रेविस्कापिडम् (लें०)	५८८
क्लोव्ज (अं०)	६३२
क्वरसेटिन (अं०)	१२
क्चामोक्लिट वुल्गारिस (लें०)	७४
क्विन्स (अं०)	५३०
क्विन्ससीड (अं०)	५३०
क्विल्लाजा (अं०)	६७४
क्विल्लैया सोप (अं०)	६७४
क्वीनीन (अं०)	६७८,६८०
क्वील्लाजा सापोनारिआ (लें०)	६७४
क्वेर्कुस इन्काना (लें०)	५०१
क्सूला सागालीना	२८४
क्षवक (सं०)	४०४
क्षारपत्र (सं०)	४८८
क्षीर चंपक (सं)	५१
क्षीरविदारी (सं०)	५२४
क्षीरिणी (सं०)	३९१
क्षीरी (सं०)	२२२
क्षुदेनटे बं०	३१५
क्षुद्रकण्टा, क्षुद्रा (सं०)	१०९
क्षुद्र घोलिका (सं०)	१९५
क्षुद्र चंचु (सं०)	५०४
क्षुद्र पनस (सं०)	४८८
क्षुद्र बदर (सं०)	५३८
क्षुद्रैला (सं०)	७३
क्षुमा (सं०)	४२
क्षुरा (सं०)	२३८
क्षौम तैल (सं०)	४२
क्षौम वस्त्र (सं०)	,,
क्लेरोडेंड्रन इंडिकुम् (लें०)	५५१
खंका (गा) ली (हिं०)	५०२
खंडफाग (बुशहर)	७०२
खंदरूस (अ०)	५५७

विषय एवं शब्द	पृष्ठांक
खजरान (अ०)	५३४
ख़ज़ामउल्कबीर (अ०)	२०९
ख़ज़ामउत्सुंबुल (अ०)	२०९
खजामा (अ०)	२०८-२०९; २२८
खजूर (हिं०; म०; गु०)	२०९-२१०
खजूर देशी (हिं०)	२०९
,, विदेशी (हिं०)	,,
खजूरी (हिं०)	२०९; २१०
खटकल (पं०)	३३६
खटमिट्ठा अनार (हिं०)	२७
खट्टा (पं०)	४२२
ख़ट्टा अनार (हिं०)	२६
खट्टी बूटी (पं०)	३६६
खट्ठेमसर (पं०)	६९१
खड़ब्राह्मी (गु०)	५४५
खण्ड (सं०)	२३५
ख़त्क (ख़त्रक़) (अ०)	३२
खतमी (फा०; हिं०)	२११
खतमी और गुलखैरू (हिं०)	२११-२१२
खत्मी (अ०)	२११
ख़त्मी, खित्मी (फा०)	२११
खत्मी का फूल (हिं०)	२११
खत्मी का बीज (हिं०)	२११
खत्मीन	२११
ख़दाउर्रज़ाल (अ०)	१८
खदिर (सं०)	२२९
ख़दिर निर्यास (सं०)	,,
खदिरसार (सं०)	,,
खदिरीन	२६०
खन्ना का तेल (द०)	३०३
खन्नु तेल (द०)	,,
खपाट (गु०)	९५
खबल (पं०)	३९३
खमजरिया (पं०)	४६
ख़मजोर (पश्तो)	४६
ख़मरीमरज़ा (सु०)	१५५

विषय एवं शब्द पृष्ठांक

खमाइड्रूस (यू०) १३२
खमाइपीतूस (यू०) १३२
ख़मान, ख़म्मान नब्ती २१२
ख़मान कबीर (अ०) २१३-२१४
ख़मान सग़ीर (अ०) २१२
ख़मान सग़ीर व कबीर २१२
खमानुल् अर्ज़ ,,
ख़म्र (अ०) २३८
खम्रक (द०) १२८
खरउल् ज़फ़ादअ (अ०) १५२
ख़रक (फा०) ४८
खरक़तान (अ०) ४३७
खरकांडेरी(सिं०) ६५४
ख़रख़ियार (फा०) १७६
ख़रजहर (क०) ११६
ख़रजहरा (अ०) ,,
खरडी (म०) ६०८
ख़रदल (अ०) ६०२
खरदला (सं०) २७९
खरपत्रा (सं०) २४८
ख़रपुज़ए हिंदी (फा०) ३६०
खरबक़ (अ०) १८७
ख़रबक अमरीकी (अमेरिकी) या हरित २१७-२१८
ख़रबक सफ़ेद २१७-२१८
ख़रबक स्याह (अ०) २१८;१८७
ख़रबक़े हिंदी (अ०; फा०) १८७
ख़रबीत (अ०) ४२४
खरबुज (म०) २१४
खरबूजा (हिं०) २१४-२१५
खरयष्टिका (सं०) ४९८
खरयटी (पं०) ,,
खरीअ (अ०) ७१९
खरेटी (गु०) ४९८
खर्जूर (कना०) २०९
ख़र्दल अब्यज़ (अ०) ६६५
ख़र्दल अस्फ़र (अ०) ६६५

विषय एवं शब्द पृष्ठांक

ख़र्दल सफ़ेद (फा०) ६६५
ख़र्दल स्याह (फा०) ,,
ख़र्नूब (पं०) २१५
ख़र्नूब नब्ती (अ०) २१६-२१७
खरनूब नब्ती (बर्री) २१७
खर्नूब जंगली २१७
ख़र्नूब बर्री (अ०) २१६-२१७
खर्नूब बुस्तानी २१५-२१६
खर्नूब मग़रबी (अ०) २१०
ख़र्नूबुश्शौक (अ०) २१७
खर्नूब (बुस्तानी व बर्री) २१५-२१६
ख़र्नूब, ख़र्नूब शामी (अ०) २१५
ख़र्नूब हिंदी (अ०) ३५
खर्नूब हिंदी ३५; २१६
ख़र्नूब बीजोत्थ निर्यास २१६
ख़र्पु(पू)ज: (फा०) २१४
ख़र्पुज़ए तल्ख या रोबाह (फा०) ६४
ख़र्बक़ (अ०; फा०) २१७
ख़र्बक अब्यज (अ०) ,,
ख़र्बक अस्वद (अ०) २१८
ख़र्बक सफेद (फा०) २१७-२१८
ख़र्बक स्याह (फा०) २१८-२२०
खर्बकीन २१९
खर्बु(बू)ज: (फा०) २१४
खर्बु(बूजं) (सं०) २१४
खल्बानी (यू०) ३०४
खल्बानीस (यू०) ,,
खब्राजी (सिन्ध) २२५
खवी (हिं०) ६९
खवे(ए)र (बं०) २२९
खश (बं०) २२०
खशख़ाश मन्सूर (अ०) २६०; २६१
खशखाश
,, बुस्तानी (फा०) ४६०
,, सभेद (फा०) ,,
ख़शबुल् अह्मर हिंदी ४३२

विषय एवं शब्द पृष्ठांक

खशबुल् हयात (अ०) ३१४

खशबुल्हय्य: (अ०) ७२२

खशबुस्सीनी (अ०) ३१२

खश्खाश (फा०) ४६०

खश्खाश ४६२

,, अह्मर (अ०) ४६०;४६१

,, बुस्तानी ,,

,, मन्सूर २२८;४६२

,, सफेद ४६२

,, स्याह ,,

खश्खाश का तेल ४६५

खश्खासे अखह्मर (अ०) ४६०,४६१

खश्खास मन्शूर (फा०) २२८

खश्खासे मन्सूर (अ०) ४६२

खस (हिं०) २२०-२२१

खसकदान: (फा०) १९७;१९८

खसके कलाँ (फा०) २७६

खसख(खा)स (बं०;बम्ब०;म०; गु०; हिं०) ४६०

खसखसचे बोंडे (म०) ४६०

खसफल, खस्तिलवल्कल (सं०) ४६०

ख्सखसना डोड़ा (गु०) ४६०

खस्स बर्री (अ०) १६९

खाँड (चीनी, शकर) २३४,२३५,२३७

,, काला २३५

,, देशी ,,

खाकची (फा०) २२१

खाकशी (-शू) (ईरान) २२१

खाकसी (हिं०) २२१-२२२

खाकसीर (हिं०) २२१

खाखड (बम्ब०) ४५०

खाखर-नो गोंद (गु०) ४३८

खाखरो (बृक्ष)-(गु०) ४३७

खाखयडों पल (गु०) ४३७

खाखरवेल (गु०) ५२४

खाखस (सं०) ४६०

खाजकुहिली (म०) १०१

विषय एवं शब्द पृष्ठांक

खाजूर (बं०) २०९

खाटखुटम्बो (गु०) ४३३

खाटीभाजी (गु०) ३०९

खादिर: (सं०) २२९

ख़ानिकुल् कल्ब (अ०) १७९-१८०

खापरा (म०) ५२९

खामजुर (पं०) ४६

खामालावन, खामालियून ५७३

खाये इब्लीस (फा०) १३५

खार(-रि)क (हिं०) २०९

ख़ारशुतुर (फा०) ९१

खारीक (म०) २०९

खारीजाल (र) (गु०) ४५०

खारेक (गु०) २०९

खारेखसक (फा०) २७४

,, कलाँ (फा०) २७६

,, खुर्द (फा०) २७४

खारेबुज़ (फा०) ३३४

ख़ारेबाज़गून: (फा०) २९८

ख़ारेशुतुर (फा०) ३३४

ख़ारे सेहगोशा (फा०) २७४

खालजगी २१८

ख़ार्वालिजान् (अ०) १९२

ख़ित्मी (अ०) २११

ख़ित्मीए कूचक (शीराज़) २२५

खिन्नी, खिरना हिं०) १८८

खिन्नी (हिं०) २२२

ख़ियार कद्दू (फा०) ११४

ख़ियार कबर (फा०) १२५

ख़ियार, ख़ियार बादरंग (फा०) २८३

खियार चंबर (फा०) ३५

ख़ियार तवील (फा०) १०२

खियार दराज़ (फा०) १०२

खियार दश्ती (फा०) १७६

खियार माकूल या बादरंग (फा०) २२३

ख़ियारज: (फा०) २२३

विषय एवं शब्द — पृष्ठांक

ख़ियार शंबर (अ०) ३५
ख़ियार्ज़: गाज़रूनी (नीशापुरी) (फा०) १०२
ख़ियार्ज़ए (ख़ियार) खर (फा०) १७६
खिरनी २२२-२२३
खिरहटी, खिरैंटी (हिं०) ४९८
ख़िर्वअ (अ०) ६०९
ख़िर्वअ सीनी (अ०) ३२१
ख़िर्वउल् ज़फादअ (अ०) १५२
खिलाफ़ (अ०) ५३७
ख़िलाफ़ुल् बलख़ी (अ०) ५३५
ख़िलाल-एल्-मांमू (अ०) ६९
ख़िलाले इब्राहीम (अ०) २२८
खि (खे-,के-)सारी (हिं) २२९
खीखाओ (पं०; सिंध) १७०
खीरखेजूर (बं०) २२२
खीरा (हिं०) २२३
खीरा-ककड़ी के बीज १०३
खुंब (सिंध) २२६
खुंबी (हिं०) २२६
खुजनी (हिं०) १०१
खुडिओकरा (बं०) ४२७
ख़ुदरव (फा०) २०८
खुन्सा व अस्राश २२४-२२५
खुन्सा (अ०;फा०) २२४
खुनख़ाँरा (अ०) ३८०
खुबाजी (हिं०) २२५
खुबा(ब्बा)जी (अ०) २२५
खुबानी (पं०) ३२४
खुब्ब (अ०) २२१
खुब्बाजी व खुब्बाजी बुस्तानी २२५-२२६
खुमी (हिं०) २२६-२२८
खुम्ब (बम्ब०) २२६
खुम्भा, खुम्भी (हिं०) २२१
खुरथी (हिं०) १९४;२५१
खुर(ल)फा (पं०) १९५
खुरफा के बीज (हिं०) १९५

विषय एवं शब्द — पृष्ठांक

खुरमा (हिं०) २०९
खुरमानी (पं०) ३२४
खुर्बानी (पं०) ,,
खुरासाणी अजमा (गु०) १८
खु(खो)रासानी अजवाय(इ)न (हिं०) १८
खुरासानी अजवैंन (पं०) १८
खुरासानी ओंवा (म०) १८
,, बच (हिं०;गु०) ४८४
,, यवानी (सं०) १८
ख़ुरूल असाफ़ीर (अ०) ८४
खुर्नूब सैंदलानी (अ०) २१५
ख़ुर्फ़ (फा०) १९५
खुर्मा (बं०) २०९
ख़ुर्मा (बलू०; फा०) २०९
ख़ुर्माए अबूजहल (फा०) १३५
ख़ुर्माए ख़ारके (ख़रके) (फा०) २०९
,, खुश्क ,,
,, तर (फा०) ,,
,, ताजा (फा०) ,,
,, याबिस (अ०) ,,
,, हिंदी (फा०) ७०
ख़ुलंजान (पं०) १९२
खुलखुल (म०) ६५८
खुलफेकी भाजी (द०) १९५
खुलफेके बीज (द०) १९५
ख़ुलासतुस्सूस (अ०) ५८४
खुलासए क़िस्साउल् हिमार (अ०) १७६
खुल्लर (अ०) ५६४
ख़ुस (फा०) ६३३
खुस-खुस (अ०) २२०
ख़ुसरवे (खुसरो) दारू (फा०) १९२
ख़ुस्यतुस्सालब (अ०) ६७६
ख़ुस्युस्सालब (अ०) ६७६
ख़ूनखराबा (हिं०) ३८०
ख़ूनसियावशाँ (फा०) ३८०
खून-सियावशाने हिंदी (फा०) ५२१

विषय एवं शब्द पृष्ठांक
खूबकलाँ(ला) (फा०) २२१
खूबकलाँ (हिं०) २२१
खूबानी ६१, ३२५
खूलं(लिं)जान (अ०) १९२
खूलिजान अक़ारिबी (अ०) १९२
खेख(क)सा (हिं०) १०४-१०५
खेजुर (बं०) २०९
खेरी (बं०) ५९७
खेरी या खैरी (हिं०) २२८-२२९
खेरूज (अ०) २११
खेर्नी (बम्ब०) २२२
खेसारि कलाय (बं०) २२९
खेसारी २२९
खैर (कत्था) २२९-२३१
खैर, खैरसार (हिं०) २२९
,, दुर्गन्ध २३१
खैर (हिं०; म०) २२९
खैर, खैरसार (हिं०) २२९
खैरबवा (फा०) ७२
खैरू, गुले खैरू (फा०) २११
खैलीजेन (यू०) १९२
खोपर ४१४
खोपरा ४१५
खोफरेका तेऊ (हिं०) ४१४
खोपा (पं०) ४१४
खोपु (गु०) ४१४
खोबरी (म०) ,,
खोरासानी बच (सं०) ४८४
खौख (अ०) ५२
खौलान (अ०) ३८५
खौलिंजान (अ०) १९२
ख्वगवल (पश्तु; अफ०) ५३५
ख्वाजः (फा०) २१

ग

गंगतिरिया (हिं०) ३३१
गंगेटी (गु०) २३१

विषय एवं शब्द पृष्ठांक
,, फल २३२
गंगेरक, गंगेरन, गंगेरुक (हिं०) २३२
गंगेर(न)–(पं०, मा०) २३१
गंगेरन, गंगेरून, गंगो (हिं०) २३१
गगेरन, गुलशकरी (हिं०) २३१-२३२
गंगोजल (पं०) ३०२
गंजा (सं०; अं०) ५४८, ५४९
गंटुबरंगी (ते०) ५५१
गंडा (पं०) ४६५
गंदना (हिं०; फा०) २३२ २३३
गंदनाए दश्ती (फा०) २३३
,, शामी (फा०) २३३
ग़ंदपूरो (हिं०) २३३
गंदम, गनम् (अफ़गा०) २७२
गंदमार (हिं०) २०४
गंदल, गनेर (हिं०) ३५१
गंदुम (फा०) २७२
गंदुम दीवाना (दीवानः)-(फा०) ४१,६४६
गंदुमे मक्का (अ०) ५५७
गंधण (मा०) १७७
गंधपूरो (द०) २३३-२३४
गंधपूर्ण (सं०) २३३
गंध प्रियंगु (सं०) ७१५
गंधबोल (बं०) ५४३
गंधरस (सं०) ,,
गंधशटी (बं०) १२३
गंधशठी (क०) ,,
गंधाबिरोक (क०) ३०३
गधाबिरोजा (हिं०) ३०३
गंधाबिरोजे का तेल (हिं०) ,,
गंधारूघास (गु०) ६९
गगनधूल (हिं०) २२६
गज़ (फा०) ३५३
गजकरण (गु०) ४४४
गजकर्णी (म०) ,,
गजङ्ग(ज़ंग)बीन (फा०) ३५३,३५४

विषय एवं शब्द	पृष्ठांक
गज़ङ्गबीन (फा०)	३५३
गजपिप्पली (सं०)	२९४
गजपीपर (हिं०)	२९४
गजपीपल (हिं०) देखो 'चाब'	४४९;२९४
गज़माज़जेखुर्द (फा०)	४७१
गज़र (फा०)	२४१
गज़रदश्ती (फा०)	६३४
गज़रबर्री (फा०)	२४१
गज़रेदश्ती (फा०)	२४१
ग़ज़ालुल्माऽ (अ०)	१५२
गट्टागम्बा (अं०)	८८
गड्डू (कच्छ)	२५०
गणेशबेल (म०)	७४
गण्डगात्र (सं०)	६३६
गद (संथाल)	७७
गदहपुन्ना (पूर्णा)-(हिं०)	४५३
गदहपूरना (बं०)	४५३
गदापुण्या (बं०)	,,
ग़नम (पश्तु०)	२७२
गनागना (इरान)	६७९
गन्दुमदाना (पं०; सिंध)	२२४
गन्धपुष्प (सं०)	५३५
गन्धाबाबुल (बं०)	२३१
गन्धाबिरोजा	३०५
गन्ना (हिं०)	२३४-२३९
गन्हुला (पं०)	२१२
गबिना (फा०)	११२
गबुर (संथा०)	२३१
गम (बं०)	२७२
गम अरेबिक (अं०)	४९३
गम-काइनो (अं०)	५२१,५२२
गम ट्रागाकान्थ (अं०)	११२
गम बेन्जामीन (अं०)	६२९
गम बेन्जोइन (अं०)	६२९
गम्मी (यू०)	४९३
गयाकूं	३१४

विषय एवं शब्द	पृष्ठांक
गरमालो (गु०)	३५
गरी (हिं०)	४१४
गरीका तेल (हिं०)	४१४
गरुड़फल (कों०)	५७८
गरुड़वल्लि (कों०)	२५०
गरैपड़ी अड़ा (संथा०)	५६१
गर्जन (हिं०; बं०; म०; गु०; मार०)	२४०
गर्जन ऑइल (अं०)	,,
गर्जन का तेल (हिं०)	,,
ग(गा)र्जर (सं०)	२४१
गर्जरीन	,,
गर्दए समाक	६९१
गर्मफूल (कफे मरियम्)	२४०
गर्भफूल (हिं०; गु०; बम्ब)	१४०
गलका (गु०)	३७०
गलगल (मीरजापुर)	११३
गलगल (पं०)	३१९
गलहूर (गिलूर)का पत्ता (हिं०)	१४५
गलगोटो (गु०)	२७१
गलहड़(र)का पत्ता (हिं०)	१४५
गलिजेरू (ने०)	५२९
गल्मोज (पं०)	३०२
गलो (गु०)	२५०;४२६
गहुला (म०)	७१५
गहूँ (म०)	२७२
गांगेटी, गांगेटीफल	२३२
गाँजा (हिं०; म०; गु०; बं०)	५४८, ५४९
गाँठालू (हिं०)	५१८
गाँठ गोबी	२७८
गाँठ गोभी (हिं०)	
गांडरकी जड़ (हिं०)	२२०
गॉउल्थेरिया औलियम् (ले०)	२३४
गॉउल्थेरिया प्रोकुम्बेन्स (ले०)	२३३
गॉ० फ्राग्रान्टिस्सिमा (ले०)	२३३
गाङ्गेरुक(स्की)-(सं०)	२३१
गाचमाच (पं०)	६२६

विषय एवं शब्द पृष्ठांक
गाछमरिच (बं०) ५८१
गाजबाँ (सिं०) २४८
गाजर, जंगली गाजर २४१;२४२
गाजर (हिं०; बं०; म०; गु०) २४२
गाजर के बीज २४१
गाज़बागी (तु०) १५३
ग़ाज़ुरान (फा०) ८४
गाडातिरिल (को०) ३७५
गाडियाँ (पं०) ६८१
ग़ाफ़िस (अ०) २४४
गाफि(फ)स (अ०) २४२
,, प्राचीन पाश्चिमात्य २४४;२४५
ग़ाफ़िस, गाफिसदेशी (त्रायमाण) और पश्चिमी गाफिस २४२-२४४
गाब (हिं०; बं०) ३७५
गाम्बोजिका (ले०) ८८
ग़ार २४५;२४७
,, का तेल (रोगनहब्बुलग़ार) २४६
,, ,, ,, कल्पनाविधि २४६
गारीक़ून (भा० बा०) २४७;२४८
ग़ारीक़ून (अ०) २४७
,, अब्यज (अ०) २४७
,, तिब्बी (अ०) २४७
,, निब्ती (अ०) ,,
,, मुग़र्बल (अ०) ,,
,, असली नकली की परीक्षा ,,
,, मुसहिल (फा०) ,,
,, सनोवर (फा०) ,,
,, सफ़ेद (फा०) ,,
गार्डेन केरट (अं०) २४१
गार्डेन नाइट-शेड (अं०)
गार्डेन बेसिल (अं०) ३७३
गार्डेन रू (अं०) ६८८
गार्डेन या फील्ड बीन (अं०) ५०७
गार्डेन या स्पियर-मिंट (अं०) ४५२
गार्सीनिआ मोरेल्ला (ले०) ८८
विषय एवं शब्द पृष्ठांक
गा० मंगोस्तना (ले०) ५९२;७२९
गा० पेडुंकुलाटा (ले०) ३६
गा० मोरेल्ला (ले०) ८८
गॉला (ले०) ५७४
गालेगा इन्काना (ले०) ६६४
गालबानुम् (ले०) ३३३
गाल्बानुम् (ले०) ३०४
गाल्बेनम् (अं०) ३३३
गावजबान २४८–२५०
गावजबान (सिंध) २४८
गावदानः (फा०) ५६३
गावमुशंग (फा०) १४२
गावर (फा०) ३३३
गावरस (फा०) ५०७
गावर्स (फा०(३५२
गावला (हिं०) ७१५
गावशीर (फा०) ३३३
गॉल्स (अं०) ५७४
ग़ासूल (अ०) २६१; ६७४
ग़ा(ग़ु)सूल (अ०) ८४
ग़ासूल फारसी व याबिस (अ०) ८४
गॉस्सापिई रैडिक्सिस कॉर्टेक्ट (ले०) ११९
गॉसीपिओ (यू०) ११९
गॉसीपिउम् (ले०) ११९
गॉस्सीपिउम् हेर्बासिउम् (ले०) ११९
ग़िज़्लुल्माऽ(अ०) १५२
गियाह क़ैसरी (फा०) ६७
गिरबूटी (बम्ब०) ६२६
गिरमालो (मा०) ३५
गिरिशमु (ते०) ६८२
गिरुई (पं०) ४३२
गिर्दगाँ (फा०) १२
गिर्वनली (पं०) ३५
गिलास (पं०) ६१
गिलोय (हिं०) २५०–२५१
गिलोयका सत (हिं०) २५०

विषय एवं शब्द पृष्ठांक

गिलोर (सिंध) २५०

गिल्हड़पात (हिं०) १४५

गीदड़तम्माकू ५७८; ५८४

गीनान्ड्राप्सिस पेन्टाफील्ला (ले०) ७३१

गीनोकार्डिआ ओडोराटा (ले०) २९७

गुंची (हिं०) २८२

गुंण (सिं०,गु०) ६०८

गुआइआकुम् ऑफ्फीसिनाले (ले०) ३१४

गुआ(गुह)बबूल (हिं०) २३१

गुआर, गुआलिन १५१–१५२

गुइया बाबुल (बं०) २३१

गुइया सेन (मुंगेर) २३१

गुगर (सिंध) २५२

गुगरु (सिंध०) २५२

गुगल (म०,गु०) २५२

गुग्गुल, गूगल (हिं०) २५२–२५४

,, मिश्रण और उसकी परीक्षा २५३

गुग्गुल (बं०) २५२

गुग्गुलु (सं०) २५२

गुच्छी २२७

गुज (म०) २८२

गुजराती इलायची या लाची (हिं०) ७२

गुञ्जा (सं०) २८२

गुड़ (सं०;हिं०) २३४–२३५

गुडत्वक् (सं०) ३५८; ३८८

गुडपुष्प (सं०) ५७२

गुडफल (सं०) ४५०

गुडमार (हिं०) २५४–२५५

गुडरी साग (संथा०) ५६१

गुडशर्करा (सं०) २३२

गुड़हर(ल)-(हिं०) २५५

गुड़हल (जपा) २५५–२५६

गुड़हल (बं०) २५५

गुड़ाखु (म०) ३५९

गुडूची (सं०) २५०

गुडूची सत्व (सं०) २५०

विषय एवं शब्द पृष्ठांक

गुण्डतृण, गुन्द्र (सं०) ४३२

गु(गो)नरा(रो) (हिं०) ४३२

गुनोवर (हिं०) ३०२

गुन्द्रमूला, गुन्द्रा (सं०) ४३०

गुन्नफचा (क०) ४९१

गुबैरा (अ०) ५३८

गुमची बड़ी २८२

गुम्मडि (ते०) ४५८

गुम्मी ईडिकुम् (ले०) ४०३

गुरिगिंज (ते०) २८२

गुरुच (हिं०) २५०

गुरुचका सत, गुलबेलका सत (हिं०;द०) २५०

गुर्दः (फा०) २१७

गुर्दालु (पं०) ३२४

गुर्दालु (का०) ६०

गुलंच (बं०) २५०

गुल, गुलेगुलाब,गुले सुर्ख (फा०) २६४

गुल अनार (फा०) २८

गुल अब्बास (बम्ब०) २५६; २५७

गुल अम्बरी (फा०) २६३

गुल आफ़ताबपरस्त (फा०) ६९५

गुलकन्द (फा०) २६७

गुलकवदी (फा०) २०१

गुलकरना (फा०) ४१४

गुलकेरी (फा०) २०१

गुलकल्ली (फा०) २४२

गुलखाना (फा०) ,,

गुलकाज़ीरः (फा०) १९७

गुलकाफ़िशः (फा०) १९७

गुलखुर (हिं०) २७४

गुलखै(रा)रू (बम्ब०;म०;द०;हिं०) २११

गुलगंजि (कां०) २८२

गुलचाँदनी (फा०) २५७–२५८

गुलचाँदनी (फा०) २५७

गुलचाँदनी (१) ६१८; (२) ६१९

गुलचीन, गुलाचीन (हिं०) ५१

विषय एवं शब्द **पृष्ठांक**

गुलचीनी (द०) २५८
गुलचेरी (हिं०) २६२
गुलछड़ी (म०) २६२
गुलजलील (बम्ब०) ३२७
गुलजाफरी (हिं०) २७१
गुल तस्बीह (फा०) ५४२
गुलदाउदी (हिं०; बं०) २५८–२५९
गुलदाउ(वो)दी (हिं०;बं०;गु०) २५८
गुलदाऊदी (हिं०;बं०;गु०) २५८
गुलदुपहरिया (हिं०;पं०) २५९
गुलनसरीन (फा०) २५८;२६३
गुलनार, गुलअनार (फा०;हिं०) २५,२८,२९
गुलनीलूफ़र (फा०) १२९
गुलबगला (फा०) ४४४
गुलबाबूना (फा०) ५१३
गुलबाबूना ५१४
गुलबास (हिं०) २५६
गुलब्बास (हिं०) २५६
गुलमुश्की (फा०) २६३
गुलमेंहदी (हिं०; फा०) २६०
गुलरोग़न (फा०) २६७–२६८
गुललाला (क०) २६०–२६२
,, के भेद २६१
गुललाला, गुल्लाला, (क; उ० भा०) २६०–२६२
गुल(ले)लाला, गुल्लाला (गु०;उ०भा०) ४६१
गुलवेल (द०;म०) २५०
गुलशब्बू (फा०) २०८
,, (हिं०;बम्ब०) २६२
गुलशब्बो (हिं०; पं०; बम्ब०) २६२–२६३
गुलसफ़ेद (फा०) २६३
गुलसुपारी (फा०) ६९८
गुलसेवती (पं०) २६३–२६४
गुलहजार (फा०) २७२
गुलाब (फा०) २६४–२६८
,, जंगली २६५
गुलाबका जीरा (ज़रेवर्द और फल) २६५–२६७

विषय एवं शब्द **पृष्ठांक**

गुलाबका फल (हिं०) २६५
गुलाबका फूल (हिं०) २६४
गुलाबका जीरा, गुलाबकेसर (हिं०) २६५
गुलाबके फूल २६६–२६७
गुलाबकेसर (हिं०) २६५
गुलाब चे फूल (म०) २६४
गुलाब जांब (बं०) २६८
गुलाबजामुन (हिं०) २६८
गुलाबनु, गुलाबि (गु०) २६४
गुलाब पुष्पसार २६६
गुलाबाश (बं०) २५६
गुलाबाँस (हिं०) २५६
गुलाबास (बं०) २५६
गुलिदावा (क०) ४०३
गुली (म०) ४२६
गुले अब्बास (सी) (फा०) २५६
गुले आचीन (फा०) ५१
गुले काफ़ूर (फा०) १२१
गुले कूजः (फा०) १९९
गुले ग़ाफ़िस (भा०बाजा०) २४२
गुले गावजबान (फा०) २४९
गुले गुलाब, गुले सुर्ख़ (फा०) २६४
गुले चर्काँ (फा०) ५७२
गुले दाउदी (फा०) २५८
गुले धावा (फा०) ४०३
,, पलास (टेसू) (फा०) ४३७
,, पिस्तः (फा०) ४४६–४४७
गुले पिस्ता (फा०;हिं०;द०) ५३२
,, फ़ोफ़ल (फा०) ६९८
,, बनफ़्शा (फा०) ४९१
,, बहरी (फा०) ६६
,, महुआ ५७२
,, मुचकुन (मुचकुंद) (फा०) ५८३
,, लाला (फा०) ४६०
,, मशो (फा०) ४८१
,, लाला २२८

विषय एवं शब्द पृष्ठांक

,, संग (फा०) ३१५
,, सुर्ख़ (फा०) २६४
गुल्लर (हिं०) २६९
गुल्ली (हिं०) ५५७
गुवाक (सं०) ६९०
गुवेकीन ६९०
गूँच (हिं०) २८२
गूँदी (गु०) ६०८
गूँडेली टूर्नीफोर्टी रेजिना (ले०) ६०८
गूँदा (गु०) ६१६
गूगल (द०) २५२
गूज़द (फा०) ६
गूजर (बम्ब०) ६
गूम (-मा,-माँ)-(हिं०) २६९
गूमा (हिं०) २६९
गूलचा (अ०) २५०
गूलर (हिं०) २६९–२७१
गूलरके बीज (हिं०) २७०
गूलर फिग या कन्ट्रीफिग (अं०) २६९
गूलू (हिं०) १३
गृञ्जन (सं०) २४१
गृहकन्या (-कुमारी)-(सं०) २७९
गृष्टिक (सं०) १५८
गेंठी (हिं०) ५१६
गेंद (हिं०) २७१–२७२
गेंदा (हिं०;बं०) २७१–२७२
गेंदु (उडि०) ३७१
गेजुलिया (हिं०) २५९
गेटेला (बं०) ४४६
गेरवो (गु०) ४१
गेरुई (हिं०) २२६
गेलंगल (अं०) १९२
गेहूँ (हिं०;प०) २७२-२७३
गेहूँकी भूसी (हिं०) २७३
गैलगस (यू०) १९२
गैलिक एसिड ५७४

विषय एवं शब्द पृष्ठांक

गोंड पट्ठा (हिं०) २७९
गोंद, गोंदरी (हिं०) ४३२
गोंदनी (द०;हिं०) २७४,६१६,२७७
गोंदपटेर (हिं०) ४३०
गोंदफारसी (फा०) ६६
गोंदनी, गोंदी (हिं०) ५७४
गोंदरा(री,ला) (हिं०) ४६२
गोंदल (हिं०) ४३०
गोंदी (हिं०) २७४–६१६
गोंसाली (गु०) ३७०
गोअर (क०) ६८१
गोकर्म (सं०) १६०–१६१
गोक्षुर (सं०) २७४
,, क्षुद्र (लघु) (सं०) २७४
गोखरि(री) (बं०) २७४
गोख(खु)रू (हिं०) २७४
गोखरू कलाँ (पं०) २७६
गोखरू छोटा (हिं०) २७४–२७५
गोखरू जंगली (हिं०) २७५
गोखल बड़ा (हिं०) २७६–२७७
गोखरू बागी २७५
गोखुरे कलाँ (हिं०) २७४
गोथी (कु०) २७२
गोजिह्वा (सं०) २४०
गोजी (सं०) २४८
गोट्स सैलो (अं०) ५३५
गोड बदाम (म०) ५०९
गोडा इन्द्रयव (म०) १८८
गोतागंबा (अ०) ८८
गोदडिया लिंबु (मु०) ३१९
गोधूम (सं०) २७२
गोनी (हिं०) २२४
गोपबल्ली (सं०) ३७४
गोभी (हिं०) २७७-२७८
,, जंगली (बनगोभी) (हिं०) २७९
गोम २६९

विषय एवं शब्द पृष्ठांक

गोयालियालता (बं०) ७१०
गोरखमुण्डी (हिं०; म०; गु०; फा०) ५५६
गोर: (फा०) १
गोरक्षफलिनी (सं०) २५१
गोरगियाह (फा०) ६९
गोराणी (सं०) २५१
गोलमरिच (बं०) ५७९
गोलापफूल (बं०) २६४
गोलोमिका (सं०) २७९
गोलोमी (सं०) ३९२
गोल्डेन चंपा (अं०) २८६
गोल्डेन ब्रेड (अं०) ५६५
गोवली (बम्ब०; म०) २३१
गोवारी चा सोंग (म०) २५०
गोलमिर्च (हिं०) ५७९
गोशीर (बम्ब० बाजार) ३३३
गोश्तम् (ता०) १८३
गोश्नमु (ते०) १८३
गोस्तनी (सं०) १
गोहूँ (हिं०; द०) २७२
गौज़ (फा०) १९
गौज़बूया (–बोवा) (फा०) ३३७
गौजमासले स्याह (फा०) ३६७
गौज मासेल (फा०) ३९६
गौनरी (क०; पं०) ६८१
गौरसर्षय (सं०) ६६५
गौरी (बम्ब०) २५१
गौरीनीम (द०) ४७९
ग्जीग्जिबेरिस (यू०)
ग्राउण्ड एल्डर (अ०)
ग्राउण्ड नट (अ०) ५९०
ग्रीन चिरेटा (अ०) १५९
ग्रीन जिंजर (अं०) ७०१
ग्रूइया आशियाटिका (ले०) ४७२
ग्रूइया टेनाक्स (ले०) २३१
ग्रूइया हिर्सूटा (ले०) ,,

विषय एवं शब्द पृष्ठांक

ग्रेट मोरेल (अं०) ६२६
ग्रेटर गैलंगल (अं०) १९३
ग्रेटर प्लांटेन (अं०) ५१७
ग्रेप (अं०) १
ग्रैम (अं०) २९०
ग्रैष्मिक (सं०) २९६
ग्रैष्मी (सं०) ५४०
ग्रैसीलारिया लीकेनोइडीज (ले०) १५२
ग्रोट्स (अं०) ३५१
ग्लिसीर्हीजा ग्लाब्रा (ले०) ५८४
ग्लिसिर्हाइजिन (अं०) ३८३, ५०२
ग्लसीने माक्स (ले०) ७०५
ग्लीसीने सोजा (ले०) ,,
ग्लीसीने हिस्पिडा (ले०) ,,
ग्लीसीर्हाइजीन ५८५
ग्लीसीर्हीजा राडिक्स (ले०) ५८४
ग्लूकोज (अं०) ३७६, ५०९, ६३६, ६४३
ग्लूकू (को) रिजा (यू०) ५८४
ग्लोमरसफिग (अं०) २६२
ग्वानीन (अं०) २३४
ग्वायकम् वुड (अं०) ३१४
ग्वार, ग्वालिन (हिं०; गु०) २५१
ग्वार चिकना (हिं०) ७१४
ग्वारपाठा (हिं०) २७९
ग्वारा (अं०) ५४८

घ

घंटा वीणा (सं०) ३५५
घउँला (गु०; बम्ब०) ७१५
घऊँ (गु०) २७२
घग(घ) ड़बेल (पं०) ४७८
घग(घ)रबेल (हिं०) ,,
घण्टारवा (सं०) ६५८
घड़घोसडी (म०) ३७०
घब्बर (पं०) ३४६
घमूर (पं०) ४३२

विषय एवं शब्द	पृष्ठांक
घमोइ (य)–(हिं०)	६५४
घमोय (बिहा०)	,,
घरमूली (द०; बम्ब०)	३९६
घरेइ कश्मालू (पं०) (हिं०)	५२०
घलघसे (बं०)	२६९
घागरी (म०)	६५८
घायमारी (म०)	४३३
घावपत्ता (हिं०)	६६२
घिया (हिं०)	११४
घियातुरई	३७१–३७२
घियातोरई (हिं०	३७०
घियातोरी (पं०)	३७०
घियातोरी (तुरई)	३७०
घिरीं (पं०)	४३२
घीकुँआर (हिं०)	२७९
घीकुआर (हिं०)	२७९–२८२
घीयातुरी (मा०)	३७०
घीवनी	७१५
धुँगची, घुँघची (हिं०)	२८२
घुइयाँ (हिं०)	३९
घुबरो (गु०)	६५८
घुमची (हिं०)	२८२
घुसरा(ला)इन (हिं०)	४७८
घूँची (हिं०)	२८२
घृतकुमारी (सं०; बं०)	२७९
घे(घें)टुलो (म०)	४५३
घोड़खुरी (म०)	७१०
घोडबच (हिं०)	४८३, ४८४–४८५
घोड़बेल (मार०)	५२४
घोडा आकुन (गु०)	४४
घोड़ा आहन (गु०)	४४
घोड़ानिम् (बं०)	४७९
घोडावज (गु०)	४८३
घोलकी भाजी (द०)	१९५
घोला (घोली)–(गु०)	९६
घोषा (सं०)	३७०

विषय एवं शब्द	पृष्ठांक
घोषालता (बं०)	४७८
घोसालें (म०)	३७०
च	
चंगेर(ल)–(हिं०)	२२५
चंदन (म०)	१८४
चंदमरवा (बिहार)	३८२
चंदरस, चंद्रस (हिं०)	६४८,६४९
चंद्रसु(सू)र (हिं०)	७२६
चंपकम् (मल०)	२८६
चंपकमु (ते०)	,,
चंपा (हिं०)	२८५-२८७
चंपा(बा) (पं०)	२८६
चंपाकाटी (गु०)	१०५
चंबेली (हिं०; गु०)	२९१
चंसुर (हिं०)	७२६
चकवँ(व)ड (हिं०)	४२८
चकसी (बम्ब०)	२९३
चकसीन (अं०)	,,
चकसू (हिं०)	,,
चकसू, चकूत (द०)	,,
चकीदए कासनी	१६६,१६६ पा० टि० १
चकुंडा, चाकुन्दे (बं०)	४२८
चकोतरा (हिं०; बं०; पं०; फा०; उर्दू०)	२८७-२८८
चकोतरूं (गु०)	२८७
चकौंड़ (हिं०)	४२८
चक्कादाना	२८८
चक्की (फा०)	१०७
चक्रमर्द (सं०)	४२८
चक्सू (पं०)	२९३
चक्षुष्या (सं०)	,,
चग्ज़ाबः (फा०)	१५२
चचींडा, चचेंडा हिं०)	२८८
चचीण्डा (मीठा)	२८८-२८९
चचीबेन (बं०) बम्ब०; (हिं०)	५३४
चञ्चु (सं०)	३४५
चण; चणक (सं०)	२९०

विषय एवं शब्द पृष्ठांक

चणकपत्री (सं०) ६०८
चणकबाब (गु०) १२६
चणी वोर (गु०) ५३८
चणामोथ (गु०) ५९८
चणीबोर (गु०) ५३८
चणे (म०) २९०
चणोठी (गु०) २८२
चतुरपुलि (मल०) १२८
चना (हिं०) २९०
चनार, चिनार (हिं०; फा०; पं०; क०) २९१
चन्दन (हिं०) २८४
चन्दन लाल २८३-२८४
चन्दन सफेद २८४–२८६
चन्दन, श्वेतचन्दन (सं०) २८४
चन्दन का तेल (हिं०) २८४,२८५
चन्दनसार (सं०) २८५
चन्दनाम्ल ,,
चन्द्रकान्ति (सं०) ६१९
चन्द्रमूल १२४
चन्द्रशूर (सं०) ७२६
चप्पल सेंड (द०) ४०९
चप्पङ्ङ्म (मल०) ४३२
च(चा)ब (हिं०) २९४
चमनी (को०) ७३१
चमाज (फा०) ६६३
चमेड़, चिमेड़ (गु०) २९३
चमेली (हिं०; गु०; म०) २९१-२९२
चमेली (बं०) २९१
चम्पक (सं०) २८६
चरण (मल०) ५२९
चरस (हिं०) ५४९,५५०
चरिलछज (क०) २२१
चरी (पं०) ३५२
चरीकलोटन (हिं०) ७१४
चर्मपर्ण (सं०) २३३
चलापा (हिं; भा० बाजार) ३३२

विषय एवं शब्द पृष्ठांक

चवक (म०; गु०) २९४
चवर (सिं०) २९३
चवला (मा०) ६३१
चवल्या (म०) ,,
चविका (सं०) २९४; ४४९
चव्य (क) (सं०) ४४९
चशूम, चश्ख़ाम, चश्मक (फा०) २९३
चश्मीज़क, चश्मीज़ज (फा०) २९३
चश्मे ख़ुरूस (फा०) २८२
चाँगेरी ३१८
चाङ्गेरी (सं०) ३६६
चाँद (बं०) ३८२
चाँदनी (हिं०) २५७
चाँदनी (हिं; बं०) ६१९
चाँदनी बेल (हिं०) ६१८
चाँदड़, चाँदर (बं०) ३८२
चाँद (चाँदनी) बेल (हिं०) ७४
चाँदवेल (म०) ७२८
चांपा (बं०) २८६
चाँपानटे (बं०) ३१५
चांपेसु (ते०) २८६
चाँवर (सिंध) २९६
चा (द०;बं०;गु०;म०) २९५
चाइनारूट (अं०) ३१२
चाओल (बं०)
खाकवत (म०) ४८८
चाकवल (म०) ३०९
चाकसू (हिं०) २९३,१९४
चाकुन्दे (ब०) ४२८
चाक्षु (सं०) २९३
चानोटी (म०) २८२
चाब (हिं०) ४४९
चाब और गजपीपल २९४
चामघास २९५
चाम्पेय (सं०) ४०७
चाय, चाह (हिं०; भा० बाजा०) २९५-२९६

विषय एवं शब्द	पृष्ठांक
चाय (फा०)	२९५
चायनीज एनिस (अं०)	५१२
चायनीज गूजबेरी (अं०)	१२८
चायनीज सिन्नेनन (अं०)	३८८
चार (हिं०)	३०१-३०२
चारबीज (सं०)	३०१
चार (फल) (हिं०)	३०१
चार मग़ज़ (फा०)	१२
चारोंली (म०; गु०)	३०१
चाल (बं०)	२९६
चॉलमुगरा (हिं०; बं०)	२९७
चालमुगरा (बं०)	२९७
चॉलमोगरा (अं०)	२९७
चावल (हिं०)	२९६-२९७
चावलमुँगरी (हिं०; बं०)	२९७-२९८
चावल(चॉल)मोगरा (हिं०; बं०)	२९७
चाविक़ा रॉक्सबुर्घी (ले०)	४४९
चिंच (म०)	७०
चिंचा (सं०)	७०
चि(ची)आँ (हिं०)	७१
चिकाकाई (हिं०)	६८४
चिकाखाई (गु०)	६८४
चिकाल्पकोन्न (मल०)	४३
चिकोरी (अं०)	१६५
चिकणा (म०)	४९८
चिक्लिग बेच (अं०)	२२९
चिचड़ा(ड़ी) (हिं०)	२९८
चिचिंडा (हिं०)	,,
चिचिण्ड (-ण्डा) (सं०)	,,
चिट्टाजीरा (पं०)	३४७
चिट्टामृतम् (मल०)	२५०
चित, चिता (बं०;हिं०)	३०६
चित्तिगार (ते०)	४००
चित्र, चित्रा, चीता (हिं०)	३०६
चित्रक (सं०; म०)	३०६
,, नील	,,
,, रक्त	,,
,, श्वेत	,,
चित्र तण्डुला (सं०)	५१६
चित्रा (पं०)	३०६
चित्रा (ने०)	३८५
चिधरिनिंबम् (ता०)	४७९
चिनवा (क०)	३१२
चिनियाबादाम (हिं०)	५९०
चिनोल (म०)	२९३
चिन्त (ते०)	७०
चिबुड (म०)	२१४
चिरई गोड़ा (बिहार)	१५३
चिरखेस्टाइट	६४३
चिरचिटा	२९८-३००
चिरचिटे का खार	२९९
चिरचिरा (हिं०)	२९८
चिरपोटा (पं०)	१५६
चिरमिटी (हिं०)	२८२
चिरवप्पप्पु (मल०)	६८१
चिराइयता (हिं०)	३००
चिराईतो (सिं०)	३००
चिरा(रे)ता (बं०)	३००
त्रिरायटा (अं०)	,,
चिरायता	३००-३०१
चिरायतो (मा०)	३००
चि(शि)रोदम (ता०)	६८२
चिरेटीन (अं०)	३०१
चिरेट्टा (अं०)	३००
चिरैता (पं०; हिं०;	३००
राँची)	१५९
चिरोंगी (बं०)	३०१
चिरोंजी (पं०; हिं०; खर०)	,,
चिरोंनी, चिरोली (पं०)	,,
चिरोली (पं०)	३०१
चिरौंजी (हिं; खर०)	३०१-३०२
चिर्भटः (सं०)	१०२

विषय एवं शब्द पृष्ठांक

चिर्भिट (सं०) १०२
चिरमी, चिर्मिटी (मा०) २८२
चिलगोज (का०) ३०२
चिलगोजा (हिं;० भा० बा०) ३०२,६६०
चिल् (अफगा०) ३०२
चिल्ग़ोज़ः (फा०) ,,
चिल्गोजा (गु०) ,,
चिल्गोजे (म०) ,,
चिवतै (ता०) ४२०
चीक्ककक्कायि (मल०) ६८४
चीड़(ढ),गंधाविरोजा, तारपीन ३०३-३०६
चीड़ (पं०) ३०३
चीड़ (हिं०) ३०३;६६०
चीड़ का गोंद (हिं०) ३०३
चीड़ की लकड़ी ३०४
चीणो (गु०) ३१२
चीता (चित्रक) ३०६–३०८
,, नीला ३०६–३०७
,, लाल ,, ,,
सफ़ेद ,, ,,
चीन(ना), चेन, चेनवाँ, चेना (हिं०) ३१२
चीनक (सं०) ३१२
चीन देशीय चोबचीनी ३१३
चीना, चेने (बं०) ३१२
चीनिक्काय (मल०) ६८४
चीनी (बं०; गु०) २३५
चीनी २३६
चीनीघास ७००
चीनी बादाम (हिं०) ५९०
चीनेर बदाम (बं०) ,,
चीर (क०) ३०२
चीरकम् (ता०) ३४१
चील (हिं०) ३०३
चीलू (हिमा०) ३२४
चुं(ची)टली (हिं०) २८२
घुआरू (कुभा०) ३२४

विषय एवं शब्द पृष्ठांक

चुकन्दर (फा०; हिं०) ३०८–३०९
चुकवो (ने०) ३६
चुका (म०) ३०९
चुका पालङ् (बं०) ,,
चुको (गु०) ,,
चुक्र, चुक्रिका (सं०) ,,
चुक्रबीज (सं०) ,,
चुड़ैलका तेल (हिं०; उ०) ११२
चुनियाँ गोंद (पलाश निर्यास) ४३९
चुनियाँ गोंद (हिं०) ४३८
चुतुन (क०) ५२
चुन्नी गोंद (हिं०) ४३८
कुमलनी (नेपाल) १६४
चुलुका बँदा (जौनसार) १७४
चुल्लू (हिमा०) ३२४
चुल्लूका बाँदा (जौनसार) १७४
चूँठ (क०) ६९७
चूक्र (हिं०) २६
चूक (पं०) ३०९
चूका (आबी व जंगली) ३०९–३१०
,; के बीज ३०९–३१०
,, का साग (हिं०) ३०९
चूका तिपाती (हिं०) ३६६
चूया २८४
चूलू (हिमा०) ३२४
चूहाका(क)नी–(हिं०) ३११
चेंच (हिं०) ३४५
चेङ्ङन्तनम् (ता०) २८३
चेना (हिं०) ३१२
चेनोपोडियम् (ति०; अं०) ४८९
चेबुलिक माइरोबेलन्स (अं०) ७११
चेबूलिनिक एसिड ७११
चेयर बाटम केन (अं०) ५३४
चेर (क०) ३२४
चेरी ६१
चेरुनाखम् (मल०) ४२२

विषय एवं शब्द	पृष्ठांक
चेस्ट-नट ट्री (अं०)	५०१ पा० टि० २
चैती गुलाब (हिं०)	२६३
चोई (बं०)	२९४
चोक	८८, ६५४, ६५५
चोकचिन (क०)	३६६
चोकर (हिं०)	२७२
चोक्कमुसूर (क०)	६९१
चोखा (गु०)	२९६
चोखोट वेल (म०)	३६७
चोपचीनी (सं०)	३१२
चोप(ब) चीनी (हिं०; भा० बा०; म०; गु०)	३१२
चोपांदिग (का०)	४९७
चोबक उश्नान (फा०)	४८१
चोबक उश्नान (शीराज)	१००
चोबचीनी (हिं०; फा०)	३१२–३१४
चोबचीनी	८३
चोबचीनी की भारतीय जातियाँ	३१३
चोबचीनी खताई जंगली (देशी)	,,
,, जहाजी	,,
,, बड़ी	,,
,, हिन्दी	,,
चोबे बलसाँ (फा०)	४९९
चोबहयात (हिं०)	३१४
चोबे हयात, चोबे हैंवत (फा०)	३१४
चोबः सबागान (फा०)	४८१
चोला (गु०)	६३१
चौधारा थूहर	३७९
चौराई, चौलाई (हिं०)	३१५
चौलाई, खारदार (फा०)	३१५
चौलाई (हिं०)	३१५
चौहार सं०)	१७२
चौहार (सं०)	३२
छ	
छाड़छड़ोला (म०)	३१५
छंतनी (हिं०)	३१६
छगलान्त्री (सं०)	५२५

विषय एवं शब्द	पृष्ठांक
छड़ी(री)ला (हिं०)	३१५–३१६
छड़ीलो (गु०)	३१५
छतिब (व) न	३१६–३१७
छतरी (हिं०)	२२६
छत्रक (सं०)	२२६
छत्रवृक्ष (सं०)	५८३
छत्री (हिं०)	२४७
छंब(ब्ब)र (सिंघ)	३९३
छाता (बं०; हिं०)	२२६
छातिम (बं०)	३१६
छारछरीला (हिं०)	३१५
छालिया (हिं०)	६९०
,, जहाजी (हिं०)	,,
,, मानिकचंदी (हिं०)	,,
छिउल (ला) (हिं०)	४३७
छिकनी (बं०)	४०४
छिकाकाई (मार०)	६८४
छिक्कणी (सं०)	४०४
छिक्किका (सं०)	४०४
छिन्नरूढ (सं०)	२९६
छिमकणी (सिंघ)	३५
छिरेटा (हिं०)	२७६
छुईमुई (हिं०)	३१७–३१८
छुआ(वा)रा (हिं०)	२०९
छुहारा (हिं०)	२०९–२१०
छुहारीजबाइन (हिं०)	१७२
छुहा(वा)रो (गु०)	१७२
छूछ (हिं०)	५५७
छैलछबीला (हिं०)	३१५
छोटा कुलफा (हिं०)	१९५
छोटा गोखरू (हिं०)	२६४
छोटा चाँद (बं०)	३८२
छोटा चिरायता (चिरेता)–(हिं०)	४१२
छोटा पीलू (हिं०; बं०)	४५०
छोटा मक्का (हिं०)	३५२
छोटा लजालू (हिं०)	३१८

विषय एवं शब्द पृष्ठांक
छोटा लिसोड़ा ६१६, ६१७
छोटी इलायची (हिं०) ७२
छोटी कटाई (कटेरी) (हिं०) १०९
छोटी चंदन (वं०) ३८२
छोटी जुआर, छोटी जुनरी (पं०) ३५२
छोटी दुद्धी (दूधी) (हिं०) ३९१
छोटी पाठा (हिं०) ४४०
छोटी पीपल या पीपल (हिं०) ४४९
छोटी मटर (हिं०) ५६३
छोटी माईं (हिं०) ४७२
छोटी मुइ (–मैंन)–(बाच०) ४७१
छोरी हड़ (हिं०) ७११
छोड़ा (हिं०) ९१
छोला (बं०) २९०
छोलोंग नीबू (बं०) ५२२
छोहारा (हिं०) २०९

ज

जंगम रेनेट (अं०) ४६
जंगरः (म०) ५३८
जंगली आंबो (गु०) ३३
जंगली आम (द०) ३३
जंगली (देशी) उशबा ३१३
जंगली करौंदा (हिं०) १४१
जंगली काँदो (गु०) ४६७
जंगली कासनी (हिं०) १६७
,, काहू (हिं०) १६९ १७२
,, सुगंधित अंगरेजी १६९
जंगली खशखाश ४६२
जंगली गाजर (हिं०) २४१
जंगली गुलाब (हिं०) १९९
जंगली चूका ३१०
जंगली (नकली) जायफल और जावित्री ३३८
जंगली तमाकू ३५९
जंगली तुलसी ३७२
,, दाख (हिं०)
,, नील (हिं०) ४९०

विषय एवं शब्द पृष्ठांक
जंगली (तिक्त) परवल ४३६
,, पुदीना (हिं०) १७
,, पुदीना (हिं०; भा० बा०) ७२७
जंगली पुदीना ४५२
जंगली प्याज (हिं०) ४६७
जंगली बेसा बलगर (का०) २४७
जंगली बेर (हिं०; पं०) ५३८
,, भिंडी ५५२
,, मकोय (हिं०) ५६०
,, मडुआ (हिं०) ५५५
,, मुद्रिका (बाम्ब०) ४६०
जंगली या दीवारी मूली (हिं०) १३३
,, रायबेल (हिं०) १७८
,, लवंडर (बम्ब०) ९०
,, लहसुन ६२०
,, लैवेंडर (अं०) २०९
,, शीह १७३
,, सन ६५८
,, सरों (हिं०) ६६
,, हर्शक ७१९
,, हल्दी ७२०
,, हलियून ७२२
जंगी गुलु (सिं०) ११६
जंगी हड़ (उ०) ७११
ज़ंगोज़ (अफगा०) ३०२
ज़ंजबील (अ०) ७०१
ज़ंजबील-कोही ६०५
ज़ंजबीलशामी (–बलदी)–(अ०) ६०४
ज़ंजबील सतवा (अ०) ७०१
जंजबीलुल् अजम (अ०) ६०४
ज़ंज़बीले खुश्क (फा०) ७०१
ज़ंजबीले तर (फा०) ७००
ज़ंजनीले याबिस (अ०) ७०१
ज़ंजबीले रतब (अ०) ७००
ज़ंजवर (फा०) ७००
जंबीरी (हिं; पं०) ३१९

विषय एवं शब्द पृष्ठांक
जंभीरीनीबू ३१९
जई (ह्रिं०) ३५१
ज़क़ू (ज़क़ू)म (अ०) ३७९
ज़क्कूमे हिंदी (अ०) ,,
जख़्महयात (हिं०; द०; बम्ब०) ४३३
जज़र (अ०) २७१
जज़रुल् बर्री (अ०) ,,
जज़्रे बूलीगाली (अ०) ५३३
जज़रे सनीगा (अ०) ५३३
जटाधारी ६८४
जटामांसी (सं०; हिं०; द०; बं०; गु०; म०; ते०) ५१८
जटिला (सं०) ५१८
ज़दवार ३१९–३२१
,, नकली ३२०
जदवार (जद्वार) और बछनाग भेद ३२९
ज़द्वार (अ०) ३१९
,, अक़रवी (अ०) ३२०
,, अन्दलुसी ,,
,, ख़ताई (अ०) ,,
जद्वार, ज़र्दवार (फा०) ३१९
जनर (बं०) ५५७
जन्ज़लख़्त (मिश्र) ४२४
ज़न्तुफल (सं०) २६९, २७०
जपा (सं०) २५५
जपो (ब्बो)लोटा (पं०) ३२१
ज़बाने कुंजिश्क (फा०) १८८
ज़बाने कुंजिश्के तल्ख़(फा०) १८८
ज़बाने कुञ्जिश्केशीरीं (फा०) १८८
ज़बीब (अ०) २
ज़बीबुज्जबल (अ०) ५६९
जभीरी (हिं०) ३१९
जम्भी(वी)री ३१९
जमालगोटा (हिं०; म०) ३२१-३२३
,, का तेल ३२१-३२२
जमालगोटा के भेद ३२२

विषय एवं शब्द पृष्ठांक
जमालगोटा चीनी या खताई ,,
,, सज्जी ,,
,, हिंदी ,,
जमी (हिं०) ४४२
ज़मीकंद (फा०; हिं०) ६९६
जमेइका सार्सापरिल्ला (अं०) ८२, ८३
जमैका पेपर (अं०) ४७६
जम्मेज़ (अ०) २६९-२७०
जम्बीर (सं०) ३१९
जम्बू (सं०) ३८२
जम्बोसीन (अं०) २६८
जयंतिका, जयन्ती (सं०) ३८३
जयंती (हिं०; बं०) ,,
जयन्तो (जैंत) ३२३-३२४
जयपत्री, जवित्री (पं०) ३३७
जयपाल (सं०; बं०) ३२३
,, के विष लक्षण और उसकी चिकित्सा ,,
जयपाल तैल (सं०) ३२१, ३२२
,, के बीज ,,
जयफल (पं०) ३३७
जयापुहुप (हिं०) ५४२
ज़रंबाद (अ०) ४०५
जरण (सं०) ३४१
जरदालू और खुबानी ३२४-३२५
ज़रदालू (पश्तु; फा०) ३२४
ज़र्द आलू (फा०) ,,
ज़रम (अं०) ९०
जरांकुश (बं०) ६९
ज़रावंद (अ०; फा०) ३२६
जरावंद (दे) तवील (अ०) ३२६-३२७
जरावंदे दराज़ ३२६
जरावंद दे मुदहरज (अ०) ३२६-३२७
जरावंदे हिंदी (अ०; फा०) ७७
जरिष्क (हिं०; भा० बा०) ३८५–३८६;३८७
जरिष्क (फा०) ३८५

विषय एवं शब्द पृष्ठांक

ज़रीर (फा०) ३२७-३२८
ज़रेवर्द (अ०) २६५
ज़र्उल्कल्ब (अ०) ३७९
ज़र्दक (फा०) २४१
ज़र्दचोब (फा०) ७२०
जर्दालू (हिं०) ६०
ज़र्नब (अ०) ३२८-३२९
जर्मनकैमोमाइल (अं०) ५१३
जलकुंभी (गु०) ३२९
जलकुमी (म०; हिं०) ,,
जलकुम्भी (हिं०) ३२९-३३०
जलकुम्ही (हिं०) ३२९
जलखुम्बी (हिं०) ३२९
जलचूका (चूका आबी) ३०९, ३१०
जलजमनी (हिं०) २७६
जलदारु (सतलज) ३२४
जलधनियाँ (हिं०) ६१०
जलनिर्मली (पं०) ४१८
जलनीब (हिं०) ३३०
जलनीम (हिं०) ५४५
जलनीम, ब्राह्मी बंगीय ३३०-३३१
जलपानी १५२
जलपालक ३०९
जलपिप्पली (सं०; म०) ३३१
जलपीपल (हिं०) ३३१-३३२
जलपीपली (हिं०) ३३१
जलब, जल्लाबा (अ०; फा०) ३३२
जलब्राह्मी (हिं०) ३३०
जलभोगरी (मा०) ५४७
जलवेतस (सं०) ५३७
जललजालू (हिं०) ३१८
जलसरपोलियन (गु०) ७००
जलापा (हिं०; भा० बा०) ३३२-३३३
जलापा (बा)–(हिं०; भा० बा०) ३३२
जलापिन (अं०) ४२१
जलील (इरान) ३२७

विषय एवं शब्द पृष्ठांक

जलुगु (ते०) ३२३
जल्बान (अ०) ५६४
जव (हिं०; गु०; बं०; पं०) ३४८
जवखार (म०; गु०) ३५०
जवहरड़ो (मा०) ७११
जवा (सं; हिं०; बं०) २५५
जवा (जौ) हड़ (हिं०) ७११
जवाइन (हिं०) १६
जवाखार (हिं०) ३५०-३५१
जवाफूलेरगाछ (बं०) २५५
जवाशा (सा)–(बं०) ३३४
जवाशीर (हिं०; भा० बा०) ३३३, ३३४
जवाशीर (हिं०; फा०; भा० बा०) ३३३
जवा (वाँ)सा, जवास (हिं०) ३३४
जवासा (हिं०; म०) ३३४-३३६
जवासो (गु०) ३३४
जवेर (पं०) ५६१
जवैण (पं०) १६
जश्मीज़ज (अ०) २९३
जस्मीनीन (अं०) २९२
ज़हरबागुन (क०) ६४
जहरीनारल (बम्ब०; कों०; म०; मार०) ४१६
ज़हरेमाही (फा०) ५७८
ज़हूक (फा०) ४८
ज़हरुल्ज़रम (अ०) ९०
जांगीहरड़ (म०) ७११
जांगीहरितकी (द०) ७११
जांशिओनोज ३४०
जांशियानिक एसिड (अं०) ३४०
जाई (म०; गु०) ३४३
ज़ाक़नी (अ०) ५७३
ज़ाक़नी वेदास (अ०) ५७३
ज़ाक़नी (यू०) २४५
जाटारिआ मल्टीफ्लोरा (ले०) ६७२
जाटेओर्हीजा पाल्माटा (ले०) १४२
जाट्रोफा कुर्कास (ले०) ६११

विषय एवं शब्द पृष्ठांक

जाट्रोफा गाँस्सीपीफोलिआ (ले०) ६११
जाडबवर (क०) ५४७
जाती (सं०; बं०) ३४३
जातीकोष, जातीपत्री (सं०) ३३७
जातीफल (सं०) ३३७
जातुज्जवानिब (अ०) ४९५
जान्थीउम् स्ट्रूमारिउम् (ले०) २७६
जान्थोक्सीलुम् आलाटुम् (ले०) ३६९
जा० बुडरंगा (ले०) ३६९
जापान–पी (अं०) ७०५
जाफर (पं०) ६५६
ज़ाफरान (अं०) २०२
जाभीर ले(ने)बू (वं०) ३९०
ज़ाफ़राने मर्गजारी (फा०) ६९२
जामख्वाबबुक (फा०) १५२
जामफल (गु०) ३४
जामेग़ोक (फा०) ,,
जायपत्री (म०) ३३७
जायफल और जावित्री ३३७-३४०
,, ,, नकली ३३८
जायफल (हिं०; बं०; म०; गु०) ३३७-३३८
ज़ाल(र) (अ०) ५३८
जाल (पं०) ४५०
जालाप (ले०) ३३२
जावंत्री (गु०) ३३७
जावरस (अं०) ५०७
जावरसे हिंदी (फा०) ३५२
जावर्स (अं०) ३५३
जावशीर (अ०; बम्ब० बाजार) ३३३
जावस (म०) ४२
जावा आमंड-ट्री (अं०) ५६४
जावा बदाम (हिं०) ५६४
जावित्री (हिं०) ३३७; ३३९; ३४०
जार्विद (क०) १६
जावी (अ०) ६२९
जासीमुम् आर्बोरेसेन्स (ले०) ५७७

विषय एवं शब्द पृष्ठांक

जासुन (बम्ब०) २५५
जासुम्ब (बम्ब) २५५
जासून (हिं०; गु०) २५५
जास्मीनुम् आउरिकुलाटुम् (ले०) ३४३
जास्मीनुम् आफ्फीसिनाले प्रकार ग्रांडिफ्लोरुम् (ले०) २९१
जास्मीनुम् पूबेसेन्स (ले०) १७८
जास्मीनुम् हूमिले (ले०) ३४४
जा० सम्बाक (ले०) ५४०
जास्वंद (म०) २५५
जाही(ई) (हिं०) ३४३
जिंजा (अं०) ७०१
जिंजिली (अं०) ३६७
जिंतियाना (बाजार, अ०; फा०) ३४०-३४१
जिंतियानीस ३४०
जिंतियुस (जेन्तिस) (अं०) ३४०
ज़िंज़िबर ऑफ़्फ़ीसिनाले (ले०) ७०१
ज़िंजेरिन (अं०) ७०१
ज़िंजेरोल (अं०) ,,
जिंघना (हिं०) ३४६
ज़िनियान, जिन्यान (फा०) १६
ज़िफ़्त (अं०) १११
,, जबली (अ०) ,,
,, बहरी (अ०) ,,
,, याबिस (अ०) ,,
,, रतब (अ०) ११०
ज़िफ़्त रतब (अ०) ११०;६०४
ज़िफ़्तस्याह (अ०) १११
जिम्नेमिक एसिड (अं०) २५५
जिरें (म०) ३४१
जिर्जीर (अ०) ३६१
ज़िर्व (अ०) ६२९;६४०
जि(जु)ल्लौज (अ०) ३०२;४७५
ज़ीजीफुस एनोप्लिया (ले०) ५६०
जीजिफुस नुम्मुलारिआ (ले०) ५३८
जीजिफुस मारीटिआना (ले०) ५३८

विषय एवं शब्द पृष्ठांक

जीभी १८१
जीमूत(क) (सं०) ४७८
जीम्नेमा सील्वेस्ट्रे (ले०) २५४
ज़ीरः (फा०) ३४१
ज़ीरए अरमनी (फा०) १९१
जीरए गुल (फा०) २६५
जीरए रूमी (फा०) १९१
ज़ीरए सफ़ेद (फा०) ३४१
ज़ीरए सहराई(बर्री) (फा०) १६२
जीरक (सं०) ३४१
जीरक कर्पूर १९२
जीरकम् (मल०) ३४१
जीरा (हिं०) ३४१-३४२
जीरा पीला १९१
,, विलायती १९१
,; सफेद (उ०) १९१
,, सब्ज (हरा) १९१
,, सुफेद (पं०) १९१;३४१
,, स्याह १९१
जीरॉम्फिस स्पीनोजा (ले०) ५९६
जीरिगे (का०) ३४१
जीरु (गु०) ३४१
जीरे (बं०) ३४१
ज़ीरे रूमी (फा०) २९
जीरो (मा०) ३४१
जीरो अच्छा (सिंध) ३४१
जीलकरी (ते०) ३४१
जीलाक (फा०) २१७
जीवतिक्ति 'A','B','D' २१०
,, स्कर्वी (प्रशीताद) हर २१०
जीवतिक्ति 'सी' २६३
जीवतिक्ति 'ग'
जीवदारू (सं०) ३१४
जुंबज, जुंबजुर्रुम्मान (अ०) २८
जुइपान (बम्ब०) ४४४
जुग्लांस रेगिआ (ले०) १२

विषय एवं शब्द पृष्ठांक

जुजुब (अं०) ८८
जुनिपर बेरीज (अं०) ७२४
जुनिपेरी फ्रुक्टुस (ले०) ७२४
जुफ़्त बल्लूत ५०१
जुर (क०) ३४१
जुर्रत(जुर्रा)मक्का (फा०) ५५७
जुर्रत (अ०) ३५२
जुलनार (अ०) २८
जुल्बान असवद (अ०) २२९
जुल्ले आब (अ०) पानीका फूल १५२
जुल्ले वज़्ग़ (फ़ा०) १५२
जुल्ले बुक (फा०) १५२
जुवार (गु०) ३५२
जूई (गु०) ३४३
जूईपानी (हिं०) ४४४
जूख़म्सतुल् औराक़ (अ०) ६५४
जूख़म्सेत असाबेअ (अ०) ६५०
जूजुब फ्रूट (अं०) ५३८
जूजुबा (ले०) ५३९
जूनिपेरिन (अं०) ७२४
जूनीपेरुम् कोम्मूनिस (ले०) ७२४
जूख़्मसतेल औराक़ (अ०) ५२७
जूफा (हिं०;फा०) ३४३
जूफ़ाए ख़ुश्क (फा०) ३४३
जू(जु)ही (हिं०;पं०;मार०) ३४३
जूही, जूई ३४३-३४४
जूसलासुल् शौकात (अ०) ६४४
ज़ेआ मेज़ (ले०) ५५७
जेठीमध (हिं०;पं०) ५८४
जेठुई ककड़ी (हिं०) १०२
जेडोआर (यू०) ३१९
जेडोआरी (अं०) ४०१
जेन्टिआना ओलीवेरी (ले०) ३२८
जेन्टिआना कुर्रु (ले०) ३२८
जेन्टिआना लूटेआ (ले०) ३४०
जेरानिउम् आनुम् वालीचि (ले०) ६०६

विषय एवं शब्द	पृष्ठांक
जेलीडिउम् आमान्सी (ले०)	७००
जेष्ठमध (गु०;कना०)	५८४
जेष्ठीमध (म०;गु०)	५८४
जैंघनी (हिं०)	३४६
जैंत (हिं०)	३२३
जैंकाल जुजुब (अं०)	५६०
जैंक्विरिटी (अं०)	२८२
जैंगरी (अं०)	२३५
ज़ैंगेबर (यू०)	७००
जैंत (हिं०)	३२३-३२४
जैंत (बम्ब०)	३२३
ज़ैंत (अ०)	३४४
ज़ैंतह्व्बुल्मुलूक (अ०)	३२१
ज़ैंतुत्तबिनतीना (अ०)	३०३
ज़ैंतूनका तेल (हिं०)	३४४-३४५
जैंतून वृक्ष (हिं०)	३४४
जैंतूनुल् अर्ज (अ०)	५७३
जैंत्री (बं०)	३३७
ज़ैंन्पीन	२९५;२२६
जैंपाल (सं०)	३२१
जैंम्बोलीन (अं०)	३३७
जैंम्बोसीन (अं०)	३३७
जैंलेप (अं०)	३३२
जैंस्मिन-ट्री (अं०)	५१
जैंस्मिन फ्लावर्ड कैंरिसा (अं०)	१४०
जोंक (हिं०)	३४५-३४६
जोंकमारी (म०)	३४६-३४७
जोंगली पेयाज (बं०)	४६७
जों(जौं)गी हण (हिं०)	७११
जोभ्दा(जादेअ) (अ०)	३४७-३४८
जोआर, जोइ (बं०)	३५२
जोईपाणी (बं०)	४४४
जोयान् (बं०)	१६
जौ (हिं०)	३४८ ३५०
जो (फा०)	३४८
जौका सत्तू (हिं०)	३४९

विषय एवं शब्द	पृष्ठांक
जौखार (हिं०)	३५०
जौगंदुम (फा०)	३५१
जौज़ (अ०)	१२
जौज आफ़त (फा०)	३९६
जौज़ बव्वा (अ०)	३३७;३३८
जौज़ बूया (अ०)	३३८
जौज़बोवा(-बुवा) (अ०)	३३८
जौज़ मासम (अ०)	३९६
जौज़ मासले अस्वद (अ०)	३९७
जौज़ुत्तर्फ़ा (अ०)	३५३
जौज़ुत्तीब (अ०)	३३७
जौज़ुल् क़ै (अ०)	१८०,५९६
जौज़ुल् कौसल (अ०)	५९६
जौज़ुल्मर्ज़ (अ०)	१५५
जौज़ुल् मासेल (अ०)	३९६
जौज़ुस्सरो (अ०)	६६६,६६७
जौज़े कौसल (अ०)	१८०
जौज़े हिंदी (अ०)	४१४
जौ बिरहना (जई) (फा०)	३५१–३५२
जौहर फर्फ़ीरान	८९
जौहर रेवंद	६१३
जौहर शौकरान	
जौहर संदल	२८५
,, सफ़साफ या बेद	५३६
ज़ौहरी जवाइन (हिं०)	१७३
ज्योतिष्मती (सं०)	५७६
ज्वार (हिं०)	३५२

झ

विषय एवं शब्द	पृष्ठांक
झंजन (हिं०)	३२३
झड़बेर (हिं०; पं०)	५३८
झड़बेरी (हिं०)	,,
झनझन (बं०)	६५८
झण्डू (सं०)	२७१
झलाकफल (क०)	६२६
झाँखड़ी (मा०)	१३७

विषय एवं शब्द पृष्ठांक

झाउला (वि०) ३५३
झाऊ (हिं०; द०) ३५३–३५४
झाऊपंचांग ३५३–३५४
झाडचीमडुं (गु०) ३७
झाडीबेर (हिं०; पं०) ५३८
झाव (हिं०; बं०; गु०)
झावु (गु०) ३५३
झावु (क)-(सं०) ,,
झावुकफल (सं०) ,,
झावुक शर्करा (सं०) ३५३,३५४
झिंगा झिंगाक (सं०) ३७०
झिझा (जौनसार) १७४
झिल्ल (सं०) ४९०
झीणकी छुंछ (गु०) ५०४
झुनझुनिया, झुनुक (हिं०) ६५८
झेंडु (म०) २७१
झेरकचोंला (गु०) १७९
झेरीनारियेल (गु०) ४१६
झोजरू (मार०) ६६४
झोला (कु०) २१५
टंकारी (पं०) १५६
टगर (हिं०; बं०; म०; गु०) २५७
टङ्क (सं०) ४१७
टङ्ग (क०) ४१७
टच-मी-नॉट (अ०) २६०
टमाटर (हिं०) ३५४-३५५
टर्निप (अं०) ६३७
टरपीन्स (अं०) ५६४
टर्पेथिन (अं०) ४२१
टर्पेन्टाइन ऑयल (अं०) ३०३
टर्बिन्टोस (यू०) ३०४
टांकिन-बीन (अं०) ६७
टांको (गु०) ४८८
टाँगुन (हिं०; उड़ि०) ९४
टाकला (म०) ४२८
टाकापाना (बं०) ३२९

विषय एवं शब्द पृष्ठांक

टाक्सुस बाक्काटा (ले०) ३६४
टाजेटीस एरेक्टा (ले०) २७१
टा० पाटुला (ले०) ,,
टानासेटुम् ऊम्बेली फेरुम् (ले०) ५३३
टाबेर्नेमोंटाना डीवारीकाटा (ले०) २५७
टामारिक्स आर्टीकुलाटा (ले०) ४७१
टा० गालिका (ले०) ३५२
टा० ट्रूपिई (ले०) ३५३
टामारिंडुस इंडिकुस (ले०) ७०
टार (अं०) ११०; ३९४
टाराक्टोजेनोस कुर्जिआई (ले०) २९७
टाराक्साकुम आफ्फीसिनाले (ले०) १६७
टार्टरिक एसिड (अं०) ३८
टार्टेरिक एसिड (अं०) ३८६
टॉर्मिक एसिड (अं०) ७२४
टॉर्मेनोल (अं०) ५२७
टॉर्मेन्टिल्ला (अं०) ५२७
टावाने(ले,बु (पं०) ५२८
टिंडोरा (गु०) ९७
टिग्लिनिक एसिड (अं०) ३२२
टिटवीन (क०) ३२
टिट्ठवन (क०) ३२
टिट्लोन (यू०) ३०८
टिली (यू०) ५९४
टींबरवो (गु०) ३७५
टी (अं०) २९५
टीनोस्पोरा कॉर्डीफोलिया (ले०) २५०
टीफा एलेफान्टीना (ले०) ४३१
टी-बेरी (अं०) २३३
टीरीबिन्थीनोन एलेओन (यू०) ३०४
टुटगंठा (चकरौता) ७०२
टुमेटो (हिं०) ३५४
टुरेथ (यू०) ४२०
टूथ-एक ट्री (अं०) ३६९
टूस्सीलागा फार्फारा (ले०) ४६८
टेंगरी हिं०) २५७

विषय एवं शब्द पृष्ठांक
टेंट (ब्रज) १३७
टेंटी (ब्रज; हिं०) १३७
टेउक्रिउम् पोलिउम् (ले०) ३४७
टेउक्रीउम् कामेड्रीस (ले०) १३२
टेउक्रीउम् स्कोर्डिउम् (ले०) ८९
टेफ्रोसिया पूर्पूरेआ (ले०) ६६४
टेबर्नेमॉण्टेनीन (अं०) २५८
टेमरिंड (अं०) ७०
टेमूलीन ६४६
टेमेरिक्स (अं०) ३५३
टेमेरिक्स मेन्ना (अं०) ३५३
टेमेरिक्स गॉल्स (अं०) ३५३
टेरिबिन्थोस (यू०) ३४
टेरीबिंथ ३०४
,, या चिआन टर्पेन्टाइन ट्री (अं०) ३२
टेरेबिंथीनी ओलिउम् (ले०) ३०३
टेरोकार्पुस् सान्टालिनुस (ले०) २८३
टेर्मिनालिआ चेबुला (ले०) ७११
टेर्मिनालिआ बेल्लारिका (ले०) ५०४
टेल्ड पेपर (अं०) १२६-१२७
टेसू (हिं०) ४३७
टैजेटीन (अं०) ४०६
टैनिक एसिड (अं०) ५; ५७४
टैनिन (अं०) २००; ३७६
टैमेरिक्स मेन्ना (अं०) ६४२
टैरेक्सेकम् (यू०) १६८
टैरेक्सेसिन (अं०) १६८
टैरेक्सेरिन (अं०) ,,
टोइयाका तेल (हिं०) ५७२
टोमेटो (अं०) ३५४
टोलुइफेरा बाल्सामुम् (ले०) ४९९
टोलू बाल्सम (अं०) ४९९
टयूब रोज़ (अं०) २६२
ट्राइनेथिलैमाइड (अं०) ४५०
ट्राकीडिउम् लेहमान्नी (ले०) ६३४
ट्राकीस्पेर्मुम् आम्मी (ले०) १६

विषय एवं शब्द पृष्ठांक
ट्रा० रॉक्तबुर्घिआनुम् (ले०) १५
ट्रागाकन्था (यू०) ११२
ट्रैगाकांथ (अं०) ११३
ट्रैगाकैन्था (यू०) का अर्थ ११२-११३
ट्रापा नाटांस प्र० बीस्पीनोजा (ले०) ६८१
ट्रिआन्थेमा (ले०) ४५४
,, पोर्टुलाकास्टुम् (ले०) ५२९
ट्रिगोनेल्लीन (अं०) ५६४
ट्रिबोलिया (यू०) ३७५
ट्रिबोलस (यू०) ,,
ट्रीकिल (अं०) ६६१
ट्रीकोजान्थीस आंगूइना (ले०) २८८; ४३६
ट्रीकोजान्थे (थी)स डीओइका (ले०) ४३६
ट्रीकोडेस्मा इण्डिका (ले०) २४८
ट्री० ज़ीलानिका (ले०) ,,
ट्रीकोलेपिस ग्लाबेर्टिमा (ले०) ५४४
ट्रीकोलेपिस प्रोकुम्बेन्स (ले०) ५१२
ट्रीगोनेल्ला उंकाटा (ले०) ६७
ट्रीगोनेल्ला कॉर्नीकुलाटा (ले०) ६८
ट्रीगोनेल्ला फीनुम्-ग्रीकुम् (ले०) ५९४
ट्रीगोनेल्लीन (अं०) ५९४
ट्रीज (सिंध) ४२०
ट्रीटीकुम एस्टीवुम (ले०) २७२
ट्रीबुलुस (ले०) २७५
ट्रीबुलुस अलाटा (ले०) २७४
ट्रीबुलुस टेरेस्ट्रिस (ले०) २७४
ट्रेलिंग एक्लिप्टा (अं०) ५४७
ट्रैंगुलर स्पोंज (अं०) ३७९
टैंबु (मु)णी (गु०) ३७५
ठड्डा बादाम ५१०
ठिक्री (हिं०) ४५३
डँगरा (हिं०) २१४
डंगरी (सं०) २०५
डंडाथूहर (हिं०) ३७९
डँखरा (पं०) ६९१
डटूरा (ले०; अं०) ३९६

विषय एवं शब्द	पृष्ठांक
डथौरा (खर०)	५६०
डफ्नी (यू०)	२४५
डब(व)रा (कच्छ)	१३७
डबल कैमोमाइल (अं०)	५१४
,, जैस्मिन (अं०)	५४०
डमरो (गु०)	३२४
डमस्क रोज (अं०)	२६४
डम्बरे (पश्तो)	३६९
डलकेमारीन (अं०)	५६९
डल्कस राडिक्स (सू०)	५८४
डहुक (सं०)	४८८
डांगर (गु०)	२९६
डाँसरिया (मार०)	६९१
डाइडिमोकार्पीन (अं०)	४३४
डाउकुस कारोटा प्र० साटोवा (ले०)	२४१
डाउनी ग्रिजलेआ (अं०)	४०३
डॉग-पॉइजन (अं०)	१७९
डॉग-मस्टर्ड (अं०)	७३१
डॉटुरा आल्बा (ले०)	
डाटूरा टाटूला (ले०)	३९७
डाटूरा फेस्टुओसा (ले०)	३९७
डा० मांटिल (ले०)	,,
डाटूरा स्ट्रामोनिउम् (ले०)	३९६
डाडर (अं०)	११
डाफ्नी नॉडिडम् (ले०)	५७३
डाफ्नी मेजेरेउम् (ले०)	,,
डाफ्नी लाउरेओला (ले०)	,,
डाफ्ने	५७२
डाबलो कांसकी (गु०)	९५
डामर रेजिन (अं०)	६४८
डायक्री (यू०)	२४१
डायकांस (यू०)	,,
डिओस्कोरिआ साटिवा (ले०)	५१८
डि० बुल्बीफेरा (ले०)	,,
डायर्स या स्पैनिश बग्लॉस (अं०)	६०१
डालिंब (बम्ब०; म०)	२५
डालिंब झाड़ (म०)	२५
डॉलीकॉस बीफ्लोरुस (ले०)	१९४
डॉलोकॉस लाबलाब (ले०)	६९७
डाही-कुल	५१८
डिआन्थुस आनाटोलिकुस (ले०)	९६
डिओस्पिरॉस एबेनुम् (ले०)	५४
डिओस्पिरॉस पेरेग्रिना (ले०)	३७५
डिओस्पिरॉस मेलानॉक्सिलॉन (ले०)	३७५
डिजिटाक्सीन (अं०)	३५६
डिजिटॉलिस पूर्पूरेआ (ले०)	३५५
डिजिटीन	३५६
डिजिटेलाइन	,,
डिजिटेलिस (दीजताल)	३५५–३५६
,, विष ललक्षण	३५६
,, कीचित्सा	३५७
डिजिटेलीन (अं०)	३५६
डिजिटोनीन (अं०)	,,
डिडीमोकार्पुस पेडासेल्लाटा (ले०)	४३४
डिल (अं०)	७०३
डिल फ्रूट या सीड (अं०)	७०३
डीओनीसिया डीआपेन्सीईफोलिया (ले०)	७१६
डीटामीन	३१७
डीटा या एल्स्टोनिआ बार्क	३१७
डीप्टेरोकार्पुस अलाटुस (ले०)	२४०
डीमोनोरॉप्स ड्राको (ले०)	३८०
डुंगरी (-ली०) (गु०)	४६५
डुकरकंद (म०; गु०)	५१८
डुग्रु (-ग्रो) (गु०)	२२४
डुमशिणको (कु०)	७१०
डेंडिलाइन (अं०)	१६७
डेंडिलायन (अं०)	१६८
डेंड्राफ्थे फाल्काटा (ले०)	४७७
डेक्कन हेम्प (अं०)	७१४
डेट (अं०)	२०९
डेड्ली नाइटशेड (अं०)	६२६
डेलू (सिंध)	४७८

विषय एवं शब्द	पृष्ठांक
डेले (पं०)	१३७
डेल्फिनीन (अं०)	३२०;५६९
डेल्फीनिउम् जलील (ले०)	३२७
डेल्फीनिउम् डेनुडाटुम् (ले०)	३१९
डेल्फीनिउम् स्टाफिसाग्रिआ (ले०)	५६१
डेल्फोक्युरारीन (अं०)	३२०
डेविल-ट्री (अं०)	३१६
डेविल्स कॉटन (अं०)	८१
डेविल्स गट (अं०)	३०
डेविल्स डंग (अं०)	७२९
डैफ्नी (दफ्ती)	५७३
डोडिका (सं०)	१८०
डोरलैं(ली) (म०)	१०९
डोरिया का तेल (हिं०)	५७३
डोरेमा आमोनिआकुम् (ले०)	८६
डोरोनिकुम् पार्डालिआन्केज (ले०)	३८१
डोलर (गु०)	५४०
डोला (को०, संथा०)	५७२
डोलीकोस काटिआंग (ले०)	६३१
ड्रम-स्टिक (अं०)	३५
ड्रम-स्टिक ट्री (अं०)	६६९
ड्राइड जिंजर (अं०)	७०१
ड्राई कर्नेल आफ कोकोनट (अं०)	४१४
ड्राकेना ड्राको (ले०)	२८०
ड्राकेना सिन्नाबारी (ले०)	,,
ड्राकोसेफालुम् मोल्डाविका (ले०)	३७३
ड्राकोसेफालुम् रायले आनुम् (ले०)	५२०
ड्राख (सिंध)	१
ड्रीओप्टेरिस फिलिक्स-मास (ले०)	६६३
ड्रैगन-वर्ट (अं०)	५
ड्रैगन्स ब्लड (अं०)	३८०
ड्वार्फ ऐल्डर (अं०)	२१२
ड्वार्फ चेरी (अं०)	६१
ढ	
ढकपन्ना (हिं०)	४३७
ढाक (हिं०)	४३७
ढाक कीकनी (हिं०)	४३८
ढिंगरी (पं०)	२२६
ढींगरी	२२७
ढेइ उम्बरी (गु०)	८
ढेडश (बं०)	५५२
ढोर (डोर)गुंज (म०)	४४
त	
तंडेमु (ते०)	४२८
तंदु(डु)लीय (सं०)	३१५
तंबाकु, तमाकु (गु०)	३५९
तंबाखू (म०)	,,
तंबूल (अ०; फा०)	४४१
तख्ता शीरखिश्त	६४३
तगर (सुगन्धबाला)	३५७–३५८
तगर (सं०; क०)	३५७
तगर (हिं०; बं०; म०; गु०)	३५७,३५८
तगरगंठोडा (बम्ब०; गु०)	३५७
तगरगंठौड़ा (हिं ; गु०)	४६
तगरमूल (म०)	३५७
तगिरिसे (ते०)	४२८
तघर (मल०)	४२८
तघ(क)रै (ता०)	४२८
तज (हिं०; गु०)	३५८;३८८
तण्डु(न्दु)ल (सं०)	२९६
तत्रक (हिं०)	६९१
तनधारी थोर (सेंड)–(गु०)	३७९
तफ़्त (अ०)	१९५
तफ़्त (फा०)	६४५
तबरज़द	२३६
तबाशीर (फा०)	३६८
,, कबूद (अ०, फा०)	५०५
,, सद्फी (अ०; फा०)	,,
त(ति)मत(ति)म	
तमरहिन्दी (फा०)	७०
तमाकू (हिं०)	३५९–३६०
तमाखू (हिं०)	३५९

विषय एवं शब्द	पृष्ठांक
तमालपत्र	३५८
तम्बर (क०)	७०
तम्बुल (बं०)	३६९
तम्‌र (अ०)	२०९
तम्‌र रुतब (अ०)	,,
तम्‌रे हिंदी (अ०)	७०
,, ,, का अर्थ	७०
तरंजबीन	४०१
त(तु)रंजबीन (अ०)	३३४,३३५
,, असली और नकली की पहचान	३३५
तरए खुरासानी (फा०)	३७२
तरए खुरासानी (फा०)	३०९
तर(ल)ख़श्क़ूक़ (अ०)	१६७
तरख़श्क़ून (अ०; फा०)	१६७,१६८
तरबुज (सं०)	३६०
तरबूज (हिं०)	३६०–३६१
तरबूज (मार०)	३६०
तर(-रा)मि(मी)रा (हिं०)	३६१
तरमुज (बं०)	३६०
तरवटा (म०)	४२८
तरागाकन्सा (अरबीकृत)	११२,११३
तरिबुद (क०)	३०३;७२६
तरामीरा	३६१
तरामिरी (पं०)	,,
तरीदास (अ०)	१६९
तरीफ़ूलियून (यू०)	४२०
तरुणी (सं०)	२६३,२६४
तरुलता (बं०)	७४
तरोई, तुरई, तोरई, तोरी (हिं०)	३७०
तरोटा (द०)	४२८
तर्ख़ (पश्तो)	१७२
तर्ख़ा (प०)	३९५
तर्फ़ा (अ०)	३५३
तर्बुज़ (फा०)	३६०
तर्बुद (फा०)	४२०
तर्सूस (अ०)	८६,८७

विषय एवं शब्द	पृष्ठांक
तल (गु०)	३६७
त(ति)लवण (म०; बम्ब०)	७३१,७३२
तलवणी (गु०; म०)	,, , ,,
त(ता)लाबहींग (हिं०)	७३०
तल्ह (अ०; फा०)	१९९
तवक्षीर (री)-(सं०)	३६८
तवराज शर्करा (सं०)	३३४
तवाखीर (म०)	३६८
तश्मीज़ज (अ०)	२९३
तस्तिवान् (फा०)	५०२
तहलुब नहरी (अ०)	१५२
तांदलजो (गु०)	३१५
तांदुल(ली)जा (म०)	३१५
तांब (म०)	४१
तांबड़ा भोंपला (म०; बम्ब०)	२०५
तांबड़ी दुपारी (म०)	२५९
तांबड़े खसखस (म०)	४६०
तांबूल (अ०)	४४१
ताक (फा०)	१;४७९
ताक सहराई (फा०)	४७३
तागजोरी (म०)	६५७
ताजरेज़ी (फा०)	६२६
ताड़ (सं०; हिं०; म०; गु०)	३६२–३६३
ताडि (तं०)	५०४
ताडी (हिं०; फा०)	३६२
ताड़ी (हिं०)	२१०
तातूरहे स्याह (फा०)	३९७
तातूरः(लः) (फा०)	३९६
तादिरी, तादिरे (मल०)	४०३
तान्त्रि (मल०)	५०४
ताफ़क (तबरि–)	४२४
तामरै (ता०)	१२९
तामाक (कु०; बं०)	३५९
ताम्बूलवल्ली (सं०)	४४१
ताम्रकूट (सं०)	३५९
तारपीन का तेल (रोग़न तारपीन)	३०५–३०६

विषय एवं शब्द	पृष्ठांक
तारामि(मी)रा (हिं०)	३६१
तारास्सुव	१६८
तार्पिन (बम्ब०)	३०३
ताल (सं०; हिं०)	३६२
तालगाछ (बं०)	,,
तालपत्री, तालमूली (सं०; बं०)	५८१
तालमखाना (हिं०)	३६३
तालमखारा (हिं०)	,,
तालरस (सं०)	३६२
तालाक़्रियून (अ०)	५७६
तालिमखाना (म०)	३६३
तालीशफर (क०)	३६५
तालीस (सं०; पं०)	३६४-३६५
तालीसपतर, तालीसपत्ता (हिं०; भा० बा०)	३६४
तालीसपत्र (सं०)	३६४-३६५
तालीसपत्र बंगीय	३६४
तालीसफ़र (अ०)	३६५
तीलास्त्र (पं०)	३६५
तिउरा, तीरा (ग्रामीण)	३६१
तिकड़ा (द०)	४२०
तिकिओकरा (बं०)	३४५
तिक्तकद्दू (हिं०)	११४
तिक्तगोक्षुर (सं०)	२७६
तिक्तपटोलिका (सं०)	४३६
तिक्तशाक (सं०)	४९७
तिक्तालाबू (सं०)	११४
तिधिली (सिंध)	४४८
तितमबेर (हिं०)	८०
तितलाउ (बं०)	११४
तितली (बं०; पं०)	६८९
तितलौकी (हिं०)	११४, ११५-११६
तितोबादाम (बं०)	५०८
तित्री	६९२
तिधारा थूहर, सेहुण्ड (हिं०)	३७९
तिनपतिया (हिं०)	३६६
तिन्तिडीक (सं०)	६९१
तिन्दुक (सं०)	३७५
तिपत्ती (खटकल)	३६६
तिप्पतीगे (ते०)	२५०
तिब्न-एल्-मक्का (अ०)	६९
तिर (सिं०)	३६७
तिरवी (पं०)	४२०
ति(चि)रफल (म०)	३६९
तिरमिरा (हिं०)	३६१
तिरा (कुमा०; पश्चिम)	,,
तिरियाक (फा०)	४६१
तिरिल (को०;संथा)	३७५
तिरीर (फा०)	६८
तिर्मूस, तुर्मुस (अ०; फा०; भा० बाजा०)	३७२
तिर्याक, तिरियाक (फा०)	४६०-४६१
तिल (सं०; हिं०)	३६७-३६८
ति(ती)ल (बं०; म०)	३६७
तिल का तेल (हिं०)	३६७
तिलगगुल (क०)	६६५
तिलतैल (सं०)	३६७
तिलपर्णी(सं०)	७३२
तिलपुष्पी (सं०)	३५५
तिल या जिंजिली ऑयल (अं०)	३६७
तिल्ली (हिं०)	,,
तिल्वक (सं०)	६२८
तीखा (गु०)	५७९
तीखुर (हिं०;बं०)	३६८-३६९
तीतपाती (कु०)	३२
तीन (अ०)	७
,, बर्री (अ०)	८
तीनधारी निवडुंग (म०)	३७९
तीनपान की रुखड़ी (गु०)	३६६
तीनुल् अहमक़ (अ०)	२६९
तोमरू (प०)	३६९
तीवाज (अ०)	१८८
तीवाजे खताई (अ०)	१८९
,, हिंदी (अ०)	१८९

विषय एवं शब्द	पृष्ठांक
तीसी (हिं०)	४२
,, का तेल (हिं०)	,,
तुंग	६९२
तुंगला (हिं०; पं०)	६९१
तुंगा (गढ़; कुमा०; पं०)	६९१
तुंबड़ी, तुंबी (हिं०)	११४
तुंबरू (पं०)	३६९
तुंबा (म०)	२६९
तुक्मे(ख्मे)बलुंगा (बाजार; क०)	५२०
तुंबुल, तुमरू, तुम्ब्र(बु)रु हिं०)	३६९
तुखु (का०)	३७४
तुख्म अनार (फा०)	२८
,, इस्पंदान (फा०)	७२६
,, कद्दू (फा०)	११४
,, कद्दूए दराज़ (फा०)	,,
,, कद्दूए रूमी (फा०)	४५८
,, करफ़स (फा०)	१५
,, काकनजे हिंदो (फा०)	४६
,, काफ़शः (फा०)	१९७
,, काहू (फा०)	१७०
,, किर्मली (कल्मली)	७३२
,, क़ुर्तुम (फा०)	१९७-१९८
,, कौंच (फा०)	१०१
,, ख़र्पु(र्बु)ज़ः (फा०)	११४
,, ख़ियारैन (फा०)	१०२, १०३; २२३
,, ख़िलाले ख़लील (फा०)	५३
,, ख़ुर्फ़ा (फा०)	१९७
,, गंदना (फा०)	२३२
,, तरबूज़ (फा०)	३६०-३६१
,, त(तु)रहतेज़क (फा०)	७२६
,, तुर्शः या हुम्माज़ (फा०)	३०९
,, नीलूफ़र (फा०)	१२९
,, पंजंगुश्त (फा०)	६५०
तुख्म पलः (पलाश, ढाक) (फा०)	४३७
,; फ़िरंजमिश्क (फा०)	३७३,३७४
,, बंग (फा०)	१८
,, ,, सफ़ेद (फा०)	१८
तुख्म बथुआ (फा०)	४८८
,, बलसाँ (फा०)	५००
,, ब्रिरंजमोगरा (फा०)	२९७
,, बुत्म (फा०)	३०४
,, बेद अंजीर ख़ताई (फा०)	३२१
,; मर्व (फा०)	११८
,, मलंगा (पं०; हिं०)	५२०
,, रहल (फा०)	७२४
,, री(रे)हाँ (फा०)	३७३
,, शर्बती (फा०)	३७३
,, शहूह (फा०)	२२१
,, शिबित्त (फा०)	७०३
,, सनोबर (फा०)	३०२
,, सल्मः (फा०)	४८८
,, सिपंदान (फा०)	७२६
,, सुरवाली (फा०)	६८३
,, हारसिंगा(घा)र (फा०)	७२०
,, हिंदुवानः (फा०)	३६०, ३६१
तुख्मे इस्पानाख़ (फा०)	४४३
तुख्मे कर्तां (फा०)	४२
,, कबूक़ (फा०)	१६०
,, कसूस (कुशूथ) (फा०)	३०,३१
,, कासनी (फा०)	१६६
,, किन्नब (फा०)	५४८
,, ख़श्ख़ाश (कोकनार) (फा०)	४६०
,, ख़ित्मी (फा०)	२११
,, खियारे दराज़ (फा०)	१०२
,, ख़ियार्ज़ (फा०)	१०२
,, ख़ुर्फ़ः (फा०)	१९५
,, गजर (फा०)	२४१
,, गुल (फा०)	२६५
,, ज़ग़ीर (फा०)	४२
,, ज़र्दक (फा०)	२४१
,, तुरंज	५२३
,, तुर्ब (फा०)	५९०

विषय एवं शब्द पृष्ठांक

तुख्मे तोरक (फा०) १९५
,, दरख्तेशान: (फा०) ९५
,, नील (फा०) ४२६, १६०
,, पालक (फा०) ४४३
,, बंग (फा०) ५४८
,, बलसाँ (फा०) ४९९
,, बारतंग (फा०) ५१७
,, बालंगू (फा०; बम्ब०) ५२०
,, बेद अंजीर (फा०) ६०९
,, मारचोब: (फा०) ७२२
,; मूरद (फा०) ६३
,, लीमूँ (फा०) ४२२
,; शलगम (फा०) ६३७
,, सिरस (फा०) ६८२
,, सूद (फा०) ७०३
तुगाक्षीरी (सं०) ३६८
तुग्गुर ४७
तुणिज (सिंध) ५२२
तुण्डिका, तुण्डिकेरी, तुण्डी (सं०) ९७
तुदरिये लाल (फा०) ३७७
,, सफेद (फा०) ,,
,, सुर्ख़ (फा०) ;,
,, स्याह (फा०) ,,
तु(तो)दरी (फा०) ३७७
तुनतुना (बं०) ९०
तुफ़ाहुल् अर्ज़ (अ०) ६०
तुफ़्फ़ाह (अ०) ६९७
तुबाक (स्पेन) २४४
तुबुर्क: (फा०) १९५
तुम्बरू (सं०; हिं०) ३६९-३७०
तुम्ब(म्बु)रु (सं०) ३६९
तुरंज (फा०) ५२२
तुरंजबीन (अ०) २३६
तुराबुल् क़ै (अ०) ७१९,७२०
तुरियामाना (त्रायमाणा) २४२
तुरुष्क (सं०) ६४०

विषय एवं शब्द पृष्ठांक

तुर्बः (फा०) ५९०
तुर्बुद (अ०; फा०) ४२०
तुरई (मीठी व कड़ुई) ३७०-३७२
तुरमुस ३७२
तुरया (गु०) ३७०
तुरिकुर (ते०) ३२९
तुरीआं (गु०) ३७०
तुरुकबेनु (का०) ४७९
तुरुष्का (सं०) १८
तुरेल (क०) ३७०
तुर्शः (फा०) ३०९
तुलसी ३७२-३७४
तुवर (हिं०) ४०
तुवरक (सं०) २९७,२९८
तुवरक तैल (सं०) २९८
,, भेद (सं०) २९७
तुवरिका, तुवरी (सं०) ३६१
तुबरी (सं०) ४०
तुवेर (बम्ब०) ४०
तु(थु)स (रू०) ९९
तुहल(लु)ब (अ०) १५२,७००
तुह्लबुल् माऽ (अ०) १५२
तुह्लुब लीफ़ी (अ०) १५२
तुह्लबुस्सखर (अ०) ३१५
तूंबा (मा०) ६४
तूत (सं०;अ०;फा;०बं०;म०हिं०) ३७४,३७५
,, नब्ती (फा०) ३७४
,, शामी, तूतस्याह (फा०) ३७४
तूत सफ़ेद (शीरीं-मीठा) ३७४,३७५
तूत स्याह (तुर्श-खट्टा) ३७५
तूतमलंगा (हिं०) ५२०
तूद (सं०) ३७४
तूरीं (मा०) ३७०
तूल (क०) ३७४
तूस, तूसणबेल, तूसरगड (मा०) ६४
तृणकान्त, तृणमणि (सं०) १४८

विषय एवं शब्द	पृष्ठांक
तृणशून्य (सं०)	२०१
तेंतुल (बं०)	७०
तेंतोधुंदुल (बं०)	३७१
तेंद (खर०)	३७५
तेंदू औरमाकातेंदू	३७५,३७६
तेंदू(द), तेन (हिं०)	३७५
तेउडी(री)–(बं०)	४२०
तेकाँटासिज (बं०)	३७९
तेगड़ (ते०)	४२०
तेजपत्ता (हिं०)	३७६
तेजपात (हिं०)	३५८; ३७६–३७७
तेजफल (हिं०)	३६९
तेजबल (हिं०)	३६९
तेजस्विनी, तेजोवती (सं०)	३६९
तेजाब संदल ( )	२८५
तेतुल(ली) (बं०)	७०
तेलपत्र (सं०)	६००
तेला(ल)कुचा (बं०)	९७
तेल्लदामरू (ते०)	६४८
तैलपत्र (सं०)	२३३
तोंडले (म०)	९७
तोकमलंगा (हिं०)	५२०
तोट्टच्युरंगी (ता०)	३१७
तोड्डा लकड़ी (ता०)	३१७
तोतरा (गढ़०)	३८५
तोदरी(दुदरी), जर्द, सफेद व सुर्ख़	३७७-३७८
तोदरी (फा०)	३७७
,, काली	३७७
,, लाल (फा०;हिं०)	३७७
,, सफेद	३७७
,, सुर्ख़	३७७
,, स्याह	३७७
तोपचिनी (बं०)	३१२
तोमेर (इब्रानी)	२०९
तोरक (फा०)	१९५
तोरी (पं०)	३७०

विषय एवं शब्द	पृष्ठांक
तोरुं (मा०)	३७०
त्रपुस, त्रपुसी (सं०)	२२३
त्रामान(ण)–(क०)	२४२
त्रायमाण (सं०)	३४०
त्रायमाणा (सं०)	२४२
त्रिकण्टक (सं०)	२७४
त्रिधारा शूहर (हिं०)	३७९
त्रिपुट(–टी)–(सं०)	२२९
त्रिपुटा (सं०)	४२०
त्रिवृत्(ता)–(सं०)	४२०
त्रिशिरामनसा (बं०)	३७२
त्रुटि (सं०)	७२
त्वक्, त्वचा (सं०)	३५८;३८८
त्वक्क्षीर (सं०)	५०५
त्वक्क्षीरी (सं०)	३६८

थ

विषय एवं शब्द	पृष्ठांक
थकार	३७८
थरमोस (यू०)	३७२
थाइम (अं०)	७२७
थाइम कैम्फर (अं०)	७२७
थाइमस वुल्गारिस (लें०)	७२७
थाइमोल (अं०)	१७;७२७
थाउजण्ड लीफ (अं०)	४९६
थानकुनी (बं०)	५४५
थायमस (यू०)	१७
थायमोल (अं०)	३७४
थारोवर्ट (अं०)	५८
थार्न-एपल (अं०)	३९६
थालीक्ट्रुम फोलिओलोसुम् (लें०)	४४५
थियामीन (अं०)	१५७
थियोफिलीन (अं०)	२९५
थीआ सीनेन्सिस (लें०)	२९५
थीईन (अं०)	२९५
थीमुस् सेर्पील्लुम् (लें०)	७२७
थुनेर (गढ़०;कुमा०;पहाड़ी)	३६४

विषय एवं शब्द — पृष्ठांक

थु(थू)मोस (यू०) ७२७
थुल्कुडी (हिं०) ५४५
थुस (रू०) ९९
थूनो (बं०) ३६४
थूम (पं०;सिं०) ६१९
थूहर(ड़) (हिं०) ३७९-३८०
थेईन १५१
थेरिआक (अं०) ४६०
थेवेटिआ नेरिफोलिआ (ले०) ११६
थेवेटिआ पेरूविआना (ले०) ११६
थोर (गु०;पं०;मा०) ३७९
थोरकंटालो (गु०) ३७९
थैकल (बं०) ३६
थ्रीडाकिनी (यू०) १६९
थ्रीडास (यू०) १६९
थ्रीडास अगरिया (यू०) ७७
थ्री-लीह्वड केपर (अं०) ४९७

द

दंद (फा०) ३२१
दंदचीनी (फा०) ३२१
दंदना (हिं०) २३२
दंदानः (फा०) ५३२
दंदुस्सीनी (अ०) ३२१
दगड़फूल (म०) ३२५
दख़्ल (अ०) ४३०
दड़घल (मा०) २६९
दच्छ (क०) १
दण्डकलस (बं०) २६९
ददह्तर (कु०) ६५४
दद्रुघ्न (सं०) ४२८
दधिकरफल (सं०-नवीन) ४६
दधित्थ (सं०) २०३
दन्तशठ (सं०) ३२१
दन्ती (सं०) ३२२
दन्द सीनी (अ०) ३२१

विषय एवं शब्द — पृष्ठांक

दन्द हिन्दी (अ०) ३२२
दफ्नी (यू०) २४५
दम्अतुल् उश्शाक़ (अ०) १६०
दमजरी (हिं०) ४१८
दमन(क) (सं०) ३९४
दम्मुत्तिन्नीन (अ०) ३८०
दम्मुल अख़्वैन (अ०) ३८०-३८१
,, के भेद ३८०
दम्मुल्अख़्वैन हिन्दी (अ०) ५२१
दम्मुश्शोअवान (अ०) ३८०
दयार (कु०) ३९४
दरख़्त कात (फा०) २२९
दरख़्त खुरप्ज़ा (फा०) ३८
दरख़्त खुरपूज़ा-ख़र्बुजः (फा०) ३७
दरख़्त बादामे शीरीं (फा०) ५०९
,, बुलूतुल् अफ़्स (फा०) ५७४
,, मिस्वाक (फा०) ४५०
दरख़्त हब्बुल् मनसिम् (फा०) ५६४
,, शोरा (फा०) ४५०
दरख़्ते कुनार (फा०) ५३८
,, क़ुर्तुम (फा०) १९७
,, बर्री (फा०) ,,
,, ख़ुर्मा (फा०) २०९
,, ज़करिया ६८२
,, ज़हरनाक (फा०) ४८
,, जावशीर (अ०) ३३४
,, ताड़ी (फा०) ३६२
,, नार (फा०) २५
,, नारगीला (फ़ा०) ४१४
,, पंबः (फा०) ११८
,, पलः (फा०) ४३७
,, पिस्तः (फा०) ४४६
,, बादाम तल्ख़ (फा०) ५७८
,, बुन (फा०) ५३२
,, मरियम (फा०) ३३
,, मूरद (फा०) ६३

विषय एवं शब्द	पृष्ठांक
,, रीशः (फा०)	४९५
,, लरज़ाँ (फा०)	४४८
,, वसक (फा०)	३०३
,, शानः (फा०)	९५
,, सिन्न (फा०)	२७९
,, हब्बुल आस (फा०)	६३
,, ,, मन्सिम् (फा०)	५६४
दरदाब (अ०)	१०६
दरियाई नारियल (हिं०)	४१६
दरिया का नारियल (हिं०, द०)	४१६
दरिया की पाची (द०)	१५२
दरीदए कासनी	१६६, १६६ पा० टि० २
दरूनज अकरबी	३८१–३८२
दरूनजे अकरबी (अ०)	३८१
दर्याचा नारल (म०)	४१६
दर्यानु नालीएर (नारियल) (गु०)	४१६
दर्वीपत्रा (ले०)	२४८
दलीक (अ०)	२६५
दवणा (म०)	३९४
दवना (हिं०)	३९४
दवाउल् हय्यः (अ०)	३४०
दवाउज्जुनून (अ०)	३८२
दवाए जुनून (धवलबरुआ)	३८२–३८४
दवाए जुनून (फा०)	३८२
दशमूल (सं०)	३१७
दस्तम्बू (ईरानी)	६३५
दस्तम्बूया (फा०)	१०६
दस्तानए रोबाह (फा०)	३५५
दॉलिद्धर (क०)	३८५
दाऊदखानी	२९७
दाख (हिं०; पं०; मा०)	१, २
दाघराख (गु०)	१
दाङ्गुतगचे (का०)	१४७
दाड़म-नु-झाड़ (गु०)	२५
दाड़मी (हिं०)	२८

विषय एवं शब्द	पृष्ठांक
दाडिम, दाडिम्ब (सं०)	२५
,, गाछ (बं०)	२५
दाड़िम पुष्प (सं०)	२८
दाडिमफल (सं०)	२५
दाडिम फलत्वक् (सं०)	२७
दाडिम बीज (बं०)	२८
दाडिम मूलत्वक् (सं०)	२७
दाढी (हिं०)	५५७
दातूरः (अ०)	३९६
दातूरए अर्ग़वानी (किर्मिजगुल) (अ०;फा०)	३९७
,, कबूद (अ०)	,,
,, सुर्ख़ गुल	,,
,, स्याह	,,
दातूरहे फिरंगी (अ०; फा०)	३९६
,, सफेद गुल (अ०; फा०)	,,
दानक	३८४
दाब, दुल्ब, दुल्लब (अ०)	२९१
दामीसा का गोंद	३८५
दारचीनी (फा०)	३८८
दारचोबा (फा०)	४७,३८५
दारज़र्द (फा०)	७२०
दारफ़िल्फ़िल् (अ०)	४४८;५७९
दारशीश्आ(शा)न (फा०)	१५८
दारसीनी (अ०)	३८८
दारहलद (बम्ब०)	३८५
दारहल्द (अ०; फा०)	३८५
दारहल्दी (पं०)	३८५
दारु (हिं०; गु०; द०)	२३८
दारुचीनी (पं०)	३८८
दारुडी (गु०)	६५४
दारुहरिद्रा (सं०; बं०)	३८५
दारुहलद (म०)	,,
दारुहलदर (गु०)	,,
दारुहलदी	३८६
दारु(रू)हलदी (हिं०)	३८५–३८७
,, विदेशीय	३८५

विषय एवं शब्द पृष्ठांक
दारुहल्दी (हिं०) १४२
दारुहल्दीकी जड़ (हिं०) ३८५
दारू (गु०) २३८
दार्वी (सं०) ३८५
दार्वीमूल (सं०) ,,
दालचीनी (हिं०; म०) ३८८–३९०
,, चीनी ,, ३८८
,, पत्री ,,
,, सिंहली या सिलोनी ,,
दालचीनीका तेल (हिं०) ३८८
,, ,, फूल (हिं०) ६३०
दासनमु (तें०) २५५
दासवाल (का०) ,,
दि(दु)ख़्न (अ०) ९४
दिफ़्ला (अ०) ११६
दिब्क़ (अ०) १७४;६१६
दियार (पं०) ३९४
दिरमना ख़ुरासानी (फा०) ३९०
दिरमना तुर्की (फा०) ३९०–३९१
दिरीसनमु (तें०) ६८२
दिर्मनः (फा०) १७२,१७३
दिर्म(मि)नः तुर्की (अ०) १७३
दिलमी (हिं०) ५६३
दी एडिबल केपर (अं०) १२५
दी एब्सिन्थ (अं०) ३२
दी ओलियो-रेजिन ऑफ पाइन (अं०) ३०३
दी कॉमन इंडियन पर्सलेन (अं०) १९५
दी कॉमन मैलो (अं०) २२५
दी कॉस्टस (अं०) १८३
दी कुडुपा आमंड (अं०) ३०१
दी कैरोब-ट्री (अं०) २१५
दी गार्डेन एण्डह्व (अं०) १६५
दी ग्रेटर कार्डमम् (अं०) ७३
दी ग्वावा (अं०) ३४
दी चीर-पाइन (अं०) ३०३
दीजताल ३५५–३५७

विषय एवं शब्द पृष्ठांक
दी टॉल पिरामिडल साइप्रेस (अं०) ६६६
दी टूथ-ब्रशट्री (अं०) ४५०
दीनार (सुर०) ३०
दी पीपल-ट्री (अं०) ४४८
दी बॉक्स मिर्टिल (अं०) १५८
दी बिटर या बाट्लगोर्ड (अं०) ११४
दी बोखारा प्लम् (अं०) ६२
दी रोमन नेट्ल (अं०) ८
दीर्घपत्रा (सं०) २७६
दी लेसर गैलंगल (अं०) १९२
दी लेसर या मलाबार कार्डेमोमम् (अं०) ७२
दी लोध (अं०) ६२८
दीवदार (क०) ३९४
दी वाइल्ड लेटिस (अं०) १६९
दीवारी मूली (द०) १७८
दीवास (गु०) ६०९
दी स्वीट ऑरेन्ज (अं०) ९८
दुआँ (कुमा०; पश्चिम) ३६१
दुकू, दूकू ३९२-३९३
,, ३६१
दुग्धफेनी (सं०) १६७
दु(दि)ख़्न (अ०) ३१२
दुख़्नए मर्यम् (अ०) ४८१
दुद्धी (छोटी व बड़ी) ३९१–३९२
दुधबच (हिं०) ४८४
दुधल (हिं०; पं०) १६७
दुधाली (हिं०; पं०) ६३५
दुधलो (काठियावाड़) १८८
दुधिया (मुंगेर) ,,
दुधिया कलमी (हिं०; बं०) ६१९
दुधिया घास (हिं०) ३९१
दुधिया बच (हिं०) ४८४
दुधिलो (कुमा०) १६३
दुपटी (बं०) २६०
दुपहरिया (हिं०) २५९
बड़ो (पं०) ३९३

विषय एवं शब्द पृष्ठांक
दुबलक, दुबाला (फा०) ३१५
दुबो (कु०) ३९३
दुमकी मिर्ची (द०) १२६
दुमदार मिर्च (द०) १२६,१२७
दुरालभा (सं०; बं०) ४००
दुर्गन्धखैर (हिं०) २३१
दुल्ला (हिं०) ५५२
दुस्तो (गु०) ४३२
दुह्न बज्र्‌ुल् महदब: (अ०) ४५८
दुह्न हब्बुल् खिर्वअ (अ०) ६०९
दुह्नुल्क़न्दूल (अ०) १५९
दुह्नुल् क़ित्र: (अ०) ३०३
,, ख़स्स (अ०) १७१
दुह्नुल् ख़िर्वअ (अ०) ६०९
दुह्नुल् सनोबर (अ०) ६६०
दुह्नुल् हल (अ०) ३६७
दुह्नुस्संदल (अ०) २८४
दुह्नुस्सिमसिम (अ०) ३६७
दु:स्पर्शा (सं०) ५६०
दूक़ू (अ०) २४१
दूकू (हिं०; बम्ब०) ३९२,३९३
दूदल(ली) (पं०) १६७
दूधकोरैया (मुंगेर) १८८
दूध बत्थल (पं०) १६७
दूधल (पं०) २७९
दूधी (खर०; मीरजापुर) १८८
दूधीकलाँ (फा०) ३९१
दूधी खुर्द (फा०) ३९१
दून (गु०) ४३२
दूब (हिं०; पं०) ३९३-३९४
दूम, दौम (अं०) २५२
दूमतुलि (का०) ७१०
देवकली (–केलि) (म०) ५४२
दूर्वा (सं०; म०) ३९३
दूर्वाघास (बं०) ,,
दूसीफरूस (सुर०; श्याम) ५४८

विषय एवं शब्द पृष्ठांक
दृडबीजा (सं०) २५१
देवकली (म०) ५४२
देवकाञ्चनमु(ते०) १०५
देवकाँडर (हिं) ६१५
देवकुम्भा (म०) २६९
देवकुसुम (सं०) ६३२
देवकेलि (म०) ५४२
देवडं(डां)गरी (म०) ४७८
देवताड़ (बं०) ४७८
देवदार ६०३
देवदार (हिं०; फा०; बं०; म०; पं०; गु०; ता०; ते०) ३९४-३९५
देवदार (म०; गु०) ३०३
देवदार (हिं०; अ०; फा०) ६६०
देवदारकी लकड़ी (हिं०) ३९४
देवदारु (सं०; बं०) ,,
देवदारु तैल (सं०) ,,
देवदाली (सं०; म०) ४७८
देवधूप (सं०) ६२९
देवमंजनी (हिं०) ४१८
देवमंजरी (चित्रकूट) ४१८
देवमुशंग (फा०) १४२
देवसिंदूर (माल; पं०) १३३
देशी असगंध (हिं०) ४६
,, कतीरा (हिं०) ११३
,, काकनज (हिं०) १५५,१५६
,, कुन्दुरु (हिं०) ६६७
,, कुम्ड़ा (बं०) ४५८
देशी गाफिस २४२; ३२८; ३४०
,, जवाखार ३५०
देशी वा भारतीय सालसा (हिं०) ८३
देशी शाहतरा (हिं०) ६३९
,, सुंबुल (हिं०) ५१९
देशी हीरादोखी (खूनखराबा) (हिं०) ५२१
दोख, लोख (फा०) ४३०
दोड़के (म०) ३७०

विषय एवं शब्द पृष्ठांक
दोडिंगा (गु०) ३१९
दोधक (पं०) ३९१
दोरस (ईरान;फा०) ६४५
दोरस तफ़्ती (फा०) ,,
दोहनुन्नारजील (अ०) ४१४
दोहनुल् उत्रज (फा०) ५२३
दोहनुल् कत्तान (अ०) ४२
दोहनुल् गर्जन (अ०) २४०
दोहनुल् ज़ौज़े हिन्दी (अ०) ४१४, ४१५
दोहनुल् बलसाँ (अ०) ४९९
दोहनुल्लौज़ (अ०) ५१०
दोहनुश्शिबित्त (अ०) ७०३
दौना (द०) २०४
दौना (हिं०; बं०; बम्ब०) ३२; ३९५-३९६
द्राक्ष (म०) १
द्राक्षशर्करा ३७६, ५०९, ६०७
द्राक्षा (सं०) १
द्राविडी (सं०) ७२
द्रूह (सिंध) ६४
द्रेंक (क०) ४७९
द्रेक (पं०) ,,
द्रेक(क्का) (सं०) ४७९
द्रोणपुष्पी (सं०) २६९
द्विजशसः (सं०) ७०५
द्वीपान्तरवचा (सं०) ३१२, ३१३
द्वीप्या (सं०) २०९

ध

धमाह, धमाहा (-या) (पं०) ४००
धणीया (मा०) ३९९
धणे (म०) ,,
धतुरो (गु०) ३९६
धतूर(रा) (हिं०) ३९६
,, काला (नीलवर्ण) ,,
,, सफ़ेद ,,
धतूरा, कृष्ण ३९६-३९८

विषय एवं शब्द पृष्ठांक
धतूरा राज ,,
,, श्वेत ,,
धतूराके विशेष भेद ३९६
धतूरोन १९,२०
धतूरेके विषलक्षण और उसकी चिकित्सा ३९८
धत्तूर, धुस्तुर (सं०) ३९६
धत्त(त्तु)रो (गु०; मार०) ३९६
धनमरवा (हिं०; भा० बा०) ३८२
धनियाँ (हिं०) ३९९-४००
,, उद्यानज ३९९
,, वन्य ,,
धनियाँ (हिं०; पं०; द०) ३९९,४००
,, खुश्क (फा०) ४००
,, पत्र (हिं०) ३९९-४००
,, बीज या फल ४००
,, सब्ज ३९९-४००
धनिया(आ) (हिं०) ३९९
धनिया (पं०; द०) ,,
धनियालु ,,
धने (बं०) ३९९
धन्वयास (सं०) ४००
धमगजरा (हिं०) ६३८
धमनी (जम्मू) ४९८
धमासा (धमाहा) (हिं०;म०) ३३५;४००-४०२
धमासो (गु०; मा०) ४००
धम्या (पं०) ,,
धरोखड़ (गु०) ३९३
धव(धौ) (हिं०) ४०३
धव (सं०; मल०) ,,
धवनिर्यास (सं०) ,,
धवई (हिं०) ४०३
,, के फूल (हिं०) ,,
धवकड़ो (मार०) ,,
धवलकुड़ा (गु०) १८८
धवलब(म)रुआ (हिं०; भा०; बा०) ७७;३८२
धांणा (मा०) ३९९

विषय एवं शब्द पृष्ठांक

धाई (का०) ४०३
धाईफुल (बं०) ,,
धाओया (बं०) ,,
धाणा (गु०) ३९९
धातकी (सं०; हिं०) ४०३
धात्री (सं०) ५६
धानिवल (क०) ३९९
धान्यक (सं०) ,,
धान्यकुस्तुम्बरु (सं०) ,,
धान्यरुक् (सं०) ४१
धामार्गव (सं०) ३७०
धाय(ई)के फूल (हिं०) ४०३
धायटी, धावस (म०) ,,
धायफूल (खर०) ,,
धाराकोषातकी (सं०) ३७०
धाराफल (सं०) १२८
धारू (हिं०) ९०
धाव (हिं०) ४०३
धावड़ा (म०) ,,
धावड़ी (णी) (मा०; गु०) ४०३
धावड़ो (गु०) ,,
धावा (धव) ४०३-४०४
,, का गोंद ४०४
धावागोंद (हिं०) ४०३
धावी (पं०) ,,
धिरो (गु०) ३९३
धुंदुल (बं०) ३७०
धुंदुला (सं०) ३७०
धुना (बं०) ६०४
धुपरिया सन (हिं०) ६५८
धुप सलसी (नेपा०) ३०३
धुरन्धरी (सं०) ४०३
धूतूरा (बं०) ३९६
धूप (हिं०) ९९
धूपडो (गु०) ६६७
धूरप़ालई (म०) ६६७

विषय एवं शब्द पृष्ठांक

धोबीज नट (अं०) ५५३
धूम (नेपा०) ३०३
धूम्रपत्रा (सं०) १७७, ३२६
धूर्त (सं०) ३९६
धेनेल (पं०) ३९९
धोतुं जीरुं (गु०) ३४१
धोत्रा, धोतरा (म०) ३९६
धोली ध्रो (गु०) ३९३
धोली मुसली (गु०) ५८८
धौंकरा (हिं०) ४०३
धौंरा (खर०) ४०३
धौ(धौं)रा (हिं०) ४०३
धौरहुली (अ०) १२८
ध्रामाऊ (कच्छ) ४००
धरेक (बं०) ४०९
ध्रेरक (पं०) ४७९
ध्रो (गु०) ३९३

न

नअ्न(ना)अ,ना' नाअ (अ०) ४१०
नइर (गढ़) १६४
नकछिकनीं (हिं०) ४०४-४०५
न(ना)कपतर (हिं०) ४२०
नकली सालम मिश्री (हिं०) ६७६
नक्सवॉमिका (अं०) १७९,१८०
नखील, नख्ल (अ०) २०९
नखुद (फा०) २९०
नगद (गु०) ३५०
नगदीबूटी (मार०; राज०) ४१८
नगोड़ (गु०) ६५०
नटकनेर (बं०) ६०६
नटग्रास (अं०) ५९८
नटमेग (अं०) ३३७
नतरून (मिश्र) ८५
नतवक्रं (सं०) ३५७
नदियुस्समाऽ (अ०) ६४२

विषय एवं शब्द	पृष्ठांक
नन्हापूसी-तोआर (संथा०)	३९१
नवक़, नबिक़ (अ०)	५३८
नबात, नबात सफेद (फा०)	२३६
नबात सज्जी	,,
नबात सम्मुस्समक़ (अ०)	५७८
नबातुन्नार (अ०)	८
नबातुर्रा'द (अ०)	२२६
नबातुल्क़ुत्न (अ०)	११८
नबातुल् ख़श्ख़ाश (अ०)	४६०
नबातुस्सावूनियः (अ०)	६७३
नबातुस्सिब्र (अ०)	२७९
नबीज़ (अ०)	२३८
नमक चिरचिटा (उ०; हिं०)	२९९
नमके जौ (फा०)	३५०
नमला (अ०)	४३
नमस्करी (सं०)	३१७
नम्माम (अ०)	७२७
नरकचूर (हिं०; पं०; गु०; बम्ब०)	४०५–४०६
नरकचोरा (बम्ब०)	४०५
नरगिस	४०६–४०७
नरियल(र) (हिं०)	४१४
नरेल (पं०)	४१४
नर्गिस (हिं०; पं०; फा०)	४०६
नर्जिस (अ०)	,,
नलद (सं०)	५१८
नल्लजान (ते०)	४७२
नल्लतुम्म (ते०)	४९३
नवरंगी (हिं०)	४१३
नवारिस (फा०)	११२
नशाऽ, नशास्तज (अ०)	२७२
नशिक (फा०)	५७०
न(ना) सपाल (हिं०)	२७
न(नि)सरीन (फा०)	२६३
नसोत्तर (गु०)	४२०
नस्तर(न) (फा०)	२६३
नहरी या जलज पुदीना	४५२

विषय एवं शब्द	पृष्ठांक
नाइट जैस्मीन (अं०)	७१८
नाइट ब्लूमिंग सेरियस (अं०)	४०८
नाई, नाय, नै (हिं०)	४१२
नाऽनाऽ (अ०)	४१०, ४५२
नाक (उ० प्र०; अफ०)	४१७
नाक, नास (का०, पं०)	,,
नाक छींकणी (गु०)	४०४
नाकपतर (हिं०)	४२०
नाकशिकणी (म०)	४०४
नाकुली (सं०)	७७
नाख़ूनः (फा०)	६७
नाखूना (हिं०)	६७, ६८
नागकेश(स)र (सं०; म०)	४०७
नागकेसर	४०७–४०८
,, लाल	४०८
नागकेशरम् (ते०)	४०७
नागचम्पकमु (ते०)	,,
नागचांफा (म०)	४०७
नागजिह्वा (सं०)	४१२
नागदली (ता०; ते०)	४०९
नागदौन (हिं०)	७२२
नागपुष्प (सं०)	४०७
नागफण (सं०; बं०; म०)	४०९
नागफनसी (द०)	,,
नागफनी (१)	४०८
नागफनी (२)	४०९
नागफनी (हिं०; पं०)	४०९
नागफनी थूहर (मार०; व्रजभाषा)	३७९; ४०९
नागमुल्ल (मल०)	४०९
नागरंग, नारंग (सं०)	४१३
नागर (सं०)	७०१
नागरङ्ग (सं०)	६४८
नागरमुस्तक (सं०)	५९८
नागरमोथा (हिं०)	५९८
नागरवेल (मार०), नागवेल (म०)	४४१
नागरवेलनां पान (गु०)	,,

विषय एवं शब्द	पृष्ठांक
नागला दुधेली (गु०)	३९१
नागबल्ली (सं०)	४४१
नागसंपिगे (का०)	४०७
नागार्जुनी (सं०)	३९१,३९२
नागोकपूर (हिं०)	१७९
नागेश्वर (बं०)	४०७
नागेसर (हिं०)	,,
नागोरी गोंद	४०४
नाजवो (का०)	३७३
नाटाकरञ्ज (बं०)	१३५
नाड़ी, नाली (पं०; हिं०)	१३८
नाड़ी साक (मम्ब०; म०)	१३८
न.नस (अम०)	२४
नानीदुधेली (गु०)	३९१
नाना (हिं०)	४१०, ४१२
नाना बर्री या बुस्तानी	४१०
नानी (झीणी) लुणी (गु०)	१९५
नानेकुलाए (फा०)	२२५
नान्ख्वाह (फा०)	१६
नाय	४१२
नायटी (म०)	३९१
नारंग (फा०)	४१३; ६४८
नारंगी (हिं०; गु०)	४१३
(बं०; बम्ब०)	९८
,, (द०; गु०)	६४८
नारंज (अ०)	९८, ४१३–४१४
,, (अ०)	६४८
नार (फा०)	२५
नारकेल (बं०)	४१४
नारकेल गाछ (बं०)	,,
नारगील (फा०)	४१४
नारगीले दरियाई या बहरी (फा०)	४१६
नारङ्ग (सं०)	६४८
नारजील (अ०)	४१४
नारजीले बहरी (अ०)	४१६
नारडीन (यू०)	४१६
नारदीन (हिं०)	४१६
नारदीन (अ०)	५१९
नारदीन बर्री (फा०)	४६
नारदीने हिंदी, (फा०)	५१८
नारदे हिंदी (फा०)	५१८
नारल (म०)	४१४
नारलचा झाड़ (म०)	,,
नारलाचें तेल (म०)	,,
नारिंग (म०)	४१३;६४८
नारिंगी (हिं०)	४१३
नारिअ(य)ल (गु०)	४१४
नारिकेल तैल (सं०)	४१५
नारिकेल(र)फल (सं०)	४१४
नारिकेल वृक्ष (सं०)	४१४
नारियल	४१४–४१५
नारियल(र) (हिं०)	४१४
,, का तेल (हिं०)	,,
,, का पेड़ (हिं०)	,,
नारियल दरियाई	४१६
नारी (गु०)	७२८
नारुंगि, नारेंगा (बं०)	६४८
नोरंग (बं०)	४१३
नोरंग (बं०)	४१४
नारेदीन (नारदीन)	४१६-४१७
नारेदीन इक्लीती (अ०)	४१६
नार्कोटीन (अ०)	४६२
नार्डोस्टाकीस जटामांसी (ले०)	५१८
नार्सीस्सुस टाज़ेट्टा (ले०)	४०६
नारेमुश्क (फा०)	४०७
नालिका (सं०)	१३८
नालिकेर (सं०)	४१४
नालीएर (गु०)	,,
नालीची–भाजी (बम्ब०;म०)	१३८
नालुश्रा (बं०)	३५८
नालुका	५९५
नाशपाती (हिं०)	४१७–४१८

विषय एवं शब्द	पृष्ठांक
नाशपाती (पं०)	४१७
नाशपाती खट्टी या चीनी	,,
,, जंगली	,,
,, पहाड़ी	,,
,, बागी	,,
नासपाती(उ०प्र०; (हिं०)	,,
निंढोत्रिकुंड (सिंध)	२७४
निंब (पं०)	४२३
निकोचक (सं०)	३०२;४४६
निकोटिआनीन	३५९
निकोटिनिक एसिड (अं०)	५९०
निकोटीन	३५९
निगंदबाबरी (हिं०)	४१८
निगाचूनी (हिं०)	३९१
निगुण्डी (उड़ि०)	६५०
निग्रोकाफी (अं०)	१४७
नितरून (यू०)	८५
निनिगड़ (म०)	६५०
नि(वि)दुल (सं०)	६६१
निन्द्रताछ (क०)	२९३
निप्पीड़ (का०)	१३७
निबौली	४२५
निमु (बं०)	४२३
निम्फेआ (यू०)	१२९
निम्बू(क) (सं०)	४२२
निम्ब (सं०)	४२३
निम्म (ते०)	४२२
नियाजबो (पं०)	३७३
नियासिन (अं०)	१५७
निरोली तैल (हिं०)	५८७
निर्गुंडी (म०)	६५०
निर्गुण्डी (सं०)	६५०
निर्मली (हिं०;बं०;पं०;बम्ब०)	४१८–४१९
निर्विषा(षो) (सं०; हिं०)	३१९
निलोफर (क०)	१२९
निलोबिख(नैपा०)	३१९
निवडुंग (म०)	३७९
निशा (स०)	७२०
निशात अफ़ज़ाऽ (अ०)	५४८
निशास्ता (फा०;उर्दू;हिं०)	२७२
निशिन्दा (बं०)	६५०
निशोत्तर (म०)	४२०
निशोथ (हिं०)	४१८
निष्पाव (सं०)	६९८
निसो(शो)त (हिं०)	४२०
निसोथ (हिं०)	४२०-४२१
नींबू, नंबू (हिं०)	४२२
नीक्टान्थीज आरबोरट्रिस्टिस् (ले०)	७१८
नीकोटिआना टाबाकुम् (ले०)	३५९
नी० रुस्टिका (ले०)	३५९
नीगेला सीड्स (अं०)	१४३
नीजे(गे)ल्ला साटोवा (ले०)	१४३
नीब (हिं०)	४२३
नीबू (हिं०)	४२२–४२३
नीबूका छिलका (हिं०)	४२२
नीबूका रस (हिं०)	,,
नीबूके भेद	,,
नीम (हिं०)	४२३–४२६
,, का गोंद	४२५
,, का तेल	४२४,४२५
,, का मद (ताड़ी)	४२४-४२५
नीम या मार्गोसा ट्री (अं०)	४२४
नीम्फीआ प्यूबीसेन्स (ले०)	१३०
नीम्फीआ रूब्रा (ले०)	१३०
नीम्फीआ लोटुस (ले०)	१२९
नीर (सिंध)	४२६
नीरिउम् ईंडिकुम् (ले०)	११६
नी० ओडोरुम् (ले०)	,,
नीरुब्राह्मी (ता०;मल०)	३३०
नील (फा०;बं०;म०)	४२६
नीलकण्ठ (क०)	२४२
नीलकण्ठ (बं०)	४०५

विषय एवं शब्द पृष्ठांक

नीलकंठी (पं०) ४२७
नीलगिरी (हिं०) ६००
नीलज (अ०) ४२६
नील व बननील ४२६–४२७
नीलदूर्वा (सं०) ३९३
नीलपत्र (सं०) ४३२
नीलसहराई (फा०) ४९०
नीलिनी, नीली (सं०) ४२६
नीलूफ़र (फा०) १२९–१३०
नीलू(लो)फ़र (फा०) १२९; १३०
नीलोत्पल (सं०) १३०
नुक़्लेख़्वाजा (फा०) ३०१
नुख़ाला (अ०) २७२
नुग (सिंध) ४९५
नुग्गे (कना०) ६६९
नूनर (क०) १९५
नेओजा-पाइन (अं०) ३०२
नेकेड-लेडीज (अं०) ६९२
नेजा, नेवज़ा, नौज़ा, न्यौज़ी (पहाड़ी) ३०२
नेत्रमल (पं०) ५७८
नेधंजा (सिंध) ४७८
नेनुआँ (हि०) ३७०
नेपाल धनिया (म०) ३६९
नेपाल बारबेरी (अं०) ३८५
नेपाली धनियाँ (हिं०) ३६९
नेपाली धने (बं०) ३६९
नेपी(पु) (यू०) ६६५
नेपालो (गु०) ३२१
नेपेटा एलीप्टिका (ले०) ५२०
ने० रूडेरालिस (ले०) ५२८
नेपेटा सिलिआरिस (ले०) ३४३
नेपेटा हिन्डोस्टाना (ले०) ५२८
नेप्टूनिआ ओलेरासेआ (ले०)
नेर (पं०) १६४
नेरुई (हिं०) ४३२
नेरोली ४१३

विषय एवं शब्द पृष्ठांक

नेलइनल (का०) ४००
नेलुम्बो नूसीफ़ेरा (ले०)
नेल्लगुम्मुडु (ते०) ५२४
नेवती (म०) १३७
नेहर (कु०) १६४
नै (फा०) ५०५
(हिं०) दे० 'नाय'
नैनिहावंदी (फा०) १५९;३००
नैशकर (फा०) २३४
नैशूक़ (फा०) ६०
नोक्कोट्टु (ता०) ६२३
नोजब्लीड (अं०) ४९६
नोना (बि०) १९५
नोनियासाग (हिं०) ,,
नोनी (बि०) ,,
नोर्वाल (मल०) ४९७
नोजी, नौजी (हिं०) ६२२
नौ(नो)रं(रुं)गी (हिं०) ४१३;६४८
न्यग्रोध (सं०) ४९५
न्हाजबो (हिं०) ३७२
न्हाना(नाना) गोखरू (गु०) २७४

प

पंकचर्ड पैसपेलम् (अं०) २०८
पंखराज (बं०) ६६३
पं(प)चपात्त (बं०) ४३०
पंचपानड़ी (हिं०) ,,
पंजंकुश्त (फा०) ४८१; ६५०
पंजएमर्यम (फा०) ४८१
पंजशकरदान (फा०) १८८
पंजासालब (उ०;हिं०) ६७६
पंडोलुं (गु०) २८८
पंदक़ (फा०) ४७५
पंब: (फा०) ११९
पंब: दान: (फा०) ,,
पँवाड़ (हिं०) ४२८–४२९

विषय एवं शब्द   पृष्ठांक
पइन (मल०) ६४८
पखानभे(बे)द ४२९-४३०
पचपान (बम्ब०) ४३०
पचलै (ता०) ३७
पचोली (हिं०) ४३०
पचौली (हिं०) ४३०
पचौली (अं०) ,,
पटकचूरा (गु०) ४०५
पटतिर (सिं०) ९५
पटवा, पटुवा(आ), पटसन (हिं०) ७१४
पटुआ के बीज (हिं०) ,,
पटेर, पटेरा (हिं०) ४३०-४३१
पटेर ४३२
पटेरक (सं०) ४३०
पटेरी, पटेला (हिं०) ४३०
पटोल, परवल, पाडर (गु०) ४३६
पटोल (सं०; बं०) ,,
पटोलम् (मल०) ,,
पट्टशण (सं०) ७१४
पठाणीलोधर (गु०) ६२८
पठानीलोध (पं०) ६२८
पड(-र)वल (म०) ४३६
पडवल, पडोल (म०) २८८
पड़वास (म०; गु०) ३५३
पडीयो (गु०) ६०८
पतंग (हिं०; म०; गु०; द०) ४३२-४३३
,, भेद धुनसरी, लंका, सिंगापुरी ४३३
पतकारू कोलुँ (गु०) २०५
पतकुँवार (कु०) २७९
पताल कोंहड़ा (कोहला) (खर०;हिं०) ५२४
पतीस (क०; पं०) २३
पत्तंगम् (मल०) ४३२
पत्तीनींबू (हिं०) ४२२
पत्र(क)म् (सं०) ३७६
पत्रीकपूर १७९
पत्रीस (क०) २३

विषय एवं शब्द   पृष्ठांक
पत्थर का फूल (हिं०) ३१५
पत्थरफोड़ी (हिं०) ४३४-४३५
पथरचट (हिं०) ४३३
पथरचूर (हिं०) ४३३-४३४
पथरफोड़ी (हिं०) ४३४
पथरी (हिं०) ५२९
पथुर (क०) ७२४
पदभेरा (हिं०) २२६
पद्म (सं०; बं०) १२९
पद्मपत्र (सं०) ४५५
पद्मारिकांगुललुन (क०) ३०३
पनडी (हिं०) ४४१
पनस (सं०) १०७
पनामा बार्क (अं०) ६७४
पनिसिगा (हिं०) ३३१
पनीर १५६
पनीर (हिं०) ४६
,, के बीज (हिं०) ४६
पनीरबंद (म०; सिंध) ,,
पनीरजाफोटा (सिंध) ४६
पनीर मोटा (म०) ,,
पन्नीरमु (मल०) २६४
पपनस (गु०) २८७
पपय्य: ३७
पपाया (म०) ,,
पपायोटिन (अं०) ३८
पपाव(पपाया)ट्रीं (अं०) ३७
पपीता, पपीतालूमी, पापीता (हिं०; अ०; फा०; द०) ४३५-४३६
पपीता, पपैया (हिं०) ३७
पपैया का तेल (हिं०) ३८
पपोटन (हिं०) ४६, १५५
पप्पलि (ता०) ३७
पप्यायम् (मल०) ३७
पफैया ३७
पमाड़ (हिं०) ४२८

विषय एवं शब्द पृष्ठांक

पम्पकिन (अं०) २०५
पम्पोश (क०) १२९
पम्ब्रचालन (का०) ६१२
पय(व)नि (मल०) ६४८
परकीपंडु (ते०) ५६०
परगाछा (हिं०; बं०) ४७७
परजाता ७१८
परपत्राह (द०; म०) २५४
परफोलिएटसोप-वर्ट (अं०) ५७३
परवर (हिं०) ४३६
परवल (हिं०) ४३६–४३७
परोरा (हिं०) ४३६
पलवल (हिं०) ,,
परसियन ट्रैगाकान्थ (अं०) ११२
परसियावशाँ (फा०) ७१०
परास (हिं०) ४३७
परिकेगड्डु (ते०) ६८१
परुंगिचक्क (मल०) २४
परु (पं०) २३२
परुत्ति (मल०) ११९
परूष(क) (सं०) ४७२
पर्जिग कास्सिआ (अं०) ३५
पर्णबीज (सं०) ४३३–४३४
पर्पट ६३८–६३९
पर्पट(क) (सं०) ६३८
पर्पटी (हिं०) ४४९
पर्पल् फॉक्सग्लव (अं०) ३५५
पर्पल् फ्लीबेन (अं०) १६२, ४८०
पर्पल् लिप्पिया (अं०) ३३१
पर्पिल टेफ्रोसिआ (अं०) ६६४
पर्प्यूरिन (अं०) ५३३
पर्ल-ऐश (अं०) ३५०
पर्सिअन मेन्ना (अं०) ३३४
पर्शियन मेन्ना (अं०) ६४२
पर्सियन लिलेक (अं०) ४७९
पलंग अस्प (फा०; अफ०) ४९६

विषय एवं शब्द पृष्ठांक

पलंगमिश्क (फा०) ३७३
पलंगसाग (बं०) ३०८
पल: (फा०) ४३७
पल (मलाबार) २००
पलवल (पं०) ४३६
पलस (म०) ,,
पलसाचा गोंद (म०) ४३८
पलाण्डु (सं०) ४६५
पलाश (सं०) ४३७
पलाशगाछ (बं०) ४३७
पलाशगुँ (बं०) ४३८
पलाशपापड़ा (गु०; द०) ४३७
पलाशपुष्प (सं०) ,,
पलाशबीज (सं०) ,,
पलाशी (सं०) १२३
पलास (हिं०) ४३७–४४०
पलास (ढाक) का गोंद (हिं०) ४३८
पलास का झाड़ (द०) ४३७
पलास का फूल (गुलटेसू) ४३९–४४०
पलास की छाल ४३८
पलास के बीज (पलासपापड़ा) ४३८–४३९
पलास के बीज (हिं०) ४३७
पलास निर्यास (सं०) ३८१; ४३८
पलासपत्र ४३८
पलास(ढाक)पापड़ा (हिं०) ४३७
पलासपापड़ो (गु०) ,,
पलासाची बीज (म०) ,,
पलीयो (गु०) ३०८
पलो (बं०) १५०
पल्ता (बं०) ४३६
पल्ल (ता०) २२२
पल्वल ४३६
पल्साटिल्ला (अं०) २३०
पल्साटिल्ला कैम्फर (अं०) २६२
पल्साटिल्ला फ्लावर (अं०) २६९
पल्सेटिल्ला (ले०) २६०

विषय एवं शब्द	पृष्ठांक
पश्मपंब: (फा०)	११९
पश्मवज़ा (फा०)	१५२
पसदामा (हिं०)	४३७
पसरकटाई (मा०)	१०९
पहाँड़ (क०)	४२९
पहाड़बेल (म०)	४४०
पहाड़ी गंदना (हिं०)	४७०
पहाड़ी पुदीना	४५२
पांडानुस फासीकुलारिस (ले०)	२०१
पांढरा कुड़ा (म०)	१८८
पांढरा धोत्रा (म०)	३९६
पांढरे जिरें (म०)	३४१
पांढरे वेखंड (म०)	४८४
पाइन एपल (अं०)	२४
पाइन-टार (अ०)	११०
पाइन-नट्स (अ०)	३०२
पाइनीन (अं०)	७३०
पाइपर रूट (अं०)	४४९
पाइपरीडीन (अं०)	५७९
पाइपेरचाबा (ले०)	९९४
पाइपेरीन (अं०)	४४९, ५७९
पाइमेंट (ले०)	४७६
पाइमेंटा ऑयल	४७७
पाइमेंटो (अं०)	४७६
पाइरिडॉक्सीन (अं०)	५९२
पाइरेथ्रोन	१०
पाकल, पाकँ (ता०)	१३९
पाषाण भेद (म०; गु०)	४२९
पागल की बूटी(जड़ी)	३८२
पाचक (बं०)	१८३
पाज (क०)	४६५
पाठ (मार०)	४४०
पाठा (सं०)	४४०–४४१
पाठा (सं०)	४४०
पाड (पं०)	४४०
पाडक्किलंगु (मल०)	४४०

विषय एवं शब्द	पृष्ठांक
पाडा (ते०)	४४०
पाडावल (म०)	४४०
पाडावलि (का०)	,,
पाढ़, पाढ़ी (हिं०; देहरादून; मीरजापुर)	४४०
पाढ़ा (हिं०)	,,
पाणकन्दो (गु०)	४६७
पातगोभी या बन्दगोभी	२७७, २७८
पातसीज (बं०)	३७९
पाता (–था)	२७६
पातीनेबू (बं०)	४२९
पाथरकुचा (बं)	४३३
पाथरचुरी (पं०)	४२९
पान (हिं०; बं०; गु० द०)	४४१–४४२
पान के भेद	४४१
पानडी	४४२
पानबेल्य (म०)	४४१
पानाचूनी (हिं०)	५६१
पानीकुम् आन्टीडोटाले (ले०)	४३२
पानीकुम् ईटालिकुम् (ले०)	९४
पानीफल (हिं०; बं०)	६८१
पापरबुडम् (ते०)	६४
पापरा(ड़ा) (हिं०)	२२५
पापावेरिस काप्सूले (ले०)	४६०
पापावेर सोम्नीफेरुम् (ले०)	६०
पापावेर र्‌हीआस (ले०)	२६१
पापिरा(ड़ा) (हिं०)	१२५
पॉपी कैप्सूल्स (अं०)	४६०
पामारि (सं०)	४२८
पॉमेग्रेनेट-ट्री (अं०)	२५
पॉमेग्रेनेट-फ्रूट (अं०)	२५
पॉमेग्रेनेट-रिंड या पील (अं०)	२७
पायरेथ्रीन (अं०)	१०;५३३
पाये कुलाग़ (फा०)	१५३
पारसीक तगर (सं०-नवीन)	४६
पारसीक-यवानी (सं०)	१८

विषय एवं शब्द पृष्ठांक

पारसीक वचा (सं०) ४८४
पारावतपदी (सं०) १५३
पारिजात (म०), पारिजाता ७१८
पारिस पॉलीफील्ला (लें०) ४८४
पार्च्युलका (रू०) १९६
पालशम् (ता०) ४७२
पा(फा)लसा (हिं०) ,,
पार्मेलिआ काम्ट्सकाडालिस (लें०) ३१५
पार्सले (अं०) ४७६
पालक (हिं०) ४४३
पालक(ख) (गु०) ४४३
पालकके बीज (हिं०) ४४३
पालकजूही ४४४
पालकी (हिं०) ४४३
पालक्य (सं०) ४४३
पालङ् (बं०) ४४३
पालङ्ग(-ङ्गच)-(सं०) ४४३
पालिकजुहिया (हिं०) ४४३
पालीओरी (यू०-अर्वाचीन) ८०
पालीओरोस (यू०-प्राचीन) ,,
पॉलीगाला सेनेगा (लें०) ५३३
पालीगैलिक एसिड (अं०) ५३४
पालीगोन ५९३
पालीगोनाटुम् वेर्टीसेल्लाटुम् (लें०) ६३५
पालीगोनिक एसिड (अं०) ५
पालीगोनुम् बीस्टॉर्टा (लें०) ५
पा० विविपारुम् (लें०) ५
पॉलीजर्मेंडर (अं०) ३४७
पॉलीजिउम् (यू०) ५८२
पालुरु(ल)वम् (मल०) ५७६
पालीपोडिउम् वुल्गारे (लें०) ५०२
पाले किराईत (म०) १५९
पालिमरा टॉडी (अं०) ३६२
,, ट्री (अं०) ,,
पाल्मेटीन (अं०) ३४५

विषय एवं शब्द पृष्ठांक

पाषाणभेद (सं०) ४२९
पास्टीन साकाकुल (लें०) —
पास्पालुम् स्क्रोबीकुलाटुम् (लें०) २०८
पिओनी (अं०) ९२
पिक्रोटॉक्सिन (अं०) ५७८
पिक्रोग्निसिओन ५५९
पिक्रोर्हाइजिन (अं०) १८८
पिक्स लिक्विडा (लें०) ११०
पिचु (सं०) ११९
पिजेन-पी (अं०) ४०
पिण्डखर्जूरी (सं०) २०९
पित्त(त्त)पापड़ा (हिं०; म०; बम्ब०) ६३८
पित्तपापड़ा (देशी शाहतरा) ६३८–६३९
पित(त्त)पापड़ा (हिं०) ६३७
पित्तपापडो (गु०) ६३८
पित्तोहरी (हिं०) ४२०
पिपरमिंट (हिं०) ४१०;४११;४४४;४४५
पिपलियाँ (द०) ४४८
पिपली (द०) ,,
पिपलामूर (हिं०) ४४८
पिपलामूल (थारू०) ४४९
पि(पी)पली(ला)मूल (हिं०) ,,
पिपुल (बं०) ,,
पिपुलीमूल (बं०) ४४९
पिप्पल (सं०) ४४८
पिप्पली (सं०) ४४९;५७९
पिप्पलीन (सं०) ५७९
पिप्पल्यम् ५७९
पिप्पली (सं०) ४४९
पिप्ली (नेपा०) ४४८
पिम्पिनेला इन्वाल्युक्रेटा (लें०) २९
पिम्पिनेला एनिसुम् (लें०) ,,
पिय(या)राँगा (हिं०) ४४५
पियाज (फा०) ४६५
पियाज़ उन्सुल (फा०) ४६७
पियाज़दस्ती (मूश) (फा०) ४६७

विषय एवं शब्द	पृष्ठांक
पियाज़ सहराई (फ़ा०)	४६७
पियाजी (हिं०;पं०;सिंध)	२२४
पियार	३०२
पियाल(र)-(हिं०)	३०१
पियाराँगा	४४५-४४६
पियारा (बं०)	३४
पियासाल (बं०)	५२१
पिरंग (बं०;उ०)	६८
पिलुआ (हिं०)	४५०
पिल्पिल् (फ़ा०)	५७९
पिल्वु (बम्ब०)	४५०
पिशाचकार्पास (सं०)	८१
पिस्टासिआ लेन्टिस्कुस् (लै०)	५७१
पिस्टेसिओ गॉल्स (अं०)	४४६
पिस्टेसिओ-नट (अं०)	४४६
पिस्टेसिओनट-ट्री (अं०)	,,
पिस्टेसिओ हस्क (अं०)	,,
पिस्त (फ़ा०)	,,
पिस्ता (भा० बा०;हिं०;बं०;पं०;गु०)	४४६-४४७
पिस्तां (गु०)	४४६
पिस्ते (म०)	४४६
पिस्ते का गोंद	,,
,, ,, फूल	४४६-४४७
,, ,, वृक्ष (हिं०)	४४६
पिस्ते गालियः (फ़ा०)	६३
पिआरंग (बम्ब०)	४४५
पीक्रोर्‌हीज़ा कुरोंआ (लै०)	१८७
पी (अं०)	५६३
पीगैनोन (यू०)	६८८
पीच (गु०)	५२
पीज़क (फ़ा०)	२२५
पीतकूष्माण्ड (सं०)	२०५
पीततण्डुल (सं०)	९४
पीतगारु (सं०)	३८५
पीतपुष्पा (सं०)	६८८
पीतबीजा (सं०)	५९४

विषय एवं शब्द	पृष्ठांक
पीतमूला (सं०)	५६५
पीतरंग (सं०) ?	४४५
पीतराँगा (हिं०)	,,
पीनुस् जिरार्डिआना (लै०)	६६०
पीनुस् जेरार्डियाना (लै०)	२०३
पीनुस डेओडारा (लै०)	६६०
पी० पामीलिओ (लै०)	६६०
पी० रॉक्सबुर्घिई (लै०)	३०३
पी० राक्सबुर्घी (लै०)	६६०
पी० लांगिफोलिया (लै०)	,,
पी० लौंगीफोलिआ (लै०)	३०३
पी० सिल्वेस्ट्रिस (लै०)	६६०
प ० सूक्सोनीफेरा (लै०)	१४८
पी० सेड्रस (लै०)	६६०
पीपर (हिं०)	४४८
पीपल (हिं०)	४४८-४५०
पीपर(ल)-(गु०)	४४८
पीपर गंठोडा (गु०)	४४९
पीपल (था०)	४४८
पीपला(रा)मूल (गु०)	४४९
पीपलामूल (हिं०)	४४८-४४९
पीपलो (गु०)	४४८
पीपेर कूबेबा (लै०)	१२६
पीपेर नीग्रम् (लै०)	५७९
पीपेर बेटेल (लै०)	४४१
पीपेर लौंगुम् (लै०)	४४९
पीमेन्टा आफ्फीसिनालिस (लै०)	४७६
पीयर (अं०)	४१७
पीरज (फ़ा०)	४३०
पीरा (पं०;क०)	४३०-४३१
पीरुस कॉम्मूनिस (लै०)	४१७
पी० पीरीफोलिआ कूल्टा (लै०)	४१७
पी० सीडोनिया (लै०)	५३०
पीरेथ्रुम् (लै०)	१०
पीरेथ्रुम् रैडिक्स (लै०)	९
पीरेथ्रुम् इंडिकुम् (लै०)	२५८

विषय एवं शब्द पृष्ठांक
पीलज़हरः (फा०) ३८५-३८६
पीलाधतूरा (द०) ६५४
पीलानागकेसर (हिं०) ४०७
पीलीकपास ११३
पीलीचमेली (हिं०) २९१-२९२
पीली जड़ी (हिं०) ४४५
पीली जूही ३४४
पीली हड़ ७१२
पीलुं नागकेशर (गु०) ४०७
पीलु (सं०;म०) ४५०
पिलु(लू)-(हिं०) ,,
पीलूं (पं०) ,,
पीलू (छोटा, बड़ा) ४५०-४५१
पीलू छोटा ४५०
पीलो चंपो (गु०) २८६
पीवरी (सं०) ८१
पीसन (अं०) ५६३
पीसुम् आर्वेन्स (लें०) ५६३
पीसुम् साटीवुम् (लें०) ५६३
पीस्टासिआ ईन्टेगेरीमा (लें०) १५४
पी० टेरेबींथुस (लें०) ५३२
पी० वेरा (लें०) ४४६
पीस्टीआ स्ट्रेटिओटीस (लें०) ३२९
पुंई शाक (बं०) ४५९
पुएरारिआ ट्यूबेरोसा (लें०) ५२४
पुटालु (का०) —
पुटोल ४३६
पुठकण्डा (पं०) २९८
पुड़पत्र(-म्)-(ते०) २५४
पुडिंग स्टिक (अं०) ३५
पुदिनः (सं०) ४५२
पुदिना (म०;बं०) ,,
पुदीना (हिं०) ४५२-४५३
,, उद्यानज (बागी) ४५२
,, जंगली (हिं०) १७
पुदीना नहरी ४१०

विषय एवं शब्द पृष्ठांक
,, पहाड़ी (हिं०) १७
पुदीना के भेद ४१०;४५२
पुदीना का सत ४५२
पुदीने का तेल ४४५
पुदीने का सत या फूल ४१०,४११
पुदीने का सत(सत्त्व) या फूल ४४५
पुदीनो (गु०) ४५२
पुनर्नवा (सं०;मला०) ४५३-४५५
पुनर्नवीन (अं०) ४५४
पुनीर (हिं०) १५५
पुनीरिया कोआगुलान्स (लें०) ४६
पुरइन (हिं०) १२९
पुरुषा (हिं०) ४७२
पुरेथ्रोन (यू०) ९
पुरोस (यू०) २७२
पुलिचित (ते०) ३६६
पुलियारल् (मल०) ३६६
पुलियारै (ता०) ,,
पुल्लचेंचलि (ते०) ,,
पुष्करमूल (सं०;म०;गु०;हिं०) ४५५; ७०७
पुष्परक्त (सं०) २५९
पुहकरमूल (हिं०;गु०) ४५५-४५८
पूग, पूगीफल (सं०) ६९०
पूतिकरञ्ज, पूतीक (सं०) १३५
पूतिहा (सं०) ४५२
पूतीसोआ (को०;संका०) ३९१
पूद(दि)नः (फा०) ४५२
पू(पो)दीनः (फा०) ,,
पूद(दि)नः कोही (फा०) ४५२
पूदनः कोही (फा०) ७२७
पूद(दि)नः नहरी (फा०) ४५२
पूदनः फ़िल्फ़िली (फा०) ४४४
पूदनः बर्री (फा०) ४५२
पूदिनः बुस्तानी (फा०) ४५२
पूनिका ग्रानाटुम् (लें०) २५
पूंजिग या ह्वाइट एगैरिक (अं०) २४७

विषय एवं शब्द	पृष्ठांक
पृथग्बीज (सं०)	५५३
पृथुपलाशिका (सं०)	४०५
पेउसेडानुम् ग्रान्डे (ले०)	३९२
पेओन (यू०)	९२
पेओनिया ऑफ्फीसिनालिस (ले०)	९२
पेओनिया इ(ए)मोडी (ले०)	९३
पेओनी रोज़ (अं०)	,,
पेक्कुम्मट्टि (मल०)	६४
पेक्टिन	६०७
पेगानुम् हरमाला (ले०)	७१७
पेटारी (बं०)	९५
पेठा (हिं०; पं० ;मा०)	४५८–४५९
पेठों (सिंध)	४५८
पेडालिउम् मूरेक्स (ले०)	२७६
पेडिसिन	४३४
पेडिसिनीन (अं०)	४३४
पेतिकारि (ता०)	६४
पेन्टापेटीस फोनीसेआ (ले०)	२५९
पेन्टाफाइलोन (यू०)	५२७
पेन्नीसेटुम् टीफाइडेस (ले०)	५०७
पेपर-ग्रास (अं०)	३७७
पेपरमिंट (अं०)	४१०,४४४
पेपर रूट (अं०)	४४२
पेपर-वर्ट (अं०)	३७७
पेपिरस (यू०)	४३०
पेपेन (अं०)	३८
पेपेरी (यू०)	५७९
पेप्पीर्क्कम् (ता०)	३७०
पेप्सिन (अं०)	३८
पेयाविरै (ता०)	१४७
पेरिप्लोका ऑफ दी वुड्स (अं०)	२५४
पेरुंपावल (मल०)	१३९
पेरू (म०)	३४
पेरूवियन कोका (अं०)	२०६
पेरूवियन बाल्सम (अं०)	४९९
पेलिटरी ऑफ स्पेन (अं०)	९
पेलिटरी रूट (अं०)	९
पेलीटिएरीन (अं०)	२५
पे(पैं)वन्दी बेर	५३८
पैंपे (बं०)	३७
पैटचमृतम् (मल०)	२५०
पैनिकुम् मिलिआसेउम् (ले०)	३१२
पैवंदेमरियम (फा०)	७१५
पोआसाइड (यू०)	२५
पोइस (फ्रां०)	५६३
पोई (हिं०; गु०)	४५९–४६०
पोगाट (पं०)	२३३
पोगाट, बोगाट (पं०;सिंध)	१२४
पोगोस्टेमॉन पचौली (ले०)	४३०
पो० हेनिएनस् (ले०)	४३०
पोटल (बम्ब०)	४३६
पोटास्सिउम् कार्बोनास इम्प्योरा (ले०)	३०५
पोटेन्टिल्ला टोर्मेन्टिल्ला (ले०)	५२७
पोटेन्टिल्ला नेपालेन्सिस (ले०)	६०१
पो० रेप्टांस (ले०)	५२७
पोटैसियम माइरोनेट (अं०)	६०२
पोटेटो (अं०)	६०
पोटैसियम्	३५०
,, कार्बोनेट (अं०)	,,
,, क्लोराइड	,,
,, बाइ-कार्बोनेट	,,
,, सल्फेट	,,
पोट्ल (ते०)	४३६
पोडपत्री (ते०)	२५४
पोडलमानु (ते०)	२२९
पोतकी (सं०)	४५९
पोतिकारि (ता०)	६४
पोथीनी बेल (गु०)	४५९
पोदीना (पं०)	४५२
पोन्नांनकरा (मल०)	४२८
पोन्नाविरम् (मल०)	१४७
पोन्नुम्मतम् (मल०)	६५४

विषय एवं शब्द	पृष्ठांक
पोपनस (म०)	२८७
पोपल (फा०)	६९०
पोपैंयुं (गु०)	३७
पोपल(ली) (म०)	६९०
पोय (हिं०)	४५९
पोयणुं (गु०)	१२९
पोर्चुगाल ओरेञ्ज (अं०)	५८७
पोर्टूलाका ओलेरासेआ (ले०)	१९५
पो० कुआड्रीफिडा (ले०)	१९५
पारेंट (अं०)	
पोल (सिं०)	४१४
पोलिआन्थिस टूबेरोसा (ले०)	२६२
पोलिपेरुस आफ्फीसिनालिस (ले०)	२४७
पोलियोन (यू०)	३४७
पोलीगाली (यू०)	
पोलीगालोन (यू०)	५३३,५३४
पोलीगोनुम आवीकुलारे (ले०)	५३१
पोशकरमूल (क०)	४५५
पोस्त (हिं०)	४६०
पोस्त अनार (फा०)	२७
पोस्त अमलतास (फा०)	३५
पोस्त कुड़ा (फा०)	१८८
,, खश्खाश (फा०)	४६०
,, दरख्त इन्द्रजौतल्ख (फा०)	१८८
,, जबान कुंजिश्क तल्ख	१८८
पोस्त(स्ता)दाना (फा०)	४६०
पोस्त नारंग (फा०)	६४८
पोस्त बेख़ अनार (फा०)	२७
पोस्त बेख़ कबर (फा०)	१२५
पोस्त बेख़ पंबः	११९
पोस्तरवैं (का०)	१८३
पोस्त समाक (फा०)	६९१
पोस्ता(-ते)का दाना (हिं०)	४६०
पोस्ता (सफेद व लाल)	४६०
,; सफ़ेद	४६२
पोस्ता (हिं०)	४६०

विषय एवं शब्द	पृष्ठांक
पोस्ता या अफीम का डोंडा (बोड़ी) –(हिं०)	४६०, ४६२,४६४
पोस्ता का तेल	४६२
पोस्ति(-स्तु)ल (क०)	३६४
पोस्ते कोकनार (फा०)	५६०
पोस्तेका डोंडा (हिं०)	,,
पोस्ते ख़श्खश (फा०)	४६०,४६२
पोस्ते तुरंज (फा०)	५२२
पोस्ते पिस्तः (फा०)	४४६
पोस्ते पिस्तः या पोस्त बेरूँ पिस्ता	४४७
पोस्ते मुग़ीलाँ (फा०)	४९३
पोस्ते लीमून (फा०)	४२२
पोहकर मूल (हिं०;क०;पं०;म०;गु०)	४५५
पौंढ़ा (हिं०)	२३४
प्टेरोकार्पुस मार्सूपिउम् (ले०)	५२१
प्टेरोस्पेर्मुम् आसेरीफोलिउम् (ले०)	५८३
प्याज (हिं०)	४६५–४६६
प्याज के बीज	४६६
प्याज जंगली या विलायती	४६७–४६८
प्याजी (पं०)	२२४
प्याजी	२३३
प्याजे नरगिस (फा०)	४०६
प्यूनिको-टैनिक एसिड (अं०)	२५
प्युनीसीन (अं०)	२५
प्युमेला (अं०)	२८७
प्रपुन्नाट (सं०)	४२८
प्रांगोस पाबूलारिया (ले०)	४७६
प्रांस (गु०)	३५३
प्राइपोआस (यू०)	२५
प्राचीन पाश्चिमात्य ग्राफ़िस	२४४-२४५
प्राचीन गाफिस	२४२
प्रिक्ली-पीयर (अं०)	४०९
प्रियुंग (सं०)	७१५
प्रियाल बीज (सं०)	३०१
प्रुस्सिक एसिड (अं०)	५०३
प्रूंज (अं०)	६०

विषय एवं शब्द	पृष्ठांक
प्रून (अं०)	—
प्रूनुस आमीग्लालुस प्र० आमारा (ले०)	५०८
प्रनुस आलीग्डालुस प्र० डुल्सिस (ले०)	५०८
प्रूनुस आरमेनिआका (ले०)	३२५
प्रूनुस आलूचा (ले०)	६०
प्रूनुस कॉम्म्युनिस (ले०)	६२
प्रू० डोमेस्टिका (ले०)	६२
प्रू० बोकारिएन्सिस (ले०)	६२
प्रू० महालेब (ले०)	७१५
प्रू० सेरासुस (ले०)	६१
प्रोटीन	५७०
प्रोटोपीन	६५५
प्रोफेटिन (अं०)	१७६
प्रोभूजिद	५०७
प्रोभूजिन	५९०
प्रोविटामिन 'A'	३९
प्लम्बेगीन	३०७
प्लांटागो आरम्प्लेक्सीकाउलिस (ले०)	७६
प्लांटागो ओवाटा (ले०)	७५
प्लांटागो मेजोर (ले०)	५१७
प्लाटानुस ओरिएन्टालिस (ले०)	२९१
प्लाण्टेन (अं०)	१९९
प्लीहारि (सं०)	६६४
प्लूम्बागो जेइलानिका (ले०)	३०६
प्सीडिडम् गुआजावा (ले०)	३४
प्सीडिडम् पामीफेरुम् (ले०)	,,
प्सीडिडम् पायरिफेरुम् (ले०)	,,
प्सोरेण्लेआ कोरिलीफोलिआ (ले०)	४८०

फ

विषय एवं शब्द	पृष्ठांक
फंगियो (गु०)	५२४
फ़ंजंकुश्त (अ०)	४६१; ४८२
फ़ंजंकुश्त (भा० बाजा०)	४८१-४८२
फ़ंजंगश्त (फा०)	४८१
फ़ंज़जि(बि)श्त (अ०)	६५०
फ़ंजरियून, फंजियून (यू०)	४६८
फ़ंजियून (अ०)	४६८-४६९
फंजियून (अ०; भा० बा०)	४६८
फगडानो बेलो (गु०)	५२४
फणस (बं०; म०; गु०; बम्ब०)	१०७
फणिज्जक (सं०)	३७३
फतरासालियून (बम्ब०)	४७६
फरंगी ऊद (द०)	६६७
फ़(वि)रंजमिष्क (अ०)	३७३
फ़रफ़ख (अ०)	१९५-१९६
फ़रफ़ियून (भा० बा०; अ०)	४६९-४७०
फ़रफीर (अ०)	४९१
फरफेंदू (हिं०)	६४
क़रबियून (अ०; भा०बा०)	४६९
फरवाँ (पं०)	३५३
फरसिया (हिं०)	४७२
फरास (हिं०)	४७१
फ़रासियून (अ०; भा० बा०)	४७०-४७१
फ़रिंगी धत्तरा (द०)	६५४
फरीदबूटी	२७६
फर्तानियून (यू०)	५१५
फ़र्फीरान (अ०)	८८
फर्फीरान वृक्ष	८८
फर्राश (हिं०)	४७१
फर्रास	४७१-४७२
फल (सं०)	२००
फलशर्करा (सं०)	८८८
फ़लूस: (अ०)	३५
फ़लूस (क०)	३५
फलूसा (बं०)	४७२
फलेपुष्पा (सं०)	२६९
फल्गु (सं०)	७
फ़ल्समाही (अ०)	१७८
फाइन-लीह्वड फ्युमिटरी (अं०)	६३८
फाइह्व-लीह्वड चेस्ट-ट्री (अं०)	६५०
फॉक्स ग्लव (अं०)	३५५
फॉक्सेजर-ल्यू (ऐंग्लोसैक्स)	३५५

विषय एवं शब्द **पृष्ठांक**
फागिया ५९३
फ़ाग़िर: (अ०) ३६९
फ़ाग़िर: (अ०) ३६९; २८६
फागोनिया आराबिका (लें०) ४०.०
फाणित (सं०) २३४-२३५
फ़ानीज़ (अ०) २३६
फाफा(फी)रूस (मिश्र) ४३०
फ़ाफ़ीर (मिश्र) ४३०
फ़ाफ़ीर (अ०) ४३०
फायलैन्थस एम्ब्लिका (लें०) ५६
फ़ार(—ब) २७६
फारमूसा कैम्फर (अं०) १२१
फारवाँ (सिंध) ४७२
फ़ारिसुल्मा: (अ०) ३२९
फार्बिटिशिन (अं०) १६१
फार्बिटीज या कान्वाल्वुलस जाति
फार्सेटिया ईजिप्टिएका (लें०) २७६
फालसा (हिं०; म०; गु०) ४७२-४७३
  ,, शकरी (फा०) ,,
  ,, शर्बती (फा०) ४७२
फाल्स: (फा०) ४७२
फाल्स कलंबा (अं०) १४२
फाल्स या बस्टर्ड सैफ्रन (अं०) १९७
फाल्स या सन-हेम्प (अं०) ६५७
फ़ावानिया (अ०) ९२-९३
फाशरा (अ०) ४७३-४७५
फाशीरा (अ०) ४७३
फासेआलुस मुंगो (लें०) ७८
फा० आकोनीटीफोलिडम् (लें०) ५९७
फा० ट्राईलोबुस (लें०) ,,
फा० राडिआटा (लें०) ५८९
फॉस्फोरस (अं०) ५०८
फॉस्फोरिक एसिड (अं०) ३५०, ४२८, ५५५; ५५७; ५८९; ६५१
फ़िद्क (हिं०) ४७५
फ़िदक़े (फ़ुन्दक़े) हिंदी (अ०) ६०७

विषय एवं शब्द **पृष्ठक**
फिक्टिशशमेन्ना ६४२
फिग (अं०) ७
फिजिकनट (अं०) ६११
फितरासालियून (यू०) १५
फितरासालियून (अ०) ४७६
फ़ि(फ़ु)त्र (अ०) २२६
फिनोल (अं०) १४९
फिर्ज़ज: १८६
फिलिसिक एसिड (अं०) ६६३
फ़िल्फ़िल अफ़रंजी (अ०) ४७६
फ़िल्फ़िल कोही (फा०) ६५०
  ,, जमेकी (अ०) ४७३
फ़िल्फिल् दराज़ (फा०) ४४८
फ़िल्फ़िल्मू(मो)य: (अ०) ४४९
  ,, सफ़ेद ५७९
  ,, स्याह हलुव्व (अ०) ४७६
फ़िल्फ़िलुस्सूदान (अ०) ४७६-४७७
फ़िल्फ़िले अह्मर (अ०) ५८१
फिल्फि(पिम्पि)ले सुर्ख़ (फा०) ५८१
फिल्फ़िले स्याह (गिर्द) (फा०) ५७९
फ़िल्फ़िलैन (अ०) ३१९
फिल्लान्थुस मड्रासपाटेन्सिस (लें०) ११८
फिशबेरी (अं०) ५७८
फीकुस कारिका (लें०) ७
फी० ग्लोमेराटा (लें०) २६९-२७०
फी० बेंगालेन्सिस (लें०) ४९५
फी० रेलीजिओसा (लें०) ४४८
फी० सीकोमोरुस (लें०) २७०
फीजालिस आल्काकेंजी (लें०) ११५
फीमेल पेओनी (अ०) ९३
फील ज़हरज (अ०) ३८५
फीला नोडीफ्लोरा (ले) ३३१
फ़ुक़्क़ाहुल इज़खिर (अ०) ६९
फ़ुंदुक़, बुंदुक़ (अ०) ४७५
फ़ुजुल, फुज़्ल: (अ०) ५९०
फुट्टी (पं०) ११८

विषय एवं शब्द	पृष्ठांक
फुन्दुक़े फारसी (फा०)	६०७
फ़ुलूसे माही (फा०)	१७९
फ़ुव्वः, फ़ूह (अ०)	५६२
फुसियाई (गु०)	५४४
फुसेलिस (यू०)	१५५
फुसेल्लिस (यू०)	१५५
फ़ुस्तुक़ मुक़श्शर (अ०)	४४६
फू (यू०)	४१६
फूट (हिं०)	१०२
फूटककड़ी (हिं०)	१०२, १०३, १०४
फ़ूतनज, फू.दनज (अ०)	४५२
फूदनज जबली (अ०)	५८२
फूमारिआ आफ्फोसिनालिस (ले०)	४३७
फू० ईंडिका (ले०)	६३८
फू० पार्वीफ्लोरा (ले०)	,,
फूलगोभी (हिं०)	२७७
फूलधवई (खर०)	४०३
फूलधावो (सिं०)	,,
फूलमखाना (हिं०)	
फूलियून (यू०)	३४७
फेदरफ्यू (अं०)	५१'१
फेनछत्र ( )	२२६
फेनिक्स डेक्टिलीफेरा (ले०)	२०९
फे० सिल्वेस्ट्रिस (ले०)	,,
फेनिल (सं०)	६०७
फेनीकूलुम् कापील्लासेउम्	
फेनीकूलुम् वुल्गारे (ले०)	७०६
फेनू-ग्रीक (अं०)	२९४
फेनेल फ्रूट या सीड (अं०)	७०६
फेरी एलेबोरो मेलानोस (यू०)	२१८
फेरुला आल्लिआसेआ (ले०)	७३०
फे० आस्साफेटिडा (ले०)	,,
फे० गाल्बेनीफ्लुआ (ले०)	३३३
फे० टिंजीटाना (ले०)	८७
फे० नार्थेक्स (ले०)	७३०
फे० फेटीडा (ले०)	,,

विषय एवं शब्द	पृष्ठांक
फे० सुआविओलेन्स (ले०)	६८६
फे० सुम्बुल (ले०)	,,
फेरुल्लिक एसिड (अं०)	७३०
फेरोनिया लीमोनिया (ले०)	२०३
फेलोन हर्ब (अं०)	३९५
फैकरा (यू०)	२७९
फ़ै(फ़ी)जन (अ०)	६८८
फोइनिक्स (यू०)	२०९
फ़ो(फ़ौ)फ़ल (अ०)	६९०
फोर-ओ क्लॉक फ्लॉवर (अं०)	२५६
फोरियून	१०
फोलिक एसिड (अं०)	४४३
फोव्वहुस्सबग़ (अ०)	५६२
फौफलीन	६९०
फ्युमिटरी, कॉमन (अं०)	६३७
फ्राक्सिनुस् आर्नुस् (ले०)	६४१
फ्रा० रोटुन्डीफोलिआ (ले०)	६४१
फ्रा(प्रा)सिओन (यू०)	४७०
फ्रूट ऑफ़ दि कैरोब-ट्री (अं०)	५१२
फ्रेंच पलम (अं०)	६०
फ्रेंच मैरिगोल्ड (अं०)	२७१
फ्रेंकिन्सेंस (अं०)	९९
फ्लॉवर पिस्टिल्ज ऑफ मेज़ (अं०)	५५७
फ्लॉवर्स ऑफ कैम्फर (अं०)	१२१
फ्ली-मिंट (अं०)	५८२
फ्लेमींगिआ ग्राहामिआना (ले०)	६३३
फ्लैक्स-सीड (अं०)	४२
फ्लैट-बीन (अं०)	६९८

ब

बँउडी (पं०)	७२८
बंक, बंग, बंगदीवाना (फा०)	१८
बंग (फा०)	५४८
बंगाल काइनो (अं०)	४३७
बंगाली नालुका	५९५
बंज (अ०; पं०; कु०)	१८;५०१

विषय एवं शब्द पृष्ठांक

बंडाल (हिं०) ४७४
बंडालडोडा (हिं०) ४७८
बंदर; बंदा; बन (हिं०) १७४
बंदा; बंझा (हिं०) ४७७-४७८
बंदाल (हिं०) ४७८-४७९
बंदाल डोडा (मा०) ४७८
बंबल, बाँदा (पं०) १७४
बंमचूँठ (क०) ५३०
बक़म (अ०) ४३२
बक़म अमरीकी ४३२
बक़म हिंदी (फा०) ,,
बक़लए(-ला) यमानिया (अ०) ३१५
बक़लए सानिया (अ०) ३०९
बक़लए हामिज़ा (अ०) ३०९
बक़लतुल् अन्सार (अ०) २७८
,, अरबिया (अ०) ३१५
,, खुतातीफ (अ०) ७२०
,; ज़ोहरा (अ०) १९५,१९६
,, मलिक (अ०) ७३७
,, मुबारिकः (फ़ात्मः) (अ०) १९५
बक़लतुल् यमानिया (अ०) ३२५
बक़्लतुल्ल्लीनः(अ०) १९५
बक़्लतुल् हमक़ा (अ०) १९५
बक़्स (अरबीकृत) ६३५
बकसियन्, बकसीन, बकसीन (यू०) ६३५
बकाइन (हिं०) ४७९-४८०
बकाईणनिमु (सिंध) ४७९
बकाण(णि)निंब (म०) ४७९
बकान लींबड़ो (गु०) ,,
बकायन (हिं०; पं०) ४६९
बकुची (हिं०) ४८०
बकुम्भ (बं०; हिं०) ५१५
बकुल गाछ (बं०) ५९९
व(बु)क़्क़म् (अ०) ४३२
बक़्लए(-ला) यमानिया (अ०) ३१५
बक़्ले यहूदिया (अ०) १६७

विषय एवं शब्द पृष्ठांक

बख़ुरमरियम् (भा० बा०) और अर्तनीसा ४८१-४८३
बख़शीर(ज़)क (फा०) ३९०
बख़शीज़क (अरबीकृत) (फा०) ३९०
बगरो (मो०) ७३१
बग्लोस (यू०) २४८
बघनोकी (बं०)
बघरेंड़ (हि०) ६११
बच (हिं०; बं०) ३००;४८३-४८५
बछ (हिं०) ४८३
बछनाग (हिं०; गु०) ४८५-४८७
,, के विषलक्षण और उनकी चिकित्सा ४८६
बज़क (फा०) ४२
बजरदंती (बज्रदंती) ४८७
बजरा, बजरी (हिं०) ५०७
बज़्दुबः (फा०) ४५८
बज़्बाज़ (फा०) ३३७
बज्रक़तूना (अ०) ७५
बज्र राज़ियानज रूमी(शामी) (अ०) २९
बज़्लिसानुल् हम्ल (अ०) ५१७
बज़्रुल् इस्फ़ानाख़ (अ०) ४४३
,, इह्रीस (अ०) १९७
,, क़तफ़ (अ०) ४८८
,, कत्तान (अ०) ४२
,, करफ़्स (अ०) १५;३९९
,, क़र्अ (अ०) ११४
,, क़सद वल् ख़ियार (अ०) १०२
,, किन्नब (अ०) ५४८
,, क़िस्साऽ (अ०) १०२
,, कुज़्बुरः (अ०) ३९९
,, कुर्रास (अ०) २३२
बज़्रुल् ख़श्ख़श (अ०) ४६०
बज़्रुलख़स्स (अ०) १७०
बज़्रुल् ख़ित्मी (अ०) २११
,, ख़िर्वअ (अ०) ६०९
बज़्रुख़ुमख़ुम (अ०) ३७७
बज़्रुल् जज़र (अ०) २४१

विषय एवं शब्द	पृष्ठांक
बज़्र्‌ुल्‌ नीलूफ़र (अ०)	१२९
बज़्र्‌ुल्‌ फ़र्फ़ख़ (अ०)	१९५
,, फ़ुज्ल (अ०)	५९७
बज़्‌ुल वंज (अ०)	१८
,; ,, अब्यज (अ०)	१८
बज़्र्‌ुल्‌ बक़्लतुल्‌ हुमक़ाऽ (अ०)	१९५
बज़्रुल्‌ बालंकू (अ०)	५२०
बज़्र्‌ुल्‌ बित्तीख़ (अ०)	२१४
बज़्र्‌ुल्‌ बित्तीखेल्‌ हिंदी (अ०)	३६०
बज़्र्‌ुल्लबूस (अ०)	१९४
बज़्रुल्‌ मर्व (अ०)	११८
बज़्र्‌ुल्‌ मश्तुलग़ौल (अ०)	९५
बज़्रुल्‌ मह्‌दबः (अ०)	४५८
बज़्र्‌ुल्लिफ़्त (अ०)	६३७
बज़्रुल्‌ हम्माज़ (अ०)	३०९
,, हलियून (अ०)	७२२
बज़्रुल्‌ हिन्दबाऽ (अ०)	१६६
बज़्रुल्‌ हुवः (अ०)	३७७
बज़्रुश्शिबित्त (अ०)	७०३
बज़्र्‌ुस्सर्मक़ (अ०)	४८८
बटराखिओन (यू०)	६१५
बटाटा (बम्ब०;म०; मार;गु०)	६०
बटाना (म०;बम्ब०)	५९३
बटाविया नारिंज (ते०)	५८७
बड़ (हिं०)	४९५
बड़केरु (बं०)	३९१
व्रड़ गूँट्ट (मार०; गु०)	६१६
बड़गोखरि (बं०)	२७६
बड़ गोहुआँ (हिं०)	६७३
बड़हर(ल) (हिं०)	४८८
बडफ (म्रि०)	७०६
बड़हर(ल) (हिं०)	४८८
बड़हल	४८८
बड़ाकुंद (बं०)	१७८
बड़ा कुलिजन (हिं०)	१९३
बड़ा केरुई (बं०)	३९१

विषय एवं शब्द	पृष्ठांक
बड़ा गोकरू (द०)	२७६
बड़ा गोखरू (गोखुरु)र (हिं०)	;,
बड़ा गोखरू फाण्टविधि	२७७
बड़ा पीलू (हिं०)	४५०
बड़ा भखड़ा(रा)-(पं०)	२७६
बड़ा लिसोड़ा	६१६
बड़ा सौंफ (हिं०)	७०६
बडिशेप (म०)	७०६
बड़ी कटाई	१०९
बड़ो कोली (उड़ि०)	५६०
बड़ी ज्वार (जोन्हरी)	५५७
बड़ी दुद्धी (दूधी, दुधिया)-(हिं०)	३९१
बड़ो पाठा	४४०
बड़ी पीपल (हिं०)	४४९
बड़ी माइं(ई) (हिं०)	३५३
बड़ी लोनिया (बं०)	१९५
,, ,, बीज (बं०)	,,
बड़ी लोनी (पं०)	,,
बड़ी हड़ (हिं०)	७१२
बतावी नीबू (बं०)	२८७
बतास (पं०)	२३
बत्थल (पं०)	२७९
बथुआ, बथुआ सुगंध (हिं०)	४८८-४८९
बथुरी (बम्ब०)	१६७
बदर (सं०)	५३८
बदरान (नी) (शीराज़)	८६,८७
बदरी (सं०)	५३८
बन आदो (कु०)	४०५
बनउड़द (हिं०)	८०
बन काहू (सिंघ)	१६९;४९७
बन कुन्दरी (उड़ि०)	९७
बन कूल (बं०)	५३८
बन चिटकी (हिं०)	४९२
वन जाण (सिंघ)	१४
बन जीरी (हिं०)	१६२
बन जोयान (बं०)	१४

विषय एवं शब्द पृष्ठांक
बनझाऊ (हिं०) ६६६
बन तमाकू (पं०) ६२६
बन तुलसी (हिं०) ३७२
बन नील (बरमा) ४९०-४९१
,, (बं०) ६६४
बन नीली (सं०) ४९०
बन पियाज (हिं०) ४६७
बन पिरिंग (बं०) ६७
बन प्राण (क०) ४६७
बनफ्शा (हिं०; गु०; म०; बम्ब०) ४९१
बनफ़शा ४९१–४९२
बनफ्सज (अ०) ४९१
बनफ़्सा (फा०; हिं०; म०) ४९१
बन बाकरी (जौनसार) ५५१
बनभंटा, बनभटवा (हिं०) १०९
बनमूँग (हिं०) ५९४
बनमेथी (हिं०) ५९४
बनरीठा (पं०) ६८४
बनशण (मा०) ६५८
बन श्रृंगाट (सं०) २७६
बन सन (हिं०) ६५७
बनसिटकी (हिं०) ४९२
बन सुल्फा (बं०) ६३८
बन हलदी (हिं०) ४७
बनारसी शक्कर २२७
बनास्पति (मा०) ४१७
बनूसुख (फा०) ५७०
बनोमाष (फा०) ७९;५८९
बन्दाक (सं०) ४७७
बन्धुजीव (सं०) २५९
बन्धूक (सं०) २५९
बन्ध्या कर्कोटकी (सं०) १०४
बबरी (पं०) २७३
बबुई (हिं०) ३७२
बबु(बू)र, बबुरी (हिं०;पं०;सिंध) ४९३
बबुल (हिं०;पं०) ४९३

विषय एवं शब्द पृष्ठांक
बबुल (हिं०;पं०) ४९३
बबूल (हिं; पं०) ४९३–४९४
बबूलका गोंद (हिं०) ४९३, ४९४
बबूल ट्री (अं०) ४९३
बब्बु(ब्बू)ल (सं०) ४९३
बभनेटी (हिं०) ५५०
बमसुतु (क०) ५३०
बम्सुंत (क०) ५३०
बय (क०) ४८३
बयडा (बं०) ५०४
बयर (बं०) ५३८
बरंजासफ (अ०) ४९६
बर (हिं०) ४९५
बरगद (हिं०) ४९५
बरग़ौस(सी) (अ०) ७५
बरच, बर्च (पं०) ४८३
बरज़द (फा०) ३३३
बरञ्जासिफ, बिरञ्जास(सि)फ़ ४९६
बरन (हिं०) २६७
बरना (हिं०;पं०) ४९७
बरबर (अ०) ४५०
बरबारीस (अ०) ३८५
बरमडंडी(-दंडी) (सं०) ५४४
बरमुडा ऐरारूट (अं०) ३६८
बरयाला (हिं०) ४९८
बरहमी (हिं०) १०९
बरहंटा (हिं०) १०९
बरासकपूर (बम्ब०) १२१
बरिआली (गु०) ७०६
बरियरा, बरियतर (हिं०) ४९८
बरियार (कोल;संथा०) ४९८
बरियारा(ला) (हिं०) ४९८
बर्जरी (सं०) ५०७
बरिल्ला (अं०) ८५
बरीज २४८
बरुई (बं०) ५३८

विषय एवं शब्द पृष्ठांक
बरुना (हिं०) ४९७
बर्कू(फूं)क (अ०) ६०
बर्ग कश्नीज (फा०) ३९९
बर्ग गावजवान (फा०) २४९
बर्ग सूफार (फा०) ६६४
बर्गे कश्मीरी (फा०) १६७
बर्गे खित्मी (फा०) २११
बर्गे तम्बूल (फा०) ४४१
बर्गे तिब्बत (अ०;फा०) १६४
बर्गे दरख्ते शानः (फा०) ९५
बर्गे मूरद (फा०) ६३
बर्गे सँभालू (फा०) ६५०
बर्ड चिली (अं०) ५८१
बर्डलाइम मिस्टलेटो (अं०) १७५
बर्दी (अ०) ४३०
बर्बटी (बं०) ६३१
बर्बर(री) (सं०) ३७३
बर्बरी रेवंद ६१३
बर्बी (बम्ब०) ३६४
बर्बु(बू)र (सं०) ४९३
बर्बुर निर्यास (सं०) ४९३
बर्बेरीन (अं०) १४३;३८६;४४६;६५५
बर्बेरीफ्रूट या बेरी (अं०) ३८५
बर्बेरीरूट (अं०) ३५८
बर्मीज स्टोरैक्स (अं०) ६४०
बरें (हिं०;बं०) १९७
बल (ता०;गु०;फा०) २००;५३९;४’८
बलदाणा (गु०) ५३१
बलबीज (बम्ब०) ९५
बलीलः (फा०) ५०४
बलोलज (अ०) ५०४
बलूत (पं०;कु०) ५०१
बलूती (अ०) ४७०
बलेरु (का०) ५०४
बलेलः (फा०) ५०४
बलेलज (अ०) ५०४

विषय एवं शब्द पृष्ठांक
बल्लर (हिं०) ५०७
बल्लीफल (सं०) ४५८
ब(बु)ल्लूत (अ०) ५०१
बलसॉ (अ०;फा०) ४९९-५००
बलसाँका तेल (हिं०;द०) ४९९
बलसाँ कोपेबी ४९९
बलसाँ टोलू ४९९
बलसाँ पेरू
बलसान (उ०) ७३३
बलसाने कोबा(ई) ४९९
बलसाने पेरू ४९९
बलसाने (हिन्दी) ४९९
बलसुरा (बम्ब०) ५९६
बला (सं०; गु०) ४९८
ब(बि)लादुर (फा०) ५५३
बलियारी (गु०) ७०६
बसनाग (गु०) ४८५
बसगाइक (फा०) ५०२
ब(बि)सफाइज (अ०) ५०२
बसर (सिं०) ४६५
बसेला (ता०) ४५९
बसौंटा (हिं०) २१
बस्टर्ड-टीक (अं०) ४३७
बस्तज (अ०) ९९
बस्तियाज (अ०) ३९०
बस्तियाजके बीज ३९०
ब(ब)स्फाइज (अ०) ५०२
बस्फ़ाइज फ़ुस्तकी (अ०) ५०२
बस्फैज (फा०) ५०२
बस्बासः, बिस्बासः (अ०) ३३७-३३८
बस्ल (अ०) ४६५;४६७
बस्सुल् उन्सल (अ०) ४६७
बस्लुल्फ़ार (अ०) ४६७
बस्लुल्बर्र (अ०) ४६७
बससन्त (हिं०;पं०) ७३३
बह्मन अब्यज (अ०) ५०२

विषय एवं शब्द पृष्ठांक

बहमन सफ़ेद ५०२–५०३
बहमन(ने)सुर्ख़ (फा०) ५०३
बहमने बर्री (फा०) ४४
बहमने सुफ़ेद (फा०) ५०२
बहार (अ०) ४७६
बहार नारंज (फा०) ४१४
बहुगुणी(नी) (पं०) ४१२
बहुफली ३९२
बहुफली (हिं०;गु०) ५०४
बहुवार (सं०;बं०) ६१६
बहेंकड़ (पं०) २१
बहेंड़ा (गु०) ५०४
बहेड़ा (हिं०;बं०;म०) ५०४–५०५
बहेर (मीरजापुर) ५०४
बहेरा (हिं०;म०) ५०४
बांगो (म०) ५४१
बाँज(झ) (पं०;कु०) ५०१
बाँझ ककोड़ा (हिं०) १०४
बाँझ खेख़सा (हिं०) १०५
बाँडक नट (अं०) १३५
बाँणू (म०) ५०५
बाँद(दा)गुल (म) ४७७
बाँदा (हिं०;म०) ४७७;६१८
बाँदु (बं०) ४७७
बाँधुली (बं०) २५९
बाँब(बी), वाम (म०) ३३४
बाँश (बं०) ५७५
बाँस (हिं०;म०;गु०;सिंध) ५०५–५०६
बाँस कपूर (गु०) ५०५
बाँसः (फा०) २९
बांसा (हिं०;पं०;मा०) २१;६६४
बाइटार्टेट आफ पोटैसियम (अं०) ७१
बाई-खुजली (उ०)
बाकल (हिं०) ४०३
बाक़ला (हिं०) ५०७
बाक़लाए मिश्री (अ०;फा०;मा०;बाजा०) ३७२;५०७

बाकिला (हिं०) ५०७
बाक़िलाए नब्ती या क़ुब्ती या मिश्री (अ०) १२९;५०७
बाक़िल्ला (अ०) ५०७
बाकुंभ (म०;गु०) ५१५
बाकु(व)ची (हिं०) ५८०
बाकोपा मोन्निएरी (ले०) ३३०
बाखरा (हिं०) २७४
बाग़ बनफ़्शा ४९१
बागभेरंड (बं०) ६११
बागीबेर ५३८
बाघरेंड(डा) (हिं०) ६११
बाजरी (गु०;म०;पं०) ९४;५०७
बाज़रूज (अ०) ३७२
बाजरो (गु०; मा०;) ५०७
बाडियान (अं०) ५१२
बाथु (हिं०) ४८८
बाथुसाग (बं०) ४८८
बादंगान (फा०) ५४१
बादंगान बर्री (फा०) १०९
बादंगाने हिंदी (फा०) ३५४
बादंजान बर्री (दश्ती)–(अ०) १०९
बादंजाने हिंदी (अ०) ३५४
बादः (फा०) २३८
बाद आवर्द (फा०) ५१२
बादम (क०) ५०९
बादयान (क०) ७०६
बादरंग, बादरू(ग़) (फा०) २२३
बादरंगबूया (फा०) ५२८
बादरंजबूया (अ०) ५२८
बादरूक, बादरूय (फा०) ३७२
बादरूज (नब्ती) ३७२
बादशाह पसन्द (हिं०) ६३९
बादाम कड़आ ५०८–५०९
बादामका तेल निकालनेकी विधि ५१०
,, ,, परीक्षा ५१०
बादामका तेल (हिं०) ५१०

विषय एवं शब्द	पृष्ठांक
बादाम कश्मीरी (फा०)	४७५
बादाम कोही (फा०)	४७५
बादाम जाकी (उ०)	५६४
बादाम मीठा	५०९–५११
बादाम सेहगोशा (फा०)	४७५
बादामे तल्ख़ (फा०)	५०८
बादामे शीरीं (फा०)	५०९
बादावर्द	४०१;५१२
बादावर्द (भूदण्डी)	५१२
बार्दिज (फा०)	४१४
बादियान (द०;बम्ब०;फा०)	५१; ७०६
बादियान कोही	४७६
बादियान ख़ताई	५१२–५१३
बादियान(ने)ख़ताई (अ०;फा०)	५१२
बादियान रूमी-शामी (फा०)	२९;७०६
बान (पं०;कु०)	५०१
बान केरास (यू०)	५९४
बानो (गु०)	४७७
बाप्टिसिनम्	४९०
बाप्टी सआ टिंक्टोरिआ (ले०)	४९०
बाप्ट सीन (अं०)	४९०
बाफली (बम्ब०;फा०;म०)	५०४
बाफ़लून (अ०)	३३०
बाबरी (हिं०)	३७२
बाबल (गु०)	४९३
बाबलियों (मा०)	४९३
बाबुई तुलसा (बं०)	३७३
बाबूनः, बाबूनक (फा०)	५१३
,, इंगलिसी (फा०)	५१३–५१४
,, तुफ़ाही (फा०)	५१४
बाबूनए गावचश्म (फा०;भा० बा०)	५१५
बाबूनज (अ०)	५१३
,, तुफ़ाही (अ०)	५१४
,, नारी	१०
,, रूमी	५१४
बाबूना (हिं;पं०;बं०)	५१३–५१४

विषय एवं शब्द	पृष्ठांक
बाबूना गावचश्च	५१४
,, बदबू	५१४
बार्ब्रेग (अं०)	५१६
बाब्लागाछ (बं०)	४९३
बामूल (म०)	४९३
बाम (अं०)	४९९
बार्मामिट (अं०)	४४४;४१०
बामियः (फा०)	५५२
बामिया (अ०)	५५२
बाम्बॉक्स मालाबारिकुम् (ले०)	६९८
बा० सेइबा (ले०)	६९७
बाम्बूसा आरुन्डीनासेआ (ले०)	५०५
बाम्बूसा बॉम्बोस (ले०)	५०५
बाम्बे या काबुल मैस्टिक (अं०)	५३२
बायबिडंग (हिं०)	५१६–५१७
बारज़द (अ०)	३०४;३३३
बारज़द, बेरज़द (फा०)	३०३
बारतंग (भा०बा०;फा०)	५१७–५१८
बारहंग (फा०;भा०बा०)	५१७
बाराहींकंद (हिं०)	५१८
बारिंगटोनिआ आकूटांगुला (ले०)	६६१
बारीक चिरायता	९६
बार्ली (अं०)	३४८
बालंका (द०)	५२०
बालंकू (अ०)	५२०
बालंग (फा०)	५२२
बालंगा (हिं०)	५२०
बालगू (हिं०;०फा०;बम्ब०)	५२०–५२१
बालंत निंबू (म०)	४२३
बाल (हिं०)	५५७
बालकडू (म०)	१८७;७०७
बालछड (हिं०)	२५८;६८६
बालछड़ (हिं०;पं०)	५१८–५२०
बालबच (हिं०;गु०;भा० बा०)	४८४
बालवेखंड (म०)	४८४
बालसम ऑफ कोपाइबा (अं०)	४९९

विषय एवं शब्द	पृष्ठांक
बालसम कोपेबा (अं०)	४९९
बालहड (हिं०)	७११
बाल हरडे (म०)	७११
बाल ह(ल)ड़ (द०)	७१८
बाला (बं०;द०)	२२०
बाल्शि आशिकाँ (इरानी)	११२
बालुलवे (ता०)	५७६
बालूत (फा०)	५०१
बालो (गु०)	२२०
बालटिक अम्बर	१४९
बाल्लोटा नीग्रा (ले०)	४७०
बाल्सम ऑफ पेरू (अं०)	४९९
बालसम टोलू	४९९
बाल्सम ट्री (अं०)	४९२
बाल्समि रेजिन (अं०)	६२९
बाल्समे स्टाइरेसिस (अं०)	६४०
बाल्समोडेन्ड्रोन आपोबाल्सामुम् (ले०)	४९९
बाल्सामुम् (ले०)	४९९
बाल्सामुम् डिप्टेरोकार्पो (ले०)	२४०
बाल्शामोडेन्ड्रोन मुकुल (ले०)	२५२
बाल्सेमीन (इब०)	४९९
बाल्सेमून (यू०)	४९९
बावची (पं; गु०; म०; ते०)	४८०
बावबिडंग (हिं०)	५१६
बावडिग (म०)	,,
बावडींग (गु०; पं०)	५१६
बासलीक़ून कमूनी (यू०)	१६२
बॉसवेल्लिआ ग्लाब्रा (ले०)	६६७
बॉसवेल्लिआ फ्लोरिबुंडा (ले०)	९२;६६७
बॉ० सेर्राटा (सिर्रेटा) (ले०)	६६७
बासेल्ला आल्बा (ले०)	४५९
बा० रूब्रा (ले०)	४५९
बास्सिआ लाटीफोलिआ (ले०)	५७२
बाहवा (म०)	३५
बॉहीनिया आक्यूमिनाटा (ले०)	१०५
बॉ० पर्पूरेआ (ले०)	,,

विषय एवं शब्द	पृष्ठांक
बॉ० वारिएगाटा (ले०)	१०५
बाह्मनेटी (हिं०)	५५७
बिंघर बीज (पं०; सिंध)	२२४
बिंछ (बम्ब; म०)	१६१
बिंदाल (हिं०)	४७८
बिअर्ड-डार्नेल (अं०)	६४६
बिगार्डी (अं०)	४१३
बिछुआ (हिं०)	१६१
,, घास (ब्रज०)	,,
बिजयसार (हिं०; पं०)	५२१–५२२
बिजयसार का गोंद (हिं०)	५२१
बिजैसार (हिं०; मा०)	५२१
बिजोरा, बिजौरा (हिं०)	५२२–५२४
बि(बी)जोरू (गु०)	५२२
बिजौरे का छिलका (हिं०)	५२२, ५२३
बिजौरे का छिलका	५२३
,, ,, बीज	,,
बिटर आमंड (अं०)	५०८
बिटर आमंड ट्री (अं०)	,,
बिटर ऑरेंज (अं०)	४१३
बिटर एपुल (अं०)	६४
बिटर गोर्ड (अं०)	६४
बिटर लुफ्फा (अं०)	३७१
बिटर-स्वीट नाइटशेड (अं०)	५५९
बिडङ्ग (सं०; बं०)	५१६
बितरासालियून (यू०)	१५; ४७६
बित्तीख़ (अ०; रू०)	३७; २१४
बित्तीख़ अख़्ज़र (अ०)	३६०
बित्तीख़ ज़िक्की (अ०)	,,
,, हिंदी (अ०)	,,
बिदारीकंद (हिं०; गु०)	५२४–५२५
बिधारा (हिं०)	५२५–५२६
बिनौला, बेनउर (हिं०)	११९
बिनौले की गिरी (हिं०)	११९, १२०
बिन्तातूस (अ०)	५२७
बिन्ताफलु(लू)न (अ०)	५२६–५२७

बिषय एवं शब्द	पृष्ठांक
बिन्ताफुलुन (अ०)	५२७
बि(भि)बा (बम्ब०)	५५३
बिब्बा (म०)	५५३
बिभीतक (सं०)	५०४
बिषकंदरा (हिं०)	६८८
ब्रिम्बी (सं०)	९७
बियर बेरी (अं०)	३;४
बियर्ज(र्स)ग्रेप (अं०)	३;४
किरंक(ज)काबुली (अ०)	५१६
बिरंग काबुली (फा०)	५१६
बिरंज (फा०)	२९६
बिरंज कश्नीज (फा०)	३९९
बिरंजास्प (फा०; अफ०)	४९६
बिरंजासफ (का०)	,,
बिरंजासिफ (हिं०; भा० बाजा०;कच्छ)	४९६
विरंजासि (अ०)	२०४
बिरिंजासफ़ (अ०)	४९६
बिरंजेलासा (पहाड़ी)	३०३
बिरोज, बिहरोजा (हिं०)	३०३
बिर्मि (पं०; हिं०)	३६४
बिर्मी (बं०; हिं०; पहाड़ी; बम्ब०)	३६४
बिर्श (फा०)	३०
बिल (पं०)	५३९
बिलकत्त (पं०)	५३९
बिलकथ (का०)	५३९
बिलसाँ (अ०; फा०)	४९९
ब्रिलाईकन्द (हिं०)	५२४
बिलाड़ीनो टोप (गु०)	२२६
बिलावा (क०)	५५३
बिलाबु (मल०)	२०३
बिलिंबिनास (पुर्त०)	१२८
बिलिंबी	१२९
बिल्व (सं०)	५३९
बिल्वपेशिका (सं०)	५३९
बिल्वमु (तें०)	५३९
बिलेगणजलि (क०)	५२९

विषय एवं शब्द	पृष्ठांक
बिल्लीलोटन (हिं०; सिंध)	३४३
बिल्लीलोटन (हिं०)	५२८–५२९
विल्लौरी (पं०)	५
बिवला (म०)	५२१
बिसकाप्रा (प०)	५२९
विषखपरा	४५४
विसख़परा (हिं०)	५२९–५३०
बिसोरा (हिं०)	६६३
बिस्टोर्ट (अं०)	५
बिस्तपायः, बिस्पायः (फा०)	५०२
बिस्फायज (बम्ब०; द०)	५०२
बि(बे)ह (फा०)	५३०
बिहा (हिं०; फा०; खुरासान)	५३०–५३१
बिहीदाणा (म०)	५३०
बिहीदाना (फा०; हिं०)	५३०, ५३१
,, फल	५३१
बिसकाप्रा (पं०)	५२९
बिस्तपायः (फा०)	५०२
बिस्पायः (फा०)	
बिस्फायज (बम्ब; द०)	५०२
बिहीदाणा (म०)	५३०
बिहीदाना (फा०)	५३०
बिहीदाना (हिं०)	५३०–५३१
बींण (गु०)	११८
बीउँ (मीरजापुर)	५२१
बीओफील्लुम् सेंसीटिडम् (ले०)	३१८
बीक्सा ओरेल्लाना (ले०)	६५६
बीख़े बनफ्शः (फा०)	४९१
,, बाला (फा०)	२२०
बीज (तुख़्म) खर्पुजा	२१५
बीजक (सं०)	५२१
बीजक निर्यास (सं०)	५२१
बीजपूर (क)–(सं०)	५२२
बाजूबंद	५३१–५३२
बीजबन्द (पं०)	३०९
बीजसाल (बं०)	५२१

विषय एंव शब्द — पृष्ठांक

बीजाबोल (हिं०;पं०;मा०) ५४३
बीजौरो (मा०) ५२२
बोटल नट (अं०) ६९०
बीटा वुल्गारिस (ले०) ३०८
बीटिन (अं०) ३०८
बीटिल या पेपरलीफ (अं०) ४४१
बीयों (गु०) ५२१
बीरन (मीरजापुर) २२०
बीरनी, बीरने २२०
बीली (गु०) ५३९
बीश (अ०; फा०) ४८५
बीहि (हिं०;म०) ५३०
बुइन (फा०) २२१
बुंघर बीदा (पं०;खिघ) २२४
बुंज (फा०) २९१
बुंद, बुंददाण (म०;गु०) १५०
बुंदुक (के) (हिं०) ४७५;६०७
बुकानानिआ लांजान (ले०) ३०१
बु० लाटोफोलिया (ले०) ,,
बुक्कन (ब०; उड़ि०;पं०) ३३१
बुक्कपुचेट्टु (ते०) ४३२
बुक्कम (पं०) ३३१
बुक्चिदाना (बं०) ४८०
बुखुर मरियम (अ०) ४८२
बुखुरे मर्यम् (अ०) ४८१
बुगरा (पं०) ७३१
बुजराँद (फा०) ४४६
बुड़िगुयापान (बं०) ३११
बुढ़ना (हिं०) ३१५
बुति–मुड़िप्पे (का०) ४७२
बुत्म (अ०) ३०४
बुत्म (बतुम) (अ०) ५३२
बुत्म (अ०) ५३२
,, ,, गोंद ,,
,, का फल (हिं०) ,,
बुद्दु (दि)ल (क०) ३६४

विषय एंव शब्द — पृष्ठांक

बुन (हिं०;द०) १५०;
बुन (फा०) ५३२
बुन्दक़े हिंदी (अ०) ६०७
बुन्न (अ०) १५०
बुरादए शीशम (फा०) ६४३
बुल्लूतुलमलिक (अ०) ५०१
बुशीगार्डीनिआ (अं०) ५९६
बुसीरा (अ०) ५७८
बूँद (द०) १५०
बूए जहूदान (फा०) २५२
बूए मादरान (फा०) ४९६
बूचर्स ब्रूम (अं०) ६४
बूज़गंज (फा० बम्ब) ४४६;५३२
बूजीदान बलायती (अ०;फा०) ५३३
बूट (बं०) २९०
बूटिआ गम (अं०) ४३७
बूटिया सीड्स (अं०) ,,
बूटेआ गुम्मी (ले०) ४३८
बूटेआ मोनोस्पेर्मा (ले०) ४३७
बूटेआ सेमिना (ले०) ,,
बूने (द०) १५०
बूनप श (क०) ४९१
बूरा (हिं०) २३५
बूरा, भूरा (बं०) २३५
बूलियून (अ०;यू०) ३४७
बूली(लू)गाली (अ०), सनेगा ५३३–५३४
बूहड़ (पं०) ४९५
बृहती (सं०) १०९
बृहदेला (सं०) ७३
बृहद् गोक्षुर (सं०) २७६
बृहल्लोणी(-णिका)-(सं०) १९५
ब्रेंगण (पं०) ५४१
बेंगसाग (हिं०) ५४५
बेंगालक्विन्स (अं०) ५३२
बेंजोइक एसिड (अं०) ३८१;४९९;६३०
बेंत (हिं०) ५३४–५३५

विषय एवं शब्द	पृष्ठांक
बेंदर (म०)	५२४
बेंपु (ता०)	४२३
बेख़ इज़ख़िर (फा०)	६९
बेख़ करफ़्स (फा०)	१५
बेख़ गाज़ुरान (फा०)	१००
बेख़चीनी (फ०)	३१२
बेख़ तर्ख़ून कोही (फा०)	९
बेख तफ़्त	६४५
बेख़ दारफ़िल्फ़िल् (फा०)	४४९
बेख फ़िलफ़िल् दराज़ (फा०)	४४९
बेख़ बरिंद (फा०)	३०६
बेख़ महक (फा०)	५८४
बेख़ रीशावाला (फा०)	६८६
बेख़ सुम्बुला (फा०)	६८६
बेखसोसन आस्मानजूनी	७०८
बेख़े कलंबः (फा०)	१४२
बेख़ेईरसा (फा०)	७०७
बेख़े कासनी (फा०)	१६७
बेख़े बनफ़्शा (फा०)	१८५;७०२
बेख़े बादियान (फा०)	७०६
बेख़े सोसन (फा०)	७०८
बेगुन (बं)	५४१
बेजिल कैम्फर (अं०)	३७३
बेठी रिंगणी (गु०)	१०९
बेडेला (बं०)	४९८
बेणू (म०)	५०५
बेत (हिं०)	५३४
बेतोशाक (बं०)	४८८
बेद (फा०)	५३४
बेद (फा०;क०;पं०), बेदसादा (फा०)	५३७
बेद अंगबीन (फा०)	५३६
बेद खिश्त	६४२
बेद मजनूँ (फा०)	५३७
बेदमिश्क (हिं०;पं०)	५३५
बेदमुश्क (हिं०;पं०)	५३५-५३६,५३७
बेदसादा (फा०)	५३७
बेदस्याह	५३७
बेदे बलखी, बेदेमुश्क (फा०)	५३५
बेत-नट (अं०)	५०१ पा० टि० १
बेनियनट्री (अं०)	४९५
बेनीनकासा हीस्पिडा (ले०)	४५८
बेन्जोइन (अं०)	६२९
बेन्जोइनुम् (ले०)	,,
बेर (हिं०)	१२५;५३८
बेरज़द (फा०)	३०४
बेरजो (गु०)	३०३
बेरा (हिं०)	१२९,१३०
बेरी (हिं०)	४३८
बेर्जेनिआ लीगूलाटा (ले०)	४२९
बेर्बेरिस आरिस्टाटा (ले०)	३८६
बे० आशियाटिका (ले०)	,,
बे० लीकिडम् (ले०)	,,
बे० वुल्गारिस (ले०)	,,
बेल (हिं०;बं०;अं०;म०)	५३९-५४०;५४८
बेलची, बेलदोड़े (म०)	७२
बेलगिरी (हिं०)	५३९
बेलपाडली (म०)	४४०
बेलफ़ूट (अं०)	५३९
बेलमूल	३३०
बेला (हिं०)	५४०-५४१
बेलाडोना (ले०)	६२६
बे-लॉरेल (अं०)	२४५
बेलेरिक मायरोबेलन (अं०)	५०४
बेहदानः (फा०)	५३०
बेहदाना (हिं०)	,,
बेहरामज (रू०)	५३५
बेहरोजा (फा०)	३०३
बेह हिंदी (फा०)	५३९
बैंगन (हिं०)	५४१-५४२
बै (म०)	५०४
बैजन्ती (गुलतस्बी(ह) (हिं०)	५४२
बैजयन्ती (सं०)	५४२

विषय एवं शब्द पृष्ठांक

बैतरा सोंठ (हिं०) ७०१
बैनाना (अं०) १९९
बैम्बू (अं०) ५०५
बैम्बू मेन्ना (अं०) ,,
बैर (पं०;सिं०;बं०) ५३८
बैरचूर ५३८
बैरिंगटोनिन ६६१
बैंसिग (कु०) २१
बोइन (फा०) २९१
बोएर्हाविया डिफ्फूजा (ले०) ४५३
बो० वेर्टीसिल्लाटा (ले०) ४५४
बोकाट (पं०) २२४
बोकोम (बं०) ४३२
बोखाह (हिं०) २२४
बोग्लोस्सूस (यू०;रू०) २४८
बोजीदान (भा० बा०) ५३३
बोड (पं०) ४९५
बोडी अजमूद (बम्ब०) १५
बोडी अजमोदो (गु०) १४
वोण (गु०) ११८
बोन-सेट (अं०) ५८
बोप्पयी (तें०) ३७
बोर (म०;गु०;बम्ब०) ५३८
बोरास्सुस फ्लाबेल्लिफॉर्मिस (ले०) ३६२
बोरास्सुस फ्लाबेल्लिफेर ३६२
बोर्नियो कैम्फर (अं०) १२१
बोल (सं०;फा०;बं०;हिं०) ५४३–५४४
बोलसरी (गु०) ५९९
बोलसियाह (फा०) २७९
बालीवियन कोका (अं०) ३०६
बोलूगाली ५३३
बोलूगालीन (अं०) ,,
बौंकड (पं०) २१
बौफली (हिं०) ५०४
बौरजिया (अं०) ६९
ब्डेल्लिओन (यू०) २५२

विषय एवं शब्द पृष्ठांक

ब्रह्मबूटी (का०) ५४५
ब्डेलियम् (अं०) ,,
ब्यो(व)हार (हिं०) ६१६
ब्रमी (ता०;मल०) ३३२
ब्रह्मदण्डी (सं०;हिं०;म०;कना०) ५४४-५४५
ब्रह्ममण्डूकी या मण्डूकपर्णी ५४५-५४७
ब्रह्मी (बम्ब०) ३६४
ब्रॉड-बीन (अं०) ५०७
ब्रॉड-लीव्ड विलो (अं०) ५३५
ब्रायोनिन (अं०) ४७४
ब्रास्सिका आल्बा (ले०) ६६५
ब्रास्सिका ओलेरासेआ प्र० बॉट्रीटिस् (ले०) २७७
,, काम्पेस्ट्रिस (ले०) ६६५
ब्रास्सिका जुंसेआ (ले०) ६०२
,, नाइग्रा (नीग्रा) (ले०) ,,
ब्राह्मणयष्टिका (सं०) ५५१
ब्राह्मी ५५१
ब्राह्ममी ? (बंगीय) ३३०
ब्रिजल (अं०) ५४१
ब्रिस्टली लुफ्फा (अं०) ४७८
ब्रिह्मी साक (बं०) ३३०
ब्रीओनिया आल्बा (ले०) ४७६
ब्रीओनिया डाओइका (ले०) ,,
ब्रीओनिया या ब्रीओनॉप्सिस लासीनिओसा (ले०) ४७४
ब्रीडेलिया मान्टाना (ले०) १६४
ब्री० वेर्हुकोजा (ले०) ,,
ब्रीहि (सं०) २९६
ब्रीहि ,,
ब्रूनेल्ला वुल्गारिस (ले०) ९०
ब्रूम-कॉर्न (अं०) ३५२
ब्रूसीन ४१८
ब्रोकोल्ली (अं०) २७७
ब्लवेन्ड सेज (अं०) ५०३
ब्लिफेरिन (अं०) ७९
ब्लूफ्लग (अं०) ७०७

विषय एवं शब्द	पृष्ठांक
ब्लू या स्वीट वायोलेट (अं०)	४९१
ब्लूमिया कैम्फर (अं०)	१२२
ब्लूमेआ बाल्सामीफेरा (ले०)	१७२
ब्लू० लासेरा (ले०)	१७८
ब्लूमैलो (अं०)	२८५
ब्लूवीड (अं०)	२४८
ब्लेफारिस एडुलिस (ले०)	७८
ब्ले० बोर्हेवीफ़ोलिआ (ले०)	७९
ब्लैक एल्डर (अं०)	२१३
ब्लैक क्युमिन (अं०)	३४१
ब्लैक जेडोअरी (अं०)	४०५
ब्लैक पेपर (अं०)	५७९
ब्लैक या पर्पल-फ्लावर्ड धतूरा (अं०)	३९७
ब्लैक या पर्पल मल्बेरी (अं०)	३७४
ब्लैक मस्टर्ड (अं०)	५६५
ब्लैक विलो (अं०)	५३७
ब्लैक हेलेबोर (अं०)	२१८
ब्लैक होरहाउंड (अं०)	४७०
ब्लैडर डॉक (अं०)	३०९
ब्वरि (ते०)	११८
ब्लयूफ्लावर्ड क्रोटेलेरिया (अं०)	६५८

भ

विषय एवं शब्द	पृष्ठांक
भंग (हिं०)	५४८
भँगरा (हिं०)	५४७–५४८
भँगरैया (हिं०;पं०)	५४७
भंगा (सं०)	५४८
भंगिए (सिंध)	५४७
भंटा, भाँटा (हिं०)	५४१
भिंवरी गोंद (हिं०)	४९३
भखड़ा (पं०)	२७४
भट, भटना(वाँ)स (हिं०)	७०५
भटकइया, भटकटाई (हिं०)	१०९
भटफली (हिं०)	२५१
भटा (हिं०)	५४१
भ(भँ)ड़(र) भांड (हिं०)	६५४

विषय एवं शब्द	पृष्ठांक
भत्तल (पं०)	२७९
भद्दा (हिं०)	४८८
भद्रदारु (सं०)	३९४
भद्रमुस्ता	५९८
भद्रश्री (सं०)	२८४
भद्रैला (सं०)	७३
भरंगी (पं०)	५५१
भरभंडा (हिं०)	६५४
भ्रेडमुरुक (क०)	५३५
भल्लातक (सं०)	५५३
भल्लातक मधु (सं०)	५५३
भल्लातक वृन्त (सं०)	५५३
भाँग (हिं०;म०;गु०)	५४८–५५०
भाँग	५४९–५५०
भाँगर (क०)	५४७
भाँगरा हिं०)	५४७
भाँगरो (गु०)	५५७
भाङ् (बं)	५४८
भात (म०)	२९६
भान (म०)	२९६
भापंगी (सं०)	६८५
भाफली (बम्ब)	५०४
भाभीरंग (हिं०)	५१६
भारंग (म०)	५५१
भारंगा (हिं०;गु०;बम्ब०)	५५१–५५२
भारतीय कुंदुर (हिं०)	६६७
भारतीय कुष्ठ	१८५
भारतीय जमालगोटा	३२२
भारतीय दालचीनी	३५८
,, रेवंद	६१२
भारतीय सुमाक	६९१–६९२
भार्गी (सं०)	५५१
भावजि (ते०)	४८०
भास्वराम्ल	५०७
भिंडर्क (सं०)	५५२
भिंडी (हिं०)	५५२

विषय एवं शब्द पृष्ठांक

भिंवरी गोंद (हिं०) ४९३
भिलामां (गु०) ५५३
भिलामा (गु०) ५५३
भिलायो (गु०;मा०) ५५३
भिलावाँ (हिं०) ५५३–५५५
भिलावा (हिं०;पं०) ५५३
भींड़ा (डे) (गु०) ५५२
भीमराज (बं०) ५४७
भींमरी गोंद (हिं०) ४९३
भीमसेनकर्पूर १२१
भुइँ नील ४९०
भुँइकोंहड़ा (हिं०) ५२४
भुइँनील ४९०
भुइगुली (म०) ४९०
भुइफोड़ (म०) २२६
भुइयाँ १५३
भुईरिंगणी (हिं०) १०९
भुई उम्बरा (म०) ८
भुई ओकरा (हिं०) ३३१
भुई कोहला (म०) ५२४
भुई(रान)घोल (म०) १९५
भुई चणे (वम्ब०) ५९०
भुई रिंगणी (म०) १०९
भुई सर्पटी (म०) ३६६
भुक्षुकु (मल०) ५२४
भुट (कुमा०) ७०५
भुटा (हिं०) ५५७
भुट्ट टिट्टुवन (क०) १७२
भुट्टा (हिं०) ५५७
भुरुंडी (म०;बम्ब०)
भुरूँ कोहलु (गु०) ४५८
भुशुरी शुँठ (बं०) ७०१
भूँई कुमड़ा (बं०) ५२४
भुँइकोहला (म०) ५२४
भूँफोड़ २२६
भूकर्बुदार (सं०) ६१६

विशय एवं शब्द पृष्ठांक

भूचणक (सं०) ५९०
भूच्छत्र (सं०) ५९०
भूटा (बं०) ५५७
भूतकेस (पहाडिया) ५१८
भूतजटा (क०) ५१६
भूताली (सं०) ४८७
भूतृण (सं०) ६९
भूदण्डी (सं०) ५१२
भूनिम्ब (सं०) १५९;३००
भूनीम (उड़ि०) १५९
भूफली (हिं०) ५०४
भूफोड़ (पं०) २२६
भूबदरी (सं०) ५३८
भूमिकूष्माण्ड (सं०) ५२४
भूमिदण्डी (सं०) ५१२
भूमिबला २७६
भूरिछरीला (हिं०) ३१५
भूरीखाँड (गु०) २३५
भूलग्ना (सं०) २७२
भूशेलु (सं०) ६१६
भृंगराज (सं०) ५४७
भें(भि)डा (सं०) ५५२
भेंडा(डे)-(म०) ५५२
भेरेंड, भेरेंडा (बं०) ६०९
भेरेंडा तेल ६०९
भेलवा (खर०) ५५३
भेला (हिं०;बं०) ५५३
भैंसा गूगल (सिं०) २५३
भोंपथरी (म०;गु०) २७९
भोंयदण्डी (गु०) ५१२
भोटिया बादाम (हिं०) ६०
(भोटीया) ६१
भोरिंगणी (गु०) १०९
भोरेंड (कु०) १६०
भ्रेडमुद्दक (क०) ५३५

विषय एवं शब्द पृष्ठांक

म

मंकी पेपर (अं०) ७१४
मंकी-फेस-ट्री (अं०) १३२
मंकी फ्रूट (अं०) ४८८
मंग (ते०) ५९६
मंगकोप(ब) (ब्रह्मा) ५९२
मँगरैला (हिं०) १४३
मंगामरम् (ता०) ५५
मंगिस्तना (म०) ५९२
मंगुस्ता (मल०) ५९२
मंगुस्तान, मंगोस्तान (हिं०; बं०; बम्ब०) ५९२
मजिष्ठा (सं०; बं०; म०) ५६२
मॅजीठ (हिं०) ५६२
मॅडुआ (हिं०) ५५५
मंदारै (ता०) १०५
मइन (जौनसार) ३१९
मकई (हिं०; पं०) ५५७
मकड़ा (हिं०) ५५५
मकड़ी मूतना ४३
मक़दूनी (अ०) १५
मकरकेंद (संथा०) ३७५
मक़लियासा (अ०) ७२६
मका (म०) ५५७
मकाई (हिं०; गु०; सिंध) ५५७-५५८
मका(खा)णे (म०) ५६१
म(मु)कुष्ठक (सं०) ५९७
मको (हिं०; पं०) ५५८
मकोइचा (हिं०) ५६०
मकोइया (हिं०) ,,
मकोय (हिं०) ५५८
मकोय(ई) (हिं०) ५६०
मकोय (उर्दू) ६२६
मकोय जंगली ५६०-५६१
मकोय लाल ४५९-५६०
मकोर (म०) ५६०
मक्का (हिं०; मार०) ५५७

विषय एवं शब्द पृष्ठांक

मखमल (बम्ब०) २७१
मखाणा (गु०) ५६१
मखाना (हिं०; बं०) ५६१-५६२
मखान्न (सं०) ५६१
मखारा (हिं०) ५६१
मग (गु०) ५८९
मगवर्ट (अं०) ३२;३९५
मगा (पं०) ४४८
मग़ासे हिंदी (अ०) ५९५
मगिया माई (बम्ब०) ३५३
मगिया मैन (बम्ब०) ४७१
मग़ज़ अमलतास (अ०) ३५
,, कश्नीज़ (फा०) ३९९
,, तुख़्म इमली (फा०) ७१
,, ,, करंजुवा (अ०) १३६
,, ,, बुत्म (फा०) ५३२
मग़ज़ नारजील (अ०) ४१४
,, पिस्ता ४४७
,, फ़ुलूस खियार शंबर (अ०) ३५
,, बेल (फा०) ५३९
,, बेह हिंदी (फा०) ,,
मग़ज़ सफरजले हिंदी (अ०) ,,
मग़द (अ०) ५४१
मछेछी (हिं०) ५६१-५६२
मज़ारमुंड (क०) ७०७
मज़ारपोश (फा०) ७०८
मजीठ (हिं०; पं०; गु०) ५६२-५६३
मजेठ (क०) ५६२
मज्जफल (सं०) ५७४
मटर हिं०) ५६३-५६४
मट्टक (सं०) ५५५
मट्र (पं०; बं०; गु०) ५६३
मठ (म०; गु०) —
मडार अल्बन (अं०) ४९
मडुआ (हिं०) ५५५
मण्डूकपर्णी (सं०) ३११, ३३१

विषय एवं शब्द **पृष्ठांक**

मत्स्यगंधा (सं०) ३३१
मत्स्यण्डिका (सं०) २३७
मत्स्याक्षक (सं०) ५६१
मत्स्याक्षी (सं०) ,,
मद (बं०) २३८
मदक ४६१
मदकारिणी (सं०) १८
मदगन्धवती (सं०) ३२३
मदन (म०) ५९६
मद्न, मदनफल (सं०) ,,
मदयन्तिका (सं०) ५९३
मदर ऑफ थाइम (उ०) ७२७
मदार (हिं०) ४८
मदारकांडा (हिं०) ५०
मदार लाल (हिं०) ४९
मदिरा (सं०) २३८
मदिरा (हिं०) ,,
मद्य २३४; २३८-२३९
मधुक (सं०) ५८४
मधुकर्कटी (सं०) २८७
मधुकर्कटी (सं०—नवीन) ३७
मधुजम्बीर (सं०) ४२२
मधुनाशिनी (सं०) २५४
मधुयष्टि (–का) (सं०) ५८४
मधुयष्टी (सं०) ,,
मधुरगंधी (सं०) ४०८
मधुर वाताम (सं०) ५०९
मधुरिका (सं०) ७०६
मधूक (सं०) ५७२
मध्यदण्डा (सं०) २७९
मनवाँ (हिं०) ११८
मनशिम् (अ०) ५६४
मनसागाछ (बं०) ३७९
मनसासिज (बं०) ,,
मनसिम् (मिनसिम् या मिनशम्) (अ०) ५६४-५६५
मन्की या पी-नट (अं०) ५९०

विषय एवं शब्द **पृष्ठांक**

मन्दार (सं०) ४८
मन्द्राग़ोरस (यू०) ६२५
मन्न (अ०) ६४१-६४२
मन्न ख़रज़हरा ६४२
मन्ना (मल०; यू०; ले०) ६४१
मन्शिम (अ०) ५६७
मन्सा (अ०) ४१०
मन्सू(शू)र (अ०) २२८
,, सुर्ख़ २२८
ममरी (हिं०) ३७२, ३७३
मर्मीरा (हिं०; म०) ५६५-५६६
ममीरो (बं०) ५६५
मम्मीरा (बम्ब०) ५६५
मयनफ़ल (बं०) ५९६
मयना (थार) ५९६
मरचाँ (गु०) ५८१
मरचा, मर्चा (हिं०) ,,
मरयम का फल (द०) ३३
मरवा (फा०) ३२
मरांटा आरुन्डीनासेआ (ले०) ३६८
मरि(री)च (सं०) ५७९
मरिजाने: (अ०) ३४६
मरी (गु०) ५७९
मरीआँ (गु०) ,,
मरुक्कालम् (ता०) ५९६
मरुदोंड्रि (ता०) ५९३
मरुरुह (सं०) १३७
मर्कटतिन्दुक (सं०) ३७५
मर्ग़ (फा०) ३९३
मर्ज़न्ज़ोश ३११
मर्दुम गियाह (फा०) ६२५
मर्व (फा०; इस्फ़हान) ११८
मलककनी (कुमा०) ५७६
मलख़भदार ५०
मलपू (सं०) ८
मलबार नाइटशेड (अं०) ४५९

विषय एवं शब्द पृष्ठांक

मलयवचा (सं०) १९२
मलाख़ी (यू०) २२५
मलाबार-काइनो ५२१, ५२२
मलाबारी इलायची (बम्ब०) ७२
मलिकुल् बक़ूल (अ०) ६३७
मल्लवेणु (मल०) ४७९
मल्लिका (सं०) ५४०-५४१
मल्लिजाई (ता०) ५४०
मवीज़ (फा०) २
मवीज़ बेदाना (अ०) ३
,, सहराई (फा०) ५६९
मवीज़क (फा०) ५०९
मवीज़क असली (फा०) १७४
मवीज़ज (अ०) ५६९-५७०
मवीज़जे असली (अ०) १७४
मशी (फा०) ४५२, ५६४
नश्तुज़्ज़ीब (अ०) १७६
मश्तुलग़ौल (अ०) ९५
मसरवेल (आसा०) २२६
मसि (सं०) ४१
मसी १५३
मसुरी (हिं०) ५६०
मसूर (हिं०; सं०; पं०; म०) ५७०
मस्करूट (अं०) ६८६
मस्कसेन्टेड रोज़ (अं०) १९९
मस्टर्ड (अं०) ६६५
,, आयल (अं०) ६६५
म(मा)स्टिके (ले०) ५७० ५७१
मस्तकी (अ०) ५७०
मस्तकी रूमी (फा०) ५७०
मस्तकी-ए-रूमी (अ०) ५७०
मस्तगी (हिं०) ५७०–५७१
मस्तगीके चूर्ण बनानेकी विधि ५७१ पा० टि०
मस्तगी और संदरूसके भेदक लक्षण ५७१
मस्तापाट (बं०) ७१४
मस्तियारा (पं०) ३२

विषय एवं शब्द पृष्ठांक

मस्नान (अ०) ६५६
मस्लून (पं०) ५
महक मतक़ी (फा०) ५८४
महदबः (अ०) ४५८
महमूदा (अ०;फ़ा०) ६५२
महलिब, मिहलब (अ०) ७१५
महा(राज)कोशातकी (सं०) २०६
महाझावुक (सं०) ४७१
महातिक्त (सं०) १५९
महानिम्ब (सं०) ४७९
महानीबू (द०) २८७
महानीम ४७९
महापीलु (सं०) ४५०
महाभाँग (हिं०) १५९
महासुण्डी (सं०) ५५६
महामेद(मिद) (का०) ९३
महालुंग (म०) ५२२
महाशतावरी ६५४
महाश्रावणी ५५६
महासुर (सं०) ३९७
म(मा)हिलू (फा०) ७१६
महिषाक्ष गुग्गुलु (सं०) २५३
महुआ (हिं०;पं०) ५७२–१७३
महुडो (गु०) ५७२
महुवा (हिं०) ५०३
मह्दबः (अ०) ४५८
मह्वा (पं०) ५७२
मांगाफेरा ईंडिका (ले०) ५५
मांसफल (स०) ३६०
मांसी (सं०) ५१८
माइकोलिआ चम्पका (ले०) २८६
माइरॉक्सिलॉन पेरीरी (ले०) ४९९
मा० बाल्सामुम् (ले०) ४९९
माई ४७१
माई कला (फा०) ३५३

विषय एवं शब्द पृष्ठांक

माईं खुर्द (फा०) ४७१

,, छोटी (हिं०) ४७०

माईं छोटी व बड़ी ३५४

माईंफल (द०;बम्ब) ५७४

माउ (म०) ६४१

माउन्टेनपाइन (अं०) ६६०

माउल्खिलाफ़ ५३६

माउल् बहरामज (अ०) ,,

माउल्लीम (अ०) ४२२

माउस इयेर (अं०) ३११

माका (म०) ५४७

माका केंद (संथा०) ३७५

माकेर (यू०) ३६५

मागूडारिस (यू०) ९१

माचीपत्री (ते०;सं०) ३९५;३९५

माजरियून (हिं०;भा०बा०) ५७३–५७४

माजरियून हिन्दी १६०-१६१;५७३

माज़र्यून (अ०) ५७३

,, का शोधन ५७३

माजुफल (गु०) ५७४

माजू (फा०) ५७४

,, नीला ,,

,, सफेद ,,

,, सब्ज स्याह ,,

माजूफल (हिं०;बं०;द०;बम्ब) ५७४–५७५

माज़ेरियून (अ०) ५७३

माज्ञ, मोज्ञ (क०) ५९३

माट्रीकारिआ कामोमिल्ला (लें०) ५१३

मा० पार्थेनिडम् (लें०) ५१५

माड़ (म०) २१०;४१४

माड़ो (म०) २१०,४१५

माणी (बं०) ५५५

माण्डवी (गु०) ५९०

मातुलुंग (सं०) २८७;५२२

मादलम् (ता०) ५२२

विषय एवं शब्द पृष्ठांक

माधूका इंडिका (लें०) ५७२

माधूका लेटीफ़ोलिआ (लें०) ,,

मार्नीलकारा हेक्साण्ड्रा (लें०) २२२

मामज्जक (सं०) ४१२

मामिजवा (म०) ४१२

मामीरान (अस०;बम्ब०) ५६५

मासीसा ५७५–५७६

मामूदा (ते०;ता०) ६५२

मामेख़ (पं०) ५;९३

मामेजवो (काठिया०) ४१२

मायलू (फा०) ७१६

मायाल (म०) ४५९

मायाफल (सं०) ५७४

मायाल ची बेल (म०) ४५९

मायुं (गु०) ५७४

मायुक (सं०) ५७४

मारगियाह (फा०) ७२२

मारचोबः (फा०) ,,

मारदारू (फा०) ४७३

मारांटा आरुंडीनासेआ (लें०) ३६८

मारुकोरे (ता०) ५९६

मारू ५०१

मारूबैंगन ५४१

मार्कंव (सं०) ५४७

मार्किग-नट (अं०) ५५३

मार्गोसीन (अं०) ४२४

मार्टीनिआ आन्नुआ (लें०) १६१

मार्फीन (अं०) ४६२

मार्रूबिडम् नीग्रुम् (लें०) ४७०

मारूबिडम् वुलगारे (लें०) ,,

मार्रुबिन ४७०

मार्वेल-आफ-पेरू (अं०) २५६

मार्श या हेयरमिंट (अं०) ४५२

मार्शमैलो (अं०) २११

मालककनी ५७६

मालकँगनी (हिं०;पं०) ,,

विषय एवं शब्द **पृष्ठांक**
मालकाकनी (हिं०) ,,
मालकाँकिणा (गु०) ५७६
मालकांगणा (गु०) ,,
मालकाँगनी (हिं०) ५७६–५७७
मालकाँगाणी (म०) ५७६
मालटा (हिं०;बं;बम्ब०) ५८७
मालटांगुन (था०) ,,
(१) मालती (सं०;हिं०;बं०;गु०;बं०;मार०) ५७७
(२) मालती ५७८
माल्य (सं०) ६८
माल्लोटुस फिलीपिनेन्सिस (ले०) १३३
माल्वा सिल्वेस्ट्रिस (ले०) २२५
माविलिंगम् (ता०) ४९७
माशिना (पं०) ४२
माशि(चि)पत्री (ता०) ३९५
माशे हिन्दी (फा०) १९४
माशो (पं०) ७२७
माष (हिं०) ७९
माष (सं०;अ०) ७९
माष (अ०) ५८९
माषकलाय (बं०) ५८९
माषपर्णी (सं०) ८०
माषे सब्ज़ (फा०) ५८९
माषे स्याह, माषे हिंन्दी (अ०; फा०) ७९
मॉस (अं०) १५२
मॉसफ़र (अ०) १९७
मासो (मा०) ६६४
माहपर्वी (फा०) ३१९
माहप(फ़)र्वीन (फा०) ७१६
माहफ़र्फ़ीन (फा०) ३१९
माहलूज (अ०)
माहीज़हरज (अ०) ५७८-५७९
माहीज़हर; (फा०) ५७८
माहीलियून (यू०) १२७
मा-हुआंग (चीन) ७०२
माहूदानः (फा०) ३२१

विषय एवं शब्द **पृष्ठांक**
मिट गलोडी (गु०) ४३४
मिंडल (पं०) ५९६
मिचिरकुण्ड (क०) २७४
मिझनी (मोरजापुर; पलामू) ५७६
मिटेविष (बं०) ४८५
मिठा लेंबु (बं०) ४२२
मिठीकाठी (सिं०) ५८४
मिनका (मा०) १
मिनगुट (म०) ३७९
मिन्था (यू०) ४५२
मि(मे)न्सा (अ०) ,,
मिरचा (हिं०) ५८१
मिरजूमक (फा०) ५७०
मिरिच (हिं०; म०) ५७९
मिरी (म०) ५७९
मिरीस्टिका फ्राग्रांस (ले०) ३३८
मिरीस्टिका मालाबारिका (ले०) ,,
मिरे (म०) ५७९
मिर्च कंकोल (हिं०) ९३
मिर्च काली ५७९-५८०
,, लाल ५८१-५८१
,, सफेद ५७९
मिर्चाई (हिं०) ३११
मिर्चियाकन्द (हिं०) ४४०
मिर्ची (द०; बम्ब०) ५८१
मिर्टिल (अं०) ६३
मिर्टुस काम्युनिस (ले०) ६३
मिर्ह (अ०) ५४३
मिर्रिं (पं०) ३०२
मिर्हिन (अं०) ५४६
मिलिया (यू०) ६९७
मिलेट (अं०) ३५२;५०७
मिलेट (अं०) ५०७
मिल्लुश्शईर (अ०) ३५०
मिशमिश (अ०) ३२४
मिश्कतरामशी, मिश्केतरामशीअ (भा० बा०) ५८२

विषय एवं शब्द	पृष्ठांक
मिश्केतरामुशीअ (अ०)	५८२
मिश्री	२३६
मिश्रेया (सं०)	७०६
मिष्ठनिम्बू (सं०)	४२२
मिष्ठवाताद (सं०)	५०९
मिष्मीतिक्ता (सं०)	५६५
मिष्मीतीत (बम्ब०)	,,
मिष्मीतीता (अस०)	,,
मिस्कुर्रुम्मान (अ०)	४०७
मिस्बाहुर्रूम (अ०)	१४८
मिस्वाकुल् अब्बास(अ०)	११२
मिस्वाकुल् मसीह (अ०)	११२
मिस्वाकुर्राई (अ०)	३०६
मिस्सेल्टो (अं०)	१७५
मिह्रे गियाह (फा०)	६२५
मींजनी (हिं०)	५७६
मींढल, मींढोल (गु०; मा०)	५९६
मीअः (अ०)	६४०
,, याबिसा (अ०)	६४०
मीअः साइला (लब्नी; लब्ना) (अ०)	६४०
मीठा (पं०)	४२२
,, अकरकरा (हिं०)	५३२
मीठा अनार	२६
,, इन्द्रजौ (हिं०; द०; गु०)	१८८
मीठा कद्दू (रलौआ)	११ , ११५
,, कुट	१८२
,, कुड़ा (सफेद कुड़ा) (हिं०)	१८८
मीठां गोखरू (गु०)	२७४
मीठा चिरायता	३०१
,, जहर (हिं०)	४८५
,, तेल (हिं०; गु०)	३६७
,, तेलिया (पं०)	४८५
,, नीबू (हिं०)	४२२
,, वच	४८४
,, बादाम (दाम)-(हिं०)	५०९
,, लिम्बु (गु०)	४२२; ५०९

विषय एवं शब्द	पृष्ठांक
,, विष (जहर)-(पं०)	४८५
मीठा सुरजान	६९२-६९३-६९४
मीठी आवल (गु०)	६५८
,, कटाई (हिं०)	५८४
,, जाल (र)-(गु०)	४५०
,, लकड़ी (म०)	५८४
मीथ (क०)	५९४
मीथिल क्रोटोनिक एसिड (अं०)	३२२
,, चविकोल (अं०)	३०
मीनाक्षी (सं०)	५६१
मीमूसॉप्स एलेङ्गी (ले०)	५९९
मीमोसा नेटान्स (ले०)	—
मीमोसा पूडिका (ले०)	३१७
मीराबिलिस जलापा (ले०)	२५६
मीरिका एस्कूलेंटा (ले०)	१५८
मीर्हा (ले०)	५४३
मीर्हिस ओडोराटा (ले०)	६८५
मुंग (फा०)	५८९
मुंगानी (हिं०)	५८९
मुंडी (सं०; हिं०; पं०)	५५६-५५७
मुक़लयासा	७२६
मुकूल (क) (सं०)	४४६
मुकूट विटप (सं०)	४४६
मुक़्ल, मुक़िल (अ०)	२५४
मुक़्ल अर्ज़क़ (अ०)	,,
मुक़्ल मक्की (अ०)	,,
मुक़्लुद्दूम (अ०)	,,
मुक़्ले यहूद (अ०)	२४२
मुक्ले सकलानी (सक़ालनी) (अ०)	२५२
मुक़्ले हिंदी (अ०)	,,
मुख़ीता (अ०)	६१६
मुगलाइ बेदाणा (गु०)	५३०
मुगानी (हिं०)	५९७
मुग़ीलाँ (फा०)	४९३
मुगेला (बं०)	१४३
मुच(चु)कुन्द (सं; हिं०; म०; गु०; क०)	५८३

विषय एवं शब्द	पृष्ठांक
मुचुकुंद चाँपा (बं०)	५८३
मुजनी (पलामू)	५७६
मुर्जरिबुलृ कलाब (अ०)	८
मुज्ज (अ०)	५८२
मुज्जी (क०)	५९०
मुझ (क०)	,,
मुञ्ज (अ०)	५८९
मुञ्जमुरीन (क०)	१७२
मुञ्जातक (सं०)	६६६
मुण्डचणक (सं०)	५६३
मुण्डयव (सं०)	५५१
मुण्डिका (सं०)	५५६
मुता (बं०)	४९८
मुथरां, मुथ्रां (पं०)	५९८
मुथा, मोथा (हिं०)	५९८
मुद्ग (सं०; बं०)	५८९
मुद्गपर्णी (सं०)	,,
मुद्रा (म०)	९५
मुनक्का	२३
मुनक्का (हिं०)	२
मुनक़्क़ा (अ०)	२
मुनगा (हिं;० द०; ते०)	६६९
मुनमुना (हिं०)	२२४;२३३
मुफ़र्रेहुल् क़ल्ब (अ०)	५२८
मुमीरा (हिं०)	५६५
मुम्सिकुल् अरवाह (अ०)	९०
मुरंग (द०)	६६९
मुरंग मरम् (ता०)	,,
मुरंगा (द०)	,,
मुरंगी (सं०)	६६९
मुर, मुर्र (अ०)	५४३
मुरई (हि०)	५९०
मुरगी गोड़ (उड़ि०)	१५३
मुरब्बा आमला	५७
मुरब्बाए हलैल:	७१३
मुरमकी (पं०)	५४३

विषय एवं शब्द	पृष्ठांक
मुरमुक्की	५४३
मुरमुरिया (वं०)	५५६
मुरि (पं०)	५९०
मुरुक्कप्यूयम् (मल०)	४२०
मुरुक्कु (ता०)	४३७
मुलहठी (हिं०)	५८४
मुलठी (हिं०)	,,
मुलतानी हींग (सिं०)	७३०
मु(मू)ला (म०; गु०)	५९०
मुलीन (अ०)	५८३
मुलीम	५८४
मुलूकि(खि)या (यू०)	३४५, ३४६
मुलेठी (हिं०; पं०; उ० प्र०)	५८४–५८६
मुलेठी का सत (हिं०)	५८४;५८५-५८६
मुल्ल (म०)	५४०
मुल्लिलवु (मल०)	६९८
मुशंग, मुशंगगावी (फा०)	५८३
मुशंगदान (फा०)	५६४
मुश्कदाणा (म०)	५८६
मुश्कदाना	५५२
मुश्कदाना (हिं०; बं;० गु०; मार०; फा०)	५८६-५८७
मुश्क(ष्क)बाला (हिं० बं०)	५५२; ३५७
मुश्कबेद (फा०; क०)	५३५
मुश्कियार (पं०)	२१२
मुश्कीवफादार (फा०)	२६३
मुश्तरू (अ०)	५७३
मुष्कक (फा०)	५९८
मुष्क ज़ेरे ज़मीं (फा०)	५९८
मुष्के ज़मीं (फा०)	,,
मुसब्बर हिं०)	२७९-२८०
मुसम्मी (हिं०, बं०; बम्ब०)	५८७
मुसली काली व सफेद	५८७-५८८
मुसलीकन्द मुसली (सं०; हिं०)	५८७–५८८
मुस्तक, मुस्त(ता)-(सं०)	५९८
मुस्तक्का (अ०)	५७०
मुस्ना (संथा;० सिंघ)	६७३

विषय एवं शब्द **पृष्ठांक**

मुस्सूरि (बं०) ५७०
मुहूरे गियाह ६२५
मूँग (हिं०) ५८९–५९०
मूँगफली (हिं०; म०) ५९०
मूँगफली का तेल (हिं०) ५९१
मूँगरे ५९१
मूंसली (हिं०) ५८८
मूकूना प्रूरीटा (लै०) १०१
मूक्किरट्टै (ता०) ४५३
मूग (म०) ५८९
मूछ्नी (हिं०) ६४६
मूनफ्लॉवर (अं०) ५८९
मूयबखुशा (फा०) ३२
मूरददानः (फा०) ६३
मूरा (हिं०) ५९०
मूलक (सं०) ५९०
मूला (वं०) ,,
मूली (हिं०) ५९०–५९२
,, के बीज (हिं०) ५९०-५९१
मूलो (गु०) ५९०
मूषक (फा०) ६१५
मूषाकर्णी (सं०) ३११
मूसला (ली)-हिं०) ६९६
मूसला (ली) सेमल (हिं०) ६९२
मूसली दक्खिनी ५८८
मूसा (ज़ा) (लै०) २००
मूसाकानी (हिं०) ३११
मूसा पाराडीजिका (लै०) १९९
मूसा सापीन्टुम् (लै०) ,,
मूसीर पहाड़ी लहसुन (शीरा०) ८९
मेंगोस्तान, मेंगोस्ता(स्ति)न (हिं०; बं०; बम्ब०) ५९२
मेंगोस्तीन, मुंगिस्तान ५९२
मेंति (ते०) ५९४
मेंथा पाइपेरीटा (लै०) ४१०
मेंहदी (हिं०; का०) ५९३–५९४
मेउदी (वं०) ५९३

विषय एवं शब्द **पृष्ठांक**

मेउ(व)ड़ी (हिं०) ६५०
नेउम् डीफ्फूजुम् (लै०) ६८५
मेक्योन रूईआस (यू०) ४६१
मेक्सिकन पॉपी (अं०) ६५४
मेखक (फा०) ६३२
मेज (अं०) ५५७
मेजीरिओन लीव्ज (अं०) ५७३
मेजेरी फोलिआ (लै०) ,,
मेजोरिनिक एसिड (अं०) ५७३
मेडाशिंगे (पं०) २५४
मेडेन हेयर (अं०) ७१०
मेडो सैफ्रन (अं०) ६९२
मेढासिंगी (हिं०) २५४
मेणफल (पं०) ५९६
मेथरे, मेथरो (पं०) ५९४
मेथिका (सं०) ५९४
मेथी (हिं०; द०; म०; गु०) ५९४–५९५
मेद (मीरजापुर) ५९५
मेदालकड़ी, मेदासक (पं०) ५९५
मेना (ता०, ते०) ६४१
मेन्ड्रागोरा ६२५–६२६
मेन्दी (सं;० बं०; म०; गु०) ५९३
मेन्था आक्वाटिका (लै०) ४१०
मेन्था आर्वेन्सिस (लै०) ,,
मेन्था पोपेरासेडस (लै०) ४४५
मेन्था पीपेरीटा (लै०) ४४४
मेन्था साटीवा (लै०) ४४२
मेन्था सिल्वेस्ट्रिस (लै०) ,,
मेन्था स्पीकाटा या विरिडिस (लै०) ,,
मेन्थोल (अं०) ४४४, ४४५
मेन्दी (सं०; बं०; म०;) ५९३
मेन्ना (अं०) ६४२
मेन्ना ऑफ दि डेजर्ट (अं०) ३३४
मेमेसीलॉन टिंक्टेरिउम् (लै०) ६३
मेयन (यू०) ५८४

विषय एवं शब्द	पृष्ठांक
मेरुया (बं०)	५५५
मेरेंमिआ गैंजेटिका (ले०)	३११
मेलन लाइम (अं०)	५२२
मेलफर्न (अं०)	६६३
मेलफल (म०)	५९६
मेलालिउका काजुपुटी (ले०)	१३४
मेलालिउका लीउकाडेन्ड्रोन (ले०)	,,
मेलिआ आज़ेडाराक (ले०)	४७९
मेलिलाँट (अं०)	६८
मेलिसा आफ़्फ़ीसिनेलिस (ले०)	४४९
मेलीलोटुस आफ़्फ़ीसिनालिस (ले०)	६७
मेलीलोटुस आर्वेन्निस (ले०)	६८
मेलीस्सा आफ्फीसिनालिस (ले०)	५२८
मेलीस्सा पार्वीफ्लोरा (ले०)	,,
मेलुस पूमिला (ले०)	६९७
मेलेडाथ्रोन (यू०)	४४१
मेलोकिया कॉर्कोरीफोलिया (ले०)	३४५
मेल्फोइल (अं०)	४९६
मेषश्रृंगी (सं०)	२५४
मेषसिंगी (बं०)	२५४
मेस (अं०)	३३७
मेसुआ फेरंआ (ले०)	४०७
मेहदी,मेहँदी (हिं०;मा०)	५९३
मैंगो-टर्मेरिक (अं०)	४७
मैंठ (सिंध)	५९२
मै (फा०)	२३८
मैकोनियून (यू०)	४६१
मैक्रोटोमिआ बेन्थमाई (ले०)	२४८
मैतब्रंद (क०)	६२६
मैदालकड़ी (हिं०;म०;बम्ब)	५९५–५९६
मैदासोंठ (हिं०)	७०१
मैनफर (हिं०)	५९६
मैनफल (हिं०)	१८०;५९६–५९७
मैन्ड्रागोरा (अं०)	४७३
मैन्ड्रागोरोस (यू०)	६२५
मैलाञ्चि (मल०)	५९३
मैलिक एसिड (अं०)	३७;६१;३८६;४२२;६९७
मैस्टिक (अं०)	५७०
मैस्टिकोनिक एसिड (अं०)	५७१
मैस्टिकोलिक एसिड (अं०)	,,
मोंकर (म०)	६१६
मोंगरो (गु०)	१७८
मोंगली बेदाना (म०)	५३०
मोंहद (क०)	४८५
मोख़ा(ख़ी)त (अ०)	६१६
मोखात (ए)कबीर (अ०)	६१६
मोगरा (हिं०; म०;बं०)	५४०
मोगरी (बं०)	५४०
मोगरो (गु०)	५४०
मोगलाई एरण्ड (म०)	६११
मोचरस (हिं०;म०;क०;ते०;ता०;बम्ब०)	६९८–६९९
मोचा (सं०)	१९९,२००
मोचा (सं०)	६९८
मोचास्राव (सं०)	६९८
मोञ्ज (बं०)	५९३
मोटा(म्हाटाँ)गोखरू (गु०)	२७६
मोटो लाने (पं०)	८४
मोटुग (ने०)	४३७
मोठ (हिं०)	५९७
मोठ-बीन (अं०)	५९७
मोठी(म्होटी) घोल (म०)	१९५
मोठी दुधी (म०)	३९१
मोठें गोखरू (म०)	२७६
मोतिया (हिं०)	५४०
मोथ (म०;गु०)	५९८
मोथा,नागरमोथा	५९८
मोथी (हिं०)	५९७
मोथीतृण (हिं०)	४३०
मोमाद्रु (का०)	४९६
मोमोर्डिका कारांटिआ (ले०)	१३९
मोमोर्डिका डिओइका (ले०)	१०४
मोयन (खर०)	५९६

विषय एवं शब्द पृष्ठांक

मोयाफूल (बं०) ५७२
मोरमूज़ (क०) ४१२
मोरिंगा ओलेईफेरा (लें०) ६६९
मो०कॉन्कान्नेन्सिस (लें०) ६६९
मोरिंगिनीन (अं०) ६७०
मोरिंगीन (हिं०) ६७०
मोरुस आल्बा (लें०) ३७४
मोरुस ईंडिका (लें०) ,,
मोल (पं०;हिं०) १९७
मोशब्बर (बं०) २७९
मोस (द०) १५२
मोसिना (बं०) ४२
मोस्त (क०) ५९८
मोहड़ा (म०) ५७२
मोहरा (जम्मू) ४८५
मोहरी ४८५
मोहरी (म०) ६०२
मोहा (द०) ५७२
मोहुवा (बं०) ,,
मौज़ (अ०;फा०;द०) १९९;२००
मौन (गया) ५९६
मौरी (बं०) ७०६
मौल (बं०) ५७२
मौलसरी (हिं०) ५९९
मौलसिरी (हिं०;पं;मा०) ५९९
मौ(सु)संबी (हिं०;बं०;बम्ब०) ५८७
मौसली (हिं०) ५९९
म्योंडी (हिं०) ६५०
म्योटी हरड़े (गु०) ७१३
म्रंग (ते०) ५९६
म्हाटी मोटी) लुणी (गु०) १९५

य

यंबूत (श्याम) २१७
यक्षद्रु तैल (सं०) २४०
यक्षद्रुम (सं०) २४०

विषय एवं शब्द पृष्ठांक

यज्ञडुमुर (बं०) २६९
यबरूज (अ०;भा०बा) ६२५–६२६
यबरूजु(हु)स्सनम् (अ०) ६२५;६२६
यबरूह (अ०; बं०) ६२५,६२६
यरंड़ी (द०) ६०९
यव (सं०) ३४८
यवक्षार (सं०) २००;३२५
यवतिक्ता (सं०) १५९
यवनपर्पट (सं०) ६३७
य(या)वनाल (सं०) ३५२
यवमड ३४९
यवश(स)क्तु (सं०) ३४९
यवानी (सं०) १६
यवास(क) ३३४
यवासशर्करा (सं०) २३६;३३४;३३५;३३६
यष्टिमधु (सं०; बं०) ५८४
यष्टीमधुक (सं०) ५८४
यष्टीमधुकमु (ते०) ५८४
यावक (सं०) ३५०
यावनी (सं०) १८
यावशूक (सं०) ३५०
यास (सं०) ३३४
यासशर्करा (सं०) ३३४;३३५;३३६
यासमन, यासमीन, यासमुन (अ०) २९१
यासमीन ज़र्द (फा०) २९२
युकेलिप्टस (अं०) ६००
युकेलिप्टस रॉस्ट्रेटा (लें०) ५२२ पा० टि०
युकेलिप्टसका तेल ६००
युजीनिक एसिड ६३२
यु(यू)फॉर्बिअ(य)म् (अं०) ४६९
यू (अं०) ३६४
यूकेलिप्टस ६००
यूजीनीन ६३२
यूजीनोल ३७७;६३३
यूथिका,यूथी (सं०) ३४४
यूथिकापर्णी (सं०) ४४४

बिषय एवं शब्द पृष्ठांक
यूपेटोरियोन (यू०) २४२;२४४
यूरोपियन ग्राउंड पाइन (अं०) १३२
यूरोपियन मिस्टलेटो (अं०) १७५
यूरोपियन हेलेबोर (अं०) २१७
यूबी (ले०) २
येर्रो (अं०) ४९६
येलो थिसल (अं०) ६५४
योजनवल्ली (सं०) ५६२

र

रंग (उर्दू) ४९३
रंगतरा (हिं०) ६४८
रंगा आलू (बं०; असम) ६३४
रक़अ यमानी (अ०) १८०;५९६
रक़आ बसरा (अ०) २१२
रकस (कोल) ४५८
रकसवा (हिं०) ४५८
रकसवा (हिं०;कोल) ४५८
रक़ूबत यमानिया (अ०) ६१२
रक्त उपोदिका (सं०) ४५९
रक्त कंबल (सं०) १३०
रक्त केरु (बं०) ३९१
रक्त चन्दन (सं०;बं० म०) २८३
रक्त चन्दुन (क०) २८३
रक्तझावुक (सं०) ४७१
रक्तनिर्यास (सं०) ३८०
रक्तपादी (सं०) ३१८
रक्तपुष्पी (सं०) ६५६
रक्तपूतिका (सं०) ४५९
रक्त बन पुँई (बं०) ४५९
रक्त मरिच (सं०) ५८१
रक्तशालि (सं०) २९६;२९७
रक्तशाल्मली (सं०) ६९८
रक्तिका (सं०) २८२
रचकोल (क०) २८२
रज़ (फा०) १

विषय एवं शब्द पृष्ठांक
रजनीगंधा (सं०; बं०) २६२
रजलः (अ०) १९५
रजायन, रजायन की भाजी (मालवा) ३४५
रतनजोत (हिं०) ६०१
रतवेल (म०) ३३१
रतवेलियो (गु०) ३३१
रतांजली (गु०) ३८३
रताली (म०) ६३४
रतालू (बम्ब०) ६३४
रतेंड़ (संथा०) ५७८
रतोलिया (म०) ३३१
रत्ती (हिं०) २८२
रत्युं (सिं०) २८२
रफ चैफ-ट्री (अं०) २९८
रवड़ (हिं०) ४४८
रबूनास (फा०) ५६२
रमादुल् हय्यः (अ०; फा०) ५०५
रम्यक (सं०) ४७९
रवासन, रायसन (हिं०) ३२३
रशुन (बं०) ६१९
रश्क़े मरियम (अ०) १३५
रसवत (हिं०) ३८५;३८६;३८७
रसवंती (गु०;नेपा०) ३८५
रसवत मक्की ३८६
रसवल (सिंध) ३८५
रसांजन (सं०; बं०; म०) ३८५
रसों(सौं)त (हिं०) ३८६
रसोन (सं०) ६१९
रहर (हिं०) ४०
र(ल)हिला (हिं०) २९०
रांजण (म०) २२२
राऽआ ६१२
राइटिआ टींक्टोरिआ (ले०) १८८
राइटिआ टोमेंटोसा (ले०) १८८
राइस (अं०) २९६
राई (हिं०;बं०;म०;गु०) ६०२–६०३

विषय एवं शब्द पृष्ठांक
राई (हिं०;उ०) ६६५–६६६
राउंड डॉक (अं०) २११
,, बर्थवर्ट (अं०) ३२६
राउवॉल्फिया सेर्पेन्टीना (ले०) ३८२
राउवॉल्फिया कानासेन्स (ले०) ३८२
रॉकेट (अं०) ३६१
राखालशशा (बं०) ६४
रागांगी (सं०) ५९३
रागो (सं०;ता०;कना०) ५५५
राजकोल, राजबदर (सं०) ८०
राजकोशा(षा)तकी (सं०) ३७०
राजधत्तूर (सं०) ३९६;३९७
राजपाठा (सं०) ४४७
राजपुत्रिका, राजपूतिका (सं०) १५५
राजमाष (सं०) ६३१
राजशालि (सं०) २९७
राजादन (सं०) २२३
राजिका (सं०) ६०२;६६५
राज़ियानए खताई (फा०) ५१२
राज़ियानः (फा०) ७०६
रॉटलेरा (अं०) १३३
राट्टलरिन (अं०) १३४
राणधानी (बं०) १४
रातियानः (फा०) ६०३
रातियानज (अ०) ६०३;६०४
राती दुधेली (गु०) ३९१
रातीनज (अ०) ६०३
रातीनज सकमूनिया (अ०) ६५२
रातीनजुल् जाफ (अ०) ६०४
रातीनजुल् मन्शिम (अ०) ५६४
रातीनजुल् याबिस (अ०) ६०४
रातीनज सय्याल (अं०) ४९९
रात्रिप्रफुल्ल (सं०) ४०८
रानाँकदा (म०) ४६७
रान तुलस (म०) ३७३
रान(म)तुलसी (गु०) ३७३

विषय एवं शब्द पृष्ठांक
रान दोड़के (तुरई) (म०) ३७१
रान धणे (म०) १४
रानी साटोडो (गु०) ४५३
रानुनकुलाटुस् स्क्लेराटुस् (ले०) ६१५
राफानुस साटीवुम् (ले०) ५९०
राब (हिं०) २३४;२३५
रामकुरथी (हिं०) ७०५
रामठ (सं०) ७२९
राम तरोई (तरोइया) (हिं०) ५५२
रामतुलसी (हिं०;बं०) ३७३–३७४
रामदतुइनिया, रामदातुन (हिं०) ८३;३१३
रामपत्री (बम्ब०) ३३८
रामफल (बम्ब०) ३३८
रामबाण (बम्ब०) ४३१
रामुत्तिरदम (ता०) ११९
राय आमला ५७
रायचंपो (गु०) २८६
रायण (गु०) २२२
रायतुंग (हिं०;पं०) ६९१
रायवेल ५४०
रायाँ (द०) ६०२
रायुल् हमाम् (अ०) १४२
रायून ६१२
रालदार गोंद २५३
राल (सं०;हिं०;द०;म०;गु०) ६०३–६०४
राले (म०) ३१२
रावंद (अ०) ६१२;६१३
रावंद बर्बरी ६१३
रॉवुल्सीन (अं०) ३८३
रासन (फा०;हिं०) ६०५–६०६
रास्ना (सं०) ४५६, ६०५
रिंगवर्म प्लांट (अं०) ४२८
रिंगीण (को०) ६०७
रिखु (कु०) २३४
रिज्लुर्राई (अ०) २१८
रिज्लुल् अक़् अक़ (अ०) १५३

विषय एवं शब्द पृष्ठांक
रिज्लुल् उक़ाब (अ०) १५३
रिज्लुल् ग़ुराब (अ०) १५३–१५४
रिज्लुल् जराद (अ०) ३२८
रिठा (बं०;म०) ६०७
रिबोफ्लेवीन (अं०) १५७
रिवोंदचीनी (पं०) ६१२
रिसर्पीन (अं०) ३८३
रिसिन (अं०) २८३
रींगणां (गु०) ५४१
रीछदाख (हिं०) ३;४
रीठा (हिं०) ६०७–६०८
रीठी (हिं०) ६०७
रीबा(वा)स ६१२
रीशावाला (फा०) ३५७;६८६
रीसामणी (गु०) ३१७
रीसीनुस कोम्मूनिस (लें०) ६०९
री(रे)हाँ ३७३
रुंग (क०) ६३२
रुई (म०) ४८
रुतब (अ०) २०९;२१०
रुदंती (सं०;हिं०;पं०;म०) ६०८–६०९
रुद्रंती ६०८
रुद्रवन्ती (सं०) ६०८
रुब्रर्ब (अं०) ४१३
रुब्ब आमला ५७
रुब्ब रेवंद (अ०) ८८
रुब्बुस्सूस (अ०) ५८४;५८५
रुम्मान (अ०) २५
रुम्मान मुज़्ज़ (अ०) २७
रुम्मान हुलुव्व (अ०) २६
रू (गु०) १२०
रूई (हिं०) ११९;१२०
रूई आस (यू०) ४६१
रूज (मिश्र०) २९६
रूटा आंगुस्टीफोलिया (लें०) ६८८
रूटा ग्रा.वेओलेन्स (लें०) ६८८

विषय एवं शब्द पृष्ठांक
रूटिन (अं०) ६८९;६५४
रूदक, रूदानक (अफ०;फा०) ५६२
रूबिआ कॉर्डिफोलिआ (लें०) ५६२
रूबिआ टींकटोरिआ (लें०) ५६२
रूमी मस्तंगी (मा०) ५७०
रूमी(मा)मस्तकी (म०;गु०) ५७०;५७१
रूमीमस्तगी (हिं०) ५७०
रूमी मोस्तकी (बं०) ५७०
रूमेक्स आक्वाटिकुस् (लें०) ३०९
रूमेक्स एसीटोसा (लें०) ३०९
रूमेक्स मारीटिमुस् (लें०) ३०९
रूमेक्स वेसीकारुम् (लें०) ३०९
रेंट (क०) ६०७
रेंड़ ६०९–६१०
रेंड़ ख़रबूजा (हिं०) ३७
रेंड़ी (हिं०) ६०९
रेंड़ी का तेल ६०९;६१०–६११
रेंवा(रेवाँ) (हिं०) २३१
रेजिन (अं०) ६०३
रेजिन ऑफ पिस्टेसिओ-ट्री (अं०) ४४६
रेजिना (लें०) ६०३
रेजिन्स (अं०) २
रेठा (पं०) ६०७
रेड कॉक्सकूम (-कोम्ब) (अं०) १४५
रेड गोर्ड (अं०) २०५
रेड चिली (पेपर) (अं०) ५८१
लेड पॉपी (अं०) ४६१,२६०
रेड बहमन (अं०) ५०३
रेड मलाबार नाइट-शेड ४५९
रेड मेलोकिया (अं०) ३४५
रेड ऱ्हैपान्टिक (अं०) ५०३
रेड सिल्क-कॉटन (अं०) ६९८
रेड सैन्डर्स(सैन्डल)वुड (अं०) २८३
रेणुक बीज (गु०) ६५०
रेणुका (सं०) ५६०
रेप (अं०) ६६५

विषय एवं शब्द **पृष्ठांक**

रेप आॅयल (अं०) ६६५
रेबा(वा)स ६१२,६१३,६१४
रेवंचीनी (हिं०) ६१२
रेवंचीनी शीरो (गु०) ८८
रेवंद (फा०) ६१२,६१३
रेवंद अस्वद (अ०) ३३२
रेवंदका उसारा ८८
रेवंद खताई ६१२
रेवंद चीनीका शीरा (उसारा) ६१३
रेवंदचीनी (हिं०;पं०;गु०;) ६१२–६१४
रेवंद दबाव ६१३
रेवतचीनीका सत ८७
रेवन(रेड)चिनी (बं०) ६१२
रेवनचीनी (द०) ६१२
रेवनचीनों (गु०) ६१२
रेवल चीन्नी (म०;तें०) ६१२
रेवाज ६१२,६१४
रेशए ईरसा (फा०) ७०७
रेशए बाला (फा०) २२०
रैडिश (अं०) ५९०
रैडिश सीड्स (अं० ५९०
रैनी (हिं०) १३३
रैहाँ काही (फा०) ३७३
रैहान (अ०) ३७२
रोइजिन (अं०) ६०३
रोगन अरअर (फा०) ७३४
,, आमला ५७
,, इज़खिर (फा०) ६९
,; शिगूफां रजखिर (फा०) ६९
,, ,, ,, कल्पनाविधि ६९
,, उत्रज (फा०) ५२३
,, कबाब; (फा०(१२७
;, क़रन्फ़ुल (फा०) ६३२
,, कश्नीज (फा०) ३९९
,, कुंजद (फा०) ३६७
,, खरदल (फा०) ६०२

विषय एवं शब्द **पृष्ठांक**

,, खश्खाश (फा०) ४६२,४६५
,, गर्जन (फा०) २४०;४९९,५००
रोग़न गुल (फा०) २६६;२६७–२६८
,, चावलमुगरा (फा०) २९८
,, चिरौंजी (फा०) ३०२
,, जमालगोटा (फा०) ३२१
,, जैतून (फा०) ३४४
रोगन तारपीन (फा०) ६०३
,, तुख्म कद्दए रूमी (फा०) ४५८
,, ,, काहू (फा०) १७१
,, तुरंज (फा०) ५२३
,, तुर्ब (फा०) ५९१
,, दंद (फा०) ३२७
,, दारचीनी (फा०) ३८८
,, देवदार (फा०) ३९४
,, नारदीन (फा०) ५१९
,, बनफ़्शा ४९२
,, बलसाँ ५००
,, बादाम ५१०
,, बादामे तल्ख़ (फा०) ५०९
,, बान (फा०) ५०१
,, बाबूना (फा०) ५१४
,, बारज़द (तारपीन) (फा०) ३०३
,, बेद अंजीर (फा०) ६०९, ३२१
,, ,, खताई (फा०) ३२१
,, शवित्त (शिबित्त) (फा०) ७०३
;, सनोबर (फा०) ६६०
,, सर्षफ (फा०) ६६५
,, सासाफ़रास (फा०) ६७७
,, सुंबुले हिंदी (फा०) ५२९
,, सुदाब (फा०) ६८९
रोग़न हब्बुस्सलातीन (फा०) ३२०
,, हिना ५९३
रोग़ने कतां (फा०) ४२
,, ज़गीर (फा०) ४२
,, नारगील ४१५

विषय एवं शब्द पृष्ठांक

,, बलसाँ (फा०) ४९९
,, संदल (फा०) २८४-२८५
रोचनी (सं०) ४५२
रोज़ (अं०) २६४
,, ऑफ जेरिको (अं०) २४०
रोज एपल (अं०) २६८
रोजमरी (वम्ब०; हिं०) ४९६
रोजमरी (हिं०) ६६
रोजमे(मा)रिनुस ऑफ्फीसिनालिस (ले०) ६६
रोजमेरी (अं०) ६६
रोजमेरो ६६
रोज सीड्स (अं०) २६५
रोजस्टेमेंस (अं०) २६५
रोजा आल्ब (ले०) २६३
रोजा इन्वॉल्युक्रेटा (ले०) १९९
रोजा डैमासेना (ले०) २६४
रोजा मॉस्काटा (ले०) १९९
रोजा मॉस्काटास (ले०) २६३
रोज़ी (सुर०) २९६
रोटंग (मलय०) ५३४
रोध्र (सं०) ६२८
रोबाह तुरबक (फा०) ६२६
रोबाह तुर्बुक (फा०) ५५८
रोरी (हिं०) १३३
रोहन (क०) ६१९
रौप्य १९६
र्हा ६१२-६१३
र्हा पान्टिकुम् (ले०) ६१३
र्हा बार्बारुम (ले०) ६१३
र्ही (का०) ३०२
र्हीईन ६१२-६१३
र्हीओ टैनिक-एसिड (अं०) ६१३
र्हीनाकान्थुस नासूटा (ले०) ४४४
र्हीनाकैन्थिन ४४४
र्हुबार्ब (अं०) ६१२-६१३
,, रूट (अं०) ६१२

विषय एवं शब्द पृष्ठांक

र्हुस कोरिआरिआ (ले०) ६९१
,, पार्वीफ्लोरा (ले०) ६९१
र्हेई राडिक्स (ले०) ६१२
र्हेउम् (ले०) ६१२
,, आफ्फीसिनाले (ले०) ६१२
,, पाल्माटुम् (ले०) ६१२
,, रीबेस (ले०) ६१२
र्होउस (यू०) ६९१
र्होडोडेन्ड्रोन् आन्थोपोगान (ले०) ३६५

ल

लंका, लंका मरिच (बं०) ५८१
लंडन रॉकेट (अं०) २२१
लंजी(तू)स (यू०) ५६४
लई (सिं०) ३५३
लकड़ी रेवंचीनी ६१२
लकुच (सं०) ४८८
लकूच (हिं०) ४८८
लक्कोटे (कना०) ६२३
लघु दुग्धिका (सं०) ३९१
लघुपाठा (सं०) ४४०
लघुपीलु (सं०) ४५०
लघु लोणिका (सं०) १९५
लछमना, लछमनी (हिं०) ६२५
लजकन (हिं०) ३१८
लजनी, लजवन्ती (हिं०) ३१७–३१८
लजाधुर, लजमणा (गु०) ३१७
लजालू (हिं०) ३१७-३१८
लजालू माई ३१८
लज्जालू (सं०) ३१७
लज्जावती (बं०) ३१७
लटक (सिंध) २७४
लटकन (हिं०; पं०) ६५६
लटकू, लखोट (हिं०) ६१५
लटजीरा (हिं०) २८
लटडुरिया (हिं०) ६१५

विषय एवं शब्द पृष्ठांक

लटूकरी (हिं०) ६१५,६१६
लटूपरी (हिं०) ६१५
लटोरा लिटोरा, लिसोडा (हिं०) ६१६–६१७
लतरी (हिं०) २२९
लताकरञ्ज (सं०) १३५
लताकस्तुरी (बं०; गु०) ५८६
लताकस्तूरिका (सं०) ५८६
लताकस्तूरी ५५२,५८७
लता बरुई (बं०) ५३८
लदाखी बादाम (अल्मो०) ६१
लफतुल्शैतान (अ०) ४७३
लबलाब (अ०) ६१८-६१९
लबलाब कबीर (अ०) ६१८
लबलाब कलाँ (फा०) ६१८
लबलाब काला ६१८
लबलाब सेद ६१९
लबलाब लाल ६१८
लबानु (अ०) ९९
लबूनिया (सुर०) ९९
लब्नुल् खशखाश (अ०) ४६०
लब्नुल् बलसाँ (अ०) ४९९
लभेडा (रा) (हिं०) ६१६
ललमकरी (हिं०) ५५७
लवंग (द०) ६३२
लवंगपू (ते०) ६३२
लवंग सत्व ६३२
लव एपल (अं०) ३५४
लवङ्ग (सं०; बं०; म०; गु०) ५३२
लव-लाइज ब्लीडिंग (अं०) १४५
लवींग (गु०) ६३२
लवो (मा०) ३५३
लशुन (सं०) ६१९
लसण (गु०) ६१९
लसन, लस्सन (द०) ६१९
लसुन (हिं०) ६१९
लसूडा (हिं०) ६१६

विषय एवं शब्द पृष्ठांक

लसूण (म०) ६१९
लसूणा (पं०) ६१६
लसोडा(रा) (हिं०) ६१६
लहली (पं०) ७२८
लहसण (मा०) ६१९
लहसुन (हिं०) ६१९–६२१
लहसुन जंगली ८९
लहसुनिया (लहसुनी)सालब ६७६
लहान गोखुर (म०) २७४
लहान नायटी (म०) ३९१
लहुरिज(-या) (हिं०) ५१७
लांक (ते०) २२९
लांग, लांक (गु०) २२९
लॉंग पेपर (अं०) २९४; ४४८
लॉंग बर्थ-वर्ट (अं०) ३२६
लॉंग-लीव्ह पाइन (अं०) ३०३
लांपडी (गु०) ६९३
लाइचेन (अं०) ३१७
लाइचेन ओडोरिफेरुम् (ले०) ३१५
लाइम (अं०) ४२२
लाइम जूस (अं०) ४२२
लाइम पील (अं०) ४२२
लाइनम् (ले०) ४२
लाइमोन (यू०) ४२
लाई, लाही (हिं०) ६
लाउनीआ नूडीकाउलिस (ले०) २७९
,, पिन्नाटीफिडा (ले०) २७९
लाउरुस नोबिलिस (ले०) २४५
लाक्टूकारिउम् (ले०) १७१
लाक्टूका वीरोसा (ले०) १७०
,, सेरिओला (ले०) १६९
,, साटीवा (ले०) १६९
लॉग वुड (अं०) ४३२
लाची (हिं०) ७२
लाची छोटी (हिं०) ७२
लाजक (बं०) ३१७

विषय एवं शब्द — पृष्ठांक

लाज़न (अ०) ६२१
लाजरी (हिं०; म०) ३१७-३१८
लाजालू (म०) ३१७
लाजाक अल्-ज़हव (अ०) ८६
लाजेनारिआ सीसरारिआ (ले०) ११४
लाथीरुस साटीवुस (ले०) २२९
लादन (फा०) ६१९; ६२१–६२२
लाना(णा) (पं०) ८४
लानागोरा बूटी ८५
लानाबूटी (हिं०) ८४, ८५
लापाथोन (यू०) ३०९
लामजक (हिं०; पं०) ६९
लामज्जक (सं०) ६९
लामीनारिआ साक्कारीना (ले०) १४५
लाम्प्राकेनिउम् मीक्रोसेफालुम् (ले०) ५४४
लॉरेल बे (अं०) २४५
लार्च एगैरिक (अं०) २४७
लार्ज सेबेस्टन प्लम (अं०) ६१६
लालदुद्धी (हिं०) ३९१
लालए नु(नो)अ्मानी २६०
लाला (हिं०) २६०
लाल खश्खश (गु०) ४६०
लाल झाऊ (हिं०; बं०) ४७१
लालडी (पं०) २८२
लाल चन्दन (हिं०; पं०; गु०) २८३
लाल जड़ी (हिं०) ६०१
लाल (या पीला) कोंहडा २०५
लाल देशी चीनी २३५
लाल पोई (हिं०) ४५९
लाल पोस्ता (हिं०; बं०) २२८; ४६०; ४६२
लाल बहमन (हिं०; भा० बा०) ५०३
लाल भोंपला (म०; बम्ब०) २०५
लाल मिर्च (हिं०) ५८१
लाल मिर्ची (म०; द०; बम्ब०) ५८१
लाल मुर्गा (बं०) ६८३
लाल मोअब्बरी (मग़रबी) (फा०) ६०३

विषय एवं शब्द — पृष्ठांक

लालरस (हिं०) ८८
लाल व्याघ्र रण्ड (हिं०) ६११
लाल सर्वोजया (बं०) ५४२
लाल सांवर (म०) ६९८
लाल सेमल (हिं०) ६९८
लाला (हिं०; बं०; गु०) २६०-२६१
लाल्लेमंटिआ रॉयलेआना (ले०) ५२०
लावान्डुला बर्मान्नी (ले०) ९१
,, बीपीन्नाटे (ले०) ९१
,, स्टीकास (ले०) ९०
लावेंडुला वेरा (ले०) २०८
,, ऑफ्फीसिनालिस (ले०) २०८
,, स्पीका (ले०) २०८
लॉसोनिआ ईनेर्मिस (ले०) ५९३
,, आल्बा (ले०) ,,
लाहोरी (हिं०; बं०; पं०; सिं०; म०; बम्ब०) ७१७
लिंडी पीपर (गु०) ४४८
लिंबू (म०) ४२२
लिकर (अं०) २३८
लिकर स्पिरिटस (ले०) ,,
लिकुच (सं०) ४८८
लिकोरिस (अं०) ५८४
लिकोरिस रूट (अं०) ,,
लिक्विड अम्बर ओरिएन्टालिस (ले०) ६४०
लिक्विड स्टोरैक्स (अं०) ६४०
लिचुर (उड़ि०) ६२२
लिधर (क०) ७२०
लिनसीड (अं०) ४२
लिनसीड ऑयल (अं०) ४२
लिबलाब (अ०) ६१८
लिबानूस (सुर०) ९९
लिबानोटोस (यू०) ९९
लिबानोस (यू०) ९९
लिमेनूल ५८७
लिमेनोन ५८७

विषय एवं शब्द पृष्ठांक

लिमो (सिंध) ४२२
लिमोन (अं०) ४२२
लिल(लि)बिरवा (हिं०) ५५२
लिसानुल् असाफीर (अ०) १८८
,, ,, हुलुब्ब (हलो) (अ०) १८८
लिसानुल् असाफीरेल् मुर्र (अ०) १८५
लिसानुल् उस्फ़ुर (अ०) ,,
लिसानुल् हमल (अ०) ५१७
लिसानुस्सौर (अ०) २४८
लिसोडा(-रा) (हिं०) ६१६
लींबडो (गु०) ४१३
लींबु (गु०) ४२२
लीआ हीर्टा (लें०) १५३
लीक (अं०) २३२
लीक इण्डियन (अं०) २३३
लीको पेर्सिकॉन एस्कूलेण्टुम् (लें०) ३५४
लीग्नुम् वीटी (सांक्टुम्) (लें०) ३२४
लीची (हिं०; बं०; बम्ब०) ६२१
लीचू (बं०) ६२२
लीट्सेआ ग्लूटीनोसा (लें०) ५९५
लीट्सेआ चीनेन्सिस (लें०) ५९५
लीनी सेमिना (लें०) ४२
लीनुम् ऊसीटाटीस्सिमुम् (लें०) ४२
लीमडो (गु०) ४२३
लीमूँ (अ०) लीमू, लीमूँ कागजी (द०) ४२२
लीमूए कागजी ४२२
लीमूए खारकी (शीरा०) ३१९
लीमूए कागजी (तुर्श) (फा०) ४२२
लीमून (अ०; फा०) ४२२
लीमोनिस कॉर्टेक्स (लें०) ४२२
लीलुं करियातुं (गु०) १५९
लील (हिं०; मा०) ४२६
लीसा (पहाडी; गढ़०; कु०) ३०३
लुआब घीकुआर २८०
लु(लो)काट (हिं०) ६२३
लु(लो)गाट (हिं०) ६२३

विषय एवं शब्द पृष्ठांक

लुदम् (को०) ६२८
लुफाह ६२६–६२७
,; बर्री (अ०) ६२५,६२६
लुफाह; यबरूज; बेलाडोना ६२३–६२४
लुफ्फा एकीनेटा (लें०) ४७८
लुफ्फा बिंडाल (लें०) ४७८
लुफ्फाह (अ०) ६२६
लुबानत गर्बियत (अ०) ४६९
लूंगू (म०) ६३२
लूटीन २०६
लूणक (पं०) १९६
लूपीनीडीन, लूपीनी(मी)न ३७२
लूपीनुस आल्बुस (लें०) ३७२
लूफ्फा आकूटांगुला (लें०) ३७०
,, ,, प्र० अमारा (लें०) ३७१
;, सीलींड्रिका (लें०) ३७०
लेंस कूलीनारिस (लें०) ५७०
,, एस्कुलेंटुस (लें०) ५७०
लेउकास सेफालोटीस (लें०) २६९
लेटिस ओपियम् (अं०) १७०,१७१
लेटिस सीड्स (अं०) १७०
लेडी एलेविन ओ' क्लॉक (अं०) ६९५
लेडीज फिंगर (अं०) ५५२
लेदिर (क०) ७२०
लेपरी (कच्छ) २७२
लेपर्ड्स बेन (अ०) ३८१
लेपीडिउम् इबेरिस (लें०) ३७७
,, साटीवुम् (लें०) ७२६
ले(ने)बू (ब०) ४२२
लेमन (अं०) ४२२
लेवांट वर्मसीड (अं०) १७३
लेसर डॉडर (अं०) ३०
लेसिथीन (अं०) ५९०
लेसूडो (सिंध) ६१६
लैक्टूसिक एसिड (अं०) १७०
लेपाथिन ३०९

विषय एवं शब्द पृष्ठांक

लोंग (हिं०) ६३२
लोखाट (उ०) ६२२
लोटान सज्जी, लोटासज्जी (हिं०) ८५
लोडोईसेआ सीचेल्लारुम् (ले०) ४१६
लोद (मा०) ६२८
लोदम् (संथा०) ६२८
लोध (हिं०; थारू;पं०) ६२८
लोधपठानी (हिं०) ६२८–६२९
लोधर (गु०) ६२८
लोधिया (कु०) ६२८
लोध्र (सं०;म०) ६२८
लोनिया (हिं०) १९५–१९६
लोबाँ (ब्रह्मा) ६२९
लोबाँ (अ०) ६३१
लोबान (हिं;बं०;पं०;म०;गु०) ६२९–६३१
लोबानका फूल (हिं०) ६३०
लोबिआ (या) (हिं०) ६३१;५०७
लोबेलिया नीकोटिनेफोलिआ (ले०) ३५९
,, इन्फ्लाटा (ले०) ,,
लोमशा (सं०) १५३
लोलीउम् टेमूलेन्टुम् (ले०) ६४८
लोहकाष्ठ (सं०) ३१४
लोहबान (हिं०) ६२९
लोहित लता (सं०) ५६२
लौंग (हिं०; मा०) ६३२–६३३
लौआ (हिं०) ११४
लौंजुलमुर्र (अ०) ५०८
लौज़ेलहुलो (अ०) ५०९

व

वंताक (गु०) ५४१
वंश (सं०) ५७५
वंशकर्पूर (सं०) ५०५
वंशरोचन (सं०) ५०५
वंशलोचन (हिं०; गु०) ५०५-५०६
वई निवडुंग (म०) ३७९
वग़द (अ०) ५४१

विषय एवं शब्द पृष्ठांक

वघारण (गु०) ७२९
वचा (सं०) ४८३
वज (गु०) ४८३
वजतुर्की (फा०) ४८३
वज्जे खुरासानी (अ०) ४८४
वज्रकंटक (सं०) ३७९
वज्रांगी (सं०) ७१९
वज्री (सं०) ३७९
वञ्जुल (सं०) ५३७
वट (सं०) ४९५
वट गाछ (बं०) ४९५
वटपत्री (सं०) ४२९
वड (गु०; म०) ४९५
वड़लो (गु०) ४९५
वण (पं०) ४५०
वत्सनाभ (सं०) ४८५
वन एटका (संथा०) ४२०
वन चिंचिडा ४३५
वनजीरक (सं०) १६२
वनपलाण्डु (सं०) ४६७
वनपूतिका (सं०) १५५
वन(अरण्य)हरिद्रा (सं०) ४७
वन्यकुलत्थ (सं०) २९३
वन्यकुसुम (सं०) १९७
वरणो (गु०) ४९७
वरतिक्त (सं०) ६३८
वरत्तांगि (मल०) ४३२
वरवेर (शोलापुर) ४९०
वराङ्ग (सं०) ३८८
वराहकंद (सं०) ५१८
वरुण (सं०) ४९७
वरुण गाछ (बं०) ४९७
वर्कुन्नील (अ०) ४२६
वर्कुल आस (अ०) ६३
वर्कुल् मस्तुल्गौल (अ०) ९५
वर्जिन स्केमोनी (अं०) ६५२

विषय एवं शब्द — पृष्ठांक

वर्द, वर्दुल् अहमर, वर्दे अहमर (अ०) २६४
वर्द अब्यज़ (अ०) २६३
वर्दनीलूफर (अ०) १२९
वर्दमुन्तिनः (अ०) १९९
वर्दसीनी (अ०) २६३
वर्दुर्रुम्मान (अ०) २८
वर्दुल् खित्मी (अ०) २११
वर्दुल् मेलाद (अ०) २१८
वर्दुश्शता २१८
वर्बर (सं०) ५४३
वर्म वुड (अं०) ३२
वर्म सीड (अं०) १७२
वर्वानिकी (यू०) ६८३
वर्वेन १४२
वर्षाभू (सं०) ४५४;५२९
वर्स (अ०) ६३३--६३४
वलायती अजमोद (उर्दू) १५
वल्लीबदर (सं०) ५६०
वसुक (सं०) ४५४;५२९
वसेड़ों (गु०) ५२२
वस्मा (फा०) ४२६--४९०
वाइन (अं०) १
वाइपर्स बग्लोज (अं०) २४८
वाइल्ड एग-प्लांट (अं०) १०९
वाइल्ड ऐस्पैरेगस (अं०) ६५३
वाइल्ड केरट (अं०) २४१
वाइल्ड कैबेज (अं०) २७८
वाइल्ड ग्वावा (अं०) ५१५
वाइल्ड जूजुब (अं०) ५३८
वाइल्ड टर्मेरिक (अं०) ४७
वाइल्ड टुबैको (अं०) ३५९
,, थाइम (अं०) ५८२;६७२;७२७
,, नार्ड (अं०) ४६
,, पेपर (अं०) ५७३
,, या हार्स मिंट (अं०) ४५२
,, वाइन (अं०) ४७३

विषय एवं शब्द — पृष्ठांक

वाओला ओडोराटा (ले०) ४९१
वाक (मिश्र०) ३४४
,, (मल०) ६८२
वाकुची (सं०) ४८०
वाग (फा०) १
वॉटर कैल्ट्राप्स (अं०) ६८१
वॉटर चेस्टनट (अं०) १४६
वॉटर डॉक (अं०) ३०९
वॉटर मेलन (अं०) ३६०
वॉटर या गार्डेन क्रेस (अं०) ७२६
वॉटर लिली (अं०) १२९
वॉटर लिली, ब्ल्यू (अं०) १३०
वॉटर लिली ह्वाइट (अं०) १३०
वॉटर सेलरी (अं०) ६१५
वॉटर सोल्जर या लेटिस (अं०) ३२९
वाटेरिया इंडिका (ले०) ६४८
वाट्य (सं०) ३५०
वाट्या (सं०) ४९८
वाट्यायनी (सं०) ४९८
वाठपला (गु०) ४७८
वातपान (हिं०;पं०) ४६८
वातल (सं०) ९४
वानीर (सं०) ५३५
वामनहाटी (बं०) ५५१–५५२
वा मट नट (अं०) १७९–१८०
वाय(व)खुम्बा (हिं०) ५१५
वायवरणो (गु०) ४९७
वायवर्णा (म०) ४९७
वायला क्वर्सेटीन ४९१
वायोला सिनेरेआ (ले०) ४९१
वायोला सर्पेन्स (ले०) ४९१
वायोलीन (अं०) ४९१
वारणवुषा (सं०) २००
वाराहीकंद (सं०) ५१८
वारिपर्णी (सं०) ३२९
वारेवाडा (म०) ८

विषय एवं शब्द — पृष्ठांक

वार्ताक(की) (सं०) ५४१
वार्षिकी (सं०) ५४०
वाल (म०) ६९८
वाल जमैंडर (अं०) १३२
वॉलनट (अं०) १२
वालुंज (म०) ५३७
वॉलूटारेल्ला (ले०) ६४४
वॉलूटारेल्ला रामोसा (ले०) ५१२
वॉलेरिआना केल्टिका (ले०) ६८६
वॉलेरिआना ऑफ्फीसि(सी)नालिस (ले०) ४१६;३५७
,, जटामांसी (ले०) ३५७
,, वाल्लीची (ले०) ३५७
वॉल्लि(ल्ली)सनेरिआ स्पीरालिस (ले०) १५२;७००
वॉशिंग सोडा (अं०)
वासक, वासा (सं०) २१
वासक क्षार (सं०) २२
वासकीन (सं०) २१
वासाम्ल (सं०) २१
वासीन (सं०) २१
वासमती २९७
वासुक (सं०) ४९०
वास्तु(तू)क (सं०) ४८८
विग्ड कैल्ट्रोप्स (अं०) २७४
विंटरग्रीन (अं०) २३३
विंटरचेरी (अं०) ४४;१५५
विंड फ्लॉवर (अं०) २६०
विग्ना काटिएङ्ग (ले०) ६३१
विच्छिक (गु०) १६१
विजया (सं०;हिं०) ५४९
विटपलंग (बं०) ३०८
विटियाली (मा०) ७०६
विट्खदिर (सं०) २३१
विडगाम्ल (सं०) ५१६
वितुन्नक (सं०) ६८३
विदानिआ कोआगुलान्स (ले०) ४६
,, सोम्नीफेरा (ले०) ४४

विषय एवं शब्द — पृष्ठांक

विदारी, विदारीकन्द (सं०) ५२४
विदुल (सं०) ६६१
विदेशी डामर ६४८
,, बननील (हिं०) ४९०
,, बालछड़ (हिं०) ४१९
विदेशीय कडुआ सुरंजान (हिं०) ४९४
,, तीखुर (हिं०) ३६८
विधारा (हिं०) ४२०
विरक्युम् (क०) ६९२
विलायती अकासबेल (अमरवेल) (हिं०) ३०
,, ,, के बीज (हिं०) ३०
विलायती काँदा (हिं०) ४६७
,, कुमडा (बं०) २०५
,, गोखरू (हिं०) २७६
,, जंगली प्याज(कांदा) (हिं०) ४६७
,, जीरा (हिं०;म०;गु०;बं०) १९१
,, तमाल (हिं०) ८८
,, बबूल (हिं०) २३१
,, बेर (हिं०) ८०
,, भंटा (हिं०) ३५४
,, मेंहदी (हिं०;पं०) ६३
,, रेंड़ (हिं०) ३७
विलासी (हिं०) ४९७
विशल्यकरणी (सं०) ५८
विशाला (सं०) ९४
विश्वभेषज (सं०) ७००-७०१
विश्वौषध (सं०) ७०१
विष (सं०;हिं०) ४८५
विषतिन्दुक (सं०) १७९
विषभवा (सं) ३२०
विषमुष्टि (सं०) १८०
विषहा (सं०) ३१९
विष्णुकंद (सं०) ६८८
विष्णुकान्ता ६४७
विष्नुकान्ता (हिं०) १६०
विसिआ फाबा (ले०) ५०७

विषय एंव शब्द **पृष्ठांक**

विसूनो (मा०) ६६४
विस्किन (अं०) १७५
विस्कोसिक एसिड ७३२
वींण (गु०) ११८
वीटिस वीनिफेरा (ले०) १
विटेक्स् आग्नुस्-कास्टुस (ले०) ६५०
,, ट्रीफोलिआटा (ले०) ६५०
,, नेगुंडो (ले०) ६५०
,, पेडन्कुलारिस (ले०) १५३
,, ल्यूकॉक्सीलोन (ले०) १५३
वीपिंग निक्टैन्थिस (अं०) ७१८
वीर (क०) ५३७
वीरण (सं०) २२०
वीरणा (ता०) २२०
वीस्कुम् आल्वुम् (ले०) १७४
वुड ऑइल (अं०) २४०
वुड एपल (अं०) २०३
वुड टार (अं०)
वुड फ्लॉवर (अं०) २६०
वुडी नाइटशेड (अं०) ५५९
वुषज (अ०) ८६
वूडफोर्डिआ फ्रूटीकोसा (ले०) ४०३
वूरुग (ते०) ६९८
वूल्क्स बेन (अं०) ४८५
वृक्षादनी (सं०) ४७७
वृद्धदारु (सं०) ५२६
वृद्धपीलू (सं०) ४५०
वृन्ताक (सं०) ५४१
वृषजिह्वा (सं०) २४८
वेंगण (गु०) ५४१
वेंदयम् (ता०; मल०) ५९४
वेंषक्ति (ते०) ६६४
वेंबु (ता०) ४२३
वेत्तिलै कस्तूरि (ता०) ५८६
वेकारिओ (गु०) ४३०
वेखण्ड (म०) ४८३

विषय एंव शब्द **पृष्ठांक**

वेजीटेबल् रेनेट (अं०) ४६
वेडेलिआ कालेन्डुलासेआ (ले०) ५४७
वेटीवेरिआ जीज़ानिआइडेस (ले०) २२०
वेट्टिवेर (ता०) २२०
वेणारमूल (बं०) २२०
वेणु (सं०) ५०५
वेत, वेत्र (सं०) ५३४
वेतस (सं०) ५३५, ५३६
वेतसीन (सं०) ५३६
वेनस हेयर (अं०) ७१०
वेप्पु आर्यवेप्पु (मल०) ४२३
वेराट्रुम् (ले०) २१८
वेराट्रम् आल्बुस् (ले०) २१७
,, विरिडे (ले०) २१८
वेरार्लुम् आल्बुम् (ले०) १००
वेर्नोनिआ सिनेरेआ (ले०) ६६८
वेल्लक्किलु किलुप्पे (ता०) ६५८
वेल्लेरीन (अं०) ५४६
वेल्लैकुन्दिरिक्कम् (ता०)
वेल्वेट लीफ (अं०) ४४०
वेसिकेरिआ (रू०) १५५
वेस्ट इंडियन ऐरोरूट (अं०) ३६८
वैक्स फ्लॉवर प्लांट (अं०) २५७
वैनिल्लिन (अं०) ६३०
वैलेरिअना ऑफ्फीसिनालिस (ले०) ५१९
वैसिसीन (अं०) २१
वोन्दुमल्लो (ते०) ५४०
व्योहार (मीरजापुर) ६१६
व्याकुड़ (बं०) १०९
व्याघ्रैरण्ड (सं०) ६१

श

शंखपुष्पी (सं०) ६४७
शंखवेली, शंखाहुली (म०) ६४७
शंखावली (पं०;गु०) ,,
शंगर (क०) ५८४

विषय एवं शब्द पृष्ठांक

शं(शि)गवीर (फा०) ७००
शंजार (अ०) ६०१
शंबलीज (अ०) ६२२
शंबाली (द०) ६५०
शईर (अ०) ३४८
शईर उरयाँ (अ०) ३५१
शईररूमी (अ०) ५५७
शकटाक्ष (सं०) ४०३
शकर (फा०; गु०) २३५
शबर उष्र (फा०) ४८
शकरक (फा०) ४८
शकरकन्द (हिं०; बं०; पं०; बम्ब०) ६३४
शकरकोही (फा०) ४८
शकर ख़ाम (फा०) २३५
शकरतरी (फा०) २३५
शकर बादाम (फा०) ३२५
शकरमदार (हिं०; उर्दू) ४८
शकर सफ़ेद (फा०) ४८
शकरसुर्ख़ (फा०) २३५
शकरसुलेमानी २३६
शकर(कूर)दियून, शक़ूरियून (अ०) ८९
शकरे सुपेद (सुफ़ेद) (फा०) २३५
शक़ाइक़ीन २६२
श(शि,क़ाकुल) (अ०) २४१, ६३४
शक़ाक़ुल (अ०) ६३४-६३५
शक़ाकुल मिश्री ६३५
शक़ाक़ुले हिंदी (अ०; फा०; द०) ५८८
शक़ायिक़, शक़ायिक़ नुअ्मान
शक़ायिक़ुन्नुअ्मान (अ०) २६०-२६१
शक़ क़ (अ०) २६०
शख़ार अब्यज़ (अ०) ८५
शजरएँ अवी मालिक (अ०) ४८१
शजरतुल् आकिलः (अ०) ६६०
शजरतुल् जिन (अ०) ६६०
शजरतुल् मर्यम् (अ०) ४८१
शजरतुल् हुरव (अ०) ४२४

विषय एवं शब्द पृष्ठांक

शज्रतुत्तीब (अ०) २०९
शज्रतुद्दम (अ०) ६३७
शज्रतुन्नारजील (अ०) ४१४
शज्रतुल् अरअर (अ०) ७२४
शज्रतुल् आक(कि)लः (अ०) ३०३; ६६०
शज्रतुल् क़ुत्न (अ०) ११८
शज्रतुल् क़ुद्स ११२
शज्रतुल्जिन (अ०) ३०३
शज्रतुल्बक़ (अ०) ३०३
शज्रतुल् बराग़ीस (अ०) २४२, २४४
शज्रतुल् बित्तीख़ (अ०) ३७
शज्रतुल् मुर्तअश (अ०) ४४८
शज्रतुल् रुम्मान (अ०) २५
शज्रतुल्लाह (अ०) ७२४
शज्रतुल् लौज़ुल् मुरँ (अ०) ५०८
शज्रतुल् लौज़ुल् हलो (अ०) ५०९
शज्रलिक्षानुल् असाफ़ीरुल् मुर्र (अ०) ११८
शज्रुल् बुत्म (अ०) ३०४; ५३२
शटी (सं०; बं०) ४०५
श(स)ण (सं०; गु०; बं०) ६५७
शणपुष्पी (सं०) ६५७
शतपत्री (सं०) २५८, २६३
शतपुष्पा, शताह्वा (सं०) ७०३
शतमूली (सं०; बं०) ६५३
शतवीर्या (सं०) ३९४
शतालू (हिं०) ५१
शतावरी (सं०; गु०; म०) ६५३
शदेवी (हिं०) ४२७
शनार (अ०) ४७०
शनालू (हिं०) ६०
शपात्तुपू (ता०) २५५
शप्पंगु (ता०) ४३२
शफ़तरक (फा०) २२१
श(स) फेत्रा
श(स)फ्तालू (फा०) ५२
शबपसन्दू (बं०) ६३९

विषय एवं शब्द पृष्ठांक

शबयार (फा०) २७९
शबीबी १९५
शबुल्लैली (अं०) २६२, २६३
शब्बू (फा०) २६२,२६३
शबे अंबूय (फा०) २०८
शबेबू (फा०) २०८; २२८
शबेबूय, शब्बू (फा०) २२८
शमशाद (फा०) ६३५
शम्बलीद (फा०) ५९४
शम्माम (श्याम) ६२५
शम्लीत (ज)–(फा०) ५९४
शरई (बं०, पं०) ६४३
शरपंखो (गु०) ६६४
शरपुङ्ख (सं०; बं०) ६६४
शराब (हिं; फा०) २३८
शराबे मुस्किर २३८
शरीं, सरींह (पं०) ६८२
शरीफ़ा (हिं०; पं०) ६३६
शर्करकन्द (सं०) ६३४
शर्करा (सं०) २००-२३५
शर्बत (फा०) २३८
शर्बत आमला ५७
शर्बती नारंगी (हिं०) ९८
शर्बतीनीबू (हिं०) ४२२
शर्बीन (अ०) १११, ३०४, ६६०
शर्विल (अं०) ५३
शलई (बं०)
शलगम (फा०) ६३७
श(स)लजम (अरबीकृत) ६३७
शलात्तुविरै (ता०) १७०
श(स)ल्लकी (सं०) ९९,६६७
शल्लकी निर्यास (सं०) ६६७
शल्लथि (ता०) ६९८
शश्क़ाक़ुल (फा०) ६३४
शहतरा (सिं०)
शहतूत ३७४

विषय एवं शब्द पृष्ठांक

श(शा)हदानः (फा०) ५४८
शहम हंज़ल (अ०) ६५
शहवत् अंगेज़ (अ०) ५४८
शांबर (सं०) ६२८
शाक़नाडिका (सं०) १३८
शाकराज (सं०) ४८८
शाकुल्मक्कः (अ०) ४९३
शाखु(ख़ू)ल (फा०) ४४
शाखू, शाल ६०३
शाज़ (अ०) ४०
शाजीरा (बं०) ३४१
शातरा (हिं०; म०; सिं०;बम्ब०) ६३७
शादादूर्वा (बं०) ३९३
शादावच (अ०) ३९३
शापुस्सुन्दो (बं०) ६३९
शाबरक (सं०) ६२८
शाबीरक, शाहबीहज (फा०) ६२५,६२६
शाबीरज (अ०) ६२६
शाभाख (फा०) ६७१
शाय (अ०) ३९५
शारफ़ (अ०) ५२५
शारुज्जबल (अ०) ७१०
शारुज्जिन्न (अ०) ७१०
शीरुज्जिबाल (र)- (अ०) ७१०
शारुल् अर्ज़ (अ०) ७१०
शालई (म०) ६६७
शालनिर्यास (सं०) ६०३
शालवपु (ता०) ६९८
शालिंच (बं०) ५६१
शालि (सं०) २९६, २९७
शालूक (सं०) १२९
शालेडुं(डो)-(गु०) ६६७
शाल्मलि(ली)-(सं०) ६९८
शाल्मलीकंद (मूल) (सं०) ६९८
शाह अफ़्सर (फा०) ६७
शाहआमला (फा०) ५७

विषय एवं शब्द पृष्ठांक
शाहजिरे (म०) ३४१
शाहज़ीरा (फा०) १९१
शाहजीरुं (गु०) ३४१
शाहतरज (अ०) ६३७, ६३८
शाहतरा (पं०; गु०) ६३७-६३८
शाहपसन्द ६३९–६४०
शाहबलूत (फा०) ५०१,५०१पा०टि० २
शाहबेद (श्याम) ५३५
शिंगाड़ा (पं०) ६८१
शिंजम् (ता०) ७०
शिंशपा (सं०) ६४३
शिऊली (बं०) ७१८
शिकमदरीदः (फा०) ७५
शिकेकाई (म०) ६८४
शिख़ार (फा०) ८५
शिग्रु (सं०) ६६९
शिगूफा इज़खिर ६९
शितिवार (सं०) ६८३
शिबत ७०३
शिब्ब्रः (फा०) २२१
शिब्बल् मासफ़र (अ०) ८५
शिब्बे अलक़ली (अ०) ८५
शिमशाद (फा०) ६३५
शिमुल कंद (बं०) ६९८
,, मुसली (म०) ६९८
शिमुलगाछ (बं०) ६९८
शिमैकिचिलिकू (ता०) १२३
शिम्बी (सं०) ६९८
शियाफ मामूसा ५७५
शियालकाँटा (बं०) ६५४
शिरन (पं०) ३२४
शिरस (सी)-(म०) ६६५; ६८२
शिरसेल (म०) ६६५
शिरीष (सं०; बं०) ६८२
शिरोलें (म०) ३७०
शिलापुष्प (सं०) ३१५

विषय एवं शब्द पृष्ठांक
शिलारस (हिं०; बं; पं०; बम्ब०) ६४०–६४१
शिलारस ४९९
शिलारसम् (ते०) ६४०
शिलीन्ध्र (सं०) २२६
शिवदै (ता०) ४२०
शिवबूटी, शिवजी की घुटी (हिं०) ५४९
शिवलिङ्गी (सं०) ४७४
शिववल्ली (सं०) ६८४
शिवित्त, शिब्बित्त (अ०) ७०३
शिशुगाछ (बं०) ६४३
शींधोडा (गु०) ६८१
शीकरानुल्हूत (अ०) ५७८
शीकाय (ते०) ६८४
शीतरः (-क) (फा०) ३०६
शीतरज (अ०) ३०६, ३०७
शीतलचीनी (हिं०) १२६
शीतलमिर्च (हिं०) १२६
शीतला (सं०) ६८४
शीतहरित (सं०) २३३
शी(सी)मलो (गु०) ६९८
शीर अफ़गन (फा०) ४६१
शीर आमला (फा०) ५७
शरीएलीमू (फा०) ४२२
शीरक (फा०) ३९१
शीरख़िश्त (अ०; फा०; हिं; द०) ६४१–६४३
,, अँगरेजी ६४३
,, अश्की ६४२,६४३
,, चोब ६४३
,, तख्ता ६४२, ६४३
,, नकली (कृत्रिम) ६४२
,, बलूती ६४२
,, समगी ६४३
शीरख़ुश्क (फा०) ६४१
शीरज (अ०) ३६७
शीरपंखा (म०) ६६४
शीर पर्वदा (फा०) ५७

विषय एंव शब्द पृष्ठांक
शीरे गियाह (फा०) ३९१
शी(सी)वक्काय (ता०) ६८४
शीशम (फा०; हिं०) ६४३-६४४
शीसव (म०) ६४३
शीह (अ०) १७२
शीह अरमनी (अ०) १४३
,, खुरासानी या तुर्की १४३
,, जबली (अ०) १४३
,, तुर्की (खुरासानी) १७३; ३९०
,, पहाड़ी १४३
शुंठ (द०) ७०१
शुकाई (अ०; भा० बा०) ५१२; ६४४; ४०१; ५१२
शुक्लजीरक, शुक्लाजाजी (सं०) ३४१
शुण्ठी (सं०) ७०१
शुतुरख़ार (फा०) ३३४
शु(चु)पन्न मन्दारम् (मल०) १०५
शुप्पसन्दु (बं०) ६३९
शुभा (सं०) २७९
शुरुआरी (हिं०) ६८३
शुलुफा, शुलफा (बं०) ७०३
शुल्ल (फा०) ५३९
शुशनी (बं०) ७८
शुष्कक्षीर (सं०; हिं०) ६४१
शूकरान ६४५
शूत, शूद (फा०) ७०३
शूप्रक (हिं०) ४४५
शू-फ्लावर (अं०) २५५
शूशमीर (अ०) ७२
शृङ्गबेर (सं०) ७०१
शृङ्गाट(क) (सं०) ६८१
शृगालकोली (सं०) ५६०
शृङ्गी (सं०) १५४
शृंगीविष (सं०) ४८५
शेज शंदनम् (ता०) २८३
शेंगाडा (म०) ६८१
शेंद्री (म०; बम्ब०) ६५६
विषय एंव शब्द पृष्ठांक
शेतूत, शे(से)तूर (गु०) ३७४
शेदूरी (पं०) १२३
शेपरुति (मल०) २५५
शेपु (म०) ७०३
शेफालिक (सं०) ७१८
शेभालू (द०;बं०) ६५०
शेमलमुसली (गु०) ६९८
शेमलो (गु०) ६९८
शेम्प (मल०) ३२३
शेरडी (गु०) २३४
शेलारस (गु०) ६४०
शेलु (सं०) ६१६
शेवगा (म०) ६६९
शेवती गुलाब (म०) २६३
शेवंती-च-फूल (म०) २५८
शैबतुल् अजूज़ (अ०) ३१५
शैलम (अ०) ४१
शैक्म (अ०) ६४६
शैलेय (सं०) ३१५
शैवाल (सं०) ७००
शोभाज्जन (सं०) ६६९
शीरगज़ (फा०) ४७१
शौकतुल् अक़रब (अ०) १०९
शौकतुल् बैजा (अ०) ५१२
शौजतुल् मुन्तिन (अ०) २४४
शौकरान १९५
शौकरान (अ०) ६४५-६४६
शौकरान जबीर ६४५
शौकरान सुकरात ६४५
शौकियः (अ०;फा०) ३९६
शौकुल् एअराबियः (अ०) ४९३
शौकुल् जमाल (अ०) ९०
शौकुल् मिश्रियः (अ०) ४९३
श्यामबीज (सं) १२०
श्याम(मा)क (सं०) ६७१
श्यामा-लता (सं०;बं०) १६३,१६४

विषय एवं शब्द पृष्ठांक

श्रावणी (सं०) ५५६
श्रीखण्ड (सं०) २८४
श्रीफल (सं०) ५३९
श्रीवल्ली (सं०) ६८४
श्रीवास, श्रीवेष्ट (सं०) ३०३
श्लेष्मातक, श्लेष्मान्तक (सं०) ६१६
श्वेतकेवडा (म०) २०१
श्वेतगुलाब (बं०) २६३
श्वेतचन्दन (बं०) २८४
श्वेतदूर्वा (म०) ३९३
श्वेतपुष्पीय बाबूना कबीर १०
श्वेत धत्तूर (सं०) ३९६
श्वेत पुनर्नवा (सं०;बं०) ४५४
श्वेत बला २३२
श्वेतमुर्गा (बं०) ६८३
श्वेतमुस(ष)ली (सं०) ५८८
श्वेतमूसली (सं०) ४८८
श्वेतवचा (सं०) ४८४
श्वेत सरिवा (बं०) ६६५
श्वेस साटोडी (गु०) ४२९
श्वेतशिरस (म०) ६६५
श्वेतशिरीष ६८२
श्वेतसर्षप (सं०) ६६५
श्वेत साटोडी (गु०) ५२९

ष

षड्भुज(जा)-(सं०) २१४
षष्ठिक (सं०) २९६, २९७

स

संखहुली (हिं०) ६४७
संखाहुली (हिं०) ६४७
संखिनी (सं०) १५९
संगतरा (हिं०) ६४८
संगेशिकन (फा०) १९२
संगेसूबूया (फा०) ४२८
संगेसबूह ४२८
संजित (पं०) ५३८

विषय एवं शब्द पृष्ठांक

संजीत (पं०) ८०
संजेसबूया (अ०) ४२८
संतरा, संत्रा (हिं०) ६४८
संत्रे (म०) ६४८
संदल (द०) २८४
संदले अब्यज (अ०) २८४
संदले अहमर (अ०) २८३
,, सफेद (फा०) २८४
,, सुर्ख (फा०) २८३
सदूरूस (चंद्रस) ६४८–६४९
संद्रस, संदरस (यूनानीवैद्यक) ६४८
संध्याकाली (म०) २५६
संपिगे (का०) २८६
संबकम् (ता०) २८६
सँभालू (हिं०) ६५०–६५१
सँभालूपत्र ६५०
सँभालू के बीज ६५१
संमोलीस्याह (मा०) १९५
सकरकन्द (हिं०) ६३४
सक(ग)बीनः (फा०) ६५१
सकबीनज (अ०) ६५१–५५२
सकमूनिया (आ) (अ०; फा०; हिं०; म०; पं०; सिं०; भा० बा०) ६५२–६५३
सकायी (म०) ५१२; ६४४
सकुवा ६०४
सकोरी (अं०) १६५
सक्सिनाइट (अं०) १४९
सखरी (अ०) १५
सग अंगूर (फा०) ५५८
सग पिस्ताँ (फा०) ६१६
सगशिकन (फा०) १९२; ६२५, ६२६
शजपोश (क०) २११
सजीवन (हिं०; मीरजापुर) ६६७
सज्जी (हिं०; म०; गु०; कों०) ८४, ८५
सज्जीका नमक (हिं०) ८५
सज्जी के भेद ८५

विषय एवं शब्द पृष्ठांक

सज्जीके विषलक्षण ८६
सज्जीखार (हिं०) ८५
सज्जी बूटी (हिं०; मं०) ८४
सज्जी बनाने के विधि ८५
सज्जी विलायती ८६
सज्रे हंद (क०) १६५
सत आमला (हिं०) ५७
सत गिलो (फा०) २५०
सत गिलोय (हिं०) ,,
सत मुलेठी (हिं०) ५८४
सत या जोहर अजवायन (हिं) १७
सत लोबान (हिं०) ४९९
सतरात्यूतीस (यू०) ३२९
सताप (म०; बम्ब०) ६८८
सताब (फा०; हिं०; गु०) ६८८
सतालू (हिं०) ५२
सतावर (हिं०; पं०; थारु) ६५३–६५४
सतावरी (गु०; म०) २
सतिवन, सतौना (हिं०) ३१६
सतीन (सं०) ५६३
सतुआ (नैपाल) ४६४
सतुआ सोंठ (हिं०) ७०१
सतूबी (यू०) ५३५
सत्फल (म०; गु०) ६६१
सत्यानाशी (हिं०; मार०) ६५४
सत्यानासी (हिं०; पं०) ६५४
सदबंग (फा०) २७१
सदागुलाब (हिं०) १९९
(छा) सदाक़ब (फा०; हिं०) ६८८
सन (हिं०;संथा०) ६५७
सनई (हिं०; पं०) ,,
सन तागा (बम्ब०) ६५७
सन-फ्लावर (अं०) ६९५
सन जंगली (शणपुष्पी) ६५८
सनाऽ (अ०) ६५८
सनाय (हिं०) ६५८-६६०

विषय एवं शब्द पृष्ठांक

सनाय की पत्ती, फली ६६०
सनाय इस्केदरानी ६५९
सनाय (मकी) (हिं०) ६५९
सनाय सिकंदरी ६५९
सनार (अ०) २९१
सनीगा (यू०) ५३३
सनोवर ६६०--६६१
सनोबर कोही (फा०) ६६०
सनोबर जबली (अ०) ,,
सनोबर बर्री (अ०) १११;३०४
,, तवीलुल् औराक़ (अ०) ६६०
सनोबरुल् अर्ज़ (अ०) १३२
सनोबरुल् हिन्दी (अ०) ३०३
सनोबरुब् हिमार (अ०) ७२६
सन्त (बबूल) (मिश्र) ४९३
संपिगे (का०) २८६
सपि(बि)स्ताँ (फा०) ६१६
सपिस्ताँ, सपिस्तान् (फा०) ६१६
सपिस्ताने कलाँ (फा०) ६१६
सपिस्ताने खुर्द (फा०) ,,
सप्तपर्ण (सं०) ३१६
सप्तला (सं०) ६८४
सफरचन्द (गु०;म०) ६९७
सफरजन ? (गु०) ६९७
सफ़रजल (अ०) ५३०
सफरजले हिंदी (अ०) ५३९
सफरी, सफरी आम (हिं०) ३४
सफ़रसाफ़ ५३५;५३७
सफिस्ता (अ०) ६१६
सफुरी कोमड़ा (बं०) २०५
सफ़ूफ़ कीना ६७१
सफेत् जीरे (बं०) ३४१
सफ़ेद इलायची (हिं०) ७२
,, कुट १८५
सफेद डामर (हिं०) ६४८,६४९
सफ़ेद या मीठा कुड़ा १८८–१८९

विषय एवं शब्द पृष्ठांक

सफ़ेद कुरा (म०) १८८
,, गुलाब २६३
,, चंदन (हिं०) २८४
,, चीता (हिं०), चित्रा (गु०) ३०६
,, जीरा (हिं०) ३४१--३४२
,, जीरे (बं०) ३४१, ३४२
,, और तंतुरहित सोंठ ७०१
,, दूब (हिं०) ३९३
,, धतुरो (गु०) ३९६
,, धरो (गु०) ३९१
,; (सुफेद) बहमन (हिं०; भा० बा०) ५०२
,, फ़ूल व काले बीजका
,, धतूरा ३९६-३९७
,, पोस्ता ४६०
,, फूल का सेमल ६९९
,, बच (हिं०) ४८४
,, मुर्गा (हिं०) ६८३
सफेद मुसली (हिं०;गु०;म०) ५८८-५८९
,, राई (हिं०; उ०) ६६५
,, सरसों (बं०) ३६१
,, सिरस ६८२
सबजा (म०) ३७३
सबुअश्शार (अ०) ३०
सबिस्ताँ (अ०) ६१६
सबूस इसबगोल (फा०) ७६
स(सु)बूस गंदुम (फा०) २७२
सब्जदाना (फा०) ५३२
सब्ज़ारत, सब्ज़ारा (अ०) २७९
समग़ुल् अरबी (अ०) ४९३
समग़ुल् बहर (अ०) १४८
सब्जजया (हिं०) ५४२
सबूस गंदुम (अ०) २७३
समग़े अरबी (अ०) ४९३
समग़े उषर (अ०) ४८
समन्दरफल (मा०) ६६१
समग़े हर्शफ़ (फा०) ७१९

विषय एवं शब्द पृष्ठांक

समग़े हिन्दी (अ०;फा०) ४०३
समग पलः (पलास,ढाक) (फा०) ४३८
समग़ुल् अरबी (अ०) ४९३
समन (फा०) २९१
समन (अ०) २९६
समरतुत्तर्फ़ा (अ०) ३५३
समर मन्शिम् (अ०) ५६४
समर सरो कोही (फा०) ७२४
सम्रतुल् अरअर (अ०) ७२४
समरतुल् अस्ल (अ०) ४७७
समरतुल् फ़ुवाद (अ०) ५०१
समरुल् फह्म (अ०) ५५३
समरुल् वर्द (अ०) २६५
समरुश्शिबित्त (अ०) ७०३
समरे अम्मुग़ीलाँ (अ०) ४९३
समरे गुल (फा०) २६५
समरे पशशः (फा०) २६९–२७०
समलः (अ०) १४
समलए आला (अ०) १४
समलपत्ती (हिं०;भा०;बा०) ७१०
समसम (अ०)
समाक (अ०;फा०) ६९७
स(सु)माक़ (अ०;फा०) ६९१
स(सु)म्माक (अ०) ६९१
समाक दाना (हिं०;पं०) ६९१–६९२
समान बेन ५०२
समारोग़ (फा०) २२६
समाहंग (फा०) १७६
समुंरफल (हिं०) ६६१-६६२
समुद्रफल (सं०;मु०;गु०) ६६१
समुरः (अ०) ४९३
समुन्दरसोख (हिं०;पं०) ६६२
समोली स्याह (मा०) १९५
सम्बुसिन (अं०) २१३
स(सु)म्माक (अ०) ६९१

विषय एवं शब्द	पृष्ठांक
सम्मुल्मार (अ०)	११६
सम्मुल् हिमार (अ०)	११६
सम्रतुल्फ़ुवाद (अ०)	५०१
सम्रुल् कुज्बुरः (अ०)	३९९
सम्हालू (हिं०)	६५०
,, के बीज	६५०
सरको (म०)	११९
सरख्स(फा०)	६६३
,, मुज़क्कर (फा०)	६६३
सरगवो (गु०)	६६९
सरपंख (पं०)	६६४
सरपनो छरा (गु०)	७९
सरपोंखा (हिं०)	६६४
सरफोंका (हिं०)	६६४
सरल (तेलियो) (म०; गु०)	३०३
सरल (श्र्याह्व) (सं०)	३०३
सरल गाछ (बं०)	३०३
,, चोड़	६६०
सरल देवदार (हिं०)	३०३
सरलद्रव (तेल)	३०४
सरल निर्यास (द्रव) (सं०)	३०३
सर वाली (हिं०)	६८३
सरसडो (गु०)	६८२
सरसव (गु०)	६६५
सरसीया तेल (गु०)	६६५
सरसु (मा०)	६६५
सरसों (हिं०)	६६५
सरसों का तेल (हिं०)	६६५
सरसों-चे-तेल (म०)	६६५
सराटे (म०)	२४४
सराप (म०)	२३८
सरिषा (बं०)	६०२, ६६५
सरीफा (हिं०)	६३६
स(से)रीफोन (यू०)	१७२
सरेयाँ (पं०)	६६५

विषय एवं शब्द	पृष्ठांक
सरेश (फा०)	२२४
सरो (फा०; हिं०)	६६६-६६७
सरोकोही (फा०)	६६६
सरोतुर्किस्तानी (फा०)	३२८
सरो बर्री (फा०)	६६६
सरौता (पं०)	३१६
सर्ज (सं०)	६४८
सर्जरस (सं०)	६४८
सर्ज़िका, स्वर्जिका (सं०)	८४
,, क्षार (सं०)	२०४
सर्जिक्षार (सं०)	८५
सर्पगन्धा (सं०)	७७
सर्पगन्धा (सं०)	७७
सर्पगन्धा (हिं०; भा० बा०)	३८२
सर्पच्छत्र (सं०)	६४८
सर्पच्छद (सं०)	२२६
सर्पदन्ष्ट्रा (सं०)	६८८
सर्पाख (क०)	६६४
सर्पान (क०)	६६४
सर्पिल्लम् (अं०)	
सर्पेन्टाईन	३८३
सर्मः (तुर्की	४८८
सर्मः(क)–(फा०)	४८८
सर्वली (सिं०)	६८३
सर्वजया (सं०)	५४२
सर्षप (सं०)	६६५
सर्षप तैल (सं०)	६६५
सर्ष(र्श)फ (फा०)	६६५
सलई और कुंदुरु	६६७-६६८
सलई गोंद (हिं०)	६६७
सलखवृक्ष	३८९
सलग(ज)म (हिं०)	६३७
सलाद (हिं०; बं०; पं०)	१६९
सलीखः (अ०)	३८८, ३५८, ३८९
सलैधूप (बम्ब०)	६६७

विषय एवं शब्द पृष्ठांक
सल्फियम् (यू०) ७३०
सल्मः (फा०) ४८८
सल्ल (कु०) ३०३
सवीक़ुश्शईर (अ०)
सहजणीं (मा०) ६६९
सहतून (मा०) ३७४
सहदेइया (हिं०) ६६८
सहदेई (हिं०; पं०; मा०) ६६८-६६९
सहदेवी (सं०; गु०; क०) ६६८
सहस्रवीर्या (स०) ३९४
सहिजन (हिं०) ६६९-६७१
सांजर (बिहार) ४५३
सांटा, साटा (हिं०) ४५३
सांटालुम् आल्बुम् (ले०) २६४
साँठ(ठी)-(हिं०) ४५३
सांठा (मा०) २३४
साँप की छतरी (हिं०) २२६
साँवलो (हिं०) ६८८
साँवाँ (हिं०) ६७१
साइक्लेमिन (अं०) ३४६
साइट्रन (अं०) ५२२
साइट्रिक एसिड ४३४
साइडोनिन (अं०) ५३०
साउस्सूरेआ लाप्पा (ले०) १८३
साओ (सिंध) ४५८
साक़ तुर्शक़ (फा०) ३०९
साकरकोलुँ (गु०) २०५
साक़िबुल हज़र (अ०) २०२
साक्कारुम् (ले०) २३५
साक्कारुम् ऑफ्फीसिनारुम् (ले०) २३४
साक्सांफ्रागा लिगूलाटा (ले०) ३४०
साक़ुल् अस्वद (अ०) ७१०
साक़ुल् हमाम (अ०) १४२
साखर (म०) २३५
साखर लिंबु (म०) ४२२
सागर गोटा (म०;हिं०) १३५

विषय एवं शब्द पृष्ठांक
सागुस् जेनुइना (ले०) ६७२
सागुस् रूम्फी (ले०) ;,
सागुस् लीवस(ले०) ,,
सागूदाना (हिं०) ६७२
साचिक्षार, साजीमाटी (बं०) ८५
साज़ज हिन्दी (अ०) ३७६
साजी (कु०) २९८
साजीखार (म०; गु०) ८५
साटो(टो) (मा०) ४५३
सोटडी (गु०) ,,
साठ (हिं०) ४५४
साठी (पं०;सिं०) २९६,२९७
सातर (अ०;भा०बा०;हिं०) ६७२,६७३
सातरी (हिं०) ६८८
सातरुल् हमीर (अ०) ७२७
सातला (सं०) ६८४
सातवण (गु०) ३१६
सातवीण (म०) ३१६
सातु (म०) ३४८
साथर (हिं०) ६७२
सादा धूतूरा (बं०) ३९६
सादाबु (कना०) ६८८
सान्टालुम् रुब्रुम् (ले०) २८३
सापसन(ण), सापसंद (बम्ब०;म०) ७७
सापींडुस इमार्जिनाटुस (ले०) ६०७
सा० मुकोरोस्सी (ले०) ६०७
सापोनारिआ आफ्फीसिनालिस (ले०) ६७४
सापोनारिआ वाक्कारिया (ले०) ६७३,६७४
साबर (सं०) ६२८
साबुनी (हिं०) ६७३-६७४
,, विदेशी ६७३
साबूदाना (हिं०) ६७२
साबूनी (हिं०;बं०) ६७३
,, बूटी ६७४
साबूनुल् क़ाफ़ (अर) ४८१
सामबेल (—साधु०) ७२८

विषय एवं शब्द पृष्ठांक

सामान (फा०) ४३२
साम्निफेरिन (अं०) ४५
साम्बुकुस एबुलुस (ले०) २१२
साम्बुकुस नीग्रा (ले०) २१३
साम्ब्राणी (गु०) ६२९
सायनोजेनेटिक ग्लूकोसाइड (अं०) २१२-२१३
सारसापरीला (स्पेन) ८२
सारसी राडिक्स (ले०) ८२
साराचन्दन (बं०) २८४
सारिबा ६७४–६७५
सारिवा (सं०) ६७४
सॉरेल (अं०) ३०९
सॉर्घुम डॉक्ना (ले०) ३५२
सार्घुम वुल्गारे (ले०) ३५२
सार्सापरिल्ला (अं०) ८२
सालप, सालव (अफ०) ६७६
सालबमिसरी (फा०) ६७६
सालबमिस्री (अ०) ६७५
सालम (गु०) ६७६
सालम मिश्री (म०) ६७६
सालम मिश्री, सालमपंजा ६७६-६७७
सालर (राजस्थान) ६६७
सालसा (हिं०; गु०; बं०) ८२
सालसोला कली ८२
सा० फेटिडा (ले०) ,,
साला (अल्मो०; गढ़०; का०) ३०३
सालिक्स आल्बा (ले०) ५३७
सालिक्स ईजिप्टिका (ले०) ३२८
सालिक्स काप्रेआ (ले०) ५३५
सालिक्स नीग्रा (ले०) ५३७
सालिब मिश्रि (हिं०; पं०; बं०) ६७६
सालीटची भाजी (बम्ब०) १६९
सालुम (बम्ब०) ६७६
साल्ट-वर्ट्स (अं०) ८४
,, प्लेबिआ ६६२
साल्मालिआ मालाबारिकम् (ले०) ६९८

विषय एवं शब्द पृष्ठांक

साल्विआ ईजिप्टिआका (ले०) ५२०
साल्विया प्लीबिआ (ले०) ४३८
साल्विया स्पीनोजा (ले०) ११८
सा० हीमोटोडीस (ले०) ५०३
सावर डॉक (अं०) ३०९
सावर लोध्र (सं०) ६२८
सास्फ़रास (अ०) ६७७-६७८
सास्(खा)फ्रास ऑयल (अं०) ६७८
सासम, सासिम (अ०) ६४३
सासलियूस (अ०) ६८५
सासाफरास ६७७
सासाफ्रास (अं०) ६७७
सास्साफ्रास ऑफ़्फ़ीसिनाले (ले०) ६७७
सा० वारीफोलिउम् (ले०) ,,
सासम, सासिम (अ०) ६४३
सासिषे (का०) ६०२
सासूरिन (अं०) १८५
सिंकोना तथा कुनैन ६७८-६८०
सिकोना छाल (हिं०) ६७८
सिकोना बार्क (अं०) ,,
सिंकोनीडीन (अं०) ६८०
सिकोरीन (अं०) ,,
सिंगतोक (भूटा०) ३७४
सिंगबेर (फा०) ७०१
सिंगापुरी पीपल २९४
सिंगिया वीष (हिं०) ४८५
सिंगी मोहरा (अ०) ४८५
सिंगोड़ा (मा०) ६८१
सिंघाड़ा (हिं०) ६८१
सिं(से)दूरिया (हिं०) ६५६
सिंद्रुस (क०) ६४८
सिंजद (फा०) ५३८
सिंजद खोरासानी (फा०) ८०
सिंजद जीलानी (फा०) ८०
सिंदवार (संथा०) ६५०
सिंदूर, सिंदूरपुष्पी (सं०) ६५१

विषय एवं शब्द पृष्ठांक

सिबलकी मूसली (पं०) ६९८
सिआमॉप्सिस टेट्रागोनोलोबा (ले०) २५१
सिकंजबीन खाम (फा०) ४२३ पा० टि०
सिकंजबीन पोख़्ता (फा०) ,, ,,
सिकंजबीन लीमूनी (फा०) ४२३ पा०टि०
सिकाकाई (मार०; हिं०) ६८४
सिकास पेक्टिनाटा (ले०) ६७२
सिकेल सेरेआले (ले०) ४१
सिकेल्ले कान्यु'टम् (ले०) ४१
सिकोरिउम् इन्टीबुस (ले०) १६५
सिकोरिउम् एण्डीविया (ले०) १६५
सिक्यूटा (रू०) ६४५
सिखाकाई (हिं०) ६८४
सिगटलउरिया (हिं०) ३५
सिट्रिक एसिड (अं०) ३८, ६३, २२८, ६४८
सिट्रलस वुल्गेरिस (ले०) ३६०
सिट्लोन (यू०) ३०८
सिणी (गु०) ६५७
सित कुटज (सं०) १८८
सितरित्ती (ता०) १९२
सिताब(व) (हिं०) ६८८
सितालता (सं०) ३९४
सिद्धि (हिं०; बं०) ५४८
सिनापिस (ले०) ६६५
सिनापिस आल्बे (ले०) ६६५
सिनाल्बिन ६६५
सिनिग्रिन (अं०) ६०२
सिनुआर (खर०) ६५०
सिनेपिस नाइग्रे (ले०) ६६५
सिनेपी (यू०) ६६५
सिनेमन (अं०) ३५८
सिनैपिन सल्फोसायनाइड ६६५
सिन्दु(न्धु)वार (सं०) ६५०
सिन्नामोमी कार्टेक्स (ले०) ३८८
सिन्नामोमुम् कॉम्फोरा (ले०) १२१
सिन्नामोमुम् कास्सिआ (ले०) ३८८

विषय एवं शब्द पृष्ठांक

सिन्नामोमुम् जेलानिकुम् (ले०) ,,
सिन्नामोमुम् नीटिडुम् (ले०) ३५८, ३७६
सिन्नेमन बार्क (अं०) ३८८
सिन्नैमिक एल्डीहाइड (अं०) ३७७
सिन्नैमिक एसिड (अं०) ३८१, ६३०
सयाह चोब (फा०) ६४१
सिपंद (फा०; क०) —
सिपंदाँ, सिपंदाँ गिर्द (खु०) (फा०) ६०२
सिपंदान (फा०) ७२६
सिबर्गी (क०) ३६६
सिब्र (अ०; फा०) २७९, २८०
,, अदन —
,, अरबी २८०
,, बर्बदी २८०
,, मक्की —
,, मैसूरी २८०
,; यमनी
,, सकोतरी (अ०) २८०, २८१
सिमजंघा (को०) १५३
सिमलू (पं०; पहाड़ी) ३८५
सिमसिम (अ०) ३६७
सिम्पोपोगन ज्वारंकुसा (ले०) ६९
सियाकांटा (पं०) ६५४
सिम्बि(श्वि)तिका (सं०) ६९७
सियरलठिया (हिं०) ३५
सियाकुल (बं०) ५६०
सियाजीरा (हिं०) ३४१
सियालिया (जम्मू) ०२४
सियाह चोब (फा०) ६४१
सियाह जीरा जंगली (फा०) १६२
सियाहदाना (क०) १६०
सियाह(स्याह)मुसली (हिं०) ५८७
स्याह जीरा (हिं०) ३४१
सिरकये उन्सुल ४६७
सिरका (हिं०) २३४
सिरका २३४

विषय एवं शब्द पृष्ठांक
सिरगिटअड़ा (संथा०) ६८३
सिरवारी (खर०) ६८३
सिरस (हिं०) ६८२
सिरसबीज ६८२
सिरिंह (सिंध) ६८२
सिरियारी (हिं०) ६८२
सिरिस (हिं०) ६८२
सिरिस-ट्री (अं०) ६८२
सिर्याचिकी (सिंध) ६६५
सिल्ला हिआसींथिना (ले०) ४६७
सिल्हक (सं०) ६४०
सि(से)वार(ल) (हिं०) ७००
सिसेम (अं०) ३६७
सिसेम ऑयल (अं०) ३६७
सिरींजी (ते०) ४०३
सिल्क़ (अ०) ३०८
,, अब्यज़ (अ०) ,,
,, अस्वद (अ०) ,,
,, अहमर (अ०) ,,
सिसीम्ब्रिडम् ईरिओ (ले०) २२१
सिसैम्पेलीन (अं०) ४४०
सींककी जड़ २२९
सीं(सिं)कोना ऑफ्फीसिनालिस (ले०) ६७८, ६७९
,, कालीसाया (ले०) ,, ,,
,, लेड जेरियाना (ले०) ,, ,,
सीं(सिं)कोनी कॉर्टेक्स (ले०) ६७८
सींघारा (मा०) ६८१
सीकरान (अ०) २५१
सीकाकाई (हिं०) ६८४-६८५
सी-कोकोनट (अं०) ४१६
सीक्लामेन (ले०) ४८२
सीक्लामेन पेर्सिकुम् (ले०) ४८१
सी० यूरोपीउम् (ले०) ४८१
सोजीजिउम् जाम्बोस (ले०) २६८
सीट्रलुस कोलोसिंथुस (ले०) ६४
सीट्रस रेटीकुलाटा (ले०) ९८

विषय एवं शब्द पृष्ठांक
सीट्रिक एसिड (अं०) ४२२
सीट्रुस आउरान्टिउम् (ले०) ४१३
सीट्रुस आउरांटिफोलिथा (ले०) ४२२
सीट्रुस डलिसस (ले०) ५८७
सीट्रुस माक्सिमा (ले) २८७
सीट्रुस मेडिका प्र० एसिडा (ले०) ४२२
सीट्रुस मेडिका प्र० मेडिकाप्रॉपर (ले०) ५२३
सीट्रुस लिमेट्टिऑइडेज (ले०) ४२१
सीट्रुस लीमोन (ले०)
सीट्रुस सीनेन्सिस (ले०) ५८७
सीडाकॉर्डीफोलिया (ले०) ४९८
सीडा रॉम्बीफोलिजा ,,
सीडा स्पीनोजा ,,
सीडोनिआ ओबलाँगाटा (ले०) ५३०
सी० वुल्गारिस (ले०) ५३०
सीताफल (हिं०; सं० म०; गु०; मा०; बृज) ६३६
सीताफलम् (ते०) ६३६
सीतासुपारी (हिं०; क०) ५०१
सीतेच केस (म०) ७४
सीनारा स्कोलीमुस (ले०) ७२९
सीन्नामोमुम् टामाला (ले०) ३५८
सी० नीटिडुम् (ले०) ३५८
सोनोडॉन डाक्टीलॉन (ले०) ३९३
सीपेरुस रोटुंडुस (ले०) ५९८
सीपेरुस स्केरिओसुस् (ले०) ५९८
सीफल (पं०) ५३९
सीम्प्लोकॉस क्राटेगोइडेस (ले०) ६२८
सी० रासेमोसा (ले०) ६२८
सीर (फा०) ६१९
सोरदश्ती (अ०) ८९
सीरियन रू (अं०) ७१७
सी-वीड (अं०) ७००
सीलानः (फा०) ८०
सीलोन ज़ैस्मीन (अं०) २५७
सीलोन या ह्वाइट लेड-वर्ट (अं०) ३०६
सीलोन सिन्नेमन (अं०) ३८८

विषय एवं शब्द पृष्ठांक

सीलला ईण्डिका (लै०) ४६७
सीसम (हिं०; गु०) ६४३
सीसालियूस (अ०) ६८५–६८६
सीसाली (अ०; यू०) ६८५
सीसु (अं०) ६४३
सीसेर ऑरिएटिनुम् (लै०) २९०
सीसैल्पीनिया क्रीस्टा (लै०) १३५
सीसो (हिं०) ६४३
सीस्साम्पेलॉस पारेईरा (लै०) ४४०
सुंठ (गु०) ७०१
सुंठी (म०) ७०१
सुंदरस (बं०; पं०) ६४८
सुँदि (बं०) १२९
सुंबुल (अ०) २०९
सुंबुल ख़ज़ामी (अ०) २०९
सुंबुलुत्तीब (अ०) ५१९, ४१६
सुंबुलुत्तीबे हिंदी ५१८
सुंबुले अस्फ़र (अ०) ४१६
सुंबुले इक्लीती (क्ष०) ६८६
सुंबुले कोही (अ०) ६८६
,, जबली (अ०) ,,
,, बर्री (फा०) ,,
सुंबुले रूमी ४१६, ५१९
,, सूरी (अ०) ६८६
,, हिंदी (अ०) ५१८
सुआब (अ०) १७६
सुएडा फ्रुटीकोसा (लै०) ८४
सुकरात ६४५, पा० टि० १
सुक्क (अ०) ५७
सुक्कर (अ०) २३५
सुक्करुल् अब्यज़ (अ०) २३५
सुक्करुल् उषर (अ०) ४८
सुकोमोरोस (यू०)
सुखड़ (गु०) ७१३
सुखदर्शन (हिं०; बं०)
सुखारी

सुगन्धपत्र (सं०-नवीन) ६००
सुगन्ध बथुआ (हिं०) ४८९–४९०
सुगन्धवाला (हिं०; पं०; भा० बा०) ४१६
सुगन्धबाला (हिं०) ३५७
सुगन्ववास्तुक ४८९४९०
सुगन्धा (सं०) १९२
सुगर (अं०) २३५
सुगर-केन (अं०) २३५
सुगर-बीट (अं०) ३०८
सुज़ाब (अ०) ६८८
सुदर्शन (सं०; हिं०) ६८८
सुदाब (फा०; हिं०; गु०) ६८८–६९०
सुद्दाब (फा०) ६८८
सुनिषण्णक (सं०) ६८३
सुपारि (बं०) ६९०
सुपारी (हिं०; म०) ६९०–६९१
सुपारीका फूल (हिं०) ६९८
सुपु (सिं०) ६९७
सुबार (अ०) ७०
सुबाली (हिं०) ४२७
सुमना (सं०) ३४३
सुमाक (अं०) ६९१
सुमाक (अ०) ६९१–६९२
सुमाक़ुल्दब्बाग़ीन (अ०) ६९१
सुम्बुल (अं०) ६८६
सुम्बुल (अ०) ६८६–६८७
सुम्बुलुत्तीब (अ०) ६८६
सुम्बुले हिंदी ६८६
सुरंजान (हिं; म०; गु०; उ०) २३८
सुरंजान मीठा और कड़ुआ ६८३
सुरपुन्नाग ६८३
लाल २८२
सुर्ख (फा०) ५८१
सुर्ख मिर्च (उ०)

विषय एवं शब्द — पृष्ठांक

सुर्चि (पं०) ३६६
सुर्ती (हिं०) ३५९
सुर्वाली (सिं०) ६८३
सुलंबुली (ता०) ५९२
सु(सि)ल्त (अ०) ३५१
सुल्तानाज (अं०) ३
सुल्तानुल् अश्जार (अ०) ६८२
सुल्फा (मा०) ५४९
सुवर्चला (सं०) ७३२
सुवर्चिका (सं०) ८५
सुवर्णयूथिका (सं०) ३४४
सुवा (पं०; गु०) ७०३
सुशुनी शाक (बं०) ६८३
सु (सो) हांजना (पं०) ६६९
सुहांजिडो (सिं०) ६६९
सूंठ (मा०) ७०६
सूंफ (मा०) ७०६
सूआ (सिं०) ७०३
सूक्ष्मैला (सं०) ७२
सूक्सिनुम् (ले०) १४८
सूची (पं०) १८०; ६२६
सूतं (का०) ६९७
सूफ (सिं०) ६९७
सूफ़ुल् अर्ज़ (अ०) ४७०
सूम (अ०) ६१९
सूमस (अ०) ७२७
सूमसहराई(बर्री)-(अ०) ८९
सूमुल्हय्य: (अ०) ८९
सूरजमुखी (हिं०; बं०) ६९५–६९६
ा (सं०; म०; गु० बम्ब०; कच्छ;कोंक०) ६९६
(का०) ६९६
सूरिंज ने तल्ख (फा०; भा० ६९२
,, शीरीं (फा०; भा० बा०) ६९३
सूर्यफूल (म०) ६९५

विषय एवं शब्द — पृष्ठांक

सूर्यमुखी (पं०) ६९५
सूस (फा०) ३०२; ६६०
सूसीन (अं०) ५८५
सेंगरी ५९१
सेंट इग्नेशियस बीन (अं०) ४३५
सेंटजॉन-बीन (ब्रेड)-(अं०) २१५
सेंटॉरी (अं०) ९६
सेंटोनिका (अं०) १७२
सेंटोनीन (अं०) १७३, १७४
सेंट्राथेरुम् आन्थेल्मीन्टिकुम् (ले०) १६२
सेंड, सेहुँड (हिं०) ३७९
सेंदी (हिं०) २०९
सेंध (हिं०) १०६
सेंधी (हिं०) २०९
सेंब(भ)ल(र)-(हिं०) ६९८
सेंवाली (कु०) ६५०
सेइबा पेंटांड्रा (ले०) ६९९
सेकटा (म०) ६६९
सेकटो (गु०) ६६९
सेज (अं०)
सेटारिया ईटालिका (ले०) ९४
सेड्रूस लीबानी (ले०) ३०३ ३९४; ६६०
सेतसारिश (बं०) ३६१
सेनेका, सेनेगा (अं०) ५३३
सेनेगा-राडिक्स, सेनेगा-रूट (अं०) ५३३
सेनेगिन (अं०) १३७
सेन्टजॉन्स ग्रास या वर्ट (अं०) ७३३
सेन्टाउरेआ बेहेन (बेहमेन) (ले०) ५०२
सेन्टीपीडा ऑर्बीकुलारिस (ले०) ४०४
सेन्टेल्ला एशियाटिका (ले०) ३४५
सेन्ना (अं०) ६५८
,, पॉड्स (अं०) ,,
फोलिउम् (ले०) ६५८
,,
६५९

विषय एवं शब्द पृष्ठांक

सेन्सिटिह्व प्लांट (अं०) ३१७
सेपाली (ते०) ७१८
सेप्टफोइल (अं०) ५२७
सेफेलेन्ड्रा इंडिका (ले०) ९७
सेब (फा०; पं०; बं०) ६९७
सेबु (क०) ६९७
सेबेज़र्मी (फा०) ६०
सेम (हिं०; पं०) ६९८
सेमर (हिं०) ,,
सेमरका मुसरा (हिं) ६९८
सेमरी (हिं०) ३९४
सेमल (हिं०) ६९८–७००
सेमलकन्द (हिं०) ६९८
सेमलका गोंद (हिं०) ६९८
सेमल मूसल (मूसली) (हिं०) ६९८, ६९९
सेमलका मूसला या जड़ (हिं०) ६९८
सेमलकी रूई ६९९
सेमीकार्पुस आनाकार्डिउम् (ले०) ५५३
सेम्बइ (ता०) ३२३
सेराटोनिआ सिलिकुआ (ले०) २१५
सेरिस (यू०) १६७
सेरेउस ग्रान्डीफ्लोरुस (ले०) ४०८
सेलास्ट्रुस पानीकुलाटा (ले०) ५७६
सेलरी (अं०) १५
सेलोसिआ आर्जेन्टेआ (ले०) ६८३
सेलोसिआ आर्जेन्टेआ प्र० क्रीस्टाटा (ले०) ६८३
सेल्फ हील (अं०) ९०
सेवंती (सं०) २५८
सेव (हिं०) ६९७
सेवटा (चुनार-मीरजापुर) ७२८
सेवती २५८
सेवती (गुलबा) २६३–२६४
सेवार (हिं०) ७००
सेसामो ओलेउम् (ले०) ३६७
सेसामुम् इंडिकुम् (ले०) ३६७
सेसाल्पीनिआ साप्पान (ले०) ४३२
सेसेली (अं०) ६८५
सेस्बानिआ ईजिप्टिआका (ले०) ३२३
सेस्बानिआ सेस्बान (ले०) ,,
सेहुण्ड (सं०) ३७९
सैंडरक (अं०) ६४८
सैंहलम् (सं०) ३५८
सैगापेतुम् (ले०) ६५१
सैगो (अं०) ६७२
सैग्वेनैरीन (अं०) ६५५
सैन्टोनीन (अं०) ३९०
सैन्डल-वुड (अं) २८४
सैपोटॉक्सिन (अं०) ३९
सैपोनिन १८०, ६७४, ६८४
सैप्पन वुड (अं०) ४३२
सैफ्फ्लावर (अं०) १९७
सैफ्रन (अं०) २०२
सैलिसिन (अं०) ५३६ ५३७
सैलीसिलिक एसिड १४१;२९२;३५०;७१५
सैलेप (अं०) ६७६
सैलैगुन (बं०) ६६७
सैवाल (हिं०) ७००
सैसबान (अ०) ३२३, ४२८
सोंट (द०) ७०१
सोंठ और अदरक ७००–७०२
सोंठ (हिं०; बं०; पं०) ७००, ७०१
सोंतरा (हिं०) ६४८
सोंदाल (बं०) ३५
सोअ(अ्)दकूफ़ी (अ०) ५९८
सोआ, सोया (हिं०) ७०३–७०५
सोआ (चीन) ७०५
सोआबीन (हिं०) ७०५
सोबाल (अ०) ४६८
सोजा (चीन) ७०५
सोडा (अं०) ८५
सोडा प्लांट्स (अं०) ८४
सोडा-बाई-कार्ब (अं०) ८५

विषय एवं शब्द	पृष्ठांक
सोडा मीठा (हिं०)	८५
सोडियम् बाई कार्बोनेट (अं०)	८५
, कार्बोनेट (अं०)	८५
सोनचाँफा (म०)	२८६
सोन(पीली)जूहो (हिं०)	३४४
सोनमक्कि (का०)	६५८
सोनामकी (मुखी) (हिं०; बं०; म०)	६५८
सोनामखा (गु०)	६५८
सोनैया (हिं०)	४७८
सोप-वर्ट (अं०)	६०७;६७४
सोपारी (हिं०; गु०)	६९०
सो·ब्रेड (अं०)	४८१
सोम (सोमकल्प-एफीड्रा)	७०२–७०३
सोमकल्प (सं०-नवीन)	७०२
सोमवल्क (सं०)	२३१
सोमराजी (सं०)	४८०
सोमलता (सं०)	६८८
सोयाबीन	७०५-७०६
सोयाबीन्स	७०५
सोयेका तेल	७०३
सोयेके बीज	७०३
सोलम् मिछरि (बं०)	६७६
सोलानुम् ईण्डिकुम् (ले०)	१०९
सो० जैन्थोकार्पुम् (ले०)	,,
सो० ट्यूबेरोसुम् (ले०)	६०
सो० बलक(के)मारा (ले०)	५५९
सोलानुम् मीनिआटुम् (ले०)	५५८
सो० मेलोंगोना	५४१
सोलानुम् लीकोपेर्सिकुम् (ले०)	३५४
सो० सूराट्टेन्से	१०९
सोवा (मा०; सिंध)	७०३
सो(सौ)सन (फा०; हिं०; भा० बा०)	७०७–७०८
सोसन आजाद (फा०)	७०७
सोसन आस्मानगूनी (फा०)	,,
सोसन ज़र्द (फा०)	४८४
सोसन सफ़ेद (फा०)	,,
सौंफ (हिं०)	७०६-७०७
सौंफकी जड़	७०७
सौमनस्यायनी (सं०)	२९१
सौवीर (सं०)	८०
सौसन अजरक़ (अ०)	७०७
सौसन आस्नानजूनी (अ०)	,,
सौसनकी जड़	१८३
सौसन और ईरसा	७०७-७०९
,, जबली	६०४
स्कामोनिउम् (ले०)	६५२
स्काम्मोनिआ (यू०)	६५२
स्काम्मीनी रेजिना (ले०)	६५२
स्कार्लेट पिम्पर्नेल (अं०)	३४६
स्कीर्पुस कीसूर (ले०)	१४६
स्की० ग्रॉस्सुस (ले०)	१४६
स्कीम्मिआ लाउरेओला (ले०)	१६४
स्कूर्दून (अरबीकृत)	६१९
स्कैबवर्ट (अ०)	४४०
स्कैमोनिन	६५२
स्कैमोनी (अं०)	६५२
स्कैमोनी रेजिना (अं०)	६५२
स्कोइनोस (यू०)	६९
स्कोरडिओन (यू०)	८९
स्कोर्डोन (यू०)	६१९
स्क्वनैंच (अं०)	६९
स्क्वर्टिंग कुकुंबर (अं०)	१७६
स्क्वल्ला (यू०)	४६७
स्क्वल्ला मारीटिमा (ले०)	४६८
स्टाइरेक्स (यू०)	६४०
स्टायरीन	६४१
स्टाफिसाग्री सेमिना (ले०)	५६९
स्टार-एनिस (अं०)	५४२
स्टार्च (अं०)	५५५, २७२
स्टिकवर्ट	
स्टिकीविलग्रोम (अं०)	७३१

विषय एवं शब्द — पृष्ठांक
स्टिग्माटा माइडिस (ले०)
स्टीकाडोस (अ०) २०९
स्टीराक्स टोंकिन्सेन्स (ले०) ६३०
स्टीराक्स बेंजोइन (ले०) ६२९
स्टेफानिआ हर्नान्डीफोलिआ (ले०) ४४०
स्टेरकूलिआ ऊरेंस (ले०) ११३
स्टैफिस ऐग्रिस (अं०) ५६९
स्टैफिसेग्रीन ३२०; ५६९
स्टैवीसैक्री सीड्स (अं०) ५६९
स्टोइखडोस (यू०) ९०
स्टोन फ्लावर्स (अं०) ३१५
स्टोर(रै)क्स (यू०) ६४०;६७३
स्ट्रिक्नास १५५
स्ट्रिक्नीन (अं०) ४३५-४३६;१८१
स्ट्रिक्नोस १८०
स्ट्रीक्नोस नुक्सवॉमिका (ले०) १७९
स्ट्रीक्नोस पोटाटारुम् (ले०) ४१८
स्ट्रूख्नोस (यू०) १५५
स्ट्रूख्नोस अह्लिककाबोस (यू०) १५५
स्ट्रिक्नो मेनिकोस (यू०) ६२६
स्ट्रूथिउम् (रू०) ६७३
स्ट्रैमोनियम् (अं०) ३९६
स्ट्रोथियम् ६७४
स्ट्रोन्थिओन (यू०) ६७३
स्ट्रोफान्थुस् कोम्बे (ले०) ६०९
स्ट्रोफान्थुस् डाइकोटोमस (ले०) ,,
स्ट्रोफान्थुस वाल्वी (ले०) ,,
स्ट्रोफान्थुस वीटीयानुस (ले०) ,,
स्ट्रोफान्थुस हीस्पिडुस् (ले०) ,,
स्ट्रोफैन्थस (अं०) ७०९-७१०
स्ट्रोफैन्थन (अं०) ७०९
स्थूलभण्टाकी (सं०) १०९
स्थूलैला (सं०) ७३
स्थौणेयक (सं०) ३६४, ३६५
स्निग्धजीरक (सं०) ७५

विषय एवं शब्द — पृष्ठांक
स्निग्धदारु (सं०) ३९३
स्नीज-वीड (अ०) ४०४
स्नुही (सं०) ३७९
स्नेक-गोर्ड (अं०) २८८
स्नेक-रूट (अं०) —
स्नेक-वीड (अं०) ५; ३९१
स्पर्ज ऑलिह्व या लॉरेल (अं०) ५७२
स्पांडिआस पीन्नाटा (ले०) ३३
स्पांडिआस मांगीफेरा (ले०) ,,
स्पाइक (अं०) २०९
स्पाइक ऑयल (अं०) ,,
स्पिनैक (अं०) ४४३
स्पीनासिआ ओलेरासेआ (ले०) ४४३
स्पीयर-मिन्ट (अं०) ४१०
स्पेनीय बाबूना १०
स्पेरेज (अं०) ४१०
स्पेर्गिन ७२२
स्पैनिश कैमोमाइल (अं०) १०
स्पैरोग्रास (अं०) ७२९
स्पोजेल (अं०) ७५
स्पोजेल सीड्स (अं०) ,,
स्प्रेडिंग हॉग-वीड (अं०) ४५३
स्फेरान्थुस ईंडिकुस् (ले०) ७९
,, अफरीकानुस् (ले०) —
स्मट ऑफ राई (अं०) ४१
स्मॉल इण्डियन इपीकाकुआन्हा (अं०) २५४
स्मॉल कैल्ट्रोप्स (अं०) २७४
स्मॉल टैमेरिक्स गॉल्स (अं०) ४७१
स्मॉल-बाइंड वीड (अं०) ७२८
स्मॉल सेवेस्टन-प्लम् (अं०) ६१६
स्मालेज (अं०) १५
स्मीलाक्स ऑफ्फीसिनालिस (ले०) ८३
स्मीलाक्स आर्नाटा (ले०) ,,
स्मीलाक्स चीना (ले०) ३१२
स्मीलाक्स मेडिका (ले०) ८३
स्मीलाक्स मैक्रोफाइला (ले०) ८३

विषय एवं शब्द पृष्ठांक

स्मीलाक्स मैक्रोफोल्ला (लै०) ३१३
स्याम बेंजोइन ६३०
स्यामी लोबान ६३०
स्याहजीरा (हि०; उर्दू) १९१;३४१
स्याहदानः (फा०) १४३
स्याहदारू (फा०) ४७३
स्याह मिर्च (उ०) ५७९
स्लिपर थॉर्न (अं०) ४०९
स्वर्जिक क्षार (सं०) ८४,८५
स्वर्णक्षीरी (सं०) ८८;६५४
स्वर्षक्षीरीमूल ७२९
स्वर्ण जाती (सं०) २९२;२९४
स्वादुकण्टक (सं०) २७४
स्वीट आमंड (अं०) ५१०
स्वीट ऑरेन्ज (अं०) ६४८
स्वीट आमंड-ट्री (अं०) ५०९
स्वीट टैंगल (अं०) १४५
स्वीट पेलिटरी (अं०) ५३३
स्वीट पोटैटो (अं०) ६३४
स्वीट, फर्लेंग या सेज (अं०) ४८३
स्वीट वे (अं०) २४५
स्वीट बेसिल (अं०) ३७३
स्वीट मेलन (अं०) २१४
स्वीट या लेमन बॉम (अं०) ५२८
स्वीट सेंटेड ओलिएन्डर (अं०) ११६
स्वीट सेंटेड कैक्टस (अं०) ४०८
स्वीट या स्मूथर सिसेली (अं०) ६८५
स्वीट शेर्विल (अं०) ६८५
स्वीट या ह्वाइट गोर्ड (अं०) ११४
स्वेटिआ ऑंगूस्टोफोलिआ (लै०) ३०१
स्वेटिआ किराटा (लै०) ३००

ह

हंज; हंद (क०) १६७
हं(हिं)जल (अ०) ६४
हंसप(पा)दी (सं०) ७१०
हंसराज (हिं०;भा०बा०;गु०;म०) ७१०-७११
हजरुन्निसा (अ०) १३५
हजरुल् उक़ाब (अ०) १३५
हजरुल् मासक (अ०) ,,
हजरुल् विलादत (अ०) ,,
हज़ाजुल्माऽ (अ०) १५२
हज़ाजुस्सख़र (अ०) ३१५
हज़ारक(ज)शान (फा०) ४७३
हज़ारदाना(नी)-(पं०) ३९१
हज़ारपाया (फा०) ४१०
हजारफ़ेशान (फा०) ४७३
हज़ूबू (का०) ३७३
हड़, हरड़ (हिं०) ७११-७१३
हड़का मुरब्बा ७१३
हतलाथूहर (गु०) ४०९
हती गोकरू (द०) २७६
हत्ता(त)जोड़ी (हिं०) ४८१
हत्थाजोड़ी (हिं०) ४८१
हत्मी (तु०) २११
हथजोड़ी (क०) ६७६
हदक़ (अ०) १०९
हन्ड्रेड होल्स (अं०) ७३३
हन्दक़ूक़ा (अ०) ५२९
हपुषा सं०) ७३४
हपुषाका तेल ७२४
हफ़ूज़ (स्पेन) ६४५
हफ़्तवर्ग (अ०) ५७३
हबक (अ०) ४५२
हबकरैहानी (अ०) ५२८
हबकुलमाऽ (अ०) ४१०, ४५२
हब्बुल् ज़(ज़ु)ल्म् (अ०) ७१४;७१५;७१९
हब्वुल् फक़द (अ०) ६५०
हब्वुल्फ़ह्म (अ०) ५५३
हब्बुल बक़र (अ०) ५६३
हब्बुल्बान (अ०) ५०१
हब्रुल् बुत्म (अ०) ५३२
हब्बुल मन्सि(शि)म् (अ०) ५६४,५६५

विषय एवं शब्द पृष्ठांक

हब्ब काकनज
हब्बतुल् ख़िजरा (अ०) ५३२
हब्बतुस्सौदा (अ०) १४६
हब्ब बलसाँ (अ०) ५००
हब्बसनोबर किबार (अ०) ३०२
हब्बुत्तर्फ़ा (अ०) ३५३
हब्बुत्ताहिर (अ०) ६५९
हब्बुन्नाल (अ०) १६०,१६१
हब्बुर्रशाद (अ०) ७१६
हब्बुर्रासिन (अ०) ७०५
हब्बुर्रुम्मान (अ०) ४२८
हब्बुल् अरअर (अ०;भा०बा) ६२४
हब्बुल् असल (अ०) ४७१
हब्बुल् आस (अ०;भा०बा०) ६३
हब्बुल् उरूस (अ०) १२६
हब्बुल् उस्फ़ुर (अ०) १९७
हब्बुल् क़र्अ (अ०) ११४
हब्बुल् क़ल्ब (अ०) ५५३
हब्बुल् काकनजेहिंदी (अ०) ४६
हब्बुल् क़िल्क़िल (अ०) ७१४
हब्बुल् क़ुत्न (अ०) ११९
हब्बुल् क़ुर्तुम (अ०) १९७
हब्बुल् क़ुल्क़ुल (अ०) ७१४
हब्बुल् क़ुल्त (अ०) १९७
हब्बुल् कुलै (फ़ा०) ६०१
हब्बुल् ख़ताई (अ०) ३२१
हब्बुल् ख़त्मी (अ०) २११
हब्बुल गरीज़ (अ०) ७१४
हब्बुल्ग़ार (अ०) २४५;२४६
हब्बुल् ग़ुराब (अ०) १७९,१८०
हब्बुलज़(जु)लम् (अ०) ७१४–७१५; ७१९
हब्बुल् फ़क़द (अ०) ६५०
हब्बुल् फ़ह्म (अ०) ५५३
हब्बुल् बक़र (अ०) ५६३
हब्बुल् बान (अ०) ५०१
हब्बुल् वुतम (अ०) ५३२

विषय एवं शब्द पृष्ठांक

हब्बुल्मन्सि(श)म् (अ०) ५६४–५६५
हब्बुल् मसाकीन (अ०) ६१८; ६१९
हब्बुल् मा'सफ़र (अ०) १९०
हब्बुल्मि(मु)ष्क (अ०) ५८६
हब्बुल् मिहलब (अ०) ७१५–७१६
हब्बुल् मुलूक (अ०) ३२१
हब्बुल्लहू (अ०) ११५
हब्बुल्सफरजल (अ०) ५३०
हब्बुस्सलातीन (अ०) ३२१
हब्बुस्सिमनः (अ०) ३०१
हब्बुस्सूदान (अ०) २९३
हब्बुस्सौदा (अ०) ,,
हब्बे असवद (अ०) १४३
हब्बे बल्साँ (अ०) ४९४
हब्बेल् ज़लिम (अ०)
हमाम (हमामा)-(भा० बा०;सुर०या नब्ती) ७१६–७१७
ह(हु)म्माज़ (अ०) ३०९
हम्माज़ बर्री (अ०) ,,
हम्माजुल्माऽ (अ०) ३०९
हयमार (सं०) ११६
हर (पं०) ७११
हरड़ा (हिं०; म०; गु०) ७१२
हरडे (म०) ७११
हरड़े (गु०) ७११
हरदा(ध)रण (पं०) ७२०
हरदी (हिं०;द०) ,,
हरनपग (म०) ७२८
हरपेस्टीन (अं०) ३३०
हरमल (हर्मल) १६१; ७१७–७१८
हरमल(-र)-(अ०;हिं०;बं०;सिंध;गु०;बम्ब०) ७१७
हरमल अब्यज (अ०) ७१७
हरमल अरबी (अ०) ७१७
हरलालू (हिं०) ६४१
हरसिंगार (हिं०) ७१८
ह(हा)रसिंगार (हिं०) ७१८–७१९
हरा चिरायता ३०१

१११

विषय एंव शब्द पृष्ठांक

हरि (काश०) ३०२
हरितकी (बं०) ७१३
हरिद्रा (सं०) ७२०
हरिद्रातेल ७२१
हरिबंबल (जौनसार) १७४
हरियाली (म०) ३९३
हरीतकी (सं०; म०) ७११
हरीभरी (हिं०) २३३
हरेणु (गु०) ६५०
हरेणु (सं०) ५७३
हर्तकी (बं०) ७११
हर्पेस्टिस मोन्निएरा (ले०) ३३०
हर्बीत (अ०) ४७९
हर्मरो (गु०) ७१६
हर्मलोल (अं०) ७१८
हर्मीन (अं०) ७१८
हर्मुल (अ०) ७१७
हर्मेलाइन (अं०) १२९
हर्मोडैक्टिल ६९३
हर्र, हर्रा, हर्रे (हिं०) ७११
हर्रा (हिं०) ७१२
हर्बीत (अ०) ४७९
हर्शफ़ (अ०) ७१९–७२०
हर्शफ कबीर ७१९
हल (अ०) ३६७
हलद (म०; हिं०; द०) ७२०
हलदर (गु०; पं०) ७२०
हलदी (हिं०; द०) ७२०
हलदो (कु०) ७२०
हलफ़ा (अ०) ४३०
हलियून (भा० वा०; हिं०;रू०) ७२२
हलीलए (हलैलए) काबुली (फा०) ७१३
हली (लै)लः (फा०) ७११
हलुद (बं०) ७२०
हलूसिया (अ०) ११२
हलेला (क०) ७११

विषय एंव शब्द पृष्ठांक

हलैलए (हलैलः) काबुली (फा०) ७११,७१२
हलैलए (हलैलः) चीनी (फा०) ५०३
,, जंगी (फा०) ७११
हलैलए (हलैलः) ज़र्द (फा०) ७१२
,, स्याह (फा०) ७११,७१२
,, हिंदी (फा०) ७११;७१२
हलैलज (अ०) ७११
हलैलज अस्वद (अ०) ७११
हलैलज, हलैलः हिंदी (अ०) ७११
हल्यून (हिं०) ७२२
हल्लक (सं०) १३०
हशीश (अ०) ५४८–५४९
हशीशतुद्दीनार (अ०) ७२३
हशीशतुल् क़ल्ब (अ०) ४७०
हशीशतुल् ख़ुरासानिया (अ०) ३९०
हशीशतुल् ग़ाफ़िस (अ०) २४२;२४४
हशीशतुल् फ़ुक़्रा (अ०) ५४८
हशीशतुल् बतूल (अ०) २३३
हशीशतुस्सुआल (अ०) २१
हशीशतुस्सोआल (अ०) ४६८
हसक (अ०;पं०) २७४
हसके कबीर (अ०) २७६
हसी लु(लो)ब्रान (अ०) ६२९
हस्त(कर-)जोडिका (सं० ४८१
हस्तज्योडि (सं०) ,,
हस्तिचिंघाड़ (हिं०) २७६
हस्तिपिप्पली (सं०) २९४
हस्तिमिज (सं०) ७१९
हस्तिशुण्डा(ण्डिका)-(सं०) ७२५
हस्नलुबा (फा०) ६२९
हाइड्रोकोटाइल (अं०) ५४५
हाइड्रोकोटाइल एशियाटिका (ले०) ५४५
हाइड्रोसायनिक एसिड ५०९;६३६;६४३;७१५
हाऊबेर (हिं०;पं०) ७२४;७२५
हाकुच (बं०) ४८०
हॉग-प्लम् (अं०) ३३

विषय एवं शब्द	पृष्ठांक
हॉग-बीन (अं०)	११;१८
हाज (अ०)	३३४
हाडवर्णा (म०)	४९७
हातुकेसारी (कों०)	५४७
हाथ(था)जोडी (हिं०)	४८१
हाथीच(चो)क (बं०;हिं०;उ०)	७१९
हाथी सुंडी (हिं०)	७२५–७२६
हाथी सुंढ (गु०)	७२५
हाथी सूड (हिं०;बं०)	७२५
हॉप्स (अं०)	७२३
हाफ़िज़ुन्नहल (अ०)	—
हाफ़िज़ुल् अत्फ़ाल (अ०)	४६९
हाफ़िज़ुल् अरवाह (अ०)	९०
हाफिज़ुल् अज्साद(-मौता) (अ०)	८९
हाफ़िरुल् महर (अ०)	६९२
हारशणगार (गु०)	७१८
हार(हरि)श्रृङ्गार (सं०)	७१८
हारिद्रिक	७२१
हार्ट-लीव्ह्ड मैडर (अं०)	५६२
हॉर्स-ग्राम (अं०)	१९४
हॉर्स-रैडिश (अं०)	६६९
हॉर्स-हूफ (अं०)	४६८
हालबवा (फ०)	७२
हालिम, हालों (हिं०;बं०;पं०)	७२६–७२७
हालिया (पं०)	७२३
ह वुनजु (का०)	६८८
हाशा (अ०;हिं०;भा०बा०)	१७; ७२७–७२८
हाशीश (अ०)	७३२
हास्सः (अ०)	७२७
हिंग (गु०;म०;बम्ब०)	७२९
हिंगुआ (हिं०)	६३४
हिंगुबीज	७३१
हिंङ् (बं०)	७२९
हिङ्गु (सं०;बं०)	७२९
हिंतः (अ०)	२७२
हिंतए रूमिया (अ०)	५५७

विषय एवं शब्द	पृष्ठांक
हिंद(-दि;-दु)बाऽ (अ०)	१६५
हिंदबाऽअल्बर्री (अ०)	१६७
हिंदवाने अबुजहल या तल्ख (फा०)	६४
हिंदुवान; (फा०)	६३०
हिओस्सिआमुस् आल्बुस् (ले०)	१८
,, नीगेर(काला) (ले०)	१९
,, रुब्रम्(लाल) (ले०)	,,
हिजल (बं०)	६६१
हिजली बादाम (बं०)	,,
हिज्जल (सं०)	६६१
हिड्नोकार्पुस वीटिआना (ले०)	२९७
हितावली (सं०)	७२९
हिनवाना (हिं०)	३६०
हिना (फा०;हिं०;मा०)	५९३
हिन्दुबाऽ बर्री (अ०)	१६८
हिन्ना (अ०)	५९३
हिपेरिकोन (यू०)	७३३
हिबीस्कुस कान्नाबिनुस् (ले०)	७१४
,, रोजा-सिनेन्सिस् (ले०)	२५५
हिमसागर (बं०)	४३२
हिमालयन पेओनी (अं०)	९३
हिम्मस (अ०)	२९०
हिरणपग (म०;सिं०)	७२८
हिरनखुरी (हिं०)	६५२; ७२८–७२९
हिरबी (बी) (क०; हिं०)	८८; ६५४; ७२९
हिरादखण (म०; बम्ब०)	३८०
हिराबोल (म०; गु;)	५४३
हिल्तीत (अ०)	७२९
हिल्तीत तय्यब (अ०)	७३०
हिल्तीत मुन्तिन (अ०)	७३०
हिसोप (अं०)	३४३
हिस्रम (अ०)	१
हिस्सापुस ऑफीसिनालुस् (ले०)	३४३
हिस्सापुस पार्वीफ्लोरा (ले०)	३४३
हींग और अंजुदान (हिं०; गु०)	७२९–७३१
हींगड़ा (हींग)	७३०

विषय एवं शब्द पृष्ठांक

हीग्रोफीला आउरिकुलाटा (लें०) ३६३
हीपेरिकुम् परफोरेटुम् (लें०) ७३३
हीमज (गु०) ७११
हीमोटॉक्सीलीन (अं०) ४३३
हीरा दखण (गु०) ३८०
हीरा दोखी (हिं०) ३८०
हीराबोल (हिं०) ५४३
हीरा हींग (हिं०) ७३०
हील (फा०) ७२, ७३
हील ऑल (अं०) ९०
हील उन्सा (फा०) ७२, ७३
हील कलाँ (फा०) ७३
हील जकर (फा०) ७३
हील बवा (फा०) ७२, ७३
हीलियोट्रोपिओन (यू०) ६९५
हुआनुको कोका (अं०) २०७
हुजरतुश्शता (अ०) २३३
हुजुज्र (अ०) ३८६
हुजुज़ मक्की (अ०) ३८६
हुजुजे हिंदी (अ०) ३८५, ३८६
हुड़हुडिया (हिं) ७३१
हुनगुंदा (कना०) ५६१
हुमूर (अ०) ७०
हुरमुल (अ०; हिं; बं०; बम्ब०) ७१७
हुरहुर (हिं०) ७३१
हुरिया (बं०) ७३१
हुर्चु (नेपा०) १७४
हुर्ज (अ०) ८४
हुर्फ़ अब्यज (अ०) ६६५
हुर्फ़ बाबली (अ०) ७२६
हुर्मुल (पं०) ७१७
हुलहुल (हिं०) ५८७; ७३१–७३२
हुल्बः (अ०) ५९४
हुल्बः बर्री (अ०) ५९४
हुस्न यूसुफ (फा०) ७३२–७३३
हूक (अ०) ३७२

विषय एवं शब्द पृष्ठांक

हूनिहेन्द (क०) ६४
हू(ह्यू)फारीकून (अ०) ७३३–७३४
हूफारीकोन (यू०) ७३३
हूबेर (हिं०) ७२४
हूमुलुस लूपुलुस (लें०) ७२३
हेज-मस्टर्ड (अं०) २२१
हेडेरा हेलिक्स (लें०) ६१८
हेडीकिउम् कोरोनारिया (लें०)
हेडीकिउम् स्पोकाटुम् (लें०) १२३, १२४
हेन-बेन (अं०) १८
हेन-बेन सीड्स (अं०) १८
हेना, हेन्ना (अं०) ५९३
हेन्नो-टैनिक एसिड (लें०) ५९३
हेबेनम् (इब०) ५४
हेमन्त फल (सं०) १५५
हेमन्त हरित (सं०) २३३
हेमपुष्पी (सं०) ५८७
हेमलॉक (अं०) ६४५
हेमसागर (हिं०; बं०) ४३३
हेमीडेस्मुस इंडिकुस (लें०) ६७४
हेरडो (ने०) ७११
हेराती कताद ११२;११३
हेराती कतीरा ११२
हेगापिडम् पोलोसेल्ला (लें०) ३११
हेर्मोडाक्टिलेस(लुप)कॉल्चिकुम् (लें०) ६९२
हेलिआन्थुस् आन्नुस (लें०) ६९५
हेलिआन्थुस् टूबेरोसुस् (लें०) ७१२
हेलिओट्रोपिडम् इंडिकुम् (लें०) ७२५
हेलिकाकाबुस (रू०) १५५
हेलिक्सिन (अं०) ६१८
हेल्लेबोरि(री)न २१२
हेल्लेबोरुस् नीगेर (लें०) २१८
हैजेल-नट (अं०) ४७५
हैजेल-वर्ट (अं०) ४६
हैमन्तिक (सं०) २९६
हैमवती वचा (सं०) ४८४

विषय एवं शब्द पृष्ठांक
होगला (बं०) ४३०,४३१
होगोला(लो) (उड़ि०) ४३०
होम (ईरान) ७०२
होमोटेरोकार्पीन (अं०) २८४
होमोस (मिश्र०) २११; २९०
होर-हाउंड (अं०) ४७०
होर्डेडम् वुल्गारे (लें०) ३४८
होली-हॉक (अं०) २११
होलेर्हीना आंटीडीसेंटरिका (लें०) १८८
हौमर (अ०) ७०
हौश (अ०) ७०
ह्रस्व अश्वगन्धा (सं०-नवीन) ४६
ह्रस्व अश्वगन्धा बीज ४६
ह्रीवेर (सं०) ४१६
ह्वाइट ऑर ब्राउन चिरेटा (अं०) ३००
ह्वाइट गूज-फ़ूट (अं०) ४८०,४८८
,, गोर्ड मेलन (अं०) ४५८

विषय एवं शब्द पृष्ठांक
ह्वाइट पम्पकिन (अं०) ४५८
,; पॉपी–सीड्स (अं०) ४६०
,, फ़्लावर्ड डटूरा (अं०) ३९६
,, बेहीन (अं०) ५०२
,, मलबेरी (अं०) ३७४
,, ब्रायोनी (अं०) ४७३
,, मस्टर्ड (अं०) ६६५
,. मिस्टलेटो (अं०) १७४
,, या ओपियम् पॉपी (अं०) ४६०
,, या ग्रे ओक (अं०) ५०१
,, र्हैपॉन्टिक़ (अं०) ५०२
,, लुपीन (अं०) ३७२
,, विलो (अं०) ५३७
,, वेच (अं०) २२९
,, हेलेबोर (अं०) २१७
ह्वीट (अं०) २७२

यूनानी-द्रव्यगुणादर्श खण्ड २के उद्भिज्ज-औषधाहार द्रव्योंके लेटिन, अँगरेजी आदि शब्दों (नामों)की आंग्ल वर्णानुक्रमणिका

A

Abelmoschus esculentus (Linn.) Moen ५५२
Abelmoschus moschatus Medic. ५८६
Abies webbiana ३६४
Abrin (E.) २८३
Abroma augusta Linn. ८१
Abros (Gk.) २८२
Abrus precatorius Linn. २८२
Abesinthin (E.) ३३
Abutilon indicum G. Don. ९५
Acacia ४९३
A. arabica Willd ४९३
A. bark (E.) ,,
A. catechu (L. f.) Willd. २२९
Acacia concinna DC. ६८४
A. farnesiana Willd. २३१
A. gum (E.) ४९३
A. leucophloea Willd. २३१
A. nilotica ४९३
A. pod (E.) ४९३
A. rugata (Lamk.) Ham. ६८४
A. tree (E.) ४९३
A. vera ४९३
Acetic acid ७२४
Achillea millefolium Linn. ४९६
Achillein ४९६
Achyranthes aspera Linn. २९८
Aconitic acid (E.) २३
Aconitine (E.) ४८५
Aconitum chasmanthum Staff. ex Holmes ४८५
A. ferox Wall. ४८५
Aconitum heterophyllum Wall. २३
A. napellus Linn. ४८५
Acorin ४८४
Acorus calamus Linn. ३००; ४८३
Adenanthera pavonia Linn. २८२
Adhatoda (E.) २१
A. vasica Nees. २१
Adianton (Gk.) ७१०
Adiantum capillus-veneris Linn. ७१०
A. venustum Don. ७१०
Aegle marmelos Correa. ५३९
Aganosma caryophyllata G. Don. ५७८
Agaric acid (E.) २४७
Agaricin (E.) ,,
Agaricus albus २४७
A. campestris Linn. २२६
Agarikon (Gk.) २४७
Aglidion (GK.) ६११
Agrimonia eupatoria Linn. २४२, २४४
Agrimony (E.) २४२, २४४
Ailanthus excelsa Roxb. २७९
Ajuga chamaepitys Schreber. १३२
Akakia (Gk.; E.) ४९३
Akantha lauke (Gk.) ५१२
Akatha arabica (Gk.) ६४४
Akoniton (Gk.) ४८५
Akoros (Gk.) ४८३
Albizzia lebbeck (L.) Benth. ३८२
A. odoratissima Benth. ६८२
A. procera Benth. ६८२
Albuminoids ५८९

Alexandrian senna (E.) ६५९
Alhagi camelorun Fisch. ३३४
A. maurorum Baker. ३३४
Alkali (E.) ८५
Alkanet (E.) ६०१
Alkanna tinctoria Tausch. ६०१
Alkekengi (E.) १५५
Allantoin २९१
Allium ampeloprasum Linn. २३२
Allium ascalonicum (L.) ६२०
Allium cepa Linn. ४६५
Allium porrum Linn. २३२
A. sativum (L.) ६२०
A. schoenoprasum Linn. २३३
A. tuberosum Roxb. २३३
Allspice (E.) ४७६
,, oil (E.) ४७७
,, tree(E.) ४७६
Allyl Disulphide (E.) २३३
Almond oil (E.) ५१०
Aloe (Gk; E.) २७९
Aloe barbedensis Mill. २७९, २८०
Aloe perryi (L.) २८०
A. vera Tourn. ex L. २७९, २८०
Aloes (E.) २७९
Aloe wood (E.) १३
Alpinia chinensis Roscae १९२
Alpinia galanga Willd. १९३
Alpinia officinarum Hance. १९२
Alstonia scholaris R. Br. ३१६
Alternanthera sessilis R. Br. ५६१
Altangia excelsa Noronha ६४०
Althein (E.) २११
Althoea officinalis Linn. २११
A. rosea Linn. २११
Alupon (Gk.) ४२०
Amaranth (E.) १४५
Amaranthus hybridus L. ६८३
A. hypochondriacus Linn. १४५; ६८३
A. melancholiacus Linn. १४५; ६८३
A. polygamus Willd. ३१५
A. spinosus Linn. ३१५
Amarbelin (E.) १२
Amba-peach (E.) ५६
Amber (E.) १४८
Amberboa divaricata Kuntze. ५१२
American worm-seed (E.) ४८८
Ampeach (E.) ५६
Ammoniakon (Gk.) ८६
Amomon, Amomun (Gk.) ७१६
Ammons (Rom.; Egy.) ८६
Amomum aromaticum Roxb. ७३
A. subulatum Roxb. ७३
Amorphophallus campanulatus Bl. ६२६
Amygdala amara (L.) ५०८
A. dulcis (L.) ५१०
Amygdalin ६९; ५०९; ७१५
Amylase (E.) ५०८
Amylum २७२
Anacardium occidentale Linn. १५६
Anacyclus pyrethrum DC. १०
Anagallis arvensis Linn. ३४६
Ananas comosus Merr. २४
A. sativus Schult. २४
Anastatica herochuntina Linn. २४०
Andrakhne (Gk.) १९५
Andrographis paniculata Nees. १९५;३०१
Andrographolide (E.) १६०
Andropogon laniger Desf.
A. muricata Retz. २२०
Anemone (Gk.) २६१
Anemone obtusifolia D. Don. २६०;६०१
A. pulsatilla Linn. २६०

Anethi fructus ७०२
Anethon (Gk.) ७०३
Anethum graveolens Linn. ७०३
A. sowa Kurz. ७०३
Animal rennet (E.) ४६
Anamirta cocculus Wt. & Arn. ५७८
Anise, Ani-seed, Anise fruit (E.) २९
Anise aldehyde (E.) ३०
Anise camphor (E.) ३०
Anisi fructus २९
Anogeissus latifolia Wall. ex Bedd. ४०३
Anona squamosa Linn. ६३६
Anthemis nobilis Linn. ५१४
A. pyrethrum Linn. १०
Anthriscus cerefolium (Hoffm.) ५३
Apiol (E.) १५;३०;४७६
Apium graveolens Linn. १५
A. petroselinum Linn. ४७६
Aplotaxis auriculata DC. १८३;४५५
Apple (E.) ६९७
Apricot (E.) ३२४
Apple guava (E.) ३४
Apsinthion (Gk.) ३२
Aqua sambici (L.)
Aquilaria agallocha Roxb. १३
Arabian costus (E.) १८४
A. date-palm (E.) २०९
A. or Gentle balm (E.) ५२८
A. or French Lavender (E.) ९०
A. or Persian Manna Plant (E.) ३३४
A. thorn (E.) ६४४
Arabic acid ४९३
Arachis hypogaea Linn. ५९०
Arbin (E.) ४९३
Arbutin (E.) ४
Arctostaphylos Uvae Ursi Spreng. ३;४
Areca catechu Linn. ६९०
Arecaidine (E.) ६९०
Arecaine (E.) ६९०
Areca nut (E.) ६९०
Arecoline ६९०
Argemone mexicana Linn. ६५४
Argyreia nervosa (Burm. f.) Boj ६६२
A. speciosa Sweet. ६६२
Ariana (Gk.) २००
Aristolochia (E.) ३२६
A. bracteata Retz. १७७; ३२६
A. indica Linn. ७७;३२६
Aristolochine (E.) ७८; ३२७
Aristolokhia (Gk.) ३२६
Armenion (Gk.) १९१
Arnatto or Annato-bush (E.) ६५६
Arrack (E.) २३८
Artemisia (Gk.) ४९६
Artemisia absinthium Linn. ३२
A. austriaca Linn. २०४
A. cina Berg. १७३
A. indica Willd. ३१
A. maritima Linn. १७२
A. stechmaniana Besser. ३९०
A. vulgaris Linn. ३९५
Artichoke (E.) ७१९
A. gum (E.) ७१९
Artimisin (E.) १७३
Artocarpus heterophylla Lam. १०७
A. integra Auct non Merr. १०७
A. integrifolia Auct. non L. f. १०७
A. lakoocha Roxb. ४८८
Asafetida (E.) ७२९
Asarabacca (E.) ४६
Asarum europaeum Linn. ४६
A. indicnm ४७
Ash-coloured flea-bane (E) ६६८
Asiatic Barberry (E.) ३८५
Asiatic Grewia (E.) ४७२
Asiaticoside (E.) ५४६

Asparagin (E.) ६०; २११; २९१; ७२२
Asparagus (E.) ७२२
A. adscendens Roxb. ५८८
A. officinalis Linn. ७२२
A. raeemosus Willd. ६५३
A. sarmentosus Linn. ५८८
A. tenuifolius L. ७२२
Asparin (E.) २११
Asphodelus fistulosus Linn. २२४
Aspidium filix-mas Sw. ६६३
Assafoetida (L.) ७२२
Assassin ५४९
Astercantha longifolia (L.) Nees. ३६३
Asthma weed (E.) ३९१
Astragalus gummifera Labill. ११३
Astragalus heratensis Bunge ११३
A. multiceps Wall. ११३
A. sarcocola Dymock ६
A. strobilifera(us) Royle ११२, ११३
A. tribuloides Del. ११३
Atisine (E.) २३
Atraktulis (Gk.) १९७
Atriplaxis (Gk.) ४८८
Atriplex (E.) ४८८
Atropa acuminata Roxb. ६२६
Atropa belladonna Linn ६२६
Atropine (E.) १९
Avena sativa Linn. ३५१
Avenin (E.) ३५२
Averrhoa bilimbi Linn. १२९
A. carambola Linn. १२८
Ayapanin (E.) ५९
Azadirachta indica A. Juss. ४२३

B

Babool tree (E.) ४९३
Babreng (E.) ५१६
Bacopa monnieri Perrel ३३०
Badian (E.) ५१२
Bael fruit (E.) ५३९
Balanos Murospake (Gk.) ५०१
पा० टि० १
Ballota nigra Linn. ४७०
Balm (E.) ४९९-५२८
Balm mint (E.) ४१०; ४४४
Balsam (E.) ४९९
Balsam Copaiba ४९२
Balsamic resin (E.) ६२९
Balsamodendron mukul (Hook ex Stocks) २५२
B. myrrha T. Nees. ५४३
Balsamodendron opobalsamum Kunth. ४९९
Balsam of Mecca (E.) ४९९
Balsam of Peru (E.) ४९९
Balsam Styracis (E.) ६४०
Balsam Tolu (E.) ४९९
Balsam tree (E.) ४९९
Balsamon (Gk.) ४९९
Balsamum dipterocarpi २४०
Bamboo (E.) ५०५
Bomboo Manna (E.) ५०५
Bambusa arundinacea Willd. ५०५
B. bambos Druce ५०५
Banana (E.) १९९
Banyan tree (E.) ४९५
Bapticia tinctoria R. Br. ४९०
Barbadoes Aloes (E.) २८०
Barberis vulgaris Linn. ३८५
Barilla (E.) ८५
Barley (E.) ३४८
Barringtonia acutangula Gaertn. ६६१
Basella alba Linn. ४५६
Basella rubra Linn. ४५९
Basil camphor (E.) ३०३

Bassia latifolia Roxb. ५७२
Bastard teak (E.) ४३७
Batrakhion (Gk.) ६१५
Bauhinia acuminata L. १०५
B. Purpurea Linn. १०५
B. variegata L. १०५
Bay laurel (E.) २४५
Bdellion (Gk.) २५२
Bdellium (E.) २५२
Bear berry (E.) ३, ४
Beard Darnel (E.) ६४६
Bear's Grape (E.) ३, ४
Bejucode pergacea (Portugal) ४५३
Bel (E.) ५३९
Belladonna ६२६
Belleric myrobalan (E.) ५०४
Bengal Kino (E.) ४३८
Bengal Quince (E.) ५३९
Benincasa cerifera Savi ४५८
Benincasa hispida (Thunb.) Cogn. ४५८
Beni oil (E.) ६७०
Ben-ant (E.) ५०१
पा० टि० १
Benzoin (E.) ६२९
Benzoinun (L.) ६२९
Berberine (E.) १४३; ३९६; ४४६; ५५५
Berberry root (E.) ३८५
Berberry fruit or berries (E.) ३८५
Bergenia ligulata Wall., Engl. ४२९
Beta vulgaris L var. rapa Dum. ३०८
oil (E.) ४०१
Betel or pepper leaf (E.) ४४१
Betin (E.) ३०८
Betle (betel) nut (E.) ६९०
Bigarde (E.) ४१३
Biophyllum sensitivum DC. २१८
Bird chilli (E.) ५८१
Birdlime Mistletoe (E.) १७५
Bistort (E.) ५
Bitter almord —
Bitter almond tree (E.) ५०८
Bitter apple (E) ६४
Bitter gourd (E.) ६४
Bitter luffa (E.) ३७१
Bitter orange (E.) ४१३
Bitter -sweet (Night-shade) ५५९
Black cumin (E.) ३४१
Black Elder (E.) २१३
Black Helebore (E.) २१८
Black Hore-hound (E.) ४७०
Black mustard (E.) ६६५
Black or purple-flowerd Dhatura (E.) ३९७
Black or true mustard (E.) ६०२
Black pepper (E.) ५७९
Black willow (E.) ५३७
Black zedoary (E.) ४०५
Bladder-dock (E.) ३०९
Blepharis boerhaavifolia ७९
Blepharis edulis Pers. ७८
Bleton (Gk) ३१५
Blood-vened Sage (E.) ५०३
Blue-flag (E.) ७०७
Blue-flowered crotalaria (E.) ६५८
Blue-gum tree (E.) ६००
Blue lily (E.) ७०७
Blue mallow (E.) २२५
Blue or Sweet violet (E.) ४९१
Blumea balsamifera DC. १७८
Blumea camphor (E.) १२२
Blumea lacera DC. १७८
Boerhaavia diffusa L. ४५३
B. repens L. ४५३
Bolivian Coca (E.) २०६
Bombax ceiba L. ६९८

B. malabaricum DC. ६९८
Bombay or Kabul mastich (E.) ५३२
Bonduc nut (E.) १३५
Bone-set (E.) ५८
Borage (E.) २४८
Barago officinalis Linn. २४८
Borassus flebellifer L. ३६२
B. flabelliformis Roxb. ३६२
Borneo Camphor (E.) १२१
Boswellia floribunda ९९; ६६७
B. glabra ६६७
B. serrata Roxb. ६६७
Bouglossos (Gk.; Rom.) २४८
Brahmine (E.) ३३०
Brassica alba ६६५
B. campestris Linn. ६६५
B. juncea(L.) Czern. et Coss. ६०२
B. nigra Koch. ६०२;६६५
B. oleracea Linn. var. botrytis Linn. २७७
B. oleracea Linn. २७८
B. rapa Linn. ६३७
Brathu (Gk.) ७२४
Bridelia montana Willd. २७४
B. verrucosa Hains २७४
Brinjal (E.) ५४१
Bristly Luffa (E.) ४७८
Broad bean (E.) ५०७
Broad-leaved willow (E.) ५३५
Broccoli (E.) २७७
Broom corn (E.) ३५२
Brucine (E.) ४१८
Brunnella vulgaris Linn. ९०
Bruon (Gk.) ३१५
Bryonia alba Linn. ४७३
Bryonia or Brynopsis laciniosa Linn. ४७४
Bryonin (E.) ४७४
Bryophyllum pinnatum (Lamk.) Kurz. ४३३
B. calycinum Salisb. ४३३
Buchanania lanzan Spreng. ३०१
Buchanania latifolia Roxb. ३०१
Bugloss (Gk.) २४८
Burmese storax (E.) ६४०
Burrage २४८
Bushy Gardenia (E.) ५९६
Butea Gum (E.) ४३८
Butea Gummi ४३८
Butea Kino (E.) ३८१
B. frondosa Koen. ex Roxb. ४३७
B. monosperma (Lamk.) Taub. ४३७
Butea seeds (E.) ४३७
Butea semina ४३७

C

Cabbage (E.) २७८
Caccinia glauca Sav. २४८
Cactus grandiflorus Mill. ४००
C. indicus Roxb. ४०८
Cactuses ३७९
Caesalpinia bonducella Flem. (L.) १३५;४७५
C. cristata Flem. १३५
C. sappan Linn. ४३२
Caffein (E.) १५१
Cajanus cajan (L.) Hith. ४०
C. indicus Spreng
Cajeput (E.) १३४
Cajuput (E.) १३४
Cajuputi oleum १३४
Cajuput oil (E.) १३४
Calamus aromaticus (L.) ३००
Calamus draco (L.) ३८०
Calamus rotang Linn. (L.) ५३४
Calotropis acia Houtt. ४९
C. gigantea R. Br. ४८
Calumbac Radix १४२
Calumba root (E.) १४२

Calumbic acid (E.) १४३
Camboge (E.) ८८
Cambogia ८८
Camellia theifera Griff. २९५
Camel's thistle or thorn (E.) ९१;३३४
Camphor (E.) १२०
,, Natural (E.) १२१
,, Synthetic (E.) १२१
Camphora १२०
Cane-palm (E.) ५३४
Cannabinol (E.) ५४९
Cannabis sativa Linn. ५४८
C. Sativae semen ५४८
Canna indica Linn. ५४२
Canarium commune L. ५६४
Caoutchouc (E.) २५८; २७०
Caper plant (E.) १२५
Capparis aphylla Roxb. १३७
C. decidua (Forsk.) Edgew. १३७
C. spinosa L. १२५
Capsicin (E.) ५८१
Capsicum ५८१
C. annuum Linn. ५८१
C. frutescens Linn. ५८१
Carambola apple (E.) १२८
Caraway (E.) १९१
Cardamom (E.) ७२
Cardamomon (Gk.) ७२
Cardunus benedictus ५१२
Careya arborea Roxb. ५१५
Carica papaya Linn. ३७
Carilla Fruit (E.) १३९
Carissa carandas Llnn. १४१
C. opaca stapf. १४०
C. Spinarum DC. १४१
Carob gum (E.) २१६
Carob seed gum (E.) २१६
Carolene (E.) ४६९
Carrot (E.) २४१
Carvole (E.) १९२
Caryon (E.) १९२
Carthamus oxycantha Bieb. १९७
Carthamus tinctorius Linn. १९७
Carum carvi Linn. १९१;३४१
Carum copticum Benth. ४७६
C. petroselinum Benth. ४७६
C. roxburghianum Benth. १५
Caryophyllene (E.) ६३३
Caryophyllum ६३२
C. recemiflora koch. ६४१
Cashew-nut (E.) १५६
Cassia absus Linn. २९३
C. acutifolia Del. ६५९
C. angusitifolia Vahl. ६५८
C. bark (E.) ३८८
Cassiae Pulpa ३५
C. cortex (E.) ३५८
Cassia fistula Linn. ३५
C. Lignea ३८८
Cassia occidentalis १४७
C. pulpa (E.) ३५
Cassia purpurea Royle. १४७
C. tora Linn. ४२८
Castine (E.) ६५०
Castor oil (E.) ६०९
Castor-oil plant (E.) ६०९
Castor seed (E.) ६०९
Casuarina equisetifolia ३६६
Cat's hair (E.) ३९१
Cauliflower (E.) २७७
Cedrūs deodara (Roxb.) Loud. ३०३;३९४
C. libani Rich. ३०३:६६०
Ceiba pentandra (L.) Gaertn. ६९९
Celary (E.) १५

Celastrus paniculatus Willd. ५७६
Celosia argentea Linn. ६८३
Centaurea behen L. or behmen Linn. ५०२
Centaurium officinalis ९६
Centaury (E.) ९६
Centaury, Common (E.) ९६
Centella asiatica Urban. Linn. ५४५
Centipeda orbicularis Lour. ५०४
Centratherum anthelminticum (Willd.) Kuntze. १६२
Cephalandra indica Naud. ९७
Ceratonia siliqua Linn. ३१५
Cereus grandiflorus Mill. ४०८
Ceylon cinnamon (E.) ३८८
Ceylon Jasmine (E.) २५७
Ceylon or white Lead-wort (E.) ३०६
Cuak sine (E.) २९२
Chamomile (E.) ५७३
Chair-bottom Cane (E.) ५३४
Chaulmoo(u)gra (E.) २९७
Chavica roxburghii Mig. ४४९
Chebulic myrobalans (E.) ७११
Chelidonion (Gk.) ७२०
Cheese cake (E.) २२५
Chenopodiurn album Linn. ४८८
C. ambrosioides Linn. ४८८,४८९
C. anthelminticum A. Gray. ४८८;४८९
C. atriplicis ८४
C. oil (E.) ४४३
Chervil (E.) ५३
Chestnut tree (E.) ५०१ पा. टि.
Chickling vetch (E.) २२९
Chicory (E.) १६५
China root (E.) ३१२
Chinese Anis (E.) ५१२
Chinese cinnamon (E.) ३८८
Chinese goose-berry (E.) १२८
Chinese or Japan Medlar (E.) ६२३
Chirayata (E.) ३००
Chirkhestite ६४३
Calorophytum breviscapium ५८८
Chlorophytum arundinaceum Baker. ५८८
C. indicum Lamk ५४८
Choline (E.) ५९४
Christem bino (E.) ५१६
Christmus rose (E.) २१८
Chrysarobin (E.) ६१३
Chrysophanic acid (E) १४७
Chrozophora Prostata Dalz. ४२७
Cichorium endivia Linu. १६५
C. intybus Linn. १६५
Cicuta (Rom.) ६४५
Cimpopogon jwarancusa schult. or gonas ६९
Cinchona bark (E.) ६७८
Cinchona calisaya Wedd. ६७८
Cinchona ६७८
C. cortex (L.) ६७८
C. legeriana Moens. ६७८
C. officinalis L. ६७८
C. succirubra Pav. ६७८
Cinchonidine (E.) ६८०
Cinchonine ६८८
Cinnamic acid (E.) ६३७
Cinnamic aldehyde (E.) ३७७
Cinnamomi cortex ३८८
Cinnamomum camphora Nees. १२१
C. cassia Blume. ३८८
C. nitidum Hook. ३५८; ३६७
C. tamala Nees. ३५८
C. Zeylanicum Nees. ३८८
Cinnamon (E) ३५८
C. Bark. (E.) ३८८
Cissampeline (E.) ४४०
Cissampelos pareira. Linn. ४४०
Citric acid (E.) ३८; ६३; ६४८

Citrron (E.) ५२२
Citrron peel (E.) ५२२
Citrullus colocynthis Schrad. ६४
C. vulgaris Schrad. ३६०
Citrus aurantifolia Swingle. ४२२
C. aurantium Linn. ४१३; ६४८
C. aurantium Linn. var. bigaradia
C. decumana Linn. २८७
C. dulcis Pers. ५८७
C. limon Burm. L. ३१९
C. maxima Merr. २८७
C. medica Linn. var. limon L. ३१९
C. medica var medica proper ५२३
C. sinensis Linn. ५८६
C. reticulata Blanc. ९
Clausena lancium Lour Skeels ५६
C. pentaphylla DC. ६०१
C. wampo Blanco. ५६
Claviceps purpurea Tul. ४१
Clearing nut (E.) ४१८
Cleome (E.) ७३१
Cleomine (E.) ७३२
Cleome monophylla Linn. ७३१
Cleome pentaphylla Linn. ७३१
C. viscosa Linn. ७३१
Clerodendron serratum (L.) Moon. ५५१
Clerodendron siphonanthus (R. Br.) C. B. Cl. ५५१
Clerodendrum indicum(L.)O. Kuntze ५५१
Clitoria ternatea १६०
Clove (E.) ६३२
Cnecos (Rom.) १९७
Coca (E.) २०६
Cocaine (E.) २०७
Coccinia cordifolia (L) Cogn. ९७
Coccinia indica W. & Arn. ९७
Cock's comb (E.) ६८३
Cocoa-nut oil (E.) ४१५
Cocoanut fruit (E.) ४१४
Cocoanut palm ४१४
Cocos nucifera Linn. ४१४
Codeine (E.) ४६२
Cochlospermum religiosum L. ११३
Coffea arabica Linn. १५०
Coffee (E.) १५०
Colchicum (E.) ६९२
C. autumnale L. ६९३
C. luteum Baker ६९३
Colewort (E.; २७८
Colocasia antiquorum Schott. ३९
C. esculenta L. Schott. ३९
Colocynth (E.) ६४
Colonyction aculeatum Hax. ६१९
Colophonium ६०३
Colophony (E.) ६०३
Colts foot (E.) ४६८
Columbin (E.) १४३
Commiphora myrrha Nees. ५४३
C.mukul Hook. २५२
C. opobalsamum (L.) Engl. ४९९
C. Roxburghii Stock. Engl. २५२
C. wightii (Arn.) Bhandari २५२
Common Cherry (E.) ६१
Common Cress (E.) ७२६
Common Elder (E.) २१३
Common or Garden-beet (E) ३०८
Common Millet (E.) ३१२
Common mushroom (E.) २२६
Common Polypodi (E.) ५०२
Common white hore-hound (E.) ४७०
Conessi bark (E.) १८८
Coniferae १४८
Coniine ६४५
Conium (E.) १९५;६४५
C. maculatum Linn. ६४५

Convolvulin (E.) ७२८
Convolvulus arvensis Linn. ६५२; ७२८
C. jalapa Linn. ३३२
C. pluricaulis Chois. ६४७
C. scammonia Linn. ६५२
Copaifera longsdorffii Desf. ४९९
Coptic bean (E.) १२९
Coptis (E.) ५९५
Coptis teeta Wall. ५९५
Corchorus anticorus Raeswch ५०४
C. depressus Linn. ५०४
Corchorus fascicularis Linn. ५०४
Cordia myxa L. ६१६
C. obliqua Willd. ६१६
Coriander (E.) ३९९
Coriandrol (E.) ३९९
Coriandrum sativum Linn. ३९९
Corn mint (E.) ४१०
Corn silk (E.) ५५७
Coronarine (E.) २५८
Corylus avellana L. ४७५
Costus arabicus Linn. १८३
Cotton (E.) ११९
Cotton plant (E.) ११९
Cotton seeds (E.) ११९
Cotton wool (E.) ११९
Cotton root-bark (E.) ११९
Cough wort (E.) ४६८
Coumarin (E.) ६८; ७१५
Country or Malabar Nutmeg (E.) ९५
C. Sarsaparilla (E.) ६७४
C. Sorrel (E.) ३०९
Cowhedge (E.) १०१
Cow-itch (E.) १०१
Cow pea (E.) ६३०
Crab's Claw (E.) १५४
Crane tree (E.) ४०३
Crataeva nurvala Buch-Ham. ४९७
C. *religiosa* Hook. f. & Th. ४९७
Creeping Cynodon (E.) ३९३
Cressa cretica Linn. ६०८
Crinum latifolium Linn. ६८८
C. zeylanicum Linn. ६८८
Crocus (E.) २०२
C. sativus Linn. २०२
Crotolaria juncea Linn. ६५७
C. verrucosa Linn. ६५८
Crotoneaster nummularia Fisch. ६४१
Crotonis Oleum (L.) ३२१
Crotonis Semen ३२१
Croton Oil (E.) ३२१
Croton seeds (E.) ३२१
Croton tiglium Linn. ३२१
Cryptolepis buchanani Roem. Schult. १६२
Crysanthemin (E.) २५२
Crysanthumum indicum २५
Cubebae Fructus. (L.) १२६
C. officinalis Miq. १२६
Cubeba Sp. ९३
Cubebs (E.) १२६
Cucumber (E.) १०२;२२३
C. madras (E.) १०६
C. momordica (E.) १०२
C. seeds (E.) १०२
Cucumis dudain Linn. १०६
C. melo Linn. १०२; २१४
C. momordica L. १०२
C. sativus L. २२३
C. utilissimus Duthi. १०२
Cucurbita lagenaria Linn. ११४
C. maxima Duch. २०५
C. pepo Linn. २०५-२०६
C. siceraria Mol. ११४

Cucurbitin ४५८
Cultivated Date-palm (E.) २०९
Cumin (E.) ३४१
Cuminol २९२
Cuminum cyminum Linn ३४१
C. odorum Roxb. ३४१
Cupid's flower (E.) ७४
Cupress us sempervirens Linn. ६६६
Curculigo orchioides Gaertn. ५८७
Curcuma angustifolia Roxb. ३६८
C. aromatica Salisb. ४७-७२०
C. zerumbet Rosce. ४०५
C. zerumbet *Roxb.* ४०५
C. caesia Roxb. ४०५
C. domestica Vahl. ७९०
C. longa L. ७२०
Curcumin (E.) ४८-७२१
Cus-Cus (E.) २२०
Cuscuta ३१
C. chinensis Linn. ३१
C. hyalina Roth. ३१
C epithymum Linn ३०
C. europea Linn. ३०
C. refleua Roxb. ११
Cuscutalin (E.) १२
Cuscutin (E.) १२;३१
Custard Apple (E.) ६३६
Cutch (E.) २२९
Cycas pectinalis Grifl. ६७२
Cyamin (E.) १११
Cyamopiss tetragonoloba Tuab. २५१
C. psoralioides DC. २५१
Cyamogenetic glucoside (E.) १२
Cyclamen ४६२
C euorpaeum Cunn. ४८७
C. persicum Miller. ४८६
Cyclamin ३४६
Cydonia oblongata Mill. ५३०
C. vulgaris ५३०
Cynodon dactylon Pers. ३९३
Cynodonin (E.) ५३०
Cynaro scolymus Linn. ७२९
Cyperus rotundus L. ५९८
Cyperus scariosus R. Br. ५९८

D

Damar Resin (E.) ६४८
Damask Rose (E.) २६४
Dandelion (E.) १६७
Daphne (Gk.) २४५
Daphne gnidium Linn. ५७३
D. laureola Linn. ५७३
D. mezereum Linn. ५७३
Daphnine (E.) ५७३
Date (E.) २०८
Datura ३९६
D. alba Linn. ३९६
D. metel Linn. ३९२
D. stramonium Linn. ३९६
D. tatula Linn. ३९७
Daucus carota L. var. Sativa C. २४१
Dankhos (Gk.) ३९२
Dayki (Gk.) २४१
Daykos (Gk.) २४१
Deadly Night-shade (E.) ६२६
Deccan Hemp (E.) ७१४
Delphinine (E.) ३२०
Delphinium denudatum Wall. ३१९
D. staphisagria Linn. ५६९
D. zalil Aitch. ३२७
Delpho-curarine ३२०
Dendrophthoe falcata L.f. Etting ४७७
Destructive distillation १११
१११ पा. टि. १
Devil's Cotton (E.) ८१

Devil's dung (E.) ७२९
Devil's gut (E.) ३०
Devil Tree (E.) ३१६
Dhobis nut (E.) ५५३
Dianthus anatolicus Boiss. ९६
Didymocarpus pedicellata R. Br. ४३४
Didymocarpene ४३४
Digitalis lanata (Grecian Fox-glove) ३५५
D. purpurea Linn. ३५५
Digitalin (E.) ३५६
Digitaline (E.) ३५६
Digitin (E.) ३५६
Digitonin (E.) ३५६
Digitoxin (E.) ३५६
Dill (E.) ७०३
Dill apiol (E.) ७०४
Dill fruit or seed (E.) ७०३
Dionysia diapensiaefolia Boiss. ७१६
Dioscorea bulbifera Linn. ५१८
Dioscorea sativum Thunb. ५१८
Diospiros melanoxylon L. ३७१
D. peregrina Gaertn. Gurke ३७५
Dipterocarpus alatus Roxb. २४०
Ditamine (E.) ३१७
Dita or Alstonia Bark (E.) ३१७
Dodder (E.) ११;३१
Doemonorops draco Blume. ३८०
Dog poison (E.) १७९–१८०
Dog-mustard (E.) ७३१
Dolichos biflorus Linn. ११४
Dolichos catiang Linn. ६३१
D. lablab Linn. ६९८
Dorema ammoniacum G. Don ८६
D. roylei DC. ३८१
Doronicum pardalianches ३८१
D. scorpioides
D. hookeri Clarke ३८१
Double Jasmine (E.) ५४०
Downy Grislea (E.) ४०३
Dragon-wort (E.) ५
Dracaena cinnabari Balf. ३८०
D. draco ३८०
Dracocephalum moldavica Linn ३७३
D. royleanum —
Dragon's blood (E.) ३८०
Dried Ginger (E.) ७०१
Drum-stick (E.) ३५
Drum-stick Tree (E.) ६६९
Dry kernel of coco-nut (E.) ४१४
Dryopteris filix-mas (Linn.) Schott. ६६३
Dulcamarin ५५९
Dwarf Cherry (E.) ६१
Dwarf Elder (E.) २१२
Dyers or Spanish Bugloss (E.) ६०१

E

Eagle wood (E.) १३
Earth-nut (E.) ५१०
Earth smoke (E.) ६३७
East Indian or Tinnevelly Senna (E.) ६५८
East Indian Root (E.) १९२
Ebenos (GK.) ५४
Ebony (E.) ५४
Ecballin (E.) १७६
Ecballium elatorium A. Rich. १७६
Echinochaloa frumentacea Link. ६७१
Echinops echinatus DC. ९१
Echium vulgare Linn २४८
Eclipata alba Hassk. ५४७
Eclipta erecta (L.) ५४७
Eclipta prostrata (L.) ५४७
Ecliptine (E.) ५४७
Edible Hibiscus ५५३
Edible pine (E.) ३०२
Egg-plant (E.) ५४१

Egyptian or Sacred Lotus (E.) १२९
Egyptian violet (E.) २२८
Elaterin (E.) १७६
Elaterion (Gk.) १७६
Elecampane (E.) ६०४
Elenion (Gk.) ६०५
Elettaria cardamomum (L.) Maton ७२
Eleusine indica Gaertn. ५५८
E. corana Gaertn. ५५५
Elxine (Gk.) ६१८
Embelia (E.) ५१६
Embelia ribes Burm. ५१६
E. robusta C.B.Cl. ५१६
E. tsjeiaom-cottam A. DC. ५१६
Embelic acid (E.) ५१६
Emblica officinalis Gaertn. ५६
Emetic-nut (E.) ५९६
Emodin (E.) ६१३
Endive (E.) १६५
English Mandrake (E.) ४७३
English Serpentary (E.) ५
Enicostema littorale Bl. ४१२
Enicostema verticillatum Engl. ४१२
Ephedra (E.) ७०२
E. equisetina Bunge. ७०२
E. gerardiana Wall. ७०२
E. sinica Stapf. ७०२
E. vulgaris Hook. ७०२
Epithumon (Gk.) ३०
Epithymon (Gk.) ३०
Erathrodanon (Gk.) ५६२
Erebinthos (Gk.) २९०
Ergot (E.) ४१
Ergota ४१
Ergot of Rye (E.) ४१
Ergotamine (E.) ४१
Ergotoxin (E.) ४१
Eriobotrya japonica Lindl. ६२३
Eriodendron anfractuosum DC. ६९९
Erpylos (Gk.) ७२७
Eruca sativa Mill. ३६१
Erusimon (Gk.) २२१
Ervataria coronaria Stapf. २५७
E. divaricata Alston. २५७
Eryngium coeruleum Bieb. ६३५
Erythraea centaurium Pers. ९६
Erythroxylum coca Lam. २०६
E. truxillense Rusby २०६
Essential oil २१२
Elleboros leukhos (Gk.) २१७
Eschallot (E.) ६२०
Eucalyptus (E.) ६००
E. globulus Labill. ६००
E. oil (E.) ६००
E. rostrata Sch. ५२२
Eugenia caryophyllus Spreng. ६३२
E. jambos Linn. २६८
Eugenol (E.) ३७७
Eujomon (Gk.) ३६१
Eulophia campestris Wall. ६७६
Eupatorion (Gk.) २४२
Eupatorium triplinerve Vahl. ५८
E. ayapana Vent. ५८
Euphorbia dracunculoides Linn. ६८९
E. nivulia Ham. ३७९
E. hirta Linn. ३९१
E. antiquorum Linn. ३७२
E. hypericifolia Linn. ३९२
E. microphylla Heyne. ३९१
E. piulifera Linn. ३९१
E. resinifera Berg. ४६९
E. thymifolia Burm. ३९१
E. tirucalli Linn. ३७९
Euphorbion (Gk.) ४६९

Euphorbium (E.) ४६९
European ground-pine (E.) १३२
European hellebore (E.) २१७
European mistletoe (E.) १७५
Euryale ferox Salisb. ५६१
Evolvulus alsinoides Linn. ६४७
Extract Berberis (E.) ३८५
Extract of Gulanch (E.) २५०
Extract of Liquorice (E) ५८४
Extractum Glycyrrhizae ५८४
E. Berberidis ३८५

F

Fagonsin arabica Linn. ४००
False Calumba (E.) १४२
False or Bastard Saffron (E.) १९७
Feather few (E.) ५१५
Fennel fruit or seeds (E.) ७०६
Ferula alliacea Boiss. ७३०
F. assafoetida L. ७३०
F. foetida Regel. ७३०
F. narthex Boiss. ७३०
F. sumbul ६८६
Fictitious Manna (E.) ६४२
Flat bean (E.) ६९८
Flax-seed (E.) ४२
Flemingia grahamiana W. A. ६३३
Flower pistils of maize (E.) ५५७
Foeniculum capillaceum ७०६
F. suaveolens
F. vulgare Mill. ७०६
Fumaria parviflora Linn. ६३८
F. indica Pursley ६३८

G

Galangal (E.) १९२
Galbanum ३०४; ३३३
Galla ५७४
Gallo-tannic acid (E.) ५०५
Gall, Galls (E.) ५७४
Gallic acid ५७४
Galega incana Roxb. (L.) ६६४
Galega villosa Roxb. ६६४
Gambogia ८८
Gambogic acid (E.) ८९
Ganja (E.) ५४८
Garcinia henburyi Hook. ८८
G. morella Desf. ८८; ७२९
G. mangostana L. ५९२
G. penduncalata Roxb. ३ :
Garden Basil (E.) ३७३
Garden Carrot (E.) २४१
Garden or Field-bean (E) ५०७
Garden Night-shade (E.) ५५८
Garden or spear-mint (E.) ४५२
Garden Rue (E.) ६८८
Garjan Oil (E.) २४०
Garjan or Balsam —
Garlic (E.) ६२०
Gaultheria procumbens Linn. २३३
G. fragrantissima Wall. २३३
Gelidium amansii Kurz. ७००
G. cartilagineum Gail ७००
Gelsemii nitidum २९२
Gentiana kurroo Roxb. ३२८, ३४०, २४२
G. dahurica Fisch. २४२
G. olivieri Griseb. ३२८
Gentian root (E.) ३४०
Gentiopicrin (E.) ३४०
Geranium wallichianum D.Don ६०१
German chamomile (E.) ५१३
Gingelly, Jinjili (E.) ३६७
Ginger (E.) ७०१
Gingerin (E.) ७०१
Gingerol (E.) ७०१
Glaucium ५७५

Glaukon (Gk.) ५७५
Glomerus Fig २६९
Glukurriza (Gk.) ५८४
Glycine hispida Moen. ७०५
G. max Linn. ७०५
G. soja Sieb. ७०५
Glycyrrhizin (E.) २८३; ५८५
Glycyrrhiza glabra Linn. ५८४
Glycyrrhiza Radix ५८४
Goat's swallow (E.) ५३५
Golden Champa (E.) २८६
Golden thread (E.) ५६५
Gossypi Radicic Cortex ११९
Gossypium ११९
G. herbaceum Linn. ११९
Gracilaria lichenoides Harv. १५२
Gram (E.) २९०
Great Morel (E.) ६२६
Greater Galanga (E.) १९३
Greater plantain (E.) ५१७
Green Chiretta (E.) १५९;३०१
Green ginger (E.) ७०१
Grewia asiatica Mast. ४७२
G. hirsuta Vahl. २३१
G. populifolia Vahl. २३१
G. tenax Forsk. २३१
Groats (E) ३५१
Ground elder (E.) २१२
Ground nut (E.) ५९०
Guanine (E.) २३४
Guara (E.) ५४८
Guicum officinale L. ३१४
G. wood (E.) ३१४
Gulancha (E.) २५०
Gum arabic (E.) ४९३
Gum benjamin (E.) ६२९
Gum benzoin (E.) ६२९
Gum euphorbium (E.) ४६९
Gum kino (E.) ५२१
Gummi indicum ४०३
Gum resin (E.) २५३
Gum tragacanth (E.) ११२
Gundeliae lournaefolii resin. ७२९
Gutla gamba (E.) ८८
Guvacine ६९०
Gymnema sylvestre (Retz) Schult. २५४
Gynandropsis pentaphylla DC. ७३१
Gynocardia odorata R. Br. २९७
Gziggiberis (Gk.) ७००

H

Habzelia aethiopica ७२४
Haematoxylon campechianum Linn. ४३२
Harmaline (E.) ७१८
Harmine (E.) ७१८
Hazel nut (E.) ४७५
Hazel-wort (E.) ४६
Heal-all (E.) ९०
Heart-leaved Madder (E.) ५६२
Hedera helix L. ६१८
Hedge mustard (E.) २२१
Hedychium coronarea Koen. १२५
H. spicatum Ham. ex Smith. १२३
Helianthus annus Linn. ६९५
H. Tuberosus ७१९
Helicacabus (Rom.) १५५
Heliotropion (Gk.) ६९५
Heliotropium indicum Linn. ७२५
Helixin ६१८
Helleborin २१९
Helleborein २१९
Helleborus २१८
H. niger L. २१८
Hemidesmus indicus R. Br. ८३; ६७४

Hemlock (E.) ६४५
Henbane (E.) १८
Henbane seeds (E.) १८
Henna (E.) ५९३
Henno-tannic acid ५९३
Hermodactyles (–us) colchicum ६९२
Herpestine ३३०
Herpestis monniera H. B. and k. ३३०
Hibiscus abelmoschus Linn. ५८६
H. cannabinus Linn. ७१४
H. esculentus L. ५५२
H. rosa-sinensis Linn. २५५
Hieracium pilosella Linn. ३११
Himalayan Peony (E.) ९३
Hissopus offlcinalis Linn. ३४३
H. parviflora Benth. ३४३
Hog-bean (E.) १८
Hog-plum (E.) ३३
Holarrhena antidysenterica Wall. १८८
Holly-hock (E.) २११
Hops (E.) ७२३
Hordeum distichum ३४८
Hordeum sativum Pers. ३४८
Hordeum vulgare L. ३४८
Hore-hound (E.) ४७०
Horse Gram (E.) १९४
Horse hoof. (E.) ४६८
Humulus lupulus Linn. ७२३
Hundred holes (E.) ७३३
Hyacinth (E.) ६८६
Hydnocarpus wightiana Blume, (L.) २९७
Hydrocotyle (E.) ५४५
Hydrocotyle asiatica Linn. ५४५
Hygrophila auriculata (Schum) Heine. ३६३
H. spinosa T. And. ३६३
Hyoscine (E.) १९
Hyoscyamine (E.) १९
Hyoscyamus albus Linn. १८
H. niger Linn १९
H. rubrum १९
Hypericum perforatum Linn. ७३३
Hyperikon (Gk.) ७३३
Hyperin (E.) ७३३
Hyssop (E.) ३४३
Ichnocarpus frutescens R. Br. १६३
Ignatia amara Linn. ४३५
Ignatius Beans (E.) ४३५
Illicium verum Hook. f. ५१२
Impatiens balsamina Linn. २६७
Impure carbonate of Potass (E.) ३५०
Indian arrow root (E.) १६८
Indlan Azadirach (E.) ४२४
Indian belladonna (E.) ६२६
Indian birth-wort (E.) ७७
Indian cinnamon (E.) ३५८;३७६
Indian costus (E.) १८३–१८४
Indian forget-me-not (E.) ७४
Indian Gamboge (E.) ८८
Indian Gum (E.) ४०३
Indian Hemp (E.) ५४८
Indian Jack-Fruit (E) १०७
Indian Jalap (E.) ४२०
Indian Jnjube (E) ५३८
Indian Lilac (E.) ४२४
Indian Madder (E.) ५६२
Indian Mulberry (E.) ३७४
Indian mustard (E.) ६६५
Indian Oak (E.) ६६१
Indian Olibanum or Frankincense (E.) ६६७
Indian Penny-wort (E.) ५४५
Indian plum (E.) ५३८

Indian or Country Sarsaparilla (E.) ८३
Indian or Malabar kino-tree (E.) ५२१
Indian peppermint (E.) ४५२
Indian Persimon (E.) ३७५
Indian Prickly-Ash (E.) ३६२
Indian Sarsaparilla (E.) ६७४
Indian Shot or Beed (E.) ५४२
Indian Spike-nard (E.) ५१८
Indian Sorrel (E.) ३६६
Indian Southern Wood (E.) २०४
Indian Spinach (E.) ४५९
Indian Squill (E.) ४६७
Indian Syllium (E.) ७५
Indian tobacco (E.) ३५९
Indian Turn-sole (E.) ७२५
Indian Water-chestnut (E.) ६८१
Indian or Wild liquorice (E.) २८२
Indian Valerian (E.) २५७
Indian White Rose (E.) २६३
Indian Wintergreen (E.) २३३
Indigofera enneaphylla Linn. ४९०
Indigoferae folia ४२६
Indigo plant (E.) ४२६
Indigofera oblongifolia Forsk. ४९०
I. paucifolia Del. ४९०
I. tinctoria Linn. ४२६
Ingiver ७०१
Inula helenium Linn. ६०५
I. racemosa Hook. ४५५
I. royleana DC. ६०५
Inuline ६०५
Inulin १६८;७२०
Iodine १४५
Ipomoea aquatica Forsk. १३८
I. batatas Lamk. ६३४
I. bona-nox Boj. var. grandiflora ६१९
I. (Convolvulus) purga Hayne २३२
I. hederacea (Linn). Jacq. १६०
I. jalapa ३३२
I. nil
I. petaloidea Chois. ५२५
I. quamoclit Linn. ७४
I. reniformis Chois. ३११
I. reptans Pers. १३८
I. turpethum R. Br. ४२०
Iris Sp. १८५;१८२
Iris germanica Linn. ४८४;७०१
Iris versicolor Linn. ७०७
Iron-wood tree (E.) ४०७
Isapghula (E.) ७५
Iso–chaksine २९२
Iso-quercitin (E.) ४
Italian milet (E.) ९४
Ivy (E.) ६१८
Ixos (Gk.) १७४

J

Jackal jujube (E.) ५६०
Jaggery (E.) २३४
Jalap (E.) ३३२
Jalapa ३३२
Jalapa resina ३३३
Jamaica pepper (E.) ४७६
Jamaica Sarsaparilla (E.) ८२,८३
Jamboline (E.) ३३७
Jambosine (E.) २६८;३३७
Japan pea ७०५
Japan Quince (E.) ६२३
Jasmine-flowered Carissa (E.) १४०
Jasmine tree (E.) ५१
Jasminum arborescens Roxb. ५७७
Jasminum auriculatum Vahl. ३४३
J. grandiflorum Linn. २९१
Jasminum humile Linn. ३४
Jasminum officinale

Jasminum pubescence Willd. १७८
Jasminum sambac (L.) (Ait.) ५४०
Jateorhiza palmata (Lam.) Miers. १४२
Jatropha curcas L. ६११
Jatropha gossypifolia L. ६११
Java Almond-tree (E.) ५६४
Jequirity (E.) २८२
Juglans regia Linn. १२
Jujube (E.) ८०
Jujube fruit (E.) ५३८
Juniper berries (E.) ७२४
Juniper fructus ७२४
Juniperin (E.) ७२४
Juniper oil (E.) ७२४
Juniperus communis L. ७२४
J. sabina (L.) ७१४

K

Kaempferia galangla Linn. १२४
Kaldera bush (E.) २०१
Kalmegh १६०
Kamala १३३
Kameela (E.) १३३
Kannabis (Gk.) ५४८
Kapnos (Gk.) ६३७
Kapparis (Gk.) १२५
Kardamon (Gk.) ७२६
Kardilon (Gk.) १६५
Karon (Gk.) १९१
Karone (Gk.) १९१
Karuon (Gk.) ४७५
Kashmir or Bitter Hermodactyl (E.) ६९३
Kassia (Gk.) ३५८
Kassutha (Gk.) ३१
Kastana (Gk.) ५०१
पा० टि० २
Kegkhros (Gk.) ३५२
Kekis (Gk.) ५७४
Kentaurion (Gk.) १६
Kerasia (Gk.) ६१
Keratia (Gk.) २१५
Keratonia (Gk.) २१५
Khalbane (Gk.) ३०४; ३३३
Khalbanese (Gk.) ३०४
Khamidrus (Gk.) १३२
Khamaipilus (Gk.) १३२
Khamelaia (Gk.) ५७३
Khus-Khus (E.) २२०
Kichenia ramosissima ४३४
Kidney bean (E.) ७९; ६३१
King's crown (E.) ६७
King's claver or chafer (E.) ६७
King's cumin (E.) १६
Kinnamomon (Gk.) ६८८
Kino (E.) ५२१
Kino tree oil (E.) ४३८
Kissos (Gk.) ६१८
Knikhos (Gk.) १९७
Knikos (Gk.) १९७
Knikos agrion (Gk.) १९७
Kokkumelia (Gk.) ६२
Kolkh(ch)ikon (Gk.) ६९२
Kolokynthis (Gk.) ६४
Kolokunthro (Gk.) ११४
Konion (Gk.) ६४५
Kossos (Gk.) ६१८
Kostos (Gk.) १८२, १७३
Costus (Gk.) १८२
Krokos (Gk.) २०२
Kuamos aegyptios (Gk.) १३०
Kuminon (Gk.) ३४१
Kurchi Bark (E.) १८८

L

Labdanum L. ६२१
Lactocin (E.) १७०

Lactopicrin (E.) १७०
Lactucic acid (E.) ,,
Lactucin (E.) ,,
Lactucarium १७०, १७१
Lactuca virosa Linn. १६९, १७०
L. scariola Linn. १६९, १७०
L. serriola Linn. १६९
Ladanon (Gk.) ६२१
Ladanum ६२१
Ladies finger (E.) ५५२
Lady Eleven o' clock (E.) ६९५
Lagenaria leucantha Rusby ११४
L. siceraria (Mol.) Standl. ११४
L. vulgaris Ser. ११४
Laggera aurita Schultz-Bip. १३३
Lallemantia royleana Benth. ५२०
Laminaria saccharine Lam. १४५
Lamprachaenium microcephalum Benth. ५४४
Lapathin (E.) ३०९
Lapathon (Gk.) ३०९
Larch Agaric (E.) २४७
Large sebestan plum (E.) ६१६
Lathuris (Gk.) ३८१
Lathyrus sativus Linn. २२९
Launaea nudicaulis Hook. २७९
L. pinnatifida Ceass २७९
Laurel bay (E.) २४५
Laurel berries (E.) २४६
Laurus nobilis Linn. ४२५
Lauroti tanine (E.) ५९५
Lavandula sp. —
L. bipinnata O. Kutze. २०९
L. burmani Benth. ९१, २०९
L. officinalis Choise २०८
L. spica २०८
L. stoechas Linn. ९०; २०९
L. vipinnate O. Kuntze ९१
Lavender oil (E.) २०९
Lawsonia inermis Linn. ५९३
L. alba L. ५९३
L. chinensis Lam. ५९५
Leea hirata Roxb. १५३
Leek (E.) २३२
Leek Indian (E.) २३३
Lemon, Lime. Limon (E.) ४२२
Lens culinaris Medik ५७०
Lens esculentis Moen. ५७०
Lens monopetala (Roxb.) Pers. ५९५
L. sebifera Pers.
Lentisk (E.) ५७०
Leopard's bane (E.) ३८१
Lepidin (E.) ३७८
Lepidium iberis Linn. ३७७
Lepidium sativum L. ७२६
Lesser Dodder (E.) ३०
Lettsomia nervosa Roxb. ६६२
Lettuce opium (E.) १७०; १७१
Lettuce seeds (E.) १७०
Leucas cepalotes Roth. Spreng. २६९
Levant Worm-seed (E.) १७३
Levulin (E.) १६८
Libanos (Gk.) ८
Lichen (E.) ३१५
Lichen odoriferum ३१५
Lignum Vittae or Sanctum ३१४
Ligusticum १६५
Ligustikon (Gk.) १६५
Lime-juice (E.) ४२२
Lime peel (E.) ४२२
Limonia acidissima (L.) Sw. २०३
Limomin (E.) १९२
Limonis cortex ४२२
Lini semina ४२

Linum usitatissimum Linn. ४२
Lippia nodiflora Rich. ३३१
Liquidamber orientalis Miller. ६४०
Liquid storax (E.) ६४०
Liquorice (E.) ५८४
Liquorice root (E.) ५८४
Liquor (E.) २३६
Liquor spiritus २३८
Litchi chinensis Linn. ६२२
Litsea glutinosa (Lour.) Robins ५९५
Lobelia inflata ३५१
Lobelia nicotianaefolia Heyne, ex Roth. ३५१
Lodoicea maldivica Pers. ४१६
Lodoicea seychellarum Labill. ४१६
Logwood (E.) ४३२
Lolium temulentum Linn. ६४६
London Rocket (E.) २२७
Long Birth-wort (E.) ३२६
Long-leaved pine (E.) ३०३
Long pepper (E.) २१४;४४८
Loranthus longiflorus Desv. ४७७
Love apple (E.) ३५४
Love lies bleeding (E.) १४५
Luffa acutangula Roxb. ३७०
L. aegyptica Mill. ३७१
L. bindaal Roxb. ४७८
L. echinata Roxb. ४७८
L. cylindrica Roem ३७०
Luffein (E.) ३७१
Lukion (Gk.) ३८५
Lupinus albus Linn. ३७२
Lupulin (E.) ७२३
Lutein (E.) २०६
Lycopersicon esculentum Mill. ३५५
Lycopsis arvensis Linn. २४८

M

Mace (E.) ३३७
Macrotonia benthami DC. २४८
Madhuca indica Gmel. ५७२
M. latifolia Roxb. ५७२
Maiden hair (E.) ७१०
Maize (E.) ५५७
Maizic acid (E.) ५५७
Maker (Gk.) ३२७
Male fern (E.) ६६३
Malabar Nightshade (E.) ४५२
Malakhe (Gk.) २२५
Malic acid (E.) ३७;३८;६१
Mallotus philippinensis Muell.-Arg. १३३
Malus pumila Mill. ६९७
Malus sylvestris Hort. ६९७
Malva sylvestris Linn. २२५
Mandragora (E.) ४७३
Mandragoros (Gk.) ६२५
Mangifera indica Linn. ५५
Mango (E.) ५५
Mango Ginger (E.) ४७
Mangostin (E.) ५९२
Mangostine (E.) ५९२
Mango turmeric (E.) ४७
Manilkara hexandra Roxb. २२२
Manna of the Desert (E.) ३३४
Maranta arundinacea Linn. ३६८
Marathron (Gk.) ७०५
Margosine (E.) ४२४
Marking nut (E.) ५५३
Marrubin (E.) ४७०
Marrubium nigrum ४७०
M. vulgare Linn. ४७०
Marsh-mallow (E.) २११
Marsh or hair-mint (E.) ४५२

Martynia annua Linn. १६१
M. diandra Glox. १६१
Marvel of Peru (E.) २५६
Mastic, Mastich (E) ५७०
Matriacaria chamomilla L. ५१३
M. parthenium ५१५
Meadow Saffron (E.) ६१२
Mecca Senna (E.) ६५२
Melabathron (Gk.) ३७६
Melanthion (Gk.) १४३
Melfoil (E.) ४९६
Melia composita Willd. ४७९
Melia azedarach Linn. ४७९
Melia azadirachta Linn. ४२३, ४२४
Melilot (E.) ६७
Melilotos (Gk.) ६७; ६८
Melilotus alba Linn. ६८
M. arvensis Lamk. ६८
M. officinalis Wall. ६७; ६८
M. parviflora Desf. ६८
Melisea officinalis Linn. ४९९; ५२८
M. parviflora Benth. ५२८
Melochia corchorifolia Linn. ३५५
Meloleuca cajuputi Roxb. १३४
Meloleuca leucadendron Linn. १३४
Melon, Lime (E.) ५२२
Mellisophullon (Gk.) ५२८
Memecylon tinctorium ६३३
Mentha aquatica Linn. ४१०
Mentha arvensis Linn. ४१०
M. piperaseus ४४५
M. piperita Linn. ४१०; ४४४
M. sativa Linn. ४५२
M. spicata Linn. ४५२
M. sylvestris Linn. ४५२
M. viridis Linn. ४५२
Merremia emarginata (Burm f.) Hall. ३११
M. gangetica (L.) Cuf. ३११
Mesua ferrea Linn. ४०७
Methyl Arbutin (E.) ४
Meum diffusum ६८५
Mexican poppy (E.) ६५४
Meyan (Gk) ५८४
Mezerienic acid (E.) ५७३
Mezerii folia ५७३
Mezerion leaves (E.) ५७३
Michelia champaca Linn. २८६
Millet (E.) ३५२; ५०७
Mimoso netans Linn. ३१८
Mimosa pudica Linn. ३१७
Mimusops elengi Linn. ५९९
Mimusops Roxb. २२२
M. *hexandra Linn.* २२२
Mirabilis jalapa Linn. २५६
Missetto (E) १७५
Molu (Gk.) ७१७
Momordica charantia Linn. १३९
M. dioica Roxb. १०४
Monkey fruit (E.) ४८०
Monkey or Peanut (E.) ५९०
Moodooga oil ४३८
Moon flower (E.) ६१९
Moringa concannensis Nimm. ६६९
M. oleifea Linn. ६६९
M. pterigosperma Gaertn. ६०९
moringine (E.) ६७०
Moringinine (E.) ६७०
Morphine (E.) ४६२
Morus alba Linn. ३७४
Morus indica Linn. ३७४
M. nigra Linn. ३७४
Moss (E.) १५२
Moth-bean (E.) ५९७
Mountain pine (E.) ६६०

Mouse ear (E.) ३११
Mucuna capitata W. & A. १०१
M. pruriens Bak. १०१
M. prurita Hook. १०१
Mudar alban (E.) ४९
Mugwort (E.) ३२;३९५
Mullein (E.) ५८३
Murike (Gk.) ३५३
Mursine (Gk.) ६३
Mursine agaria (Gk.) ६४
Musa paradisica Linn. १९९
M. sapientum L. १९९
Musk root (E.) ६८६
Musk-scented rose (E.) १९९
Mustard (E.) ६६५
Mustard oil (E.) ६६५
Myrica esculenta Buch.-Ham. १५८
M. nagi Hook. f. १५८
Myristica fragrans Houtt. ३३८
Myristica aromatica Lam. ३३८
Myrobalanin ७११
Myroxylon pereirae Klotsch. ४९९
Myrrh (E.) ५४३
Myrrha ५४३
Myrrhin (E.) ५४३
Myrrhis odorats Scop. ६८५
Myrtle (E.) ६२
Myrtus communis Linn. ६३

N

Naked ladies (E.) ६९२
Narcissus tazetta Linn. ४०६
Narcotine (E.) ४६२
Nardos (Gk.) ६८६
Nardostachys jatamansi DC. ५१८
Natrium ८५
Neem or Margosa-tree (E.) ४२४
Negro-coffee (E.) १४७
Nelumbium speciosum Willd. १२९
Nelumbo nucifera .Gaertn. १२९
Neoza Pine (E.) ३०२
Nepal Barbrry (E.) ३८५
Nepeta ciliaris Benth. ३४३
N. elliptica Benth. ५२०
N. hindostana Haines ५२८
N. ruderalis Hook. ५२८
Nephelium litchi Camb. ६२२
Neptunia oleracea Lour. ३१८
Nerion (Gk.) ११६
Nerium indicum Mill. ११६
Nerium odorum Sol. ११६
Neroli (E.) ५८७;६४८
Niacin १५७
Nicotiana rustica Linn. ३५९
Nicotiana tobacum Linn. ३५९
Nicotianin (E.) ५५९
Nicotine (E.) ५५९
Nigella sativum Linn. १४३
Nigella seeds (E.) १४३
Night-blooming Cereus (E.) ४०८
Night Jasmine (E.) ७१०
Night-shade (E.) १८०
Niton (Gk.) ८५
Nose-bleed (E.) ४९६
Nut grass (E.) ५९८
Nutmeg (E.) ३३७
Nux-vomica (E.) १८०
Nyctanthes arbortristis Linn. ७१८
Nymphaia (Gk.) १२९
Nymphaea alba Linn. १३०
N. caerulea १३०
N. lotus Linn. १२९
N. pubescens १३०
N. rubra Roxb. १३०
N. stellata Willd. १३०

O

Oak galls (E.) ५७४
Oak Manna (E.) ६४२
Oat (E.) ३५२
Ochrocarpus longifolius Benth & Hook. f. ४०८
Ocimum basilicum Linn. ३७३
Ocimum gratissimum Willd. ३७३
O. kiliman-oscharicum १२१
Officinal Peony (E.) ९२
Oil betul (E.) २३४
Oil Chenopodium (E.) ४८८;४८९;४९०
Oil of amber (E.) १४९
Oil of anise or ani-seed (E.) ३०
Oil of cinnamon (E) ३८८
Oil of cubeb (E.) १२७
Oil of dill. (E.) ७०३
Oil of hyssop (E.) ३४३
Oil of myrtle (E.) ६४
Oil of sandal wood (E.) ३८४
Oil of tar (E.) ११२
Oil of wintergreen (E.) २३४
Oisupos (Gk.) ३४३
Okimon (Gk.) ३७२
Olea europaea Linn. ३४४
Oleo-resin (E.) ५६४
Oleum Abietes ६६०
Oleum Amygdalae ५१०
Oleum Anethi ३७०
Oleum Arachis ५९०
Oleum Cinnamomi ३८८
Oleum Lini L. ४२
Oleum maidis ५५७
Oleum Olivae ३४४
Oleum Ricini (L.) ६०९
Oleum Santali २८४
Olibanum ९९
Olive oil (E.) ३४४
One-clove garlic (E.) ६२०
Onion (E.) ४६५
Onosma bracteatum Wall. २४८
Onosma echioides L. ६११
Operculina petaloidea Chois. ५२५
O. turpethum Silva ४२०
Ophelia chirata Griseb. ३००
Ophthalmic barberry (E.) ३८५
Opion (Gk.) ४६०
Opium ४६०
Opuntia dillenii Haw. ४०९
Orchis latifolia Linn. ६७६
O. laxiflora Lam. ६७५
O. maculata Linn. ६७६
Orchis mascula Linn. ६७६
Organ disulphide (E.) ७३०
Origanon (Gk.) ६७२
Oris (E.) ७०७
Orris root (E) ७०७
Orris root (E.) १८२; १८५
Orthosiphon pallidus Royle. ४१८
Oruza (Gk.) २९६
Oryza sativa Linn. २९६
Osyrilin ६६४
O uriana (Gk.) २००
Oxalis corniculata Linn. ३६६
Oxymyrsine (E.) ६४

P

Pa (Gk.) ६१२
Paeonia officinalis Linn. ९२;९३
P. emodi Wall. ९३
Panama bark (E.) ६७४
Panicum frumentaceum Roxb. ६७१
Paion (Gk.) ९२
Palmyra toddy (E.) ३६२
P. tree (E.) ३६२
Pandanus fascicularis Linn. २१०

Panicum antidotale Retz. ४३२
P. italicum Linn. ९४
P. miliaceum Linn. ३१२
Papain (E.) ३७
Papaver rhoeas (L.) २६१; ४६०
P. somniferum Linn. ४६०
Papaveris capsulae (L.) ४६०
Papaw (papaya) tree (E.) ३७
Papayotin (E.) ३८
Papyrus (Gk.) ४३०
Paris polyphylla Sm. ४८४
Parmelia kamtschadatis Esch (L.) ३१५
Parsley (E.) ४७६
Paspalum scrobiculatum Linn. २०८
Pasque flower (E.) २६०
Pastinae sacacul (L.) ६३४
Patchouli (E.) ४३०
Pauliouros (Gk. old) ८०
Pauliouri (Gk.) ८०
Pea (E.) ५६३
Peach (E.) ५२
Peach brandy (E.) ५३
Pear (E.) ३४; ४२७
Pearl-ash (E.) ३५०
Peason (E.) ५६३
Pectin (E.) ६०७
Pedalium murex L. २७३
Pedicin (E.) ४३४
Pedicinin (E.) ४३४
Peganon (Gk.) ६८८
Peganon agrion (Ak.) ७१७
Peganun harmala Linn. ७१७
Pellitierine (E.) २५
Pellitory of Spain (E.) ९
Pellitory root (E.) ९
Pennisetum typhoides Rich L. ५०७
Pentapetes phoienicea Linn. २५९
Pentaphyllon (Gk.) ५२७
Peony (E.) ९२
Peony rose (E.) ९३
Pepita (Spain) ४३५
Pepper (E.) ५७९
Pepper grass (E.) ३७७
pepper-wort (E.) ३७७
Pepper-mint (E.) ४४४
Pepper root (E.) ४४९
Pepsin (E.) ३८
Perfoliate soap-wort (E.) ६७३
Persin Lilac (E.) ४७९
Persian Manna (E.) ३३४; ६४२
Persion tragacanth (E.) ११२
Periploca of the woods (E.) २५४
Peruvian coca (E.) २०६
Peruvian Balsam (E.) ४९९
Petroselinum sativum Hoffm. ४७६
Peucedanum grande C. B. Clarke ३९२
Peucedanum nagpurense Prain ३९३
Peucedanum sowa Kurz. ७०३
Pharbiticin (E.) १६१
Pharbitis or Convolvulus Spp. ६३९
Phaseolus aconitifolius Ait. ५९७
Phaseolus mungo Linn. ७९
P. radiata Linn. ५८९
P. trilobus Wall. non Ait. ५८२; ५९४
Phenol (E.) १४९
Phoinix (Gk.) २०९
Phoenix dactylifera Roxb. २०९
P. sylvestris Roxb. २०९
Phosphoric acid. (E.) ५०७
Phyla nodiflora (L.) Greene. ३३१
Phyllanthus madraspatensis
Linn. ११८
Physalis alkekengi Linn. १५५; ५५८
P. minima Linn. १५६

Physic nut (E.) ६११

Phyllanthus emblica Linn. ५६

Phytic acid (E.) २२९

Picroglycion ५५९

Picrorhiza kurroa Royle ex Benth. १८७

Picrorhizin (E.) १८७

Picrotoxin ५७८

Pigeon Pea (E.) ४०

Pimenta ४७६

P. oil (E.) ४७६

Pimento (E.) ४७६

Pimenta officinalis Lindl. ४७६

Pimpinella anisum Linn. २९

P. involucrata २९

Pine apple (E) २४

Pinene ७३०

Pine nuts (E.) ३०२

Pine Tar (E.) ११०

Pine Tree (E.) ६०३

Pinus ६०३

P. cedrus ६६०

P. deodara ६६०

P. gerardiana Wall. ६६०

P. longifolia Roxb. ३०३;६६०

P. pomilias ६६०

P. roxburghii Sargent ३०३;६६०

P. sylvestris १११

Piper betel Linn. ४४१

Piper chaba Hunter. २९४

P. caninum Rumph. १२९

P. cubeba Roxb. १२६

Piperic acid (E.) ५७८;४४९

Piperine (A.) ५७९

Piper longum Linn. ४४९

Piper nigrum Linn. ५७८

Piper root (E.) ४४९

Pistacia integerrima Stewert १५४

P. lentiscus Linn. ५७१

Pistachio galls (E.) ४४६

P. husk (E.) ४४६

Pistachio-nut tree (E.) ४४६

Pistacia terebinthus Linn. ५३२

P. vera Linn. ४४६

Pistia stratiotes Linn. ३२९

Pisum arvense Linn. ५६३

Pisum sativum L. ५६३

Pix liquida ११०

Plantago amplexicaulis Cav. ७६

P. major Linn. ५१७

P. ovata Forsk. ७५

Plantain (E.) १९९;२००

Plantanus orientalis L. २९०

Plnmbago indica L. ३०६

P. capensis Thunb. ३०६

P. rosea Linn. ३०६

P. zeylanica Linn. ३०६

Pogostemon heyneanus Benth. ४३०

P. patchouli Pell. Hook. ४३०

Pois (Fr.) ५६३

Poley germander (E.) ३४७

Polupodion (Gk.) ५०२

Palyanthes tuberosa Linn. २६२

Polygala senega Linn. ५३३

Polygalon (Gk.) ५३३

Polygonatnm verticillatunm ६३५

Polygonic acid (E.) ५

Polygonum bistorta ५

Polygonum aviculare Linn. ५३१

P. viviprum Linn. ५

Polypodium vulgare Linn. ५०२

Polyorus officinalis Fries. २४७

Pomegranate fruit (E.) ५

P. peel or rind (E.) २७

P. tree (E.) ३५

Ponakes (Gk.) ३३३
Pontikon (Gk.) ४७५
Poppy capsules (E.) ४६०
Porret (E.) २३२
Portugal orange (E.) ५८७
Portulac (Rom.) १९६
Portulaca oleracea Linn. १९५
P. quadrifida Linn १९५
Potassium Carbonas Impura (L.) ३५०
P. myronate ६०२
Potato (E.) ६०
Potentilla nepalensis Hook. ६०१
P. paniculata Colebr. ५७८
P. supina L. ५२७
P. tormentilla seek ५२७
P. reptans L. ५२७
Prangos pabularia Lindl. ४७६
Prasion (Gk.) ४७०
Prickly pear (E.) ५०९
Prophetin १७६
Proteids ५०७
Protein ५९०
Protopine ६५५
Prunes (E.) ६०
Prunus aloocha Roxb. ६४
P. amygdalus var. amara ५०८
P. amygdalus dulcis ५०७
P. commnnis Hudson ६२
P. communis var amara ५०८
P. communis var-dulcis ४०९
P. cerasus Linn ६१
P. bokhariensis ६२
P. domestica Linn. ६२
P. mahaleb Linn. ७१५
Psalliota campestris Linn. २२६
Psiduim guajava Linn. ३४
P. pomiferum Linn ३४
P. pyriferum Linn. ३४
Psoralea corylifolia Linn. ४८०
Pterocarpus marsupium Roxb. ५२१
Pterocrpus santalinus Llnn. २८३
Pterospermum acerifolium Willd ५८३
Pudding stick (E.) ३५
Pueraria tuberosa DC. ५२४
Pulsatilla (E.) २६०
Pumela (E.) २८७
Pumpkin (E.) २०५
Punctured paspalum (E.) २०८
Puneeria coagulans Stocks. ४६
Punica granatum Linn. २५
Punicine (E.) २५
Punico-tannic-acid (E.) २५
Purethron (Gk.) ९
Purging Cassia (E.) ३५
Purging or white Agaric (E.) २४७
Puros (Gk.) २७२
Purple flea-bane (E.) १६२; ४८०
Purple Lippia (E.) ३३१
Purple fox-glove (E.) ३३५
Purple Tephrosia (E.) ६६४
Purpurin (E.) ५६२
Pyrethrin (E.) ५३३
Pyrethrine (E) 〃
Pyrethrum radix ९
P. indica DC. २५८
Pyrus communis Linn. ४१७
Pyrus cydonia Linn ५३०
P. malus Linn. ६९७
P. pyrifolia Nakai var. Culta Nakai ४१७

Q

Quamoclit vulgaris Chois. ७४
Quercetin (E.) १२, ३१

Quercus incana Roxb.
Quercus infectoria Oliv ५७४
Quillaia Soap (E.) ६७४
Quillaja (E.) ६७४
Quillaja saponaria Mol. ६७४
Quince seed (E.) ५३०
Quinine (E.) ६७८; ६८०
Quins (E.) ५३०

R

Radish (E.) ५९०
Radish seeds (E.) ५९०
Raisins (E.) २, ३
Randia dumetorum Lamk. १८०; ५९६
R*andia spinosa* (Thunb.) Poir ५९६
Ranunculatus scleratus L. ६१५
Rape (E.) ६६५
Rape oil (E.) ६६५
Raphanis (Gk.) ५९०
Raphanus sativus Linn. ५९०
Rauwolfia serpentina Benth. ७७;३८२
Rauwolsine (E.) ३८३
Red Chilli or Pepper (E.) ५८१
Red Cock's comb. (E.) १४५; ६८३
Red behmen or Rhapontic (E.) ६०३
Red gourd (E.) २०५
Red Malabar nightshade (E.) ४५९
Red Melochia (E.) ३४५
Red poppy (E.) २६१; ४६०
Red Sandal wood (E.) २८३
Red Sanders wood (E.) २८३
Red Silk-cotton tree (E.) ६९०
Reserpine (E.) ३८३
Resin (E.) ६०३
Resina ६०३
Resin of Pistachio-tree (E.) ४४६
Rha —
Rha barbarum ६१३
Rha ponticum ६१३
Rhei radix ६१२
Rhein (E.) ६१३
Rheum ६१२
Rheum nobile Hook. ६१२
Rheum officinale Baill. ६१२
Rheum palmatum L. ६१२
Rheum ribes ६१२
Rhincanthin (E.) ४४४
Rhincanthus communis Nees. ४४४
R. nasuta Kurz. ४४४
Rhododendron anthopogon D. Don. ३६५
R. lipidotum Royle. ३६५
Rhous (Gk.) ६९१
Rhubarb (E.) ६१२; ६१३
R. root (E.) ६१२
Rhus coriaria Linn. ६९१
Rhus parviflova Roxb. ६९१
Rice (E.) २९६
Ricin (E.) २८३
Ricinus communis L. ६०९
Ring-worm plant (E.) ४२८
Rocket (E.) ३६१
Rosa alba Linn. २६३
R. canina २६५
R. damasoena Miller. २६४
R. involucrata Herrm. १९९
R. moschata Herrm. १९९
R. moschatas Miller २६३
Rose (E.) २६४
Rose apple (E.) २६८
Rosemaro (C.) ६६
Rosemary (C.) ६६
Rose of Jericho (B.) २४०
Rase seeds (B.) २६५
Rose stamens (B.) २६५

Rosemarinus officinalis L. ६६
Roisin (E.) ६०३
Rottlera (E.) १३३
Rottleria tinctoria Roxb. १३३
Rottlerin (E.) १३४
Rough-Chaff tree (E.) २९८
Round birth-wort (E.) ३२७
Round dock (E.) २११
Rubia cordifolia Linn. ५६२
R. tinctoria Linn. ५६२
Rumex acetosa L. ३०९
R. aquaticus L. ३०९
R. maritimus L. ३०९
R. vesicarium L. ३०९
Rumicin (E.) ३०२
Ruscus aculeatus ६४
Ruta angustifolia Pers. ६८८
R. graveolens Linn. ६८८
Rutin (E.) ६६४; ६९२

S

Saccharose (E) २३६
Saccharum २३५
S. officinarum Linn. २३४
Safflower (E.) १९७
Saffron (E.) २०२
Sagapenon (Gk.) ६५१
Sagapenum (L.) ६५१
Sage (E.) ६६२
Sago (E.) ६७२
Sagus genuina ६७२
S. loevus ६७२
S. rumphii Willd. ६७२
Saint Jhon's bean (bread) (E.) २१५
Salep (E.) ६७६
Salicin (E.) ५३६; ५३७
Salicylic acid (E.) ७१५; २९२
Salix aegyptiaca Sprengel. ३२८
S. alba Linn. ५३७
S. caprea Linn. ५३५
S. nigra ५३७
S. tetrasperma Roxb. ५३७
Salliola २२६
Salsola kali Linn. ८४
Salsola foetida Del. (L.) ८४
Salt worts (E.) ८४
Salvadora oleoides Dcne. ४५०
S. persica Linn. ४५०
Salvia aegyptiaca Linn. var. Pumila Benth. ५२०
S. haemotodes R. Br. ४३८
S. plebeia ६६२
S. spinosa Linn. ११८
Samanbain (E.) ५०२
Sambucin (E.) २१३
Sambucus ebulus Linn. २१२
S. nigra Linn. २१३
Sambunigrin (E.) २१३
Samurna (Gk.) ५४३
Sandal wood (E.) २८४
Sandrach (E.) ६४८
Sanguis draconis ३८०
Santalum album Linn. २८४
S. rubrum २८३
Santonica (E.) १७२
Sapindus emarginatus Vahl. ६०७
S. albidum (Nattal) Nees. ६७७
Saponaria officinalis Linn. ३६७
S. vaccaria Linn. ६७३
Saponin (E.) २०६; ५९६; ६०७; ६१८; ६७४; ६८४
Sapotoxin (E.) ३९
Sappan wood (E.) ४३२
Sarsae radix ८२
Sarsaparilla ,,

Sassafras (E.) ६७७
S. officinale Nees ६७७
S. oil (E.) ६७८
S. varifolium Kuntze. ६६७
Satyrion (Gk.) ६७६
Saurion (Gk.) ६७६
Saussurea lappa C. B. Cl. १८३
Saxifraga ligulata Wall. ३४०; ४२१
Scab wort (E.) ६०५
Scammoniae Resina ६५२
Scammonin (E) ६५२
Scammonium ६५२
Scammony (E.) ६५२
S. resin (E.) ६५२
Scarlet pimpernel (E) ३४६
Schoinos (Gk.) ६९
Scilla indica Baker. ४६७
S. hyacinthina (Roth.) macle ४६७
L. ४६७
Scirpus grossus Linn. १४६
S. kysoor Roxb. १४६
Sea cocoanut (E.) ४१६
Sea-weed (E.) ७००
Secale cornutum Nees. ४१
Self heal (E.) ९०
Semecarpus anacardium L. f. ५५३
Senega, Seneka (E.) ५३३
Senega radix or root (E.) ५३३
Senna (E.) ६५८
Sennae folium ६५८
Sennae fructus ६५८
Senna pods (E.) ६५८
Sennoside (E.) ६५९
Senegen (E.) १३७
Sensitive plant (E.) ३१७
Septfoil (E.) ५२७
Seris (Gk,) १६५
Serpyllum (E.) ७२७
Sesame (E.) ३६७
Sesame oil (E,) ३६७
Sesami oleum ३६७
Sesamum indicum Linn. ३६७
Sesbania sesban Merr. ३२३
Sesbania aegyptica Poir. ३२३
Seseli (Gk; E.) ६८५
Setaria italica Beauv. ९४
Shallot (E.) ६२०
Shoe-flower (E.) २५५
Shorea robusta Gaertn. ६०३
Sida cordifolia Linn. ४९८
S. humlis २७५
S spinosa L. २३२
Sinalbin (E.) ६६५
Sinapis ६६५
Sinapine (E.) ६०२
Sinapis Albae ६६५
S. Nigrae ६६५
Siris tree (E.) ६८२
Sissoo (E.) ६४२
Sisymbrium irio Linn. २२१
Sitlon (Gk.) ३७८
Skammonia (Gk.) ६५२
Skilla (Gk.) ४६७
Skimmia laureola Hook. १६४
Skordion (Gk.) ८९
Skordon (Gk.) ६१९
Slipper thorn (E.) ४०९
Smallage (E) १५
Small bind-weed (E.) ७२८
Small caltrops (E.) २७४
Small Indian Ipecacuanha (E.) २५४
Small Sebestan plum (E) ६१६
Small tamarix galls (E.) ४७१
Smilax china Linn. ३१२

S. arnata Hook. f. ८३
S. glabra Roxb. ३१३
S. lanceaefolia Roxb. ३१३
S. macrophylla Roxb. ८३;३१३
S. medica Sch. ८३
S. officinalis ८३
Smilaxin (E.) ८३
Smut of Rye (E.) ४१
Snake root (E.) ५३३
Snake gourd (E.) २८८
Snake weed (E.) ५;३९१
Sneeze-weed (E.) ४०४
Soap-nut (E.) ६०७
Socotrine aloes (E.) २८०
Soda (E.) ८५
Soda bicarb. (E.) ८५
Sodium bicarbonate (E.) ८५
Soda plants (E.) ८४
Sodium carbonate (E.) ८५
Soja (E.) ७०५
Solanine (E.) ५५८
Solanum dulcamara Linn. ५५९
S. indicum Linn. १०९
S lycopersicum L, ३५४
S. melongana Linn. ५४१
S.miniatum ५५८
S. somniferum ६२६
S. surattense १०९
S. tuberosum Linn.
S. xanthocarpum Schrad. १०९
Somniferin (E.) ४५
Sorghum cochna (Forsk.) ३५२
Sorghum vulgare Pers. ३५२
Sorrel (E.) ३०९
Sortis manna (E.) ६४३
Sour Dock (E.) ३०९
Sow-bread (E.) ४८१
Soya or Soy-beans (E.)
Spanish Cbamomile (E.) १०
Spargancin ७२२
Spargin (E.) ७२२
Sparrow-grass (E.) ७२२
Spear-mint (E.) ४१०
Sperage (E.) ७२२
Sperge olive or laurel (E.) ५७३
Sphaeranthin (E.) ५५६
Sphaeranthus africanus Linn. ५५६
S. indicus L. ५५६
Spinach (E.) ४४३
Spinacia oleracea Linn. ४४३
Spogel (E.) ७५
Spogel seeds (E.) ७५
Spondias mangifera Willd. ३३
S. pinnata kurz ३३
Spreading Hog-weed (E.) ४५३
Squinanch (E.) ६९
Squirting cucumber (E.) १७६
Staff tree (E.) ५७६
Staphisagriae Semina ५६९
Staphisagrine (E.) ३२०;५६९
Staphis agris (E) ५६९
Star anise (E) ५१२
Starch (E.) २७२
Stave sacree seeds (E.) ५६९
Stearoptin (E.) १७
Stephania hernan iofolia Walp. ४४०
Sterculia urens Roxb. ११३
Stick wort (E.) २४४
Sticky cleome (E.) ७३१
Stigmalia maidis ५५७
Saint John's Grass or wort (E.) ७३३
Stockholm Tar (E.) ११०
Stoechados (E.) २०९
Stoibe (Gk.) ५३५

Stoikhados (Gk.) ९०
Stone flowers (E.) ३१५
St. Ignatius bean (E.) ४३५
Stramonium (E.) ३९६
Stratiotes (Gk.) ३२९
Stronthion (Gk.) १००;६७३
Storesin (E.) ६४१
Storax (Gk.E.) ६४१
Strophanthus (E.) ७०९
S. combe Oliver ७०९
S. hispidus DC. ७०९
Strychnine (E.) १८०
Strychnomanikos (Gk.) ६२६
Strophus dichotomous Wall. ७०९
S. wallichii A.DC. ७०९
S. wightianus Wall. ३०९
Strychnos १५५
Strychnos ignatii ४३५
S. nux-vomica Linn. १७९
S. potatorum Linn. ४१८
Styrax (E.) ६४०
S tonkinense Craib ७३०
S. benzoin Dryander ६२९
Succinic acid (E.) १४९
Succinile (E.) १४९
Succinum १४८
S. oil (E.) १४९
Succory (E.) १६५
Sueda fruticosa Forst ८४
Sugar (E.) २३५
Sugar beat (E.) ३०८
S. mukorossi Gaertn. ६०७
S. trifoliatus Auct non Linn. ६०७
Sugar cane (E.) २३४
Suisenine (E.) ४०६
Sultanas (E.) ३
Sumak, Sumach(E.) ६११
Sumatra Benzoin (E.) ६३०
Sumbul (E.) ६८६
Sun-flower (E.) १९५
Sweet almont-trec (E.) ५०९
Sweet almond (E,) ५१०
Sweet bay (E.) २४५
Sweet basil (E.) ३७३
Sweel chervil (E.) ६८५
Sweet flag or Sedge (E.) ४८३
Sweet or Lemon balm (E.) ५२८
Sweet orange (E.) ६४८
Sweet or Smoother Cicely (E.) ६८५
Sweet Pellitory (E.) ५३३
Sweet potato (E.) ६३४
Sweet scented Cactus (E.) ४०८
Sweet Scented oleander (E.) ११६
Sweet or White gourd (E.) ११४
Sweet melon (E.) २१४
Sweet tanegl (E.) १४५
Swertia angustifolia Ham. ३०१
Swertia chirata Buch. ३००
Sygygium jambos Linn. Alst. २६८
Symplocos racemosa Roxb. ६२८
S. crataegoides Ham. ६२८
Syrian Rue (E.) ७१७

T

Tabernaemontana coronaria Willd. २५७
Tabernaemontana divaricata (L.) R. Br. २५७
Tabernaemontanine (E.) २४८
Tacca aspera Roxb. ५१८
Tagates erecta Linn. ८७१
T. patula २७१
Tailed pepper (E.) १२६
Tamarind (E.) १७७

Tamarindus indicus L. ७८
Tamarix (E.) ३५३
Tamarix galls (E.) ३५३
T. articulata Vahl. ४७७
T. manna (E.) ३५३; ६४२
T. gallica aunt. non L. ३५३
T. troupii Hole ३५३
Tannic acid ५; ५७४; ७११
Tannin (E.) ७११
Tenacetum umbelliferum ५३३
Tar (E.) ११०; ३९४
Taractogenos kurzii King. २९७
Taraxacin १६८
Taraxacerin १६८
Taraxacum officinale Weber १६७
Tartaric acid (E.) ३८; ३८६
Taxus baccata Linn. ३६४
Tazettine ४०६
Tea (E.) २९५
Tea-berry (E.) २३३
Tel or Jinjili oil (E.) ३६७
Telis (Gk.) ५९४
Temuline ६४६
Tephrosia purpurea Pers. ६४६; ६६४
Tephrosin (E.) ६६४
Teramnus labialis Spreng. ८०
Terebinthinae oleum ३०३
Terebinth or Chian turpentine tree (E.) ५३२
Terebinth tree (E.) ३०४
Terminalia belerica Roxb. ५०४
T. chebula Retz. ६११
Terpenes (E.) ५६४
Terpentine oil (E.) ३०३, ३०४
Teucrium chamaedrys Linn. १३२
Teucrium chamaepitys १३२
T. polium Linn.. ३४७
T. scordium Linn. ८१
Teutlon (Gk.) ३०८
Thalictrum foliolosum DC. ४४५
The Absinth (E.) ३२
Thea sinensis Kuntz. २९५
The bitter or Bottle gourd (E.) ११४
The Bokhara Plum (E.) ६२
The Box, myrtle (E.) १५२
The Carob-pod (E.) २१६
The Carob seed (E.) २१६
The Chir-pine (E.) ३०३
The Common Indian Purslane (E.) १९५
,, ,, ,, seedes (E.) ,,
Theine (E.) २९५
The Common mallow (E.) २२५
The Costus (E.) १८३
The Cuddapah Almond (E.) ३०१
The Edible Caper (E.) १२५
The Garden Endive (E.) १६५
The Greater Cardamum (E.) ७३
The Guava (E.) ३४
The Gular fig or Country fig (E.) २६९
Theine (E.) १५१
The Lesser Galangal (E.) १९२
The Lesser or Malabar Cardamomum (E.) ७२
The Lodh (E.) ६२८
The Loquat (E.) ६२३
The Monkey-face tree (E.) १३३
The Oleo-resin of Pine (E.) ३०३
Theophylline (E.) २९५
The Peepul tree (E.) ४४८
Theriac (E.) ४६०, ४६१
Theriaka (Gk.) ४६१
Thermos (Gk.) ३७२
The Roman Nettle (E.) ८
The sweet orange (B.) ९८

The tall pyramidal cypress (E.) ६६६
The tooth-brush tree (E.) ४५०
Thevetia nerifolia Juss. ११६
Thevetia peruviana (Pers.)Merr. ११६
The wild lettuce (E.) १६९
Thiamin (E.) १५७
Thorn apple (E.) ३९६
Thorough-wort (E.) ५८
Throusand leaf. (E.) ४९६
Three-leaved Caper (E.) ४९७
Thridas (Gk.) १६९
Thumos (Gk.) ७२७
Thyme (E.) ७२७
Thymol (E.) १७
Thymus (Gk.) १७
Thymus serpyllum Linn. ७२७
Thymus vulgaris Linn. १७, ७२७
Tinospora cordifolia (Willd.) Miers २५०
Titlon (Gk.) ३०८
Tody or sap of Nimb tree ४२४
Tolu Balsam (E.) ४९९
Toluifera balsamum Baill. (L.) ४९९
Tomato (E.) ३५४
Tonkin bean (E.) ६७
Toothache tree (E.) ३६२
Tormenol (E.) ५२७
Tormentile (E.) ५२७
Tormic acid (E.) ७२४
Touch-me-not (E.) २६०
Trachelospermum hornemannioanm Hayne. ६४९
Trachyspermum ammi (L.) Sprague १६
T. roxburghianum Craib. १५
Tragacantha (Gk.) ११२
Trailing eclipta (E.) ५४७
Trapa natans (L.) var. bispinosa (Roxb.) ६८१
Treacle (E.) ४६१
Triangular sponge (E.) ३७९
Trianthema ४५४
Trianthema portulacastrum Linn. ५२९
Trianthema monogyna L. ५२९
Tribolia (Gk.) २७५
Tribolos (Gk.) २७५
Tribulus २७५
Tribulus alata Delile २७४
Tribulus terrestris Linn. २७४
Trichilia emetica १८०; ५९६
T. trijoliata Wall. ५९६
Trichodesma indicum Br. २४८
T. zeylanica Br. २४८
Tricholepis glaberrima DC. ५४४
T. procumbens Wight. ५१२
Trichosanthes anguina Linn. २८८; ४१६
T. cucumerina Linn. ४३६
T. dioica Roxb. ४३६
Trigonella corniculala Linn. ६८
T foenum-graecum Linn. ५९४
T. uncata Bolss ६७
Trigonelline (E.) ५६४; ५९४
Trimethylamide (E.) ४५०
Tripolion (Gk.) ४२०
Triticum aestivum Linn. २७२
T. sativum Linn. २७२
T. vulgare Host. २७२
Tuberose (E.) २६२
Turmeric oil (E.) ७२१
Turnip (E.) ६३७
Turpethin (E.) ४२१
Tussilago farfara Linn. ४६८

Typha elephantina Roxb. ४३१
Typha angustata Chaub. ४३१

U

Umbrella tree (E.) २०१
Uncaria gambir Roxb. २३०
Uperkon (Gk.) ७३३
Urginea (E.) ४६७
U. indica Kunth. ४६७
U. scilla ४६७
Urtica pilulifera ८
U. prima Math. ८
Ussopos (Gk.) ३४३
Uvae २
Uva ursi (E.) ३,४

V

Valeriana celtica ८६६
V. jatamansi Jones. ३५७
V. officinalis Linn. ३५७; ४१६; ५१२
V. wallichi DC. ३५७
Vallerine (E.) ५४६
Vallisneria spiralis Linn. १५२; ७००
Vanillin (E.) ६३०
Vascine (E.) २१
Vateria indica Linn. ६४८
Vegetable Rennet (E.) ४६
Velvet leaf (E.) ४४०
Venus hair (E.) ७१०
Verarlum album १००
Veratrum album Linn. २१७
V. viride Aiton २१८
V. niger. २१८
Verbascum thapsus Linn. ५८४
V. glomeratum ५७८
Verbene officinalis Linn. १४२
Vernonia anthelmintica Willd. १६२
V. cinerea Less. ६६८
Vervain (E.) १४२
Viscosic acid (E.) ७३२
Viscosin (E.) ७३२
Vesicaria (Rom.) १५५
Vetiveria zizanioides Nast. २२०
Vicia faba ५०७
Viscin (E.) १७५
Vigna catiang Linn. ६३१
Vine (E.) १
Viola cinerea Boiss. ४११
Viola odorata Linn. ४९१
Viola serpens Wall. ४९१
Virgin scammony (E.) ६५२
Viscum album Linn. १७३;१७५
Vitex agnus-castus Linn. ६५०
V. negundo Linn. ६५०
V. leucoxylon L.f. १५३
V. peduncularis Wall. १५३
V. trifoliata or inciss
Vitis vinifera Linn. १
Volutarella Spp. ६४४
V. divaricata Hook. f.
V. ramosa Roxb. ५१२
Vomit nut (E.) १७९; १८०

W

Wall germander (E.) १३२
Walnut (E.) १२
Washing soda (E.) ८५
Water caltrop (E.) ६८१
Water celery (E.) ३९५
Water chestnut (E.) १४६
Water dock. (E.) ३०९
Water germander (E.) ८९
Water lily (E.) १२९
Water lily blue (E.) १३०
Water melon (E.) ३६०
Water or gerden cress (E.) ७२९
Water soldier or lettuce (E.) ३२६
Wazflower plant (E.) २५७
Wedelia calendulacea Loss. ५४७
Weeping nyctan thes (E.) ७१८
West Indian arrow root (E.) ३६८
Wheat (E.) २७२
White behen (E.) ५०९
White bryony (E.) ४७३
White flowered dhatura (E.) ३९६
Whit goose foot (E.) ४८८

White Goorse melon (E.) ४५८
White Hellebore (E.) २१७
White lupine (E.) ३७२
White mistletoe (E.) १६५
White mulberry (E.) ३७४
White mustard (A.) ६६५
White or brown chirata (E.) ३००
White or Gray Oak (E.) ५०१
White or opium poppy (E.) ४६०
White poppy seeds (E.) ४६०
White pumpkin (E.) ४५८
White rhapontic (E.) ५०२
White vetch (E.) २२९
White Willow (E.) २३७
Wild asparagus (E.) ६६३
Wild cabbage (E.) २७८
Wild carrot (E.) २४१
Wild egg-plant (E.) १०९
Wild Guava (E.) ५१५
Wild Jube (E.) ५३८
Wild Lettuce lactica (E.) १६८
Wild Myrtle (E.) ६४
Wild Nard (E.) ४६
Wild or Horsemint (E.) ४५२
Wild Succory (E.) १६७
Wild Thyme (E.) ५८२; ६७२; ७२७
Wild Turmeric (E.) ४८
Wild vine (E.) ४७३
Wind flower (E.) २६०
Winged caltrops (E.) २७४
Winter cherry (E.) ४४; १५५
Wintergreen (E.) २३३
Wolf's bane (E.) ४८५
Wood apple (E.) २०३
Wood-flower (E.) २६०
Woodfordia floribunda Salisb. ४०३
Woody nightshade (E.) ५५९
W. fruticosa Kurz. ४०३
Wood oil (E.) २४०
Wood tar (E.) ११०
Worm-seed (E.) १७९
Worm-wood (E.) ३२
Wrightia tinctoria R.Br. १८८
W. tomentosa Roem. & Schult १८८
Withania coagulans Dunal ४६; १५५; १५६
W. somnifera Dunal ४४
Withanin (E.) ४६

X

Xanthium (E.) २९५
Xanthium strumarium Linn. २७६
Xeromphis spinosa (Thunb.) ५१६
Xula sagalina २८४

Y

Yellow thistle (E.) ६५४
Yew (E.) ३६४

Z

Zanthoxylum alatum Roxb. ३६९
Z. budrunga Wall. ३६९
Z. rhetsa De. ३६९
Zataria multiflora Boiss. ६७२
Zea mays Liun. ५५७
Zedoar (Gk.) ३१९
Zedoarin (E.) ४०६
Zedoary (E.) ४०५
Zingiber officinale Rosce. ७०१
Zizyphus jujuba Lamk. ५३८
Z. maritiana Lamk. ५३८
Z. oenoplia Mill. ५६०
Zizyphus nummularia (Burm f.)
Wt. and Arn.
Z. sativa Gaertn. ८०
Z. vulgaris Lam. ८०

Vaidyaraj Zandu Bhatji
National Ayurvedic Library
Punjabi Bagh
Call No......
Book No......
Acc. No......
000161

सम्मत्यर्थ